Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

110327

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

ॐ परमधाम
सत्यलोक (ब्रह्मलोक)
तपलोक
जनलोक
महर्लोक
स्वर्लोक
भुवर्लोक
भूलोक
अतल
वितल
सुतल
तलातल
महातल
रसातल
पाताल

ॐ परमधाम
सत्यलोक (ब्रह्मलोक)
तपलोक
जनलोक
महर्लोक
स्वर्लोक
भुवर्लोक
भूलोक
अतल
वितल
सुतल
तलातल
महातल
रसातल
पाताल

वर्ष ४३

परलोक और पुनर्जन्मांक

संख्या १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा रमा ब्रह्माणी जय जय, राधा सीता रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश, जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवा-शिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

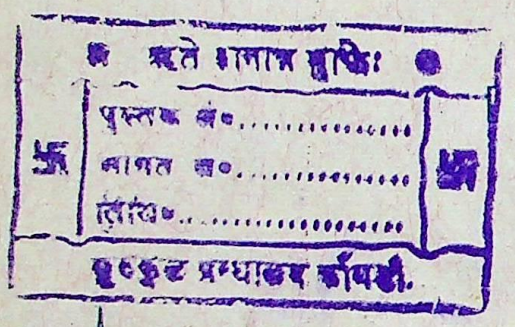

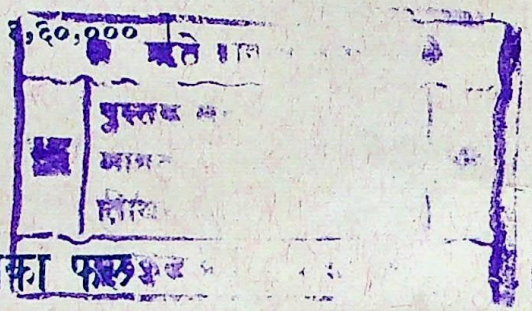

जीवनका फल

सियराम-सरूप अगाध अनूप बिलोचन-मीनन को जलु है।
श्रुति रामकथा, मुख रामको नाम, हिएँ पुनि रामहि को थलु है॥
मति रामहि सों, गति रामहि सों, रति राम सों रामहि को बलु है।
सबकी न कहै, तुलसीके मतें इतनो जग जीवनको फलु है॥

—तुलसीदासजी

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु. ९.००
विदेशमें रु. १३.३५
(१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

इस अङ्कका मूल्य
रु० ९.००
विदेशमें १३.३५
(१५ शिलिंग)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण

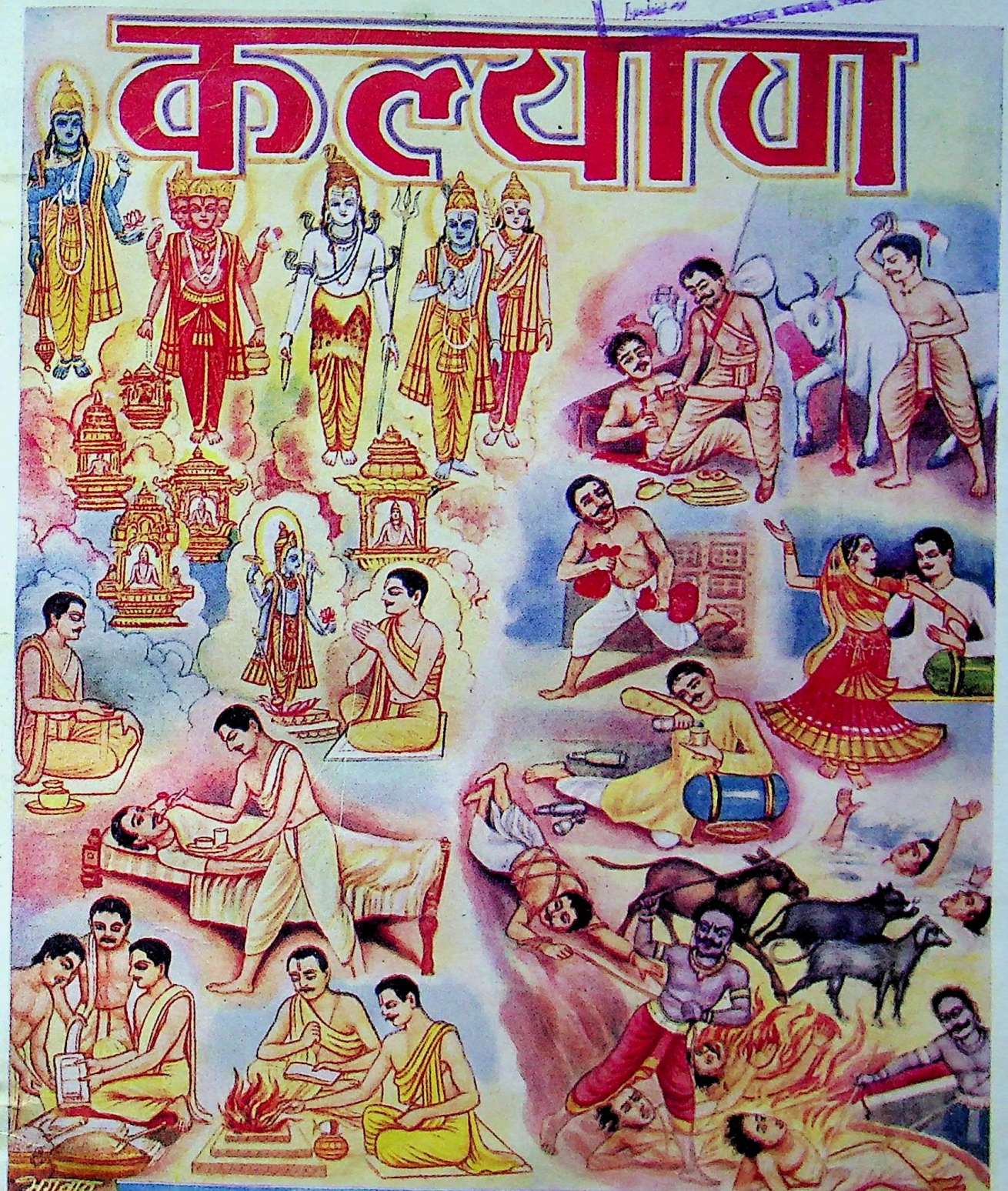

वर्ष ४३ परलोक और पुनर्जन्माङ्क संख्या १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
110327

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहरिः

'कल्याण'के प्रेमी पाठकों और ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

(१) जगत्‌में जितना-जितना भौतिकवाद और भोगवादका प्रसार-प्रचार हो रहा है, उतना ही उतना ही भगवान्, धर्म, परलोक, पुनर्जन्म और दैवी सम्पदामें विश्वास घट रहा है और उसी अनुपातमें कामोपभोगमयी दम्भ, दर्प, अभिमान, काम, क्रोध, लोभ, असत्य, द्वेष, वैर, हिंसा, अशान्ति, विषाद, भय, स्वेच्छाचार, भ्रष्टाचार और अत्याचाररूपिणी आसुरीसम्पदाका विस्तार हो रहा है एवं बुद्धिके तमसाच्छन्न होनेके कारण इसीमें मनुष्य प्रगति, उन्नति, विकास, अभ्युदय, सुख आदिकी मिथ्या कल्पना करके मिथ्या सुखकी आशा-तृष्णासे जला जा रहा है। मानव-जीवनका उद्देश्य 'भगवत्प्राप्ति' या 'आत्मसाक्षात्कार' है—इसको वह प्रायः भूल-सा गया है। शिक्षा, सेवा, समृद्धि तथा बाह्य त्यागके और राजनीति, समाजसुधार, धर्म तथा अध्यात्मके स्थल—आदि सभी क्षेत्रोंमें न्यूनाधिक रूपसे प्रायः भोगोन्मुखी विनाशी प्रवृत्ति चल रही है। इसके फलस्वरूप विनाश, दुःख, पतन आदि भी बढ़ते जा रहे हैं। पता नहीं, क्या परिणाम होगा। इस परिस्थितिमें भगवत्प्रेरणावश इस 'परलोक और पुनर्जन्माङ्क'का प्रकाशन इसीलिये किया जा रहा है कि किसी अंशमें पतन और विनाशकी ओर जानेवाले प्रबल प्रवाहमें कहीं कुछ रुकावट हो। इस अङ्कमें ऐसी ही सामग्री संग्रह करनेका प्रयास किया गया है। इसमें गहन दार्शनिक विषय भी हैं और सरल सहज उद्बोधक प्रसङ्ग भी हैं। घटनाएँ भी दी गयी हैं। चित्र भी हैं। इससे यह विद्वान्, अविद्वान् सभीके लिये उपयोगी है। हमारा उद्देश्य तो केवल 'भगवत्प्रीति' और 'भगवत्सेवा' ही है। कुछ न भी होगा तो भगवान् तो अपनी वस्तुको स्वीकार कर ही चुके हैं। यही परम लाभ है।

(२) इस विशेषाङ्कमें ७०० पृष्ठकी पाठ्य-सामग्री है। सूची आदि अलग हैं। तिरंगे, इकरंगे, बहुत-से चित्र भी हैं। अवश्य ही हम जितने और जैसे चित्र देना चाहते थे, उतने और वैसे परिस्थिति-वश नहीं दिये जा सके हैं। पर जो दिये गये हैं, वे सुन्दर तथा उपयोगी हैं। चित्र बहुत समीप-समीप न रहें, इसलिये उनके कथा-प्रसङ्गोंके साथ न दिये जाकर प्रायः इधर-उधर लगाये गये हैं। पाठक महोदय क्षमा करें।

(३) कागज, डाक-महसूल, वेतन आदि सभी प्रकारका खर्च गतवर्षकी अपेक्षा भी बहुत अधिक बढ़ जानेसे 'कल्याण'में घाटा लग रहा है। नौ रुपये मूल्यमें घाटेकी पूर्ति नहीं हो रही है। पर अभी वही मूल्य रक्खा गया है। इस स्थितिमें हम अपने ग्राहकोंसे इस बार इतना विशेषरूपसे अनुरोध करते हैं कि वे अपना पवित्र कर्तव्य समझकर 'कल्याण'के अधिक-से-अधिक ग्राहक बनाकर रुपये भिजवानेका प्रयत्न करें।

(४) कई कारणोंसे इस बार भी विशेषाङ्क बहुत देरसे जा रहा है। गत बारहवाँ अङ्क भी विलम्बसे गया है। परिस्थितिसे विवश होनेके कारण ही ऐसा करना पड़ा। ग्राहक महानुभावोंको बार-बार पत्र लिखने पड़े। हमें इस बातका बड़ा खेद है। प्रेमी ग्राहक महोदय कृपया क्षमा करें।

(५) 'कल्याण'का विशेषाङ्क तो निकल गया है। पर इस समय देशमें चारों ओर जैसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशान्ति, अव्यवस्था, उच्छृङ्खलता, अनियमितता, अनुशासनहीनता आदिका विस्तार हो रहा है, उसे देखते कहा नहीं जा सकता कि 'कल्याण'का प्रकाशन कबतक हो सकेगा या किस रूपमें होगा। अतएव ग्राहकोंको यह मानकर संतोष करना चाहिये कि उनके भेजे हुए नौ रुपयेके पूरे मूल्यका उन्हें यह विशेषाङ्क मिल गया है। अगले अङ्क भेजे जा सके तो अवश्य जायँगे, नहीं तो उनके लिये मनमें क्षोभ न करें—परिस्थितिवश ही ऐसी प्रार्थना करनी पड़ रही है।

(६) जिन सज्जनोंके रुपये मनीआर्डरद्वारा आ चुके हैं, उनको अङ्क भेजे जानेके बाद शेष ग्राहकोंके नाम वी० पी० जा सकेगी। अतः जिनको ग्राहक न रहना हो, वे कृपा करके मनाहीका कार्ड तुरंत लिख दें ताकि वी० पी० भेजकर 'कल्याण'को व्यर्थ नुकसान न उठाना पड़े।

(७) मनीआर्डरकूपनमें और वी० पी० भेजनेके लिये लिखे जानेवाले पत्रमें स्पष्टरूपसे अपना पूरा पता और ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें। ग्राहक-संख्या याद न हो तो 'पुराना ग्राहक' लिख दें। नये ग्राहक बनते हों तो 'नया ग्राहक' लिखनेकी कृपा करें। मनीआर्डर 'मैनेजर 'कल्याण' के नाम भेजें। उसमें किसी व्यक्तिका नाम न लिखें।

(८) ग्राहक-संख्या या 'पुराना ग्राहक' न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें दर्ज हो जायगा। इससे आपकी सेवामें 'परलोक-पुनर्जन्माङ्क' नयी ग्राहक-संख्यासे पहुँचेगा और पुरानी ग्राहक-संख्यासे वी० पी० भी चली जायगी। ऐसा भी हो सकता है कि उधरसे आप मनीआर्डरद्वारा रुपये भेजें और उनके यहाँ पहुँचनेके पहले ही इधरसे वी० पी० चली जाय। दोनों ही स्थितियोंमें आपसे प्रार्थना है कि आप कृपापूर्वक वी० पी० लौटायें नहीं, प्रयत्न करके किन्हीं सज्जनको 'नया ग्राहक' बनाकर उनका नाम-पता साफ-साफ लिख भेजनेकी कृपा करें। आपके इस कृपापूर्ण प्रयत्नसे आपका 'कल्याण' नुकसानसे बचेगा और आप 'कल्याण'के प्रचारमें सहायक बनेंगे। आपके 'विशेषाङ्क'के लिफाफेपर आपका जो ग्राहक-नम्बर और पता लिखा गया है, उसे आप खूब सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री या वी० पी० नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये।

(९) 'परलोक-पुनर्जन्माङ्क' सब ग्राहकोंके पास रजिस्टर्ड-पोस्टसे जायगा। हमलोग जल्दी-से-जल्दी भेजनेकी चेष्टा करेंगे, तो भी सब अङ्कोंके जानेमें लगभग तीन सप्ताह तो लग ही सकते हैं। इसलिये ग्राहक महोदयोंकी सेवामें विशेषाङ्क ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार जायगा। यदि कुछ देर हो जाय तो परिस्थिति समझकर कृपालु ग्राहकोंको हमें क्षमा करना चाहिये और धैर्य रखना चाहिये।

(१०) 'कल्याण'-व्यवस्थाविभाग, 'कल्याण'-सम्पादन-विभाग, 'कल्याण-कल्पतरु' (अंग्रेजी), और 'साधक-संघ'के नाम गीताप्रेसके पतेपर अलग-अलग पत्र, पारसल, पैकेट, रजिस्ट्री, मनीआर्डर, बीमा आदि भेजने चाहिये तथा उनपर केवल 'गोरखपुर' न लिखकर पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)—इस प्रकार लिखना चाहिये।

(११) सजिल्द अङ्क भी देरसे ही जा सकेंगे। ग्राहक महोदय क्षमा करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीहरिः

परलोक और पुनर्जन्माङ्ककी विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१—सर्वप्रकाशक ज्योतिर्मय भगवान् [कविता]	क
२—जन्म-मरणरूप संसारसे छूटकर भगवान्‌के परमपदको कौन प्राप्त होता है ? [संकलित]	ख
३—अमृतलोक [कविता] (पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री, 'राम' साहित्याचार्य)	ग
४—आत्माकी अमरता (अनन्तश्रीविभूषित श्रीशृंगेरीमठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य श्रीअभिनवविद्यातीर्थ स्वामीजी महाराज)	घ
५—जीवनका सनातन प्रश्न (अनन्तश्रीविभूषित पूज्यपाद श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य श्रीअभिनवसच्चिदानन्द-तीर्थ स्वामीजी महाराज)	१
६—मानव-जीवनका उद्देश्य (पू० अनन्त-श्रीविभूषित श्रीगोवर्धनपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्रीनिरञ्जनदेव-तीर्थजी महाराज)	२
७—जीवन और मृत्युका रहस्य (अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)	६
८—पुनर्जन्मकी दृष्टिसे मानवका कर्तव्य (अनन्तश्री-विभूषित श्रीकांचीकामकोटिपीठाधिपति जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्रीचन्द्रशेखरेन्द्रसरस्वतीजी महाराज) ...	८
९—भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यका परलोक और पुनर्जन्म-सिद्धान्त (अनन्तश्रीविभूषित निखिलमहीमण्डलैकदेशिक सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज)	१२
१०—मृत्यु-मीमांसा (अनन्तश्रीविभूषित आचार्य श्रीअनिरुद्धाचार्य वेंकटाचार्यजी महाराज तर्कशिरोमणि)	१४
११—परलोक और पुनर्जन्मका सत्य सिद्धान्त (परमपूज्य गुरुजी—श्रीमाधव सदाशिव गोलवलकर)	१९
१२—ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके परलोक तथा पुनर्जन्म-सम्बन्धी विचार(पुराने लेखोंसे संकलित)	२१
१३—अन्तके भावानुसार गति [कविता] ...	२४
१४—वेदमें मृतात्माकी अष्टविध दशा (वेद-दर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर पूज्य स्वामीजी श्रीगंगेश्वरानन्दजी महाराज) ...	२५
१५—पुनर्जन्मके सिद्धान्त (पूज्यपाद श्री १००८ श्रीस्वामीजी महाराज श्रीपीताम्बरापीठ)	३४
१६—कौन स्वधर्म-भ्रष्ट कैसे प्रेत होते हैं ? [संकलित] (मनुस्मृति १२ । ७१-७२) ...	३६
१७—द्वन्द्वमयी सृष्टि (श्रीस्वामीजी श्रीप्रेमानन्दतीर्थजी महाराज; प्रेषक—श्री-ओङ्कारनाथजी मुटट्रू)	३७
१८—पागलकी झोली [परमपद] (महात्मा अनन्तश्रीविभूषित ठाकुर श्रीसीतारामदास ओंकारनाथ महाराज)	३८
१९—वैकुण्ठ प्राप्त करो [कविता] ...	४८
२०—मृत्युके समय भगवन्नाम और उसका फल (महामण्डलेश्वर अनन्तश्री स्वामी भजना-नन्दजी महाराज)	४९
२१—मोक्ष-सोपान (अनन्तश्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)	५१
२२—तीर्थंकर और सिद्ध (आचार्य श्रीतुलसीजी)	५५
२३—पूर्वजन्म और भावसिद्धि (आचार्य श्री-प्राणकिशोर गोस्वामी महाराज) ...	५७
२४—बीज और जीव (अनन्तश्री स्वामीजी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज) ...	६३
२५—पुनर्जन्मका मौलिक आधार (स्वामीजी श्रीसनातनदेवजी)	६६
२६—पुनर्जन्म— अनुमान, अनुभव और शास्त्रसिद्ध (आचार्य श्रीविनोबाजी)	६८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२७–परलोक और पुनर्जन्म (जगद्गुरु अनन्तश्री श्रीरामानुजाचार्य पुरुषोत्तमाचार्य रङ्गाचार्यजी महाराज, पंढरपुर) ... ७०
२८–मानव-जीवनका लक्ष्य—भगवत्प्राप्ति (आचार्य श्रीविट्ठलेशजी महाराज) ... ७८
२९–जीवन्मुक्ति, विदेहमुक्ति, कैवल्य और पूर्णत्व (महामहोपाध्याय श्रद्धेय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०, डी० लिट्०) ... ८०–८५
(१) जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति ... ८०
(२) कैवल्यके विभिन्न अर्थ ... ८३
(३) आगमोंके अनुसार पूर्णत्वकी प्राप्ति ... ८४
३०–प्रभुका दिव्य मधुर अनुराग प्राप्त करो [कविता] ८५
३१–मृत्यु तथा पुनर्जन्म [श्रीअरविन्दके कुछ पत्र] (श्रीअरविन्द, भाषान्तरकार श्रीव्रजनन्दन, श्रीअरविन्दाश्रम, पांडिचेरी) ... ८६
३२–भक्ति न करनेपर दूसरे जन्ममें पराये बैल बनोगे [संकलित कविता] (श्रीसूरदासजी) ... ८९
३३–पुनर्जन्म-सिद्धान्त (स्वामी श्रीअसङ्गानन्दजी, रामकृष्णमिशन, बेलूरमठ, हवड़ा) ... ९०
३४–जन्मान्तर-रहस्य [संकलित गद्य] (लोकमान्य तिलक) ९३
३५–मृत्यु-विवेचन (महामहोपाध्याय श्रद्धेय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०, डी० लिट्०) ९४–९७
(१) मृत्यु-विज्ञान ९४
(२) मृत्युकालीन सत्-चिन्तन ... ९५
(३) कालभेदसे मृत्युकी प्रशंसा ... ९५
(४) मृत्यु-राज्यका विस्तार ... ९६
(५) समष्टि मृत्यु और व्यष्टि मृत्यु ... ९६
३६–गति-विज्ञान और समुच्चय-रहस्य (महामहोपाध्याय श्रद्धेय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०, डी० लिट्०) ... ९७
३७–प्रभुके धाम पहुँचकर नहीं लौटते [कविता] ९८
३८–मृत्युविज्ञान (वेदतत्त्वान्वेषक श्रीरणछोड़दासजी 'उद्धव') ९९
३९–मृत्यु-महोत्सव (प्रो० श्रीशिवानन्दजी एम्० ए०) १०२
४०–अवसर बीतनेपर पछतानेसे क्या लाभ ? [संकलित कविता] (श्रीतुलसीदासजी) ... १०५
४१–मृत्युपर कुछ विचार (ठा० श्रीसुदर्शनसिंहजी) १०६–११४
(१) अन्तिम भावके अनुसार गति ... १०६
(२) आत्मत्याग, आत्महत्या, स्वेच्छामृत्यु ... १०६
(३) असामान्य जन्म एवं मृत्यु ... १०९
(४) परेच्छाभोग एवं अकालमृत्यु ... १११
४२–प्रभु-कृपा बिना जलन नहीं बुझती [संकलित कविता] (श्रीसूरदासजी) ... ११४
४३–मृत्युकी विभीषिका और उसका निराकरण (श्रीरामलालजी) ११५
४४–जन्म और मृत्युका रहस्य (श्रीवीरेन्द्रस्वरूपजी अग्रवाल) ... ११९
४५–आयुको काटनेवाले छः दोष (श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन) ... १२१
४६–मानव-शरीर परमात्माका मन्दिर [संकलित गद्य] (महामना मदनमोहन मालवीय) १२३
४७–मृत्यु और व्यक्तित्व (प्रो० इन्दुप्रभा आत्रेय एम्० ए०, एम्० एड्०) १२४
४८–जन्म-मरणरूपी दुःख-सागरसे तरनेका उपाय [संकलित गद्य] (महर्षि दयानन्द सरस्वती) १२५
४९–देवयान और पितृयाण, पुनर्जन्म तथा मुक्ति (श्रीसुशान्तजी ब्रह्मचारी) ... १२६
५०–देवयान या अर्चिमार्ग—उत्तरायण शुक्लपक्ष और दिवामार्गसे मृत्यु (श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्यजी महाराज) ... १२८
५१–आयुष्कालका रहस्य या आयुकी अभिवृद्धि (डा० श्रीत्रिभोवनदास दामोदरदासजी सेठ) १३०
५२–जीवनका एकमात्र सत्य [संकलित गद्य] (श्रीअरविन्द) १३२
५३–देह-विवेचन (महामहोपाध्याय श्रद्धेय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०, डी० लिट्०) ... १३३–१४१
(१) देहस्वरूपका विचार १३३
(२) आतिवाहिक देह १३६
(३) देहसिद्धि १३७
५४–जन्म-मरणके चक्रसे छुटकारा [संकलित गद्य] (स्वामी विवेकानन्द) ... १४१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५५–कर्मयोनि और भोगयोनियाँ (ठाकुर श्रीसुदर्शनसिंहजी) १४२
५६–कायसिद्धिके प्रकार (महामहोपाध्याय श्रद्धेय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०, डी० लिट्०) १४४
५७–अनर्थका साधन अर्थ [संकलित] (महर्षि कश्यप, पद्मपुराण, सृष्टि० १९ । २५०–५३) १५१
५८–पडध्वा-रहस्य देह-विचार (श्रीकुलमार्तण्ड राजगुरु पण्डित श्रीयोगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री, विद्याभूषण, साहित्यरत्न) ... १५२
५९–प्रभु-पदमें स्थान प्राप्त हो [कविता] ... १५९
६०–परलोक एवं पुनर्जन्मविषयक विचारधारा (पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा, शास्त्री, सारस्वत, विद्यावागीश, विद्यावाचस्पति) ...१६०,६६८
६१–पुनर्जन्म (आचार्य श्रीमुन्शीरामजी शर्मा 'सोम' एम्० ए०) ... १६७
६२–जन्मान्तर-रहस्य (पं० श्रीदेवदत्तजी मिश्र का० व्या० सा० स्मृ० तीर्थ) ... १७३
६३–पुनर्जन्म (श्रीशिशिरकुमार सेन, एम्० ए०, बी० एल्०, सम्पादक 'ट्रुथ') ... १७५
६४–परलोक-तत्त्व (श्रीवसन्तकुमार चट्टोपाध्याय एम्० ए०) १७८
६५–किस पुण्यसे कौनसे श्रेष्ठ फल या सुखकी प्राप्ति होती है [संकलित] (गरुड़पुराण २ । १४ । १८) १७९
६६–परलोक, पुनर्जन्म और मोक्षतत्त्व (डा० श्रीनीरजाकान्त चौधरी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, पी-एच्० डी०) ... १८०
६७–पुनर्जन्मका प्रयोजन (श्रीअनिलवरण राय) १८९
६८–हिंदुओंका पुनर्जन्ममें विश्वास और उसके लौकिक लाभ (डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभास्कर, दर्शनकेसरी) ... १९२
६९–पुनर्जन्म—एक दार्शनिक विवेचन (साहित्य-महोपाध्याय पं० श्रीजनार्दनजी मिश्र 'पंकज' शास्त्री, एम्० ए०, काव्यतीर्थ, व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य, न्यायाचार्य, सांख्यदर्शन-योगदर्शनाचार्य, वेदान्ताचार्य, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार) ...१९४,६७६
७०–जन्म-मृत्यु, अमरत्व, परलोक और पुनर्जन्मका स्वरूप तथा रहस्य (श्रीश्रीराममाधव चिंगले, एम्० ए०)...२००,६८२
७१–लोक-परलोकमें भयदायक कर्म न करे [संकलित गद्य] (महर्षि भृगु) ... २०६
७२–पुनर्जन्मके आधार (श्रीगोविन्दजी शास्त्री, एम्० ए०) २०७
७३–जन्म-मरणके भयानक दुःखसे छूटनेका उपाय [कविता] २०९
७४–अनेक संत-महात्माओंकी देहान्तर-स्थिति (श्रीरामलालजी) २१०
७५–नारायणके भजनमें मन-इन्द्रियोंकी सफलता [संकलित गद्य] (सनक मुनि) ... २१२
७६–परलोक और पुनर्जन्म (पं० श्रीसभापतिजी मिश्र, बी० ए०, साहित्यरत्न, विद्यावाचस्पति) २१३
७७–काल-विवेचन (महामहोपाध्याय श्रद्धेय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०-डी०, लिट्०) ... २१५—२१९
(१) काल-संकर्षण २१५
(२) कालका आवर्तन २१६
(३) काल और महाकालका रहस्य ... २१७
७८–पापका फल अकेला ही भोगता है [संकलित गद्य] (महर्षि उत्तङ्क) ... २१९
७९–मनोविज्ञान और पुनर्जन्म (श्रीगौरी-शंकरजी द्विवेदी) ... २२०
८०–निष्काम भावसे नारायणकी पूजा करो [संकलित गद्य] (ऋषि जानन्ति) ... २२४
८१–कालातीत भगवान् महाकाल (श्रीजगदीशप्रसादजी चतुर्वेदी) ... २२५
८२–काल-विज्ञान (श्रीजयराजी वशिष्ठ) २२८—२३७
(१) कालतत्त्व २२८
(२) काल-विभाजन और कालचक्र ... २३१
(३) कालचक्रसे निवृत्ति ... २३३
८३–कर्मका श्रेणी-विभाग और क्लिष्ट-अक्लिष्ट कर्म (महामहोपाध्याय श्रद्धेय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०, डी० लिट्०) ... २३७—२४२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) कर्मका श्रेणी-विभाग ... २३७
(२) कौन कर्मफल-प्रदानके समय नियामक है ? २३९
(३) क्लिष्ट और अक्लिष्ट कर्म ... २४०
८४–पुनर्जन्म, कयामत और मुक्ति ('श्रीमण्डन मिश्र') ... २४२-२४३
(१) कर्मविपाक और विकासवाद ... २४२
(२) कयामतका दिन २४३
(३) मुक्तिका द्वार सबके लिये खुला ... २४३
८५–कर्मानुसार देहप्राप्ति [संकलित गद्य] (महर्षि व्यास) २४३
८६–कर्मसम्बन्धी विचार (ठाकुर श्रीसुदर्शन-सिंहजी) २४४–२५०
(१) कर्मभोग एवं कर्मप्रायश्चित्त ... २४४
(२) कर्मफल-पद्धति २४७
८७–कर्मफलभोगमें परतन्त्रता [संकलित गद्य] (महर्षि व्यास) २५०
८८–कर्मविपाक-मीमांसा (डा० श्रीशान्ति-प्रकाशजी आत्रेय, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) २५१
८९–भगवद्भक्ति और पुनर्जन्म (श्रीके० वा० भातखंडे, बी० ए०, बी० टी०) ... २५४
९०–भगवत्प्रेमी मुक्ति नहीं चाहता (आचार्य श्रीशुकरत्नजी उपाध्याय, एम्० ए०, साहित्याचार्य, शिक्षा-शास्त्री, तीर्थद्वय, रत्नद्वय) ... २५६
९१–भगवत्प्रेमी मुक्ति नहीं चाहता (श्रीजयनारायणलालजी) २६४
९२–प्रियतम-मुख सुखभरा [कविता] ... २६७
९३–भगवत्प्रेमी मुक्ति नहीं चाहता (पं० श्रीउमाशंकरजी अग्निहोत्री शास्त्री, मानसमहारथी, भागवताचार्य) २६८
९४–मृत्युके समय भगवन्नामका महत्त्व (श्रीश्रीकान्तशरणजी, समस्त तुलसीसाहित्यके भाष्य एवं तिलककार) २६९
९५–मृत्युके समय भगवन्नामका महत्त्व (याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा, गौड, वेदाचार्य) २७१
९६–वेदोंमें पुनर्जन्म और मोक्षका सैद्धान्तिक विवेचन (श्रीश्रुतिशीलजी शर्मा) ... २७५
९७–परलोक और पुनर्जन्मका वैदिक रहस्य (कविरत्न पं० श्रीदेवीप्रसादजी शास्त्री 'पाराशर') ... २७८
९८–अमृतत्व कौन प्राप्त करता है ? [संकलित] (पद्मपुराण, सृष्टि०, अ० १९) ... २७९
९९–ब्रह्मद्रवमयी गङ्गा (पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय, एम्० ए०, डी०लिट्० संचालक, अनुसंधान-संस्थान, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय) ... २८०
१००–गीतामें भगवान्के स्वरूप, परलोक, पुनर्जन्म तथा भगवत्प्राप्तिका वर्णन ... २८२
१०१–वैदिक वाङ्मयमें पुनर्जन्म (श्रीरामनाथजी 'सुमन') २९१
१०२–पुनर्जन्म और परलोकसाधक तर्क (श्रीव्रजवल्लभशरणजी, वेदान्ताचार्य, पञ्चतीर्थ) ... २९३
१०३–जन्मान्तर-तथ्य (श्रीशैलेशजी ब्रह्मचारी) ... २९५
१०४–आध्यात्मिक पुनर्जन्म (श्रीमण्डन मिश्र) ... २९७
१०५–पुनर्जन्म (वैद्य श्रीकन्हैयालालजी भेड़ा, व्याकरणायुर्वेदाचार्य) २९७
१०६–पूर्वजन्म-सिद्धान्तकी विश्वव्यापी मान्यता, सत्यता और उसके प्रसारका उद्गम (श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'व्रजेश' साहित्यरत्न, साहित्यालंकार) ३०१
१०७–मानव मोहवश अनर्थ-संचय कर रहा है [कविता] ३०२
१०८–पुनर्जन्मका आधार (प्रो०श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी) ३०३
१०९–घोर यमयातनासे राम ही बचाते हैं [संकलित कविता] (कवितावली) ... ३०६
११०–कृतकर्म और पुनर्जन्म (श्रीव्रजरंगबलीजी ब्रह्मचारी एम्० ए० (द्वय), साहित्यरत्न, साहित्यालंकार, साहित्यसुधाकर) ... ३०७
१११–इहलोककी चिन्ता नहीं; परलोककी चिन्ता [संकलित गद्य] (महात्मा गांधी) ... ३०८
११२–आत्माकी सत्ता एवं नित्यता पुनर्जन्मकी साधक ['न्यायदर्शन'के आधारपर] (श्रीनारायणजी शर्मा, शास्त्री, 'राजीव', एम्० ए०, 'प्रभाकर') ३०९
११३–जन्म-मरण-दुःखनाशके लिये ही आहार करे [संकलित] (योगवासिष्ठ, नि० उ० २१ । १०) ३११
११४–दर्शन और परलोकवाद (पं० श्रीगौरीशंकरजी द्विवेदी) ३१२
११५–पुनर्जन्म-निवारणका सुलभ उपाय—अर्चावतारके आलम्बनसे भगवदर्चा (श्रीच० भास्कर रामकृष्णमाचार्य्युलु) ... ३१९
११६–आत्मज्ञानसे मुक्ति (पं० श्रीभृगुनन्दनजी मिश्र) ३२२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११७–ब्राह्मी स्थिति एवं उसकी प्राप्तिके साधन (श्रीशान्तिस्वरूपजी गुप्त) ... ३२४
११८–दुष्कर्मका परिणाम और प्रायश्चित्त (श्रीगोविन्दप्रसादजी चतुर्वेदी, शास्त्री, धर्माधिकारी) ... ३२७
११९–सात दिनका मेहमान [कहानी] (पं० श्रीमङ्गलजी उद्धवजी शास्त्री, 'सद्-विद्यालंकार') ... ३२८
१२०–जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं ! (श्री-कृष्णदत्तजी भट्ट) ... ३३१
१२१–जीवका गर्भवास और देहरचना (वैद्य पं० श्रीनन्दकिशोरजी गौतम 'निर्मल' एम्० ए०, साहित्यायुर्वेदाचार्य, साहित्या-युर्वेदरत्न) ३३६
१२२–जीवनमें स्वरोदयकी महत्ता [पुनर्जन्म] (गुरु श्रीरामप्यारेजी अग्निहोत्री) ... ३४०
१२३–मानसमें पुनर्जन्म एवं परलोक-प्रत्यय (डा० श्रीत्रिभुवननाथजी चौबे, एम् ए०, पी-एच्० डी०) ... ३४२
१२४–भगवान्‌से हीन जीवन जल जाय [संकलित कविता] (श्रीतुलसीदासजी) ... ३४४
१२५–महाकवि कालिदासके काव्योंमें जन्मान्तर-दर्शन (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ३४५
१२६–श्राद्ध-तत्त्व-प्रश्नोत्तरी (श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन) ३४६
१२७–श्राद्ध-तर्पणका रहस्य तथा आवश्यकता एवं श्राद्ध-तर्पणकी वैज्ञानिकता (श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'व्रजेश') ... ३४७
१२८–मृत्यु-समयकी अनुपम सेवा [कविता] ... ३४९
१२९–श्राद्ध और परलोक (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ३५०
१३०–श्राद्धसे जातिस्मरता और मोक्ष—एक विशेष उदाहरण (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ३५१
१३१–तर्पण और श्राद्ध (श्रीमूलनारायणजी मालवीय) ३५३
१३२–आयुर्वेदमें पुनर्भव (डा० पं० श्रीवासुदेवजी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेदबृहस्पति) ... ३५५
१३३–आयुर्वेद (भारतीय वैद्यक-शास्त्र) की दृष्टिसे देह-विवेचन और देह-निवृत्ति (प्राध्यापक पं० काकुभाई दुर्गाशङ्कर दवे 'भानु', संस्कृत-साहित्य-व्याकरण-वेदान्त-ज्यौतिष-आयुर्वेदाचार्य, संस्कृत-काव्य-पुराण-कृत्यतीर्थ, जैनदर्शनशास्त्री, पालिविशारद, संस्कृत-साहित्य-धर्मशास्त्र-पुराण-आयुर्वेद उत्तमा) ३५७
१३४–प्राणियोंके जन्म, स्थिति और मरणका ग्रहोंसे सम्बन्ध (याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा, गौड़, वेदाचार्य) ... ३५९
१३५–यमराजके कुत्ते [श्री'मण्डन मिश्र'] (ऋग्वेद १० । १४ । १०–१२) ... ३६१
१३६–ज्योतिषमें पुनर्जन्म और परलोक (राजज्योतिषी पं० श्रीमुकुन्दवल्लभजी मिश्र, ज्यौतिषाचार्य) ३६२
१३७–'कुलगौरव' और 'कुलकलङ्क' [कविता] ३६३
१३८–जन्म-मृत्यु और ग्रह-विचार (डॉ० श्री-नारायणदत्तजी श्रीमाली, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ३६४
१३९–भगवद्भक्तका महत्त्व [संकलित] (देवी-भागवत, नवम स्कन्ध) ३६५
१४०–रथस्थं वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते (पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय, एम्० ए०, डी० लिट्०) ३६६
१४१–धर्मकी महत्ता [संकलित] ... ३६६
१४२–'रथस्थं वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते' (श्रीफणीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय) ... ३६७
१४३–विष्णोः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते (श्रीरेवानन्दजी गौड़, एम्० ए०, सा० रत्न, सा० व्या० आचार्य, काव्यतीर्थ आदि) ३६८
१४४–पुनर्जन्म न विद्यते (श्रीलक्ष्मीनारायणसिंहजी) ३७०
१४५–जहाँ मृत्यु भी मङ्गलकारी है (आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्० ए०, साहित्य-रत्न) ३७३
१४६–श्रीभगवान्‌का दिव्यधाम एवं उसकी प्राप्ति (पण्डित श्रीओङ्कारदत्तजी शास्त्री) ... ३७५
१४७–परमधामका वर्णन (स्वामी श्रीनिर्विकारानन्दजी सरस्वती) ३७६
१४८–भगवान् विष्णु ही डूबनेसे बचानेवाले जहाज हैं [संकलित] ३७८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४९–श्रीवैकुण्ठधाम और उसकी प्राप्ति (राष्ट्रपति-पुरस्कृत डा० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ३७९
१५०–श्वेतद्वीप—महागोलोक (महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०, डी० लिट्०) ३८६
१५१–दिव्य गोलोकधाम (पं० श्रीशिवनाथजी दुबे) ३८७
१५२–साकेत—दिव्य अयोध्या (मानसतत्त्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी) ... ३८८
१५३–नित्य कैलास (पं० श्रीशिवनाथजी दुबे) ... ३९५
१५४–दिव्य देवीद्वीप (पं० श्रीशिवनाथजी दुबे) ३९६
१५५–परमधामका चिन्तन (श्रीरामलालजी) ... ३९८
१५६–यम और उनका लोक ('श्रीमण्डन मिश्र') ३९९
१५७–यमलोकके मार्गमें पापियोंके कष्ट तथा पुण्यात्माओंके सुखका वर्णन [नारदपुराण, पूर्व०, अध्याय ३१] ... ४००
१५८–पापसे बचकर धर्म-सेवन करो [संकलित गद्य] ४०१
१५९–पापी यमपुर कैसे जाता है ? (पं० श्रीमक्खनलालजी मिश्र, ज्यौतिषाचार्य) ... ४०२
१६०–पापी तथा पुण्यात्माओंकी कर्मानुसार गति और यमलोकका वर्णन ४०४
१६१–परलोक-यातना (परमहंसजी महाराज, श्रीरामकुटिया, रेवदर) ४१६
१६२–यमराजकी दूतोंको चेतावनी [संकलित] (स्कन्दपुराण, काशीखण्डसे) ... ४१८
१६३–यमराजके द्वारा अपने दूतोंको उपदेश तथा चेतावनी [संकलित] (श्रीमद्भागवत स्क० ६, अध्याय १—३) ४१९
१६४–प्रभु-पदकमल-रसका ग्रहण करनेवाला जन्म-मरणको नहीं प्राप्त होता [संकलित] ... ४२०
१६५–प्रेत-योनि (श्रीविश्वनाथजी झा, कविराज) ... ४२१
१६६–श्रीमद्भागवत-सप्ताहसे प्रेतयोनिका कल्याण (डा० श्रीवासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, षडाचार्य) ... ४२२
१६७–श्रीमद्भागवत-सप्ताहसे प्रेतत्व-मुक्ति (श्रीस्वामीजी श्रीजगन्नाथाचारीजी 'प्राणाचार्य') ४२४
१६८–वैष्णवकी महत्ता [संकलित] (ब्रह्मवैवर्त०, ब्रह्म०, ११ । ३९, ४४) ४२९
१६९–जातिस्मरता (जातिस्मराणां किंकरः पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ... ४३०—४३८
(१) 'जातिस्मरता'—अर्थ, लक्षण, परिभाषा एवं संक्षिप्त परिचय ४३०
(२) जातिस्मरताके अनेकानेक साधन–उपाय ४३०
(३) जातिस्मर-व्रत ४३२
(४) जातिस्मर-तीर्थ ४३३
(५) विश्वकी सर्वप्रथम जातिस्मरा देवी पार्वती ४३५
(६) भगवान् आद्यशंकराचार्य तथा वाचस्पति मिश्रादिकी दृष्टिमें जातिस्मरताका स्वरूप ... ४३७
१७०–हिंदू-धर्म और पुनर्जन्म-सिद्धान्त (श्रीरामनाथजी 'सुमन') ४३८
१७१–मरणोत्तर जीवनपर पाश्चात्त्य मनीषी (ब्रह्मचारी श्रीअमिताभजी) ... ४४०
१७२–पाश्चात्त्य विज्ञान और मृत्यु (डॉ० श्रीभीखनलालजी आत्रेय, एम्० ए०, डी० लिट्०, अवकाशप्राप्त प्रोफेसर तथा अध्यक्ष दर्शन, मनोविज्ञान और भारतीय धर्म तथा दर्शन-विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी) ४४३
१७३–परम मधुर श्रीराधेश्याम [कविता] ... ४४४
१७४–वैष्णवाचार्योंका परलोक और पुनर्जन्म-सिद्धान्त (श्रीरंगरामानुजाचार्य, व्याकरण-न्याय-वेदान्ताचार्य) ४४५
१७५–श्रीमद्वल्लभाचार्यजी और पारलौकिक श्रेय (श्रीमाधवजी गोस्वामी) ४४७
१७६–सबमें नित्य भगवान्‌को देखूँ [कविता] ... ४४८
१७७–सिखगुरु श्रीगुरु गोविन्दसिंहद्वारा प्रस्तुत दशम ग्रन्थमें पुनर्जन्म-सिद्धान्त (प्रोफेसर श्रीलालमोहर उपाध्याय, एम्० ए०, 'हिंदी' रिसर्चस्कॉलर, पी-एच्० डी०) ४४९
१७८–रामस्नेही-मतमें जीवात्माकी स्थिति एवं गति (श्रीपुरुषोत्तमदासजी शास्त्री महाराज, श्रीखेड़ापा रामस्नेही-सम्प्रदायाचार्य) ... ४५०
१७९–पुनर्जन्म और परलोक (रामस्नेही-सम्प्रदायाचार्य प्रधानपीठाधीश्वर सिंथल श्रीश्रीभगवद्दासजी शास्त्री महाराज) ... ४५४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८०–विश्वमें पुनर्जन्म-सिद्धान्तकी व्यापकता (श्रीरामनाथजी 'सुमन') ... ४५५
१८१–इस्लामधर्म और परलोक (पं० श्रीशिवनाथजी दुबे) ४५६
१८२–भारतीय दर्शनमें आत्माके साधक तर्क (मुनि श्रीनथमलजी) [प्रे०—श्रीकमलेशजी चतुर्वेदी] ४५८
१८३–जैनधर्मका कर्मवाद (पं० श्रीचैनसुखदासजी न्यायतीर्थ) ४६०
१८४–सबको उनका हिस्सा देकर खाओ [कविता] ४६२
१८५–जैनधर्ममें आत्मा, पुनर्जन्म और कर्म-सिद्धान्त (श्रीकैलाशचन्द्रजी शास्त्री) ... ४६३
१८६–जैन-मतमें पुनर्जन्म तथा कर्म-सिद्धान्त (डा० श्रीराजनारायणजी पाण्डेय, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार) ४६६
१८७–अन्नदान न करनेके कारण ब्रह्मलोकमें जानेके बाद भी अपने मुर्देका मांस खाना पड़ा [संकलित] ४६९
१८८–मैथुनी, अमैथुनी सृष्टि (मुनि श्रीसुमेरमलजी) ४७०
१८९–पुद्गलवादका रहस्य (मुनि श्रीबुद्धमल्लजी साहित्य-परामर्शक) ४७१
१९०–मरनेके समय रोगी क्या करे? ... ४७३
१९१–जैन-दर्शनमें जन्म और मृत्युकी प्रक्रिया (मुनि श्रीरूपचन्दजी) ४७४
१९२–अन्तराल गति (साध्वी श्रीमती कनकप्रभाजी) ४७५
१९३–मृत्युके बाद क्या किया जाय? ... ४७६
१९४–पुनर्जन्म और मोक्ष (मुनि श्रीशुभकरणजी) ४७७
१९५–जैन-दर्शनमें आत्माका स्वरूप (श्रीचम्पालालजी सिंघई, एम्० ए०, शोध-स्नातक) ४७८
१९६–जैन-वाङ्मयमें शरीर-वर्णन (कं० श्रीलालचन्द्रजी नाहटा 'तरुण') ... ४७९
१९७–जैसी पूजा, वैसा फल [कविता] ... ४८१
१९८–यज्ञशिष्ट भोजनसे पाप-नाश [कविता] ... ४८१
१९९–जैनधर्ममें जीवोंका परलोक (श्रीमिलापचंदजी कटारिया, जैनविद्या-भूषण) ४८२
२००–मृतात्माओंको बुलानेवाले विश्वस्त पुरुष कौन-कौन हैं? और मृतात्माओंको बुलानेकी विधि क्या है? ... ४८४
२०१–पुनर्जन्म [मूल—लामा अनागरिक गोविन्दजी] (अनु०—श्रीश्यामसुन्दरजी त्रिपाठी) ४८५
२०२–जैसा बीज—वैसा फल [कविता] ... ४८८
२०३–बौद्धमतानुसार परलोक, कर्मफल-भोग (पं० श्रीछेदीजी 'साहित्यालंकार') ... ४८९
२०४–मृतात्माओंका आवाहन, मेरे प्रयोग और अनुभव (डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्या-भास्कर, दर्शनकेसरी) ... ४९०
२०५–परलोक-विद्यामें संकट (श्रीमोहनजी वार्ष्णेय) ४९४
२०६–मृतात्माका आवाहन क्या सत्य है? ... ४९५
२०७–परलोकगत आत्माओंसे सम्पर्क (श्रीश्याममनोहरजी व्यास, एम्० एस्-सी०, बी० एड्०) ४९६
२०८–अच्छी संतानके लिये क्या करे? ४९७
२०९–पुराणोंमें वर्णित पुनर्जन्मकी कुछ कथाएँ (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ४९८–५०४
(१) प्रह्लादजीका पूर्वजन्म ... ४९८
(२) देवर्षि नारदके पूर्वजन्म ... ४९८
(३) जुआरीसे राजा बलि कैसे हुआ? ... ४९९
(४) नल-दमयन्तीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त ... ५००
(५) कुब्जा पूर्वजन्ममें कौन थी? ... ५००
(६) कालियनाग एवं काकभुशुण्डिके पूर्वजन्म ५०२
(७) पूतना पूर्वजन्ममें कौन थी? ... ५०३
२१०–बदला लेने या देनेवाले सात प्रकारके पुत्र ५०४
२११–रामराज्यकी पुनर्जन्म-सम्बन्धी एक घटना–कुत्तेका न्याय (आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्० ए०, साहित्यरत्न) ५०५
२१२–उपबर्हणका पुनर्जीवन (पं० श्रीशिवनाथजी दुबे) ५०७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२१३–श्रीकृष्णके हो जानेपर सब बन्धन कट जाते हैं [संकलित] (श्रीमद्भागवत १० । १४ । ३६) ५१०
२१४–श्रीचित्रगुप्तका प्राकट्य, पद तथा कार्य (श्रीरामसेवकजी सक्सेना, विशारद) ... ५११
२१५–भगवान् श्रीव्यास और कीड़ेका संवाद (श्रीलक्ष्मीकान्तजी त्रिवेदी) ५१३—५१५
(१) जातिस्मर कीड़ा ... ५१३
(२) जातिस्मर जडभरत ... ५१४
(३) जातिस्मर शूद्र ... ५१४
(४) जातिस्मर चार पक्षी ... ५१४
२१६–पुनर्जन्मका सिद्धान्त हिंदुत्वका दीपस्तम्भ (श्रीगुरुजी श्रीमाधव सदाशिव गोलवलकर) [प्रे०—श्री'माधव'] ५१५
२१७–नित्य सुखमय परमधामकी प्राप्ति [कविता] ५१५
२१८–चौरासी लाख योनि और पुनर्जन्मसे बचनेका उपाय (श्रीनारायणजी पुरुषोत्तम सांगाणी) ५१६
२१९–पूर्वजन्म, पुनर्जन्म और छुट्टी (पं० श्रीसूरजचंदजी 'सत्यप्रेमी' डाँगीजी) ... ५१८
२२०–आठ चिरंजीवी (योगाभ्यासी श्रीमदनमोहनजी वानप्रस्थी) ५१९
२२१–गीता, गङ्गा, गायत्री, गयाश्राद्ध और गोसेवासे प्रेतत्व-मुक्ति (आचार्य श्रीगदाधर रामानुजम् 'फलाहारी') ५२१—५२३
(१) श्रीमद्भगवद्गीता ... ५२१
(२) गङ्गास्नान ... ५२२
(३) गायत्रीजप ... ५२२
(४) गयाश्राद्ध ... ५२२
(५) गोसेवा ... ५२३
२२२–परकाय-प्रवेश—सिद्धान्त, प्रक्रिया एवं प्रमाण (श्रीश्यामाकान्तजी द्विवेदी 'आनन्द', एम्० ए० [हिंदी, संस्कृत], बी० एड्०, व्याकरणाचार्य) ५२४
२२३–पुनर्जन्म और परकाया-प्रवेश ५२७—५३४
(१) श्रीबलरामजी शास्त्री, आचार्य, एम्० ए०, साहित्यरत्न ५२७
१. चूडाला-वृत्तान्त ५२८
२. श्रीशंकराचार्यका परकाया-प्रवेश ५२८
३. लिङ्ग-शरीर जीवका प्रेमीके पास जाना—दो घटनाएँ ५२९
(२) भक्त श्रीरामशरणदासजी ... ५३०
४. जसवीरका वृत्तान्त
(३) श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी, 'ब्रजेश' साहित्यरत्न, साहित्यालंकार
५. श्रीएल-पी, फैरेल महोदयकी देखी दो घटनाएँ ... ५३२
२२४–इच्छा-मृत्यु ... ५३४—५३६
(१) मृत्यु-विजयिनी भक्तिमती देवी श्रीभिरावाँ बाईजी (भक्त श्रीरामशरणदासजी) ... ५३४
(२) मृत्युको दूर हटानेकी सत्य घटना (पं० श्रीमुनि देवराजजी विद्यावाचस्पति) ५३६
२२५–यमदूत-दर्शन (प्रे०—भक्त श्रीरामशरणदासजी) ५३७
२२६–परलोक-पुनर्जन्म और शोधकार्य ... ५३८
२२७–उज्ज्वल भगवत्प्रेमकी प्राप्ति [कविता] ... ५३८
२२८–पुनर्जन्मकी विदेशी घटनाएँ (प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी) ... ५३९—५५३
(१) क्यूबानिवासी महिलाकी घटना—राचाले ग्राण्ड ५३९
(२) स्विट्जरलैंडकी घटना—गैब्रियल उराइब ५३९
(३) अमेरिकाकी घटना—रोजनबर्ग ... ५४०
(४) इटलीकी घटना—डा० गैस्टोन उगूसियोनी ५४०
(५) जापानकी घटना—कटसूगोरो ... ५४०
(६) परिचित मार्गकी पुनर्यात्रा—एक फौजी सिपाही ५४१
(७) फ्रांसकी घटना—कुमारी थिरीज गे ५४१
(८) थाईलैंडकी एक लड़कीकी घटना ५४२
(९) थाईलैंडमें पुनर्जन्मकी घटना—सार्जेन्ट थियन ५४२
(१०) आस्ट्रिया देशका प्रमाण—एलेक्जैण्ड्रिना सैमोना ... ५४३
(११) ब्राजीलके पौलो लोरेन्ज (Paulo Loreng) का प्रमाण ... ५४३
(१२) इंगलैंडकी एक लड़कीकी घटना ... ५४४
(१३) कनाडाकी एक महिला ... ५४५
(१४) इटलीकी एक लड़की ... ५४५
(१५) आस्ट्रेलियाकी पुनर्जन्मसम्बन्धी घटना—श्रीअर्नेस्ट ब्रिग्ग ... ५४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१६) फ्रा राजासुथाजा नं ... ५४६
(१७) रूबीका मामला ... ५४६
(१८) लंकाकी एक और घटना—जयसेना ५४७
(१९) क्यूबाका एक लड़का ... ५४८
(२०) जैनीफर और गेलियन ... ५४८
(२१) कुरान और पुनर्जन्म—टर्कीकी एक घटना—(इस्माइल) ... ५५०
(२२) पिछले जन्मके हत्यारेका नाम बतानेवाला बालक नेकाती उनल-कास्किरोन ... ५५१
(२३) लूना मार्कोनी ... ५५२
(२४) ड्रूज-परिवार ... ५५३
(२५) अहमद एलावर ... ५५३
२२९–पुनर्जन्मकी घटनाएँ (प्रेषक—प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी) ... ५५४–५५९
(१) प्रकाशकी घटना ... ५५४
(२) एक विचित्र घटना—मुनेश ... ५५४
(३) मंजुकी घटना ... ५५६
(४) विचित्र मिलन—राजूल ... ५५६
(५) स्वर्णलता ... ५५७
(६) कृष्णकिशोर ... ५५८
(७) गोपाल ... ५५८
२३०–जीवनभर हृदयसे भगवान्‌का स्मरण करो [कविता] ५५९
२३१–पुनर्जन्म तथा मृत्यु एवं पुनर्जन्मके समयान्तरकी कुछ घटनाएँ (आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्० ए० [हिंदी, संस्कृत], साहित्यरत्न) ५६०—५६३
(१) बालक सुनीलदत्त ... ५६०
(२) बालक करीम उल्लाह ... ५६१
(३) साढ़े तेरह महीने बाद पुनर्जन्म ... ५६१
(४) बालक अवधेश ... ५६२
(५) बालक लवकुश ... ५६३
२३२–प्रारब्ध नहीं बदल सकता ... ५६३
२३३–पुनर्जन्मकी कुछ घटनाएँ ५६४–५६८
(१) होटलवालेका पुनर्जन्म (प्रे०—श्रीअजयकुमार बजाज) ... ५६४
(२) बालक सत्यनारायण (प्रे०—श्रीघनश्यामलालजी गुप्त) ... ५६५
(३) कम्पाउण्डरकी लड़की (प्रे०—श्रीब्रजराज-सिंहजी) ५६६
(४) श्रीअवधेशप्रसाद मिश्र (प्रे० श्री-कन्हैयालाल मिश्र (ए० आर० के०) ५६७
२३४–नौ वर्षतक प्रेत रहनेके बाद पुनर्जन्म तथा अन्य घटनाएँ (भक्त श्रीराम-शरणदासदासजी) ५६८–५७२
(१) लड़का वीरसिंह ... ५६८
(२) दाह-संस्कारमें त्रुटिका दुष्परिणाम ... ५६९
(३) ठाकुर साहबका लड़का ... ५७१
२३५–कर्म रहते जीवकी मुक्ति नहीं ... ५७२
२३६–मृतात्माओंके द्वारा—आवेशद्वारा और प्रकट होकर संवाद देना (श्रीनिरंजनदासजी 'धीर') ५७३–५७९
(१) मृत व्यक्तिके और्ध्वदैहिक कर्मोंकी आवश्यकता—(प्रेत-संवाद) ... ५७३
(२) मृत व्यक्तिका सशरीर प्राकट्य ... ५७४
(३) मृत पत्नीका प्रकट होकर बात करना ५७४
(४) ललिताबाई, आजगाँवकर ... ५७५
(५) मृत मित्रसे बातचीत ... ५७६
(६) रोजाली ५७६
(७) लेबिब कैकिन (प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी) ५७७
(८) मानव-जन्मका संस्कार प्रेत-योनिमें भी (श्रीउमाशंकरसिंहजी) ५७८–५७९
(क) प्रेतने आत्मकल्याण किया ... ५७८
(ख) प्रेतकी पुण्य-याचना ... ५७८
२३७–यमराजके दर्शन करके लौट आये [मृत्युके पश्चात् लौटे हुए लोगोंकी घटनाएँ] (भक्त श्रीरामशरणदासजी) ५७९–५८५
(१) भाँगरी मनिहारिन ... ५७९
(२) श्रीरक्खामलजी ५८०
(३) सागवाली अहीरिन ... ५८१
(४) श्रीविश्वम्भरनाथजी बजाज ... ५८१
(५) जानकी खटिकिन ... ५८१
(६) श्रीरुद्रदत्त ५८२
(७) तुलसी बुआ ५८२
(८) सर औकलैंड गैड्डीजका अनुभव (श्रीनिरञ्जनदासजी 'धीर') ... ५८२
(९) श्रीबालाबख्शजी [पुत्रप्राप्ति] (श्री-कृष्णगोपालजी माथुर) ... ५८३
(१०) अन्नदान करनेवाली बुढ़िया माई (प्रे०—श्रीज्योतिनारायण तिवारी) ... ५८५
२३८–अन्य धर्मावलम्बी भी सद्गतिके लिये गया-पिण्ड चाहते हैं ५८५
२३९–'कल्याण'में भूत-प्रेत-चर्चा क्यों ?—प्रेत-योनि कभी न मिले इसलिये ! ... ५८६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२४०–घोर प्रेत कौन होता है ? [कविता] ... ५८८
२४१–पुनर्जन्ममें योनिपरिवर्तन ५८९—५९२
(१) लड़कासे लड़की ५८९
(२-३) दो अद्भुत घटनाएँ (भक्त-श्रीरामशरणदासजी)
१. मैं पिछले जन्ममें स्कूलमास्टर थी, फिर गौ बनी और अब एक लड़की हूँ ५८९
२. नाईकी लड़कीने अपने पूर्वजन्मकी बातें बतलायीं ... ५९०
(४-५) बर्माके प्रमाण—स्त्रीका जन्म पुरुष-रूपमें (प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी) ५९०
(६) लङ्काकी घटना ५९१
२४२–दूरदर्शन, दूरानुभूति, भविष्य कथन (प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी) ... ५९२–५९४
(१) दूरदर्शन–पूर्वचेतावनी (प्रेसीडेंट-लिंकन) ५९२
(२) एक युवक ५९३
(३) कुमारी गीना बोशाँ ... ५९३
(४) एक सिपाही ५९३
(५) मुख्येर द० च० ... ५९४
२४३–गया-पिण्ड सभीको दीजिये ... ५९४
२४४–अनेक जन्मोंकी स्मृति [१३ वर्षीया बालिका जोयद्वारा पूर्वजन्मोंका दावा] (प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी) ... ५९५
२४५–बहुत पहलेके पूर्वजन्मोंकी स्मृति तथा दूसरी भाषाका ज्ञान (प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी) ५९७—६०५
(१) कोरियाकी घटना—बालक किन ऊँग योंग ... ५९७
(२) पैशंस वर्थकी साहित्यिक रचनाएँ (श्रीनिरञ्जनदासजी धीर) ... ५९८
(३) निपपुरके पुजारीद्वारा आगेट मणिपर खुदे शब्दोंका स्पष्टीकरण ... ५९८
(४) मिस्रदेशकी प्राचीन भाषाका शुद्ध उच्चारण ५९९
(५) स्वयं कनफ्यूसियसद्वारा कूट कविताका उच्चारण ... ५९९
(६) पुनर्जन्ममें धार्मिक मान्यताओंका स्थान [डेविड मॉरिश] (प्रो० श्रीहेमेन्द्र-नाथ बनर्जी) ... ६००
(७) एक अन्धे रामायणी बालककी कथा (प्रे०—सुश्री सु० कुमारी) ... ६०२
(८) एक हजार वर्षोंतक प्रेतयोनिमें रहने-वाले मुसल्मान पीर सुलेमान (भक्त श्रीरामशरणदास पिलखुआ) ... ६०३
२४६–परमधाम ६०६
२४७–मनुष्य-जीवनका एकमात्र उद्देश्य भगवत्प्राप्ति (कर्मानुसार गतियोंके भेद) ... ६०७
२४८–प्रार्थनाकी अद्भुत शक्ति (प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी) ६०९
२४९–स्वर्गोंसे मनुष्ययोनिमें आये हुए प्राणियोंके लक्षण [संकलित मार्कण्डेयपुराण १५ । ४२–४४] ... ६१०
२५०–मृत्युके समय क्या करे ? ... ६११
२५१–मृत्यु, परलोक और और्ध्वदैहिक कृत्य (शास्त्रार्थ-महारथी पं० श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री) ६१२
२५२–नरकोंसे मनुष्ययोनिमें आये हुए प्राणियोंके लक्षण [संकलित मार्कण्डेयपुराण १५ । ३९–४१] ६१४
२५३–महामृत्युञ्जयका चमत्कार (श्रीवेंकटलालजी ओझा) ... ६१५
२५४–अध्यात्म-लोकका विज्ञानात्मक आलोक (श्री-युगलसिंहजी खीची, एम्० ए०, बार-एट-ला, विद्यावारिधि) ... ६१६
२५५–गया-श्राद्धसे पुत्र (श्रीवेंकटलालजी ओझा) ६२१
२५६–परलोक-सुधारके साधन [एक वीतराग ब्रह्मनिष्ठ सिद्ध संतके महत्त्वपूर्ण सदुपदेश] (भक्त श्रीरामशरणदासजी) ... ६२२
२५७–लोक-परलोक-सुधारके अनिवार्य उपाय [कविता] ६२३
२५८–हम अपना भला-बुरा स्वयं ही करते हैं [श्रमण नारद] ... ६२४
२५९–सुन्दर परलोककी बात (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) ६३३
२६०–अपना सुख देकर दूसरोंका दुःख मिटानेमें महान् सुख और अपार पुण्य [विदेहराजका अनुपम त्याग] ... ६३८
२६१–श्राद्धकी अनिवार्य आवश्यकता ... ६३९
२६२–परमपद अथवा परमधाम-विज्ञान (श्री-महावीरप्रसादजी श्रीवास्तव 'अनुराग') ... ६४०
२६३–भगवत्तत्त्व एक है [कविता] ... ६५१
२६४–कैवल्य-मोक्ष और परमधामके अधिकारी [कविता] ६५१
२६५–परलोकको सुधारनेके उपाय (श्रीमती प्रेमवती देवीजी शर्मा) ... ६५२
२६६–कर्मफलकी ईश्वरीय वैज्ञानिक विधिव्यवस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(डा० श्रीचमनलालजी गौतम, सम्पादक 'युग-संस्कृति') ... ६५४
२६७–मानवको उद्बोधन (संकलित—ब्रह्मलीन स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती) ... ६५८
२६८–पापोंके अनुसार नारकीय गति (मार्कण्डेय-पुराणके आधारपर) ... ६५९
२६९–रूमीकी आकांक्षा (संकलित—जलालुद्दीन रूमी—मशनवी) ... ६६३
२७०–भगवान्‌का कालस्वरूप (श्रीपरशुराम पाण्डेय बी० ए०) ६६४
२७१–सुकरात और परलोक(पं० श्रीशिवनाथजी दुबे) ६६५
२७२–मनने कभी शान्ति नहीं पायी [संकलित पद्य] (श्रीतुलसीदासजी) ... ६८१
२७३–श्रुतिका सदुपदेश [तै० उ० से संकलित] ... ६८८
२७४–कौन कर्मबन्धनसे मुक्त होते तथा स्वर्गको जाते हैं (ब्रह्मपुराणके आधारपर) ... ६८९
२७५–प्रेमसुधाका भंडार खोल दो [कविता] ... ६९०
२७६–सम्मान्य काका कालेलकरजीका स्नेहपूर्ण पत्र (श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार) ... ६९१
२७७–नरकसे बचना हो तो—[कविता] ... ६९३
२७८–दिव्यलोक—स्वर्गमें पहुँचना हो तो [कविता] ६९३
२७९–सम्पादकका नम्र निवेदन ... ६९४
२८०–प्रभु ! अपनी वस्तु जानकर स्वीकार कर लो [कविता] ... ६९६

चित्र-सूची

बहुरंगे चित्र

१–कर्मानुसार सद्गति और दुर्गति ... मुखपृष्ठ
२–सूर्य-चन्द्र-अग्निको सूर्यत्व, चन्द्रत्व, अग्नित्व देनेवाले भगवान् ... क
३–गोलोकाधिपति भगवान् श्रीराधामाधव ... ५७
४–दिव्य देवीद्वीपमें महादेवी ... १३६
५–मृत्यु-संसार-सागरसे पार उतारते हुए भगवान् २२४
६–सेवाका फल भगवत्प्राप्ति ... २२४
७–भोगका फल दुःख-प्राप्ति ... २२४
८–सत्त्वगुणी भगवान्‌में जाता है ... २६५
९–रजोगुणी फिर मनुष्य होता है ... २६५
१०–तमोगुणी कुत्ता आदि बनता है ... २६५
११–नरकके तीन द्वार—काम, क्रोध और लोभ ... २६५
१२–अन्तकालमें भगवान्‌के स्मरणसे भगवत्प्राप्ति ३३६
१३–अन्तकालमें अक्षर ब्रह्म ॐके उच्चारण-स्मरणसे परमगति ३३६
१४–वैकुण्ठाधिपति भगवान् लक्ष्मीनारायण ... ३८४
योगभ्रष्टकी गति—
१५–पवित्र श्रीमान्‌के घर जन्म ... ४१७
१६–ज्ञानवान् योगियोंके कुलमें जन्म ... ४१७
१७–ब्राह्मण, गौ, कुत्ते, हाथी, चाण्डाल सबमें समदृष्टि ४१७
१८–साकेतबिहारी भगवान् श्रीराम ... ४६४
१९–दिव्य कैलासमें भगवान् महादेव-महादेवी ... ६३३

दुरंगा चित्र

२०–भगवान्‌में सब लोक और सब लोकोंमें भगवान् ... मुखपृष्ठ

सादे चित्र

२१–पाप करनेवालोंको आसुरी योनि तथा अधम गतिकी प्राप्ति १०५
२२–अनन्य भजनसे महापापी भक्त बन जाता है १०५
२३–ज्ञानरूप नौकाद्वारा समस्त पापोंसे उद्धार २८८
२४–ज्ञानाग्निसे समस्त कर्मराशि भस्म ... २८८
२५–आसुरी सम्पत्ति ४७२
२६–राजा श्वेतका निज शव-भक्षण ४७२
२७–भूत-पूजा, पितर-पूजा, देव-पूजा, भगवत्-पूजा ४८१
२८–खिलाकर खानेमें पाप-नाश, न देकर खानेसे नरक ४८१
२९–उपबर्हणकी मृत्यु, देवता तथा ब्राह्मण-कुमारके वेशमें भगवान् ... ५०५
३०–उपबर्हण जीवित हो गये—मालावतीकी श्रीकृष्ण-प्रार्थना ... ५०५
३१–श्रीब्रह्माजी, धर्मराज और चित्रगुप्त ... ५१२
३२–भगवान्‌के शरण होनेपर मायासे छुटकारा ५१२
३३–श्रीशंकराचार्यका परकाया-प्रवेशके लिये शरीर-त्याग ५२८
३४–श्रीशंकराचार्यका राजाके शरीरमें प्रवेश ... ५२८
३५–भक्तिमती देवी श्रीभिरावाँ बाईजी ... ५४८
३६–स्विट्जरलैंडके गैब्रियल उराइब ... ५४८
३७–इटलीके डॉ० गैस्टोन उगूलियोनी ... ५४८
३८–फ्रांसकी थिरीज गे ५४८
३९–आस्ट्रियाकी एलेक्जैण्ड्रिना ... ५४९
४०–आस्ट्रेलियाके श्रीअर्नेस्ट ब्रिग्स ... ५४९
४१–लंकाकी रूबी कुसुमा ५४९
४२–जैनीफर और गेलियन ५४९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४३–नेकाती उनलकास्किरोन ५७६
४४–लेबनानका अहमद एलावर ... ५७६
४५–गुजरातकी राजूल शाह ५७६
४६–मध्यप्रदेशकी स्वर्णलता ५७६
४७–गोपाल ५७७
४८–लेबिब कैकिन ५७७
४९–दक्षिण अफ्रिकाकी जोय वर्वे ... ५७७
५०–जेरूसलमका डेविड मॉरिस ... ५७७

रेखा-चित्र

५१–पापियोंकी दुःखपूर्ण यात्रा ४००
५२–पापियोंको यमराजकी फटकार ... ४००
५३–धार्मिकोंकी यमपुरीकी सुखयात्रा ... ४००
५४–धर्मराजके द्वारा धार्मिकोंका स्वागत ... ४००
५५–भीलनीको शंकरका वरदान ४०१
५६–जातिस्मर कीड़ा ४०१
५७–जडभरतका पूर्वजन्म ४०१
५८–जातिस्मर चार पक्षी ४०१
५९–रौरव नरक ४०८
६०–महारौरव नरक ४०८
६१–तम नरक ४०८
६२–निकृन्तन नरक ४०८
६३–असिपत्रवन नरक ४०९
६४–तप्तकुम्भ नरक ४०९
६५–गौओंको जल पीनेसे रोकनेवालोंकी गति ... ४०९
६६–परधन और पर-स्त्रीपर कुदृष्टि डालनेवालोंकी गति ४०९
६७–प्रह्लादका पूर्वजन्म ६४०
६८–देवर्षि नारदके पूर्वजन्म ६४०
६९–विपश्चित्‌से नारकी प्राणियोंकी पुकार ... ६४१
७०–विपश्चित्‌का नरकके समीप रहनेका निश्चय ... ६४१
७१–विपश्चित्‌से धर्मराज और इन्द्रकी बातचीत ... ६४१
७२–विपश्चित् भगवान् विष्णुके साथ विमानमें ... ६४१
७३–माता, पिता, गुरुजनोंका अपमान करनेवालोंकी गति ६६४
७४–गुरु, देवता और वेदोंकी निन्दासे प्रसन्न होनेवालोंकी गति ६६४
७५–अतिथि आदिको न देकर अकेले खानेवालोंकी गति ६६४
७६–स्वर्णचोर, शराबी, ब्रह्महत्यारे आदिकी गति ... ६६४
७७–स्वामीका अन्न खाकर उसका काम न करनेवालोंकी गति ६६५
७८–पर-स्त्रीगामियोंकी गति ... ६६५
७९–कृतघ्न आदिकी गति ६६५
८०–भोजनादिकी चोरी करनेवालोंकी गति ... ६६५

'कल्याण'के पुराने प्राप्य विशेषाङ्क (डाकखर्च सबमें हमारा है)

१—संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त्तपुराणाङ्क

इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी विविध दिव्य लीलाओंका बड़ा ही रोचक वर्णन है। पृष्ठ-संख्या ७०४, बहुरंगे चित्र १७, दोरंगा १, इकरंगे ६, रेखाचित्र १२०, मूल्य रु० ७.५०, सजिल्द रु० ८.७५।

२—धर्माङ्क

धर्म-सम्बन्धी विवेचनाओं, सुरुचिपूर्ण कथाओं, सरस सूक्तियों तथा रोचक निबन्धोंसे युक्त। पृष्ठ-संख्या ७००, बहुरंगे चित्र १४, दोरंगा १, सादे चित्र ४ तथा रेखाचित्र ८१, सजिल्द (कपड़ेकी जिल्द) मूल्य रु० ८.७५।

३—श्रीरामवचनामृताङ्क

मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रके विविध विषयोंपर कहे हुए आदर्श वचनोंका अभूतपूर्व संग्रह है। रामगीता भी है। पृष्ठ-संख्या ७०४, बहुरंगे चित्र ९, दोरंगा १, एकरंगा १, रेखाचित्र ६४, मूल्य रु० ८.५०, सजिल्द रु० १०.०० मात्र।

४—उपासनाङ्क (जनवरी १९६८ का विशेषाङ्क)

उपासना-सम्बन्धी विभिन्न विषयोंपर अनुभूत विवेचनात्मक ठोस सामग्रीसे युक्त। पृष्ठ-संख्या ७००, बहुरंगे चित्र–१६, दोरंगा–१, रेखाचित्र–३४, यन्त्र तथा मुद्रा–८, (मासिक साधारण अङ्कोंसहित) मूल्य रु० ९.००, सजिल्दका रु० १०.५० मात्र।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक-संघ

देशवासियोंका जीवनस्तर यथार्थ रूपमें ऊँचा हो; उनमें सदाचार, संयम, भक्तिका उदय तथा संवर्धन हो—इसके लिये 'साधक-संघ'की स्थापना की गयी है। इसमें सदस्योंको कोई शुल्क नहीं देना पड़ता। सदस्योंके लिये ग्रहण करनेके १२ और त्याग करनेके १६ नियम हैं। प्रत्येक सदस्यको एक 'साधक-दैनन्दिनी' दी जाती है, उसके लिये ३० पैसेका मनीआर्डर अथवा डाकके टिकट (रेवेन्यू नहीं) लिफाफेमें भेजकर प्रतिवर्ष मँगवा लेना चाहिये। उसीमें वे अपने नियम-पालनका ब्योरा लिखते हैं। सभी कल्याणकामी स्त्री-पुरुषोंको स्वयं इसका सदस्य बनना चाहिये और अपने बन्धु-बान्धवों, इष्ट-मित्रों एवं साथी-संगियोंको भी प्रयत्न करके सदस्य बनाना चाहिये। इस समय ९५७३ सदस्य हैं। नियमावली इस पतेपर पत्र लिखकर मँगवाइये—संयोजक, 'साधक-संघ' पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) उ० प्र०

श्रीगीता और रामायणकी परीक्षाएँ

श्रीगीता और श्रीरामचरितमानस—ये दो ऐसे लोक-कल्याणकारी और जीवनके सारे प्रश्नोंका समाधान करनेवाले ग्रन्थ हैं, जिनको प्रायः सभी श्रेणीके लोग विशेष आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। इसीलिये समितिने इन ग्रन्थोंके द्वारा लोकमानसको ऊँचा उठानेके लिये परीक्षाओंकी व्यवस्था की है। उत्तीर्ण छात्रोंको पुरस्कार भी दिया जाता है। परीक्षाके लिये स्थान-स्थानपर केन्द्र स्थापित किये गये हैं। इस समय गीता-रामायण दोनोंके मिलाकर कुल ५०० केन्द्र और लगभग २०,००० परीक्षार्थी हैं। नियमावली मँगाइये।

व्यवस्थापक—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, गीताभवन, पो०—स्वर्गाश्रम, (पौड़ी-गढ़वाल)

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस—दोनों आशीर्वादात्मक प्रासादिक ग्रन्थ हैं। इनके प्रेमपूर्ण स्वाध्यायसे लोक-परलोक दोनोंमें कल्याण होता है। इन दोनों मङ्गलमय ग्रन्थोंके पारायणका तथा इनमें वर्णित आदर्श सिद्धान्त और विचारोंका अधिक-से-अधिक प्रसार हो—इसके लिये 'गीता-रामायण-प्रचार-संघ' उन्नीस वर्षोंसे चलाया जा रहा है। अबतक गीता-रामायणके पाठ करनेवालोंकी संख्या लगभग ५५,००० हो चुकी है। इन सदस्योंसे कोई शुल्क नहीं लिया जाता। सदस्योंको नियमितरूपसे गीता-रामचरितमानसका पठन-अध्ययन और विचार करना पड़ता है। इस संस्थाके द्वारा श्रीगीताके ६ प्रकारके और श्रीरामायणके ३ प्रकारके एवं उपासना-विभागमें नित्य इष्टदेवके नामका जप, ध्यान और मूर्तिकी या मानसिक पूजा करनेवाले सदस्य बनाकर श्रीगीता और श्रीरामायणके अध्ययन एवं उपासनाके लिये प्रेरणा की जाती है। विशेष जानकारीके लिये इसके नियम और आवेदन-पत्र कार्ड लिखकर मगानेकी कृपा करें।

मन्त्री—श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ, गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम, (पौड़ी-गढ़वाल) उ० प्र०

The Kalyana-Kalpataru

1. The Gītā-Tattva Number—I — Price Rs. 2.50
   (An Exhaustive Commentary in English on the Bhagavad-Gītā along with the original Sanskrit text from Chapters I to VI)
2. The Bhāgavata Number—II, V and VI (@Rs. 2.50 each.) — „ Rs. 7.50
   (An English Translation of Books IV to VI, Book X (Latter Half) and Books XI, XII with original Sanskrit text of the Bhāgavata)
   (Numbers I, III, & IV containing Books I to III, VII to IX and the First Half of Book X respectively, are out of stock.)
3. The Vālmīki-Rāmāyaṇa Number—I, II, III, IV, V, VI & VII — Rs. 18.00
   (An English Translation, with the original Sanskrit text of the Bālakāṇḍa to Sundarakāṇḍa of the Vālmīki-Rāmāyaṇa—@ Rs. 2.50 each, the price of only Sundarakāṇḍa is Rs. 3.00)

Postage free in all cases. *MANAGER*—KALYANA-KALPATARU, P. O. Gita Press (Gorakhpur)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सन् १९६८ में छपी हुई २६ नवीन पुस्तकें

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1–Śrī Rāmacharitamānasa (The Mānasa Lake brimming over with the exploit of Śrī Rāma) with Hindi text and English translation page 564, multi-coloured eight pictures — Bound price Rs. 10.00

२–गीता-ज्ञान-प्रवेशिका–ले०–स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी, पृष्ठ-संख्या २६०, सचित्र .... मूल्य .५०

३–सीमाके भीतर असीमका प्रकाश–ले०–ब्र०आ०श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाध्याय, पृष्ठ-संख्या ३३६, ,, २.००

४–महकते जीवन-फूल–ले०–डा० रामचरणजी महेन्द्र; एम्० ए०,पी-एच्० डी०, पृष्ठ-संख्या ४१६, ,, २.००

५–मानव-कल्याणके साधन–(कल्याण-कुञ्ज भाग ५) ले०–'शिव', पृष्ठ-संख्या २७६, ... ,, १.००

६–दिव्य सुखकी सरिता–(,, भाग ६) ले०–'शिव', पृष्ठ-संख्या १२०, ... ,, .५०

७–सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ–(,, भाग ७) ले०–'शिव', पृष्ठ-संख्या १४४, ... ,, .६२

८–गीता-दैनन्दिनी सन् १९६९–पृष्ठ-संख्या ४१६, मूल्य साधारण जिल्द .७५, कपड़ेकी जिल्द ,, .९०

९–श्रीव्रज-रस-माधुरी–पृष्ठ-संख्या २७५, ... ,, .७०

१०–श्रीराधा-जन्माष्टमी-व्रत-महोत्सव–पृष्ठ-संख्या ७२, ... ,, .३०

११–मधुर–भाग १–(दिव्य श्रीराधा-माधव-प्रेमकी मधुर झाँकी) पृष्ठ-संख्या १७६, ... ,, .६५

१२–कलेजेके अक्षर–(पढ़ो, समझो और करो भाग २) पृष्ठ-संख्या १३६, ... ,, .५०

१३–आदर्श मानव-हृदय–(,, भाग ३) पृष्ठ-संख्या १२६, ... ,, .५०

१४–दान करना धर्म नहीं, आवश्यकता है–(पढ़ो, समझो और करो भाग ४) पृष्ठ-संख्या १२०, ,, .५०

१५–भलेका भला और बुरेका बुरा–(पढ़ो, समझो और करो भाग ५) पृष्ठ-संख्या १२६, ,, .५०

१६–उपकारका बदला–(पढ़ो, समझो और करो भाग ६) पृष्ठ-संख्या १३२, ... ,, .५०

१७–असीम नीचता और असीम साधुता–(पढ़ो, समझो और करो भाग ७) पृष्ठ-संख्या १३०, ,, .५०

१८–नवधा भक्तिके निदर्शन–(कहानी) ले०–श्रीचक्र, पृष्ठ-संख्या १०८, ... ,, .४०

१९–कर्मयोगकी चतुःस्त्री और चतुर्विध भक्त–(कहानी) ले०–श्रीचक्र, पृष्ठ-संख्या ७६, ... ,, .३०

२०–दस महाव्रत–(कहानी) ले०–श्रीचक्र, पृष्ठ-संख्या ७८, ... ,, .३०

२१–चमत्कारी आठ 'अ' कार–(कहानी) ले०–श्रीचक्र, पृष्ठ-संख्या ६२, ... ,, .२५

२२–त्रिविध श्रद्धा और त्रिविध त्याग–(कहानी) ले०–श्रीचक्र, पृष्ठ-संख्या ५०, ... ,, .२०

२३–बालकोंके कर्तव्य–ले०–ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ-संख्या ८६, ... ,, .३०

२४–ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री–ले०– ,, ,, पृष्ठ-संख्या ५८, ... ,, .२०

२५–भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारी-धर्म–ले०ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ-सं० ४४ ,, .१५

२६–तीन आदर्श देवियाँ–ले०–ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ-संख्या ३२, ... ,, .१२

दाम घटाये

१–हिन्दी बाल-पोथी–शिशु-पाठ भाग १–के दाम ३० पैसेसे घटाकर २५ पैसे कर दिये गये हैं।

सभी पुस्तकोंका डाकखर्च अलग।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य-चन्द्र-अग्निको सूर्यत्व, चन्द्रत्व, अग्नित्व देनेवाले भगवान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

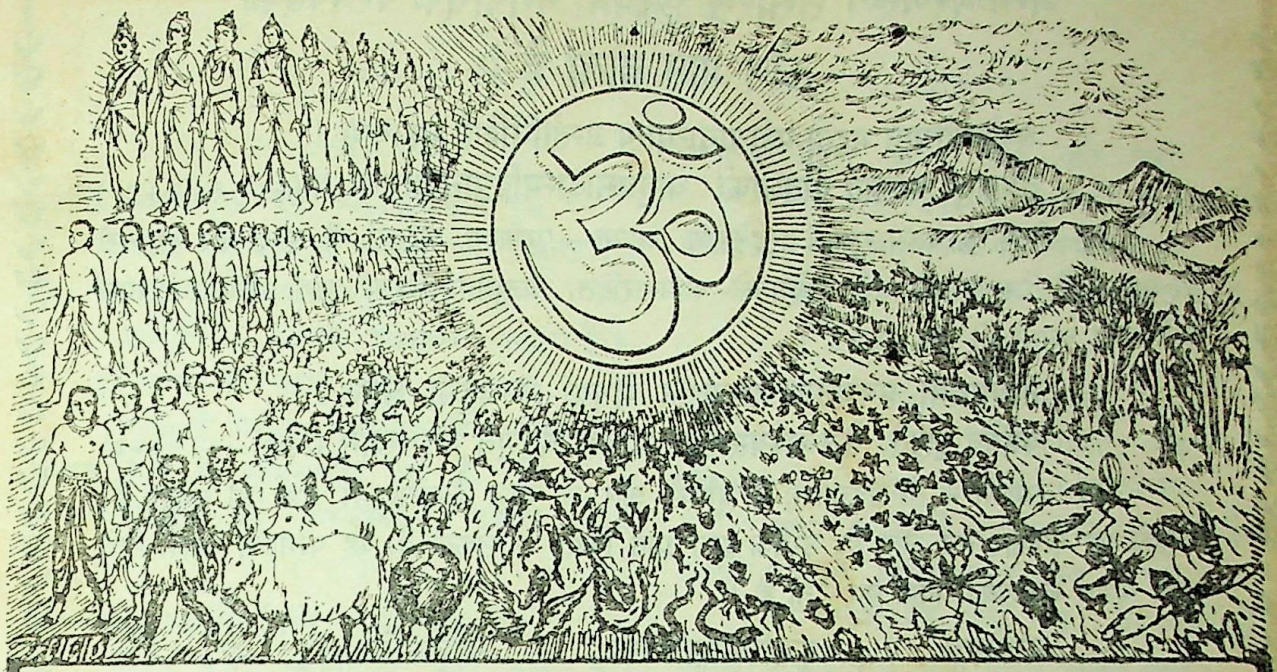

कल्याण

शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन् नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते ।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥

वर्ष ४३ | गोरखपुर, सौर माघ २०२५, जनवरी १९६९ | संख्या १ पूर्ण संख्या ५०६

सर्वप्रकाशक ज्योतिर्मय भगवान्

देते सूर्य-सोम-मण्डलको, अग्निदेवको उज्ज्वल भास ।
अष्ट-कमलदलपर वे नित्य स्थित हैं नारायण श्रीवास ॥
जिनके रोम-रोममें अगणित हैं ब्रह्माण्ड नित्य अव्यक्त ।
जो हैं कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके अनन्त रूपोंमें व्यक्त ॥
लीलामय वे लीलाकारण धरे विचित्र विविध बहु रूप ।
दर्शन हैं दे रहे चतुर्भुज विष्णु वही सब भाँति अनूप ॥

* प० पु० क--

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म-मरणरूप संसारसे छूटकर भगवान्‌के परमपदको कौन प्राप्त होता है ?

अणोरणीयान् महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ॥ (कठ० १।२।२०)

इस जीवके हृदयरूप गुफामें रहनेवाला आत्मा—परमात्मा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और महान्‌से भी महान् है; परमात्माकी उस महिमाको कामनारहित, वीतशोक विरला पुरुष सर्वाधार परब्रह्म परमेश्वरकी कृपासे ही देख पाता है ।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूꣳस्वाम् ॥ (कठ० १।२।२३)

यह परमात्मा न तो प्रवचनसे, न बुद्धिसे और न बहुत सुननेसे ही प्राप्त हो सकता है; जिसको यह स्वीकार कर लेता है, उसीके द्वारा प्राप्त किया जा सकता है; यह परमात्मा उसके लिये अपने यथार्थ स्वरूपको प्रकट कर देता है ।

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥ (कठ० १।२।२४)

सूक्ष्मबुद्धिके द्वारा भी इस परमात्माको न तो वह मनुष्य प्राप्त कर सकता है, जो बुरे आचरणोंसे निवृत्त नहीं हुआ है; न वह प्राप्त कर सकता है, जो अशान्त है; न वह ही, जिसके मन-इन्द्रियाँ संयमित नहीं हैं और न वही जिसका मन चञ्चल है । (सदाचारी, शान्त, समाहित और शान्तचित्त पुरुष ही प्राप्त कर सकता है ।)

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाशुचिः ।
न स तत्पदमाप्नोति सꣳसारं चाधिगच्छति ॥ (कठ० १।३।७)

जो सदा विवेकहीन बुद्धिवाला, असंयतचित्त और अपवित्रजीवन रहता है, वह उस परमपद-को नहीं पा सकता; वरं वह तो बार-बार जन्म-मृत्युरूप संसार-चक्रमें ही भटकता रहता है ।

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥ (कठ० १।३।८)

परंतु जो सदा विवेकशील बुद्धिसे सम्पन्न, संयतचित्त और पवित्रजीवन होता है, वह उस परमपदको प्राप्त हो जाता है, जहाँसे लौटकर फिर संसारमें जन्म नहीं लेता ।

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद् विष्णोः परमं पदम् ॥ (कठ० १।३।९)

जो मनुष्य विज्ञान-विवेकशील बुद्धिरूप सारथिसे सम्पन्न तथा मनरूपी लगामको सदा वशमें रखनेवाला है, वह इस संसारमार्गके उस पार पहुँचकर परब्रह्म परमात्मा विष्णुके उस महान् परम पदको प्राप्त हो जाता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृतलोक

(रचयिता—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री, 'राम', साहित्याचार्य)

(१)

ज्योति चिन्मयीका एक व्यापक महान् पुञ्ज
कोटि रवि-शशिसे अमित और न्यारा है।
जिसके प्रतीत एकदेशमें ही सारा यह—
वारिद-सा व्योममें प्रपञ्चका पसारा है॥
वह पर-व्योम है, परम पद पुण्यधाम,
लोक है अमृत, अवलोकनीय प्यारा है।
वन्दन उसे है, अभिनन्दन उसे है, वह
राधा-उर-चंद नन्दनन्दन हमारा है॥

(२)

बाँधा करे बन्धनोंमें विधि या निषेधके जो—
ऐसा नहीं वेद-उपवेद वहाँ कोई है।
स्नेह-सुधा-वृष्टि हर दृष्टि करती है सदा
होता न किसीको कभी खेद वहाँ कोई है॥
श्याम-गौर धाम अतिशय अभिराम राम
दीखता न स्याह या सफेद वहाँ कोई है।
गेह तथा गेहीमें न, नेह तथा नेहीमें न,
देह तथा देहीमें न भेद वहाँ कोई है॥

(३)

संधिनीका, संविदका, ह्लादिनीका लीलालास्य
सत-चित-आनँदका विमल विलास है।
कामके गुलाम वहाँ पाते हैं प्रवेश नहीं,
देश प्रीतिका है, प्रिया-प्रीतमका वास है॥
पीती चातकी है वहाँ नित्य घनश्याम-रस
सतत चकोरीके सुधाकी निधि पास है।
पास है सभीके, किंतु पा सका न कोई भेद,
दूर भी है, पास भी, न दूर है, न पास है॥

(४)

योगियोंको अगम, सुगम प्रेम-योगियोंको
भूतल वहाँका नित्य-नूतन लखाता है।
संतत समस्त ऋतुओंका सुविलास वहाँ
उरमें अमन्द मोदरस उमगाता है॥
जन्म-जरा-मरण शरण वहाँ पाते नहीं,
राज्य रसराजका न किसको लुभाता है।
क्लेश-द्वेष,लेश-आधि-व्याधिका प्रवेश नहीं,
देश राधिकाके सुखसिन्धु लहराता है॥

(५)

वैर या विरोध जड जगके निरुद्ध, उस
चेतन पुरीमें रस-रंगकी रवानी है।
इति-अथ-हीन वह अकथ अपथगम्य
सफल कहानीमें न बानीकी भी बानी है॥
प्रणयी असंख्य प्रीतिपात्र सबका है एक
पेड़-लतामें भी जहाँ छेड़ छेड़खानी है।
सानी उसकी क्या छैल गैलमें गलीमें जहाँ
करता यशोदाका सभीकी अगवानी है॥

(अमृतलोककी राधा)

(६)

चंदमुखी मुखसे बिछाती चाँदनीका जाल
धूरि-सी कपूरकी खहाससे उड़ाती है।
'राम' श्याम-घनकी घटा-सी घिर आती जब,
पाससे असित केशपाश लिये जाती है॥
कौंध उठती है बिजली-सी चकाचौंध लिये,
चपल कटाक्ष पल-पलमें चलाती है।
मन मनमोहनका मोह मनमोहनी यों
कान्तिसे धवल नेह नवल जगाती है॥

(७)

सच्चित्-सुखामृत-सरोवरके कंज मञ्जु
मोहन-मधुव्रतके सेव्य हैं, शरण हैं।
दस नख-चंद, मंद मलिन ख-चंद जहाँ
नीके चाँदनीके नव्य निर्झर-झरण हैं॥
मंद-मंद गतिसे गयंदके विनिन्दक हैं
नन्द-नन्द-तनके रतन-आभरण हैं।
'राम' अभिराम कोटि-कोटि रति-काम बिना-
दामके गुलाम देख राधिका-चरण हैं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्माकी अमरता

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीशृंगेरीमठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य श्रीअभिनवविद्यातीर्थ स्वामीजी महाराज)

हम संसारमें क्या देखते हैं कि कोई सुखी है, कोई दुखी है; कोई बुद्धिमान् है तो कोई बुद्धिविहीन; कोई धनी है तो कोई कंगाल। कोई भी यह नहीं चाहता कि मैं दुखी, बुद्धिविहीन या कंगाल बनूँ। नहीं चाहते हुए भी क्यों ऐसे बन जाते हैं? कुछ लोग इसका यों समाधान देते हैं कि हमारे लौकिक प्रयत्न और उपाय जैसे होते हैं, वैसे ही हम बनते हैं। जो लोग उपायोंको न अपनायें और प्रयत्न भी न करें, वे कुछ भी नहीं साध सकते, किंतु संसारमें हम यह भी देखते हैं कि उपायोंको अपनाकर सतत प्रयत्न करते रहनेपर भी बहुत-से लोग सफलता प्राप्त नहीं कर सकते।

इसपर हम यह विचार कर सकते हैं कि संसारमें दीखनेवाली यह विचित्रता क्या निर्हेतुक है? नहीं, कोई भी कार्य बिना कारणके नहीं हो सकता। यदि वैसा हो तो फिर कोई भी किसी भी सफलताके लिये प्रयत्न ही क्यों करे। अतः हमें यह अवश्य मानना पड़ता है कि कोई भी कार्य बिना कारणके नहीं हो सकता। तो इस विचित्रताका कारण क्या है।

समं कर्षन्ति पृथिवीं समं शास्त्राण्यधीयते।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति दैवस्यैकस्य लीलया॥

'जमीनको समानरूपसे जोतते हैं, शास्त्रोंको समानरूपसे सीखते हैं, किंतु एकमात्र दैवकी लीलासे डूबते और ऊपर उठते हैं।' वह दैव क्या है? सनातन वैदिक शास्त्रमात्र इसका समाधान देते हैं। वे कहते हैं—'हे मानव! तुमने जो कुछ किया है और करते हो, उनसे जो संस्कार बनते हैं, वे ही दैव या पुण्य-पाप कहलाते हैं। तुम्हारे वे काम ही अब नहीं होते हुए भी, दैवके द्वारा अपना-अपना फल उत्पन्न करते हैं। इससे हम यह निश्चय कर सकते हैं कि सुख-दुःख, विवेक-अविवेक और सम्पत्ति-विपत्ति सब कुछ हमारे कियेका फल है।' इसपर यह प्रश्न होता है कि 'कोई नन्हा-सा बच्चा जन्मसे ही स्वस्थ और कोई माताका स्तन्यतक पीनेमें अशक्त क्यों होता है? इसने ऐसा कौन-सा काम किया, जिससे वह तीव्रतर सुख या दुःख भोगे?' इसका उत्तर यह है कि 'इस समय उसने कुछ भी न किया हो और करनेमें असमर्थ भी हो; किंतु जब करनेमें समर्थ था, तब जो कुछ किया था, अब केवल उसीका फल भोगता है। फिर समर्थ होनेके बाद जो कुछ करेगा, उसका फल भी आगे अवश्य भोगेगा।' हमारे सुख-दुःखोंके कारण इन जन्मके कर्म भी होते हैं, बीते हुए जन्मोंके भी। जन्मका कारण कर्म, कर्मसे जन्म, जन्मसे कर्म।

'तो यह चक्र कबसे आरम्भ हुआ?' यह चक्र अनादि है। आत्मा भी अनादिकालसे सुख-दुःख भोगता आ रहा है।

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्।
इह संसारे बहुदुस्तारे कृपयापारे पाहि मुरारे॥

(चर्पटपञ्जरिका)

'बार-बार जन्म, बार-बार मरण, बार-बार माताकी कोखमें निवास, हे मुरारे! संसार बड़ा दुस्तर है। कृपा करके इससे हमें उबारिये।'

इस चक्रका आदि मानें तो चक्रके चलानेवालेपर वैषम्य-नैर्घृण्य (पक्षपात तथा कृपाहीनता) दोष मढ़ने पड़ेंगे। और जिसमें पक्षपातादि दोष हों, वह भगवान् ही नहीं। गीतामें भगवान्‌ने अपने स्वरूपका प्रतिपादन किया—'न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः। मैं न किसीसे घृणा करता हूँ, न प्यार।' भगवान् तो कर्मफलदाता हैं। कर्मके अनुरूप फल देंगे। कर्मचक्र ही अनादि हुआ तो फिर जीवके अनादित्वमें तो कहना ही क्या है।

ये कर्म भी स्वरूपाज्ञानसे हुआ करते हैं।—'अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।' अज्ञानसे ज्ञानके आवृत होनेके कारण लोग मोहग्रस्त हो जाते हैं। मोहसे कर्म, कर्मसे जन्म और जन्मसे सुख-दुःख-प्राप्ति। इस अनादि चक्रको वेदान्तशास्त्रजन्य स्वरूपज्ञानसे हटाकर आत्मा परमानन्द प्रकाशस्वरूप होकर विराजेगा।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्॥

(गीता ५। १६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनका सनातन प्रश्न

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित पूज्यपाद श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य श्रीअभिनवसच्चिदानन्दतीर्थ स्वामीजी महाराज)

प्रायः सभी मनुष्योंके जीवनमें किसी-न-किसी समय ये प्रश्न आये बिना नहीं रहते कि 'मैं कहाँसे आया हूँ ?' और 'कहाँ जाऊँगा ?'—**'कोऽहं कुत आयातः'** । बात स्पष्ट है कि अनभिज्ञलोग या अल्पज्ञलोग इन प्रश्नोंको टालनेका प्रयत्न करते हैं । अधिकांश विद्वान्लोग विचार करके थक जाते हैं और उत्तर शायद ही पाते हैं । ये प्रश्न सनातन हैं और खोज भी पुरातन ही है । जगत्सृष्टिके समयसे यह खोज सभी देशोंमें और सभी मतों तथा सभी दर्शनोंमें की जा रही है । विभिन्न मतवाले लोग परलोक तथा पुनर्जन्मके सम्बन्धमें अपने-अपने विचार भी प्रदर्शित करते रहे हैं । इन सब विचारोंपर परामर्श किये बिना अपने-अपने आध्यात्मिक सिद्धान्तका स्थापित करना असम्भव नहीं तो, कठिन अवश्य है ।

कठोपनिषद् तथा श्रीमद्भगवद्गीताका बीज-प्रश्न भी यही है । अन्यान्य उपनिषदोंमें, पुराणोंमें और दर्शन-ग्रन्थोंमें भी इस विषयपर बड़ी चर्चा आयी है । वह ठीक ही है; क्योंकि पुनर्जन्म-परलोकसम्बन्धी चर्चाके बिना अध्यात्म-विचार हो ही नहीं सकता । कठोपनिषद्में—

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये-
ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके ।
तद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं
वराणामेष वरस्तृतीयः ॥
(१ । १ । २०)

—यह जो प्रश्न अधिकारी शिष्य नचिकेताने गुरु ब्रह्मविद्याचार्य वैवस्वत यमसे किया, वह प्रश्न सनातन ही है । गीताका द्वितीयाध्याय, जो गीताका हार्द है और जिसमें अर्जुनके मुख्य प्रश्नका उत्तर आया है, वह सम्पूर्णतः कठोपनिषद्पर ही आधारित है । दोनोंमें **'नायं हन्ति न हन्यते'** इत्यादि कई सिद्धान्त-वाक्य समान रूपसे उपलब्ध होते हैं, यह बात विद्वानोंको विदित ही है ।

सभी दार्शनिक ग्रन्थोंमें—विशेषरूपसे गीतामें स्पष्ट सिद्ध किया गया है कि आत्मा अजर-अमर तथा अविनाशी है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥
(गीता २ । २३-२४)

और पुनर्जन्मके सम्बन्धमें सर्वश्रुत श्लोकोंमें बताया है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥
(गीता २ । २२)

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥
(गीता २ । २७)

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
(गीता ९ । २१)

—आदि प्रकरणोंमें तथा **'शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।'** (८ । २६) आदि प्रकरणमें भी जीवके बाहर जाने अर्थात् परलोकगमनके सम्बन्धमें स्पष्ट कहा गया है ।

परलोक और पुनर्जन्म भारतीय वैदिकधर्मकी मूलभित्ति होनेसे इन्हीं विषयोंपर यह 'कल्याण'के विशेषाङ्कका प्रकाशन सभीके लिये बहुत उपयोगी सिद्ध होगा । 'इति शुभम्'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव-जीवनका उद्देश्य

(लेखक--पू० अनन्तश्रीविभूषित श्रीगोवर्धनपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्रीनिरञ्जनदेवतीर्थजी महाराज)

संसारके सभी प्राणी सुख-दुःख भोगते हैं। जन्मसे ही इस भोगका आरम्भ हो जाता है। इसमें भी तारतम्य है। एक व्यक्ति जन्म-समयसे ही सुख-सुविधाओंकी भरमार पाता है। उसके पैदा होते समय 'एयर कंडीशन्ड' कमरा होता है। ५-७ डाक्टर, लेडी डाक्टर, नर्सें जच्चा और बच्चाकी सेवा-शुश्रूषाके लिये तत्पर रहती हैं। क्षण-क्षणमें बन्धु-बान्धवोंके टेलीफोन उनकी व्यवस्थाकी जानकारीके लिये आते रहते हैं। पर इसका दूसरा पहलू भी है। एक माता खेतमें अनाज या घास काट रही है। दोपहरका समय है। नीचेसे पैर जल रहे हैं और ऊपरसे भगवान् भास्करका प्रखर ताप उसके मस्तकको संतप्त कर रहा है। सारा शरीर पसीनेसे सराबोर है। इसी अवस्थामें बालकका जन्म भी हो जाता है। सर्वथा असहाय अवस्थामें वह अपने इस नवजात शिशुको खेतके साग-पत्ते, अन्न अथवा घासकी टोकरीमें रखकर, अपने सिरपर उठाकर घर चली आती है। स्पष्ट है कि उत्पन्न होते ही इन दोनों बालकोंको जो सुख-दुःखकी उपलब्धियाँ हुईं, उनका कुछ कारण होना चाहिये। यह केवल प्रकृतिकी लीला है—ऐसा कहकर पिण्ड छुड़ाना शोभा नहीं देता। अतः मानना पड़ेगा कि दोनोंने ही पहले कुछ ऐसे कर्म किये हैं, जिनके फलस्वरूप जन्मते ही उन्हें ये सुख और दुःख मिले। 'कर्मके फल', 'कर्म' और 'पुनर्जन्म'—तीनोंकी सिद्धि इस एक ऊपरके उदाहरणसे हो जाती है। लोग इसे स्वभाव, प्रकृति या नेचर कहकर संतोष भले ही कर लें, पर वस्तुतः इन समस्याओंका उत्तर तो तभी हो सकता है, जब इनके मूलकारणकी खोज की जाय और वह मूलकारण विभिन्न प्रकारके शुभाशुभ कर्म ही हो सकते हैं, जिनके फलस्वरूप प्राणिमात्रको तारतम्य या वैषम्यसे जन्मसे मृत्युपर्यन्त सुख-दुःख भोगने पड़ते हैं।

कर्म भी फल देनेमें स्वतन्त्र नहीं हैं; क्योंकि वे जड हैं। लोकमें भी सेवा, नौकरी, व्यापार आदि कर्म स्वयं स्वतन्त्ररूपसे फल नहीं देते, अपितु किसी नियामक, स्वामी, व्यवस्थापक आदिके द्वारा फल देते हैं। नौकरी करनेवालेको नौकरीरूप उसका कर्म स्वयं वेतन नहीं देता; किंतु जिसकी वह नौकरी करता है, वह स्वामी नौकरीका फल वेतनके रूपमें देता है। अतः कर्मोंका फल देनेवाले एक 'कर्म-फलदाता'को मानना पड़ेगा। लौकिक कर्मोंके फल वे ही दे सकते हैं, जिन्हें कर्म करनेवाले व्यक्तियोंका, उनके द्वारा किये गये कर्मों और उनके फलों (परिणामों) का ठीक-ठीक ज्ञान हो। किसी स्कूल या कॉलेजके प्रधानाध्यापक, प्रिंसिपल, कारखाने, मिल, फैक्टरी आदिके मैनेजर इसके उदाहरणरूप दिये जा सकते हैं। वे अपने अधिकृत कर्म करनेवाले सभी व्यक्तियोंको जानते हैं, उनके द्वारा किये जानेवाले कार्योंको जानते हैं और उन कार्योंके फलोंको जानकर, प्रत्येक व्यक्तिको उसके कर्मका फल नियमानुसार देते हैं। ठीक, इसी प्रकार अनन्त-कोटि-ब्रह्माण्ड-स्वरूप इस संसारमें एक-एक ब्रह्माण्डमें अनन्तानन्त जीव हैं। ब्रह्माण्डकी अनेकता और अनन्तता अब वैज्ञानिक भी स्वीकृत कर चुके हैं। चन्द्र, शुक्र और सूर्यलोक तथा पृथ्वीका ओर-छोर लेनेके लिये अन्तरिक्षकी उड़ान करनेवाले वैज्ञानिकोंने अपना यह स्पष्ट मत अभिव्यक्त कर दिया है कि इस दुनिया-जैसी ऐसी ही बहुत-सी दुनियाएँ विश्वमें सम्भव हैं। यही हमारे ब्रह्माण्डोंको अनन्त कहनेका तात्पर्य है। अनन्तानन्त ब्रह्माण्डोंमें एक-एक ब्रह्माण्डमें अनन्तानन्त जीव रहते हैं, जिनका ज्ञान संसारके किसी एकको तो क्या, सभी वैज्ञानिकोंको नहीं हो सकता। मनुष्योंकी, पशुओंकी और किसी अंशमें पक्षियोंकी गणना की जा सकती है, किंतु कीट, पतङ्ग आदि योनियोंमें कितने जीव इस संसारमें भटक रहे हैं, इसका पता क्या सारे संसारके वैज्ञानिक 'राउण्ड टेबल कान्फ्रेन्स' करके या जीवनभर खोजबीन करके लगा सकते हैं ? बरसातकी एक रात्रिमें एक नगरके एक मुहल्लेकी एक सड़कके एक बिजलीके बल्बके नीचे कितने हजार जीव एक ही रात्रिमें पैदा होकर सबेरा होते-होते समाप्त हो जाते हैं। इन जीवोंकी गणना, भिन्न-भिन्न जातियाँ, खान-पान और इनके सुख-दुःखके प्रकार जानना क्या आजकलके पहुँचे हुए वैज्ञानिकोंके लिये भी सम्भव है ? किंतु यह सब कार्य ऐसा नियमित और व्यवस्थित होता है कि जिसके आधारपर एक किसी परम समर्थ सर्वज्ञ नियामक या व्यवस्थापककी कल्पना न चाहते हुए भी करनी पड़ती है; अन्यथा किस व्यक्तिने उन सब जीवोंको एक नियमित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समयमें उत्पन्न किया, नियमित जीवन प्रदान किया और नियमित मृत्यु अथवा कराल कालके गालमें सन्निविष्ट कर दिया—यह प्रश्न सारे संसारके बुद्धिमानोंके सामने खड़ा ही रहता है।

ईश्वरको मान लेनेपर इसका सीधा समाधान हो जाता है। अनन्तानन्त ब्रह्माण्डोंके एक-एक ब्रह्माण्डमें अनन्तानन्त जीव हैं। अनन्तानन्त जीवोंमें एक-एक जीवके अनन्तानन्त जन्म हैं। एक-एक जीवके अनन्तानन्त जन्मोंमें एक-एक जन्मके अनन्तानन्त कर्म हैं। अनन्तानन्त कर्मोंमें एक-एक कर्मके अनन्त फल हैं और अनेक कर्मोंके एक-एक फल भी है। इनसे ही जन्म, संस्कार और फल बनते हैं। ऊपर लिखे गये विवरणसे जीवोंके प्राग्जन्म, पुनर्जन्म और बारंबार जन्म न माननेवाले व्यक्तिसे यह पूछा जा सकता है कि मनुष्यका बालक छः महीनेमें प्रयत्न करनेपर बैठना सीखता है; पर गाय, भैंस, गधे, घोड़ेका बच्चा पैदा होनेके कुछ क्षण पश्चात् ही केवल चलने ही नहीं लगता, अपितु उछलने-कूदने, फाँदने और भागने लगता है। पुनर्जन्म न माननेवालेसे हम पूछते हैं कि इन पशुओंके इन बच्चोंको यह ट्रेनिंग किसने दी? इसके लिये कहाँ 'ट्रेनिंग सेण्टर या इन्स्टीट्यूशन' खुले हुए हैं? पक्षियोंके बच्चोंको उड़ना किसने सिखाया? हंसको नीर-क्षीर-विवेककी शिक्षा किसने दी? कागके शावकको उत्तमोत्तम भक्ष्य, भोज्य, लेह्य पदार्थका परित्याग-कर अति बीभत्स और जघन्य विष्ठाकी ओर ही आकृष्ट होनेकी तत्परता किसने सिखलायी? सद्योजात सिंह-शावकको हरिणपर आक्रमण करनेका उपदेश किसने दिया? इन सबके उत्तरमें भी प्रकृति, स्वभाव, नेचर कहकर लोग संतोष भले ही कर लें, किंतु यह इन प्रश्नोंका सत्य समाधान नहीं, जब कि पुनर्जन्म, प्राग्जन्म और एक-एक जीवके बारंबार अनेक जन्म माननेपर इस समस्याका संतोषजनक समाधान सहज और सुलभ हो जाता है। यह स्पष्ट है कि गाय, भैंस, गधे या घोड़ेका बच्चा केवल वर्तमान जन्ममें ही गाय, भैंस, गधे, घोड़ेका शरीर पाकर नहीं आया, किंतु पुनर्जन्मके सिद्धान्तानुसार वह पहले भी अनेक बार ऐसे जन्म पा चुका है और उन जन्मोंमें जन्मते ही उछलने-कूदने, भागनेका अभ्यास उसका बना हुआ है। उसी अभ्यासके कारण वर्तमान जन्ममें भी पूर्व संस्कारोंके उद्बोधसे, बिना किसीके सिखाये वह यह सब करने लगता है।

पूर्वजन्मके संस्कार मनमें रहते हैं। उन संस्कारोंका उद्बोधन करनेवाला देश, काल, अवस्था, परिस्थिति आदि कोई भी पदार्थ जैसे ही सामने आता है, संस्कार उद्भूत हो जाते हैं और प्राणीको पूर्वजन्मके अभ्याससे उस कार्यमें प्रवृत्त कर देते हैं। यही कारण है कि पक्षीका बच्चा बिना शिक्षा या उपदेशके ही उड़ने लगता है। हंस नीर-क्षीर-विवेक कर लेता है और सिंह-शावक हरिणको दबोच बैठता है। कहा जा सकता है कि एक मनमें इतने संस्कार कैसे और कहाँसे आ सकते हैं? इसका उत्तर यही है कि जैसे घी, तेल, अचार अथवा ऐसी ही कोई अन्य वस्तु जिस मिट्टीके पात्रमें कुछ दिन रक्खी जाय, उस मिट्टीके पात्रको तेल, घी आदि निकालकर, सोडा, मिट्टी, गरम पानी आदि स्नेह-निवारक द्रव्योंसे रगड़-रगड़कर खूब अच्छी तरह धो लेनेपर भी क्या उस पात्रमेंसे चिकनाहटके संस्कार मिट सकते हैं? कहना न होगा कि धोनेके बाद तत्काल उसमें चिकनाहट भले ही दिखायी न दे, पर ज्यों-ही उस पात्रको धूप अथवा अग्निका संयोग प्राप्त होगा, चिकनाहट उससे बाहर आ जायगी। यहाँ चिकनाहटके संस्कार पात्रमें छिपे हुए थे, अग्नि अथवा आतपने संस्कारोंको उद्बुद्ध कर दिया। ठीक इसी प्रकार अनेक बार पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, देवता, दानव, मानव, कूकर, शूकर आदि योनियोंमें जन्म लेनेके कारण उन सबके कामोंके संस्कार प्रत्येक प्राणीके मनमें विद्यमान हैं, किंतु छिपे हुए रहते हैं। जैसे ही धूप या अग्निकी तरह उन संस्कारोंका उद्बोधक पशु-पक्षी आदिका जन्म मिला कि संस्कार उद्बुद्ध होकर, उस प्राणीको उठने-बैठने, दौड़ने-भागने, उड़ने, मारने-काटने आदिमें प्रवृत्त कर देते हैं। अतः एक-एक जीवके अनन्तानन्त जन्म माननेसे ही इन प्रश्नोंका समाधान होता है।

चैतन्यको पञ्चमहाभूतोंका परिणाम माननेपर यह आपत्ति होती है कि इन भूतोंमें अलग-अलग चैतन्य नहीं है। अतः इनके समुदायमें भी चैतन्य नहीं हो सकता। कहा जा सकता है कि 'कत्था, चूना, पान, सुपारी—इनमें अलग-अलग किसीमें लाल रंग नहीं है; किंतु इनके संयोगसे जैसे लाल रंग उत्पन्न हो जाता है और गुड़,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आटा, महुवा आदिमें किसीमें पृथक्-पृथक् मादकता न होनेपर भी उनका योग होनेपर सबमें मादकता उत्पन्न हो जाती है, वैसे ही पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूतोंके संयोगसे शरीरमें भी स्वतः 'चेतन' उत्पन्न हो जाता है। अतः शरीरसे भिन्न किसी चेतनको माननेकी आवश्यकता नहीं। गुलाबके बीजमें ही जैसे गुलाबके अङ्कुर, नाल, स्कन्ध, शाखा, प्रशाखा, पत्र, पुष्प, काँटे और फलतकमें रहनेवाली सुमधुर गन्धको उत्पन्न करनेकी शक्ति है, ठीक वैसे ही माता-पिताके रज-वीर्यमें ही रहकर चरणादिमान शरीर, ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, प्राण और चैतन्यको उत्पन्न करनेकी शक्ति है। अतः पृथक् चैतन्य आत्माके माननेकी कोई आवश्यकता नहीं है।' किंतु इन सब बातोंका सीधा एक यही उत्तर है कि ऐसा माननेपर 'कृतहानि' और 'अकृताभ्यागम' दोष प्रसक्त होंगे। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक शरीरमें माता-पिताके रज-वीर्यसे ही नवीन चैतन्यकी उत्पत्ति माननेपर, उत्पन्न होनेवाला व्यक्ति जन्मसे ही जो सुख-दुःख भोगता है, उन सुख-दुःखोंका कारण क्या है? क्योंकि आत्मा गुलाबके फूलकी तरह माता-पिताके रज-वीर्यसे नवीन उत्पन्न हुआ। उसने पहले कोई कार्य नहीं किया तो बिना किये कर्मोंके वह किनका फल भोगता है? इसीको 'अकृताभ्यागम' कहते हैं। पहले कर्म कोई किये नहीं और पैदा होते ही सुख-दुःख भोगना अनिवार्य हो गया। ऐसे ही बिना किसी स्थायी चैतन्यकी सत्ता स्वीकार किये जब यह आत्मा शरीरके साथ मर जायगा और इस शरीरके साथ ही आत्मा जल जायगा तो इस शरीररूपी आत्माने जीवनपर्यन्त जो अच्छे-बुरे कर्म किये, उनका फल भोगनेवाला कोई दूसरा रह नहीं जायगा। इसको 'कृतहानि दोष' कहते हैं। शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिसे भिन्न एक स्थायी चेतन आत्माके न माननेपर इन दोनों दोषोंका निवारण कभी किसी प्रकार भी नहीं हो सकता। प्रत्येक जीवनके प्रत्येक व्यक्तिके किये हुए सभी कार्य व्यर्थ जायँ और जन्मते ही बिना किये हुए कर्मोंके फल भोगने पड़ें—इन दोनों दोषोंकी निवृत्ति तभी हो सकती है, जब शरीर, मन, बुद्धि आदिसे भिन्न एक स्थायी आत्मा माना जाय और उसका पुनर्जन्म भी माना जाय। पुनर्जन्म माननेपर पूर्व-पूर्व जन्मोंके कर्मोंका फल उत्तरोत्तर जन्ममें भोग लेंगे और बिना किये हुए कर्मोंका फल भोगना नहीं पड़ेगा—इस प्रकार सभी शङ्काओंका समाधान हो जाता है। अतः पृथक् आत्मा, जीवकी सत्ता और पुनर्जन्मका सिद्धान्त स्वीकार करना अनिवार्य है।

पुनर्जन्मका आधार कर्म ही है। उसका फल भोगनेके लिये ही पुनर्जन्म लेना पड़ता है। कुछ मतों तथा महानुभावोंका कथन है कि मनुष्य-योनि प्राप्त होनेके बाद आत्मा अन्य योनियोंमें नहीं जाता। यह कथन वस्तुतः भारतीय दर्शन, धर्मशास्त्र और वेद-शास्त्रके विरुद्ध है। कर्मका फल भोगनेके लिये मनुष्य-जन्मके पश्चात् किसी भी योनिमें आत्मा जा सकता है। वस्तुतः इन सब बातोंमें किसी मत या व्यक्तिविशेषकी रायका कोई अर्थ नहीं है। धर्मशास्त्र और दर्शनशास्त्रके सिद्धान्त ही इस सम्बन्धमें मान्य होने चाहिये। जडभरत-जैसे महासिद्ध योगीको भी कर्मवशात् हरिणका जन्म लेना पड़ा। फिर कैसे कहा जा सकता है कि मनुष्य-जन्म प्राप्त होनेके बाद जीव अन्य किसी योनिमें नहीं आता? शास्त्रोंमें ऐसे हजारों उदाहरण हैं। मनुष्य-योनि तो क्या, साक्षात् इन्द्रका पद प्राप्त होनेपर भी नहुषको सर्प बनना पड़ा। करोड़ों नहीं, अपितु पृथ्वीमें जितने बालूके कण हैं, वर्षाकी जितनी धाराएँ और मानव-शरीरमें जितने रोम हैं, उतनी गायोंका दान करनेवाले राजा नृगको गिरगिट बनना पड़ा।

हमारे रिश्ते-नाते चिरस्थायी तो नहीं, किंतु एक जन्म-तक प्रायः उनका सम्बन्ध रहता है। केवल पतिव्रता स्त्री दूसरे जन्ममें भी अपने पूर्वजन्मके ही पतिको पुनः प्राप्त करती है। शेष सभी सम्बन्ध प्रायः एक जन्मके हैं। भगवान् शंकराचार्यने संसारसे वैराग्यका उपदेश देते हुए कहा है कि इस जन्मके माता, पिता, पुत्र, पौत्र, कलत्र, मित्र आदिकी चिन्तामें व्यस्त मनुष्यको सोचना चाहिये कि इससे पहले न जाने कितनी बार हमने जन्म लिये; उन जन्मोंमें भी माता, पिता, भ्राता, बन्धु-बान्धव, सगे-सम्बन्धी थे ही; किंतु आज वे सब कहाँ हैं और हम कहाँ हैं? संसारके नाते-रिश्ते ठीक उसी प्रकारके हैं, जिस प्रकार समुद्रमें तरङ्गोंसे टकराकर आये हुए दो काष्ठ-फलक कभी एक-दूसरेसे मिल जाते हैं और पुनः महोदधिकी उत्ताल तरङ्गोंसे ऐसे अलग हो जाते हैं कि फिर उनके स्वप्नमें भी मिलनेकी आशा नहीं रहती। प्रायः सभी शास्त्रों, संत-महात्माओंने सांसारिक सम्बन्धोंके विषयमें ऐसा ही मत अभिव्यक्त किया है। कभी-कभी प्रबल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारब्धवश एकसे अधिक जन्ममें भी सम्बन्ध स्थिर हो सकते हैं, किंतु उन्हें अपवाद ही मानना पड़ेगा।

युक्ति और तर्कसे कभी भी न तो पाप-पुण्य या अच्छे-बुरेकी पहचान हुई है, न हो रही है और न होगी ही। ये पाप-पुण्य हमारे भावी जीवनको अवश्य ही प्रभावित और प्रमाणित करते हैं। इतना ही नहीं, इन्हींके अनुसार भावी जीवनका निर्माण होता है। इस जन्ममें किये हुए कर्मोंसे ही भविष्यमें जन्म प्राप्त होता है। महात्मा लोग एक कहानी कहा करते हैं—"एक बहुत बड़े धनिक किसी महात्माके भक्त थे। नित्यप्रति उनके दर्शनार्थ आना-जाना, उनके भिक्षा-वस्त्रादिका प्रबन्ध करना उनका नित्य-कार्य बन गया था। महात्माजीके ऐसे और भी भक्त थे, जिनसे उनको यदा-कदा भेंट-पूजामें द्रव्यकी प्राप्ति भी होती रहती थी। धीरे-धीरे महात्माजीके पास लगभग एक लाख रुपये इकट्ठे हो गये। अपने प्रति सर्वाधिक श्रद्धा-भक्ति दिखानेवाले उस धनिकपर विश्वास कर महात्माने एक लाख रुपये उसीके पास जमा कर दिये। कुछ समयके पश्चात् उनकी इच्छा आश्रम बनानेकी हुई। सेठजीसे उन्होंने रुपये माँगे। उनकी नीयत बदल गयी। वे कहने लगे—'कैसे रुपये? कब दिये थे? आप-जैसे लंगोटी लगानेवालेके पास एक लाख रुपये!' इन अप्रत्याशित वचनोंको सुनकर महात्माके हृदयकी गति बंद हो गयी और तत्काल उनका प्राणान्त हो गया। उधर सेठजीके कोई संतान न थी। सेठजी इस घटनाको भूल गये; किंतु ठीक दसवें महीने उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। ऐसी धनसमृद्धियुक्त वृद्धावस्थामें पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसकी कभी आशा नहीं थी। पैदा होते ही इस खुशीमें पैसा पानीकी तरह बहाया जाने लगा। लड़केके लालन-पालन, देख-रेख, खिलौने आदिमें भी पैसेकी जगह रुपया खर्च किया जाने लगा। ऐसे लाड़-प्यारमें पला लड़का भी बचपनसे ही आवश्यकतासे अधिक खर्चीला होता चला गया। युवावस्थामें आते-आते उसकी फजूलखर्चीका पारावार न रहा। रात-दिन यार-दोस्तोंमें पड़े रहना, खाना-पीना, मौज करना और गुलछर्रे उड़ाना—यही उसकी वृत्ति बन गयी। प्रारम्भमें तो पिताने अपने इकलौते बेटेकी इस चर्यापर ध्यान नहीं दिया, किंतु जैसे-जैसे समय बीतता गया, पिताकी चिन्ताएँ बढ़ने लगीं। फिर भी पिताने कभी यह हिसाब लगाकर नहीं देखा कि लड़का कितना खर्च कर चुका और कितना कर रहा है। सिलसिला जारी रहा।

एक दिन लड़केने बहुत बड़ा भोज दिया। अपने इष्ट-मित्र, सम्बन्धी, बन्धु-बान्धवोंको मनचाहा भोजन-वस्त्र आदि देकर उनका सम्मान किया। सारे आयोजनके पश्चात् लड़केने भी स्वयं अपने कुछ चुने हुए इष्ट-मित्रोंके साथ भोजन किया। उन्हें विदा कर सोते समय उसे स्मरण आया कि 'मैंने पान नहीं खाया।'

तत्काल नौकरसे पान मँगवाया गया। लड़का पान खाकर जो सोया तो उठा ही नहीं। बहुत रोने-पीटनेके पश्चात् सेठजी जब शान्त हुए और मुनीम गुमास्तेने जब हिसाब बताया तो पानकी कीमतसे एक लाख रुपयेकी रकम पूरी हुई।" इस कहानीसे जो चाहे सो भाव और शिक्षा ली जा सकती है।

× × × ×

जीवनमें शान्ति भगवत्-प्राप्तिसे ही हो सकती है और भगवत्प्राप्ति निष्काम कर्मके द्वारा चित्तकी शुद्धि, उपासनाके द्वारा चित्तकी एकाग्रता तथा ज्ञानके द्वारा अज्ञानका नाश होनेपर ही हो सकती है। मनसे भगवान्‌का साक्षात्कार होता है। मनमें मल, विक्षेप और आवरण—तीन दोष हैं। पहला दोष मनकी 'मलिनता' है, जिसका कारण है—जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तरमें किये गये शुभाशुभ कर्मोंकी वासना। मैले कपड़ेको साबुन या क्षारसे धोनेपर जैसे उसमें स्वच्छता आती है, ठीक वैसे ही मनके मलिन संस्कारोंको धोनेके लिये शास्त्रविहित निष्काम कर्मकी आवश्यकता है। मनका दूसरा दोष है—'विक्षेप' अर्थात् चित्तकी चञ्चलता। उसके दूर करनेका एकमात्र उपाय है—भगवान्‌की भक्ति। दूसरे शब्दोंमें भगवान्‌में प्रेम। प्रेम उसी वस्तुमें उत्पन्न होता है, जिसके रूप और गुणोंका ज्ञान हो। लौकिक पदार्थोंमें भी उनके रूप और गुणोंका ज्ञान होनेपर ही प्रेम उत्पन्न होता है; इसी प्रकार भगवान्‌में प्रेम उत्पन्न करनेके लिये भगवान्‌के रूप और गुणोंका ज्ञान आवश्यक है और भगवद्रूप तथा गुणोंके ज्ञानका साधन है—इतिहास-पुराणद्वारा भगवान्‌के पवित्र चरित्रका श्रवण अथवा पठन।' भगवान्‌के चरित्रका जितना ही अधिक श्रवण अथवा पठन होगा, उतना ही अधिक भगवान्‌में प्रेम बढ़ता चला जायगा। जैसे-जैसे प्रेम बढ़ेगा, वैसे-वैसे ही भगवान्‌में मन भी लगने लगेगा। स्त्री-पुत्रादिमें भी प्रेम बढ़नेसे ही मन लगता है और प्रेम बढ़ानेका उपाय—जिसमें प्रेम हो, उसके रूप और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुणोंका ज्ञान ही है । अतः रामायण-महाभारत आदि इतिहास तथा पुराणोंके श्रवण अथवा पठनके द्वारा भगवान्‌के रूप और गुणोंके ज्ञानकी सर्वप्रथम आवश्यकता है। इसके बिना भगवद्भक्ति नहीं हो सकती और भगवद्भक्तिके बिना चित्तकी चञ्चलता मिटती नहीं । इन साधनोंसे चित्तके एकाग्र हो जानेपर शान्त मनमें विषयोंके प्रति उपराग हो जाता है। फिर सुख-दुःख, भूख-प्यास और सर्दी-गरमीके सहन करनेकी शक्ति प्राप्त होती है। क्रमशः गुरु और शास्त्रोंके वाक्योंमें श्रद्धा-विश्वास उत्पन्न होने लगते हैं, जिनसे चित्तका समाधान हो जानेपर मोक्षकी इच्छा होती है । फिर श्रवण, मनन और निदिध्यासनके द्वारा भगवान्‌का साक्षात्कार होनेपर शाश्वत शान्तिकी प्राप्ति हो जाती है ।

यही जीवनका उद्देश्य है ।

जीवन और मृत्युका रहस्य

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

जीवन और मृत्यु—दोनों ही शब्द संस्कृत भाषाके हैं तथा परस्परविरोधी हैं । जीव, प्राणधारणे—धातुसे 'जीवन' शब्द और मृङ, प्राणत्यागसे 'मृत्यु' शब्दकी व्युत्पत्ति होती है । प्राणधारणका प्राणत्याग बिल्कुल विपरीतार्थक है । इसका सीधा-सा यह अभिप्राय है कि जबतक प्राण-वायुका संचार नासिकारन्ध्रद्वारा होता रहता है, तबतक 'जीवन' और जब प्राण-वायुका नासिकारन्ध्रोंसे गतागत समाप्त हो जाता है, तब 'मृत्यु' शब्दका प्रयोग होने लगता है । इस प्राण-वायुके धारण और प्राण-वायुके परित्यागद्वारा जो जीवन और मरण—ये दो अवस्थाएँ बनीं, वे शरीरकी हैं या शरीरके अभ्यन्तर निवास करनेवाले जीवकी अथवा केवल वायुकी ?

जीवन और मृत्युका व्यपदेश शरीरसे सम्बन्ध रखता है । अर्थात् जबतक शरीरमें प्राण-वायुका संचार रहता है, तबतक नेत्रोंसे अंधा, कानोंसे बधिर और वाणीसे गूँगा भी 'जीवित' ही कहा जाता है । जब प्राण-वायुका सम्बन्ध शरीरसे हट जाता है, तो सभी इन्द्रियोंसे सम्पृक्त होता हुआ भी वह 'मृत' माना जाता है । इसलिये प्राणको सबसे उत्तम माना गया । **यो ह वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च वेद, ज्येष्ठश्च ह वै श्रेष्ठश्च भवति । प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ।** (छा० उप० ५ । १ । १) इसी अध्यायमें प्राणको सबसे श्रेष्ठ बताया गया है—**'ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्योचुः, भगवन् ! को नः श्रेष्ठः इति । तान् होवाच—यस्मिन् व उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठतरमिव दृश्येत स वः श्रेष्ठः ।'** (छा० उप० ५ । १ । ७) 'प्रजापतिके पास जाकर समस्त इन्द्रियोंसहित प्राणोंने कहा—'भगवन् ! हम सबमें कौन बड़ा है ?' प्रजापति भगवान्‌ने सीधा उत्तर दिया कि 'जिसके निकल जानेपर यह शरीर अत्यन्त हेय समझा जाय वही सबसे बड़ा है ।' प्रजापतिकी इस बातपर विश्वास न कर सबसे पहले वागिन्द्रियने शरीरका परित्याग किया । पर शरीरकी केवल वक्तृत्व-शक्तिको छोड़कर और कुछ हानि नहीं हुई । पूर्वकी भाँति सुनना, देखना और समझना बना रहा । इसी प्रकार क्रम-क्रमसे एक-एक कर सब इन्द्रियोंने शरीरका परित्याग कर यह परीक्षा की कि क्या हमारे शरीरमें न रहनेसे यह उसी प्रकार कार्य-क्षम (जीवित) रहेगा या नहीं ? पर इन्द्रियोंके निकल जानेपर प्राण-वायुके रहते-रहते शरीरकी 'जीवित' संज्ञा ही रही 'मृत' नहीं । अतः इसी अध्यायमें शरीरका त्याग कर प्राणोंके निकलनेका समय आया । सभी इन्द्रियाँ बेचैन हो गयीं और प्रार्थना करने लगीं—**'भगवन् ! एधि त्वं नः श्रेष्ठोऽसि, मोत्क्रमीरिति ।'** (५ । १ । १२) इस प्रकार प्राणका स्थान शरीरमें सबसे ऊँचा है ।

अब विचार यह करना है कि 'क्या प्राण-परित्यागसे शरीरकी मृत्यु और प्राणके रहते-रहते जीवन, बस, इतना ही सत्य और तत्त्व है या जीवन-मरण-व्यपदेशमें अन्य भी कोई तथ्य है ?' इस सम्बन्धमें नास्तिक और आस्तिक दो सम्प्रदाय सामने आते हैं । 'नास्तिक'का कहना है कि "पृथिव्यादि पञ्चभूतोंके स्व-स्व मात्राके अनुसार मिल जानेपर एक शक्ति उत्पन्न होती है, जिससे शरीरमें चैतन्यता आ जाती है । इन पाँच तत्त्वोंका आंशिक अथवा सर्वांश विघटन ही मृत्यु है । अतएव शरीरसे पूर्व कोई चैतन्य तत्त्व (जीव) नामकी सत्ता ही सिद्ध नहीं होगी तथा न मृत्युके पश्चात् उस शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाला तत्त्व किसी लोक-लोकान्तर या किसी भी रूपान्तरमें अवशेष रहता है, जो शरीरद्वारा किये गये बुरे-भले कर्मोंका फल भोग करे, इसलिये आनन्दपूर्वक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस शरीररूपी आत्माका किन्हीं भी सदसत् उपायोंद्वारा आप्यायन करते रहो और आनन्दसे जीवन बिताओ। 'भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः । ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।' इत्यादि उनका घण्टा-घोष है।" इस स्थितिके अनुसार शरीरकी उत्पत्ति भी कामासक्त स्त्री-पुरुषोंके परस्पर देह-संघर्षके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इस प्रकारके विचारवादियोंके लिये काम-तृप्ति सर्वत्र समान है।

अब 'आस्तिक' सम्प्रदाय आता है। वह नास्तिककी उपर्युक्त आंशिक युक्तियोंकी धज्जी उड़ा देता है कि 'यदि शरीरकी उत्पत्ति (जीवन) और विनाश (मृत्यु) का कोई परोक्ष कारण नहीं है तो सभी मनुष्य समान रूप, समान-शरीर, समान आयु और समान भोगवाले होने चाहिये थे। विषमताका क्या कारण है ?' समान रूपादिके सम्बन्धमें नास्तिक यह कहकर कपड़े छुड़ाना चाहता है कि 'किसी देशकी जलवायु, खान-पान और आर्थिक व्यवस्थाके ढाँचेके अनुसार रूप, आयु और अवस्था निर्भर करती है।' पर हम पूछते हैं कि जन्मसे अंधे, जन्मसे गूँगे और जन्मसे बहिरे क्यों उत्पन्न होते हैं ? यदि यह कहो कि इसमें माता-पिताका दूषित शुक्र और शोणित ही कारण है, तो पूछना होगा कि इससे पहलेके और बादके बच्चोंमें इस प्रकारका ऐन्द्रिय-दोष न होनेसे शुक्र-शोणितका दूषण कहाँ गया ? अतः यह अवश्य मानना होगा कि हमारे जीवन-मृत्युके साथ न केवल प्राणका संसर्ग है, अपितु और भी कोई इस प्रकारके तत्त्व अवश्य हैं, जो प्राणके सहचारी या प्राणानुगामी हैं। वह तत्त्व सम्भूय होकर जैसे इस शरीरको धारण करता है, ठीक उसी प्रकारसे शरीरान्तर-धारणकी क्षमता भी रखता है। जैसे इस भूलोकमें इस शरीरद्वारा रहता है, उसी प्रकार इस लोकमें देहान्तर और लोकान्तरमें शरीरान्तर प्राप्त करनेकी क्षमता भी रखता है। इसलिये—

चैतन्यं यदधिष्ठानं लिङ्गदेहश्च यः पुनः।
चिच्छाया लिङ्गदेहस्था तत्संघो जीव उच्यते॥
(पञ्चदशी-द्वैत ११)

—के अनुसार लिङ्गशरीरकी कल्पनाका आधारभूत चैतन्य-अधिष्ठान, लिङ्गशरीर—पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय, पञ्चप्राण, मन और बुद्धि—ये सत्रह तत्त्व तथा इन सत्रह तत्त्वोंमें पड़ा हुआ चिदाभास—यह 'जीव' शब्दसे लिया जाता है। अतएव यह सत्रह तत्त्ववाला जीव कर्मानुसार शरीरान्तरमें गतागत करता रहता है। इस प्रकार अधिष्ठान-चैतन्य, लिङ्गदेह और चिदाभास—इनकी कभी मृत्यु नहीं होती और न इनका कभी जीवन होता है। इनसे युक्त शरीरका ग्रहण 'जन्म' और उस शरीरका त्याग ही 'मृत्यु' मानी जाती है। अतएव गीतामें—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
(२। २२)

—कहा गया है। 'जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रोंको उतारकर नवीन वस्त्र धारण करता है, ठीक उसी प्रकार यह जीव भी पुराने शरीरका त्यागकर नवीन देह धारण करता है।' पुराने वस्त्रके त्याग और ग्रहणमें भी कुछ निमित्त होता है। कोई उत्सव या अन्य हेतु होनेपर ही वस्त्रान्तर धारण किये जाते हैं। ठीक उसी प्रकार कर्मनिमित्तक ही देहान्तर-के धारण करनेका कारण होता है। इसीलिये छान्दोग्यो-पनिषद् (६। ८। ४)में 'सन्मूलाः सौम्य इमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः' कहकर सिद्ध किया गया है कि 'हे सौम्य ! इस समस्त संसारका मूल सत्तत्त्व है और इस सब प्रजाका एकमात्र सदधिष्ठान है और सब प्रजा सत्तत्त्वमें ही स्थित है।' इस प्रकार शरीरसे भिन्न, प्राणसे भिन्न तथा इन्द्रिय-ग्रामसे भिन्न एक तत्त्व है, जो शरीरान्तरोंमें गतागत करता है और उसकी जीवन तथा मृत्यु—ये दो गतियाँ हैं।

यह तो एक अत्यन्त सामान्य और साधारण-सी बात है। पर इसमें भी आगे बहुत ही विचारणीय बात यह है कि आखिर वह तत्त्व, जो पूर्वोक्त तीन वस्तुओंका संघ है, वह कैसे मनुष्य और स्त्रीके शुक्र-शोणितमें पहुँचा, कहाँसे गया, कैसे गया इत्यादि। यह एक गम्भीर विचारधारा है। इसी प्रसङ्गको दृष्टिमें रखते हुए श्वेताश्वतर-उपनिषद्के आरम्भमें लिखते हैं—

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता
जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु
वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्॥
(श्वे० अ० १। १)

इसका उत्तर देते हुए आगे लिखा है—'काल, स्वभाव, नियति, यदृच्छा, भूत प्रभृति आत्म-संयोगसे शरीरके कारण होते हैं, केवल आत्मा इस सम्बन्धमें कारण नहीं माना जाता।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे उत्पत्स्यमान अङ्कुरके प्रति न केवल बीज कारण है, न केवल भूमि और न केवल कृषक—बीज, भूमि, कृषक, जल-वायुसे सभी समुदित होकर अङ्कुरके कारण बनते हैं, ठीक उसी प्रकार अन्नादि मेघद्वारा, शुक्र-शोणित अन्नद्वारा बननेपर जीव भी उन-उन पदार्थोंके द्वारा उन्हींमें ओतप्रोत हुआ जीवन-मरणके चक्करमें पड़ा रहता है। इस महाचक्रसे छुटकारा पानेके लिये जप, तप, ध्यान और समाधिका विधान शास्त्रोंमें बताया गया है। वह एक देव आत्मा या ब्रह्मपदवाच्य ऊर्णनाभि (मकड़ी) की भाँति अपने द्वारा उत्पन्न की गयी वस्तुओंसे ही अपनेको बाँध लेता है। ठीक उसी प्रकार यह आत्मारूपी दिव्य प्रकाशवाला देव अपने द्वारा उत्पन्न की गयी वस्तुओंसे अपनेको ही बाँध लेता है। यथा—

यस्तूर्णनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतः। देव एकः स्वमावृणोति। स नो दधातु ब्रह्माव्ययम्।

(श्वेताश्वतर० ६। १०)

इसी बातको और स्पष्ट करते हुए कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद्-में लिखा है कि—'लोग इस संसारको छोड़कर परलोकमें जाते समय पहले चन्द्रमामें पहुँचते हैं। यदि उन जीवोंके कर्म तुरंत जन्म लेनेके योग्य होते हैं तो वे वर्षाद्वारा भूमिपर आ जाते हैं और जिस शरीरके उपयोगी उनके कर्म होते हैं, उन शरीरोंमें वे पहुँच जाते हैं। कोई कीड़े, पतंगे, पक्षी, सिंह; कोई मनुष्य, देव, गन्धर्व इत्यादि शरीरोंमें जन्म ग्रहण कर लेते हैं।'

इस प्रकार जीवन-मृत्युका शास्त्रोंमें बहुत विवेचन है। पर वस्तुस्थिति यह है कि वही एक तत्त्व ब्रह्म या आत्मा सर्वत्र है। कर्मानुसार उसीका देहान्तरमें प्रवेश-निवेश होता है। यह सब सत्-असत् कर्म-कलापका परिणाम है। वास्तवमें यदि आत्म-तत्त्वको ठीक समझ लिया जाय—मनन और निदिध्यासनद्वारा पूर्ण निष्ठा हो जाय तो जन्म देनेवाले कर्मोंकी समाप्ति हो जाती है। जब जन्म देनेवाले कर्म नहीं, तो मृत्यु कहाँसे। इसलिये वेदान्तियोंका यह डिण्डिम घोष है—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥

(आत्मोपनिषद् ३१)

पुनर्जन्मकी दृष्टिसे मानवका कर्तव्य

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित श्रीकांचीकामकोटिपीठाधिपति जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्रीचन्द्रशेखरेन्द्रसरस्वतीजी महाराज)

संसारमें सब जीव-जन्तु 'प्राणी' कहलाते हैं। जिनमें प्राण हैं, वे प्राणी हैं। सभी प्राणी सदा कुछ-न-कुछ काम करते ही रहते हैं। चींटी सदा इधर-उधर फिरती रहती है। कीड़े-मकोड़े भी कुछ-न-कुछ कार्य करते रहते हैं। पक्षी उड़ते या खाते-पीते रहते हैं। बुद्धिजीवी मानव अपने कार्यालयमें जाता है, वहाँ कुछ काम करता है। श्रमजीवी किसान खेती-बारीका काम करता है। मजदूर मजदूरी करता है। इस प्रकार मनुष्यमात्र विविध कामोंमें लगे रहते हैं। दुनियामें ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जो बिना कुछ किये सर्वदा चुपचाप बैठा रहे। इसी बातको स्पष्ट करते हुए भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

(३। ५)

'कोई भी क्षणभरके लिये भी बिना कुछ कर्म किये नहीं रहता।' इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव सदा कर्मरत रहता है। छोटे गाँवमें रहनेवालोंके काम कम रहते हैं, बड़े शहरोंमें रहनेवालोंको अनगिनत काम रहते हैं। अब सोचना यह है कि 'मानवको किसलिये सदा काम करते रहना पड़ता है?'

मानवको इसीलिये सदा कर्मरत रहना पड़ता है कि वह जीवनमें अनिष्ट दूर करना और सुखी रहना चाहता है और यह सुनिश्चित है कि मनुष्य तभी सुखी रह सकता है, जब वह किसी-न-किसी उपयोगी काममें लगा रहे। बेकाम रहना उसके लिये बड़ा दुःखदायक है। मनुष्यको काम करते रहनेके लिये अंदरसे सदा प्रेरणा मिलती रहती है। जैसे प्रत्येक जीवके अंदर 'भूख' नामक एक चीज है। वह भूख अपनी शान्तिके लिये प्रत्येक मनुष्यको काम करनेकी सदा प्रेरणा देती रहती है। यदि वह कोई काम नहीं करता है तो उसका पेट भूखकी ज्वालासे जलने लगता है। अतः इस 'भूख' नामक रोगके शमनके लिये दवाकी खोजमें मनुष्यको काम करना ही पड़ता है। शिरोवेदनाके लिये यदि हम कोई दवा लगा देते हैं, तो वह वेदना तुरंत मिट जाती है। कभी बहुत दिनोंके बाद फिर शायद आती है। पर यह भूख ऐसा रोग नहीं है। दूसरे रोगोंमें और इस रोगमें बड़ा अन्तर है। इस रोगके लिये तो प्रतिदिन, जब यह रोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखायी दे, तभी दवा लेनी पड़ती है। जबतक इसकी दवा न हो जाय, तबतक दूसरा काम होना कठिन होता है। इसके लिये सभीको प्रयत्न करना पड़ता है। बाघ या सिंह हिरन या बैलको मारता है तो वह इसी रोगको दूर करनेके लिये। मनुष्य भाँति-भाँतिके वेष बनाकर, नाना प्रकारसे सब तरहकी बुद्धि लगाकर पैसे कमाता है, तो इसीके लिये। भूखे-भटकते मानवको यदि ढूँढनेपर कहीं दो मुट्ठी चावल मिल जाते हैं तो वह तुरंत उन्हें सिझाकर खा लेता है और बड़ा तृप्त होता है। यह काम भी उसका इसीलिये होता है। मनुष्यको जीवित रहनेके लिये काम करना ही चाहिये। वह एक क्षण भी निकम्मा नहीं रह सकता।

फिर यह बात भी है कि मनुष्य यदि कुछ भी काम न करे तो उसका शरीर बेकार बन जाता है। अतः दरिद्र-धनी सब काम करते हैं। बल्कि धनीको तो वस्तुतः मन-तनसे अधिक काम करना पड़ता है; क्योंकि उसको यह चिन्ता लगी रहती है कि उसके पैसे सुरक्षित रहने चाहिये। इस चिन्तासे उसका मन सदा काम करता रहता है। यह सत्य है कि एक उञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मणकी अपेक्षा लाखों-करोड़ोंवाला धनी बहुत अधिक काम करता है।

मनुष्यके द्वारा किये जानेवाले काम विभिन्न हेतुओंसे विभिन्न प्रकारके होते हैं। मनुष्य कुछ काम अपने शरीरके लिये और अपने सम्बन्धियोंके लिये करता है। उसको अपने बाल-बच्चे, स्त्री, माता-पिता आदि सम्बन्धियोंका संरक्षण तथा भरण-पोषण करना पड़ता है। अतः उनकी देख-भालके लिये उसे काम करना पड़ता है। तदनन्तर अपने बैल, गाय, कुत्ते, बिल्ली, घरके नौकर-चाकर, अपने खेतोंमें काम करनेवाले मजदूर आदिकी भी देख-भाल करनेके लिये कुछ काम करना पड़ता है। फिर मनुष्यके लिये ग्राम-समाजके सम्बन्धमें भी काम रहते हैं। जैसे घरवालेका कर्तव्य अपने घरको साफ-सुथरा तथा सुन्दर रखना है, वैसे ही गाँववालोंका कर्तव्य है कि वे अपने गाँवको साफ, स्वच्छ तथा सुन्दर रक्खें। जिस प्रकार मनुष्यके लिये अपने कुटुम्बका काम करना आवश्यक है, उसी प्रकार गाँवका काम करना भी प्रयोजनीय है। इसके पश्चात्, देशके तथा राष्ट्रके काम आते हैं। जिम्मेवार मनुष्य उन कामोंका सम्पादन भी करता ही है।

इस प्रकार विभाजित कामोंमें छोटे-बड़े सभी काम—दन्तधावन करना, कपड़े साफ करना, स्नान करना, भोजन करना आदि काम अपने निजके प्रयोजनके लिये किये जाते हैं। घर बनाना, उसको साफ रखना, घरमें आवश्यक चीजोंका संग्रह तथा रक्षण करना इत्यादि परिवार-सम्बन्धी काम हैं। नाले बनाना, कूएँ-तालाबोंका निर्माण तथा उनकी मरम्मत कराना, गाँवमें दवाखाना खोलकर रोगोंको दूर करनेके लिये प्रबन्ध करना और शिक्षालयोंकी स्थापना करना आदि ग्राम-समाजके काम हैं। देशभरकी भलाईके लिये अन्यान्य बहुत-से काम किये जाते हैं, जिनसे आजकलके लोग भलीभाँति परिचित हैं।

जो सशक्त हैं, वे अशक्तकी रक्षा करते हैं। मनुष्य अपने बच्चोंको उनकी छोटी अवस्थामें पाल-पोसकर बड़ा करता तथा योग्य बनाता है और बादमें अपनी वृद्धावस्थामें वह उनके द्वारा पाला-पोसा जाता है। यह सब काम बराबर चलते आ रहे हैं। यह स्वभाव केवल मनुष्य-समाजमें ही नहीं, परंतु पशु-पक्षियोंमें भी न्यूनाधिक रूपमें देखा जाता है।

सारी दुनियामें काम चलते रहते हैं। मनुष्य इन विभिन्न कामोंमें यथायोग्य भाग लेता है। बहुत-से लोग प्रधानतासे समाज-कल्याणके लिये विविध कार्य करते हैं, साथ ही अपना काम भी करते जाते हैं।

मानवके लिये साधारणतः तीन ही चीजें अत्यन्त आवश्यक हैं—(१) भूख मिटानेके लिये आहार, (२) धूप-सर्दी आदिसे अपनेको बचानेके तथा मान संरक्षणके लिये वस्त्र और (३) विश्राम तथा निवास करनेके लिये घर। इनके अतिरिक्त जो चीजें वह एकत्र करता है, वे उसके बाल-बच्चोंके पालन-पोषण और उनके विवाह आदि तथा अन्यान्य सामाजिक, व्यक्तिगत आवश्यकताकी पूर्ति या संग्रहवृत्तिकी चरितार्थताके लिये करता है।

पहले भूखको रोगके रूपमें और भोजनको उसकी दवाके रूपमें बताया गया है। इसमें एक विशेषता है—

क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यतां प्रतिदिनं भिक्षौषधं भुज्यतां
स्वाद्वन्नं न तु याच्यतां विधिवशात् प्राप्तेन संतुष्यताम्।
शीतोष्णादि विषह्यतां न तु वृथावाक्यं समुच्चार्यता-
मौदासीन्यमभीप्स्यतां जनकृपानैष्ठुर्यमुत्सृज्यताम्॥

(भगवत्पाद श्रीशंकराचार्य—साधनपञ्चकम्—४)

इस श्लोकमें भगवान् श्रीशंकराचार्यजी, 'क्षुधा नामक व्याधिको अन्नरूपी औषधसे दूर करो' यह आदेश देते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। रोगी उतनी ही औषध खाता है, जितनी उसे अपना रोग दूर करनेके लिये पर्याप्त हो। अपनी रुचिके अनुसार दवाओंको मनमाने तौरपर लाकर नहीं खाता। वहाँ भी, जो दवा सस्तेमें मिलती है, उसीको खरीदकर खाता है। इस श्लोकका तात्पर्य है कि शरीर-धारण करनेके लिये साधारण भोजन ही पर्याप्त है।

इन आवश्यक चीजोंको उपलब्ध करनेके लिये जो काम किये जाते हैं, उनके अतिरिक्त मानवको दूसरे काम भी रहते हैं। कभी-कभी मानव मन्दिर, मस्जिद् या गिरजाघर बनाता है; भस्म-रुद्राक्ष आदि धारण कर पूजा-पाठ करता है; संध्या-उपासना आदि कर्म करता है; भजन करता है। इसपर यह प्रश्न होता है कि 'इन कामोंसे क्या उसकी भूख मिटेगी ? क्या उसे वस्त्र मिल जायगा और क्या रहनेके लिये घर प्राप्त हो जायगा ?' मोटी दृष्टिसे देखनेपर तिलक धारण करना, मन्दिर बनाना, पितृ-श्राद्ध करना, पूजा-पाठ करना, अन्नदान करना आदि कर्म उपर्युक्त अत्यन्त आवश्यक चीजोंको उपलब्ध करनेके लिये नहीं किये जानेके कारण अनावश्यक मालूम होते हैं। परंतु मानव अनादिकालसे ऐसे काम भी करता आ रहा है। अतः हमें विचार करना चाहिये कि इनसे क्या लाभ होते हैं ? मानव इनको क्यों करता है ?

मनुष्यका स्वभाव है कि वह एक दिनके लिये भोजन मिल जानेपर उससे तृप्त नहीं होता। भविष्यके लिये भी आज ही कुछ चीजें इस विचारसे संग्रह करके अपने पास रखना चाहता और रखता है कि भविष्यमें यदि तकलीफ आयी तो उस समय उसका सामना करनेके लिये भी हमें तैयार रहना चाहिये। कुछ चीजें ऐसी हैं, जो पके अन्नकी तरह थोड़े समयके लिये ही उपयोगी रह सकती हैं। कुछ और चीजें हैं, जो और अधिक समयतक काममें आती हैं। जैसे गेहूँ, चावल आदि कच्चा अनाज। परंतु धन आदि ऐसी चीजें हैं, जो तरह-तरहके उपयोगके लिये काममें आती हैं और अधिक दिनोंतक सुविधासे रक्खी जा सकती हैं। बुद्धिमान् मनुष्य दीर्घकालतक रख सकने योग्य चीजोंको ही संग्रहके लिये चुनता है, न कि मूर्खकी तरह थोड़े दिन रहनेवाली चीजोंको। आत्मा अमर है। शरीरका ही जन्म-मरण है। इसलिये इस नित्य आत्माको सुखी रखनेके लिये जो काम करना आवश्यक तथा उचित है, उसीमें लगा रहना ही मनुष्यकी बुद्धिमानीका परिचायक है।

मान लीजिये, हम किसी पहाड़ीकी इस ओर रहते हैं। हमारे पास हजार रुपये हैं। यह पूरा धन पैसोंके सिक्केके रूपमें है। वहाँ चोर आते हैं। ऐसा भय लगा रहता है कि उनके और हमारे बीचमें झगड़ा होगा। परंतु यदि हम पहाड़ीके ऊपर चढ़कर उस पार चले जायँ तो यह भय नहीं रहेगा। उसी समय भाग्यवश कोई मनुष्य आकर पूछता कि 'क्या उन सिक्कोंके बदलेमें आप एक हजार रुपयेके नोट लेंगे ?' तो हम क्या करेंगे ? पैसोंकी गठरी उसे झट देकर नोट ले लेंगे और दौड़कर पहाड़ीके उस पार जाकर सुखी रहेंगे। परंतु, यहाँ एक शर्त है। वह यह है कि हमें जो नोट मिले हैं, वे पहाड़ीके उस पार भी चलनेवाले होने चाहिये। प्रत्येक जीवकी भी यही स्थिति है। अपनी शक्तिके अनुसार भविष्यके लिये जितना भी वह उपयोगी काम कर सकता है, उतना ही अच्छा है और वह उसीको करना चाहता है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि 'हमें तो इस लोकमें सुखसे जीवित रहना है, भविष्यके बारेमें क्यों सोचना है।' इस सम्बन्धमें एक कहावत है—

'नास्ति चेन्नास्ति नो हानिरस्ति चेन्नास्तिको हतः।'

आस्तिक कहता है—'अभी अच्छे-अच्छे कर्म करो; क्योंकि इस जन्मके बाद दूसरा जन्म भी रहेगा, उस समय ये अच्छे कर्म काम आयेंगे।' नास्तिक बोलता है—'कौन निश्चितरूपसे यह कह सकता है, इस जन्मके बाद भी हम पुनर्जन्म लेंगे। अतः क्यों ऐसा करें ?' पर यह सामान्य ज्ञानकी चीज है कि यदि अब हम अच्छे उपयोगी कर्मोंका संग्रह रक्खेंगे तो भविष्यमें वे लाभदायक होंगे। इससे यदि भावी जन्म है तो सत्कर्मसंग्रह करनेवाला आस्तिक लाभमें रहेगा और यदि भावी जन्म नहीं है तो उसकी कोई भी हानि नहीं हुई—उसने बुराई तो कुछ की ही नहीं। परंतु यदि भावी जन्म रहा तो सत्कर्म न करनेवाले नास्तिकको कष्ट होगा ही।

अतएव अच्छे कर्म करना सदा ही अच्छा है। यदि हम कहीं यात्रा करते हैं तो उस समय हमारा मन संतुष्ट रहना चाहिये। वैसे ही इस शरीरको छोड़कर कहीं दूसरी जगह जाते समय भी हमारा मन शान्त और संतुष्ट रहना चाहिये। उसके लिये यदि हम आवश्यक काम नहीं करेंगे तो बादमें हमें ही कष्ट होगा। इस दिशामें उपयुक्त कर्म क्या-क्या हैं—इसपर सोच-विचार करके मनुष्य उन्हें जान सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। जो भी काम हम आज करते हैं, उनका फल इस जन्ममें नहीं मिला तो दूसरे जन्मोंमें अवश्य मिलना चाहिये। यह नियम आत्माके विषयमें अटल है। हमारे पूर्वजोंने न्यूटनके क्रिया-प्रतिक्रिया-नियम (Action-Reaction) को शताब्दियों पूर्व आत्मिक विषयमें भी प्रमाणित कर दिया था। हमारे शास्त्र इस बातकी घोषणा करते हैं कि किसी भी क्रियाकी प्रतिक्रिया अवश्य होती है।

क्रैस्तव (ईसाई) लोग जन्मान्तरको नहीं मानते हैं; परंतु उनकी कुछ बातोंसे पता चलता है कि वे अनजान होकर भी किसी-न-किसी रूपमें पुनर्जन्मको मानते हैं। वे कहते हैं कि 'शरीर-पतनके पश्चात् जीवात्माका न्याय-निर्णय भगवान्‌के समक्ष होता है और तब वह नरक या स्वर्गको भेजा जाता है। सुख-दुःखका अनुभव करनेवाला शरीर यद्यपि यहाँ पेटीमें पड़ा रहता है, फिर भी जीवको इस शरीरके साधनसे किये गये कर्मोंके कारण सुख या दुःख—स्वर्ग या नरकमें भोगना पड़ता है।' इसीको हम 'पुनर्जन्म' कहते हैं। उस देशमें (स्वर्ग या नरकमें) सुख-दुःख भोगनेके पहले उनके कारण जो कर्म थे, उनके लिये एक जन्म अवश्य था। इसी तर्कके अनुसार हम कह सकते हैं कि इस जन्मके सुख-दुःखके कारण इसके पहले जन्ममें किये गये कर्म हैं। इससे पुनर्जन्मवाद सिद्ध होता है।

पहले कहा गया है कि हमें सदा इस अमर आत्माको सुखी रखनेके लिये अधिक-से-अधिक सत्कर्म—अच्छे काम करने चाहिये। हमारे यहाँका नोट रूसमें नहीं चलता है। लेकिन कोई एक ऐसा राजा है, जो समस्त संसारका अधीश्वर है। उसका नोट कहीं भी चल सकता है। वह चतुर्दश भुवनोंका अधिप एक है और वह है—परमेश्वर। उसके सब राज्योंमें चलनेवाला एक नोट है। वह सदा सभी जगह चलेगा। वही है—'धर्म'।

श्रीरामचन्द्रजी वनगमनके पहले अपनी माताजीसे आज्ञा लेने जाते हैं। अपना प्रिय पुत्र जब यात्रामें दूसरे देशको जाता है, तब माता उसे मिठाइयाँ तथा और खानेकी चीजें बनाकर उसके साथ भेजती है, ताकि उसको मार्गमें कष्ट न हो। कौसल्याजी सोचती हैं कि चौदह वर्षके लिये वन जानेवाले मेरे प्रिय पुत्रके हाथमें क्या देकर भेजूँ! गम्भीर विचारके बाद कौसल्याजी श्रीरामसे कहती हैं—

यं पालयसि धर्मं त्वं धृत्या च नियमेन च।
स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु॥
(वाल्मीकिरामायण, अयोध्याकाण्ड २५। ३)

'राघव! तुम्हारी सुरक्षाके लिये मैं क्या करूँ? केवल धर्म ही निश्चय तुम्हारी रक्षा करेगा। तुम जिस धर्मका धैर्य और नियमके साथ पालन करते आ रहे हो, वही धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा। यही मेरा एकमात्र अनुग्रह है।' यह भी नियम प्रसिद्ध है कि यदि हम धर्मकी रक्षा और पालन करेंगे तो वह धर्म हमारा रक्षण तथा पालन करेगा—**'धर्मो रक्षति रक्षितः।'**

श्रीकौसल्याजीके कथनानुसार जो धर्म श्रीरामचन्द्रकी रक्षा करनेवाला था, वही धर्म परमेश्वरके अखण्ड चतुर्दश भुवन-राज्यमें चलनेवाला नोट है। अतः हमारे दूसरे कामोंके साथ-साथ हमें ऐसे भी काम अवश्य करने चाहिये, जो 'धर्म' कहलाते हैं और जिनका उल्लेख पहले मन्दिर बनाने, भगवान्‌की भक्ति करने, अन्नदान करने, सेवा-परोपकार करने इत्यादि 'अनावश्यक' कामोंके अन्तर्गत किया जा चुका है।

वास्तवमें जो भी कर्म ईश्वरार्पण-बुद्धिसे किया जाता है, वह धर्मके रूपमें परिणत हो जाता है और निरन्तर आनन्द देनेवाला होता है। अपने स्वार्थके लिये न होकर, दूसरोंकी भलाईके लिये, ईश्वरार्पण-भावनासे जो काम किया जाता है, वही 'धर्म' है। मन, वाणी और शरीर—इन तीनों कारणोंके द्वारा हमें ऐसे ही काम करने चाहिये जो धर्मके रूपमें परिणत हो जायँ। धर्मरूपी नोट किसी भी कालमें और किसी भी देशमें हमारे लिये उपयोगी और सुखदायक रहेगा। श्रीरामचन्द्रजीकी विपत्तियाँ बहुत बड़ी थीं। परंतु उनकी रक्षा इसी धर्मने की। धर्ममार्गमें रहनेवालेके सब (पशु-पक्षी भी) अनुकूल और सहायक बन जायँगे। इसके विपरीत अधर्म-मार्गमें रहनेवालेको सगा भाई भी छोड़ देगा। इस तथ्यको श्रीमद्रामायणमें हम देख सकते हैं—

यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यञ्चोऽपि सहायताम्।
अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति॥
(अनर्घराघवनाटक १। ४)

'धर्ममार्गमें चलनेवाले रामचन्द्रजीका पशु-पक्षियोंने भी साथ दिया। अधर्ममार्गमें चलनेवाले रावणको सगे भाई विभीषणने भी छोड़ दिया।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यका परलोक और पुनर्जन्म-सिद्धान्त

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित निखिलमहीमण्डलैकदेशिक सर्व तन्त्र-स्वतन्त्र जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज)

श्रीमते सर्वविद्यानां प्रभवे प्रभविष्णवे ।
आचार्याय मुनीन्द्राय निम्बार्काय नमो नमः ॥

वेद-संहिता, ब्राह्मण-ग्रन्थ, उपनिषद्, पुराण, स्मृति, सूत्र, महाभारत तथा रामायण आदि समस्त शास्त्रोंमें पुनर्जन्म और परलोकसम्बन्धी विशद विवेचनाएँ मिलती हैं। जहाँ-तहाँ जो शङ्कापरक वचन मिलते हैं, वे सब पूर्व-पक्षके रूपमें हैं। दर्शनोंमें चाहे आस्तिक हों या नास्तिक, केवल एक चार्वाक-दर्शनको छोड़कर सभी दर्शनकारोंने पुनर्जन्म और परलोकका समर्थन किया है।

स्थूलदेह विनश्वर है। इसके छहों भावविकारोंका प्रत्यक्ष अनुभव सभीको होता ही है।

'अस्ति जायते वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते विनश्यति।' यास्क मुनिकी यह उक्ति तथा **'सस्यमिव मर्त्यो जायते पच्यते च।'** नचिकेताका यह वचन अक्षरशः सत्य है। जो जन्मते हैं, बढ़ते हैं, वे विकृत और क्षीण होकर विनष्ट होते रहते हैं।

जीवात्मा अजर-अमर एवं अविनाशी है। उसे अपने अनादि कर्मोंके अनुसार शरीर प्राप्त होते हैं, उनके द्वारा वह शुभाशुभ कर्मोंके फलोंको भोगता है और पूर्वसंस्कारोंके अनुसार कर्म करता रहता है। समय पाकर उनका वियोग हो जाता है। इस प्रकार जबतक जीवोंके कर्म एवं उनके संस्कार बने रहते हैं, तबतक जन्म-मरणरूपी संसृति-चक्र चलता है। उन कर्मोंका क्षय भोगसे, ज्ञान एवं प्रभुकी पराभक्तिसे हो सकता है। पराभक्तिद्वारा प्रभुका साक्षात्कार होनेपर कर्मोंकी निवृत्ति एवं मुक्ति हो जाती है; फिर पुनर्जन्म नहीं होता, यही भगवान्‌का कथन है—

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।
(गीता ८। १६)

सभी शास्त्रोंका यही निष्कर्ष है और सभी शास्त्रीय विवेचक इस सम्बन्धमें एकमत हैं।

जीवात्मा अपने पूर्व स्थूल-शरीरको त्यागकर दूसरे शरीरको इस प्रकार धारण करता है, जिस प्रकार कोई जीवित व्यक्ति फटे हुए पुराने वस्त्रोंको त्यागकर नवीन वस्त्रोंको पहना करता है।[1] आत्मा वास्तवमें न कटता है, न जलता है, न सूखता है, न गलता ही है।[2]

जीवात्मा शरीरसे निकलकर दूसरे शरीरमें प्रविष्ट होता है, अथवा पुनर्जन्मसे छुटकारा पाता है। इन दोनोंके दो मार्ग बतलाये गये हैं। पहलेको 'धूमयान' (कृष्णगति) कहा है और दूसरेको 'देवयान' (शुक्ल-गति) एवं अर्चिरादि मार्ग कहा गया है। वेद-उपनिषद् आदि शास्त्रोंमें अर्चिरादि-मार्ग-के क्रमवर्णनमें जहाँ-तहाँ विभेद प्रतीत होता है, उन सबका समन्वय श्रीवेदव्यासजीने स्वरचित ब्रह्मसूत्रोंमें कर दिया है।[3] संक्षेपमें उसका निष्कर्ष यह कि भगवान्‌के परम भक्त एवं ज्ञानीजन अर्चिमार्गसे जाते हैं और वे मुक्त हो जाते हैं। उनके कर्मबन्धन समाप्त हो जाते हैं, अतः फिर उनका जन्म नहीं होता।

इष्टापूर्तादि सकाम कर्मोंमें निरत रहनेवाले जीव धूम-मार्गसे जाते हैं और स्वर्गादि लोकोंमें पुण्यका फल भोगकर वापस लौट आते हैं। इसी प्रकार पापकर्म करनेवाले नरकादि भोगकर पुनः यहाँ जन्म ग्रहण करते हैं।

इन दोनों मार्गोंके अतिरिक्त तृतीय मार्ग क्षुद्र जन्तुओंका है, वह **"जायस्व म्रियस्व"**[4] अर्थात् प्रतिदिन जन्मना और मरना ही है उनका उत्क्रमण न देवयानसे होता है, न पितृयाणसे।

समस्त वेद-पुराणोंकी सारस्वरूप भगवद्गीतामें भी उपर्युक्त दोनों मार्गोंका संक्षेपमें उल्लेख मिलता है।[5] पुनर्जन्म और परलोकका वहाँ कई स्थलोंपर स्पष्टीकरण हुआ है। अर्जुनने कहा—'हे जनार्दन! जिनके कुलधर्मोंका ह्रास हो जाता है, उनका नरकलोकमें अनन्तकालतक वास होता है।' (गीता १। ४४) 'मुझे स्वर्गलोकके राज्यकी वाञ्छा नहीं है।' (गीता २। ८) भगवान्‌के भी ऐसे वाक्य हैं—

१. श्रीमद्भगवद्गीता २। २२। २. वही २। २३।
३. ब्रह्मसूत्र अ० ४। ४. छा० उप० ५। १०। ८।
५. गीता ८। २४-२५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जो यज्ञ आदि सत्कर्म नहीं करते, उन्हें इस लोकमें भी सुख नहीं मिलता; परलोकमें तो मिलेगा ही कैसे ?' (गीता ३ । ३२, ४ । ४०) 'अच्छे कर्म करनेवालोंकी इस लोकमें एवं परलोकमें भी दुर्गति नहीं होती ।' (गीता ६ । ४०) 'ब्रह्माके लोकतक पुनर्जन्मवाले लोक हैं ।' (गीता ८ । १६) 'पुण्य कर्मवाले इन्द्रलोकमें जाकर उनका फल भोगते हैं ।' (गीता ९ । २०) 'पुण्य क्षीण होनेपर स्वर्गलोकसे मृत्युलोकमें आते हैं । इस प्रकार सकाम कर्म करनेवालोंका आना-जाना बना ही रहता है ।' (गीता ९ । २१) 'देवताओंके आराधक देवलोकोंमें और पितरोंके आराधक पितृलोकोंमें जाते हैं ।' (गीता ९ । २५)

उपर्युक्त गीता-वाक्योंमें परलोकके साथ-साथ पुनर्जन्मका भी संकेत है । इनके अतिरिक्त निम्नाङ्कित वाक्योंमें और भी स्पष्टरूपेण पुनर्जन्मका उल्लेख है । 'जन्मे हुएकी मृत्यु और मरे हुएका जन्म अवश्य होता है ।' (गीता २ । २७) 'हे अर्जुन ! मेरा अनेक बार अवतार हुआ है । तेरे भी कई बार जन्म हो चुके; किंतु उनका तुझे स्मरण नहीं है ।' (गीता ४ । ५) 'योगभ्रष्ट व्यक्ति मृत्युके पश्चात् पवित्र सम्पत्तिवाले एवं योगियोंके घरमें जन्म लेता है ।' (गीता ६ । ४१) 'अनेकों जन्मोंतक अभ्यास करनेपर परम गति मिलती है ।' (गीता ६ । ४५ एवं ७ । १४)

कुछ व्यक्ति **"अत्रैव नरकः स्वर्ग इति मातः प्रचक्षते ।'** (श्रीमद्भा० ३ । ३० । २९) कपिलदेवकी इस उक्तिके आधारपर नरक-स्वर्गादि परलोकोंका इसी मृत्युलोकमें अन्तर्भाव कर बैठते हैं । उन्हें इसके उत्तरार्ध वाक्यपर भी विचार करना चाहिये—

'या यातना नारक्यस्ता इहाप्युपलक्षिताः ।'

अर्थात् 'चोरी आदि पापकर्म करनेवालोंको जो यहाँ दण्डादि भोगने पड़ते हैं, वे उन नरकादि लोकोंकी यातनाओंके भी उपलक्षक हैं । अर्थात् जिस प्रकार पापियोंको दण्ड यहाँ मिलता है, उसी प्रकार परलोकोंमें उन्हें दण्ड भोगना पड़ता है ।'

राजा परीक्षित्‌के पूछनेपर श्रीशुकदेवजीने भी यही कहा था कि 'भूलोकसे नीचेके लोक इस लोकसे भिन्न हैं ।' (श्रीमद्भा० ५ । २६ । ५) श्रीमद्भागवतमें एक स्थलपर नहीं, कई स्थलोंपर अतल आदि सात लोक भूलोकके नीचे और भुवः आदि छः लोक ऊपर बतलाकर चौदह लोकोंका एक 'ब्रह्माण्ड' बतलाया है । ऐसे अनेक ब्रह्माण्ड विराट् पुरुषमें समाये हुए हैं । इस सम्बन्धमें वेद-पुराण आदि सभी शास्त्र और उनके व्याख्याता एकमत हैं ।

आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यने भी ऐसा ही स्पष्टीकरण किया है—

"उक्तलक्षणप्राणादिमाञ्जीवो हि सूक्ष्मभूतसम्परिष्वक्त एव देहं विहाय देहान्तरं गच्छति ।"

(ब्र० सू० ३ । १ । १की पारिजात-सौरभ)

अर्थात् 'जीवात्मा जब अपने पूर्व स्थूलशरीरको छोड़कर दूसरे स्थूलशरीरमें प्रवेश करता है, तब सूक्ष्मशरीरके साथ ही जाता है ।' इत्यादि वचनोंसे उनकी पुनर्जन्मसम्बन्धी मान्यता स्पष्ट होती है । पुनर्जन्मकी मान्यतासे परलोककी मान्यता यद्यपि स्वतःसिद्ध हो जाती है, तथापि उनकी रची हुई 'वेदान्तकामधेनु' (दशश्लोकी) के तृतीय श्लोकमें सूक्ष्मतया समस्त लोक-लोकान्तरोंका दिग्दर्शन भी कराया गया है । श्रीपुरुषोत्तमाचार्यकृत 'वेदान्तरत्नमञ्जूषा' (दशश्लोकी-भाष्य) आदि ग्रन्थ इस सम्बन्धमें द्रष्टव्य हैं ।

इसी सिद्धान्तका समर्थन श्रीनिम्बार्काचार्यके परवर्ती, श्रीनिवासाचार्य, श्रीदेवाचार्य, श्रीविलासाचार्य, श्रीसुन्दरभट्टाचार्य, श्रीकेशवकाश्मीरि भट्टाचार्य, श्रीहरिव्यास-देवाचार्य, श्रीपुरुषोत्तमप्रसाद, श्रीअनन्तराम आदि सभी आचार्य एवं विद्वान् ग्रन्थकारोंने किया है । शास्त्रीय वाक्योंके अतिरिक्त लौकिक युक्तियाँ और तर्कोंसे भी उन्होंने पुनर्जन्म और परलोककी सिद्धि की है । यह सिद्धान्त अनादि, अनन्त अतएव स्वाभाविक है । किसी भी तार्किकमें इसे हिलानेकी शक्ति नहीं है, चाहे वह कैसी भी आलोचना करता रहे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु-मीमांसा

(लेखक--अनन्तश्रीविभूषित आचार्य श्रीअनिरुद्धाचार्य वेंकटाचार्यजी महाराज तर्कशिरोमणि)

'परलोक' और 'पुनर्जन्म' का माध्यम 'मृत्यु' है। एक लोकके रससे संचित विलक्षण शरीर-इन्द्रिय आदिका त्याग और अन्य लोकमें संचित विलक्षण शरीर-इन्द्रिय आदिका ग्रहण 'पुनर्जन्म' है। 'मृत्यु' के बिना ये दोनों अनुपपन्न हैं। अतः परलोक और पुनर्जन्मके जिज्ञासुओंको 'मृत्यु'के स्वरूपका ज्ञान भी परम आवश्यक है। 'मृत्यु'का स्वरूपज्ञान मोक्ष-कारण-सामग्रीमें भी अन्यतम है। अतः इस मिताक्षर लेखमें 'दैवत-मीमांसा' के आधारपर 'मृत्यु-मीमांसा' की जाती है।

'अथ मृत्युः कस्मात्।'

अर्थात् 'मृत्युमें विद्यमान 'मृत्युत्व'का स्वरूप क्या है?' जिज्ञासाका समाधान कठ, कपिष्ठल, मैत्रायणी एवं तैत्तिरीय आदि संहिताओंमें उपलब्ध 'मृत्यु' शब्दके अर्थतः निर्वचन, शतपथ, गोपथ, जैमिनीय एवं ऐतरेय आदि विज्ञान-ग्रन्थोंमें उपलब्ध 'मृत्यु' शब्दके निर्वचन एवं शतबलाक्ष मौद्गल्य, आग्रायण, शाकपूणि एवं यास्क आदि नैरुक्तोंद्वारा अनुगृहीत 'मृत्यु' शब्दके निर्वचन कर रहे हैं। इनमें अथर्ववेदानुबन्धी 'गोपथब्राह्मणों'में उपलब्ध **'स समुद्रादमुच्यत। स मुच्यु-रभवत्। मुच्युरेव मृत्युः।'** निर्वचन 'विशकलन'को मृत्युका 'मृत्युत्व' कह रहा है। नैरुक्त भगवान् यास्ककृत **'मारयति इति मृत्युः।'** निर्वचन उच्छेदको 'मृत्युत्व' कह रहा है। नैरुक्त शतबलाक्ष मौद्गल्यकृत **'मृतं च्यावयति इति मृत्युः'** निर्वचन मृतभागके निरसनको 'मृत्युत्व' कह रहा है। नैरुक्त आग्रायणकृत **'मुञ्चति इति मृत्युः'** निर्वचन मोचनको 'मृत्युत्व' कह रहा है।

तो वह विशकलन, अवसान, उच्छेद, मोचन और च्यावन रूप धर्मोंका आश्रय (धर्मी) मृत्यु कौन है? जिज्ञासाके समाधानमें काठक, कपिष्ठल एवं मैत्रायणी आदि वैदिक शाखाएँ शतपथ, गोपथ, जैमिनीय एवं तैत्तिरीय आदि विज्ञान (ब्राह्मण) ग्रन्थ एवं आग्रायण, शतबलाक्ष मौद्गल्य, औदुम्बरायण और भगवान् यास्क आदि नैरुक्त प्रवृत्त हुए हैं। इनमें 'मैत्रायणी' शाखाका विज्ञान है—

(१) अग्निर्वै मृत्युः।

'अग्नि मृत्यु है।'

माध्यन्दिन-शाखानुबन्धी 'शतपथ'का विज्ञान है—

(२) संवत्सरो हि मृत्युः। एष हीदमहोरात्राभ्यामायुः क्षिणोति। अथ म्रियन्ते।

'संवत्सर मृत्यु है। यही दिन और रात्रिद्वारा आयुका क्षय करता है। इससे पदार्थोंकी आयु क्षीण होती है। आयुका क्षय मृत्यु है।'

'शतपथ ब्राह्मण'का पुनरपि विज्ञान है—

(३) अवाङ् प्राणो वै मृत्युः।

'अवाङ्प्राण मृत्यु है।'

'जैमिनीय ब्राह्मण'का विज्ञान है—

(४) अशनाया वै मृत्युः।

'बुभुक्षा मृत्यु है।'

'तैत्तिरीय ब्राह्मण'का विज्ञान है—

(५) अपानान्मृत्युर्निर्भिद्यत।

'अपानसे मृत्युका प्राकट्य हुआ है।'

कण्व-शाखानुबन्धी 'शतपथ'का विज्ञान है—

(६) छायामयः पुरुषो मृत्युः।

'छायामय पुरुष मृत्यु है।'

'शतपथ'का पुनरपि विज्ञान है—

(७) श्रमो वै मृत्युः। आदित्यो मृत्युः।

'श्रम मृत्यु है। आदित्य भी मृत्यु है।'

मृत्यु-मीमांसा

कण्वशाखानुबन्धी 'शतपथ'का विज्ञान है—

(८) प्राणो वै मृत्युः।

'प्राण मृत्यु है।'

पुनरपि 'शतपथ'का विज्ञान है—

(९) आदित्यात्मना एको मृत्युः। प्राणात्मना बहवो मृत्यवः।

'सूर्यरूप एक मृत्यु है। प्राणरूपसे अनेक मृत्युएँ हैं।'

'मैत्रायणी शाखा'का विज्ञान है—

(१०) एकशतं मृत्यवः।

'एक सौ एक मृत्यु हैं।'

'तैत्तिरीयशाखा'का विज्ञान है—

(११) अमुमाहुः परं मृत्युं पवमानं तु मध्यमम्।
अग्निरेवावमो मृत्युश्चन्द्रमाश्चतुरुच्यते॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सूर्य पर मृत्यु है। पवमान मध्यम मृत्यु है। अग्नि तृतीय मृत्यु है। चन्द्रमा चतुर्थ मृत्यु है।'

'शाङ्खायन ब्राह्मण'का विज्ञान है—

(१२) मृत्योर्ह वा एतौ वज्रबाहू यदहोरात्रे।

'मृत्युके ये वज्ररूप हाथ हैं, जो दिन-रात हैं।'

'जैमिनीय ब्राह्मण'का विज्ञान है—

(१३) स यो ह स मृत्युरग्निरेव सः।

'वह जो वह मृत्यु है, वह अग्नि ही है।'

पुनरपि 'जैमिनीय ब्राह्मण'का विज्ञान है—

(१४) अहोरात्रे मृत्यू।

'दिन और रात्रि मृत्यु हैं।'

'जैमिनीय ब्राह्मण'का स्थलान्तरमें विज्ञान है—

(१५) अग्निवायुसूर्यचन्द्रमसा मृत्यवः।

'अग्नि, वायु, सूर्य और चन्द्रमा—ये मृत्यु हैं।'

पुनरपि 'जैमिनीय ब्राह्मण'का विज्ञान है—

(१६) प्रजापतिर्वै मृत्युः।

'प्रजापति ही मृत्यु है। उसका नाम प्रभूयान् है।'

मीमांसा

'कर्म-मीमांसा'में संदिग्ध वस्तुके निर्णयके लिये आविष्कृत न्याय-कलापोंके आधारपर इन सब निगम-वाक्यों तथा नैरुक्तोंके मतोंका समन्वय करके मृत्युके स्वरूपका 'इदमिदम्, इदमित्थम्, इदमियत्' रूपसे निर्णय किया जाता है।

'गोपथ-ब्राह्मण'में उपलब्ध 'स समुद्रादमुच्यत। स मुच्युरभवत्। मुच्युरेव मृत्युः।' विज्ञानके अनुसार प्रत्येक पदार्थमें विद्यमान जीवनरूप अंशुओंका विशकलन 'मृत्यु' है। वह विशकलन अग्नि, वायु, सूर्य और सोमसे होता है। अतः 'मैत्रायणी संहिता'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'अग्निर्वै मृत्युः।' जैसे अग्नि प्रतिक्षण पदार्थोंको क्षीण करता है, वैसे वायु भी करता है। अतः 'जैमिनीय ब्राह्मण'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'वायुर्वै मृत्युः।' वायु दो प्रकारका है—याम्य (उष्ण) और सौम्य (शिव) वायु। इनमें यहाँपर 'वायु' शब्दसे याम्य वायुका ही ग्रहण होता है। कारण कि वही पदार्थोंके सौम्य-अंशुओं (अमृतमय आयुरूप अंशुओं) को प्रतिक्षण क्षीण करता रहता है। सौम्य वायु तो उनका रक्षक है, अतः याम्य वायु 'मृत्यु' है। सूर्य भी प्रतिक्षण पदार्थोंके अमृतमय कणोंको क्षीण करता रहता है। अतः 'जैमिनीय ब्राह्मण'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'सूर्यो वै मृत्युः।' चन्द्रमा भी अग्निका मृत्यु है। चन्द्रमा भी सूर्यरश्मियों और आग्नेय किरणोंकी मृत्यु है। अतः 'जैमिनीय ब्राह्मण'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'चन्द्रमा वै मृत्युः।' 'चन्द्रमा' शब्दसे यहाँपर जलका भी ग्रहण है। जल अग्निकी मृत्यु है। जैमिनीय ब्राह्मणमें इनके नामान्तर भी उपलब्ध हैं। अग्नि, वायु, सूर्य और चन्द्रमा-रूप मृत्युओंके क्रमशः 'रीहत्', 'अजिर', 'म्रोचत्' और 'अत्स्यत्'—ये नामान्तर हैं। इनमें उत्तम, मध्यम और अधम विभाग भी विज्ञान (ब्राह्मण) ग्रन्थोंमें उपलब्ध हैं। इस विषयमें 'तैत्तिरीय ब्राह्मण'का विवेचन है—

अमुमाहुः परं मृत्युं पवमानं तु मध्यमम्।
अग्निरेवावमो मृत्युश्चन्द्रमाश्चतुरुच्यते॥

सूर्यके दो रूप हैं—बाह्य और आभ्यन्तर। इनमें बाह्य सूर्य है, आभ्यन्तर प्राणरूपमें प्राणियोंमें स्थित है। प्राणोंकी स्थिति भी सोम-अंशुओंपर ही विश्रान्त है। प्राण भी प्रतिक्षण सोमांशुरूप जीवनखण्डोंके क्षीण करनेसे 'मृत्यु' है, अतः 'शतपथ'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'प्राणो वै मृत्युः।' इनमें सूर्यरूपसे वह शरीरके बाहर व्याप्त है, प्राणरूपसे वह शरीरके भीतर व्याप्त है। इन दो रूपोंसे बाह्य और आभ्यन्तर स्थितिको ही वेदान्तोंमें 'अन्तर्व्याप्ति' और 'बहिर्व्याप्ति' कहा है। इस रहस्यको न जाननेके कारण कतिपय अज्ञजन परमात्माकी जीवात्मामें अन्तर्व्याप्ति है, अथवा बहिर्व्याप्ति है—इसको लेकर महान् कलहमें प्रवृत्त हैं। उनको ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें प्रतिपादित रहस्योंका यथार्थ ज्ञान न होनेसे वे आकल्प अज्ञान-पङ्कमें ही निमग्न रहेंगे। अग्नि, वायु और सूर्यद्वारा पदार्थनिष्ठ सोम-अंशुओंका प्रतिक्षण क्षय संवत्सरकी सहायतासे अहोरात्र-द्वारा ही होता रहता है। अतः 'शतपथब्राह्मण'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है 'संवत्सरो हि मृत्युः। एष हीदमहोरात्राभ्यामायुः क्षिणोति। अथ म्रियन्ते।' श्रम भी अग्निरूप है। उससे भी अमृतरूप सोमकलाओंका क्षय होता है। अतः 'शतपथ'-में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'श्रमो वै मृत्युः।' अतएव श्रमसे मनुष्य क्लान्त हो जाता है। वस्तुकी स्वस्वरूपमें स्थिति 'जीवन' है। उससे विच्युति 'मृत्यु' है। अशनाया (बुभुक्षा) से जीव स्वस्थितिसे च्युत हो जाता है। अतः 'शतपथ'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'अशनाया वै मृत्युः।' मृत्यु एक प्रकारका काला आग्नेय प्राण है। अतः काण्व 'शतपथब्राह्मण'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'छायामयः पुरुषो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्युः ।' पुरुषका अर्थ वेदोंमें प्राण है । प्राङ् प्राण सूर्य है । अवाङ् प्राण अग्नि है । अग्नि मृत्यु है । अतः 'शतपथ' में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'**अवाङ् प्राणो वै मृत्युः ।**' इस अवाङ् प्राणकी प्राणियोंके अपानमें स्थिति है । अतः 'तैत्तिरीय संहिता'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'**अपानो वै मृत्युः ।**' पदार्थ दो प्रकारके हैं—अमृत और मृत्यु । इनमें अमृत पदार्थोंका च्यावन नहीं हो सकता, कारण कि वे अमृत-धर्मा हैं । मृत पदार्थोंका ही अवाङ् प्राण च्यावन करता है । अतः नैरुक्त शतबलाक्ष मौद्गल्यने 'मृत्यु' शब्दका '**मृतं च्यावयति इति मृत्युः ।**' निर्वचन किया है । यहाँपर 'मृत' शब्दके अर्थमें मतभेद है । कतिपय विद्वान् क्षरणशील पदार्थोंको मृत मानते हैं । उनके मतमें क्षरणशील पदार्थोंके परमाणुओंका च्यावन करनेके कारण अवाङ् (पार्थिव) प्राण मृत्यु है । अन्य विद्वान् 'मृत' शब्दका प्राणहीन वस्तु अर्थ करते हैं । उनके मतमें प्राणहीन पृथिवी, जल और वायुओंका च्यावन मल-मूत्र और अपान-वायुके रूपमें अवाङ् प्राण करता रहता है । अतएव—'**मृतं प्राणहीनं वस्तु च्यावयति इति मृत्युः ।**' निर्वचनसे 'अपान-प्राण' 'मृत्यु' है । यह 'मृत्यु' सूर्यरूपसे एक है, प्रत्येक पदार्थमें प्राणरूपसे स्थित अनेक; अतः 'शतपथ'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—

'**आदित्यात्मना एको मृत्युः, प्राणात्मना बहवो मृत्यवः ।**'

मृत्युके दिन और रात वज्रमय बाहु हैं, अतः 'शतपथ'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—

'**मृत्योर्ह वा एतौ वज्रबाहू यदहोरात्रे ।**'

नैरुक्त भगवान् यास्ककृत '**मारयति इति मृत्युः**' निर्वचन उच्छेद, उत्क्रान्ति एवं अवसानको 'मृत्यु' कह रहा है; परंतु ये कार्य यमके भी यममीमांसाके द्वितीय अध्यायमें कहे गये हैं । परंतु प्रतिक्षण विनाश 'मृत्यु' है । सर्वथा उच्छेद 'यम' है ।

एक सौ एक मृत्युएँ

कठ, मैत्रायणी और कपिष्ठल आदि वेदकी शाखाओंमें एक सौ एक मृत्युओंका उल्लेख है । इनमें इन्द्रिय, वध, रोग, शोक और काम-क्रोध आदि सौ मृत्युएँ हैं । इनका प्रतीकार (चिकित्सा) है । परंतु उच्छेदरूप एक मृत्युका कोई प्रतीकार नहीं है । मनुष्योंके लिये अपनी नियत आयु-तक जीवित रहना अमृतत्व है ।

स्तुति-ऋचा

'निरुक्त'में भगवान् यास्कने 'मृत्यु'की स्तुतिमें '**तस्यैषा भवति**' निर्देश करके '**परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थाम्**' ऋचाको उद्धृत किया है । इसकी आनुपूर्वीके शरीरका गुम्फन इस रूपमें उपलब्ध है—

परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां
यस्ते स्व इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि
मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् ॥

(ऋग्वेद १० । १८ । १)

अन्वय—

हे मृत्यो परम् पन्थाम् अनुपरेहि, यः ते देवयानात् इतरः स्वः पन्थाः । चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि । नः प्रजाम् मा रीरिषः । उत वीरान् मा रीरिषः । इति प्रार्थयासः ।

भाष्यम्—

(हे मृत्यो) हे मृत्युरूप अग्निके अभिमानी देव ! (त्वम्) आप (परम्) अन्य (पन्थाम्) मार्गमें (अनुपरेहि) पधारें, (यः) जो मार्ग (ते) आपका (देवयानात्) देवयान-मार्गसे (इतरः) भिन्न (स्वः) अपना (पन्थाः) मार्ग है । (अहम्) मैं (संकुसुकः) संकुसुक-नामा ऋषि (चक्षुष्मते) चक्षुष्मान् और (शृण्वते) कर्णवान् आपके उद्देश्यसे (ब्रवीमि) कहता हूँ कि (नः) हम सबकी (प्रजाः) प्रजाओंको (मा) मत (रीरिषः) क्षीण करें । (उत) और (वीरान्) वीरोंको भी (मा) मत (रीरिषः) क्षीण करें ।

विशेष—

देह-त्यागके अनन्तर लोकान्तरमें संचारको 'गति' कहते हैं । गतिके हेतु नियत देशको 'पथ' (मार्ग) कहते हैं । पितृयाण और देवयान भेदसे पथ दो प्रकारके हैं । दक्षिण-मार्ग, धूममार्ग, कृष्णमार्ग और पितृमार्ग—ये 'पितृयाण'के नामान्तर हैं । उत्तर-मार्ग, अर्चिमार्ग, शुक्लमार्ग और देवयान मार्ग—ये सब देवयानके नामान्तर हैं । देवयानकी दो शाखाएँ हैं—'देवपथ' और 'ब्रह्मपथ' । पितृयाणकी भी दो शाखाएँ हैं, 'यमपथ' और 'पितृपथ ।' उपर्युक्त ऋचामें देवयान पथसे भिन्न मृत्युका स्वपथ 'पितृपथ' विवक्षित है । देवयानसे भी यहाँ केवल 'ब्रह्मपथ' ही विवक्षित है—कारण कि देवयानके विभागोंमें केवल ब्रह्मपथमें ही मृत्युका संचार नहीं है । देवपथमें तो मृत्युका अपेक्षाकृत संचार है ।

ऋचामें 'संकुसुक' ऋषिने मृत्युके उद्देश्यसे 'चक्षुष्मते'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और 'शृण्वते' 'ब्रवीमि' कहा है। इससे अभिमानीरूप मृत्यु चेतन और सर्वेन्द्रियसम्पन्न है—यह सिद्ध हो रहा है। ऋचामें 'मृत्यु' शब्दसे 'रीहत्', 'अजिर', 'म्रोचत्' और 'अत्स्यत्' आदि सब मृत्युओंका ग्रहण होता है।

आगम और पुराण—

विशुद्ध नैगमवचनोंसे मृत्युके स्वरूपका 'इदमिदम्', 'इदमित्थम्' और 'इदमियत्' रूपसे निश्चित किया गया है। आगमों और पुराणोंमें भी मृत्युके स्वरूपकी पुष्कल चर्चा है। उसका भी यत्किंचित् उल्लेख मृत्यु-स्वरूपके विशद ज्ञानके लिये किया जाता है।

तन्त्रोंमें 'वैखानस-आगम'का विज्ञान है कि अपानरूप इन्द्र नाभिमें रहकर मल-मूत्र और रेतका विसर्ग करता है। इन्द्रके छः प्रकारके शासनोंमें विक्षेप भी एक प्रकारका शासन है। विक्षेप अवाङ् प्राणका कार्य है। अवाङ् प्राण 'मृत्यु' है। 'ऐतरेय आरण्यक'का विज्ञान है—**'मृत्युरपानो भूत्वा शिश्नं प्राविशत्।'** 'मृत्यु प्राण, अपान (अवाङ् प्राण होकर शिश्नमें अवस्थित है।' उसका शुक्र और मूत्रका उत्सर्ग कार्य है। 'परशुराम-कल्पसूत्र'का विज्ञान है— मल-विसर्जक इन्द्रिय 'पायु' है। अपान प्राणके दो भाग हैं—'पायु' और 'अपान'। इनमें 'पायु'से मलका उत्सर्ग होता है। मूत्र और शुक्रका उत्सर्ग 'अपान'से होता है, जो शिश्नाश्रित है। ये दोनों अवाङ् प्राणरूप मृत्युके अवान्तर अवतार हैं। 'गर्भोपनिषद्'-का भी यही विज्ञान है—**'अपानमुत्सर्गे।'** पाञ्चरात्र-तन्त्रका विज्ञान है—'मृत्युका निः-श्वास ही कृष्ण-आयस-समानाकार केतु है।'

पुराण

'विष्णुधर्मोत्तर' पुराणका विज्ञान है—'मृत्यु'की पुत्रियाँ 'भीरव' नामक 'अप्सराएँ' हैं। श्रीमद्भागवतका विज्ञान है—'जीवात्माकी लोकान्तरमें गमनकी इच्छासे नाभिद्वार उत्पन्न हुआ। उसकी देवता 'मृत्यु' है।' अपान इन्द्रिय और उसकी देवता मृत्यु दोनोंसे पृथक्त्व (अलग होना) कार्य उत्पन्न होता है।

दर्शन

'वैशेषिक दर्शन'में भगवान् कणादसे अनुगृहीत—
'उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनप्रसारणंगमनमिति कर्माणि।'
—सूत्रमें परिगणित अवक्षेपणरूप कर्म अथवा उसका प्रवर्तक यन्त्र वेदमें 'मृत्यु' शब्दसे अभिहित है। कारण कि उत्सर्ग (अवक्षेपण) ही अवाङ् प्राणरूप मृत्युका भी कार्य (कर्म) है।

वेदज्ञोंके मत

वेदज्ञ विद्वानोंने भी मृत्यु-स्वरूपके विषयमें गहन और प्रकृति-सुन्दर विचार किया है। उनके मतोंका भी मृत्यु-स्वरूपविषयक ज्ञानकी विशदताके लिये उल्लेख किया जाता है। मतभेदोंसे आलोकित ज्ञानका स्वरूप दृढ और यथार्थ होता है। इनमें वेदज्ञ श्रीमधुसूदन ओझा महोदयका विज्ञान है—

स्थितिस्वभावं स्वमृतं स मृत्यु-
र्गतिस्वभावः प्रथितस्ततोऽयम्।
प्राणः स्वभावेन चलोऽस्ति मृत्यु-
स्तस्मादसत् प्राण इति ब्रुवन्ति॥

अर्थात् "विश्वमें 'रस' और 'बल' भेदसे दो पदार्थ हैं। स्थितिस्वभाव पदार्थ 'अमृत' है, अर्थात् वह रस अथवा ज्ञान है। गतिस्वभाव पदार्थ 'मृत्यु' है। वह प्राण अथवा बल है। प्राण स्वभावसे चल-स्वभाव है, अतः वह 'मृत्यु' है। इसलिये वेदोंमें प्राणको 'असत्' शब्दसे व्यवहृत किया है। प्राण बल है, वह कर्म है, अतः बल अथवा कर्म 'मृत्यु' हैं।"

'ब्रह्मसंधान' नामक ग्रन्थमें योगियोंका मत है—
शक्तिर्वसति पाताले ब्रह्माण्डे वसतीश्वरः।
कालस्तदन्तरे ज्ञेयो जरा तस्मात् प्रजायते॥

परमात्माकी 'इच्छा', 'ज्ञान' और 'प्राण'रूप—तीन शक्तियाँ हैं। इनमें इच्छा (शक्ति) पाताल (ब्रह्ममूल) में रहती है। ज्ञानरूप परमात्मा ब्रह्माण्ड (सिर)में निवास करते हैं। इन दोनोंके मध्य (हृदय) में काल (प्राण) निवास करता है। इस प्राणरूप कालसे प्राणियोंमें जरा (क्षीणता) आती है। प्रतिक्षण क्षीणता (क्षय) ही 'मृत्यु' है। अत्यन्त उच्छेद 'यम' है। प्रतिक्षण 'मृत्यु' जरा है।

अग्नि, सूर्य और प्राणरूप मृत्युसे कृत-पदार्थोंका प्रतिक्षण 'क्षय' ही भगवान् बुद्धके 'सर्वं क्षणिकम्' सिद्धान्तका मूल है। भगवान्का यह क्षणिक-सिद्धान्त मृत-पदार्थों (जड पदार्थों) की दृष्टिसे सर्वथा परिशुद्ध, यथार्थ और वैदिक है। किंतु मृत पदार्थोंमें एक अमृत पदार्थ भी अनुस्यूत है, जो क्षणिक (क्षण-विनाशी) न होनेसे अमृत है। केवल इसका अस्वीकार अवैदिक है, अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृतिमें विद्यमान तत्त्वोंकी स्थितिसे विरुद्ध होनेसे भ्रान्त है। **'मृतं च्यावयति इति मृत्युः'** निर्वचनसे प्रकट महिमा मृत्युका अमृत पदार्थपर प्रभाव नहीं है। पायुस्थ प्राण उदरमें मृत अन्न, जल और वायुके मृत भागोंका च्यावन (बहिःक्षेपण) करनेके कारण 'मृत्यु' शब्दसे अभिहित है; परंतु वैदिक विद्वानोंके मतमें चक्षुः, श्रोत्र आदिमें स्थित मल-भागके बहिःक्षेपणके कारण तत्स्थ प्राण भी 'मृत्यु' है।

मृत्युका उपयोग

अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवत-भेदसे तीन प्रकारके विश्वमें 'मृत्यु' प्राणका उपयोग (कार्य) पदार्थोंमें वैविध्य उत्पन्न करना है। यदि एक अमृत पदार्थ ही होता और मृत्यु पदार्थ न होता तो उस अवस्थामें एक ही पदार्थकी सत्ता रहती। पदार्थगत वैविध्य दृष्टिगोचर न होता। अमर समबल अग्नि और सोम अमर एक ही पदार्थ उत्पन्न कर सकते थे। मृत्युसे विषमबल ये दोनों नानाविध पदार्थोंको उत्पन्न करते हैं। अमृत और मृत्यु-भावमें प्रजापति (परमात्मा) की इच्छा ही कारण है। पदार्थगत वैविध्य ही इसके पृष्ठमें विद्यमान इच्छाका अनुमापक है। इच्छा मनके बिना अनुपपन्न है, अतः अर्थापत्ति प्रमाणसे वह मनकी अनुमापिका है। 'मन' भी मनस्वीके बिना अनुपपन्न है। वह मनस्वी (प्रजापति) का अनुमापक है। वह प्रजापति त्रिधातुमय है। मनः, प्राण और वाक्—उस मनस्वी प्रजापतिकी तीन धातुएँ हैं। इनमें 'वाक्' धातुमें वैषम्य (वैविध्य) 'प्राण' धातुसे आता है। यह प्राण ही मृत्यु पदार्थ है। प्राणमें वैविध्य 'मन' से आता है। इस प्रकार यह विश्वगत वैविध्य मृत्यु (प्राण) से उत्पन्न हुआ है। इससे विश्वमें 'मृत्यु'की मङ्गलरूपता भी सिद्ध होती है।

दो प्रकारका मृत्यु

मृत्यु दो प्रकारका है—एक सोमका मृत्यु, दूसरा अग्निका मृत्यु। इनमें सोमका मृत्यु 'यम' है। अग्निका मृत्यु 'आपः' (जल) है। इनको 'अशनाया' भी कहते हैं। यमरूप मृत्यु रूक्षस्वभाव और उष्ण है। यह स्नेहका यमन करके, अर्थात् स्नेहको आत्मसात् करके वस्तुको शिथिल-अवयव करके नष्ट कर देता है। अशनाया (बुभुक्षा)-रूप मृत्यु तो वस्तुओंका संहार करके, वस्तुके सब अवयवोंको उदरमें नियमन करके परिणामद्वारा उसको नष्ट करती है। एक वस्तुका विनाश ही दूसरी वस्तुका निर्माण है। इस प्रकार ये दोनों मृत्युएँ पदार्थगत वैविध्यके कारण होनेसे मङ्गलायतन हैं।

रसायन-शास्त्र

'रसायन' शास्त्रका उपयोग हमने यहाँ देवताओंके वर्णों (रंगों) के विश्लेषणमें किया है। वेदोंमें वर्णभेदका कारण सौर, आग्नेय, वायव्य और पार्थिव रश्मियोंके भिन्न-भिन्न सम्मिश्रण हैं। 'ऐतरेय ब्राह्मण'में मृत्युका रंग 'कृष्ण' माना गया है। काले रंगमें किसी भी सौर रश्मिकी जागृति नहीं है। कृष्ण वर्ण यों केवल विशुद्ध पार्थिव किरणोंसे युक्त आग्नेय रश्मियाँ ही हैं।

'मृत्यु'की मूर्ति

वस्तुमात्रमें विद्यमान वस्तुगत अवयवोंके प्रतिक्षण विशरणके कारण आग्नेय प्राणविशेष 'मृत्यु' है। उसकी मूर्तिका निर्माण उसके विशुद्ध ज्ञान और उसकी उपासनाके लिये निदान-शास्त्रके संकेतोंके आधारपर श्रीमुम्मडि कृष्णराज ओडयारने 'श्रीतत्त्वनिधि' ग्रन्थमें शैवागमके आधारपर इस रूपमें विहित किया है—

पाशखड्गाङ्कुशगदाभासमानकराम्बुजम्।
गीर्वाणगणवन्द्याङ्घ्रिं मृत्युं महिषवाहनम्॥

'मृत्यु महिषवाहन है। वह देवसमूहद्वारा पूज्यमान-चरणकमल है। वह चतुर्भुज है। उसमें पाश, खड्ग, अंकुश और गदा ये अस्त्र हैं।'

निदान-रहस्य

मृत्युका वाहन 'महिष' मोहका निदान-सूचक है। मोहका यहाँ दूसरा नाम 'मरण' है। देवसमूहके द्वारा उसके श्रीचरणोंका वन्दन प्राणोंके अनेक परिणामोंका निदान है। अर्थात् मृत्यु प्राणोंमें अनेक परिवर्तनोंसे उनमें वैविध्य लाता है। उसके चार हाथ चारों दिशाओंमें उसकी व्याप्तिके संकेत हैं। उनमें विद्यमान पाश, खड्ग, अंकुश और गदा मृत्युके द्वारा प्रतिक्षण क्रियमाण क्षयके संकेत हैं। पाश आदि सब विनाशके सूचक हैं।

प्रतिभट

'मृत्यु' का प्रतिभट अमृत (सोम) है। यमके साथ इसका विनाशमें साधर्म्य है। प्रतिक्षण विनाश और अत्यन्त उच्छेद—यह यम और मृत्युमें वैधर्म्य भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वंश

'मृत्यु'के वंशके विषयमें वेदज्ञोंका मत है कि विश्वके मूलमें परस्पर-विरुद्धस्वभाव 'रस' और 'बल' नामक दो तत्त्व हैं। 'रस' और 'बल' के परिणाम 'अमृत' और 'मृत्यु' हैं। अमृत और मृत्युके परिणाम 'स्थिति' और 'गति' हैं। इस परम्परासे मृत्यु 'बल' तत्त्वका वंशज है।

मृत्युके तीन विवर्त

अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवत-भेदसे 'मृत्यु' के तीन विवर्त हैं। इनमें विष, सर्प और वृश्चिक आदि 'अधिभूत मृत्यु' हैं। प्राण 'अध्यात्म मृत्यु' है। काम, क्रोध, लोभ आदि भी 'अध्यात्म मृत्यु' हैं। अग्नि, सूर्य, वायु और चन्द्रमा आदि 'अधिदैवत मृत्यु' हैं।

मृत्युके तीन रूप

भूतरूप, प्राणरूप और अभिमानीरूप भेदसे मृत्युके तीन रूप है। इनमें अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा और प्रतिवस्तुमें विद्यमान प्राण 'भूतविध मृत्यु' है। इनमें विद्यमान 'प्राण' 'प्राणविध मृत्यु' है। इन सब प्राणोंमें विद्यमान 'चेतना धातु' (अहंकार) 'अभिमानीरूप मृत्यु है।' जो 'मैं मृत्यु हूँ'--यह अभिमान करता है, वह 'अभिमानी रूप मृत्यु' है। यह चेतनामय और सर्वेन्द्रिय-शक्तिमय है। इसके उद्देश्यसे ही ऋषि संकुसुक ने **'चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि' कहा है।**

इस प्रकार मृत्युकी यह मीमांसा वेदके आधारपर की गयी है। इसके स्वरूपका ज्ञान 'परलोक और पुनर्जन्म' के जिज्ञासुओंको परम आवश्यक है। श्रीगीताचार्यने इस मृत्युके लिये ही **'तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः।'** कहा है। उनकी कृपासे उससे अतितरण हो--यह कामना है।

परलोक और पुनर्जन्मका सत्य सिद्धान्त

(लेखक--परमपूज्य गुरुजी--श्रीमाधव सदाशिव गोलवलकर)

भौतिक जगत्में यह नियम सब लोग जानते हैं कि प्रत्येक क्रियाकी प्रतिक्रिया अनिवार्यतः होती है। मनुष्य-जगत्में प्रत्यक्ष रूपसे यह अनुभव होता है। जो जैसा करेगा, वैसा उसे भोगना पड़ेगा। प्रत्येक कर्मका तदनुरूप फल भोगना ही होता है। प्रत्यक्षमें हम यह देख सकते हैं कि कोई व्यक्ति यदि मद्यपान करे तो वह उन्मत्त होकर, स्मृति-ज्ञान नष्ट होनेके कारण असम्बद्ध बोलता है, लड़खड़ाते चलता है, न करने योग्य कार्य करता है, अनेक बार गंदगीमें लोटता रहता है। कार्यका फलभोग इस प्रकार प्रत्यक्ष देखनेमें आता है।

कई प्रकारके कर्मोंका परिणाम तुरंत हाथोंहाथ मिल जाता है। किंतु अनेक कर्म ऐसे होते हैं कि जिनका फल कालान्तरमें--किन्हीं-किन्हींका बहुत कालके पश्चात् दिखायी देता है। मनुष्य-जीवनमें प्रतिदिन अनेक प्रकारके कर्म होते रहते हैं। शरीरसे, वाणीसे, मनसे कर्मयोनि मनुष्य निरन्तर कर्म करता ही रहता है। कर्मके बिना एक क्षण भी वह रह नहीं सकता—**'नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।'** यह वचन प्रत्यक्ष अनुभवका है। इन असंख्य कर्मोंमेंसे कुछ सद्यःफलदायी, कुछ विलम्बसे परंतु इसी जीवनमें फल देनेवाले होते हैं। तथापि अनेक कर्मोंका परिणाम फलभोगरूपमें इसी जन्ममें अनुभवमें नहीं आता। जीवनकी समाप्तिके साथ सारे कर्म भी समाप्त हो जाते हैं--यह बात अशास्त्रीय एवं अनुभवविरुद्ध है; क्योंकि कर्म कभी निष्फल नहीं हो सकता। यह सर्वमान्य सत्य सिद्धान्त है। फिर इन अभुक्त कर्मोंका फलभोग जीव कब कर सकता है?

भिन्न-भिन्न धर्मोंमें विभिन्न प्रकारसे इस प्रश्नको समाधान करनेका प्रयत्न किया गया है। ईसाई, इस्लाम आदि मतोंके अनुसार 'जगत्के अन्तमें ईश्वर सब जीवोंके कर्मोंका निर्णय कर शुभकर्मवालोंको स्वर्गमें और अशुभ-कर्मवालोंको नरकमें उन कर्मोंसे प्राप्त भोग भोगनेके लिये भेज देता है।' परंतु यह विचार युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता। एक छोटे-से जन्ममें किये हुए कर्मका भोग चिरकालतक करना पड़े--यह तो अन्याय है। फिर, न्याय-दानमें इतना प्रदीर्घ विलम्ब होना भी अयुक्त ही कहा जा सकता है। भूल सुधारकर जीवनको सुयोग्य, सुसंस्कृत तथा उच्च बनानेका अवसर सामान्य जीवनमें भी दिया जाना योग्य माना जाता है। भगवान्के राज्यमें ऐसे अवसरका न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलना, यह बात भगवान्‌की न्यायप्रियता तथा उनके कारुण्यसे विसङ्गत है।

अपने सनातनधर्ममें इसका समाधान विचार तथा अनुभवके अनुरूप किया गया है। जिस जीवने जो कर्म किये हों, उनका फल भोगनेके लिये अन्यान्य लोक हैं, जिनमें वह अपने शुभाशुभ कर्मोंके फलोंका भोग करता है तथा कुछ कर्मोंके फलभोगके लिये इसी मर्त्यलोकमें पुनः विभिन्न योनियोंमें जन्म ग्रहणकर फल भोगता है और मनुष्य बनकर अपनी उन्नति करनेका अवसर बार-बार प्राप्त करता है और क्रमशः अपने सब कर्मोंको भोगकर उनका क्षय करता हुआ, अन्ततोगत्वा पूर्ण सुखशान्तिरूप मुक्ति प्राप्त करता है। अपने शास्त्रोंने इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है।

इस प्रकार परलोक तथा इहलोकमें पुनर्जन्मका विचार केवल तर्क अथवा अनुमानमात्र प्रतीत हो सकता है, किंतु हमारे पूर्वजोंने प्रखर तपस्याके बलपर दिव्य दृष्टि प्राप्तकर इन सत्योंका साक्षात् ज्ञान प्राप्त किया था। केवल तर्क या अनुमानके आधारपर परलोकोंके अस्तित्व तथा पुनर्जन्म-ग्रहणकी वास्तविकताका उन्होंने प्रतिपादन नहीं किया, अपितु प्रत्यक्ष ज्ञानके बलपर इसका उद्घोष किया।

अनेकों व्यक्तियोंका जन्मसे ही अलौकिक प्रतिभासम्पन्न होना, कुछ अबोध बालकोंको पूर्वजन्मके स्थान, परिवारस्थ जन इत्यादिका आश्चर्यचकित करनेवाला ज्ञान सप्रमाण प्रकट करते हुए दिखायी देना ऐसे अनेक उदाहरण प्रमाणभूत होकर उपस्थित होते हैं। अब विगत कुछ कालसे इन बातोंपर विश्वास न रखनेवाले पश्चिमीय देशोंके विद्वानोंमें भी परलोकविद्याका अध्ययन करनेकी प्रवृत्ति बढ़ी है और धीरे-धीरे वे परलोक तथा पुनर्जन्मके सत्यको पहचाननेकी तथा माननेकी ओर झुक रहे हैं। जिन धर्म-मतोंका अवलम्बन उन्होंने किया है, उनका समर्थन न होनेसे अभी उनमें पर्याप्त झिझक है। तथापि सत्यान्वेषणकी अन्तःप्रेरणा उन्हें इस सत्यका साक्षात्कार करनेके मार्गपर अग्रसर करा रही है।

वैसे सूक्ष्मदृष्टिसे अध्ययन करनेपर ईसाई धर्मग्रन्थ 'पवित्र बाइबल'में भगवान् ईसाके ही मुखारविन्दसे प्रकट हुए शब्दोंसे यह जाना जा सकता है कि भगवान् ईसाने स्थानीय परिस्थिति तथा मान्यताओंके होते हुए, स्थानीय परिभाषाके ही माध्यमसे भारतीय क्रान्तिदर्शी ऋषियोंके सत्य सिद्धान्तको ही समझानेका प्रयास किया है; किंतु शुद्ध दृष्टिसे इसका अध्ययन करना आवश्यक है।

परलोक तथा पुनर्जन्मके सिद्धान्तके कारण प्रत्येक व्यक्ति यह समझ सकता है कि उसका सुख-दुःख, श्रेष्ठत्व-कनिष्ठत्व, सद्गुणोंका अभाव आदि सब उसीके पूर्वजन्मोंमें किये हुए कर्मोंके परिणाम हैं और इस जन्ममें यदि वह अपने कर्मोंमें सुधार कर ले तो इसी जन्ममें वह अधिक श्रेष्ठ एवं सुखी बन सकता है और उसे यह भी विश्वास होता है कि जीवनका चरम लक्ष्य—मोक्ष, इस एक जन्ममें न भी प्राप्त हो तो भी, उसके लिये उचित प्रयत्नोंमें रत रहनेसे आनेवाले जन्मोंमें वह अपनेको मोक्षके लिये अधिकाधिक योग्य बनाकर, अन्तमें जीवन-मरणके सब सुख-दुःखोंसे छूट-कर अपनी नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त सच्चिदानन्द-स्थितिमें स्थिर हो सकता है। धन्य हो सकता है।

श्रेष्ठ कर्मप्रेरणा देनेवाले, मनुष्यमात्रके पौरुषको आवाहन करनेवाले इस सत्यको हृदयङ्गम करना मनुष्यके कल्याणके लिये परम आवश्यक है। आज इसके सम्बन्धमें कुछ भ्रम फैले हैं और निष्क्रियताको पनपानेवाला दैववाद लोगोंकी बुद्धिपर चढ़ बैठा है। उससे अपनेको छुटकारा दिलाकर, विशुद्ध कर्मसिद्धान्त, तदङ्गभूत परलोक तथा पुनर्जन्मके सत्य सिद्धान्तोंको समझकर सत्कर्ममें प्रवृत्त होना, निरन्तर उद्यमशील रहना तथा परिणामस्वरूप इहलोकमें वैयक्तिक एवं सामूहिक उत्कर्षकी प्राप्तिके साथ मुक्तिमार्ग-पर अग्रसर होकर मनुष्यजीवन सार्थक करना आवश्यक है। यही धर्म है—'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।'

(वैशेषिक)

अपने महान् सनातनधर्ममें* उद्घटित इन महान् सत्योंको जीवनमें उतारकर अपने समाजके सब व्यक्ति उत्तरोत्तर श्रेष्ठ शुद्ध जीवनके चलते-बोलते आदर्श बनें और सम्पूर्ण मानवजातिके सन्मार्ग-पथप्रदर्शक बनें। यही समयकी माँग है। इति शम्

* 'सनातनधर्म' शब्दप्रयोगसे यहाँ भारतीय परम्परामें उत्पन्न सभी पन्थ-सम्प्रदाय आदि सब मत-मतान्तरोंका समावेश समझना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके परलोक तथा पुनर्जन्म-सम्बन्धी विचार

(पुराने लेखोंसे संकलित)

११०३२७

आत्माकी उन्नति तथा जगत्में धार्मिक भाव, सुख-शान्ति एवं प्रेमके विस्तारके लिये और पाप-तापसे बचनेके लिये परलोक एवं पुनर्जन्मको मानना परम आवश्यक है।

आज संसारमें जो पापोंकी वृद्धि होरही है—झूठ, कपट, चोरी, हिंसा, व्यभिचार एवं अनाचार बढ़ रहे हैं, व्यक्तियोंकी भाँति राष्ट्रोंमें भी परस्पर द्वेष और कलहकी वृद्धि हो रही है, बलवान् दुर्बलोंको सता रहे हैं, लोग नीति और धर्मके मार्गको छोड़कर अनीति और अधर्मके मार्गपर आरूढ़ हो रहे हैं, लौकिक उन्नति और भौतिक सुखको ही लोगोंने अपना ध्येय बना लिया है और उसीकी प्राप्तिके लिये सब लोग यत्नवान् हैं, विलासिता और इन्द्रियलोलुपता बढ़ती जा रही है, भक्ष्याभक्ष्यका विचार उठता जा रहा है, जीभके स्वाद और शरीरके आरामके लिये दूसरोंके कष्टकी तनिक भी परवा नहीं की जाती, मादक द्रव्योंका प्रचार बढ़ रहा है, बेईमानी और घूसखोरी उन्नतिपर है, एक दूसरेके प्रति लोगोंका विश्वास कम होता जा रहा है, मुकदमेबाजी बढ़ रही है, अपराधोंकी संख्या बढ़ती जा रही है, असंतोष-असहिष्णुता इतनी बढ़ गयी है कि बात-बातपर लोग आत्महत्या करने लगे हैं और आत्महत्याओंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। दम्भ और पाखण्डकी वृद्धि हो रही है—इन सबका कारण यही है कि आत्माकी अमरता तथा परलोकमें विश्वास नहीं है और लोगोंने वर्तमान जीवनको ही अपना जीवन मान लिया है; इसके आगे भी कोई जीवन है, इसका कोई ख्याल ही नहीं है। इसीलिये वे वर्तमान जीवनको ही सुखी बनानेके प्रयत्नमें लगे हुए हैं। 'जबतक जियो, सुखसे जियो; ऋण लेकर भी अच्छे-अच्छे पदार्थोंका उपभोग करो। मरनेके बाद क्या होगा, किसने देख रक्खा है* ।' —इसी सर्वनाशकारी मान्यताकी ओर आज प्रायः संसार जा रहा है। यही कारण है कि वह सुखके बदले अधिकाधिक दुःखमें ही फँसता जा रहा है। परलोक और पुनर्जन्मको न माननेका यह अवश्यम्भावी फल है।

इस परलोक और पुनर्जन्मके सिद्धान्तका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षरूपसे हमारे सभी शास्त्रोंने समर्थन किया है। वेदोंसे लेकर आधुनिक दार्शनिक ग्रन्थोंतक सभीने एक स्वरसे इस सिद्धान्तकी पुष्टि की है। कठोपनिषद्का नाचिकेतोपाख्यान तो इस सिद्धान्तका जीता-जागता प्रमाण है। नचिकेता और यमराजके बीच जो संवाद हुआ है, वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यमराजने उसे तीन वर देनेको कहा। उनमेंसे तीसरा वर माँगता हुआ नचिकेता यमराजसे यह प्रश्न करता है।

'मरे हुए मनुष्यके विषयमें जो यह शङ्का है कि कोई तो कहते हैं मरनेके अनन्तर 'आत्मा रहता है' और कोई कहते हैं 'नहीं रहता'—इस सम्बन्धमें मैं आपसे उपदेश चाहता हूँ, जिससे मैं इस विषयका ज्ञान प्राप्त कर सकूँ। मेरे माँगे हुए वरोंमें यह तीसरा वर है।' (१। १। २०)

यमराजने अधिकारी-परीक्षाके लिये इस विषयको टालना चाहा और नचिकेताको मनुष्यलोकके बहुत बड़े-बड़े अति दुर्लभ भोगोंका प्रलोभन दिया, परंतु नचिकेता अपने निश्चयसे नहीं टला। नचिकेताके इस आदर्श निष्कामभाव और दृढ़ निश्चयको देखकर यमराज बहुत प्रसन्न हुए और उसकी प्रशंसा करते हुए बोले—

न साम्परायः प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥
(१। २। ६)

'जो मूर्ख धनके मोहसे अंधे होकर प्रमादमें लगे रहते हैं, उन्हें परलोकका साधन नहीं सूझता। यही लोक है, परलोक नहीं है—ऐसा माननेवाला मनुष्य बारंबार मेरे चंगुलमें फँसता है (जन्मता और मरता है)।'

इसके पश्चात् यमराज उसे आत्माके स्वरूपके सम्बन्धमें उपदेश देते हुए कहते हैं—

न जायते म्रियते वा विपश्चि-
न्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।

---

* यावज्जीवं सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥
(चार्वाक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥
(१ । २ । १८)

'यह नित्य चिन्मय आत्मा न जन्मता है, न मरता है; यह न तो किसी वस्तुसे उत्पन्न हुआ है और न स्वयं ही कुछ बना है (अर्थात् न तो यह किसीका कार्य है, न कारण है; न विकार है, न विकारी है) । यह अजन्मा, नित्य (सदासे वर्तमान अनादि), शाश्वत (सदा रहनेवाला, अनन्त) और पुरातन है तथा शरीरके विनाश किये जानेपर भी नष्ट नहीं होता ।'

उपर्युक्त वर्णनसे आत्माकी अमरता सिद्ध होती है ।

आगे चलकर यमराज उन मनुष्योंकी गति बतलाते हैं, जो आत्माको बिना जाने हुए ही मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥
(२ । २ । ७)

'अपने कर्म और ज्ञानके अनुसार कितने ही देहधारी तो शरीर धारण करनेके लिये किसी देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि योनिको प्राप्त होते हैं और कितने ही स्थावर-भाव (वृक्षादि योनि) को प्राप्त होते हैं ।'

ऊपरके मन्त्रसे भी पुनर्जन्मकी सिद्धि होती है ।

गीतामें भी परलोक और पुनर्जन्मका प्रतिपादन करनेवाले अनेक वचन मिलते हैं । दूसरे अध्यायमें भगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥
(२ । १२)

'न तो ऐसा ही है कि मैं किसी कालमें नहीं था या तू नहीं था अथवा ये राजालोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे ।'

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥
(२ । १३)

'जैसे जीवात्माकी इस देहमें बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है; उस विषयमें धीर पुरुष मोहित नहीं होता ।'

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥
(२ । २०)

'यह आत्मा किसी कालमें भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला ही है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है, शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता ।'

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥
(२ । २२)

'जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है ।'

चौथे अध्यायके ५ वें श्लोकमें भगवान् कहते हैं—'परंतप अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत-से जन्म हो चुके हैं। उन सबको तू नहीं जानता, किंतु मैं जानता हूँ ।' गीतामें स्वर्गादि लोकोंका भी कई जगह उल्लेख आता है । पुनर्जन्म, परलोक, आवृत्ति-अनावृत्ति, गतागत (गमनागमन) आदि शब्द भी कई जगह आये हैं । छठे अध्यायके ४१-४२ वें श्लोकोंमें योगभ्रष्ट पुरुषके दीर्घकालतक स्वर्गादि लोकोंमें निवासकर शुद्ध आचरणवाले श्रीमान् पुरुषोंके घरमें अथवा ज्ञानवान् योगियोंके ही कुलमें जन्म लेनेकी बात आयी है तथा ४५वें श्लोकमें अनेक जन्मोंकी बात भी आयी है । इसी प्रकार १३वें अध्यायके २१वें श्लोकमें पुरुषके सत्-असत् योनियोंमें जन्म लेनेकी बात कही गयी है । १४वें अध्यायके १४-१५ तथा १८वें श्लोकोंमें गुणोंके अनुसार मनुष्यके उच्च, मध्य तथा अधोगतिको प्राप्त होनेकी बात आयी है तथा १५वें अध्यायके ७-८वें श्लोकोंमें एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें जानेका स्पष्टरूपमें उल्लेख हुआ है । १६वें अध्यायके १६, १९ और २०वें श्लोकोंमें भगवान्ने आसुरी सम्पदावालोंको बारंबार तिर्यग्योनियों और नरकमें गिरानेकी बात कही है । इन सब प्रसङ्गोंसे भी पुनर्जन्म और परलोककी पुष्टि होती है ।

योगसूत्रमें भी पुनर्जन्मका विषय आया है । महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ।

(साधन० १२)

'क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—मृत्युभय) जिनकी जड़ हैं, वे कर्माशय (कर्मोंकी वासनाएँ) वर्तमान अथवा आगेके जन्मोंमें भोगे जा सकते हैं ।'

उन वासनाओंका फल किस रूपमें मिलता है, इसके विषयमें महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगः ।

(साधन० १३)

'क्लेशरूपी कारणके रहते हुए उन वासनाओंका फल जाति (योनि), आयु (जीवनकी अवधि) और भोग (सुख-दुःख) होते हैं ।'

मनुस्मृतिमें भी पुनर्जन्मके प्रतिपादक बहुत-से वचन मिलते हैं । किन-किन कर्मोंसे जीव किन-किन योनियोंको प्राप्त होते हैं, इस विषयमें भगवान् मनु कहते हैं—

देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः ।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः ॥

(१२ । ४०)

'सत्त्वगुणी लोग देवयोनिको, रजोगुणी मनुष्ययोनिको और तमोगुणी तिर्यग्योनिको प्राप्त होते हैं । जीवोंकी सदा यही तीन प्रकारकी गति होती है ।'

इसके आगे भगवान् मनु ब्रह्महत्या, सुरापान, गुरुपत्नीगमन आदि कुछ महापातकोंका उल्लेख करते हुए कहते हैं कि इन पापोंको करनेवाले अनेक वर्षतक नरक भोगकर फिर नीच योनियोंको प्राप्त होते हैं । उदाहरणतः ब्रह्महत्या करनेवाला कुत्ते, सूअर, गदहे, चाण्डाल आदि योनियोंको प्राप्त होता है; ब्राह्मण होकर मदिरा-पान करनेवाला कृमि, कीट, पतङ्गादि तथा हिंसक योनियोंमें जन्म लेता है; गुरुपत्नीगामी तृण, गुल्म, लता आदि स्थावर योनियोंमें सैकड़ों बार जन्म ग्रहण करता है तथा अभक्ष्यभक्षण करनेवाला कृमि होता है । (देखिये, मनुस्मृति १२ । ५४–५६, ५८, ५९)

इस प्रकार परलोक एवं पुनर्जन्मके प्रतिपादक अनेकों प्रमाण शास्त्रोंमें भरे पड़े हैं । वाल्मीकीय रामायणमें युद्धके बाद दशरथजीका आना तथा श्रीराम और लक्ष्मण आदिसे वार्तालाप करना परलोकका जीता-जागता प्रमाण है । इसके लिये वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड ११९वाँ सर्ग देखिये ।

पितरोंके निमित्त पिण्डदान, श्राद्ध-तर्पण आदिका उल्लेख भी स्थान-स्थानपर आया है । श्रीरामचन्द्रजी महाराजने भी पिताकी मृत्युका संवाद सुनते ही मन्दाकिनीके तीरपर जाकर तर्पण किया एवं स्वयं जैसा भोजन किया करते थे, उसीके पिण्ड बनाकर दशरथजीके निमित्त दिये—

ततो मन्दाकिनीं गत्वा स्नात्वा ते वीतकल्मषाः ॥
राज्ञे ददुर्जलं तत्र सर्वे ते जलकाङ्क्षिणे ।
पिण्डान् निर्वापयामास रामो लक्ष्मणसंयुतः ॥
इङ्गुदीफलपिण्याकरचितान् मधुसम्प्लुतान् ।
वयं यदन्नाः पितरस्तदन्नाः स्मृतिनोदिताः ॥

(अध्यात्म० अयोध्या० ९ । १७–१९)

'फिर सब लोग मन्दाकिनीपर जाकर स्नान करके पवित्र हुए । वहाँ उन सबने जलकाङ्क्षी महाराज दशरथको जलाञ्जलि दी तथा लक्ष्मणजीके सहित श्रीरामचन्द्रजीने पिण्ड दिये । जो हमारा अन्न है, वही हमारे पितरोंको प्रिय होगा—यही स्मृतिकी आज्ञा है—यों कह उन्होंने इंगुदी फलकी पीठीके पिण्ड बना उनपर मधु डालकर उन्हें प्रदान किया ।'

वाल्मीकीय रामायणमें भी इसी भावके द्योतक श्लोक मिलते हैं ।

बहुत-से लोग यह शङ्का करते हैं कि 'मरनेके बाद आत्मा रहता है या नहीं, किये हुए कर्मोंका फल कर्ताको परलोकमें मिलता है या नहीं, मृत व्यक्तिके लिये दिया हुआ पदार्थ उसे मिलता है या नहीं और जो मृत व्यक्ति मुक्त हो गया है, उसके प्रति दिया हुआ पदार्थ किसको मिलता है ?' इन प्रश्नोंका समाधान यह है कि 'मरनेपर आत्मा अवश्य रहता है तथा किये हुए कर्मोंका फल कर्ताको अवश्य मिलता है । वह इस लोकमें भी मिल जाता है और शेष बचा हुआ परलोकमें मिलता है । मृत व्यक्तिके लिये जो कुछ दिया जाता है, वह सब उसे प्राप्त होता है; किंतु जो मृत व्यक्ति मुक्त हो गया है, उसके प्रति दिया हुआ कर्ताके संचित कर्मरूप कोषमें जमा होता है ।'

यह बात युक्तिसंगत भी है । जो आदमी जिस व्यक्तिके नामसे बैंकमें रुपये जमा कराता है, उसी व्यक्तिके नाम रुपये जमा हो जाते हैं और जिसके नामसे जमा होते हैं, उसीको मिलते हैं, दूसरेको नहीं । और जैसे यहाँ जमा कराये हुए रुपये विदेशमें वहाँके सिक्केके रूपमें मिल जाते हैं, वैसे ही पितरोंके नामसे किये हुए पिण्ड, तर्पण, ब्राह्मण-भोजन आदि कर्मका जितना मूल्य आँका जाता है, उतना ही फल उस प्राणीको वह जिस योनिमें होता है, वहाँकी आवश्यक वस्तुके रूपमें प्राप्त हो जाता है । अर्थात् यदि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणी गाय है तो उसे चारेके रूपमें, देवता है तो अमृतके रूपमें, मनुष्य है तो अन्नके रूपमें और बंदर आदि है तो फल आदिके रूपमें उतने ही मूल्यकी वस्तु मिल जाती है।

यदि कहें कि 'जीवित व्यक्तिके लिये भी यदि कोई यज्ञ, दान, अनुष्ठान, व्रत, उपवास आदि कर्म करता है तो क्या वह उसे भी मिलता है?' तो इसका उत्तर यह है कि 'अवश्य उसे मिलता है। नहीं तो, फिर यजमानके लिये जो ब्राह्मण यज्ञ, तप, अनुष्ठान, पूजा, पाठ आदि करता है, वह किसको मिलेगा? न्यायतः वह यजमानको ही मिलेगा; कर्म करनेवाले ब्राह्मणको नहीं।'

यदि कोई प्राणी मुक्त हो गया है तो उसके निमित्त किया हुआ कर्म कर्ताको ही मिलता है। जैसे किसी आदमीको रजिस्ट्री चिट्ठी या बीमा भेजी जाती है और जिसको भेजी जाय, वह आदमी मर गया हो तो फिर वह लौटकर भेजनेवालेको ही वापस मिल जाती है, उसी प्रकार इस विषयमें भी समझना चाहिये।

नीचे लिखे युक्ति-प्रमाणोंसे भी यही सिद्ध होता है कि परलोक अवश्य है और प्राणियोंका पुनर्जन्म होता है—

(१) शरीरकी तरह आत्माका परिवर्तन नहीं होता। शरीरमें तो हम सभीके अवस्थानुसार परिवर्तन होता देखा जाता है। आज जो हमारा शरीर है, कुछ वर्ष बाद वह बिल्कुल बदल जायगा। उसके स्थानमें दूसरा ही शरीर बन जायगा—जैसे नख और केश पहलेके कटते जाते हैं और नये आते रहते हैं। बाल्यावस्थामें हमारे सभी अङ्ग कोमल और छोटे होते हैं, कद छोटा होता है, स्वर मीठा होता है, वजन भी कम होता है तथा मुखपर रोएँ नहीं होते। जवान होनेपर हमारे अङ्ग पहलेसे कठोर और बड़े हो जाते हैं, आवाज भारी हो जाती है, कद लंबा हो जाता है, वजन बढ़ जाता है तथा दाढ़ी-मूँछ आ जाती हैं। इसी प्रकार बुढ़ापेमें हमारे अङ्ग शिथिल हो जाते हैं, शरीरकी सुन्दरता नष्ट हो जाती है, चमड़ा ढीला पड़ जाता है, बाल पक जाते हैं, दाँत ढीले हो जाते हैं तथा गिर जाते हैं एवं शरीर तथा इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण हो जाती है। यही कारण है कि बालकपनमें देखे हुए किसी व्यक्तिको उसके वृद्ध होनेपर हम सहसा नहीं पहचान पाते। परंतु शरीर बदल जानेपर भी हमारा आत्मा नहीं बदलता। दस वर्ष पहले जो हमारा आत्मा था, वही आत्मा इस समय भी है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। यदि होता तो आजसे दस वर्ष अथवा बीस वर्ष पहले हमारे जीवनमें घटी हुई घटनाका हमें स्मरण नहीं होता। दूसरेके द्वारा अनुभव किये हुए सुख-दुःखका जिस प्रकार हमें स्मरण नहीं होता। परंतु आजकी घटनाका हमें दस वर्ष बाद अथवा बीस वर्ष बाद भी स्मरण होता है; इससे मालूम होता है कि अनुभव करनेवाला और स्मरण करनेवाला दो व्यक्ति नहीं, बल्कि एक ही व्यक्ति है। यों जिस प्रकार वर्तमान शरीरमें इतना परिवर्तन होनेपर भी आत्मा नहीं बदला, उसी प्रकार मरनेके बाद दूसरा शरीर मिलनेपर भी आत्मा नहीं बदलता। इससे आत्माकी नित्यता सिद्ध होती है।

(२) मनुष्य अपना अभाव कभी नहीं देखता। वह यह कभी नहीं सोचता कि एक दिन मैं नहीं रहूँगा, अथवा मैं पहले नहीं था। अपने अभावके बारेमें आत्माकी ओरसे उसे कभी समर्थन नहीं मिलता। वह यही सोचता है कि मैं सदासे हूँ और सदा रहूँगा। इससे भी आत्माकी नित्यता सिद्ध होती है।

(३) बालक जन्मते ही रोने लगता है और जन्मनेके बाद कभी हँसता है, कभी रोता है, कभी सोता है; जब माता उसके मुखमें स्तन देती है तो वह उसमेंसे दूध खींचने लगता है और धमकाने आदिपर भयसे काँपता हुआ भी देखा जाता है। बालकके ये सब आचरण पूर्वजन्मको सूचित करते हैं; क्योंकि इस जन्ममें तो उसने ये सब बातें सीखीं नहीं। पूर्वजन्मके अभ्याससे ही ये सब बातें उसके अंदर स्वाभाविक ही होने लगती हैं। पूर्वजन्ममें अनुभव किये हुए सुख-दुःखका स्मरण करके ही वह हँसता और रोता है; पूर्वमें अनुभव किये हुए मृत्युभयके कारण ही वह काँपने लगता है तथा पूर्वजन्ममें किये हुए स्तन्यपानके अभ्याससे ही वह माताके स्तनका दूध खींचने लगता है। इससे भी पुनर्जन्म सिद्ध होता है। (शेष आगे)

अन्तके भावानुसार गति

जीवनभर जिन भाव-विचारोंमें—कर्मोंमें रहता व्यस्त।
मरण-कालमें वही भाव आते हैं मनमें चिर अभ्यस्त॥
अगला लोक-जन्म मिलता है, अन्तिम भावोंके अनुसार।
अतः करो जीवनभर प्रभुका चिन्तन, सेवन, कर्म, विचार॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदमें मृतात्माकी अष्टविध दशा

(लेखक—वेद-दर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर पू० स्वामीजी श्रीगंगेश्वरानन्दजी महाराज)

मरणोत्तर जीवात्माकी प्रथमतः 'गति'-'अगति'—भेदसे दो प्रकारकी दशाएँ होती हैं।

'अगति' शब्दकी परिभाषा लोकान्तरमें गमनाभाव है। अतः अगति चार प्रकारकी बन जाती है। सर्वोत्तम अगति तत्त्वदर्शीकी है, जो तत्त्वदर्शनसे अविद्या और अविद्याके कार्य लिङ्गशरीरका बाध होनेसे कहीं जाता ही नहीं, अपने वास्तविक स्वरूप—ब्रह्मभावमें स्थित हो जाता है। दूसरे शब्दोंमें 'जीवभूमि'से उठकर 'स्वयं ब्रह्म' बन जाता है। तात्पर्य—उपाधि-सम्बन्धसे कल्पित जीवभाव मिटकर विशुद्ध ब्रह्म-स्वरूपमें अवस्थित होता है। जैसे दर्पणके सम्बन्धसे कल्पित सूर्य-प्रतिबिम्ब दर्पण-उपाधिके हट जानेसे शुद्ध अपने बिम्ब-स्वरूप सूर्यमें ही मिल जाता है।

इस अगतिका नाम 'मुक्ति' भी है। वह दो तरहकी है—'क्षिणोदर्क' और 'भूमोदर्क'। 'क्षिणोदर्क मुक्ति' है वह जो शरीर-इन्द्रिय-प्राणादि अनात्म-पदार्थोंमेंसे आत्मव्याप्तिको 'नेति-नेति' प्रक्रियाके द्वारा हटाकर निराकार निर्विशेष विशुद्धात्म-दर्शनसे प्राप्त होती है। 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म।' 'इदं सर्वं यदयमात्मा' 'सर्वं वासुदेवः' आदि प्रक्रियाके द्वारा आत्म-व्याप्तिके विस्तार होनेपर विश्वात्मदर्शनसे जो प्राप्त होती है, वह 'भूमोदर्क मुक्ति' है।

पृथिवीमें ही मरणोत्तर अस्थिहीन कीट-पतङ्ग-वृक्षादि योनि प्राप्त होनेपर 'तृतीय अगति' है और अस्थियुक्त पशु-पक्षी आदि योनि 'चतुर्थ अगति' है; क्योंकि मृतात्माको पृथिवीको छोड़कर लोकान्तरमें जाना नहीं पड़ता।

इससे आपको अवगत हो गया कि सर्वथा गतिशून्य स्वरूपस्थितिके कारण द्विविध मुक्ति, दो प्रकारकी सर्वश्रेष्ठ अगति हुई और किसी लोकान्तरमें न जाकर इसी लोकमें वृक्ष-कीट-पतङ्ग आदि एवं पशु-पक्षी आदि योनिमें प्रविष्ट होनेपर निकृष्ट दो प्रकारकी अगति हुई। इसे अगति इस-लिये कहा जाता है, इसमें जीवात्माको पृथिवीलोक छोड़कर कहीं अन्यत्र जाना नहीं पड़ता। तत्पश्चात् अब निम्नलिखित चार प्रकारकी गतिका परिचय प्रस्तुत किया जाता है—ब्रह्म-लोक गति, देवलोक गति, पितृलोक गति, निकृष्ट नरक गति। सर्वोत्कृष्ट विविध तत्त्वदर्शीकी अगतिके साथ उत्क्रान्तिका किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं। कारण, उसके प्राण **'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति।'** इस श्रुति-वचन (बृह० ४।४।६)के अनुसार उत्क्रमण बिना किये ही **'अत्रैव समवलीयन्ते।'** इस वचनके आधारपर यहाँ ही ज्ञानके द्वारा सविलास अविद्याकी निवृत्ति हो जानेसे अपने अधिष्ठान ब्रह्मतत्त्वमें विलीन हो जाते हैं। वेदान्तशास्त्रका उद्घोष है—**अधिष्ठानाविशेषो हि बाधः कल्पित-वस्तुनः।** अर्थात् कल्पित वस्तुकी निवृत्ति अपने अधिष्ठानसे अतिरिक्त नहीं, अपितु तत्स्वरूप ही है।' शिष्ट-द्विविध अगति तथा चतुर्विध गतिके साथ उत्क्रान्तिका अविनाभाव है। अर्थात् उनका होना उत्क्रान्तिपूर्वक ही सम्भव है। इसी प्रकार गतिके साथ कहीं-कहीं अगति—पुनरावृत्तिका सम्पर्क अवश्यम्भावी है।

अतएव वेदान्तदर्शन २। ३। १९ में कहा है—

'उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्।'

'जीवात्माकी उत्क्रान्ति, गति तथा अगतिका श्रुतियोंमें स्फुट वर्णन है।' यथा—

'स यदास्माच्छरीरादुत्क्रामति सहैवैतैः सर्वैरुत्क्रामति।'

(कौषीतकी० ३। ४)

'ये वैके चास्माल्लोकात्प्रयन्ति चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति।'

(कौषीतकी० १। २)

'तस्माल्लोकात्पुनरेत्यस्मै लोकाय कर्मणे।'

(बृ० ४। ४। ६)

अर्थात् 'वह जीवात्मा जब इस शरीरसे उत्क्रमण करता है—निर्गत होता है, तब इन सब प्राणोंका साथ ही उत्क्रमण होता है।' 'जो-जो प्राणी इस लोकसे मरणोत्तर प्रस्थान करते हैं, वे सब चन्द्रलोकको ही प्राप्त होते हैं।' 'उस लोक (चन्द्रलोक)से जीवात्मा इस लोकके लिये भुक्तशेष कर्मके फलभोगनिमित्त 'पुनरेति' फिर वापस आता है।' तात्पर्य यह कि वह स्वर्गसे भुक्तशेष कर्मोंका फल भोगनेके लिये पृथिवीपर लौटता है। इसीको शास्त्रमें 'प्रत्यावृत्ति' वा 'आगति' कहा है।

अब यह प्रश्न उपस्थित होगा, क्या बिना मार्गके भी कोई कहीं जा आ सकता है? इसके उत्तरमें मार्गका वर्णन वेदमें स्पष्ट किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वे सृती अश्रृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्तरा पितरं मातरं च॥
(ऋ० १०। ८८। १५)

वा० य० १९। ४७; तै० ब्रा० १, ४, २, ३; २, ६, ३, ५; श० ब्रा० १४, ९, १, ४; काण्ड० बृ० ६, २, २;

'मैंने मनुष्योंके दो मार्गोंका श्रवण किया—एक देवोंका, दूसरा पितरोंका (देवयान तथा पितृयान)। जब समस्त विश्वके प्राणी इस लोकसे लोकान्तरको प्रस्थान करते हैं, तब मातरं पितरम् अन्तरा—पृथिवी और स्वर्गके मध्यवर्ती अन्तरिक्षसे उन्हीं दोनों मार्गोंमें होकर समेति—भलीभाँति जाते हैं।'

इस मन्त्रसे पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यु (स्वर्ग)—इस त्रिलोकी तथा पृथिवीलोकसे लोकान्तर-गमनके दोनों मार्गोंका स्पष्ट वर्णन किया है। वेदमें पृथ्वीलोक, अन्तरिक्षलोक तथा द्युलोकका ही नहीं, अपितु उन लोकोंके निवासी मुख्य ११-११ (एकादश-एकादश) देवोंका भी परिचय प्राप्त होता है। स्मरण रहे, जीवात्माकी गतिमें देवोंका सहयोग माना गया है। अतः पृथिवी आदि लोकोंके मुख्य देवोंका उल्लेख अनिवार्य हो जाता है।

देखिये—ऋ० १। १३९। ११ मन्त्रमें तीनों लोक, उनके शासक ग्यारह-ग्यारह देवोंका कैसा मनोहर चित्रण हुआ है—

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्॥

ऋषि देवताओंसे प्रार्थना करता है—'पूजनीय देवगण! आप एकादशकी संख्यामें जो द्युलोकमें रह रहे हैं, पृथिव्यामधि—पृथिवीके ऊपर जो उतनी ही संख्यामें विराजमान हैं, एवं इसी प्रकार अप्सुक्षितः*—अन्तरिक्षमें निवास कर रहे हैं, वे सब आप हमारे इस यज्ञको सेवन करें।'

ये देवा दिव्येकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम्।
ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम्।
ये देवा पृथिव्यामेकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम्।
(अथर्ववेद १९। २७। ११, १२, १३)

अथर्ववेदके इन मन्त्रोंसे पृथिव्यादि त्रिलोकी एवं उसके क्रमशः शासक ग्यारह-ग्यारह देवोंके गणोंकी पूर्ण पुष्टि हो जाती है।

अब हम ग्यारह-ग्यारहकी संख्यामें उन देवगणोंकी नीचे तालिका दे रहे हैं—'निघण्टु'के ५वें अध्यायमें तथा 'निरुक्त'के ७से १२तक ६ अध्यायोंमें पृथिवी-स्थानीय ५२ देव, अन्तरिक्षनिवासी ६८ देव एवं दिविस्थित ३१—इस प्रकार १५१ देवोंका उल्लेख है। फिर भी तीनों स्थानोंके क्रमशः मुख्य देव—'अग्नि', 'वायु', 'आदित्य' हैं। इनके दस-दस सहायक देव हैं, जो इनके आदेशानुसार कार्य किया करते हैं। पाठकोंको अवगत करानेके लिये उन देवोंके क्रमशः नाम नीचे दिये जाते हैं—

पृथिवीके मुख्य देव—अग्नि और उनके सहकारी दस देव—(१) जातवेदा, (२) वैश्वानर, (३) द्रविणोदा, (४) तनूनपात, (५) नाराशंस, (६) त्वष्टा, (७) वनस्पति, (८) ग्रावाण, (९) रथ, (१०) आप।

अन्तरिक्षके मुख्य देव—वायु और उनके सहकारी दस देव—(१) वरुण, (२) रुद्र, (३) इन्द्र, (४) पर्जन्य, (५) बृहस्पति, (६) यम, (७) मित्र, (८) क, (९) विश्वकर्मा, (१०) सविता।

द्युलोकके मुख्य देव (आदित्य) सूर्य तथा उनके सहकारी दस देव—(१) अश्विनौ, (२) उषा, (३) सूर्या, (४) त्वष्टा, (५) सविता, (६) भग, (७) पूषा, (८) विष्णु, (९) यम, (१०) अज एकपात्—यों संकलित ३३ देव बनते हैं

जीवात्मा पृथिवीसे जब लोकान्तरके लिये प्रस्थानोन्मुख होता है, तब अग्नि अपने सहकारी दस देवोंके साथ उसकी सहायता करता है। इसी तरह वायु अन्तरिक्षमें और द्युलोकमें आदित्य गन्ता जीवात्माको सहयोग देते हैं—

तस्मिन् एतस्मिन् अग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति।
(छान्दोग्योपनिषद् ५। ४। २)

इस श्रुतिवचनसे देवोंका सहयोग स्पष्ट अवगत होता है। व्याख्याकारोंने 'देव' शब्दका अर्थ आध्यात्मिक प्राण, जो व्यष्टि-समष्टि-लय सिद्धान्तके अनुरूप आधिदैविक अग्न्यादि भावको प्राप्त हो चुके हैं, ऐसा किया है। तात्पर्य—आध्यात्मिक चक्षु सूर्य, आध्यात्मिक वाक् अग्नि, आध्यात्मिक प्राण वायु बनकर द्युलोकरूपी अग्निमें श्रद्धाकी आहुति डालते हैं, जिससे प्रकाशमान चन्द्रलोकवर्ती वृद्धि-क्षययुक्त

* 'अप्' शब्दका अर्थ जलकी प्रधानताके कारण अन्तरिक्ष है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोमात्मक यजमानका दिव्य शरीर निष्पन्न होता है। अर्थात् उसी शरीरके द्वारा यजमान अपने किये हुए पुण्य-कर्मोंका फलोपभोग स्वर्गमें करता है।

ऋग्वेदके १०वें मण्डलके १४वें सूक्तसे १८वें तक ५ सूक्तोंमें जीवात्माकी लोकान्तर गतिके सम्बन्धमें महत्त्वपूर्ण मन्त्र उपलब्ध होते हैं। उनमेंसे कतिपय मन्त्र निम्न निर्दिष्ट हैं—

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा।
आपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः॥

(ऋक्० १०। १६। ३; । तै० आ० ६। १। ४; निरुक्त ७। ३)

पूर्वार्धमें—'सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः।'

इस प्रकारसे स्वल्प पाठभेदके साथ अथर्ववेदमें यही मन्त्र १८। २। ७ उद्धृत है।

छान्दोग्योपनिषद्के पञ्चम अध्यायके ३ से १० तक ८ खण्डोंमें पञ्चाग्निविद्याका निरूपण है। उसका संक्षेप द्वितीय मुण्डक, खण्ड प्रथम, मन्त्र पञ्चम—

तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः
सोमात्पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम्।
पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां
बह्वीः प्रजाः पुरुषात्सम्प्रसूताः॥

—इस मन्त्रमें हुआ है। उसी पञ्चाग्निविद्याका बीज 'सूर्यं चक्षुर्गच्छतु' इस मन्त्रमें उपलब्ध है। पाठकोंको समझानेके लिये बीजभूत मन्त्रकी व्याख्यासे पहले पञ्चाग्नि-विद्याका सार दिया जाता है। पाँच अग्नि हैं—द्युलोक, पर्जन्य, पृथिवी, पुरुष तथा योषित् (स्त्री)। क्रमशः इन पाँचों अग्नियोंमें जो प्रक्षिप्त की जाती है, वे पाँच आहुतियाँ हैं—क्रमशः श्रद्धा, सोम, वृष्टि, अन्न, रेतः (शुक्र)। अग्निहोत्रादि यज्ञ-प्रक्रियाओंके अनुसार आवहनीय अग्निमें दूध-दधि-घृतादिकी यजमान श्रद्धापूर्वक आहुति डालता है। अग्निसंयोग होते ही वे दध्यादि द्रव्य सूक्ष्म वाष्परूपको धारण कर लेते हैं*। पहलेकी अपेक्षा कुछ नवीनता आ जानेके कारण इन्हें व्याख्याकारोंने 'अपूर्व' शब्दसे भी कहा है।

* उन्हींका 'श्रद्धा' शब्दसे श्रुतिमें उल्लेख हुआ है। कारण, उनके प्रक्षेपके मूलमें श्रद्धा ही हेतु है।

यजमानका जीवात्मा जब मनुष्यशरीरसे निकलता है तो स्थूल शरीर यहाँ पड़ा रहता है। उसकी कहीं जानेकी सम्भावना ही नहीं। वैराग्यशास्त्रमें उसकी तीन गतियाँ—दशाएँ वर्णन की गयी हैं। यदि उसका अग्निसंस्कार किया जाय तो वह भस्मकी ढेरी बनेगा। यदि किसी मांसाहारी सिंहादि पशुने उसे अपना आहार बना दिया तो वह घृणित विष्ठाका रूप धारण करेगा। यदि पृथिवीमें गाड़ दिया जाय और यों ही पड़ा रह जाय तो सड़ जानेसे उसमें कीड़े पड़ जायँगे, अर्थात् वह कृमिरूपको प्राप्त हो जायगा। अतः जीवात्माका साथ देनेवाला मरणोत्तर सूक्ष्म शरीर या लिङ्गशरीर ही है, जो पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण, मन तथा बुद्धि—इन सत्रह तत्त्वोंका संघात है। उसमें मनस्तत्त्वकी प्रधानता होनेके कारण उसमें केवल 'मनः' शब्दका भी प्रयोग किया जाता है। वह केवल शक्तिस्वरूप होनेसे भौतिक शरीरकी सहायता बिना कहीं गमन करनेमें असमर्थ है। अतः जैसे किसी पदार्थको घी, दूध या तैल—किसी स्निग्ध द्रव्यमें डाल दिया जाय और पुनः उसे निकाल ही क्यों न दिया जाय फिर भी, कुछ सूक्ष्म अंश संलग्न अवश्य रह जाते हैं। इसी प्रकार भले ही सूक्ष्मशरीर स्थूलशरीरसे पृथक् हो गया हो, फिर भी स्थूलशरीरके आरम्भिक कुछ भौतिक अंश उस सूक्ष्म-शरीरसे संलग्न रह जाते हैं। इन्हींको शास्त्रने 'भूतसूक्ष्म' कहा है। अतः जब लिङ्गशरीरके साथ जीवात्मा प्रस्थान करेगा तो कतिपय भूतसूक्ष्म उसका साथ अवश्य देंगे। इधर अग्निप्रक्षिप्त वाष्पभावको प्राप्त हुए आहुतिद्रव्य दुग्ध-दध्यादिके सूक्ष्म परमाणु भी साथ मिल जायँगे। जैसे किसी पदार्थको कितना ही सुरक्षित घरमें क्यों न रक्खा जाय, धीरे-धीरे उसपर धूलि पड़नेसे एक मृत्तिकाका परत वा स्तर जम जाता है, इसी प्रकार लिङ्गशरीरके ऊपर स्थूलशरीर आरम्भक भूतसूक्ष्म-मिश्रित आहुतिद्रव्यके सूक्ष्मांशोंका एक स्तर-सा बन जाता है; वही इस लिङ्ग-शरीरका गमन करनेमें आश्रयका काम देता है। दूसरे शब्दोंमें उसीके आश्रित हो लिङ्गशरीर परलोकयात्रा आरम्भ करता है। कहना न होगा, उसी लिङ्गशरीरके आधारपर भूतान्तरसहित श्रद्धा-निष्पाद्य आहुतिद्रव्यके सूक्ष्म वाष्पसे ही एक जीवात्माके यातनाशरीरका निर्माण होता है। अन्तर केवल इतना है—पुण्यात्मा अपने गन्तव्य स्वर्गादिमें पहुँचकर नये दिव्य विग्रहको धारण करता है। उसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय उसके यातनाशरीरका अन्त हो जाता है। नरक-गतिमें यातनाशरीरका अन्त नहीं होता। उसीके द्वारा जीवात्मा रौरवादि भयंकर नरक-यातनाओंका उपभोग करता है। नरकगामी जीवात्माके यातनाशरीरमें केवल भूतसूक्ष्मोंका ही अस्तित्व है, आहुतिद्रव्यके अपूर्वीभूत सूक्ष्म वाष्प-अंशोंका नहीं। उनका सम्पर्क केवल ऊर्ध्वगति पुण्यात्मा जीवके ही आतिवाहिक शरीरमें सम्भव है। यद्यपि लोकान्तर-गमनमें सहकारी शरीर यातनाशरीर ही है तथापि यातनाशरीरका व्यवहार पुण्यात्माके लोकान्तरगति सहकारी शरीरमें शास्त्रकारोंने इस आशयसे नहीं किया कि पुण्यात्माको यातना होगी ही क्यों ? अतः कतिपय विद्वानोंका मत है कि स्वर्ग या नरकतक पहुँचानेवाले शरीरको आतिवाहिक शरीर कहना ही अधिक उपयुक्त है। यातनाशरीर तो पापात्माओंको उसी समय मिलेगा जब वे नरकमें यातना भोगनेके लिये ढकेल दिये जायँगे।

उपर्युक्त विवेचनासे प्रमाणित हुआ कि पुण्यात्मा चन्द्र-लोकमें द्युलोक-अग्निमें आहुत श्रद्धाशब्दित सूक्ष्म अप् (जल) सदृश दुग्ध-दध्यादिके द्रुत द्रव्य वाष्पापन्न अंशोंसे निष्पन्न दिव्य विग्रहमें स्वर्गसुखका चिरकालतक उपभोग करता है। फिर उस दिव्य शरीरके आरम्भक भूतसूक्ष्म जलसदृश द्रुतद्रव्यके घनीभूत अंश-भोगद्वारा पुण्यके क्षय होनेपर अनुताप अग्निमें विलीन हो जाते हैं। उन्हीं विलीन भूतसूक्ष्मसहित जलोंसे वेष्टित जीवात्मा स्वर्गसे वापस लौट आता है। फिर पर्जन्याग्निमें दिव्य शरीरारम्भक विलीन सोमकी आहुति होती है, जिससे वृष्टिकी निष्पत्ति होती है। उस वृष्टिकी तृतीय पृथिवी-अग्निमें आहुति पड़नेसे पृथिवीमें व्रीहि-यवादि अन्न उत्पन्न होता है। उस व्रीह्यादि जाति स्थावर व्रीहि-यवादिमें स्वर्गच्युत जीवात्मा चिरकालतक संसृष्ट रहता है। इस व्रीह्यादि संश्लेषका अन्त कष्ट-साध्य है। दूसरे शब्दोंमें इस व्रीह्यादि अन्नके पौधोंसे जीवात्माका निष्क्रमण अति कठिन है। इसीलिये श्रुतिमें कहा है—

'अतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरम्।'

(छान्दोग्य० ५। १०। ६)

अर्थात् 'इस व्रीह्यादिभावसे जीवात्माका निष्क्रमण दूसरे शब्दोंमें निष्क्रमण अति कृच्छ्रसाध्य है।'

अस्तु, जब चतुर्थ पुरुषाग्निमें अन्नकी आहुति दी जायगी तो रेतः—शुक्र (रसादिक्रमसे निष्पन्न सप्तम धातु) की निष्पत्ति होगी। पश्चात् योषारूप (स्त्री) पञ्चमाग्निमें उस शुक्रकी आहुतिसे मातृकुक्षिस्थ गर्भका जन्म होगा; फिर वही गर्भ क्रमशः मातृकुक्षिमें नौ या दस मास रहकर परिपूर्ण अङ्ग-प्रत्यङ्गादियुक्त हो जाता है। पश्चात् मातृयोनिसे निर्गत हो शिशु, बाल, कुमार नामोंसे व्यपदिष्ट होता है। कहनेका अभिप्राय है कि द्युलोकादि पाँच अग्नियोंमें क्रमशः श्रद्धादि पञ्चाहुतियोंके प्रक्षेपका परिणाम ही मानवशरीर है। निष्कर्ष—यज्ञाग्निमें हवन करनेसे अग्नि-संयोगद्वारा विलीन हो द्रुतद्रव्य बने; अतएव उन्हें अप् या जल कहा गया। वे ही क्रमशः मनुष्य-शरीरमें परिणत होकर अब पुरुष कहे जायँगे। अर्थात् पञ्चमाहुतिमें पहले 'जल' शब्दसे कहे जानेवाले जल अब 'पुरुष' नामसे व्यवहृत होंगे। अब उन्हें 'अप्' संज्ञा न देकर 'पुरुष' संज्ञा दी जायगी। अतएव श्रुति भगवतीका वचन है **'पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति।**—तात्पर्य, पञ्चमी आहुतिके प्रक्षिप्त होते ही पहलेके द्रुतद्रव्य, जिन्हें जल कहा जाता था, 'पुरुष' संज्ञाको प्राप्त कर लेते हैं।' इसी अभिप्रायको संक्षेपमें मुण्डक २। १।५ **'तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः।'**—यह मन्त्र व्यक्त करता है।

(मन्त्रार्थ)—उस अक्षरब्रह्मसे द्युलोक अग्निका जन्म हुआ। सूर्य ही इस द्युलोक अग्निका इन्धन है; क्योंकि काष्ठसे भौतिक अग्निकी तरह यह द्युलोक सूर्यसे समिद्ध, प्रदीप्त अर्थात् चमकता है। उस द्युलोकाग्निमें पूर्वोक्त द्रुतद्रव्यात्मक श्रद्धाकी आहुतिसे सोम (चन्द्र) स्वर्गीय दिव्य शरीर निष्पन्न होता है। जब भोगद्वारा पुण्यक्षयके कारण दिव्य शरीरधारी जीवात्माको अनुताप वा पश्चात्ताप होता है, तब उस विलीन सोमसे पर्जन्यकी उत्पत्ति होती है। पुनः द्वितीय पर्जन्याग्निसे तृतीय पृथिवीरूपाग्निमें वृष्टिकी आहुतिद्वारा व्रीहि-यवादि ओषधियोंका प्रादुर्भाव होता है। चतुर्थ पुरुषाग्निमें अन्नरूपसे प्राप्त उन ओषधिद्रव्योंसे रेतः (शुक्र) की निष्पत्ति होती है। जब चतुर्थाग्नि-पुरुष योषित् (स्त्री) पञ्चमाग्निमें रेतःका सिंचन करता है, तब पुरुषशरीर माता-के गर्भमें धीरे-धीरे पुष्ट हो शिशुभावमें प्रकट होता है। इस क्रमसे ब्राह्मणादि समस्त प्राणिवर्ग उस अक्षर पुरुषसे ही प्रादुर्भूत होता है।

इसी पञ्चाग्निविद्याका बीज **'सूर्यं चक्षुर्गच्छतु'** अथर्ववेद १०। १६। ३ मन्त्रमें उपलब्ध है। (मन्त्रार्थ) प्रेतात्माको सम्बोधित कर कहा जा रहा है कि 'हे मृतात्मन्! तेरी चक्षु-इन्द्रिय अपने समष्टि आधिदैविक सूर्यस्वरूपको प्राप्त हो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा=प्राण, वातं—समष्टि आधिदैविक वायुमें मिल जाय। पहले कहा जा चुका है कि आध्यात्मिक चक्षुरादि प्राण आधिदैविक सूर्याग्नि आदि देवभावको प्राप्त हो मृतात्माके प्रस्थानमें सहायक होते हैं। उसी अभिप्रायको मन्त्रका प्रथम चरण व्यक्त कर रहा है। अथवा इस मन्त्रांशसे उत्क्रान्तिका वर्णन किया है, जिसके बिना लोकान्तर-गति असम्भव है।

ज्ञातव्य है, उत्क्रान्ति (देहत्याग) के समय जीवात्माको अति दुःसह चतुर्विध भयंकर यातना सहन करनी पड़ती है। अतएव उत्क्रान्ति (मृत्यु) का नाम सुनते ही मानव-हृदय काँप जाता है। वे दुःख निम्नलिखित हैं—'विश्लेषज-दुःख', 'मोहज', 'अनुतापज' और 'आगामी-दृश्यदर्शनज'। गोंदसे चिपकाये हुए दो कागजोंको अलग करना बहुत कठिन है। कभी-कभी अलग करनेके समय अलग न होकर वे फट जाते हैं। ठीक यही स्थिति अहंता-ममताके गोंदद्वारा स्थूलशरीरसे संलग्न सूक्ष्मशरीरकी है। जब सूक्ष्मशरीरसे स्थूलशरीरको पृथक् होना पड़ता है, तो असह्य वेदनाका अनुभव करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त जैसे दोका भार एक मनुष्यको उठानेमें अति क्लेश होता है, वैसे ही स्थूल-सूक्ष्म दोनों शरीरोंका भार अब अकेले सूक्ष्मशरीरपर ही आनेके कारण महती पीड़ा होती है। बस, यही 'विश्लेषज-दुःख' है।

मरणोन्मुख प्राणीको चारों ओरसे कुटुम्बीजन घेरे रहते हैं। सामने साश्रुनयना पत्नी या पति है, लाड़ले बेटे कह रहे हैं—'माताजी! पिताजी! आप हमें अनाथ छोड़कर जा रहे हैं।' पुत्रवत्सला मा आर्तनाद कर रही है—'पुत्र! तू क्यों कठोर हो वृद्धा माताको असहाय दशामें छोड़े जा रहा है'; तब उसका तीव्र मोह (कुटुम्बासक्ति) उद्बुद्ध हो हृदयको अत्यन्त संतप्त करता है—'हाय! जिनसे मैं पलभर भी पृथक् होना नहीं चाहता था, उन्हें छोड़नेके लिये विवश हूँ।' इसीको 'मोहज-दुःख' कहा गया है।

'मैंने जन्मभर पाप किये। भूलकर भी भगवद्भजन, साधुसेवा, दानादि पुण्य कार्य नहीं किये। अब मैं यमराजके दरबारमें क्या उत्तर दूँगा।' इन विचारोंसे अनुतापकी पराकाष्ठामें असह्य वेदना मुमूर्षुको होती है। इसीका नाम 'अनुतापज-दुःख' है।

मृत्युके समय भावी दृश्य उपस्थित हो जाता है, जिससे पापात्माको बड़ी घबराहट होती है। वह काँपता है—'मुझे रौरवादि भयंकर नरकोंमें ढकेला जायगा। मैं असहाय हो वहाँकी कठोर यातनाएँ भोगूँगा। जिन कुटुम्बियोंके लिये अगणित चोरी, ठगी, डकैती आदि कुकर्म किये, वे मेरा वहाँ साथ न देंगे।' भागवतमें वर्णन है कि पापात्माको निग्रहीत करनेके लिये भयंकर आकृति, दण्डपाणि, रक्तनयन यमदूत उपस्थित होते हैं, जिनके देखनेमात्रसे मुमूर्षुका हृदय भयभीत हो जाता है। इतना ही नहीं, अधिक भयके कारण शय्यामें ही मलमूत्रका त्यागतक हो जाता है। इसीको 'आगामी दृश्यदर्शनज-दुःख' कहते हैं। अतएव जन्म, जरा, व्याधि-दुःखोंकी तुलनामें मरण-दुःखको सर्वाधिक भयंकर दुःख माना गया है।

पुण्यात्माके पास इस प्रकारके दुःख कभी फटकते तक नहीं। प्रत्युत वह आगामी स्वर्गीय दृश्यदर्शनसे अत्यन्त प्रसन्न हो हँसते-हँसते प्राणोंका विसर्जन करता है। उत्क्रान्त जीवात्माको पुण्यवश कहाँ, किस प्रकार जाना होगा और वहाँसे प्रत्यावर्तित हो किस स्थितिमें आना होगा—इसका विवरण शिष्ट तीन चरणोंमें दिया गया है।

परलोकगामी जीवात्मासे कहा जा रहा है कि तुम 'धर्मणा'—अपने अर्जित पुण्यके प्रभावसे 'द्यौ'—स्वर्गको 'गच्छ'—प्राप्त करो। फिर स्वर्गप्रापक पुण्यके क्षीण होनेपर अनुतापाग्निसे विलीन सोमद्वारा 'अपो वा गच्छ'—अन्तरिक्ष-को प्राप्त होओ। तात्पर्य—अन्तरिक्षस्थित मेघके जलमें प्रवेश करो। तत्पश्चात् वृष्टिके द्वारा 'पृथिवीं गच्छ'—स्वर्गसे प्रत्यावर्तित हो पृथिवीको प्राप्त करो। फिर पृथिवीमें प्रादुर्भूत व्रीहि-यवादि ओषधियोंमें स्थित (संश्लिष्ट) होओ। 'शरीरैः'—शरीर-धारणके निमित्त। यह तृतीया फल उद्देश्य लक्षणहेतु अर्थमें है। यथा 'अध्ययनेन वसति'—अध्ययनके उद्देश्यसे रह रहा है। अर्थात् उसके निवासका फल उद्देश्य और लक्ष्य अध्ययन ही है।' भट्टोजी दीक्षितने सिद्धान्त-कौमुदीमें 'फलमपीह हेतुः' इस उक्तिसे दण्डादि कारण-की तरह क्रियाके फलको भी हेतु मानकर हेतु तृतीयाका समर्थन किया है। निष्कर्ष—ओषधिमें जीवात्माकी स्थिति या संश्लेषका लक्ष्य भावी पुरुषशरीर-धारण ही है। ओषधि-नाम व्रीहि-यवादि अन्नका है। वही अन्न पुरुष (पिता) के द्वारा भुक्त हो रसादि परम्परासे सप्तम धातु—शुक्र बनेगा। वह शुक्र स्त्रीमें निषिक्त हो 'गर्भ' बनकर कुछ महीनोंमें पुरुषाकृतिमें परिणत हो, मातृयोनिसे निर्गत होनेपर शिशु, बाल, कुमार आदि शब्दोंसे व्यवहृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा । अतः प्रमाणित हुआ कि ओषधिमें स्वर्गसे प्रत्यावर्तित जीवात्माके अवस्थानका उद्देश्य शरीर-धारण ही है । इस मन्त्रके द्वारा अति संक्षिप्त शब्दोंमें पञ्चाग्नि-विद्याके समस्त सिद्धान्तोंको गागरमें सागरकी तरह भर दिया गया है ।

प्रसन्नताकी बात है, जिस पञ्चाग्निविद्याका गूढ़ वर्णन संहितामें किया, उसीका कुछ विस्तारके साथ मुण्डकमें दिग्दर्शन हुआ । छान्दोग्योपनिषद्के पञ्चमाध्यायके ३ से १० तक आठ खण्डोंमें एवं बृहदारण्यकोपनिषद् षष्ठाध्यायके द्वितीय ब्राह्मणमें अति विस्तारके साथ इसका निरूपण किया गया है।

विस्तारभयसे लेखनीको विराम ही देना पड़ेगा । फिर भी कतिपय शब्दोंमें पञ्चाग्निविद्याके पाँच प्रश्न और उनके उत्तरोंका दिग्दर्शन अनिवार्य है ।

प्रश्न—पृथिवीलोकसे मरणोत्तर प्राणी ऊपरके किस लोकमें जाता है ?

उत्तर—ज्ञानी, उपासक, कर्मठ, कुकर्मी—चार श्रेणियोंमें प्राणिवर्ग विभक्त हैं । ज्ञानीको कहीं जाना ही नहीं । यह पहले कहा जा चुका है । वह यहीं जीवभावका अन्त होनेसे अपने ब्रह्मस्वरूपमें स्थित हो जाता है । उपासक दो तरहके हैं—जैसे पञ्चाग्नि-उपासक एवं ब्रह्मोपासक । दोनों ही ब्रह्मलोकमें अवश्य जायँगे । अन्तर केवल इतना है कि पञ्चाग्नि-उपासक जिस कल्पमें ब्रह्मलोकको प्राप्त हुआ है उस कल्पमें उसकी पुनरावृत्ति न होगी; क्योंकि श्रुति (छान्दोग्य० ४ । १५ । ६)में लिखा है कि **'एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानव-मावर्तं नावर्तन्ते नावर्तन्ते ।'** इस विशेषणसे उसी कल्पमें, जिस कल्पमें वे ब्रह्मलोक गये हैं, पुनरावृत्तिका निषेध हुआ है । कल्पान्तरमें पुनः प्रतीकोपासककी पुनरावृत्ति अनिवार्य है । ब्रह्मोपासककी पुनरावृत्ति न होकर क्रममुक्ति ही होगी ।

कल्पके अन्तमें जब ब्रह्मलोकके अध्यक्ष हिरण्यगर्भ मुक्त होंगे तो उनके साथ उनके उपदेशसे सब-के-सब ब्रह्मलोकवासी उपासक मुक्त हो जायँगे । कारण, उस समय हिरण्यगर्भके उपदेशसे वहाँके निवासी आत्मसाक्षात्कार प्राप्त कर लेते हैं । इस विषयका निरूपण वेदान्तदर्शन **'कार्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात् ।' 'स्मृतेश्च ।'** (४ । ३ । १०-११) में देखना चाहिये ।

कर्मठ देवलोक या पितृलोककी गतिको प्राप्त होते हैं । भेद केवल इतना है कि पितृलोकसे प्राह्य चन्द्रलोक पृथिवी तथा द्युलोकके मध्यवर्ती अन्तरिक्षमें है । देवलोक प्राह्य स्वर्ग, चन्द्रलोक द्युलोक अथवा द्युलोकसे उपरिस्थित परमेष्ठि-मण्डल है । वैदिक प्रक्रियामें पाँचों मण्डल हैं । स्वयं-भूमण्डल, परमेष्ठिमण्डल, सूर्यमण्डल, पृथिवीमण्डल तथा पृथिवीके ऊपर अन्तरिक्षके एक देशमें स्थित लघु-चन्द्रमण्डल। **'आकाशाच्चन्द्रमसम् ।'** इस श्रुतिवचन (छान्दोग्य० ५ । १० । ४) में इसी लघु-चन्द्रमण्डलका उल्लेख है । **'संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसम्'** इस श्रुतिवाक्य (छान्दोग्य० ५ । १० । २) में आदित्यमण्डलके उपरिवर्ती परमेष्ठिमण्डलकी ओर संकेत है; क्योंकि परमेष्ठिमण्डलात्मक चन्द्रमण्डलका ही आदित्यमण्डलके ऊपर होना न्यायसंगत है । इन पाँचों मण्डलोंमें भूरादि सप्तलोकोंका सामवेश हो जाता है और एक-एक लोककी दो-दो बार गणना करनेसे तीन त्रिलोकियोंका स्वरूप निष्पन्न होता है । जैसे भूलोक पृथिवी, जिसपर मनुष्य-समाज रह रहा है; द्युलोक, जिसमें सूर्य देदीप्यमान है, जिसे सूर्यमण्डल कहा जायगा । इन पृथिवी-द्युलोकके मध्यवर्ती अवकाशात्मक आकाश अन्तरिक्ष है । इन तीनोंकी एक त्रिलोकी बनी । दो मण्डलोंकी दृष्टिसे इस त्रिलोकीका वैदिक नाम 'रोदसी' है । द्युलोक और 'जनः' या जनलोक इन दोनोंके मध्यवर्ती 'महः' नामक आकाशको मिला लेनेसे स्वः, महः, जनः—इन तीनोंकी द्वितीय त्रिलोकी बनी । द्युलोकका अपर नाम स्वः या सूर्यमण्डल है । जनलोकका नामान्तर ही 'परमेष्ठिमण्डल' है ।* जनः और सत्य और उनके मध्यवर्ती तपोलोकको मिला लेनेसे इन तीनोंकी तीसरी त्रिलोकी बनेगी । परमेष्ठिमण्डल, स्वयम्भू-मण्डल—इन दो मण्डलोंकी दृष्टिसे इस त्रिलोकीका द्विवचनान्त वैदिक नाम 'संयती' है ।

इन सातों लोकोंका अनुस्मरण वेदानुगामी द्विज प्रतिदिन संध्योपासनके समय करते ही हैं । अनन्त आकाशमें अनन्त ब्रह्माण्ड हैं । उनका आभासमात्र हमारे साहित्यमें कहीं-कहीं अवश्य है । विस्तृत विवरण इन त्रिलोकियोंकी समष्टि हमारे इस ब्रह्माण्डका ही यत्र-तत्र पाया जाता है ।

अस्तु, पितृलोकात्मक चन्द्रलोकके स्पष्टीकरणके लिये प्रसङ्गवश मण्डलादिका उल्लेख किया गया । आकाशके

* इस त्रिलोकीका वेदमें उल्लेख 'क्रन्दसी' इस द्विवचनान्त प्रयोगसे हुआ है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीत कटिबन्ध, उष्ण कटिबन्ध, मध्य कटिबन्ध एवं नागवीथि, अजवीथ्यादि नौ वीथियोंका शास्त्रवर्णित विवरण आवश्यक होनेपर भी स्थानसंकोचके कारण नहीं किया जा सका। उनके लिये पाठक पुराणशास्त्रकी शरण लें। कर्मठोंको कर्मफलभोगके अनन्तर पृथिवीपर अवश्य लौटना ही होगा, जिसका विवरण द्वितीय प्रश्नके उत्तरमें दिया जायगा।

प्रश्न २—स्वर्ग या पितृलोकमें गये हुए प्राणियोंके प्रत्यावर्तनका प्रकार क्या होगा ?

उत्तर—वे स्वर्ग वा पितृलोकके प्रापक कर्मसमूहके भोगके अनन्तर वहाँसे वक्ष्यमाण मार्गसे प्रत्यावर्तन करते हैं। पहले वे आकाशको प्राप्त होंगे, पश्चात् वायुको, फिर वायु-सदृश होकर धूम-सदृश होंगे। अनन्तर अभ्र, तदनु मेघ बनकर वृष्टिद्वारा पृथिवीपर पहुँचेंगे। वे साक्षात् धूमादि स्वरूप न बनकर उनके समान स्वभावके होते हैं। पृथिवीपर पहुँचकर जातिस्थावर व्रीहि-यवादि पौधोंके साथ संश्लिष्ट होते हैं। स्वयं स्थावर योनिको प्राप्त नहीं होते। इसको समझनेके लिये वेदान्तदर्शन—

'साभाव्यापत्तिरुपपत्तेः।' 'नातिचिरेण विशेषात्।'
'अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात्।'
(३।१।२२, २३, २४)

—सूत्र तथा शांकरभाष्य द्रष्टव्य है।

प्रश्न ३—देवयान-पितृयान, इन दोनों मार्गोंका विभाग अथवा अन्तर क्या है ? तात्पर्य, ये दोनों मार्ग कहाँसे पृथक् होते हैं तथा इन दोनोंके विश्राम, पड़ाव, स्टेशन समान हैं या न्यूनाधिक ?

उत्तर—पितृयानमार्ग (धूमयान) के क्रमशः सात पर्व हैं—धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायनके षण्मास, ये प्रथम चार पर्व हैं। ज्ञातव्य है कि धूमादि शब्दोंका सिद्धार्थ यहाँ विवक्षित नहीं, अपितु तदभिमानी 'आतिवाहिक देवता' अभिप्रेत है। देखिये—वेदान्तदर्शन ४।३।४ 'आतिवाहिकास्तल्लिङ्गात्।'

इस मार्गसे जानेवाले कर्मठ प्राणी संवत्सराभिमानी आतिवाहिक देवताको मिल नहीं पाते। बस, यहींसे इस पितृयानमार्गका देवयानमार्गसे विभाग हो जाता है। पञ्चम पर्व पितृलोक, षष्ठ आकाश, सप्तम चन्द्रलोक है।

(देखिये छान्दोग्योपनिषद्—५।१०।३, ४)

देवयानमार्गके १४ पर्व हैं—(१) अर्चिः अग्नि ज्वाला, (२) दिवस, (३) शुक्लपक्ष, (४) उत्तरायणके षण्मास, (५) संवत्सर, (६) देवलोक, (७) वायु, (८) आदित्य, (९) चन्द्र (जनः) परमेष्ठिमण्डल, (१०) विद्युत् (तपः), (११) वरुण, (१२) इन्द्र, (१३) प्रजापतिः, (१४) ब्रह्मलोक (सत्यलोक)।

विद्युत्-लोकमें उपासकके पहुँचते ही उसके स्वागतके लिये ब्रह्मलोकसे अमानव (दिव्य पुरुष) भेज दिया जाता है। वह उसे साथ ले वरुणलोकादिद्वारा ब्रह्मलोकमें पहुँचा देता है। छान्दोग्य ५।१०।१, २ में यद्यपि देवलोक, वायुलोक, वरुण, इन्द्र, प्रजापति—इन पाँचों पर्वोंका उल्लेख नहीं, तथापि कौषीतकी आदि अन्य श्रुतिवचनोंके आधारपर वे मार्गकी पर्वपूर्तिके लिये अवश्य उपादेय हैं। इसका विवरण वेदान्तदर्शन ४।३।१, २, ३ सूत्रों तथा उनके भाष्यमें द्रष्टव्य है।

प्रश्न ४—क्या आजतक अनन्त पुण्यात्माओंके स्वर्गमें चले जानेसे वह स्वर्ग परिपूर्ण न हो गया होगा, अर्थात् आजकल जिन देशोंमें अधिक जनसंख्या हो जाय, वहाँ नये विदेशियोंके आनेपर प्रतिबन्ध लगाया जाता है। सम्भव है स्वर्गलोकमें अधिक प्राणिवर्गकी उपस्थितिके कारण नये परलोकयात्रियोंके लिये प्रतिबन्ध तो नहीं लगा दिया गया ?

उत्तर—प्रथमतः पुण्यात्माओंकी स्वल्प संख्या होती है, और गये हुओंका प्रत्यावर्तन भी पहले कहा जा चुका है। कुकर्मीको वहाँ जानेका आदेश ही नहीं। कारण, कुकर्मी वहाँ जाते ही नहीं। उनके लिये जन्म-मरण-परम्परारूप तृतीय स्थान निर्धारित है। निष्कर्ष—कुकर्मी लोग क्षुद्र कीट-पतङ्गयोनिमें चले जाते हैं। वे बार-बार जन्मते तथा मरते हैं। इसलिये वे पृथिवीपर ही जन्म-मरणके चक्रमें फँसे रहते हैं। अतएव अनन्त कुकर्मियोंके पृथिवीमण्डलमें ही तिर्यक् योनियोंमें प्रविष्ट होनेके कारण स्वर्गलोकके परिपूर्ण होनेकी सम्भावना ही नहीं। कतिपय स्वर्गमें गये हुए पुण्यात्माओंको भी कुछ सीमित समयतक निवासका आदेश है। भोगसे कर्मक्षय होनेपर उन्हें भी वहाँसे निर्वासित किया जाता है। भला, ऐसी स्थितिमें स्वर्गका भरना तो दूर रहा, वहाँके रिक्त स्थानोंकी पूर्ति होना भी कठिन है; क्योंकि जनसमाजका अधिक झुकाव पापकी ओर है। पुण्यकी ओर अङ्गुलिगण्य बिरले व्यक्तियोंकी प्रवृत्ति देखी जाती है। इसके अतिरिक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अति कुकर्मी, जिन्हें रौरवादि नरकोंमें जाकर यातना भुगतनी होगी, उनकी तुलना अपराधी कैदियोंसे करनी होगी। न्यायालयमें दण्डित होकर कैदी कारा (जेल) में भेज दिये जाते हैं। वहाँ कारावासकी कठोर यातनाएँ उन्हें भोगनी पड़ती हैं।

दक्षिणायन नामक चौथे पर्वतक वे जा सकते हैं; उसके पश्चात् दक्षिणदिशामें वर्तमान यमालयमें उन्हें जाना पड़ेगा। यहाँ मृत पुरुषोंके अपराधके दण्डका निर्णय वैवस्वत यमदेव करते हैं। इस कार्यके लिये वे प्रभुकी ओरसे नियुक्त हैं। इसीलिये उन्हें पितृलोक नामक यमालयमें पहुँचे हुए प्राणिवर्गका शासक होनेके कारण अभिधानकोशमें 'पितृपति' या 'धर्मराज' कहा है। इस विषयका स्पष्टीकरण निम्न निर्दिष्ट मन्त्रोंके अवलोकनसे होगा—

ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये।
तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम्॥
(शु० य० मा० सं० १९। ४५)

इस मन्त्रमें पितृवर्गकी यमराज्यमें सत्ताका उल्लेख है। भाष्यकार महीधर—

'यमस्य राज्यं यस्मिन् तत्र यमलोके ये पितरो वर्तन्ते धर्मराजः पितृपतिरित्यभिधानात्।'

इस उक्तिद्वारा यमालय (यमलोक) और वहाँ नियुक्त दण्डपाणि धर्मराजके अस्तित्वका स्पष्ट प्रतिपादन कर रहे हैं। केवल दण्डपाणि यमकी नियुक्ति नहीं, उसकी सहायताके लिये पाशपाणि वरुण भी नियुक्त हुए हैं—

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम्॥
(ऋ० १०। १४। ७, अथर्व (कुछ पाठान्तरसे) १८। १। ५४)

पुत्र अपने मृत पितासे कह रहा है कि 'मेरे पूज्य पिताजी! पूर्वकालमें होनेवाले अनादिकाल-प्रवृत्त मार्गोंसे आप वहाँ अति शीघ्र जायें। द्विरुक्तिसे आदरातिशय अथवा अतिशीघ्रताकी सूचना है। यहाँ हमारे पूर्वपुरुष पितामहादि पहले पहुँच चुके हैं तथा वहाँ पहुँचकर स्वधया—अमृतसे तृप्त यम और वरुणदेव दोनों राजाओंके दर्शन करें।' इससे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि यमालयमें मृतात्माओंके भाग्य निर्णय करनेके लिये दो अधिकारी नियुक्त हैं—यम और वरुण। उनमेंसे वरुणका उत्कर्ष बतलानेके लिये 'देव' शब्द प्रयुक्त हुआ है। कारण ऋग्वेदमें केवल वरुणदेवके लिये 'सम्राट्' शब्दका प्रयोग हुआ है। अतएव यमके हाथमें दण्ड और वरुणके हाथमें पाश शासकका चिह्न है—

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन्।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः।
(तै० आ० ६। ४। २; ऋग्वेद १०। १४। ८; अथर्व १८। ३। ५८)

पुत्र अपने मृत पितासे पुनः प्रार्थना करता है—

'हे मृतात्मन् पिताजी! अवद्यम्—पापको हित्वायः—हित्वा, परित्याग करके अनुष्ठान किये हुए इष्टापूर्त्त श्रौतस्मार्त दानरूप कर्मके प्रभावसे आप यमसे मिलें। तदनन्तर उनसे शासित पितरोंसे समागम करें। जो यम और पितृगण, परमे व्योमन्—उत्कृष्ट स्थान—उत्तम पितृलोक—स्वर्गमें रह रहे हैं। 'अस्तं—भोगसे कर्मक्षयके होनेपर फिर पृथिवीपर एहि—आगमन करें। अथवा कर्मभोगानन्तर, अस्तं—सर्व प्राणियोंके गृह—निवासस्थान पृथिवीको प्राप्त हों। इतना ही क्यों? पृथिवीपर आकर सुवर्चाः—सुवर्चसा। तृतीयार्थे प्रथमा शोभनदीप्तियुक्ततन्वा—सुन्दर कान्तिवाले शरीरसे संगत हों, अर्थात् पितृलोकसे पृथिवीमें लौटकर सुन्दर शरीरको धारण करें।'

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः॥
(ऋग्वेद १०। १६। ५; अथर्व १८। २। १०; तै० आ० ६। ४। २)

(व्याख्या) हे अग्ने! यः—जो मृत पुरुष, ते—तुझे, आहुतः—चितामें वेदमन्त्रसे समर्पण किया गया है एवं 'स्वधाकार' उच्चारणपूर्वक समर्पित उदकादिके सहित 'चरति'—इधर-उधर चक्कर काट रहा है, उसे 'पितृभ्यः—पितरोंकी प्राप्तिके निमित्त अर्थात् पितृलोककी प्राप्तिके लिये, पुनः अव 'सृज'—फिर प्रेरित करें। पितृलोकमें कर्मभोगके अनन्तर वह पुरुष हे जातवेद! आपकी कृपाद्वारा शरीरसे, 'संगच्छताम्'—संगत हो, अर्थात् पितृलोकसे प्रत्यावृत्त हो शरीर धारण करे। यही क्यों, आपकी कृपासे 'आयुर्वसानः'—जीवनको धारण करनेवाला, दीर्घायुः शेष—संतान अपत्य (शेष इत्यपत्यनाम निघन्टु २-२) उपवेतु—उपगच्छतु—उस पुरुषको प्राप्त हो।

तात्पर्य—पृथिवीपर शरीर धारण करके पितृलोकसे लौटा हुआ पुण्यात्मा पुरुष दीर्घजीवी पुत्ररत्नको प्राप्त हो। अथवा शेष भुक्तकर्म उस पितृलोकसे प्रत्यावृत्त पुरुषको उपवेतु—उपगमयतु—पृथिवीपर शरीर धारण करायें और वह आयु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्सान—आयुयुक्त दीर्घजीवी हो, पृथिव्यां तिष्ठतु इति अध्याहारः—पृथिवीमें रहे।

इन मन्त्रोंसे मृतात्माके लोकान्तरमें पहुँचने और प्रत्यावृत्त होकर पृथिवीमें शरीर धारण करनेका स्पष्ट वर्णन है। प्रसन्नताकी बात है कि जब हमने वैदिक संहिताओंमें परलोकसम्बन्धी खोज आरम्भ की, तब एक-दो नहीं, असंख्य मन्त्र अहं-अहमिकासे उपस्थित हुए। तब हमें निःसीम आश्चर्य हुआ। भगवान् वेद विश्वकल्याणके लिये जिन पदार्थोंका प्रत्यक्ष अथवा अनुमानसे ज्ञान सम्भव नहीं, उनकी अवगति करानेमें सर्वथा सचेष्ट हैं। इसी अभिप्रायकी अभियुक्तोक्ति है—

प्रत्यक्षेणानुमानेन यस्तूपायो न बुद्ध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥

'प्रत्यक्ष वा अनुमानसे जिस अलौकिक साधनका ज्ञान अशक्य है, उसे वेदके द्वारा ही मनुष्य जानते हैं। यही वेदका वेदत्व है।'

वेदवर्णित यमालय तथा उसके स्वामी यमराज एवं उसके द्वारा पापकी जाँच कर नरकगतिके निर्णयका उल्लेख वेदान्तदर्शनमें ३। १। १३, १४ तथा १५ सूत्र तथा उनके भाष्यमें द्रष्टव्य है।

'संयमने त्वनुभूयेतरेषामारोहावरोहौ तद्गतिदर्शनात्।'
'स्मरन्ति च।' 'अपि च सप्त।' 'पूषा त्वेतः।'
(ऋग्वेद १०। १७। ३; अथर्व० १८। २। ५४; तै० आ० ६। १। १; निरुक्त ७। ९)

'द्यौर्मे पिता जनिता।'
(ऋग्वेद १। १६४। ३३; अथर्व० ९। १०। १२; निरुक्त० ४। २१)

पुंसि वै रेतो भवति तत्स्त्रियामनुषिच्यते।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्प्रजापतिरब्रवीत्॥
(अथर्व० ६। ११। २)

इत्यादि वेद-मन्त्र पञ्चाग्निविद्याके मौलिक तत्त्व तथा परलोकसम्बन्धी तथ्योंकी जानकारीके लिये विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। विस्तारभयसे उनकी व्याख्या नहीं की गयी।

सुबन्धु-उपाख्यान, ऋग्वेदीय १० वें मण्डलके सूक्त ५७ से ६० तक ४ सूक्तोंसे सम्बद्ध है। उन सूक्तोंकी क्रमशः ऋचाएँ ६, १२, १० तथा १२—संकलित ४० हैं। उस उपाख्यानके परिशीलनसे परलोकसम्बन्धी मनोरञ्जक तथ्य अवगत होते हैं। नीतिमञ्जरी, सामवेदीय शाट्यायण ब्राह्मण, बृहद्देवता, कात्यायन ऋग्वेदीय सर्वानुक्रमणी तथा सायण भाष्य उसके आधार हैं।

हमारे प्राचीन महर्षियोंको एक अपूर्व विद्या अवगत थी, जिसके द्वारा वे मृत व्यक्तिके जीवात्माको जिस शरीरसे वह उत्क्रान्त हुआ है, उसीमें फिरसे आह्वान कर सकते थे।

अस्याति राजा मानवी असुरोंके मायाजालमें फँस गये और अपने कुलगुरु पुरोहितोंको छोड़कर कीराताकुली नामक मायावी असुरोंको उन्होंने अपना पुरोहित बनाया। इससे क्रुद्ध होकर उसके सुबन्धु, बन्धु, श्रुतबन्धु तथा विप्रबन्धु—इन चार पुरोहितोंने अभिचार-प्रयोगसे राजाका अनिष्ट करना चाहा। राजाके द्वारा उसकी सूचना नवनियुक्त असुर पुरोहितोंको दी गयी। उन्होंने अपनी माया तथा योगशक्तिसे प्राचीन पुरोहितोंके अभिचार-प्रयोगको निष्फल बना दिया तथा राजाका बाल बाँका नहीं हो सका। प्राचीन पुरोहितोंके समक्ष एक नया संकट उपस्थित हुआ। असुर पुरोहितोंने सुप्त—असावधान उनके सुबन्धु भ्राताके प्राणोंको हरण कर लिया। वे स्वदृष्ट उक्त सूक्तोंके प्रभावसे सुबन्धुके निर्गत प्राणोंको वापस बुलानेमें सफल हुए और मृत सुबन्धु चेतनामें आये और जीवित हो गये। तब उनके बन्धु आदि भ्राताओंने सुबन्धुके लब्धसंज्ञ शरीरको हाथसे सस्नेह स्पर्श करते हुए मन्त्र पढ़ा—

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः॥
(ऋग्वेद १०। ६०। १२)

'मेरा हाथ क्या ही सौभाग्यशाली है! यह अत्यन्त सौभाग्यशाली है, यह सबके लिये भेषज है। इसके स्पर्शसे कल्याण होता है।'

अथर्ववेदमें भी जब मनुष्यकी आयु क्षय हो रही हो, मरणोन्मुख दशामें उसका कण्ठ कफावरोधके कारण भयंकर शब्द कर रहा हो एवं मनुष्य ऊर्ध्व श्वास ले रहा हो या उसके प्राण शरीरसे विदा हो गये हों, उसे दीर्घजीवी बननेके लिये मन्त्र है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो
यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।
तमाहरामि निर्ऋतेरुपस्था-
दस्पार्शमेनं शतशारदाय॥
(अथर्व० ३। ११। २)

"यदि आयु क्षीण हो चुकी हो, अथवा प्रेत मर गया है या मृत्युके समीप ही पहुँचा गया है, इस 'अस्पार्श' निर्जीव पुरुषको मृत्युके मुखसे मैं 'आहरामि'—वापस ला रहा हूँ; जिससे वह, 'शतशारदाय'—सौ वर्षतक जीवित रहे।"

श्रीकृष्ण प्रभुने मृत गुरुपुत्र, मृत अपने भ्राता देवकीके छः पुत्रों तथा मृत ब्राह्मण-पुत्रोंको वापस लाकर हमारी मृतसंजीविनी वेदविद्याके अद्भुत चमत्कारका ही प्रदर्शन किया है। श्रीमद्भागवतमें इन वृत्तान्तोंका विस्तृत वर्णन द्रष्टव्य है।

पुनर्जन्मके सिद्धान्त

(लेखक—पूज्यपाद श्री१००८ श्रीस्वामीजी महाराज श्रीपीताम्बरापीठ)

प्राचीन समयसे ही पुनर्जन्मके सिद्धान्तमें मतभेद चला आ रहा है। कुछ लोग यह मानते हैं कि शरीरके मरनेपर आत्मा भी मर जाता है और कुछ लोगोंका मत है कि मृत्यु शरीरकी ही होती है, आत्मा अमर है, नित्य सच्चिदानन्दस्वरूप है। इसीका निर्णय करानेके लिये नचिकेताने यमसे कहा था, जिसे—

'अस्तीति एके नायमस्तीति चैके।'
(कठ० १। १। २०)

—इस कठ-श्रुतिद्वारा व्यक्त किया गया है। मृत्युतत्त्वके अधिष्ठाता यमने नचिकेताके प्रश्नकी कठिनताको जानकर, अनेक प्रलोभनोंद्वारा उसे इस प्रश्नसे हटाकर किसी अन्य वरदानके लिये कहा; क्योंकि यह प्रश्न बहुत ही दुरूह है एवं सर्वसाधारण इसे नहीं समझ सकते। यह विषय कठोपनिषद्के प्रथमाध्यायकी प्रथम वल्लीमें बताया गया है। इस विषयको, ब्रह्मविद्या प्राप्त होनेपर योगविधिके द्वारा ही जाना जा सकता है। इसको अनेक उदाहरणोंद्वारा बताया गया है। इसलिये अन्तमें कहा है—

विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम्।
(कठ० २६। १८)

योगदर्शनमें इस विषयके सूत्रपर कहा गया है—

संस्कारसाक्षात् करणात् पूर्वजातिज्ञानम्।
(३। १८)

'संस्कारोंके साक्षात्कार होनेपर ही पूर्वजातिका ज्ञान होता है।' जो लोग इस पुनर्जन्मके सिद्धान्तपर केवल पुस्तकोंके पठनमात्रसे या सुनी-सुनायी बातोंद्वारा अपनी राय दिया करते हैं, उनका कथन वास्तवमें भ्रान्तिसे रहित नहीं हो सकता। बहुतसे लोग तर्कद्वारा इसे जानना चाहते हैं। तर्क तत्त्वनिर्णयका एक साधन अवश्य है, तथापि सारे विषयोंका निर्णय तर्कसे ही नहीं हो सकता। इस पुनर्जन्मके विषयमें तर्ककी अनुपयोगिता बतायी गयी है—'नैषा तर्केण मतिरापनेया' (कठ० २। ९) कहा गया है। पुनर्जन्मकी प्रत्यक्ष घटनाएँ भी घटती रहती हैं, जिन्हें प्रत्यक्षरूपमें देखा जा सकता है। विद्वानोंने तर्कसे भी इसे सिद्ध किया है। एक बार प्लेटोने सुकरातसे पूछा कि 'आप सभी विद्यार्थियोंको एक-सा ही पाठ पढ़ाते हैं, तथापि कोई विद्यार्थी एक बारमें, कोई दो बारमें, कोई तीन-तीन बारमें पाठको जान पाते हैं और कोई दस बारमें भी नहीं समझ पाते, इसका क्या कारण है?' सुकरातने इसका उत्तर दिया कि 'जिन लोगोंने पहलेसे ही अभ्यास किया है, उन्हें जल्दी ही समझमें आ जाता है और जिन्होंने कम किया है उन्हें देर लगती है तथा जिन्होंने समझना आरम्भ ही किया है, उन्हें और भी अधिक देर लगती है।' यह कथन पूर्वजन्मसे ही सम्बन्धित है। बिना पुनर्जन्म माने इस भेदका युक्तिसंगत उत्तर नहीं हो सकता।

इस्लाम-ईसाई धर्मोंमें पुनर्जन्म न माननेका कारण योग एवं आत्मविद्याका अभाव ही है; तथापि पुनर्जन्मकी घटनाएँ तो उनके सामने भी आती हैं। भारतवर्षमें जैन, बौद्ध, अवैदिक मतोंमें भी पुनर्जन्म स्वीकार किया गया है। केवल चार्वाकने अर्थ-काम,-दृष्टिकी मुख्यतासे धर्म एवं मोक्षको नहीं स्वीकार किया है। चार्वाक-दर्शनमें पुनर्जन्मके सिद्धान्तका विरोध किया गया है। विदेशोंमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी मार्क्सके सिद्धान्तके अनुसार पुनर्जन्मके सिद्धान्तको व्यर्थ और झूठा बताया गया है। बहुतसे पाश्चात्य विद्वानोंने भी आर्यजातिके मान्य वैदिक ग्रन्थोंमें भी ऐसा सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि "पुनर्जन्मका यह सिद्धान्त प्राचीन समयका नहीं है; क्योंकि वैदिक संहिता-ग्रन्थोंमें इसे नहीं माना गया है। इस सिद्धान्तको बादमें साम्राज्यवादी क्षत्रियोंने स्वीकार करके साम्राज्यवाद एवं कैपिटेलिस्टवादके आश्रयरूपसे प्रवृत्त किया है; क्योंकि छान्दोग्योपनिषद्-के अश्वपति-जैबिलि-संवादमें एवं श्रीभगवद्गीता (२।२२) में भी उसीका अनुसरण किया गया है। 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय' आदि श्लोक श्रीकृष्ण एवं अर्जुनके संवादमें बताये गये हैं। यह भी क्षत्रियोंका सिद्धान्त है, जो कि क्षत्रियोंद्वारा ही समर्थित है।"

परंतु यह आक्षेप सर्वथा निराधार है कि पुनर्जन्मका सिद्धान्त साम्राज्यवादियों एवं कैपिटेलिस्टोंका है। वैदिक संहिता-ग्रन्थोंमें यह सिद्धान्त नहीं है—यह कथन भी प्रमाणरहित है। अथर्ववेदके अठारहवें काण्डमें अनेक मन्त्र पुनर्जन्मके समर्थक आये हैं, जिनका पाठ ऋग्वेद एवं यजुर्वेदमें भी आया है। यहाँपर एक मन्त्र उदाहरणके रूपमें लिखा जा रहा है, जिससे यह सिद्धान्त स्पष्ट ज्ञात होगा। ऋग्वेद एवं यजुर्वेदमें भी इसका पाठ आया है—

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः। जीवं व्रातं सचेमहि। (ऋ० १०। ५७। ५; यजुर्वेद ३। ५५)

'मैं पुनः-पुनः माता-पिताको प्राप्त करूँ, दिव्यजन होकर जीवके विग्रहको प्राप्त करूँ।' गीता (४।९) में भी दिव्य जीवनकी बात कही गयी है—'जन्म कर्म च मे दिव्यम्' आदि श्लोकमें नारायणके दिव्य पुनर्जन्मकी कथाएँ अनादिकालसे ही प्रसिद्ध हैं। अन्तर केवल इतना है कि जीव अविद्यामें हैं और ईश्वर अविद्यासे मुक्त है। बार-बार जन्म दोनोंके होते हैं।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥
(श्रीमद्भगवद्गीता ४। ५)

'हे अर्जुन! हमारे और तुम्हारे बहुत-से जन्म व्यतीत हो चुके हैं, उन सबको मैं जानता हूँ, तुम नहीं जानते; (क्योंकि मैं विद्यातत्त्वसे युक्त हूँ और तुम अविद्यामें हो)।'

यह क्षत्रियोंका ही सिद्धान्त है। यह कथन सर्वथा—अयुक्त है। कठोपनिषद्, मुण्डक आदि उपनिषदोंमें क्षत्रियों एवं कैपिटेलिस्टोंका कोई सम्बन्ध नहीं है। उनमें पुनर्जन्मके सिद्धान्त स्पष्टरूपसे बताये गये हैं। वास्तवमें यह एक पूर्ण सत्य है, जिसका किसी वर्गविशेषसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

जीवका स्वरूप और पुनर्जन्म

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥
(ऋ० १। १६४। २०; मुण्डक० ३। १। १)

'दो पक्षी एक वृक्षपर बैठे हुए हैं। एक वृक्षके स्वादिष्ट फलोंको खा रहा है, दूसरा केवल साक्षीरूपसे देख रहा है।' इस मन्त्रमें ईश्वर एवं जीवका स्वरूप बताया गया है। राग-द्वेषमय अविद्याके साथ अभ्यास होकर, अहं-ममके अभिमानसे जीव सांसारिक सुख-दुःखोंमें बँधा हुआ है। यह व्यवहार कबसे हुआ, इसके आरम्भका ज्ञान न होनेसे इसे अनादि बताया गया है—

'नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा।'

इसे ही भगवद्गीता (१५।३)में स्वीकार किया गया है। सत्त्व, रज, तम—इन त्रिगुणोंके प्रभावसे जीव ऊँच-नीच कर्मोंको करता है और उसीके अनुसार अनेक योनियोंमें घूम रहा है। यही पुनर्जन्मका कारण है। इसीको यमने कहा है—'पुनः पुनर्वशमापद्यते मे।' (कठ० १। २। ६)

'बार-बार रागद्वेषात्मक कर्मफलोंमें आसक्त रहनेसे जीव जन्म-मरणके चक्रमें पड़े रहकर हमारे वशमें रहते हैं।' जो लोग सात्त्विक कर्म करते हैं, उन्हें ऊर्ध्वगति प्राप्त होती है, राजस लोग मध्यम गतिवाले हैं तथा तामस लोग जघन्य योनियोंको प्राप्त होते हैं। छान्दोग्योपनिषद्में पञ्चाग्नि-विद्यारूपसे यह विषय बताया गया है। यदि पुनर्जन्म नहीं माना जायगा तो सांसारिक व्यवस्था सम-विषमरूपसे जो चल रही है, उसका कोई ठीक समाधान हो ही नहीं सकता। किसी भी भौतिक उपायसे यह असम्भव है। संसारमें जहाँ-कहीं यह विषय चल रहा है, वहाँ भी स्वाभाविक भेदभाव विद्यमान है; क्योंकि भेद ही सृष्टिका आधार है। भेदके निवृत्त होनेपर सृष्टि नहीं रहेगी। पुनर्जन्म न माननेवालोंके सामने—अकृताभ्यागम, कृतप्रणाश—नामक दोष पूर्वके विद्वानोंने रक्खा है, जिसका अर्थ यह है कि यदि पुनर्जन्म न माना जायगा तो जो कुछ मनुष्यको इस जीवनमें मिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है वह बिना किये हुए ही है। कोई बुद्धिमान्, कोई मूर्ख; कोई धनी, कोई गरीब; कोई महात्मा, कोई दुष्ट आदि भेदोंका समाधान नहीं होगा। वर्तमानमें जो धर्मात्मा शुभ कर्म कर रहे हैं, अधर्मी पापी जो पाप करते हैं, उनका फल उन्हें नहीं मिलेगा; क्योंकि मरनेके पश्चात् फिर जन्म न होनेसे दोनों एकसे ही होंगे। इस अव्यवस्थाको सुलझानेका उपाय पुनर्जन्म है। यह अभिप्राय उक्त युक्तिका है।

आगमके अनुसार जीवका स्वरूप

'न जायते म्रियते वा कदाचित्'—इस गीतावाक्य (२। २२) से आत्माकी उत्पत्ति एवं मरणका निषेध किया गया है। इसपर यह प्रश्न होता है 'तो फिर जन्म-मरण किसका है?' इसके लिये यह अङ्गीकार किया गया है कि जन्म-मरण जीवात्माका है। वास्तवमें जीव भी जन्म-मरणसे रहित ही है। कर्मफल भोगनेके लिये शरीरोंका ही जन्म-मरण होता है, तथापि शरीरका सम्बन्ध होनेसे आत्मामें गौण रूपमें जीवन-मरण स्वीकार किया गया है। इसके आविर्भावका सिद्धान्त इस प्रकार बताया गया है। सहस्रारके ऊर्ध्व भागमें निर्वाण-शक्तिका ध्यान योगी करते हैं। शिव-शक्ति-सामरस्य भावसे आनन्दविन्दुका आविर्भाव इसी शक्तिसे होता है, जिसे इस प्रकार कहा गया है—

ज्वलदग्नेर्यथा देवि स्फुरन्ति विस्फुलिङ्गकाः।
तस्याश्च्युतं परं बिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यपि॥
तदैव सहसा देवि संज्ञायुक्तो भवत्यपि।

'जैसे प्रज्वलित अग्निसे छोटे-छोटे अग्निकण स्फुरित होते हैं, इसी प्रकार उस परमानन्दस्वरूपिणीसे जीवकण उत्पन्न हुए। अविद्यामें प्रतिफलित होनेसे उसके तमोअंशसे आनन्दांश तिरोहित हो गया है। उसे (आनन्द) प्राप्त करनेके लिये यह जीव सर्वदा लालायित रहता है। यथार्थ ज्ञान होनेपर ही उसे प्राप्त कर सकता है। जबतक अद्वैत-ज्ञान नहीं प्राप्त करता, तबतक पुनर्जन्मका चक्र चलता ही रहता है। मुण्डकोपनिषद्में भी ऐसा ही कहा गया है—

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात् पावकाद्
विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः।
तथाक्षराद् विविधाः सौम्य भावाः
प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति॥
(मु० २। १। १)

'हे प्रिय! वह केवल परम सत्य ब्रह्मतत्त्व है। उसीसे अनेक भाव प्रकट होकर पुनः उसीमें लय हो जाते हैं, जैसे प्रज्वलित अग्निसे अनेक चिनगारियाँ प्रकट होकर उसीमें समा जाती हैं।'

उपसंहार

संक्षिप्त रूपमें पुनर्जन्मके उपयोगी सिद्धान्तोंका परिचय दिया गया है। विस्तृत रूपमें पुराण-ग्रन्थोंमें जो अनेक लोक-लोकान्तरोंका वर्णन मिलता है, वह भी पुनर्जन्मके सिद्धान्तोंके ही आधारपर है। शुभकर्म, उपासना, योगके द्वारा इन्हें जीवात्मा अपनी योग्यताके अनुसार प्राप्त करता है। दक्षिणायन एवं उत्तरायण गतिका वर्णन भी इसीसे सम्बन्ध रखता है। इन दोनों गतियोंसे भिन्न सगुण ब्रह्मलोककी प्राप्तिके भी सिद्धान्त हैं, जिन्हें जानकर सगुण ब्रह्मलोक प्राप्त करके अपने वास्तविक आनन्दरूपको प्राप्त कर सर्वदाके लिये सांसारिक दुःखोंसे जीव छूट जाता है। यही इस जीवनका लक्ष्य है। निराकार ब्रह्मकी प्रा[illegible] भी, जिसे अद्वैत-बोध रूपसे बताया गया है। उसके लिये किसी लोकलोकान्तरकी अपेक्षा नहीं है।

कौन स्वधर्म-भ्रष्ट कैसे प्रेत होते हैं?

वान्ताश्युल्कामुखः प्रेतो विप्रो धर्मात् स्वकाच्च्युतः। अमेध्यकुणपाशी च क्षत्रियः कटपूतनः॥
मैत्राक्षज्योतिष्कः प्रेतो वैश्यो भवति पूयभुक्। चैलाशकश्च भवति शूद्रो धर्मात् स्वकाच्च्युत

अपने धर्मसे च्युत ब्राह्मण वान्तभोजी (वमन खानेवाला), ज्वालायुक्त (जलते) मुँहवाला प्रेत; स्वधर्मच्युत क्षत्रिय अपवित्र (विष्ठादि) तथा शवको खानेवाला कटपूतन नामक प्रेत; स्वधर्मभ्रष्ट वैश्य पीब खानेवाला 'मैत्राक्षज्योतिष्क' नामक प्रेत, और स्वधर्म-भ्रष्ट शूद्र 'चैलाशक' (जूँ खानेवाला) नामक प्रेत होता है (मनुस्मृति १२। ७१-७२)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वन्द्वमयी सृष्टि

(लेखक—श्रीस्वामीजी श्रीप्रेमानन्दतीर्थजी महाराज)

[प्रेषक—श्रीओङ्कारनाथजी मुट्ठू]

सृष्टि-रचनाके लिये 'एक' को 'बहु' होना होगा, बहुरूपी स्वाँग बनाने होंगे, देवासुररूपमें प्रकट होना होगा, द्वन्द्वभावके माध्यमसे बाहर निकलना होगा और जन्म-मृत्युद्वारा परिणति प्राप्त करनी होगी।। नाटकमें जितनी रामकी आवश्यकता है, रावणकी उससे किंचिन्मात्र भी कम नहीं है; और दोनोंके बीचमें रहेगी—महामाया सीतादेवी एवं इसके भीतर आ जायगा एक, असम्भव स्वर्णमृग-रहस्य। तभी तो रामलीलाका खेल सुचारु रूपसे होगा। नाटक देखकर तुम बाहरका लीलातत्त्व तो कुछ समझ गये; अब एक बार साधनबलसे नेपथ्य (green room) में जाकर स्वरूप-तत्त्वको समझनेकी चेष्टा करो। यदि किसी प्रकार वहाँ पहुँच सको तो देखोगे कि न राम राम हैं, न रावण रावण है और न सीता सीता ही। वहाँ न कोई भेद-भाव है, न झगड़ा-विवाद। जो कुछ गड़बड़ी है वह रंगमंचपर और वह भी सबको आनन्द देनेके लिये, लीलामयकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये। जिसने एक बार वेशस्थानमें जाकर स्वरूप-को देख लिया, स्वाँगके भीतरके असली मनुष्यको पहचान लिया, असली मनुष्यके भीतरके उद्देश्यको जान लिया, उसके लिये सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है। उसके भाव-कर्म-वचनमें आनन्दके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिलेगा।

और जिसने स्वाँगको ही सार मान लिया है, जो लीला-के रहस्यको समझ नहीं सका, स्वरूपको जाननेकी कोई चेष्टा नहीं की; वह घात-प्रतिघातद्वारा कल्पित द्वन्द्वके प्रभावसे, संसारके थपेड़ोंसे, विचलित होता रहेगा—इसमें क्या संदेह हो सकता है। परंतु ज्ञानीजन सुन्दर रूपसे जानते हैं कि संसारके सब सुख-दुःख, हँसने-रोनेके माध्यमसे भगवान् जीवको ज्ञान दानकर, स्वरूप-प्रतिष्ठकर, आनन्दमें विभोर करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। बुरेके बिना अच्छेका, अन्धकारके बिना प्रकाशका मूल्य ठीकसे समझना कठिन है। हिरण्यकशिपुने प्रह्लादके चरित्रको किस प्रकार प्रकाशित—अनुभव-योग्य किया, यह वास्तविक साधकके अतिरिक्त अन्य लोगोंके लिये समझना और सब समय याद रखना सहज नहीं।

साधु शिक्षा देता है—विध्यात्मकरूपसे। वह बता देता है कि किस प्रकार जीवनमें चलनेसे उन्नति, शान्ति, भगवत्-प्राप्ति-लाभ की जा सकती है। और असाधुकी शिक्षा निषेधात्मक होती है। वह अपने चरित्रद्वारा दिखा देता है कि कुपथमें जाने और कुकर्म करनेका कैसा भीषण परिणाम होता है—उन्नति, शान्ति और आनन्दसे किस प्रकार वञ्चित होना पड़ता है। साधु हाथ पकड़कर ले जाता है और असाधु पद-पदपर सावधान करता है। दोनों ही हमारे कल्याणमें सहायक और आवश्यक हैं। सिद्ध महात्मा मौलाना रूमीने पापी-तापी-दुराचारीको गुरुरूपमें ग्रहणकर प्रणाम किया। सभी देशोंके साधकोंने असाधु-की शिक्षाको स्वीकार किया है।

सच्चे साधकको जन्म और मृत्यु दोनों आत्माके क्रम-विकासमें सहायक होनेके कारण समान रूपमें गृहीत हैं; उसकी आनन्द-अनुभूतिमें—भगवत्-लीलारस-आस्वादनमें सहायक हैं। ज्ञानीके ज्ञानद्वारा और अज्ञानीकी अज्ञताद्वारा भगवत्-उद्देश्य किस प्रकार सफल हो रहा है; देवासुर-युद्धके द्वारा उनके स्वर्गकी पवित्रताकी किस प्रकार रक्षा हो रही है; द्वन्द्वभावके द्वारा उनकी महिमा किस प्रकार घोषित हो रही है, उनका लीलारस अनुभववेद्य हो जाता है, यह साधकके अतिरिक्त अन्य लोगोंके लिये समझना वास्तवमें कठिन है।

असंयत स्वार्थचालित विषयलोलुप व्यक्ति यदि जन्म-मृत्युरहस्य और जन्म-जन्मान्तरीय सम्बन्ध जाननेमें समर्थ होता तो उसके लिये संसारमें रहना कठिन ही नहीं, प्रायः असम्भव हो जाता। पूर्वजन्ममें कौन उसका मित्र था कौन शत्रु, किससे क्या सम्बन्ध था, यदि ये सब बातें असाधक-को याद रहतीं तो उसके लिये अपने वर्तमान जन्मके अनुकूल सब कार्योंका ठीकसे निर्वाह करना भयानक कष्टकर और अशान्तिप्रद हो जाता। अनधिकारीके लिये दिव्य शक्तियाँ कैसी विडम्बना और अशान्तिका कारण होंगी, यह हम अनेक समय समझ नहीं पाते। जिस माँका एकमात्र उद्देश्य है अपनी संतानको खिलाना, पहनाना, सर्वदा आनन्दमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखना, वह माँ क्यों अपनी एकमात्र संतानको कड़वी औषध जोर करके खिलाती है, अच्छी-अच्छी खानेकी चीजें उससे छिपाकर रखती है—इस बातको क्या अबोध बालक समझनेमें समर्थ होता है अथवा समझकर माँ-बापके प्रति कृतज्ञ रहता है ? किंतु सच्चा साधक जानता है कि माँका समस्त ऐश्वर्य, माधुर्य, सुख, शान्ति संतानके कल्याण और आनन्दके लिये है।

माँ प्रकृतिदेवी जब देखेगी कि तुमने साधनाके द्वारा सब चीजोंका सद्व्यवहार करना सीख लिया, सब प्रकारके आनन्दास्वादनका सामर्थ्य लाभ कर लिया, तुम्हारे द्वारा अब अपना या और किसीका अनिष्ट होनेकी सम्भावना नहीं है; तब वे अपने अक्षय भण्डारकी सारी चाभियाँ तुमको देकर सुख अनुभव करेंगी। किंतु जबतक तुम्हारे भाव, वचन या कर्मसे किसीका भी अनिष्ट होनेकी सम्भावना है, तबतक प्रेममयी माँ अपने भण्डारकी बहुमूल्य चीजें तुम्हारे लिये अस्वास्थ्यकर, कष्टप्रद जानकर तुमसे दूर हटाकर रक्खेंगी। ऐसी अवस्थामें, शायद तुम भी यह अस्वीकार न करोगे कि तुमको कठोर विधान पालनकर संयमपूर्वक चलना चाहिये। जो माँ असुरोंके लिये असि-मुण्डधारिणी है, दुष्टोंके दलनमें व्यस्त हैं, वही माँ देवताओंको वर-अभय प्रदान करनेवाली हैं; संयत साधु महात्माओंकी रक्षामें तत्पर हैं।

विचारपूर्वक समझनेकी चेष्टा करो कि हम क्यों माँके जन्म-मृत्युरूपी ऐसे सुन्दर कौतुकको भयकी दृष्टिसे देखते हैं ? अपनी आँखोंको प्रेम-यमुनाके जलसे धोना शुरू करो, मनको संस्काररूपी आवर्जनासे मुक्त करो और बुद्धिको ज्ञान-गङ्गाके जलसे शुद्ध करो। एक दिन जब माँकी कृपासे तुम्हारी दिव्य दृष्टि खुल जायगी, तब देखोगे कि माँ कैसी सुन्दरी, आनन्दमयी, दयामयी, प्रेममयी हैं। तब माँके सृष्टिरहस्य, जन्म-मृत्युलीला, सुख-दुःखतत्त्वसे अवगत होकर तुम आनन्द-विभोर हो जाओगे। तब मृत्यु तुम्हें भय नहीं दिखा सकेगी। ('जन्म-मृत्यु' नामक पुस्तकाकार पत्रावलीसे)

पागलकी झोली

[परम पद]

(लेखक—महात्मा अनन्तश्रीविभूषित ठाकुर श्रीसीतारामदास ओंकारनाथ महाराज)

पागल हाथसे ताली बजाते हुए नाच-नाचकर राम-राम बोल रहे हैं। उसी समय हलधर आकर कुछ देर नामोच्चारमें शामिल होकर कहने लगे—'अच्छा, पागल बाबा ! यज्ञोपवीत होनेके बाद **'ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।'** (यजुर्वेद ६। ५)—यह मन्त्र बोलकर आचमन करते हैं, इसका अर्थ क्या है ?'

पागल—राम-राम सीताराम। तत्त्वदर्शी लोग विष्णुके उस परमपदको सर्वदा देखते हैं। कैसे देखते हैं ?—आकाशमण्डलमें विस्तारित आँखें जैसे अबाधरूपसे आकाशकी सारी शोभा देखती हैं, उसी प्रकार वे परमपदकी शोभाको देखते हैं। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—परमपद किसे कहते हैं ? तत्त्वज्ञानी लोग कैसे उसकी शोभा देखते हैं ?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। परमपद कहते हैं—परमाकाश परव्योमको। साधनाके द्वारा भक्त और ज्ञानी लोग उस परमपदको देख पाते हैं। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। श्रीभगवान्ने उद्धवजीसे कहा था कि 'उनका वह रूप अङ्ग-प्रत्यङ्गके अनुरूप है। श्रीसम्पन्न प्रशान्त सुन्दर मुख है। चारों भुजाएँ दीर्घ और मनोज्ञ हैं, ग्रीवा रमणीय और मनोहर है, कपोल सुरम्य है। वदन सहास्य और चित्ताकर्षक है, दोनों कानोंमें मकराकृति कुण्डल हैं, सुवर्ण वसन पहने हैं, चरणयुगलमें शब्दायमान नूपुर हैं, श्यामघनके समान श्याम वर्ण है, लक्ष्मीजीके द्वारा सेवित हैं और श्रीवत्ससुशोभित वक्षःस्थल है। चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म हैं तथा गलेमें वनमाला और प्रभावशाली कौस्तुभ लटक रहा है, मस्तकपर कान्तिमान् किरीट है और बाहुमें सम्यक् रूपसे सुशोभित अङ्गद है। कटिमें मेखला है, मुख और दृष्टि प्रसन्नतापूर्ण हैं। इस प्रकार सर्वाङ्गसुन्दर मेरे रूपका अभिनिवेशपूर्वक ध्यान करे। धीरतापूर्वक मेरे सर्वाङ्गमें मनको लगाये रक्खे। मनके द्वारा सारी इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर शुद्ध मनसे बुद्धिरूप सारथिके द्वारा आकृष्ट करके मुझमें लगा दे। मनको अन्य चिन्ताओंसे दूर रक्खे, केवल मेरे मनोहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हास्ययुक्त मुखका चिन्तन करे। पश्चात् मनको खींचकर कारणोंके कारण आकाशमें स्थापन करे—

तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत्।

(श्रीमद्भागवत ११। १४। ४४)

उसे त्यागकर जो आदमी मुझमें आरूढ़ होना चाहता है, वह केवल मेरा ही चिन्तन करे। राम-राम सीताराम। ध्यानके समय जो आकाश उपस्थित होता है, उस आकाशको ही परमपद कहते हैं। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—जिस आकाशको हम देखते हैं, इसीका नाम परमपद है?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। नहीं, परमपद इन आँखोंसे नहीं देखा जाता। आँखें मूँदकर ज्ञाननेत्रसे उसे देखना पड़ता है। वह परमपद सबका काम्य है। भक्त सगुण मन्त्र जप करता है। सगुण-साक्षात्कारके बाद मन्त्र लय हो जाता है, ॐकारकी प्राप्ति होती है। उसकी सुषुम्णामें नादात्मक ॐकार अबाध गतिसे निरन्तर क्रीड़ा करता है। उस नादको सुनते-सुनते आकाश उपस्थित होता है। कोई उसको विराट कहता है, कोई महान् कहते हैं, कोई उसको परमपद कहते हैं। राम-राम सीताराम। शास्त्रमें परमपदका अनेक रूपोंमें वर्णन किया गया है। राम-राम सीताराम।

हलधर—बतलाइये न, शास्त्र क्या कहते हैं?

पागल—

अविकारमजं शुद्धं निर्गुणं यन्निरञ्जनम्।
नताः स्म तत् परं ब्रह्म विष्णोर्यत् परमं पदम्॥

(विष्णुपुराण १। १४। ३८)

'जो अविकार, अज, शुद्ध, निर्गुण और निरञ्जन विष्णुका परमपद है, उस परब्रह्मके प्रति हम नत होते हैं।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—आपने आकाशको परब्रह्म कहा है?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। श्रुति कहती है—

यद् वै तद् ब्रह्मेती वाव तद् योऽयं बहिर्धा पुरुषादाकाशो यो वै सः।

(छान्दोग्य० ३। १२। ७)

'पहले जिसको ब्रह्मरूप बतला चुके हैं, वही देहके बाहर विद्यमान आकाश है। देहके बाहर जो आकाश है, वही आकाश शरीरके भीतर है। देहके भीतर जो आकाश है, वही आकाश हृदयकमलके भीतर है; यह हृदयाकाश नामक ब्रह्म पूर्ण और प्रवृत्तिहीन है। जो इस प्रकार ब्रह्मको जानता है, वह पूर्ण और अविनाशी ऐश्वर्य प्राप्त करता है।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—आकाशको देखनेसे ब्रह्म देखा जाता है?

पागल—ब्रह्माकाश आँखोंसे नहीं देखा जाता। ब्रह्माकाश भूताकाशको व्याप्त करके स्थित है। राम-राम सीताराम। 'मनो ब्रह्म' अध्यात्म उपासना है। 'आकाशो ब्रह्म' अधिदैवत उपासना है। मन ब्रह्मके चार पद हैं—वाक्, नासिका, चक्षु और श्रोत्र; तथा आकाश ब्रह्मके चार पद हैं—अग्नि, वायु, सूर्य और दिक्। राम-राम सीताराम। यहाँ ब्रह्मके प्रतीकरूपमें मन और आकाशको ब्रह्म कहकर उपासनाकी बात कहते हैं। राम-राम।

हलधर—श्रुति आकाशको ब्रह्म कहती है?

पागल—ॐ ही आकाश ब्रह्म है, आकाश चिरन्तन है। कौरव्यायनी-पुत्र कहते हैं कि वायुका आधार ही आकाश है। (बृहदारण्यक०) राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

'आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्वहिता। ते यदन्तरा तद्ब्रह्म तदमृतं स आत्मा।' (छान्दोग्य० ८। १४। १)

'जो आकाश नामसे प्रसिद्ध है, वही नाम-रूपको अभिव्यक्त करता है। वही ब्रह्म है, वही अमृत है, वही आत्मा है' राम-राम सीताराम।

हलधर—परमपदकी बात कहिये।

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। दूसरे स्थानमें श्रुति कहती है—

निरस्तविषयासङ्गं संनिरुद्धं मनो हृदि।
यदा यात्युन्मनीभावं तदा तत्परमं पदम्॥

(ब्रह्मबिन्दु० ४)

'विषयोंके भोगकी अभिलाषा निरस्त हो जानेपर, मनको हृदयमें पूर्णतः निरुद्ध करनेपर जब मन उन्मनीभावको प्राप्त होता है, तब उस अवस्थाको परमपद कहते हैं। राम-राम सीताराम।

हलधर—उन्मनीभाव किसको कहते हैं?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकल्पशून्यताका नाम उन्मनीभाव है। राम-राम सीताराम। ॐकारका नाम भी परमपद है—

सर्वतातः सर्वधर्त्ता जगद्बुध्नो जगन्निधिः।
जगद्वीचितरङ्गाणामाधारं परमं पदम्॥

(प्रणवकल्प)

प्रणवकी नवमी मात्रा शान्त, निर्मल आकाश है। राम-राम सीताराम।

हलधर—तब तो तरङ्गशून्य शान्त अवस्थाका नाम परमपद है?

पागल—

अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः।
ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिर्ज्योतिरन्तर्गतं मनः॥
तन्मनो विलयं याति तद् विष्णोः परमं पदम्॥

(उत्तरगीता)

'अनाहत शब्दकी जो विशेष ध्वनि होती है, उस ध्वनिके अन्तर्गत जो ज्योति है, उस ज्योतिके अन्तर्गत जो मन होता है, वह मन जहाँ विलयको प्राप्त होता है, वह स्थान ही विष्णुका परमपद है। राम-राम सीताराम।

हलधर—मनोलय विष्णुका परमपद है?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

सा कुण्डलिनी कण्ठोर्ध्वभागे सुप्ता चेद् योगिनां मुक्तये भवति। बन्धनायाधो मूढानाम्। इडादिमार्गद्वयं विहाय सुषुम्नामार्गेणागच्छेत् तद् विष्णोः परमं पदम्।

(शाण्डिल्योपनिषद् १। ३७)

'वह कुण्डलिनी शक्ति यदि कण्ठके ऊर्ध्वभागमें निद्रित रहती है तो वह योगियोंके लिये मुक्तिका कारण बनती है और अधोभागमें मूढ़ लोगोंके बन्धनका हेतु होती है। निद्रा टूटनेपर यह इडा-पिङ्गला मार्गको त्याग करके सुषुम्णा मार्गसे गमन करती है। यही विष्णुका परमपद है। राम-राम सीताराम।

गङ्गायमुनयोर्मध्ये बालरम्भां तपस्विनीम्।
बलात्कारेण गृह्णीयात् तद्विष्णोः परमं पदम्॥

(हठयोगप्रदीपिका)

ज्योतिर्मयी सुषुम्णा नाड़ीको पकड़े, वही विष्णुका परमपद है। राम-राम सीताराम।

हलधर—सुषुम्णाको ही आपने परमपद कहा?

पागल—राम-राम सीताराम। हाँ, सीताराम।

राजयोगः समाधिश्च उन्मनी च मनोन्मनी।
अमरत्वं लयस्तत्त्वं शून्याशून्यं परं पदम्॥
अमनस्कं तथाद्वैतं निरालम्बं निरञ्जनम्।
जीवन्मुक्तिश्च सहजा तुर्या चेत्येकवाचकाः॥

(हठयोगप्रदीपिका)

'राजयोग, समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, तत्त्व, शून्याशून्य, परमपद, अमनस्क, अद्वैत, निरालम्ब, निरञ्जन, जीवन्मुक्ति, सहजा, तुर्या—ये शब्द एकार्थवाचक हैं।' राम-राम सीताराम।

हलधर—एक परमपद इतने नामोंसे पुकारा जाता है! अच्छा, पागल बाबा! सुषुम्णामें प्रवेश करनेसे ही क्या परमपद प्राप्त हो जाता है?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। नहीं, सीताराम। सुषुम्णामें प्रवेश करके जब कुण्डलिनी सहस्रारमें परम शिवके साथ मिलती है, वास्तविक परमपदकी प्राप्ति तभी होती है। राम-राम सीताराम।

परमं पदमिति च प्राणेन्द्रियाद्यन्तःकरणगुणादेः परतरं सच्चिदानन्दमयं नित्यमुक्तब्रह्मस्थानं परमं पदम्।

(निरालम्बोपनिषद्)

'प्राण-इन्द्रिय आदि अन्तःकरणके गुण आदिके परे सच्चिदानन्दमय नित्यमुक्त ब्रह्मस्थानका नाम परमपद है।'

व्यक्ता तु प्रथमा मात्रा द्वितीयाव्यक्तसंज्ञका।
मात्रा तृतीया चिच्छक्तिरर्द्धमात्रा परं पदम्॥

(मार्कण्डेयपुराण)

'प्रथम मात्रा अकार, पृथिवी, अग्नि, ब्रह्मा आदि व्यक्ता हैं; द्वितीया मात्रा उकार, अन्तरिक्ष, विष्णु आदि अव्यक्ता हैं और तृतीया मात्रा मकार, द्यौ, शिव चिच्छक्ति हैं तथा अर्द्धमात्रा परम पद है।' राम-राम सीताराम।

यद् योगिनः सदोद्युक्ताः पुण्यपापक्षयेऽक्षयम्।
पश्यन्ति प्रणवे चिन्त्यं तद्विष्णोः परमं पदम्॥

(विष्णुपुराण १। ९। ५४)

'सदा साधनमें उद्युक्त, ध्यानमें निपुण योगीजन पुण्य-पापके क्षय होनेपर प्रणवमें चिन्तनीय विष्णुके उस अक्षय परमपदको देखते हैं।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीजाक्षरं परं बिन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम् ।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम् ॥
(ध्यानबिन्दूपनिषद् २)

'बीज ॐकार है, उसके परे बिन्दु है और उसके ऊपर स्थित है—नाद। शब्दके साथ अक्षर नादके क्षीण होनेपर शब्दशून्य अवस्थाका नाम परमपद है।'

यन्मनस्त्रिजगत्सृष्टिस्थितिल्यसनकर्मकृत् ।
तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥
(ध्यानबिन्दूपनिषद् २५)

'जो मन सृष्टि, स्थिति और लय करता है, वह मन जहाँ विलय होता है, वही विष्णुका परमपद है।' राम-राम सीताराम।

हलधर—सब प्रणवका ही व्यापार देखता हूँ!

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। ॐकारके अतिरिक्त क्या और कुछ है? बाह्यजगत्, अन्तर्जगत्, शब्दजगत्—सब ॐकारसे उद्भूत है और ॐकारमें ही लय हो जायगा। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डरूपमें ब्रह्माण्डमें व्याप्त होकर एकमात्र ॐकार ही लीला करता है। जगत्में जो कुछ देखनेमें आता है, सब कुछ उस ॐकार पुरुषोत्तमका लीला-विग्रह है। पशु-पक्षी, वृक्ष-लता, कीट-पतङ्ग, मनुष्य-देवता, पिशाच-राक्षस सब कुछ ॐकार है। धूलके कण या हिमालय पर्वत सब कुछ उस पुरुषोत्तमके लीला-विग्रह हैं। राम-राम सीताराम।

हलधर—कहिये, परमपदके विषयमें और कुछ कहिये।
पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

अकारे रेचितं पद्ममुकारेणैव भिद्यते ॥
मकारे लभते नादमर्द्धमात्रा तु निश्चला ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं निष्कलं पापनाशनम् ॥
लभते योगयुक्तात्मा पुरुषस्तत् परं पदम् ।
(योगतत्त्वोपनिषद् १३८, १३९, १४०)

'अकारमें पद्म रेचित होता—निकलता है, उकारमें भिन्न होता—खिल जाता है, मकारमें नादको प्राप्त करता है और अर्द्धमात्रा निश्चला होती है। वह विशुद्ध स्फटिकके समान श्वेतवर्ण, निष्कल और पापनाशक होता है। योगयुक्त चित्त-वाले पुरुष उस परमपदको प्राप्त होते हैं।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—और भी कहिये।
पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

त्रयो लोकास्त्रयो वेदास्त्रिस्रः संध्यास्त्रयः स्वराः ॥
त्रयोऽग्नयश्च त्रिगुणाः स्थिताः सर्वे त्रयाक्षरे ।
त्रयाणामक्षराणां च योऽधीतेऽप्यर्द्धमक्षरम् ॥
तेन सर्वमिदं प्रोतं तत्सत्यं तत्परं पदम् ।
(योगतत्त्वोपनिषद् १३४–१३६)

'भूः, भुवः, स्वः—तीन लोक; ऋक्, यजुः, साम—तीन वेद; प्रातः, मध्याह्न, सायं—तीन संध्या; उदात्त, अनुदात्त, स्वरित—तीन स्वर; गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिण—तीन अग्नि; सत्त्व, रजः, तमः—तीन गुण—ये सब-के-सब अकार, उकार, मकार—इन तीन अक्षरोंमें अवस्थित हैं। इन तीनों अक्षरोंके बीच जो अर्द्धमात्रा है, उसके द्वारा ये सब समाच्छन्न हैं। वही सत्य है, वही परमपद है।' राम-राम सीताराम।

हलधर—सब कुछ ॐकारकी लीला है?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। कन्हैयाके बिना गीत नहीं। सब कुछ प्रणव है।

लयविक्षेपरहितं मनः कृत्वा सुनिश्चलम् ।
यदा यात्यमनीभावं तदा तत्परमं पदम् ॥
(मैत्रायणी उपनिषद् ४ । ७)

'लय-विक्षेपरहित मनको भलीभाँति स्थिर करके जो अमनीभाव उपस्थित होता है, वह विष्णुका परमपद है।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—इस परमपदको कौन प्राप्त कर सकता है?
पागल—राम राम सीताराम। जय जय राम सीताराम।

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥
(कठ० १ । ३ । ८)

'जो विज्ञानवान्, अनुभवसम्पन्न, मननशील, नित्यशुचि है, वही उस परम पदको प्राप्त करता है; उसको फिर जन्म नहीं लेना पड़ता।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। बाह्य-विषयका त्याग किये बिना परमपद प्राप्त नहीं होता। राम-राम सीताराम।

हलधर—यह बड़ी कठिन बात है। 'बाह्य विषय स्मरण न करूँगा।' यह कहनेपर भी मन बलात्कारसे किसी बहाने विषयमें कूद पड़ता है। वह कौन-सा साधन—अभ्यास है जिससे मन विषयशून्य होता है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पागल–राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

केवल नाम-जप करो, नाम-जप करते रहनेपर मनको सहज ही विषयशून्य किया जा सकता है। राम-राम सीताराम।

परमपदप्रतिमो हि साधुसङ्गः। (योगवासिष्ठ ५। २१। ७८)

'साधुसङ्ग परम पदके तुल्य है।' राम-राम सीताराम, सीताराम। यदि कुछ न हो सके तो केवल साधुसङ्ग करो। उसीके द्वारा कृतार्थ हो जाओगे। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर–साधुसङ्गकी प्राप्तिसे तो सहज ही हो जायगा, परंतु वह भी अतिदुर्लभ है। अच्छा परमपदकी बात करें।

पागल–राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। जगन्माता ही परमपद है।

एषा माहेश्वरी देवी मम शक्तिर्निरञ्जना।
शान्ता सत्या सदानन्दा परं पदमिति श्रुतिः॥
अस्याः सर्वमिदं जातमत्रैव लयमेष्यति।
एषैव सर्वभूतानां गतीनामुत्तमा गतिः॥
(कूर्मपुराण)

'यह माहेश्वरी देवी मेरी निरञ्जना शक्ति हैं, यह शान्ता, सत्या, सदानन्दा हैं, श्रुति इनको परमपद कहती है। इनसे यह सारा जगत् उत्पन्न होता है और अन्तमें इनमें ही लीन होगा। यही सर्वभूतोंकी गति है। उनमें भी सबसे श्रेष्ठ गति है।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर–तब तो जगन्माता ही परम पद हैं!

पागल–राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। सुनो—

तत्रैकावयवं ध्यायेदव्युच्छिन्नेन चेतसा।
मनो निर्विषयं युङ्क्त्वा ततः किञ्चन न स्मरेत्।
पदं तत्परमं विष्णोर्मनो यत्र प्रसीदति॥
(श्रीमद्भागवत २। १। १९)

'स्थिर चित्तसे एक-एक अवयवका ध्यान करे। निर्विषय मनको उससे युक्त करे। तत्पश्चात् और कुछ स्मरण न करे। वही विष्णुका परमपद है जहाँ मन प्रसन्न होता है।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

स च विष्णुः परं ब्रह्म यतः सर्वमिदं जगत्।
जगच्च यो यत्र चेदं यस्मिन् विलयमेष्यति॥
तद्ब्रह्म परमं धाम सदसत् परमं पदम्।
(ब्रह्मपुराण २३। ४१-४२)

राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। 'वह विष्णु परम ब्रह्म हैं। जिससे यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ है, जो जगत् है, जिसका जगत् है, जिसमें जगत् विलीन हो जायगा, वही ब्रह्म परम धाम है। वह सत्-असत् परमपद है।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। अच्छा और सुनो—

परं गुह्यतमं विद्धि ह्यस्ततन्द्रो निराश्रयः।
सोमरूपकला सूक्ष्मा विष्णोस्तत् परमं पदम्॥
(तेजोबिन्दूपनिषद् १। ५)

'अतिशय गुह्यतम, अस्ततन्द्रा, निराश्रय सोमरूप सूक्ष्म कला है, वही विष्णुका परमपद है।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर–शान्त अवस्थाका ही नाम परमपद है। परमपदके और भी नाम हैं?

पागल–राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। वह नित्य विभूति है—आमोद, प्रमोद, सम्मोद, वैकुण्ठरूपमें चार प्रकारका। पुनः अनन्ता, त्रिपादविभूति, परमपद, परम व्योम, परमाकाश, अमृत, नाक, अप्राकृतलोक, आनन्दलोक, वैकुण्ठ, अयोध्या आदि भी उसके नाम हैं।

इस विभूतिमें द्वादश आवरणयुक्त गोपुर प्राकारसमूहके द्वारा आवृत वैकुण्ठ नामक नगर है। आनन्द नामक दिव्य आलय है। उसके भीतर रत्नमय सहस्रों स्तम्भोंसे विरचित महामणिमण्डप नामक सभा है। उसमें सहस्र-फण मणि-तेजसे युक्त अनन्त विराजमान हैं। उसपर दिव्य धर्म, ज्ञान-वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्यमय दिव्य सिंहासन है। उसके ऊपर चामरधारिणी विमला, उत्कर्षिणी ज्ञान, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशानीद्वारा सेवित अष्टदल पद्म है। उसके ऊपर शेषनागका प्रकृष्ट धाम है और उसके ऊपर अनिर्वचनीय श्रीभगवान् हैं। (यतीन्द्रमतदीपिका)

हलधर–हे हरि! वैकुण्ठ, परम व्योम, अयोध्या, आनन्द-लोक—सब परमपदके ही नाम हैं?

पागल–राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। हाँ, सीताराम। राम-राम सीताराम। पाप-पुण्य और नाना प्रकारके पीड़ा-दुःखोंके कारणोंके निवृत्त होनेपर प्राणी जहाँ गमन करते हैं और शोक नहीं करते, वही विष्णुका परमपद है। धर्म और ध्रुव आदि लोकसाक्षीगण इन्द्रियवशीकरण आदिसे प्राप्त योगबलसे दीप्तिमान् होकर जहाँ धर्माचरण करते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही विष्णुका परमपद है। जो आकाशमें प्रकाशमान सूर्य-रूपी चक्षुके समान सर्वभासक, तन्मयचित्त योगीजनको विवेकज्ञानके द्वारा अपरिच्छिन्नरूपमें परिज्ञात होता है वही विष्णुका परमपद है। यह वर्तमान, भूत और भविष्य चराचर जगत् जहाँ ओतप्रोत रहता है, वही विष्णुका परम-पद है—(विष्णुपुराण द्वितीय अंश, अध्याय ८। १००–१०३)

कौषीतकि उपनिषद्में ब्रह्मलोकका वर्णन

अमानव पुरुषके द्वारा ले जाये जानेपर जिसकी प्राप्ति हुई है, जो शास्त्रप्रसिद्ध है तथा ब्रह्मवेत्तागण जिसका स्मरण कर गये हैं; जो आज भी प्रत्यक्षसिद्ध यथार्थरूपमें होनेके कारण उपासकके लिये प्रत्यक्ष सिद्ध है, उस ब्रह्मलोक या हिरण्यगर्भलोकमें प्रविष्ट होनेपर पहले जो ह्रद पड़ता है, उसका नाम है—'आर'। वह 'आर' ह्रद ब्रह्मलोक जानेके मार्गको अवरुद्ध करके स्थित है। वह ह्रद शत समुद्रके समान गहरा है और उसका जल सदा नीला रहता है। काम-क्रोधादि अरिवर्गके द्वारा वह ह्रद विरचित है, अतएव उसका नाम रक्खा गया है 'आर'। उसी आर ह्रदके उस पार मुहूर्त अथवा दण्डद्वय कालके अभिमानी देवता लोग निवास करते हैं। वे देवता किस प्रकारके हैं?

.....जो लोग ब्रह्मलोकप्राप्तिके अनुकूल उपासनाको काम-क्रोधादि प्रवृत्तिके उत्पादनके द्वारा विनष्ट कर देते हैं। उस ब्रह्मलोकमें उसके बाद जो नदी है, उसका नाम है—'विजरा'। जिसका दर्शन करनेसे जरावस्था नष्ट हो जाती है, उसको 'विजरा' कहते हैं। वह उपासना क्रिया है। उस नदीका नाम भी ऐसा ही है। जो वृक्ष है उसका नाम 'ईला' है। ईला शब्द पृथ्वीका वाचक है। तद्रूप ही सारे वृक्ष हैं। इस वृक्षको अन्य उपनिषद्में 'सोमसवन' नामक अश्वत्थ वृक्ष कहा गया है। बहुत-से लोगोंके निवास योग्य पत्तन 'सालज्य' नामक है अर्थात् साल वृक्षके समान है, धनुषके च्याके सदृश वस्तु जिसके तीरपर है। अतएव उसको सालज्य कहते हैं। अर्थात् देवताओंके द्वारा सेव्यमान आराम, वापी, कूप, तडाग और सरित् आदि विविध जलोंसे परिपूर्ण छोटे-बड़े नगर-नगरी वहाँ विराजमान ब्रह्मके निवासस्थल हैं, जहाँ हिरण्यगर्भका राजमन्दिर है। उसका नाम 'अपराजित' है। वह स्थान अनेक सूर्यके समान दीप्तिमान् होनेके कारण किसीके द्वारा पराजित होने योग्य नहीं है, इसी कारण वह 'अपराजित' है। उस अपराजित नामक राजमन्दिरमें जो दो द्वारपाल हैं, उनके नाम हैं—इन्द्र और प्रजापति। स्तनयित्नु (मेघ) और यज्ञको लक्ष्य करके वायु और आकाशको इन्द्र और प्रजापति नामसे कहा गया है। उसके सभास्थलका नाम है 'विभुप्रमित'; अर्थात् अत्यन्त अधिक अहंकारस्वरूप। जो 'अहं' या 'मैं' इस प्रकारके सामान्यरूपमें प्रमित अथवा प्रमाणद्वारा प्रतीत होता है, वह निरवच्छिन्न अत्यन्त अधिक अहंकार भाग ही उसका सामान्यतः सभास्थल है। सभा-स्थलका नाम है—'विभुप्रमित' और उसकी 'आसन्दी' अर्थात् सभाकी मध्यवेदीका नाम है—'विचक्षणा'। बुद्धितत्त्व या महत्तत्त्व आदि शब्दके द्वारा उस सभाकी मध्यवेदीका परिचय मिलता है। विचक्षणाका अर्थ है—'कुशला'। उस मध्य-वेदीमें जो पर्यङ्क है, वह 'अमितौजा' अर्थात् प्राण-संवादादिसे प्रसिद्ध और विज्ञात हो गया है। जिसमें अमित या अपरिमित ओजः, बल है, वह प्राण ही है। वह प्राण ही उसका मञ्चक है। हिरण्यगर्भके आसनरूपमें प्राण पर्यङ्करूप है। उनकी प्रिया 'मानसी' है। वह मनकी कारणभूता प्रकृति और मनोगत आह्लादकारिणी भार्या है। उनकी मानसी भार्याके अलंकार आदि भी मानसी हैं, मनोगत आह्लादकारी हैं। उनकी प्रतिच्छाया चाक्षुषी है अर्थात् चक्षुकी प्रकृतिके स्वरूप तैजसी या तेजोमयी है। जरायुज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज—इन चार प्रकारके भूतोंको 'जगत्' कहते हैं। यह जगत् जिनके पुष्प एवं उत्तरीय तथा अधरीय वसन हैं; ये भूत सारे लोक-संस्थानके सहित जिनके कुसुम हैं; जिस प्रकार कुसुम कलिकावस्थासे प्रस्फुटित होकर जनसाधारणको सुगन्ध प्रदान करते हैं, उसी प्रकार भूतवर्ग भी बाल्यावस्थासे क्रमशः यौवनादिको प्राप्त होकर जनसाधारणके मनको आनन्द प्रदान करते हैं; तथा कुसुमके समान ही समय आनेपर कलेवर छोड़ देते हैं। केवल पुष्प ही नहीं, चारों ओर जो तन्तुसंतानके द्वारा निष्पादित पट, आच्छादन तथा परिधानके साधन वसन हैं, वे उसके स्वरूप हैं। जिस प्रकार सब प्राणी सङ्कोच और विकासमें तत्पर हैं, दोनों वस्त्र भी उसी प्रकारके हैं। इसी कारण चतुर्विध भूत उनके पुष्प और वसनका कार्य करते हैं। इसी प्रकार 'अम्बा' और 'अम्बायवी' वहाँकी अप्सराएँ हैं। जगत्की जननी (अम्बा) श्रुतियाँ हैं तथा न्यूनाधिक भावरहित बुद्धियाँ अम्बायवी हैं। ये श्रुतियाँ और बुद्धियाँ वहाँकी अप्सरा या साधारण स्त्री हैं। वहाँकी साधारण स्त्री श्रुतियाँ भी हैं और बुद्धियाँ भी हैं। पुर और पत्तनवासी लोगोंके भोगके लिये जलप्रवाहधारिणी नदियाँ अम्बया हैं। 'अम्ब' शब्दका अर्थ है—लोचन, अर्थात् ब्रह्म-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान। उसको जिसके द्वारा प्राप्त किया जाय, उसे 'अम्बया' कहते हैं। अम्बया शब्दका अर्थ है—उपासना। सब नदियोंका प्रवाह है—उपासनाकी धारा।

श्रीमद्भागवत (३। १५)में वर्णित वैकुण्ठ

"उस वैकुण्ठधाममें सभी लोग विष्णुरूप होकर रहते हैं और वह प्राप्त भी उन्हींको होता है, जो अन्य सब प्रकारकी कामनाएँ छोड़कर केवल भगवच्चरण-शरणकी प्राप्तिके लिये ही अपने धर्मद्वारा उनकी आराधना करते हैं। वहाँ वेदान्त-प्रतिपाद्य धर्ममूर्ति श्रीआदिनारायण हम अपने भक्तोंको सुख देनेके लिये शुद्धसत्त्वमय स्वरूप धारणकर हर समय विराजमान रहते हैं। उस लोकमें 'नैःश्रेयस' नामका एक वन है, जो मूर्तिमान् कैवल्य-सा ही जान पड़ता है। वह सब प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले वृक्षोंसे सुशोभित है, जो स्वयं हर समय छहों ऋतुओंकी शोभासे सम्पन्न रहते हैं।

"वहाँ विमानचारी गन्धर्वगण अपनी प्रियाओंके सहित अपने प्रभुकी पवित्र लीलाओंका गान करते रहते हैं, जो लोगोंकी सम्पूर्ण पापराशिको भस्म कर देनेवाली हैं। उस समय सरोवरोंमें खिली हुई मकरन्दपूर्ण वासन्तिक माधवी लताकी सुमधुर गन्ध उनके चित्तको अपनी ओर खींचना चाहती है, परंतु वे उसकी ओर ध्यान ही नहीं देते, वरं उस गन्धको उड़ाकर लानेवाले वायुको ही बुरा-भला कहते हैं। जिस समय भ्रमरराज ऊँचे स्वरसे गुंजार करते हुए मानो हरि-कथाका गान करते हैं, उस समय थोड़ी देरके लिये कबूतर, कोयल, सारस, चकवे, पपीहे, हंस, तोते, तीतर और मोरोंका कोलाहल बंद हो जाता है—मानो वे भी उस कीर्तनानन्दमें बेसुध हो जाते हैं। श्रीहरि तुलसीसे अपने श्रीविग्रहको सजाते हैं और तुलसीकी गन्धका ही अधिक आदर करते हैं—यह देखकर वहाँके मन्दार, कुन्द, कुरबक (तिलकवृक्ष), उत्पल (रात्रिमें खिलनेवाले कमल), चम्पक, अर्ण, पुन्नाग, नागकेसर, बकुल (मौलसिरी), अम्बुज (दिनमें खिलनेवाले कमल) और पारिजात आदि पुष्प सुगन्धयुक्त होनेपर भी तुलसीका ही तप अधिक मानते हैं। वह लोक वैदूर्य, मरकतमणि (पन्ने) और सुवर्णके विमानोंसे भरा हुआ है। ये सब किसी कर्मफलसे नहीं, बल्कि एकमात्र श्रीहरिके पादपद्मोंकी वन्दना करनेसे ही प्राप्त होते हैं। उन विमानोंपर चढ़े हुए कृष्णप्राण भगवद्-भक्तोंके चित्तोंमें बड़े-बड़े नितम्बोंवाली सुमुखी सुन्दरियाँ भी अपनी मन्द मुसकान एवं मनोहर हास-परिहाससे काम-विकार नहीं उत्पन्न कर सकतीं।

"परम सौन्दर्यशालिनी लक्ष्मीजी, जिनकी कृपा प्राप्त करनेके लिये देवगण भी यत्नशील रहते हैं, श्रीहरिके भवनमें चञ्चलतारूप दोषको त्यागकर रहती हैं। जिस समय अपने चरण-कमलोंके नूपुरोंकी झनकार करती हुई वे अपना लीला-कमल घुमाती हैं, उस समय उस कनक-भवनकी स्फटिकमय दीवारोंमें उनका प्रतिबिम्ब पड़नेसे ऐसा जान पड़ता है मानो वे उन्हें बुहार रही हों। प्यारे देवताओ! जिस समय दासियोंको साथ लिये वे अपने क्रीडावनमें तुलसीदलद्वारा भगवान्‌का पूजन करती हैं, तब वहाँके निर्मल जलसे भरे हुए सरोवरोंमें, जिनमें मूँगेके घाट बने हुए हैं, अपना सुन्दर अलकावली और उन्नत नासिकासे सुशोभित मुखारविन्द देखकर 'यह भगवान्‌का चुम्बन किया हुआ है' यों जानकर उसे बड़ा सौभाग्यशाली समझती हैं।" (श्रीमद्भागवत ३। १५। १४–२२)।

राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। अच्छा, और सुनो।

"प्रकृति और परव्योमके बीच पवित्र विरजा नदी अवस्थित है, वह वेदाङ्गरूपी घर्मवारि (स्वेद-जल) के द्वारा प्रवाहित हो रही है। इस विरजाके उस पार त्रिपादविभूतिशाली सनातन, अमृत, शाश्वत, नित्य और अनन्त, अर्थात् परिमाणरहित परम व्योम नामक स्थान है। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। वह शुद्ध सत्त्वमय अलौकिक, अविनाशी एवं ब्रह्मका आश्रय है। दूसरा जो धाम अनेक कोटि सूर्य और अग्निके समान तेजोमय है, वहाँ सर्ववेदस्वरूप, शुभ्रवर्ण, सब प्रकारके प्रलयसे वर्जित, संख्या-शून्य, अजर, सत्य, जाग्रत्-स्वप्नादि तीनों अवस्थाओंसे रहित, स्वर्णमय, मोक्षप्रद, ब्रह्मानन्द सुखस्वरूप तथा जिसके समान या अधिक कुछ नहीं है; जो आदि-अन्तशून्य, मङ्गल-स्वरूप, अतिशय अद्भुत, रमणीय, नित्य और आनन्द-समुद्र इत्यादि गुणयुक्त है, वही विष्णुका परमपद है। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।" (संक्षेप भागवतामृतमें उद्धृत पद्मपुराण, उत्तरखण्ड)

राम-राम सीताराम। वैकुण्ठमें सभी शुद्धसत्त्वमय पार्षदोंके उज्ज्वल श्यामवर्ण, पद्मलोचन, पीताम्बर-परिधान, अति कमनीय सुकुमार आकृति है। सभी चतुर्भुज हैं, सबके वक्षःस्थलपर अतिशय प्रभाशाली मणियुक्त पदक देदीप्यमान है तथा सभी अति तेजस्वी हैं। उनकी कान्ति प्रवाल, वैदूर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मृणालके समान है तथा वे सब दीप्तियुक्त कुण्डल, किरीट और माला धारण करके रहते हैं। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—सुन्दर, सुन्दर ! कहिये, कहिये—वैकुण्ठके विषयमें और भी कुछ कहिये।

पागल—राम राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। वैकुण्ठमें सुनन्द, नन्द, प्रबल, अर्हन आदि प्रधान-प्रधान पार्षदोंके द्वारा श्रीहरि सेवित होते हैं। राम-राम सीताराम। वहाँ चण्ड, प्रचण्ड, भद्र, सुभद्र, जय, विजय, धाता, विधाता, कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शङ्कुकर्ण, सर्वभद्र, सुमुख आदि द्वारपालगण बड़ी सावधानीसे पहरा देते हैं। राम-राम सीताराम। यहाँ सम्पत्तिरूपिणी श्री मूर्तिमती होकर विविध वैभवोंके द्वारा श्रीभगवान्‌के चरणारविन्द-युगलकी सेवा करती हैं और निरन्तर अपने प्रियतम श्रीहरिका गुणगान करती रहती हैं। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—बोलिये—वैकुण्ठकी बात और सुनाइये !

पागल—राम-राम सीताराम। मोक्ष, परमपद, दिव्य, अमृत, विष्णु, मन्दिर, अक्षर, परमधाम, वैकुण्ठ, शाश्वतपद, नित्य, परम व्योम, सर्वोत्कृष्ट और सनातन—ये सब शब्द परम व्योमके पर्यायवाची हैं। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

त्रिगुणात्मिका प्रकृति और परम व्योमके बीच विरजा नदी विद्यमान है। यह विरजा वेदाङ्गसे उत्पन्न है, स्वेदजल-के द्वारा प्रवाहित है। उसके दूसरे पार महाकाश है। उस महाकाशमें सनातनी त्रिपादविभूति वर्त्तमान है। वह त्रिपादविभूति अक्षर ब्रह्मपद है। वह अमृत, शाश्वत, नित्य, अनन्त, परम शुद्ध सत्त्वमय और दिव्य है। उसकी अव्यय कान्ति अनन्त-कोटि सूर्य और अग्निके समान है।

भगवत्पादसेवक महात्मा महाभागवतगण ब्रह्मसुख प्रदान करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुके उस परम धाममें गमन करते हैं। उस परम धाम—वैकुण्ठमें नाना प्रकारके रत्नोंसे जटित प्राकार और सौध हैं और उसके भीतर एक दिव्य नगरी है। वह नगरी मणि और काञ्चनके नाना चित्रोंसे समृद्ध तथा नाना प्रकारके तोरणोंसे समन्वित है। उस पुरीके बीचमें श्रीहरिका मनोहर मण्डप विद्यमान है। वह मण्डप मणिमय प्राकारसे युक्त रत्न-तोरणसे सुशोभित है। नाना प्रकारके विमान तथा उत्तम गृह-प्रासादद्वारा समलंकृत है। बड़े ऊँचे मण्डपके समान यह राजस्थान है। यह शुभ स्थान रत्नमय, सहस्रों मणि-माणिक्यमय स्तम्भोंसे युक्त है। दिव्य मुक्तासमाकीर्ण है तथा सामगानसे परम रमणीय है। उसके बीचमें सर्ववेदमय सुरम्य शुभ्र सिंहासन विद्यमान है। वह सिंहासन वेदमयात्मक धर्मादि देवगण, धर्म, ज्ञान, महैश्वर्य, वैराग्य, पाद, विग्रह, ऋक्, यजुः, साम और अथर्व—इन सबके द्वारा यथाक्रम नित्य परिवृत है। शक्ति, चिच्छक्ति, सदाशिवा तथा धर्मादि देवगणोंकी शक्तियाँ उसकी आधार-शक्ति हैं। उसके भीतर वह्नि, चन्द्र और सूर्य वास करते हैं तथा कूर्म, नागराज, वैनतेय, वेदाधिप मन्त्रोंके छन्द—ये सब उस सिंहासनके पीठत्वको प्राप्त हो रहे हैं। यह पीठ 'सर्वाक्षरमय योगपीठ'के नामसे अभिहित है। सिंहासनके बीचमें नवोदित आदित्यकी प्रभाके समान अष्टदल पद्म विराजमान है। उसमें सावित्री नामकी कर्णिकामें ईश्वरीके साथ परमपुरुष देवेश भगवान् श्रीहरि समासीन हैं। वे इन्दीवरदलके समान श्यामवर्ण और कोटि-सूर्यके समान दीप्तिमन्त हैं। उनकी युवा, कुमार स्निग्ध दिव्य कोमल काया है। उनके प्रस्फुटित रक्तपदप्रभ कमलके समान कोमल चरण-युगल हैं। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

—(सुगम साधन-पन्था)

हलधर—सुन्दर ! सुन्दर ! कैसे सुन्दर भगवान् श्रीहरि हैं। कहिये, कहिये पागल बाबा और भी कहिये।

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। श्रीभगवान् रामानुजाचार्य कहते हैं* कि "निरन्तर आध्यात्मिक जीवनमें उन्नति प्राप्त करनेके लिये बार-बार इस प्रकार चिन्तन करे—यह जो चौदह भुवनोंमें विभाजित ब्रह्माण्ड है, उसके जो उत्तरोत्तर दसगुने सात आवरण हैं तथा जो समस्त कार्य-कारण-समुदाय है, उन सबसे परे दिव्य शोभासे सम्पन्न अलौकिक वैकुण्ठधाम विराजमान है। उसका दूसरा नाम है—'परम व्योम'। ब्रह्मा आदि देवताओंके मन-वाणी भी वहाँतक नहीं पहुँच सकते। वह नित्यधाम वैकुण्ठ असंख्य दिव्य महात्मा पुरुषोंसे भरा हुआ है। वे महात्मा नित्य-सिद्ध हैं। भगवान्‌की अनुकूलता ही उनका एकमात्र भोग (सुख-साधन) है। उनका स्वभाव और ऐश्वर्य कैसा है, इसका वर्णन करना तो दूर रहा—सनकादि महात्मा, ब्रह्मा और शिव आदि भी इसको मनसे सोचतक नहीं

* 'श्रीवैकुण्ठगद्यम्'का अंश। 'कल्याण' 'संतवाणी-अंक' द्वितीय खण्डसे उद्धृत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते। उन महात्माओंका ऐश्वर्य इतना ही है, उसकी इतनी ही मात्रा है अथवा उसका ऐसा ही स्वभाव है—इत्यादि बातोंका परिच्छेद (निर्धारण या निश्चय) करना भी वहाँके लिये नितान्त अनुचित है। वह दिव्य धाम एक लाख दिव्य आवरणोंसे आवृत है। दिव्य कल्पवृक्ष उसकी शोभा बढ़ाते रहते हैं। वह वैकुण्ठलोक शतसहस्र कोटि दिव्य उद्यानोंसे घिरा हुआ है। उसका दीर्घ विस्तार नापा नहीं जा सकता। वहाँके निवासस्थान भी अलौकिक हैं। वहाँ एक दिव्य सभाभवन है, जो विचित्र एवं दिव्य रत्नोंसे निर्मित है। उसमें शतसहस्रकोटि दिव्य रत्नमय खंभे लगे हैं, जो उस भवनकी शोभा बढ़ाते रहते हैं। उसका फर्श नाना प्रकारके दिव्य रत्नोंसे निर्मित होनेके कारण अपनी विचित्र छटा दिखाता है। वह सभा-भवन दिव्य अलंकारोंसे सजा हुआ है। कितने ही दिव्य उपवन सब ओरसे उस सभा-भवनकी श्रीवृद्धि करते हैं। उनमें भाँति-भाँतिकी सुगन्धसे भरे हुए रंग-बिरंगे दिव्य पुष्प सुशोभित हैं, जिनमेंसे कुछ नीचे गिरे रहते हैं, कुछ वृक्षोंसे झड़ते रहते हैं और कुछ उन वृक्षोंकी डालियोंपर ही खिले रहते हैं। घनी श्रेणियोंमें लगे हुए पारिजात आदि कल्पवृक्षोंसे शोभायमान लक्षकोटि दिव्योद्यान भी उक्त सभा-भवनको पृथक्-पृथक् घेरे हुए हैं। उन उद्यानोंके भीतर पुष्पों तथा रत्न आदिसे निर्मित लाखों दिव्य लीलामण्डप उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। वे सर्वदा उपभोगमें आते रहनेपर भी अपूर्वकी भाँति वैकुण्ठवासियोंके लिये अत्यन्त आश्चर्यजनक जान पड़ते हैं। लाखों क्रीडापर्वत भी उक्त उद्यानोंको अलंकृत कर रहे हैं। उनमेंसे कुछ उद्यान तो केवल भगवान् नारायणकी दिव्य लीलाओंके असाधारण स्थल हैं और कुछ पद्मभवनमें निवास करनेवाली भगवती लक्ष्मीकी दिव्य लीलाओंके विशेष रङ्गस्थल हैं। कुछ उद्यान शुक, सारिका, मयूर और कोकिल आदि दिव्य विहंगमोंके कोमल कलरवसे व्याप्त रहते हैं। उक्त सभा-भवनको सब ओरसे घेरकर दिव्य सौगन्धिक कमल-पुष्पोंसे भरी लाखों बावलियाँ शोभा पा रही हैं। दिव्य राजहंसोंकी श्रेणियाँ उन बावलियोंकी श्रीवृद्धि करती हैं। उनमें उतरनेके लिये मणि, मुक्ता और मूँगोंकी सीढ़ियाँ बनी हैं। दिव्य निर्मल अमृतरस ही उनका जल है। अत्यन्त रमणीय दिव्य विहंगप्रवर, जिनके मधुर कलरव बड़े ही मनोहर हैं, उन बावलियोंमें भरे रहते हैं। उनके भीतर बने हुए मोतियोंके दिव्य क्रीडास्थान शोभा देते हैं। सभाभवनके भीतर भी कितने ही क्रीड़ा-प्रदेश उसकी शोभा बढ़ाते हैं, जो सर्वाधिक आनन्दैकरस-स्वभाव एवं अनन्त होनेके कारण अपने भीतर प्रवेश करनेवाले वैकुण्ठवासियोंको आनन्दोन्मादसे उन्मत्त किये देते हैं। उस भवनके विभिन्न भागोंमें दिव्य पुष्पशय्याएँ बिछी रहती हैं।

"नाना प्रकारके पुष्पोंका मधु पीकर उन्मत्त हुई भ्रमरावलियाँ अपने गाये हुए दिव्य संगीतकी मधुर ध्वनिसे उक्त सभामण्डपको मुखरित किये रहती हैं। चन्दन, अगुरु, कर्पूर और दिव्य पुष्पोंकी सुगन्धमें डूबी हुई मन्द-मन्द वायु प्रवाहित होकर उक्त सभाके सदस्योंकी सेवा करती रहती है।

"उस सभामण्डपके मध्यभागमें महान् दिव्य योग-शय्या सुशोभित है, जो दिव्य पुष्पराशिके संचयसे विचित्र सुषमा धारण किये हुए है। उसपर भगवान् अनन्त (शेषनाग) का दिव्य शरीर शोभा पाता है। उसपर अनुरूप शील, रूप और गुण-विलास आदिसे सुशोभित भगवती श्रीदेवीके साथ भगवान् श्रीहरि विराजमान रहते हैं। वे श्रीदेवी अनुपम शोभाशाली वैकुण्ठके ऐश्वर्य आदिसे सम्पन्न सम्पूर्ण दिव्य लोकको अपनी अनुपम कान्तिसे आप्यायित (परिपुष्ट) करती रहती है। शेष और गरुड़ आदि समस्त पार्षदोंको विभिन्न अवस्थाओंमें भगवान्की आवश्यक सेवाके लिये आदेश देती रहती है।

"भगवान्के दोनों नेत्र तुरंतके खिले हुए कमलोंकी शोभाको तिरस्कृत करते हैं। उनके श्रीअङ्गोंका सुन्दर रंग निर्मल श्याम मेघसे भी अधिक मनोहर है। श्रीविग्रहपर पीले रंगका प्रकाशमान वस्त्र सुशोभित रहता है। भगवान् अपनी अत्यन्त निर्मल और अतिशय शीतल, कोमल, स्वच्छ माणिक्यकी-सी प्रभासे सम्पूर्ण जगत्को प्रभासित करते हैं। वे अचिन्त्य, दिव्य, अद्भुत, नित्य-यौवन, स्वभाव और लावण्यमय अमृतके समुद्र हैं। अत्यन्त सुकुमारताके कारण उनका ललाट कुछ पसीनेकी बूँदोंसे विभूषित दिखायी देता है और वहाँतक फैली हुई उनकी दिव्य अलकें अपूर्व शोभा बढ़ाती हैं। भगवान्के मनोहर नेत्र विकसित कोमल कमलके सदृश मनोहर हैं। उनकी भ्रूलताकी भङ्गिमासे अद्भुत विभ्रम-विलासकी सृष्टि होती रहती है। उनके अरुण अधरोंपर उज्ज्वल हासकी छटा बिखरी रहती है। उनकी मन्द मुसकान अत्यन्त पवित्र है। उनके कपोल कोमल और नासिका ऊँची है। ऊँचे और मांसल कंधोंपर लटकी हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लटों और कुण्डलोंके कारण भगवान्‌की शङ्ख-सदृश ग्रीवा बड़ी सुन्दर दिखायी देती है। प्रियतमा लक्ष्मीके कानोंकी शोभा बढ़ानेवाले कमल, कुण्डल और शिथिल केशपाशोंके वेणीबन्धनके विमर्दनको सूचित करनेवाली घुटनोंतक लंबी चार भुजाओंसे भगवान्‌के श्रीविग्रहकी अद्भुत शोभा है। उनकी हथेलियाँ अत्यन्त कोमल दिव्य रेखाओंसे अलंकृत और कुछ-कुछ लाल रंगकी हैं। अंगुलियोंमें दिव्य मुद्रिका शोभा देती है। अत्यन्त कोमल दिव्य नखावलीसे प्रकाशित लाल-लाल अंगुलियाँ उनके करकमलोंको अलंकृत करती हैं। उनके दोनों चरण तुरंतके खिले हुए कमलोंके सौन्दर्यको छीने लेते हैं।

"अत्यन्त मनोहर किरीट, मुकुट, चूडामणि, मकराकृत कुण्डल, कण्ठहार, केयूर, कंगन, श्रीवत्स-चिह्न, कौस्तुभ-मणि, मुक्ताहार, कटिबन्ध, पीताम्बर, काञ्चीसूत्र और नूपुर आदि अत्यन्त सुखद स्पर्शवाले दिव्य गन्धयुक्त आभूषण भगवान्‌के श्रीअङ्गोंको विभूषित करते हैं। शोभाशालिनी वैजयन्ती वनमाला उनकी शोभा बढ़ाती है। शङ्ख, चक्र, गदा, खड्ग और शार्ङ्ग धनुष आदि दिव्य आयुध उनकी सेवा करते हैं।

"अपने संकल्पमात्रसे सम्पन्न होनेवाले संसारकी सृष्टि, पालन और संहार आदिके लिये भगवान्‌ने अपना समस्त ऐश्वर्य श्रीमान् विष्वक्सेनको अर्पित कर रक्खा है। जिनमें स्वभावसे ही समस्त सांसारिक भावोंका अभाव है, जो भगवान्‌की परिचर्या करनेके सर्वथा योग्य हैं तथा भगवान्‌की सेवा ही जिनका एकमात्र भोग है, वे गरुड आदि नित्य-सिद्ध असंख्य पार्षद यथावसर श्रीभगवान्‌की सेवामें संलग्न रहते हैं। उनके द्वारा होनेवाले आत्मानन्दके अनुभवसे ही पर, परार्द्ध आदि कालका अनुसंधान होता रहता है।

"वे भगवान् अपनी दिव्य निर्मल और कोमल दृष्टिसे सम्पूर्ण विश्वको आह्लादित करते रहते हैं। भगवान् दिव्यलीला-सम्बन्धी अमृतमय वार्तालापसे सब लोगोंके हृदयको आनन्दसे परिपूर्ण करते रहते हैं। उस दिव्य लीलालापमें अत्यन्त मनोहर दिव्य भाव छिपा रहता है। उनके किंचित् खुले हुए मुखारविन्दके भीतरसे निकला हुआ वह अमृतमय वचन उनके दिव्य मुखकमलकी शोभा बढ़ाता है। उस वार्तालापको दिव्य गाम्भीर्य, औदार्य, सौन्दर्य और माधुर्य आदि अनन्त गुणसमुदाय विभूषित करते हैं। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

"इस प्रकार ध्यानयोगके द्वारा भगवान् नारायणका दर्शन करके इस यथार्थ सम्बन्धका मन-ही-मन चिन्तन करे कि भगवान् मेरे नित्य स्वामी हैं और मैं उनका नित्य दास हूँ।

"मैं कब अपने कुलके स्वामी, देवता और सर्वस्व भगवान् नारायणका, जो मेरे भोग्य, मेरे माता, मेरे पिता और मेरे सब कुछ हैं, इन नेत्रोंद्वारा दर्शन करूँगा। मैं कब भगवान्‌के युगल चरणारविन्दोंको अपने मस्तकपर धारण करूँगा!

'कब वह समय आयेगा जब कि मैं भगवान्‌के दोनों चरणारविन्दोंकी सेवाकी आशासे अन्य सभी भोगोंकी आशा-अभिलाषा छोड़कर समस्त सांसारिक भावनाओंसे दूर हो भगवान्‌के युगल चरणारविन्दोंमें प्रवेश कर जाऊँगा। कब ऐसा सुयोग प्राप्त होगा जब मैं भगवान्‌के युगल चरणकमलोंकी सेवाके योग्य होकर उन चरणोंकी आराधनामें ही लगा रहूँगा। कब भगवान् नारायण अपनी अत्यन्त शीतल दृष्टिसे मेरी ओर देखकर स्नेहयुक्त, गम्भीर एवं मधुर वाणीद्वारा मुझे अपनी सेवामें लगनेका आदेश देंगे!

"इस प्रकार भगवान्‌की परिचर्याकी आशा-अभिलाषाको बढ़ाते हुए उसी आशासे, जो उन्हींके कृपा-प्रसादसे निरन्तर बढ़ रही हो, भावनाद्वारा भगवान्‌के निकट पहुँचकर दूरसे ही भगवती लक्ष्मीके साथ शेषशय्यापर बैठे हुए और गरुड आदि पार्षदोंकी सेवा स्वीकार करते हुए भगवान्‌को 'समस्त परिवारसहित भगवान् श्रीनारायणको नमस्कार है'—यों कहकर साष्टाङ्ग प्रणाम करे। फिर बार-बार उठने और प्रणाम करनेके पश्चात् अत्यन्त भय और विनयसे नतमस्तक होकर खड़ा रहे।

"जब भगवान्‌के पार्षदगणोंके नायक द्वारपाल कृपा और स्नेहपूर्ण दृष्टिसे साधककी ओर देखें तो उन्हें भी विधिपूर्वक प्रणाम करे। फिर उन सबकी आज्ञा लेकर श्रीमूलमन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) का जप करते हुए भगवान्‌के पास पहुँचे और यह याचना करे कि 'प्रभो! मुझे अपनी अनन्य नित्य सेवाके लिये स्वीकार कीजिये।' तदनन्तर पुनः प्रणाम करके भगवान्‌को आत्मसमर्पण कर दे।

"इसके बाद भगवान् स्वयं ही जब अपनेको जीवनदान देनेवाली मर्यादा और शीलसे युक्त अत्यन्त प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखकर सब देश, सब काल और सब अवस्थाओंमें उचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दासभावके लिये साधकको सदाके लिये स्वीकार कर लें और सेवाके लिये आज्ञा दे दें, तब वह अत्यन्त भय और विनयसे विनम्र होकर उनके कार्यमें संलग्न रहकर हाथ जोड़े हुए सदा भगवान्‌की उपासना करता रहे।

"तदनन्तर भावविशेषका अनुभव होनेपर सर्वाधिक प्रीति प्राप्त होती है, जिससे साधक दूसरा कुछ भी करने, देखने या चिन्तन करनेमें असमर्थ हो जाता है। ऐसी दशामें वह पुनः दासभावकी ही याचना करते हुए निरन्तर अविच्छिन्न प्रवाहरूपसे भगवान्‌की ही ओर देखता रहे।"

राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—पागल बाबा! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आपने मुझको एक बार वैकुण्ठमें श्रीभगवान्‌के पास लाकर उपस्थित कर दिया। आपकी कृपारूपी ऋणका शोधन करनेके लिये मेरे पास कुछ नहीं है। मैं आपको पुनः प्रणाम करता हूँ। बतलाइये, पागल बाबा, मैं किस प्रकार वैकुण्ठनाथके चरणोंमें आश्रय पा सकूँगा?

पागल—(बदलेमें प्रणाम करते हुए) राम-राम सीताराम-जय-जय राम सीताराम। इस युगमें भगवत्प्राप्तिकी कोई चिन्ता नहीं है। अति सहज ही श्रीभगवान् प्राप्त हो सकते हैं। उठते-बैठते, सोते-जागते नाम-स्मरण करो। नियमित रूपसे रोज चार घंटा नाम-कीर्तन करो। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। कुछ दिन नाम-जप करनेपर भगवान् स्थिर न रह सकेंगे; नादरूपसे तुमको आश्रयमें ले लेंगे। रात-दिन अनेक राग-रागिनी, अनेक गीत सुनाते हुए वे तुमको प्रकाश (ज्योति) के राज्यमें ले जायँगे। असंख्य प्रकाश, अनन्त आकाशके बीचसे तुमको हृदयसे लगाकर वैकुण्ठमें ले जायँगे। राम-राम सीता-राम। जय-जय राम सीताराम। तुम नित्य तीनों संध्याओंमें अर्चि आदि मार्गका चिन्तन करो। पश्चात् वैकुण्ठमें नारायणका चिन्तन करो। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—अर्चि आदि मार्ग किस प्रकारका है?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। हृदयमें मृणाल-तन्तुके समान अति सूक्ष्म सुषुम्ना नाड़ी है। उसी नाड़ीके सहारे तुम बाहर निकलकर पहले अर्चि (तेजःज्योति) को प्राप्त होओगे। वहाँ देवगणके द्वारा पूजित होनेके बाद दिवसाभिमानी देवता मिलेंगे। उनकी पूजा करके शुक्लपक्षाभिमानी देवताके पास पहुँचा देंगे और वे उत्तरायण अभिमानी देवताके पास पहुँचायेंगे। फिर वे संवत्सर अभिमानी देवताके पास पहुँचायेंगे। वहाँसे सूर्यलोक, वहाँसे चन्द्रलोक, पश्चात् विद्युल्लोकमें पहुँचकर उस लोकवासी देवताके द्वारा पूजित होकर विरजा नदीमें स्नान करके तुम आगे जाओगे। तब गरुड आदि पार्षद गण तथा दिव्य सूरीगण आकर तुमको श्रीभगवान्‌के पास ले जायँगे। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। जो तीनों संध्याओंमें इस अर्चिमार्गका चिन्तन करते हैं, उनको और कुछ जानना शेष नहीं रहता। वे श्रीनारायणकी कृपासे देहान्त होनेपर वैकुण्ठमें उनका दासत्व प्राप्त करते हैं; फिर उनको मृत्युलोकमें नहीं आना पड़ता। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। यदि वैकुण्ठ जाना चाहते हो, परमपदरूप श्रीभगवान्‌को प्राप्त करना चाहते हो तो मेरे साथ ताली बजाकर नाचते हुए गाओ—

श्रीराम जय राम जय जय राम।
श्रीराम जय राम जय जय राम।
श्रीराम जय राम जय जय राम।

दोनों नाच-नाचकर नाम-कीर्तन करने लगे!

वैकुण्ठ प्राप्त करो

दुःखालय अनित्य दारुण इस मर्त्यलोकके सब सुख भोग।
लगते मधुर, भरे विष भारी, नरक-दुःख-परिणामी रोग॥
मनसे तुरत निकालो इनको, भजो हृदयसे श्रीभगवान्।
विश्व-चराचरमें नित देखो मधुर उन्हींका रूप महान्॥
सेवारूप करो केवल तन-मनसे सब उनके ही काम।
प्राप्त करो वैकुण्ठ परम दुर्लभ हरिका मंगलमय धाम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्युके समय भगवन्नाम और उसका फल

(लेखक—महामण्डलेश्वर अनन्तश्री स्वामी भजनानन्दजी महाराज)

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥
(गीता २ । ४०)

'इस कर्मयोगमें आरम्भका अर्थात् बीजका नाश नहीं है और उल्टा फलरूप दोष भी नहीं है । बल्कि इस कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा-सा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे रक्षा कर लेता है । (भय सबसे बड़ा जन्म-मृत्युका) ।' भगवान् शंकर माता पार्वतीसे कहते हैं—

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना । ताहि भजन तजि भाव न आना ॥

'हे पार्वती ! जगत्पिता भगवान्‌के स्वभावको जो जान जायगा, उसको भजनके सिवा और कुछ अच्छा नहीं लगेगा । तो फिर यहाँ निश्चय होता है कि यह देवदुर्लभ मनुष्य-शरीर भगवान्‌का भजन करनेके ही लिये मिला है; क्योंकि कहा है—

देह धरे कर यह फलु भाई । भजिअ राम सब काम बिहाई ॥

भगवान्‌की प्राप्ति भजन करनेसे जितनी सुगमतासे प्राप्त होती है, उतनी दूसरे साधनोंसे नहीं । भगवान् श्रीकृष्णने भगवद्गीतामें कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥
(८ । १४)

'हे अर्जुन ! जो पुरुष मेरेमें अनन्य चित्तसे स्थित हुआ सदा ही निरन्तर मेरेको स्मरण करता है, उस निरन्तर मेरेमें युक्त हुए योगीके (लिये) मैं सुलभ हूँ ।'

यह जो 'सुलभ' शब्द है, श्रीमद्भगवद्गीतामें सात सौ श्लोकोंमें एक ही बार आया है । संसार बहुत लेता है, थोड़ा देता है । भगवान् और संत थोड़ा लेते हैं, और बहुत देते हैं । संसारमें कोई भी ऐसा धनी नहीं है, जो बहुत रकम देकर थोड़ेमें ही उद्धार कर दे । वह बहुत बड़ी रकम क्या है, सो नीचे लिखते हैं—

कहा कहूँ कहि जात हूँ कहा बजाऊँ ढोल ।
स्वाँसा खाली जात है तीन लोकका मोल ॥

मनुष्य पूरे जीवनमें यानी सौ वर्षतक जीवित रहे और सौ वर्षके जीवनमें एक करोड़ रुपया पैदा कर ले, जब मृत्युका समय आवे तब वह प्राणी एक करोड़ रुपयोंसे चाहे कि इन रुपयोंको दे करके मैं एक मिनट जीवित बना रहूँ तो जीवित नहीं रह सकता । मृत्यु होनेपर जो एक करोड़ रुपया जीवनमें पैदा किया है, उसमें एक कौड़ी भी साथ नहीं जाती—**सम्मीलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति**' । लेकिन भगवान् कहते हैं—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥
(गीता ८ । ५)

'जो पुरुष अन्तकालमें मेरेको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है वह मेरे (साक्षात्) स्वरूपको प्राप्त होता है, इसमें (कुछ भी) संशय नहीं है ।'

ऐसा किसीको हुआ है कि जिसने पूरा जीवन आहार, निद्रा, भय तथा मैथुनमें ही दिया हो और अन्तिम समयमें भगवान्‌का स्मरण करते हुए शरीरको त्याग करके, भगवत्-प्राप्ति की हो या भगवद्धामको प्राप्त किया हो ? ऐसे अनेक भक्त हो गये हैं । नीचे एक भक्तका नाम देते हैं—

अजामिल थोड़ेसे कुसङ्गको पाकर महान् पापी हो गया । जब उसका अन्तिम समय आया तब उसने अपने पुत्र 'नारायण'का नाम लिया । नारायण नाम लेनेसे ही उसको यमपुरी नहीं जाना पड़ा । नारायण नामकी महिमा ही इतनी है । एक हिंदीके कविने लिखा है—

जबहिं नाम हिरदै धर्‌यो, भयो पाप को नास ।
जैसे चिनगी आग की पड़ी पुराने घास ॥

राजा परीक्षित्‌ने पहला प्रश्न शुकदेवजीसे किया—'हे गुरुदेव—

अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम् ।
पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ॥
(श्रीमद्भा० १ । १९ । ३७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आप योगियोंके परम गुरु हैं, इसलिये मैं आपसे परम-सिद्धिके स्वरूप और साधनके सम्बन्धमें प्रश्न कर रहा हूँ। जो पुरुष सर्वथा मरणासन्न है उसको क्या करना चाहिये।'

उसका उत्तर देते हुए शुकदेव मुनि कहते हैं—

एतावान् सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया।
जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः॥

(श्रीमद्भा० २। १। ६)

'मनुष्य-जन्मका यही इतना ही लाभ है—चाहे जैसे हो ज्ञानसे, भक्तिसे अथवा अपने धर्मकी निष्ठासे जीवनको ऐसा बना लिया जाय कि जिससे मृत्युके समय भगवान्‌की स्मृति अवश्य ही बनी रहे।'

यही बात अजामिलकी थी। गोस्वामी तुलसीदासने जीवनका फल बताते हुए कवितावलीमें लिखा है—

सिय-रामसरूप अगाध अनूप बिलोचन-मीनन को जलु है।
श्रुति रामकथा, मुख राम को नाम, हिएँ पुनि रामहि को थलु है॥
मति रामहि सों, गति रामहि सों, रति रामसों, रामहि को बलु है।
सबकी न कहै 'तुलसी' के मते इतनो जग जीवन को फलु है॥

(कवितावली उत्तर० ३७)

यदि इतना जीवनका फल प्राप्त नहीं किया तो महापुरुष लोग बड़ी निन्दा और बुराई करते हैं।

जो पै रहनि राम सों नाहीं।
तौ नर खर कूकर सूकर सम बृथा जियत जग माहीं॥

(विनय० १७५)

'मनुष्य-शरीर धारण करके भी वे शूकर, कूकर तथा गदहेके समान व्यर्थ जीवन गँवाते हैं, जिन्होंने भगवान्‌से प्रेम नहीं किया है।' भगवान्‌से जिन्होंने अपना सम्बन्ध नहीं जोड़ा, उनके लिये एक हिंदीके कविने लिखा है—

जननी जन जानकी जीवन को,
जग में जननी सो भई जननी।
मति मंजुल साधु सराहत सो,
सिय नाह की नेह सनी सो गनी॥
धन धन्य धनी हरि नाम धनी,
जग और धनी सो धनी न धनी।
जिनकी न बनीं रघुनंदन सों,
तिनकी न बनी न बनी न बनी॥

जिन्होंने अपना सम्बन्ध भगवान्‌से जोड़ लिया है, उनका टूटा नहीं और जिन्होंने संसारसे सम्बन्ध जोड़ा, उनका कभी रहा नहीं। एक और हिंदी-कवि लिखता है—

अजामिल अधममें थी क्या बुराई,
मगर आपने उसकी बिगड़ी बनाई।
घड़ी मौतकी सिर पै जब उसके आई,
तो बेटे नरायणकी थी रट लगाई॥
तुरत खुल गये उसके बैकुण्ठ द्वारे,
हरे कृष्ण गोविन्द मोहन मुरारे।
यही नाम हो हरदम मुखमें हमारे॥

कितना कोई भी पापी क्यों न हो, भगवान्‌के नामसे सब पाप भस्म हो जाते हैं। यमराज अपने दूतोंसे कहते हैं—

अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि।
यद् व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः॥

(श्रीमद्भा० ६। २। ७)

'हे यमदूतो! इसने कोटि-कोटि जन्मोंकी पाप-राशिका पूरा-पूरा प्रायश्चित्त कर लिया है; क्योंकि इसने विवश होकर ही सही, भगवान्‌के परम कल्याणमय (मोक्षप्रद) नामका उच्चारण तो किया है।'

एक बात और है। जिन्होंने भगवन्नाम नहीं लिया है और बड़ा रूप, बड़ा कुल, बड़ी विद्या, बड़ी उम्र तथा बड़ा ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया, तो उन्होंने कुछ भी नहीं किया। लिखा है—

काम से रूप, प्रताप दिनेस-से,
सोम-से सील, गनेस-से माने।
हरिचंद्र-से साँचे, बड़े बिधि-से,
मघवा-से महीप, बिषै सुख साने॥
सुक-से मुनि, सारद-से बकता,
चिर जीवन लोमस ते अधिकाने।
ऐसे भए तो कहा तुलसी,
जो पै राजिवलोचन राम न जाने॥

(कवितावली उत्तर० ४३)

अन्य साधनोंके बजाय भगवन्नाम-साधन सबसे उत्तम है और हर वर्ण, हर आश्रमको इसका अधिकार है।

भगवन्नाममें एक विशेषता और भी है कि यदि कदाचित् वात, पित्त तथा कफके कारण साधक अन्तमें भगवान्‌का नाम नहीं ले सके तो भगवान् वाराहपुराणमें कहते हैं—'उस भक्तके बदले मैं नाम लूँगा; नाम ही नहीं लूँगा, मैं उस नाम लेनेवालेको परमगति दे दूँगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि वातादिदोषेण मद्भक्तो मां न संस्मरेत्।
अहं स्मरामि सततं नयामि परमां गतिम्॥

इसका भाव ऊपर लिख चुके हैं। आजकलके कुछ लोग यह कहेंगे, 'यह कैसे हो सकता है कि नाम लेनेवाला वात, पित्त, कफके कारण नाम न ले तो भगवान् उसके हितके लिये नाम लेंगे।' उसका उदाहरण नीचे लिखकर लेखको विश्राम देते हैं।

जिस प्रकारसे एक सज्जन भोजन करनेके लिये अपनी धर्मपत्नीसे भोजनकी थाली मँगाता है और भोजन करनेको तैयार होता है। इतनेमें उस पिताका छोटा-सा लड़का, जो कि अभी डेढ़-दो वर्षका ही है, जिसके मुँहसे शुद्ध शब्द भी नहीं निकलते हैं, वह पिताकी थालीके पास जाता है और यह कहता है कि 'पिताजी हमको अट्टी (रोटी) देओ।' ऐसा कई बार कहता है। इतनेमें पिता अपनी थालीसे रोटीका टुकड़ा तोड़कर साग और दालमें मिलाकर लड़केके मुखमें देने लगता है, लड़का तबतक अट्टी-अट्टी कहता रहता है। जब रोटीका टुकड़ा मुँहमें जाता है तो लड़केका अट्टी कहना बंद हो जाता है और पिता फिर कहता है—'लेओ अट्टी'। इसी प्रकारसे वात, पित्त, कफके कारण भक्तको भगवान्का नाम विस्मृत हो जाय तो उतनी देरतक भगवान् भक्तके लिये नाम लेंगे। इसलिये हर समय भगवन्नामका अभ्यास करना चाहिये। एक भक्तने भगवान्से प्रार्थना की है—

रात दिवसका रोवना, पहर पलकका नाहिं।
रोवत रोवत मिल गया, अपने साहिब माँहि॥

मोक्ष-सोपान

(लेखक—अनन्तश्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म-
व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः।
प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां
वार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम्॥*
(श्रीमद्भा० ७। ९। ४६)

छप्पय

का सुख मैथुन माहिं खाजकी खुजली ऐसे।
सुख-सो पहिले लगे दुःख ही दुख पुनि जैसे॥
मौन, धरम, अध्येन, वेद, व्रत, श्रवन, समाधी।
जप, तप, व्याख्या, बास, मोक्ष दें संयम साधी॥
इन्द्रिय लोलुप जीविका, साधन इनहीं कूँ करें।
पाखंडी करि दम्भ तैं, करें जीविका कहुँ गिरें॥

वस्तु एक होनेपर भी पात्रभेदसे उसके फलमें भेद हो जाता है। सुनते हैं, सिंहनीका दूध सुवर्णपात्रमें ही टिकता है; अन्य पात्रोंमें रक्खा जाय तो वे पात्र फूट जाते हैं। गौका दूध चाँदी या मिट्टीके पात्रमें रक्खा जाय तो वह अमृतोपम गुणवाला होता है, उसी गौ-दुग्धको ताम्रपात्रमें रख दो तो वह विष बन जाता है। वर्षाका जल है। वह नदियोंमें, मीठे जलके कूपोंमें गिरता है, तो परम पेय बन जाता है। वही वर्षा-जल यदि समुद्रमें गिरता है, तो खारी अपेय बन जाता है। गङ्गाजल परम पवित्र है। उसे किसी पात्रमें भर लो और फिर उस पात्रसे उँड़ेलकर पीओ तो परम पवित्र पापनाशक होता है। उसीको मनुष्यके पेटमें भरकर निकालो तो अपेय नरकका द्वार हो जाता है। पवित्र वस्तु भी कुपात्रके संसर्गसे अन्य फल देनेवाली हो जाती है। यही बात मोक्षके साधनोंके सम्बन्धमें है। शास्त्रकारोंने मोक्षके दस साधन बताये हैं।

१—इन्द्रियजित् होकर वाणीका संयम कर ले, वाणीका प्रयोग कभी सांसारिक कार्योंमें न करे। वाणीका संयम होनेसे मनका संयम सहज हो जाता है। मौनसे बढ़कर संसारमें कोई तप नहीं।

२—ब्रह्मचर्यका विधिवत् पालन हो जानेपर भी मुक्ति मिल जाती है; क्योंकि मन, प्राण और वीर्य—इन तीनोंका परस्परमें अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। एकका निरोध होनेपर

* मौन, ब्रह्मचर्यव्रत, शास्त्रश्रवण, तप, अध्ययन, स्वधर्म-पालन, शास्त्रोंकी व्याख्या, एकान्तवास, जप और समाधि—ये दस मोक्षके साधन हैं। इन्हीं दसोंको यदि अजितेन्द्रिय पुरुष करें तो ये उनकी जीविकाका साधन बन जाते हैं। किंतु जो केवल दम्भसे इनका आश्रय लेते हैं, उनकी कभी तो इनसे जीविका चल जाती है और कभी पोल खुलनेपर जीविका भी नहीं चलती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीनोंका निरोध हो जाता है। कामकी उत्पत्ति मनसे ही होती है, इसीलिये इसे 'मनोज' कहा है। मनको मथ देनेके ही कारण इसे 'मन्मथ' भी कहते हैं। मनका निरोध हो जानेपर प्राणोंका और ब्रह्मचर्यका भी निरोध हो जाता है। अथवा प्राणोंका ही प्राणायामादिसे निरोध होनेपर मन और वीर्यका निरोध हो जाता है। केवल वीर्यके ऊर्ध्वगामी हो जानेपर मन और प्राण अपने-आप निरुद्ध हो जाते हैं। इसलिये केवल ब्रह्मचर्य-व्रतसे भी मुक्ति हो जाती है। श्रुति कहती है—**यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति।**' (कठ० १। ३। १५)

३—निरन्तर सत्-शास्त्रोंका स्वस्थचित्तसे श्रवण करते रहो और श्रवणके पश्चात् मनन और निदिध्यासन चलता रहे तो शास्त्रश्रवणसे भी मुक्ति हो जाती है।

४—तपस्यासे देहाध्यास मिटता है। ज्ञानकी जो सात भूमिकाएँ बतायी हैं, उनमें तीनके पश्चात् आगे ज्यों-ज्यों तितिक्षा बढ़ती जायगी, त्यों-त्यों उत्तरोत्तर भूमिकाओंकी उपलब्धि होती जायगी। जडभरतजीकी पाँचवीं भूमिका मानी गयी है; क्योंकि यद्यपि वे नग्न रहते थे, सुख-दुःखमें सम थे; देवीके सम्मुख उनका बलिदान किया जाने लगा फिर भी वे विचलित नहीं हुए। नौकरोंने कहारोंके साथ लगा दिया, वहाँ भी बिना किसी आपत्तिके लग गये; फिर भी उन्हें देहानुसंधान तो था ही। राजाको कैसा विलक्षण उपदेश किया। यह उपदेश आदि तीसरी भूमिकाकी बातें हैं। भगवान् वेदव्यास आदि अधिकारारूढ़ महापुरुषोंकी यही भूमिका मानी जाती है। जडभरतजीने आजतक किसीको उपदेश नहीं दिया था। आत्मानन्दमें निमग्न भ्रमण करते रहते थे; किंतु सौभाग्यशाली राजा रहूगणके भाग्य खुल गये। उनके द्वारा लोककल्याण होना था। लोककल्याणकी भावना तो पहिली भूमिका बतायी है। जडभरतजीसे बढ़ी हुई तितिक्षा भगवान् ऋषभदेवकी कही जाती है। उनको छठी भूमिकामें मानते हैं। सातवीं भूमिकाका दृष्टान्त तो भगवान् कपिलदेवजीकी माता देवहूति ही हैं। भागवतके अतिरिक्त ऐसी स्थितिका वर्णन कहीं नहीं मिलता। तपस्याकी उत्तरोत्तर वृद्धिसे ही यह 'ब्राह्मी स्थिति' प्राप्त होती है।

५—निरन्तर शास्त्रावलोकन करता रहे। स्वाध्यायमें निरत रहनेसे भी मुक्ति होती है। वैसे स्वाध्यायका अर्थ जप है; किंतु यहाँ जपको पृथक् गिनाया है। अतः निरन्तर शास्त्रावलोकन ही यहाँ लेना चाहिये। यह बुद्धिका व्यायाम है। बुद्धिको निरन्तर शास्त्र-चिन्तनमें निमग्न रखनेसे वह ब्रह्मावगामिनी बन जायगी; क्योंकि बुद्धिके समीप ही तो ब्रह्म है—'**यो बुद्धेः परतस्तु सः।**' (भगवद्गीता ३। ४२)

६—स्वधर्मपालनसे भी मुक्ति मिलती है। आप जिस वर्णके हों, जिस आश्रममें हों, अपने वर्ण-आश्रमके धर्मका पालन करते रहें। शूद्रको एक—गृहस्थ-आश्रमका अधिकार है। शूद्र स्वधर्मका पालन करता रहे तो स्वर्गके सुख भोगनेके अनन्तर वैश्य होगा। वैश्यको ब्रह्मचर्य-गृहस्थ दो आश्रमोंका अधिकार है। स्वधर्मपालनरूप धर्मसे स्वर्ग भोगकर वह क्षत्रिय होगा। क्षत्रियको ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ—तीन आश्रमोंका अधिकार है। सविधि स्वधर्म-पालनरूप पुण्यसे स्वर्गोपभोग करके वह ब्राह्मण होगा। ब्राह्मणको ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—चार आश्रमोंका अधिकार है। संन्यास लेकर वह ज्ञानसे विमुक्त हो जायगा। यदि उसके ज्ञानमें यहाँ कुछ कोर-कसर रह गयी और पहले ही मृत्यु हो गयी, तो वह ब्रह्मलोक जायगा। वहाँ ब्रह्माजी उसके ज्ञानकी पूर्ति कर देंगे और ब्रह्माजीके साथ ही वह विमुक्त बन जायगा। इस स्वधर्म-पालनरूप साधनको 'क्रममुक्ति साधन' भी कहते हैं।

७—शास्त्रोंकी प्रबल युक्तियोंद्वारा युक्तियुक्त व्याख्या करनेसे भी मुक्ति होती है; क्योंकि व्याख्या करते समय बुद्धि अत्यन्त सूक्ष्म हो जाती है। भगवान् तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं। स्थूल बुद्धिवाले स्थूल संसारको ही पा सकते हैं। उन अणोरणीयान्को तो परम सूक्ष्म बुद्धिवाले ही देख सकते हैं। इसीलिये उपनिषत्कारोंने कहा है—

'**दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।**'

(कठ० १। ३। १२)

८—एकान्तसेवन ही करे; किंतु इन्द्रियोंको वशमें करके। विवशतासे नहीं, स्ववश होकर। संसारी कोलाहलोंसे दूर रहकर, संसारी लोगोंसे बिना संसर्ग रक्खे। एकान्तमें रहे, अपने-आपमें ही संतुष्ट रहे तो उसे '**ब्रह्मसंस्पर्शमश्नुते**'—'ब्रह्मका स्पर्शमात्र होगा।' ये संसारी जीव स्पर्श-सुखके ही लिये तो कोलाहलपूर्ण संसारमें रहते हैं। इसीलिये तो दीन होकर कुत्तोंकी भाँति पूँछ हिलाते फिरते हैं—'**औपस्थ-जैह्वकार्पण्याद् गृहपालायते जनः।**'—उपस्थेन्द्रिय और जिह्वा-इन्द्रियके सुखके ही लिये तो मनुष्य गृहपाल—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् कुत्तेकी भाँति बना हुआ है। इसीलिये कहा है—

न सुखं देवराजस्य न सुखं चक्रवर्तिनः।
यत् सुखं वीतरागस्य मुनेरेकान्तवासिनः॥

'जो सुख एकान्तवासी मुनिको होता है वह सुख न तो चक्रवर्ती राजाको होता है और न देवताओंके राजा इन्द्रको ही होता है।'

९—निरन्तर मन्त्र-जपसे भी मोक्ष प्राप्त होता है। मन्त्रमें देवता, ऋषि और छन्द—तीन होते हैं। ऋषिको सिरपर धारण करते हैं, छन्दको मुखमें और इष्ट देवताको हृदयमें। जिस मन्त्रका जप करते हैं, उसके अर्थकी भावना भी पीछेसे करते हैं। अर्थ-भावना करते-करते इष्टकी प्राप्ति होती है। इसीलिये शिवजीने पार्वतीजीसे कहा है—

'जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्वरानने।'

'हे वरानने पार्वती! मैं तीन बार प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि केवल जपमात्रसे ही सिद्धि हो जाती है।'

१०—समाधिसे भी मुक्ति होती है। यम और नियम तो योगके ही अङ्ग नहीं, सभी साधनोंमें इनकी आवश्यकता होती है। यम-नियमके बिना तो कोई भी साधक साधन-सम्पन्न नहीं बन सकता। अतः आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—इन छःको ही 'षडङ्ग-योग' कहते हैं। आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार—ये बाह्य साधन कहलाते हैं। धारणा, ध्यान और समाधि—ये तीन आन्तरिक साधन हैं। धारणाकी परिपक्वावस्थाका ही नाम 'ध्यान' है और ध्यानकी परिपक्वावस्थाको ही 'समाधि' कहते हैं। समाधिसे चित्त एकाग्र होता है। यदि शरीरमें मल न रहकर निर्मल बन जाय, मनमें विक्षेप न होकर बिना विक्षेपके बन जाय और बुद्धिका आवरण हटकर निरावरण बन जाय तो समाधिसे मोक्ष हो ही जाता है।

इस प्रकार ये १० मोक्षके साधन हैं। ये कब साधन हैं? जब साधक जितेन्द्रिय हो। उसने इन्द्रियोंको भलीभाँति जीत लिया हो और तब उसने इन साधनोंका आश्रय लिया हो, तो वह विमुक्त बन सकता है। यदि बिना इन्द्रियोंके जीते अजितेन्द्रिय पुरुष इन साधनोंका आश्रय लेता है तो उसके लिये ये साधन खाने-पीनेका व्यवसाय—जीवन-निर्वाहका साधनमात्र बन जाते हैं। साधन विधिवत् करनेपर भी ऐसे साधक इन्द्रियाँ वशमें न होनेके कारण उसके यथार्थ फलसे वञ्चित हो जाते हैं। उनका वह शुद्ध साधन-व्यवसाय जीवन-निर्वाहका या कामनापूर्तिका कारण बन जाता है। पर जितेन्द्रिय साधकोंको वही मोक्ष देनेवाला होता है; किंतु जो न तो जितेन्द्रिय साधक हैं और न अजितेन्द्रिय साधक ही, केवल दम्भी—ढोंगी हैं, केवल अपनी आजीविका-अर्जनके ही निमित्त, साधन-रूपमें नहीं, ढोंगरूपमें इसे अपनाते हैं, वे तो साधकका नाम ही बदनाम करते हैं। हैं तो वे सर्वथा साधनविरोधी नीच भोगपरायण। ऐसे लोगोंका कभी-कभी तो उससे निर्वाह चल जाता है, कभी उनकी पोल खुल जाती है। उनकी बनावटका भंडाफोड़ हो जाता है। फिर इन बातोंसे उनका जीवन-निर्वाह भी नहीं होता।

जैसे कालनेमि जितेन्द्रिय-अजितेन्द्रिय कैसा भी साधु नहीं था। उसने साधुका केवल वेष बना लिया था। साधुओं-जैसे जटाजूट बना लिये थे। महात्माओंके-से कपड़े पहिन लिये थे। हनुमान्‌जी पहिले तो उसके चक्करमें आ गये। जब अप्सराके कहनेसे उसके यथार्थ रूपको जान गये तब उसका वहीं काम तमाम कर दिया।

रावण कैसा भी साधु नहीं था। उसने साधुका ढोंग बनाया था। साधु-जैसा वेष बना लिया था। उसके वेषको देखकर सीताजी उसे भिक्षा देने निकलीं तो उसने नकली वेष फेंक दिया; यथार्थ रूपमें आ गया। ऐसे लोगोंकी कभी टिप्पस लग जाती है, कभी नहीं भी लगती।

उघरे अंत न होहि निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥

एक सज्जनने दरभंगाकी ओर कहीं प्रसिद्ध कर रक्खा था कि 'मेरा नाम प्रभुदत्त ब्रह्मचारी है।' वह कथा करने लगा। रुपया पैदा करने लगा। थानेमें जाकर अपराधियोंको छुड़ाने लगा। उसकी बड़ी प्रसिद्धि हो गयी। हमारे एक पुलिसमें भक्त हैं—पं० परमानन्दजी पाण्डेय। एक पुलिस इन्स्पेक्टरने उनसे कहा—'पाण्डेयजी! आप तो ब्रह्मचारीजीकी बड़ी भारी प्रशंसा किया करते थे। वे तो हमें बहुत ही हलके अनपढ़ प्रतीत हुए।'

उन्होंने पूछा—'तुमने उन्हें कहाँ देखा?' वे बोले—'वे तो अब भी हमारे यहाँ कथा कर रहे हैं। सोनेका कंठा पहिनते हैं। बड़े ठाट-बाटसे रहते हैं।'

उन्होंने कहा—'वे ब्रह्मचारीजी नहीं हैं। उन्हें पकड़ो।' पुलिसने उन्हें पकड़ा। एक थानेदार बिहारसे मेरे पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झूसी आया। उसने सब बातें बतायीं। मैंने कहा—'मैंने कोई नाम रजिस्टर्ड तो कराया नहीं है। एक नामके बहुतसे आदमी हो सकते हैं, उसे छोड़ दो।' उसने बताया—वह कहता है 'मैं झूसी रहता हूँ संकीर्तन-भवनमें। मैं ही नेहरूजीके विरुद्ध चुनावमें खड़ा हुआ था।' पीछे सुनते हैं उसे सजा हो गयी। इसीका नाम दम्भ है, बनावट है।

आज हम अजितेन्द्रिय साधक भी नहीं, दम्भी बन गये हैं। हमारा वेषभूषा, उपाधि-आश्रम, व्याख्यान-प्रवचन सब दम्भके लिये होते हैं। हम मोक्षमार्गसे कोसों दूर चले गये हैं। साधनोंकी नकल भले ही कर लें, जबतक हम अपनी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त नहीं करते, सदाचारका पालन नहीं करते, सद्गुणोंको अपने जीवनमें एकीभूत नहीं करते, तबतक हम मुमुक्षु नहीं। मोक्षप्राप्तिके अधिकारी नहीं। सच्चे साधक नहीं।

परंतु इन्द्रियोंको जीतना क्या कोई सरल काम है? क्या इन्द्रियजित् होना गुड़का पूआ है जिसे उठाया कि गप्प कर गये। जितेन्द्रिय होना टेढ़ी खीर है। हम चाहते हुए भी इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे रोक नहीं सकते। विश्वामित्र आदि ऋषियोंने कितनी तपस्या की। सहस्रों वर्षोंतक घोर तप करते रहे। कहीं कामने विघ्न डाला, कहीं क्रोधने धर दबाया। क्या वे चाहते थे कि हमें काम-क्रोध सतावें? महर्षि सौभरि जनसंसर्गसे दूर रहकर यमुनाजीके जलमें, जलको स्तम्भन करके सहस्रों वर्ष पर्यन्त तप करते रहे; फिर भी मीनके संगको देखकर विवाह करनेकी इच्छा हो गयी और एकसे पचास और पचाससे पाँच सहस्र बन गये।

बात यह है कि उनके साधनोंमें तो कोई कमी थी नहीं, संगदोषवश विघ्न आ गये। उन विघ्नोंकी कुछ भी परवा न करके वे साधनमें जुटे रहे। सौभरि मुनिको अन्तमें अपने कृत्यपर पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने कहा—'जिसे मोक्षकी इच्छा हो, उस पुरुषको चाहिये कि वह संसारी विषयभोगियोंका संग सर्वथा त्याग दे। एक क्षणको भी अपनी इन्द्रियोंको बहिर्मुख न होने दे। अकेला ही एकान्तवास करे। एकान्तमें रहकर अपने चित्तको सर्वशक्तिमान् ईश्वरमें लगावे। यदि संग करनेकी आवश्यकता ही हो, तो भगवान्के भक्तोंमें, अनन्यनिष्ठ साधकोंमें, प्रभुप्रेमियोंमें और निष्ठावान् महात्माओंमें ही रहे, उन्हींका संग करे।'*

इसलिये इन्द्रियसंयमको मोक्षके साधनोंमें प्राथमिकता दी गयी है। साधनकी इन्द्रियसंयम नींव है। अजितेन्द्रिय पुरुष धन-दौलत, मान-प्रतिष्ठा, बड़ी-बड़ी पदवी भले ही प्राप्त कर ले; किंतु वह मोक्षमार्गका पथिक नहीं बन सकता। जितेन्द्रिय होनेपर भी, जिसके हृदयमें भगवद्भक्ति नहीं, सरसता नहीं, भगवान्के पादपद्मोंमें भरोसा नहीं, उनके प्रति अनुराग नहीं, उनकी दया-कृपापर भरोसा नहीं, उसका जितेन्द्रिय होना भी एक व्यसनमात्र ही है। अतः भागवतकारने मोक्ष-प्राप्तिके तीन ही मुख्य साधन बताये हैं।

१—एक तो निरन्तर प्रभुकी अनुकम्पाकी सुसमीक्षा, अर्थात् प्रतिक्षण भगवान्को स्मरण करके रोता हुआ यही प्रार्थना करता रहे—'हे प्रभो! मेरे ऊपर कब कृपा करोगे? कब दीनबन्धो! मेरी बारी आयेगी। कब मेरे ऊपर करुणाकी कोर करोगे, कब दीनपर कृपादृष्टिकी वृष्टि होगी?' जैसे चातक सर्वदा स्वातीकी बूँदके लिये बादलकी ही ओर देखता रहता है, उसी प्रकार सदा-सर्वदा प्रभुकी कृपाकी बाट जोहता रहे।

२—अपने प्रारब्धवश जो भी सुख या दुःख आ जाय उसे बिना विरोधके निर्लेप भावसे भोगता रहे।

३—हृदयसे, वाणीसे तथा शरीरसे भगवान्को नमस्कार करता रहे। हृदयसे नमस्कारका भाव है भगवान्की मूर्तिको हृदयमें बिठाकर उसका ध्यान करे। सोचे—यह जो कुछ है सब तेरा ही है।

वाणीसे मन्त्र जपा करे। मन्त्र उसे कहते हैं जिसके आदिमें ओंकार हो, चतुर्थी लगी हो और अन्तमें नमः या स्वाहा हो। जैसे **'ॐ रामाय नमः।'** **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।'** अथवा सम्बोधन और भगवान्का नाम ही हो। हे राम! हे कृष्ण! हे नाथ! हे दीनबन्धो! यह भी वाणीका नमस्कार है।

---

* सङ्गं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः
सर्वात्मना न विसृजेद् बहिरिन्द्रियाणि।
एकश्चरन् रहसि चित्तमनन्त ईशे
युञ्जीत तद् व्रतिषु साधुषु चेत् प्रसङ्गः॥
(श्रीमद्भा० ९। ६। ५१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीरसे भगवान्‌की चल अथवा अचल मूर्तिको साष्टाङ्ग प्रणाम करे। भगवान्‌की चल मूर्ति तो साधु, संत, महात्मा, विद्वान्, ब्राह्मण, भक्त आदि हैं; अचल भगवत्-मूर्ति भगवान्‌के विग्रह हैं। उनको साष्टाङ्ग प्रणाम करता रहे।

इस प्रकार जो इन तीन साधनोंको सावधानीके साथ, विना आलस्यके निरन्तर करता रहता है, वह भगवान्‌का जो मुक्तिरूप परम धन है, उसका उसी प्रकार उत्तराधिकारी बन जाता है जैसे पुत्र विना किसी प्रयत्नके पिताकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी बन जाता है। यही यथार्थमें मुक्तिरूपी परमपदका सुन्दर सोपान है। यही निर्वाण पदकी सुन्दर सीढ़ी है। इसी बातको नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीकी स्तुति करते हुए श्रीब्रह्माजीने कहा है—

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥
(श्रीमद्भा० १०।१४।८)

छप्पय—

कृष्ण कृपा कब करें लगन जिनकी चातकवत।
भोगें सुख दुख सहज भाग्यवश जो कछु आवत॥
मनतैं बचतैं और देहतैं तुमकूँ बिनवैं।
हरिमय जग कूँ जानि विनय तैं सबकूँ प्रनवैं॥
यों जो जीवन धारि प्रभु, शरनागत बनिकें रहैं।
पावैं पितु धन पुत्र ज्यों, मुक्ति चरन तब त्यों लहैं॥
(भागवतदर्शनसे)

तीर्थंकर और सिद्ध

(लेखक—आचार्य श्रीतुलसीजी)

जैन दर्शनके चार ध्रुव सिद्धान्त हैं—

१—आत्मवाद
२—लोकवाद
३—कर्मवाद
४—क्रियावाद

आत्माके अस्तित्वके लिये छः बातें ज्ञातव्य हैं—

१—आत्मा है, २—पुनर्भव है, ३—बन्ध है, ४—बन्धके हेतु हैं, ५—मोक्ष है, ६—मोक्षके हेतु हैं।

प्रत्येक शरीरमें आत्मा है; किंतु किसी भी आत्माका शरीरसे पृथक् अस्तित्व ज्ञात नहीं होता, इसलिये आत्माका अस्तित्व सदा संदेहका विषय बना रहता है। हमारे शरीरमें जाननेवाली सत्ता आत्मा है। वह चिन्मय है। उसमें दृश्य वस्तुओंको जाननेकी क्षमता है। किंतु वह स्वयं पुनर्भवी है या नहीं है, यह जाननेकी क्षमता उसमें विकसित नहीं है। स्मृति, प्रत्यभिज्ञा, तर्क और अनुमानके आधारपर कुछ विद्वानोंने यह प्रमाणित करनेका प्रयत्न किया है कि आत्मा पुनर्भवी नहीं है, तो अनेक विद्वानोंने यह प्रमाणित करनेका प्रयत्न किया है कि वह पुनर्भवी है। परोक्षके आधारपर दोनों धाराएँ चल रही हैं। प्रत्यक्षका प्रामाण्य किसीके पास नहीं है। यह विषय सूक्ष्म और दूरगामी है, इसलिये इसे केवल तार्किक स्तरपर सुलझाना सम्भव नहीं है। इसके समाधानके लिये तीव्र वैज्ञानिक प्रयत्न या तीव्र साधना निमित्त बन सकती है। जिन व्यक्तियोंके मनमें आत्माकी उत्कट जिज्ञासा जाग उठती है, वे आत्म-दर्शनकी साधनाके पथपर चल पड़ते हैं। यह साधु-जीवनकी भूमिका है।

ध्यानकी उच्चतम भूमिकापर आरोहण करते-करते साधु प्रत्यक्ष-दर्शनको उपलब्ध कर लेते हैं। वे प्रत्यक्षदर्शी (केवलज्ञानी) साधु 'जिन' कहलाते हैं। तीर्थंकरमें कुछ जिन होते हैं, पर सभी जिन तीर्थंकर नहीं होते। तीर्थंकरमें कुछ अतिशायी विशेषताएँ होती हैं। वे धर्म-शासनके शास्ता और पथदर्शक होते हैं। भगवान् महावीर तीर्थंकर थे। उनके शासनमें सैकड़ों जिन थे। जीवनकालमें जिन और तीर्थंकर दो भूमिकाओंमें रहते हैं। निर्वाण होनेपर वे सब सिद्ध बन जाते हैं—समान भूमिकाको प्राप्त हो जाते हैं। सिद्ध अवस्था बन्धन-मुक्तिकी अवस्था है। इस अवस्थामें केवल आत्माका अस्तित्व रहता है। इसलिये सिद्धत्व सबकी सामान्य भूमिका है। जैन आगमसूत्रोंमें सिद्धोंके पंद्रह प्रकार बतलाये गये हैं। किंतु वर्तमान अवस्थासे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। उनका आधार पूर्वजन्मकी स्थिति है। सिद्धोंके पंद्रह प्रकार ये हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१–तीर्थसिद्ध–तीर्थंकरके शासनमें दीक्षित होकर मुक्त होनेवाले।

२–अतीर्थसिद्ध–तीर्थंकरके शासनमें दीक्षित हुए बिना मुक्त होनेवाले।

३–तीर्थंकरसिद्ध–तीर्थंकरके रूपमें मुक्त होनेवाले।

४–अतीर्थंकरसिद्ध–तीर्थंकरकी भूमिकाको प्राप्त किये बिना मुक्त होनेवाले।

५–स्वयंबुद्धसिद्ध–स्वयंबोधि प्राप्त कर मुक्त होनेवाले।

६–प्रत्येकबुद्धसिद्ध–किसी एक निमित्तसे बोधि प्राप्तकर मुक्त होनेवाले।

७–बुद्धबोधितसिद्ध–आचार्यके द्वारा सम्बुद्ध होकर मुक्त होनेवाले।

८–स्त्रीलिंगसिद्ध–स्त्री-जीवनमें मुक्त होनेवाले।

९–पुरुषलिंगसिद्ध–पुरुष-जीवनमें मुक्त होनेवाले।

१०–नपुंसकलिंगसिद्ध–कृत नपुंसक जीवनमें मुक्त होनेवाले।

११–स्वलिंगसिद्ध–मुनिके वेषमें मुक्त होनेवाले।

१२–अन्यलिंगसिद्ध–परिव्राजक आदिके वेषमें मुक्त होनेवाले।

१३–गृहिलिंगसिद्ध–गृहस्थके वेषमें मुक्त होनेवाले।

१४–एकसिद्ध–एक समयमें एक ही मुक्त होनेवाला।

१५–अनेकसिद्ध–एक समयमें अनेक मुक्त होनेवाले।

इन भेदोंमें सत्यकी सम्प्रदाय, लिंग, वेष आदि बाह्य उपकरणोंसे निरपेक्ष स्वीकृति है। अमुक सम्प्रदायमें दीक्षित होनेपर ही कोई मुक्त हो सकता है, अन्यथा नहीं हो सकता। अमुक वेष धारण करनेपर ही कोई मुक्त हो सकता है, अन्यथा नहीं हो सकता। अमुक लिंगमें ही कोई मुक्त हो सकता है, अन्यथा नहीं हो सकता। दूसरोंद्वारा प्रतिबुद्ध होनेपर ही कोई मुक्त हो सकता है, अन्यथा नहीं हो सकता। ये एकाङ्गी धारणाएँ इन पंद्रह भेदोंके द्वारा निर्मूल की गयी हैं। मुक्त वह हो सकता है, जो बन्धन-मुक्तिकी साधनामें गतिशील है—सम्यग्-दर्शनी, सम्यग् ज्ञानी और सम्यक् चारित्री है। भगवान् महावीरके अनुसार मुक्तिके नियामक तत्त्व सम्प्रदाय, वेष और लिंग नहीं हैं; किंतु सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र हैं। इनका यथेष्ट विकास होनेपर किसी भी सम्प्रदाय या वेषमें मुक्ति हो सकती है और इनका विकास हुए बिना किसी भी सम्प्रदाय या वेषमें मुक्ति नहीं हो सकती। सम्प्रदाय आदि बाह्य निमित्त हैं। उनका जीवनके साथ आत्मीय सम्बन्ध नहीं है। दर्शन, ज्ञान और चरित्र जीवके मौलिक गुण हैं। ज्ञान, दर्शन, वीतरागता आदि धर्मोंसे अन्वित सत्ताका नाम 'जीव' है। बन्धन-दशामें ये धर्म आवृत रहते हैं। इनकी साधना करनेपर ये अनावृत होते चले जाते हैं। साधनाकालमें ये मुक्तिके साधन होते हैं और सिद्धि कालमें ये जीवके स्वाभाविक गुण हो जाते हैं।

जीवके मौलिक गुण चार हैं–(१) ज्ञान, (२) दर्शन, (३) आनन्द, (४) शक्ति। ये गुण सब सिद्धोंमें समान रूपसे विकसित हो जाते हैं। इसीलिये उस अवस्थामें स्वरूप-कृत कोई तारतम्य नहीं होता। 'आचारांग सूत्र'में सिद्धका स्वरूप निम्न शब्दोंमें व्याख्यात है—

वह संस्थानरहित है—दीर्घ और ह्रस्व नहीं है, वृत्त, त्रिकोण, चतुष्कोण और परिमण्डल नहीं है।

वह अरूप है—कृष्ण, नील, लोहित, पीत और शुक्ल नहीं है।

वह अगन्ध है—सुगन्ध और दुर्गन्ध नहीं है।

वह अरस है—तिक्त, कटु, कषाय, अम्ल और मधुर नहीं है।

वह अस्पर्श है—कर्कश, मृदु, गुरु और लघु नहीं है, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष नहीं है।

वह अशब्द है—उसमें ध्वनि-प्रकम्पन नहीं है। वह स्त्री, पुरुष और नपुंसक नहीं है।

वह अशरीर, अजन्य और असंग है।

वह अनुपम है—उसके प्रत्यक्ष बोधके लिये कोई उपमान नहीं है।

वह अपद है—उसकी व्याख्याके लिये कोई पद नहीं है। स्वर उसतक पहुँच नहीं पाते। उसे जाननेके लिये कोई तर्क नहीं है। मति उसे ग्रहण नहीं कर पाती। वह चिन्मय अरूपी सत्ता है।

'औपपातिक सूत्र'में सिद्धके बारेमें कुछ विशेष जानकारी मिलती है—मुक्त जीव किससे प्रतिहत हैं? कहाँ स्थित होते हैं? कहाँ शरीरको छोड़ते हैं? और कहाँ जाकर सिद्ध होते हैं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

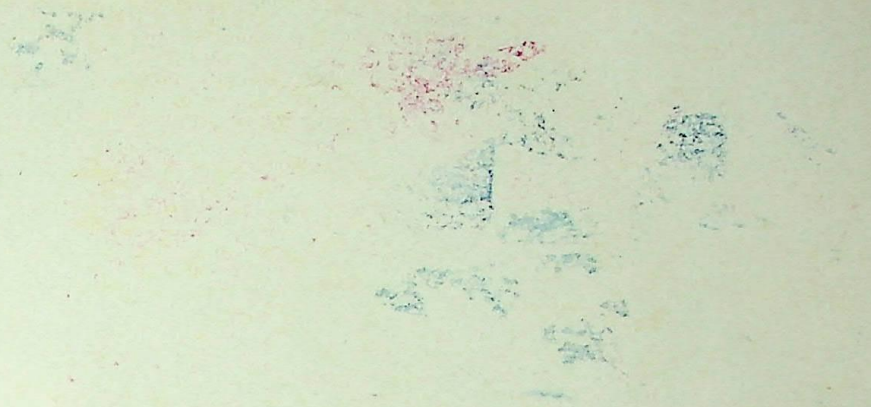

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोलोकाधिपति भगवान् श्रीराधामाधव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे आलोकसे प्रतिहत होते हैं, लोकके अग्रभागमें स्थित होते हैं, मनुष्यलोकमें शरीरको छोड़ते हैं और लोकके अग्रभागमें जाकर सिद्ध होते हैं। वे अरूप-साधन (एक दूसरेसे सटे हुए) और ज्ञान-दर्शनमें सतत उपयुक्त होते हैं। उन्हें वैसा सुख प्राप्त होता है, जिसके लिये इस जगत्‌में कोई उपमा नहीं है।

एक राजा अश्वारूढ़ होकर यात्राके लिये गया। उसका घोड़ा वक्र गतिवाला था। वह राजाको घने जंगलमें ले गया। वहाँ एक जंगली आदमी रहता था। उसने राजाका आतिथ्य किया और उसे मार्ग बता दिया। राजा उसे अपने साथ ले गया। उसने संकटमें सहायता की, उसे यादकर राजाने भी उसका बहुत सम्मान किया। उसे बड़े प्रासादमें ठहराया। बड़े-बड़े राजभवन दिखलाये। बढ़िया भोजन कराया। कुछ दिन रहकर वह जंगलमें चला गया। घरवालोंने पूछा तो उसने कहा, 'मैं नगरमें गया था।' 'नगर कैसा होता है?' 'उसमें बहुत बड़े-बड़े घर होते हैं।' उसने बहुत बताया पर उन्हें नहीं समझा सका। इसी प्रकार सिद्धके सुख भी अनुभूतिगम्य हैं, वाणीगम्य नहीं हैं। सिद्धका सुख शाश्वत और निर्विघ्न है, अतृप्त और क्षोभसे मुक्त है।

जीव सिद्धकी अविकसित दशा है और सिद्ध जीवकी विकसित दशा है। इन दोनोंमें दशा-भेद है, अस्तित्व-भेद नहीं है। प्रत्येक पदार्थका अस्तित्व त्रैकालिक है, तब कोई कारण दिखायी नहीं देता कि जीवका अस्तित्व त्रैकालिक न माना जाय।

(प्रेषक—श्रीकमलेश चतुर्वेदी)

पूर्वजन्म और भावसिद्धि

(लेखक—आचार्य श्रीप्राणकिशोर गोस्वामी महाराज)

परलोकके विषयमें कुछ बोलते समय आत्मनिष्ठाकी आवश्यकता है। यह आत्मनिष्ठा सुलभ नहीं है। जड़देहके अतिरिक्त आत्माको स्वीकार किये बिना परलोकके विषयमें कोई प्रश्न ही नहीं उठता। विभिन्न शरीरोंमें एक आत्माके परिभ्रमणकी सम्भावना माननेपर ही परलोकका विषय विचारणीय होता है। तभी एक विशेष क्रमिक पथ-परिक्रमणके अनुगमनमें विश्वास उत्पन्न होता है। जिसकी बातपर विश्वास हो सके, ऐसे साधक या गुरुका अनुवर्तन किये बिना हृदयमें श्रद्धा या विश्वास नहीं जमता। अन्धविश्वाससे किसी सत्यकी स्थापना नहीं हो सकती। अन्धेके द्वारा प्रदर्शित पथमें बहुत दूरतक रास्ता तय कर लेनेके बाद भी चित्तमें भ्रम उत्पन्न होते ही किसी दूसरे पथ या उपायका अवलम्बन करना पड़ता है। शास्त्र, सदाचारका अनुसरण न कर स्वतन्त्र युक्तिके बलसे वस्तुका निरूपण करनेपर विफलमनोरथ होनेकी ही अधिक सम्भावना रहती है। युक्तिहीन विचार भी नीतिविरुद्ध होता है और सर्वजनग्राह्य नहीं होता। उपधर्म, स्थूलधर्म या धर्मके आभासका अवलम्बन न करना ही युक्तियुक्त है। परलोकतत्त्वका विचार करनेपर भ्रान्त मतके अनुसरणमें पूर्वपरिकल्पित सब प्रकारके लाभ, सुख-प्राप्तिके विचार पूर्णतया परित्यक्त हो जाते हैं। साधनाकी निष्ठा पथभ्रान्त मनुष्यके किसी भी काम नहीं आती। सत्य और शाश्वतका अवलम्बन किये बिना कोई भी सिद्धान्त जीवका कल्याण-साधन नहीं कर सकता।

काल सदासे है। काल नहीं था, इस प्रकारकी काल-सम्बन्धी कल्पना हम नहीं करते। इस अखण्ड कालकी किसी समय सीमारेखा नहीं खींची जा सकती। इस कारण कालको नित्य कहा जाता है। इसी कालमें समय-समयपर विश्वरचनाका वैचित्र्य, अनन्त भेद, प्रलयकी विभीषिका, बन्धन और मुक्ति तथा जन्म और मृत्युकी छायाके दर्शन होते हैं। कालकी सृष्टि मायारचित है। इस कारण वह अमूलक छायादर्शन है। कालातीत वस्तु ही स्वतन्त्र, सत्य अथवा अन्यनिरपेक्ष है। काल, कर्म, प्रकृति, जीव—सभी परमेश्वरके अधीन हैं, निरपेक्ष नहीं हैं। मेघाच्छन्न अमावस्याकी रात्रिका घना अन्धकार हमारी दृष्टिको अभिभूत कर लेता है। हम निकटस्थ स्थायी स्तम्भको भी नहीं देख पाते हैं, दूसरी वस्तुओंकी बात तो दूर रही। प्रलयकालीन तमोगुणके प्रभावमें चिरन्तन जीवसत्ता, जगत्‌का अस्तित्व अथवा परमात्माकी सत्यता—किसीकी भी उपलब्धि नहीं होती है। केवल शून्य, अज्ञान, मायाका अधिकार रहता है। उसमें किसी जीव-जगत्, स्थावर-जङ्गम किसीका भी परिचय प्राप्त नहीं होता। परमात्माके आलोकमें, सत्य-ज्ञान-आनन्दके पुलकमें, सृष्टिका बीज अङ्कुरित होनेपर विचित्र रूप, रस,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
गोलोकाधिपति भगवान् श्रीराधामाधव

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गन्धमें अनन्त देवगण अपनेको विलसित करते हैं। सूर्यकी किरणोंसे रंग ग्रहण करके जैसे पुष्प अनेक रंगोंके हो जाते हैं, उसी प्रकार एक परमात्माकी किरण-छटामें अनन्त जीव कर्मवासनासे जगत्‌में विचरण करते हैं। अनादिकालसे यह विचरण चल रहा है। अनन्त पथपर चलते हुए मार्गमें कितने तीर्थ-दर्शन, कितने सुख तथा कितने दुःख आते हैं। स्वर्ग है, नरक है। कर्ममय जीवनको क्या कोई किसी प्रकार अस्वीकार कर सकता है? प्रतिक्षण अपनेको उत्कर्षका अधिकारी बनानेकी चेष्टामें ही प्राणीकी प्राणसत्ताका परिचय है।

विश्वप्राण एक होकर भी बहुत होनेकी इच्छा करता है। यह मौलिक इच्छा या कामना, सृष्टि करनेकी इच्छाका प्रथम स्पन्दन जीव-सृष्टिके जन्म-मृत्युका प्रकृष्ट सङ्केत है। अव्यक्तसे व्यक्त, सूक्ष्मसे स्थूल रूपमें आना जन्म-यात्रामें उतरना है। स्थूलसे, व्यक्तसे, अस्थूल-अव्यक्तमें लौटना मृत्युके पथमें पदार्पण करना है। इस प्रकार जड और चेतनका व्यक्त और अव्यक्त स्वरूपमें प्रकाश और अप्रकाश होता रहता है। जन्म-मृत्युके द्वारपर जगत्‌के जीव पुरुषार्थ-सिद्धिके लिये निर्बाध गतिसे निरन्तर दौड़-धूप कर रहे हैं। यह दौड़-धूपका वेग क्रमशः बढ़ रहा है—एकके बाद एक, सृष्टिके प्रत्येक स्तरमें, उत्कर्ष-प्राप्तिकी शीघ्रतामें, पूर्णता-प्राप्तिकी उत्कण्ठामें, पथ-परिक्रमणके उल्लासमें। अगणित रूपोंमें, रसोंमें, लालसाओंमें, अभिलाषाओंमें आवर्तन, विवर्तन, परिस्फुरण, परिनमनके माध्यमसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवसत्ता प्राणमय कोषके अधिकारमें कर्ममय ऐतिह्योंका वहन करती हुई मनुष्य बनी है। उसके मनुष्यजन्मकृत संचित, आंशिक भुक्त, भोग्य और प्रारब्ध कर्मकी समष्टि है। पूर्व-जन्मोंमें जो कर्म किये गये हैं, उनके चिह्न वर्तमान जीवनके छन्द-छन्दमें स्पष्ट झलक रहे हैं। संचित कर्म उसके भाग्यको नियन्त्रित करते हैं, कर्मकी प्रेरणा और प्रवृत्तिको उद्‌बुद्ध करते हैं। एक ही मनुष्यके भीतर क्षेत्रविशेषमें साँप, बाघ, ंस, भ्रमर, कभी राक्षस और कभी देवताका भाव प्रकट हो उठता है। इसके द्वारा उसके विभिन्न योनिमें भ्रमणकी बात पण्डितलोग शास्त्र-प्रमाणके द्वारा निर्धारण करते हैं।

प्रमाण माने बिना प्रमेयका निर्णय नहीं होता। परलोक, जन्मान्तर, जन्म-मृत्यु और आत्माके रहस्यको माननेके लिये अलौकिक शास्त्र-प्रमाणको स्वीकार करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अलौकिक तत्त्व केवल युक्तिके द्वारा साध्य नहीं होता।

अजा, अज्ञेया मायाकी सृष्टि ब्रह्माण्ड है; जीव उसके अन्तर्गत है। स्वरूपतः जीव अणु होनेपर भी सत्, चित् और आनन्दमयका अंश है; अतएव नित्य है। जीव नित्य है, उसका स्वभाव नित्य है। यह जीव मनुष्यके रूपमें अभिव्यक्त होकर नित्य आनन्दमय भगवान्‌के संग मिलनेके लिये साधनामें प्रवृत्त होता है। अनेक योनियोंमें भ्रमण करनेपर जो मनुष्यदेह प्राप्त होता है, वह सबसे श्रेष्ठ लाभ है, यह बात अनेक बार कही जा चुकी है। इन्द्रिय आदिके संस्थान, मनोवृत्तिके उत्कर्ष, ज्ञान-विज्ञान तथा ईश्वरानुरागके द्वारा मनुष्य सृष्टिमें अनन्यसाधारण जीव है। जन्म-मृत्युका व्यवधान मिटाकर इहलोक और परलोकमें मधुर सम्बन्ध-स्थापन करनेका अधिकार साधक मनुष्यको ही है। अनन्त पथके यात्रीके रूपमें उसको जो मन्त्रग्रहण करना पड़ता है, जिस साधनामें अपनेको लगाना पड़ता है, उसका पूर्ण अधिकार मनुष्यको है। यह मनुष्य-देहकी प्राप्ति देव-दुर्लभ है; क्योंकि साधनाका मूल इस मानव-जीवनमें ही है। इस एक जीवनमें शत-शत जीवनकी समस्याओंका समाधान हो जाता है। बद्ध जीव, जब उसको अपने स्वरूपका ज्ञान होता है, मुक्त हो जाता है। जीव परम पुरुषोत्तमके विभिन्न अंश —उनकी तटस्था शक्तिके विलास हैं। सूर्य और उसकी किरण जैसे स्वरूपतः अभिन्न होकर भी नित्य भिन्न हैं; अग्नि और उसकी चिनगारी अथवा समुद्र और उसके तरङ्गोंमें जैसे भेदाभेदका सम्बन्ध है; उसी प्रकार अंशी कृष्ण और जीवमें भेदाभेद है। भक्तलोग जीवका अभिन्न होनेपर भी भिन्न रूपमें चिन्तन करते हैं। यह भेद मुक्तिकी अवस्थामें भी रहता है।

अतस्तस्मादभिन्नास्ते भिन्ना अपि सतां मताः।
मुक्तौ सत्यामपि प्रायो भेदस्तिष्ठेदतो हि सः॥

(बृहद्भागवतामृतम् २।२।१८६)

आचार्य श्रीशंकरका वाक्य है—

'मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ति।'

इससे इस विषयका दिग्दर्शन होता है।

श्रीमद्भागवतमें भी देखा जाता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः ।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने ॥
(६ । १४ । ५)

मुक्तिमें जीवसत्ता जब ब्रह्ममें लय हो जाती है तो फिर लीलामें विग्रह धारण करेगा कौन ? अथवा कौन सिद्ध होकर मुक्तिके पश्चात् भी फिर नारायण-परायण होगा ? पद्मपुराणमें भगवान्‌में महामुनिका मनुष्य-शरीर लय हो जानेके पश्चात् भी पुनः नारायण मुनिके रूपमें आविर्भाव होनेकी कथा आती है । बृहत् नरसिंहपुराणमें नृसिंहचतुर्दशी-व्रतके प्रसङ्गमें वेश्याके सहित ब्राह्मणके भगवान्‌में लीन हो जानेके बाद भी पुनः भार्याके सहित प्रह्लादके रूपमें आविर्भावका वर्णन है । परंतु यदि भगवदिच्छा हो तो वे किसीको सायुज्य नामक निर्वाण भी दे सकते हैं । इसीलिये मूल श्लोकमें 'प्रायः' शब्दका व्यवहार किया गया है । सत् या असत्‌के साथ जीवका उत्थान या पतन होता है । कभी स्वर्ग, कभी नरक भोग मिलता है । शास्त्र अनुशासन करते हुए जीवके उत्कर्षके मार्गका निर्देश करते हैं । देवर्षि नारद अपने पूर्वजन्मका स्मरण करके वेदव्याससे कहते हैं कि 'मैं पूर्व-जन्ममें एक दासीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था । मेरी माता थी वेदज्ञ ब्राह्मणोंकी सेविका । वर्षाकालमें चार मास एक स्थानपर अवस्थान करनेवाले साधु-संतोंकी सेवामें मैं नियुक्त था । साधुजन मुझपर अनुग्रह करते थे । उनके उच्छिष्ट पात्रका अवशिष्ट भोजन करनेसे मेरा हृदय भगवद्भावसे भावित हो गया । प्रतिदिन साधु-संतोंके मुखसे श्रीकृष्ण-कथा, श्रीकृष्ण-गुणगान सुनते-सुनते मेरी श्रीकृष्णमें रति हो गयी । तब मैंने समझा कि परमात्मा परब्रह्मकी मायाके द्वारा स्थूल-सूक्ष्म प्रपञ्चात्मक देहकी सृष्टि हुई है । इस प्रकार विश्वके रहस्यका ज्ञान मुझको हुआ—'

तस्मिंस्तदा लब्धरुचेर्महामुने
प्रियश्रवस्यस्खलिता मतिर्मम ।
ययाहमेतत्सदसत्स्वमायया
पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पितं परे ॥
(श्रीमद्भा० १ । ५ । २७)

जन्म-जरा और मृत्यु, सब कुछ मायिक है, तथापि इनसे भय-विभीषिका कम नहीं होती । भगवान् कपिलमुनि माता देवहूतिसे जन्म-मृत्युका रहस्य कहते हैं—

जीवो ह्यस्यानुगो देहो भूतेन्द्रियमनोमयः ।
तन्निरोधोऽस्य मरणमाविर्भावस्तु सम्भवः ॥
(श्रीमद्भा० ३ । ३१ । ४४)

जीव एक लोकसे दूसरे लोकमें जाता है, यह असम्भव नहीं है । वह अपने उपाधिमय लिङ्गशरीरको धारण करके परलोक-गमन करता है । नवीन देहमें नवीन कर्मोंमें प्रवृत्त होता है । कर्मानुसार फलभोग करता है । उपाधिमय लिङ्ग-शरीर तथा पाञ्चभौतिक इन्द्रियोंसे युक्त स्थूलशरीर—इन दोनोंके जब एक साथ मिलकर कर्म करनेकी क्षमता नहीं रहती है, तब कहते हैं कि 'मृत्यु' हो गयी । लिङ्गशरीर और भोगायतन मन-इन्द्रियसे युक्त स्थूलशरीरका एक साथ मिलकर प्रकट होना ही 'जन्म' कहलाता है । इस जन्मके साथ एक अभिमान—अर्थात् मैं हूँ और मेरा शरीर है—इस प्रकारकी एक अवस्था रहती ही है । इसी 'मैं और मेरा'की भावनाका जब पूर्णतया विस्मरण हो जाता है, तो कहा जाता है कि 'मृत्यु' हो गयी । एकादश इन्द्रिय और पञ्च तन्मात्राएँ, इन सोलह पदार्थोंके साथ सत्रहवाँ जीवचैतन्य मिलकर स्थूलशरीरमें हर्ष-शोक, भय, दुःख और सुख आदि विभिन्न भावोंसे आक्रान्त होता है'—

अनेन पुरुषो देहानुपादत्ते विमुञ्चति ।
हर्षं शोकं भयं दुःखं सुखं चानेन विन्दति ॥
(श्रीमद्भा० ४ । २९ । ७५)

पञ्च प्राण, पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि—वेदान्तमें सूक्ष्मशरीरके ये ही सत्रह अवयव हैं । ऐसा भी कहा जाता है, सूक्ष्मशरीरको लेकर जीवचैतन्यका स्थूलदेहमें प्रवेश ही 'जन्म' है । सूक्ष्मशरीर स्वरूप और परिमाणमें भी सूक्ष्म होता है, अतएव अदृश्य तथा सर्वत्र निर्बाध विचरणमें समर्थ होता है । मृत्युके समय यह सूक्ष्म-देह ही जीवको स्थूल देहसे वहन करके ले जाता है । उस समय इसका नाम 'आतिवाहिक' देह होता है तथा यही प्रेतशरीरके नामसे परिचित होता है । इसके बाद यथा-नियम स्थूलदेह या भोगदेह प्राप्त होता है । वेदानुगत शास्त्रोंके अनुशासनमें अवस्थित वेदोक्त दस संस्कारोंमें विश्वास रखनेवाले मनुष्यका ही श्राद्ध आदि अनुष्ठान होता है । शास्त्रोक्त पारलौकिक अनुष्ठान यथोचित रूपमें अनुष्ठित होनेपर मृत व्यक्तिकी प्रेतत्वसे मुक्ति होती है और कर्मफलके भोगके उपयुक्त देह प्राप्त होती है । जीवनकालमें जिस प्रकारके कर्म किये जाते हैं, मनुष्यकी तदनुसार ही शुक्ल या कृष्ण मार्गसे गति होती है । एक परावर्तनका मार्ग है और दूसरा अनन्तका । उस मार्गसे जानेपर फिर लौटना नहीं होता । कर्मविपाक किस आदमीको कहाँ ले जायगा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कहना कठिन है। जो लोग समझते हैं कि जीव निरन्तर उत्कर्षकी ओर जा रहा है, उनकी बात दूसरी है; परंतु शास्त्रमें विश्वास रखनेवाले साधक मनुष्यका उत्थान-पतन, उत्कृष्ट देहकी प्राप्ति तथा निकृष्ट योनिमें जन्म—दोनोंको ही स्वीकार करते हैं। इसी कारण साधक अविचारपूर्वक किसी निन्दित कर्ममें प्रवृत्त नहीं हो सकते। भूलसे यदि कोई दुःसङ्ग हो जाय तो उसके लिये प्रायश्चित्त करके शुद्ध होनेके लिये यत्न करते हैं। मृत्युके पहले ही बहुतसे लोग स्वेच्छासे आत्मशुद्धिके लिये प्रायश्चित्त किया करते हैं। हरिनामकी साधना करनेवाले साधक श्रीभगवान्‌के नामकीर्तनको ही सर्वश्रेष्ठ प्रायश्चित्त समझते हैं। वे लोग हृदयकी शुद्धिके लिये अन्य किसी प्रकारके प्रायश्चित्तको स्वतन्त्ररूपसे प्रधानता नहीं प्रदान करते। सब कर्मानुष्ठानोंमें उनको पूर्णत्व प्राप्त करानेके लिये श्रीहरिनामकीर्तनकी व्यवस्था श्रुति-स्मृति-सम्मत है। जीवनमें और मरणमें हरिस्मरण ही उनके लिये काम्य है। वे कहते हैं—

हों मनुष्य चाहे पशु पक्षी या बन जायें कीट पतङ्ग।
आना जाना रहे कर्मवश मति नित रहे तुम्हारे सङ्ग॥

अर्थात् 'हे प्रभु! हम चाहे मनुष्य, पशु-पक्षी या कीट-पतङ्ग किसी भी योनिमें जन्म लें, कर्मविपाकसे चाहे बारंबार आवागमन हो, किंतु हमारी बुद्धि सदा तुम्हारेमें लगी रहे।'

जैसी भावना वैसा ही भव। अर्थात् भावनाके अनुसार ही भव (संसार) मिलता है। जिसमें जो भाव मुख्यरूपसे होता है, वही उसके भावी जीवनका पथ-प्रदर्शक होता है। इसलिये देहकी शुद्धि जैसे आवश्यक है, वैसे ही भावकी शुद्धि भी आवश्यक है। शुद्धभाव रहते इहलोक हो या परलोक—'भगवद्धाममें ही मैं हूँ'—इस प्रकारकी अनुभव-सम्पत्ति समानरूपसे प्राप्त होती है। तब शरीरके रहने या न रहनेका कोई आग्रह या अनाग्रह नहीं होता तथा देह-त्याग या देह-प्राप्तिमें हर्ष या शोक भी विचलित नहीं करता।

साधारण मनुष्य जो पाप-पुण्यकी भावनासे कर्म करते हैं, वे लोग भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक अथवा स्वर्ग आदिकी गति प्राप्त करते हैं। चित्तशुद्धि होनेपर निष्काम व्यक्ति तथा त्यागी साधु महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और अन्तमें सत्यलोकपर्यन्त गमन करके मुक्त हो सकते हैं। किसी-किसीकी क्रममुक्तिके मार्गसे धीरे-धीरे अग्रगति होती है और किसी-किसीकी विशेष सौभाग्य उदय होनेपर सद्योमुक्ति होती है। साधुसङ्गके प्रभावसे जो लोग निष्काम भक्तिपथके पथिक होते हैं, उनमें भी तारतम्य देखा जाता है। कोई ज्ञानमिश्रित भक्ति करते हैं, कोई शुद्धा भक्तिके साधक होते हैं, तो कोई प्रेम-भक्तिका अनुशीलन करते हैं। इसके अतिरिक्त प्रेमपरायण और प्रेमातुर भक्त भी प्राप्त होते हैं। उनके भजनरसकी विभिन्नताके कारण भगवत्प्राप्तिमें भी तारतम्य माना गया है। वैकुण्ठ-वर्णनमें सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य और सार्ष्टि मुक्तिकी बात प्रसिद्ध है। भक्तके जीवनमें सायुज्य तो कभी भी आदरणीय नहीं होता। इस सायुज्य मुक्तिको तो श्रीकृष्णसे विद्वेष रखनेवाले भी श्रीकृष्णके हाथों मारे जानेके फलस्वरूप प्राप्त कर चुके हैं, ऐसा सुना जाता है।

भगवान्‌के मन्दिरमें प्रविष्ट सभी भक्तोंको आनन्दका अनुभव होता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। किंतु जो लोग विशेष रसयुक्त प्रीतिविशेषमें भगवान्‌की कृपा प्राप्त करके रास आदि नृत्य-विलासके द्वारा आनन्दमयको आनन्द प्रदान करते हैं, उनके लिये एक ऐसा कोई विशेष स्थान है, जिसे वैकुण्ठसे भी अधिक सुखमय कह सकते हैं। इसको भी अवश्य ही मानना पड़ता है। यहाँ ब्रह्मसंहिता (५।४६)का अवतरण दिया जाता है—

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि-
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

ब्रह्माजी कहते हैं कि 'सच्चिदानन्दविग्रह आदिपुरुष गोविन्दको मैं भजता हूँ। श्रीकृष्ण गोविन्द प्रेमरसमय हैं, उनकी शक्ति भी प्रेमरसमयी है। इस प्रकारकी आनन्दिनी मूर्त्तिमयी शक्तियोंके साथ गोलोकमें वे नित्य विहार करते हैं।' यह गोलोक कहाँ है? कैसा है? कैसे, किस मार्गसे वहाँ जाना होता है?—इस प्रकारकी जिज्ञासा साधकके मनमें होती है।

सारी कर्मवासनाओंके क्षय होनेपर पाञ्चभौतिक देहके पतनके पश्चात् विदेहमुक्ति होती है, यह बात हमने सुनी है। देहान्तर न होनेपर भी देहके परमाणुओंके चिन्मय होनेकी बात भी कुछ प्रचलित है। वैष्णव साधक भावान्तरके द्वारा यह शरीर किस प्रकार अप्राकृत राज्यमें प्रवेश करता है तथा चिन्मय शरीरके साथ अङ्गाङ्गीभाव स्थापन करता है, इसका वर्णन विशदरूपसे करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोलोकधामके दर्शन और अनुभवके सम्बन्धमें हम यहाँ कुछ चर्चा करेंगे।

एक ब्राह्मण धनकी आशासे कामाख्या देवीकी उपासना करते थे। देवीने उनकी श्रद्धासे संतुष्ट होकर उनको स्वप्नमें दस अक्षरका श्रीमदनगोपाल मन्त्र प्रदान किया। साध्य-साधनके विषयमें जानकारी न होनेपर भी उस जपके फलसे ब्राह्मणका हृदय कामनारहित हो गया। वे मन्त्र-जप पूरा करके तीर्थभ्रमणके लिये निकले। वैष्णव लोगोंके उपदेशसे, सत्सङ्गके फलस्वरूप एकान्तमें मन्त्र-जपके प्रभावसे उन ब्राह्मणको आनन्दमूर्च्छा हुई। उसको भी उन्होंने जपके मार्गमें विघ्नरूप माना। एक दिन उनको श्रीभगवान्‌का आदेश हुआ कि 'वृन्दावन जाओ, वहाँ परम आनन्द प्राप्त करोगे। रास्तेमें देर न करना।' वृन्दावन जानेपर उनको गोपकुमारके रूपमें श्रीगुरुदेव प्राप्त हुए। गोपकुमारने कृपापूर्वक अपने जीवनकी कहानी उनको सुनायी। साधनाकी प्रथम अवस्था देहान्तरकी भावना या जन्मान्तरकी विभीषिका नहीं है। शुद्ध भावके सम्बन्धसे ही साधककी देह सिद्धदेह हो जाती है। दीक्षाके प्रभावसे सत्सङ्गके द्वारा भगवद्धाममें अवस्थितिका अनुभव करके उनको नवजन्म प्राप्त होता है।

नूतन मनुष्य बननेके लिये पहले महान् पुरुषकी कृपा चाहिये। दीक्षा ग्रहण करना परम आवश्यक है। नियमित मन्त्रजपसे एकके बाद एक भगवद्विग्रहके प्रति श्रद्धा होती है। शालग्रामचक्र, चतुर्भुज श्रीनारायण, श्रीजगन्नाथ, श्रीवामन भगवान्, यज्ञेश्वर भगवान् और तपोलोकमें परमात्माका अनुसंधान तथा सत्यलोकमें सहस्रशीर्षा पुरुषकी महिमाका पता लगता है।

मायाके प्रभावसे मुक्त साधक चिरदीप्त पराकाश, परव्योम या चिदाकाशका दर्शन करता है। इस अनुभवके राज्यमें प्रवेश करनेके लिये भगवद्भक्तिके सिवा और कोई उपाय शास्त्रोंमें प्रदर्शित नहीं हुआ है। मर्त्यलोकमें हमलोग देवीधाम, शिवधाम, श्रीक्षेत्र, अयोध्या, द्वारका, मथुरा, गोकुल, वृन्दावन आदिका दर्शन करते हैं; परंतु इन सब तीर्थस्थानोंकी महिमा ग्रहण करनेका सौभाग्य सबको नहीं होता। इसका कारण है हमारे अंदर साधनाका अभाव।

श्रीचैतन्यचरितामृतमें प्रकृतिके पार विभु परव्योम धामके विषयमें कहा गया है कि—

सर्वग अनन्त ब्रह्म बैकुण्ठादि धाम।
कृष्ण कृष्ण अवतारेर ताहाई विश्राम॥
ताहार उपरि जगे कृष्णलोक ख्याति।
द्वारका, मथुरा, गोकुल त्रिविधत्वे स्थिति॥
सर्वोपरि श्रीगोकुल व्रजलोक धाम।
श्रीगोलोक श्वेतद्वीप वृन्दावन नाम॥

श्रीभगवान्‌के पूर्णतम प्रेम, माधुर्य-विलासका धाम श्रीगोलोक है। श्रीकृष्ण एक स्थानमें रहते हुए ही सभी भक्तोंके स्थानोंमें साक्षात् अनुभूत होते हैं। भगवान् अपने धाम अप्राकृत चिन्मय परव्योममें रहते हुए ही प्राकृत संसारमें प्रकट होकर प्रत्यक्ष अनुभवका विषय बनते हैं। साधारण मनुष्य उनकी विवेचना करते हुए देशविशेषका विचार करके ही उनके धामके सम्बन्धमें सिद्धान्त बनाते हैं। यह धामतत्त्व अप्राकृत मनमें प्रत्यक्ष होता है, कृपासे जाना जाता है तथा प्रेम-सेवाकी लालसासे प्राप्त होता है। यह बात साधक लोग हमको स्मरण कराते हैं—

सर्वग अनन्त विभु कृष्ण तनु सम।
उपर्यधो व्यापियाछे नाहिक नियम॥

भक्तके प्रति अनुग्रह करनेके लिये रसिकेन्द्रचूड़ामणि परम करुणामय श्रीकृष्णकी इच्छासे प्राकृत ब्रह्माण्डमें भी प्रेमप्रोज्ज्वल चिन्मय धाम प्रकाशित होता है। यही क्यों, उनकी चिर आनन्दमयी लीला भी उसके साथ प्रकाशित होती है। वह लीला, वह धाम-माधुर्य, काम-कामना-दूषित मन-प्राणमें अनुभूत नहीं होता। इसके लिये चाहिये—शुचि शुभ्र जीवनशोभा। श्रीकृष्णविलास-भूमिके यथार्थ दर्शनके लिये आवश्यक है—अक्लान्त उत्कण्ठा, निराविल दैन्य, निरलस नामाश्रय तथा ऐकान्तिक प्रेमप्रकर्ष।

चिन्तामणि भूमि कल्पवृक्षमय वन।
चर्मचक्षे देखे तारे प्रपञ्चेर सम॥
प्रेमनेत्रे देखे तार स्वरूप प्रकाश।
गोपगोपी सङ्गे जाहाँ कृष्णेर विलास॥

समाधि-दर्शन और प्रेमदर्शनकी, अन्तरानुभव और बाह्यदर्शनकी विचित्रताकी बात भूल जानेसे काम नहीं चलेगा। समाहित होनेपर अहंतत्त्व लय हो जाता है। उसके साथ ही बहिरिन्द्रिय और अन्तरिन्द्रियोंकी—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रियोंकी और अन्तःकरणकी वृत्ति लुप्त हो जाती है। अनुभवकर्त्ता और अनुभवका अभाव होता है। उस समय जो सुख होता है, उसको शून्यरूपताके सिवा और क्या कहेंगे ?

परं समाधौ सुखमेकमस्फुटं
वृत्तेरभावान्मनसो न चाततम्।
वृत्तौ स्फुरद्वस्तु तदेव भासते-
ऽधिकं यथैव स्फटिकाचले महः॥

(बृहद्भागवतामृतम् २। २। २१५)

अनुभवसे जो आनन्द नहीं प्राप्त होता है, वह भी निरानन्द है। गलेमें मणिमय हार रहनेसे क्या होगा, यदि उसकी स्मृति नहीं है ? भक्तिसुखका अनुभव करनेवाला भक्त नित्य है; अनुभवके कर्म श्रीभगवान् अनिर्वचनीय और अनुभवनीय नित्य हैं। अनुभूति बाह्य और अन्तरिन्द्रियकी वृत्ति नव-नव माधुर्य ग्रहण करनेमें प्रकृष्ट रूपसे नित्य स्फूर्त्ति प्राप्त करती रहती है। 'मैं उनका सेवक हूँ, सर्वदा पादसंवाहनादि करता हूँ'—ऐसे अनुभवका प्रतिदिन उत्कर्ष होता है। 'उनके रूप, गुण और लीलाका माधुर्य प्रतिक्षण नवनवायमान होकर मेरे नयन, मन और प्राणमें अनुभूत होता है। मैं उत्तरोत्तर अधिक उल्लासके साथ नामकीर्तन करता हूँ, जप करता हूँ, विग्रह-सेवा करता हूँ। उनके ही चरणारविन्दके स्मरणमें ही मन लगा रहता है। दूसरी-दूसरी भावनाएँ बाधा नहीं दे सकतीं। जैसे सूर्यकी किरणोंके पड़नेसे स्फटिकके पहाड़की उज्ज्वलता क्रमशः बढ़ती है, उसी प्रकार मेरे अनुभवमें श्रीकृष्णकी कृपा-किरणके सम्पातसे उत्तरोत्तर आनन्दोल्लास बढ़ता है।

कदापि तस्मिन्नेवाहं लीयमानोऽनुकम्पया।
रक्षेय निजपादाब्जनखांशुस्पर्शतोऽमुना॥

(बृहद्भागवतामृतम् २। ३। ४०)

कभी-कभी सायुज्य मुक्तिके समान उनकी प्रदीप्त कान्तिमें मानो डूब जानेपर मैं उनके श्रीविग्रहकी करुणाकी बात स्मरण करता हूँ। तब वे ही मुझको निज पदकमलका स्पर्शदान करके सजग कर देते हैं। मैं फिर सेव्य-सेवक सम्बन्धमें लौट आता हूँ।

भगवान् सेवककी लालसा पूर्ण करते हैं। सेवक भी अनन्यभावसे अपने प्रियतमके लीलामाधुर्यके प्रकाशनमें सहचर होता है। मर्त्यलोकमें द्वारका, मथुरा, वृन्दा उनकी लीला होती है। वैसे ही वैकुण्ठके ऊपर गो कृष्णलोकमें तदनुरूप लीला नित्य होती रहती श्रीगोविन्दकी गोलोकलीलामें इस प्रकारका गौरव माधुर्यपूर्ण व्यवहार है कि कोई यह समझ नहीं कि वह मर्त्यलोकमें है या अमृतलोकमें है। गो कृष्णलोक सबसे ऊर्ध्व सर्वोत्कृष्ट सब देशोंका चूड़ामणि

ब्रह्मसंहिता (५। ५२) का यह वर्णन स्मरण योग्य है—

गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य
देवीमहेशहरिधामसु तेषु तेषु।
ते ते प्रभावनिचया विहिताश्च येन
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

गोप्रधान देश होनेके कारण ही 'गोलोक' नाम है। सब धामोंके ऊपर गोलोक है। उसी गोलोकके भूलोकमें प्रिय वृन्दावनको सर्वदा निजपद-अङ्कित क्रीड़ाविशेषका विस्तार करते हैं। ऐसी लीला अन्य धाममें नहीं होती। भूतलमें वृन्दावनके समान ही गोलो भी नित्य ही यह लीला होती रहती है। पृथ्वीके स्थलपर गोकुल-वृन्दावनमें प्रकट और अप्रकट भेदसे लीला साधारण जीवके भाग्यमें कभी दर्शनीय और अदृश्य होती है। प्रेमकी आँखोंसे तो सदा ही दर्श होती है। इस आनन्दलीलामें प्रवेशलाभ करना मनुष्यका नया जन्म है। इसीके लिये श्रीगौराङ्ग महाप्र प्रेमभक्तिके अनुशीलनकी श्रीरूप-सनातन आदि भक्तजनको शिक्षा दी है—

लीलैव नित्या प्रभुपादपद्मयो-
र्या सच्चिदानन्दमयी किल स्वयम्।
आकृष्यमाणेव तदीयसेवया
तत्तत् परीवारयुता प्रवर्तते॥

श्रीराधावल्लभकी, निज परिकरगणके सहित, जि साथ जैसी समुचित है, उसी प्रकारकी, नित्य ली प्रवर्तित होती रहती है। यह लीला सच्चिदानन्दमयी है अतएव सब प्रकारके दोषोंसे रहित है। प्राकृत व्यवहार दृष्टिसे देखनेपर भी वह निर्दोष है। अपने भक्तगण सेवाकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये ही वे मानवी लीला करते रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीज और जीव

(लेखक—अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)

इस विश्व-प्रपञ्चमें ऐसा कोई प्राणी नहीं है, ब्रह्मासे लेकर कीट-पतङ्गपर्यन्त, जो दुःखसे परहेज (परिजिहीर्षा ?) न करता हो और उससे बचनेका यत्न न करता हो। विवेकदृष्टिसे देखनेपर स्पष्ट हो जाता है कि दुःख अपने स्वरूपके अनुरूप नहीं, प्रतिरूप है। इसीसे बिना माता-पिता, गुरु और शास्त्रकी किसी प्रकारकी शिक्षा प्राप्त किये, बिना सिखाये, बिना संस्कार डाले स्वाभाविक ही मृत्यु, अज्ञान, भय आदिसे अरुचि होती है। विचार करके देखें तो जो दुःख बीत गया, उससे छूटनेका कोई प्रश्न नहीं। जो प्रतीत हो रहा है, वह बीतता जा रहा है। जो आनेवाला है, वह ज्ञात नहीं है। फिर दुःखसे छूटनेकी इच्छाका क्या अर्थ हुआ ? जिन कारणोंसे दुःख होते हैं उन कारणोंसे छुटकारा—सदाके लिये छुटकारा, सर्वत्रके लिये छुटकारा, सर्वरूपसे छुटकारा, अर्थात् आत्यन्तिक दुःखमुक्ति। ऐसी स्थितिमें स्वाभाविक ही प्रश्न उठता है कि दुःखका कारण क्या है ? और उसके निवारणका उपाय क्या है ?

देहके साथ ही दुःखका उदय होता है। जन्म-मरण—दोनोंमें ही दुःखका अनुभव होता है। रोग, वियोग, भोग, संयोग, अनुकूल-प्रतिकूल—सब देहके सम्बन्धसे ही होता है। स्वाधीनता-पराधीनता भी इसीके साथ लगी हुई है। धर्म-कर्म-अवस्था-स्थिति—सब देहके ही कच्चे-बच्चे हैं। इस देहका सम्बन्ध ही दुःखका हेतु है। सम्बन्ध क्या है,—'मैं' और 'मेरे'के रूपमें इसे स्वीकार करना। अपने स्वरूपका विवेक करें और अपनेको देहसे अलग समझ लें—**'नाहं न मे'**—'न मैं, न मेरा'। बस, देहके बारेमें जो कुछ कहा जाय, वह कहा जाने दो। जो कुछ हो, सो हो। जैसे रहे, वैसे रहे। यह न 'मैं', न 'मेरा'। मैं द्रष्टा, साक्षी, असङ्ग, उदासीन। देहके दुःखसे मैं दुखी नहीं, देहके सुखसे सुखी नहीं। देहकी मृत्यु और जडता मेरा स्पर्श नहीं करती। इसके रोग और भोग मुझे छूते नहीं। इसके निरोध और विरोधका मुझे कोई अनुरोध नहीं है। इसकी श्रान्ति और भ्रान्तिसे मेरी शान्तिमें कोई विघ्न नहीं पड़ता। 'अहं' और 'मम'के रूपमें देहको ग्रहण करना ही दुःखका उपादान है। **'अहम्मानादुत्पत्तिर्द्वैव्यदर्शनम्।'** इसका अर्थ हुआ कि देह दुःख है और इसको आत्मा अथवा आत्मीयरूपसे ग्रहण करना उपादान है। जब उपादान कारण ही नहीं रहेगा तो कार्य कहाँ ?

अब सुनिये ! यह देह कहाँसे आ गया ? 'मैं-मेरा' छोड़ देनेपर यह कहाँ चला जायगा ? इस देहसे फिर वैसा ही सम्बन्ध नहीं हो जायगा, इसका क्या आश्वासन है ? देह चाहे एक तत्त्वसे बना हो, चाहे अनेकसे, जड धातुमें इसका घटन या गठन बिना धर्माधर्मके तो हो नहीं सकता। धर्माधर्म बनता है कर्मसे। कर्म होता है शरीरसे। फिर तो देहकी संतानपरम्पराका कभी उच्छेद नहीं होगा; क्योंकि जैसे पहलेसे विहित और निषिद्ध कर्म होते आये हैं, होते हैं, वैसे ही होते रहेंगे। देहसे कर्म और कर्मसे देह। ये दोनों बीज-वृक्षके समान अनादि परम्परासे चले आ रहे हैं। तब क्या जीवका जीवन एक बीजका जीवन है ? नहीं, नहीं; बीजके जीवनमें और जीवके जीवनमें आकाश-पातालका अन्तर है। जीव अविनाशी चेतन है और बीज विनाशी जड। आइये, एक बार दोनोंकी तुलना कर लें।

आपके हाथमें एक बीज है। क्या आप पहचानते हैं कि यह किस वृक्ष या फलका बीज है ? यदि हाँ, तो इसे देखते ही आप इसके पूर्व रूप और उत्तर रूपकी कल्पना कर सकते हैं। यह बीज कैसे मूल, तनों, डालियों, पल्लव एवं पुष्पोंको पार करता हुआ आया है। अब यह बोनेपर फिर उसीसे मिलता-जुलता रूप ग्रहण करेगा। क्या यह सब बीजमें दीखता है ? नहीं, परंतु है सब बीजमें समाया हुआ। बीजको पृथ्वी, जल, गर्मी, प्रकाश, वायु और अवकाश—सब कुछ चाहिये। खेत, खाद, सिंचाई। वह आर्द्र होगा, फूलेगा, अङ्कुरित होगा, बढ़ेगा। उसे देश चाहिये, काल चाहिये। यह सब कुछ होनेपर भी वह अपने स्वभावके अनुसार ही आकृति, रूप, स्वाद प्रकट करेगा। बीज अनादि परम्परासे चला आ रहा है, अन्तर्बहिः ऊर्ध्वाधः गति प्राप्त करता रहा है और यह तबतक चलता रहेगा, जबतक इसका बीजत्व अग्नि आदिके द्वारा नष्ट न हो जाय।

अब आप एक जीवको अपनी कल्पनाके हाथमें लीजिये। उसमें एक विशेष प्रकारका जीवत्व है। उसको भी आविर्भाव-तिरोभावके लिये काल चाहिये। गमनागमनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये देशकी अपेक्षा है। नाना प्रकारके रूप ग्रहण करनेके लिये द्रव्यकी आवश्यकता है। यह गमनागमन जन्म-मरण और रूप-परिवर्तन कर्मके सम्बन्धसे होते हैं। बिना कर्मके उठना-गिरना, जीना-मरना अथवा जाना-आना नहीं हो सकता। एक ही वस्तु कर्मके बिना अनेक आकारोंमें परिवर्तित नहीं हो सकती। यही कर्म प्राकृत जगत्में विकार या विक्रियाके नामसे कहे जाते हैं, जो एक विशिष्ट प्रक्रियासे आकृतियोंकी धाराका निर्माण करते हैं और यही कर्म जीव-जगत्में कर्तृत्वपूर्वक किये जानेके कारण एक विशिष्ट वासनाजन्य संस्कारका रूप ग्रहण करते हैं, जिससे उनकी संज्ञा धर्म अथवा अधर्म हो जाती है। चैतन्यकी प्रधानतासे जीव होता है और जडत्वकी प्रधानतासे बीज। जीवका 'ब'कार उसकी अन्तःस्थताका सूचक है और बीजका 'ब'कार बहिष्ठताका। बीज केवल निर्माणका हेतु है; परंतु जीव निर्माण और प्रमाण दोनोंका। बीजकी शक्तियाँ केवल भौतिक द्रव्यमें रहती हैं और जीवकी भौतिक-अभौतिक दोनोंमें। जीवके बहिःकरण और अन्तःकरण दोनों जाग्रत् रहते हैं; परंतु बीजके करण मूर्छित होते हैं। बीजमें धर्माधर्मकी उत्पत्ति नहीं होती; परंतु जीव प्रमाणवृत्तिका आधार होने एवं कर्ममें स्वतन्त्र होनेके कारण धर्माधर्मका आधार बनता है। बीज भोग्यांश-प्रधान है और जीव भोक्ता-अंश-प्रधान; इसलिये जीवका सुख-दुःख जाग्रत् है और बीजका सुषुप्त। जीव अपने धर्माधर्मके द्वारा ऊर्ध्वगति और अधोगति प्राप्त करता है; बीज प्रकृतिकी स्वाभाविक धारामें विवश होकर।

जीव भी प्रकृतिके राज्यमें ऊर्ध्वस्रोत, तिर्यक्स्रोत और अधःस्रोत—तीन प्रकारके होते हैं। प्रायः पहले दोनोंमें जडत्वकी प्रधानता रहती है; परंतु अधःस्रोतमें प्राकृत उन्नतिकी पूर्णता हो जाती है। वह ऊपरसे भोजन लेकर नीचेकी ओर बढ़ता है। यह मनुष्ययोनि ऐसी ही है। इसमें कर्म, ज्ञान और प्रेमके प्रकट होनेकी पूर्ण योग्यता है; क्योंकि नवीन-नवीन कर्म करनेके लिये हस्त आदि इन्द्रियोंका, नित्य नूतन आविष्कार करनेके लिये बुद्धिका और आनन्दानुभूतिके लिये प्रेमका विकास स्पष्ट देखनेमें आता है। इस योनिमें सद्भाव, चिद्भाव एवं आनन्दभावके अनुभवकी पूर्ण योग्यता है। यह अपने अन्तःकरणमें विद्या एवं कर्मका संस्कार धारण करना और पूर्व प्रज्ञाका उदय भी देखनेमें आता है। इसी धर्माधर्मका सम्पूर्ण दायित्व मनुष्योंमें ही प्रकट होता है।

अधर्माचरण करनेसे देह, इन्द्रिय और मनपर जीव नियन्त्रण शिथिल हो जाता है; इसलिये उन्हें पुनः प्रकृति नियन्त्रणमें जाकर उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज या द्विपद द्विपादसे इतर जरायुज होना पड़ता है। धर्माचरण देह, इन्द्रिय और मनकी शुद्धि और नियन्त्रणकी पूर्ण होनेपर दैवी राज्यमें प्रवेशकी योग्यता मिलती है। दैवी राज्यमें भी प्रथमतः ऐन्द्रियक सुखका ही उत्कर्ष हो होता है; परंतु एक इष्टकी अनन्यभावसे उपासना करने ऐन्द्रियक सुखसे विलक्षण इष्टदेवसम्बन्धी दैवी सुख आविर्भाव होता है। धर्मसुखमें अनेक देवता, मन्त्र और विधि-विधानके कारण फलमें भी अनेकता होती और उपासनामें एक इष्ट मन्त्र, पद्धति और निष्ठा होने कारण भाव-प्रधान एकाग्रवृत्तिमें भागवतसुखका आविर्भ होता है। अन्तःकरणके साक्षी स्वयंप्रकाश चेतनका दे काल और द्रव्यके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। वृत्ति विरोधसे यही द्रष्टा आत्मा स्वरूपमें स्थित हो जाता तब यह देशकृत गमनागमन, कालकृत जन्म-मरण द्रव्यकृत योनिपरिवर्तनसे मुक्त हो जाता है। उपाधि असंग हो जानेके कारण उस समय यह द्रष्टा स्वरूपमें अवस्थित होता है; परंतु समाधि टूट जाने इसका फिर वृत्तिसारूप्य हो जाता है, इसलिये वृत्ति नियन्ताद्वारा इसका भी नियन्त्रण और जन्म-म आदि शक्य हो जाता है। परंतु वेदान्तोक्त ब्रह्मात्मैक्य होनेपर देश-कालादिका बाध अर्थात् मिथ्यात्व सि हो जाता है, तब जन्म-मरणादिकी आत्यन्तिक नि हो जाती है। जबतक वृत्तिमें सत्यता और उनके स तादात्म्य रहेगा, तबतक भेदकी सत्यता, द्रष्टाकी अने और ईश्वरकी पृथक्ताको कोई मिटा नहीं सकता। इसलि जन्म-मरणका प्रवाह बना ही रहेगा। बीजत्व भौति होनेसे अनादि होनेपर भी भौतिकाग्नि-नाश्य है; पर जीव चेतन होनेके कारण भौतिकाग्नि-नाश्य नहीं है इसका वृत्तियोंके मूलभूत वासनाबीज-संस्कारोंके सा अविद्यामूलक तादात्म्य है, इसलिये ज्ञानाग्निके द्व अविद्याका दाह हुए बिना जीवका जीवत्व निवृत्त न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो सकता। जीव चेतन है, उसकी जीवनसत्ता अनादि और अनन्त है। वह देश, काल और द्रव्यकी कल्पनाको अपनी दृष्टिमें धारण करता है। देश, काल, द्रव्यकी भासमानता बाधित है और चेतनका स्वरूप सर्वथा अबाधित। अनुभवकी प्रणालीमें अपना नास्तित्व नहीं है। कोई भी यह अनुभव नहीं कर सकता कि मैं नहीं हूँ। इसलिये जीवका वास्तविक जीवन अनन्त और अद्वय है। वह अपनी कल्पनामें ही भासमान कालके साथ तादात्म्यापन्न होकर अपनेको नित्य, देशके साथ तादात्म्यापन्न होकर व्यापक और द्रव्यके साथ तादात्म्यापन्न होकर सर्वात्मक समझता है। वस्तुतः ये नित्यता, व्यापकता और सर्वात्मकता भी उसके यथार्थ स्वरूप नहीं हैं, कल्पित दृश्यमें तादात्म्यके कारण ही हैं। अधिष्ठान चेतन ही वस्तुतः जीवका यथार्थ स्वरूप है और उसमें द्वैतका किंचित् भी भेद नहीं है। बाधित भासमानताका कोई मूल्य नहीं है। वस्तुतः बीजत्व और जीवत्व आविद्यक हैं। बीजसत्ता और जीवसत्ता दोनों ही अखण्ड चिन्मात्र सत्तासे अभिन्न हैं।

अब फिर एक बार पहली बातपर लौट चलें। किसी भी एक वस्तुमें अनेकाकारताका कारण क्या है? विक्रिया अथवा क्रिया। विक्रिया प्राकृत अथवा स्वाभाविक है; परंतु क्रिया कर्ताके द्वारा अनुष्ठित है। क्रिया धर्म अथवा अधर्मसे अनुविद्ध होती है; क्योंकि उसके मूलमें प्राप्ति अथवा परिहारकी इच्छा रहती है। प्राप्तिकी इच्छा शोभनाध्यासमूलक है और परिहारकी इच्छा अशोभनाध्यास-मूलक है। इसी इच्छाकी दृढ़ता-अदृढ़तासे विहित-प्रतिषिद्ध क्रियाका आचरण होता है। अध्यास अज्ञानमूलक है। इसलिये जबतक अज्ञान रहेगा, तबतक अध्यास रहेगा और जबतक वह रहेगा, तबतक वासनाकी निवृत्ति न होनेके कारण जन्म-मृत्युका चक्र भी निवृत्त नहीं हो सकता। इस चक्रकी निवृत्तिके लिये वेदान्तज्ञानकी अपेक्षा है। यदि यह कालकी प्रधानतासे जन्म-मरण, देशकी प्रधानतासे गमनागमन, द्रव्यकी प्रधानतासे योनिपरिवर्तन, ईश्वरके द्वारा नियन्त्रित कर्मफल न होता और अज्ञानी जीव इस फलको भोगनेके लिये बाध्य न होता, तो तत्त्वमस्यादि महावाक्यजन्य ज्ञानकी आवश्यकता ही न होती और सम्पूर्ण वेदान्तका श्रवण, मनन, निदिध्यासन व्यर्थ हो जाता। ब्रह्मात्मैक्यज्ञानकी आवश्यकता ही इनकी निवृत्तिके लिये है।

श्रीगौडपादाचार्यजी महाराजने, जिन्हें श्रीशंकराचार्यने ब्रह्मसूत्रके शारीरक भाष्यमें 'सम्प्रदायविद्'के नामसे स्मरण किया है और श्रीसुरेश्वराचार्यने 'वेदान्तमर्मज्ञवृद्ध'के रूपमें अपनी कृतियोंमें स्थान-स्थानपर समादृत किया है; कहा है—

यावद्धेतुफलावेशः संसारस्तावदायतः।
क्षीणे हेतुफलावेशे संसारं न प्रपद्यते॥

आत्माको ब्रह्म अर्थात् देश, काल, वस्तुपरिच्छेदसे रहित सजातीय, विजातीय, स्वगतभेदशून्य न जानकर यह बात मानी जाती है कि मैं धर्म-अधर्मका कर्ता और उसके फल सुख-दुःखादिका भोक्ता हूँ, तब जन्म-मरणरूप संसारकी वृद्धि होती है। जब ब्रह्मात्मैक्यज्ञानसे अज्ञानमूलक कर्तृत्व, भोक्तृत्व, संसारित्व, परिच्छिन्नत्व आदि बाधित हो जाते हैं, तब जन्म-मरण, गमनागमन आदि अनर्थमय संसारकी निवृत्ति हो जाती है। इसलिये तत्त्वज्ञानके पूर्व पुनर्जन्म और परलोकको न मानना वेदान्तविद्यासे विमुख करनेवाला है और घोर अनर्थमें फँसानेवाला है।

यह बात सर्वथा वेदान्तसम्मत और युक्तियुक्त है कि जीवका जीवन अखण्ड चिन्मात्र सत्ता ही है। अज्ञानके कारण ही भेदभ्रम होता है। भेदमात्र ही प्रातिभासिक है। भेदवस्तु सत्य नहीं है। तत्त्वतः अपने स्वयंप्रकाश अधिष्ठानसे भिन्न भी नहीं है। अपना आत्मा ही यह अधिष्ठान है। अन्ततः हम आपके अनुसंधानके लिये एक वेदमन्त्र उपस्थित करते हैं—

यथा ह्ययं ज्योतिरात्मा विवस्वान्
अपो भिन्ना बहुधैकोऽनुगच्छन्।
उपाधिना क्रियते भिन्नरूपो
देवः क्षेत्रेष्वेवमजोऽयमात्मा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्जन्मका मौलिक आधार

(लेखक—स्वामी श्रीसनातनदेवजी)

मानव-मस्तिष्ककी जहाँतक पहुँच है उन सम्पूर्ण पदार्थोंका विभाजन दो प्रधान विभागोंमें हो सकता है। एक तो वे पदार्थ जो हमारे अनुभवके विषय हैं और दूसरा वह जो उन सबको जाननेवाला है। दार्शनिक भाषामें इन्हींको क्रमशः दृश्य और द्रष्टा अथवा जड और चेतन कहते हैं। इनमें सम्पूर्ण दृश्यवर्गका जो मूलकारण है, उसीको प्रकृति, प्रधान या माया कहते हैं। द्रष्टा कभी किसीका भी दृश्य या विषय नहीं होता, अतः इस समय उसके विषयमें कोई विचार नहीं करना है। किंतु इतना तो स्पष्ट है कि दृश्य सर्वदा परिवर्तित होता रहता है और द्रष्टा अपरिवर्तनशील है। प्रकृति या माया स्वभावसे ही परिवर्तनशील है। यदि सच पूछा जाय तो परिवर्तनके कारण ही उसकी प्रतीति होती है। अपने मूलरूपमें तो वह भी अव्यक्त और अलिङ्ग ही है। उसमें क्षोभ होनेपर जब वह व्यक्त रूपमें आती है, तभी उसकी प्रतीति होती है। उसका यह व्यक्त रूप ही प्रपञ्च है और यह निरन्तर परिवर्तनशील है।

परिवर्तनमें स्थिति तो क्षणिक ही होती है। वास्तवमें तो उत्पत्ति और प्रलयके क्रमका नाम ही परिवर्तन है। यह क्रम स्थूल-सूक्ष्म तथा समष्टि-व्यष्टि सभी पदार्थोंमें पाया जाता है। जिस प्रकार हमारे स्थूलशरीरमें परिवर्तन होता है वैसे ही सूक्ष्मशरीरमें भी होता रहता है। इस दृष्टिसे यद्यपि सभी पदार्थ क्षणिक हैं, तथापि व्यवहारमें हमें उनमें स्थितिका भास भी होता है। किंतु यह भास है केवल प्रतीतिमात्र ही। वास्तवमें सदृश परिवर्तन ही हमें स्थिति जान पड़ता है। जैसे दीपशिखा और जल-तरङ्ग प्रतिक्षण नयी-नयी होनेपर भी हमें स्थिर-सी जान पड़ती हैं, उसी प्रकार पदार्थ भी वास्तवमें क्षणपरिणामी होनेपर भी हमें स्थिर-से जान पड़ते हैं। सच पूछा जाय तो इस सदृश परिवर्तन या प्रतीयमान स्थितिका नाम ही 'पदार्थ' है, तात्त्विक दृष्टिसे तो केवल सतत परिवर्तन या गतिका ही भास होता है, पदार्थकी कोई सत्ता नहीं है।

इस प्रकार क्षणिक या स्थायी जितने भी पदार्थ हैं, उन सभीका आरम्भ और अन्त होता है। आरम्भका नाम 'उत्पत्ति' है और अन्तका नाम 'नाश' है। अतः सभी पदार्थ उत्पत्ति-नाशशील हैं और यह उत्पत्ति-नाशका क्रम निरन्तर चलता रहता है। इस क्रमके द्वारा पदार्थका केवल परिवर्तन होता है, तात्त्विक नाश नहीं होता। जिस प्रकार घट फूटकर कपाल हो जाता है, कपाल टूटकर कपालिकाएँ हो जाती हैं, कपालिकाएँ पिसकर चूर्ण हो जाती हैं, चूर्ण खादके साथ मिलकर पेड़ और पौधोंका आहार हो जाता है और फिर उनके फल-फूलका रूप भी धारण कर लेता है, इसी प्रकार विश्वके सम्पूर्ण पदार्थ बिगड़-बिगड़कर नये-नये रूप धारण करते रहते हैं। ये रूपान्तर ही इन पदार्थोंके जन्मान्तर हैं। अतः संसारका प्रत्येक पदार्थ स्वभावसे ही नये-नये जन्म धारण करता रहता है। उसका आत्यन्तिक उच्छेद कभी नहीं होता।

यह तो हुई जड तत्त्वकी बात। अब हमें जीवके जन्मान्तरके विषयमें विचार करना है। ऊपर हमने जिन द्रष्टा और दृश्य दो तत्त्वोंका उल्लेख किया है उनमें परिवर्तन केवल दृश्यका ही स्वभाव है, द्रष्टामें कभी कोई परिवर्तन नहीं होता। किंतु जीव एक ऐसा तत्त्व है, जिसे न केवल दृश्य कह सकते हैं और न द्रष्टा ही। परंतु यह इन दोनोंसे विलक्षण कोई तीसरा तत्त्व भी नहीं है। द्रष्टा सम्पूर्ण दृश्यका प्रकाशक है। उसका दृश्यके धर्मोंसे कभी कोई सम्बन्ध नहीं है, तथापि अविवेकवश उसमें उन धर्मोंके सम्बन्धकी भ्रान्ति होने लगी है। जिस प्रकार फिल्मके पर्देपर प्रतीत होनेवाले दृश्योंसे यद्यपि उस पर्देका कोई सम्बन्ध नहीं होता, तथापि उसके बिना उनकी प्रतीति भी नहीं होती; इसलिये वह उनसे सम्बद्ध-सा जान पड़ता है। इसी प्रकार दृश्यका आधार होनेके कारण द्रष्टा दृश्यके धर्मोंसे उपरक्त-सा जान पड़ता है। इस अविवेकजनित उपरक्तिके कारण ही वह अपनेको स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरके धर्मोंसे सम्बद्ध ही नहीं, सम्पन्न समझने लगता है। इस देहाध्यासके कारण ही वह विशुद्ध द्रष्टा न रहकर कर्मोंका कर्त्ता तथा कर्मफलोंका भोक्ता बन जाता है और देहके सुख-दुःखके कारण अपनेको सुखी-दुखी मानने लगता है। इसीसे उसकी संज्ञा 'जीव' हो जाती है। इस प्रकार शुद्ध साक्षी ही अविवेकवश कर्त्ता-भोक्ता जीव बन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है और शरीरके साथ अपना तादात्म्य मानने लगता है।

परिवर्तनके क्रममें स्थूलशरीर तो यहीं सड़ जानेपर कृमि, किसीके द्वारा खा लिये जानेपर विष्ठा और जला दिया जानेपर भस्म हो जाता है। परंतु सूक्ष्मशरीर तो संस्कारोंका पुतला है। उसपर इस स्थूल जगत्के किसी घातक कारणका कोई प्रभाव नहीं होता। वह अपने संस्कारोंके अनुसार परिवर्तित होता है। जीवका उससे तादात्म्य है ही, अतः वह उसके परिवर्तनको अपना ही परिवर्तन या पुनर्जन्म मान बैठता है। इस प्रकार यद्यपि पुनर्जन्म सूक्ष्मशरीरका होता है, तथापि वह कहा जाता है जीवका।

यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि पुनर्जन्म तो नवीन स्थूलशरीर धारण करना है, सूक्ष्मशरीरमें परिवर्तन होना तो पुनर्जन्म नहीं है। फिर ऐसा क्यों कहा गया?

यह शङ्का ठीक है। परंतु सोचिये तो सही कि सूक्ष्मशरीर कहते किसे हैं? अन्तःकरण, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और प्राण—इनके समुच्चयका नाम सूक्ष्मशरीर है। इनमें अन्तःकरण और ज्ञानेन्द्रिय तो ज्ञानशक्ति हैं और कर्मेन्द्रिय तथा प्राण क्रियाशक्ति हैं। इस प्रकार ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिके समूहका नाम ही सूक्ष्मशरीर है। ये दोनों शक्तियाँ निराधार नहीं रह सकतीं। किसी-न-किसी प्रकारका स्थूलशरीर स्वीकार करनेपर ही ये अपने व्यापारमें समर्थ हो सकती हैं। अतः अपने व्यापारके लिये सूक्ष्मशरीर सर्वदा किसी-न-किसी स्थूल आधारकी कल्पना कर लेता है। इसीसे शरीर-त्यागके समय भी पहले आतिवाहिक शरीरकी कल्पना करके पूर्वदेहको त्यागता है और उसीके द्वारा लोकान्तरोंमें आकर अपने पाप-पुण्यके अनुसार दुःख-सुख भोगकर जन्मान्तर ग्रहण करता है।

इसी संदर्भमें हम आधुनिक भौतिकवादियोंके एक प्रमुख सिद्धान्तकी समीक्षा भी कर लें। उनका मत है कि आत्मा या चेतन कोई स्वतन्त्र तत्त्व नहीं है। यह जड प्रकृतिका ही परिणाम है। अतः रोगादिके कारण जब स्थूलशरीर कार्यक्षम नहीं रहता तो उसकी चेतना नष्ट हो जाती है और फिर उसका कोई अस्तित्व नहीं रहता। ये लोग प्रकृति या जड तत्त्वको ही एकमात्र परमार्थ तत्त्व मानते हैं। इन्हें 'जडाद्वैतवादी' कहा जा सकता है। इस प्रकार दार्शनिक दृष्टिकी चरम परिणति दो छोरोंपर ही होती है। एक ओर जडाद्वैत है और दूसरी ओर ब्रह्माद्वैत। एक पक्षकी दृष्टिमें केवल जड तत्त्वकी ही सत्ता है, चेतन उसका विकार है और दूसरे पक्षकी दृष्टिमें केवल चिन्मात्र परब्रह्मकी ही सत्ता है, जड उसमें अध्यस्त है। यदि प्रथम पक्ष स्वीकार किया जाय तो प्रश्न होता है कि जबतक चेतनका विकास नहीं हुआ था, तबतक जडकी सत्ता प्रकाशित किससे होती थी? जड प्रकाश्य है, अतः किसी प्रकाशकके बिना उसकी सत्ता सिद्ध ही नहीं हो सकती। चेतन तो स्वयंप्रकाश है, उसकी सिद्धिके लिये किसी अन्य प्रकाशककी सत्ता अपेक्षित नहीं होती। उसमें बिना किसी अन्य साधन-सामग्रीके स्वतः ही प्रपञ्चकी प्रतीति हो जाती है—यह स्वप्न-प्रपञ्चके रूपमें हमें नित्य ही अनुभव होता रहता है। अतः जडाद्वैतवादियोंका विचार युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता। ये लोग जिस चेतनका विकास जड तत्त्वसे कहते हैं, वह तो अन्तःकरण तथा इन्द्रियवर्ग हैं। वे अवश्य जडके परिणाम हैं; परंतु वे कर्ता-भोक्ता जीव नहीं हैं। वे तो उसके कर्म और भोगके साधन हैं। वे कर्ता नहीं, करण हैं।

जन्मान्तर स्वीकार करनेवालोंमें भी कुछ लोगोंका मत है कि मनुष्य दूसरे जन्ममें मनुष्य ही होता है। वह पशु-पक्षी या किसी अन्य योनिमें नहीं जा सकता; क्योंकि उसमें मानवोचित संस्कार बद्धमूल हो जाते हैं। परंतु शास्त्र और विचारदृष्टिसे यह बात भी युक्तिसंगत नहीं जान पड़ती। जीवका स्वभाव है कि वह जिस परिस्थिति, अवस्था या शरीरमें होता है, उसीसे उसका तादात्म्य हो जाता है। जब आप विद्यालयमें अध्ययन करते हैं तब अपनेको विद्यार्थी मानते हैं। जब अध्ययन समाप्त करके पढ़ाना आरम्भ कर देते हैं तो अपनेको अध्यापक मानने लगते हैं। इस प्रकार परिस्थिति परिवर्तित होते ही आपकी अहंता बदल जाती है। जाग्रत् अवस्थामें अपनेको वयोवृद्ध अध्यापकके रूपमें देखते हैं और स्वप्नमें युवक विद्यार्थीके रूपमें देखते हैं तो उस अवस्थामें भी आपको कोई संदेह नहीं होता। अतः अवस्थाके परिवर्तनसे भी आपकी अहंता बदल जाती है। इसी प्रकार जब सम्बन्ध, पद, प्रान्त और धर्मके परिवर्तनसे भी आपकी अहंताका परिवर्तन होता देखा गया है तो मृत्युके द्वारा देहान्तरकी प्राप्ति होनेपर अहंताके परिवर्तनमें कोई बाधा कैसे आ सकती है? अतः उपर्युक्त तर्काभासके आधारपर शास्त्रीय सिद्धान्तको स्वीकार न करना युक्तियुक्त नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार निश्चय हुआ कि जिस प्रकार प्रत्येक प्रतीयमान पदार्थ परिवर्तित होता रहता है, उसी प्रकार जीव भी अपने संस्कारोंके अनुसार नये-नये शरीर धारण करता रहता है। संसारमें ऐसा तो कोई पदार्थ नहीं है, जिसमें परिवर्तन न होता हो अथवा जिसका सर्वथा उच्छेद हो जाता हो। जो कुछ प्रतीत होता है, वह न तो शाश्वत है और न अलीक है। यद्यपि जीव वास्तवमें तो शुद्ध चिन्मात्र, एकरस और शाश्वत तत्त्व है; किंतु परिवर्तनशील शरीरसे तादात्म्य स्वीकार करके वह कर्ता, भोक्ता तथा जन्म-मरणशील जान पड़ता है, यही उसका बन्धन है। जबतक यह अविवेक बना हुआ है, तबतक जन्म-मरणके चक्रसे उसका छुटकारा नहीं हो सकता। जब तत्त्वज्ञानके द्वारा उसे अपने वास्तविक स्वरूपका बोध प्राप्त हो जाता है, तब तो संसारकी सत्ता ही नहीं रहती। यही उसकी मुक्ति है। फिर शरीर या शरीरके धर्मोंसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता और वह अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है। किंतु जबतक प्रतीतिकी सत्ता है, तबतक परिवर्तन भी अनिवार्य है और इस परिवर्तनकी ही एक संज्ञा जन्म-मरण भी है। यह जन्म-मरणकी परम्परा ही जन्मान्तर या पुनर्जन्म है। अतः परिवर्तनकी प्रतीति ही पुनर्जन्मका मौलिक आधार है।

पुनर्जन्म—अनुमान, अनुभव और शास्त्रसिद्ध

(लेखक—आचार्य श्रीविनोबा)

पुनर्जन्म होता है, इसके अनेक प्रमाण हैं। यानी मेरे लिये यह जन्म जितना सिद्ध है, उतना ही पहलेका और आगेका भी। इसमें किसी प्रकारके संदेहकी गुंजाइश नहीं।

सृष्टि—अनादि और अनन्त

मेरा निश्चित मानना है कि इस सृष्टिमें कहीं भी यह नहीं कह सकते कि यहाँ उसका अन्त और यहाँ आदि है। वह अनादि और अनन्त है। सृष्टिका स्वरूप ही यह है। आसमानमें कितने तारे हैं, इसकी अब भी गिनती हो रही है। परार्धका आँकड़ा तो खतम ही होगा। 'रेडियो एस्ट्रानामी' बता रही है कि वहाँसे यहाँ प्रकाश पहुँचनेमें दस लाख वर्ष लगते हैं। इसकी अन्तिम हद कहाँ है, कह नहीं सकते। हिंदुस्तानकी हद तो कश्मीरतक है, लेकिन दुनियाकी हद कहाँ समाप्त होती है, उसकी सीमा कहाँतक है, उसके 'बार्डर' के बाद क्या है, मालूम नहीं! यदि उसका अन्त हो, तो उसके बाद वहाँ क्या कोई ठोस चीज है? तरल (लिक्विड) है या गैस, क्या है? कुछ है—यदि गैस या तरल है या कोई ठोस चीज है, तो दुनियाका वह अन्त नहीं। यानी कुछ अस्तित्व है। स्पेस हो तो भी अस्तित्व है। सारांश, दुनिया वहाँ समाप्त नहीं है। दुनियाका अन्त है ही नहीं।

हमारा स्वरूप भी अनादि-अनन्त

सत्तर साल हुए बाबा जन्मा। ७० सालसे पहले नहीं था। ८० सालमें मर गया। तो मरनेके बाद उसका स्वरूप कुछ नहीं है और जन्मसे पहले भी कुछ नहीं था; यह हो नहीं सकता। जीवका इस सृष्टिमें कब प्रवेश हुआ, मालूम नहीं। वह कबतक इस सृष्टिमें रहेगा, यह भी मालूम नहीं। यदि हम यह मानें कि हम पहले नहीं थे और मरनेके बाद नहीं रहेंगे, तो कई समस्याएँ खड़ी होंगी। लेकिन सब समस्याओंका उत्तर मिलेगा, यदि हम यह जान जायँ कि हमारा स्वरूप अनादि-अनन्त है।

कर्म-विपाक—प्रबल प्रमाण

यदि हम यह मानें कि हमारा स्वरूप अनादि-अनन्त नहीं, तो फिर कर्म-विपाक भी कुण्ठित हो जायगा। हमने जन्म पाया तो बचपनसे ही हमारे किये कर्मोंका क्षय होने लगा। हमने सुदृढ़ माता-पिताके पेटसे जन्म पाया। जीवन जीने लगे, कुछ दुःख हुआ तो कुछ सुख। लेकिन यदि हम पहले नहीं थे तो सुख-दुःखके लिये जिम्मेवार भी नहीं होंगे। तब सुख या दुःखकी जिम्मेवारी हमपर नहीं आयेगी। यदि हमने आज बुरा काम किया तो दुःख हो, यह ठीक है। लेकिन 'हमने पहले जन्ममें कुछ किया होगा, इसलिये अब दुःख भुगत रहे हैं' ऐसा हम मानते हैं तो यह बात 'पहले नहीं थे और मरनेके बाद भी कुछ नहीं रहेंगे' इससे मेल नहीं खाती। सारांश, पहले और आगेकी बातें यदि नहीं मानते तो कर्म और कर्मफलका नियम टूट जाता है। यह दूसरा प्रमाण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वात्मानुभव—तीसरा प्रमाण

तीसरा प्रमाण है साक्षात् स्वानुभव। जैसे-जैसे कार्य-कारण-परम्परा खुलती जाती है, वैसे-वैसे चित्त निर्मल होता जाता है। पुरानी चीजें याद आती हैं। यदि हम प्रयत्न करें तो कुछ चीजें और याद आ सकती हैं। कुछ लोग ऐसे मिलते हैं, जो अपने पुराने जन्मकी बातें कहते हैं। बुद्धि जितनी संस्कारोंसे मुक्त रहेगी, साफ रहेगी, उतना वह पुराने जन्मका स्मरण कर सकेगी। ब्यौरेमें नहीं, लेकिन कुछ धुँधला या मोटा-मोटा स्मरण हो ही सकता है। पुराने जमानेमें जो विशेष काम या प्रयोग किया होगा, वह याद आ सकता है। कहते हैं कि ज्ञानदेवने लिखा है कि 'मैं पुराने जमानेमें राजा था।' डाक्टर एनी बेसेन्टने भी अपनी कुछ कहानियाँ लिख रक्खी हैं। गौतमबुद्धके बारेमें भी ऐसी ही कहानियाँ कही जाती हैं।

बचपनमें मैं अपनी माँके पास था। पूनाकी बात है। माँ मुझे कहीं ले जानेवाली थी। मैं तीन-चार सालका बच्चा था। जहाँ वह मुझे ले जानेवाली थी, उस स्थानका, उस घरका वर्णन मैंने किया कि 'वहाँ ऐसा आँगन होगा, ऐसा कुँआ होगा' आदि। ठीक वैसा ही घर निकला। सम्भव है, वह 'काकतालीय' न्याय हो। उससे पूर्वजन्म होता ही है, ऐसा नहीं। शायद माँने मुझसे कहा हो—'तुम्हारा इस घरके साथ पूर्वजन्ममें सम्बन्ध रहा होगा। इसीलिये यह एक-एक बात ध्यानमें रह गयी।'

दूसरा, मुझे यह भास होता है कि 'पूर्व-जन्ममें मैं बंगाली था।' कारण, घुमक्कड़ हूँ ही, घूमते-घूमते बंगाल पहुँच गया तो देखा, जितना समय और श्रम दूसरी भाषाएँ सीखनेमें लगा, उससे बहुत आसानीसे बंगला मैंने सीख ली। यह मेरा अंदाज ही है।

तीसरा अनुमान यह कि मुझे बचपनमें कई प्रकारके आकर्षण नहीं हुए। बड़ौदामें कई आकर्षक चीजें थीं, लेकिन मुझपर उनका कोई परिणाम नहीं हुआ। एक बार मेरे मित्र बहुत आग्रह कर मुझे सिनेमा ले गये। मैं अपने साथ दरी लेता गया। वहाँ जाकर लंबी तानकर सो गया। इस परसे लगता है कि पूर्वजन्ममें मैं इन बुराइयोंका अनुभव ले चुका हूँ, इसलिये मुझे इनका आकर्षण ही नहीं होता।

हाँ, शतरंजका खेल मुझे अच्छा लगता था, तो खेलता था। एक बार सपनेमें शतरंज देखा, तो लगा कि यह खेल ही मुझपर हावी हो रहा है। दूसरे दिनसे मैंने शतरंजका खेल बंद कर दिया। वह मैंने खुद तोड़ा। इसलिये कह सकता हूँ कि वह मेरी इस जन्मकी कमाई है। लेकिन बाकी चीजोंका मुझे आकर्षण नहीं हुआ। वह मेरी इस जन्मकी कमाई नहीं है। यदि इच्छा होती और उसे मैं रोकता तो वह इस जन्मकी कमाई मानी जाती। इसलिये पुनर्जन्मपर विश्वास होता है। अनुमान, अनुभव और शास्त्रवचनसे यह निश्चित है कि पुनर्जन्म है। ब्यौरेमें जायँगे तो मतभेद हो सकता है।

इस्लाम भी सहमत

मुहम्मदसे कहा गया था कि 'गैब' यानी 'अज्ञात' की बात बताओ। उसने कहा 'अगर मैं जानता तो सारी सृष्टिपर मेरी सत्ता चलती। मृत्युके बाद जीवन कायम रहता है। वह नया शरीर धारण नहीं करता, लेकिन सूक्ष्म लिङ्गदेहमें पड़ा रहता है। नया शरीर, स्थूलशरीर धारण करता है या नहीं, स्पष्ट नहीं कह सकते। इसलिये कब्रिस्तानमें पड़े रहते हैं।' इस तरह मुसल्मान लोग भी मानते हैं कि मृत्युके बाद जीवन है। सवाल यही है कि वह सूक्ष्म रूपमें है या स्थूल रूपमें?

एक दफा एक मुसल्मान भाईसे चर्चा चल रही थी। मैंने उनसे कहा कि 'एक लड़का पैदा होता है और दो मिनटोंमें ही मर जाता है, तो क्या आखिरी दिन न्याय करते समय अल्ला उसके दो मिनटोंके पाप-पुण्यको देखकर न्याय करेगा? एक जीव अनन्त कालतक अव्यक्त रहता है। फिर दो मिनटोंके लिये व्यक्त हो जाता है और अनन्त काल-तक अव्यक्त रहता है, यह बात तर्कसंगत नहीं मालूम होती।'

मैंने सुना है कि आजकल कुछ ईसाई भी पुनर्जन्म मानने लगे हैं। इसलिये हम यह नहीं कह सकते कि जबतक विज्ञानके जरिये पुनर्जन्मका सिद्धान्त यथार्थ सिद्ध नहीं होता तबतक उसे स्वीकार नहीं करना चाहिये।

पुनर्जन्मके बिना जीवन नीरस

हम यदि पुनर्जन्मको नहीं मानेंगे तो जीवनमें कोई स्वाद ही नहीं रहेगा। मान लें, इस समय कोई साँप मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काटता है और मैं मर जाता हूँ तो क्या इसका अर्थ यह हुआ कि मैंने आजतक जो सारा ज्ञान प्राप्त किया, वह बेकार गया ? साँप-जैसे बुद्धिशून्य और क्षुद्र प्राणीके काटनेसे मेरा सारा ज्ञान एक क्षणमें नष्ट हो सके तो फिर मेरी सारी ज्ञान-लालसा ही खतम हो जायगी। लेकिन मुझे और भी ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा होती है; क्योंकि मैं पुनर्जन्ममें विश्वास करता हूँ। मैंने देखा है कि कइयोंको सिगरेट-बीड़ी पीनेकी इच्छा होती है। कई बड़े-बड़े लोगोंको उसमें आनन्द महसूस होता है। लेकिन मुझे कभी ऐसा नहीं लगा कि जरा इन बातोंका मजा चख लूँ ! मेरा मन कभी उस ओर मुड़ता ही नहीं। इसका कारण यह हो सकता है कि अपने पूर्वजन्मोंमें इन सबकी व्यर्थता मुझे महसूस हो गयी हो। यह सारा सम्भव है।

इससे स्पष्ट है कि हर कोई अपने पुराने जन्मोंके अनुभवोंकी पूँजी लेकर नया जन्म लेता है। जबतक विज्ञान इसे साबित नहीं करता, तबतक उसे नहीं मानेंगे, यह ठीक नहीं। विज्ञानको तो बिल्कुल पूरा प्रमाण (फुल प्रूफ) चाहिये। 'फुल' कहो या 'फूल', सयानोंके लिये तो थोड़ा-सा भी प्रमाण (प्रूफ) काफी है। लेकिन वैज्ञानिकों और सामान्य जनोंके लिये तो बिल्कुल 'फूल प्रूफ' चाहिये।

परलोक और पुनर्जन्म

(लेखक—जगद्गुरु अनन्तश्रीरामानुजाचार्य पुरुषोत्तमाचार्य रङ्गाचार्यजी महाराज, पंढरपुर)

इस अल्पकाय निबन्धमें परलोक और पुनर्जन्मके विषयमें वेदके आधारसे किंचित् चर्चाका चित्रण किया गया है। 'परलोक' शब्दमें 'पर' और 'लोक' दो शब्द हैं। इनमें 'लोक' शब्द 'लोकस्तु भुवने जने' कोशके आधारसे भुवन और जन—इन दोनों अर्थोंका बोधक है। अर्थात् वेद 'लोक' और 'लोक-निवासी' दोनों अर्थोंमें 'लोक' शब्दका प्रयोग करता है। यहाँपर 'पर' शब्दका अर्थ अन्य है। दोनोंके अर्थोंको मिलानेसे 'परलोक' शब्दका अर्थ लोकान्तरमें अन्य लोक और अन्य योनि, दोनों विवक्षित हैं। अर्थात् 'परलोक' शब्दसे 'दूसरा लोक' और 'दूसरी योनि' दोनों विवक्षित हैं।

अनेक लोक

वेदोंमें अनेक लोकोंका निर्देश है। उसके मतमें आत्मा एक लोक है। पृथिवी और द्युलोक—ये दो लोक हैं। पृथिवी, अन्तरिक्ष और दिव्यलोक (द्युलोक)—ये तीन लोक हैं। पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यु और अप्—ये चार लोक हैं। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम्—ये सात ऊर्ध्व-लोक हैं। अतल, वितल, तल, प्रतल, तलातल, महातल और पाताल—ये सात अधोभुवन हैं।

तीन लोक

इन सब लोकोंका देवलोक, पितृलोक और जीवलोकरूप तीन लोकोंमें अन्तर्भाव हो जाता है। इनमें इन्द्र देवलोक हैं। यम पितृलोक हैं। मनुष्यलोक जीवलोक है। इसकी व्याप्ति पृथिवीसे लेकर चन्द्रमण्डलतक है। बृहदारण्यकका विज्ञान है कि 'इस लोकका जय पुत्रके द्वारा, पितृलोकका जय इष्टापूर्तद्वारा तथा देवलोकका जय विद्या-सहकृत कर्मके द्वारा है। परमात्माकी प्राप्ति विद्याके द्वारा होती है।' अथवा विद्योत्तर कर्मसे भी भगवत्प्राप्ति होती है।

देवलोक

कौषीतकी शाखामें अग्निलोक, वायुलोक, वरुणलोक, इन्द्रलोक, प्रजापतिलोक और ब्रह्मलोक—ये देवयान छः देवलोक हैं। देव स्वर्ग है अर्थात् प्रकाशमय लोक है।

वाजसनेयि शाखामें अग्निलोक, वायुलोक, आदित्यलोक, चन्द्रलोक और अशोकमहिमलोक—ये पाँच लोक देवलोक माने गये हैं। अन्य मतोंमें अग्नि, वायु, इन्द्र, वरुण, चन्द्र, प्रजापति और ब्रह्म—ये सात देवलोक माने गये हैं। देवलोक, देवस्वर्गलोक और स्वर्गलोक—इनका अर्थ समान है। अर्थात् इन सब शब्दोंका अर्थ एक ही है।

नामान्तर

वेदोंमें अग्निलोक, वायुलोक और आदित्यलोक आदिके नामान्तर भी मिलते हैं। इनमें अग्निलोकका नाम 'अपोदक' है। वायुलोकको 'ऋतधामा' कहते हैं। इन्द्रलोकका नाम 'अपराजित' है। सूर्यलोकका नाम 'नाक' है। वेदोंमें दो प्रकारके नाक-लोकोंका निर्देश है। एक सूर्यलोकरूप नाक-लोक है, दूसरा प्रजापतिरूप नाक-लोक है। प्रजापतिरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाक-लोक देवयानमार्गका अन्तिम लोक है। इसके ऊपर 'ब्रह्मपथ' है। वरुणलोक 'अधिद्यौ' है। मृत्युलोक 'प्रद्यौ' है। ब्रह्मलोकका नाम 'रोचन' है। ऋषि-तित्तिरीने प्रजापतिलोकको 'वियात' भी कहा है। यही नाक-लोक है। 'ताण्ड्य महाब्राह्मण'में उपलब्ध 'नाक' शब्दके अनुसार प्रजापति किसीके भी लिये 'अक' (दुःख) नहीं है; अतः वह 'नाक' है अर्थात् नाक-शब्दका अर्थ 'प्रजापति' है।

पितृलोक

उदन्वती, पीलुमती और प्रद्यौ भेदसे पितृलोक तीन प्रकारके हैं। इनमें नीचेका द्युलोक 'उदन्वती' है, यह जल-प्राय है, अतः उदन्वती है। मध्यम द्युलोक 'पीलुमती' है। पीलु नाम वृक्षविशेषका है। उसकी अटवीके कारण वह पीलुमती है; वह वृक्ष और जल आदि सब सूक्ष्म प्राणमय ही हैं। तृतीय पितृ-लोकको प्रद्यौ कहते हैं। वहाँकी भूमि ज्योतिष्मती होनेके कारण 'प्रद्यौ' है। इनमें प्राणरूप पितर निवास करते हैं। ये पितर सांख्यदर्शनमें भौतिक सर्गमें परिगणित प्राणी पितरोंकी अपेक्षा भिन्न हैं। पितृ-स्वर्गोंको 'सौम्यस्वर्ग' भी कहते हैं। देवस्वर्ग आग्नेय है।

यमलोक

सत्त्वगुणमें तमोगुणके अल्प और अधिक मात्राओंके सम्मिश्रणके कारण सत्त्वगुणके सात भेद हो जाते हैं। ये ही सत्त्वके सात भेद सात प्रकारके देवस्वर्ग हैं। तमोगुणमें भी सत्त्वगुणके अल्प और अधिक मात्राओंके संभेदके कारण तमोगुण भी सात प्रकारका हो जाता है। ये ही सात नरक हैं। वेदान्तदर्शनमें 'अपि च' सप्तसूत्रमें इनका ही निर्देश है। इनके नामोंका निर्देश शास्त्रोंमें इस प्रकार हुआ है—

१–रौरव, २–महारौरव, ३–कुम्भीपाक, ४–कालसूत्र, ५–तपन, ६–अवीचि और ७–संघात।

इनमें भी प्रत्येकके चार-चार भेद हो जाते हैं। अतः अट्ठाईस प्रकारके नरक हैं। ये भी प्रत्येक तीन-तीन शाखाओंमें विभक्त हैं, अतः सब मिलाकर चौरासी प्रकारके नरक हो जाते हैं। पुराणोंमें प्रसिद्ध चौरासी नरक ये ही हैं। सात प्रकारके देवस्वर्ग, तीन प्रकारके पितृस्वर्ग और सात प्रकारके नरकोंमें जीवात्माकी गति कर्मोंसे होती है।

जीवलोक

सांख्यदर्शनमें १४ प्रकारका भौतिक सर्ग मीमांसित है। इनमें ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र, पैत्र्य, गान्धर्व, याक्ष, राक्षस और पैशाच भेदसे आठ प्रकारका दैव सर्ग है। यह सत्त्वविशाल है। मानुष सर्गको अवधि मानकर इसको ऊर्ध्व सर्ग भी कहते हैं। एक प्रकारका मानुष सर्ग है। यह मध्यम है। रजोविशाल है। स्थावर, स्तम्ब, कीट, पशु और पक्षी भेदसे पाँच प्रकारका तिर्यक् सर्ग है। यह तमोविशाल है। प्रकृतिमें तमोगुणको मूल माना गया है। अतः मूल सर्गके नामसे भी यह प्रसिद्ध है। ये चौदह प्रकारकी योनियाँ ही जीवलोक हैं। इन सर्गोंका वर्णन सांख्यदर्शनकी इन दो कारिकाओंमें भगवान् कृष्णने इस प्रकार किया है—

अष्टविकल्पो दैवस्तैर्यग्योनश्च पञ्चधा भवति।
मानुषकश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः॥
ऊर्ध्वं सत्त्वविशालः।
तमोविशालश्च मूलतः सर्गः।
मध्ये रजोविशालः।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तः।

ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त जो चौदह प्रकारकी योनियाँ हैं, उनको चतुर्दश लोक भी कहते हैं। इनमें सात देवस्वर्गों, तीन पितृस्वर्गों और सात प्रकारके नरकोंमें यह जीवात्मा विचरता है। इसका एक लोकसे दूसरे लोकमें जाना और तदनु गुण-शरीरका ग्रहण करना ही पुनर्जन्म है। केवल सांख्यदर्शनके आधारसे सत्त्वविशाल, रजोविशाल और तमोविशाल सर्गोंका निर्देश ऊपर किया गया है। वेदके सहयोगसे इनका वर्णन इस प्रकार होगा। सांख्य और वैशेषिक दर्शनोंके परम वैदिक होनेसे वेदके सहयोगसे इन सर्गोंका विश्लेषण एवं तदनुकूल इन कारिकाओंका अर्थ परम विशुद्ध होगा।

सत्त्वविशाल सर्ग

१–ब्रह्मा, २–प्रजापति, ३–इन्द्र, ४–पितर, ५–गन्धर्व, ६–यक्ष, ७–राक्षस, ८–पैशाच, ९–मनुष्य, १०–पशु, ११–पक्षी, १२–कृमि और १३–कीट।

यह सर्ग सत्त्वविशाल है। चेतन है।

रजोविशाल सर्ग

१–स्तम्ब, २–कुश, ३–काश, ४–वल्ली, ५–तृण, ६–ऊलुप, ७–क्षुपक और ८–वृक्ष आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सर्ग रजोविशाल है। यह अर्धचेतन है।

तमोविशाल सर्ग

१-मणि, २-मुक्ता, ३-वज्र, ४-काच, ५-गन्धक, ६-पारद और ७-अभ्रक आदि।

यह सर्ग तमोविशाल है। इसमें केवल अर्थ-शक्तिका ही प्राधान्य है। क्रिया (प्राण) और ज्ञान (मन)—दोनों मूर्छित हैं। अतः यह सर्ग अचेतन जीवोंका है। इसलिये अचेतन सर्ग है। अचेतन होनेसे ही तमोविशाल है। ये चौदह प्रकारके जीव-सर्ग ही उच्चावच भेदसे ८४ लाख जीव-योनियाँ हैं। इनमें जीवात्मा सतत भ्रमण करता रहता है। अर्थात् जबतक मुक्ति नहीं होती, तबतक वह इन १४ प्रकारकी योनियोंमें योनिगतिसे भ्रमण करता है। सात प्रकारके देवलोक, तीन प्रकारके पितृस्वर्ग एवं सात प्रकारके यमलोक—इनमें वह कर्मगतिसे फिरता है। मुक्ति न होने-तक इन लोकोंमेंसे किसी एक लोकमें वह अवश्य रहता है।

चान्द्र जीव

चान्द्र (सौम्य), वायव्य और आप्य भेदसे जीव तीन प्रकारके हैं। इनमें आप्य जीव मत्स्य आदि हैं। वायव्य जीव मनुष्य आदि हैं, चान्द्र जीव ब्रह्मा आदि हैं। इन चतुर्दश योनियोंमें आठ प्रकारके ऊर्ध्व सर्गोंके प्राणी ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, पितर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पिशाचरूप आठ योनियोंमें उत्पन्न होनेवाले चान्द्र जीवोंकी माता पृथिवी छाया है। पिता चान्द्र प्रकाश है। यह चान्द्र जीव अयात है। इनके अट्ठाईस इन्द्रियाँ हैं। वैशेषिक दर्शनमें प्रसिद्ध ग्यारह इन्द्रियाँ तो इनके होती ही हैं। परंतु आठ सिद्धियाँ और नौ तुष्टियाँ अधिक होती हैं।

आठ सिद्धियाँ

१-अणिमा—छोटा शरीर धारण करनेकी शक्ति।
२-महिमा—महाविशाल शरीर धारण करनेकी शक्ति।
३-लघिमा—परम लघु—हल्का होनेकी शक्ति।
४-गरिमा—परम गुरु (भारी) होनेकी शक्ति।
५-व्याप्ति—बहुत देशोंमें पसरनेकी शक्ति।
६-प्राकाम्य—इच्छा होते ही वस्तु प्राप्त करनेका सामर्थ्य।
७-ईशित्व—सहस्रों प्राणियोंपर प्रभुत्व करनेकी शक्ति।
८-वशित्व—सर्प, व्याघ्र आदिको वशीभूत करनेकी शक्ति।

नौ तुष्टियाँ

१-भूत-भविष्य-ज्ञान—अवधान करते ही भूत और भविष्यको जान लेना।
२-दूरदृष्टि—दूर-दूर सहस्र कोसोंतक देखना।
३-दूरश्रवण—दूर-दूर-देशोंकी बातोंको सुनना।
४-परकायप्रवेश—दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना।
५-कायव्यूह—एक ही कालमें अनेक रूप धारण करना।
६-जीवदान—मृतको जीवित करना।
७-जीवहरण—जीवितको मार देना।
८-सर्गकरण—नवीन सृष्टि करना।
९-सर्गहरण—सृष्टिका संहार करना।

ये १७ शक्तियाँ और सर्वसाधारण ११ इन्द्रियाँ मिलाकर अट्ठाईस इन्द्रियाँ होती हैं। चान्द्र जीवोंमें ये स्वाभाविक हैं, अर्थात् जन्मना हैं।

मनुष्योंको इनकी प्राप्ति मन्त्रयोग आदिसे होती है। आठ प्रकारके चान्द्र जीवोंका निवास चन्द्रिका, छाया और अन्धकार है। इनमें ब्रह्मा, प्रजापति और इन्द्र प्राणी चन्द्रिका-में निवास करते हैं। पितर छायामें निवास करते हैं। गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पिशाच प्राणी अन्धकारमें निवास करते हैं। इनका भोजन क्रमशः अमृत, अन्न और सुरा है।

'आब्रह्मभुवनात् लोकात्'में भौतिक सर्गस्थ प्राणी ब्रह्मा-का भुवन विवक्षित है। इनमें भी सत्त्वगुणमें उत्कर्ष और अपकर्षसे परस्परमें उच्चावच भेद हैं। सत्त्वगुणके उत्कर्षके कारण पिशाच, राक्षस, यक्ष और गन्धर्व योनियोंकी अपेक्षा पितर, इन्द्र, प्रजापति और ब्रह्मा—ये योनियाँ उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। इन सांख्योक्त १४ प्रकारके भूतसर्गों और देवसर्गों, पितृसर्गों और नरकलोकोंमें अज्ञानसे सम्मिश्रण-सा लोगोंने कर लिया है, जिससे शास्त्रोंके अर्थ समझनेमें महान् अवरोध उत्पन्न हो गया है।

भेद

योनिगति-निबन्धन सांख्य और योगमें कथित चौदह प्रकारके भूत-सर्गोंमें परिगणित ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, पितर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पिशाच आदिकी अपेक्षा कर्मगति-निबन्धन सौर आदि प्राणात्मक सर्गमें परिगणित ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, पितर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पिशाच आदि भिन्न हैं। योनि-निबन्धन भौतिक सर्गमें परिगणित ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, पितर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिशाच आदि प्राणीरूप हैं। सौर आदि प्राणात्मक सर्गोंमें विद्यमान ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, पितर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पिशाच प्राणरूप हैं। चान्द्रसर्गानुगत ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, पितर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पिशाच आदि भूतसर्ग-प्रधान होनेसे मर्त्य हैं। सौर इन्द्र, अन्नाद, पितर आदि प्राणसर्गात्मक देवसर्ग-प्रधान होनेसे अमृत है।

चान्द्रजीवोंमें पिता, पुत्र, भार्या, जन्म, मृत्यु, रथ, वाहन आदि सब व्यवहार अस्मदादिवत् ही व्यवस्थित हैं—प्राणात्मक इन्द्र आदि देवोंमें यह व्यवहार नहीं है। चान्द्रजीव पार्थिव और चान्द्र होनेसे पृथिवीसे लेकर चन्द्र-मण्डलतक ही सीमित हैं। सौर इन्द्र आदि देव त्रैलोक्य-व्यापक हैं। तत्तत् प्राणविशेषोंका तत्तत् प्रदेशोंमें अधिक विकास होनेसे उस-उस प्रदेशको वरुणलोक, इन्द्रलोक आदि कहा गया है; परंतु प्रकाशरूप इन्द्र और अन्धकाररूप वरुण सर्वत्र व्याप्त हैं। चान्द्रजीव ब्रह्मा, प्रजापति और इन्द्र आदि देवोंमें यह व्यवहार नहीं है। चान्द्रजीव ब्रह्मा, प्रजापति और इन्द्र आदि पुरुषविध हैं। भूतसर्गमें परिगणित ब्रह्मा प्रजापति और इन्द्र भौमस्वर्ग हैं। पितर और गन्धर्व भौम पितृ-स्वर्ग हैं। यक्ष, राक्षस, पिशाच भौम नरक हैं। स्थावर स्तम्ब और कृमि आदि भी भौम नरक हैं। मानुषसर्ग मनुष्य-लोक है। इन भौमस्वर्ग, भौम पितृस्वर्ग, भौम नरकोंसे दिव्य स्वर्ग, आन्तरिक्ष्य पितृस्वर्ग एवं याम्य नरक भिन्न हैं। जहाँ दिव्यस्वर्गों, पितृस्वर्गों और याम्य नरकोंमें विद्यासह कृत कर्मों, केवल कर्मों, विकर्मों और अकर्मोंसे गति होती है, वहाँ भौमस्वर्गों और भौम नरकोंमें केवल योनिगति ही होती है। गतिविशेषोंका वर्णन विस्तारसे अनुपदमें ही होगा।

मार्गविशेष

एक देहको त्यागनेके अनन्तर लोकान्तरमें जाना और वहाँके रससे शरीरका ग्रहण ही पुनर्जन्म है। गतिके हेतु नियत देशको 'मार्ग' कहते हैं। देवयान-पितृयाण भेदसे मार्ग दो प्रकारके हैं। देवयान मार्गको वेदोंमें उत्तरमार्ग, अर्चिरादिमार्ग, शुक्लमार्ग और देवमार्ग भी कहते हैं। पितृयाणके भी दक्षिणमार्ग, धूममार्ग, कृष्णमार्ग और पितृमार्ग—ये नामान्तर हैं। इनमें देवयानकी देवपथ और ब्रह्मपथ भेदसे दो शाखाएँ हैं। पितृयाणको भी पितृपथ और यमपथ भेदसे दो ही शाखाएँ हैं। साम्परायिक मार्गोंके चतुर्धा विभक्त होनेसे गतियाँ भी चार ही हैं। इन गतियोंका अभिधान वेदोंमें इस प्रकार उपलब्ध हैं। परमागति, उत्तमागति, सद्गति और दुर्गति। ब्रह्मपथमें संचार करना 'परमागति' है। यही 'मुक्ति' है। देवपथमें संचार करना 'उत्तमागति' है। पितृपथमें संचार करना 'सद्गति' है। यमपथमें संचार करना 'दुर्गति' है।

गतियोंके कारण

ब्रह्मपथ, देवपथ, पितृपथ और यमपथमें संचाररूप चार गतियोंके सम्पादक कर्म, नाड़ी, आकाश, छन्द, देव और आतिवाहिक—ये छः होते हैं। इनके द्वारा जीवात्मा देवयान अथवा पितृयाण—इन मार्गोंमें संचार करता है। इनमें भी मुख्य कर्म ही है। विद्योत्तर कर्म ब्रह्मपथमें संचारका कारण होता है, अर्थात् निष्कामभावसे आचरित यज्ञ, दान और तप आदि कर्म जीवात्माकी मुक्तिके सम्पादक हैं। विद्या-समुच्चित कर्म देवपथमें संचारके हेतु होते हैं, अर्थात् सकामभावसे आचरित यज्ञ, दान और तप देवपथसे देव-स्वर्गोंमें जानेके कारण होते हैं। विद्यानिरपेक्ष कर्म पितृपथमें संचारके हेतु हैं, अर्थात् विद्यारहित केवल इष्ट एवं पूर्त आदि कर्म जीवात्माको पितृस्वर्गमें ले जाते हैं। अकर्मों और विकर्मोंसे जीवात्माका यमपथमें संचार होता है, अर्थात् हिंसा, स्तेय, अनृत आदि जीवात्माको नरकोंमें ले जाते हैं।

शारीरिक देवयान और पितृयाण

अधिदैवतवत् अध्यात्ममें भी देवयान और पितृयाण मार्ग हैं। इनमें हृदयसे अधोगामिनी नाड़ियाँ पितृयाण मार्ग हैं। हृदयसे ऊर्ध्वगामिनी नाड़ियाँ देवयान मार्ग हैं। इनमें पितृयाण और देवयान दोनोंके दो-दो भेद हो गये हैं। पितृपथ और यमपथ—ये पितृयाणके भेद हैं। इनमें मूलाधार-गता नाडी यमपथ है। यह नाडी सीधी नीचेको गयी है। हृदयसे जो नाडियाँ विषूची अर्थात् तिरछी जाती हैं, वे पितृपथ हैं। हृदयसे मूर्धाद्वारा विनिर्गत नाडी ब्रह्मपथ है। हृदयसे कण्ठ आदि देशोंसे विषूची (तिरछी) विनिर्गत नाडियाँ देवपथ हैं।

आकाश

अध्यात्मवत् अधिदैवतमें भी देवयान और पितृयाण मार्ग हैं। इनमें अगस्त्यसे उत्तर और अजवीथीसे दक्षिण आकाशके ४२ अंश पितृयाण मार्ग हैं। इसके नीचे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमपथ है। सप्तर्षियोंसे दक्षिण नागवीथीसे उत्तरमें आकाशका ४२वाँ अंश देवयान मार्ग है। इसके ऊर्ध्वमें ब्रह्मपथ है। आजकल प्रचलित ज्योतिषकी परिभाषामें पितृपथको 'मकरवृत्त पथ' और देवपथको 'कर्क मार्ग' कह सकते हैं।

कर्कवृत्त और विषुवत्वृत्तसे मकरवृत्तके दक्षिणमें होनेसे यह मार्ग 'दक्षिणायन' मार्ग कहलाता है।

छन्द

'तैत्तिरीय संहिता'में छन्दोंको भी पितृयाण और देवयान मार्ग माना है। वाक्-छन्द और प्राण-छन्द भेदसे छन्द दो प्रकारके हैं। इसमें वाक्-छन्द पितृयाण मार्ग है। प्राण-छन्द देवयान मार्ग है।

देव

'मैत्रायणी संहिता'में देवोंको भी पितृयाण और देवयान मार्ग माना है। इनमें अग्नि देवयान मार्ग है। सोम पितृयाण मार्ग है।

अतिवाहिकगण

तत्तत् मार्गोंकी गतिके सहकारियोंको 'अतिवाहिक' कहते हैं। ये जीवात्माका तत्तल्लोकोंमें अतिवहन करते हैं; अतः अतिवाहिक हैं।

पितृयाणके अतिवाहिक

धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायनके छः मास, सौम्य संवत्सर (पितृलोक), आकाश और चन्द्र—ये पितृयाणके अतिवाहिक हैं। ये जीवात्माको तीन प्रकारके पितृस्वर्गों तथा सात प्रकारके नरकोंमें पहुँचाते हैं।

देवयानके अतिवाहिक

अर्चि, अहः, शुक्लपक्ष, उत्तरायणके छः मास, सौर संवत्सर (देवलोक) जहाँतक अग्निलोक है। उसके अनन्तर वायुलोक है, तदनन्तर आदित्यलोक है, तदनन्तर चन्द्रलोक है, तदनन्तर वैद्युतलोक है और तदनन्तर ब्रह्मलोक है। यहाँ-तक देवपथ है। इसके अनन्तर ब्रह्मपथ है। ब्रह्मपथमें संचार करनेके अनन्तर जीवात्माका पुनर्जन्म नहीं होता है; परंतु देवस्वर्गों, पितृस्वर्गों और नरकोंसे जीवात्माका अवरोहण होता है।

अवरोहण

जीवात्माका देवस्वर्गों, पितृस्वर्गों और नरकोंसे कर्मक्षयके अनन्तर पुनरपि भूमि (मानुषलोक) में आना 'अवरोहण' है। इस अवरोहणके ये अतिवाहक हैं। चन्द्रमा, आकाश, वायु, धूम, अभ्र, मेघ, वृष्टि, पृथिवी, अन्न, रेत, पुरुष और स्त्री—इनके द्वारा जल पुरुषरूपमें परिणत हो जाते हैं—जो जल जीवमय रहते हैं।

ंश-मशक-ओषधि-वनस्पति आदि अनस्थि जीवोंकी कर्मगति नहीं होती है। अतः वे 'अगति' हैं। सुगति अथवा दुर्गति—इन दोनोंमेंसे एक भी गति इनकी नहीं होती है। गतिकी विशद विवेचना अनुपदमें ही होगी।

गतिभेद

देहत्यागके अनन्तर लोकान्तरमें जाना ही गति है। भिन्न-भिन्न लोकोंमें भिन्न-भिन्न देहोंको धारण करना ही 'पुनर्जन्म' है। आत्माकी सब मिलाकर दस प्रकारकी गतियाँ होती हैं। उनके नामोंका निर्देश उपनिषदोंमें इस प्रकार है—

१—संसारगति, २—अतिमुक्ति, ३—अतिमृत्यु, ४—पञ्चत्व, ५—ब्राह्मी गति, ६—दैवी गति, ७—पैत्री गति, ८—नारकी गति, ९—अगति और १०—समवलय।

इन दस गतियोंमेंसे कोई-न-कोई गति भूतात्माकी अवश्य होती है। तीनों लोकोंमेंसे किसी-न-किसी लोकमें वह अवश्य रहता है।

दो गतियाँ

इन सब गतियोंका संसारगति और साम्पराय-गतिरूप दो गतियोंमें ही अन्तर्भाव है।

संसारगति

इनमें सांख्योक्त भूतसर्गमें—ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त चौदह योनियाँ हैं। इनके भेद ही ८४ लाख योनियाँ हैं। इनमें यह जीवात्मा जन्मकर और मरकर एक योनिसे दूसरी योनिमें भ्रमण करता रहता है। यही योनि-परिवर्तन मनुष्यलोकमें जीवात्माकी 'संसारगति' है। इस मनुष्यलोककी सीमा पृथिवीसे लेकर चान्द्र संवत्सरतक है। जिन-जिन कर्मोंके द्वारा जिन-जिन योनियोंमें जिस-जिस प्रकार इस भूतात्माको संसारगति मिलती है, उस संसारगतिकी कर्मगतिका मनुस्मृतिके १२वें अध्यायमें विशद वर्णन है। इस संसारगतिके अतिरिक्त आत्माकी जितनी गतियाँ हैं, वे सब 'साम्परायिक गति' कहलाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम्परायिक गतियाँ

साम्परायिक सब गतियोंका भी नित्यगति और काल-गति भेदसे दो भागोंमें विभाजन है। इनमें नित्यगति भी दो प्रकारकी है—'भूतगति' और 'कालगति'। इन दोनोंका उपनिषदोंमें क्रमशः 'अतिमुक्ति' और 'अतिमृत्यु' अभिधान है। इनमें अतिमुक्तिकी व्याख्या इस प्रकार है—

अतिमुक्ति

प्रत्येक प्राणी पाँच भूतों और पाँच देवताओं (प्राणों) की समष्टि है। इनमें पाँच भूतोंसे शरीरका निर्माण हुआ है, पाँच देवताओंसे आत्माका निर्माण हुआ है। इस आत्मा और शरीरका जबतक परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है, तबतक ही जीवन है। इन दोनोंमें प्रतिदिन नित्यगति हुआ करती है, जिसके कारण शरीरसे पञ्चभूत आत्माके देवताओंसे पृथक् होकर निकलते रहते हैं। निकले हुए पञ्चभूत पृथिवीके पाँच भूतोंमें सम्मिलित होते रहते हैं। इस प्रकार शारीरिक धातुओंका देवताओंसे सम्बन्ध छूटकर भूतोंके स्वरूपमें आ जाना 'अतिमुक्ति' है।

अतिमृत्यु

अतिमृत्युकी व्याख्या भी उपनिषदोंमें इस प्रकारसे उपलब्ध है। जैसे शारीरिक धातुओंका देवताओंसे सम्बन्ध छूटकर भूतोंमें आ जाना अतिमुक्ति है, वैसे ही शारीरिक देवताओं (वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र और मन) का मृत्यु-रूप भूतोंके बन्धनसे छूटकर आकाशके पाँच देवताओंके रूपमें परिणत हो जाना 'अतिमृत्यु' है। भूतोंके सदृश ये देवता भी प्रतिक्षण शारीरिक पाँच भूतोंसे पृथक् होकर निकलते ही रहते हैं; अतः ये दोनों गतियाँ नित्यगति हैं।

कालगति

जैसे साम्पराय गतिके नित्यगति और कालगति दो भेद हैं, वैसे ही कालगतिमें भी भूतगति और प्राणगति रूप दो भेद हैं। इनमें भूतगति पञ्चत्वगति है। पञ्चभूतोंसे बने हुए इस शरीर और पञ्चप्राणोंसे बने हुए आत्मा—इन दोनोंका परस्पर जो भूतात्माके द्वारा सम्बन्ध है, उसके शिथिल होनेपर जब विच्छिन्न होकर दोनों पृथक्-पृथक् हो जाते हैं, तब उस शरीरके पाँचों भूत पृथिवीके पाँचों भूतोंमें लीन हो जाते हैं। यही 'पञ्चत्व गति' है। इसको 'देहान्त' भी कहते हैं।

प्राणगति

प्राणगतिको उपनिषदोंने 'उत्क्रान्ति' कहा है। इसमें कर्मात्मा पृथिवीको छोड़कर ऊपर देवलोक अथवा पितृलोकमें उत्क्रमण करता है, अतः यह उत्क्रान्ति है। इसके चार भेद हैं—ब्रह्मगति, दैवी गति, पैत्री गति और नारकी गति। इनका वर्णन विस्तृतरूपमें ऊपर आ गया है। आत्मा नित्य है। कहीं-न-कहीं परिभ्रमण करना इसका स्वभाव है, ऊर्ध्वलोकोंमें जाना ही इसकी उत्क्रान्ति है। आत्माके स्वरूप तथा उसके नित्यत्वका विवेचन अनुपदमें ही होगा।

अगति

कई आत्माओंकी ऊर्ध्व अथवा अधः—दोनों गतियाँ नहीं होती हैं। इसका कारण विद्याका अतिक्षय और कर्मका प्राबल्य है। क्षीणविद्य आत्मा यहीं—जिनमें अस्थि नहीं होती, ऐसे ंश, मशक, यूका, लिक्षा और मत्कुण आदि योनियोंमें जन्म लेते हैं। जिनमें विद्याका अत्यन्त अभाव हो गया है, उन जीवात्माओंका जन्म ओषधि, यव, व्रीहि, चणक आदिमें होता है। इन दो प्रकारके जीवात्माओंकी अगति होती है। अर्थात् वे 'जायस्व' और 'म्रियस्व'के अनुसार जनमते-मरते रहते हैं। अतः यह 'अगतिरूपा' गति है।

समवलय गति

विद्या और कर्म आत्माके नित्य धर्म हैं। ये दोनों आत्मामें तारतम्यसे रहते हैं। ये दोनों ही आत्माकी गतिके कारण होते हैं। कभी कर्मोत्तर विद्या रहती है, तो कभी विद्योत्तर कर्म रहता है। अर्थात् कभी आत्मामें विद्याकी वृद्धि और कर्मकी क्षीणता रहती है, तो कभी कर्मकी वृद्धि और विद्याकी क्षीणता रह जाती है और कभी केवल विद्या ही रह जाती है। कभी केवल कर्म ही रह जाते हैं, विद्या निःशेष विलुप्त हो जाती है। केवल कर्मावस्था और केवल विद्यावस्था—इन दोनोंमें उत्क्रान्ति अथवा गति नहीं होती है। जब केवल विद्या ही रह जाती है और कर्म विलुप्त हो जाते हैं, तब उस व्यापक आत्माको परिच्छिन्नकर सीमाबद्ध करनेवाले कर्मोंके नष्ट हो जानेपर आत्मा स्व-स्वरूपमें व्यापक हो जाता है, अर्थात् उसके प्राणोंकी उत्क्रान्ति न होकर यहाँ ही वे प्राण नष्ट हो जाते हैं। इसमें बृहदारण्यक उपनिषद् (४। ४। ६) में उपलब्ध—**'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति अत्रैव समवलीयन्ते।'** विज्ञान ही प्रमाण है, अर्थात् उस आत्माका उत्क्रमण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं होता—यहाँ ही वह परमात्मामें लीन हो जाता है।' यही 'समवलय गति' है। यह भी एक प्रकारकी मुक्ति है।

आत्मा नित्य है

पञ्चत्वमें जिस प्रकार पाँचों भूतोंका शरीर आत्मासे पृथक् हो जाता है, उसी प्रकार पाँच देवमय आत्मा भी शरीरसे पृथक् हो जाता है; किंतु इसमें यह विशेषता है कि शरीरके पाँचों भूत अलग होकर पाँच स्थलोंमें विभक्त हो जाते हैं, परंतु आत्माके पाँचों देवता शरीरसे पृथक् होनेपर भी अपने प्रभवके रूपमें पाँच स्थलोंमें विभक्त नहीं होते। हमारे इस भूतात्मामें काल, कर्म और शुक्र आदि अविद्याद्वारा जो पाँच देवताओंका हृद्ग्रन्थि-बन्धन हो रहा है, वह मुक्तिके प्रथम अविद्याके निवृत्त न होनेसे नहीं टूटता। अतः पाँच देवताओंसे निर्मित आत्मा शरीरसे पृथक् होकर भी पूर्ववत् सम्बन्धरूपमें कहीं-न-कहीं परिभ्रमण करता रहता है। चिद्रूप आत्मामें देवताओंकी शक्तियोंका बन्धन ही 'निर्माण' है। आत्मा सदा ही नित्य है।

आत्माका स्वरूप

वेदकी सरल भाषामें आत्मस्वरूपका विश्लेषण सरलतासे इस प्रकार हो सकता है। यह सृष्टि-प्रपञ्च ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय भेदसे तीन भागोंमें विभक्त है। इनमें ज्ञाता आत्मा है, ज्ञान आत्माकी रश्मियाँ हैं, ज्ञेय इसी आत्माका प्रवर्ग्य (अंश) है, अर्थात् महिमारूप है। वेदमें अंशको 'प्रवर्ग्य' कहते हैं। इनमें आत्मा चित् है, ज्ञान चेतना है, प्रवर्ग्य अचित् है—जड है। न्यायदर्शनमें इसको क्रमशः प्रमाता, प्रमा और प्रमेय—इन अभिधानोंसे अभिहित किया गया है। इसीको वेदान्तदर्शनके श्रीभाष्यमें श्रीरामानुजाचार्यजीने ईश्वर, चित् और अचित्—इन संज्ञाओंसे परिभाषित किया है। श्रीरामानुजाचार्यजीका तत्त्वोंका यह विश्लेषण वेदसम्मत है। वेदमें उपलब्ध परिभाषाओंमें इनको अव्यय, अक्षर और क्षर कहते हैं।

विशद व्याख्या

तत्त्वके गहन होनेसे पुनरपि इसका विशद विवेचन किया जाता है। विश्वका अवलोकन करनेपर इसमें तीन प्रकारके पदार्थ उपलब्ध होते हैं। कुछ पदार्थ तो ऐसे हैं, जिनका न तो कोई आयतन घटता-बढ़ता है, न इनमें प्रत्यक्षमें आदान-विसर्गभाव ही प्रतीत होते हैं। इनमें चेतना-विकासके आधार इन्द्रियोंका विकास नहीं है; अतः ये पदार्थ अचित् (जड) हैं। परंतु यहाँ एक बातपर अवश्यमेव ध्यान देना आवश्यक है। 'इनमें चित् (आत्मा) नहीं है, इसलिये ये जड हैं'—यह मानना सत्यसे दूर है। आत्मा तो इनमें भी व्याप्त है। कारण कि जगत्का मूल कारण परमात्मा स्वयं मन, प्राण और वाङ्मय है। अतः इसके अंश यच्च यावत् पदार्थ 'त्रिपर्वा' हैं। इस दृष्टिसे सब पदार्थ ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयरूप त्रिपर्वोंसे युक्त हैं। अतः आर्योंका व्यापक चिद्वाद अव्याहत है। इस कारणसे मनुष्येतर पदार्थों—पशु, पक्षी और वृक्ष आदिका उत्पीडन पाप माना गया है। परंतु इनमें इन्द्रियोंका विकास न होनेसे आत्माकी अभिव्यक्ति नहीं होती है; अतः ये अचित् (जड) हैं।

कुछ पदार्थ ऐसे हैं, जो घटते-बढ़ते हैं—आदान-विसर्गरूप व्यापार करते हुए प्रतीत होते हैं। परंतु अपने स्थानसे अन्यत्र गमनमें असमर्थ हैं। ओषधि, वनस्पति, वृक्ष, लता और गुल्म आदि इस कोटिके हैं। इनमें केवल त्वगिन्द्रियका विकास है।

कुछ पदार्थ ऐसे हैं, जिनका मिथुनभावसे सर्जन होता है। मिथुनभावकी सृष्टि ही 'मैथुनी-सृष्टि' है। यह सृष्टि मानसी-सृष्टिसे भिन्न है। इनमें इन्द्रियोंका विकास रहता है। ये अवस्था और जात्यनुरूप बढ़ते हैं। प्रत्यक्षमें ध्वनि और शब्दरूप वाकका प्रयोग करते हैं। एक स्थानसे स्थानान्तरमें गमनागमन करते हैं। कृश, स्थूल आदि आकार-भेदोंमें परिणत होते रहते हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि, कीट और पतङ्ग आदिका इस तीसरी कोटिमें अन्तर्भाव है।

अभिधान

इन तीन वर्गके पदार्थोंका—असंज्ञ, अन्तःसंज्ञ और ससंज्ञ अभिधान है। ये ही अचेतन, अर्धचेतन और चेतन जीव हैं। आत्माके सर्वत्र व्याप्त रहनेपर भी जिन पदार्थोंमें इन्द्रियोंका विकास नहीं है—वे धातु, उपधातु, रत्न और पाषाण आदि 'अचेतन जीव' हैं, अर्थात् इनमें आत्माका चैतन्य मूर्छित रहता है। इन्हींको उपनिषदोंमें 'वैश्वानर आत्मा' कहा है। जिनमें इन्द्रियोंका अथवा इन्द्रियविशेषका विकास है—वे ओषधि, वनस्पति और वृक्ष आदि अन्तः-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संज्ञ होनेसे 'अर्धचेतन जीव' हैं। इनको ही 'माण्डूक्य-उपनिषद्'में 'तैजस जीवात्मा' कहा गया है। वैश्वानर जीवोंमें केवल अर्थशक्तिका ही विकास है, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति उनमें मूर्छित हैं; परंतु तैजस जीवोंमें क्रिया-शक्तिका भी विकास है; परंतु अल्पमात्रामें। अतः ये जीव 'अर्धचेतन' हैं। इनमें केवल त्वक्-इन्द्रियका ही विशेष विकास है। इतर इन्द्रियोंका कार्य केवल त्वक्-इन्द्रियके सहयोगसे अन्तःमें विद्यमान आत्मा ही करता रहता है, अतः 'अन्तःसंज्ञक' है।

पशु, पक्षि, कृमि और मानवोंमें सब-सब इन्द्रियोंका विकास है। अतः ये 'चेतन जीव' हैं। 'माण्डूक्योपनिषद्'में इनको 'प्राज्ञ जीव' कहा गया है। इनमें अर्थ और क्रियाशक्तिके साथ-साथ प्रज्ञा (मन) शक्तिका भी विशेष विकास है। अतः ये प्राज्ञ जीव हैं। प्रज्ञा ही चेतना है, अतः ये चेतन हैं।

पाप-पुण्यका संश्लेष और आवागमन

इनमें पूर्वजन्मानुभूति, आवागमन, पाप-पुण्य आदिका विपर्यय—ये सब भाव उन जीवोंके साथ ही युक्त रहते हैं, जिनमें आत्माकी अभिव्यक्ति अधिक है। जिन जीवोंमें आत्माकी अभिव्यक्ति नहीं रहती है, उनको पाप-पुण्य नहीं लगते हैं। उनका कर्मनिबन्धन आवागमन भी नहीं होता है। केवल उनकी योनिगति ही होती रहती है। यही मनुष्य और पशु-पक्षी आदि जीवोंमें भेद है।

पाँच पुनर्जन्म

जीवात्माके अनन्तानन्त पुनर्जन्मोंका अन्तर्भाव पाँच पुनर्जन्मोंमें हो जाता है। उनके नामों और स्वरूपोंका निर्देश इस प्रकार है—

१-शुक्रमें जन्म।
२-शोणितमें जन्म।
३-भूमिमें जन्म।
४-संस्कारोंसे जन्म।

५-परलोकमें जन्म।

कर्मात्माकी अन्नके द्वारा शुक्रमें प्रतिष्ठा प्रथम जन्म है। शुक्रके द्वारा शोणित (रज) में प्रतिष्ठा द्वितीय जन्म है। गर्भाशयसे भूमिमें प्रतिष्ठा तृतीय जन्म है। संस्कारोंसे दिव्य-भावमें प्रतिष्ठा चतुर्थ जन्म है। अग्निके द्वारा परलोकमें प्रतिष्ठा पञ्चम जन्म है।

तीन जन्म

'ऐतरेय ब्राह्मण'में भगवान् ऐतरेयने इन सब जन्मोंका अन्तर्भाव तीन जन्मोंमें ही मान लिया है। उनके मतमें शोणितमें जन्म प्रथम जन्म है। शुक्र-जन्मका इसीमें अन्त-र्भाव है। नौ मासके अनन्तर गर्भाशयसे भूमिष्ठ होना द्वितीय जन्म है। अग्निके द्वारा परलोकमें प्रतिष्ठा तृतीय जन्म है।

संस्कारोंके द्वारा जायमान जन्मका तृतीय जन्ममें ही अन्तर्भाव है। कारण कि पाँच जन्मोंमें प्रथम शुक्र-जन्म द्वितीय जन्मका साधन है। संस्कार-जन्म भी पञ्चम (परलोक) जन्मका साधन है; अतः तीन ही जन्म हैं।

परमागतिकी प्राप्ति आवश्यकतम

कोई माने अथवा न माने, जाने अथवा न जाने—संसार, परलोक, नित्य आत्मा, कर्मफल और कर्मोंके द्वारा गतियाँ एवं तत्तत् लोकमें जीवात्माका निवास अवश्य है। किसीके न माननेमात्रसे कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं होता। अतः मनुष्यके लिये सतत जागरूक रहकर विहित कर्मोंके आचरण, निषिद्ध कर्मोंके त्याग, इन्द्रियनिग्रह और निष्कामभावसे ईश्वर-उपासनाके द्वारा परमागति (मुक्ति) को प्राप्त करना परम आवश्यक है। इसके अभावमें देवस्वर्गोंको प्राप्त करना भी उत्तम है, पितृस्वर्गोंकी प्राप्ति मध्यम है। दुर्गति (नारकी गति) प्राप्त करना अधम है। केवल योनि-गतिमें परिभ्रमण करना पशु-पक्षियोंके सदृश ही है। मानवके लिये वह गति अनुचित है। मानवकी विशेषता परमागति प्राप्त करनेमें ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव-जीवनका लक्ष्य—भगवत्प्राप्ति

(लेखक—आचार्य श्रीविट्ठलेशजी महाराज)

मानव-जीवनकी उपादेयता

इस विषय-विषसे परिपूरित, सुख-दुःख, राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि द्वन्द्वोंसे दूषित अति भयानक, जन्म-मरणरूपी गम्भीर संसारसागरमें कर्मवश निमग्न प्राणियों-को भवसागरसे उद्धार करनेके हेतु परम दयालु श्रद्धेय जगत्पिता परमात्मा भगवान् श्रीवासुदेवजीने मानुष-कलेवर-रूपी नौका निर्मित करके ही संतोष व्यक्त किया है—

'तासां मे पौरुषी प्रिया' (भा० रा०)

प्रभुने जितने चतुष्पदादि शरीर रचे हैं, उनमेंसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका साधक मनुष्य-देह ही सर्वश्रेष्ठ है; क्योंकि चौरासी लाख योनियोंमें भटकता हुआ जीव कदाचित् पूर्वजन्ममें संचित पुण्योंके प्रतापसे भगवत्कृपाद्वारा मनुष्य-जन्म पाता है और यही मनुष्य-योनि शुभ-अशुभ कर्मों-द्वारा स्वर्ग-नरक एवं अपवर्ग देनेवाली है। इतना ही नहीं, अपि तु निष्काम कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे चित्त-शुद्धिद्वारा भगवत्प्रेमरूपा भक्तिके अङ्कुरित होनेपर भगवत्साक्षात्कार करानेवाली है। अतः इस दुर्लभ मानुषी गतिको पाकर ही मनुष्य भगवत्प्राप्तिके साधनोंको भलीभाँति कर पाता है; इसीलिये मनुष्य-जन्म भगवत्प्रिय है। पर मनुष्य यदि प्रेमसे भगवान्‌का सेवन करे तो भगवत्प्रिय होता है, अन्यथा नहीं। 'ऐसी श्रीमन्मुकुन्द-सेवोपयोगी देह पाकर भी जो भगवच्चरणोंका सेवन नहीं करता, उसे तृणके लोभी पशुके समान गृहरूपी अन्धकूपमें पड़ा हुआ जानो'—

लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं
कथञ्चिदव्यङ्गमयत्नतोऽनघ ।
पादारविन्दं न भजत्यसन्मति-
र्हान्धकूपे पतितो यथा पशुः ॥
(श्रीमद्भागवत १० । ५१ । ४७)

भगवत्साक्षात्कारमें मानव-देहका महत्त्व

अनोखा रत्न पाकर यदि उसको मिट्टीमें गाड़ दिया जाय तो कुछ शोभा नहीं देता है। यदि उसीको किसी आभूषणमें जड़ा दिया जाय तो वह सुशोभित होता है। इसी प्रकार इस मनुष्यशरीरको क्षुद्र कर्मोंमें लगानेसे कुछ शोभा नहीं। यदि भगवत्सेवनमें लगा दिया जाय तो शोभाकी सीमा नहीं। भगवान् ऋषभदेवजीने अपने पुत्रोंसे कहा है—

नायं देहो देहभाजां नृलोके
कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये ।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं
शुद्ध्येद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ॥
(श्रीमद्भागवत ५ । ५ । १)

अर्थात् यह देह क्षुद्र कर्मोंके लिये नहीं है; किंतु तपद्वारा अन्तःकरणकी शुद्धिसे अनन्त ब्रह्मसुखका अनुभव करनेके लिये है। विषय-सुख तो कूकर-शूकर-गर्दभादि योनियोंमें भी उपलब्ध हो सकते हैं।

यह मानवीय शरीर परमेश्वरकी देन है कि जिससे नित्यनिरतिशय आनन्दका अनुभव होता है तथा जो भगवान्‌से भेट करनेके लिये उपयुक्त है। जैसे कि पूर्वकालमें बहुत-से भक्तोंको भगवान्‌के साक्षात् दर्शन हुए थे। ऐसी सोपानभूत मानव-योनिको पाकर जो प्राणी अपना कल्याण नहीं कर पाता, उससे बढ़कर महापापी एवं आत्मघाती कौन हो सकता है?

योनेः सहस्राणि बहूनि गत्वा
दुःखेन लब्ध्वापि हि मानुषत्वम् ।
सुखावहं ये न भजन्ति विष्णुं
ते वै मनुष्यात्मनि शत्रुभूताः ॥
सोपानभूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ।
यस्तारयति नात्मानं तस्मात्पापतरोऽत्र कः ॥
(पुराणे)

यद्यपि यह मानुष-कलेवर सुदुर्लभ है, तथापि क्षण-भङ्गुर है। इसका विश्वास कभी नहीं किया जा सकता है। अतः अनित्य वस्तुसे नित्य वस्तुको प्राप्त करना ही परम लाभ है। मनुष्य-शरीर वह वाहन है कि जिसका सहारा लेकर मनुष्य अपने स्वरूपका साक्षात्कार कर सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य-देह कर्मयोनि है और मनुष्यलोक कर्म-क्षेत्र है। शेष देवयोनि, पशु-तिर्यग्योनियाँ भोगयोनि हैं। भोगयोनिमें देव, पशु आदि पुण्य-पापका फल भोगते हैं। अहं-ममाभिमानयुक्त कर्मोंसे ही जीव पुनर्जन्म पाता है। जन्म-मरण देहके धर्म, भूख-प्यास प्राणके धर्म और सुख-दुःख मनके धर्म हैं, आत्माके नहीं; क्योंकि आत्मा गुणातीत है। वह अहंकारसे ही बन्धन पाता है और साहंकार किये हुए पुण्य-पापोंद्वारा ही स्वर्गीय-नारकीय योनियोंको प्राप्त होता है।

स्वर्गीय एवं नारकीय कलेवरसे भागवत-धर्मका सम्पादन असम्भव है। श्रीमन्मुकुन्द भगवान्‌की सेवाके उपयोगी मानवशरीरसे ही तथा श्रवण-कीर्तनादि भागवत-धर्मोंके सेवनसे ही भगवद्दर्शन सम्भव है। ऐसे शरीरको पाकर सर्वहितैषी परमोपकारी हरिसे विमुख होना ही जन्म-मृत्युरूपी संसारका कारण है। अतः जबतक शरीर हृष्ट-पुष्ट है और इन्द्रियाँ भी अपने-अपने व्यापारोंमें समर्थ हैं, तबतक भागवत-धर्मके सेवनमें प्रयत्न करे।

इन्हीं बातोंको ध्यानमें रखकर भक्तप्रवर महात्मा प्रह्लादजीने असुर-बालकोंको सम्बोधित करके कहा था कि 'कुमार-अवस्थासे ही भगवद्-भजन करना चाहिये; क्योंकि मानव-जीवन चिरस्थायी नहीं है'—

कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्॥
(श्रीमद्भा० ७। ६। १)

अहं-मम अभिमानसे युक्त मनसे किये हुए कर्मोंसे ही वासनाश्रयी जीव पुनर्जन्म पाता है और अन्तकालमें जैसी मति वैसी ही गति होती है—

'अन्ते या मतिः सा गतिः।'

जैसे कि भरत राजाने मरते समय मृगशावकपर आसक्त होनेसे मृगशरीरको पाया तथा आखेट-रत राजकुमारपर आसक्त हुए मुनिको ध्रुव राजकुमारका जन्म मिला। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। अतः मन ही पुनर्जन्मका कारण है—

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।'

जन्मान्तर-निरोधके उपाय

इस जन्म-मरण-परम्पराके निवारणके लिये भक्तराज देवर्षि नारदमुनिने हरिभजनका ही उपदेश दिया है—

'अतस्तदपवादार्थं भज सर्वात्मना हरिम्।'
(श्रीमद्भागवत ४। २९। ७९)

'अतः कर्मबन्धनसे छूटनेके लिये सर्वात्मना हरिका भजन करो।'

भगवान्‌ने भी गीताजीमें अर्जुनसे कहा है—

'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥'
(७। ३३)

'इस अनित्य और सुखरहित लोकको पाकर मुझको भजो।'

इन वाक्योंसे सिद्ध है कि 'सभी अनर्थोंको दूर कर परम पुरुषार्थ देनेवाली भगवद्भक्ति ही सर्वोपरि उपादेय उपाय है'—

'अनर्थोपशमं साक्षाद् भक्तियोगमधोक्षजे।'
(श्रीमद्भागवत १। ७। ६)

वह भक्ति भी भगवद्भक्तोंके समागमरूपी मेघोंकी वर्षासे अङ्कुरित होकर फलती-फूलती है और कुसङ्गरूपी घामसे शुष्कताको प्राप्त हो जाती है।

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥
(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड ६१)

इस कर्मभूमिमें मनुष्य कर्मयोनिवश विविध कर्मोंकी रचना कर कर्मशृङ्खलासे बँध जाता है। फिर उससे छुटकारा पाना कठिन हो जाता है। यदि किये हुए कर्म भगवान्‌के चरणकमलोंमें समर्पित कर दिये जायँ तो उनकी कर्मसंज्ञा समाप्त होकर भागवत-धर्म-संज्ञा हो जाती है। वे भागवत-धर्म बन्धनकारक न होकर मुक्तिदायक हो जाते हैं और उनका फल भगवत्प्रेममें परिवर्तित हो जाता है।

परम दयालु भगवान्‌ने जीवोंके दुःखोंको दूर करनेके लिये उन्हें सब कर्म अपने समर्पण करनेकी आज्ञा देकर शुभाशुभ कर्मसे मुक्त करनेका वचन दिया है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥
(श्रीमद्भगवद्गीता ९। २७-२८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌का अनन्य चिन्तन करनेपर भगवान् उसके योगक्षेमका भार स्वयं वहन करते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ९। २२)

भगवत्स्मरणके अभ्याससे चित्तके स्वभावपर विजय होती है। स्मरणाभ्यासी पुरुषको अन्त-कालमें स्वतः ही भगवत्स्मरण हो जाता है।

भगवान्‌की स्मृति सारी विपत्तियोंका नाश कर देती है—

'हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्।'

(श्रीमद्भागवत ८। १०। ५५)

सम्पत्तिमें या विपत्तिमें हरिका स्मरण करनेसे ही आध्यात्मिकादि तापत्रयोंसे छुटकारा मिल जाता है। भगवान्‌को भूल जाना ही पुनर्जन्मका कारण है। भगवद्वन्दन, भगवच्चरणोदक-पानादि अनेक साधनोंसे पुनर्जन्म नहीं प्राप्त होता।

'कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय।'
'विष्णोः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥'
'मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥'

इत्यादि वाक्योंसे भगवद्भक्तिद्वारा प्राप्य भगवद्धाममें प्राप्त हुए प्राणियोंकी संसारमें पुनरावृत्ति नहीं होती, यह सिद्ध है।

'यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।'

—इस गीता-वाक्यने भी इसकी सम्पुष्टि कर दी है। अतः अनित्य सुखोंसे मनको हटाकर उसे नित्य निरतिशय सुखस्वरूप श्रीगोपालजीके चरण-कमलोंमें लगानेके लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये।

हरि बिनु मीत नहीं कोउ तेरे।
सुनु मन कहौं पुकारि तो सौं हौं, भज, गोपालहिं मेरे॥
या संसार बिषय-बिष-सागर रहत सदा सब घेरे।
सूर स्याम बिनु अंतकाल में कोउ न आवत नेरे॥

जीवन्मुक्ति, विदेहमुक्ति, कैवल्य और पूर्णत्व

(लेखक—महामहोपाध्याय श्रद्धेय ० श्रीगोपीनाथजी कविराज एम्० ए०, डी० लिट्०)

(१)

जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति

मनुष्य-जीवनका चरम लक्ष्य यदि देहावस्थामें ही उपलब्ध होता है और वह उपलब्धि यदि आभासमात्र नहीं होती तो उस अवस्थाको 'जीवन्मुक्ति' कहा जाता है। विदेह-मुक्ति देह-त्यागके बाद प्राप्त हो सकती है, किंतु जीवन्मुक्ति इस देहमें अवस्थान करते समय ही किसी भाग्यवान्‌के भाग्यमें घटती है। प्रचलित ज्ञानमार्गकी दृष्टिके अनुसार सात ज्ञानभूमिमें पञ्चम, षष्ठ और सप्तम—ये तीन जीवन्मुक्तिकी भूमि कहलाती हैं। पञ्चम भूमिके ज्ञानीको 'ब्रह्मविद्' कहते हैं, षष्ठ भूमिमें ज्ञानीका नाम 'ब्रह्मविद्-वरीयान्' तथा सप्तम भूमिके ज्ञानीका नाम 'ब्रह्मविद्वरिष्ठ' है। इन तीनोंमें परस्पर भेद है। चतुर्थ भूमिमें अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानका उदय होता है; परंतु अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान होते ही जीवन्मुक्ति हो ही जायगी, यह निश्चय नहीं है। अपरोक्ष ज्ञानावस्थामें ब्रह्म-साक्षात्कार होता है। परंतु साक्षात्कार होनेपर भी जबतक बुद्धि और देहके क्षेत्रमें उसका प्रभाव नहीं पड़ता, तबतक जीवन्मुक्ति सम्भव नहीं होती। बुद्धि-क्षेत्रमें इस ज्ञानका प्रभाव पड़नेके लिये 'चित्तशुद्धि' आवश्यक है तथा भौतिक देहके क्षेत्रमें इस ज्ञानके प्रति-बिम्बित होनेके लिये 'भूतशुद्धि' और 'देहशुद्धि' आवश्यक हैं। भूतशुद्धि और देहशुद्धि हुए बिना देहावस्थामें और मनोमय स्थितिमें ब्रह्मज्ञानका अपरोक्ष अनुभवात्मक विकास नहीं होता। जो साक्षात्कार चतुर्थ भूमिमें होता है वह स्वरूपसिद्ध ब्रह्मज्ञान है। जीवनमें जबतक वह प्रतिफलित नहीं होता, तबतक जीवन्मुक्ति अवस्थाका उदय कैसे होगा? आकाशमें सूर्यका उदय होनेपर भी जबतक बादल आदि हट नहीं जाते, तबतक हम साक्षात् रूपमें सूर्यको नहीं देख सकते। इसी प्रकार जीवन्मुक्त अवस्थामें देहमय और मनोमय अनुभवमें ब्रह्मानुभव अनुस्यूत होना चाहिये। इसके लिये देह और मनकी स्वच्छता आवश्यक है। वेदान्त-मार्गकी साधनामें साधारणतः दो मार्गोंका अनुसरण किया जाता है—एक है उपासना-मार्ग और दूसरा है विचार-मार्ग। उपासना-मार्गमें उपासनाके द्वारा भूतशुद्धि और चित्तशुद्धि सम्यक्‌रूपसे सम्पन्न होनेपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानके उदयके साथ-साथ ही चतुर्थ भूमिसे पञ्चम भूमिमें प्रवेश होता है, अर्थात् अपरोक्ष ज्ञानके उदयके साथ-साथ जीवन्मुक्तिका आविर्भाव होता है। जीवन्मुक्तिके आविर्भावके बाद वह क्रमशः दृढ़ता प्राप्त करता है और पञ्चमसे षष्ठ और सप्तमतक प्रगति होती है। वेदान्तकी दृष्टिमें अपरोक्ष ज्ञानके साथ-साथ जीव और जगत्की सत्ता बाधित हो जाती है, परंतु बाधित होनेपर भी वह अनुवृत्त रहती है तथा इसी कारण व्यवहार चलता है; किंतु जगत्के स्वरूप-बोधमें क्रमशः तारतम्य हो जाता है। पञ्चम भूमिमें जगत् स्वप्नवत् जान पड़ता है। अज्ञानी जैसे जगत्को सत्य-रूपमें अनुभव करता है, यहाँ वह भाव नहीं रहता। परंतु न रहनेपर भी व्यवहार चल सकता है। षष्ठ भूमिमें यह अत्यन्त प्रगाढ़ हो जाता है, जगत् आभासमात्र रह जाता है। इस क्षेत्रमें ज्ञान और भी तीव्र होता है। सप्तम भूमिमें जगत् एक प्रकारसे अनुभवमें ही नहीं आता। उस समय व्यवहार अत्यन्त असम्भव होता है। उसके बाद ही देहान्त होता है। तब ब्रह्मके साथ तादात्म्य प्राप्त होता है। पञ्चम और षष्ठ भूमिको तुरीय अवस्था कह सकते हैं। सप्तम भूमिको तुरीयातीत कहना सुसङ्गत है। पञ्चम और षष्ठ भूमिमें जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति विद्यमान रहते हैं। परंतु वे तुरीयद्वारा अनुविद्ध होते हैं। सप्तम भूमिमें जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिको पृथक् रूपमें पकड़ना कठिन होता है। इसी कारण उसका तुरीयातीत कहकर वर्णन किया जाता है। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिके रहते तुरीय कहनेमें कोई सार्थकता नहीं। अब प्रश्न यह होता है कि चतुर्थ भूमिमें ब्रह्म-साक्षात्कार अपरोक्ष रूपमें होनेपर भी जीवन्मुक्ति अवश्यम्भावी क्यों नहीं होती? इस सम्बन्धमें यही कहना है कि अपरोक्ष रूपमें ब्रह्मदर्शन होते ही जीवन्मुक्ति हो ही जायगी, यह नहीं कहा जा सकता। प्रकृत विदेहमुक्ति तभी हो जाती है। मृत्युके बाद जो विदेहमुक्ति होती है, वह कैवल्यका ही दूसरा नाम है। चतुर्थके बाद जो विदेहमुक्ति होती है, वह अपरोक्ष ज्ञानके साथ-साथ ही होती है; परंतु देहाभिमान बने रहनेके कारण देहाभिमानी पुरुष उसे पकड़ नहीं पाता। इस कारण देहाभिमान रहनेकी दशामें अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानकी सत्ताका होना आवश्यक है। इसी कारण तान्त्रिक आचार्य कहते हैं कि सद्गुरुकी कृपासे पौरुष अज्ञानके निवृत्त होनेपर अपरोक्ष आत्मसाक्षात्कार होता है; किंतु बुद्धि निर्मल हुए बिना यह अपरोक्ष ज्ञानका प्रतिभास बुद्धिमें आरूढ़ नहीं होता। बुद्धिमें आरूढ़ न होनेतक जीवन्मुक्ति कैसे हो सकेगी? इसके लिये उपासना, योग, तपस्या आदिकी आवश्यकता है। उपासना आदिके द्वारा बुद्धि निर्मल होने-पर गुरुकृपासे प्राप्त अपरोक्ष ज्ञान उसमें झलकता है। तब **'शिवोऽहम्'** के रूपमें अपनेको अनुभव कर सकते हैं। यहाँसे ही जीवन्मुक्तिका आरम्भ होता है। प्रारब्ध कर्मके अन्तमें देहान्त होनेपर पौरुष ज्ञानका आविर्भाव होता है और साक्षात् शिवत्वकी प्राप्ति होती है।

जीवन्मुक्त अवस्थामें केवल प्रारब्ध कर्म रहता है। वह प्रारब्ध जब भोगके द्वारा समाप्त हो जाता है, तब कर्मके अतीत परामुक्तिकी प्राप्ति होती है। परंतु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि नरदेहसे मुक्त होनेके साथ-साथ ही पूर्णत्वमें प्रतिष्ठा हो जाती है। यदि किसीके ऊर्ध्वलोकमें भोगके लिये उपयोगी कर्म अवशिष्ट रहते हैं तो मृत्युके बाद ऊर्ध्वलोकमें जाकर भोगके द्वारा उन अवशिष्ट कर्मोंका क्षय करना पड़ता है। इन सब लोगोंके नरलोकमें पुनः आनेकी सम्भावना नहीं होती। परंतु नरदेहका त्याग करनेके साथ-साथ ही पूर्णत्वमें प्रवेश हो जायगा, यह कहा नहीं जा सकता; क्योंकि अभुक्त अथ च भोग्य भोगको समाप्त करने-पर ही पराशान्ति प्राप्त होती है।

ऊर्ध्वस्तरमें सभी प्रभुभाव लेकर जीवन्मुक्त होंगे, यह कहा नहीं जाता। प्रकृतिके अनुसार कोई-कोई दास्यभावमें भी रह सकते हैं। जो भक्तिप्रधान हैं, उनको दास्यभाव और जो ज्ञानप्रधान हैं, उनको प्रभुभाव प्राप्त होता है। परंतु गुरुप्रदत्त दीक्षाकी प्रकृतिके ऊपर यह विचित्रता निर्भर करती है। इस कारण दास्य और प्रभुभावके अतिरिक्त प्रकृतिके अनुसार कोई-कोई ब्रह्मज्योतिमें भी प्रविष्ट हो सकते हैं। ये सब भोगके अन्तर्गत हैं। भोगके समाप्त होनेपर ही मोक्ष होता है।

हमने जो जीवन्मुक्तकी अवस्थाकी बात कही है, यह एक दृष्टिकोण है। आगमकी दृष्टिसे जीवन्मुक्तिका अनुभव ठीक इस प्रकार नहीं होता। इस दृष्टिके अनुसार जीवन्मुक्त अवस्थामें समस्त विश्वको अपने विभवके रूपमें अनुभव किया जाता है। यह आत्मशक्तिका स्फुरण है। जीवन्मुक्त अवस्थामें आत्मा शिवरूपमें प्रकाशित होता है; क्योंकि विश्व शिव-शक्तिका प्रकाशरूप है तथा जीवन्मुक्त पुरुष शिवस्वरूप है, इसलिये यह विश्व उसके सामने अपनी शक्तिके खेलके रूपमें अनुभूत होता है। यह मिथ्या नहीं है और अनिर्वचनीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी नहीं है। यह पूर्णरूपमें सत्य है; परंतु मुक्त आत्माकी शक्ति-सापेक्ष है। आगमके मतसे मुक्त पुरुषको सर्वत्र शिवरूपका भान होता है। अतएव उसकी पञ्चेन्द्रियके द्वारा अपने-अपने विषयोंका ग्रहण, तत्तत् उपचारद्वारा रूपभोग आत्माके द्वारा परमात्माकी सेवाके रूपमें ही गृहीत होता है। इसी कारण भगवान् शंकराचार्य स्वरचित 'मानस पूजा'में—'पूजा ते विषयोपभोगरचना' कहकर इसका वर्णन करते हैं।

साधारण ज्ञानीकी दृष्टिमें परामुक्ति निर्गुण ब्रह्मस्वरूपमें प्रतिष्ठा है; किंतु आगमकी दृष्टिमें परामुक्ति त्रिविध कैवल्यके (प्रकृति, माया और महामायारूप त्रिविध अचित् सत्तासे पृथक् भाव) अतीत निष्कल परम शिवकी अवस्था है। विश्वभेद करनेके बाद तथा सब प्रकारसे कैवल्यको अतिक्रम करनेके बाद उन्मनी शक्तिके प्रभावसे निष्कल पदमें प्रवेश होता है। यही परम शिवकी अवस्था है। उसके बाद उन्मनी शक्ति निवृत्त हो जाती है। यह शिव-शक्तिके सामरस्यकी अवस्था है। इस अवस्थामें सब प्रकारका सङ्कोच कट जाता है तथा स्वातन्त्र्य शक्तिका उन्मेष होता है। तब शिवभाव और शक्तिभावकी अपूर्णता परिपूर्ण स्वरूपमें आत्मप्रकाश करती है। अर्थात् शिवभावमें पूर्णबोध होनेपर भी स्वातन्त्र्यका अभाव ही अपूर्णता है। शक्तिभावमें स्वातन्त्र्य रहनेपर भी बोधका अभाव ही अपूर्णता है। शिव-शक्तिका सामरस्य सम्पन्न होनेपर यह अपूर्णता हट जाती है और परिपूर्णभावका उदय होता है।

जीवन्मुक्त पुरुष ही 'जगद्गुरु' पद वाच्य है। उनके द्वारा ही ज्ञानतन्तुका संरक्षण होता है। इस विश्वका सब प्रकारका अधिकार-कार्य जीवन्मुक्त पुरुषके द्वारा ही सम्पन्न होता है। इन लोगोंको 'सिद्धपुरुष' कहते हैं। जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहार, सभी सिद्धपुरुषोंके द्वारा ही निर्वाहित होता है। परंतु अनुग्रह और तिरोभाव साक्षात् परमेश्वरके ऊपर निर्भर करता है। परमेश्वर स्वयं अधिकारी पुरुषका रूप धारण करके जगत्के व्यापारका सम्पादन करते हैं। पहले वे अनाश्रित शिवके रूपमें एक, ईश्वर और सदाशिवके रूपमें दो, तथा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूपमें तीन मूर्ति बनते हैं। इसका विस्तृत विवरण यहाँ आवश्यक नहीं है।

जीवन्मुक्त पुरुष कर्तृत्वहीन होनेके कारण कर्मातीत होते हैं। आगमकी दृष्टिसे जीवन्मुक्त पुरुष कर्तृत्वसम्पन्न होनेके कारण सब कार्योंमें भगवान्के प्रतिनिधि होते हैं। वास्तविक जीवन्मुक्त पुरुष मायिक देहसम्पन्न नहीं होते। वे बैन्दव देह अथवा महामाया-सम्भूत देहसम्पन्न होते हैं। जीवन्मुक्त अवस्थाके बाद परामुक्ति अवस्थामें जब भौतिक, प्राकृत, मायिक, महामायिक देह समाप्त हो जाते हैं, तब शाक्तदेहमें अथवा चिन्मय देहमें अवस्थिति होती है।

आगमवेत्ता कहते हैं कि चित्-शक्तिरूप बल प्राप्त होनेपर योगी समस्त विश्वको आत्मसात् करनेमें समर्थ होता है। चित्-शक्तिके प्रभावसे देह-प्राण आदि आवरण हट जाते हैं और अनावृत स्वरूप प्रकाशित होता है। जब यह अनावृत आत्मस्वरूप खुल जाता है, तब समस्त विश्व ही अपने स्वरूपके साथ अभिन्न रूपमें प्रकाशित हो उठता है। अग्नि प्रज्वलित होनेपर जैसे दाह्य पदार्थ दग्ध हो जाते हैं, उसी प्रकार वह प्रकाशित होनेपर समस्त विषय-पाशको ध्वस्त कर देता है। विश्वको अपने साथ अभिन्न रूपमें देखनेका नाम ही चिदानन्दकी प्राप्ति है। इस अवस्थाके उदय होनेपर व्युत्थान अवस्थामें भी देह आदिकी प्रतीति होनेपर भी तथा व्यवहार-जगत्में अवस्थान करनेपर भी चैतन्यके साथ अपनी एकात्मताका बोध अक्षुण्ण बना रहता है। चिद्भावके साथ तादात्म्य कभी भङ्ग नहीं होता। दृष्टान्तरूपमें कमलमें स्थिति को ले सकते हैं। तदनुसार समावेश अवस्थाकी स्थिति कर्णिका या बिन्दुमें स्थितिके अनुरूप तथा व्युत्थान अवस्थाकी स्थिति कमलके दलमें स्थितिके अनुरूप होती है। दोनों ही क्षेत्रोंमें स्थिति कमलमें ही होती है, कमलके बाहर नहीं होती।

जीवन्मुक्तिके सम्बन्धमें विविध सम्प्रदायोंके दृष्टिकोणसे बहुत-सी बातें कही गयी हैं, परंतु यहाँ उनका उल्लेख करनेकी आवश्यकता नहीं अनुभूत हो रही है। रसेश्वर-सम्प्रदाय तथा अन्यान्य सिद्ध सम्प्रदायवाले कहते हैं कि वास्तविक 'जीवन्मुक्ति'में देहपात नहीं होता। उनके मतसे जीवन्मुक्ति शब्दका अर्थ ही है—'दैहिक अमरता'। वे कहते हैं कि मृत्युपर विजय प्राप्त किये बिना जीवन्मुक्ति कैसे हो सकती है? देहसिद्धि हठयोगकी क्रियासे हो सकती है। वह कुण्डलिनीके जागरणके बाद मन्त्रशक्तिकी सहायतासे हो सकती है तथा अन्य उपायोंसे भी हो सकती है। इस सम्बन्धमें दो दृष्टिकोण हैं। उनमें एक है—भौतिक प्राकृत देहको शुद्ध करके 'सिद्धदेह'के रूपमें परिणत करना। गोरक्ष-सम्प्रदायमें 'काया-साधन' नामसे यह शोधन-क्रिया प्रचलित है। दूसरे मतसे भौतिक देहके साथ गुरु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपासे जो महामायासे उद्भूत 'बैन्दव देह' प्राप्त होता है, वह बैन्दव देह ही सिद्धदेह है। भौतिक-देहके कालग्रस्त हो जानेपर भी बैन्दव देह कालपर विजय प्राप्त करता है। किसी-किसी मतसे सिद्धदेह प्राप्त हो जानेके बाद, अर्थात् मृत्युञ्जयके बाद 'प्रणवदेह' प्राप्त करना ही 'परामुक्ति' है। सिद्धदेह जीवन्मुक्तका होता है। सिद्धदेह कालके अधीन नहीं होता; परंतु सिद्धदेहके ऊपर भी देह है—वही 'प्रणव-देह' है। इस दृष्टिसे जीवन्मुक्तके प्रारब्ध कर्म रहनेका कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

जीवन्मुक्तिके सम्बन्धमें प्राचीन कालमें मनीषीगणने विभिन्न दृष्टिकोणसे विचार किया था। वैष्णवमतसे जीवन्मुक्ति-को स्वीकार ही नहीं किया जाता। किसी-किसी सिद्धके मतसे विदेहमुक्तिको माना ही नहीं जाता। साधारणतः जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति दोनों ही अनेक सम्प्रदायोंके द्वारा स्वीकृत है। बौद्ध अर्थात् प्राचीन बौद्ध लोग 'अर्हत' शब्दके द्वारा इसी जीवन्मुक्तिका ही अस्तित्व स्वीकार करते हैं। कोई-कोई इसको 'सदेह निर्वाण' भी कहा करते हैं। इस विषयमें और अधिक कहना यहाँ आवश्यक नहीं है।

(२)

कैवल्यके विभिन्न अर्थ

'कैवल्य' शब्दका अर्थ यह है कि आत्मा अनात्माके संस्पर्शसे मुक्त होकर केवल अपने-आपमें अवस्थित हो जाय। सांख्य तथा पातञ्जल योगदर्शनमें 'कैवल्य' शब्दका प्रयोग हुआ है। पाशुपत योगीगण 'महैश्वर्य'के प्रतिद्वन्द्वीके रूपमें 'कैवल्य' शब्दकी व्याख्या करते हैं। श्रीरामानुजादि भक्ति-सम्प्रदायवाले 'भगवत्कैङ्कर्य' आदिके प्रतिद्वन्द्वीके रूपमें कैवल्य शब्दकी व्याख्या करते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य स्थलोंमें भी समझना चाहिये। सांख्य और पातञ्जलके मतसे कैवल्य शब्दका अर्थ यह है कि आत्मा त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसे अपनेको पृथक् करके अपने चित्-स्वरूपमें प्रवेश करता है। कैवल्य-प्राप्तिका उपाय विवेकज्ञान है। पातञ्जल-सिद्धान्त यह है कि आत्मा एकाग्रभूमिका आश्रय कर प्रज्ञा लाभ करके, प्रज्ञाकी चरम अवस्थामें अविवेकको दूर करनेके लिये अचिदात्मक सत्त्वगुणसे चिदात्मक पुरुषको क्रमशः पृथक् करके अपने स्वरूपमें स्थित होता है। सम्प्रज्ञात समाधिकी अवस्थामें प्रज्ञाका उदय होता है तथा क्रम-विकास होता है। इस क्रम-विकासके फलसे समाधिका आलम्बन क्रमशः स्थूलसे सूक्ष्ममें, अवयवीसे अवयवमें स्थित होता है। पश्चात् ग्राह्य विषयसे अतिक्रान्त होनेपर वितर्क और विचारभूमिसे पार होकर ग्रहणात्मक करणको अवलम्बन करके आनन्दसमाधिमें स्थित होता है। इसके बाद ग्रहण-भूमिसे अर्थात् करणभूमिसे ग्रहीतृभूमिमें प्रवेश होता है। इसका नाम 'अस्मिता-समाधि' है। इस समाधिमें ग्राह्य, ग्रहण और ग्रहीता—तीनों ही आयत्त हो जाते हैं; परंतु उस समय भी विशुद्ध आत्मसाक्षात्कार नहीं होता। विशुद्ध आत्मा ग्रहीता नहीं है। अतएव अस्मिता प्रज्ञाभूमिमें उपलब्ध ज्ञान ऐश्वर्य-व्यञ्जक होनेपर भी विशुद्ध आत्मज्ञान नहीं होता; क्योंकि अनात्मसे आत्मभावको पृथक् किये बिना विशुद्ध आत्मसत्ताका साक्षात्कार नहीं होता। इसी कारण आत्मसाक्षात्कारके लिये योगक्रिया आवश्यक है। पूर्ण 'विवेकख्याति' हुए बिना यह सम्भव नहीं है। विवेक-ख्यातिके फलस्वरूप पुरुषका स्वरूपदर्शन होता है। तब उस चिदालोकमें अपरिणामी पुरुष और परिणामी गुण देखनेमें आते हैं। तभी 'गुणवितृष्णा' रूप 'परवैराग्य'का उदय होता है। उसके बाद विवेक पूर्ण होनेपर आत्मा अनात्मसे पृथक् अपने चित्स्वरूपमें प्रतिष्ठित होता है। वस्तुतः अस्मिता-समाधिके बाद एकाग्रभूमिसे अतीत निरुद्ध-भावका आविर्भाव होता है। उसके बाद निरोध भी नहीं रहता। एकाग्रताके बाद निरोध चित्तका ही प्रगतिरूप है। उसके बाद निरोधका संस्कार मात्र रह जाता है तथा उसके साथ ही चित्त निवृत्त हो जाता है। निरोधके बाद निरोधका भी निरोध हो जानेपर कह सकते हैं कि चित्स्वरूप पुरुषकी अपने स्वरूपमें स्थिति हो गयी। यही 'कैवल्य' है। सांख्यके मतसे या पातञ्जलके मतसे पुरुष त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसे पृथक् होकर अपने स्वरूपमें स्थित होता है। पुरुष द्रष्टा और अपरिणामी है, प्रकृति परिणामशीला है।

इस कैवल्यके अनेक प्रकार हैं। तन्त्रमें तीन प्रकारके कैवल्यका विवरण मिलता है। इसका कारण अचित्की तीन अवस्थाएँ हैं। प्रत्येक अवस्थासे मुक्त होकर पुरुषको कैवल्य प्राप्त करना पड़ता है। इसी कारण कैवल्य तीन प्रकारका होता है। अचित्की स्थूलतम अवस्था त्रिगुणात्मिका प्रकृति है। अचित्की मध्यावस्था माया है। वह निर्गुण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मायासे मुक्त होना द्वितीय कैवल्य है। जो लोग प्रकृति और मायाको एक मानते हैं, उनकी बात नहीं कही जाती है। प्रकृतिके परे मायाका स्थान है। इसी कारण चिदात्मा पुरुष प्रकृतिसे मुक्त होकर भी मायासे निबद्ध रह सकता है। परंतु अन्तमें मायासे भी मुक्त होना पड़ता है। यही द्वितीय कैवल्य है।

परंतु मायासे कैवल्य हो जानेपर ही कैवल्यका चरम उत्कर्ष नहीं हो जाता; क्योंकि मायाके परे शुद्ध माया या महामाया विद्यमान है। सिद्धान्तशैवके मतसे यह महामाया ही बिन्दु या कुण्डलिनीके नामसे परिचित है। यह शुद्ध होनेपर भी अचित् तथा परिणामशील है। सारा महामायाका जगत् इस बिन्दुसे ही रचित है। आत्मा जब महामायासे मुक्त होता है तब वह श्रेष्ठ कैवल्य प्राप्त करता है। यही विशुद्ध कैवल्य है। इसकी ही विशिष्टतम अवस्थाको 'निर्वाण', 'परिनिर्वाण' या 'महानिर्वाण' कहते हैं। किं बहुना, इसकी भी परावस्था है। वही आत्माकी शिवावस्था है। अचित् सत्तासे पृथक् होनेपर ही आत्माको चरम सिद्धि प्राप्त नहीं होती। इसी कारण महामायासे मुक्त होनेपर भी आत्माको पूर्णत्व प्राप्त नहीं होता। आत्मामें जबतक शिवत्वका विकास नहीं हो जाता, तबतक पूर्णत्व सम्भव नहीं है। उन्मनी शक्तिका विकास हुए बिना आत्माको शिवरूपमें पहचाना नहीं जा सकता। वस्तुतः उन्मनी शक्ति ही चित्-शक्ति है। वह चित्-स्वरूप शिवभावके साथ नित्य संश्लिष्ट है। चित्-शक्तिका पूर्ण विकास होनेपर त्रिविध कैवल्य भेद पूर्ण हो जाता है। तब आत्मा ही शिवरूपमें आत्मप्रकाश करता है। जब आत्मा शिवरूपमें प्रकाशमान होता है तो उन्मनी शक्ति निवृत्त हो जाती है। तब शिव-शक्ति अभिन्न होकर प्रकाशित होती है। यही परशिव और परासंविद्की स्वरूपस्थिति है। यह अवस्था 'समना' और 'उन्मना' शक्तिके परे है तथा शिव और शक्तिके सामरस्यकी स्थिति है। यह आत्माकी निष्कल स्थिति है। कोई-कोई आचार्य इस स्थितिको ही कैवल्य कहते हैं। इसमें कोई आपत्ति नहीं है; क्योंकि यही पूर्ण स्वरूप है।

(३)

आगमोंके अनुसार पूर्णत्वकी प्राप्ति

'पूर्णत्व'की प्राप्ति मनुष्य-जीवनका एकमात्र उद्देश्य है; परंतु 'पूर्णत्व' शब्दका तात्पर्य क्या है—इस सम्बन्धमें दृष्टिभेदके कारण मतभेद है। वर्तमान निबन्धमें हम शैव और शाक्तदृष्टिके अनुसार आलोचना करेंगे। पाञ्चरात्र आगम तथा अन्यान्य वैष्णवशास्त्रोंकी दृष्टिसे कुछ नहीं कहा जायगा; क्योंकि इसकी पृथक् धारा है। एक धाराके साथ अन्य धाराका सम्मिश्रण ठीक नहीं है। 'पूर्णत्व' शब्दका अभिप्राय क्या है, इसको समझनेके लिये शास्त्रोंके चरम सिद्धान्तको जानना आवश्यक है। सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म ही पूर्ण सत्य है, इस विषयमें किसीका मतभेद नहीं है। ब्रह्म प्रकाशस्वरूप और आनन्दस्वरूप है, अखण्ड सत्य है, इसमें कोई संदेह नहीं। परंतु उसमें स्वातन्त्र्य नामकी अचिन्त्य शक्ति नित्य विद्यमान है। यह महाशक्ति उसकी स्वरूपा-शक्ति है और उसके स्वरूपके साथ अभिन्न है। आगमशास्त्रके अनुसार कहा जाता है कि ब्रह्म आत्मस्वरूप है और स्वातन्त्र्य उसकी विमर्शरूपा शक्ति है। यह स्वातन्त्र्यशक्ति ही किसी-किसी स्थानमें 'स्पन्द' नामसे अभिहित होती है। स्वातन्त्र्यहीन प्रकाश वस्तुतः 'ब्रह्म'पद वाच्य नहीं है; क्योंकि यह प्रकाश-स्वरूप होकर भी स्वातन्त्र्यहीन होनेसे व्यवहार-क्षेत्रमें जडरूपमें परिगणित होने योग्य है। आगमके मतसे पूर्ण सत्ता अखण्ड और अद्वैत है। सृष्टिकी ओरसे देखनेपर इसमें अनन्त शक्तियाँ हैं। ये सब शक्तियाँ चरम स्थितिमें इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिमें पर्यवसित होती हैं। अतएव 'पूर्णत्व' शब्दसे आगमके अनुसार तीनों दृष्टिसे अखण्ड एकताका बोध होता है। प्रथम दृष्टिसे एक, द्वितीय दृष्टिसे दो और तृतीय दृष्टिसे तीन। इसे सर्वदा स्मरण रखना चाहिये। तीन कहनेपर परब्रह्मकी बहिरङ्ग दृष्टि लक्षित होती है, जहाँ इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति त्रिकोण अथवा योनिरूपमें परिगृहीत होती है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया समष्टिरूपमें ब्रह्मकी बहिरङ्गा शक्ति है। चित् और आनन्द, अर्थात् चित् शक्ति और ह्लादिनी शक्ति ब्रह्म या पूर्णका अन्तरङ्ग है। चित्का अभिप्राय है—अखण्ड प्रकाश तथा आनन्दका अभिप्राय है—आत्मस्वरूपमें अनुकूल भाव। चित् और आनन्द एक ही वस्तु हैं; किंतु चित् अन्तर्मुख और आनन्द बहिर्मुख है। आनन्द और इच्छा एक ही वस्तु है; किंतु आनन्द अन्तर्मुख है और इच्छा बहिर्मुख है। ब्रह्मका जो सत्स्वरूप है, वह न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तरङ्ग है और न बहिरङ्ग—बल्कि उसे दोनों अङ्गोंका अङ्गी कह सकते हैं। यहाँतक धारणा कर लेनेपर ब्रह्मके निगूढ़ स्वरूपके सम्बन्धमें स्पष्ट बोध हो सकता है।

इसके बाद कला, तत्त्व और भुवनरूपमें तीन क्रमिक अवस्थाएँ ब्रह्मके साथ संश्लिष्ट हैं। इसके पश्चात् विश्वकी सृष्टिका आदिस्फुरण महासृष्टिके रूपमें प्रकाशमान होता है। उसके बाद खण्ड-खण्ड पृथक् सृष्टि होती है और उसमें खण्ड कालका प्रभाव होता है। इसी प्रकार स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण आदिको लेकर समस्त विश्वकी तथा विश्वातीत निष्कल ब्रह्मकी सत्ता है। इन सबको लेकर ही परिपूर्ण ब्रह्म-सत्ता समझनी चाहिये। इसीका नाम 'पूर्णत्व' है। आगममें इसका 'परम शिव' अथवा 'परासंवित्'के नामसे वर्णन किया गया है। प्रत्येक आत्माकी प्रकृत—वास्तविक सत्ता यही है। इस स्थितिमें प्रतिष्ठित हुए बिना यह नहीं कहा जा सकता कि 'पूर्णत्व'की प्राप्ति हो गयी। इस अवस्थाकी प्राप्ति परमेश्वरके शक्तिपात या सद्गुरुकी कृपाके बिना असम्भव है। विवेकज्ञानके द्वारा एक अवस्था प्राप्त होती है। उसका 'कैवल्य'के नामसे वर्णन करते हैं। इस स्थितिमें अचित्‌से चित् व्यावृत होकर निज स्वरूपमें प्रतिष्ठित होता है। योगके द्वारा एक और अवस्था प्राप्त होती है, उसे 'प्रकृत ऐश्वर्य'के नामसे वर्णन कर सकते हैं। विवेकके द्वारा प्रकृति और पुरुष पृथक् हो जाते हैं तथा पुरुष अपनेको प्रकृतिसे पृथक् समझता है। योगके द्वारा प्रकृति और पुरुष एक हो जाते हैं। यही अवस्था ईश्वरका स्वरूप है। एक मार्गसे कैवल्य और दूसरे मार्गसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है, यही नियम है। विवेकके मार्गमें प्रकृतिको क्रमशः त्याग करना पड़ता है; परंतु योगके मार्गमें प्रकृतिको अपना बनाना पड़ता है। यह अपना बना लेना तभी सम्भव है, जब प्राकृत शरीरसे अर्थात् भूत और चित्तसे मलिनता दूर हो जाय। सङ्ग और स्मय, अर्थात् आसक्ति और अहंकारके रूपमें यह मलिनता अस्मिता-समाधिके बाद भी वर्तमान रहती है। इसको दूर किये बिना प्रकृतिको अपना बना लेना सम्भव नहीं है। योगके मार्गसे ऐश्वर्य ही चरम प्राप्ति है। इसीका नाम 'इच्छाशक्तिका पूर्णत्व' है। इसके बाद इच्छाशक्तिको भी समर्पण करना पड़ता है। तब 'महा-इच्छा' जागरूक रहती है। अपनी कोई इच्छा पृथक्‌रूपमें नहीं रह जाती। यह इच्छा शून्य अवस्था नहीं है, बल्कि व्यक्तिगत इच्छाके महा-इच्छामें समर्पित होनेकी अवस्था है। इस अवस्थामें बहिर्मुख दशामें महाकरुणा रहती है, इस कारण विश्वकल्याण सम्भव होता है तथा अन्तर्मुख दशामें अपने ही साथ अपनी अनन्त वैचित्र्यमयी प्रेमलीलाका अभिनय होता रहता है। ये अभिनय नित्य हैं। कैवल्य भी नित्य है, लीला भी नित्य है। दोनोंके ऊर्ध्वमें निष्कल पूर्णस्वरूप विराजमान रहता है।

आगमके पूर्णत्वसे इस अनन्त सत्तामें सत्तावान् होना तथा अनन्त लीलाका अभिनय करना अभिप्रेत है। केवल अभिनय करना ही नहीं, बल्कि अभिनय देखना भी। सो भी, केवल तटस्थरूपमें नहीं, सामाजिकके समान भावरञ्जित दृष्टिसे। इसके अतिरिक्त अभिनयके ऊर्ध्वमें लीलातीत सच्चिदानन्द तो हैं ही। लीलातीतमें अखण्ड आनन्द है और लीलामें भीतर अनन्त लीलाका अनन्त वैचित्र्य है। पूर्णत्व कहनेसे इन सबका बोध होता है। यह एक साथ विश्व और विश्वातीत है। पृथक् आस्वाद भी है, अखण्ड आस्वाद भी है और साथ-साथ आस्वादनके ऊर्ध्वमें तटस्थ प्रकाशन तो है ही।

प्रभुका दिव्य मधुर अनुराग प्राप्त करो

प्राकृत जगत्, प्रकृति, मायाके खोलो, छिन्न करो सब बन्ध।
अनुभव करो नित्य केवल परमात्मासे अभिन्न सम्बन्ध॥
पुनर्जन्म-परलोकगमन, सद्गति-दुर्गतिका कर दो त्याग।
प्राप्त करो सच्चिदानन्दमय प्रभुका दिव्य मधुर अनुराग॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु तथा पुनर्जन्म

[श्रीअरविन्दके कुछ पत्र]

(लेखक—श्रीअरविन्द)

मृत्यु और अमरत्व

मृत्यु इसलिये होती है; क्योंकि देहीने अबतक इतनी प्रगति नहीं की कि बिना परिवर्तनकी आवश्यकताके एक ही शरीरमें प्रबुद्ध होता चला जाय और शरीर स्वयं भी काफी सचेतन नहीं हुआ है। यदि मन, प्राण तथा स्वयं शरीर अधिक अचेतन तथा अधिक सुनम्य हो तो मृत्युकी आवश्यकता नहीं रहेगी।

× × ×

बिना अतिमानसीकरणके (अतिमानसद्वारा रूपान्तरके) शरीरका अमरत्व नहीं प्राप्त हो सकता। यौगिक शक्तिके भीतर क्षमता है तथा योगी २०० या ३०० या इससे भी अधिक वर्ष जी सकते हैं; किंतु अतिमानसके बिना अमरत्वके वास्तविक सिद्धान्तकी प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।

भौतिक विज्ञानतक यह विश्वास करता है कि एक दिन मृत्युपर विजय प्राप्त होगी तथा इसके तर्क पूरे ठोस हैं। तो कोई कारण नहीं कि अतिमानस शक्ति इसे न कर सके।

× × ×

यदि आध्यात्मिक स्थितिको प्राप्तकर यह (मानव आत्मा) पार्थिव अभिव्यक्तिसे निकल जाना चाहे तो यह वैसा सचमुचमें कर सकता है—किंतु अज्ञान नहीं, ज्ञानके भीतर एक उच्चतर अभिव्यक्ति भी सम्भव है।

× × ×

पुनर्जन्म तथा व्यक्तित्व

पुनर्जन्मकी प्रक्रियामें आत्माको भयंकर कष्ट होता है, इसका मुझे कुछ भी पता नहीं; लौकिक विश्वास, जब उनका कोई आधार रहता है तब भी बहुत कम ही प्रबुद्ध तथा बिलकुल सही होते हैं।

× × ×

देही अपने अनेक जन्मोंके क्रमसे गुजरनेके समय बहुत प्रकारके व्यक्तित्व धारण करता है तथा बहुत प्रकारकी अनुभूतियोंसे होकर गुजरता है; किंतु नियमतः वह उन सबोंको अन्य जीवनमें नहीं ले जाता। वह एक नया मन, प्राण और शरीर ग्रहण करता है। पुराने मन तथा प्राणकी क्षमताएँ, व्यस्तताएँ, रुचियाँ तथा स्वभावगत विलक्षणताएँ जितनी हदतक वे नये जन्मके लिये उपयोगी होती हैं, उतनीके अतिरिक्त नये मन तथा प्राणद्वारा ग्रहण नहीं की जातीं। किसीको एक जन्ममें काव्यात्मक भाव-व्यञ्जनाकी क्षमता हो सकती है; किंतु अगले जन्ममें उसे ऐसी क्षमता या कवितामें कोई रुचि नहीं भी हो सकती। दूसरी ओर, एक जन्ममें दबायी या चूकी या अपूर्णरूपसे प्रबुद्ध प्रवृत्तियाँ दूसरे जन्ममें बाहर प्रकट हो सकती हैं। अन्तरात्मा पुरानी अनुभूतियोंका सार-तत्त्व अपने साथ रखता है, किंतु अनुभूतियोंका अथवा व्यक्तित्वका स्वरूप वह नहीं रखता—सिवा वैसी अनुभूतियों या व्यक्तियोंके स्वरूपको जो अन्तरात्माकी प्रगतिके नये विकास-बिन्दुके लिये आवश्यक हैं।

× × ×

मृत्युके बाद अन्तरात्माकी यात्रा

मृत्युके साथ तत्काल ही अन्तरात्मा (भौतिक कोषके अतिरिक्त) मनोमय और प्राणमय कोषोंका परित्याग नहीं करती। कहा जाता है कि पृथ्वीके साथ सारा सम्बन्ध काटनेमें उसे ले-देकर तीन वर्ष लग जाते हैं—यद्यपि कई बार अधिक देरसे या अधिक शीघ्रतासे भी संक्रमण होता है।

× × ×

मृत्युके समय देही मस्तकसे होकर देहसे बाहर निकल जाता है। वह सूक्ष्म शरीरमें बाहर निकलता है तथा अल्प कालके लिये अस्तित्वके कई स्तरोंमें (लोकोंमें) जाता है, जबतक कि वह चंद अनुभूतियोंसे होकर गुजर न ले, जो उसके पृथ्वीपरके जीवनके परिणाम होती हैं। बादमें वह अन्तरात्माके लोकमें पहुँचता है, जहाँ वह एक प्रकारकी नींदमें विश्राम करता है, जबतक कि उसके लिये पृथ्वीपर एक नया जन्म प्रारम्भ करनेका समय न आ जाय। सामान्यतः ऐसा ही होता है—किंतु कुछ अन्तरात्माएँ अधिक प्रगति किये होती हैं और वे इस क्रमका अनुसरण नहीं करतीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तरात्मा सीधे अन्तरात्माके लोकमें भी जा सकती है, किंतु यह निर्भर करता है शरीर छोड़नेके समयकी उसकी चेतनापर। यदि उस समय चैत्य पुरुष सामने हो तो तत्काल संक्रमण बिलकुल सम्भव है। यह मानसिक, प्राणिक तथा आन्तरात्मिक अमरत्वकी प्राप्तिपर निर्भर नहीं करता। जिन्हें इनकी प्राप्ति हो गयी है, उन्हें तो नाना लोकोंमें विचरनेकी तथा बिना बन्धनमें बँधे भौतिक जगत्पर क्रिया करनेकी शक्ति होगी। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि इन वस्तुओंके विषयमें कोई रूढ़ नियम नहीं है। चेतनामें उसकी ऊर्जाओं, प्रवृत्तियों तथा रूपाकृतियोंके अनुसार बहुत-सी विविधताएँ सम्भव हैं, यद्यपि एक व्यापक चौकठा तथा खाका है, जिसके भीतर ये सभी आ जाते हैं और अपने स्थान ग्रहण करते हैं।

× × ×

जो अन्तरात्माएँ अन्तरात्माके लोकमें विश्रामके लिये जाती हैं, उनकी अवस्था बिलकुल अचल होती है; प्रत्येक अपने भीतर समाहित हो जाती है तथा एक दूसरेपर क्रिया नहीं करती। जब वे अपनी समाधिसे बाहर निकलती हैं तब वे नये जीवनमें प्रवेश करनेके लिये उतरनेको तैयार होती हैं; किंतु इस बीचमें क्रिया नहीं करतीं।.....

अन्तरात्माके लोकका कोई जीव पृथ्वीपरकी किसी अन्तरात्मामें घुल नहीं जाता। किसी-किसी अवस्थामें जो होता है वह यह कि कोई बहुत ही विकसित अन्तरात्मा कभी-कभी अपना एक अंश नीचे भेजती है, जो एक मानव-प्राणीमें रहकर उसे तैयार करता है, जबतक कि स्वयं अन्तरात्माके उस जीवनमें प्रवेश करने योग्य वह तैयार न हो जाय। यह तब होता है जब कोई विशेष काम करना होता है तथा मानव-वाहनको तैयार करनेकी आवश्यकता होती है। इस प्रकारका अवतरण व्यक्तित्व तथा स्वभावमें आकस्मिक प्रकारका विलक्षण परिवर्तन लाता है।

सामान्यतः अन्तरात्मा एक ही लिङ्गका अनुसरण करती है। यदि कभी लिङ्ग-परिवर्तन होता है, तो नियमतः वैसा व्यक्तित्वके कुछ अंशोंके साथ होता है जो केन्द्रीय नहीं होते।

वे अन्तरात्माएँ, जो पुनर्जन्मके लिये लौटती हैं, कब नये शरीरमें प्रवेश करती हैं, इसका कोई नियम नहीं बनाया जा सकता; क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिके साथ विभिन्न परिस्थितियाँ होती हैं। कुछ अन्तरात्माएँ जन्मके पास-पड़ोसके वातावरण तथा माता-पिताके साथ गर्भाधानके समयसे सम्बन्ध स्थापित कर लेती हैं तथा अपने व्यक्तित्व और भविष्यको गर्भमें ही निश्चित करती हैं, कुछ दूसरी जन्मके बाद भी; तथा इन अवस्थाओंमें अन्तरात्माका एक अंश जीवनको अस्तित्वमें रखे रहता है। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि आगामी जन्मकी अवस्थाएँ मूलतः अन्तरात्माके लोकमें वासके समय नहीं, वरं मृत्युके समय निश्चित की जाती हैं। उस समय अन्तरात्मा यह चुनाव करती है कि उसके दूसरी बार पृथ्वीपर आनेपर उसे कौन-सी गुत्थी सुलझानी होगी और परिस्थितियाँ उसीके अनुसार सज जाती हैं।

अन्तरात्मा कब ऊपर जाती और कब नीचे लौटती है ?

वह (जीवन्मुक्त) जहाँपर भी उसने अपना लक्ष्य स्थिर किया था वहाँ जा सकता है—निर्माणकी अवस्थामें या किसी दिव्य लोकमें और वहाँ रह सकता है। अथवा जहाँ कहीं भी वह जाय, पृथ्वीकी गति-विधिसे सम्बन्ध बनाये रख सकता है और यदि पृथ्वीकी गति-विधिमें सहायता करनेकी उसकी इच्छा हो तो फिर लौट सकता है।

यह (अन्तरात्माकी वर्तमान उच्चतम उपलब्धिसे किसी और भी उच्चतर लोकमें जानेकी बात) संदिग्ध है। यदि मूल रूपमें वह विकास-क्रमका जीव नहीं, बल्कि किसी उच्चतर लोकका जीव है, तो वह उस लोकको लौट जायगा। यदि वह और भी ऊपर जाना चाहता है तो यह सर्वथा युक्तिपूर्ण है कि जबतक वह उस उच्चतर लोककी चेतना विकसित न कर ले, तबतक विकासके क्षेत्रमें वापस आवे। प्राचीन विचार कि यदि देवता लोग भी चाहें तो उन्हें पृथ्वीपर आना होगा, इस ऊर्ध्वारोहणके सम्बन्धमें लागू किया जा सकता है। यदि वह मूलतः विकास-क्रमका जीव है तो उसे विकास-क्रमके पथसे ही, चाहे निर्वाणद्वारा, यहाँसे नकारात्मक रूपमें निकल जाना होगा अथवा सच्चिदानन्दकी वर्धमान अभिव्यक्तिमें कोई दिव्यभावात्मक चरितार्थता प्राप्त करनी होगी।

वापस लौटनेकी असम्भाव्यता बड़ा गुत्थीदार प्रश्न है। कोई दिव्य जीव सदा ही लौट सकता है—जैसा रामकृष्णने कहा था कि ईश्वरकोटि अपने इच्छानुसार जब चाहे तब अमृतत्व तथा पुनर्जन्मकी सीढ़ीके बीच उतर और चढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है। दूसरोंके लिये यह सम्भव है कि वे एक सापेक्ष अनन्तकालतक ('शाश्वतीः समाः') विश्राम करें, यदि उनकी ऐसी इच्छा हो; किंतु उनका लौटना रोका नहीं जा सकता, जबतक कि वे अपनी उच्चतम सम्भाव्य स्थितिमें पहुँच न गये हों।

× × ×

विकसित अन्तरात्माएँ इस संक्रमण-कालमें बहुत अधिक सतर्क रहती हैं तथा इस कामका बहुत कुछ अंश स्वयं करती हैं। समय भी जीवके विकास तथा उसकी एक प्रकारकी समस्वरतापर निर्भर करता है—किसीके लिये करीब-करीब तत्काल ही पुनर्जन्म होता है, दूसरोंके लिये कुछ और अधिक समय लगता है, कुछके लिये यह सैकड़ों वर्ष ले सकता है; किंतु यहाँ भी, अन्तरात्मा जहाँ एक बार पर्याप्त विकसित हो गयी, वह अपनी समस्वरता और मध्यवर्ती काल चुननेके लिये स्वतन्त्र होती है।

× × ×

पिछले जन्मकी स्मृति

अन्तरात्माके पुनर्जन्ममें वापस आनेपर पूर्ण विस्मृति आ जाय, ऐसा कोई नियम नहीं। विशेषतः बचपनमें पिछले जीवनकी बहुत-सी स्मृतियाँ अङ्कित रहती हैं, जो प्रबल और काफी स्पष्ट हो सकती हैं; किंतु भौतिकवादी बना देनेवाली शिक्षा तथा अड़ोस-पड़ोसके वातावरणका प्रभाव उनकी वास्तविक प्रकृतिको मान्यता देनेमें बाधक होता है। ऐसे बहुतसे लोग हैं, जिनमें किसी पिछले जन्मकी बड़ी स्पष्ट स्मृतियाँ रहती हैं; किंतु शिक्षा तथा वातावरणद्वारा ये चीजें हतोत्साहित की जाती हैं और ये रह या बढ़ नहीं पातीं; बहुत अधिक अवस्थाओंमें दम घुटकर ये अस्तित्वसे लुप्त हो जाती हैं। साथ ही यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि अन्तरात्मा जो वस्तु अपने साथ ले जाती है और वापस ले आती है, वह सामान्यतः उसके पिछले जन्मकी अनुभूतियोंका सार होता है, ब्योरे नहीं। इसलिये तुम वर्तमान जीवन-जैसी पूरी स्मृतिकी आशा नहीं कर सकते।

× × ×

यदि अन्तरात्मा अपने पूर्वजन्मका कोई एक या अधिक व्यक्तित्व वापस लावे, केवल तभी वह पिछले जन्मके ब्योरे याद रख सकती है। वरना यह स्मृति केवल योगदृष्टिद्वारा आती है।

× × ×

प्रेत क्या है ?

प्रेतसे तुम्हारा क्या तात्पर्य है ? जनसाधारणकी भाषामें जो 'प्रेत' शब्दका व्यवहार किया जाता है, उसके अंदर अगणित घटित गोचर वस्तुएँ होती हैं, जो आवश्यक रूपसे एक-दूसरेसे सम्बद्ध नहीं होतीं। केवल कुछ मैं गिनाता हूँ।

(१) किसी मनुष्यकी अन्तरात्माके साथ उसके सूक्ष्म शरीरमें वास्तविक सम्पर्क तथा एक आकृतिके प्रकट होने या कोई शब्द सुनायी पड़नेद्वारा हमारे मनमें उसका प्रतिबिम्बित होना।

(२) किसी स्थान या क्षेत्रके वातावरणपर किसी दिवंगत मानव-प्राणीके विचारों और भावनाओंकी छाप लगायी हुई एक मानसिक रूपाकृति, जो वहाँ घूमती रहती या बार-बार प्रकट होती है, जबतक कि वह थक नहीं जाती, अथवा किसी एक या दूसरे उपायद्वारा नष्ट नहीं हो जाती। भुतहा घर, जिसमें किसी हत्याके समय होनेवाले या उसके चतुर्दिक् वर्तमान या उसके पहलेका दृश्य बार-बार दुहराया जाता है तथा इसी प्रकारकी अनेक अन्य घटनाओंकी यही व्याख्या है।

(३) निम्नतर प्राणिक लोकका कोई जीव, जो किसी जीवित मानव-प्राणी अथवा किसी अन्य साधन या करण-द्वारा अपनेको इतना काफी ठोस भौतिक बना लेता है कि दृश्य रूपमें प्रकट हो सके, अथवा सुनायी पड़नेवाली आवाजमें बोल सके या बिना इस प्रकार दिखलायी पड़े—भौतिक पदार्थों—जैसे कि टेबुल-कुर्सी आदिको इधर-उधर सरकावे अथवा वस्तुओंको दृश्य बनावे या उन्हें एक जगहसे दूसरी जगह ले जाय। गरजनेवाले प्रेत, पत्थर फेंकनेकी घटना, पेड़ोंमें रहनेवाले भूतों तथा अन्य सुविदित घटनाओंका यही कारण है।

(४) निम्नतर प्राणिक लोकोंका कोई जीव, जो किसी दिवंगत मानव-प्राणीका छोड़ा हुआ प्राणमय कोष या उसके प्राणिक व्यक्तित्वका एक खण्ड धारण कर लेता है तथा उस व्यक्तिके रूपमें और शायद उसके उपरितलीय विचारों तथा स्मृतियोंके साथ प्रकट होता तथा क्रिया करता है।

(५) छायाएँ, जो स्वयं अपने मनकी रूपाकृति होती हैं तथा इन्द्रियोंके सामने प्रत्यक्ष रूप धरे दिखलायी पड़ती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) प्राणिक सत्ताओंद्वारा कुछ कालके लिये किसी व्यक्तिपर अधिकार, जो कभी-कभी दिवंगत-सम्बन्धी होनेका बहाना करती हैं, आदि।

(७) मरनेके समय व्यक्तियोंद्वारा प्रायः प्रक्षिप्त स्वयं उनकी विचारमूर्तियाँ, जो मृत्युके समय या उसके कुछ घंटों बाद उनके मित्रों या सम्बन्धियोंके सामने प्रकट होती हैं।

देखो, कि इनमेंसे केवल एक अवस्थामें ही, पहलीमें अन्तरात्माको तथ्यरूपमें माना जा सकता है और वहाँ कोई कठिनाई नहीं उठती।

× × ×

मृत आत्माका बुलाया जाना

मृत आत्माओंको बुलाये जानेवाली गोष्ठीमें जो प्रेत या आत्मा आती है, वह अन्तरात्मा नहीं होती। माध्यमके द्वारा जो कुछ आता है, वह माध्यमकी तथा बैठनेवालोंकी अवचेतना (अवचेतना शब्दको यहाँ सामान्य अर्थमें प्रयुक्त कर रहा हूँ, यौगिक अर्थमें नहीं) का मिश्रण होता है; दिवंगत व्यक्तिद्वारा छोड़े हुए अथवा शायद किसी प्रेत या किसी प्राणिक सत्ताद्वारा अधिकृत किये हुए या प्रयुक्त प्राणमय कोष, दिवंगत व्यक्ति स्वयं अपने प्राणमय कोषमें या उस अवसरपर ग्रहण किये किसी अन्य वस्तुके भीतर (किंतु यह प्राणिक अंश होता है जो बातचीत करता है), प्राकृतिक तत्त्वों या वस्तुओंकी आत्माएँ, पृथ्वीके निकटके निम्नतम प्राणिक भौतिक लोकके प्रेत आदि। अधिकांशमें एक भयंकर तरहका गड़बड़-सड़बड़—प्रेतलोकके धूमिल प्रकाश और छायाके माध्यमसे आती हुई सभी प्रकारकी वस्तुओंकी खिचड़ी। अनेक माध्यम ऐसे व्यक्ति लगते हैं जो सूक्ष्म जगत्में मात्र गये हुए होते हैं, जहाँ वे पार्थिव जीवनके एक अधिक सुधरे हुए संस्करणद्वारा अपनेको घिरा पाते हैं और समझते हैं कि मृत्युके बादका सच्चा और निश्चित जगत् यही है; किंतु यह मात्र मानव-लोकके विचारों, चित्रों और सम्बन्धोंका आशावादी विस्तार है। यही है परलोक जिसकी वर्णना मृत आत्माओंको बुलानेवाले 'निदर्शक' और दूसरे माध्यम करते हैं।

× × ×

स्वचालित लिखन तथा प्रेतात्माओंको बुलानेवाली गोष्ठियाँ—बड़ा मिश्रित व्यापार हैं। कुछ अंश माध्यमके अवचेतन मनसे आता है और कुछ बैठनेवालोंके अवचेतन मनसे। किंतु यह सच नहीं कि सब कुछ नाटकीयत लानेवाली कल्पना और स्मृतिके ही परिणाम होते हैं। कभी-कभी ऐसी वस्तुएँ भी होती हैं जो उपस्थित लोगोंमेंसे किसीको ज्ञात नहीं हो सकतीं और न याद आ सकती हैं; कभी-कभी, यद्यपि यह विरले होता है, भविष्यकी झाँकियाँ। किंतु सामान्यतः ये गोष्ठियाँ आदि व्यक्तिको एक बड़े निम्न लोककी प्राणिक सत्ताओं और शक्तियोंके सम्पर्कमें ले आती हैं, जो स्वयं अन्ध, असंगत और धोखेबाज होती हैं और उनके साथ सम्बन्ध स्थापित करना या किसी प्रकारके प्रभाव-का ग्रहण करना खतरनाक होता है।

—(भाषान्तरकारक—व्रजनन्दन, श्रीअरविन्द-आश्रम, पांडिचेरी)

भक्ति न करनेपर दूसरे जन्ममें पराये बैल बनोगे

भक्ति बिनु बैल बिराने ह्वैहौ।
पाउँ चारि, सिर सृंग, गुंग मुख, तब कैसैं गुन गैहौ॥
चारि पहर दिन चरत फिरत बन, तऊ न पेट अघैहौ।
टूटे कंधरु, फूटी नाकनि, कौ लौं धौं भुस खैहौ॥
लादत-जोतत लकुट बाजिहै, तब कहँ मूँड़ दुरैहौ?
सीत, घाम, घन, बिपति बहुत बिधि, भार तरै मरि जैहौ॥
हरि-संतनि कौ कह्यौ न मानत, कियौ आपुनौ पैहौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, मिथ्या जनम गँवैहौ॥

—सूरदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्जन्म-सिद्धान्त

(लेखक—स्वामी श्रीअसङ्गानन्दजी, रामकृष्ण-मिशन, बेलूर मठ, हवड़ा)

यावज्जीवेत् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥

'जबतक जिओ सुखसे जिओ, ऋण लेकर भी घी पिओ। कौन जाने कि जलकर राख हो जानेके बाद यह शरीर वापस आता है कि नहीं ।' यह भारतके एक नास्तिक दार्शनिक चार्वाकका कथन है । पश्चिमके लुक्रेशियस (Lucretius) ने भी कहा है कि 'खाओ, पिओ और मौज करो; कौन जानता है कि कल हमारा अस्तित्व रहेगा भी या नहीं ।' वर्तमान समयमें प्रचलित विचारों तथा आधुनिक जगत्के आदर्शोंके सम्बन्धमें विचार करते समय यह देखा गया है कि भौतिकवादी तथा उच्च बुद्धिवादी-स्तरपर स्थित बहुसंख्यक लोग पुनर्जन्मके सिद्धान्तको स्वीकार करनेमें बहुत कठिनाईका अनुभव करते हैं । उनकी मान्यता है कि उनका पाञ्चभौतिक शरीर ही उनका स्वरूप है तथा शरीरके तिरोभाव होनेके साथ ही अस्तित्वका सम्पूर्ण विलय हो जाता है ।

प्रागैतिहासिक युग तथा वैदिक कालमें हिंदू मनीषियों और ऋषियोंने मनुष्यके वास्तविक स्वरूपके विषयमें भगीरथ-प्रयत्न किये । अन्ततः वे मनुष्यके देवत्वको खोज निकालनेके शोध-कार्यमें सफल हुए । मनुष्यका शरीर अस्थि-मज्जाका ढाँचामात्र नहीं है, अथवा यह केवल रक्त-मांसके संयोगसे ही नहीं बना है । यह अनन्त तथा अक्षय आत्माका व्यक्तीकरण है । शरीरकी बहुत बार मृत्यु हो सकती है, परंतु सूक्ष्मशरीर अपनी सहज दिव्यताकी उपलब्धि होनेतक बना रहता है । इसीलिये किसी व्यक्तिकी मृत्युके सम्बन्धमें व्यक्त किये गये उद्गारोंमें हमें भिन्नता दिखायी देती है । हिंदू कहते हैं—'मनुष्य शरीरको छोड़ देता है', जब कि सेमिटिक (ईसाई, मुसल्मान, यहूदी) कहा करते हैं कि 'मनुष्य प्राणत्याग करता है ।' हिंदू लोग तो मर जानेके बाद शरीरको जलाते या नष्ट कर देते हैं, जब कि सेमिटिक लोग शरीरको अधिक-से अधिक कालतक मकबरे (ताबूत) में सुरक्षित रखते हैं । इनका कहना है कि आत्मा मकबरे (ताबूत)में सोया रहता है और निर्णयके दिन उठ बैठता है ।

मिस्रके प्राचीन निवासी आत्माके दोहरे स्वरूपमें विश्वास करते थे । वे शरीरको ही आत्मा मानते थे । वे ममी बनानेकी प्रक्रियाद्वारा शरीरको अधिक-से-अधिक दिनोंतक सुरक्षित रखनेका प्रयत्न करते थे । उनका विश्वास था कि शरीरके क्षत (जख्मी) होनेपर आत्मा जख्मी हो जायगी और यदि शरीरका नाश हो गया तो आत्माकी दुबारा मृत्यु हो जायगी अथवा वह नष्ट हो जायगी ।

आर्यलोग आत्माकी अमरता-गरिमापर विश्वास करते थे। गीतामें कहा गया है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥
(२ । २३-२४)

'इस आत्माको शस्त्रादि नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती तथा इसको जल गीला नहीं कर सकता । वायु इसे सुखा नहीं सकती; क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य है, यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है तथा यह आत्मा निःसंदेह नित्य, सर्वव्यापक, अचल, स्थिर रहनेवाला और सनातन है ।'

यह आत्मा सुख-दुःख, विजय-पराजय, लाभ-हानि, सफलता-असफलता आदि द्वन्द्वोंमें अनेक अनुभवोंको संचित करता रहता है । इतना ही नहीं, यह प्रत्येक क्षण अच्छी अथवा बुरी शिक्षा ग्रहण करता रहता है और जबतक इसमें कामनाएँ रहती हैं तथा जहाजके पंछीके समान पुनः जहाज-पर लौटकर सुरक्षित स्थानपर नहीं पहुँच जाता या अपनेसे बाहर कस्तूरी ढूँढ़ते हुए मृगके समान स्वयं अपने स्वरूपको नहीं पहचान लेता, तबतक यह जन्म-मृत्युके चक्रमें भटकता रहता है ।

हिंदुओंका यह निश्चित विश्वास है कि इस मानव-जीवनका उद्देश्य भगवान्का साक्षात्कार अथवा मोक्ष (मुक्ति) प्राप्त करना है । परंतु एक ही जीवनमें इस ध्येयकी प्राप्ति सदैव होती नहीं । इतना ही नहीं, इसकी पूर्तिके लिये अनेक जन्म लेने पड़ सकते हैं । उनकी यह भी आस्था है कि मनुष्य क्रमशः धीर गतिसे—असत्यसे सत्यकी ही ओर नहीं, निम्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अधः) सत्यसे उच्च (ऊर्ध्व) सत्यकी ओर गतिमान् है और उसके व्यक्तिगत कर्म तथा ज्ञान ही उसकी प्रगतिके निर्णायक तत्त्व हैं—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥
(कठोपनिषद् २ । २ । ७)

'अपने कर्म और ज्ञानके अनुसार कितने ही देहधारी तो शरीर धारण करनेके लिये योनिको प्राप्त होते हैं और कितने ही स्थावरभावको प्राप्त हो जाते हैं ।'

इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक् शरीरस्य विस्रसः ।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥
(कठोपनिषद् २ । ३ । ४)

'यदि इस देहमें इसके पतनसे पूर्व ही (ब्रह्मको) जान सका, तब तो यह बन्धनसे मुक्त हो जाता है । यदि नहीं जान पाया, तो इन जन्म-मरणशील लोकोंमें वह शरीर-भावको प्राप्त होनेमें विवश होता है ।'

हिंदुओंकी पुण्यस्थली भारतवर्षमें कुछ विचारकों तथा दार्शनिकोंका मत है कि जहाँतक आध्यात्मिक जीवनका सम्बन्ध है, हम आध्यात्मिकता तथा आचारनिष्ठताको स्पष्टतया भिन्न-भिन्न नहीं मान सकते । हमारे प्राचीन विधि-निर्माताओंने बार-बार शुद्ध (नैतिक) जीवनकी आवश्यकतापर बल दिया है तथा नैतिक सिद्धान्तोंके पालनका आग्रह किया है । केवल उसी स्थितिमें ही आध्यात्मिक उन्नतिकी गति बढ़ सकती है और तभी भगवद्दर्शन तथा आत्माकी मुक्ति सम्भव है—

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः ।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥
यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥
(कठोपनिषद् १ । ३ । ७-८)

'किंतु जो अविज्ञानवान्, अनियंत्रित-चित्त और सदा अपवित्र रहनेवाला होता है, वह उस पदको प्राप्त नहीं कर सकता; प्रत्युत संसारको ही प्राप्त होता है । किंतु जो विज्ञानवान्, संयतचित्त और सदा पवित्र रहनेवाला होता है, वह उस पदको प्राप्त कर लेता है, जहाँसे वह फिर उत्पन्न नहीं होता ।'

यहाँ भारतवर्षमें शुद्धताके बिना आध्यात्मिकताके विषयमें सोचा ही नहीं जा सकता । आध्यात्मिक विकासका आचार-निष्ठताके साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध है । इसीलिये मोक्ष अथवा आध्यात्मिक शुद्धताके इच्छुक व्यक्तियोंको एक कठोर आध्यात्मिक अनुशासनका पालन अनिवार्यतः करना चाहिये । यह बात धार्मिक जीवन तथा भगवद्दर्शनकी संजीवनी है । जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि हमारा वर्तमान जन्म हमारे पिछले जन्मोंके कर्मों तथा ज्ञानका परिणाम है । उसी प्रकार हमारे भावी जन्मका निर्धारण हमारे वर्तमान कर्मों, सचेत प्रयत्नों, विचारों तथा ज्ञानके आधारपर होगा । इसलिये हमें ऐसा ही आचरण करना चाहिये, हमारे विचार और कर्म ऐसे ही होने चाहिये कि हमारे भविष्यकी जीवन-धारा तथा चरित्रपर कोई धब्बा न लगने पाये और अभी तथा इसी जन्ममें भगवद्दर्शन हो जाय तथा आत्माको मुक्ति मिल जाय; भले ही विशुद्धताके इस मार्गपर बढ़ते समय हमें कितनी ही अड़चनों तथा कठिनाइयोंका सामना क्यों न करना पड़े । इसलिये हमें कर्मके लिये ही कर्म करना चाहिये और सभी कर्म तथा भावनाएँ भगवान्‌के चरणोंपर अर्पित कर देनी चाहिये । हमारे हृदयमें किसीके भी प्रति ईर्ष्या-द्वेषकी भावनाएँ न हों । जीवनमें हर क्षण भगवान्‌में प्रेम तथा भक्ति बनी रहे; प्रार्थना भी होती रहे । इस प्रकार करनेसे हमारे ऊपर भगवान्‌की कृपाकी वर्षा होगी और इसके बलपर हम संसार-सागरसे तर जायँगे और जन्म-मरणके चक्रसे मुक्ति पा जायँगे ।

यहूदियोंकी, ईसाइयों तथा इस्लामकी धार्मिक विचार-धाराको माननेवाले लोग पुनर्जन्मके सिद्धान्तपर विश्वास नहीं करते । परंतु कुछ प्राचीन तथा आधुनिक व्यक्ति आत्माके देहान्तर-प्रवेश तथा पुनर्जन्मके सिद्धान्तपर विश्वास करते हैं । इनमें आर्फिक (Orphic), पाइथागोरस (Pythagoras), प्लेटो (Plato), ग्नासटिक (Gnostic) मनीचियनस (Manichaeans), ब्रूनो (Bruno) और कुछ अन्य विचारक मुख्य हैं । प्लेटो प्राक्-अस्तित्वपर विश्वास करते थे । उनका कथन है कि 'आत्मा शरीरसे पुरातन है । आत्माएँ निरन्तर इस जीवनमें जन्म लेती रहती हैं ।' ईसामसीहने कहा—'अब्राहीमसे पहले मैं हूँ ।' उन्होंने सैमैरिटन महिलाके समक्ष अपना भेद बताते हुए कहा—'ऐसा कहा जाता है कि यह इलियस (Elias) है, जो सैमैरिटन महिलाके पास आता है ।' ओरिजेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Origen) ने कहा—'दैवी भगवद्विधान हर एकके बारेमें उसकी प्रवृत्ति, मन तथा स्वभावके अनुसार ही निर्णय करता है। मानवीय-मानस कभी तो अच्छाईसे और कभी बुराईसे प्रभावित होता जाता है। इसकी कारण-परम्परा भौतिक शरीरके जन्मसे भी अधिक पुरानी है।' जस्टीनियन (Justinian) ने इस आस्थाका घोर विरोध किया है।

आधुनिक कालके कवियों तथा दार्शनिकोंने भी आत्माओं-के देहान्तरवाद तथा पुनर्जन्मकी धारणाकी अभिव्यक्ति की है।

"The Soul that rises with us, our life's star,
Hath had elsewhere its setting
And comes from afar."
(Wordsworth—Imitation of Immortality.)

'हमारे साथ, हमारे जीवनके नक्षत्रके साथ उदीयमान आत्माका उद्भव अन्यत्र है और यह सुदूरसे आयी है।'

"Or if through lower lives I came,
Tho' all experience past became
Consolidate in mind and frame,
I might forget my weaker lot,
For is not our first year forgot?
The haunting of memory echo not."
(Tennyson—Two Voices.)

'यदि मेरे पिछले जन्म निम्न स्तरके रहे हैं और मेरे मस्तिष्कमें इन जन्मोंके अनुभव एकत्रित हो गये हैं, तो भी मैं अपने दुर्भाग्यको विस्मृत कर सकता हूँ। इसका कारण यह है कि हम अपने जीवनके प्रारम्भिक वर्षोंको भूल जाया करते हैं। पुरानी स्मृतियाँ हमारे कानोंमें नहीं गूँजतीं।'

"As to you, life, I reckon you are
the leavings of many deaths.
No doubt I have died myself ten
thousand times before."
(Walt Whitman)

'जीवन! तुम मेरे अनेक अवसानोंके अवशेष हो। इसमें कोई संदेह नहीं कि मैं इसके पूर्व दस हजार बार मर चुका हूँ।'

प्राध्यापक हक्सले (Prof. Huxley) का कथन है—'केवल बिना ठीकसे सोचे-समझे निर्णय लेनेवाले विचारक ही पुनर्जन्मके सिद्धान्तको मूर्खताकी बात समझकर इसका विरोध करेंगे। विकासवादके सिद्धान्तकी तरह देहान्तरवादका सिद्धान्त भी वास्तविक है।' दार्शनिक ल्यूमिंग (Luming) का कहना है कि 'जबतक हर बार नया ज्ञान, नया अनुभव अर्जित करनेकी क्षमता मुझमें है, तबतक मैं पुनः-पुनः क्यों न लौटूँ? क्या मैं एक ही बार इतना कुछ लेकर आता हूँ कि मुझे पुनः लौटनेका कष्ट उठानेकी कोई आवश्यकता ही न रहे?'

कुलक्रमागत संक्रमण (Hereditary Transmission) के सिद्धान्तके प्रवक्ता मानवीय आत्मा-के अस्तित्वपर विश्वास नहीं करते। उनके मतके अनुसार अपने वंशजोंमें कोषाणुगत संक्रमण (Cellular transmission) की प्रक्रियाद्वारा मनुष्य अमर बन सकता है। यदि यह सही है तो शेक्सपियर अथवा वर्ड्सवर्थके वंशजोंको हम शेक्सपियर अथवा वर्ड्सवर्थके समान ही क्यों नहीं देखते? इसलिये पूर्णता प्राप्त करनेके संदर्भमें विकासवादका सिद्धान्त पुनर्जन्मकी प्रक्रियाद्वारा संतोषजनक और अपेक्षाकृत उत्तम तरीकेसे समझा जा सकता है। पुनः शरीर-धारण या पुनर्जन्मके सिद्धान्तके सम्बन्धमें सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि यदि भगवत्-साक्षात्कार अथवा मोक्ष (या कैवल्यपद) प्राप्त होनेतक मनुष्यका पुनः-पुनः जन्म होता है, तो हम इन खुली आँखोंसे, मृत्युसे जीवनकी ओर होनेवाले महान् परिवर्तनको देख क्यों नहीं पाते? अथवा इस सिद्धान्तकी सत्यता या प्रामाणिकताको सिद्ध करनेके लिये विज्ञानद्वारा प्रदत्त सूक्ष्मतम उपकरणों अथवा दूरबीनों (खुर्दबीनों) आदिकी सहायतासे इस सत्यताको प्रदर्शित क्यों नहीं किया जाता? यह हमारी हार्दिक कामना है कि न केवल बुद्धिवादी दिग्गजोंकी जिज्ञासाके समाधानके लिये, वरं विश्वके प्रत्येक देशके जन-साधारणके लिये ऐसे यन्त्र या उपकरण खोज निकाले जायँ। परंतु अनेक प्रयासोंके पश्चात् भी भौतिक जगत्के लोग यह कर पानेमें अभी सफल नहीं हुए हैं। जड़ पदार्थका निरीक्षण-परीक्षण भौतिक क्षेत्रमें हो सकता है और आत्माका आध्यात्मिक क्षेत्रमें। भगवान्का साक्षात्कार करनेवाले तथा समाधि या उच्चतम चेतनामें एकाकार हो जानेवाले महान् ऋषियों तथा मुनियोंने देश-काल तथा कार्य-करण भावकी सीमाओंका अतिक्रमण किया था और भूत, वर्तमान तथा भविष्यको देख सकनेकी शक्ति प्राप्त कर ली थी। उन्होंने अपनी भव्य तथा महान् अनुभूतियोंसे पुनर्जन्मके सिद्धान्तकी पुष्टि की और उसकी पुनःस्थापना की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतामें अपने पूर्वजन्मोंके सम्बन्धमें अर्जुनके प्रश्न करनेपर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥
(४।५)

'हे अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुतसे जन्म हो चुके हैं; परंतु हे परंतप ! उन सबको तू नहीं जानता है, मैं जानता हूँ ।'

दिव्यताकी सर्वोत्तम अभिव्यक्तिके साकार रूप, पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्णको अपना तथा अन्य उन सब लोगोंके पूर्वजीवनका पूरा-पूरा ज्ञान था, जो महाभारतकालमें उपस्थित थे । यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस पुण्य-भूमि भारतवर्षमें अनेक ऐसे ब्रह्मज्ञ महापुरुष हुए हैं, जिन्हें अपने पूर्वजीवनका सम्यक् ज्ञान था और उनके निकट-सम्पर्कमें आनेवाले भाग्यशाली लोगोंको भी उन्होंने यह ज्ञान देनेमें सहायता दी । इस घोर भौतिकवादी समयमें भी घटनाओं-की पूर्व जानकारी प्राप्त कर सकनेवाले तथा अपने बीते जीवनोंकी जानकारी रखनेवाले लोगोंकी भी कुछ घटनाएँ प्रकाशमें आयी हैं और उनके पूर्वजन्मके सम्बन्धमें बताये गये विवरण अक्षरशः सत्य सिद्ध हुए हैं ।

वस्तुतः यह संतोषकी बात है कि पश्चिमके काफी लोगोंका ध्यान पुनर्जन्मके सिद्धान्तकी ओर गया है और वे इसे अपने जीवनमें उतारनेकी चेष्टा कर रहे हैं । हिंदू-समाजपर कुछ बाहरी विचारों तथा आदर्शोंका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है; फिर भी लोग अभीतक कर्मसिद्धान्त, पुनर्जन्म, आत्मा तथा मुक्ति आदि सिद्धान्तोंकी भली प्रकार रक्षा कर रहे हैं और इस प्रकार उन्होंने इन सिद्धान्तोंको इस धरतीपर अक्षुण्ण बनाये रक्खा है । निश्चय ही उन्होंने अपने कार्यों, निष्ठा, बलिदान, रुचि तथा लगनसे इस देशके गौरवकी रक्षा की है । पुनर्जन्मके सिद्धान्तको एक कल्पनामात्र कहकर उसे अलग नहीं फेंका जा सकता । यह सत्य है कि यह अभीतक भीषण आघातों तथा परिवर्तनोंके उथल-पुथलमें भी हिंदू-जातिकी रक्षा कर रहा है ।

नर नारायण है और समय पूरा होनेपर वह दिव्यताको प्राप्त होता है । परंतु उसकी सीमाएँ हैं, जिसके कारण वह यदा-कदा भूल भी कर सकता है । उसकी ऐसी भूलोंके कारण भगवद्-दर्शन तथा मुक्तिके देवमन्दिरकी ओर बढ़नेमें उसकी गति अवरुद्ध हो सकती है और इस प्रकार उसके जीवनका लक्ष्य पूरा नहीं हो पाता । इसीलिये पुनर्जन्मका सिद्धान्त उसको भविष्यमें अपने कार्योंको ठीकसे सम्पादन कर सकनेका अवसर देकर आत्यन्तिक आशा तथा सान्त्वना प्रदान करता है, ताकि उसके जीवनकी वह महत्त्वाकाङ्क्षा पूरी हो सके, जिसके लिये मानव इस संसारमें आया है ।

जन्मान्तर-रहस्य

जब मनुष्य एक बार कर्मबन्धनमें पड़ चुका, तब फिर आगे चलकर उसकी एक नाम-रूपात्मक देहका नाश होनेपर कर्मके परिणामस्वरूप उसे इस सृष्टिमें भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंका मिलना कभी नहीं छूटता । आधुनिक आधिभौतिक शास्त्रकार (कट्टर निरीश्वरवादी जर्मन पण्डित नीट्शे) ने स्वीकार किया है कि कर्मशक्तिका कभी भी नाश नहीं होता, किंतु जो शक्ति आज किसी एक नाम-रूपसे दीख पड़ती है, वही शक्ति उस नाम-रूपके नाश होनेपर दूसरे नाम-रूपसे प्रकट हो जाती है । ×××××

अध्यात्मदृष्टिसे इस नाम-रूपात्मक परम्पराको ही 'जन्म-मरणका चक्र' या 'संसार' कहते हैं और इन नाम-रूपोंको आधारभूत शक्तिको समष्टिरूपसे 'ब्रह्म' और व्यष्टिरूपसे 'जीवात्मा' कहा करते हैं । वस्तुतः देखनेसे यह विदित होगा कि यह आत्मा न तो जन्म धारण करता है और न मरता ही है । यह नित्य और स्थायी है । पर कर्मबन्धनमें पड़ जानेके कारण एक नाम-रूपके नाश हो जानेपर उसीको दूसरे नाम-रूपोंका प्राप्त होना टल नहीं सकता । आजका कर्म कल भोगना पड़ता है और कलका परसों; इतना ही नहीं, इस जन्ममें जो कुछ किया जाय उसे अगले जन्मोंमें भोगना पड़ता है—इस तरह यह भवचक्र सदैव चलता रहता है ।—लोकमान्य तिलक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु-विवेचन

(१)

मृत्यु-विज्ञान

(लेखक—महामहोपाध्याय श्रद्धेय श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्०ए०, डी०लिट्०)

मृत्यु और देहत्याग ठीक एक ही वस्तु नहीं है। मर्त्यलोकमें सबकी मृत्यु होती है; परंतु देहत्याग सबका नहीं होता। जो देह ग्रहण नहीं कर सकता, वह देह-त्याग किस प्रकार कर सकता है। अज्ञानियोंका जन्म जैसे उनकी इच्छाके अधीन नहीं होता, उसी प्रकार उनकी मृत्यु भी उनकी अपनी इच्छाके ऊपर नहीं निर्भर करती है। सूक्ष्म-देहसमन्वित आत्माका स्थूलदेह ग्रहण करना प्रारब्ध कर्मके विपाकके फलस्वरूप होता है। जाति या जन्म, आयु और भोग—ये तीनों प्रारब्ध कर्मके विपाकके रूपमें जाने जाते हैं। साधारण नियम यह है कि जीवके कर्मोंकी अधिष्ठात्री दिव्य शक्ति साधारणतः जीवको मृत्युके उपरान्त संचालित करती है। मृत्युके पहले भी जैसे सब जीव स्वाधीन नहीं हैं, मृत्युके बाद भी ठीक वैसे ही स्वाधीन नहीं हैं। जीव अपने कर्मोंकी अधिष्ठात्री देवशक्तिके अधीन हैं। साधारण जीवकी मृत्यु अपनी इच्छाके अधीन नहीं होती, ठीक इसी प्रकार उसका जन्म भी उसकी इच्छाके अधीन नहीं होता। दोनों ही कर्मसापेक्ष हैं और इसी कारण कर्मकी अधिष्ठात्री शक्तिके अधीन हैं। जबतक अज्ञानमूलक देहात्मबोध रहेगा, तबतक यह नियन्त्रण अवश्यम्भावी है। इस अवस्थामें मृत्युमें अज्ञानका आवरण रह जाता है। मुमूर्षु नहीं समझ पाता कि उसकी मृत्यु हो रही है, तथापि प्रकृतिके नियमके अनुसार मृत्यु हो जाती है। वह निद्रा या निद्राके अनुरूप मूर्च्छाकी अवस्था है। किसी-किसीको मृत्युकालमें कम-अधिक यन्त्रणा होती है और किसी-किसीको बिल्कुल ही नहीं होती। सरल सहज रूपमें देहत्याग हो जाता है। अवस्थाविशेषमें मृत्युकालमें ज्ञान रहता है। इस अज्ञान और ज्ञानकी सत्ता और शक्तिके ऊपर मुमूर्षुकी मरणोत्तर शुभा-शुभ गतिके प्रकारभेद निर्भर करते हैं। शुक्ल या देवयान गति तथा कृष्ण या पितृयाण गतिकी बात शास्त्रमें प्रसिद्ध है। ज्ञानका कुछ उन्मेष रहे बिना केवल कर्म और विकर्मके प्रभावसे देवयान या शुक्लगति प्राप्त नहीं होती। यह जो ज्ञानीकी मृत्यु है, वह शुक्लगतिप्रद होनेपर भी इच्छामृत्यु नहीं है। अज्ञानीकी मृत्युके सम्बन्धमें तो इच्छाकी कोई बात ही नहीं है। इस प्रसङ्गमें यह याद रखना चाहिये कि पूर्ण ज्ञानीकी देहावसान कालमें कोई गति नहीं होती। यथास्थान स्थित अवस्थामें ज्ञानीका प्राण महासत्तामें लीन हो जाता है। प्रकट अथवा गुप्त योगशक्तिके बिना मुमूर्षुके पक्षमें इच्छामृत्यु सम्भव नहीं है। योगशक्ति ही ईश्वरीय शक्ति है। प्रारब्धके ऊपर भी तीव्र ईश्वरीय शक्तिका प्रभाव रहता है। इसके होनेपर इच्छामृत्यु हो सकती है। यह ईश्वरीय शक्ति साधना या तपस्याके द्वारा अर्जित हो सकती है, अथवा पूर्वकर्म-सापेक्ष या निरपेक्ष भगवत्कृपासे भी हो सकती है। कभी-कभी महापुरुषके वर या आशीर्वादसे भी इसकी प्राप्ति होती है। इच्छाशक्तिके साथ ज्ञानका योग रह भी सकता है, नहीं भी रह सकता है। इस सम्बन्धमें बहुत विचित्रताएँ सम्भव हैं।

'कालमृत्यु' और 'अकालमृत्यु'में भेद है। एक दृष्टिसे देखनेपर सभी मृत्यु 'कालमृत्यु' है। काल पूर्ण हुए बिना मृत्यु हो ही नहीं सकती है। यह अति उच्च और सूक्ष्म दृष्टिकी बात है। स्थूल दृष्टिसे कालमृत्यु और अकालमृत्युका भेद सर्वत्र स्वीकार किया गया है। इसका कारण भी है। बौद्ध दार्शनिक कहते हैं कि चार कारणोंसे मृत्यु होती है। पहला कारण है आयुक्षय, दूसरा है कर्मक्षय, तीसरा है आयु और कर्म दोनोंका क्षय और चौथा कारण है उपच्छेदक कर्म। आयुक्षय होनेसे मृत्यु होनेपर कहा जा सकता है कि जीवकी अपने स्तरकी दीर्घतम आयुके परिमाणकी आयु अतिक्रान्त हो चुकी है, इसीसे मृत्यु हुई है। निश्चय ही यह दीर्घतम आयु ही पूर्णायुके रूपमें मानी जाती है। परंतु यदि जनक कर्मसे संजात शक्तिके ह्रासवश देहपात होता है तो कहा जाता है कि यह कर्मक्षयके कारण मृत्यु हुई है। परंतु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्योचित दीर्घतम आयु और जनक कर्म-संजात शक्तिका परिमाण एक ही होता है। इस कारण ऐसी अवस्थामें कहा जायगा कि एक साथ दोनों कारणोंके संयोगसे मृत्यु हुई और यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयु और कर्मशक्तिके रहते हुए भी विरुद्ध शक्तिके प्रभावसे देहपात होता है तो उसे उपच्छेदक कर्मका फल कहा जाता है। इसीको साधारणतः 'अकालमृत्यु' कहते हैं। प्राचीन आचार्यगण इसको 'उपच्छेद मृत्यु' कहते थे।

उपच्छेद मृत्यु अनेक प्रकारकी होती है। वात-पित्त आदि दोष तथा उनके सन्निपातको छोड़ देनेपर भी बाह्य कारणवश उपच्छेद मृत्यु होती है। बाह्य प्रकृतिका क्षोभ एक प्रधान कारण है। भूकम्प, वज्रपात, वर्षा, आँधी, बाढ़ तथा सवारी या अन्य गाड़ियोंसे हुई दुर्घटनाके कारण उपच्छेद मृत्यु होती है। द्रव्यादिके अनुचित व्यवहार तथा आकस्मिक आक्रमण भी उपच्छेद मृत्युके कारण बनते हैं। उत्पीड़क तथा उपघातक कर्मके द्वारा उत्पन्न व्याधि (Epidemic) आदि भी इसके कारण हैं। केवल कर्म ही जीवके दुःख और मृत्युका कारण बने, ऐसी बात नहीं है। विश्वकी रचनाप्रणालीमें ही दुःखके कारण निहित हैं।

(२)

मृत्युकालीन सत्-चिन्तन

प्रसिद्धि है कि 'अन्ते मतिः सा गतिः' अर्थात् मृत्यु कालमें जीवका जिस प्रकारका मनका भाव रहता है, तदनुसार मरणोत्तर गतिका निरूपण होता है। प्राचीन कालसे ही हिंदूसमाजमें नियम है कि मृत्युकालमें मुमूर्षुके समीप सांसारिक आलोचना करना अनुचित है। मुमूर्षुके लिये भी उचित है कि उसका अन्तिम चिन्तन संसारविषयक न होकर भगवत्-विषयक हो। महर्षि गौतमके पितृमेधसूत्र (१।१।८)में लिखा है कि 'माता-पिता आदि गुरुजनोंके मृत्युकालमें मरणासन्न व्यक्तिको वेदका आदि और अन्तिम मन्त्र उच्चारण करके सुनाना चाहिये।' मुमूर्षुके दक्षिण कर्णमें एक साम-मन्त्रका उच्चारण करके सुनानेका विधान शास्त्रमें है। ऋग्विधानमें है कि 'मृत्युकालमें मुमूर्षुके पास (त्रातारं०)— इस सूक्तका पाठ करना चाहिये।' हिरण्यकेशीसूत्र (१।१)में लिखा है कि 'अग्निहोत्री पुरुषके मृत्युकालमें उसको वेदमन्त्र सुनावे।' वह ब्रह्मवेत्ता हो तो तैत्तिरीय उपनिषद्की 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्।' (२।१) और 'भृगुर्वै वारुणिः।' (३।१)—इन मन्त्रोंका उच्चारण करे। 'अन्त्यकर्मदीपक' नामक ग्रन्थमें लिखा है कि मुमूर्षु व्यक्ति जपमें असमर्थ होनेपर मन-ही-मन विष्णु या शिवकी मूर्त्तिका चिन्तन करते-करते विष्णु या शिवके सहस्रनामका श्रवण करे। अथवा किसीसे श्रीमद्भगवद्गीता, महाभारत, श्रीमद्भागवत, रामायण, उपनिषद् आदि अथवा पावमान-सूक्त श्रवण करे। या भगवन्नाम-कीर्तनका श्रवण करे।' छान्दोग्य उपनिषद्में शाण्डिल्यविद्याके प्रकरण (३।१४।४)में है कि 'मनुष्यमात्र क्रतुमय हैं। इस लोकमें जिस मनुष्यका जिस प्रकारका क्रतु अर्थात् भाव या संकल्प रहता है, मरनेके बाद तदनुरूप ही उसकी गति होती है।' श्रीमद्भगवद्गीतामें भी (८।५-६) अन्तिम समयमें भगवत्स्मरणकी व्यवस्था है।

(३)

कालभेदसे मृत्युकी प्रशंसा

महाभारत शान्तिपर्वमें उत्तरायणमें देहत्यागकी भूयसी प्रशंसा देखनेमें आती है। उपनिषद्में भी इसका समर्थन प्राप्त होता है।

आपन्ने तूत्तरां काष्ठां सूर्ये यो निधनं व्रजेत्।
नक्षत्रे च मुहूर्ते च पुण्ये राजन् शतपुण्यकृत्॥

छान्दोग्य उपनिषद् (४।१५।५-६)में देवयान पथका प्रसंग है। यह शुक्ला गति है। इससे ऊर्ध्वगति प्राप्त होती है और पुनः प्रत्यावर्तन नहीं होता है। छान्दोग्य (५।१०।१-२) में आया है कि 'जो गृहस्थ पञ्चाग्नि-विद्यामें निष्णात है तथा जो वानप्रस्थ या परिव्राजक हैं, अर्थात् जो श्रद्धा और तपोयुक्त हैं, तथापि अभी ब्रह्मज्ञानको प्राप्त नहीं हैं, वे देवयान गतिकोप्राप्त होते हैं।' और जो लोग ग्राममें वास करते हैं, यज्ञानुष्ठान करते हैं तथा विधिपूर्वक इष्टापूर्तका सम्पादन करते हैं, वे मृत्युके बाद धूममार्गसे गमन करते हैं। (५।१०।३-७) उनको संसारमें पुनरावर्तन करना पड़ता है। इन दोके सिवा एक तीसरा लोक है, जहाँ कीट-पतङ्ग आदिकी गति होती है। वहाँ केवल जाना और आना होता है। बृहदारण्यक उपनिषद्में (६।२।१५-१६) देवलोक और पितृलोकके समान कीटादि लोकका भी उल्लेख है। गीता पञ्चम अध्याय (२३-२५)में दोनों मार्गोंकी बात उल्लिखित है। वेदान्तसूत्रमें भी (४।३ पादमें) इस विषयमें कुछ आलोचना की गयी है। महाभारतमें भीष्मके उत्तरायणके लिये प्रतीक्षा करनेकी बात सभी जानते हैं। यह शुक्लमार्गकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशंसाके लिये है, ऐसा पण्डितलोग कहते हैं। वस्तुतः जो ब्रह्मवेत्ता हैं, उनके विषयमें मार्ग-विचार अनावश्यक है। उनको दक्षिणायनमें मरनेपर भी ज्ञानके फलसे ब्रह्मप्राप्ति ही होती है। भीष्मने जो प्रतीक्षा की थी, उसका तात्पर्य यह है कि इच्छामृत्यु होनेपर भी जगत्को शुक्लमार्गकी महिमा बतलानेके लिये उन्होंने ऐसा किया था। याज्ञवल्क्य-स्मृतिके सप्तम अध्यायमें आया है कि 'देवयान गतिसे देवलोक प्राप्त होता है।' उसमें पितृयाणका भी उल्लेख है (३। १९५-१९६)। बौधायन पितृमेध सूक्त दूसरे अध्यायमें है—'उदगायने आपूर्यमाणपक्षे दिवा क्रत्वन्ते श्रेयो मरणमित्युपदिशन्ति।' इस प्रकार पुराणादि अनेक शास्त्रोंमें शुक्ला-कृष्णा गतिका तारतम्य प्रदर्शित हुआ है।

(४)

मृत्यु-राज्यका विस्तार

कालराज्य ही मृत्यु-राज्य है। जहाँतक कालका प्रभाव है, वहाँतक वह मृत्युराज्यके अन्तर्गत है। कालका मुख्य कार्य है—कलन। यह कालराज्यमें सर्वत्र विद्यमान है। इसी कारण कालराज्यमें सर्वत्र और सर्वदा परिणामकी क्रिया चलती है। यहाँ क्रम है, पूर्वापरविभाग है और तदनुरूप वैचित्र्य भी है। निम्नस्तरमें अर्थात् पृथिवी आदिमें छः प्रकारके भाव-विकार देखनेमें आते हैं—जायते (उत्पन्न होता है), अस्ति (है), विपरिणमते (विकारको प्राप्त होता है), वर्द्धते (बढ़ता है), अपक्षीयते (ह्रासको प्राप्त होता है) और नश्यति (नष्ट हो जाता है)। ये छः विकार कालिक परिणामके ही छः रूप हैं। देवलोकमें साधारणतः तीन अवस्थाओंमें परिणाम-कार्य करता है—अर्थात् आविर्भाव, स्थिति और तिरोभाव। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि सूक्ष्म परिणाम सर्वत्र ही है। यही कारण है कि कालराज्य सर्वत्र ही क्षरणशील है। अवश्य ही यह खण्डकालकी बात है। यहाँ अतीत, अनागत और वर्तमानका भेद है। महाकालमें इस प्रकारका भेद नहीं होता; किंतु वहाँ सभी कुछ नित्य वर्तमान रूपमें विद्यमान है। जैसे समस्त विश्व भगवान्में अभेद अहं-रूपमें एक होकर रहता है। महाकालरूपा महासृष्टिमें सारा विश्व भगवान्में नित्य वर्तमान इदंरूपमें भासित होता है। महाकालमें समस्त विश्व नित्य द्रष्टा भगवान्के नित्य दृश्यके रूपमें विराजमान है। वहाँ कालकी परिणामरूपी क्रीडा नहीं होती।

महाकालके नीचे खण्डकालमें अनन्त, असीम मृत्यु-राज्य अवस्थित है। मृत्युराज्य इतना विशाल है; परंतु सारा राज्य एक प्रकारका नहीं है। सारा ही मृत्युका राज्य अवश्य है और एक हिसाबसे जीवका भोगस्थान भी है; किंतु कर्मभूमि पृथिवीके सिवा अन्यत्र विद्यमान नहीं है। पृथिवीपर भी सर्वत्र भोगस्थानकी ही प्रधानता है, किंतु कर्मभूमि एकमात्र भारतवर्ष है। भारतवर्षमें कर्मकी उत्पत्ति भी होती है और कर्मफलका भोग भी होता है; परंतु अन्यत्र भोग होता है। अभिनव कर्म सर्वत्र उत्पन्न नहीं होता। इस जटिल प्रश्नकी मीमांसा आवश्यक है, परंतु इसकी आलोचनाके लिये यहाँ अवकाश नहीं है—अतएव यह जानना चाहिये कि कालराज्यके असंख्य भेद हैं। काल-संकर्षण क्रियाके फलसे असंख्य कालराज्योंका प्रलय होता है, तब सारा विश्व अखण्डरूपमें महाकालमें अधिष्ठित हो जाता है। परिणामहीन, उदयास्तहीन परमात्माका यह दृश्य 'स्वरूप' है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

(५)

समष्टि मृत्यु और व्यष्टि मृत्यु

व्यष्टि मृत्यु केवल एक आदमीकी मृत्यु है। समष्टि मृत्यु एकसे अधिक मनुष्योंकी एक साथ होनेवाली मृत्यु है। समष्टि मृत्यु समष्टिके कर्मवश अथवा कालवश हो सकती है। कालकृत होनेपर उसको प्रलय या संहार कहते हैं। व्यापकताके हिसाबसे यह नाना प्रकारकी है। आपाततः सर्वापेक्षा व्यापक प्रलय समग्र ब्रह्माण्डका संहार है। उसकी अपेक्षा भी व्यापक मृत्यु प्रकृत्यण्डका संहार है और तदपेक्षा भी व्यापक मृत्यु मायाण्डका संहार है। यही समस्त मायिक जगत्का विनाश है। इसके बाद अशुद्ध माया नहीं रहती और निम्नस्तरके सृष्टि-प्रलय भी नहीं रहते; परंतु न रहनेपर भी सृष्टि-संहार रहते हैं और वे अन्य प्रकारके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आकुञ्चन और प्रसारणके कार्य होते हैं। समस्त मायातीत शाक्त जगत्में ऐसा ही होता रहता है। यह दीर्घकालतक होता रहता है। इसके बाद वह भी नहीं रहता। यही कालसाम्यकी अवस्था है। इसके बाद परम ज्ञानका उदय होता है। उस समय सृष्टि और संहारका कोई अर्थ ही नहीं रह जाता।

गति-विज्ञान और समुच्चय-रहस्य

(लेखक—महामहोपाध्याय श्रद्धेय श्रीगोपीनाथजी कविराज एम्० ए०, डी० लिट्)

मरणोत्तर जीव-सत्ताकी गतिके रहस्यका ही इस लेखमें 'गति-विज्ञान'के नामसे वर्णन किया गया है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि हम मनुष्यदेहकी मृत्युके विषयमें आलोचना कर रहे हैं। मानवके अतिरिक्त पशु-पक्षीके विषयमें नहीं। मनुष्यसे निम्न स्थितिके सब जीवोंमें कर्म-सम्बन्ध नहीं है; क्योंकि उन जीवोंमें अहंकारका विकास न होनेके कारण उनमें कर्मकी सम्भावना नहीं होती। इस प्रसङ्गमें हम मानवदेहसे अवरोहक्रममें अधःपतित पशु-पक्षी आदि देहधारी जीवकी बात नहीं कह रहे हैं। चौरासी लाख योनिके स्वाभाविक क्रमविकासके अनुसार क्रमशः पशु-पक्षीकी देह प्राप्त होती है, उसीको लक्ष्य करके यह कहा जा रहा है। अन्यथा, कोई योगी या भक्त पशु-पक्षीकी देहमें स्वेच्छापूर्वक अवस्थान करके जिस अवस्थाको प्राप्त होता है, उसको लक्ष्य करके यहाँ कुछ भी नहीं कहा जा रहा है। वस्तुतः कीट-पतङ्ग, पशु-पक्षी आदिकी कोई गति नहीं होती। शास्त्रोंमें उनके लिये किसी लोकका निर्देश नहीं है। उपनिषद्में 'जायस्व, म्रियस्व'—ये दो बातें उनको लक्ष्य करके कही गयी हैं। अतः वर्तमान गतिकी आलोचना उनके सम्बन्धमें प्रयोज्य नहीं है।

दूसरी बात यह है कि जो महापुरुष इस देहमें ही देह-पातके साथ-साथ परामुक्ति प्राप्त करते हैं, उनकी कोई गति नहीं होती। उनके शुभाशुभ कर्म पूर्णतया दग्ध हो जाते हैं। अतएव उनकी मरणोत्तर गतिका कोई प्रश्न ही नहीं। वे लोग यथास्थित भावमें ही ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करते हैं। प्रारब्ध कर्मकी समाप्तिके साथ-साथ देहपात हो जाता है। देहपातके बाद उनका कोई ऐसा कर्म नहीं रह जाता, जिसके कारण उनकी कोई गति सम्भव हो। 'अत्रैव प्राणाः समवलीयन्ते'—ये सारी बातें उन्हींके सम्बन्धमें प्रयुक्त हुई हैं।

जिन साधक या योगियोंने कर्मकाण्डके अनुष्ठानके वैध-मार्गमें सकाम भावसे जीवन व्यतीत किया है, जिनके चित्तमें अभी ज्ञानका उदय नहीं हुआ, पर जो निषिद्ध कर्म छोड़-कर केवल वैध कर्मका अनुष्ठान करते रहते हैं, मृत्युके बाद उनकी गति हुआ करती है। इसको 'पितृयाण गति' कहते हैं। इस गतिके फलस्वरूप वे धूममार्गके द्वारा पुण्य-कर्मके अनुरूप स्वर्गादि लोककी उपलब्धि और भोग प्राप्त करते हैं। यह सब उनके अनुष्ठित शुभकर्मके फलसे प्राप्त होता है। परंतु यह अनित्य है। इसी कारण पुण्यकी मात्राके अनुसार स्वर्गादि लोकमें उनको भोग प्राप्त होता है। पुण्यक्षय हो जानेपर वे स्वर्गसे च्युत हो जाते हैं। किं बहुना, यह स्वर्ग-वास एकाधिक स्वर्गमें भी हो सकता है। परंतु स्वर्ग सभी अनित्य हैं। इसी कारण भोगके समाप्त होनेपर, अर्थात् पुण्यक्षयके साथ-साथ उनको मर्त्यलोकमें जन्म ग्रहण करना पड़ता है। किं बहुना, स्वर्गसे च्युत जीव साधारणतः सद्-वंशमें जन्म ग्रहण करता है। यह जन्म-ग्रहण उन सब जीवोंके शेष कर्म या अवशिष्ट कर्मके द्वारा हुआ करता है। जैसे जल-भरे बोतलसे जल गिरा देनेपर भी उस खाली बोतलमें कुछ अवशिष्ट जलका अंश रह जाता है, उसी प्रकार स्वर्गभोगके द्वारा क्षीण हो जानेपर भी जो कुछ पुण्यकर्म अवशिष्ट रह जाता है, उसीके फलसे पुनरावर्त्तन होता है और मनुष्यदेहमें जन्म होता है

पापीके सम्बन्धमें भी यही बात है। पापी धूममार्गका आश्रय करके बहुत कष्ट भोगते हुए नरकमें जाता है। नरकमें उनको नाना प्रकारकी भीषण कष्टप्रद नरकयन्त्रणा भोगनी पड़ती है। स्वाभाविक देहसे इस प्रकारकी कठिन यन्त्रणाओंका भोग सम्भव नहीं। इसी कारण उसको 'यातनादेह' नामक एक प्रकारकी देहका अवलम्बन करके नरकमें प्रवेश करना पड़ता है। अति दीर्घकालतक नाना प्रकारकी यन्त्रणा भोग करनेके बाद जीव नरकसे छूटकर लौटते हैं। उनमें बहुतसे पशु-पक्षीकी देह धारण करते हैं और बादमें मनुष्यदेह धारण करते हैं। बहुतोंके शरीरमें नरकभोगके नाना प्रकारके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिह्व वर्तमान रहते हैं। किसी-किसी क्षेत्रमें कठिन रोग लेकर देह धारण करना पड़ता है। यह सब व्यतिक्रम बहुधा एकाधिक जन्ममें भी संघटित होता है। स्वर्गकी प्राप्ति या नरकमें पतन—दोनों धर्मराजके विचारके बाद निश्चित होते हैं। इन दोनों गतियोंके फलसे पुनरावर्तन अवश्यम्भावी हो जाता है।

स्वर्गके सम्बन्धमें यहाँ दो-एक बात कह देना आवश्यक है। यहाँ जिस स्वर्गकी बात कही गयी है, वह निम्न स्तरका स्वर्ग है। वह सकाम पुण्यकर्मके फलसे प्राप्त होता है। इस निम्न स्वर्गसे ऊपर उच्च कोटिका ऊर्ध्वस्वर्ग है। वह ज्ञानहीन पुण्यकर्मके फलसे प्राप्त नहीं हो सकता। निम्न कोटिके स्वर्ग काम्यकर्मके फलके भोगस्थान हैं। वहाँ भोगोपयोगी सारी वस्तुएँ इच्छामात्रसे प्राप्त होती हैं, किसीसे माँगना नहीं पड़ता। अनुकूल अप्सरा, अमृतरस, नाना प्रकारके सुस्वादु फल, सुन्दर दृश्य, दिव्य सुगन्ध, स्वर्णपद्मसे परिपूर्ण सरोवर, नाना प्रकारकी भोग्य वस्तुएँ—सब वहाँ सहज ही प्राप्य हैं। यह स्वर्ग भोगका स्थान है। भोग समाप्त होनेपर पतन अवश्यम्भावी है। ये निम्नसे निम्नतर स्वर्ग बहुसंख्यक हैं। निम्न स्वर्गके अधिष्ठाता इन्द्र देवता हैं। उच्चकोटिका ऊर्ध्वस्वर्ग इन्द्रके अधीन नहीं है। महर्लोक, सत्यलोक, तपोलोक उसीके अवान्तर विभाग हैं। ज्ञान-कर्मका समुच्चय हुए बिना उनकी प्राप्ति नहीं होती। योगशक्ति तथा ज्ञानके क्रमविकासके अनुसार अत्युच्च ऊर्ध्वतम स्वर्गकी प्राप्ति होती है। कहना न होगा कि यह 'पितृयाण पथ'से प्राप्य नहीं है।

अब 'देवयान मार्ग'की बात कहते हैं। पितृयाण मार्गमें शुभ और अशुभ दोनों कर्मोंकी गति होती है। कुछ दूरतक एक ही पथसे गति होती है, उसके बाद पथ भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। देवयान पथसे जो गति होती है, वह शुक्ल गति है। ज्ञानहीन कर्मसे इसकी प्राप्ति नहीं होती तथा कर्महीन ज्ञानसे भी नहीं होती; क्योंकि ज्ञानहीन कर्म स्वर्ग और नरककी ओर आकर्षण करता है। कर्महीन ज्ञान बिल्कुल ही गतिशून्य होता है, जैसा कि पहले कह चुके हैं। यहाँ ज्ञान और कर्मका समुच्चय आवश्यक है।

यह समुच्चय दो प्रकारका होता है—'सम समुच्चय' और 'विषम समुच्चय'। सम समुच्चयमें ज्ञान और कर्मकी मात्रा समान-समान होती है। विषम समुच्चयमें ज्ञान और कर्मकी मात्रा समान नहीं होती। कर्म अङ्गी होता है और ज्ञान अङ्ग। अथवा ज्ञान अङ्गी होता है और कर्म अङ्ग। ज्ञानके साथ कर्मका मिश्रण हुए बिना गति सम्भव नहीं। कर्म और ज्ञानमें किसकी प्रधानता है, यह मुमूर्षु साधककी साधनाके ऊपर निर्भर करता है। इस समुच्चयमें कर्मकी मात्रा अधिक रहनेपर पथमें प्रत्येक स्टेशन (Station) पर उतरना पड़ता है और वहाँका भोग प्राप्त करना पड़ता है। ज्ञानका अंश अधिक होनेपर ऐसा नहीं होता। ज्ञान-कर्म-समुच्चयका अन्तिम स्टेशन ब्रह्मलोक है। विशुद्ध ज्ञानके फलसे ब्रह्मलोकमें गति नहीं होती। उसकी बिल्कुल ही गति नहीं होती, यह बात पहले कही जा चुकी है। ब्रह्मलोकमें जाकर जबतक वासनाक्षय नहीं हो जाता, तबतक शुद्ध ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होती। ब्रह्मलोकमें जीवन्मुक्त दशामें अवस्थान करना पड़ता है। ये सारे जीवन्मुक्त हिरण्यगर्भके साथ सम्बन्धित हैं। जो लोग ब्रह्मलोकमें निम्न अधिकार लेकर प्रविष्ट होते हैं, वे हिरण्यगर्भके सालोक्यको प्राप्त करते हैं। जो उच्चतर अधिकारी हैं, वे सारूप्यकी प्राप्ति करते हैं। जो और भी उच्च अधिकारी हैं, वे सार्ष्टि और सामीप्यको प्राप्त करके चरम अवस्थामें सायुज्यको प्राप्त होते हैं। तत्पश्चात् महाप्रलयके समय ब्रह्माण्डके नाशके साथ-साथ जब हिरण्यगर्भकी देह नष्ट हो जाती है तो हिरण्यगर्भके साथ-साथ उनके अङ्गीभूत जीव परब्रह्मके साथ अभेदको प्राप्त होते हैं। यहाँ हिरण्यगर्भ नाम दिया गया है; परंतु वस्तुतः सब साधक इस अवस्थामें अपने-अपने इष्टको प्राप्त होते हैं।

प्रभुके धाम पहुँचकर नहीं लौटते

नरकोंमें जा, पापी सहते नरक-यन्त्रणा आठों याम।
पितृयाणसे जा, पाते जो भोग स्वर्गके दिव्य ललाम॥
करके भोग समाप्त, लौटते, भर मनमें वासना तमाम।
नहीं लौटते, देवयानसे जा पहुँचे जो प्रभुके धाम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्युविज्ञान

(लेखक—वेदतत्त्वान्वेषक श्रीरणछोड़दासजी 'उद्धव')

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते ।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ॥

'प्रत्यक्ष और अनुमानसे जो तत्त्व न जाना जा सके, वह वेदसे जाना जाता है—यही वेदका वेदपन है ।'

मृत्युके बाद अज्ञात परलोकमें जानेवाले जीवात्माके लिये वैदिक वैज्ञानिकोंका कहना है कि 'आत्मा' पंद्रह आत्माओंका समूह है । ईश्वरके शरीरमें (१) स्वयम्भू, (२) परमेष्ठी, (३) सूर्य, (४) चन्द्रमा और (५) पृथिवी—ये पाँच मुख्य प्रकृतिके आत्मा हैं । (१) 'प्राण' प्रकृतिवाले 'स्वयम्भू'की—अन्तर्यामी, सूत्र और वेद—ये तीन कलाएँ हैं, (२) 'अप्' प्रकृतिवाले 'परमेष्ठी'की—चित् और यज्ञ—ये दो कलाएँ हैं, (३) 'वाक्' प्रकृतिवाले 'सूर्य'की—विज्ञान और प्राणदेवता—ये दो कलाएँ हैं, (४) 'अन्न' प्रकृतिवाले 'चन्द्रमा'में—आकृति, प्रकृति और अहंकृति—इन तीन कलाओंमें महत्सोमका साम्राज्य है और (५) 'अन्नाद' प्रकृतिवाली 'पृथिवी'में—चित्याग्नि, वायु, वैश्वानर, हिरण्यगर्भ और सर्वज्ञ—इन पाँच कलाओंकी प्रतिष्ठा है । इस प्रकार कुल पाँच विस्तारोंके पंद्रह विस्तार हो जाते हैं । प्रकृतमें प्रधान पाँच आत्माओंके विषयमें कहा जाता है, जिससे मुख्य नित्य विभु-आत्मा और खण्डात्माओंका विज्ञान होगा ।

पञ्च आत्मविज्ञान

ईश्वर-संस्थाकी स्वयम्भू आदि पाँच प्रधान कलाएँ अध्यात्मसंस्थामें क्रमसे—(१) अव्यक्तात्मा, (२) यज्ञात्मा, (३) विज्ञानात्मा, (४) महानात्मा एवं (५) शरीरका आत्मा (प्राणात्मा)—इन नामोंसे प्रसिद्ध हैं । अन्तर्यामी, सूत्रात्मा और वेदात्मा—इन तीनों खण्डात्माओंका समूह प्राण-प्रकृतिवाले स्वयम्भूका 'अव्यक्तात्मा' है; चिदात्मा और यज्ञात्माका समूह अप्-प्रकृतिवाले परमेष्ठीका 'यज्ञात्मा' है; विज्ञानात्मा और दैवात्माका समूह वाक्-प्रकृतिवाले सूर्यका विज्ञानात्मा है; आकृति, प्रकृति और अहंकृतिका समूह अन्न-प्रकृतिवाले चन्द्रमाका 'महानात्मा' है; तथा वाङ्मात्मा, हंसात्मा, वैश्वानरात्मा, तैजसात्मा और प्राज्ञात्मा—इन पाँचोंका समूह अन्नाद-प्रकृतिवाली पृथिवीका 'शारीरात्मा' है । इन सब खण्डात्माओंका आधार (इनकी अपेक्षासे अखण्ड) सोलहवाँ षोडशीपुरुष ही 'अमृतात्मा' नामसे प्रसिद्ध है ।

(१) अव्यक्तात्मा—

'अमृतात्मा' नामसे प्रसिद्ध षोडशीपुरुषके मन, प्राण और वाङ्मय सृष्टिसाक्षी कर्मात्माभागकी बलप्रधान सृष्टिकी इच्छासे सम्बन्ध रखनेवाले मनोमय काम, प्राणमय तप तथा वाङ्मय श्रम—इन सृष्टिकर्मोंके सामान्य तीन साधनोंके व्यापारसे सबसे पहले वही प्राकृतात्मा 'अव्यक्तात्मा' कहलाया है । यह 'शान्तात्मा' नामसे भी प्रसिद्ध है । षोडशीपुरुष विश्वात्मासे सबसे पहले आकाशात्मा इसी अव्यक्त स्वयम्भूका प्रकटीकरण हुआ है । इसी अभिप्रायसे कहा गया है—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः ।
(तैत्तिरीय उ० २ । १ । १)

शरीरसे आत्माके निकल जानेके बाद यह अव्यक्तात्मा सर्वव्यापक प्राणमूर्ति आकाशात्मामें यहाँका यहीं विलीन हो जाता है । असङ्ग होनेसे कर्मबन्धनसे सर्वथा अलग रहता हुआ यह अव्यक्त-आत्मा अन्य लोकोंमें नहीं जाता है । घटके फूटते ही घटका आकाश जैसे अन्य लोकोंमें न जाकर वहीं परमाकाशमें लीन हो जाता है । अन्य लोकोंमें जानेवाले कर्मात्माके साथ बिन्दु-बिन्दुपर नवीन-नवीन अव्यक्त (आकाश) का सम्बन्ध होता रहता है । इसी अव्यक्तके लयको लक्ष्यमें रखकर कहा है—

न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति इहैव समवलीयन्ते ।

(२) यज्ञात्मा—

हमारी अध्यात्मसंस्थामें शरीर, प्राणात्मा, प्रज्ञानात्मा, विज्ञानात्मा, महानात्मा और अव्यक्तात्मा—ये ६ विभाग माने गये हैं । शरीरके आधारपर १—इन्द्रिय-प्राण, २—वाक्, ३—इन्द्रिय-मनका अधिष्ठाता, ४—प्राणात्मा (कर्मात्मा या भोक्तात्मा) स्थित हैं । इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan | CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

चारोंकी समष्टि 'पृथिवीका प्रपञ्च' है। पृथिवीके ऊपर चन्द्रमा है। इससे सर्वेन्द्रिय, अनिन्द्रिय और अतीन्द्रिय—इत्यादि नामोंसे प्रसिद्ध प्रज्ञानात्मा (मन) का विकास होता है। चन्द्रमाके ऊपर सूर्य है। सूर्यका अंश विज्ञानलक्षणवाला ज्ञान ही बुद्धि है। सूर्यके ऊपर परमेष्ठी है और उसका अंश महानात्मा है। परमेष्ठीके ऊपर स्वयम्भू है और उसका अंश अव्यक्तात्मा कहलाया है। अव्यक्तसे परे उक्त पाँच प्रकृतिके अधिष्ठाता षोडशीपुरुष है। आत्माके विस्तारकी यही अन्तिम स्थिति है। इसीका स्पष्टीकरण करते हुए ऋषि कहते हैं—

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किंचित् सा काष्ठा सा परा गतिः॥
(कठ० १। ३। १०-११)

'इन्द्रियोंके अर्थसहित शरीरवाला प्राणात्मा पहला विवर्त है। इससे परे मन (प्रज्ञानात्मा) है, मनसे परे बुद्धि (विज्ञानात्मा) है, बुद्धिसे परे महानात्मा है, महान्‌से परे अव्यक्त है, अव्यक्तसे परे पुरुष है। यही अन्तिम धाम है।' श्राद्धकर्मके सिवा सब ओर इसी क्रमकी प्रधानता समझनी चाहिये।

(३) विज्ञानात्मा—

सूर्यसे प्राप्त विज्ञानात्मामें 'धिषणा' और 'प्राण'—ये दो कलाएँ कही हैं। धिषणाको ज्ञान कहा है और प्राणभागको कर्म कहा है। ज्ञान-कर्ममयी विज्ञानात्मिका बुद्धिके आठ विस्तार हो जाते हैं। इस सूर्यके विज्ञानात्माका प्रधान कर्म है—प्रज्ञान मनवाले वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञके समष्टिरूप कर्मात्माको कर्ममें लगा रखना। इसीकी प्रेरणासे कर्मात्मा कर्म करनेमें समर्थ होता है, इसलिये इसे 'कारयिता' (कर्म करानेवाला) कहा गया है। प्रज्ञान (मन) पर विषय आते हैं, परंतु विज्ञानात्मा (बुद्धि) विषय पर जाता है। 'यह बात हमारी समझमें नहीं आयी, अमुक बात हमें जँचती ही नहीं'—यह व्यवहार मनसे सम्बन्ध रखते हैं। 'हमारा खयाल उस ओर नहीं दौड़ता। सोचते हैं, परंतु अकल काम नहीं करती' इत्यादि व्यवहार विज्ञानात्मासे सम्बन्ध रखते हैं। नवीन ग्रन्थकी रचना बुद्धिसे सम्बन्ध रखती है और बने हुए ग्रन्थकी नकलमें मनका व्यापार प्रधान रहता है। शरीर गिरनेके बाद यह विज्ञानात्मा भोग-साधक बनकर कर्मात्माके साथ साक्षीरूपसे लगा रहता है। अपने स्वरूपसे असंग इस विज्ञानात्माकी गति, श्राद्ध और प्रेतकर्म आदिसे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह क्षेत्रज्ञ-विज्ञान क्षेत्रका अधिष्ठाता मात्र है।

(४) महानात्मा—

अध्यात्मसंस्थामें मन एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं, किंतु चार मन हैं। अव्यय, महान्, प्रज्ञान और प्राज्ञके भेदसे मन चार प्रकारका है। अव्यय मन श्वोवसीयस् और श्वोवस्यस् ब्रह्म नामसे प्रसिद्ध है। महान् मन 'सत्त्व' कहलाता है। प्रज्ञान मन 'सर्वेन्द्रिय' है, एवं प्राज्ञ मन 'इन्द्रिय-मन' नामसे प्रसिद्ध है। प्राज्ञ मन कर्मात्माका आधार है, प्रज्ञान मन विज्ञानात्माका आधार है, महान् मन अमृतात्माका आधार है और अव्यय मन सबका आधार है। इनमें अव्यय मनका एक स्वतन्त्र विभाग है। महान्, विज्ञान और प्रज्ञान—इन तीनोंका एक स्वतन्त्र विभाग है। इन तीनोंका कर्मकी गतिसे कोई सम्बन्ध नहीं है, परंतु इतना ध्यान रखिये कि श्राद्धकर्मकी मूल प्रतिष्ठा शुक्रतत्त्वपर स्थित पितृप्राणमूर्ति महानात्मा ही है। सम्पूर्ण आत्मविवर्तोंमेंसे श्राद्ध केवल महानात्माके लिये ही किया जाता है।

(५) प्राणात्मा—

वेद-शास्त्रमें आत्मनिरूपणके सम्बन्धमें किसी भी अंशमें त्रुटि नहीं है, तो भी विज्ञानदृष्टिके विलुप्तप्राय हो जानेसे विज्ञानवाले वेद-शास्त्रके वास्तविक अर्थसे हम बहुत पीछे हट गये हैं या बहुत आगे बढ़ गये हैं। एक दल कहता है कि 'वेदमें विज्ञानका अन्वेषण करना मृगजलके समान है। वेद ईश्वरकी वाणी है; इसके द्वारा केवल ज्ञान, उपासना और कर्मकाण्डका ही प्रतिपादन होता है।' दूसरे दलकी वेदार्थके सम्बन्धमें इससे भी भयंकर मनोवृत्तियाँ हैं। आत्म-तत्त्वप्रतिपादक, परस्परमें सर्वथा विरुद्ध शास्त्रीय-सिद्धान्त हमें उलझनमें डाल रहे हैं। सत्य तत्त्व एक हो सकता है, अनेक नहीं; ऐसी स्थितिमें कौनसे सिद्धान्तको सत्य समझा जाय! जीवके सम्बन्धमें यह प्रश्न उपस्थित होता है कि 'जीव ईश्वरका अंश माना गया है, फिर पापके धर्म जीवमें कहाँसे आये ? अतः महर्षि कठ कहते हैं—

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति।
एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति॥
(कठोप० २। १। १४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूतलपर एक बड़ा पर्वत है, पर्वतपर एक किला है, किलेपर आकाशसे वृष्टि होती है। मेघका शुद्ध जल किलेपर आते ही पर्वतकी कन्दराओंमें आता हुआ खण्ड-खण्डरूपमें परिणत होता हुआ किलेकी और पर्वतकी मलिनतासे मलिन हो जाता है। यही अवस्था यहाँ है। वे ही ईश्वरीय गुण शरीररूप भूपिण्डपर स्थित प्रज्ञानरूप किलेमें आकर, पर्वतके अवयवस्थानीय जीव-संस्थामें आकर, प्रज्ञाके अपराधरूप मलसे मिले हुए पापरूपमें परिणत हो जाते हैं। ईश्वरके समान जीव भी बिलकुल विशुद्ध है; ईश्वरीय जो गुण जीवमें आते हैं, वे भी विभूतिरूप ही हैं; परंतु प्रज्ञा (मन) के अपराधसे वे ही गुण दोषरूपमें परिणत हो जाते हैं। दो स्वतन्त्र पदार्थोंमें जो गुण या दोष नहीं देखे जाते, इन दोनोंके मिलनेकी विचित्रतासे वहाँ गुण और दोषका उदय हो जाता है। जबतक अहंकार है, तभीतक जीव जीव है। जिस दिन इसका अहंकार नष्ट हो जाता है, उसी दिन पूर्वपदभावको प्राप्त होता हुआ यह पूर्णेश्वरमें विलीन हो जाता है। महर्षि कहते हैं—

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम॥
(कठ० २। १। १५)

मृत्युके अनन्तरकी दशा

मृत्युके अनन्तर इस लोकसे पितृलोकमें मनुष्य किस प्रकार जाते हैं—फिर वहाँसे कैसे लौटते हैं, इस आवागमनकी शैलीका पूर्ण विवरण सामवेदके ताण्ड्यमहाब्राह्मणके छान्दोग्य-उपनिषद्-भागमें (५। ३। १०) किया गया है। वहाँ मृत्युके अनन्तर तीन प्रकारकी गति बतलायी गयी है—अर्चिर्मार्ग, धूममार्ग और दोनोंसे अतिरिक्त तीसरा उत्पत्ति-विनाशमार्ग। पूर्वके दो मार्गोंको ही देवयान और पितृयाणमार्ग कहा जाता है। शरीरसे निकलकर जानेवाली देवचितिरूप क्षरपुरुषकी कला है, जिसमें प्राणात्मा, प्रज्ञानात्मा, विज्ञानात्मा और महानात्मा सम्मिलित रहते हैं। दार्शनिक भाषामें इस देवचितिका 'सूक्ष्मशरीर' नामसे निर्देश किया जाता है। मुख्य नित्यविभु-आत्मा जिसे कहते हैं, वह तो व्यापक है। वह कहीं आ-जा नहीं सकता और स्थूलशरीरकी यही प्रत्यक्ष तीन गतियाँ देखी जाती हैं, जिसे कृमि-विट्-भस्म नामसे वैराग्य-शास्त्रवाले कहा करते हैं—अर्थात् यदि अग्निमें स्थूलशरीर जला दिया गया, तो भस्मरूप हो जाता है, यदि कोई मांस खानेवाला जन्तु उसे खा गया, तो विष्ठारूप होकर उसके उदरसे निकलेगा और यदि कोई स्थूलशरीर पड़ा ही रह गया, या भूमिमें गाड़ दिया गया, तो वह कृमि (कीड़ों) के रूपमें परिणत हो जाता है, अर्थात् उसमें हजारों कीड़े-ही-कीड़े पड़ जाते हैं।

कहना यही है कि न स्थूलशरीर कहीं जाता-आता है, न मुख्य विभु-आत्मा; क्योंकि व्यापकमें गति हो ही नहीं सकती। तब शरीरसे निकलकर लोकान्तर या जन्मान्तरमें जानेवाला सूक्ष्मशरीर ही है, जिसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन और बुद्धि—ये १७ तत्त्व सम्मिलित हैं। इन्हींमें रहनेवाले चैतन्यका प्राणात्मा, प्रज्ञानात्मा आदि नामोंसे पूर्वमें निरूपण किया है।

अब वैज्ञानिक-प्रक्रियासे विचारना चाहिये कि यह सूक्ष्मशरीर कहाँ जायगा? विज्ञानमें सजातीय-आकर्षणका सिद्धान्त मुख्य माना जाता है। प्रत्येक वस्तु अपने सजातीय घनकी ओर स्वभावतः जाती है। व्यष्टि समष्टिकी ओर जाया करती है। जैसे—मिट्टीका ढेला पृथ्वीकी ओर आता है। उक्त १७ तत्त्वोंमें मन प्रधान है और वह चन्द्रमाका अंश है। इसलिये चन्द्रमाके आकर्षणमें बँधकर वह चन्द्रलोकमें ही पहुँचेगा। वही दिव्य पितरोंका निवास है। वही मुख्य पितृलोक है। इसलिये स्वभावतः मृत पुरुषोंकी पितृलोकगति सिद्ध हुई।

यदि मनकी प्रधानता न रहे और सूक्ष्मशरीरका कोई और ही भाग प्रधान बन जाय, तो फिर उसके अनुसार गति होगी। मनके अनुसार चन्द्रलोककी गति नहीं बनेगी। मनकी प्रधानता दो प्रकारसे दबती है। जो तपस्वी, योगी या प्रबल उपासक होते हैं, वे विज्ञानात्मा या बुद्धिशक्तिको प्रबल कर मनको दबा देते हैं। विज्ञानात्मा या बुद्धितत्त्व सूर्यका अंश है, इसलिये वैज्ञानिक शैलीके अनुसार बुद्धिप्रधान होनेके कारण उनपर सूर्यका आकर्षण हो जाता है और वे सूर्यमण्डलकी ओर चल पड़ते हैं। सूर्य-मण्डलमें देवप्राणोंकी समष्टि है और स्वयं प्रकाशमान है। इसलिये इस मार्गको देवयानमार्ग कहा गया है।

तीसरी गति जघन्य है। पृथ्वीके पदार्थ धन, पशु, गृह आदिमें ही जिसका मन अधिक फँस गया है, वहाँ पृथ्वीका आवरण मनपर चढ़ जाता है और जैसे तुम्बेमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैरनेकी शक्ति होनेपर भी यदि उसे मिट्टीसे खूब लपेट दिया जाय, तो जलके ऊपर आनेकी उसकी शक्ति दब जाती है। वह जलमें डूब जाता है। इसी प्रकार पार्थिव वस्तुओंकी वासना प्रबल होनेपर मनकी शक्ति दब जाती है और उसकी चन्द्रलोक-गति नहीं बनती। भूमिके पदार्थोंकी वासना प्रबल होनेके कारण भूमिका ही आकर्षण उस सूक्ष्मशरीरपर पड़ता है और वह भूमिमें बार-बार उत्पन्न होनेवाले और दिनमें सैकड़ों बार मर जानेवाले कीट-पतंगोंके प्रवाहमें पड़ जाता है। उसे ही श्रुतिमें—

'जायस्व म्रियस्व' (छान्दोग्य० ५। १०। ८)

—कहकर तीसरी गति बतायी गयी है। जिसका अर्थ है कि बार-बार पैदा होना और मरते जाना। श्रुति और शास्त्रोंने इस गतिको बहुत ही बुरी गति माना है। इससे उद्धार पाना बहुत ही कठिन है। यहाँ जीव अपने-आप कुछ कर नहीं सकता। चौरासीके चक्रमें पड़ा रहता है, प्रकृति-माताकी ही जब कभी कृपा हो, तब वह क्रमसे निकलता-निकलता कालान्तरमें मनुष्य-योनितक आ पाता है। इसलिये भारतीय संस्कृतिमें सब लोग कहा करते हैं कि मृत्युके समय भूमिके पदार्थोंमें मोह करानेवाली बातें उस मरनेवालेके समीप नहीं करनी चाहिये। उसे मोहसे छुड़ानेके लिये जहाँतक बने, भगवान्‌का स्मरण ही कराना चाहिये। यही 'मृत्युविज्ञान' है।

मृत्यु-महोत्सव

(लेखक—प्रो० श्रीशिवानन्दजी एम्० ए०)

हम मृत्युको कैसे स्वीकार करते हैं, यह हमारे ज्ञान और जीवन-साधनकी परीक्षा है। आत्मा तो अमर है; किंतु शरीर गलता, सड़ता, रोगी होता है और वस्त्रकी भाँति जर्जर होकर घिसकर विनष्ट हो जाता है। इसमें आश्चर्य एवं दुःखकी क्या बात है? यह एक प्राकृतिक नियम है। भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—'जैसे कुमार, युवा और जरा अवस्थारूप स्थूलशरीरका विकार अज्ञानसे आत्मामें भासता है, वैसे ही एक शरीरसे दूसरे शरीरको प्राप्त होनारूप सूक्ष्म-शरीरका विकार भी अज्ञानसे आत्मामें भासता है। इसलिये तत्त्वको समझनेवाले धीर पुरुषको इस विषयमें मोह नहीं होता।' (गीता २। १३)

'अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।'

(गीता २। १९)

अर्थात् 'नित्यस्वरूप जीवात्माके ये शरीर नाशवान् हैं।'

'न जायते म्रियते वा कदाचित्।'

(गीता २। २०)

अर्थात् 'आत्मा न कभी जन्मता है, न मरता है। शरीर ही जन्मता, मरता है।'

अर्थात् 'जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है।' (गीता २। २२)

मृत्यु एक सरिता है जिसमें श्रमसे कातर जीव नहाकर।
फिर नूतन धारण करता है कायारूपी वस्त्र बहाकर॥

(रामनरेश त्रिपाठी)

'जीव मृत्युरूपी नदीमें पुराने शरीररूपी वस्त्र बहाकर नये (शरीररूपी) वस्त्र धारण करता है।' कबीर इसे दूसरी प्रकारसे समझाकर कहते हैं—

जल में कुंभ, कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना यह तत कथ्यौ ज्ञानी॥

'चारों ओर ब्रह्मरूपी जलसे विश्व ओत-प्रोत है। देहरूपी घड़ेमें ब्रह्मरूपी जलकी एक बूँद आत्माके रूपमें विद्यमान है। देहरूपी घट फूट गया और उसमेंसे आत्मारूपी जलबिन्दु निकलकर परमात्मारूपी जलसागरमें निमग्न हो गया।'

आत्मा नित्य और अवध्य है; शरीरका नष्ट होना अपरिहार्य है। मृत्यु होनेपर केवल शरीर ही नहीं छूट जाता है; संसारके सभी प्रियजन, कुटुम्बी, सम्बन्धी और सभी पदार्थ, धन, सम्पत्ति आदि भी छूट जाते हैं। मृत्यु विवेकदायिनी है—गुरु है। संसारके नाते मिथ्या हैं। मनुष्य अकेला ही संसारमें आता है और अकेला ही यहाँसे जाता है। धन, सम्पत्ति और पद—जिनके संचय और सुरक्षाके हेतु मनुष्य पाप भी करता है, यहीं छूट जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई व्यक्ति धन लिये हुए न उत्पन्न होता है और न मरता है। अतः यह मानना चाहिये कि मैं धन-सम्पत्तिसे पृथक् हूँ। इनपर अपना अधिकार मानना मूर्खता है। इनके साथ ममत्व करना भयंकर भूल है।

जिस वस्तुका आदि है, उसका अन्त अवश्य होता है। जहाँ प्रारम्भ है, वहाँ समाप्ति है। भूतलपर शरीर-यात्राका प्रारम्भ जन्मसे होता है और समाप्ति मरणसे होती है। जन्म और मरण देहका होता है। आत्मा तो अनादि और अनन्त है। देह ही शैशव, यौवन और वृद्धता एवं क्षीणता, कृशता, पीनताका अनुभव करता है। जन्म होनेपर जब माता बच्चेकी आयुके विषयमें ज्योतिषीसे प्रश्न करती है, तब वह वस्तुतः उससे मृत्युकी तिथि पूछना चाहती है। जन्मके पश्चात् मरण ध्रुव सत्य है। **'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।'** जिस प्रकार भरे हुए घड़ेमें छिद्र होनेपर धीरे-धीरे वह रिक्त होता जाता है, उसी प्रकारसे शरीर भी मृत्यु-छिद्र होनेके कारण धीरे-धीरे समाप्तिकी ओर प्रवृत्त होता रहता है। धन, परिवार और प्रतिष्ठा आदि तो बढ़ रहे हैं; किंतु आयु समाप्त होती जा रही है। जन्म होते ही मनुष्य मृत्युकी ओर अग्रसर होने लगता है, यद्यपि आयु बढ़नेपर बड़ा होना मानकर प्रतिवर्ष वर्षगाँठपर उत्सव मनाते हैं।

मृत्यु एक प्राकृतिक घटना है, जो प्रत्येक शरीरधारीके साथ घटित होती है; किंतु फिर भी मनुष्य मृत्युसे ऐसे डरते हैं, जैसे बालक अन्धकारमें प्रवेश करनेसे डरते हैं। जैसे कहींसे उड़ती हुई चिड़िया प्रकाशपूर्ण कमरेमें प्रवेश करके उसमें थोड़ी देर उड़ती हुई वहाँसे निकलकर फिर बाहर अन्धकारमें विलीन हो जाती है। ऐसा ही प्रतीत होता है—ऐहिक जीवन। मनुष्य मृत्युमें विलीन होनेके भयसे भयभीत रहता है। प्रायः संसारमें कोई किसी प्रकारका भी भय मृत्यु-भयसे बढ़कर नहीं होता है। इसीलिये मृत्यु-भयको 'भयराज' (Master fear) कहते हैं। जिसने मृत्युके भयको जीत लिया, उसने समस्त भयोंपर विजय पा ली। जिसने मृत्युको मित्र समझ लिया, उसने जीवनको मित्र बना लिया। मृत्युके भावसे भय उत्पन्न होनेपर जीवन दूभर बोझ बन जाता है।

मृत्युका सम्यक् स्मरण विवेकशील मनुष्यको पुण्यकी ओर प्रवृत्त करता है, भयत्रस्त नहीं करता है। मृत्युका भय समाप्त होनेपर मृत्यु एक महोत्सव बन जाती है। यदि स्वस्थ, सुखी जीवन-यापन करना एक कला है तो मृत्युका सुखद आलिङ्गन भी एक कला है। श्रेष्ठ सिद्धान्तों, आदर्शों-पर चलते हुए जीवनको सुखमय बनानेवाला व्यक्ति ही आदर्शोंके लिये मरना जानता है, ताकि मृत्यु एक सुखपूर्ण जीवनावसान बन जाय। आदर्शोंके लिये जीनेवाले और आदर्शोंके लिये ही मरनेवाले मनुष्य धन्य होते हैं और उनके लिये मृत्यु एक महोत्सव होता है।

विवेकशील व्यक्तिके लिये मृत्यु कोई समस्या नहीं है। यह देहान्तर-प्राप्तिका एक साधन है। मैं देह नहीं हूँ। मैं चैतन्य हूँ, मैं चिरन्तन हूँ। मेरी मृत्यु होनेका प्रश्न ही नहीं उठता है। आत्माका वाहन शरीर क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर—पञ्चतत्त्वोंसे विनिर्मित है और विनाशशील है। यही विवेक है, ज्ञान है।

मनुष्य धन-सम्पत्ति इकट्ठा करके संसारमें ही छोड़कर ऐसे चला जाता है, जैसे बटोही सरायमें कुछ समय रहकर अकस्मात् चला जाता है। संसारकी वस्तुएँ मेरी हैं ही नहीं और मेरी हो भी नहीं सकती हैं। उनके संग्रहके लिये पाप करना और उनके साथ मोह जोड़ना, अथवा उनपर अपना स्वत्व मानना, अधिकार समझना एक दुःखदायक भूल है।

मित्र और कुटुम्बी तो श्मशानतक साथ देते हैं और मृतक व्यक्तिकी देहको भस्मीभूत करके अपने-अपने कार्यमें संलग्न हो जाते हैं। इस जीवनकालमें किये हुए सत्कर्म अथवा दुष्कर्म संस्कार बनकर जीवात्माके आगामी जीवनमें प्रारब्ध बनकर साथ रहते हैं। वायु जिस प्रकार गन्धस्थानसे सुगन्ध अथवा दुर्गन्धको ग्रहण करके ले जाता है, उसी प्रकार जीवात्मा भी त्याग दिये गये हुए पहिले शरीरसे मन सहित इन्द्रियोंको ग्रहण करके फिर दूसरे शरीरमें ले जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥

(गीता १५। ८)

मनुष्यकी सच्ची कमाई वह है जो उसके साथ जाय और आगामी जीवनयात्रामें सहायक हो। बैंकोंके लाकरों और सेफमें रक्खा हुआ धन, जिसे हमने प्रायः पापसे कमाया और परिश्रमसे सुरक्षित रक्खा, यहीं रह जायगा। दिया हुआ दान, किया हुआ परोपकार और तप साथ जायगा। केवल आत्मतत्त्व ही सच्चा है, अन्य सब पदार्थ मिथ्या हैं—यही सत्-असत्का ज्ञान है, विवेक है। हम असत् वस्तुओंकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरक्षा करनेकी चिन्तामें अपनी शान्ति भङ्ग कर लेते हैं। हमें नित्य-प्रति अपने समक्ष अनेक मनुष्योंकी मृत्यु देखकर भी और सभीको खाली हाथ जाते हुए देखकर भी अपनी मृत्युपर विश्वास नहीं होता है और हम अपनी स्थिरताका प्रयत्न करते हैं। 'सामान सौ बरसके, पलकी खबर नहीं'। महाभारतके वनपर्वमें यक्षद्वारा यह पूछे जानेपर कि सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? युधिष्ठिरने उत्तर दिया—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥
(महाभारत, वनपर्व ३१३।११६)

'प्रतिदिन प्राणी मृत्युको प्राप्त होते हैं; किंतु फिर भी मनुष्य स्थिरता चाहते हैं (और ऐसा अभिमानपूर्ण आचरण करते हैं मानो उन्हें सदैव यहीं रहना हो); इससे बढ़कर और आश्चर्य क्या है!'

कुछ लोग विषम परिस्थितियोंमें भयभीत होकर उनसे बचनेके लिये मृत्युकी इच्छा करते हैं। कोई दुर्बुद्धि तो विषपान आदिके द्वारा आत्महत्या कर लेते हैं, जो संसारका घोरतम पाप है। जीवन प्रभुकी देन है। और इसका अधिकतम सदुपयोग करना हमारा परम धर्म है। कोटि-कोटि पुण्योंसे मनुष्ययोनि प्राप्त होती है। इसका उचित मूल्याङ्कन करना चाहिये। कुछ अल्पबुद्धि दुःखोंके मूलकारण मोहको तो विच्छिन्न नहीं करते हैं (मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला) और थोड़े समयके लिये दुःखोंको भूलनेके लिये मदिरापान आदिके द्वारा पवित्र प्रभु-मन्दिरस्वरूप शरीरको दूषित एवं नष्ट-भ्रष्ट करते हैं। यदि वे -राम-नामरूपी सुमधुर सोम-रस पान करें और रामभक्तिरूपी संजीवनी बूटीका प्रयोग करें, 'रघुपति भगति सजीवन मूरी' तो भवरोग ही मिट जायँ। आजकलके कुछ दम्भी नेता तो गर्भपात-जैसे घोर पापके पक्षमें वकालत कर रहे हैं।

पञ्चभूतविनिर्मित शरीरका स्वभाव गलना-सड़ना है। इसे स्वस्थ और सुथरा रखकर इसका सदुपयोग करें; किंतु इसका शृङ्गार करना और इसकी क्षणभङ्गुर सुन्दरताका अभिमान करना मूर्खताका परिचायक है। सुन्दर एवं स्वच्छ विचारों तथा मन, वचन और कर्मकी पवित्रतासे ही शरीर अलंकृत होता है। आन्तरिक सात्त्विक सौन्दर्य ही मुखपर प्रतिबिम्बित होता है। आज उसके अभावकी पूर्ति प्रसाधनोंके अतिशय प्रयोगके द्वारा की जा रही है। शरीरका मोह मृत्युबेला समुपस्थित होनेपर सुख-पूर्वक प्राण-निर्गमनमें बाधक सिद्ध होता है तथा इसके कारण मृत्यु भयानक प्रतीत होने लगती है।

अनेक संत शरीरके अति जर्जर होनेपर तथा चिकित्साकी विफलता देखकर चिकित्साका त्याग कर देते हैं तथा केवल गङ्गा-जलका पान ही करते-करते प्राण-विसर्जन कर देते हैं। मरणावस्था होनेपर जैन साधु 'सल्लेखना' ग्रहण करके भोजन, ओषधि, जल आदिका पूर्ण परित्याग करके मृत्युका सहर्ष आलिङ्गन करते हैं। संतोंके लिये मृत्यु एक महोत्सव है, जिसकी तैयारी करनेमें उन्हें एक विशेष आह्लादका अनुभव होता है। उन्हें तो मृत्युद्वारको पार करनेपर प्रियतम प्रभुका संदर्शन होनेकी आशा ही आनन्दित करती रहती है।

प्राणोत्सर्गके समय संसारके सभी विषयोंसे तथा मित्रगण एवं कुटुम्बीजनसे मोह-नाता छोड़ प्रभुका स्मरण, नामजप तथा ध्यान करना चाहिये। वीतराग होकर प्राणत्याग करे। शान्तरसमें निमग्न होकर, आत्मामें संस्थित होकर, शारीरिक एवं मानसिक दुःख-सुखसे ऊपर उठकर प्रभुभावमें विभोर हो जायँ। रामनाम सत्य है; सत्य बोलनेसे ही गति है। मरणासन्न होनेपर रामनामका सहारा ही शान्तिप्रदायक होता है।

जीवन-कालमें मरणकी इच्छा नहीं करनी चाहिये और मृत्यु समुपस्थित होनेपर जीनेकी इच्छा नहीं करनी चाहिये। जीवनभर परोपकाररत रहकर, दयाद्रवित होकर निःस्वार्थ जन-सेवा आदि करनेवाले व्यक्तिका मन मृत्युबेलामें अवश्य शान्त होगा। यदि किसीने जीवनमें आततायी बनकर अत्याचार किये हैं, तो उसे महाप्रयाणके समय अत्यधिक मानसिक कष्ट होगा। उदाहरणार्थ औरंगजेबके अन्तिम शब्द इसकी पुष्टि करते हैं। महमूद गजनवी भी मृत्युसंकटके समुपस्थित होनेपर उस धनको धिक्कारने लगा था, जिसके हेतु उसने घोर अत्याचार किये थे। मृत्युके समय समस्त जीवनके पुण्य-पाप नेत्रोंके सामने मानो मँडराकर शान्ति अथवा अशान्ति देते हैं। धीर पुरुष देहावसानकालमें परम शान्तिका अनुभव करता है—

'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।'

प्राण-विसर्जनके समय न स्वयं रोना चाहिये, न अन्य जनको मरणोन्मुख व्यक्तिके समक्ष रोना चाहिये; क्योंकि रोनेसे शान्ति भङ्ग होती है। अपनी मृत्युके समय महाज्ञानी सुकरातने रोनेवाली अधीर स्त्रियोंको अपने स्थानसे दूर हट जानेका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

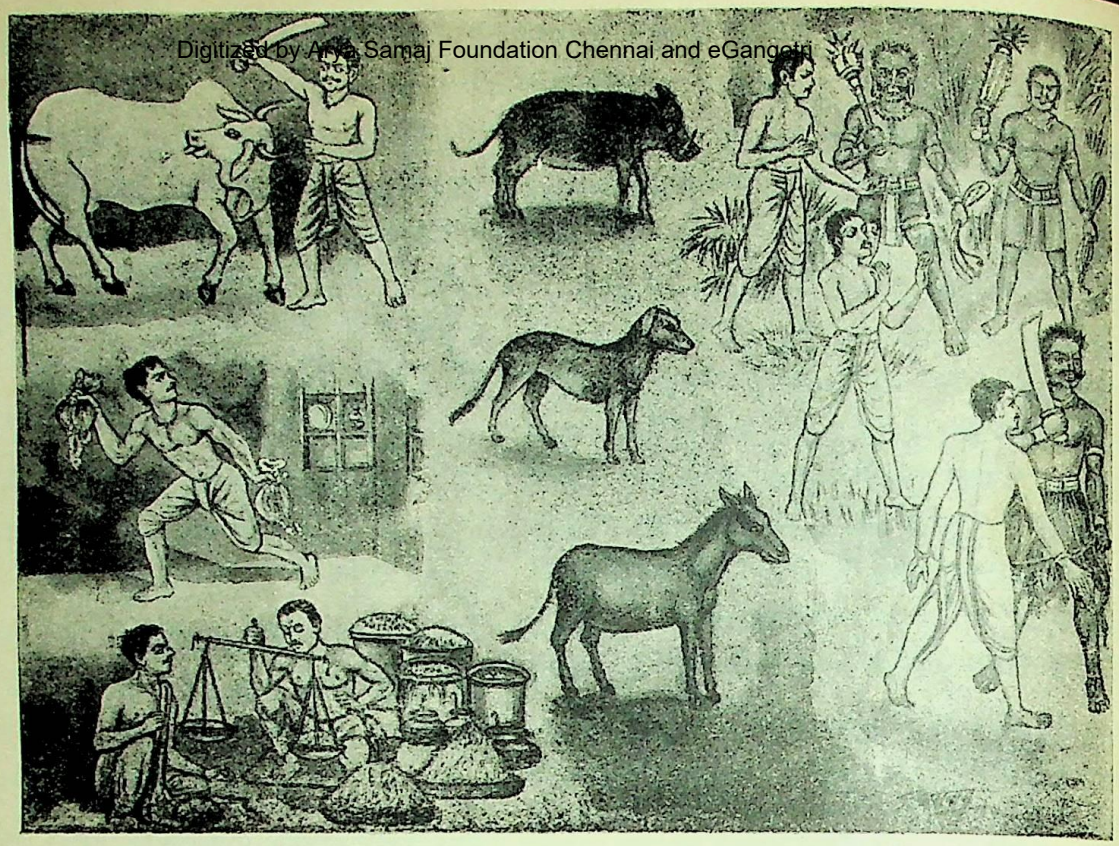

पाप करनेवालोंको आसुरी योनि तथा अधम गतिकी प्राप्ति (गीता १६ । २०)

अनन्य भजनसे महापापी भक्त बन जाता है (गीता ९ । ३०-३१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदेश दिया और अपने प्रशंसकोंको भी न रोनेका आदेश दिया था। कभी-कभी अल्प आयुमें मृत्यु हो जाती है, जिसके कारण माता-पिता, कुटुम्बीजन तथा मित्रगण रोने लगते हैं; किंतु प्रभुका विधान सदैव प्रसन्नतापूर्वक मान्य होना चाहिये। मालीने हरे-हरे पौधोंको भी क्यों काट दिया, माली ही समझता है। कभी-कभी सड़क बनानेके लिये नये-नये मकान भी उखाड़ दिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त सभी अपने-अपने कर्मानुसार अल्पायु अथवा दीर्घायुमें मृत्युको प्राप्त होते हैं। ईश्वरका विधान निर्दोष है। मोहवश रोकर दुःखवृद्धि करना अविवेक है। स्वयं रोना, दूसरोंको रुलाना अविवेक है। अनेक बार सहानुभूति प्रकट करनेवाले व्यक्ति स्वयं अश्रुपात करके दूसरेको शोकनिमग्न कर देते हैं; शोक दूर करनेका प्रयत्न ही नहीं करते हैं।

सत्य तो यह है कि संसारमें मिलना और बिछुड़ना सभी कर्मवश होते हैं। कुछ पक्षी एक वृक्षपर संयोगवश बैठे हैं। फिर वे उड़कर विभिन्न वृक्षोंपर बैठ जाते हैं और पुराने सम्बन्ध भूल जाते हैं। रेलके डिब्बेमें जब तक बैठना है, हँस-खेलकर प्रेमपूर्वक बैठना चाहिये। फिर विभिन्न स्टेशनोंपर सबको एक-एक करके उतरना पड़ेगा। यदि न उतरेंगे तो डिब्बेमें स्थान ही न रहेगा। संसारका खेल विचित्र है। एक व्यक्तिकी मृत्युपर एक स्थानपर रोना मच रहा है और उसके अन्यत्र जन्म लेनेपर किसी माताकी गोदमें पुत्ररत्न आ जाता है और शहनाई बजती है। मृत्यु होनेपर पुराने नाते टूट जाते हैं, जिससे उनका मिथ्यापन सिद्ध हो जाता है।

मृत्यु-महोत्सवके समुपस्थित होनेपर उल्लासका अनुभव करें। रामको हृदयमें आसीन करके, रामके ध्यान-स्मरणमें निमग्न होकर राममें विलीन होना ही जीवन-यात्राकी परम सफलता है।

किञ्चिन्मात्र तो विचार करें कि सच बात क्या है? युधिष्ठिर कहते हैं—

अस्मिन् महामोहमये कटाहे सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन।
मासर्तुदर्वी परिघट्टनेन भूतानि कालः पचतीति वार्ता॥

(महाभारत, वनपर्व ३१३। ११८)

अर्थात् 'यह संसार एक महामोहरूपी कड़ाह है; सूर्यरूपी अग्नि उसे गरम कर रही है, रात्रि और दिन ईंधनकी भाँति उसे परितप्त कर रहे हैं, मास और ऋतु (समय) एक दर्वी (घोटनेवाला डंडा) है, जिसके द्वारा घोटनेसे काल प्राणियोंको (कड़ाहमें) पका रहा है।' वास्तविक (सत्य) बात यह है, शेष सब बातें व्यर्थ हैं।' राममय होकर पवित्रहृदयसे पुण्यकर्म करना ही एकमात्र सुरक्षा है, वास्तविक सुख है।

अवसर बीतनेपर पछतानेसे क्या लाभ ?

लाभ कहा मानुष-तनु पाये।
काय-बचन-मन सपनेहु कबहुँक घटत न काज पराये॥
जो सुख सुरपुर नरक गेह बन आवत बिनहिं बुलाये।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन समुझत नहिं समुझाये॥
पर-दारा, पर-द्रोह, मोह-बस किये मूढ़ मन भाये।
गरभबास दुखरासि जातना तीव्र बिपति बिसराये॥
भय, निद्रा, मैथुन, अहार सबके समान जग जाये।
सुर-दुरलभ तनु धरि न भजे हरि मद अभिमान गवाँये॥
गई न निज-पर-बुद्धि सुद्ध ह्वै रहे न राम-लय लाये।
तुलसिदास यह अवसर बीते का पुनि के पछिताये॥

—तुलसीदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्युपर कुछ विचार

(१)

अन्तिम भावके अनुसार गति

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥
(गीता ८ । ६)

'अन्त समयमें जिन-जिन भावोंको स्मरण करते हुए मनुष्य देहत्याग करता है, अर्जुन ! वह सदा उसी भावसे प्रभावित रहता है और वही-वही भाव—उस भावके अनुरूप देह प्राप्त करता है ।'

अन्तिम समयका क्या अर्थ ? एक व्यक्ति मूर्छित हो जाता है और वह मूर्छा लंबी चलती है। इस मूर्छामें ही उसके प्राण छूटते हैं तो ?

इसका सीधा उत्तर है कि मूर्छासे पूर्वका जो उसका अन्तिम भाव था, वही अन्तिम भाव। मृत्यु मूर्छामें हो, निद्रामें हो या सावधानीमें हो—अन्ततः कोई भाव तो अन्तिम होगा ही। देहत्यागसे पूर्व जो मनका अन्तिम भाव था, जिसके पश्चात् मनमें दूसरा कोई भाव नहीं आया, वह भाव ही यहाँ ग्रहण करने योग्य है। फिर भले उस भावके तत्काल बाद शरीर छूटा हो अथवा कुछ काल पश्चात्।

मरण-क्षणके इस अन्तिम भावकी बड़ी महिमा है। मनुष्यका यही भाव निर्णायक है कि उसकी कैसी गति होगी।

प्रारब्ध कैसे बनता है ?

मनुष्य ही कर्मयोनिका प्राणी है। शेष सब प्राणी भोगयोनिके हैं; अतः मनुष्यदेहके मरण-क्षणकी ही मुख्यता है और मनुष्यके मरनेके समय ही उसके वे सब प्रारब्ध बन जाते हैं, जो भोगयोनियोंमें उसे ले जानेवाले हैं।

जिस समय मनुष्यदेह छूटने लगता है, उस समय उसका प्रारब्ध तो समाप्त हो चुका होता है। अब उसे देहमें कोई भोग भोगना है नहीं। अतः इस जीवनके क्रियमाण कर्म संचितमें मिल चुके हैं। केवल संचित कर्मके संस्कारोंकी राशि रह गयी है और इसीमेंसे उसका नवीन प्रारब्ध बनना है।

मरते समय जो अन्तिम भाव उस मनुष्यके मनमें आया, कर्मनियन्ता सबसे पहले उस भावको सफल करना अनिवार्य मानता है। उस भावके साथ मेल करनेवाले ऐसे संस्कार संचितसे छाँटकर एक प्रारब्ध बनेगा, जिससे उस जीवको एक जन्म मिल सके। यह जन्म पृथ्वीपर ही मिले, यह आवश्यक नहीं है। स्वर्ग, नरक या अन्य किसी लोकमें जन्म मिले, पर वह अन्तिम संस्कार उस जन्ममें सफल बने। अब यह जो एक प्रारब्ध बना, उससे मेल खाता दूसरा, दूसरेसे तीसरा, इस प्रकार प्रारब्धोंकी लड़ियाँ बन जायँगी और यह शृङ्खला वहाँ समाप्त होगी, जहाँ अन्तमें फिर मनुष्य-जन्म मिलनेवाला प्रारब्ध बन जाय।

कर्मानुसार और अन्तिम संस्कार (भाव) के अनुसार यह भी हो सकता है कि किसी जीवका पहला ही प्रारब्ध मनुष्यजन्म पानेका बन जाय और दूसरा प्रारब्ध बने ही नहीं। यह भी हो सकता है कि पूरे चौरासी लक्ष योनियोंमें जानेके अथवा एक-एक योनिमें कई-कई बार जन्म लेनेके प्रारब्ध बनें और तब कहीं मनुष्य-योनि पानेका प्रारब्ध बने। प्रत्येक दशामें शृङ्खला मनुष्यजन्म देनेवाला प्रारब्ध बनाकर समाप्त हो जाती है।

कर्म-नियन्ताके लिये दो नियम मुख्य हैं—१—अन्तिम भाव सफल हो, पहला जन्म ऐसा देना है। २—अब यदि अन्तिम भाव अनेक योनियोंमें सफल हो सकता है तो देखना है कि उसके प्रारब्धोंकी शृङ्खला इस प्रकार बनानी है, जिससे छोटी-से-छोटी शृङ्खला बने। प्रारब्धोंका संयोजन इस प्रकार करना है कि कम-से-कम प्रारब्ध बनें और वह जीव शीघ्र मनुष्य बन सके।

दयामय भगवान्‌का ही यह परम दयापूर्ण विधान है कि जीवको बार-बार यथासम्भव शीघ्र अवसर मिलता रहे, साधन-भजनके द्वारा अपने संचितकी अशुभ राशिको भस्म करके जन्म-मरणसे मुक्त हो जानेका।

(२)

आत्मत्याग-आत्महत्या-स्वेच्छामृत्यु

'आत्मा' शब्दका अर्थ यहाँ स्थूलशरीर है, यह बात हमारी समझमें स्पष्ट रहनी चाहिये; क्योंकि आत्माका जो मुख्यार्थ चेतन है, उसका न त्याग किया जा सकता है और न उसकी हत्या की जा सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गो-हत्या-निरोध'के प्रश्नको लेकर पिछले समय कुछ महाप्राण महात्माओं तथा अन्य लोगोंने अनशन किया था। कुछ विद्वन्मन्य व्यक्तियोंने उस त्यागके महत् प्रयासको 'आत्महत्याका प्रयत्न' कहनेकी धृष्टता की थी। यदि मनुष्यकी बुद्धिमें भ्रम हो जाय तो वह उलटा समझने लगता है। तामसी बुद्धि पुण्यको पाप और पापको पुण्य बतलाती है। अतः आवश्यक है कि हम यहाँ आत्मत्याग, आत्महत्या और स्वेच्छामृत्युके भेदोंको ठीक-ठीक समझ लें।

आत्मत्याग

अनशन ही आत्मत्याग नहीं है। पिछले वर्षों वियत-नाममें कुछ बौद्ध भिक्षुओंने वहाँके शासकके विरोधमें अपनेको सार्वजनिक स्थानोंमें भस्म कर दिया। यह प्रयत्न आत्महत्या माने जायँ, ऐसा कहना धृष्टता होगी।

अनशन और आत्मदाह—ये दोनों आत्महत्या भी हो सकते हैं और आत्मत्याग भी। इनमें उद्देश्यको देखना पड़ेगा। वैयक्तिकरूपसे भी जब अन्यायके प्रतिकारका दूसरा कोई उपाय न रह जाय, तब निर्बलके लिये अनशनका मार्ग अपनाना आत्महत्या नहीं है।

जब कोई धर्म, जाति, समाज या राष्ट्रके लिये अपने जीवनको समर्पित कर देता है, तब उसके प्राणान्तकी रीति क्या रही, इसका कोई अधिक महत्त्व नहीं रह जाता। यतीन्द्रनाथ दास और उत्तम विजयपुंगीने अनशन करके प्राणत्याग किया था। उनका अनशन कारागारमें बंदी देशभक्तोंके कष्टको कम करनेके लिये था। सैकड़ों क्रान्तिकारी फाँसीपर चढ़े अथवा गोलीसे मारे गये। श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी अपने नगरमें होनेवाले साम्प्रदायिक दंगोंको शान्त करनेका प्रयत्न करते समय आततायीद्वारा मार दिये गये। ये सब समानरूपसे महान् एवं आत्मत्याग करनेवाले पुण्यात्मा होने चाहिये।

जब व्यक्तिगत स्वार्थ और सर्वथा अनुचित दुराग्रह किसीके अनशन, आत्मदाह या मृत्युका कारण हो—तभी उसे 'आत्महत्या' कहा जा सकता है। जैसे कोई किसीके विरुद्ध अनशन करे—'मुझे इतने सहस्र रुपये दो या मैं तुम्हारे द्वारपर प्राण दे दूँगा।' अथवा कोई हठ करे—'अमुक वर्ग या परिवार मेरा धर्म, मेरी आराधना-पद्धति अपनावे, नहीं तो मैं आत्मदाह कर लूँगा!' यह सर्वथा आत्महत्याकी बात है। इसे शासनको दण्डनीय मानना चाहिये और सामान्य व्यक्तियोंको ऐसे दुराग्रहोंकी—ऐसी मृत्युकी भी उपेक्षा करनी चाहिये।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीजीने भी कई बार अनशन किया। उनके अनशनको कोई आत्महत्याका प्रयत्न कहे तो वह मूर्ख ही होगा। इसी प्रकार किसी भी महत् प्रयत्नके लिये होनेवाला अनशन अथवा अन्य किसी प्रकारसे मृत्युका वरण 'आत्मत्याग' है, पुण्य है।

जिन कार्योंमें मृत्यु होनेकी सम्भावना अधिक रहती है, उनमें किसी महान् उद्देश्यको लेकर जो सम्मिलित होते हैं—वे भी 'आत्मत्यागी' हैं। उनकी मृत्यु न हो या हो; किंतु उन्होंने अपनी ओरसे तो अपनेको उसके लिये प्रस्तुत कर ही दिया था। जैसे, जो लोग स्वाधीनताके क्रान्तिकारी आन्दोलनमें सम्मिलित हुए, जो लोग सत्याग्रह आन्दोलनमें गोली चलनेकी सम्भावना होनेपर भी जुलूसों और सभाओंमें डटे रहे, जो सैनिक देशकी रक्षाके लिये युद्धमें लड़ते रहे अथवा जिन पुण्यपुरुषोंने गोरक्षार्थ आमरण अनशनका व्रत लिया था, ये सब आत्मत्यागी हैं।

आत्मत्याग महान् पुण्य है; क्योंकि प्राणीको सबसे अधिक मोह शरीरसे—जीवनसे है। किसी महान् उद्देश्यके लिये अपने जीवनके त्यागका संकल्प महत्संकल्प है और उसका पुण्यफल भी महान् है।

आत्महत्या

जहाँ आत्मत्याग महापुण्य है, वहीं आत्महत्या महापाप है। किसी दुराग्रहके वश, किसी रोग-शोक-अर्थहानि-अपमान या इनके भयसे, किसी असफलता-अयश आदिसे घबराकर, किसी लड़ाई-झगड़ेके कारण जब मनुष्य बलात् मरता है, तो उसे 'आत्महत्या' कहा जाता है।

विष खाकर, गोली मारकर, जलमें डूबकर, आगसे जलकर, फाँसी लगाकर, ऊँचेसे कूदकर, रेल या किसी भारी यानके नीचे आकर, बिजलीसे या अन्य किसी भी प्रकारसे मृत्युको चुना जाय, मृत्युकी पद्धतिके कारण कोई अन्तर नहीं पड़ता। इससे आत्महत्याका पाप कम नहीं होता।

आत्मत्याग और आत्महत्यामें एक बड़ा अन्तर है। आत्मत्याग विचारपूर्वक होता है। उसमें आवेश-आवेग नहीं है। आत्महत्या आवेशमें होती है।

आत्महत्याकी इच्छा एक मनोरोग है और उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिकित्सा की जा सकती है, यदि इसका अवसर मिले अथवा उसी व्यक्तिमें इतनी सद्बुद्धि आ जाय।

आत्महत्या महापाप क्यों है ? इसे समझ लेना कठिन नहीं है। जिस कष्ट, अभाव, अपमानादि या इनके भयसे कोई आत्महत्या करनेको उद्यत होता है, वह उसे अपने प्रारब्ध कर्मके फलस्वरूप ही तो प्राप्त हुआ है। इस प्रकार आत्महत्या या उसका प्रयत्न उस प्रारब्ध कर्मका फल भोगनेसे भागनेका प्रयत्न है। किंतु भागनेसे तो कर्मफलके भोगसे कोई बच नहीं सकता। अपने कर्मका फल तो प्राणीको भोगना ही पड़ेगा।

आप जानते हैं कि दण्डप्राप्त बंदी यदि कारागारसे भागे अथवा भागनेका प्रयत्न करे तो यह अपराध है और इस अपराधके लिये उसे दण्ड मिलता है। उसके कारागारकी अवधि बढ़ जाती है। उसे मिली सुविधाएँ छीन ली जाती हैं। उसके साथका व्यवहार पहलेसे कठोर हो जाता है।

विश्वका जो कर्मनियन्ता है, वह सर्वज्ञ है और सर्वसमर्थ है। उसके राज्यमें कोई भागकर कहाँ जायगा ? भागकर बचे रहना—थोड़ी देर भी बचे रहना वहाँ सम्भव नहीं है। कोई पूर्वकृत अशुभ है। उसे भोग लेनेके लिये एक शरीर कर्मनियन्ताने दिया। धैर्यपूर्वक प्रारब्ध भोग लिया जाय—हँसकर भोग लिया जाय तो क्लेश आधा हो जाय। क्लेशको तप मान लिया जाय तो प्रारब्ध तो भोग देकर नष्ट ही हो, तपका पुण्य भी हो। यह सब न हो सके और रोकर, खीझकर भी भोग लिया जाय तो प्रारब्ध तो क्षय हो ही जायगा। अब कोई घबराकर या किसी आवेशमें आकर आत्महत्या करता है—प्रारब्ध-भोगके लिये मिले देहको नष्ट कर देता है, तो इससे क्या प्रारब्ध नष्ट हो गया ? कोई परिवर्तन हुआ प्रारब्धमें ?

कर्मनियन्ताके समीप शरीरोंका अभाव नहीं है। जिसने एक शरीर नष्ट किया है और अनुचित ढंगसे, अनुचित समयपर नष्ट किया है तो उससे अधिक हीन-निकृष्ट शरीर उसको मिलेगा। शरीर नष्ट करने—आत्महत्याके महापापका फल नरकादि भोगने पड़ेंगे। यह अतिरिक्त दण्ड भोगकर फिर वही देह और वही परिस्थिति मिलेगी, जिससे घबराकर आत्महत्या की गयी थी; क्योंकि जिन कर्मोंका फल वह स्थिति थी, वे तो नष्ट हुए नहीं हैं। वे तो अपना भोग देकर ही समाप्त होनेवाले हैं।

इस प्रकार आत्महत्याका प्रयत्न केवल मूर्खता है। उससे व्यक्ति अपने क्लेश बढ़ा ही लेता है। किसी क्लेश-अपमानादिसे उसका छुटकारा इस रीतिसे हुआ नहीं करता।

अनेक बार जीवनमें ऐसी स्थिति बन जाती है कि व्यक्तिको वह असह्य लगती है। वस्तुतः वह असह्य होती नहीं है। कई बार तो बात कुछ नहीं होती और मनुष्य भ्रमवश उसे बहुत बड़ी कल्पना कर लेता है। परीक्षामें अनुत्तीर्ण छात्रोंमें जो आत्महत्या करते हैं, प्रायः वे इस भ्रममें होते हैं कि उनका बहुत उपहास होगा अथवा उनके अभिभावक बहुत अप्रसन्न होंगे। बात इतनी बड़ी नहीं होती। अधिकांश छात्रोंको अनुभव है कि अनुत्तीर्ण होनेपर कहीं उपहास या अप्रसन्नता मिली भी तो वह असह्य नहीं होती। अतः यदि किसीको स्थिति असह्य लगती है तो उसे तत्काल कुछ न करके अपने निर्णयको क्रियाका रूप देनेमें विलम्ब करना चाहिये। किसी-न-किसीको अपना संकल्प बतला देना चाहिये। किसी होम्योपैथिक सुचिकित्सकके यहाँ जाकर उपर्युक्त दवाकी गोलियाँ खा लेनी चाहिये।

इच्छामृत्यु

अपनी इच्छासे मृत्युको स्वीकार कर लेनामात्र 'इच्छा-मृत्यु' नहीं है। ऐसा करना तो आत्मत्याग भी हो सकता है और आत्महत्या भी। अतः इच्छामृत्युका अर्थ समझा जाना चाहिये।

इच्छामृत्यु भी तीन प्रकारकी होती है—१—मृत्युका समय आ जानेपर अपने इच्छानुसार ढंगसे देह-त्याग करना। २—मृत्युकाल आनेपर भी उसे अपने इच्छानुसार कुछ समयके लिये टाल देना और अभीष्ट समयमें देह-त्याग करना। ३—मृत्युकाल भले न आया हो; किंतु शास्त्राज्ञासे देह-त्याग प्राप्त होनेपर उस निर्दिष्ट विधिसे देहका त्याग कर देना।

१—योगी प्राणान्तका समय आनेपर कैसे देह-त्याग करे, इसका वर्णन कई ग्रन्थोंमें है। उस समय समान आसनपर पूर्वाग्र कुश बिछाकर, उसपर मृग-(या व्याघ्र-) चर्म बिछावे। उसके ऊपर ऊनी आसन बिछाकर स्थिर आसनसे बैठे। शरीर सीधा कर ले। प्राणकी गतिको नियन्त्रित करके श्वासोच्छ्वास बंद कर दे। पैरकी एड़ियोंसे मल एवं मूत्रद्वार दबे—अवरुद्ध हों।

इतना हो जानेपर नाभिचक्रसे उदानवायुको धीरे-धीरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदयमें ले आकर कुछ देर (कुछ पल) स्थिर रक्खे। फिर प्राणवायुके साथ उसे कण्ठमें होते भ्रूमध्यमें ले आवे। यहाँ हृदयकी अपेक्षा कुछ अधिक देर वायुको रोके रहे। यहाँसे ऊपर मस्तकमें (ब्रह्मरन्ध्रमें) वायुको ले जाय और आधे मुहूर्त वहाँ रोककर, प्रणवका मानसिक उच्चारण करता हुआ, अपने इष्टदेवका स्मरण करता हुआ अथवा लय-पद्धतिसे तत्त्वोंके लयका चिन्तन करके, एक परमात्मामें स्थित हो, वायुको मूर्धाद्वारका स्फोट करके निकल जाने दे।

यह सर्वश्रेष्ठ इच्छामृत्यु है। इतना कर पानेमें जो समर्थ नहीं हैं, वे मृत्युकाल उपस्थित जानकर अपनी भावनाके अनुसार जप करते, पाठ करते या सुनते हुए देह-त्याग करते हैं।

२—मृत्युकाल उपस्थित हो जानेपर भी उसे थोड़े समयके लिये टाल देनेमें कुछ महापुरुष समर्थ होते हैं। महाभारतके युद्धमें पितामह भीष्म रथसे गिर पड़े। उनके अङ्गोंमें इतने बाण लगे थे कि शरीर भूमिपर न गिरकर उन बाणोंपर ही रुका रहा। इस शरशय्यापर पड़े-पड़े भी उन्होंने दक्षिणायनमें प्राण-त्याग करना ठीक नहीं समझा और सूर्यके उत्तरायण होनेकी प्रतीक्षा करते रहे।

महाभारतका युद्ध मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशीको प्रारम्भ हुआ। इसी तिथिको गीता-जयन्ती मनायी जाती है। युद्धके दसवें दिन अर्थात् पौष कृष्ण पञ्चमीको पितामह भीष्म शरशय्यापर गिरे। माघ शुक्ल अष्टमी (भीष्माष्टमी) को उन्होंने सूर्यके उत्तरायण होनेपर देह-त्याग किया। इस प्रकार डेढ़ महीने उन्होंने मृत्युकाल टाल दिया।

३—शास्त्रोंमें अमुक स्थितिमें देह त्याग देनेका निर्देश है। जैसे वानप्रस्थाश्रम ग्रहण करते समय अपनी शारीरिक क्षमता देखकर एक, दो, तीन, पाँच, सात, नौ या बारह वर्ष इस आश्रममें रहनेका संकल्प ग्रहण किया जाय—ऐसा निर्देश है। अब यदि उस संकल्पका समय तो पूरा हुआ नहीं और रोग या दुर्बलताके कारण वानप्रस्थाश्रमके कठोर नियम-तपादिका पालन सम्भव नहीं रह गया, तो क्या किया जाय? असमर्थ होनेपर नियम-पालन छोड़ने या ढीला करनेकी छुट्टी दूसरे आश्रमोंमें तो है; किंतु वानप्रस्थाश्रममें नहीं है। वानप्रस्थके लिये विधि है कि नियम-पालन सम्भव न हो तो अनशन करके, अथवा अग्नि प्रज्वलित करके उसमें प्रवेश करके देह-त्याग कर दे।

कई प्रकारके पापोंका मरणान्त प्रायश्चित्त शास्त्रोंने बतलाया है। कौन-से पापके प्रायश्चित्तमें किस प्रकार देह-त्याग किया जाय, यह वर्णन भी है। जैसे आचार्य श्रीकुमारिल भट्टने त्रिवेणीतटपर तुषा (भूसी) की अग्निमें बैठकर (धीरे-धीरे जलते हुए) देह-त्याग किया था।

कुछ विशेष स्थलोंपर परिस्थितिविशेषमें विशेष रीतिसे देह-त्यागकी अनुमति थी। 'काशी-करवत' इनमें बहुत प्रसिद्ध है। अब ये पद्धतियाँ लुप्त हो चुकी हैं।

इस प्रकारके देहत्यागको आत्महत्या नहीं माना गया है। यह आत्मदान भी नहीं है। शास्त्र इसे 'इच्छामृत्यु' कहता है। इसमें आत्महत्याका पाप नहीं होता।

(३)

असामान्य जन्म एवं मृत्यु

महर्षि अगस्त्य एवं वसिष्ठका जन्म घटसे हुआ था। स्वामिकार्तिकेय सरकंडोंके वनमें उत्पन्न हुए। भगवती जानकी प्रकट हुई भूमिसे। द्रौपदी और उनके भाई धृष्टद्युम्नका प्राकट्य यज्ञवेदीसे हुआ। ऐसे बहुत-से असाधारण जन्मोंकी बातें पुराणोंमें हैं।

इसी प्रकार असाधारण देह-त्यागके वर्णन भी मिलते हैं। जैसे—सांख्याचार्य भगवान् कपिलकी माताने जब शरीर छोड़ा तो उनका शरीर पानी बन गया और उससे एक नदी निकली। श्रीचैतन्य महाप्रभुका शरीर श्रीजगन्नाथजीके श्रीविग्रहमें लीन हो गया। मीराँबाईका शरीर श्रीद्वारिकाधीशके श्रीविग्रहमें प्रविष्ट हो गया।

उदाहरण तो पुराण-उपपुराण तथा तीर्थोंके स्थल पुराणोंमें ऐसे बहुत मिल जायँगे। यहाँ घटनाओंका विवरण नहीं देना है। ऐसा कैसे होता है, इसपर विचार करना है।

भगवती जानकीका अवतार हुआ। उनका शरीर दिव्य था—चिन्मय था। महर्षि अगस्त्य एवं महर्षि वसिष्ठ पूर्व-जन्मके भी महर्षि थे और उनमें विशेष शक्ति थी। स्वामिकार्तिक देवता हैं। उनका शरीर भौतिक मानव-शरीर है ही नहीं। लगे हाथ आप द्रौपदीको भी अवतार अथवा दिव्यदेह कह लीजिये; किंतु धृष्टद्युम्न तो न अवतार था, न उसका शरीर दिव्य था। द्रौपदी और धृष्टद्युम्न—ये दोनों महाराज द्रुपदके यज्ञमें यज्ञीय कुण्डकी अग्निसे प्रकट हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये प्रकट हुए युवावस्थाका शरीर लिये। द्रौपदी सर्वाभरण-भूषिता प्रकट हुई। धृष्टद्युम्न कवच पहिने, धनुष लिये, त्रोण बाँधे तथा आभूषण एवं मुकुट धारण किये प्रकट हुआ।

वर्णन पढ़-सुनकर लगता है कि द्रौपदी एवं धृष्टद्युम्न दोनों दिव्य देह हैं; किंतु महाभारत-युद्धके अन्तमें अश्वत्थामाने रात्रिमें पाण्डव-शिविरपर आक्रमण करके जैसे धृष्टद्युम्नका वध किया, वह वर्णन कहता है कि धृष्टद्युम्न सामान्य पाञ्चभौतिक शरीरवाला ही था। अश्वत्थामाने उसे घूसे-थप्पड़ मारकर, उसके अङ्गोंको तोड़-मरोड़कर बड़ी निर्दयतासे मारा। उसका शरीर मांसका लोथड़ा बन गया।

जहाँ असाधारण जन्मकी यह बात है, वहीं देह-त्यागके सम्बन्धमें भी कुछ वर्णन आश्चर्यमें डालनेवाले हैं। ध्रुवका सशरीर विमानमें बैठकर दिव्यलोक जाना किसी प्रकार समझा जा सकता है। माता देवहूतिका शरीर पानी होकर बह गया, यह मान लें कि भगवान् कपिलका उन्हें माता बनानेका प्रभाव था; किंतु पाञ्चभौतिक शरीर ठोस मूर्तिमें कैसे समा गया? मूर्ति न श्रीजगन्नाथजीकी खोखली है, न श्रीद्वारकाधीशकी। इन मूर्तियोंमें कुछ मुटापा बढ़ा हो, वजन बढ़ा हो, ऐसा भी वर्णन नहीं है। तब चैतन्य महाप्रभु या मीराँबाईके शरीरमें जो ठोस पार्थिव पदार्थ थे, उनका क्या हुआ?

आप यदि भौतिकवाद—जडवादमें आस्था रखते हैं तो आपके लिये इन बातोंका कोई समाधान नहीं है। आपको इन्हें भावुक लोगोंकी कल्पना—अन्धश्रद्धा कहना ही पड़ेगा। आप पुराणोंको या तो सर्वथा अस्वीकार करेंगे या उनके बहुत बड़े भागको 'प्रक्षिप्त' कहनेका मार्ग निकालेंगे।

यदि आप जडवादी नहीं हैं, 'सृष्टिका मूलतत्त्व जड नहीं है, चेतन है'—ऐसा मानते हैं, तो आपको इन सब बातोंकी संगति प्राप्त करनेमें कठिनाई नहीं होनी चाहिये; क्योंकि चेतन किन्हीं नियमोंमें आबद्ध नहीं होता। हम यन्त्रके सम्बन्धमें कह सकते हैं कि उसके कार्य करनेके अमुक नियम हैं। किसी चेतन प्राणीके सम्बन्धमें तो हम यह भी नहीं कह सकते कि कल वह क्या भोजन करना चाहेगा। भले उसने वर्षोंसे अपने आहारका एक नियम कर रक्खा हो; किंतु उस नियमको चाहे जब बदल देनेमें तो वह समर्थ है ही।

ईश्वरके अस्तित्वमें आस्था रखनेवाले सभी आचार्य सृष्टिको ईश्वरके द्वारा हुई मानते हैं। वैदिक-सनातनधर्मी मानते हैं कि सृष्टि ब्रह्माके संकल्पसे हुई। यहूदी, ईसाई, मुसल्मान आदि भी मानते हैं कि संसारको ईश्वरने अपने संकल्पसे बनाया। संकल्पसे वैसे नहीं, जैसे मूर्तिकार मूर्ति बनाता है। पत्थर या धातु पहलेसे होती है, छेनी-हथौड़ी-साँचे पहलेसे होते हैं। मूर्तिकारका संकल्प केवल आकार बनाता है। वह मूर्तिकी धातु नहीं बनाता। ईश्वरका संकल्प संसारकी मूल धातुएँ और उनके आकार दोनों बनाता है।

जो लोग प्रत्येक तथ्यको मिथ्या, दम्भ कह देनेवाले हैं—जो इतने बुद्धिमान् हैं कि अपने अतिरिक्त संसारमें दूसरे किसीको विश्वसनीय अथवा बुद्धिमान् समझते ही नहीं और इसीलिये जबतक हर बात उनके सामने, उनकी पद्धतिसे परीक्षण करके सिद्ध न की जाय, उसे वे तथ्य मान ही नहीं सकते, ऐसे महान् बुद्धिविशारदोंको समझा लेना सृष्टिकर्ताके लिये भी सम्भव नहीं है। अन्यथा सिद्धियों और संकल्प-शक्तिकी अद्भुत क्षमताको आजके वैज्ञानिक विश्वमें भी स्वीकार कर लिया गया है और सर्वथा जडवादी देश भी इनके सम्बन्धमें प्रयोग करनेमें लगे हैं।

सिद्धिका तत्त्व क्या है? यदि जगत् भावात्मक न हो—यदि पदार्थ संकल्प-निर्मित ही न हों तो उनमें आमूल परिवर्तन संकल्प कैसे कर सकता है? उदाहरणके लिये एक व्यक्ति अणिमा सिद्धिसे अपना शरीर सर्वथा छोटा बना लेता है। उसके शरीरमें जो रक्त-मांस-हड्डियाँ थीं—वे क्या हुईं? अस्थियोंकी लंबाई, रक्त-मांसादिका वजन क्या हुआ? अणिमासे बहुत छोटे हुए शरीरमें तो वे सब समा नहीं सकते। इसी प्रकार जब वह अपना शरीर बहुत बड़ा कर लेता है, क्या होता है? क्या केवल गुब्बारेके समान फूलकर शरीर बढ़ता है? ऐसा तो नहीं होता। सिद्धके दीर्घ शरीरमें भी उतना ही ठोसपना रहता है, जितना उसका साधारण शरीरमें।

आपने सिद्धियोंका वर्णन केवल पढ़ा-सुना है। ये सिद्धियाँ ऐसी हैं कि इनका दर्शन आजकल कदाचित् ही हो पाता है; किंतु हिप्नाटिज्मके चमत्कार आज संसारमें अपरिचित नहीं हैं और भूत-प्रेतादिद्वारा लाये, मँगाये पदार्थ भी बहुत लोगोंने देखे हैं।

संकल्प-शक्तिके द्वारा एक पदार्थ दूसरे पदार्थमें बदला गया, ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं। किसीको सम्मोहित (मेस्मराइज्ड) करके उसके हाथपर बरफका टुकड़ा रखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे कह दें—'यह अग्नि है' तो उसके हाथपर फफोला पड़ जायगा। उस व्यक्तिके मनमें असंदिग्धभाव बना कि वह अग्नि है, यह तो ठीक; किंतु ठोस भौतिक पदार्थ बरफका गुण-धर्म उसके संकल्पने कैसे बदल दिया ?

इतनी सब बातोंको यहाँ लिखनेका तात्पर्य यह है कि सिद्धियोंका तत्त्व ही यही है कि जगत्के पदार्थ वस्तुतः ठोस पदार्थ नहीं हैं। वे संकल्पात्मक हैं। सृष्टिकर्ताका संकल्प ही घनीभूत होकर हमें इन पदार्थोंके विभिन्न रूपोंमें उपलब्ध हो रहा है। जैसे स्वप्नका समस्त दृश्य, उसके सब पदार्थ संकल्पात्मक होते हैं, उसी प्रकार हमारा जाग्रत्का यह संसार भी संकल्पात्मक ही है। इसीलिये प्रबल संकल्प इसमें अपने अनुकूल परिवर्तन कर लिया करता है।

'जगत् स्वप्नवत् है। यह मायामय है।'—इस प्रकारकी बातें प्रायः सभी धार्मिक ग्रन्थोंमें प्रचुरतासे पायी जाती हैं। एक बार आप इसे ठीक हृदयंगम कर लें तो जगत्में जो कुछ भी अद्भुत आश्चर्यजनक लगता है, उसको समझनेमें आपको कठिनाई नहीं होगी। इस तथ्यको अवगत किये बिना जो भी समाधान ढूँढ़ें अथवा दिये जायँगे, उनकी अपूर्णता नयी-नयी शङ्काएँ उत्पन्न ही करती रहेंगी।

अब अपने मूल विषयपर आवें। जब जगत्के सब पदार्थ संकल्पात्मक हैं, तब शरीर भी संकल्पात्मक ही है। किसीका शाप-वरदान अथवा अपना प्रबल संकल्प शरीरको अपने अनुकूल परिवर्तित कर सकता है, सिद्धिके द्वारा शरीर भारी-हल्का, छोटा-बड़ा हो सकता है, तो शरीरका जन्म तथा उसका लय भी प्रबल संकल्पके अनुसार हो सकता है; क्योंकि संकल्प मनमें होता है और स्थूल शरीरके न रहनेपर भी मन तो रहता ही है।

जो तपस्वी, सिद्ध पुरुष माताके गर्भमें आना पसंद नहीं करते, उनका संकल्प ही उन्हें 'अयोनिज' जन्म दे देता है। महर्षि अगस्त्य, महर्षि वसिष्ठ, द्रौपदी, धृष्टद्युम्नादिकी जन्मकथाएँ इसी बातको बतलाती हैं। इनके पूर्वजन्मका वर्णन पढ़नेपर यह बात स्वयं स्पष्ट हो जाती है। संकल्प यदि प्रबल है तो स्रष्टाके संकल्पसे एक होकर उसीमें परिवर्तन कर लेता है। इन्द्रजाल करनेवाले पदार्थको थोड़ी देरके लिये दिखा देते हैं, अनुभव करा देते हैं। उस समय वह पदार्थ देखने, छूने, चखनेमें वास्तविक ही लगता है। जो बात संकल्प कुछ क्षणके लिये सम्भव बना सकता है, वही बात अधिक शक्ति होनेपर कुछ वर्षके लिये भी सम्भव बना सकता है, यह बात समझमें आनी चाहिये। इस प्रकार उनके शरीर वैसे ही साधारण होते हैं या हो सकते हैं, जैसे साधारण जन्मसे उत्पन्न शरीर। यह बात वैसी ही है जैसे संकल्प-बलसे बनाये गये या बदले गये पदार्थ गुण-धर्ममें साधारण पदार्थों-जैसे ही बनते हैं और साधारण पदार्थोंके समान ही उनपर वातावरणका प्रभाव पड़ता है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु या मीराँबाईने कोई संकल्प नहीं किया था श्रीविग्रहमें लीन होनेका; किंतु सहज भावसे उनका मन उस श्रीमूर्तिमें लीन हो रहा था। यह तल्लीनता जब बहुत बढ़ गयी—शरीर भी उस मूर्तिमें लय हो गया। शरीरका यह रूप भी मनने ही दिया है। हमारा स्थूल-शरीर हमारे सूक्ष्मशरीरके अनुरूप ही बना है। जब सूक्ष्म शरीरमें—मनमें सम्यक् एवं पूर्णतः दूसरा आकार आ गया, उससे तादात्म्य हो गया तो इस शरीरका भी उसमें तादात्म्य हो जाना स्वाभाविक है। माता देवहूतिके मनमें किसी आकारसे तादात्म्य नहीं आया। केवल भक्तिके कारण हृदयका परिपूर्ण द्रवीभाव सम्पन्न हुआ; अतः उनका स्थूल-देह भी द्रवीभूत हो गया।

(४)

परेच्छाभोग एवं अकालमृत्यु

यह विश्व परस्पराश्रित एवं परस्पर समन्वित ही चलता है। यहाँ कोई एक व्यक्तित्व अपने-आपमें स्वतन्त्र नहीं है। अपने शरीरमें ही हम देखते हैं तो इसका प्रत्येक कण अपनी क्रियाके लिये पूरे शरीरपर आश्रित है और अपनी क्रियासे पूरे शरीरको प्रभावित करता है। जब कोई कण शरीरसे पृथक् कुछ करने लगता है तो वह रोगका कारण बन जाता है। उसकी चिकित्सा करनी पड़ती है। इसी प्रकार हम सब लोग विराट् भगवान्के शरीरमें स्थित हैं। हम सब अपनी क्रिया एवं अपने भोगके लिये भी विराट्—समष्टिपर निर्भर हैं।

परेच्छाभोग—दुःख, अयश, अभाव, रोग, असुविधा, अवनति कोई नहीं चाहता; किंतु सबके जीवनमें ये आते हैं। रोग, शोक, बुढ़ापा और मृत्यु, जीवनमें क्यों आते हैं ? इसलिये आते हैं, क्योंकि प्रारब्धका भोग वैसा है। इन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न चाहनेपर, टालनेका भरपूर प्रयत्न करके भी टाला नहीं जा पाता है।

आपने कभी सोचा है—जो कर्मनियन्ता आपके न चाहनेपर भी रोग, शोक, बुढ़ापा, मृत्यु आदि ठीक समयपर भेजनेमें नहीं चूकता, वही कर्मनियन्ता प्रारब्धके सुख, सुयश, सम्पत्ति आदि समयपर आपके समीप भेजनेमें चूक जायगा ?

कठिनाई यही है कि आज हम आस्थाहीन हो गये हैं। केवल मुखसे परमात्मा या प्रारब्धको स्वीकार करते हैं। बहुत-से लोग तो मुखसे भी इनको स्वीकार नहीं करते। जो स्वीकार करते हैं, अपनेको आस्तिक कहते हैं, उनकी भी आस्था इनपर नहीं है। यह बहुत कटु बात है; किंतु सत्य यही है कि आज समाजकी आस्था पापपर है, ईश्वर और प्रारब्धपर नहीं है।

'झूठके बिना व्यापार चलता नहीं।'—जब आप यह कहते हैं और जब आप मानते हैं—'आजके समाजमें तो कुछ झूठ-छल आदि अपनाना ही पड़ता है', तब आप किसपर आस्था कर रहे होते हैं ? निश्चय ही पापपर।

छल-कपट, चोरबाजारी-घूसखोरी, धोखा-धड़ी, मिलावट आदि सब इसलिये चल रही है कि मनुष्यकी पापपर आस्था है; जब कि सत्य यह है कि आपको जो भोग—जो पदार्थ या पद मिलता है, वह न आपकी चतुराई और जोड़-तोड़का फल है और न आपके श्रम एवं योग्यताका परिणाम है। वह है आपके प्रारब्धका अनिवार्य फल। कर्मनियन्ताने उसे उसी प्रकार आपके लिये पहलेसे सजा रक्खा था, जैसे वह रोग-असफलतादि सजा रखता है।

आप इतिहास देख लें और अपने आस-पास देख लें कि कितने योग्य, परिश्रमी और जोड़-तोड़, धोखा-धड़ीमें अत्यन्त पटु लोग असफल हुए—हो रहे हैं और कितने कम योग्य, कम पहुँचवाले लोग भी अच्छी स्थितिमें हैं। पापपर आस्था करके जो कुछ किया जाता है, उससे केवल पाप बढ़ता है और पापका फल सुख नहीं है। पापका फल दुःख है। वह आज या कल अवश्य मिलनेवाला है।

सामान्य व्यवहारमें जो सुख या दुःख हम अपनी इच्छासे स्वीकार करते हैं—उसे 'स्वेच्छाभोग' कहते हैं और जिसे परेच्छासे स्वीकार करते हैं, उसे 'परेच्छाभोग' कहा जाता है। प्रारब्धकर्मका भोग तीन प्रकारसे माना जाता है—१—स्वेच्छा, २—परेच्छा और ३—दैवेच्छासे।

स्वेच्छाभोग—आप व्रत-उपवास करते हैं अथवा विविध पक्वान्न बनाकर खाते हैं। यह उपवास अथवा प्रिय भोजन प्राप्त तो हुआ आपको प्रारब्धसे; किंतु इसमें आपकी अपनी अनुकूल इच्छा सम्मिलित हो गयी, इसलिये आप इसे स्वेच्छासे हुआ भोग मानते हैं। स्वेच्छाभोग, क्योंकि अपनी इच्छासे आया, अतः सुखद होता है। इसमें कष्ट और श्रम भी हो तो भी मनुष्यको प्रसन्नता होती है। व्रत करना हो या श्रम-दान, यदि वह स्वेच्छासे है तो उत्फुल्ल करता है।

परेच्छाभोग—आप चाहते नहीं हैं; किंतु कुछ लोग चन्दा लेने आते हैं तो संकोचवश अथवा उनके दबावसे दान करना पड़ता है। इसी प्रकार श्रम-दानमें लगना पड़ता है। कोई आपको पीट देता है या पुलिस पकड़ लेती है; आपकी इच्छा न होनेपर भी कोई आपको उत्तम भोजन करा देता है या पुष्पमाला पहिना देता है; कोई आपका सम्मान करता है—ये प्रतिकूल या अनुकूल भोग भी प्रारब्धसे ही प्राप्त हुए; किंतु इनमें जो आपके मनके प्रतिकूल थे, उनसे आपको दुःख होगा और जो अनुकूल होंगे, उनसे आपको सुख होगा।

परेच्छाभोग भी दो प्रकारके हैं—१—संसारके लोगोंके माध्यमसे प्राप्त होनेवाले भोग और २—स्थूल जगत्‌के लिये जो अदृश्य हैं, उन देवता, पितर, सिद्ध, भूत-प्रेतादिके माध्यमसे प्राप्त होनेवाले भोग।

इन दोनोंके ही दो भेद किये जा सकते हैं और स्वेच्छाभोगके भी ये दो भेद होते हैं—१—प्रारब्धका फल ही स्वेच्छासे अथवा दूसरोंके माध्यमसे प्राप्त होता है। २—स्वेच्छासे सकाम अनुष्ठानद्वारा और परेच्छासे उन-उनकी विशेष शक्तिके कारण ऐसा सुख या दुःख भी प्राप्त हो सकता है, जो प्रारब्धमें सामान्यतः नहीं था।

दैवेच्छाभोग—रोग, बुढ़ापा, मृत्यु आदि ही नहीं, जीवनके वे सब सुख-दुःख, जो हमने अपनी इच्छासे स्वीकार नहीं किये और जो दूसरोंके माध्यमसे नहीं आये, दैवेच्छासे आये। कर्मनियन्ताकी प्रेरणासे यह प्रारब्धभोग प्राप्त हुआ।

सामान्यतः दैवेच्छासे केवल प्रारब्धका भोग ही प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। कर्मका नियन्ता अपनी ओरसे कोई परिवर्तन प्रारब्धमें नहीं करता। लेकिन इस नियममें भी अपवाद है। जो भगवान्‌का आश्रय लेनेवाले लोग हैं, उनके सर्व-समर्थ परम दयामय प्रभु भले सर्वसामान्यके लिये समदर्शी हों; किंतु अपने शरणागतके लिये तो वे 'भक्तपक्षपाती' हैं। वे अपने आश्रितके ऐसे प्रारब्धभोगको, जो उसका अमङ्गल कर सकता हो (उनकी दृष्टिमें अमङ्गलकारी हो), निष्क्रिय कर देते हैं। भगवान्‌ने श्रीमद्भागवतमें स्वयं कहा है—

'यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।' (१०।८८।८)

'जिसपर मैं कृपा करता हूँ, (अनर्थोंमें ले जानेवाला) उसका धन मैं हरण कर लेता हूँ।'

अब प्रारब्धमें यदि उसके धन हो ही नहीं तो उसके हरणकी बात क्यों कही जाय? केवल धन ही आप हरण नहीं करते, दुःख-दुर्भाग्य और पापादि समस्त अमङ्गलोंका हरण कर लेते हैं।

सबको स्वेच्छाभोग बनाइये

प्रारब्ध केवल परिणाम प्रकट करता है। आप कर्म करनेमें स्वतन्त्र हैं; अतः मानसिक कर्म करनेमें—भावना करनेमें भी आप स्वतन्त्र हैं। अतः आप चाहें और थोड़ा अभ्यास कर लें तो प्रारब्धके सब भोगोंको आप स्वेच्छा-भोग बना ले सकते हैं और ऐसा करनेपर आपके दुःख तो मिट ही जायँगे, हर कष्ट, हर अभाव आपको पुण्य देनेवाला बन जायगा।

आप परिस्थिति परिवर्तित कर देनेमें स्वतन्त्र नहीं हैं, यह बात प्रतिकूल परिस्थितिके लिये ठीक है। अनुकूल परिस्थिति—सुखके त्यागके लिये आप स्वतन्त्र हैं; क्योंकि नियम यह है कि पुण्यका भोग—पुरस्कारके त्यागमें प्राणी स्वतन्त्र होता है। पापका भोग—अपराधके दण्डको तो स्वीकार ही करना पड़ता है।

अब आप देखिये कि कर्म करनेमें—भावना बनानेमें तो आप स्वतन्त्र हैं ही, प्रारब्धमें भी जो सुखद है, अनुकूल है, उसे त्याग देनेमें—उसका दान कर देनेमें आप स्वतन्त्र हैं। केवल प्रतिकूल प्रारब्धको अस्वीकार करनेमें आप स्वतन्त्र नहीं हैं। यह प्रतिकूल प्रारब्ध भी जब स्वेच्छाभोगके रूपमें आता है, तो उससे आपको कोई कष्ट नहीं होता। उलटे उससे आपको प्रसन्नता होती है। आप व्रत, तप, दान, यज्ञ आदिमें भूखे रहते हैं, श्रम करते हैं, धनका त्याग करते हैं और इसमें प्रसन्नता तथा गौरवका अनुभव करते हैं। यह सब करके आपको पुण्य होता है।

परेच्छा या दैवेच्छासे जो प्रतिकूलता आती है, उसमें आप तप या त्यागकी भावना बना लें तो वह भी स्वेच्छा प्रारब्धके समान आपको पुण्य देगा तथा उसमें दुःख नहीं रहेगा। वह भी आपको प्रसन्न करेगा। एक साधुको ज्वर आया था। मैं उनके समीप गया तो वे बोले—'आज तप कर रहा हूँ। लोग पञ्चाग्नि तापते हैं, मैं जाठराग्नि ताप रहा हूँ।' अब ज्वर जितना तीव्र हो, तपकी बुद्धि उसमें उतनी ही अधिक। ज्वरकी पीड़ा तो ज्यों-की-त्यों बनी रही; किंतु उसमें दुःख नहीं रहा। उसमें गौरवभाव आ गया और ज्वरमें तपका पुण्य होने लगा।

मेरे एक परिचित व्यापारी हैं। बहुत ईमानदार, सच्चे तो हैं ही, बहुत प्रसन्नमुख, परिश्रमी और अध्ययनशील व्यक्ति हैं। व्यापारमें कभी हानि होती है तो प्रसन्नमुख कहते हैं—'सब मुझे ही क्यों मिलना चाहिये? समाजने अपना भाग दान ले लिया।' अब घाटेमें उन्हें दान-बुद्धि हो गयी तो दुःख तो बिदा हो ही गया, दान करनेका पुण्य भी होता ही है।

एक सज्जन गिर गये। कड़ी चोट लगी। हड्डी टूट गयी। पैरपर पलस्तर चढ़ा था। हँसते हुए कह रहे थे—'चलो, प्रायश्चित्त हो गया। इन पैरोंसे जाने कितने ठौर-कुठौर घूमा हूँ, अब इन्हें दण्ड तो मिलना ही चाहिये था।'

'रपट पड़े की हरगंगा' व्यर्थ नहीं है। सचमुच उनका प्रायश्चित्त हो गया। आप भी इस प्रकारका अभ्यास कर लें तो प्रारब्धसे आये प्रतिकूल भोग आपको दुखी नहीं करेंगे—उनमें व्यथा नहीं होगी। साथ ही वे पुण्य देकर अथवा पापका प्रायश्चित्त पूरा कराकर जायँगे। आप उनके द्वारा यह दुहरा लाभ उठाना सीख लें।

अकालमृत्यु

केवल प्रारब्धसे आये दुःखोंके सम्बन्धमें ही भावना बदली जा सकती हो, ऐसी बात नहीं है। भावना तो मृत्युके सम्बन्धमें भी बदली जा सकती है। मृत्युके सम्बन्धमें भाव बदल लिया जाय तो वह सब झंझटोंसे—जन्म-मरणसे ही मुक्त कर देनेवाली हो जाती है। मृत्युके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धमें जो भाव कर लेते हैं—'अब निर्वाण हो रहा है' उन्हें मृत्यु सचमुच निर्वाण प्रदान करनेवाली बन जाती है।

यह मृत्यु भी दो प्रकारकी है—१—कालमृत्यु और २—अकालमृत्यु। आप भगवान्‌के चरणामृतका माहात्म्य सुनते हैं—'अकालमृत्युहरणम्'। यदि अकालमृत्यु कुछ हो ही नहीं तो उसे हरण करनेकी बातका अर्थ क्या ?

कालमृत्यु—प्रारब्धके अनुसार जिस जीवको, जिस शरीरमें जितने समयतक रहना है, उतने समयतक वह उस शरीरमें रहकर जब मरता है तो उसे 'कालमृत्यु' कहते हैं।

इस कालमृत्युके निमित्त कुछ भी हो सकते हैं। रोग, चोट, युद्ध, सर्पादि प्राणी या और कोई भी निमित्त कालमृत्युका हो सकता है।

सामान्यरूपसे कालमृत्युको टाला नहीं जा सकता। औषध, तन्त्र-मन्त्रादिसे कालमृत्यु नहीं टलती। लेकिन प्रबल अनुष्ठान, देवताका अनुग्रह या किसी समर्थका आयुदान नवीन प्रारब्ध-निर्माण करके कालमृत्युको भी टाल दे सकता है।

अकालमृत्यु—प्रारब्ध समाप्त हुए बिना ही जब कोई प्राणी शरीर त्याग देता है तो उसे 'अकालमृत्यु' कहा जाता है।

अकालमृत्यु जब स्वयं वरण की जाती है तो वह आत्मदान या आत्महत्या होती है। आत्महत्याके सैकड़ों मार्ग हैं और आत्मदानके भी नाना प्रकार हो सकते हैं। व्यक्तिका प्रबल संकल्प, दूसरोंका प्रयत्न और ओषधि भी इसे टाल दे सकती है।

जब कोई दूसरा देवता, सिद्ध, तपस्वी, भूत-प्रेतादि अपने बलसे या शापसे किसीको मार देते हैं तो यह 'परतः अकालमृत्यु' होती है। बिजली गिरनेसे, महामारीसे, विषसे, सर्पादिके काटनेसे भी अकालमृत्यु हो सकती है।

उपासना, मन्त्र-तन्त्र, औषध आदिसे अकालमृत्युका निवारण किया जा सकता है—किया जाता है। यदि इनका प्रयोग ठीक हो रहा है तो प्रायः सरलतासे अकालमृत्युका निवारण हो जाता है।

भगवान्‌की शरण लेनेवालेकी रक्षा वे प्रभु स्वयं करते हैं। अतः भक्तकी अकालमृत्यु न होती है और न होनी सम्भव है। कोई प्रेतादि तो उसका भला क्या अहित करेगा, कोई देवता या सिद्ध भी उसका अहित करने जाय तो स्वयं अपना अहित कर लेगा। अम्बरीषके लिये कृत्या उत्पन्न करके भगवान् शिवके साक्षात् अवतार परम तपस्वी महर्षि दुर्वासाको ब्रह्मलोक, कैलास तो क्या; स्वयं वैकुण्ठनाथके यहाँ भी शरण नहीं मिल सकी थी। उन्हें अन्ततः अम्बरीषके ही चरणोंपर गिरना पड़ा। अतः त्रिभुवनमें कोई निर्भय है तो वह श्रीहरिका चरणाश्रित ही है।

—सु०

प्रभु-कृपा बिना जलन नहीं बुझती

ऐसी करत अनेक जनम गये मन संतोष न पायो।
दिन दिन अधिक दुरासा लागी सकल लोक फिरि आयो॥
सुनि सुनि स्वर्ग रसातल भूतल तहीं तहीं उठि धायो।
काम क्रोध मद लोभ अगिनते जरत न काहु बुझायो॥
स्रक चंदन बनिता बिनोद सुख यह जुर जरत बितायो।
मैं अजान अकुलाइ अधिक लै जरत माँझ घृत नायो॥
भ्रमि भ्रमि हौं हार्‌यौ हिय अपने देखि अनल जग छायो।
सूरदास प्रभु तुम्हरि कृपा बिनु कैसे जात बुतायो॥

—सूरदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्युकी विभीषिका और उसका निराकरण

(लेखक—श्रीरामलालजी)

विश्वके प्रायः समस्त धर्मग्रन्थोंमें मृत्युके विकराल तथा भीषण रूपका अङ्कन मिलता है। यद्यपि मृत्यु अपनी बाह्य आकृतिमें रूपतः अत्यन्त भयंकर और अशोभन है, तथापि विश्वके अनेक दर्शन और विचार तथा संत-महात्माओंके चिन्तनसे पता चलता है कि यह स्वरूपतः परम करुणामयी और परोपकारिणी है। जीवात्माका इसके माध्यमसे कल्याण-साधन होता है। मृत्यु अनिवार्य है, इसकी वास्तविकताके निरूपणमें भगवान् श्रीकृष्णका कथन है।

भूतेषु कालस्य गतिं दर्शयञ्च प्रतिक्रियाम्।

(श्रीमद्भागवत १। ८। ४)

मृत्युके भयसे छुटकारा पानेके लिये प्रायः यह बहाना किया जाता है कि 'मृत्यु नामकी वस्तुका अस्तित्व ही नहीं है'। अपने-आपको सान्त्वना देनेके लिये अनेक लोग ऐसा भी कहते हैं कि 'मृत्यु तो बहुत दूर है'। मृत्युके सम्बन्धमें इस तरहका दृष्टिकोण उसके भीषण रूपके प्रति हमें निश्चिन्तता नहीं प्रदान कर सकता। साथ-ही-साथ यह भी स्मरणीय है कि 'मृत्यु शाश्वत निद्रा है। इसमें भयके लिये अवकाश नहीं है।' पाश्चात्य दार्शनिक प्लेटोने मृत्युको शरीरसे जीवात्माका अलग होना माना है। उसकी दृष्टिमें मृत्यु और कुछ भी नहीं है। संत तिरुवल्लुवरके तमिळ वेद 'कुरल'में विज्ञप्ति है कि "यह सोचना कि 'अमुक वस्तु सदा बनी रहेगी'—सबसे बड़ा अज्ञान है। पक्षी अपना घोंसला छोड़कर उड़ जाता है, इसी तरह देह और (जीव) आत्माका सम्बन्ध विनश्वर है। आत्मा देहको छोड़कर चला जाता है। मृत्यु नींद है और जन्म नींदके पश्चात् जागनेका नाम है।"

मृत्युके स्वरूपपर विचार करते हुए आधुनिक विज्ञान-जगत्के महान् वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र वसुका कथन है कि—'मृत्यु चेतन अवस्थासे अचेतन अवस्थाकी परिणति है।' सांख्यदर्शनके परम विज्ञानी भगवान् कपिलका देवहूतिके प्रति कथन है—

देहेन जीवभूतेन लोकाल्लोकमनुव्रजन्।
भुञ्जान एव कर्माणि करोत्यविरतं पुमान्॥
जीवो ह्यस्यानुगो देहो भूतेन्द्रियमनोमयः।
तन्निरोधोऽस्य मरणमाविर्भावस्तु सम्भवः॥

(श्रीमद्भागवत ३। ३१। ४३-४४)

इसका आशय यह है कि 'जीवके उपाधिभूत लिङ्गदेहके द्वारा पुरुष एक लोकसे दूसरे लोकमें जाता है और अपने प्रारब्ध कर्मोंको भोगता हुआ निरन्तर अन्य देहोंकी प्राप्तिके लिये दूसरे कर्म करता रहता है। जीवका उपाधिरूप लिङ्ग-शरीर तो मोक्षपर्यन्त उसके साथ रहता है तथा भूत, इन्द्रिय और मनका कार्यरूप स्थूलशरीर इसका भोगाधिष्ठान है। इन दोनोंका परस्पर संगठित होकर कार्य न करना ही प्राणीकी मृत्यु है तथा दोनोंका साथ-साथ प्रकट होना ही जन्म है।'

भारतीय चिन्तन-जगत्की यह प्रत्यक्ष अनुभूति है कि मृत्यु कितनी ही भयंकर और भीषण हो, वह भगवान्के विधानसे सर्वथा अनुशासित है। भगवद्वाक्य है—

'मृत्युश्चरति मद्भयात्।'

(श्रीमद्भागवत ३। २५। ४२)

इस कथनकी सत्यता मृत्युकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें पूरी तरह चरितार्थ होती है। प्रजापति ब्रह्माद्वारा प्रजाकी सृष्टि होनेपर ही मृत्युकी उत्पत्ति हुई। इसके पहले मृत्युका अस्तित्व नहीं था। ऋग्वेदका 'नासदीय सूक्त' प्रमाण है।

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः
किमासीद् गहनं गभीरम्॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास॥

(ऋग्वेद १०। १२९। १-२)

'इस जगत्के उत्पन्न होनेके पहले न असत् था, न सत् था। उस समय अनेक लोक भी नहीं थे। न आकाश था। जो उससे भी परे है, वह भी नहीं था। उस समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन-सा पदार्थ सबको चारों ओरसे घेर सकता था; यह सब कहाँ था, किसके आश्रयमें था। समुद्रका गहन-गभीर जल भी कहाँ था। उस समय न मृत्यु थी, न अमृत ही था। जीवनकी सत्ता और लोप—दोनोंका अभाव था। रात और दिनका ज्ञान नहीं था। उस तत्त्वका स्वरूप प्राणशक्तिरूप था, पर स्थूल वायु न था। वह एक अपने ही बलसे समस्त जगत्‌को धारण करनेवाला अपनी ही शक्तिसे युक्त था।' 'उससे सूक्ष्म अन्य कुछ भी नहीं था। उस ब्रह्मने इन लोकोंकी रचना की।'

'स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति। स इमाँल्लोकान-सृजत।' (ऐतरेयोपनिषद् १। १-२)

जगत् तथा लोकों और प्रजाकी सृष्टिके बाद संहारका प्रश्न उठना स्वाभाविक ही था। महाभारतके द्रोणपर्वके ५२ वें से ५४ वें अध्यायतकमें मृत्युकी उत्पत्तिका उपाख्यान वर्णित है। देवर्षि नारदने सत्ययुगमें राजा अकम्पनको यह उपाख्यान सुनाया था। रणमें अपने पुत्र हरिकी मृत्यु हो जानेसे अकम्पनने बड़ा शोक किया। नारदने मृत्युका स्वरूप समझाकर उसे सान्त्वना दी।

उपर्युक्त उपाख्यानमें मृत्युकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें कहा गया है कि आदिसृष्टिके समय प्रजावर्गका सृजन होनेके उपरान्त संहारकी व्यवस्था नहीं थी। सम्पूर्ण जगत्‌को प्राणियोंसे परिपूर्ण देखकर ब्रह्मा उनके संहारके लिये चिन्तित हो उठे। उपाय न मिलनेपर उनके श्रवण-नेत्र आदिसे अग्नि प्रकट हो गयी। आकाश और पृथ्वी तथा दिशाएँ जलने लगीं। अनेक स्थावर-जङ्गम प्राणी विनष्ट हो गये। स्थाणु नामके रुद्रने ब्रह्मासे प्रार्थना की कि 'अपनी ही सृष्टिके जलते प्रजावर्गपर करुणा कीजिये।' ब्रह्माने कहा कि 'मेरी इच्छा यह नहीं है कि सारे प्राणी जल जायँ, जगत्‌का संहार हो जाय। वसुधाके हितके लिये ही मेरे मनमें क्रोधका आवेश हो गया। पृथ्वीने ही प्रजावर्गके भारसे पीड़ित होकर मुझे जगत्-संहारकी प्रेरणा दी।' रुद्रके अनुनय-विनयसे ब्रह्माने अन्तरात्मामें उस तेजको धारण कर लिया। 'क्रोधाग्नि-का उपसंहार करते समय ब्रह्माकी सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे एक नारी प्रकट हुई। वह काले और लाल रंगकी थी। उसके जीभ-मुख-नेत्र पीले और लाल रंगके थे। उसके कानोंमें तप्त सोनेके कुण्डल थे। उसके आभूषण तप्त स्वर्णके ही थे। वह उनकी इन्द्रियोंसे निकलकर दक्षिण दिशामें खड़ी हो गयी। रुद्र और ब्रह्माको देखकर वह मन्द-मन्द मुसकराने लगी'—

उपसंहरतस्तस्य तमग्निं रोषजं तथा।
प्रादुर्बभूव विश्वेभ्यो गोभ्यो नारी महामनः॥
कृष्णरक्ता तथा पिङ्गरक्तजिह्वास्यलोचना।
कुण्डलाभ्यां च राजेन्द्र तप्ताभ्यां तप्तभूषणा॥
सा निःसृत्य तथा खेभ्यो दक्षिणां दिशमाश्रिता।
स्मयमाना च सावेक्ष्य देवौ विश्वेश्वरावुभौ॥
(महाभारत, द्रोण० ५३। १७–१९)

उस नारीको ब्रह्माने पास बुलाकर कहा कि तुम इन समस्त प्रजाओंका संहार करो। 'हे मृत्यो! तुम संहार-बुद्धिसे मेरे रोषसे प्रकट हुई हो। मूर्ख और पण्डित—समस्त प्रजाका संहार करती रहो। मेरी आज्ञासे यह कार्य तुमको करना होगा। ऐसा करनेसे तुम कल्याण प्राप्त करोगी'—

त्वं हि संहारबुद्ध्याथ प्रादुर्भूता रुषो मम।
तस्मात्संहर सर्वांस्त्वं प्रजाः सजडपण्डिताः॥
मम त्वं हि नियोगेन ततः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि।
(महाभारत, द्रोण० ५३। २१-२२)

मृत्यु चिन्तित होकर फूट-फूटकर रोने लगी। पितामहने उसका अश्रु अपने हाथमें ले लिया। मृत्युको सान्त्वना देकर प्रसन्न किया। मृत्युने निवेदन किया कि 'मैं पापसे डरती हूँ। जब मैं लोगोंके प्रिय पुत्र, मित्र, भाई, माता, पिता, पतिको मारने लगूँगी तो उनके सम्बन्धी मेरा अनिष्ट सोचेंगे।'.....'मुझे यमके भवनमें न जाना पड़े। मैं आपकी आज्ञासे धेनुकाश्रम जाकर आपकी ही आराधनामें तत्पर रहकर तप करूँगी। मैं रोते-बिलखते प्राणियोंको नहीं मार सकूँगी। आप इस अधर्मसे मुझे बचा लीजिये।' मृत्युने प्रजाके हितकी कामनासे संहारमें मन नहीं लगाया। ब्रह्माके क्रोधशून्य होकर देखनेपर सारे लोक हरे-भरे हो उठे। मृत्युने धेनुकाश्रममें जाकर कठोर तप आरम्भ किया। नन्दा नदीके जलमें तप कर वह निष्पाप हो गयी। हिमालयके शिखरपर, पुष्कर, गोकर्ण, नैमिषारण्य, और मलयाचलके तीर्थोंमें निवास कर तपद्वारा मृत्युने ब्रह्माको संतुष्ट किया। ब्रह्माद्वारा तपका कारण पूछनेपर मृत्युने वर माँगा कि 'मुझे रोती-चिल्लाती प्रजाका वध न करना पड़े।' ब्रह्माने कहा—'इन प्रजाओंका संहार करनेसे तुमको अधर्म नहीं लगेगा। हे कल्याणी! तुम चार श्रेणियोंमें विभक्त प्राणियोंका संहार करो। सनातनधर्म तुमको सदा पवित्र रखेगा। लोकपाल, यम और व्याधियाँ संहार-कार्यमें सहायता करेंगी। मैं और सब देवता तुमको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरदान देंगे। तुम पापमुक्त होकर अपने निर्मल स्वरूपसे विख्यात होगी।' मृत्युने ब्रह्माकी आज्ञा मान ली। उसने निवेदन किया—'लोभ, क्रोध, असूया, ईर्ष्या, द्रोह, मोह, निर्लज्जता और एक-दूसरेके प्रति कही गयी कठोर वाणी—ये दोष ही देहधारियोंके शरीरका भेदन करें।' ब्रह्माने कहा—'ऐसा ही होगा। तुम धर्ममें तत्पर रहनेवाली और धर्मानुकूल जीवन बितानेवाली धरित्री होकर समस्त जीवोंके प्राणोंका नियन्त्रण करो। काम और क्रोधका परित्याग कर जगत्के प्राणियोंका संहार करो। ऐसा करनेसे अक्षय धर्मकी प्राप्ति होगी। मिथ्याचारी पुरुषोंको तो उनका अधर्म ही मार डालेगा।'

इस तरह नारदने अकम्पनको मृत्युकी उत्पत्तिका आख्यान सुनाया। यह आख्यान महाभारतमें वर्णित होनेके नाते सर्वथा ऐतिहासिक है। इसे कोरी कल्पना या भावात्मक रूपक मानना असंगत है। नारदने उत्पत्तिपर प्रकाश डालकर मृत-पुत्रके लिये शोक न करनेका जो उपदेश दिया, उससे मृत्युकी विभीषिकाका सहज निराकरण हो जाता है। नारदने कहा कि 'यही मृत्यु अन्तकाल आनेपर काम और क्रोधका परित्यागकर अनासक्तभावसे समस्त प्राणियोंके प्राणका अपहरण करती है। यही प्राणियोंकी मृत्यु है। इसीसे व्याधियोंकी उत्पत्ति हुई है। आयु समाप्त होनेपर सबकी मृत्यु होती है। आयुके अन्तमें सारी इन्द्रियाँ प्राणियोंके साथ परलोकमें जाकर स्थित होती हैं और पुनः उनके साथ ही इस लोकमें लौट आती हैं। इस तरह सभी प्राणी देवलोकमें जाकर देवस्वरूपमें स्थित होते हैं तथा वे कर्मदेवता मनुष्योंकी भाँति भोग समाप्त होनेपर इस लोकमें लौट आते हैं। भयंकर शब्द करनेवाला बलशाली प्राणवायु चेतन आत्माका नहीं, प्राणियोंके शरीरका ही भेदन करता है। आत्मा सर्वव्यापी और अनन्त तेजसे सम्पन्न है। उसका कभी आवागमन नहीं होता है'—

मृत्युस्त्वेषां व्याधयस्तत्प्रसूता
व्याधी रोगो रुज्यते येन जन्तुः।
सर्वेषां च प्राणिनां प्रायणान्ते
तस्माच्छोकं मा कृथा निष्फलं त्वम्॥
सर्वे देवाः प्राणिभिः प्रायणान्ते
गत्वा वृत्ताः संनिवृत्तास्तथैव।
एवं सर्वे प्राणिनस्तत्र गत्वा
वृत्ता देवा मर्त्यवद् राजसिंह॥
वायुर्भीमो भीमनादो महौजा
भेत्ता देहान् प्राणिनां सर्वगोऽसौ।
नो वाऽऽवृत्तिं चैव वृत्तिं कदाचित्
प्राप्नोत्युग्रोऽनन्ततेजोविशिष्टः॥
(महाभारत, द्रोण० ५४। ४५—४७)

नारदने कहा कि 'यह मृत्यु भगवान्द्वारा प्राणियोंके हितके लिये प्रदत्त है। समय आनेपर यह यथोचितरूपसे संहार करती है। प्रजावर्गका प्राण लेनेवाली मृत्युको स्वयं ब्रह्माने रचा है। सब प्राणी स्वयं ही अपने-आपको मारते हैं। मृत्यु हाथमें डंडा लेकर इनका वध नहीं करती है। धीर पुरुष मृत्युको ब्रह्माजीका रचा हुआ निश्चित विधान समझकर मृत प्राणियोंके लिये कभी शोक नहीं करते हैं'—

एषा मृत्युर्दैवदिष्टा प्रजानाम्।
प्राप्ते काले संहरन्ती यथावत्
स्वयं कृता प्राणहरा प्रजानाम्॥
आत्मानं वै प्राणिनो घ्नन्ति सर्वे
नैतान् मृत्युर्दण्डपाणिर्हिनस्ति।
तस्मान्मृतान् नानुशोचन्ति धीरा
मृत्युं ज्ञात्वा निश्चयं ब्रह्मसृष्टम्॥
(महाभारत, द्रोण० ५४। ४९-५०)

यह निर्विवाद है कि जो प्राणी जन्म लेता है, उसके शरीरके साथ मृत्यु भी उत्पन्न होती है। मृत्यु होती ही है, चाहे आज हो, अभी हो या सौ सालके बाद हो। श्रीमद्भागवतमें सूतका शौनकादि ऋषियोंके प्रति कथन है कि 'स्थूल रूपसे परे भगवान्का एक सूक्ष्म अव्यक्त रूप है। यह न तो स्थूलकी तरह आकारादि गुणोंवाला है, न देखने-सुननेमें ही आ सकता है। यही सूक्ष्मशरीर है। आत्माका आरोप या प्रवेश होनेसे यही 'जीव' कहलाता है और इसीका बार-बार जन्म होता है। उपर्युक्त सूक्ष्म और स्थूल शरीर अविद्यासे ही आत्मामें आरोपित हैं। जिस अवस्थामें आत्मस्वरूपके ज्ञानसे यह आरोप दूर हो जाता है, उस समय—उस अवस्थामें ब्रह्मका साक्षात्कार होता है। तत्त्वज्ञानियोंकी यह मान्यता है कि जिस समय यह बुद्धिरूपा परमेश्वरकी माया निवृत्त हो जाती है, उस समय जीवात्मा परमानन्दमय हो जाता है तथा अपनी स्वरूप-महिमामें प्रतिष्ठित होता है'—

अतः परं यदव्यक्तमव्यूढगुणव्यूहितम्।
अदृष्टाश्रुतवस्तुत्वात् स जीवो यत्पुनर्भवः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत्रेमे सदसद्रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा।
अविद्ययाऽऽत्मनि कृते इति तद्ब्रह्मदर्शनम्॥
यद्येषोपरता देवी माया वैशारदी मतिः।
सम्पन्न एवेति विदुर्महिम्नि स्वे महीयते॥
(श्रीमद्भागवत १।३।३२-३४)

जीवात्माका परमानन्दमय हो जाना मृत्युकी विभीषिका-की परिसमाप्तिका प्रतीक है। पाश्चात्य विद्वान् बेकनका कथन है कि 'मृत्युसे मनुष्य उसी तरह डरता है, जिस तरह बालक अँधेरेमें जानेसे भयभीत होता है।' यूनानके दार्शनिक सुकरातने, यह पूछे जानेपर कि 'आपको मृत्युसे भय क्यों नहीं लगता है?' कहा था कि 'मुझे बड़ा आनन्द मिल रहा है कि मेरी आत्मा पाञ्चभौतिक शरीरके पिंजड़ेसे मुक्त होगी।' मृत्युकी भावनाका अन्त कर देना ही जीवात्माके लिये बड़े श्रेयकी बात है। ईसाई-जगत्के प्रसिद्ध संत पालका वचन है कि 'मृत्यु हमारा अन्तिम शत्रु है। इसपर विजय पाना ही चाहिये।' भौतिक शरीर जायगा ही, इसे रोक रखनेकी ताकत किसीमें भी नहीं देखी गयी। समुद्र-मन्थनके परिणामस्वरूप हाथमें अमृत-कलश लेकर प्रकट होनेवाले धन्वन्तरिका शरीर भी चला ही गया। संत पलटू साहबकी स्वीकृति है—

'बैद धनन्तर मरि गया, अमर भया नहिं कोय।'

अनेक डाक्टरोंद्वारा यह प्रत्यक्ष अनुभव किया गया है कि 'मृत्यु एक मूर्च्छामात्र है।' अमेरिकामें सैनफ्रांसिस्कोके एक डाक्टर जेरम एन्डरसनने एक नौजवानसे वादा करवाया था कि 'यदि वह उनसे पहले स्वाभाविक रूपसे मरे तो मृत्युकालीन वेदनाका अङ्कन करनेकी चेष्टा करे।' मरते समय उस नौजवानके शब्द थे—'मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं मूर्च्छित हो रहा हूँ।' महर्षि रमणने गृहत्यागके पहले मृत्युके स्वरूपका प्रत्यक्ष अनुभव किया। एक दिन वे अपने चाचाके घरकी ऊपरी छतपर थे। उन्हें लगा कि मृत्यु आ रही है। वे सोचने लगे कि "मृत्यु शरीरकी होती है या इसमें रहनेवाले 'चेतन अहं' की।" वे छतपर उतान लेट गये। शरीरके अङ्गोंको शिथिल कर दिया। हाथ-पैर फैला दिये। सोचने लगे कि 'थोड़ी देरमें लोग मेरा मृत शरीर श्मशान ले जायँगे, जलाकर राख कर देंगे, तो क्या इसके जल जानेपर इसमें निवास करनेवाला 'अहं' भी जल जायगा। अन्तरात्माने उत्तर दिया कि 'ऐसा कभी नहीं हो सकता। मृत्यु शरीरको मार सकती है। आत्मा अविनश्वर है।' वे सावधान हो गये। उन्होंने अनुभव किया की "मैं देख रहा हूँ कि मृत्यु आ रही है। इसे देखनेवाला 'मैं' निस्सन्देह अमर है।" इन्दुमतीके मर जानेपर अजके शोक करनेपर महर्षि वसिष्ठने जो सान्त्वना-संदेश भेजा था, उससे मृत्यु-की विभीषिकाके अस्थायित्व और जीवनकी क्षणभङ्गुरताका पता चलता है। महाकवि कालिदासकी उक्ति है—

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः।
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ॥
(रघुवंश ८।८७)

'देहधारीके शरीरका मरना स्वाभाविक ही है। विद्वानों का तो यह कहना है कि जीना ही बड़ा भारी विकार है। प्राणी जितने क्षण जी जाय, उतनेसे ही उसे संतोष करना चाहिये'—

अन्तकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः।
छिन्द्यादसङ्गशस्त्रेण स्पृहां देहेऽनु ये च तम्॥
(श्रीमद्भागवत २।१।१५)

'मृत्युका समय आनेपर घबराना नहीं चाहिये। वैराग्यके शस्त्रसे शरीर और उससे सम्बन्ध रखनेवालोंकी ममता काट देनी चाहिये।' आसक्ति मिटा देनेसे मृत्युकी विभीषिकाका निराकरण अपने-आप हो जाता है।

आत्मतत्त्वको जान लेनेपर प्राणी मृत्युके भयसे मुक्त हो जाता है। 'जो उसे जान लेते हैं वे अमर हो जाते हैं।' (बृहदारण्यक ४।४।१४) 'ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्ति।' से इस कथनकी वास्तविकता प्रमाणित होती है। मृत्यु-की अस्थायी और अवास्तविक है, अमरता स्थायी और वास्तविक है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म और मृत्युका रहस्य

(लेखक—श्रीवीरेन्द्रस्वरूपजी अग्रवाल)

पञ्चभूतोंसे निर्मित यह देह नाशवान् है। प्रत्येक जन्मी हुई वस्तुकी मृत्यु होना एक शाश्वत सत्य है। विशुद्ध भौतिकवादी धारणाके अनुसार शरीरके निधनके साथ ही मनुष्यका सब कुछ समाप्त हो जाता है, कुछ शेष नहीं रहता। उनका मत है कि जिन तत्त्वोंसे शरीरकी रचना होती है, वे सब अपने मूलतत्त्वोंमें आकर विलय हो जाते हैं और पुनर्जन्मका प्रश्न ही नहीं उठता। वास्तवमें वे लोग जड और चेतनका भेद ही वस्तुरूपमें स्वीकार नहीं करते और उनके मतानुसार चेतनता जड पदार्थोंकी वैज्ञानिक अथवा रासायनिक प्रक्रियामात्र होती है, जो एक विशेष स्थितिमें उत्पन्न होती है। इसी कारण वे शरीरसे पृथक् आत्माका अस्तित्व नहीं मानते। जडसे ही चेतनताका उद्भव होनेके कारण इस सिद्धान्तको उद्भूतिवाद भी कहा जा सकता है। उदाहरणतः—

"Mind is an emergent from life, as life an emergent from a lower physico-chemical level of existence."—Samuel Alexander (Space, Time and Diety—Vol. II, page 14).

इसके विपरीत कुछ अध्यात्मवादी जन्म और मृत्युका अस्तित्व ही भ्रमात्मक मानते हैं और योगवासिष्ठीय सिद्धान्तके अनुसार इसको मनःसृष्टि कहकर सारे विवादसे बच निकलते हैं। वस्तुतः यह तो दर्शनकी उच्चतम पराकाष्ठा है। अतः इस विशुद्ध धारासे हटकर ही जीवनकी मीमांसा करनी उचित होगी।

उपर्युक्त दोनों धारणाओंके मध्यकी एक और आध्यात्मिक धारणा है, जिसमें चेतनका एक स्वतन्त्र अस्तित्व माना गया है। उसके अनुसार चेतनका जडसे उद्भव नहीं होता; अपितु चेतनका प्रतिविम्ब पड़नेसे जड भी उद्भासित हो उठता है और चेतन-सा ही प्रतीत होता है। उसके अनुसार शरीरका निधन होता है; परंतु आत्मा अवशिष्ट रहता है।

गीतामें कहा गया है—न आत्माका जन्म होता है, न वह मर सकता है। शरीर आत्माका वस्त्रमात्र है, जिसे जीर्ण होनेपर त्यागकर नवीन धारण कर लिया जाता है। आत्मापर न अस्त्र-शस्त्रोंका प्रभाव पड़ता है, न अग्नि, जल अथवा वायुका।' तात्पर्य यह है कि पञ्चमहाभूतोंका, जिनसे शरीरका निर्माण होता है, आत्मासे पृथक् एवं निम्नस्तर है।

एक अध्यात्मवादी मनीषीने एक स्थानपर लिखा है कि 'आत्मा तो कर्ता नहीं है, अपितु साक्षीमात्र है; अतः वह जन्मके बन्धनमें कैसे आ सकता है?' उनके मतानुसार पुनर्जन्मका सिद्धान्त ही भ्रममूलक है। वास्तवमें पुनर्जन्मकी घटनाएँ इतनी बहुतायतसे देखनेमें आ रही हैं कि उनको नितान्त भ्रमात्मक नहीं कहा जा सकता है। अतः उनका अस्तित्व स्वीकार करके उनकी वैज्ञानिक मीमांसा करनी आवश्यक है।

वस्तुतः स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरकी संज्ञाएँ स्वयंसिद्ध हैं। स्थूलके अंदर सूक्ष्म और सूक्ष्मके अन्तरमें कारण शरीरकी विद्यमानता निरपवाद है। इनकी रचना एवं क्षयका कारण जानकर ही आगे बढ़ा जा सकता है।

वैशेषिक सूत्रोंके अनुसार द्रव्य नौ हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन—

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि।

(वैशेषिक० १।१।५)

इनमेंसे प्रथम पाँच महाभूत कहलाते हैं। इन तत्त्वोंके चौबीस गुण हैं—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार। दो परमाणुओंके आपसमें संयुक्त होनेसे द्व्यणुककी, तीन द्व्यणुकोंके संयोगसे त्र्यणुककी और चार त्रसरेणुओंके योगसे चतुरणुककी उत्पत्ति होती है। इसी क्रममें स्थूल पदार्थोंका जन्म होता है। विभिन्न परमाणुओंके विभिन्न संयोगोंसे अनेकानेक योनियाँ प्रकट होती हैं। इसी प्रकार संयोग गुणके कारण पञ्च महाभूतोंसे मानव-शरीरका निर्माण होता है तथा पृथक्त्व-गुणके कारण कुमार, यौवन एवं जरा अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं और मृत्यु होती है।

यह अवश्य जानना चाहिये कि आत्माका अस्तित्व स्वतन्त्र है और निरवयव तत्त्व होनेके कारण वह नित्य है तथा कार्यरत तत्त्व होनेसे शरीर अनित्य है। यही आत्मा स्थूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीरके निधनपर भी शेष रहता है। यही जीवात्मा पुनर्जन्मका हेतु बनता है। 'जीवात्मा'से भिन्न एक और भी संज्ञा है जिसे 'विशुद्ध आत्मा' कहा जाता है, जो ब्रह्मका सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्वरूप है। इनकी विवेचना इस प्रकार की गयी है—

'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।'

(श्वेता० ४। ६)

स्थूलशरीरके अन्तर्में जो जीवात्मा है उसका आकार अङ्गुष्ठमात्र कहलाता है—

'अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः।'

(कठो० २। १। १३)

उसका स्वरूप तेजस् है—

'सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।'

(गीता ८। ९)

उसका निवासस्थान हृदयदेश है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

(गीता १८। ६१)

यह हृदयदेश हृत्पिण्ड नहीं है, वरं इस पार्थिव शरीरका सबसे गूढ़ स्थल है। जैसे स्थूलशरीरमें इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि होते हैं, वैसे ही सूक्ष्मशरीरमें भी होते हैं। यह सूक्ष्मशरीर बिना आँखोंके देख सकता है, बिना कानोंके सुन सकता है, बिना मुखके बोल सकता है और बिना हाथके स्पर्श कर सकता है। इसको भी कुमार, युवा और जरा अवस्था प्राप्त होती है—

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

(गीता २। १३)

इसी सूक्ष्मशरीरको अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है। जिस प्रकार अणुको तोड़ना कठिन होता है, उसी प्रकार सूक्ष्मशरीरका भेदन भी कठिन होता है; परंतु भावनाओं और संकल्पोंकी तरङ्गें निरन्तर प्रहार और आघात करते-करते इसमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर देती हैं। ऐसे ही परिवर्तनको लेकर सूक्ष्मशरीर एक स्थूलशरीरको छोड़कर दूसरे स्थूलपिण्डको ढूँढ़ता है।

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥

(गीता १५। ८)

सूक्ष्मशरीर जब स्थूलशरीरको छोड़ता है, तो उसे 'मृत्यु' कहते हैं। यह कार्य अदृष्टसे होता है—

अपसर्पणमुपसर्पणमशितपीतसंयोगाः
कार्यान्तरसंयोगाश्चेत्यदृष्टकारितानि।

(वैशेषिक ५। २। १७)

पुरुषके भोग अथवा अपवर्ग अथवा कर्माशयको ही 'अदृष्ट' कहा जाता है। जो अतृप्त वासनाएँ सूक्ष्मशरीरकी होती हैं, उन्हींकी पूर्तिके लिये वह दूसरा शरीर धारण करता है।

किसी-किसी मनीषीका विचार है कि स्थूलशरीर छोड़नेसे पहले ही सूक्ष्मशरीर दूसरे शरीरका चयन कर लेता है। इस सिद्धान्तको स्वीकार करनेका अर्थ होगा—सावधि मुक्तिको अस्वीकार करना। अतः यह कहना अधिक उचित होगा कि वह चयन नहीं करता, वरं संकल्प कर लेता है। जब हमारे विचार और भाव बहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी हो जाते हैं, उस अवस्थाको 'निर्विकल्प' समाधि कहते हैं तथा सूक्ष्मशरीरके पुनर्जन्म संकल्प क्षीण होते हैं।

सूक्ष्मशरीरकी दो गतियाँ होती हैं—पहली गतिको 'देवयान' कहते हैं और दूसरीको 'पितृयाण'—

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः॥

(गीता ८। २६)

शुक्ल गति (देवयान) से ब्रह्मकी प्राप्ति होती है अथवा आत्मतत्त्वमें विलीनीकरण हो जाता है और कृष्णगति (पितृयाण) से जन्म-मृत्यु अथवा पार्थिव शरीरकी प्राप्ति होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुको काटनेवाले छः दोष

(लेखक—श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन)

धृतराष्ट्रने पूछा—

शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा।
नाप्नोत्यथ च तत् सर्वमायुः केनेह हेतुना॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ३७। ९)

'जब सभी वेदोंमें पुरुषको सौ वर्षकी आयुवाला बताया गया है, तो वह किस कारणसे अपनी पूर्ण आयुको नहीं पाता!'

उत्तरमें विदुरजीने कहा—

अतिमानोऽतिवादश्च तथात्यागो नराधिप।
क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट्॥
एत एवासयस्तीक्ष्णाः कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम्।
एतानि मानवान् घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ३७। १०-११)

'राजन्! आपका कल्याण हो! अत्यन्त अभिमान, अधिक बोलना, त्यागका अभाव, क्रोध, अपना ही पेट पालनेकी चिन्ता (स्वार्थ) और मित्रद्रोह—ये छः तीखी तलवारें देहधारियोंकी आयुको काटती हैं। ये ही मनुष्योंका वध करती हैं, मृत्यु नहीं।'*

उपर्युक्त छः दोषोंकी क्रमशः व्याख्या की जाती है—

(१) ऊँचे पदपर प्रतिष्ठित होना; अपनी प्रशंसा सुनना; धन और भोग-सामग्रीकी बहुलता; मनोकामना पूर्ण होना; अपने द्वारा किसीका हित होना; दूसरोंमें दोष और अपनेमें गुण देखना; अपनेको बलवान्, विद्वान्, बुद्धिमान्, साधक, त्यागी, महात्मा आदि मानना आदि एक-एक कारणपर ऊँची स्थितिवाले महात्मातक अभिमानके शिकार हो जाते हैं।

भगवान्‌ने जब कभी अपने भक्तमें अभिमानका प्रवेश देखा, तुरंत उसके अभिमानको चूर्ण किया। अभिमानी मनुष्य शीघ्र ही अपनी स्थितिसे विचलित तथा पतित हो जाता है। अति अभिमानी पुरुषको भ्रष्ट हुए बिना चेत नहीं होता। ऐसा पुरुष भगवान्‌के शरण नहीं हो पाता तथा न तो उसमें समता रहती है और न उसे अपने अवगुण—दोष ही कभी दीखते हैं। अभिमानी पुरुष अपनेसे श्रेष्ठको भी नीचा देखता है और उसकी अवहेलना करता है। अभिमानके नष्ट होनेपर प्रत्येक स्थितिवाला मनुष्य ऊँची-से-ऊँची स्थिति प्राप्त कर सकता है।

सभी वस्तुओंको प्रभुकी समझकर उनके द्वारा तन-मनसे दूसरोंकी सेवा निष्काम-भावसे करनेपर तथा दूसरोंके गुण एवं अपने दोष देखनेपर अभिमान दूर हो जाता है। अपनेको तुलसीदासजीकी भाँति सब ओरसे दीन-हीन समझते रहनेसे भी अभिमान समीप नहीं आता और बहुत बड़ा लाभ होता है।

(२) अधिक बोलनेवाला व्यक्ति व्यर्थकी बातें अधिक करता है। वह सत्यका पूर्णतया पालन नहीं कर सकता और ऐसी बातें भी कर बैठता है, जिनका परिणाम बुरा होता है। ऐसा व्यक्ति बुद्धिमानोंको प्रिय नहीं होता तथा दूसरोंपर उसकी बातोंका प्रभाव भी नहीं पड़ सकता। अतः निरर्थक शब्दोंका प्रयोग न करके वाणीको संयमित कर तपमें लगाना चाहिये। वाणीसम्बन्धी तप श्रीगीताजी-में इस प्रकार कहा गया है—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

(१७। १५)

'जो उद्वेगको न करनेवाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है और जो वेद-शास्त्रोंके पढ़नेका एवं परमेश्वरके नाम जपनेका अभ्यास है, वह निःसंदेह वाणीसम्बन्धी तप कहा जाता है।'

अधिक बोलनेकी आदतसे छुटकारा पानेके लिये अधिक-से-अधिक भगवन्नाम-जप करनेका नियम करना चाहिये। इससे दुहरा लाभ होगा।

(३) त्यागके अभावके कारण ही रावण, दुर्योधन आदिका पतन हुआ। सांसारिक सुखोपभोग मनुष्यकी

* आयुकी अवधि श्वासोंकी संख्यापर है, महीने-दिन-रूप कालपर नहीं। जिनमें ये छः दोष आ जाते हैं, उनमें आवेश, उत्तेजना आदिके कारण श्वास जोर-जोरसे चलकर जल्दी समाप्त होते रहते हैं। अतः आयुके दिन घट जाते हैं। श्वास पूरे होते ही मृत्यु हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुको काटते हैं और उनका त्याग शीघ्र ही शान्तिप्रद और आयुवर्द्धक भी होता है। भगवान् श्रीगीतामें कहते हैं—

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥

(१२।१२)

'मर्मको न जानकर किये हुए अभ्याससे परोक्षज्ञान श्रेष्ठ है और परोक्षज्ञानसे मुझ परमेश्वरके स्वरूपका ध्यान श्रेष्ठ है तथा ध्यानसे भी सब कर्मोंके फलका मेरे लिये त्याग करना श्रेष्ठ है और त्यागसे तत्काल ही परम शान्ति होती है।'

इस बातको मनुष्य सदैव स्मरण रक्खें कि हम इस संसारसे कुछ लेनेके लिये नहीं आये हैं, बल्कि दूसरोंको सुख देनेके लिये ही आये हैं तथा यह शरीर हमें केवल भगवत्प्राप्तिके लिये ही मिला है, भोगोंको भोगनेके लिये नहीं।

यदि किसी वस्तुको ग्रहण करनेका हेतु 'राग' और त्यागनेका हेतु 'द्वेष' हो, तो ऐसा त्याग भी निरर्थक ही है। हमें तो शास्त्रको प्रमाण मानकर ही त्याग और ग्रहण करना है। श्रीगीतामें भगवान् कहते हैं कि 'कर्मोंको स्वरूपसे न त्यागकर उनमें की हुई आसक्तिका त्याग करे और उन शास्त्रसम्मत कर्मोंके फलका भी त्याग मेरे (प्रभुके) लिये करे।' अतः कल्याणके इच्छुक पुरुषोंको शास्त्रविरुद्ध कर्मोंको स्वरूपसे त्यागकर शास्त्रसम्मत कर्मोंको अनासक्त एवं निष्कामभावसे करते रहना चाहिये।

(४) क्रोध सभीका एक महान् शत्रु है। इसके वशमें होनेपर पुरुष धर्म (कर्तव्याकर्तव्यके ज्ञान) को तथा परिणामको भूल जाता है, जिससे उसका पतन होता है। महात्मा विदुरजी कहते हैं—

अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगि
पापानुबन्धं परुषं तीक्ष्णमुष्णम्।
सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो
मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ३६।६८)

अर्थात् 'महाराज! जो बिना रोगके उत्पन्न, कड़ुवा, सिरमें दर्द पैदा करनेवाला, पापसे सम्बद्ध, कठोर, तीखा और गरम है, जो सज्जनोंद्वारा पान करनेयोग्य है और जिसे दुर्जन नहीं पी सकते—उस क्रोधको आप पी जाइये और शान्त होइये।'

क्रोधी पुरुष स्वयं सब कुछ करनेमें असमर्थ रहता है। श्रीगीताजीमें भगवान् कहते हैं कि 'शरीरान्तके पूर्व ही जिसने क्रोधको पूर्णतया जीत लिया, वह मनुष्य इस लोकमें योगी है और वही सुखी है।' इसके अतिरिक्त क्रोधको 'नरकका द्वार' भी कहा गया है। इसका तात्पर्य यह कि क्रोधवश हुए मनुष्यको नरकमें जानेके लिये अन्य मार्गकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती (क्रोध अकेला ही मनुष्यको नरकमें पहुँचानेमें समर्थ नरकका द्वार ही है)।

भगवान् कहते हैं—क्रोधसे मुक्त हुआ पुरुष कल्याणका आचरण करता है, जिससे वह मुझे प्राप्त हो जाता है।

प्रतिकूलता सहन करनेका अभ्यास करनेपर ही क्रोधसे रक्षा होती है। यदि दूसरा अपने ऊपर क्रोध करे, तो मनमें शान्ति रखकर उसे क्षमा कर देना चाहिये।

(५) स्वार्थ सभी अनर्थोंका मूल है। लोकमें होनेवाले रोमाञ्चकारी युद्धोंका कारण स्वार्थ (पृथ्वी, धन या स्त्री) ही है। स्वार्थी मनुष्य स्वार्थसिद्धिके लिये बड़े-से-बड़ा पाप करनेमें भी लज्जाका अनुभव नहीं करता। इस स्वार्थके ही कारण आज चारों ओर पापोंकी वृद्धि होकर घोर अशान्ति ही छायी हुई है।

दूसरेके सुखको देखकर सुखी होने और दुःख देखकर दुखी होनेका अभ्यास करनेपर स्वार्थ-दोषका नाश होता है।

हमलोग सच्चे हृदयसे प्रार्थना करें—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

'सब सुखी हों, सब नीरोग हों, सब कल्याणको देखें, कोई भी दुःखको प्राप्त न हो।'

(६) मित्रद्रोही पुरुषको शास्त्रोंमें 'अधम' कहा गया है। ऐसे मनुष्यकी निन्दा सभी करते हैं। मनुष्यजीवनमें मित्रोंका बहुत महत्त्व है। सच्चा मित्र मनुष्यके जीवनमार्गका एक आश्रय है। मित्रतासे एक नयी शक्तिका निर्माण होता है, जिससे शत्रुओंको भी भय होता है। मित्रोंने कई महापुरुषोंको अच्छे कार्योंकी प्रेरणा और सहायता दी है। पतनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर अग्रसर होते हुए कई पुरुषोंका उत्थान मित्रोंने ही किया है। परंतु जो मित्रद्रोही है, वह कैसे सुखी जीवन यापन कर सकता है। मित्रद्रोह नामक महान् दोषसे बचनेके लिये स्वार्थत्याग तथा परहितसाधन करना परम आवश्यक है। भगवान्‌ने 'भक्तको सब भूतोंका अद्वेष्टा तथा सबका मित्र' (अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः···) बतलाया है। अतएव किसी भी प्राणीसे द्वेष न करके सबका हितचिन्तन और हितसाधन करना चाहिये। महात्मा विदुरजीने आयुको काटनेवाले जो छः दोष बतलाये हैं, वे सभी प्रायः एक-दूसरेपर ही निर्भर हैं। अतः कल्याणके इच्छुक पुरुषोंको यथाशक्ति इन दोषोंसे बचना चाहिये। यदि छःमेंसे एक दोषका भी पूर्णतया अभाव हो जाय तो कल्याण-मार्ग प्रशस्त हो सकता है। अन्तमें महात्मा विदुरजीके कुछ और वचनोंका पाठकगण मनन करें—

द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान्॥
(महाभारत, उद्योगपर्व ३३। ५८)

"राजन्! ये दो प्रकारके पुरुष स्वर्गके भी ऊपर स्थान पाते हैं—'शक्तिशाली' होनेपर भी 'क्षमा' करनेवाला और 'निर्धन' होनेपर भी 'दान' करनेवाला।"

गृहीतवाक्यो नयविद् वदान्यः
शेषान्नभोक्ता ह्यविहिंसकश्च।
नानर्थकृत्याकुलितः कृतज्ञः
सत्यो मृदुः स्वर्गमुपैति विद्वान्॥
(महाभारत, उद्योगपर्व ३७। १४)

'बड़ोंकी आज्ञा माननेवाला, नीतिज्ञ, दाता, यज्ञशेष अन्न भोजन करनेवाला, हिंसारहित, अनर्थकारी कार्योंसे दूर रहनेवाला, कृतज्ञ, सत्यवादी और कोमल स्वभाववाला विद्वान् स्वर्गगामी होता है।'

मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः।
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चाविमानना॥
(महाभारत, उद्योगपर्व ३९। ५२)

'सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति कोमलताका भाव, गुणोंमें दोष न देखना, क्षमा, धैर्य और मित्रोंका अपमान न करना—ये सब गुण आयुको बढ़ानेवाले हैं—ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं।'

अधर्मोपार्जितैरर्थैर्यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम्।
न स तस्य फलं प्रेत्य भुङ्क्तेऽर्थस्य दुरागमात्॥
(महाभारत, उद्योगपर्व ३९। ६६)

'जो अधर्मके द्वारा कमाये हुए धनसे परलोकसाधक यज्ञादि कर्म करता है, वह मरनेके बाद उसके फलको नहीं पाता; क्योंकि उसका धन बुरे मार्गसे आया होता है।'

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

मानव-शरीर परमात्माका मन्दिर

मानव-शरीर अनेक जन्मोंके पुण्योंसे प्राप्त होता है। जो शरीर देवोंको दुर्लभ है, उसे व्यर्थ नष्ट कर देना हमारी बड़ी भूल है। हम अपने कर्तव्यको भुला दें, उसका स्मरण न करें,···नियमोंका पालन न करें, तब हम दुखी न हों तो कौन होगा?

× × × ×

यह शरीर 'परमात्माका मन्दिर' है। इसमें ईश्वरका निवास है। सदैव उनको अपने भीतर अनुभव करो। इस मन्दिरको कभी अपवित्र न होने दो। इस मन्दिरको अपवित्र बना देनेवाली कुछ बातें हैं, जिनसे सदा बचो। उनमें एक असत्य है। भूलकर भी, स्वप्नमें भी असत्य मुँहसे न निकले; इसकी कोशिश बराबर करो। यदि कहीं भूलसे झूठ निकल जाय तो उस असत्यके लिये प्रार्थना करो, क्षमा माँगो। सच्चे और पवित्र हृदयसे परमात्माके चरणोंमें गिरो और पुनः असत्य न बोलनेका व्रत लो। उसे अपना प्राण देकर भी पालो।

—महामना मदनमोहन मालवीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु और व्यक्तित्व

(लेखिका—प्रो० इन्दुप्रभा आत्रेय, एम्० ए०, एम्० एड्०)

भौतिकवादी मनोविज्ञानके अनुसार मृत्यु व्यक्ति और व्यक्तित्व—दोनोंको समाप्त कर देती है। यह भौतिकवादकी महान् भूल है। मनोविज्ञानकी नवीन शाखा परामनोविज्ञानकी खोजोंके द्वारा प्राप्त तथ्योंने यह सिद्ध कर दिया है कि मृत्यु केवल स्थूलशरीरको ही समाप्त कर पाती है। मरनेके बाद भी मृत व्यक्तिकी आत्मा इस संसारके व्यक्तियोंपर प्रभाव डालती रहती है[1]। स्थूलशरीरतक ही व्यक्तित्व सीमित नहीं माना जा सकता है। डा० शान्तिप्रकाश आत्रेयने अपनी पुस्तक 'योग-मनोविज्ञान'-में कहा है कि 'स्थूलशरीरको ही व्यक्तित्व मानना तथा यह कहना कि स्थूलशरीरके नष्ट होनेपर व्यक्तित्व ही समाप्त हो जाता है, ठीक उसी प्रकारसे है जिस प्रकारसे यह कथन कि बिजलीके बल्ब फूट जाने या फ्यूज हो जानेपर बिजली ही नहीं रह जाती तथा उस बल्बके स्थलपर कोई बल्ब ही नहीं जल सकता। व्यक्तित्वकी इस प्रकारकी धारणा मूर्खतापूर्ण धारणा है।' (योग-मनोविज्ञान—२८७)।

हैरवार्ड कैरिंगटन (Hereward Carrington)-ने भी मृत्युके बाद व्यक्तित्वको सिद्ध किया है।[2] आधुनिक वैज्ञानिक भी अब अपने अनुसंधानोंके आधारपर भारतीय विचारधाराका प्रतिपादन करने लगे हैं तथा मृत्युके बाद व्यक्तित्व विद्यमान रहता है इस तथ्यकी पुष्टि करने लगे हैं।[3] इन्द्रियजन्य ज्ञान एवं अनुभव तो बहुत सीमित है। व्यक्तित्व तथा अनुभवका क्षेत्र इन्द्रियजन्य ज्ञानके क्षेत्रसे कहीं विशाल है। स्थूलशरीरके अतिरिक्त आत्मा एवं समस्त वासनाओंसहित सूक्ष्मशरीर भी है, जो मृत्युके बाद स्थूलशरीरके समाप्त हो जानेपर भी समाप्त नहीं होता। वह जीवके मोक्ष प्राप्त करनेतक उससे सम्बन्धित रहता है। सांख्यदर्शनके अनुसार मृत्युके द्वारा स्थूलशरीरके नष्ट होनेपर आत्मा लिङ्ग-शरीर तथा अधिष्ठान-शरीरसहित उसे छोड़कर दूसरी दुनियामें विचरता है। सूक्ष्मशरीरके साथ अनेक जन्मोंके कर्माशय संस्काररूपसे विद्यमान रहते हैं। सूक्ष्मशरीरके प्रवेशमें कहीं भी कोई रुकावट नहीं हो सकती। यह महाप्रलयकालमें भी नष्ट नहीं होता, बल्कि बीज-रूपसे प्रकृतिमें विद्यमान रहता है तथा सृष्टिकालमें पुनः आत्मासे सम्बन्धित होकर धर्म-अधर्मरूपी कर्माशयोंका फल भोगता रहता है। आत्मासे इसका सम्बन्ध केवल मोक्षके बाद ही छूटता है; अन्यथा कर्मोंका फल भोगनेके लिये एक स्थूलशरीरसे दूसरे स्थूलशरीरको धारण करता रहता है। सांख्य तथा योगके अनुसार अनन्त आत्माएँ हैं और उनके साथ अनन्त सूक्ष्मशरीर वासनाओंसहित लगे हैं। प्रलयकालीन अवस्था तो व्यक्तित्वकी केवल सुप्तावस्था है, सृष्टिकाल उसकी जाग्रत्-अवस्था है। कोई दो जीव समान व्यक्तित्ववाले नहीं होते हैं। यह व्यक्तित्व परिवर्तनशील होनेसे मोक्षकालतक स्थायी होते हुए भी गत्यात्मक है।[4] प्रारब्ध कर्मोंसे वर्तमान शरीर, भोग, कुल, आयु, वातावरण आदि प्राप्त होते हैं। व्यक्तित्वका निर्माण भी व्यक्ति अपनी स्वतन्त्र इच्छा-शक्तिद्वारा करता है। क्रियमाण कर्मोंसे व्यक्ति अपने व्यक्तित्वमें परिवर्तन पैदा कर सकता है। इस आधारपर ही व्यक्तित्वमें विकास हो सकता है तथा होता है। मृत्यु इस विकासको समाप्त नहीं कर सकती। इस विकासके बिना मोक्ष ही असम्भव है। यदि हम भौतिकवादियोंकी तरह मृत्युके द्वारा व्यक्तित्वको समाप्त मान लें तो हमारे प्रयत्न एवं इच्छाओंका कोई फल नहीं होता। इस रूपसे तो नैतिक उच्च व्यक्तित्वका विकास करना व्यर्थ ही है। मरनेके बाद जब कुछ रह ही नहीं जाता तो इतना कष्टप्रद प्रयत्न सब शून्यमें विलीन होनेके लिये

१. डा० भी० ला० आत्रेय—परामनोविज्ञान—अ० ६।

2. Carrington: The Story of Psychic Science, Page No. 323, 324, 282, 425.

3. Lodge: The Survival of Man, Page No. 221. Osborn: The Super physical, 1958. Page 250; Sir A. Conon Doyle : Survival, Page 104.

४. डा० शान्तिप्रकाश आत्रेय—योगमनोविज्ञान—अध्याय-२२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों किया जाय ? इसको माननेसे तो जीवन ही मूल्य-हीन हो जाता है। सत्य तो यह है कि संसारमें बुद्धि और विवेकका शासन है तथा विकास होता है। विज्ञान, दर्शन, धर्म एवं नैतिकताका अस्तित्व है; वे बेकार नहीं हैं। जीवात्माको मृत्यु समाप्त नहीं करती। वह तो एक जन्मसे दूसरे जन्ममें प्रकाशित होता रह सकता है। इसी आधारपर जीवका मोक्ष सम्भव है। अगर मृत्युके बादके जीवनकी आशा न हो तो सम्पूर्ण क्रियाएँ तथा कर्म बेकार हो जायँगे। मृत्युके बाद तो जीव लिङ्ग-शरीरसहित अनेक लोकोंमें विचरण करता है। अतः यह कहना कि मृत्यु व्यक्तित्वको समाप्त कर देती ह, महान् मूर्खता है।

आधुनिक युगमें अब परामानसकीय अनुसंधान और परामनोविद्याकी खोजोंसे जिन तथ्योंकी स्थापना हुई है, वे हमारे अंदर एक ऐसी वस्तुकी ओर संकेत करते हैं जो दिक्, काल, शरीर और पर्यावरणकी भौतिक सीमाओंसे परे हैं। इनके परिणामोंकी व्याख्या किसी भी भौतिकीय सिद्धान्तके द्वारा नहीं हो सकती है। डा० जे० बी० राइनने अपनी पुस्तक 'न्यू वर्ल्ड आफ माइंड'में कहा है कि 'मनुष्यके अंदर भौतिक नियमोंसे परे कार्य करनेवाली चीज है, जिससे आध्यात्मिक नियमका अस्तित्व स्पष्ट है।' आज यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि इस शक्तिका अस्तित्व असंदिग्ध है। यह स्थूलशरीरके समाप्त होनेसे समाप्त नहीं होती है। डा० भी० ला० आत्रेयने अपनी पुस्तक 'परामनोविज्ञान'में कहा है कि 'मनुष्यकी असाधारण शक्तियाँ और मनुष्यके अंदर रहनेवाले अतिप्राकृतिक तत्त्वोंके वैज्ञानिक अध्ययनपर आधारित मानव-व्यक्तित्व-विषयक यह मत कि हम परस्पर और सब प्राणियोंसे जुड़े हुए आध्यात्मिक जीव हैं, तथा यह कि हम सब सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् परम सत्तासे एक हैं और वही हमारा मूल है; वही मत है जो भारतमें वेदों और उपनिषदोंके प्राचीनतम युगसे चला आ रहा है।' भगवद्गीतामें इसकी संक्षेपमें चर्चा है और योगवासिष्ठमें विस्तारसे। थियोसोफीने इसी मतको समस्त धार्मिक विश्वासोंके आधारके रूपमें स्वीकार किया है और इसकी विस्तृत व्याख्या की है। इस प्रकार परामानसकीय अनुसंधान आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान और प्राचीन भारतीय मनोविज्ञानके बीच इस समय पायी जानेवाली चौड़ी खाईको पाटनेका काम करता है।'

सब कथनोंका अन्तिम सारांश यह है कि व्यक्तित्वमें स्थूल शरीरके अतिरिक्त आध्यात्मिक शक्ति या भौतिक तत्त्वोंसे परेकी शक्ति भी विद्यमान है जो मृत्युके द्वारा समाप्त नहीं होती है। अतः व्यक्तित्व मृत्युके बाद भी विद्यमान रहता है।

जन्म-मरणरूपी दुःख-सागरसे तरनेका उपाय

जो नर इस संसारमें अत्यन्त प्रेम, धर्म, विद्या, सत्संग, सुविचारता, निर्वैरता, जितेन्द्रियता आदि शुभ गुणों तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे ईश्वरका आश्रय लेता है वही सौभाग्यशाली है; क्योंकि ऐसा जन यथार्थ सत्य विद्याके द्वारा सम्पूर्ण दुःखोंसे छूटकर परमानन्द परमेश्वरका नित्य संगरूप, जो मोक्ष है, उसको प्राप्त करता है। फिर वह जन्म-मरणरूप दुःख-सागरको प्राप्त नहीं होता। परंतु जो विषयलम्पट, विचाररहित, विद्या-धर्म-जितेन्द्रियता-सत्संगसे रहित, छल-कपट दुराग्रहादि दुष्ट गुणोंसे युक्त है, वह कभी भी मोक्ष-सुखको प्राप्त नहीं कर सकता; क्योंकि वह ईश्वर-भक्तिसे विमुख है। ऐसा जन जन्म-मरण आदि पीड़ाओंसे पीड़ित होकर सदा दुःख-सागरमें ही डूबा रहता है। सब मनुष्योंको उचित है कि परमेश्वर तथा उनकी आज्ञाके विरुद्ध कभी भी कोई आचरण न करें। परमेश्वर तथा उनकी आज्ञामें सदा तत्पर होकर इस लोक तथा परलोककी सिद्धि यथावत् करें। यही मनुष्य-जीवनकी कृतकृत्यता है।

—स्वामी दयानन्द सरस्वती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवयान और पितृयाण, पुनर्जन्म तथा मुक्ति

(लेखक—श्रीसुशान्तजी ब्रह्मचारी)

मनुष्य इन्द्रियोंके जगत्‌में इतना अधिक आसक्त है कि वह इसे छोड़ना नहीं चाहता; परंतु सौभाग्य या दुर्भाग्यसे हर एक व्यक्तिके जीवनमें ऐसा समय आता ही है, जबकि एकमात्र प्रश्न यह रहता है कि 'क्या कब्रके उस पार भी कोई जीवन है ? क्या क्षितिजके उस पार भी कोई जीवन है ?' कुछ लोग इस प्रकारके परेशानी पैदा करनेवाले प्रश्नोंकी ओरसे, इनको तत्कालके लिये अनावश्यक मानकर अपनी आँख मूँदनेकी चेष्टा कर सकते हैं; परंतु जैसे-जैसे मृत्यु निकट आयेगी, स्वभावतः यह प्रश्न फिरसे खड़ा हो जायगा कि 'क्या इस जीवनके उस पार भी कोई सत्य है?' भारतमें प्राचीन समयके उपनिषदोंके ऋषियोंमें भी हमें इसी प्रश्नकी जिज्ञासा दिखायी देती है—

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये-
ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके ॥
(कठोपनिषद् १ । १ । २०)

'मरे हुए मनुष्यके विषयमें जो यह संदेह है कि कोई तो कहते हैं रहता है और कोई कहते हैं नहीं रहता, इसमें सत्य क्या है ?'

अब हम प्रथमतः यह विचार करें कि पुनर्जन्मका वास्तविक अर्थ क्या है ? हिंदू-तत्त्व-दर्शन इसे शरीरके विघटनके बाद आत्माके एक घरसे दूसरेमें स्थानान्तरण-मात्रकी संज्ञा देता है। भगवद्गीतामें हम देखते हैं—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥
(२ । २२)

'जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है।' इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आत्मा शरीरकी अपेक्षा एक स्थायी तत्त्व है, जो एक अस्थायी आवाससे दूसरे अस्थायी आवासमें अपना स्थानान्तरण करता रहता है। पूर्वजन्मोंमें किये गये कर्मोंके परिणामोंपर ही आत्माके नये चोलेका निर्णय आधारित होगा। जब कोई व्यक्ति मरता है, तो उसके स्थूलशरीर और मनसे सूक्ष्मशरीर तथा मन आत्माकी निद्रित अवस्थामें अविलम्ब बाहर आता है। यह कुछ समयतक सूक्ष्मरूपमें ही रहेगा और इसकी समाप्तिके साथ ही यह पुनः स्थूलरूपमें प्रकट होगा। कुरुक्षेत्रके युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें अर्जुनको उत्साहित करते हुए बहुत ही सुन्दर ढंगसे इसी विचारको व्यक्त किया है। जब वह युद्धभूमिमें ही तीर-धनुषको एक किनारे रखकर रथमें यह कहते हुए बैठ गया था कि मैं युद्ध नहीं कर सकता और द्रोण तथा भीष्म-सदृश पूज्य गुरुजनोंका वध नहीं कर सकता, उस समय भगवान्‌ने अर्जुनको फटकारते हुए कहा—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥
(गीता २ । २८)

'सम्पूर्ण प्राणी जन्मसे पहले बिना शरीरवाले और मरनेके बाद भी बिना शरीरवाले ही हैं। केवल बीचमें ही शरीर-वाले प्रतीत होते हैं; फिर इस विषयमें क्या चिन्ता है?' निःसंदेह यह कदापि आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक आत्माको इस रूपान्तरकी प्रक्रियामेंसे जाना ही पड़े। किसी-किसीको पुनः भौतिक शरीर नहीं भी प्राप्त हो सकता। वे आत्माके उच्च लोकोंकी ओर तबतक बढ़ते जायँगे, जबतक वे मुक्त नहीं हो जाते। हम जानते हैं कि इस जागतिक कार्य-व्यापारकी प्रत्येक घटना कार्य-कारणकी परम्पराद्वारा निर्धारित होती है। इसीके अनुसार नये शरीरका ढाँचा तथा गुण इस प्रकारके होने चाहिये जो हमारे पिछले कर्मोंके फल तथा नये अनुभवोंको संचित करनेके लिये उपयुक्त हों। हम इन्हें तीन सर्वमान्य विभागोंमें विभक्त कर सकते हैं—

(१) प्रथमतः वे लोग हैं, जिन्होंने बिना किसी फलकी इच्छाके भले और हितकर निष्काम कर्म किये हैं। उनका पुनरागमन नहीं होगा। वे सूक्ष्म-से-सूक्ष्म ऊर्ध्वलोकोंकी ओर तबतक बढ़ते जायँगे, जबतक वे मुक्त नहीं हो जाते।

(२) दूसरे वे आत्मा हैं, जिन्होंने बदलेमें शुभ फल प्राप्त करनेकी इच्छासे पुण्य कर्म किये हैं। वे आत्माएँ लोकोंमें उन पुण्य कर्मोंके शुभफलका उपभोग तबतक करेंगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जबतक वे समाप्त नहीं हो जाते और वे फिर लौटकर भूमिपर आ जायँगे ।

प्रथमको 'देवयान' कहते हैं और द्वितीयको 'पितृयाण' । देवयानमार्गके विषयमें बृहदारण्यकोपनिषद्में कहा गया है—

'ते य एवमेतद्विदुः, ये चामी अरण्ये श्रद्धां सत्यमुपासते तेऽर्चिरभिसम्भवन्ति' अर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद् यान् षण्मासानुदङ्ङादित्य एति मासेभ्यो देवलोकं देवलोकादादित्यमादित्याद्वैद्युतं तान्वैद्युतान्पुरुषो मानस एत्य ब्रह्मलोकान् गमयति तेषु ब्रह्मलोकेषु पराः परावतो वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः । (६ । २ । १५)

'ये जो (गृहस्थ) इस प्रकार इस (पञ्चाग्निविद्या) को जानते हैं तथा जो (संन्यासी या वानप्रस्थ) वनमें श्रद्धायुक्त होकर सत्य (ब्रह्म अर्थात् हिरण्यगर्भ) की उपासना करते हैं, वे ज्योतिके अभिमानी देवताओंको प्राप्त होते हैं; ज्योतिके अभिमानी देवताओंसे दिनके अभिमानी देवताको, दिनके अभिमानी देवतासे शुक्लपक्षके अभिमानी देवताको और शुक्लपक्षके अभिमानी देवतासे जिन छः महीनोंमें सूर्य उत्तरकी ओर रहकर चलता है, उन उत्तरायणके छः महीनोंके अभिमानी देवताओंको (प्राप्त होते हैं); षण्मासाभिमानी देवताओंसे देवलोकको, देवलोकसे आदित्यको और आदित्यसे विद्युत्-सम्बन्धी देवताओंको प्राप्त होते हैं । उन वैद्युत-देवोंके पास एक मानस पुरुष आकर उन्हें ब्रह्मलोकमें ले जाता । वे उस ब्रह्मलोकोंमें अनन्त संवत्सरपर्यन्त रहते हैं । उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती ।'

और पितृयाणके विषयमें लिखा है—

अथ ये यज्ञेन दानेन तपसा लोकाञ्जयन्ति ते धूममभिसम्भवन्ति धूमाद्रात्रिं रात्रेरपक्षीयमाणपक्षमपक्षीयमाणपक्षाद् यान् षण्मासान्दक्षिणादित्य एति मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकाच्चन्द्रं ते चन्द्रं प्राप्यान्नं भवन्ति, तांस्तत्र देवा यथा सोमं राजानमाप्यायस्वापक्षीयस्वेति एवमेनांस्तत्र भक्षयन्ति तेषां यदा तत्पर्यवैत्यथेममेवाकाशमभिनिष्पद्यन्ते आकाशाद्वायुं वायोर्वृष्टिं वृष्टेः पृथिवीं ते पृथिवीं प्राप्यान्नं भवन्ति ते पुनः पुरुषाग्नौ हूयन्ते ततो योषाग्नौ जायन्ते लोकान्प्रत्युत्थायिनस्त एवमेवानुपरिवर्तन्ते ।

(बृहदारण्यकोपनिषद् ६ । २ । १६)

'और जो यज्ञ, दान, तपके द्वारा लोकोंको जीतते हैं, वे धूम (धूमाभिमानी देवता) को प्राप्त होते हैं । धूमसे रात्रि देवताको, रात्रिसे अपक्षीयमाणपक्ष (कृष्णपक्षाभिमानी देवता) को, अपक्षीयमाणपक्षसे जिन छः महीनोंमें सूर्य दक्षिणकी ओर होकर जाता है, उन छः मासके देवताओंको, छः मासके देवताओंसे पितृलोकको, पितृलोकसे चन्द्रमाको प्राप्त होते हैं । चन्द्रमामें पहुँचकर वे अन्न हो जाते हैं । वहाँ जैसे ऋत्विग्गण सोमरसको 'आप्यायस्व अपक्षीयस्व'—ऐसा कहकर चमसमें भरकर पी जाते हैं, उसी प्रकार इन्हें देवगण भक्षण कर जाते हैं । जब उनके कर्म क्षीण हो जाते हैं, तो वे इस आकाशको ही प्राप्त होते हैं । आकाशसे वायुको, वायुसे वृष्टिको और वृष्टिसे पृथ्वीको प्राप्त होते हैं । पृथ्वीको प्राप्त होकर वे अन्न हो जाते हैं । फिर वे पुरुषरूप अग्निमें हवन किये जाते हैं । उससे वे लोकके प्रति उत्थान करनेवाले होकर स्त्रीरूप अग्निमें उत्पन्न होते हैं । वे इसी प्रकार पुनः-पुनः परिवर्तित होते रहते हैं ।'

(३) और तीसरा है—अपने दुष्कर्मोंके परिणामस्वरूप आत्माका अधोगतिको प्राप्त होना । ऐसे लोग उपरिलिखित दोनों मार्गोंसे नहीं जायँगे । शास्त्रोंकी अवहेलना करके वे निम्न पशु-योनिमें यहाँतक कि जड वृक्ष या पत्थरोंकी योनिको प्राप्त करेंगे ।

'य एतौ पन्थानौ न विदुस्ते कीटाः पतङ्गा यदिदं दन्दशूकम् ।'

(बृहदारण्यकोपनिषद् ६ । २ । १६)

'और जो इन दोनों मार्गोंको नहीं जानते, वे कीट, पतङ्ग और डाँस-मच्छर आदि होते हैं ।'

अब प्रश्न यह है कि 'क्या आत्माका इस आवागमनसे निकलनेका कोई उपाय है ?'

इसके लिये हिंदू-मस्तिष्कका उत्तर है कि 'हाँ, है । यदि कोई सचाईके साथ उसपर चलना चाहे तो वह इस जन्म-मृत्युके चक्करसे बच सकता है ।'

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोकायन्ति पथ्येव सूराः ।
शृण्वन्ति विश्वे अमृतस्य पुत्राआ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् २ । ५)

'मैं तुमसे सम्बन्ध रखनेवाले पुरातन ब्रह्ममें नमस्कार (चित्त-प्रणिधान आदि) द्वारा मन लगाता हूँ । सन्मार्गमें विद्यमान विद्वान्की भाँति मेरा यह कीर्तनीय श्लोक (स्तुति-पाठ) लोकमें विस्तारको प्राप्त हो । जिन्होंने सब ओरसे दिव्य धामोंपर अधिकार कर रक्खा है, वे अमृत (हिरण्यगर्भ) के पुत्र विश्वेदेवगण श्रवण करें ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥
(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३ । ८)

'मैं इस अज्ञानातीत प्रकाशस्वरूप महान् पुरुषको जानता हूँ । उसे ही जानकर पुरुष मृत्युको पार करता है; इसके सिवा परमपद-प्राप्तिका कोई और मार्ग नहीं है ।'

सार यह है कि प्रत्येक प्राणी ब्रह्म है । वे अज्ञानके आवरणके परिणामस्वरूप अहंकारसे अपने-आपको शरीर, मन तथा बुद्धि मान बैठते हैं ।

'जन्म' तथा 'मृत्यु' शरीरकी अभिव्यक्ति और विघटनके ही नाम हैं । यह शरीर ही है, जो मरता है और आत्माद्वारा छोड़ दिया जाता है; परंतु आत्मा नहीं मरता । वास्तवमें मन और शरीर उस अहंकार-चैतन्यको सीमित करनेवाले सहयोगी हैं, जो उसके अस्तित्व तथा ब्रह्ममें अन्तर स्थापित करते हैं । यदि कोई व्यक्ति मन तथा शरीरसे आसक्तिका त्याग कर देता है और अपनी चेतनाको अद्वितीय ब्रह्ममें लगा देता है, तो वह जन्म-मरणको पार कर जायगा । आत्माके बुद्धियोगसे उसके अज्ञानका नाश हो जायगा । इसीलिये मनको विशुद्ध बनानेकी आवश्यकता है, ताकि सब द्वन्द्वों तथा आसक्तियोंसे ऊपर उठकर ब्रह्मका साक्षात्कार हो सके । जैसा कि भगवद्गीतामें कहा है—

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥
(५ । १७)

'जिनका मन तथा बुद्धि तद्रूप है और उस सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही है एकीभावसे स्थिति जिनकी, ऐसे तत्परायण पुरुष ज्ञानके द्वारा पापरहित हुए अपुनरावृत्तिको अर्थात् परमगतिको प्राप्त होते हैं ।'

देवयान या अर्चिमार्ग—उत्तरायण शुक्लपक्ष और दिवामार्गसे मृत्यु

(लेखक—श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्यजी महाराज)

द्वे सृती अश्रृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥
(ऋ० १० । ८८ । १५; यजु० १९ । ४७)

वर्तमान शरीर त्यागकर प्राणियोंके लिये इस लोकसे परलोकमें जानेके वेदोंमें दो मार्ग बताये गये हैं—एक 'देवयान' और दूसरा 'पितृयाण' । देवयान मार्ग शुक्ल और प्रकाशमय है तथा पितृयाण कृष्ण और अन्धकारमय है । इसीका गीतामें भी प्रतिपादन किया गया है—

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽऽवर्तते पुनः ॥
(८ । २६)

शुक्ल (देवयान) को अनावृत्ति (मुक्ति) मार्ग और कृष्ण (पितृयाण) को आवृत्ति (बार-बार संसारमें लौटनेवाला) मार्ग कहा गया है । मुक्तिमार्ग ही अर्चिरादि मार्ग है, जो प्रकाशमय है । 'अर्चि' अग्निको कहते हैं । अग्निसे ही प्रकाश होता है ।

अर्चिरादिगतानां हि वैष्णवानां हरिः स्वयम् ।
गतिः स्मृत्या विनिर्दिष्टा श्रुत्या चापि द्विजोत्तम ॥
निर्हेतुककृपा दृष्ट्या यमेवेक्षेत माधवः ।
स एव निर्गुणे मार्गे परमैकान्तिनां मुने ॥
विना भागवतीं दीक्षां विनैकान्तनिषेवणम् ।
नाधिकारो महाभाग परमैकान्तिनां पथि ॥

अर्चिमार्गसे जानेवाले वैष्णवोंकी गति साक्षात् भगवान् नारायण ही होते हैं । जिसपर भगवान्की निर्हेतुक कृपा होती है, वही परम वैष्णव है और वही इस गुणातीत अर्चिमार्गसे जाता है । वैष्णवधर्मपरायण तथा अनन्यभावसे भगवान्की सेवा किये बिना जीव इस मार्गका अधिकारी नहीं होता है ।

एवं संसृतिचक्रस्थे भ्राम्यमाणे स्वकर्मभिः ।
जीवे दुःखाकुले विष्णोः कृपा क्वाप्युपजायते ॥

'पूर्वजन्मके स्वकृत शुभाशुभ कर्मोंके फल-भोगानुसार संसृतिचक्र (बार-बार जन्म और मरणकी परम्परा) में उलझे हुए दुःखाक्रान्त जीवोंके ऊपर कभी भगवान्की निर्हेतुक कृपा होती है ।'

'जब द्रवहिं दीनदयालु राघव साधु संगति पाइये ।'

भगवान्के कृपाप्राप्त जीवोंको सर्वप्रथम संतोंकी संगति प्राप्त होती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्सङ्गादेव निःस्पृहो गुरुमुखाच्छ्रीशं प्रपद्यात्मवान्
प्रारब्धं परिभुज्य कर्म सकलं प्रक्षीणकर्मान्तरः।
न्यासादेव निरङ्कुशेश्वरदयानिर्लूनमायान्वयो
हार्दानुग्रहलब्धमध्यधमनीद्वारा बहिर्निर्गतः॥
मुक्तोऽर्चिर्दिनपूर्वपक्षषडुदङ्मासाब्दवातांशुमद्
ग्लौविद्युद्वरुणेन्द्रधातृमहितः सीमान्तसिन्ध्वाप्लुतः।
श्रीवैकुण्ठमुपेत्य नित्यमजडं तस्मिन् परब्रह्मणः
सायुज्यं समवाप्य नन्दति चिरं तेनैव धन्यः पुमान्॥

संतोंकी संगतिद्वारा मनुष्य सांसारिक विषयोंसे निःस्पृह हो सर्वशरण्य भगवान् नारायणकी शरणागति करता है। इस क्रियाके द्वारा उसे आत्मस्वरूपका परिचय प्राप्त होता है। आत्मज्ञान होनेपर अनातुरभावसे प्रारब्ध-कर्म-फलको निःशेष भोगकर शरीरस्थ नाड़ियोंमें सर्वप्रधान सुषुम्णा-नाड़ीद्वारा आत्माका बहिर्निर्गमन होता है। यह मुक्तात्मा अर्चिरादि मार्गद्वारा वैकुण्ठ जाता है।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः॥
(गीता ८। २४)

ब्रह्मज्ञानी मुक्तजन अर्चिरादि मार्गद्वारा परमधाम जाते हैं। इस मार्गमें अग्निलोक, अहर्लोक, शुक्लपक्षलोक, उत्तरायणलोक, संवत्सरलोक, वायुलोक, सूर्यलोक, चन्द्रलोक, विद्युल्लोक, वरुणलोक, इन्द्रलोक तथा ब्रह्मलोक मिलते हैं।

भगवान्‌का अनन्य भक्त शरीर त्यागकर प्रथम अग्निलोकमें जाता है। अग्निलोक-देव उसे अपने लोकका मार्ग दिखाते हुए अहर्लोकतक पहुँचा देता है। अहर्लोक-देव अपने लोकसे उत्तरायणलोकतक पहुँचाकर लौट आता है। उत्तरायणलोक-देव उसे संवत्सरलोकतक पहुँचा देता है। इस तरह ऊपर लिखित बारह लोकोंके अधिपति अपने-अपने लोकसे दूसरे लोकतक मुक्तात्माको ससम्मान पहुँचाकर लौट आते हैं—

अर्चिरहः सितः पक्ष उत्तरायणवत्सरौ।
मरुद्वीन्द्रवो विद्युद्वरुणेन्द्रचतुर्मुखाः॥
एते द्वादश धीराणां परधामातिवाहिकाः।
वैकुण्ठप्रापिका विद्युद्वरुणादेस्त्वनुग्रहः॥

इसीको 'अर्चिरादि-मार्ग' कहते हैं। छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक आदि श्रुतियोंमें भी ऐसा ही कहा गया है।

गीता अ० ८ के २६ और २७वें श्लोकका यही मन्तव्य है। भगवान् श्रीकृष्णने इन श्लोकोंके द्वारा अर्जुनको ऊपर लोकोंमें जानेके लिये जिन दो मार्गोंका निर्देश किया है, अर्थात् अर्चि और धूम—इन दोनों मार्गोंका ज्ञाता योगी मोहाक्रान्त नहीं होता है। अतः मुमुक्षुओंको इसपर विचारकर अर्चिरादि-मार्ग प्राप्त करनेका उपाय करना चाहिये।

यद्यपि इस समय घनघोर कलिकालमें विद्याकी क्षीणता तथा जीवोंकी केवल अर्थ-कामपरायणताके कारण अर्चिरादि-मार्ग लोगोंके लिये कहानीका भी विषय नहीं रह गया है, फिर भी भगवान् श्रीकृष्णका यह निर्देश अनुष्ठेय है—

'तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन।'
(गीता ८। २७)

अर्थात् अर्चिरादि-मार्ग-ध्यानरूप योगप्राप्तिका उपाय आवश्यक है। वह उपाय भगवान्‌की अनन्य भक्ति ही है। जो व्यक्ति उल्लिखित दोनों मार्गोंका ज्ञान कर लेगा, वह तो अवश्य ही समझ जायगा कि अर्चि-मार्ग प्राप्त किये बिना संसारबन्धनका पचड़ा मिटनेको नहीं है। अतः शीघ्रातिशीघ्र भगवान्‌की शरणागति सबको करनी चाहिये, जिससे परलोक नहीं बिगड़ने पाये और मनुष्य-जीवन सफल हो—

एतद् यो न विजानाति मार्गद्वितयमात्मवान्।
दन्दशूकः पतङ्गो वा भवेत्कीटोऽथ वा कृमिः॥
(याज्ञ० स्मृ० ३। १९७)

अर्थात् 'जो व्यक्ति अर्चि और धूममार्गका ज्ञान नहीं कर सका है, वह सर्प, पतङ्ग, कीट या कृमि आदि योनिमें भ्रमता रहेगा।'

अर्चि-मार्ग-वर्णन

सोहर छन्दमें (देहाती भाषामें)

दया किन्ह भगवान् संत मोहि मिलन ये।
तब संत किये उपदेश शरण हरि के भये ये॥ १॥
दिन्ह ज्ञान भगवान् हृदय-तम भागल ये।
तब तन धनसे मन भग हरिके चरण लागल ये॥ २॥
अन्तर्यामी कृपा करि धमनी धरवतन ये।
हरि अर्चिक पन्थ बतलवतन उपर दिखवतन ये॥ ३॥
अतिवाहिक देव मिली मोहि रथ बइठवतन ये।
तब दिन पक्ष मास वर्ष पति पूजन करतन ये॥ ४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात सूर्य विधु चपल बरुण इन्द्र विधि पुर ये ।
पुनि जायब विरजा नहायब तनहु बिलायब ये ॥ ५ ॥
अतिमानव भगवान् स्वरूप निज देतन ये ।
तब दिव्य विमान चढ़ाइ देव लै जयतन ये ॥ ६ ॥
आरंग ताल नहायब गन्ध लगवायब ये ।
पुनि तिलतर भूषण बसन पहिरी बनि जायेब ये ॥ ७ ॥
लक्ष्मीसरोवर पहुँचब बहुरि नहायेब ये ।
पुनि बहुबिधिसे बहुमानित हो चल जायेब ये ॥ ८ ॥
नित्य सूरि तहँ मिलि सन हरि धुनि गवतन ये ।
तब दिव्यलोक हम देखब शीश नवायब ये ॥ ९ ॥
पाँव पाँव हम दौड़ब हाबु हाबु बोलब ये ।
हमें देखतहि भगवान् हँभर के बुलवतन ये ॥१०॥
जात हि हम गिरजायेब हरिके चरणतर ये ।
प्रभु चारिउ कर धर मोहि हृदयमें लगवतन ये ॥११॥
सिरपर कर धर पुछतन बबुआ तु कहाँ हल हो ।
तब तनु कर जन्म मरण दुख कह समुझायेब ये ॥१२॥
लक्ष्मी के गोद देतन हम हँस बैठब ये ।
मैया मुख चूमत चुचुकारत अधिक दुलारत ये ॥१३॥
हृदयके जलन बुतायेत शान्ति सुखद जल से ।
अतिमोद उछाह प्रवाह सुनेह निबाहत ये ॥१४॥
सेवन बिधिहुँ बताइ सेवा सब देतन ये ।
तब नित नेह लगाइ सदा हम सेवब ये ॥१५॥
ब्रह्मानन्द अघाके परम रस पायेब ये ।
श्रीलक्ष्मीनाथ के साथ सुमाथ झुकायेब ये ॥१६॥

आयुष्कालका रहस्य या आयुकी अभिवृद्धि

(लेखक—डा० श्रीत्रिभोवनदास दामोदरदासजी सेठ)

दुर्लभ मनुष्यदेह बार-बार नहीं मिलता । इसलिये हृदयमें हरि-नामसे प्रेम धारण करनेका प्रयत्न करो । यदि एक बार दृढ़ निश्चय कर लो कि प्रभुकी प्राप्ति करके ही रहूँगा, तो फिर ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो तुम्हें प्रभुप्राप्तिके मार्गसे हटा दे । भगवत्-साक्षात्कार करके मानवजीवनको धन्य तथा सफल बनाना है । इसके लिये आयुवृद्धि और स्वास्थ्य-रक्षाके लिये प्रयत्नशील रहना अपना कर्तव्य है—

आचार्य कहते हैं—'**इदं शरीरं खलु धर्मसाधनम् ।**'—तथा—

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ।
सर्वकार्येष्वन्तरङ्गं शरीरस्य हि रक्षणम् ॥

'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्तिके लिये नीरोग तथा स्वस्थ शरीर ही मुख्य साधन है । इस लिये शरीरकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये ।' वेदमें भी दीर्घजीवनकी प्राप्तिके लिये बार-बार कहा गया है—

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् । आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् । मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥ (अथर्ववेद १९ । ७१ । १)

'ब्राह्मणोंको पवित्र करनेवाली, वरदान देनेवाली वेदमाता गायत्रीके द्वारा हम ईश्वरकी स्तुति करते हैं । वे हमें आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन और ब्रह्मतेज प्रदान करती हैं तथा अन्तमें मोक्षकी प्राप्ति कराकर ब्रह्मलोकमें ले जाती हैं ।'

इस मन्त्रमें सबसे प्रथम आयुका उल्लेख किया गया है । आयुके बिना प्रजा, कीर्ति, धन आदिका कुछ भी मूल्य नहीं है । आत्माके बिना देहका कोई मूल्य नहीं । यही बात आयुके विषयमें है । सौ वर्षकी आयुके लिये अनेक प्रार्थनाएँ देखनेमें आती हैं ।

दीर्घजीवनके लिये अथवा मृत्युको दूर करनेके लिये छः बातें आवश्यक हैं—(१) ब्रह्मचर्य, (२) प्राणायाम, (३) प्रणव-जप, (४) सिद्धपुरुषकी कृपा, (५) ओषधि तथा रसायन-सेवन और (६) मिताहार । आयुकी रक्षा और वृद्धिके ये छः स्तम्भ हैं ।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व राभरत् ॥
(अथर्ववेद ११ । ५ । १९)

'ब्रह्मचर्यरूपी तपसे विद्वानोंने मृत्युको दूर हटा दिया । इन्द्रने भी ब्रह्मचर्यके प्रतापसे देवताओंको सुख और तेज प्रदान किया ।' यह मन्त्र आज्ञा देता है कि मृत्युको दूर करनेके लिये ब्रह्मचर्यका पालन अवश्य करो । ब्रह्मचर्यकी महिमाको मनुष्यने जबसे भुलाया, तभीसे उसका अधःपतन आरम्भ हो गया । जीवनमें उत्साह, मेधाकी अप्रतिम शक्ति, जीवनकी मस्ती, यौवनका सात्त्विक उल्लास, आकृतिका ओजस्,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणीकी दृढ़ता, कार्यकी दृढ़ता, सच्चे साहसकी स्वाभाविकता, जीवनमें चापल्य और चाञ्चल्य—ये सब पूर्ण ब्रह्मचर्यके चिह्न हैं।

वैज्ञानिकोंने यह निश्चय किया है कि ८० पाउंड भोजनसे ८० तोला खून बनता है और ८० तोला खूनसे दो तोला वीर्य बनता है। एक मासकी कमाई डेढ़ तोला वीर्य है। एक बार ब्रह्मचर्य-भङ्ग होनेसे लगभग डेढ़ तोला वीर्य निकलता है। इससे आयु घटती जाती है। कठिन परिश्रमसे प्राप्त की हुई शक्तिको एक बारमें नष्ट कर देना कैसी मूर्खता है। यही वीर्य यदि नष्ट न हो, तो ओजस् बनकर सारे शरीरको तेजस्वी बना देता है। इसी कारण कहा है—

'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।'

'वीर्यका नाश मृत्यु है और वीर्यकी रक्षा जीवन है।'

गुरुके सांनिध्यमें रहकर प्राणायाम करना सीखना चाहिये और फिर उसका अभ्यास बढ़ाना चाहिये। स्वरोदयके अनुसार एक दिनमें अर्थात् चौबीस घंटेमें मनुष्यके औसत इक्कीस हजार छः सौ श्वास चलते हैं। उनमें जितनी कमी की जाय उतनी ही आयु बढ़ जाती है तथा जितने ही श्वास बढ़ते हैं, उतनी ही आयु घट जाती है।

मैथुनक्रिया, क्रोध, उत्तेजना, हिंसा, आवेश, अतिहर्ष, दौड़ना आदिमें श्वास जल्दी-जल्दी चलकर बढ़ जाते हैं, जिससे आयु घटती है और प्राणायाम, ध्यान, शान्ति, क्षमा, ब्रह्मचर्य, नम्रता, धीरे-धीरे चलना आदिमें श्वास धीमी गतिसे चलते हैं, अतः आयु बढ़ती है। आयुकी अवधि श्वासोंपर निर्धारित है, कालपर नहीं। आयुके घटने-बढ़नेका यह रहस्य निरन्तर स्मरण रखना चाहिये। मनुष्यको जहाँतक हो सके, जल्दी-जल्दी और लघु श्वास नहीं लेना चाहिये। बल्कि ऐसी आदत डालनी चाहिये कि श्वास लम्बा हो और धीरे-धीरे चले। प्राणायाम इसका एक मुख्य साधन है। परंतु प्रत्येक मनुष्य प्राणायाम नहीं कर सकता, इसलिये दीर्घ श्वास-प्रश्वासकी क्रिया नीचे लिखे अनुसार करनेसे उद्देश्य-सिद्धि हो सकती है।

प्रत्येक मनुष्यको सबेरे सूर्योदयसे पूर्व उठना चाहिये। मल-मूत्रका त्याग करके स्नान करे। पश्चात् जमीनपर कम्बल या दरी बिछाकर सिरके नीचे कोई तकिया बिना रक्खे लेट जाय। हाथ-पैरको ढीला रक्खे। कमरका बन्धन ढीला करे और मुँह बंद करके नाकसे श्वास ले। श्वास इस प्रकार ले कि नाभिके साथ-साथ पेट फूलता जाय। इस प्रकार पेट भर जानेपर मुँह बंद रखते हुए नाकके द्वारा इस प्रकार श्वास छोड़े कि धीरे-धीरे पेट बैठता चला जाय। नाकसे श्वास लेने और छोड़नेका समय एक-सा होना चाहिये। परंतु यह समय घड़ीसे मापना ठीक नहीं। प्रभुकी प्रार्थनासे एक चरण-पद लेकर मनमें एक बार जबतक पाठ होता रहे, तबतक श्वास ले; और पश्चात् वही पाठ एक बार होता रहे, तबतक श्वास छोड़े। पश्चात् जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता जाय, वैसे-वैसे प्रार्थनाके पाठकी मात्रा बढ़ाता जाय। उसका दूसरा चरण ले ले। (अथवा प्रार्थनाके स्थानमें भगवान्‌के नामका जप करता रहे) अर्थात् जितने समयमें चौबीस अक्षरका उच्चारण हो, उतने समयतक श्वास लेने और उतने ही समयतक श्वास छोड़नेका अभ्यास करे। इस प्रकार कम-से-कम सात बार और अधिक-से-अधिक इक्कीस बार श्वास लेने-छोड़नेका नियमित अभ्यास करे। यह विशेष रूपसे याद रक्खे कि श्वास लेनेमें वायु नाभिपर्यन्त पहुँचता है या नहीं और श्वास छोड़ते समय नाभि खाली हो जाती है या नहीं। इस प्रकार क्रिया करनेके बाद दिन-रात यह ध्यान रक्खे कि श्वास छोटा तो नहीं हो रहा है। इसकी परीक्षा स्वयं ही की जा सकती है।

यदि यह क्रिया बराबर होती रहेगी, तो क्रिया करनेवालेका मल साफ उतरेगा, पेशाब ठंडा होगा, भूख खूब लगेगी। खाया हुआ भोजन खूब पचेगा, आँखका तेज बढ़ेगा। सिरमें आनेवाला चक्कर और दिमागकी गरमी शान्त होगी। शरीरमें शक्ति बढ़ने लगेगी।

किंतु यह क्रिया ठीक न होती होगी, तो श्वास लेनेकी अपेक्षा छोड़नेमें समय कम लगेगा। ऐसी अवस्थामें उपर्युक्त गुणोंकी अपेक्षा विरुद्ध परिणाम निकलेगा। यदि कभी आवश्यक कार्यवश श्रम होनेके कारण श्वास जोर-जोरसे चलने लगे तो घबराकर मुँहसे श्वास न ले। बल्कि मुँह बंद रखकर नाकसे श्वास लेते रहनेसे थोड़ी ही देरमें श्वास नियमित हो जायगा और थकावट दूर हो जायगी।

जैसे-जैसे नाभिसे श्वास निकालकर बाहर हवामें फेंका जायगा और बाहर हवामें शुद्ध हुए श्वासको नाकके द्वारा नाभि-पर्यन्त पहुँचाया जायगा, वैसे-वैसे विष्णुपादामृतकी प्राप्ति अधिकाधिक होती जायगी; इस प्रकार दीर्घजीवन प्राप्त करनेमें सफलता मिलेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रणव-मन्त्रके जपसे आयु बढ़ती है। तैलधारावत् प्रणव-मन्त्रका जप श्वास-श्वासमें चलना चाहिये। नाड़ीके साथ प्रणव-मन्त्रका जप करनेसे बहुत शीघ्र प्रगति होती है। श्वास-प्रश्वासकी गति तालबद्ध बनती है। धातु और रसायनके विशेष योगसे विद्युत्-शक्ति प्रकट होती है। इसी प्रकार श्वास-प्रश्वासके साथ प्रणव-मन्त्रका जप करनेसे अमोघ शक्ति उत्पन्न होती है। अखण्ड गतिसे प्रणव-मन्त्रका जप करनेसे मन उसमें स्थिर हो जाता है। जैसे चुम्बकके सामने लोहा रखनेसे तुरंत ही चुम्बक लोहेको खींच लेता है, केवल चुम्बककी शक्तिके पास लोहा आना चाहिये; इसी प्रकार अखण्ड प्रणव-मन्त्रका जप चुम्बकके समान है, चित्त-वृत्तियाँ लोहेके समान हैं। ये दोनों समीप आ जायँ तो प्रणव-मन्त्रका जप वृत्तियोंको खींच लेता है और वृत्तियाँ प्रणव-मय बन जाती हैं। इस प्रकार दीर्घजीवन और प्रभु-प्राप्तिकी साधना—दोनों साथ-साथ आगे बढ़ते हैं और जीवनका ध्येय सफल हो जाता है।

सिद्धपुरुषकी कृपा भी इसमें विशेषरूपसे सहायक होती है। यदि सिद्धपुरुषकी कृपा हो तो दीर्घ-जीवन और प्रभुकी प्राप्ति दोनों ही सत्वर प्राप्त होते हैं।

मुमुक्षु आत्मसाक्षात्कार तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। परंतु इसका साधन भी शरीर ही है। यदि बीचमें ही शरीरका पतन हो जाय तो अन्तिम लक्ष्य-स्थानतक पहुँचनेमें दीर्घकालतक समय बिताना पड़ता है। बार-बार जन्म लेने और देहत्याग करनेमें बहुत समय नष्ट होता है। अतएव किसी भी उपायसे शरीर सशक्त और स्वस्थ बना रहे तथा दीर्घकालतक टिका रहे तो प्रभुकी प्राप्तिमें सहायक हो सकता है। शरीरको बलवान् बनानेमें शास्त्रोक्त औषध और रसायनका सेवन भी बहुत काम करता है। कायाकल्पके प्रयोगसे शरीरको फिर तरुण-जैसा बलवान् बनाया जा सकता है। अमृत पीनेसे यह देह अमर हो जाता है। बहुतसे योगियोंका मत है कि हमारे परम गुरु मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ आदि आज भी अपने असली शरीरसे विद्यमान हैं। अश्वत्थामाके विषयमें भी यही बात कही जाती है। अतएव औषध और रसायनका सेवन करनेसे अपने ध्येयमें पर्याप्त सहायता मिलती है।

मिताहार शरीरको स्वस्थ बनाये रखनेमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। मिताहारका अर्थ है—पेटमें दो भाग भोजनसे, एक भाग जलसे भरे और एक भाग हवाके लिये खाली रक्खे। खाना तभी चाहिये जब भूख लगे।

आयुकी वृद्धि एवं जीवनके परम लक्ष्य प्रभुकी प्राप्तिके उपर्युक्त छः उपायोंका श्रद्धा तथा दृढ़तापूर्वक सेवन करके जीवनको सफल बनाना चाहिये।

जीवनका एकमात्र सत्य

जीवनसे हमें यह शिक्षा मिलती है कि इस संसारमें बराबर ही प्रत्येक वस्तु मनुष्यको निराशा प्रदान करती है। एकमात्र भगवान् ही उसे निराश नहीं करते, यदि वह पूर्ण रूपसे उनकी ओर मुड़ जाय। तुम्हारे ऊपर जो चोटें पड़ रही हैं, उनका अर्थ यह नहीं है कि तुम्हारे भीतर कोई बुरी वस्तु है—चोटें तो सभी मनुष्योंपर पड़ती हैं; क्योंकि वे ऐसी वस्तुओंकी कामनाओंसे भरे होते हैं जो बराबर नहीं टिक सकतीं और वे उन्हें खो बैठते हैं अथवा यदि वे उन्हें पाते भी हैं तो उन्हें उनसे निराशा ही प्राप्त होती है, वे वस्तुएँ उन्हें कभी संतुष्ट नहीं कर सकतीं। अतएव भगवान्‌की ओर मुड़ना ही जीवनका एकमात्र सत्य है।

—श्रीअरविन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देह-विवेचन

(लेखक—महामहोपाध्याय श्रद्धेय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०, डी० लिट्०)

(१)

देहस्वरूपका विचार

हमलोग भौतिक जगत्‌के निवासी हैं, इसी कारण साधारणतः एकमात्र भौतिक देहको ही देह समझते हैं। भौतिक देह पाञ्चभौतिक है, अर्थात् पृथिवी आदि पञ्चभूतोंकी मिलित अवस्थामें भौतिक देहकी उत्पत्ति होती है। इन पाँच भूतोंमेंसे प्रत्येक भूत ही प्रति भौतिक देहका उपादान हो, ऐसी बात नहीं है। पार्थिव देहका उपादान पृथिवी है, अन्यान्य भूत यहाँ निमित्त या उपष्टम्भक हैं। वरुणलोकमें जलीय देहमें जल ही उपादान होता है, अन्यान्य भूत निमित्त-मात्र होते हैं। तैजस देह, वायवीय देह और आकाशीय देहके सम्बन्धमें भी यही एक नियम है। स्थूलदेहके सिवा सूक्ष्मदेह भी है। प्रकृतिके सूक्ष्म उपादानके द्वारा इसकी रचना हुई है। सांख्यशास्त्रके मतसे लिङ्ग सूक्ष्मके ही अन्तर्गत है। **'सप्तदशैकं लिङ्गम्'**—यह प्रसिद्ध ही है। जैसे मृत्यु जबतक नहीं हो जाती, तबतक स्थूलदेह रहता है। इसी प्रकार जबतक 'कैवल्य' प्राप्त नहीं हो जाता, तबतक लिङ्ग-शरीरकी सत्ता अटूट बनी रहती है। मृत्युके समय लिङ्ग या सूक्ष्म सत्ता स्थूलदेहका त्याग करती है। स्थूलदेह भोगायतन है। लिङ्गशरीरमें भोग नहीं होता। लौकिक जीवन स्थूलदेहके जन्मसे लेकर स्थूलदेहके त्याग अर्थात् मृत्युपर्यन्त सीमित रहता है। मृत्युके बाद आतिवाहिक देहका काम शुरू हो जाता है। परंतु वह सामयिक होता है। स्थूलदेहके त्यागके बाद लिङ्गशरीर एक स्थानसे दूसरे स्थानपर स्वयं नहीं जा सकता। मृत्युके बाद जब स्थूलदेहसे लिङ्गशरीर पृथक् होता है तब एक आतिवाहिक देह आविर्भूत होता है और लिङ्गशरीरको कर्मानुसार अन्य भोगायतन देहकी प्राप्तिपर्यन्त साथ लिये चलता है; क्योंकि उसके बिना केवल लिङ्गशरीर भोग-सम्पादन नहीं कर सकता। स्थूल-देहका त्याग करनेके बाद लिङ्गशरीरको एक भोगस्थानसे दूसरे भोगस्थानमें ले जानेके लिये आतिवाहिक देहकी आवश्यकता होती है। निर्दिष्ट भोगलोकमें जानेपर उस स्थान-के भोगके लिये उपयोगी भोगायतन स्थूलशरीर रचित होता है। उस नवरचित स्थूलदेहमें लिङ्गशरीर प्रविष्ट हो जाता है। प्रत्येक लोकमें इसी प्रकार होता है। प्रत्येक लोकके स्थूलदेह पृथक्-पृथक् होते हैं। इनका तान्त्रिक योगिगण 'भुवनज देह'के नामसे वर्णन करते हैं। इन भुवनज देहोंमें तत्त्व-देह प्रविष्ट होकर भोग-सम्पादन करता है। केवल तत्त्व-देह (लिङ्ग) में भोग नहीं होता। केवल तत्त्व-देह और लिङ्ग-देह पर्यायवाची हैं। उसमें भोगका संस्कार तो होता है; परंतु भोगकी सामर्थ्य नहीं होती। भुवनगत भेदके कारण भुवनज देहके भी भेद होते हैं। इसी कारण भुवनज देह स्थूल होनेपर भी विष्णुलोकका भुवनज देह शिवलोकके भुवनज देहसे विभिन्न प्रकारका होता है। प्रत्येक लोकमें एक व्यक्तिके भुवनज देहसे अन्य व्यक्तिका भुवनज देह भिन्न होता है, तथापि वह सजातीय होता है। तत्त्व-देह या लिङ्गशरीर पीछे अभिन्न या एकरूप होनेपर भी तत्तत् लोकके भोगके लिये एक ही तत्त्व-देहके विभिन्न भुवनज देह होते हैं। जबतक कैवल्यप्राप्ति नहीं हो जाती, तबतक ऐसा ही चलता रहता है। लिङ्ग या तत्त्व-देहके मूलमें 'कला-देह' रहता है। वह योनिस्वरूप है। इसी कारण शिवसूत्रमें लिखा है—**'योनिवर्गः कलाशरीरम्।'**

वेदान्तके मतसे स्थूल और सूक्ष्म शरीरके परे एक कारणदेह है। पञ्चकोषोंमें **'अन्नमय कोष' 'स्थूलशरीर'** है, 'प्राणमय', **'मनोमय'** और 'विज्ञानमय' कोष **'सूक्ष्मशरीर'** है; और 'आनन्दमय कोष' **'कारणशरीर'** है।

यह हुई स्थूल, सूक्ष्म और कारण देहकी बात। वैष्णवाचार्य, शैवाचार्य और शाक्ताचार्यगण कारण-देहके परे एक और देह बतलाते हैं। उसका नाम है—'महाकारण-देह।' यह देह त्रिगुणके अन्तर्गत नहीं है, यह रजोगुण और तमोगुणके स्पर्शसे रहित 'विशुद्ध सत्त्वमय' है। यह अत्यन्त निर्मल है। यह 'अप्राकृत देह' है। शैवसिद्धान्तके अनुयायी इसको 'बैन्दव देह' कहते हैं। बिन्दु या विशुद्ध सत्त्वमें भगवदनुग्रहसे चित्-शक्तिका अनुप्रवेश होनेपर यह देह रचित होता है। सिद्ध ईसाई साधक सेण्ट पाल (Saint Paul) इसको 'आध्यात्मिक देह' (Spiritual body) कहते हैं। यह अप्राकृत या (Supernatural) है। दिव्य ज्ञान या साक्षात् भगवदनुग्रह प्राप्त हुए बिना इस देहकी प्राप्ति नहीं होती। वैकुण्ठधाममें सभी भगवद्-भक्तोंके इसी प्रकारके देह होते हैं। स्वयं भगवान्‌का देह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी इसी प्रकारका है। 'महाकारण-देह'का उपादान विशुद्ध सत्त्व है। इसके बाद चित्-शक्तिमय देह भी है। 'महाकैवल्य-देह' के नामसे संत-समाजमें वह प्रसिद्ध है। 'वैन्दव देह'का नाम तान्त्रिक जगत्में सब जानते हैं। इसके भी अतीत जो देह है, शाक्त लोग उसको 'शाक्त देह' या 'चिन्मयस्वरूप'के नामसे पुकारते हैं।

यह केवल कैवल्यात्मक चिन्मात्र नहीं है, किंतु चित्-शक्ति-निर्मित 'शाक्तदेह' है। कबीर-सम्प्रदायमें 'हंस-देह' नामक एक सर्वोपरि देहका पता मिलता है। यह सब वर्णन सत्य है; क्योंकि आत्माकी स्वरूपशक्तिके क्रमविकासके अनुसार साधकके जीवनमें इन सबकी अभिव्यक्ति होती है। निश्चय ही सब साधकोंको सब स्तरोंका पता नहीं रहता। कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि मृत्यु स्थूलदेहकी होती है। सूक्ष्म या लिङ्ग देहकी मृत्यु नहीं होती। इसी प्रकार अन्य देहोंकी भी बात है। परंतु निवृत्ति है। स्थूलदेहातीत होनेपर जन्म-मृत्युका आवर्तन कट जाता है, परंतु ऊर्ध्वगतिकी सम्भावना तब भी रहती है। तदनुसार शुद्धतर, शुद्धतम देहका विकास होता है। चरम अवस्थामें जो स्थिति होती है, वह देहभावका परम उत्कर्ष है। उस अवस्थामें एक पृष्ठपर देह और दूसरे पृष्ठपर देहातीत स्थिति होती है। वहाँ चित् और अचित् भेद नहीं रहता। महाप्रकाशके आलोकमें सब एकाकार हो जाता है।

देहके दूसरे प्रकारके भी भेद हैं—योनिज और अयोनिज देह सर्वत्र सुपरिचित हैं। रजोवीर्यसे उत्पन्न देह 'योनिज' है। औपपादुक देह 'अयोनिज' है। औपपादुक देह नाना प्रकारका होता है। योनिके सूक्ष्म भेदके अनुसार योनिज देहके भी विभिन्न प्रकार हैं; ऊर्ध्वलोकमें कहीं 'दृष्टि'से जन्म होता है, कहीं 'स्पर्श'से जन्म होता है—इत्यादि नाना प्रकारके भेद हैं। 'आतिवाहिक देह' इन सबसे पृथक् है, वह भोग-शरीर नहीं होता। वह जीवको एक भोग-स्थानसे दूसरे भोग-स्थानमें पहुँचा देता है। 'सिद्ध-देह' इन सब देहोंसे अलग होता है। लौकिक स्थूलदेह ही तपस्या और योगके प्रभावसे पञ्चभूतोंकी क्रियासे अतीत होनेपर 'सिद्ध-देह'के नामसे प्रसिद्ध होता है। पातञ्जलयोगियोंके सम्प्रदायमें यह 'काय-सम्पद्' नामसे ख्यात है। यह स्थूल होते हुए भी सूक्ष्मदेहके धर्मको प्राप्त करता है और तदनुसार कार्य करता है। सिद्धिके तारतम्यके अनुसार यह विभिन्न प्रकारके उच्चतर देहका भी कार्य करता है। इसको श्रीअरविन्दके योगनिष्ठ साधकगण Integrated body कहा करते हैं। स्थूल और सूक्ष्म सत्तामें साम्यकी प्रतिष्ठा करके इसकी रचना की जा सकती है एवं और भी उच्चतर सत्ताके साथ साम्य स्थापित करनेपर यह हो सकता है। सब प्रकारके सिद्धदेह एक-से नहीं होते।

'ज्ञानदेह' इन सबसे पृथक् होता है। वह सद्गुरुकी कृपासे दीक्षाके समय प्राप्त हो जाता है। यह 'ज्ञानदेह' साधारणतः गुरुप्रदत्त बीजके रूपमें शिष्यको अर्पित होता है। शिष्यको योग-क्रियाके द्वारा उसका विकास करना पड़ता है। विकास पूर्ण होनेपर वह ज्योतिर्मय अमरदेहके रूपमें प्रकाशित होता है। शिष्य उच्च अधिकारी हो तो गुरुकी कृपासे वह विकसित रूपमें भी प्राप्त हो सकता है।

'भावदेह' इन सब देहोंसे पृथक् होता है। यहाँ भाव-देहके सम्बन्धमें संक्षेपमें कुछ कहा जाता है। यह अत्यन्त गुह्य विषय है, साधारण लोगोंके ज्ञानके अगोचर है, बुद्धिके लिये भी अगम्य है। सत्यके गम्भीर स्तरमें उपस्थित हुए बिना इन सब तत्त्वोंमें प्रवेश पाना अति कठिन है। सद्गुरुकी प्राप्तिके बाद उनके द्वारा मन्त्रकी प्राप्ति होती है। यह मन्त्र-साधना नाम-साधनाका ही गम्भीरतर रूप है। नाम-साधनासे गुरु-प्राप्ति होती है। तत्पश्चात् गुरुप्रदत्त मन्त्र-साधनासे स्वभावकी प्राप्ति होती है। अभावरूपी माया हमारी सत्ताको घेरे रहती है। गुरुप्रदत्त मन्त्रके प्रभावसे सम्यक् ज्ञानके उदय होनेपर मायाका आवरण हट जाता है। तब प्रत्येक आत्मा अनावृत स्वरूप होकर अपने प्रच्छन्न स्वभावको पुनः प्राप्त होता है। यह गुरुप्रदत्त ज्ञानकी महिमा है। एक प्रकारसे इसको 'आत्मज्ञान' भी कह सकते हैं; परंतु यह धारणा करना बहुतोंके लिये कठिन होगी। प्रत्येक आत्माका एक अन्तरङ्ग स्वभाव होता है। वह मायाके आवरणसे ढका होनेके कारण मायिक अथवा परकीय भावसे भावित होकर आनन्दप्राप्तिके लिये एक देहसे दूसरे देहमें भ्रमण करता रहता है; परंतु उसे वास्तविक आनन्दकी प्राप्ति नहीं होती; क्योंकि आनन्दप्राप्तिके लिये जो आवश्यक है, वह मायाके आवरणके दूर हुए बिना नहीं प्राप्त होता। आत्मा जब अपने भावको प्राप्त होता है, तब उसका परकीय भाव दूर हो जाता है। परकीय भावका तात्पर्य है—मायिक या मायाजनित भाव। सत्य तो यह है कि आत्माका वास्तविक साधन आत्माकी मायाकी निवृत्तिके पहले आरम्भ ही नहीं होता। गुरुका एकमात्र कार्य है—आत्माके स्वरूपाच्छादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवरणको हटाकर उसको अपने स्वभावमें प्रतिष्ठित करना। साधारणतः मनुष्य वस्तुतः जानता ही नहीं है कि वह कौन है और क्या चाहता है। उसे क्या अभाव है और वह कहाँ और किस प्रकार निवृत्त हो सकता है, यह उसकी समझमें ही नहीं आता। सब कुछ मायाके आवरणसे ढका है। सत्यका स्वरूप उसके सामने उन्मुक्त होकर खुलता नहीं है। सद्गुरुप्रदत्त मन्त्रकी सिद्धिके बाद यह आवरण खुल जाता है। आत्मा तब अपनेको पहचान सकता है। और अपने अभावको स्वयं ही अनुभव करता है तथा अभावकी निवृत्तिका उपाय भी उसके सामने प्रकट हो जाता है। प्रकारान्तरसे कहा जाता है कि मायाके कट जानेके बाद 'माँ' मिल सकती है। किंतु साथ-ही-साथ उसी समय वह मिल जाती हो, ऐसी बात नहीं है। माँका अभाव उस समय अनुभूत होता है और वह अपनेको मातृहीन शिशुके समान असहाय समझता है। केवल यही नहीं, मातृ-हीन शिशु उस समय अभावकी ताड़नासे 'माँ-माँ' कहकर रुदन करता रहता है।

इस तत्त्वको और भी स्पष्ट करके कहा जाता है। मन्त्र-साधनाके फलसे ज्ञानका उदय होनेपर अनादि कालका आवरण कट जाता है। इस आवरणके भंग होनेके साथ-साथ जीव अर्थात् मायामुक्त जीव अपने स्वरूपको देख पाता है। इस स्वरूपकी दो सत्ताएँ नित्य सम्पर्कयुक्त रूपमें सम्बद्ध हैं,—एक है इसकी 'आश्रय-सत्ता' और दूसरी है 'विषय-सत्ता'। मायाके हटनेपर जब स्वभावका उन्मेष होता है तब मायातीत निज स्वरूपकी ये दोनों दिशाएँ खुल जाती हैं। इसीका नाम है—भावका विकास अथवा 'भावदेहकी प्राप्ति'। यही स्वभाव है। मायाके आवरणमें यही अनादि-कालसे ढका हुआ था। इसीके उन्मुक्त होनेपर भावदेही शिशु अपनी अनादिसिद्धा जननीके लिये क्रन्दन करता रहता है। इसीका नाम है—'भाव-साधना'! मायाका आवरण हट जानेपर यह नित्य-निरन्तर चलता रहता है। एक ओर जैसे भावमय शिशुका आविर्भाव होता है, दूसरी ओर वैसे ही इस भावमय शिशुकी जननीका भी आविर्भाव होता है। एक ओर जैसे पिपासा होती है, दूसरी ओर उसी प्रकार सुशीतल सलिल प्रकट होता है। दोनोंका ही आवि-र्भाव होता है। परंतु उनके बीचमें बहुत बड़ा व्यवधान होता है। एक ओर तीव्र पिपासा होती है और दूसरी ओर सुशीतल जल। बहुत कुछ ऐसी ही अवस्था होती है। भाव-साधना है—शिशुका माँ-माँ पुकारकर रुदन करना; क्योंकि शिशु माँके सिवा और किसीको जानता नहीं है। भावदेही आत्मा जो निरन्तर माँ-माँ कहकर व्याकुलभाव प्रकट करता है, इसीका नाम है—'भावसाधना'। वास्तविक साधनाका प्रारम्भ यहींसे होता है। मायाकी निवृत्तिके पूर्व जो साधना थी, वह कृत्रिम थी; क्योंकि वह कर्तृत्वाभिमान लेकर की जाती थी, परंतु वह भी व्यर्थ नहीं है; क्योंकि उसीके फलसे मायाकी निवृत्ति होती है। भावसाधना अकृत्रिम है, यह किसीको भी सिखानी नहीं पड़ती। इसके लिये गुरुकी आवश्यकता नहीं होती। मन्त्र आवश्यक नहीं होता, शास्त्रकी आवश्यकता नहीं होती, विधि-विधानकी आवश्यकता नहीं होती। इस भावदेहमें ही साधकका अहंभाव जुड़ जाता है। मायादेह उस समय भी रहता है। मायादेह कर्मजगत्की वस्तु है, वह प्रारब्धकर्मसे उत्पन्न है और प्रारब्धकर्मके साथ ही संश्लिष्ट है। आत्मा एक साथ इन दोनों देहोंमें अधिष्ठान करता है। मायादेह कर्मजगत्के नियमके अनुसार चलता रहता है। आत्माका अहंभाव या अभिमान जब मायिक देहमें रहता है तब मायिक देहका कार्य होता है; जब भावदेहमें रहता है तब भावदेहका कार्य होता है। एक ही समयमें न्यूनाधिक भावसे दोनों देह ही रह सकते हैं। किंतु भावदेहके विकासकी धारा स्वतन्त्र है। भावसाधनाके फलस्वरूप भावका विकास होता है और उसके प्रभावसे मातृसत्ता उसके समीप उपस्थित हो जाती है। 'भाव' प्रेमकी अपरिणत अवस्था है। भाव परिपक्व होनेपर वही 'प्रेम'रूपमें परिणत हो जाता है। 'भाव' मानो पुष्पकी कलिका है और 'प्रेम' मानो खिला हुआ सुगन्धित पुष्प है। भावके विकाससे मातृसत्ता क्रमशः विकसित होकर सामने प्रकट हो जाती है। भाव परिपूर्ण होनेपर माँ और संतानका मिलन हो जाता है, अर्थात् प्रेमके उदयके साथ-साथ माँ संतानको गोदमें ले लेती है। तब फिर व्यवधान नहीं रह जाता। इसके बाद जब क्रमशः प्रेमकी प्रगाढ़ता बढ़ती है, तब माँ और संतान क्रमशः द्रवित—विगलित होकर एक होनेकी दिशामें अग्रसर होते हैं। प्रेमावस्थामें योग अच्छिन्न रहता है और प्रेमकी पूर्वावस्थामें भाव। यह योगका सूचक है। माँकी गोदमें शिशुका होना—यह एक अवस्था है। माँ और शिशु क्रमशः विगलित—द्रवित होकर एकाकारको प्राप्त होते हैं, यह एक दूसरी अवस्था है। यह एकाकारकी प्राप्ति है। यही रसभावका उदय है। भावुक, प्रेमिक और रसिक—क्रम-विकासके ये तीन स्तर हैं। भावावस्थामें बालभाव होता है, प्रेमावस्थामें किशोरभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है तथा रसावस्थामें नवयुवकभाव होता है। 'भाव-देह', 'प्रेमदेह' और 'रसदेह'—इस तीन क्रमके भीतर बहुत रहस्य है। श्रीभगवान्‌की नित्यलीलामें प्रत्येक जीवका ही अधिकार है। परंतु जबतक भावके मार्गसे प्रेमके द्वारा रसका विकास नहीं हो जाता, तबतक रसमयकी दिव्य रासलीलामें प्रवेशका अधिकार नहीं पैदा होता। रसावस्थामें प्रविष्ट होनेपर ही मञ्जरीसे सखी एवं सखीसे राधाभावका स्पर्श हुआ करता है। रागानुगा भावसे हो अथवा महाभाव-की विशिष्ट कृपासे रागात्मिका भावसे हो, रसके विकास तथा रसिक अवस्थाकी प्रतिष्ठा आवश्यक है। भावावस्थामें भावदेह नित्य बाल-भावमय रहता है, प्रेमकी अवस्थामें प्रेमदेह नित्य किशोर-भावमें रहता है और प्रेमकी पूर्ण परिणतिमें किशोर-अवस्था पार होकर नवयौवनमें प्रवेश होता है। यह कालातीत नित्य भूमिकी बात है। गुह्य रहस्यको अधिक व्यक्त करना समीचीन नहीं है। प्राचीन मायादेह, जो काल-राज्यमें जीर्ण और स्थविर हो जाता है, वह साधारणतः कर्मजगत्‌के नियमके अनुसार चलता रहता है। विशिष्ट उच्चकोटिका अधिकार होनेपर यह मायिक देह भी सिद्ध देहके रूपमें परिणत हो सकता है। तब वह कालके परिणामके ऊपर उठ जाता है। उस देहमें जरा-मृत्यु नहीं होती; परंतु वह लीलाराज्यमें प्रवेश नहीं कर सकता। भावसे होते हुए प्रेमके द्वारा रसमें उपनीत हुए बिना लीला-राज्यमें प्रवेश प्राप्त नहीं हो सकता। आत्माका रसास्वादन होता है—'रसमय' देहमें और जागतिक व्यापारोंका संघटन होता है 'सिद्ध-देह'में। सिद्ध-देह 'योग-देह' है, इसमें संदेह नहीं और वह 'कालातीत' है, यह भी सत्य है; परंतु वह कर्ममय मायिक देहकी ही परिणति है। रसदेहकी धारा सम्पूर्णतया पृथक् है। वह लीलाके लिये उपयोगी है। 'सिद्ध-देह' महामाया-राज्यकी वस्तु है। 'रसदेह' गुणसे ही मायातीत तथा महामायाके भी अतीत है।

(२)

आतिवाहिक देह

मृत्युके बाद जब आत्मा स्थूलशरीरका त्याग करता है, तब आतिवाहिक देह ग्रहण करके यथासमय भोगदेहको प्राप्त होता है। हमारे देशमें यह प्रसिद्धि है कि जब प्रेत-शरीरको भोजन और जल अर्पण किया जाता है तो कहा जाता है कि—

आकाशस्थो निरालम्बो वायुभूतो निराश्रयः।
इदं नीरमिदं क्षीरं स्नात्वा पीत्वा सुखी भव॥

यहाँ परलोकगत आत्माके वर्णनके प्रसङ्गमें उसे वायु-भूत तथा आकाशस्थ कहा गया है। वह देह वायव्य देह होता है। स्थूल इन्द्रियोंके द्वारा वह देखनेमें नहीं आता। इसके उपादानके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें कुछ मतभेद मिलता है। उनमें एक मत यह है कि वह देह वायवीय होता है। दूसरा मत है कि वह केवल वायवीय नहीं होता, उसमें तेज, वायु और आकाश—तीन तत्त्व रहते हैं। उस देहमें पृथिवी या जलका अंश नहीं रहता। विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें मिलता है कि—

तत्क्षणादेव गृह्णाति शरीरमातिवाहिकम्।
ऊर्ध्वं व्रजन्ति भूतानि त्रीण्यस्मात् तस्य विग्रहात्॥
आतिवाहिकसंज्ञोऽसौ देहो भवति भार्गव।
केवलं तन्मनुष्याणां नान्येषां प्राणिनां क्वचित्॥

इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्यकी मृत्यु हो जानेके बाद तत्काल उसे आतिवाहिक देह ग्रहण करना पड़ता है। स्थूलदेह पञ्चभूतात्मक है। जीवनकालमें ये पाँचों भूत परस्पर संश्लिष्ट रहते हैं; किंतु प्रारब्ध-कर्मकी समाप्तिके साथ-साथ यह संश्लेष या बन्धन टूट जाता है। तब गुरुत्व-सम्पन्न दो भूत अर्थात् जलीय और पार्थिव अंश नीचे गिर पड़ते हैं तथा गुरुत्वहीन तीन भूत अर्थात् तेज, वायु और आकाश ऊपर उठते हैं। यह देह जिसमें केवल तेज, वायु और आकाश रहते हैं, परंतु परस्पर घना संश्लेष नहीं रहता, उसको 'आतिवाहिक' देह कहते हैं। यह देह मृत्युके पश्चात् केवल मनुष्यको ही मिलता है, पशु-पक्षीको नहीं। इस देहके उपादानके विषयमें दोनों एक मत हैं। शूलपाणिने अपने 'प्रायश्चित्तविवेक'में तथा रघुनन्दनने अपने 'शुद्धितत्त्व'में यह मत ग्रहण किया है। दूसरे मतकी बात पहले ही कही जा चुकी है। उस मतसे इस देहका उपादान केवल वायु है। इसी कारण कोई-कोई इसको वायवीय देह भी कहते हैं। किं बहुना, यह आतिवाहिक देह भोगदेह नहीं है। साधारणतः प्रेत-देह कहनेसे इसीका बोध होता है। तत्पश्चात् प्रेत-पिण्डदानके बाद धीरे-धीरे इस प्रदत्त पिण्डके परमाणुओंके द्वारा भोगदेहका निर्माण होता है। दाहकालमें जो पिण्डदान किया जाता है और उसके बाद दस दिनोंतक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिव्य देवीद्वीपमें महादेवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो पिण्ड दिया जाता है, उसके फलस्वरूप क्रमशः भोगदेह निर्मित होता है। इस मतसे पहले आतिवाहिक देह, उसके बाद भोगदेह तथा उसके बाद भी एक अन्य तृतीय देहका उल्लेख देखनेमें आता है। 'प्रायश्चित्तविवेक'के टीकाकार गोविन्दानन्द कहते हैं कि 'देह दो प्रकारके होते हैं, एक आतिवाहिक अर्थात् प्रेतदेह और दूसरा भोगदेह।' आचार्य-गण कहते हैं कि 'पिण्डदान हुए बिना अथवा षोडश श्राद्ध किये बिना जीव चिरकालतक पिशाचरूपमें भ्रमण करता है और ढूँढ़नेपर भी उसे शान्ति-लाभका कोई मार्ग नहीं मिलता। समय बीत जानेपर अनेक श्राद्ध करनेपर भी पिशाचत्व सहसा दूर नहीं होता।' प्रेतको पिण्डदान करनेकी उपयोगिता प्राचीन कालमें सभी स्वीकार करते थे। धर्म-शास्त्रके अनुसार यह पिण्डदान न होनेपर कल्पान्ततक पिशाचभाव रह जाता है। वर्षके अन्तमें सपिण्डीकरण हो जानेपर दूसरे प्रकारका देह धारण करना पड़ता है। वही वास्तविक 'भोगदेह' होता है। इसके बाद पाप-पुण्यका विचार होनेपर यदि पुण्यकी अधिकता होती है तो उसे 'दिव्य देह'की प्राप्ति और देवलोककी गति होती है। पापकी अधिकता रहनेपर 'यातना-देह' धारण करके नरकमें जाना पड़ता है। स्वर्ग और नरकका पृथक्‌रूपमें वर्णन किया गया है। किं बहुना, स्वर्गमें असंख्य देवलोक विद्यमान हैं और इसी प्रकार नरकोंकी संख्या भी अनेक है। किंतु स्वर्गमें केवल सुख और आनन्दका ही भोग होता है; वहाँ दुःखका लेश भी नहीं होता। इसी प्रकार नरकमें केवल दुःख ही रहता है।

स्वर्ग प्रकाशमय है, वहाँ अन्धकार नहीं है। सदा ज्योतिका प्रकाश रहता है। नरकमें प्रकाश नहीं है, केवल अन्धकार रहता है। स्वर्गमें नित्य सुगन्धकी अनुभूति होती है और नरकमें सदा दुर्गन्ध क्लेश देती रहती है। याद रखनेकी बात है कि स्वर्ग या नरकमें स्थिति दीर्घकालतक होनेपर भी वह नित्य नहीं है। पुण्यक्षय हो जानेपर स्वर्गीय जीवनसे स्खलित होना पड़ता है। इस प्रकार स्वर्गभ्रष्ट जीव मनुष्य-कुलमें, सद्‌वंशमें, उत्तम परिस्थितिमें जन्म ग्रहण करता है। इसी प्रकार नरकसे निकलनेपर साधारणतः पशु-पक्षीकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है, पश्चात् मनुष्ययोनिमें जन्म होता है तथा मनुष्ययोनिमें आकर भी हीनवंशमें प्रायः विकृत देह लेकर जन्म लेना पड़ता है।

(३)

देहसिद्धि

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः।' 'मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्।'—

आदि वाक्योंके द्वारा पञ्चभूतात्मक षाट्‌कौशिक देहकी मृत्यु अवश्यम्भावी बतलायी गयी है। महाभारतमें बकरूपी धर्मने जब युधिष्ठिरसे पूछा कि 'आश्चर्य क्या है?' तब युधिष्ठिरने उसको जो उत्तर दिया, उसमें यह तथ्य प्रकाशित था कि 'प्रतिदिन जीव यमलोकको जा रहे हैं, यह जानकर भी प्रत्येक प्राणी संसारमें स्थायीभावसे रहना चाहता है, यही परम आश्चर्य है।' योगशास्त्रमें भी इस विषयमें कहा गया है कि "सब जीवोंमें एक साधारण प्रार्थना स्वतः ही उदित होती है कि 'मैं सदा संसारमें रहूँ, मेरा कभी अभाव न हो।'"

देहसे हमारा अभिप्राय शुक्र और शोणितके द्वारा रचित योनिज शरीरसे जानना चाहिये। पूर्वजन्मके कर्मोंके फल-भोगके लिये जीव यह देह ग्रहण करता है। यह देह चेष्टा, इन्द्रिय और भोगके आश्रयके रूपमें मुख्यतः देह-पद-वाच्य है। इससे पृथक् स्थूलदेहमें 'देह' शब्दका प्रयोग गौणरूपमें होता है। न्याय-वैशेषिकके मतसे 'देह' शब्दका यही तात्पर्य है। सांख्यमतसे **'सप्तदशैकं लिङ्गम्'**—सूत्रके द्वारा लिङ्गशरीर स्वीकृत हुआ है। वेदान्तके मतसे भौतिक देह और लिङ्गदेहसे भिन्न मूलाविद्याको 'कारण शरीर'के रूप-में स्वीकार किया गया है। यहाँतक गुणमण्डलकी व्याप्ति है। कार्य और कारण भेदसे भौतिक देह दो प्रकारका होता है। पुनः कार्यदेहमें भी स्थूल और सूक्ष्म रूप विद्यमान हैं। प्रचलित दर्शन एवं पुराण और उपपुराणमें त्रिविध देहों-का उल्लेख और विचार देखा जाता है।

भौतिक शरीर विकारशील है, इस विषयमें सभी एकमत हैं; किंतु ऐसा होनेपर भी मन्त्र, ओषधि तथा तपके प्रभावसे; उपासना, योग और ज्ञानके प्रभावसे अथवा अन्य किसी प्रक्रियासे यह शरीर यहाँतक विमल हो सकता है कि नश्वर होनेपर भी यह अविनाशी हो सकता है और मृत्यु-को जय कर सकता है। यह कल्पनामात्र नहीं है, बल्कि शास्त्र और अनुभवसिद्ध है। इस विषयमें अनुसंधान करनेवाले 'कालदहन-तन्त्र' और 'मृत्युञ्जय-तन्त्र'में कायसिद्धिका विवरण देख सकते हैं। चिदम्बरमूनिवासी रामलिङ्ग शास्त्रीने प्रायः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौ वर्ष पहले कायसिद्धि प्राप्त की थी तथा समागत जनके समक्ष दिनके प्रकाशमें वे अन्तर्धान हो गये थे। यह एक प्रामाणिक तथ्य है। इस विषयमें और भी तथ्य और घटनाओंका उल्लेख किया जा सकता है।

भूतसमूह स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय और अर्थवत्त्व-रूपमें पाँच स्वभावसे युक्त हैं। भूतसमूहके इस पञ्चविध रूपमें संयमके द्वारा जयप्राप्ति करनेपर योगीको अणिमा आदि सिद्धियाँ तथा कायसिद्धिकी अभिव्यक्ति होती है। भूतजय होनेपर योगीके जहाँ एक ओर रूप-लावण्यका विकास होता है, वहाँ दूसरी ओर उसी प्रकार शरीर वज्रके समान दृढ़ हो जाता है। यही मुख्य 'कायसम्पत्' है। सिद्ध-देहका प्रधान लक्षण यही है कि वह भूतधर्मके द्वारा अभिभूत नहीं होता और इसके फलस्वरूप व्याधि-जरा आदि विकारोंसे मुक्त होकर मृत्युको भी जय कर लेता है। कभी-कभी देखा जाता है कि एक ही साथ देह अजर और अमर हो गया है तथा कभी अजरत्व और अमरत्व एक साथ नहीं भी होते हैं। जब अजरता और अमरता दोनों धर्म एक ही देहमें रहते हैं तब उस देहको 'दिव्य तनु' कहा जाता है। पुनः देहके जरारहित होनेपर भी दीर्घ-कालोपरान्त कालके प्रभावके वश देहान्त होता है। परंतु ऐसा होनेपर भी उसमें 'देह' शब्दका व्यवहार गौणरूपमें हुआ करता है। कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि देह मरणरहित होनेपर भी उसमें जरा आती है; परंतु सोमकलाके द्वारा उस जराको आपूरण कर लिया जाता है। उसके बाद जब देह जीर्ण होता है, तब योगी जीर्ण वस्त्रके समान उस देहको त्यागकर औपपादुक देहके समान बालक, पौगण्ड और किशोरकी भाँति नवीन देह ग्रहण करता है, अथवा मानो यौवनका उन्मेष हुआ हो—इस प्रकारका तरुण शरीर प्राप्त करता है।

जीवका देहसम्बन्धरूप जन्म आयु और भोगके समान प्रारब्ध-कर्मके फलसे हुआ करता है। भोगके द्वारा प्रारब्ध-कर्मका क्षय हो जाता है और देहपात भी होता है। यही मृत्यु है। योग-प्रक्रियामें कायसम्पत्ति प्राप्त होनेपर भूतधर्म-के द्वारा केवल अनभिभव ही नहीं होता, बल्कि देहपात भी रुक जाता है।

सौगत (बौद्ध) मतमें बोधिसत्त्वकी दशभूमिरूप हेत्ववस्थामें चार प्रकारकी सम्पत् आविर्भूत होती है, उनमें वज्रसार स्थिरकायसम्पद्रूप 'काय-सम्पद्' उल्लेखनीय है। श्रुतिमें भी इस प्रकारके योगाग्निमय शरीरमें रोग, जरा और मृत्युके अभावकी बात सुनी जाती है। जैसे—

'न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तेऽस्य योगाग्निमयं शरीरम्।'

(श्वेता० २। १२)

देहसिद्धिकी विभिन्न प्रक्रिया विभिन्न स्थानोंमें देखी जाती है। देह वज्रके समान दृढ़ तथा आयुकी असाधारण वृद्धि होनेपर भी एवं भूतसमूहके द्वारा उसके अनभिभूत होनेपर भी युगान्तमें, महायुगके अन्तमें, कल्पके अन्तमें और महाकल्पके अन्तमें इस देहका पतन अवश्यम्भावी है। अतएव 'देहसिद्धि' भी आपेक्षिक है, यही कहना उचित है; क्योंकि देहके उपादानोंकी सम्यक् शुद्धि न होनेके कारण प्रदीप्त कालाग्निके प्रभावसे वह दग्ध हो जाता है। परंतु ये सब सिद्धपुरुष चिरजीवी हैं तथा दूसरे कल्पमें स्मरणीय रूपमें वर्णित होते हैं। 'अपाम सोममभूता अभूम।'—इस श्रुतिके अनुसार सोमपानके द्वारा अमरत्वकी प्राप्ति जैसे प्रलयकालपर्यन्त स्थायी होती है, वैसे ही इस प्रकारके देह भी कालावच्छिन्न हैं। अतएव यह अमरत्व वास्तविक नहीं है।

किंतु इस प्रकारकी स्थिति किसी विशेष प्रकारके देहके सम्बन्धमें सत्य होनेपर भी हम जिस प्रकारकी देहसिद्धिके विषयमें आलोचना कर रहे हैं, वह ऐसी नहीं है। देह जब शुद्ध सत्त्वमय अथवा चिन्मय स्थितिको प्राप्त होता है, तब पारमार्थिकी निरपेक्ष सिद्धिका उदय होता है। इस अवस्था-में मृत्युकी कोई सम्भावना ही नहीं रहती। इस विषयमें विशेषरूपसे यही जानने योग्य है कि षोडशकल पुरुषकी 'षोडशी' नामक जो अमृतकला है, उसी अमृतकला और पूर्ण सोमकलाके द्वारा देहकी आपूर्त्ति होनेपर उस देहमें कालानल 'संवर्त्तक' प्रवेश नहीं कर सकता और उसके फलस्वरूप कलाका शोषण नहीं होता। इस अवस्थामें देह और आत्माकी अभिन्नता सिद्ध हो जाती है तथा मृत्युञ्जयता प्राप्त होती है। असम्यक् रूपमें प्राप्त सिद्धदेह आयुक्षय होनेपर योगीकी इच्छासे अथवा कालप्रभावसे पतनको प्राप्त होता है; किंतु सम्यक् रूपमें देहसिद्ध होनेपर वह द्वितीय देह चिन्मय हो जाता है और तब योगीका देह उसकी शक्तिके रूपमें होकर निजस्वरूपके अन्तर्गत आ जाता है; अतएव उसके पतनकी कोई सम्भावना नहीं रहती। केवल स्वातन्त्र्यवश तिरोभाव मात्र होता है। पूर्ण सामरस्यकी दशामें देह और आत्मा जो शिव-शक्तिरूपमें सर्वतोभावेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समरस हो जाते हैं, वे अद्वयस्वरूप और नित्य स्वप्रकाश-रूप होते हैं। तब उनका तिरोभाव भी नहीं होता।

सिद्ध-सम्प्रदायमें एक किंवदन्ती है, जिसके जाननेसे सम्यक् और असम्यक् रूप 'कायसिद्धि'का भेद स्पष्ट हो जाता है। ऐसा सुना जाता है कि एक बार गोरक्षनाथने अल्लाम प्रभुदेव नामक किसी एक महासिद्धके समीप प्रकट होकर उनके सामने अपने भूतजय तथा वज्राङ्गताका प्रदर्शन किया था। प्रभुदेवके मतसे केवल वज्राङ्गताकी प्राप्ति सम्यक् सिद्धिके रूपमें स्वीकृत नहीं है। देहकी स्थिरता सिद्ध हो जानेपर भी जबतक मायापर विजय नहीं प्राप्त हो जाती, तबतक परामुक्तिकी सम्भावना नहीं है। उनके मतसे क्षर भूतसमूह और अक्षर कूटस्थके अधीश्वर महेश्वरकी भक्ति ही परामुक्ति प्रदान करती है। इस भक्तिके उदय हुए बिना देहसिद्धि परम देहसिद्धिके रूपमें परिगणित नहीं हो सकती।

गोरक्षनाथने कहा कि उनके शरीरपर तीक्ष्ण धारवाली तलवारके प्रहारसे भी कोई क्षति नहीं होगी। प्रभुदेवके मतसे छेदन भेदन आदि क्रियाके द्वारा कायसिद्धिकी परीक्षा आसुरी परीक्षा है। तथापि जब गोरक्षनाथके शरीरपर खड्गप्रहार किया गया, तब उनके शरीरका कोई अंश छिन्न नहीं हुआ, यहाँतक कि उनके शरीरका रोम भी उससे नहीं कट सका। केवल देहसे उसी प्रकार शब्द हुआ, जैसे वज्रके द्वारा आघात लगनेपर पहाड़से शब्द उत्थित होता है। तब प्रभुदेवने कहा कि 'कायसिद्ध योगी वात, आतप, अग्नि, वज्र, वृष्टि, हिम आदिके द्वारा पीड़ित नहीं होता तथा वह जरा-मृत्युसे रहित होता है। वह सब प्रकारके सम्बन्धसे रहित होकर ईश्वरमें पूर्ण समाधिस्थ रहता है।'

गोरक्षनाथ ये सब बातें सुनकर उनकी परीक्षामें लग गये। उन्होंने तलवार लेकर अनेक प्रकारसे प्रभुदेवके शरीरपर आघात किया। परंतु प्रभुदेव आकाशवत् अचल रहे। वह आघात कहाँ लगा है, यह समझमें नहीं आया। गोरक्षनाथ इस प्रकारकी अद्भुत सिद्धि देखकर अत्यन्त विस्मित हुए। उनके अपने शरीरपर आघातके फलस्वरूप शब्द उत्थित हुआ था, किंतु प्रभुदेवका शरीर अचल और निःशब्द था।

प्रभुदेव बोले—**'काये घनीभवति सापि घनैव माया।'**

रस-सम्प्रदायमें अति प्राचीन कालसे ही जीवन्मुक्तिकी साधनाके लिये कायसिद्धिकी उपयोगिताके विषयमें जानकारी थी। रसतत्त्ववेत्ता कहते हैं कि 'इस शरीरमें ही परमात्म-संवेदन होना आवश्यक है। शरीरत्यागके बाद ज्ञानलिप्सा निरर्थक है। परंतु नाना प्रकारकी व्याधि, जरा-मरण आदि दुःखोंके द्वारा संतप्त क्षणभङ्गुर शरीरके द्वारा मनके अगोचर सूक्ष्म तत्त्वका साक्षात्कार प्राप्त करना सम्भव नहीं है। अतएव महाज्ञानकी प्राप्तिके पूर्व ही अणिमा आदि अष्ट गुणोंसे सम्पन्न स्थिर-देह प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न आवश्यक है। दिव्य देह-निर्माणके लिये शिववीर्यरूप पारद तथा शक्ति-बीजात्मक अभ्रककी उपयोगिता रसतन्त्रमें बारंबार उल्लिखित हुई है और इसी कारण देहको 'हरगौरीसम्भूत' कहा करते हैं; क्योंकि पारद शिवके अङ्गसे उत्पन्न है, अतएव इसको 'रस' भी कहते हैं।

अष्टादश संस्कारके द्वारा संस्कृत रस जिस प्रकार एक ओर लौहको भेदनेमें समर्थ होता है, उसी प्रकार इसके द्वारा देहकी भी भेदनक्रिया सम्पादित हो सकती है। रसके द्वारा लौहका भेदन होनेपर वह स्वर्णके रूपमें परिणत हो जाता है तथा उसके द्वारा नरदेहका भेदन होनेपर वह सिद्धदेहमें परिणत होता है। वेधक्रियाके द्वारा देह शुद्ध होनेपर देह आकाशगमन आदि कार्य कर सकता है। रसायनविद्याका उद्देश्य लौहको स्वर्णमें परिणत करना नहीं है, बल्कि देहकी अमरता-साधन करना ही उसका मुख्य उद्देश्य है। रस सम्यक्‌रूपमें संस्कृत हुआ है या नहीं, यह जाननेके लिये लौहका वेधन किया जाता है, और किसी उद्देश्यसे नहीं। रस जीवको 'पार' प्रदान करता है, इसी कारण इसका दूसरा नाम 'पारद' है। शिव-शक्ति-बीजस्वरूप पारद और अभ्रकके संघट्टके वश रसदेहकी अभिव्यक्ति होती है। अनित्य भौतिक देह जिस प्रकार रज और वीर्यके संयोगसे उत्पन्न होता है, उसी प्रकार रसदेह भी शिव-शक्ति-सामर्थ्यसे उत्पन्न होता है। जो लयको प्राप्त होता है तथा जिसमें वह लीन होता है, उन दोनोंके बीच साम्य हो जाता है। जो पारद अभ्रकको ग्रास करता है, उसमें स्वर्ण आदि लीन होनेपर अमृत सत्ता प्रकट होती है, जिसके फलस्वरूप देहको स्थैर्य प्राप्त होता है।

देहसिद्धिके फलसे समस्त मन्त्रवर्ग, शुद्ध अध्वाके अन्तर्गत समस्त देवता रससिद्ध पुरुषके किंकर हो जाते हैं। अनादिकालसे अनेक उपासक इस देहको प्राप्त करके सिद्ध-रूपमें प्रसिद्ध हो चुके हैं। उनमें महेश्वर, दत्तात्रेय, शुक्राचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिका नामोल्लेख किया जा सकता है। इस प्रकार मन्थान भैरव, सिद्धबुद्ध, नागार्जुन, नित्यनाथ, बिन्दुनाथ आदिके नाम इस प्रसङ्गमें उल्लेखनीय हैं। ये लोग अमरदेह प्राप्त करके कालसे बचते हुए त्रिलोकमें विचरण करते हैं, ऐसी प्रसिद्धि है।

चतुष्पाद ब्रह्मका केवल एक पाद मृत्युके द्वारा व्याप्त है। अन्य पादत्रय 'अमृतं दिवि' हैं। वे मृत्युहीन और दिव्य हैं। वे स्वमहिमामें विराजमान हैं। समस्त विश्व एकपादमें स्थित है। वह चलस्वभाव होनेके कारण हेय है; किंतु 'त्रिपाद्विभूति' उपादेय है और वह मनके अगोचर है। यह 'ब्रह्मतत्त्व' एकमात्र योगगम्य है। 'योग' शब्दको यहाँ प्रकृति और पुरुषके शुद्धिसाम्यमूलक रूपमें समझना चाहिये। नरदेह प्राकृत होनेके कारण स्वभावतः मलिन है; अतएव योगसम्पादनके पूर्व इसको विशुद्ध करना आवश्यक है। योगके द्वारा आत्मसंवेदन होता है तथा समस्त जगत्को भासित करनेवाली चिज्ज्योति प्राप्त होती है। देहके काल-ग्रास होनेकी आशङ्का जबतक निवृत्त नहीं होती, तबतक देह और आत्माका योग सम्भव नहीं है तथा उपर्युक्त चित्-ज्योतिका स्फुरण भी नहीं होता। यह ज्योति सब क्लेशोंसे मुक्त है; विकल्पहीन, शान्त और स्वसंवेद्य है। वहाँ मनके योगके फलसे विश्व चिद्रूपमें प्रतिभात होता है, सारे कर्म छिन्न हो जाते हैं, बहिःप्रवण इन्द्रियाँ स्वतः प्रत्याहृत होती हैं तथा सदाके लिये राग-द्वेषका परिहार हो जाता है। मनुष्य-जीवनकी पूर्ण सफलता इसीमें निहित है। तब देह तेजोमय होकर निजशक्तिरूपमें परिणत होता है।

अरब देशके रसायनवेत्ता कहते हैं कि सब वस्तुओंमें दो अंश विद्यमान हैं। उनमें एक भाग जड़ और पार्थिव है तथा दूसरा भाग सूक्ष्म और चेतन है; लघु और ज्योतिर्मय है। एक देह है और दूसरा उसकी आत्मा है। यह सूक्ष्म अंश जो आत्मारूप है, स्थूलसे बलवान् है। यह आत्मा स्थूलमें अनुप्रविष्ट होकर स्थूलको किसी प्रकार परिवर्तित किया करता है।

रसवेत्ताओंका प्रथम कर्तव्य है—स्थूल और सूक्ष्मका पृथक्-करण। उसके बाद स्थूलमें तदनुरूप सूक्ष्म सत्ताका संचार करना उचित है। इसीका दूसरा नाम है—'योग्यके साथ योग्यकी योजना।' रसविद्यामें निष्णात कर्मकुशल बुद्धिमान् व्यक्ति स्थूल सत्तासे निर्गत सूक्ष्म सत्ताको पुनः आकर्षण करके फिरसे स्थूलमें स्थापन कर सकते हैं। उसको इतना अधिक दृढ़ करनेकी आवश्यकता है कि वह तेजोरूप धारण करके बाह्य तेजको भी प्रतिहत कर सके। इस विषयमें पर्यालोचना करनेपर समझमें आ जायगा कि रसतत्त्वविद् लोगोंका उद्देश्य था—प्राकृत सत्त्वको अप्राकृत सत्त्वमें परिणत करना। अप्राकृत सत्त्व रजः और तमःद्वारा संश्लिष्ट नहीं है और वह घनीभूत है। वह अखण्ड स्वभाव है, अतएव संयोगकालमें वह संघर्ष सहन करनेमें समर्थ है।

चैतन्य अग्निस्वरूप है। शुद्धसत्त्वका भी यही स्वभाव है। इस अग्निमय देहकी बात ही श्रुतिमें 'योगाग्निमय शरीर' के नामसे वर्णित है। यह कालाग्निद्वारा दग्ध नहीं होता, ऐसा भी कहा जाता है। उपर्युक्त स्थूल और सूक्ष्मका शोधन वास्तवमें भूत और चित्के शोधनके अनुकूल साधनविशेष है, यह जानना चाहिये।

नाथयोगी-सम्प्रदायके मूल प्रवर्तक आदिनाथ होनेपर भी संसारमें उसके प्रवर्तक मत्स्येन्द्रनाथ हैं। पश्चात् गोरक्षनाथ, जलन्धर, चौरङ्गी, भर्तृहरि आदि विशिष्ट योगी इस सम्प्रदायमें आविर्भूत हुए। ऐसा सुना जाता है कि कपिल, मार्कण्डेय, याज्ञवल्क्य आदि हठयोगके उपदेष्टा थे। नाथ-योगियोंमें कोई-कोई देहसिद्धिके लिये रसप्रयोग, कोई-कोई वायु-प्रक्रिया और दूसरे कुछ लोग बिन्दुसिद्धिके लिये विभिन्न उपायोंका अवलम्बन किया करते थे। ये सारे उपाय योगप्रक्रियाके रूपमें परिगणित होते हैं। उपर्युक्त नाथयोगी-गण अलौकिक योगसिद्धिके अधिकारी थे। परंतु यह बात सभी मानते हैं कि महाज्ञानके सिवा कायसिद्धिका और कोई उपाय नहीं है। यही उनका मुख्य सिद्धान्त है।

परपिण्डसे स्वपिण्डतक समस्त विश्वका ज्ञान सम्पन्न करनेके बाद परमपदमें समरसता प्राप्त होती है; किंतु स्वात्म-विश्रान्तिके बिना पिण्ड और परमका समरसी-भाव सम्भव नहीं है। अतएव सर्वप्रथम विश्रान्तिकी आवश्यकता है। इस विश्रान्तिके कारण स्वयं सद्गुरु हैं। वे वाणी या दृष्टि-द्वारा शिष्यकी चित्त-विश्रान्ति-सम्पादन करते हैं। विश्रान्तिके बाद परपद-साक्षात्कार आवश्यक है। यह साक्षात्कार दुःसाध्य होनेपर भी विश्रान्त चित्तके लिये बहुत कुछ सहज है। परपद-साक्षात्कार करनेके बाद परपदमें निजपिण्डकी समरसता प्राप्त करना आवश्यक है। तब आत्यन्तिक निरुत्थान दशाका उदय होता है। परम पद स्वसंवेद्य है और मन-वाणीके अगोचर है। योगी महत्त्वपूर्ण सिद्धि प्राप्त करनेके बाद ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूपके अनुसंधानकी इच्छासे निजावेश प्राप्त करते हैं तथा निरुत्थान दशाको भी प्राप्त होते हैं। सच्चिदानन्द-चमत्कार, अद्भुत आकारसमूहका प्रकाश, प्रबोध, परमपद-प्रवेश आदि क्रमानुसार धीरे-धीरे प्राप्त होते हैं। इस अनुभवके बलसे निजपिण्डकी सिद्धि होती है। तब सिद्ध निजपिण्डके साथ परपदकी एकाकारता सम्पन्न करता है।

इस मार्गमें कहीं-कहीं चार ज्ञानकी बात वर्णित हुई है—ऐसा देखा जाता है। वे क्रमशः सहज, ससंयम, सोपाय और साद्रय नामसे वर्णित हैं। इनके आविर्भावके फलस्वरूप प्रकृष्ट निरुत्थान दशाका पूर्वाङ्गरूप स्वात्मविश्रान्ति सुलभ होती है।

आचार्य बलभद्रके मतसे सन्मार्गप्रदर्शक पुरुष ही गुरुरूपमें स्वीकृत हो सकते हैं। आत्मविश्रान्ति प्रदान करनेकी शक्ति केवल उनमें ही है। उनके द्वारा प्रदर्शित पथपर जो चलते हैं, वे स्वसंवेद्य वस्तुको देख पाते हैं। परमात्मरूपी सद्गुरुकी करुणादृष्टि ही सब प्रकारके कल्याणका मूल है। योगीलोग सब प्रकारकी सिद्धियोंका त्याग करके स्वात्मैकवेद्य निरुत्थान दशाको प्राप्त करते हैं और निजपिण्डको समरस कर सकते हैं।

पहले निजावेश उत्पन्न होता है, तत्पश्चात् स्थिर महानन्द-दशा अभिव्यक्त होती है तथा उसके साथ अमल प्रकाशका आविर्भाव होता है। यहाँतक सम्पन्न होनेपर निखिल भेद विगलित होकर अभेदमय चैतन्यभासक परमपदका उन्मेष होता है। उसके अनुभवके फलसे निजपिण्डका सम्यक् ज्ञान होता है तथा परमपदमें निजपिण्डका निर्वाण अथवा ऐक्य सम्पादित होता है। तत्पश्चात् निजरश्मि प्रत्यावृत्त होती है। यही द्वितीय उन्मेष है। उसके प्रत्याहारसे सामरस्य होता है। निजकिरणपुञ्जका निजरूपमें साक्षात्कार होता है। यह सामरस्य ही 'अद्वैततत्त्व' है। अवधूत गीतामें वर्णित 'समतत्त्व' यही है। अमनस्क, भावाभावविनिर्मुक्त, नाश और उत्पादरहित, सर्वसंकल्पवर्जित परब्रह्म अवस्था भी इसीका दूसरा नाम है।

महाज्ञानके द्वारा 'परमशून्ययोग'की प्राप्ति होती है। आदिनाथ श्रीशंकरसे यह ज्ञान मत्स्येन्द्रनाथके समान गोरक्षनाथको भी प्राप्त हुआ था। सिद्ध नाथयोगीगणकी नामावलीमें बहुतसे नाम आते हैं। ये सब नाम रस-सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें भी प्राप्त होते हैं। कहीं-कहीं चौरासी सिद्धोंके नाम प्राप्त होते हैं। उनमें कोई रसमार्गमें सिद्ध हैं, कोई हठयोगके द्वारा सिद्ध हैं और कोई तान्त्रिक प्रक्रिया अथवा बिन्दु-साधनके द्वारा सिद्ध हुए हैं। इस सम्बन्धमें किसी एक निश्चित सिद्धान्तपर पहुँचना कठिन है।

प्रायः सभी मार्गोंमें, सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेपर एक ही मार्ग दिखलायी देता है और वह है—ब्रह्ममार्ग। वही 'शून्य पदवी' नामसे प्रसिद्ध सुषुम्णा नामक मध्यमा-प्रतिपद है। उसका वर्णन इस प्रकार होता है—

'भोक्त्री सुषुम्णा कालस्य गुह्यमेतदुदाहृतम्।'

'सुषुम्णा कालकी भोक्त्री है, यह गुह्य वस्तु कही जाती है।'

जन्म-मरणके चक्रसे छुटकारा

आत्मा पूर्ण ईश्वरस्वरूप है। जड शरीरसे उसके बद्ध होनेका आभास होता है सही, पर उस आभासको मिटा देनेसे वह मुक्त-अवस्थामें दीख पड़ेगा। वेद कहते हैं कि 'जन्म-मरण, सुख-दुःख, अपूर्णता आदिके बन्धनोंसे छूटना ही मुक्ति है।' उक्त बन्धन बिना ईश्वरकी कृपाके नहीं छूटते और ईश्वरकी कृपा अत्यन्त पवित्र हृदय हुए बिना नहीं होती। जब अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध और निर्मल अर्थात् पवित्र हो जाता है, तब जिस मृत्पिण्ड देहको जड या त्याज्य समझते हो, उसीमें परमात्माका प्रत्यक्षरूपसे उदय होता है और तभी मनुष्य जन्म-मरणके चक्रसे छूट जाता है।

—स्वामी विवेकानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मयोनि और भोगयोनियाँ

हम क्यों कहते हैं कि केवल मनुष्य ही कर्मयोनि है ?

देवता, सिद्ध, यक्ष-राक्षस—ये सब कर्म करनेमें मनुष्यसे कहीं अधिक समर्थ हैं। कहीं अधिक क्रियाशक्ति और बुद्धि उनमें है। कर्म तो क्षुद्र कीटतक करते हैं। ऐसी दशामें केवल मनुष्य ही कर्मयोनि क्यों ?

१—पहले पृथ्वीके प्राणियोंको ले लें। पृथ्वीमें जो प्राणी हैं, उनका एक प्रकारका विभाजन है—१—ऊर्ध्वस्रोत, २—तिर्यक्स्रोत और ३—अधःस्रोत। वृक्षादि वनस्पति 'ऊर्ध्वस्रोत' हैं। ये अपनी जड़ोंसे रस-ग्रहण करते हैं और वह रस ऊपरकी ओर जाकर उन्हें पुष्ट करता है। प्रकृतिमें जो उत्थान-पतनका (विकासका ही नहीं) चक्र घूम रहा है, इसमें वे विकासोन्मुख हैं। प्रकृति उन्हें ऊपर ले जा रही है, यह उनका ऊर्ध्वस्रोत होना बतलाता है। पशु-पक्षी आदि सब 'तिर्यक्स्रोत' हैं। ये जो आहार ग्रहण करते हैं, वह उनके शरीरमें आड़े चलता है। प्रकृति इसके द्वारा सूचना देती है कि ये मध्यमावस्थामें हैं। ये ऊपर भी जा सकते हैं और नीचे भी। ऊर्ध्वमुख गति और अधोमुख गति—दोनोंमें ही मध्यमावस्था आती है। केवल मनुष्य 'अधःस्रोत' प्राणी है। यह जो आहार मुखसे ग्रहण करता है, वह नीचेकी ओर जाता है। प्रकृति इस प्रकार सूचना देती है कि उसके राज्यमें विकासकी चरम सीमा यहाँ हो चुकी। यहाँ प्रयत्न करके यदि तुम जन्म-मरणसे छूट नहीं जाते, प्रकृतिके प्रशासनसे परे नहीं पहुँच जाते तो प्रकृति अब तुम्हें नीचे ले जानेवाली है। जिसको स्वयं प्रयत्न करके प्रकृतिके प्रशासनसे परे होना है, वह 'कर्मयोनि'का प्राणी तो हुआ ही।

२—पृथ्वीपर मनुष्य ही कर्मयोनिका प्राणी है, इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि मनुष्यका बच्चा सर्वथा अशिक्षित उत्पन्न होता है। उसे सब कुछ उत्पन्न होनेके पश्चात् ही सीखना है। साथ ही सब कुछ सीखनेकी योग्यता, सब प्रकारसे रह लेनेकी क्षमता उसे दी गयी है। यह बात पृथ्वीके दूसरे किसी भी प्राणीमें नहीं है।

पशु-पक्षियोंके ही नहीं, नन्हे कीटोंतकके शिशु अपने जीवन-निर्वाहके लिये आवश्यक संस्कार माताके उदरसे लेकर उत्पन्न होते हैं। वे भोगयोनिके प्राणी हैं; अतः अपनी योनिके भोगोंको भोगनेका आवश्यक ज्ञान उन्हें जन्मसे ही प्राप्त होता है। बंदरके बच्चेको वृक्षपर चढ़ना या माताके पेटसे चिपके रहना सिखलाना नहीं पड़ता। गायके बछड़ेको तैरना कब सिखलाया जाता है ? प्रत्येक पक्षी अपनी परम्पराके अनुसार ही घोंसला बनाना किससे सीखता है ? बतखका शिशु अण्डेसे निकलते ही तैरने लगता है। कबूतर और बुलबुलको आप बया पक्षीके साथ बरसों पालकर देख लीजिये। बयाके समान सुदृढ़ कलापूर्ण घोंसला बनाना तो दूर, इन्हें कोई अटपटा बंद घोंसला भी बनाना नहीं आयेगा। बुलबुल वही कटोरी-जैसा घोंसला बनायेगी। ये पशु-पक्षी सिखलानेपर बहुत कुछ सीख लेते हैं, यह ठीक है; किंतु उस शिक्षाको अपने काममें लेना इन्हें कदाचित् ही आता है। अपने शिक्षकके लिये कार्य न करना हो तो ये अपने पुराने ढंगपर लौटना ही पसंद करते हैं।

मनुष्यके बच्चेकी अवस्था सर्वथा भिन्न है। वह कर्मयोनिमें आया है; अतः उसे कुछ भी सिखलाकर भेजा नहीं गया है। सब उसे यहीं सीखना है। लेकिन परिस्थितिके अनुसार रह लेने और सीख लेनेकी क्षमता उसे दी गयी है। मनुष्य जलमें तैर सकता है, वृक्षपर चढ़ सकता है; किंतु कब ? जब उसने ऐसा करना सीखा हो। अन्यथा मनुष्य जलमें डूब जाता है। उसे वनके पशु भले मार डालें; किंतु वृक्षपर चढ़ना उसने नहीं सीखा है तो चढ़ नहीं पाता है। मनुष्यके बच्चेकी कोई भाषा नहीं, कोई गृह-निर्माण-पद्धति नहीं। जो भाषा सिखलायी जाय, उसे सीख लेगा। जैसा रहन-सहन सिखलाया जाय, वैसे रहने लगेगा।

भेड़ियोंके द्वारा पाले गये मनुष्यके बच्चे मिले हैं। वे भेड़ियेकी माँदमें रहने और हाथ-पैरोंसे भेड़ियोंकी भाँति चलने-दौड़ने तथा कच्चा मांस खानेके अभ्यासी हो चुके थे। भेड़ियोंके समान गुर्रानामात्र ही उन्हें आता था। एक उदाहरण हिरणोंके द्वारा पाले गये बच्चेका भी पढ़नेको मिलता है। बतलाया गया है कि वह बच्चा मुखसे घास चरता था और हिरणोंकी गतिसे छलांग लगाता दौड़ता था।

यह कर्मयोनिके प्राणीकी ही विशेषता है कि वह उस परिस्थितिके अनुसार अपनेको बना सकता है, जो प्रारब्ध उसे देता है। किसी भोगके लिये आवश्यक ज्ञान एवं उपकरण देकर उसे प्रकृति नहीं भेजती; क्योंकि वह 'भोग-योनि'का प्राणी ही नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३–अब देवतादि भोगयोनिके उच्च प्राणियोंको ले। बुद्धि उनमें मनुष्यसे अधिक है; किंतु उनको प्रकृतिने स्थूल-शरीर नहीं दिया है। धर्माधर्मकी उत्पत्तिके लिये स्थूलदेह ही आवश्यक नहीं है, यह भी आवश्यक है कि वह कर्म पृथ्वीपर किया जाय। दैत्यराज बलिने बलपूर्वक स्वर्गपर अधिकार कर लिया, तब दैत्यगुरु शुक्राचार्यने उन्हें समझाया—'स्वर्गपर इस प्रकार अधिकार स्थायी नहीं हो सकता। अधिकार तभी स्थायी होता है, जब उस अधिकारको प्राप्त करनेका जो नियम है, उसे पालन किया जाय। अन्यथा सृष्टिका नियन्ता किसी-न-किसी प्रकार अनधिकारीको अनधिकार-प्राप्त स्थानसे च्युत कर ही देता है। स्वर्गका स्वामित्व सौ अश्वमेध यज्ञ करनेवालेको मिले, यह नियम है। तुम यज्ञ करके यहाँके नियमित अधीश्वर बन जाओ तो तुम्हें सृष्टि-नियन्ता भी पदच्युत नहीं कर सकेगा।'

बलिको यज्ञ करनेके लिये पृथ्वीपर आना पड़ा। उन्होंने नर्मदाके उत्तरतटपर अपनी यज्ञशाला बनायी; क्योंकि समस्त लोकोंमें सृष्टिकर्ताने इस धराको ही कर्मभूमि बनाया है। दूसरे सब लोक तो भोगभूमि हैं। धरा ही कर्मक्षेत्र है। इसी क्षेत्रमें कर्मकी खेती सम्भव है। यहीं हुए शुभ या अशुभ कर्मोंका भोग दूसरे लोकोंमें कर्ताको मिलता है; जैसे वृक्षकी जड़ पृथ्वीमें ही रहती है, पृथ्वीके रससे ही वह बढ़ता-फलता है। अब यह बात भिन्न है कि कुछ वनस्पति पृथ्वीपर फैलकर वहीं फलती हैं, कुछके कन्द पृथ्वीके भीतर बनते हैं और कुछके फल ऊपर आकाशमें उनकी डालोंमें लगते हैं। कर्मका फल ऊपर-नीचे या पृथ्वीपर, कहीं भी होता हो, कर्मरूपी वृक्षके उगने-पोषण पानेका स्थान पृथ्वी ही है।

देवता, दैत्य या उपदेवता कर्म कर तो सकते हैं; किंतु तभी कर सकते हैं, जब वे पृथ्वीपर आकर और मनुष्यरूपमें रहकर कर्म करें। पृथ्वीपर आकर अपने देवरूपमें वे कुछ करें तो वह कर्म कोई पाप-पुण्य उत्पन्न नहीं करता। देवता पृथ्वीपर आकर किसीको वरदान दे जायँ या शाप, इससे उन्हें कोई पाप-पुण्य नहीं होता। उनके अपने लोक तो भोगलोक हैं ही। वहाँ वे कोई शुभ कर्म करें तो वह पुण्य नहीं उत्पन्न करता। वैसे महर्लोक और जनलोकमें जो ऋषि-मुनि रहते हैं, वे सत्सङ्गमें ही लगे रहते हैं। ऐन्द्रियक भोगोंमें उनकी रुचि नहीं है; किंतु उन लोकोंका सत्सङ्ग, ज्ञान-ध्यान मोक्षप्रद नहीं बना करता। यदि कभी किसीको वहाँ ज्ञान होता भी है तो उसे होता है, जो धरासे ही उसका अधिकारी होकर जाता है।

देवताओंको अनेक बार भगवान् शिव एवं भगवान् नारायणके दर्शन होते हैं। श्रीराम-श्रीकृष्णादि जब पृथ्वीपर अवतार लेते हैं तो देवता उनका दर्शन करते हैं। अनेक बार उनकी सेवा भी करते हैं और उनके प्रत्यक्ष सम्पर्कमें भी आते हैं; किंतु इससे न उन्हें भक्ति मिलती और न उनकी मुक्ति होती है। वे तो जैसेके तैसे ही बने रह जाते हैं, जब कि पृथ्वीके पशु-पक्षी-वृक्षादिका भी उद्धार अवतार-कालमें भगवान्‌के सम्पर्कमें आनेपर हो जाता है।

देवलोकादि 'भोगलोक' हैं। वहाँ जो देह प्राप्त होता है, वह 'भोगदेह' है। उसमें नवीन कर्म-संस्कार ग्रहण करनेकी क्षमता नहीं होती। उस देहमें रहते अपवादस्वरूप ही कदाचित् पृथ्वीपर आकर और स्थूलदेह लेकर कर्म करनेकी प्रवृत्ति जागती है, जैसे बलिमें जागी। अन्यथा वहाँ भोगोंमें ही रुचि एवं प्रवृत्ति रहती है।

धरा कर्मभूमि है और यहाँ भी केवल मनुष्ययोनि ही कर्मयोनि है। देवता भी कर्म करना चाहें तो उन्हें धरापर मनुष्य बनकर आना पड़ता है।

'न हि मानुषात् परतरं हि कश्चित्।'

'मनुष्यसे श्रेष्ठ दूसरा कोई कहीं किसी लोकमें नहीं है।' लेकिन क्या द्विपाद प्राणीका नाम ही मनुष्य है?

मनुष्ययोनिकी कुछ विशेषताएँ हैं, जिन्हें यहाँ दे देना उत्तम होगा—

देवता तथा दूसरे पुण्यलोकोंके सब प्राणी क्षयोन्मुख हैं। वे अपने पुण्योंका भोग करके उन्हें क्षीण कर रहे हैं। वे वहाँसे नीचे गिरनेके मार्गपर हैं। उनकी अवनति ही होनेवाली है।

पशु-पक्षी और वृक्ष ही नहीं, नारकीय प्राणी भी ऊर्ध्वमुख हैं। वे प्रगतिके मार्गपर हैं। वे अपने पापों—अशुभ कर्मोंको भोगकर क्षीण कर रहे हैं। वे विकासोन्मुख हैं। उनकी उन्नति ही होनेवाली है।

मनुष्य कहाँ है—यह उसे स्वयं देखना है। वह जो कुछ करेगा, कर्मयोनिका प्राणी होनेके कारण उसको उसका फल भोगना है। वह शुभकर्म करता है तो उत्थानके मार्ग-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर है—देवताओंसे भी श्रेष्ठ है। देवत्व ही नहीं, मोक्ष भी उसका प्राप्य बन सकता है। यदि अशुभ कर्म करता है तो वह पतनकी ओर जा रहा है। नरक और पशुत्व उसके भाग्यमें हैं।

धर्म-बुद्धि ही मनुष्यकी विशेषता है। धर्माधर्मको समझकर जो धर्ममें लगे, वह मनुष्य है। जो केवल खाने-पीने तथा अन्य भोगोंको जुटानेमें लगा है, वह कितना भी बड़ा विद्वान्-बुद्धिमान् हो, वह 'द्विपाद पशु' ही है। वह तो पशुत्वसे भी नीचे जा रहा है!

—सु०

कायसिद्धिके प्रकार

(लेखक—महामहोपाध्याय श्रद्धेय प० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०, डी० लिट्०)

अर्वाचीन कालमें वज्रयान-मार्गके पथिक साधकोंके भावसे भावित बाउल और सहजिया साधकोंके भावके द्वारा प्रभावित होकर नाथ-योगमार्गमें कुछ विशिष्टता आयी। उसके फलस्वरूप उन लोगोंने कायसिद्धिके लिये अतिगुह्य 'चारिचन्द्र साधन' नामक उपायका अवलम्बन किया। इस मतमें 'सापेक्ष' और 'निरपेक्ष' नामसे दो प्रकारके 'अमरत्व' माने जाते हैं। अनपेक्ष अमरत्व वस्तुतः 'नाथनिरञ्जन-पद' की प्राप्ति है और वही पूर्णता है। सापेक्ष अमरत्व 'सिद्धपद'की प्राप्ति है। अमृतधाराको स्रवित करना तथा उसके द्वारा देहको संजीवन प्रदान करना उपर्युक्त अमरता-प्राप्तिके उपायके रूपमें वर्णित हुआ है। अधोमुख सहस्रदल-कमलको ऊर्ध्वमुख करके उस कमलमें स्थित अमृतके द्वारा मनको अभिषिक्त करना आवश्यक है। यहाँ प्रणवका ध्यान जरूरी होता है। ब्रह्मरन्ध्रके द्वार तथा त्रिवेणीके द्वारको अवरुद्ध करना आवश्यक होता है। इस प्रकारके उपायका अवलम्बन कर सकनेपर सुधा-धारा फिर अधोदेशमें गिरने नहीं पाती। योगियोंके मतसे यह क्रिया 'आकाशचन्द्र-भेद' नामसे परिचित है। यहाँ इस बातको जान लेना आवश्यक है कि देहरस अमृतरूपमें परिणत होकर ऊर्ध्वगामी वायुके द्वारा ऊपर जाकर सहस्रारमें संचित होता है। इस मतसे चार प्रकारके चन्द्र माने जाते हैं—(१) आदिचन्द्र, (२) निजचन्द्र, (३) उन्मत्तचन्द्र और (४) गरलचन्द्र।

रसात्मक निजचन्द्रको ऊर्ध्व खींचकर आकाशस्थ चन्द्रमें संयोजित करना चाहिये। ऊर्ध्वगतिके फलस्वरूप रस अमृतरूपमें परिणत हो जाता है। आकाशस्थ चन्द्र, जो सहस्रारसे संलग्न होता है, इस प्रकारके गरलचन्द्रको योगीजन पान करते हैं। गरलचन्द्रका पान और प्रणवका ध्यान आवश्यक होता है। गरलचन्द्रके द्वारा देह और मनका शोधन और संजीवन सम्पन्न होनेपर 'सिद्धदेह' प्राप्त होता है।

महायानी बौद्धोंने भी कायसाधनके विषयमें उपदेश दिया है। वे कहते हैं कि परप्रज्ञा-प्राप्तिके लिये बोधिसत्त्वभूमिमें प्रवेश करना आवश्यक है तथा भूमि-भेद करना भी आवश्यक है। इसके सम्पन्न हो जानेपर प्रज्ञापारमिताकी प्राप्ति होती है। यही बुद्धत्वका सम्पादक महाज्ञान है। अक्लिष्ट अज्ञान जबतक वर्तमान है, तबतक पूर्णत्वकी प्राप्ति सम्भव नहीं तथा सम्यक् सम्बोधि भी पैदा नहीं होती। परंतु बोधिसत्त्वकी 'कायसम्पद्' हेत्ववस्थामें ही उत्पन्न हो जाती है। यह बात पहले ही कही जा चुकी है।

तान्त्रिक बौद्धमतसे देहरसात्मक बिन्दुको 'बोधिचित्त' कहते हैं। चतुर्दल कमलसे इसको ऊर्ध्वके उष्णीष कमलमें स्थापन करना योगसाधनाका फल है। षट्चक्रभेदके समान ही यह उत्थापनक्रिया बहुत कठिन है। पहले बिन्दुकी निम्नतम चक्रमें स्थिति आवश्यक है। तत्पश्चात् निर्माणचक्रसे उसको महासुखचक्रमें उत्थापित किया जाता है। निर्माणचक्रमें ही बोधिचित्तका उद्भव, निरोध और ऊर्ध्वगति सम्पादन करना पड़ता है। जहाँ बोधिचित्तका उदय होता है, वह कर्ममुद्राका स्थान है। उद्भवका तात्पर्य है—क्षोभ। तत्पश्चात् उस क्षुब्ध बिन्दुको 'अवधूति' नामक मध्यमार्गद्वारा संचालित करना पड़ता है। क्षुब्ध बिन्दुके ऊर्ध्वगमनके पथमें विभिन्न प्रकारके आनन्दका आस्वादन होता है। बिन्दुके अधोगमनमें भी आनन्दकी अभिव्यक्ति अवश्य ही होती है, परंतु वह अस्थायी और मलिन होनेके कारण त्याज्य है। बिन्दुकी अधोगतिके फलस्वरूप जैसे कामदेहकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही उसके ऊर्ध्वगमनमें दिव्यदेह प्रकट होता है।

कायसाधनके सम्बन्धमें यह बात जान लेना आवश्यक है कि बिन्दुका अधःस्खलन किसी प्रकार भी न होने पावे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि उससे मृत्यु अवश्यम्भावी है। योगिगण कहते हैं—'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।' बिन्दुकी ऊर्ध्वगति सम्पादन करनेके फलस्वरूप कायसाधन सम्पन्न होता है। बिन्दु स्वभावतः मलयुक्त होनेके कारण अधोगतियुक्त है। उस अशुद्ध बिन्दुको बौद्ध तान्त्रिकगण 'संवृतिबोधिचित्त' नामसे अभिहित करते हैं। अशुद्ध बिन्दुमें भूमि-प्रवेशकी सामर्थ्य नहीं होती। अतएव उसके द्वारा भूमिभेद भी नहीं हो सकता तथा उसके फलस्वरूप प्रज्ञाकी भी शुद्धि नहीं हो सकती। अतएव बुद्धत्वकी प्राप्ति बहुत दूरकी बात रह जाती है। इसी कारण सबसे पहले शोधनशक्ति और निरोधशक्तिके द्वारा बिन्दुकी अधोगतिको रोकना आवश्यक है। तत्पश्चात् कर्ममुद्राके द्वारा ऊर्ध्वस्रोत खुलकर अमरत्वका मार्ग सिद्ध होता है। यहाँ ही 'बुद्धकाय'का उदय होता है। निर्माणचक्रमें बिन्दुकी गति और स्थितिके फलस्वरूप जिस कायका उदय होता है, उसका नाम है—'निर्माणकाय'। बिन्दुके ऊर्ध्वगमनके साथ-साथ आनन्दका भी तारतम्य होता है। अवधूतिमार्गके आश्रयसे बोधिचित्त जब धर्मचक्र तक उठता है तब पूर्वोक्त आनन्द परमानन्दरूपमें परिणत होता है। निर्माणचक्रमें जो 'कर्ममुद्रा' होती है, वह धर्मचक्रमें 'धर्ममुद्रा' कहलाती है। इस अवस्थामें बोधिचित्त योगीके शिरोदेशमें रहता है। इसके बाद उत्कर्षको प्राप्त होनेपर सम्भोगचक्रमें 'विरमानन्द'का अनुभव होता है। उस समयकी मुद्राका नाम 'महामुद्रा' है। 'परमानन्द' और 'विरमानन्द' क्रमशः भव और निर्वाणस्वरूप हैं। इस समय 'समयमुद्रा' कार्य करती है, परंतु यह भी पूर्णताकी प्राप्ति नहीं है। यहाँ क्लेशावरण और ज्ञेयावरण निवृत्त हो जाते हैं तथा भव और निर्वाण एकाकार हो जाते हैं। उसके ऊपर महासुखचक्रमें 'सहजानन्द'की उपलब्धि होती है। तब अहंबोध सर्वथा विलुप्त हो जाता है।

जैसे निर्माणचक्रमें बुद्धका 'निर्माणकाय' आविर्भूत होता है, उसी प्रकार धर्मचक्रमें 'धर्मकाय', सम्भोगचक्रमें 'सम्भोगकाय' तथा महासुखचक्रमें 'महासुखकाय' प्रकट होता है। यही दिव्यदेहका आविर्भाव है। इस स्थितिमें दिव्य चक्षु, दिव्य श्रोत्र, सर्वज्ञत्व, विभुत्व आदि महागुणोंका आविर्भाव होता है। सबके अन्तमें सम्यक् सम्बुद्धरूपमें बोधिचित्तकी स्फूर्ति होती है।

आनन्द ही अमृत है। चन्द्रकलासे इस अमृतका उन्मेष होता है। अवधूतिमार्गके द्वारा जब बोधिचित्त ऊर्ध्वगमन करता रहता है, तब विभिन्न प्रकारके आनन्दका उन्मेष होता है। षोडश कलात्मक चन्द्रकी प्रथम पाँच कलाओंसे धर्मचक्रमें परमानन्दका आविर्भाव होता है, मध्यम पञ्च-कलाओं और अन्तिम पञ्चकलाओंसे अन्य दो प्रकारके आनन्दका उद्भव होता है। 'अमृता' नामक सोलहवीं कला महासुखचक्रमें सहजानन्दरूपमें अनुभूत होती है। यही अमृतकला मानवदेहका अमरत्व सम्पादन करती है।

सहज साधक वैष्णवगण भी कायसाधनको साधनाके उद्देश्यके रूपमें स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि देहमें चार सरोवर विद्यमान हैं। कायसाधनकी सिद्धि होनेपर ये सरोवर प्रस्फुटित होते हैं। सरोवरके दो वामाङ्ग हैं और दो दक्षिणाङ्ग हैं। ये प्रकृति-पुरुषरूप हैं। वाम अङ्गमें 'काम-सरोवर' और 'मानस-सरोवर' हैं तथा दक्षिण अङ्गमें 'प्रेम-सरोवर' और 'अक्षय-सरोवर' हैं। संतवाणीसे ज्ञात होता है कि मानस-सरोवरमें स्नान कर लेनेके बाद व्यापक मनोमय राज्य प्राप्त होता है। पश्चात् उसको अतिक्रम करके महाशून्य-भेद करना पड़ता है। अन्यथा चिदानन्दमय भगवद्धाम प्राप्त नहीं होता। अक्षय-सरोवर ही भगवद्धाम है। महाप्रलयमें सारे विश्वका नाश हो जानेपर भी एकमात्र अक्षय-सरोवर ही विद्यमान रहता है।

मानवदेहमें यह स्थान मस्तकमें स्थित सहस्रदल कमलमें अवस्थित है। यह सहजपूर है। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डका भेद होनेपर इसकी प्राप्ति होती है। यहाँ काल नहीं है, जरा नहीं है, मृत्यु भी नहीं है।

सहज साधकगण कायसिद्धिके विषयमें तीन भूमि स्वीकार करते हैं। प्रथम 'प्रवर्त्तकभूमि' है, द्वितीय 'साधक-भूमि' है और तृतीय 'सिद्धभूमि' है। प्रथम भूमिमें नामसाधना, पश्चात् गुरुप्राप्तिके बाद मन्त्र-ग्रहण और मन्त्रसाधना होती है। जबतक मन्त्रसिद्धि नहीं हो जाती, तबतक प्रवर्त्तक-अवस्थाका अतिक्रमण सम्भव नहीं है। द्वितीय भूमिमें भाव-साधना और प्रेमसाधना होती है। भावदेह-प्राप्तिके बाद उसी देहमें साधना चलती रहती है। सिद्धावस्थामें तृतीय भूमिमें रसमय तनुकी प्राप्ति होती है तथा श्रीभगवान्‌के नित्य-लीला-मण्डलमें प्रवेश प्राप्त होता है।

मृत्युकालमें जीव नयी देह ग्रहण करके जीर्णकायको त्याग देता है। यही वस्तुस्थिति है। इस प्रकार नयी-नयी देह धारण करनेसे अवश्य ही देहकी शुद्धि हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परंतु इससे चरम सिद्धि नहीं प्राप्त होती। प्राकृत सत्त्व-शुद्धिके प्रकर्षसे जैसे अप्राकृत सत्त्वरूप नहीं होता; क्योंकि पूर्वोक्त प्राकृत सत्त्वमें रजः और तमका सम्पर्क अवश्य रह जाता है, इसी प्रकार देहसे देहान्तरकी प्राप्ति होनेपर भी उसमें अशुद्ध मायाका लेश रह ही जाता है। शुद्ध मायाका योग उसमें नहीं आता। सिद्धसम्प्रदायके मतसे माया तीन प्रकारकी है—'अशुद्धा माया,' 'शुद्धा माया' और 'महा-माया'। शुद्धा माया शब्दसे यहाँ शैवागम-प्रसिद्ध बिन्दुतत्त्व समझना चाहिये। महामाया प्रायः चित्-शक्तिरूप है। अशुद्ध सत्त्व विकारस्वभाव है, किंतु शुद्ध सत्त्व अविकारी है। इसी कारण सम्यक् देह-शुद्धि करनेके लिये अशुद्ध मायाजात देहको शुद्ध मायाकोटिमें ले आना आवश्यक है। जब इस प्रकार शुद्धि हो जाती है, तब मायासे उत्पन्न विकार-समूह तिरोहित हो जाते हैं; परंतु शुद्धमार्गमें अवस्थित मुक्तपुरुषके अनुग्रहके बिना शुद्धदेह-की उत्पत्ति सम्भव नहीं। जबतक अशुद्ध प्राकृतदेह शुद्ध मायामयदेहमें परिणत नहीं हो जाती, तबतक मृत्यु और संसारकी निवृत्ति नहीं होती। कर्मका अभाव होनेपर भी अशुद्ध देहके बीज तब भी रह जाते हैं, अतएव संसरण होगा ही। परंतु यह संसरण स्वेच्छाधीन है। यह किसी कर्मके अधीन नहीं है। परंतु सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेपर सूक्ष्म कर्म वहाँ भी वर्तमान है। शुद्धमार्गमें अवस्थित पुरुषकी कृपा प्राप्त होनेपर शुद्ध बीज प्राप्त होता है और अशुद्ध देहकी शुद्धि भी होती है, तब मृत्युजय हो जाता है। मुक्त पुरुषके अनुग्रहसे अशुद्ध माया शुद्ध मायामें परिणत होती है और तब देहको भी अमरत्व प्राप्त होता है।

यह शुद्ध देह अमृतकलामय 'प्रणवतनु'के नामसे प्रसिद्ध है। प्रणवतनुकी प्राप्ति ही 'जीवन्मुक्ति' है। इस प्रकारका जीवन्मुक्त पुरुष जीव होकर भी ईश्वरकल्प होता है। वह शुद्ध और अशुद्ध जगत्के संधिस्थलमें रहता है। अशुद्ध जगत्के साथ उसका सम्बन्ध कुछ थोड़े समयतक रहता है। परामुक्ति उसके समीप रहती है। जब उसको परामुक्ति-की प्राप्ति होती है, तब योगी चिन्मय ज्योति-स्वरूपमें अवस्थान करता है और देहमें रहता है ज्योतिस्वरूपमें। तब मायाका सम्बन्ध नहीं रहता। शुद्ध माया भी उस समय नहीं रहती। जीवन्मुक्तकी देह शुद्ध मायामय होती है, परमुक्तकी देह महामायामय होती है—परमुक्तकी देह ज्ञानमय होती है, वहाँ देह और आत्माका भेद विगलित हो जाता है। प्रणव-देहधारी जीवन्मुक्त पुरुष मायाग्रस्त-मुमुक्षु जीवोंका माया-गर्भसे उद्धार करते हैं। शुद्ध वासना-की निवृत्ति होनेपर वे शुद्ध मायाराज्यका भी त्याग करते हैं। उनका देह अकस्मात् दिनके प्रकाशमें ही तिरोहित हो जाता है। सिद्धलोग कहते हैं कि देहमें रहते हुए ही जीवन्मुक्ति प्राप्त करना होगा, मृत्युके बाद नहीं। सिद्ध-मतसे मनुष्यका एक कर्तव्य है—देहशुद्धि और चित्तशुद्धि। दोनोंके मिलनमें परसत्त्वकी अभिव्यक्ति होती है। रससिद्ध और नाथ-योगिगणका भी यही सिद्धान्त है।

पाश्चात्य देशमें भी कायसिद्धिके सम्बन्धमें विशेष अनुशीलन होता था। उन देशोंके प्राचीन इतिहास और गुप्त संस्कृतिकी आलोचना करनेपर इस विषयमें बहुत कुछ जानकारी प्राप्त होती है। ईसाई-मतके प्रामाणिक तथ्य यहाँ उल्लेखनीय जान पड़ते हैं।

बाइबिलके 'नव विधान' (New Testament) के चतुर्थ खण्डमें 'अप्राकृत जन्म' शब्दका उल्लेख मिलता है। इससे जान पड़ता है कि इस शब्दके द्वारा दिव्यदेह-प्राप्तिका ही संकेत है।

ज्ञानसे ज्ञेयका भेद दूर करके ज्ञानको ज्ञेयके आकारमें परिणत करनेकी शक्ति ही 'महाज्ञान'का लक्षण है। मनुष्य-शरीरमें अनादिकालसे असंख्य शक्तियाँ सुप्तावस्थामें वर्तमान हैं। इस शक्ति-समूहको जाग्रत् किये बिना ज्ञान महाज्ञानमें परिणत नहीं हो सकता। फलतः आत्मविकास भी नहीं होता और उसके अभावमें स्वरूपप्रतिष्ठा भी नहीं हो सकती। शक्ति-जागरणका उपाय है—अन्तर्दृष्टिका उन्मीलन। उन्मीलित शक्तिसमूहके द्वारा ही मनुष्य-जीवनकी सार्थकता सिद्ध होती है तथा जरा-मरण आदिसे रहित, मल और पापलेशसे हीन दिव्यदेहका उदय होता है। यही द्विजत्व-सम्पादनकारी द्वितीय जन्म (Regeneration अथवा Birth from Above) है।

हमारे देशमें जैसे उपनयन-संस्कारके प्रभावसे अथवा दीक्षाके फलसे शुद्ध देहका उदय माना जाता है, उसी प्रकार ईसाई-मतमें दीक्षा (Baptism) के प्रभावसे शुद्ध देह प्राप्त होती है। ऐसा उनके ग्रन्थोंमें वर्णित है।

अब प्रश्न यह होता है कि अन्तर्दृष्टिका उन्मीलन किस प्रकार हो ? इसके उत्तरमें कहा जाता है कि इस सम्प्रदायके मतसे पूर्णसत्य अखण्ड एकरस-स्वभाव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह महासाम्यरूप है। वह सब प्रकारके करणोंके अगोचर होनेके कारण निर्विकल्पस्वरूप वस्तु है। वह न द्वैत है, न अद्वैत। इस मतमें एक अचिन्त्य बाह्य सत्ता मानी गयी है। उसको हम विश्वकी सृष्टिका मूल, एक आदिद्रव्य कहकर वर्णन कर सकते हैं। सृष्टिके समय इस सत्तामें क्षोभ उत्पन्न होता है, जिसके फलस्वरूप वह विभक्त होकर सूक्ष्म, स्थूल असंख्य विभिन्न जड अंशके रूपमें परिणत हो जाता है। पूर्ण सत्ताके बाहर क्रमशः नित्य और अनित्य-मण्डलका उदय होता है। उसमें नित्य-मण्डल सत्य है और अनित्य-मण्डल मिथ्या। पूर्णत्व इन दोनोंके परेकी अवस्था है। नित्य-मण्डल निर्विकार है। अनित्य-मण्डल विकारमय है। नित्य-मण्डलमें एकताका भान रहनेपर भी, बहुकी समष्टि होनेके कारण उसमें वास्तविक एकता नहीं है, समष्टिगत वैकल्पिक एकता अवश्य उसमें है। सांख्यमतके अनुसार प्रकृति त्रिगुणात्मिका है; किंतु साम्यावस्थामें उसमें जिस प्रकारकी एकता रहती है, वैसी ही एकता इस नित्य-मण्डलमें है। पूर्णस्वरूपमें जो एकता है, वह साम्यरूप नहीं है; अतएव वह विलक्षण स्वभावकी है।

यह नित्य-मण्डल श्रीभगवान्‌का भावरूप अथवा आदि-कल्पनारूप है। यही सृष्टिके समय भौतिकरूपमें प्रकट होता है; परंतु सृष्टिके उन्मेषके समय ये दोनों मण्डल अव्यक्त अवस्थामें रहते हैं। चिद्-रूप (Logos) में नित्य-मण्डलका अधिष्ठान होता है। इसके साथ सृष्टि-प्रकृति (Archeus) का क्या सम्बन्ध है? ईसाई योगियोंके मतसे यह चित् और अचित्-सत्ता समकालीन और सम-भावापन्न कही जाती है। यह चित् मूल द्रव्यमें आच्छन्न अवस्थामें निहित रहता है तथा मूलद्रव्यरूपा प्रकृति भी चित्स्वरूपकी प्राणशक्ति है। सांख्यके मतसे जैसे सत्त्व और पुरुषमें कल्पित सम्बन्ध स्वीकार किया जाता है, वैसा ही यहाँ भी समझना चाहिये। चित् ज्योतिरूपमें प्रतिभात होता है। द्वैत शैवागममें जैसे बिन्दुके क्षोभके फलस्वरूप चित्-शक्तिकी अभिव्यक्तिरूप ज्योतिका प्रकाश होता है, यहाँ भी बहुत कुछ वैसा ही होता है। अखिल सृष्टि, सब प्रकारकी स्थूल और सूक्ष्म देह इसी ज्योतिसे ही आविर्भूत होती हैं। ईसाई योगियोंकी परिभाषामें इस ज्योतिको (Pneuma) कहते हैं।

यह ज्योतिरूपा मूलशक्ति समस्त जड वस्तुओंमें निहित है तथा इसके प्रभावसे विभिन्न उपादान विभिन्न कार्यरूपको प्राप्त होते हैं। 'नव विधान'में Paraclete नामकी जीवात्मशक्तिका उल्लेख किया जाता है। वह इसी मूलशक्तिका ही दूसरा नाम है। महाज्ञान-सम्पादन करते समय यही शक्ति कार्य करती है। इसको त्यागकर कोई निर्माण कार्य करना सम्भव नहीं है। भारतीय योगियोंके समान ईसाई योगी भी पिण्ड और ब्रह्माण्डकी एकताको स्वीकार करते हैं। ब्रह्माण्डमें जो कुछ लक्षित होता है, वह सभी पिण्डमें भी दृष्टिगोचर होता है तथा जो पिण्डमें है, वह ब्रह्माण्डमें है। बाह्य प्रपञ्चमें कारण, सूक्ष्म और स्थूल—ये तीन प्रकारकी भूमि वर्तमान हैं। उपर्युक्त अन्तर्मण्डल (Logos) ही 'कारण भूमि' है। वह ज्योतिर्मय है। मध्यभूमि मनोमय (Psychic) 'सूक्ष्म' है। अन्तिम भूमि भौतिक है, वह 'स्थूल' है। यह सब प्रकारसे इन्द्रियग्राह्य है। स्थूल और सूक्ष्मके अन्तरालमें एक भूमि और है, किसी-किसीके मतसे वह स्थूलके अन्तर्गत है और किसीके मतसे सूक्ष्मके अन्तर्गत। यह भूमि कल्पनामय है। इसी प्रकार मनुष्यकी अन्तः-सत्तामें भी तीन भूमि वर्तमान हैं। वे कारणरूप, सूक्ष्म और स्थूलरूपसे कारणादि देहत्रयके नामसे परिचित हैं।

कारण देह (Pneumatic body) ज्योतिर्मय है। कहीं-कहीं वह आत्मरूप (Spiritual body) देहके नामसे भी अभिहित होती है। अन्तर्दृष्टिके द्वारा देखनेपर वह अण्डाकार प्रभामण्डलके रूपमें प्रतिभात होती है और उसमें पूर्ववर्णित ज्योति (Paraclete, Logos) सुप्तवत् निहित रहती है। उसका उद्दीपन होनेपर वह मानवके अध्यात्मजीवनको निर्मल कर सकती है। जागरणके समय वह तीव्र प्राणशक्तिके रूपमें, विद्युत्‌की प्रभाकी भाँति, सर्पकी गतिके समान विसर्पित होती है। यह शक्ति अमित है। भारतीय योगशास्त्रमें इसको 'कुण्डलिनी' कहते हैं। प्राचीन कालके यवनशास्त्रमें यह शक्ति कुण्डलाकार सर्पके समान होनेके कारण 'Speirema' नामसे अभिहित की जाती थी। जब इस शक्तिका कुण्डल भङ्ग हो जाता है, तब यह वैद्युती शक्ति कारणदेहके अन्तःस्थित सत्त्वको ग्रहण करके ज्योतिर्मय देहकी रचना करती है। इस देहका निर्माणकौशल ही दीक्षाके नामसे प्रसिद्ध है। इस चिद्-उज्ज्वल देहको रहस्यवेत्ता 'Augocides' शब्दसे अभिहित करते हैं। इस अजर-अमर देहको 'सौरदेह' भी कहा जाता है। इस देहमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अचिन्त्य वैशिष्ट्य वर्त्तमान है। इसका आकार उपर्युक्त विद्युत्-ज्योतिमें निमग्न रहता है। योगसाधनाके बलसे और श्रीभगवान्‌के अनुग्रहसे यह दिव्य मृत्युहीन देह मूल आकारका अनुसरण करती हुई क्रमशः अभिव्यक्त होती है। यह स्वयंप्रकाश देह सुवर्णज्योतिसे मण्डित-सी जान पड़ती है। उपनिषद्‌में वर्णित हिरण्मयज्योतिका यह घनीभूत रूप है। यह अवयवोंका संघात न होनेके कारण अखण्ड है। अवयवसमूहको विभक्त नहीं किया जा सकता; अतएव वह अविनाशी, अपरिणामी, अजर और अमर है। स्वयंप्रकाश होनेके कारण उसको प्रकाशित करनेके लिये किसी बाह्य प्रकाशकी अपेक्षा नहीं, अन्तःकरण या करणशक्तिकी भी अपेक्षा नहीं है।

सूक्ष्म मनोमय देह 'चान्द्रदेह' के नामसे परिचित है। मनकी चन्द्रात्मकता हमारे यहाँ एक प्रसिद्ध बात है। 'सौरदेह' और 'चान्द्रदेह' दोनों ही ज्योतिर्मय हैं, इस दृष्टिसे समानता होनेपर भी दोनोंमें भेद वर्तमान है। सौरदेह निरवयव और अखण्ड है तथा चान्द्रदेह सावयव है। सावयव विनाशधर्मी है, परंतु सौरदेह अविनश्वर है।

स्थूलदेह भौतिक है, यह बात सभी जानते हैं। अतएव इस विषयमें आलोचना करना निरर्थक है। सूक्ष्मदेहकी छायारूपी एक देह है। मृत्युके बाद कोई-कोई जीव उसे ग्रहण करते हैं। मृत्युके पहले भी उसको ग्रहण कर सकते हैं। यह मनुष्यके लिये प्रायः हानिकर है; अतएव इस छायामय देहसे आत्मरक्षा करना आवश्यक है, अन्यथा धर्म-जीवनमें उन्नति करना कठिन होगा।

योगशास्त्रमें 'ज्ञानचक्षु' को तृतीय नेत्र कहा जाता है। उपर्युक्त संजीवनी शक्तिके प्रभावसे नेत्रकी सूक्ष्म क्रियाका उन्मेष होता है। आत्माकी इच्छाशक्तिके द्वारा ही कुण्डलिनीका जागरण सम्भव है। यह कुण्डलिनी जाग्रत् होकर नाड़ीगत असंख्य आवरणोंको अपसारित करती है तथा देहको भी निर्मल करती है। यही आत्मशुद्धिका उपाय है। शुद्धिके क्रमिक उत्कर्षके फलस्वरूप शक्तिके केन्द्रस्थित सब चक्र अपने अधीन हो जाते हैं। आत्माकी शक्तिके विकासका यही क्रम है।

दिव्य देह प्राप्त करके दिव्य जीवनकी प्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्यका पालन आवश्यक है तथा साथ-साथ विचार-शक्ति और बोधशक्तिका परिशीलन करना भी प्रयोजनीय है। पवित्र जीवन, चिन्ताशून्यता, एकाग्रता दिव्यभावमें सहायक होते हैं। एकाग्रताकी प्राप्तिके फलस्वरूप चित्त अन्तर्मुख होता है और सूक्ष्म ध्यानमें प्रवणता आती है। इसके फलस्वरूप चित्-शक्तिका विकास होता है और इच्छामात्रसे समाधि लग जाती है। यह समाधि प्रचलित जड़-समाधिसे विलक्षण होती है। इसमें चेतना लुप्त नहीं होती है। स्वनियन्त्रणकी सामर्थ्य रहती है। प्राचीन ईसाई योगियोंके मतसे इसका नाम 'Mantea' है। यह आन्तर योगमार्ग विशुद्ध मनकी भावनाके बलसे उन्मीलित होता है। परंतु कुण्डलिनीके जागरण तथा प्राणकेन्द्रपर विजय प्राप्त किये बिना उक्त भावना कार्य नहीं करती। विशुद्ध तत्त्वज्ञानके लिये तथा गुप्त शक्तियोंकी प्राप्तिके लिये यही उपाय है, अन्य कोई मार्ग नहीं है।

× × × ×

हमने यहाँतक विभिन्न प्रस्थानोंका आश्रय लेकर कायसिद्धिका विवरण उपस्थित किया है तथा प्रसङ्गवश पाश्चात्त्य देशमें काय-साधनके विषयमें कैसा प्रचार पहले था—इसका भी कुछ विवरण प्रदान किया है। अब कौलिक आगम-सम्प्रदायके योगियोंमें कायसाधन-प्रक्रिया कैसी थी, इसका उल्लेख किया जाता है। परंतु प्रक्रियाके सम्बन्धमें ज्ञानके पूर्व देहका विज्ञान जानना आवश्यक है। इसलिये नरदेहके महत्त्वका प्रदर्शन करनेके लिये इस देहके साथ संश्लिष्ट पदार्थसमूहका विवरण देना आवश्यक है। इन सब पदार्थोंके सम्यक् ज्ञानके बिना दिव्य-देह-सम्पादनकारी कौलिकी योगक्रिया आरम्भ करना सम्भव नहीं है।

वे पदार्थ कौनसे हैं, जिनका ज्ञान कायसाधकके लिये होना बहुत ही आवश्यक है? 'नेत्रागम' में महेश्वरने इस विषयके पदार्थोंका उल्लेख किया है। वे निम्न प्रकार हैं—

ऋतु (६) चक्रं स्वराधारं (१६)
त्रिलक्ष्यं (३) व्योमपञ्चकम् (५)।
ग्रन्थिद्वादशसंयुक्तं (१२) शक्तित्रयसमन्वितम्॥
धामत्रयपथाक्रान्तं (३) नाडित्रयसमन्वितम् (३)।
ज्ञात्वा शरीरं सुश्रोणि दशनाडीपथावृतम् (१०)॥
द्वा सप्तत्यासहस्रैस्तु (७२०००)
सार्द्धकोटित्रयेण (३५०००००) च।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाडिवृन्दैः समाक्रान्तं मलिनं व्याधिभिर्वृतम् ॥
सूक्ष्मध्यानात्मृतेनैव परेणैवोदितेन तु ।
आप्यायं कुरुते योगी आत्मनो वा परस्य च ॥
दिव्यदेहः स भवति सर्वव्याधिविवर्जितः ।

(१) कौलमतसे षट्चक्र

(क) जन्मस्थानस्थ 'नाडीचक्र' । इसका आश्रय करके विशाल नाडीसमूह जालके समान फैला हुआ है ।

(ख) 'मायाचक्र' नाभिदेशमें अवस्थित है । इस स्थानसे ही माया सर्वतः व्याप्त रहती है ।

(ग) 'योगचक्र' हृदयमें है । यह योगप्रसरका आश्रय-स्थान है ।

(घ) 'भेदनचक्र' तालुदेशमें है ।

(ङ) 'दीप्तिचक्र' बिन्दु-स्थान भ्रूमध्यमें है ।

(च) 'शान्तचक्र' नादस्थानमें अवस्थित है ।

(२) षोडश आधार

ये आधारसमूह जीवका आधार होनेके कारण 'आधार' कहलाते हैं । पैरके अङ्गुष्ठसे द्वादशान्त कमल-पर्यन्त इनका विस्तार है । इनके नाम हैं—अङ्गुष्ठ, गुल्फ, जानु, मेढ्र, पायु, कन्द, नाभि, जठर, हृत्कमल, कूर्मनाडी, कण्ठाधार, तालुदेश, भ्रूमध्य, ललाट, ब्रह्मरन्ध्र और द्वादशान्त । ये सब 'आधार' नामसे प्रसिद्ध हैं ।

(३) तीन लक्ष्य

(क) अन्तर्लक्ष्य—

तडित्प्रभाके समान अतिसूक्ष्म कुण्डलिनी-स्थित आकाश-का दर्शन अथवा मस्तकके ऊर्ध्वमें द्वादशाङ्गुलपर्यन्त ज्योतिका दर्शन । यह आन्तर और बाह्य इन्द्रियोंके अगोचर है । इस विषयमें कुछ मतभेद पाया जाता है । योगिगणका अन्तर्लक्ष्य सहस्रारमें ज्वलज्ज्योतिका दर्शन है । वैष्णवोंके मतसे बुद्धिगुहामें सर्वाङ्गसुन्दर पुरुषरूपका दर्शन है । शैव-लोगोंके मतसे शीर्षस्थ मण्डलमें उमामहेश्वर-रूपका दर्शन है । दहर-उपासकोंका अङ्गुष्ठमात्र पुरुषरूप दर्शन भी यही है ।

(ख) मध्यलक्ष्य—

सूर्य, चन्द्र तथा अग्निकी शिखाके समान नाना प्रकारके विचित्र वर्ण अथवा तद्विहीन अन्तरिक्षके समान दर्शन ।

(ग) बहिर्लक्ष्य—

अपने नासिकाग्रमें अभ्यासके फलस्वरूप थोड़ी दूरतक व्योमका दर्शन ।

(४) पञ्चव्योम

ये व्योमसमूह जन्मस्थान, नाभि, हृदय, बिन्दु और नादमें भावना करनेमें आते हैं । इनमें प्रथम व्योम है अनन्त विश्वका आश्रय अनन्त शून्यरूप । यह अनन्त शून्य सुषुप्तिका आवेशकारक होनेके कारण हेय है । पञ्च आकाशके नाम विभिन्न स्थानोंमें विभिन्न प्रकारके मिलते हैं । जैसे—गुणरहित आकाश, पराकाश, महाकाश, तत्त्वाकाश, सूर्याकाश आदि ।

(५) द्वादश ग्रन्थि

मायासे लेकर शक्तिपर्यन्त द्वादश ग्रन्थिके स्थान हैं । मायाग्रन्थि देहकी उत्पत्तिका कारण है । पाशवग्रन्थि पशुओंकी संकुचित दृष्टिका कारण है । यह ग्रन्थि कन्दमें अवस्थित है । हृदयसे आरम्भ करके ललाटपर्यन्त पाँच कारणग्रन्थि विद्यमान हैं । ये पशुओंकी सृष्टिमें कारण हैं; इसी कारण इनका निरोध करना कर्तव्य है । निरोध करने योग्य होनेके कारण इनको 'ग्रन्थि' कहते हैं । ब्रह्मग्रन्थि हृदयमें, विष्णु-ग्रन्थि कण्ठमें, रुद्रग्रन्थि तालुमूलमें, ईश्वरग्रन्थि भ्रूमध्यमें और सदाशिवग्रन्थि ललाटमें अवस्थित हैं । इनके ऊर्ध्व भी और भी कई ग्रन्थियाँ हैं । वे नादशक्तिरूपी निरोधिकाके ऊर्ध्वपर अवस्थित हैं । उनके नाम हैं—इन्धिका, दीपिका, बैन्दव, नाद और शक्ति । ये भी परचित्‌के प्रकाशमें आवरणस्वरूप हैं ।

(६) तीन धाम

चन्द्र, सूर्य और अग्निरूप तीन धाम वाम, दक्षिण और मध्यस्थानमें व्याप्त होकर अवस्थित हैं । मानवदेहकी अधिष्ठात्री तीन प्रकारकी वायुके द्वारा तीनों धाम सृष्ट हैं । इडा आदि तीनों नाड़ियाँ भी वायुत्रयके द्वारा नियन्त्रित हैं । वस्तुतः नाड़ी असंख्य हैं और वायु उनकी अधिष्ठाता है ।

परचित्-शक्तिसे प्रसूत अमृतके द्वारा दिव्य शाक्तकाय उद्भूत होता है । इस शक्तिका स्वरूप क्या है ?—यह आत्माका धर्म है, भगवान्‌की स्वरूपमहिमा है, शिवकी प्राणरूप सामर्थ्य है । परंतु शक्तिरूपमें व्यवहार होनेपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह स्वरूपसे अतिरिक्त नहीं है; क्योंकि वह स्वरूपमें आश्रित नहीं है; स्वरूपसे अभिन्न है और स्वरूपके साथ एकरस है। इस चितिरूपा परमेश्वरकी स्वातन्त्र्य-शक्तिका आश्रय करके योगिगण परमपदकी ओर यात्रा करते हैं। वह समस्त विश्वके मध्यमें है, विश्वकी हृदयगुहामें अति गुप्तभावसे निहित है।

मानव निरन्तर श्वास-उच्छ्वासशील है तथा नाना प्रकारके द्वन्द्वोंके घात-उपघातसे पीड़ित होनेके कारण मध्यमार्गमें संचरणशील, समस्त वस्तुओंके मध्य रहनेवाली इस शक्तिका साक्षात्कार नहीं कर सकता। अन्योन्यविरुद्ध प्राण और अपानकी वृत्तियोंके संघट्टके द्वारा जीवदेहके सारे कार्य तथा चिन्तन परिव्याप्त रहते हैं। अतएव किसी-न-किसी प्रक्रियासे इन वृत्तियोंको अभिभूत करना आवश्यक है। विरुद्ध शक्तियोंका विरोध शान्त होनेपर यह भावना करनी चाहिये कि सुषुम्णामें स्थित मध्यम प्राणमें पराशक्तिका संचार हो रहा है। यह मध्यम प्राण ही 'उदान' नामक प्राणब्रह्म है। जब देहादिमें अहंभावका त्याग हो जायगा तथा पूर्णाहंताके समावेशकी सिद्धि हो जायगी, तभी समझना होगा कि सब भावना सफल हो गयी। अहंभाव-परामर्शके लिये यही क्रमशः करना चाहिये। योगी पूर्णाहंतामय मूलमन्त्रके साथ पराशक्तिका सामरस्य चिन्तन करें। इस प्रकारकी भावनाके फलस्वरूप प्राणादि-संस्पर्शसे रहित स्पन्द स्वयं प्रकट होगा। इस स्पन्दके द्वारा पूर्वोक्त सामरस्यकी प्राप्ति कठिन नहीं रहेगी।

यहाँतक सिद्ध हो जानेपर भावनाके मार्गमें मन्त्रवीर्यका सार समुदित होता है। यही अभिमान-उदयरूप रहस्य है। तत्पश्चात् देह-प्राण आदिसे परिच्छिन्न प्रमातामें विद्यमान अभिमानका परिहार करके उसको आनन्दचक्रसे उठाकर मूलाधारमें स्थापित करना पड़ता है।

यहाँतक प्रारम्भिक प्रक्रिया हुई। इसके बाद वेध-क्रियाका समय आता है। पहले आधार आदि सोलह केन्द्रोंको एक-एक करके वेध करना पड़ता है। वेधकार्यमें नाद करण होता है, वह मन्त्रात्मक प्राणरूपमें अथवा स्फुरत्ता-के उन्मेषके रूपमें प्रकट होता है। यहाँ सूक्ष्म योग और प्रयोगकी आवश्यकता है।

उन्मिषित स्फुरत्ताकी तीव्र उत्तेजनाका संचार ही 'सूक्ष्म योग' है। इसका प्रयोग इस प्रकार होता है कि प्राणात्मक मन्त्र पूर्वोक्त उत्तेजनाके वश अपने स्थानको त्यागकर ऊर्ध्व सुषुम्णाके मार्गसे आरोहण करता है। इस आरोहणके साथ-साथ कौलिक मतके अनुसार सारे आधार और सारी ग्रन्थियोंकी वेधक्रिया सम्पन्न होती है। वेधक्रिया समावेशकर है, इसमें कोई संदेह नहीं। द्वादशान्तमें प्रवेशके साथ-साथ महामायापर्यन्त सारे बन्धन परिहृत हो जाते हैं। उसके बाद ध्रुवपदमें स्थिति होती है। अन्तिम वेध सम्पन्न होनेपर महाव्याप्तिका आविर्भाव होता है। यह नित्योदित पराशक्ति सामरस्य रूप है। यहाँतक योग सम्पन्न होनेपर पराशक्ति साथ अभिन्नता स्फुरित होती है। यह अभिन्नता शिवतादात्म्यरूप होती है।

कौलिक प्रक्रियामें प्रथम प्रपञ्च है परम शिवके साथ अभिन्नता और उसका फल—सब कुछ इस प्रपञ्चके अन्तर्गत है। इसके बाद द्वितीय प्रपञ्च आता है। द्वादशान्तमें प्रसरण करनेवाली शक्तिधाराकी सहायतासे मध्यम मार्गके पथमें हृदयके आपूरित होनेपर परमानन्द प्रकट होता है। उस आनन्दको परामृत-प्रवाह समझना चाहिये।

यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि हृदयमें प्रविष्ट परानन्द रसायनका काम करता है। जबतक वह हृदयमें रहता है, तबतक भावनाके बलसे उसको स्वसंवेद्य बना लेना आवश्यक है। हृदयसे उमड़ती हुई परमानन्द-प्रवाह-धाराको चारों ओर फैला देना कर्तव्य है, जिससे वह प्रवाह समस्त नाड़ियोंके अनगिनत तन्तुओंमें गमन कर सके। इसके बाद अनुरूप ध्यान करना आवश्यक है।

तत्पश्चात् इस अमृतके द्वारा देहके बाहर और भीतरको पूर्ण कर लेना आवश्यक है। इस प्रकार स्वदेह अमृतमय हो जाय, तब तीव्रवेगसे इस प्रवाहको देहस्थ रोमकूपके माध्यमसे बाहरके विषयोंमें निरन्तर प्रेरित करना चाहिये। तत्पश्चात् शाक्तानन्द-ज्ञानके द्वारा समस्त जगत् आप्यायित हो रहा है—ऐसा ध्यान करना चाहिये। इस ध्यानके फलस्वरूप अजर और अमर भाव आता है तथा आत्मसिद्धि भी प्राप्त होती है। कौलिक शास्त्रमें मृत्युपर विजयके लिये यह प्रक्रिया उपदिष्ट हुई है।

तान्त्रिक वाङ्मयमें भी इस प्रकारकी तथा इससे भिन्न प्रक्रिया दृष्टिगोचर होती है। तान्त्रिक लोग कहते हैं कि पहले मत्तगन्धस्थान—संकोच-प्रसरणरूपी किसी मुद्राके द्वारा अपनी सूक्ष्म प्राणशक्तिका उद्बोधन आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तिका आश्रय लेकर आगेकी क्रियाओंका साधन होता है। इस स्पन्दके द्वारा आविष्ट 'मध्यमा कला' नामक प्रसिद्ध शाक्त-कन्द जन्मस्थानमें प्रसुप्त अवस्थामें है। कौलमतसे जन्मस्थान आनन्देन्द्रिय है। तान्त्रिक प्रक्रियामें वह कन्द (मूल) रूप है। केवल इतना ही दोनोंमें भेद है।

योगी बहुत सावधान चित्तसे निरन्तर इस शक्तिकी भावना तबतक करते रहें, जबतक समावेश सिद्ध न हो जाय। तत्पश्चात् भावनाके बलसे पादाङ्गुष्ठमें स्थित कालाग्नि-के आधारका आश्रय लेकर ऊर्ध्वमें आरोहण करनेका प्रयत्न करना आवश्यक है।

यह प्रथम पर्व है। इसके समाप्त होनेपर कन्द-भूमिसे प्राप्त शक्ति-स्पन्दात्मक वीर्यको उसमें निक्षेप करके प्रस्फुट भावनाके द्वारा व्यक्त करें। तत्पश्चात् प्राणस्पन्दरूपी क्रिया-शक्ति उस वीर्यके द्वारा आपूरित होती है। इसकी मात्रा बढ़नेपर देहकी मध्यवर्ती नाभि प्राप्त होती है। वह तीन प्रकारकी है—एक 'इच्छारूप', जिसमें संकोचक्रमसे उत्पन्न ऊर्ध्वारोहणका प्रयत्न मुख्य है। द्वितीय है 'भावनारूप' और तृतीय है 'क्रियारूप', जिसके द्वारा ऊर्ध्वग्रन्थियोंका भेद या वेध होता है। ये ग्रन्थियाँ गुल्फ, जानु, मेढ्र तथा कन्दरूप हैं।

मूलस्पन्दके आश्रय मत्तगन्धस्थानकी बारंबार संकोच-विकासक्रियाका तात्पर्य है—निरोध। यह स्वच्छन्द शास्त्रमें वर्णित दिव्यकरणका उपलक्षण है।

इडा और पिङ्गला-रूपी दोनों पार्श्वकी नाड़ियोंका परित्याग करके, इच्छाका अवष्टम्भ साधन करते हुए, मध्य-मार्गमें प्रवाहित मध्यप्राणशक्तिके द्वारा सुषुम्णाका आश्रय लेना कर्तव्य है। सुषुम्णामें प्रवेश होनेपर समस्त इन्द्रियों और विषयोंसे विरत होना चाहिये। तब मायारहित विज्ञानके द्वारा (चिदात्मक ज्ञानशक्तिके द्वारा) क्रमशः हृदय आदि स्थानोंमें स्थित ब्रह्मादि कारणोंको एक-एक करके त्यागना पड़ता है। यहाँ प्राणादिकी प्रधानता न होनेके कारण इसे विज्ञानरूप समझना चाहिये। यह ब्रह्मादि सृष्टि आदि संवित्-स्वभाव है। तत्पश्चात् मायाग्रन्थि-भेद करके पञ्च आकाशका त्याग करें। तब ब्रह्मासे लेकर शिवतक सब कारणोंके ऊर्ध्वदेशमें विराजमान 'समना' नामक कुण्डली-शक्तिको प्राप्त करना होगा। उसीके गर्भमें शून्यातिशून्य अखिल विश्व कुण्डलकी भाँति अवस्थित है। समना-प्राप्तिके बाद ऊर्ध्वमें विरति है। वहाँ उन्मनाकी प्राप्ति होती है। वही परशिवदशा परसामरस्यरूप 'परव्योम' है।

अनर्थका साधन अर्थ

अर्थैश्वर्यविमूढो हि श्रेयसो भ्रश्यते द्विजः। अर्थसंपद्धिमोहाय विमोहो नरकाय च॥
तस्मादर्थमनर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्। यस्य धर्मार्थमर्थेहा तस्यानीहा गरीयसी॥
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्। योऽर्थेन साध्यते धर्मः क्षयिष्णुः स प्रकीर्तितः॥
यः परार्थे परित्यागः सोऽक्षयो मुक्तिलक्षणः॥

(पद्मपुराण सृष्टि० १९। २५०—२५३)

'धन-सम्पत्ति मोहमें डालनेवाली होती है। मोह नरकमें गिराता है; इसलिये कल्याण चाहनेवाले पुरुषको अनर्थके साधन अर्थका दूरसे ही परित्याग कर देना चाहिये। जिसको धर्मके लिये धन-संग्रहकी इच्छा होती है, उसके लिये यह इच्छाका त्याग ही श्रेष्ठ है; क्योंकि कीचड़को लगाकर धोनेकी अपेक्षा उसका स्पर्श न करना ही उत्तम है। धनके द्वारा जिस धर्मका साधन किया जाता है, वह क्षयशील माना गया है। दूसरेके लिये जो धनका परित्याग है, वही अक्षय धर्म है, वही मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला है।

(महर्षि कश्यप)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षडध्वा-रहस्य देह-विचार

(लेखक—श्रीकुलमार्तण्ड राजगुरु पण्डित श्रीयोगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री, विद्याभूषण, साहित्यरत्न)

पञ्चदेवोंमेंसे किसी भी देवताकी मन्त्रदीक्षाके सुअवसर-पर श्रीगुरुदेव आवश्यक पञ्चाङ्ग-पूजनके अनन्तर श्रेष्ठ देवार्चन करते हैं; तदनन्तर शिष्यके शरीरमें षडध्वाओंका शोधनकर उसको (शिष्यको) मन्त्र-ग्रहण करनेका अधिकारी बनाते हैं ।

यहाँपर सबसे प्रथम मन्त्रशास्त्रमें वर्णित षडध्वाओंका वर्णन करते हैं । उनके नाम हैं—कलाध्वा, तत्त्वाध्वा, भुवनाध्वा, वर्णाध्वा, पदाध्वा और मन्त्राध्वा । ये प्रकाश और विमर्शके अंशस्वरूप हैं, अर्थात् शिव-शक्त्यात्मक हैं । इनमेंसे पहलेके तीन 'अर्थ'स्वरूप और अन्तिम तीन 'शब्द'स्वरूप हैं । अतएव लिखा है—

मन्त्राध्वा च पदाध्वा च वर्णाध्वा चेति शब्दतः ।
भुवनाध्वा च तत्त्वाध्वा कलाध्वा चार्थतः क्रमात् ॥

(शारदातिलक ५ । ७९ टीका)

विरूपाक्षसंहितामें भी आया है—

अस्य विमर्शस्यार्णः पदमन्त्रार्णात्मकस्त्रिधा भवति ।
पुरतत्त्वकलात्मार्थो धर्मिण इत्थंप्रकाररूप इति ।

अर्थात् 'पद, मन्त्र और वर्णाध्वा विमर्शात्मक (शक्त्यात्मक) हैं (शब्दस्वरूप हैं) तथा पुर (भुवन) तत्त्व और कलाध्व प्रकाशात्मक अर्थाध्व कहे जाते हैं ।'

निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीता कलाके भेदसे 'कलाध्वा' पाँच प्रकारका है । कलाके षोडश भेद और भी हैं ।

'तत्त्वाध्वा'—३६ प्रकारके शिवतत्त्व, ३२ प्रकारके विष्णुतत्त्व, २४ प्रकारके सांख्यतत्त्व, प्रकृतिके १० तत्त्व और त्रिपुराके ७ तत्त्वोंके भेदसे अनेक प्रकारका है, जिसका वर्णन आगे करेंगे ।

भुवनोंकी संख्या २२४ है, जिनका सम्बन्ध तत्त्वोंसे ही है तथा आकाश, वायु, तैजस, आप्य (जलीय) और पार्थिव भुवनोंसे भी है ।

'ईरितो भुवनाध्वेति भुवनानि मनीषिभिः ।'

(शारदातिलक ५ । ९०)

वायवीय संहितामें—

'आधाराद्युन्मन्यन्तश्च भुवनाध्वा प्रकीर्तितः ।'

(शारदातिलक ५ । ९०-९१ की टीका

—ऐसा लिखा है, अर्थात् मूलाधारादि षट्चक्रों आज्ञाचक्रसे एक-एक अङ्गुल ऊपर विन्दु, अर्धचन्द्र रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समना और उन्मनी पर्यन्त 'भुवनाध्वा' कहा गया है ।

अकारसे लेकर क्षकारपर्यन्त वर्णोंकी संज्ञा 'वर्णाध्वा' है तथा हि—

'वर्णाध्वेति वदन्त्यर्णानादिक्षान्तान् मनीषिणः ।
वर्णसङ्घः पदाध्वा स्यात् ।'

(शारदातिलक ५ । ९

अर्थात् वर्णोंका समूह 'पदाध्वा' कहा जाता है । वर्णसंघका अर्थ विन्दुयुक्त वर्णसमूहका है । वायवीय संहिता दूसरे प्रकारसे लिखा है—

अनेकभेदसम्भिन्नः पदाध्वा पदसंहतिः ।
महामन्त्रोपमन्त्राणां वर्ततेऽवयवात्मना ॥
प्रधानावयवत्वेन सोऽध्वा पञ्चपदात्मकः । इति

(शारदातिलक ५ । ९०-९१ की टीकामें उ

अर्थात् महामन्त्र तथा उपमन्त्रोंके अङ्गवाला अ प्रकारके भेदोंसे युक्त पञ्चपदात्मक पदसमूह 'पदाध्वा' जाता है ।

'मन्त्राध्वा मन्त्रराशयः ।' (शारदाति० ५ । ९१) मन्त्रोंके समूहको 'मन्त्राध्वा' कहते हैं । 'मन्त्रराशय' अर्थ शारदातिलककी टीकामें **'अकचटतपयाः मन्त्राः ।'** इस प्रकार लिखा है । तथा **'सप्तकोटिमहामन्त्र** अनुसार 'मन्त्रराशयः'का अर्थ सात करोड़ मन्त्रोंका भी

छत्तीस प्रकारके शिवतत्त्वोंका वर्ण नीचे लिखा जा तत्त्व तीन कोटिमें विभक्त हैं, जिनको 'शुद्ध', 'शुद्धाशुद्ध' 'अशुद्ध' कहते हैं । कोई वस्तु चेतन है तथा कोई इन्हीं दोनों (जीव-जडको) 'शुद्ध' एवं 'अशुद्ध' कर तथा इन्हींकी संज्ञा 'पर' और 'अपर' भी है । अचिद् चि चिद् संसारको अनुभव कर रहा है, इसे ही 'अशु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इससे भिन्न 'शुद्ध' है। चिद् और अचिद्—इन दोनों प्रकारके तत्त्वोंपर शिव और शिवाका ही अधिकार है। 'जैसे शिव हैं, वैसे ही शक्ति हैं। ये दोनों चन्द्र और चन्द्रकी चन्द्रिका (चाँदनी) की भाँति परस्पर सम्बद्ध हैं' अर्थात् एक दूसरेसे पृथक् नहीं हैं। अतएव लिखा है—

यथा शिवस्तथा देवी यथा देवी तथा शिवः।
नानयोरन्तरं विद्याच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव॥

शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और शुद्धविद्या—ये पाँच 'शुद्ध' तत्त्व हैं। इनका अर्थ श्री१००८ राष्ट्रगुरु श्रीस्वामीजी महाराज, पीताम्बरापीठ, दतिया, म० प्र० के अनुवादसे लिखा जाता है—

शुद्ध तत्त्व

(१) **शिव**—इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक पूर्णानन्दस्वरूप परम शिव ही 'शिव' तत्त्व हैं। अर्थात् महेश्वर ही शिव हुए हैं।

(२) **शक्ति**—जगत्की रचना करनेवाले परमेश्वरका प्रथम स्पन्दरूप, जो उसकी इच्छा है, उसे ही 'शक्ति' कहते हैं। अतः वह शक्तितत्त्व अप्रतिहत इच्छावाला है।

(३) **सदाशिव**—सद्रूप अङ्कुरायमाण जगत्की जो प्रथमावस्था है, जो अपने स्वरूपमें अहंतासे आच्छादन करके स्थित है, उसे 'सदाशिव' कहते हैं। अर्थात् अहंतासे इदंताको आच्छादन करनेवाले तत्त्वको 'सदाशिव' कहते हैं।

(४) **ईश्वर**—अङ्कुरित जगत्को अहंताद्वारा स्फुट-रूपसे जो ग्रहण किये हुए हैं, उन्हें 'ईश्वर' कहते हैं।

(५) **शुद्धविद्या**—अहंता और इदंता (जगत्) की एकताका बोध जिससे होता है उसे 'शुद्धविद्या' तत्त्व कहते हैं।

शुद्धाशुद्ध तत्त्वोंमें प्रथम 'मायातत्त्व' है।

(६) **माया**—स्व-स्वरूप भावोंमें भेदप्रथारूप 'माया' तत्त्व है। कहा भी है—

मायाविभेदबुद्धिर्निजांशजातेषु निखिलजीवेषु।
नित्यं तस्य निरङ्कुशविभवं वेलेव वारिधे रुन्धे॥

अर्थात् जिस प्रकार वेलातट समुद्रद्वारा अवरुद्ध रहता है, वैसे ही माया समस्त जीवोंमें भेद-बुद्धिरूप रहती है।

(७) **पुरुष**—जब परमेश्वर अपनी पारमेश्वरी माया-शक्तिद्वारा स्वरूप ग्रहण करके संकुचित ग्राहकताको प्राप्त करते हैं, तब उसकी 'पुरुष' संज्ञा होती है।

(८) **कला**—उस पुरुषकी किंचित् कर्तृताको 'कला' कहते हैं।

(९) **विद्या**—किंचित् ज्ञानके कारणको 'विद्या' कहते हैं।

(१०) **राग**—विषयोंमें प्रीति 'राग' है।

(११) **काल**—प्रकाशित और अप्रकाशित स्वरूप-वाले भावोंके क्रमका जो अविच्छेदक एवं भूतोंका जो आदि है उसे 'काल' कहते हैं।

(१२) **नियति**—मेरा यह 'कर्तव्य' तथा यह 'अकर्तव्य' है, इसके नियमन-हेतु 'नियति' है।

उपर्युक्त पाँचों तत्त्व जीवके आवरण करनेवाले होनेके कारण 'पञ्च-कञ्चुक' कहलाते हैं।

अशुद्ध तत्त्व

(१३) **प्रकृति**—महत्से लेकर पृथिवीपर्यन्त तत्त्वोंका मूलकारण 'प्रकृति' है और यह प्रकृति सत्त्व, रज, तमकी साम्यावस्थासे अविभक्त रूपवाली है।

(१४) **बुद्धि**—सत्त्वप्रधान और स्वच्छ होनेके कारण बुद्धिमें प्रतिबिम्ब ग्रहण करनेकी योग्यता है। इसी निश्चय करनेवाली और विकल्प-प्रतिबिम्बको धारण करनेवाली शक्तिको 'बुद्धि' कहते हैं।

(१५) **अहंकार**—मेरा यह है, मेरा यह नहीं है इस अभिमानके साधनको 'अहंकार' कहते हैं।

(१६) **मन**—संकल्प-विकल्पके साधनको 'मन' कहते हैं। मन, बुद्धि और अहंकार—इन तीनोंको 'अन्तःकरण' कहते हैं।

(१७–२१) **शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धात्मक** विषयोंको क्रमसे ग्रहण करनेके साधनोंको श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण—'पाँच ज्ञानेन्द्रिय' कहते हैं।

(२२–२६) **वचन, आदान, विहरण, विसर्ग**—(मलत्याग), **आनन्दात्मक क्रियाओंके** साधन क्रमसे जिह्वा, हस्त, पाद, पायु और उपस्थ—ये 'पाँच कर्मेन्द्रियाँ' हैं।

(२७–३१) **शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध**—इनकी सूक्ष्मावस्थाको 'पञ्च तन्मात्रा' कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३२) **आकाश**–अवकाश देनेवाला तत्त्व।

(३३) **वायु**–संजीवन करनेवाला तत्त्व।

(३४) **अग्नि**–दाहक और पाचक क्रिया करनेवाला तत्त्व।

(३५) **सलिल**–गीला करनेवाला और बहानेवाला जल-तत्त्व।

(३६) **भूमि**–धारण करनेवाली वस्तु 'भूमि' तत्त्व कहाती है।

वैष्णव-तत्त्व

जीवप्राणधियश्चित्तं ज्ञानकर्मेन्द्रियाण्यथ ॥
तन्मात्राः पञ्चभूतानि हृत्पद्मं तेजसां त्रयम्।
वासुदेवादयश्चेति तत्त्वान्येतानि शार्ङ्गिणः ॥

(शारदातिलक ५। ८५-८६)

अर्थात् 'जीव, प्राण, बुद्धि, चित्त, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, पञ्चतन्मात्रा, पञ्चभूत, हृदय, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये बत्तीस तत्त्व विष्णुके हैं।'

सांख्य-तत्त्व

पञ्चभूतानि तन्मात्रा इन्द्रियाणि मनस्तथा।
गर्वो बुद्धिः प्रधानं च मैत्राणीति विदुर्बुधाः ॥

(शारदातिलक ५। ८७)

अर्थात् 'पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, मन, अहंकार, बुद्धि और प्रकृति—ये चौबीस तत्त्व सांख्यशास्त्रके हैं।'

प्रकृति-तत्त्व

निवृत्त्याद्याः कलाः पञ्च ततो बिन्दुः कला पुनः।
नादः शक्तिः सदापूर्वः शिवश्च प्रकृतेर्विदुः ॥

(शारदातिलक ५। ८८)

अर्थात् 'निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीता कलाएँ, बिन्दु, कला, नाद, शक्ति और सदाशिव—ये दस तत्त्व प्रकृतिके हैं।'

त्रिपुरा-तत्त्व

आत्मविद्या शिवः पश्चाच्छिवो विद्या स्वयं पुनः।
सर्वतत्त्वं च तत्त्वानि प्रोक्तानि त्रिपदात्मनः ॥

(शारदातिलक ५। ८९)

अर्थात् 'आत्मा, विद्या, शिव, शिव, विद्या, आत्मा तथा सर्वतत्त्व—ये सात तत्त्व 'त्रिपुरा-तत्त्व' कहाते हैं।' इस प्रकार यह सब 'तत्त्वाध्वा'का वर्णन है।

कला, तत्त्व, भुवन और वर्ण, मन्त्र तथा पद—इन छः अध्वाओंकी भलीभाँति शुद्धि हुए बिना पूर्णत्व-प्राप्ति नहीं होती; क्योंकि सब पापोंका उच्छेद करनेके लिये समग्र अध्वाओंकी शुद्धि आवश्यक है; तभी पशुत्वकी निवृत्ति तथा शिवत्वकी अभिव्यक्ति हो सकती है।

अनेन अध्वविशोधनेन शरीरशुद्धिः कृता भवति, यतः षडध्वमयमेव शरीरम्। यदाहुः—

शान्त्यतीतकला मूर्द्धा शान्तिवक्त्रशिरोरुहा।
निवृत्तिजानुजङ्घाङ्घ्रिर्भुवनाध्वशिरोरुहा ॥
मन्त्राध्वमांसरुधिरा पदवर्णशिरायुता।
तत्त्वाध्वमज्जामेदोऽस्थिधातुरेतोयुता शिवे ॥

(शारदातिलक ५। ९५-९६ में उद्धृत)

अर्थात् ''मानव-शरीर षडध्वमय है, अर्थात् छः अध्वाओंसे युक्त है। शरीरमें अध्वविभाग करके बताते हैं—सिरमें शान्त्यतीतकला है; मुख और बालोंमें शान्तिकला है; जानु, जङ्घा और पैरोंमें निवृत्तिकला है; सिरमें 'भुवनाध्वा', मांस और रुधिरमें 'मन्त्राध्वा', शरीरकी शिराओंमें (नाडियोंमें) 'पदाध्वा' और 'वर्णाध्वा' तथा मज्जा-मेद (चर्बी), अस्थि (हड्डियाँ), धातु (कफ, पित्त और श्लेष्म) तथा वीर्यमें 'तत्त्वाध्वा' है।''

केवल मानव-शरीर ही षडध्वमय नहीं, अपि तु देवशरीर भी षडध्वपरिपूर्ण है। अतएव 'ज्ञानार्णव-तन्त्र'में श्रीयन्त्रके (श्रीचक्रके) विषयमें लिखा है—

'अस्मिंश्चक्रे षडध्वानो वर्तन्ते वीरवन्दिते।'

(१०। ८९)

'एवं षडध्वविमलं श्रीचक्रं परिचिन्तयेत्।'

(१०। ९८)

दक्षिणामूर्ति-संहितामें भी लिखा है—**'षडध्वरूपमधुना शृणु योगेशि साम्प्रतम्।'** इत्यादि—**'एवं षडध्वभरितं श्रीचक्रं परिचिन्तयेत्।'** इत्यादि। ज्ञानार्णवतन्त्रमें षट् अध्वाओंके लक्षण भी लिखे गये हैं।

भैरवयामलमें महेश्वर गौरीके प्रति कहते हैं कि श्रीचक्राकाररूपिणी पराशक्ति श्रीचक्रके बैन्दवस्थानमें श्रीसदाशिवसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पृक्त है तथा श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीका श्रीचक्र ब्रह्माण्डाकार है, जो कि पञ्चभूतात्मक, पञ्चतन्मात्रात्मक, पञ्चज्ञानेन्द्रियात्मक, मनस्तत्त्वरूप, मायादितत्त्वस्वरूप है। उसीके (श्रीचक्रके) तत्त्वातीत (तत्त्वोंसे परे) बैन्दवस्थानमें जगत्की उत्पत्ति-स्थिति-संहारकारिणी ज्योतिःस्वरूपा पराकारा महेश्वरी विराजमान है, जिसके देहसे समुत्पन्न कोटिशः किरण चराचर सम्पूर्ण जगत्को (ब्रह्माण्डको) प्रकाशित करते हैं। उन अनन्तकोटि मयूखों (किरणों) के मध्यमें सोम, सूर्य और अनलात्मक तीन सौ साठ रश्मियाँ हैं, जिनमेंसे एक सौ आठ अग्निकी, एक सौ सोलह सूर्यकी और १३६ (एक सौ छत्तीस) चन्द्रमाकी किरणें हैं, जो कि ब्रह्माण्ड और पिण्डाण्डको प्रकाशित करती रहती हैं। अर्थात् दिनमें भगवान् भास्कर, निशीथिनी (रात्रि) में निशापति चन्द्र और दोनों संध्याओंमें अग्निदेव। अतएव ये तीनों (सूर्य, चन्द्र और अग्नि) 'कालात्मक' माने जाते हैं, अर्थात् ये (तीनों) कालत्रयको प्रकाश प्रदान करते हैं। वर्षभरमें तीन सौ साठ दिन होते हैं। परमेशानी (श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी) से नियुक्त हायनात्मा महादेव सृष्टि, स्थिति और लयको करते रहते हैं और यह कार्य इस प्रकार चलता रहता है।

'तामेवानुप्रविश्य।' इत्यादिना—**'तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।'** इस श्रुत्यर्थका ही उपर्युक्त अनुवाद भैरवयामलने किया है।

श्रीललितासहस्रनाममें भगवतीके निम्नलिखित तीन नाम आये हैं—**'तत्त्वाधिका, तत्त्वमयी, तत्त्वमर्थस्वरूपिणी।'** **'तत्त्वेभ्यः षट्त्रिंशत्तत्त्वेभ्यः अधिका तन्नाशेऽप्यवस्थानात्।'** अर्थात् छत्तीस तत्त्वोंसे भी जो अधिक है, अतः तत्त्वोंके नाश होनेपर भी जो विद्यमान रहती है। **'तत्त्वमयी—तत्त्वप्रचुरा'** अर्थात् बहुतसे तत्त्वोंसे युक्त **'यद्वा तत्त्वं शिवतत्त्वं तदधिका चिन्मयी चेति नामद्वयार्थः।'** अर्थात् शिवतत्त्वसे भी अधिक तथा चिन्मयी। यानी जो सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि-रूपा है। अथवा तत्त्वमयी—आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व—त्रिविध तत्त्वरूपिणी तथा तत्त्वाधिका—तीन प्रकारके आत्म, विद्या और शिवतत्त्वोंसे अधिक अर्थात् **'तत्समष्टिरूप सर्वतत्त्वरूपत्वात् त्रिविधतत्त्वाधिका**—तीनों तत्त्वोंकी समष्टि-रूप सर्वतत्त्वरूपसे जो तीन प्रकारके तत्त्वोंसे अधिक है।' तथा 'तत्त्वमयी' का अर्थ शिव-जीवरूपा भी है। यथा **'महावाक्य-स्थयोस्तत्पदत्वंपदयोरर्थौ शिवजीवौ स्वरूपमस्याः सा तत्त्वमयी।'** (सौभाग्यभास्कर-व्याख्या)।

जिस प्रकार परमेश्वरीका शरीर षडध्वमय है, इसी तरह परमेश्वरका (परमात्माका) शरीर भी षडध्वमय है। अर्थात् देवी और देवताओंके—सबके देह षडध्वभरित हैं, तथा हि—

षडध्वात्मकपरमात्मशरीरे षट्त्रिंशदात्मकतत्त्वाध्वनोऽप्यवयववत्वात्तत्त्वमयी। तदुक्तं कामिके—पृथिव्यादीनि षट्त्रिंशत्तत्त्वान्यागमवेदिभिः। उक्तान्यमुष्य तत्त्वाध्वा शुक्र-मज्जास्थिरूपश्चेति। (ललितासहस्रनाम सौभाग्यभास्कर-व्याख्या)

अध्वशोधन-विधि लेखके अन्तमें दी जायगी। अध्वविशोधनानन्तर श्रीगुरुदेव शिष्यसे तत्त्वाचमन कराकर उसके मलमय तथा स्थूल-सूक्ष्मादि चतुर्विध देहोंका संशोधन कराते हैं। मनुष्यका शरीर (२३) स्थूल-सूक्ष्म-कारण और महाकारणके भेदसे चार प्रकारका माना जाता है।

स्थूलशरीर (देह)

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंकुलम्।
पूर्णं मूत्रपुरीषाभ्यां स्थूलं निन्द्यमिदं वपुः॥

(विवेकचूडामणि ९८)

अर्थात् 'त्वचा (चर्म), मांस, रक्त, स्नायु (नसें), मेदा (चर्बी), मज्जा और हड्डियोंका समूह तथा मल-मूत्रसे पूर्ण (भरा हुआ) स्थूलदेह कहलाता है।' यह अन्य देहोंकी अपेक्षा निन्दनीय है। यह शरीर आत्माका स्थूल भोगायतन (भोगका घर) है। इसकी अवस्था जाग्रत् है। इस अवस्थामें ही स्थूल पदार्थोंका अनुभव किया जाता है। अतएव जाग्रदवस्थामें स्थूलदेहकी प्रधानता है। स्थूलदेह-का अभिमानी जीव 'विश्व पुरुष' कहलाता है।

सूक्ष्मशरीर

वागादिपञ्च श्रवणादिपञ्च प्राणादिपञ्चाभ्रमुखानि पञ्च।
बुद्ध्याद्यविद्यापि च कामकर्मणी पुर्यष्टकं सूक्ष्मशरीरमाहुः॥

(विवेकचूडामणि ९८)

'वाणी आदि पाँच कर्मेन्द्रियाँ, श्रवण आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, प्राणापानादि पाँच प्राण, आकाशादि पञ्चभूत, बुद्धि, मन आदि अन्तःकरण (भीतरकी इन्द्रियाँ—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार), अविद्या, काम और कर्म यह पुर्यष्टक सूक्ष्मशरीर कहलाता है।' इस सूक्ष्मशरीरको लिङ्ग-शरीर भी कहते हैं। यह अपञ्चीकृत भूतोंसे उत्पन्न हुआ है। यह वासना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्त होनेसे कर्मफलोंका अनुभव करानेवाला है। अपने स्वरूपका यथार्थ ज्ञान न होनेके कारण यह आत्माकी अनादि उपाधि है। स्वप्न इसकी अभिव्यक्ति अवस्था है। इस अवस्थामें यह स्वयं बचा हुआ भासता है। बुद्धि इसकी उपाधि है। यह लिङ्ग-देह (शरीर) चिदात्मा पुरुषके सम्पूर्ण व्यापारोंका कारण है। स्वप्नदशापन्न (स्वप्नावस्थाको प्राप्त) सूक्ष्मशरीरके व्यष्ट्यभिमानी जीवकी संज्ञा 'तैजस पुरुष' है।

कारणशरीर

अव्यक्तमेतत्त्रिगुणैर्निरुक्तं
तत्कारणं नाम शरीरमात्मनः।
सुषुप्तिरेतस्य विभक्त्यवस्था
प्रलीनसर्वेन्द्रियबुद्धिवृत्तिः ॥

(विवेकचूडामणि १२२)

रजोगुणकी विक्षेपशक्ति क्रियारूपिणी है। इसीसे समस्त क्रियाएँ होती हैं और इसीसे मानसिक विकार (सुख-दुःखादि) उत्पन्न होते हैं। इसीके कारण ही जीव नाना प्रकारके कर्मोंमें प्रवृत्त होता है। रजोगुण ही जीवके बन्धनका कारण है।

तमोगुणकी आवरण-शक्तिसे वस्तु कुछ-की-कुछ प्रतीत होती है। यही पुरुषके (जन्म-मरणरूप) संसारका आदि-कारण है। अज्ञान, आलस्य, जडता, निद्रा आदि तमके गुण हैं।

यद्यपि सत्त्वगुण जलके समान शुद्ध है, तथापि रज और तमसे मिलनेपर वह भी (सत्त्वगुण) संसार-बन्धनका कारण होता है। यम-नियमादि, श्रद्धा, भक्ति, मुमुक्षुता और दैवीसम्पद्—ये 'मिश्र सत्त्वगुण'के धर्म हैं। प्रसन्नता, आत्मानुभव, परम शान्ति, आत्यन्तिक आनन्द और परमात्मामें स्थिति—ये 'विशुद्ध सत्त्वगुण'के धर्म हैं।

एवं उक्त तीनों गुणोंके निरूपणसे अव्यक्तका वर्णन किया गया है। यही आत्माका 'कारण-शरीर' है। इसकी अभिव्यक्ति सुषुप्ति-अवस्थामें होती है। सुषुप्तावस्थामें बुद्धिकी सम्पूर्ण वृत्तियाँ लीन हो जाती हैं। अर्थात् सब प्रकारका ज्ञान शान्त हो जाता है और बुद्धि बीजरूपसे ही स्थिर रहती है।

कारण-शरीरके व्यष्ट्यभिमानी जीव (सुप्त) की संज्ञा 'प्राज्ञ पुरुष' है।

महाकारण-शरीर

तुरीया दशाको प्राप्त जीवकी उपाधिको 'महाकारण-शरीर' कहते हैं। उपर्युक्त जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओंका तथा इन अवस्थाओंके भोक्ताओंके ज्ञानपूर्वक विवेचनसे उत्पन्न शुद्धविद्याके उदयका (ज्ञानका) चमत्कार ही 'तुरीयावस्था' है।

तदुक्तं स्पन्दशास्त्रे—

—एतदवस्थात्रयस्य तद्भोक्तॄणां च विविच्य ज्ञानजन्यशुद्धविद्योदयाख्यश्चमत्कारस्तुर्यावस्था। तथा हि—

त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता यश्च प्रकीर्तितः।
विद्यात्तदुभयं यस्तु स भुञ्जानो न लिप्यते॥

इति वरदराजोऽप्याह—

तुर्यं नाम परं धाम तदाभोगश्चमत्क्रिया।
भेदेऽपि जाग्रदादीनां योगिनस्तस्य सम्भवः॥

(शिवसूत्र, वरदराज० ४४।४५)

अर्थात् 'तुर्य (तुरीयावस्था) उस महाशक्तिका परधाम है। उसका आभोग (परमानन्दका अनुभव) ही चमत्कार है। जाग्रत्-स्वप्न आदि अवस्थाओंके भेद होनेपर भी योगी पुरुषको तुरीयावस्थाके आनन्दका अनुभव होता रहता है।' इस विषयमें शिवसूत्र (१।७) भी कहता है—

'जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिभेदेऽपि तुर्याभोगसम्भवः।'

अर्थात् 'जाग्रदादि अवस्थाओंमें भेद होनेपर भी तुर्याका भोग (तुरीयावस्थाको आनन्द अनुभव) अवश्य होता है।' एक और भी शिवसूत्र (३।२०) है—

'त्रिषु चतुर्थं तैलवदासेच्यम्।'

अर्थात् 'तीनों अवस्थाओंके रहते हुए भी चतुर्थ तुर्यावस्थाका आनन्द उनके ऊपर ऐसा रहता है जैसे पानीके ऊपर तैलबिन्दु ऊपर ही तैरता रहता है और पानीका उसके ऊपर कुछ भी असर (प्रभाव) नहीं होता है।'

तद्वान् महाकारणशरीराभिमानी जीवस्तुर्यः। तस्य व्यष्ट्या समष्ट्या चाभिन्ना तुर्यावस्था॥

मलत्रय—३२ कर्ममल, मायामल और आणवमलका देह-सम्बन्ध

मनुष्यके शरीरमें आणव, कार्म और मायामलके भेदसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन प्रकारके मल हैं। शरीरका अर्थ शरीरमें स्थित जीवात्माका है। इन तीनों मलोंको अणु, भेद और कर्म नामके तीन पाश भी कहते हैं। अणुसे आणव, कर्मसे कार्मण (कर्म) तथा भेद—मायासे मायिक (मायिकमल अथवा मायापाश) मल।

आणव मल

अणुका अर्थ अज्ञान है। अज्ञानसे चैतन्यस्वरूप आत्माको आत्मा न मानकर शरीरको आत्मा मानना तथा अनात्मा (आत्मासे भिन्न) देहको आत्मा मानना, इस भाँति दो प्रकारके अज्ञानका नाम 'आणव मल' है। अतएव कहा है—

'आणवो नाम सदाशिवस्य स्वस्याऽनवमर्शः।

अर्थात् सदाशिवका अपनेको न पहचानना ही आणव मल है। आणव मलको 'अविद्या' भी कहते हैं। इसी कारण वह अपनेको नहीं पहचानता तथा सौर-संहितामें भी लिखा है—

'आत्मनोऽणुत्वहेतुत्वादणोर्मालिन्यतो मलम्।'

कार्मण मल

विहित तथा निषिद्ध क्रियाओंके (कर्मोंके) करनेसे उत्पन्न पुण्य और पापके भेदसे कार्मण मल दो प्रकारका है। अतएव कहा भी है—

'कार्मा नाम पुण्यपापवानहं प्रतीतिः।'

अर्थात् 'मैं पुण्यवान् हूँ, मैं पापी हूँ'—इस प्रकारकी प्रतीति (विश्वास) ही 'कार्मण मल' है।

मायिक मल

मायासे उत्पन्न मलको 'मायिक मल' कहते हैं। मायाका अर्थ है—ईश्वरके अंशसे उत्पन्न सम्पूर्ण जीवोंमें भेदबुद्धि रखना, अर्थात् भिन्न-भिन्न प्रथारूप मायीय मलसे स्वाङ्गसदृश जड वेद्यवर्गमें अनेक प्रकारकी भेदवाली बुद्धिको 'माया' कहते हैं। यह तत्त्वोंमेंसे छठा तत्त्व है। तथा मायासे उत्पन्न सप्तम तत्त्वसे (पुरुषतत्त्वसे) छत्तीसवें तत्त्व (पृथिवीतत्त्व) पर्यन्त सभी तत्त्व 'मायिक मल'के नामसे व्यवहृत होते हैं।

आणव मलसे आच्छन्न जीव स्वयं देहपरिमित होकर, अन्य अनन्त जीवोंको भी देहपरिमित जानता हुआ अपनेसे भिन्न देखता है। यही 'मायिक मल' है। भेदप्रथारूप मायिक मलसे मलिन जीव शुभाशुभ कर्मोंको करते हुए उनसे (शुभाशुभ कर्मोंसे) उत्पन्न संस्कारवाले होते हैं। इसीको 'कार्मण मल' कहते हैं। इन तीनों प्रकारके मलोंको 'शरीर' भी कहते हैं।

जब परमेश्वर अपनी पारमेश्वरी मायाशक्तिके द्वारा स्वरूप ग्रहणकर संकुचित ग्राहकताको प्राप्त करते हैं, तब उनकी पुरुष संज्ञा होती है। पुरुष (अर्थात् जीव) ही मायासे मोहित होकर कर्मबन्धनवाला 'संसारी जीव' कहाता है। परमेश्वरसे अभिन्न होनेपर भी इसी जीवको मोह होता है, परमेश्वरको नहीं। बाजीगर अपनी इच्छासे ही दर्शकोंकी भ्रान्तिके लिये अपना इन्द्रजाल प्रकट करता है; परंतु स्वयं मोहित नहीं होता। इसी तरह परमेश्वरको भी अपनी मायासे मोह नहीं होता है।

जीवात्मा देहमें ही स्थित रहता है। वह देहसे भिन्न स्थानमें नहीं रहता। किंतु आणव, कार्मण और मायिक मलोंसे आच्छन्न होकर अपने परमात्मभावको भूला रहता है। वह यह नहीं समझता कि वह (जीवात्मा) स्वयं परमात्मा है, जिसके (परमात्माके) विषयमें गीता कहती है—

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः॥

(१३। २२)

अर्थात् 'मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, प्रज्ञा और इन्द्रियोंकी आकृतियोंका परीक्षक, अनुमोदनकर्ता, भर्ता, भोक्ता (इन्द्रियोंद्वारा तत्तद्विषयोंके भोगनेवालेको) इस शरीरमें महेश्वर, परपुरुष (परमपुरुष) तथा परमात्मा कहते हैं।'

शाक्त धर्मके अनुसार जीवात्मा और (ईश्वर) परमात्माका सम्बन्ध

शरीरकञ्चुकितः शिवो जीवो
निष्कञ्चुकः परः शिवः।

(प० क० सूत्र)

उपर्युक्त आणवादि मलोंको 'शरीर' कहते हैं। कञ्चुकका अर्थ आवरण (आच्छादित करनेवाला) है। आणव, कार्मण और मायिक मलसे आवृत कञ्चुकित (आच्छादित) शिव 'जीव' कहलाता है और निष्कञ्चुक—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त मलत्रयके आवरणसे रहित (निरावरण) जीव 'परशिव' कहलाता है। मन्त्रशास्त्रमें परमात्माको 'परशिव' कहते हैं। इसी प्रकार जीवात्मा और परमात्माका सम्बन्ध है।

'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।'

(गीता १५। ७)

वास्तवमें 'कञ्चुक' संस्कृतमें 'स्तनावरण वस्त्र'को कहते हैं; अतएव 'निन्दति कञ्चुककारं प्रायः शुष्कस्तनी नारी।' यह संस्कृतकी लोकोक्ति है।

तत्त्वशोधन

आणव, कार्मण और मायिक मलोंकी तथा स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण-शरीरोंकी संशोधन-प्रक्रियाको 'तत्त्वशोधन' कहते हैं। अतः तत्त्वशोधन-मन्त्र नीचे लिखे जाते हैं।

प्रथमाचमन

आचमनीमें तीर्थजल लेकर—'ॐ अं आं इं ईं ..... अं अः प्रकृत्यहंकारबुद्धिमनःश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राण-वाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धआकाशवाय्वग्निजल-भूम्यात्मकाय चतुर्विंशतितत्त्वात्मकाय आत्मतत्त्वा-यात्मतत्त्वात्मने विष्णुरूपाय विश्वपुरुषात्मने सरस्वती-हिरण्यगर्भसहितात्मने ब्रह्मग्रन्थिविदलनार्थमात्मपाशविच्छे-दनप्रवीणमाणवमलशोधनार्थमाधारेऽऽत्मतत्त्वं परिशोधयामि जुहोमि स्वाहा। ॐ ब्रह्मणे स्वाहा ब्रह्मणे इदं न मम।' इस मन्त्रसे प्रथम आचमन करे।

द्वितीयाचमन

'ॐ कं खं गं घं ङं चं टं तं पं मायाकला-विद्यारागकालनियतिपुरुषसप्ततत्त्वात्मकाय विद्यातत्त्वाय विद्यातत्त्वात्मने लक्ष्मीनारायणसहितात्मने तैजसपुरुषात्मने विष्णुग्रन्थिविदलनार्थमविद्यापाशविच्छेदनप्रवीणं कार्मणमल-शोधनार्थं हृदये विद्यातत्त्वं परिशोधयामि जुहोमि स्वाहा। ॐ विष्णवे स्वाहा विष्णवे इदं न मम।' इस प्रकार आचमन करे।

तृतीयाचमन

'ॐ यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं शिवशक्ति-सदाशिवेश्वरशुद्धविद्यात्मकाय शिवतत्त्वाय शिवतत्त्वात्मने प्राज्ञपुरुषाय प्राज्ञपुरुषात्मने विद्याशंकरसहितात्मने तन्त्रज्ञात्मकरुद्रग्रन्थिविदलनार्थं कर्मपाशविच्छेदनप्रवीणं मायिकमलशोधनार्थं शिरसि शिवतत्त्वं परिशोधयामि जुहोमि स्वाहा। ॐ रुद्राय स्वाहा रुद्राय इदं न मम।' इस प्रकार आचमन करे।

चतुर्थाचमन

'ॐ अं आं ..... क्षं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं प्रकृत्यहंकारसात्त्विकभूमिमायाकलाविद्यारागकालनियतिपुरुषशक्ति-वशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यात्मकायात्मविद्याशिवतत्त्वत्रयात्मक-यान्निसूर्यसोममण्डलरूपाय सात्त्विकराजसतामसात्मकग्रन्थि-त्रयविदलनार्थं स्थूलसूक्ष्मकारणमहाकारणशरीरचतुष्टयैक्यरूपाय वाणीवल्लभलक्ष्मीनारायणविद्याशंकरसहितात्मने विश्वतैजस-प्राज्ञपुरुषात्मने सर्वतत्त्वेन महाकारणदेहं परिशोधयामि जुहोमि स्वाहा। ॐ ईश्वराय स्वाहा। ईश्वराय इदं न मम।'

—इस प्रकार चतुर्थाचमन कर मलत्रय और स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण शरीरोंका शोधन करे।

षडध्व-विशोधन-प्रक्रिया

पूर्वोक्त षडध्वाओंका शिव-शरीरमें संशोधन-प्रकार निम्नलिखित है—

क्रमादेतान्ध्वनः षट् शोधयेद् गुरुसत्तमः।
पादान्धुनाभिहृद्भालमूर्द्धस्वपि शिशोः स्मरेत्॥

(शारदातिलक ५। ९२)

अर्थात् 'गुरुदेव पहले संहारक्रमसे शिष्यके शरीरमें षडध्वाओंका पद, अन्धु (गुह्यस्थान), नाभि, हृदय, भाल और सिरमें तत्तदध्वाओंका न्यास—उनका विलय कर दें;' पुनः सृष्टिक्रमसे शिष्यके तत्तदङ्गोंको दर्भकूर्चसे (कुशोंकी कूचीसे) स्पर्शकर पूर्वोक्त छः स्थानोंमें कलाध्व, तत्त्वाध्व, भुवनाध्व, वर्णाध्व, पदाध्व और मन्त्राध्वोंका उत्पादन करें और पुनः आज्य (घृत-) मिश्रित बिल्वोंकी अग्निकुण्डमें आहुति दें। आहुति-प्रदानका मन्त्र 'अमुष्य कलाध्वानं शोधयामि स्वाहा।'—इस प्रकार होता है।

एवं पैरोंमें कलाध्वका, गुह्यस्थानमें तत्त्वाध्वका, नाभिमें वर्णाध्वका, भालमें (माथेमें) पदाध्वका और उत्तमाङ्गमें (सिरमें) मन्त्राध्वका शोधन करते हैं।

हमने षडध्वशोधनका क्रममात्र दर्शाया है। विशेष विधि शारदातिलक आदि मन्त्र-शास्त्रोंके ग्रन्थोंमें अवलोकनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार मन्त्रशास्त्रके अनुसार षडध्वशोधन तथा स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण-शरीरोंके शोधनके अनन्तर शाक्ती, शैवी, वैष्णवी और सौरी आदि दीक्षाओंमेंसे किसी भी स्वाभिलषित दीक्षासे दीक्षित होनेपर अपनी उपासनामें प्रवृत्त होनेवाला उपासक मनुष्य अपने इष्टदेवतापर दृढ़ भक्ति रखनेसे तथा योग्यतानुसार देवतामें और अपनेमें अभेदचिन्तन कर मुक्तिपथका पथिक बनता है। अतएव शक्तिके विषयमें लिखा है कि 'जो ललिता भगवतीके मन्त्रका साधक है, वह देहान्तमें इन्द्रनीलमणि-कक्ष्यामें वास करता है। वहाँपर नदियोंके तटपर मन्त्र-जप करता हुआ भगवतीका गुणानुवाद करता रहता है। कर्मक्षय होनेपर पुनः भूलोकमें मनुष्य-शरीर धारणकर पूर्ववासनानुसार फिर भगवतीकी पूजा करता है और पुनः श्रीनगरमें इन्द्रनीलकक्ष्यामें वास करता है। जो ज्ञानी पुरुष निर्द्वन्द्व जितेन्द्रिय होते हैं, वे चिन्मय होकर महेश्वरीमें प्रविष्ट हो जाते हैं।' तथा हि—

ये भूलोकगता मर्त्या ललितामन्त्रसाधकाः।
ते देहान्ते शक्रनीलकक्ष्यां प्राप्य वसन्ति हि॥
तत्र दिव्यानि वस्तूनि भुञ्जाना वनितासखाः।
सरस्तटेषु सिन्धूनां कूलेषु कलशोद्भव॥
सदा जपन्तः श्रीदेवीं वदन्तश्चापि तद्गुणान्।
कर्मक्षये पुनर्यान्ति भूलोके मानुषीं तनुम्॥
पूर्ववासनया युक्ताः पुनरर्चन्ति चक्रिणीम्।
पुनर्यान्ति श्रीनगरे शक्रनीलमहास्थलीम्॥
ये पुनर्ज्ञानिनो मर्त्या निर्द्वन्द्वा नियतेन्द्रियाः।
ते मुने चिन्मया भूत्वा प्रविशन्ति महेश्वरीम्॥
(श्रीललितोपाख्यानम् अध्याय २९)

इस प्रकार विष्णुभक्त विष्णुलोकमें जाता है, जहाँपर भगवान् विष्णु अपने चार, दस और द्वादश रूपोंमें विराजमान होते हैं। तथा हि—

तत्र वैष्णवलोके तु विष्णुः साक्षात् सनातनः।
चतुर्धा दशधा चैव तथा द्वादशधा पुनः॥
विभिन्नमूर्तिः सततं वर्तते माधवः सदा।

इसी प्रकार शैवलोग शिवलोकमें जाते हैं और वहाँपर आनन्द करते हैं—

शिवलोकस्तत्र महान् जागर्ति स्फुरितद्युतिः।
शैवागमा मूर्तिमन्तस्तत्राष्टाविंशतिः स्मृताः॥
नन्दीभृङ्गिमहाकालप्रमुखास्तत्र चोत्तमाः।

अर्थात् 'शिवलोकमें २८ शैवागम मूर्तिमान् विद्यमान हैं और नन्दी, भृङ्गी, महाकाल आदि प्रमुख शिवजीके गण सर्वदा उपस्थित रहते हैं।'

जो लोग उपासनासे विमुख रहते हैं, दुराचारी हैं, गुरुसे शापित हैं, कपटसे भक्ति करनेवाले हैं, मूर्ख हैं, अत्यन्त घमण्डी हैं, मन्त्रोंकी चोरी करनेवाले, नास्तिक और पापी हैं तथा प्राणियोंके हिंसक और स्त्रियोंसे द्वेष करनेवाले हैं, उनको दण्डधर यमराज कालसूत्र, रौरव और कुम्भीपाक आदि नरकोंमें यातना प्रदान करते हैं।

उपर्युक्त सब लोक 'परलोक' (स्वर्ग और नरक) कहलाते हैं। यहाँ स्वकर्मानुसार सुख-दुःख भोगकर पुनः संसारमें पुनर्जन्म लेना पड़ता है और पूर्ववासनाके अनुसार कर्म करने पड़ते हैं। गीता ७। १४में श्रीभगवान्‌ने कहा है—**'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।'**

प्रभु-पदमें स्थान प्राप्त हो

दुर्लभ मानव-तन मिला, साधन-धाम महान्।
मत खो भोगोंमें इसे, भज ले श्रीभगवान्॥
मोह-निशा-तम मिटे सब, समुदित हो रवि-ज्ञान।
पुनर्जन्मसे मुक्ति हो, प्रभु-पदमें हो स्थान॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोक एवं पुनर्जन्मविषयक विचारधारा

(लेखक—पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा, शास्त्री, सारस्वत, विद्यावागीश, विद्यावाचस्पति)

(क) पुनर्जन्मवादमें विप्रतिपत्तियाँ

'पुनर्जन्म' विषय वस्तुतः विचारणीय है और महत्त्वपूर्ण भी है। इस संसारमें हिंदू, ईसाई, मुसल्मान, पारसी, यहूदी आदि बहुत-सी जातियाँ हैं। इनमें हिंदुओंको छोड़कर शेष जातियाँ अब पुनर्जन्मसिद्धान्तको नहीं मानतीं; पहले कभी ये जातियाँ भी पुनर्जन्मको मानती थीं। हिंदुओंमें भी चार्वाक आदि कई मत पुनर्जन्मके सिद्धान्तको नहीं मानते, यह 'सर्वदर्शनसंग्रहमें' स्पष्ट है। उस विषयमें आर्यसमाजके प्रवर्तक स्वा० दयानन्दजीने उस मतका संग्रह करते हुए चार्वाकका यह वचन (स० प्र० १२ समु० के आरम्भमें) उद्धृत किया है—

न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः॥

(चार्वाकदर्शन २२)

यहाँपर परलोक जानेवाला आत्मा चार्वाकके मतमें नहीं है—यह कहा गया है। इसलिये नास्तिक लोग अनुमान भी उपस्थित करते हैं—**'तच्चैतन्यविशिष्टदेह एव आत्मा, देहातिरिक्ते आत्मनि प्रमाणाभावात्।'**—'यह चेतन देह ही आत्मा है, इससे भिन्न आत्मा नहीं है।' इसलिये चार्वाक लोगोंकी यह उक्ति सुप्रसिद्ध है—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

(चार्वाकदर्शन २३)

'जबतक जीना है सुखपूर्वक जीते रहिये। ऋण करके घी पीते रहिये। देहके भस्म हो जानेपर पुनर्जन्म नहीं होता; अतः ऋण चुकाना नहीं पड़ेगा।'

कई लोग माता-पिताको जन्मका कारण मानते हैं। उनके शुक्र-शोणितके योगसे संतान स्वयं ही हो जाती है; कोई भिन्न आत्मा नहीं है। तब पूर्वजन्म और पुनर्जन्मका प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे लोग स्वभावको ही जन्मका कारण मानते हैं। पृथिवी आदिका यह स्वभाव ही है। वे संयोगविशेषसे मिलकर चेतन कार्यविशेषको आरम्भ करते हैं। जैसे—'भैंसका दही, गधेका पेशाब और गोबर—इन अचेतनोंको मिलाकर और ढँककर रख दिया जाय; तो उनसे चेतन जीव-बिच्छू पैदा हो जाते हैं—यह लोक-सिद्ध है। इस प्रकार दम्पतिके शुक्र-शोणितद्वारा जब पाँच-भूतोंका योग हुआ तब स्वयं ही उसमें चेतनता आ जाती है। उसमें पुनर्जन्मका कोई अवकाश नहीं'—यह स्वभाव-वादियोंका मत है।

कई लोग पर-निर्माणको जन्मका कारण मानते हैं। अर्थात् माता-पितासे भिन्न स्वभावका आधारभूत कोई परम ऐश्वर्यसे मिला हुआ पर (परमात्मा) ही निर्माण करता है। उसीके प्रभावसे प्राणी चैतन्यको प्राप्त होते हैं; अतः पुनर्जन्म कारण नहीं है।

अन्य लोग 'यदृच्छा'को जन्मका कारण मानते हैं। अर्थात् उत्पत्ति अचानक हो जाती है, उसमें कोई कारण नहीं है। यदृच्छा माननेवाले प्राणियोंकी उत्पत्तिको आकस्मिक (By Chance) घटना मानते हैं। इसमें कारणका विचार नहीं करना चाहिये। यह उनका मत है। इस मतमें भी पुनर्जन्मके स्वीकारका अवकाश नहीं।

इधर आस्तिकमतकी श्रुतियाँ पुनर्जन्मको मानती हैं, इसलिये पुनर्भव (पुनर्जन्म) का विषय विचारणीय है।

(ख) 'पुनर्जन्म' शब्दकी सिद्धि तथा उसके विभिन्न नाम

'जननमिति जन्म' पैदा होनेका नाम जन्म है। **'जनी प्रादुर्भावे दिवादि आत्मने सेट,** धातुसे **'सर्वधातुभ्यो मनिन्'** (४। १४४) इस उणादि **मनिन्** प्रत्यय होनेपर 'जन्म' शब्द बनता है। इसीके पर्यायवाचक **'जनुः जननं, जनिः उत्पत्तिः, उद्भवः'** (अमरकोष १। ४। ३०) ये प्रसिद्ध हैं। **पुनः**—जन्म=पुनर्जन्म। 'सह सुपा' (२। १। ४)से समास है।

इसके अन्य नाम—पुनर्जन्म, गतजन्म, पुनर्भव, परलोक, प्रेत्यभाव इत्यादि हैं। इनमें 'पुनर्जन्म'का प्रयोग सब उपनिषदोंकी सारभूत 'भगवद्गीता' में मिलता है—

'मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।' (८। १६)

(ख) **'गतजन्म'**का प्रयोग भी गीतामें है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।
कथमेतद् विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥
(४।४)

अर्जुनने पूछा—'गत जन्ममें आपने यह अव्यय योग विवस्वान्‌को कहा था, यह मैं कैसे जाँ ?' इसपर भगवान्‌ने कहा—**'बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन !'** (४।५) **'जन्म कर्म च मे दिव्यम्'** (४।९) 'तेरे और मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं।' 'मेरा जन्म दिव्य हुआ करता है।'

उपनिषदोंमें भी पुनर्जन्म बताया गया है—**'स इतः प्रयन्नेव** (मरकर) **पुनर्जायते।'** (फिर जन्म लेता है) (ऐतरेय ४।४)। **'जन्म-जन्म पुनः-पुनः'** (गर्भोपनिषद् ४)। **'पुनरावृत्तिरहितां मुक्तिम्।'** (मुक्तिकोपनिषद् १।२०) यहाँपर मुक्तिसे अन्यत्र पुनर्जन्म माना गया है।

(ग) अब पुनर्जन्मका अन्य नाम 'पुनर्भव' भी देखिये। जैसे कि श्रीमद्भागवतपुराणमें प्रार्थना है—**'क्षणार्धेनापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्भवम्'** (४।२४।५७) यहाँ 'अपुनर्भव' मुक्तिका नाम है।

(ग) पुराणोंका वेदोंके समकाल होना

पुराणोंका प्रमाण हमने जो दिया है, उसका कारण यह है कि पुराण भी वेदके समकालीन हैं। पुराणका यह उद्घोष है—

प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥
(शिवपु०, वायुसं०, पूर्वभाग १।३१।३२, मत्स्यपुराण ५३।३)

'पहले ब्रह्माजीने पुराणोंका स्मरण किया, उसके बाद ब्रह्माजीके मुखसे वेद प्रकट हुए।' इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिये। इसका यह आशय है कि वेद और पुराण—दोनों ही 'अनादि' हैं; अतः दोनों समकालीन हैं। पुराण 'अर्थ' हैं और वेद 'मूल' हैं। वेद 'बीज' हैं और पुराण 'वृक्ष' हैं। दोनों साथ ही रहते हैं। इस विषयमें 'श्रीसनातनधर्मालोक' ग्रन्थमालाका सप्तम पुष्प * देखना चाहिये। सांसारिक साहित्यकी कोई भी ऐसी पुस्तक नहीं है, जिसमें पुराणका स्मरण न किया गया हो।

पातञ्जल महाभाष्यमें शब्दके विषयमें महाभाष्यकारने कहा है—**'लोके अर्थमर्थमुपादाय शब्दान् प्रयुञ्जते। नैषां निवृतौ यत्नं कुर्वन्ति।'** (पस्पशाह्निकमें **'लोकतः'** इस वार्तिकमें)। इसका यह अभिप्राय है—किसी पुरुषको घड़ेकी आवश्यकता हो, तब वह कुम्हारके पास जाकर कहता है—'मुझे घड़ा बना दो, मैं उसके शीतल जलको पीया करूँगा।' परंतु शब्दको कहना चाहता हुआ पुरुष वैयाकरणके पास जाकर नहीं कहता कि 'मुझे शब्दोंको गढ़ दो; उनका मैं प्रयोग करूँगा।' किंतु अर्थका पहले स्मरण करके ही उसके बाद उसके मूलरूप शब्दका प्रयोग करने लग जाता है। यही बात वहाँ महाभाष्यमें कही गयी है—**'न तद्वत् शब्दान् प्रयुयुक्षमाणो वैयाकरणकुलं गत्वा आह—कुरु शब्दान् प्रयोक्ष्ये। तावत्येवार्थमुपादाय शब्दान् प्रयुञ्जते।'**

तब पुराण हैं—वेदके अर्थ और वेद उन विस्तीर्ण अर्थके संक्षिप्त मूल शब्द हैं। शब्दोंके प्रयोगका इच्छुक जन पहले अपने इष्ट अर्थका स्मरण करके फिर उनके शब्दोंका प्रयोग करता है। पुराणके उक्त वचनमें भी **'पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम्।'** पहले अर्थरूप पुराणका स्मरण करना ही कहा है। **'अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।'** पीछे शब्दरूप वेदका उनके मुखसे प्रकट होना कहा है। यह बात स्वाभाविक भी है। तब अर्थरूप पुराणका पहले स्मरण; उसके बाद उसके शब्दरूप वेदका प्राकट्य—यह ठीक ही है। **'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे'**—इस व्याकरण-वार्तिकसे शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्धके नित्य होनेसे अर्थरूप पुराण और शब्दरूप वेद नित्य ही हैं—**'वागर्थाविव सम्पृक्तौ'** (रघुवंश १।१)।

तभी पुराणमें वेदका और वेदमें पुराणका नाम भी सुनायी पड़ता है—

'तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्च अनुव्यचलन्।'
'इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति। य एवं वेद।' (अथर्ववेद १५।६।११-१२)।

तब पुराण भी सृष्टिके आदिकालमें ही ब्रह्माजीद्वारा स्मरण किये गये, यह सिद्ध हो गया। तभी तो वेदमें कहा गया है—

'ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे।' (अथर्व० ११।९७।२४)।

यहाँपर ऋग्वेदादिकी भाँति पुराणोंकी भी उच्छिष्ट (सर्वान्तमें

* सप्तम पुष्प फर्स्ट वी० १९ लाजपतनगर, नयी दिल्ली १४से मँगाया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवशिष्ट) ब्रह्माजीके पास स्थित रहना बताया गया है। उक्त मन्त्रमें 'पुराणं' यह जातिमें एकवचन है। उससे सब पुराण लिये जाते हैं।

पूर्वोक्त अथर्ववेदके वचनके अनुवादरूप ब्राह्मणभागात्मक वेदमें भी कहा है—'अरे अस्य महतो भूतस्य [उच्छिष्टस्य] निःश्वसितमेतद् यद्—ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः, इतिहासः, पुराणं ··· अस्त्येव एतानि।' (शतपथब्रा० १४। ५। ४। १०; बृहदारण्यक उप० २। ४। १०)

यहाँपर पुराणको भी परमात्माका निःश्वासरूप कहा है। यदि ऐसा है, तब ब्रह्माजीने पुराणका पहले स्मरण किया हो; फिर उसके बाद वेद उनके मुखसे प्रकट हुए हों, यह बात युक्तियुक्त भी सिद्ध हो गयी। इसलिये त्रेतायुगके वाल्मीकि-रामायणमें भी पुराणका नाम सुनायी पड़ता है—'श्रूयतां तत् पुरावृत्तं पुराणेषु च मया श्रुतम्।' (वाल्मीकि० १। ९। १)।

इससे यह भी प्रतीत होता है कि श्रीवाल्मीकिमुनिने पुराणोंसे दुहकर ही अपनी ललित कवितामें रामायणकी रचना की। उसका प्रमाण यह है कि वाल्मीकिरामायणमें राजा दशरथसे पहला और लवकुशके बादका वृत्तान्त नहीं है; पर कालिदासके रघुवंशमें है और वह उसने पुराणोंसे लिया है—यह स्पष्ट है। जब त्रेतायुगके रामायणका मूल भी पुराण है, तब पुराण भी सृष्टिके आदिकालके सिद्ध हो गये।

द्वापरयुगके अन्तमें बने हुए महाभारतमें तो पुराणका वर्णन स्पष्ट है—

'पुराणे हि कथा दिव्या आदिवंशाश्च धीमताम्।'
(आदिपर्व ५। २)

इस प्रकार उपवेद—आयुर्वेदकी चरकसंहिता (सूत्रस्थान १५। ६) में भी पुराणका नाम स्पष्ट है। इस प्रकार आपस्तम्ब-धर्मसूत्र (२। २४। ६), आश्वलायनगृह्यसूत्र (३। ३। १), शुक्रनीति (२। १७७), कौटिलीय अर्थशास्त्र (१। ५ वृद्धसंयोग), इसी प्रकार अन्यत्र भी बहुत ग्रन्थोंमें पुराणोंका वर्णन है।

कई लोग पुराणोंका श्रीवेदव्यासके द्वारा द्वापरयुगके अन्तमें निर्माण मानते हैं। वास्तवमें श्रीव्यास पुराणोंके कर्ता नहीं हैं; किंतु वक्ता और सम्पादक हैं। प्रत्येक द्वापरमें भिन्न-भिन्न व्यास पुराणका परिष्करण तथा सम्पादन करते हैं; यह पुराणमें ही स्पष्ट है। अबके द्वापरमें 'श्रीकृष्ण-द्वैपायन' व्यास थे और अग्रिम द्वापरमें 'अश्वत्थामा' नामक व्यास पुराणोंके सम्पादक होंगे, कर्ता नहीं। यह देवीभागवत-पुराण (१। ३। १८-३३) में स्पष्ट है। पुराणोंका महत्त्व पुराणमें ही दीखता है—

श्रुतिस्मृती उभे नेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतम्।
एतत्त्रयोक्तमेवास्माद् धर्मो नान्यत्र कुत्रचित्॥
(देवीभागवत ११। १। २१)

यहाँ श्रुति-स्मृतिको नेत्र और पुराणको हृदय बताया गया है। अब क्रमागत पुनर्जन्मके नामोंके विषयमें देखना चाहिये। 'प्रश्नोपनिषद्'में भी 'पुनर्भव'का नाम है—

'तस्माद् उपशान्ततेजाः पुनर्भवम्।' (३। ९)

कालाग्निरुद्रोपनिषद्में भी है—

'तत्समाचरेन्मुमुक्षुर्न पुनर्भवाय।' (४)

चरकसंहितामें भी 'पुनर्भव' शब्दका प्रयोग मिलता है—

'अथ तृतीयां परलोकैषणामापद्येत संशयश्चात्र।
कथं भविष्याम इतश्च्युता न वा॥'
(सूत्रस्थान ११। ५)

'कुतः पुनः संशय इत्युच्यते। सन्ति हि एके प्रत्यक्षपराः, परोक्षत्वात् पुनर्भवस्य नास्तिक्यमाश्रिताः॥'

यहाँ संहिताकारने पुनर्भव (पुनर्जन्म) को परोक्ष बताया है। प्रत्यक्ष माननेवाले पुनर्भवको नहीं मानना चाहते; अतः वहाँ संशय दिखलाया गया है। आगे संहिताकार कहते हैं—

'सन्ति च आगमप्रत्ययादेव पुनर्भवमिच्छन्ति।'

यहाँ संहिताकारने पुनर्भवकी सिद्धि आगमद्वारा भी सूचित की है और कहा है—

'इत्यतः संशयः, किं नु खलु अस्ति पुनर्भवो न वा इति।'
(११। ६)

(घ) परलोक

पुनर्जन्मका अन्य नाम 'परलोक' भी है। इससे भी पुनर्जन्मके विषयमें प्रकाश पड़ता है। 'परलोक' शब्द उपनिषद्में भी दीखता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे।'
(कठ० १।२।६)

यद्यपि 'परलोक' इससे भिन्न स्वर्ग आदि लोकोंका नाम है, तथापि 'परलोक' शब्द भी पुनर्जन्मको सिद्ध करता है; क्योंकि मरकर पुनर्जन्म केवल मनुष्यलोकमें हो—ऐसा नहीं है; किंतु स्वर्ग आदि अन्य लोकोंमें भी हुआ करता है—यह इससे सूचित होता है।

इसके अतिरिक्त पुनर्जन्म केवल मनुष्ययोनिमें ही नहीं होता, किंतु पशुयोनिमें भी होता है, पक्षियोनिमें भी होता है, कीट-पतङ्गादि योनियोंमें भी होता है, देव-गन्धर्वादि योनियोंमें भी होता है। उसमें भी पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग मनुष्यलोकमें होते हैं; और स्थूलशरीर होते हैं। देव-गन्धर्व आदि स्वर्गादि लोकोंमें होते हैं। वे वहाँ सूक्ष्मकाय भी होते हैं और कामरूप भी होते हैं। गरुड़ आदि पक्षी, नन्दी बैल, सिंह आदि भी वहाँ होते हैं; पर दिव्य।

आकाशमें जो तारामण्डल दीख रहा है, यही 'द्युलोक' या 'परलोक' है। परलोकको न माननेवालेको उपनिषद्ने 'नास्तिक' कहा है। 'पुनः पुनर्वशमापद्यते मे।' (कठ० १।२।६) इस रूपसे उसकी निन्दा की है। इस निन्दा-वाक्यसे भी उपनिषद्ने पुनर्जन्मको प्रमाणीकृत किया है; क्योंकि कठोपनिषद्के वक्ताको 'मृत्यु' (१।१।४), 'यम' (१।१।५), 'वैवस्वत' (सूर्यका लड़का) (१।१।७), 'अन्तक' (१।१।२६) कहा गया है। ये नाम कोष (अमर० १।१।५८-५९) के अनुसार मृत्यु-देवताके हैं। अमरकोषमें यद्यपि मृत्यु (२।८।११६) मरनेका नाम है, तथापि यमराजके मृत्युके अधिष्ठाता होनेसे 'मृत्यु' नाम भी उसका है। इसलिये मेदिनीकोषमें 'मृत्युर्नो मरणे यमे।' (अमरकोषकी सुधा-व्याख्यामें २।८।११६) 'मृत्यु' भी यमका नाम कहा गया है।

(ङ) प्रसङ्गसे प्राप्त आस्तिक और नास्तिक

हमारे प्राच्यसाहित्यमें आस्तिक और नास्तिक—ये दो मत प्रसिद्ध हैं। इससे भी पुनर्जन्म सिद्ध होता है। श्रीपाणिनिने 'अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः।' (अष्टा० ४।४।६०) इस सूत्रमें आस्तिक और नास्तिक शब्दकी सिद्धि की है।

(अ) इसमें—

'अस्ति परलोक इत्येवं मतिर्यस्य स आस्तिकः।
नास्तीति मतिर्यस्य स नास्तिकः॥'

श्रीभट्टोजिदीक्षितने तद्धितप्रकरणमें उक्त सूत्रमें यह विग्रह किया है।

(आ) काशिकाकार श्रीवामन और जयादित्यने उक्त सूत्रकी वृत्तिमें लिखा है—

'अस्ति मतिरस्य आस्तिकः, नास्ति मतिरस्य नास्तिकः।'

यह विग्रह करके आगे कहा है—

'न च मतिसत्तामात्रे प्रत्यय इष्यते, किं तर्हि? परलोकोऽस्य अस्तीति यस्य मतिरस्ति स आस्तिकः, तद्विपरीतो नास्तिकः।'

इसमें 'परलोक' मानने-न-माननेवालेको 'आस्तिक-नास्तिक' शब्दसे कहा है; तब 'आस्तिक' शब्दसे भी 'पुनर्जन्म' पर प्रकाश पड़ता है।

(इ) आर्यसमाजके प्रवर्तक श्रीस्वामी दयानन्दजीने भी अपने 'त्रैणतद्धित' में उक्त सूत्रकी व्याख्याकी टिप्पणीमें कहा है—"यहाँ वाक्यार्थमें 'इति' शब्द [इस] उत्तर पदका लोप समझना चाहिये; क्योंकि ईश्वर, जीव, पुनर्जन्म और शुभाशुभ कर्मोंका फल आदि है—ऐसी बुद्धि जिस पुरुषकी हो, वह आस्तिक और इसके विरुद्ध नास्तिक समझा जावे।" यहाँपर स्वामीजीने पुनर्जन्मको परलोकमें अन्तर्भावित कर दिया है।

(ई) पातञ्जल-महाभाष्यमें उक्त सूत्रके 'प्रदीप'में श्रीकैयटने भी लिखा है—

'अस्तीत्यस्य इति परलोककर्तृका च सत्ता विज्ञेया, तत्रैव विषये लोके प्रयोगदर्शनात्। तेन परलोकोऽस्तीति मतिर्यस्य स आस्तिकः, तद्विपरीतो नास्तिकः।'

(३) 'नास्तिको वेदनिन्दकः' (२।११) इस मनुवचनमें 'वेद' शब्द श्रुति और स्मृतिका उपलक्षक है; क्योंकि उक्त वचनके प्रथम पाद 'योऽवमन्येत ते मूले' में यही कहा है। 'ते मूले' से इससे पूर्वके—

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ॥
(मनु० २।१०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मनुवचनमें आये हुए श्रुति-स्मृतिका संकेत है। इससे श्रुति एवं स्मृतिका शुष्क तर्कके बलसे तिरस्कार करनेवालेको भी 'नास्तिक' कहा गया है। उसमें कारण यह है कि श्रुति एवं स्मृतिमें भी परलोकका स्पष्ट वर्णन है। जैसे कि—

'आप्नोति इमं लोकम्, आप्नोति अमुम्' (अथर्व० शौसं० ९। ११। १३) यहाँपर 'इमं लोकं' इस 'इदम्' शब्दसे हमारा यह लोक सूचित होता है; और 'अमुं' इस 'अदस्' शब्दसे आमुत्रिक लोक (परलोक) सूचित होता है; क्योंकि—

इदमस्तु संनिकृष्टे समीपतरवर्ति चैतयो रूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्टे तदिति परोक्षे विजानीयात्॥

—इस प्रसिद्ध शास्त्रीय उक्तिसे 'इदम्' शब्दका निकटतामें तथा 'अदस्' शब्दका इस लोकसे बहुत दूरी बताकर इस लोक और 'परलोक'का परस्पर भेद बता दिया गया है।

(अ) **'इमं च लोकं परमं च लोकम्।'**
(अथर्व० १९। ५४। ५)

यहाँपर 'परमलोक' का 'परलोक' अर्थ है, जैसे कि—

'यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आददे।'
(अथर्व० १३। ३। ५)

यहाँपर 'परम' शब्द 'पर' वाचक है।

(ऋ) जैसे श्रुतिमें परलोकका वर्णन है, वैसे स्मृतिमें भी है। जैसे कि—

(अ) **'परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन्।'**
(मनु० ४। २३८)

(आ) **'नामुत्र हि सहायाथ पिता माता च तिष्ठतः।'**
(मनु० ४। २३९)

(इ) **'परलोकं नयत्याशु'** (मनु० ४। २४३)

इस प्रकार 'परलोक' शब्दको अन्य शास्त्रोंसे भी दिखलाया जा सकता है। जब परलोकको न माननेवालेको 'नास्तिक' कहा जाता है, तब इससे 'पुनर्जन्म'की सिद्धि स्पष्ट है।

अब पुनर्जन्मके पर्यायवाचक 'प्रेत्यभाव' शब्दको भी देखिये।

(च) प्रेत्यभावः

'प्रेत्यभवनं प्रेत्यभावः।' यह उक्त शब्दकी व्युत्पत्ति है।

(अ) 'प्रेत' शब्दकी सिद्धि और अर्थ।

'प्र'उपसर्गपूर्वक 'इण्' धातु (अदादि० परस्मैपदी० अनिट्) से 'क्त' प्रत्ययमें 'प्रेत' शब्द बनता है। 'प्रकर्षेण इतः' (अच्छी तरहसे गया हुआ) यह 'प्रेत' शब्दका निर्वचन है। इसीका दूसरा नाम 'परेत' भी है। इसमें 'परा' उपसर्ग है। इसकी व्युत्पत्ति है—(परा-दूरम् इतः) अथवा 'पर लोकम् इतः'—अच्छी तरहसे गये हुएका नाम 'प्रेत' बनता है। वह इससे भिन्न होकर अन्य लोकमें जाकर फिर उत्पन्न होता है—यही उसका 'प्रकर्षसे गमन' होता है।

अमरकोषमें **'परासु-प्राप्तपञ्चत्व-परेत-प्रेत-संस्थिताः। मृत-प्रमीतौ त्रिष्वेते'** (२। ८। ११७) ये नाम 'मृतक'के हैं। इसमें तीसरा नाम 'परेत' है और चतुर्थ नाम 'प्रेत' है।

'प्रकर्षेण इतः' इस व्युत्पत्तिसे यह मृतकका नाम कैसे हुआ? यह जिज्ञासा होती है; परंतु थोड़े विचारसे यहाँ ज्ञात हो जाता है। एक होती है—यात्रा। दूसरी होती है महायात्रा। लोकमें 'महायात्रा'—मृत्युका नाम प्रसिद्ध है। 'अमुक पुरुषकी महायात्रा हो गयी है'—यह वाक्य किसीकी मृत्युपर कहा जाता है। इस प्रकार **'प्रकर्षेण इतः-गतः'** का भी महायात्राको प्राप्त हो गया—यह अर्थ फलित होता है। तब 'प्रेत' यह मृतकका नाम ठीक ही है।

(आ) 'प्रेत' शब्दका शास्त्रोंमें प्रयोग।

'प्रेत' शब्दका प्रयोग उपनिषदोंमें भी दीखता है। जैसे कि—

१ ईशोपनिषद्में।

'तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।' (३)

यहाँ आत्महत्या करनेवालोंका मरकर आसुर लोकोंमें जाना कहा है। यहाँ 'प्रेत्य' शब्द मरणवाचक स्पष्ट है।

२ कठोपनिषद्में—

'येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये।' (१। १। २०)

३ उपनिषदोंके मूल वेदमें—

'इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उ पत्वा मर्त्यं प्रेतम्।' (अथर्ववेद १८। ३। १)

यहाँ मृतकको कहा जा रहा है कि—'हे मर्त्य—(मरणधर्मा मनुष्य!) इयं नारी—(यह तुम्हारी स्त्री) पतिलोकं वृणाना—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पारलौकिक पतिलोकको चाहती हुई) प्रेतं त्वा—(मरे हुए तुम्हारे पास) उपनिपद्यते—(सतीधर्मके लिये लेटी है)।' इसमें 'प्रेत' मृतकका नाम है।

४ प्रेत एक योनिविशेष।

'प्रेत' एक योनिविशेष भी है। जैसे कि—

'प्रेतः प्राण्यन्तरे मृते।' (अमरकोष ३। ३। ५९)

'भूत-प्रेत' शब्द उक्त योनिविशेषमें भी प्रसिद्ध है। 'मेदिनी'कोषमें भी कहा है—

'प्रेतो भूतान्तरे पुंसि मृते स्याद् वाच्यलिङ्गकः।'

(उक्त अमरकोषकी सुधाव्याख्यामें)

इस प्रकार शौनककृत 'ऋग्विधान'में भी कहा है—

'भूतप्रेतादिचौरादिव्याघ्रादीनां च नाशनम्।'

(८। ७। १४)

'बालग्रहा न पीडयन्ते भूतप्रेतादयस्तथा।'

(ग्रा० वि० ६। २। ९)

यहाँपर विशेष मन्त्रके जपसे भूत-प्रेतोंकी पीड़ा हट जाना कहा है। वैशेषिकदर्शनके प्रशस्तपादभाष्यमें भी कहा है—'प्रेतं तिर्यग्योनिस्थानेषु' (संसारापवर्गप्रकरण) यहाँपर प्रेतयोनि भी स्वीकृत की गयी है कि अधमयोनिमें 'प्रेत' होता है। 'बोधायनगृह्यशेषसूत्रमें भी 'प्रेतयोनि' दिखलायी गयी है। जैसे कि—

'भूतप्रेतपिशाचाद्याः सर्वे ते भूमिभारकाः।' (५। ४। २)

इस प्रकार प्रेतयोनि भी अपमृत्युसे शास्त्रोंमें कही गयी है। उसमें भी मरकर पुनर्जन्म-सम्बन्ध फलित हुआ।

५ 'प्रेत्यभाव' का प्रयोग और उसका अर्थ

प्रेत्य—मृत्वा, भावः—पुनर्जन्म इति 'प्रेत्यभावः'। मरकर फिर जन्म। इसका स्वरूप दर्शनोंमें दीखता है। इससे भी पुनर्जन्मपर प्रकाश पड़ता है। 'न्यायदर्शन'में कहा है—

'आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्यभावफल-दुःखापवर्गास्तु प्रमेयम्।' (१। १। ९)

यहाँ प्रमेयमें 'प्रेत्यभाव'की संख्या नवम है। अब इसका न्यायदर्शनमें स्वरूप देखिये—

'पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः।' (१। १। १९)

इस सूत्रकी व्याख्या करते हुए श्रीवात्स्यायनमुनिने कहा है—'उत्पन्नस्य (पैदा हुए प्राणीका) कचित् सत्त्वनिकाये (किसी शरीरेन्द्रियसमुदायमें) मृत्वा (मरकर) या पुनः उत्पत्तिः (जो फिर देहादिसे सम्बन्ध है) स प्रेत्यभावः (इसका नाम प्रेत्यभाव है)। यत् कचित् प्राणभृन्निकाये (किसी प्राणीके शरीरमें) वर्तमानः पूर्वोपात्तान् (होकर पूर्व प्राप्त हुए) देहादीन् जहाति (शरीर-इन्द्रिय आदिको छोड़ देता है) तत् प्रैति (वह मर जाता है)। यत् तत्र अन्यत्र वा देहादीन् अन्यान् उपादत्ते (जब वह अन्य देह आदिको लेता है), तद् भवति (वह उसका पुनर्जन्म होता है)'—यह कहकर भाष्यकार फिर प्रेत्यभावको स्पष्ट करते हैं—'प्रेत्यभावः—मृत्वा पुनर्जन्म' (मरकर फिर जन्म होना—यह प्रेत्यभाव होता है)।

तर्कशास्त्रके इस वचनसे प्रमाणित होता है कि पुनर्जन्मवाद केवल आप्त वचनसे प्रमाणित नहीं है, किंतु तर्कसे भी अनुगृहीत है। पहले ईशोपनिषद् (३)के वचनसे भी हम 'प्रेत्यभाव'को स्पष्ट कर ही चुके हैं।

(छ) परलोकसे पुनर्जन्मकी सिद्धि

पहले हम बता चुके हैं कि पुनर्जन्मका दूसरा नाम 'परलोक' है; इस 'परलोक' शब्दसे भी 'पुनर्जन्म'की सिद्धि होती है। उसमें कारण यह है कि यदि पुरुष यहीं होकर यहीं मर जाता, तब तो पुनर्जन्मका कोई प्रसङ्ग ही नहीं था; पर जब कि मृतकका शास्त्रोंमें परलोकमें जाना कहा है; तब इससे सिद्ध हुआ कि इस लोकमें स्थित होकर अब वह परलोकमें गया है, यह भी 'पुनर्जन्म' है।

पुनर्जन्म केवल कर्मयोनि मनुष्योंमें नहीं होता; बल्कि भोगयोनि—पशु-पक्षी आदिमें भी जन्म होता है; वह भी यही लोक है। वे योनियाँ ८४ लाख सुनी जाती हैं। मरकर परलोकमें गये हुए जीवका देवता आदि भोगयोनियोंमें भी जन्म होता है। उनकी संख्या ३३ करोड़ कही जाती है।

इस लोकसे परलोकका यही अन्तर है कि इस लोकमें तो जीवको पार्थिव पाञ्चभौतिक देह मिलता है और उसमें मुख्यता पृथिवी-भूतकी हुआ करती है और जल, तेज, वायु, आकाश आदिकी सहायता भी होती है। जैसे घड़ा पार्थिव होता है, इसलिये वहाँ मिट्टी मुख्य होती है; परंतु उसमें जल, तेज, वायु, आकाश आदिकी सहायताके बिना वह घड़ा नहीं बनाया जा सकता, वैसे ही पार्थिव शरीरमें पृथिवी मुख्य होनेपर भी उसमें जल आदि भूतोंकी सहायता भी अपेक्षित होती ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस लोकके पृथिवीलोक होनेसे यहाँका देह भी पार्थिव हो, यह स्वाभाविक ही है; परंतु शास्त्रकी दृष्टिसे 'परलोक' इस लोकसे भिन्न ही माना जाता है। 'परलोक' शब्दसे स्वर्ग, नरक, पितृ, मुक्ति आदि लोक लिये जाते हैं। उनमें पृथिवी प्रधान नहीं होती; किंतु जल, तेज एवं वायुकी प्रधानता रहती है; इसलिये वहाँके देवताओं आदिके शरीर भी तैजस आदि हुआ करते हैं। अतएव न्यायदर्शन तथा वैशेषिकदर्शनके प्रशस्तपादभाष्य आदिमें भी वैसे शरीरोंका वर्णन मिलता है। जैसे कि—

'तत्र मानुषं शरीरं पार्थिवम्··· ··· आप्यतैजसवायव्यानि-लोकान्तरे (वरुण, सूर्य, वायुलोकेषु) शरीराणि। तेष्वपि भूतसंयोगः पुरुषार्थतन्त्रः। अर्थात् एक भूतसे बने शरीरसे भोग नहीं हो सकता; इसलिये उन शरीरोंमें भी शेष चार भूतोंका संयोग भोगके लिये ही हुआ करता है, जल आदिकी प्रधानतासे ही उन्हें 'जलीय तैजस' आदि कहा जाता है।' **'स्थाल्यादिद्रव्यनिष्पत्तावपि [भूतसंयोगो] निःसंशयः [अपेक्ष्यते] न अबादिसंयोगमन्तरेण निष्पत्तिः।**—घड़े आदि-के निर्माणमें भी जल आदिके संयोगके बिना केवल मिट्टीसे काम नहीं होता।' (न्यायदर्शन ३। १। २८)

यही बात प्रशस्तपादभाष्यमें भी कही गयी है—**'तत्र शरीरम् अयोनिजमेव वरुणलोके पार्थिवावयवोपष्टम्भाच्च उपभोगसमर्थम्।'** (वरुणलोकमें शरीर अयोनिज होता है; परंतु पार्थिव अवयवोंके आश्रयसे उपभोगमें समर्थ होता है।) (द्रव्यग्रन्थ जलनिरूपणमें)। **'शरीरम् अयोनिजमेव आदित्यलोके पार्थिवावयवोपष्टम्भाच्च उपभोगसमर्थम्।'** (तेजके निरूपणमें)। **'तत्र अयोनिजमेव शरीरं मरुतां लोके, पार्थिवावयवोपष्टम्भाच्च उपभोगसमर्थम्।'** (वायुनिरूपणमें)

यहाँपर जलीय, तैजस, वायव्य आदि शरीर भी लोकान्तर-निवासियोंके बताये गये हैं। यह भी 'पुनर्जन्म' ही है। इस प्रकारके शरीरधारी लोकमें 'देव' कहे जाते हैं। नरकलोक-वासियोंको भी नरकयातनाकी प्राप्तिके लिये मरनेके बाद अन्य शरीर भी मिलता है। जैसे कि मनुस्मृतिमें कहा है—

पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः प्रेत्य दुष्कृतिनां नृणाम्।
शरीरं यातनार्थीयमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम्॥
तेनानुभूय ता यामीः शरीरेणेह यातनाः।
तास्वेव भूतमात्रासु प्रलीयन्ते विभागशः॥
(१२। १६-१७)

'जिन पापियोंको नरकलोक जाना होता है, उनको प्रेत्य—मरनेके बाद पीड़ाके अनुभवार्थ जरायुज आदिसे भिन्न दुःख सहनेमें समर्थ पृथिवी आदि पाँच भूतोंसे ही अन्य शरीर परलोकमें मिलता है। वे नारकी जीव यमराजके पापभोगार्थ दी जानेवाली पीड़ाओंको प्राप्त करके उस सूक्ष्मरूप स्थूलशरीरके अवसानमें शुद्ध हो जाते हैं।' जैसे कि—

सोऽनुभूयासुखोदर्कान् दोषान् विषयसङ्गजान्।
व्यपेतकल्मषोऽभ्येति तावेवोभौ महौजसौ॥
तौ धर्मं पश्यतस्तस्य पापं चातन्द्रितौ सह।
याभ्यां प्राप्नोति सम्पृक्तः प्रेत्येह च सुखासुखम्॥
(१२। १८-१९)

'वह जीव यमलोकका दुःख आदि अनुभव करके भोगसे पापके क्षीण होनेपर महान् तथा परमात्माको प्राप्त होता है। वे उसके धर्म और भुक्तशेष पापका निरीक्षण करते हैं, जिससे वह इहलोक तथा परलोकमें सुख-दुःख पाता है।'

मनुस्मृति (१२। १४) में जिनको 'महान्' और 'परमात्मा' बताया है, उन्हींको गरुडपुराण आदिमें 'चित्रगुप्त' और 'यमराज' नामसे कहा गया है; उसमें 'महान्' चित्रगुप्त मन्त्री हैं और 'परमात्मा' यमराज राजा या न्यायाधीश हैं। धर्म अधिक होनेपर जीवको स्वर्गलोककी प्राप्ति कही है।

यद्यदाचरति धर्मं स प्रायशोऽधर्ममल्पशः।
तैरेव चावृतो भूतैः स्वर्गे सुखमुपाश्नुते॥
(मनु० १२। २०)

पुण्य अधिक होनेपर वह स्वर्गमें देवता बनकर भोग-योनि बनता है। पाप अधिक होनेपर नरकमें जाता है।

यदि तु प्रायशोऽधर्मं सेवते धर्ममल्पशः।
तैर्भूतैः स परित्यक्तो यात्री प्राप्नोति यातनाः॥
(१२। २१)

इस कर्ममीमांसासे जीवको गतिविशेषकी प्राप्तिसे पुनर्जन्म सिद्ध हो जाता है। जैसे कि—

जीवसंज्ञोऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम्।
येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु॥
(मनु० १२। १३)

यहाँपर जीवको जन्म-जन्ममें पुण्य-पापके कारण सुख-दुःखकी प्राप्ति कही गयी है। अत्यन्त पुण्यसे स्वर्ग, अत्यन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पापसे नरक होता है। इससे सिद्ध होता है कि पुण्य-पाप दोनोंकी समानता हो, तो जीव मनुष्यलोकमें जन्म लेता है। स्वर्ग-नरकमें तो शरीरकी पृथिवी-प्रधानता नहीं थी, पर पृथिवी-लोकमें पृथिवी-प्रधान होनेसे स्थूलशरीर होता है। पुण्य-पाप दोनोंके न रहनेसे जीवकी मुक्ति हो जाती है। उसमें 'संकल्पमय शरीर' माना जाता है। उसमें कर्मोंके अभावसे पुनर्जन्मकी समाप्ति हो जाती है। इस प्रकार परलोकसे भी पुनर्जन्मकी स्पष्ट सिद्धि हो जाती है। (शेष आगे)

पुनर्जन्म

(लेखक—आचार्य श्रीमुन्शीरामजी शर्मा)

अपाङ् प्राङ् एति स्वधया गृभीतो अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्तान्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्॥
(ऋ० १। १६४। ३८; अथर्व० ९। १०। १६)

अमर जीवात्मा मरणधर्मा शरीरके साथ संयुक्त होता है। इसका कारण है स्वधा—अपनेको धारण करनेकी भावना। स्वधासे गृहीत हुआ जीव 'सु' अच्छी, किंतु 'अधा' नीची प्रकृतिके प्रपञ्चमें पड़ता है। प्राकृतिक वैभव देखनेमें आकर्षक है, पर उसका उपभोग निर्बलताका भी जनक है। जीव इस वैभवके उपभोगमें रुचि लेने लगता है, इसीलिये वह शक्तिहीनताका आखेट बनता है। मनुने (१२। ३८) लिखा है कि "प्रकृतिके तमोगुणसे चिपटकर मानव 'कामी' बनता है, रजोगुणसे लिपटकर 'अर्थवान्' बनता है और सत्त्वगुणका आश्रय लेकर 'धार्मिक' बनता है।" काम और अर्थकी लोलुपता उसे नीचे गिराती है और पशु-पक्षी आदि-की योनियोंमें ले जाती है। काम और अर्थपर संयम उसे मानव-योनिमें ले आता है। धर्मका आचरण उसे पितर तथा देवयोनियोंकी ओर ले जाता है। 'काम और अर्थमें अनासक्त' व्यक्ति ही धर्मज्ञान प्राप्त करते हैं। धर्मकी जिज्ञासा वेदसे शान्त होती है। धर्मके जिज्ञासुओंके लिये श्रुतिसे बढ़कर अन्य कोई प्रमाण नहीं है। (२। १३) 'वेद ही परम प्रमाण है। वेद ही अखिल धर्मका मूल है।' अतः द्विजोंको, संस्कृत व्यक्तियोंको, विशेषतः ब्राह्मीवृत्तिवालोंको वेदका ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये। यदि वे वेदको छोड़कर अन्यत्र श्रम करेंगे, तो पुनः शूद्रत्वको प्राप्त कर जायँगे।' (२। १६८)

धर्म क्या है? आचार ही प्रथम धर्म है। वेद और उसके अनुकूल स्मृति जिन विधि-निषेधोंका वर्णन करते हैं, उनमें विधिका स्वीकार तथा निषेधोंका परित्याग ही धर्मका पालन करना है। ये स्वीकार तथा परित्याग आचारमें प्रकट होने चाहिये। कथनीको करनीमें परिणत करना चाहिये। ज्ञानके अनुकूल आचरण करना ही धर्म है। यदि ज्ञान तथा आचरणमें वैपरीत्य रहा तो दम्भका रूप खड़ा हो जायगा। मनुष्य धार्मिक नहीं बन सकेगा। सदाचार या सच्चरित्रसे ही मानव धार्मिक बनता है। वाणी मात्रसे नहीं। रोम-रोमद्वारा सच्चरित्रकी ध्वनि निकलनी चाहिये; हमारे एक-एक आचरणद्वारा धर्मका जय-घोष होना चाहिये। धर्म व्याख्यान-व्यापार नहीं, आचार-अनुष्ठान है; जो वाणी ही नहीं, अङ्ग-अङ्गको प्रभावित करता है। हमारी समस्त चेष्टाओंमें धर्म प्रतिध्वनित होता है।

आचरण कर्म है। कर्म तीन प्रकारका हो सकता है—तामस, राजस तथा सात्त्विक। तामस कर्म हेय है; क्योंकि वह अधोगतिका कारण है। राजसपर नियन्त्रणकी आवश्यकता है। सात्त्विक कर्म ही उन्नयन करता है—ऊपर उठाता है[1]। वेद कहता है—**'उद्यान ते पुरुष नावयानम्**—जीव! तुझे ऊपर उठना है, नीचे नहीं गिरना है। अधोगतिकी मार खाते-खाते तू अपने स्वत्वसे ही हाथ धो बैठा है। मानव-योनिमें आकर अब तो अपने स्वत्वको पहिचान; अपने घरकी ओर चल। इस पृथिवीकी पीठपर सवार हो जा और द्यौलोकका आधान करता हुआ अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जा।'

कर्म साधना है, तप है—ऐसा सभी साधक स्वीकार करते हैं। पर सत्कर्म क्या है, अपकर्म क्या है तथा कर्म, अकर्म और विकर्ममें परिस्थितियोंके प्रभावसे क्या और कैसा अन्तर पड़ता है, इस विषयमें कभी-कभी बड़े-बड़े कवि, ज्ञानी भी मोहित हो जाते हैं और निर्णय नहीं कर पाते। एक ही कर्म एक समयमें करणीय, परंतु दूसरे समयमें

१. ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥
(गीता १४। १८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकरणीय बन जाता है। साधारण मानवकी बुद्धि भ्रममें पड़ जाती है। वह कर्तव्य और अकर्तव्यमें भेद नहीं कर पाता। कर्मकी गति वस्तुतः गहन है, पर इतनी गहन नहीं कि हम उसका भेदन ही न कर सकें। मनुने विचिकित्साके समय श्रुति-स्मृति, सज्जनोंका आचार तथा आत्मप्रियताको कसौटी बनाया है। इस कसौटीकी विस्तृत व्याख्या हमारे 'जीवनदर्शन' ग्रन्थमें 'करणीय' शीर्षक निबन्धके अन्तर्गत मिलेगी। इसपर कसकर हम कर्मके खरे-खोटे होनेकी परीक्षा कर सकते हैं। यह कार्य भी यद्यपि आपाततः सरल नहीं है, फिर भी दिशा-संकेत तो है ही और प्रयत्नसाध्य भी है। तैत्तिरीय उपनिषद् भी कहती है—

'अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तिविचिकित्सा वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनो युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन्। तथा तत्र वर्तेथाः।'

(शीक्षावल्ली अनुवाक ११। ३-४)

'यदि तुम्हें कर्म अथवा वृत्त (आचार) के सम्बन्धमें संदेह हो कि यह करणीय है या नहीं, अथवा वरणीय है या नहीं, तो इस विषयमें ज्ञानी सदाचारी ब्राह्मणोंके पास जाओ जो विचारशील हैं, उस कर्म तथा वृत्तसे परिचित हैं, सहृदय हैं और धर्म-परायण हैं; कर्म अथवा वृत्तके सम्बन्धमें जैसा इनका बर्ताव दिखायी दे, वैसा ही तुम भी करो।' जो व्यक्ति कुख्यात हैं, उनसे व्यवहार करनेमें भी इसी प्रकारके ब्राह्मणों-के आदर्शको प्रमाण समझो। व्यवहारसाध्यताके लिये यह कसौटी समाजके पास सुलभ है।

कर्म, अकर्म अथवा विकर्मका ज्ञान हो जानेपर भी आचरणका प्रश्न बना रहता है। अनेक बार जानते हुए भी मनुष्य संस्कारवश यथार्थ आचरण नहीं कर पाता। एक कर्मके करते-करते जो संस्कार बन गया है, वह आगामी जीवन-क्रमको प्रभावित करता रहता है। अभ्यासपर अभ्यास चढ़ता रहता है। इस अभ्यासजन्य संस्कारको, जो बस गया है, वासना बन चुका है, दूर करनेमें सामान्यतः बड़ा समय लगता है और भगीरथ-प्रयत्न करना पड़ता है। पर यदि कहीं प्राक्तन पुण्य अवशिष्ट हों, तो भगवत्कृपाके संकेतमात्रसे, किसी गुरुजनकी प्रसाद-दृष्टि पड़ते ही अथवा भयंकर ठोकर लगते ही संस्कारका प्रभाव नष्ट हो जाता है और मानव पलभरमें ही सदाचारी बन जाता है। कर्मका यह चक्र अतीव जटिल है। इसे श्रीकृष्ण-सदृश कोई योगिराज ही समझ सकता है और कह सकता है।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥

(गीता ४। ५)

इस कर्म-जालमें फँसा हुआ जीव कभी ऊँचा उठ जाता है, कभी नीचे गिर जाता है; कभी सुख भोगता है, कभी दुःखका भाजन बनता है; कभी राजा बनता है, कभी रंककी स्थितिमें पहुँचता है; कभी देवयोनि तो कभी पशुयोनि, कभी ब्राह्मण तो कभी शूद्र, कभी नागरिक तो कभी वन्य, कभी संस्कृत तो कभी असभ्य, कभी बलवान् तो कभी निर्बल, कभी सुरूप तो कभी कुरूप—न जाने कितनी विविध उच्चावच स्थितियोंको प्राप्त करता रहता है। इन स्थितियोंके अनुभवने ही 'पुनर्जन्म' सिद्धान्तको पुष्ट किया है।

लेखके प्रारम्भमें हमने जो मन्त्र उद्धृत किया है, वह पुनर्जन्मके सिद्धान्तका समर्थक है। इस मन्त्रके अनुसार अमर्त्य आत्मा मर्त्य शरीरमें आकर नाना प्रकारके भोग भोगता है, विविध प्रकारके काम करता है, अनेक लोकोंके दृश्य देखता है और एक नहीं, अनेक प्रकारके शरीर धारण करता है। विविध योनियोंमें विविध प्रकारके शरीर हैं, जिनसे विविध प्रकारके स्वभाव, गुण, वृत्तियाँ तथा चेष्टाएँ प्रकट हो रही हैं। ये सब जीवात्माकी अपनी कमाई हैं। शरीर दिखायी देते हैं, गुणों तथा वृत्तियोंका ज्ञान होता है; परंतु जिसकी यह अर्जित सम्पत्ति है, वह जीवात्मा नहीं दिखायी देता, जाननेमें भी नहीं आता।

जीवात्मा इस झमेलेमें क्यों पड़ता है? इसका प्रमुख कारण नीचे लिखे मन्त्रमें वर्णित है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥

(ऋ० १। १६४। २०, अथर्व० ९। ९। २०)

'जीवात्मा तथा परमात्मा दो साथ रहनेवाले सखा एक ही संसाररूपी वृक्षपर बैठे हुए हैं। जीवात्मा इस वृक्षके फलको खाता है। परमात्मा खाता नहीं, द्रष्टामात्र है।' वृक्षके फलमें स्वाद लेना भोगेच्छाका द्योतक है। जीवात्माकी यही निर्बलता है। परमात्मा भोगसे पृथक् केवल द्रष्टा है। यह उसकी शक्ति है। कोई वस्तु मेरे पास हो, फिर भी मैं उसके प्रति अपनी आसक्ति प्रकट न करूँ, इसमें मेरा स्वत्व सुरक्षित है। यदि आसक्ति हो गयी, तो मेरा स्वत्व जाता रहा। मेरे साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक और वस्तु आकर चिपट गयी और मेरा स्वत्व उसके हाथ बँट गया। विभाजन शक्तिको कम करता है। शक्तिका एकत्रीकरण तो केन्द्रस्थ—स्वस्थ रहनेमें है। शक्तिकी हीनता पराधीनताकी ओर ले जाती है। जीव भी भोगके अधीन होकर परतन्त्र होता ही जाता है। ज्ञान और प्रयत्न उसके दो गुण हैं। इन्हें लेकर यह स्वाधीन होना चाहता है, पर नहीं हो पाता। भोग भोगेच्छाको और प्रबल करता है। जब यह भोगसे विरत होकर तपस्या करता है, तब कहीं स्वाधीनताकी झलक सामने आती है। यदि उस झलकको पकड़कर यह तपमें निरत रहा, त्यागभावको अपनाता रहा, तो एक दिन अपने स्वरूपमें अवस्थित हो जायगा। तपसे अहंकारको अवश्य पृथक् रखना होता है और परम प्रभुके समक्ष समर्पण करना होता है, तब कहीं पूर्ण स्वाधीनताके दर्शन हो पाते हैं।

'जो कर्ता सो भोक्ता' की कहावत प्रख्यात है। कर्मका भोगसे और भोगका कर्मसे नित्य सम्बन्ध है। सुख और दुःख भोगरूप हैं और किसी-न-किसी कर्मके परिणाम हैं। सुखके साथ दुःख लगा रहता है, परंतु मोक्षमें दुःखका एकान्त अभाव हो जाता है। जैसे दिन और रात्रिका चक्र है, सृष्टि और प्रलयका चक्र है, जन्म और मरणका चक्र है, वैसे बन्ध और मोक्षका भी चक्र है। मोक्षको इसीलिये 'सावधि' कहा गया है। उसके भोगका समय 'परान्तकाल' है। परान्तकाल ३६ सहस्र बार सृष्टि और प्रलयके होनेका समय है। ऋग्वेद (१०।१९०।३) में 'अघमर्षण सूक्त' या 'भाववृत्त सूक्त'के अन्तर्गत सृष्टि और प्रलयके चक्रका 'यथापूर्वमकल्पयत्' शब्दोंद्वारा वर्णन किया गया है। वर्तमान सृष्टि वैसी ही है, जैसी पूर्व कल्पमें थी। सृष्टि या रचना प्रकृतिका बन्ध है। प्रलय प्रकृतिका मोक्ष है। इसी प्रकार जीवका कर्मफलके अनुसार विविध प्रकारकी योनियोंमें आवागमन 'बन्ध' है और इस आवागमनसे छुटकारेका नाम 'मोक्ष' है। मोक्षका अर्थ ही है—छूट जाना। छूटनेका अर्थ है—बन्धनसे पृथक् होना। मोक्ष-जैसी महान् उपलब्धिके लिये महती साधनाकी अपेक्षा है। यह साधना मानव-योनिमें ही सम्भव है, पशु-पक्षियोंकी योनिमें नहीं। मानवको मानव-योनिमें भी एक नहीं, अनेक बार जन्म लेना पड़ता है। उसमें भी श्रेणी-विभाग है, परम-अवमके स्तर हैं। मानवताकी उच्चतम कक्षामें जबतक जीवका प्रवेश नहीं होगा, तबतक वह स्वर्गका अधिकारी नहीं बन सकेगा।

श्मशानमें जिस मृत्युके दर्शन होते हैं, वह शरीरकी मृत्यु है, जीवकी नहीं। जीव जब शरीरको छोड़ देता है, तब शरीर समाप्त हो जाता है; जीव प्राण-मन-बुद्धिके साथ दूसरे शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है। यह दूसरा शरीर पहले शरीरकी अपेक्षा उत्कृष्ट होगा या निकृष्ट, इसकी पहिचान कुछ-कुछ पहले शरीरको छोड़नेके समय ही की जा सकती है। सबकी मृत्यु एक समान नहीं होती। क्षत्रिय रणमें मृत्युका वरण स्वेच्छासे करता है। शूद्र तथा वैश्यवृत्तिवाले घरमें रहते हुए मरणमें अनिच्छा प्रकट करते हैं; पर उन्हें भी शरीर छोड़ना पड़ता है। ब्राह्मीवृत्तिवालोंके लिये शरीरका परित्याग वस्त्र या परिधानके परित्यागके समान है। अतः मरणके समय प्राणीकी भावनाएँ अपने-अपने कृतकर्मों तथा निर्मित वृत्तियोंके अनुसार होती हैं और जिस-जिस भावनाको लेकर जीव शरीर छोड़ता है, उसी भावनाके अनुकूल उसे आगामी शरीर मिलता है।*

हम जैसे कर्म करते हैं, वैसे ही संस्कार बनते हैं और उन्हीं संस्कारोंके अनुसार हमें आगामी शरीर मिलते हैं। वेद कहता है—

ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्य पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति॥
(ऋग्वेद १।१६४।१९)

'जो नीचे थे, वे ऊपर पहुँच जाते हैं और जो ऊपर थे वे नीचे आ जाते हैं। इन्द्र अर्थात् इन्द्रियोंका स्वामी जीवात्मा जिन कर्मोंको करता है, वे धुरेकी भाँति युक्त होकर इसे लोक-लोकान्तरोंमें एक योनिसे दूसरी योनिमें ले जाते हैं।'

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः॥
(ऋग्वेद १।१६४।३०)

'मृत शरीरका जीवात्मा उस शरीरसे निकलकर अपनी स्वधाओंके अनुसार, धारण करनेवाली कृतियों तथा स्वधृतियोंके अनुसार, वृत्तियों और स्वभावोंके अनुकूल अमर होता हुआ भी मर्त्य-शरीरको अपना सयोनि बनाकर विचरण करता है, अर्थात् एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीरको धारण करता हुआ चला जाता है।' पस्त्यों, गृहों, योनियों तथा लोकोंके मध्यमें

---

* यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥
(गीता ८।६)

१. पस्त्य—अपस्त्यायन्ति संहीभूय तिष्ठन्ति जीवा यत्र, गृहम् इति शब्दकल्पद्रुमे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्रुव जीवको भी जो एजत्–हिला देनेवाली क्रिया है, वह यही स्वधाएँ हैं; भोगेच्छा, कर्म, वृत्ति और उनसे बने हुए स्वभाव हैं। यही इस प्राण धारण करनेवाले, वेगशाली जीवको सुला देते हैं, परमात्मासे विमुख कर देते हैं, प्रमादमें डाल देते हैं। आत्माकी पवित्रतापर स्वधा ही आवरण डालती है, उसे मलिनताकी ओर ले जाती है और नीची-ऊँची योनियोंके दुःख-सुख दिखाती, अनुभव कराती है।'

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः॥
(ऋग्वेद १। १६४। ३१)

'इस अनिपद्यमान, ऊर्ध्व स्थानपर विराजमान, गोपा, इन्द्रियोंके पालक जीवको मैंने अधः एवं ऊर्ध्व, अवर एवं परले पथोंसे विचरण करते हुए देखा है। यह कभी अनुकूल, कभी प्रतिकूल, कभी सम, कभी विषम दशाओंको अपनाता हुआ, ऊँची-नीची योनियोंमें बसता हुआ भुवनोंके अंदर बार-बार आया-जाया करता है।' सध्रीची धारण करनेवाली अवस्था है तो विषूची निम्नप्रवाही विचलन, विरेचन एवं निष्कासनकी अवस्था है।

य ईं चकार न सो अस्य वेद य इ ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश॥
(ऋग्वेद १। १६४। ३२)

'जननीके गर्भमें झिल्ली और अज्ञानसे ढका हुआ जीवात्मा अनेक जन्म धारण करता है। यह बहुप्रजा—अनेक जन्मों तथा संततियोंवाला बनता है और घोर-से-घोर दुर्गतिमें पड़ता है। इस दुर्दशामें यह जो कुछ करता है, उसे स्वयं भी नहीं जानता और जो कुछ देखता है, वह भी इससे छिपा हुआ ही रहता है।' उदात्त आत्माका यह कैसा अधः-पतन है।

अधोगतिमें पड़ा हुआ, क्लेशाक्रान्त जीव व्याकुल होता हुआ इसीलिये प्रभुसे प्रार्थना करता है—

न विजानामि यदि वेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्या दिद् वाचो अश्नुवे भागमस्याः॥
(ऋग्वेद १। १६४। ३७)

'मैं नहीं जानता, मैं क्या हूँ। क्या मैं यह शरीर हूँ! शरीरके साथ सयोनि, समानधाम बनकर मुझे शरीरके अतिरिक्त अपना अस्तित्व सूझ नहीं पड़ता। मैं अपने इन विचारोंसे बिल्कुल दब गया हूँ, अच्छी तरह बँध गया हूँ। अब तो प्रभु ही कृपा करें, ऋतकी प्रथमजाको प्राप्त करावें। तभी इस वाणीका भाग भोग्य बन सकेगा, समझमें आ सकेगा।'

जीव जलचर तथा वानस्पत्य योनियोंमें भी जाता है, इसका समर्थन निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे होता है—

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे गर्भे सन् जायसे पुनः॥
(यजु० १२। ३६)

मन्त्रके दो अर्थ हैं—एक अग्निपरक है, जो विज्ञानके अन्तर्गत आता है। दूसरा आत्मपरक है, जो पुनर्जन्मसे सम्बन्ध रखता है। विज्ञानके अनुसार अग्नि जहाँ बाहर है, वहाँ जलों तथा ओषधियोंके अंदर भी है। जलसे विद्युत्-रूप अग्नि आजकल बाहुल्यसे पैदा की जाती है और उससे घरोंमें रोशनी ही नहीं होती, रोटी आदि भी पकायी जाती है, पंखा चलाया जाता है, बड़ी-बड़ी फैक्टरियाँ बिजलीसे चलती हैं, रेलें चलती हैं आदि-आदि। ओषधियाँ आग्नेय हैं, यह रसायनमें ही नहीं, अन्नादिमें भी सत्य है। काष्ठ और विशेषतः शमी तथा पीपलकी लकड़ीमें अग्नि छिपी रहती है। वह इनके गर्भमें रहती हुई प्रकट भी हो जाती है। बाँसोंकी पारस्परिक रगड़से भी वनकी दावाग्नि भड़क उठती है।

पुनर्जन्मके सम्बन्धमें आत्मा जलचरोंकी योनियोंमें भी जाती हुई मानी गयी है। वृक्षों, वनस्पतियों तथा ओषधियोंमें जीवात्माओंकी स्थिति अन्तःसंज्ञ है—ऐसा मनुद्वारा स्वीकृत है। इनके गर्भमें रहकर जीव पुनः मानव-योनिमें आता है। भोगयोनियोंके उपरान्त उसे मानव-योनिकी कर्मभूमि प्राप्त होती है—

प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने।
संसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरासदः॥
(यजु० १२। ३८)

इस मन्त्रके भी पूर्व-जैसे दो अर्थ हैं—एक अग्निपरक, दूसरा आत्मपरक। अग्नि भस्म होकर जलों तथा पृथ्वीरूपी योनिको प्राप्त होकर पुनः माताओंके साथ मिलती है और ज्योतिष्मान्, अर्थात् प्रज्वलित रूपमें उपस्थित हो जाती है। अग्निकी माताएँ, अर्थात् अग्निको मान देनेवाली सूर्यकी किरणें हैं, जल है, काष्ठ है, जैसा पहले लिख चुके हैं। आत्मा जब शरीरको छोड़ता है, तब शरीर तो भस्म हो जाता है; परंतु आत्मा प्राणादिको लिये हुए जलीय अथवा पार्थिव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योनिको प्राप्त होकर पुनः माताओंका संसर्ग कर उनके गर्भमें आता है। आत्मा स्वयं ज्योतिष्मान् है। उसका यह ज्योतिरूप बुद्धिमान् मानवके रूपमें पुनः प्रकट होता है।

विभिन्न योनियोंमें जानेके कारणपर प्रकाश डालते हुए मनु कहते हैं—

शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम्॥
(१२।९)

'कर्मके जो दोष शारीरिक हैं—जैसे हत्या, चोरी, व्यभिचार, उनके कारण मनुष्य वृक्षादि स्थावरयोनिको प्राप्त करता है, वाणीसे किये पापोंके द्वारा पक्षी और मृगादिका शरीर धारण करता है तथा मनसे किये पापोंद्वारा चाण्डाल आदिका शरीर मिलता है।' यह अङ्गजन्य पापका परिणाम है।

देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः॥
(१२।४०)

'गुणोंकी दृष्टिसे विचार करें तो सात्त्विक गुणसम्पन्न व्यक्ति देवयोनिको प्राप्त करते हैं, रजोगुणी मानव-योनिमें आते हैं तथा तमोगुणी तिर्यक्योनिमें जाते हैं।' तामसी तथा राजसी गति जघन्य, मध्यम तथा उत्तम तीन-तीन भागोंमें विभाजित है; परंतु सात्त्विकी गतिके प्रथमा, द्वितीया तथा उत्तमा तीन भेद हैं। इन भेदोंके अनुसार योनियाँ भी भिन्न-भिन्न हो जाती हैं, जिनका विस्तृत विवरण मनुस्मृतिके १२ वें अध्यायमें दिया गया है। मनु लिखते हैं—

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन धर्मस्यासेवनेन च।
पापान् संयान्ति संसारान् अविद्वांसो नराधमाः॥
(१२।५२)

'इन्द्रियोंके वशीभूत, धर्म-सेवनसे रहित अज्ञानी अधम नर पापमयी योनियोंको पाते हैं।' किंतु जो धर्मपरायण हैं, इन्द्रियोंको संयममें रखनेवाले हैं, वे ज्ञाननिधि, प्रभु-प्रेमी नर ऊर्ध्वलोकोंमें जाते हैं। सांख्य (१।१) सूत्रके अनुसार 'मनुष्यका परम पुरुषार्थ त्रिविध दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति करनेमें निहित है।'

ऊर्ध्वलोकोंकी गतियाँ भी अनेक हैं, परंतु उनमें दो प्रमुख हैं—पितृयाण तथा देवयान। पितृयाण पथके पथिक परोपकारी, आदर्शचरित्र भद्रपुरुष होते हैं। देवयान पथपर वैज्ञानिक एवं दार्शनिक चलते हैं। इन दोनोंमें सत्कर्म और ज्ञान-प्रकाशका अन्तर है। पितरोंकी दिशा दक्षिण तथा देवोंकी दिशा उत्तर है। इस आधारपर उन्हें दक्षिणायन तथा उत्तरायण-मार्ग भी कहा जाता है। एकको 'चान्द्रमस' तथा दूसरेको 'सौर्यायण' ज्योति भी कहते हैं। गीताने इन्हें 'कृष्ण' तथा 'शुक्ल' गतिका नाम दिया है। ये दोनों ही गतियाँ ब्रह्मलोकसे ऊपर नहीं जातीं, ऐसा गीताका मत है।

गीताके आठवें अध्यायमें जो देवयान तथा पितृयाणका वर्णन है, उसका स्रोत छान्दोग्य उपनिषद्में और छान्दोग्यका स्रोत वेदमें है। वेद कहता है—

द्वे सृती अश्रृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्तरा पितरं मातरं च॥
(ऋग्वेद १०।८८।१५; यजु० १९।४७)

'मर्त्य-मनुष्य अपने शुभ कर्मोंके अनुसार पुण्यका फल भोगनेके लिये दो मार्गोंसे जाते हैं—एक पितृयाणसे और द्वितीय देवयानसे। पिता द्यौ और माता पृथ्वीके बीचमें यह सब जो गतिशील है, इन्हीं दोनों मार्गोंमें समा जाता है।'

इसके पूर्व मन्त्र (१२) में वैश्वानर अग्निका वर्णन है जो अह्नाम्—दिवसों अर्थात् प्रकाशका केतु प्रतीक है। यही अग्नि प्रकाशमयी ऊषाओंका विस्तार करता है, जिनकी अर्चि या ज्वालासे व्यापक अन्धकार दूर होता है। यह वैश्वानर अग्नि सूर्यकी संवत्सराग्नि है, जिसका वर्णन छान्दोग्य उपनिषद्में भी है।

छान्दोग्य उपनिषद्ने शिष्ट मानवोंके दो भाग किये हैं। एक ग्राममें वास करके लोकोपकारके कार्योंमें संलग्न रहते हैं, दूसरे अरण्यमें रहते हुए श्रद्धासहित तपका जीवन व्यतीत करते हैं। इन्हें 'वैखानस' भी कहा जाता है। एक लोक-संग्रही हैं, लोक-मङ्गल-विधायक हैं? दूसरे तपस्वी या आत्म-साधक हैं। एक चन्द्र या पितृलोकको तो दूसरे ब्रह्मलोकको जाते हैं। एकका पन्थ पितृयाण है तो दूसरेका देवयान है।

'तत् ये इत्थं विदुः। ये च इमे अरण्ये श्रद्धा तप इति उपासते ते अर्चिषम् अभिसम्भवन्ति। अर्चिषो अहः। अह्नः आपूर्यमाणपक्षम्। आपूर्यमाणपक्षात् यान् षड्दक्षिणैति मासाँस्तान्। मासेभ्यः संवत्सरम्। संवत्सरात् आदित्यम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदित्यात् चन्द्रमसम् । चन्द्रमसो विद्युतम् । तत्पुरुषोऽमानवः स एनान् ब्रह्म गमयति । एष देवयानः पन्था इति ।'

(५ । १० । १-२)

'जो अरण्यमें श्रद्धा और तपका अनुष्ठान करते हैं, वे अर्चिके सम्मुख हो जाते हैं । अर्चिसे दिन, दिनसे शुक्लपक्ष, शुक्लपक्षसे छः उत्तरायण मासोंको, मासोंसे संवत्सरको, संवत्सरसे आदित्यको, आदित्यसे ऊर्ध्वस्थानीय 'महः' नामके चन्द्रमाको, चन्द्रमासे 'तपः' नामकी विद्युत्को प्राप्त करते हैं। तब वह विद्युत्-मानव पुरुष इन्हें ब्रह्मलोकमें ले जाता है । यह देवयान पन्थ है ।' विद्युत्-पुरुषका वर्णन—विद्युतः पुरुषादधि—यजु० ३२ । २ में भी है ।

'अथ ये इमे ग्रामे इष्टापूर्ते दत्तम् इति उपासते ते धूममभिसम्भवन्ति । धूमात्रात्रिम् । रात्रेः अपरपक्षम् । अपरपक्षाद्यान् षड्दक्षिणैति मासाँस्तान् । न एते संवत्सरम् अभिप्राप्नुवन्ति । मासेभ्यः पितृलोकम् । पितृलोकात् आकाशम् । आकाशाच्चन्द्रमसम् । एष सोमो राजा । तद्देवानामन्नम् । तं देवा भक्षयन्ति ।'

(५ । १० । ३-४)

'तस्मिन्यावत्सम्पातम् उषित्वा अथ एतमेव अध्वानं पुनः निवर्तन्ते ।

(५ । १० । ५)

'जो ग्राममें इष्टापूर्त तथा दानका अनुष्ठान करते हैं, वे धूमको सामने पाते हैं । धूमसे रात्रि, रात्रिसे कृष्णपक्ष, कृष्णपक्षसे छः दक्षिणायन मासोंको प्राप्त करते हैं । मासोंसे ये संवत्सरको प्राप्त नहीं करते, किंतु पितृलोकको जाते हैं । पितृलोकसे आकाश और आकाशसे चन्द्रमाको जाते हैं । यह सोम राजा है । यह देवोंका अन्न है । देव उसे खाते हैं ।' वेदने भी कहा है । 'सोमेन आदित्याः बलिनः ।' सोमसे ही आदित्योंको बल प्राप्त होता है । 'जबतक उनके सम्पातका समय नहीं आता, तबतक वे इस चन्द्रमामें वास करके पुनः उसी मार्गसे पृथ्वीपर लौट आते हैं ।'

'तत् ये इह रमणीयचरणाः अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिम् आपद्येरन् । ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वा । अथ ये इह कपूयचरणाः अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिम् आपद्येरन् । श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा ।'

(५ । १० । ७)

'इनमें जो रमणीय आचरणके अभ्यासी होते हैं, वे रमणीय योनिको प्राप्त करते हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्ययोनिको । जिनके चरित्र कुत्सित होते हैं, वे कुत्सित योनिको प्राप्त करते हैं—श्वान या सूकर या चाण्डाल योनिको ।'

'अथ एतयोः पथोः न कतरेण च न । तानि इमानि क्षुद्राणि असकृत् आवर्तीनि भूतानि भवन्ति । जायस्व म्रियस्व इति एतत् तृतीयं स्थानम् । तेन असौ लोको न सम्पूर्यते । तस्मात् जुगुप्सेत । तदेष श्लोकः ।

(५ । १० । ८)

स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबंश्च गुरोस्तल्पमावसन् ब्रह्महा च एते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाचरंस्तैरिति ।

(५ । १० । ९)

'जो पितृयाण तथा देवयान दोनों पथोंमेंसे किसीके भी योग्य नहीं होते, वे ये क्षुद्र भूत हैं, जो बार-बार आवर्तन अर्थात् जन्म-मरणके चक्रमें पड़ते हैं । पैदा हुए और मरे—ऐसा इनका तीसरा स्थान है । ऐसे प्राणियोंसे उस लोककी सम्पूर्ति नहीं होती । सब इनसे घृणा करते हैं । इसपर यह श्लोक है—स्वर्णकी चोरी करनेवाले, शराब पीनेवाले, गुरुकी शय्यापर सोनेवाले (गुरुपत्नीसे व्यभिचार करनेवाले) और ब्रह्महत्यारे—ये चार तो पतित होते ही हैं, पाँचवें वे भी पतित होते हैं जो इनका साथ देते हैं ।'

श्रीमद्भागवत तृतीय स्कन्ध, दसवें अध्यायके श्लोक ८ तथा ९ में सकाम तथा निष्काम कर्म करनेवालोंकी गतियोंका वर्णन है । सकाम कर्म करनेवालोंको भूः, भुवः तथा स्वः तीन लोक प्राप्त होते हैं । ये तीन लोक ब्रह्माके एक दिन अर्थात् चौदह मन्वन्तरोंकी अवधितक स्थित रहते हैं । इस अवधिको एक कल्पका समय भी कहा जाता है । एक कल्पके पश्चात् इन तीन लोकोंका प्रलय हो जाता है । जो निष्काम कर्म करनेवाले हैं, उन्हें महः, जनः, तपः तथा सत्यलोकरूप 'ब्रह्मलोक'की प्राप्ति होती है । ब्रह्मलोकके इन विभागोंकी स्थिति दो परार्ध, अर्थात् ब्रह्माकी पूर्णायुपर्यन्त मानी गयी है। निष्काम कर्मयोगी मोक्षके इस अमृत—भोगको भोगनेके पश्चात् नवीन ब्रह्मसर्गमें पुनः उत्पन्न होते हैं, ऐसा कथन श्रीमद्भागवत ३ । ३२ के श्लोक ७, ८, ९, १० में आता है ।

पुनर्जन्मका सिद्धान्त आर्यजातिमें वैदिक कालसे ही

१. दर्शपौर्णमास आदि यज्ञ तथा वृक्षारोपण, फलाराम, फलोंके बाग लगवाकर सबके उपयोगके लिये छोड़ देना, कूप, बावली आदिका निर्माण ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चला आता है। बौद्ध तथा जैन वेदोंको मान्यता नहीं देते, पर पुनर्जन्मका सिद्धान्त उनको भी स्वीकार है। चार्वाक मतवाले अवश्य भौतिकतावादी हैं। इस जन्म और इस लोकके अतिरिक्त वे न पुनर्जन्म मानते हैं, न किसी परलोककी सत्ता स्वीकार करते हैं। ईसाई तथा मुसल्मान भी पुनर्जन्ममें विश्वास नहीं रखते। जर्मनीका प्रसिद्ध दार्शनिक एमैन्युल काण्ट ईसाई होते हुए भी आचारशास्त्रके आधारपर पुनर्जन्मको अप्रत्यक्षरूपसे मान्यता अवश्य दे गया। अब तो यूरोपीय देशोंमें कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद आदिके अध्ययनमें विशेष रुचि उत्पन्न हो रही है। कर्मसिद्धान्तका समाधान जैसा पुनर्जन्म करता है, वैसा अन्य किसी वादद्वारा हो भी नहीं सकता। ऋषियोंने तो इसका साक्षात् दर्शन कर लिया था। इसीलिये इतनी गहनतापर स्पष्टताके साथ वे इसका प्रतिपादन कर सके।

जन्मान्तर-रहस्य

(लेखक—प० श्रीदेवदत्तजी मिश्र का० व्या० मी० स्मृ० तीर्थ)

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

(गीता २। २७)

जन्म और मृत्युका रहस्य अत्यन्त गूढ़ है। वेदोंमें, दर्शनशास्त्रोंमें, उपनिषदोंमें तथा पुराणोंमें ऋषियोंने इस विषयपर विस्तृत विचार किया है। गीताके उपर्युक्त श्लोकसे यह ज्ञात होता है कि जन्म लेनेवालोंकी मृत्यु और मरनेवालोंका जन्म अवश्य होता है। भगवान्‌ने स्वयं इन दोनोंको ध्रुव बतलाया है।

इनमें पहला विषय तो प्रतिदिन प्रत्यक्ष ही देख पड़ता है। इसलिये इसको सिद्ध करनेके लिये दूसरे प्रमाणकी अपेक्षा नहीं है। सांख्यशास्त्रके निर्माता महर्षि कपिलने तीन ही प्रमाण माने हैं—

यथा—**'दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्। त्रिविधं प्रमाणमिष्टम्। प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि।'**

(सांख्यकारिका ४)

पुनर्जन्मके विषयमें दृष्ट अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाण तो कुछ मिलता नहीं, अनुमान भी दृष्टके ही आधारपर स्थित है। अतः जन्मान्तरके विषयमें आप्तवचन ही प्रमाण हो सकता है।

'आप्तपुरुष' वे ही कहे जाते हैं, जो जगदासक्तिसे रहित राग-द्वेषसे परे होते हैं। इससे अपौरुषेय वेदवाक्य, महर्षियोंद्वारा लिखे हुए दर्शन, शास्त्र और वेदव्यासादि साक्षात् भगवान्‌के अंशावतारोंद्वारा लिखित पुराण और स्मृतियोंके वचन ही इसमें प्रमाण हो सकते हैं।

शास्त्रोंमें लिखा है—**'अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात्। पुण्येन स्वर्याति पापेन नरकं याति'** इत्यादि। इस वाक्यमें अङ्गुष्ठ शब्द उपलक्षण है। इसका तात्पर्य है—बहुत छोटा। एक तो बहुत छोटा है, दूसरे वह अपार्थिव है, इसलिये इन पार्थिव नेत्रोंसे वह देख नहीं पड़ता।

महर्षि कपिलने कहा भी है—

सूक्ष्मा मातापितृजाः सहप्रभूतैस्त्रिधा विशेषाः स्युः।
सूक्ष्मास्तेषां नियता मातापितृजा निवर्तन्ते॥

(सांख्यकारिका ३९)

'माता-पितासे उत्पन्न यह पार्थिव स्थूलशरीर है। इसके साथ ही त्रिगुणात्मक होनेसे तीन तरहके सूक्ष्मशरीर भी उत्पन्न होते हैं। मृत्यु होनेपर ये माता-पितासे उत्पन्न स्थूलशरीर अपने कारणोंमें विलीन हो जाते हैं; परंतु सूक्ष्मशरीर तो नियत है, उसकी निवृत्ति ब्रह्मज्ञान होनेपर ही होती है।' और त्रिगुणात्मक होनेके कारण सत्त्वगुणप्रधान होनेसे अपनेसे श्रेष्ठ योनि देवताको प्राप्त करता है, रजोगुण प्रधान होनेसे मनुष्ययोनिमें जन्म ग्रहण करता है एवं तमोगुणप्रधान होनेसे मूढयोनि पशु-पक्षी, वृक्ष आदि और जडयोनि पत्थर आदिमें उत्पन्न होता है।

गीताके १४ वें अध्यायके १८वें श्लोकमें लिखा है—

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥

श्रीमद्भागवतमें कथा आती है कि विष्णुके पार्षद जय-विजयको सनकादि ऋषियोंके शापवश तीन जन्म असुर-योनिमें लेना पड़ा था। महाराज युधिष्ठिरके पूछनेपर नारदजीने कहा था—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकदा ब्रह्मणः पुत्रा विष्णोर्लोकं यदृच्छया ।
सनन्दनादयो जग्मुश्चरन्तो भुवनत्रयम् ॥
पञ्चषड्वायनार्भाभाः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ।
दिग्वाससः शिशून् मत्वा द्वाःस्थौ तान् प्रत्यषेधताम्॥
अशपन् कुपिता एवं युवां वासं न चार्हथः ।
रजस्तमोभ्यां रहिते पादमूले मधुद्विषः ।
पापिष्ठामासुरीं योनिं बालिशौ यातमाश्वतः ॥

(श्रीमद्भागवत ७ । १ । ३५–३७)

ब्रह्माने सनन्दनादि ऋषियोंको सृष्टिके आरम्भमें ही अपने मनसे उत्पन्न किया था । अतः ये थे तो पूर्वजोंके भी पूर्वज; परंतु तपोबलसे ये लोग ५-६ वर्षके बालकके समान ही रहते थे । ये लोग कपड़ा नहीं पहनते थे । नंगे रहते थे । अतः इनको न पहचाननेके कारण नंगे साधारण बालक समझकर भगवान्‌से मिलनेके लिये जानेसे रोक दिया । फिर क्या था, जैसे बच्चेको इच्छापूर्ति-व्याघात होनेसे क्रोध आ जाता है उसी तरह इनको भी क्रोध आ गया ।

यद्यपि ये लोग सिद्धपुरुष थे, तो भी भगवान्‌की मायाने इनकी बुद्धिको ढक दिया; क्योंकि भगवान्‌को इनके द्वारा शाप दिलाकर इस बातको बतलाना था कि 'बिना सोचे-समझे किसी सज्जन पुरुषका अनादर नहीं करना चाहिये । अनादर करनेसे उसका दुष्परिणाम अवश्य भोगना पड़ता है ।' दयालु हृदयवाले ऋषियोंने, जब उनको नीचे गिरते हुए देखा, तब उनके मनमें दया आयी और उन लोगोंने उनसे कहा—

एवं शप्तौ स्वभवनात् पतन्तौ तैः कृपालुभिः ।
प्रोक्तौ पुनर्जन्मभिर्वां त्रिभिर्लोकाय कल्पताम् ॥

(श्रीमद्भागवत ७ । १ । ३८)

अर्थात् 'जब उनको अपने स्थानसे नीचेकी ओर गिरते देखा तो दयासे पूर्ण हृदयवाले ऋषियोंने कहा कि तीन जन्मके बाद तुमलोग पुनः अपने स्थानको प्राप्त करोगे ।' इससे सिद्ध होता है कि मृत प्राणीका पुनर्जन्म अवश्य होता है । नहीं तो ऋषिलोग असुरयोनिमें जन्म ग्रहण करनेका शाप क्यों देते ।

मनुष्य त्रिगुणात्मक होता है । इससे जो गुण जिसमें प्रधान होता है, उसीके अनुसार उसका कर्म और स्वभाव होता है । जो सत्त्वगुणप्रधान होता है, वह देवताओंमें श्रद्धा रखता है और देवताओंकी आराधना करता है, रजोगुणी मनुष्य यक्ष और राक्षसोंपर श्रद्धा रखता है और उन्हींकी आराधना करता है और तमोगुणप्रधान मनुष्य भूत-प्रेत आदिपर श्रद्धा रखता है और उन्हींकी सेवा करता है । गीतामें लिखा भी है—

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥

(१७ । ४)

'कल्याण'में बहुत बार पूर्वजन्मकी बातोंके स्मरण रहनेवालोंकी कथाएँ निकल चुकी हैं और वे सत्य प्रमाणित हो चुकी हैं ।

इसी पुनर्जन्मके आधारपर कर्मकाण्डमें श्राद्धादिका विधान किया गया है । पुत्रादिद्वारा श्राद्धादिमें दिये गये पदार्थ पितरोंको प्राप्त होते हैं । इसपर बहुतोंको संदेह होता है कि किसीको मालूम तो है नहीं, पूर्वज लोग अपने कर्मके अनुसार किस योनिमें उत्पन्न हुए हैं । फिर उन योनियोंमें उन्हें यहाँ दिये हुए पदार्थ कैसे प्राप्त होंगे; क्योंकि जिस योनिमें हैं, उनके लाभदायक पदार्थ हम देते नहीं हैं और जो भी वस्तु ब्राह्मणोंको देते हैं, वे यहीं रह जाती हैं ।

परंतु ऐसा संदेह व्यर्थ है; क्योंकि पितृगण जिस योनिमें रहते हैं उनके सुख पहुँचानेके योग्य वस्तुमें परिणत होकर उन्हें वे वस्तुएँ प्राप्त होती हैं ।

श्रीमद्भागवतके पञ्चम स्कन्धमें जडभरतकी कथा आती है कि बहुत दिनोंतक तपस्या करनेपर भी एक मृगके बच्चेमें उनकी आसक्ति हो गयी थी और उसीके विषयमें चिन्ता करते-करते उन्होंने अपना शरीरत्याग किया, इससे उनको एक जन्म मृगजातिमें ग्रहण करना पड़ा । गीता(८।५) में भगवान्‌की उक्ति भी है कि 'जिस प्राणी या पदार्थको स्मरण करते हुए मनुष्य शरीर त्याग करता है, उसी पदार्थ या प्राणीको दूसरे जन्ममें प्राप्त करता है ।' और भी लिखा है—'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।' मन ही जबतक सांसारिक विषयोंका चिन्तन करता है, तबतक वह बद्ध रहता है और ८४ लाख योनियोंमें चिन्तनके अनुसार भ्रमण करता है । जब सांसारिक चिन्तनको छोड़कर भगवच्चिन्तनमें रत हो जाता है, तब इस संसारके जन्म-मृत्युके चक्रसे मुक्त हो जाता है । यही है—पुनर्जन्मका रहस्य ।

पुनर्जन्मका मुख्य कारण मनकी आसक्ति है । इसी आसक्तिको भगवान्‌ने 'दैवी माया' कहा है, जिससे छुटकारा पानेका उपाय उन्होंने अपनी शरणमें आनेको कहा है—

'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।'

(गीता ७ । १४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्जन्म

(लेखक—श्रीशिशिरकुमार सेन एम्०ए०, बी० एल्०, सम्पादक 'ट्रुथ')

एक सनातनधर्म ही संसारभरमें ऐसा धर्म है जो कर्मफल अथवा कर्मके अविनाशीस्वरूपसे उद्भूत एक स्वाभाविक सिद्धान्त 'जन्मों तथा अवसानोंके पुनरावर्तन'के विषयमें पूरी जानकारी रखता तथा प्रदान करता है। संसारके अन्य धर्म-मत कर्मके अक्षय स्वरूपको तो मानते हैं; परंतु उसे मानते हैं केवल मृत्युके उपरान्त ही, न कि जन्मके पहले, जो तर्कसंगत नहीं है। यदि मृत्युके उपरान्त पुरस्कार अथवा दण्ड देनेके लिये कर्मका अविनाशी होना आवश्यक है तो जन्ममें दिखायी देनेवाली विषमताके स्पष्टीकरणके लिये क्या यह दस गुना अधिक आवश्यक नहीं है? संसारके धर्मोंको इसका उत्तर देना होगा।

लब्धा निमित्तमव्यक्तं व्यक्ताव्यक्तं भवत्युत।
यथायोनि यथाबीजं स्वभावेन बलीयसा॥

'अव्यक्त कारणसे जीवकी सृष्टि होती है, जो बादमें अव्यक्त हो जाती है। इस संसारमें एक सजीव प्राणीका जन्म अदृश्य कर्मसे होता है।' इस जीवनमें प्रकट होकर अपने कर्मके प्रभावसे पुनः मृत्युको प्राप्त करके प्रच्छन्न हो जाता है। महान् शक्तिशाली इस कर्मसे ही प्रेरित होकर एक जीव ऐसे परिवारके माता-पिताके यहाँ जन्म-ग्रहण करता है, जहाँ वह अपने कर्मका अनुभव कर सके।

परंतु मूर्ख पापियोंके लिये अपने पापमार्गको साफ करनेकी चिन्तामें इस कर्मफलको अमान्य करनेके सिवा दूसरा चारा दिखायी नहीं देता, जिसे प्रायश्चित्तके उद्देश्यसे भोगना ही पड़ता है। इसीलिये जन्मों तथा अवसानोंके कभी समाप्त न होनेवाले चक्करको अस्वीकार करना उन्हें आवश्यक हो जाता है। परंतु लगभग जीवनके हर मोड़पर जन्म तथा मृत्यु मनुष्यको घूरते हुए दिखायी देते हैं। अनेक उदाहरण ऐसे हैं, जो असंदिग्धरूपसे पूर्वजन्मोंके अस्तित्वको प्रमाणित करते हैं। उनके सम्बन्धमें अपनी अनभिज्ञता व्यक्त करके उनकी व्याख्या करनेकी चेष्टा करना एक दुराग्रह मात्र होगा और उन्हें पागलपनकी संज्ञा देना अपने-आपमें परले दर्जेका पागलपन है। नीचे हम उन सैकड़ों घटनाओंमेंसे कुछ उदाहरण दे रहे हैं।

हम विख्यात राजा भरतकी घटनासे ही प्रारम्भ करें, जो राजा रहूगणसे यों कहते हैं—

अहं पुरा भरतो नाम राजा विमुक्तदृष्टश्रुतसङ्गबन्धः।
आराधनं भगवत ईहमानो मृगोऽभवं मृगसङ्गाद्धतार्थः॥
सा मां स्मृतिर्मृगदेहेऽपि वीर कृष्णार्चनप्रभवा नो जहाति।
अथो अहं जनसङ्गादसङ्गो विशङ्कमानोऽविवृतश्चरामि॥

(श्रीमद्भा० ५। १२। १४-१५)

'हे राजन्! पूर्वजन्ममें मैं भरत नामका राजा था। ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकारके विषयोंसे विरक्त होकर भगवान्‌की ही आराधनामें लगा रहता था, तो भी एक मृगमें आसक्ति हो जानेसे मुझे परमार्थसे भ्रष्ट होकर अगले जन्ममें मृग बनना पड़ा; किंतु भगवान् श्रीकृष्णजीकी आराधनाके प्रभावसे उस मृगयोनिमें भी मेरे पूर्वजन्मकी स्मृति लुप्त नहीं हुई। इसीसे अब मैं जन-संसर्गसे डरकर सर्वदा असङ्गभावसे गुप्तरूपसे विचरता रहता हूँ।'

हमारे पुराण, स्मृतियाँ तथा महाभारत पुनर्जन्मकी घटनाओंसे भरे पड़े हैं। उनकी प्राचीनताके कारण उन्हें एक पौराणिक गाथामात्रका रंग दिया जा सकता है। इसीलिये हमारे द्वारा समय-समयपर संगृहीत की गयी हालकी कुछ घटनाओंको हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

(१) बर्मी भाषामें बोलनेवाला अंग्रेजी सैनिक—

लन्दनसे प्रकाशित होनेवाले 'सण्डे एक्सप्रेस' नामक समाचारपत्रके माध्यमसे सन् १९३५ ई०में जार्ज कस्टर (George Castor) ने अपने कुछ गत अनुभवोंका वर्णन किया है। वह एक सैनिक था और उसका जन्म १८८९ ई०में हुआ था। अपने बचपनसे ही वह निद्रामें बोला करता था और उसके ऐसा बोलनेकी भाषा शुद्ध बर्मी होती थी। १९०७ ई०में वह सेनामें भरती हुआ। सन् १९०९ में २० वर्षकी अवस्थामें उसका स्थानान्तरण मेन्यो (बर्मा) में हो गया। वहाँ उसे ऐसा लगा कि वह उस भूमिसे भलीभाँति परिचित है, वहाँ रहा है, बर्मी भाषा बोलता रहा है और इरावदीको जानता है। उसने अपने तात्कालिक सैनिक अधिकारी लैंस कार्पोरल कैरीगन (Lance Corporal Carrigon) को बतलाया कि इरावदीके उस पार एक भव्य देवालय है, जिसकी दीवारमें छतसे लेकर नींवतक एक लम्बी दरार पड़ी हुई है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके निकट ही एक बहुत बड़ा घंटा है। उसके इस कथनकी जाँच करनेपर वह अक्षरशः सत्य निकला। (Truth, Vol. III, Page—201)

(२) पूर्वजन्मोंका दुष्कृत्य

वेन्डा (कालिया) के कविराज महेन्द्रनाथ सेनका १८ या १९ वर्षीय कम्पाउण्डर तारक तीव्र उदरशूलके कारण बेहोश हो गया। सर्वविद्याविज्ञ वंशके एक ब्राह्मणने दयार्द्र होकर आर्तस्वरसे मन्त्रोच्चार करते हुए तारकके मस्तकपर सिन्दूर लगाया तथा माँ कालीसे यह जाननेके लिये प्रार्थना की कि तारक इस बुरी तरहसे क्यों पीड़ित है ?

तारक अपनी अचेतन अवस्थामें गरज उठा—'मैं माँ कालीका अंश हूँ। मैं तारकको दण्डित क्यों न करूँ ! उसने अपने पूर्वजन्ममें अपनी माँका अपमान किया था और इसकी माँने अपने पति (तारकके पिता) को लात मारी थी। दोनोंको सात जन्मोंके कष्ट भोगनेका दण्ड दिया गया था। तारकके लिये उदरशूलघात तथा माँके लिये अपने विवाहके केवल १४ दिनों बाद विधवा बन जानेका विधान नियत था। उन दोनोंके अबतक चार जन्म हो चुके हैं तथा तीन और जन्मोंके कष्ट भोगने बाकी हैं।'

दयालु ब्राह्मणने पूछा कि 'क्या इससे मुक्तिका कोई उपाय नहीं है ?' अभीतक अचेतन पड़े हुए तारकने उत्तर दिया—'इससे मुक्ति तबतक नहीं हो सकती, जबतक तारक अपनी माँके चरणोंका पादोदक पान न कर ले तथा माँका उच्छिष्ट भक्षण न करे और यदि इसकी माँ इसे ओषधि दे दे तो वह इस जीवनमें भी ठीक हो सकता है।' तारककी माँका पता पूछनेपर पता चला कि गोपाल सेनकी विधवा पत्नी तारककी माँ है।

तारककी चेतना पुनः लौट आयी। उसने ब्राह्मणसे सब बातें सुनीं और उसके आदेशका पालन किया। तारककी माँने उसे पानका एक टुकड़ा दिया, जिसे उसने ताबीज बनाकर धारण कर लिया। तारक एकदम स्वस्थ हो गया। अगले वर्ष यह बीमारी पुनः लौट आयी। परंतु तारककी माँके पादोदक छिड़कनेसे वह ठीक हो गया। बादमें पता चला कि मासिकधर्मकी अवस्थामें एक महिलासे पानी लेनेके कारण तारकका ताबीज अशुद्ध हो जानेके कारण वह अपने प्रभावको खो बैठा था। (Truth, Vol. V, Page 291)

(३) झामापुकरके एक लड़केकी घटना

कलकत्ताके झामापुकर मोहल्लेका १८ वर्षीय लड़का मृत्यु-शय्यापर पड़ा था। लड़केके माता-पिताने एक साधु-पुरुषके चरणोंका आश्रय ग्रहण किया था, परंतु साथ ही लड़केकी स्वस्थताके लिये अन्य उपाय भी वे कर रहे थे। उस लड़केकी चाची उन साधुपुरुषपर यह दोषारोपण कर रही थी कि 'उस साधुके प्रति श्रद्धा ही लड़केकी प्राणलेवा हो रही है।' यह सुनकर लड़का चिल्ला उठा—

'इसमें साधुपुरुषका कोई दोष नहीं है। तुम्हारी उस पर आस्था ही नहीं है। मेरे पूर्वकर्मोंपर विचार करनेपर मेरे साथ जो कुछ हो रहा है, वह अपेक्षतया कुछ भी नहीं है। मुझे इससे सहस्रगुणा अधिक कष्ट मिलना चाहिये था। मेरे पिछले जन्ममें मैं रेल-विभागका एक कर्मचारी था। मैंने एक व्यक्तिकी हत्या की थी और उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले थे। मैंने उसे जो यातनाएँ दी थीं, मेरा वह कर्म कहाँ जायगा !

'यह सब कुछ पचास वर्ष पूर्व घटित हुआ था। उस समय कलकत्ताके सुकिया स्ट्रीट थानाका प्रमुख (Incharge) एक प्रसिद्ध अधिकारी था, जिसे लोग काना सार्जेन्ट कहा करते थे; क्योंकि उसको एक ही आँख थी। वह मुझे गिरफ्तार करनेमें सफल हो गया। मैं फाँसीके तख्तेसे तो बच निकला था, परंतु कड़ी मेहनतका दण्ड भोग रहा था।'

तभी अपनी माँको सम्बोधित करते हुए उस लड़केने कहा—'माँ ! मैं अब जा रहा हूँ। तुम जानती हो क्यों ! साथके कक्षमें जो व्यक्ति सो रहा है (उसका संकेत अपने पिताकी ओर था) वह मेरे पिछले जन्ममें मेरा लड़का था। उसने मुझे दुखी बनानेमें कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी थी। उसे अपने गत कर्मोंके परिणामोंकी अनुभूति करानेके लिये अब मैंने उसके पुत्रके रूपमें जन्म लिया है। अब उसे स्वयं उस सब दुःख और वेदनाका अनुभव अवश्य करना चाहिये जो एक लड़का अपने पिताको दे सकता है। कर्मसे बच निकलनेका कोई मार्ग नहीं है, उसे अवश्य भोगना पड़ता है।' (Truth, Vol. V, Page 991)

(४) दक्षिण अमरीकाके अन्वेषक 'हिल'

श्रीहिल (Mr. Hill) 'पीपुल' (People) के सम्पादकको लिखते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मेरी यह दृढ़ आस्था थी कि दक्षिण अमरीकाके कुछ भागोंसे मैं पूर्वपरिचित हूँ। मुझे यह बार-बार स्वप्न आया करता था कि मैं उष्णकटिबंधके जंगली प्रदेशमें एक अन्वेषकके रूपमें अकेला घूम रहा था कि सहसा काले रंगके लोगोंका एक झुंड प्रकट हुआ, जिनसे मैंने उनकी भाषामें बातचीत की, परंतु किसी कारणसे वे क्रुद्ध हो गये और उनके नेताने मुझे मार डाला। अन्ततोगत्वा मैं रायलमैन जहाजपर पाकशालाका भण्डारी बनकर दक्षिण अमरीका गया। वहाँ मुझे अज्ञात गलियों और भवनोंके नामोंका ठीक-ठीक पूर्वाभास होने लगा और रियो डे जेनेरो सान्टोज़ तथा बेनोस आइरेस (Rio de Janeiro, Santos and Buenos Aires) में घूमते समय मुझे ऐसा अनुभव हो रहा था कि मैं निश्चित ही इन स्थानोंमें पैदल घूम चुका हूँ। एक समुद्री यात्रामें सेन्टोसमें हमारे जहाजपर एक डैनिश (Danish) लेखक सवार हुआ। उसने मुझे एक दिन अपने कक्षमें बुलाया और कहा—

'मिस्टर भण्डारी! आप एक विचित्र आकस्मिक संयोगके शिकार प्रतीत होते हैं, अथवा इससे भी कहीं अधिक आश्चर्यजनक कोई और बात हो सकती है।' इतना कहकर उसने मुझे एक नरकंकाल दिखाया, जिसे देखकर मैं सिहर उठा; क्योंकि उसमें अपनी आकृतिकी ठीक प्रतिकृति मुझे स्पष्ट दिखायी दे रही थी। उस खोपड़ीको उसने अमेज़नके मानवीय सिरोंका शिकार करनेवाले शिकारियोंसे प्राप्त किया था और एक गुप्त प्रक्रियासे उसके स्वाभाविक आकारसे उसे आधा कर दिया था। (Truth, Vol. IV, Page 394)

(५) वाजितपुर (फरीदपुर) के डाक-विभागके लिपिकका लड़का (एडवान्स १५।७।३६)

वाजितपुरके डाक-विभागके लिपिक (Clerk) का तीन वर्षका लड़का एक दिन चिल्लाने लगा तथा आग्रह करने लगा कि मैं अपने घर जाऊँगा। प्रश्न करनेपर उसने उत्तर दिया—

'मैं चटगाँवके फाजिलपुर कस्बेका निवासी हूँ। लक्षम रेलवे स्टेशनसे एक सड़क मेरे गाँवको जाती है। वहाँ मेरे तीन पुत्र तथा चार पुत्रियाँ हैं। मेरे घरसे मेहरकी काली-बाड़ी बहुत अधिक दूर नहीं है। मेहरकी कालीबाड़ीमें ही सर्वानन्दने मुक्तिका अनुभव किया है। वहाँ कालीकी कोई प्रतिमा नहीं है। एक विशाल वटवृक्ष है, जिसकी जड़ोंपर ही पूजा की जाती है। वहींपर एक बहुत ऊँचा खजूरका पेड़ भी है।'

लड़केका बाप न तो कभी चटगाँव गया था और न ही लक्षम रेलवे स्टेशन अथवा मेहरकी कालीबाड़ी देखी थी। कभी-कभी लड़का ऐसे गीत गाया करता है, जिन्हें उसने कभी सुना ही नहीं। (Truth, Vol. V, Page 264)

(६) हंगरीकी एक लड़कीका अपने माता-पिताका विस्मरण

यह घटना १९३३ ई० की है, जब बुडापेस्टमें हंगरीके एक इंजीनियरकी १५ वर्षकी लड़की मृत्युशय्यापर पड़ी थी। प्रत्यक्षतः उसकी मृत्यु हो गयी; परंतु थोड़ी देर बाद वह कुछ ठीक होने लगी और हंगरीकी अपनी मातृभाषा-को पूर्णतया भूलकर स्पेनकी भाषामें बातचीत करने लगी। वह अपने माता-पितातकको नहीं पहचान पायी, जिसके सम्बन्धमें वह कहने लगी—

'ये सम्भ्रान्त लोग मेरे प्रति अत्यन्त दयालुताका व्यवहार कर रहे हैं; परंतु इनका यह कथन मुझे मान्य नहीं है कि ये मेरे माता-पिता हैं।'

मेरा नाम सेनोरे ल्युसिड अल्टोरेज डी सैलवियो (Senore Lucid Altoreze de Salvio) है। मैं मैड्रिडमें एक कारीगरकी पत्नी थी और मेरे १४ बच्चे थे। मैं कुछ बीमार थी और मेरी अवस्था ४० वर्षकी थी। कुछ दिन पूर्व मैं मर गयी थी, अथवा कम-से-कम मैं यह समझती थी कि मैं मर रही हूँ। अब मैं इस अपरिचित देशमें ठीक हो गयी हूँ।

वह अब स्पेनी भाषाके गीत गा रही है और विशिष्ट स्पेनी पकवान बना रही है तथा मैड्रिडका बड़ा विस्तृत और रोचक वर्णन कर रही है, जहाँ वह आजतक कभी गयी नहीं। (Truth, Vol. III, Page 135)

क्या ये सब घटनाएँ पुनर्जन्मके प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं हैं? क्या ये जन्म और मरणके चक्रका उच्च स्वरसे उद्घोष नहीं करतीं?

अभी-अभीकी कुछ घटनाओंमें हम १५।६।६८ के 'अमृतबाजार पत्रिका' में प्रकाशित कोलम्बोकी इस घटना-पर ध्यान दें—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अमरीकी मनोविज्ञान-चिकित्सक इस समय सीलोनमें पुनर्जन्मके सिद्धान्तके समर्थनमें तथ्योंका संग्रह करनेके उद्देश्यसे आया हुआ है। इसने पुनर्जन्मके सम्बन्धमें पहले ही एक पुस्तक प्रकाशित की है।

विरजीनिया विश्वविद्यालयके मनोविज्ञानके चिकित्सा-विभागके प्राध्यापक इयान स्टीवेन्सन (Ian Stevenson) इस समय छः वर्षकी एक बालिकाकी घटनाकी जाँच-पड़ताल कर रहे हैं। उस बालिकाको यह स्मरण है कि अपने पूर्वजन्ममें वह एक सम्पन्न जौहरी-परिवारमें जन्मी थी। उसे इस बातकी भी स्मृति है कि उसका पिता उसे कोलम्बोके सेन्ट ब्रिजिट्स कानवेन्ट (St. Bridgets Convent) में पढ़नेके लिये ले गया था, जहाँ उसने तीसरी कक्षातक शिक्षा पायी थी। जब वह तीसरी कक्षामें पढ़ती थी, तभी एक अस्पतालमें उसकी मृत्यु होनेकी उसे स्मृति है।

प्राध्यापक स्टीवेन्सन 'ट्वैण्टी केसेज इन सजेस्टिव रिइनकार्नेशन' (Twenty Cases in Suggestive Reincarnation) पुस्तकके लेखक हैं।

परलोक-तत्त्व

(लेखक—श्रीवसन्तकुमार चट्टोपाध्याय एम्० ए०)

मुमूर्षु व्यक्तिकी पहले वाक्-इन्द्रिय मनमें विलीन हो जाती है। उस समय वह मन-ही-मन विचार कर सकता है, परंतु बोल नहीं सकता। उसके बाद चक्षु-कर्ण आदि इन्द्रियाँ भी मनमें विलीन हो जाती हैं। उस समय वह देख नहीं पाता, सुन नहीं पाता। उसके बाद मन प्राणके भीतर विलीन हो जाता है, तब वह कुछ समझ नहीं पाता, केवल श्वास-प्रश्वास चलता है। प्राण जीवके भीतर अवस्थान करता है। जीव सूक्ष्म क्षिति, जल, तेज, वायु और आकाश-(अर्थात् पञ्च तन्मात्राओं) में अवस्थान करता है। हृदयदेशसे १०१ नाड़ियाँ निकली हैं। मृत्युके समय जीव एक नाड़ीमें प्रवेश करके देह त्याग करता है। मोक्ष प्राप्त करनेवाला जीव जिस नाड़ीमें प्रवेश करता है, वह नाड़ी हृदयसे मस्तकतक फैली है। जो मोक्ष प्राप्त नहीं करते, वे जीव किसी दूसरी नाड़ीमें प्रवेश करते हैं। जीव जबतक नाड़ीमें प्रवेश नहीं करता, तबतक विद्वान् और अविद्वान्की गति एक ही तरहकी होती है। उसके बाद विभिन्न प्रकारकी गति हो जाती है। श्रीस्वामी शंकराचार्यजी कहते हैं कि 'जो लोग ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति करते हैं, वे मृत्युके बाद देह ग्रहण नहीं करते, बल्कि मृत्यु होते ही उनको मोक्ष प्राप्त हो जाता है।' श्रीरामानुज स्वामी कहते हैं कि 'ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति होनेपर भी जीव देवयान पथमें गमन करके पश्चात् ब्रह्मको प्राप्त होता है। मुक्त हो जाता है।' श्रीस्वामी शंकराचार्य कहते हैं कि 'जो लोग सगुण ब्रह्मकी उपासना करते हैं, वे ही देवयान पथमें जाकर सगुण ब्रह्मको प्राप्त होते हैं; और जो लोग निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करके ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति करते हैं, वे लोग देवयान पथसे नहीं जाते। अग्निके संयोगसे जब स्थूलशरीर ध्वंस हो जाता है, उस समय सूक्ष्मशरीर ध्वंस नहीं होता। मृत्युके समय देहका कोई स्थान उष्णरूपमें अनुभव होता है और जिस स्थानसे सूक्ष्मशरीर देह-त्याग करता है, वही स्थान उष्ण जान पड़ता है।

जिसको ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो गया है, उसकी मृत्यु रातमें या दक्षिणायनमें होनेपर भी उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। भीष्मपितामहने जो उत्तरायणकी प्रतीक्षा की थी, वह उस आचारका पालन करनेके लिये तथा यह दिखलानेके लिये की थी कि वे 'स्वेच्छामृत्यु' हैं। गीतामें श्रीभगवान्ने कहा है—

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः॥
(८। २४)

इसमें आये हुए अग्नि और ज्योति—ये दो शब्द काल या समयको लक्ष्य नहीं करते। ये अग्निदेवता और ज्योतिके देवताको लक्ष्य करते हैं। जो देवयान पथमें जाते हैं, उनको ये दोनों देवता अपने अधिकृत स्थानके द्वारा ले जाते हैं। उसके बाद 'अहः' अथवा दिवसके अभिमानी देवता ले जाते हैं। उसके बाद शुक्लपक्षके देवता तथा उत्तरायणके देवता ले जाते हैं।

उपनिषदोंके विभिन्न वाक्योंकी आलोचना करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरामानुज स्वामीने देवयान पथका इस प्रकार वर्णन किया है—(१) अग्निदेवताका अधिकृत देश (२) दिवस-देवता (३) शुक्लपक्ष (४) उत्तरायण (५) वत्सर (६) वायु और (७) आदित्य। देवयान पथ—इन सब देवताओंके अधिकृत देशोंमें होकर जाता है । उसके बाद (८) चन्द्र (९) विद्युत् (१०) वरुण (११) इन्द्र (१२) प्रजापति (१३) ब्रह्म । जो लोग ईश्वरकी पूजा करते हैं, वे इस पथसे जाते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता; परंतु जो लोग ईश्वरकी पूजा नहीं करते, बल्कि कूप-तड़ाग-निर्माण तथा दान आदि पुण्यकर्म करते हैं, वे इस पथसे नहीं जाते । वे पितृयाण पथसे जाते हैं और उनका पुनर्जन्म होता है । पितृयाण पथसे भी चन्द्रलोक जाना पड़ता है; किंतु मार्ग भिन्न है । उनका पथ धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन है—अर्थात् ये सब देवता उनको अपने अधिकृत स्थानके मध्यमें ले जाते हैं । चन्द्रलोकसे वे लोग मेघमें उतरते हैं, मेघसे वृष्टिके साथ पृथिवीपर आते हैं, पृथिवीपर शस्यके भीतर प्रवेश करते हैं, उसके बाद शस्यको खानेवाले पुरुषके देहमें प्रवेश करते हैं । पुरुषके देहसे उसके शुक्रके साथ रमणीके गर्भमें प्रवेश करते हैं। तत्पश्चात् पूर्वजन्मके कर्मोंके अनुसार मनुष्य या पशुदेहको प्राप्त होते हैं । चन्द्र कभी तो खूब गरम रहते हैं और कभी अतिरिक्त शीतल हो जाते हैं। वहाँ स्थूलशरीरयुक्त मनुष्य रह नहीं सकता, परंतु सूक्ष्मदेह, जो परलोकमें जाता है, वह चन्द्रमें रह सकता है।

जो ईश्वरकी पूजा नहीं करते, परोपकार भी नहीं करते; जो केवल इन्द्रिय-सुख-भोगमें जीवन व्यतीत करते हैं, वे लोग न तो देवयान पथसे जाते हैं और न पितृयाण पथसे । वे कीट-पतङ्ग होकर यहीं बारंबार जन्मते-मरते रहते हैं।

जो लोग अधिक पाप करते हैं, वे मृत्युके बाद नरकमें जाते हैं। नरकोंका वर्णन पुराणोंमें मिलता है । पापोंके तारतम्यके अनुसार नरकमें कम या अधिक यन्त्रणा भोगनी पड़ती है तथा कम या अधिक समयतक रहना पड़ता है। किंतु किसीको भी नरकमें सदा नहीं रहना पड़ता । नरकमें दुःख-भोगके द्वारा पाप-क्षय हो जानेपर पापी पुनः मनुष्यदेहको प्राप्त होकर तथा सत्-जीवन यापन करके उन्नति प्राप्त करनेका सुअवसर पाता है । ईसाई-धर्मकी अनन्त स्वर्ग तथा अनन्त नरककी कल्पना युक्तिपूर्ण नहीं है। पुनर्जन्म माने बिना इस प्रकारकी कल्पना अनिवार्य हो जाती है। विशेषरूपसे ईसाई-मतकी यह कल्पना कि जो लोग यीशु खीष्टमें (ईसामें) विश्वास करेंगे, उन्हें अनन्त स्वर्ग मिलेगा और जो विश्वास नहीं करेंगे, उनको अनन्त नरक मिलेगा—अत्यन्त असंतोषप्रद है। हिंदूधर्मका सिद्धान्त यह है कि विश्वास चाहे जिसमें करो, जो आदमी सत्कर्म करेगा, उसको स्वर्ग मिलेगा और जो असत्कर्म करेगा, उसको नरक-वास करना पड़ेगा तथा कर्मके गुरुत्वके अनुसार स्वर्ग या नरकमें अल्प या दीर्घकालतक रहना पड़ेगा—यह सिद्धान्त पूर्णतया युक्तियुक्त है । ईसाई और मुसल्मानोंके धर्मकी एक और असंतोषप्रद कल्पना यह है कि 'मृत्युके बाद आत्मा देहके साथ कब्रमें रहेगी। प्रलयके शेष दिन ईशु बाँसुरी बजायेंगे और उसे सुनकर सब आत्माएँ अपने-अपने देहके साथ कब्रसे उठकर आयेंगी।' हिंदूधर्मका सिद्धान्त यह है कि 'मृत्युके बाद इस देहके साथ आत्माका सम्बन्ध नहीं रहता, इसलिये जहाँतक हो सके, शीघ्र देहको अग्निसे दग्ध कर देना चाहिये । श्राद्धके समय जो अन्न-पान आदि निवेदित होते हैं, वे मन्त्र और श्रद्धाके प्रभावसे परलोकवासी आत्माके पास पहुँचते हैं, जैसे पोस्ट आफिसमें रुपया जमा करके उसे उद्दिष्ट व्यक्तिके पास भेजा जाता है। वह यदि पुण्यवान् व्यक्ति होता है तो वह श्राद्धके समय वहाँ अवस्थान करता है। यदि उसे पुनर्जन्मकी प्राप्ति हो गयी होती है तो वह मनुष्य या पशु—चाहे जिस योनिमें जन्म ग्रहण करे, तदुपयोगी अन्नके रूपमें श्राद्धका अन्न उसके पास पहुँच जायगा।'

किस पुण्यसे कौनसे श्रेष्ठ फल या सुखकी प्राप्ति होती है

दानाद् भोगमवाप्नोति सौख्यं तीर्थस्य सेवया। सुभाषणात् मृतो यस्तु विद्वांश्च धर्मवित्तमः॥

(गरुडपुराण—२। १४। १८)

दान करनेवाला प्राणी परलोक एवं (अगले) पुनर्जन्ममें अनेक भोगोंको प्राप्त करता है, तीर्थसेवन करनेवाला प्राणी सुख पाता है और मीठा तथा विचारकर सुखदायक वाणी बोलनेवाला मनुष्य अगले जन्मोंमें बड़ा विद्वान् एवं धर्मके रहस्योंको जाननेवाला होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोक, पुनर्जन्म और मोक्षतत्त्व

(लेखक—डा० श्रीनीरजाकान्त चौधरी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, पी-एच्० डी०)

गतागतेन श्रान्तोऽस्मि दीर्घसंसारवर्त्मसु ।
पुनर्नागन्तुमिच्छामि त्राहि मां मधुसूदन ॥

(श्रीशुकविरचित द्वादशाक्षरस्तोत्र)

'इस दीर्घ संसार-पथमें आवागमन करते-करते (बारंबार जन्म-मृत्युको प्राप्त करते) मैं परिश्रान्त हो गया हूँ। अब फिर यहाँ आना नहीं चाहता। हे मधुसूदन ! मेरी रक्षा करो।'

मनुष्य मरकर कहाँ जाता है ? क्या परलोक है ? इस रहस्यका उत्तर पानेके लिये आदिकालसे सब देशोंमें मनुष्य चेष्टा करता आ रहा है। पर्देके पीछे क्या है, यह जाननेके लिये प्राणपणसे अनवरत प्रयास कर रहा है। स्थानाभावके कारण संक्षेपमें परलोकवासी आत्माके दर्शनके विषयमें कुछ सत्य घटनाएँ यहाँ लिखी जाती हैं।

परलोक सत्य है, विदेही आत्माका दर्शन

(१) १९३३ ई०के ८ अगस्तको अपराह्न-कालमें मध्यप्रदेश नरसिंहपुरमें बंगलेके बरामदेमें खाटपर सोयी हुई अपनी बीमार पत्नीके पास मैं बैठा था। अचानक वह चिल्ला उठी—'भगवान्‌को पुकारो, वे मेरी रक्षा करें।' पश्चात् उसने बतलाया कि 'बरामदेके ठीक बगलमें आँगनमें खड़े-खड़े तीन ब्राह्मण न जाने क्या कह रहे थे। आकृति देखनेसे जान पड़ता था कि वे मेरे परलोकवासी तीनों जेठ थे।' ठीक एक महीनेके बाद ८ सितम्बरको मेरी पत्नीका स्वर्गवास हो गया। जान पड़ता है वे लोग उसको इस विषयमें कुछ बतलानेकी चेष्टा कर रहे थे। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि वे लोग मेरे दृष्टिगोचर नहीं हुए थे।

(२) १९४७ ई०के जुलाई महीनेमें मेरे पुत्र श्री-प्रणवकान्त (२१ वर्ष) अपने मामाके घर बागछी जमशेरपुर (जिला नदिया, पश्चिम बंग) गाँवमें दो तल्लेपर मेरे बगलमें सो रहे थे। वे प्रतिदिन रातमें एक वृद्ध आदमीको देखते थे। उनके बड़े-बड़े केश और दाढ़ी-मूँछ थी। वे मसहरीके बगलमें घूमते रहते थे। वे अशरीरी आत्मा कलकत्ताके हमारे निवासस्थानमें भी इसके बाद इसी प्रकार कुछ दिनोंतक उनको दिखलायी देते रहे। परंतु मैं कुछ भी नहीं देख पाता था।

(३) मेरे परम मित्र रायबहादुर परलोकवासी मनोमोहन लङ्गर एक निष्ठावान् काश्मीरी ब्राह्मण थे। वे महाराजा प्रतापसिंहके समय काश्मीरके गवर्नर रहे। पश्चात् झालावाड़ राज्यके दीवान-पदपर रहे। तीर्थराज प्रयागमें १९५४ ई०में कुम्भके अवसरपर दिनमें उन्होंने अपनी परलोकगत पत्नीको अपने साथ संगममें स्नान करते देखा था। कुछ दिनों बाद इन्दौरमें उन्होंने यह बात मुझसे कही थी।

(४) श्रीयुत श'.....एक उच्चपदस्थ रेल कर्मचारी हैं। पत्नीके परलोक-गमनके कुछ महीने बाद उन्होंने गया-धाममें अपनी पत्नीके नामसे पिण्डदान किया, परंतु उनके मनमें यह खटका बना रहा कि सपिण्डीकरणके पूर्व इस प्रकारका पिण्डदान कोई फल प्रदान करेगा या नहीं। कलकत्ता लौटते समय वे ट्रेनमें प्रथम श्रेणीके डिब्बेमें सोये हुए थे। अचानक मानो किसीके जगानेपर देखते क्या हैं कि उनकी स्त्री, जिस वेषमें मृत्यु हुई थी, ठीक उसी रूपमें सामने खड़ी है और 'तुम चिन्ता मत करो, मेरा उद्धार हो गया है'—कहकर अन्तर्धान हो गयी !

यमदूत, यम और यमलोक सत्य है

यमदूत-दर्शन। मनुष्य मरनेके बाद फिर शरीरमें लौटकर कहते सुना गया है कि 'यमलोकमें मुझे ले गये थे, यमराजने कहा कि भूल हो गयी है और मुझे लौटा दिया है।' इस प्रकारकी कई सत्य घटनाएँ लेखकको ज्ञात हैं। विस्तार-भयसे उनका वर्णन नहीं किया जाता है।

परलोक सत्य है। यमराज भी हैं और यमलोक भी है, इसमें संदेह नहीं है। कठोपनिषद्‌में नचिकेता और यमराजके साक्षात्कारका वर्णन है। ऋग्वेदमें यम वैवस्वतके बहुत-से मन्त्र हैं। ब्रह्मसूत्र (३ । १ । १३–१६) में यम, यमलोक, यमयातना तथा रौरव आदि सात नरकोंका उल्लेख है। यहाँतक कि श्रीशंकराचार्यने भी अपने भाष्यमें चित्रगुप्त आदि यमके कर्मचारीके विषयमें स्मृति-पुराण आदिकी कथाओंको सत्य माना है।

जन्मान्तर और कर्मफलवाद

जन्मान्तरवाद वैदिक सनातनधर्मका मूल सिद्धान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। जीव अपने किये हुए कर्म-प्रारब्धके अनुसार इस जन्ममें सुख-दुःख भोग करता है। मृत्युके बाद पाप और पुण्यके वश नरककी यन्त्रणा या स्वर्गका सुख भोगनेके पश्चात् संचित (अवशिष्ट) कर्मफलके भोगके लिये फिर संसारमें आकर विभिन्न योनियोंमें जन्म लेता है। जड देहमें बारंबार रोग-शोक, जरा-मृत्यु, सुख-दुःखकी शृङ्खलामें आबद्ध होकर आवागमनके चक्रमें भटका करता है। इससे त्राण पानेका एकमात्र उपाय है—वर्णाश्रम-धर्मको मानकर अपने-अपने अधिकारके अनुसार निष्कामभावसे शास्त्र-निर्दिष्ट मार्गसे नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्मोंको प्रवाह-पतितवत् करते जाना। इससे पाप-पुण्य, सुकृत-दुष्कृतका अतिक्रमण करके, भगवद्-दर्शन प्राप्त कर जीव अमृतका अधिकारी हो जाता है। संसारके और किसी धर्ममें क्रम-मुक्तिका इस प्रकारका उपाय नहीं है। भारत और वर्णाश्रमी भारती-जातिसे आबाद द्वीपों तथा बृहत्तर भारतको छोड़कर अन्य किसी भी देशमें मोक्षकी कल्पना भी नहीं थी। हम इस लेखमें केवल सेमिटिक मतकी संक्षेपमें आलोचना करेंगे।

सेमिटिक एकजन्मवाद

सेमिटिक (Semitic) अर्थात् यहूदी, ईसाई और मुस्लिम मतकी कुछ विशेषताएँ यहाँ संक्षेपमें दिखलायी जाती हैं।

(१) यहूदी पुराण (Torah और Old Testament) या शास्त्रमें परलोकका कोई उल्लेख नहीं है। इस जन्मके कृतकर्मोंका फलभोग इसी जन्ममें होता है।

(२) मनुष्यजातिके पुरुषके सिवा अन्य किसी जीवकी, यहाँतक कि नारीकी भी आत्मा नहीं होती। मनुष्यका इस लोकमें केवल एक बार जन्म होता है। सर्वव्यापी ब्रह्मकी कोई कल्पना भी नहीं है। यहूदीके 'यहोवा' (Yahveh or Jehovah), ईसाईके 'गाड' (God) और मुस्लिमके 'अल्लाह' (Allah) 'ईश्वर' हैं। वे पुरुष हैं और स्वर्गमें रहते हैं। उनका अवतार नहीं होता। स्वर्गमें और कोई देवता नहीं और न कोई देवी है।

(३) यहूदी-मतसे ईश्वरके प्रेरित दूत मसीहा (Messiah) भविष्यमें पृथ्वीपर आवेंगे। ईसाइयोंके मतसे वह मसीहा ईसा (Jesus) हैं। वे ईश्वरके पुत्र हैं और पृथ्वीपर अवतीर्ण हो गये हैं। मुस्लिमके मतसे महम्मद ईश्वरके दूत (अल्लाहके पैगम्बर) हैं।

ईसाई-समाजमें, रोमन कैथलिक और पूर्वदेशीय ग्रीक चर्च आदिमें ईसाकी कुमारी माता (Virgin) मेरी (Mary) की उपासना होती है। परंतु 'मेरी' ईश्वरकी महाशक्ति या महामाया नहीं हैं। उनकी पूजा भी पहले नहीं थी[1]। पाँचवीं शताब्दीमें मिश्रके आइसिस् (Isis) और ग्रीक आर्त्तेमिस् (Artemis) आदि देवीकी उपासनाके अनुकरणमें पहले-पहल प्रवर्त्तित हुई। प्रोटेस्टैण्ट और दूसरे ईसाई देवीकी उपासना नहीं करते।[2]

मुस्लिम-स्वर्गमें कोई देवी नहीं है। जान पड़ता है कि किसी स्त्रीको वहाँ प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है।

(४) ईसाई और मुस्लिमके मतसे आत्मा और देहका सम्बन्ध प्रायः अविच्छेद्य है। इसी कारण मिश्रदेशके 'ममी'के अनुकरणमें मृतदेहको दाह न करके शव-देहके उपयुक्त आकारकी शव-पेटिका कफन (Coffin) में सुरक्षित कर

1. The council of Ephesus, in that year (431) sanctioned or Mary the title 'Mother of God.' Gradually the tenderest features of Asterte, bybele, Artemis, Diana and Isis were gathered together in the worship of Mary. (Dr. Durant, The Age of Faith, P. P. 745- 46.)

'Statues of Horus and Isis were renamed Jesus and Mary.' (Ibid. P. 75)

एफिसस् नगरके धर्मपरिषद्में ४३१ ई० में मेरीके लिये 'ईश्वरकी जननी' उपाधि अनुमोदित हुई थी। क्रमशः आस्तर्त, सिबिलि, आर्तेमिस, दायना और आइसिस देवीके कोमलतम वैशिष्ट्य मेरीकी उपासनाके अङ्गीभूत हो गये।' 'होरस और आइसिसकी प्रतिमाओंको ईसा और मेरी नवीन नाम दिया गया।'

The identification of Mary with Isis, and her elevation to a rank quasi- divine, × × × was also a very natural step."

—(H. G. Wells, The Outline of History, p. p. 368–69)

'आइसिस देवीके साथ मेरीका एकीकरण तथा उनका प्रायः देवीकी मर्यादामें उन्नयन भी एक बहुत ही स्वाभाविक परिणति थी।'

2. "Note the absence of mother goddesses in such strongly patriarchal societies as Judea, Islam and Protestant Christendom." (Durant, "Life of Greece" p. 178, F. n.)

'यहूदी, इस्लाम और प्रोटेस्टैण्ट ईसाइयोंके सदृश कठोर पितृ-उपासक समाजमें मातृरूपिणी देवीका अभाव लक्ष्य करनेका विषय है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे भूमिमें दफना देते हैं। ये देह सुदूर भविष्यत् कालमें अन्तिम विचारके दिन (Last day of Judgment) ईश्वरके सिंहासनके दोनों ओर उठकर खड़े हो जायँगे। दाहिनी ओर रहेंगे धार्मिकलोग और बाँयीं ओर पापीलोग खड़े होंगे।

(५) एकमात्र इसी जन्मके कर्मफलसे पुण्यात्माओंको अनन्त कालतक स्वर्ग और पापात्माओंको अनन्त कालतक नरक भोगना पड़ेगा। जो लोग ईसाई या मुसल्मान नहीं हैं, वे लोग यथाक्रमसे ईसाई और मुस्लिम दर्शनके अनुसार, अवश्य ही अक्षय नरकाग्निमें दग्ध होंगे। जैसे बुतपरस्त वर्णाश्रमी हिंदू, चाहे वह कितना ही भला आदमी क्यों न हो, उसके लिये निखालिस नित्यस्थायी नरकभोग अनिवार्य है।

मुश्किल यह है कि रोमन कैथलिक लोग समझते हैं कि प्रोटेस्टैण्ट आदि ईसाई भी नरकमें गिरेंगे, केवल वे ही अनन्त स्वर्गमें जायँगे। प्रोटेस्टैण्ट भी इसी प्रकार समझते हैं कि रोमन कैथलिक नरकमें जायँगे। मुस्लिम शिया-सुन्नी आदिकी भी ठीक इसी प्रकारकी अवस्था है।

(६) इन सभी धर्मोंके दर्शनमें समग्र जीव-जगत् (तथा नारी भी) पुरुषके भोगके उपादान मात्र हैं। जब पुरुष (नर) के सिवा और किसीमें आत्मा ही नहीं है, तब जिस प्रकार भी हो, जिस किसी प्राणीकी हत्या क्यों न की जाय, उस जीवहिंसामें कोई पाप न होगा। जान पड़ता है कि इन मतोंमें अहिंसाके लिये कोई स्थान ही नहीं है।

केवल एक जन्मके पाप-पुण्य तथा धार्मिक विश्वासके फलसे अनन्त नरक या अनन्त स्वर्गका भोग एक भ्रान्त सिद्धान्त है; यह तर्कयुक्त नहीं है। फलतः सेमिटिक धर्मोंके दर्शन अत्यन्त दुर्बल हैं। पाश्चात्त्य देशोंमें भी बहुत-से लोग अब दूसरे धर्मोंमें विश्वास करने लगे हैं। श्रीमती एनी बेसेण्ट, सुनते हैं अपनी शिशु-कन्याकी अकाल-मृत्युका कोई संतोषजनक उत्तर ईसाई-धर्ममें न पाकर, हिंदूधर्मकी ओर आकृष्ट हुई थीं। राइडर हग्गार्ड (Rider Haggard) और मोरी करेली (Morie Corelie) के उपन्यासोंमें पुनर्जन्मकी कहानी है। एक आधुनिक उपन्यासके निम्न अवतरणसे ज्ञात होता है कि ईसाईलोगोंमें भी तर्क जाग रहा है।

'कोई बुद्धिमान् आदमी ईसाइयोंके ईश्वरमें विश्वास नहीं कर सकता। सामूहिक रूपमें मरे हुए लोगोंका उठ खड़ा होना और उसके बाद इन्साफके फलस्वरूप अनन्त सुख और अनन्त कालके लिये यातनाका भोग एक युक्तिहीन प्रस्ताव है। जो जन्मसे ही जडबुद्धि हैं या अपराधी माता-पिताकी संतान हैं, उन अभागे लोगोंको कुत्सित जीवन-यापनके लिये दण्डविधान एक प्रहसनमात्र होगा। उनके जीवनमें क्या सम्भावना थी ? और जो लोग किशोरावस्थामें ही मर जाते हैं, वे क्या अपने कर्मोंके लिये पूर्ण उत्तरदायी हैं ? जिस ईश्वरने मानवजातिको इस प्रकार अनर्गल शर्त्तपर जन्म दिया है, उसके न्यायालयमें लाये जानेपर उसके ऊपर हमलोग घृणाके सिवा और कुछ नहीं अनुभव करते। अतएव ईसाईकी ईश्वरके अस्तित्वकी कहानी ही मिथ्या है।'[3]

(७) सेमिटिक धर्मग्रन्थोंके अनुसार अनुमानतः ४००४ ई० पूर्व, अर्थात् केवल छः हजार वर्ष पहले जगत्की सृष्टि हुई थी। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि आधुनिक विज्ञानकी भूतत्त्व, नृतत्त्व आदिकी गवेषणाके द्वारा यह प्रमाणित हो रहा है कि यह सिद्धान्त बिल्कुल भ्रान्त है और सृष्टि कोटि-कोटि वर्ष पूर्व हो चुकी है।

गीतामें जन्मान्तर-रहस्य

वैदिक धर्मशास्त्रका सार और मध्यमणिस्वरूप श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीभगवान्ने बारंबार पुनर्जन्म, उससे

3. "No sensible person can believe in the Christian God, or for that matter, any personal God. The very conception of a universal resurrection followed by a judgment, awarding all of us either perpetual bliss or consigning us to eternal torment, on our conduct during one short span of life, is absurd. One has only to think of those who are born half-witted or as the children of criminal parents. What chance in life have they ? To condemn such unfortunates because they have led evil lives would be a travesty of justice. And what of young people who die when still in their teens ? Are they to be held fully responsible for their actions ? Were you or I brought before such a tribunal, we should feel only contempt for a God who had given life to men on such arbitrary terms; so the teaching that he exists must be false."
(Dennis Wheatlley, "They used dark forces." p. 474)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोक्ष तथा अवतारवादके सिद्धान्तकी घोषणा स्पष्टाक्षरोंमें की है। सूत्ररूपमें यहाँ उसमेंसे कुछ दिया जाता है—

(१) **जन्मान्तर**—जन्म लिये हुए व्यक्तिकी मृत्यु तथा मृत व्यक्तिका जन्म निश्चित है।

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।'
(गीता २। २७)

'देहाभिमानी जीवका जैसे इस एक स्थूलदेहमें शैशव, यौवन और वार्द्धक्य होता है—**देहिनोऽस्मिन्**' इत्यादि (गीता २। १३), 'मनुष्य जैसे जीर्ण वस्त्र त्याग करके नवीन वस्त्र ग्रहण करता है। देहान्तरकी प्राप्ति भी वैसे ही होती है—**वासांसि जीर्णानि**' इत्यादि (गीता २। २२)। 'हमलोगोंके बहुत-से जन्म हो चुके हैं—**बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि**' इत्यादि (गीता ४। ५)।

(२) **परलोक**—'मृत्युके समय जो कुछ चिन्तन करता हुआ मनुष्य देह त्याग करता है, परलोक भी तदनुसार ही प्राप्त होता है।' (**यं यं वापि**—इत्यादि गीता ८। ६) 'मृत्युके समय सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण जिसकी उस समय वृद्धि होगी, उसीके अनुसार यथाक्रम उत्तम ऊर्ध्वलोक, कर्मासक्त मनुष्यलोक अथवा पशु-पक्षी आदिकी निम्न योनिमें जन्म होता है।' (**'यदा सत्त्वे**' इत्यादि गीता १८। १४–१६)। 'देवताओंकी पूजा करनेवाले अनित्य देवताओंको, पितरोंकी पूजा करनेवाले पितरोंको, भूतोंके उपासक भूतोंको और मेरे उपासक अक्षय आनन्दस्वरूप मुझको प्राप्त होते हैं।' (**'यान्ति देवव्रताः**' इत्यादि, गीता ९। २५)। 'द्वेषकारी, क्रूर, नराधम, अशुभकर्मा लोगोंको जन्म-मृत्यु-पथमें आसुरी अर्थात् व्याघ्र-सर्प आदि और कृमि-कीटादि योनियोंमें अनवरत मैं डालता हूँ।' (**'तानहं द्विषतः**' इत्यादि गीता १३। १९-२०)।

'वेदोक्त क्रियापरायण लोग यज्ञद्वारा निष्पाप होकर स्वर्गमें जाते हैं। विपुल भोगके पश्चात् पुण्य-क्षीण होनेपर पुनः मर्त्यलोकमें पवित्र और धनवान् या योगीके कुलमें जन्म-ग्रहण करते हैं।' (**'त्रैविद्या मां**' इत्यादि गीता ९। २०-२१ तथा **'योगिनां कुले०**' इत्यादि गीता ६। ४१–४२)

(३) **मुक्ति**—'अनेक जन्मकी योग-साधनासे सिद्ध, निष्पाप, ज्ञानवान् पुरुष मुझको अर्थात् मेरी पराभक्तिको प्राप्त होते हैं।' (**'अनेकजन्मसंसिद्धः**'—गीता ६। ४५); (**'बहूनां जन्मनाम्**' गीता ७। १९)। 'शुक्ल और कृष्ण—दो गति हैं, एकसे संसारमें लौटना नहीं होता, दूसरेसे लौटना पड़ता है' (**'यत्र काले**' इत्यादि, गीता ८। २३-२४)। 'दैवी और आसुरी सम्पत्तिमें प्रथम मोक्षका हेतु है और दूसरी संसार-बन्धनका हेतु है।' (**'दैवी**' इत्यादि, गीता १६। ५)। 'मनीषी लोग कर्मजन्य फलका त्याग करके जन्म-बन्धसे मुक्त होकर अनामय मोक्षपदको प्राप्त होते हैं।' (**'कर्मजं**' इत्यादि, गीता २। ५१)।

(४) **अवतार**—'मैं जन्मरहित होकर भी साधुवृन्दकी रक्षा और पापीलोगोंका विनाश करनेके लिये अपनी मायाके द्वारा धर्मकी संस्थापनाके लिये युग-युगमें अवतीर्ण होता हूँ।' (गीता ४। ६–८)।

पाश्चात्यमत—ऋग्वेदमें जन्मान्तर और मोक्षवाद नहीं है

बहुत-से पाश्चात्य लोगोंका मत है कि ऋग्वेदमें जन्मान्तरकी और मोक्षकी बात नहीं है। यह बात परवर्ती युगमें हिंदू-धर्म-दर्शनमें प्रविष्ट की गयी है।

वेबर (Weber १८५१) कहते हैं कि यह बात पहले-पहल छान्दोग्य उपनिषद्में मिलती है। बृहदारण्यक उपनिषद्में भी तदनुरूप उल्लेख है।

मैकडोनेल (Macdonell १९००) साहबने दुःख प्रकट किया है कि 'इस मतवादके ग्रहण करनेका फल यह हुआ है कि वैदिक आशावाद, जो पहले स्वर्गमें चिरस्थायी सुखकी आशा करता था, वह एक मृत्युसे दूसरी मृत्युके बीच निःसीम दुःखमय जीवन-प्रवाहके एक विषादमय दृश्यमें परिवर्तित हो गया। × × × ऋग्वेदमें इस विषयका (जन्मान्तरका) कोई संकेत भी नहीं मिलता। केवल अन्तिम मण्डलमें दो स्थलोंमें मृत आत्माके जल या उद्भिज्जमें जानेकी बात पायी जाती है। × × × सम्भवतः आर्य औपनिवेशिक लोगोंने भारतके आदिम निवासियोंसे इस विषयकी प्रथम शिक्षा प्राप्त की होगी। मोक्षके तत्त्व सभी दर्शनोंमें हैं। मोक्षका सिद्धान्त देहान्तर-प्राप्तिके सिद्धान्तके समान ही प्राचीन है। मोक्षसे जन्मान्तरकी समाप्ति हो जाती है[4]।

4. By the acceptance of this doctrine, the Vedic optimism, which looked forward to a life of eternal happiness in heaven, was transformed into the gloomy prospect of an interminable

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विन्टरनिट्ज (Winternitz १९२०) के मतसे 'आत्माके देहान्तर तथा अनन्तकालव्यापी जन्म-जन्मान्तरकी धारणा दुःखमय है····· इस विश्वासने परवर्ती कालके समस्त दार्शनिक चिन्तनको प्रभावित किया है। तथापि ऋग्वेदमें इसका कोई चिह्न नहीं मिलता[5]।'

मिशनरी श्रीफर्कुहर साहेबके मतसे 'वेदमन्त्रोंमें देहान्तर-प्राप्तिका कोई सन्धान नहीं है[6]।'

अपने देशके आधुनिक विद्वानोंमेंसे भी कुछ महानुभावोंने इनके सुरमें अपना सुर मिलानेमें कोई संकोच नहीं किया। वरं यहाँतक कह दिया कि 'पुनर्जन्मकी बातका बीज आर्यलोग जो आदिम निवासियोंके सम्पर्कमें आये, उनके प्रभावसे उद्भूत हुआ है।' अथवा 'पुनर्जन्मवाद असभ्य जाति या द्राविड़ी सभ्यतासे लिया गया है।'

परंतु उन लोगोंका यह मत सर्वथा भ्रान्त है। हम प्रमाणित करेंगे कि ऋग्वेदमें केवल जन्मान्तरकी बात ही नहीं, बल्कि देहत्यागके बाद आत्माकी परलोकमें गति तथा पुनः इहलोकमें जन्म लेनेकी बात एवं मोक्षवाद भी ऋग्वेदमें अभिव्यक्त है। वेद समस्त ज्ञानके मूलस्रोत हैं। जो ऋग्वेदसंहितामें नहीं है, वह सनातन वैदिक धर्ममें नहीं हो सकता। आत्माकी अमरता, जन्मान्तर, मुक्ति आदिके विषयमें जो मन्त्रभागमें बीजके रूपमें—सूत्रके आकारमें हैं, वही क्रमशः ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्में विकसित हैं और पश्चात् पुराण, इतिहास और स्मृति-ग्रन्थोंमें विस्तृत रूपमें उपबृंहित हुए हैं। स्थानाभावसे केवल कुछ ही ऋक्-मन्त्रोंका उल्लेख किया जाता है।

(१) **'गर्भे नु सन्'**—इत्यादि ४। २७। १—यह 'अस्य वामीय' सूक्तका प्रथम मन्त्र है। वामदेव ऋषिने मातृगर्भमें रहते समय ही मन्त्रोंका दर्शन किया था।

सायणभाष्यका भावार्थ—'मैंने मातृगर्भमें रहते समय ही यह उपलब्ध किया है कि इन्द्रादि सारे देवता उसी एक परमात्मासे उत्पन्न हैं। ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिके पूर्व विभिन्न जन्मोंमें मैं लौहमयपुरके समान दृढ़ शत-शत शरीरोंमें आबद्ध रहा। इस कारण मैं शरीरके अतिरिक्त आत्माको नहीं जान पाया। अब आत्माको अनावरण जानकर मैं इस देहसे श्येन पक्षीके समान वेगसे निकल गया हूँ।'

'पुरुषो ह वा अयमादितो गर्भो भवति।'

(ऐतरेय ब्राह्मण २।२५)

यहाँ इन सब मन्त्रोंका और भी विश्लेषण है। जन्मान्तर-तत्त्व और आत्मज्ञानके द्वारा मुक्तिकी बात स्पष्टरूपसे वामदेव-दृष्ट मन्त्रोंमें पायी जाती है।

२–(क) **'त इन्निण्यं हृदयस्य'** इत्यादि।

(ऋ० ७। ३३। ९)

(ख) **'विद्युतो ज्योतिः'** इत्यादि।

(ऋ० ७। ३३। १०)

प्रजापतिके मानसपुत्र वसिष्ठ ऋषि निमि प्रजाके शापसे देहान्तको प्राप्त हुए। दूसरे जन्ममें मित्रावरुणसे कुम्भयोनि महर्षि अगस्त्यके साथ अप्सरालोकमें उन्होंने पुनः जन्म ग्रहण किया। ऊपरके दो मन्त्र उनके तथा उनके पुत्रोंके द्वारा दृष्ट हैं। इस जन्मान्तरका वर्णन उनमें है। श्रीशंकराचार्यने अपने ब्रह्मसूत्र-भाष्य (३। ३। ३२) में इस घटनाका उल्लेख किया है।

(३) **'संगच्छस्व पितृभिः'** इत्यादि। (ऋ० १०। १४। ८)

यह मन्त्र पितृमेधमें विनियुक्त होता है। परलोकगत पिताके उद्देश्यसे पुत्र कहता है—'आप ऊर्ध्वलोकमें पितरों तथा यमके साथ मिलें। इष्टापूर्त्त प्रभृति कर्मोंके फलसे

series of miserable existences leading from one death to another. x x x The Rgveda contains no trace of it beyond a couple of passages in the last book, which speak of the soul of a dead man as going to waters or plants. x x x It seems more probable that the Aryan settlers received the first impulse in this direction from the aboriginal inhabitants of India. Common to all the systems of Philosophy and as old as that of transmigration is the doctrine of salvation which put an end to transmigration," (Macdonell, "History of Sanskrit Literature" pp. 388—9)

5. "Of the dismal belief in the transmigration of the soul and eternal rebirths—the belief which controls the whole philosophical thoughts of Indians in later centuries—there is in the Rgveda as yet no trace to be found." (Winternitz, "History of Indian Literature." P. 68)

6. There is no trace of transmigration in the hymns of the Vedas. (Farquhar, "An Outline of the Religions and Literature of India" Page 33)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको उत्तम सुख प्राप्त हो। स्वर्गभोगके बाद आप पाप (अवद्य) त्याग करके पुनः पृथिवीपर आकर उत्तम देह धारण करें। अर्थात् जन्म ग्रहण करें।'

(४) **'सूर्यं चक्षुर्गच्छतु'** इत्यादि। (ऋ० १०। १६। ३)

शवदाहके बाद यह मन्त्र पढ़ा जाता है। जन्मान्तर और पुनर्जन्मकी बात इसमें स्पष्टरूपमें कही गयी है। 'परलोकगत आत्माने अपने कर्मोंके द्वारा जिस स्वर्गादि लोकको प्राप्त किया है, वहाँ वह गमन करे। उसके नेत्र सूर्यमें गमन करें। इसके बाद जल और ओषधि अथवा शस्यके माध्यमसे नये माता-पिताके शरीरमें आत्मा प्रवेश करके नये शरीरमें प्रतिष्ठित हो जाय।'

मोक्षका प्रसङ्ग

(५) **'त्र्यम्बकं यजामहे'** इत्यादि। (ऋ० ७।५९।१२)

इस मन्त्रसे महादेवकी पूजा होती है। हलायुधकृत 'ब्राह्मणसर्वस्व' में इसकी व्याख्या है। 'उर्वारुक (ककड़ी) जैसे पकनेपर अपने आप वृंतसे टूट पड़ती है, उसी प्रकार हम शिवजीकी उपासनाके द्वारा श्रेय प्राप्त करें तथा संसारके बन्धन अर्थात् जन्म-मृत्युके पाशसे मुक्त होकर अमृतत्व प्राप्त करें।'

देवयान और पितृयाण

श्रीभगवान्‌ने गीताके अष्टम अध्यायमें 'अक्षर ब्रह्मयोग'का उपसंहार करते हुए कुछ श्लोकों (८। २३–२८) में जन्म-मृत्युके पथसे अनावृत्ति प्राप्त करनेके उपायको विशद रूपसे बतलाया है।

(१) जो लोग ब्रह्ममें संलीन हैं वे तत्काल मुक्ति प्राप्त करते हैं। उनके प्राणका उत्क्रमण नहीं होता—

न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति। (बृहदा० ४। ४। ६)

(२) देवयान, देवपथ, ब्रह्मपथ, शुक्लगति तथा अर्चि आदि मार्ग—दहर विद्याके अभ्यासी जो सगुण ब्रह्मके उपासक हैं, जिनकी चित्तशुद्धि हो गयी है, कूटस्थ त्रिकोण-मण्डलमें या सहस्रारमें धारणा करते हैं। किंतु 'मैं ब्रह्म हूँ'—इस प्रकारकी अपरोक्षानुभूति नहीं हुई है, उनकी मृत्युके समय जब प्राण नाभिसे उठकर हृदयमें पहुँचता है, तब एक ज्योति प्रकाशित होती है और प्राण सुषुम्णा नाड़ीमें प्रवेश करके सूर्य-रश्मिकी सहायतासे ब्रह्मरन्ध्रसे होकर ऊर्ध्व गतिको प्राप्त होता है। अर्चिः आदि मार्ग अग्नि और ज्योतिका मार्ग है। क्रमशः अर्चिःके अभिमानी, दिवसके अधिष्ठातृ, आपूर्यमाण पथ (शुक्ल पथ), उत्तरायण तथा संवत्सरके अभिमानी देवता उसको ऊर्ध्वमें ले जाते हैं। क्रमशः सूर्य, चन्द्र, विद्युत् और अन्तमें ब्रह्माके मानस पुरुष उसको ब्रह्मलोकमें ले जाते हैं। ब्रह्माके साथ वह क्रममुक्तिका साधक लयको प्राप्त होता है। उसको आवर्तन नहीं करना पड़ता। (छान्दोग्य उप० ५। १०। १-२)

(३) पितृयाण या कृष्णगति—

'जो गृहस्थाश्रममें नित्य कर्म, इष्टापूर्त्त आदि, अग्निहोत्र आदि कर्म तथा वृक्ष, कूप, वापी, तडाग आदिकी प्रतिष्ठा करते हैं; किंतु ज्ञान-प्राप्तिकी चेष्टा नहीं करते अथवा पञ्चाग्नि विद्याको नहीं जानते, वे मृत्युके बाद पितृयाण मार्गसे गमन करते हैं। क्रमशः धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायनके छः मास, संवत्सर आदिके अभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं। पश्चात् पितृलोक, वहाँसे आकाश, चन्द्रमा (ब्राह्मणके राजा सोम) को प्राप्त होते हैं। चन्द्रमण्डलमें वास करके, जबतक कर्म क्षीण नहीं होता, तबतक देवगणके साथ क्रीड़ा करते हैं।

'पश्चात् इसी पथसे उनका पृथ्वीपर पुनरावर्तन होता है। चन्द्रमण्डलसे क्रमशः आकाशमें, वायुमें, धूममें, अभ्रमें, मेघमें, वृष्टिके साथ भूमिमें गिरकर व्रीहि, यव, ओषधि, वनस्पतिमें प्रविष्ट होते हैं। व्रीहिसे बाहर निकलनेमें बहुत क्लेश होता है। शस्य या फलके साथ पुरुष या नर-पशु अथवा अन्य जीवमें प्रविष्ट होकर रेतःके साथ अनुरूप स्त्री-गर्भमें सिञ्चित होकर पुनः अपने जीव-देहको प्राप्त होते हैं।' (छान्दोग्य उप० ५। १०। ३–६)

'जो लोग संसारमें शुद्ध आचरण (रमणीयचरण) का अभ्यास करते हैं, वे शुभयोनिको प्राप्त होते हैं। वे ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य-कुलमें जन्म लेते हैं। जो लोग अशुद्ध आचरण (कपूयचरण) का अभ्यास करते हैं, वे अशुभ योनि—कूकर, शूकर या चाण्डाल होकर जन्म लेते हैं।' (छा० ५। १०। ७)।

पितृयाण आवृत्तिका मार्ग है। बृहदारण्यक उपनिषद्‌में भी देवयान और पितृयाणके विषयमें विस्तृत विवरण है।

(४) 'जो लोग शास्त्रविहित कर्म बिल्कुल करते ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं, व्यभिचार करते हैं, जब जो इच्छा होती है, वही करते हैं, वे देवयान या पितृयाण, किसी भी पथसे नहीं जाते। वे लोग कीट-पतङ्ग, मच्छर-मक्खी होकर बारंबार जन्म लेते और मरते हैं। इसको तृतीय मार्ग कहा जाता है।' (छान्दो० ५।१०।८)

'य एतौ पन्थानौ न विदुस्ते कीटाः पतङ्गा यदिदं दन्दशूकम्॥

—(बृहदा० उप० ६ । २ । १६)

देवयान पथसे गमन करनेपर क्रममुक्ति और मोक्ष होता है। पितृयाण पथसे गमन करनेपर स्वर्ग-भोगके बाद संसारमें पुनः लौटना पड़ता है। पापी जीव उभय पथसे भ्रष्ट होकर कर्मफलके अनुसार नाना प्रकारकी नीच योनिमें बारंबार जन्म लेते और मरते हैं तथा असीम कष्ट भोगते हैं।

स्वर्णचोर, मद्यपायी ब्राह्मण, गुरुपत्नीगामी तथा ब्रह्महत्या करनेवाले 'महापातकी' कहलाते हैं, इनका पतन अवश्यम्भावी है। (छान्दोग्यो० ५ । १० । ६)

दहर और पञ्चाग्नि-विद्या

दहर-विद्या—'प्रणवावेशित ब्रह्मबुद्धि-विशिष्ट ध्यान योगीके हृदय-पुण्डरीकमें अथवा ललाटके बीचमें की जानेवाली ब्रह्मोपासना ही दहर-विद्याका विषय है। रजोगुण और तमोगुणको अभिभूत करके सर्वदा सत्त्वगुणमें रहनेका अभ्यास होनेपर आत्मा स्वस्वरूपमें अवस्थित होता है। दहर-विद्या इसी स्वरूपावस्थानका निर्देश करती है। ब्राह्मण जो गायत्री-उपासना करते हैं, वह वरणीय भर्ग भी ब्रह्मोपासना है।' (छान्दोग्य० ८ । १ । १)

पञ्चाग्नि-विद्या—द्युलोक, चन्द्र, पर्जन्य (मेघ), पृथिवी और योषित् (नारी)—ये पाँच अग्नि हैं। इनकी आहुति होती है—क्रमशः श्रद्धा, सोम, वृष्टि, अन्न और रेतः। यही जगच्चक्रका मूल रहस्य है। अग्निहोत्री गृहस्थको चिन्तन करना चाहिये कि वह द्युलोक आदि पञ्च अग्निका परिणाम है। अग्नि और आहुतिके साथ अपनी तन्मय भावना करके समझना चाहिये कि हम अग्निरूप हो गये हैं।

श्रीमान् मधुसूदन सरस्वतीके मतसे देवयानपथसे भी किसी-किसीका पुनरावर्तन होता है; क्योंकि 'आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोऽर्जुन।'—इत्यादि (गीता ८।१६); किंतु पितृयाणके सभी पथिकोंको लौटना पड़ेगा। इस पथमें क्रममुक्ति नहीं है।

दहरोपासक क्रमशः मुक्ति प्राप्त करते हैं; परंतु पञ्चाग्नि-विद्याके उपासकको भोगके पश्चात् लौटना पड़ता है। अतएव देवयान-पथ पितृयाणकी अपेक्षा उत्कृष्ट है।

आजन्म ब्रह्मचारी या वानप्रस्थ-संन्यासी जो हिरण्यगर्भ या सगुण ब्रह्मकी उपासना करते हैं, वे भी पञ्चाग्नि-विद्यामें अधिगत होनेपर देवयानपथसे गमन कर सकते हैं।

ब्रह्मसूत्र तृतीय अध्यायके प्रथम पादमें भगवान् बादरायण कृष्णद्वैपायनने पञ्चाग्निविद्या, पितृयाण और परजन्म आदिके विषयमें विशद आलोचना की है।

वेदमें देवयान और पितृयाणका उल्लेख

वेदके मन्त्रभागमें भी अनेक स्थलोंपर देवयान और पितृयाणका उल्लेख है। हम ऋक्संहितासे केवल दो मन्त्र प्रदर्शित करते हैं—

(१) 'द्वे सृती अशृणवम्' इत्यादि (ऋक्० १० । ८८ । १५)

यह प्रसिद्ध मन्त्र तैत्तिरीय ब्राह्मण (१ । ४ । २ । ९; २ । ६ । ३५), सांख्यायन ब्राह्मण (१४ । २ । १ । ४) तथा बृहदारण्यक उपनिषद् (६ । २ । २) में आम्नात हुआ है। गीतामें 'नैते सृती जानन्' (८ । २७) श्लोकमें भगवान्ने निःसंदेह इसी मन्त्रका निर्देश किया है (सायणभाष्य द्रष्टव्य है)। 'द्वे सृती' देवयान और पितृयाणसे—परलोक-गमन करनेवालोंके लिये ये दो महापथ ही विवक्षित हैं।

(२) 'वाजेवाजेऽवत' (ऋग्वेद ७ । ३८ । ८) मन्त्रमें देवयान-पथ (पथिभिर्देवयानैः) का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

ऋग्वेद-संहितामें पुनर्जन्म या मोक्षका उल्लेख नहीं है, पीछेसे असभ्य आदिवासियोंसे यह लिया गया है—यह सिद्धान्त पूर्णतः मिथ्या है और दुर्भावनासे प्रेरित है; क्योंकि जन्मके द्वारा वर्णभेद पुनर्जन्मवाद और कर्मफलकी मूलभित्तिपर अवलम्बित है।

शवदाह और विधवा-विवाह

अनादिकालसे भारतमें सनातन वैदिक धर्ममें मृत शरीरको दाह करनेकी प्रथा प्रचलित है। यह स्मृतियोंमें विहित दस प्रकारके संस्कारोंमें एक विशिष्ट संस्कार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परंतु पाश्चात्त्य अनुसंधानकारी लोग उपदेश करते हैं कि आदि-वैदिक युगमें शवदाह नहीं होता था। ईसाई या मुस्लिमके समान शवदेह भूमिमें दफना दिया जाता था।

स्थानाभावके कारण केवल दो-तीन ऋग्वेदके मन्त्रोंका हम उल्लेख करते हैं। इसके द्वारा प्रमाणित हो जायगा कि पाश्चात्त्य वेदधुरन्धर लोग भ्रान्त और मिथ्यावादी हैं। दाह-संस्कार ऋग्वेदीय युगकी प्रथा है—

(१) **'ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा'** इत्यादि (ऋ० १०।१५।१४)

आश्वलायन श्रौतसूत्र तथा सायणभाष्यके अनुसार चितापर शवदाह करनेके समय इस मन्त्रका पाठ करना पड़ता है। 'अग्निदग्धा'का अर्थ सुस्पष्ट है। 'अनग्निदग्धा'का अर्थ उन सब स्थितियोंके लिये प्रयुक्त हुआ है, जहाँ शवदाह नहीं हो पाता; जैसे युद्धमें, जलमें डूबनेपर या जानवरोंके द्वारा खाये जानेपर इत्यादि।

(२) **'मैनमग्ने वि दहो'** इत्यादि (ऋ० १०।१६।१)

इस मन्त्रमें अग्निदेवताको शवदेह सावधानीसे जलाकर परलोकगत आत्माको पितृगणके समीप पहुँचानेमें सहायता करनेके लिये कहा गया है।

(३) **'उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं'** इत्यादि (ऋ० १०।१८।८)

पहले उच्च वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि) की विधवाओंको चितापर पतिके शवके पार्श्वमें शयन करना पड़ता था, इस प्रकारकी विधि थी। अधिकांश स्थलमें सहमरण नहीं होता था। विधवा नारीका देवर, वृद्ध नौकर या अन्तेवासी (पड़ोसी या शिष्य) कोई भी यह मन्त्र पढ़कर चितापरसे उसका हाथ पकड़कर उठा लेते थे।[७]

परंतु मैकडानेल साहबने अपने कुछ पृष्ठोंकी आलोचनामें निश्चय कर डाला कि वैदिक युगमें दाह और समाधि दोनों प्रथा प्रचलित थी। विधवाको हाथ पकड़कर उसका नवीन पति, निस्संदेह मृत पुरुषका कोई भाई चितासे उठाता था। यह एक प्राचीन विवाह-प्रथा थी[८]।'

भारतीय आधुनिक समाज-सुधारक लोग तथा कुछ ऐतिहासिक लोग इस मन्त्रकी गलत व्याख्या करके चिल्ला-चिल्लाकर कहते हैं कि 'यह वैदिक युगमें विधवा-विवाहका प्रमाण है'।

किंतु सायणभाष्यमें आश्वलायन गृह्यसूत्रका जो उद्धरण है, उससे क्या यह समझा जायगा कि पतिकी मृत्युके पश्चात् ही देवर ही क्यों, वृद्ध दास, शिष्य, पड़ोसी या जो कोई मित्र होता उसके साथ विधवाका विवाह स्थिर हो जाता था? क्या वृद्धा स्त्रियोंका भी इसी प्रकार पुनर्विवाह होता था?

समस्त वैदिक शास्त्र या भारतके प्राचीन साहित्य या इतिहासमें विधवा-विवाहका या शवदेहकी समाधिका एक भी दृष्टान्त नहीं मिलता है। हिंदू नारीका, चाहे वह सधवा हो या विधवा, दूसरा पति ग्रहण करना, सोनेकी पथरौटी बनानेके समान एक असम्भव और असंगत बात कभी थी ही नहीं।

सौ वर्षकी बात है, ईश्वरचन्द्र विद्यासागरने स्मृतिके पुनर्भूविषयक श्लोकका गलत अर्थ करके विधवा-विवाहका कानून बनानेमें सहायता की थी। परंतु समाजने इसको नहीं माना, यह कहनेमें कोई अत्युक्ति न होगी।

विन्टरनिट्ज कहते हैं कि 'प्राचीन भारतमें सामान्यतः शवदाहकी प्रथा रहनेपर भी अति प्राचीन कालमें अन्य इण्डो-यूरोपीय जातिके समान सम्भवतः पृथ्वीमें समाधि (कब्र) दे दी जाती थी।[९]' ऋग्वेद (१०।१८।१०–१३)के मन्त्रमें समाधिका उल्लेख मिलता है।

---

७. सायण अपने भाष्यमें कहते हैं– सूत्रितं च—तामुत्थापयेद् देवरः। पतिस्थानीयोऽन्तेवासी जरद्दासो वा—उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकम्। (आश्वलायन गृह्यसूत्र ४।२।१८ सायणाचार्य)

8. 'Burial was practised as well as cremation by the Vedic Indians. The widow is called upon to rise from the pyre and take the hand of her new husband, doubtless a brother of the deceased in accordance with an ancient marriage custom.'
(Macdonell, "History of Sanskrit Literature' 125-6)

9. 'In ancient India, corpses were usually burnt, yet in the oldest times burial was probably the custom with the Indians, as with other Indo-European people.'
(Winternitz; History of Indian Literature, P. 84.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परंतु यथार्थतः ये मन्त्र शवदाहके बाद अस्थिचयन तथा मृत्तिकाके भीतर उसकी रक्षाविषयक हैं। पश्चात् किसी तीर्थ या पवित्र नदीमें उस अस्थिमय भस्मावशेषको विसर्जन करनेका नियम है। सनातनधर्ममें विश्वास न रखनेवाले कुछ नेताओंके लिये, साधारणतः बहुत अर्थव्यय करके आजकल भी ऐसा किया जाता है। भारतमें योगी-संन्यासी और शिशुके शरीरके सिवा और किसी भी शवकी अन्त्येष्टि दाह-संस्कारके बिना नहीं हो सकती।

श्राद्ध-तर्पण

देवताकी उपासनाके समान पितृकार्य भी सनातन वैदिक जातिका एक अति आवश्यक कर्त्तव्य-नित्यकर्म है—

'देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।'

(तैत्तिरीय उपनिषद् १। ११। २)

मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे नीर-क्षीरपूरक पिण्डदान, अशौचके अन्तमें एकोद्दिष्ट और पश्चात् वर्षभर प्रतितिथिमें मासिक श्राद्ध, वर्षके अन्तमें सपिण्डीकरण, पश्चात् वार्षिक श्राद्ध, नित्य तर्पण और नैमित्तिक पार्वण-वृद्धि-श्राद्धादि पितृकार्य न करनेसे प्रत्यवाय (दोष) होता है। पितरोंके तृप्त होनेपर वे भी अपने वंशजोंका मङ्गलसाधन करनेमें देवताओंके समान ही समर्थ हैं। देवकार्यकी भाँति ही पितृकार्य भी उत्तम फलप्रदायक है। वे चाहे जहाँ, जिस रूपमें हों, मन्त्र और तिल आदि उपकरणोंकी सहायतासे जल, मधु, चावल, अन्नादि तर्पण करनेसे पितरोंके पास पहुँचता है, इसमें संदेह नहीं।

दूसरे किसी देशमें, दूसरे किसी धर्मके लोग इस प्रकार पितृकार्य नहीं करते। दुःखकी बात है कि आधुनिक शिक्षा-दीक्षाके फलस्वरूप सनातनधर्मी समाजमें ही नित्य-तर्पण, वार्षिक श्राद्ध आदिके अनुष्ठान प्रायः लुप्त होते जा रहे हैं। सिक्ख, ब्राह्म, आर्यसमाजी आदि उपसम्प्रदायोंमें तो इस प्रकारके यथेच्छाचारसे मृतात्माओंकी ऊर्ध्वगति अवरुद्ध हो जाती है। श्राद्ध-शान्तिपाठ आदि प्रायः उठ ही गये हैं। आधुनिक कतिपय ब्राह्मण पण्डितोंने भी अर्थ या प्रतिष्ठाके लोभसे अशौच-संस्कारकी अवहेलना करके सारे देशके धार्मिक अनुष्ठानोंको विपर्यस्तप्राय कर दिया है। एक महीनेके स्थानमें बंगालमें अनेक शूद्र-परिवारोंमें दस दिनका ही अशौच प्रचलित हो रहा है। मध्यप्रदेशमें शूद्र केवल तीन दिनका अशौच मानते हैं। परंतु परलोकके विधिनियम बहुमत (वोटोंकी अधिकता)के द्वारा बदले नहीं जा सकते।

मैक्समूलर (Max Muller) ने भारतीय जातिकी श्राद्ध-पद्धतिकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। (India, what can it teach us?)

ऋग्वेद-संहितामें पितृलोकसम्बन्धी बहुतसे मन्त्र हैं। गयाधाममें पिण्डदान करनेपर आत्माकी ऊर्ध्वगति होती है। ऊपर एक प्रत्यक्ष दृष्टान्त दिया जा चुका है।

उपसंहार

हमने देख लिया कि परलोक, पितृलोक, नरक और स्वर्ग, क्रममुक्ति और मोक्ष, जन्मान्तर और कर्मफल आदि सभी बातें वेदसंहितामें हैं। अब भी इस देशमें जातिस्मर देखनेमें आते हैं। कुछ दिन पूर्व बंगालमें पुष्पा देवीकी बात सुनी गयी थी। हमारी एक आत्मीया महिलाको पूर्व-जन्मकी स्मृति हो गयी है। उनके पूर्वजन्मके पति जीवित हैं, इस कारण उन्होंने ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर लिया है।

पञ्चभूतात्मक देह जड और नश्वर है; आत्मा अमर और अविनाशी है। इस जन्मान्तर और कर्मफलवादके ऊपर ही वर्णाश्रमका अधिकारभेद और जातिभेद प्रतिष्ठित है। वैदिक भारतीय जाति दुःखवादी नहीं है; चिरप्रफुल्ल और आशावादी है; क्योंकि शास्त्रानुसार चलनेपर कभी-न-कभी भगवत्साक्षात्कार तथा जन्म-मृत्युके पाशसे मुक्ति अवश्यम्भावी है। शास्त्र सत्य है। **'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते'**—यह भगवान् श्रीकृष्णकी वाणी है। हमलोग प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी दिन कह सकेंगे कि—

'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।'*

(श्वेताश्वतर० ३। ७)

* इस लेखमें महात्मा रामदयाल मजूमदारकी 'गीता' तथा महामहोपाध्याय डा० योगेन्द्रनाथ बागचीप्रणीत 'वेदेर मन्त्रेर आध्यात्मिकता'से सहायता ली गयी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्जन्मका प्रयोजन

(लेखक—श्रीअनिलवरण राय)

भगवान्‌के बिना मानवजीवनका कोई अर्थ ही नहीं होता। मानवजीवनकी किसी समस्याका यथार्थ समाधान नहीं हो सकता; तथापि आज भारतवर्षमें 'सेक्युलरिज्म' (Secularism) इसी असम्भव चेष्टामें लगा हुआ है और इसका जो फल होना चाहिये, वही हो रहा है। भगवान्‌में विश्वास तो अधिकांश लोग ही करते हैं; परंतु वह इतना शिथिल और मोहाच्छन्न है कि उससे कोई काम नहीं निकलता। गतानुगतिक धर्मानुष्ठान करके लोग कोल्हूके आँखोंमें पट्टी बँधे बैलके समान एक ही स्थानमें घूमते रहते हैं। धर्मके नामपर आज सारा जगत् ही जो कुछ कर रहा है, गीताकी भाषामें उसको 'धर्मकी ग्लानि' कहा जा सकता है। केवल शास्त्र-विचारके द्वारा यह ग्लानि दूर न होगी। अर्जुनमें शास्त्र-ज्ञानकी कोई कमी नहीं थी तथापि उन्होंने गीताके प्रथम अध्यायमें जो धर्मतत्त्वकी व्याख्या की है, वह धर्मकी ग्लानिका प्रकृष्ट दृष्टान्त है। आज हमारी भी यही दशा है। गीताकी यथार्थ शिक्षाका आचरण आज कितने आदमी करते हैं? वस्तुतः कम्युनिस्ट लोग जो कहते हैं कि 'धर्मने लोगोंको अफीम खिलाकर निर्जीव बना दिया है'—यह इस दृष्टिसे अधिकांशमें सत्य है। इसी कारण आज संसारकी जनसंख्याके प्रायः एक तिहाई अंशने कम्युनिस्टोंके नास्तिक-वादको ग्रहण कर लिया है। अदृष्टकी दुहाई देकर हिंदू निश्चेष्ट हैं, संसारमें कोई दुःख-दारिद्र्य भोग करता है, तो उसको वह पूर्वजन्मका कर्मफल या दण्ड समझकर उसकी सहायता करनेके लिये कोई अग्रसर नहीं होते। समाजके दारुण वैषम्यको हिंदू कर्मफलकी दुहाई देकर स्वीकार कर लेते हैं। कर्मफल निश्चय ही है, परंतु उसका यथार्थ मर्म क्या है—इसे लोग नहीं समझते—'गहना कर्मणो गतिः'। आज लोगोंको सत्यधर्मकी शिक्षा देते समय शास्त्र-की दुहाई देनेसे काम नहीं चलेगा; क्योंकि शास्त्रमें लोगों-की श्रद्धा नहीं है। जो लोग शास्त्रानुसार धर्मानुष्ठान करते हैं, उनमें भी श्रद्धाका अभाव रह जाता है। इस प्रकारके अश्रद्धायुक्त आचरण करनेसे कोई फल नहीं होता।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥

(गीता १७। २८)

शास्त्रका पाठ या विचार करके अर्जुनका मोह दूर नहीं हुआ था। भगवान्‌ने साक्षात् रूपसे उनके सामने खड़े होकर उनके सारे संशयोंको दूर किया था—

'योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम्।'

(१८। ७५)

योगसिद्ध तत्त्वज्ञानी गुरुके हृदयमें अवस्थित होकर श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं मनुष्यको अर्जुनके समान शिक्षा देते हैं। यही उपनिषद्‌का निर्देश है—

'प्राप्य वरान् निबोधत।'—(कठ० १। ३। १४)

'तत्त्वज्ञानीको खोजकर, उनके पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो।' जिनकी अपनी साधना नहीं है, आध्यात्मिक अनुभूति उपलब्ध नहीं है—वे लोग पाण्डित्यके अभिमानमें शास्त्रकी व्याख्या करके लोगोंको विभ्रान्त करते हैं।

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः
स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥

(कठ० १। २। ५)

आजकलका मानव ऐसे पण्डितोंकी बातपर कान देना नहीं चाहता—इसके लिये उनको दोष नहीं दिया जा सकता। स्वामी विवेकानन्दने श्रीरामकृष्ण परमहंसको गुरु मानकर पहले सीधा—स्पष्ट यह प्रश्न किया था—'क्या आपने भगवान्‌को देखा है?'—यही है वर्तमान युगके मनुष्यका प्रश्न। इस प्रश्नका सदुत्तर जो दे सकते हैं, उन-की बातमें ही लोगोंके मनमें श्रद्धा होती है। श्रद्धा उत्पादन करनेका अन्य मार्ग नहीं है। इसी कारण उपनिषदोंके ऋषि घोषणा करते हैं—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

(श्वेता० ३। ८)

इस प्रकारके तत्त्वज्ञानी द्रष्टाका साक्षात्कार प्राप्त करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहज नहीं है। इसलिये पहले सबको शास्त्रके ऊपर ही निर्भर करना होगा। शास्त्रकी सहायतासे कुछ ज्ञान हो जाने-पर यथार्थ तत्त्वज्ञानीको पहचानना सम्भव होता है, नहीं तो जिस किसीको गुरु वरण करके मानव इस जन्म-जीवनको नष्ट कर सकता है। यहींपर शास्त्रानुशीलनकी सार्थकता है। परंतु प्राचीन शास्त्रसमूहको पढ़ते समय हमें एक बात विशेषरूपसे याद रखनी चाहिये कि सब शास्त्रोंमें दो प्रकारके सत्य हैं। एक तो वह है, जो सब देश और कालमें सनातन सत्य है और एक दूसरा वह है जो किसी-किसी विशेष देश और कालके लिये ही सत्य है। प्राचीन शास्त्रोंमें ऐसी अनेक कथाएँ हैं, जिनका आधुनिक ज्ञानके साथ मेल नहीं होता। वर्त्तमान विज्ञान-जगत्‌में इतने तत्त्वोंका आविष्कार हुआ है, जिनकी आजसे सौ वर्ष पहले कल्पना भी नहीं हो सकती थी। प्राचीन शास्त्र-ज्ञानके साथ आधुनिक ज्ञानका विरोध होनेके कारण लोगोंकी शास्त्रोंमें श्रद्धा नहीं रह गयी है। वर्तमान हिंदूधर्म पुराण और स्मृतिके ऊपर प्रतिष्ठित है। इन सब शास्त्रोंमें वेद और उपनिषदोंके सनातन सत्यको अभिव्यक्त किया गया है; किंतु वह इस प्रकार अभिव्यक्त हुआ है कि वर्तमान कालके लिये उपयोगी नहीं है। वेद और उपनिषद्‌में भी ऐसे-ऐसे रूपक व्यवहृत हुए हैं, जो वर्तमान मनुष्यके लिये सहज बोधगम्य नहीं हैं। एकमात्र गीताके सम्बन्धमें कहा जा सकता है कि उसमें वेद और उपनिषद्‌का सनातन सत्य इस प्रकार प्रकाशित किया गया है कि जो वर्तमान युगके लिये उपयोगी है। अपनी जानकारी है कि बाल्यकालसे ही गीता मेरी सङ्गिनी रही तथा गीतासे ही मैं साधनके पथमें अग्रसर हुआ तथा सब प्रकारका साहाय्य प्राप्त किया। पाण्डिचेरी आश्रममें ४० वर्ष एकान्त भावसे योगसाधन करके मैंने जो कुछ उपलब्ध किया है, उसीकी सहायतासे पुनर्जन्मके सम्बन्धमें यहाँ मैं कुछ लिख रहा हूँ। आशा करता हूँ कि मेरी बातसे पाठकोंका आध्यात्मिक तत्त्वमें तथा भगवान्‌में विश्वास दृढ़ होगा तथा उसके द्वारा वे यथार्थ सुख और शान्ति प्राप्त करके मानव-जन्मको सार्थक कर सकेंगे।

उपनिषद्‌के ऋषिके समान ही मैंने उस 'आदित्यवर्णम्' पुरुषको देखा है—उस समय मेरी अवस्था केवल ६-७ वर्षकी थी। मेरी जन्मभूमि बंगालके एक छोटे-से ग्राममें है। मैं रातको अपनी माता और भाई-बहिन आदिके साथ सो रहा था। मध्य रात्रिके समय आँखोंपर तीव्र प्रकाश पड़नेसे मेरी निद्रा टूट गयी। मैंने देखा कि जलमें जैसे तरङ्ग उठती है, उसी प्रकार सारे घरसे प्रकाशकी तरङ्गें उठ रही हैं—सामने ताकनेपर देखता हूँ कि दीवालसे सटे श्रीकृष्ण खड़े हैं। उनके अङ्गसे ही वह ज्योति निकलकर घरके भीतर तरङ्गित हो रही है। तबसे मेरे सारे जीवनमें नाना रूपोंमें, नाना भावोंमें मेरे पास रहकर श्रीकृष्ण भगवान् मुझे परिचालित करते आ रहे हैं। उस शैशवावस्थामें मेरी कोई साधना न थी, मुझे श्रीकृष्णका इस प्रकार दर्शन क्यों प्राप्त हुआ? क्या यह मेरे पूर्वजन्मकी साधनाका फल नहीं है?

मेरी जब आठ वर्षकी अवस्था हुई, मैं चुँचुड़ामें अपने पिताके पास रहकर स्कूलमें पढ़ता था। रातमें उनके पास एक बिछौनेपर सोता था। एक दिन आधीरातको मेरे पिता निद्रित अवस्थामें मुझको खींचकर छतपर ले गये और वहाँसे मुझको लिये हुए निकटवर्ती एक बिचालीकी छानके ऊपर कूद गये। इसीके साथ हमारी आँखोंके सामने वह दो-तल्ला पक्का मकान टूटकर गिर पड़ा। पिताजीने कहा—'मैं तो नींदमें था, किसीने मुझसे कहा—उठो, उठो, अपने बालकको लेकर बाहर निकल जाओ, अभी यह मकान गिरने-वाला है।' वे हतप्रभ होकर फिर कहने लगे—'कौन आकर मुझको यह बात बोल गया?'—इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कितनी बार बड़ी-बड़ी विपत्तियोंमें मेरी रक्षा की है। अस्तु, भगवान् हैं और वे जैसे अर्जुनके बन्धु थे, वैसे ही सबके बन्धु-सखा हैं, ऐसा दृढ़ विश्वास सब लोग करें, तो परम शान्ति प्राप्त करेंगे—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥
(गीता ५। २९)

मरनेसे ही मनुष्यका सब कुछ समाप्त नहीं हो जाता। मरता है देह—मरनेमें देह-वियोग होता है। किंतु देह मनुष्य नहीं है, इसको आधुनिक विज्ञान भी प्रमाणित करता है। सात वर्षोंके भीतर देहके सारे अणु-परमाणु नये हो जाते हैं; परंतु मनुष्य सदा वही एक रहता है। पुनः देखा जाता है कि हृद्‌यन्त्रमें भी अन्यान्य अवयवोंको बदलनेपर भी मनुष्यकी सत्ता एक ही रहती है। यह जो देहातीत सत्ता है, यही आत्मा है। केवल देह नहीं है। देहके भीतर जो प्राणशक्ति देहको मानव-जीवनका आधार बनाती है, जिस मनके द्वारा हम चिन्तन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं, सुख-दुःखका बोध करते हैं, संकल्प-विकल्प करते हैं, ये सब भी मनुष्यकी मूल सत्ता या आत्मा नहीं हैं। मानवात्माके निवासके लिये प्रकृतिके द्वारा ही इन सबका विकास होता है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
(गीता ७। ४)

मनुष्य अपने कर्मोंके कारण सुख-दुःख भोग करता है। दुःख-यन्त्रणा पापका दण्ड है, यह कर्मतत्त्वकी अति स्थूल धारणा है। मनुष्यकी मूल सत्ता आत्मा है, जो साधारण मानवीय सुख-दुःखसे अतीत है। वह सदा आनन्दमय और सच्चिदानन्द है। सुख-दुःख आदि अहंभावापन्न मानस-चैतन्यमें होते हैं। वे प्रकृतिके अन्तर्गत हैं। यह मानस-चैतन्य भी जब अज्ञान, अहंभावसे मुक्त होगा, तब मनुष्यका बाह्य-चैतन्य भी आनन्दमय हो जायगा, प्रेम उसका मूल उपादान होगा; मानव-जीवन भीतर-बाहर सौन्दर्यमय हो जायगा। वृन्दावनके श्रीकृष्ण भगवान् उसीके प्रतीक हैं। एक दिन सारा जगत् वृन्दावन हो जायगा, सारा मानव-जीवन हो जायगा—'रासलीला'। यही जगत्में मानवजीवनका लक्ष्य है। वेदमें इसीको 'अमृत' या 'अमृतत्व' नामसे अभिहित किया है। 'अमृतत्वकी प्राप्तिको ही मानवजीवनका लक्ष्य बतलाया गया है। भारतीय नारी मैत्रेयीकी वाणी है कि—'येनाहं नामृता स्यां तेन किमहं कुर्याम्' (बृहदा० २। ४। ३) जिससे मुझको 'अमृतत्व' नहीं मिलता, उसको लेकर मैं क्या करूँगी?

हमें अपने बालकों और कन्याओंको नचिकेता और मैत्रेयीके आदर्शमें उद्बुद्ध करना पड़ेगा, जिससे वे इस भूतलपर ही दिव्य जीवन, अमृतत्व-प्राप्तिको जीवनका लक्ष्य मानकर चलें तथा ऐसा कोई काम न करें या न चाहें जो उनके इस दिव्य जीवनकी प्राप्तिमें प्रतिबन्धक हो।

भगवत्प्राप्ति ही मानवजीवनका लक्ष्य कहा जाता है। यह भी केवल एक स्थूल बात है; क्योंकि संसारमें भगवान्‌को छोड़कर कोई भी न तो है और न रह सकता है। सब भगवान्‌के भीतर स्थित हैं और भगवान् सबके भीतर विराजित हैं। भगवान् स्वयं ही जगत्का सब कुछ बन गये हैं—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'—यही वेद-वेदान्तका सार सत्य है।

'सदेव सोम्य इदमग्र आसीत्, एकमेवाद्वितीयम्।'
(छान्दोग्य० ६। २। १)

प्राचीन भारतमें तरुण शिष्य ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये तत्त्वज्ञ ऋषिके सामने उपस्थित होता था तो वह मूल सूत्र बतलाते थे—'हे प्रियदर्शन युवक! यह जो कुछ देखते हो, यह सब पहले एक सत्ता थी, दूसरा कुछ न था।' अकेले रति नहीं होती, मिलनका आनन्द नहीं होता। इसी कारण सच्चिदानन्द ब्रह्म अपने आनन्दको अनन्त वैचित्र्यके द्वारा उपभोग करनेके लिये अपनेको विभक्त करके इस अनन्त वैचित्र्यमयरूप जीव-जगत्में बन गये—

'अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।'
(गीता १३। १६)

वे सचमुच ही विभक्त नहीं हो जाते, बल्कि मानो विभक्त हो गये हों, इस प्रकारसे आलिङ्गन करते हैं। यही वह अघटनघटनापटीयसी माया है। यह मिथ्या नहीं है, रज्जुमें सर्पका भ्रम नहीं है। वे एक रहते हुए ही सचमुच बहुत रूप ग्रहण करते हैं; किंतु इससे उनके एकत्वकी कोई हानि नहीं होती। जैसे स्वर्णके द्वारा अनेक प्रकारके अलङ्कार निर्मित होनेपर भी सोना ज्यों-का-त्यों रहता है, उसमें किसी प्रकारकी विकृति नहीं होती, इसी प्रकार ब्रह्म भी सत्य है और उसके असंख्य नाम-रूप भी सत्य हैं। नाना नाम-रूपकी सृष्टि करती है—'प्रकृति'। 'प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।' किंतु इस बहुरूपका विस्तार करनेके लिये जडदेहकी सृष्टि करनी पड़ी; क्योंकि जडदेहका अवलम्बन करके ही वे एकसे बहु (अनेक) बनते हैं। जैसे एक सूर्य असंख्य जलाशयोंमें असंख्य सूर्योंके रूपमें प्रतिफलित होता है। देह ब्रह्मको प्रतिफलित कर सके, इसके लिये युग-युगान्तरसे देहका क्रमविकास चल रहा है। इसका प्रारम्भ होता है जड अणुसे। भगवान् स्वयं ही अपनी प्रकृतिके द्वारा अणु बने हैं—

'अणोरणीयान् महतो महीयान्'—(श्वेताश्वतर० ३। २०)

जड अणु-परमाणुसे कैसे विश्वजगत्, सौर-जगत् तथा अन्तमें पृथ्वीका उद्भव हुआ तथा पृथ्वीपर जडसे प्राण, प्राणसे मन—असंख्य उद्भिद् जीव-जन्तुके भीतर विकसित होकर जगत्में मानव-देहका* आविर्भाव हुआ। आधुनिक जडविज्ञानने इसकी विस्तृतरूपसे खोज की है। किंतु मनुष्यदेहमें आकर भी इस विकासका अन्त नहीं हुआ है।

* ८४ लाख योनि-भ्रमणका यही निगूढ रहस्य है। मनुष्यका जो आत्मा 'मर्त्येषु अमृतम्' है, उसका आविर्भाव होता है। पृथ्वीपर मानवदेहका विकास होनेसे पूर्व किसी योनिमें यह नहीं हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्यके बाद जो अतिमानव (Superman) का आविर्भाव होगा, विज्ञान उसका भी संकेत देता है। परंतु किसलिये, किस शक्तिके प्रभावसे यह आश्चर्यमय विकास चल रहा है ? विज्ञान इसका उत्तर नहीं दे पाता। इसका उत्तर मिलता है भारतके वेद, उपनिषद् और गीतामें, भारतकी युग-युगव्यापी अध्यात्मसाधनामें। इस पृथ्वीपर मनुष्यको ही देवता बनना पड़ेगा, यह पृथ्वी स्वर्ग बनेगी—यही वेद-वाणी है,—'मर्त्येषु अमृतम्'।

'यो मर्त्येषु अमृतं ऋतावा देवो
देवेष्वरतिर्निधायि।' (ऋग्वेद० ४। २। १)

'मर्त्य-मानवमें जो अमृत है, वह देवता है। मनुष्यके बीच रहकर वह शक्तिका विकास करता है।'

भगवान् एक हैं। 'बहु स्याम्'—बहुत हो जानेकी इच्छा की, तब उनके अंशस्वरूप बहुत जीव हो गये और जीवलोकका आविर्भाव हो गया—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥
शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥
(गीता १५। ७-८)

ईश्वरका अंश जीवात्मा पञ्चभूतात्मक देहमें प्रवेश करके इस देहको विकसित करता है, जिससे उसके अन्तर्निहित दिव्य शक्तियाँ जड देहमें प्रकाशित हो जायँ, यह जड देह ही सच्चिदानन्दविग्रह बन जाय। परंतु एक जन्ममें देहका यह विकास पूर्ण नहीं होता, इसी कारण जीवात्मा एक देहमें आत्मविकासके पथपर जितना अग्रसर हुआ, उसे संग्रह करके ध्वंसोन्मुख देहको परित्याग करके नवीन देह ग्रहण करता है। यही मृत्यु और पुनर्जन्मका मूल तत्त्व है। मृत्युके बाद ही पुनर्जन्म नहीं होता। जीवात्मा कुछ समय परलोकमें वास करके पूर्वजन्मकी अभिज्ञताओंको जाँचता-परखता है। जो रखनी होती है, उसे रखता है। जो त्यागनी होती है, उसे त्याग देता है। ठीक उसी प्रकार जैसे सारे दिनकी अर्जित अभिज्ञताको लेकर रातमें मनुष्य सोने जाता है और पुनः प्रभात कालमें नवीन रूपसे जीवन-पथमें चलने लगता है। जबतक मनुष्य ऐसे शरीरका विकास नहीं कर लेता, जो जरा-व्याधि और मृत्युसे मुक्त हो, तबतक उसको बार-बार जन्म ग्रहण करना पड़ेगा—यही पुनर्जन्मका प्रयोजन है।

हिंदुओंका पुनर्जन्ममें विश्वास और उसके लौकिक लाभ

(लेखक—डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभास्कर, दर्शनकेसरी)

भारतीय संस्कृतिकी मान्यता है कि मृत्युसे मानव-जीवनका अन्त नहीं होता। हमारा आत्मा शरीररूपी जर्जर वस्त्र त्यागकर नया वस्त्र (नया शरीर) धारण कर लेता है। आत्मा अमर है।

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्॥
(ऋग्वेद १। १६४। ३८, अथर्ववेद ९। १०। १६)

अर्थात् स्मरण रखिये, जीवात्मा अमर है तथा शरीरसे भिन्न है और यह हाड़-मांसका शरीर नाशवान् एवं क्षणभङ्गुर है। सम्पूर्ण शारीरिक क्रियाओंका अधिष्ठाता हमारा आत्मा है (यह ईश्वरका अंश है); क्योंकि जबतक इस शरीरमें प्राण रहता है, तबतक वह क्रियाशील रहता है। अभी इस आत्माके सम्बन्धमें पूरा ज्ञान बड़े-बड़े पण्डितों और मेधावी पुरुषोंतकको नहीं है। आत्माको जानना ही मानव-जीवनका प्रमुख लक्ष्य है।

कर्मके अनुसार उपहार या दण्डके रूपमें जीव नाना योनियोंमें जन्म लेता है। संसारमें अपने अच्छे या बुरे कर्मोंके अनुसार उन्नत होता हुआ चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करनेके पश्चात् जीव मनुष्य-जैसा दुर्लभ और समुन्नत शरीर प्राप्त करता है।

सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।
तथोत्थानं समाधत्स्व भ्रंश्यसे न पुनर्यथा॥

अर्थात् 'याद रखिये, यह सुरदुर्लभ मानवशरीर, जो पूर्व-जन्मोंके बड़े-बड़े सत्कर्मोंसे मिलता है, स्वर्गप्राप्तिका सहज सोपान है। इस जन्ममें भी इसे शुभ कर्मोंमें ही लगाना चाहिये, ताकि मनुष्य अवनति, पथभ्रष्टता और नैतिक पतनकी ओर न बढ़ सके।'

स्वेदज, उद्भिज, अण्डज, जरायुज आदि जीवयोनियाँ एकके बाद दूसरी, पहलेसे ऊँची कक्षाकी हैं। मनुष्यको उसके कर्मोंके अनुसार योनि प्राप्त होती है। कर्म ही प्रधान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस जीवनके अच्छे उपकारी कार्योंका ही फल अगले श्रेष्ठ जीवनको प्राप्त करनेका उपाय है। अशुभ कर्मके फलस्वरूप बुरे भविष्यकी सम्भावना है।

मनुष्य-योनि इस संसारकी पूर्ण विकसित, उच्चतम सीमा और सर्वोच्च शिखररूप है। अनेक शुभ कर्मोंके फलस्वरूप यह देव-तुल्य स्थिति प्राप्त होती है। इसके प्राप्त होनेपर इसके द्वारा भगवत्सेवाके भावसे सत्कर्मोंका ही अनुष्ठान करना चाहिये, जिससे जन्म-मृत्युके चक्रसे छुटकारा मिले और मानवजीवन सफल हो।

पुनर्जन्मकी मान्यतासे लाभ

अच्छे कर्मोंसे भविष्यमें अच्छी योनिमें जन्म होता है। हमारे सब कर्मोंके फल इस जन्ममें तथा अगले जन्ममें भी मिलते रहते हैं। यह सत्य है और इस सत्यकी मान्यतासे व्यक्ति और समाज दोनोंको लाभ होता है। पुनर्जन्ममें विश्वास करनेवाला व्यक्ति यह मानता है—

'मेरे-जैसा ही आत्मा सबका है और सबके-जैसा ही मेरा आत्मा है। मेरे आत्माकी अवस्था भूतकालमें अन्य जीवों-जैसी हुई है और भविष्यमें भी हो सकती है। जीवमात्र ही किसी-न-किसी समय परस्पर निकट-सम्बन्धी रहे हैं और शुभ-अशुभ कर्मोंके फलोंके अनुसार भविष्यमें भी रह सकते हैं।'

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥
यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥
(यजुर्वेद ४०। ६-७)

अर्थात् 'जो मनुष्य सब प्राणियोंको आत्मामें और सब प्राणियोंमें आत्माको ही देखता है, वह कभी भी किसीसे घृणा (द्वेष या बुरा बर्ताव) नहीं करता। इस प्रकार जाननेवाले पुरुषके लिये सभी प्राणी अपने आत्मस्वरूप ही हो चुकते हैं। यों सबमें एक आत्माको (आत्मस्वरूप एकमात्र परमतत्त्व परमात्माको) देखनेवाले पुरुषमें कौन-सा मोह-शोक रह जाता है?'

इस प्रकार इस मान्यतासे मनुष्यका सब जीवोंके प्रति सप्रेम और आत्मीय-भाव बढ़ता है। ऊँचा-नीचा, अमीर-गरीब, पापी और पुण्यात्मा, निम्न जीव तथा उच्चतर जीव, पशु, कीट, पतंग आदि सब समीप आ जाते हैं। सबके प्रति सहज आत्मभाव और सौहार्द बढ़ जाता है।

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि जीवकी कोई योनि शाश्वत नहीं है। यदि परोपकार किया जाय, उत्तमोत्तम पुण्यकर्म किये जायँ, तो सभीको अच्छी योनि प्राप्त हो सकती है।

हिंदू मान्यताओंके अनुसार परलोकमें अनन्तकालीन स्वर्ग या अनन्तकालीन नरक नहीं है। जीवके किसी जन्म या किन्हीं जन्मोंके पुण्य या पापोंमें ऐसी शक्ति नहीं है कि वह सदाके लिये उस जीवका भाग्य निश्चित कर दे। वह अपने इस जीवनके पुरुषार्थसे सुपथगामी होकर अत्यन्त उन्नत-अवस्थाको प्राप्त कर सकता है।

दूसरी ओर बुरे और निन्दित कर्म करनेके कारण दण्डके रूपमें अधःस्वरूपको भी धारण कर सकता है—

येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा।
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः॥
(सामवेद ५। २। ८। ५)

मनुष्य-जीवनकी सफलता इस बातमें है कि वह आत्मिक और मानसिक दोषोंको त्यागकर निर्मल और पवित्र बने। मल-विक्षेप और आवरणरहित बने। इसके अनेक उपाय वेदोंमें वर्णित हैं। अतः वे पठनीय हैं।

बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि।
महाँस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि॥
(अथर्ववेद १३। २। २९)

'हे मनुष्यो! तुम्हारा आत्मा सूर्यके समान तेजस्वी, प्रकाशमान एवं महान् है। वही तुम्हारा शुद्ध स्वरूप है। (तुमको अपना उच्चतम परमात्मस्वरूप प्राप्त करना है। अच्छे पुण्यकर्म करने हैं। परोपकारमय जीवन बिताना है। आत्माके गुणोंको विकसित करना है) देखो, तुम्हारी महिमा कितनी विशाल है।'

भारतीय संस्कृतिमें इसी समाजमें, इसी जगत्में सत्कर्म, सद्व्यवहार तथा सदाचरणद्वारा पुरुषार्थ, सत्प्रयत्न और आशाको प्रेरणा मिलती रहती है। पुनर्जन्ममें अपने सत्प्रयत्नोंसे हम बहुत कुछ सुधार और उन्नति भी कर सकते हैं। हम स्वयं ही अपने भविष्यके निर्माता हैं। भविष्यमें अच्छा जन्म पाना स्वयं हमारे हाथकी बात है। कहा है—

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे
प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः॥
(अथर्ववेद १९। ५१। १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् 'मेरी शक्ति असीम है। मैं अकेला ही दस हजारके बराबर हूँ। मेरा आत्मबल, प्राणबल, दृष्टि और श्रवणशक्ति भी दस हजार मनुष्योंके बराबर है। मेरा अपान और व्यान भी दस हजारके बराबर है। (मैं विकसित होकर) सारा-का-सारा दस हजार मनुष्योंके बराबर हूँ।'

मनुष्यके अन्तर्मन तथा गुप्त मानसिक प्रदेशका विश्लेषण करनेसे पता चलता है कि वह ज्ञानका भण्डार है। साधारण व्यक्तिको भी देखें, तो मनुष्य मानसिक दृष्टिसे बुद्धिमान्-से-बुद्धिमान् पक्षीकी अपेक्षा विकसित और चतुर दिखायी देता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य-योनिमें आनेसे पूर्वके असंख्य अनुभव उसकी सुप्त चेतनामें भरे हुए हैं। वे पूर्वसंचित असंख्य शुभ सात्त्विक अनुभव समय और नयी परिस्थितिके अनुसार जाग्रत् और प्रस्फुरित होते रहते हैं। अपनी योग्यताएँ बढ़ाकर चतुर व्यक्ति अनेकानेक असाधारण कार्य कर डालते हैं। उनकी छिपी हुई योग्यताएँ असाधारण होती हैं। इसका कारण यह है कि उन्होंने जन्म-जन्मान्तरोंके अनुभवरूपी खजानेको खोल लिया है।

आजके वैज्ञानिकोंने भौतिक संसारमें जो अनेक अद्भुत आविष्कार किये हैं, विद्वानोंने बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे हैं, अध्यात्म तथा अन्य विषयोंमें जो उन्नति की है, इन शोधोंमें प्रधान सहायता उनके गुप्त मनमें पुरानी योनियोंके शुभ संस्कारोंसे मिली है।

हमारा आत्मा ज्ञानस्वरूप है, परंतु विषय-वासनारूपी मल उसे मलिन करता है। हमें चाहिये कि शारीरिक और मानसिक मलोंका—दोषोंका संशोधन करते हुए निरन्तर अपने ज्ञान और विवेकको बढ़ाते रहें, शुभ सात्त्विक परोपकारमय कर्म करते रहें, जिससे शरीरमें अन्ततक शक्ति बनी रहे। श्रेष्ठ कर्मोंद्वारा हम नया और अच्छा जीवन प्राप्त करनेकी कामना रक्खें।

पुनर्जन्म—एक दार्शनिक विवेचन

(लेखक—साहित्य-महोपाध्याय पं० श्रीजनार्दनजी मिश्र 'पंकज' शास्त्री, एम्० ए०, काव्यतीर्थ, व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य, न्यायाचार्य, सांख्यदर्शन-योग-दर्शनाचार्य, वेदान्ताचार्य, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

विश्वके यावदीय धर्मग्रन्थोंमें भारतीय सिद्धान्त-ग्रन्थ अपना सानी नहीं रखते। हमारे यहाँ वेदोंसे लेकर पुराणों तथा उपपुराणोंतक तथा अन्य ग्रन्थोंमें भी पुनर्जन्मसे सम्बद्ध विचार, मान्यताएँ तथा कथाएँ मिलती रही हैं। कभी-कभी तो ऐसा होता है, हुआ है कि प्रारब्धके वैचित्र्य-वश राजर्षि भरतको कालञ्जर गिरिपर मृगयोनिमें जन्म लेना पड़ा। 'कौशिक-संहिता'की एक कथाके अनुसार—कैलासपर स्थित वटकी छायामें कथा-श्रवण करती हुई गिरिराजनन्दिनीकी पलकें निद्राविभोर हो गयीं। वक्ता देवाधिदेव तब नितरां चकित हो उठे, जब उन्हें पता चला कि हुंकार भरनेवाला एक अण्डज मुनूर्षु शुकशावक है और वही शुक-शावक प्रारब्धवश द्वैपायनकी आँखोंका तारा लाड़ला शुकाचार्य होकर प्रकट हुआ। 'कथासरित्सागर' तथा बाणभट्टकी 'कादम्बरी'का वैशम्पायन-जैसा पण्डितप्रवर शुक क्या विस्मरणका विषय हो सकता है? अपनी ही प्रेयसी महाश्वेताके प्रकोपका शिकार होकर, उसे ब्राह्मणपुत्रसे भ्रष्ट होकर तिर्यग्योनिमें निवास करना पड़ा। सूफियोंके सुप्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'पद्मावत'का हीरामन तोता महाकाव्यमें ब्रह्मर्षि वसिष्ठकी भाँति पथ-प्रदर्शक एवं गुरुपदको अलंकृत करता प्रतीत होता है। इतना ही नहीं, देवत्वसे च्युत होकर धनद कुबेरके दोनों ही लाड़लों—नलकूबर और मणिग्रीवको जड़ (वृक्ष) योनिमें उतर आना पड़ा। श्रीमद्भागवतकी यमलार्जुन-की कथा क्या हमारी आँखोंपर पड़ी पट्टियाँ नहीं खोल देतीं? श्रीमदकी संक्षिप्त पर इतनी प्रभावोत्पादक आलोचना अन्यत्र नहीं मिलती। 'कादम्बरी' में भी लक्ष्मी एवं उसके ऐश्वर्यजनित अनर्थोंकी विस्तृत आलोचना 'शुकनासोप-देश'में की गयी है। पर देवर्षिद्वारा श्री(धन-)मदका निन्दन तो सद्यः प्रभाव डालता है। देखिये—शापकी वाणी कितनी प्रभावकर है—

असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमञ्जनम्।
आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते॥
(श्रीमद्भा० १०। १०। १३)

अभिप्राय यह है कि 'श्रीमदसे अन्ध, श्रीभगवान् तथा उनके भक्तोंका भी तिरस्कार करनेवाले, आर्यमर्यादाको मिटानेवाले असत्पुरुषकी दरिद्रता ही आँखें खोलनेके लिये सबसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी दवा है।' यह इलाज देवर्षिकी ईजाद है। दरिद्र पुरुष—अकिंचन होकर, अपना सब कुछ गवाँकर ही सभी प्राणियोंके साथ अपने समान व्यवहारका आचरण करता है; और परिणाम क्या हुआ—मदिरा-मदान्ध कुबेर सेठके दोनों बेटे वर्षोंके लिये जुड़वाँ अर्जुन वृक्ष बने। व्रजराज नन्दबाबाके दरवाजेपर शीतातप-वृष्टिमें खड़े-खड़े तपते रहे। कर्मफलभोग और पुनर्जन्मके इतिहासकी यह एक अमर कथा तथा अमिट घटना है। नारद, वाल्मीकि, कुम्भजन्मा (अगस्त्य) तथा वामदेवादि ऋषियोंके पुनर्जन्मोंकी कथाएँ रामायण-महाभारत तथा पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं। कहते हैं—मीराँ भी गोलोकवासिनी गोपियोंमें एक थीं। किसी शापके कारण उन्हें भी भारत-भूमिमें अवतरित होना पड़ा। सूरदासने भी कृष्णोपभुक्ता एक गोपीके पुनर्जन्मकी बात लिखी है, जो मुगल बादशाहके हरममें रहती थी। कवयित्री 'ताज', जिसकी तुलना आप और हम मीराँसे करते हैं, भी कृष्णोपभुक्ता एक शापग्रस्ता गोपी ही थी। ऐसी-ऐसी ढेरों कथाएँ—उपकथाएँ उपलब्ध हैं, जिनसे 'पुनर्जन्म'की पुष्टि होती है। 'योगवासिष्ठ' का 'लीलोपाख्यान' तो महर्षि वसिष्ठ तथा देवी अरुन्धतीके ही लीला एवं विदूरथके रूपमें जन्मान्तरोंकी घटनाएँ हैं।

हमारे दर्शन-शास्त्र तो स्पष्टतः 'पुनर्जन्मप्रतिपादक' हैं। अपने अकाट्य तर्कों तथा सबल युक्तियोंसे ये विश्वके उन सभी ग्रन्थोंको, जो पुनर्जन्मवादी सिद्धान्तोंसे दूर हैं, खुली चुनौती दे रहे हैं। **'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्।'**—आद्यशंकराचार्यके इस कथनमें कितना सार है, कितना तथ्य है, यह तो विद्वानोंका विचारणीय विषय है। इसी पुनः पुनर्जन्मको सदाके लिये मिटा देनेके लिये दर्शनके चार प्रतिपाद्य विषय हैं। वे हैं—(क) हेय—दुःखका वास्तविक स्वरूप क्या है, जो 'हेय' अर्थात् त्याज्य है? (ख) हेयहेतु—दुःख कहाँसे उत्पन्न होता है? इसका वास्तविक कारण क्या है, जो हेय अर्थात् त्याज्य दुःखका वास्तविक हेतु है? (ग) हान—दुःखकी सर्वथा निवृत्ति अर्थात् दुःखका नितान्त अभाव क्या है? अर्थात् 'हान' किस अवस्थाको कहते हैं? (घ) हानोपाय—हान अर्थात् सर्वथा दुःख-निवृत्तिका उपाय क्या है? विचारणीय तो इतना ही है कि दुःख किसको होता है, क्यों होता है? जिसको दुःख होता है, यदि वह दुःख उसका स्वाभाविक धर्म होता तो वह उससे छुटकारा पानेका प्रयत्न ही क्यों करता? इससे तो सिद्ध होता है कि कोई ऐसा तत्त्व है, जिसका दुःख और जडता स्वाभाविक धर्म नहीं है। अतः मनुष्य-जीवनका चरम ध्येय क्या है? तीन प्रकारके दुःखोंका अत्यन्ताभाव—सर्वथा निवृत्ति। अतः सांख्यका प्रथम सूत्र यही है—

'अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।'

पुनर्जन्मके कारण ही आत्माके शरीर, इन्द्रियों तथा विषयोंसे सम्बन्ध जुड़ते रहते हैं और **'आत्मनो भोगायतनं शरीरम्।'** न्यायसे उस जीवको सुख-दुःखके भोगोंके लिये बार-बार एक शरीरसे दूसरेमें भटकना पड़ता है। हमारे शास्त्रोंमें ८४ लाख योनियोंकी चर्चा कपोल-कल्पना नहीं है। यह तथ्यपूर्ण, मनोवैज्ञानिक एवं रहस्यातिरहस्यपूर्ण दार्शनिक सिद्धान्त है। अतएव मीमांसकोंकी मोक्षकी परिभाषा इन शब्दोंमें है—

'प्रपञ्चसम्बन्धविलयो मोक्षः। त्रेधा हि प्रपञ्चः। पुरुषं बध्नाति तदस्य त्रिविधस्यापि बन्धस्य आत्यन्तिको विलयो मोक्षः।' (शास्त्रदीपिका)

इस संसारके साथ आत्माके साथ आत्माके देहेन्द्रिय तथा विषयोंके सम्बन्धके आत्यन्तिक विनाशका नाम ही मोक्ष है।

'सांख्यकारिका' (१८) का श्लोक सांख्योक्त—**'जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम्।'** (२। १४९)—का ही भाष्य है। लिखा है—

जननमरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत् प्रवृत्तेश्च।
पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाश्चैव॥

सचमुच ईश्वरकृष्णकी उक्त कारिका पुनर्जन्मके सिद्धान्तकी सिद्धिके लिये अकाट्य युक्तियाँ दे रही है। यदि जन्म-जन्मान्तर नहीं होते तो जीवकी अनेक अवस्थाएँ देखनेमें क्यों आतीं? जन्मादि व्यवस्थासे ही यह सिद्ध होता है कि पुरुष बहुत हैं; क्योंकि यदि सभी अन्तःकरणकी वृत्तियोंका आधार एक ही पुरुष होता तो यह घट है, यह पट है, इस घटको मैं जानता हूँ, इस पटको मैं देखता हूँ। इस प्रकारका अनुभव जिस क्षणमें एक अन्तःकरणको होता, उसी क्षण सभी अन्तःकरणोंमें होना चाहिये; क्योंकि वह एक ही सबका आश्रयी है। लेकिन जगत्में ऐसा देखनेमें नहीं आता। इस कारण पुरुष अनेक हैं। और युक्तियाँ लीजिये—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म, मरण और करणों (अन्तःकरण, इन्द्रियों) के अलग-अलग नियमोंसे, एक साथ प्रवृत्त न होनेसे तथा तीन गुणोंके भेदसे पुरुषका अनेक होना सिद्ध है। सभी पुरुष न एक साथ जन्म लेते हैं, न एक साथ मरते हैं। उनका अलग-अलग जन्म-मरण होता है। इसी प्रकार करणोंमें भी भेद है। कोई अंधा है, कोई बहरा है, कोई लूला है। सभी एक-जैसे नहीं हैं। सबमें एक-जैसी प्रवृत्ति भी नहीं है अर्थात् एक समयमें सब एक ही कर्म नहीं करते। जब एक सोता है, दूसरा जागता है, तीसरा रास्ता चलता रहता है, इत्यादि। सभीके गुण भी एक-जैसे नहीं होते। कोई सात्त्विक होता है तो कोई राजस तथा कोई तामस है। कोई रूपवान् होता है और कोई कुरूप। अनेक विसादृश्य हैं; अतः जन्म-मरण सापेक्ष होता है। जन्मके बाद मरण और मरणके बाद जन्म। जन्मना कर्म तथा कर्मणा जन्म-शृङ्खलाएँ चलती हैं। ये सिलसिले मोक्षतक बने रहते हैं। यह अनेकत्व (बहुत्व) बद्ध पुरुषोंकी अपेक्षासे होता है, न कि मुक्त पुरुषोंकी अपेक्षासे।

चार्वाकादि नास्तिक दर्शनकारोंकी दृष्टि भौतिक शरीरतक ही सीमित है। मृत्युके बाद स्थूलशरीर ही जलाया या दफनाया जाता है। महर्षि कपिलके 'अविशेषाद्विशेषारम्भः।' (सांख्य० ३।१) सूत्रके अनुसार अविशेषात् अर्थात् जिससे छोटी और कोई वस्तु न हो सके, ऐसे भूत-सूक्ष्म, अर्थात् पञ्चतन्मात्राओंसे विशेष स्थूल महाभूतोंकी उत्पत्ति होती है; क्योंकि सुखादिका ज्ञान स्थूल भूतोंमें हो सकता है। सूक्ष्मभूत योगी महात्माओंके हृदयमें प्रकाश होते रहते हैं। बाईस तत्त्वोंमेंसे स्थूल-सूक्ष्म शरीरोंकी उत्पत्ति होती है। स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण—शरीरके तीन भेद हैं। स्थूलशरीर किसे कहते हैं ? जिसका जाग्रत्-अवस्थामें अभिमान होता है। यह माता-पिताके रज-वीर्यसे उत्पन्न होनेवाला, अन्नसे बढ़नेवाला, पञ्चभूतों—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाशसे बना हुआ है। जब तमोगुण रजोगुणसे दबा हुआ होता है, तब जाग्रत्-अवस्थामें सारे कार्य-कलाप स्थूल जगत्में इसी स्थूलशरीर-द्वारा किये जाते हैं।

इस प्रत्यक्ष देहमें कौमार, यौवन और जरा-जैसी अवस्थाएँ दिखायी पड़ती हैं; अतः जन्म-मरण इसी स्थूल कायाका होता है। इसीमें जरा (बुढ़ापा) तथा अनेकानेक रोग उत्पन्न होते हैं।

'सूक्ष्म' अथवा लिङ्ग-शरीर किसको कहते हैं ? मन, अहंकार और इन्द्रियाँ, जिसके द्वारा अपने-अपने कार्यमें तत्पर रहती हैं, उसको लिङ्ग-शरीर कहते हैं। पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ, शक्तिमात्र नासिका, रसना, चक्षु, श्रोत्र और त्वचा तथा पाँचों कर्मेन्द्रियाँ, शक्तिमात्र हस्त, पाद, वाणी, गुदा और उपस्थ तथा ग्यारहवाँ मन जिसके द्वारा काम करते हैं तथा जिसमें संकल्प-विकल्प होते हैं, पञ्च सूक्ष्मभूत अथवा प्राण और अहंकार, अहंता पैदा करनेवाली शक्ति, बुद्धि, चित्तसहित निर्णय करनेवाली तथा भावों और विचारों तथा संस्कारोंको सँजोकर रखनेवाली शक्ति—यह अष्टादश शक्तियोंका समूह 'सूक्ष्मशरीर' कहलाता है। स्वप्न—जब बाहरके कार्योंसे स्थूलशरीर थक जाता है, तब तमोगुण रजोगुणको दबाकर स्थूलशरीरको स्थूल जगत्में कार्यरत रहने देनेमें असमर्थ कर देता है। किंतु तमोगुणसे दबा हुआ सूक्ष्मशरीर जाग्रत् अवस्थाकी स्मृतिके कल्पित विषयोंमें कार्यारम्भ कर देता है, वह 'स्वप्न' कहलाता है। इसी सूक्ष्म अथवा लिङ्ग-शरीरद्वारा ही चित्तमें जन्म, आयु तथा भोग देनेवाले वासनाओंके संस्कार संचित (इकट्ठे) रहते हैं। जिस प्रकार चर्खीका डोरा टूटनेपर पतंग जब दूसरी चर्खीके डोरेमें जोड़ दी जाती है तो उसका सम्बन्ध पुनः उसी चर्खीसे हो जाता है। इसी प्रकार मृत्युके समय हृदय-रूपी चर्खीसे डोरी टूटनेपर सूक्ष्मशरीररूपी पतंग उड़ता हुआ ऐसे गर्भके पास पहुँच जाता है, जहाँ उसकी वासनाओं (प्रधान कर्म-विपाक) की पूर्त्ति करनेवाले उसके समान संस्कार होते हैं। कतिपय योगाचार्योंका मत है कि सूक्ष्मशरीरका सूक्ष्मजगत्में भ्रमण नहीं होता। सूक्ष्म जगत्में काल और दिशाका ऐसा भेद नहीं रहता, जैसा स्थूल जगत् तथा स्थूलशरीरके व्यवहारमें होता है; केवल वृत्तियाँ जाती हैं, अर्थात् चित्तमें इन्हीं वृत्तियोंद्वारा ऐसा परिणाम होता है तथा सूक्ष्मशरीर जाता हुआ प्रतीत होता है। जिस प्रकार डोरीसे बँधा हुआ पक्षी अनेक दिशाओंमें घूमकर दूसरे स्थानमें आश्रय न पाकर पुनः अपने बन्धन-स्थलपर ही आ जाता है, उसी प्रकार यह मन भी अनेक दिग्देशोंमें घूम-घामकर कहीं सहारा न मिलनेके कारण प्राणका ही सहारा लेता है। इसलिये कि मन प्राणके साथ बँधा हुआ है।

'कारणशरीर' किसे कहते हैं ? लिङ्ग अथवा सूक्ष्मशरीरके बीज कारणको ही 'कारणशरीर' कहते हैं। बाईस तत्त्व शरीरके कारण हैं और देखनेमें ऐसा ही आता है कि कारणके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती। अतः सिद्ध है कि इन्हीं २२ तत्त्वोंसे संसारकी उत्पत्ति होती है। अविशेष जो सूक्ष्म भूत हैं, उनकी सृष्टि-प्रवृत्ति तभीतक रहती है, जबतक विवेक (ज्ञान) नहीं होता। विवेक होते ही सूक्ष्म भूतोंकी प्रवृत्ति तिरोहित हो जाती है।

पुनः पुनर्जन्मोंके कारण कर्माशय हैं। पातञ्जलदर्शनके साधनपादका १३ वाँ सूत्र—

'सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।'

'अविद्या आदि क्लेशोंकी जड़के होते हुए उस (कर्माशय) का परिणाम जन्म, आयु और भोग होता है।' बहुत कालतक किसी जीवात्माका एक शरीरके साथ सम्बन्ध बना रहना 'आयु' पदका अर्थ है। इन्द्रियोंके विषय रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्श ही भोग हैं। क्लेश जड़ है। उन जड़ोंसे कर्माशयका वृक्ष बढ़ता है। उस वृक्षमें तीन प्रकारके फल लगते हैं—जाति, आयु और भोग। यह वृक्ष तभीतक फल देता रहता है, जबतक अविद्यादि क्लेशरूपी उसकी जड़ें विद्यमान रहती हैं। इससे उत्पन्न हुए संस्कार भी अनन्त हैं। मनकी वृत्तिरूपी कर्म भी अनन्त हैं। ये संस्कार चित्तमें जन्म-जन्मान्तरोंसे संचित चले आ रहे हैं। चित्तका अर्थ ही है 'संचित' अर्थात् इकट्ठा। जिन कर्माशयोंके संस्कार चित्तमें प्रबलरूपसे उत्पन्न होते हैं, वे 'प्रधान' तथा शिथिलरूपसे उत्पन्न होनेवाले 'उपसर्जन' कहलाते हैं। मृत्युके समय 'प्रधान' कर्माशय पूरे वेगसे जाग उठते हैं और अपने-जैसे पूर्वजन्मोंके कर्माशयके संचित संस्कारोंके अभिव्यञ्जक होकर उन्हें झकझोरकर जगा देते हैं। इन्हीं प्रधान संस्कारोंके अनुसार ही अगला जन्म देवता, मनुष्य तथा पशु-पक्षी आदिमें होता है। गुरुगोविन्दके 'विचित्र नाटक' में उनके पूर्वजन्मके कर्माशयोंका तथा उनसे प्रेरित पुनः उनके गुरुगोविन्दके रूपमें जन्म लेनेका उल्लेख मिलता है। कर्माशयोंके अनुकूल ही उनका भोग नियत होता है। आयु भी उतनी ही होती है, जिसमें उन कर्माशयोंका फल भोगा जा सके।

उपकर्माशय, जो अगले जन्मोंमें भोगने योग्य हैं; पर तत्काल जिनका फल नियत नहीं हुआ है, उन्हें 'अनियत विपाक' कहते हैं। प्रधान कर्माशयसे जो अगला जन्म, आयु तथा भोग नियत हो गया है, 'नियत विपाक' कहलाता है। क्लेश जिसकी जड़ है, ऐसी कर्मोंकी वासना वर्तमान तथा भविष्य जन्मोंमें भोग्य है। जब चित्तमें क्लेशोंके संस्कार जमे होते हैं, तब उनसे 'सकाम कर्म' उत्पन्न होते हैं। रजोगुणके बिना कोई क्रिया नहीं हो सकती। रजोगुणका जब सत्त्वगुणसे मेल होता है, तब ज्ञान, वैराग्य, धर्म तथा ऐश्वर्यके कार्योंमें प्रवृत्ति होती है और जब तमोगुणके साथ मेल होता है, तब तद्विपरीत—अज्ञान, अवैराग्य, अधर्म तथा अनैश्वर्यके कर्मोंमें प्रवृत्ति होती है। ये ही दोनों प्रकारके कर्म 'शुभ-अशुभ', 'शुक्ल-कृष्ण' तथा 'पाप-पुण्य' कहलाते हैं। इन कर्मोंसे इन्हींके अनुकूल फल भोगनेके बीजरूप जो संस्कार चित्तमें पड़ते हैं, उन्हींको 'वासना' कहते हैं। यही मीमांसकोंका 'अपूर्व' तथा नैयायिकोंका 'अदृष्ट' कहलाता है। पुण्य-कर्माशय मनुष्योंसे ऊँचे देवताओं आदिके सदृश भोग देनेवाले होते हैं। पाप-कर्माशय मनुष्येतर योनियों—पशु-पक्षीमें ले जानेवाले तथा तत्तुल्य भोग देनेवाले होते हैं। इस प्रकार वासनाएँ अनन्त हैं, उनके संस्कार अनन्त हैं, मनोवृत्तियाँ अनन्त हैं तथा फल-भोग भी अनन्त होते हैं। कुछ कर्माशय वर्तमान जन्ममें, कुछ अगले जन्ममें तथा कुछ दोनों ही जन्मोंमें फल देते हैं। उपर्युक्त जाति, आयु और भोग इनका परिणाम है इसीलिये योगदर्शनमें इन्हें 'अदृष्ट जन्मवेदनीय' (२।१२) कहा गया है।

सामान्यतः मनुष्योंका जन्म मनुष्योंमें ही होता है। उससे ऊँची देवादि योनियोंमें होता है तथा शापवश अथवा विशेष कारणोंसे विशेष अवस्थामें तिर्यक् (पशु-पक्षी) योनियोंमें भी जाना पड़ जाता है।

गुरु नानकने पितृपक्षके अवसरपर लाहौरके सेठ दुलीचन्दको उनके पिताको मांसाहारी भेड़ियेके शरीरमें दिखलाया था। पूछनेपर गुरुने यही कारण बतलाया कि मृत्युके समय उसके पिताके मनमें मांस-भक्षणकी उत्कट इच्छा जग गयी थी। 'मुण्डक'में कहा है—

कामान् यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र।
पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः॥
(३।२।२)

—जो इच्छाओंको मनमें रखता हुआ उनकी पूर्ति चाहता है, वह मनुष्य उन वासनाओंके अनुसार उत्पन्न होता है। 'योगवासिष्ठ'में ऐन्दवोपाख्यानमें (इन्दु-ब्राह्मणके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नौ पुत्रोंको) वासनाके अनुसार नौ ब्रह्माके रूपमें उत्पन्न बतलाया गया है। लिखा है—

'मनसैव ब्रह्मतां याता ऐन्दवाः पश्य कौतुकम् ।'

श्रीराम-कृष्णादि अवतारी पुरुषोंके जन्म-कर्म 'दिव्य' होते हैं। उनकी सारी लीलाएँ वाणी-मनोबुद्धिसे अतर्क्य हैं। उनके दृश्यमान शरीर भी पाञ्चभौतिक नहीं होते—दिव्य तथा चिन्मय—सच्चिदानन्दमय होते हैं। गीता (४। ९)में श्रीमुखकी वाणी है—

'जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।'

पुनर्जन्म केवल उसी महापुरुषका नहीं होता, 'जो पुरुष अन्तकालमें भगवान्‌का ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह उन्हींके स्वरूपको प्राप्त होता है; इसमें कुछ भी संशय नहीं है*।' परब्रह्म परमात्मा ही जीवोंका एकमात्र उपास्य है। ब्रह्माकी सृष्टिमें नीचेसे ऊपरतक चौदह भुवनोंमें जानेवालोंको लौट-लौटकर आना पड़ता है। ये पुनरावर्ती लोक हैं। भगवान्‌ने कहा है—'हे कुन्तीपुत्र ! मुझे प्राप्त कर पुनर्जन्म नहीं होता।'—

'मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ।'

(गीता ८। १६)

जीवात्मा तो अज्ञानके कारण कर्ता और भोक्ता है; किंतु परमात्मा सर्वथा निर्विकार है। वह केवलमात्र साक्षी है—सर्वद्रष्टा है। इसलिये जीवोंके कर्मफलस्वरूप सुख-दुःखादिके सदृश उसका कर्मफलसे सम्बन्ध होना सम्भव नहीं। मुण्डक उपनिषद्‌का (३। १। १) वाक्य है—

'तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।'

वेदान्तमें सर्वत्र जीवात्माको ही 'भोक्ता' बतलाया गया है, परमात्माको नहीं। यह कहा गया है कि समस्त यज्ञों तथा तपस्यादिमें देवता आदिके रूपमें परमेश्वर ही शुभ कर्मोंका भोक्ता है—पर वह है सर्वथा निर्लेप भोक्ता (सबका आधार होनेके कारण यह सत्य भी है)। श्रुति परमात्माके लिये **'असंगो नहि सज्जते'** का प्रयोग करती है।

जीवात्मा पुनः पुनर्जन्मके चक्करमें पड़ा रहता है। वेदान्तने जीवात्माको 'नियम्य' तथा परमात्माको 'नियन्ता' बतलाया है। शरीररूप वृक्षपर रहनेवाला यह जीवात्मा शरीरमें आसक्त होकर डूब रहा है। अपनेको सर्वथा असमर्थ समझकर मोहमें पड़कर शोक करता रहता है; परंतु जब वहीं स्थित भक्तजनोंद्वारा सेवित अपनेसे भिन्न परमेश्वरको देख लेता है, तब उसकी महिमाको समझकर सर्वथा शोकरहित हो जाता है। कैवल्य, निर्वाण, मोक्ष या मुक्तिकी प्राप्तिसे पूर्व बार-बार जन्म-मरण होते रहते हैं।

वेदान्तमें प्रतिपादित—**'दहर उत्तरेभ्यः ।'** (ब्रह्मसूत्र १। ३। १४)के अनुसार वह परमात्मा ही एकमात्र अन्वेष्टव्य है, ज्ञातव्य है, द्रष्टव्य है; अतः इस ब्रह्मके नगररूप मनुष्य-शरीरमें कमलके सदृश आकारवाला जो घर है, उसी हृत्पद्ममें जो सूक्ष्म आकाश है, उसके भीतर जो वस्तु है, वही जीवात्माकी जिज्ञासाका विषय है। उसका चरम लक्ष्य है।

'जो शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धसे रहित, अविनाशी, नित्य, अनादि, अनन्त, महत्‌से परे तथा ध्रुव (अटल-अचल) है, उस तत्त्वको जानकर मनुष्य मृत्युके मुखसे अर्थात् जन्म-मरणके बन्धनसे छूट जाता है।' (कठो० १। ३। १५)

कठोपनिषद्‌में—मृत मनुष्यके विषयमें कोई तो कहता है, यह रहता है और कोई कहता है, नहीं रहता है; ऐसी आशंका ब्रह्मचारी नचिकेताने उठायी है, जिसका यमराजने युक्तियुक्त समाधान किया है, नचिकेताके प्रश्न अग्नि, जीवात्मा तथा परमात्माकी जिज्ञासाके लिये हैं।

दर्शनकी दृष्टिमें जन्म-मरण शब्द सापेक्ष हैं; एक दूसरेका पूरक है, आप और हम जन्म-मृत्युके बारेमें प्रायः ही बातें करते हैं; पर इन दोनों शब्दोंके वास्तविक तात्पर्यपर विचार नहीं करते। विश्वकी किसी भी भाषामें, संस्कृतको छोड़कर, जन्म और मृत्युका दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विवेचन नहीं मिलता। अंगरेजी भाषाके अनुसार तो ये दोनों मात्र दो विशेष घटनाएँ हैं, जो पुनः-पुनः घटती रहती हैं। लेकिन घटित होनेका कारण क्या है, इस प्रश्नका उत्तर मात्र मौन है।

किंतु संस्कृतमें, जो एकमात्र पूर्णतम भाषा है, जिसे सारा विश्व 'देववाणी' स्वीकार कर चुका है, इसमें एक भी शब्द आपको ऐसा नहीं मिलेगा, जिसे आप यह कह सकें कि यह तो आकस्मिक रूपसे इसमें आ घुसा है।

---

* अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥
(गीता ८। ५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृतमें 'जन्म' शब्दका क्या अर्थ है ? 'जनी प्रादुर्भावे' धातुसे व्युत्पन्न 'जन्म' शब्द सिद्ध होता है, जिसका अर्थ है—प्रकट होना। प्रकटसे अभिप्राय है—जो वस्तु पहले अप्रकट थी, उसीका प्रकट होना अर्थात् आँखोंके सामने आकर देखने योग्य हो जाना। संस्कृतमें इसका दूसरा पर्याय है 'उत्पत्ति'। अंग्रेजीमें इसे 'ऑरिजिन' (Origin) शब्दसे व्यक्त किया गया है। इस शब्दका अभिप्राय है उद् (ऊपर) पद् (चलना), अर्थात् ऊपर आकर प्रकट होना। दूसरे शब्दोंमें गुप्त वस्तुका ऊपर आकर प्रकट होना, बाहर आना है। संस्कृतमें इसके लिये तीसरा शब्द है 'सृष्टि'। अंग्रेजीमें 'क्रिएशन' (Creation) है। यह सृष्टि शब्द 'सृज् विसर्गे' धातुसे व्युत्पन्न है। इसका अर्थ भी बाहर आना—प्रकट होना ही है।

इसी प्रकार 'मृत्यु' शब्दको लें। इसका पर्याय संस्कृतमें 'नाश' है। यह 'नश् अदर्शने' धातुसे व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है—देखने योग्य नहीं रह जाना। ये चारों शब्द बतलाते हैं कि जन्म तथा मृत्युका अर्थ नव-जीवनकी प्राप्ति अथवा समाप्ति होना नहीं है।

पुनर्जन्म भारतीय दर्शनका एक प्रमुख तथा विवेच्य विषय है। यहाँके बड़े-बड़े दार्शनिकों, तत्त्व-चिन्तकों, मनीषियों और तार्किकोंने इसपर बड़ी ही गम्भीरतापूर्वक मनन-चिन्तन किया है। आस्तिक दर्शनोंमें पुनर्जन्मका सिद्धान्त निर्विवाद-सा मान लिया गया है। बौद्ध तथा जैनदर्शन इसे डंकेकी चोट स्वीकार करते हैं। बौद्ध जातकोंमें तो तथागतके पूर्वके हजारों जन्मोंकी कथाएँ लिपिबद्ध हो चुकी हैं। न्याय-दर्शनका तो यह एक प्रतिपाद्य सिद्धान्त रहा है। गीता-जैसी सर्वतन्त्र-सिद्धान्त एवं विश्व-सम्मान्य पुस्तकमें भी पूर्वजन्म एवं पुनर्जन्मका उल्लेख है।

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।'

(गीता २। २७)

श्रीभगवान्‌की वाणी ध्रुव-सत्यकी ओर अंगुल्यानिर्देश कर रही है। जन्म और मरणमें अन्योन्य सम्बन्ध है। जन्म है तो मृत्यु भी है और मृत्यु है तब जन्म भी स्वयंसिद्ध है। मृत्यु सिद्ध है तो जन्म क्योंकर असिद्ध हो सकता है ?

पातञ्जलदर्शनमें इसके लिये, 'अभिनिवेश' शब्द आया है। अभिनिवेश क्या है ? 'मरण-भीति'। मरणदुःखके ज्ञानसे भिन्न मरण-भय हो ही नहीं सकता। अतएव पूर्वजन्ममें अनुभूत मरण-दुःखकी स्मृतिसे ही मरण-त्रास उत्पन्न होता है। मरण-भीतिके कारण ही पूर्वजन्म अनुमित होता है।

जीवको आचार्य रामानुजने अपने विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तके प्रतिपादनमें अणु, अज्ञ, क्षुद्र, अल्पज्ञादि विशेषणोंसे विभूषित किया है। अथच जीव अल्पज्ञ है और तद्विपरीत ब्रह्म सर्वज्ञ है। सांख्यने लिखा है—'स हि सर्ववित् सर्वकर्ता' (३।५६)। पातञ्जल अन्य दर्शनोंसे लोहा लेता हुआ प्रमाणित करता है कि 'ज्ञान जहाँ चरमोत्कर्षको पहुँचा है, वह अवश्य ही सर्वज्ञ है। वही ईश्वर है।'

जीव काय, क्लेश, कर्म, विपाक तथा आशय-सम्पर्कयुक्त है—अपरामृष्ट या निर्भिन्न नहीं। ये क्लेशादि सभी भोगोंके कारण हैं और शरीर भोगायतन है। वात्स्यायन कहते हैं—**'आत्मनो भोगायतनं शरीरम्।'** अर्थात् 'शरीर ही आत्माके शुभाशुभ भोगोंका आयतन है।' शरीर-धारणके अतिरिक्त शुभाशुभ कर्मोंका भोग सम्भव नहीं। अथच शरीर धारण पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्मका कारण है। कारणसे हमारा अभिप्राय कर्म-विपाक है। शरीरका अर्थ है—**'शीर्यते (प्रतिक्षणम्) इति शरीरम्।'**

चूँकि यह शरीर अनुक्षण क्षीयमाण है, अतएव सड़ने-गलनेके कारण ही बुद्धिमानोंने इसको शरीरकी संज्ञा दी है। किसी भी प्रकारके शरीरकी प्राप्तिका उद्देश्य पूर्वतन कर्मोंका भोग तथा नवीन कर्मोंका आरम्भ है। 'योनिज' तथा 'अयोनिज'—शरीर दो प्रकारके माने गये हैं। शुक्र शोणितके संयोगसे उत्पन्न शरीर 'योनिज' एवं तद्भिन्न 'अयोनिज' कहलाता है। 'योगार्णव'के अनुसार (१) उद्भिज, (२) स्वेदज, (३) अण्डज तथा (४) जरायुज—शरीर चार प्रकारके होते हैं। भूमिको फोड़कर निकलनेवाला तृण-लता-गुल्मादि 'उद्भिज', स्वेद (पसीने) से उत्पन्न कृमि-कीटादि 'स्वेदज', अंडेसे उत्पन्न 'अण्डज' तथा जरायु (गर्भ) से उत्पन्न 'जरायुज' कहलाता है।

पूर्वजन्म, पुनर्जन्म तथा पुनः पुनर्जन्म—सभीका एक कारण है—कर्म। कृष्ण, शुक्ल-कृष्ण, शुक्ल और अशुक्ला-कृष्णके भेदसे—कर्म चार प्रकारके हैं। निरवच्छिन्न पाप-कर्मका नाम 'कृष्ण कर्म' है। बहिःसाधन-साध्य कर्मका नाम 'शुक्ल-कृष्ण' है। कारण, बहिःसाधन-साध्य यज्ञादिमें कुछ-न-कुछ परपीड़न तथा परानुग्रह रहते ही हैं। तपस्या, स्वाध्याय तथा ध्यानसाध्य कर्म 'शुक्ल'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है । योगियोंका योगाभ्यास 'अशुक्लाकृष्ण' है, इसलिये कि उसमें परपीड़ाका सम्पर्क नहीं, अथच उसका फल कृष्णार्पित है । परमात्माके साक्षात्कारमें तो ये कर्मविपाक-जनित फलभोग विलम्ब करनेवाले विघ्न ही हैं । जिनके मनमें भोग भोगनेका संकल्प नहीं है, उनके लिये जन्म-मरणके बन्धनसे छूटकर तत्काल परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो जाना ही उनका मुख्य फल बतलाया गया है । ब्रह्मज्ञानका फल भी जन्म-मृत्युरूप संसारसे छुटकारा पाना ही है । यज्ञ, दान और तपरूप तीन कर्मोंका करनेवाला मनुष्य जन्म-मृत्युसे तर जाता है । श्रुति कहती है—'**तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।**' (श्वेताश्वतर० ३ । ८) अर्थात् 'उस परमात्माको जानकर ही मनुष्य जन्म-मरणकी सीमाको लाँघ जाता है । परमपद-प्राप्तिके लिये दूसरा कोई मार्ग नहीं है ।' (शेष आगे)

जन्म-मृत्यु, अमरत्व, परलोक और पुनर्जन्मका स्वरूप तथा रहस्य

(लेखक—श्रीश्रीरामाधव चिंगले, एम्० ए०)

'स वा एष महानज आत्माजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभयꣳ हि वै ब्रह्म भवति य एवं वेद ॥' *

(बृहदारण्यकोपनिषद् ४ । ४ । २५)

१—प्रस्तुत विषयका महत्त्व

(क) भारतीय संस्कृतिमें इसका स्थान और महत्त्व

जन्म-मृत्यु सबके दैनन्दिन अनुभवके विषय हैं; क्योंकि वे प्रत्यक्ष हैं । तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि सभी इनके वास्तविक रहस्यसे परिचित हैं; क्योंकि इन्हींके कारणस्वरूप और फलस्वरूप पूर्वजन्म, पुनर्जन्म तथा परलोक और इनका अन्तिम पर्यवसान अमृतत्वरूप मोक्ष इत्यादि प्रत्यक्ष प्रमाणगोचर नहीं है । इसीलिये अनादिकालसे ये विषय विवादास्पद रहे हैं । मुमुक्षु बालक नचिकेताने यमराजसे साग्रह यही तो प्रश्न पूछा था—'**येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके ।**' "मृत मनुष्यके विषयमें यह संदेह है कि कोई तो कहते हैं वह 'रहता है' और कोई कहते हैं 'नहीं रहता' । इसमें सचाई क्या है ?" इस विषयका विचार करते समय पहली महत्त्वकी बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि प्रत्यक्ष प्रमाण ही तो एकमात्र प्रमाण नहीं । निरे प्रत्यक्ष प्रमाणको माननेका पर्यवसान तो चार्वाकदर्शनमें ही हो सकता है । प्रमाणविचारमें अनुमान, शब्द इत्यादि अन्य प्रमाण तथा उन्हींके पोषक विद्वदनुभव इत्यादि भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं । इनके द्वारा आत्माकी अमरता तथा उसके व्याप्य पूर्वजन्म, पुनर्जन्म तथा परलोकादिकी सिद्धि हो जाती है । इनमें दृढ़ विश्वास और उससे निकलनेवाले निष्कर्ष व्यष्टि तथा समष्टि जीवनपर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकते । इन्हींके आधारपर हमारे नैतिक, धार्मिक तथा तात्त्विक या एक शब्दमें हमारे आध्यात्मिक जीवन और संस्कृतिकी सिद्धि होती है । इसके विपरीत इनमें अविश्वास इन सबकी जड़ ही उखाड़ फेंकता है । इनके बिना हमारा जीवन समस्त उदात्त मूल्योंसे शून्य, निरा पशु-तुल्य रह जाता है । इसीलिये भारतकी अध्यात्ममय संस्कृतिमें इनका पूरा-पूरा महत्त्व स्वीकार किया गया है और इन्हें जीवनव्यापी स्वरूप दिया गया है । हमारे 'संस्कार' जन्म-पूर्व तथा मरणोत्तर जीवनको भी व्याप्त किये हुए हैं । हमारा धर्म तथा दर्शन इहलोकतक ही सीमित न होकर पग-पगपर जन्मान्तर तथा परलोकको भी दृष्टिपथमें रखे हुए है । इसी प्रकार हमारा जीवनव्यापी साधनरूप धर्म मनुष्यको अधिकारभेदसे साक्षात् या परम्परया आत्म-साक्षात्काररूप परमधर्म यानी मोक्षरूप परम पुरुषार्थकी ओर ही प्रवृत्त करता है । इसी आशयसे महर्षि श्रीयाज्ञवल्क्य अपनी स्मृतिमें कहते हैं—

इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्मणाम् ।
अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ॥१।८॥

'यज्ञ-यागादि समस्त कर्मकाण्ड, आचारधर्म, इन्द्रियनिग्रह, अहिंसा, दान, वेदाध्ययन इत्यादि कर्मोंद्वारा साध्य होनेवाला सर्वश्रेष्ठ धर्म है—योगद्वारा आत्मसाक्षात्कार कर लेना ।'

---

* वही यह महान् अजन्मा आत्मा अजर, अमर, अमृत एवं अभय ब्रह्म है । अभय ही ब्रह्म है । जो ऐसा जानता है वह अभय ब्रह्म ही हो जाता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतमें मरणोत्तर जीवनका कितना महत्त्व है, यह बात भारतीय दर्शनके अनन्य प्रेमी, जर्मन विद्वान् पॉल डायसन (Paul Deussen) के 'उपनिषद् दर्शन' (The Philosophy of the Upanishads) नामक ग्रन्थके निम्न अवतरणसे देखी जा सकती है—'मरणोत्तर मनुष्यकी क्या गति होती है ?' यह प्रश्न हमें जीवात्माके पुनर्जन्मके सिद्धान्तकी ओर ले जाता है जो कि भारतीय दर्शनका अत्यन्त मौलिक और प्रभावकारी सिद्धान्त है और जो उपनिषद्कालसे लेकर आजतक भारतीय चिन्तनमें प्रमुख स्थान रखता आया है। भारतमें आज भी यह सक्रियरूपसे अत्यधिक प्रभावशील है।' (पृ० ३१३)

भगवल्लीन स्व० श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने इस विषयमें लिखा है—'आत्माकी उन्नति तथा जगत्में धार्मिक भाव, सुख-शान्ति और प्रेमके विस्तारके लिये तथा पाप-तापसे बचनेके लिये भी परलोक एवं पुनर्जन्मको मानना आवश्यक है।' (तत्त्व-चिन्तामणि भाग ५)

आज भौतिकवाद तथा जडवादकी और उसके फलरूप देहात्मवादकी वृद्धि हो रही है, जो अनेक अनर्थोंको जन्म दे रही है। एकमात्र इसी लोक और इसी जन्मकी ओर ध्यान केन्द्रित करनेके कारण जीवन-संघर्ष अत्यन्त तीव्र हो गया है और सम्पूर्ण जीवन ही समस्यामय बन गया है। इस कारण मानसिक तनाव तथा अशान्तिकी अत्यधिक वृद्धि हो रही है। इन सब बातोंका दुष्परिणाम जीवनका भार असह्य होकर बढ़ती हुई आत्महत्याओंके रूपमें दिखायी दे रहा है। यदि इन अनिष्ट प्रवृत्तियोंमें रोक लगाना हो तो धर्ममें श्रद्धा, ईश्वरमें विश्वास, आत्माकी अमरता, पूर्वजन्म, पुनर्जन्म तथा परलोकमें विश्वास रखना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा करनेपर मनुष्यके मनमें पापभीरुता और कार्याकार्यका विवेक जाग्रत् होगा और मनुष्य-जन्मका तथा चित्तकी साम्यावस्थाका महत्त्व मालूम होगा और आत्मघातके सम्भाव्य दुष्परिणामोंका ज्ञान होकर उस ओर उसकी भूलकर भी प्रवृत्ति न होगी।

(ख) पाश्चात्त्य विचारकोंका इस विषयमें समर्थन

सुप्रसिद्ध यूनानी तत्त्वज्ञ प्लेटो (Plato) ने तो दर्शनकी व्याख्या ही 'मृत्यु तथा मरणका प्रदीर्घ अभ्यास' ("One long study of death and dying") इस प्रकार की है।

प्लेटोके सुयोग्य शिष्य अरस्तू (Aristotle) कहते हैं, 'हमें इस मत-प्रणालीका कदापि आदर नहीं करना चाहिये कि चूँकि हम मानव तथा मर्त्य हैं, इसलिये हमें अपने विचार मानव तथा मृत्युलोकतक ही सीमित रखने चाहिये। चाहिये तो यह कि हम अपने जीवनके दैवी अंशको जाग्रत् करके अमरत्वका अनुभव करनेमें कोई कसर न उठा रक्खें।'

लूथर (Luther) के अनुसार भावी जीवनके निषेधका अर्थ होता है—'स्वयं ईश्वरका तथा हमारे उच्चतर नैतिक जीवनका निषेध और स्वैराचारका स्वीकार।'

फ्रेंच धर्मप्रचारक मसिलाँ (Massilon) तथा ईसाई संत पॉल (St. Paul) के अनुसार 'देहके साथ ही आत्माका नाश माननेका अर्थ होता है—विवेकपूर्ण जीवनका अन्त और विकारमय जीवनके लिये द्वारमुक्त करना!'

सुप्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक कांट (Kant) ने 'परिपूर्ण नैतिक तथा सदाचारसम्पन्न जीवनकी प्राप्ति तथा उसके फलस्वरूप मिलनेवाली सुखप्राप्तिके लिये आत्माके अमरत्वको माननेकी आवश्यकता सिद्ध की है।'

फ्रेंच विचारक रेनन (Renon) के अनुसार 'भावी जीवन तथा आत्माके अमरत्वमें अविश्वासका पर्यवसान मानवके भयंकर नैतिक तथा आध्यात्मिक पतनमें होना अनिवार्य है।'

मॅकडूगल (Mc Dougall) के अनुसार 'भावी जीवनमें विश्वास उठना हमारी सभ्यताके लिये तथा हमारे नैतिक जीवनके लिये एक भयावह संकट होगा।' श्रीमॅकडूगलने अपना 'शरीर और मन' (Body and Mind) नामक ग्रन्थ भावी जीवनमें पुरातन तथा विश्व-व्यापक विश्वासको वैज्ञानिक आधार प्रदान करनेके लिये ही लिखा है।

मॅक टेगार्ट (Mc Taggart) के अनुसार 'आत्माके अमरत्वकी साधक युक्तियोंके द्वारा ही हमारे भावी जीवनके साथ ही पूर्वजन्मकी भी सिद्धि हो जाती है। एकके बिना दूसरेमें विश्वास तर्कसंगत और युक्तियुक्त नहीं।'

मानव-वंश-शास्त्रज्ञोंके अनुसार 'मरणोत्तर जीवनमें विश्वास सभ्यताके शैशव-कालसे ही व्यापकरूपसे प्रचलित रहा है।'

सर जेम्स फ्रेज़र (Sir James Frazer) के अनुसार 'वन्य जातियोंमें मरणोत्तर जीवन कल्पनामात्र न होकर एक निश्चयात्मक तथ्य रहा है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीएडमंड होम्स (Edmond Holmes) खुले हृदयसे निम्न स्वीकृति देते हैं—'पुनर्जन्मके सिद्धान्तके साथ ही कर्म-सिद्धान्तने मेरे जीवनमें प्रवेश किया और मेरे हृदयने सहर्ष उसका स्वागत किया । इसके कारण मेरी हृदयस्थ न्यायभावनाका पूर्ण समाधान हो गया ।'

सर हेनरी जोन्स कहते हैं—'अमरत्वके निषेधका अर्थ होता है—पूर्ण नास्तिकता ! अमरत्वको स्वीकार करके ही हम पूर्णातिपूर्ण विश्वपतिमें तथा उसकी सुसम्बद्ध एवं अर्थपूर्ण रचनामें विश्वास रख सकते हैं । अन्यथा यह विश्व यादृच्छिक तथा अविचारमूलक ही सिद्ध होगा ।'

जे. बी. प्रट कहते हैं—'हिंदूधर्मकी तरह ईसाईधर्ममें भी अमरत्वको धर्मका एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग माना गया है ।'

श्री प्रिंगल पैटिसन (Pringle Pattison) अपने 'अमरत्वका विचार' (The Idea of Immortality) नामक ग्रन्थमें (जिसमेंसे कि उपर्युक्त अधिकांश अवतरण लिये गये हैं) कहते हैं—'यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि मृत्यु-विषयक चिन्तनने ही मनुष्यको सच्चे अर्थमें मनुष्य बनाया है । उसके दर्शन, उसके धर्म तथा उसके सर्वश्रेष्ठ काव्यके मूलमें मृत्यु तथा उसे अन्तिम तथ्य न माननेकी प्रेरणा ही रही है ।'

प्रो० एस० सी० नारथ्राप (S. C. Northrop) कहते हैं कि 'आत्माके अमरत्वका निषेध करनेवाले पाश्चात्य जडवादी भी भौतिक शास्त्रान्तर्गत शक्ति तथा अचेतन द्रव्यकी अक्षय्यताको मानकर एक तरहसे अमरत्वकी ही स्वीकृति देते हैं ।'

श्री ई. एम. मेलीन (E. M. Meleen) के अपने 'मानवकी आत्मा' (The Soul of Man) नामक ग्रन्थमें प्रकट किये हुए निम्न विचार निस्संदेह मननीय हैं—

'यदि किसी कारणवश मनुष्यजातिके मनसे आत्माके अमरत्वका सिद्धान्त अपहृत हो जाय तो क्या हो ? तो—तो, जिस प्रकार ताशके बड़े सारे बंगलेमेंसे नीचेके एक ताशके निकाल लेनेपर जैसे सारा बंगला भहराकर गिर पड़ता है, ठीक वैसे ही मनुष्यके सारे धर्म-सिद्धान्त, उसकी धार्मिक श्रद्धाएँ, उसकी सारी दार्शनिक प्रक्रियाएँ इत्यादिकी बड़ी-बड़ी इमारतें क्षणार्धमें विनाशके बड़े सारे ढेरमें मिल जायँ । मानव-जातिके मनमें इस मर्त्य शरीरमें रहनेवाले अमर आत्मामें विश्वव्यापक रूपसे पाया जानेवाला विश्वास इतना बद्धमूल है कि मानो उसे विधाताने ही वहाँ निहित किया हो ।'

उपर्युक्त विवेचनसे और अवतरणोंसे स्पष्ट है कि जगत्के अधिकांश विचारक आत्माकी अमरता तथा मरणोत्तर जीवनमें विश्वास रखनेवाले हैं । स्वानुभवसे भी इसी सिद्धान्तकी पुष्टि होती हुई देखी जा सकती है । इसका विचार निम्न प्रकारसे है—

२—जीविताशा बलीयसी—आत्मा परम प्रेमास्पद है

प्रत्येक मनुष्य और केवल मनुष्य ही नहीं, प्राणीमात्र चाहता है कि वह किसी-न-किसी रूपमें बना रहे; मरे नहीं। ये दो बातें—(१) सदैव जीवित रहनेकी उत्कट इच्छा और (२) मरणभय । केवल मनुष्यमें ही नहीं, जीवमात्रमें, वनस्पति-कीट-पतंगादि सबमें पायी जाती हैं । संसारके समस्त भयोंमें यदि कोई सबसे बड़ा भय हो सकता है अथवा माना जाता है तो वह 'मरणभय' ही है । योगदर्शनमें इसकी गणना 'पञ्च क्लेशों'में की गयी है । अविद्यादि पाँच क्लेशोंमें 'अभिनिवेश' संज्ञक पञ्चम क्लेश 'मरणभय' ही है। जीवमात्रके अन्तःकरणमें यह इतना गहरा घुसा हुआ है कि वह केवल साधारण लोगोंतक ही सीमित हो, यह बात नहीं। अच्छे-अच्छे और बड़े-बड़े विद्वान्, पण्डित तथा शब्दविशारद निष्णात दार्शनिक भी इसके प्रभावसे मुक्त नहीं। यह जानते हुए भी कि शरीर मर्त्य है और एक-न-एक दिन उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है और आयु शरीराम्भक प्रारब्धकर्मके समाप्त होते ही समाप्त होनेवाली है। ऐसी स्थितिमें भी आबाल-वृद्ध सभी चाहते हैं कि इन स्वरूपतः ही अनित्य और नाशवान् देहेन्द्रियादिसे उनका वियोग कभी न हो ।

यदि उपर्युक्त अनुभव सत्य और निर्विवाद है तो उससे कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं । हमारे मनमें बद्धमूल मरणभय और सदैव बने रहनेकी इच्छा—ये दोनों बातें ही एक तरहसे हमारे अज, अमर, आत्मस्वरूपको सिद्ध करती हैं । यदि हम स्वरूपतः ही, स्वभावतः ही मर्त्य होते तो हम मृत्युके भयसे भी ग्रस्त न होते और न हममें सदैव बने रहनेकी इच्छा इतने उत्कट रूपमें दिखायी देती। मूल अविद्याजन्य अध्यासके कारण हमने चेतन आत्माके धर्म जड-देहादिपर आरोपित कर दिये हैं और जड-देहादिके धर्म चेतन आत्मापर आरोपित कर दिये हैं । जड-चेतनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही इतरेतराध्यास उक्त दोनों बातोंके मूलमें है। वस्तुतः अमर जीवन हमारी प्रकृति है और मृत्यु अज्ञानमूलक विकृति है, जिसकी यथार्थ ज्ञानद्वारा निवृत्ति सम्भव है। मरणभय और उत्कट जीवितेच्छाके द्वारा हमारा असीम आत्मप्रेम ही प्रकट होता है। श्रीविद्यारण्यस्वामी 'पञ्चदशी'में यथार्थताके साथ कहते हैं—

अयमात्मा परानन्दः परप्रेमास्पदं यतः।
मा न भूवं हि भूयासमिति प्रेमात्मनीक्ष्यते॥
(तत्त्वविवेक ८)

"नित्य स्वयंप्रकाश ज्ञान ही आत्माका स्वरूप है। साथ ही यह परम प्रेमास्पद होनेके कारण परमानन्द-स्वरूप भी है। 'मैं न रहूँ ऐसा कभी न हो; किंतु मैं सदैव बना रहूँ' ऐसा प्रेम आत्मासे सभी करते हैं।"

ध्यान रहे, विषयोंके साथ हमारा प्रेम सोपाधिक, सावधिक और अनित्य होता है। इसके विपरीत आत्माके साथ हमारा प्रेम नित्य, निरुपाधिक और निरवधिक होता है। दुःखरूप वस्तुके साथ इस प्रकारका प्रेम कभी सम्भव नहीं। मृत्यु तो सबसे बड़ा दुःख है। आत्मा यदि उससे ग्रस्त होता तो इस प्रकारका प्रेम उसके साथ कदापि न होता। इससे सिद्ध होता है कि आत्मस्वरूप सत् यानी त्रिकालाबाधित है और नित्य, निरतिशय आनन्द या सुखस्वरूप है। जाग्रदादि समस्त अवस्थाओंका साक्षी होनेके कारण वह ज्ञानस्वरूप भी है। आत्मा नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, अज, अमर और सच्चिदानन्दस्वरूप है। यही जीव-मात्रका सच्चा स्वरूप है।

३—मरणभय अज्ञानमूलक है

अब प्रश्न यह है कि यदि हम स्वरूपतः ही अमर हैं तो हमें मरनेसे भय क्यों लगता है और त्रिकालाबाधित सत्य हमारा स्वरूप होते हुए भी हमें सदैव बने रहनेकी इच्छा क्यों होती है? इसका निस्संदिग्ध उत्तर यह है कि यही तो माया या मूल अविद्याका प्रभाव है। इसकी आवरण-शक्ति-के प्रभावसे हम अपने अज, अमर, सच्चिदानन्द-स्वरूपको स्वप्नद्रष्टाकी तरह भूल-से गये हैं और इसकी विक्षेप-शक्तिके प्रभावसे दृश्यमान जगत्में सत्यत्वबुद्धि रखकर देहादि अनात्मपदार्थोंके साथ आध्यासिक यानी मिथ्या तादात्म्य स्थापित कर बैठे हैं। इसके फलस्वरूप हम अपना अमरत्व अनात्मपदार्थोंपर आरोपित करके उनको शाश्वत समझने लगते हैं और उनका विनश्वर स्वरूप अपने स्वयंपर आरोपित करके अपने-आपको मरणशील समझने लगते हैं। अज्ञानका तो यह स्वभाव ही होता है कि वह 'जो वस्तु है और भासमान होती है' उसीके सम्बन्धमें 'वह नहीं है और भासती नहीं है' इस प्रकारका विपरीत व्यवहार करा देता है। हमारे समस्त वेद, स्मृति, इतिहास, पुराण तथा शास्त्र—मनुष्यके इस आत्मस्वरूपविषयक अज्ञानको दूर करके उसे उसके स्वानन्द-स्वाराज्य-साम्राज्यपदपर अभिषिक्त कराना चाहते हैं। भारतकी ब्रह्मविद्या डंकेकी चोट यह कहती है कि 'हे मनुष्य! तू न तो क्षुद्र है और न मर्त्य! तू न तो जड है और न नियति-परतन्त्र! यह तो तेरा स्वप्नद्रष्टाकी तरह अज्ञान-कालीन कल्पित स्वरूप है। तू तो अमृतका पुत्र है 'अमृतस्य पुत्राः।' तू अजर, अमर, अक्षर, अव्यय है। तू स्वयं ही अमृतस्वरूप परात्पर परब्रह्म है। श्रुति तेरे ही हितमें मुक्तकण्ठसे कहती है—'तत्त्वमसि'। तू कालका कवल न होकर तू कालका भी काल—महाकाल है। तेरे वास्तविक स्वरूपसे ही स्वयं निःसत्त्व मृत्यु सत्ता प्राप्त करती है और तेरे भयसे ही वह निरन्तर कार्यशील रहती है। 'मृत्युर्वा असद् सदमृतम्।' (बृ० उपनिषद् १।३॥२८)। 'भीषास्मात्····· मृत्युर्धावति' (तैत्तिरीयोपनिषद् २।८)। 'जगत्के सारे पदार्थ तेरे प्रकाशसे ही प्रकाशित हैं—तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।' (मुण्डकोपनिषद् २।२।१०)। उनकी उत्पत्ति, स्थिति तेरे कारण ही है और लय भी तेरेमें ही है। तू उठ, अपनी अनादि अविद्याजन्य मोहनिद्राको छोड़ और अपने वास्तविक स्वरूपको पहचान!! 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।' (कठोपनिषद् १।३।१४) उठो! जागो और श्रेष्ठ पुरुषोंके समीप जाकर (आत्म-) ज्ञान प्राप्त करो!'

४—आत्माका अमरत्व श्रुति, युक्ति तथा विद्वदनुभवसिद्ध है

आत्माके अमरत्वकी सिद्धि पाश्चात्य तथा पौरस्त्य विचारकोंने अनेक युक्तियाँ देकर की है। इनमेंसे कुछ प्रमुख युक्तियाँ हम प्रस्तुत संदर्भमें देख लें। पाश्चात्य दार्शनिकोंने प्राचीन कालसे आत्माके अमरत्वको अनेक युक्तियोंद्वारा सिद्ध किया है। उदाहरणार्थ प्लेटो (Plato) ने आत्माके अमरत्वके समर्थनमें दस युक्तियाँ दी हैं। इन दार्शनिकोंमें कुछ तो स्पष्टतया पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्मको माननेवाले हैं। इस दृष्टिसे पाइथागोरसका नाम विशेषतया उल्लेखनीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाश्चात्य दर्शनमें ह्यूम (David Hume) तथा कांट (Kant) के समयतक आत्माके अमरत्वकी एक प्रमुख युक्ति रही है—आत्माकी एकरूपता, निरवयवता तथा निष्कलता(Unity and Simplicity of the Soul)। भारतीय दार्शनिकोंने भी यह युक्ति इस संदर्भमें दी है। सावयव, सखण्ड तथा विभजनीय वस्तुओंका ही विघटन या विनाश सम्भव है। अखण्ड, एकरस, निष्कल, निरवयव, निर्विकार आत्मतत्त्वका स्वरूप ही इस प्रकारका है कि उसका विघटन या विनाश सम्भव नहीं। वह स्वरूपतः ही अविनाशी है। सर्वदा एकरूप होनेके कारण उसमें उपचय-अपचय सम्भव नहीं। वह अहेय, अनुपादेय है; वह षड्भावविकार-रहित है।

आत्मा अप्रमेय यानी देश-काल-वस्तुरूप त्रिविध परिच्छेद-रहित होनेसे कूटस्थ नित्य है; क्योंकि उसके विनाशका कोई हेतु ही सम्भव नहीं। आत्मा नित्य है; क्योंकि वह कालतः अपरिच्छिन्न है। उसका न तो प्रागभाव है और न प्रध्वंसाभाव; मान लीजिये आत्मा भी घटादिकी तरह द्विविध अभावोंसे ग्रस्त है। अब प्रश्न यह है कि उसके इन अभावों-को कौन ग्रहण करता है ? स्वयं आत्मा या अनात्मा या अन्य आत्मा ? अनात्मपदार्थ जड होनेसे उनमें जाननेकी योग्यता ही नहीं। ज्ञानभिन्नत्व तो जडका स्वरूप ही है। आत्मा स्वयं ही स्वविरोधी नहीं हो सकता; अतएव स्वयं आत्मा अपना अभाव ग्रहण करता है, यह कथन वदतो-व्याघात है। ऐसा माननेसे कर्तृकर्मविरोधरूप दोष भी आता है; क्योंकि जिस समय वह ग्राह्यस्वरूप यानी कर्म स्वरूप होगा, उस समय वह ग्राहक यानी कर्तृस्वरूप न होगा और जिस समय वह ग्राहक या कर्ता होगा, उस समय वह ग्राह्य या कर्म न होगा। यदि कहा जाय कि एक आत्माका अभाव दूसरा आत्मा ग्रहण करेगा, तो यह भी सम्भव नहीं; क्योंकि शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मामें भेदक न होनेसे वह एक ही हो सकता है, अनेक नहीं। अतएव आत्मासे भिन्न जो-जो कुछ होगा, वह अनात्मा ही होगा, आत्मा नहीं। व्यवहार-कालमें जीवोंमें प्रतीयमान भेद अन्तःकरणरूप उपाधिके कारण होनेसे वे कल्पित ही होते हैं, वास्तविक नहीं। इसलिये प्रतिकर्म व्यवस्था भी उपपन्न हो जाती है और आत्माकी एकता भी निर्बाध रहती है।

आत्माको अनित्य यानी ध्वंसप्रागभावका प्रतियोगी माननेसे कृतप्रणाश तथा अकृत-अभ्यागमरूप दोष भी आते हैं। यदि इस जन्मसे पूर्व आत्मा न होता तो इस जन्ममें हमने जो कर्म पहले कभी किये नहीं, उन्हें ही भोगनेमें आपत्ति आती है। इससे कर्म-सिद्धान्त और कार्य-कारणभावके सिद्धान्तको भी घोर बाधा पहुँचती है। इसी प्रकार यदि आत्मा आगे न रहे तो महाकष्टार्जित पुण्यकर्मोंके फल किसे और किस प्रकार मिल सकते हैं ? ऐसी स्थितिमें आयासबहुल शुभकर्मोंको करनेकी प्रेरणा ही न रहे। भला, जो बैंक निश्चयात्मकरूपसे डूबनेवाला है, उसमें पैसा जमा करनेकी मूर्खता कौन करेगा ? तात्पर्य यह कि आत्माका न तो प्रागभाव है और न प्रध्वंसाभाव ही; वह नित्य है; अज, अमर है। समस्त बाधावधि होनेसे उसके स्वयंका बाध नहीं हो सकता। कोई भी बाध निःसाक्षिक नहीं हो सकता। आत्माका निराकरण कोई नहीं कर सकता; क्योंकि स्वयं निराकरण करनेवालेका स्वरूप ही तो आत्मा है—'य एव हि निराकर्ता तदेव तस्य स्वरूपम्।' इससे सिद्ध होता है कि नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, अज, अमर—यही आत्माका सच्चा स्वरूप है।

पाश्चात्य दर्शनमें जर्मन दार्शनिक कांट (Kant) और आंग्ल दार्शनिक ह्यूमके समयसे आत्माके अमरत्वकी सिद्धिके लिये अध्यात्मशास्त्रमूलक युक्ति (Metaphysical argument) को गौणस्थान प्राप्त हुआ और नीतिशास्त्र-मूलक युक्तिको प्रधानता मिली। इसके दो रूप हैं—(१) न्यायकी माँग, कृतकर्मोंके फल मिलना ऋतसत्य (Moral Order) के निर्वाहके लिये आवश्यक है। किंतु हम सदाचारी और पुण्यशील पुरुषोंको दुःख उठाते हुए पाते हैं और पापी तथा दुराचारी पुरुषोंको सुखमय जीवन व्यतीत करते हुए पाते हैं। इनके इन भले-बुरे कर्मोंके फल इस जन्ममें नहीं तो जन्मान्तरमें अवश्य ही मिलने चाहिये। यह बात आत्माके अमरत्वके बिना सम्भव नहीं। इसलिये मानना पड़ता है कि आत्मा अमर है। (२) परिपूर्ण नैतिक जीवन क्रमशः प्राप्य है। मनुष्यके आध्यात्मिक विकासमें क्रम है। एक जन्म इसके लिये पर्याप्त नहीं। भावी अनेक जन्मोंमें ही यह सम्भव है। इसलिये भी आत्माको अमर मानना पड़ता है।

उपर्युक्त दोनों युक्तियाँ भारतीय अध्यात्मके कर्मसिद्धान्त और 'अनेकजन्म-संसिद्ध' मोक्षसे बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं।

परामनोविज्ञान (Para Psychology) ने इस सम्बन्धमें महत्त्वपूर्ण खोज करके मरणोत्तर अस्तित्वकी सिद्धिमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है और दे रहा है। इसी विषयके संशोधनके लिये संस्थापित 'साइकिकल रिसर्च सोसाइटी' (Psychical Research Society) इस कार्यमें तत्परताके साथ संलग्न है।

भौतिक विज्ञानके अनुसार जगत्में किसी भी पदार्थका नाश नहीं होता; रूपान्तर मात्र होता है। विज्ञान शक्तिके संरक्षणके सिद्धान्तमें (Law of conservation of energy) और पदार्थकी अनश्वरताके सिद्धान्तमें विश्वास करता है। जब जगत्के जड पदार्थोंकी यह स्थिति है, तब इन्हींके अभिन्न-निमित्त-उपादान-कारण चेतन आत्मतत्त्वकी अनश्वरता कैमुतिक न्यायसे सुतरां सत्य होनी चाहिये।

मनुष्य-मनुष्यमें, एक ही माता-पितासे उत्पन्न बालकोंमें दिखायी देनेवाला स्वभावका वैचित्र्य तथा वैविध्य, नवजात शिशुमें पायी जानेवाली स्तन्यपानादिकी सहज प्रवृत्ति, जीव-मात्रमें पाया जानेवाला मरण-भय इत्यादि सदृश बातें पूर्व-जन्मके संस्कारोंको सिद्ध करती हैं। उनके बिना इनकी कोई समाधानकारक उपपत्ति नहीं लग सकती। इस तरह भी आत्माका पूर्वकालीन अस्तित्व सिद्ध हो जाता है।

हमारा वर्तमान जन्म ही हमारे पूर्वकालीन और मरणोत्तर अस्तित्वको सिद्ध करता है। **'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।'** अर्थात् 'असत्का कभी भाव नहीं हो सकता और सत्का कभी अभाव नहीं हो सकता।' यह अबाधित सिद्धान्त इस विषयमें पर्याप्त प्रमाण है। पाश्चात्य विचारकोंने भी इस सिद्धान्तको माना है। लैटिन भाषामें यह न्याय निम्न शब्दोंमें व्यक्त किया गया है— 'Ex nihilo nihil fit' जिसका अंग्रेजी अनुवाद है— 'Nothing comes out of nothing.' यह **'नासतो विद्यते भावः'** को ही व्यक्त करता है।

पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्म न माननेका यह अर्थ होता है कि हमारा वर्तमान जन्म आकस्मिक है। वह यदृच्छासे, बिना किसी कारणके और बिना किसी उद्देश्यके होता है और यदृच्छासे, बिना किसी कारण और उद्देश्यके ही उसका अन्त होता है; मानो यहाँ कार्य-कारण-भावने विराम पा लिया हो; किंतु यह विश्व सुसम्बद्ध, सुव्यवस्थित, अतएव कार्य-कारण-भावसे बद्ध है, यह यादृच्छिक नहीं है। यह बात तो विज्ञानकी समस्त शाखाओंकी मूलभूत मान्यता है। इस दृष्टिसे यदृच्छावाद अपसिद्धान्त ही है। यदि यह जन्म है तो इसका कोई कारण होना ही चाहिये और वह इस जन्मसे पूर्व ही होना चाहिये; क्योंकि कारणका स्वरूप ही यह है कि वह कार्यके नियत पूर्ववर्ती होता है। इसी प्रकार यदि यह जन्म है तो भावी जन्म होना ही चाहिये; क्योंकि वर्तमान जन्ममें भावी जन्मके बीज बोये जाते हैं। यह अज्ञानमूलक भवचक्र तबतक चलता रहता है, जबतक कि यथार्थ ज्ञानके द्वारा इसका आत्यन्तिक उच्छेद न हो जाय।

आत्माके अमरत्वके विषयमें श्रुति-स्मृति-इतिहास-पुराणादिमें सहस्रशः प्रमाण हैं। इनमेंसे उदाहरणार्थ कुछ वचन उद्धृत किये जाते हैं—

१. 'अविनाशी वा अरेऽयमात्मा अनुच्छित्तिधर्मा।'

(बृहदारण्यकोपनिषद् ४। ५। १४)

'यह आत्मा स्वभावतः ही अविनाशी और उच्छेदरहित है; अर्थात् इसका न तो विकाररूप नाश होता है और न उच्छेदरूप ही।'

२. 'स वा एष महानज आत्माजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्म।'

(बृ० उ० ४। ४। २५)

'वही यह महान् अजन्मा आत्मा अजर, अमर, अमृत एवं अभय ब्रह्म है।'

३. 'एष त आत्मा सर्वान्तरो योऽशनायापिपासे शोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति।' (बृ० उ० ३। ५। १)

'यह तुम्हारा आत्मा सर्वान्तर है, जो भूख-प्यास, शोक, मोह, जरा और मृत्युसे परे है।'

४. 'एष त आत्मान्तर्याम्यमृतोऽतोऽन्यदार्तम्।'

(बृ० उ० ३। ७। २३)

'यह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी और अमृत यानी अमर है। इससे भिन्न सब विनाशी है।'

५. न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

(कठोपनिषद् १। २। १८)

'यह मेधावी आत्मा न तो उत्पन्न होता है और न मरता है। यह न तो किसी कारणसे ही उत्पन्न हुआ है और न स्वतः ही कुछ बना है। यह अजन्मा, नित्य (सदासे वर्तमान), सर्वदा रहनेवाला और पुरातन है तथा शरीरके मारे जानेपर भी यह स्वयं नहीं मरता।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमद्भगवद्गीताके द्वितीय अध्यायमें आत्माके अमरत्वका सविस्तर निरूपण है, जो सुप्रसिद्ध है। स्थलसंकोचवश हमने यहाँ केवल इसका निर्देशमात्र कर दिया है।

श्रुति तथा युक्तिके साथ ही विद्वदनुभव यानी जगत्के ईश्वर या तत्त्व-साक्षात्कारी पुरुषोंके अनुभव भी इस विषयमें अविद्यान्धकारसे ग्रस्त सामान्यजनोंके लिये दीपस्तम्भकी तरह मार्गदर्शक हैं। इन सबका निस्संदिग्ध अनुभव यही है कि 'आत्मा अमर है और उसके अपरोक्ष, साक्षात्कारात्मक ज्ञानसे अमृतत्वरूप मोक्षका अनुभव इसी लोकमें, इसी देहमें किया जा सकता है।' यह मोक्ष दृष्टफल है और ज्ञानके साथ ही मिलता है—'**ज्ञानसमकालमुक्तः**।' क्योंकि अविद्या ही एकमात्र बन्ध है और ज्ञानसे उसकी निवृत्ति होना ही मोक्ष है—

'**अविद्यास्तमयो मोक्षः सा च बन्ध उदाहृता।**'

इस स्थितिको 'जीवन्मुक्त अवस्था' कहा गया है, जिसकी सिद्धि भगवान् भाष्यकारने ब्रह्मसूत्र-भाष्यमें प्रयत्नपूर्वक की है (४।१।१५)। आपके अनुपम, दिव्य वेदान्तस्तोत्र इसी अनुभवको विशद करते हैं। उदाहरणार्थ निम्न श्लोक देखिये—

न मे मृत्युशङ्का न मे जातिभेदाः पिता नैव मे नैव माता न जन्म।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

(निर्वाणषट्क ५१)

पञ्चदशीकारका सिद्धावस्थाका निदर्शक निम्न श्लोक देखिये—

धन्योऽहं धन्योऽहं नित्यं स्वात्मानमंजसा वेद्मि।
धन्योऽहं धन्योऽहं ब्रह्मानन्दो विभाति मे स्पष्टम्॥

(विद्यानन्दप्रकरण ५९)

'मैं धन्य हूँ; क्योंकि अपने नित्य आत्माको मैं ठीक-ठीकसे समझ गया हूँ।' मैं धन्य हूँ; क्योंकि अब मुझे ब्रह्मानन्दका स्पष्ट अनुभव होने लगा है।'

महाराष्ट्र संत श्रीतुकाराम कहते हैं कि मेरी मृत्युकी ही मृत्यु मैंने अपनी आँखोंसे देखी। यह एक अनुपम महोत्सव है।

बाइबलमें ईसामसीह अमृतस्वरूप आत्माके लाभका महत्त्व बतलाते हुए कहते हैं—

'What shall it profit a man if he shall gain the whole world and lose his own soul.'

अर्थात् 'यदि सम्पूर्ण जगत्का भी स्वामित्व प्राप्त कर लिया और अपने आत्माको ही गँवा दिया तो यह सौदा किस भाव पड़ा?'

उपर्युक्त विवेचनका तात्पर्य यह है कि अमृतस्वरूप आत्माके लाभसे बढ़कर कोई लाभ नहीं और अविद्याजन्य आत्मापहारसे बढ़कर दूसरा कोई पाप और दूसरी कोई हानि नहीं! (शेष आगे)

लोक-परलोकमें भयदायक कर्म न करे

मनुष्यको सब प्रकारके उपायोंसे लोभ और क्रोधको काबूमें करना चाहिये। सब ज्ञानोंमें यही पवित्र ज्ञान है और यही आत्मसंयम है। लोभ और क्रोध सदा मनुष्यके श्रेयका विनाश करनेको उद्यत रहते हैं। अतः सर्वथा उनका त्याग करना चाहिये। क्रोधसे सदा शीलको बचावे और मात्सर्यसे तपकी रक्षा करे। मान और अपमानसे विद्याको बचावे तथा प्रमादसे आत्माकी रक्षा करे। ब्रह्मन्! जिसके सभी कार्य कामनाओंके बन्धनसे रहित होते हैं तथा त्यागके लिये जिसने अपने सर्वस्वकी आहुति दे दी है, वही त्यागी और बुद्धिमान् है। किसी भी प्राणीकी हिंसा न करे, सबसे मैत्रीभाव निभाता रहे और संग्रहका त्याग करके बुद्धिके द्वारा अपनी इन्द्रियोंको जीते। ऐसा कार्य करे जिसमें शोकके लिये स्थान न हो तथा जो इहलोक और परलोकमें भी भयदायक न हो। सदा तपस्यामें लगे रहकर इन्द्रियोंका दमन तथा मनका निग्रह करते हुए मुनिवृत्तिसे रहे। (महर्षि भृगु)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु-संसार-सागरसे पार उतारते हुए भगवान् (गीता १२ । ७)

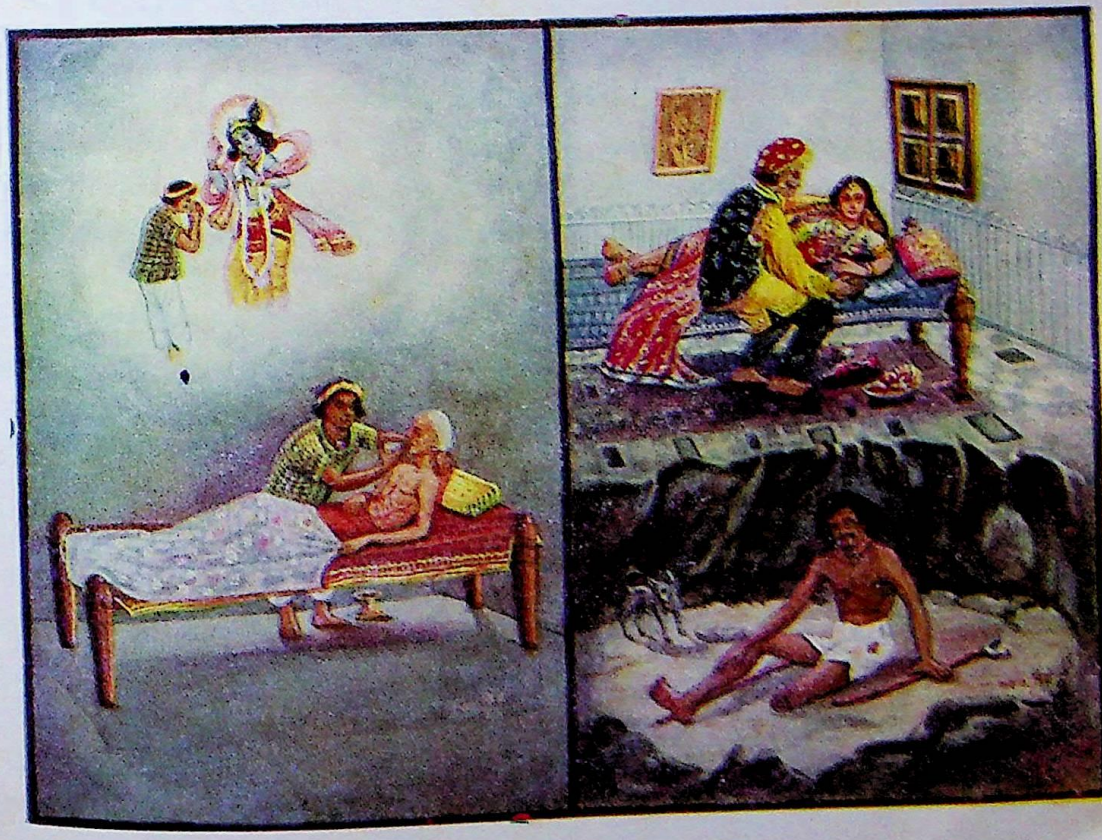

सेवका फल भगवत्प्राप्ति

भोगका फल दुःखप्राप्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्जन्मके आधार

(लेखक—श्रीगोविन्दजी शास्त्री, एम्० ए०)

वेदने कहा है—'धाता यथापूर्वमकल्पयत्', ब्रह्माने स्वीकार किया 'इतिहास अपनेको दोहराता है।' आजका युग जिसे हम जी रहे हैं, अथवा विज्ञानके वे स्वप्न जो भविष्यमें छिप रहे हैं, कोई अभूतपूर्व परिवर्तन नहीं है। कालने विज्ञानकी कल्पनातीत स्थितिको साक्षी बनकर देखा है और महाकाल बनकर इस सारे विकासको लील लिया है। इसलिये लील लिया है कि वही क्रम फिरसे दोहराया जाय। उस चरम स्थितिपर पहुँचनेके बाद विनाश ही तो शेष रहता है। जिन शस्त्रों और अस्त्रोंका आज आविष्कार किया जा रहा है, क्या उनका अस्तित्व किसी और युगमें नहीं था? क्या महाभारत और रामायणकाल विज्ञानकी प्रगति और भौतिक उपलब्धियोंके क्षितिज नहीं थे? किंतु मानवने उस सत्यको भुलाकर अपने पौरुषपर उसी तरह अट्टहास करना शुरू कर दिया है, जिस तरह अतीतमें रावणने किया था। वह आज फिरसे प्रकृतिको विजित करनेका दम्भ भरने जा रहा है, जब कि प्रकृतिके साधारणसे आक्रोशसे उसका यह सारा प्रयास-इतिहास अपने-आप जलकर राख हो जायगा। यह परिवर्तन ही युग है, इसका परिवेश ही इसकी शैली है, अन्यथा अथ और इति तो सदा एक-से होते हैं। यह एक निर्विवाद सत्य है—भले ही हम इसे स्वीकार न करें; क्योंकि आजका हमारा चिन्तन आयातसे प्रभावित है और वह आयात हो रहा है—पश्चिमसे। पश्चिमके विज्ञानधुरीण इतिहासको पाषाण-युगसे आगे मानते ही नहीं। उनके विश्वासमें इस युग—पाषाणयुगसे पहले किसी युगका अस्तित्व ही नहीं है, वैसे ही जैसे वे इस ब्रह्माण्डसे दूसरे ब्रह्माण्डको अभी कुछ समय पहलेतक नहीं मानते थे, किंतु आज वे इस आकाशगङ्गा, जो एक ब्रह्माण्डमें एक ही होती है—से परे भी कई आकाशगङ्गाओंको मानने लगे हैं। पश्चिमी सभ्यता और भौतिक विज्ञान भले ही इतिहासको पाषाणयुगसे ही माने और इसे सिद्ध करनेके लिये आन्तरिक एवं बाह्य साक्ष्य भी जुटा ले, किंतु यह यथार्थ है कि इस तरहके पाषाण-युग इस विश्वने अनेक बार देखे हैं और यह विज्ञानके विनाशतकका विकास भी कई बार देखा है। विज्ञान-जैसा विषय भारतीय ऋषियोंने अलगसे नहीं माना; इसलिये नहीं माना कि यहाँका प्रत्येक विषय विज्ञानके सत्य और यथार्थसे पूर्ण रहता था। यदि हम यह कहें कि आजका भौतिक विज्ञान भारतीय कल्पना और आख्यानोंकी पृष्ठभूमिपर ही पनप रहा है तो यह असंगत नहीं होगा। व्यक्तिके जीवनसे भिन्न विश्वका इतिहास नहीं है। व्यक्ति लघुतम इकाई है, इसलिये उसके जीवनकी हर घटना आनुपातिक ढंगसे होगी; समष्टि उसका विराट्रूप है, इसलिये उसमें हो रहे परिवर्तन उसी क्रमसे होंगे। व्यक्ति जिन अवस्थाओंको वर्षोंमें भोगता है, विश्व उनको युगोंमें।

सामयिक विज्ञान भौतिक, अन्तरिक्षीय और रसायन विज्ञान है, तात्त्विक नहीं। वह किसी भी सत्यको तथ्यके रूपमें स्वीकार करता है। किसी भी परिणाम और परिवर्तनका इन्द्रियगम्य रूप ही उसके लिये विश्वसनीय होता है। किसी भी वस्तुका इन्द्रियगम्य रूप कुछ और होता है तथा आन्तरिक कार्य-कारण कुछ और; इसीलिये भारतीय शास्त्रोंने चेतनसे भी आगे मन, बुद्धि और आत्मा-जैसे तत्त्वोंको खोजा, परखा और माना है। ये तीनों—मन, बुद्धि और आत्मा—भौतिक सीमामें नहीं आते। ये प्राणीकी आन्तरिक सूक्ष्मताएँ हैं, जिनको खोजनेकी सामर्थ्य विज्ञानके उपकरणोंमें नहीं है। इनके खोजनेमें तो आस्था ही एकमात्र उपकरण हो सकती है। प्राणी पाँच तत्त्वोंका एक संगठन है। साधारणतया उसके ज्ञानकी भी एक परिसीमा रहती है। इन्द्रियाँ जो पाँच तत्त्वोंका प्रतिनिधित्व करती हैं—उनका अधिष्ठाता मन भी सामान्यतया सीमाका अतिक्रमण नहीं करता। यद्यपि मनका धर्म कल्पना है तथा उसमें बड़ी शक्ति है; फिर भी वह अपरिमेय कल्पना नहीं कर सकता। मनकी कल्पनाको अपरिमेय कहते समय हम वैसी ही भूल कर बैठते हैं, जैसी एक समुद्रके बीचमें बैठा व्यक्ति यह समझ लेता है कि इस सागरका कोई अन्त ही नहीं है। फिर भी मनका महत्त्व भौतिक और आत्मिक, बाह्य और आन्तरिक जगत्के लिये अनिवार्य रूपसे है। हमारी इन्द्रियाँ (ज्ञानेन्द्रियाँ) यद्यपि पाँचों तत्त्वोंका प्रतिनिधित्व करती हैं, पर उस प्रतिनिधित्वका अनुपात भी प्राणियोंमें भिन्न-भिन्न स्तरपर है। कान आकाश-तत्त्वका प्रतिनिधित्व करता है तो नेत्र तेजस्-तत्त्वका; किंतु एक सीमातक ही इस प्रतिनिधित्वकी सामर्थ्य सीमित है। मन्दतम और तीव्रतम शब्द अथवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेजको हमारे कान और नेत्र ग्रहण करनेमें असमर्थ हो जाते हैं। उदाहरणके रूपमें इस विशाल आकाशमें बहुत-से पदार्थ हैं तथा असंख्य ध्वनियाँ तैर रही हैं; किंतु न वे हमारी आँखोंकी सामर्थ्यमें आते हैं और न हमारे कानोंकी ग्रहणशक्तिकी सीमामें ही आ पाते हैं।

उपरिलिखित विवेचनसे मेरा तात्पर्य यह है कि भारतीय वैज्ञानिकोंने, जिन्हें हम ऋषि कहते हैं, जिस आत्मतत्त्वकी प्रतिष्ठा की है और मन-जैसे आयामकी स्थापना की है, वे पदार्थोंकी आन्तरिक अतीन्द्रिय संरचना और कार्यसे भी परिचित थे। उनकी सूत्र और मन्त्र-पद्धति यद्यपि आजके युग-व्यवहारकी तरह सरल-सुगम और सर्वजनगम्य नहीं थी (हो सकता है उस युगकी परम्पराके लिये आजके दुर्बोध सूत्र सुबोध रहे हों। अथवा उन्होंने पात्रत्वका विचार करके उन रहस्योंको नियत श्राव्य मानकर ऐसी व्यवस्था की हो।), फिर भी उनके सूत्र किसी युगके व्यवहार रहे थे। एक कारण यह भी हो सकता है कि चेतनकी कार्यविधि अथवा अनुभूतिमें एकरूपता नहीं होनेके कारण भी उन्होंने विधि और परिणामोंको सटीक-सभाष्य नहीं लिखा।

यह है—भारतीय कार्य-प्रणाली, जो सदा राजाज्ञाकी तरह संक्षिप्त और निर्देशक होती है। किम्-कथम्को वहाँ अवकाश नहीं। इन अनुभूतिगम्य विषयोंपर शास्त्रार्थ-जैसी भाष्य-परम्पराका निर्माण नहीं हुआ; क्योंकि वे अतीन्द्रिय थे; बुद्धिसे परेके विषय थे। आत्मदर्शनके समय बुद्धि भी रीत जाती है।

एक क्षणको भारतीय आस्था और संस्कारको भूलकर हम पुनर्जन्मको एक परिणामके रूपमें अथवा उदाहरणके रूपमें देखें; उसकी सीमाओंका मूल्याङ्कन करें और परिणामोंका विश्लेषण करें, तो भी यह मान्यता काल्पनिक अथवा असत्य नहीं रह सकती। वैसे तो उपरिवर्णित विवेचनके आधारपर कल्पना भी असत्य नहीं हुआ करती। यह हो सकता है कि उस कल्पनाका व्यावहारिक रूप अतीतमें समा गया हो, अथवा अनागतमें तिरोहित हो। पुनर्जन्मकी कल्पनाके आधारका विश्लेषण हम पहले कर लें। पुनर्जन्मकी सत्यताका पहला प्रमाण हमारे स्वप्न हैं। योगशास्त्र, जो काय-विज्ञान अथवा चिकित्सा-शास्त्रकी ही तरह व्यवहार-शास्त्र हैं, उसके मतानुसार व्यक्तिको निद्रा जब आती है तो उसका मन सुषुम्णा नाड़ीमें प्रवेश कर जाता है। आयुर्वेद भी मनके सुषुम्णामें प्रवेश करनेकी स्थितिको 'निद्रा' कहता है। निद्रितावस्थामें व्यक्ति जो स्वप्न देखता है, उनका आधार क्या है? मनकी कल्पना-शक्तिको तीव्र मानते हुए भी उसकी एक सीमा निश्चितरूपसे होती ही है, फिर उन स्वप्नोंका, जो हमारे विचारोंकी प्रतिक्रिया और वासनाओंकी तृप्तिसे सम्बन्ध नहीं रखते, उद्गम कहाँ है? क्यों है? सामयिक मनोविज्ञान इस स्वप्न-जगत्को अतृप्त वासनाओंकी पूर्ति कहकर संतोष कर लेता है; पर यह हमारे प्रश्नोंका समग्र-समुचित उत्तर नहीं है। इसका उत्तर योगशास्त्र ही देता है। उसके मतमें सुषुम्णा नाड़ीमें व्यक्तिके जन्म-जन्मान्तरोंका इतिहास लिखा रहता है और इस प्रकारके विचित्र स्वप्न देखते समय हमारा मन उस विगत जीवनकी स्मरणीय घटनाओंके खण्डमें चला जाता है। स्वप्नवाली निद्रा गम्भीर निद्रा नहीं मानी जाती, इसका कारण भी यही है। योगी अपने जन्मोंका इतिहास इसी नाड़ीके सहारे जान पाते हैं। स्वप्नोंकी यह संगति साधार है—इसे केवल आर्ष-वचनके आधारपर माननेका आग्रह मैं नहीं करता; प्रत्युत आज भी यह सिद्धान्त व्यक्तियोंके जीवनमें घटित होता है। कई बार कई व्यक्तियोंने स्वप्नमें वे दृश्य देखे हैं जो उन्होंने जीवनमें कभी नहीं देखे; किंतु कालान्तरमें प्रसंगवश वे अपने स्वप्नमें देखे दृश्यों और स्थानोंको देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। भारतीय ही नहीं, कई विदेशियोंने अपने स्वप्नोंमें वे स्थान और दृश्य देखे हैं, जिनको उन्होंने जीवनमें नहीं देखा था; पर बादमें देखा है। आखिर इस भविष्यकी यथार्थ कल्पना करना क्या मनकी सीमामें आता है? कल्पना करनेके लिये यद्यपि मन स्वतन्त्र है, पर उसके साथ अनुभूति किसी-न-किसी रूपमें जुड़ी हुई है। इसलिये किसी स्थान-विशेषकी अविकल कल्पना करना उसकी सामर्थ्य-सीमामें नहीं आता। फिर ये स्वप्न किस तरह देख लिये जाते हैं? इसका समाधान वही योगशास्त्रका सूत्र है, अर्थात् व्यक्तिने उन दृश्योंको इस जन्ममें भले ही न देखा हो, पर पूर्वजन्ममें अवश्य देखा है; अन्यथा ऐसी सजीव और यथार्थ कल्पना स्वप्नसाध्य होती ही नहीं।

इस सम्बन्धमें एक और जीवन्त घटना हमारे सामने है जो कोई एक वर्ष पहले राजस्थानके प्रमुख दैनिक पत्र 'राष्ट्रदूत'में छपी थी। घटनाका सारांश यह है कि राजस्थान विश्वविद्यालयके परा मनोविज्ञान विभागके एक अधिवेशनमें एक सज्जन आये थे। शायद वे इटलीके निवासी थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने बताया था कि भारत आनेसे पहले वे कई बार स्वप्नमें शिखरवाले मन्दिर, देवताकी मूर्ति और पूजा-सामग्री देखा करते थे। ऐसे स्वप्नोंपर उनको स्वयंको आश्चर्य था; क्योंकि उनके देशमें मन्दिर-जैसी कोई चीज नहीं थी और उनके धर्ममें किसीकी मूर्ति नहीं होती थी, फिर भी वे स्वप्न उनके लिये स्वप्नमात्र न रहकर प्रेरणाके स्रोत बने रहे। अन्ततः उन्होंने भारतके सम्बन्धमें पढ़ा, चित्रोंमें मन्दिर देखे और उनका विश्वास प्रबल हो गया कि ये स्वप्न भारतीय भूमिके हैं। एक दिन ऐसा भी आया जब उन्होंने भारतके दर्शन किये और दक्षिण भारतमें उनको वह मन्दिर उसी रूपमें मिल गया, जिस रूपमें वे उसे स्वप्नमें देखते थे।

उनको स्वतः ही यह विश्वास हो गया कि वे पूर्वजन्ममें भारतीय थे और उस मन्दिरके पूजक थे। परा मनोविज्ञान विभाग उनकी इस मान्यताको न माने, पर भारतीय शास्त्र इसे स्वीकार करते हैं।

पुनर्जन्मकी वास्तविकताका विश्वास दिलानेवाला दूसरा ज्वलन्त प्रमाण है—व्यक्तिके जीवनस्तरका। एक ही व्यक्तिकी दो संतानें—एक सुरूप, दूसरी कुरूप; एकमें असाधारण बल, दूसरी अपंग; एक प्रतिभासम्पन्न, दूसरी जड; बड़े होनेपर एक ही पिताकी सम्पत्तिका दो पुत्रोंमें समान विभाग किया गया। एकने सम्पदाको शतगुणा कर दिया, दूसरेको रोटियोंके लाले पड़ गये। एकके कुत्ते दूध पीते हैं, दूसरेको सूखी रोटीके टुकड़े भी नहीं मिलते—यह सब क्या है? अनास्थावादी इन भिन्न परिणामोंका आधार कुछ भी खोज लें और उनका सामान्य सूत्र भी निश्चित कर लें, पर भारतीय इस व्यवस्थाको भाग्य ही मानेगा और भाग्यका निर्माण होता है—कर्मसे; तथा उत्पन्न होते ही किसी प्रकारके कर्मका इतिहास नहीं जुट पाता; इसलिये उसे पूर्वजन्मका स्पष्ट आधार चाहिये ही। वह आधार समय और संसारके पारदर्शी ऋषियोंने भारतीयोंको वरदानके रूपमें दे ही दिया है। आज हम निर्विवादरूपसे कह सकते हैं कि भारतके पास जो कुछ है, उससे नया हो ही नहीं सकता। यदि उस आर्ष सत्यको हम अनुभव करके व्यवहारयोग्य बना देते हैं और भारतीयोंकी आस्थाको पुनर्जागरित कर देते हैं तो यही वैज्ञानिक उपलब्धि होगी।

भौतिक विज्ञानके अन्धविश्वासकी तमिस्रामें भाग्यको अवकाश नहीं है, इसीलिये कर्मका जन्मना सम्बन्ध वह नहीं जोड़ता तथा पुनर्जन्मको विश्वसनीय नहीं मानता। वह व्यक्तिका भाग्य समाजके साथ जोड़कर निश्चिन्त हो जाता है; किंतु ऐसा सम्भव हो ही नहीं सकता। जो प्राणीका प्राणिगत ऐक्य है, वहींतक समाजवाद है। प्रकृतिकी समरसता तक ही समानता है; इससे आगे न है, न हो सकती है। ये भौतिक और वैज्ञानिक उपलब्धियाँ क्या व्यक्तिको व्यक्ति-स्तरसे हटाकर समष्टि-स्तरपर सुखी कर सकती हैं? नहीं, बिल्कुल नहीं। सुविधा-साधनोंके परिग्रहसे व्यक्ति सुखी नहीं हो सकता, सामान्य आवश्यकताकी पूर्तिसे दैहिक, दैविक और भौतिक तापोंसे नहीं बचा जा सकता। यह तो व्यक्ति-स्तरपर घटता रहा है और घटता रहेगा। इस घटनेके साथ कर्म-बन्धनोंका सत्य जुड़ा हुआ है और कर्म-बन्धन पुनर्जन्मकी पृष्ठभूमि है।

यह इन्द्रियगम्य विषय तो है नहीं, जिसे प्रत्यक्षकी तरह देख-सुन-समझ लिया जाय। इसके लिये तो आस्थाका सम्बल लेकर आर्ष सत्योंको मान लेनेसे ही कुछ पाया जा सकता है। भारतीय संस्कृति पुनर्जन्मके प्रति आस्थावान् है और इस आस्थाके पीछे प्रबल आधार है, भले ही वह आजके भौतिक विज्ञानकी प्रक्रियाओंसे सिद्ध न हो, पर सत्य है।

जन्म-मरणके भयानक दुःखसे छूटनेका उपाय

जन्म-मरणके दुःख भयानकसे यदि चाहो होना मुक्त।
मनको रखो निरन्तर श्रीहरिकी पावन स्मृतिसे संयुक्त॥
भोगोंमें न राग रख रंचक, बने रहो प्रभु-पद-अनुरक्त।
सेवा करो सदा सबकी, बन प्रभु-भक्तोंके सेवक भक्त॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक संत-महात्माओंकी देहान्तर-स्थिति

(लेखक—श्रीरामलालजी)

संत-महात्मा दिव्यगुणसम्पन्न शुभ कर्मोंके धनी होते हैं। शुभ कर्मोंके अनुष्ठान और दिव्य पवित्र स्वभावके परिणामस्वरूप उनमें दिव्यताका अवतरण सम्भव होता है, जिसके बलपर उनमेंसे अनेक लोक-लोकान्तरमें सूक्ष्मशरीर-के सहारे विचरते रहते हैं। साथ-ही-साथ इस जगत्‌में निवासकर वे लोक-लोकान्तरके जीवात्माओंसे सम्पर्क बनाये रहते हैं; उन लोकोंमें निवास करनेवाली दिव्य महाशक्तियों-से अनेकानेक शुभ-पवित्र प्रेरणाएँ प्राप्त करते रहते हैं। उनके सम्बन्धमें आचार्य निम्बार्कका यह कथन नितान्त युक्तिसंगत है कि 'जीवात्मा ज्ञानस्वरूप है; वह भगवान् श्रीहरिके अधीन है; उसमें एक शरीरको छोड़कर दूसरे नूतन शरीरको ग्रहण करनेकी योग्यता है। वह प्रत्येक शरीरमें भिन्न, अणु, ज्ञानयुक्त बताया गया है तथा अनन्त कहा गया है।'

ज्ञानस्वरूपं च हरेरधीनं
शरीरसंयोगवियोगयोग्यम्।
अणुं हि जीवं प्रतिदेहभिन्नं
ज्ञातृत्ववन्तं यदनन्तमाहुः॥

(कृष्णस्तवराज)

पाश्चात्त्य दार्शनिक महामति हीगलके शब्दोंमें यह स्वीकृति सर्वथा समीचीन है कि 'आत्माके रूपमें मनुष्य अमर है, वह ईश्वरका कृपापात्र है, वह सीमा और पराश्रय-से परे होकर भौतिक स्तरसे अपने आपको मुक्त करनेमें योग्य है।' इसका आशय यह है कि वह मृत्युसे बच सकता है। यही जीवन्मुक्ति-अवस्था है। यही आत्मसाक्षात्कार है। मध्यकालीन भारतके महान् दार्शनिक स्वामी विद्यारण्यका कथन है कि 'मरणपर्यन्त विचार करते रहनेपर यदि किसी-को आत्माका साक्षात्कार नहीं होता है तो प्रतिबन्धोंका क्षय होनेपर दूसरे जन्ममें साक्षात्कार हो ही जायगा।'

विचारयन्नामरणं नैवात्मानं लभेत चेत्।
जन्मान्तरे लभेतैव प्रतिबन्धक्षये सति॥

(पञ्चदशी, ध्यानदीपप्रकरण ३३)

निस्संदेह प्रतिबन्धक्षय पूर्वजन्मकी स्मृतिमें बड़ा सहायक होता है। अनेक संत-महात्माओंको अपने पूर्व-जन्मकी घटनाओं और बातोंकी स्मृति बनी रहती है। संत कबीरको अपने पूर्वजन्मकी स्मृति थी। उन्होंने स्वयं कहा है—

पूरब जनम हम ब्राह्मन होते, ओछे करम तपहीना।
रामदेवकी सेवा चूकी, पकरि जुलाहा कीना॥

इसी तरह सिक्खोंके दसवें पातशाह गुरुगोविन्दसिंहने भी अपने पूर्वजन्मके सम्बन्धमें मत व्यक्त किया है कि 'मैंने हेमकूट पर्वतके सप्तशृङ्गपर तपस्या कर महाकाल और कालिकाकी आराधना की।...प्रभुकी आज्ञासे मुझे कलियुगमें इस लोकमें जन्म लेना पड़ा।' स्वरचित 'विचित्र नाटक'में उनकी स्वीकृति है।

'हेमकुण्ट पर्वत है जहाँ। सप्त शृंग शोभित है तहाँ॥
... ...
तहँ हम अधिक तपस्या साधी। महाकाल कालिका अराधी॥
... ...
तप साधत हरि मोहिं बुलायो। इम कहि कै इह लोक पठायो॥
मैं अपना सुत तोहिं निवाजा। पंथ प्रचुर करिबेको काजा॥
... ...
तब मैं जगत जनम धरि आयो॥

गुरुगोविन्दसिंहकी पूर्वजन्ममें तप-साधनाके सिद्धि-औचित्यका प्रमाण महाकवि कालिदासरचित अभिज्ञान-शाकुन्तलमें हेमकूटके तपोमय वातावरणके वर्णनमें सटीक परिलक्षित होता है—

'आयुष्मन्! एष खलु हेमकूटो नाम किंपुरुषपर्वतस्तपः-संसिद्धिक्षेत्रम्।' (अभिज्ञानशाकुन्तल—अङ्क ७)

निस्संदेह गुरुगोविन्दने पूर्वजन्ममें हेमकूट पर्वतपर तपस्या की थी। उनकी वाणीमें किसी भी तरहका संदेह नहीं किया जा सकता है।

अनेक संत-महात्माओंकी देहान्तर-स्थिति अपने-आपमें एक विचित्र रहस्य है, जिसका उद्‌घाटन यदि असम्भव नहीं है तो कठिन तो है ही। अनेकके परलोकगमनके विचित्र ढंगपर सार्ष्टि, सामीप्य, सालोक्य तथा सायुज्यके माध्यमसे समाधान मिल सकता है; पर इस सम्बन्धमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष चिन्तन अनुभूतिगत तथा स्वबोध-परक है। लोगोंकी यह भी धारणा मिलती है कि मृत्यु आती है। इसका कारण यह है कि शरीरस्थ पुरुष इतने पर्याप्तरूपमें विकसित नहीं रहता है कि वह परिवर्तनकी आवश्यकताके बिना एक ही देहमें निरन्तर बढ़ता ही रहे; तथा स्वयं शरीर भी काफी सचेतन नहीं होता।

यह निर्विवाद है कि अनेक संत-महात्माओंके सत्यलोक, अथवा स्वलोक, किंवा परलोकगमनमें असाधारण विचित्र बातोंके दर्शन हुए। यामुनाचार्यके तिरोधान-कालमें उनके ब्रह्मलीन होनेपर हाथकी तीन अँगुलियाँ तबतक उठी रहीं, जबतक उनके प्रिय शिष्य रामानुजाचार्य नहीं आ गये। आचार्य रामानुजके आते तथा प्रणाम करते ही अँगुलियाँ पहलेकी हालतमें आ गयीं। यामुनाचार्यकी तीन कामनाएँ थीं। उनकी पूर्तिमें रामानुजने कहा कि "मैं 'ब्रह्मसूत्र', 'विष्णु-सहस्रनाम' और 'दिव्यप्रबन्धम्'की टीका अवश्य लिखूँगा और लिखवाऊँगा।" इस घटनाके सम्बन्धमें इतना ही कहकर संतोष किया जा सकता है कि यामुनाचार्यकी देहान्तर-स्थितिमें सूक्ष्मशरीरकी प्रेरणा-शक्तिसे तीनों अँगुलियाँ उठ गयी थीं। रहस्य तो अभेद्य ही है।

पार्थिव शरीरका दिव्य देहमें रूपान्तर प्रत्यक्षरूपसे प्रस्तुत कर काश्मीरकी सिद्ध शैव संत योगिनी लल्लेश्वरीने मध्यकालीन साधना-जगत्‌को आश्चर्यचकित कर दिया। उनकी दृष्टिमें कोई पुरुष नहीं था, वे सबको शिवकी उपासिकाके रूपमें देखती थीं। एक दिन उन्होंने प्रसिद्ध सूफी संत शाह हमदानीको देखा। वे 'पुरुष' कहकर चौंक उठीं और दौड़कर एक धधकते तंदूरमें कूद पड़ीं। संत हमदानीने उनका पीछा किया। तंदूरवालेसे पूछा; पर पता न चला। तंदूरवालेकी दृष्टिमें तो वे जलकर राख हो गयी थीं। संत हमदानी खोजते रहे। थोड़ी ही देरमें वे दिव्य स्वर्गीय हरे रंगके परिधान पहनकर संत हमदानीके आवाहन-पर बाहर आ गयीं। यह अध्यात्म-विज्ञान है। जड-विज्ञान इस रूपान्तर-तथ्यका समाधान कदापि नहीं प्रस्तुत कर सकता।

संत कबीर, महाप्रभु वल्लभाचार्य, चैतन्यदेव, मीराँबाई-के सम्बन्धमें इस लोकसे जानेके समय विचित्र दैहिक रूपान्तरकी बात भारतीय इतिहासकी आध्यात्मिक समृद्धि है। कबीरका शरीर छूटनेपर हिंदू उनके शवको जलाना चाहते थे और मुसल्मान कब्रमें दफनाना चाहते थे। चादर उठानेपर शवके स्थानपर फूल दीख पड़ा। हिंदू-मुसल्मान—दोनोंने आधा-आधा ले लिया। चादर उठानेपर शवका न पाया जाना संत कबीरकी लीलामात्र स्वीकृत है। धनी धरमदासका शब्द है—

'खोदिके देखी कबर, गुर-देह न पाइया।'
... ...
'मगहरमें एक लीला कीन्हीं... ... ...

संत कबीरका शरीर पाञ्चभौतिक तत्त्वसे गठित नहीं था। इसलिये उस शरीरपर मृत्युका वश नहीं चला, वह लुप्त हो गया और उसके स्थानपर केवल फूल दीख पड़ा। विक्रमीय सत्रहवीं शताब्दीके प्रथम चरणमें उपस्थित भक्त कवि हरिराम व्यासका कथन है—

'कलि में साँचो भक्त कबीर।
पाँच तत्त ते देह न पाई, ग्रस्यो न काल सरीर॥'

वैश्वानर-अवतार महाप्रभु वल्लभाचार्यने अपने अग्नि-स्वरूपमें स्थित होकर श्रीकृष्णके नित्य लीला-लोकमें प्रवेश किया था। अन्तिम दिन उन्होंने मौन लिया था। वे काशीमें हनुमानघाटपर गङ्गाकी धारमें मध्याह्न-स्नान करने गये थे।... लोगोंने प्रत्यक्षरूपसे देखा कि भागीरथीकी मध्यधारामें महाप्रभुके शरीरके स्थानपर एक अलौकिक अग्नि-शिखा आकाशकी ओर उठती जा रही है। उनका लौकिक शरीर अलौकिक अग्नि-तेजमें रूपान्तरित हो उठा।

चैतन्य महाप्रभु सदेह पुरीमें श्रीजगन्नाथ-विग्रहमें समा गये। एक दिन वे गरुड-स्तम्भके पीछेसे दर्शन न कर सीधे मन्दिरके भीतर चले गये। मन्दिरके दरवाजे अपने-आप बंद हो गये। वे जगन्नाथजीमें अन्तर्हित हो गये।

ठीक इसी तरह राजरानी मीराँ रणछोड़जीकी ज्योतिमें आत्मलीन हो गयीं। रणछोड़जीके सम्मुख एक दिन पद गा-गाकर तथा नाचकर उन्हें रिझा रही थीं। एक दिव्य ज्योतिने भगवान्‌के श्रीविग्रहसे निकलकर उनका आलिङ्गन किया। वे ज्योतिमें समा गयीं। यह मूर्ति डाकोरजीमें है और मीराँका चीर बगलमें लटका हुआ बताया जाता है।

संत तुकारामके सदेह स्वर्ग जानेका विवरण उपलब्ध होता है। संवत् १७०६ वि०की चैत्र कृष्ण द्वितीयाको संत तुकारामने सदेह स्वर्ग-गमन किया। यह घटना कोरी कल्पनामात्र कहकर नहीं उड़ायी जा सकती। मराठी साहित्यके तुलसीदास महाकवि मोरोपन्तका कथन है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जिस तरह भगवान् राम सदेह स्वर्ग—साकेतलोक गये, उसी तरह संत तुकारामने शरीरसे ही वैकुण्ठकी यात्रा की।'

दक्षिणके प्रसिद्ध योगी संत रामलिंगम्‌ने दो साल पहले ही बतला दिया था कि मैं ५४ सालकी अवस्थामें इस शरीरसे ही अदृश्य हो जाऊँगा। अन्तिम समय उपस्थित होनेपर शिष्योंने उनको आरामसे सुला दिया। वे कहने लगे—'मैं कुछ समयके लिये अदृश्य हो रहा हूँ। यह शरीर जलाने अथवा समाधिके लिये नहीं मिल सकेगा। मैं शुद्ध निर्विकल्प समाधिमें हूँ।...खिड़की और दरवाजे चारों ओरसे बंद कर दीजिये।' उनकी आज्ञाके अनुसार दरवाजे बंद कर दिये गये। ताले लगा दिये गये। लोग बाहर खड़े होकर सावधानीसे देख रहे थे। दरवाजे खोले जानेपर कुटीमें शून्यके सिवा और कुछ भी न दीख पड़ा।

दक्षिण भारतके ६३ नायनार संतोंमें महात्मा तिरुमूल नायनारको एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। भ्रमण करते समय कावेरी सरिताके तटपर उन्होंने पशुओं—गाय-बछड़ों-को अपने चरवाहे—मूलनकी मृत्यु हो जानेपर उसके शरीरको घेरकर करुण विलाप करते देखा। पशु चरवाहेके मृत शरीरकी परिक्रमा कर रहे थे और जोर-जोरसे डकार रहे थे। उनके नेत्र अश्रुपूर्ण थे। संत तिरुमूलके लिये यह शोकपूर्ण दृश्य असह्य हो उठा। उन्होंने अपने शरीरको एक सुरक्षित स्थानमें छोड़कर योगबलसे मूलनके मृत शरीरमें प्रवेश किया। मूलनको जीवित देखकर पशुओंकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। शामको गायोंके पीछे-पीछे गाँवमें आकर चौराहेपर मूलनके शरीरमें स्थित तिरुमूल खड़े हो गये। मूलनकी पत्नीके आनेपर उन्होंने कहा कि 'आजसे हमारा-तुम्हारा शारीरिक सम्बन्ध समाप्त हो गया।' ग्रामके एक मठमें निवासकर कुछ दिनोंतक साधना करनेके बाद अपने पहले शरीरका पता न चलनेपर तिरुअवदत्तरैमें आकर शिवकी उपासना कर शेष जीवन सार्थक किया।

संत-महात्माओंका यह दृढ़ निश्चय है कि कायामें स्थित होकर जीव आता है, पर जाता अकेला ही है। महायोगी गोरखनाथका कथन है—

'काया हंस संगी ह्वै आवा।
जाता जोगी किनहूँ न पावा॥'

संत शेख फरीदका कथन है कि 'जीवात्मा दुलहिन है। मृत्यु दूल्हा है, मृत्युसे उसका विवाह होता है, वह मृत्युके घर चली जाती है।' फरीदकी वाणी है—

'जिंदु बहूटी मरण वरु लै जासी परणाइ।'

संत मृत्युसे कभी भयभीत नहीं होते हैं। उनका तो कथन सदा यही रहता है। संत सिंगाजीका वचन है—

ऐसा मरना मरो संत भाई।
बहुरि जनम नहि धरणा रे।

संत-महात्माओंकी देहान्तर-स्थिति रहस्यमयी है। उनकी कृपा तथा भगवान्‌के अनुग्रहसे ही किसी-किसीकी समझमें आती है।

नारायणके भजनमें मन-इन्द्रियोंकी सफलता

यदि मुक्ति चाहते हो तो सच्चिदानन्दस्वरूप परमदेव भगवान् नारायणका सम्पूर्ण चित्तसे भजन करो। भगवान् जनार्दनमें जिसकी दृढ़ भक्ति है, उसके सम्पूर्ण श्रेय सिद्ध हो जाते हैं। अतः भक्त पुरुष सबसे बढ़कर है। मनुष्योंके उन्हीं पैरोंको सफल जानना चाहिये, जो भगवान् विष्णुके मन्दिरमें दर्शनके लिये जाते हैं। उन्हीं हाथोंको सफल समझना चाहिये, जो भगवान् विष्णुकी सेवामें तत्पर होते हैं। पुरुषोंके उन्हीं नेत्रोंको पूर्णतः सफल जानना चाहिये, जो भगवान् जनार्दनका दर्शन करते हैं। साधुपुरुषोंने उसी जिह्वाको सफल बताया है, जो निरन्तर हरिनामके जप और कीर्तनमें लगी रहती है। मैं सत्य कहता हूँ, हितकी बात कहता हूँ और बार-बार सम्पूर्ण शास्त्रोंका सार बतलाता हूँ—इस असार संसारमें केवल श्रीहरिकी आराधना ही सत्य है। यह संसार-बन्धन अत्यन्त दृढ़ है और महान् मोहमें डालनेवाला है। भगवद्भक्ति-रूपी कुठारसे इसको काटकर अत्यन्त सुखी हो जाओ। वही मन सार्थक है, जो भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगता है, तथा वे ही दोनों कान समस्त जगत्‌के लिये वन्दनीय हैं, जो भगवत्-कथाकी सुधाधारासे परिपूर्ण रहते हैं। (सनक मुनि)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोक और पुनर्जन्म

(लेखक—पं० श्रीसभापतिजी मिश्र, बी० ए०, साहित्यरत्न, विद्यावाचस्पति)

सृष्टिके आदिकालसे ही पारलौकिक विधानकी परम्परा शाश्वत विधिसे चली आ रही है। इस विधानपर मानवका कोई अधिकार नहीं है। वेद, पुराण, उपनिषद् और शास्त्र उसकी मर्यादाकी सीमा बाँधते हैं। भारतीय संस्कृति भी पारलौकिक सत्ताको स्वीकार करती है। यह पुनर्जन्मके सिद्धान्तोंमें भी विश्वास रखती है। कारण स्पष्ट है कि मानव-सभ्यताके विकासके साथ-साथ प्रकृति भी मानवकी सहचरी रही है। आर्यलोग भी प्रकृतिपूजक थे। प्रकृति नित्य ही नवीन फल, पुष्प, लतिका, कलिकाको जन्म देती है। भला फिर मानव-शरीर उस अनादि नियमसे कैसे वञ्चित रह सकता है; भारतीय संस्कृति लोकेतर, अर्थात् स्वर्ग-नरकके सिद्धान्तोंमें विश्वास रखती है। 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।' का भोग करनेके लिये मनुष्य पुनः जन्म लेता है। 'ततो मनुष्यताप्राप्तिस्ततः कर्माणि साधयेत्।' मनुष्य अपने शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगता है। इसीलिये स्वर्ग तथा नरककी व्यवस्था की गयी है।

पुनर्जन्मके विविध प्रसङ्ग

भारतीय संस्कृतिके अवयवमें पुनर्जन्म प्राणकी तरह प्रतिष्ठित है। अनेक घटनाएँ, कहानियाँ, शास्त्रसम्मत प्रमाण, इस तथ्यकी पूर्ति करते हैं कि शरीरादि विभागोंके विनष्ट हो जानेके अनन्तर भी जीवकी सत्ता समाप्त नहीं होती; बल्कि वह पुनः अन्य शरीरोंको प्राप्त हो जाता है।

मुनियोंद्वारा दिये गये शापके कारण भानुप्रताप तीन जन्मोंतक राक्षसयोनिमें रहा। राजा नृगको दूसरे जन्ममें गिरगिट होना पड़ा था। कश्यप और अदिति दूसरे जन्ममें दशरथ और कौसल्या हुए—

कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब वर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरी प्रगट नरभूपा॥
(बा० का० १८६। ३)

भगवान् विष्णु अपने अन्य अवतारोंमें राम एवं कृष्ण हुए। शिवजी अपने दूसरे रूपमें हनुमान् हुए। स्कन्दपुराणके रेवाखण्डमें पुनर्जन्मकी अन्यान्य कथाएँ सर्वविदित ही हैं।

शतानन्दो महाप्राज्ञो सुदामा ब्राह्मणो ह्यभूत्।
तस्मिन् जन्मनि श्रीकृष्णं ध्यात्वा मोक्षमवाप ह॥
काष्ठभारवहो भिल्लो गुहराजो बभूव ह।
तस्मिन् जन्मनि संसेव्य रामं मोक्षं जगाम वै॥
उल्कामुखो महाराजो नृपो दशरथोऽभवत्।
श्रीरङ्गनाथं सम्पूज्य श्रीवैकुण्ठं तदागमत्॥
धार्मिकः सत्यसंधश्च साधुर्मोरध्वजोऽभवत्।
देहार्धं क्रकचैश्छित्त्वा दत्त्वा मोक्षमवाप ह॥
तुङ्गध्वजो महाराजो स्वायम्भुवोऽभवत्किल॥

अर्थात् शतानन्द नामक व्यक्ति दूसरे जन्ममें सुदामा हुआ। उल्कामुख राजा दूसरे जन्ममें राजा दशरथ तथा सत्यसंध नामक धार्मिक दूसरे जन्मोंमें मोरध्वज हुए।

इन पौराणिक कथाओंका पूर्वापर सम्बन्ध कुछ भी हो; किंतु ये कथाएँ इस तथ्यके लिये पुष्ट प्रमाण हैं कि जीवका पुनर्जन्म होता है तथा कर्मानुसार शुभाशुभ लोकोंकी प्राप्ति अवश्य होती है। ऐसी ही अन्यान्य कथाएँ हमारे धर्मशास्त्रोंमें वर्णित हैं, जिनमें विश्वास न करना अपनी संस्कृतिपर कुठाराघात करना है।

हमारे उपनिषद् भी पुनर्जन्म तथा परलोकके बारेमें एकमत हैं। कठोपनिषद्में यम तथा नचिकेताका अन्यान्य प्रश्नोंका संवाद इसी ओर इंगित करता है। मनुष्य अपने कर्मानुसार स्वर्ग (परलोक) की प्राप्ति करता है। नचिकेता स्वर्गकी समृद्धिका वर्णन करते हुए कहता है कि 'स्वर्गलोकमें कोई भय नहीं। वहाँ न तो मृत्यु है और न कोई वृद्धावस्थासे डरता है। भूख-प्यास दोनोंसे रहित होकर तथा शोकरहित हुआ व्यक्ति प्रसन्न हो जाता है।' (कठ० १। १। १२)

इसी परलोक-प्राप्तिके साधनोंके सम्बन्धमें नचिकेताका प्रश्न था। जो परलोक सकाम कर्म एवं यागादिसे प्राप्त होता है, वह मनुष्योंमें सर्वश्रेष्ठ देवयोनिमें जन्म लेनेसे अधिक कुछ नहीं है। निश्चयमेव वह सर्वश्रेष्ठ योनि दुःखोंसे रहित और उत्कृष्टतम सांसारिक सुखोंसे पूर्ण होती है; इसीलिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शतपथ ब्राह्मणमें कहा गया है कि 'सकाम' जन्य परलोकमें मनुष्य स्थूलशरीरके साथ उत्पन्न हुआ करता है।

सह सर्वतनूरेव यजमानोऽमुष्मिल्लोके सम्भवति।

(शत० ४।६।१।१)

नचिकेता पुनः यमराजसे अपने अगले वरदानमें पुनर्जन्मके बारेमें (कठ० १।१।२०) प्रश्न करता है। विश्वमें आस्तिक तथा नास्तिक सदासे रहते आये हैं। आस्तिकोंका यह विश्वास है कि 'जीवात्मा अमर है और शरीरके नष्ट होनेपर वह नष्ट नहीं होता। किंतु आवागमनके कारण एकको छोड़कर दूसरी योनियोंमें आया-जाया करता है'; दूसरी ओर नास्तिकोंका मत है कि 'शरीरके मेलका प्रतिफल आत्मोत्पत्ति है और इसीलिये शरीरके विनष्ट हो जानेपर वह भी नष्ट हो जाता है।' नचिकेताको उक्त तत्त्वमें संदेह हो जाना उपयुक्त था। इसीलिये नचिकेताको यमने जीवात्माकी सार्वभौमिकताको समझाते हुए परलोकमें भी विश्वास दिलाया था।

न साम्परायः प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥

(कठ० १।२।६)

'धनके मोहसे मूढ प्रमादपूर्ण विवेकहीन पुरुषको परलोककी बात अच्छी नहीं लगती। यह लोक है, परलोक नहीं है—ऐसा समझनेवाले लोग बार-बार मृत्युको प्राप्त होते हैं।'

शरीरसे जीवके अलग होते समय प्राण, इन्द्रियोंके विषय, पूर्वकर्मोंकी सरणि आत्माके साथ ही लगी रहती है। यही कारण है कि आत्मज्ञानी पुरुष अपने पूर्वजन्मके कर्मोंको जानता रहता है। जीवके शरीर छोड़ देनेपर वह शरीर निष्क्रिय हो जाता है; किंतु उस अवस्थामें भी जीवके पास २४ प्रकारकी सामर्थ्य होती है—१. बल, २. पराक्रम, ३. आकर्षण, ४. प्रेरणा, ५. गति, ६. भीषण, ७. विवेचन, ८. क्रिया, ९. उत्साह, १० स्मरण, ११. निश्चय, १२. इच्छा, १३. प्रेम, १४. द्वेष, १५. संयोग, १६. विभाग, १७. संयोजक, १८. विभाजक, १९ भाषण, २०. स्पर्शन, २१. दर्शन, २२. स्वादन, २३. गन्धग्रहण और २४. ज्ञान।

शरीरके विनष्ट हो जानेपर जीव अपने कर्मानुसार चराचर योनियोंको प्राप्त हुआ करता है। शरीरके नष्ट होनेपर नष्ट नहीं होता।

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥

(कठ० २।२।७)

परलोक-प्राप्तिके साधन

आस्तिक शास्त्रोंमें लोकेतरोंको सत्य माना गया है और ईश्वरकी छत्रच्छायामें आवासित शुभलोकोंकी प्राप्तिके लिये अनेक कारण बताये गये हैं। मानव अपनी साधना तथा ईश्वरकी कृपाद्वारा शुभलोकोंको प्राप्त करता है। ऋग्वेदमें एक जगह कहा गया है—'न ऋते श्रान्तस्य सख्याय।' (४।३३।११) अर्थात् 'प्रयत्न करके थके बिना कोई भी साधक ईश्वरको प्राप्त नहीं कर सकता।' अतएव परलोककी प्राप्तिके लिये यथासाध्य अधिकाधिक प्रयत्न करे। 'सिद्धिर्भवति कर्मजा।—कर्मोंद्वारा ही सिद्धि प्राप्त होती है।' यज्ञ भी परलोक-प्राप्तिका साधन है; किंतु इसे निष्कामभावसे किया जाय। परलोक-प्राप्तिके लिये चिन्तारहित होना आवश्यक है और शोकनिवृत्तिके लिये उस निराकार, अचल, महान् और व्यापक ईश्वरका ज्ञान आवश्यक है।

पुनर्जन्मसे लाभ

इस जन्ममें कर्म करता हुआ मनुष्य थक-सा जाता है। यदि पुनर्जन्म न होता तो जीव कर्मोंके भारसे थकित होकर हीनताका अनुभव करने लगता। उस अवस्थामें जीवके सामने घोर निराशा छा जाती। किंतु पुनर्जन्म होनेसे जीव इस आशामें रहता है कि हमें शुभकर्मानुसार पुनः सुखोपभोगका अवसर मिलेगा और उसमें आशाका संचार होता है और निरन्तर कर्मयोगीकी भाँति कर्म करता रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल-विवेचन

(लेखक—महामहोपाध्याय श्रद्धेय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज एम० ए०, डी० लिट्०)

(१)

काल-संकर्षण

साधारण दृष्टिसे आलोचना करते समय यह जान पड़ता है कि विश्वमें दो विपरीत शक्तियाँ कार्य कर रही हैं। उनमें एक 'भगवत्-शक्ति' या 'अनुग्रह-शक्ति'के नामसे परिचित है और दूसरी शक्तिका नाम 'कालशक्ति' या 'तिरोधान-शक्ति' है। पूर्ण परमतत्त्वमें ये दोनों शक्तियाँ परस्पर भेदरहित अभिन्न रूपमें स्वातन्त्र्य स्वरूप नाम ग्रहण करके कार्य करती हैं। किंतु परमेश्वर जब आत्मसङ्कोच करके जीव-रूपमें आत्मप्रकाश करते हैं, तब शक्तिकी ये दोनों धाराएँ पृथक् हो जाती हैं। एक जीवभाव या पशुभावका पुष्टिसाधन करती है, और दूसरी पशुभाव निवृत्त करके परम-स्वरूपमें प्रत्यावर्त्तन करनेमें सहायता करती है। अनुग्रह-शक्ति क्रमशः आत्माको परमस्वरूपमें पुनः प्रतिष्ठित करती है। कालशक्ति निरन्तर बहिर्मुख प्रेरणाके द्वारा जीवको संसारमें जकड़े रखती है। जो शक्ति क्रमशः कालको स्वाधिकारसे अपसारित करती है, उसका नाम है—'कालसंकर्षिणी शक्ति'। क्रम कालका धर्म है। काल-राज्यमें क्रमका अवलम्बन करके ही चलना पड़ता है। काल-संकर्षणका चरम लक्ष्य है—क्रमको अतिक्रम करके अक्रम-स्वरूपमें आत्मप्रकाश करना। काल-संकर्षणके फलसे क्रमशः कालसे क्षणकी प्राप्ति होती है। विश्वराज्य कालके अधीन है। इसी कारण इसमें निरन्तर परिणाम हो रहा है। इस परिणाममें क्रमका मात्रागत तारतम्य रहता है। भगवत्कृपाके प्रभावसे यह मात्रागत तारतम्य क्रमशः स्थूलसे सूक्ष्ममें परिणत होता है। चैतन्यकी अभि-व्यक्ति जितनी अधिक होती है, कालकी मात्रा उतनी ही क्षीण होती जाती है। इसके फलस्वरूप कालके स्पर्शहीन चैतन्यस्वरूपमें कालगत मात्राका प्रभाव कुछ भी नहीं रहता। वहाँ एक ही क्षणमें अनादि-अनन्त महाकाल प्रकाशित हो उठता है। कालमें क्रम है, किंतु 'क्षण'में क्रम नहीं है। जब आवरण क्रमशून्य भावमें चला जाता है, तब एकमात्र क्षण ही वहाँ रह जाता है। इसी कारण कहा जाता है कि एक ही क्षणमें समग्र विश्वका परिणाम संघटित हो जाता है। कालसे क्षणमें प्रविष्ट होनेके उपायका अवलम्बन कर पानेपर इच्छामात्रसे अविलम्ब क्षणमें प्रवेश हो जाता है। कालराज्यके विभिन्न स्तर हैं। प्रत्येक स्तरमें कालकी गतिमें मात्राका तारतम्य है। यह तारतम्य वेगकी न्यूनता अथवा अधिकतापर निर्भर करता है। जहाँ अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे कालकी मात्रा क्षीण हो जाती है, वहाँ कालसंधि प्रकाशित होती है, वहाँ क्षणका प्रकाश सहज ही अनुभवमें आने लगता है। जिस स्थानमें या जिस अवस्थामें यह क्रम लुप्त हो जाता है, उस स्थानमें क्षणका प्रकाश अनिवार्य हो जाता है। क्षण जब स्थायी रूपमें प्रतिष्ठित होता है, तब वहाँ काल नहीं रहता। इस अवस्थाको 'काल-संकर्षिणी' की अवस्था कहते हैं। संवेगके तारतम्यके अनुसार इस अवस्थाके नाना प्रकारके भेद हो सकते हैं। 'क्रमहीन काल'का ही नाम 'क्षण' है। क्षण नित्य और स्वयंप्रकाश है। व्यवहार-भूमिमें कालका क्रम स्वीकार करना पड़ता है, परंतु क्षणिक ज्ञान व्यवहार-भूमिका विषय नहीं है। 'अनन्त काल' शब्दसे हमारा जो अभिप्राय होता है, वह एक दृष्टिसे क्षणके सिवा और कुछ नहीं है। कालसंकर्षिणीके प्रभावसे कालकी निवृत्ति हो जाती है। कालकी निवृत्तिके साथ-साथ अखण्ड स्वयंप्रकाशपूर्ण आत्मतत्त्व, निष्कल स्वातन्त्र्यमय प्रकाशरूपमें प्रस्फुटित होता है। कालकी मात्राके अनुसार उसके वेगकी न्यूनता या अधिकताका निरूपण किया जाता है। कालके साथ देशका ज्ञान नित्य संश्लिष्ट है, अतएव काल-निवृत्तिके साथ देश-निवृत्ति भी हो जाती है। तब आत्मा देश और कालसे मुक्त हो जाता है। इस अवस्थामें अपने संकल्पके अनुसार उसके सामने कोई भी देश और कोई भी काल व्यक्त हो सकता है। इस प्रकार योगीका नित्यत्व और व्यापकत्व उसके निकट प्रकट हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

कालका आवर्तन

कालकी गति आवर्तनशील है। इस आवर्त्तनमें सारा विश्व अपनी-अपनी मात्राके अनुसार आवर्तित होता रहता है। कालकी सरल गति भी है। उसमें काल महाकालरूपमें आत्मप्रकाश करता है। मायाराज्यको पार करनेपर कालकी वक्रगतिसे उद्धार पाना सम्भव होता है। तब सरल गतिका प्रकाश रहता है। इससे तीनों काल एक अखण्ड वर्त्तमान रूपमें प्रकाशित होते हैं। कालकी सरल गतिके बाद केन्द्रस्थानमें काल स्थिरत्व प्राप्त करता है। काल महाकालमें परिणत होकर कालातीत नित्य विराजमान परम पुरुष रूपमें आत्मप्रकाश करता है। कालकी वक्रताके चले जानेपर अनन्त आकाशकी अनन्त सत्ता निरावरण होकर वहाँ प्रकाशमान होती है। तब सर्वदेश और सर्वकाल एक महाबिन्दुके बीच प्रकाशमान हो जाता है अर्थात् तब योगीकी इच्छाके साथ-साथ तत्तत् देश और तत्तत् काल प्रकाशित होते हैं। तब व्यवधान अथवा दूरत्व नहीं रहता। आचार्य भर्त्तृहरि कहते हैं—

आविर्भूतप्रकाशानामनुपप्लुतचेतसाम्।
अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्न विशिष्यते॥

अर्थात् महाप्रकाशका आविर्भाव होनेपर किसी प्रकारका आवरण क्रिया नहीं कर सकता। आवरण तमोगुणका कार्य है। प्रकाशके आनेपर जैसे अन्धकार हट जाता है, ठीक उसी प्रकार महाप्रकाशके उदय होनेपर सब प्रकारके आवरण तिरोहित हो जाते हैं। चित्तकी चञ्चलता रजोगुणसे उत्पन्न होती है तथा महाप्रकाशका उदय होनेपर तमोगुणके समान रजोगुण भी अपसृत हो जाता है। तब चित्तमें चञ्चल भाव बिल्कुल ही नहीं रहता। चञ्चलताशून्य चित्तके सामने निरावरण प्रकाशका आविर्भाव होनेपर विश्वमें कुछ भी अप्रत्यक्ष नहीं रह सकता। तब सब कुछ नित्य वर्तमान रूपमें उपलब्ध हो सकता है। किंतु यह उपलब्धि 'अहं' रूपमें न होकर 'अहं'के आगे स्थित 'इदं' रूपमें होती है। कालका चरम अवसान हो जानेपर और महाकालके निवृत्त हो जानेपर जो अवस्था अभिव्यक्त होती है, वह महासृष्टिके भी अतीत है। वही 'पूर्णाहन्ता-स्वरूप' है।

अमरत्वकी प्राप्ति और मृत्यु-विजय

साधारण स्थूल दृष्टिसे अमरत्वकी प्राप्ति और मृत्यु-विजय एक ही अवस्थाके दो नाम जान पड़ते हैं, परंतु वस्तुतः ऐसी बात नहीं है; क्योंकि अमरत्वकी प्राप्तिकी अपेक्षा मृत्यु-विजय बहुत ही ऊँची अवस्था है। समुद्र-मन्थनके उपाख्यानसे जाना जाता है कि समुद्र-मन्थनसे उत्पन्न अमृतका पान करके देवताओंने अमरत्व प्राप्त किया था; परंतु समुद्र-मन्थनसे ही उत्पन्न तीव्र हलाहल विषको ग्रहण करनेमें उनमें कोई भी समर्थ नहीं हुआ। जिन्होंने उस हलाहलको पान करके पचा लिया था, उनकी स्थितिको केवल देवताओंके अनुरूप वर्णन करनेसे काम नहीं चलता। इसीलिये उनको 'मृत्युञ्जय', 'महादेव' कहा जाता है। कालरूपी मृत्युपर विजय प्राप्त किये बिना कोई 'मृत्युञ्जय' नहीं हो सकता। यह काल ही 'कालकूट विष' है। देवता लोग इसको पचा नहीं सकते। समग्र विश्व-सत्ताको मन्थन करके उसमेंसे सुन्दर और शोभन अंश जो ग्रहण करते हैं, वे दिव्य पुरुष हैं; किंतु इस मन्थनसे उत्पन्न विश्वकी अन्तर्वर्त्ती प्रतिकूल सत्ता, जिसको देवगण सहन नहीं कर सकते, उसको भी जो अम्लानवदन-प्रसन्न मुखसे पान करके मृत्युके ऊपर जय-ध्वजा फहराते हैं, वे 'मृत्युञ्जय' महादेव हैं। इसीका नाम है—स्वरूपका रूपान्तर-सम्पादन। कालपर विजय प्राप्त करना हो तो केवल निम्नस्तर त्यागकर उच्चस्तरमें गमन करनेसे काम नहीं चलेगा। दोनों स्तरोंका समीकरण करके दोनोंको एक करना आवश्यक है, अर्थात् दृष्टान्तस्वरूप कहा जा सकता है कि अन्नमयसे प्राणमय स्तरमें जाकर तथा पूर्णतः प्राणमय स्तरमें तादात्म्य प्राप्त करनेसे काम नहीं चलेगा। प्राणमयसे प्राणशक्ति लेकर अन्नमयमें अवरोहण करना होगा तथा अन्नमयको प्राणशक्तिके प्रभावसे प्राणमयरूपमें परिणत करना होगा। इस प्रकार बारंबार करते-करते एक ओर प्राणमय जैसे अन्नमय सत्तामें सत्तावान् होता है, दूसरी ओर वैसे ही अन्नमय भी प्राणमय सत्तामें सत्तावान् हो जाता है। पश्चात् ये दोनों एक हो जाते हैं।

इस विषयको समझानेकी सुविधाके लिये 'क' रखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। इसके बाद 'क' ऊर्ध्वगतिके द्वारा मनोमयमें प्रवेश करता है और उसके साथ एक हो जाता है। तत्पश्चात् 'क' में अवतरण करके 'क'को भी मनोमय कर डालता है। धीरे-धीरे वह एक हो जाता है। उसका नाम 'ख' है। इसके बाद 'ख' ऊर्ध्वगतिके द्वारा विज्ञानमय कोषमें प्रवेश करता है और उसके साथ ऐक्य प्राप्त करता है। तत्पश्चात् वह उतरकर 'ख'के साथ एक हो जाता है। इस अवस्थाका नाम 'ग' है। इसके बाद 'ग' उत्थित होकर आनन्दमय कोषको स्पर्श करता है और उसको अपना लेता है। उसके बाद यह एकीभूत सत्ता विज्ञानमयमें अवतरण करती है और विज्ञानको अपने साथ अभिन्नरूपमें स्थापित करती है। इसका नाम 'घ' है। इसके परे भी अवस्था है। जिसको 'घ' कहा गया, वह एक ही साथ अन्नमय, प्राणमय, विज्ञानमय और आनन्दमय सत्ता है। किंतु यह अचित्-स्वरूप है। इसके बाद 'घ' चित्-स्वरूप आत्मामें प्रवेश करके उसके साथ एक हो जाता है। उसके बाद चित्स्वरूप आत्मा अवतरण करके अचित्के साथ एक हो जाता है। तब चित् और अचित्का अथवा आत्मा और शरीरका भेद नहीं रहता। यहाँतक सम्पन्न होनेपर चित् और अचित्का भेद कट जाता है तथा स्थूल और सूक्ष्मका भी भेद नहीं रह जाता। विभिन्न खण्ड सत्तामेंसे सब प्रकारका पार्थक्य तिरोहित होकर एक अखण्ड सत्ता विद्यमान हो जाती है। यही यथार्थ सिद्धावस्था है। इसीके दूसरे नाम 'कालजय' या 'मृत्युञ्जयत्व'की प्राप्ति है। यह देवावस्थासे बहुत ऊँची अवस्था है; क्योंकि देवावस्थामें अमरत्वकी प्राप्ति तो होती है, किंतु मृत्युपर जय प्राप्त नहीं है। अमर लोग मृत्युसे डरकर दूर ही रहते हैं। इसीसे कहा जाता है कि देवगण भी मृत्युके अधीन हैं। सोमपान या अमृतपानके द्वारा देवगण जो अमरत्व प्राप्त करते हैं, वह केवल दीर्घजीवनकी प्राप्ति मात्र है। महाप्रलय या अतिमहाप्रलयमें इस दीर्घ-जीवनका भी अवसान हो जाता है; किंतु मृत्युञ्जय अवस्था कालातीत है। उसमें मृत्यु ही नहीं रहती। सिद्धगणका सिद्धत्व इस मृत्युञ्जयत्वकी सामर्थ्यके ऊपर निर्भर करता है। केवल मृत्युञ्जयत्व चरम सिद्धि नहीं है। गीता (१४।२) में जो कहा है—

'सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च।'

यह इसी 'कालातीत मृत्युञ्जय' अवस्थाका वर्णन है।

(३)

काल और महाकालका रहस्य

काल और महाकालके रहस्यके सम्बन्धमें संक्षेपसे कुछ कहा जाता है। काल और महाकाल स्वरूपतः एक ही वस्तु हैं। तथापि दोनोंमें पार्थक्य है। जगत्के परिणामके मूलमें कालकी शक्ति क्रिया करती है। प्रकृतिके परिणाम-शीला होनेपर भी सृष्टिकी धारा कालके द्वारा ही नियन्त्रित होती है। पातञ्जलदर्शनके दृष्टिकोणसे ज्ञात होता है कि प्रकृति परिणामिनी है। यह परिणाम दो प्रकारका है। एक परिणाम, 'सदृश परिणाम'के नामसे ख्यात है। दूसरेका नाम 'विसदृश परिणाम' है। गुणत्रयकी साम्यावस्था ही प्रकृतिका स्वरूप है। वैषम्यावस्थामें सृष्टिका उदय होता है। लयके समय सत्त्व सत्त्वरूपमें, रजः रजोरूपमें और तमः तमो रूपमें 'सदृश परिणाम'को प्राप्त होता है। इस परिणामके साथ भी कालका सम्बन्ध है। इस परिणामके समय सारे कर्म-संस्कार परिपक्व होते हैं और सृष्टिकी उन्मुखावस्थाका उदय होता है। सृष्टिके नियामकके रूपमें कालके न रहनेपर प्रलयके अन्तमें सृष्टिके आरम्भ होनेका कोई निर्देश न रहता। प्रकृतिका परिणाम स्वभावसिद्ध होनेपर भी गुणका परिपाक काल-सापेक्ष है। गुणके परिपाकके बिना 'विसदृश परिणाम' अथवा 'तत्त्वान्तर परिणाम' नहीं होते। तत्त्वान्तर परिणामकी सम्भावना न रहनेपर सृष्टिका उदय असम्भव हो जाता है। सृष्टिके मूलमें कर्मसंस्कार रहता है, यह सत्य है; किंतु अपक्व संस्कारसे सृष्टि नहीं होती। इसके लिये कालकी अपेक्षा है। इसी कारण महाभारतमें कहा है कि—

'कालः पचति भूतानि।'

'तत्त्वान्तर परिणाम'के तीन प्रकार हैं—धर्म, लक्षण और अवस्था। प्रकृति धर्मी है। वह जो धर्मरूपमें परिणत होती है, वही उसका प्रथम परिणाम है। यह धर्म उसके बाद काल-परिणामके अधीन हो जाता है। 'काल-परिणाम'को 'लक्षण-परिणाम' कहते हैं। अनागत, वर्त्तमान और अतीत—ये तीन लक्षण हैं। इनका त्रिकाल (तीन काल) के नामसे वर्णन किया जाता है। धर्म सबसे पहले अनागत लक्षणमें प्रवेश करता है। उसके बाद अनागत धर्म अर्थात् भविष्य धर्म वर्तमान रूपमें परिणत हो जाता है। अनागतको करण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापारके द्वारा वर्तमानमें परिणत करना पड़ता है। अकृत्रिम रूपमें यह स्वभावतः होता है। कृत्रिम रूपमें मनुष्य इसे कर सकता है या किया करता है। अनागत अवस्थामें जो सत्ता रहती है, वर्त्तमान अवस्थामें भी सत्ता वही रहती है। परंतु अनागत अवस्थामें वह अव्यक्त होती है। करण आदि अभिव्यञ्जकके द्वारा अभिव्यञ्जित होकर वह वर्त्तमान रूपमें स्थित होती है। यहाँ याद रखना चाहिये कि करण व्यापार अनागत सत्ताको अभिव्यक्त करके वर्त्तमानमें व्यक्त करता है, यह सत्य है। किंतु केवल धर्म सत्ताको अव्यक्त अवस्थासे व्यक्त नहीं कर सकता। धर्म-परिणाम कालसे संश्लिष्ट हुए बिना अनागत लक्षण-परिणामके रूपमें परिणत नहीं हो सकता। लक्षण-परिणाम वस्तुकी व्यापक सत्ता है। वह परिणामशील होकर भी जबतक अव्यक्त रहती है, तबतक उसमें क्षणिक परिणामका उदय नहीं होता। वर्तमान लक्षणमें प्रतिक्षण परिणाम सम्भव है। इसीका नाम 'अवस्था-परिणाम' है। अतीत लक्षणमें क्षणिक परिणामका संधान नहीं मिलता। अनागत और अतीत, दोनों क्षेत्रोंमें ही क्षणिक परिणाम नहीं होता। कालक्रमको अवलम्बन करके परिणाम कार्य सम्पादन करता है। इस क्रमके द्वारा ही पूर्वापर अनुभव होता है। वस्तुतः यह क्रम क्षणका ही क्रम है। योगीके सिवा दूसरा कोई 'क्षणका क्रम' नहीं समझ सकता। वस्तुतः एक ही क्षणमें समस्त जगत् परिणाम अनुभव करता है। योगीकी दृष्टिमें काल बौद्ध पदार्थ है। बुद्धिके बाहर काल नहीं है, क्रम है। क्षणके क्रमके अनुसार कालका परिमाण होता है। क्षण और उसके ऊपर योगी 'विवेकज ज्ञान' प्राप्त कर सकता है। 'विवेकज ज्ञान' विवेकज्ञान नहीं है, वह उससे पृथक् है। यह 'अनौपदेशिक प्रातिभ ज्ञान' है। इस प्रातिभ ज्ञानसे त्रिकालका पूर्ण ज्ञान उत्पन्न होता है। उसमें कोई क्रम नहीं रहता। वह शब्दजनित ज्ञान नहीं है। अतएव उसमें क्रमका प्रश्न ही नहीं उठता।

तान्त्रिक दृष्टिके अनुसार काल और महाकालमें पार्थक्य है। पूर्णत्वमें जानेके मार्गमें कालराज्यको भेद करके महाकालमें प्रवेश होता है। उसके बाद महाकालका भी भेद करके पूर्ण अहंतामय अखण्ड राज्यमें प्रवेश होता है। जैसे महाप्रलयका विवरण सुननेमें आता है, वैसे ही महासृष्टिका संधान भी शास्त्रमें उपलब्ध है। महासृष्टिमें न तो अतीत, अनागत, वर्त्तमानका कोई भेद है तथा न उसमें कोई भी परिणाम है। अनन्त सृष्टिकी सम्पूर्ण सत्ता ही वहाँ नित्य वर्त्तमान रूपमें प्रकाशित है। परंतु यह अनन्त सृष्टि इदं रूपमें प्रकाशित है, अहं रूपमें नहीं। जो कोई जो कुछ खोजेगा, वहाँ उसको वही मिलेगा। वहाँ किसी वस्तुका अभाव नहीं है। वहाँ अतीत भी वर्तमान है, अनागत भी वर्तमान है और वर्तमान भी वर्तमान है। हमारे परिचित वर्तमानमें क्षणिक परिणाम है, परंतु वहाँ वह भी नहीं है।

हमारा परिचित विश्व कालराज्यमें अवस्थित है। जिसको ब्रह्माण्ड कहा जाता है, वह कालके अधीन है; क्योंकि इसकी भी सृष्टि, स्थिति और संहार है। ब्रह्माण्डकी संख्या असंख्य है, पर सर्वत्र यही नियम है। ब्रह्माण्डकी समष्टिको लेकर प्रकृत्यण्डकी सृष्टि होती है। प्रकृत्यण्ड भी असंख्य हैं। वहाँ भी कालका परिणाम है और उनका भी सृष्टि-संहार है। समस्त प्रकृत्यण्डकी समष्टिको मायाण्ड कहते हैं। समस्त मायाण्डमें एक ही स्वभाव है। मायाके ऊर्ध्वमें शाक्ताण्ड है। वहाँ कालकी गति अन्य प्रकारकी है। वहाँ निम्नस्तरकी भाँति सृष्टि-संहार नहीं होता, तथापि सृष्टि-संहार है।

कालकी आलोचना करते समय सृष्टि और संहारके विषयमें प्रसङ्गतः आलोचना करना आवश्यक है। सबसे पहले संहारके विषयमें कुछ कहना सङ्गत जान पड़ता है; क्योंकि संहारके बाद ही सृष्टिका उन्मेष बुद्धिमें आरूढ़ होता है। प्राचीन आचार्योंने प्रलयको चार भागोंमें विभक्त किया है, अवश्य ही वह है आपेक्षिक रूपमें ही। उनमें एक 'नित्य प्रलय' है। दूसरा, 'नैमित्तिक प्रलय' तीसरा 'प्राकृतिक प्रलय' अथवा 'महाप्रलय' है और चौथा 'आत्यन्तिक प्रलय' या 'मोक्ष' है। नित्य प्रलय सर्वदा और सर्वत्र सूक्ष्म रूपमें चलता रहता है। निद्राकी अवस्था भी एक प्रकारका प्रलय है। सारे जगत्में निरन्तर इस प्रकारका प्रलय चलता रहता है। नित्य प्रलय जगत्की निरन्तर विनश्वरताको प्रमाणित करता है। इस ब्रह्माण्डके अधिपतिका नाम हिरण्यगर्भ या ब्रह्मा है। श्रुतिके अनुसार उनकी आयु सौ वर्ष है। यह उनके निजी मानके अनुसार अथवा दिव्य मानके अनुसार है, ऐसा समझना चाहिये। जिसको हम ब्रह्माण्ड समझते हैं; वह इस हिरण्यगर्भका ही शरीर है। ब्रह्माकी आयुका अवसान हो जानेपर ब्रह्माके देहकी समाप्ति हो जाती है। इसीको 'महाप्रलय' कहते हैं। इसी समय ब्रह्माकी जीवन्मुक्त अवस्थाका अवसान हो जाता है और वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परब्रह्मके साथ तादात्म्यको प्राप्त हो जाते हैं। अबतक ब्रह्मलोकमें जो लोग रहते थे, उन सभीको लेकर वे ब्रह्ममें प्रविष्ट हो जाते हैं। परंतु ब्रह्मलोकमें सब लोग एक ही अवस्थामें हों, ऐसी बात नहीं है। सालोक्यसे सायुज्यपर्यन्त सभी अवस्थाएँ वहाँ हैं। महाप्रलयके बाद नवीन सृष्टि दूसरे ब्रह्माको लेकर होती है। इसी प्रकार अनादिकालसे होता आ रहा है और अनन्त कालतक होता रहेगा। ब्रह्माण्डके ध्वंसरूपी इस प्रलयको 'प्राकृतिक प्रलय' कहते हैं। प्रचलित भाषामें इसका नाम 'महाप्रलय' है। इस अवस्थामें प्राचीन जगत्की सृष्टिका अवसान तथा नवीन जगत्का अभ्युत्थान होता है।

ब्रह्माके दिनके अन्तमें अर्थात् ब्रह्माके निद्राकालमें जो प्रलय होता है, उसका नाम 'नैमित्तिक प्रलय' है। नैमित्तिक प्रलय दो प्रकारका होता है—आंशिक और पूर्ण। आंशिक प्रलय कब होता है?—इसके उत्तरमें आचार्यगण कहते हैं कि एक-एक मन्वन्तरके बाद यह हुआ करता है। ब्रह्माके एक दिनको 'कल्प' कहते हैं। कल्पके अन्तमें जो प्रलय होता है, उसका नाम 'कल्प प्रलय' है। एक कल्पमें, अर्थात् ब्रह्माके एक दिनमें चतुर्दश मनुओंका आविर्भाव और तिरोभाव होता है। ७१००० महायुगमें एक-एक मनुका आविर्भाव और तिरोभाव होता है। एक मनुके अवसानमें एक प्रलयावस्था उदय होती है। तत्पश्चात् द्वितीय मनुका उदय होता है, इत्यादि। इस प्रकार चतुर्दश मनुका आयुष्काल पूर्ण होनेपर ब्रह्माका एक दिन पूर्ण होता है। 'मन्वन्तर प्रलय' से 'कल्प प्रलय' व्यापक है और 'कल्प प्रलय' से 'महाप्रलय' व्यापकतर होता है। एक-एक मन्वन्तरमें मनुके साथ इन्द्र, ऋषि, देवर्षि और पितृगणका परिवर्तन होता है। मन्वन्तर प्रलयमें पृथिवी जलमग्न हो जाती है। तब भूर्लोकसे भुवर्लोक और स्वर्लोकका सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है। महर्लोककी अवस्था अविकृत रहती है। पूर्ण नैमित्तिक प्रलयके समय कल्पका अन्त हो जाता है, अर्थात् ब्रह्माके एक दिनका अवसान हो जाता है, अतएव समस्त सृष्टिमें निद्राका भाव प्रबल हो जाता है। ब्रह्माके निद्रागत होनेके कारण कल्प प्रलयमें सारा जगत् सुप्त हो जाता है। उस समय भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक नहीं रहते, दग्ध हो जाते हैं। महर्लोकके ऋषिगण तापके कारण जन-लोकमें चले जाते हैं। इसके बाद नीचेके तीनों लोक जलमग्न हो जाते हैं। तब ब्रह्माण्डकी प्राणशक्तिको आकर्षण करके भगवान् विष्णु शेषशय्यापर शयन करते हैं। यह उनकी 'योगनिद्रा' है।

'नित्य प्रलय' और 'आत्यन्तिक प्रलय' पिण्डके साथ संश्लिष्ट हैं, किंतु 'नैमित्तिक प्रलय'का सम्बन्ध ब्रह्माण्डके साथ है।

पापका फल अकेला ही भोगता है

अन्तकालमें मनुष्य सबको छोड़कर अकेला ही परलोककी यात्रा करता है। मेरी माता, मेरे पिता, मेरी पत्नी, मेरे पुत्र और मेरी वस्तु—इस प्रकारकी ममता प्राणियोंको व्यर्थ पीड़ा देती रहती है। पुरुष जबतक धन कमाता है, तभीतक भाई-बन्धु उससे सम्बन्ध रखते हैं, परंतु इहलोक और परलोकमें केवल धर्म और अधर्म ही सदा उसके साथ रहते हैं, वहाँ दूसरा कोई साथी नहीं है। धर्म और अधर्मसे कमाये हुए धनके द्वारा जिसने जिन लोगोंका पालन-पोषण किया है, वे ही मरनेपर उसे आगके मुखमें झोंककर स्वयं घी मिलाया हुआ अन्न खाते हैं। पापी मनुष्योंकी कामना रोज बढ़ती है और पुण्यात्मा पुरुषोंकी कामना प्रतिदिन क्षीण होती है। मनुष्यके कमाये हुए सम्पूर्ण धनको सदा सब भाई-बन्धु भोगते हैं, किंतु वह मूर्ख अपने पापोंका फल स्वयं अकेला ही भोगता है। (महर्षि उत्तङ्क)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोविज्ञान और पुनर्जन्म

(लेखक—श्रीगौरीशङ्करजी द्विवेदी)

मनोविज्ञान मानवजीवनके अन्तर्बाह्य समस्त व्यापारोंका अध्ययन करता है। इन व्यापारोंकी चरम परिणति क्या होगी, यह विषय आधुनिक मनोविज्ञानके विचार-क्षेत्रके बाहर है। मानसिक व्यापार मानवके स्वभावका निर्देश करते हैं। दूसरे शब्दोंमें यह कह सकते हैं कि जिसका जैसा स्वभाव होता है, वैसा ही वह सोचता है, विचारता है; वैसे ही स्वप्नोंमें विचरण करता है और वैसा ही कर्म करता है। 'जैसा स्वभाव, वैसा जीवन'—यह स्वभाववादी मनोवैज्ञानिकका सिद्धान्त है। स्वभाववादी मनोवैज्ञानिककी दृष्टिमें चेतना, मन और आत्मा आदि तत्त्वोंका कोई अस्तित्व ही नहीं है। सब कुछ स्वभावसे होता है। इसीको लक्ष्य करके किसी विद्वान्ने कहा है—

'Psychology first lost its soul, then its mind, and then its consciousness; how, it has only the body, with behaviour of a kind.'

'मनोविज्ञानने पहले अपनी आत्माको उड़ा दिया। उसके बाद अपने मनको और उसके बाद अपनी चेतनाको। अब उसके पास केवल एक प्रकारका स्वभाव या व्यवहार-युक्त शरीर रह गया है।'

इस प्रकारके मनोविज्ञानको आप स्वभाववाद, व्यवहारवाद या प्रकृतिवाद जिस-किसी नामसे पुकारें, केवल व्यवहार (Behaviour) को लेकर मानस-व्यापार-को सीमित करना कभी भी समीचीन नहीं हो सकता। प्रश्न यह होता है कि मानस-व्यापारका कोई अर्थ है ? इसका कोई प्रयोजन है ? अथवा यों ही सब कुछ हो रहा है ? संसारके मनीषियोंने जो आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग-नरक, धर्म-अधर्म आदि तत्त्वोंका उपदेश देकर अशुभ-कर्मोंसे बचने और शुभकर्मोंके करनेकी प्रेरणा प्रदान की है, क्या वह सब निरर्थक है ? व्यवहारवादी (Behaviourist) इसका उत्तर देता है—

'To rescue from the clutches of Superstition and fear, throw away meaning and purpose. The Universe is a big machine.'

'अन्धविश्वास और भयके चंगुलसे बचना हो तो अर्थ और प्रयोजनको लात मारो। विश्व एक बड़ी मशीनके समान है।'

व्यवहारवादीका यह कथन विरुद्धहेत्वाभाससे दूषित है। जब वह विश्वको मशीन मानता है तो मशीन किसीके चलाये बिना नहीं चल सकती। अतएव इसके चालक, विश्वनियन्ता ईश्वरको मानना ही पड़ेगा। व्यवहारवादीका मनोविज्ञान अर्थप्रधान है और मनोविश्लेषणवादी फ्रायड साहबका मनोविज्ञान अर्थ और कामप्रधान है। अर्थप्रधानवाले केवल जाग्रदवस्थाकी चेतनामें ही विचरण करते हैं। उन्नीसवीं शताब्दीके पूर्व यूरोपका मनोविज्ञान जाग्रत् अवस्थातक ही सीमित था। फ्रायड साहब आगे बढ़े। उन्होंने स्वप्नकी अनुभूतियोंके आधारपर उपचेतन और अचेतन (Preconscious and Unconscious) मनका पता लगाया और सुषुप्तिकी प्रेरणा तथा स्वरूपपर भी कुछ प्रकाश डाला। परंतु काम-प्रबलताको स्वच्छन्द रखनेकी उनकी परिकल्पना (Hypothesis) अमान्य हो गयी। सिद्धान्तरूपमें न आ सकी। इंग्लैंडके जोड साहब उनसे बहुत आगे बढ़े और उन्होंने कहा—

'My recipe for the world is the cultivation of the spirit by recollection, meditation, fasting, breathing exercises and prayer in preparation for the coming of the newly conscious-man.'

'संसारके लिये मेरा यह अभिलेख है कि अभिनव चेतनायुक्त मानवके आगमनकी तैयारीमें प्रार्थना, प्राणायाम, उपवास और ध्यान-धारणाके द्वारा चित्तवृत्तिको संस्कृत करना चाहिये।'

यहाँतक पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक अर्थ और कामसे आगे धर्मकी भूमिकामें अवतीर्ण हो गये। इसी भूमिकामें थियोसोफिस्ट लोगोंने प्रेतवाद (Spiritualism) के क्षेत्रमें पदार्पण किया।

थियोसोफिस्ट लोगोंने बहुत कुछ आगे बढ़कर भारतीय अध्यात्मको स्पर्श करनेका प्रयत्न किया। पाश्चात्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोविज्ञानकी विचारसरणिमें इस अध्यात्मसाधनके पथपर योगिराज श्रीअरविन्दको बहुत सफलता प्राप्त हुई। चेतनाके विभिन्न स्तरोंकी परिकल्पनाके साथ-साथ 'अति-मानव'का सृष्टि-विकास तथा भूतलपर देवत्वके स्वयं आविर्भावकी उच्चतम परिकल्पना (Highest hypothesis) भारतके प्राचीन मनीषियोंके सिद्धान्तसे निराली वस्तु है। मूलतः यह परिकल्पना डार्विनके विकासवादकी श्रेष्ठतम आध्यात्मिक परिणति है। इसका परिच्छेद भारतीय है; परंतु सांख्यके परिणामवादसे इसका पूर्णतः मेल नहीं खाता और न पुराणोंका कर्मवाद इसके अनुकूल है।

मनोविज्ञानकी भारतीय परम्परामें पुनर्जन्मका सिद्धान्त पूर्णतः कर्मफलपर आधारित है। इस परम्पराके पूर्ण समर्थक स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—

'It is the Science of Psychology that teaches us to hold in check the wild gyrations of the mind, place it under the control of the will, and thus free ourselves from its tyranuous mandates. Psychology is therefore the science of sciences without which all sciences, all our knowledge are worthless.'

—(Complete Works Vol. VI. Page 26)

'मानस-शास्त्रका विज्ञान हमको मनकी उच्छृङ्खल प्रवृत्तियोंको निरुद्ध करने, उसको संकल्पशक्तिके नियन्त्रणमें रखने और इस प्रकार मनके अनियन्त्रित शासनसे अपनेको मुक्त करनेकी शिक्षा देता है। इस प्रकार मनोविज्ञान विज्ञानोंका विज्ञान है। इसके बिना सारे विज्ञान, हमारा सारा ज्ञान व्यर्थ है।'

स्वामी विवेकानन्दने इस कथनके द्वारा महर्षि पतञ्जलिके 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।' (१।२)—इस सूत्रके अभिप्रायको व्यक्त किया है। वस्तुतः चित्तवृत्ति अर्थात् मनको उच्छृङ्खल बने रहने देना ही सब अनर्थोंका मूल है। अपने जीवनमें मनका अनियन्त्रित शासन चलने देना अपनेको नरकमें गिराना है। बस, यहाँसे हमारा भारतीय मनोविज्ञान शुरू होता है। प्रश्न यह होता है कि मन है क्या ? इसको कहाँसे शक्ति मिलती है ? प्रथम प्रश्नका उत्तर योगवासिष्ठके अनुसार है—

अतस्त्वं मन एवेदं नरं विद्धि न देहकम्।
जडो देहो मनश्चात्र न जडं नाजडं विदुः॥
(३।११०।१३)

सारांश यह है कि 'मन ही मनुष्य है, देह मनुष्य नहीं है। देह तो जड है, परंतु मन न जड है न चेतन। यह उभयात्मक है। जड-चेतनके बीचमें दुभाषियेका काम करता है। चेतनसे चेतना लेकर जडको चेतनामय बनाता है।'

सांख्यशास्त्र कहता है—

उभयात्मकमत्र मनःसंकल्पकमिन्द्रियं च साधर्म्यात्।
गुणपरिणामविशेषान्नानात्वं बाह्यभेदाच्च॥
(कारिका २७)

'मन ज्ञानेन्द्रियोंके साथ होकर रूप-रस आदि विषयोंका ज्ञान-सम्पादन करता है और कर्मेन्द्रियोंके साथ रहकर वचनादान-विहरणादि कर्मोंका सम्पादक बनता है। भीतर-ही-भीतर नाना प्रकारके संकल्प-विकल्प करता है। सात्त्विक अहंकारसे उत्पन्न होनेके कारण इन्द्रियोंके साथ इसका साधर्म्य है, इस कारण मनको एकादश इन्द्रिय कहते हैं। सत्त्वादि गुणोंका परिणामविशेष होनेके कारण मन नाना प्रकारका होता है और बाह्य इन्द्रिय-व्यापारोंके भेदके कारण मन विभिन्न रूप धारण करता है।' इसी बातको योगवासिष्ठने इस प्रकार व्यक्त किया है—

मनः पश्य भवत्यक्षि श्रृण्वच्छ्रवणतां गतम्।
त्वग्भावं स्पर्शनादेति घ्राणतामेति जिघ्रणात्॥
रसनाद्रसतामेति विचित्रास्वत्र वृत्तिषु।
नाटके नटवद्धे मन एवानुवर्तते॥
(३।११०।१८-१९)

'देखो, मन आँख बनकर रूप ग्रहण करता है अथवा रूपका आकार धारण करता है, सुनते समय श्रोत्ररूपसे शब्दाकार धारण करता है, स्पर्शद्वारा त्वग्भावको प्राप्त होता है, इत्यादि नाना रूपोंमें इस देहरूपी नाटकमें मन ही नटवत् नाट्य करता है।'

सारांश यह है कि मन ही इन्द्रियोंके द्वारा बाह्य विषयोंका रस लेता है। उपर्युक्त दूसरे प्रश्नका उत्तर यही है कि मनको विषयरससे बल मिलता है। यदि विषय-रस न मिले तो मन दुर्बल होकर मर जायगा। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयको छान्दोग्योपनिषद्में इस प्रकार विशदरूपसे व्यक्त किया गया है—

'अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्मांसं योऽणिष्ठस्तन्मनः ॥१॥ आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति यो मध्यमस्तल्लोहितं योऽणिष्ठः स प्राणः ॥२॥ तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तदस्थि भवति यो मध्यमः स मज्जा योऽणिष्ठः सा वाक् ॥३॥'

(अ० ६ । ५)

'मनुष्य जो अन्न खाता है, वह परिपाक होनेपर तीन भागोंमें विभाजित होता है। अति स्थूल अंश पुरीष (विष्ठा) बनता है, मध्यम अंश मांस बनता है और सबसे सूक्ष्मतम अंश मन बनता है। वह जो जलपान करता है, उसका परिपाक होनेपर स्थूलतम अंश मूत्र बनता है, मध्यम अंश रक्त बनता है और सूक्ष्मतम अंश प्राण बनता है। वह जो तेज (तैजस पदार्थ) भोजन करता है, उसका स्थूलतम अंश अस्थि बनता है, मध्यम अंश मज्जा बनता है और सूक्ष्मतम अंश वाक् बनता है।'

इससे स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य जो भोजन करता है, उसीका परिपाक मन, प्राण और वाक् है। मानवजीवनके ये ही तीन प्रमुख स्तम्भ हैं। मन प्राणके कम्पनके साथ प्रकम्पित अर्थात् चञ्चल होता है और उसका सारा व्यापार वाङ्मय (वाक्से ओत-प्रोत) होता है। उसका सोचना-विचारना, संकल्प-विकल्प, स्मृति आदि सब कुछ वाक्के (अर्थात् शब्दमय) रूपमें होता है। प्राण-स्पन्दनके साथ ही मन इन्द्रिय-व्यापारमें संलग्न होता है। अतएव कर्मकी गतिमें प्राण अवस्थित रहता है। सारांश यह है कि अन्न, जल और तेज जो भुक्त होते हैं, वे पाकस्थलीमें जाकर मिल जाते हैं; अतएव उनके सूक्ष्म परिणाम—मन, प्राण और वाक् भी परस्पर अनुस्यूत होते हैं। वे तीनों एक साथ होकर काम करते हैं। वाक् मनको स्वरूप प्रदान करता है, अतएव वह वाणी अर्थात् भाषाके रूपमें ही व्यक्त होता है; प्राण उसको गति प्रदान करता है, प्राणके चञ्चल रहनेसे मन भी तद्वत् ही चञ्चल रहता है। यही कारण है कि प्राणकी गतिको अवरुद्ध करनेका अभ्यास करनेसे मन और वाणी उसके साथ अपने-आप अवरुद्ध होते हैं; तथा मनको वाक्हीन अर्थात् मौन बनानेसे प्राणसंयमन होता है। उदाहरणार्थ बौद्ध-साधकोंकी 'आनापान साधना'को देखिये। वे चित लेटकर केवल प्राणकी गतिपर ध्यान जमाते हैं। कुछ दिनके अभ्यासके बाद प्राणकी गति अवरुद्ध हो जाती है और वाक्हीन अर्थात् मौन मन समाधिस्थ हो जाता है।

इसलिये मन कहनेपर मनके साथ प्राण और वाक्का भी बोध होता है। प्राण और वाक्से रहित मनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। वाक्को यदि चिद् मानें और प्राणको अचिद्, तो मनको 'चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म' कह सकेंगे। वस्तुतः सविकल्पक मन ही मायिक होता है; निर्विकल्पक मन तो ब्रह्मस्वरूप होता ही है। प्राणयुक्त होनेपर ही मन सविकल्पक अर्थात् वाक्से युक्त होता है।

प्रश्नोपनिषद्में एक प्रश्न आता है कि 'यह प्राण कहाँसे उत्पन्न होता है और कैसे इस शरीरमें आता है?' इसका उत्तर देते हैं कि **'आत्मन एष प्राणो जायते। यथैषा पुरुषे छायैतस्मिन्नेतदाततं मनोऽधिकृतेनायात्यस्मिञ्छरीरे।'** (३ । ३) अर्थात् 'आत्मासे प्राण उत्पन्न होता है। जैसे पुरुषमें छाया होती है, उसी प्रकार इसमें मन व्याप्त होता है। मनसे अधिकृत होकर प्राण इस शरीरमें आता है।' अतएव प्राण मनको साथ लेकर इस शरीरसे निकलता है। मनके साथ वाक् आदि इन्द्रियाँ भी निकलती हैं। बृहदारण्यक उपनिषद्के षष्ठ अध्यायमें प्राणकी इस प्रधानताका स्पष्टरूपसे विवेचन किया गया है। परंतु ब्रह्मबिन्दूपनिषद् (२) में यह प्रधानता मनको प्रदान की गयी है। यथा—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्॥

'मन ही मनुष्यके बन्धन अर्थात् पुनर्जन्म और मोक्षका कारण है। विषयासक्त मन बन्धन (पुनर्जन्म) में डालता है और विषयरहित मन मुक्ति प्रदान करता है।' अतएव प्राणको कर्मवासनाका सूक्ष्म और क्रियात्मक रूप स्वीकार करना चाहिये। 'प्राण' शब्दकी व्युत्पत्तिसे भी यह अभिप्राय स्पष्ट व्यक्त हो जाता है। जैसे 'प्रकृष्टं अणिति, चलतीति प्राणः'। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान—इन पाँच भागोंमें विभक्त होकर गतिशील होकर तत्तत्कर्म सम्पादन करता हुआ शरीरको जीवन प्रदान करता है; अतएव इसका 'प्राण' नाम है। प्राणको वायु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या क्रिया कहना भी ठीक नहीं है। वेदान्तसूत्र (२।४।९) में इसका खण्डन है—'न वायुक्रिये पृथगुपदेशात्।'—अर्थात् 'प्राण वायु और क्रिया नहीं है; क्योंकि श्रुतिमें वायुसे पृथक् प्राणका उपदेश है।' जैसे—

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथ्वी विश्वस्य धारिणी॥
(मुण्डक० २।१।३)

'आत्मासे प्राण, मन, सारी इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, अग्नि, जल और सबको धारण करनेवाली पृथ्वी उत्पन्न होती है।'—यहाँ स्पष्टरूपसे प्राण और वायुका पृथक्-पृथक् निर्देश किया है; अतएव प्राण वायु नहीं है, पृथक् तत्त्व है। परंतु सांख्यने प्राणको वायु कहकर भी पृथक् तत्त्व नहीं माना है। जैसे—

स्वालक्षण्यं वृत्तिस्त्रयस्य सैषा भवत्यसामान्या।
सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च॥
(सांख्यकारिका २९)

'मन, बुद्धि और अहंकारकी विशेष स्वालक्षण्य-वृत्ति है। मन मनन करता है, बुद्धिद्वारा बोध (ज्ञान) होता है और अहंकारकी अहं (मैं और मेरा) वृत्ति है। परंतु करण, अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियकी प्राणादि पञ्च-वायु सामान्य वृत्ति हैं।' अभिप्राय यह है कि इन्द्रियाँ पञ्च-प्राणके साथ ही अपने-अपने विषयोंमें बर्तती हैं। वस्तुतः मनसे पृथक् प्राणको तत्त्वरूपमें ग्रहण करना ठीक नहीं है। 'वाक्' मनका स्वरूप है और प्राण 'गति' है।

पुनर्जन्मके सिद्धान्तको समझनेके लिये प्राणके स्वरूपको समझना आवश्यक समझकर कुछ विस्तारपूर्वक इसकी आलोचना की गयी है। इसके द्वारा यह स्पष्ट हो गया है कि मन ही वस्तुतः जीवन-मरणमें मुख्य तत्त्व है। आश्चर्यकी बात है कि पाश्चात्त्य मनोवैज्ञानिक श्रीएफ० डब्लू० बेलिस (F. W. Balis) साहबने भी यही बात निष्कर्षरूपमें कही है। जैसे—

'Man is not a body consisting a mind. He is a mind operating through a body. The body itself is the result of the activity of mind, is moulded by mind and changed by mind.'

'मनुष्य मनके साथ शरीर नहीं है। वह शरीरके द्वारा कार्य-सम्पादन करनेवाला मन है। शरीर स्वयं मानसिक कर्मोंका परिणाम है, मनके द्वारा गठित हुआ है और मनके द्वारा परिवर्तित होता है।' सच है, शरीर मनके हाथका खिलौना है। यह शरीरको जिधर, जिस रूपमें चाहता है, चलाता-फिराता है। शरीरके द्वारा मन मौज करता है और शरीररूप अपनेको मानकर नाना प्रकारके शारीरिक क्लेशोंका कर्त्ता-भोक्ता भी बनता है। मन ही शरीरको नीरोग रखता है और यही उसको रोगी बनाता है। मन ही शरीरको रोगोंके द्वारा जर्जर बनाकर उसे मार डालता है और मन ही लिङ्गशरीरको लेकर पुनर्जन्मका हेतु बनता है।

'उभयात्मकं अत्र मनः'—पूर्वजन्ममें क्रियमाण कर्मोंका कर्त्ता मन है और उनको प्रारब्धके रूपमें लेकर इह-जन्ममें उनका भोक्ता भी मन ही है। यही बात वर्त्तमान जन्म और अगले जन्मके विषयमें है। ये तो व्यक्तिके विषयमें व्यष्टि मनके क्रियाकलाप हैं। जरा आँखें खोलकर विश्वमें चारों ओर कला-कौशलकी वस्तुएँ, आलीशान मकानात, सुन्दर सड़कें, इंजिनियरिंगकी आश्चर्योत्पादक निर्माणकला, विज्ञानके रेल, तार, जहाज, वायुयान आदि तथा जीवनोपयोगी नाना प्रकारके विविध प्रकारके प्रसाधन-सामग्रियोंका अम्बार, ज्ञान-विज्ञानके सारे साधन, मानव-संस्कृति और सभ्यताको व्यक्त करनेवाली वस्तुएँ इत्यादिको देखिये। ईश्वरीय सृष्टिके मुकाबले एक अद्भुत मानवीय सृष्टि आपको दीख पड़ेगी। यह सब कुछ मनुष्य-के मनके करिश्मे (achievements of human mind) के सिवा क्या है? मानवके समष्टि मनके करिश्मेको देखकर आप चकित हो जायँगे। अनादिकालसे मानवके समष्टि मनने विश्वमें अपने मौजके लिये जो कुछ बनाया-बिगाड़ा है तथा इस समय जो कुछ उसके कर्त्तव्यकी निशानी या बानगी मौजूद है, वह अज्ञेय है, अपार है, अनन्त है। इसीलिये कहना पड़ता है कि समष्टि मन 'परमात्माका मन' है और यह सारी सृष्टि परमात्माकी सृष्टि है।

ऊपर जो मनके विषयमें कहा गया है कि मन रूपादि इन्द्रियविषयोंमें आसक्त होकर बन्धन (जन्म-मृत्यु)का कारण बनता है, वह सुस्पष्टरूपसे समझने योग्य है। प्रकृति और पुरुष-दोनों 'विभु' हैं। विभुका अर्थ है—कालातीत और देशातीत; देश और काल प्रकृति और पुरुषको सीमित नहीं कर सकते। मन और सूक्ष्मशरीर विभु नहीं हैं;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अणु-स्वभावके हैं। देश (दिक्) और काल कोई तत्त्व नहीं हैं, उपाधि हैं। इनको साथ लेकर ही मन अपने व्यापारमें लगता है। मन जो कुछ बाह्य विषयोंका ज्ञान प्राप्त करता है, उसके साथ देश और काल लगे रहते हैं। देश-कालके परे मनकी गति नहीं है और न मनकी गतिसे अस्पृष्ट देश-कालकी स्थिति है। देश और कालका व्यवधान हमारे मनमें है। समीप और दूर, अतीत और भविष्य मानसिक कल्पनामात्र हैं। वस्तुतः इनका कोई अस्तित्व नहीं। सांख्यकारिकामें कहा है कि—

'प्रकृतेर्विभुत्वयोगान्नटवद् व्यवतिष्ठते लिङ्गम्।' (४२)

'लिङ्ग-शरीर प्रकृतिके विभुत्वके कारण नटके समान नाना रूपमें (नाना योनिमें जन्म लेकर) क्रीड़ा करता है।' भावोंसे अधिवासित अर्थात् इहजन्मके कृतकर्मोंके सूक्ष्म संस्कारसे युक्त लिङ्ग-शरीर बिना स्थूलशरीरके रह नहीं सकता। इसलिये मृत्युके बाद मानसिक आतिवाहिक शरीरसे संलग्न होकर वह गतिशील होता है। प्रकृति और पुरुषके विभुत्वके बाहर उसे नहीं जाना पड़ता। जैसे इहलोक और इसके सारे व्यापार प्रकृति-पुरुषके विभुत्वके भीतर ही हैं, उसी प्रकार लोक-लोकान्तर भी इसके भीतर ही हैं। वस्तुतः भावोंसे अधिवासित लिङ्ग-शरीर और ये भोगार्थ परिकल्पित लोक-लोकान्तर सब कुछ मायिक हैं; प्रकृति और पुरुषके संयोगके कारण प्रकृति अर्थात् मायाके विलासमात्र हैं। मन जबतक विषयासक्त है, तभीतक वह जन्म-जन्मान्तर और लोक-लोकान्तरके मायिक चक्करमें पड़कर परेशान हो रहा है। जब वह निर्विषय हो जायगा तब यह सारी परेशानी दूर हो जायगी।

यह मनकी विषयोंमें आसक्ति ही मूलतः पुनर्जन्मका कारण है, यह स्पष्ट हो गया। इस विषयासक्तिका परिणाम दुःख है। मनःसंतापका यही मूल कारण है। मनको जो विषयभोग प्राप्त होता है, उसका संस्कार मनपर पड़ता है और उसको अधिकाधिक भोग प्राप्त करनेकी इच्छा होती है। मनकी कभी इस भोगसे परितृप्ति नहीं होती। यही अतृप्तिकी वासना उसके पुनर्जन्मका कारण बनती है। अतएव इस वासनासे मनको मुक्त करनेसे ही पुनर्जन्मके दुःखसे जीवको त्राण मिल सकता है। इसके लिये विभिन्न सम्प्रदाय विभिन्न प्रकारकी साधनाका निर्देश करते हैं। परंतु कलिमें एकमात्र भगवन्नाम ही आधार है। गोस्वामीजीने ठीक ही कहा है कि—

कलि केवल हरि नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा॥

शास्त्रमें भी कहा है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

आचरणको पवित्र रखकर नाम-स्मरणकी साधनासे अन्तःकरण शुद्ध होता है और अन्तःकरणके शुद्ध होनेसे मन विषय-वासनासे विरक्त हो जाता है। जीव भगवत्-कृपाको प्राप्तकर कृतार्थ होता है और पुनर्जन्मके चक्करसे उसे त्राण मिलता है तथा उसका मानव-जीवन सफल हो जाता है। इसके सिवा जीवके लिये दूसरा कोई सरल उपाय नहीं है।

निष्काम भावसे नारायणकी पूजा करो

तुम प्रतिदिन सर्वश्रेष्ठ भगवान् विष्णुका भजन करो। सर्वशक्तिमान् श्रीनारायणका चिन्तन करते रहो। दूसरोंकी निन्दा और चुगली कभी न करो। महामते! सदा परोपकारमें लगे रहो। भगवान् विष्णुकी पूजामें मन लगाओ और मूर्खोंसे मिलना-जुलना छोड़ दो। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य छोड़कर लोकको अपने आत्माके समान देखो—इससे तुम्हें शान्ति मिलेगी। ईर्ष्या, दोषदृष्टि तथा दूसरेकी निन्दा भूलकर भी न करो। पाखण्डपूर्ण आचार, अहंकार और क्रूरताका सर्वथा त्याग करो। सब प्राणियोंपर दया तथा साधु पुरुषोंकी सेवा करते रहो। अपने किये हुए धर्मोंको पूछनेपर भी दूसरोंपर प्रकट न करो। दूसरोंको अत्याचार करते देखो, यदि शक्ति हो तो उन्हें रोको, लापरवाही न करो। अपने कुटुम्बका विरोध न करते हुए सदा अतिथियोंका स्वागत-सत्कार करो। पत्र, पुष्प, फल अथवा दूर्वा अथवा पल्लवोंद्वारा निष्कामभावसे जगदीश्वर भगवान् नारायणकी पूजा करो। **(ऋषि जानन्ति)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालातीत भगवान् महाकाल

(लेखक—श्रीजगदीशप्रसादजी चतुर्वेदी)

कालज्ञानार्थ जिज्ञासा सदैव रही है, रहेगी भी। इसीसे मुनियोंने विचक्षण वायुदेवसे पूछा था—

क एष भगवान् कालः कश्चस्य वा वशवर्त्यम्।
क एवास्य वशे न स्यात् कथयैतद् विचक्षण॥

(श्रीशिवपुराण, वायुसंहिता)

'वह काल क्या है? किसके वशमें रहता है? कौन इसके वशमें नहीं हो सकता?'

ठीक ऐसे ही श्वेताश्वतर उपनिषद्में कुछ जिज्ञासु सृष्टिका कारण काल और स्वभावको बताते हैं।(१।२;६।१) श्रीशंकराचार्यने कालका अर्थ 'स्वभाव' या 'प्रकृति' किया है।

वरदराज मिश्रके अनुसार कोई कार्य तबतक नहीं होता, जबतक उसका 'समय' नहीं आता। इसी प्रकार 'कालवाद' का उल्लेख ईश्वरकृष्णने 'सांख्यकारिका'में, गौडपादने 'कारिका'में तथा उद्योतकारने 'न्यायवार्तिक' में किया है।

जैन-दर्शन, पुदगल एवं अन्य सभी द्रव्योंका कारण 'काल' को मानता है। उसके अनुसार 'काल' का अभाव न होनेके कारण ही 'पुदगल' सदैव गतिमान रहते हैं और क्षणिक समय 'काल-अणु' कहलाता है। 'काल-अणु' अनन्त हैं। उनके नित्यरूप कालको हम 'काल' के नामसे एवं सापेक्ष प्रकारके कालको 'समय'के नामसे पुकारते हैं।[1]

काश्मीरीय शैवदर्शनके अनुसार "परमशिवके आवरण (माया) के पाँच कञ्चुकोंमेंसे 'काल' भी एक कञ्चुक है।"[2] माध्ववेदान्तके अनुसार 'काल प्रकृतिसे उत्पन्न होता है और उसीमें लय होता है।'[3] वाल्लभ शुद्धाद्वैत (वेदान्त) के अनुसार 'अक्षरका ही स्वरूपान्तर काल है।'

भगवान् बुद्धने 'संयुत्तनिकाय' में कहा है—'प्राणियोंकी संसाररूपी महायात्रा 'अनादिकाल'से चल रही है।'[4] बौद्धोंका 'शून्यवाद' कालवादकी ओर ही संकेत है। नागार्जुन, **'ते आकाशस्थितेन चेतसा कालं कुर्वन्ति।'** के अनुसार 'काल' भी एक विचारका रूप है, जिसकी रचना 'शून्यता' में हुई है।[5]

गुरु नानकदेव एवं अन्य गुरुओंने 'काल' का चिन्तन किया था। फलतः 'अकाल-पंथ' संस्थापित हुआ।

वैशेषिक-दर्शनके आदिप्रणेता भगवान् कणाद तथा वृत्तिकार महर्षि भरद्वाजने 'काल' को नौ द्रव्योंमें स्थान दिया है। रावण भी वैशेषिकका मर्मज्ञ था; 'ब्रह्मसूत्र'-शांकर-भाष्यकी टीका 'रत्नप्रभा' (२।२।११) में उसके 'भाष्य' की चर्चा है। किंतु यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। रावणने 'काल'को खाट-पाटीसे बाँधा था—यह एक कहावत है। इसका भावार्थ उसकी काल-मर्मज्ञतासे ही लिया जा सकता है; फलतः उसने भगवान् रामका साक्षात्कार 'महाकाल'के रूपमें प्राप्त किया था। वैशेषिकके नौ द्रव्य ये हैं—

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति नव द्रव्याणि' (१।१।५)

वैशेषिकके अनुसार 'काल' द्रव्य है; अतः गुणोंका आधार है; क्योंकि ऐसा कोई 'द्रव्य' नहीं, जिसमें कोई-न-कोई गुण न हो; उसके अनुसार 'काल-द्रव्य' का विवेचन इस प्रकार होगा—'रावण मर गया।' 'गो-वध हो रहा है।' 'धर्म-संस्थापना होगी।'—वाक्योंसे भूत, वर्तमान या भविष्यका व्यावहारिक ज्ञान 'काल-द्रव्य'के सहारे होता है। यदि 'काल-द्रव्य' न हो तो भूत, भविष्य, वर्तमानको किससे सम्बद्ध किया जा सकेगा? अतः 'काल-द्रव्य' मानना आवश्यक है। यदि भौतिकवादी कहें कि 'सूर्य-गति ही काल है।' और यह मानकर हम कहें, 'अभी यह शरीर है' तो 'अभी'का अर्थ क्या होगा? इसका अर्थ यही हो सकता है कि 'यह शरीर अभी सूर्यकी वर्तमान गत्यात्मक क्रियासे सम्बन्धित है।' तो फिर यह विचार करना होगा कि 'अत्यन्त दूर सूर्यकी गतिका इस शरीरसे क्या और कैसे सम्बन्ध हो सकता है? क्योंकि गति तो सूर्यमें ही है। अतएव ऐसे व्यापक द्रव्यका मानना आवश्यक होगा—जिसका सम्बन्ध गत्यात्मक सूर्य और शरीर (दोनों) से हो। और ऐसा 'काल-द्रव्य' माननेपर ही सम्भव है, तभी 'अभी यह शरीर है' व्यवहार-कथनमें

१. डा० राधाकृष्णन्‌का 'भारतीय-दर्शन' भाग-१, पृष्ठ-५९०
२. पाँच कञ्चुक—कला, विद्या, राग, काल, नियति।
३. पदार्थ-संग्रह, पृष्ठ ६३ (क)
४. डा० उमेश मिश्रका 'भारतीय दर्शन' पृष्ठ-१६२
५. डा० राधाकृष्णन्‌का 'भारतीय दर्शन' पृष्ठ-५९६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान-बाधा न होगी । अतएव काल-द्रव्यका मानना आवश्यक है ।

'काल' गुणोंका आधार है; अतएव 'काल' में संख्या, परिमाण, संयोगादि गुण विद्यमान रहते हैं । साथ ही बिना इसके कोई अन्य द्रव्य उत्पन्न भी नहीं हो सकता ।

'नित्येष्वभावादनित्येषु भावात् कारणे कालाख्येति ।'
(वै० २ । २ । ९)

तत्त्वार्थ यह है कि सृष्टि-प्रलय, जन्म-मृत्यु—सभी इसीमें होते हैं ।

'काल' तत्त्वतः एक है; किंतु प्रभेदोंमें सीमित करनेपर अनेक हो जाता है; यथा त्रुटि, पल, निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, अयन (उत्तर, दक्षिण), युग (सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग), कल्प, मन्वन्तर, सवन, (१०० ब्रह्मयुग) आदि 'काल'के प्रभेद हैं । इस्लाम-धर्म सृष्टि और प्रलय (कयामत) और हिजरी संवत्सर-द्वारा 'काल-प्रभेद' करता है । हिंदू और पारसियोंका 'सृष्टि-काल' लगभग एक-सा काल-प्रभाग करता है । 'पारसी १२००० दिव्य वर्षोंका दैवी समय स्वीकार करते हैं ।'[1] आधुनिक युगमें घड़ीद्वारा घंटा, मिनट, सेकेंडोंके प्रभेदके आधारपर वैज्ञानिक अन्वेषण कर रहे हैं । निष्कर्षतः एक ही 'काल'के अनेक प्रकारसे प्रभेद हैं । आइन्सटीन 'काल'को '4th Dimension'[2] बताकर आधुनिक वैज्ञानिकोंको चक्कर (काल-चक्र) में फँसा गया है । गणितज्ञ अनन्त गणनाके लिये बीजीय चिह्नोंका प्रयोग करते हैं । उनकी अनन्तताकी गणना ही 'काल' है । 'काल-ज्ञान' भारतीय-दर्शनोंकी आधुनिक वैज्ञानिकोंको दी गयी चुनौती है ।

आइन्स्टीनका चतुर्विस्तारात्मक सिद्धान्त और काल

ब्रिटिश भौतिक विज्ञानवेत्ता स्व० सर जेम्स जीन्सके शब्दोंमें, "ब्रह्माण्डीय बुलबुलेके चार विस्तार हैं—तीन तो 'दिक्'के और एक 'काल' का और वह मूलतत्त्व, जिससे इस बुलबुलेका जन्म होता है, शून्य दिक् है, जो कि शून्य कालसे संयुक्त है ।"[3] यथार्थतः वैज्ञानिक त्रिविस्तारात्मकता (दिक्) और 'काल' को अखण्डताके रूपमें देखते हैं । उदाहरणके लिये, वे दूरी (दिक्) को प्रकाश-वर्ष (काल) से मापते हैं । अतएव 'दिक्-काल' का संगठित रूप एक है । तदनुसार आइन्स्टीनने अपने अन्तिम दिन 'संगठित-क्षेत्र-सिद्धान्त' (Unified field Theory) में लगाये, जिसे यहाँ उद्धृत किया जाता है[4]—

'संसारके असंख्य पदार्थोंका ९२ प्राकृतिक तत्त्वोंमें वर्गीकरण था । फिर इन तत्त्वोंको कुछ मौलिक कणोंमें सीमित किया गया । इसके साथ ही, विश्वकी विभिन्न शक्तियाँ एक-एक करके विद्युत्-चुम्बकीय शक्तिके विभिन्न रूप मानी जाने लगीं और ब्रह्माण्डके विभिन्न प्रकारके विकिरण—प्रकाश, ताप, क्ष-किरणें, रेडियो-तरङ्गें, गामा किरणें—विभिन्न तरङ्गदैर्घ्य और आवृत्तिकी विद्युत्-चुम्बकीय तरङ्गोंके रूपमें स्वीकार किये गये । अन्ततः ब्रह्माण्डकी विभिन्न सामग्रियाँ कुछ मौलिक परिमाणों—दिक्, काल, पदार्थ, शक्ति और गुरुत्वाकर्षणमें सीमित हो गयीं । लेकिन विशिष्ट सापेक्षवादने दिक् (१ लंबाई, २ चौड़ाई, ३ ऊँचाई), काल (चौथा) अखण्डताकी अविभाज्यताको प्रकट किया ।'

यह 'संगठित क्षेत्र सिद्धान्त' वैज्ञानिकोंकी पहुँचकी निर्धारित सीमा है । फिर यहाँ प्रश्न उठता है कि "आखिर दिक्-काल अखण्डताकी ज्यामिति 'गणित' ही क्यों है ? क्या किसी संख्याकी 'काल'से बाहर (बिना) गणना हो सकती है ?" इसका उत्तर निश्चय ही 'नहीं' होगा । फिर 'काल' क्या है ? अतएव सिद्ध है कि 'काल' से पृथक् रहकर अन्य किसी द्रव्यकी सत्ता नहीं हो सकती; फिर जिन प्रतीकों और गणनाओंका सहारा लिया जाय और उनके द्वारा 'काल' को प्रभेदोंमें सीमित किया जाय, तो वे 'काल-प्रभेद' भी किसी 'काल' में ही होंगे । अतएव 'महाकाल'का मानना स्वयं-सिद्ध एवं युक्ति-पूर्ण है । 'महाकाल' क्या है ? जैसाकि भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

१. डा० मनमोहन शर्माका 'भारतीय संस्कृति और साहित्य' पृष्ठ १०८ ।

२. चतुर्विस्तारात्मक सिद्धान्त (Four dimensional theory)

3. The Universe and Dr. Einstein का हिंदी संस्करण, पृष्ठ १०४ ।

४. उक्ताङ्कित पुस्तक 'आइन्स्टीन और ब्रह्माण्ड' पृष्ठ-११९ लेखक-लिंकन बारनेट (पुस्तकको पढ़कर आइन्स्टीनने इसकी भूमिका स्वयं लिखी है । लेखकके पास यह उपलब्ध है ।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कालोऽस्मि' (११ । ३२)
'कालः कलयतामहम्' (१० । ३०)
'अहमेवाक्षयः कालो' (१० । ३३)
'तस्मात्सर्वेषु कालेषु' (८ । ७, २७)
'यमः संयमतामहम्' (१० । २९)

अतएव भगवान् ही महाकाल हैं। वही ब्रह्माण्डके परम प्रशासक हैं—ईश्वर हैं। वे एकमात्र अपरिमित हैं। कालावधिवाले समस्त देव, लोक-ब्रह्माण्ड आदि परिमित हैं। श्रीमार्कण्डेयपुराणके अनुसार "प्रत्येक मन्वन्तरके अन्तमें कालराज मनुके साथ देवता, ऋषि, पितृगण तथा इन्द्रादि समस्त पदाधिकारी बदल जाते हैं। कालके परम प्रशासक (ईश्वर) भगवान् महाकाल ही 'अक्षर' रहते हैं।"[1]

'पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।' (पातञ्जल-योग-दर्शन १ । २६) निष्कर्षतः ब्रह्मलोक आदि अवधिवाले हैं; अतएव अनित्य हैं। (ब्रह्मणः अहः रात्रि-गीता ८ । १७) एकमात्र ईश्वर भगवान् महाकाल ही कालातीत हैं।

जिस वस्तुको किसी प्रकार सीमित करना सम्भव न हो, उसे ही 'असीम' कहा जायगा। असीमताको ही व्यापक समझा जाता है। सापेक्ष काल (समय) को 'संख्या' द्वारा सीमित किया जा सकता है; किंतु निरपेक्ष महाकालको सीमित नहीं किया जा सकता। अतएव 'महाकाल' पुरुष अनादि है, व्यापक है। 'काल'में संख्या, परिमाणादि गुण हैं; इसलिये वह 'सादि' हुआ। सभी लोक एवं देव पद-धारी अवधि (संख्या) वाले हैं, अतएव नश्वर हैं, 'सादि' हैं। 'सादि' मृत्युतत्त्व है; असत् है। 'अनादि' अमृतत्व है; सत् है। इसलिये काल मृत्युतत्त्व है। मृत्यु ही यमराज हैं।[2] महाकाल अनादि है, अमृत है; अतएव वही कालातीत भगवान् महाकाल हैं। वह सत्, असत् और सदसत्से परे परात्पर ब्रह्म है।

प्रत्येक वस्तु देश और कालसे ही सीमित होती है; किंतु कालातीत महाकालसे शक्तिरूपमें अनन्तकाल (संख्या रूपमें) उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं। यही 'एकोऽहं बहु स्याम' रूप है। काल उन्हीं भगवान्‌की शक्तिका रूप है। माया अव्यक्त प्रकृति है। भगवान् महाकालकी शक्ति अनन्त है। तदनुसार उनके रोम-रोममें (अनन्त) ब्रह्माण्ड हैं। उनका कालचक्र अनन्त है। उसके द्वारा वह नियति-रूपमें सात लोक, चौदह-भूतसर्गपर शासन कर रहे हैं। उन्हींके द्वारा सृष्टि-प्रलय (कालचक्र) संचालित है। जैसा कि अथर्व श्रुति कहती है—

कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत।
काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते॥
काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम्।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः॥
कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम्।
स्वयम्भूः कश्यपः कालात्तपः कालादजायत॥
(अथर्व १९ । ५३ । ५.८.१०)

कालातीत भगवान् शिवकी शक्ति (माया) महाकाली है। वह भी 'कालरूपम्' है। 'कलनात्सर्वभूतानाम्, अर्थात् 'काल ही सब पदार्थोंका कलन-कर्त्ता है।'

'कालः पचति भूतानि कालः संहरति प्रजाः।'

'कालसे ही सभी भूत-पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है तथा उसीमें सब लय हो जाता है।'

इसी काल-चक्र (भव-चक्र) में फँसकर भ्रमात्मक जीव संशयात्मा होकर कालका चबेना बनता है। 'संशयात्मा विनयश्यति।' (गीता ४ । ४०) और फिर 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्॥' को चरितार्थ करता हुआ नाना योनियोंमें घूमता रहता है।

अतएव कालातीत भगवान् महाकाल, जो कालसे परिमित नहीं हैं, वही एक शरणाश्रय हैं। उन्हींका एक-मात्र आश्रय लेना चाहिये। तभी दुरतिक्रम 'काल' का भीष्मकी तरह अतिक्रमण हो सकता है; भगवान् मार्कण्डेयकी भाँति 'काल-गति'को अवरुद्ध किया जा सकता है और नचिकेताकी भाँति 'काल-चक्र'का ज्ञान हो सकता है।

१. 'कल्याण' का उपनिषद्-अङ्क, पृष्ठ-५७।
२. कठोपनिषद्में 'मृत्यु' और 'यम' दोनों ही मृत्युदेवको सम्बोधित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल-विज्ञान

(लेखक—श्रीजयराजी वशिष्ठ)

(१)

कालतत्त्व

१—कालतत्त्व बड़ा गहन है। इसका रूप-गुण-स्वभाव अव्यक्त है। पञ्चभूत—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश—इनमेंसे यह कोई भी तत्त्व नहीं है। न कालमें गन्ध है, न रस, न रूप, न स्पर्श और न शब्द है। इस प्रकार यह इन्द्रिय-ज्ञानसे अगम्य है। 'संकल्प-विकल्प करना' मनका स्वभाव भी इसमें नहीं है; 'सोचना-निश्चय करना' बुद्धिका स्वभाव भी इसमें नहीं है; 'स्मरण करना, विस्मरण करना' चित्तका स्वभाव भी इसमें नहीं है, तो 'अहं-अहं करना' जीवका स्वभाव भी इसमें नहीं है। जीव तो स्वयं भगवान्‌की परिच्छिन्न-लीला-प्रयोजनार्थ काल-सीमाके अन्तर्गत अभिव्यक्त है। जीव असीम कालको नहीं जानता। त्रिगुणमयी अभिव्यक्ति सब काल-सीमाके अन्तर्गत है। सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय सभी काल-अपेक्षासे हैं। इस प्रकार काल त्रिगुणातीत सिद्ध होता है। सत्त्वगुणका स्वभाव ज्ञान-सुख-शान्ति-त्याग-दया-प्रेम—कालमें प्रतीत नहीं होता है। रजोगुणका स्वभाव कामना-कर्म-भोगेच्छासे भी यह शून्य है। तमोगुणका स्वभाव आलस्य-मूढ़ता-निद्रा-तन्द्रा-प्रमाद भी इसमें नहीं है। फिर यह काल है क्या वस्तु? पाठक विचार करें।

२—अच्छा तो जब काल त्रिगुणमयी प्रमाणोंसे सिद्ध नहीं होता है, तो हम त्रिगुणातीत-तत्त्वके प्रमाणोंसे सिद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं। गुणातीत-तत्त्व तो एक ही वस्तु है—वह तत्त्व आत्मा है अथवा परमात्मा है।

(क) आत्मा अजन्मा है—काल भी अजन्मा है; क्योंकि कालकी सीमामें ही सबका जन्म होता है। काल स्वयं अजन्मा रहता हुआ सबके जन्म (आदि) को सिद्ध करता है। सब सृष्टि कालमें उत्पन्न होती है।

(ख) आत्मा अमर है—काल भी अमर है; क्योंकि काल सबकी अवधि है। काल-अवधिमें ही सब मृत्युको प्राप्त होते हैं। काल सबकी मृत्युको सिद्ध करता है।

(ग) आत्मा अजर है—काल भी अजर है; क्योंकि यह स्वयं अजर रहता हुआ सबको जर बनाता है।

(घ) आत्मा सर्वव्यापक है—काल भी सर्वव्यापक है; क्योंकि परमाणुसे महान्‌तक काल निरन्तर विद्यमान है। काल अणु-अणुमें व्यापक है; क्योंकि कोई भी परमाणु अवधिरहित नहीं है।

(ङ) आत्मा सबमें व्याप्त होता हुआ भी असङ्ग है—काल भी सबमें व्याप्त होता हुआ असङ्ग है, निर्लिप्त है; क्योंकि न इसका कोई मित्र है, न इसका कोई शत्रु है, न इसका कोई बान्धव है, न इसका कोई अपना है, न पराया।

(च) आत्मा सम है—काल भी सम है; क्योंकि काल न धर्म-पक्षपाती है और न अधर्म-पक्षपाती है। कालकी गोदीमें धर्म-अधर्म—दोनों जोड़े-पुत्रोंकी भाँति सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलिके रूपमें खेलते रहते हैं। कालकी दोनोंके प्रति समता है।

(छ) आत्मा नित्य है—काल भी नित्य है; क्योंकि काल ही तो स्वयं नित्य रहता हुआ सबको अनित्य सिद्ध करता है।

(ज) आत्मा अपरिच्छिन्न है—काल भी अपरिच्छिन्न है; क्योंकि अपनी वर्तमानतामें ही सबकी परिच्छिन्नताको सिद्ध करता है अर्थात् अपनी वर्तमानतामें ही सबको वर्ता कर समाप्त कर देता है।

(झ) आत्मा असीम है—काल भी असीम है; क्योंकि यह स्वयं असीम रहता हुआ सबकी सीमा सिद्ध करता है।

(ञ) आत्मा अज्ञेय है—काल भी अज्ञेय है, बुद्धिसे अतीत काल ज्ञेय कैसे हो सकता है!

(ट) आत्मा अनन्त है—काल भी अनन्त है; क्योंकि काल स्वयं अनन्त रहता हुआ सबका अन्त कर देता है।

(ठ) आत्मा अनादि है—काल भी अनादि है; क्योंकि काल स्वयं अनादि रहता हुआ सबके आदिको सिद्ध करता है। सबका आदिपन काल-सीमामें है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ङ) आत्मा अप्रमेय है—काल भी अप्रमेय है; क्योंकि काल स्वयं अप्रमाणित रहता हुआ दूसरोंको प्रमाणित करता है।

३—इन उपर्युक्त अतीत गुणोंके संतुलनात्मक विवेचनसे तो 'आत्मा' और 'काल'में कोई भी भेद प्रतीत नहीं होता है। तो क्या आत्मा और काल एक ही वस्तुके दो नाम हैं? पाठक तनिक गम्भीरतासे विचार करें। इस प्रकार तो काल सर्वातीत प्रतीत होता है; क्योंकि यह स्वयं अतीत रहता हुआ सबको व्यतीत कर देता है। अच्छा, तो विवेचनद्वारा जहाँ इस समय हम पहुँचे हैं, वहाँ तो यह प्रतीत होता है कि यह काल हमारी आत्माकी समानता करता हुआ कहीं हमारे आत्माका ही अन्त तो नहीं कर देगा? चलो देखें, काल कहाँतक आत्माकी समानता कर सकता है?

(क) आत्मा स्वयम्प्रकाश है और अपने प्रकाशद्वारा दूसरोंको भी प्रकाशित करता है। आत्मचेतना ही आत्म-प्रकाश है। यह आत्मचेतना जब बुद्धिमें पहुँचती है तो बुद्धिको प्रकाशित करती है। इसी प्रकार मन, चित्त, इन्द्रियाँ, शरीर सबको प्रकाशित करती है। फिर इन बुद्धि, मन, चित्त, इन्द्रियोंद्वारा ही समस्त संसारको प्रकाशित करती है अर्थात् सबके अस्तित्वको सिद्ध करती है। इस आत्माके प्रकाश बिना हमारी बुद्धि सोच-विचार-निश्चय कुछ भी नहीं कर सकती, चित्त स्मृति लब्ध नहीं कर सकता, मन संकल्प-विकल्प नहीं कर सकता, आँखें देख नहीं सकतीं, कान सुन नहीं सकते, नाक गन्ध नहीं ग्रहण कर सकता, त्वचा स्पर्श अनुभव नहीं कर सकती और जिह्वा स्वाद नहीं बता सकती है। आत्माके चेतन-प्रकाशसे ही चैतन्य होकर हम कार्यशील बनते हैं—तो क्या काल भी इस प्रकार स्वयम्प्रकाश है? क्या वह भी इसी प्रकार हमारी बुद्धि, मन, चित्त, इन्द्रियाँ, शरीर, संसार सबको चेतना देता है? ऐसा देखा-सुना-पढ़ा है क्या कहीं हमने? कदापि नहीं! काल स्वयं हमारी आत्मचेतनाद्वारा प्रकाशित होता है, हमारी आत्मचेतनाद्वारा प्रमाणित होता है। हमारी आत्मचेतना न हो तो बुद्धि, मन, चित्त, इन्द्रियाँ, शरीर, देश, काल, वस्तु, संसार कुछ भी प्रमाणित नहीं हो सकता। आत्मा और कालके भेदका यह पहला स्पष्टीकरण है।

(ख) आत्मा सर्वशक्तिमान् है। जैसे यह एक पिण्डको शक्ति देता है, वैसे ही ब्रह्माण्डको भी यही एक आत्मा शक्ति देता है। क्या काल भी सर्वशक्तिमान् है? क्या काल भी पिण्ड और ब्रह्माण्डको शक्ति देता है? कदापि नहीं। इसका प्रयोजन तो काल-गणना अथवा काल-माप ही है। यह काल स्वयं आत्मशक्तिद्वारा गतिशील है, आत्माद्वारा प्रमाणित है—यह किसीको शक्ति क्या देगा? भेदका यह दूसरा स्पष्टीकरण है।

(ग) आत्मा ज्ञानस्वरूप है, अनुभवस्वरूप है। क्या काल भी ज्ञानस्वरूप तथा अनुभवरूप है? कदापि नहीं! जो स्वयम्प्रकाश नहीं है, स्वशक्तिमान् नहीं है, वह ज्ञानस्वरूप अनुभवरूप कैसे हो सकता है? कालद्वारा आत्मा प्रमाणित नहीं है; परंतु आत्माद्वारा काल प्रमाणित है; क्योंकि आत्मा कालको जानता है, काल आत्माको नहीं जानता है। यह तीसरा भेद है।

४—इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि काल एक 'अचेतन तत्त्व' है और आत्मा 'चेतन तत्त्व' है। अचेतन-तत्त्व चेतन-तत्त्वके द्वारा ही प्रमाणित होता है; नहीं तो बताइये, अचेतनकी क्या सत्ता है? यह काल आत्म-भगवान्‌से ही सत्ता पाकर समस्त संसारको भयभीत करता रहता है, स्वयं अचेतन है। यह स्वयं आत्म-भगवान्‌से भयभीत रहता है। तभी तो शास्त्रोंमें आत्माको कालका भी काल बताया है। अब बताइये कि क्या काल हमारे आत्मापर शासन कर सकता है? यह तो जो आत्मा परमात्मासे विमुख हैं, उनपर शासन करता है अर्थात् अनात्म-उपासकोंपर शासन करता है—उन्हींका ही अन्त करता है। आत्मा-परमात्मा तथा इनके उपासकोंका यह काल क्या बिगाड़ सकता है? फिर भी काल आत्मा तथा परमात्माका जिनको ज्ञान नहीं है, उनपर प्रभुता रखता है। आइये, अब हम काल और इसके कर्तव्यपर विचार करें कि भगवान्‌ने इनको क्या काम दे रक्खा है?

५—अब हमें विचार करना चाहिये कि यह जो कुछ संसार परमाणुसे लेकर ब्रह्मातक विद्यमान है—सब कुछ कालका ही बना हुआ है अथवा कालके अतिरिक्त कोई और तत्त्व भी जगत्‌के निर्माणमें विद्यमान है? जगत्‌के निर्माणमें पहला कारण तो परमात्माका आदिसंकल्प 'एकोऽहं बहु स्याम्' ही है। उस संकल्पमेंसे किन-किन तत्त्वोंका प्रादुर्भाव हुआ—यह हमें निम्नलिखित रूपकद्वारा जानना है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि-इच्छा[1], नीतिशक्ति[2], देश[3], काल[4], गति[5], त्रिगुण[6], अहंकार[7], पञ्चभूत[8], संख्या[9], जीव[10]—ये दस भगवत्-लीलाके सदस्य हैं—जो आदिसंकल्पके स्फुरित होते ही विद्यमान होते गये हैं।

(१) आदि-इच्छामें बहु बननेकी धारणा है, यह बहु बननेके संकल्पको धारण करती है।

(२) नीतिशक्ति योगमाया है, यह इच्छाके अनुसार विधान तैयार करती है।

(३) बहुलीलाके लिये लोक-परलोकका विधान योगमाया करती है—यही देश-अपेक्षा है।

(४) कब-से-कबतक लीला करनी है, इसके लिये कालकी अपेक्षा है।

(५) लीलाको क्रियात्मक रूप देनेके लिये गतिकी अपेक्षा है। यही क्रिया-शक्ति है।

(६) अनेक प्रकारकी लीलाके लिये अनेक भावोंकी अपेक्षा है। वे भाव त्रिगुणात्मक रूपमें एक अहंकार बनकर सोये हुए हैं, उनको जाग्रत् करनेके लिये काल-गतिकी अपेक्षा है।

(७) गति पाकर जाग्रत् हुए गुण एक अहंकारसे गुण-भेदानुसार तीन प्रकारके हो जाते हैं—सात्त्विक अहंकार, राजस अहंकार और तामस अहंकार।

(८) तामस अहंकारका परिणाम पञ्चभूत तथा पाञ्च-भौतिक पदार्थों—शरीरोंका निर्माण है। राजस अहंकारका परिणाम इन्द्रियाँ—प्राण हैं। सात्त्विक अहंकारका परिणाम अन्तःकरणचतुष्टय—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार है।

(९) पाञ्चभौतिक पदार्थों—शरीरों तथा त्रिगुणमयी अनेक भावोंके तारतम्यसे घटनाएँ पैदा होती हैं। उन घटनाओं तथा शरीरों—पदार्थोंके हिसाबके लिये तथा काल-मापके लिये गणित (संख्या) की अपेक्षा है।

(१०) इन सब प्रकारके शरीरों—पदार्थोंमें ममत्वबुद्धि तथा अहंबुद्धि रखनेवाले जीवकी सबसे अधिक अपेक्षा है।

६—यह सब आदिसंकल्पका परिणाम है, अथवा इन दस सदस्योंका साझा परिणाम है—केवल कालका ही परिणाम नहीं है। कालका कार्य तो केवल अवधि-प्रयोजन ही है और वह अवधि भी अनात्म तत्त्वों, पदार्थों, शरीरों, लोकों-परलोकोंकी, न कि सबके अंदर बैठे अविनाशी आत्मा-की। शेष अपना-अपना काम दूसरे सदस्य भी करते हैं। जैसे संकल्प, इच्छा, योगमाया, देश, दिशा, त्रिगुण, गति आदिका स्वरूप निराकार है—अव्यक्त है, इसी प्रकार कालका स्वरूप भी निराकार और अव्यक्त है। इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि कालका प्रयोजन अवधि-संख्या ही है। यह काल ही सबका कर्ता-धर्ता नहीं है।

७—अब हमें यह देखना है कि कालके इस निज अव्यक्त (निराकार) स्वरूपका हमें किस आकारमें यहाँ प्रतिदिन अनुभव होता है? रातको हम सो जाते हैं; सबेरे मन्दिरकी घंटी बजती है; पक्षी अपनी रागिणी अलापते हैं; हम तुरंत उठ बैठते हैं और कहते हैं—'सबेरा हो गया।' यदि घंटी न बजे, पक्षी अपनी रागिणी न अलापें, सूर्य प्रकाश न करे, ऐसी कोई घटना न घटे जिससे हम अपने समयके व्यतीत होनेका पता लगा सकें—तो हमको कालकी प्रतीति नहीं हो सकती है। ये घटनाएँ ही हमें कालके व्यतीत होनेका पता देती हैं और हमें दैनिक कार्य-क्रममें आबद्ध करती हैं। आज मैं वहाँ गया था; कल मैं तुमसे मिलूँगा; सबेरे दो घंटे हमारे घर कथा हुई; मेरा भाई दस दिन बाद आयेगा। ये शब्द आज, कल, सबेरे, दो घंटे, दस दिन केवल समयको मापनेके चिह्न हैं। सबेरा होना, दोपहर होना, संध्या होना, रात होना, इसी प्रकार जन्म लेना, जवान होना, बूढ़ा होना, बीमार होना, मरना—ये सब घटनाएँ हैं। रात-दिन, शुक्ल-पक्ष, कृष्ण-पक्ष, उत्तरायण-दक्षिणायन, संवत्सर, मन्वन्तर, युग, कल्प आदि सब घटनाएँ हैं—ये सब काल-माप हैं (These events and circumstances are the measures of time.)। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि घटनाओं, पदार्थों, शरीरों, ऋतुओं, संवत्सरों, युगों, कल्पोंका परिवर्तन (बदलना) ही कालका आकार है; वास्तवमें काल निराकार है।

गुणव्यतिकराकारो निर्विशेषोऽप्रतिष्ठितः।
पुरुषस्तदुपादानमात्मानं लीलयासृजत्॥
विश्वं वै ब्रह्मतन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया।
ईश्वरेण परिच्छिन्नं कालेनाव्यक्तमूर्तिना॥
(श्रीमद्भा० ३। १०। ११-१२)

त्रिगुणमयी पदार्थोंका रूपान्तर (बदलना) ही कालका आकार है (स्वरूप है)। स्वयं काल निर्विशेष (निराकार) और अप्रमाणित है। उसीको निमित्त बनाकर भगवान् अपनेको परिच्छिन्न मूर्तिमें व्यक्त करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

काल-विभाजन और कालचक्र

१. जैसे एक अव्यक्त आत्माका अनेक जीवात्माओंमें विभाग-सा हुआ है, एक आदिसंकल्पसे अनेक संकल्प बने हैं, एक देशके अनेक देश बने हैं, एक इच्छा अनेक इच्छाओंमें विभक्त हुई है, एक बुद्धि अनेक बुद्धियोंमें विभक्त हुई है, एक मन कई मनोंमें विभक्त हुआ है, एक विराट् शरीर अनेक शरीरोंमें विभक्त हुआ है, इसी प्रकार काल भी परमाणुसे परम महान्‌तक अनेक कालोंमें विभक्त हुआ है।

२. पृथ्वीका जो भाग सूक्ष्मतम अंश है, जिसका और विभाग नहीं हो सकता, उसको 'परमाणु' कहते हैं। जिस समग्रका यह परमाणु अंश है उसे 'परम महान्' कहते हैं। यह वस्तुका 'सूक्ष्मतम' और 'महत्तम' स्वरूप है। इसी मापसे अव्यक्त काल परमाणुमें परमाणुरूपसे और महान्‌में महान्‌रूपसे व्याप्त हो जाते हैं—

स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम्।
सतोऽविशेषभुग् यस्तु स कालः परमो महान्॥
(श्रीमद्भा० ३। ११। ४)

'जो काल परमाणुमें व्याप्त है, वह परम सूक्ष्म है, जो सृष्टिकी उत्पत्तिसे प्रलयपर्यन्त व्याप्त है, वह परम महान् है।'

३. काल-विभाजन

२ परमाणुओंके संयोगसे एक 'अणु' बनता है।
३ अणुओं ,, ,, ,, 'त्रसरेणु' ,, ,,।

(झरोखेमें आयी सूर्यकिरणोंमें त्रसरेणु उड़ा करते हैं, ऐसे तीन त्रसरेणुओंको पार करनेमें सूर्य जितना समय लेता है, उसे 'त्रुटि' कहते हैं)

१०० त्रुटिका एक वेध होता है।
३ वेध ,, ,, लव ,, ,,।
३ लव ,, ,, निमेष ,, ,,।
३ निमेष ,, क्षण ,,।
५ क्षणोंकी ,, काष्ठा होती है।
१५ काष्ठाका ,, लघु होता है।
१५ लघुकी ,, नाडिका होती है।
६ नाडिकाका ,, प्रहर होता है।
८ प्रहरका एक दिन-रात होता है।
१५ दिन-रातका ,, पक्ष ,, ,,।
२ पक्ष (शुक्ल+कृष्ण) का एक मास होता है (यह पितरोंकी दिन-रात है)
२ मासकी एक ऋतु होती है।
६ मासका एक अयन होता है (उत्तरायण-दक्षिणायन ये देवोंके दिन-रात हैं)
२ अयनोंका एक वर्ष होता है।

अब कालका युग-मन्वन्तर-कल्परूपमें विभाजन देखें—

कलियुगकी	आयु	संध्या-संध्यांशोंसहित	४,३२,०००	मानवीय	वर्ष
द्वापरयुगकी	,,	,,	८,६४,०००	,,	
त्रेतायुगकी	,,	,,	१२,९६,०००	,,	
सत्ययुगकी	,,	,,	१७,२८,०००	,,	
एक चतुर्युगीकी	आयु	=	४३,२०,०००	,,	

७१$\frac{६}{८}$ चतुर्युगीतक एक 'मनु'की आयु होती है। यह एक 'मन्वन्तर कालमान' है। एक मन्वन्तर बीतनेपर जल-प्लावन—प्रलय होता है। मनु-इन्द्र-देवता-सप्तर्षिका इस प्रलयमें अन्त हो जाता है। १००० चतुर्युगीका ब्रह्माका एक दिन होता है। यह एक 'कल्प' कहलाता है। इस प्रकार ब्रह्माका एक दिन—

४३,२०,००० × १००० = ४,३२,००,००,००० मा०वर्ष।
इतनी ही बड़ी ब्रह्माकी एक रात ४,३२,००,००,००० ,, ,,
यह ब्रह्माका अहोरात्र है— ८,६४,००,००,००० ,, ,,
(इससे तीसगुना करनेपर)
यह ब्रह्माका एक मास है २,५९,२०,००,००,००० ,, ,,
(इससे बारहगुना करनेपर)
यह ब्रह्माका एक वर्ष है ३१,१०,४०,००,००,००० ,, ,,
(इससे सौगुना करनेपर)

दो परार्ध काल=यह ब्रह्माकी १०० वर्षकी आयुः ३१,१०,४०,००,००,००,००० ,, ,,

ब्रह्माजीकी आयुके आधे भागको 'परार्ध' कहते हैं। ब्रह्माजी-का पहला परार्ध बीत चुका है। अब दूसरे परार्धका पहला दिन बीत रहा है। इस समय 'वाराह-कल्प' चल रहा है। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे परार्धका पहला कल्प है। ब्रह्माजीकी आयुके इस समय १५,५५,२१,९७,२९,४९,०७४ मानवीय वर्ष बीत चुके हैं। यह ब्रह्माजीकी आयुका दो परार्धवाला काल विष्णु भगवान्‌पर शासन नहीं करता है। यह केवल ब्रह्माकी सृष्टिका अन्त करता है। इस प्रकार कालका 'परमाणु'से लेकर 'ब्रह्मा'तक विभाजन है। यह 'क्षर ब्रह्म'का ही विभाजन है। यहाँतक कालका व्यक्त व्यापक रूप है। इसके परे 'अक्षर ब्रह्म'का राज्य है। वह विष्णु भगवान्‌का श्रेष्ठ धाम है।

इस विषयमें श्रीमद्भागवतपुराणके वचन हैं—

विकारैः सहितो युक्तैर्विशेषादिभिरावृतः।
आण्डकोशो बहिरयं पञ्चाशत्कोटिविस्तृतः॥
दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत्।
लक्ष्यतेऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशो ह्यण्डराशयः॥
तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम्।
विष्णोर्धाम परं साक्षात्पुरुषस्य महात्मनः॥
(३।११।३९—४१)

"प्रकृति+महत्तत्त्व+अहंकार+पञ्चतन्मात्रा—इन आठ प्रकृतियोंसहित दस इन्द्रियाँ+मन+पञ्चभूत—इन १६ विकारोंवाला ब्रह्माण्ड-कोश जिसमें परमाणु-समान दीखता है, जिसमें ऐसे करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं, वही सब कारणोंका कारण 'अक्षर ब्रह्म' कहलाता है—यही विष्णु भगवान्‌का श्रेष्ठ धाम है।"

यहाँ काल अक्षररूप है, अकालरूप है।

'Here the time is timeless.'

तभी तो ब्रह्माके ऊपरके शिवलोक, दुर्गालोक, विष्णुलोक, महाविष्णुलोक, गोलोक—ये सब शास्त्रोंमें प्रकृतिसे अतीत कालातीत नित्य लोक बताये गये हैं।

कालचक्र

१—समयका पुनरावर्तन ही 'कालचक्र' है। गति बिना कालचक्र गतिशील नहीं हो सकता है। वास्तवमें कालचक्रका दूसरा नाम 'कालगति' ही है। गति (motion) क्या वस्तु है? 'गति' भी कालकी भाँति असंग तत्त्व, व्यापक तत्त्व तथा अव्यक्त तत्त्व ही है। गति बिना संसारकी कोई भी क्रिया सम्पन्न नहीं हो सकती है। यह गति ही सब पदार्थों, जीवों, तत्त्वों तथा लोकों-परलोकोंसे युक्त होकर उन सबको गतिशील बनाती है। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, तारे, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु—सब इस गतिद्वारा ही गतिशील हैं। समस्त संसार गतिशील है। अणु-अणु, परमाणु-परमाणु गतिशील है, सबका जीवन गतिशील है। संसारके संसरनेको ही 'गति' कहते हैं। गति जब श्वाससे युक्त होती है तो 'श्वास-गति' कहलाती है; हृदयसे युक्त होती है तो 'हृदयगति' कहलाती है; रक्तसे युक्त होती है तब 'रक्तगति' कहलाती है। इसी प्रकार यह नाड़ीकी गति, मनकी गति, बुद्धिकी गति, जीव-गति, परमगति—अनेक संज्ञा पाती है। परंतु स्वयं असंग रहती हुई गतिकी गति ही रहती है। यही जब काल-से युक्त होती है तो 'काल-गति' कहलाती है।

२—गति-तत्त्व न हो तो समस्त संसार गतिहीन हो जाय—कोई भी हिल न सके। समस्त संसार पुरुषार्थहीन हो जाय। पुरुषका पुरुषत्व यह गति ही है। गति बिना संसारकी गति नहीं हो सकती; क्योंकि कर्मगति ही सबकी गतिका कारण है। शुभकर्मसे जीवकी गति स्वर्गको होती है, पापकर्मसे जीवकी गति नरकको होती है। कर्मगति ही दूसरे लोकोंकी गति पानेका कारण है। जीवका पुनरावर्तन ही जन्म-गति है, यही 'जीवगति' कहलाती है। यह गति इच्छासे युक्त होती है तब इच्छाशक्ति है, ज्ञानसे युक्त होती है तब ज्ञान-शक्ति है, चित्तसे युक्त होती है तब चित्तशक्ति है, त्रिगुणसे युक्त होती है तब त्रिगुणमयी शक्ति है, पञ्चभूतोंसे युक्त होती है तब भौतिक शक्ति है, क्रियासे युक्त होती है तब क्रिया-शक्ति है। इसी शक्तिसे सब क्रियाशील हैं। यही भगवान्‌की स्वभाव-शक्ति (अर्थात् योगमाया) बनकर अणु-अणुमें प्रविष्ट होकर समस्त जड-चेतन पदार्थों, जीवों, जीव-शरीरों, लोकों तथा परलोकोंका निर्माण करती है। यह वैज्ञानिकोंकी Energy-(Blind force) 'अन्ध-शक्ति' नहीं है। यह भगवान्‌की पूर्ण ज्ञानयुक्त क्रिया-शक्ति है। यह समस्त जड-चेतन पदार्थों,जीवोंके स्वभावके रूपमें विद्यमान है। जो भाव बार-बार उदय हो,वह भाव 'स्वभाव' बन जाता है। संसारका उदय-अस्त स्वभाव ही है। स्वभावका बार-बार पुनरावर्तन ही 'चक्र' कहलाता है। यह 'स्वभावचक्र' ही कालसे युक्त होता हुआ 'कालचक्र' कहलाता है। काल प्रत्येक स्वभावमें अवधिरूपसे विद्यमान है। वास्तवमें यह स्वभावचक्र ही कालचक्र संज्ञा पाता है। इस चक्रको चाहे आप मायाचक्र कहें, चाहे इच्छाचक्र, चाहे वासनाचक्र, चाहे कर्मचक्र, चाहे संसारचक्र, चाहे जीवचक्र, चाहे स्वभावचक्र तो चाहे कालचक्र कहें—वास्तवमें यह सबका साँझा-चक्र है। फिर भी हम काल-प्रसङ्गमें कालचक्रकी संज्ञा ही निश्चित करेंगे। इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह स्वभावका पुनरावर्तन ही समयका पुनरावर्तन है—यही कालचक्र कहलाता है।

३—श्वास अंदर जाता है फिर लौटकर बाहर आता है। यह अंदर जाना और बाहर आना श्वासका एक 'क्रम-चक्र' है। काल श्वाससे अभिन्न है; क्योंकि काल श्वासकी अवधि बनकर श्वासके साथ ही अंदर जाता है, फिर श्वासके साथ ही बाहर आता है। मनुष्य दिनमें लगभग २१,६०० श्वास लेता है और छोड़ता है। इस क्रमसे उसका एक दिन पूरा हो जाता है और इसी क्रमसे उसकी एक रात पूरी हो जाती है। फिर यह रात-दिनका चक्र चलता है। दिन आता है, रात आती है—मनुष्यकी आयु इसी प्रकार समाप्त होती है। सप्ताहमें रवि, सोम आदि वारोंका पुनरावर्ती चक्र चलता है। इसी प्रकार शुक्लपक्ष-कृष्णपक्षका चक्र चलता है। यह पितरोंकी आयुको क्षीण करता है, फिर ऋतुओंका चक्र चलता है। वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर बार-बार उपस्थित होती हैं। ये वनस्पति फल-फूलकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करती रहती हैं। फिर सूर्य आदि ग्रहोंका द्वादश-राशि भ्रमणचक्र चलता रहता है। यह ज्यौतिष-कालचक्र है। इसी प्रकार देवोंका उत्तरायण-दक्षिणायन-चक्र चलता है। यह देवोंकी दिन-रातके रूपमें देवोंकी आयु हरता है। फिर सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग, कलियुगका—युग-कालचक्र चलता है। यह मनु-इन्द्रकी आयुको हरता है। मनु-काल 'मन्वन्तर' कहलाता है। मन्वन्तर-चक्रानुसार ब्रह्माके एक दिनमें १४ मनु समाप्त हो जाते हैं। फिर ब्रह्माके दिन-रातका चक्र चलता है। यह 'कल्पचक्र' कहलाता है। यह कल्पचक्र ब्रह्माकी १०० वर्षकी आयु समाप्त कर देता है।

४—ब्रह्माका अन्त होनेके बाद काल पाकर फिर ब्रह्माका उदय होता है। इस प्रकार संसारकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयका चक्र निरन्तर चलता रहता है। यह कालका 'महा-कल्प-चक्र' कहलाता है। यह पुनरावर्तन ही कालचक्र है। जन्म, जवानी, बुढ़ापा, मृत्युका पुनरावर्तन ही कालचक्र है। शुभ कर्मसे जीव स्वर्ग जाते हैं; फिर लौटकर इसी लोकमें आते हैं। पापकर्मसे जीव नरक जाते हैं; फिर लौटकर यहीं आते हैं—यह कर्मरूपी कालचक्रका प्रवाह है। यही भवाटवीका चक्र है। यह बड़ा प्रबल चक्र है। इस प्रकार यह कालचक्र अनेक प्रकारका है। यह चींटीसे लेकर ब्रह्मातक सबका पुनर्जन्म सिद्ध करता है। संसारकी बार-बार उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयद्वारा काल संसारका पुनर्जन्म सिद्ध करता है। इस कालचक्र अथवा पुनर्जन्म-चक्रसे समस्त संसार वञ्चित नहीं है तो तुच्छ जीवोंकी तो बात ही क्या है। इस पुनर्जन्मरूपी कालचक्रसे जीव कैसे मुक्त हो सकता है? अथवा समस्त संसार इस चक्रसे कैसे मुक्ति पा सकता है? इस समस्याका सुझाव ही 'कालचक्र'का प्रयोजन है। यही कालचक्रका स्वरूप है।

(३)

कालचक्रसे निवृत्ति

१. हमें यह विचार करना है कि संसारके जीवोंकी इस 'कालचक्र'के कारागारसे कैसे मुक्ति हो सकती है?

२. कालचक्रसे मुक्त होनेके लिये ऋषियों, मुनियोंने ज्ञान, योग, भक्ति तथा निष्काम कर्म—ये चार साधन शास्त्रोंमें बताये हैं। सम्यक् प्रकारसे इनका अनुष्ठान करनेसे कालचक्रसे निवृत्ति हो सकती है।

३. यदि हम 'परम-गति' चाहते हैं तो यह जानकर कि ब्रह्माके लोकका भी ब्रह्मासहित आदि-अन्त होता रहता है, हम न तो धूममार्गद्वारा स्वर्गलोक जाना चाहेंगे और न मार्कण्डेय-लोमशादि मुनियोंकी भाँति चिरजीवी बननेका प्रयत्न ही करेंगे तथा न बालऋषि सनत्कुमार आदिकी भाँति कल्पभर अथवा ब्रह्माकी आयु-समान आयु ही चाहेंगे; क्योंकि ये सब कालातीत नहीं हैं। मार्कण्डेयजीकी आयु ब्रह्माके सात दिनोंमें ही बराबर हो लेती है तथा लोमशजीकी आयु ब्रह्माके पंद्रह वर्षमें सीमा पा जाती है। ब्रह्मलोकके वासी ब्रह्माके साथ ही निर्वाणको प्राप्त होते हैं। यह सब 'क्षर ब्रह्म'की महिमा है। क्षरके परे अक्षर है। यह अक्षर तत्त्व तीन प्रकारका है, एक सगुण-ब्रह्म, दूसरा ज्योतिर्ब्रह्म और तीसरा निर्गुण-ब्रह्म। जो निर्गुण-ब्रह्मके उपासक हैं, वे ज्ञानमार्गका अवलम्बन लें; जो ज्योतिर्ब्रह्मके उपासक हैं अथवा शक्तिके उपासक है, वे योगमार्गका अवलम्बन लें तथा जो सगुण-ब्रह्मके उपासक हैं, वे भक्तिमार्गका अवलम्बन लें। सगुण-ब्रह्म, निर्गुण-ब्रह्म तथा ज्योतिर्ब्रह्म—ये एक ही अक्षर ब्रह्मके तीन स्वरूप हैं—तीनों अक्षर-तत्त्व हैं। तीनों तत्त्व काल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहित हैं। जिसमें जिसकी जैसी इच्छा हो अवलम्बन करे। (All the three are eternal,—One may take resort to anyone of the three.) ये तीनों परम धाम हैं। ये एक ही परम धामके तीन स्वरूप हैं। $\frac{1}{3}+\frac{1}{3}+\frac{1}{3}=1$—यह एक पुरुषोत्तम-तत्त्व है, जो तीनोंको धारण करता है। यह 'परात्पर ब्रह्म' है।

४. हम यहाँ त्रिगुणात्मक जगत्में हैं। यहाँपर हमें इन तीनों अक्षर-तत्त्वोंमें भेद दीखता है। इस कारण अपनी-अपनी निष्ठा-अनुसार अपने-अपने लक्ष्यको ही हम श्रेष्ठ मान्यता देते हैं; दूसरेके लक्ष्यको न्यून समझते हैं। यह भेद विषम गुणोंके कारण भासता है। यह हमारे अधूरे ज्ञानका फल है। यदि हम परम तत्त्वमें भी भेद देखते हैं तो हम यथार्थदर्शी नहीं हैं, हम भेददर्शी हैं। परंतु जब हम सम्यक् रूपसे किसी एक भी अक्षर-तत्त्वका दर्शन करते हैं, तो चाहे हम निर्गुण-तत्त्वके अभ्यासी हों, ज्योतिके अभ्यासी हों या चाहे सगुण-तत्त्वके अभ्यासी हों—हमें यह निर्बाध अनुभव होगा कि 'मैं ही निर्गुण हूँ। मैं ही सगुण हूँ। मैं ही सब कुछ हूँ।' तीनों प्रकारके सम्यक्-अनुभवियोंको अभिन्नताका ही अनुभव होगा। तभी तो गीतामें कहा है कि 'निष्काम कर्म करनेवाले योगियों, भक्तों, ज्ञानियोंकी एक ही गति है अर्थात् एक ही परमधामको वे प्राप्त होते हैं।' फिर हम क्यों यहाँपर अपने-अपने पक्षके लिये झगड़ा करते हैं? सबके साथ अभिन्नताका अनुभव करना ही 'पूर्ण दर्शन' है। यही सम्यक्-ज्ञानका अन्तिम फल है, यही सम्यक्-भक्तिका अन्तिम फल है और यही सम्यक्-योगका अन्तिम फल है। ऐसी समता जो सबका अपनेमें समावेश कराके एकत्वका दर्शन करावे—उसे 'सम्यक्-दर्शन' कहते हैं। जो इस सम्यक्-दर्शनसे वञ्चित हैं, वे भेददर्शी हैं। वे सम्यक्-ज्ञानी नहीं है, वे सम्यक्-योगी नहीं हैं, वे सम्यक्-भक्त नहीं हैं और वे सम्यक्-कर्मयोगी भी नहीं हैं। जहाँ अभिन्नता नहीं है, वहाँ भेद है; जहाँ भेद है, वहीं काल है और जहाँ काल है, वहीं भय है।

५. अब आप कहेंगे कि यह अक्षर-धाम तो ब्रह्मके लोकसे ऊपर है और हम यहाँ क्षर-ब्रह्ममें बैठे हैं, हम किन आधारोंसे वहाँ 'अक्षर-ब्रह्म'में पहुँचेंगे?

अरे भाई! हमें आधार ढूँढ़ने कहीं बाहर नहीं जाना है। तीनों लक्ष्योंके स्वरूप तथा करण हमारे ही शरीरमें तो विद्यमान हैं—

क. ज्ञानके लिये बुद्धि करण है—आत्मा लक्ष्य है।
ख. योगके लिये मन करण है—मूर्द्धा-ज्योति लक्ष्य है।
ग. भक्तिके लिये हृदयका भाव करण है—भगवद्-दर्शन लक्ष्य है।
घ. कर्मके लिये निष्कामता करण है—निष्कर्मता लक्ष्य है।

इन साधनोंकी पूर्णताके तीन-तीन स्तर हैं—

ज्ञान—१. अपनेमें आत्म-दर्शन।
२. सबमें आत्म-दर्शन।
३. सब कुछ आत्मा ही है—पूर्ण-दर्शन।

योग—१. अपनेमें ज्योति-दर्शन।
२. सबमें ज्योति-दर्शन।
३. सब कुछ ज्योति-ही-ज्योति है—पूर्ण-दर्शन।

भक्ति—१. अपनेमें भगवान्के दर्शन।
२. सबमें भगवान्के दर्शन।
३. सब कुछ भगवान् ही हैं—पूर्ण-दर्शन।

कर्म—१. अपनेमें निष्कर्मताका दर्शन।
२. सबमें निष्कर्मताका दर्शन।
३. सब कुछ निष्कर्म-तत्त्व ही है—पूर्ण-दर्शन।

ज्ञान—

६. ये सब तत्त्व कालातीत हैं। कालातीत तत्त्वोंकी जब हम उपासना करेंगे तो हमारी गति भी कालातीत धाममें होगी। हमें तो केवल अनात्मपदार्थोंकी उपासनाको छोड़ना है और आत्मतत्त्वकी उपासना करनी है। अनात्मतत्त्वोंके तो बार-बार उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय होते रहते हैं। उनके विनाशको हम अपने आत्माका विनाश समझते हैं। उनके जन्मको हम अपने आत्माका जन्म समझते हैं। शरीर तो जन्मते-मरते रहते हैं; परंतु आत्मा अजर, अमर, नित्य होनेके कारण न मरता है न जन्मता है। गीताके वचन हैं—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं
भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥
(२ । २०, २२)

जब हमें यह ज्ञान हो जाता है कि हम अमर आत्मा हैं, हम शरीर नहीं हैं; तो बताइये फिर हमारे आत्माके आगे कालका क्या स्वरूप रह जाता है। काल तो इन अनात्मपदार्थोंसहित अभावरूप ही सिद्ध होता है। यही वह आत्मा है, जिसका कभी अभाव नहीं है और यही वह अनात्म-शरीर पदार्थ हैं कि जिनका कभी अपना अस्तित्व नहीं है। आत्माके अस्तित्वसे इनका अस्तित्व है—नहीं तो, नित्य इनका अभाव ही है। गीतामें कहा है कि 'सत् वस्तुका कभी अभाव नहीं है और असत्का कभी अस्तित्व नहीं है।'—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥
(२ । १६)

इस प्रकार सत्य और असत्य वस्तुका तत्त्व जान लेना ही कालचक्रसे निवृत्तिका स्वरूप है; क्योंकि आत्मामें—सत्य वस्तुमें, काल और कालचक्रका नित्य अभाव है। इस प्रकार जब हम अपनेको कालातीत जान लेते हैं और इसी कालातीत तत्त्वका अपनेमें तथा दूसरोंमें दर्शन करते हैं, तो हमें दूसरे भी मुक्तस्वरूप दीखते हैं; क्योंकि उनका और हमारा आत्मा एक ही है, जो नित्यमुक्त है। आत्मा तो सब जीवोंका मुक्त है—फिर हम क्यों अपने तथा दूसरोंके लिये परेशान होते हैं? सब जीवोंका आत्मा कालातीत है; परंतु सबके अनात्मशरीर काल-परिधिमें हैं। तो वे शरीर यदि काल-परिधिमें हैं, तो होते रहें—हमें अनात्मोंको थोड़ा ही मुक्त करना है। हमें तो जीवोंका अज्ञान (भ्रम) दूर करना है। अज्ञानमें काल भी है और कालचक्र भी है। ज्ञानमें न काल है और न कालचक्र है। यह सिद्धज्ञान है। यह आत्मज्ञानद्वारा काल-निवृत्ति है।

योग—

७. आत्मा ही ज्योतिस्वरूप है। उसकी ज्योतिसे सूर्य, चाँद, तारे, लोक-परलोक समस्त ब्रह्माण्ड देदीप्यमान हैं। आत्मा अमर है तो उसकी ज्योति भी अमर है। इस प्रकार ज्योतिदर्शन भी काल-निवृत्तिका उपाय है—अथवा अमर विभूतिमें निष्ठा पाना है। सुषुम्णा-मार्ग सारा ज्योतिर्मय मार्ग है। यही वह अर्चि-मार्ग है कि जिसके द्वारा गया योगी लौटता नहीं है। सुषुम्णा-द्वारपर कुण्डलिनी-शक्ति विद्यमान रहती है। कुण्डलिनी अग्नि-स्वरूपा है, अर्थात् ज्योतिर्मयी है। जब यह योगद्वारा जाग्रत् होती है तो इडा-पिङ्गलारूपी श्वास-प्रश्वासको निगल जाती है और सुषुम्णा-द्वारमें प्रवेश पा जाती है। योग-द्वारा कुण्डलिनीको जाग्रत् करके यही सुषुम्णारूपी ज्योतिःपथ खोला जाता है। इस मार्गसे गया योगी मस्तिष्कमें शिवरूपी परम ज्योतिमें समा जाता है—यही वह 'मूर्द्धा ज्योति' कहलाती है। श्वास-प्रश्वासका सुषुम्णामें लय होना ही 'कालातीत पथ'पर आरूढ़ होना है। सुषुम्णा-रूपी ज्योतिर्मय मार्ग कालातीत है। इस मार्गद्वारा योगी कालातीत धाममें पहुँचता है। यह योगद्वारा काल-निवृत्ति है।

भक्ति—

८. परमात्मा नित्य-सत्य, नित्य-चेतन तथा नित्य-आनन्दस्वरूप है। जीवात्मा भी परमात्माका अंश होनेके हेतु सत्+चित्+आनन्दरूप है। जीवको अपने सच्चिदानन्द रूपका ज्ञान नहीं है। जिस पूर्णका वह अंश है, वह पूर्ण स्वयं अंशसे अभिन्न है। इस अभिन्नताका ज्ञान अंशको नहीं है। परमात्मा चेतन है तो उसका अंश भी चेतन जातिका है। चेतन अंशका जड अंशके साथ कोई सजातीय सम्बन्ध तो हो नहीं सकता है, परंतु जीवात्मा अपने पुरातन नित्य सम्बन्धको, जो परमात्मासे है, भूलकर जड शरीरों—पदार्थोंसे सम्बन्ध जोड़ बैठा है। यह भूल ही अज्ञान है, यही भ्रम है। जब अंशको, अर्थात् जीवको यह ज्ञान हो जाता है कि मेरा वास्तविक नित्य सम्बन्धी तो परमात्मा है; ये जड शरीर—पदार्थ नहीं हैं; तो उस जीवके हृदयमें एक ज्वाला दीप्त हो उठती है, जिस ज्वालाको (Divine Spark) 'दिव्य विस्फुलिङ्ग' कहते हैं अथवा भगवद्भाव, भगवत्-स्मृति, अथवा विरह-प्रेम कहते हैं। यही भक्तिका आरम्भ है। इसी भावके बलपर जीव अपने कृत्रिम सम्बन्धोंको तोड़कर अपने परम प्रियतम भगवान्की खोजमें निकल पड़ता है और दिन-रात, भूख-प्यास, शीतोष्ण सहन करता हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम वैराग्यरूपी व्याकुलतामें समय व्यतीत करता है। इसी भगवत्-प्रेमसे उसके हृदयका विषयरूपी मल जल-जलकर स्वाहा होता जाता है। यह भगवद्भाव ही उसका अपना 'वास्तविक देह' होता है। पाञ्चभौतिक देहकी तो उसे सुध नहीं रहती है। भगवान्‌के लिये दिन-रात रो-रोकर अपने भावरूपी देहको परिपुष्ट करता हुआ वह पूर्ण-समर्पणके योग्य बनता जाता है। हृदयमें भी एक कुण्डलिनी होती है, वह सोती-सी रहती है। यही प्रेम-कुण्डलिनी कहलाती है। यह प्रेम-अग्निसे प्रज्वलित होकर जागती है। यह सबसे प्रथम भावरूपमें उदय होती है; फिर अनेक स्तरोंको पार करती हुई भक्तको प्रियतम भगवान्‌के समीप पूर्ण समर्पण-योग्य बनाकर उपस्थित करती है। प्रेम बिना पूर्ण समर्पण होना असम्भव है। पूर्ण-प्रेमकी सीमापर ही पूर्ण समर्पण होता है। न पूर्ण-प्रेमी समर्पण करनेसे थकता है, न पूर्ण परमात्मा समर्पण ग्रहण करते थकता है। न पूर्ण समर्पण हो पाता है, न प्रेम समर्पण-क्रियाको कभी बंद होने देता है। यह प्रेमलीला अनेक प्रकारसे भगवद्-धाममें होती रहती है। गोप-गोपियाँ इस प्रेमपथकी सर्वोत्कृष्ट सिद्धा हैं—कालातीत प्रेम-राज्यकी आह्लादमयी तरङ्गें हैं, जो परम प्रेममय सिन्धुमें निरन्तर उठती रहती हैं। यह समस्त प्रेम-पथ कालातीत है। प्रेम-पंथियोंका काल कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। प्रेमियोंका भावमय शरीर कालसे अछूता होता है। आप शिवरूपमें, श्रीकृष्णरूपमें, विष्णुरूपमें तथा रामरूपमें, जिस रूपमें भी ठीक समझें अपना प्रेम-सम्बन्ध जोड़ सकते हैं; क्योंकि राम, कृष्ण, विष्णु, शिव उस एक ही परम अक्षर तत्त्वके भिन्न-भिन्न नाम हैं। इन अक्षर रूपोंकी भक्ति करनेसे हम अक्षर भाव-को प्राप्त होते हैं। यह भक्तिद्वारा 'काल-निवृत्ति' है।

निष्काम कर्म—

९. जबतक हम सकाम होते हैं, तबतक हम कामना-युक्त कर्म करते रहते हैं। निष्कामताके स्वरूपका हमको ज्ञान ही नहीं है। हृदयमें जो वासना है, यही कर्मका रूप धारण करती है और फल-इच्छाद्वारा कर्मरूपी काल-चक्रमें आरूढ़ करवाकर पुनर्जन्मके चक्रमें पहुँचा देती है। वास्तवमें निष्काम वस्तु है—आत्मा अथवा परमात्मा। उस निष्काम तत्त्वको जाने बिना हम निष्काम नहीं हो सकते हैं। जब हम निष्काम तत्त्वको जान लेते हैं, तभी हम उस तत्त्वसे युक्त होकर निष्काम कर्म करते निष्कर्मताको प्राप्त हो सकते हैं। गीता (२ । ४८)के वचन हैं—

'योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।'

इससे स्पष्ट होता है कि हम तत्त्वनिष्ठ होकर ही यथार्थ सङ्गत्यागी बन सकते हैं और तभी हम सिद्धि-असिद्धिमें सम रह सकते हैं। समत्वयोग तभी सम्भव है, जब हम किसी समतत्त्वमें निष्ठ हों। कर्म न करनेसे निष्कर्मता सिद्ध नहीं होती है। जिस कर्ममें कामनाका अभाव हो, वही निष्कर्मता है। सांख्ययोगी या ज्ञानयोगियोंकी निष्कर्मता अहंकृत-भावके अभावमें है। कर्म होता रहे, परंतु अहंकृत भावका अभाव रहे। यह अहंकृत भाव ही 'कर्म' है और इसका अभाव ही 'अकर्म' है। निरन्तर कर्म करते हममें निष्कर्मताकी भावना बनी रहे—यही अकर्म-भाव है। निष्काम-तत्त्वको जाने बिना और फिर उस तत्त्वमें निष्ठ हुए बिना जो हम निष्काम कर्मका ढोल पीटते हैं—यह अपनेको धोखा देते हैं। कर्मभाव कालके अन्तर्गत है; कारण कि कर्म फलरूप है अर्थात् पुनर्जन्मरूप है। अकर्म-भाव निष्काम है और कालातीत है। कामनायुक्त कर्म कालकी परिधिमें है और कामनारहित कर्म कालातीत है। अहंकृत-भाव ही कालरूप है, यही कालचक्रमें जीवको फँसाता है; निरहंकृत भाव कालातीत है। इस भावमें काल-की दाल नहीं गलती है। वासना ही काल है, जो जीवको 'कालचक्र'में फँसाती है; वासनाहीनता ही 'निष्कामता' है अर्थात् निष्कर्मता है, जो जीवको कालातीत बनाती है। यह निष्काम कर्मद्वारा 'काल-निवृत्ति' है।

१०. यह चार प्रकारकी साधनाद्वारा काल-निवृत्ति है। यह व्यक्तिगत साधनाका स्वरूप है। व्यक्तिगत साधनाद्वारा अपने-अपने अन्तःकरणमें अपनी-अपनी निष्ठाके अनुसार हमें आत्माका दर्शन, ज्योतिका दर्शन, भगवान्‌का दर्शन तथा निष्कर्मताका दर्शन अपने-अपने जीवनकालमें ही कर लेना चाहिये। तभी जीवन सफल है, नहीं तो जीवन निष्फल है। यह साधनाका पहला सोपान है। जिन्होंने यह पहला सोपान सिद्ध कर लिया हो, वे दूसरे सोपानकी साधना प्रारम्भ कर दें। जैसा भी भगवद्दर्शन हमने अपने अन्तःकरणमें किया है, उसी भगवद्दर्शनकी समस्त जड-चेतनमें धारणा करना द्वितीय सोपान है। यह समष्टि साधना है। जब हम समस्त जड-चेतनको भगवद्रूपमें यथार्थरूपसे देखेंगे तो समस्त संसार परमात्मरूप ही भासेगा। इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा सबमें गौण्यरूपसे रहता हुआ भी हमारे साक्षात् दर्शनकी धारणाद्वारा सजातीय आकर्षण पाकर, उन सबके मलरूपी आवरणोंको हटाता हुआ हमसे अभिन्न हो जायगा। इस प्रकार जो अध्यात्मकी ओर नहीं भी आना चाहते, अथवा अध्यात्मसे विमुख हैं, वे भी पहले अज्ञातरूपसे, फिर ज्ञातरूपसे अपना परिवर्तन प्रतीत करते हुए हमसे समरूप होते जायँगे। जब हम भगवद्धारणाद्वारा एक पत्थरमेंसे भगवान्‌को प्रकट कर सकते हैं तो क्या चेतन जीवोंमेंसे आत्मतत्त्व अथवा परमात्मतत्त्वको हम बाहर व्यक्त नहीं कर सकते? यह संसार तो पहले ही भगवद्रूप है। हमें तो अपना तथा दूसरोंका अज्ञानरूपी मल धोना है। जब हम इस दूसरे सोपानमें सफल होंगे तो समस्त संसार सच्चिदानन्दरूपमें व्यक्त हो जायगा। इस प्रकार काल तथा कालचक्र भी सच्चिदानन्दरूपमें ही परिणत हो जायगा। इस प्रकार समस्त संसारकी काल-निवृत्ति सम्भव है—यह समष्टि-साधनाका सोपान है।

कर्मका श्रेणी-विभाग और क्लिष्ट-अक्लिष्ट कर्म

(लेखक—महामहोपाध्याय श्रद्धेय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम० ए०, डी० लिट्०)

(१)

कर्मका श्रेणी-विभाग

कर्मका श्रेणीविभाग विभाजन-धर्मके अनुसार नाना प्रकारका है। उनमें एक विभाजन-धर्मके प्रति कर्मके पृथक्-पृथक् कृत्य हैं। तदनुसार कर्मका इस प्रकार श्रेणीविभाग होता है। प्रथम कर्म 'जनक', द्वितीय 'उपष्टम्भक', तृतीय 'उत्पीड़क' और चतुर्थ 'उपघातक' होता है। जनन, उपष्टम्भन आदि कर्मके विभिन्न कार्य हैं। उसको विभाजक धर्मके रूपमें स्वीकार करके इस प्रकारके विभाग किये जाते हैं। इसको भलीभाँति समझ लेना आवश्यक है। प्रत्येक कर्मके कृत्य विभिन्न प्रकारके होते हैं। प्रतिसंधि या उन्मेष-स्थानमें फल-प्रदान करनेके क्रमके अनुसार कर्मका श्रेणी विभाग हुआ करता है। इसके अतिरिक्त समस्त जीवनकी प्रवृत्तिके समयमें भी फल-प्रदानके समयके अनुसार भी कर्मका भेद होता है। यह अत्यन्त जटिल रहस्य है। याद रखनेकी बात है कि जीवनके दो अंश हैं—एक है 'प्रवर्तन' और दूसरा है 'प्रतिसंधि'। प्रतिसंधिसे प्रवर्तनकी धारा चलती है। यही भव या संसार है। प्रवर्तनकी जहाँ समाप्ति होती है, वहीं है च्युतिक्षण। च्युतिके बाद भी दूसरी अवस्थाएँ हैं। प्रतिसंधिक्षणके बाद भव या संसारके च्युतिक्षणतक प्रवर्तन 'काल' कहलाता है। कुशल और अकुशल चेतना ही जनक कर्म कहलाती हैं। यह जीवके जीवन-कालमें विपाक या कर्मज रूप उत्पन्न करती हैं। जीवन-धाराके प्रथम क्षणसे ही विपाक उत्पन्न होने लगता है। जीवनकालमें अन्यान्य कर्मोंके द्वारा जनक कर्म यदि पुष्ट होता है या बाधाको प्राप्त होता है तो वह विपाक उत्पन्न कर सकता है अथवा बाधित होता है। उपष्टम्भक कर्म जनक कर्मकी सहायता करता है या पुष्ट करता है अर्थात् फलोत्पादनमें उसकी सहायता करता है। उत्पीडक कर्मका कार्य है—जनक-कर्मके विपाकको बलहीन करना। इसका प्रधान उपाय है—उपष्टम्भक-कर्मको सदा और सर्वत्र बाधा प्रदान करना। उद्देश्य यह होता है कि उपष्टम्भक-कर्म यदि बाधाको प्राप्त होगा, तो जनक कर्मको अपना विपाक-साधन करनेमें बाधा होगी। आचार्यगण कहते हैं कि शुभ उत्पीडक कर्म अशुभ उपष्टम्भक कर्मको और अशुभ उत्पीडक कर्म शुभ उपष्टम्भक कर्मको बाधा प्रदान करके दुर्बल बना देता है। उपघातक कर्म उत्पीडकके समान बाधक तो होता ही है, साथ ही उपष्टम्भक कर्मको ध्वंस करके अपना फल उत्पादन करनेकी चेष्टा करता है। दार्शनिक लोग इसे एक दृष्टान्तके द्वारा समझाया करते हैं। कल्पना कीजिये कि एक आदमीने एक पत्थर ऊपर फेंका। वह पत्थर कुछ दूर ऊपर जाकर गिर पड़ा। यहाँ उस आदमीका शक्तिसंचार, जिसके द्वारा पत्थर ऊपर उठा, जनक कर्मका दृष्टान्त है। पत्थरका जडत्व उपष्टम्भक कर्मका दृष्टान्त है; क्योंकि यह जडत्व ही गतिका परिपोषक है। पत्थरके ऊपर उठनेमें वायुकी बाधा उत्पीडक कर्मका दृष्टान्त है। मध्याकर्षण आदिकी बाधा उपघातक कर्म है। सर्वत्र इसी प्रकार समझ लेना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब प्रतिसंधि-कालमें फल-प्रदानके क्रमके अनुसार कर्मका श्रेणीविभाग बतलाते हैं। प्रतिसंधि अथवा जन्म-क्षणके बाद ही कर्म फल देना प्रारम्भ कर देता है। इसमें जो कर्म सबसे पहले फल प्रदान करता है, वही 'गुरु कर्म' होता है। वह कर्म शुभ या अशुभ दोनों ही हो सकता है। वह कर्म करता क्या है? वस्तुतः वह पूर्ववर्णित जनन, उपष्टम्भन, उत्पीडन या उपघात—सब हो सकता है। पहले कह चुके हैं कि गुरुकर्म शुभ या अशुभ दोनों ही हो सकते हैं। शुभ गुरुकर्म रूपलोककी पञ्चभूमि और अरूप-लोककी चार भूमिका दर्शन—अर्पणा ध्यान चित्तमें हुआ करता है; किंतु उसका अनुशीलन कामलोकमें भी सम्भव है। परंतु यह कर्म महद्गत कर्मके रूपमें प्रसिद्ध है। यह मनःकर्म है। अशुभ मनःकर्म केवल कामलोकमें ही सम्भव है। यह कर्म सब कर्मोंके पहले फल प्रदान करता है। बद्धमूल मिथ्या दृष्टि भी गुरु-कर्मके समान होती है, परंतु उसके नष्ट होनेकी सम्भावना है। गुरु-कर्म अन्य सब कर्मोंके पहले फल प्रदान करता है। यह निश्चयपूर्वक मृत्युके पूर्व शोधित हो सकता है, यह याद रखनेकी बात है। गुरु-कर्मको दार्शनिक लोग 'आनन्तर्य-कर्म' कहते हैं। यह फल प्रदान करनेके विषयमें किसी अन्तरालकी अपेक्षा नहीं करता, इसी कारण इसको आनन्तर्य-कर्म कहते हैं। 'अनन्तर' शब्दका तात्पर्य यह है कि इस प्रकारके कर्म जिस जीवनमें सम्पादित होते हैं—उसी एक जीवनमें इनका फल-भोग भी हो जाता है। बद्धमूल मिथ्या-दृष्टि गुरु-कर्मके अनुरूप होती है, परंतु मृत्युके पहले उसके कट जानेकी सम्भावना है। परंतु गुरु-कर्मके नामसे जिन पाँच कर्मोंकी प्रसिद्धि है (जैसे पितृहत्या, मातृहत्या इत्यादि) यह वैसा नहीं है। गुरु-कर्मके बाद ही मरणासन्न कर्मका उल्लेख किया जा सकता है। जो मनुष्य मुमूर्षु दशामें है, उसका सर्वोत्तम जवन चित्त ही मरणासन्न कर्मके नामसे प्रसिद्ध है। 'जवन चित्त' क्या वस्तु है, यह आगे बतलाते हैं। यही 'आसन्न कर्म' है। गुरुत्वके हिसाबसे गुरु-कर्मके बाद ही इसका स्थान है। यह आसन्न-कर्म भविष्यत्-जीवनका नियामक है। मृत्युके पश्चात्का जीवन किस प्रकारका होगा, यह इसी आसन्न-कर्मके ऊपर निर्भर करता है। भावी जीवनके नियन्त्रणके सम्बन्धमें गुरु-कर्मका ही अधिक महत्त्व होता है। उसके बाद ही आसन्न-कर्मकी प्रधानता होती है। यदि किसीके जीवनमें गुरु-कर्म है, तो वही नियामक बनता है। न होनेपर आसन्न-कर्मकी नियामकता सब सम्प्रदायोंमें प्रसिद्ध है। मुमूर्षुके अन्तिम समयके चिन्तनके ऊपर उसका भविष्य जीवन निर्भर करता है, यह बात सभी धर्मोंमें प्रसिद्ध है। हिंदू, बौद्ध, ईसाई—सबका यही सिद्धान्त है कि जीवनमें चाहे जो होता रहे, मृत्युके समय सद्भावके द्वारा उसका समाधान हो सकता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें मरणासन्न पुरुषके लिये प्रयाणकी या देहत्यागकी जो सूक्ष्म वैज्ञानिक प्रणाली बतलायी गयी है तथा नेत्रतन्त्रादि आगम ग्रन्थोंमें जिसका समर्थन है, वह सर्वधर्म-सम्मत है, इसमें संदेह नहीं। इस विषयमें तिब्बती बौद्ध तथा पौराणिक साहित्यमें बहुत पर्यालोचना की गयी है। इस दृष्टिसे मृत्युविज्ञान एक विशेष आलोचनाका विषय है। आचार्य लोग कहते हैं कि मुमूर्षुके आसन्न कर्मको बल प्रदान करनेके लिये उसकी मृत्युके समय सत्-चिन्तनकी उद्भावनाके निमित्त सद्ग्रन्थ-पाठ, नामकीर्तन, विशुद्ध वातावरणका विकास तथा दिव्य भावकी स्मृतिका उत्पादन अवश्य करना चाहिये। इन सब क्रियाओंका यही उद्देश्य है कि मुमूर्षु व्यक्ति इन उपायोंके द्वारा अशुभ निमित्तके आविर्भावसे सुरक्षित रहे। आसन्न कर्मकी दुर्बलताके कारण उत्पादन शक्तिके अभावमें मुमूर्षु व्यक्तिके हितैषी मित्र-बन्धुओंके लिये यह सब कर्तव्य है। आसन्न कर्म जिससे जनक कर्मके रूपमें परिणत हो सके, मृत्यु-विज्ञानवेत्ता उसीको 'कर्तव्य' कहते हैं। मुमूर्षुके समीप मृत्युके समय यही एकमात्र लक्ष्य होना चाहिये कि अशुभ निमित्त उदित न हों। मुमूर्षुके आसन्न-कर्मको सुपथमें संचालित करना ही हितैषीका कर्तव्य है। इसके लिये मृत्युके साहित्य और विज्ञान (Art and Science) विशेष रूपसे आलोचनीय जान पड़ते हैं।

शुभकर्म या आसन्न-कर्म न रहनेपर आचरित कर्म कार्य करते हैं। शुभ कार्य पुनः-पुनः करते रहनेसे भविष्यमें वे कर्म संस्कारमें परिणत हो जाते हैं। बौद्धलोग इसको 'आचरित कर्म' कहते हैं। शुभकर्म या सत्कर्म इसी हेतु बारंबार करने पड़ते हैं कि जिससे उनके संस्कार चित्तपर अङ्कित हो जायँ। ये शुभ संस्कार मृत्युके समय मुमूर्षुकी सद्गति-प्राप्तिमें सहायक होते हैं। धम्मपद (११८) में बुद्धभगवान्का इस प्रकारका आदेश देखनेमें आता है। धम्मपदमें दूसरी जगह यह भी कहा गया है कि 'प्रमादवश कोई अकुशल कर्म हो जानेपर भी मृत्युके समय उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मरण करना अनुचित है।' स्मरण करनेपर वह हानिकारक होता है। उस समय वह 'आचरित कर्म' के रूपमें परिणत हो जाता है।

इस प्रकार हमने तीन प्रकारके कर्मोंके कृत्य और स्वरूपका विवरण देख लिया। गुरु-कर्म, मुमूर्षुका अनुस्मृत आसन्न-कर्म और प्रतिदिन नियमित रूपसे जिस कर्मका आचरण होता है अर्थात् जिसको आचरित-कर्म कहते हैं। इन तीनों प्रकारके कर्मोंके विषयमें कहा जा चुका है। इसके सिवा शुभ या अशुभ जो भी कर्म हों, सबके सब वर्तमान जीवनके या अतीत जीवनके सभी कर्म 'उपचित कर्म'के नामसे प्रसिद्ध हैं। उपचित कर्मकी शक्ति उपर्युक्त तीन प्रकारके कर्मोंसे कम होती है।

इन चार प्रकारके कर्मोंमें गुरु-कर्म ही अगले जन्मके नियामक बनते हैं। उनके अभावमें आसन्न-कर्म नियामक बनते हैं। आसन्न कर्म न हों तो आचरित-कर्म यह स्थान ग्रहण करते हैं। यदि इन तीनोंका अभाव हो तो एकमात्र उपचित-कर्मके द्वारा भावी जीवन नियन्त्रित होता है।

(२)

कर्मफल-प्रदानके समय नियामक कौन है ?

इसके बाद प्रश्न यह होता है कि कर्म फल प्रदान करते हैं, यह तो समझमें आ गया, पर इस फल-प्रदानके कालका नियामक क्या है ? अर्थात् कर्मसे फलकी उत्पत्ति कब होगी, उस कालकी उत्पत्ति कब होती है ? इस विषयमें साधारण नियम है कि कर्म तीव्ररूपसे अनुष्ठित होनेपर उसकी फलोत्पत्ति शीघ्र होती है। यह तीव्रता आश्रयगत और विषयगत दोनों ही हो सकती है, अर्थात् जो कर्म करता है, वह यदि तीव्र भावसे उसे करता है तो फल-प्राप्ति आसन्न होती है और यदि कर्मका विषय किसी उच्च स्तरका होता है तो उससे भी कर्मकी तीव्रता सिद्ध होती है। वह नाना प्रकारके औपाधिक कारणोंसे भी हो सकता है। काल-विशेष, स्थान-विशेष अथवा अन्य किसी उपाधि-विशेषके द्वारा कर्मकी तीव्रतामें वृद्धि हो सकती है। कौन-सा कर्म किस समय फल प्रदान करेगा, इसको भलीभाँति समझनेके लिये जवन तत्त्वको समझना आवश्यक है। 'जवन' शब्दका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। जवन शब्दका अर्थ वेग है अर्थात् सक्रिय रूपसे चित्तके द्वारा आलम्बनकी उपलब्धि। बौद्ध योगिगणने 'संप्रतिच्छ चित्त' और 'जवन चित्त'के रूपमें चित्तके दो भाग किये हैं। संप्रतिच्छका अभिप्राय है शिथिल और तमोबहुल (slow and dull) चित्त। इस सक्रिय चित्तके वेग और उसकी मात्राके विचारके प्रसङ्गमें उन्होंने सात उत्तरोत्तर क्षणोंका उल्लेख किया है। जवन चित्तके ये सात क्षण विशेषरूपसे आलोचनीय हैं। इन सप्त क्षणोंमें प्रथम क्षण चित्त 'निष्क्रियवत्' या 'स्रोतोवाहितवत्' रहता है। इसी भावसे वह आलम्बनको ग्रहण करता है। द्वितीय क्षणमें सक्रिय भाव ग्रहण करता है। यही द्वितीय जवन है। प्रथम क्षणमें इच्छाशक्ति (will) अस्फुट होती है, द्वितीय क्षणमें अधिकतर स्फुट हो जाती है। उस समय उसको 'स्वबोध' कहते हैं अर्थात् जिसको स्व-बोध—(self awareness) कहा जाता है। वह परिस्फुट होता है। प्रथम क्षण ठीक जवन चित्तके रूपमें परिचित होने योग्य नहीं होता। वह बहुत कुछ स्रोतके अधीन रहता है। जवन चित्त ठीक अनुकूल-प्रतिकूल उभय स्रोतमें चल सकता है। जवन चित्तमें सात चित्तक्षणकी क्रिया होती है। प्रथम क्षण अति दुर्बल है; क्योंकि इसमें प्रथम उत्पन्न होनेके कारण अभ्यासजनित संस्कारकी अनुकूलता नहीं होती। इसी कारण प्रथम क्षणसे द्वितीय क्षण प्रबल होता है, तृतीय क्षण और भी प्रबल होता है। चतुर्थ क्षण सर्वापेक्षा प्रबल होता है। इसके बाद वेगका ह्रास होने लगता है। पञ्चम कुछ दुर्बल होता है। षष्ठ अधिक दुर्बल होता है। सप्तम सबसे दुर्बल होता है। प्रथम जवनका विपाक उसी जन्ममें फल देता है; यदि किसी कारणवश फल न दे सके तो क्षीण हो जाता है। सप्तम जवनका फल अत्यन्त कम होता है, अतएव इस जवनका फल अगले जीवनमें फलता है। फल न दे सकनेपर यह क्षीण हो जाता है। मध्यवर्ती जवनकी शक्ति निर्वाण-प्राप्तितक संजीवित रहती है, ध्वंस नहीं होती। पहले कह चुके हैं कि प्रथम जवनका कर्म उसी जीवनमें फल दे देता है। इसीको आचार्यगण 'दृष्टधर्म-वेदनीय कर्म' कहते हैं।

जिस जन्ममें कर्मानुष्ठान होता है, यदि किसी विशेष कारणसे उस जन्ममें वह फल प्रदान न कर सके तो वह कभी फल प्रदान नहीं कर सकता। वह क्षीणवीर्य हो जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। तब वह 'भूतपूर्व कर्म'के नामसे जाना जाता है। सप्तम जवनके कर्म परवर्ती द्वितीय जन्ममें फल प्रदान करते हैं। इसी कारण इस प्रकारके कर्मोंका नाम होता है 'उपपद्य वेदनीय कर्म'। यदि किसी कारणसे वह फल प्रदान न हो सका तो वे नष्ट हो जाते हैं तथा 'भूतपूर्व कर्म'के नामसे जाने जाते हैं। अथवा अवस्थाविशेषमें जनक कर्म या उपष्टम्भ कर्मके नामसे ख्यात होते हैं। मध्यवर्ती जवनके कर्म निर्वाण-पर्यन्त रहते हैं। इनको 'अपरपर्याय वेदनीय कर्म'के नामसे जानते हैं। भूतपूर्व कर्म शुभ अथवा अशुभ हो सकते हैं, इसका कोई नियम नहीं है। ये अत्यन्त दुर्बल कर्म होते हैं। ये विपाक उत्पन्न नहीं कर सकते, यह चाहे दुर्बलताके कारण हो या विरुद्ध कर्मके उपघातके कारण।

(३)

क्लिष्ट और अक्लिष्ट कर्म

कर्मके सम्बन्धमें साधारण लोगोंकी धारणा स्पष्ट न होनेके कारण अधिकांश लोगोंका विश्वास है कि इस संसार-प्रपञ्चका तथा व्यापक दुःख-जंजालका मूल एकमात्र कर्म है। यह विश्वास निर्मूल नहीं है। तथापि यह स्पष्टरूपसे ज्ञात होना चाहिये कि जिस कर्मके प्रभावसे संसारके सुख-दुःख उत्पन्न होते हैं, वह अज्ञानमूलक कर्म है। अज्ञान अथवा अविद्या ही संसारका मूल कारण है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—इन पाँच क्लेशोंमें अविद्या ही मूल क्लेश है। अविद्यासे अस्मिता अर्थात् अहंभावका उदय होता है। अस्मिताके उदयके फलसे अवस्थाके अनुसार चित्तमें राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं तथा उसके बाद अभिनिवेश अर्थात् मृत्युभय उत्पन्न होता है। अविद्या आदि पाँच क्लेश सांसारिक जीवनके मूल-स्तम्भ-स्वरूप हैं। अविद्या शब्दसे यहाँ 'अविवेक' अर्थ लेना चाहिये। जो वस्तु जैसी नहीं है, उसको वैसी समझना ही 'अविद्या' है और इस मिथ्या ज्ञानसे ही अस्मिता या अहंभावका उदय होता है। सत्ता और चैतन्य, दोनोंमें जो पृथक्ता है, उसको ध्यानमें न रखकर दोनोंको एक रूप समझना ही 'अस्मिता' है और इसीका दूसरा नाम है—अहंभाव। इस अहंभावसे आकर्षण और विकर्षण अर्थात् राग-द्वेष दोनों ही उत्पन्न होते हैं। स्थूल देहके परित्यागकी आशङ्काको 'अभिनिवेश' कहते हैं। इन अविद्या आदि पाँच क्लेशोंसे कर्म उत्पन्न होते हैं और कर्मसे विपाक उत्पन्न होता है। 'विपाकका' अर्थ है—जन्म, आयु और भोग—ये तीन और अन्तमें 'कर्माशय' नामक संस्कार उत्पन्न होता है। कर्माशयके अनुसार सुख-दुःख नियन्त्रित होते हैं। क्लेश, कर्म, विपाक और कर्माशय—सभी सांसारिक आत्मामें होते हैं, परंतु ईश्वरमें ये सब बिल्कुल ही नहीं होते। क्लेशसे, अर्थात् अविद्या आदि क्लेशोंके प्रभावसे जो कर्म उत्पन्न होता है, वही 'क्लिष्ट' कर्म है।

अविद्याका मूल स्वरूप है—अविवेक, अर्थात् पुरुष और प्रकृतिके पार्थक्यको न समझ पाना। योगमार्गमें प्रविष्ट पुरुष 'विवेकख्याति'का अभ्यास करता है। पुरुष और प्रकृतिके अभेदज्ञानका आश्रय करके जो कर्म होते हैं, वे ही 'क्लिष्ट कर्म' हैं तथा विवेकख्यातिको पृष्ठभूमिमें रखकर जो कर्म उत्पन्न होते हैं, उनका नाम है 'अक्लिष्ट कर्म'। अविवेकमूलक कर्म नाना प्रकारके हो सकते हैं। श्रेणीविभाग करते समय वे शुक्ल, कृष्ण और मिश्र—इन तीन श्रेणियोंमें विभक्त होते हैं। ये सभी सांसारिक कर्म हैं। इन सब कर्मोंके फलसे संसार-बन्धन क्रमशः दृढ़ होता है। किंतु विवेकख्यातिमूलक कर्मसे संसार-बन्धन क्रमशः शिथिल हो जाता है। योगीजन शुक्ल, कृष्ण और मिश्र-नामसे प्रधानतः तीन प्रकारका कर्म-विभाग करते हैं। तत्पश्चात् विवेकख्याति हो जानेपर इस प्रकारके कर्मोंका अवसान हो जाता है। तब जो कर्म होते हैं उनका नाम है—अशुक्ल-अकृष्ण कर्म। इन कर्मोंसे संसार-बन्धन तो होता ही नहीं, बल्कि पूर्वस्थित बन्धन कट जाते हैं। योगीके कर्म अशुक्ल-अकृष्ण होते हैं, इसी कारण इन कर्मोंके प्रभावसे संसारोत्पादक मिश्रकर्म, शुक्लकर्म और कृष्णकर्म क्रमशः निवृत्त हो जाते हैं।

कर्मविज्ञानका रहस्य अति जटिल है। शुक्ल और कृष्ण कर्ममें जैसे मिश्रण नहीं होता, उसी प्रकार अशुक्ल-अकृष्ण कर्मके साथ शुक्ल कर्मका भी मिश्रण नहीं होता। शुक्लके साथ कृष्ण कर्मके रहनेपर भी सान्निध्यवश शुक्लकर्म कृष्ण नहीं हो जाते। ठीक इसी प्रकार अशुक्ल-अकृष्ण कर्मके साथ भी शुक्ल और कृष्ण-कर्मका मिश्रण नहीं होता। यही कर्म-विज्ञानका रहस्य है। कर्मसंस्कार संरक्षित न रहते, तो अनादि संसारमें एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें परिणति नहीं हो सकती। क्लिष्टकर्म संसारजनक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है; परंतु अक्लिष्ट कर्म संसारनाशक है। परमेश्वरके स्वरूपमें किसी प्रकारके कर्मका ही स्पर्श नहीं है। कर्मविज्ञान अति जटिल रहस्य-स्वरूप है। चित्त मधुएके जालके समान है। वही ग्रन्थियुक्त कर्मका आश्रय है। अनादिकालसे क्लिष्ट कर्मकी धारा चली आ रही है। जबतक विवेकख्याति पूर्ण नहीं होती, इस धाराकी विश्रान्ति नहीं है। कर्माशय क्लिष्ट कर्मसे उत्पन्न होता है, अक्लिष्ट कर्मसे नहीं होता। सुख-दुःखके तारतम्यके अनुसार शुभ कर्माशय और अशुभ कर्माशयको पृथक्-पृथक् करके देखना आवश्यक है। कर्माशय और वासना, दोनों ही संस्कार हैं और कर्मसे उत्पन्न होते हैं, किंतु दोनों संस्कार एकसे नहीं होते। कर्माशयसे सुख-दुःखका भोग संघटित होता है, परंतु वासनासे पातञ्जलयोगकी दृष्टिके अनुसार भोग नहीं उत्पन्न होता। वासनाका फल स्मृति है, परंतु कर्माशयका फल सुख-दुःख है। ये दोनों संस्कार एक साथ मिलित होकर कार्य करते हैं। कर्माशयसे तीन प्रकारके विपाक उत्पन्न होते हैं। प्रथम विपाक 'जाति' अथवा जन्म है। देह-प्राप्तिका दूसरा नाम जन्म है। देह भोगायतन है। अतएव देहसे सुख-दुःखका अनुभवरूप भोग सम्पन्न होता है। इस देहके स्थिति-कालको 'आयु' कहते हैं। जिस कर्मसे देह उत्पन्न होता है, उसी कर्मसे उस देहके भोग और आयुका नियन्त्रण होता है। इस प्रकारके कर्मका नाम 'प्रारब्ध कर्म' है। स्थूलदृष्टिसे मनुष्यके कर्म दो प्रकारके होते हैं। वर्तमान कर्मको 'क्रियमाण' कर्म कहते हैं। जीव कर्तृत्वके अभिमान-वश कर्म करता है। देहात्मबोधके बिना कर्म नहीं उत्पन्न होता तथा कर्मके भोगानुकूल संस्कार भी नहीं उत्पन्न होते। प्राक्तन कर्म अनादिकालसे क्रमशः चित्तमें सञ्चित होते हैं, उनको 'सञ्चित कर्म' कहते हैं। ये अनेक जीवनके संस्कारोंकी समष्टि हैं। इन सञ्चित कर्मोंसे ही प्रारब्ध कर्मकी उत्पत्ति होती है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि केवल सञ्चित कर्मसे काम नहीं चलता, सञ्चित और क्रियमाण कर्मकी सहकारितासे देहत्यागके समय 'प्रारब्ध कर्म'का आविर्भाव होता है। मृत्युके समय या अन्तिम कालमें जो विचारधारा रहती है, उसीका दूसरा नाम है—'क्रियमाण कर्म'। उस धाराके अनुसार सञ्चित कर्मके भण्डारसे अनुरूप कर्मोंके संस्कार उद्बुद्ध होकर प्रारब्ध कर्मकी रचना करते हैं। साधारण प्रारब्ध एक जन्मका नियामक होता है, किंतु अवस्थाविशेषमें एकसे अधिक जन्मका प्रादुर्भाव एक ही प्रारब्धसे हो सकता है। कर्मका विपाक कालके अधीन है। बहुधा बहुतेरे कर्मोंके संस्कार कालमें याप्य अवस्थामें रहते हैं। वे योग्य अभिव्यञ्जकके अभावमें प्रसुप्तवत् पड़े रहते हैं। परंतु संस्कार नष्ट नहीं होते। समय आनेपर वे फल-प्रदानोन्मुख हो जाते हैं।

कर्मकी एक रहस्यात्मक प्रक्रिया है, उसका नाम है—'आवापगमन'। बहुधा एक ही कर्मपिण्डमें शुक्ल और कृष्ण विरुद्ध संस्कार रहते हैं। प्राचीनकालमें यज्ञार्थ पशु-हिंसाके सम्बन्धमें यही आवापगमनका प्रसङ्ग उठाया जाता था। समष्टि कर्म शुक्ल और कृष्ण उभयात्मक हो तो उसे गुणप्रधानरूपमें विभक्त किया जाता है। यदि उसमें शुक्ल कर्म या पुण्य है, तथापि वह तत्संश्लिष्ट क्लिष्ट कर्म या पापके द्वारा युक्त होकर यथासमय फल प्रदान करता है। इस व्यापारमें दोनों कर्मोंके संयोगमें समष्टि कर्मका विचार होता है। अर्थात् किसी पुण्य कर्मके करते समय आनुषङ्गिक रूपमें यदि कुछ पाप कर्म होते हैं तो इस पुण्य और पाप कर्मका फल एक साथ जुड़ जाता है। दृष्टान्तस्वरूप, यदि किसी पुण्य कर्मके अनुष्ठानमें अनिवार्यरूपसे कुछ पाप कर्मका अनुष्ठान होता है तो दोनों कर्मोंकी एक साथ योजना करके कर्मफल निर्णीत होता है। अर्थात् पुण्य कर्म दस आने और पाप कर्म दो आने हों तो ऐसी अवस्थामें पुण्य और पाप—एक साथ जोड़ लिये जायँगे और पुण्यके भागमेंसे दो आने घटकर वह पुण्यभाग आठ आने फल उत्पन्न करेगा। यही कर्मका 'आवापगमन' है। साधारणतः पाप और पुण्यका फल अलग-अलग भोगना पड़ता है; किंतु सजातीय विरुद्ध कर्म होनेपर दोनोंका विचार एक साथ होता है। जैसे क्रोध और क्षमा—ये दोनों सजातीय विरुद्ध कर्म हैं। यहाँ प्राधान्यके अनुसार फलनियन्त्रण होता है। कर्मके सम्बन्धमें एक प्रधान नियम यह है कि विशेष-विशेष क्षेत्रमें विशेष कारणसे इसकी तीव्रता बढ़ती है अथवा घटती है। जैसे, यदि जपको पुण्य कर्म समझें तो उसके फलकी अभिव्यक्तिके सम्बन्धमें अनेक कारणोंसे परिवर्तनकी सम्भावना है, यह जान लेना चाहिये। साधारण जपमें जो फल होता है, स्थान-विशेष या काल-विशेषके कारण उसका फल अधिक हो जाता है। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये। इसी प्रकार कोई अपराध करके उसके लिये संतप्त हृदयसे पश्चात्ताप करनेपर, अथवा लोगोंके सामने या किसी विशिष्ट व्यक्तिके सामने उस अपराधको स्वीकार कर लेनेपर, अथवा अन्य किसी प्रकारसे शुद्ध संकल्पका आश्रय लेनेपर पापकी तीव्रता कम हो जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। पाप और पुण्य उत्कट होनेपर उसका फल बहुत थोड़े समयके भीतर ही भोगना पड़ता है।

क्लिष्ट कर्मके भीतर अक्लिष्ट कर्म रहनेपर वह अक्लिष्ट ही रह जाता है, क्लिष्टके साथ मिलता नहीं। इसी प्रकार विपरीत अवस्थामें भी समझना चाहिये। प्रत्येक जातिके कर्मका हिसाब अलग-अलग होता है। क्लिष्टका फल अक्लिष्ट नष्ट नहीं करता, अक्लिष्टका फल भी क्लिष्ट नष्ट नहीं करता। जीवनके क्षेत्रमें प्रायः सर्वत्र ही वासना और कर्माशयका मिश्रण होता है। एक मनुष्य पहले नाना प्रकारकी पशु-पक्षी आदि योनियोंमें भ्रमण करके आया है, किंतु इस समय वह शुद्ध मनुष्यदेहधारी है। इसके बाद यदि वह कर्मफलके वश दूसरे जन्ममें पशु होकर जन्म ले, तो उसके उस पशु-जन्ममें प्राक्तन पशुजन्मकी वासना स्वभावतः अभिव्यक्त होगी। उसमें पूर्वसंस्कारकी अभिव्यक्ति होगी और अस्पष्ट स्मृतिके रूपमें पूर्वोक्त देहोचित क्रियाएँ संघटित होंगी। कर्माशयके प्रभावसे ही यह स्थूलशरीरसे जन्म होता है और वासनाके प्रभावसे पशुके उपयुक्त संस्कारका उद्बोधन होता है।

पुनर्जन्म, कयामत और मुक्ति

(लेखक—'श्रीमण्डन मिश्र')

(१)

कर्मविपाक और विकासवाद

आधुनिक वैज्ञानिकोंका मत है कि सृष्टिमें निरन्तर विकास होता रहता है। उनके अनुसार जलमें रहनेवाला 'अमीबा' कीटाणु सर्वप्रथम प्राणी है। धीरे-धीरे उसके रूप बदलते गये। विकासवादका दूसरा सिद्धान्त है कि 'योग्यतम प्राणी ही अन्तमें बच सकेगा।' इसके विपरीत अपने यहाँका सिद्धान्त है कि मनुष्य अपने कर्मानुसार विभिन्न योनियोंमें जन्म लेता है। मोटे रूपसे योनियोंकी संख्या ८४ लाख मानी गयी है। वे इससे भी अधिक हो सकती हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि इन ८४ लाख योनियोंमें विकासका सिद्धान्त दिखलाया गया है। इसमें संदेह नहीं कि मनुष्य-योनि सर्वोत्कृष्ट है—

'बड़ें भाग मानुष तनु पावा।'

(रामचरितमानस ७। ४२। ४)

फारसीमें भी इसको 'अशलफुत मखलूकात' अर्थात् प्राणियोंमें सर्वश्रेष्ठ माना गया है। किंतु अपने यहाँ विकास-का अर्थ निरन्तर विकास नहीं लिया गया है, जैसा कि पाश्चात्त्य वैज्ञानिकोंका मत है। अपने यहाँके शास्त्रानुसार विकास और संकोचका क्रम कर्मानुसार चलता रहता है। अपने कर्मोंके फलस्वरूप मनुष्य दूसरे जन्ममें पशु या अन्य किसी योनिमें जन्म ले सकता है।

यदि कर्मविपाकका सिद्धान्त न माना जाय तो सृष्टि-वैषम्यका कोई न्यायोचित आधार नहीं मिलता। कोई अमीरके घर जन्म लेता है तो कोई गरीबके घर। इसी तरह जन्मसे ही कोई रोगी होता है तो कोई हृष्ट-पुष्ट। यदि ईश्वरमें विश्वास है तो क्या वह मनमाने ढंगसे प्राणियों-की स्थिति निर्धारित करता है? यदि ईश्वर न मानकर प्रकृतिमें ही विश्वास है तो इस वैषम्यका उसमें भी कोई आधार होना चाहिये। यदि ऐसा नहीं तो प्रकृतिका कोई नियम ही नहीं रह जाता, जब कि वैज्ञानिक सदा प्रकृतिके नियमोंकी दुहाई देते रहते हैं। विकासवादके जन्मदाता डार्विन साहब स्वयं प्रकृति-वैचित्र्य देखकर चकित रह गये थे। उसकी गुत्थी सुलझानेके लिये उन्होंने विकासवादका सिद्धान्त अपनाया और जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि वह गुत्थी सुलझती नहीं। उसका एकमात्र समाधान 'कर्म-विपाकका सिद्धान्त' ही है।

प्रायः लोग यह शङ्का करते हैं कि यदि कर्मफलके अनुसार ही जन्मकी व्यवस्था है तो यह मानना पड़ेगा कि मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जो बार-बार जन्म लेता रहता है; परंतु यहाँ यह बात भुला दी जाती है कि योनियाँ स्वतन्त्र और असंख्य हैं। मनुष्य अपने कर्मानुसार ही विभिन्न योनियोंमें जन्म लेता है। भगवान्‌ने उसे विवेक दिया है, इसलिये उसे अपने कर्मोंका फल भी भुगतना पड़ता है। किंतु कीट-पतंग, पशु-पक्षी आदि विवेकहीन हैं, इसलिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें निर्धारित क्रमके अनुसार चलना पड़ता है। अपने यहाँके सिद्धान्तानुसार जब कोई मनुष्य अपने कर्मोंके फल-स्वरूप किसी पशु-पक्षीकी योनिमें जन्म लेता है, तब प्रायः उसमें कुछ पिछले संस्कार बने रहते हैं। अपने यहाँ पक्षियोंमें भी जटायु-जैसे पक्षी हो गये हैं, जिन्होंने भगवान्‌की सेवा करते अपने प्राण गँवाये थे।

(२)

कयामतका दिन

मुसल्मानोंका विश्वास है कि 'कयामतके दिन अल्लामियाँ शंख फूकेंगे तब सब मृत प्राणी जीवित हो उठेंगे।' परंतु यह नहीं बतलाया गया है कि यह कयामतका दिन कब आयेगा। यह बात अवश्य है कि 'शंख-ध्वनिसे मुसल्मान घबराते बहुत हैं।' फिर इससे यह बात भी सुस्पष्ट नहीं होती कि मरनेके बाद यदि प्राणी स्वर्ग या नरकमें जाता है, जैसा कि मुसल्मान भी मानते हैं, तो फिर कब्रमें कौन रह जाता है जो कयामतके दिन उठेगा। एक बात और भी है। यदि सभी मृत व्यक्ति जीवित हो उठेंगे तो फिर उस समय जनसंख्या-विस्फोट कितना भारी होगा, इसकी भी क्या कोई कल्पना की जा सकती है ?

(३)

मुक्तिका द्वार सबके लिये खुला

संसारमें जितने धर्म या सम्प्रदाय हैं, उन सबमें यही व्यवस्था है कि स्वर्ग या मोक्षका द्वार उन्हीं लोगोंके लिये खुला है, जो उस धर्म या सम्प्रदायके अनुयायी हैं। पर अपने यहाँ मोक्षका द्वार सभीके लिये खुला है; केवल हिंदुओंके लिये ही नहीं। अपने यहाँ काशी, काञ्ची, मायापुरी, अयोध्या, द्वारका, मथुरा और उज्जैनको मोक्षदा पुरियाँ अर्थात् मोक्ष देनेवाली पुरियाँ माना गया है। इनमें मृत्यु होनेपर कोई भी प्राणी, वह किसी भी सम्प्रदायका क्यों न हो, मोक्ष प्राप्त करेगा। उसमें हिंदू, मुसल्मान, ईसाई-जैसा कोई भेद नहीं। कहा जा सकता है कि 'यदि ऐसा ही है तो इन पुरियोंमें रहकर सभी प्रकारके पाप किये जा सकते हैं। अन्ततः मोक्ष तो हो ही जायगा।' किंतु इसमें भी एक बात भुला दी जाती है। कर्मफलके अनुसार ही तो इन पुरियोंमें जन्म या निवास होता है। तभी उन्हें अन्तमें मोक्ष मिलता है। काशीमें रहनेवालेके लिये भी भैरवी यातनाकी व्यवस्था है। प्रायः लोग कर्मफल यहीं भोगकर शरीर छोड़ते हैं। जब ऐसा नहीं हो पाता तो उन्हें स्वर्ग या नरकमें फल भोगना पड़ता है। किसी बातको प्रसंगसे अलग कर उसपर विचार नहीं हो सकता। किस प्रसंगमें क्या बात कही गयी है, इसपर ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। सभी कार्योंमें एक तारतम्य रहता है। उसीके अनुसार आगे प्रगति होती है।

कर्मानुसार देहप्राप्ति

जबसे यह त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ, तभीसे कर्मका सम्बन्ध है। सबकी उत्पत्तिमें कर्म ही कारण है। यद्यपि जीव स्वरूपतः जन्म और मरणसे रहित हैं, फिर भी कर्मरूपी बीजके प्रभावसे अनेक योनियोंमें बार-बार जन्मते और मरते रहते हैं। कर्म समाप्त हो जानेपर जीवका देहसे सम्बन्ध कभी नहीं हो सकता। उत्तम, निन्द्य और उत्तम-निन्द्य-मिश्रित—इन तीनों गुणोंसे यह जगत् व्याप्त है। जो तत्त्वके रहस्यको जाननेवाले विद्वान् हैं उनके द्वारा भी कर्मोंका भेद तीन प्रकारसे ही बताया गया है। वे तीन प्रकारके कर्म—संचित, प्रारब्ध और वर्तमान हैं। इस देहमें कर्मोंकी तीन गतियोंका सम्मिश्रण रहता है। राजन्! ब्रह्मा आदि सभी उस कर्मके अधीन हैं। महाराज! सुख, दुःख, जरा, मृत्यु, हर्ष, शोक, काम, क्रोध तथा लोभ—ये सभी देहसे सम्बन्ध रखनेवाले गुण हैं। देवताओं, मनुष्यों और पशुओं—सबसे ये सम्बन्ध रखते हैं। इन सभी विकारोंका देहसे ही सम्बन्ध रहता है। पूर्वजन्मके किये हुए वैर और स्नेहके अनुसार वे शरीरमें आश्रय पाते हैं। कर्म शेष न रहनेपर प्राणियोंकी उत्पत्ति सर्वथा असम्भव है। (**महर्षि व्यास**)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मसम्बन्धी विचार

(१)

कर्मभोग एवं कर्मप्रायश्चित्त

'गहना कर्मणो गतिः।' (गीता ४ । १७)

कर्मकी गतिको गहन कहनेका तात्पर्य है । 'जो कर्म करता है, वही फल भोगता है' और 'कर्मका फल भोगना ही पड़ता है'—इतनी सीधी बात नहीं है ।

औरु करै अपराध कोउ, औरु पाव फल भोगु ।
अति बिचित्र भगवंत गति, को जग जानै जोगु ॥
(रामचरितमानस २ । ७७)

आपको यह बात अटपटी लगती है या नहीं ? गीताका यह श्लोक (४ । १८) भी यहाँ विचारणीय है—

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥

'जो कर्ममें अकर्म देखता है और अकर्ममें कर्म देखता है, वह मनुष्योंमें बुद्धिमान् है । वह युक्त है । वह समस्त कर्मोंको करनेवाला है ।'

कर्म सब हो रहे हैं; किंतु आसक्ति नहीं है, उनमें कर्तृत्वका अहंकार नहीं है तो व्यक्ति अकर्ता है । और कर कुछ नहीं रहे हैं; किंतु मन 'यह करो' 'यह करो' की योजनाएँ बना रहा है तो वह देहसे कुछ न करनेवाला कर्ता ही है ।

प्रधान सेनापति या राष्ट्रपति युद्धमें तोप चलाते हैं या बन्दूक ? लेकिन युद्धका कर्ता कौन माना जाता है ? विजय किसकी कही जाती है ? सेवक जो काम करते हैं, उसका पाप-पुण्य, लाभ-हानि स्वामीका है या नहीं ?

आप कहेंगे कि जिसमें कर्तृत्वका अहंकार है, कर्मफल उसे होता है । स्वामीमें कर्तृत्वका अहंकार है । वह कर्ता भले न हो, कारयिता है; अतः फलभोग उसे प्राप्त होना ही चाहिये । लेकिन आपने व्रत-माहात्म्यमें शिवरात्रि-व्रतका माहात्म्य पढ़ा होगा । एक हिंसक शिकारी दिनभर वनमें भटकता रहा । कुछ मिला नहीं भोजनको; अतः भूखा रहा । रात्रिमें वन्य पशुओंसे बचनेके लिये बेलके पेड़पर चढ़ गया । प्राणभयसे रात्रिभर जागता रहा । संयोग ऐसा कि उस वृक्षके नीचे शिवलिङ्ग था । शिकारीके हिलने-डोलनेसे बेलपत्र टूटते तो शिवलिङ्गपर गिरते । यह उसका शिवरात्रि-व्रत तथा शिवार्चन मान लिया गया । कहाँ उसमें कर्तृत्वका अहंकार है ?

एक दूसरा उदाहरण

वृन्दावनमें यमुना-किनारे एक टीलेपर एक अच्छे संत खड़े-खड़े श्रीव्रजराजकुमारकी लीलाओंका चिन्तन कर रहे थे । कोई ऐसी लीला चित्तमें आयी कि उन संतको हँसी आ गयी । संयोग ऐसा कि उसी समय यमुनाजीसे स्नान करके कोई दोनों पैरोंसे लँगड़ा, कूबड़ा साधु उधर आ रहा था । संतको हँसते देखकर उसे लगा कि 'ये मुझे देखकर हँस रहे हैं ।' उसे बहुत दुःख हुआ । इधर संतके हृदयमें भगवल्लीलाका दर्शन बंद हो गया । बहुत प्रयत्न किया उन्होंने, बहुत व्याकुल हुए; किंतु फल कुछ नहीं निकला ।

'तुमसे किसीका अपमान हुआ है । किसीका हृदय तुम्हारे कारण दुखी हुआ है । उससे क्षमा माँगो ।' जब उन संतने दूसरे महापुरुषसे अपना दुःख सुनाया तो उन्हें यह उत्तर मिला । बहुत सोचनेपर उनको स्मरण आया कि उस समय आसपास तो एक साधु ही दीखा था । ढूँढ़कर वे उसके समीप गये ।

'बच्चे-बड़े सब मुझे देखकर हँसते हैं । वे अज्ञानी हैं, अतः हँसें तो ठीक है; किंतु आप संत होकर, ज्ञानी होकर भी हँसते हैं । यह शरीर कुछ मेरा बनाया है ?' लँगड़े साधुने उन संतको खरी-खरी सुनायी । 'आप मुझपर हँसेंगे तो मुझे दुःख नहीं होगा तो क्या सुख होगा ! मैं दीन हूँ, दुर्बल हूँ, आपका कुछ बिगाड़ नहीं सकता, इसलिये जो आपके जीमें आये, कर लीजिये ।'

संत तो क्षमा माँगने गये थे । उन्होंने अपनी हँसीका कारण बतलाया और क्षमा माँगी । उस साधुको भी अपनी भूलका पता लगा । उसने भी क्षमा माँगी; किंतु संतमें कहीं अपमानका कर्तृत्व था ? उनको जो भगवल्लीलाके दर्शनसे वञ्चित रहना पड़ा, यह उनके किस कर्मका फल हुआ ?

कर्मका फल प्रायः कर्तृत्वके अहंकारसे होता है, यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम ठीक है। कर्मका फल कर्ताको ही होता है, यह नियम भी ठीक है। कर्मका फल भोगना ही पड़ता है, यह बात भी सच है; किंतु ये सब सामान्य नियम हैं। सैकड़ों नियम-उपनियम इन सामान्य नियमोंके बाधक हैं; क्योंकि कर्मका फल कहीं कर्ताकी प्रधानतासे होता है, कहीं देशकी प्रधानतासे; कहीं कालकी प्रधानतासे, कहीं क्रियाकी प्रधानतासे; कहीं वस्तु-उपकरणकी प्रधानतासे और कहीं तो फलभोक्ताकी प्रधानतासे ही कर्मफल कम-अधिक हो जाया करता है।

कर्मफलमें अनेक भागीदार होते हैं। माता-पिता, पुत्र, पति या पत्नी, देशका शासक, गुरु—ये सब कर्मफलमें भाग पाते हैं, भले उस कर्मके किये जानेका उन्हें पता तक न हो। कर्मका आदेश देनेवाले, उसका समर्थन या विरोध करनेवाले, उसकी प्रशंसा या निन्दा करनेवाले भी उसमें भाग पाते हैं।

इन सब बातोंको ध्यानमें रखकर कहा गया है, 'गहना कर्मणो गतिः।'—कर्मकी गति बहुत गहन—अत्यन्त जटिल है। बड़े-बड़े कर्मशास्त्रके ज्ञाता भी इस सम्बन्धमें भ्रममें पड़ जाते हैं।

कर्मभोग कितना

किस कर्मका क्या भोग प्राप्त होगा? कितने समयतक प्राप्त होगा? इसका वर्णन यद्यपि ज्यौतिषशास्त्र और कर्मविपाक दोनोंमें है, यह सत्य है। किंतु यही कोई बहुत सुनिश्चित बात नहीं है। सबको एक-सा ही फल नहीं मिलता। स्थितिके अनुसार तारतम्य रह सकता है।

एक ही कर्मका उदीयमान दुःखद फल एक पाप-रत प्राणीको दीर्घकालतक दुःख देता है और एक साधकको कभी-कभी तो उसके आराध्यकी कृपासे केवल स्वप्नमें ही उसका फल-भोग हो जाता है। जाग्रत्‌में उसका कोई प्रभाव ही नहीं होता। इसीलिये राष्ट्रकवि स्वर्गीय श्रीमैथिलीशरण गुप्तने कहा था—

'अरे डराते हो क्यों मुझको कहकर विधिका अटल विधान।
'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्' है समर्थ मेरा भगवान॥'

भक्तिशास्त्रमें—भगवान्‌में जिनकी श्रद्धा है, उन भगवान्‌के मङ्गलविधानमें सहज विश्वास रखनेवाले भक्तोंपर प्रारब्धका कोई प्रभाव नहीं होता। वे सर्वत्र सदा भगवान्‌का मङ्गल-स्पर्श प्राप्त करते हैं। भक्तका कोई पूर्वकृत कर्म ऐसा फल प्रकट कर नहीं सकता, जिसमें भक्तका अहित—अमङ्गल हो। कर्मविधानका दुःख-पारतन्त्र्य भक्तके लिये जाग्रत् तो क्या, स्वप्नमें भी नहीं है।

श्रीशुकदेवजी तो कहते हैं—

देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां न किङ्करो नायमृणी च राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्॥

(श्रीमद्भागवत ११।५।४१)

'राजन् परीक्षित्! शरण लेने योग्य श्रीमुकुन्दकी शरणमें जो अपने कर्तृत्वाभिमानको छोड़कर सर्वात्मना चला गया, वह अब देवता, ऋषि, किसी प्राणी, श्रेष्ठ मनुष्य (राजादि) एवं पितरोंका भी न सेवक है और न ऋणी।'

अतः कर्मका भोग कब, कैसे मिलेगा और कैसे नहीं मिलेगा, इस चिन्ताको छोड़कर मङ्गलमय श्रीहरिके मङ्गलविधानपर विश्वास रखकर उनकी शरण ग्रहण करना सबसे निरापद मार्ग है। जो ऐसा नहीं कर पाते, उनके लिये सकाम अनुष्ठान तथा कर्म-प्रायश्चित्तका विधान शास्त्रने किया है।

कर्म-प्रायश्चित्त

मनुष्य संयम-नियमसे रहे और नियमित पथ्य, आहार-विहार रक्खे तो उसके रोगी होनेकी सम्भावना बहुत कम रहती है। रोग प्रायः आहार-विहारके असंयमसे अथवा कहीं किसी प्रकारकी सावधानीमें त्रुटि हो जानेसे होते हैं। जब रोग हो जाता है, तब उसकी चिकित्सा करनी पड़ती है।

'रोगी स्वयं कुशल चिकित्सक भी हो तो भी अपनी चिकित्सा स्वयं न करे, यह नियम है।' उसे दूसरे अच्छे चिकित्सककी सम्मति लेनी चाहिये। जो चिकित्सा-शास्त्र जानते ही नहीं अथवा अपूर्ण जानते हैं, उनके द्वारा कोई चिकित्सा करायेगा तो परिणाम जो कुछ होगा, वह आप समझ सकते हैं।

पाप मानसिक रोग हैं। जैसे आहार एवं आचारमें च्युति होनेसे शारीरिक रोग होते हैं और वे दुःख देते हैं, वैसे ही विचार-आचारमें च्युतिका होना ही 'पाप' कहलाता है। इससे मनमें रोग होते हैं और कालान्तरमें ये जब फलदानोन्मुख होते हैं तो तन-मन दोनोंके लिये दुःखद होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शारीरिक रोग तत्काल दुःख देने लगते हैं; किंतु पाप तो एक रोगके बीजके समान हैं। जैसे किसीके शरीरमें कैन्सरका बीज पहुँच जाय तो वह बहुत देरमें रोगके रूपमें प्रकट होता है और पीड़ादायक बनता है, उसी प्रकार पाप दुःखके बीज हैं, जो देरमें या जन्मान्तरमें अपना भयानक रूप प्रकट करते हैं। बुद्धिमान् व्यक्ति कैन्सर तथा दूसरे किसी रोगका बीज शरीरमें पहुँचनेकी सम्भावना होनेपर जाँच कराता है और यदि बीज शरीरमें हुआ तो उसकी उसी समय चिकित्सा करता है। उस समय रोगकी चिकित्सा सरल होती है। इसी प्रकार पाप—अशुभ कर्म हो जायँ, अपनेको लगे कि हुए तो इनकी तुरंत चिकित्सा कर दी जानी चाहिये। इस समय इनका प्रायश्चित्त उतना कठिन नहीं होता; किंतु जन्मान्तरमें जब ये फलोन्मुख होंगे, तब इनके प्रभावको मिटानेके लिये जो अनुष्ठानादि करने होंगे; वे पर्याप्त कठिन होंगे।

अपकर्मका प्रायश्चित्त स्वयं कर्ता निश्चित नहीं कर सकता; क्योंकि एक ही कर्म देश, काल, पात्र तथा कर्ताकी योग्यता, मनःस्थितिके अनुसार लघु या गुरु बनता है। पापमें लघु-गुरु, शुष्क-आर्द्रके स्वतः भी भेद होते हैं। चींटीकी हत्या, गधेकी हत्या, मृग या वाराहकी हत्या, हाथीकी हत्या, मनुष्य या गौकी हत्या—ये सब प्राणिवध हैं; किंतु इनमें हत्याका पाप समान नहीं है। क्षुद्र जीवोंके वधका पाप 'क्षुद्र' माना गया है। बड़े प्राणियोंमें भी किन्हींके वधका पाप अल्प एवं किन्हींका बहुत माना गया है। हाथी उन्मत्त न हो तो युद्धके अतिरिक्त उसका वध महाहत्या—गोवधके समान मानी गयी है। जो पाप तुरंतके हैं, वे आर्द्र हैं और जिनको पर्याप्त समय बीत गया है, वे शुष्क हैं। आर्द्रपापका प्रायश्चित्त शुष्ककी अपेक्षा अधिक होता है; क्योंकि शुष्कपापका अर्थ ही है कि वह मनोवृत्ति अब रही नहीं, अन्यथा उस पापकी पुनरावृत्ति हुई होती।

रोगोंकी चिकित्साके समान ही पापका प्रायश्चित्त है। रोग-निदानके समान ही पाप-निदान होता है। पापका स्वरूप, समय, स्थल, कर्ताकी शक्ति, साधन, स्थिति एवं मनोभावादिका पूरा विचार करके तब उसके अनुसार प्रायश्चित्त निर्धारित होता है। अतः जैसे प्रत्येक मनुष्य चिकित्सक नहीं होता, उसके लिये पर्याप्त अध्ययन एवं अनुभव आवश्यक होता है; वैसे ही प्रत्येक व्यक्ति प्रायश्चित्त-निर्देशक नहीं हो सकता, भले वह उच्चकोटिका साधक अथवा महात्मा हो। इसके लिये प्रायश्चित्त-शास्त्रका गम्भीर अध्ययन तथा स्थितियोंको समझनेका अच्छा अनुभव आवश्यक है। ऐसे व्यक्तिसे ही प्रायश्चित्त-विधान प्राप्त किया जाना चाहिये।

जो लोभ, द्वेष, भय अथवा मोहके वश हो—इनसे प्रेरित हो, वह जैसे योग्य होनेपर भी उपयुक्त चिकित्सक नहीं है, वैसे ही ऐसा व्यक्ति उपयुक्त प्रायश्चित्तनिर्देशक भी नहीं हो सकता।

रोग अशुभ कर्मोंके फलसे ही आते हैं। अतः रोगकी चिकित्सा तथा ग्रह-शान्तिके अनुष्ठान प्रायश्चित्त ही हैं। सकाम अनुष्ठानोंमें तथा प्रायश्चित्तमें इतना ही अन्तर है कि प्रायश्चित्त प्रायः वर्तमान जीवनमें किये गये पापोंको मिटानेके लिये—निष्प्रभाव करनेके लिये किया जाता है और सकाम अनुष्ठान पूर्वकृत अज्ञात अशुभ कर्मोंसे प्राप्त रोग, शोक, दुःख या असफलताको दूर करनेके लिये होता है।

एक दिनके सामान्य उपवास, गङ्गास्नान, पञ्चगव्यपानसे लेकर चान्द्रायण, कृच्छ्रचान्द्रायण एवं देहत्यागतक प्रायश्चित्त-विधानके अन्तर्गत हैं।

आजके युगमें मनुष्य वैसे ही अल्पशक्ति, अल्पप्राण और श्रद्धाहीन हो गया है। वह कठिन प्रायश्चित्त कर सकेगा? ठीक-ठीक प्रायश्चित्त बतलानेवाले कठिनाईसे मिलते हैं। बतलानेवाला मिल जाय तो उसके बतलाये उपायपर श्रद्धा होनी कठिन और श्रद्धा भी हो तो क्या आज उतने कष्ट उठा लेनेकी क्षमता सामान्य व्यक्तिमें है?

ऐसी दशामें आजका मनुष्य क्या करे? इस युगके लिये पाप-परिमार्जनका, सबके लिये सब पापोंके परिमार्जनका सुगम साधन शास्त्रने पहलेसे सुनिश्चित कर दिया है—

सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम्।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः॥

(श्रीमद्भागवत ६। २। १०)

'सब प्रकारके पापोंके कर्ता पापियोंके लिये केवल यही समुचित प्रायश्चित्त है कि वे भगवान् नारायणके नामका उच्चारण-जप-संकीर्तन करें, जिससे भगवान्में उनकी बुद्धि लगे।'

भगवन्नाम-कीर्तन, भगवन्नाम-जप सब पापोंका सुनिश्चित एवं सर्वसम्मत प्रायश्चित्त है। यह सर्वत्र, सब समय, सबके लिये सुगम है। अतः नामका आश्रय ही लेनेयोग्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

कर्मफल-पद्धति

कर्मफल कालान्तरमें

'बीज-वृक्ष-न्याय'—कर्मफलकी पद्धति बहुत संक्षिप्त कहें तो इतनी ही है। बीज-वृक्ष-न्यायको ठीक-ठीक समझ लिया जाय तो कर्मका सिद्धान्त समझमें आ जायगा।

'अमुक व्यक्ति बहुत धर्मात्मा है; किंतु उसको तो अभाव तथा दुःख ही भोगना पड़ रहा है।' अथवा 'अमुक व्यक्ति धर्माधर्मकी कोई चिन्ता नहीं करता; झूठ-छल, कपट, विश्वासघात आदि ही करता है; किंतु कितना सम्पन्न और सुखी है!'—ऐसी बातें प्रायः लोग कहते हैं।

धर्मका फल दुःख और पापका फल सुख कभी हो नहीं सकता। यदि पापका फल सुख होता तो पाप करनेवाले सब धनी और सुखी होते; किंतु उनमें तो अत्यन्त दरिद्र, रोगी और बहुत दुखी देखे जाते हैं।

एक किसानने पिछले वर्ष खेती नहीं की। इस वर्ष खेतोंमें जी-तोड़ परिश्रम करता है; किंतु पुराना अन्न घरमें रहा नहीं; फलतः उसे और उसके परिवारको प्रायः भूखों रहना पड़ता है। दूसरे किसानने पिछले वर्ष बहुत परिश्रम खेतोंमें किया था। इस वर्ष उसने हल-बैलको छुट्टी दे रक्खी है। दिन-रात घरमें पड़ा रहता है। घरमें पिछले वर्षका अन्न भरा है, सो स्वयं खाता है, दूसरोंको भी देता है। अब आप क्या कहना चाहते हैं कि खेतोंमें श्रम करनेका फल उपवास है और बैठे रहनेका फल भरपेट भोजन?

एक दैनिक मजदूरीपर काम करनेवाला मजदूर भी शामको या सप्ताहान्तमें मजदूरी पाता है। कर्म बहुत ही प्रबल न हो तो वह तत्काल फल नहीं देता और उतना ही फल नहीं देता जितना किया जाय। कर्मका फल किये गयेसे बहुत अधिक होता है, यदि ठीक संयोग मिलते गये। सब संयोग विपरीत हों तो कर्म निष्फल भी हो सकता है। कुछ संयोग मिलें तो अल्प फल दे सकता है। प्रायः पाप-पुण्यका फल इस जीवनमें नहीं मिलता। वह जन्मान्तरमें मिलता है।

कर्मका फल ऐसा कम ही होता है जो कर्मकालमें मिले। फल प्रायः कालान्तरमें ही मिलता है, भले वह काल अत्यल्प हो या बहुत लंबा। आप भोजन बनाते हैं तो थोड़े ही समय बाद खानेके लिये भोजन मिल जाता है। कोई कारखाना लगाते हैं तो कई वर्षमें कारखाना चालू होता है। इमली-जैसे कुछ वृक्ष हैं, जो लगाये जानेपर बहुत लंबे समयमें फल देते हैं। अतः कालान्तरमें फलकी प्राप्ति, यह तो कर्मका स्वाभाविक नियम है।

कर्मफल—देश-काल-पात्रानुसार

आप एक बीज बोते हैं या एक वृक्ष लगाते हैं तो क्या वह एक ही फल देता है? जितना लगाया जाय, उतना ही मिले तो कोई व्यापार क्यों करे और कारखाने क्यों स्थापित करे। कर्मका दूसरा नियम है कि अनुकूल संयोग मिलते जायँ तो वह अपना सैकड़ोंगुने फल देता है। अवश्य ही अनुकूल संयोग कम हों तो फल कम होता है और सब संयोग विपरीत हों तो बोया बीज भी नष्ट हो जाता है। यही बात धर्म-अधर्मरूप सभी कर्मोंके सम्बन्धमें है।

अनुकूल संयोग क्या? देश, काल, पात्र तथा कर्ताका भाव एवं कर्म करनेकी विधि—ये सब कर्मफलको प्रभावित करते हैं। जिस खेतमें बीज बोना है, वह उपजाऊ होना चाहिये। वह बंजर हो तो सब अन्य संयोग व्यर्थ जायँगे। इसी प्रकार धर्म या अधर्म कहाँ किया गया, उस स्थानका महत्त्व है। गयामें किया गया श्राद्ध पितरोंको अक्षय तृप्ति देता है। तीर्थमें किया गया दान-पुण्य बहुत अधिक फल देता है और तीर्थमें किया गया पाप भी बहुत अधिक कुफल देता है।

स्थान-देश उपयुक्त हो, इतना ही पर्याप्त नहीं है। काल भी उपयुक्त होना चाहिये। खेत कितना भी उपजाऊ हो, आप मौसमके विपरीत उसमें बीज डालेंगे तो फसल होगी? इसी प्रकार जिन कर्मोंके जो समय निश्चित हैं, उनमें वह कर्म करनेपर पूरा फल देता है। एकादशी आदि पर्वोंको दान, श्राद्धपक्ष एवं श्राद्धतिथिमें श्राद्ध करनेपर उनका फल बहुत बढ़ जाता है। ऐसे ही पुण्यपर्वके दिन पाप करनेसे वह बहुत बढ़ जाता है।

किसके साथ पाप या पुण्य किया गया, इसका भी उस कर्मके फलपर प्रभाव पड़ता है। चोर-बदमाशको थप्पड़ मारते हैं, आप एक साधारण मनुष्यको एक चपत लगाते हैं, एक कर्तव्यशील पुलिसवालेको चपत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगाते हैं और एक न्यायाधीशको चपत लगाते हैं। क्या चारोंको चपत लगानेका दण्ड समान है? इसी प्रकार एक ही अपराध या एक उपकार किसके साथ किया गया, इसके अनुसार कर्मका फल कम या अधिक है। एक भूखसे मरतेको रोटीका टुकड़ा देनेका अनन्त पुण्य है; किंतु किसी धनीको किसी शिष्टाचारवश या भय-स्वार्थादिके कारण स्वादिष्ट भोजन करानेमें कोई खास पुण्य नहीं है।

कर्मका फल कर्ताकी परिस्थितिके अनुसार भी कम या अधिक होता है। एक अरबपतिके कुछ सहस्र रुपये दानका वह पुण्य नहीं है, जो एक कंगालके द्वारा किये गये पाँच पैसे दानका है। इसी प्रकार एक व्यक्ति शत्रुतासे हत्या करता है और एक विवश होकर प्राण या धर्म बचानेको हत्या करता है तो दोनोंका अपराध समान नहीं है। दोनोंको समान दण्ड दिया नहीं जा सकता।

कर्ताका भाव तथा उसकी श्रद्धा फलको प्रभावित करती है। एक भिखारीको झिड़ककर, तिरस्कारपूर्वक, उससे पिण्ड छुड़ानेको आप एक पैसा फेंक देते हैं, यह पुण्य ही नहीं हुआ। वही एक पैसा उसी भिखारीको आप सत्कारपूर्वक, मीठे वचन कहकर श्रद्धासे देते हैं तो आपका पुण्य बहुत बढ़ गया। इसी प्रकार एक व्यक्ति तीर्थ जाता है व्यापार करने, एक जाता है मनोरञ्जन करने, एक जाता है तीर्थयात्रा करने। तीनों वहाँ स्नान-दान-देवदर्शन करते हैं; किंतु तीनोंकी तीर्थयात्राके फलमें बहुत अन्तर होता है।

आजकल आस्थावान् लोगोंमें भी शास्त्रीय कर्मोंकी विधिके प्रति उपेक्षा हो गयी है। वे कह देते हैं—'हम क्या करें; जितना जानते हैं, उसमें जितना सम्भव है करते हैं। जो विधि हम नहीं जानते, उसका क्या करें।'

यह बात प्रमाद है। विधिको जानने और उसे ठीक-ठीक पूर्ण करनेका उत्तरदायित्व किसपर है? कर्तापर। आप खेती करना नहीं जानते और बड़ी श्रद्धा-विश्वाससे उलटे-सीधे ढंगसे खेती करते हैं तो फल क्या होगा? बहुत विश्वास-श्रद्धा रखकर आप एक रोगीको दवा दें या एक मशीन चलाने लगें; किंतु आपको चिकित्सा-शास्त्र न आता हो, मशीनके संचालनका ज्ञान न हो तो परिणाम क्या होगा?

हमको जो काम करना है, उसको करनेकी विधिको ठीक-ठीक जानना और ठीक-ठीक करना—यह हमारा उत्तरदायित्व है। इसमें 'हम जानते नहीं थे' और 'हमसे इतना ही हो सकता था'—यह बात नहीं चल सकती। आप छुरी चलाना न जानें तो साग छीलनेमें हाथ कटकर रहेगा। भोजन बनाना न जानें तो रसोई बिगड़कर रहेगी; 'हमारे पास इतना ही नमक था'—यह कहनेसे वहाँ काम चलनेवाला नहीं है।

श्राद्ध, यज्ञ, देवपूजनादि कर्मोंमें सकाम अनुष्ठानोंमें विधिका अज्ञान तथा क्रिया एवं सामग्रीमें किसी भी कारण त्रुटि होगी तो उनका फल घट जायगा। वे निष्फल हो सकते हैं और कभी-कभी उनसे सर्वथा विपरीत फल भी प्राप्त होता है।

अवश्य ही निष्काम भावसे, भगवदर्पणबुद्धिसे किया गया कर्म कभी अनिष्ट फल नहीं देता। वह निष्कामभावसे किया गया है, अतः उसके फलके घटने-बढ़ने या असफल होनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता। भगवान्‌की या देवताओंकी उपासना श्रद्धापूर्वक हो, देवतामें विश्वास हो तो उसमें भी विधि या सामग्रीकी त्रुटिका महत्त्व नहीं रहता; क्योंकि देवता कर्ताकी श्रद्धा पहले महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

यज्ञ, श्राद्ध, सकाम अनुष्ठान, ग्रह-शान्ति आदि कर्म ऐसे हैं, जिनमें विधिका बहुत महत्त्व है। इनमें कर्ताको विधि जाननी ही चाहिये।

अनेक कर्मका एक फल

कभी-कभी एक परिणाम उत्पन्न करनेके लिये बहुतसे काम करने पड़ते हैं। जैसे खेतसे अन्न उत्पन्न करना है। इसमें खेतको जोतना, बोना, सींचना, घास-फूस निकालना, खाद देना, रक्षा करना आदि बहुतसे काम करने पड़ते हैं। इसी प्रकार एक अभीष्टकी पूर्तिके लिये ग्रह-शान्ति, देव-पूजन, जप-पाठ आदि कई अनुष्ठान करने पड़ सकते हैं। योगमें समाधि-सिद्धिके लिये यम, नियम, आसन, प्राणायाम, मुद्रा, प्रत्याहार, धारणा, ध्यानादि बहुत-से काम करने पड़ते हैं।

सच तो यह है कि एक फलके लिये अनेक कर्म किये जायँ, यही सामान्य नियम है। संसारके अधिकांश परिणाम ऐसे ही हैं कि उनके लिये कई-कई काम करने पड़ते हैं। इसी प्रकार पारलौकिक फलोत्पादनमें भी एक फलके लिये कई कर्म करने पड़ते हैं या पड़ सकते हैं।

एक कर्मके अनेक फल

जैसे अनेक कर्म एक फल उत्पन्न करते हैं, वैसे ही एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्म अनेक फल उत्पन्न करता है। आप स्नान करते हैं—इस एक कर्मसे शरीर स्वच्छ होता है, मन प्रसन्न होता है, पूजा-पाठादि करनेकी योग्यता आती है। आप खेतमें खाद डालते हैं तो खेत उर्वर बनता है, खाद जहाँ थी, उस स्थानकी सफाई होती है, आपके शरीरको श्रम होता है। इसी प्रकार धार्मिक-पारमार्थिक कर्म भी एक करने-पर अनेक फल उत्पन्न करते हैं। कोई सच बोलता है तो पापसे—असत्यसे बचता है, समाजमें एक आदर्श उपस्थित करता है, उसका मन शान्त-निर्भय बनता है। कोई सकाम भावसे भी भगवान्‌की पूजा करता है तो उसका चित्त निर्मल होता है, मन भगवान्‌के स्मरणमें लगता है, कम-से-कम उतने समय बुराइयोंसे बचा रहता है; लोकमें आस्तिकता—भगवद्-विश्वास उसके द्वारा फैलता है।

कोई व्यक्ति जैसे समाजमें अकेला नहीं है। हमारा जीवन, हमारे समस्त दैनिक व्यवहार अनेकोंके ज्ञात एवं अज्ञात सहयोगपर निर्भर हैं और हमारे प्रत्येक कार्यका अनेकों-पर प्रभाव पड़ता है, वैसे ही कर्म लौकिक हों या पारलौकिक, अकेले नहीं हुआ करते। प्रत्येक कर्म अपनी पूर्णताके लिये अनेक अन्य कर्मोंपर निर्भर रहता है। उसकी पूर्णतारूप फल वस्तुतः अनेक कर्मोंका फल होता है और कोई कर्म केवल अपना एक ही फल नहीं देता। उसके अनेक फल हुआ करते हैं।

कर्मकी प्रतिक्रिया

कर्मका तीसरा मुख्य नियम है कि उसकी प्रतिक्रिया होती है। जहाँ क्रिया होगी, वहाँ प्रतिक्रिया भी होगी। जितनी बलवान् क्रिया होगी, प्रतिक्रिया भी उतनी ही बलवान् होगी। आप गेंद जितने वेगसे दीवारपर मारेंगे, उतने ही वेगसे वह आपकी ओर लौटकर आयेगी। आप आकाशमें धूल फेंकेंगे तो आपके सिरपर धूलि गिरेगी और पुष्प फेंकेंगे तो पुष्प सिरपर पड़ेंगे।

आप यदि जगत्‌को भलाई दे रहे हैं तो आपको भलाई प्राप्त होगी। भलेके लिये पूरा संसार भला है और बुरेके लिये पूरा संसार बुरा है। आप यदि समाजको बुराई दे रहे हैं तो आपको बुराई मिलकर रहेगी। इसलिये व्यवहार-का नियम यह है—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

भगवान् व्यास कहते हैं—'धर्मका सर्वस्व सुनो और इसे सुनकर चित्तमें बैठा लो कि जो बात-व्यवहार दूसरोंसे तुम अपने प्रति नहीं चाहते, वह व्यवहार तुम दूसरोंके साथ मत करो।'

ऐसा नहीं है कि आप कुछ करेंगे, तभी उसका प्रभाव दूसरोंपर पड़ेगा। आप मनमें जो सोचते हैं, उसका प्रभाव भी दूसरोंपर पड़ता है। आप किसीको बुरा मानते हैं, किसी-की बुराई सोचते हैं तो उसके मनमें आपके प्रति उपेक्षा, घृणा या द्वेष उत्पन्न होता है। आपके मनका भाव उसके यहाँसे प्रतिक्रान्त होकर आपकी ओर लौटता है।

कर्मके लिये प्रकृतिका नियम

कर्मका चौथा नियम है कि जिस शक्तिका—जिस इन्द्रियका आप दुरुपयोग करते हैं, वह आपसे छीन ली जाती है। जो बहुत जिह्वालोलुप हैं, वे यदि आहारपर संयम नहीं रख पाते तो उनका पेट ऐसा खराब होता है कि वे सामान्य भोजनका भी स्वाद नहीं ले पाते और उन्हें पथ्यपर रहना पड़ता है। जो बहुत कामुक हैं, वे अल्पकाल-में ही पुंस्त्व खो बैठते हैं। बहुत सिनेमा देखनेवालोंकी नेत्र-ज्योति क्षीण हो जाती है। यह नियम सभी इन्द्रियोंके सम्बन्धमें है।

जैसे इस जन्ममें यह नियम सत्य है, पुनर्जन्मके लिये भी यही नियम सत्य है। जिन्होंने वाणीका दुरुपयोग लोगों-को कटुवचन कहनेमें किया, वे गूँगे होकर उत्पन्न होते हैं। जो दूसरोंको कुदृष्टिसे ही देखते हैं, वे अन्धे पैदा होते हैं। जिन्होंने अपने बलके गर्वमें दूसरोंको सताया है, वे निर्बल तथा रोगी होकर जन्म लेते हैं। जो अपनी बुद्धि सत्यका तिरस्कार करनेमें, अच्छे लोगोंको तर्क करके अपमानित करनेमें लगाते हैं, वे बुद्धिहीन अथवा पागल उत्पन्न होते हैं।

इसके विपरीत जो अपनी शक्तिका, अपनी इन्द्रियोंका सदुपयोग करते हैं, उनकी वह शक्ति जन्मान्तरमें बढ़ जाती है अथवा वे अधिक उच्च योनिमें जन्म लेते हैं। यह नियम भी संसारके कर्मक्षेत्रके नियमके समान ही है। यहाँ भी तो जो कर्मचारी अपने पद-अधिकारका दुरुपयोग करता है, उसकी पदावनति होती है अथवा उसे पदच्युत कर दिया जाता है। जो अपने पद-अधिकारका ठीक-ठीक सदुपयोग करता है, उसे पदोन्नति प्राप्त होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मफल यहाँ कितना ? परलोकमें कितना ?

जितना फल मिलता है, वह सब पूर्वजन्मके ही कर्मका फल है और इस जन्मके कर्मका इस जन्ममें कुछ फल होता ही नहीं, ऐसी बात नहीं है। कर्मके स्थूल अंशका स्थूल फल इसी जन्ममें मिलता है। बहुत कर्म ऐसे हैं कि उनका दृष्ट इहलौकिक फल ही होता है। पारलौकिक फल उनका कुछ नहीं होता। कुछ कर्म कोई दृष्ट फल नहीं देते। उनका अदृष्ट फल ही होता है। कुछ कर्म उभयात्मक होते हैं। उनका कुछ फल इस लोकमें होता है, कुछ परलोकमें।

आप कहीं जानेके लिये चलते हैं और वहाँ पहुँच जाते हैं। आप भोजन करते हैं और उससे भूख मिट जाती है। आप दूध आदि पौष्टिक पदार्थ खाते हैं और इससे शरीर पुष्ट होता है। यह सब कर्म केवल लौकिक फल देनेवाले हैं। इन लौकिक कर्मोंको भी पारलौकिक फल भी देनेवाला बनाया जा सकता है। अपना लौकिक फल तो वे देंगे ही। ऐसा करनेमें केवल मनका भाव परिवर्तन करना पड़ता है। आपको कहीं जाना है। अब आप सोचते हैं कि पृथ्वी तो भगवान्‌की पत्नी हैं, अतः मेरी माता हैं। मैं माताकी गोदमें टहल रहा हूँ। अब यह यात्रा पुण्यप्रद हो गयी। इसने हृदयशुद्धि प्रारम्भ कर दी। आप भोजन बनाकर उसे भगवान्‌को अर्पित करते हैं और भगवत्प्रसाद मानकर खाते हैं तो भूख मिटना, शरीरका पुष्ट होना तो होगा ही, हृदयकी शुद्धि भी होगी। इसी प्रकार भाव-परिवर्तनमात्रसे प्रत्येक लौकिक कर्मको पारलौकिक फल भी देनेवाला बनाया जा सकता है।

श्राद्ध-तर्पणादि केवल पारलौकिक फल देनेवाले कर्म हैं। प्रत्यक्ष फल इनका नहीं है। प्रत्यक्षमें तो लोगोंको इन कर्मोंमें समय, सामग्री और श्रमका व्ययमात्र दीखता है।

बहुत कर्म ऐसे हैं कि उनका लौकिक-पारलौकिक दोनों फल प्राप्त होता है। जैसे आप भूखेको भोजन देते हैं तो समाजमें एक व्यक्तिकी जीवनरक्षा होती है। आप चाहें या न चाहें, कम-से-कम उसकी दृष्टिमें आपका मान बढ़ जाता है। दानका पुण्य तो आपको प्राप्त ही हुआ। आप मन्दिरमें जाकर पूजा करते हैं तो वहाँकी शान्ति-सुरभि आदि आपके चित्तको तथा शरीरको तो सुख-स्वास्थ्य देती ही है, आपको पूजाका फल भी प्राप्त होता है।

एक मित्र सूर्य-नमस्कार करते थे—मन्त्रोंके साथ। उनके शरीरको व्यायाम करनेका लाभ तो होता ही था, भगवान् सूर्यके प्रति श्रद्धा एवं आराधनाका पुण्य भी उन्हें प्राप्त होता था।

इस प्रकार कर्मका लौकिक-पारलौकिक दोनों ही फल होता है। —सु०

कर्मफलभोगमें परतन्त्रता

कर्मबन्धनमें जकड़ा हुआ यह अखिल जगत् परिवर्तनशील तो है ही, जीवको नीच योनियोंमें भी जाना पड़ता है। यदि जीव कर्मपरतन्त्र न होकर स्वतन्त्र होता तो यह परिस्थिति सामने क्यों आती। भला, स्वर्गमें रहने और अनेक प्रकारके सुख भोगनेकी सुविधाको छोड़कर विष्ठा एवं मूत्रके भण्डारमें भयभीत होकर रहना कौन चाहता है ? त्रिलोकीमें गर्भवाससे बढ़कर दूसरा कोई नरक नहीं है। गर्भवाससे भयभीत होकर मुनिलोग कठिन तपस्यामें तत्पर हो जाते हैं। गर्भमें कीड़े काटते हैं। नीचेसे जठराग्नि ताप पहुँचाती है। निर्दयतापूर्वक बँधे रहना पड़ता है। गर्भसे बाहर निकलते समय भी वैसे ही कठिन परिस्थिति सामने आती है; क्योंकि निकलनेका मार्ग जो योनियन्त्र है, वह स्वयं दारुण है। फिर, बचपनमें नाना प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं। विवेकी पुरुष किस सुखको देखकर स्वयं जन्म लेनेकी इच्छा कर सकते हैं; परंतु देवता, मनुष्य एवं पशु आदिका शरीर धारण करके किये हुए अच्छे-बुरे कर्मका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। तप, यज्ञ और दानके प्रभावसे मनुष्य इन्द्र बन सकता है और पुण्य समाप्त हो जानेपर इन्द्र भी धरातलपर आते हैं—इसमें कोई संशय नहीं है। (**महर्षि व्यास**)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मविपाक-मीमांसा

(लेखक—डा० श्रीशान्तिप्रकाशजी आत्रेय, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

'निष्काम कर्म' तथा 'सकाम कर्म' भेदसे कर्म दो प्रकारके होते हैं। निष्काम कर्म रागरहित कर्म होते हैं। इन कर्मोंके द्वारा बन्धनकी उत्पत्ति नहीं होती है। अतः इनके द्वारा जाति, आयु, भोग—ये तीनों ही प्राप्त नहीं होते। निष्काम बुद्धिसे किया हुआ कर्म आगे सांसारिक कर्म-बन्धन पैदा नहीं करता।

सकाम कर्मके द्वारा ही जाति, आयु और भोग—ये तीनों प्राप्त होते हैं। इन कर्मोंके द्वारा ही व्यक्ति एक विशिष्ट स्थान, कुल, वातावरण, जाति एवं शरीरको प्राप्त करता है। शरीरको 'भोगायतन' कहा गया है। सत्य तो यह है कि कर्मके द्वारा शरीर प्राप्त होता है और साथ-ही-साथ यह भी सत्य है कि शरीरके द्वारा कर्म होते हैं। संसार स्वयं कर्म-जाल है। इसकी उत्पत्ति आदि सब प्राणीके कर्मोंके ऊपर आधारित है। कर्मोंको भोगनेके हेतु देहकी आवश्यकता होती है। शरीरके बिना कर्म और भोग दोनों ही नहीं होते। शरीरके द्वारा चार प्रकारके कर्म होते हैं—

(१) **शुक्ल** (पुण्य या धर्म)।
(२) **कृष्ण** (पाप या अधर्म)।
(३) **शुक्ल-कृष्ण** (पुण्य-पापमिश्रित)।
(४) **अशुक्ल-अकृष्ण** (न पुण्य, न पाप)।

जिन कर्मोंसे अपना-पराया किसीका अहित नहीं होता, किसी प्राणीको कष्ट प्राप्त नहीं होता, बल्कि परहित अर्थात् दूसरोंको सुख पहुँचता है, वे कर्म ही 'शुक्ल कर्म' कहे जाते हैं। इन कर्मोंसे धर्मरूप कर्माशय उत्पन्न होते हैं। इन धर्मरूप कर्माशयोंसे कर्त्ताको सुख प्राप्त होता है। इन कर्मोंके फलभोगके अनुसार वासनाओंकी उत्पत्ति होती है; इसी कारण कर्म-फल भोगनेके लिये ऐसे व्यक्तियोंको भी जन्म लेना पड़ता है। ये भी संसारचक्रमें डाले रखनेवाले कर्म हैं। समाजके लिये अकल्याणकारी अर्थात् असामाजिक कर्म जिनके द्वारा दूसरोंका अहित होता है तथा प्राणियोंको कष्ट होता है, वे कर्म 'कृष्ण कर्म' कहलाते हैं। इस प्रकारके कर्म करनेवालेको 'पापी' कहते हैं। ये अधर्मरूप कर्माशयको उत्पन्न करनेवाले कर्म हैं, जिनसे कर्त्ता इनके फल भोगनेके लिये उसके अनुरूप जन्म ग्रहण करता है। अधर्मरूपी कर्माशयके फलस्वरूप कर्त्ताको दुःख भोगने पड़ते हैं। ये पापकर्म भी व्यक्तिकी मनोवृत्तिसे प्रभावित होते हैं, जिससे कि निश्चितरूपसे फल भुगवाते हैं और प्राणीको संसार-चक्रमें डाले रहते हैं।

सामान्यरूपसे साधारण व्यक्तिके कर्म पाप-पुण्यमिश्रित होते हैं। ऐसे व्यक्तियोंके द्वारा समाजमें किसीका अहित होता है, जिसके फलस्वरूप उसको दुःख प्राप्त होता है और किसीका हित होता है, जिसके फलस्वरूप उसको सुख प्राप्त होता है। इस प्रकार कर्मोंके फलोंके अनुरूप गुणोंवाली वासनाएँ उत्पन्न होती हैं और उनके अनुसार ही प्राणी जाति, आयु और भोग प्राप्त करता है और सुख-दुःखादि फल भोगता है। इन वासनाओंके द्वारा कर्ममें प्रवृत्ति होती है और पुनः कर्मके द्वारा वासनाएँ बनती हैं। इस रूपसे पुण्य-पापमिश्रित कर्मोंवाले प्राणियोंको उनकी मनोवृत्तियोंके कारण सुख-दुःख-रूपी कर्म-फल प्राप्त होते रहते हैं।

वासनामय कर्म अर्थात् रागपूर्ण कर्म ही प्राणियोंको निरन्तर संसार-चक्रमें घुमाते रहते हैं। सत्य तो यह है कि वासनामय कर्म ही संसार है। इनके बिना संसार-चक्र समाप्त हो जाता है। कर्म स्वयंमें फल प्रदान करनेकी शक्ति नहीं रखते। यह तो कर्ताकी मनोवृत्ति ही फल प्रदान करती है।

जो कर्म फलोंकी आशासे रहित होते हैं, उन निष्काम कर्मोंको 'अशुक्ल-अकृष्ण कर्म' कहते हैं। ये कर्म किसी भी मनोवृत्तिसे नहीं किये जाते। भावनाओंसे प्रेरित होकर न किये जानेके कारण इनसे धर्म-अधर्मरूप कर्माशय उत्पन्न नहीं होते और इसी कारण कर्मोंका फल भी प्राप्त नहीं होता। योगी लोग इसी प्रकारके कर्म करते हैं। लगाव ही बन्धनका कारण है। वासनारहित कर्म धर्म-अधर्मरूप नहीं होते। कर्मोंको किये बिना तो प्राणीका शरीर नहीं रहता। कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाले अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश—ये पञ्चक्लेश नहीं होने चाहिये। केवल कर्तव्यके लिये कर्म करने चाहिये। आत्मसंतुष्ट व्यक्तिके लिये अपना कोई भी कार्य नहीं रह जाता। उसके जितने कार्य होते हैं वे सब वासनारहित होते हैं। उसके सारे कार्य ईश्वर और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाजके कार्य होते हैं । वह अज्ञानीकी तरह अपनेको कर्म करनेका अभिमानी कर्त्ता समझकर उनमें आसक्त नहीं होता । इसी कारण वह समस्त कर्मोंको करते हुए भी निर्लिप्त रहता है[1] । सुख-दुःख, पाप-पुण्य सचमुचमें आत्माको छूकर भी नहीं जाते; क्योंकि यह तो त्रिगुणात्मक प्रकृतिकी ही देन हैं और अज्ञानके कारण निर्विकार, शुद्ध चैतन्य आत्माको त्रिगुणात्मक शरीरसे बाँधते हैं । उस बन्धनके कारण आत्मा अपनेको सीमित, सुखी, दुखी, कर्त्ता एवं भोक्ता समझने लगता है । इन त्रिगुणोंके कारण अहंकार उत्पन्न होता है । यह अहंकार जब ज्ञानके द्वारा समाप्त हो जाता है, तब कर्म करनेका अभिमान भी समाप्त हो जाता है और इस कर्म करनेके अभिमानके समाप्त होनेपर कर्म फल-प्रदान करनेकी शक्तिसे हीन हो जाते हैं[2] । इस रूपसे यह स्पष्ट है कि शुक्ल, कृष्ण तथा शुक्ल-कृष्णमिश्रित कर्म क्रमसे धर्म, अधर्म तथा धर्माधर्म-रूपी कर्माशयोंको पैदा करनेके कारण प्राणीको जन्म-मरण-रूपी संसारके चक्रमें घुमाते रहते हैं; किंतु इसके विपरीत निष्काम कर्म अर्थात् अशुक्ल-अकृष्ण कर्म वासनारहित होनेके कारण कर्मबन्धनको उत्पन्न नहीं करते ।

सामान्य सांसारिक व्यक्ति अपने सब दुःख-सुख भाग्यके अधीन बतलाने लगते हैं । उन बेचारोंको यह पता नहीं है कि सचमुचमें भाग्य उनके पूर्वके कर्मोंद्वारा निर्मित होता है । वर्तमान कर्म भविष्यके भाग्यको बनानेवाले होते हैं । पुरुषार्थके द्वारा व्यक्ति अपने भाग्यका निर्माण करता है । किये हुए पुरुषार्थ अथवा कर्मोंके फलकी प्राप्तिका नाम ही 'भाग्य' है । पूर्वकृत कर्मके अतिरिक्त भाग्य और कोई वस्तु नहीं है । कहनेका तात्पर्य यह है कि मनुष्य स्वयं अपने भाग्यका विधाता है । वर्तमान शुभ कर्मोंके द्वारा पूर्व कालके अशुभ कर्मोंपर विजय प्राप्तकर अशुभ कर्मोंके फलको शान्त किया जा सकता है[3]; किंतु यह सब होते हुए भी शुभ और अशुभ कर्म दोनों ही संसार-चक्रको चलानेवाले कर्म हैं और प्राणीको सुख-दुःखरूपी भोग भुगवाते रहते हैं । मानव-शरीरकी यही विशिष्टता है कि वह अपने पूर्वकर्मोंका भी भोग भोगता है और साथ ही नवीन कर्म करनेमें स्वतन्त्र है । वह संसारके बन्धनसे छुटकारा भी प्राप्त कर सकता है । अतः सत्पुरुषार्थके द्वारा मनुष्यको मोक्ष-प्राप्तिकी ओर अग्रसर होकर संसार-सागरसे पार उतरना चाहिये ।

मानवको संसारबन्धनमें बाँधनेवाले कर्म 'अविद्यामूलक कर्म' कहे जाते हैं । उपर्युक्त शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल-कृष्ण—ये तीनों कर्म अविद्यामूलक हैं । इनके अतिरिक्त 'अशुक्ल-अकृष्ण कर्म' ही अक्लिष्ट कर्म हैं, जिनके द्वारा व्यक्ति जन्म-मरणके प्रभावसे बच जाता है ।

प्राणीके ऊपर जन्म-जन्मान्तरोंके कर्मोंकी छाप पड़ी होती है । ये संस्कार और वासनाओंके रूपमें अज्ञातरूपसे विद्यमान रहते हैं । चित्तकी वृत्तियोंके अनुरूप चित्तमें पड़ी छापको ही 'संस्कार' कहते हैं । संस्कार ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक—तीन प्रकारके होते हैं । इनके अतिरिक्त पूर्वजन्म तथा जन्मसे पूर्व गर्भावस्थाके संस्कार भी होते हैं, जिनकी वृत्तियोंसे हमारी वासनाएँ होती हैं और वे ही हमारी रुचियों और प्रवृत्तियोंको बनाती हैं । योगके द्वारा चित्तके समस्त संस्कारोंका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है तथा ज्ञान प्राप्त करके उनसे मुक्त हुआ जा सकता है । जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है—शुभ-अशुभ कर्म धर्माधर्मरूपी कर्माशयोंको उत्पन्न करते हैं, जिनके द्वारा जन्म, आयु और भोग प्राप्त होते रहते हैं । आत्मा अनादिकालसे संसार-चक्रमें पड़ा है तथा अनन्त जन्मोंमें भ्रमण करता आ रहा है । जबतक इन समस्त व्युत्थान-संस्कारोंको निरोध-संस्कारसे समाप्त नहीं कर दिया जायगा, तबतक जन्म-मरणसे छुटकारा प्राप्त नहीं हो सकता; क्योंकि ये सब वासनारूपसे हमारे चित्तमें विद्यमान रहते हैं । कर्माशय भी कई प्रकारके होते हैं । कुछ कर्माशय इसी जन्ममें फल देनेवाले होते हैं, कुछ दूसरे जन्ममें तथा कुछ इस प्रकारके कर्माशय होते हैं, जो इस जन्ममें भी तथा अग्रिम जन्ममें भी फल देते हैं । उग्र कर्मोंके द्वारा तत्काल फल प्राप्त होता है । उग्र पुण्यकर्म तथा उग्र पापकर्म (दुखीको सताना, विश्वासघात तथा तपस्वियोंको कष्ट पहुँचाना) दोनों ही तुरंत वर्तमान जीवनमें फल प्रदान करते हैं । उग्र पुण्योंके कारण नहुषने इन्द्रत्व प्राप्त किया था । साथ-ही-

१. श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय ५ । १०, ११, १२ ।

२. श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय १४ । ५ से ९ तक ।

३. योगवासिष्ठ २ । ७ । २१, २ । ९ । ४, २ । ९ । ६, २ । ९ । १–६, २ । ६ । ४, २ । ६ । ३–५, २ । ६ । २, २ । ६ । १०–½, १ । ५७ । २९, २ । ६ । १८, २ । ६ । ३९, २ । ५ । ९, २ । ५ । १५, २ । ५ । ११ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ ऋषियोंको लात मारनेके उग्र पापसे सर्पयोनिको प्राप्त हो गये। शिलाद मुनिके पुत्र नन्दीश्वरकुमारका मनुष्यशरीर शिवजीकी उग्र पूजा आदिसे देवशरीरमें परिवर्तित हो गया था अर्थात् उसने देवत्व प्राप्त किया था।

हिंदू सनातन-धर्ममें कर्मके विषयमें बड़े सुन्दर ढंगसे विवेचन किया गया है। कल्याणकी इच्छावालोंको शास्त्राभिमत कर्मोंका आचरण करना चाहिये तथा शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंका निश्चितरूपसे त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि कर्म सूक्ष्मरूपसे सदैव विद्यमान रहते हैं। वे संस्काररूपसे चित्तमें रहनेके कारण बिना भोगे नहीं रहने देते। ये कर्माशयरूपी संस्कार फोटोग्राफकी नेगेटिव प्लेटकी तरह वा टेप रिकार्डकी तरहसे हैं। अतः जबतक चित्तमें संस्कार स्थित हैं, तबतक उन्हें भोगनेके लिये निश्चितरूपसे जन्म लेना ही पड़ेगा। संस्कारोंको समाप्त करनेके लिये योगमें बतायी गयी विधियोंसे अभ्यास करना चाहिये; क्योंकि अभ्यासके द्वारा संस्कार दग्धबीज हो जाते हैं और कर्मफल प्राप्त नहीं होता। सारे संसारका खेल इन संस्कारोंके ऊपर है। ये जब समाप्त हो जाते हैं तो संसार भी समाप्त हो जाता है। इन संस्कारोंका जाल बड़ा विचित्र है। चित्तके जन्म-जन्मान्तरोंके अनन्त कर्मोंके अनन्त संस्कारोंमेंसे कुछ संस्कार प्रबलरूपसे जागते हैं और कुछ मध्यमरूपसे। जो संस्कार प्रबलरूपसे जागते हैं, उनको 'प्रधान' कहा जाता है। दूसरे 'उपसर्जन' कहलाते हैं। मृत्युके समय प्रधान संस्कार जाग्रत् होकर पूर्वजन्मके समस्त अन्य समान संस्कारोंको जाग्रत् कर लेते हैं, जिससे कि उन कर्माशयोंके अनुकूल फल-भोग प्राप्त करनेके लिये अग्रिम जन्म तथा आयु निश्चित होती है। जिस जातिमें जन्म होता है, उस जातिके पूर्वके समस्त जन्मोंके संस्कार उदय हो जाते हैं और उन्हींके अनुकूल भोग प्राप्त होता है। अन्य जातियोंके समस्त संस्कार सुप्तावस्थामें रहते हैं। जिस प्रकार बीजमें वृक्ष विद्यमान होता है, किंतु उसका प्रत्यक्ष नहीं हो पाता; उसी प्रकारसे सम्पूर्ण कर्म संस्काररूपसे प्राणीके चित्तमें विलीन रहते हैं और अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण अज्ञानी पुरुष उनका स्मरण भी नहीं कर पाते; किंतु वे देश-कालकी अनुकूलता प्राप्तकर यथाशक्ति और यथायोग्य फल प्रदान करते हैं[1]। कर्म संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण-भेदसे तीन प्रकारके होते हैं। जो कर्म केवल संस्काररूपसे विद्यमान होते हैं और उनके फल भोगनेकी अवधि नहीं आयी है, ऐसे अनन्त जन्म-जन्मान्तरोंके कर्मोंको 'संचित कर्म' कहते हैं। कर्माशयके अनन्त कर्मोंमेंसे जिन कर्मोंको भोगनेके लिये हमें वर्तमान जाति और आयु प्राप्त हुई है, उन कर्मोंको 'प्रारब्ध कर्म' कहते हैं। इस जन्ममें अपनी इच्छासे संग्रह किये हुए कर्मोंको 'क्रियमाण कर्म' कहते हैं। क्रियमाण कर्मोंके द्वारा नवीन संस्कारोंकी उत्पत्ति होती है और पूर्वके कर्माशयोंमें वृद्धि होती है। क्रियमाण कर्मोंमेंसे कुछ कर्म ऐसे होते हैं, जो संचित कर्मोंमें मिश्रित होकर सुप्तावस्थामें पहुँचकर विपाक होनेपर कभी अग्रिम जन्मोंमें फल देते हैं। कुछ इस प्रकारके भी उग्र क्रियमाण कर्म होते हैं, जो इसी जन्ममें प्रारब्ध कर्मोंके साथ मिश्रित होकर फल प्रदान करते हैं। प्रधान कर्माशयोंको अर्थात् प्रारब्ध कर्मोंको भोगनेके लिये प्राणीको एक निश्चित आयु मिलती है। प्राणी प्रारब्ध कर्मोंका फल भोगकर ही मरता है। इन कर्मोंके द्वारा ही वर्तमान जाति, आयु और भोग निश्चित होते हैं। इसी कारणसे यह 'नियत विपाक कर्म' कहे गये हैं। योगमें इन्हें 'दृष्ट जन्मवेदनीय' कहा है। इन कर्मोंको भोगनेसे ही प्राणीको छुट्टी नहीं मिल जाती, किंतु उसे तो संचित कर्मोंमेंसे नियत विपाक होनेवाले कर्मोंको भोगते रहना पड़ता है। कर्माशयोंमें निरन्तर क्रियमाण कर्मोंके मिश्रित होनेसे कर्माशयोंकी वृद्धि इतनी अधिक होती चली जाती है कि उनका निरन्तर जन्म ग्रहण करके भी भोग समाप्त नहीं होता। संचित कर्मोंके संस्कार सुप्तावस्थामें रहते हैं। अतः उन्हें 'उपसर्जन' कहते हैं। इन कर्मोंका फल निश्चित न होनेसे इन्हें 'अनियत विपाक' कहते हैं। इन कर्मोंको बिना भोगे साधारण प्राणी नहीं बचता; किंतु फिर भी इनके भोगनेका फल निश्चित न होनेसे इन्हें योगमें 'अदृष्ट जन्मवेदनीय' कहा है। ये संचित कर्म योगियोंके द्वारा दग्धबीज किये जानेपर ही अग्रिम जन्मोंको उत्पन्न नहीं करते और संसार-चक्रसे सदैवके लिये छुटकारा प्रदान कर देते हैं; क्योंकि योगियोंके क्रियमाण कर्म होते ही नहीं, इन्हें तो केवल प्रारब्ध कर्मोंको ही भोगना पड़ता है।

वासनाओंके दग्धबीज होनेपर ही मुक्तावस्था प्राप्त होती है। समस्त संचित कर्म दग्धबीज हो जानेपर भी व्यक्तिको प्रारब्ध कर्मोंका फल भोगे बिना छुटकारा प्राप्त नहीं होता। यह अवस्था योगीकी जब हो जाती है तो उसे 'जीवन्मुक्त अवस्था' कहते हैं। उसके लिये न कुछ हेय है, न उपादेय। साधारण मनुष्यकी तरह भोग करते हुए भी वह समस्त

१. श्रीसंन्यास गीता, अध्याय ४। ७-१३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासनाओंसे रहित रहता है । उसके समस्त व्यवहार अनासक्त भावसे होते हैं । उसके लिये भोग और त्याग समान है । सदैव समभावसे स्थित रहनेवाला जीवन्मुक्त व्यक्ति अलिप्त होकर समस्त सांसारिक कर्मोंको अन्य व्यक्तियोंकी तरहसे ही करता है । अहंभाव तो उसको उदय होता ही नहीं । हर काममें लिप्त प्रतीत होता हुआ भी सब कार्योंसे विरक्त होता है । निन्दा और स्तुतिका उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं होता । वह राग-द्वेषरहित होता है । बाह्य व्यवहारमें वह अज्ञानियोंके समान ही रह सकता है । वह सदैव शान्त, अविचलित, अहंकाररहित, काम-क्रोध-लोभ-भ्रम आदिसे रहित मन, बुद्धि, अहंकार, इन्द्रियादिको किसी भी कालमें अपना न समझनेवाला होता है ।[1] वह स्वाभाविक रूपसे ही नैतिक होता है । उसके व्यवहार आदर्श होते हैं । उसके लिये सब समान है । वह सबका प्रिय और सबका मित्र है । अत्यधिक व्यस्त दीखते हुए भी भीतरसे एकदम शान्त रहता है । उसका मन, शरीर, इन्द्रिय आदिपर पूर्ण नियन्त्रण रहता है । वास्तविकरूपसे उसीका पूर्ण स्वस्थ एवं सुखी जीवन है । प्रारब्ध-भोग समाप्त हो जानेपर ऐसा व्यक्ति शरीरको छोड़कर जीवन्मुक्त अवस्थासे 'विदेहमुक्त' अवस्थाको प्राप्त करता है और सदैवके लिये संसार-चक्रसे मुक्त हो जाता है । इस विदेह अवस्थामें किसी भी कर्म (संचित, क्रियमाण, प्रारब्ध) के संस्कार शेष नहीं रह जाते । यही मानवका परम लक्ष्य है, जिसकी प्राप्तिके लिये अनेकानेक मार्ग शास्त्रोंमें बताये गये हैं तथा सम्पूर्ण योगशास्त्रका मार्ग भी इस अवस्थाकी प्राप्तिके लिये ही है ।

भगवद्भक्ति और पुनर्जन्म

(लेखक—श्री के० वा० भातखंडे, बी० ए०, बी० टी०)

जे या भक्तिची घेतली प्रीति ।
जे कैवल्याते पर् हा सर म्हणती ॥

(श्रीज्ञानेश्वर)

पंढरीचा वास चंद्रभागे स्नान आणिक दर्शन विठोबाचे ।
हेंचि मज घडो जन्मोजन्मांतरी ।
मागणें श्रीहरी नाहीं दुजे ॥

(नामदेव)

आम्ही सुखें गर्भवास घेऊँ देखा ।
मुक्तिचिया मस्तका पाय देऊँ ॥

(एकनाथ)

गर्भवासीं दुःख नाहीं येतां जातां ।
हृदयीं असतां नाम तुझें ॥

(तुकाराम)

योगिराज श्रीज्ञानेश्वर 'भक्तिकी प्रीतिमें कैवल्यका तिरस्कार करते हैं ।' भक्त नामदेव श्रीहरिसे केवल यही चाहते हैं कि 'मुझे जन्म-जन्मान्तरमें पंढरीमें निवास, चन्द्रभागाका स्नान और विठोबाका दर्शन मिलता रहे ।' श्रीएकनाथ महाराज 'मुक्तिको पददलितकर भक्तिके लिये सुखपूर्वक गर्भवास स्वीकार' करते हैं और संत तुकाराम भगवान्‌से कहते हैं कि 'हृदयमें तुम्हारा नाम रहे, फिर गर्भवासमें आने-जानेका कोई दुःख नहीं है ।'

'भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ।'

—इस नास्तिक चार्वाक-तत्त्वको वैदिक धर्मने कभी स्वीकार नहीं किया । ईश्वर-प्राप्तिके अनेक साधन (**साधनानामनेकता**) और अनेक मार्ग वैदिक धर्मके द्वारा दिखाये गये हैं । किंतु ज्ञानयोग, ध्यानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग—ये ईश्वर-प्राप्तिके चार प्रमुख मार्ग हैं । आत्मचिन्तनपर ज्ञानयोग, अष्टाङ्गादि ध्यानयोग, निष्काम कर्मयोग—ये मार्ग मनुष्यको मुक्ति-पदपर अग्रसरकर उसको ईश्वर-प्राप्तिका अधिकारी करते हैं, यह तो सत्य है; किंतु भगवत्-स्मरणसे युक्त शुद्ध प्रेममय भक्तियोगमें इन सबकी अपेक्षा विशेषता है ।

मुक्तिका अभिप्राय है—भवबन्धनसे छुटकारा पाकर परमात्माके साथ एक रूप हो जाना । मुक्ति यानी आत्माकी परमात्माके साथ एकरूपता—यही मुक्ति है । भगवत्-प्रेमसे भरा हुआ भक्त इस महान् मुक्तिका निषेध करता है ।

१. तेजोबिन्दूपनिषद् ४ । १ । ३२; 'योग-मनोविज्ञान' अध्याय २४ ।

(डा. शान्तिप्रकाश आत्रेय, संचालक ग्रामविद्यापीठ, सरस्वतीनगर उ. प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त इस मुक्तिको अस्वीकार क्यों करता है ? मुक्ति प्राप्त होनेपर भक्त परमात्मा बनेगा और परमात्मा बननेपर भक्तको इष्टदेवकी प्रेममयी और आनन्द देनेवाली सेवासे वञ्चित होना पड़ेगा। भगवत्सेवाकी लगन बड़ी मधुर तथा अपार आनन्दमयी होती है। मुक्तिमें इस सेवाके लिये अवसर नहीं। इसीलिये तो भक्त मुक्तिका तिरस्कार करता है। भ्रमरको मकरन्दका बड़ा शौक होता है। यदि भ्रमर स्वयं ही मकरन्द बन गया तो वह मकरन्दके माधुर्यका अनुभव कैसे कर सकेगा ? भगवत्सेवाका दिव्यतम मधुर सुख निरन्तर लूटनेको मिले, इस प्रेममय भूमिकामेंसे ही भक्त मुक्तिका निषेध करते हैं।

तुकाराम महाराज भगवान्‌से स्पष्ट कहते हैं—

'मोक्ष तुमचा देवा, ठेवा तुमच्चे पाशी।
मज भक्तीची आवडी।'

'भगवन्! आप अपना मोक्ष अपने पास ही रक्खें। मुझे तो भक्ति प्रिय लगती है।' यह प्रेममय भक्तिरस मुक्तिकी महत्ताको सम्पूर्णतया कम कर देता है। श्रीमधुसूदन सरस्वतीजी भक्तिके लक्षण बतलाते समय 'मोक्षलघुताकृत'-जैसे मार्मिक शब्दकी योजना करते हैं।

भक्ति-सुख उत्तरोत्तर बढ़नेवाला सुख है। सच्चा भक्त भक्तिसे कभी ऊब नहीं सकता। उसको नित्य नया आनन्द भक्तिसे मिलता रहे, यही तो भक्तकी उत्कट इच्छा होती है।

तुकाराम महाराज एक अभंगमें कहते हैं—'भगवान्‌के सेवा-सुखमें जो आनन्द है, वह मोक्षावस्थामें नहीं।' भागवत-माहात्म्यमें कहा है—

'सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम्।' (४।८०)

पवित्र-मङ्गलमय हरिनामको इस भक्तिधर्ममें बहुत ऊँचा स्थान है। हरिनाम-संकीर्तनका माधुर्य अमृतसे भी बढ़कर है और अपूर्व है। इस नामामृतकी मधुरताको वैष्णव निरन्तर चखते रहते हैं। भक्तिरसयुक्त ऐसे नामामृतके माधुर्यका आस्वादन करनेके लिये कमल-मुखकी आवश्यकता है (राम-भजनको दिया कमल-मुख)। कमल-मुखके लिये रूप चाहिये। रूप चाहिये—देह चाहिये। देहके लिये जन्म भी चाहिये। भक्तिसुखका मीठापन निरन्तर प्राप्त हो, इस लिये भक्त ईश्वरसे पुनर्जन्मकी इच्छा करते हैं। गर्भवासके भारी दुःख वे सहनेको तैयार हैं; क्योंकि उनको भक्तिसुखके महान् माधुर्यका बड़ा भारी आकर्षण है। अतः जन्म-मृत्युकी परम्पराका कष्ट सहनेको वे सहजसे प्रस्तुत हैं। ऐसा अटूट भक्ति-प्रेम प्राप्त हो, यह उनके मनकी उत्कट अभिलाषा है।

भक्ति-सुखकी उत्कट इच्छाकी भूमिकामें भक्तिशास्त्र पुनर्जन्मको स्वीकार करता है। अपुनर्भवकी इच्छाको उत्कट भक्तिमें जरा भी स्थान नहीं है। भक्ति-सुख लूटनेके लिये हमें पुनः-पुनः जन्म प्राप्त हो—उत्तम देह मिले—ऐसा अपूर्व दृष्टिकोण भगवद्भक्तोंका है।

तुकाराम महाराजने जीवनभर भगवद्भक्ति की। उनको भक्तिका बहुत बड़ा शौक था। वे निश्चय-पूर्वक भगवान्‌से कहते हैं—

'घेईन मी जन्म याजसाठी देवा। तुझ्या चरणसेवा साधावया।

'भगवन्! तुम्हारी चरणसेवाके लिये मैंने जन्म-ग्रहण किया है।'

पूर्वके युगमें भी वे बड़े भक्त थे। महाराष्ट्रके भक्तोंकी मान्यता है कि अति पूर्वकालमें वे 'प्रह्लाद' थे। रामावतारमें वे रामभक्त 'अङ्गद' थे। फिर श्रीकृष्णावतारमें आपने 'उद्धव' रूपमें भक्तिका आनन्द लूटा था। उन्होंने कलियुगमें ज्ञानदेवके समय नामदेवकी भूमिकामें भक्तिरसका सेवन किया। इन्हीं नामदेवने आगे चलकर तुकारामके रूपमें जन्म लिया। इस प्रकार तुकारामजीने युगों-युगोंमें भक्ति की। उनकी भक्तिकी रुचि कभी कम नहीं हुई। ऐसे ये हरिप्रेममें रँगे रहनेवाले भक्त भक्ति-प्रेम-सुखकी प्राप्तिके लिये बार-बार जन्म लेते हैं—नयी-नयी देह धारण करते हैं।

हालमें ही वैकुण्ठवासी हुए ह० भ० प० गुरुवर्य सोनोपंत दांडेकरजी अस्वास्थ्यके कारण व्यासपीठपर बैठकर कीर्तन करते थे। कीर्तन-सेवा ईश्वरके आगे खड़े रहकर करनेकी सेवा है।

'रंगी रंगे नारायण, उभा करितो कीर्तन।' —तुकाराम

खड़े न होकर कीर्तन करनेकी स्थिति न होनेसे वे दुःखित रहते थे और ईश्वरसे प्रार्थना करते थे—'हे ईश्वर! मुझे ऐसा स्वास्थ्य दो कि मैं खड़ा होकर कीर्तन कर सकूँ।' उनके अन्तःकरणमें भक्तिकी बड़ी उत्कट इच्छा जाग्रत् थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान, ध्यान, कर्म आदि सब मार्ग मोक्षतक जा सकते हैं; किंतु भक्ति मोक्षके भी उस पार जाती है और फिर भी शेष रह जाती है। भक्तिका फल भक्ति ही है।

'स्वयं फलरूपतेति ब्रह्मकुमारः।' ऐसा वचन नारदसूत्र (३०) में कहा गया है। भक्ति फलरूपा होनेसे मोक्षसे भी उच्चतर है। इसीलिये शास्त्रमें भक्तिको 'पञ्चम पुरुषार्थ' कहा है। ऐसी भक्ति युगोंतक पुनः-पुनः मिलती रहे, इसके लिये भक्त पुनर्जन्मका मीठा सहारा लेते हैं।

'आत्माराम मुनिगण' भी भक्ति-सुखकी प्राप्तिके लिये फिरसे जन्म लेते हैं। भक्ति-सुखका युगोंतक निरन्तर आस्वादन करनेका प्रमुख साधन 'पुनर्जन्म' है और इस साधनको भगवद्भक्त निरन्तर अपनाते हैं।

तुकाराम महाराज कहते हैं—

हेची व्हावी माझी आस
जन्मोजन्मीं तुझा दास॥
मोक्षपद तुच्छ केले या कारणें
आम्हां जन्म घेणें युगायुगी॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

भगवत्प्रेमी मुक्ति नहीं चाहता

(लेखक—आचार्य श्रीशुकरत्नजी उपाध्याय, एम्० ए०, साहित्याचार्य, शिक्षा-शास्त्री, तीर्थद्वय, रत्नद्वय)

किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने।
तथापि तत्परा राजन् न हि वाञ्छन्ति किंचन॥

(श्रीमद्भागवत १०। ३९। २)

'श्रीनिकेतन प्रभुके प्रसन्न हो जानेपर इस विश्वमें कुछ भी अलभ्य नहीं है; किंतु फिर भी भगवदीय जन अपने प्रभुको छोड़कर अन्य कुछ भी नहीं चाहते।'

मुक्तिका व्युत्पत्तिलभ्य साधारण अर्थ है—सभी प्रकारके दुःखों, बन्धनों, इच्छाओं और वासनाओंसे छुटकारा पाना। (**मोक्षयति, मोक्षति** अथवा **मोक्ष्यते दुःखमनेन**) किंतु यह एक पारिभाषिक दार्शनिक शब्द है, जिसका अर्थ है—सदा-सदाके लिये जन्म-मरण **'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्।'** के दुःसह-दुःखपूर्ण बन्धनसे मुक्त हो जाना। दूसरे शब्दोंमें निरतिशय दुःखकी निवृत्ति जन्म-मरणके प्रवाहसे मुक्त हो जानेपर ही सम्भव है।

मुक्ति, कैवल्य, निर्वाण, निःश्रेयस, अमृत, मोक्ष, अपवर्ग आदि मुक्तिके अनेक नाम हैं (अमरकोश १। ५। ७)। सभी दर्शनोंकी मुक्तिके सम्बन्धमें अलग-अलग प्रकारकी मान्यताएँ हैं। अपनी-अपनी मान्यताओंके अनुसार दार्शनिकोंने मुक्तिके लिये पृथक्-पृथक् शब्दोंका प्रयोग किया है। उपनिषदोंमें बार-बार जिसे 'अमृतत्वकी प्राप्ति' कहा गया है, सांख्य-योग उसे 'कैवल्य' कहता है, न्याय 'निःश्रेयस,' बौद्ध 'निर्वाण'। इसी प्रकार अन्यान्य दर्शन 'अपवर्ग' तथा 'मोक्ष' आदि शब्दोंका प्रयोग करते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि क्या भगवत्प्रेमी दुःखोंसे आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं चाहता? उत्तर है—अवश्य चाहता है; किंतु उसका जीवन, जगत् और परम-तत्त्व-सम्बन्धी दृष्टिकोण अन्य दार्शनिकोंकी मान्यतासे सर्वथा पृथक् है; फलतः वह एक विशिष्ट अर्थमें प्रयुक्त मुक्ति नहीं चाहता।

यहाँ संक्षेपतः मुख्य-मुख्य दार्शनिकोंके मुक्ति-सम्बन्धी दृष्टिकोणोंका परिचय आवश्यक है, जिससे भगवत्प्रेमीका दृष्टिभेद स्पष्टतः समझमें आ सके। यद्यपि संसारमें विरले पुरुष ही मुमुक्षु देखे जाते हैं; किंतु इससे मुक्तिका महत्त्व कम नहीं होता; क्योंकि जिनको निरतिशय सुख-प्राप्ति और निरतिशय दुःख-निवृत्ति-स्वरूप मोक्षका ज्ञान ही नहीं है, उनकी प्रवृत्ति मोक्षमें कैसे हो सकती है? ज्ञात सुखके लिये ही प्रवृत्ति होना सर्व-तन्त्र-सिद्धान्त है। तथापि मनुष्य-मात्र अपनी-अपनी रुचि, योग्यता, संस्कार एवं कल्पनाके अनुसार मुक्तिके लिये प्रयत्नशील है?

सर्वथा प्रत्यक्षवादी चार्वाक—**'मरणमेवापवर्गः'** मरणको ही मोक्ष कहता है; क्योंकि वह स्पष्ट शब्दोंमें परलोकमात्रका खण्डन करता है। उसकी दृष्टिमें इस परिदृश्यमान जगत्के अतिरिक्त परलोककी कोई सत्ता नहीं है। **'न स्वर्गो नापवर्गो वा लोकाः क्लिश्यन्ति वै वृथा।'** जैन-दर्शनमें 'कर्मके आत्यन्तिक क्षय'को ही मोक्ष कहते हैं, उनके अनुसार 'कर्मसे उत्पन्न देहमें जब आवरण न हो तो जीवका निरन्तर ऊपर उठते जाना ही मोक्ष है।' वहीं वह अनन्त-चतुष्टयकी सत्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्धि करके अपने नैसर्गिक शुद्ध स्वरूपमें आ जाता है। शून्यवादी आत्माका उच्छेद होना मोक्ष मानते हैं। 'निर्माण'को उन्होंने दुःख-निरोधके नामसे चार आर्य-सत्योंमें सम्मिलित किया है।

सांख्य-दर्शनमें 'प्रकृति-नर्तकीके उपरत हो जानेपर, पुरुषका अपने स्वरूपमें स्थित हो जाना ही मोक्ष है'—'दृग्रोरेकतरस्य वा औदासीन्यमपवर्गः।' (सां० सू० ३। ६५)। प्रकृतिकी निवृत्ति होनेपर पुरुष स्वतः कैवल्यकी स्थितिमें पहुँच जाता है—

एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम्।
अविपर्ययाद् विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्॥
(सां० का० ६४)

न्यायदर्शन 'दुःखके आत्यन्तिक उच्छेदको ही मोक्ष कहता है'—'दुःख-जन्म-प्रवृत्ति-दोष-मिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः।' (गौ० सू० १। १। २)

न्याय-दर्शनकी एक विशिष्ट मान्यता यह है—वह मुक्त-दशामें सुखकी विद्यमानता स्वीकार नहीं करता; क्योंकि सुखका रागसे अनिवार्य सम्बन्ध है और राग बन्धनका कारण है। आत्मा गुणी है, सुख-दुःख आदि गुण हैं। मुक्त होनेपर आत्मा सभी प्रकारके गुणोंसे मुक्ति पा जाता है—स्वरूपैकप्रतिष्ठानः परित्यक्तोऽखिलैर्गुणैः।

ऊर्मिषट्कातिगं रूपं तस्य आहुर्मनीषिणः।
संसारबन्धनाधीनदुःखक्लेशाद्यदूषितम्॥
(न्यायमञ्जरी)

वैशेषिक दर्शनकी मान्यता भी न्यायसे ही मिलती-जुलती है। मीमांसकोंके अनुसार "दृश्य-जगत्के साथ आत्माके सम्बन्धका विनाश ही मोक्ष है—प्रपञ्चसम्बन्ध-विलयो मोक्षः।" "(शा० दी०)' प्रपञ्च तीन प्रकारसे पुरुषको बन्धनमें जकड़ता है—भोगायतन शरीर, भोग-साधन इन्द्रिय एवं भोग-विषय-पदार्थ। इस त्रिविध बन्धनके आत्यन्तिक विलयका नाम ही मोक्ष है।"[1] कुछ मीमांसक मुक्तावस्थामें नित्य-सुखकी अभिव्यक्ति भी स्वीकार करते हैं—

दुःखात्यन्तसमुच्छेदे सति प्रागात्मवर्तिनः।
सुखस्य मनसा भुक्तिर्मुक्तिरुक्ता कुमारिलैः॥
(मा० मे० पृ० २१२)

अद्वैत-वेदान्तमें 'अपने यथार्थ स्वरूपका परिज्ञान अथवा स्व-स्वरूपमें अवस्थान ही मोक्ष' है। मोक्षमें कुछ अपूर्व वस्तुकी प्राप्ति नहीं होती है; किंतु मूलस्वरूपमें जीवात्माका जो अवस्थान है, वही मोक्ष है। पारमार्थिक दृष्टिसे आत्मा, ब्रह्म और मोक्ष एक ही है। (ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति) आत्मा तो नित्य-मुक्त है। बन्धन और मोक्ष—यह सब अज्ञानकी सृष्टि है—'अज्ञानसंज्ञौ भवबन्धमोक्षौ।' 'अज्ञान अथवा अविद्यासे छुटकारा पाना[2] अर्थात् आत्मा और ब्रह्मके तादात्म्यका अनुभव करना ही मोक्ष है।' उस अखण्ड चिद्वस्तुको छोड़कर अन्य किसीकी सत्ता ही नहीं है—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥
(माण्डूक्य-कारिका २। ३२)

चित्सुखाचार्य 'मुक्तावस्थामें अनवच्छिन्न आनन्दकी प्राप्ति स्वीकार करते हैं—अनवच्छिन्नानन्दप्राप्तिः।' अद्वैत-दर्शनका प्रमुख सिद्धान्त है—'आत्मा तथा ब्रह्मकी एकताका अङ्गीकरण, इस सम्बन्धका प्रबोध ही मुक्ति है।'

तुलसीदासजीने इन सभी दर्शनोंका सार लेकर प्रापञ्चिक बन्धनको 'जड और चेतनकी ग्रन्थि पड़ जाना कहा है।' चित्तत्व मानव, जड पदार्थोंसे इस प्रकार तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कर लेता है कि जिससे मुक्ति प्राप्त कर लेना एक कठिनतम व्यापार है—

जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥
(मानस ७। ११६। २-३)

सांख्यसारमें इसीलिये 'सर्वाशा-संक्षयको ही मुक्ति' कहा है—

न मोक्षो नभसः पृष्ठे न पाताले न भूतले।
सर्वाशासंक्षये चेतःक्षयो मोक्ष इति श्रुतेः॥
(२। ७। २५)

१. प्रेत्य हि प्रपञ्चः पुरुषं बध्नाति—भोगायतनं शरीरं भोगसाधनानीन्द्रियाणि, भोग्याः शब्दादयो विषयाः। भोग इति च सुखदुःखविषयोऽपरोक्षानुभव उच्यते। तदस्य त्रिविधस्यापि बन्धस्य आत्यन्तिको विलयो मोक्षः।'
(शास्त्रदीपिका पृ० ३५। ८)

२. अविद्यास्तमयो मोक्षः सा च बन्ध उदाहृतः।
(माण्डूक्यकारिका)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त समीक्षासे स्पष्ट है कि प्रायः उक्त सभी दार्शनिकोंने दुःख-निरोध अथवा दुःखोंसे आत्यन्तिक निवृत्तिपर ही जोर दिया है; उन्होंने परमात्म-तत्त्वके करुणा-पूर्ण, परम मधुर, आनन्दमय रस-स्वरूपकी चर्चा नहीं की है। जीवात्माका पृथक् अस्तित्व भी महत्त्वपूर्ण नहीं समझा; मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे साधना-जगत्में मनुष्य-स्वभावकी व्यावहारिक कठिनाइयोंपर भी ध्यान नहीं दिया गया। यही कारण है कि अनेक दर्शनोंकी मुक्तिसम्बन्धी धारणाएँ सर्वस्वीकृत नहीं हुईं। श्रीहर्षने न्याय-दर्शनकी मुक्ति-सम्बन्धी मान्यताको आधार बनाकर गौतम (न्याय-दर्शनके प्रणेता) पर मार्मिक कटाक्ष किया है—'जिस सूत्रकारने सचेता पुरुषोंके लिये, ज्ञान-सुखादि-शून्य शिलारूप मोक्षप्राप्तिको जीवनका चरमोद्देश्य कहा है, उनका 'गौतम' यह अभिधान केवल शब्दतः ही नहीं, अर्थतः भी यथार्थ है। वह केवल गौ (बैल) न होकर गोतम (अतिशयेन गौः—गोतमः) पक्का बैल है।[3] वैष्णवजन तो वैशेषिक-मुक्तिकी अपेक्षा, वृन्दावनकी सरस निकुञ्जोंमें शृगाल बनकर जीवन बिताना ही अधिक प्रशस्त समझते हैं[4]। बौद्धोंका निर्वाण या शून्यवाद जीवनके मूल्यकी दृष्टिसे कोई सार्थकता नहीं रखता। सूक्ष्म विचार करनेपर मुक्तिसम्बन्धी अन्य दार्शनिक मान्यताएँ भी, किसी अनुपेक्षणीय दोषसे अनुविद्ध हैं।

भगवत्प्रेमीका वास्तविक मतभेद अद्वैत-वेदान्तकी मुक्ति-से है, जिसमें परिच्छिन्न जीवात्मा, ब्रह्मके साथ निर्भेद स्थितिके लिये अग्रसर होता है; क्योंकि वहाँ परमात्म-तत्त्वमें आत्माका विलय स्वीकार करनेपर, भोक्ता और भोग्यके अभावमें, रस-ब्रह्मका इतर-राग-विस्मारण-आस्वादन ही सम्भव नहीं है। प्रेम-रज्जुके बन्धनका यह एक विलक्षण स्वभाव ही है, जो दो पृथक्-पृथक् तत्त्वोंको ही संयुक्त करता है। जब जीवात्मा अपना अस्तित्व ही खो देगा, तो बन्धनोंसे छूटने और आनन्दके उपभोग करनेका अर्थ ही क्या होगा? अतः वैष्णव दार्शनिक, जीवकी परमात्म-रूपमें परिणति अथवा दोनोंके सम्मिलनसे एक सर्वथा पृथक् सत्तामें परिणमन स्वीकार नहीं करते।

प्रेमके लिये प्रेमी तथा प्रेमास्पद—दोनोंकी पृथक् सत्ता अनिवार्य है। इसेन्युअल स्वीडनवर्गका कथन है—'प्रेमका स्वभाव ही प्रेम किया जाना है, जिसमें प्रिय और प्रेमी दोका अस्तित्व है। प्रेमद्वारा वे दोनों संयुक्त होते हैं। सम्पूर्ण प्रेमका सार दो सत्ताओंके मिलनमें है।'[5] आनन्दको प्राप्त करनेवालेकी पृथक् सत्ता जबतक न हो, तबतक आनन्दकी प्राप्तिका अर्थ ही स्पष्ट नहीं हो सकता। उपभोक्ताकी पृथक् सत्ता होनी ही चाहिये। मधुका आस्वादयिता जबतक पृथक् न हो, तबतक उसके अनिर्वचनीय माधुर्यका मूल्याङ्कन ही कैसे सम्भव है?

इसीलिये चैतन्य-सम्प्रदायानुयायी 'श्रीकृष्णका नित्यदास ही जीवका स्वरूप' स्वीकार करते हैं—'जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्यदास।' इस भावमें जो एक आनन्दका समुद्र उत्पन्न होता है, निर्विशेष ब्रह्मका कोटिगुणित सुख भी उस आनन्द-समुद्रके एक बिन्दुकी तुलना नहीं कर सकता[6]। भगवान्की परम प्रेयसी हृदयवासिनी लक्ष्मी भी अति दीनभावसे इस रसको पानेके लिये प्रार्थना करती है। विधि, शिव, नारद, शुक, सनकादि सभी—इस भावके द्वारा आनन्दित हैं।[7]

श्रीरामानुजाचार्य इसी दास्य-भावको शेष-शेषीभाव कहते हैं। द्वैतवादके प्रतिष्ठापक मध्वाचार्य तो 'जीवगणा हरेरनुचराः' के सिद्धान्तका प्रबल तर्कोंसे मण्डन करते हैं। तुलसीदास इस भावके बिना संसार-सागरसे पार होना ही नहीं मानते। (सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि। मानस ७। ११९) प्रेमकी सर्व-विध-वैचित्रीमें दास्य-भाव उपस्थित है; क्योंकि प्रेमकी प्रत्येक अवस्थामें सेवाद्वारा स्वसुखवासनासे रहित, श्रीकृष्णके प्रति प्रीति-उत्पादनकी वासना एवं प्रयास विद्यमान है। अपनी इसी मान्यताके अनुसार भक्तिके सभी सम्प्रदाय जीवका ब्रह्ममें विलीन होना स्वीकार नहीं करते।

---

३. मुक्तये यः शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम्।
गोतमं तमवेक्ष्यैव यथा वित्थ तथैव सः॥
(नैषध १७। ७५)

४. वरं वृन्दावने रम्ये शृगालत्वं वृणोम्यहम्।
वैशेषिकोक्तमोक्षात्तु सुखलेशविवर्जितात्॥
(स० सि० सं० पृ० २८)

5. 'The Divine Love and Wisdom' page, 9

६. कृष्ण-दास अभिमाने ये आनन्दसिन्धु।
कोटि ब्रह्म-सुख नहे तार एक बिन्दु॥
(च० च० १। ६। ४०)

७. वही (१। ६। ४२–४३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्तिके चार अथवा पाँच भेदोंका भी वर्णन प्राप्त होता है; किंतु भगवत्प्रेमी उसके किसी भी भेदको तृणतुल्य समझकर प्रेम-सुरसरिमें डूबते-उतराते ही अपनेको कृतकृत्य समझता है—

त्वत्कथामृतपाथोधौ विहरन्तो महामुदः।
कुर्वन्ति कृतिनः केचिच्चतुर्वर्गं तृणोपमम्॥

श्रीमद्भागवतमें एक स्थानपर पाँच प्रकारकी मुक्तियोंकी भी चर्चा है—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥
(श्रीमद्भा० ३। २९। १३)

वस्तुतः श्रीकृष्ण अथवा भगवदीय चरण-कमलोंकी सेवा-सुखके लिये जिनका चित्त नित्य लालायित तथा अतृप्त रहता है, उन भक्तोंकी मोक्षके लिये कभी भी इच्छा नहीं होती। पुराणोंमें शतशः स्थानोंपर इसका समर्थन किया गया है। श्रीमद्भागवतमें स्वयं श्रीभगवान्‌का कथन है—'सर्वथा मेरे भक्त धीर और साधु-पुरुष भक्ति (प्रेम) के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहते। यहाँतक कि कोई महासौभाग्यशाली मेरे द्वारा दिये जानेपर भी जन्म-मरणसे छुड़ा देनेवाले मोक्षको भी नहीं चाहता।'[८] श्रीहनुमान्‌जीका यह कथन कितना भावपूर्ण है—'जहाँ पहुँचकर आप प्रभु हैं और मैं आपका दास हूँ, इसका लोप हो जाता है, उस भाव-बन्धनोंका नाश करनेवाले मोक्षको भी मैं नहीं चाहता।'[९]

नारद-पञ्चरात्रके जितन्त-स्तोत्रमें यह स्तुति की गयी है—

'हे परमात्मन्! मेरी धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके लिये तनिक भी इच्छा नहीं है; मुझे तो केवल अपने चरण-कमलोंकी छायामें जीवित रहने दीजिये।'[१०] श्रीतुलसीदासजीने भी कुछ इसी प्रकारका भाव व्यक्त किया है—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरवान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥
(मानस २। २०४)

सर्वेन्द्रियोंके संतर्पक भगवत्प्रेमकी ही यह अनुपम महिमा है, जिससे तुष्ट तथा तृप्त होनेपर, इस लालची दिलकी सभी चाहें, सदा-सदाके लिये, उस अद्वितीय, निरतिशय आलम्बनको पाकर, पूर्णताके शिखरपर पहुँचकर कृतकृत्य हो उठती हैं। जब सांसारिक तुच्छ विषयोंका प्रेमी ही कभी-कभी, कुछ समयके लिये अपने रागके आलम्बनके लिये सब कुछ भूला रहता है, तब जहाँ सभी कुछ अनन्त है, उस परम प्रेमास्पदको पाकर जीव शाश्वत और चिरन्तन आनन्द-महासमुद्रमें डुबकियाँ लगानेवाला बनकर मुक्ति क्या, कुछ भी नहीं चाहता—

तुष्टे च तत्र किमलभ्यमनन्त आद्ये
किं तैर्गुणव्यतिकरादिह ये स्वसिद्धाः।
धर्मादयः किमगुणेन च काङ्क्षितेन
सारं जुषां चरणयोरुपगायतां नः॥
(श्रीमद्भागवत ७। ६। २५)

श्रीमद्भागवतमें गजेन्द्रने भी कुछ इसी प्रकारके भाव व्यक्त किये हैं—

एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं
वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं
गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः॥
(८। ३। २०)

श्रीचैतन्यचरितामृतमें इस दृष्टिकोणको अत्युत्कृष्ट रीतिसे समझाया है—"श्रीकृष्ण-चरणानुरागमें सब कुछ निछावर कर देनेवाली ('या माभजन् दुर्जरगेहश्रृङ्खलाः संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना।' भा० १०। ३२। २२) गोपियाँ जब श्रीकृष्णका दर्शन करती हैं, तब दर्शनजनित सुखके लिये उनकी कुछ भी वाञ्छा न होनेपर भी उन्हें श्रीकृष्णसे कोटिगुण अधिक सुख मिलता है।"[११] अब यहाँ यह कहा जाय कि श्रीकृष्ण-सुखको छोड़कर उनकी तो कोई वाञ्छा ही नहीं—तत्सुखे सुखित्वम्; फिर उनको

---

८. न किंचित् साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम।
वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम्॥
(११। २०। ३४)

९. भवबन्धच्छिदे तस्मै स्पृहयामि न मुक्तये।
भवान् प्रभुरहं दास इति यत्र विलुप्यते॥

१०. धर्मार्थकाममोक्षेषु नेच्छा मम कदाचन।
त्वत्पादपङ्कजस्याधो जीवितं दीयतां मम॥

११. गोपीगणकरे यबे श्रीकृष्ण दर्शन।
सुख वाञ्छा नाहि, सुख हय कोटि गुण॥
(चै० च० १। ४। १५७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकृष्णसे भी कोटिगुणा अधिक सुख कैसे सम्भव है; क्योंकि बिना इच्छाके सुखका आस्वादन ही नहीं हो सकता। इसके उत्तरमें उनका कथन है—

"गोपियोंके सुखका पर्यवसान श्रीकृष्णके सुखमें ही है। अर्थात् जो सुख गोपियोंको मिलता है, वह भी श्रीकृष्णके सुखमें ही जाकर परिणत हो जाता है। गोपियोंका दर्शन करनेसे श्रीकृष्ण प्रफुल्लित हो उठते हैं, तब उसका माधुर्य इतना अधिक विकसित होता है कि जिसकी कोई भी समता इस विश्वमें अप्राप्य है। इस असीम माधुर्यको देखकर प्रत्येक गोपी विचार करती है—'अहो! मुझे देखकर श्रीकृष्णको इतना सुख हुआ!' बस, इसी सुखमें ही गोपीके मुख एवं अङ्ग प्रफुल्लित हो उठते हैं। इसी प्रकार गोपीकी शोभा देखकर श्रीकृष्णकी शोभा जितनी अधिक बढ़ती है, उस बढ़ी हुई श्रीकृष्णकी शोभाको देखकर, गोपीकी शोभा उतनी ही अधिक बढ़ती है। इस तरह एक-दूसरेकी शोभाको देखकर, गोपीकी शोभा और श्रीकृष्णकी शोभा होड़ बाँधकर अधिकाधिक बढ़ते रहते हैं, कोई भी मुख नहीं मोड़ता; किंतु गोपियोंके रूप-गुणोंका आस्वादन करके श्रीकृष्णको जो सुख होता है, श्रीकृष्णके उस सुखको ही देखकर गोपियोंके चित्तमें सुखकी वृद्धि होती है; अपने सुखकी वासनासे उनके सुखकी वृद्धि नहीं होती।"[12]

इससे एक तथ्य अनायास ही निकल आता है कि भगवत्प्रेमकी यह विलक्षण महिमा है कि प्रेमीके कुछ भी न चाहते हुए ही, उस प्रेमकी महिमासे ही उसे इतने अतुलनीय सुखकी उपलब्धि होती है, जिसके आगे इस ब्रह्माण्डका सब कुछ तृणतुल्य प्रतीत होता है।

रूप गोस्वामीने एक पद्यमें प्रेमके इस सर्वाश्चर्यमय स्वरूपका वर्णन किया है—

ऋद्धिसिद्धिव्रजविजयिता सत्यधर्मा समाधि-
ब्रह्मानन्दो गुरुरपि चमत्कारयत्येव तावत्।
यावत् प्रेम्णां मधुरिपुवशीकारसिद्धौषधीनां
गन्धोऽप्यन्तःकरणसरणीपान्थतां न प्रयाति॥[13]

अर्थात् 'श्रीकृष्णके वशीकरणमें सिद्ध-ओषधिस्वरूप प्रेम-समूहका लेशमात्र जबतक अन्तःकरणके पथका पथिक नहीं होता है, तबतक ही समृद्धिशालिनी अणिमादि सिद्धियोंकी उत्कृष्टता, सत्यधर्मोपेत समाधि तथा निर्विशेष ब्रह्मानुभवजनित महानन्द चमत्कारिता सम्पादन कर सकते हैं, अर्थात् श्रीकृष्णके सामान्यमात्र भी हृदयमें आविर्भूत होनेपर अष्टसिद्धियाँ, योगाभ्यासलब्ध समाधि एवं निर्विशेष ब्रह्मानन्द उस साधकके लिये तुच्छ होकर दीखते हैं—वह इनमें लोभायित नहीं होता।'

भगवत्प्रेम तो समस्त आश्चर्योंका खजाना है। यहाँ विस्तारभयसे उसका वर्णन सम्भव नहीं है[14]। उसका गान वाणीसे नहीं, हृदयसे होता है; वह कहा नहीं जाता, अनुभव किया जाता है; उसकी सिद्धि नहीं की जाती, वह स्वतःसिद्ध है। इसका उदय होनेपर बाहरी कोई भी आकर्षण मनको चञ्चल नहीं कर सकता—'प्रेमभक्तौ च सिद्धायां सर्वेऽर्थाः सेवकाः स्वयम्।' कभी तो प्रेमके उच्चतम भावको प्रियतम भी नहीं समझ पाता। वह समझसे ऊपर है। देवर्षि नारदने परमप्रेमरूपा भक्तिका व्याख्यान इस प्रकार किया है—'अमृतस्वरूपा च। यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति। यत्प्राप्य न किंचिद्वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति। यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति, स्तब्धो भवति आत्मारामो भवति।'[15]

जो प्रेम समस्त विश्वको मुक्ति देनेवाले भगवत्तत्त्वको भी बाँध लेता है, क्या उसकी महिमा शब्दोंमें बाँधी जा सकती है?

अहो चित्रमहो चित्रं वन्दे तत्प्रेमबन्धनम्।
यद्बद्धं मुक्तिदं मुक्तं ब्रह्म क्रीडामृगीकृतम्॥

प्रेमका सम्बन्ध होनेपर इस जगत्के प्रत्येक पदार्थसे सरसताके स्रोत फूटने लगते हैं। मन, प्राण सब कुछ प्रतिपल आनन्दरससे भींगा रहता है। भगवत्प्रेमकी अनिर्वचनीयता 'मूकास्वादनवत्।' (नारद० ५२) भक्तिके आचार्योंद्वारा शतशः समर्थित है।

---

१२. चैतन्यचरितामृत (१।४।१६०-१६६)।

१३. ललितमाधव (५।६)।

१४. द्रष्टव्य—लेखकका अप्रकाशित ग्रन्थ 'भक्ति-रहस्य' जिसमें भक्ति-जगत्के सभी सम्प्रदाय, आचार्य, ग्रन्थकार तथा समीक्षकोंके विचारोंकी अत्यन्त क्रमबद्ध, तर्कपूर्ण, गहन तथा मर्मस्पर्शी शास्त्रीय समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। विद्वान्, विचारक, व्याख्याता सभीके लिये संग्रहणीय, सर्वथा अपूर्व।

१५. नारद-भक्ति-सूत्र (३-६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवत्प्रेमी मुक्ति नहीं चाहता, इसमें मनोवैज्ञानिक रहस्य भी है। सांसारिक आकर्षणोंसे प्रायः सभी लोग पीड़ित हैं; इनमें उलझा हुआ मनुष्य निरन्तर जटिलताओंमें फँसता चला जाता है, जिससे वह अधिकाधिक उद्विग्न और व्याकुल होकर छटपटाता है। इन आकर्षणोंका अन्तिम परिणाम निरन्तर जलते ही रहना है। इन रोगोंके उपचारके लिये नियम-निष्ठा, आचार, जप, तप, व्रत, धर्म आदि कितने ही उपाय हो सकते हैं; किंतु उनका प्रभाव स्थायी नहीं होता। इसका स्थायी उपचार केवल भगवत्प्रेमसे ही सम्भव है; क्योंकि उसमें रागात्मिका वृत्तियों तथा मनको ऐसा उत्कृष्टतम, आह्लादमय आकर्षण मिल जाता है, जिस आलम्बनको पाकर, उनका मानसिक संघर्ष, प्रबल और वेगवती इच्छाएँ, विविध प्रकारकी ग्रन्थियाँ, क्वथित और भूर्जित बीजके समान[16] निःसत्त्व होकर, परम रमणीय भाव-गङ्गाके अखण्ड-प्रवाहमें लीन होकर, चिरकाङ्क्षित भगवदीय सुख-समुद्रमें विश्राम करती हैं। इस राग-विपर्यय और उसके उदात्तीकरणद्वारा, मानसिक असंतुलन और उद्वेगके लिये अवकाश ही नहीं रहता। तथाकथित मुक्तिका मार्ग अनेक जटिलताओंसे भरा हुआ होनेके कारण, दुर्गम, कठिन और प्रत्यूह-संकुल है।

अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥
(मानस ७। ११८। ४)

गोस्वामी तुलसीदासजी तो यह भी कहते हैं कि 'वेद-पुराण तथा समस्त ग्रन्थ यही कहते हैं कि भक्तिके बिना सुख-प्राप्ति असम्भव है।'[17] उनका यह भी कहना है—'मुक्ति भक्तिपर आश्रित है और भक्तिका एक साधारण परिणाम मात्र है। जिस प्रकार भूमिके बिना जल नहीं रह सकता, उसी प्रकार मोक्ष-सुख करोड़ों उपाय करनेसे भी भक्तिके बिना नहीं टिक सकता।' अतएव ज्ञानी भी मोक्षकी अवहेलना कर भक्तिकी कामना करते हैं—

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥
(मानस ७। ११८। ३)

'भक्ति करनेपर बिना ही यत्न और प्रयासके संसारका मूल अविद्या ही नष्ट हो जाती है। भक्तिका स्फुलिंग सब कर्मोंका परिपाक इस प्रकार कर देता है, जिस प्रकार जठराग्नि भोजनका।'[18] भक्ति-चिन्तामणिका वर्णन तो अनुपम ही है, भावुकोंको उसे वहीं देखना चाहिये, जिसे पाकर कोई भी मानसिक रोग मनुष्यको कष्ट नहीं देता—

गरल सुधा सम अरि हित होई।
तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥
ब्यापहिं मानस रोग न भारी।
जिन्ह के बस सब जीव दुखारी॥
(मानस ७। ११६। १, ३)

इस प्रकार मनके दमनकी दुरूहता और अव्यावहारिकता-को ध्यानमें रखते हुए, भगवत्प्रेम प्रवृत्तिमूलक परानुरक्ति होनेसे स्वभावतः सांसारिक विक्षेपोंका शमन कर देता है। मनोविज्ञानके अनुसार प्रवृत्तियोंके दमनकी अपेक्षा स्थानान्तरण सहज एवं स्वाभाविक है। भक्ति (भगवत्प्रेम) में जडोन्मुख राग चिन्मुख हो जाता है—उसकी रागात्मकता फिर भी बनी रहती है। फलतः इस सरस राजमार्गका पथिक रूखे युक्तिमार्गकी ओर उन्मुख ही क्यों होगा? मुक्तिमार्गी सिद्धिके समीप पहुँचकर भी, मनोवेगों तथा सांसारिक प्रलोभनोंसे विचलित हो सकता है, जब कि प्रकृतिकी समानतासे मायिक-इन्द्रजाल एवं मनोवृत्तियाँ भक्तपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकतीं—

बिषइन्ह कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा।
श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा॥
(मानस ७। ५२। २)

मनकी विश्रामाकाङ्क्षिणी गति साधनावस्थामें ही इस प्रत्यक्षधर्मका आश्रय लेकर, सुख-सागरकी यात्रा कर कृतार्थ हो जाती है। यही कारण है कि शुक, नारद, सनकादि-जैसे मुक्त-जन भी भगवत्प्रेम-रसकी उपलब्धि-हेतु पागल बनकर घूमते हैं। 'जिनकी सभी ग्रन्थियाँ खुल चुकी हैं, ऐसे आत्माराम महामुनि भी भगवद्-भक्तिके लिये व्याकुल हैं; क्योंकि वे इस परमानन्दमय रस-समुद्रमें गोता लगाये बिना रह ही नहीं सकते।'[19] शंकराचार्य कहते हैं—'मुक्ता अपि

---

१६. न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते॥
(श्रीमद्भा० १०। २२। २६)

१७. श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं।
रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥
(रा० मा० उत्तर० १२१। ७)

१८. (रा० मा० उत्तर० ११८। ४-५)।

१९. आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥
(श्रीमद्भा० १। ७। १०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीलया विग्रहं कृत्वा भजन्ते।[२०]' श्रीमद्भागवतमें भगवत्प्रेम-विमुख मुक्तिमार्गियोंके प्रयत्नको निष्फल कहा है—

श्रेयःश्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥
(१०।१४।४)

तुलसीदासजीने इसी बातको बड़ी भर्त्सनाके साथ कहा है—

जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं॥
ते जड़ कामधेनु गृहँ त्यागी। खोजत आक फिरहिं पय लागी॥
(मानस ७।११४।१)

शुकदेवजीकी विवशता ध्यान देने योग्य है—

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया।
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान्॥
(श्रीमद्भा० २।१।९)

एक स्थानपर किसी अद्वैतवीथी-पथिकको बलपूर्वक दास बना लिया गया है—

अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन॥

इसीलिये 'भगवत्प्रेम-रस-रसिक परार्द्धगुणीकृत ब्रह्मानन्द-को भी भक्ति-सुख-समुद्रके सम्मुख परमाणु-तुल्य भी घोषित नहीं करते'—

ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत् परार्द्धगुणीकृतः।
नैति भक्तिसुखाम्भोधेः परमाणुतुलामपि॥

पद्मपुराणान्तर्गत श्रीभागवत-माहात्म्य (२।७,११) में मुक्तिका भक्तिकी दासीके रूपमें वर्णन किया है, जो कभी भी उसके बुलानेपर आती है और चली जाती है। रूपगोस्वामी उसे 'पिशाची' तक भी कह देते हैं।[२१] चैतन्य-चरितामृतके रूप-शिक्षा-प्रकरणमें मुक्ति-वाञ्छाको भक्ति-प्राप्तिमें सर्वाधिक बाधक बताया गया है।[२२] गीतामें ब्रह्मभूत, प्रसन्नात्माके लिये, परा-भक्ति-प्राप्तिकी चर्चा है—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥
(१८।५४)

इस भगवत्प्रेमकी कुछ ऐसी विलक्षण महिमा है, जो करोड़ों मुक्त-पुरुषोंमें ही किसी-किसीको प्राप्त होता है—

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने॥
(श्रीमद्भागवत ६।१४।५)

इसे प्राप्त कर फिर कोई वाञ्छा ही शेष नहीं रहती—

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं
न पारमेष्ठ्यं न रसाऽधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
वाञ्छन्ति यत्पादरजः प्रपन्नाः॥
(श्रीमद्भागवत १०।१६।३७)

प्रणय-रशनासे बँधकर 'प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः' (भागवत ११।२।५५) साक्षात् भगवान् ही उनके हृदयमें प्रवेश कर लेते हैं, फिर बचा ही क्या?

सकलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या
निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका।
हरिरपि निजलोकं सर्वथाऽतो विहाय
प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः॥
(श्रीमद्भागवत मा० ३।७३)

जिनके नाम-श्रवण मात्रसे ही मनुष्य सर्वथा निर्मल हो जाता है, क्या श्रीभगवान्‌के दासोंके लिये फिर कोई वस्तु पाने योग्य रह सकती है?

यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्मलः।
तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते॥
(श्रीमद्भागवत ९।५।१६)

श्रीमधुसूदन सरस्वतीने कितने प्रिय शब्दोंमें द्रुत-चित्त-द्वारा गृहीत भगवत्तत्त्वका वर्णन किया है—

भगवन्तं विभुं नित्यं पूर्णं बोधसुखात्मकम्।
यद् गृह्णाति द्रुतं चित्तं किमन्यदवशिष्यते॥
(भ० र० १।२८)

---

२०. भावार्थ-दीपिका (भा० १०।८७।२१), नृसिंहतापनी (२।५।१६१)।

२१. मुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते।
तावद् भक्तिसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत्॥
(भ० सि० १।२।११, पद्मपुराणसे उद्धृत)

२२. मुक्ति-मुक्ति-आदि वाञ्छा यदि मने हय।
साधन करिले प्रेम उत्पन्न ना हय॥
(चै० च० २।१९।१५०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हरिभक्तिसुधोदय'में श्रीप्रह्लादने नृसिंह भगवान्‌से कहा है—

त्वत्साक्षात्करणाह्लादविशुद्धाब्धिस्थितस्य मे ।
सुखानि गोष्पदायन्ते ब्रह्माण्यपि जगद्गुरो ॥
(१४ । ३६)

रामचरितमानसमें विदेहकी यह उक्ति भी ध्यान देने योग्य है—

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा । बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा ॥
(१ । २१५ । ३)

भगवत्स्वरूपका अनुभव किस प्रकार सब कुछ विस्मृत करा देता है, इस सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतके निम्नाङ्कित प्रमाण द्रष्टव्य हैं—

गोपीनां परमानन्द आसीद् गोविन्ददर्शने ।
क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत् ॥
(१० । १९ । १६)

अटति यद् भवानह्नि काननं
त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते
जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम् ॥
(१० । ३१ । १५)

केवल इतना ही नहीं, समस्त चराचर विश्व, जिनके किसी भी प्रकारके सम्पर्कको पाकर, आनन्दकी पराकाष्ठापर पहुँचकर, स्वस्वरूप-विस्मृतसे अभिभूत था—

'अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणाम् ।'
(श्रीमद्भा० १० । २१ । १९)

'यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥'
(श्रीमद्भा० १० । २९ । ४०)

भगवत्प्रेमकी इस मृदु-मधुर मादकतामें मुक्तिका स्थान ही कहाँ है ?

'त्रैलोक्यकान्तं इदमित्थमहोत्सवम् ।'
(श्रीमद्भा० १० । ३८ । १४)

भगवान्‌में ब्रह्मानन्द-तुच्छकारी, सर्वाकर्षक सर्वाह्लादक, महारसायन, सर्वविस्मारक, भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि आदि वासना-अपसारक ऐसे पूर्णानन्दमय गुण हैं, जिनके सामने ब्रह्मानन्द तृणवत् तुच्छ प्रतीत होता है । सनकादिका मन श्रीकृष्णके सौरभादि गुणमें ही आकृष्ट हो गया था[२३] । शुकदेव लीला-श्रवणमें ही सब कुछ भूल बैठे थे[२४] । गोपियाँ उनके त्रैलोक्यमोहन रूप-सौन्दर्यपर निछावर थीं[२५] । श्रीकृष्णकी वंशी-ध्वनिपर श्रीलक्ष्मी, त्रिभुवनका युवति-समूह तथा चराचर विश्व विमोहित था[२६] । उनका एक-एक गुण विश्व-मनको मुग्ध कर देनेमें समर्थ है । इसीलिये जगत्‌का प्रत्येक घटक तीव्र भक्तियोगसे उनका ही यजन करना चाहता है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥
(श्रीमद्भा० २ । ३ । १०)

श्रीधरस्वामीने 'धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सताम् ।' (श्रीमद्भागत १ । १ । २) पदकी व्याख्यामें 'प्रोज्झितकैतव' शब्दमें प्रयुक्त 'प्र' उपसर्गके प्रयोगसे, प्रधान कैतव (मोक्ष-वाञ्छा) का निरसन माना है । 'अत्र 'प्र' शब्देन मोक्षाभिसन्धिरपि निरस्तः ।' अर्थात् उनकी दृष्टिमें मोक्ष-वाञ्छा भी कैतव है । यह प्रधान-कैतव इसलिये भी है कि धर्म, अर्थ, काम—पदार्थ-त्रयके अभिलाषी, भाग्यवश महत्कृपाकी उपलब्धि होनेपर, कभी किसी जन्ममें श्रीकृष्णसेवा प्राप्त कर कृतकृत्य हो सकते हैं; किंतु सायुज्य-मुक्ति प्राप्त करनेवालेका तो स्वतन्त्र अस्तित्व ही नहीं रहता; फलतः उसे कभी भी श्रीकृष्ण-भजनका सुयोग प्राप्त होना दुर्लभ है । एक आत्माराम अपने दुर्भाग्यको कोसते हुए कह रहे हैं—यह सुख घनमूर्ति परमात्मा वृष्णिपत्तन (द्वारका) में स्फुरित हो रहा है । 'मैं आत्माराम हूँ' इस अभिमानमें मेरा बहुत समय व्यर्थ ही बीत गया—

अस्मिन् सुखघनमूर्तौ परमात्मनि वृष्णिपत्तने स्फुरति ।
आत्मारामतया मे वृथा गतो बत चिरं कालः ॥[२७]

श्रीभगवान् दुर्वासा मुनिसे स्वयं कहते हैं—'मेरे समस्त भक्त मेरी सेवाके सुखसे परिपूर्ण हैं । मेरी सेवाके प्रभावसे सहजमें प्राप्त होनेवाली उन चार प्रकारकी मुक्तियोंको भी वे ठुकरा देते हैं, फिर वे कालके प्रभावसे नष्ट होनेवाले स्वर्गादि सुखको क्यों ग्रहण करने लगे ?'

मत्सेवया प्रतीतं ते सालोक्यादिचतुष्टयम् ।
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविद्रुतम् ॥
(श्रीमद्भा० ९ । ४ । ६७)

२३. भागवत ३ । १५ । ४३ ।
२४. वही० ११ । ९ तथा १२ । १२ । ६९ ।
२५. भागवत १० । २९ । ३९ ।
२६. वही १० । १६ । ३६; १० । २९ । ३९ ।
२७. भक्तिरसामृतसिन्धु ३ । १ । २३ टीकामेंकी उद्धृत ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चैतन्य-सम्प्रदाय तो परम-तत्त्वकी खण्ड-प्रतीति ब्रह्म एवं अपूर्ण प्रतीति परमात्माको स्वीकार करता है; भगवत्प्रेमी उस ओर कभी नहीं जाना चाहते। उनका मन, प्राण सब कुछ उस भक्ति-रससे भींगा रहता है, जिसे समस्त तृष्णाओंका त्याग कर देनेवाले मुक्त-जन भी खोजते फिरते हैं—

विमुक्ताखिलतर्षैर्या मुक्तैरपि विमृग्यते।
या कृष्णेनातिगोप्याऽऽशु भजद्भ्योऽपि न दीयते॥[२८]

प्रेमा-भक्तिका ऐसा विलक्षण माधुर्य है, जिसका रस-लोभी भक्त मुक्तिकी ओर कभी नजर भी नहीं डालता[२९]। वह निरन्तर उसकी पराकाष्ठापर पहुँचनेकी ओर अग्रसर होता है। मुक्ति प्राप्त कर लेनेपर तो सारा खेल ही समाप्त हो जायगा; क्योंकि तब पुनर्जन्मके अभावमें सदा-सदाके लिये प्रेम-रससे वञ्चित होना पड़ेगा। भगवान् भी मुक्ति देकर भक्तको धोखा देना चाहते हैं; क्योंकि प्रेम उनकी स्वतन्त्रताको छीन लेता है, उनको प्रेमी भक्तके वशीभूत होकर, उसकी इच्छानुसार रहना पड़ता है। इस तथ्यको वे स्वयं स्वीकार करते हैं—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥
(श्रीमद्भा० ९।४।६३)

मुक्ति देकर उनको एक बार ही छुट्टी मिल जाती है। अस्तु,

यहाँ विस्तार-भयसे यह नहीं लिखा जा सकता है कि भगवत्प्रेमी किस प्रकार वर्तमान-जीवन (साधक-देह), भाव-देह और सिद्ध-देहसे भगवल्लोक तथा लीला-स्थलोंमें अनन्त, अनिर्वचनीय भगवद्रसका अनुभव करता है, जिसके कारण उसे मोक्षपर्यन्त सभी सुख तृणवत् तुच्छ प्रतीत होते हैं।

उपर्युक्त समीक्षासे यह स्पष्ट है कि 'भगवान्‌के चरण-कमलोंकी सेवाके सुखसे जिनका चित्त एक बार तृप्त हो गया है, उन भक्तोंकी फिर मोक्षके लिये कभी भी इच्छा नहीं होती।'

श्रीकृष्णचरणाम्भोजसेवानिर्वृतचेतसाम्।
एषां मोक्षाय भक्तानां न कदापि स्पृहा भवेत्॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु १।२।१३)

भगवत्-प्रेमी मुक्ति नहीं चाहता

(लेखक—श्रीजयनारायणलालजी)

१—'सा परानुरक्तिरीश्वरे।' (शाण्डिल्यसूत्र)

'ईश्वरके प्रति अनन्य प्रेम भक्ति है।'

२—'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्। मूकास्वादनवत्।'
(नारदसूत्र ५१-५२)

'जैसे गूँगा स्वादका वर्णन नहीं कर सकता, वैसे ही प्रेमका स्वरूप अवर्णनीय है।'

परंतु जबतक मनुष्य कर्मद्वारा प्राप्त भोगोंकी लालसा और ज्ञानद्वारा प्राप्य मोक्षकी वासनामें लिप्त रहेगा, तबतक उसके हृदयमें प्रेमका उदय नहीं होगा। यह पद्मपुराणका वचन है।

'भक्ति' शब्द 'भज्' धातु और 'क्ति' प्रत्ययसे बनता है। 'भज्' इति 'सेवायाम्' और 'क्ति'का अर्थ है—'प्रेम'। सेवामें प्रेमकी प्रधानता है। भक्ति स्वतन्त्र है; कर्म और ज्ञानपर निर्भर नहीं है। स्वतः पूर्ण है। वह मोक्षको हेय समझती है।

४ 'मुक्ति निरादर भगति लुभाने।' (मानस ७।११८।४)

५ 'सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं।
तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं॥'
(मानस ६।१११।४)

'भगवत्-पादारविन्द-रसास्वादन-परायण महानुभाव सौभाग्यशाली भक्तगण मुक्तिपदको पददलितकर भक्तिपुष्पके भ्रमर बने रहते हैं। सगुण भगवान्‌के उपासक मोक्ष नहीं ग्रहण करते। उनको तो श्रीरामजी अपनी भक्ति ही देते हैं।'

वस्तुतः भक्तोंकी मुक्ति तो अपने आराध्यदेवके लीला-व्यूहमें प्रवेश करके भगवत्-चरित-चिन्तनमय हो जाना या नित्य सेवामें संलग्न रहना है। भक्त कभी भी विलयरूप मुक्तिकी चाह नहीं करते। भक्तिके दो प्रकार हैं—एक, भेदभक्ति=सेवक-सेव्यभाव—जिसमें सेवाग्राही एक भगवान् हैं और दूसरा सेवापरायण भक्त है। दूसरा

२८. भक्तिरसामृतसिन्धु १।३।१८।
२९. किन्तु प्रेमैकमाधुर्यभुज एकान्तिनो हरौ। नैवाङ्गीकुर्वते जातु मुक्तिं पञ्चविधामपि॥ (१।२।१६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

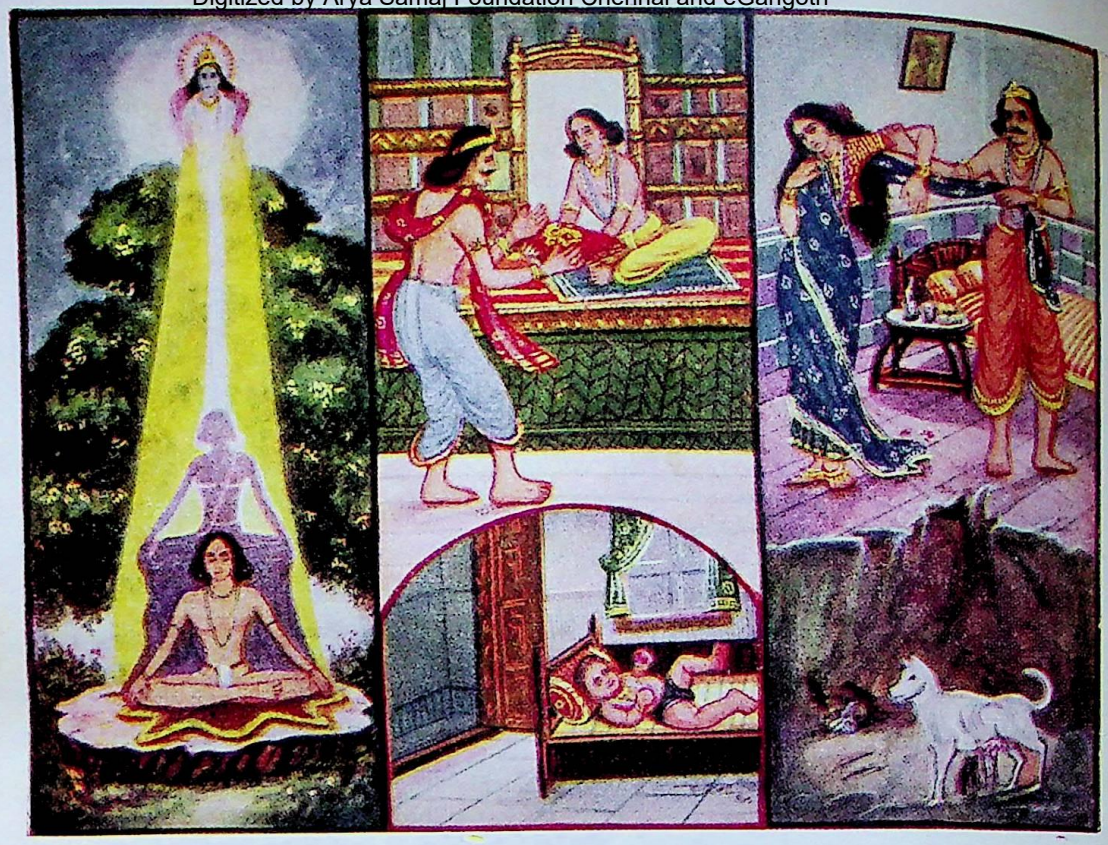

सत्त्वगुणी भगवान्‌में जाता है रजोगुणी फिर मनुष्य होता है तमोगुणी कुत्ता आदि बनता है

नरकके तीन द्वार—काम, क्रोध और लोभ (गीता १६ । २१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार अभेदभक्ति है, जिसमें भोक्ता और भोग्यकी विभिन्नता नहीं है। ब्रह्ममें लीन हो जाना है और सभी सुखोंको लय कर देना है; जैसे गम्भीर समुद्रमें नमककी पोटली डाल देनेपर वह अपने अस्तित्वको ही खो बैठती है।

भेदभक्तिमें भक्त भगवान्‌के साथ मुख्यतया पाँच सम्बन्धों-(शान्तभाव, दास्यभाव, सख्यभाव, वात्सल्यभाव और मधुर-भाव) मेंसे अपनी रुचिके अनुकूल किसी सम्बन्धको जोड़कर तद्वत्-भावनामें जन्म-जन्म परमानन्दमें मग्न रहता है। भगवत्-प्रेमीका ध्येय पुनर्जन्म पाकर भगवत्-कैंकर्यपरायण होना, भगवत्-सेवा-पूजा-अर्चानिष्ठ होना, जप-ध्यान करना, कथा-कीर्तन, सत्संग करना, साधु-सहवासमें निरत रहना और भगवद्-गुणगान ही है। यही नवधा भक्ति है। प्रेम-लक्षणा भक्ति—पराभक्तिका आश्रय लेकर परमानन्दकी प्राप्ति ही उसका जीवन-सर्वस्व है।

भगवान् राघवेन्द्र सरकारके साकेत-यात्राके समय मरुत्-नन्दन श्रीहनुमन्तलालजीसे प्रश्न किये जानेपर उत्तर मिला कि 'इस धरातलपर ही रहकर मैं आपका नामजापक और कथा-श्रोता होकर रहना चाहता हूँ'—

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं
तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं
मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

'भगवत्-प्रेमी मुक्ति नहीं चाहता'—यह स्वर्ण-सिद्धान्त अटल नियम सदैव, सभी युगोंमें अक्षरशः सत्य पाया जाता है। इन भगवत्-प्रेमियोंमें, चाहे वे किसी योनिमें हों—देव, दानव, दैत्य, ऋषि, मुनि, मनुष्यादि जो हों—सबमें जन्म-जन्मातर भगवत्-कैङ्कर्य करनेकी एक अमिट चाह बनी रहती है। उदाहरणार्थ, नीचे कुछ जाज्वल्यमान उक्तियाँ प्रमाणरूपमें उद्धृत की जा रही हैं—

सत्ययुग

(१) दैत्यकुलभूषण परमभागवत श्रीप्रह्लादजी नृसिंह भगवान्‌से वरदान माँगते हैं—

नाथ! योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वच्युताभक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि॥
(विष्णु० १। २०। १८)

'नाथ! जिन-जिन हजारों योनियोंमें मैं जन्म लूँ, उन-उन योनियोंमें तुम्हारी अचल अच्युत भक्ति मुझे प्राप्त हो।'

(२) वृत्रासुर—भगवान्‌से माँगता है—

अहं हरे तव पादैकमूल-
दासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते
गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः॥
न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे॥
अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥
ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं
संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः।
त्वन्मायया ऽऽत्मात्मजदारगेहे-
ष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात्॥
(श्रीमद्भा० ६। ११। २४—२७)

'प्रभो! आप मुझपर ऐसी कृपा करें कि जिससे मुझे अगले जन्ममें भी आपके चरण-कमलोंके आश्रित सेवकोंकी अनन्य भावसे सेवा करनेका अवसर प्राप्त हो। प्रियतम! मेरा मन आपके मङ्गलमय गुणोंका स्मरण करता रहे, मेरी वाणी उन्हींका गान करे और मेरा शरीर आपकी सेवामें ही लगा रहे। सर्वसौभाग्यनिधे! मैं आपको छोड़कर स्वर्ग, ब्रह्मलोक, भूमण्डलका साम्राज्य, रसातलका एकाधिपत्य, योगकी सिद्धियाँ, यहाँतक कि पुनर्जन्मनाशक मोक्ष भी नहीं चाहता। जैसे पक्षियोंके बिना पंख जमे हुए बच्चे माँकी बाट देखते रहते हैं; जैसे भूखे बछड़े गोमाताका स्तन्य-पान करनेके लिये आतुर रहते हैं और जैसे वियोगिनी पत्नी अपने प्रवासी प्रियतम पतिसे मिलनेके लिये व्याकुल रहती है, वैसे ही कमलनयन! मैं आपके चरण-दर्शनके लिये छटपटाता रहूँ। प्रभो! मैं मुक्ति नहीं चाहता। मेरे कर्मोंके फलस्वरूप मुझे बार-बार जन्म-मृत्युके चक्रमें भले ही भटकना पड़े। परंतु मैं जहाँ-जहाँ जाऊँ, जिस-जिस योनिमें जन्मूँ, वहाँ-वहाँ आपके प्यारे भक्तोंसे मेरी प्रेम-मैत्री बनी रहे। स्वामिन्! जो लोग आपकी मायासे घर-शरीर और स्त्री-पुत्रादिमें आसक्त हो रहे हैं, उनके साथ मेरा किसी प्रकारका कभी सम्बन्ध न हो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रेतायुग

(१) भरतजी प्रयागमें वर माँगते हैं—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान ।
जनम जनम रति राम पद यह बरदान न आन ॥
(मानस, अयोध्याकाण्ड २०४)

यहाँ भी मुक्तिको ठुकराकर जन्म-जन्मान्तर राम-प्रेमकी ही आकाङ्क्षा है ।

(२) बालि—रामजीसे माँगता है—

जेहिं जोनि जन्मौं कर्मबस, तहँ राम पद अनुरागऊँ ॥
(मानस, किष्किन्धाकाण्ड ९ छन्द)

(३) शरभङ्गजी—

ताते मुनि हरिलीन न भयऊ । प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ ॥
(मानस, अरण्य० ८१)

(४) वसिष्ठजी—

नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु ।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु ॥
(मानस, उत्तरकाण्ड ४९)

(५) काकभुशुण्डिजी—

भगत कलपतरु प्रनत हित कृपा सिंधु सुख धाम ।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम ॥
(मानस, उत्तरकाण्ड ८४ ख)

(६) दशरथजी—विजयोपरान्त लङ्कामें उपस्थित हैं । सगुणोपासक थे । भक्ति मिली ।

ताते उमा मोच्छ नहिं पायो । दसरथ भेद भगति मन लायो ॥
(मानस, लंकाकाण्ड १११ । ३)

द्वापरयुग

(१) कुन्ती देवी—श्रीकृष्ण भगवान्‌से माँगती हैं—

स्वकर्मफलनिर्दिष्टां यां यां योनिं व्रजाम्यहम् ।
तस्यां तस्यां हृषीकेश त्वयि भक्तिर्दृढास्तु मे ॥

'हे भगवान् श्रीकृष्ण ! अपने कर्मोंके फलस्वरूप जिन-जिन योनियोंमें मैं जाऊँ, उन-उन योनियोंमें आपमें मेरी दृढ़ भक्ति हो ।'

(२) महाभाग्यवती गोपाङ्गनाएँ—तो प्रेमस्वरूप ही हैं ।

उनकी लीला-भूमिमें तो वहाँकी रज प्राप्त करके मुक्ति ही मुक्त हो जाती है—

'ब्रज रज उड़ि मस्तक चढ़ै, मुक्ति मुक्त ह्वै जाय ।'

प्रेमोदय केवल शुद्ध सत्त्वमें ही होता है । सत्त्व, रज, तममें नहीं होता, नहीं ठहरता । व्रजाङ्गनाओंके शुद्ध सत्त्व हृदय-गगनमें प्रेम-भास्करका उदय हुआ था । उनकी दिव्य रुचियोंमें मधुर स्निग्धता आयी थी । प्रेम तो दिव्य सुधा है । इसमें किसी स्वार्थकी कोई गन्ध नहीं होती । **'तत्सुखे सुखित्वम्', 'तद्विस्मरणे परमव्याकुलता ।'** ये ब्रह्ममें लीन होना कभी नहीं चाहतीं ।

(३) राजा द्रुपद—गरुड़ध्वजके प्रति—

त्वयि भक्तिर्दृढा मेऽस्तु जन्मजन्मान्तरेष्वपि ।
कीटेषु पक्षिषु मृगेषु सरीसृपेषु
रक्षःपिशाचमनुजेष्वपि यत्र यत्र ।
जातस्य मे भवतु केशव ते प्रसादात्
त्वय्येव भक्तिरचलाव्यभिचारिणी च ॥

'हे केशव ! जन्म-जन्म आपमें मेरी भक्ति दृढ़ हो । कीट, पतङ्ग, पक्षी, राक्षस, पिशाच, मनुष्य—जिस भी योनिमें जन्म लूँ, आपमें अचल अनन्य भक्ति हो ।'

कलियुग

(१) श्रीचैतन्यमहाप्रभु—

न धनं न जनं न सुन्दरीं
कवितां वा जगदीश कामये ।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे
भवतां भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥

'मैं धन, जन, सुन्दरी कविताकी इच्छा नहीं करता; मुझे जन्म-जन्ममें ईश्वरमें अहैतुकी भक्ति हो ।'

(२) गोस्वामी तुलसीदासजी—

(क) यत्र कुत्रापि मम जन्म निजकर्मवश
भ्रमति जगयोनि संकट अनेकम् ।
तत्र त्वद्भक्ति-सज्जन-समागम सदा
भवतु मे राम विश्राममेकम् ॥
(विनय० ५७ । ८)

(ख) कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई ।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो कमठ अंडकी नाँई ॥
(विनय० १०३ । ३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ग) नाम भरोस नाम बल नाम सनेहु।
जन्म जन्म रघुनंदन तुलसिहि देहु॥
(बरवै०)

(क) कर्मवश जहाँ भी मेरा जन्म हो, जिस योनिमें भ्रमण करूँ, वहाँ-वहाँ भगवन्! आपकी भक्ति-सत्संग बराबर मिले। राम ही एक विश्राम हों।

(ख) मेरा दुष्कर्म मुझे जिस भी योनिमें ले जाकर डाले, वहाँ हे भगवन्! आप मुझपर कृपा न छोड़ें, जैसे कछुआ अपने अंडेपर स्नेह नहीं छोड़ता।

(ग) हे रघुनन्दन! तुलसीको जन्म-जन्म नाममें भरोसा, बल और स्नेह प्रदान करो।

(३) कबीरदास—

राम बुलावा देखिके दिया कबीरा रोय।
जो सुख लहु सतसंगमें सो सुख वहाँ न होय॥

कबीरदासने भी यहाँके सत्संग-सुखको मुक्तिसे अधिकतर बताया है।

बड़े-से-बड़े देवता

श्रीब्रह्माजी कहते हैं—

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो
भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम्।
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां
भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम्॥
तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद् गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम्।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्द-
स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव॥
(श्रीमद्भा० १०। १४। ३०, ३४)

'भगवन्! मुझे इस जन्ममें, दूसरे जन्ममें अथवा किसी पशु-पक्षी आदिके जन्ममें भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो कि मैं आपके दासोंमेंसे कोई एक दास हो जाऊँ और फिर आपके चरणकमलोंकी सेवा करूँ। प्रभो! इस व्रजभूमिके किसी वनमें और विशेष करके गोकुलमें किसी भी योनिमें जन्म हो जाय, यही मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात होगी; क्योंकि यहाँ जन्म हो जानेपर आपके किसी-न-किसी प्रेमीके चरणोंकी धूलि अपने ऊपर पड़ ही जायगी। प्रभो! आपके प्रेमी व्रजवासियोंका सम्पूर्ण जीवन आपका ही जीवन है। आप ही उनके जीवनके एकमात्र सर्वस्व हैं। इसलिये उनके चरणोंकी धूलि मिलना आपके ही चरणोंकी धूलि मिलना है और आपके चरणोंकी धूलि तो श्रुतियाँ भी अनादिकालसे अबतक ढूँढ़ ही रही हैं।'

भगवान् शंकर—

बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग॥
(मानस, उत्तरकाण्ड १४ क)

इस प्रकार भगवत्प्रेमियोंने मुक्ति न चाहकर नित्य प्रेमकी—सेवाकी ही इच्छा की है, चाहे कितने ही जन्म हों। यह उनकी विशेषता है।

प्रियतम-मुख सुखभरा

नहीं चाहता राज्य चक्रवर्ती मैं नहीं चाहता स्वर्ग।
नहीं चाहता विधि-सुरपति-पद नहीं चाहता मैं अपवर्ग॥
नहीं चाहता योगसिद्धि मैं नहीं चाहता पद-पाताल।
नहीं चाहता मुक्ति चतुर्विध दुर्लभ सालोक्यादि विशाल॥
जन्म-जन्ममें बनी रहे मन प्रियतमकी स्मृति मधुर अबाध।
रहे छलकता स्याम-रूप-रस-सुधा-उदधि उर मध्य अगाध॥
डूबा रहूँ उसीमें संतत रहे न अन्य राग-रति-काम।
दिखता रहे सदा मुसकाता प्रियतम-मुख सुखभरा ललाम॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवत्प्रेमी मुक्ति नहीं चाहता

(लेखक—पं० श्रीउमाशंकरजी अग्निहोत्री शास्त्री, मानसमहारथी, भागवताचार्य)

श्रीकलिपावनावतार, कलिकालिमानाशक, कविकुल-चूडामणि, कविताकाननकेसरी, काव्यकाननकलाधर श्रीमद्-गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने अनेकानेक ग्रन्थों, संतों, मतान्तोंका निष्कर्ष निकालकर संसारके समक्ष उपस्थित किया, जिसको संसारने बड़े आदरके साथ स्वीकार किया। वह तथ्य है—

सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं॥
(मानस, लंकाकाण्ड १११। ४)

अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥
भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥
(मानस, उत्तरकाण्ड)

भारतीय वाङ्मय-भण्डारमें इतने ग्रन्थ हैं कि यदि उनकी गणना की जाय तो कई ग्रन्थ ही बन जायँ। परंतु भूतभावन चन्द्रमौलिकी अहैतुकी कृपासे श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीने उस सारे भण्डारका सार एक समासरूप रामचरितमानसमें रख दिया और विचारपूर्वक विवादोंको शान्त करनेके लिये निष्कर्षरूप यह सिद्धान्त उपस्थित किया—

भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होइँ अनुकूला॥
(मानस, अरण्यकाण्ड १५। २)

प्रमाण—वालि वानरेन्द्र है। पुराणोंमें लिखा है कि वह संध्या-पूजा करने समुद्रके तटपर जाया करता था। सत्संग भी करता था। अन्यायी नहीं था। पूर्ण विवेकी भी नहीं था। सुग्रीवके कारण वैर ठन गया। फलतः रामजीके दर्शन हुए—

परा बिकल महि सर के लागें। पुनि उठि बैठि देखि प्रभु आगें॥
(मानस, किष्किन्धाकाण्ड ८। १)

मुक्तिका उपासक वालि रामजीसे ज्ञानकी चर्चा करने लगा; परंतु जो उसने संतों, प्रेमियों, ज्ञानियोंसे श्रवण किया था, जिसका निर्णय नहीं मिल पाया था, जिसका समाधान नहीं है, जो अवर्णनीय है और जिसका निरूपण नहीं है; वही सर्वाधिष्ठान, सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर, सर्वरूप, सर्वातीत, सर्वमान्य आज मुनिवेष धारण कर सम्मुख आ गया। भली प्रकार पहचाना, परखा; पश्चात् भक्त होकर बोला—

स्याम गात सिर जटा बनाएँ। अरुन नयन सर चाप चढ़ाएँ॥
पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सफल जन्म माना प्रभु चीन्हा॥
(मानस, किष्किन्धाकाण्ड ८। १-२)

अपरिचितसे परिचित हुआ, विवाद हुआ, वालिने अपनी भूल स्वीकार की और अपना हृदय चढ़ा दिया—

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर माँगऊँ।
जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ॥
यह तनय मम सम बिनय बल कल्यान प्रद प्रभु लीजिऐ।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिऐ॥
राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग॥
(मानस, किष्किन्धाकाण्ड)

अतः सिद्ध हुआ मुक्तिसे भक्ति श्रेष्ठ है।

श्रीरामकथारसिक, रामप्रेमपोषित, श्रीरामबाँह-छाँह प्राप्त, श्रीचन्द्रमौलि-कृपाप्राप्त; नीलाचल पर्वतपर नित्य नवीन नवनीत वितरित करनेवाले श्रीकाकभुशुण्डिजी महाराजके लिये, जिनका जीवन ही शिक्षाप्रद है, श्रीलोमशमुनि चाहते थे कि मेरे प्रभावसे ये मुक्तिमार्ग, निर्गुण मत, ज्ञानकी श्रेष्ठता स्वीकार कर लें। परंतु सत्य तो सत्य ही है। श्रीकाकजी कहते हैं—

तब मैं निर्गुन मत करि दूरी। सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी॥
(मानस, उत्तरकाण्ड ११०। ७)

भक्त अभय होता है—

लीन्ह श्राप मैं सीस चढ़ाई। नहिं कछु भय न दीनता आई॥
(मानस, उत्तरकाण्ड १११। ८)

भक्त प्रत्येक दशामें हर्षित रहता है, अपने भगवान्की कृपाको ही देखा करता है। अनिष्ट करनेवालेको भी प्रणाम करता है। भयभीत कभी नहीं होता।

तुरत भयउँ मैं काग तब पुनि मुनि पद सिरु नाइ।
सुमिरि राम रघुबंस मनि, हरषित चलेउँ उड़ाइ॥
(मानस, उत्तरकाण्ड ११२ क)

तजउँ न तन निज इच्छा मरना। तन बिनु बेद भजन नहिं बरना॥
(मानस, उत्तरकाण्ड)

भजनका अर्थ ही सेवा करना है और सेवा भक्त ही करता है। भक्त निष्कामी होता है, पुरुषार्थी होता है, वीर होता है। वह यही चाहता है कि मैं बारंबार जन्म ग्रहण करूँ और शरीर, मन, वाणी, इन्द्रियोंसे सदा-सर्वदा केवल भगवान्की सेवा करता रहूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्युके समय भगवन्नामका महत्त्व

(लेखक—श्रीश्रीकान्तशरणजी, समस्त तुलसीसाहित्यके भाष्य एवं तिलककार)

महत्त्व-प्रमाण

मृत्युके समयका एक बारका भी नामोच्चारण अत्यन्त महत्त्वशाली है; यथा—

जा कर नाम मरत मुख आवा । अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा ॥
(रामचरितमानस, अरण्य० ३०)

जाको नाम मरत मुनि दुरलभ तुमहि कहाँ पुनि पैहौं ॥
(गीतावली, अरण्य० १३)

राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान ॥
(रामचरितमानस, अरण्य० २०)

मृत्युकाले द्विजश्रेष्ठ रामनामेति यः स्मरेत् ।
स पापात्मापि परमं मोक्षमाप्नोति जैमिने ॥
(पद्मपुराण, क्रियायोग०, व्यासवचन)

अर्थ—(श्रीव्यासजी जैमिनिसे कहते हैं कि) हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! मृत्यु-कालमें 'राम' इस नामका जो स्मरण करता है, वह पापी भी परम मोक्ष-पद प्राप्त करता है; तथा—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥
(गीता ८ । ५)

'जो मनुष्य अन्तकालमें भी मेरा ही स्मरण करता हुआ शरीर त्याग करता है, वह मेरे स्वरूपको प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है ।'

यहाँतक मृत्युकालके नामोच्चारणके प्रमाण लिखे गये । अब नाम-श्रवणका माहात्म्य सुनिये—

मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम् ।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव ॥
(श्रीरामोत्तरतापनी० ३ । ८)

'श्रीरामजीने श्रीशिवजीसे कहा है कि जिस किसी मरनेवालेके दाहिने कानमें आप यह मन्त्र (राममन्त्र) देंगे, वह मुक्त हो जायगा ।'

कासीं मरत जंतु अवलोकी । जासु नाम बल करउँ बिसोकी ॥
(रामचरितमानस, बाल० ११८)

माहात्म्य-विमर्श

मृत्युकालके नाम-स्मरणका ऐसा प्रभाव क्यों है ? इसका वेद-वाक्यके आधारपर विचार किया जाता है—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।
(यजुर्वेद ३२ । ३)

'जिस परमात्माका नाम और यश महान् हैं, उसकी बराबरीका कोई नहीं है ।'

नामकी महिमा—

चहु जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ । कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ ॥
(रामचरितमानस, बाल० २१)

'चारों युगों और चारों वेदोंमें नाम-प्रभाव कहा गया है । कलिकालमें विशेषरूपमें यही उपाय है; क्योंकि इसमें अन्य उपायोंका अभाव-सा है; इससे इसमें नामका प्रभाव प्रत्यक्ष है । तथा—

ध्यानु प्रथम जुग मखबिधि दूजें । द्वापर परितोषत प्रभु पूजें ॥
कलि केवल मल मूल मलीना । पाप पयोनिधि जन मन मीना ॥
नाम कामतरु काल कराला । सुमिरत समन सकल जग जाला ॥
(रामचरितमानस, बाल० २६)

अर्थात् सत्ययुग, त्रेता और द्वापरमें क्रमशः ध्यान, यज्ञ और पूजन विधिरूपमें रहते हैं; नामाराधनसे इन विधियोंकी रक्षा एवं पूर्ति होती है । यथा—

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी । बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी ॥
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा । अकथ अनामय नाम न रूपा ॥
(रामचरितमानस, बाल० २१)

'कलि केवल—कलिकालमें यह नाम केवल (विधियोंके बिना स्वयं) ही सब कल्याण करता है; क्योंकि कलियुग पापमूल एवं मलिन है; इसमें लोग पाप-सागरके मीन हो रहे हैं । अतः राजारूप रामनामके संरक्षणसे ही अन्य साधन सिद्ध होते हैं ।' तथा—

नाम रामको अंक है सब साधन हैं सून ।
अंक गएँ कछु हाथ नहिं अंक रहें दस गून ॥
(दोहावली १०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'श्रीरामका नाम अङ्क (१, २, ३) के समान है और समस्त साधन (कर्म, योग, ज्ञान आदि) शून्य (०) के समान हैं। अङ्कके चले जानेपर हाथमें कुछ नहीं रह जाता (शून्यका अर्थ कुछ न रहना है) और अङ्क रह जानेपर वे शून्य दसगुने (१०, २०, ३०) महत्त्व पाते हैं।' तथा—

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥
(रामचरितमानस, बाल० २६)

'भक्ति-वैराग्य-विज्ञान-शम-दान-दम,
नाम आधीन साधन अनेकम्॥'
(विनयपत्रिका ४६)

इसीसे नामको सदासे महान् यश प्राप्त होता आया है; यथा—

चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। भए नाम जपि जीव बिसोका॥
(रामचरितमानस, बाल० २६)

कुछ उदाहरण

(१) जैसे कोई यशस्वी वैद्य अच्छे-अच्छे देशोंमें जड़ी-बूटीकी ओषधियोंमें कुछ रसायन देकर बहुतोंका कल्याण करता है, इससे उसका यश फैल जाता है। संयोग-से यदि वह किसी ऐसे देशमें जा पहुँचता है, जहाँ जड़ी-बूटी नहीं मिलती; वहाँ वह रसायन मात्रसे रोगियोंकी रक्षा कर अपने यशकी रक्षा करता है और अपने नामकी लज्जा रखता है; वैसे यशस्वी राम-नाम भी विधिहीन कलिकालमें अपने ही प्रभावरूपी रसायनसे अपनी लज्जा रखता है। ध्यान, यज्ञ और पूजन आदि विधियोंके अभाव-की भाँति नाम-जप विधिके अभावमें भी अपने यशकी रक्षा करता है। गोस्वामीजीने कहा है—

सो धौं को जो नाम लाज ते नहिं राख्यो रघुबीर।
कारुनीक बिनु कारन ही हरि हरी सकल भव भीर॥ १॥
बेद-बिदित जग-बिदित अजामिल बिप्रबन्धु अघ-धाम।
घोर जमालय जात निवार्‌यो सुत-हित सुमिरत नाम॥ २॥
पसु पाँमर अभिमान-सिंधु गज ग्रस्यो आइ जब ग्राह।
सुमिरत सकृत सपदि आये प्रभु हर्‌यो दुसह उर-दाह॥ ३॥
ब्याध निषाद गीध गनिकादिक अगनित औगुन मूल।
नाम-ओट तें राम सबनि की दूरि करी सब सूल॥ ४॥
(बिनय-पत्रिका १४४)

श्रीरामजी अपने नामकी लज्जा रखनेके लिये 'बिनु कारन ही'—नाम-जप विधि-हीन जापककी भी भव-भीरको हरण करते हैं; उसके प्रति करुणा हो आती है और उसके रक्षार्थ आपके हृदयमें त्वरा और विह्वलता जग जाती है। यथा—

अंतरजामिहु तें बड़ बाहेर जामि हैं, जे राम नाम लिये तें।
धावत धेनु पेन्हाइ लवाई ज्यों बालक बोलनि कान कियें तें॥
(कवित्त०, उत्तर० १२९)

इसी पदमें आगे अजामिल और गजेन्द्रादिके कई उदाहरण हैं—

(२) अजामिलने बेटेके लक्ष्यपर 'नारायण' नाम लिया है। उच्चारण ठीक था, पर लक्ष्य ठीक नहीं था। इसपर भगवान्‌के पार्षदोंने बाद होनेपर अन्तमें कहा कि इसने यमदूतोंसे डरकर 'नारायण' यह नाम पुकारा है। इस डरसे बचानेवाले तो भगवान् नारायण ही हैं (बेटा नारायण नहीं)। अतः यह भगवान्‌के द्वारा ही रक्षणीय है।

(३) गजेन्द्रके हृदयका लक्ष्य ठीक था, पर उच्चारण नहीं था। उसने डूबनेके समय भगवान्‌का ध्यान रखकर सूँड़का अग्रभाग फैला दिया कि क्षणभर भी बच जाऊँ। इतनेमें भगवान्‌ने 'रा' उच्चारणका संकेत मान लिया; फिर डूबनेसे प्रथम ही भगवान्‌ने बचा लिया। डूबनेमें मुँह बंद करनेमें 'म' का संकेत भी हो जाता, पर आधे नामके संकेतपर ही उसकी रक्षा हो गयी; यथा—

'तर्‌यौ गयंद जाके अर्द्ध नाँय।' (विनयपत्रिका ८३)

यहाँ नाम लेनेके संकेतमात्रपर रक्षा हुई। ऐसे ही व्याधादिके भी भाव हैं। ऐसे यशस्वी श्रीराम-नामका अन्तके समय एक बार स्मरणपर मुक्ति होनेपर विचार करना है—

(१) अन्तका एक बारका भी नामोच्चारण इसके समस्त पापोंको भस्म कर देता है; यथा—

'जासु नाम पावक अघ तूला।'
(रामचरितमानस, अयोध्या० २४७)

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः॥
(श्रीमद्भा० ६। २। १४, १८)

'संकेतसे, परिहासमें, स्तोभ या क्रीड़ापूर्वक भी भगवान्‌का नाम लेनेसे समस्त पाप नष्ट होते हैं। अज्ञान अथवा ज्ञानपूर्वक किया हुआ पुण्यश्लोक भगवान्‌का नाम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्चारण मनुष्यके पापोंको उसी प्रकार जला देता है, जैसे किसी प्रकार डाला हुआ ईंधन अग्निमें भस्म हो ही जाता है। फिर साथ ही, प्राण निकल जानेपर और पाप होते नहीं, इससे यह मनुष्य नाम-प्रभावसे मुक्त हो जाता है। यथा—

पाई न केहि गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना॥
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघ रूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते॥

(रामचरितमानस, उत्तर० १२९)

(२) अन्तमें नामोच्चारणके साथ शरीर छोड़नेमें भगवान् अपने नामकी महत्ता सिद्ध करते हुए यह मान लेते हैं कि इसने मेरा नाम लेकर जो शरीर छोड़ा है, इसका तात्पर्य यह कि अपना शरीर मुझे संकल्प कर दिया। अतः इस शरीरके सम्बन्धवाले एवं इसके पूर्व शरीरोंके सभी पाप और पुण्य भी मुझे ही पचाना चाहिये, बस, इसपर यह सभी पापों और पुण्योंसे रहित होकर मुक्त हो जाता है। नामसे ही भगवान् अपने नामवाले स्वरूप एवं धाम-प्राप्तिकी आकाङ्क्षा भी पूरी करते हैं। प्रमाण ऊपर आ गये हैं।

मृत्युके समय भगवन्नामका महत्त्व

(लेखक—याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा, गौड, वेदाचार्य)

चौरासी लाख योनियोंमें परिभ्रमण करता हुआ जीवात्मा भगवत्कृपासे मनुष्य-योनिको प्राप्त करता है। जीव जब गर्भावस्थामें आता है, तो वह वहाँके भयंकर कष्टोंसे पीड़ित होकर अपने आत्मोद्धारके लिये भगवान्‌की स्तुति करता हुआ सर्वदा भगवन्नामोच्चारण करनेकी प्रतिज्ञा करता है। किंतु वह जीव जब गर्भसे बाहर आता है, तब अपनी की हुई प्रतिज्ञाको भूलकर सांसारिक मायामोहमें आसक्त हो जाता है। सांसारिक मायामोहमें आसक्त होनेके कारण वह जीव आत्मोद्धार न कर वही कर्म करता है, जिससे बन्धनको प्राप्त होकर सर्वदा जन्म-मरणके चक्रमें फँसा रहता है—

'तदर्थं कुरुते कर्म यद् बद्धो याति संसृतिम्।'

(श्रीमद्भागवत ३। ३१। ३१)

मानव-जन्म बड़ा ही दुर्लभ है। भगवत्कृपासे मानव-जन्मको प्राप्तकर जो मनुष्य आत्मोद्धार नहीं करता, उसका मानव-जन्म धारण करना ही व्यर्थ है। अतः मनुष्यको आत्मोद्धारार्थ अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। आत्मोद्धारके लिये भगवन्नामोच्चारण ही सर्वश्रेष्ठ सहज साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य आत्मोद्धार कर सकता है।

भगवान्‌ने मनुष्यके शरीरमें हाथ, पैर, मुख, वाणी, कान, नाक, मन, सिर आदि जो अङ्ग दिये हैं, वे सभी भगवत्सेवार्थ दिये हैं। अतः भगवान्‌के दिये हुए हाथ, पैर आदिसे भगवान्‌के तत्-तत् अङ्गकी सेवा करनी चाहिये।

भगवान्‌ने मनुष्यके शरीरमें मुखका जो निर्माण किया है, वह केवल भोजन करनेके लिये नहीं, किंतु भगवन्नामोच्चारण करनेके लिये किया है। अतः मनुष्यको भगवन्नामोच्चारण करके ही भोजन करना चाहिये। जो मनुष्य भगवन्नामोच्चारण न कर केवल भोजन करता है, वह महापापी और भगवान्‌का विरोधी है।

वस्तुतः मुखकी यथार्थ शोभा और यथार्थ उपयोग भगवन्नामोच्चारण करनेसे ही है। जो मनुष्य अपने मुखसे भगवन्नामोच्चारण नहीं करता, उसका मुख निरर्थक ही है। इसलिये मनुष्यको अपने मुखको सार्थक करनेके लिये सर्वदा भगवन्नामोच्चारण करना चाहिये।

भगवान्‌ने मनुष्यके मुखमें जो वाणी दी है, वह व्यर्थकी बातें करनेके लिये नहीं दी है, किंतु भगवान्‌की लीलाओंके गायन करनेके लिये दी है। जो मनुष्य अपनी वाणीके द्वारा भगवान्‌की लीलाओंका गायन नहीं करता, उसकी वाणी मेंढककी जीभके सदृश कही गयी है—

जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत
न चोपगायत्युरुगायगाथाः॥

(श्रीमद्भागवत २। ३। २०)

'जिस मनुष्यकी जीभ भगवान्‌की लीलाओंका गायन नहीं करती, वह मेंढककी जीभके समान टर्र-टर्र करनेवाली है। उसका तो न रहना ही अच्छा है।'

और भी कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा
न कथ्यते यद् भगवानधोक्षजः ।
तदेव सत्यं तदु हैव मङ्गलं
तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥
तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ॥
न तद् वचश्चित्रपदं हरेर्यशो
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।
तद् ध्वाङ्क्षतीर्थं न तु हंससेवितं
यत्राच्युतस्तत्र हि साधवोऽमलाः ॥
(श्रीमद्भागवत १२ । १२ । ४८–५०)

'जिस वाणीके द्वारा अविनाशी भगवान् श्रीकृष्णके नाम, लीला, गुण आदिका उच्चारण नहीं होता, वह वाणी भावपूर्ण होनेपर भी निरर्थक है, सुन्दर होनेपर भी असुन्दर है और सर्वोत्तम विषयोंका प्रतिपादन करनेवाली होनेपर भी असत्कथा है । जो वाणी और वचन भगवान्‌के गुणोंसे परिपूर्ण रहते हैं, वे ही परम पावन हैं, वे ही मङ्गलमय हैं और वे ही परम सत्य हैं ।

'जिस वाणीसे भगवान् श्रीकृष्णके परम पवित्र यशका गान होता है, वही परम रमणीय, रुचिकर एवं प्रतिक्षण नयी-नयी जान पड़ती है । उससे अनन्तकालतक मनको परमानन्दकी अनुभूति होती रहती है । मनुष्योंका समस्त शोक, चाहे वह समुद्रके समान लंबा और गहरा क्यों न हो, उस वाणीके प्रभावसे सदाके लिये सूख जाता है ।

'जिस वाणीसे जगत्‌को पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके यशका कभी गान नहीं होता, वह कौओंके लिये उच्छिष्ट फेंकनेके स्थानके समान अत्यन्त अपवित्र है । मानस-सरोवरनिवासी हंस अथवा ब्रह्मधाममें विहार करनेवाले भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहंस भक्त उसका कभी सेवन नहीं करते । निर्मल हृदयवाले साधुजन तो वहीं निवास करते हैं, जहाँ भगवान् रहते हैं ।'

भगवान्‌ने मनुष्यको जो जिह्वा दी है, वह खासकर भगवन्नामोच्चारणके लिये ही दी है । अतः जो मनुष्य भगवान्‌की दी हुई जिह्वाके द्वारा भगवन्नामोच्चारण करता है, वह अवश्य ही मोक्षकी सीढ़ियोंपर आरूढ़ हो सकता है । जो मनुष्य भगवान्‌की दी हुई जिह्वाके द्वारा भगवन्नामोच्चारण नहीं करता, वह मोक्षकी सीढ़ियोंपर आरूढ़ नहीं हो सकता । कहा भी है—

जिह्वां लब्ध्वापि यो विष्णुं कीर्तनीयं न कीर्तयेत् ।
लब्ध्वापि मोक्षनिःश्रेणिं स नारोहति दुर्मतिः ॥

'जो मनुष्य जिह्वा प्राप्त करके भी कीर्तनीय भगवान् विष्णुका कीर्तन (उच्चारण) नहीं करता, वह कुत्सित बुद्धिवाला मनुष्य मोक्षकी सीढ़ियोंको पाकर भी उनपर चढ़नेमें सर्वदा असमर्थ रहता है ।'

अतः मनुष्यको अपनी जिह्वाद्वारा भगवन्नामोच्चारण कर मोक्षकी सीढ़ियोंपर आरूढ़ होना चाहिये । भगवन्नामोच्चारणद्वारा मोक्षकी सीढ़ियोंपर आरूढ़ होनेसे ही मनुष्य परम पद (मोक्ष) को प्राप्त कर सकता है ।

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु याव-
न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥
(श्रीमद्भा० ११ । ९ । २९)

'यह मानव-शरीर यद्यपि अनित्य और मृत्युग्रस्त है तथापि इससे परम पुरुषार्थकी प्राप्ति हो सकती है । इसलिये अनेक जन्मोंके बाद यह अत्यन्त दुर्लभ मानव-शरीर पाकर विचारशील मनुष्यको शीघ्रातिशीघ्र मृत्युसे पहले ही मोक्ष-प्राप्तिके लिये प्रयत्न कर लेना चाहिये । मानव-जीवनका मुख्य उद्देश्य मोक्ष-प्राप्ति ही है, विषय-भोग नहीं । विषय-भोग तो सभी योनियोंमें प्राप्त हो सकते हैं, जो कि मनुष्यके लिये सर्वथा त्याज्य हैं ।'

समस्त योनियोंमें मनुष्य-योनि श्रेष्ठ कही गयी है । मनुष्य-योनिके श्रेष्ठ होनेका कारण यह है कि इसी योनिके द्वारा 'मोक्ष'की प्राप्ति की जा सकती है, अन्य योनियोंके द्वारा नहीं की जा सकती । मनुष्यके लिये 'मोक्ष'की प्राप्ति बहुत ही श्रेष्ठ और आवश्यक वस्तु है । मोक्षकी प्राप्ति होनेके अनन्तर मनुष्य सदाके लिये **'पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्'** के चक्करसे मुक्त हो जाता है । अतः मनुष्यको मोक्षकी प्राप्तिके लिये विशेष प्रयत्न करना चाहिये ।

दुःखका विषय है कि जिस मोक्षकी प्राप्तिसे मनुष्य बारंबार जीवन-मरणके चक्करसे छूट जाता है, उस मोक्षकी प्राप्तिके लिये वह प्रयत्न नहीं करता; किंतु साधारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पशु-पक्षीकी तरह आहार, निद्रा, भय, मैथुनादि अनित्य लौकिक सुख-भोगोंमें ही आसक्त रहता है। ऐसे मनुष्यकी तुलना उस व्यक्तिसे की गयी है, जो अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये ऊपरकी मंजिलमें पहुँचकर, अज्ञानवश पुनः अकस्मात् नीचे गिर जाता है। ऐसे मनुष्यके लिये ही भगवान् वेदव्यासजीने कहा है—

'तमारूढच्युतं विदुः।' (श्रीमद्भा० ११।७।७४)

अतः बुद्धिमान् मनुष्यको संसार-चक्रसे छुटकारा पानेके लिये मोक्षप्राप्त्यर्थ सदा प्रयत्न करना चाहिये। मोक्ष-प्राप्तिके लिये भगवन्नामसे बढ़कर और कोई सुलभ साधन नहीं है। इसलिये मनुष्यको मोक्ष-प्राप्तिके लिये सर्वदा भगवन्नामका उच्चारण करना चाहिये।

भगवन्नामका उच्चारण वही मनुष्य कर सकता है, जिसका भगवान्में श्रद्धा और विश्वास हो। श्रद्धा और विश्वासके बिना मनुष्य भगवन्नामका उच्चारण नहीं कर सकता। अतः भगवन्नामके उच्चारणार्थ मनुष्यको भगवान्के प्रति श्रद्धा और विश्वास रखना चाहिये।

भगवान्के प्रति श्रद्धा और विश्वासका होना भी भगवत्कृपापर ही निर्भर है। भगवत्कृपाके बिना मनुष्य भगवान्में श्रद्धा और विश्वास नहीं कर सकता। अतः स्पष्ट है कि भगवत्कृपासे ही मनुष्य भगवान्के प्रति श्रद्धा और विश्वासको प्राप्तकर भगवन्नामका उच्चारण कर सकता है।

भगवन्नामका उच्चारण मनुष्य-जीवनके प्रारम्भकालसे ही होना चाहिये। जो मनुष्य अपने जीवनके प्रारम्भकालसे ही भगवन्नामके उच्चारणका अभ्यास कर लेता है, वही अपनी मृत्युके समयमें भी भगवन्नामका उच्चारण कर सकता है। जो मनुष्य अपने जीवनके प्रारम्भकालमें भगवन्नामके उच्चारणका अभ्यास नहीं करता, उसके लिये मृत्युके समय भगवन्नामका उच्चारण करना बहुत ही कठिन है। अतः मनुष्यको अपने जीवनके प्रारम्भकालसे ही भगवन्नामके उच्चारण करनेका अभ्यास कर लेना चाहिये, जिससे वह अपनी मृत्युके समयमें भी भगवन्नामका उच्चारण कर सके। जो मनुष्य अपने समस्त जीवनमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवन्नामका उच्चारण करता रहता है, वह निश्चित ही जीवन-मरणके चक्करसे छूटकर मुक्त हो जाता है। अतः मोक्षाभिलाषीको उठते, बैठते, सोते, जागते, चलते, फिरते आदि सभी अवस्थाओंमें सर्वदा भगवन्नामका उच्चारण करना चाहिये।

वेदादि सद्ग्रन्थोंका तो यहाँतक कहना है कि जिस मनुष्यने प्रमादवश जीवनपर्यन्त कभी भी भगवन्नामका उच्चारण नहीं किया, उसने भी भगवत्कृपासे मृत्युके समयमें भी विवश होकर यदि भगवन्नामका उच्चारण कर लिया, तो उसके समस्त पापोंका क्षय हो जाता है और वह निश्चित ही मुक्तिको प्राप्तकर भगवत्सायुज्य लाभ करता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण अजामिल है, जिसने मृत्युके समय अपने पुत्रके व्याजसे भगवान्का नाम लेकर परम पदको प्राप्त किया*—

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन्॥
(श्रीमद्भा० ६।२।४९)

'अजामिल-जैसे पापीने मृत्युके समय पुत्रके बहाने भगवान्के नामका उच्चारण किया, जिसके फलस्वरूप उसे परमपद (वैकुण्ठ) की प्राप्ति हुई। फिर जो लोग श्रद्धा-भक्तिसे सावधान होकर भगवन्नामका उच्चारण करते हैं, उनकी भगवद्धामकी प्राप्तिमें अर्थात् उनके मुक्त होनेमें तो संदेह ही क्या है?'

प्राणत्यागके समय भगवन्नामके उच्चारण और स्मरण करनेसे मनुष्य 'मोक्ष' प्राप्त करता है, इस विषयका उल्लेख भागवत, गीता आदि शास्त्रोंमें बारंबार किया गया है—

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि
नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति।
ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा
संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये॥
(श्रीमद्भा० ३।९।१५)

"जो मनुष्य प्राणत्यागके समय आपके (भगवान्के) अवतार, गुण और कर्मोंको बतलानेवाले 'गोविन्द', 'वासुदेव', 'जनार्दन' आदि नामोंका विवश होकर भी उच्चारण करते हैं, वे अनेकों जन्मोंके पापोंसे तत्काल मुक्त होकर माया आदिके आवरणोंसे रहित होकर ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं। आप नित्य अजन्मा हैं; मैं आपकी शरण स्वीकार करता हूँ।"

* अजामिलोऽपि पापात्मा यन्नामोच्चारणादनु।
प्राप्तवान् परमं धाम तं वन्दे लोकसाक्षिणम्॥
(पद्मपुराण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म्रियमाण आतुरः
पतन् स्खलन् वा विवशो गृणन् पुमान् ।
विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं
प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ॥
(श्रीमद्भा० १२ । ३ । ४४)

'मनुष्य मरनेके समय आतुर अवस्थामें अथवा गिरते या फिसलते समय विवश होकर भी यदि भगवान्‌के किसी एक नामका उच्चारण कर ले, तो वह मनुष्य समस्त कर्मबन्धनसे मुक्त होकर उत्तम गतिको प्राप्त करता है। किंतु फिर भी इस कलियुगमें कलियुगसे प्रभावित होकर प्राणी उस भगवान्‌की आराधना नहीं करते, यह बड़े दुःखकी बात है।'

जाकर नाम मरत मुख आवा । अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा ॥
(रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड ३० । ३)

मृत्युकाले द्विजश्रेष्ठ रामनामेति यः स्मरेत् ।
स पापात्मापि परमं मोक्षमाप्नोति जैमिने ॥
(पद्मपुराण, क्रियायोग०)

'हे जैमिनि ! जो मृत्युकालमें रामनामका स्मरण करता है, वह पापात्मा होनेपर भी परम मोक्ष-पदको प्राप्त करता है।'

भगवान् श्रीकृष्णने अपने नामके स्मरणके महत्त्वके सम्बन्धमें अर्जुनसे यों कहा है—

नामस्मरणमात्रेण प्राणान् मुञ्चन्ति ये नराः ।
फलं तेषां न पश्यामि भजामि तांश्च पार्थिव ॥
तस्मान्नामानि कौन्तेय भजस्व दृढचेतसा ।
राम राम सदा युक्तास्ते मे प्रियतमाः सदा ॥

''हे पार्थ ! जो मनुष्य मेरे नामका स्मरण करते हुए प्राणत्याग करते हैं, उनके फलको मैं स्वयं भी नहीं कह सकता हूँ, किंतु मैं स्वयं उनका भजन करता हूँ। इसलिये स्थिरचित्त होकर भगवान्‌के नामका ही स्मरण और कीर्तन करना चाहिये। जो 'राम-राम' इस प्रकार निरन्तर जपते रहते हैं, वे मेरे अत्यन्त प्रिय हैं।''

भगवान् बड़े ही दयालु हैं। वे अपना नाम-स्मरण करनेवाले भक्तको सदा स्मरण करते हैं। भगवन्नाम-स्मरण करनेवाला कोई भक्त यदि अपने पूर्वजन्मके संचित पापोंके कारण मृत्युकालमें ज्ञानशून्य (बेहोश) होकर भगवन्नाम-स्मरण करनेमें असमर्थ हो जाता है, तो उसका भगवान् स्वयं स्मरण करते हैं और उसे परमगति देते हैं। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

ततस्तं म्रियमाणं तु काष्ठपाषाणसन्निभम् ।
अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम् ॥

'काष्ठ और पाषाणके सदृश म्रियमाण उस भक्तका मैं स्वयं स्मरण करता हूँ और उसको परमगति देता हूँ।'

और भी कहा है—

कफवातादिदोषेण मद्भक्तो न च मां स्मरेत् ।
तस्य स्मराम्यहं नो चेत् कृतघ्नो नास्ति मत्परः ॥

'मेरा भक्त यदि कफ-वातादि दोषोंके कारण (मृत्युके समय) मेरा स्मरण करनेमें असमर्थ होता है, तो मैं स्वयं उसका स्मरण करता हूँ। यदि मैं अपने स्मरण करनेवाले भक्तको मृत्युके समय भूल जाऊँ, तो मेरेसे बढ़कर कोई कृतघ्न नहीं हो सकता।'

भगवान्‌की दयाशीलता और कृपाशीलता अवर्णनीय है। वे अपने भक्तकी जिम्मेदारी जीवनपर्यन्ततकके लिये स्वयं वहनकर सदा उसका सर्वप्रकारसे कल्याण करते हैं। अतः भगवद्भक्त मनुष्यको श्रद्धा-भक्तिपूर्वक अपने शरीर, वाणी, मन, बुद्धि, इन्द्रिय और आत्मा आदि सभीको भगवान्‌में समर्पितकर सर्वदा उनके नाम, लीला और स्वरूपका स्मरण और उच्चारण करना चाहिये।

अब हम उन सच्चिदानन्द भगवान्‌को प्रणाम करते हुए अपने लेखको समाप्त करते हैं, जिनके स्मरण-मात्रसे मनुष्यके समस्त प्रकारके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं—

प्रयाणे चाप्रयाणे च यन्नाम स्मरतां नृणाम् ।
सद्यो नश्यन्ति पापौघा नमस्तस्मै चिदात्मने ॥

'मृत्युकालमें अथवा जीवनकालमें भगवान्‌का नाम-स्मरण करनेवाले मनुष्योंके सभी प्रकारके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। उन चिदात्मा भगवान्‌को नमस्कार है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदोंमें पुनर्जन्म और मोक्षका सैद्धान्तिक विवेचन

(लेखक—श्रीश्रुतिशीलजी शर्मा)

मोक्ष और पुनर्जन्म-सम्बन्धी प्रश्नके समाधानके लिये हमें पूर्णरूपसे 'शब्द-प्रमाण'का ही सहारा लेना पड़ता है और जब शब्दप्रमाण पुनर्जन्म और मोक्षके सिद्धान्तोंका मण्डन करते हैं, तब हमें इन सिद्धान्तोंको स्वीकार करना ही पड़ता है।

शब्द क्या है ? न्यायदर्शनकी परिभाषाके अनुसार 'आप्तोपदेश' ही शब्द है[1] अर्थात् आप्तोंके द्वारा कहे गये वचन ही शब्दप्रमाण हैं। आप्त कौन है ? न्यायदर्शनके व्याख्याकार वात्स्यायनके अनुसार 'आप्त वही है कि जिन्होंने धर्मका साक्षात्कार किया हो।[2]' इस धर्मका ज्ञान प्राप्त करना मननशील मनुष्यका स्वभाव है और मनुजीके अनुसार 'धर्मकी जिज्ञासा रखनेवालोंके लिये श्रुति या वेद ही परम प्रमाण हैं।[3]' उन परम प्रमाणभूत वेदोंका पुनर्जन्म और मोक्षके बारेमें क्या मन्तव्य है, इसीका संक्षिप्त विवेचन इस लेखका उद्देश्य है।

आगे-पीछे जानेवाला अमर्त्य

वेदोंमें अप्रत्यक्ष जगत्की पहेलीका हल निकालनेके बारेमें महर्षि दीर्घतमाका **'अस्यवामीय सूक्त'** (ऋग्वेद १। १६४) अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। उसी सूक्तका ३८वाँ मन्त्र एक अमर्त्य तत्त्वका वर्णन करता है—'एक अमर तत्त्व दूसरे मरणशील तत्त्वके साथ एक स्थानपर रहकर अपनी शक्तिसे बँधकर आगे-पीछे जाता है। इन दोनों तत्त्वोंमेंसे एक तत्त्वको तो मनुष्य प्रत्यक्ष देखते हैं और दूसरेको नहीं देख पाते[4]।'

इस मन्त्रमें अमर तत्त्वका संकेत आत्माकी ओर है और मरणशीलका संकेत शरीरकी ओर। इनमेंसे एक तत्त्व 'शरीर'को तो मनुष्य देख और जान सकते हैं और दूसरा तत्त्व 'अमर आत्मा' उनके लिये अप्रत्यक्ष ही रहता है। परस्पर विरुद्ध होते हुए भी ये दोनों तत्त्व सयोनिः अर्थात् एक ही स्थानपर रहनेवाले और शाश्वत अर्थात् चिरन्तन हैं। आत्मा शरीरके द्वारा ही प्रकट होता है और शरीरमें चैतन्यताका कारण आत्मा है; इस प्रकार दोनों परस्पराश्रित हैं। शरीर आत्माका भोगाधिष्ठान है।[5] इसी शरीरमें आकर आत्मा अपने पूर्वकृत कर्मोंका भोग भोगता है।

आत्मा जब इस शरीरके साथ संयुक्त हो जाता है, तब वह अनेक प्रकारके प्रपञ्चोंमें पड़ जाता है और ये प्रपञ्च ही उसके लिये बन्धन सिद्ध होते हैं। ये बन्धन वस्तुतः उसके अपने न होकर सत्त्व, रज और तम—इन गुणोंसे युक्त प्रकृतिके ही होते हैं। इनमें तमोगुणसे बँधा हुआ मनुष्य 'कामी' बनता है, रजोगुणसे लिप्त होकर 'अर्थवान्' बनता है और सत्त्वगुणसे युक्त होकर 'धार्मिक' बनता है।

वेदके उपर्युक्त मन्त्रमें आये हुए 'अपाङ्' और 'प्राङ्'—ये दोनों शब्द क्रमशः पुनर्जन्म और मोक्षके वाचक हैं। पुनर्जन्म और मोक्ष—दोनों ही हालतोंमें आत्माको इस शरीरमें आना ही पड़ता है; पर जो आत्मा इस शरीरमें आकर प्रकृतिके तमोगुण या रजोगुणसे बँध जाता है, वह अपाङ् अर्थात् पीछेकी तरफ—पृथ्वीपर लौटता है, यही वस्तुतः पुनर्जन्म है। पर जो आत्मा इस शरीरमें आकर भी धार्मिक प्रवृत्तिका ही रहता है, वह प्राङ् अर्थात् आगे बढ़ता जाता है। दूसरे शब्दोंमें वह मोक्षकी तरफ बढ़ता चला जाता है।

दो सुपर्ण

दीर्घतमाके इसी सूक्तके बीसवें मन्त्रमें ऋषिने एक रूपकके द्वारा इस सिद्धान्तकी विवेचना की है। इस मन्त्रमें बताया है—

'दो मित्र रूपसे रहनेवाले सुपर्ण एक ही वृक्षपर बैठे हुए हैं। उनमें एक इस वृक्षके मीठे-मीठे फलोंको खाता है, जब कि दूसरा सुपर्ण फलोंको न खाता हुआ केवल प्रकाशित होता है[6]।' यह वृक्ष प्रकृतिका प्रतीक है और इस

---

१. आप्तोपदेशः शब्दः। (१। १। ७)

२. आप्तः खलु साक्षात्कृतधर्मा। (१। १। ७ की टीका)

३. धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः। (मनुस्मृति २। १३)

४. अपाङ् प्राङ् एति स्वधया गृभीतः अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्॥
(ऋग्वेद १। १६४। ३८)

५. भोगाधिष्ठानं शरीरम्। (न्यायदर्शन)

६. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति॥
(ऋग्वेद १। १६४। २०; मुण्डक० ३। १। १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृतिरूपी वृक्षपर आत्मा और परमात्मारूपी दो पक्षी बैठे हैं, जिनमें आत्मारूपी पक्षी तो इस प्रकृतिके फलोंको खाता है और परमात्मारूपी पक्षी केवल द्रष्टाके रूपमें देखता रहता है। इस वृक्षके फलोंको खाना ही जीवात्माके बन्धनका कारण है; क्योंकि इन फलोंमें आसक्त होकर वह अपना स्वत्व खो बैठता है और उस स्वत्वके खोनेसे उसकी शक्ति कम हो जाती है और शक्तिके कम हो जानेके कारण वह परतन्त्र हो जाता है; और इस परतन्त्रताके कारण वह जन्म-मरण या पुनर्जन्मके चक्रमें पड़ता है। पर जब वह भोगेच्छाको छोड़कर अपने स्वरूपमें अवस्थित हो जाता है, तभी वह पूर्णरूपसे स्वाधीन हो जाता है और मोक्षका अधिकारी बन जाता है।

वस्तुतः आत्माका सच्चा स्वरूप वह नहीं है, जो बन्धनमें पड़े हुए आत्माका देखा जाता है। आत्माका सच्चा स्वरूप सच्चिदानन्द है। वह परमात्माका एक अंश है। जिस प्रकार एक चिनगारी अग्निका अंश है और वह चिनगारी भी अग्निके समस्त गुणोंको सूक्ष्मरूपमें समेटे रहती है, उसी प्रकार यह आत्मा भी परमात्माका एक अंश होनेके कारण परमात्माके सभी गुणोंको अपनेमें समेटे रहता है। गीतामें भी भगवान् कृष्णने कहा है कि 'मेरा ही अंश इस मर्त्यलोकमें जीवके रूपमें अभिव्यक्त हुआ है[७]।' पर इस जीवात्मामें जो शक्ति है जिसके लिये वेदमें 'स्वधा' शब्द आया है, वह शक्ति ही इसके सच्चे स्वरूपको ढक देती है और उस स्वधाशक्तिसे प्रभावित होकर यह आत्मा अपनेको बन्धनमें समझने लगता है। इसीको यजुर्वेदके शब्दोंमें इस प्रकार कहा जा सकता है—

'सोनेके पात्रसे सत्य ढका हुआ है[८]।' चमक-दमकवाली माया जीवात्माके सच्चे स्वरूपको ढक देती है। उस अवस्थामें वह आत्मा अपनी शक्तियोंसे युक्त होकर मर्त्य शरीरको अपना स्थान बनाकर एक शरीरसे दूसरे शरीरमें विचरता है, यही इसका 'पुनर्जन्म' है।

पर बन्धनसे हीन होनेपर आत्मा अपने सच्चे स्वरूपको जब पहचान लेता है, तब वह परमात्मामें ही मिल जाता है। उपनिषद्के अनुसार 'ब्रह्मको जाननेवाला ब्रह्म ही हो जाता है[९]।' एक तत्त्वदर्शीके लिये परमात्मा और आत्मा एक ही तत्त्व है। यजुर्वेदका भी कथन है कि 'अजायमान प्रजापति गर्भके अंदर विचरता हुआ अनेक रूपोंमें उत्पन्न होता है[१०]।' बुद्धिमान् जन उस परमात्माके स्थानको ही देखते हैं, जिसमें यह सारा संसार स्थित है। 'जब आत्मा इस अवस्थापर पहुँच जाता है, तब उसके हृदयकी ग्रन्थियाँ टूट जाती हैं, सभी संशय समाप्त हो जाते हैं और उसके कर्म भी क्षीण हो जाते हैं।'[११] यही 'मोक्ष' है। इस मोक्षमें उसके सभी प्रकारके बन्धन टूट जाते हैं। 'यह सिद्धजीव साधनसम्पन्न होकर मुक्तावस्थामें द्यौसे पृथ्वीतक क्षणभरमें घूम आता है। चारों ओर भ्रमण करता हुआ स्वर्गलोकका दर्शन करता है और सारी दिशाओंमें घूमता है। ऋतके फैले हुए तन्तुओंको चीरकर वह आनन्दका अनुभव करता है और वह आनन्दस्वरूप ही हो जाता है[१२]।'

दो मार्ग

ऋग्वेदमें (१०।८८।१५) देवयान और पितृयाण इन दो मार्गोंका वर्णन है। पूर्वजन्मके चक्रमें पड़ा हुआ आत्मा पितृयाणसे गमन करता है और मोक्षका अधिकारी आत्मा देवयानसे। अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये जीव इन दो मार्गोंसे जाता है। द्यौ और पृथ्वीके बीचमें जितने भी पदार्थ हैं, वे सब इन्हीं दो मार्गोंमें समा जाते हैं।

देवयानका मार्ग ही तत्त्वज्ञानीको स्वर्गकी ओर ले जाता है। 'यज्ञ करते हुए जो याजक चैतन्याग्निपर आरोहण करते हैं, वे नाककी पीठसे द्युलोककी ओर जाते हैं। उन्हीं उत्तम कार्य करनेवालोंको नभमें स्वर्गको ले जानेवाला देवयानका मार्ग दिखायी देता है[१३]।' वेदका यह मन्त्र उपनिषदोंमें जाकर और अधिक विस्तृत हुआ। जिसे यहाँ

७. ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। (१५।७)

८. हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं सुखम्। (यजु० ४०।१७)

९. ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।

१०. प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तर जायमानो बहुधा विजायते। (यजु० ३१।१९)

११. भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥
(योगशिखोपनिषद् ५।४५)

१२. यजुर्वेद (३२।१२)।

१३. अथर्व० (१८।४।१४) व्याख्या डॉ० मुन्शीराम शर्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नाक' कहा है, वही उपनिषद् (मुण्डक० १ । २ । ११) में 'सूर्यद्वार' कहा गया है—'सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा। विगत राग-द्वेषवाले सुकृतीजन सूर्यद्वारसे उस लोकको जाते हैं कि जहाँ वह अव्यय और अमृत पुरुष रहता है।' यह अमृततत्त्वकी प्राप्ति ही मोक्ष है। यह स्वर्गलोक अमृतसे व्याप्त है[14]।' इसलिये—'हे मनुष्य! मृतके इस पन्थको देख, जिसपर साधु, सुकृती और आङ्गिरस चलते हैं। इन्हीं मार्गोंसे तू स्वर्गको चल, जहाँ आदित्यदेव मधुका भक्षण करते हैं[15]।'

मोक्षलोककी दिव्यता

ऋग्वेदमें इस मोक्षलोककी दिव्यताका बड़े सुन्दर शब्दोंमें वर्णन है। वेदका ऋषि उस लोककी दिव्यताका वर्णन करते हुए कहता है—

'उस मोक्षलोकमें अजस्र ज्योति है। हर तरहका स्वः अर्थात् प्रकाश और सुख है। उस स्वर्गमें अनुकाम है। वहाँके लोक ज्योतिर्मय हैं। वहाँ काम, निकाम, स्वधा, तृप्ति, आनन्द, मोद और प्रमोद हैं। वहाँ सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं[16]।'

यह मोक्षलोकका वर्णन अनेक दिव्य भावनाओंसे परिपूर्ण है। वहाँ अन्धकारका नाम भी नहीं है। यही शाश्वत ज्योति है, यही सत् है और यही अमृत है। इसीके लिये उपनिषद्का ऋषि प्रार्थना करता है—

असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतं गमय।
(बृहदा० १ । ३ । २९)

इस प्रकार वेदोंमें पितृयाण और देवयानके रूपमें दो मार्गोंका वर्णन है। इनमें पितृयाण पुनर्जन्मका कारण बनता है और देवयान मोक्षका। जो आत्मा इन्हीं सांसारिक विषयोंमें फँसा रहता है, वह मृत्युके पश्चात् पितृयाणका पथिक होता है और अपने पूर्वसंचित कर्मोंका उपभोग करनेके लिये उसे फिर इस संसारमें लौटना पड़ता है। पर देवयानके पथिक आत्माका फिर पुनर्जन्म नहीं होता, वह अनन्तकालके लिये मोक्षमें लीन हो जाता है।

१४. स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठाः। (अथर्व० १८ । ४ । ४)
१५. अथर्व० (१८ । ४ । ३)।
१६. ऋग्वेद (९ । ११३ । ७–९)।

अभ्युदय और निःश्रेयस

वैशेषिक दर्शनकी परिभाषामें सांसारिक सुखको, जो पुनर्जन्मका कारण बनता है, 'अभ्युदय' कहा है और पारमार्थिक आत्मसुखको जो मोक्षरूप होता है, 'निःश्रेयस' कहा है। महर्षि कणादने इन दोनोंपर समान बल दिया है। उनके अनुसार 'धर्म वही है जिससे अभ्युदय और निःश्रेयसकी सिद्धि हो[17]।' गीतामें भगवान्‌ने भी इसी बातको मान्यता प्रदान की है।

मनुष्यको चाहिये कि वह ऐहिक जीवनको श्रेष्ठ बनाकर ही पारलौकिक जीवनको सँवारे; क्योंकि मनुष्य संसारमें आये बिना और इस जीवनको उन्नत किये बिना मोक्षका अधिकारी नहीं बन सकता। इसलिये उसे चाहिये कि वह सांसारिक भोगोंका भोग करते हुए ही मोक्ष-प्राप्तिके प्रति सचेष्ट रहे। गीता (५ । १०)में भगवान्‌ने 'पद्मपत्रमिवाम्भसा।' के उदाहरणसे इस बातको बड़ी आसानीसे समझा दिया है। पानी कमलका जीवन है। वह बिना पानीके विकसित नहीं होता, पर फिर भी वह पानीसे लिप्त नहीं होता। इसी प्रकार मनुष्य इस संसाररूपी पानीमें रहकर अपने जीवन-कमलको विकसित करता रहे, पर उन सांसारिक भोगोंमें लिप्त न हो। वस्तुतः यही सारांश है—सम्पूर्ण गीताका। इसे हम एक प्रकारका 'समन्वयवाद' कह सकते हैं। यह समन्वयवाद वेदोंको भी अभीष्ट है। वेद एक ओर जहाँ मोक्षकी ओर अपने अनुयायियोंको प्रेरित करते हैं, वहाँ दूसरी ओर वे इस संसारकी तरफ भी प्रेरित करते हैं। या कहें कि इन्हीं सांसारिक विषयोंपर ही उन्होंने मोक्षका महल खड़ा किया है। वेदके एक मन्त्रमें प्रार्थना की गयी है—'पवित्र करनेवाली गायत्री माता मुझे आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, द्रविण, ब्रह्मवर्चस् और धनैश्वर्य प्रदान करके ब्रह्मलोक अर्थात् मोक्षलोककी प्राप्ति कराये[18]।'

यह सत्य है कि आत्यन्तिक ब्रह्मवाद और आत्यन्तिक लोकवाद दोनों ही विनाशक हैं। इसीलिये भारतने

१७. यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः॥
(वैशे० सूत्र १ । २)

१८. आयुः प्राण प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥ (अथर्ववेद)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्यन्तिक लोकवादी चार्वाक और आत्यन्तिक मोक्षवादी बौद्धधर्मको स्वीकार नहीं किया। भारतमें चार्वाक तो कभी फूला-फला ही नहीं और बौद्धधर्म भी बरसाती नदीकी तरह एकदम जितनी तेजीसे फैला, उतनी ही तेजीसे उतर भी गया। अन्तमें रह गया वेदों और अन्य वैदिक दर्शनोंका वह समन्वयवाद ही।

वेदोंका यह 'समन्वयवाद' शाश्वत है, सनातन है और अभेद्य है।

परलोक और पुनर्जन्मका वैदिक रहस्य

(लेखक—कविरत्न पं० श्रीदेवीप्रसादजी शास्त्री 'पाराशर')

भूतलपर जन्म लेनेवाले मानवोंके लिये स्वर्गलोक, पितृलोक, यमलोक आदि आकाशमण्डलस्थ लोक प्रत्यक्ष नहीं दीख सकते, परंतु वेदमन्त्रोंसे उनका अस्तित्व अवश्य मानना पड़ेगा। संसारमें सभी पदार्थोंका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता; अतः अनुमान, उपमान तथा शब्दादि प्रमाणकी उपयोगिता सिद्ध ही है। उदाहरणार्थ—गर्भाधानकालमें पुत्रका अस्तित्व नहीं होता, वह शब्दप्रमाणसे ही अपने पिताका निश्चय करता है तथा अपने पिताकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी भी होता है। इसी प्रकार श्रुति भगवतीकी आज्ञासे अदृश्य वस्तु तथा लोक-लोकान्तरका बोध होना सम्भव है। वैसे तो सम्पूर्ण सनातन वाङ्मय परलोक और पुनर्जन्मकी कथाओंसे भरा है। पुराणेतिहास आदि धर्मशास्त्रोंमें इसके अनेकानेक प्रमाण हैं। जैसे नारद आदिकी पुनर्जन्म-कथाएँ तथा गर्गसंहिता इत्यादि पुण्यग्रन्थोंके प्रसंग पठनीय हैं।

आधुनिककालमें नास्तिकताका अत्यधिक प्रचार है। मनुष्य धर्मनिरपेक्षताके नामपर अधर्मका आचरण कर घोर पतनकी ओर जा रहा है। परलोक तथा पुनर्जन्मको मिथ्या समझकर शास्त्रमर्यादासे विरुद्ध यथेच्छाचारपरायण हो अपना तथा विश्वका सर्वनाश करनेमें कटिबद्ध है। ऐसी परिस्थितिमें अनादिकालसे संसारके प्रकाण्ड विद्वानोंद्वारा सम्मानित वेद भगवान्‌की पुण्यवाणीका आश्रय लेकर गुह्यतम रहस्यका पता लगाना तथा तदनुसार सदाचार धारणकर ऐहिक पारमार्थिक श्रेय पाना ही परम धर्म है। प्रथम परलोकपर विचार करें। सत्कर्मानुष्ठानसे देवमार्ग और पितृमार्गसे लोकान्तर जानेका वर्णन वेदवर्णित है—

द्वे सृती अश्रृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च॥
(यजुर्वेद १९। ४७)

इन दो मार्गोंका उल्लेख अन्यत्र भी पाया जाता है—

स एष देवयानो वा पितृयाणो वा पन्थाः।

स्वर्गादि पुण्यलोकोंकी प्राप्तिके लिये आराधक प्रार्थना करता है—'हम अनृण होकर जो देवयान और पितृयाण मार्ग हैं, इन सभी मार्गोंसे स्वर्गको प्राप्त करें।'

'ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः
सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम।'
(अथर्ववेद ६। ११७। ३)

श्राद्धकर्म करनेका अभिप्राय ही एकमात्र मृतात्माको सुख-शान्तिमय लोकोंकी प्राप्तिका सूचक है। ऋग्वेदका मन्त्र मृतात्माको सूर्य-रश्मियोंके साथ सहगमनसे लोकान्तरगमनका बोधक है। (ऋग्वेद १। १०९। ७)

इसी प्रकार अथर्ववेदमें भी मृतात्माके बान्धव कहते हैं कि 'हे मृतात्मन्! जो हमारे पिताके पिता हैं तथा पितामह हैं और जो बड़े अन्तरिक्षमें प्रविष्ट हुए हैं, उनको स्वराट् सूर्य जो कि लोकान्तरमें पहुँचानेवाला है, जहाँतक हो सके वहाँतक शीघ्र ही पितृयोनिस्थ शरीर दें।'
(अथर्ववेद १८। ३। ५९)

उपर्युक्त मन्त्रोंमें मार्ग-प्रदर्शन, पितृलोकगमन वहाँपर शरीर-प्राप्ति आदि अनेक विलक्षण विषय आये हैं। इससे मृतात्माका पितृलोक, यमलोक, स्वर्गलोकमें जाना सिद्ध है। स्वर्गलोक, ब्रह्मलोक आदि पावन लोकोंमें पवित्र अन्तःकरण, यज्ञ, दान, तप इत्यादि सत्कर्मोंसे सम्पन्न विशुद्धात्मा महापुरुषोंका ही वास होता है। जातवेद नामक क्रव्याद अग्नि चितामें जलाते समय स्वर्गीय आत्माओंका इन्द्रियसमूह नष्ट नहीं करता। सूक्ष्म शरीरके साथ सब इन्द्रियगोलक बने रहते हैं, इसलिये उसे वहाँपर बहुत-सा भोग प्राप्त होता है।'
(अथर्ववेद ४। ३४। २)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्जन्मके सम्बन्धमें भी अनेक वेदमन्त्र प्रमाण हैं, उदाहरणके लिये कुछ उद्धृत करते हैं—

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च॥
(ऋग्वेद १। २४। २)

अव सृज पुनरग्ने! पितृभ्यः यस्ते आहुतश्चरति स्वधाभिः।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः॥
(ऋग्वेद १०। १६। ५)

इन मन्त्रोंमें अग्निसे पुनर्जन्मकी प्रार्थना की गयी है। मन्त्र कहता है 'हम देवोंमें अग्निका नाम स्मरण करते हैं, वह प्रसन्न होकर पृथ्वीतलपर पुनः जन्म दे, जहाँ हम दुबारा माता-पिताको प्राप्त करें।' 'हे अग्ने! जो जीव तुम्हारे वंशमें स्वधाके रूपपर अभीतक हैं, उनको तुम पितृलोकमें भेजो। फिर वहाँसे लौटनेपर किसीके घर उन्हें पुत्ररूपसे उत्पन्न करो।'

विचारपूर्वक अनुमान करनेपर भी यही ज्ञात होता है कि पुनर्जन्म अवश्य होता है। वैसे तो आजकल इसपर अनेक घटनाएँ ही प्रमाण हैं। जगत्की विचित्रता देखनेपर भी यही सिद्ध होता है। यदि पुनर्जन्म न होता तो सृष्टि विचित्र क्यों है? अतः यह विचित्रता ही पुनर्जन्मसूचक है। पुनर्जन्म न माननेवाला सृष्टिकी विचित्रताका प्रश्न करनेपर निरुत्तर हो जायगा। अतः परम प्रमाण वैदिक वाणी सदैव विचारकोंके लिये माननीय है। प्राणीको शुभाशुभ कर्मानुसार ही उत्तमोत्तम तथा अधमाधम योनियाँ प्राप्त होती हैं। छान्दोग्य उपनिषद् अध्याय ५ खण्ड १० मन्त्र ७ में कहा गया है कि 'जो अच्छे आचरणवाले होते हैं, वे शीघ्र ही उत्तम योनिको प्राप्त होते हैं। वे ब्राह्मणयोनि, क्षत्रिययोनि अथवा वैश्ययोनिको प्राप्त होते हैं तथा जो अशुभ आचरणवाले होते हैं, वे तत्काल अशुभयोनिको प्राप्त होते हैं। वे कुत्तेकी योनि, सूकरयोनि अथवा चाण्डालयोनि प्राप्त करते हैं।' एतदर्थ शुभाचरण कर्तव्य है तथा लोक-लोकान्तरमें परम हितकर है।

परलोक और पुनर्जन्मके वैदिक रहस्यको जानकर वेदाज्ञानुकूल सत्कर्मानुष्ठान ध्येय तथा वेदविपरीत दुष्कर्म त्याज्य हैं। मानव-जीवनकी सार्थकता श्रुतिपथानुगमन ही है। अतः सभीको तदर्थ प्रयत्नशील होना अत्यावश्यक है।

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः।
वेदो नारायणः साक्षात् स्वयम्भूरिति शुश्रुम॥

अमृतत्व कौन प्राप्त करता है?

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवात्प्रधार्यताम्। आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥
मातृवत्परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत्। आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति॥
पचनं वैश्वदेवार्थं परार्थं यच्च जीवितम्। एतद्धवेच्च सर्वस्वं धातूनामिव काञ्चनम्॥
सर्वभूतहितं राजन्नधीत्यामृतमश्नुते।
(पद्म० सृष्टि० अ० १९)

'धर्मका सार सुनो और सुनकर उसे धारण करो—जो बात अपनेको प्रतिकूल जान पड़े, उसे दूसरोंके लिये भी काममें न लाये। जो परायी स्त्रीको माताके समान, पराये धनको मिट्टीके ढेलेके समान और सम्पूर्ण भूतोंको अपने आत्माके समान जानता है, वही यथार्थदर्शी—ज्ञानी है। जिसकी रसोई बलिवैश्वदेवके लिये (सबकी तृप्तिके लिये) और जीवन परोपकारके लिये है, वही विद्वान् है। जैसे धातुओंमें सुवर्ण उत्तम है, वैसे ही परोपकार सबसे श्रेष्ठ धर्म है, वही सर्वस्व है। सम्पूर्ण प्राणियोंके हितका ध्यान रखनेवाला पुरुष अमृतत्व प्राप्त करता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मद्रवमयी गङ्गा

(लेखक—पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय, संचालक, अनुसंधान-संस्थान, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय)

'ब्रह्मद्रवेति विख्याता पापं मे हर जाह्नवी ।'

इस प्रख्यात श्लोकमें गङ्गा 'ब्रह्मद्रव' के नामसे विख्यात मानी गयी है। इस शब्दके अर्थकी किञ्चित् मीमांसा यहाँ प्रस्तुत है।

जल मानवके लिये ही नहीं, प्रत्युत चेतन-अचेतन सब प्रकारके जीवोंके लिये नितान्त उपयोगी पदार्थ है। इसी उपयोगिताके कारण तो जल 'जीवन'की आख्या रखता है (जीवनं भुवनं जलम्)। सूखते हुए पौधोंको जलसे सींचनेपर हरा-भरा होते हुए किसने नहीं देखा है? परंतु आश्चर्य होता है उस रेल-इंजनके व्यवहारपर, जो जलसे आप्यायित होनेपर ही अपना कार्य चारुतया सम्पादित करता है। फलतः जल मशीनके लिये भी उतना ही उपयोगी है, जितना मानवके लिये। तथ्य यह है कि जल सृष्टिका आधार है। इसके विषयमें वेद तथा पुराणमें प्रभूत ज्ञातव्य तथा ध्यातव्य सामग्री संचित है।

जलकी चार अवस्थाएँ वेदमें स्पष्टतः अङ्कित हैं। ऐतरेय उपनिषद्[1]का कथन है कि आत्माने जिस आप्-तत्त्वको उत्पन्न किया, वह चार लोकोंमें चार नामोंसे चार अवस्थाओंमें व्याप्त है। इन अवस्थाओंसे विभेद धारण करनेवाले जलके चार नाम हैं—(१) अम्भः, (२) मरीचि, (३) मर तथा (४) आप्। इन चारोंने चार लोकोंको क्रमशः व्याप्त कर रक्खा है—(१) द्युलोक, (२) अन्तरिक्ष, (३) पृथ्वी, (४) पृथ्वीके अधःस्थ लोक। इन सबमें अम्भस् अत्यन्त रसात्मक तत्त्वका द्योतक है और वह सूर्यलोक (दिव्) से ऊर्ध्व प्रदेशमें—महः, जनः, तपः, सत्यम् आदि लोकोंमें व्याप्त होनेवाला जल है। यही है—'दिव्या आपः'। अन्तरिक्षलोकमें व्याप्त होनेवाला जल मरीचि नामसे व्यवहृत होता है। पृथ्वीके उत्पादनमें समर्थ होनेवाला जल मर तथा पृथ्वीके खोदनेसे निकलनेवाला जल आपः शब्दसे व्यवहृत किया जाता है। इन चारोंमें अम्भः ही मूल जल-तत्त्व है, जो विशुद्ध रसात्मक होता है। अन्य जल अन्य तत्त्वोंके मिश्रणसे उत्पन्न होते हैं। इसे ही वेदान्त पञ्चीकृत-की संज्ञा देता है।

ध्यान देनेकी बात है कि आप्में दो तत्त्वोंका आधार है—सोम तथा अग्निका। 'एतद्विषयक' मन्त्र है—

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषज।
अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः॥
(ऋग्वेद १। २३। २०)

यहाँ यह मन्त्र अनुष्टुप्में है, परंतु ऋग्वेदके अन्य मण्डलमें (१०। ९। ६) तथा अथर्ववेदमें (१। ६। २) में यह मन्त्र त्रिपदा गायत्रीके रूपमें निर्दिष्ट है। फलतः वहाँ चतुर्थ चरणका अभाव है। मन्त्रका आशय है कि "जलके भीतर स्थित सोमने कहा कि जलके भीतर समस्त भेषज विद्यमान हैं तथा विश्वका कल्याण करनेवाला अग्नि भी वहाँ स्थित है। इसीलिये जलका नाम 'विश्वभेषजी'—समस्त औषधोंका निकेतन मानते हैं।" जलके भीतर सोम-तत्त्वकी सत्ताका यहाँ स्पष्ट उल्लेख है। अन्य मन्त्रोंमें अग्निके प्रवेशका भी स्पष्ट संकेत मिलता है—

यासु राजा वरुणो यासु सोमो
विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्ट-
स्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥
(ऋग्वेद ७। ४९। ४)

अन्य एक मन्त्रमें 'आप्'को अग्निको उत्पन्न करनेवाला माता कहा गया है—

तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं
तमापो अग्निं जनयन्त मातरः॥
(ऋग्वेद १०। ९१। ६)

जलमें सोम तथा अग्नि—इन दोनों तत्त्वोंके निवासका स्वारस्य विचारणीय है। यह समस्त विश्व ही 'अग्निषोमात्मक' है—अग्नि तथा सोमके मिश्रणसे सम्भूत। सोम है—उत्पादक तत्त्व तथा अग्नि है—शोषक तत्त्व। विज्ञानकी भाषामें सोम है—घनात्मक विद्युत् (पाजिटिव इलेक्ट्रिसिटी)

१. 'स इमाँल्लोकानसृजत अम्भो मरीचिर्मर आपः। अदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठा अन्तरिक्षं मरीचयः, पृथिवी मरः, या अवस्तात् ता आपः।' (ऐतरेय उपनिषद् १। २)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा अग्नि है—ऋणात्मक विद्युत् (निगेटिव इलेक्ट्रिसिटी । दोनों प्रकारके विद्युतोंके परस्पर सहयोग, आघात-प्रतिघात-से ही जगत्की सृष्टि होती है । जगत्का मूल उत्पादन जल ही तो है (**अप एव ससर्जादौ**—मनु) । फलतः उस मूल तत्त्वमें जगत्के उत्पादक तत्त्वोंका अस्तित्व होना नितान्त उचित तथा वैज्ञानिक है । सोमके साहचर्यसे अग्नि शोषक न होकर पोषक है । इसीलिये लोक-जीवनमें तथा धार्मिक कर्मकाण्डके सम्पादनमें जलकी इतनी महत्ता है ।

जलके त्रिविध भेद हैं—(१) दिव्या आपः, (२) आन्तरिक्षा आपः, (३) पार्थिवी आपः ।

'या दिव्या आपः पयसा सम्बभूवुः
या आन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्याः ॥'

इसीका निर्देश अथर्वण श्रुतिमें भी है (४ । २८ । ५)। जलका प्रथम प्रकार है—दिव्यरूप अर्थात् द्युलोकमें होने-वाला जल । एक बात समझनेकी है कि सूक्ष्मरूप जलकी संज्ञा है—आप् या अम्भः । यह शुद्ध रसरूप द्रव है । वह स्थूल रूपमें जल बन जाता है । इससे यह विश्वमें सर्वतः व्याप्त है । इसीलिये **'सर्वमापोमयं जगत्'**का यही तात्पर्य है । इसके दृष्टान्त वैदिक मन्त्रोंमें उपलब्ध होते हैं । एक मन्त्र कहता है कि 'चन्द्रमा अप्के भीतर आकाशमें दौड़ता है—**चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।**' जिससे चन्द्रमाके लोकमें 'आप्'की सत्ता अनुमानित है । अन्य मन्त्र बतलाता है कि 'सूर्यके समीप तथा सूर्यके साथ अप् विद्यमान है'—

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ।
(ऋग्वेद १ । २३ । १७)

जिससे सूर्यके पास जलकी सत्ताका स्पष्ट वैदिक प्रमाण मिलता है । सूर्य जब चमकने लगता है, तब 'अप्' अपना स्थान छोड़नेके लिये बाध्य होता है; क्योंकि उसका प्रखर सूर्य-रश्मियोंसे संघर्ष होने लगता है और वह वहाँसे हटकर द्युलोककी दिशामें प्रस्थान करता है । उस लोकमें सूर्यकी किरणें मन्द रहती हैं और इसलिये वहाँ आप् जमा होता चलता है और अत्यन्त घनीभूत होनेके कारण वह स्थूल जलका रूप धारण कर लेता है । गुरु होनेसे आप् वायुमण्डलमें अधिक टिक नहीं सकता और बाध्य होकर वह स्थूल जलकी धाराके रूपमें प्रवाहित हो जाता है । यही है —दिव्य जलकी धारा—गङ्गाका प्रवाह ।

पुराणोंमें वर्णित है कि ध्रुवके ऊपरसे सुमेरु पर्वतपर गङ्गाका जल गिरता है । विष्णुपुराण (द्वितीय अंश, अध्याय ८) में विष्णुका तृतीय पद 'ध्रुवलोक' बतलाया गया है, जो लोकोंका आधारभूत है तथा वृष्टिका कारण है । वहींसे गङ्गा प्रवाहित होती है ।

वामपादाम्बुजाङ्गुष्ठनखस्रोतोविनिर्गताम् ।
विष्णोर्बिभर्ति यां भक्त्या शिरसाहर्निशं ध्रुवः ॥
(१११)

आशय है कि 'विष्णुभगवान्के वाम चरण-कमलके अँगूठेके नखरूप स्रोतसे निकली हुई उन गङ्गाजीको ध्रुव दिन-रात अपने मस्तकपर धारण करता है ।'

इसका आधिदैविक तात्पर्य बतलाते समय महामहोपाध्याय श्रीगिरिधरशर्मा चतुर्वेदीजीने लिखा है कि "प्रातःकालका सूर्य ही 'वामन' कहा जाता है । उसके नखों (अर्थात् किरणों) के अग्रभागने जहाँ विवर बनाया है, वहाँसे यह जलधारा गिरती है[1] ।" जो भी व्याख्या हो, ध्रुवलोकमें गङ्गाका उदय होता है । वहाँसे सुमेरुपर गिरती है और वहाँसे शिवके जटाजूटमें वह युगोंतक घूमा करती है । इस दृश्यका साक्षात्कार आज भी किया जा सकता है । भगवान् शंकरका एक नाम **'व्योमकेश'** है (आकाशरूपी केशवाला)। इसी आकाशपर द्वितीयाका चन्द्रमा चमकता है, जो शिवके मस्तकपर विराजमान बताया जाता है । रातके समय आकाशमें दूधकी धाराके समान करोड़ों ताराओंका जो पुञ्ज दृष्टिगोचर होता है, वही तो 'आकाशगङ्गा' है और वह आज भी व्योमकेशके सिरपर अपनी दुग्धमयी शुभ्रधारासे दिगन्तको विद्योतित करती प्रवाहित होती है । वहाँ युगोंतक विचरण करनेके बाद भक्तोंके कल्याणार्थ भगवती गङ्गाका प्रादुर्भाव इस भारतवर्षमें होता है ।

इस प्रकार दिव्य जलकी धारा होनेके कारण गङ्गाजीको 'ब्रह्मद्रव' (नीराकार ब्रह्म) मानना नितान्त उपयुक्त है । इसीलिये गङ्गामें स्नानकी इतनी महिमा है । भारतीय आर्य जहाँ भी गये और अपना उपनिवेश बनाया, वहाँके मुख्य जलस्रोतको उन्होंने गङ्गाके नामसे अभिहित किया । थाईलैण्ड (स्याम) की मुख्य नदीका 'मेकाङ्ग' नाम-

१ 'वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति' (पृ० १०९-११४) तक इस विषयका विशेष विवरण द्रष्टव्य है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करण इसी तथ्यका द्योतक है। 'मेकाङ्ग' का अर्थ है 'माई गङ्गा' (मे=माई, काङ्ग=गाङ्ग, गङ्गा)। इस प्रकार गङ्गा माईकी प्रशस्त स्तुति भारतवर्षके ही हिंदू नहीं करते, प्रत्युत थाईलैण्डके बौद्ध भिक्षु भी 'मेकाङ्ग' को 'माई गङ्गा'के नामसे पुकारकर गङ्गाके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। तथास्तु

नराकारं भजन्त्येके निराकरं तथापरे।
वयं तु सर्वशास्त्रज्ञा नीराकारमुपास्महे॥

गीतामें भगवान्‌के स्वरूप, परलोक, पुनर्जन्म तथा भगवत्प्राप्तिका वर्णन

श्रीमद्भगवद्गीता अखिल ब्रह्माण्डनाथ, सर्वलोकमहेश्वर, सूर्य-चन्द्र-इन्द्र-वायु-अग्नि-वरुण-यम आदि सुर-लोकनायक-नायक, सर्वनियन्ता, सर्वरूप, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वातीत, सर्वगुणमय, सर्वगुणातीत, अनन्त-चेतनाचेतन-नियन्ता तथा भिन्नाभिन्न सम्बन्धी, परात्पर परब्रह्म, ब्रह्म-प्रतिष्ठा, अनन्ताचिन्त्य-निरवधि-निरङ्कुश-ऐश्वर्यस्वरूप, युगपत्-विरोधिगुणधर्माश्रय, शरणागतवत्सल, भक्तवाञ्छाकल्पतरु, प्रेमस्वरूप, भक्तिवश्य, अचिन्त्यानन्त परोक्षापरोक्ष-लीलास्वरूप 'स्वयं भगवान्' श्रीकृष्णकी वाणी है। इसमें जो कुछ कहा गया है वह परम सत्य है; विविध भाव-विचार-अधिकार-रुचि-युक्त प्राणियोंके कल्याणके लिये ज्ञान, भक्ति, निष्काम कर्म, योग प्रभृति विभिन्न साधनरूपमें परम कल्याणकर है।

वेद भगवान्‌के सिद्धान्तप्रतिपादक 'भगवद्-निःश्वास' हैं; गीता भगवान्‌के सिद्धान्तदर्शक साक्षात् 'भगवद्वचन' हैं। उपनिषद् भगवत्तत्त्व-बोधक हैं। गीता उन्हीं उपनिषद्-रूप गौओंका दुग्धामृत है। महाभारत अखिल ज्ञान-भण्डार-रूप दुग्धसिन्धु है और गीता उसको मथकर निकाला हुआ सार-सर्वस्व नवनीत है। गीता भगवान्‌का हृदय है, गीता साक्षात् भगवत्स्वरूप है।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण किसी मत-विशेषका प्रतिपादन या किसी सिद्धान्तका स्थापन नहीं करते हैं। वे त्रिकालाबाधित नित्य सत्यका अपनी दिव्य भाषामें अपने प्रिय भक्त अर्जुनके हितार्थ प्रकाश करते हैं। भगवान् सबके हैं, भगवान्‌की वाणी सबके लिये सहज ही कल्याणकारिणी है और त्रिकालाबाधित सत्य तत्त्व सबके लिये ग्राह्य है। अतएव गीता सहज ही अखिल विश्वके हितमें संलग्न है। अन्धकारमें पड़े हुए प्रत्येक प्राणीको बिना किसी भेदके गीताने प्रकाश दिया है—दे रही है और देती रहेगी।

सत्यका प्रतिपादन या स्थापन नहीं होता, वह तो नित्य अनादि अनन्त है ही। वह किसीकी न तो स्वीकृतिकी अपेक्षा रखता है, न समर्थन या संरक्षणकी। सत्यकी निर्बाध सत्ता है; उसे न माननेवाले उससे वञ्चित भले ही रह जायँ। सत्य किसीके मानने न माननेकी परवा नहीं करता। वह तो अपने सनातन जीवनमें ही नित्य सुप्रतिष्ठित रहता है। उसी सत्यका प्रकाश गीतामें है। भगवान्‌ने गीतामें यह बताया है कि 'जो कुछ है, सब एकमात्र वे पुरुषोत्तम भगवान् ही हैं।' इसी तत्त्वको विविध प्रकारसे उन्होंने समझाया है—

'लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।' (१५। १८)

"लोक और वेदमें 'पुरुषोत्तम' नामसे प्रसिद्ध हूँ।"

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥
(७। ७)

'धनंजय! मेरे अतिरिक्त कुछ भी अन्य नहीं है। यह सब जगत् सूत्रमें सूत्रके मणियोंके सदृश मुझमें गुँथा हुआ है।'

'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।' (९। ४)

'यह समस्त जगत् मुझ अव्यक्त मूर्तिसे (जलसे बरफके समान परिपूर्ण है।'

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥
(१०। ८)

'मैं ही सबकी उत्पत्तिका मूल हूँ, सब मुझसे प्रवर्तित हैं। इस प्रकार मानकर भावसमन्वित बुद्धिमान् भक्त मुझे भजते हैं।'

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥
(१०। २)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मेरे प्रभवको, उत्पत्तिको न तो देवतागण जानते हैं, न महर्षिगण ही; क्योंकि मैं ही देवताओं और महर्षियोंका भी आदि मूल हूँ।'

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

(१० । ३)

'जो मुझको अजन्मा (प्राकृतिक जन्मरहित), अनादि (उत्पत्तिरहित सर्वकारणकारण) तथा लोकोंका महान् ईश्वर जानता है, वह ज्ञानवान् पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥

(५ । २८)

'(जो मुझको) सब यज्ञ-तपोंका भोक्ता, समस्त लोकोंका महान् ईश्वर तथा प्राणिमात्रका सुहृद् जानता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है।'

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥

(६ । ३९)

'जो सर्वत्र (चराचर जगत्‌में) मुझको देखता है और जो सबको मुझमें देखता है, उसके लिये मैं कभी अदृश्य नहीं होता और मेरे लिये वह कभी अदृश्य नहीं होता।'

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥

(१० । ३९)

'अर्जुन ! जो समस्त भूतोंकी उत्पत्तिका बीज है—मूल कारण है, वह मैं ही हूँ; क्योंकि चराचरमें कोई भी ऐसा भूत नहीं है जो मुझसे रहित हो। (सब मेरे ही स्वरूप हैं—सब मैं ही हूँ।)'

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥

(९ । २३)

'कौन्तेय ! जो श्रद्धायुक्त भक्त दूसरे देवताओंकी पूजा करते हैं, वे भी मेरी ही पूजा करते हैं (पर वे उनको मुझसे अलग मानते हैं। (इसलिये) उनकी यह पूजा अविधिपूर्वक होती है।

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥

(१४ । २७)

'ब्रह्मकी, अमृतकी, अविनाशी और सनातनधर्मकी तथा ऐकान्तिक सुखकी प्रतिष्ठा मैं ही हूँ, (इन सबका परम आश्रय मैं ही हूँ)।'

इस प्रकार सम्पूर्ण अनन्त विश्वब्रह्माण्ड एकमात्र भगवान्‌की ही अभिव्यक्ति है, । भगवान्‌से ही प्रकट है, भगवान्‌में ही स्थित है तथा भगवान्‌में ही पर्यवसित होता है। भगवान्‌में ही भगवान्‌से ही विश्व-प्राणियोंका प्रकृतिके द्वारा बार-बार उदय-विलय होता रहता है। यही प्रलय-सृजन है। भगवान् कहते हैं—

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥
सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥

(९ । ६-७)

'जैसे आकाशसे उत्पन्न सर्वत्र विचरनेवाला महान् वायु सदा ही आकाशमें स्थित है, वैसे ही समस्त भूत मुझमें स्थित हैं, ऐसा जानो। अर्जुन ! कल्पके अन्तमें सब भूत मेरी प्रकृतिमें लय हो जाते हैं और कल्पके आदिमें मैं उनका फिर सृजन कर देता हूँ।'

यही भगवान् सर्वत्र व्याप्त एक आत्मा हैं। आत्मा स्वरूपतः जन्म-मरण-हीन नित्य सत्य है। भगवान्‌ने कहा है—

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।

(२ । २०, २३-२५)

'यह आत्मा किसी कालमें भी न जन्मता है, न मरता है और न यह आत्मा हो करके फिर होनेवाला है। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है; शरीरके नाश होनेपर यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाश नहीं होता। इस आत्माको न शस्त्रादि काट सकते हैं, न आग जला सकती, न जल गीला कर सकता है और न वायु सुखा ही सकता है। यह आत्मा अच्छेद्य है, अदाह्य है, अक्लेद्य है, अशोष्य है और निश्चय ही यह नित्य, सर्वगत, अचल, स्थिर और सनातन है। यह आत्मा अव्यक्त (इन्द्रियोंका अविषय), अचिन्त्य (मनका अविषय) और विकाररहित (कभी न बदलनेवाला) कहा जाता है।'

सारे जीवोंके हृदयमें भगवान् ही आत्मारूपसे वर्तमान हैं—

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥
(१० । २०)

'अर्जुन! सब भूत-प्राणियोंके हृदयमें स्थित सबका आत्मा मैं हूँ। मैं ही समस्त भूतोंका आदि, मध्य और अन्त हूँ।'

प्राणिमात्रके शरीरमें स्थित रहनेपर भी आत्मा (भगवान्) निर्लेप रहता है। इस विषयमें भगवान् कहते हैं—

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥
यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥
(१३ । ३१-३२)

'अर्जुन! अनादि तथा निर्गुण होनेसे यह अविनाशी आत्मा शरीरमें स्थित होकर भी वास्तवमें न तो कुछ करता है, न लिप्त होता है। जैसे सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म होनेके कारण लिप्यमान नहीं होता, वैसे ही देहमें सर्वत्र स्थित होकर भी आत्मा देहके कार्यों—गुणों आदिसे लिप्यमान नहीं होता।'

तथापि जबतक पुरुष (आत्मा) 'प्रकृतिस्थ' है, तबतक उसमें सारे व्यापार होते रहते हैं। भगवान्का सनातन अंश यह 'प्रकृतिस्थ आत्मा' ही 'जीव' है।

भगवान् कहते हैं—

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान् ।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥
(१३ । २१)

'प्रकृतिमें स्थित पुरुष प्रकृतिसे उत्पन्न तीनों गुणोंसे प्रभावित रहता है—उनको भोगता है और इन गुणोंका सङ्ग ही उसके सत्-असत् (देव, पितर, प्रेत, मनुष्य, पशु आदि) योनियोंमें जन्म लेनेका कारण होता है।'

गीतामें गति, योनि, पुनर्जन्म, स्वर्ग, नरक आदि लोक—सभीका स्पष्ट वर्णन है—

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान् प्रतिपद्यते ॥
रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥
(१४ । १४-१५)

'जब जीव सत्त्वगुणकी वृद्धिमें मरता है, तब वह उत्तम कर्म करनेवालोंके मलरहित (दिव्य स्वर्गादि) लोकोंको प्राप्त होता है। रजोगुणकी वृद्धिमें मरनेपर कर्मासक्तिवाले मनुष्योंमें जन्म लेता है और तमोगुणके बढ़नेपर मरनेवाला पशु-पक्षी आदि मूढ योनियोंमें जन्म लेता है।'

दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोधसे युक्त अशुद्ध आचरण करनेवाले कामक्रोधपरायण, कामोपभोगको ही जीवनका परम ध्येय माननेवाले, अन्यायसे धनोपार्जन करनेवाले, चिन्ताग्रस्त, हत्या-हिंसापरायण, अन्तर्यामी भगवान्से द्वेष करनेवाले आसुरभावापन्न मनुष्य मरनेपर नरकोंमें आसुरी योनियोंमें जाकर, वहाँ नाना प्रकारकी यन्त्रणा भोगते हैं। (गीता १६ । ४-१५ देखिये) भगवान् आगे कहते हैं—

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥
आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥
तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥
(१६ । १६-२०)

'जिनका चित्त सदा भोगोंमें भटका करता है, जिनका जीवन मोहजालसे ढका है, जो कामोपभोगमें अत्यन्त आसक्त हैं, वे अपवित्र (गंदे) नरकमें गिरते हैं। जो अपनेको श्रेष्ठ माननेवाले घमंडी, धन-मान-मदसे चूर, अविधिपूर्वक नाममात्रके यज्ञों—देवताओंद्वारा पाखण्डरूप यजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं, उन द्वेष करनेवाले क्रूरहृदय नराधमोंको मैं संसारमें बार-बार आसुरी (कुत्ते, सूअर, गदहे आदि) योनियोंमें गिराता हूँ। वे मूढ लोग (जिनको मानवजन्म मेरी प्राप्तिके लिये दिया गया था) मुझे न पाकर जन्म-जन्ममें आसुरीयोनिमें जाते हैं और फिर उससे भी नीच गति (घोर नरक आदि)को प्राप्त होते हैं।'

अर्जुनने कहा—

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥
संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदक्रियाः ॥
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥
उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥
(१ । ४१–४४)

'श्रीकृष्ण ! अधर्म अधिक बढ़ जानेसे कुलस्त्रियाँ दूषित हो जाती हैं और वार्ष्णेय ! स्त्रियोंके आचरण दूषित होनेपर वर्णसंकर (संतान)का जन्म होता है । वर्णसंकर कुलघातियोंको और कुलको नरकमें ले जानेके लिये ही होता है। लुप्त हुई पिण्ड और जलकी क्रियावाले (तर्पण-श्राद्धरहित) इनके पितरगण भी गिर जाते हैं । इन वर्णसंकरकारक दोषोंसे कुलघातियोंके सनातन कुलधर्म और जातिधर्म नष्ट हो जाते हैं और हे जनार्दन ! नष्ट हुए कुलधर्मवाले मनुष्योंको अनियत कालतक नरकमें रहना पड़ता है, ऐसा हमने सुना है।'

भगवत्प्राप्ति या मोक्षके साधनमें तत्पर पुरुष यदि योगसाधनसे विचलित होकर बीचमें ही मर जाता है तो उसकी क्या गति होती है ? अर्जुनके इस आशयके प्रश्नपर भगवान् कहते हैं—

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत् कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥
प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥
(६ । ४०–४२)

'पार्थ ! उस पुरुषका न तो इस लोकमें नाश—पतन होता है, न परलोकमें ही; किसी भी कल्याण—(भगवदर्थ) कर्म करनेवालेकी दुर्गति नहीं होती । वह योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानोंके (स्वर्गादि दिव्य) लोकोंको प्राप्त होकर, उनमें लंबे समयतक निवास करके शुद्ध आचरण करनेवाले श्रीमानोंके घरमें जन्म लेता है । अथवा (साधनसम्पन्न या भगवत्प्राप्त) धीमान् योगियोंके कुलमें जन्म लेता है । इस प्रकारका जन्म इस लोकमें निश्चय ही अति दुर्लभ है।'

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ॥
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते ॥
(९ । २०–२१)

'जो तीनों वेदोंके विधानके अनुसार सकामकर्म करनेवाले, सोमरस पीनेवाले पापमुक्त पुरुष यज्ञोंके द्वारा पूजा करके स्वर्गमें जाना चाहते हैं, वे पुरुष अपने पुण्योंके फलस्वरूप सुरेन्द्र-(स्वर्ग-) लोकको प्राप्त होकर वहाँ देवताओंके दिव्य भोगोंको भोगते हैं । वे उस विशाल स्वर्गलोक (स्वर्ग-सुखों) को भोगकर पुण्यक्षय होनेपर पुनः मृत्युलोकको प्राप्त होते हैं । इस प्रकार स्वर्गके साधनरूप तीनों वेदोंमें कथित सकाम कर्मोंका सेवन करनेवाले भोगकामी पुरुष बार-बार स्वर्गलोक और मृत्युलोकमें जाते-आते रहते हैं।'

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥
(९ । २५)

'देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको (उन-उन देवलोकोंको), पितरोंको पूजनेवाले पितरोंको (पितृलोकको), भूतोंको पूजनेवाले भूतोंको (प्रेतलोकको) और मेरा (भगवान्‌का) पूजन करनेवाले मुझको ही प्राप्त होते हैं । (वे किसी अन्य लोकमें नहीं जाते और न उनका मर्त्यलोकमें पुनर्जन्म ही होता है ।),

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽऽवर्तते पुनः ॥
(८ । २६)

'जगत्में शुक्ल और कृष्ण (देवयान और पितृयाण) मार्ग सनातन माने गये हैं। इनमें एक (देवयान) के द्वारा गया हुआ वापस न लौटनेवाली परम गतिको प्राप्त होता है। दूसरे (पितृयाण) के द्वारा गया हुआ वापस लौटता है (पुनः जन्म लेता है)।'

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥

'वायु गन्धके स्थानसे जैसे गन्धको ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही देहादिका स्वामी जीवात्मा जिस पहिले शरीरको त्यागता है, उससे मनसहित इन्द्रियोंको ग्रहण करके फिर जिस शरीरको प्राप्त होता है, उसमें जाता है।'

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥
(२ । १३)

'जैसे इस देहमें जीवात्माकी कुमार, युवा और वृद्ध अवस्था होती है, वैसे ही देहान्तरकी—दूसरे शरीरकी प्राप्ति होती है। इससे तत्त्वज्ञ धीर पुरुष मोहित नहीं होते।'

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥
(२ । २२)

'जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्र ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको छोड़कर दूसरे नये शरीरको प्राप्त होता है।'

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥
(२ । १२)

'अर्जुन ! न ऐसा है कि मैं किसी कालमें नहीं था या तू भी नहीं था अथवा ये राजालोग भी नहीं थे और न ऐसा ही है कि हम सब आगे नहीं रहेंगे।'

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥
(४ । ५)

'अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत-से जन्म हो चुके हैं; पर हे परंतप ! तू उन्हें नहीं जानता; मैं जानता हूँ।'

अवश्य ही भगवान्के जन्म न तो कर्मवश होते हैं और न पाञ्चभौतिक देह उन्हें प्राप्त होता है; न वे कभी त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके अधीन होते हैं। उनके स्वेच्छामय जन्म, शरीर तथा कर्म सभी दिव्य—भगवत्स्वरूप होते हैं। इसीसे वे कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥
जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥
(४ । ६, ९)

'मैं अजन्मा (प्राकृत जन्मरहित), अविनाशीस्वरूप होनेपर भी तथा समस्त भूत-प्राणियोंका ईश्वर होनेपर भी अपनी प्रकृतिको (स्वभावको) अधिष्ठित करके अपनी ही मायासे प्रकट होता हूँ। अर्जुन ! मेरा वह जन्म और कर्म दिव्य (अप्राकृत भगवत्स्वरूप) है। इसको जो पुरुष तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होता; मुझको ही प्राप्त होता है।'

उपर्युक्त उद्धरणोंसे पुनर्जन्म, परलोक, नरक, स्वर्ग, सद्गति, दुर्गति आदिकी बात तो स्पष्ट हो गयी। परंतु मानव-जीवन तो इसलिये मिला है कि जिसमें जीव साधनमें लगकर, 'प्रकृतिस्थ' अवस्थासे मुक्त होकर 'स्वस्थ' (आत्मस्थ) हो जाय; वह भौतिक पुनर्जन्म न होनेकी उस स्थितिको प्राप्त कर ले, जिसे प्राप्त कर लेनेपर कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता। वह आवागमनसे सर्वथा मुक्त हो जाय। इसी स्थितिका भगवान्ने गीतामें ब्रह्म-निर्वाण, शान्ति, परमा शान्ति, शाश्वत शान्ति, दिव्य परम पुरुषकी प्राप्ति, परमा गति, अनामय पद, अव्यय पद, ज्ञान, ब्रह्मप्राप्ति, अमृत-प्राप्ति, सिद्धि, अक्षय सुख, आत्यन्तिक सुख, मेरे भावकी प्राप्ति और मेरी प्राप्ति आदि विभिन्न नामोंसे वर्णन किया है तथा उसके साधन बतलाये हैं। नीचे उदाहरण-स्वरूप इसके कुछ उद्धरण दिये जाते हैं—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥
(२ । ७१)

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥
(५ । २९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥
(४ । ३९)

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥
(६ । १५)

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥
(१८ । ६२)

'जो पुरुष समस्त कामनाओंको त्यागकर, ममता-रहित और अहंकाररहित होकर, स्पृहारहित हुआ विचरता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है ।' 'जो मुझको (भगवान्‌को) यज्ञतपोंका भोक्ता, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी महान् ईश्वर तथा समस्त भूत-प्राणियोंका सुहृद् जान लेता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है' । 'श्रद्धावान्, साधन-तत्पर, जितेन्द्रिय पुरुष ज्ञानको प्राप्त होता है और फिर तुरंत ही परा शान्तिको प्राप्त हो जाता है ।' 'आत्माको निरन्तर परमात्माके स्वरूपमें लगाता हुआ स्वाधीन मनवाला योगी मेरी स्थितिरूप निर्वाण परमा शान्तिको प्राप्त होता है ।' 'अर्जुन ! सब प्रकार उस (अन्तर्यामी) परमेश्वरकी ही अनन्य शरणमें चला जा, उस परमेश्वरकी कृपासे ही पराशान्ति तथा शाश्वत स्थानको प्राप्त होगा ।'

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥
(९ । ३०-३१)

'अतिशय दुराचारी (पापी) भी अनन्यभाक् होकर यदि मुझको भजता है तो उसे 'साधु' मान लेना चाहिये; क्योंकि वह यथार्थ निश्चय (मेरी अनन्य शरणसे ही पाप-तापसे त्राण पानेका पूर्ण निश्चय करके मुझे भजने लगा) वाला है । वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और शाश्वती (सदा रहनेवाली परम) शान्तिको प्राप्त होता है । अर्जुन ! तू निश्चयपूर्वक यह सत्य जान कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता । (उसका पाप-तापमें कभी पतन नहीं होता ।)'

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥
(२ । ७२)

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥
लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥
कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥
(५ । २४—२६)

'इस ब्राह्मी स्थितिको (कामना, स्पृहा, ममता और अहंकारसे रहित स्थितिको) प्राप्त होकर पुरुष मोहित नहीं होता और अन्तकालमें वह इस निष्ठामें स्थित होकर ब्रह्मनिर्वाणको प्राप्त होता है ।' 'जो पुरुष अन्तरात्मामें ही सुखवाला है, अन्तरात्मामें ही आरामवाला है तथा जो आत्मामें ही प्रकाशवाला है, वह परब्रह्म परमात्माके साथ ऐक्यभावको प्राप्त योगी ब्रह्मनिर्वाणको प्राप्त होता है ।' 'जिनके कल्मष (पाप) नष्ट हो गये हैं, ज्ञानके द्वारा जिनका संशय निवृत्त हो गया है, जो समस्त भूतप्राणियोंके हितमें ही निरत हैं तथा जो भगवान्‌में ही संयतचित्त हैं—ऐसे ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्मनिर्वाणको प्राप्त होते हैं ।' 'काम-क्रोधसे रहित, जीते हुए चित्तवाले, परब्रह्म परमात्माको जाननेवाले ज्ञानी पुरुषोंके लिये सब ओर ब्रह्मनिर्वाण ही प्राप्त है ।'

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥
प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥
(८ । ८, १०)

'अभ्यासरूप योगसे युक्त, दूसरी ओर न जानेवाले चित्तके द्वारा निरन्तर चिन्तन करता हुआ साधक दिव्य परम पुरुष (परमात्मा) को प्राप्त होता है । वह भक्ति-युक्त साधक अन्तकालमें भी योगबलसे भ्रुकुटीके मध्यमें प्राणोंको भलीभाँति स्थापन करके निश्चल मनसे स्मरण करता हुआ दिव्य परम पुरुष (परमात्मा) को ही प्राप्त होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥
(६ । ४५)

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥
(८ । १३)

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥
(९ । ३२)

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥
(१३ । २८)

'अनेक जन्मोंसे अन्तःकरणकी शुद्धिरूप सिद्धिको प्राप्त और अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करनेवाला योगी समस्त पापोंसे परिशुद्ध होकर परमा गतिको प्राप्त होता है ।'

'जो पुरुष 'ॐ' ऐसे एकाक्षररूप ब्रह्मका उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मेरा (भगवान्‌का) स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है—वह परमा गतिको प्राप्त होता है ।' 'अर्जुन ! स्त्री, वैश्य और शूद्र आदि तथा पापयोनिवाले भी, कोई भी हों, मेरे शरण होकर परमा गतिको प्राप्त होते हैं ।' 'जो पुरुष सबमें समभावसे स्थित परमेश्वरको समान देखता हुआ अपनेद्वारा अपनेको नष्ट नहीं करता है, वह परमा गतिको प्राप्त होता है ।'

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥
(२ । ५१)

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥
(१५ । ५)

'बुद्धियोगयुक्त पुरुष कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले फलका त्याग करके जन्मबन्धनसे छूटकर अनामय पदको प्राप्त होते हैं ।' 'जो मान तथा मोहसे रहित हैं, जिन्होंने आसक्ति-रूप दोषपर विजय प्राप्त कर ली है, जिनकी नित्य अध्यात्म (परमात्म-स्वरूप) में स्थिति है और जिनकी कामना भलीभाँति निवृत्त हो गयी है, ऐसे वे सुख-दुःख आदि नामक द्वन्द्वोंसे विमुक्त ज्ञानी पुरुष अव्यय पदको प्राप्त होते हैं ।'

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥
(५ । २१)

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥
(६ । २८)

'बाहरी स्पर्शादि भोगोंमें अनासक्त चित्तवाला साधक अन्तःकरणमें भगवद्-ध्यानजनित आनन्दको प्राप्त करता है और वह ब्रह्मरूप योगमें ऐक्यभावसे स्थित पुरुष अक्षय सुखका अनुभव करता है ।' 'वह कल्मष—पापरहित योगी निरन्तर आत्माको परमात्मामें लगाता हुआ सुखपूर्वक ब्रह्मसंस्पर्शरूप अत्यन्त सुखका अनुभव करता है ।'

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥
(४ । ३६)

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥
(४ । ३७)

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥
(४ । ३८)

'यदि तुम सारे पापियोंसे भी अधिक पाप करनेवाले हो तो भी ज्ञानरूप नौकाके द्वारा निश्चय ही सम्पूर्ण पापोंसे (जन्म-मरण-प्रवाहसे भलीभाँति) तर जाओगे ।' 'अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित अग्नि इन्धनको भस्मसात् कर देती है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि समस्त कर्मोंको भस्मसात् कर देती है ।' 'इस संसारमें ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला निस्संदेह अन्य कुछ भी नहीं है । उस ज्ञानको (समता कर्मनाश तथा मोक्षस्वरूप तत्त्वज्ञानको) समयपर स्वयं ही समत्वबुद्धिरूप योगके द्वारा भलीभाँति शुद्धान्तःकरण हुआ पुरुष आत्मामें ही अनुभव करता है ।'

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥
(१३ । ३०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

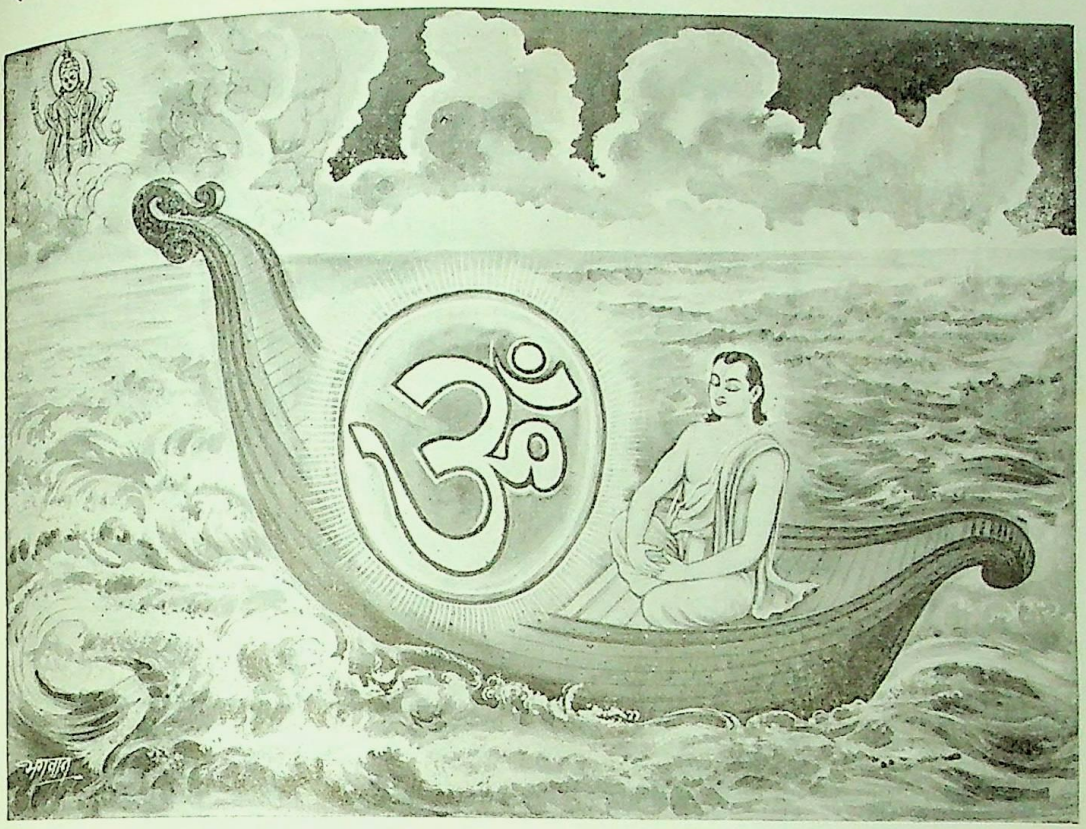

ज्ञानरूप नौकाद्वारा समस्त पापोंसे उद्धार (गीता ४ । ३६)

ज्ञानाग्निसे समस्त कर्मराशि भस्म (गीता ४ । ३७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुणानेतानतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥
(१४।२०)

'यह पुरुष जिस कालमें समस्त भूत-प्राणियोंके पृथक्-पृथक् भावको एक परमात्मामें स्थित देखता है और उस परमात्मासे ही समस्त भूतप्राणियोंका विस्तार देखता है, उस कालमें वह ब्रह्मको प्राप्त होता है।' 'यह पुरुष स्थूल-शरीरकी उत्पत्तिके कारणरूप तीन गुणोंसे जब अतिक्रमण कर जाता है, तब जन्म-मृत्यु, वृद्धावस्था तथा सब प्रकारके दुःखोंसे मुक्त होकर अमृतत्वका अनुभव करता है।'

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि ॥
(१२।१०)

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥
(१८।४६)

'अर्जुन! तू यदि अभ्यास करनेमें असमर्थ है तो केवल मेरे लिये ही कर्म करनेके परायण हो जा। इस प्रकार मेरे अर्थ कर्म करके तू (मेरी प्राप्तिरूप) सिद्धिको प्राप्त होगा।' 'जिस परमात्मासे समस्त भूत-प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिस परमात्मासे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमात्माको अपने स्वाभाविक कर्मके द्वारा पूजकर मनुष्य (भगवत्प्राप्तिरूप) सिद्धिको प्राप्त होता है।'

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥
(८।२१)

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥
(१५।६)

'उस (परमात्मा) को अव्यक्त अक्षर ऐसे कहा गया है, उसीको परम गति कहते हैं तथा जिसको प्राप्त करके जीव वापस नहीं लौटते, वह मेरा परमधाम है।' 'उस स्वयं-प्रकाश परमधामको न सूर्य प्रकाशित करता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही प्रकाशित कर सकता है। उसको पाकर जीव वापस नहीं लौटते और वह मेरा परमधाम है।'

यह परमधाम स्वयं भगवान्‌का ही स्वरूप है। इसीसे अर्जुनने भगवान्‌को 'परमधाम' बतलाया है।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
(१०।१२)

भगवान् कहते हैं—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥
(७।१९)

''बहुत-से जन्मोंके अन्तके जन्ममें ज्ञानी भक्त—'सब कुछ वासुदेव ही है'—इस प्रकार मुझको भजकर प्राप्त होता है, वह महात्मा अति दुर्लभ है।'

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥
(४।१०)

अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥
(८।५)

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद् विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥
(१३।१८)

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥
(१४।१९)

'आसक्ति, भय और क्रोधसे रहित मुझमें तन्मय, मेरे ही आश्रित बहुत-से पुरुष मेरे ज्ञानरूप तपसे पवित्र होकर मेरे भाव (स्वरूप) को प्राप्त हो चुके हैं।' 'अन्तकालमें जो पुरुष मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीर त्याग कर जाता है, वह मेरे ही भाव (स्वरूप) को प्राप्त होता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।' 'क्षेत्र, ज्ञान तथा ज्ञेयका स्वरूप संक्षेपसे (अध्याय १३ श्लोक ५ से १७ तक) कहा गया है; इसको तत्त्वसे जानकर मेरा भक्त मेरे भाव (स्वरूप) को प्राप्त होता है।' 'जिस कालमें द्रष्टा (द्रष्टाके रूपमें स्थित) पुरुष तीनों गुणोंके सिवा अन्य किसीको कर्ता नहीं देखता, उस कालमें वह मेरे भाव (स्वरूप) को प्राप्त होता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि॥
(७।२३)

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥
(८।७)

'(भगवान्‌से पृथक् मानकर देवताओंके भजनेवाले) उन अल्प बुद्धिवालोंको नाशवान् फल ही मिलता है और वे देव-पूजक देवताओंको प्राप्त होते हैं, पर मेरे भक्त तो मुझको ही प्राप्त होते हैं।'

'अतएव तू सब समय निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध कर। इस प्रकार मुझमें अर्पित मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निस्संदेह मुझको ही प्राप्त होगा।'

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥
मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥
आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥
(८।१४-१५-१६)

'जो पुरुष मुझमें अनन्य चित्तसे स्थित होकर नित्य निरन्तर मुझे स्मरण करता है, उस नित्ययुक्त योगीके लिये मैं सुलभ हूँ। वे परम सिद्धि (मेरे प्रेम)को प्राप्त महात्मागण मुझे प्राप्त होकर, दुःखके स्थानरूप पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होते। अर्जुन! ब्रह्मलोकतकके सब लोक पुनरावर्ती हैं, वहाँ जानेवालोंको वापस लौटना पड़ता है, परंतु कौन्तेय! मुझे प्राप्त हो जानेपर पुनर्जन्म नहीं प्राप्त होता।'

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥
(९।३४)

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
(१०।९-१०)

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥
(११।५५)

'मुझमें मनवाले होओ, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करके, मुझे ही नमस्कार करके—इस प्रकार मेरे परायण होकर अपनेको मुझमें युक्त रक्खो तो मुझको ही प्राप्त होओगे।'

'जिन्होंने अपना चित्त मुझमें ही लगा दिया है, अपने प्राण (जीवन) मुझको अर्पण कर दिये हैं, वे भक्तजन नित्य परस्पर मेरी चर्चा करते—मेरे प्रेम-स्वभाव-गुणोंको परस्पर समझते-समझाते हुए, मेरे ही नाम-गुणोंका कथन करते हुए, मुझमें ही संतुष्ट रहते हैं और मुझमें निरन्तर रमण करते हैं, उन निरन्तर मुझमें लगे रहकर प्रेमपूर्वक भजन करनेवाले भक्तोंको मैं वह बुद्धियोग देता हूँ जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।' 'जो मेरा ही कर्म करता है (अपना कुछ कर्म उसको है ही नहीं), मेरे ही परायण है, मेरा ही भक्त है, किसी भी प्राणिपदार्थमें आसक्ति नहीं रखता और सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें जो वैरभावसे रहित है—ऐसा अनन्य भक्त मुझको ही प्राप्त होता है।'

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
(१८।६५-६६)

'मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरी पूजा कर, मुझे ही नमस्कार कर—इस प्रकार करनेपर तू मुझको ही प्राप्त होगा। यह मैं तेरे लिये सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है। सब धर्मोंका परित्याग करके तू एकमात्र मेरी शरणमें आ जा, मैं तुझे सब पापोंसे मुक्त कर दूँगा। तू शोच मत कर।'

इस परमधामकी, परमात्माकी या भगवान्‌की प्राप्ति अथवा मुक्ति ही मानव-जीवनका परम लक्ष्य है। जबतक भगवत्प्राप्ति या मुक्ति नहीं होती, तबतक जन्म-मृत्यु, उच्च-नीच लोकोंकी प्राप्ति, अगति-दुर्गति, सद्गति-परमगति आदि स्थितियाँ होती ही रहेंगी। इसी ध्रुव सत्यका उपदेश भगवान् श्रीकृष्णने रणाङ्गणमें अपने प्रिय सखा भक्त अर्जुनको किया है और उसे बार-बार मानव-जन्मके परम लक्ष्यकी याद दिलाकर शरणागत होनेकी आज्ञा दी है। जीवात्माका परमात्मस्वरूपमें मिल जाना मुक्ति है—यह भी 'भगवत्प्राप्ति'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है; क्योंकि परमात्मा, भगवान् एक ही तत्त्व हैं और भगवत्सेवाधिकार प्राप्त करके भगवत्स्वरूप दिव्य लीला-लोकोंमें—भगवान्‌के दिव्य परमधाममें निवास करना भी 'भगवत्प्राप्ति है।' शान्ति, मोक्ष, ज्ञान आदिके नामसे, जिसमें परमात्म-स्वरूपमें मिल जाना है—प्रधानतया उस मुक्तिका, और 'मेरी प्राप्ति' आदिमें सेवाधिकार प्राप्त करके भगवान्‌के दिव्य परमधाममें निवासका—संकेत है। दोनोंमें ही पुनर्जन्म नहीं होता, दोनोंमें ही जन्म-मरणका चक्र छूट जाता है। दोनों ही परम सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। पर एकमें अभिन्न ब्रह्मानन्द है, दूसरेमें दिव्य रसलीलानन्द है।

वैदिक वाङ्मयमें पुनर्जन्म

(लेखक—श्रीरामनाथजी 'सुमन')

पुनर्जन्म हिंदूधर्मका प्रधान विश्वास है। यही एक बात उसे इस्लाम तथा ईसाई धर्मसे भिन्न भूमिका प्रदान करती है। पुनर्जन्मका यह विश्वास, सिद्धान्त-रूपसे, अत्यन्त प्राचीन है और हिंदू-ज्ञानका समस्त स्रोत वैदिक होनेके कारण वैदिक वाङ्मयमें उसके सूत्र बिखरे हुए हैं। उपनिषद् तो ऐसी कथाओंसे भरे हुए हैं, जिनसे पुनर्जन्म-सिद्धान्तमें हमारे विश्वासकी पुष्टि होती है; किंतु वेदोंमें भी कुछ कम प्रमाण नहीं हैं।

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्।
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्त मनुमते मृळया नः स्वस्ति॥
पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम्।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां या स्वस्तिः॥
(ऋग्वेद १०। ५९। ६-७)

इनमें परमात्माकी 'असुनीति' संज्ञासे स्पष्ट किया गया है कि वह प्राणरूप जीवको भोगके लिये एक देहसे दूसरी देहतक ले जाता है। उस असुनीति परमात्मासे प्रार्थना है कि वह अगले जन्मोंमें भी हमें सुख दे और ऐसी कृपा करे कि सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि हमारे लिये कल्याणकारी सिद्ध हों।

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः॥
(ऋग्वेद १०। १६। ५)

इस मन्त्रमें ऋषि कहते हैं कि मृत्युके उपरान्त जब पञ्चतत्त्व अपने-अपनेमें मिल जाते हैं, तब जीवात्मा बच रहता है और यह जीवात्मा ही दूसरी देह धारण करता है।

अथर्ववेद तो ऐसे मन्त्रोंसे परिपूर्ण है, जिनसे पुनर्जन्मकी समस्यापर किसी-न-किसी रूपमें प्रकाश पड़ता है। कहीं अगले जन्ममें विशिष्ट वस्तुएँ पानेके लिये प्रार्थना है, कहीं स्पष्ट कहा गया है कि पूर्वजन्मके अच्छे-बुरे कर्मोंके अनुसार ही जीवात्मा नवीन योनियोंमें शरीर धारण करता है। कर्मानुसार पशुयोनिमें जन्म लेनेका भी उल्लेख इन मन्त्रोंमें पाया जाता है।

पुनर्मेत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च।
पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पन्तामिहैव॥
(अथर्व० ७। ६७। १)

इसमें अगले जन्ममें कल्याणमयी इन्द्रियोंकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना है।

आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि।
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत॥
(अथर्व० ५। १। २)

इसमें ऋषि कहते हैं कि पूर्वजन्मकृत पाप-पुण्यका भोगी जीवात्मा है और वह पिछले जन्ममें जो पाप-पुण्य करता है, उसीके अनुसार अच्छे-बुरे शरीर धारण करता है। अच्छा कर्म करनेवाला अच्छा शरीर धारण करता है और अधर्माचरण करनेवाला पशु आदि योनियोंमें भी जन्म लेता है।

आत्मा तो नित्य है, किंतु कर्मकी प्रेरणावश वह पिताद्वारा पुत्र-शरीरमें प्रविष्ट होता है। वही जीवात्मा प्राण है और वही गर्भमें जलीय तत्त्वोंसे आवेष्टित पड़ा रहता है—

अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः।
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्रविवेशा शचीभिः।
(अथर्व० ११। ४। २०)

'जायते पुनः' शब्द बहुत ही स्पष्ट रूपसे पुनर्जन्मकी घोषणा करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजुर्वेदके कुछ मन्त्र लीजिये—

पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन्।
पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन्।
वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात्॥
(यजु० ४। १५)

इसमें फिरसे जीवात्माके आगमनकी बात स्पष्ट रूपसे कही गयी है। इतना ही नहीं, आगे चलकर तो कर्मगतिका भी विश्लेषण है और बताया गया है कि उसीके अनुसार कुछ लोग मुक्त हो जाते हैं और दूसरे मर्त्यपुरुष बार-बार जन्म लेते रहते हैं—

द्वे सृती अश्रृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च॥
(यजु० १९। ४७)

जहाँ पहिलेके उद्धृत मन्त्रोंमें जीवात्माके पश्वादि योनियोंमें जन्म लेनेकी ओर संकेत मिलता है, वहाँ यजुर्वेदमें इसका भी उल्लेख प्राप्त है कि जीवात्मा न केवल मानव या पशु योनियोंमें जन्म लेता है, वरं जल, वनस्पति, ओषधि इत्यादि नाना स्थानोंमें भ्रमण और निवास करता बार-बार जन्म धारण करता है। देखिये—

अपस्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे।
गर्भे सन् जायसे पुनः॥
गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम्।
गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामसि॥
प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने।
सꣳसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरासदः॥
पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने।
सेधे मातुर्यथोपस्थेऽन्तरश्वां शिवतमः॥
(यजु० १२। ३६—३९)

यजुर्वेदके अन्तिमांशमें तो यह भी कहा गया है कि मनुष्यको अपने कर्मोंके अनुसार ही आगे जन्म धारण करना होगा। इसलिये जब मृत्यु सामने खड़ी हो और पञ्चतत्त्व-निर्मित शरीरके भस्मावशेष होनेका समय आ जाय, तब उसे अपने कर्मोंका स्मरण करना चाहिये—

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम्।
ॐ क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतꣳ स्मर॥
(यजु० ४०। १५)

हमारे प्राचीन वाङ्मयमें यम और नचिकेताका संवाद प्रसिद्ध है। नचिकेता प्रसिद्ध ऋषि वाजश्रवसका पुत्र था। जब वाजश्रवसके संन्यास ग्रहण करनेका समय आया, तब सर्वमेध यज्ञ करनेके पश्चात् वे अपनी सम्पूर्ण सम्पत्तिका वितरण करने लगे। तब पुत्र नचिकेताके मुँहसे कहीं निकल गया कि 'सब चीजें आप दे रहे हैं तो मुझे किसको देंगे।' कुछ अटपटा-सा प्रश्न था, इसलिये पिताने उसपर ध्यान नहीं दिया—समझा, बालक है, यों ही कहता होगा। वे बटवारेके काममें लगे रहे। उधर बालक नचिकेता बार-बार वही प्रश्न पूछने लगा। इससे खीझकर वाजश्रवसने कह दिया—'मृत्यवे त्वा ददामीति'—'तुझे मृत्युको दूँगा।' कहनेको कह दिया, परंतु पिता ही थे, दुःख और पश्चात्तापसे हृदय भर आया। नचिकेता पिताको दुखी देख बोला—'आप दुःख क्यों करते हैं? यह शरीर तो धान्यकी भाँति मरता है और उसीकी तरह पुनः उग आता है—'सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः। (कठ० १।१।६)' बालकका बहुत आग्रह देख पिताने पुत्रको मृत्यु-विषयक ज्ञान प्राप्त करनेके लिये आचार्य यमके पास भेज दिया। नचिकेता जब यमके आश्रममें पहुँचा, वे कहीं बाहर गये हुए थे। तीन दिन बाद लौटे। उन्हें यह जानकर बड़ा क्लेश हुआ कि हमारे यहाँ अतिथिरूपमें आकर भी नचिकेता तीन दिनोंका भूखा है। उसके परिमार्जनके लिये उन्होंने कहा—'तुम मुझसे तीन वर माँग सकते हो।'

नचिकेताने और वरोंके साथ तीसरा वर आत्मतत्त्वका रहस्य बतानेका माँगा। उसने पूछा—'आत्माकी सत्ता है या नहीं?—अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके (कठ० १।१।२०)' यमने सोचा था कि बालक धन-धान्य, पुत्र-पौत्र, दीर्घायु इत्यादिकी याचना करेगा। किंतु उसने तो एक रहस्यका ज्ञान माँगा। उन्होंने बालकको बहुत समझाया कि 'अपने मतलबके भोग्य पदार्थ माँग ले, जो माँगेगा मैं दूँगा किंतु यह प्रश्न गहन है और तेरे किसी कामका भी नहीं है।'

किंतु नचिकेता तो अपने मनके संशयको दूरकर शुद्ध ज्ञानकी ज्योतिसे प्रकाशित होना चाहता था, इसलिये उसने विनीत भावसे कहा—

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्तगीते॥
यच्छ्रेयो विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत्।
योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते।
(कठ० १। १। २६, २९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नचिकेता कहता है कि 'मैं तो बस उसी आत्मतत्त्वका रहस्य जानना चाहता हूँ, जिसके बारेमें तरह-तरहके संशय-संदेह उठा करते हैं; जिसके विषयमें कई कहते हैं कि मृत्युके बाद भी बचा रहता है, कई कहते हैं कि नहीं बचता। मुझे निर्णय करके बताइये कि वह क्या नित्य है और मृत्युके बाद भी रहता है या नहीं रहता।'

इसके बाद यमने नचिकेताको आत्मतत्त्वका रहस्य समझाते हुए उसकी विशद व्याख्या की है। अपनी व्याख्यामें यम कहते हैं कि 'जो व्यक्ति इसी लोकके भोगोंमें डूबे रहते हैं, उनका बार-बार जन्म होता है किंतु जो आत्माको नित्य समझ, परलोकका ध्यान रखकर सत्कार्य करते हैं, वे जन्म-मरणके बन्धनसे छूट सकते हैं।' फिर यम आगे कहते हैं—

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥
(कठ० २।२।२)

'तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतम्॥
(कठ० २।३।१७)

यह 'हंस' (जीवात्मा) अन्तरिक्षमें, परमात्मामें, हृदयाकाशमें रहता है, यज्ञ करता है, पृथिवीपर जन्म लेता है, परंतु वह शरीरमें अतिथि-मात्र है।·····यह स्वयं अमर है।

उत्तरके अन्तमें यमने यह भी कहा है कि 'तर्क वहाँतक नहीं पहुँच सकता।' 'नैषा तर्केण मतिरापनेया' (१।२।९)—उसे निश्चित जानो और वह है, यही समझो।

उपनिषद् और गीतामें तो पुनर्जन्मका स्पष्ट निर्देश बार-बार आता है। शास्त्रग्रन्थोंमें वैदिक उक्तियोंपर तर्कसम्मत विवेचन भी प्राप्त है। पुराणोंमें इसका और विशद विश्लेषण-विवेचन मिलता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदके ऋषियोंने पुनर्जन्मके जिस सत्यको सूत्रवत् कहा था, बादके हिंदू-धर्म-ग्रन्थोंमें उसकी अभिवृद्धि होती गयी है। आर्यधर्म—हिंदूधर्म पुनर्जन्म और कर्म-सिद्धान्तके जिस मूलाधारपर खड़ा है, वैदिक वाङ्मयसे आजतक बराबर उसकी पुष्टि होती आयी है।*

पुनर्जन्म और परलोकसाधक तर्क

(लेखक—श्रीजगद्गुरुशरणजी वेदान्ताचार्य, पञ्चतीर्थ)

योगो लोकमहानिकुञ्जसखिषु श्रीरंगदेवीश्रुतः
श्रीराधाचरणारविन्दमनिशं संराधने तत्परः।
वैकुण्ठे स सुदर्शनो निगदितस्तस्यैकरूपं भुवि
श्रीनिम्बार्कमुनीश्वरं सदसतोर्निर्णायकं संश्रये॥

विश्वके अनन्त प्राणियोंकी विचारधाराएँ भी अनन्त ही हो सकती हैं, किंतु उन सबकी वास्तविकता-अवास्तविकता परखनेकी कसौटियाँ प्रायः परिगणित हैं। उन्हें ही हम 'प्रमाण' कह सकते हैं। उनमें एक कसौटी 'तर्क' भी है। आजका मानव तर्कको अधिक अपना रहा है; अतः पुनर्जन्म-सम्बन्धी कुछ तर्क यहाँ व्यक्त की जाती हैं।

केवल प्रत्यक्ष प्रमाणसे ही समस्त तत्त्वोंको सिद्ध करनेवाले विचारकोंका कहना है कि जिस प्रकार चूना-कत्था-सुपारी-पानके संयोगसे लालिमा व्यक्त होती है, उसी प्रकार पृथ्वी, जल, तेज, वायु—इन चारों तत्त्वोंके संयोगसे चेतनता-(आत्मा-जीव) की उत्पत्ति हो जाती है। कीचड़में कीड़े, जौ-गेहूँमें ईली (जीव), चनेमें और काठमें भी घुण पैदा होकर वह बाहर भी फिरने लगता है। इस प्रकार जीवोंकी उत्पत्तिका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। अतः देहको ही जीवात्मा, शासक नरेशको ही ईश्वर मानना चाहिये; कण्टक-वेधादि दुःख ही नरक है और कान्तालिङ्गन आदि सुख ही स्वर्ग हैं; अन्य अप्रत्यक्ष स्वर्ग-नरकादि लोक-लोकान्तर माननेकी क्या आवश्यकता है? जीव (चेतन) यहीं उत्पन्न होकर यहीं विनष्ट हो जाता है। मरनेके पश्चात् किसने किसको आते-जाते (जन्मते-मरते) देखा है। इसलिये जबतक जीवन रहे, खूब आनन्द लूटते रहें, धर्माधर्मकी कुछ भी परवा न की जाय।

यावज्जीवं सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

ऐसा यह बृहस्पति-प्रचारित 'चार्वाक मत' कहलाता है। इसे नास्तिक दार्शनिकोंने भी नीची कोटिका माना है; क्योंकि जिस प्रकार पौगण्ड, किशोर, युवा, वृद्ध आदि शारीरिक अवस्थाओंमें बाल्यावस्थामें विचारविहीनता

* पं० श्रीनन्दकिशोरजी विद्यालंकारकी रचनासे इस लेखके लिखनेमें कृतज्ञतापूर्वक सहायता ली गयी है।—लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहती है, हित-अनहितका विचार न करके जो कुछ वस्तु सामने आये, उसे मुँहमें ही डालनेकी चेष्टा की जाती है, चाहे विषधर सर्प ही क्यों न हो; ठीक उसी प्रकार यह चार्वाक-दर्शन समस्त दर्शनोंकी बाल्यावस्था-स्वरूप है। इसकी सार्थकता बस, इतनी ही है—

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।'

शरीरपोषणके अतिरिक्त आगेके बौद्धिक विचार इस मतके लक्ष्य नहीं हैं।

चार्वाक-दर्शनसे उच्चकोटिवाले नास्तिक दर्शनकार भी यह स्वीकार करते हैं कि चाहे शब्द (वेद आदि शास्त्र) को प्रमाण मानें या न मानें, परंतु केवल प्रत्यक्षसे ही समस्त तत्त्वोंकी सिद्धि नहीं हो सकती; अनुमान आदि अन्य प्रमाणोंका भी आश्रय लेना आवश्यक है।

(१) कोई भी संतति माता-पिताके बिना उत्पन्न नहीं हो सकती, ऐसा कारण-कार्य, जनक-जन्यभाव प्रत्यक्ष सिद्ध हैं। यदि किसीके माता-पिता जन्मते ही मर गये हों तो प्रत्यक्ष न होनेके कारण क्या उनका अस्तित्व न माना जायगा? यदि हाँ, तो संतति कहाँसे आयी? यही तर्क पितामह-प्रपितामह आदिके सम्बन्धमें दिया जा सकता है। अतः केवल प्रत्यक्षसे ही कार्य नहीं चल सकता। अनुमान, आप्तवचन (शब्द-शास्त्र) आदि अतीत-अनागत तत्त्वोंको सिद्ध करनेवाले प्रमाणोंको भी अवश्य मानना पड़ेगा। केवल प्रत्यक्षसे समस्त विश्वके वर्तमान पदार्थ भी सिद्ध नहीं हो सकते।

(२) चाहे अच्छे हों या बुरे, सभी कर्मोंका फल कर्मकर्ताको भोगना पड़ेगा। अतः जबतक फलोपभोग नहीं होता, तबतक संस्काररूपसे वे कर्म बने ही रहते हैं—

'नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।'

इस सिद्धान्तको सभी दार्शनिक प्रायः स्वीकार करते हैं।

ऐसी स्थितिमें यदि पुनर्जन्म न माना जाय तो जो व्यक्ति अपने किये हुए समस्त कर्मोंके फलोंका उपभोग न करके पहले ही मर गया, उसके अभुक्त कर्म व्यर्थ हुए, अतः वह 'कृतप्रणाश' दोष उक्त अभिमतवालोंपर आयेगा।

(३) यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि किसी भी योनिका कोई भी बच्चा पैदा होते ही कोई कर्म नहीं कर सकता, फिर भी सुख या दुःखका वह उपभोग करता है, अर्थात् बहुत-से बच्चे स्वस्थ सुखी देखे जाते हैं, बहुत-से अस्वस्थ-रोगी और दुखी देखे जाते हैं। वह फल उन्हें कहाँसे मिला? बिना ही कर्म किये यदि सुख-दुःखरूप फल प्राप्त होता है तो उसे 'अकृताभ्यागम दोष' मानते हैं; केवल प्रत्यक्ष प्रमाणवादी उस दोषसे मुक्त नहीं हो सकेगा। अतः पुनर्जन्म मानना होगा और अनुमान आदि प्रमाणोंसे प्रमाणित पूर्वकृत सुकृत-दुष्कृतोंका ही परिणाम उन सुख-दुःखोंको माना जायगा, जिन्हें नवजात शिशु भोगता है।

(४) नवजात शिशु बोल-चाल, उठना-बैठना आदि क्रिया नहीं कर सकता; उसे यह भी नहीं समझाया जा सकता कि तुम अपनी माताके स्तनको मुँहमें लेकर दोनों जबड़ोंसे दबाकर ऐसे चूसो, जिससे उसका दूध तुम्हारे पेटमें पहुँचे और तुम्हारा पोषण हो; अन्यथा तुम नहीं जीओगे। किंतु कुछ भी कहने और समझानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। मुँहमें स्तन दिया कि अपने-आप वह नवजात शिशु स्तन्यपान करने लग जाता है। यदि पूर्वजन्ममें किये हुए स्तन्यपानके संस्कार न हों तो उस बच्चेकी स्तन्यपानमें प्रवृत्ति ही नहीं हो सकती।

(५) पशु-पक्षियोंको संतानोत्पत्ति, उनके पालन-पोषण और रहन-सहनकी व्यवस्था करनेका ज्ञान होता है, ऐसा उनकी क्रियाओंको देखनेसे प्रमाणित होता है। यदि पूर्वजन्म न मानें तो उन पशु-पक्षियोंको इन कार्योंकी शिक्षा कहाँसे प्राप्त हुई? यह प्रश्न बना ही रहेगा।

(६) बिल बनाकर उसमें कीटको रखना और नादके द्वारा उसे अपने-जैसा ही भ्रमर बना लेना; अनेक पुष्पोंसे सूक्ष्म रस लाकर उससे मधु बनाना तथा एक-एक तृणको चञ्चुसे उठा-उठाकर उससे ऐसा नीड (घोंसला) बनाना, जिसे देखकर हाथ-पैर और बुद्धिवाले मानव भी चकित हो जाते हैं। भ्रमर, मधु-मक्खी, बया आदि पक्षियोंकी ये विशेषताएँ भी पुनर्जन्मको सिद्ध कर रही हैं।

(७) सभी (अनन्त) जीव अविनाशी हैं। इनका अनेक योनियोंमें कई बार जन्म हुआ है और मुक्तिपर्यन्त वह होता ही रहेगा। अतः जिन-जिन योनियोंमें पहले जन्म हुआ था, उन्हीं योनियोंमें पुनः जन्म होनेपर उनके संस्कार उद्बुद्ध होकर वैसी ही स्मृति उत्पन्न कर देते हैं, जिससे नवजात अशिक्षित शिशु भी तदनुसार क्रिया करने लगता है। अन्यथा वह किसी भी प्रकारकी चेष्टा नहीं कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकेगा। अतः तर्कसे भी पुनर्जन्मकी सिद्धि हो रही है। 'पुनर्जन्म' सिद्ध हुआ कि 'परलोक' स्वतः सिद्ध हो गया। आजके वैज्ञानिक चन्द्रलोककी यात्राके लिये उद्यत हैं। उनके राकेट तो वहाँ उतर ही चुके हैं। जब चन्द्रलोक भूलोकसे एक पृथक् लोक प्रत्यक्ष सिद्ध है, तब अन्य इन्द्रादि लोक-लोकान्तर भी निश्चित हैं। यही मानना पड़ेगा।

जन्मान्तर-तथ्य

(लेखक—श्रीशैलेशजी ब्रह्मचारी)

जन्मान्तरवादीका तथ्य या पुनर्जन्म-तत्त्व—यह मनुष्यके लिये एक चिरन्तन कौतूहल है। युग-युगमें, देश-देशमें मनुष्यका मन सदासे इस विषयमें जिज्ञासाशील रहा है। हमारे देशमें तो अति प्राचीन कालसे ऋषियोंने इस विषयमें बहुत विचार किया है; किंतु पाश्चात्त्य जगत्में भी इस विषयमें लोगोंके कौतूहलकी सीमा नहीं है। हमारे आर्य-ऋषियोंने इस विषयमें हमको जहाँ पहुँचा दिया है, उससे आगेकी बात आजतक कोई कहनेमें समर्थ नहीं है। अति उन्नतिशील और गौरवान्वित विज्ञानने भी इस विषयमें कोई परीक्षण-निरीक्षण नहीं किया; अतएव विज्ञान भी कोई नवीन तथ्य हमारे सामने नहीं रख सका। ऐसी स्थितिमें क्या इस विषयमें हमारे ऋषि-प्रोक्त तथ्य ही अन्तिम तत्त्व हैं?

बहुत-से लोग कहते हैं कि 'पाश्चात्त्य जगत् इसके बारेमें मौन है, अर्थात् वहाँ अधिकतर लोग जन्मान्तरवादको मानते ही नहीं हैं और यदि कोई-कोई धर्म पुनर्जन्मके सिद्धान्तको मानते भी हैं तो वह उनके लिये गौण विषय ही है।' परंतु यह बात ठीक नहीं है। वर्तमान पाश्चात्त्य जगत् तो दूर रहे, उन देशोंके प्राचीन धर्ममें भी इसके अस्तित्वका विशेष परिचय प्राप्त होता है। ग्रीस देशमें अति प्राचीन कालमें Urphik नामक एक धार्मिक मत प्रचलित था, वह भी जन्मान्तरवादको मानता था। खनामधन्य गणितज्ञ और दार्शनिक पाइथागोरस तथा सुकरातके सुयोग्य शिष्य प्लेटो—इन दोनोंका धार्मिक मत उपर्युक्त Urphik धर्म ही था। उन्होंने अपनी विभिन्न रचनाओंमें जन्मान्तरवादका उल्लेख किया है। निश्चय ही यह बात सत्य है कि उनका यह धार्मिक मत प्राचीन आर्य-ऋषियोंके धर्मसे ही गृहीत हुआ था। प्रमाणस्वरूप मैकडानेल (Macdonell) साहब तथा गोम्पर्ज (Gompers) साहबकी पुनर्जन्म-तत्त्वविषयक आलोचना-का उल्लेख किया जा सकता है। दोनोंने परलोक और पुनर्जन्मवादकी विस्तृत आलोचना करके दिखलाया है कि प्राच्य आर्षधर्मके साथ Urphik धर्मकी इस विषयमें बहुत समानता है। Gompers साहबके मतसे 'हिंदू धर्मका तथा ग्रीक धर्मका निरामिष भोजनका सिद्धान्त एक ही प्रकारके विचारसे उद्भूत था। दोनों धर्मोंमें जन्मराशि-चक्रका विवरण भी एक ही ढाँचेका है। यहाँतक कि पुनर्जन्मवादके जो सिद्धान्त दोनों धर्मोंमें विद्यमान हैं, उनकी व्याख्या भी एक ही प्रकारसे की जाती है।' मैकडानेल साहब स्पष्टरूपसे कहते हैं कि, 'There cannot be any doubt that the religion Urphik was fundamentally based on the Arya philosophy and faith.' अर्थात् 'इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि Urphik धर्म मूलतः आर्यदर्शन और विश्वासके ऊपर आधारित था।'

अतएव जन्मान्तरवादके विषयमें पाश्चात्त्य जगत् मौन है, यह उक्ति, जान पड़ता है, उन देशोंके वर्तमान भौतिकवादको लक्ष्य करके ही कही गयी है।

जो हो, पुनर्जन्मवाद हमारे उपनिषदोंका एक मुख्य सिद्धान्त है। नचिकेता मृत्युराजके द्वारपर उपस्थित हुए। बारंबार अनुरोधपूर्वक उन्होंने मृत्युराजसे पूछा कि 'मृत्यु-के बाद मनुष्यका कुछ रहता है या नहीं, यह एक प्राचीन समस्यामूलक प्रश्न है। आप मुझे इस विषयमें उपदेश दें।' यमराजने नचिकेताको जो बतलाया था, उसका संक्षिप्त सार यही है कि 'जो लोग परलोकमें विश्वास नहीं करते, वे अविवेकी और मूढ़ हैं। इस प्रकारके लोग बारं-बार जन्म-मृत्युके अधीन होते हैं।' उन्होंने बतलाया कि 'आत्माका जन्म-मृत्यु नहीं होता। वह अज, नित्य तथा शाश्वत है। शरीरके पतन होनेके पूर्व जो ब्रह्म (आत्मा) को नहीं जान लेता, उसको पुनः शरीर धारण करके प्राणीके गर्भमें अथवा स्थावर जगत्में प्रवेश करना पड़ता है।' अर्थात् जन्मान्तरवाद और परलोकवाद सत्य हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छान्दोग्य उपनिषद्में भी आया है—'जीवापेतं वाव किल इदं म्रियते। न जीवो म्रियते।' (६।११।३)

नचिकेता योग्य प्रश्नकर्ता थे। अतएव यमराजकी बात सुनकर स्वभावतः जीवके मन जो प्रश्न आता है, उनके मनमें भी वही प्रश्न उठा था। किंतु वर्तमान प्रसङ्गमें वह प्रयोजनीय नहीं। हमारा प्रश्न यह है कि जीवके देह-त्यागके समय तथा उसके बाद क्या होता है?

इस प्रसङ्गमें बृहदारण्यक उपनिषद् कहता है कि 'यथाकारी यथाचारी भवति'.....इत्यादि (४।४।५)—अर्थात् 'जो जिस प्रकारका आचरण करता है, उसकी परिणति उसी प्रकार होती है।' पुरुषका मन आसक्त विषयमें आकृष्ट होकर उसी पथसे गमन करता है। छान्दोग्य उपनिषद् और भी कहता है कि 'तद् य इह रमणीय-चरणा अभ्याशो ह यत् ते रमणीयां योनिमापद्येरन्' (५।१०।७)—'अर्थात् जो सुन्दर आचरण करते रहते हैं, वे मरणोपरान्त सुन्दर योनिमें जन्म लेते हैं।'

तत्पश्चात् यह परिणति या गति होती है किस रूपमें? इस विषयमें छान्दोग्य उपनिषद् कहता है कि 'मृत्युके समय पहले वाक् मनमें लीन होता है, मन तेजमें और तेज परमतेजमें लीन होता है' (६।८।६)। कौषीतकी उपनिषद् भी कहता है कि 'जीव शरीर-त्यागके समय वाक्, इन्द्रिय-समूह और मनको उपाधिके साथ एकत्रित कर लेता है तथा वे सब प्राणमें विलीन हो जाते हैं।' बृहदारण्यक उपनिषद् कहता है कि 'मृत्युकालमें इन्द्रियोंकी क्रिया अव्यक्त हो जाती है और वे हृदयमें एकत्रित होकर प्रभायुक्त होती हैं। उस प्रभाके द्वारा आलोकित होकर आत्मा देहसे निकलता है तथा सब प्राण उसका अनुगमन करते हैं।' मरणक्रियाका यही रूप उपनिषद्में वर्णित है।

इस प्रकार आत्मा बहिर्गत होता है; किंतु बहिर्गत होकर वह जाता कहाँ है? और किस पथसे जाता है? छान्दोग्य, बृहदारण्यक आदि विभिन्न उपनिषदोंमें आत्माकी गतिके सम्बन्धमें 'देवयान' तथा 'पितृयाण'के नामसे दो मार्गोंका वर्णन मिलता है। इसके सिवा विभिन्न सूत्रों और विभिन्न ब्राह्मणोंमें भी विभिन्न प्रकारकी बातें मिलती हैं।

इनमें देवयान मार्गसे जानेवाला निर्वाण या मोक्षको प्राप्त होता है और पितृयाणसे जानेवालोंको पुनः लौटना पड़ता है।

शतपथ-ब्राह्मणमें भी इन दोनों प्रकारकी गतियोंका उल्लेख है। 'अथ य एवं न विदुः, ये वै तत् कर्म न कुर्वते कृत्वा पुनः सम्भवन्ति।' (१०।४।१०)

'पुनः सम्भवन्ति'—इससे यह प्रश्न उठता है कि 'अदेहीको देहकी प्राप्ति कैसे होती है?' इसका उत्तर बृहदारण्यक उपनिषद् देता है कि 'मृत्युके समय आत्मा अपनी सारी शक्ति और इन्द्रियाभासको साथ ले जाता है। इस शक्तिके बलसे ही उसका पुनः जन्म लेना सम्भव होता है।' देहके रूपके सम्बन्धमें भी उपनिषद् कहता है—'देहके आकार और गठन निर्भर करते हैं—पूर्वजन्मकी सुकृति और दुष्कृतिके ऊपर। जो आत्मा जन्म लेता है, उसके भीतर उसके पूर्वजन्मके सारे संस्कार ही वर्तमान रहते हैं। पूर्वजन्मकी कामना-वासना भी उसके साथ लगी रहती है—

'स यथाकामो भवति तत् क्रतुर्भवति। यत् क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते॥' (बृहदारण्यक० ४।४।५)

जन्मान्तर-तत्त्वके विषयमें एक और बात है। मृत्युके बाद पाप-पुण्यका फल कहाँ और किस प्रकार मिलता है? उपनिषद्में लिखा है कि 'कृत पाप-पुण्यके फलसे ही उत्कृष्ट अथवा निकृष्ट योनि प्राप्त होती है और पाप-पुण्यका फल-भोग होता है—पृथक्-पृथक् लोकोंमें।' इहलोकमें भी पुनर्जन्मके बाद पूर्वजन्मके कर्मोंका फल भोगना पड़ता है; क्योंकि उपनिषद् कहता है कि 'जो जिसके जिस कर्मके लिये उत्तरदायी होता है, फल-प्राप्तिके समय उसका भी संयोग आवश्यक होता है।' जैसे, इस जन्ममें जो ऋणी हो गया है, जन्मान्तरमें उस ऋणके परिशोधके लिये धनदाताके साथ उसका संयोग आवश्यक होगा। अर्थात् पाप और पुण्यके भोगके लिये कोई निर्दिष्ट लोक ही नहीं है। यही उपनिषद्का मत है।

इहलोक कर्मलोक है। उपनिषद् कहते हैं कि 'कर्मके द्वारा ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस चतुर्वर्गकी प्राप्ति होती है। अतएव केवल मुक्ति ही नहीं, मुक्तिके लिये भी इहलोककी आवश्यकता है। अतएव यदि जीव जन्म-जन्मान्तर-कर्मके द्वारा आप्तकाम नहीं हो जाता, तो उसका प्राण उत्क्रमण करेगा ही। (उसका पुनर्जन्म होगा ही।) जो आप्तकामी, निष्काम हो जायँगे, उनको ब्रह्मकी प्राप्ति होगी ही।' यही औपनिषदिक जन्मान्तरवादका संक्षिप्त रहस्य है। ॐ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आध्यात्मिक पुनर्जन्म

(लेखक—श्री'मण्डन'मिश्र)

भौतिक पुनर्जन्ममें शरीर बदलनेकी आवश्यकता पड़ती है, किंतु आध्यात्मिक पुनर्जन्म इस शरीरके रहते हुए ही होता है। इसके लिये कुछ संस्कारोंकी आवश्यकता होती है, जो प्रायः सभी विभिन्न धर्मोंमें पाये जाते हैं। अपने यहाँ उपनयन एक ऐसा ही संस्कार है। उसके बाद उपनीतको 'द्विज' या 'द्विजन्मा' कहा जाता है। यह संस्कार होनेपर व्यक्तिको आध्यात्मिक दृष्टिसे कुछ अधिकार मिल जाते हैं और साथ ही उसकी जिम्मेदारियाँ भी बढ़ जाती हैं। जो उपनयनके अधिकारी नहीं हैं, उनके लिये विवाह इसी प्रकारका एक संस्कार है। उसके बाद उसका एक प्रकारसे पुनर्जन्म ही समझना चाहिये। वह गृहस्थ बनकर अपनी नयी जिम्मेदारियोंका बोझ उठाता है। ईसाइयोंमें 'बप्तिस्मां' एक ऐसा ही संस्कार है। इसके हो जानेपर ही बच्चा ईसाई-धर्ममें दीक्षित समझा जाता है। इसी तरह मुसल्मानोंके यहाँ 'सुन्नत' है। इसी तरह अधिकांश सम्प्रदायों-में आध्यात्मिक पुनर्जन्मकी कुछ-न-कुछ व्यवस्था है। यह बात अवश्य है कि अपने यहाँ इस विषयपर जितना विचार तथा अनुसंधान चला है, उतना अन्य किसी धर्ममें नहीं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि इसका मूल सिद्धान्त अपने ही यहाँकी देन है, जिसे अन्य धर्मोंमें किसी-न-किसी रूपमें अपनाया गया है। किंतु उसमें असंगतियाँ भी हैं। यह स्वाभाविक है, जब कोई धर्म किसी दूसरे धर्मका कोई सिद्धान्त अपनाता है, तो यथार्थरूपमें उसे समझनेमें असमर्थ होनेके कारण उसमें असंगतियाँ आ जाती हैं।

पुनर्जन्म

(लेखक—वैद्य श्रीकन्हैयालालजी भेड़ा, व्याकरणायुर्वेदाचार्य)

पुनर्जन्म भारतीय संस्कृतिके तत्त्वज्ञानका एक मौलिक सिद्धान्त है। शरीरकी मृत्युके साथ शरीरगत आत्माकी मृत्यु न होकर, वह आत्मा उस देहमें प्राप्त संस्कारोंके साथ दूसरे देहमें चला जाता है, इसीको 'पुनर्जन्म' कहते हैं।

मृतो नष्ट इति प्रोक्तो मन्ये तच्च मृषा ह्यसत्।
स देशकालान्तरितो भूत्वा भूत्वानुभूयते॥
(योगवासिष्ठ ५। ७१। ६५)

अनुभूय क्षणं जीवो मिथ्यामरणमूर्च्छनम्।
विस्मृत्य प्राक्तनं भावमन्यं पश्यति सुव्रते॥
(योगवासिष्ठ ३। २०। ३१)

आशापाशशताबद्धा वासनाभावधारिणः।
कायात्कायमुपायान्ति वृक्षाद् वृक्षमिवाण्डजाः॥
(योगवासिष्ठ ४। ४३। २६)

पुनर्जन्मका सिद्धान्त न केवल युक्तियुक्त है, अपितु आत्माकी दृष्टिसे आवश्यक घटना है। माता-पितासे अपत्यको भौतिक शरीर मिलता है तथा कुछ वंशपरम्परागत (Hereditary) गुण-दोष भी मिलते हैं। परंतु इसमें संततिके समस्त शारीरिक एवं मानसिक गुण-दोषोंकी उत्पत्ति लगाना कठिन है। पुनर्जन्म ही एक ऐसी घटना है कि जिसके आधारपर कठिन-से-कठिन प्रश्नोंका उत्तर दिया जा सकता है।

पुनर्जन्मका सिद्धान्त अनुमान और युक्तिके आधारपर सिद्ध करना पड़ता है। इसके लिये आयुर्वेदमें बहुत सुन्दर सुयुक्तियुक्त एवं विस्तृत वर्णन मिलता है, उसका सार-भाग यह है कि प्रथम परलोक तथा पुनर्जन्मकी सिद्धिके लिये—

अपुनर्भववादी—Rejector of the Rebirth of Spirit theory.

१ प्रत्यक्षवादी (पुनर्जन्मके परोक्ष होनेसे), श्रुतिवादी (परस्पर विरोध होनेसे)

Followers of Direct Observation theory and Followers of Tradition theory.

२ मातृ-पितृवादी—Followers of Mother and Father theory.

३ स्वभाववादी—Followers of Nature theory.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४ परनिर्माणवादी—Followers of Divine Handywork theory.

५ यदृच्छावादी—Followers of Accident theory.

—आदि विभिन्न पक्षोंका संग्रह करके विचार किया है। क्रमशः इनका खण्डन करके अन्तमें अपनी बुद्धिको पापमय कर्मोंसे हटाकर सज्जन पुरुषोंद्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तपर स्थिर होकर विचार करना चाहिये—

तस्मान्मतिं विमुच्यैताममार्गप्रसृतां बुधः।
सतां बुद्धिप्रदीपेन पश्येत् सर्वं यथातथम्॥

(चरक० सू० ११।५)

इसलिये यही सज्जनोंका मार्ग है तथा इसपर वही चल सकता है, जिसकी बुद्धि शुद्ध होती है; अतः बुद्धिका शोधन करके इस मार्गपर चलनेका आदेश दिया है।

यहाँ आचार्यने कहा है कि जगत्में प्रत्यक्ष बहुत कम पदार्थोंका होता है; किंतु अनुमान आदि प्रमाणोंसे ज्ञातव्य वस्तुएँ बहुत हैं। केवल प्रत्यक्ष प्रमाण माननेमें यह दोष भी कहा है कि इन्द्रियाँ स्वयं प्रत्यक्ष-गम्य नहीं हैं तो क्या इन्द्रियोंको नहीं मानना चाहिये? यदि इन्द्रियोंको न मानें तो वस्तुओंका ज्ञान ही सम्भव नहीं है। यदि इन्द्रियाधिष्ठानको इन्द्रिय मान लिया जाय तो बधिर-अन्ध होनेपर इन्द्रियाधिष्ठानके होते हुए ज्ञान उत्पन्न होना चाहिये, किंतु वह नहीं होता है। अतः इन्द्रियोंका ज्ञान **'चक्षुर्बुद्ध्यादिकाः करणकार्याः क्रियात्वाच्छिदिक्रियावत्।'** इस अनुमान-प्रकारसे अर्थात् चक्षुर्बुद्धि आदि पाँच इन्द्रियबुद्धियाँ किसी साधनद्वारा उत्पन्न होती हैं—क्रिया होनेपर छेदनक्रियाके सदृश, अर्थात् छेदन-क्रिया जिस तरह आरे आदिद्वारा उत्पन्न होती है, तद्वत् चक्षुर्बुद्धि-ज्ञान आदि भी किसीके द्वारा उत्पन्न होने चाहिये। जिनके द्वारा ये उत्पन्न होते हैं वे ही वास्तवमें इन्द्रिय हैं—

'तत्र बुद्धिमान् नास्तिक्यबुद्धिं जह्याद् विचिकित्सां च। कस्मात्? प्रत्यक्षं ह्यल्पम्, अनल्पमप्रत्यक्षमस्ति, यदागमानुमान-युक्तिभिरुपलभ्यते। यैरेव तावदिन्द्रियैः प्रत्यक्षमुपलभ्यते तान्येव सन्ति चाप्रत्यक्षाणि।' (चरक० सू० ११।५)

इसी तरह अति सामीप्य आदि आठ कारणोंसे वस्तुका प्रत्यक्ष नहीं होता है—

अतिदूरात् सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात्।
सौक्ष्म्याद् व्यवधानादभिभवात् समानाभिहाराच्च॥

(सांख्यकारिका ७)

अतः केवल प्रत्यक्षको माननेवाले बिना विचारे तथा बिना परीक्षा किये ही 'प्रत्यक्ष ही केवल प्रमाण है, अन्य प्रमाण नहीं है' उनके इस मतका खण्डन करते हुए भी प्रत्यक्ष प्रमाणसे भी पुनर्जन्मकी सिद्धि होती है, इसको त्रयोदश उदाहरणोंसे स्पष्ट किया गया है—

'प्रत्यक्षमपि चोपलभ्यते मातापित्रोर्विसदृशान्यपत्यानि…' इत्यादि—'तथैवानुमीयते…' इत्यादि।

अर्थात् जन्मान्तरमें किये हुए कर्मका विनाश नहीं होता; यह अविनाशी है। भोगके बिना कर्मका विनाश नहीं हो सकता।

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।'

तथा—'नाभुक्तं क्षीयते कर्म' इति।

इससे सिद्ध होता है पूर्वजन्म था तथा पुनः भी जन्म होगा। अनुमानप्रमाणसे पुनर्जन्मको सिद्ध करनेके लिये दो उदाहरण दिये हैं—फलको देखकर अतीत बीजका अनुमान किया जाता है, तदनुसार उत्तम कुल एवं अधम कुलमें जन्म देखकर पूर्वजन्मकृत शुभाशुभ कर्मका अनुमान करके पूर्वजन्म सिद्ध किया जाता है। ऐसे ही बीजको देखकर भविष्यमें होनेवाले फलका अनुमान किया जाता है, तथैव इस शरीरद्वारा किये गये शुभ और अशुभ कर्मसे भविष्यमें पुनर्जन्मका अनुमान कर पुनर्जन्म सिद्ध किया जाता है।

आप्तोपदेश—आप्त महर्षियोंने दिव्य दृष्टिसे देखकर पुनर्भवका उपदेश दिया है। आप्तोपदेशसे समस्त वेदवाक्य, धर्मशास्त्र, स्मृति-पुराण आदिका ग्रहण होता है। महर्षि वात्स्यायनने 'आप्त' शब्दका (न्यायदर्शन १।१।७ के भाष्यमें) अर्थ किया है—

'आप्तः खलु साक्षात्कृतधर्मा यथा दृष्टस्यार्थस्य चिख्यापयिषया प्रयोक्ता उपदेष्टा।'

इसी तरह—**'आप्तस्तु यथार्थवक्ता।'** इति चरके पतञ्जलिः (परमलघुमञ्जूषा)

अर्थात्—आप्त पुरुष सत्य बोलते थे, इसीलिये उनका सत्यवचन प्रमाण ही माना जाता था। युक्तिसे भी पुनर्लोक एवं पुनर्भव सिद्ध किया है। युक्तिकी परिभाषा होती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत कारणोंके योगसे उत्पन्न अविज्ञात भावोंको विज्ञात भावोंके कार्य-कारण भावके अनुसार तथ्यको देखनेवाली बुद्धिको 'युक्ति' कहते हैं।

'विज्ञातेऽर्थे कारणोपपत्तिदर्शनात्, अविज्ञातेऽपि तद्ग्रहणं युक्तिः।' (गंगाधरः)

इन चार प्रमाणोंके द्वारा पुनर्जन्मको सिद्ध किया गया है। इससे परलोककी भी सत्ता सिद्ध होती है।

योगदर्शनमें—

'संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्'।

(योग०, विभूति० १८)

इस सूत्रके भाष्यकारने आवट्य नामक योगीश्वरका योगिराज जैगीषव्यके साथ एक संवादसे पुनर्जन्म सिद्ध किया है। इसका सार यह है कि भगवान् जैगीषव्य प्रसिद्ध योगीश्वर थे। उनके विषयमें ऐसी प्रसिद्धि है कि वे संस्कारोंके साक्षात्कारसे दस महाकल्पोंमें व्यतीत हुए अपने जन्म-परिणाम-परम्पराका अनुभव करते हुए विवेकजन्य ज्ञानसम्पन्न थे। एवं योगिराज भगवान् आवट्यके सम्बन्धमें भी सुना जाता है कि वे योगबलसे स्वेच्छामय दिव्य विग्रह धारण करके विचरण करते थे। एक समय दोनों योगियोंका संगम हो गया। उस समय आवट्यने जैगीषव्यसे यह प्रश्न किया कि 'दस महाकल्पोंमें देव-मनुष्य आदि योनियोंमें उत्पन्न होते हुए आपने जो अनेक तरहकी तिर्यक्-योनियोंमें तथा गर्भमें दुःखोंका अनुभव किया है, उन सबसे आप विदित-तत्त्व हैं; क्योंकि आपकी बुद्धि सत्त्वगुणसे युक्त होनेसे स्वच्छ है; अतः आपको सम्पूर्ण पूर्वजन्मोंका ज्ञान है। इसलिये आप यह बताइये कि इन महाकल्पोंमें आपने नानाविध जन्म धारण किये हैं, उन जन्मोंमें आपने संसारको सुखबहुल देखा या दुःख-बहुल ?' इसके उत्तरमें श्रीजैगीषव्यने कहा कि 'उन दस महाकल्पोंमें अनेक प्रकारके नरक-तिर्यक्-योनियोंमें बहुविध दुःखोंका अनुभव करते हुए पुनः-पुनः देव और मनुष्यादि योनियोंमें जन्म लेते हुए जो अनुभव किया है, उन सबको मैं दुःखरूप ही मानता हूँ।' इत्यादि।

'भगवानावट्यो जैगीषव्यमुवाच दशसु महासर्गेषु भव्यत्वादनभिभूतबुद्धिसत्त्वेन त्वया नाकृतिर्यग्गर्भसम्भवं दुःखं सम्पश्यता देवमनुष्ययोनिषु पुनः पुनरुत्पद्यमानेन सुखदुःखयोः किमधिकमुपलब्धमिति भगवन्तमावट्यं जैगीषव्य उवाच—दशसु महासर्गेषु भव्यत्वादनभिभूतबुद्धिसत्त्वेन मया तिर्यग्भवं दुःखं सम्पश्यता देवमनुष्येषु पुनः पुनरुत्पद्यमानेन यत् किंचिदनुभूतं तत् सर्वं दुःखमेव प्रत्यवैमीत्यादि।'

महाभारतमें महर्षि व्यासने सुगमतासे ज्ञान करानेके लिये शुभाशुभकर्मानुसारि पूर्वजन्मको इस तरह स्पष्ट किया है—

प्रागनेन कृतं कर्म तेनासौ निधनं गतः।
विनाशहेतुः कर्मास्य सर्वे कर्मवशा वयम्॥

अर्थात्—गौतमी नामकी कोई ब्राह्मणी सर्पके दंशसे मरे हुए पुत्रको देखकर अत्यन्त चिन्ता कर रही थी। किसी लुब्धकके द्वारा बाँधकर अपने समीप लाये हुए सर्पको, पुनः-पुनः मारिये—कहनेपर भी गौतमीने उसका वध नहीं किया। सर्प भी, 'मैं वध करनेवाला नहीं हूँ, कुठारकी तरह छेदनक्रियामें परतन्त्र हूँ; मृत्यु ही यहाँ कारण है।' ऐसा कह रहा था। तदनन्तर मृत्युने प्रादुर्भूत होकर कहा कि 'मैं भी काल-परतन्त्र हूँ।' फिर काल भी आकर कहता है कि "मैं भी स्वतन्त्र नहीं हूँ। इसका 'कर्म' ही इसकी मृत्युमें कारण है।"

विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान॥

(ऋग्वेद १०। ५५। ५)

इसका सायणानुसार तात्पर्य यह है कि 'वृद्धावस्थासे व्याप्त प्राणीकी जब मृत्यु होती है, पुनः जन्मान्तरमें प्रादुर्भूत होता है, इस स्पष्टोक्तिसे भी जन्मान्तर सूचित होता है।' इसी वेदपुरुषोक्तिका अनुसरण करते हुए—

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।'

(गीता २। २७)

—कहकर श्रीमद्भगवद्गीतामें जन्म-मरण-सामानाधिकरण्य नियमका कथन साक्षात् भगवान्ने किया है। इसी तरह भगवद्गीताके द्वारा पुनर्जन्मप्रदर्शक बहुत वचनोंका उद्धरण दिया जा सकता है। जैसे—**'बहूनां जन्मनामन्ते।'** (गीता ७। १९)

'बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि' (गीता ४। ५) आदि तथा अन्यान्य श्रुति-स्मृत्यादि प्रमाणोंसे पुनर्जन्म सिद्ध होता है।

श्रीकालिदासने रघुवंश (१४। ६६) में कहा है—

साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्—'वह मैं संतानके बाद सूर्यकी ओर देखती हुई वैसा तप करनेके लिये प्रयत्न करूँगी, जिससे जन्मान्तरमें भी मेरे पति आप ही हों और मेरा आपसे वियोग न हो।'

तथा—

रतिस्मरौ नूनमिमावभूतां राज्ञां सहस्रेषु तथा हि बाला।
गतेयमात्मप्रतिरूपमेव मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम्॥

(रघु० ७। १५)

'निश्चय ही ये दोनों पूर्वजन्ममें रति तथा कामदेव थे (और इस जन्ममें) इन्दुमती तथा अजरूपमें उत्पन्न हुए हैं; क्योंकि कुमारी इस इन्दुमतीने हजारों राजाओंके बीचमें इनको प्राप्त कर लिया। मन दूसरे जन्मकी सङ्गतिका ज्ञाता (जानकार) होता है।'

महाकवि श्रीहर्ष भी 'नैषधमहाकाव्य' (सर्ग ९ श्लो० १००) में—

ममादरीदं विदरीतुमान्तरं तदर्थिकल्पद्रुम किञ्चिदर्थये।
भिदां हृदि द्वारमवाप्य मैव मे हतासुभिः प्राणसमः समं गमः॥

यहाँ श्रीदमयन्तीने नलसे प्रार्थना की है कि 'तुम मेरे प्राणके समान हो, अतः सम्भव है कि तुम्हारे बिना हृदयके विदीर्ण होनेपर हतभाग्य मेरे प्राण विदारणरूप द्वारसे निकल जायँगे, किंतु तुम भी उस द्वारसे मत निकल जाना अर्थात् जन्मान्तरमें भी तुमसे ही मैं हृदयसे अनुरक्त होकर पुनः प्राप्त करूँ, यही मेरी याचना है।'

छा० उ० (८। १५। १) में—

'न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते।'
'तेषां न पुनरावृत्तिः।' (बृ० ६। २। १५)

'एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते नावर्तन्ते।'

(छा० ४। १५। ६)

कर्म तथा पुनर्जन्मका सिद्धान्त, जो भारतीय धर्मकी आधारशिला है, रामायणमें सर्वत्र स्वीकृत एवं समर्थित है।

पाप और उसका फल दोनोंमें समानता एवं संगति देखी जाती है। जिस तरहका पाप-कर्म होगा, पापीको उनका परिणाम भी उसी तरहका भोगना पड़ेगा। श्रीरामचन्द्रके अनुसार श्रीकौसल्याने पूर्वजन्ममें स्त्रियोंका पुत्रोंसे विद्रोह कराया होगा, तभी इस जन्ममें उनको भी ऐसा ही पुत्र-वियोग सहना पड़ा—

नूनं जात्यन्तरे तात स्त्रियः पुत्रैर्वियोजिताः।
जनन्या मम सौमित्रे तदद्यैतदुपस्थितम्॥

(२। ५३। १९)

स्वयं कौसल्याकी भी यह मान्यता थी कि 'निश्चय ही पहले मैंने अधम बुद्धिसे, बछड़ोंके दूध पीनेके समय उनकी माताओंके स्तनोंको काट डाला होगा, इसी कारण (नियति-वश) मैं भी विवत्सा कर दी गयी।'

रामायणके अनुसार मनुष्यका कोई कर्म, भले ही वह अज्ञानवश ही क्यों न किया हो, निष्फल नहीं जा सकता। इसलिये महर्षि श्रीवाल्मीकिने बहुत उदाहरणोंसे पुनर्जन्मको सिद्ध किया है। कर्मफलकी प्राप्तिके लिये जन्म-मरणकी शृङ्खला अनिवार्य है। अतः जीवके लिये पुनर्जन्मका सिद्धान्त सभी शास्त्रकारोंने स्वीकार किया है। सर्वत्र ही उसकी प्राप्ति सदाचारी जीवनसे ही सम्भव मानी गयी है। अतएव सत्यभाषण, पूज्यवर्गमें श्रद्धा आदिके लिये प्रबल बल दिया है।

वेदोंमें—'एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः।'

(श्वे० उ० २। १६। वा० य० ३२। ४)

अर्थात् 'जीवात्मा निस्संदेह पुनर्जन्म प्राप्त करता है।'

'सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात्पुनर्णवः।'

त्वं स्त्री पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥
उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः॥

(अथर्व० १०। ८। २३, २७, २८)

इसका स्पष्ट यही अर्थ है कि जन्म लेनेपर भी पुनः-पुनः गर्भमें जन्म लेता है। यहाँ **'पुनः नवःपुनर्णवः'** पुनः-पुनः जन्म लेकर नवीन होनेवाले। इसी प्रकार ऐतरेय, कठ आदि उपनिषदोंमें पुनर्जन्मका प्रतिपादन है।

'एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः।' इसका सर्वथा समर्थक **'पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः'** (न्यायदर्शन १। १। १९) सूत्रमें भाष्यकार श्रीवात्स्यायनने **'पुनरुत्पत्तिः पुनर्देहादिभिः सम्बन्धः। प्रेत्यभावो मृत्वा पुनर्जन्म।' अतः जन्म-मरण-परम्परायाः पुनः पुनर्भवनम्।** इति। अर्थात् ''मरकर जन्म लेनेका नाम 'प्रेत्यभाव' है। नित्य आत्माका पुराने शरीरसे सम्बन्ध-विच्छेद करना मरण तथा नूतन शरीरके साथ सम्बन्ध जोड़ना जन्म है।'' इससे सिद्ध होता है कि नैयायिक भी नित्य आत्माका जन्म-मरण मानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शतपथ ब्राह्मण (१४।७।१।३६) में देवलोकका (३७) में गन्धर्वलोकका (१४।७।१।१९) में ब्रह्मलोकका तथा (३।७।१।२५) में मनुष्यलोक एवं पितृलोकका उल्लेख मिलता है।

वेदान्तदर्शनके ३।२।६ 'देहयोगाद् वा सोऽपि।' इस सूत्रके भाष्यमें—'सोऽपि तु जीवस्य ज्ञानैश्वर्यतिरोभावो देहयोगात्, देहेन्द्रियमनोबुद्धिविषयवेदनादियोगात्, भवति। इत्यादि वाक्योंसे भी छान्दोग्योपनिषद्के तीन उद्धरणोंसे परलोकका वर्णन हुआ है।

सारांश—'पुनर्जन्म और परलोक' विषयपर इतना लिखनेका एकमात्र उद्देश्य यही है कि इस मनुष्ययोनिमें ही अपने जीवका उद्धार हो सकता है तथा यह मानव-शरीर पुण्यबल एवं प्रभुकी परम कृपासे ही प्राप्त हुआ है। भगवती श्रुति भी यही कहती है कि 'यदि इस सर्वोत्तम योनिमें इससे प्राप्त होनेवाले शुभ-अशुभ कर्मोंको खूब समझकर जन्म सफल—ईश्वर-प्राप्ति नहीं कर सके तो बहुत हानि होगी—

'इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति, नो चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।'

भगवती श्रीगीताजी भी यही कहती हैं—

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्। (६।५)

अर्थात्—परमेश्वरप्रदत्त यह मनुष्य-योनि सर्वोत्तम है, इसके द्वारा ही शुभ कर्मोंसे आत्मोद्धार सम्भव है—

इयं हि योनिः प्रथमा यां प्राप्य जगतीपते।
आत्मा वै शक्यते त्रातुं कर्मभिः शुभलक्षणैः॥

यह भी स्मरणीय है—

पुत्र कलत्र सुमित्र चरित्र, धरा धन धाम है बंधन जी को।
बार ही बार विषय-फल खात, अघात न जात सुधारस फीको॥
आन औसान तजो अभिमान, कही सुन कान भजो सिय-पी को।
पाय परम पद हाथ सों जात, गई सो गई अब राख रही को॥

इसलिये इस मानव-जीवनके मुख्य लक्ष्य भगवत्प्राप्तिके लिये पूर्ण सचेष्ट रहना चाहिये।

पूर्वजन्म-सिद्धान्तकी विश्वव्यापी मान्यता, सत्यता और उसके प्रसारका उद्यम

(लेखक—श्रीबल्लभदासजी बिन्नानी, 'व्रजेश' साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

पूर्वजन्म-स्मृति पुनर्जन्मका एक प्रत्यक्ष प्रमाण है, जिसे सिद्ध करनेके लिये किसी अन्य युक्तिकी आवश्यकता शेष नहीं रहती। भारतवर्षके आर्य इसे अनादिकालसे मानते चले आये हैं। आप किसी साधारण-से-साधारण अपठित हिंदूसे पूछिये, वह इस सिद्धान्तपर अपना अटल विश्वास प्रकट करेगा। यहाँ कोई हिंदू-सम्प्रदाय आपको ऐसा नहीं मिलेगा, जो इसपर विश्वास न करता हो। यहाँतक कि जैन और बौद्ध अवैदिक सम्प्रदाय भी इस सिद्धान्तपर आस्था रखते हैं। वेद, उपनिषद्, शास्त्र, स्मृति, पुराण-इतिहास—सभी यह प्रतिपादन करते हैं कि आत्मा मृत्युके पश्चात् एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीरमें इसी प्रकार जाता है, जैसे हम पुराने वस्त्रोंको उतारकर नयेको धारण करते हैं।

हम यहाँ पुनर्जन्मपर वेद तथा अन्य धर्म-शास्त्रोंके प्रमाण नहीं दे रहे हैं; वह केवल इसलिये कि यह आर्य-जातिका एक सर्वमान्य सिद्धान्त रहा है और आज भी है। हिंदू-सम्प्रदायोंमें जहाँ अन्य विषयोंपर मतभेद है, वहाँ इस सिद्धान्तपर सब एकमत है। अतएव प्रमाण-संग्रहको हमने इस विषयमें अनावश्यक समझकर छोड़ दिया है।

संसारमें वैदिक धर्मके अतिरिक्त बौद्ध, ईसाई तथा इस्लाम—तीन प्रमुख मत प्रचलित हैं। बौद्धमत-प्रसारसे पूर्व भी चीननिवासी इस सिद्धान्तपर विश्वास करते थे, ऐसे प्रमाण मिलते हैं। ईसाई और इस्लाम-सम्प्रदाय पुनर्जन्ममें विश्वास नहीं करते; परंतु बाइबिल तथा कुरानमें ऐसे स्थल हैं, जिनसे इस सिद्धान्तकी पुष्टि होती है। ईसाइयत और इस्लामसे पूर्व फ्रांस, इंगलैंड, यूनान आदि यूरोपीय तथा अरब, ईरान, मिश्र आदि एशियाई देशनिवासी आवागमनमें विश्वास रखते थे, इनके अनेक ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं।

बाइबिलमें राजाओंकी दूसरी पुस्तक-पर्व २, आयत ८, १५ में वर्णन है कि 'एलियाह नबीका आत्मा मरनेके पश्चात् एलोशामें आ गया।' इसी प्रकार मलाकी पर्व ४, आयत ४-५-६ में परमेश्वरने इसी एलियाह नबीको भेजनेकी बात कही है। मती पर्व ११, आयत १०-१३ में 'यूहन्ना बपतिस्मा देनेवालेको ही पूर्वजन्मका एलियाह नबी बताया है।' आरम्भमें ईसाइयोंके कुछ गुप्त सिद्धान्त थे, जिनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्जन्म भी सम्मिलित था। पाल और ईसाई गुरुओंके लेखोंमें इसका संकेत है। औरिजनमें इसका स्पष्टतया उल्लेख किया है। ईसाई-मतका एक सम्प्रदाय नास्टीसिज्म इस सिद्धान्तको प्रकटरूपमें मानता था। परिणामतः अन्य ईसाई सम्प्रदाय इसके अनुयायियोंको कष्ट पहुँचाते थे। इसी प्रकार साइमेनिस्ट, बेसीलियिन, वैलेन्टीनिय माशीनिस्ट तथा मैनीचियन आदि अन्य ईसाई सम्प्रदाय थे, जो पुनर्जन्म मानते थे। ईसाकी छठी शताब्दीमें चर्चकी कौंसिलमें कुछ सिद्धान्तोंका मानना पाप उद्घोषित किया गया, जिनमें पुनर्जन्म भी एक था और सम्राट् जस्टीनियनने राजाज्ञा-द्वारा उनके माननेपर प्रतिबन्ध लगा दिया।

इस्लाम भी पुनर्जन्मके सिद्धान्तको नहीं मानता; परंतु कुरानमें ऐसी आयतें हैं, जो इस सिद्धान्तकी स्पष्ट शब्दोंमें पुष्टि करती हैं। उनमेंसे कुछ यहाँ दी जाती हैं—

'क्यों कुफ्र करते हो साथ अल्लाहके और थे तुम मुर्दे पस जिलाया तुमको, फिर मुर्दा करेगा तुमको, फिर जिलायेगा तुमको, फिर उसके फिर जाओगे।' (सू० रू० ३ आ० ७)।

'अल्लाह वह है जिसने पैदा किया तुमको, फिर रिज्क दिया तुमको, फिर मारेगा तुमको, फिर जिलायेगा तुमको।'
(सू० रू० ३० रू० ४ आयत १३)

जैसा पैदा किया तुमको पहली बार फिर आओगे। (सूरते ऐराफ ७ रूकु० ३ आ० ४) कहेंगे अय रब हमारे मरा तूने हमको दो बार और जिलाया तूने हमको दो बार पस इकरार किया हमने साथ गुनाहों अपनोंके पस क्या है तरफ निकलनेके। (सू० मोमिन ४० रू० आ० २) कहा क्या खबर दूँ मैं तुमको·····लानत की उसको अल्लाहने और गुस्सा हुआ ऊपर उसके और किये उनमें बंदर और सूयर इत्यादि (सू० मायदा ५ रू० ९ आ० ५)।

जैसा कि ऊपर लिख चुके हैं—इस्लामके प्रचारसे पूर्व अरबनिवासी इस सिद्धान्तमें विश्वास रखते थे। वाकरने लिखा है कि 'अरबके दार्शनिकोंको यह सिद्धान्त बहुत प्रिय था और कई मुसल्मानोंकी लिखी पुस्तकोंमें अब भी इसका उल्लेख है, जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं। पूर्वजन्म-स्मृतिकी घटनाएँ मुसल्मानों और ईसाइयोंमें भी होती हैं; परंतु सिद्धान्तहानिके भयसे वे उसे छिपा लेते हैं अथवा खुदाकी कुदरत कहकर टाल देते हैं।

इस्लाम-मतके इस सिद्धान्तको न माननेका एक कारण यह भी है कि जो सम्प्रदाय स्वर्ग-नरक लोक स्थानविशेष मानते हैं, जहाँ 'मरनेके पश्चात् आत्माएँ जाती हैं और फिर लौट आती हैं।' उनका यह आवागमन-चक्रका सिद्धान्त मान लें तो फिर स्थायी स्वर्ग-नरक कैसा? दूसरी कठिनाई इनके पैगम्बरोंद्वारा पाप क्षमा करानेकी उपस्थित होती है। स्वकर्मानुसार जन्म मिलने-पर पापोंके क्षमाका प्रश्न ही नहीं रहता। सम्भवतः यही उपर्युक्त दो कठिनाइयाँ हैं, जो इनको अपनी धर्म-पुस्तकोंमें पुनर्जन्मका संकेत होनेपर भी उसे माननेमें बाधा उपस्थित करती हैं।

अफ्रीका और अमेरिकाके आदिनिवासी लोगोंमें भी पुनर्जन्ममें विश्वासके प्रमाण उपलब्ध होते हैं। मौल्डी नामक एक पुरातत्त्ववेत्ताने इन जातियोंमें लकड़ी और पत्थरपर बने हुए चित्रोंके आधारपर लिखा है कि 'इन लोगोंमें यह विश्वास सार्वजनिक था कि आत्मा मृत्यु होनेपर शरीरसे पृथक् हो जाती है। कुछ जातियोंका विश्वास था कि आत्मा मरकर पुनः उसी शरीरमें आ जाती है, इसलिये उसमें मसाला लगाकर शवको देरतक सुरक्षित रखनेकी प्रथा थी। किंतु कई जातियाँ ऐसी थीं जो मृत्यूपरान्त आत्माका नये-नये शरीरमें जन्म लेना मानती थीं।'

यूरोपके जिन यात्रियोंने पहले अफ्रीकामें यात्रा की, उन्होंने लिखा है कि 'कई स्थानोंके लोग पुनर्जन्मको मानते हैं।' इसी प्रकार प्रारम्भमें जो लोग अमेरिका गये उन्हें ज्ञात हुआ कि वहाँके मूल निवासी इस सिद्धान्तपर पूर्ण विश्वास रखते हैं। यह विश्वास उनमें अब भी पाया जाता है।

मानव मोहवश अनर्थ संचय कर रहा है

जिस मानव-शरीरमें होते सिद्ध सहज चारों पुरुषार्थ।
जिसमें सत्पथपर चल मानव मोक्षरूप पाता परमार्थ॥
उसे खो रहा मूढ़ मोहवश दुःखयोनि भोगोंमें व्यर्थ।
तिर्यग्योनि-नरकदायक संतत संचित कर रहा अनर्थ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्जन्मका आधार

(लेखक—श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

आधुनिक कवियों तथा रहस्यवादियोंने बार-बार पुनर्जन्मका उल्लेख किया है, उनमेंसे बहुतेरोंने अपने विचारोंका प्रासाद खड़ा करनेके लिये इस अनुमानित कल्पनाको मान्य किया है! उदाहरणके लिये टैगोर (श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर) निस्संकोच पुनर्जन्मको स्वीकार करते थे। वाल्ट विटमैन (Walt Witman) ने अपनी कृति 'सांग आप माइसेल्फ' (Song of Myself) में उच्च स्वरसे गाया है—

'As to you, Life, I reckon you are the leavings of many deaths. No doubt I had died myself ten thousand times before'.

'ओ जीवन ! तुम मेरे अनेक अवसानोंका अवशेष हो। इसमें कोई संदेह नहीं कि मैं इसके पूर्व दस हजार बार मर चुका हूँ।' बहुतोंका अनुमान है कि जीवन अनेक अवसानोंका अवशेष है। इस जीवनको मैं जो आज देखता हूँ, यह बहुतसे जन्मों तथा अवसानोंका परिणाम है। अगणित बार मरने तथा पुनः जन्म लेनेकी घटनाओंमेंसे इसे यह वर्तमान रूप प्राप्त हुआ है। अपनी समस्त त्रुटियों और महानताओंके साथ एक व्यक्ति अनेक जन्मों तथा निधनोंमेंसे निकलनेकी एक दीर्घ अविच्छिन्न प्रक्रियाका परिणाम है। आधुनिक कालके कुछ ख्यातनामा पाश्चात्त्य दार्शनिकोंने भी पुनर्जन्मकी धारणाको मान्य किया है। न केवल कवि तथा रहस्यवादी ही इस मतके अनुगामी थे, अपितु अध्यात्मविद्याविशारद भी मानव-अस्तित्व तथा अनुभूतियोंसे सम्बन्धित कुछ मौलिकताओंको स्पष्ट करनेके लिये इसे मान्य करना अनिवार्य समझने लगे थे। आर्थर शोपनहर (Arthur Schopenhauer) ने अपनी कृति 'परेरगा एण्ड पार्लीपोमेना' (Parerga and Parlipomena) में यों लिखा है—

'Were an Asiatic to ask me for a definition of Europe, I should be forced to answer him: it is that part of the world which is haunted by the incredible illusion that man was created out of nothing and that his present birth is his first entrance into life.'

'यदि कोई एशियानिवासी मुझसे यूरोपकी परिभाषा पूछे तो मुझे बाध्य होकर उसे यह उत्तर देना पड़ेगा कि योरप इस अविश्वसनीय भ्रान्तिके भूतसे संत्रस्त वह भूभाग है, जो मनुष्यका निर्माण शून्यमेंसे मानता है तथा उसके वर्तमान जन्मको ही जीवनमें उसका प्रथम पदार्पण समझता है।'

यदि वर्तमान जन्मको ही जीवनमें प्रथम प्रवेश मान लिया जाय तो हमारी चेतना परिमित हो जाती है। परंतु यह सभी स्वीकार करते हैं कि एक आध्यात्मिक तथा बुद्धिजीवी प्राणी होनेके कारण मनुष्यको अपनी सीमितताओंका अतिक्रमण करना ही चाहिये और अतिक्रमणमें ही उसके अस्तित्वकी सच्ची महत्ता है। ईश्वरीय चेतना हमारे भीतरके विश्व-चैतन्यकी सहायक है। उपनिषद्का कथन है—**'ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत् किंच जगत्यां जगत्।'**—ईश्वरकी सर्वव्यापकताकी यह धारणा एक वैश्विक चेतना प्रदान करती है, जो इस पूर्वमान्य कल्पनाके साथ आगे बढ़ती है कि व्यक्तियोंके रूपमें हमारे इस वर्तमान भौतिक प्राकट्यके पूर्व भी हमारा अस्तित्व था। यहाँ स्वाभाविक रूपसे यह प्रश्न उपस्थित होता है कि भौतिक रूपोंमें हमारा प्राकट्य किन नियमोंद्वारा नियन्त्रित होता है। प्रायः इस शरीरको पैतृक देन समझा जाता है। हमारे भौतिक स्वभावमें भी पूर्वजोंके अनुरूप कुछ बातें रह सकती हैं। हम व्यक्ति-करणकी प्रक्रियामेंसे गुजरनेवाले आध्यात्मिक प्राणी हैं और इसलिये हमें नियमके प्रभावकी चपेटमें आना ही होगा। प्रत्येक घटनाके पीछे इतिहास है और वर्तमानको भूतकालकी उपज ही देखा गया है। अव्यक्तके रहस्यमय रसातलसे शरीरधारी अस्तित्वसे सम्पन्न व्यक्ति उठते हुए प्रतीत होते हैं। निश्चय ही व्यक्ति वह शरीरमात्र नहीं है जिससे वे आच्छन्न हैं। उनका अस्तित्व शरीरसे पूर्व होना ही चाहिये। यह अनुमान हमें कुछ सान्त्वना प्रदान करता है और हमारी न्यायकारिणी वृत्तिको सतानेवाली कई समस्याओंका उत्तर दे सकनेके योग्य बनाता है। जीवनकी प्रक्रियाएँ भीतरसे बाहरकी ओर हैं। वृक्षके कई रूप होते हैं। एक वृक्ष बीजमें निहित है और जो कुछ बाहर दिखायी दे रहा है, वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीजकी अदृश्य क्षमताओंको प्रकटमात्र कर देता है। टहनियाँ बनती, फैलती और पूर्ण समूहके वस्त्र धारण करती हैं। पत्ते झड़ते हैं और ऋतुओंके पुनरावर्तनसे फिर नव पल्लव प्रस्फुटित हो जाते हैं; परंतु इसकी बाह्य दशाओंकी सम्पूर्ण कालावधिमें भी वृक्षका आभ्यन्तरिक स्वरूप सतत वही रहता है। इसी प्रकार हमारे व्यक्तित्व हमारे अन्तरतम आत्माकी विविध दशाएँ हैं। सर्वत्र ही परिवर्तनके मध्यमें भी स्थायित्वकी रहस्यमयता दृष्टिगोचर होती है। ऊपरी दृष्टिसे देखनेपर आकृतियोंमें व्यक्त हमारा जीवन क्षणभङ्गुर तथा स्वेच्छाचारी शक्तियोंके अधीन प्रतीत होता है। फिर भी हम अपने अन्तरमें स्वतन्त्रताकी कुछ सृष्टि कर सकनेकी क्षमताका अनुभव करते रहते हैं। हमें व्यापक स्वत्वकी अपनी इस आन्तरिक भावनापर ही आस्था रखनी चाहिये; क्योंकि इसी दिशामें यथार्थतः बढ़नेपर हमारे ऊपरी तलके जीवनोंका अर्थ खोजा जा सकता है।

संसारके लगभग सभी प्रमुख धर्मोंने हमें यही आस्था रखनेका आदेश दिया है कि पृथ्वीतलका हमारा यह जीवन हमें इसके बादके अनन्त और उच्च जीवनके लिये तैयार करनेवाला एक अनुशासन है। यदि हमने इस उपदेशपर ध्यान दिया तो हमें जन्मों और अवसानोंके सातत्य (नैरन्तर्य) पर विश्वास करना ही पड़ेगा। और फिर पश्चिममें अमरतासम्बन्धी प्रचलित सिद्धान्त अमरत्वकी पूर्व-पीठिकाके रूपमें सर्वाधिक महत्त्व इस पृथ्वीके हमारे जीवनको प्रदान करते हैं। क्या इस शरीरमें हमारे अस्तित्वके केवल एक ही अनुभवपर हमारे अनन्त जीवनको निर्भर रखना युक्तिसंगत होगा ? व्यक्तिगत अमरताका कोई भी सिद्धान्त प्राक् अस्तित्वको अनिवार्य मानकर ही आगे बढ़ सकता है। वैयक्तिक अमरतापर आस्था रखनेवाले यदि पुनर्जन्मको स्वीकार कर लें तो उनके विश्वासका युक्तिसंगत आधार बहुत पुष्ट हो जाता है। उस स्थितिमें शरीरसे भिन्न काल-मात्रमें आत्माका अस्तित्व मानना होगा जो एक ऐसी विकासमान प्रक्रियामें संलग्न है, जिसे अनेक शरीरोंकी आवश्यकता है। वास्तविक रहस्यवादी दृष्टिकोणसे, जिसमें कालविषयक नवीन मान्यताएँ अन्तर्भूत हैं—देखनेपर एक विशेष काल-क्रममें चेतन अनुभूतियोंका विधिसंगत निरूपण ही 'पुनर्जन्म' है। इस प्रकार यदि वैयक्तिक अमरत्वके सिद्धान्तको स्वीकार किया जाय तो पुनर्जन्मके सिद्धान्तका बौद्धिक प्रतिरोध नगण्य हो जायगा। पुनर्जन्मके पक्षमें युक्तिसंगत तर्क हैं, परंतु सभी तर्कोंके समान ही कुछ पूर्वपक्ष हमें स्वीकार करना होगा। भौतिक अस्तित्वसे अलग चेतन अनुभूतियोंकी सम्भावनाको अस्वीकार करके पुनर्जन्मके सम्बन्धमें विचार करना व्यर्थ श्रममात्र होगा। पुनर्जन्मके सिद्धान्तको माननेवाले बहुतसे लोग साधारणतः इसलिये इसे स्वीकार करते हैं; क्योंकि उन्हें ऐसा लगता है कि यदि इसकी ठीक व्याख्या की जाय तो यह हमारे परस्परविरोधी अनुभवोंमें प्रतीत होनेवाले अन्यायका समाधान प्रस्तुत करता है। जब इस सृष्टिका इतना सब कुछ किसी नियमकी अभिव्यक्ति दिखायी देता है तो हमारे आत्माओंके अभिव्यक्ति-करणको स्वेच्छाचारकी संज्ञा देकर संतोष नहीं किया जा सकता। यदि हम आत्माओंके अस्तित्वको स्वीकार करते हैं तो इनके अभिव्यक्ति-करणको नियन्त्रित करनेवाले नियमोंका पता लगाना तर्कशास्त्रकी दृष्टिसे आवश्यक हो जाता है।

हमारे जन्मको एक आकस्मिक घटनामात्र माननेवाली धारणासे अपने आपको उन्मुक्त करना एक बौद्धिक आवश्यकता है। इसी कारणसे अनेक अस्तित्वोंकी आधार-भूत धारणाका यह सिद्धान्त कि 'आत्मा एक नियमके अनुसार अपने आपको अभिव्यक्त करता है' हमारी विचारशक्तिको बहुत जँच जाता है। यदि हमारे पूर्व-जन्मोंके हमारे अपने किये हुए कर्मोंसे ही हमारे वर्तमान जन्मकी स्थितियोंका निर्धारण होता है तो यह हमारे दुर्भाग्यजनित दुःखसे हमारा त्राण कर देता है तथा हमारे प्रत्यक्षतः अकारण सौभाग्यका स्पष्टीकरण भी प्रस्तुत करता है। हम वहीं हैं, जहाँ हम हैं और हम जो कुछ हैं, वह केवल इसलिये हैं; क्योंकि हमें हमारे विकासके लिये ऐसी ही स्थितियोंकी आवश्यकता है और गत कर्मोंके फलाफलका निपटारा करनेके लिये भी यही आवश्यक है।

भगवद्गीता हमें बतलाती है कि जीवनकालमें जिस-जिस विचार, संकल्प तथा कामनासे हम अत्यधिक अभिभूत रहे हैं, मृत्युके समय उन्हींका प्राबल्य रहेगा और वही मरनेवाले व्यक्तिके आन्तरिक स्वभावका गठन करेंगे। यह नवगठित अन्तःकरण अपने आपको नये रूपमें अभिव्यक्त करेगा। इस आन्तरिक स्वभावका गठन करनेवाले विचार, संकल्प या कामनामें ऐसी परिस्थितियों या परिपार्श्वका चुनाव करने अथवा उसे आकर्षित करनेकी शक्ति विद्यमान है, जो इसके प्रकटीकरणके मार्गमें सहायक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो सके। कुछ अर्थोंमें यह प्रक्रिया सहज स्वाभाविक चुनावके नियम (Law of natural selection) के अनुरूप है। पुनर्जन्मके सिद्धान्तके समर्थनमें वेदान्तके दार्शनिकोंका तर्क है कि इस सृष्टिमें कुछ भी नष्ट नहीं होता। आधुनिक वैज्ञानिकोंके समान वेदान्तवादियोंमें भी किसी वस्तुके लोपके अर्थमें उसका नाश होना कल्पनातीत है। उनका कथन है कि 'जो नहीं है उसका होनापना कदापि सम्भव नहीं और जो है उसके न होनेकी कभी सम्भावना नहीं।'—

'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ॥'

(गीता २ । १६)

या इसे दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कह सकते हैं जिसका पहले अस्तित्व नहीं था, उसका कभी अस्तित्व नहीं हो सकता और विलोम-पद्धतिसे विचार करनेपर जिसका किसी भी रूपमें अस्तित्व है, वह कभी अस्तित्वरहित नहीं हो सकता। यह प्राकृतिक नियम है। इस दृष्टिसे देखनेपर इस समय हमारे जो संस्कार या विचार हैं और जिन शक्तियोंपर हमारा अधिकार है, उनका नाश नहीं होगा। वे किसी-न-किसी रूपमें हमारे साथ रहेंगे। हमारे शरीरोंमें परिवर्तन हो सकता है, परंतु शक्तियाँ, कर्म, संस्कार और हमारे शरीरोंका निर्माण करनेवाले उपकरण हममें अव्यक्तरूपसे रहेंगे ही। उनका कभी विनाश नहीं होगा। विज्ञान हमें बतलाता है कि जो कुछ भी अव्यक्त अथवा प्रसुप्तरूपमें विद्यमान है, वह किसी-न-किसी समय अवश्य ही गत्यात्मक अथवा यथार्थ रूपमें मूर्तिमान् होकर रहेगा। इसलिये हमें देर-सबेर दूसरे शरीरोंकी भी प्राप्ति होगी। भगवद्गीता भी यही कहती है कि 'जन्मके पश्चात् मृत्यु और मृत्युके पश्चात् जन्म सुनिश्चित है।'—

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।'

(गीता २ । २७)

जन्म-मरणके इस सतत प्रवाहमेंसे जीवनके बीज कारणको निकालना ही पड़ेगा। परंतु यहाँ एक समस्या खड़ी होती है। पुनर्जन्मके सम्बन्धमें इस आधारपर एक आपत्ति उठायी जा सकती है कि यदि जन्मके पूर्व हमारा अस्तित्व था, तो हमें पूर्व अस्तित्वोंकी स्मृति क्यों नहीं है ?

वेदान्त इस प्रश्न तथा इससे सम्बन्धित अन्य प्रश्नोंका उत्तर यह कहकर देता है कि 'हमारे पूर्व अस्तित्वोंका स्मरण हो सकना सम्भव है।' हम 'राजयोग'के तृतीय अध्यायके १८वें सूत्रका अवलोकन करें। जिसमें यह वर्णित है कि 'संस्कारोंको अनुभव करनेका अर्थ है, हमारी गत अनुभूतियोंके वे संस्कार जो सुप्त रूपमें हमारे अवचेतन मानसमें पड़े हैं और जिनका कभी नाश नहीं होता।' सुप्त संस्कारोंका चेतनाके धरातलपर जाग्रत् होना और उठ बैठना ही 'स्मृति' कहलाता है। एक राजयोगी अपने अन्तश्चेतनाके संस्कारोंपर सशक्त एकाग्रताका उपयोग करके अपने गतजीवनकी सभी घटनाओंका स्मरण कर सकता है। भारतमें ऐसे योगियोंके बहुत उदाहरण मिलते हैं, जिन्हें न केवल अपने ही गतजीवनकी जानकारी थी; अपितु दूसरोंके गतजीवनके विषयमें भी वे बतला सकते थे। कहा जाता है कि गौतम बुद्धको अपने ५०० गत-जन्मोंकी स्मृति थी। हमारा अवचेतन मानस अथवा अन्तश्चेतना उन संस्कारोंका भण्डार है, जिन्हें हम हमारे जीवनकालमें हमारे अनुभवोंद्वारा संचित करते रहते हैं। जैसा कि वेदान्तमें कहा जाता है कि कबूतरखानेके समान चित्तमें संस्कार संगृहीत हो जाते हैं। चित्तका अर्थ है वह अवचेतन मानस अथवा अन्तश्चेतना जो हमारे संस्कारों तथा अनुभवोंका भण्डार है। ये संस्कार तबतक सुप्त पड़े रहते हैं, जबतक कि अनुकूल स्थितियाँ उन्हें जाग्रत् नहीं कर देतीं और उन्हें चेतनाके तलपर बाहर नहीं खींच लातीं। इस प्रकार प्रत्येक आत्माके पास उसके परिपार्श्वमें अन्तश्चेतनाके अंदर संगृहीत अनुभवों तथा संस्कारोंका भण्डार रहता है। इस अनुशीलनके प्रकाशमें हम यह प्रश्न पूछ सकते हैं कि क्या प्रेमियोंकी मृत्युके पश्चात् भी उनका परस्पर प्रेम बना रहेगा ? वेदान्तका कथन है कि 'हाँ' यह रहेगा। शरीरकी मृत्यु परस्परके आकर्षण तथा दो आत्माओंके लगावका अन्त नहीं करेगी; क्योंकि आत्मा अमर हैं, इसलिये उनके सम्बन्ध सदैव बने रहेंगे।

आत्मा उन शक्तियोंका मध्यवर्ती केन्द्र समझा जाता है, जिन्हें अपने अभिव्यक्त होनेके लिये उपयुक्त क्षेत्रोंकी आवश्यकता है। यह स्मरण रखना उपयोगी होगा कि पुनर्जन्ममें कर्मस्वातन्त्र्य तथा नियतिवाद (या प्रारब्ध भोग) दोनों पहलेसे ही तथ्य मान लिये गये हैं। हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तियोंके गर्भाशयमें निहित परिणामों तथा पुनरावर्तनकी लम्बी शृंखलासे उत्पन्न विवशताओंसे बच नहीं सकते। दूसरी ओर हम मोक्षकी प्राप्तिके लिये इस नियमका उपयोग करनेमें स्वतन्त्र हैं। पुनर्जन्मके सिद्धान्तमें यह भी पूर्व-कल्पित है कि प्रत्येक आत्मामें पूर्णताकी क्षमता है और यह क्रमशः अपनी शक्तियोंको उन्मुक्त कर रहा है तथा विकासकी प्रक्रियाद्वारा उन्हें यथार्थ स्वरूप दे रहा है। इस प्रक्रियाके प्रत्येक चरणमें यह नये अनुभव सँजो रहा है, जो थोड़े समयके लिये ही रहते हैं। इसीलिये हमारे अच्छे या बुरे कृत्योंके लिये न तो भगवान् और न ही शैतान उत्तरदायी हैं। पुनर्जन्मका यह अभिप्राय नहीं है कि हमें अपने आगामी जीवनमें फिर नये सिरेसे चलना पड़ेगा। इसका अर्थ है कि व्यक्ति उस स्थानसे पुनः चलना आरम्भ करेगा, जहाँतक वह अपनी पूर्व मृत्युको पहले पहुँच चुका था और प्रगतिके इस तारके टूटे बिना वह सतत आगे ही बढ़ेगा। यह सिद्धान्त हमें यह नहीं सिखलाता कि हम मरणोपरान्त कभी पुनः पशु-योनिमें जायँगे ही नहीं। अपितु हमारी कामनाओं, वृत्तियों और शक्तियोंके अनुरूप ही हमें हमारे शरीर प्राप्त होते हैं। सनातनधर्म स्पष्टतः कहता है कि पाप और उसी प्रकार पुण्यके परिणामोंका, उस पाप-पुण्यकी गुरुता या लघुताके अनुसार, देर-सबेर अन्त होगा ही और तब आत्मा अपने अन्तश्चेतना तथा ऊर्ध्वचेतनामें संकलित स्मृतियोंके साथ पृथ्वीपर लौटेंगे और गत जीवनोंमें प्राप्त शिक्षाओंके लाभ उठाकर इस विकास-पथपर विविध अनुपातोंसे आगे बढ़ेंगे अथवा पीछे हटेंगे। पुनर्जन्मके इस सिद्धान्तके साथ अनिवार्य रूपसे एक और महान् सत्य यह जुड़ा हुआ है कि हमारी पाँच इन्द्रियों तथा अवस्थाके अनुरूप जैसा हमारा यह जगत् है, वैसे ही सूक्ष्म इन्द्रियों तथा चेतनाकी अन्य स्थितियोंके अनुरूप इतरलोक हैं। हमारा आत्मा मृत्यु तथा पुनर्जन्म प्राप्त करनेके बीचकी अवधिमें इन लोकोंमेंसे वैसा ही होकर जाता है, जिस प्रकार हम रात्रि और दिनके बीच स्वप्नोंमेंसे निकला करते हैं।

वेद हमें यह बतलाते हैं कि केवल एक ही जगत्की सीमाओंमें अनन्तकालके लिये किसी प्राणीका जन्म, अवस्थिति और मरण एवं पुनर्जन्म आवश्यक नहीं होता अपितु वह अनन्त लोकोंकी मालिकामें भी पुनः जन्म-ग्रहण कर सकता है।

वर्तमान कालके कतिपय वैज्ञानिकोंने इस दृष्टिकोणका प्रचार किया है कि दो प्रमुख सिद्धान्त वेदोंकी मूल भित्ति हैं। प्रथम—वेदोंका अपौरुषेय स्वरूप और उनका अमोघत्व, तथा द्वितीय है—पुनर्जन्मका सिद्धान्त। स्वामी दयानन्द इसीपर विश्वास करते थे और इस सम्बन्धमें ब्रह्मसमाज-आन्दोलनके प्रवर्तकोंसे उनकी मत-भिन्नता थी। पुनर्जन्मकी धारणा वेदोंमें सर्वत्र व्याप्त है।

घोर यमयातनासे राम ही बचाते हैं

जहाँ जमजातना, घोर नदी, भट कोटि जलच्चर दंत-टेवैया।
जहाँ धार भयंकर, वार न पार, न बोहितु नाव, न नीक खेवैया॥
'तुलसी' जहँ मातु-पिता न सखा, नहिं कोउ कहूँ अवलंब-देवैया।
तहाँ बिनु कारन रामु कृपाल बिसाल भुजा गहि काढ़ि लेवैया॥

(कवितावली)

जहाँ यमयातना देनेवाले करोड़ों यमदूत हैं, घोर वैतरणी नदी है, जिसमें दाँतोंकी धार तेज करनेवाले (काटनेवाले) जलजन्तु हैं, जिसकी भयंकर धारा है और जिसका कोई वार-पार नहीं है, जिसमें न जहाज है, न नाव और न सुचतुर नाविक ही है; इसके सिवा जहाँ माता, पिता, सखा अथवा कोई अवलम्बन देनेवाला भी नहीं है; वहाँ श्रीगोसाईंजी कहते हैं, बिना ही कारण कृपा करनेवाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही अपनी विशाल भुजासे पकड़कर निकाल लेनेवाले हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृतकर्म और पुनर्जन्म

(लेखक—श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी एम्० ए० (द्वय), साहित्यरत्न, साहित्यालंकार, साहित्यसुधाकर)

पुनर्जन्मके सिद्धान्तको केवल हिंदू-धर्मानुयायी या केवल आस्तिकवादी ही नहीं मानते, बल्कि बौद्धलोग जो आत्माको नहीं मानते, वे भी वैदिक धर्ममें वर्णित इस पुनर्जन्मकी कल्पनाको अपने धर्ममें पूर्णरूपसे स्थान देते हैं। आधुनिक आधिभौतिक शास्त्रकारोंका भी यह मत है कि कर्मशक्तिका कभी भी नाश नहीं होता; बल्कि जो शक्ति आज किसी नाम-रूपसे देख पड़ती है, वही शक्ति उस नाम-रूपके नाश होनेपर दूसरे नाम-रूपसे प्रकट हो जाती है। इस बीसवीं शताब्दीमें भी पक्के निरीश्वरवादी, नास्तिक जर्मन-पण्डित नीत्शेने भी पुनर्जन्मवादको स्वीकार किया है। उसने लिखा है कि 'कर्म-शक्तिके जो रूपान्तर हुआ करते हैं, वे सब नियमित और मर्यादित हैं और इसीलिये कर्मका चक्र अर्थात् कथन आधिभौतिक दृष्टिसे भी सिद्ध हो जाता है।' हेगेल-(Hegel)-जैसे आधिभौतिक शास्त्रज्ञोंका भी यही सिद्धान्त है कि 'यह कृतकर्म सृष्टिचक्र मनुष्यको जिधर ढकेलता है, उधर ही उसे जाना पड़ता है।'

आध्यात्मिक दृष्टिसे इस नाम-रूपात्मक परम्पराको ही जन्म-मरणका चक्र अथवा 'संसारचक्र' कहते हैं और इन नाम-रूपोंकी आधारभूत शक्तिको समष्टिरूपसे 'ब्रह्म' अथवा 'परमात्मा' और व्यष्टिरूपसे 'जीवात्मा' अथवा 'देही' कहा करते हैं। तत्त्व-दृष्टिसे तो यह आत्मा न जन्म धारण करता है और न मरता ही है, अर्थात् यह नित्य और स्थायी है; परंतु कर्म-बन्धनमें पड़ जानेके कारण एक नाम-रूपके नाश होनेपर उसी जीवात्माका दूसरे नाम-रूपोंमें प्रकट हो जाना अवश्यम्भावी हो जाता है। आजका कर्म कल भोगना पड़ता है और कलका परसों। इसी प्रकार इस जन्ममें आसक्त होकर जो कुछ किया जाता है, उसका फल यदि इस जन्ममें न मिले तो उसे अगले जन्ममें अवश्य भोगना पड़ता है। महाभारत (आ० ८० । ३) और मनुस्मृति (४ । १७३) में तो यहाँतक वर्णन है कि इस कृत कर्मफलोंको न केवल हमें ही, किंतु कभी-कभी हमारी नाम-रूपात्मक देहसे उत्पन्न हुई संतानोंको भोगना पड़ता है। शान्तिपर्वमें भीष्मने युधिष्ठिरसे कहा है—

पापं कर्म कृतं किञ्चिदपि तस्मिन्न दृश्यते ।
तृप्ते तस्य पुत्रेषु पौत्रेष्वपि च नप्तृषु ॥

अर्थात् 'हे राजा ! यदि यह देख पड़े कि किसी मनुष्यको उसके पापकर्मोंका फल नहीं मिला तो समझ लेना चाहिये कि उस फलको उसके पुत्रों, पौत्रों और प्रपौत्रोंको भोगना पड़ेगा।'

बहुधा यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि कोई-कोई रोग वंशमें परम्परासे प्रचलित रहते हैं; कोई जन्मसे दरिद्र और कोई जन्मसे सम्पन्न कुलमें उत्पन्न होते हैं; कोई जन्मसे ही अङ्गहीन, बलहीन, बुद्धिहीन और कोई जन्मसे ही हृष्ट-पुष्ट अङ्गवाले, बुद्धिमान्, प्रतिभावान् होते हैं। इन सब बातोंकी उपपत्ति केवल कर्मवादसे ही बतलायी जा सकती है और यही सब कृतकर्मवादकी सचाईका प्रमाण है।

यद्यपि मानवी बुद्धिसे इस बातका पता नहीं लगता कि परमेश्वरकी इच्छासे संसारमें कर्मका आरम्भ कब हुआ और तदङ्गभूत यह प्राणी (जीव) कर्मके बन्धनमें पहले-पहल कब फँस गये, तथापि जब हम यह देखते हैं कि कर्मोंके भविष्य परिणाम या फल केवल कृतकर्मोंके नियमोंसे ही उत्पन्न हुआ करते हैं, तब अपनी बुद्धिसे इतना तो हम अवश्य निश्चय कर सकते हैं कि संसारके आरम्भसे प्रत्येक प्राणी नाम-रूपात्मक अनादि कर्मोंकी कैदमें बँध-सा गया है। इसीलिये 'कर्मणा बध्यते जन्तुः—कर्मसे जीव बाँधा जाता है' ऐसा महाभारतमें कहा गया है।

कर्म-सरिता-प्रवाहमें बहती हुई जीवन-नौकाके पूर्वजन्म और पुनर्जन्म दो किनारे हैं। पूर्वजन्मकृत कर्म इस जन्मके तथा इस जन्मके कृतकर्म पुनर्जन्म धारण करने-करानेके हेतु हैं। इस तथ्यकी सचाई सिद्ध करनेके लिये अनेक शास्त्रीय प्रमाण साक्षी हैं। श्रीलक्ष्मणजी गुहराजसे कहते हैं—

कः कस्य हेतुर्दुःखस्य कश्च हेतुः सुखस्य वा ।
स्वपूर्वार्जितकर्मैव कारणं सुखदुःखयोः ॥

अर्थात् 'कौन किसके दुःखका हेतु है तथा कौन सुखका ? दूसरा कोई किसी दूसरेके दुःख-सुखमें कारण नहीं होता, पूर्वजन्ममें किये हुए अपने ही पुण्य या पापात्मक कर्म मनुष्यको सुख-दुःखका भोग प्रदान करते हैं।' इसी प्रकार कठोपनिषद् (२ । २ । ७) में कहा गया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥

अर्थात् 'मृत्युके पश्चात् इन जीवात्माओंमेंसे अपने-अपने कर्मोंके अनुसार कोई-कोई तो वृक्ष-पाषाण आदि अचल शरीरको धारण करते हैं।' गौतमशापित अहल्याको पाषाण हो जाना पड़ा। विश्वामित्रशापिता रम्भाका शिलारूप वाल्मीकीय रामायणमें आया है। कोई-कोई देव, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि जंगम शरीरोंको धारण करते हैं। महर्षि व्यासरचित ब्रह्मसूत्र 'उत्क्रान्तिगत्या गतीनाम्।' (२।३।१९) से एक ही जीवात्माके शरीर उत्क्रमण करने, परलोकमें जाने और पुनः लौट आनेका वर्णन आया है।

प्रश्नोपनिषद् (३।३।७) की सम्मतिमें 'जीवको पुण्य-कर्मके द्वारा पुण्य-लोकको और पाप-कर्मके द्वारा पापमय लोकको ले जाया जाता है तथा मिश्रित कर्मोंके द्वारा वह मनुष्यलोकको प्राप्त करता है।' जिस प्रकार विज्ञानके प्रयोगोंकी सत्ता, फल-प्राप्तिके निमित्त यत्नोंका प्रबन्ध करना और भविष्यके वृत्तान्तको पहलेसे ही बता देना, नियमोंकी नित्यतापर ही निर्भर है, ठीक उसी प्रकार मनुष्यके कर्मोंके नियमोंके सम्बन्धमें भी रीति बरती जाती है। जितने ज्ञानके साथ हम किसी कर्मको करते हैं, उतना ही ठीक-ठीक उसके भविष्यमें होनेवाले फलको हम बतला सकते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका आधार केवल नियमोंके नित्य स्वभावपर ही निर्भर है।

मनुष्यके कृतकर्मोंके नियमनके सम्बन्धमें श्रीमती योगिनी मैडम ब्लैवट्स्कीने अपने ग्रन्थ 'गुप्त सिद्धान्त' (Secret Doctrine)में लिपिकारों (चित्रगुप्तों) का वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है कि 'ये लिपिकार जगत्के देवगण होते हैं। इनका सम्बन्ध सृष्टिके उस अति गुप्तविभागके साथ है जो यहाँ प्रकट नहीं किया जा सकता। इन लिपिकारोंका सम्बन्ध केवल कर्मोंके बहीखातेसे रहता है।'

पश्चिम देशके दूरदर्शी ज्ञानवान् महात्मा श्रीआयम बलिकसने लिखा है कि 'न्यायकी जो व्याख्या हमको कभी-कभी ठीक नहीं प्रतीत होती, वह देवताओंको ठीक लगती है; क्योंकि हमको केवल वर्तमान और अति क्षणिक जीवनकी जानकारी रहती है; किंतु हमसे अधिक शक्तिवाले, अधिक ज्ञानवाले, देवगणोंको प्राणीके सम्पूर्ण जीवनकी जानकारी रहती है। उनको प्राणीके पिछले जन्मोंका भी सब वृत्तान्त ज्ञात रहता है।'

इसी प्रकारके और भी विचार आजकलके वैज्ञानिक भी पुनर्जन्मकी सिद्धिमें प्रकट करते हैं। हिंदू-सनातन-धर्मका तो विशाल भवन ही 'कृतकर्म और पुनर्जन्म'की नींवपर बाँधा गया है। हिंदुओंके तो रक्तमें सदैव इस सिद्धान्तकी धारा ही बहती रहती है और इसीलिये उनका व्यावहारिक जीवन बहुत ही संतुलित, संयमित, नियमित और मर्यादित ढंगसे व्यतीत करनेका प्रविधान है, जिससे इहलोक और परलोक दोनों मङ्गलमय बन सकें।

इहलोककी चिन्ता नहीं; परलोककी चिन्ता

मैंने देखा है कि सादा जीवन जटिल जीवनसे अच्छा होता है; क्योंकि उसमें ऊँची प्रवृत्तियोंके लिये समय मिल जाता है। प्राचीन सभ्यतामें भाग-दौड़ थी ही नहीं। लोग आज इहलोककी चिन्ता करते हैं, उन दिनों वे 'परलोक'-की चिन्ता रखते थे। वे अपना ध्यान 'शरीर'पर नहीं, 'आत्मा'पर केन्द्रित करते थे। वे शरीरको आत्मासे बिल्कुल पृथक् मानते थे। उनके लिये भोग-विलास ही सब कुछ नहीं होता था और वह जीवनका चरम लक्ष्य भी नहीं था। अब 'शैतानकी सेवा'की जाती है; तब 'ईश्वरकी सेवा'की जाती थी। यदि मैं यह नहीं मानूँ कि आत्मा नित्य है और यदि मुझे हम-सबमें एक ही आत्माके दर्शन न हों तो मैं तो इस संसारमें रहना ही पसंद न करूँ। मैं मर जाना चाहूँगा। शरीर तो आत्माके नियन्त्रणमें चलनेवाला रथमात्र है। वह बिल्कुल हेय और अपावन मिट्टीका पुतला है।

(महात्मा गांधी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्माकी सत्ता एवं नित्यता पुनर्जन्मकी साधक

['न्यायदर्शन'के आधारपर]

(लेखक—श्रीनारायणजी शर्मा, शास्त्री 'राजीव', एम्० ए०, 'प्रभाकर')

आजकलके इस आत्मा-अविश्वासी युगमें 'पुनर्जन्म'का मानना भी दकियानूसियोंका विचार माना जाता है। आजकल हेतुवादका युग है, प्रमाणवादपर लोगोंकी आस्था नहीं है। तब हम तर्कशास्त्र न्यायदर्शनके आधारपर आत्माकी सत्ता एवं नित्यता बताने जा रहे हैं; जिससे पुनर्जन्मकी सिद्धि स्वतः होगी।

देहादिसंघातको, जिसमें इन्द्रियाँ, मन और शरीर आ जाते हैं, कई लोग आत्मा मानते हैं; वे आत्माकी पृथक् सत्ता नहीं मानते। इस विषयको प्रश्न-उत्तररूपसे दिखलाया जाता है।

१. प्रश्न—शरीरमें भी चेष्टा दीखती है, इन्द्रियोंको भी ज्ञान होता है, मन भी ज्ञानका साधन है। इनके समुदायको ज्ञानका आधार देखा गया है, तब देहादिसंघात ही आत्मा है; उससे भिन्न आत्मा नहीं।

१. उत्तर—आत्मा देहादिसंघातसे भिन्न ही है। **'दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणात्।'** (३ । १ । १)। जिसको मैंने आँखसे देखा है; अब मैं उसे त्वचासे भी छू रहा हूँ; जिसे मैंने हाथसे छुआ था, अब उसे देख रहा हूँ; इससे भिन्न-भिन्न इन्द्रियोंसे एक ही वस्तुके गृहीत होनेसे आत्मा देहादिसे भिन्न सिद्ध है। इससे आत्मा नित्य और चेतन सिद्ध होता है। पहले देखी हुई वस्तुका कालान्तरमें अन्य इन्द्रियसे भी ग्रहण हो सकता है। यदि देहादिसंघातको आत्मा माना जाय, तब आँखसे देखी हुई वस्तुकी त्वचासे स्मृति नहीं हो सकती; क्योंकि दूसरेसे देखी हुई वस्तुका दूसरेसे स्मरण नहीं हो सकता। नहीं तो, देवदत्तसे देखी हुई वस्तुका यज्ञदत्तसे भी ग्रहण हो जाय। पर ऐसा नहीं है।

आँख आदि इन्द्रियोंको स्वयं ज्ञान नहीं होता; किंतु कोई दूसरा (आत्मा) ही आँख आदि साधनसे देखता है। वही किसी फलको देखकर—उसके पूर्वसे अनुभव किये हुए रसका स्मरण करता है। नहीं तो, देखनेवाली आँख अपने अविषय रसको कैसे स्मरण कर सकती है? **'तदव्यवस्थानादेवात्मसद्भावादप्रतिषेधः।'** (न्याय० ३ । १ । ३)।

यदि शरीरको आत्मा माना जाय, तो मृतक शरीरको जलानेपर पुत्रको भी पाप होगा—**'शरीरदाहे पातकाभावात्।'** (३ । ३ । ४) अथवा देहादिसंघातको आत्मा माना जाय, वह तो प्रतिक्षणमें परिवर्तन होते रहनेसे अन्य हो जानेके कारण, जिस संघातने जीते हुए शरीरको जलाया; वह दूसरे समय तो रहा नहीं; तब उसे पाप वा राजदण्ड नहीं होना चाहिये; परंतु हुआ करता है; इससे आत्मा शरीरादि-संघातसे भिन्न ही है।

२. प्रश्न—जब आत्मा नित्य है; तब जीते हुए शरीरके जलानेपर भी आत्माके विनष्ट न होनेसे हिंसा न होनेके कारण पाप नहीं होगा। **'तदभावः सात्मकप्रदाहेऽपि तन्नित्यत्वात्।'** (३ । १ । ५)

२. उत्तर—यह शरीर आत्माको सुख आदिके भोगार्थ मिला हुआ है; तब उसको उससे अलग करनारूप पाप वहाँ भी है—**'न कार्याश्रयकर्तृवधात्।'** (३ । १ । ६) इससे आत्मा देहसे भिन्न ही सिद्ध है।

३. प्रश्न—इन्द्रियोंको ही आत्मा क्यों न मान लिया जाय?

३. उत्तर—बायीं आँखसे देखी हुई वस्तुका दाहिनी आँखको भी स्मरण हो जाता है; इससे आत्मा इन्द्रियसे भिन्न सिद्ध है। नहीं तो, एकसे देखे हुएको दूसरा स्मरण नहीं कर सकता—**'सव्यदृष्टस्येतरेण प्रत्यभिज्ञानात्।'** (३ । १ । ७)

४. प्रश्न—जैसे पुलकी रुकावटमें ठहरे हुए दो प्रवाह दो न होकर एक ही होते हैं; इसी प्रकार नाककी हड्डीके व्यवधानमें स्थित आँखें भी दो न होकर एक ही हैं; इसलिये पूर्वोक्त बात संगत नहीं है। **'नैकस्मिन् नासास्थिव्यवहिते द्वित्वाभिमानात्।'** (३ । १ । ८)

४. उत्तर—ऐसा नहीं। यदि ऐसा हो तो एक आँख नष्ट हो जाय, तो दूसरी भी आँख साथ नष्ट हो जाय;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'एकविनाशे द्वितीयविनाशान्नैकत्वम्।' (३।१।९) इस कारण आँखें दो ही हैं।

५. प्रश्न—जैसे एक वृक्षकी कुछ शाखाओंके काटनेपर भी वृक्ष एक ही रहता है, उसकी अन्य शाखाएँ नहीं कटतीं; इस प्रकार एक आँखके नष्ट होनेपर भी दूसरी आँख नष्ट नहीं होगी। 'अवयवनाशेऽपि अवयव्युपलब्धेरहेतुः।' (३।१।१०)

५. उत्तर—यहाँ दृष्टान्तका विरोध है—'दृष्टान्तविरोधादप्रतिषेधः' (३।१।११) आँखें तो दो स्पष्ट दीखती हैं। एक आँखसे वस्तु अपूर्ण दीखती है। दोनों आँखोंसे वस्तु पूर्ण दीखती है।

आँख नारंगीको देखती है, तब जीभमें विकार दीखता है; अतः आत्मा इन्द्रियोंसे भिन्न है। नहीं तो एक देखे; तो दूसरेको विकार नहीं होना चाहिये। 'इन्द्रियान्तरविकारात्।' (३।१।१२)।

६. प्रश्न—स्मृतिमें स्मर्तव्य विषय ही कारण होता है, स्मरण करनेवाला आत्मा कारण नहीं होता—'न स्मृतेः स्मर्तव्यविषयत्वात्।' (३।१।१३)

६. उत्तर—स्मृति आत्माका ही गुण होती है। यह तो देखी हुई वस्तुका ही स्मरण हुआ करता है—'तदात्मगुणसद्भावादप्रतिषेधः।' (३।१।१४)। स्मृतिके विषय तो अनन्त हैं; कौन पदार्थ कब स्मृतिका कारण हो—इस निर्णयमें कठिनता होनेसे एक स्मरणकर्ता (आत्मा) के माननेमें ही युक्तता है। इसके अतिरिक्त केवल उस वस्तुका देखना ही स्मृतिका कारण नहीं; किंतु उसका अनुभव ही कारण हुआ करता है। तब केवल स्मर्तव्य पदार्थ ही स्मृतिका कारण कैसे हो सकता है? 'अपरिसंख्यानाच्च स्मृतिविषयस्य।' (३।१।१५) इससे आत्मा इन्द्रियोंसे भिन्न ही सिद्ध होता है। अनुभवकर्ता वही है।

७. प्रश्न—मनको ही आत्मा क्यों न माना जाय? ज्ञान वा स्मृतिका ज्ञान मनमें ही हुआ करता है। 'न आत्मप्रतिपत्तिहेतूनां मनसि सम्भवात्।' (३।१।१६)

७. उत्तर—यदि मनको आत्मा माना जायगा, तब आत्माका मननसाधन अन्य ही मानना पड़ेगा। नहीं तो, यह केवल नामभेदमात्र ही हुआ। आत्मा आपको भी मानना पड़ा। 'ज्ञातुर्ज्ञानसाधनोपपत्तेः संज्ञाभेदमात्रम्।' (३।१।१७)

जैसे नेत्र आदि बाह्य साधनके बिना आत्मा देख नहीं सकता, वैसे सुख-दुःख आदिकी अनुभूतिके लिये उसका आन्तरिक साधन मन भी अपेक्षित होता ही है। भीतरी साधन मनकी अनावश्यकतामें कोई प्रमाण भी नहीं है। तब मनन-साधन मनसे आत्मा भिन्न ही है। ज्ञानोंके बहुत होनेसे अणु मन उनको एक साथ नहीं जान सकता; उनके लिये विभु आत्माकी ही आवश्यकता होती है; तब आत्मा देह आदिसे भिन्न ही है। 'नियमश्च निरनुमानः।' (३।१।१८)

८. प्रश्न—मान लिया कि आत्मा देहसे भिन्न है; पर वह नित्य है वा अनित्य? यदि अनित्य है तो अकृताभ्यागम दोष होगा कि बिना कोई पूर्व कर्म किये उसका फल मिला। यदि आत्मा नित्य है; तो इसमें प्रमाण क्या है?

८. उत्तर—पूर्वजन्ममें विद्यमान आत्माने जिन हर्ष, शोक, भय आदिका अनुभव किया था, इस शरीरको लेकर वह जीव, उन्हींको रोने वा मुसकराने आदिसे प्रकट करता है। उसे किसीने इन चेष्टाओंको सिखलाया तो नहीं था। यदि आत्मा नित्य न हो और यह वर्तमान आत्मा बिल्कुल नवीन हो, तो वह भय आदिसे तो परिचित होगा नहीं; तब उसे भय आदिका ज्ञान कैसे हो जाता है? फिर बड़े होनेपर उसके वे पूर्वजन्मके संस्कार धीरे-धीरे हट जाते हैं। पूर्वमें तो कई ऐसे संस्कारी जीव भी पूर्वजन्मकी बातें भी बताया करते हैं; वे केवल हिंदुओंमें ही नहीं, पारसी, मुसल्मान, ईसाइयोंमें भी। केवल भारतवर्षमें ही नहीं; चीन, इंगलैंड, जापान आदिमें भी देखे गये हैं और उनकी वे कही हुई बातें प्रायः मिलती हुई देखी गयी हैं। आगे वह बच्चा उन्हें भूल जाता है—यह भी अच्छा है; यदि उन पूर्वजन्मकी सभी बातोंकी स्मृति रहे तो वह जीव इस जन्ममें कुछ कर न सके। फलतः हर्ष, शोक, भय आदि जो बच्चेमें दीखते हैं, वे पूर्वजन्मके संस्कारोंसे होते हैं; इससे आत्मा नित्य सिद्ध है—

'पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धाद् जातस्य हर्षभयशोकसम्प्रतिपत्तेः' (३।१।१९)

जब आत्मा नित्य सिद्ध है; तो पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्म भी सिद्ध है।

९. प्रश्न—जैसे कमल आदि स्वाभाविकतया खिल जाते हैं तथा बंद हो जाते हैं, वैसे बच्चेको हर्ष-भय आदि भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना निमित्तके होते हैं; तब इससे आत्माकी नित्यता कैसे हो जायगी ? **'पद्मादिषु प्रबोधसम्मीलनविकारवत् तद्विकारः ।'** (३ । १ । २०)

९. उत्तर—कमल आदिमें जो खिलना-बंद होना आदि विकार होते हैं, वे भी बिना निमित्तके नहीं होते; उसमें भी सूर्यके उदय-अस्त आदि निमित्त होते हैं । यहाँपर भी सद्यः उत्पन्न हुए शिशुके हर्ष-भय आदि पूर्वजन्मके अभ्यस्त होते हैं, पूर्वजन्मवाले शिशुके भी उससे भी पूर्वजन्मके अभ्यस्त होते हैं । इस प्रकार यह परम्परा निरवच्छिन्न चलती रहती है । **'न उष्णशीतवर्षाकालनिमित्तत्वात् पञ्चात्मकविकाराणाम् ।'** (न्याय० ३ । १ । २१)

इस प्रकार बच्चेके हर्ष आदिमें पूर्वजन्मके अभ्यासके निमित्त होनेसे आत्मा नित्य सिद्ध है ।

इसी प्रकार सद्योजात बच्चेका स्तन्यपान, शहदका चाटना आदि भी पूर्वजन्मसे अभ्यस्त होनेसे हुआ करता है—**'प्रेत्य आहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात् ।'** (३ । १ । २२)

१०, प्रश्न—यह बच्चेकी स्तन्यपानमें प्रवृत्ति भी चुम्बकमणिके प्रति लोहेके खिंचनेकी तरह निर्निमित्त क्यों न मानी जाय ? **'अयसोऽयस्कान्ताभिगमनवत् तदुपसर्पणम् ।'** (३ । १ । २३)

१०. उत्तर—यह ठीक नहीं । यदि अयस्कान्तमणि (चुम्बक) के प्रति लोहेका उपसर्पण निर्निमित्त हो तो अयस्कान्त ढेलेको क्यों नहीं खींच लेता ? पर नहीं खींच सकता, **'न अन्यत्र प्रवृत्त्यभावात् ।'** (३ । १ । २४)

इस प्रकार शिशुकी स्तन्यपानमें प्रवृत्ति पूर्वजन्मके अभ्यासवश होती है, तब आत्माकी नित्यताके साथ पुनर्जन्म भी सिद्ध है ।

उत्पन्न हुए शिशुमें राग भी दीखता है, वह खिलौने आदिसे प्रसन्न होता है । इससे वह पूर्वजन्मसे अभ्यस्त है, यह सिद्ध है—**'वीतरागजन्मादर्शनात् ।'** (३ । १ । २५)

इसलिये आत्मा नित्य है ।

११. प्रश्न—जैसे घड़ा आदि द्रव्य सगुण पैदा होते हैं, वैसे आत्माकी उत्पत्ति भी गुणसहित मान ली जाय—**'सगुणद्रव्योत्पत्तिवत् तदुत्पत्तिः ।'** (३ । १ । २६)

११. उत्तर—राग आदि संकल्पसे होते हैं—**'न संकल्पनिमित्तत्वाद् रागादीनाम् ।'** (३ । १ । २७)

वे रागादि ज्ञान हो जानेपर हट भी जाते हैं । अतः वे स्वाभाविक नहीं । रागमें पूर्वजन्मके कर्म कारण होते हैं । इससे जीवके नाना जन्म सिद्ध होते हैं । जातिविशेषमें रागविशेष भी हुआ करते हैं । जैसे—गज-जन्ममें उसका शल्लकी नामक घासमें राग होता है । बिलाव-जन्ममें उसका मूषक आदिमें राग होता है । तब अदृष्ट (पूर्व-जन्मके धर्म-अधर्म आदि) से आत्मा नित्य सिद्ध है । आत्माकी नित्यतासे पुनर्जन्म भी सिद्ध है ।

पुनर्जन्मकी घटनाएँ समाचारपत्रोंमें प्रायः प्रकाशित होती रहती हैं । उन्हें पुनर्जन्म न माननेवाले ईसाई-मुसल्मान आदि छिपाते हैं । हिंदू भी अपने बच्चेकी आयुके कम हो जानेकी शङ्कासे उन्हें छिपाते हैं । सुधारक इसमें पूर्वजन्मके कर्मोंके फलकी सिद्धि होनेसे नास्तिकताके संस्कारवश इसे छिपाते हैं । उच्च संस्कारवाला हिंदू मुक्तिको परम पुरुषार्थ माननेवाला होनेसे पुनर्जन्ममें आस्था नहीं रखता; परंतु पुनर्जन्म सिद्ध होनेसे और उसमें आस्था रखनेसे चोरी, जारी, पाप, हत्या आदि दुष्कर्म हट सकते हैं, इसी जनताकी कल्याण-भावनासे 'कल्याण'ने भी यह अङ्क निकाला है ।

जन्ममरण-दुःखनाशके लिये ही आहार करे

अत्राहारार्थं कर्म कुर्यादनिन्द्यं कुर्यादाहारं प्राणसंधारणार्थम् ।
प्राणाः संधार्यास्तत्त्वजिज्ञासनार्थं तत्त्वं जिज्ञास्यं येन भूयो न दुःखम् ॥ (योगवासिष्ठ, नि० उ० २१।१०)

मनुष्यको चाहिये कि संसारमें आहारकी प्राप्तिके लिये शास्त्रानुसार अनिन्द्य कर्म करे । आहार भी प्राणोंकी रक्षाके लिये ही करे । प्राणरक्षा भी तत्त्वज्ञानके लिये ही करे । तत्त्वज्ञानकी इच्छा सबको करनी ही चाहिये, जिससे जन्म-मरणदुःखकी फिर प्राप्ति न हो ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन और परलोकवाद

(लेखक—पं० श्रीगौरीशङ्करजी द्विवेदी)

एक कथानक है कि एक बालक गुरुके यहाँ पढ़ने गया। गुरुजी तत्त्ववेत्ता थे, उच्च आसनपर आसीन थे और बालक जिज्ञासु था, जमीनपर चटाईपर बैठा। सामने मार्गसे हाथी-पर बैठकर एक राजा जा रहा था। बालकने पूछा—'गुरुजी! क्या जा रहा है?' गुरुजी बोले—'राजाका हाथी जा रहा है।'

बालकने पुनः पूछा—'गुरुजी! राजा कौन! और हाथी कौन है?'

गुरुजी बोले—'राजा ऊपर बैठा है और हाथी नीचे है।'

बालकने फिर पूछा—'गुरुजी! ऊपर क्या होता है और नीचे क्या होता है?'

गुरुजीने कहा—'देखो, ऊपर मैं बैठा हूँ और नीचे तुम हो।'

बालकने जिज्ञासा की—'गुरुजी! मैं क्या और तुम क्या?'

गुरुजीने कहा—बस, बेटा! तुम तत्त्वज्ञानके अधिकारी हो।

वस्तुतः 'मैं' और 'तुम'की जिज्ञासासे ही दर्शनका आरम्भ और समाप्ति होती है। भगवान् शंकराचार्यने अपने ब्रह्म-सूत्रके शारीरकभाष्यके उपोद्घातका प्रारम्भ करते हुए लिखा है—

'युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोर्विषयविषयिणोस्तमःप्रकाशवद्विरुद्धस्वभावयोरितरेतरभावानुपपत्तौ; सिद्धायां तद्धर्माणामपि सुतरामितरेतरभावानुपपत्तिः। इत्यतोऽस्मत्प्रत्ययगोचरे विषयिणि चिदात्मके युष्मत्प्रत्ययगोचरस्य विषयस्य तद्धर्माणां चाध्यासः।'

यहाँ युष्मत्प्रत्ययसे समस्त अनात्म-तत्त्वका बोध होता है। अनात्म-तत्त्वको प्रकृति या मायाके नामसे भी पुकारते हैं। बहुतेरे दार्शनिक आत्म-अनात्म-तत्त्व यानी समस्त चराचर जगत्को प्राकृतिक मानते है। उनके मतसे प्रकृतिमें ही सब कुछ उत्पन्न होता है, प्रकृतिमें ही जीवन धारण करता है और प्रकृतिमें ही विलीन हो जाता है। चेतन-अचेतन सब प्रकृतिके ही परिणाम हैं। अतएव प्राकृतिक जगत् ही सब कुछ है, इसके अतिरिक्त किसी तत्त्वकी कल्पना करना व्यर्थ है। केवल इहलोकको ही सुन्दर और सुखप्रद बनाओ; परलोककी कल्पना मत करो। इसी कारण इस प्रकारके दार्शनिकोंको 'लोकायत' नामसे पुकारते हैं।

अति प्राचीन कालसे इस प्रकारके दार्शनिक विचार भारतमें प्रचलित रहे हैं। कठोपनिषद्में नचिकेताने जब यमराजसे तीसरा वर माँगा है कि 'यह जो मरता है इसके बारेमें लोगोंमें संदेह है। कोई कहता है, मरनेके बाद रहता है, कोई कहता है, नहीं रहता है। मुझको इस विषयमें बतलाइये?' यमराजने इसका उत्तर देते हुए कहा है कि 'अति प्राचीन कालमें देवताओं (विद्वानों) को भी इस विषयमें संदेह हुआ था। यह बहुत सूक्ष्म तत्त्व है, इसको जानना आसान नहीं है' इत्यादि। केवल यही नहीं, श्रुतिमें भी इस विषयमें अनेक स्थलोंपर विचार किया गया है। श्वेताश्वतर उपनिषद् (१। २) में आता है—

'कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा
भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम्।'

औपनिषद ऋषिने एक वाक्यमें अनेक दार्शनिक वादोंका उल्लेख कर दिया है। कालवाद, स्वभाववाद, नियतिवाद, यदृच्छावाद, आधिभौतिकवाद, प्रकृतिवाद, पुरुषवाद इत्यादि। कालवादी दार्शनिक कालको ही जगत्का स्रष्टा, पालक और संहर्ता मानते हैं।* कालस्वरूप सूर्य† चराचर जगत्की आत्मा है, सूर्यकी किरणोंकी ही माया है जो विभिन्न वैचित्र्योंसे युक्त यह जागतिक जीवन दृष्टिगोचर हो रहा है। किरणें वृष्टि करके पृथ्वीको जीवधारीके रहने योग्य बनाती हैं। उनके द्वारा ही प्राणी प्राणवन्त होता है, शक्ति प्राप्त करके जीवन-व्यापारमें प्रवृत्त होता है। सूर्य और सूर्यमण्डलके ग्रहोंकी किरणोंके प्रभावसे मनुष्यके सारे शुभाशुभ कर्म हो रहे हैं। अतएव परलोक कोई वस्तु नहीं है। यह सारा जगत् और इसका व्यवहार सूर्यभगवान्की लीला है। माया (किरणों) का खेल है। केवल पृथ्वी ही नहीं, सूर्यमण्डलके सारे ग्रह सूर्यकी किरणोंके आकर्षणके अधीन ही जीवन

---

* कालः कलयते लोकं कालः कलयते जगत्।
कालः कलयते विश्वं तेन कालोऽभिधीयते॥
कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाम्।
कालः स्वपिति जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः॥
(विष्णुपुराण)

† 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।' (श्रुति)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारण कर रहे हैं। सारे ब्रह्माण्डके नायक सूर्यनारायण हैं; सब कुछ कालाधीन है, विचार-कर्म, प्रयास-चिन्तन सब कुछ कालाधीन है।'

स्वभाववादी कहते हैं कि 'प्राणीजातका तत्तत्-स्वरूप धारण करके तत्तत्-चेष्टामें रत होना स्वभाव है, परिस्थितियाँ स्वाभाविक हैं और उनके द्वारा जो कुछ परिवर्तन होता है, वह भी स्वाभाविक है। इहलोक समस्त स्वभावजनित है, सारे व्यापार स्वभावजनित हैं। परलोककी कल्पना निराधार है।' 'इसी प्रकार दूसरे अनात्मवादी दार्शनिकोंके सिद्धान्तानुसार 'इहलोक ही सब कुछ है।' नियतिवादीके कथनानुसार 'जगत्की वर्तमान स्थिति और प्राणियोंका व्यवहार अनन्तकालसे अनन्त बार ऐसा होता आ रहा है और अनन्तकालतक कालचक्रके अनुसार होता रहेगा।'

श्रुतिमें—

ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभिद्धात्तपसोऽध्यजायत ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽर्णवः समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरोऽजायत। अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।

यहाँ 'यथापूर्वमकल्पयत्' नियतिवादकी ओर ही संकेत करता है, इत्यादि।

इस पक्षमें सबसे प्रबल आधिभौतिकवादका सिद्धान्त है। भारतमें चार्वाक इस मतके आचार्य हो गये हैं। उनका इस समय कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। केवल सांख्य-योग, वेदान्त आदि आस्तिक-दर्शनोंमें उनके मतका यत्र-तत्र खण्डन मिलता है। उससे पता चलता है कि चार्वाक वेद-शास्त्र तथा परलोकवादको नहीं मानते थे। वह केवल इहलोकको ही सुखमय बनानेको परम पुरुषार्थ मानते थे। चार्वाक-दर्शन भारतमें विशेष स्थान न प्राप्त कर सका और वह गौण होकर लुप्तप्राय हो गया। परंतु पाश्चात्य देशोंमें आधिभौतिकवादका क्रमिक विकास हुआ है। द्वन्द्वात्मक अधिभूतवाद (Dialectical Materialism) उसकी चरम परिणति है। उसके अनुसार 'समाज और जगत् एक ही प्रकृतिकी प्रगतिकी अभिव्यक्ति हैं और वह प्रगति द्वन्द्वात्मक है। जगत् परमाणुओंके संघर्ष और विकाससे बना है।' आधुनिक भौतिक विज्ञानने प्रयोगके द्वारा परमाणुओंके भी टुकड़े करके अन्ततः इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है कि जगत्के विकासके मूलमें शक्ति (Energy) है और वह गतिशील (in motion) है। गतिशील शक्ति ही विश्वरूपमें व्यक्त हो रही है। विश्वका कण-कण विकासशील है, समाज और जगत्में वह विकास स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। परंतु इस विकासके बीचमें क्रान्ति होती है और वह गतिको प्रेरणा प्रदान करती है। आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानोंने जिन तत्त्वोंका उद्घाटन किया है, वे आधिभौतिकवादके समर्थक सिद्ध होते हैं। यह गतिशील आधिभौतिकवाद एक प्रकारका जडाद्वैतवाद है। यह एकमात्र इहलोकके अस्तित्वको ही मानता है और चार्वाकके समान इहलोकको सुखमय बनानेको ही परम पुरुषार्थ मानता है।

यहाँतक अनात्मवादके विभिन्न सिद्धान्तोंका संक्षेपमें उल्लेख किया गया। यह उपर्युक्त भगवान् श्रीशंकराचार्यके उपोद्घात-वाक्यमें प्रयुक्त 'युष्मत्-तत्त्व'की संक्षिप्त आलोचना है। भगवान् शंकरने उपर्युक्त उपोद्घातमें आधिभौतिकवादीके मतका खण्डन कर दिया है। वे कहते हैं कि युष्मत्-अस्मत् अर्थात् अनात्म और आत्मतत्त्वका जो प्रत्यय हो रहा है, इसमें आत्मा प्रकाशस्वरूप है; अनात्म-वस्तुका प्रकाशक है। इसलिये अनात्म-वस्तु विषय है और इस विषयकी प्रतीति आत्माको होती है, अतएव वह विषयी है। इस प्रकार दोनोंमें प्रकाश और तमके समान एकरूपताका अभाव है। तम कोई तत्त्व नहीं होता, बल्कि प्रकाश-ज्ञानका अभाव ही तम होता है। फिर यह भासमान जगत् (युष्मत्-तत्त्व) है क्या? इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि युष्मत् अर्थात् अनात्मपदार्थ वस्तुतः कुछ है नहीं। आत्मामें उसका केवल अध्यास होता है। अध्यासका अर्थ है—**'अतस्मिंस्तद्बुद्धिः।'** अर्थात् जो तदाकार नहीं है, उसमें तदाकार-बुद्धि। सारांश यह है कि भगवान् श्रीशंकराचार्यने आधिभौतिकवादके सिद्धान्तको सहज ही उड़ा दिया और बतलाया कि 'आधिभौतिक जगत्की मायासे मुक्त होकर आत्मस्थ होना ही परम पुरुषार्थ है।'

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि 'जगत्का मनुष्यको निरन्तर भान होता है, यह सबको सत्यवत् प्रतीत होता है, फिर इसका अपलाप कैसे हो सकता है?' केवल आत्मतत्त्वको स्वीकार करनेवाले दार्शनिक कहते हैं—

स्वप्ने स्वप्नान्तरगतं विश्वं यथा पृथगिवेक्ष्यते।
तथैव जाग्रत्कालेऽपि प्रपञ्चोऽयं विविच्यताम्॥

(सुरेश्वराचार्य)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जैसे स्वप्नकालमें स्वप्न-जगत् अपने भीतर अपनेसे पृथक् दीखता है, परंतु उसका कोई पृथक् अस्तित्व नहीं होता; वह मायिक स्वप्नजगत् आत्मामें (अपने भीतर) ही उत्पन्न और विलीन हो जाता है। उसी प्रकार जाग्रत्कालमें भी जो प्रपञ्च बाहर दीखता है, वह बाहर नहीं है। अपने भीतर है, आत्मामें है। आत्मस्थ होनेपर इसका भी अपलाप हो जाता है।'

अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते।
अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा॥
(सुरेश्वराचार्य)

'अनादि मायासे सोया हुआ जीव जब जागता है, तब वह अज, अनिद्र (निद्रारहित), अस्वप्न (स्वप्नरहित) अद्वैत ज्ञानको प्राप्त होता है।' वस्तुतः—

ब्रह्म सर्वमिदं विश्वं विश्वातीतं च तत्पदम्।
वस्तुतस्तु जगन्नास्ति सर्वं ब्रह्मैव केवलम्॥
(योगवासिष्ठ ४। ४०। ३०)

'यह सारा विश्व ब्रह्म है; क्योंकि ब्रह्मके भीतर प्रतिभात होता है, किंतु ब्रह्म स्वरूपतः विश्वातीत है। वस्तुतः जगत्की पृथक् सत्ता नहीं है, सब कुछ केवल ब्रह्म ही है।'

इस प्रकार आधिभौतिकवादको उड़ाकर और केवलाद्वैतका प्रतिपादन करके वेदान्तने ब्रह्मातिरिक्त सारे लोक-परलोकको सत्ताहीन बना दिया। जब लोक ही नहीं रहा, तो 'वृक्षो नास्ति कुतः शाखा' —वृक्ष अदृश्य हो गया और उसके साथ-साथ उसकी शाखा-प्रशाखाएँ स्वर्ग-नरक आदि नाना परलोक भी मायाके खेल, मृगमरीचिकावत् असत् हो गये।

ब्रह्म है, इसका प्रमाण क्या है ? यह मौलिक प्रश्न हुआ। वेदान्तदर्शन इसका उत्तर देता है, 'शास्त्रयोनित्वात्।' (१।१।३) अर्थात् वेदादि शास्त्र ब्रह्मका प्रतिपादन करते हैं।

'आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्।'
(मीमांसादर्शन पाद १)

'वेदोंका तात्पर्य यज्ञादि क्रियाओंसे है। जो बातें यज्ञादि क्रियाओंसे सम्बन्ध रखती हैं, वे तो ठीक हैं, जो सम्बन्ध नहीं रखतीं, उनको निरर्थक समझना चाहिये।'

दबी जबानसे मीमांसाने ब्रह्मवादको निरर्थक बतला दिया। मीमांसाने आधिभौतिकवादीके समान इस लोकके सारे प्रपञ्चके अस्तित्वको स्वीकार किया; परंतु साथ-ही-साथ परलोकके अस्तित्वकी उद्घोषणा कर दी। वेदान्तके अनुसार ब्रह्म निष्क्रिय था, अद्वैत था। अतएव उसके लिये जगत्के स्वतन्त्र अस्तित्वको स्वीकार करना बहुत ही कठिन था। मीमांसाने कहा कि विश्व और विश्वके व्यापारका संचालन अदृष्टके द्वारा होता है और अदृष्ट कर्मके द्वारा बनता है। शुभाशुभ कर्मके द्वारा शुभाशुभ अदृष्ट बनता है और उस अदृष्टके द्वारा जन्म-जरा, व्याधि-मृत्यु, सुख-दुःख आदिकी प्राप्ति होती है। अतिरिक्त इसके स्वर्गादि लोक भी हैं—

यत्र दुःखेन सम्भिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम्।
अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्वःपदास्पदम्॥

''जहाँ दुःखका लेश भी नहीं है और न होनेकी सम्भावना है और जो इच्छामात्रसे प्राप्त हो जाता है, वह 'स्वर्ग-सुख' है।'' स्वर्गमें जीवको जिस सुखको भोगनेकी इच्छा होती है, वह तत्काल उसे प्राप्त हो जाता है। लौकिक सुख तो दुःखसे मिश्रित होता है; सुखकी प्राप्तिमें दुःख, भोगकालमें दुःख और भोगोपरान्त दुःख। परंतु स्वर्गका सुख निखालिस होता है और भोगोपरान्त आनन्द-प्रद होता है। अतएव मीमांसक कहते हैं—'स्वर्गकामो यजेत।' अर्थात् स्वर्गकी कामना हो तो यज्ञ करो।

सारांश यह है कि मीमांसाके अनुसार लोक-परलोक सब कुछ है और जीवको केवल लौकिक सुखके संचयमें न लगा रहकर परलोकके बनानेमें भी निरन्तर रत रहना चाहिये।

परमाणुवादी वैशेषिक परमाणुओंके द्वारा सृष्टिकी रचना मानते हैं। मूलतः वे सप्त पदार्थोंका अस्तित्व मानते हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। इनमें केवल पूर्वके छः भाव-रूप हैं, सातवाँ अभाव है। द्रव्य, गुण, कर्म और सामान्य जाति हैं; विशेष, समवाय और अभाव उपाधि हैं। द्रव्यमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आत्मा और मन जाति है, आकाश, काल और दिशा उपाधि है। आत्माका लक्षण लिखते हुए महर्षि कणाद कहते हैं—

'इच्छाद्वेषसुखदुःखप्रयत्नज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्।'
(गौतम सूत्र १। १०)

अर्थात् इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और प्रयत्न आत्माके लिङ्ग हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार आत्मत्वको पृथ्वीत्वके समान ही जातिविशेष मानकर वैशेषिकने एक प्रकारसे वेदान्तके अद्वैतवादको अग्राह्य कर दिया और मीमांसाका समर्थन किया; क्योंकि वैशेषिक दर्शनमें धर्मका लक्षण करते हुए लिखा है कि—

'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ।'

अर्थात् 'धर्म वही है जिससे इहलोकमें अभ्युदय हो, उन्नत जीवन बने और निःश्रेयसकी सिद्धि हो अर्थात् स्वर्ग या मोक्षकी प्राप्तिके लिये भी साधना चलती रहे ।' एक प्रकारसे मीमांसाके कर्मवादके सिद्धान्तको वैशेषिकने मान लिया है । यही बात न्यायदर्शनकी है ।

बौद्ध-दर्शनके शून्यवादने आधिभौतिकवाद और भगवान् शंकरके अद्वैतवाद दोनोंको अस्वीकार किया है । सांख्य-दर्शनकारने शून्यवादके विषयमें लिखा है—

'शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद् विनाशस्य ।'
(सांख्यदर्शन १ । ४४)

अर्थात् 'न भौतिकतत्त्व हैं, न ब्रह्म । केवल शून्यतत्त्व है; क्योंकि सब भाव विनाशको प्राप्त होते हैं और विनाश (शून्य) का धर्म है—वस्तुरूपमें प्रकट होना ।'

परंतु बौद्धदर्शन कर्मवादके सिद्धान्तको मानता है, यद्यपि यह कर्मवाद मीमांसाके कर्मवादसे भिन्न है । 'धम्मपद'में कहते हैं—

मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया ।
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा ॥
ततो 'नं दुक्खमन्वेति चक्कं 'व वहतो पदं ॥ १ ॥
मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया ।
मनसा च पसन्नेन भासति वा करोति वा ।
ततो 'नं सुखमन्वेति छाया 'व अनपायनी ॥ २ ॥

'सारे जीवनके व्यापारोंके आगे-आगे मन चलता है, सब व्यापारोंमें मनकी ही श्रेष्ठता है, सारे व्यापार मनोमय हैं । जो दूषित मनसे बोलता है या कार्य करता है, उसके पीछे दुःख उसी प्रकार लग जाता है, जैसे गाड़ीको खींचनेवाले बैलके पीछे पहिया चलता है । इसी प्रकार जो स्वच्छ मनसे भाषण करता है या काम करता है, उसके पीछे सुख इस प्रकार चलता है, जैसे मनुष्यके पीछे छाया लगी फिरती है ।'

दुष्ट मनसे किये कर्म, भाषण या चिन्तनको 'पाप' कहते हैं और स्वच्छ मनसे किये कर्म, भाषण या चिन्तनको 'पुण्य' कहते हैं । पापका फल दुःख होता है और पुण्यका फल सुख । सुख-दुःखरूप फल मनुष्य इहलोकमें भोगता है और जो शेष रहता है, उसको भोगनेके लिये उसे स्वर्ग या नरकमें जाना पड़ता है ।

बौद्धलोग हेतुवादी हैं, इसलिये पुण्य सञ्चय करनेका उपदेश देते हैं; जीवनमें जो जितना ही अधिक पुण्य सञ्चय करता है, उतना ही उसका जीवन सफल होता हैं । तथागत कहते हैं—

इध तप्पति पेच्च तप्पति पापकारी उभयत्थ तप्पति ।
× × ×
इध नन्दति पेच्च नन्दति कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति ॥
(धम्मपद १ । १७-१८)

'पाप करनेवाला इहलोकमें संतप्त होता है और मरकर परलोकमें भी संताप भोगता है । × × × पुण्यकर्मा इहलोकमें आनन्द करता है, मरकर परलोकमें जाकर आनन्द भोगता है, वह दोनों लोकोंमें आनन्दित होता है ।'

बौद्धलोग अनात्मवादी हैं । उनका परम तत्त्व 'शून्य' है । शून्यका लक्षण करते हुए कहते हैं—

'सदसदुभयानुभयात्मकचतुष्कोटिविनिर्मुक्तं शून्यम् ॥'

अर्थात् सत्, असत्, उभयात्मक (सत्-असत्) तथा अनुभयात्मक (न सत् न असत्)—इन चारों कोटिसे पृथक् विलक्षण 'शून्यतत्त्व' है । इसी कारण इनका निर्वाण भी शून्यात्मक होता है । जैसे—

दीपो यथा निवृत्तिमभ्युपेतो
नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिशं न कांश्चित् विदिशं न कांश्चित्
स्नेहक्षयात् केवलमेति शान्तिम् ॥
तथा कृती निवृत्तिमभ्युपेतो
नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिशं न कांश्चित् विदिशं न कांश्चित्
क्लेशक्षयात् केवलमेति शान्तिम् ॥

'जैसे दीप निर्वाणको प्राप्त होता है तो वह न दिशाओंमें जाता है, न अवान्तर दिशाओंमें—बल्कि तेलके क्षीण हो जानेपर शान्त हो जाता है । उसी प्रकार कृती जब निर्वाणको प्राप्त होता है तो वह न दिशाओंमें जाता है, न अवान्तर दिशाओंमें—क्लेश-वासनाके क्षीण हो जानेपर केवल शान्त हो जाता है ।'

'अहं करोमि'—इस वृत्तिमें 'अहं' को वे आत्मा नहीं मानते, अहंकार मानते हैं । उनका जीव संज्ञा, रूप, वेदना, विज्ञान और संस्कार—इन पञ्चस्कन्धोंका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समूह है। कर्मोंके संस्कार यानी सूक्ष्मरूपसे अधिवासित होकर यह पञ्चस्कन्धसमूहरूप जीव संसृतिमें घूमता हुआ सुख-दुःख भोगता है तथा स्वर्ग-नरकादिके सुख-दुःखको भोगनेके लिये तत्तत् लोकोंमें जाता है। सुख-दुःख, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक आदिको मानते हुए भी बौद्ध नास्तिक हैं; क्योंकि वे न तो आत्मा-परमात्माको मानते हैं और न वेदोक्त धर्मको मानते हैं।

बौद्ध-दर्शनके समान जैन-दर्शन भी कर्मफलको मानता है और शुभ कर्मोंसे स्वर्ग तथा अशुभ कर्मोंसे नरककी प्राप्तिके सिद्धान्तमें विश्वास करता है।

सांख्यदर्शनके प्रणेता महर्षि कपिलने उपर्युक्त बौद्ध-दर्शनके शून्यवादके ठीक विपरीत सद्वादके सिद्धान्तका उपदेश दिया है। उनके अनुसार शून्यतत्त्व नहीं है और न वेदान्तकी मायाके समान असत् तत्त्व है, बल्कि जगत्का मूल कारण 'सत्' है। उसे 'प्रकृति' कहते हैं। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है अर्थात् सत्त्व, रजः और तमःस्वरूपा है। इन गुणोंके वैषम्यसे प्रकृति परिणामको प्राप्त होती है। तब—

प्रकृतेर्महान् ततोऽहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि॥

(सांख्यकारिका २२)

'प्रकृतिसे महत्तत्त्व, उससे अहंकार, अहंकारसे पाँच तन्मात्राएँ, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और सोलहवाँ मन तथा पाँच तन्मात्राओंसे पाँच महाभूत उत्पन्न हुए।' इस प्रकार प्रकृति और उसके विकारको लेकर चौबीस तत्त्व हुए। इसमें पुरुषको जोड़ देनेसे सांख्यदर्शनके कुल पचीस तत्त्व हो जाते हैं। प्रकृतिका लक्षण करते हुए कहते हैं—

त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्॥

(सांख्यकारिका ११)

'अव्यक्त अर्थात् प्रधान (प्रकृति) और व्यक्त अर्थात् महत्तत्त्वादि उपर्युक्त तेईस तत्त्व त्रिगुणात्मक हैं, अविवेकी (विवेकशून्य) हैं, विषय हैं, सामान्य हैं, अचेतन हैं, प्रसवधर्मी अर्थात् परिणामशील हैं; परंतु पुरुष (आत्मा) इससे विपरीत गुणवाला है, अर्थात् गुणातीत है, विवेकशील है, विषयी है, विशेष है, चेतन है और अपरिणामी अर्थात् कूटस्थ है।' इसके सिवा प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि हैं और विभु हैं। पुरुष प्रकृतिके संयोगसे बन्धनमें पड़ा है और प्रकृतिके कार्योंको भूलसे स्वकृत मानकर उनके शुभाशुभ कर्मको भोगता है। यदि पुरुषका प्रकृतिके साथ वियोग हो जाय तो उसे 'कैवल्य' प्राप्त हो जाय और वह जन्म-मरणकी व्याधिसे सदाके लिये मुक्त हो जाय। किसीने कहा है कि—

पतञ्जलिमुनेरुक्तिः काप्यपूर्वा विराजते।
पुंप्रकृत्योर्वियोगोऽपि योग इत्युच्यते यया॥

'पतञ्जलि मुनिका यह विलक्षण सिद्धान्त है कि योग प्रकृति-पुरुषके वियोगको कहते हैं।' महर्षि पतञ्जलिने योगकी परिभाषा करते हुए कहा है—'**योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।**'—(१।२) चित्तकी वृत्तियोंके निरोधको योग कहते हैं। चित्तकी वृत्तियाँ ही प्रकृति-पुरुषके संयोगकी दृढ़ रज्जु हैं। यदि इस रज्जुको तोड़कर पुरुषने दूर फेंक दिया तो प्रकृतिकृत बन्धन समाप्त हो गया और पुरुष अकेला अपने स्वरूपमें स्थित हो गया। इसीको योगदर्शन (१।३)में कहा है—

'**तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।**'

पुरुषके कैवल्यकी दृष्टिसे सांख्य और योगदर्शनका एक ही सिद्धान्त है। परंतु जबतक कैवल्यकी प्राप्ति नहीं होती, तबतक पुरुष प्रकृतिके साथ विभु होते हुए भी अपनेको सुखी-दुखी, जन्मता-मरता और नाना योनियोंमें घूमता हुआ मानता है। यही पुरुषका बन्धन है। यद्यपि कर्मका कर्त्ता पुरुष नहीं है, प्रकृति है तथापि प्रकृतिके द्वारा कृतकर्मोंका कर्त्ता अपनेको मानकर वह 'भोक्ता' बनता है। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥

(३।२७)

'प्रकृतिके गुणोंके द्वारा क्रियमाण सारे कर्मोंका अहंकारसे विमूढ़ आत्मा (पुरुष) अपनेको कर्ता मानता है।' परंतु जब उसे शुद्ध सात्त्विक बुद्धिके द्वारा यह पूर्णतः अनुभव हो जाता है कि जीवनका सारा व्यापार प्रकृतिद्वारा हो रहा है, तो वह प्रेक्षकके समान अवस्थित होकर 'स्वस्थ' हो जाता है। तब उसे भान होता है कि 'मैं कर्त्ता नहीं हूँ, मैं शुद्ध-बुद्ध ज्ञानस्वरूप चेतन हूँ, मेरे चैतन्यके प्रकाशमें प्रकृति लीला कर रही है।' उधर जब प्रकृति पुरुषको ज्ञान-सम्पन्न देखती है और अपनेसे पूर्ण विरक्त देखती है तो वह लज्जावश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर कृत्य समाप्त कर देती है। सांख्यदर्शनके मतसे यही पुरुषका 'कैवल्य' है और यही 'परमपद' है।

परंतु इस अवस्थाको विरले ही भाग्यवान् पुरुष प्राप्त होते हैं। फिर तो आवागमन ही अधिकांशके मत्थे पड़ता है। मृत्युके पश्चात् पुरुषके कृतकर्मोंके संस्कार, जिनको 'भाव' कहते हैं, जो लिङ्ग अर्थात् सूक्ष्मशरीरके साथ अनुस्यूत होते हैं, पुरुषको साथ लेकर परलोक तथा जन्मान्तरमें भोग प्रदान करते हैं।

यहाँ 'भाव' और 'लिङ्ग' दो पारिभाषिक शब्द आये हैं। अतएव इनको स्पष्ट करना आवश्यक है। लिङ्ग या सूक्ष्म शरीर अनादिकालसे पुरुषके साथ लगा रहता है। सृष्टिके आदिमें पुरुष लिङ्गशरीरके साथ ही संसारमें आता है और जन्म-जन्मान्तर इसके साथ ही भोगोंमें लिप्त रहता है या कर्म करता है। जब 'कैवल्य'की प्राप्ति होती है, तब पुरुषको इस शरीरसे छुटकारा मिलता है। सांख्यशास्त्रके अनुसार बुद्धि, (महत्) अहंकार, मन, दस इन्द्रियाँ और पञ्च तन्मात्राएँ (सूक्ष्मभूत) कुल अठारह तत्त्वोंका लिङ्ग अर्थात् सूक्ष्म शरीर होता है। इस सूक्ष्मशरीरकी अप्रतिहत गति होती है। यह पत्थरके भीतरसे भी घुसकर निकल सकता है। प्रलयकालतक नियतरूपसे पुरुषके साथ रहता है। ज्ञान-अज्ञान, वैराग्य-अवैराग्य, ऐश्वर्य-अनैश्वर्य सम्बन्धी कर्म-वासनाओंसे अधिवासित होता है।*

कर्मोंके सूक्ष्म संस्कारको 'भाव' या 'अदृष्ट' कहते हैं। 'भवतीति भावः'—कर्मोंके होनेसे उनका संस्कार बुद्धि और मनको संस्कृत करता है और 'अहं करोमि'के द्वारा अहंकार भी उससे लिप्त रहता है। कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा कर्म होते हैं, अतएव वे भी उन कर्मोंके संस्कारसे युक्त होती हैं। पञ्चतन्मात्राएँ उनका आधार बनती हैं। इस प्रकार लिङ्गशरीरके अष्टादश तत्त्व† कर्मोंके संस्कारोंसे अनुलिप्त होते हैं। लिङ्गशरीर भावोंके बिना संसरण नहीं कर सकता; क्योंकि भाव कर्मोंके संस्कार होते हैं और कर्ममें चलनात्मक गुण होता है। यह कर्म पाँच प्रकारका होता है—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन। उत्क्षेपणका अर्थ है—ऊर्ध्वगति, अवक्षेपण है—अधोगति, आकुञ्चन है—सिकुड़ना—अल्पदेशमें व्याप्त होना, प्रसारण है—फैलना—अधिक देशमें व्याप्त होना और गमन है—एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाना। कर्मके संस्कार भी लिङ्गशरीरके साथ रहकर इन पाँच प्रकारोंसे उसे प्रेरित कर सकते हैं और यह कर्मवासनाकी प्रेरणा ही जीवके एक योनिसे दूसरी योनिमें संसरणमें हेतु बनती है‡। कर्मके सूक्ष्म संस्कारों अर्थात् भावोंके बिना लिङ्गशरीर नहीं रह सकता और न लिङ्गशरीरके बिना कहीं ये कर्मके संस्कार रह सकते हैं। इसी कारण ईश्वरकृष्णने सांख्यकारिकामें कहा है—

न विना भावैर्लिङ्गं न विना लिङ्गेन भावनिर्वृत्तिः।
लिङ्गाख्यो भावाख्यस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्त्तते सर्गः॥

(सांख्यकारिका ५२)

सूक्ष्मशरीरमें तन्मात्राएँ अविशेष होती हैं, परंतु जिन वासनाओंसे अधिवासित होती हैं, तदनुकूल ही विशेष अर्थात् शान्त, घोर और मूढ़ पञ्चभूतात्मक शरीरका संयोग होता है। जिस प्रकार बिना आश्रयके चित्र नहीं बन सकता, उसी प्रकार स्थूलशरीरके बिना सूक्ष्मशरीर निष्क्रिय रहता है। केवल भोगायतन होता है।

अतएव परलोक-प्रदान करनेमें अर्थात् स्वर्ग-नरकादिका योग प्रदान करनेमें, अथवा बारंबार पुनर्जन्म कराकर भवसागरमें निमज्जित करनेमें अपने किये शुभाशुभ कर्म ही निमित्त बनते हैं। इन्हींके ऊपर मरणोपरान्त जीवकी गति निर्भर करती है। संक्षेपमें वह गति तीन प्रकारकी होती है—देवलोक, तिर्यक्-योनि और मनुष्य-योनि।

अष्टविकल्पो दैवस्तैर्यग्योनश्च पञ्चधा भवति।
मानुषकश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः॥

(सांख्यकारिका ५३)

---

* पूर्वोत्पन्नमसक्तं नियतं महदादि सूक्ष्मपर्यन्तम्।
संसरति निरुपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम्॥
(सांख्यकारिका ४०)

† सप्तदशैकं लिङ्गम्—(सांख्यदर्शनम् ३। ९)

‡ वेदान्तके मतसे मन-बुद्धि, दशेन्द्रिय और पञ्चप्राण—कुल सप्तदश तत्त्वोंका लिङ्गशरीर होता है। तन्मात्राओंके स्थानमें वेदान्त प्राणोंको रखकर उनको ही संसरणमें प्रेरक मानता है। यथा—

पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम्।
अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम्॥

तथा—यत्र यत्रानुसरति रथस्तत्रैव सारथिः।
प्राणसम्प्रेरितं चित्तं याति देशान्तरे क्षणात्॥
(योगवासिष्ठ ३१। ४८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवलोक आठ प्रकारका होता है—जैसे ब्रह्म, प्रजापति, इन्द्र, पितर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पिशाचलोक। तिर्यक्-योनि पाँच प्रकारकी होती है—पशु, पक्षी, मृग, सरीसृप और स्थावर। मनुष्ययोनि केवल एक प्रकारकी होती है। इन्हीं योनियोंमें जीव कर्मानुसार फल भोगनेके लिये भटकता रहता है। इनमें केवल एकमात्र मानवयोनि 'कर्म-योनि' है और मानव शुभाशुभ कर्म करनेमें स्वतन्त्र है।

शुभाशुभ कर्मका फल सुख-दुःख होता है। इहलोकमें जो-जो शुभाशुभ कर्म किये जाते हैं, उनके संस्कार सूक्ष्म शरीरमें इकट्ठे होते हैं और उनके फलस्वरूप वह परलोकमें, स्वर्ग-नरकमें सुख-दुःख भोगता है। तत्पश्चात् प्रारब्ध कर्मोंके अनुसार पुनर्जन्म होता है। जब विवेकज्ञानकी साधनासे लिङ्गशरीर संस्कारशून्य हो जाता है, तब पुरुषकी अपने स्वरूपमें स्थिति होती है, वह कैवल्य अर्थात् मोक्ष प्राप्त करता है। सांख्यका यह सिद्धान्त सर्वमान्य है।

सांख्यकी प्रकृतिका राधा, सीता, पार्वती आदि तथा पुरुषका श्रीकृष्ण, राम, शिव आदि नामोंसे पुराणादि शास्त्रों-में उल्लेख किया गया है तथा शक्ति और शक्तिमान्‌के रूपमें उनको अभिन्न माना है वस्तुतः ज्ञानीकी दृष्टिमें सांख्यका पुरुष स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं और मूलप्रकृति श्रीराधिकाजी हैं। अष्टप्रकृति-विकृति—बुद्धि, अहंकार, मन और पञ्च तन्मात्राएँ—अष्ट सखियाँ हैं; तथा षोडश विकृति—एकादश इन्द्रियाँ और पञ्चमहाभूत—ये सोलह दासियाँ हैं; श्रीकृष्ण असंख्य पुरुष बनकर, असंख्य रूपधारिणी श्रीराधा, सखियों और दासियोंके साथ रासलीलामें रत हैं। यह रासलीला अनादिकालसे हो रही है और अनन्तकालतक होती रहेगी। इस रासलीलाका, प्रकृति नटीके सारे नृत्यका एकमात्र उद्देश्य है—पुरुषको, श्रीकृष्णको रिझाना। श्रीकृष्ण अपनी परमार्थ-सत्ताको भूलकर इस लीलारसका आस्वादन कर रहे हैं—ऐसा लगता है; परंतु वस्तुतः वे कूटस्थ और द्रष्टामात्र हैं। अखिल ब्रह्माण्डमें कोटि-कोटि वृन्दावनमें यह लीला चल रही है। ज्ञानीपुरुष इसको देख-देखकर कृतकृत्य होते हैं और अपने जीवनको चरितार्थ करते हैं। ब्रह्मसूत्र (२।१।३३) में कहा है—'**लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्**।' वस्तुतः श्रीकृष्ण और उनकी रास-सहचरी श्रीराधिकाजीकी लीलाके सिवा और कोई तत्त्व है ही नहीं। यही वेदान्तका चरम सिद्धान्त है और यही पुराणोंमें अभिप्रेत है। सुख-दुःख आदि जगत्‌का जंजाल तथा स्वर्ग-नरकादि, सब मृगतृष्णाके समान तुच्छ हैं, मायाजाल हैं, तत्त्व नहीं हैं। गीता (२।६८) में जो कहा है कि—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

'वस्तुतः संयमी अर्थात् ज्ञानी तत्त्वदर्शनमें जागता है, जिसमें सारे प्राणी सोते हैं और सारे प्राणी जिस मायामें जागते हैं, तत्त्वज्ञानीके लिये वह रात है, वह उसमें सोता है।'

माया अनादि है, परंतु सान्त है; क्योंकि तत्त्वज्ञान होनेपर इसका अन्त हो जाता है। यहाँ प्रश्न होता है कि 'जो वस्तु अनादि होती है, वह अनन्त भी होती है; फिर, माया अनादि होते हुए सान्त कैसे हो सकती है? क्या ऐसा कोई तत्त्व है जो अनादि हो और सान्त भी हो?' इसका उत्तर यह है कि "ऐसा दृष्टान्त है। नैयायिकोंका प्रागभाव अनादि होकर सान्त हो जाता है। जैसे भूतलमें 'अयं घटः' इस प्रतीतिके पूर्व वर्तमान जो घटका प्रागभाव था, वह अनादि था, परंतु 'अयं घटः' प्रतीति होते ही उस प्रागभाव-का अन्त हो गया। अतएव माया अनादि है, परंतु इसका अन्त हो सकता है।" भगवान् श्रीकृष्णने गीता (७।१४) में कहा है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

'यह त्रिगुणमयी मेरी दैवी माया है, इसका पार पाना बहुत कठिन है, किंतु जो मेरे प्रपन्न होते हैं, वे ही इस मायाको पार कर सकते हैं।' भगवत्प्रपन्न अथवा शरणागति भगवत्कृपापर अवलम्बित है। भगवत्प्रपन्न मायाको पार करके भगवत्स्वरूपकी उपलब्धि करता है, तब उसे '**पदे पदे वृन्दावनम्**'का दिव्य दर्शन होता है। उसके इहलोक और परलोक दोनों एकाकार 'वृन्दावनमय' हो जाते हैं। शरीर त्याग करनेके बाद वह 'गोलोक धाम'में गमन करता है और नित्य रासलीलामें सम्मिलित हो जाता है। यह मानव-जीवनकी सर्वोच्च स्थिति है।

इसी प्रकार शिवोपासक शिवलोक, रामोपासक साकेत-लोक आदि दिव्यलोकोंमें गमन करके दिव्य आनन्दको प्राप्त करते हैं। पुराणादि शास्त्रोंका परलोकविषयक यही दार्शनिक मत है। '**दर्शनभेदात् प्रस्थानभेदः**।'—इस शास्त्रोक्तिके अनुसार दर्शनकी विभिन्नतासे मानव-जीवनकी सरणि तथा लक्ष्यमें भी विभिन्नता आती है। जगत् त्रिगुणात्मक है, बुद्धि त्रिगुणात्मिका है। अतएव सत्त्व, रज और तमके तारतम्यके अनुसार मानवीबुद्धिमें भी तारतम्य होता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनकी साधनामें भी तारतम्य आता है। इसी कारण आचार्य लोग तत्तद् दर्शनमें तत्तत् अधिकारी साधकको महत्त्व देते हैं तथा दर्शनके अध्ययनमें अभिधेय, अधिकारी, लक्ष्य और सम्बन्धकी परीक्षाको प्राथमिकता प्रदान करते हैं। इस अधिकारीभेदके कारण एक ही वेदान्तके अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, अचिन्त्यभेदाभेदवाद आदि अनेक प्रस्थान हो गये हैं। इन विषयोंकी आलोचनाके लिये यहाँ अवसर नहीं है। अतएव परलोकवादसम्बन्धी इस अधूरी दार्शनिक आलोचनाको प्रस्तुतकर विज्ञ पाठकवृन्दसे क्षमायाचना करता हूँ।

पुनर्जन्म-निवारणका सुलभ उपाय, अर्चावतारके आलम्बनसे भगवदर्चा

(लेखक—श्री च. भास्कर रामकृष्णमाचार्युलु)

ज्ञानानन्दमयं देवं निर्मलस्फटिकाकृतिम्।
आधारं सर्वविद्यानां हयग्रीवमुपास्महे॥
नारायणः पिता यस्य माता चापि हरिप्रिया।
भृग्वादिमुनयः शिष्यास्तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

'जो ज्ञान और आनन्दमय हैं, जिनकी आकृति स्वच्छ स्फटिकके समान है, जो समस्त विद्याओंके आधारभूत हैं, उन श्रीहयग्रीवदेवकी हम उपासना करते हैं। जिनकी माता श्रीलक्ष्मीजी तथा पिता श्रीनारायण हैं, जिनके भृगु आदि मुनि शिष्य हैं, उन श्रीविखनस गुरुजीको नमस्कार।'

पुनर्जन्मका सिद्धान्त भारतीय सनातनधर्मका परम प्रमुख सिद्धान्त है। वेद, शास्त्र, उपनिषद्, स्मृति, पुराण आदि ग्रन्थोंमें इसका विशद वर्णन मिलता है। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है कि—

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।' (२।२७)

अर्थात् 'जो उत्पन्न हुआ है उसकी मृत्यु ध्रुव है तथा मृतका जन्म भी ध्रुव है।' यहाँ पुनर्जन्मको अपरिहार्य बतलाया है। तथापि अनन्य भक्तिसे नित्ययुक्त होकर उपासना करनेसे पुनर्जन्म छूट जा सकता है। जैसे—

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥
(गीता ९। १४)

इस प्रकारसे उपासना करनेवालोंके विषयमें कहते हैं—

—'यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।' (गीता ९। २५)

अर्थात् 'मेरी उपासना करनेवाले मुझको प्राप्त होते हैं।'

वह भगवत्-उपासना ज्ञान, योग और कर्म आदि भेदसे अनेक प्रकारकी है। उसमें सगुण समूर्ति-अर्चना अत्यन्त सुलभ है। इसमें भी श्रीविष्णुभगवान्‌की आराधना और सुलभ है। भगवान् विष्णुकी आराधनाके बिना परम पदकी प्राप्ति दुर्लभ है। कहा भी है—

'वासुदेवमनाराध्य को मोक्षं समवाप्स्यति।'
(विष्णुपुराण १। ४। १८)

मानव-शरीर अत्यन्त दुर्लभ है; क्योंकि इसीसे श्रीभगवान्‌की आराधना होती है—**'जन्तूनां नरजन्म सुदुर्लभम्'**। मानव-जन्म प्राप्त करके यदि हमने निष्काम भावसे केवल परम पदकी प्राप्तिके लिये आराधना की, तब तो ठीक है। नहीं तो, यदि दुष्कर्ममें पड़े तो अधम गति प्राप्त होगी। भगवान्‌ने बारंबार गीतामें कहा है कि 'यदि मनुष्य-शरीरसे भगवदाराधना नहीं हुई तो अधोगतिको प्राप्त होना अनिवार्य है।' यथा—

'मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥'
तथा— (गीता १६। २०)

'अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥'
(गीता ९। ३)

इससे सिद्ध होता है कि जन्म-मरणके चक्रसे मुक्ति देनेमें आराधनाका बड़ा महत्त्व है। उस आराधनाके परम आलम्बन प्रतीक या अर्चामूर्त्तिके रूपसे अवतार ग्रहण करके भगवान्‌ने अपनी सहज करुणाका परिचय दिया है। भगवान्‌के स्वरूपके विषयमें श्रुति कहती है—

'पुरुष एवेदं सर्वम्।' 'विष्णुर्वै सर्वा देवता।' 'अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वा अन्या देवताः।'

—इन वाक्योंसे श्रीविष्णुभगवान्‌की महिमाका सहज ही पता लगता है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि **'नान्या गतिः कृष्णपादारविन्दात्'**। सारांश यह है कि जन्म-मरणके चक्रसे मुक्ति पाने तथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्तिके लिये उपासना परम सुलभ साधन है। ब्रह्माण्ड-पुराणमें भी लिखा है—

उपासनं परं ज्ञानं परमं मोक्षसाधनम्।
धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च सुलभं भुवि॥

श्रीभगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे गीतामें अभय वाणी सुनाते हुए कहा है कि 'नित्ययुक्त होकर मेरा चिन्तन करते हुए जो मेरी उपासना करते हैं, उनका 'योगक्षेम' मैं वहन करता हूँ।' यथा—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

श्रीविष्णुभगवान्‌की आराधना ही **'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्।'** से मुक्ति प्रदान करनेका सुगम साधन है। महाभारतमें भीष्मजीसे युधिष्ठिरने पूछा है—

किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम्।
स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम्॥

अर्थात् 'कौन ऐसा एक देवता है जिसके परायण होकर अर्चा-स्तुति करनेसे मनुष्यकी शुभगति हो सकती है?' इसका तो भीष्मजीने उत्तर दिया है—

जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम्।
स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः।
तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम्॥
× × × × × ×
एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः॥

अर्थात् 'उस अव्यय पुरुषोत्तम श्रीविष्णुभगवान्‌की नित्य अर्चा करना ही सब धर्मोंमें श्रेष्ठ धर्म है।' गीतामें श्रीभगवान्‌ने कहा है कि 'श्रद्धा-भक्तियुक्त होकर जो उपासना करता है वह योगियोंमें भी श्रेष्ठ है'—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥

(गीता ६। ४७)

इसी प्रकार श्रीभगवान्‌ने बारंबार कहा है कि **'मद्भक्ता यान्ति मामपि।'** तथा **'यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्'**। जो आसुरी सम्पत्तिवाले मूढ़ लोग हैं, वे भगवान्‌की आराधना नहीं करते हैं, इस कारण उनको भगवत्प्राप्ति नहीं होती। वे अधम गतिको प्राप्त होते हैं।

पुरुषसूक्तके मन्त्रोंके द्वारा नारायणकी अर्चा करनेसे विष्णुपदकी प्राप्ति होती है। यथा—

'अर्घ्यादिभिः पौरुषसूक्तमन्त्रैः सम्प्राप्नुयाद्विष्णुपदं महात्मा॥'

भगवान्‌की अर्चा षट्कर्मोंमें एक नित्य क्रियमाण कर्म भी है। यथा—

स्नानं संध्या जपो होमो देवतानां च पूजनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट्कर्माणि दिने दिने॥

'स्नान, संध्या, जप, होम, देवपूजन, बलिवैश्वदेव—ये षट्कर्म प्रतिदिन करनेके हैं।'

सभी गृह्यसूत्रकारोंने नित्य भगवदर्चाको परम आवश्यक माना है। विखनस मुनिने अपने गृह्यसूत्रमें लिखा है कि नित्य होमके पश्चात् श्रीविष्णुभगवान्‌की अर्चा करनेसे सब देवताओंकी अर्चाका फल मिलता है। यथा—

'अग्नौ नित्यहोमान्ते विष्णोर्नित्यार्चा सर्वदेवार्चना भवति।'

(वैखानस गृह्यसूत्र)

'भगवान् विष्णुकी आराधना दो प्रकारकी होती है—अमूर्त और समूर्त।'

—'तदाराधनं द्विविधम् अमूर्तं समूर्तमिति।'

(मरीचिविमानार्चनकल्प)

'अमूर्त आराधना वैदिक वैष्णव-मन्त्रोंसे होम करनेसे होती है और समूर्त आराधना प्रतिमाके सविधि पूजनसे सम्पन्न होती है। इन दोनोंमें समूर्त आराधना सरल तथा श्रेष्ठ है।'

'अग्नौ हुतममूर्तं प्रतिमाराधनं समूर्त्तम्। तच्छ्रेष्ठं च।'

(मरीचिविमानार्चनकल्प)

श्रीविष्णुभगवान्‌का रूप **'पञ्चधा पञ्चात्मा'** इस श्रुतिके अनुसार पाँच प्रकारका होता है—पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चा। ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है—

स्वरूपं पञ्चधा प्रोक्तं परस्य परमात्मनः।
परो व्यूहश्च विभवश्चान्तर्यामी च सुव्रताः॥
अर्चा चैते हरेः रूपं × × ×।

अखिल ब्रह्माण्डकी रचना करनेवाला विष्णुका 'पर' रूप है; विष्वक्सेन, गरुड, लक्ष्मी आदिके साथ क्षीरशायी भगवान् 'व्यूहरूप' हैं; राक्षसोंका नाश करनेके लिये मत्स्य-कूर्मादि अवतार 'विभव' रूप है; समस्त चराचर जगत्‌में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापक 'अन्तर्यामी' रूप तथा सब जीवोंके क्लेशका नाश करनेवाला तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला 'अर्चा' रूप है। यथा—

सुलभं मोक्षसिद्ध्यर्थं अवाप्यर्चास्वरूपवान्।
निवसिष्यामि सर्वत्र जनानां मुक्तिहेतवे॥
(ब्रह्माण्डपुराण)

श्रीविष्णुभगवान्‌की प्रेरणासे ब्रह्माजीने अर्चावतारकी अर्चा करनेकी प्रथाके प्रवर्तकके रूपमें ध्यानसे विखनस मुनिको प्रकट किया। विखनस मुनिने डेढ़ करोड़ श्लोकोंके तन्त्र-ग्रन्थको संक्षिप्त करके चार लाख श्लोकोंका बनाया और उसका भृगु, अत्रि, कश्यप, मरीचि, नीललोहित और दक्ष आदिको उपदेश किया। उसीके आधारपर भृगु आदि महर्षियोंने वैदिक ग्रन्थ भागकी रचना की। उसके आधारपर श्रीविष्णुभगवान्‌की प्रतिष्ठा करके अर्चा करनेसे ग्राम-निवासियोंके सारे श्रौत-स्मार्त कर्म सफल होते हैं।

वह अर्चावतार विष्णु, पुरुष, सत्य, अच्युत और अनिरुद्ध नामसे अवतरित हुआ है। देवालयमें अर्चामूर्त्ति ध्रुव, कौतुक, स्नपन, उत्सव और बलि नामसे पाँच विग्रह (बेर) में विभक्त है। ग्राम-रक्षार्थ 'ध्रुव' विग्रह है, अर्चाके लिये 'कौतुक' विग्रह है, उत्सवके लिये 'उत्सव' विग्रह है और स्नपनके लिये 'स्नपन' विग्रह तथा बलिके लिये 'बलि' विग्रह है—

ध्रुवस्य ग्रामरक्षार्थमर्चनार्थं तु कौतुकम्।
उत्सवं चोत्सवार्थं च स्नपनं स्नपनार्थकम्॥
बल्यर्थं बलिबेरं च पञ्च बेरान् प्रकल्पयेत्॥

यदि देवालयमें पृथक्-पृथक् पञ्च विग्रह (बेर) की प्रतिष्ठा न हो सके, तो केवल 'ध्रुव विग्रह'की प्रतिष्ठा करके वहाँ सुवर्ण या कूर्च रखकर अर्चा करनी चाहिये। ('अलाभे सुवर्णं कूर्चं वा निक्षिप्य यथालाभमर्चयेत्।') इस प्रकार निष्कामभावसे या सकामभावसे, किसी भी कारणसे अर्चा करनेसे विष्णुपदकी प्राप्ति होती है। ब्रह्माण्ड-पुराणमें लिखा है—

निष्कामो वार्थकामो वा गृहीत्वा भक्तवेतनम्।
यो मां पूजयते नित्यं मत्पदं समवाप्नुयात्॥

भगवान्‌की अर्चा भक्तिसे, भयसे, कामनासे या धन लेकर, किसी भी प्रकारसे करनेपर परमपदकी प्राप्ति होती है। देवालयमें जाकर नित्य अर्चा न कर सकें तो स्वगृहमें भी नित्य भगवान्‌की अर्चा करनेसे परम पद प्राप्त हो सकता है। यही सुलभतम साधन है।

श्रीविष्णुभगवान्‌के अर्चावतार चार प्रकारके होते हैं—(१) स्वयं व्यक्त, (२) दिव्य, (३) सैद्ध (सिद्धपुरुषद्वारा स्थापित) और (४) मानुष। यथा—

अर्चावताराः श्रीविष्णोः कृतास्त्वेन चतुर्विधाः।
स्वयं व्यक्ताश्च दिव्याश्च सिद्धा मानुषा इति॥
(ब्रह्माण्डपुराण)

भक्तकी रक्षा या वरदानके लिये स्वयमेव समुत्पन्न क्षेत्र 'स्वयं व्यक्त' कहलाते हैं। जैसे—श्रीरङ्ग, वेङ्कटाद्रि, सिंहाचल, प्रयाग, काञ्ची आदि क्षेत्र। ब्रह्मा आदि देवताओंके द्वारा प्रतिष्ठित क्षेत्र तथा तपोभूमि 'दिव्य' क्षेत्र हैं। जैसे—काशीमें माधव, हस्तिशैलमें रमाधव आदि। सिद्धपुरुषोंद्वारा स्थापित अर्चामूर्ति 'सैद्ध' कहलाते हैं। जैसे—घटिकाद्रिमें, सप्तर्षियोंद्वारा स्थापित, चित्रकूटमें पतञ्जलि, ताम्रपर्णीमें कुम्भसम्भव तथा नन्दिपुरीमें महाराजा शिविके द्वारा स्थापित अर्चामूर्तिमें श्रीविष्णुभगवान्‌की आराधना हुई है। चातुर्वर्ण्य भगवद्भक्तोंके द्वारा स्थापित अर्चामूर्ति असंख्य हैं। वे 'मानुष' कहलाते हैं। इन चारों प्रकारके अर्चावतारोंका प्रभाव या तेजःप्रसार क्षेत्र क्रमशः तीन योजन, एक योजन, दो कोस तथा एक कोसतक होता है। इस सीमाके भीतर ये अर्चावतार सेवा करनेवाले अपने भक्तजनका उद्धार करते हैं।

श्रीविष्णुभगवान्‌के अर्चारूप धारण करनेके विषयमें ब्रह्माण्डपुराणमें एक आख्यान है। कल्पान्तरमें नास्तिक मतोंके प्रसारसे पृथ्वीपर उपासना लुप्त हो गयी। भगवदुपासनाके लुप्त होनेसे अवर्षण तथा दुर्भिक्षका प्रकोप हुआ और प्रजा अन्न-कष्टसे व्याकुल होकर त्राहि-त्राहि पुकार उठी। तब मुनियोंकी स्तुतिसे ब्रह्माजीने श्रीविष्णुभगवान्‌के पास जाकर जगत्-क्षोभ-निवारणके लिये प्रार्थना की। इसपर श्रीविष्णुभगवान्‌ने बतलाया कि 'अर्चासे जगत्का कल्याण होगा—

'तेनैव सर्वजगतां वृद्धिर्मुक्तिश्च जायते।'—(ब्रह्माण्डपुराण)

अतएव श्रीविष्णुभगवान् अर्चा-मूर्त्तिके रूपमें श्री-भूमि आदि देवियोंके साथ ग्राम, नदीतीर, पुण्यक्षेत्र, नदी-सङ्गम, पर्वत, वन आदि प्रदेशोंमें अवतीर्ण हुए।

भूलोके भारते वर्षे कर्मभूम्यां × × ×।
अर्चावतारूपेण श्रीभूम्यां समन्वितः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधुनावतरिष्यामि ग्रामे ग्रामे गृहे गृहे।
निवसिष्यामि सर्वत्र जनानां वै मुक्तिहेतवे॥
(ब्रह्माण्डपुराण)

अतएव जहाँ कहीं भगवान्‌की मूर्ति अर्चाके लिये स्थापित है, वहाँ-वहाँ भक्तिभावसे अर्चा करके मानवको आत्म-कल्याणके मार्गपर अग्रसर होना चाहिये।

आत्मज्ञानसे मुक्ति

(लेखक—पं० श्रीभृगुनन्दनजी मिश्र)

हिंदू-धर्मशास्त्रोंमें कर्मवादके सिद्धान्तके आधारपर पुनर्जन्मकी मान्यता स्वीकार की गयी है और प्रत्येक आस्तिक पुरुष संसारके आवागमनका चक्र अनादिकालसे प्रवर्तमान होना मानता है; किंतु कुछ स्थानोंपर उपनिषदों एवं श्रीमद्भगवद्गीताके अनुसार इस आवागमनके चक्रका रुक जाना तथा स्व-स्वरूप-स्थिति—मोक्षका प्राप्त होना भी स्पष्टतः सिद्ध है—

संसारमें रहते हुए प्रत्येक व्यक्ति शुभ अथवा अशुभ कर्मोंके करनेमें प्रवृत्त रहता ही है, और जबतक कर्म करनेमें लगा हुआ है, तबतक कर्मफल अवश्य ही बन्धनकारक होकर पुनर्जन्मके हेतु होंगे। फिर ऐसी कौन-सी स्थिति है, जिसमें कर्मफलके बन्धन अथवा आवागमनके चक्रसे छुट्टी मिल सकती है। मनुष्यमें प्रत्येक कर्ममें प्रवृत्त होनेसे पूर्व कर्म करनेकी स्फुरणा अथवा इच्छा उठती है। उसकी पूर्ति करनेके लिये मनमें संकल्प खड़ा होता है, जो मनुष्यको कर्म करनेमें प्रवृत्त कराता है। यह बात स्पष्टतया सिद्ध है कि कर्त्ताके अहंकारसे संयुक्त हुए बिना कर्म करनेमें समर्थ होना असम्भव है। अतः हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि कर्मके करने तथा उसके फलकी प्राप्तिमें अहंकार ही मूल कारण है।

जबतक किसी वृक्षको जड़से न उखाड़ते हुए, उसकी टहनियाँ, पत्ते, तना आदि काटते रहेंगे, तबतक उसका नष्ट होना सम्भव नहीं है। वृक्षको नष्ट करनेके लिये उसका समूल उच्छेदन करना ही होगा। यही बात कर्मवाद तथा उसके परिणाम जन्म, मरण एवं पुनर्जन्म आदिके सम्बन्धमें लागू होती है। हमें देखना यह है कि क्या हम बिना संकल्प एवं अहंकारके कभी कर्म करनेमें प्रवृत्त हो सकते हैं? व्यावहारिक जगत्‌में इसका उत्तर प्रायः नकारात्मक ही मिलेगा।

यद्यपि व्यवहारमें स्थूलशरीर कर्म करता हुआ दिखायी देता है; किंतु उसकी समस्त क्रियाएँ सूक्ष्मशरीरद्वारा संचालित होती हैं, जो सत्रह तत्त्वोंका जाल है। उसमें संकल्प-विकल्परूप मन तथा उनकी अनिश्चयात्मिका बुद्धि ही कर्म करनेवाली शक्तिका केन्द्रबिन्दु बनकर कर्मके संस्कारोंको गहरा करने (उन्हें मूर्तरूप देने) में प्रधान होती है। जिसमें कर्मके कर्तापनका अहंकाररूपी बीज छिपा रहता है और यह अहंकार अज्ञानावृत होनेसे देहात्मभूत ही होता है, इससे सिद्ध होता है कि कर्मका कर्ता वास्तवमें देह-इन्द्रियादि न होकर मनुष्यका संकल्पयुक्त अहंकार ही होता है, जो देहके साथ अभिन्न हो रहा है। इस अहंकारका अस्तित्व जाग्रत् अवस्थामें अधिक स्पष्ट न होकर, स्वप्नावस्थापर सूक्ष्म विचार करनेसे आपको प्रतीत होगा कि वहाँ पूरा शरीर एवं इन्द्रियादि निश्चेष्ट पड़े होते हैं; वे स्वप्नके व्यवहारोंके कर्ता-धर्ता नहीं होते हैं। स्वप्नावस्थामें अपना स्वयंका ही अहंकारयुक्त संकल्प समस्त क्रियाओंका कर्ता-धर्ता एवं भोक्ता भी बनता है और सुषुप्ति (गहरी निद्राकी) अवस्थामें यही अहंकार जड एवं चेतनाशून्य होकर अपने असली कारणस्वरूप (अज्ञान) में लय हो जाता है।

अब देखिये कि मानवी संकल्प सुषुप्ति अवस्थासे पुनः जाग्रत् अवस्थामें बाहर आकर देहात्मरूप होकर फिर कर्म करनेमें प्रवृत्त हो जाता है और इन तीनों अवस्थाओंकी सीमामें आबद्ध रहनेके कारण अवस्थाजन्य दोषोंसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है। आइये, अब हम इसको तीनों अवस्थारूपी द्वारोंमें भटकनेसे हटाकर, इनसे ऊपरकी चौथी खिड़कीसे बाहर (तुरीयावस्थामें) ले चलते हैं।

जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति अवस्थाएँ रजोगुण एवं तमोगुणप्रधान होकर, क्रिया एवं आवरणरूपसे प्राणीमात्रको स्वाभाविक ही प्रतिदिन प्राप्त होती रहती हैं; किंतु तुरीयावस्था संकल्पोंको निरोध करनेवाले केवल अभ्यासी पुरुषोंको ही प्राप्त होती है और उस अवस्थामें पुरुषका मन एकाग्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर बुद्धि निश्चयात्मिका, एक, सूक्ष्म एवं प्रकाशरूप (वैतत्य) होती है। वेदान्तशास्त्रके श्रवण एवं मननसे तथा सद्गुरुके अनुग्रहसे जब सत्, असत् वस्तुका परोक्ष-ज्ञान दृढ़ हो जाता है, तब साधक पुरुष एकान्त स्थानमें ध्यानावस्थित होकर महावाक्योंके लक्ष्य—'अहं ब्रह्मास्मि'के परम तत्त्व (तत्य) का अपने ही अंदर अन्वेषण करता है और अनेक जन्मोंकी संसिद्धिके रूपमें अपने आत्मस्वरूपकी अपरोक्ष रूपसे अनुभूति करता है। यह अपरोक्ष अनुभूति जीवके परिच्छिन्न अहंकार (जीवभाव) को इस प्रकार नष्ट कर देती है, जिस प्रकार सूर्यके प्रचण्ड तेजसे बरफ शीघ्र ही गल जाता है और अपने परिच्छिन्न नाम-रूपका त्याग करके अपने अधिष्ठान (जलरूप) को प्राप्त हो जाता है।

अपने ही अंदर छिपी हुई आत्मज्योतिके अज्ञानसे जीव-भावका पृथक् अस्तित्व जान पड़ता है। जिस प्रकार काष्ठके भीतर व्याप्त सामान्य अग्नि बाहर दिखायी नहीं देती और उसी सूक्ष्म अग्निकी सत्तासे ही काष्ठका पृथक् अस्तित्व दिखायी पड़ता है; किंतु जब उसी काष्ठकी दो लकड़ियोंके परस्पर संघर्षणसे जो विशेष अग्नि प्रज्वलित हो जाती है, वह आसपासके अन्धकार एवं शीतादिको मिटाते हुए उसी काष्ठको सर्वथा भस्म करके, उसके परिच्छिन्न अस्तित्वको समाप्त कर देती है। इसी प्रकार जब सत् वस्तु (आत्मा) के दर्शनकी तीव्रतम जिज्ञासामें सद्गुरु-कृपाका योग हो जाता है, तब हमें अपने ही अंदर विराजमान उस शाश्वत ज्योतिका दर्शन (साक्षात्कार) हो जाता है, जिसकी अनुभूति मात्रसे परिच्छिन्न मानवी-अहंकार (द्वैतभाव) का सर्वथा नाश हो जाता है। विचार करनेपर पता चलता है कि जबतक मानवी अहंकार अपने असली स्वरूप (अधिष्ठान) के अज्ञानसे आवृत था, तभीतक उसमें देहात्मबुद्धिके कारण कर्तापन एवं भोक्तापन होनेसे जन्म-मरणके चक्रमें पुनरावर्तन हो रहा था, किंतु जब वही अहंकार सत् वस्तुके विवेकसे जाग्रत् होकर शुद्ध तथा आत्माभिमुख हुआ, तब वही अज्ञानका बाधक होकर जीवात्माको शिवात्माके पदपर प्रतिष्ठित करा देनेमें भी समर्थ हो गया। अस्तु, अब तत्त्वज्ञान अथवा आत्मसाक्षात्कार हो जानेपर आत्मज्ञानी पुरुषकी कर्म करनेमें प्रवृत्ति किस प्रकारसे रहती है, थोड़ा इसपर भी विचार कर लिया जाय। आत्मज्ञानीका देहाभिमान छूट जानेके कारण उनके समस्त कर्म एवं क्रियाएँ बिना उनके संकल्पके समष्टि (ईश्वरीय) संकल्पद्वारा संचालित होती हैं और वे अहंकाररहित होकर ही, संसारके व्यवहारोंमें प्रवृत्त होते हैं। वे अपने आत्माको न किसी कर्मका कर्ता मानते हैं और न भोक्ता। वे कर्मके फल एवं परिणामसे रागद्वेष-रहित होकर, जलमें पद्मपत्रवत् निर्लेप रहते हैं। दूसरे शब्दोंमें व्यावहारिक रूपमें दिखायी देनेवाले उनके समस्त कर्म वास्तवमें अकर्म ही हो जाते हैं, जो उनके लिये बन्धन-का कारण नहीं हो सकते हैं; क्योंकि बन्धनके कारण तो अज्ञान एवं अहंकारसंयुक्त कर्म ही थे। भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णद्वारा प्रतिपादित उपदेशके अनुसार आत्मज्ञानी पुरुषका यही **'योगः कर्मसु कौशलम्'** ही उनके लिये **'कर्मभिर्न स बद्ध्यते'** की गारंटी है।

देहमें आत्मभाव होनेसे उससे सम्बन्ध रखनेवाले पदार्थोंमें राग, द्वेष एवं इष्ट-अनिष्टकी भावना रहती है, जो बार-बार जन्म-मरणका कारण होती है। जब आत्मज्ञान-का उदय होता है और अपने सत्स्वरूपकी अपरोक्ष अनुभूतिमें एकाकार हो जाता है, तब अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेशादि पञ्चक्लेशोंके बन्धनसे मुक्त होकर आत्मज्ञानी परमानन्दस्वरूप होकर जीवन्मुक्त अवस्थामें विचरने लगता है। ऐसे जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुषोंके इस जन्म तथा पूर्वजन्मोंकी संचित कर्मराशि ज्ञानाग्निसे इसी प्रकार भस्म हो जाती है, जैसे रूईके गोदाममें अग्निकी चिनगारीके गिरते ही समूचा रूईका ढेर राख हो जाता है। आत्मज्ञानकी अपरोक्ष अनुभूतिसे, कल्पित जीवत्व इस प्रकार तिरोभावको प्राप्त हो जाता है, जैसे पानीकी बूँद महासागरमें गिरते ही उस अनन्त जल-राशिमें इस प्रकार लीन हो जाती है कि फिर उस बूँदके अस्तित्वका कहीं पतातक नहीं लगता है। आत्मज्ञानी अपने शाश्वत सच्चिदानन्दस्वरूपमें सदा-सर्वदाके लिये स्थित होकर जन्म-मृत्युके बन्धनसे रहित हो जाता है। गीता (१५।६) में श्रीभगवान्‌की वाणीके अनुसार आत्मज्ञानी—

'न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

—परमधाममें प्रतिष्ठित हो जाता है।

ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मी स्थिति एवं उसकी प्राप्तिके साधन

(लेखक—श्रीशान्तिस्वरूपजी गुप्त)

मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है। नित्य परिवर्तनशील एवं इस नाशवान् अनित्य जगत्के पीछे जो एक अपरिवर्तनशील, अविनाशी, नित्य सत्य है, उसको अन्वेषण करनेका प्रयत्न सदा-सर्वदासे करता आया है। भगवान्के चार प्रकारके भक्तोंमें एक स्थान 'जिज्ञासु'का भी है। विश्वके सौन्दर्यके मूलमें जो तत्त्व निहित है, जिज्ञासु मनुष्य उसे जाननेकी जिज्ञासा करता है, चिन्तन करता है एवं उसके अन्तरालमें देश, काल, पात्रके अनुसार परिवर्तित न होनेवाले निहित सत्यको ढूँढ़ निकालनेकी चेष्टा करता है। यह सत्य द्वन्द्वातीत, कार्य-कारणसे परे, अखण्ड, अद्वय एवं स्वयम्भू है। चर्म-चक्षुओंसे अदर्शनीय एवं नित्य है। असम्प्रज्ञात या निर्विकल्प समाधिमें योगियोंने इसे 'प्रत्यक्ष' अनुभव किया है।

इस सच्चिदानन्द, नित्यपूर्ण, चिरन्तन, सुखदुःखातीत तत्त्वका साक्षात्कार करनेकी अभिलाषा मानवमात्रका जन्म-जात स्वभाव है। अतः प्रत्येक धर्म एवं प्रत्येक जातिमें इस सत्यको साक्षात्कार करनेका प्रयास अपने-अपने ढंगसे होता आया है। बृहदारण्यक उपनिषद्में इस नित्य तत्त्वका वर्णन इस प्रकार किया है—

'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च मर्त्यं चामृतं च'
इदमेव मूर्तं यदन्यत्प्राणात्'''
'अथामूर्तं प्राणश्च यश्चायमन्तरात्मन्नाकाश एतदमृतं'''

(२ । ३ । १, ४)

अर्थात् ब्रह्मके दो रूप हैं—एक मर्त्य और एक अमर। प्राणसे भिन्न इन्द्रियादि शरीर मर्त्य एवं प्राण, बुद्धि, आत्मा अमर हैं। अतः मनुष्यके दो भाग हुए। एक स्थूल साकार मरणधर्मा और दूसरा अमर निराकार एवं अपरिवर्तनशील आत्मा। आत्मा स्वभावसे नित्य होते हुए भी कर्मानुसार मनमें प्रविष्ट होकर बारंबार जन्म लेता है।

एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः।

(अथर्व० १० । ८ । २८)

अतः शाश्वत और नित्यानन्द सुखकी प्राप्तिके लिये हमारे ऋषियोंने भौतिक सुखोंको हेय समझ उनका परित्याग किया। एवं हृदय-गह्वरमें प्रवेशकर चित्तमें उठनेवाली प्रत्येक वृत्तिका निरीक्षण एवं परीक्षण किया और जाना कि—

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत् सुखम्।

(गीता ५ । २१)

इन्द्रियोंके बाह्य स्पर्शमें जो आसक्त नहीं होता, वही इस शाश्वत आत्मिक सुखको प्राप्त कर सकता है। इन्द्रियोंके बाह्यस्पर्श सुख-दुःखादि द्वन्द्व उत्पन्न करनेवाले हैं। अतः जो मनुष्य इन द्वन्द्वोंके आघातसे अपने मनको चञ्चल होनेसे बचा सकेगा, वही इस अमृतत्वका अधिकारी हो सकेगा। इस सत्यको साक्षात्कार करनेमें सफल हो सकेगा।

'समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।'

(गीता २ । १५)

इसी तत्त्वका अर्जुनके पूछनेपर भगवान्ने गीताके दसवें अध्यायके ८—११ तक चार श्लोकोंमें बड़ी सुन्दरतासे वर्णन किया है—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥
मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

प्रथम श्लोकमें भगवान् कहते हैं कि अर्जुन! मनुष्य साधारणतया परमात्मतत्त्वसे अनभिज्ञ रहता है, लेकिन जिस प्रकार घटको देखकर मनुष्य उसके निमित्त और उपादान कारण मिट्टी और कुम्हारका अनुमान कर लेता है, उसी प्रकार इस सृष्टिकी विविध विचित्रताओंको देखकर उसके उत्पत्तिकर्त्ता एवं उसके नियामकका भी अनुमान करता है। अतः प्रारम्भ करनेके लिये 'इति मत्वा' यह मान लो कि ईश्वर इस सृष्टिका उत्पत्तिकर्त्ता है और उसीकी प्रेरणासे सब विश्वके पदार्थ अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्त होते हैं। ऐसा एक भी पदार्थ नहीं है जो सर्वतन्त्र-स्वतन्त्ररूपसे बिना उसकी प्रेरणाके प्रवृत्त हुआ हो। विश्वकी प्रवृत्ति उसी एक अद्वितीय परमेश्वरसे हुई है। अतः सब प्रवृत्तिका आदिकारण परमेश्वर है। श्रद्धा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तिसे ऐसा मान लेनेपर दूसरी अवस्था आती है—उसके साक्षात्कार करनेकी।

किसी भी वस्तुका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करनेके लिये भगवान्‌द्वारा प्रदत्त तीन साधन मनुष्यके पास हैं—चक्षु, श्रोत्र एवं स्पर्श। प्रकाशमें मनुष्य चक्षुओंद्वारा, अन्धकारमें श्रोत्रद्वारा अथवा स्पर्शके द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है। परमात्मतत्त्व इन किन्हीं साधनोंके द्वारा प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता। भगवान्‌ने भी लिखा है—'बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्'—वह तत्त्व बुद्धिद्वारा ग्राह्य है—इन्द्रियोंद्वारा नहीं। अतः यह निश्चय हो गया कि यह तत्त्व जाग्रत् अवस्थामें दर्शनीय नहीं।

दूसरी अवस्था है—स्वप्नावस्था—इसमें इन्द्रियाँ ज्ञान-शून्य होते हुए भी मनके द्वारा इन्द्रियोंके समस्त व्यापार सम्पादित होते रहते हैं। इसमें या तो प्राणोंका कार्य चलता रहता है या मनका। तो यह निश्चय हो गया कि इन प्राण और मनकी दो शक्तियोंके द्वारा साक्षात्कार सम्भव हो सकता है। लेकिन चित्तकी वृत्तियोंके निरोधद्वारा मनकी चञ्चलताको स्थिर किये बिना यह सम्भव नहीं। लिखा भी है—

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।
(हठयोगप्रदीपिका २। २)

मारुते मध्यसंचारे मनः स्थैर्यं प्रजायते।
(हठयोगप्र० २। ४२)

मारुतं धारयेद्यस्तु स मुक्तो नात्र संशयः।
(हठयोगप्र० १। ५१)

अर्थात् प्राणोंके चञ्चल रहनेसे मन चञ्चल रहता है और प्राण मध्यसंचारी होनेसे चित्तकी स्थिरता प्राप्त होती है और चित्तकी स्थिरतासे मुक्तिकी प्राप्ति होती है। अतः दूसरे श्लोकमें भगवान्‌ने बताया कि इन प्राणों और मनको स्थिर करनेके लिये इनको मेरेमें लीन कर दो—'मच्चित्ता मद्गत-प्राणाः'; क्योंकि बिना मनके लीन हुए स्थिरता नहीं आती; स्थिरता बिना मनपर अधिकार नहीं होता; मनपर अधिकार हुए बिना शक्तिकी प्राप्ति सम्भव नहीं; शक्ति बिना कल्पना-की सिद्धि नहीं; सिद्धिके बिना मन अशुभसे शुभकी ओर अग्रसर नहीं होता। अतः प्रश्न उठता है कि इसको लीन कैसे किया जाय? तो भगवान् कहते हैं कि—'कथयन्तश्च मां नित्यम्'—अर्थात् 'सदा-सर्वदा तुम मेरा ही जप करो, मेरा ही चिन्तन हो, मेरी ही कथा हो, मेरी ही उपासना हो, मेरा ही कीर्तन हो, मेरे ही बारेमें पढ़ो, मेरे ही बारेमें बोलो।' ऐसा करते-करते तुम्हारा जीवन ईश्वरके समर्पित हो जायगा और मैं—मेरेका भाव दूर होकर सब कुछ तेरा ही है 'इदं न मम'—यह भावना दृढ़से दृढ़तर होती चली जायगी।

ऐसा ही भाव बृहदारण्यक उपनिषद्‌में महर्षि याज्ञवल्क्यने अपनी स्त्री मैत्रेयीको ब्रह्मज्ञानकी शिक्षा देते हुए कहा था—

'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः। आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।' (बृ० उ० २। ४। ५)

अर्थात् प्रथम आत्माके बारेमें सुने, पश्चात् उसका मनन, ध्यान, चिन्तन अथवा स्मरण करे; तत्पश्चात् निदिध्यासनके द्वारा उसका ज्ञान प्राप्त करे। मुसल्मान भक्त-शिरोमणि 'रसखान' ने उसकी उपासनाका और ही सरल उपाय बताया है—

'रसखान गोविंदहिं यौं भजिये, जिमि नागरिको चित गागरमें।'

अर्थात् जिस प्रकार जलसे पूर्ण पात्रको सिरपर रखकर पनिहारी बिना हाथके आधारके हँसती-बोलती चलती रहती है—लेकिन सदा-सर्वदा उसका मन घड़ेमें ही लगा रहता है, विस्मरण होते ही घड़ा नीचे गिर जायगा। इसी प्रकार मनुष्यको भी चाहिये अपने चित्तको सतत उसके चिन्तनमें लगाकर मनुष्य-जीवनके चार पुरुषार्थ—कर्तव्य-पालन, अर्थप्राप्तिके उपाय, धर्मानुकूल एवं बन्धन-मुक्तिके लिये सतत प्रयत्नशील रहे। एवं जो सांसारिक सुख-भोग उसने हमें प्रदान किये हैं, उनको उसीकी वस्तु और उसीकी दी हुई समझकर, उसीके प्राणियोंके हितके लिये, उसके चरणोंमें अर्पित करता रहे। जो ऐसा नहीं करके, उसके दिये हुए भोग्य पदार्थोंको अपने निमित्त ही व्यय करते हैं, उनके लिये भगवान्‌ने कहा है—

'भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।'
(गीता ३। १३)

'वे जो अपने लिये ही संग्रह करते हैं—वे पापका भक्षण करते हैं।' वेदने भी कहा है—

'केवलाघो भवति केवलादी।'
(ऋ० १०। ११७। ६)

'अकेला खानेवाला अघका भक्षण करनेवाला है।' इस प्रकार 'सर्वभूतहिते रताः' रहनेसे मनुष्यका जीवन उच्चसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्चतर होता जाता है। उसकी आशा-आकाङ्क्षाएँ मिट जाती हैं। लोकैषणा, वित्तैषणाके वशीभूत हुआ वह पापोंका अर्जन नहीं करता। भगवत्प्रदत्त सभी वस्तुएँ लोकसेवार्थ व्यय कर वह परमात्माके सामने सर्वात्म-समर्पणकर कृतकृत्य हो जाता है। चिन्तन करते-करते गद्‌गद हो उठता है, मन स्मरण करते-करते द्रवीभूत होने लगता है, भावावेशमें अश्रु-पात होने लगते हैं—प्रेमके आवेशमें नाचने लगता है। जब साधककी सतत चिन्तन करते-करते ऐसी अवस्था हो जाती है तो भगवान् तीसरे श्लोकमें कहते हैं कि—'ददामि बुद्धि-योगं तम्—मैं उनको ऐसी बुद्धि प्रदान करता हूँ, जिसके द्वारा साक्षात्कारका मार्ग प्रशस्त होता है।'

साक्षात्कारीको पुरुषार्थके अतिरिक्त भगवत्कृपा वाञ्छनीय है। 'राम कृपा बिनु सुलभ न सोऊ॥' अतः चौथे श्लोकमें भगवान् कहते हैं कि 'मेरी कृपासे साधकके शोक, मोह—सब दूर हो जाते हैं, उसके सब संशय मिट जाते हैं, सब ग्रन्थियाँ टूट जाती हैं। वह निष्पाप होकर अमृतत्वका अधिकारी हो जाता है, उसके संकल्प-विकल्प नष्ट होकर वासनाओंके विकार मिट जाते हैं। इस प्रकार सर्वात्म-समर्पणके दिव्य मार्गपर चलता हुआ साधक प्रारम्भमें बिजलीकी चमककी भाँति सत्यकी झलक दृष्टिगोचर करता है। इसके पश्चात् साधकमें दर्शनोंकी उत्कण्ठा तीव्र-से-तीव्रतर होती चली जाती है।

फारसीके एक कविके शब्दोंमें—

'बादये वस्ल चूँ शबद नजदीक
आविशे शौक तू तेजतर गर्दद।'

अर्थात् 'यारसे मिलनेका वादा ज्यों-ज्यों समीप होता जाता है, मिलनेकी अग्नि प्रचण्ड-से-प्रचण्डतर होती चली जाती है।' विद्युत्‌की भाँति क्षणभर चमककर लुप्त होनेवाले सत्यको प्रत्यक्ष करनेके लिये साधक बेचैन हो जाता है। अज्ञात प्रेमातिशयसे चुम्बकद्वारा खींचे गये लोहेके समान साध्यकी ओर निरन्तर खिंचने लगता है। तदनन्तर असम्प्रज्ञात समाधिकी स्थिति प्राप्त होनेपर विद्युत्‌की भाँति क्षणभर चमक-कर विलुप्त हो जानेवाला प्रकाश सूर्यकी भाँति स्थिर होने लगता है। इस प्रकाशकी स्थितिमें साधक अपनेमें पूर्णताका अनुभव करने लगता है। अन्तःकरण एक ऐसे अनुभवगम्य आनन्दसे भरपूर हो जाता है, जो शब्दोंद्वारा अवर्णनीय है। साधक उस ज्योतिकी रूप-माधुरीसे आनन्दविभोर होकर इस आनन्दकी अनुभूति भौतिक शरीरमें भी करने लगता है।

कभी कानोंसे दिव्य संगीत सुनता है, कभी जिह्वासे अमृतान्नके विचक्षण स्वादसे तृप्ति अनुभव करता है, कभी नाकसे आकाशपुष्पकी दिव्य सुगन्ध सूँघता है और कभी दिव्य-स्पर्शसे पुलकित होकर रोम-रोम दिव्य आनन्दका अनुभव करने लगता है।

ऐसी अवस्थाको, जिसे योगमें तुरीयावस्था कहा है—प्राप्त होकर प्राणिमात्रको वह अपनी आत्माके समान समझने लगता है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
(गीता ६। २९)

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति॥
सर्वभूतेषु चात्मानम् (ईश० उ० ६)

न वह किसीसे द्वेष करता है और न अन्य कोई उससे द्वेष करते हैं। वह जीवमात्रका बन्धु हो जाता है—'वसुधैव कुटुम्बकम्।' सारी वसुधा ही उसका कुटुम्ब हो जाती है। संशयरहित होकर निर्द्वन्द्व हो जाता है। आवश्यकता-जैसी कोई वस्तु उसके जीवनमें शेष नहीं रह जाती। इस प्रकार साधक शरीरमें रहकर शरीर, मनमें रहकर मन एवं विषयोंमें रहकर विषयोंके अधीन नहीं होता। परमात्माके हृदय, गह्वरमें प्रवेश कर दिव्य मानव हो जाता है। उसकी बुद्धि निश्चल, मन बाह्य स्पर्शोंमें अनासक्त, भाव शुद्ध, शरीर तेजस्वी, कर्म निष्पाप, चित्त एकाग्र एवं कर्म 'सर्वभूतहितरताः' हो जाते हैं। साधक अहंकारशून्य, नम्र एवं निष्काम हो जाता है। किसी अपार्थिव आनन्दकी माधुरी उसके रोम-रोम-से टपकने लगती है। वह मौन होकर भी बोलता है, बोलकर भी मौन रहता है। देखकर भी नहीं देखता, सुनकर भी नहीं सुनता। अभाव-जैसी कोई वस्तु उसके जीवनमें शेष नहीं रह जाती। अपनेमें ही कृतार्थ अनुभव करता है।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।

इस प्रकार जीवन बिताकर जहाँसे आया था, वहीं लौट जाता है। इत्योम् शम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुष्कर्मका परिणाम और प्रायश्चित्त

लेखक—श्रीगोविन्दप्रसादजी चतुर्वेदी, शास्त्री, धर्माधिकारी)

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

—के अनुसार हमारे धर्मग्रन्थोंमें परोपकारको पुण्य और पर-पीडनको पाप बतलाया गया है । और—

पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा ।
पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयंकरः ॥

—के अनुसार पापसे व्याधि, वृद्धत्व, दीनता, दुःख और भयंकर शोककी प्राप्ति होती है । यही नहीं, छोटे और बड़े पापोंके क्रमसे छोटे और बड़े फल प्राणीको भोगने पड़ते हैं । यह फल नरक भोगनेके पश्चात् जन्म-जन्मान्तरोंमें भुगतने पड़ते हैं । विविध प्रकारके रोग उनके चिह्न हैं । शातातपस्मृति (३ और ५) में लिखा है—

महापातकजं चिह्नं सप्तजन्मानि जायते ।
उपपापोद्भवं पञ्च त्रीणि पापसमुद्भवम् ॥
पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये ।
बाधते व्याधिरूपेण तस्य जप्यादिभिः शमः ॥

इससे स्पष्ट है कि इस जन्ममें पीडा देनेवाले विभिन्न रोग पूर्वजन्मोंके पापोंके परिणाम हैं । शातातपस्मृति आदिमें इसका विस्तारसे वर्णन है ।

उदाहरणार्थ कुछ वाक्य नीचे दिये जाते हैं—

ब्रह्महा नरकस्यान्ते पाण्डुः कुष्ठी प्रजायते ।
कुष्ठी गोवधकारी···
बालघाती च पुरुषो मृतवत्सः प्रजायते ।
गर्भपातनजा रोगा यकृत्प्लीहा जलोदराः ।
प्रतिमाभङ्गकारी च अप्रतिष्ठः प्रजायते ।
विद्यापुस्तकहारी च किल मूकः प्रजायते ।
औषधस्यापहरणे सूर्यावर्तः प्रजायते ।

(शातातपस्मृति अध्याय २-३-४)

अर्थात् 'ब्रह्महत्या करनेवाला नरक भोगनेके अन्तमें श्वेतकुष्ठी, गोहत्यारा गलितकुष्ठी, बालकोंकी हत्या करनेवाला मृत-संतानवाला, गर्भपात करानेवाला यकृत्-तिल्ली एवं जलोदरका रोगी, मूर्ति खण्डित करनेवाला अप्रतिष्ठित, विद्या और पुस्तकोंको चुरानेवाला गूँगा, ओषधियोंको चुराने-वाला आधाशीशीका रोगी होता है ।'

आयुर्वेदके प्रसिद्ध ग्रन्थ शिवनाथसागरके अनुसार 'चन्देके द्रव्यको हड़पनेवाला गण्डमाल-रोगी, असत्य साक्षी देनेवाला मुखरोगी और रक्तपित्त-रोगी, दूसरोंको धोखा देकर अभक्ष्य पदार्थ खिलानेवाला उन्माद-रोगी, कन्याके शीलको भङ्ग करनेवाला मूत्रकृच्छ्ररोगी, परस्त्रीगामी अश्मरीरोगी, सगोत्रागामी भगंदर-रोगी, गाय-साधु आदिको जलसे वञ्चित करनेवाला तृषारोगी होता है ।'

परंतु हमारे धर्मशास्त्रोंमें इस प्रकारके स्पष्ट संकेत होनेपर भी सामान्यतः मनुष्योंकी विचित्र गति है । वे—

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति जन्तवः ।
न पापफलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः ॥

—को चरितार्थ करते हैं अर्थात् वे पुण्यका फल (सुख) तो चाहते हैं परंतु पुण्य नहीं करना चाहते और पापकर्म तो जान-बूझकर करते हैं, परंतु उन पापकर्मोंका फल (दुःख) नहीं भोगना चाहते हैं ।'

ऐसे व्यक्तियोंको यदि अपने दुष्कृत्योंके प्रति आत्मग्लानि उत्पन्न हो जाती है तो उनके लिये धर्मशास्त्रोंने प्रायश्चित्तकी व्यवस्था की है ।

वेदान्तसारमें प्रायश्चित्तकी व्याख्या करते हुए सदानन्दने लिखा है—

'प्रायः पापं विजानीयाच्चित्तं तस्यैव शोधनम् ।'

अर्थात् पापोंको क्षालन करनेके लिये जो व्रतादि किये जाते हैं, वे प्रायश्चित्त-कर्म कहलाते हैं । प्रायश्चित्त पापकर्म-फलभोगसे बचानेवाला अमोघ अस्त्र है । दूसरे शब्दोंमें पापनाशक कृत्यको 'प्रायश्चित्त' कह सकते हैं ।

प्रायश्चित्तेन्दुशेखरके अनुसार पाप दो प्रकारके हैं—

'रहस्यं प्रकाश्यं च ।'—'छिपे हुए और प्रकट ।'

ऐसे अनेक पापकर्म, जिन्हें पापकर्त्ताके अतिरिक्त और कोई नहीं जानता, 'रहस्यपूर्ण' पाप कहलाते हैं और प्रकाश्य तो सर्वसाधारणको विदित होते ही हैं । इनमें रहस्यपूर्ण पापके प्रायश्चित्तका सम्बन्ध मनुष्यके हृदयसे है । यदि उसका अन्तरात्मा पश्चात्ताप करता है तो वह उसको प्रकट करके उस पापका प्रायश्चित्त कर सकता है; क्योंकि 'पापं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नश्यति कीर्तनात्' के अनुसार पाप कहनेसे नष्ट हो जाता है। अतः उसको गुरु या राजासे कह देना चाहिये। वसिष्ठ-स्मृतिमें लिखा है—

गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम्।
इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः॥

अर्थात् 'गुरु ज्ञानियोंका शासनकर्त्ता है, राजा दुष्टोंका शासनकर्ता है और जो इस लोकमें गुप्तरूपसे पाप करते हैं उनके शासक यमराज हैं।' इससे स्पष्ट है कि गुप्तरूपसे किये गये पापपर यमराजकी दृष्टि रहती है। अतः यहाँ कोई भले ही पाप छिपाये रहें, उनको वहाँ मुक्ति नहीं मिल सकती। वहाँ तो दण्ड मिलेगा ही। अतः पापको छिपाना नहीं चाहिये; क्योंकि जितने दिन तक पाप छिपाया जायगा, उसका फल बढ़ता ही रहेगा। प्रायश्चित्तेन्दुशेखरके वाक्य—

'आसंवत्सरं प्रायश्चित्ताकरणे पापद्वैगुण्यम्।' के अनुसार 'एक वर्षतक यदि पापका प्रायश्चित्त न किया जाय तो पाप दुगुना हो जाता है। अतः पापका प्रायश्चित्त यथासमय करना चाहिये।

इसमें ध्यान देनेयोग्य बात यह है कि सफल प्रायश्चित्त वही है जिसमें दुष्कर्मके प्रति आत्मग्लानि हो जाय और अन्तरात्मामें पश्चात्ताप हो। साथ ही यह स्मरणीय है कि बार-बार पापकर्म करके बार-बार प्रायश्चित्त करनेकी हस्तिस्नान-जैसी प्रवृत्ति भी शास्त्र-सम्मत नहीं है।

सात दिनका मेहमान

[कहानी]

(लेखक—पं० श्रीमङ्गलजी उद्धवजी शास्त्री, 'सद्विद्यालंकार')

[१]

उज्जयिनीमें नागदत्त सेठका नाम देशविख्यात था। नामके साथ दाम एवं व्यापारका काम भी दिनोंदिन बढ़ रहा था। श्रीमानताके तीन चरण—नाम, दाम एवं कामकी वृद्धि होनेपर भी चौथे चरण धामकी कमी उन्हें बेचैन बना रही थी। वैसे तो उनके रहनेका मकान बहुत अच्छा था, पर उसे महल नहीं कहा जा सकता था। अभी-अभी नगरपतिने एक सुन्दर महालय बनवाया था। नागदत्त सेठ उनसे किस बातमें कम थे, जो एक विशाल महल न बनायें?

इस कार्यके लिये उन्होंने जयपुरके ख्यातनामा शिल्पियोंको बुलवाकर अच्छे-से-अच्छा महल बनवाया। अब केवल उसमें रंगका काम ही बाकी था। चित्रकामके लिये भी देशके कुशल चित्रकार बुलाये गये थे। रंग-रौगन एवं चित्रकारीका काम चल रहा था।

प्रातःकालका समय था। स्वयं नागदत्त चित्रकारोंको सूचना दे रहे थे—'चित्रकार! देखना, नगरपतिका महल इसके सामने तुच्छ-सा लगे, ऐसी बढ़िया चित्रकलाका काम करना। चाहे जितना धन लग जाय, इसकी चिन्ता नहीं है; किंतु सात पीढ़ियोंतक रंग तथा चित्र ताजे बने रहें, ऐसा काम करना है·····' नागदत्त आगे बोल ही रहे थे। कि उसी मार्गसे मन्द-मन्द हँसते हुए एक मुनिराज निकले तथा उनको देखकर नागदत्तने अपनी बात पूरी किये बिना ही मुनिराजका वन्दन किया।

मुनिराज अपने हाथसे आशीर्वाद देते हुए नागदत्तकी ओर देखकर मुसकराने लगे। मुनिराज अपूर्व ज्ञानी थे। भिक्षा लेनेके लिये ही वे बाहर निकलते थे, अन्यथा एक ही एकान्त स्थानमें बैठकर जप-ध्यानमें मग्न रहते थे। ऐसे पहुँचे हुए मुनि आशीर्वाद देते-देते हँसे क्यों? नागदत्तको इस बातपर आश्चर्य हुआ। मुनिके जानेके बाद सेठ अपने घर आये। मार्गमें चलते-चलते भी नागदत्तके मनमें यही विचार आ रहा था कि ऐसे प्रौढ़ मुनि मुझे देखकर हँसने क्यों लगे? महलके निर्माणमें कोई त्रुटि रह गयी होगी या चित्रकलामें कोई कसर होगी?

—विचार करते-करते नागदत्त सेठ घर पहुँचे।

[२]

भोजन परोसती हुई नागदत्तकी पत्नी कह रही थी—'मजदूर लोग काम करते हैं, महल भी अब प्रायः पूरा बन चुका है, फिर भी आप वहीं खड़े रहकर इतना समय क्यों बिगाड़ते हैं? आपको अपने स्वास्थ्यकी भी चिन्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं। भोजनका समय बीत जानेपर भी आपको स्मरण नहीं रहता। आपकी उपस्थितिसे ही काम चलता हो, ऐसा तो है नहीं।'

'तुम चिन्ता न करो'—भोजन करते-करते नागदत्तने उत्तर दिया। 'अब तो नाव किनारे लग चुकी है, सिर्फ रंग-रोगन और कुछ कलात्मक चित्रोंका काम ही बाकी है। तुम नहीं जानती कि आजके मजदूर लोग देख-रेखके बिना पूरा काम नहीं करते हैं।'

सुनकर पत्नी मौन रह गयी। थोड़ी देरके बाद नागदत्तने भोजन करते-करते कहा—'सातवीं मंजिलपर कलात्मक चन्दनका झूला बन चुका है। सोनेके कड़े भी तैयार हैं। उसी प्रकार हमारे प्यारे मुन्नेके लिये एक पलना बनानेका भी आर्डर दे दिया है। वह भी सोने-चाँदीका नक्काशीदार बनेगा।'

'मैं भी गृह-प्रवेशके मुहूर्तकी घड़ियाँ गिन रही हूँ।' सेठकी पत्नीने कहा। 'रसोई तो अच्छी बनी है न?'

'मैं तो दुविधामें पड़ गया हूँ'—भोजन करते-करते नागदत्त बोले। 'ये पूड़ियाँ, कचौरी, पकौड़ियाँ, यह स्वादिष्ट श्रीखण्ड—इनकी प्रशंसा प्रथम करूँ या गुलाबके फूल-जैसे अपने मुन्नेकी?'

'आप भोजन कर रहे हैं और यह तो देख रहा है' मुन्नेको सेठकी गोदमें देती हुई पत्नी बोली। 'इसे भी दो ग्रास खिला दीजिये न?'

सेठने दो वर्षके मुन्नेको अपनी गोदमें बैठाया और खीर-पूड़ीका एक छोटा-सा ग्रास उस नन्हे मुन्नेको खिलाना आरम्भ किया। संयोगवश उसी समय बच्चेने लघुशंका कर दी! थोड़े छींटे भोजनकी थालीमें भी पड़ गये।

'लो सँभालो अपने लालको।' पत्नीकी गोदमें बच्चेको रखते हुए सेठने कहा। 'इसने तो मेरी धोती और थालीको भी बिगाड़ दिया।'

—'तो इसमें क्या हुआ?' हँसते हुए पत्नीने उत्तर दिया। 'बच्चा ही तो है, उसमें समझ थोड़े ही है?'

—बात अधूरी-सी रह गयी, इतनेमें ही आँगनमेंसे सुनायी दिया—'धर्म लाभ [भिक्षां देहि]'

सेठने भोजन करते-करते मुनिराजको वन्दन किया, ठीक उसी समय मुनिराजने मन्द हास्य कर दिया। वह भी पूर्ववत् हास्य! पत्नीने उठकर मुनिराजको भिक्षा दी और मुनिराज लेकर चले गये।

भोजन कर लेनेके बाद सेठ पान-सुपारी खाते-खाते विचार करने लगे—'ऐसे ज्ञानयोगी मुनिराज बिना कारण हँसते रहें, यह तो सम्भव नहीं है। एकान्तमें जाकर उनसे इस हँसीका कारण पूछना चाहिये।' भोजनके बाद सेठ बिस्तर-पर लेटे; परंतु मन चिन्ताग्रस्त था, इस कारण आज नींद बिल्कुल नहीं आयी।

[३]

सायंकाल चार बजेका समय हुआ। दो-एक दिनसे सेठ दूकानपर नहीं जा सके थे। बँगलेका काम जो चल रहा था; किंतु आज थोड़ी देरके लिये उन्होंने दूकानपर जानेका निश्चय किया।

सेठ नागदत्तकी दूकान मध्य बाजारमें थी। मुनीम लोग अपने-अपने काममें लगे थे। गद्दीपर बैठकर सेठ हिसाब-किताब देख रहे थे। उसी समय एक हट्टा-कट्टा बकरा दूकानपर चढ़ आया। उसके पीछे दौड़ता हुआ एक कसाई भी वहाँ आ पहुँचा। कसाई और बकरा दोनोंपर एक ही साथ सेठकी दृष्टि पड़ी। बकरा सेठके सामने कुछ आशाभरी दृष्टिसे देख रहा था, मानो वह मूकभावसे अपनेको छुड़ानेके लिये प्रार्थना कर रहा हो। अतः सेठने कसाईसे कहा—'इस बकरेको छोड़ दो; मैं तुम्हें एक मुहर दूँगा।'

'सेठ साहब!' कसाई बोला। 'जैसे आप व्यापारी हैं, वैसे ही मैं भी एक तरहका व्यापारी ही हूँ। मुझे इस बकरेकी कीमतमें पाँच मुद्रा सहजमें ही प्राप्त हो सकती है, अतः मुझे तो मेरा बकरा ही दे दो।'

नागदत्तसेठ पाँच मुद्रा देना स्वीकार कर लेते, तो बकरा अवश्य छूट सकता था। सेठने एक दृष्टिसे बकरेकी ओर देखा। बकरा थर्रा रहा था। उसका हृदय पुकार रहा था कि मुझे छुड़ा लो, मुझे छुड़ा लो।

परंतु दूसरी ओर सेठका लोभी मन पाँच मुद्रा देनेसे साफ इन्कार कर रहा था। उन्होंने यह भी सोचा कि 'पाँच मुद्रा देनेपर यह कसाई हिंसाका कार्य थोड़े ही छोड़ देगा? अतः बकरेको वापस देकर पाँच मुद्राएँ बचा लेनी चाहिये।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूकानके सभी लोग अपने-अपने काममें व्यस्त थे, अतः स्वयं सेठने खड़े होकर, बकरेका कान पकड़कर उस कसाईको सौंप दिया और कहा—'ले जा अपना यह माल; पाँच मुद्रा मुफ्तमें नहीं आती। इसके लिये तो पसीना···' नागदत्त आगे बोल ही रहे थे, किंतु इतनेमें ही दूकानके नजदीकसे अकस्मात् मुनिराज जाते दिखलायी दिये। मुनिराजको देखकर नागदत्तने वन्दन किया। आशीर्वाद देते हुए मुनिराजने फिर मुसकरा दिया।

अब तो नागदत्तसे रहा न गया। दूकानसे नीचे उतरकर उन्होंने वन्दन करते हुए प्रश्न किया—'मुनिराज! आज दिनभरमें आपके तीन बार दर्शन हुए; परंतु तीनों ही बार आपने मेरे सामने देखकर मन्द हास्य किया। कृपया बतलाइये इसका क्या रहस्य है? मुझसे कोई अपराध हो गया है क्या?'

'नागदत्त!' महात्माने गम्भीर होकर कहा। 'ऐसी बातें सुननेमें अच्छी नहीं लगतीं। प्रभु-पथके पथिकोंके लिये यह उचित भी नहीं है कि ऐसी बातोंमें जान-बूझकर प्रवेश करें।'

'मुझे दुःख नहीं होगा महाराज!! नागदत्तके स्वरमें नम्रता थी। वे बोले—'आपके हास्यमें अवश्य ही कुछ रहस्य है; अतः कृपया उस रहस्यको निःसंकोच कह दीजिये।'

'बहुत अच्छा'—मुनिराज बोले। 'आज सायंकालके समय आप नदीकिनारे—एकान्तमें आइये, वहीं बातचीत करेंगे।'

—कहकर मुनिराज विदा हो गये।

[४]

सायंकालका समय था। उज्जयिनीके देवालयोंके घण्टारवोंसे समस्त आकाशमण्डल गूँज उठा। ठीक इसी समय नागदत्तने आकर मुनिराजके चरणोंमें वन्दन किया। नदी-किनारेके सुरम्य वातावरणमें नागदत्तने प्रश्न किया—

'महात्मन्! मैं चित्रकारको सूचना दे रहा था, ठीक उसी समय आपने हास्य क्यों किया था?'

'हाँ,' मुनिराज बोले। 'चित्रकारको आप किन शब्दोंमें सूचना दे रहे थे? याद है आपको?'

'जी हाँ' नागदत्त बोले। 'मैं चित्रकारसे कह रहा था कि ऐसा चित्रकलाका काम करो जो सात पीढ़ीतक अमिट रह सके।'

'सुनो नागदत्त!' मुनिराज बोले। 'सात पीढ़ीपर्यन्त रंग तथा चित्रकारीको अमिट रखनेकी इच्छा करनेवालेको यह पता नहीं है कि वह स्वयं केवल सात दिनका मेहमान है।'

इस स्पष्ट कथनसे नागदत्तके सारे अङ्ग ढीले पड़ गये! उनका स्वर बेसुरा बन गया। आँखें छलक उठीं! कम्पित स्वरसे उन्होंने पूछा—'आप क्या सच कह रहे हैं? यदि ऐसी ही भावी हो, तो कृपया यह भी बतलाइये कि मेरी मृत्यु किस रोगसे होनेवाली है?'

'तो सुनो' महात्माजी बोले। 'यह पञ्चमहाभूतके संघातरूप देह तो नश्वर है। इसका जन्म और मरण किसीके वशकी बात नहीं है, यह कर्माधीन है—

देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः।
देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः॥

ऐसे कर्माधीन देहको नित्य मानकर मिट्टी, पत्थर और चूनेसे बने हुए मकानका रंग सात पीढ़ीतक बने रहनेकी आशा रखनेवालेके लिये कोई हँसे नहीं तो क्या करे! आपकी मृत्यु भी कर्माधीन होकर आजसे सातवें दिन मस्तकशूलके रोगद्वारा होगी।'

'तो भगवन्!' नागदत्तने प्रश्न किया। 'दूसरी बार भिक्षा लेते समय भी आपने मन्द हास्य किया, उसका कारण भी मैं सुनना चाहता हूँ।'

'यह बात कहने-सुनने लायक नहीं थी।' महात्मा बोले। 'किंतु तुम्हारे आग्रहसे और तुम्हारे ही कल्याणके लिये कहना उचित समझता हूँ। देखो, जिस बालकको तुम प्यारा सुन्ना मानकर गले लगाते हो और आज जिसके मूत्रके छींटे लग जानेपर भी तुम उस भोजनको प्रेमसे खा लेते हो, वही तुम्हारा प्यारा पुत्र पूर्वजन्ममें तुम्हारी पत्नीका जार-पति था, जिसका अपनी पत्नीके साथ एकान्तमें देखकर तुमने घात किया था। मृत्युके बाद वही जीवात्मा तुम्हारी पत्नीके उदरसे जन्म पाकर तुम्हारा अनिष्ट करनेको आया है। तुम्हारी मृत्युके बाद वह महादुराचारी एवं दुर्व्यसनी बनकर तुम्हारे उस महल, तुम्हारी दूकान एवं प्रतिष्ठाको मिट्टीमें मिला देगा। जिस महलका रंग तुम सात पीढ़ीतक कायम रखना चाहते हो, तुम्हारा यही पुत्र तुम्हारी सात पीढ़ीकी सारी प्रतिष्ठाको डुबो देगा। बस, इसी विचारसे दूसरी बार मुझे हँसी आ गयी थी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'महाराज !' नागदत्तके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह रही थी। वे बोले—'मैं चारों ओरसे लुटा जा रहा हूँ। अब मुझे कृपया यह भी बतलाइये कि दूकानके समीपसे निकलते समय आपने तीसरी बार हास्य क्यों किया था ?'

'हाँ, यह भी सुन लो !' मुनिराज बोले। 'जिस बकरेको तुमने पाँच मुद्राके लोभसे कसाईके हाथों सौंप दिया, वह तुम्हारे मृत पिताजी थे और वह कसाई पूर्वजन्ममें एक गरीब किसान था। उसके मालके कम पैसे देकर तुम्हारे पिताजीने उसका अपराध किया था। अतः उस पूर्वजन्मका ऋण चुकानेके लिये उसी किसानके हाथसे उसे मरना पड़ा !

'देखो भाई !' थोड़े रुककर महात्माजी बोले—'यह संसार तो ऋणानुबन्धसे ही बनता है, मोहान्ध मानव अपने ही दोषसे इस जंजाल-जालमें फँस जाता है। यह काल-देवकी माया है—

संसारः सिन्धुरूपश्च मीनरूपाश्च मानवाः।
जंजालो जालरूपश्च कालरूपश्च धीवरः॥

अर्थात् 'इस अपार संसार-सागरमें मानव-प्राणी मत्स्यके समान है। वही मानवरूप मत्स्य अपने देहाभिमानद्वारा की हुई चतुराई—अहंता-ममतारूप जालको बनाता है और फिर उसी जंजालरूप जालमें कालरूप धीवर उसे पकड़ लेता है।'

नागदत्तको अब सच्ची बात समझमें आ गयी। उन्होंने अपनी सम्पत्तिका दो तृतीयांश भाग धर्मकार्योंमें लगानेका निश्चय कर लिया और अन्ततक स्मरण, सत्संग आदि करते हुए वे सातवें दिन मृत्युके वश हो गये।

(प्राचीन जैनकथाओंके आधारपर लिखित)

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं !

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

बात है इसी नागपञ्चमीकी।

दोपहरको भोजन करके लेटा ही था कि कमरेमें धम्मसे आवाज हुई। देखा, ऊपर दीवालके मुक्केसे बिल्ली कूदी।

और यह क्या ?

उसके मुँहमें दबा था एक कबूतर !

कुछ देर पहले कबूतरोंकी इधर-से-उधर भाग-दौड़ मैंने देखी थी। सोचा था कि वे आपसमें विनोद कर रहे हैं। मुझे क्या पता था कि मौतको सिरपर मँडराते देखकर वे जीवनके लिये दौड़ादौड़ी मचाये हुए हैं। बिल्लीके पीछे दौड़ा कि वह कबूतरको छोड़ दे, पर वह भला क्यों छोड़ने लगी ?

वह छतपर भागी। इधर-उधर खूनके धब्बे पड़े थे, रास्तेमें।

ऊपरकी भण्डरियामें कबूतरको पंख फड़फड़ाते सुनकर बिल्लीको ललकारा तो वह उसे छोड़कर नीचे भागी।

जाकर देखा तो बेचारा कबूतर शान्त हो चुका था ! बाबा कबीरदास मानो कानमें आकर गुनगुनाने लगे—

मीचु बिलइया खैहे रे।
ऐसो इहु संसार पेखना, रहन न कोऊ पईहै रे।
सूधे सूधे रेंग चलहु तुम नतरु कुचका दिवइहै रे॥
बारे बूढ़े तरुने भइआ सभहू जम लै जइहै रे।
मानुस बपुरा मूसा कीनो, मीचु बिलईआ खैहे रे॥
धनवंता अरु निरधन मनई ताकी कछू न कानी रे।
राजा परजा सभ करि मारै ऐसो कालु बडानी रे॥

जीवनका अन्तिम सत्य है मृत्यु !

संसारमें और सब अनिश्चित है, निश्चित है केवल एक मृत्यु।

कहावत ही है कि 'इट इज ऐज़ श्योर ऐज़ डेथ।' 'मृत्युकी भाँति निश्चित।'

रूप राशि पर गर्व न करना ओ फूलों की रानी।
समय रेत पर उतर गया कितने मोती का पानी॥

× × ×

लाखका घर पलभरमें खाक हो जाता है। बने-बनाये महल आनन-फानन जमीनमें लोटने लगते हैं। रूप-राशि, धन और यौवन, पद और सम्मान—सब कुछ देखते-देखते स्वाहा हो जाता है। पर वाह रे, कारीगर ! धन्य है तेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला ! तेरा चक्कर अद्भुत है। आदमी इसी गोरखधंधेमें फँसा इसी मायाजालमें डूबता-उतराता रहता है।

हम जाने थे खायेंगे, बहुत जमीं बहु माल।
ज्यों का त्यों ही रहि गया, पकड़ ले गया काल॥

कालदेव आते हैं और पलभरमें हमारी मुश्कें बाँधकर चल देते हैं। न उनके आनेकी घड़ी निश्चित, न उनके आनेका बहाना निश्चित।

कभी रोग है तो कभी बीमारी। कभी आग है तो कभी तूफान। कभी महामारी है तो कभी और कुछ। कभी साँपके रूपमें वे काट खाते हैं तो कभी सिंहके रूपमें फाड़ खाते हैं।

कालदेवको न रहम है, न दया। घड़ीकी सुई ठिकानेपर पहुँची नहीं कि बस, उन्होंने अपना फंदा कसा। रहिये आप बड़े बहादुर, रहिये आप बड़े शूरवीर, रहिये आप लखपती-करोड़पती—उनके आगे आपकी दाल नहीं गल सकती। डाक्टर और वैद्य, हकीम और तबीब, सुइयाँ और गोलियाँ—सब बेकार रहती हैं, बिल्कुल बेकार। तभी तो—

आस पास जोधा खड़े सभी बजावें गाल।
मंझ महलसे ले चला ऐसा काल कराल॥

भूलोकका सर्वोच्च अधिकारी है—यमराज। उसके आगे किसीकी दाल नहीं गल पाती!

× × ×

सोचनेकी बात है कि कैसा होता है वह दिन—

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं!
ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहैं।
घर के कहैं बेगि ही काढ़ो, भूत भये कोउ खैहैं॥
जा प्रीतम सों प्रीति घनेरी सोऊ देखि डरैहैं।
.....

भाई और बन्धु, हितू और मित्र, सब हाथ-पर-हाथ धरे रह जाते हैं, कोई दवा काम नहीं करती।

माथा पकरि के माता रोवे भुजा पकरि के भाई।
लपट झपटि के तिरिया रोवै हंस अकेला जाई॥

और फिर—

हाड़ जलै ज्यों लाह कड़ी को, केस जरै ज्यों घासा।
सोने जैसी काया जरि गइ कोऊ न आयो पासा॥

सब कुछ, सारी धन-दौलत, सारी जर-जमीन, सारे सगे-सम्बन्धी, यहीं छूट जाते हैं। श्मशान-मार्गमें कोई साथ नहीं देता।

सब ठाठ पड़ा रह जायेगा जब लादि चलेगा बनजारा।

× × ×

प्राण राम जब निकसन लागे
उलटि गयीं तब दोनों पुतरियाँ।
भीतर से बाहर जब लाये
छूटि गयीं सब महल अटरियाँ।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो
संग चली वह सूखी लकरियाँ॥

केवल थोड़ी-सी सूखी लकड़ियाँ लाशके साथ जाती हैं। चितामें लगकर अग्निकी ज्वालामें वे भी दो-तीन घंटेके भीतर सोने-जैसी कायाको राखके रूपमें बदलकर स्वयं भी भस्म हो जाती हैं। कपालक्रिया करके सगे-सम्बन्धी रोते-पीटते घर लौट आते हैं।

बस, जीवनके पर्देका पटाक्षेप हो जाता है!

× × ×

विश्वका प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक जीव, छोटा हो या बड़ा कालका कलेवा है!

आये हैं सो जायेंगे, राजा रंक फकीर।
फर्क इतना ही है कि—
एक सिंहासन चढ़ि चले, एक बँधे जंजीर॥

सब जानते हैं और अच्छी तरह जानते हैं कि मौत आयेगी, एक रोज वह जरूर आयेगी, उससे किसी तरह छुटकारा हो नहीं सकता। परंतु कितने आश्चर्यकी बात है कि हम ऐसा मान बैठे हैं कि मौतसे हमसे कोई वास्ता ही नहीं।

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥
(युधिष्ठिर—महाभारत ३। ३१३। ११६)

'दूसरे लोग रोज मरते जाते हैं, पर हम तो कभी मरेंगे ही नहीं—ऐसा हम मान बैठे हैं!' कूचके नक्कारे बज रहे हैं। विश्वकी धर्मशालामें आनेवाले-जानेवाले यात्रियोंकी रेलपेल मची है, पर हमें अपनी कोई परवाह ही नहीं।

अजब सरा है ये दुनिया कि जिसमें सहरो शाम,
किसी का कूच, किसी का मुकाम होता है!

कोई आ रहा है, कोई जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसीके स्वागतकी शहनाई बज रही है, किसीकी विदाईका मर्सिया पढ़ा जा रहा है।

रोज आठ पहर, चौंसठ घड़ी यह तमाशा चल रहा है। हम सबका स्वागत करते हैं, सबको विदाई देते हैं, पर यह नहीं सोचते कि अपना नंबर भी आनेवाला है। हमें भी कोई पुकारकर कहता है—

कदम सूए मरकद, नजर सूए दुनिया,
किधर देखते हो, कहाँ जा रहे हो ?

पर हम हैं कि जान-बूझकर अपनी आँखें नहीं खोलते! हमने जान-बूझकर अपनी आँखोंपर पर्दा डाल रक्खा है। ऐसा न होता तो क्या हमें इस क्षणिक, मिट्टीके खिलौनेपर इतना गर्व होता ? इस शरीरपर, इस पानीभरी खालपर इतना अहंकार होता ?

× × ×

रामकृष्ण परमहंस कहते थे—

'भगवान् दो मौकोंपर हँसते हैं। एक तो तब, जब दो भाई रस्सी लेकर जमीनको नापते हैं और कहते हैं—'इतनी जमीन 'मेरी' है, इतनी 'तेरी' और दूसरे तब, जब कालदेव सिरपर खड़े हैं और डाक्टर कहता है—'मैं इस रोगीको बचा लूँगा!'

× × ×

स्त्रियों और पुरुषोंको, हर उम्रके लोगोंको, छोटेसे दुधमुँहे बच्चोंको, जवानों और बड़ों-बूढ़ोंको मैंने दम तोड़ते देखा है। उनकी शवयात्राके साथ श्मशान जानेके जीवनमें अनेक मौके आये हैं। कभी हितू-मित्रोंकी, सगे-सम्बन्धियोंकी, परिचितोंकी शवयात्राके साथ गया हूँ, तो कभी यों ही मणिकर्णिकाका दृश्य देखने चला गया हूँ। रास्तेमें पिण्डदान करते समय पुरोहित कहता है—'श्मशान-मार्गमें यह पिण्ड दिया जा रहा है।' सोचता हूँ शवकी यात्रा तो सभी राजपथोंसे होती है, तो जिधर देखिये उधर श्मशान-मार्ग ही तो है!

और श्मशानमें देखिये—

कहीं किसीकी चिता लगायी जा रही है, कहीं किसीके बच्चेका जलप्रवाह किया जा रहा है। कहीं चिता सुलग रही है, कहीं चिता धधक रही है। कभी-कभी तो १०-१०, १५-१५ चिताएँ एक साथ धधकती हैं। कहीं हड्डियाँ पड़ी हैं, कहीं खोपड़ी। कहीं कौए हैं, कहीं गीध हैं, कहीं कुत्ते हैं—लाशोंको नोच रहे हैं। सगे-सम्बन्धी बिलखते हैं, रोते हैं, चिल्लाते हैं।

जगत्की नश्वरता, क्षण-भङ्गुरताका यह सारा दृश्य देखकर जी भर आता है। आँखें भर आती हैं। कभी-कभी फूट-फूटकर रोनेको भी जी मचलने लगता है।

परंतु ?

कितनी देर टिकता है यह श्मशान-वैराग्य ?

घाटपर ही मन तरह-तरहके सब्जबाग दिखाने लगता है—'अरे मूर्ख, जो गया सो गया। मौत आयेगी, तब देखा जायगा। अभीसे उसकी चिन्ता क्यों करता है ? जीवन तेरे सामने है। जीवनके नाना प्रकारके भोग तेरे सामने हैं। उनका मजा ले। दुनियाके बागकी बहार लूट। यह बहार चन्दरोजा है तो भी क्या ? सुख क्षणिक है तो भी क्या ?'

मनकी ये लतरानियाँ श्मशानघाटपर भी अपनी रौनक दिखाती हैं। जीवनके परम सत्यको देखकर भी हम उससे आँखें मूँद लेते हैं। प्रेयके चक्करमें पड़कर श्रेयको सर्वथा भुला बैठते हैं।

हमारी भोगासक्ति यहींतक नहीं रुकती। हम 'मौत' का नामतक लेना नहीं पसंद करते। मौतके नामसे डरते हैं!

किसी शवको सड़कपर जाते देख माताएँ अपने बच्चोंको ढक लेती हैं—कहीं उनपर मृत्युकी छाया न पड़ जाय।

कैसा प्रबल चक्र है मोह और ममताका!

× × ×

पर, चाहे जितनी पेशबंदी करिये, मौतके नामको भी कानोंमें मत पड़ने दीजिये, पर मौत कभी पीछा छोड़ने-वाली है नहीं।

कहते हैं कि लकड़ीका बोझा ढोनेवाला एक बूढ़ा एक दिन थककर बोल पड़ा—'क्या बताऊँ, मौत भी तो नहीं आती।' और तभी सचमुच मौत सामने आ खड़ी हुई।

बोली—'बाबा, क्यों याद किया है मुझे ?'

'कौन है तू ?'—बूढ़ेने पूछा।

'मैं हूँ मौत।'

बूढ़ा बेचारा सन्न रह गया।

पर दूसरे ही क्षण बोल उठा—'मैंने तुझे इसलिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़े ही बुलाया था कि तू मुझे यमराजके घर ले चल। मैंने तो इसलिये बुलाया कि जरा मेरे बोझेमें हाथ लगाकर इसे मेरे सिरपर रख दे।'

हम इसी तरहकी बातें करके मौतको बहला देना चाहते हैं, पर वह भला हमारे ऐसे चकमोंमें कभी आनेवाली है? तभी तो कबीरदास ठोक-ठोककर चेतावनी देते हैं—

जिअरा तुम जैहौ हम जानी।
राज करंते राजा जैहैं, रूप धरंती रानी॥
राज समान सभासद जैहैं, जैहैं सब अभिमानी॥
बेद पढ़ंते पंडित जैहैं, कथा सुनंते ध्यानी॥
जोग करंते जोगी जैहैं, ज्ञान रटंते ज्ञानी॥
चंदा जैहैं, सूरज जैहैं, जैहैं पवन अरु पानी॥
मन औ बुद्धी दोनों जैहैं, जैहैं सकल परानी॥
जोगी जैहैं, जंगम जैहैं, जैहैं जन घन मानी॥
कहैं 'कबीर' हरिजन ना जैहैं, जिनकी मति ठहरानी॥

मतलब?

जाना सबको है। जिसने भी शरीर धारण किया है, उसे जाना है।

तब बचेगा कौन?

बचेंगे वही—'जिनकी मति ठहरानी।'

—जिनकी बुद्धि स्थिर है, जिनकी प्रज्ञा स्थिर है, जो स्थितप्रज्ञ हैं—केवल वे ही बचेंगे। शरीर तो उनका भी जायगा, पर वे मरेंगे नहीं। जन्म और मृत्युका बन्धन उन्हें बाँध नहीं सकेगा। उन्हें कष्ट नहीं दे सकेगा, व्यथित और पीड़ित नहीं कर सकेगा।

मौतसे बचनेका एकमात्र उपाय है—मृत्युके रहस्यको समझ लेना। जो अनिवार्य है, उसका सामना करना ही है। तो क्यों न हम हँसते-हँसते उसका स्वागत करें?

मौत इक बार जो आना है तो डरना क्या है?
हम सदा खेल ही समझा किये मरना क्या है?

बुद्धिको स्थिर रखनेका हम अभ्यास करें तो मौत भी हमारे लिये एक खेलकी वस्तु बन जायेगी।

महात्मा गाँधीसे लोग समय-समयपर मृत्युके विषयमें पूछते रहते थे। उनके उत्तरोंसे हम सब प्रेरणा ले सकते हैं—

१—'हम ईश्वरको पहचानते हैं तो मृत्युमें भी आनन्द मानना सीखना ही चाहिये।'

(पत्र राजाजीको, २६-७-१९३२)

× × ×

२—'मैं मृत्युको भयानक चीज नहीं समझता। विवाह भयानक हो सकता है, मृत्यु कभी नहीं।'

चांदा, १४-११-३३ (बापूके पत्र मणिबहन पटेलके नाम पृ० ११६)।

३—'ईश्वरके कालरूपका मनन करनेसे, और उसके मुखमें सृष्टिमात्रको जाना है। प्रतिक्षण कालका यह काम चलता ही रहता है—इसका भान हो जानेसे, सर्वार्पण और जीवमात्रके साथ ऐक्य अनायास हो जाता है। चाहे-अनचाहे इसके मुखमें हम अकल्पित क्षण पड़नेवाले हैं। वहाँ छोटे-बड़ेका, नीच-ऊँचका, स्त्री-पुरुषका, मनुष्य-मनुष्येतरका भेद नहीं रहता। कालेश्वरके एक कौर हैं—यह जानकर हम क्यों दीन शून्यवत् न बनें? क्यों सबके साथ मैत्री न करें? ऐसा करनेवालेको यह काल-स्वरूप भयंकर नहीं, बल्कि शान्तिस्थल लगेगा।'

(गीताबोध, पृष्ठ ६२)

× × ×

४—'जो मृत्यु चाहे जब छोटे-बड़े, गोरे-काले, मनुष्य-पशु या दूसरे सबके लिये आती ही है, उसका डर क्या! और उसका शोक भी क्या? मुझे तो बहुत बार ऐसा लगता है कि जन्मकी अपेक्षा मृत्यु अधिक अच्छी चीज होनी चाहिये। जन्मसे पहले नौ महीने यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं और जन्मके बाद भी अनेक दुःख हैं, जब कि कुछको मृत्युके अवसरपर ब्राह्मी स्थिति प्राप्त होती है। इस प्रकारकी मृत्यु प्राप्त करनेके लिये जीवन अनासक्तियुक्त कामोंमें बीतना चाहिये।

(पत्र सेठ जमनालाल बजाजको, ८-११-३१)

× × ×

५—'मृत्युके भयको दूर करनेके लिये मनोविकारोंको नष्ट करनेका सतत प्रयत्न करना चाहिये और प्रसन्नचित्त रहना चाहिये। ऐसा करनेसे वे दूर हो जायँगे। नहीं तो, यह बात चरितार्थ होगी कि बंदरका स्मरण न करनेके प्रयत्नमें उसका ख्याल बना ही रहा।'

(केपटाउन ७-३-१४, पत्र रावजी भाई पटेलको)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६–'जन्म और मृत्यु—दोनों ही महान् रहस्य हैं। यदि मृत्यु दूसरे जीवनकी पूर्व-स्थिति नहीं है तो बीचका समय एक निर्दय उपहास है। हमें यह कला सीखनी चाहिये कि मृत्यु किसीकी और कभी भी हो, हम उसपर हर्गिज रंज न करें। मेरे खयालमें ऐसा तभी होगा जब हम सचमुच ही अपनी मृत्युके प्रति उदासीन होना सीखेंगे और यह उदासीनता तब आयेगी, जब हमें हर-क्षण यह भान होगा कि हमें जो काम सौंपा गया है, उसे हम कर रहे हैं। लेकिन यह कार्य हमें कैसे मालूम होगा? वह ईश्वरकी इच्छाको जाननेसे मालूम होगा। ईश्वरकी इच्छाका पता चलेगा—प्रार्थना और सदाचरणसे।'

(बापूके पत्र मीराके नाम)

७–'यह बात गीतामें ही मिलती है कि मृत्युके लिये शोक नहीं करना चाहिये।'

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

(२। १६)

इस श्लोकमें मृत्युका सारा रहस्य भरा हुआ है। अनेक श्लोकोंमें बार-बार कहा गया है कि शरीर 'असत्' है। 'असत्' का अर्थ 'माया' नहीं, ऐसी वस्तु नहीं जो कभी किसी रूपमें उत्पन्न न हुई हो; बल्कि उसका अर्थ है क्षणिक, नाशवान्, परिवर्तनशील। फिर भी हम अपने जीवन-का सारा व्यवहार यह मानकर चलाते हैं, मानो हमारा शरीर शाश्वत है। हम शरीरको पूजते हैं, शरीरके पीछे पड़े रहते हैं। यह सब हिंदूधर्मके विरुद्ध है। हिंदूधर्ममें यदि कोई बात चाँदनीकी तरह स्पष्ट कही गयी है तो वह है—'शरीर और दृश्य पदार्थोंकी असत्ता।' फिर भी हम जितना मृत्युसे डरते हैं, रोते-पीटते हैं, उतना शायद ही कोई करते हों।

महाभारतमें तो यह कहा गया है कि रुदनसे मृत आत्माको संताप होता है और गीता इसीलिये लिखी गयी कि लोग मृत्युको कोई भी भीषण वस्तु न मानें। मनुष्य-शरीर काम करते-करते थक जाता है। अनेक शरीर तो मृत्युके द्वारा दुःखसे मुक्त होते हैं। गीता हमें सिखाती है और मैं प्रतिदिन इस पाठको समझता जा रहा हूँ कि अशाश्वत वस्तुके लिये की गयी सारी चिन्ता व्यर्थ है, व्यर्थ कालक्षेप है।

'असत्का भाव'—इसका अर्थ है—अस्तित्वका न होना। और जो सत् है, उसका नाश कभी नहीं हो सकता।

गीता इस श्लोकमें पुकार-पुकारकर कहती है कि हम अपने जीवनमें सत्यको धारण करके जियें और माया, असत्य, पाखण्डका त्याग करें। अनेक बार वाणी असत्य हो जाती है, पाखण्ड-रूप हो जाती है। क्रोध असत् है। काम, मोह, मद आदि असत् हैं। हमें इन तमाम सर्पोंका सत्र करना है। स्थूल सर्प तो बेचारा केवल शरीरको कष्ट देता है, पर ये सर्प तो हमारी रग-रगमें पहुँच जाते हैं और हमारी आत्माको भी हानि पहुँचानेकी धमकी देते हैं। परंतु आत्माको हानि नहीं पहुँच सकती। वह अविनाशी है। यदि हम इस बातको समझ लें कि सत् क्या है तो जन्म-मृत्युका रहस्य भी समझ जायँगे।

जिस प्रकार रसायनशास्त्री कहते हैं कि जब मोमबत्ती जलती है, तब उसकी किसी वस्तुका नाश नहीं होता; उसी प्रकार जब शरीर मरता है और जलता है, तब कोई वस्तु नष्ट नहीं होती। जन्म और मृत्यु एक ही वस्तुकी दो स्थितियाँ हैं। किसी स्वजनके मरणपर हम जो रोते-चीखते हैं, उसका कारण है—स्वार्थ।'

(हि० नवजीवन ३०–७–३५)

× × ×

बापूके इन अनमोल उपदेशोंको हम हृदयमें धारण कर लें तो हमारा बेड़ा पार हो जायगा। सच बात तो यह है कि हमारी बुद्धि स्थिर हो; मोह और ममता, राग और द्वेषके चक्करसे हम अपनेको मुक्त कर लें; फिर तो मौतका सारा डर ही दूर हो जायगा।

और वह दूर हुआ कि हमारा सारा जीवन ही पवित्र और आनन्दमय बन जायगा; साथ-ही-साथ मृत्यु भी।

दूसरी दृष्टिसे सोचें तो मृत्युका भय यदि वस्तुतः हमें आक्रान्त कर ले, तब भी काम बन सकता है। फिर तो हमें सच्चे वैराग्यकी प्राप्ति हो जायगी। 'मौत सिरपर लटक रही है'—इतना विश्वास दृढ़ हो जाय तो फिर हमसे कोई गलत काम होगा ही कैसे? कोई पाप हमसे बनेगा ही कैसे? किसीको हम सतायेंगे ही कैसे, जब कि हम जानते हैं कि पता नहीं कलका सूर्योदय हम देख सकेंगे भी या नहीं।

पर इस भयको हम आँख मूँदकर टाल देते हैं; किंतु हम लाख टालें, वह टलनेवाला है नहीं। तब बुद्धिमानी इसी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में है कि हम जीवनके रहे-सहे क्षणोंको जीवनके एकमात्र चरम लक्ष्य प्रभुप्राप्तिके लिये ही प्रभुके चरणोंमें अर्पित कर दें। हम जो कुछ करें, सो सब प्रभु-पूजा ही हो। प्रभुसे हमारी एक ही प्रार्थना हो कि 'नाथ! जीवनकी अन्तिम बेलामें तुम ही मेरे समक्ष हो—

इतना तो करना भगवन्, जब प्रान तनसे निकलें।
श्री जमुनाजी का तट हो अरु पास वंशीवट हो॥
वह साँवला निकट हो, जब प्रान तन से निकलें।

फिर तो धन्य और पवित्र हो जायगा हमारा जीवन और धन्य तथा पवित्र हो जायगी हमारी मृत्यु!

जीवका गर्भवास और देहरचना

(लेखक—वैद्य पं० श्रीनन्दकिशोरजी गौतम 'निर्मल' एम्० ए०, साहित्यायुर्वेदाचार्य, साहित्यायुर्वेदरत्न)

अखिल विश्वमें हमारा भारत ही एक ऐसा देश है, जो पुनर्जन्मके सिद्धान्तमें पूर्ण विश्वास ही नहीं रखता, अपितु समय-समयपर त्रिकालदर्शी योगियोंद्वारा इस प्रकारके उदाहरण प्रत्यक्षरूपसे प्रस्तुत करनेमें समर्थ रहा है। अणिमादि अष्ट-सिद्धियोंको प्राप्त महापुरुष तो परकाया-प्रवेशतक करके ऐसा दिखाते आये हैं।

इससे यह स्पष्ट प्रत्यक्ष होता है कि आत्मा तो अजर और अमर है तथा वह अपने प्रारब्ध (पूर्वसंचित कर्मफल) के अनुसार सम्बन्धित मानव, पशु, कीट आदि योनियोंमें जन्म लेता है। श्रीमद्भागवत तथा गरुडपुराण (सारोद्धार) आदिमें इस बातका स्पष्ट प्रमाण मिलता है—

जीवका गर्भप्रवेश

'जीव प्रारब्ध-कर्मवश देह-प्राप्तिके लिये पुरुषके वीर्य-कणके आश्रित होकर स्त्रीके उदरमें प्रविष्ट[1] होता है।'

आयुर्वेदके विभिन्न ग्रन्थोंके आधारपर जीवके पूर्वकर्मानुसार गर्भप्रवेशका वर्णन इस प्रकार उपलब्ध होता है—'यह आत्मा जैसे शुभाशुभ कर्म पूर्वजन्ममें संचित करता है, उन्हींके आधारपर इसका पुनर्जन्म होता है और पूर्वदेहमें संस्कारित गुणोंका प्रादुर्भाव इस जन्ममें[2] होता है।'

जैसा कि योगिराज श्रीकृष्णने गीताके छठे अध्यायमें इस बातकी पुष्टि—'तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।' इस वाक्यसे की है। इसी कारण हम संसारमें किसीको कुरूप, किसीको सुन्दर, किसीको लँगड़ा, किसीको लूला, किसीको मूक और किसीको कुबड़ा तो किसीको अंधा और किसीको काना देखते हैं। इसी प्रकार कोई जीव किसी महापुरुषके घर जन्म लेता है तो कोई किसी अधमके घर उत्पन्न होता है। कोई ऐश्वर्यशालीके घरमें जन्म लेता है तो कोई अकिंचन कुटीरमें पलता है। यह सम्पूर्ण विविधता पूर्वकृत कर्मके अनुसार होती है, जिसे कि हम 'दैव' भी कहते हैं—

'पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते।'

चरकसंहिताके शारीरस्थानके चतुर्थ अध्यायमें भी इस बातकी पुष्टि इस प्रकारसे की गयी है—'सबसे पूर्व मनरूपी कारणके साथ संयुक्त हुआ आत्मा धातुगुणके ग्रहण करनेके लिये प्रवृत्त होता है, अर्थात् अपने कर्मके अनुसार सत्त्व, रज तथा तम—इन गुणोंके ग्रहणके लिये अथवा महाभूतोंके ग्रहणके लिये प्रवृत्त होता है। आत्माका जैसा कर्म होता है और जैसा मन उसके साथ है, वैसा ही शरीर बनता है, वैसे ही पृथिवी आदि भूत होते हैं तथा अपने कर्मद्वारा प्रेरित किये हुए मनरूपी साधनके साथ स्थूलशरीरको उत्पन्न करनेके लिये उपादानभूत भूतोंका ग्रहण करता है। वह आत्मा हेतु, कारण, निमित्त, कर्त्ता, मन्ता, बोधयिता, बोद्धा, द्रष्टा, धाता, ब्रह्मा, विश्वकर्मा, विश्वरूप, पुरुषप्रभव, अव्यय, नित्यगुणी, भूतोंका ग्रहण करनेवाला प्रधान, अव्यक्त, जीवज्ञ, प्रकुल, चेतनावान्, प्रभु, भूतात्मा, इन्द्रियात्मा और अन्तरात्मा कहलाता[3] है।'

---

१. कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये।
स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः॥
(श्रीमद्भागवत ३। ३१। १; ग० पु० सा० ६। ५)

२. कर्मणा चोदितो येन तदाप्नोति पुनर्भवे।
अभ्यस्ताः पूर्वदेहे ये तानेव भजते गुणान्॥
(सुश्रुत, शा० २। ५५)

३. तत्र पूर्वं चेतनाधातुः सत्त्वकरणो गुणग्रहणाय पुनः प्रवर्तते। स हि हेतुः कारणं निमित्तमक्षरं कर्त्ता मन्ता बोधयिता बोद्धा द्रष्टा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तकालमें भगवान्‌के स्मरणसे भगवत्प्राप्ति (गीता ८ । ५)

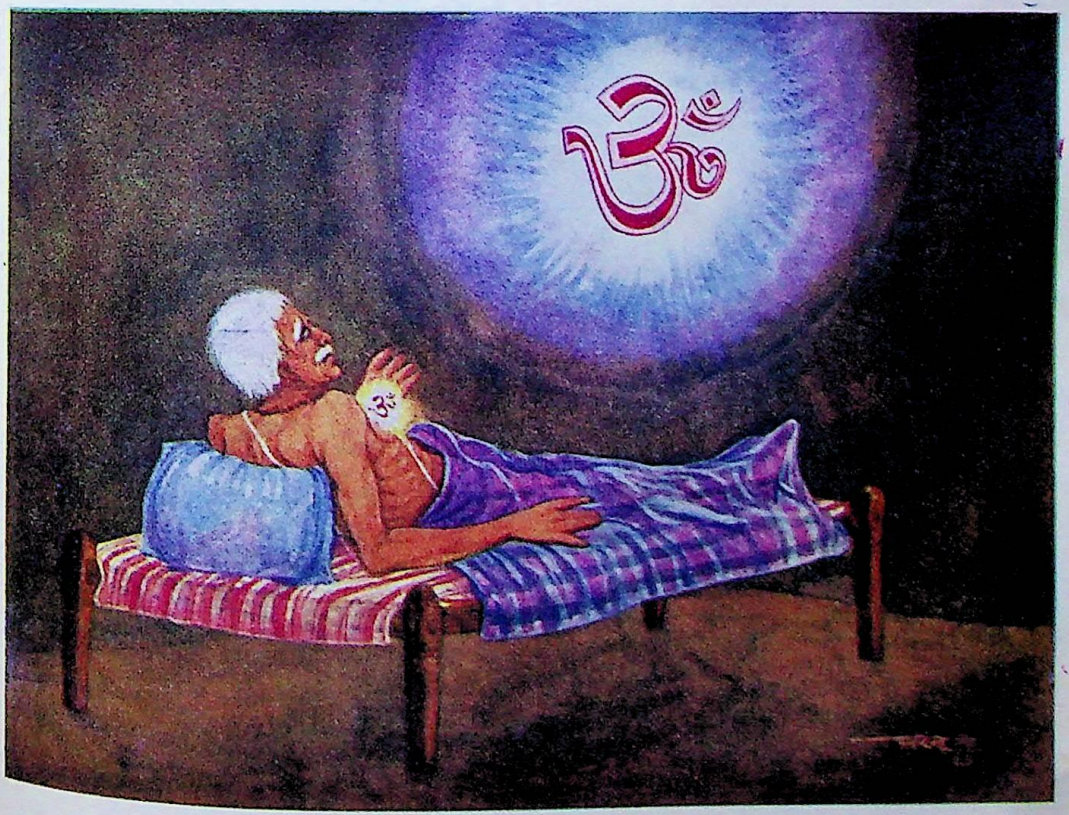

अन्तकालमें अक्षर ब्रह्म ॐ के उच्चारण-स्मरणसे परमगति (गीता ८ । १३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वह जीव गर्भाशयमें अनुप्रविष्ट होकर शुक्र और शोणित-से मिलकर अपनेसे अपनेको गर्भरूपमें उत्पन्न करता है। अतएव गर्भमें इसकी आत्मसंज्ञा होती है।'

'क्षेत्रज्ञ, वेदयिता, स्प्रष्टा, घ्राता, द्रष्टा, श्रोता, रसयिता, पुरुषसंज्ञा, गन्ता, साक्षी, धाता, वक्ता इत्यादि पर्यायवाची नामोंसे, जो ऋषियोंद्वारा पुकारा जाता है, वह क्षेत्रज्ञ (स्वयं अक्षय, अचिन्त्य और अव्यय होते हुए भी) दैवके संगसे सूक्ष्म भूत-तत्त्व, रज, तम, दैव, आसुर या अन्य भावसे युक्त वायुसे प्रेरित हुआ गर्भाशयमें प्रविष्ट होकर (शुक्र-आर्तवके संयोग होते ही) तत्काल उस संयोगमें अवस्थान करता है।'

जीवका गर्भ-वृद्धिक्रम

गर्भमें प्रविष्ट होनेके बाद यह आत्मा पाञ्चभौतिक शरीर-को धारण करने लगता है। इस शरीरकी वृद्धि गर्भमें क्रमशः नौ मासतक होनेका वर्णन हमें विभिन्न ग्रन्थोंमें इस प्रकार मिलता है—

'डिम्बाणुके साथ मिले हुए शुक्राणुकी वृद्धि एक रात्रि-में कलल, पाँच रात्रिमें बुद्बुद, दशरात्रिमें कर्कन्धू (बेर) के समान मांसके पिण्डके रूपमें होती है एवं अन्य मानवेतर योनियोंमें अंडेके रूपमें होती है। उसके बाद दो मासमें सिर और बाहु अङ्गका विग्रह (विभाग) होता है। तीन माहमें नख, रोम, हड्डी, चर्म और लिङ्ग आदि छिद्र होते हैं। चार महीनेमें सातों धातु बनते हैं, पाँचमें क्षुधा तथा तृषाकी उत्पत्ति होती है। एवं षष्ठ मासमें जरायु (झिल्ली) में लिपटा हुआ दक्षिणकुक्षिमें भ्रमण करता है। सप्तम मासमें सचेत होकर प्रसूतिवायुसे कम्पित होता हुआ विष्ठासे उत्पन्न सहोदर कृमिके समान चलता रहता है।'

आयुर्वेदके प्रधान ग्रन्थ सुश्रुतसंहिताके आधारपर गर्भ-वृद्धिक्रम इस प्रकारसे उपलब्ध होता है—

'शुक्र और शोणितके संयोगसे पहले मासमें गर्भ कलल अर्थात् बुद्बुदाकार होता है। दूसरे मासमें शीत(श्लेष्मा), उष्मा (पित्त) और अनिल (वात)—इनसे पञ्चमहाभूतों-का समूह गाढ़ा बनता है। यदि वह समूह पिण्डाकृति हो तो पुत्र और पेशी (दीर्घाकृति) हो तो कन्या तथा अर्बुद गोला (Tumour) के परिमाणका हो तो नपुंसक होता है। तीसरे महीनेमें दो हाथ, दो पैर और सिर ऐसे पाँच अवयवोंके पिण्ड होते हैं और ग्रीवा, छाती, पृष्ठ तथा उदर—ये अङ्ग और ठोड़ी, नासिका, कान, अँगुली, एड़ी इत्यादि प्रत्यङ्गोंका विभाग अस्पष्टतया ज्ञात होता है। चतुर्थ मासमें सब अङ्ग-प्रत्यङ्गके विभाग खूब स्पष्ट हो जाते हैं तथा गर्भका हृदय स्पष्ट होनेसे चेतना धातु व्यक्त होता है; क्योंकि हृदय चेतना-धातुका स्थान (आश्रय) है। इसलिये इन्द्रियार्थ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—इनकी अभिलाषा चौथे मासमें होती है।

'पञ्चम मासमें मन अधिक प्रबुद्ध एवं सचेत होता है। षष्ठ मासमें बुद्धि प्राप्त होती है। सप्तममें सब अङ्ग-प्रत्यङ्गोंकी अभिव्यक्ति भलीभाँति होती है। अर्थात् चार शाखा, सिर और कोष्ठ—ये छः अङ्ग-प्रत्यङ्ग-ग्रीवा-मूर्धादि स्पष्ट हो जाते हैं। अष्टम मासमें ओज चञ्चल रहता है। इस मासमें बालक पैदा होनेपर नैर्ऋत भागके कारण तथा ओजधातु क्षीण रहनेसे जीता नहीं। नवम, दशम, एकादश या

धाता ब्रह्मा विश्वकर्मा विश्वरूपः पुरुषः प्रभवो अव्ययो नित्यो गुणी सगुणं प्राधान्यमव्यक्तं जीवो शः प्रकुलश्चेतनावान् प्रभुश्च भूतात्मा चेन्द्रियात्मा चान्तरात्मा चेति। (च० शा० ४ । ४)

४. स (आत्मा) गर्भाशयमनुप्रविश्य शुक्रशोणिताभ्यां संयोग-मेत्य गर्भत्वेन जनयत्यात्मनात्मानम्, आत्मसंज्ञा हि गर्भे।

(च. शा. ३ । १२)

५. क्षेत्रज्ञो वेदयिता स्प्रष्टा घ्राता द्रष्टा श्रोता रसयिता पुरुषः स्रष्टा गन्ता साक्षी धाता वक्ता यः कोऽसावित्येवमादिभिः पर्यायवाचकै-र्नामभिरभिधीयते दैवसंयोगादक्षयोऽव्ययोऽचिन्त्यो भूतात्मना सहान्वक्षं सक्षरजस्तमोभिर्दैवासुरैरपरैश्च भावैर्वायुनाभिप्रेर्यमाणो गर्भाशयमनु-प्रविश्यावतिष्ठते।

(सुश्रुत, शा० ३ । ३)

६. कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदम्।
दशाहेन तु कर्कन्धूः पेश्यण्डं वा ततः परम्॥
मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाहङ्घ्र्यादयङ्गविग्रहः।
नखलोमास्थिचर्माणि लिङ्गच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः॥
चतुर्भिर्धातवः सप्त पञ्चभिः क्षुत्तृडुद्भवः।
षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे॥
(श्रीमद्भा० ३ । ३१ । २—४; गरुडपुराण सारोद्धार ३ । ६—८)

आरभ्य सप्तमान्मासाल्लब्धबोधोऽपि वेष्टितः।
नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिव सोदरः॥
(श्रीमद्भा० ३ । ३१ । १०; गरुडपुराण सारोद्धार ३ । १५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वादश मासमें उत्पन्न बालक जीवित रहता है। इसके बाद यदि प्रसव न हो तो वह विकारी गर्भ समझा जाता है।'[७]

जीवका गर्भवास

गरुड़पुराण (सारोद्धार) तथा भागवतमें जीवके गर्भवासका वर्णन विशदरूपमें इस प्रकार उपलब्ध है—

'माताद्वारा भुक्त अन्न-पानादिसे बढ़ा है रस, रक्त आदि धातु जिसका, ऐसा प्राणी असम्मत अर्थात् जिससे दुर्गन्ध आती है, जिसमें जीवका सम्भव है ऐसे विष्ठा और मूत्रके गर्तमें सोता है। सुकुमार होनेके कारण गर्तमें होनेवाले भूखे कीड़ोंके काटे जानेपर प्रतिक्षण उस क्लेशसे पीड़ित हो मूर्च्छित हो जाता है। मातासे खाये हुए कड़ुए, तीक्ष्ण, लवणीय, रूखे और खट्टे आदि उल्बण पदार्थसे छुये जानेपर अङ्गोंमें वेदना होती है तथा जरायु और आँतके बन्धनमें पड़कर पीठ-ग्रीवाके लचकनेसे काँखमें सिर करके पिंजरेके पक्षीके समान अङ्गोंके चलानेमें असमर्थ हो जाता है। वहाँ दैवयोगसे सौ जन्मकी बात स्मरणकर दीर्घ श्वास लेता है। अतः कुछ भी सुख नहीं मिलता। संतप्त और भयभीत जीव धातुरूप सात बन्धनोंमें पड़कर तथा हाथ जोड़कर, जिसने इस उदरमें डाला है, उसकी दीन वचनोंसे स्तुति करता है।'

'हे लक्ष्मीपति! जगत्के आधार, अशुभके नाशकर्ता, शरणागतके वत्सल श्रीविष्णु! मैं आपकी शरण हूँ। आपकी मायासे मोहित होकर देहमें 'मैं' तथा पुत्र-स्त्रीमें 'मेरा' अभिमान करके हे नाथ! मैं संसारमें प्राप्त हूँ। मैंने कुटुम्बके लिये शुभ-अशुभ कर्म किया, परंतु उस कर्मसे मैं अकेला दग्ध होता हूँ और ये कुटुम्बी फलके भागी हुए। यदि योनिसे छुटकारा हुआ तो आपके चरणोंका स्मरण करूँगा, जिससे संसारसे मुक्त हो जाऊँ। विष्ठा और मूत्रके कूपमें गिरा हुआ मैं बाहर निकलनेकी इच्छा करता हुआ जठराग्निसे दग्ध हो रहा हूँ, मुझे आप कब बाहर निकालेंगे।'[९]

जीवके इस करुणविलापको सुनकर सर्वान्तर्यामी प्रभु उसपर अपनी अहैतुकी कृपा कर उसे उस नारकीय स्थानसे बाहर निकाल देते हैं और जब वह कर्म भोगकर बाहर आता

---

७. तत्र प्रथमे मासि कललं जायते; द्वितीये शीतोष्मानिलैरभिप्रपच्यमानानां महाभूतानां संघातो घनः सञ्जायते, यदि पिण्डः पुमान्, स्त्री चेत् पेशी, नपुंसकं चेदर्बुदमिति। तृतीये हस्तपादशिरसां पञ्चपिण्डका निर्वर्तन्तेऽङ्गप्रत्यङ्गविभागश्च सूक्ष्मो भवति। चतुर्थे सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्तो भवति, गर्भहृदयप्रव्यक्तिभावाच्चेतनाधातुरभिव्यक्तो भवति, कस्मात्? तत्स्थानत्वात्। तस्माद्गर्भश्चतुर्थे मास्यभिप्रायमिन्द्रियार्थेषु करोति।

(सुश्रुत, शा० ३। १४)

पञ्चमे मनः प्रतिबुद्धतरं भवति, षष्ठे बुद्धिः, सप्तमे सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्ततरः, अष्टमेऽस्थिरीभवत्योजः, तत्र जातश्चेन्न जीवेन्निरोजस्त्वाद् नैर्ऋतभागत्वाच्च, ततो बलिं मांसौदनमस्मै दापयेत्। नवमदशमैकादशद्वादशानामन्यतमस्मिन् जायते, अतोऽन्यथा विकारी भवति।

(सुश्रुत, शा० ३। १६)

८. मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसम्मते।
शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जन्तुर्जन्तुसम्भवे॥
कृमिभिः क्षतसर्वाङ्गः सौकुमार्यात्प्रतिक्षणम्।
मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः॥
कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः।
मातृभुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वाङ्गोत्थितवेदनः॥
उल्बेन संवृतस्तस्मिन्नन्त्रैश्च बहिरावृतः।
आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः॥
अकल्पः स्वाङ्गचेष्टायां शकुन्त इव पञ्जरे।
तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात् कर्म जन्मशतोद्भवम्।
स्मरन् दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विन्दते॥
नाथमान ऋषिर्भीतः सप्तवध्रिः कृताञ्जलिः।
स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पितः॥
(गरुडपुराण-सारोद्धार ६। ९—१४; श्रीमद्भा० ३। ३१। ५—९, ११)

९. श्रीपतिं जगदाधारमशुभक्षयकारकम्।
व्रजामि शरणं विष्णुं शरणागतवत्सलम्॥
त्वन्मायामोहितो देहे तथा पुत्रकलत्रके।
अहंममाभिमानेन गतोऽहं नाथ संसृतिम्॥
कृतं परिजनस्यार्थे मया कर्म शुभाशुभम्।
एकाकी तेन दग्धोऽहं गतास्ते फलभागिनः॥
यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत् स्मरिष्ये पदं तव।
तमुपायं करिष्यामि येन मुक्तिं व्रजाम्यहम्॥
विण्मूत्रकूपे पतितो दग्धोऽहं जठराग्निना।
इच्छन्नितो विवसितुं कदा निर्यास्यते बहिः॥
(गरुडपुराण-सारोद्धार ६। १६—२०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, तभी वैष्णवीमाया उस जीवको मोहित कर लेती है तथा वह मायासे लिप्त होकर परवश हुआ कुछ नहीं बोलता और संसारचक्रमें पुनः घूमने लगता है; किंतु पूर्वजन्मके प्रबल संस्कारसे यदि वह भगवद्भक्तिके सुमार्ग पर लग जाता है तो प्राप्त-जन्ममें अपना उद्धार कर सकता है। अतः माता-पिताको चाहिये कि अपने बालकोंमें प्रारम्भसे ही इस प्रकारके जीवनोद्धारक संस्कार डालें, जिससे जीवका सर्वथा कल्याण हो सके।

उपर्युक्त गर्भवासका वर्णन आयुर्वेद-ग्रन्थोंमें प्रकारान्तरसे इस प्रकार उपलब्ध होता है—

'गर्भकी स्वकीय प्यास और भूख नहीं होती। उसका जीवन पराधीन होता है अर्थात् माताके अधीन होता है। वह सत् और असत् (सूक्ष्म) अङ्गावयववाला गर्भ मातापर आश्रित रहता हुआ उपस्नेह (रिसकर आये रस) और उपस्वेद (उष्मा) से जीवित रहता है। जब अङ्गावयव व्यक्त हो जाते हैं—स्थूलरूपमें आ जाते हैं, तब कुछ तो लोमकूपके मार्गसे उपस्नेह होता है और कुछ नाभिनालके मार्गसे। गर्भकी नाभिपर नाड़ी लगी रहती है। नाड़ीके साथ अपरा जुड़ी रहती है और अपराका सम्बन्ध माताके हृदयके साथ रहता है। गर्भको माताका हृदय सन्दमान (बहती हुई) सिराओंद्वारा उस अपराको रस या रक्तसे भरपूर किये रहता है। वह रस गर्भको वर्ण एवं बल देनेवाला होता है। सब रसोंसे युक्त आहाररस गर्भिणी स्त्रीमें तीन भागोंमें बँट जाता है। एक भाग उसके अपने शरीरकी पुष्टिके लिये होता है और दूसरा भाग क्षीरोत्पत्तिके लिये तथा तीसरा भाग गर्भवृद्धिके लिये होता है। इस प्रकार वह गर्भ इस आहारसे परिपालित होकर गर्भाशयमें जीवित रहता है।'

(चरक, शारीरस्थानम्—६। १५)

'माताके निःश्वास, उच्छ्वास, संक्षोभ तथा स्वप्नसे उत्पन्न हुए निःश्वास, उच्छ्वास, संक्षोभ और स्वप्नोंको गर्भ प्राप्त करता है; अर्थात् जबतक बालक माताके गर्भमें रहता है, वह माताके शरीरके अङ्गके समान होता है और माताके प्रत्येक भले-बुरे कर्मका परिणाम जैसे उसके शरीरपर होता है, वैसे ही गर्भके ऊपर भी होता है। माता जब श्वासोच्छ्वास करती है, तब उसके रक्तकी शुद्धि होती है; साथ-ही-साथ गर्भके रक्तकी भी शुद्धि होती है। माता जब सोती है तो उसके साथ-ही-साथ गर्भको आराम मिलता है। माता जब भोजन करती है, तब उसके शरीरके पोषणके साथ गर्भका भी पोषण होता है। माता जब संक्षुब्ध होती है, तब उसके शरीरपर जो परिणाम होता है, वही परिणाम गर्भपर भी होता है। संक्षेपमें माताके प्रत्येक कर्मके साथ-साथ गर्भ भी वही कर्म करता जान पड़ता है। वास्तवमें न गर्भ श्वास लेता है, न सोता है, न भोजन करता है, न क्षुब्ध होता है और न मल-मूत्रका त्याग ही स्वतन्त्रवृत्तिसे करता है।'

(सु० शा० २। ५२)

गर्भ पूर्णरूपसे मातृवृत्तिपर आश्रित रहता है। अतः माताको यह आदेश दिया गया है कि वह अच्छे प्रकारका भोजन (जो लवणीय, कड़ुए, तीक्ष्ण, खट्टे, उल्वण आदि पदार्थोंसे रहित हो) करे। शारीरिक परिश्रम अधिक न करे। मनको कष्ट देनेवाली बातोंका चिन्तन न करे। आराम करे। मलिन वस्त्र धारण न करे। ग्राम्य धर्म (मैथुन), गाड़ीकी सवारी आदि त्याग दे। शुद्ध सात्त्विक विचार करे, सात्त्विक वस्तु देखे, सात्त्विक बातें-कथाएँ सुने; तामसका सर्वथा त्याग कर दे। यह सब आदेश इसीलिये दिया गया है कि जिससे गर्भस्थ शिशुको किसी प्रकारकी पीड़ा न हो और वह शुद्ध-जीवन बने।

'गर्भकी नाभिमें लगी नाड़ीके द्वारा माताके आहार-रससे गर्भका पोषण 'केदारकुल्या' न्यायसे होता है। जिस प्रकार सिंचाई करते समय कृषक विभिन्न आलबालों (क्यारियों) में बोये पौधोंकी सिंचाई करता है। ठीक उसी तरह नाभि नाड़ीकी एक ही मूलनालीसे जाते हुए आहार-रसके द्वारा विभिन्न धातुओंका पोषण होता है।'

(अष्टाङ्गहृदय, शा० १। ५६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनमें स्वरोदयकी महत्ता

[पुनर्जन्म]

(लेखक—गुरु श्रीरामप्यारेजी अग्निहोत्री)

प्राणीमात्रके लिये स्वर ही जीवन है और स्वरावरोध ही मृत्युः है। जीवनमें जो कुछ होता है, वह संसारके लिये प्रत्यक्ष है। उसकी आलोचना, प्रत्यालोचना और समालोचना—दृश्य जगत्‌में सभी कुछ की जाती है; किंतु मृत्युके बाद क्या होता है, बहुत ही रहस्यात्मक है। तात्त्विकों एवं साधकोंने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणसे इसपर विचार किया है। मृत्यु अवश्य ही एक रहस्य है, जिस-पर आजकलके विज्ञानका भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। इसीसे भगवान्‌की अदृश्य शक्तिका अनुभव होता है।

स्वरोदयका प्रकरण शिशुकी गर्भावस्थासे प्रारम्भ होकर मृत्युपर्यन्त चलता है। जीवनमें स्वरकी प्रक्रियाओंका किस प्रकार समय-समयपर परिवर्तन होता है और फिर वही परिवर्तन स्वरावरोधमें किस प्रकार परिवर्तित होता है; यह भी परम गोपनीय विषय है, जिसके अध्ययन और मननकी प्रक्रियाएँ कौतूहल-सी प्रतीत होती हैं। स्त्री और पुरुषके स्वर-संगमके प्रभावसे पुत्र-पुत्रीका किस प्रकार जन्म होता है, यह एक अभ्यास और अनुभवका विषय है, जिसपर मानव कभी असफल नहीं होता।

माँके गर्भसे धरतीपर गिरते ही स्वरपरीक्षणकी आवश्यकता होती है। जिस समय शिशु-प्रसव होता है, माँ भी प्रसव-पीड़ासे कातर हो जाती है और बाहर निकलनेके प्रयत्नमें शिशु भी श्रमित हो जाता है। श्रमताके कारण माँ और शिशु दोनोंकी स्वर-प्रवाहिनी नलिकाएँ जोर-जोरसे स्फुरित होने लगती हैं। प्रसवके बाद लगभग एक घंटेतक माँ और शिशुके स्वर-प्रवाहमें अन्तर नहीं पड़ता। प्रसवके बाद यदि माँ और शिशु—दोनोंके चन्द्रस्वर प्रवाहित होते हों तो शिशु दीर्घजीवी होता है। साथ ही मेधावी और माता-पिताको सुख देनेवाला होता है। यदि दोनोंके सूर्यस्वर प्रवाहित होते हों तो बच्चा तेजस्वी, तपस्वी, परोपकारी और नेतृत्व-शक्तिवाला होता है। यदि माता और शिशु दोनोंके शिवस्वर प्रवाहित होते हों तो शिशु अल्पजीवी होता है और माता अधिक कष्टका अनुभव करती है। यदि माताका चन्द्रस्वर और शिशुका सूर्यस्वर प्रवाहित हो तो शिशु बड़ा होनेपर कुल-परम्पराके विपरीत कार्य करता है। साथ ही वह लम्पट-चोर आदि होता है। प्रसवकालमें यदि माताका सूर्यस्वर और शिशुका चन्द्रस्वर प्रवाहित हो तो शिशु महान् पराक्रमी होता है। बड़ा होनेपर वह विदेशोंकी भी यात्रा करता है।

यदि प्रसवकालमें माता और शिशु दोनोंके शिवस्वर चलते हों तो दोनोंका जीवन अत्यन्त संकटमय हो जाता है। इसमें या तो माताका स्वर्गवास हो जाता है या शिशुका और कभी-कभी दोनोंका। माताका शिवस्वर और शिशुका चन्द्रस्वर प्रवाहित होता हो तो शिशु कौमारावस्थामें स्वर्गवासी होकर अन्य योनियोंमें पुनर्जन्म ग्रहण करता है और यदि माताका शिवस्वर और शिशुका सूर्यस्वर चलता हो तो शिशु युवा अवस्था आते-आते स्वर्गवासी होकर पुनः मनुष्य-योनिमें पुनर्जन्म ग्रहण करता है और उसे अपने पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रहती है तथा उसका विकास कौमारावस्थासे ही होने लगता है। यह स्मृति ज्यादा-से-ज्यादा बीस वर्षोंतक रहती है। बीस वर्ष पहुँचते-पहुँचते या तो वह स्वर्गवासी हो जाता है या उसकी पूर्वजन्मकी स्मृति नष्ट हो जाती है। वैवाहिक सम्बन्ध हो जानेपर भी स्मृति जाती रहती है।

'नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्।'

(गीता ५। १३)

शरीर नौ द्वारोंवाला होता है। नौ द्वारोंमें दो आँख, दो कान, दो नासिकाछिद्र, मुख, गुदा और लिङ्गद्वार होते हैं। इनसे अंदरकी वस्तुएँ बाहर निकलती हैं। केवल मुख ही एक ऐसा द्वार है जिससे स्वाभाविक रूपसे बाहरकी वस्तु (खाद्य-पेय-पदार्थ) अंदर जाती है। प्राणवायु अन्तिम समयमें इन्हीं किसी एक द्वारसे बाहर निकलती है और शरीर निष्प्राण हो जाता है। अन्त समयमें प्राणवायु जिसी द्वारपर अवरुद्ध हो जाती है, उसी द्वारसे बाहर भी निकलती है। कभी-कभी अन्तिम समयमें प्राणवायु नवों द्वारोंसे हटकर ब्रह्माण्डमें स्थित हो जाती है और ब्रह्माण्डको फोड़कर बाहर निकलती है। ऐसा साधकों, तपस्वियोंको ही सुलभ होता है। प्राणवायु जब ऊर्ध्ववायुका रूप ग्रहणकर शरीरसे निकलती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, तब उसका पुनर्जन्म चेतन प्राणीकी योनिमें होता है और जब प्राणवायु अधोवायुका रूप ग्रहणकर शरीरका परित्याग करती है, तब उसका पुनर्जन्म नीची योनिमें होता है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने पुनर्जन्मपर बहुत कुछ कहा है।

भगवान्‌के कथनसे पुनर्जन्मका होना निर्विवाद सिद्ध है किंतु कुछ ऐसी अवस्थाएँ अवश्य होती हैं, जब कि मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता। इसके लिये ब्रह्मप्राप्तिका साधन ही सर्वश्रेष्ठ है। मस्तिष्कमें रमी हुई प्राणवायु जब नेत्रमार्गसे बाहर निकलती है, तब उसका पुनर्जन्म मनुष्ययोनिमें ही होता है और उसकी पूर्वस्मृति बराबर जाग्रत् रहती है। जिस नेत्रसे प्राणवायुका बहिर्गमन होता है, वह नेत्र कुछ अधिक बड़ा और विस्फारित-सा हो जाता है। इसी तरह जिस नासिका-छिद्रसे प्राणवायु बाहर निकलती है। उसी ओर नाक टेढ़ी हो जाती है। मुखसे प्राणवायु निकलनेपर मुख एकदम फटकर भयावना हो जाता है। जिस कर्ण-मार्गसे प्राणवायु शरीरसे बाहर निकलती है, वह कान दूसरेकी अपेक्षा शीघ्र ही जड और टेढ़ा हो जाता है। मल और मूत्रद्वारसे प्राणवायुके गमन करनेपर मलेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रियकी भी यही दशा हो जाती है, किंतु जब ब्रह्माण्ड फोड़कर प्राणवायुका गमन होता है, तब मृतककी बड़ी ही आकर्षक आकृति हो जाती है। उसकी सौम्यावस्था सुप्तावस्था-सी प्रतीत होती है। ऐसा सौभाग्य ज्ञानियों, भक्तों और महात्माओंको ही प्राप्त होता है। ऐसे प्राणीका पुनर्जन्म नहीं होता।

'विराट् पुराण'में चौरासी लाख योनियोंका वर्णन आया है। वहाँ सत्रज, अयुज, जरायुज और उदरवीर्य योनि—श्रेणियोंमें विभाजित कर हर-एककी संख्या इक्कीस लाख निरूपित की गयी है। सत्रज योनिमें ताराओंकी संख्या नौ लाख, मेघ चार लाख और पहाड़ आठ लाख वर्णन किये गये हैं। अयुज योनिमें नाग नौ लाख, जलचर प्राणी चार लाख और पक्षी आठ लाख तथा जरायुज योनिमें दोपदे नौ लाख, चौपदे चार लाख और कीड़े-मकोड़े आठ लाख परिगणित किये गये हैं। उदरवीर्य योनिमें निर्गन्ध पौधे नौ लाख, सुगन्ध चार लाख और कन्द-मूल आठ लाखकी संख्यामें निरूपित किये गये हैं, जिनका बहुत बड़ा विश्लेषण है। किसी-किसीने चौरासी लाख योनियोंको सोलह लाख सत्त्वगुणी, बत्तीस लाख रजोगुणी और छत्तीस लाख तमोगुणी बतलाया है। और भी कई प्रकारसे ८४ लाखका वर्णन मिलता है। वास्तवमें जीव-योनि एक रहस्यात्मक विषय है और इसका सम्बन्ध पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्मसे है। पुनर्जन्मका विषय भी असाधारण है।

स्वरोदयका ज्ञान दर्पणकी भाँति स्वच्छ और निर्मल है। सांसारिक प्राणियोंका पुनर्जन्म अवश्य होता है, यह विषय भी निर्विवाद है; किंतु किस योनिमें पुनर्जन्म होता है, इसका ज्ञान स्वरोदयसे प्राप्त किया जा सकता है। नासिका-छिद्रोंसे प्राणवायु चन्द्रस्वर, सूर्यस्वर और शिवस्वरके माध्यमसे बाहर निकलती है। इन स्वरोंमें अग्नि अथवा वायुतत्त्व मिले होनेसे प्राणवायु ऊर्ध्व श्वासका रूप ग्रहण करती है। अग्नितत्त्वसे संयुक्त यदि प्राणवायु चन्द्रस्वरके मार्गसे प्रयाण करती है तो जीवको प्रेत-योनि प्राप्त होती है और यदि सूर्यस्वरके मार्गसे प्राणवायुका निष्क्रमण होता है तो भी जीवको विकृत योनि यानी भूत-पिशाचकी योनि ही प्राप्त होती है। वायुतत्त्वसे मिश्रित प्राणवायुके निकलनेपर जीवको अल्पायु योनि मिलती है; कीड़े-पतंगों आदि वायुमें उड़नेवाले प्राणियोंमें जीवका पुनर्जन्म होता है। जलतत्त्वसे युक्त प्राणवायुके प्रयाण करनेपर जलचर जीवधारियोंमें जीवका पुनर्जन्म होता है। पृथ्वीतत्त्वसे मिली हुई यदि प्राणवायु चन्द्र-स्वरके मार्गसे शरीरका परित्याग करती है तो मनुष्य-योनिमें ही पुनर्जन्म प्राप्त होता है और जीवको अपनी पूर्व-स्मृति बनी रहती है; किंतु यदि प्राणवायु पृथ्वीतत्त्वसे युक्त सूर्यस्वरके मार्गसे प्रयाण करती है तो जीवको पशुयोनिमें जाना पड़ता है। इसी प्रकार आकाश-तत्त्वसे मिश्रित प्राणवायुके गमन करनेपर या तो पुनर्जन्म होता ही नहीं और यदि होता है तो वह गर्भावस्थामें ही विनष्ट हो जाता है।

इस तरह स्वरोदयके माध्यमसे प्राणवायुके निष्क्रमणके सूक्ष्मातिसूक्ष्म सिद्धान्त हैं, जिनसे जीवके पुनर्जन्मका रहस्य स्पष्ट होता है। जिस प्रकार मनुष्ययोनिमें पुनर्जन्म प्राप्त होनेपर कभी-कभी प्रारब्धवश पुनर्जन्मकी स्मृति बनी रहती है, उसी प्रकार प्राणवायुके शरीर परित्याग करनेके पहले भावी योनिका भी ज्ञान किसी-किसी जीवको हो जाता है और यदि स्वस्थावस्थामें प्राणवायुके निकलनेका समय निकट आ जाता है तो मनुष्य भावी योनिका पूरा वृत्तान्त भी स्पष्ट कर देता है। इस तरह पुनर्जन्म बड़ा ही गोपनीय और रहस्यात्मक विषय है, जिसका ज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरोदयके माध्यमसे सहज ही प्राप्त हो जाता है; किंतु मृत्युकालमें स्वरोदयकी परीक्षा भूल जाती है और स्वजनोंकी प्रवृत्ति करुणावस्थामें परिवर्तित हो जाती है। मरनेवाले प्राणीकी स्वर-परीक्षा अन्य व्यक्तिको, जो स्वरोदयका ज्ञाता हो, करनी चाहिये। इसी तरह प्रसवकालमें भी स्वर-परीक्षा दूसरेके द्वारा ही सम्भव है।

मानसमें पुनर्जन्म एवं परलोक-प्रत्यय

(लेखक—डा० श्रीत्रिभुवननाथजी चौबे, एम्० ए०, पी०-एच्० डी०)

आजके घोर भौतिक एवं बुद्धिवादी युगमें भोगवाद एवं हेतुवादका तत्त्व उभर रहा है। ये हेतुवादी (रेशनलिस्ट) विचारक जीवन-मरण एवं लोक-परलोकपर अपनी विचारणा पुराकालके भोगवादी नास्तिक दार्शनिक सम्प्रदाय चार्वाक-वादियोंकी भाँति ही करते हैं। आस्तिकमात्र तर्काश्रित न रहकर 'शब्द'—शास्त्रप्रमाणपर प्रतीति रखते हुए कर्मानुसार जन्म एवं लोक-प्राप्तिके प्रति ही विश्वस्त होते हैं; परंतु जडवादी भौतिकतावादी चिरकालसे ही इस आस्थाके प्रति प्रतिबद्ध हैं कि केवल शास्त्रोंके आधारपर ही किसी तत्त्वका निर्णय नहीं करना चाहिये; क्योंकि युक्तिहीन एवं हेतुरहित विचारसे धर्म-हानि होती है—

केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्यो विनिर्णयः।
युक्तिहीनविचारे तु धर्महानिः प्रजायते॥

वे वस्तुतः पुनर्जन्मको मानते ही नहीं, उनके अनुसार भस्मीभूत देहका पुनरागम है ही नहीं—

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।

हेतुवादी जन्मको एक घटना (Accident) अथवा संयोग मानते हैं। वे जडसे चेतनकी उत्पत्ति मानते हैं। परंतु इन तर्कवादियोंकी यह मान्यता उस समय असिद्ध ठहरती है, जब जडताके संघर्षणसे चैतन्यके उद्भवकी रहस्यमयी शक्तिकी स्थितिपर हम विचार करें। वह कौन-सी शक्ति है, जो कारण है—इस सृजन, पालन एवं प्रलयका? निश्चय ही वह कोई अव्यक्त सत्ता है, अव्यय परमेश्वर है। यही कार्य-कारणवाद आस्तिक दार्शनिकोंकी मूल-विचार-भूमि है। इसके निमित्त उन्होंने 'शब्द' एवं शास्त्रप्रमाणको ही प्रत्यय-सर्व-समर्थ आधार माना है। नियन्ता ब्रह्मके अस्तित्व-को मानते ही उसके नियन्त्रणमें संचालित होनेवाली सृष्टि, शास्त्रविहित विधि-निषेध कर्मोंके अनुसार धर्माधर्म, पाप-पुण्यका लाभ करती है और उसके अनुसार उत्कृष्ट, निकृष्ट, पुण्यशील, कुत्सित योनियोंको प्राप्त करती है। कर्मानुसार चौरासी लाख योनियोंमें जीव संचरण करते हैं। उन्हें मानव-दानव, पशु-पक्षी, कृमि-कीट तथा गिरि-कानन, तरु-तृण सभीका रूप धारण करना पड़ता है।

विधिसम्मत, धर्मयुक्त पुण्यशाली कर्मोंका अनुसरण करनेवाले कर्म-कृत दोषोंसे मुक्त होकर परलोक—दिव्य-लोकमें अलौकिक आनन्दकी प्राप्ति करते हैं। इस प्रकारका मार्ग-दर्शन करके हमारे वेद-पुराण, धर्म-शास्त्र एवं आप्तपुरुषोंने मानवको अपनी उत्क्रान्तिके लिये सदैव सजग किया है। इसके हेतु अनेक साधनाएँ हैं। योग, कर्म एवं भक्ति-मार्गका निर्देश दिया है। इस तत्त्वका हमारे सभी ऋषि-मनीषी-कवियों एवं संतोंने अपनी सत्कृतियोंमें प्रतिपादन किया है। ऐसे जीवन्मुक्त महापुरुषोंने लोक-कल्याणार्थ श्रेष्ठ योनि एवं श्रेष्ठ (पर) लोकके प्राप्त्यर्थ धर्म, नीति एवं सन्मार्गके सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करके लोकका मार्ग-दर्शन किया है। वाल्मीकि, व्यास, वसिष्ठ, नारद, कपिल, शंकर ऐसे ही विभूतिशील क्रान्तद्रष्टा ऋषि थे। मध्यकालमें इसी परम्पराकी दिव्य विभूति, पुण्यश्लोक महात्मा तुलसीदास हुए, जिनके 'मानस'में लोक-मङ्गलविधायिनी वृत्तिका पूर्ण प्रकाश हुआ है। गोस्वामीजीने अपने 'मानस'में पुनर्जन्म एवं परलोक-प्रत्यय सिद्धान्तको अपने परम आस्तिक धारणानु-सार बड़े ही सुष्ठु ढंगसे प्रकाशित किया है। यह विचारणा इतनी महत्त्वपूर्ण है कि उनका यह दिव्य महत्तम शक्तिशाली काव्य-ग्रन्थ आज धर्म-नीति अध्ययनका उपजीव्य ग्रन्थ माना जा रहा है।

मानसकारने अपने सम्पूर्ण ग्रन्थमें जीवकी उत्पत्तिको उसके कर्मानुसार बताया है और स्वर्ग-नरककी प्राप्ति भी उसीके अनुसार दिखायी है। उन्होंने सर्वत्र श्रेष्ठ कर्मोंके अनुसरणका ही निर्देश किया है। उनका प्रत्येक पात्र, प्रत्येक तत्-सम्बन्धी प्रकरण इसी तथ्यका परिचायक है।

'मानस'में पुनर्जन्म-प्रतीति

'मानस'के अन्तर्गत पुनर्जन्मका मूलकारण 'प्रारब्ध'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा पूर्वजन्मके कर्म माने गये हैं, उसीके अनुसार 'त्रिजग' योनियोंमें मानव जन्म ग्रहण अथवा धारण करता है। इस तथ्यपर स्वयं तुलसी तथा अन्य संत कवि भी प्रत्यय रखते हैं। कर्मोंके अनुसार जीव चेतन ही नहीं, अपितु जड शरीर भी धारण करता है। कविवर संत 'रसखान'का प्रसिद्ध सवैया इस तथ्यका स्वयं उद्घाटक है—

मानुष हौं तो वही 'रसखान' बसौं ब्रज गोकुल गाँवके ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नंदकी धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धरयो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिन्दी कूल कदंब की डारन॥

तुलसीने बड़े स्पष्ट शब्दोंमें भगवान् श्रीरामकी अनवरत भक्तिकी स्पृहा करते हुए बालिके शब्दोंमें प्रभुसे निवेदन करवाया है—

'जेहि जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ।'
(मानस ४। ९। २ छ०)

जीव अपने कर्मोंके अनुसार श्रेष्ठ एवं अधम योनियोंमें संचरण करता रहता है। उससे उद्धारका एकमात्र उपाय है—अपने सहज स्वरूपका बोध, और इसीके हेतु साधक संतोंने उत्क्रान्तिके अनेक उपाय बताये हैं—जिनमें ज्ञान, निष्काम कर्म, योग और सर्वसुलभ भक्ति है।

'मानस'के अन्तर्गत भिन्न जन्मोंकी प्राप्तिका कारण जीव अथवा साधककी तपश्चर्याजनित सहज अभिलाषा भी है। मनु और शतरूपाने अपनी कठोर तपस्याके फलस्वरूप एक कल्पमें दशरथ और कौसल्याके रूपमें जन्म लिया था। इसी प्रकार कश्यप और अदितिने भी अन्य कल्पमें दशरथ एवं कौसल्याके रूपमें जन्म लेकर भगवान् रामके माता-पिताके रूपमें कृतार्थता प्राप्त की थी—

'कस्यप अदिति तहाँ पितु माता।' (१। १२२। २)

देवता एवं मुनिजन भी सदा यह अभिलाषा करते रहते हैं कि कभी भी ऐसा अवसर मिले, जब वे किसी-न-किसी प्रकार भगवान्‌के अवतारी रूपके अनुचर बन सकें—

जो कछु आयसु ब्रह्माँ दीन्हा। हरषे देव बिलंब न कीन्हा॥
बनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं॥
गिरि तरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीरा॥
(मानस १। १८७। १-२)

शापके कारण जन्मधारणके ज्वलन्त दृष्टान्त 'मानस'के अन्तर्गत निरूपित हैं। शापवश निकृष्ट योनि-प्राप्ति मात्र शापित जीवको ही नहीं, अपितु देवता, गन्धर्व, नाग, किन्नर ही क्या, स्वयं ब्रह्मको भी करनी पड़ती है। नारदके शापवश परब्रह्म भगवान् रामने नर-शरीर धारण किया एवं प्रिया-वियोगको सहन किया। यह बात और है कि इस प्रकार उन्होंने भू-भार-हरणकी लीला भी की। इसी संदर्भमें शंकरके गणोंको भी रावण एवं कुम्भकर्णके रूपमें जन्म लेना पड़ा।—

होहु निसाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहिं सो लेहु फलु बहुरि हँसेहु मुनि कोउ॥
(मानस १। १३५)

अगस्त्य मुनिके शापवश रावणके राक्षस दूत शुकके विषयमें स्पष्टतया यह तथ्य प्रकाशित किया गया है कि वह शापवश ही, ज्ञानी मुनिसे निशिचर रूपको प्राप्त हो गया था—

'रिषि अगस्ति की साप भवानी। राच्छस भयउ रहा मुनि ग्यानी॥'
(मानस ५। ५६। ६)

कभी-कभी तो संगतिवश भी परिजनोंको अभिशापोंके कारण दुष्ट जन्मोंकी प्राप्ति होती दिखायी गयी है। परम प्रतापी नरेश प्रतापभानुके विप्रोद्वारा अभिशापित होनेपर उसके भाई, संगी, परिजन एवं सेना सभीको राक्षसरूपमें जन्म लेना पड़ा। गोस्वामीजीने इन पंक्तियोंमें यही तथ्य दर्शाया है—

काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा॥
दस सिर ताहि बीस भुज दंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा॥
भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुंभकरन बलु धामा॥
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू॥
रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भए निसाचर घोर घनेरे॥
(मानस १। १७५। १-३)

'मानस'में परलोक-प्रत्यय

यह तथ्य तो सहज स्वाभाविक है कि जहाँ पुनर्जन्म-विश्वास है, वहाँ परलोककी स्थिति भी निश्चितरूपसे मान्य है। अपने यहाँकी आस्थावान् आस्तिक बुद्धि एवं मनीषाने सदा इहलोकसे परे अन्य श्रेष्ठ लोककी स्थिति मानी है। उसने जीवके ऐहिक भौतिक हेतुवादी रूपसे सर्वथा परे उसके आमुष्मिक आध्यात्मिक दिव्य रूपकी वाञ्छनीय स्थितिको सहजरूपसे स्वीकार किया है। जीव तीनों रूपों—'साधक, सिद्ध, सुजान'—में सदा इसी उत्क्रान्तिके हेतु भगवदुन्मुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही साधनारत रहते हैं। जीवकी परमगति है—अपने प्रकृत रूपको प्राप्त करना। उसका प्रकृतरूप है—परमात्मा। जीव परमात्माका रूप है। वह वस्तुतः परमात्मा है—'तत्त्वमसि' 'सोऽहं' 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि महावाक्य इसी तथ्यके उद्घोषक हैं। गोस्वामीजीने जीवको—

'ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥'
(७। ११६। १)

—बताते हुए उसे मायाके कारण भव-पाश-बद्धतासे मुक्ति हेतु शास्त्रविहित ज्ञानयोगकी अपेक्षा भक्ति-पथको सहज निर्दिष्ट किया है—

राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥
(मानस ७। ११८। २)

गोस्वामीजीने 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'के सिद्धान्तानुसार—

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हहि होइ जाई॥

सदृश कथनोंके द्वारा जीवकी ऐहिकसे आमुष्मिक गतिका निरूपण स्पष्टतः किया है। उन्होंने तपश्चर्या एवं भगवत्प्रेमके फलस्वरूप सायुज्य, सालोक्य, सामीप्य आदि पारलौकिक मुक्ति-स्थितियोंपर भी अनेक स्थलोंपर प्रकाश डालते हुए 'मानस'के अनेक सच्चरित्रोंको उस मुक्ति-गतिको पाते हुए दिखाया है। गीधराज जटायु एवं स्वयं राजा दशरथकी मुक्ति इसके प्रमुख उदाहरणके रूपमें ली जा सकती है।

गोस्वामीजीके मतमें जीवने विशेषरूपसे मानवशरीर इसीलिये प्राप्त किया है कि वह हरि-पद-अनुरागमें लीन रहकर सदा लोकरञ्जन करे, लोकसेवामें रत रहे। वह 'निषेध'से परे 'विधि'में निरत रहे। गोस्वामीजीने स्वयं रामके द्वारा बड़े सुष्ठु ढंगसे इस तथ्यको दृष्टिमें रखते हुए उपदेश करवाया है। रामका निम्नलिखित कथन इस दृष्टिसे द्रष्टव्य है—

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥
सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ॥
एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
(मानस ७। ४२। ४; ४३। १)

महात्मा तुलसीदासने परलोकप्राप्तिका उत्कृष्टरूप स्वर्ग-प्राप्ति नहीं स्वीकार किया है, अपितु उन्होंने सत्यस्वरूप ब्रह्म रामकी प्रीतिकी ही जन्म-जन्म चाहना की है—उन्हें चारों पुरुषार्थोंसे कोई हेतु नहीं, भरतसदृश परम भागवतके शब्दोंमें बारंबार यही निवेदन किया है—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरवान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥
(मानस २। २०४)

तुलसीको जीवनमें मुक्तिकी स्थिति राम-पद-प्रीतिहीमें दृष्टिगत होती है। जीवकी परलोकवत् मुक्तिकी स्थिति वही है कि जब वह 'बिस्व रूप रघुबंस मनि' का सेवक बनकर उसके रूपमें आभासित इस जगत्‌की सेवामें लीन रहे। हनुमान्-सदृश सुजान सेवकको राम यही उपदेश देते हैं—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥
(मानस ४। ३)

इस प्रकार 'मानस'में बड़े ही विशद, गम्भीर, लोकोपकारी एवं सत्य स्थितिसे पुनर्जन्म एवं परलोककी स्थितिमें दृढ़ प्रत्यय रखते हुए जीवकी परम-लब्धि, उत्क्रान्ति-स्थिति एवं जीवन्मुक्त गतिकी प्राप्तिके उपायका सहज निरूपण किया गया है। यह निरूपण प्रत्येक देश-कालके निमित्त शाश्वतरूपमें उपयोगी एवं कल्याणकर है।

भगवान्‌से हीन जीवन जल जाय

गज बाजि घटा, भले भूरि भटा, बनिता, सुत भौंह तकैं सब वै।
धरनी, धनु, धाम, सरीरु भलो, सुरलोकहु चाहि इहै सुख स्वै॥
सब फोकट साटक है तुलसी, अपनो न कछू सपनो दिन द्वै।
जरि जाउ सो जीवनु जानकीनाथ! जियै जगमें तुम्हरो बिनु ह्वै॥
—तुलसीदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि कालिदासके काव्योंमें जन्मान्तर-दर्शन

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

'नानृषिः कुरुते काव्यम्।' (देवीभागवत ६ । १० । २३) —के अनुसार कविकुलगुरु कालिदास परमर्षि ही थे। उनके चरित्रको अन्तःसाक्ष्यके आधारपर कसनेपर वे परमर्षि ही ठहरते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीपर उनकी पूरी छाप है। गोस्वामीजीका 'पार्वती-मंगल' तो 'कुमारसम्भव' का अनुवाद है ही, मानसपर भी रघुवंशादिकी छाया है। कालिदास भी शिवपुराण-पद्मपुराणसे अत्यन्त प्रभावित हैं। अस्तु,

उन्होंने प्राक्तन संस्कार तथा सर्वसाधारणमें भी जन्मान्तरकी पहचानकी बात निज अनुभवपर ही लिखी है। वे अज तथा इन्दुमतीके सम्बन्धमें सर्वसाधारणकी धारणा व्यक्त करते हुए लिखते हैं—'मानो पूर्वकी रति अब 'अज'रूपी कामदेवको पहचानकर उनके अनुरूप बन गयी। मन जन्मान्तरकी संगतियोंको अवश्य जानता है'—

गतेयमात्मप्रतिरूपमेव मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम्।
(रघुवंश ७ । १५)

इस कथनसे उनकी निरभिमानिता भी प्रकट है। वे सभी वेद-पुराण, व्याकरण, छन्द, काव्य, साहित्य, ज्यौतिष, आयुर्वेदादिके साथ दर्शनमें भी पूर्ण निष्णात थे; फिर भी लेशमात्र अहंकार नहीं, प्रत्युत विनय ही प्रकट है। गोस्वामी तुलसीदासजी इसके पूर्वके श्लोक तथा इसकी छाया लेकर श्रीसीतारामके पुष्पवाटिकादि प्रसङ्गपर लिखते हैं—

तात जनकतनया यह सोई। धनुष जग्य जेहि कारन होई॥
× × × × × ×
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा॥
सो सब कारन जानु बिधाता। × × ×
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी॥
× × × । नहि पावहिं परतिय मनु डीठी॥
इत्यादि (मानस १ । २३० । १–४)

रघुवंश १ । २० में वे रघुके बारेमें लिखते हैं कि 'प्राक्तन-संस्कारकी तरह उनके कार्योंका पता पहले नहीं; फल मिलनेपर ही लगता था।' (इससे सिद्ध है कि सभीके गुण-परिणामादि फल प्राक्तन-संस्कारोंके ही परिणाम हैं)—

तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च।
फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव॥
(रघुवंश १ । २०)

'शाकुन्तल' (५।२) में लिखते हैं कि 'रमणीय पदार्थोंको देख तथा मधुर ध्वनियोंको सुनकर भी जो सुखी मनुष्य कभी-कभी पर्युत्सुक—उदास-सा दीखता है, उस समय निश्चय ही उसका मन पूर्वजन्मके स्थिर प्रेमसम्बन्धोंको स्मरण करता रहता है, यद्यपि वह उसे स्पष्ट नहीं प्रतीत होता[2]।'

इसी तरह उन्होंने अन्यत्र भी जन्मान्तर-सम्बन्धोंपर बहुत-सी बातें लिखी हैं। विस्तारभयसे यहाँ विचार नहीं किया जाता।

---

१. महाभारत १ । १९० । १३ में भी ऐसा ही प्रसङ्ग है—

तेषां तु द्रौपदीं दृष्ट्वा सर्वेषाममितौजसाम्। सम्प्रमथ्येन्द्रियग्रामं प्रादुरासीन्मनोभवः॥

कालिकापुराणमें वसिष्ठ-अरुन्धती-विवाहका प्रसङ्ग भी ऐसा ही है।

२. रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्राद्ध-तत्त्व-प्रश्नोत्तरी

(लेखक—श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन)

प्रश्न—श्राद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर—श्रद्धासे किया जानेवाला वह कार्य, जो पितरोंके निमित्त किया जाता है, श्राद्ध कहलाता है।

प्रश्न—कई लोग कहते हैं कि श्राद्धकर्म असत्य है और इसे ब्राह्मणोंने ही अपने लेने-खानेके लिये बनाया है। इस विषयपर आपका क्या विचार है ?

उत्तर—श्राद्धकर्म पूर्णरूपेण आवश्यक कर्म है और शास्त्रसम्मत है। हाँ, वर्तमानकालमें लोगोंमें ऐसी रीति ही चल पड़ी है कि जिस बातको वे समझ जायँ,—वह तो उनके लिये सत्य है; परंतु जो विषय उनकी समझके बाहर हो, उसे वे गलत कहने लगते हैं।

कलिकालके लोग प्रायः स्वार्थी हैं। उन्हें दूसरेका सुखी होना सुहाता नहीं। स्वयं तो मित्रोंके बड़े-बड़े भोज-निमन्त्रण स्वीकार करते हैं, मित्रोंको अपने घर भोजनके लिये निमन्त्रित करते हैं, रात-दिन निरर्थक व्ययमें आनन्द मनाते हैं; परंतु श्राद्धकर्ममें एक ब्राह्मण (जो हमसे बड़ी जातिका है और पूजनीय है) को भोजन करानेमें भार अनुभव करते हैं। जिन माता-पिताकी जीवनभर सेवा करके भी ऋण नहीं चुकाया जा सकता, उनके पीछे भी उनके लिये श्राद्धकर्म करते रहना आवश्यक है।

प्रश्न—श्राद्ध करनेसे क्या लाभ होता है ?

उत्तर—मनुष्यमात्रके लिये शास्त्रोंमें देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण—ये तीन ऋण बताये गये हैं। इनमें श्राद्धके द्वारा पितृ-ऋण उतारा जाता है।

विष्णुपुराणमें कहा गया है कि 'श्राद्धसे तृप्त होकर पितृगण समस्त कामनाओंको पूर्ण कर देते हैं।' (३।१५।५१) इसके अतिरिक्त श्राद्धकर्त्ता पुरुषसे विश्वेदेवगण, पितृगण, मातामह तथा कुटुम्बीजन—सभी संतुष्ट रहते हैं। (३।१५।५४) पितृपक्ष (आश्विनका कृष्णपक्ष) में तो पितृगण स्वयं श्राद्ध ग्रहण करने आते हैं तथा श्राद्ध मिलनेपर प्रसन्न होते हैं और न मिलनेपर निराश हो शाप देकर लौट जाते हैं। विष्णुपुराणमें पितृगण कहते हैं—'हमारे कुलमें क्या कोई ऐसा बुद्धिमान् धन्य पुरुष उत्पन्न होगा, जो धनके लोभको त्यागकर हमारे लिये पिण्डदान करेगा।' (३।१४।२२)

विष्णुपुराणमें श्राद्धकर्मके सरल-से-सरल उपाय बतलाये गये हैं। अतः इतनी सरलतासे होनेवाले कार्यको त्यागना नहीं चाहिये।

प्रश्न—पितरोंको श्राद्ध कैसे प्राप्त होता है ?

उत्तर—यदि हम चिट्ठीपर नाम-पता लिखकर लैटर-बक्समें डाल दें तो वह अभीष्ट पुरुषको, वह जहाँ भी है, अवश्य मिल जायगी। इसी प्रकार जिनका नामोच्चारण किया गया है, उन पितरोंको, वे जिस योनिमें भी हों, श्राद्ध प्राप्त हो जाता है। जिस प्रकार सभी पत्र पहले बड़े डाकघरमें एकत्रित होते हैं और फिर उनका अलग-अलग विभाग होकर उन्हें अभीष्ट स्थानोंमें पहुँचाया जाता है, उसी प्रकार अर्पित पदार्थका सूक्ष्म अंश सूर्य-रश्मियोंके द्वारा सूर्यलोकमें पहुँचता है और वहाँसे बँटवारा होता है तथा अभीष्ट पितरोंको प्राप्त होता है।

पितृपक्षमें विद्वान् ब्राह्मणोंके द्वारा आवाहन किये जानेपर पितृगण स्वयं उनके शरीरमें सूक्ष्मरूपसे स्थित हो जाते हैं। अन्नका स्थूल अंश ब्राह्मण खाता है और सूक्ष्म अंशको पितर ग्रहण करते हैं।

प्रश्न—यदि पितर पशु-योनिमें हों, तो उन्हें उस योनिके योग्य आहार हमारे द्वारा कैसे प्राप्त होगा ?

उत्तर—विदेशमें हम जितने रुपये भेजें, उतने ही रुपयोंका डालर आदि (देशके अनुसार विभिन्न सिक्के) होकर अभीष्ट व्यक्तिको प्राप्त हो जाते हैं। उसी प्रकार श्रद्धापूर्वक अर्पित अन्न पितृगणको, वे जैसे आहारके योग्य होते हैं, वैसा ही होकर उन्हें मिलता है।

प्रश्न—यदि पितर परमधाममें हों, जहाँ आनन्द-ही-आनन्द है, वहाँ तो उन्हें किसी वस्तुकी भी आवश्यकता नहीं है। फिर उनके लिये किया गया श्राद्ध क्या व्यर्थ चला जायगा ?

उत्तर—नहीं। जैसे, हम दूसरे शहरमें अभीष्ट व्यक्तिको कुछ रुपये भेजते हैं, परंतु रुपये वहाँ पहुँचनेपर पता चले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि अभीष्ट व्यक्ति तो मर चुका है, तब वह रुपये हमारे ही नाम होकर हमें ही मिल जायँगे।

ऐसे ही परमधामवासी पितरोंके निमित्त किया गया श्राद्ध पुण्यरूपसे हमें ही मिल जायगा। अतः हमारा लाभ तो सब प्रकारसे ही होगा।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः !

श्राद्ध-तर्पणका रहस्य तथा आवश्यकता एवं श्राद्ध-तर्पणकी वैज्ञानिकता

(लेखक—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'ब्रजेश')

हमारा सनातनधर्म पूर्ण सहिष्णु तथा विश्वहितकर है। इतना उदार कोई भी अन्य धर्म विश्वभरमें कहीं नहीं है। यह इसकी महान् विशेषता है। यहाँतक कि वर्षभरमें एक सम्पूर्ण पक्ष पूज्य पितरों आदिके प्रति शास्त्रीय कर्मादिद्वारा अपनी श्रद्धा-निष्ठादिको प्रकट करनेके लिये नियत है। कितना सुन्दर एवं सामयिक विधान है ? 'श्राद्ध' शब्दका श्रद्धासे पूर्ण सम्बन्ध है और इसी विशिष्टताको वह चरितार्थ करता है। प्रसिद्ध मुगल बादशाह शाहजहाँने भी धर्मके इस आचरणकी महत्ता स्वीकार कर उसकी सराहना की थी। बंदी बनाये जानेके पश्चात् जब औरंगजेबने उसके जमुना-जल पीने-पर पाबंदी लगा दी तो उसने एक फारसी शेर लिखकर औरंगजेबकी भर्त्सना इस प्रकार की कि 'हिंदू लोग प्रशंसाके योग्य हैं, जो अपने दिवंगत पितरोंको भी पानी पिलाते हैं और एक तू ऐसा मुसल्मान है, जो अपने बूढ़े जिन्दे बापको पानीके लिये इस प्रकार तरसाता है।' शाहजहाँकी इस वाणीमें कितनी मार्मिकता थी, जो औरंगजेबके हृदयमें तीरकी तरह चुभी। बात ही कुछ ऐसी थी।

यह पक्ष एवं इसके कर्म—सभी वेदोक्त एवं शास्त्रोक्त हैं। दानवीर राजा कर्णके साथ भी पुराणमें इसका सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। श्रद्धाके साथ मन्त्रका उच्चारण करके इस लोकसे मृतक हुए नित्य पितृ, नैमित्तिक पितृ प्रेत आदिकी योनिको प्राप्त पिता, पितामह आदि कुटुम्बियोंकी तृप्त्यर्थ शास्त्रविधिके अनुसार जो क्रिया की जाती है, उसका नाम 'श्राद्धपक्ष' है। हिंदूजाति इस लोकके साथ-ही-साथ परलोकपर भी दृष्टि रखती है; इसीलिये इसमें पिता, पितामह और प्रपितामहकी सद्गति तथा तृप्तिके लिये श्राद्ध-क्रिया नियत की हुई है। जीवित पितरोंकी तो सेवा हुआ ही करती है, उनमें हमारी श्रद्धा भी होती है, पर 'श्राद्ध' शब्द तो पारिभाषिक होता है। इसमें श्रद्धाका मधुर भाव निहित रहता है। अपने जिन पिता आदिसे हमें शरीर प्राप्त हुआ, हमारा लालन-पालन हुआ, यदि उनके नामसे हम एक विशेष पात्रका सत्कार न करें, तो यह हमारी कृतघ्नता होगी। उनके नामसे दान करनेपर परलोकगत उनका आत्मा तृप्त हो जाता है, शान्तिको प्राप्त होता है और उन्नति पाता है। श्राद्धानुष्ठानके यथावत् होनेपर प्रेतयोनि-प्राप्तका प्रेतत्व हट जाया करता है। पिण्डदानसे कष्ट-मुक्ति हो जाया करती है। जैसे हजारों कोसका शब्द रेडियोद्वारा तत्क्षण सर्वत्र प्राप्त हो जाता है, वैसे ही मनःसंकल्पद्वारा विधि एवं श्रद्धापूर्वक की हुई श्राद्ध आदि क्रियाएँ भी चन्द्रलोकस्थित पितरोंको प्राप्त होकर उन्हें प्रसन्न कर दिया करती हैं। चन्द्रमा मनका अधिष्ठाता है। वह हमारी मनमें संकल्पसे की हुई क्रियाको नित्य पितरोंके द्वारा सूक्ष्मतासे अपने लोकमें खींचकर हमारे पितरोंको तृप्त कर दिया करता है। मनद्वारा दिये हुए अन्न वा जलको वह सूक्ष्मरूपसे आकृष्ट करता है। श्राद्ध पिता, पितामह, प्रपितामह—इन तीन पुरुषोंका होता है। श्राद्धमें सदाचारी, तपस्वी, विद्वान्, स्वाध्यायशील सद्ब्राह्मणको ही भोजन करानेका मनुस्मृति आदिमें आदेश है; क्योंकि ऐसे ब्राह्मणकी प्रसन्नतासे प्रेतयोनि-प्राप्त जीवकी सद्गति होती है।

श्राद्ध बिल्कुल रहस्यपूर्ण, सोपपत्तिक एवं विज्ञानपूर्ण है। इसी विज्ञानतत्त्वपर यहाँ कुछ विचार किया जाता है।

आश्विन मासके कृष्णपक्षकी मृतककी तिथिमें सभी मृतक पितरोंके श्राद्ध किये जाते हैं। उसमें विज्ञान यह है कि इन दिनों चन्द्रमा अन्य मासोंकी अपेक्षा पृथ्वीके निकटतर हो जाता है। इस कारण उसकी आकर्षण-शक्तिका प्रभाव पृथिवी तथा उसमें अधिष्ठित प्राणियोंपर विशेषरूपसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ता है। तब जितने सूक्ष्म-शरीरयुक्त जीव चन्द्रलोकके ऊपरी भागमें स्थित पितृलोकमें जानेके लिये बहुत समयसे चल रहे होते हैं, वा चल पड़े होते हैं, उनका उद्देश्य करके उनके सम्बन्धियोंके द्वारा प्रदत्त पिण्ड अपने अन्तर्गत सोमके अंशसे उन जीवोंको आप्यायित करके, उनमें विशिष्ट शक्ति उत्पन्न करके, उन्हें शीघ्र और अनायास ही, अर्थात् बिना अपनी सहायताके ही पितृलोकमें प्राप्त करा दिया करते हैं। तब वे पितर भी उनकी ऐसी सहायता पाकर उन्हें हृदयसे समृद्धि तथा वंशवृद्धिका आशीर्वाद देते हैं।

जो जीव पितृलोकको प्राप्त हो जाते हैं, उनके लिये प्रदान किये हुए पिण्डों वा ब्राह्मण-भोजनके सूक्ष्मांश उनके पास पहुँचकर उनको आप्यायित करते हैं, जिनसे वे सुख प्राप्तकर पिण्डदाता तथा श्राद्धकर्ता पुत्रों आदिको आशीर्वाद देते हैं। प्रतिवर्ष क्षयाहके मास एवं तिथिमें जो श्राद्ध किया जाता है, उसमें कारण यह है कि तिथि होती है चन्द्रमासके तथा चन्द्रगतिके अनुसार। उसमें चन्द्रलोकमें वे पितर उसी मार्ग वा स्थानमें स्थित होते हैं, जब वे मरकर उसी तिथिमें उस मार्ग या स्थानको प्राप्त हुए थे। तब वे सूक्ष्माग्निसे प्राप्त कराये हुए उस श्राद्धके सूक्ष्मांशको अनायास प्राप्त कर लेते हैं। इसीलिये याज्ञवल्क्यस्मृतिमें कहा है—

मृतेऽहनि प्रकर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम्।
प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेऽहनि॥
(आचाराध्याय—श्राद्धप्रकरण २५६)

'वर्षे वर्षे मृततिथौ श्राद्धं कुर्यात्'
(बोधायनीय-पितृमेधशेष सूत्र खण्ड ३)

अब इसमें किये जानेवाले कर्तव्यकी विज्ञानपूर्णता देखिये।

श्राद्धके समय पृथ्वीपर कुश रक्खे जाते हैं और कुशोंपर यव-अक्षत आदिके पिण्ड रक्खे जाते हैं। पिण्डोंमें जौ, तिल, दूध, मधु और तुलसीपत्र आदि डाले जाते हैं। तब श्राद्धकर्ता नित्य पितरोंका, यम और परमेश्वरका ध्यान करता है एवं आचार्य वेदमन्त्रोंका गम्भीर स्वरसे उच्चारण करता है। इसपर यह जानना चाहिये कि चावलोंमें ठंडी बिजली और जवोंमें भी ठंडी बिजली होती है। तिलोंमें गरम बिजली और दूधमें भी गरम बिजली होती है। तुलसीपत्रमें दोनों प्रकारकी विद्युत् होती है। साधारण मनुष्य जब साधारण वचन बोलता है, तो उसके शरीरसे न्यून विद्युत् उत्पन्न होती है; पर जब कोई वेदवित् कर्मकाण्डी तथा ज्ञानी विद्वान् नियत पद-प्रयोगपरिपाटीवाले तथा नियत आनुपूर्वीवाले पितृगणोंसे सम्बद्ध वेदमन्त्रोंको पढ़ता है, तब नाभिचक्रसे समुत्थित वायु पुरुषके शरीरमें उष्ण-विद्युत् उत्पन्न करके उसे शरीरसे बाहर निकालता है। इधर वेदके शब्दोंके द्वारा विद्वान् ब्राह्मणके शरीरसे अलौकिक वैदिक क्रियासिद्ध विद्युत् भी पिण्डोंमें प्रवेश करती है।

इस प्रकार बिजलियोंके समूह हो जानेपर मधुकी विद्युत् उनका मिश्रण करनेवाली बनती है। मधुकी विद्युत् चावल, जौ, दूध, तिल, तुलसीपत्र तथा वेदमन्त्रोंकी विद्युतोंको मिलाकर एक साथ कर देती है। नीचे कुश इस कारण रक्खे जाते हैं कि पिण्डोंसे उत्पन्न विद्युत् पृथ्वीमें संक्रान्त न हो जाय। कुशाएँ पिण्डोंकी विद्युतोंको पृथ्वीमें नहीं जाने देतीं। इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णने ध्यानके समय ध्यानकर्ताकी विद्युत्की रक्षाके लिये 'चैलाजिनकुशोत्तरम्' (६।११)—कुशाका आसन ऊपर रखनेका आदेश दिया है। मधुने मिलकर जो अलौकिक विद्युत् पैदा की थी, वह श्राद्धकर्ताकी मानसिक शक्तिद्वारा उधर ही जाती है, जिधर उसका मन जाता है और मन नित्य-पितरों या अपने पितरों तथा यम एवं परमेश्वरके ध्यानमें लगा होता है। तब वह बिजली भी इनके पास चमकती है और यम या नित्य-पितर सर्वज्ञ होनेसे श्राद्धकर्ताके पुत्र आदिके किये हुए श्राद्धके ब्राह्मणकी वैश्वानर-अग्निसे सूक्ष्मकृत अन्नको मृत पितरोंके पास तदनुकूल करके भेज देते हैं, चाहे वे पितृलोकमें हों या अन्य लोकमें अथवा किसी अन्य योनिमें हों।

कोई यह शङ्का करे कि 'मृतक प्राणी श्राद्धको कैसे पावेगा, जब कि जीवित भी दूसरेसे खाये हुएको नहीं पा सकता?' तो इसपर सभीको यह जानना चाहिये कि तर्पणके जल या श्राद्धके अन्नको जीवित पुरुष स्थूल-शरीरमूलक अशक्तिके कारण नहीं खींच सकता, पर मृतक तो सूक्ष्म पितृशरीरको प्राप्त करके आकाशमें सूक्ष्मतासे ठहरे हुए उसको खींच सकता है। इसके उदाहरणमें रेडियोको ले लीजिये। जिसके पास यह यन्त्र होता है, वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंग्लैंड, जर्मनी, रूस, अमेरिका आदि देशोंमें उसी समय हो रहे हुए शब्दोंको खींच सकता है; परंतु जिसके पास वह यन्त्र नहीं है, वह लंदन आदिमें तो क्या, भारतमें भी हो रहे हुए कुछ दूरके भी शब्दोंको खींच नहीं सकता। इसी प्रकार जीवितोंके पास दूसरेसे दिये हुए श्राद्ध-तर्पणके आकाशस्थ रसको खींचनेकी शक्ति नहीं होती, परंतु मृतकोंके पितृलोकमें जानेसे उनके पास वह शक्ति सूक्ष्मतावश अनायास उपस्थित हो जाती है। स्थूलशरीरमें तो वह शक्ति नहीं रहती, परंतु सूक्ष्मशरीरमें वह रहती है, इसीलिये युधिष्ठिर स्थूलशरीरके साथ स्वर्ग-लोकमें विलम्बसे प्राप्त हुए। परंतु भीम-अर्जुन आदि सर जानेके कारण स्थूल शरीरके त्यागके कारण युधिष्ठिरसे पूर्व ही प्राप्त हो गये—यह महाभारतमें स्पष्ट है। स्थूल बीजमें वृक्षोत्पादन-शक्ति नहीं होती, जब वह पृथ्वीमें बोया जाकर सर जाता है, तब उसमें सूक्ष्मता आ जानेसे वह शक्ति प्राप्त हो जाती है। यह स्थूल तथा सूक्ष्म शक्तिका अन्तर है।

इस प्रकार स्थूलशरीरके नाश होनेपर प्राप्त हुए देव-पितृ आदिके शरीरमें तो वह शक्ति हुआ करती है। जैसे हम होम करें, तो उसके अग्निद्वारा आकाशमें पहुँचाये हुए सूक्ष्म अंशको सूर्य आदि देव खींच सकते हैं, वैसे ही हमसे किये श्राद्धादिके ब्राह्मणकी अग्नि और महाग्निद्वारा आकाशमें प्राप्त हुए सूक्ष्म अंशको चन्द्रलोकस्थित पितर यन्त्रस्थानीय अपनी शक्तिके आश्रयसे खींच सकते हैं।

आधुनिक विज्ञान भी आधार एवं माध्यमको पूर्णतया मानता है। टेलीपैथीमें यह विज्ञान नहीं तो और क्या है? इस शास्त्रीय विज्ञानका प्रत्यक्ष चमत्कार हमें उस समय देखनेका अवसर मिला, जब कई वर्ष पहले विन्ध्याचलमें एक सिद्ध महात्मा पधारे थे। उनमें यह चमत्कार या दैवीसिद्धि थी कि वे साँपके काटे हुए व्यक्तिको ठीक कर देते थे—चाहे वह कितनी ही दूरपर क्यों न हो। जो व्यक्ति उनके पास इस आशयकी खबर लाता, मन्त्र पढ़कर वे उसके कानपर जोरसे थप्पड़ मारते, उधर वह व्यक्ति ठीक हो जाता। समाचार देनेवाले व्यक्तिको ही वे माध्यम बनाकर उसे ठीक कर देते। यदि ऐसा सर्पदंशित व्यक्ति उनके पास किसी कारण न लाया जा सकता तो महात्माजीका कहना था कि माध्यमके आधारपर एवं वायु-तरंगके आधारपर उसका सूक्ष्म सम्पर्क बना रहता है। समस्त वायुमण्डलमें अर्थावा (इथर) तत्त्व है ही। साधन-सिद्ध योगी महात्मा इसी वायुमण्डलमें अपना सम्पर्क बराबर बनाये रखते हैं।

यह श्राद्धीय शक्ति ऋषियोंने हजारों वर्ष साधे हुए तपस्या, योग आदिके बलके द्वारा प्राप्त की है। इसका कोई भी शास्त्रज्ञ विद्वान् खण्डन नहीं कर सकता। जो पितर पितृलोकमें न होनेसे वैसी शक्ति नहीं रखते कि वे सूक्ष्मरूप बनकर श्राद्धान्न-भोजन करते हुए ब्राह्मणोंके शरीरमें प्रवेश कर सकें, किंतु वे किसी मनुष्यादिके स्थूलशरीरकी योनिको प्राप्त कर चुके हों; तब हमारे द्वारा दिये हुए श्राद्धके अन्नको वसु, रुद्र, आदित्य ही आकृष्ट करके उन स्थूल योनिवाले पितरोंको सौंप दिया करते हैं। इस प्रकार मृतक-श्राद्ध रहस्यपूर्ण, सोपपत्तिक और विज्ञानपूर्ण सिद्ध है।

मृत्यु-समयकी अनुपम सेवा

मृत्यु-समयकी अनुपम सेवा—मनसे दूर करे संसार।
करे न कभी जगत्‌की, भोगोंकी, घरकी चर्चा निस्सार॥
राग-कामना जगे, बढ़े जिससे ममता मिथ्याऽहंकार।
छा जाये मनपर मिथ्या भय-चिन्ता-शोक-विषाद अपार॥
असत्-अनित्य-दुःखमय जगके भोग अशुचि सब भरे विकार।
इनके दोष-दुःख दिखलाकर प्रभु-चर्चा कर बारंबार॥
नाम-रूप-गुण गाये जिससे बन जाये मन ब्रह्माकार।
मानव-जन्म सफल हो जाये, मिल जायें प्रभु सर्वाधार॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्राद्ध और परलोक

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

अथर्ववेद (१२ । २ । ४५) में 'पितॄणां लोकमपि गच्छन्तु' तथा शतपथ (१४ । १ । ७ । १९) में भी पितृलोकादिका सुस्पष्ट उल्लेख है । स्कन्दपुराण काशीखण्ड तथा सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय, त्रिप्रश्नवासना, श्लोक १३में पितृलोकको चन्द्रमाके ऊपर बतलाया गया है—

'विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः स्वाधः सुधादीधितिमामनन्ति ।'
(वही, १३)

'वीरमित्रोदय' तथा 'ब्रह्मपुराण'में आता है कि 'विधिपूर्वक श्राद्ध करनेवाला आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त सम्पूर्ण विश्वको तृप्त कर देता है'—

यो वा विधानतः श्राद्धं कुर्यात् स्वविभवोचितम् ।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत् प्रीणाति मानवः ॥

श्राद्धकर्ता कहता भी है—

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः ।
तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः ॥

श्राद्धकी वस्तुएँ पितरोंको कैसे प्राप्त होती हैं ?

शास्त्रोंमें बतलाया गया है कि संकल्पप्रोक्त नाम-गोत्रोंके आधारपर विश्वदेवता तथा अग्निष्वात्तादि दिव्य पितृगण हव्य-कव्यको पितरोंतक पहुँचा देते हैं । यदि पिता-माता या पितृगण देवयोनिमें भी पहुँच गये हों तो यहाँ दिये गये हव्य-कव्य उन्हें देवभोज्य अमृतादि बनकर संयोगसे प्राप्त हो जाते हैं । पशुयोनिमें भी वह अभीष्ट तृणादिके रूपमें निर्दिष्ट जीवके पास पहुँच जाता है । नागादि योनियोंमें वह हव्य-कव्य वायुरूपसे, यक्षयोनिमें पानरूपसे, पितृलोकमें स्वधारूप तथा अन्य योनियोंमें भी वह अभीष्ट तृप्तिकर खाद्य बनकर पहुँच जाता है । 'नाम, गोत्र, हृदयकी भक्ति-श्रद्धा एवं शुद्ध उच्चारित मन्त्र हव्य-कव्योंको संदेशसहित विश्वदेवता एवं अग्निष्वात्तादि पितरोंद्वारा निर्दिष्ट गन्तव्यस्थल तक ढूँढ़कर वैसे ही पहुँचा दिये जाते हैं—जैसे गोशालामें बछड़ा अपनी माताके पास'—

यथा गोष्ठे प्रनष्टां वै वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा तं नयते मन्त्रो जन्तुर्यत्रावतिष्ठते ॥
नामगोत्रं च मन्त्रश्च दत्तमन्नं नयन्ति तम् ।
अपि योनिशतं प्राप्तांस्तृप्तिस्ताननुगच्छति ॥

(वायुपुराण उपोद्घा० पा० ८३ । ११९-२०; ब्रह्मपुराण २२० । १ । २; मत्स्य० १९ । ४ । ११; पद्म० १ । १० । ३८-३९)

पितृलोकगतश्चान्नं श्राद्धे भुङ्क्ते स्वधामयम् ।
प्रेतस्य श्राद्धकर्त्तुश्च पुष्टिः श्राद्धे कृते ध्रुवम् ॥
तस्माच्छ्राद्धं सदा कार्यं शोकं त्यक्त्वा निरर्थकम् ।

शेष पूर्ववत् है ।

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण २ । ७८ । १२, बृहद्विष्णुधर्मशास्त्र २० । ३४ । ३६)

पितृगण देवताओंसे भी अधिक कृपालु होते हैं । वे अधिक सहयोग भी करते हैं । 'जहाँ श्राद्ध नहीं होता, वहाँ दुःख-क्लेश, रोग होता है, आयुका नाश होता है—कोई श्रेय नहीं होता'—

न तत्र वीरा जायन्ते आरोग्यं न शतायुषः ।
न च श्रेयोऽधिगच्छन्ति यत्र श्राद्धं विवर्जितम् ॥

(श्राद्धकल्पलता, श्राद्धप्रकाश, श्राद्धविवेक, श्राद्धचन्द्रिका, मार्कण्डेयपुराण)

अतः शाकादिसे भी श्राद्ध अवश्य करना चाहिये—

तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकैरपि यथाविधि ।
कुर्वीत श्रद्धया तस्य कुले कश्चिन्न सीदति ॥

(ब्रह्मपुराण, श्राद्धचन्द्रिका)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्राद्धसे जातिस्मरता और मोक्ष—एक विशेष उदाहरण

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

हिंदू-श्राद्धकी विश्वदुर्लभ उदात्त भावना

श्रद्धालु हिंदू श्राद्धकर्ता तर्पण एवं श्राद्धमें भावपूर्ण आर्द्रहृदयसे कहता है—

ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः ।
तेषां हि दत्तमक्षय्यमिदमस्तु तिलोदकम् ॥
ये बान्धवाऽबान्धवाश्च येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
ते तृप्तिमखिला यान्तु मद्दत्तेनाम्बुना सदा[1] ॥
(मत्स्यपुराण, १०१ । २४, कातीयतर्पण-प्रयोग)

नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः ।
तेषामाप्यायनायैतद् दीयते सलिलं मया ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः ।
तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः ॥
अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम् ।
आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम् ॥
(वायुपुराण, ११० । २१-४०, कातीयतर्पण)

अर्थात् 'जो भी असहाय जीव मेरे कुलके हों, जो मेरे इस जन्मके बन्धु-बान्धव हों या उस जन्मके या जो कोई भी बन्धु-बान्धवोंसे रहित हों या जो कोई किसी भी लोकमें या नरकादिमें यातनाग्रस्त हों, वे मेरे इस श्राद्धके पिण्ड या तिलजलके तर्पणसे पूर्ण दुःखमुक्त एवं पूर्ण तृप्त हो जायँ। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त सभी देवता, पितर, मनुष्य, कीट-पतंग, सात द्वीपके निवासी, ज्ञाताज्ञात ब्रह्मलोकसे लेकर भूलोक तकके सभी प्राणी मेरे इस सद्भावपूर्ण श्राद्ध-तर्पणसे पूर्ण तृप्त—आप्यायित एवं सुखी हो जायँ[2]।'

पद्मपुराण, उत्तरखण्ड २१३-१४ अध्यायोंमें कथा आती है कि एक ऋषिपुत्रने अपने कई जन्मपूर्वकी गोधा-योनि प्राप्त माताका श्राद्धद्वारा उद्धार किया—'पूर्वजन्मनि या माता पिता यश्च···तयोश्च पितरौ यौ हि·····पितामहौ ।' (२१४ । १७ मोर संस्क०) वस्तुतः ऐसी भावना विश्वके अन्य किसी भी धर्ममें अत्यन्त दुर्लभ या अप्राप्य ही है ।

अत्यन्त सद्भाव तथा श्रद्धासे किये जानेके कारण ही इस कर्मका नाम 'श्राद्ध' है—'श्रद्धाश्रद्धार्चाभ्यो णः ।' (पा० ५ । २ । १०१) 'श्रद्धया क्रियते यस्माच्छ्राद्धं तेन प्रकीर्तितम् ।' (श्राद्धतत्त्व, पुलस्त्यस्मृति, वायुपुराण)

श्राद्धकर्ताको आयु, प्रजा, धन, राज्य, ज्ञान, स्वर्ग, मोक्ष, जातिस्मरता आदि सब प्राप्त होते हैं—

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः ॥
(याज्ञवल्क्यस्मृति १ । २७०, गरुडपुराण १ । ९९ । ३९, अग्निपुराण १०५ । ४१)

श्राद्धे प्रतिष्ठितो लोकः श्राद्धे योगः प्रवर्तते ।
श्राद्धात् परतरं नास्ति श्रेयस्करमुदाहृतम् ॥
(कूर्मपुराण, श्राद्धचन्द्रिका, हरिवंश १ । २१ । १)

पितनभ्यर्च्य धर्मेण····· ।
स्मृतिः प्रत्यवमर्शश्च तेषां जात्यन्तरेऽभवत् ॥
(हरिवंश १ । २१ । १७, १८)

प्रज्ञा पुष्टिः स्मृतिर्मेधा राज्यमारोग्यमेव च ।
पितॄणां हि प्रसादेन प्राप्यते सुमहात्मनाम् ॥
(वायु० ७३ । ७१)

इस सम्बन्धमें सात कौशिक-पुत्रोंकी कथाचर्चा जो सभी श्राद्धविधि-क्रिया (एकोद्दिष्ट श्राद्ध, पार्वण, युगादि, तीर्थश्राद्ध एवं अन्वष्टकादि सभी श्राद्ध) आदिमें तथा प्रायः सभी श्राद्धपुस्तकों एवं पुराणोंमें भी आयी है और जो हरिवंश(पर्व १, अ० २१-२४) में सर्वाधिक विस्तारसे है, अवश्य ध्येय है।* इन सातोंके क्रमशः वाग्दुष्ट, क्रोधन, हिंस्र,

---

१. कहीं-कहीं 'यश्चास्मत्तोऽभिवाञ्छति' पाठ है—भाव है, जो मुझसे जल चाहता हो ।

२. सर्वत्र ब्रह्मदर्शन भावनासे इस प्रकार दिये गये पिण्ड-तर्पणादिसे कर्ता तथा उद्दिष्ट जीवोंको शीघ्र लाभ होता है ।

* क्योंकि सभी श्राद्धोंमें भी यही मूलमन्त्र है, जो इस प्रकार है—

सप्त व्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ ।
चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥
तेऽभिजाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं किमवसीदथ ॥
(गरुडपुराण २१० । २०-२१, जीवानन्द, रासमोहन एवं बंगवासी संस्क० । बेंकटेश्वरका २१८वाँ अध्याय, हरिवंश १ । २४ । २०-२१, पद्मपुराण, सृष्टि० १०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिशुन, कवि, खसृम और पितृवर्ती—ये नाम थे। इनके कर्म भी नामानुरूप ही थे। एक बार गौके सम्बन्धमें इन्होंने अपने गुरु गार्ग्यसे भारी वञ्चना कर दी। फलतः अगले जन्ममें ये सातों ही दशार्ण देशमें व्याध हुए।† पर व्याधयोनिमें भी पितृवर्ती (श्राद्धकर्ता) के प्रभावसे ये सभी धर्मविचक्षण एवं जातिस्मर हुए—

स्मृतिः प्रत्यवमर्शश्च तेषां जात्यन्तन्तरेऽभवत्।
जाता व्याधा दशार्णेषु सप्त धर्मविचक्षणाः॥
(हरिवंश १। २१। १८)

जातिस्मृति होनेके कारण ये अत्यन्त सावधान हो गये और लोभ, क्रोध, अनृतसे बचकर मातृपितृभक्तिरत रहने लगे। कर्मानुसार इस जन्ममें इनके निर्वैर, निर्वृति, शान्त, निर्मन्यु, कृति, वैधस और मातृवर्ती—ये (सात) नाम हुए। माता-पिताके मरते ही इन्होंने भृगुपतनद्वारा प्राण-त्याग किया। इस शुभ कर्मसे अगले जन्ममें कालंजर पर्वत (चित्रकूटके पास महोबाके निकट) पर ये मृग हुए। वहाँ भी ये जातिस्मर रहे—

'तमेवार्थमनुध्यान्तो जातिस्मरणसम्भवम्।'
(हरिवंश १। २१। २६)

वहाँ भी प्राण-साधनके द्वारा तप करते हुए प्राण छोड़कर ये सातों शरद्वीपमें चक्रवाक पक्षी हुए और अन्तमें मानसरोवरमें हंस हुए। वहाँ भी इन्हें जातिस्मरता बनी रही। कर्मानुसार उस समय इनके सुमना, शुचिवाक्, शुद्ध, पञ्चम, छिद्रदर्शन, सुनेत्र और स्वतन्त्र—ये नाम थे—

अथ ते सोदरा जाता हंसा मानसचारिणः।
जातिस्मराः सुसंयुक्ताः सप्तैव ब्रह्मचारिणः॥
(हरिवंश १। २१। ३३)

'ततो ज्ञानं च जातिं च ते हि प्रापुर्गुणोत्तराम्॥'
(हरिवंश १। २१। ३५)

जब ये हंसयोनिमें थे तभी नीप देशके राजा 'विभ्राज'को देखकर सातवें 'स्वतन्त्र' नामक पक्षीको तपसे थककर राजा होनेकी वासना हो गयी। उसके दो साथियोंने भी मन्त्री होनेकी कामना की। यह बात शेष चार हंसोंको भली न लगी। अतः पूर्वके तीन चक्रवाक काम्पिल्य[1] नगरमें राजाके मन्त्री हो गये। पर शेष चारों हंस जातिस्मर ब्राह्मण हुए—

'स्मृतिमन्तोऽत्र चत्वारस्त्रयस्तु परिमोहिताः।'
(हरिवंश १। २३। १७)

'स्वतन्त्र' नामक हंस अणुहका पुत्र ब्रह्मदत्त नामक राजा हुआ, जैसा कि उसका पूर्वशरीरमें संकल्प हुआ था। छिद्रदर्शी और सुनेत्र उसके मन्त्री हुए। शेष चार गरीब श्रोत्रिय हुए, किंतु उन्हें जातिस्मरता बनी रही। ब्रह्मदत्त भी सर्वभूतरुतज्ञ (सभी जीवोंकी भाषा समझनेवाला) था। एक बार वह अपनी रानी संनतिके साथ वनमें घूम रहा था कि पिपीलिका-दम्पतिके संगमविलास-वार्तापर उसे हँसी आ गयी। संनतिने उससे हँसीका कारण पूछा। राजाने बतला

---

† इस दशार्ण देशका वर्णन सभी पुराणों तथा मेघदूत १। २३में भी आया है। इसमें दशार्णा (आजकी धसान) नदी बहती है। यह मालवाका पहले पूर्वी भाग था, जिसकी राजधानी विदिशा (आजका भेलसा नगर) थी, जो वेत्रवती (आजकी बेतवा) नदीके तटपर बसा है।

(Imperial Gazetteer Indian Empire).

महाभारतमें निम्नस्थलोंपर दशार्णका उल्लेख है—१। ११२। २५, (गी० प्रे०का संस्करण), २। २९। ५, २। ३२। ७, ३। ६। १३-१६ तथा ५। १८९-१९२ तकके अध्यायोंमें बार-बार ६। ९। ४१-४२, ६। ५१। १२ तथा १४। ८३। ५-७ आदिमें है। दमयन्तीका जन्म यहीं हुआ था।

१. यह काम्पिल्य पहले कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत था और पाञ्चालदेशीय द्रुपदादि राजाओंकी राजधानी भी यहीं थी। द्रौपदीका स्वयंवर भी यहीं हुआ था। (महाभारत आदिपर्व १३७।७३, शान्तिपर्व १३९।५) वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड ३३।१९, यजुर्वेद, २३।८, तैत्ति०संहि० ७। ४। १९, मैत्रायणी संहि० ३। १२। २०, काठक संहिता ४। ८, शतपथब्राह्मण १३। २। ८। ३)

(Geographical Dictionary of Ancient and Madievel India, Page 88, Archaeological Survey Report 1-255)

आज यह नगर फर्रुखाबाद, फतेहगढ़से पश्चिम, पश्चिमी रेलवेके कम्पिलरोड और कायमगंज स्टेशनके बीच है। यह एक प्रसिद्ध जैनतीर्थ भी है। यह १३ वें तीर्थङ्कर श्रीविमलनाथका जन्मस्थल है। (तीर्थाङ्क पृ० १०७, ५४८। तथा जैन 'अल्प परिचित सैद्धान्तिक कोश')।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया, पर उसे इस बातपर विश्वास न हुआ कि कोई मनुष्य चींटीकी बात भी समझ सकेगा। अन्तमें वह प्राण छोड़नेपर तैयार हो गयी। राजाने भगवान्‌की शरण ली। भगवान्‌ने स्वप्नमें अगले दिन कल्याण-प्राप्तिका आश्वासन दिया। दूसरे दिन जब वह राजा अपने मन्त्रियोंके साथ सरोवर-स्नानकर चिन्ताकुल-हृदयसे लौट रहा था तो उन चारों ब्राह्मणोंने उसे सुनाकर ये श्लोक पढ़े—

सप्त व्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ।
चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे॥
तेऽभिजाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः।
प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं किमवसीदथ॥

(हरिवंश १। २४। २०-२१, गरुडपुराण १। २१०। २०-२१, पद्म० १। १०)

इतना सुनना था कि ब्रह्मदत्त अपने मन्त्रियोंसहित बेहोश हो गया। फिर जातिस्मरता-योग आदिको प्राप्तकर वह अपने लड़के विष्वक्सेनको राजगद्दीपर बैठाकर वन चला गया। उसकी रानी संनति भी योगिनी ही थी। वह भी उसके साथ वन चली गयी और कहा कि 'मैं सब कुछ जानती हुई भी तुम्हें राज्यसे मुक्त करना चाहती थी।' इस तरह ये सातों ही मुक्त हो गये।

तर्पण और श्राद्ध

(लेखक—श्रीमूलनारायणजी मालवीय)

भारतवर्षमें रहनेवाले वर्णाश्रम-धर्मके अनुयायियोंको पितृ-ऋणसे उऋण होनेके लिये तर्पण और श्राद्धकी सुन्दर व्यवस्था है। द्विजातियोंको नित्यके कर्म संध्यावन्दनके साथ जलसे तर्पण करनेका आदेश धार्मिक ग्रन्थोंके द्वारा प्राप्त होता है। हिंदू धर्ममें जिस प्रकार जीवित मानवों, पशु-पक्षियों तथा स्थावर-जङ्गमको जलसे तृप्त करनेकी व्यवस्था है, उसी प्रकार मृतकोंको तर्पणके द्वारा भी है। महाराज भगीरथ जिस समय भूतलपर पतितपावनी श्रीगङ्गाजीको लाये, उसी अवसरपर सृष्टिनायक ब्रह्माजीने स्वयं उनके पास पधारकर कहा कि 'नर-श्रेष्ठ! सगरके साठ हजार पुत्रोंका उद्धार तुमने कर दिया। अब तुम श्रीगङ्गाजीके पवित्र जलसे अपने पितामहोंका तर्पण करो।'

पितामहानां सर्वेषां त्वमत्र मनुजाधिप।
कुरुष्व सलिलं राजन्! ×××××॥

(वाल्मीकि० १। ४४। ७)

सनातनधर्मसे सम्बन्धित मनुष्योंकी प्रबल इच्छा रहती है कि 'मेरी संतान जो हो वह मरनेके बाद तर्पण और पिण्डदान-से मुझे तृप्त करे।' महाभारतके युद्धके प्रारम्भमें अर्जुन इसीलिये युद्धसे कतराते थे कि—

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥

(गीता १। ४२)

वर्णसंकर होनेसे कुलघाती समग्र कुलको निश्चय ही नरकमें ले जाता है और पिण्डदान तथा तर्पणादि क्रियाओंके लुप्त हो जानेपर उनके पितरोंका अधःपतन होता है।

'पुत्र' शब्दकी व्याख्या जहाँपर की गयी है, उसका भाव यह है कि 'पुन्नाम नरकसे पिताको बचानेवाला ही पुत्र होता है'—

पुंनाम्नो नरकाद् यस्मात् त्रायते पितरं सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा॥

(मनु० ९। १३८)

पुत्रसम्बन्धी निम्नलिखित श्लोक एक विद्वान्‌द्वारा अद्‌भुत रामायणका मिला, जिसमें भगवान् रामके पास महाराज दशरथने सुमन्तके द्वारा यह संदेश भेजा था—

जीवितो वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरि भोजनात्।
गयायां पिण्डदानेन त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता॥

इन्हीं सब ऋषिप्रणीत ग्रन्थोंकी बातोंसे मानवोंको प्रेरणा तथा प्रोत्साहन मिलता है और धार्मिक कृत्योंमें रुचि प्राप्त होती है। तर्पण न करनेवालेके लिये तो यहाँतक लिखा है कि—

नास्तिक्यादथवा लौल्यान्न तर्पयति वै सुतः।
पिबन्ति देहिनः स्रावं पितरोऽस्य जलार्थिनः॥

अर्थात् 'नास्तिकतासे अथवा चञ्चलतासे जो पुरुष तर्पण नहीं करता, उसके पितर पिपासित होते हैं और देहसे निकले हुए अपवित्र जलको पीते हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् रामको अपनी वनयात्रामें कई जगहोंपर तर्पण और पिण्डदान करना पड़ा था। सर्वप्रथम भरतजी-द्वारा जिस समय पिताके स्वर्गवासकी सूचना मिली, उस समय दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके आपने जलसे तर्पण किया और कहा—

एतत् ते राजशार्दूल विमलं तोयमक्षयम्।
पितृलोकगतस्याद्य मद्दत्तमुपतिष्ठतु ॥
(वाल्मीकि० २। १०३। २७)

'मेरे पूज्य पिता, राजशिरोमणि महाराज! आज मेरा दिया हुआ यह निर्मल जल पितृलोकमें गये हुए आपको अक्षय रूपसे प्राप्त हो।'

अधिकतर गोदुग्धद्वारा पकायी खीर, जौके आटे अथवा मावाके द्वारा पिण्ड बनाये जाते हैं; किंतु भगवान् रामने इंगुदीके गूदेमें बेर मिलाकर पिण्ड तैयार किया और कहा कि 'महाराज! प्रसन्नतापूर्वक यह भोजन स्वीकार कीजिये; क्योंकि आजकल यही हमलोगोंका आहार है। मनुष्य स्वयं जो अन्न खाता है, वही उसके देवता भी ग्रहण करते हैं'—

इदं भुङ्क्ष्व महाराज प्रीतो यदशना वयम्।
यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः ॥
(वाल्मीकि० २। १०३। ३०)

जिस समय गृध्रराज जटायु श्रीसीताजीके हरणके समय रावणके द्वारा हत हुआ था—अन्तिम श्वास ले रहा था, उस समय भगवान् रामने जटायुको गोदमें उठा लिया। किसी भक्त कविका कहना है कि—

अधम जाति को गीध अपावन नित ही मांस अहारी।
ताहि दई गति पितु समान तुम सुभग गोद बैठारी॥

जटायुके स्वर्ग-प्राप्त होनेके बाद भगवान् रामने इनका दाह-संस्कार किया और गोदावरीके जलसे जलाञ्जलि दी तथा रोहीके गूदेके द्वारा पिण्ड बनाकर कुशापर रख पिण्ड-दान किया। 'ब्राह्मणगण परलोकवासीको स्वर्गप्राप्ति करानेके उद्देश्यसे जिन पितर-सम्बन्धी मन्त्रोंका जप बतलाते हैं, उन सब मन्त्रोंका जप भगवान् रामने किया'—

यद् यत् प्रेतस्य मर्त्यस्य कथयन्ति द्विजातयः।
तत्स्वर्गगमनं पित्र्यं तस्य रामो जजाप ह ॥
(वाल्मीकि० ३। ६०। ३४)

जंगलमें घूमते हुए जिस समय भगवान् राम अत्रिमुनि-के आश्रममें पहुँचे, उस समय ऋषिने कहा कि 'आप पिता-मह ब्रह्माजीद्वारा निर्मित पुष्करतीर्थमें जाकर अपने स्वर्गवासी पिताजीके लिये तर्पण और पिण्डदान कीजिये।' पुष्कर पहुँचकर भगवान् रामने इंगुदी, बेर, आँवले और पके बेलके द्वारा पिण्डदान किया तथा श्रीलक्ष्मणजीद्वारा एकत्रित कंदमूलसे ब्राह्मणोंको भोजन कराया। जिस समय ब्राह्मणमण्डली भोजन कर रही थी, उस समय श्रीसीताजी वहाँसे चली गयीं। श्रीरामजीने इसका कारण पूछा तो श्री-जानकीजीने कहा कि 'ब्राह्मणोंके साथ महाराज दशरथजी वहाँ उपस्थित थे, इसलिये श्वसुरके सामनेकी जो मर्यादा है, उसीको रखनेके लिये वहाँसे चली गयी थीं।' इसीसे मिलती-जुलती बात पूज्य महामना मालवीयजी महाराजने प्रयागमें त्रिवेणीतट-पर सनातनधर्म सभामें भारतके प्रसिद्ध धार्मिक विद्वानोंके सम्मुख कही थी कि 'जिस समय मैं गयामें पिण्डदान कर रहा था, उस समय मुझे पूर्ण भासित हुआ कि मेरे दिये हुए पिण्डको प्रत्यक्षरूपसे कोई दोनों हाथोंसे ले रहा है।' आश्विन मासके पितृपक्षमें महामनाजी श्राद्ध करते थे। एक बार मुझे भी आपके यहाँ ब्राह्मण-भोजनमें सम्मिलित होना पड़ा था। महामनामें मैंने जो श्रद्धा देखी, शिष्टाचार देखा, वह अन्यत्र मुझे देखनेको नहीं मिला। आश्विनके श्राद्धके सम्बन्धमें यह पढ़ा जाता है—

सूर्ये कन्यागते श्राद्धं यो न कुर्याद् गृहाश्रमी।
धनपुत्रादि कुतस्तस्य पितृनिःश्वासपीडनात्॥

श्राद्धके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें बहुत कुछ लिखा गया है। ब्राह्मणभोजनमें सुपात्रको जहाँ भोजन करानेकी व्यवस्था है, वहीं भोजनकी सामग्रीपर भी ध्यान दिया गया है। नीचे लिखी हुई—'कुम्हड़ा, भैंसका दूध, बिल्वशाक आदि चीजोंका पूर्ण निषेध पाया जाता है,—

कूष्माण्डं महिषीक्षीरं बिल्वशाकोऽकृतद्विजः।

—और ब्राह्मणभोजनमें—

संस्कृतव्यञ्जनाढ्यं च पयोदधिघृतान्वितम्।
श्रद्धया दीयते यस्माच्छ्राद्धं तेन निगद्यते॥

विष्णुपुराणमें आया है कि 'श्राद्धकालमें भक्ति और विनम्र चित्तसे उत्तम ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भोजन कराये और इससे असमर्थ होनेपर, जो श्राद्धमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको कच्चा धान्य और थोड़ी भी दक्षिणा देगा, उसका श्राद्ध भी उत्तम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा। यदि इसमें भी असमर्थ हो तो केवल आठ तिलोंसे बलाञ्जलि देनी चाहिये। यदि यह भी नहीं कर सके तो कहींसे गौका चारा लाकर प्रीति और श्रद्धापूर्वक गौको खिला दे। सभी वस्तुओंके अभावमें एकान्तमें श्रीसूर्य आदि दिक्पालोंसे हाथ उठाकर उच्चस्वरसे कहे कि 'मेरे पास श्राद्ध-कर्मके योग्य न वित्त है, न और कोई सामग्री है; अतः मैं अपने पितृगणको नमस्कार करता हूँ, वे मेरी भक्ति-से ही तृप्ति-लाभ करें।'

न मेऽस्ति वित्तं न धनं च नान्य-
च्छ्राद्धोपयोग्यं स्वपितॄन्नतोऽस्मि।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ
कृतौ भुजौ वर्त्मनि मारुतस्य॥
(विष्णुपुराण ३। १४। ३०)

श्रीसनत्कुमारजीका कहना है कि 'विशुद्ध वित्त, शुद्ध धन, प्रशस्त काल, योग्य पात्र और परम भक्ति—ये सब मनुष्यको इच्छित फल देते हैं।'

आयुर्वेदमें पुनर्भव

(लेखक—डा० पं० श्रीवासुदेवजी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद-बृहस्पति)

पुनर्जन्म समग्र आस्तिक भारतीय साहित्यका सर्वमान्य सिद्धान्त है। वेद, उपनिषद्, दर्शन तथा पुराणोंमें भी पुनर्जन्मको बिना किसी विवादके भारतीय जीवन-दर्शनका आधारभूत सिद्धान्त मान लिया गया है। नास्तिक-दर्शनोंमें चार्वाक दर्शनको छोड़कर जैन तथा बौद्धधर्मोंमें भी पुनर्जन्मको स्वीकार किया गया है।

भारतीय दर्शनके अनुसार आत्मा नित्य विभु है। उसमें ज्ञातृत्व, भोक्तृत्व तथा कर्तृत्वकी शक्ति नित्यरूपसे निहित है। आत्मा जब 'प्रकृतिस्थ' होता है, तब वह 'जीवात्मा' कहलाता है तथा मन और इन्द्रियोंके माध्यमसे कर्ता, भोक्ता और ज्ञाता बन जाता है। सांख्यदर्शनके अनुसार 'ज्ञ' पुरुष प्रकृतिके साहचर्यसे अपने आपको कर्त्ता और भोक्ता मान लेता है। जब इस प्रकारका अज्ञान नष्ट होकर तत्त्वज्ञान हो जाता है, तो वह नित्य-पुरुष मुक्त हो जाता है।

आयुर्वेद यद्यपि मुख्यरूपसे भौतिक मन और शरीरको अपना विवेच्य एवं चिकित्स्य विषय बनाता है; किंतु इस शास्त्रकी आधारशिला आस्तिक-दर्शन ही है। आयुर्वेदने मुख्यरूपसे सांख्य, वेदान्त और न्यायको अपना आधार बनाया है। आयुर्वेदकी प्रवृत्तिका उद्देश्य ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी निर्विघ्न एवं सम्यक्-प्राप्तिके साधन शरीर और मनको रोगरहित रखना है[1]; किंतु आत्मारहित मन और शरीर आयुर्वेदके लिये चिकित्स्य नहीं हैं। आत्मासे युक्त मन और शरीरवाला पुरुष ही आयुर्वेदके विवेचन और चिकित्साका विषय है।

आयुर्वेदके अनुसार मनुष्यमें मुख्यरूपसे तीन एषणाएँ पायी जाती हैं—'प्राणैषणा','धनैषणा'तथा 'परलोकैषणा'। आधुनिक मानस शास्त्रके अनुसार मनुष्यमें चौदह मूल प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं। इन चौदह मूल प्रवृत्तियोंका अन्तर्भाव एषणात्रयमें सरलतासे किया जा सकता है। उपनिषदोंमें भी तीन एषणा ही मुख्य मानी गयी हैं।

इन तीन एषणाओंका क्रम आयुर्वेदके अनुसार अपरिवर्तनीय है। 'प्राणैषणा' मनुष्यकी आदि और आधारभूत एषणा है। संसारका प्रत्येक प्राणी अपने जीवनको सुरक्षित रखना चाहता है। फिर मनुष्य-जैसे ज्ञानवान् प्राणीके लिये तो प्राणरक्षा और दीर्घ जीवन अपरिहार्य तथा अनुपेक्षणीय एषणामें आता है। जब प्राणरक्षाका प्रश्न उपस्थित होता है, तो उसके लिये साधनोंकी लब्धि भी आवश्यक हो जाती है। अतएव 'धनैषणा' भी अनिवार्य है। प्राणवान्, स्वस्थ तथा

१. धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगार्तस्यापहर्त्तारः श्रेयसो जीवितस्य च॥ ३॥

सत्त्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत् त्रिदण्डवत्।
लोकस्तिष्ठति संयोगात्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ १९॥
(च० सू० अ० १)

……चेतनं तच्च तच्चाधिकरणं स्मृतम्…॥ १। १९॥
मातरं पितरं चैके मन्यन्ते जन्मकारणम्।
स्वभावं परनिर्माणं यदृच्छां चापरे जनाः॥ ११।५॥
एषा परीक्षा नास्त्यन्या यया सर्वं परीक्ष्यते।
परीक्ष्यं सदसच्चैवं तथा चास्ति पुनर्भवः॥
(चरकसूत्र० ११। ९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन-सम्पत्तिसे युक्त व्यक्तिको कामोपलब्धिमें कोई अड़चन नहीं होती; अतः आयुर्वेदके अनुसार कामोपलब्धि एषणाके अन्तर्गत आ जाती है।

तीसरी और चरम एषणा 'परलोकैषणा' है। प्रत्येक प्राणीकी मृत्यु नियत है, निश्चित ही है। अकालमृत्यु, अपमृत्युको रोकना तथा जीवनको दीर्घ एवं आरोग्यमय बनना ही आयुर्वेदका उद्देश्य है; अतएव स्वस्थ और साधन-सम्पन्न मनुष्यके हृदयमें यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक ही है कि 'मैं कहाँसे आया हूँ तथा मृत्युके पश्चात् मेरी स्थिति क्या होगी ?' (चरक सूत्र ११। २-४)

सामान्य नियतिके अनुसार प्रत्येक प्राणधारी जीवकी मृत्यु नियत भी है; किंतु आयुर्वेदका यह प्रयत्न रहता है कि मनुष्यकी अकालमृत्यु या अपमृत्यु न हो तथा उसे समृद्ध आरोग्यसे युक्त दीर्घजीवन प्राप्त हो। इसके पश्चात् भी यदि प्रत्येक जीवधारीके लिये मृत्यु अनिवार्य है तो अन्य धर्म तथा दर्शनोंके अनुसार आयुर्वेद भी पुनर्जन्मवादी है। इसलिये आयुर्वेदके अनुसार 'परलोकैषणा' मनुष्यकी स्वाभाविक अभिलाषा है।

कुछ लोग—चार्वाक तथा अन्य भौतिक दृष्टिकोण रखनेवाले लोग यह मानते हैं कि जीवनमें माता-पिता समवायीकरण है। अथवा माता-पिताकी आत्मा ही बालकके रूपमें अभिव्यक्त होती है। कुछ लोग प्रकृतिका स्वभाव ही यह मानते हैं, जिसके कारण प्रकृतिके विवर्तनसे चेतन या जीवनकी उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार-की मान्यता आधुनिक विज्ञानकी है। आधुनिक विज्ञानके अनुसार भौतिक गति-विधियोंके तत्त्वोंकी गति-विधियाँ स्वतः सापेक्ष हैं। उसे अन्य कोई न तो प्रेरित करता है और न ही वह किसीके लिये प्रवर्तित होती है। यह तो भूत-जगत्का यह स्वभाव ही है कि उसमें आविर्भाव और तिरोभाव होता रहता है।

कुछ लोग जीवनको पर-निर्माण, कुछ लोग चेतनाको यदृच्छा (चान्स chance) मानते हैं। आधुनिक विज्ञानके अनुसार Matter का चेतनारूपसे विपरिणाम भी एक chance है।

किंतु आयुर्वेदके आचार्योंके अनुसार मनुष्यकी चरम एषणा परलोक और पुनर्जन्म है। जितने भी भौतिकवादी हैं वे जन्मको भी एक संयोग तथा प्राकृतिक विपरिणाम मानते हैं। वे प्रत्यक्ष प्रमाणको लेकर ही चलते हैं; किंतु प्रत्यक्ष प्रमाणसे हमारे लौकिक कार्य भी सम्पन्न नहीं हो सकते। जैसे—यदि कोई कहता है कि राम दिनको नहीं खाता, फिर भी तगड़ा है। तब हम अनुमान लगा लेंगे कि खाये बिना तो मोटा नहीं हो सकता; यदि दिनको नहीं खाता तो रातको खाता होगा। इसी प्रकार धुआँ देखकर आगका अनुमान लगाना तथा किसी गर्भवती स्त्रीको देखकर मैथुनकी कल्पना करना अनुमानपर ही निर्भर है। इसी प्रकार यदि हम आप्तवचनोंपर भी विश्वास नहीं करेंगे तो हमारे पूर्वजोंद्वारा अर्जित ज्ञानराशि हमारे लिये निस्सार हो जायगी और यदि पूर्वार्जित ज्ञानको विश्वासपूर्वक हमने नहीं लिया तो आज-तक जिस सभ्यता तथा ज्ञान-विज्ञानका विकास हुआ है, वह सब हमारे लिये निरर्थक सिद्ध होगा तथा हम पुनः आदि-मानवकी स्थितिमें पहुँच जायँगे।

इसी प्रकार माता-पिताको जन्ममें समवायी नहीं माना जा सकता। मानवीय या पशु-पक्षियोंकी सृष्टिमें तो माता-पिता निमित्त कारण हैं; किंतु स्वेदज तथा उद्भिज सृष्टिमें तो माता-पिता नहीं होते। वहाँ हम माता-पिताको जन्मका समवायी कारण कैसे स्वीकार करेंगे ?

आयुर्वेदके अनुसार जगत्में सत् और असत्—दो प्रकारकी निर्मिति है। इस सत् और असत्को जाननेके लिये चार (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द) प्रमाणोंको आधार मानकर सदसद् वस्तुकी परीक्षा करनी चाहिये।

इन आप्तवचन, प्रत्यक्ष, अनुमानके द्वारा यह सिद्ध होता है कि मनुष्यका पुनर्जन्म होता है तथा आत्मा शरीर और मनके माध्यमसे कर्मोंका उपभोग करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद (भारतीय वैद्यक-शास्त्र) की दृष्टिसे देह-विवेचन और देह-निवृत्ति

(लेखक—प्राध्यापक पं० काकुभाई दुर्गाशङ्कर दवे 'भानु', संस्कृत-साहित्य-व्याकरण-वेदान्त-ज्यौतिष-आयुर्वेदाचार्य, संस्कृत-काव्य-पुराण-कृत्यतीर्थ, जैनदर्शनशास्त्री, पालिविशारद, संस्कृत-साहित्य-धर्मशास्त्र-पुराण-आयुर्वेद उत्तमा)

भारतीय सुख-तत्त्व-विवेचकोंका मन्तव्य है—

पुनर्दारा पुनर्वित्तं पुनः क्षेत्रं पुनः सुतः।
पुनः श्रेयस्करं कर्म न शरीरं पुनः पुनः॥[1]

महाकवि कालिदासकी भी एक मनोहारिणी उक्ति है—**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।**[2]

'शरीर' शब्दकी व्युत्पत्ति है—शॄ धातुको ईरत् प्रत्यय लगनेपर 'शरीर' शब्द (नपुंसलिङ्गमें) होता है और दिह् धातुको घञ् प्रत्यय होनेसे 'देह' शब्द बनता है। 'काय' शब्द चि धातुको घञ् प्रत्यय होनेसे सिद्ध होता है। तीनों शब्दोंका व्यवहार समानार्थक स्वरूपमें किया जाता है; इसीलिये चरक और सुश्रुत (बृहत्त्रयीकी प्रथम दो) संहिताओंमें 'शारीरस्थान'का संनिवेश है और 'काय-चिकित्सा' (कित् सन् अ=चिकित्साका स्त्रीलिङ्ग) अष्टाङ्ग आयुर्वेदका सर्वप्रथम अङ्ग होनेसे महर्षि सुश्रुतने अपनी संहिताके शारीरस्थानमें यह शरीर कैसे बनता है, अर्थात् देह-निर्माणका मनोमुग्धकारी विवेचन किया है। वाग्भटने भी कहा है।[3]

उपक्रममें महर्षि सुश्रुत कहते हैं—**अथातः सर्वभूतचिन्ताशारीरं व्याख्यास्यामः। यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः।** (सु० शा० १। १) अर्थात् सर्वस्थावर-जङ्गम पदार्थोंके कारणभूत ये पृथिवी इत्यादि, किस कारणमेंसे उत्पन्न हुए हैं और उनके लक्षण और कार्य क्या है, यही 'सर्वभूतचिन्ता' है; क्योंकि जबतक शरीरका सम्पूर्ण ज्ञान न हो, तबतक चिकित्सा व्यर्थ हो जाती है।

महर्षि चरक और सुश्रुत-प्रणीतसंहिताएँ आयुर्वेदके अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ हैं। सांख्यशास्त्रोक्त देह-निर्माणको अंशतः स्वीकार करते हुए महर्षि सुश्रुतने अपने ग्रन्थके शारीरस्थानके उपक्रममें कहा है—

"मूल प्रकृतिके अपर नामसे संज्ञित 'अव्यक्त' जो स्वयं तो कारणरहित है अर्थात् किसीके द्वारा उत्पन्न न होनेसे किसीका विकाररूप नहीं है और सत्त्व, रज और तम—गुणत्रयकी साम्यावस्थाके रूपमें है। उसके अष्ट रूप हैं—अव्यक्त (प्रकृतिस्वरूपी सामान्य धर्मसे युक्त), महत्तत्त्व (बुद्धि अथवा चित्त, अहंकार और शब्दादि पञ्चतन्मात्रा। सर्वजगत्की उत्पत्तिका कारण होनेसे यही मूल कारण (उपादान कारण) है। जैसे समुद्र ही समग्र जल-जन्तुओंका अधिष्ठान है, उसी प्रकार यही 'अव्यक्त' समग्र जीवात्माओंका अधिष्ठान है।[4]

सुश्रुत शारीरस्थानमें आयुर्वेद स्वीकृत सिद्धान्तका प्रतिष्ठापन करते हुए कहा गया है—

'इस शास्त्रमें पृथिवी आदि पञ्चमहाभूत और जीवके सम्मिलनसे जो मनुष्य-शरीर होता है, वह 'पुरुष' कहलाता है और इस 'पुरुष'में सब क्रियाएँ संलग्न होती हैं। अतएव वह 'पुरुष' अधिष्ठान अर्थात् आश्रय है। स्थावर और जङ्गम—इन भेदोंसे लोक दो प्रकारका है और दोनों प्रकारका यह लोक आग्नेय (अग्निमय) और सौम्य (चन्द्रमय) है। लोकमें उष्ण और शीत—ये दो ही गुण देखे जाते हैं, उससे लोकको 'अग्नि-चन्द्रात्मक' कहते हैं। या तो समग्र लोक पृथ्व्यादि पञ्चभूतमय है, अतएव उसे 'पञ्चात्मक' कहें तो भी ठीक है। इस लोकमें प्राणीके चार प्रकार होते हैं—स्वेदज, अण्डज, उद्भिज और जरायुज। इस स्थावर-जङ्गमात्मक लोकमें जीवन्त मनुष्य-शरीर ही, जिसे 'पुरुष' कहते हैं, मुख्य है और शेष

---

१. स्त्री, धन, क्षेत्र, पुत्र और श्रेयस्कर कर्म, सब कुछ फिरसे प्राप्त हो सकते हैं; किंतु मनुष्य-शरीर पुनः प्राप्त होना दुष्कर है (उसकी पुनः प्राप्ति होती ही नहीं)।

२. शरीर ही धर्म-साधनाके लिये आद्य (first and foremost) साधन है।—(कुमारसम्भव महाकाव्य)

३. कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान्।
अष्टावङ्गानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रिता॥
(अष्टाङ्गहृदय, सूत्र-स्थान, अध्याय १। ५)

४. सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगतः सम्भवहेतुरव्यक्तं नाम। तदेकं बहूनां क्षेत्रज्ञानामधिष्ठानं समुद्र इवौदकानां भावानाम्। (सुश्रुत, शारीरस्थान अध्याय १, विषय २।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कुछ है, वह सब मनुष्य-शरीरके सुखोंके साधन-रूप है। फलतः मनुष्य-शरीर ही आयुर्वेदोक्त समग्र क्रियाओंका अधिष्ठान अर्थात् आश्रयरूप है।[५]"

अव्यक्त, महत्तत्त्व, अहंकार, एकादश इन्द्रियाँ, पञ्च तन्मात्राएँ और आकाशादि पञ्च महाभूत—इस प्रकारसे सांख्योक्त चौबीस तत्त्व परिगणित होते हैं।[६]

इन चौबीस तत्त्वोंका वर्ग 'अचेतन' है। पुरुष अर्थात् जीवात्मा पचीसवाँ है। और वह महत्तत्त्व आदि कार्योंके और अव्यक्तरूप कारणके आभिमानिक संयोगवाला है।[७]

उपर्युक्त निरूपणसे स्पष्ट है कि सांख्य-प्रतिपादित सिद्धान्त केवल अव्यक्तको ही जगत्का मूल कारणरूप मानता है; किंतु आयुर्वेदके आचार्य इस प्रस्थापनाके ऊपर विस्तीर्ण विचार करते हैं और उनके सिद्धान्तानुसार, स्वभाव, ईश्वर, काल, यदृच्छा, पाप, पुण्य और अव्यक्तका परिणाम—इन षट्पदार्थोंको जगत्का मूल कारण माना जाता है। आयुर्वेदमें शरीरकी चिकित्सा प्रधानरूपेण है। फलतः अव्यक्तादिका विचार यहाँ इतना आवश्यक नहीं, जितना कि पञ्चमहाभूतोंके गुण-स्वभावादिका विचार; क्योंकि पञ्चमहाभूत ही शरीरकी उत्पत्तिके कारणरूप शुक्र-शोणितादि पदार्थोंके मूल कारण हैं। इसी कारण सांख्यसिद्धान्तसे कुछ भिन्न-स्वरूपमें अर्थात् इन्द्रियों और शब्द-स्पर्शादिको अहंकारसे उत्पन्न न मानकर आयुर्वेद-शास्त्रमें उनकी उत्पत्ति पञ्चमहाभूतोंसे ही मानी गयी है। इतना होते हुए भी जिस इन्द्रियमें जिस महाभूतका विशेष प्रभाव है, उस इन्द्रियसे मनुष्य उसीका गुण ग्रहण करता है। जिस महाभूतका विशेष प्रभाव नहीं है उसके गुण मनुष्य इन्द्रियद्वारा ग्रहण नहीं करता है।[८]

सांख्य-सिद्धान्तानुसार जीवात्मा सर्वव्यापक और नित्य माना जाता है; किंतु आयुर्वेदके आचार्य इस सिद्धान्तमें कुछ संशोधन कर, जीवात्माको भिन्न-भिन्न और इसीलिये असर्वव्यापक मानते हुए भी उसे नित्य मानते हैं। पाप-पुण्यानुसार तिर्यक्-मनुष्य-देवयोनियोंकी प्राप्ति जीवात्माको होती है। यही इस सिद्धान्तका साधक हेतु है। सुख-दुःखकी अनुभूतिका अनैक्य सर्वसंवेद्य है और 'कर्मानुसारिणी गतिका सिद्धान्त' इस स्थापनासे परिपुष्ट हो जाता है। फलतः 'कृतनाश' और 'अकृताभ्यागम' रूपी दोषद्वयकी सम्भावना भी सम्पूर्णतया नष्ट हो जाती है।

आयुर्वेद-शास्त्रानुसार, इन जीवात्माओंकी सिद्धि प्रत्यक्ष प्रमाणसे नहीं, किंतु अनुमान प्रमाणसे की जाती है। ये परम सूक्ष्म हैं, उनका जन्म नहीं होता; किंतु रज और वीर्यके संयोगसे ये प्रकटमात्र होते हैं। और इसी (प्राकट्यमात्र) को 'जन्मधारण करना' कहा जाता है। ये (जीवात्मा) सांख्यके 'पुरुष'की तरह ही पाप-पुण्यादिके फलोंके साथ, चिकित्साके फल, आरोग्यादिका भी भोग करते हैं। अतएव यह जीवात्मा सांख्य-प्रतिपादित 'निरञ्जन-पुरुष' न होकर आयुर्वेद-निरूपित 'कर्म-पुरुष' है।[९] और सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, प्राणक्रिया, अपानक्रिया, नेत्रोंके उन्मेष-निमेष, बुद्धि, मनद्वारा संकल्प, विचार, स्मरण, शास्त्रादि-बोध, निश्चय और विषयोपलब्धि—ये उस पुरुषके गुण हैं।

आयुर्वेदका मन्तव्य है कि सांख्योक्त चौबीस तत्त्वोंसे बने हुए शरीररूपी घरमें जीवात्मा निश्चय, सर्वसमयके लिये

---

५. अस्मिन् शास्त्रे पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इत्युच्यते। तस्मिन् क्रिया, सोऽधिष्ठानम्। कस्मात्? लोकस्य द्वैविध्यात्। लोको हि द्विविधो स्थावरो जङ्गमश्च। द्विविधात्मक एवाग्नेयः सौम्यश्च तद्भूयस्त्वात्। पञ्चात्मको वा। तत्र चतुर्विधो भूतग्रामः। संस्वेदजजरायुजाण्डजोद्भिज्जसंज्ञः। तत्र पुरुषः प्रधानं तस्योपकरणमन्यत्। तस्मात् पुरुषोऽधिष्ठानम्। (सुश्रुत, सूत्रस्थान, अध्याय १, विषय १८-१९)

६. तद्यथा—शब्दतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रं रूपतन्मात्रं, रसतन्मात्रं गन्धतन्मात्रमिति। तेषां विशेषाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः। तेभ्यो भूतानि व्योमानिलानलजलोर्व्यः। एवमेषा तत्त्वचतुर्विंशतिर्व्याख्याता। (सुश्रुत, शारीर-स्थान, अध्याय १, विषय ६।)

७. तत्र सर्व एवाचेतन एष वर्गः। पुरुषः पञ्चविंशतितमः। स च कार्यकारणसंयुक्तश्चेतयिता भवति। (सुश्रुत, शारीर-स्थान अध्याय १, वि० ८)

८. स्वभावमीश्वरं कालं यदृच्छां नियतिं तथा।
परिणामं च मन्यन्ते प्रकृतिं पृथुदर्शिनः॥
×××× यतोऽभिहितं तत्सम्भवद्रव्यसमूहो भूतादिरुक्तः। भौतिकानि चेन्द्रियाण्यायुर्वेदे वर्ण्यन्ते तथेन्द्रियार्थाः। ×××× यतोऽभिहितं पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इति। सह एव कर्म पुरुषश्चिकित्साधिकृतः। (सुश्रुत, शारीरस्थान, अध्याय १. विषय ११, १४, १७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवास करता है। जीवात्माका स्वान्तमन नामका दूत, लिङ्ग-शरीरका आश्रय करके रहता है अतएव वही 'देही' कहलाता है और वह जीवात्मा पाप-पुण्य, सुख-दुःख इत्यादिसे व्याप्त है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, पञ्चम अहंकार, दस इन्द्रियाँ और बुद्धि—इन सोलहोंके साथ यह जीवात्मा मनद्वारा किये गये कर्मरूपी बन्धनोंसे बद्ध होता है और यही जीवात्मा, स्वरूपके अज्ञानसे, प्रपञ्चरूप क्लेशादिसे भी बन्धनको प्राप्त होता है और यही जीवात्मा आत्मज्ञानसे, क्लेशादि बन्धनोंसे मुक्तिकी प्राप्ति करता है। (शार्ङ्गधरसंहिता पूर्व० ५। ७०—७३)

अपने कर्मानुसार, जीवात्माके स्त्री-पुरुषादि शरीरोंके लिये आयुर्वेदशास्त्र ईश्वरकी इच्छाको ही कारण मानता है। (शार्ङ्गधरसंहिता पूर्व० ५। १०—१२)

देहकी निवृत्तिके लिये आयुर्वेदमें कर्मज, दोषज, कर्मदोषज—तीन प्रकारकी व्याधियोंको कारणभूत बताया है।[९]

भारतीय आयुर्वेद-शास्त्र सम्पूर्णतया विकसित विज्ञान (perfectly developed Science) है, इस विधानकी सार्थकता उसकी उपरिनिरूपित विचारधारासे सिद्ध होती है।

प्राणियोंके जन्म, स्थिति और मरणका ग्रहोंसे सम्बन्ध

(लेखक—याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा, गौड, वेदाचार्य)

वेदकी विभुता विश्वमें विख्यात है। उसके छः अङ्गोंमें ज्योतिष नेत्र होनेके कारण प्रधान माना गया है। महर्षि नारदने कहा है—

सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम्।
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिः शास्त्रमकल्मषम्॥
विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्तं कर्म न सिद्ध्यति।
तस्माज्जगद्धितायेदं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा॥
(नारदपुराण)

'सिद्धान्त, संहिता और होरा (जातक)—ये तीन स्कन्धरूप ज्योतिषशास्त्र वेदका निर्मल और पुण्यप्रद नेत्र कहा गया है। इस ज्योतिषशास्त्रके बिना कोई भी श्रौत और स्मार्त कर्म सिद्ध नहीं हो सकता। अतः ब्रह्माने संसारके कल्याणार्थ सर्वप्रथम ज्योतिषशास्त्रका निर्माण किया।'

अतः स्पष्ट है कि संसारमें घटनेवाली समस्त घटनाओंका ज्ञान ज्योतिषशास्त्रके द्वारा ही होता है।

प्राणियोंके जन्मसे मरणपर्यन्त समस्त सुख-दुःख ग्रहोंके अधीन होते हैं। आकाशमें व्यक्त और अव्यक्त अनेक ग्रह हैं; उनमें सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि—ये सात ग्रह प्रत्यक्ष फल देनेवाले हैं। इनमें भी सूर्य प्रधान हैं; क्योंकि परब्रह्म परमात्मा अपनी शक्ति (प्रकृति) के द्वारा चराचर विश्वकी रचना करनेके समयमें सर्वप्रथम आकाशकी, तदनन्तर सूर्यकी सृष्टि करते हैं। पुनः सूर्यके द्वारा ही अन्य चन्द्र आदि ग्रहों एवं वायु, अग्नि, जल और पृथिवी तथा पृथिवीस्थित प्राणियोंकी सृष्टि, पालन और प्रलयरूप क्रिया करते हैं। इसलिये वेदमें सूर्यको ही चराचर जगत्का आत्मा माना गया है—

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।'
(यजुर्वेद ७। ४२; ऋग्वेद १। ११५। १; अथर्ववेद १३। २। ३५)

तथा—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥
(ऋग्वेद १०। १९०। ३)

अनन्तर सूर्यादि खेचरोंके रश्मि-प्रभावसे अन्य चर और अचरकी सृष्टि होती है।

इन्द्रगुरु (बृहस्पति) ने लिखा है—

ग्रहाधीनं जगत्सर्वं ग्रहाधीना नरावराः।
कालज्ञानं ग्रहाधीनं ग्रहाः कर्मफलप्रदाः।
सृष्टिरक्षणसंहाराः सर्वे चापि ग्रहानुगाः॥

'यह समस्त संसार ग्रहोंके अधीन है और मानव एवं

९. कर्मजाः कथिताः केचिद्दोषजाः सन्ति चापरे। कर्मदोषोद्भवाश्चान्ये व्याधयस्त्रिविधाः स्मृताः॥
(भावप्रकाश, पूर्व खण्ड भाग १, अध्याय ५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पशु-पक्षी आदि जीव भी ग्रहोंके ही अधीन हैं। कालका भी ज्ञान ग्रहोंके अधीन है और कर्मका फल ग्रहोंके द्वारा ही मिलता है। संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय—ये सभी ग्रहोंके ही अधीन हैं।'

इसी प्रकार समस्त पुराणोंमें मुनियोंने सूर्यादि ग्रहोंको ही जन्म, पालन और मरणका कारण बतलाया है।

वसिष्ठने अपनी संहितामें कहा है कि 'समस्त उच्चावच प्राणियोंकी सृष्टि आकाशस्थ उच्चावच ग्रहोंकी रश्मिवश ही होती है। उनमें सूर्य और चन्द्रमाके बलानुसार पुरुष और स्त्रीकी सृष्टि होती है। जैसे किसीके गर्भाधानके समयमें सूर्य अधिक बली रहता है तो पुरुषका जन्म होता है और चन्द्रमा अधिक बली रहता है तो स्त्रीका जन्म होता है। यदि दोनोंका तुल्यबल (समानबल) रहता है तो उस गर्भाधानसे नपुंसकका जन्म होता है।

सोमात्मिकाः स्त्रियः सर्वाः पुरुषा भास्करात्मकाः।
तासां चन्द्रवशात् स्त्रीणां नृणां सर्वं हि सूर्यतः॥

'संसारमें समस्त स्त्री चन्द्रमाके अंशसे और पुरुष सूर्यके अंशसे उत्पन्न होते हैं। अतः स्त्रीका शुभाशुभ चन्द्रमाके अनुसार और पुरुषका शुभाशुभ सूर्यके अनुसार होता है।'

इस प्रकार शास्त्रों और पुराणोंमें ग्रहोंकी महत्ता विस्तृतरूपसे वर्णित है।

इसी प्रकार शास्त्रों और पुराणोंमें 'काल'को ही परब्रह्म परमात्मा कहा गया है—

कालः सृजति भूतानि सकलानि हरत्यपि।
स एव पालयत्यस्मात् कालो हि भगवान् प्रभुः॥

'काल ही समस्त चराचरकी सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। इसलिये काल परब्रह्म परमेश्वर है।'

भगवान् सूर्यने भी कहा है—

'लोकानामन्तकृत्कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः।'
(सूर्यसिद्धान्त)

'काल भगवान्‌के दो रूप हैं—एक समस्त विश्वको उत्पन्न करनेवाला और संहार करनेवाला है, जो कि अव्यक्त, निर्गुण, निराकार और अनन्त है; दूसरा कलनात्मक अर्थात् विपल, पल, दिन, महीना, वर्ष, युग इत्यादि व्यवहारार्थ गणना करने योग्य है, जो कि व्यक्त सगुण और साकार है।'

ज्योतिषशास्त्रके प्रणेता महर्षियोंने आकाशस्थ नक्षत्रचक्र (भगोल) के तुल्य बारह विभागको ही मेषादि नामसे बारह राशियाँ कही हैं। ये मेषादि राशियाँ कालभगवान्‌के मस्तकसे लेकर चरण (पैर) तक क्रमसे अवयव (अङ्ग) हैं।

ग्रहोंमें पूर्ण चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र—ये शुभ (सुधारश्मि) और क्षीण चन्द्र, मङ्गल और शनि—ये पाप (विषरश्मि) तथा सूर्य तीक्ष्णरश्मि है।

गर्भाधान अथवा जन्म-समयमें जिस अङ्गविभाग (राशि) में शुभग्रह रहता है, वह पुष्ट (विकारहीन) तथा जिस अङ्गविभाग (राशि) में पापग्रह रहता है, वह विकारयुक्त होता है।

कहा भी है—

शीर्षमुखबाहुहृदयोदराणि कटिबस्तिगुह्यसंज्ञानि
ऊरू जानू जङ्घे चरणाविति राशयोऽजाद्याः।
कालनरस्यावयवान् पुरुषाणां चिन्तयेत् प्रसवकाले
सदसद्ग्रहसंयोगात् पुष्टान् सोपद्रवांश्चापि॥

'मेषादि राशियाँ कालपुरुषके सिर इत्यादि अङ्ग होती हैं। कालपुरुषका मेष शिर, वृष मुख, मिथुन दोनों बाँह, कर्कराशि हृदय, सिंह पेट, कन्या कटि (कमर), तुला बस्ति (नाभि और लिङ्गके बीचका स्थान—पेडू), वृश्चिक लिङ्ग, धनु ऊरू (जाँघ), मकर जानु (ठेहुन), कुम्भ जङ्घा (घुटनाके नीचेका भाग) और मीन दोनों पैर होते हैं। इनका प्रयोजन यह है कि जन्मके समयमें जो राशि शुभग्रहसे युक्त अथवा दृष्ट हो, वह कालपुरुषके जिस अङ्गकी हो, मनुष्यका वह अङ्ग अत्यन्त पुष्ट होता है और यदि राशि पापग्रहसे युक्त या दृष्ट हो, उस राशिके अङ्गमें पीड़ा, घाव इत्यादि होता है। यदि मिश्रग्रह (शुभाशुभ ग्रह) से दृष्ट या युक्त हो, तो उनके बलादिके तारतम्यसे उस-उस अङ्गमें अच्छा या बुरा फल समझना चाहिये।'

इस प्रकार सूर्यादि ग्रह ही कालभगवान्‌के आत्मादि अन्तरङ्ग हैं। यथा—

आत्मा रविः शीतकरस्तु चेतः
सत्त्वं धराजः शशिजश्च वाणी।
ज्ञानं सुखं चन्द्रगुरुर्मदश्च
शुक्रः शनिः कालनरस्य दुःखम्॥
आत्मादयो गगनगैर्बलिभिर्ब्रह्मवत्तराः।
दुर्बलैर्दुर्बला ज्ञेया विपरीतः शनिः स्मृतः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् 'कालभगवान्‌के सूर्य आत्मा, चन्द्रमा मन, मङ्गल सत्त्व, बुध वाणी, गुरु ज्ञान और सुख हैं तथा शुक्र मद (कंदर्प) और शनि दुःख हैं। जन्म-समयमें ये सूर्यादि ग्रह बलवान् हों तो प्राणियोंके आत्मादि बलवान् होते हैं। अतः सूर्य आदि छः ग्रहोंके प्रबल होनेसे शुभ और शनिका प्रबल होना अशुभ (विपरीत) माना गया है। क्योंकि शनि दुःखरूप है; वह जितना निर्बल रहता है उतना दुःख अल्प होता है।'

इसी प्रकार सूर्यादि ग्रह भी कालभगवान्‌की सत्त्व आदि प्रकृति हैं। यथा—

गुरुशिरवयः सत्त्वं रजः सितज्ञौ तमोऽर्कसुतभौमौ।
एतेऽन्तरात्मनि स्वां प्रकृतिं जन्तोः प्रयच्छन्ति॥

'बृहस्पति, चन्द्रमा और सूर्य—ये तीन ग्रह सत्त्वगुणी हैं। शुक्र और बुध—ये दोनों रजोगुणी हैं। शनि और मङ्गल—ये दोनों तमोगुणी हैं। ग्रह अपनी प्रकृतिके अनुसार मनुष्योंकी प्रकृतिको बनाते हैं।'

एते ग्रहा बलिष्ठाः प्रसूतिकाले नृणां स्वमूर्तिसमम्।
कुर्युर्देहं नियतं बहवश्च समागता मिश्रम्॥

'गर्भाधानकालमें इन ग्रहोंमें जो ग्रह बलवान् रहता है, वह अपने स्वरूपके समान ही गर्भस्थ जीवका स्वरूप बनाता है। यदि कई ग्रह बलवान् हों, तो उन सभीके मिश्रित स्वरूपके सदृश अर्भक (बालक) का स्वरूप होता है।'

ग्रहोंके द्वारा ही प्राणियोंके पूर्व और अग्रिम जन्मकी भी स्थिति ज्ञात होती है। यथा—

गुरुरुडुपतिशुक्रौ सूर्यभौमौ यमज्ञौ
विबुधपितृतिरश्चो नारकीयांश्च कुर्युः।
दिनकरशशिवीर्याधिष्ठितव्यंशनाथात्
प्रवरसमनिकृष्टास्तुङ्गहासादनूके॥

(बृहज्जातक २५। १४)

'प्राणियोंके जन्म-समयमें सूर्य और चन्द्रमामें जो बलवान् हो, वह यदि गुरुके व्यंश (द्रेष्काण) में हो तो जातकको पूर्वजन्ममें देवलोकवासी, यदि चन्द्र और शुक्रके व्यंशमें हो, तो पितृलोकवासी (चन्द्रलोकवासी), यदि सूर्य अथवा मङ्गलके व्यंशमें हो तो मर्त्यलोकवासी और यदि शनि या बुधके व्यंशमें हो, तो नरकलोकवासी समझना चाहिये। उक्त व्यंशपति ग्रह अपने उच्चस्थान, मध्यस्थान या नीचस्थानमें हों, तो उक्त लोकमें भी जातकको यथाक्रम उत्तम, मध्यम और अधम श्रेणीका समझना चाहिये। इसी प्रकार जीवके मरणकालमें भी उक्त व्यंशपतिकी स्थितिके अनुसार देवलोक, पितृलोक, मर्त्यलोक अथवा नरकलोकमें अग्रिम जन्म समझना चाहिये।'

इस प्रकार चराचर प्राणियोंके जन्म, स्थिति और मरणपर्यन्त सुख-दुःख सूर्यादि ग्रहोंके आधारपर ही वेद-वेदाङ्गोंमें वर्णित हैं।

यमराजके कुत्ते

ऋग्वेदमें आया है—

अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।
अथा पितॄन्त्सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति॥

(ऋग्वेद-सं० १०। १४। १०)

हे अग्निदेव! प्रेतोंके बाधक यमराजके दोनों कुत्तोंका उल्लङ्घन करके इस प्रेतको ले जाइये और ले जा करके यमके साथ जो पितर प्रसन्नतापूर्वक विहार कर रहे हैं, उन उच्चे ज्ञानी पितरोंके पास पहुँचा दीजिये; क्योंकि ये दोनों कुत्ते देवसुनी शर्माके लड़के हैं और इनकी दो नीचे और दो ऊपर चार आँखें हैं।

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि॥

(ऋग्वेद-सं० १०। १४। ११)

हे राजन्! यम आपके घरकी रखवाली करनेवाले आपके मार्गकी रक्षा करनेवाले श्रुति-स्मृति-पुराणोंके विद्वानोंद्वारा ख्यापित चार आँखवाले अपने कुत्तोंसे इसकी रक्षा कीजिये तथा इसे नीरोग बनाइये।

उरुणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम्॥

(ऋग्वेद-सं० १०। १४। १२)

यमके दूत दोनों कुत्ते लोगोंको देखते हुए सर्वत्र घूमते हैं। बहुत दूरसे सूँघकर पता लगा लेते हैं और दूसरेके प्राणोंसे तृप्त होते हैं, बड़े बलवान् हैं। वे दोनों दूत सूर्यके दर्शनके लिये हमें शक्ति दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योतिषमें पुनर्जन्म और परलोक

(लेखक—राजज्योतिषी पं० श्रीमुकुन्दवल्लभजी मिश्र, ज्यौतिषाचार्य)

इस देहधारी जीवका मरणोपरान्त पुनर्जन्म होना ध्रुव सत्य है। योगेश्वर प्रभु श्रीकृष्णने अपने श्रीमुखसे वीर अर्जुनके प्रति उपदेश करते हुए कहा है—'अर्जुन! जन्म लेनेवालेकी मृत्यु निश्चित है, और मरनेवालेका पुनर्जन्म भी निश्चित है।' (गीता २। २७)

ज्योतिःशास्त्रके प्रवर्तक पराशरादि महर्षियों तथा वराह-मिहिरादि आचार्योंने भी मरणोत्तर इस जीवका पुनर्जन्म कहाँ होगा;—इस बातका योग-दृष्टिसे जो निर्णय दिया है, उसका दिग्दर्शन कराया जाता है। सर्वप्रथम पूर्वजन्मकालीन लोकज्ञानके विषयमें ज्योतिःशास्त्रकी दृष्टिसे विचार करते हैं। आचार्य वराहमिहिर (बृहज्जातक ५। १४)के अनुसार—गुरु, चन्द्र, शुक्र, सूर्य, मङ्गल, शनि, बुध—ये ग्रह क्रमशः देवलोक, पितृलोक, तिर्यक्लोक (मर्त्यलोक) एवं नरकलोक—इनसे आये हुए प्राणियोंको सूचित करते हैं। इसे देखनेकी रीति यह है कि जन्मकालमें सूर्य और चन्द्र—इन दोनोंमेंसे जो अधिक बली हो, वह जिस द्रेष्काणमें हो, उस द्रेष्काणका स्वामी गुरु हो तो यह प्राणी देवलोकसे आया है—ऐसा समझना चाहिये। यदि चन्द्रमा या शुक्र उक्त द्रेष्काणके स्वामी हों तो पितृलोकसे, यदि सूर्य एवं मङ्गल उक्त द्रेष्काणके पति हों तो तिर्यक् (मर्त्य)-लोकसे और यदि शनि या बुध उक्त द्रेष्काणपति हों तो प्राणी नरक-लोकसे आया है,—ऐसा समझे। अब 'पूर्वजन्ममें प्राणी किस प्रकारका था'—इस विषयमें विचार करते हैं। यदि उक्त लोकोंसे आये हुए प्राणियोंको सूचित करनेवाले ग्रह अपने उच्चके समीप-स्थानोंमें स्थित हों तो प्राणी अपने अनूक (पूर्वजन्म) में देवादिलोकोंमें भी श्रेष्ठ था। यदि वही ग्रह अपने उच्च-नीचके मध्यमें स्थित हों तो उन प्राणियोंको वहाँ देवादि लोकमें भी मध्यम श्रेणीका समझें। यदि वही ग्रह नीचके समीप-स्थानोंमें स्थित हों तो देवादि लोकमें भी वह नीच श्रेणीका था—ऐसा समझना चाहिये।

मरणोपरान्त जीवकी गतिके स्थान-ज्ञानका विषय अत्यन्त गहन है। यद्यपि भौतिक-ज्ञान-विह्वल इस युगमें इस योग-दृष्टिगम्य ज्ञानकी भले ही कोई उपेक्षा करे, तथापि योगानुभवगम्य इन सैद्धान्तिक तथ्योंकी सत्यताका ज्ञान अनुसंधानकी अपेक्षा रखता है। मरणान्तरगति-स्थान-ज्ञानके विषयमें पूर्वोक्त आचार्य (बृहज्जातक २५। १५)के विचार प्रस्तुत हैं—

जिसके जन्म-लग्नसे षष्ठ-अष्टम-सप्तम स्थानोंमें जो ग्रह स्थित हों, उनमेंसे जो बलवान् हो, उसका जो पूर्वश्लोकमें कथित लोक है, उस लोकमें (गति, अर्थात्) मरनेके बाद प्राणी जाता है। यदि षष्ठ, अष्टम, सप्तम इन स्थानोंमें कोई ग्रह न हो तो छठे, आठवें इन दोनों स्थानोंमें जिन द्रेष्काणोंका उदय हो, उन दोनों द्रेष्काणोंके स्वामियोंमें जो बली हो, उसका जो पूर्वोक्त देवादि लोक कहा गया है, वह उस लोकमें जाता है।

भारतीय दर्शनोंमें मानव-जीवनका चरम लक्ष्य स्व-स्वरूपोपलब्धि आत्मसाक्षात्कार ही है। मरणोपरान्त गति-स्थानके ज्ञानका निर्णय करते समय भारतीय दर्शनके मुख्य विषयको भी चिरंतन आचार्योंने अछूता नहीं छोड़ा। इस विषयमें पूर्वोक्त आचार्यके अनुसार यदि उच्च राशिमें स्थित होकर गुरु लग्नसे छठे, केन्द्र वा आठवें स्थानमें स्थित हो तो उस प्राणीको मुक्त करता है। अथवा मीन राशि शुभ नवांशसे युक्त होकर लग्नमें स्थित हो तथा इन योगोंमें अन्य सब ग्रह निर्बल हों तो उस प्राणीको मोक्ष-लाभ होता है।

बृहस्पतौ चापनवांशकस्थे बलान्विते कर्कटलग्नयाते।
त्रिभिश्चतुर्भिः सह कण्टकेषु नभश्चरैर्ब्रह्मपदं प्रयाति॥

'जिसके जन्म-समयमें बलवान् गुरु धनुके नवांशमें होकर कर्क लग्नमें प्राप्त हो और तीन या चार ग्रह केन्द्रमें हों तो वह ब्रह्मपदको प्राप्त करता है।' इस विषयमें जिस प्रकार जन्म-लग्नसे शुभगति-ब्रह्मपदादिका ज्ञान कहा गया है, उसी प्रकार मरणकालिक लग्नसे भी देखना चाहिये,—ऐसा ज्योतिःशास्त्रके अनुभवी कुछ विद्वानोंका संकेत है।

जन्ममें अष्टम स्थानगत केवल शुभ-ग्रह हों तो भी मरणोत्तर शुभगति प्राप्त होती है। यदि जन्ममें शुभ-गतिप्रद ग्रह-स्थिति हो, मरणमें अशुभ हो जाय तो वह मध्यम लोकोंमें जाता है। जन्म और मरण दोनों कालकी ग्रह-स्थिति अशुभ हो तो अधोगति (नरकलोकादिमें) होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योतिःशास्त्रके आधारपर आचार्य मन्त्रेश्वरके विचार भी इस विषयपर अपना विशेष महत्त्व रखते हैं, जिन्हें नीचे प्रस्तुत किया जाता है—

धर्मेश्वरेणैव हि पूर्वजन्मवृत्तं भविष्यज्जननं सुतेशात्।
तदीशजातिं तदधिष्ठितर्क्षे दिशं हि तत्रैव तदीशदेशम्॥

नवमेशके अनुसार मनुष्यको पूर्वजन्मका हाल जानना और पञ्चमेशके अनुसार परलोकका विचार करना चाहिये।

उपर्युक्त नवम-पञ्चम स्थानोंके मालिकोंके अनुसार मनुष्यकी जाति और उन मालिकोंके बैठनेकी राशिके समान उसकी दिशा जानना। इसी प्रकार उन स्थानोंके मालिकोंके अनुसार उसका देश जानना चाहिये।

स्वोच्चे तदीशे सति देवभूमिर्द्वीपान्तरं नीचरिपुस्थलस्थे।
स्वर्क्षे सुहृद्भे समभे स्थिते वा सम्प्राप्नुयाद् भारतवर्षमेव॥

यदि उपर्युक्त ग्रह उच्चके हों तो देवभूमिमें, नीच एवं शत्रुक्षेत्री हों तो द्वीपान्तरमें तथा यदि वह ग्रह स्वगृही, मित्र-क्षेत्री या समक्षेत्री हों तो उनका जन्म भारतमें ही जानना।'

आर्यावर्तं गीष्पतेः पुण्यनद्यः
काव्येन्दोश्च ज्ञस्य पुण्यस्थलानि।
पङ्गोर्निन्द्या म्लेच्छभूस्तीक्ष्णभानोः
शैलारण्यं कीकटं भूमिजस्य॥

'गुरुका स्थान भारत, शुक्र-चन्द्रका पुण्य पवित्र नदियों-का स्थल, बुधका पवित्र स्थल, शनिका निन्दनीय म्लेच्छ-भूमि, सूर्यका पर्वतीय जंगल-प्रदेश और ऐसे ही मङ्गलका कीकट (अशुभ-मगधादि) देशोंमें स्थान बताया गया है।'

स्थिरे स्थिरांशाधिपतेः सपापः
पृष्ठोदयेऽधो मुखभे च संस्थः।
तदीश्वरो वृक्षलतादिजन्म
स्यादन्यथा जीवयुतः शरीरी॥

'यदि उपर्युक्त ग्रह स्थिर राशि या स्थिर नवांश और पृष्ठोदय-अधोमुख राशिमें पापग्रहसे संयुक्त हों तो मनुष्यका जन्म पूर्वोक्त देशमें वृक्ष-लता-बेल आदि योनियोंमें होगा। यदि वह ग्रह अन्य राशियोंमें हो तो परलोकगत प्राणीका जन्म जीवधारी प्राणियोंमें होगा—यों जानना।'

लग्नेशितुः स्वोच्चसुहृत्स्वगेहात्
तदीश्वरो याति मनुष्यजन्म।
समे मृगाः स्युर्विहगाः परस्मिन्
द्रेष्काणरूपैरपि चिन्तनीयम्॥

'लग्नेशकी उच्चराशिमें, लग्नेशके मित्र-ग्रहकी राशिमें अथवा लग्नेशकी अपनी राशिमें उपर्युक्त स्थान जतलानेवाले ग्रह हों तो उस व्यक्तिका पुनर्जन्म मनुष्य-योनिमें होगा; यदि सम ग्रहकी राशिमें हों तो मृगादि पशुयोनिमें पुनर्जन्म होगा—ऐसा जानें। अन्य ग्रहकी राशियोंमें हों तो पक्षियोंकी योनियोंमें जन्म जानें—इसी प्रकार द्रेष्काणपरसे भी यह विचार करना चाहिये।'

तावेकराशौ जननं स्वदेशे
तौ तुल्यवीर्यौ यदि तुल्यजातिः।
वर्णो गुणस्तस्य खगस्य तुल्यं
संज्ञोदितैरेव वदेत् समस्तम्॥

'यदि उपर्युक्त दोनों ग्रह (नवमेश, पञ्चमेश) एक राशिमें बैठे हों तो स्वदेशमें जन्म जानें। यदि वे दोनों ग्रह समान बली हों तो उसी अपनी जातिमें जन्म जानें। उसका वर्ण-गुण आदि सम्पूर्ण विचार उस ग्रहके अनुसार ज्योतिःशास्त्रके संज्ञाप्रकरणोक्तवत् समस्त कहना चाहिये।'

'कुल-गौरव' और 'कुलकलङ्क'

हो शरीर सेवा-संयममय, वाणी हो नित प्रिय-हित-सत्य।
सर्वभूत-हित-सम करुणा हो मनमें भगवच्चिन्तन नित्य॥
हो चाहे धन-मान-पद-रहित, हो चाहे समाजमें दीन।
'कुल-गौरव', वह परम धन्य जीवन है जो प्रभु-पद-रति-लीन॥

वचन अहितकर-मिथ्या-कटु हो, तन इन्द्रिय-भोगोंका दास।
मनमें हिंसा-काम-क्रोध-मद-निर्दयता रति-भोगविलास॥
धन-अधिकार-मान-यश हो, पर प्रभु-पद-विमुख हृदय हो नीच।
'कुल-कलङ्क' वह रहा विषम-दुख-नरक-लताको संतत सींच॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म-मृत्यु और ग्रह-विचार

(लेखक—डॉ० श्रीनारायणदत्तजी श्रीमाली एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

भारतीय ऋषियोंने अपनी साधना, लगन, परिश्रम एवं दिव्य ज्ञानसे ग्रहोंकी गतिका अध्ययन करके जो निष्कर्ष निकाले, वे वस्तुतः प्रामाणिक होनेके साथ-साथ इस बातके सूचक भी हैं कि इन सिद्धान्तों, नियमों एवं तथ्योंके पीछे आर्यऋषियोंकी सैकड़ों-हजारों वर्षोंकी तपस्या एवं अनुभूति है। मानव-जीवनके छोटे-से-छोटे तथ्यपर भी इन ऋषियोंने विचार तथा अनुभव प्राप्त किया है। हानि-लाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरण आदिका विवेचन करनेके साथ-साथ उन्होंने ग्रहोंकी गति एवं स्थितिके आधारपर आवागमनपर भी प्रकाश डाला है।

बालक जिस समय जन्म लेता है, उस समयका शोधन कर अक्षांश-देशान्तर-संस्कार करनेके पश्चात् बालककी जन्म-कुण्डली बनायी जाती है। उस समयके ग्रहोंकी स्थितिके अध्ययनके फलस्वरूप यह ज्ञात किया जा सकता है कि बालक किस योनिसे आया है और मृत्युके पश्चात् उसकी क्या गति होगी। नीचे इस सम्बन्धमें कुछ विशेष योग प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

जन्मपूर्व योनि-विचार

(१) यदि जातककी जन्म-कुण्डलीमें चार या इससे अधिक ग्रह उच्च राशिके, अथवा स्वराशिके हों तो जीवने उत्तम योनि भोगकर यहाँ जन्म लिया है, ऐसा समझना चाहिये।

(२) लग्नमें उच्चराशिका या स्वराशिका चन्द्रमा हो तो बालक पूर्वजन्ममें सद्विवेकी वणिक् था, यों मानना चाहिये।

(३) लग्नस्थ गुरु इस बातका सूचक है कि बालक पूर्वजन्ममें वेदपाठी ब्राह्मण था। यदि जन्मकुण्डलीमें कहीं भी उच्चका गुरु होकर लग्नको देख रहा हो तो बालक पूर्व-जन्ममें धर्मात्मा, सद्गुणी एवं विवेकशील साधु अथवा तपस्वी था—ऐसा ऋषियोंका कथन है।

(४) यदि जन्म-कुण्डलीमें सूर्य छठे, आठवें या बारहवें भावमें हो अथवा तुला राशिका हो तो बालक पूर्व-जन्ममें पापरत एवं भ्रष्टजीवन व्यतीत करनेवाला था—यों जानना चाहिये।

(५) लग्न या सप्तम भावमें यदि शुक्र हो, तो जातक पूर्वजन्ममें राजा या प्रसिद्ध सेठ था, तथा पूर्णतः भोगी जीवन बितानेवाला था—यों समझना चाहिये।

(६) लग्न, एकादश, सप्तम या चौथे भावमें शनि इस बातका सूचक है कि बालक पूर्वजन्ममें शूद्रपरिवारसे सम्बन्धित था एवं पापपूर्ण कार्योंमें रत था।

(७) यदि लग्न या सप्तम भावमें राहु हो तो बालककी पूर्वमृत्यु स्वाभाविक रूपमें नहीं समझनी चाहिये।

(८) चार या इससे अधिक ग्रह जन्म-कुण्डलीमें नीच राशिके हों तो बालकने पूर्वजन्ममें निश्चय ही आत्महत्या की होगी, ऐसा ऋषियोंका कथन है।

(९) लग्नस्थ बुध स्पष्ट करता है कि जातक पूर्व-जन्ममें वणिक्-पुत्र था एवं विविध क्लेशोंसे ग्रस्त रहता था।

(१०) सप्तम भाव, छठे भाव या दशम भावमें मङ्गलकी उपस्थिति यह स्पष्ट करती है कि जातक पूर्व-जन्ममें अत्यन्त क्रोधी स्वभावका था तथा कई व्यक्ति उससे पीड़ित रहते थे।

(११) बृहस्पति शुभ ग्रहोंसे दृष्ट हो तथा गुरु पञ्चम या नवम भावमें हो तो जातक पूर्वजन्ममें वीतरागी था—यों समझना चाहिये।

(१२) एकादशमें सूर्य, पञ्चममें बृहस्पति तथा द्वादश भावमें शुक्र इस बातके द्योतक हैं कि जातक पूर्व-जन्ममें धर्मात्मा लोगोंकी सहायता करनेवाला तथा दान-पुण्यमें तत्पर ईश्वराराधक था। ऐसा भारतीय ऋषियोंका कथन है।

मृत्यु-उपरान्त गति-विचार

मृत्युके उपरान्त जातककी क्या गति होगी, इसका ज्ञान भी आर्ष नियमोंके अनुसार जन्म-कुण्डलीसे किया जा सकता है। नीचे इसीके सम्बन्धमें कुछ प्रामाणिक योग प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) कुण्डलीमें कहींपर भी यदि उच्च (कर्कराशि) का बृहस्पति स्थित हो, तो जातककी अन्त्येष्टि धूमधामसे होती है तथा मृत्युके पश्चात् उत्तम कुलमें जन्म होता है।

(२) लग्नमें उच्चराशिका चन्द्रमा हो तथा कोई पापग्रह उसे न देखते हों तो जातककी सद्गति होती है तथा वह अपने पीछे कीर्ति-कथाएँ छोड़ जाता है।

(३) अष्टमस्थ राहु जातकको पुण्यात्मा बना देता है तथा मरनेके पश्चात् वह राज्यकुलमें जन्म लेता है, ऐसा विद्वानोंका कथन है।

(४) अष्टम भावपर मङ्गलकी दृष्टि हो तथा लग्नस्थ भौमपर नीच शनिकी दृष्टि हो तो जातक रौरव नरक भोगता है।

(५) अष्टमस्थ शुक्रपर गुरुकी दृष्टि हो तो जातक मृत्युके पश्चात् वैश्यकुलमें जन्म लेता है।

(६) अष्टम भावपर मङ्गल और शनि—इन दोनों ग्रहोंकी पूर्ण दृष्टि हो तो जातक अकाल मृत्युसे मरता है।

(७) अष्टम भावपर शुभ-अथवा अशुभ किसी भी प्रकारके ग्रहकी दृष्टि न हो और न अष्टम भावमें कोई ग्रह स्थित हो तो जातक ब्रह्मलोक प्राप्त करता है।

(८) लग्नमें गुरु-चन्द्र, चतुर्थ भावमें तुलाका शनि एवं सप्तम भावमें मकर राशिका मङ्गल हो तो जातक जीवनमें कीर्ति अर्जित करता हुआ मृत्यु-उपरान्त ब्रह्मलीन होता है।

(९) लग्नमें उच्चका गुरु चन्द्रको पूर्ण दृष्टिसे देख रहा हो, एवं अष्टमस्थान ग्रहोंसे रिक्त हो तो जातक जीवनमें सैकड़ों धार्मिक कार्य करता है तथा प्रबल पुण्यात्मा एवं मृत्युके उपरान्त सद्गतिका अधिकारी होता है।

(१०) अष्टम भावको शनि देख रहा हो तथा अष्टम भावमें मकर या कुम्भ राशि हो तो जातक योगिराज-पद प्राप्त करता है तथा विष्णुलोक प्राप्त करता है।

(११) यदि जन्म-कुण्डलीमें चार ग्रह उच्चके हों तो जातक निश्चय ही श्रेष्ठ मृत्युका वरण करता है, एवं पीछे अक्षयकीर्ति-वट स्थापित कर देता है।

(१२) एकादश भावमें सूर्य-बुध हों, नवम भावमें शनि तथा अष्टम भावमें राहु हो, तो जातक मृत्युके पश्चात् मोक्ष प्राप्त करता है।

विशेष योग

(१) द्वादशभाव शनि, राहु या केतुसे युक्त हो, फिर अष्टमेशसे युक्त हो अथवा षष्ठेशसे दृष्ट हो तो मरनेके बाद दुर्गति होगी—यों समझना चाहिये।

(२) गुरु लग्नमें हो, शुक्र सप्तममें हो, कन्याराशिका चन्द्रमा हो एवं धनुलग्नमें मेषका नवांश हो तो जातक मृत्युके पश्चात् परमपद प्राप्त करता है।

(३) अष्टमभावको गुरु, शुक्र और चन्द्र—तीनों ग्रह देखते हों तो जातक मृत्युके पश्चात् श्रीकृष्णके चरणोंमें स्थान प्राप्त करता है, ऐसा आर्यऋषियोंका कथन है।

भगवद्भक्तका महत्त्व

मद्भक्तियुक्तो मर्त्यश्च स मुक्तो महुणान्वितः। महुणाधीनवृत्तिर्यः कथाविष्टश्च संततम्॥
महुणश्रुतिमात्रेण सानन्दः पुलकान्वितः। सगद्गदः साश्रुनेत्रः स्वात्मविस्मृत एव च॥
न वाञ्छति सुखं मुक्तिं सालोक्यादिचतुष्टयम्। ब्रह्मत्वममरत्वं वा तद्वाञ्छा मम सेवने॥
इन्द्रत्वं च मनुत्वं च ब्रह्मत्वं च सुदुर्लभम्। स्वर्गराज्यादिभोगं च स्वप्नेऽपि च न वाञ्छति॥

श्रीभगवान् कहते हैं—मुझमें भक्ति रखनेवाला मानव मेरे गुणोंसे सम्पन्न होकर मुक्त हो जाता है। उसकी वृत्ति ही मेरे गुणका अनुसरण करने लगती है। वह सदा मेरी कथा-वार्तामें लगता है। मेरा गुणानुवाद सुननेमात्रसे वह आनन्दमें तन्मय हो उठता है। उसका शरीर पुलकित हो जाता है और वाणी गद्गद हो जाती है। उसकी आँखोंमें आँसू भर आते और वह अपनी सुधि-बुधि खो बैठता है। मेरी पवित्र सेवामें नित्य नियुक्त रहनेके कारण सुख, चार प्रकारकी सालोक्यादि मुक्ति, ब्रह्माका पद अथवा अमरत्व कुछ भी पानेकी अभिलाषा वह नहीं करता। ब्रह्मा, इन्द्र एवं मनुकी उपाधि तथा स्वर्गके राज्यका सुख—ये सभी परम दुर्लभ हैं; किंतु मेरा भक्त स्वप्नमें भी इनकी इच्छा नहीं करता।

(देवीभागवत, नवम स्कन्ध)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रथस्थं वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते

(लेखक--पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय, एम्० ए०, डी० लिट्०)

शीर्षकस्थ सारगर्भित वाक्यका तात्पर्य गवेषणीय है । विचारणीय है कि पुनर्जन्म होता ही कब है । भगवद्-दर्शनसे पराङ्मुख जीव इस भवार्णवमें निरन्तर जन्मता है और मरता है । भगवान्‌के दिव्यरूपका दर्शन तथा उसमें रागात्मिका भक्ति ही जीवको मुक्ति देनेमें समर्थ होती है । **'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'**--यह शास्त्रका सर्वथा सत्य वचन है । फलतः ज्ञानकी प्राप्ति मुक्तिकी साधिका है--इस सार्वभौम सिद्धान्तमें किसी प्रकारकी विप्रतिपत्ति नहीं है ।

पूर्वोक्त वाक्यका सामान्य अर्थ है कि 'रथपर स्थित वामनके दर्शन करनेवालेका पुनर्जन्म नहीं होता ।' आषाढ़ शुक्ल द्वितीयाको जगन्नाथपुरीमें जो रथयात्रा होती है और श्रीकृष्ण रथपर चढ़कर अपनी ससुरालमें जो जाते हैं, उन्हें देखनेके लिये लाखों मनुष्योंकी भीड़का रहस्य इसी वाक्यमें अन्तर्निहित है । जगन्नाथजी वामनके प्रतिनिधि माने जाते हैं और रथस्थ जगन्नाथजीका दर्शन मुक्तिका साधक होता है--इसी भावनासे प्रेरित होकर श्रद्धालु जनता रथयात्राके उत्सवमें सम्मिलित होती है । यह तो हुआ इसका भौतिक तात्पर्य ।

इस वाक्यका आध्यात्मिक तात्पर्य बड़ा गम्भीर है । वामन छोटे रूपसे बढ़ता-बढ़ता इतना विशाल होता है कि वह समस्त ब्रह्माण्डको तीन ही पगोंमें माप डालता है । इस प्रकार वह ब्रह्मका प्रतिनिधि है, जो **'अणोरणीयान् महतो महीयान्'** है । ब्रह्म अणुसे भी अणुतर है तथा महान्‌से भी महीयान् है । रथ इस शरीरका ही बहुचर्चित प्रतीक है । यह बड़ा ही विशद प्रतीक है--नाना इन्द्रियोंके द्वारा परिचालित, मनके द्वारा निगृहीत शरीरका । कठोपनिषद्‌के द्वारा प्रयुक्त यह रूप-कल्पना बड़ी प्रख्यात है--

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥
(१ । ३ । ३)

फलतः रथस्थ वामनका अर्थ है--शरीरके ऊपर अधिष्ठित आत्मा, जो रथी (अर्थात् रथके स्वामी) की तरह इसका नियन्त्रण करता है तथा उचित कार्योंमें लगाता है । रथका रूपक यहाँ इस विशेष तात्पर्यसे प्रयुक्त है कि रथको जिस प्रकार सारथि लगामके द्वारा कुमार्गसे बचाकर सुमार्गमें ले जाता है, उसी प्रकार परमात्मा इसको नियन्त्रणमें रखता है । वामनके दर्शनका अर्थ है--'आत्माका साक्षात्कार, आत्माके सच्चे अर्थका ज्ञान ।' कहना नहीं होगा कि आत्माके साक्षात्कर्ताके लिये पुनर्जन्मका विधान नहीं है । फलतः वह जीवन्मुक्त हो जाता है और पुनः इस संसारके बन्धनमें कभी नहीं पड़ता ।

धर्मकी महत्ता

धर्मसे अर्थ, अर्थसे काम और कामसे भोग एवं सुख उपलब्ध होते हैं । धर्मसे ही ऐश्वर्य, एकाग्रता और उत्तम स्वर्गीय गति प्राप्त होती है । विप्रवरो ! धर्मका यदि सेवन किया जाय तो वह मनुष्यकी महान् भयसे रक्षा करता है । इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि धर्मसे देवत्व और ब्राह्मणत्व भी प्राप्त हो सकते हैं । जब मनुष्योंके पूर्वसंचित पाप नष्ट हो जाते हैं, तब उनकी बुद्धि इस लोकमें धर्मकी ओर लगती है । हजारों जन्मोंके पश्चात् दुर्लभ मनुष्य-जीवनको पाकर जो धर्मका आचरण नहीं करता, वह निश्चय ही सौभाग्यसे वञ्चित है । जो लोग कुत्सित, दरिद्र, कुरूप, रोगी, दूसरोंके सेवक और मूर्ख हैं, उन्होंने पूर्व-जन्ममें धर्म नहीं किया है--ऐसा जानना चाहिये । जो दीर्घायु, शूरवीर, पण्डित, भोगसाधनसे सम्पन्न, धनवान्, नीरोग तथा रूपवान् हैं, उन्होंने पूर्वजन्ममें अवश्य ही धर्मका अनुष्ठान किया है । ब्राह्मणो ! इस प्रकार धर्मपरायण मनुष्य उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं और अधर्मका सेवन करनेवाले लोग पशु-पक्षियोंकी योनियें जाते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रथस्थं वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते'

(लेखक—श्रीफणीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय)

श्रीविवेकानन्द स्वामीजीका कथन है कि मनुष्य पार्थिव विषयभोगकी लालसासे निवृत्त हो; क्योंकि प्रार्थनासे तुष्ट भगवान् समस्त लालसाओंकी पूर्ति करते हैं। वैसे जीवको बारंबार जन्म ग्रहण करना पड़ता है, त्रिताप-ज्वालासे जर्जरित होना पड़ता है; अतः भगवान्‌का केवल भगवान्‌का ही अन्वेषण करना चाहिये। स्रष्टा तथा सृष्टतत्त्वको ज्ञात करनेकी चेष्टा करनी चाहिये, जो मोक्षप्रद है।

तत्त्वद्रष्टा ब्रह्मपुराणके प्रणेता महामनीषीने इन तत्त्वोंसे सम्बन्धित संदेशके विवरणके प्रसङ्गमें लिखा है—

यस्मात् सर्वमिदं प्रपञ्चरचितं मायाजगज्जायते
यस्मिंस्तिष्ठति याति चान्तसमये कल्पानुकल्पे पुनः।
यं ध्यात्वा मुनयः प्रपञ्चरहितं विन्दन्ति मोक्षं ध्रुवं
तं वन्दे पुरुषोत्तमाख्यममलं नित्यं विभुं निश्चलम्॥

"रस प्रपञ्चमय निखिल माया-जगत्‌की जिनसे सृष्टि हुई है, जिनमें यह अवस्थान करता है और प्रलयोंसे जिनमें बारंबार विलयको प्राप्त होता रहता है, अथच जो प्रपञ्चरहित हैं, जिन परम तत्त्वका ध्यान करके मुनिगण मोक्षपद प्राप्त करते हैं, 'पुरुषोत्तम'—नामसे अभिहित नित्य निर्मल निश्चल अन्तर्यामी वे विश्वव्यापी भगवान् वन्दनीय हैं।"

यह रस-गन्ध-स्पर्शमय जगत् कहाँसे आया है? तत्त्व-विदोंका सिद्धान्त है कि यह मायारचित है। माया कहाँ अधिष्ठित है? सर्वकारणोंका कारण ब्रह्म ही अनिर्वचनीया मायाका अधिष्ठान है। अतएव ब्रह्मका ध्यान एवं उनकी उपासनामें ही मानव-जीवनकी सार्थकता है।

सर्वदा सर्वत्र समभावसे अवस्थित, निर्लिप्त, तर्कातीत, दृश्यमान तथा अदृश्य—सभी कुछके आदि-अन्त आत्मस्वरूप ब्रह्म सभीके समीप प्रकाशित हों। ज्ञानीकी दृष्टिसे जो ब्रह्म हैं, योगीके निकट जो परमात्मा हैं, भक्तोंके हृदयमें वे ही भगवान् हैं।

'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।'

(गीता १८। ६१ पूर्वार्ध)

'ईश्वर सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंके शरीरमध्यस्थित हृदयमें विराजित हैं।' हमारे शरीरान्तर्गत हृदयमें जो विराजित हैं, वे ही आत्मा हैं। आत्मा सूक्ष्म है, इसीलिये वे 'वामन' नामसे भी अभिहित होते हैं। इसीलिये शास्त्रमें प्रसिद्ध है कि हमारा शरीर देवमन्दिर है। इस मन्दिरके देवता ही श्रेष्ठतम देवता हैं। चलनशक्ति-सम्पन्न होनेके कारण शास्त्रकारोंने हमारे शरीरको 'रथ'की आख्या प्रदान की है। इस शरीर या रथमध्यस्थ हृदयके देवताके दर्शन प्राप्त होनेसे जीवका पुनर्जन्म निवारित होता है। इसीलिये कहा गया है—

'रथस्थं वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते।'

आत्मदर्शन मानव-साधनासापेक्ष है। मानवेतर जीवोंमें साधना-सामर्थ्य नहीं है। इसीलिये वे आत्मदर्शनमें समर्थ नहीं होते। फिर, सभी मनुष्य मोक्षप्रद साधनमार्गका अनुसरण नहीं करते। क्यों?

गन्ध-मृग जिस प्रकार स्वनाभि-निःसृत गन्धका संधान न पाकर उस गन्धसे क्षुब्ध होकर इधर-उधर दौड़ता है, उसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य भी अपने चित्स्वरूपसे भ्रान्त होकर उसकी प्राप्तिकी आशासे विषयमत्त होकर जन्म-मृत्युरूप इस संसार-प्रवाहमें आवर्तित होता रहता है। कोई-कोई भाग्यवान् पुरुष बहुजन्मार्जित पुण्यकर्मोंके प्रभावसे विशुद्धचित्त होकर, परम कृपालु किन्हीं विज्ञानवान्‌के द्वारा उपदिष्ट होकर अपने आत्माका संधान प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं। परमविज्ञानवान् आचार्य शंकरने आत्माके अनुसंधानके मार्गके प्रसङ्गमें कहा है—

मा भैष्ट विद्वंस्तव नास्त्यपायः
संसारसिन्धोस्तरणेऽस्त्युपायः।
येनैव याता यतयोऽस्य पारं
तमेव मार्गं तव निर्दिशामि॥
श्रद्धाभक्तिध्यानयोगान्मुमुक्षो-
र्मुक्तेर्हेतून् वक्ति साक्षाच्छ्रुतेर्गीः।
यो वा एतेष्वेव तिष्ठत्यमुष्य
मोक्षोऽविद्याकल्पिताद्देहबन्धात्॥

(विवेकचूड़ामणि ४५, ४८)

'हे प्रेयस्कामी सुधी! डरो मत, तुम्हारा विनाश नहीं है। संसार-सिन्धुको लाँघनेके उपाय हैं। जिन मार्गोंपर चलकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्मलचित्त साधकोंने इसे पार किया है, मैं तुम्हें उन मार्गोंका संधान दूँगा।'

"वेदवाणी कहती है कि 'मुमुक्षु' जनोंके लिये अज्ञान-मोहसे मुक्त होनेका प्रत्यक्ष उपाय है 'श्रद्धा'—गुरु एवं सत्यद्रष्टा ऋषियोंके वाक्यों (शास्त्र) में विश्वास, भक्ति-जीवनके परम आदर्शके ऊपर गम्भीर प्रेम तथा ध्यानयोग और अन्तरतम चैतन्य सत्तामें मनः-समाधानपूर्वक उसके साथ तादात्म्यबोधकी प्रचेष्टा। साधनमार्गपर इन साधनोंका अवलम्बन करनेसे अज्ञानकल्पित देह-बन्धन साधकको कभी बद्ध नहीं कर सकेगा। अर्थात् देहमें रहते हुए ऐसे साधक जन्मरहित, मृत्युरहित आत्मसत्यको प्राप्त कर लेते हैं। इसीका नाम 'मोक्ष' है।"

विष्णोः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते

(लेखक—श्रीरेवानन्दजी गौड़, एम्० ए०, सा० रत्न, सा० व्या० आचार्य, काव्यतीर्थ आदि)

मानव-जीवनमें ही क्या, प्राणिमात्रके जीवनमें जन्म-मृत्यु, जरा, व्याधिके प्रत्याघात चलते रहते हैं; इन्हींसे मुक्त होनेके लिये जीवका प्रयास है और शास्त्रोंका उपदेश है। जीवन और मरणका प्रश्न मनुष्यके हाथका नहीं, इसपर विजय पाना सहज नहीं। आजका मनुष्य मानवेतर मूक प्राणियोंके प्रपीडन और विनाशमें बुरी तरह प्रवृत्त है। पर मनुष्य कितना भी दुर्दान्त क्यों न हो, मृत्युसे बच नहीं सकता।

मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते।
अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवम्॥

'कालो जगद्भक्षकः' कहा जाता है। जीव जन्म लेता है, मृत्यु साथमें आती है। मृत्यु तो हर क्षण प्राणीके सिरपर सवार है, उसके केश पकड़े बैठी है। पता नहीं कब क्या कर दे। संत कबीरका कथन है—

कबिरा गर्ब न कीजिये,
ना जाने कब मारिहैं, क्या घर क्या परदेस।

मृत्यु किसीकी प्रतीक्षा नहीं करती—रूप, रंग, कुल, पदकी गणना नहीं करती। इसकी दृष्टिमें राजा-रंक, बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, रूप-कुरूप सभी एक समान हैं। जीव माताकी गोदमें, धात्रीके हाथोंमें बादमें आता है, पहलेसे ही वह मृत्युकी गोदमें बैठा है।

बहुत घरोंमें देखनेमें आया—बालकका जन्म हो रहा है, परंतु जननी-जन्मभूमिकी गोदमें आनेसे पूर्व ही वह कालका ग्रास बन गया—मृत्युके मुँहमें समा गया। सारा प्रसन्नताका वातावरण शोकमग्न हो गया। प्रभातीके समय विहाग अलापा जाने लगा। ऐसा अपरिहार्य चक्र है—मृत्युका। तभी तो भगवान् कहते हैं—**'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।'** (गीता २। २७)

ऐसे जिस महान् चक्रको, इस अपरिहार्य पुनर्जन्मताको विश्वके शक्तिशालीसे शक्तिशाली चक्रवर्ती सम्राट्, अखिल-निगमागम-शास्त्रवेत्ता विद्वान्, कोटि-कोटि कुबेर-कोषाध्यक्ष भी न जीत सके, उसी पुनर्जन्मताके चक्रको जीतनेके लिये विष्णुपादोदकको एक अमोघ साधन माना गया है। प्रश्न विचारणीय है। ऐसे-ऐसे पुनर्जन्मता-नाशक उपाय हमारे शास्त्रोंमें यत्र-तत्र सर्वत्र मिल जायँगे। कितना बड़ा भयंकर महान् रोग और कितनी छोटी-सी सर्वसाधारण-सुलभ ओषधि। **'पुनर्जन्म न विद्यते'**—यह एक ऐसा प्रलोभन है, जिसे सभी चाहते हैं; परंतु मिलता किसी विरलेको ही है।

गङ्गाजीमें स्नान कीजिये, हरिद्वारादि तीर्थोंका सेवन कीजिये, गीता आदिका स्वाध्याय कीजिये और भगवद्भक्तिका मधुर-रस पीजिये—तत्काल आपको **'पुनर्जन्म न विद्यते'** का प्रसाद और वरदान मिलेगा। श्रीगङ्गाजीके माहात्म्यमें लिखा है—

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥

यह कैसी विचित्र बात है! ऐसे-ऐसे सुलभ साधन होनेपर भी यह पुनर्जन्मता हमारा पीछा नहीं छोड़ती।

एक ओर तो कर्मवादका अकाट्य सिद्धान्त है। करोड़ों कल्प बीत जायँ तो भी शुभाशुभ कर्मका फल इस लोक या पर-लोकमें अवश्य भोगना पड़ता है—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि॥

एक अनुभवी विद्वान्ने लिखा—**'भोगं हि भोगेन समाप्नोति।'** आत्मकृत पाप-पुण्यका फल भोगनेसे ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाप्त होता है। दूसरी ओर हम क्या देखते हैं—कुकर्मोंका बड़े-से-बड़ा पहाड़, पापोंकी संचित राशि, गुरुहत्या-ब्रह्महत्यादि महापातक क्षणमात्रमें बात-की-बातमें कर्पूरकी भाँति उड़ते नजर आते हैं।

'ब्रह्महत्यादिकं घोरं सर्वं पापं प्रणश्यति।'
यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिण पदे पदे॥

—इत्यादि वाक्य पौराणिक साहित्यमें सर्वत्र हैं।

ऐसे श्लोकोंका यथार्थ भाव न समझकर इन वाक्योंकी ओटमें बहुत मनुष्य मनमाने पापाचरणमें प्रवृत्त हो जाते हैं। शास्त्रकी मर्यादा आत्म-उद्धारक है, उपसंहारक नहीं। अतः ऐसे वाक्योंकी समन्वयात्मक भावनापर विचार करना आवश्यक है। उसीके वास्तविक अर्थको अपनाकर मानवकी पुनर्जन्मताका नाश हो सकता है, मर्त्य भी अमर्त्य हो जाता है।

केवल कोरा ज्ञान—सिद्धान्त लँगड़ा है, यदि उसमें प्रयोगात्मकताकी योग्यताका अभाव है; इसी प्रकार क्रियात्मक-शक्ति तबतक अपूर्ण है, जबतक उसमें ज्ञानका सम्पुट न होगा। घरमें घोर अंधकार हो, प्रकाशके समस्त साधन भी वर्तमान हों, परंतु यदि उनमें क्रियात्मकता न हो तो प्रकाश न होगा। अतएव बिना भावना, श्रद्धा और प्रेमके उतना लाभ न होगा, जितना अपेक्षित है। प्रत्येक धार्मिक कृत्यमें विधि-विधान—कर्मकाण्डका बड़ा बन्धन है। आजके कलिकालमें उनका यथार्थ निर्वाह हो जाय, यह सहज सम्भव नहीं। आचरणकी प्रधानताके साथ हृदयकी निष्कपटता, सात्त्विक भावोंकी बहुलता और व्यवहारकी निश्छलता सर्वोपरि है।

पतितपावनी माँ गङ्गाकी महिमा अपार है। उसके जलका ही नहीं, रजतकका महान् पुण्य प्रभाव है। जहाँ माता गङ्गाकी धूलि लग जाती है, वहाँ पापोंका पहाड़ भी धूलि बन जाता है। महाकवि पद्माकरका कवित्त है—

जेते तूने तारे, तेते नभमें न तारे हैं।

इस तरणतारिणी भावनामें कर्मकी पवित्रता, मनकी सात्त्विकता और वचनकी पावनता सापेक्ष है, इसी प्रकार—

'विष्णोः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।'
'स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते॥'

—इत्यादि वाक्योंकी संगति है।

विष्णुचरण-उदक पीनेमें ही पुनर्जन्मता-नाशकी शक्ति नहीं अपितु उसके दर्शन, स्पर्शनमात्रमें भी विलक्षण चमत्कार पाया जाता है। भगवान् विष्णुके चरणोदक (जल) की बात छोड़िये, उनके चरणोंकी रजको लीजिये। उसमें कितना प्रभाव है! उसमें भी पुनर्जन्मता-नाशकी शक्ति अन्तर्निहित है। इसी मान्यताके बलपर गोस्वामीजीको कहना पड़ा—

'रावरे दोषु न पायन को, पग-धूरिको भूरि प्रभाव महा है।
पाहन तै बन बाहन काठ को कोमल है, जलु खाइ रहा है।'
(कवितावली, अयोध्या० ७)

पाषाणी अहल्याके उद्धारकी क्षमतातक इस रजमें है। रजसे उदककी महत्ता कई गुनी अधिक है, यह सर्वसम्मत है। इस प्रकार भगवद्भक्तमें अपने आराध्यके प्रति अनन्यनिष्ठा और अटूट श्रद्धा होगी, हृदयमें निश्छलता और पावन प्रेम होगा। भगवान् और भक्तके मध्यमें सांसारिक भोगात्मक ऐश्वर्यकी कड़ी समाप्त हो जायगी; तब **'पुनर्जन्म न विद्यते'** की ओषधि अवश्य काम करेगी।

पाप-पुञ्जहारी भगवान् विष्णु, तापत्रयहरण उनके चरण-कमल और त्रिविध ज्वाला (तृष्णा)-हरण उनका चरणामृत, उसमें भी हरिप्रिया महारानी पटरानी तुलसी-दलका स्वारस्य हो और हृदयमें मीराँके समान अपने आराध्यके प्रति अनन्य तन्मयता—इसी तन्मयताके बलपर भोली-भाली मीराँ भगवान्का चरणामृत समझकर विषपान कर बैठी और पुनर्जन्मताके रोगपर उसने काबू पा लिया। ऋषि-मुनियोंने इसी चरणामृतके लिये अनेक जन्म साधना की। उनमें इसके प्रति अगाध श्रद्धा थी। उन्हें ज्ञान हो गया कि चरणामृत यथार्थमें क्या है। उसे पीकर उनकी पुनर्जन्मता नष्ट हो गयी और वे परम शान्तिमें लीन हो गये—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥
(गीता)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्जन्म न विद्यते

(लेखक—श्रीलक्ष्मीनारायणसिंहजी)

हमारे सद्ग्रन्थोंने यह बतलाया है कि जन्मसे पूर्व जब मनुष्य अपनी माताके गर्भमें नौ मासतक झिल्लीसे आवृत हो उल्टा टँगा रहता है तब उसे असह्य पीड़ा होती है। पेटके कारागारमें बँधकर लेशमात्र भी हिलना-डुलना सम्भव नहीं होता। नरकवास-जैसा दुःसह्य दुःख उठाना पड़ता है। फिर प्रसवके समय भीषण पीड़ा होती है। मरण-कालमें जन्म लेनेसे भी अधिक वेदना होती है, जब शरीरमें सैकड़ों बिच्छुओंके डंक मारनेकी-सी पीड़ा होती है। उस समय प्राणी मूक बन जाता है। उसको अपनी वेदनाओंको बतानेकी भी शक्ति नहीं रह जाती। वह अपने आत्मीयजनों, भाई-बन्धुओं, पुत्र-कलत्रों, परिचितों-को देखकर आँखोंसे अविरल आँसुओंकी धारा बहाता है। अन्तमें उसकी जीवन-लीला समाप्त हो जाती है और वह अपने कर्म-संस्कारोंको लेकर चला जाता है।

यह है जन्म-मरणका दुःखमय रहस्य। मनुष्य स्वभावतः जबतक उसमें चेतना जाग्रत् नहीं होती, तबतक अपने जन्मके बाद शिशुकालमें भी अनेक प्रकारके कष्ट उठाता है, पर क्रमशः वह सारी बातोंको भूलकर इस तरह सांसारिकतामें उलझ जाता है कि वह अपने मनुष्य-जीवन-प्राप्तिके लक्ष्यसे विचलित हो जाता है और आवागमन (पुनर्जन्म)-के चक्करमें पड़ा रहता है।

ऐसे दुःखमय जन्म-मरणसे मुक्ति पानेकी बात विरले ही महात्मा सोचते हैं। पुनर्जन्म-मुक्ति-हेतुको खोजनेवालोंके लिये भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें यह बतला दिया है कि मनुष्य किस तरह पुनर्जन्मसे निवृत्त हो सकता है और उसके क्या साधन हैं।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥

(गीता ८। १६)

'हे अर्जुन! ब्रह्मलोक आदि जितने सब लोक हैं, सबसे (ऐसे लोकको प्राप्त हुएको) पुनः लौटना पड़ता है (जन्म लेना पड़ता है); परंतु हे कुन्तीनन्दन! मुझे प्राप्त कर लेनेपर फिर जन्म ग्रहण करना नहीं पड़ता।'

भगवान्‌ने अर्जुनको यह भी बतलाया है—

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥

(गीता ८। १५)

'मुझे प्राप्त कर लेनेपर परमसिद्ध महात्मागण पुनः दुःखके स्थानरूप अशाश्वत जन्मको प्राप्त नहीं करते।'

यह परमगति कैसे होती है, इसको भी भगवान्‌ने गीतामें स्पष्ट समझा दिया है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥
अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥
यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥
तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥

(८। १३, ५-७)

'जीवनान्तसमय ॐकाररूपी एकाक्षर ब्रह्मका उच्चारण करता हुआ और मुझ परमेश्वरका स्मरण करता हुआ जो साधक शरीरका त्याग करता है, वह परमश्रेष्ठ गतिको प्राप्त करता है।'

'जो मरते समय मुझ परमेश्वरका स्मरण करता हुआ देह छोड़कर जाता है, वह मेरे भावको प्राप्त करता है—इसमें संदेह नहीं है। हे अर्जुन! मनुष्य जिस-जिस भावको स्मरण करता हुआ अन्तमें देह त्यागता है, सदा उस-उस भावसे युक्त होनेके कारण उसी (भाव) को प्राप्त होता है। अतएव सब कालोंमें मुझ परमेश्वरमें मन और बुद्धि अर्पण कर, मेरा स्मरण कर और युद्ध कर। ऐसा करनेसे तू मुझ परमेश्वरको ही निःसंदेह पा लेगा।'

भगवान्‌ने कहा है कि जो मनुष्य ॐकाररूपी एकाक्षर ब्रह्मका उच्चारण तथा भगवान्‌का स्मरण करता हुआ मरता है, वह पुनर्जन्मसे मुक्त हो जाता है। अब यह विचारना है कि मरते समय यह उच्चारण तथा स्मरण कैसे हो। मनुष्य साधारणतया अपना सारा जीवन सांसारिकता, आत्मीयता, बन्धुता, पारिवारिकताके उलझनोंमें फँसा रहनेके कारण कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह नहीं सोचता कि उसे एक दिन मरना ही है। अतएव मनुष्य-जन्मके परम लक्ष्य आवागमनके चक्करसे मुक्ति पानेके लक्ष्यको विस्मृत कर देता है, इससे अन्तकालमें उसी संसारका उसे स्मरण होता है। परंतु जिस महात्माको अपने लक्ष्यका स्मरण रहता है, वह परमेश्वरको सदा-सर्वदा, सब समय स्मरण करता रहता है; उसे शीघ्र ही भगवान् मिल जाते हैं। भगवान्‌ने कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

'हे अर्जुन! जिस मनुष्यकी ऐसी भावना बन जाती है कि अन्य कुछ नहीं है (केवल एकमात्र परमेश्वर है) और यों समझकर जो नित्य निरन्तर मुझे स्मरण करता है, उस नित्ययुक्त योगीको मैं सुलभतयासे मिल जाता हूँ।'

नित्ययुक्त योगी किस तरह होना सम्भव है, यह विचारना है। भगवान्‌में प्रेम लगानेके लिये उनके प्रति अगाध श्रद्धा रखनी होगी। बिना श्रद्धा ईश्वरकी प्राप्ति नहीं होती, श्रद्धावान् ही भगवान्‌का प्रिय होता है। श्रद्धावान्‌को ही ज्ञानकी प्राप्ति होती है, ईश्वरके प्रति श्रद्धावान् बननेपर ही मनुष्य सांसारिकतासे छुटकारा पा सकता है। भगवान्‌ने श्रद्धाका महत्त्व गीतामें भली प्रकार समझाया है।

उन्होंने कहा है—'श्रद्धावान् सभी कर्मोंसे छूट जाते हैं।' 'श्रद्धावान् मुझमें लगा हुआ पुरुष इन्द्रिय-संयम करके ज्ञानको प्राप्त करता है।' 'श्रद्धावान् मुझ परमेश्वरको स्मरण करता है, वह मुझसे युक्त है—ऐसा मेरा विचार है।' 'जो श्रद्धासे युक्त हो मेरी उपासना करता है, वह श्रेष्ठ उपासक है—ऐसा मेरा मत है।' 'श्रद्धावाला मुझमें लगा हुआ भक्त मुझे बड़ा ही प्रिय है।'

इन वचनोंसे यह स्पष्ट है कि भगवान् श्रद्धावान् पुरुषपर ही कृपा करते हैं और वही भक्त ईश्वरको पा लेता है।

परंतु मनुष्य विषयासक्त रहकर उन्हींमें फँसा रहता है। जैसा कहा गया है—

'कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च।'

अर्थात् जैसे मधुर शब्दके मोहमें मृग फँस जाता है, हाथी हथिनीपर आसक्त होनेपर गढ़ेमें गिरकर बँध जाता है, पतंग दीपकके रूपपर मोहित हो उसपर गिरता और जलकर मर जाता है, भ्रमर मधुर रसास्वादन करते-करते कोमल कमलके पुटोंमें बंद हो जाता और उसे काटकर नहीं निकल पाता और मछली आमिषभोज (चारे) पर आसक्त हो लोहेके काँटेमें फँस जाती है, उसी तरह आसक्ति मनुष्यको सांसारिकतामें ऐसी फँसा डालती है कि वह अपने जीवनके परम लक्ष्य ईश्वर-प्राप्तिको भूल जाता है और ईश्वराराधनसे विमुख बन जाता है। इसीलिये साधक आसक्तिसे विरक्त हो वैराग्यका अवलम्बन करते हैं। जब मनुष्यमें ईश्वरकी भावना आ जाती है, तब वह 'विमत्सर'—किसीके साथ किसी तरहका ईर्ष्याका भाव नहीं रखता, वह 'द्वन्द्वातीत' हो जाता है। उसपर दुःख-सुख, हानि-लाभ, मान-अपमान आदि द्वन्द्वोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह 'नित्यतृप्त'—सदा संतोषी बन जाता है। वह 'निराशीः'—किसी भोगकी आशा नहीं रखता। वह **'त्यक्तसर्वपरिग्रहः'**—सभी प्रकारके संग्रहोंसे विमुख हो जाता है। वह **'निराश्रयः'**—भगवान्‌के अतिरिक्त किसीका आश्रय नहीं रखता। वह **'यत चित्तात्मा'**—अपने मन और चित्तको वशमें रखता है, विचलित नहीं होने देता। वह **'ज्ञानाग्निदग्धकर्मा'** ज्ञानकी अग्निद्वारा अपने सभी कर्मोंको भस्मीभूत कर देता है। ऐसी सद्भावना, ज्ञानज्योति या परमभक्ति जब मनुष्यमें आ जाती है, तब वह ईश्वरमय बनकर आवागमन—पुनर्जन्मसे मुक्त हो सकता है, अन्यथा नहीं।

भगवान्‌के दिव्य कर्म और जन्म जान लेनेपर भी पुनर्जन्म नहीं होता। भगवान्‌ने कहा है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(गीता ४। ९)

'हे अर्जुन! जो मेरे इस दिव्य जन्म-कर्मको तत्त्व-दृष्टिसे जानता है, वह देहान्तके बाद पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होता, परंतु वह मुझे प्राप्त करता है। वह भगवत्स्वरूपको प्राप्त करता है।'

भगवान्‌का दिव्य जन्म और कर्म क्या है? भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥
(४ । ६–८)

'मैं अजन्मा, अविनाशी-स्वरूप तथा प्राणीमात्र (भूतों) का ईश्वर होनेपर भी अपनी प्रकृतिको स्वाधीन करके अपनी शक्तिसे जन्म लेता हूँ । जब-जब धर्मका ह्रास हो जाता है और अधर्म बढ़ जाता है, तब-तब मैं धर्मका उत्थान करनेके लिये जन्म धारण करता हूँ । साधुओंकी रक्षा करने, दुष्टोंका संहार करने, धर्मका पुनः स्थापन करनेके लिये युग-युगमें अवतार लेता हूँ ।'

उपर्युक्त वचनोंमें भगवान्‌ने बतलाया है कि जब देशमें अनाचार, अत्याचार, दुराचार, दुष्कर्म, भ्रष्टाचार, अनैतिकता आदिकी प्रबलतासे धर्मका लोप हो जाता है, तब ईश्वर ऐसे पापोंको मिटानेके लिये, धर्मका उत्थान करनेके लिये मनुष्यरूपमें अवतार लेते हैं । ये अवतार विशेष परिस्थितियोंमें ही हुआ करते हैं । रामायणकालमें जब निशाचर ऋषियोंको भाँति-भाँतिके कष्ट देने लगे, उनके यज्ञोंको ध्वंस करने लगे, अनन्त पापाचार होने लगे, रावण दक्षिणमें अपने बाहुबलसे गर्वित हो अनेक प्रकारका ऊधम मचाने लगा—तब ईश्वरका अवतार राम-रूपमें महाराज दशरथके यहाँ अयोध्यामें हुआ । भगवान् रामने किस तरह राक्षसोंका नाश किया, धर्मका उत्थान करके धर्मध्वजा फहरायी—यह रामायणमें अङ्कित है । ठीक उसी तरह कृष्णावतार उस युगमें हुआ, जब कंस, जरासंध, प्रलम्बासुर, बकासुर-जैसे अनेक असुर राजमदमें चूर थे, कुरुवंश, यदुवंशमें अनेकों निरङ्कुश, उच्छृङ्खल जन उत्पन्न हो गये थे, अनेक प्रकारके अनाचार बढ़ गये थे । नैतिकताका अधःपतन हो गया था, असुरोंके अत्याचारसे पीड़ित हो यादवलोग कुरु, पञ्चाल, विदर्भ आदि अनेक देशोंमें भाग गये थे ।

उन लाखों असुरोंके अन्याय और अत्याचारके बोझसे पृथ्वी जब बहुत पीड़ित हुई, तब वह गौका रूप धरकर, आँखोंमें आँसू भरे हुए, दुःख और खेदके कारण दीन स्वरसे विलाप करती हुई ब्रह्माकी शरणमें गयी और अपने सारे कष्टका हाल उन्हें कह सुनाया । तब ब्रह्माजी शंकर, इन्द्र तथा देवताओंके साथ क्षीरसागरके तटपर पहुँचे और एकाग्र होकर पुरुषसूक्तके मन्त्रोंसे जगदीश, देवदेव, मङ्गलरूप परमपुरुषकी स्तुति करने लगे और उन्होंने अपनी समाधि अवस्थामें परमेश्वरकी वह अलौकिक वाणी सुनी कि 'परमेश्वर शीघ्र अवतार लेकर पृथ्वीका भार उतारेंगे ।' उसी वाणीके अनुसार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका अवतार मथुरामें वसुदेव-देवकीके घर हुआ । उस समय भगवान्‌ने असंख्य दुराचारी असुरोंको मारा, महाभारत-ऐसा महान् युद्ध हुआ । भगवान् श्रीराम या श्रीकृष्णचन्द्रके अवतार ऐसी विषम परिस्थितियोंमें होते हैं और ऐसे अवतारी पुरुष अपनी ईश्वरीय शक्तिसे महान् आश्चर्यजनक काम करते हैं । श्रीरामद्वारा रावण-जैसे महान् पराक्रमीका हनन, मेघनाद-ऐसे योधाका वध आदि दिव्य शक्तिके द्वारा हुआ था; उसी तरह भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा कालिय नागका दमन, पूतनावध, अघासुर-बकासुरका वध, नखपर गोवर्द्धन-धारण, महाभारत-जैसे भीषण संग्रामद्वारा दुर्योधनादि-सरीखे अत्याचारियोंका मानमर्दन—ऐसे महान् कार्य दिव्य शक्तिद्वारा ही हुए थे । ऐसे अवतरण दैवी स्फुरणासे, भगवत्कृपासे, भगवदिच्छासे दैवी शक्तियोंके साथ हुआ करते हैं । इसे ही 'दिव्य जन्म' कहते हैं और ऐसी दैवीशक्तिके द्वारा धर्म-संस्थापनार्थ जो कर्म होते हैं, वे ही 'अलौकिक कर्म' हैं । अवतारी पुरुष जो कर्म करते हैं, वे ही दिव्य कर्म हैं । वे कर्म कैसे होते हैं, इसका तत्त्व जाननेपर मनुष्य उन्नति करता है, भगवत्स्वरूप बन जाता है । अवतार लेकर भगवान्‌ने किस प्रकार अपनी दिव्यशक्तिसे सर्वथा आसक्ति-कामना, अहंता-ममतासे स्वाभाविक रहित हुए आश्चर्यजनक कार्य किये, किस प्रकार महान् पराक्रमी दुष्टोंका दमन किया, किस तरह सज्जनों, साधुओं, ऋषियों, पीड़ितोंकी रक्षा की, लुप्त धर्मका किस तरह पुनरुत्थान किया, अनाचार, अत्याचार, दुराचार और अनैतिकतासे धर्मकी जो ग्लानि हुई थी, उसको किस तरह मिटाया—इन्हीं बातोंपर गम्भीरतासे विचारनेपर मनुष्यको ज्ञान होता है, ईश्वरके प्रति आकर्षण होता है और तब वह अपेक्षित पद प्राप्त करता है । दिव्यकर्म दैवीगुणोंसे युक्त कर्म हैं, जिनका गीताके १६वें अध्यायके आरम्भमें दैवी सम्पदाके नामसे वर्णन भगवान्‌ने किया है; उन गुणोंके मननसे अवतारी पुरुषोंके व्यवहारका मनन करना दिव्य गुणोंका दर्शन करना है । दिव्य विभूतिके दिव्य कर्मोंका अनुशीलन परमपदको प्राप्त करा देता है । इसीलिये भगवान्‌ने कहा है 'जो मेरे दिव्य जन्म और कर्मको इस प्रकार तत्त्वतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जान लेता है, उसको पुनर्जन्मके दुःख नहीं भोगने पड़ते हैं और वह परमेश्वरमें लय हो जाता है। जो भगवान्‌के उपर्युक्त दिव्य जन्म और कर्मको तत्त्वतः नहीं जानता, उसको नियमानुसार जन्म लेना ही पड़ता है; भले ही वह इच्छा करे या न करे, परवश होकर उसे पुनः जन्म लेना ही पड़ता है। ऐसी परवशता दिव्य जन्म और कर्मके रहस्यको जाननेवाले परमात्मस्वरूप बने मुक्तात्माओंकी नहीं होती। उन्हें पुनर्जन्म-धारण करनेके लिये कोई बाध्य नहीं कर सकता; क्योंकि वे स्वयं पुनर्जन्मसे मुक्त ईश्वरमय हो जाते हैं।

जहाँ मृत्यु भी मङ्गलकारी है

(लेखक—आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

यह ध्रुव सत्य है कि जगत्‌में मृत्युसे बढ़कर दूसरा कोई कष्ट नहीं है। मरकर अनुभव प्राप्त करनेवाले उसी समय 'मृत्यु-कष्ट'को बतलाने तो नहीं आते, किंतु मरते समय जीवको जो कष्ट होता है, उस दृश्यको देखकर यही अनुभव किया जाता है कि कष्ट बहुत होता होगा। बहुधा अपने सगे-सम्बन्धियोंको मरते समय बहुत लोग देखते हैं। दर्शकोंको मृतकके कष्टको देखकर कष्टकी कुछ अनुभूति तो हो ही जाती है। शास्त्रकारोंने जन्म और मृत्युकष्टको समान माना है—

जनमत मरत दुसह दुख होई।

लेखका शीर्षक देखकर कुछ लोग सहसा आश्चर्यमें पड़ जायँगे कि वह कौन-सा स्थान है, 'जहाँ मृत्यु भी मङ्गलकारी है।' मृत्यु और वह भी मङ्गल-सूचक—यह पहेली सबकी समझमें सहसा नहीं आ सकती। जो मोक्षमें विश्वास करते हैं और पुनर्जन्म मानते हैं, उन्हें ही यह बात समझमें आ सकती है। मृत्यु मङ्गलकारी क्यों है? इसका उत्तर यही है कि जो मोक्षमें विश्वास करते हैं, उनके लिये भारतमें भगवान् शंकरकी पावन-पुरी—वाराणसी ऐसा पवित्र तीर्थ है, जहाँ मृत्यु भी मङ्गलकारी है। मृत्यु एक ऐसी घटना है, जो निश्चितरूपमें घटती है। जो जन्म लेता है, वह अवश्य मृत्युका आलिङ्गन करता है। वह अवश्यम्भावी मृत्यु काशीपुरीमें मङ्गलकारिणी बन जाती है; क्योंकि शास्त्रका आदेश और श्रद्धालुओंका विश्वास है कि वाराणसीमें मरनेपर 'मोक्ष'की प्राप्ति होती है।

मोक्षकी आवश्यकता

'काश्यां मरणान्मुक्तिः'—काशीमें मरनेपर मुक्ति मिलती है, यह शास्त्रवाक्य है। प्रश्न उठता है कि 'काशीमें मरनेपर यदि सभी जीव मोक्ष पा सकते हैं, तो एक दिन ऐसा भी हो सकता है कि जब सभी जीवोंका मोक्ष हो जाय और संसारकी सृष्टि ही समाप्त हो जाय। सम्भव है कि सभी मनुष्य एक-न-एक दिन काशीमें मृत्युके समय पहुँच जायँ और मरकर मोक्ष प्राप्त कर लें।' बात सत्य है। किंतु ऐसा सम्भव नहीं। अद्वैतवादी ब्रह्मके उपासक सृष्टिकी रचनाको लीलाका विषय मानते हैं। अन्य दार्शनिक जगत्-सृष्टि जीवोंके भोगार्थ मानते हैं। फिर भी यही सिद्धान्त ठीक है कि जगत् और जीव दोनों परमेश्वरकी महिमामात्र हैं। सभी जीवोंकी संख्या गिनी तो नहीं जा सकती, परंतु जीवोंके समूहोंकी संख्या अनन्त होनेमें कोई संदेह नहीं। भारतीय प्राचीन भूगोलके आधारपर ब्रह्माण्डके उदरका प्रमाण पचास कोटि योजन अनुमानित है। पातालसे ब्रह्मलोकपर्यन्त इस ब्रह्माण्डमें जल, स्थल और आकाशतक कोई चप्पा नहीं बचा, जहाँ जीव न हों। यदि किसी स्थल-विशेषपर मरनेसे जीवको मोक्ष मिल जाता हो तो इससे सृष्टिका अन्त नहीं आ सकता। मोक्षमें भी सायुज्य मोक्षकी बड़ी महिमा है और काशीमें मरनेवालेको सायुज्य मोक्षकी प्राप्ति होती है—

यथा स्थानविशेषेषु विविधा मुक्तिरीरिता।
न तादृशी मुक्तिरन्यत्र काश्यां मुक्तिर्विलक्षणा॥

अतएव वाराणसीमें मरनेवाला जीव अन्तमें परब्रह्ममें लीन हो जाता है, उसे पुनः जन्मग्रहण नहीं करना पड़ता। यह एक मत है, किंतु प्रामाणिक है।

बिना ज्ञानके मुक्ति नहीं

पुनः यह प्रश्न उठता है कि 'काशीमें मरनेमात्रसे ही मुक्ति मिल जाती हो, तो काशीमें रहनेवाले जन पापाचरणसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी विरत नहीं होंगे ? और तब वाराणसीमें पापाचरण दोष नहीं समझा जायगा ! इस प्रकार काशी एक प्रकारसे पापस्थली ही बन जायगी ।' किंतु बात ऐसी नहीं है। तीर्थोंमें पापाचरण करनेवाले तो भीषण यातनाके अत्यधिक दण्डभागी होते हैं, साथ ही वाराणसीमें किया गया पाप 'वज्रलेप' बन जाता है । हाँ काशीके पापियोंकी यह विशेषता अवश्य है कि उन्हें स्थूल जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता; परंतु पापोंके अनुसार मोक्षसे पूर्व उन्हें कर्मानुसार न्यूनाधिक 'भैरवीयातना' नामक विशेष कष्ट भोगना पड़ता है । अवश्य ही उसकी भी अधिक-से-अधिक समयकी एक अवधि निश्चित है। 'भैरवीयातना' भोग लेनेपर उनका मोक्ष हो जाता है। यह वाराणसी-का विशेष प्रभाव माना जाता है । कोई ऐसा भी कहते हैं कि काशीमें मरनेवालोंको ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है। पर यह बात युक्तियुक्त नहीं है। बिना ज्ञानके मुक्ति नहीं है—'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'—यह श्रुतिवाक्य क्या असत्य है ? विद्वानोंका कथन है कि 'ज्ञानके बिना काशीमें मरनेपर भी मुक्ति नहीं होती ।' यह तर्क भी श्रुतिसम्मत है । यहाँ काशी-मोक्षवादियोंका यह कथन है कि 'काशीमें मृत्युके समय शंकरभगवान् जब 'तारक मन्त्र'का उपदेश देते हैं, तब उसी समय जीवको ब्रह्मका 'ज्ञान'भी करा देते हैं। 'तारकमन्त्र' और 'ब्रह्मज्ञान'के प्रभावसे जीव मोक्ष प्राप्त कर लेता है। अतएव श्रुतिवाक्यमें कोई विरोध नहीं रह जाता ।"

पुनः यह तर्क उपस्थित होता है कि 'यदि भगवान् शंकर सभी जीवोंको तारकमन्त्रका उपदेश देकर मोक्ष प्रदान कर देते हैं तो पापात्माओं और पुण्यात्माओंमें भेद कैसे किया जा सकता है ?' इसका उत्तर देते हुए शास्त्रवादियोंने यह सिद्ध किया है कि 'काशीमें पापाचरण करनेवाले जनोंको भैरवीयातना अधिक कालतक भोगनी पड़ती है तथा पुण्यकर्म करनेवालोंको तत्काल मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। अतः पापाचरण तो कहीं भी श्रेयस्कर नहीं है और कहीं भी उसका समर्थन नहीं है ।' पुनः यह प्रश्न उपस्थित होता है कि 'फिर काशीमें रहनेसे जीवको क्या लाभ ?' इसका उत्तर शास्त्रवादियोंकी ओरसे बहुत सुन्दर और मनोवैज्ञानिक दिया गया है। उनका यह कहना है—'यदि जीव काशीमें रहकर काशीमें मरता है तो चाहे कुछ दिन उसे भैरवीयातना भोगनी पड़े, पर उसका पुनर्जन्म नहीं होता और 'मोक्ष' पर उसका जन्मसिद्ध अधिकार हो जाता है। यदि नित्य-काशीवासी जीव मृत्युके समय काशीसे अन्यत्र तनुका त्याग करता है तो दूसरे जन्ममें पुनः-पुनः उस जीवको काशीमें ही जन्म प्राप्त होता है और उसकी मृत्यु भी काशीमें ही होती है। काशीमें मरनेपर 'मोक्ष' भी निश्चित है ।"

वाराणसीकी विचित्रता

शास्त्रोंमें यह भी कहा गया है कि काशीपुरी शंकरके त्रिशूलपर स्थित है । पृथ्वीमण्डलसे वाराणसीका सम्बन्ध नहीं। शंकरका त्रिशूल भी आधाररहित है। इतना ही नहीं, वाराणसीमें मरनेवालोंके लिये उत्तरायण और दक्षिणायनका भी विचार नहीं करना पड़ता। पवित्र और अपवित्र स्थानका भी निराकरण नहीं करना पड़ता। गङ्गातट या गलीमें भी भेद नहीं माना जाता। काशीमें जहाँ-कहीं भी जीव मर जाता है तो शंकरभगवान् उसे 'तारकमन्त्र' देकर, 'ब्रह्मज्ञान'से अभिषिक्त कर 'मोक्ष' प्रदान करते हैं—

भूमौ जलेऽन्तरिक्षे वा यत्र क्वापि मृतो द्विजः ।
ब्रह्मात्मैकत्वमाप्नोति काशीशक्तिरुपोहिता ॥

काशीपुरीमें मध्यमेश्वरमें जो शिवलिङ्ग है, उसे केन्द्र-बिन्दु मानकर देहली-विनायकतककी रेखासे यदि एक वृत्त बनाया जाय तो उतने क्षेत्र (वृत्तान्तर्गत)में काशीपुरी मण्डलाकार बनती है। उतने क्षेत्रके अन्तर्गत मरनेवाले जीवोंको मोक्ष प्राप्त होता है। वाराणसीके मण्डलाकार घेरेमें पूर्वमें गङ्गातटका भाग है, पश्चिममें पाशपाणि गणेश, दक्षिणमें अस्सी नदी और उत्तरमें वरुणा नदी है। वाराणसीके भीतर ही 'अविमुक्त' नामक क्षेत्र है। विश्वनाथ-मन्दिरसे दो सौ धनुष नापनेपर चारों ओर अविमुक्त क्षेत्रका मण्डलाकार क्षेत्र बनता है। अविमुक्त क्षेत्रके भीतर 'अन्तर्गृह' क्षेत्र है। अन्तर्गृहके चारों ओरकी सीमा निम्न प्रकारसे है—पश्चिममें 'गोकर्णेश्वर', पूर्वमें आधी गङ्गा, उत्तरमें 'भारभूतेश्वर' और दक्षिणमें 'ब्रह्मेश्वर'। ब्रह्मपुराणमें श्री-ब्रह्माजीने श्रीमध्यमेश्वर शिवसे पाँच कोस तककी सीमाका माहात्म्य बतलाया है। कहीं-कहीं यह भी प्रमाण मिलता है कि अन्तर्गृहसे अन्य तीन क्षेत्रोंमें मरनेपर प्राणीको शिवके सालोक्य, सांनिध्य, सारूप्य मोक्षकी प्राप्ति होकर तब विदेह-मोक्ष अर्थात् 'सायुज्य-मोक्ष'की प्राप्ति होती है। इस मतका खण्डन है। कहा गया है—"काशीमें मरनेपर 'सायुज्य मोक्ष' ही मिलता है ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'काश्यां मृतस्तु सायुज्यम् ।'

उपनिषदोंके अनुसार काशीके प्रत्यक्ष क्षेत्रोंमें मरनेपर 'तारकमन्त्र'के प्रभावसे पुनः गर्भवास नहीं करना पड़ता ।

मरणं मङ्गलं यत्र

'काशीमें मृत्यु मङ्गलकारी' क्यों कहा गया ? इसका उत्तर यही है कि काशीपुरीका महत्त्व बाबा विश्वनाथके द्वारा मृत्युके समय प्राप्त 'तारकमन्त्र'के प्रभावसे मोक्ष प्राप्त करना है । बिना 'सायुज्य मोक्ष'के जीवका बार-बार जन्म लेने और मृत्युको प्राप्त करनेसे छुटकारा नहीं मिलता । जबतक जीवका शरीरसे सम्बन्ध-विच्छेद नहीं होता, तबतक मोक्ष कैसे सम्भव है ? जीवको मोक्ष अभीष्ट है । बार-बार जन्म-मृत्युसे जीवको बड़ा कष्ट होता है । उससे छुटकारा पानेके लिये योगी, संत, महात्मा लाखों प्रयत्न करते हैं—तपस्या, यज्ञ, अनुष्ठान, दान आदि साधन करते हैं । इन प्रयत्नोंमें पूर्ण सफलतामें संदिग्धता रहती है । शास्त्रके सिद्धान्तोंसे वाराणसीमें वास करके मृत्यु प्राप्त करके मुक्ति प्राप्त करना सरल है । हिंदू इसीलिये मरनेके पूर्व काशीमें आकर निवास करते हैं । काशीमें यह भी कहावत है कि 'मरते समय काशीमें जीवमात्रका दक्षिण कान ऊपरको हो जाता है, अथवा एक पार्श्वमें हो जाता है ।' इसका आधार यही है कि शिवजी जीवको उपदेश देनेके लिये उसका दक्षिण कर्ण ऊपर कर देते हैं और उसीमें 'तारकमन्त्र'का उपदेश देते हैं ।

काशीमें निवासका महत्त्व उतना नहीं, जितना मरणका महत्त्व है । अतः लिखा गया है—काशीमें मृत्यु ही मङ्गलकारी है ।

यः कश्चिद् भेदकृल्लोके स याति नरके ध्रुवम् ।
अमङ्गलं जीवनं तु मरणं यत्र मङ्गलम् ॥

श्रीभगवान्‌का दिव्यधाम एवं उसकी प्राप्ति

(लेखक—पण्डित श्रीओङ्कारदत्तजी शास्त्री)

'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते'—इस भगवद्वचनके अनुसार जैसे भगवान्‌का श्रीविग्रह दिव्य, चिन्मय एवं सनातन है, वैसे ही उनका धाम भी दिव्यतादि-गुणसम्पन्न है । भगवान्‌का धाम प्राकृतलोकके अन्तर्गत भी होता है, जैसे—अयोध्या, मथुरा, वृन्दावन, काशी आदि । एवं प्राकृत लोकके बाहर भी, जैसे—वैकुण्ठ, गोलोक, साकेतादि । इसके अतिरिक्त भक्तोंका हृदय भी भगवान्‌का धाम माना गया है, यह बात श्रीमद्भागवतकी सर्वमान्य श्रीधरी टीकासे प्रमाणित होती है । जैसे सोना कहीं भी पड़ा रहे, वह जंगसे असङ्ग रहता है एवं जलमें रहनेपर भी जैसे कमल जलसे असम्पृक्त रहता है, उसी प्रकार प्राकृतलोकके अन्तर्गत रहनेपर भी भगवान्‌के दिव्यधाम प्रकृतिके दोषसे अछूते ही रहते हैं । जैसे भगवान्‌के धाम त्रिविध हैं, वैसे ही उनको पानेवाले साधक भक्त भी त्रिविध रुचिके होते हैं । जो साधक चाहे जहाँ निवास करके अपने हृदयको ही भगवान्‌का धाम बनाकर उसमें भगवत्-लीलाओंका सतत चिन्तन—अवलोकन करते रहते हैं तथा पाञ्चभौतिक देहत्यागके अनन्तर भी सिद्ध देहको पाकर न तो प्राकृतलोकमें विराजमान श्रीवृन्दावनादि धाममें रहना चाहते हैं न गोलोकमें ही जानेका आग्रह रखते हैं, किंतु अपने हृदयधाममें ही अपने आराध्यकी उपासना-सेवा करते हुए चाहे जहाँ जीवनको सफल एवं सरस बनाकर रहते हैं, वे प्रथम रुचिके भक्त हैं । दूसरी रुचिके वे हैं, जो साधनकालमें भी श्रीवृन्दावनादि धाममें रहकर साधना-उपासना करते हैं तथा देहावसानके अनन्तर भी सिद्ध देह पाकर वहीं रहना चाहते हैं । गोलोकमें जाना भी उन्हें इष्ट नहीं है । वे कहते हैं—'गोलोकमें तो भगवान्‌की जन्मलीला एवं बधाई-लीला नहीं होती, अन्य लीलाएँ ही होती हैं; किंतु श्रीवृन्दावन-गोकुलादिमें तो भगवान्‌की जन्मलीला, बधाई-लीला भी होती हैं; अतः श्रीवृन्दावन गोलोकसे भी बढ़कर है ।' ऐसे भक्त दूसरी रुचिके होते हैं ।

तथा जो हृदयको धाम बनाकर भी संतुष्ट नहीं होते, एवं प्राकृतलोकान्तर्गत श्रीवृन्दावनादि धाममें भी सिद्धवपु पाकर रहना नहीं चाहते; किंतु गोलोकादि प्रकृतिके ऊपर विराजित दिव्य लोकोंमें जानेका मनोरथ रखते हैं, वे तीसरी रुचिके होते हैं ।

साधनाके स्तरमें पहले अपने हृदयको ही धाम बनानेका प्रयत्न करना चाहिये । जब अपना हृदय ही धाम बन जाता है, तब **'यथा मतिस्तथा गतिः'**—इस सिद्धान्तके अनुसार अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धामोंमें भी देहावसानके अनन्तर साधक इच्छानुसार जा सकता है; किंतु जो हृदयको 'भगवान्‌का धाम' न बनाकर 'भवका धाम' बनाते हैं तथा अन्तमें दिव्य धाममें प्रवेश पाना चाहते हैं, ऐसे साधक तो **'सदा तद्भावभावितः'** के विपरीत आचरण करनेसे उपहासके ही पात्र बनते हैं। अच्छा, तो अब हृदयको कैसे भगवान्‌का धाम बनाया जाय—इसपर विचार करना है।

प्रकृतिके गुण हैं—तीन। उनमें तमोगुण भारी होनेसे जीवको जीवनकालमें ही जैसे आलस्य-निद्रामें डालकर चेतना-शून्य रखता है, वैसे ही अन्तमें भी नीचेकी ही ओर ढकेलता है। रजोगुणमें क्रिया तो है, किंतु ऊर्ध्वगामिनी नहीं है; अतः वह जीवको भोगोंमें ही भटकाता है और अन्तमें भी भोग-देहकी ही प्राप्ति कराता है। किंतु सत्त्वगुणमें लाघव एवं सूक्ष्मता होनेसे वह जीवनकालमें उच्च विचारोंमें लगाकर शरीरसे ऊपर उठाता है एवं अन्तमें ऊर्ध्वगति प्रदान करता है। सत्त्वमें स्थिति होनेसे हृदय शुद्ध होता है, उसमें ब्रह्मका साक्षात्कार होता है—**'सत्त्वं यद्ब्रह्मदर्शनम्'**। पुनः शुद्ध हृदयमें भावनाके आश्रयसे भगवान् प्रकट हो जाते हैं। सात्त्विकता-की प्राप्तिके लिये स्वधर्माचरणके साथ-साथ संयम-नियमका पालन एवं सात्त्विक आहार-विहार आवश्यक है। सात्त्विक आहारके लिये गृहस्थको अर्थशुद्धिपर ध्यान रखना चाहिये तथा यतिको स्वादुभोजन एवं एकत्र-भोजन वर्जित करना श्रेयस्कर है। केवल पदार्थोंका सात्त्विक होना ही पर्याप्त नहीं है। ऐसा करनेसे जब चित्त शुद्ध हो जाय, तब उसमें भावनाका बीज वपन करनेके लिये भक्तोंका सत्सङ्ग करे। फिर किसीको अपना श्रद्धाभाजन—गौरवास्पद बनाकर, उनसे भजन-पद्धति सीखकर, अपनी रुचि एवं योग्यतानुसार नामजप, ध्यान, लीला-चिन्तनादि साधनोंको अपनाकर श्रद्धा-विश्वासपूर्वक निरन्तर दृढतासे भजन करे। ऐसा करनेसे करुणावरुणालय प्रभु उसके हृदयमें आकर विराजमान हो जाते हैं।

परम धामका वर्णन

(लेखक—स्वामी श्रीनिर्विकारानन्दजी सरस्वती)

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने 'परम धाम'के विषयमें निर्देश किया है—

न तद् भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

(१५। ६)

'जहाँपर अग्नि एवं चन्द्रमा और सूर्यका प्रकाश नहीं पहुँच पाता और जहाँपर पहुँच जानेपर फिरसे पुनरागमन नहीं होता, वह धाम मेरा परम धाम है।'

श्रीमहाभारतमें लिखा है कि जब श्रीगरुड़जी इन्द्र-लोकमें अमृत लेने गये, तब उन्हें एक-एक तत्त्वका आवरण पार करना पड़ा था। अर्थात् जिस लोकमें हैं तो पाँचों तत्त्व, किंतु भूतत्त्वकी विशेषता है, उसका नाम 'भूलोक' पड़ गया। अब इसके ऊपर गतिमान् होनेपर एक घेरा ऐसा आता है कि जहाँपर चार ही तत्त्व हैं; किंतु वहाँपर जल-तत्त्वकी विशेषता है। इसी घेरेमें पहुँचनेके पहले एक बहुत मोटा कुहरेका घेरा पार करना पड़ता है। फिर तीन तत्त्ववाला आवरण है; उसमें 'अग्नि-तत्त्व'की विशेषता है। फिर दो तत्त्ववाला घेरा आता है, जिसमें वायु तत्त्वकी विशेषता रहती है; तब अन्तमें शुद्ध आकाश-तत्त्वका घेरा आता है। इसमें दूसरा कोई भी तत्त्व नहीं रहता। इस घेरेके बाद भी 'अहंकार'का आवरण और फिर ज्ञानका आवरण आता है। तब विरजानन्दका 'चतुर्दिक्-मण्डलाकार' घेरा आता है। उसी घेरेके भीतर शुद्ध-चिन्मय दिव्य-तत्त्वसे परिवेष्टित 'परम धाम' आता है, जिसके भीतर करोड़ों सूर्यके प्रभाववाले परात्पर ब्रह्म विलसित हो रहे हैं। जो भक्त अनन्य उपासनाद्वारा परात्पर ब्रह्मकी सेवामें पहुँच जाते हैं, उनका फिर पुनरागमन नहीं होता है; किंतु परम धामको छोड़कर और जितने भी अन्यान्य लोक हैं, वहाँपर पहुँचे हुए प्राणियोंको पुण्य भोग लेनेके पश्चात् **'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति—'** पुनः इसी मृत्युलोकमें लौटना पड़ता है; क्योंकि ये सभी लोक किसी-न-किसी तत्त्ववाले घेरेमें ही रहते हैं। इन लोकोंमें जो देह प्राप्त होती है, उसमें भी वही तत्त्व विशेष रहता है। इसीलिये उसमें पुण्य भोगनेकी क्षमता रहती है।

'परम धाम' कितनी दूर है, थोड़ी-सी इसकी कल्पना कर ली जाय, तब अन्य बातोंपर विचार किया जाय। जिस सूर्यमण्डलमें हमारी पृथिवी निवास करती है, उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्यकी किरणें जिस तरह मृत्युलोककी ओर आती हैं, उसी तरह उतनी ही दूरीतक ऊर्ध्वलोककी ओर भी जाती हैं। इस सूर्यसे ऊर्ध्वकी ओर, जहाँसे इस सूर्यकी किरणें समाप्त हो जाती हैं, वहाँसे इस सूर्यसे भी हजारगुने बड़े सूर्यका मण्डल प्रारम्भ होता है। उस सौर-मण्डलका ऊपरी घेरा जहाँपर समाप्त होता है और जिसके बाद प्रकृतिके सभी संसावरण क्रमशः समाप्त हो जाते हैं, वहाँसे परम धामकी सीमा प्रारम्भ होती है कि जिसके विषयमें श्रीगर्गसंहिता-में लिखा है—'जहाँपर संसारका सबसे बड़ा सुख समाप्त होता है, वहाँसे परम धामके सबसे बड़े दुःखकी सीमा प्रारम्भ होती है।' अब विचार कर सकते हैं कि जहाँकी सीमाका सबसे बड़ा दुःख हमारे संसारके सबसे बड़े सुखको भी विलज्जित कर रहा है, वहाँका सबसे बड़ा सुख कैसा होगा? इसीसे परम धामके विषयमें इस भौतिक मन-बुद्धिद्वारा कुछ भी विचार करना असम्भव माना गया है। वहाँका विषय अनुभवगम्य है। जब भजन करते-करते यह शरीर दिव्य हो जाता है, तब भगवत्कृपासे ही वहाँका विषय कुछ-कुछ अनुभव किया जा सकता है।

चन्द्रलोक या सूर्यलोकतक चाहे २० लाख हार्सपावर या १०० लाख हार्सपावरके इंजिनवाला राकेट भले ही मानवको पहुँचानेमें सफल हो जाय; किन्तु एक करोड़ हार्सपावरवाले इंजिनके भी बसकी बात न होगी कि वह मानवको 'परम धाम' तक ले जा सके; क्योंकि जहाँतक कोई तत्त्व होंगे, वहींतक राकेट गतिमान हो सकते हैं। शुद्ध आकाश-तत्त्ववाले घेरेमें ही राकेट नहीं प्रवेश कर सकते; क्योंकि वहाँपर वायु-तत्त्व भी नहीं है। तब आगे बढ़ना तो सर्वथा असम्भव ही होगा। वहाँपर तो अनन्य चिन्तन करनेवाले भक्तको स्वयं भगवान्‌के पार्षद दिव्य विमान'से दिव्यस्वरूप प्रदान करके ले जाते हैं। जैसे श्रीचक्रवर्ती दशरथजी महाराजको दिव्यदेह देकर दिव्य-विमान'द्वारा लंका-विजय हो जानेपर श्रीरामजीसे पुनः भेंट कर लेनेके बाद ले गये थे। परम धाममें परिकर बनकर वही सेवा करनी सुलभ होती है कि जो सेवा भक्त वहाँपर करना पसंद करता है। इसीसे अनन्य भक्त मोक्ष नहीं चाहता; क्योंकि; मोक्षमें रावण, कुम्भकर्ण और शिशुपालकी ज्योति, जैसे भगवान्‌में सबके देखते-देखते विलीन हो गयी, वैसे ही ज्ञानीका आत्मा भी विलीन हो जाता है।

हम अपने भारतवर्षमें रहकर जिस तरह आकाशमें अनन्त लोक देखते हैं, ठीक उसी प्रकार अमेरिकावाले भी अपनी ओरके आकाशमें अनन्त लोक चमकते हुए देखते हैं। जिस भूलोकमें हमारा भारतवर्ष है, वह भूलोक अनन्त ब्रह्माण्डोंके ठीक मध्यमें है। अनन्त ब्रह्माण्ड उस परम धामके मध्यमें (उदरमें) ठीक उसी प्रकारसे हैं, जैसे अमरूदके फलमें हजारों बीज होते हैं। अर्थात् हमारे प्रथम ब्रह्माण्ड (भूलोक) के चतुर्दिक् अनन्त ब्रह्माण्ड हैं एवं अनन्त ब्रह्माण्डोंके चतुर्दिक् 'ससावरण'के घेरेको पार करनेपर परम धाम परिव्याप्त है। उसी परम धामको नित्यधाम वैकुण्ठ, साकेत और गोलोकधाम आदि भी कहते हैं। श्रीजनकपुर, अयोध्या, काशी, चित्रकूट, अवध, नीलाचल, पंढरपुर, द्वारका, रामेश्वरम्, बदरीनारायण, कैलास, वृन्दावन, मथुरामण्डल—ये सभी मण्डल 'परम धाम'में ही विलसित हो रहे हैं। भूतलमें भी वहाँसे इनका अवतरण होता है।

मृत्युलोकमें रहकर चाहे कोई भारतवर्षमें 'परम धाम'के प्रति निष्ठा रखकर उपासना करे और चाहे अमेरिकामें रहकर उपासना करे, दोनों ही भक्तोंका जब प्राण निकलेगा, तब उसको सीधे परम धाममें ही जाना होगा। जिस प्रकार भारत-वाला भक्त सीधे ऊर्ध्वकी ओर गमन करेगा, उसी प्रकार अमेरिकावालेको भी अपने यहाँके ऊर्ध्वलोककी ओर ही गमन करना पड़ेगा। वह पृथ्वीको बेधकर हमारे भारतवाले ऊर्ध्वलोक होकर परम धाम नहीं जायगा। रामचरितमानसमें श्रीकाकभुशुण्डिजीने बताया है कि "हमने भगवान् 'रामके' उदरमें अनन्त ब्रह्माण्ड देखे हैं।"

चूँकि 'भगवान्'में और 'धाम'में कोई अन्तर नहीं है, अस्तु, परम धामके हृदयमें ही अनन्त ब्रह्माण्ड ठीक वैसे ही भरे हुए एक दूसरेके आकर्षणमें चिपके हुए हैं, जैसे समुद्रमें जलके भीतर अनन्त जीव भरे रहते हैं।

तभी तो श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कहा है—'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।' अर्थात् 'जो मुझे सर्वत्र सबमें देखता है और सबको मुझमें देखता है, वही वास्तवमें मुझे देखता है और उससे मैं कदापि नहीं छिपा रह सकता।'

श्रीभगवान्‌की तरह भगवद्धाम भी दिव्य है, असीम है और अनन्त ब्रह्माण्डोंके चतुर्दिक् परिव्याप्त है। हमारा भूलोक तो परम धामके ठीक हृदय-मध्यमें है, जिसमें भारत-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष आया है। इस भूलोकका वास्तविक नाम है—'प्रथम ब्रह्माण्ड'। कल्पके प्रारम्भमें जब परात्पर ब्रह्मके हृदयसे आह्लादिनी शक्तिका प्राकट्य होता है और लीलाविलास-हेतु उनसे तीन शक्तियाँ प्रकट होती हैं—यथा-क्रमसे युगलसरकारके 'दिव्य-विग्रह'से अनन्त सखा एवं सखी, परिकर-समूह 'मानवी-सृष्टि'के रूपमें प्रकट होते हैं तो सर्वप्रथम आँखमिचौनी-खेल प्रारम्भ करनेके हेतुसे परम धामके ठीक मध्यमें प्रथम ब्रह्माण्डकी सृष्टि होती है। स्वयं भगवान् छिपते हैं और अनन्त परिकर खोजते हैं। भगवान् क्रमशः ८४ लाख योनियाँ धारण करते हुए अपने परिकरोंके ही सामनेसे निकलते हैं, परंतु कोई उन्हें पहचान नहीं पाते; वे धीरे-धीरे उन विभिन्न स्वरूपोंमें ही भ्रमित हो जाते हैं एवं मनोरञ्जनरूपमें उन्हें पकड़-पकड़कर पालने-पोसने लग जाते हैं। इस तरह दिव्य देहधारी परिकर भी मोह एवं भ्रममें पड़कर भगवान्‌को खोजना बंद कर देते हैं और विवाह करके मैथुनी सृष्टिका विस्तार करने लग जाते हैं।

इसीसे रामायणमें कहा गया है—

'तबहिं होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिअ सतसंगा॥
(मानस ७। ६०। २)

जबतक मोह और भ्रमका निवारण नहीं होगा, तबतक हम इस विकारी शरीरको ही अपना स्वरूप माने रहेंगे। यही कहलायेगा 'भ्रम'। अन्यथा हमारा स्वरूप तो दिव्य है; परंतु हम भ्रममें पड़कर अपनेको भौतिक विकारी शरीर मान बैठे हैं। वैसे वस्तुतः हम श्रीभगवान्‌के ही दिव्यसनातन अंश हैं; फिर भी पिता, पुत्र, स्त्री, माता इत्यादि गृहस्थीके मिथ्या मोहमें फँसकर हम अपने तथा भगवान्‌के दिव्य सम्बन्धको भूल गये हैं। और झूठी क्षणिक वस्तुओं एवं व्यक्तियोंसे ही हमने अपना नाता जोड़ लिया है।

अन्यथा हम सभी प्राणी उसी परम धामके सनातन निवासी हैं और उसी परात्पर ब्रह्मके हम दिव्य अंश हैं। हमारा प्रथम स्वरूप भी दिव्य था एवं अनन्य भक्ति करते-करते परम धाम जाते समय भी हमें दिव्य स्वरूप प्राप्त हो जायगा। इस बीचवाले पाञ्चभौतिक देहको तो यहीं छोड़ जाना पड़ेगा।

हम हैं—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥
(७। ११६। १)

श्रीभगवान्‌ने भी यही बताया है कि 'सारा संसार हमारे एक अंशमात्रमें स्थित है। ठीक उसी तरह जैसे शरीरके एक अंश मात्रके भीतरसे ही प्रकट होनेवाला 'तिल'का दाग स्थित रहता है, हम भी भगवान्‌के अंश हैं और भगवान्‌में स्थित हैं।' अस्तु यदि भगवान् अपने परम धाममें निवास करते हैं, तो हम भी वहींके मूल-निवासी हैं और उन्हीं परम प्रभुकी अनन्य भक्तिद्वारा कृपा प्राप्त करके परम धाममें निवास करनेका अधिकार प्राप्त किया जा सकता है।

भगवान् विष्णु ही डूबनेसे बचानेवाले जहाज हैं

भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां
सुतदुहितृकलत्रत्राणभारार्दितानाम्।
विषमविषयतोये मज्जतामप्लवानां
भवतु शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम्॥

'जो संसारसागरमें गिरे हुए हैं; [सुख-दुःखादि] द्वन्द्वरूपी वायुसे आहत हो रहे हैं; पुत्र, पुत्री, स्त्री आदिके पालन-पोषणके भारसे आर्त हैं और विषयरूपी विषम जलराशिमें बिना नौकाके डूब रहे हैं, उन पुरुषोंके लिये एकमात्र जहाजरूप भगवान् विष्णु ही शरण हों।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीवैकुण्ठधाम और उसकी प्राप्ति

(लेखक—राष्ट्रपतिपुरस्कृत डा० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

अखिलब्रह्माण्डनायक श्रीविष्णुभगवान्‌के वैभवका वर्णन शेष और शारदा भी नहीं कर सके हैं। नेति-नेति कहकर श्रुति-शास्त्रोंने भी विश्राम किया है। फिर भी वह इतना मनोरम और आकर्षक है कि मनीषि-वृन्द उसके प्रतिपादनमें सदा ही दत्तावधान रहा है।

यह विश्वप्रपञ्च, जिसमें अनन्त ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं, कितना विशाल है—इसका निर्णय आजके वैज्ञानिक भी नहीं कर सके हैं। नील गगनमें प्रकाशमान तारावलियोंको देखकर मन विस्मयसे परिपूर्ण हो जाता है। सृष्टिकी इयत्ताका पता किसीको भी नहीं। 'इयमियत्ती' कहकर अप्रतिपाद्यमान इस समस्त सृष्टिमें जो परम सत्ता अन्तर्यामी रूपसे प्रविष्ट है, वही 'विष्णु'-शब्दवाच्य है। परंतु जितनी यह सृष्टि है, उतने ही विष्णु हैं—यह उक्ति सूक्ति नहीं है। यह सृष्टि उनके एकांशमें है। यह उनकी एकपाद्-विभूति है—यह त्रिगुणमयी है।

नामान्तर

श्रीविष्णुकी त्रिपाद्-विभूति सच्चिदानन्दमयी है। वह परमपद, परमव्योम, सनातन आकाश, दिव्य स्थान, परम-स्थान, पर-स्थान, परागति, अनामय-पद, शाश्वत-पद, महाविभूति, नित्यविभूति, ब्रह्मपुर, ब्रह्मलोक और वैकुण्ठ नामसे अभिहित है।

अनादि

वैकुण्ठ अनादि है; क्योंकि वह कभी बनता नहीं है। नित्य होनेके कारण उसके उदय और अस्त नहीं होते। वह नित्योदित है। छान्दोग्य उपनिषद्‌में स्पष्ट ही उसे अकृत (अ= नहीं+कृत= (चित्) बताया है।

स्वयंप्रकाश

वैकुण्ठ जड प्रकृतिका बना हुआ नहीं है। वह तो चेतन है, स्वयंप्रकाश है। वह सत्ता वा शुद्ध सत्त्व है। वह सत्त्व रजोगुण और तमोगुणका सहवर्त्ती प्राकृत सत्त्व-गुण नहीं है, प्रत्युत इससे विलक्षण है। प्राकृत सत्त्व जड सत्ता है और अप्राकृत सत्त्व अजड सत्ता है। जड पदार्थ परतःप्रकाश्य होता है और अजड पदार्थ होता है—स्वयंप्रकाश। वैकुण्ठ स्वयंप्रकाश सत्ता है। अतएव उसकी अनादिषड्गुणमयता स्वयंसिद्ध है। ब्रह्मतन्त्रमें इस रहस्य-का उद्घाटन करते हुए कहा गया है—

लोकं वैकुण्ठनामानं दिव्यं षाड्गुण्यसंयुतम्।
अवैष्णवानामप्राप्यं गुणत्रयविवर्जितम्॥

अर्थात् 'वैकुण्ठ-नामक श्रीविष्णुभगवान्‌का जो दिव्य धाम है, उसमें प्रकृतिके तीनों गुणोंका अस्तित्व नहीं है। वहाँ तो केवल ज्ञानादि षड्गुणका ही विलास है।'

प्रकृतिसे परे

ऋग्वेदका एक मन्त्र है—

प्र तत् ते अद्य शिपिविष्ट नामा-
ऽर्कः शंसामि वयुनानि विद्वान्।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्
क्षयन्तमस्य रजसः पराके॥
(७। १००। ५)

अर्थात् 'हे अणु-अणुमें व्यापक प्रभो! आपके लीला-चरित्रोंको जाननेवाला मैं मित्रावरुणनन्दन वसिष्ठ आपके नामका स्तवन (गान) कर रहा हूँ। मैं बलहीन हूँ। आप बलके निधान हैं। आप इस रजोगुणसे परे (अपने दिव्य धाममें) निवास करते । मैं आपकी स्तुति कर रहा हूँ।'

'रजस्' शब्दका अर्थ रजोगुण है। सत्त्व और तमस्‌के बिना केवल रजोगुण नहीं रह सकता। अतः 'रजस्'का अर्थ इस प्रसङ्गमें 'प्रकृति' है। तीन गुणवाली इस प्रकृतिके मण्डलसे परे दिव्य धाम है और वहीं श्रीभगवान् निवास करते हैं।

भगवान्‌की महिमा

श्रीभगवान्‌की वास-भूमि होनेके कारण दिव्य धामका यद्यपि व्यतिरेक-विभक्तिसे शास्त्रोंमें निर्देश है (यथा—तद् विष्णोः परमं पदम्। ऋग्वेद १। २२। २०; सामवेद १६। ७२; यजुर्वेद ६। ५; अथर्ववेद ७। २६। ७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथापि वह भगवान्‌के स्वरूपमें अन्तर्निहित है। 'नित्यविभूति' भगवान्‌की अपनी ही महिमा है, जैसा कि छान्दोग्यका वचन है—

स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठितः ?

स्वे महिम्नि।

इसी प्रकार ब्रह्मतन्त्रका वचन है—

'स्वे महिम्नि स्थितं देवं निर्विकारं निरञ्जनम्।'

सत्यं ज्ञानमनन्तम्

श्रीमद्भागवतमें भगवल्लोकको 'ब्रह्म' ही बताया गया है—

इति संचिन्त्य भगवान् महाकारुणिको हरिः।
दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम्॥
सत्यं ज्ञानमनन्तं यद् ब्रह्मज्योतिः सनातनम्।
यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये समाहिताः॥
(१०। २८। १४-१५)

अर्थात् 'करुणावरुणालय भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्रिय गोपजनोंके हृदयके सद्भावको जानकर, उनकी अभिलाषाकी पूर्तिके लिये, उन्हें अपने लोकका दर्शन कराया। वह लोक तमस् किंवा प्रकृतिसे परे है। वह सत्य है, ज्ञानमय है, अनन्त है, ब्रह्म है और सनातन ज्योति है। मुनिजन समाधिद्वारा प्राकृत गुणत्रयका अतिक्रमण कर उसका दर्शन किया करते हैं।'

नित्य-विभूति वैकुण्ठके सद्भावमें श्रुति और स्मृतिके वचन प्रमाण हैं। नीचे कुछ वचन दिग्दर्शनार्थ दिये जाते हैं—

परमपद

(अ) विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः॥
(ऋग्वेद १। १५४। ५)

अर्थात् 'श्रीविष्णुभगवान्‌के परमपदमें माधुरीका निर्झर है।'

(आ) परमं पदमवभाति भूरि॥
(ऋग्वेद १। १५४। ६)

अर्थात् 'वह परमपद अत्यन्त प्रकाशमान है।'

(इ) तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः॥
(यजुर्वेद ६। ५)

अर्थात् 'भक्तजन श्रीविष्णुभगवान्‌के उस परमपदका सदा दर्शन करते रहते हैं।'

(ई) कार्याणां कारणं पूर्वं वचसां वाच्यमुत्तमम्।
योगिनां परमां सिद्धिं परमं ते पदं विदुः॥
(ब्रह्मतन्त्र)

अर्थात् 'परमपद समस्त कार्योंके भी पूर्व विराजमान कारण है, सब वाणियोंका सर्वोत्तम वाच्य है और योगियोंकी परमा सिद्धि है।'

(उ) सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्।
(कठोपनिषद् १। ३। ९)

अर्थात् 'विज्ञान-सारथि साधक श्रीविष्णुके उस परमपदको प्राप्त कर लेता है।'

परम व्योम

(अ) यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता॥
(तैत्तिरीयोपनिषद् २। १। १)

अर्थात् 'जो परम-व्योम-निवासी परमात्माको हृदय-गुहा-निहित अर्थात् अन्तर्यामीरूपसे पहचान लेता है, वह उनके साथ उन्हींके-से कल्याण-गुणोंको प्राप्त कर लेता है।'

(आ) स्थिताय परमे व्योम्नि भूयो भूयो नमो नमः॥
(ब्रह्मतन्त्र)

अर्थात् 'मैं परम-व्योममें विराजमान श्रीभगवान्‌को बार-बार प्रणाम करता हूँ।'

त्रिपाद्-विभूति

(अ) त्रिपादस्यामृतं दिवि॥
(ऋग्वेद १०। ९०। ३; यजुर्वेद ३१। ३; सामवेद मन्त्र ६१९)

अर्थात् 'श्रीभगवान्‌की (एकपाद्-विभूति यहाँ है और) त्रिपाद्-विभूति जो अमृतस्वरूप है, उस प्रकाशमान द्युलोकमें है।'

(आ) त्रिपाद्विभूतिर्नित्या स्याद्। (पद्मपुराण)

अर्थात् 'श्रीभगवान्‌की त्रिपाद्-विभूति नित्य है।'

महाविभूति

महाविभूतिसंस्थाय नमस्ते पुरुषोत्तम।
(ब्रह्मतन्त्र)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् 'हे पुरुषोत्तम ! आप महाविभूतिमें निवास करते हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।'

सनातन आकाश

यद् वाऽऽकाशं सनातनम् ।

(रामायण ७ । ११० । १०)

अर्थात् ब्रह्माजीने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे प्रार्थना की कि 'हे प्रभो ! आपकी इच्छा हो तो सनातन आकाशको चलिये ।'

दिव्यस्थान

दिव्यं स्थानमजरं चाप्रमेयं
दुर्विज्ञेयं आगमैर्गम्यमाद्यम् ।

(महाभारत)

अर्थात् 'वह दिव्यस्थान आद्य, अजर और अप्रमेय है, अन्य उपायोंसे दुर्विज्ञेय है; किंतु आगम किंवा पाञ्चरात्र शास्त्रद्वारा सुविज्ञेय है ।'

परमस्थान

एकान्तिनः सदा ब्रह्मध्यायिनो योगिनश्च ये ।
तेषां तु परमं स्थानं यद् वै पश्यन्ति सूरयः ॥

(विष्णुपुराण १ । ६ । १९)

अर्थात् 'ब्रह्म-चिन्तक, योगाभ्यासी और एकान्तभावसे भगवदुपासक उसी परमस्थानको प्राप्त होते हैं, जिसका दर्शन नित्यमुक्त सूरि-जन किया करते हैं ।'

पर-स्थान

(अ) ब्रह्मणः सदनादूर्ध्वं परं स्थानं प्रचक्षते ।
देवापि यन्न पश्यन्ति सर्वतेजोमयं शुभम् ॥
अत्यर्कानलदीप्तं तत् स्थानं विष्णोर्महात्मनः ।
स्थानमेतन्महाभाग ध्रुवमक्षयमव्ययम् ॥

(महाभारत)

अर्थात् 'ब्रह्माजीके सत्यलोकसे परे परमस्थान है, जिसका दर्शन देवताओंको भी दुर्लभ है । वह पवित्र, सूर्य और अग्निसे भी अधिक भासमान, निश्चल, अविनाशी और अपरिणामी स्थान परमात्मा श्रीविष्णुका धाम है ।'

(आ) योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥

(गीता ८ । २८)

अर्थात् 'योगी पुरुष आद्य पर-स्थानको प्राप्त कर लेता है ।'

परम धाम

यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम ॥

(गीता १५ । ६)

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'जहाँ जाकर मेरे स्वजनोंकी इस मानव आवर्तमें पुनरावृत्ति नहीं हुआ करती है, वह मेरा परम धाम है ।'

परा-गति

ततो याति परां गतिम् ॥

(गीता ६ । ४५; तथा १६ । २२)

अर्थात् 'योगी तदनन्तर परा-गतिको प्राप्त कर लेता है ।'

परमा-गति

स याति परमां गतिम् ॥ (गीता ८ । ११)

अर्थात् 'वह साधक परमा-गतिको प्राप्त कर लेता है ।'

अनामय-पद

पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥ (गीता २ । ५१)

अर्थात् 'मुक्तात्माएँ अनामय पदको जाती हैं ।'

शाश्वत पद

मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ।

(गीता १८ । ५६)

अर्थात् 'भगवत्कृपासे भक्तजीव श्रीभगवान्‌के अविनाशी शाश्वत पदको प्राप्त कर लेता है ।'

ब्रह्मलोक

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोकः । (प्रश्नोपनिषद् १ । १६)

अर्थात् 'तपस्वी, ब्रह्मचर्य-व्रती, सत्य-निष्ठ, निश्छल, निष्प्रपञ्च जीव ब्रह्मलोकके अधिकारी हैं ।' इस लोकके वैभवके प्रतिपादनमें उपनिषदोंने वहाँकी अपराजिता पुरी, प्रजापति-सभा, वेश्म, सोम-सवन, इल्य, अश्वत्थ, ऐरम्मदीय सरोवरादिका उल्लेख किया है ।

ब्रह्मपुर

दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येषः । (मुण्डकोपनिषद् २ । २ । ७)

अर्थात् 'यह परमात्मा दिव्य ब्रह्मपुरमें निवास करता है ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैकुण्ठ

(अ) त एकदा भगवतो वैकुण्ठस्यामलात्मनः।
ययुर्वैकुण्ठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम्॥
यत्र चाद्यः पुमानास्ते भगवान् शब्दगोचरः।
(श्रीमद्भागवत ३। १५। १३, १५)

अर्थात् 'ब्रह्माजीके मानस-पुत्र सनकादि एक दिन निखिल-हेय-प्रत्यनीक श्रीभगवान् वैकुण्ठके सर्वलोक-नमस्कृत वैकुण्ठ-धामको गये, जहाँ श्रुतिप्रतिपाद्य आद्य-पुरुष श्रीविष्णु विराजमान रहते हैं।'

(आ) ततो निराशो दुर्वासाः पदं भगवतो ययौ।
वैकुण्ठाख्यं यदध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया सह॥
(श्रीमद्भागवत ९। ४। ६०)

अर्थात् (महाराज अम्बरीषके रक्षणमें दत्तचित्त सुदर्शन चक्रके त्राससे भयभीत दुर्वासाको जब कहीं आश्वासन न मिला) 'तब वे निराश होकर श्रीभगवान्के वैकुण्ठनामक परमपदमें पहुँचे, जहाँ विष्णुभगवान् लक्ष्मीजीके साथ निवास करते हैं।'

(इ) ततो वैकुण्ठमगमद् भास्वरं तमसः परम्॥
यत्र नारायणः साक्षान्न्यासिनां परमा गतिः।
शान्तानां न्यस्तदण्डानां यतो नावर्तते गतः॥
(श्रीमद्भागवत १०। ८८। २५-२६)

अर्थात् (अपने ही वरदानसे बढ़े हुए वृकासुरसे संत्रस्त होकर देवाधिदेव शिवजी आत्मरक्षाके विषयमें निराश होकर) 'वैकुण्ठ-धाममें गये, जो बड़ा प्रकाशमान है, प्रकृतिसे परे है; जहाँ शान्त-चित्त, न्यस्त-दण्ड संन्यासियोंकी परमगति श्रीमन्नारायण निवास करते हैं और जहाँसे कर्मवश पुनरावृत्ति नहीं हुआ करती।'

वैकुण्ठका अवतार

एक बार रैवतनामक पञ्चम मन्वन्तरमें विष्णुभगवान् शुभ्रनामक महर्षिके यहाँ अवतीर्ण हुए थे। उस समय दिव्यधामका भी अवतार हुआ था—

वैकुण्ठः कल्पितो येन लोको लोकनमस्कृतः।
(श्रीमद्भागवत ८। ५। ५)

नित्य भगवद्धाम वैकुण्ठ पञ्चम मनु ही नहीं, प्रथम मनुके भी स्रष्टा लोकपितामह ब्रह्माजीके आद्य-कल्पसे भी पूर्व विराजमान था। ब्रह्माजीने तपश्चरणके द्वारा उसीका दर्शन किया था। वही परमपद है। वहीं श्रीभगवान् अपने नित्य-भक्तोंसे उपासित होते हुए विराजमान रहते हैं। वहाँ त्रिगुणजननी माया ही नहीं है, तो अन्यान्य माया-प्रसूत कार्योंकी तो कथा ही क्या है? शुकदेवजीकी सूक्ति है—

तस्मै स्वलोकं भगवान् सभाजितः
संदर्शयामास परं न यत्परम्।
न यत्र माया किमुता हरेः-
रनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः॥
(श्रीमद्भागवत २। ९। ९,१०)

अनिर्वचनीय सौन्दर्य

वैकुण्ठधामके सौन्दर्य-माधुर्यकी छटाका प्रदर्शन करनेमें किस कविकी लेखनीमें सामर्थ्य है? उस दिव्य पदके अचिन्त्य वैभवका दिग्दर्शन हमें परम तत्त्वके साक्षात्कर्ता मनीषियोंकी वाणीमें अवश्य प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवतके द्वितीय स्कन्धके नवम अध्यायमें तथा तृतीय स्कन्धके पंद्रहवें अध्यायमें वह छटा अनुभवनीय है। आचार्य रामानुजके वैकुण्ठगद्यमें प्रतिपादित वैकुण्ठ-वैभव भी ऋग्वेदीय 'विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः' तथा 'परमं पदमवभाति भूरि' का उपबृंहण ही है।

वहाँ कौन नहीं जाते

'जो व्यक्ति सांसारिक काम-क्रोध-लोभके प्रपञ्चमें पड़कर भगवान्से पराङ्मुख हैं और परमात्माके विमुख करनेवाली रचना या उनके अनुवादोंमें दत्तचित्त रहते हैं, वे उस परमपदकी प्राप्तिसे वञ्चित रह जाते हैं।'
(श्रीमद्भागवत ३। १५। २३)

वहाँ कौन जाते हैं

'जो व्यक्ति शील-सम्पन्न हैं तथा भगवान् नारायणके कीर्ति-कलापके कीर्तनके कारण पुलकित रहते हैं, वे ही उस परमपदकी प्राप्तिके अधिकारी हैं।'
(श्रीमद्भागवत ३। १५। २५)

वैकुण्ठमें भगवान्का परिकर

नित्य वैकुण्ठ-धाममें श्रीभगवान्का परिकर भी श्रीभगवान्के समान नित्य ही है। यहाँके बद्ध जीवोंका जीवन देह, इन्द्रिय और प्राण-सापेक्ष है; किंतु वहाँके नित्य जीवोंकी सत्ता देह, इन्द्रिय और प्राणके बिना ही शास्त्रने प्रतिपादित की है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देहेन्द्रियासुहीनानां वैकुण्ठपुरवासिनाम् ।
(श्रीमद्भागवत ७ । १ । ३४)

उनका शरीर हमारे-जैसा नहीं होता, जिसमें छान्दोग्य उपनिषद्के 'अन्नमशितं त्रेधा विधीयते, तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति ।'(६ । ५ । १)—इस वचनकी संगति लग सके। नित्य जीवोंके चैतन्यमय आकारमें प्राकृतभावोंका अभाव है। उनमें न भूख है न प्यास, न जरा है न मरण। ऐसा भी नहीं समझना चाहिये कि उन्हें निराकार कहना ही उचित होगा; क्योंकि 'वैकुण्ठपुरवासिनः' और 'सर्वे चतुर्बाहवः' (श्रीमद्भागवत २ । ९ । ११) आदि वचनोंसे दिव्य धामके वासियोंकी साकारताका ही प्रतिपादन हुआ है।

श्रीभगवान्‌के समस्त आयुध, वाहन, सेवक दिव्य हैं, चेतन हैं, आनन्दमय हैं। नित्यविभूतिमें श्रीभगवान्‌के आयुध पुरुषविग्रहमें श्रीभगवत्सेवोपासनामें निरत रहते हैं; अवतार-वेलामें भी दुष्टदमनाद्यतिरिक्त अवसरोंपर वे पुरुषविग्रहमें भगवदाराधनामें लीन रहते हैं—

शरा नानाविधाश्चापि धनुरायतमुत्तमम् ।
तथायुधाश्च ते सर्वे ययुः पुरुषविग्रहाः ॥
(रामायण, उत्तरकाण्ड १०९ । ७)

धन्य हैं ये नित्य जीव जिनके लिये श्रुतिने यह कहा है कि 'वे परमपदका सदैव अनुभव करते हैं'—

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ॥
(ऋग्वेद १ । २२ । २०)

श्रीलक्ष्मी-नारायण भगवान्‌का सभी परिकर 'देवयु' कहलाता है—

नरो यत्र देवयवो मदन्ति । (ऋग्वेद १ । १५४ । ५)

किरीटादि विभूषण, पाञ्चजन्यादि विभूति, सुदर्शनादि शस्त्रास्त्र, शेषमयी शय्या, अमितौजा नामक पर्यङ्क, वैनतेयादि वाहन—सभी उनके परिकरके अन्तर्गत हैं।

अचिन्त्य-रहस्य

किरीटादिकी पुरुषाकृतिमत्ताका निर्देश सात्वत-संहिता आदि पाञ्चरात्र-ग्रन्थोंमें किया गया है। वे श्रीविग्रहपर अलंकाररूपमें एवं श्रीविग्रहसे पृथक् होकर परिवाररूपमें रहते हैं। कैसा अचिन्त्य-रहस्य है! परिवारकी सभी विभूतियोंका आकार भगवत्तुल्य है। अन्तर केवल श्रीवत्स और कौस्तुभका है। ये दोनों अलंकरण श्रीविष्णुभगवान्‌के ही हैं, अन्य पार्षदोंके नहीं।

षोडश पार्षद

श्रुतिमें सोलह हजार मन्त्र उपासनामय हैं। प्रत्येक मन्त्र साकार होकर भगवत्सेवामें उपस्थित रहता है। श्रीभगवान्‌के सोलह पार्षद उन्हीं सोलह हजार मन्त्रोंके सोलह प्रतीक हैं—

प्रतीच्यां दिश्यभूदाविः शङ्खचक्रगदाधरः ॥
आत्मतुल्यैः षोडशभिर्विना श्रीवत्सकौस्तुभौ ।
पर्युपासितमुन्निद्रशरदम्बुरुहेक्षणम् ॥
(श्रीमद्भागवत ६ । ९ । २८-२९)

पार्षदोंका दिव्य व्यक्तित्व

भगवान्‌के नित्य-भक्त सूरियोंका बड़ा सुन्दर वर्णन इस प्रकार है—

सर्वे पद्मपलाशाक्षाः पीतकौशेयवाससः ।
किरीटिनः कुण्डलिनो लसत्पुष्करमालिनः ॥
सर्वे च नूत्नवयसः सर्वे चारुचतुर्भुजाः ।
धनुर्निषङ्गासिगदाशङ्खचक्राम्बुजश्रियः ॥
दिशो वितिमिरालोकाः कुर्वन्तः स्वेन रोचिषा ।
(श्रीमद्भागवत ६ । १ । ३४-३६)

वैकुण्ठ-प्राप्तिका साधन

परम तत्त्वकी प्राप्तिके लिये, भगवत्सेवोपयोगिताको प्राप्त करनेके लिये, यजन किंवा यज्ञ ही सर्वोत्तम उपाय है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥
(श्रीमद्भागवत २ । ३ । १०)

यजनका अर्थ है—पूजन, सत्सङ्ग और दान। (यज देव-पूजा-सङ्गतिकरण-दानेषु)। भगवन्निष्ठ व्यक्तियोंके संगसे चित्तमें सात्त्विकताका उदय होता है और तब साधक श्रीभगवान्‌की आराधना करता है; आराधनाकी एक विशिष्ट प्रक्रिया पूजा है। पूजामें भगवान्‌को सर्वस्व सौंप दिया जाता है, दे दिया जाता है। सच्चा सेवक प्रभुको अपना 'अहम्' प्रदान कर देता है, द्रव्यान्तरकी तो चर्चा ही क्या है! यह समर्पण उत्कृष्ट-साधन-सापेक्ष है। उच्च कोटिका महात्मा ही इस प्रकार कह सकता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वपुरादिषु योऽपि कोऽपि वा गुणतोऽसानि यथातथाविधः।
तदयं तव पादपङ्कयोरहमद्यैव मया समर्पितः॥
(आलवन्दारस्तोत्र ५५)

अर्थात् "मेरे प्रभुवर! शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और चेतनमेंसे मैं जो कुछ हूँ सो हूँ; गुणरहित हूँ अथवा गुणसहित; मैं आज अपने 'अहम्' को आपके पद-पद्म-युगलमें समर्पित कर रहा हूँ।"

इस प्रकारका आत्मसमर्पण दीर्घकालीन दैनन्दिन साधनके अभ्यासका फल है। प्रतिदिनके अभ्यासके लिये शास्त्रकारोंने अनेक विधियोंका उल्लेख किया है। उनमेंसे ही एक परम रोचक विधि है, जिसके अनुसार प्रभातसे प्रारम्भ करके निशापर्यन्त समय आराधनामें ही व्यतीत होता है। जयाख्यसंहिताका वचन है—

एकस्यैव हि कालस्य वासरीयस्य नारद।
आप्रभातं निशान्तं वै पञ्चधा परिकल्पना॥

ये पाँच विभाग इस प्रकार हैं—

(अ) अभिगमन-वेला।
(आ) उपादान वेला।
(इ) यजन-वेला।
(ई) स्वाध्याय-वेला।
(उ) योग-वेला।

श्रीभगवान्‌के सम्मुख जाना अर्थात् गृहैकदेशमें, नगरैकदेशमें अथवा तीर्थमें विराजमान श्रीविग्रहकी सेवामें उपस्थित होना 'अभिगमन' कहलाता है। आराधनाके निमित्त चन्दन, तुलसी, धूप, दीप, नैवेद्य प्रभृति सामग्रीकी आयोजना करना 'उपादान' कहलाता है। स्वयं व्यक्त, दिव्य, सिद्ध अथवा प्रतिष्ठित प्रतिमाका यथाभिलषित उपचारोंसे पूजन करना 'यजन' किंवा 'इज्या' है। इष्ट-देवताके मन्त्रका जप, स्तोत्रोंका पाठ, रामायणादि सद्ग्रन्थोंका पारायण 'स्वाध्याय' है। शयनसे पूर्व रात्रिमें भगवान्‌के रूप और गुण-लीलाओंका ध्यान करना 'योग' कहलाता है।

अभिगमन, उपादान और इज्या—ये तीन कृत्य मध्याह्न-भोजनसे पूर्व ही सम्पादनीय हैं; स्वाध्याय तृतीय प्रहरमें और योग रात्रिमें शयनसे पूर्व। भोजनके पूर्व ही पाँचों कृत्योंके सम्पादनका भी सम्प्रदाय है, जैसा कि पाञ्चरात्र-रक्षामें वेंकटनाथजीका वचन है—

एतौ च स्वाध्याययोगौ आह्निकानुयागात्।
पूर्वमेव केषुचित् संहिताविशेषेषु समाहृत्योपदिश्येते॥

इन पाँचोंमें भी 'इज्या' प्रधान है। कारण यह है कि इसके करनेमें सब कर्तव्य सम्पन्न हो जाता है—

'कृतं भवति वा सर्वमित्ययैव हि केवलम्।'
(भारद्वाज-संहिता)

पूजामें सर्वप्रथम भगवद्विग्रहके सम्मुख जाना होता है; यह 'अभिगमन' है। पत्र, पुष्प, फल, जल आदिके बिना पूजन सम्भव नहीं; अतः 'उपादान' होता ही है। मन्त्रोच्चारण ही 'स्वाध्याय' है। ध्यानके अनन्तर ही आवाहन होता है। अतः 'योग' भी हो जाता है।

भिन्न-रुचि लोकमें इज्याके अनेक प्रकार हैं। एक प्रकार यह है, जिसमें साधक ध्यान करता है कि—

'निखिल-हेय-प्रत्यनीक, कल्याण-गुण-गणाकर, सौन्दर्य-सुधाके अपार पारावार, गगनोपम-नीलवर्ण श्रीभगवान् विष्णुके एवं तदभिन्न वात्सल्यमूर्ति, सच्चिदानन्दसान्द्राङ्गी, संविदाकारशालिनी, जगज्जननी, किशोर-वयस्का, हिरण्यवर्णा, श्रीभगवती लक्ष्मीजीके चरण-नलिन-युगल नूपुरोंसे मुखरित हो रहे हैं। उनकी जंघा, जानु और जघनस्थल पीताम्बरसे परिवीत हैं। कटितटोंपर कलित काञ्चियाँ शोभा दे रही हैं। गम्भीर नाभियाँ हैं। विष्णुभगवान्‌का वक्षःस्थल श्री और श्रीवत्ससे विभूषित है और लक्ष्मीजीका उरोदेश दिव्य हेम-हारसे अलंकृत है। दोनोंके चतुर्भुज कङ्कणों और केयूरोंसे सुशोभित हैं। दोनों कनकाम्बर धारण किये हुए हैं। भगवान् विष्णु अपने एक करकमलमें शशिकोटि प्रतीकाश पाञ्चजन्य-नामक ब्रह्ममय शङ्ख धारण किये हुए हैं; द्वितीयमें रविकोटि-संकाश सुदर्शन-नामक सहस्रारचक्र लिये हुए हैं; तृतीयमें मेरु-समान-सारा हिरण्मयी कौमोदकी-नामिका गदा धारण किये हुए हैं और चतुर्थमें लीला-कमल। भगवती लक्ष्मीजीके प्रथम कर-युगलमें कमल-युगल विराजमान हैं और द्वितीय दक्षिण पाणिसे वे अभय दे रही हैं और वाम पाणिसे वर दे रही हैं। दोनोंहीकी कन्धराओंसे आजानु-लम्बिनी वैजयन्ती-मालाएँ विलम्बित हैं, जिनमें मरकत, माणिक्य, मुक्ता, इन्द्रनील एवं हीरकावलियाँ जड़ी हुई हैं। दोनोंके कम्बु-कण्ठ परम मनोहर हैं, जिनके ऊपर स्वर्ण-बिन्दु-विलसित चिबुक हैं। मन्दस्मितसे शरदिन्दु-कान्तिको भी विलज्जित करते हुए दोनोंके मधुर अधर और ओष्ठ भक्तोंके आकर्षक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैकुण्ठाधिपति भगवान् लक्ष्मीनारायण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। प्रणव-युगल (ॐ श्री) से चित्रित कपोल-युगल भ्राताओंके तापका शमन करनेवाले हैं। नासिकाएँ सौन्दर्यकी सार हैं। अमल-कमल-दलोंके समान दोनोंके नयन-युगल हैं। धनुराकृति भृकुटियाँ स्वजन-मनो-वक्रिमाका अपहरण कर रही हैं। प्रशस्त मस्तकोंपर यक्षकर्दमके ललित तिलक लगे हुए हैं। असित अलका-वल्लियोंपर विराजमान किरीट और चन्द्रिकाकी किरणावलियाँ भक्तोंके हृदयभवनोंके गहन अन्धकारका अपहरण करके उन्हें दिव्य आलोकसे आलोकित कर रही हैं।'

साधक कहता है—

ध्यायाम्यप्राकृतौ सच्चिदानन्दमयविग्रहौ।
लक्ष्मीनारायणौ दिव्यवैकुण्ठपुरवासिनौ॥
नीलो नारायणो देवः पीताम्बरचतुर्भुजः।
शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितः॥
सुगन्धिः सरसः कान्तो माधुरीरसनिर्झरः।
दयायाः सागरोऽनन्तः स एव परमा रमा॥
लक्ष्मीर्हिरण्यवर्णा कनकाम्बरधारिणी।
कञ्जद्वयवराऽभीतिवैजयन्तीविभूषिता॥
पदपद्मप्रकाशेन ध्यायतां ध्वान्तनाशिनी।
उदारा वत्सला देवी श्रीः पद्मा कमलेन्दिरा॥

तत्पश्चात् वह प्रार्थना करता है—'**अयि जगज्जननि ! हे जगत्पितः ! इहायातां भवन्तौ इहासातां अस्मत्पूजां स्वीकुरुताम्।**'

तदनन्तर वह भक्ति-भावित हृदयसे यथाशक्ति संगृहीत सामग्रीसे श्रीयुगलका यजन करता है और श्रीमद्भागवतके एकादशस्कन्धीय सत्ताईसवें अध्यायमें उद्धवको स्वयं भगवान् श्रीकृष्णद्वारा उपदिष्ट क्रियायोगका स्मरण करके '**प्रसीद भगवन्**' कहकर दण्डवत् प्रणाम करता है; आराध्य दिव्य दम्पतीके चरण-नलिन-युगलोंमें सिर नवाकर नम्र निवेदन करता है—

'**प्रपन्नं पाहि मामीश**'

और भगवत्प्रदत्त प्रसादको स्वीकार करके आनन्दका अनुभव करता है।

प्रतिदिन अनुष्ठीयमान इस प्रकारके साधनसे प्रसन्न होकर श्रीभगवान् अपना देव-दुर्लभ दर्शन देकर साधकको कृतार्थ कर देते हैं; चतुर्वर्गान्तर्गत उसकी अभिलाषाको पूर्ण कर देते हैं। किम्बहुना, माता लक्ष्मीजी उपासककी इच्छाको जानकर उसके मस्तकपर अपना वात्सल्यमय वरद करारविन्द रखकर, उसे उभय-विभूतिका साम्राज्य दे देती हैं जिससे कि वह धन्य-भाग्य साधक चाहे 'इदंविभूति[1]' में रहे और चाहे तो 'अदोविभूति[2]' में रहे।

वैदिक युगसे ही यह आर्ष भावना चली आ रही है कि वैष्णव व्यक्ति अपनी रक्षाका भार अपने आराध्यके चरणोंमें रखकर निश्चिन्त हो जाय। भगवान् उसे जहाँ उचित समझेंगे, रक्खेंगे। भक्तका तो यही वक्तव्य होना चाहिये—

'**इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण।**'

(यजुर्वेद ३१। १२)

अर्थात् 'हे परम पुरुष विष्णुभगवन् ! आप मेरे लिये उस दिव्य लोककी कामना कीजिये, संकल्प कीजिये, (मैं वहाँ रहूँगा) और इस लीला-विभूतिके लोकोंका संकल्प कीजिये (मैं यहाँ रहूँगा)।'

भगवान्के इङ्गितको समझकर उनका स्व-जन उनके दिये हुए अधिकारको स्वीकार करके लीला-विभूतिमें ही उनका लीला-परिकर बनकर 'आधिकारिक पुरुष' बन जाता है।

अथवा

भगवान्के संकेतके अनुसार तापत्रय-पारावारमें निमग्न जीवोंके उद्धारके लिये प्रयत्नशील होकर 'तारक पुरुष' बन जाता है।

अथवा

भगवान्के ही अभिप्रायका परमादर करते हुए, भव-सागरमें निमज्जनोन्मज्जनसे निर्विण्ण जीवोंको उस पार लगाने-वाला 'पारक पुरुष' बन जाता है।

और परम धन्य हैं वे व्यक्ति, जिन्हें परम-प्रभु परम-पदमें अपने पद-कमलके मकरन्दका चञ्चरीक बना लेते हैं।

१. इयं विभूतिरिति इदंविभूतिः। अर्थात् एकपाद्विभूतिः। २. असौ विभूतिरिति अदोविभूतिः। अर्थात् त्रिपाद्विभूतिः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्वेतद्वीप—महागोलोक

(लेखक—महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम्० ए०, डी० लिट्०)

प्राचीन वैष्णव-साहित्यकी आलोचना करनेपर विभिन्न ग्रन्थोंमें श्वेतद्वीपका नाम देखनेमें आता है। पाञ्चरात्र आगम तथा विभिन्न प्राचीन वैष्णव-ग्रन्थोंका विशेषरूपसे अनुसंधान करनेपर श्वेतद्वीपका थोड़ा-बहुत परिचय मिलता है। प्रसिद्धि है कि नारदजीको श्वेतद्वीपमें नारायणके दर्शन हुए थे। वहाँ उपस्थित होकर नारायणके स्वरूपका दर्शन प्राप्त कर लेनेके बाद उनके मनमें हुआ था कि इस बार सचमुच भगवान्‌के दर्शन मिल गये और इससे उनके हृदयमें प्रसन्नता हुई थी। परंतु नारायणने उनके भ्रमको मिटाते हुए कहा था कि 'नारद! तुमने जिस स्वरूपका दर्शन किया है, वह सत्य नहीं है; वह मायिक है।' ऐसा उन्होंने स्पष्ट कह दिया था—

'माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद।'

अर्थात् देवर्षि नारदने भगवान्‌के जिस रूपका दर्शन किया था, वह भगवान्‌का मायिक रूप था।

श्वेतद्वीपके सम्बन्धमें विभिन्न मत पाये जाते हैं। वर्तमान विद्वत्समाजका मत मैं नहीं मानता। वह प्राचीन विचारके अनुरूप नहीं है। इस प्रसङ्गमें स्वर्गीय सर ब्रजेन्द्रनाथ शीलके रोमनगरमें एकत्रित दार्शनिकोंकी उपस्थितिमें लगभग ७० वर्ष पूर्व प्रकाशित एक व्याख्यानमें इस सम्बन्धमें एक मत प्रचरित हुआ था। वह लौकिक दृष्टिके ऊपर आधारित है। परंतु हमारे देशमें भी कभी-कभी वैष्णव-सम्प्रदायोंमें मतभेद देखनेमें आता है। अधिकांश लोगोंकी धारणा है कि श्वेतद्वीप 'गोलोकधाम'का ही दूसरा नाम है। इस महाद्वीपमें साक्षात्‌रूपमें भी उपस्थित हुआ जा सकता है तथा क्रममार्गका अवलम्बन करके भी उपस्थित हुआ जा सकता है। श्वेतद्वीप या गोलोक भगवत्प्रेम या आनन्द-आस्वादनका मुख्य स्थान है। जो लोग क्रममार्गसे इस स्थानमें प्रवेश करते हैं, वे वैकुण्ठ भेद करके अर्थात् वैकुण्ठका ऐश्वर्य और आनन्द आस्वादन करनेके बाद इस स्थानमें प्रवेश कर पाते हैं। जो लोग अधिक भाग्यवान् हैं, वे क्रममार्गका आश्रय लिये बिना ही श्वेतद्वीपमें प्रवेश करते हैं। श्वेतद्वीप पाञ्चरात्र आगमके अनुसार चतुरस्र (चौकोर) है।

महाभारतमें जो श्वेतद्वीपका वर्णन है, अर्थात् जहाँ नारदजी उपस्थित हुए थे, वह मूल श्वेतद्वीपका छायामात्र जान पड़ता है; क्योंकि मूल श्वेतद्वीप द्विभुज नरदेह-रूप श्रीकृष्णकी विहारभूमि है। इसी कारण इसको गोलोकका ही दूसरा नाम माना जाता है। परंतु नारदजी जहाँ गये थे, उसके अधिष्ठाता थे—चतुर्भुज नारायण। वैष्णव सम्प्रदायविशेषकी दृष्टिमें नारायणमूर्ति श्रीकृष्णमूर्तिका विलास है, ठीक इसी प्रकार उनका आभासस्वरूप श्वेतद्वीप मूल श्वेतद्वीपकी छायामात्र है।

यह जो चतुरस्र श्वेतद्वीपकी बात कही गयी है, इसके भीतर एक और चतुरस्र है। उसका नाम है—महावृन्दावन। इस महावृन्दावनके मध्यमें सहस्रदल कमलके आकारमें एक भूमि देखी जाती है, उसका नाम है—गोकुल। उसके ठीक मध्य-स्थलमें अर्थात् कर्णिकामें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका निजधाम विराजमान है। महावृन्दावन और श्वेतद्वीपके मध्यस्थलमें असंख्य दिव्यलोक समुद्रमध्यस्थित द्वीपपुञ्जोंके समान विराजमान हैं। ये लोक अनन्त वैचित्र्यसे पूर्ण हैं। वहाँके व्यक्ति भी विचित्र प्रकृतिसम्पन्न हैं। इन सब लोकोंमें प्रत्येक ही एक प्रकारके 'गोलोक' कहलाते हैं। अर्थात् 'महागोलोक'के अन्तर्गत ये सब खण्ड-गोलोक-स्वरूप हैं। ज्ञात होता है कि हमारे देशके मध्ययुगके संत-लोग इस प्रकारके आनन्दमय द्वीपोंका पता पा चुके थे। गोलोकधामके मध्यबिन्दुमें भगवान्‌का महासिंहासन विराजमान है, जहाँ श्रीराधा-कृष्णके युगल स्वरूपके दर्शन होते हैं। माथुर-मण्डल अर्थात् गोलोक नामक श्वेतद्वीपके भीतर मण्डलाकार असंख्य पुर या नगर हैं। प्रत्येक नगरके साथ गोकुलका सम्पर्क वर्तमान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिव्य गोलोकधाम

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

पूर्ववर्ती प्रलयकालमें करोड़ों प्रभाकरकी प्रभाके समान ज्योतिपुञ्ज प्रसरित था। वह ज्योतिपुञ्ज निखिल सृष्टिके नियामक परमात्माका उज्ज्वल तेज तथा अनन्त विश्वका हेतु है। उस तेजके मध्य सुन्दर तीनों लोक स्थित हैं। उन तीनों लोकोंके ऊपर गोलोकधाम है, जो परमात्माकी भाँति दिव्य तथा नित्य है।

वहाँ एक अत्यन्त निर्मल एवं मनोहर सरिता प्रवाहित है, जिसके तटपर मणि, मुक्ता और अनेक प्रकारके बहुमूल्य रत्न बिखरे रहते हैं और उसकी दूसरी ओर पचास करोड़ योजन लंबा, दस करोड़ योजन चौड़ा एवं एक करोड़ योजन ऊँचा विशाल एवं मनहर पर्वत स्थित है। इस पर्वतकी चोटियाँ अत्यन्त सुन्दर हैं।

इस गिरीन्द्रके मनोरम शिखरपर दस योजन विस्तृत अत्यन्त कमनीय एवं सुरम्य रासमण्डल है। इसके मध्य एक सहस्र पुष्पोद्यान, एक सहस्र कोटि रत्नमण्डप हैं और चतुर्दिक् सुरतरुकी पंक्तियाँ सुशोभित हैं। वह सुविस्तृत, सुन्दर, समतल और सुचिक्कण है। चन्दन, कस्तूरी, अगर और कुङ्कुमसे वह सजा रहता है। उसपर दही, लावा, सफेद धान और दूर्वादल बिखरे रहते हैं। रेशमी सूतोंसे गुँथे नव-चन्दन-पल्लवोंकी बन्दनवारों और कदली-स्तम्भोंसे वह घिरा है। उत्तम रत्नोंके सारभागसे निर्मित करोड़ों मण्डप और उनमें प्रज्वलित रत्नमय प्रदीप उक्त मण्डलकी नित्य नवीन शोभा बढ़ाते हैं। उनके भीतर अनन्त सौन्दर्य-प्रसाधन प्रस्तुत रहते हैं। वह सम्पूर्ण रास-मण्डल अत्यन्त सुगन्धित सुमनों एवं धूपसे सदा सुवासित रहता है।

पर्वतके बाहर विरजा नामकी नदी है। उसके तटपर एक सुन्दर वन है। उसे 'वृन्दावन' कहते हैं। यह वन श्रीप्रिया-प्रियतमकी क्रीड़ाका स्थल है। ये सब तीन करोड़ कोस चौड़े सुविस्तृत क्षेत्रमें मण्डलाकार फैले हुए गोलोक-धामके अन्तर्गत हैं।

इस धामकी दिव्य भूमि रत्नमयी है। इसके चतुर्दिक् रत्नमय प्राचीर हैं। इसके चार प्रधान द्वार हैं। प्रत्येक द्वारपर असंख्य गोप-रक्षक हैं। इसके भीतर कृष्ण-भृत्य गोपोंके पचास करोड़, कृष्णभक्तोंके सौ करोड़ और कृष्ण-पार्षदोंके लिये एक-से-एक सुन्दर, नाना प्रकारके रत्नोंसे जटित एक करोड़ आश्रम हैं। इसके अनन्तर श्रीकृष्णकी प्राणप्यारी गोपियों एवं दासियोंके भी अनेक अतिशय सुन्दर एवं सुखद भवन हैं।

इसके आगे एक अत्यन्त विशाल अक्षयवट है। उसका मूल पचास योजन और उसका ऊपरी भाग सौ योजन विस्तीर्ण है। इस वटवृक्षके सहस्रों विशाल स्कन्ध एवं अगणित शाखाएँ हैं। इसमें रत्नमय फल हैं। इस विशाल वटवृक्षकी सघन शीतल छायामें श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके वेषमें अनेक गोपबालकोंका समूह क्रीड़ा करता है।

इससे कुछ ही दूर सिन्दूरी रंगके पत्थरोंसे निर्मित राजमार्ग है, जिसके दोनों ओर इन्द्रनील, पद्मराग प्रभृति रत्नोंसे निर्मित पंक्तिबद्ध अट्टालिकाएँ सुशोभित हैं। ये अट्टालिकाएँ भाँति-भाँतिके सुन्दर सुगन्धित पुष्पोंसे सुसज्जित हैं। गोपाङ्गनाएँ रत्नोंके आभरण धारणकर इन्हीं भवनोंमें क्रीड़ा किया करती हैं।

इसके अनन्तर श्रीकृष्णकी प्राणप्रिया रासरासेश्वरी श्रीराधारानीका अत्यन्त अद्भुत एवं अनुपम सुन्दर महल है। इसके अत्यन्त विशाल एवं सुन्दर सोलह द्वार हैं। इस विशाल भवनमें एक सौ इतर भवन हैं। इसके चतुर्दिक् विशाल प्रासाद एवं सैकड़ों अद्भुत अलौकिक पुष्प-वाटिकाएँ हैं। श्रीराधारानीके महलके बाहर शृङ्ग पर्वत एवं उसके अनन्तर विरजा नदी है। श्रीकृष्णके स्तवनके लिये देवगण यहाँ आया करते हैं।

अप्राकृत आकाश अथवा परम व्योममें स्थित उस श्रेष्ठ धामको श्रीकृष्णने अपनी योगशक्तिसे धारण कर रक्खा है। वहाँ आधि, व्याधि, जरा, मृत्यु तथा शोक और भयका नाम नहीं है। वहाँ छहों ऋतुएँ सदा विद्यमान रहती हैं। प्रलयकालमें वहाँ श्रीकृष्ण रहते हैं और सृष्टिकालमें वह गोप-गोपियोंसे भरा रहता है। गोलोकसे नीचे पचास करोड़ योजन दूर दक्षिण भागमें वैकुण्ठ और वाम भागमें शिवलोक है। ये दोनों लोक भी गोलोकके समान ही मनोहर और सुखदायक हैं।

गोलोकके भीतर भी अत्यन्त आह्लादजनक एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमानन्ददायिनी मनोहर ज्योति है। योगीजन योग एवं ज्ञान-दृष्टिसे उसीका चिन्तन करते हैं। वह ज्योति निराकार एवं परात्पर ब्रह्म है। उस ज्योतिमें सजल जलधरकी भाँति श्यामल अङ्गकान्तिवाले श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण रत्नसिंहासनपर आसीन हैं। उनके विशाल नेत्र विकसित अरुण कमलके समान लाल एवं मनोहर हैं। मुखारविन्दकी शोभा शरद्की पूर्णिमाके सुधांशुकी छटाको लज्जित करती है। उनकी दो भुजाएँ हैं। एक करकमलमें पीयूषवर्षिणी मुरली विराजित है। उनके परम दिव्य श्रीअङ्गोंपर पीताम्बर शोभा पाता है और वे अपनी मधुर मुस्कानसे सहज ही सबके प्राण और मन मोहे लेते हैं। उनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्स एवं मस्तकपर उत्तम रत्नसारसे निर्मित अनुपम किरीट जगमगाता रहता है। उनके सम्पूर्ण श्रीअङ्ग चन्दनसे चर्चित एवं कस्तूरी और कुङ्कुमसे अलंकृत हैं। उनके गलेमें आजानुलम्बिनी वनमाला विराजित है। वे ही परब्रह्म परमात्मा, सबके आदिकारण, निर्विकार, परिपूर्णतम, सर्वव्यापी, अविनाशी, सनातन भगवान् हैं।

तन्त्रके मतानुसार गङ्गाप्रभृति पावनतम सरिताएँ एवं इन्द्रादि देवगण इसी स्थानपर उपस्थित रहते हैं। यहाँ श्रीकृष्ण अपनी पीयूषवर्षिणी वंशी अनेक स्वरोंमें बजाकर सबके मन और प्राण आनन्दित करते हैं और भक्तवत्सला राधिका भी प्राणप्रिय भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये उनके वाम भागमें उपस्थित रहती हैं। *

परब्रह्म परमेश्वर श्रीकृष्णके इस गोलोककी महिमा अनिर्वचनीय है। योगीन्द्र-मुनीन्द्र ध्यानमें भी इसके दर्शन नहीं कर पाते। जिनके हृदयमें संसारकी अतिशय अनासक्ति एवं श्रीराधाकृष्णके प्रति दृढ़ प्रीति है और जो सांसारिक कामनाओंको त्यागकर 'राधाकृष्ण'के मङ्गलमय नामका जप करते रहते हैं, उन्हें ही श्रीराधाकृष्णकी कृपासे इस वाङ्मनस-अगोचर पावनतम सुखद लोककी प्राप्ति होती है।

साकेत--दिव्य अयोध्या

(लेखक—मानस-तत्त्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी)

साकेते स्वर्णपीठे मणिगणखचिते कल्पवृक्षस्य मूले
नानारत्नौघपुञ्जे कुसुमितविपिने नेत्रजास्वच्छकूले।
जानक्यङ्के रमन्तं नृपनयविधृतं मन्त्रजाप्यैकनिष्ठं
रामं लोकाभिरामं निजहृदिकमले भासयन्तं भजेऽहम्॥
साकेतरासरसकेलिविधौ विदग्धां
ब्रह्मेन्द्ररुद्रवसुवृन्दसशक्तिजुष्टाम्।
आनन्दब्रह्मद्रवरूपमतीं नतोऽस्मि
तां रामप्रेमजलपूरणब्रह्मरूपाम्॥
ब्रह्मादिभिः सुरवरैस्समुपास्यमानां
लक्ष्म्यादिभिश्च सखिभिः परिसेव्यमानाम्।
सर्वेश्वरैः सहगणैः परिगीयमानां
तां राघवेन्द्रनगरीं नितरां नमामि॥

'दिव्यातिदिव्य साकेतलोकमें भगवान्के नेत्र(जल) से उत्पन्न सरयू नदीके निर्मल कूलपर पुष्पित कानन है। उसके अन्तर्गत कल्पवृक्षके मूलमें, जो नाना प्रकारकी रत्नराशिका पुञ्जमात्र है, मणिजटित एक स्वर्णमय पीठ है। उसपर जगज्जननी जानकीके साथ दिव्य केलिमें रत, राजनीतिके धुरंधर, अपनी आराध्या एवं प्रियतमा भगवती जानकीके ही मन्त्रजपमें अनन्य भावसे परायण तथा अपने निजजनोंके हृदयरूपी कमलमें प्रकाश फैलाते हुए लोकसुखदायक भगवान् श्रीरामका मैं भजन करता हूँ।'

'मैं उन नदीश्रेष्ठा भगवती सरयूको प्रणाम करता हूँ, जो साकेतलोकमें निरन्तर होनेवाली रासरूपी सरस केलिके विधानमें परम पटु हैं; जो शक्तिसहित ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, वसु आदि देवगणोंके द्वारा सेवित हैं; जिनके रूपमें स्वयं आनन्दमय ब्रह्म ही द्रवित होकर प्रवहमाण है तथा जो भगवान् श्रीरामके नेत्रोंसे निकले हुए प्रेमाश्रुओंसे पूर्ण ब्रह्मस्वरूपा हैं।'

'मैं भगवान् राघवेन्द्रकी राजधानी अयोध्यापुरीकी आदरपूर्वक वन्दना करता हूँ, जो ब्रह्मादि देववरोंके द्वारा उपासित हैं; भगवती लक्ष्मी प्रभृति अपनी सखियोंद्वारा सुसेवित हैं और जिनका अपने-अपने गणों (पार्षदों)

* ब्रह्मवैवर्तपुराणके आधारपर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहित सम्पूर्ण ईश्वरकोटिके देवताओंके द्वारा स्तवन किया जाता है।'

आनन्दाम्बुधि भगवान्‌के नित्यधामके लिये पूर्वकालमें दार्शनिकोंने प्रश्नोत्तर-रूपसे समझाया था—

प्रश्न—किमात्मिका भगवद्व्यक्तिः ?

उत्तर—यदात्मको भगवान् तदात्मिका भगवद्व्यक्तिः।

प्रश्न—किमात्मको भगवान् ?

उत्तर—सदात्मको भगवान्, चिदात्मको भगवान्, आनन्दात्मको भगवान्। अतएव सच्चिदानन्दात्मिका भगवद्व्यक्तिः।

प्रश्न—भगवान्‌का आविर्भाव या प्राकट्य किस रूपमें होता है ?

उत्तर—भगवान्‌का अपना जो स्वरूप है, उसी रूपमें उनकी अभिव्यक्ति होती है।

प्रश्न—भगवान्‌का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—भगवान् सत्स्वरूप हैं, चित्स्वरूप हैं, आनन्द-स्वरूप हैं। इसीलिये उनका प्राकट्य भी सत्स्वरूप, चित्स्वरूप, आनन्दस्वरूप ही होता है।

यहाँ चित्‌से तात्पर्य स्वयंप्रकाशात्मक मात्रसे है, चैतन्यत्वसे नहीं। भगवान्‌के नित्यधामको ही वैदिक भाषामें 'त्रिपाद्विभूति' कहा जाता है। परमात्माकी समग्र विभूति दो भागोंमें विभक्त है। एक चतुर्थांशका एक भाग है, जिसे 'एकपाद्विभूति' कहा जाता है। इसीका नाम अविद्यापाद् एवं मायापाद् भी है और तीन चतुर्थांशका एक भाग है जिसे 'त्रिपाद्विभूति' कहा जाता है और उसीका नाम ब्रह्मपाद्, आनन्दपाद् एवं शुद्धसत्त्वपादादि भी है।

'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।'
(ऋग्वेद १०।९०।३; अथर्व० १९।६।३; यजु० ३१।३; तै० आ० ३।१२।१)

'त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।'
(ऋ० १०।९०।४; यजु० ३१।४; अथर्व० १९।६।२; तै० आ० ३।१२।२)

दोनों भागोंकी सीमा विरजा है। एकपाद् (मायापाद्विभूति) में ही युगपत् प्रतिपल अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड बना-बिगड़ा करते हैं—

निमिष मात्र ब्रह्मांड निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया॥
ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया॥
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥
(श्रीरामचरितमानस)

इस 'एकपाद्विभूति'के लिये कहा गया है कि—

"इस 'मायापाद्'के इर्द-गिर्द तथा नीचेकी ओर कोई सीमा नहीं है। इसके ऊपरकी ओर विरजा नदी ही है। त्रिपाद्-विभूतिकी नीचेकी सीमा विरजा नदी ही है, ऊपर तथा दोनों पार्श्वोंमें सीमा नहीं है।"

आज जिस ब्रह्माण्डमें हमलोग रहते हैं—"यह प्रकृतिसे उत्पन्न रमणीय ब्रह्माण्ड (भूः, भुवः आदि सात ऊपरके तथा अतल, वितल आदि सात नीचेके —कुल) चौदह लोकोंसे व्याप्त है। द्वीपोंसे युक्त सागरोंसे, (स्वेदज, अण्डज, जरायुज एवं उद्भिज—इन) चार कोटिके जीवोंसे तथा महान् आनन्ददायक पर्वतोंसे परिपूर्ण है। इतना ही नहीं, वस्त्रोंकी परतोंके समान दस उत्तरोत्तर विशाल आवरणोंसे यह घिरा हुआ है। यह प्राकृत ब्रह्माण्ड साठ करोड़ योजन ऊँचा और पचास करोड़ योजन विस्तार-वाला है। यह अण्ड अपने इर्द-गिर्द तथा ऊपर-नीचे कड़ाहेके समान कठोर भागसे उसी प्रकार सब ओर घिरा हुआ है, जैसे अनाजका बीज कड़ी भूसीसे घिरा रहता है। जैसे कैथका फल बीजोंके आधारपर स्थित रहता है, उसी प्रकार जड-चेतनात्मक ब्रह्माण्ड इसी अण्डकटाहके आधारपर स्थित है। पृथिवीका घेरा एक करोड़ योजनका है, जलका घेरा दस करोड़ योजनका कहा गया है, अग्निका घेरा सौ करोड़ (एक अरब) योजनके परिमाणका है, वायुका घेरा हजार करोड़ (दस अरब) योजन परिमाणका है। आकाशका आवरण दस हजार करोड़ (एक खरब) योजनका है, अहंकारका आवरण एक लाख करोड़ (दस खरब) योजनका और प्रकृतिका आवरण असंख्य योजनका कहा गया है। प्रकृतिके अन्तर्गत समस्त लोक कालरूप अग्निके द्वारा (प्रलयकालमें) जला दिये जाते हैं।"

× × ×

"भगवान्‌का (साकेत) धाम प्रकृतिके परे, सदा रहनेवाला, अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित, निर्विकार, मायारूपी मलसे रहित, काल एवं प्रलयके प्रभावसे मुक्त तथा एकमात्र भक्तिसे ही प्राप्त होता है। उसीके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धमें गीतावक्ता श्रीकृष्ण कहते हैं—'उसे न तो सूर्य प्रकाशित करता है, न चन्द्रमा और न अग्नि । जहाँ पहुँचकर कोई भी लौटकर इस प्राकृत ब्रह्माण्डमें नहीं आता, ऐसा मेरा सर्वश्रेष्ठ परम धाम है (गीता १५।६)।' जिस मायिक प्रपञ्चका मैंने ऊपर उल्लेख किया है वह अविद्यारूप घने अन्धकारसे व्याप्त है; उसके ऊपरी भागमें विरजा नामकी नदी, जिसकी कोई सीमा नहीं है, वह विश्व-ब्रह्माण्डके उस पार उसका आवरण बनी हुई स्थित है। यह विरजा नदी प्रकृति एवं परव्योम (भगवद्धाम) के बीचमें विद्यमान है।''

(बृहद्ब्रह्मसंहिता, पाद ३, अध्याय १ श्लोक ११ से १९, ४० से ४३)

भूलोक और महर्लोकके बीचमें भुवर्लोक और स्वर्लोक हैं। कहा गया है—

''महर्लोक' पृथ्वीके ऊपर (भुवर्लोक एवं स्वर्लोकसे भी आगे) एक करोड़ योजन परिमाणका है । उसके ऊपर दो करोड़ योजन परिमाणका 'जनलोक' है, उसके ऊपर चार करोड़ योजनका 'तपोलोक' और उसके भी ऊपर आठ करोड़ योजनका 'सत्यलोक' है। उसके बाहर 'सप्तावरण' नामका बाहरी घेरा है।''

('उपासनात्रयसिद्धान्त' नामक ग्रन्थमें उद्धृत सदाशिव-संहितासे)

विरजापार त्रिपाद्विभूतिको ही उपासकोंकी भाषामें परम धाम, नित्यलोक, साकेत, गोलोक एवं महावैकुण्ठ आदि कहा जाता है और साम्प्रदायिक रहस्यग्रन्थोंमें अलग-अलग इनका विस्तृत वर्णन पाया जाता है ।

शिवहर स्टेटसे सं० १९९७ वि० में प्रकाशित पञ्चम-पटल शिवसंहिताके बीसवें अध्यायमें वर्णन है—

अयोध्या नन्दिनी सत्यानामा साकेत इत्यपि ।
कोशला राजधानी च ब्रह्मपूरापराजिता ॥ ५ ॥
अष्टचक्रा नवद्वारा नगरी धर्मसम्पदाम् ।
दृष्ट्वैवं ज्ञाननेत्रेण ध्यातव्या सरयूस्तथा ॥ ६ ॥

'अयोध्या नगरीके अनेक नाम हैं—जैसे नन्दिनी, सत्या, साकेत, कोसला, राजधानी, ब्रह्मपुरी और अपराजिता। वह अष्टदल पद्मके आकारकी है, नौ द्वारोंसे युक्त है। यह धर्मके धनी लोगोंकी नगरी है । इसे ज्ञानके नेत्रोंसे देखकर इसका तथा (साथ-ही-साथ) सरयू नदीका (भी) ध्यान करना चाहिये।'

इस ब्रह्मपुरी अष्टचक्रा नवद्वारा 'साकेत'का नाम ही अयोध्या, अपराजिता, सत्यलोक, सत्यधाम आदि भी है। अथर्ववेद मन्त्रसंहिताके दसवें काण्डके दूसरे सूक्तके अन्तिम २७॥ से ३३ तक साढ़े पाँच मन्त्रोंमें अयोध्या (साकेत) का जितना विपुल, विशद, सुस्पष्ट अथच साम्प्रदायिक वर्णन है, उतना किसी भी पुरीका वर्णन वेद-मन्त्रसंहिताओंमें नहीं है। इसका कारण वेद भी तो श्रीरामजीके—

'सगुन जस नित गावहीं ।' (श्रीरामचरितमानस उत्तर-काण्ड)

उन वेदमन्त्रोंके शब्दार्थमें किसीको कुछ भी अपनी ओरसे (अध्याहार करके) मिलानेकी आवश्यकता नहीं रहती । वे मन्त्र ये हैं—

पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥
यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥

(अथर्व० १० । २ । २८-२९)

इस डेढ़ मन्त्रका अन्वय एकमें ही है; अतः साथ ही अर्थ दिया जाता है—

'यः—जो कोई (**ब्रह्मणः**)—ब्रह्मके अर्थात् परात्पर परमेश्वर, परमात्मा, जगदादिकारण, अचिन्त्यवैभव श्रीसीतानाथ श्रीरामजीके (**पुरम् वेद**)—पुरको जानता है (उसे भगवान् तथा भगवान्‌के पार्षद सब ही लोग चक्षुप्राण और प्रचोदते हैं) किस पुरीको जाननेके लिये कहते हो ? तो (**यस्याः**)—जिस पुरीको (**पुरुषः उच्यते**)-पुरुष बोला जाता है अर्थात् जिसका प्रतिदिन नाम-स्मरण किया जाता है, उस पुरुषकी पुरीको जाननेके लिये श्रुति कह रही है। (**यः ब्रह्मणः**)—जो कोई अनन्तशक्तिसम्पन्न, सर्वव्यापक, सर्वनियन्ता सर्वशेषी, सर्वाधार श्रीरामजीकी (**अमृतेन आवृताम्**)—अमृत अर्थात् मोक्षानन्दसे परिपूर्ण, (**ताम् पुरम् वेद**)—उस अयोध्या-पुरीको जानता है, (**तस्मै**)—उसके लिये (**ब्रह्म च ब्राह्माःच**)—साक्षात् भगवान् और ब्रह्मके सम्बन्धी अर्थात् भगवान्‌के हनुमान्, सुग्रीव, अंगद, मयन्द, सुषेण, द्विविद, दरीमुख, कुमुद, नील, नल, गवाक्ष, पनस, गन्धमादन, विभीषण, जाम्बवान् और दधिमुख इत्यादि प्रधान षोडश पार्षद अथवा नित्य और मुक्त सर्वजीव मिलकर (**चक्षु**)—उत्तम दर्शन-शक्ति, (**प्राणम्**) (**प्रजाम् ददुः**)—उत्तम प्राणशक्ति अर्थात् आयुष्य और बल तथा संतान आदि देते हैं।'

वेदोंके संस्कारभाष्यकार पण्डितराज सात्वतसार्वभौम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी श्रीभगवदाचार्यजी लिखते हैं कि इस मन्त्रमें 'ददुः' इस भूतकालिक प्रयोगको देखकर घबराना नहीं चाहिये। वेदकी सब बातें अलौकिक ही होती हैं।

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥
(अथर्व० १०। २। ३०)

'(यस्याः पुरुषः)—'जिस पुरीका परमपुरुष (उच्यते)—कहा जाता रहा है अर्थात् जिसका निरूपण सर्वत्र वेद-शास्त्रोंमें किया जाता है और यहाँ भी २८ वें मन्त्रके पूर्वके मन्त्रोंमें जिस पुरुषका निरूपण किया गया है, उसको, (ब्रह्मणः तां पुरम्)—परब्रह्म (श्रीराम) की उस पुरी अयोध्याको (यः वेद, तम्)—जो कोई जानता है, उस प्राणीको (चक्षुः)—दर्शन-शक्ति अर्थात् बाह्य और आभ्यन्तरिक नेत्र, तथा (प्राणः)—शारीरिक और आत्मिक बल (जरसः पुरा)—मृत्युसे पूर्व (न जहाति)—निश्चय ही नहीं छोड़ते।'

तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीरामकी उभयपादस्थित दोनों अयोध्यापुरी पवित्र अथच दिव्य हैं। त्रिपाद्विभूतिस्थ साकेतके समान ही एकपाद्विभूतिस्थ साकेत—अयोध्याका भी माहात्म्य है। इतना ही अन्तर है कि—

भोगस्थानं परायोध्या लीलास्थानं त्वियं भुवि।
भोगलीलापती रामो निरङ्कुशविभूतिकः॥
(शिवसं० पटल ५, अ० २, श्लोक ८)

'परव्योमस्थित अयोध्या दिव्य (भगवत्स्वरूप) भोगोंकी भूमि है और पृथ्वीगत यह (सबके लिये प्रत्यक्ष) अयोध्या लीलाभूमि है। इन दोनों अयोध्याओंके स्वामी श्रीराम भोग और लीला दोनोंके मालिक हैं। उनकी विभूति (ऐश्वर्य) अङ्कुशहीन (स्वतन्त्र) है।'

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽऽवृतः॥
(अथर्व० १०। २। ३१)

ब्रह्मकी उस पुरी (भोगस्थान पुरा अयोध्या) के नाम और रूपको स्पष्टरूपेण यह मन्त्र बताता है—

(पुः अयोध्या)—"वह (अष्टाचक्रा) पुरी अयोध्याजी है, वह आठचक्रों अर्थात् आवरणोंवाली है; अर्थात् जिसमें आठ आवरण हैं। (नवद्वारा)—जिसमें प्रधान नवद्वार हैं। तथा जो (देवानाम्)—दिव्यगुणविशिष्ट, भक्तिप्रपत्तिसम्पन्न, यम-नियमादिमान्, परमभागवत चेतनोंसे 'सेव्या इति शेषः, सेवनीय है। (तस्यां स्वर्गः)—उस अयोध्यापुरीमें बहुत ऊँचा अथवा बहुत सुन्दर, (ज्योतिषा आवृतः)—प्रकाशपुञ्जसे आच्छादित (हिरण्ययः कोशः)—सुवर्णमय मण्डप है।"

इस मन्त्रमें अयोध्याजीका स्वरूप-वर्णन है। अयोध्या-पुरीके चारों ओर कनकोज्ज्वल दिव्य प्रकाशात्मक आवरण है, जो भीतरसे निकलनेपर अष्टमावरण और बाहरसे प्रवेश करनेपर प्रथमावरण या प्रथम चक्र है।

ब्रह्मज्योतिरयोध्यायाः प्रथमावरणे शुभम्।
यत्र गच्छन्ति कैवल्याः सोऽहमस्मीतिवादिनः॥
(वसिष्ठसंहिता २६। १ साकेतसुषमामें उद्धृत)

"अयोध्याके सर्वप्रथम घेरेमें शुभ्र ब्रह्ममयी ज्योति प्रकाशित है। 'सोऽहम् सोऽहम्' कहनेवाले कैवल्यकामी पुरुष (मरनेपर) इसी ज्योतिमें प्रवेश करते हैं।"

'सोऽहं' या 'अहं ब्रह्मास्मि'वादियोंका 'सुरदुर्लभ कैवल्य-परमपद' वही है। उस आवरणमें सर्वत्र दिव्य भव्य प्रकाश-मात्र रहता है।

बाहरसे प्रवेश करनेपर द्वितीय किंतु भीतरसे निकलनेपर सप्तमावरण अर्थात् सप्तम चक्र है, जिसमें प्रवहमाना श्रीसरयूजी हैं—

अयोध्यानगरी नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी।
यस्यांशांशेन वैकुण्ठो गोलोकादिः प्रतिष्ठितः॥
यत्र श्रीसरयूर्नित्या प्रेमवारिप्रवाहिणी।
यस्यांशांशेन सम्भूता विरजादिसरिद्वराः॥
(सा० सु० पृ० ७)

'अयोध्या नगरी नित्य है। वह सच्चिदानन्दरूपा है। वैकुण्ठ एवं गोलोक आदि भगवद्धाम अयोध्याके अंशके अंशसे निर्मित हैं। इसी नगरीके बाहर सरयू नदी हैं, जिनमें श्रीरामके प्रेमाश्रुओंका जल ही प्रवाहित हो रहा है। विरजा आदि श्रेष्ठ नदियाँ इन्हीं सरयूके अंशके किसी अंशसे उद्भूत हैं।'

साकेतके पुरद्वारे सरयूः केलिकारिणी॥ ८९॥
(बृहद्ब्रह्मसंहिता पाद ३, अ० १)

'उस अयोध्या नगरीके द्वारपर सरयू नदी क्रीड़ा करती रहती हैं।'

बाहरसे तीसरा और भीतरसे निकलनेपर छठा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवरणचक्र है; जिसमें महाशिव, महाब्रह्मा, महेन्द्र, महावरुण, कुबेर, धर्मराज, दिक्पाल, महासूर्य, महाचण्ड, यक्ष, गन्धर्व, गुह्यक, किंनर, विद्याधर, सिद्ध, चारण, अष्टादश-सिद्धियाँ और नवनिधियाँ दिव्यस्वरूपसे निवास करती हैं।

बाहरसे चौथा भीतरसे निकलनेपर पाँचवाँ आवरण है; उसमें दिव्यविग्रहधारी वेद, उपवेद, पुराण, उपपुराण, ज्योतिष, रहस्य, तन्त्र, नाटक, काव्य, कोश, ज्ञान, कर्म, योग, वैराग्य, यम, नियम, काल, कर्म, गुण आदि निवास करते हैं।

महाशम्भुर्महाब्रह्मा महेन्द्रो वरुणस्तथा।
धनदो धर्मराजश्च महान्तश्च दिगीश्वराः॥
अन्ये च विविधा देवा नित्याः सर्वे द्विजोत्तम।
वेदमूर्तिधराः शास्त्रविद्याश्च विविधास्तथा॥
सायुधाः सगणाः श्रीमद्रामभक्तिपरायणाः॥

× × ×

एतदंशसमुद्भूत देवा ब्रह्मशिवादयः।
यथाधिकारं ते सर्वे स्वे स्वे लोके सुसंस्थिताः॥
निधयो नवधा नित्या दशाष्टौ सिद्धयस्तथा।
पञ्चधा मुक्तयश्चापि रूपवत्यः पृथक् पृथक्॥
कर्मयोगौ च वैराग्यं ज्ञानं च साधनैः सह।

जो बाहरसे पाँचवाँ, भीतरसे चौथा आवरण है, उसमें भगवान्‌का मानसिक ध्यान करनेवाले योगी और ज्ञानीजन निवास करते हैं—

साकेतपुरीके पाँचवें घेरेमें विद्वान् लोग उस सच्चिन्मय ज्योतिरूप ब्रह्मका निवास बतलाते हैं, जो निष्क्रिय, निर्विकल्प, निर्विशेष, निराकार, ज्ञानाकार, निरञ्जन (मायाके लेशसे शून्य), वाणीका अविषय, प्रकृतिजन्य (सत्त्व, रज आदि) गुणोंसे रहित, सनातन, अन्तरहित, सर्वसाक्षी, सम्पूर्ण इन्द्रियों एवं उनके विषयोंकी पकड़में न आनेवाला, अपितु उन सबको प्रकाश देनेवाला, संन्यासियों, योगियों तथा ज्ञानियोंका लयस्थान है।''

जो बाहरसे पाँचवाँ, भीतरसे निकलनेपर चौथा आवरण है, उसमें महाविष्णुलोक, रमावैकुण्ठ, अष्टभुजभूम-पुरुषलोक, महाब्रह्मलोक और महाशम्भुलोक हैं—

गर्भोदकशायी एवं क्षीराब्धिशायी भगवान् नारायण तथा श्वेतद्वीपाधिपति एवं रमावैकुण्ठनायक भगवान् विष्णु—ये सभी अयोध्याके चौथे घेरेमें स्थित रहकर उसी नगरीका सेवन करते हैं।

जो बाहरसे जानेपर छठा और भीतरसे निकलनेमें तीसरा आवरण है, उसमें मिथिलापुरी, चित्रकूट, वृन्दावन, महावैकुण्ठ अथवा भूत-वैकुण्ठ आदि विराजमान हैं। कहा गया है—

''अयोध्याका बाहरी स्थान ही 'गोलोक' कहलाता है।''

× × ×

''साकेतके पूर्व दिशावाले भागमें 'मिथिलापुरी' सुशोभित है।''

× × ×

''कोसलपुरीकी दक्षिणदिशामें 'चित्रकूट' नामक महान् पर्वत सुशोभित है, जो सच्चिदानन्दमूर्ति है।''

× × ×

''अयोध्याके पश्चिमभागमें परमात्मा श्रीकृष्णका 'वृन्दावन'नामक सनातन धाम है, जो चिदानन्दमय एवं अद्भुत है।''

× × ×

''सत्याके उत्तर भागमें भगवान् महाविष्णुका 'महावैकुण्ठ' नामक सनातन परम धाम है, जिसका वेदोंने बखान किया है।''

जो बाहरसे जानेपर सातवाँ आवरण है, वह भीतरसे निकलनेमें दूसरा आवरण है, उसमें दिव्य द्वादशोपवन एवं चार क्रीडापर्वत हैं—

'साकेतके अन्तर्गत शोभायुक्त श्रीशृङ्गारवन, अद्भुत विहारवन, दिव्य पारिजातवन, उत्तम अशोकवन, तमालवन, रसाल (आम्र) वन, चम्पकवन, चन्दनवन, रमणीय प्रमोदवन, श्रीनागकेशरवन, अनन्तवन, रम्य-कदम्बवन—ये बारह उपवन हैं।'

(रुद्रयामल० अयो० भाग ३० । ४८-५०)

'उपर्युक्त सभी सघन वनोंमें, जो गहरे नीले रंगकी-सी आभा बिखेर रहे हैं—नाना जातिके नित्य नवीन चित्र-विचित्र, चिन्मय, कमनीय, सदा किशोर अवस्थासे युक्त, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, अत्यन्त चिकने, कोमल एवं सूक्ष्म वृक्ष हैं, जो डालियोंसे लटकते हुए अपने नित्य-नवीन चिकने, कोमल, वायुवेगसे चञ्चल, विचित्र, सघन एवं नीले, हरे, पीले एवं गुलाबी रंगके पत्तोंसे अमृतकी बूँदे टपकाते रहते हैं; जो पँचरंगे, दिव्य, सुगन्धित, नित्य, सब ओरसे खिले हुए असंख्य पल्लवोंसे अमृतकी बूँदें टपकाते रहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं और जो विशेषकर अपने सुधा-मधुर फलोंके भारी बोझसे अपनी डालियोंके रूपमें भूमिपर लोट रहे हैं। इनमेंसे कइयोंके नीचे दिव्य सुवर्णके गट्टे बने हुए हैं, जिनमें श्रेष्ठ रत्नोंसे पच्चीकारी की गयी है। उन वृक्षोंपर फूले हुए पञ्च प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित वल्लरी-जालका चँदोवा तना है; किन्हीं-किन्हींकी छाल सोनेकी है; मोती-जैसे पुष्पोंको वे मुकुटरूपमें धारण किये हुए हैं। उनपर फलोंके स्थानपर चिन्तामणियाँ लगी हैं और उनके पत्ते नीलमके बने सुशोभित हैं।'

(वसिष्ठसंहिता, उपासनात्रयसिद्धान्तसे उद्धृत)

× × ×

'उस वनमें पूर्व आदि चारों दिशाओंमें चार पर्वत हैं, उनके नाम क्रमशः मुझसे सुनो। वे हैं—शृङ्गारपर्वत, रत्नपर्वत, लीलापर्वत और मुक्तापर्वत। ये अपनी शोभासे दसों दिशाओंको उद्भासित करते रहते हैं। पूर्व दिशामें नीलमका बना हुआ 'शृङ्गारपर्वत' है, जिसपर दिव्य सूर्य उदित होते हैं और श्रीरामकी प्रिया श्रीआह्लादिनी देवीके चित्तको चुराते रहते हैं। दक्षिण दिशामें पीले रत्नोंका बना हुआ शोभासम्पन्न 'रत्नपर्वत' देदीप्यमान है, जो अपनी कान्तिसे सम्पूर्ण वनको उद्भासित करता रहता है और जो श्रीभूदेवीको प्रिय है। पश्चिम दिशामें लाल रत्नोंका बना हुआ तथा श्रीरामकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला 'नीलपर्वत' विराजमान है, जिसकी प्रभा श्रीलीलादेवीको प्रिय है। उत्तर दिशामें भगवती श्रीदेवीकी लीलामें सहयोग देनेके लिये चन्द्रकान्त मणियोंसे सुशोभित विशाल एवं उज्ज्वल 'मुक्तापर्वत' प्रकट है, जो विचित्र पुष्पपुञ्जोंसे सम्पन्न लतासमूहोंके वितान (चँदोवे) से सुशोभित तथा सुधाको भी मात कर देनेवाले स्वादिष्ट फलोंके बोझसे अत्यधिक झुके हुए वृक्षोंसे मण्डित है।'

(वसिष्ठसंहिता अध्याय २६)

बाहरसे जानेमें आठवाँ और भीतरसे निकलनेमें जो प्रथम आवरण है, उसमें नित्यमुक्त भगवत्-पार्षदगण रहते हैं और भगवान्‌के अनन्तानन्त अवतार भी इसीमें रहते हैं—

'साकेतके दक्षिणद्वारपर श्रीरामके प्रति वात्सल्यभाव रखनेवाले श्रीहनुमान्‌जी (द्वारपालके रूपमें) विराजमान हैं। उसी द्वार-देशमें 'सान्तानिक' नामका वन है, जो श्रीहरि (श्रीराम) को प्रिय है।'

× × ×

'मत्स्य, कूर्म, अनेक वराह, अनेक नरसिंह, वैकुण्ठ, हयग्रीव, हरि, वामन, केशव, यज्ञ, धर्मपुत्र, नारायणऋषि तथा उनके छोटे भाई नर, देवकीनन्दन श्रीकृष्ण, वसुदेवनन्दन बलराम, पृश्निगर्भ, मधुसूदन, गोविन्द, माधव, परात्पर वासुदेव, अनन्त, संकर्षण, इलापति, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध भगवान्‌के ये सभी व्यूह भी श्रीरामकी आज्ञामें रहकर एक साथ उनकी सेवामें उपस्थित होते हैं। श्रीराम नामसे विख्यात महेश्वर इनके तथा अन्य ईश्वरोंके द्वारा सेव्य हैं; कारण, ये इन सबको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले तथा इनके मूल हैं। इनके बिना ये सब ऐश्वर्यहीन हैं।'

(सदाशिवसंहिता ५। २। २४–२८)

विभिन्न साम्प्रदायिक ग्रन्थोंमें आवरणस्थ निवासियोंके स्थानोंमें यत्रतत्र हेरफेर भी है, परंतु तत्तन्निवासियोंके नामोंमें हेरफेर नहीं है।

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः॥

(अथर्व० १०। २। ३२)

"(तस्मिन्) उस विशाल (हिरण्यये) सुवर्णमय (कोशे) मण्डपमें (तस्मिन्) उसके अर्थात् उस मण्डपके (आत्मन्वत्) आत्माके समान (यद् यक्षम्) जो पूजनीय देव विराजमान है, (तत्) उसीको (ब्रह्मविदः) ब्रह्मस्वरूप ज्ञानवान् जन (विदुः) जानते हैं। अथवा 'ब्रह्मविदः' में दो पद हैं 'ब्रह्म' और 'विदः' तब अर्थ हुआ यह कि (विदः तत्) विद्वान् जन उसी यक्षको उसी परमोपास्य देवको, (ब्रह्म विदुः) परात्पर सनातन महापुरुष जानते हैं। जिस कोशमें वह यक्ष विराजमान है वह कोश कैसा है? तो (त्र्यरे) उसमें तीन अरे लगे हुए हैं अर्थात् सत्, चित्, आनन्द—तीन अरोंपर वह मण्डप बना हुआ है तथा (त्रिप्रतिष्ठिते) चित्, अचित् एवं ईश्वर तीनोंसे प्रतिष्ठित—आदृत है।"

इस मन्त्रमें जो 'तस्मिन्' पद आया है, वह षष्ठीके अर्थमें है। इसीसे उसका अर्थ 'उसके' किया गया है।

इस मन्त्रमें स्पष्ट ही कहा गया है कि अयोध्याके मध्यमें जो सुवर्णमय मणिमण्डप है, उसमें जो देव विराजमान हैं, उन्हींको विद्वान् लोग 'ब्रह्म' कहते हैं। अयोध्याके मणिमण्डपमें भगवान् श्रीरामके अतिरिक्त अन्य कोई भी विराजमान नहीं है। अतः भगवान् श्रीरामजी ही परब्रह्म हैं। इसी अर्थका पद्मपुराण उत्तरखण्ड अध्याय दो सौ अट्ठाईसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्तार किया गया है। उसके कुछ श्लोक नीचे दिये जाते हैं—

तद्विष्णोः परमं धाम यान्ति ब्रह्म सुखप्रदम् ॥ १० ॥
नानाजनपदाकीर्णं वैकुण्ठं तद्धरेः पदम् ।
प्राकारैश्च विमानैश्च सौधै रत्नमयैर्वृतम् ॥ ११ ॥
तन्मध्ये नगरी दिव्या साऽयोध्येति प्रकीर्तिता ।
मणिकाञ्चनचित्राढ्या प्राकारैस्तोरणैर्वृता ॥ १२ ॥

× × ×

मध्ये तु मण्डपं दिव्यं राजस्थानं महोच्छ्रयम् ॥ १९ ॥
मध्ये सिंहासनं रम्यं सर्ववेदमयं शुभम् ।
धर्मादिदैवतैर्नित्यैर्वृतं पादमयात्मकैः ॥ २१ ॥
धर्मज्ञानमहैश्वर्यवैराग्यैः पादविग्रहैः ।
ऋग्यजुस्सामाथर्वाख्यरूपैर्नित्यवृतं क्रमात् ॥ २२ ॥
शक्तिराधारशक्तिश्च चिच्छक्तिश्च सदाशिवा ।
धर्मादिदैवतानां च शक्तयः परिकीर्तिताः ॥ २३ ॥

× × ×

तन्मध्येऽष्टदलं पद्ममुदयार्कसमप्रभम् ।
तन्मध्ये कर्णिकायां तु सावित्र्यां शुभदर्शने ॥ २६ ॥
ईश्वर्या सह देवेशस्तत्रासीनः परः पुमान् ।
इन्दीवरदलश्यामः कोटिसूर्यप्रकाशवान् ॥ २७ ॥
युवा कुमारः स्निग्धश्च कोमलावयवैर्वृतः ।

× × ×

फुल्लरक्ताम्बुजनिभः कोमलाङ्घ्रिसरोजवान् ॥ २८ ॥

"भक्तलोग (सरकर) भगवान् विष्णुके उस परम धाम वैकुण्ठमें जाते हैं, जो नाना प्रकारके निवासियोंसे पूर्ण है। (परम) आनन्ददायक ब्रह्म वही है। वही भगवान् श्रीहरिका निवासस्थान है। वह परकोटों, सतमंजिले महलों तथा रत्ननिर्मित प्रासादोंसे घिरा हुआ है। उसी वकुण्ठधामके बीचमें जो दिव्य नगरी है, वही 'अयोध्या' नामसे विख्यात है। वह नाना प्रकारकी मणियों तथा सोनेके चित्रोंसे सम्पन्न है और परकोटों तथा द्वारोंसे घिरी हुई है।"

"उस अयोध्या नगरीके मध्यमें बहुत ऊँचा एवं दिव्य मण्डप है, जो वहाँके राजाका निवासस्थान है। उसके बीचमें एक आकर्षक एवं चमकीला सिंहासन है, जो अपने पायोंके रूपमें स्थित धर्मादि सनातन देवताओंसे घिरा हुआ है। अथवा धर्म, ज्ञान, मैश्वर्य एवं वैराग्य—इन पायोंके रूपमें स्थित है। अथवा पायोंके रूपमें क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—इन चारों वेदोंके ही द्वारा वह सिंहासन घिरा है। 'शक्ति', 'आधारशक्ति', 'चिच्छक्ति' और 'सदाशिवा'—ये धर्मादि चार देवताओंकी शक्तियाँ कही गयी हैं।"

× × ×

"उक्त सिंहासनके मध्यमें एक अष्टदल (आठ पँखुड़ियोंका) कमल है, जिससे उदयकालीन सूर्यकी-सी आभा निकलती रहती है। उक्त कमलके बीचके कार्णिका-भागमें, जिसे 'सावित्री' कहते हैं, समस्त देवताओंके स्वामी परात्पर पुरुष विराजमान रहते हैं। उनका वर्ण नील कमलकी पँखुड़ियोंकी तरह श्याम है और उनमें करोड़ों सूर्योंका प्रकाश है। वे नित्य युवा होनेके साथ ही कुमारभावापन्न भी रहते हैं। वे स्नेहयुक्त, सुकुमार अङ्गोंवाले, प्रफुल्ल रक्त कमलकी-सी आभावाले और कोमल चरण-सरोरुहोंसे सम्पन्न हैं।"

इसी तथ्यको सनत्कुमारसंहितोक्त 'श्रीरामस्तवराज'में और भी स्पष्ट किया गया है—

अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपमध्यगे ।
स्मरेत्कल्पतरोर्मूले रत्नसिंहासनं शुभम् ॥
तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं नानारत्नैश्च वेष्टितम् ।
रामं रघुवरं वीरं धनुर्वेदविशारदम् ।
मङ्गलायतनं देवं रामं राजीवलोचनम् ॥

"रम्य अयोध्यानगरीमें रत्ननिर्मित मण्डपके मध्यवर्ती कल्पवृक्षके मूलमें चमचमाते हुए रत्नसिंहासनका ध्यान करे। उस सिंहासनके बीचमें षड्दल कमल है, जो विविध रत्नोंसे घिरा हुआ है। साथ ही उसपर विराजमान रघुश्रेष्ठ वीरशिरोमणि धनुर्वेदमें 'निष्णात' मङ्गलायतन कमल-लोचन श्रीरामका भी ध्यान करे।"

करुणासिन्धु श्रीरामचरणदासजी महाराजने रामचरित-मानसकी—जद्यपि सब बैकुंठ बखाना।' (रा० च० मा० ७ । ४ । ३) की टीकामें प्रमाण उद्धृत किया है—

वैकुण्ठं पञ्च विख्यातं क्षीराब्धिं च रमाख्यकम् ।
महाकारणवैकुण्ठौ पञ्चमं विरजापरम् ॥
नित्यादिव्यमनेकभागविभवं वैकुण्ठरूपोत्तरम् ।
सत्यानन्दचिदात्मकं स्वयमभून्मूलं त्वयोध्यापुरी ॥

साकेत-सुषमामें निम्न श्रुति उद्धृत है—

'याऽयोध्या पूः सा सर्ववैकुण्ठानामेव मूलाधारा मूलप्रकृतेः परा तत्सद्ब्रह्ममयी विरजोत्तरा दिव्यरत्नकोशाढ्या तस्यां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नित्यमेव सीतारामयोर्विहारस्थलमस्ति।'

(सा० सु०, रमावैकुण्ठ पृ० २)

तात्पर्य यह कि 'क्षीरसागरस्थ वैकुण्ठ, रमावैकुण्ठ, महावैकुण्ठ, कारणवैकुण्ठ और विरजापार (त्रिपाद्विभूतिस्थ) आदि वैकुण्ठ—इन पाँचों वैकुण्ठोंका तथा अन्य अनन्त वैकुण्ठोंका मूलाधार 'अयोध्या-साकेत' ही है।' वह साकेत मूल प्रकृतिसे परे अखण्ड और अपरिवर्तनीय ब्रह्ममय है, विरजाके दूसरे तीरपर स्थित है, दिव्यरत्नमण्डपवाली है। इसी अयोध्यामें श्रीसीतारामजीकी नित्य विहारभूमि है।

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सम्परीवृताम्।
पुरं हिरण्यमयीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम्॥

(अथर्व० १०। २। ३३)

'(ब्रह्म) सर्वान्तर्यामी श्रीरामजी (पुरम्) उसी श्रीअयोध्यापुरीमें (आविवेश) प्रविष्ट हैं अर्थात् विराजमान हैं। वह (प्रभ्राजमानाम्) अत्यन्त प्रकाशमयी है, (हरिणीम्) मनको हरण करनेवाली है अथवा सर्वपापोंका आत्यन्तिक नाश करनेवाली है तथा (यशसा सम्परीवृताम्) अनन्तकीर्तिसे युक्त है और (अपराजिताम्) सर्वपुरियोंमें श्रेष्ठ है अर्थात् जिसकी तुलना कोई भी पुरी नहीं कर सकती।'

प्राप्य वेदोंमें तो उपर्युक्त साढ़े पाँच मन्त्र ही हैं, परंतु पुराणोंमें, पाञ्चरात्रीय संहिताओंमें, यामलोंमें, रामायणोंमें एवं साम्प्रदायिक रहस्य-ग्रन्थोंमें अयोध्या-साकेतका इतना विस्तृत वर्णन है कि उनका संक्षिप्त संकलन भी बड़ा पोथा हो सकता है। यह लघु लेख तो स्थालीपुलाकन्यायसे संकेतमात्र है।

नित्य कैलास

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

करुणामय भगवान् शंकरका दिव्य कैलास उन्हें अत्यधिक प्रिय है। उस कैलासके शिखर मणियोंके हैं और देखनेपर अनेक विचित्र धातुओंके प्रतीत होते हैं। उन सुन्दर शिखरोंपर लता-गुल्म फैले हैं। कैलासके कल्पवृक्षोंका तो वर्णन ही क्या किया जाय, जब कि पर्वतपर और सुविस्तृत वनोंमें मन्दार, पारिजात, पुन्नाग, चम्पा, शाल, ताड़, कचनार, असन, अर्जुन, आम, कदम्ब, गुलाब, अशोक, मौलसिरी, कुन्द, कुरबक, कटहल, गूलर, पीपल, पाकर, बड़, गूगल, भोजवृक्ष और केले आदिके अनेक फलों एवं सुगन्धित पुष्पोंके असंख्य वृक्ष और पौधे सुहावने लगते हैं। उनका सौन्दर्य देखकर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है। इलायची और मालतीकी मनोहर लताएँ तथा कुब्जक, मोगरा और माधवीकी फैली हुई बेलें वहाँके अनुपम सौन्दर्यकी वृद्धि करती रहती हैं। वहाँ आमड़ा, पियाल, महुआ और लिसोढ़ा आदि अनेक प्रकारके वृक्षों तथा पोले और ठोस बाँसोंका फैला हुआ विशाल वन बड़ा ही सुन्दर लगता है। वहाँ सुरभित वायु बहती रहती है। मयूर नृत्य करते रहते हैं और कोयलकी कूक तथा विभिन्न जातिके पक्षियोंके कलरव मनको मोहे लेते हैं। उन वनोंमें वनके हाथी, हरिन, वानर, सूअर, सिंह, रीछ, साही, नीलगाय, शरभ, बाघ, कृष्णमृग, भैंसे, एकपद, अश्वमुख, भेड़िये और कस्तूरीमृग आदि पशु स्वच्छन्द सुखपूर्वक विचरण करते हैं। सरोवरोंमें कुमुद तथा विभिन्न जातियोंके सुगन्धित प्रफुल्ल कमल नेत्रोंको सुख प्रदान करते हैं। उनपर भ्रमर गुञ्जार करते रहते हैं। वनों और सरोवरोंमें, उनके तटपर चारों ओर केलेके वृक्षोंकी पंक्तियाँ बड़ी सुन्दर लगती हैं। वह नन्दा और अलकनन्दा नामक देवसरितासे घिरा है। उनका जल अत्यन्त मधुर और निर्मल है। उनमें आदिशक्ति सतीके स्नान करनेसे उनकी पवित्रता और बढ़ गयी है तथा उनका जल सुगन्धित हो गया है।

उसके आगे श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न वृषभ स्थित हैं, जो साक्षात् धर्म हैं। जिनके सत्य आदि चार पैर हैं। क्षमा सींग और शम उनके कान हैं। वेदध्वनि आस्तिकतारूप नेत्र हैं। उसके आगे दिन-रात और जन्म-मृत्युका सर्वथा अभाव है। उसके अनन्तर कारणब्रह्मके चौदह लोक, फिर कारण-विष्णुके चौदह लोक हैं। उसके आगे कारण-रुद्रके अट्ठाईस लोक हैं। उसके बाद कारणेशके छप्पन लोक हैं। फिर शिवसम्मत ब्रह्मचर्य लोक है। यही नित्य कैलास है।

इस भूतभावन भोलेनाथके कैलासमें सभी प्राणी सर्वत्र सानन्द विचरण करते हैं। वहाँ किसीको, किसीसे, किसी प्रकारका भय नहीं। सब एक-दूसरेके आत्मीय एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणप्रिय हैं। सभी परमानन्दमें निमग्न हैं। वहाँ सांसारिक दुःख एवं शोककी छाया भी नहीं। उस कैलासपर भगवान् शंकरके भक्त, सिद्ध, देवता नित्य निवास करते हैं। गन्धर्व और अप्सरादि वहाँ सदा बने रहते हैं। वहाँके आनन्दकी सीमा नहीं।

वहाँ अत्यन्त सुन्दर विशाल वट-वृक्ष है। वह सौ योजन ऊँचा है और उसकी शाखाएँ पचहत्तर योजनतक प्रसरित हैं। वहाँ सदा शीतल सघन छाया बनी रहती है, जिसके कारण धूपसे कभी कष्ट नहीं होता। उस वृक्षमें पक्षियोंके नीड़ नहीं।

वहाँ पञ्चावरणयुक्त ज्ञान कैलासमें पाँच मण्डपवाला पञ्च ब्रह्मकलासे सम्पन्न आद्याशक्तिसहित आदिलिङ्ग है। वह परमात्मा शिवका शिवालय कहलाता है। वहाँ सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव तथा अनुग्रह—इन पाँचोंमें प्रवीण पराशक्तिसे युक्त सच्चिदानन्दविग्रह, ध्यानधर्मा, सदानुग्रहतत्पर, समाध्यासन-समासीन, स्वात्माराम भगवान् शिव विराजमान हैं। कर्पूरगौर उमानाथके सौन्दर्यकी सीमा नहीं। त्रिनयनके मस्तकपर जटा एवं पुण्यमयी भागीरथीकी शोभा अनिर्वचनीय है। सुधांशु वहाँ मुस्कराता है और विषधर उनके श्रीअङ्गोंपर स्वच्छन्द विचरण करते रहते हैं। कल्याणमय भगवान् शशाङ्कशेखरके दर्शनसे भक्त आनन्दमग्न हो जाते हैं।

वहाँ नन्दीस्थलके पीछे श्रीचन्द्रशेखरका अमित वैभव है। वहाँ नन्दीश्वर पञ्चाक्षरकी उपासना करते रहते हैं। वहाँ सर्वत्र अखण्ड आनन्द और शान्तिका साम्राज्य फैला रहता है।

मनुष्य करुणामय आशुतोष शिवकी कृपासे साक्षात् शिवलोकके वैभवका अनुभव कर सकता है। उक्त अनुपम वैभव एवं सौन्दर्य तथा सुखके दर्शनका अन्य कोई मार्ग नहीं।

दिव्य देवी-द्वीप

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

प्रबल पराक्रमी मधु-कैटभका वध हो जानेपर आद्याशक्ति भगवतीने ब्रह्मा, विष्णु और महेशको सृजन-कार्य करनेका आदेश दिया। उन लोगोंने सर्वत्र जल-ही-जल देखा। इस कारण देवीके सम्मुख अपनी विवशता प्रकट की। जगदम्बा मुस्कराने लगीं।

जगज्जननीकी इच्छासे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरके सम्मुख एक रत्नजटित अत्यन्त सुन्दर विमान उतर आया। उस विमानपर मोतियोंकी झालरें लटक रही थीं। उसमें अनेकों किंकिणियोंसे मधुर ध्वनि निकल रही थी। जगदीश्वरीने कहा—'त्रिदेव ! तुमलोग निश्चिन्त होकर इस अमरावतीके तुल्य विमानमें बैठ जाओ। आज मैं तुमलोगोंको आश्चर्यजनक दृश्य दिखलाती हूँ।'

आद्याशक्ति परमेश्वरीके आज्ञानुसार ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र उक्त विमानमें बैठ गये। तदनन्तर देवीकी शक्तिसे वह विमान आकाशमें उड़ चला। उसकी गति मनसे भी तीव्र थी।

विमान उड़ता हुआ जब कुछ नीचे झुका तो एक अलौकिक नगर दृष्टिगोचर हुआ। उसके चारों ओर चहारदीवारी थी। सर्वत्र सुगन्धित पुष्पों एवं फलोंसे लदे वृक्षोंकी पंक्तियाँ बड़ी सुहावनी लग रही थीं। उपवनमें कोयल कूक रही थी। शीतल जलके सुन्दर झरने झर रहे थे। अत्यन्त सुन्दर स्त्री-पुरुष दीख रहे थे। वहाँके नरेश देवतुल्य दिव्य थे। त्रिदेवोंको उस नगरका परिचय पानेकी इच्छा हुई कि उन्होंने वहाँ विमानमें बैठी श्रीजगदीश्वरीको देखा।

तुरंत वह दिव्य विमान शून्यमें उड़ता हुआ एक दूसरे सुन्दर प्रदेशमें पहुँच गया। वहाँका दृश्य देखकर त्रिदेवोंके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। वहाँ ऐसा नन्दनवन था, जैसा इन लोगोंने स्वर्गमें कभी नहीं देखा। वहाँ पारिजात वृक्ष भी था, जिसके नीचे सुरभि बैठी थी। उसके समीप ऐरावत भी विराजित था। वहाँ देवराज इन्द्र अपनी प्राणप्रिया शचीके साथ विद्यमान थे। वहाँ पारिजातोपवनमें अनेक यक्ष, किंनर एवं विद्याधर नृत्य, गान एवं विहारमें संलग्न थे। ब्रह्मा, विष्णु और महेशने वहाँके राजा इन्द्रको अद्भुत शिबिकामें बैठकर बाहर जाते देखा। त्रिदेव चकित थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह तीव्रगामी विमान उड़ता हुआ तुरंत कैलासके सर्वोत्तम शिखरपर पहुँच गया। हिमाच्छादित कैलास-शिखरकी शोभा अवर्णनीय थी। वहाँ मन्दारके वृक्ष पुष्पोंसे लदे झूम रहे थे। शुक और कोयलका मधुर कलरव सुनायी दे रहा था। वीणा और पखावजकी सुखद ध्वनि कानोंमें पड़ रही थी। वहाँ बहुत-से यक्ष दीख रहे थे। विमानके वहाँ पहुँचते ही एक भव्य-भवनसे गजचर्म ओढ़े पञ्चमुख आशुतोष शिव निकले। उनके दस भुजाएँ थीं। उनकी कर्पूरधवल अङ्गकान्ति अत्यन्त मनोहर थी। त्रिनेत्रके ललाटपर सुधांशु चमक रहा था। भगवान् शंकरके दोनों ओर गणेश और कार्तिकेय चल रहे थे। नन्दी तथा प्रधान गण, भगवान् चन्द्रमौलिके पीछे-पीछे उनकी जय बोलते चल रहे थे। इस दृश्यको देखकर भगवान् विष्णु एवं ब्रह्मासहित पार्वतीवल्लभ शंकर आश्चर्यचकित हो रहे थे।

कुछ ही देरमें वह अद्भुत विमान कैलास-शिखरसे तीव्रगतिसे उड़ता हुआ वैकुण्ठ-लोकमें पहुँच गया। वहाँका वैभव देखकर श्रीविष्णुके आश्चर्यकी सीमा न रही। ब्रह्मा और रुद्रके साथ उन्होंने पीताम्बरधारी कमलनयन श्रीहरिको पक्षिराज गरुड़की पीठपर विराजित देखा। उनके श्रीविग्रहकी कान्ति अलसीके पुष्पकी भाँति थी। दिव्य आभूषणोंसे उनकी अनुपम शोभा हो रही थी। उनकी प्रियतमा श्रीलक्ष्मीजी उनकी सेवामें उपस्थित थीं। यह अद्भुत दृश्य देखकर तीनों देवता चकित होकर विमानमें बैठ गये। उनकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। ये तीनों लोक (स्वर्ग, कैलाश एवं वैकुण्ठ) इन त्रिदेवोंके परिचित लोकोंसे सर्वथा भिन्न थे। इनके ब्रह्माण्डके नहीं थे।

इतनेमें ही पवनविनिन्दक गतिवाला वह विमान तुरंत आगे बढ़ गया। वहाँ त्रिदेवोंने अमृततुल्य मधुर जलका विस्तृत महासागर देखा। उसमें चञ्चल लहरें उठ रही थीं। उस समुद्रमें अनेक जलजन्तु सुखपूर्वक निवास कर रहे थे। उस सुखद समुद्रके बीच एक अलौकिक द्वीप था। मन्दार एवं पारिजातके वृक्षों एवं उनके पुष्पोंसे द्वीपका सौन्दर्य निखरा हुआ था। अशोक, बकुल, कुरबक, केतकी और चम्पा आदि वृक्षोंकी पुष्पित डालियाँ वायुके मन्द झकोरोंसे झूमती हुई अद्भुत सुगन्ध बिखेर रही थीं। उनमें यत्र-तत्र कोयल पञ्चम स्वरमें आलाप ले रही थी और भ्रमर गुंजार कर रहे थे। सर्वत्र दिव्य गन्धका छिड़काव हुआ था। वह द्वीप नाना प्रकारके अत्यन्त सुन्दर एवं आकर्षक चित्रोंसे सजा हुआ था और वहाँ मणियोंकी मालाएँ झूल रही थीं।

उस द्वीपमें एक मङ्गलमय पर्यङ्क बिछा हुआ था। उसपर अनेक सुन्दर सुकोमल बिस्तर पड़े थे। पर्यङ्कका प्रकाश इन्द्रधनुषके सदृश था। पलंगपर सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी भगवती भुवनेश्वरी आसीन थीं। उनका श्रीविग्रह अरुणाम्बरसे सुशोभित था। उनके परम दिव्य अङ्गोंपर रक्त-चन्दनका लेप था और उनके सुकोमल कण्ठमें लाल रंगकी अद्भुत दिव्य माला शोभा पा रही थी। उनके नेत्र विशाल एवं लाल थे। उनका मुखारविन्द अत्यन्त सुन्दर था और उनके श्रीअङ्गोंकी प्रभा कोटि-कोटि विद्युत्कान्तिके तुल्य थी। उनके करकमल पाश, अङ्कुश, अभय और वरमुद्रासे शोभा पा रहे थे। अद्भुत एवं अलौकिक आभूषण उनके दिव्यतम अङ्गोंपर सुशोभित थे।

उन पराम्बाके सहस्रों हाथ, सहस्रों मुखारविन्द एवं सहस्रों सुन्दर विशाल नेत्र थे। अनेक साधक उनके समीप बैठकर 'ह्रीं' मन्त्रका जप करते थे। नाम-जपमें तल्लीन बहुत-सी सहचरियाँ उनकी स्तुति कर रही थीं। जगज्जननी छः कोनोंवाले उत्तम यन्त्रपर विराजमान थीं तथा 'भुवनेशी' 'माहेश्वरी' आदि नामोंको हृदयङ्गम करनेवाली देवकन्याएँ उनके चारों ओर बैठी थीं। महामायाकी करोड़ों विभूतियाँ उनके आस-पास विराजमान थीं। उनकी विभूतियोंके शरीर भी दिव्य अलंकारों एवं दिव्य गन्धोंसे सुशोभित थे। ये सभी सहचरियाँ कल्याणस्वरूपिणी महामायाकी सेवामें संलग्न थीं।

यह अद्भुत दर्शन प्राप्त कर क्षीराब्धिशायी भगवान् विष्णुने विवेकपूर्वक निश्चय कर लिया कि ये हम सबकी आदिकारण भगवती जगदम्बिका हैं।

अवश्य ही यहाँ एक बात ध्यानमें रखनेकी है कि आद्याशक्ति जगदम्बिकाने अपने जिस अनुपम लोकका दर्शन ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रको कराया था, वह उनकी कृपाका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही परिणाम था। सर्वसाधारणके लिये उक्त धामका दर्शन सर्वथा दुर्लभ-सा है। हाँ, वह परम्बा भगवती जिस महाभागपर अनुग्रह कर दें, उन्हें उक्त पवित्रतम अनुपम लोकके दर्शन हो सकते हैं। (देवीभागवतके आधारपर)

परमधामका चिन्तन

(लेखक—श्रीरामलालजी)

वेद तथा शास्त्रोंमें वर्णित दिव्य परव्योम, ब्रह्मलोक, परमधाम, परमकोश तथा संत-महात्माओंद्वारा निरूपित सत्यलोक, सत्यखण्ड, अभयपद-नगरी, आनन्दपुर, ब्रह्मलोक और सुखसागर आदि एक-दूसरेके पर्याय हैं; सब-के-सब सर्वथा अभिन्न हैं। यह परमधाम अव्यक्त, अनन्त, शाश्वत अक्षर ब्रह्मका अधिष्ठान है। भगवान् श्रीकृष्णका कथन है कि 'जिस सनातन अव्यक्त तथा अक्षर भावको प्राप्तकर मनुष्य—जीवात्मा वापस नहीं आता है, वही मेरा परम धाम है'—

'यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।'

(श्रीमद्भगवद्गीता ८। २१)

यह परमधाम ही उपनिषद्में वर्णित प्रकाशमय 'परम कोश' है। श्रीगीतामें उपर्युक्त भगवत्स्वीकृतिकी पुष्टि नीचे अङ्कित उपनिषद्-वचनमें चरितार्थ हो जाती है—

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः॥

(मुण्डकोपनिषद् २। २। ९)

'वह निर्मल, अवयवरहित परब्रह्म प्रकाशमय परम कोश—परमधाममें विराजमान है। वह सर्वथा विशुद्ध और समस्त ज्योतियोंकी ज्योति—प्रकाशक है, जिसको आत्मज्ञानी जानते हैं।' निस्संदेह परमधाम-सम्बन्धी भावाभिव्यक्ति अचिन्त्य है। इस तरहके भावोंको तर्ककी कसौटीपर कसना व्यर्थ प्रयासमात्र है।

यह परमधाम अक्षर-ब्रह्मसे भी परे सर्वातीत, सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्माका स्वयंसिद्ध प्रकाश-स्वरूप है। यह नित्य चेतन और सनातन है। 'जिस परब्रह्म परमेश्वरसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है; जिससे बढ़कर न तो कोई सूक्ष्म है, न महान् ही है; जो अकेला ही वृक्षकी तरह निश्चल भावसे प्रकाशमय परमधाम-रूप दिव्य आकाशमें स्थित है; सारे जगत्में निराकाररूपसे परिपूर्ण परब्रह्म परमात्माका अधिष्ठान यह दिव्य प्रकाशस्वरूप परमधाम ही है'—

यस्मात् परं नापरमस्ति किंचिद्
यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक-
स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३। ९)

इस परम धामको प्राप्तकर मनुष्य संसारमें फिर जन्म नहीं लेता है—

'यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥'

(श्रीमद्भगवद्गीता १५। ६)

'जो प्राणी सदा विवेकशील बुद्धिसे युक्त रहता है, संयतचित्त और पवित्र भावमें स्थित रहता है, वह उस परम पद—परमधामको प्राप्त कर लेता है। वहाँसे लौटकर फिर जन्म नहीं लेता है तथा अमृतत्वमें स्थित हो जाता है'—

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते॥

(कठोपनिषद् १। ३। ८)

श्रुतिके वचन हैं—

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः॥
न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥

(अथर्ववेद १०। २। २९-३०)

'जो निश्चयपूर्वक ब्रह्मकी अमृतरस—परमानन्दरस या अनन्त जीवनसे पूर्ण ब्रह्मपुरी—परमधामको जान लेता है, उसे ब्रह्म और (ब्रह्मके) उपासक चक्षु आदि इन्द्रियाँ, जीवन और संतान प्रदान करते हैं। जो ब्रह्मकी उस पुरीको जानता है, जिसका अध्यक्ष साक्षात् पुरुष—ब्रह्म कहा जाता है, उसे चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियगण नहीं छोड़ते हैं, न प्राण ही वृद्धावस्था आनेके पहले उसे छोड़ता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति।' (प्रश्नोपनिषद् १ । १६)

'जिनमें कुटिलता, असत्य और कपटका सर्वथा अभाव है, उन्हींको यह विकाररहित पवित्र ब्रह्मलोक मिलता है।'

संत कबीर, दादू, रैदास, दरियासाहेब, गुलालसाहेब आदि सभीकी वाणियोंमें इस परमधामका विभिन्न रूपोंमें वर्णन है। परमधाम-प्राप्ति ही साधनाका परम फल है। जो मनुष्य ज्ञानतत्त्व और कर्मतत्त्वको साथ-साथ जान लेता है, वह कर्मके निष्काम अनुष्ठानसे मृत्युको पारकर तत्त्वज्ञानके प्रकाशमें अमृतका रसास्वादन करता है—अविनाशी आनन्दमय परब्रह्मको प्रत्यक्ष प्राप्त कर लेता है। परमधामकी अनुभूति साक्षात् परब्रह्म—परमात्माकी ही प्राप्ति है।

यम और उनका लोक

(लेखक—'श्रीमण्डन' मिश्र)

भारतीय देवमण्डलमें यमका एक उच्च स्थान है। वे दक्षिण दिशाके दिक्पाल एवं मृत्युके देवता माने जाते हैं। कुछ लोगोंका मत है कि ये दोनों भिन्न हैं। दुर्गाचारके मतसे प्राणिमात्रके मारक हैं, वे ही मृत्यु हैं। वे भोगायतन देहसे जीवात्माको विमुक्त करते हैं। किंतु यम जीवमात्रको कर्मानुसार स्थान प्रदान करते हैं। दोनोंके कार्य भिन्न होते हुए दोनोंमें बहुत कुछ सादृश्यता देखी जाती है। वेदमें कई जगह यम और उनकी बहिन यमी (यमुना) को विवस्वत और सरण्युकी यमज संतति बतलाया गया है। ऋग्वेदके कई स्थानोंमें यमको 'वरुण' कहा गया है और उनका अग्निके साथ एकत्र वर्णन देखा जाता है। मृत व्यक्ति परलोकमें सबसे पहले यम और वरुणको देखता है। चित्रगुप्तके प्रसङ्गमें यह आया है कि उनकी सूचनापर मृत व्यक्तिकी अगली व्यवस्था यमराजजी कराते हैं। त्रिलोकमें मध्य दो सवितृलोक और तीसरा यमलोक है। वाजसनेय संहिताके अनुसार यम यमीके साथ उच्चतम स्वर्गमें विराजते हैं तथा उनके चारों ओर दिव्य संगीत और वीणाध्वनि होती रहती है। यम और यमीके कथोपकथनमें यमीने यमको सर्वप्रथम मरणशील बतलाया है। वे ही सबसे पहले देह त्यागकर मरण-पथके नेता हुए। ऋग्वेदमें एक उल्लू या कपोतको यमका दूत कहा गया है, परंतु उस रूपमें दो कुत्तोंका भी उल्लेख अधिक मिलता है। इनका वर्णन 'यमराजके कुत्ते' शीर्षक लेखमें किया गया है। प्रसिद्ध पाश्चात्त्य पंडित ब्लूमफिल्डका कहना है कि ये दोनों कुत्ते चन्द्र और सूर्यके रूपकमात्र हैं।

वेदके यम पारसियोंके आदिशास्त्र 'अवस्ता'में यम नामसे वर्णित हैं। यूनानी पुराणोंके प्लूतो और मीनसके साथ यमकी पूर्ण सादृश्यता है। अवस्तामें इनके पिताको 'विवमहित' और वेदमें 'विवस्वत' कहा गया है। इस तरह दोनोंमें कोई पृथक्ता नहीं देख पड़ती।

पुराणोंके अनुसार विश्वकर्माकी एक 'संज्ञा' नामक कन्या थी। रविका उसके साथ विवाह हुआ था। संज्ञाने रविको देखकर आँखें मूँद ली थीं, इसलिये रविने उसे शाप दिया कि 'तुम्हारे गर्भसे जो पुत्र होगा, वह प्रजासंयम यम होगा।'

स्मृतियोंमें यमके चौदह नाम देखनेमें आते हैं। उन्हींके अनुसार यमका तर्पण किया जाता है। यमराज ही कर्मानुसार मृत प्राणीको विभिन्न लोकोंमें भेजते हैं। इसीलिये उन्हें कभी-कभी 'धर्मराज' भी कहा जाता है। जब वे पुण्यात्माको दर्शन देते हैं, तब उनका रूप बहुत कुछ विष्णु भगवान्-जैसा होता है; किंतु पापियोंको वे बड़े भयानक रूपमें दिखायी देते हैं। पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें इसका वर्णन मिलता है। मनुष्यलोकसे यमलोक ८६००० योजन दूर है। इस महापथसे ही प्रेत यमलोक जाते हैं। इसी मार्गमें भयंकर वैतरणी नदी मिलती है। यमलोकका बड़ा सुन्दर वर्णन पुराणोंमें मिलता है। वराहपुराणके अनुसार 'उनका नगर ४००० योजन लंबा और २००० योजन चौड़ा है। इसमें कितनी ही सुन्दर अट्टालिकाएँ हैं। नगरमें विशाल राजमार्ग हैं, जिनपर अनेक प्रकारके वाहनोंका आवागमन होता रहता है। पुष्पोदका नामकी एक नदी है, जिसका जल बहुत शीतल एवं सुगन्धित है। उसमें विशाल जाँघवाली अप्सराएँ क्रीड़ा करती रहती हैं। कमलिनी सदा खिली रहती हैं और उनके बीच हंस विचरते रहते हैं और दूसरा प्रलुब्धक नक्षत्र हैं।' तिलकजीकी रायसे यह सब रूपक मात्र है। इसमें जिन दो कुत्तोंकी बात आयी है, उनमेंसे एक लुब्धक नक्षत्र और दूसरा प्रलुब्धक नक्षत्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये ही दोनों ज्योतिर्मय तारारूपी कुत्ते वैतरणीके दोनों किनारे अवस्थित हैं। पारसी तथा यूनानी पुराणोंमें इन कुत्तोंका जो वर्णन मिलता है, वह बहुत कुछ अपने यहाँके वर्णनसे समता रखता है। यूरोपके वेदज्ञ विद्वान् यम और यमीको दिन-रात मानते हैं। श्रीमद्भागवत, देवीभागवत, ब्रह्म-पुराण, नारदपुराण, अग्निपुराण और स्कन्दपुराणमें भी यमलोकका वर्णन मिलता है। यदि विभिन्न देशोंमें प्रचलित ऐसी परम्पराओंका तुलनात्मक दृष्टिसे अध्ययन किया जाय, तो उनमें बहुत कुछ समता मिलेगी और उनका मूल खोजनेमें भी सहायता प्राप्त होगी।

यदि यमराजको किसीने छकाया तो सावित्रीने। उनके पीछे पड़कर पहले उसने अपने नेत्रहीन माता-पिताके लिये नेत्रोंकी ज्योति प्राप्त की; फिर उसने अपने पति सत्यवान्‌को यमराजके पाशसे छुड़ाया। स्वर्गीय अरविन्द श्रीने 'सावित्री' नामसे अंग्रेजीमें एक महाकाव्य ही लिख डाला है। साहित्य-जगत्‌में उसकी बड़ी ख्याति है।

यमलोकके मार्गमें पापियोंके कष्ट तथा पुण्यात्माओंके सुखका वर्णन

श्रीसनकजीने नारदजीसे कहा—'ब्रह्मन्! सुनिये। मैं अत्यन्त दुर्गम यमलोकके मार्गका वर्णन करता हूँ। वह पुण्यात्माओंके लिये सुखद और पापियोंके लिये भयदायक है। मुनीश्वर! प्राचीन ज्ञानी पुरुषोंने यमलोकके मार्गका विस्तार छियासी हजार योजन बताया है। जो मनुष्य यहाँ दान करनेवाले होते हैं, वे उस मार्गमें सुखसे जाते हैं और जो धर्मसे हीन हैं, वे अत्यन्त पीड़ित होकर बड़े दुःखसे यात्रा करते हैं। पापी मनुष्य उस मार्गपर दीनभावसे जोर-जोरसे रोते-चिल्लाते जाते हैं—वे अत्यन्त भयभीत और नंगे होते हैं। उस अत्यन्त पीड़ादायक भयानक यमपथपर भीषण आकृति-प्रकृतिवाले यमदूत उनको असह्य घोर पीड़ा पहुँचाते हुए ले जाते हैं। वे पापीलोग जानकर या अनजानमें किये हुए अपने पापकर्मोंके लिये शोक करते हुए अत्यन्त दुःखसे यात्रा करते हैं।

नारदजी! जो उत्तम बुद्धिवाले मानव धर्मनिष्ठ, दानशील होते हैं, वे अत्यन्त सुखी होकर धर्मराजके लोककी यात्रा करते हैं। मुनिश्रेष्ठ! अन्न देनेवाले स्वादिष्ट अन्नका भोजन करते हुए जाते हैं। जिन्होंने जल दान किया है, वे भी अत्यन्त सुखी होकर उत्तम दूध पीते हुए यात्रा करते हैं। मट्ठा और दहीका दान करनेवाले तत्सम्बन्धी भोग प्राप्त करते हैं। द्विजश्रेष्ठ! घृत, मधु और दूधका दान करनेवाले पुरुष सुधापान करते हुए धर्ममन्दिरको जाते हैं। साग देने-वाला खीर खाता है और दीप देनेवाला सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए जाता है। मुनिप्रवर! वस्त्रदान करने-वाला पुरुष दिव्य वस्त्रोंसे विभूषित होकर यात्रा करता है। जिसने आभूषण दान किया है, वह उस मार्गपर देवताओंके मुखसे अपनी स्तुति सुनता हुआ जाता है। गोदानके पुण्यसे मनुष्य सब प्रकारके सुख-भोगसे सम्पन्न होकर जाता है। द्विजश्रेष्ठ! घोड़े, हाथी तथा रथकी सवारीका दान करने-वाला पुरुष सम्पूर्ण भोगोंसे युक्त विमानद्वारा धर्मराजके मन्दिरको जाता है। जिस श्रेष्ठ पुरुषने माता-पिताकी सेवा-शुश्रूषा की है, वह देवताओंसे पूजित हो प्रसन्नचित्त होकर धर्मराजके भवनमें जाता है। जो यतियों, व्रतधारियों तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी सेवा करता है, वह बड़े सुखसे धर्मलोकको जाता है। जो चराचर सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखता है, वह देवताओंसे पूजित हो सर्वभोगसमन्वित विमानद्वारा यात्रा करता है। जो विद्यादानमें तत्पर रहता है, वह ब्रह्माजीसे पूजित होता हुआ जाता है। पुराण-पाठ करनेवाला पुरुष मुनीश्वरोंद्वारा अपनी स्तुति सुनता हुआ यात्रा करता है। इस प्रकार धर्मपरायण पुरुष सुखपूर्वक धर्मराजके निवासस्थानको जाते हैं। उस समय धर्मराज चार भुजाओं-से युक्त हो शङ्ख, चक्र, गदा और खड्ग धारण करके बड़े स्नेहसे मित्रकी भाँति उस पुण्यात्मा पुरुषकी पूजा करते हैं और इस प्रकार कहते हैं—'हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ पुण्यात्मा पुरुषो! जो मानव-जन्म पाकर पुण्य नहीं करता है, वही पापियोंमें बड़ा है और वह आत्मघात करता है। जो अनित्य मानव-जन्म पाकर उसके द्वारा नित्य वस्तु (धर्म) का साधन नहीं करता, वह घोर नरकमें जाता है। उससे बढ़कर जड और कौन होगा? यह शरीर यातनारूप (दुःखरूप) है और मल आदिके द्वारा अपवित्र है। जो इसपर (इसकी स्थिरतापर) विश्वास करता है, उसे आत्मघाती समझना चाहिये। सब भूतोंमें प्राणधारी श्रेष्ठ हैं। उनमें भी जो (पशु-पक्षी आदि) बुद्धिसे जीवन-निर्वाह करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं। उनसे भी मनुष्य श्रेष्ठ है। मनुष्योंमें ब्राह्मण, ब्राह्मणोंमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

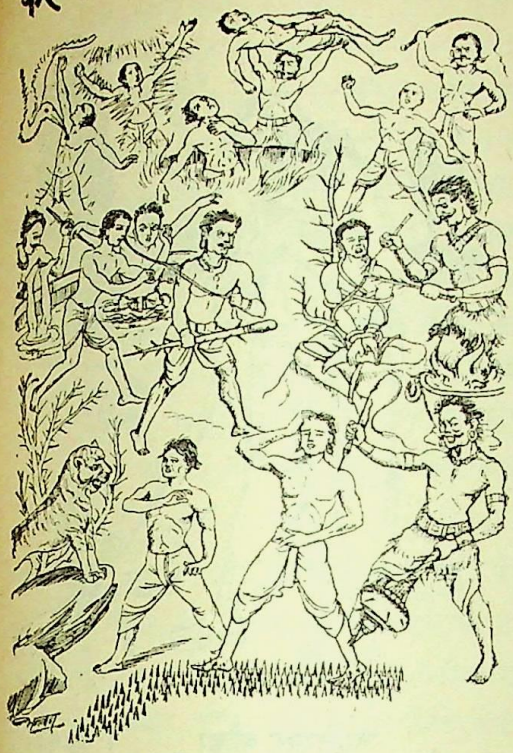

पापियोंकी दुःखपूर्ण यात्रा [पृष्ठ ४०५-६]

पापियोंको यमराजकी फटकार [पृष्ठ ४०७-८]

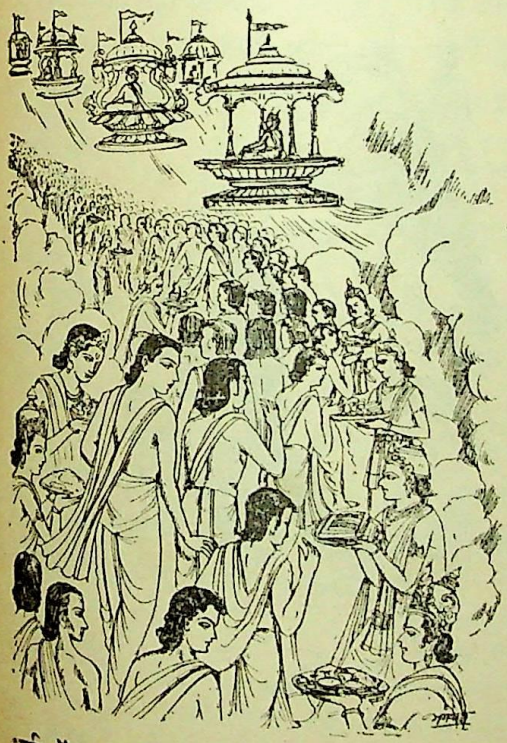

धार्मिकोंकी यमपुरीकी सुखयात्रा [पृष्ठ ४११]

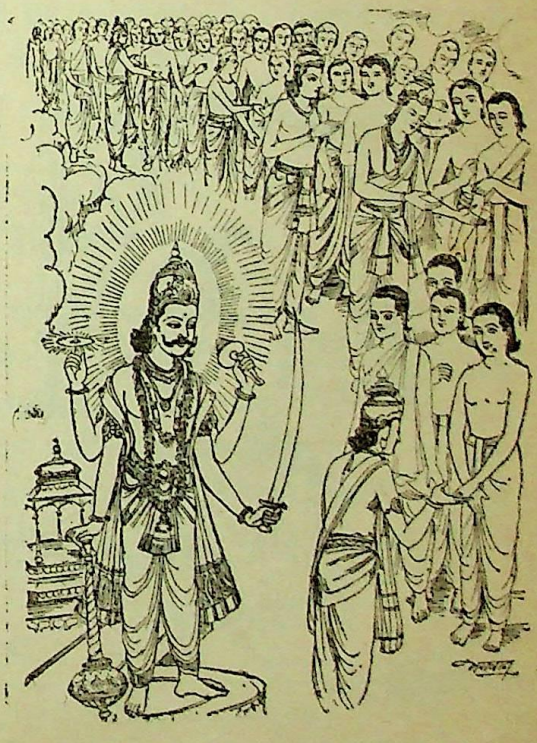

धर्मराजके द्वारा धार्मिकोंका स्वागत [पृष्ठ ४१२]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

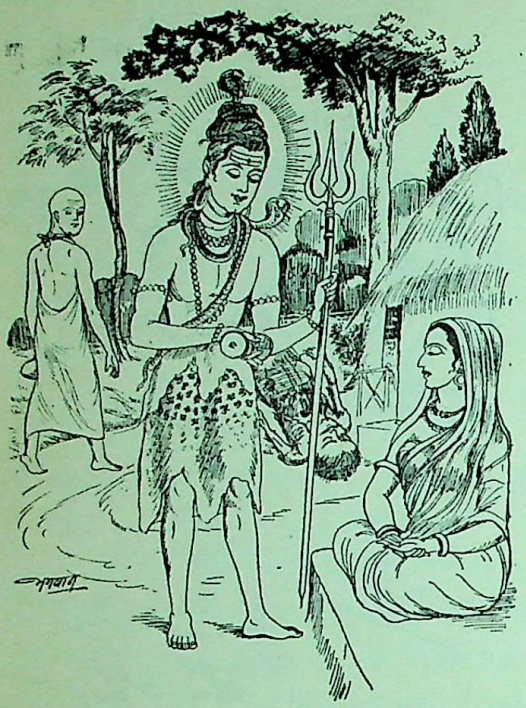

भीलनीको शंकरका वरदान [पृष्ठ ५००]

जातिस्मर कीड़ा [पृष्ठ ५१३]

जडभरतका पूर्वजन्म [पृष्ठ ५१४]

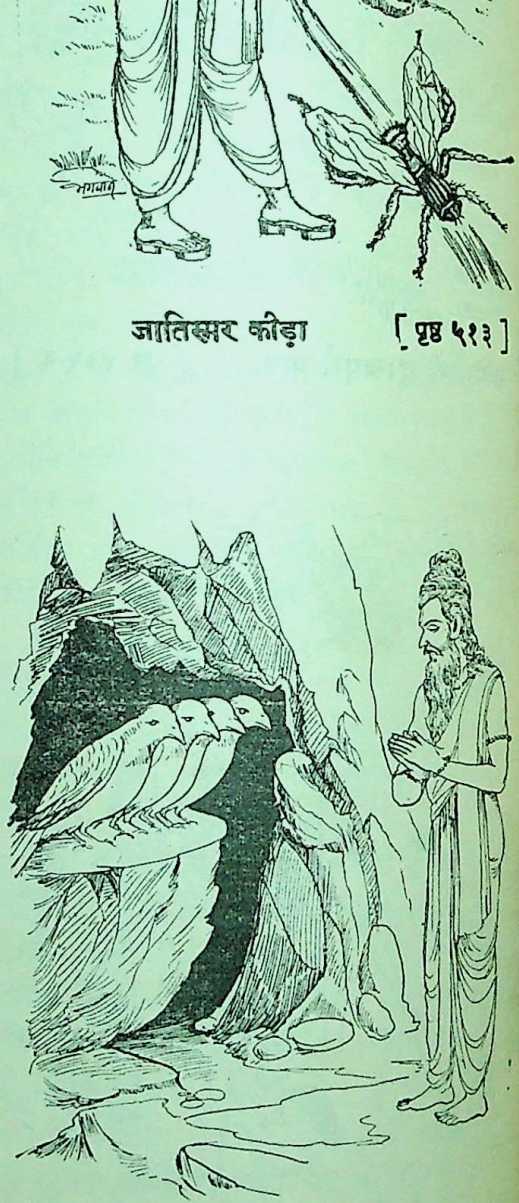

जातिस्मर चार पक्षी [पृष्ठ ५१४]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् और विद्वानोंमें अचञ्चल बुद्धिवाले पुरुष श्रेष्ठ हैं। अचञ्चल बुद्धिवाले पुरुषोंमें कर्तव्यका पालन करनेवाले श्रेष्ठ हैं और कर्तव्य-पालकोंमें भी ब्रह्मवादी (वेदका कथन करनेवाले) पुरुष श्रेष्ठ हैं। ब्रह्मवादियोंमें भी वह श्रेष्ठ कहा जाता है, जो ममता आदि दोषोंसे रहित हो। इनकी अपेक्षा भी उस पुरुषको श्रेष्ठ समझना चाहिये, जो सदा भगवान्‌के ध्यानमें तत्पर रहता है।* इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके (सदाचार और ईश्वरकी भक्तिरूप) धर्मका संग्रह करना चाहिये। धर्मात्मा जीव सर्वत्र पूजित होता है, इसमें संशय नहीं है। तुमलोग सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न पुण्यलोकमें जाओ। यदि कोई पाप है तो पीछे यहीं आकर उसका फल भोगना।'

ऐसा कहकर यमराज उन पुण्यात्माओंकी पूजा करके उन्हें सद्गतिको पहुँचा देते हैं और पापियोंको बुलाकर उन्हें कालदण्डसे डराते हुए फटकारते हैं। उस समय उनकी आवाज प्रलयकालके मेघके समान भयंकर होती है और उनके शरीरकी कान्ति कज्जलगिरिके समान जान पड़ती है। उनके अस्त्र-शस्त्र बिजलीकी भाँति चमकते हैं, जिनके कारण वे बड़े भयंकर जान पड़ते हैं। उनके बत्तीस भुजाएँ हो जाती हैं। शरीरका विस्तार तीन योजनका होता है। उनकी लाल-लाल और भयंकर आँखें बावड़ीके समान जान पड़ती हैं। सब दूत यमराजके समान भयंकर होकर गरजने लगते हैं। उन्हें देखकर पापी जीव थर-थर काँपने लगते हैं और अपने-अपने कर्मोंका विचार करके शोकग्रस्त हो जाते हैं। उस समय यमकी आज्ञासे चित्रगुप्त उन सब पापियोंसे कहते हैं—'अरे ओ दुराचारी पापात्माओ! तुम सब लोग अभिमानसे दूषित हो रहे हो। तुम अविवेकियोंने काम, क्रोध आदिसे दूषित अहंकारयुक्त चित्तसे किसलिये पापका आचरण किया? पहले तो बड़े हर्षमें भरकर तुमलोगोंने पाप किये हैं, अब उसी प्रकार नरककी यातनाएँ भी भोगनी चाहिये। अपने कुटुम्ब, मित्र और स्त्रीके लिये जैसा पाप तुमने किया है, उसीके अनुसार कर्मवश तुम यहाँ आ पहुँचे हो। अब अत्यन्त दुखी क्यों हो रहे हो? तुम्हीं सोचो, जब पहले तुमने पापाचार किया था, उस समय यह भी क्यों नहीं विचार लिया कि यमराज इसका दण्ड अवश्य देंगे। कोई दरिद्र हो या धनी, मूर्ख हो या पण्डित और कायर हो या वीर—यमराज सबके साथ समान बर्ताव करनेवाले हैं।' चित्रगुप्तके ये वचन सुनकर वे पापी भयभीत हो अपने कर्मोंके लिये शोक करते हुए चुपचाप खड़े रह जाते हैं। तब यमराजकी आज्ञाका पालन करनेवाले क्रूर, क्रोधी और भयंकर दूत इन पापियोंको बलपूर्वक पकड़कर नरकोंमें फेंक देते हैं। वहाँ अपने पापोंका फल भोगकर अन्तमें शेष पापके फलस्वरूप वे भूतलपर आकर स्थावर आदि योनियोंमें जन्म लेते हैं।

(नारदपुराण, पूर्व० अध्याय ३१)

पापसे बचकर धर्म-सेवन करो

मनुष्यको अपने जीवनमें पापोंसे सदा बचना चाहिये। पाप तीन साधनोंसे होते हैं—मनसे, वचनसे, शरीरसे। तीनों साधनोंको सदा पापसे बचाकर पुण्यकर्ममें—धर्म-सेवनमें ही लगाये रक्खो। पाप तीन तरहसे होते हैं—'कृत' (स्वयं करे), 'कारित' (दूसरोंके द्वारा करवाये) और 'अनुमोदित' (कोई दूसरा पाप करता हो तो उसका समर्थन करे)। इन तीनों तरहसे पाप-कर्म न करके स्वयं धर्मका सेवन करे; दूसरोंको सदा धर्मका सेवन करनेके लिये प्रेरणा, उत्साह तथा सहायता देता रहे और किसीके द्वारा भी होनेवाले पापका समर्थन तो कभी करे ही नहीं, उसका यथोचित विरोध करे तथा दूसरोंके धर्म-कार्योंका सदा समर्थन कर उन्हें उत्साहित करता रहे।

* ब्रह्मवादिष्वपि तथा श्रेष्ठो निर्मम उच्यते। एतेभ्योऽपि परो ज्ञेयो नित्यं ध्यानपरायणः॥

(नारद०, पूर्व० ३१। ३६-३७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पापी यमपुर कैसे जाता है ?

(लेखक—पं० श्रीमक्खनलालजी मिश्र, ज्यौतिषाचार्य)

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥

(गीता १६ । १६)

'अनेक प्रकारसे भ्रमित चित्तवाले, मोहरूप जालमें फँसे हुए और विषय-भोगोंमें अत्यन्त आसक्त मनुष्य महान् अपवित्र नरकोंमें गिरते हैं ।' भगवान् श्रीकृष्णके वचनोंका मनन अधोगति-निवारणकी सफल भूमिका है । संसार कर्म-प्रधान है । जो जैसा करता है, वैसा ही फल भोगता है । जिनका चित्त परमेश्वरके परमानन्दका अनुभव करता है, उन्हें स्वप्नमें भी किंचित् मात्र क्लेश नहीं होता । वे परम गतिको प्राप्त होते हैं ।

जो हरिभक्तिविमुख पापी हैं, वे अनेक रोगरूपी दुःखोंको प्राप्त होते हैं । उनको मन्दाग्नि होकर अन्न घट जाता है, चलने-फिरनेकी चेष्टा कम हो जाती है । नाड़ी-रूप मार्ग कफसे रुक जाता है । उनके नेत्र प्राणरूप वायुसे फट जाते हैं और कास-श्वाससे दबाया हुआ वह प्राणी, जिसके कण्ठमें घुर-घुर शब्द होता है, एक साथ सौ बिच्छुओंके डंकको पीड़ाको प्राप्त कर रोते हुए भाई-बन्धुओंके बीचमें मर जाता है । इन्द्रिय-समूहके व्याकुल और जड होनेपर समीप आये भयानक यमदूतोंको देख प्राण अपने स्थानसे चलायमान हो जाते हैं । जब श्वास अपने स्थानसे चलायमान होता है, पापी मनुष्यको एक क्षणका कष्ट भी कल्पके समान मालूम पड़ता है । फिर जब मुख लारसे भर जाता है तो प्राणवायु गुदा आदि नीचेके छिद्रोंसे होकर निकल जाती है । भयानक नेत्र और दाँतवाले दण्ड-पाश लिये यमके दूतोंका दर्शन असहनीय है । 'हाय ! हाय !' करता मनुष्य इस देहसे निकलकर अङ्गुष्ठमात्र देह धारण करता है । यातनाओंको भोगनेके लिये वह प्राणी यमदूतोंद्वारा घेर लिया जाता है । यमके दूत उसे धमकाते हैं और नरकके तीव्र भयको बारंबार कहते हैं—

शीघ्रं प्रचल दुष्टात्मन् यास्यसि त्वं यमालयम् ।
कुम्भीपाकादिनरकांस्त्वां नयाम्यद्य माचिरम् ॥

(गरुडपुराण १ । ३५)

'अरे दुष्ट ! शीघ्र चल । तू यमके द्वारको जायगा और कुम्भीपाक आदि नरकोंमें तुझे ले जा रहे हैं ।' इस प्रकार यम-दूतोंके वचन और भाई-बन्धुओंका रुदन सुनकर वह प्राणी 'हाय ! हाय !' करके रोता है । यमदूतोंकी ताड़नासे दुखी वह प्राणी अपने पापोंका स्मरण करता है । रास्तेमें कुत्तों-द्वारा काटा जाता है । भूख-प्याससे व्याकुल, थका और मूर्च्छित हो-होकर फिर उठता है । कोड़ोंकी मार खाता हुआ यमलोक पहुँचता है । वासनासे बँधा हुआ वह देहमें पुनः प्रवेशकी इच्छा करता है । भूख-प्याससे पीड़ित होकर बार-बार रोता है ।

मृत्युस्थान आदिमें पुत्रोंद्वारा दिये पिण्डको और मरतेःसमय दिये दानको खाता है । इसी पिण्डको खाकर वह भूख-प्याससे तृप्त होता है । अगर मृतकको पिण्डदान नहीं किया जाता तो वह प्राणी कल्पभर प्रेतरूप होता है और शून्य वनमें जहाँ खाने-पीनेको कुछ नहीं, ऐसे स्थानमें दुखी होकर भ्रमण करता है । बिना भोगे कर्म क्षीण नहीं होते और यमकी यातना भोगे बिना वह मनुष्यरूप नहीं पाता । इसीलिये मृत्युके उपरान्त दस दिनतक पुत्रद्वारा पिण्डदान होता है । उन पिण्डोंको खानेसे ही वह जीव चलने-फिरनेमें समर्थ होता है । उसके अङ्ग पुष्ट होते हैं ।

तेरहवें दिन यमदूतोंद्वारा बाँधा गया वह प्रेत धर्म-राजके मार्गपर चलता है । यममार्गका विस्तार छियासी हजार योजनप्रमाण है । प्रेत प्रतिदिन दो सौ तैंतालीस योजन रात-दिनमें चलता है । वह रास्तेमें अनेक विषैले जीव-जन्तुओंद्वारा काटा जाता है । जलके खड्डोंमें गिराया जाता है । वहाँ गहरा अन्धकार है । मार्गके मध्यमें बहने-वाली वैतरणी नदी देखनेहीसे बड़े दुःखको देनेवाली है । वह सौ योजन चौड़ी है । उसमें पीव और रुधिर बहता है । मांस तथा रुधिरकी उसमें कीच है । बड़े-बड़े ग्राह और पक्षियोंसे घिरी रहती है । सूईकी नोकके समान कीड़ों और जोंकोंसे व्याप्त है । उसकी धारमें बहते अनेक पापी चिल्लाते हैं । बार-बार 'हाय माई ! हाय बाप !'—ऐसे कहते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे भूख-प्याससे दुखी पापी यमदूतोंद्वारा मुद्गरोंसे ताड़े जाते हैं और हाय-हाय करते हुए कहते हैं—

महता पुण्ययोगेन मानुषं जन्म लभ्यते ।
तत्प्राप्य न कृतो धर्मः कीदृशं हि मया कृतम् ॥
मया न दत्तं न हुतं हुताशने
तपो न तप्तं त्रिदशा न पूजिताः ।
न तीर्थसेवा विहिता विधानतो
देहिन् क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम् ॥
(ग० पु०)

'बड़े पुण्ययोगसे मनुष्य-शरीर पाकर भी मैंने दान, धर्म, तप, होम, देवपूजा और तीर्थसेवा नहीं की । परोपकार, गङ्गाका आश्रय और सत्सङ्ग नहीं किया । गौ-ब्राह्मण तथा दुखियोंके लिये कुछ भी नहीं किया । इसलिये हे देही ! तू अपने पापकर्मोंको भोग ।'

स्त्रीके लिये पति ही तीर्थ, व्रत और धर्म है; किंतु जिसने पतिकी सेवा नहीं की तथा विधवा होकर भी तपका सेवन नहीं किया, वह भी इसी प्रकार रोती-विलाप करती है ।

वह प्रेत सत्रह दिनतक वायुके वेगसे अकेला ही विकट मार्गपर चलता हुआ अठारहवें दिन सौम्यपुरको जाता है । उस नगरमें बड़ा भारी प्रेतोंका समुदाय रहता है । वहाँ पुष्पभद्रा नामक नदी है । उस मनोहर नदीके किनारे विशाल वटवृक्ष है । वह वहाँपर विश्राम करता है और स्त्री-पुत्रादिके सौख्यका स्मरण करता है । फिर यमदूतोंद्वारा यमपुर ले जाया जाता है । दान-पुण्य न करनेके कारण वैतरणीमें डूबता जाता है । दूतोंद्वारा बार-बार खींचकर निकाला जाता है । रास्तेमें पुत्रोंद्वारा दिये मासिक पिण्डोंको हर्षपूर्वक खाता है ।

शैलागमन, विचित्रपुर आदि नगरोंको लाँघता हुआ अन्तमें यमराजके मुख्य नगरमें पहुँचता है । वह चौवालीस योजनके प्रमाणका है । वहाँ चित्रगुप्त, जो धर्मराजके महामन्त्री हैं, उन पापियोंकी सब जानकारी बताते हैं और फिर यमराजकी आज्ञा पाकर कहते हैं—

'अरे पापी दुराचारियो ! तुमने अज्ञान धारण करके अहंकारसे दूषित हो अनेक पाप इकट्ठे किये । काम-क्रोध और पापियोंकी सङ्गतिसे उत्पन्न पाप ही तुम्हें दुःख देनेवाले हैं । जैसे पाप किये हैं, वैसे ही यमकी यातना भोगनी योग्य है ।'

यमदेवकी आज्ञा पाकर प्रचण्ड, चण्डक आदि दूत उन सब पापियोंको एक पाशमें बाँधकर घोर नरकोंमें ले जाते हैं । श्रीगरुडपुराणमें चौरासी लाख नरक बताये गये हैं, जिनमें मुख्य २१ या २८ हैं ।

पापी मनुष्य अपने-अपने विभिन्न पापकर्मानुसार उपर्युक्त नरकोंमें घोर यातना भोगकर फिर शुद्ध होते हैं और भूलोकमें आकर जन्म लेते हैं । जीव मनुष्य-जन्म लेता है और मरता है, किंतु वह सत्यकी खोज न करके विषय-वासनाओंमें ही सदैव लिप्त रहता है । इसीका बुरा फल उसे भोगना पड़ता है ।

मनुष्यकी कर्म-भोग-योनिका नाम ही प्रेतावस्था है । जैसा अच्छा या बुरा जीवनमें किया जाता है, उसका भुगतान अवश्य ही होता है । इसीलिये इस योनिका निर्माण किया गया । आधुनिक अश्रद्धालु दुराचारी वातावरणमें पले मानव-समाजको प्राचीन सत्साहित्यका अवलोकन करना चाहिये । हर विषय अपना अपूर्व महत्त्व रखता है । हमारे पूर्वजोंका अन्वेषण सर्वथा सत्य और सफल है, इसमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं । हमारा मानव-जीवन अवस्थाके सुप्रभातसे ही भगवत्-प्रेमका साधन आरम्भ कर दे तो अधोगतिका नामोनिशान ही न रहे ।

सारे पापोंके नाशके लिये भगवान्‌के सोलह नामोंवाले निम्नलिखित स्तोत्रका प्रातःकाल सबको पाठ करना चाहिये—

सर्वपापनाशक श्रीविष्णुस्तोत्र

औषधे चिन्तयेद् विष्णुं भोजने च जनार्दनम् ।
युद्धे चक्रधरं देवं प्रवासे च त्रिविक्रमम् ॥
शयने पद्मनाभं च विवाहे च प्रजापतिम् ।
नारायणं तनुत्यागे श्रीधरं प्रियसंगमे ॥
दुःस्वप्ने स्मर गोविन्दं संकटे मधुसूदनम् ।
जलमध्ये च वाराहं पर्वते रघुनन्दनम् ॥
कानने नारसिंहं च पावके जलशायिनम् ।
गमने वामनं चैव सर्वकार्येषु माधवम् ॥
षोडशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पापी तथा पुण्यात्माओंकी कर्मानुसार गति और यमलोकका वर्णन

ब्रह्मपुराणमें पुण्यकर्मा मुनियों तथा भगवान् व्यासका संवाद है। उसीका कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है। बहुत ही उपयोगी तथा पढ़-समझकर यथायोग्य आचरणमें लानेयोग्य है। मुनियोंके पूछनेपर भगवान् व्यासजी कहते हैं—

यमलोकका मार्ग और भयानक यमदूत

व्यासजीने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनिवरो! सुनो। यह संसारचक्र प्रवाहरूपसे निरन्तर चलता रहता है। अब मैं प्राणियोंकी मृत्युसे लेकर आगे जो अवस्था होती है, उसका वर्णन करूँगा। इसी प्रसङ्गमें यमलोकके मार्गका भी निर्णय किया जायगा। यमलोक और मनुष्यलोकमें छियासी हजार योजनोंका अन्तर है। उसका मार्ग तपाये हुए ताँबेकी भाँति पूर्ण तप्त रहता है। प्रत्येक जीवको यमलोकके मार्गसे जाना पड़ता है। पुण्यात्मा पुरुष पुण्यलोकोंमें और नीच पापाचारी मानव पापमय लोकोंमें जाते हैं। यमलोकमें (मुख्यतया) बाईस नरक हैं, जिनके भीतर पापी मनुष्योंको पृथक्-पृथक् यातनाएँ दी जाती हैं। यमलोकके मार्गमें न तो कहीं वृक्षकी छाया है, न तालाब और पोखरे हैं; न बावड़ी न पुष्करिणी है; न कूप हैं न पौंसले हैं; न धर्मशाला है न मण्डप है; न घर है न नदी एवं पर्वत हैं और न ठहरनेके योग्य कोई स्थान ही है, जहाँ अत्यन्त कष्टमें पड़ा हुआ थका-माँदा जीव विश्राम कर सके। उस महान् पथपर सब पापियोंको निश्चय ही जाना पड़ता है। जीवकी यहाँ जितनी आयु नियत है, उसका भोग पूरा हो जानेपर इच्छा न रहते हुए भी उसे प्राणोंका त्याग करना पड़ता है।

मृत्युके समय वात, पित्त, कफके दूषित होनेपर नाना प्रकारके कष्टकर रोग हो जाते हैं और जीव दुःखपूर्वक मरता है। जिसने कभी मिथ्याभाषण नहीं किया, दो प्रेमियोंके पारस्परिक प्रेममें बाधा नहीं डाली तथा जो आस्तिक और श्रद्धालु है, वह सुखपूर्वक मृत्युको प्राप्त होता है। जो देवता और ब्राह्मणोंकी पूजामें संलग्न रहते, किसीकी निन्दा नहीं करते तथा सात्त्विक, उदार और लज्जाशील होते हैं, ऐसे मनुष्योंको मृत्युके समय कष्ट नहीं होता। जो कामनासे, क्रोधसे अथवा द्वेषके कारण धर्मका त्याग नहीं करता; शास्त्रोक्त आज्ञाका पालन करनेवाला तथा सौम्य होता है, उसकी मृत्यु भी सुखसे होती है। जो किसी भी जीवको उद्वेग नहीं पहुँचाते, वे मृत्युकालमें प्राण-घातिनी क्लेशमय वेदनाका अनुभव नहीं करते। जिन्होंने कभी जलका दान नहीं किया है, उन मनुष्योंको मृत्युकाल उपस्थित होनेपर अधिक जलन होती है तथा अन्नदान न करनेवालोंको उस समय भूखका भारी कष्ट भोगना पड़ता है।

पापी लोगोंकी मृत्युके समय यमराजके दुष्ट दूत हाथोंमें हथौड़ी एवं मुद्गर लिये आते हैं; वे बड़े भयंकर होते हैं और उनकी देहसे दुर्गन्ध निकलती रहती है। उन यमदूतोंपर दृष्टि पड़ते ही मनुष्य काँप उठता है और भ्राता, माता तथा पुत्रोंका नाम लेकर बारंबार चिल्लाने लगता है। उस समय उसकी वाणी स्पष्ट समझमें नहीं आती। एक ही शब्द, एक ही आवाज-सी जान पड़ती है। भयके मारे रोगीकी आँखें झूमने लगती हैं और उसका मुख सूख जाता है। उसकी साँस ऊपरको उठने लगती है। दृष्टिकी शक्ति भी नष्ट हो जाती है। फिर वह अत्यन्त वेदनासे पीड़ित होकर उस शरीरको छोड़ देता है और वायुके सहारे चलता हुआ वैसे ही दूसरे शरीरको धारण कर लेता है, जो रूप, रंग और अवस्थामें पहले शरीरके समान ही होता है। वह शरीर माता-पिताके गर्भसे उत्पन्न नहीं, कर्मजनित होता है और यातना भोगनेके लिये ही मिलता है; उसीसे यातना भोगनी पड़ती है। तदनन्तर यमराजके दूत शीघ्र ही उसे दारुण पाशोंसे बाँध लेते हैं। जीवको बड़ी वेदना होती है, वह अत्यन्त व्याकुल हो जाता है और यमलोकके मार्गपर वायुरूप होकर चला जाता है।

वह मार्ग अन्धकारपूर्ण, अपार, अत्यन्त भयंकर तथा पापियोंके लिये अत्यन्त दुर्गम होता है। यमदूत पाशोंमें बाँधकर उसे खींचते और मुद्गरोंसे पीटते हुए उस विशाल पथपर ले जाते हैं। यमदूतोंके अनेक रूप होते हैं। वे देखनेमें बड़े डरावने और समस्त प्राणियोंको भय पहुँचानेवाले होते हैं। उनके मुख विकराल, नासिका टेढ़ी, आँखें तीन, ठोड़ी, कपोल और मुख फैले हुए तथा ओठ लंबे होते हैं। वे अपने हाथोंमें विकराल एवं भयंकर आयुध लिये रहते हैं। उन आयुधोंसे आगकी लपटें निकलती रहती हैं। पाश, साँकल और डंडेसे भय पहुँचानेवाले, महाबली,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभयंकर यमकिंकर यमराजकी आज्ञासे प्राणियोंकी आयु समाप्त होनेपर उन्हें लेनेके लिये आते हैं। वे उसे कालपाशमें बाँधकर पैरोंमें बेड़ी डाल देते हैं। बेड़ीकी साँकल वज्रके समान कठोर होती है। यमकिंकर क्रोधमें भरकर उस बँधे हुए जीवको भलीभाँति पीटते हुए ले जाते हैं। वह लड़खड़ाकर गिरता है, रोता है और 'हाय बाप! हाय मैया! हाय पुत्र!'—कहकर बारंबार चीखता-चिल्लाता है; तो भी दूषित कर्मवाले उस पापीको वे तीखे शूलों, मुद्गरों, खड्ग और शक्तिके प्रहारों और वज्रमय भयंकर डंडोंसे घायल करके जोर-जोरसे डाँटते हैं। कभी-कभी तो एक-एक पापीको अनेक यमदूत चारों ओरसे घेरकर पीटते हैं। बेचारा जीव दुःखसे पीड़ित हो मूर्च्छित होकर इधर-उधर गिर पड़ता है तथापि वे दूत उसे घसीटकर ले जाते हैं। कहीं भयभीत होते, कहीं त्रास पाते, कहीं लड़खड़ाते और कहीं दुःखसे करुण-क्रन्दन करते हुए जीवोंको उस मार्गसे जाना पड़ता है। यमदूतोंकी फटकार पड़नेसे वे उद्विग्न हो उठते हैं और भयसे विह्वल हो काँपते हुए शरीरसे दौड़ने लगते हैं। मार्गपर कहीं काँटे बिछे होते हैं और कुछ दूरतक तपी हुई बालू मिलती है।

जिन मनुष्योंने दान नहीं किया है, वे उस मार्गपर जलते हुए पैरोंसे चलते हैं। जीवहिंसक मनुष्यके सब ओर मरे हुए बकरोंकी लाशें पड़ी होती हैं, जिनकी जली और फटी हुई चमड़ीसे मेदे और रक्तकी दुर्गन्ध आती रहती है। वे वेदनासे पीड़ित हो जोर-जोरसे चीखते-चिल्लाते हुए यममार्गकी यात्रा करते हैं। शक्ति, भिन्दिपाल, खड्ग, तोमर, बाण और तीखी नोकवाले शूलोंसे उनका अङ्ग-अङ्ग विदीर्ण कर दिया जाता है। कुत्ते, बाघ, भेड़िये और कौए उनके शरीरका मांस नोच-नोचकर खाते रहते हैं। मांस खानेवाले लोग उस मार्गपर चलते समय आरेसे चीरे जाते हैं। सूअर अपनी दाढ़ोंसे उनके शरीरको विदीर्ण कर देते हैं।

जो अपने ऊपर विश्वास करनेवाले स्वामी, मित्र अथवा स्त्रीकी हत्या करते-कराते हैं, वे शस्त्रोंद्वारा छिन्न-भिन्न और व्याकुल होकर यमलोकके मार्गपर जाते हैं। जो निरपराध जीवोंको मारते और मरवाते हैं, वे राक्षसोंके ग्रास बनकर उस पथसे यात्रा करते हैं। जो परायी स्त्रियोंके वस्त्र उतारते हैं, वे मरनेपर नंगे करके दौड़ाते हुए यमलोकमें लाये जाते हैं। जो दुरात्मा पापाचारी अन्न, वस्त्र, सोने, घर और खेतका अपहरण करते हैं, उन्हें यमलोकके मार्गपर पत्थरों, लाठियों और डंडोंसे मारकर जर्जर कर दिया जाता है और वे अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गसे प्रचुर रक्त बहाते हुए यमलोकमें जाते हैं। जो नराधम नरककी परवा न करके इस लोकमें ब्राह्मणका धन हड़प लेते, उन्हें मारते और गालियाँ सुनाते हैं, उन्हें सूखे काठमें बाँधकर उनकी आँखें फोड़ दी जाती और नाक-कान काट लिये जाते हैं। फिर उनके शरीरमें पीब और रक्त पोत दिये जाते हैं तथा कालके समान गीध और गीदड़ उन्हें नोच-नोचकर खाने लगते हैं। इस दशामें भी क्रोधमें भरे हुए भयानक यमदूत उन्हें पीटते हैं और वे चिल्लाते हुए यमलोकके पथपर अग्रसर होते हैं।

इस प्रकार वह मार्ग बड़ा ही दुर्गम और अग्निके समान प्रज्वलित है। उसे रौरव (जीवोंको रुलानेवाला) कहा गया है। वह नीची-ऊँची भूमिसे युक्त होनेके कारण मानवमात्रके लिये अगम्य है। तपाये हुए ताँबेकी भाँति उसका वर्ण है। वहाँ आगकी चिनगारियाँ और लपटें दिखायी देती हैं। वह मार्ग कण्टकोंसे भरा है। शक्ति और वज्र आदि आयुधोंसे व्याप्त है। ऐसे कष्टप्रद मार्गपर निर्दयी यमदूत जीवको घसीटते हुए ले जाते हैं और उन्हें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे मारते रहते हैं। इस तरह पापासक्त अन्यायी मनुष्य विवश होकर मार खाते हुए दुर्धर्ष यमदूतोंके द्वारा यमलोकमें ले जाये जाते हैं। यमराजके सेवक सभी पापियोंको उस दुर्गममार्गमें अवहेलनापूर्वक ले जाते हैं। वह अत्यन्त भयंकर मार्ग जब समाप्त हो जाता है, तब यमदूत पापी जीवको ताँबे और लोहेकी बनी हुई भयंकर यमपुरीमें प्रवेश कराते हैं।

यमपुरी और उसके पूर्व, उत्तर तथा पश्चिम—तीन शुभ-द्वार

वह पुरी बहुत विशाल है। उसका विस्तार लाख योजनका है। वह चौकोर बतायी जाती है। उसके चार सुन्दर दरवाजे हैं। उसकी चहारदीवारी सोनेकी बनी है, जो दस हजार योजन ऊँची है। यमपुरीका पूर्वद्वार बहुत ही सुन्दर है। वहाँ फहराती हुई सैकड़ों पताकाएँ उसकी शोभा बढ़ाती हैं। हीरे, नीलम, पुखराज और मोतियोंसे वह द्वार सजाया जाता है। वहाँ गन्धर्वों और अप्सराओंके गीत और नृत्य होते रहते हैं। उस द्वारसे देवताओं, ऋषियों, योगियों, गन्धर्वों, सिद्धों, यक्षों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और विद्याधरोंका प्रवेश होता है। उस नगरका उत्तर-द्वार घण्टा, छत्र, चँवर तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे अलंकृत है। वहाँ वीणा और वेणुकी मनोहर ध्वनि गूँजती रहती है। गीत, मङ्गलगान तथा ऋग्वेद आदिके सुमधुर शब्द होते रहते हैं। वहाँ महर्षियोंका समुदाय शोभा पाता है। उस द्वारसे उन्हीं पुण्यात्माओंका प्रवेश होता है, जो धर्मज्ञ और सत्यवादी हैं। जिन्होंने गरमीमें दूसरोंको जल पिलाया और सर्दीमें अग्निका सेवन कराया है; जो थके-माँदे मनुष्योंकी सेवा करते और सदा प्रिय वचन बोलते हैं; जो दाता, शूर और माता-पिताके भक्त हैं तथा जिन्होंने ब्राह्मणोंकी सेवा और अतिथियोंका पूजन किया है, वे भी उत्तरद्वारसे ही पुरीमें प्रवेश करते हैं।

यमपुरीका पश्चिम महाद्वार भाँति-भाँतिके रत्नोंसे विभूषित है। विचित्र-विचित्र मणियोंकी वहाँ सीढ़ियाँ बनी हैं। देवता उस द्वारकी शोभा बढ़ाते रहते हैं। वहाँ भेरी, मृदङ्ग और शङ्ख आदि वाद्योंकी ध्वनि हुआ करती है। सिद्धोंके समुदाय सदा हर्षमें भरकर उस द्वारपर मङ्गल-गान करते हैं। जो मनुष्य भगवान् शिवकी भक्तिमें संलग्न रहते हैं, जो सब तीर्थोंमें गोते लगा चुके हैं, जिन्होंने पञ्चाग्निका सेवन किया है, जो किसी उत्तम तीर्थस्थानमें अथवा कालिञ्जर पर्वतपर प्राणत्याग करते हैं और जो स्वामी, मित्र अथवा जगत्का कल्याण करनेके लिये एवं गौओंकी रक्षाके लिये मारे गये हैं, वे शूर-वीर और तपस्वी पुरुष पश्चिमद्वारसे यमपुरीमें प्रवेश करते हैं।

यमपुरीका भयानक दक्षिण-द्वार

उस पुरीका दक्षिण-द्वार अत्यन्त भयानक है। वह सम्पूर्ण जीवोंके मनमें भय उपजानेवाला है। वहाँ निरन्तर हाहाकार मचा रहता है। सदा अँधेरा छाया रहता है। उस द्वारपर तीखे सींग, काँटे, बिच्छू, साँप, वज्रमुख कीट, भेड़िये, व्याघ्र, रीछ, सिंह, गीदड़, कुत्ते, बिलाव और गीध उपस्थित रहते हैं। उनके मुखोंसे आगकी लपटें निकला करती हैं। जो सदा सबका अपकार करनेवाले पापात्मा हैं, उन्हींका उस मार्गसे पुरीमें प्रवेश होता है। जो ब्राह्मण, गौ, बालक, वृद्ध, रोगी, शरणागत, विश्वासी, स्त्री, मित्र और निहत्थे मनुष्यकी हत्या करते-कराते हैं; अगम्या स्त्रीके साथ सम्भोग करते हैं; दूसरोंके धनका अपहरण करते हैं; धरोहर हड़प लेते हैं; दूसरोंको जहर देते और उनके घरोंमें आग लगाते हैं; परायी भूमि, गृह, शय्या, वस्त्र और आभूषणकी चोरी करते हैं; दूसरोंके छिद्र देखकर उनके प्रति क्रूरताका बर्ताव करते हैं; सदा झूठ बोलते हैं; ग्राम, नगर तथा राष्ट्रको महान् दुःख देते हैं; झूठी गवाही देते, कन्या बेचते, अभक्ष्य भक्षण करते, पुत्री और पुत्रवधूके साथ समागम करते, माता-पिताको कटुवचन सुनाते तथा अन्यान्य प्रकारके महापातकोंमें संलग्न रहते हैं; वे सब दक्षिण-द्वारसे यमपुरीमें प्रवेश करते हैं।

व्यासजी बोले—मुनिवरो! दक्षिण-द्वार अत्यन्त घोर और महाभयंकर है। मैं उसका वर्णन करता हूँ। वहाँ सदा नाना प्रकारके हिंस्र जन्तुओं और गीदड़ियोंके शब्द होते रहते हैं। वहाँ दूसरोंका पहुँचना असम्भव है। उसे देखते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। भूत, प्रेत, पिशाच और राक्षसोंसे यह द्वार सदा ही घिरा रहता है। पापी जीव दूरसे ही उस द्वारको देखकर त्राससे मूर्च्छित हो जाते हैं और विलाप-प्रलाप करने लगते हैं। तब यमदूत उन्हें साँकलोंसे बाँधकर घसीटते और निर्भय होकर डंडोंसे पीटते हैं। साथ ही डाँटते-फटकारते भी रहते हैं। होशमें आनेपर वे खूनसे लथपथ हो पग-पगपर लड़खड़ाते हुए दक्षिण-द्वारको जाते हैं। मार्गमें कहीं तीखे काँटे होते हैं और कहीं छूरेकी धारके समान तीक्ष्ण पत्थरोंके टुकड़े बिछे होते हैं। कहीं कीचड़-ही-कीचड़ भरी रहती है और कहीं ऐसे-ऐसे गड्ढे होते हैं, जिनको पार करना असम्भव-सा होता है। कहीं-कहीं लोहेकी सूईके समान कीलें गड़ी होती हैं। कहीं वृक्षोंसे भरे हुए पर्वत होते हैं, जो किनारोंपर झरने गिरते रहनेसे दुर्गम प्रतीत होते हैं और कहीं-कहीं तपे हुए अँगारे बिछे होते हैं। ऐसे मार्गसे दुखी होकर पापी जीवोंको यात्रा करनी पड़ती है। कहीं दुर्गम गर्त्त, कहीं चिकने ढेले, कहीं तपायी हुई बालू और कहीं तीखे काँटे होते हैं। कहीं दावानल प्रज्वलित रहता है। कहीं तपी हुई शिला है तो कहीं जमी हुई बर्फ। कहीं इतनी अधिक बालू है कि उस मार्गसे जानेवाला जीव उसमें आकण्ठ डूब जाता है। कहीं दूषित जलसे और कहीं कंडेकी आगसे वह मार्ग भरा रहता है। कहीं सिंह, भेड़िये, बाघ, डाँस और भयानक कीड़े डेरा डाले रहते हैं। कहीं बड़ी-बड़ी जोंकें और अजगर पड़े रहते हैं। भयंकर मक्खियाँ, विषैले साँप और दुष्ट एवं बलोन्मत्त हाथी सताया करते हैं। खुरोंसे मार्गको खोदते हुए तीखे सींगोंवाले बड़े-बड़े साँड़, भैंसे और मतवाले ऊँट सबको कष्ट देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भयानक डाइनों और भीषण रोगोंसे पीड़ित होकर जीव उस मार्गसे यात्रा करते हैं।

कहीं धूलिमिश्रित प्रचण्ड वायु चलती है, जो पत्थरोंकी वर्षा करके निराश्रय जीवोंको कष्ट पहुँचाती रहती है; कहीं बिजली गिरनेसे शरीर विदीर्ण हो जाता है; कहीं बड़े जोरसे बाणोंकी वर्षा होती है, जिससे सब अङ्ग छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। कहीं-कहीं बिजलीकी गड़गड़ाहटके साथ भयंकर उल्कापात होते रहते हैं और प्रज्वलित अँगारोंकी वर्षा हुआ करती है, जिससे जलते हुए पापी जीव आगे बढ़ते हैं। कभी जोर-जोरसे धूलकी वर्षा होनेके कारण सारा शरीर भर जाता है और जीव रोने लगते हैं। मेघोंकी भयंकर गर्जनासे बारंबार त्रास पहुँचता रहता है। बाण-वर्षासे घायल हुए शरीरपर खारे जलकी धारा गिरायी जाती है और उसकी पीड़ा सहन करते हुए जीव आगे बढ़ते हैं। कहीं-कहीं अत्यन्त शीतल हवा चलनेके कारण अधिक सर्दी पड़ती है तथा कहीं रूखी और कठोर वायुका सामना करना पड़ता है; इससे पापी जीवोंके अङ्ग-अङ्गमें बिवाई फट जाती है। वे सूखने और सिकुड़ने लगते हैं। ऐसे मार्गसे, जहाँ न तो राह-खर्चके लिये कुछ मिल पाता है और न कहीं कोई सहारा ही दिखायी देता है, पापी जीवोंको यात्रा करनी पड़ती है। सब ओर निर्जल और दुर्गम प्रदेश दृष्टिगोचर होता है। बड़े परिश्रमसे पापी जीव यमलोकतक पहुँच पाते हैं। यमराजकी आज्ञाका पालन करनेवाले भयंकर यमदूत उन्हें बलपूर्वक ले जाते हैं। वे एकाकी और पराधीन होते हैं। साथमें न कोई मित्र होता है न बन्धु। वे अपने-अपने कर्मोंको सोचते हुए बारंबार रोते रहते हैं। प्रेतोंका-सा उनका शरीर होता है। उनके कण्ठ, ओठ और तालू सूखे रहते हैं। वे शरीरसे अत्यन्त दुर्बल और भयभीत हो क्षुधाग्निकी ज्वालासे जलते रहते हैं। कोई साँकलमें बँधे होते हैं। किन्हींको उतान सुलाकर यमदूत उनके दोनों पैर पकड़कर घसीटते हैं और कोई नीचे मुँह करके घसीटे जाते हैं। उस समय उन्हें अत्यन्त दुःख होता है। उन्हें खानेको अन्न और पीनेको पानी नहीं मिलता। वे भूख-प्याससे पीड़ित हो, हाथ जोड़, दीनभावसे आँसू बहाते हुए गद्गद वाणीमें बारंबार याचना करते और 'दीजिये, दीजिये' की रट लगाये रहते हैं। उनके सामने सुगन्धित पदार्थ, दही, खीर, घी, भात, सुगन्धयुक्त पेय और शीतल जल प्रस्तुत होते हैं। उन्हें देखकर वे बारंबार उनके लिये याचना करते हैं।

यमदूतोंद्वारा पापी जीवोंकी ताड़ना

उस समय यमराजके दूत क्रोधसे लाल आँखें करके उन्हें फटकारते हुए कठोर वाणीमें कहते हैं—'ओ पापियो! तुमने समयपर अग्निहोत्र नहीं किया; स्वयं ब्राह्मणोंको दान नहीं दिया और दूसरोंको भी उन्हें दान देते समय बलपूर्वक मना किया; उसी पापका फल तुम्हारे सामने उपस्थित हुआ है। तुम्हारा धन आगमें नहीं जला था, जलमें नहीं नष्ट हुआ था, राजाने नहीं छीना था और चोरोंने भी नहीं चुराया था। नराधमो! तो भी तुमने जब पहले ब्राह्मणोंको दान नहीं दिया है, तब इस समय तुम्हें कहाँसे कोई वस्तु प्राप्त हो सकती है। जिन साधुपुरुषोंने सात्त्विकभावसे नाना प्रकारके दान किये हैं, उन्हींके लिये ये पर्वतोंके समान अन्नके ढेर लगे दिखायी देते हैं। इनमें भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य और चोष्य—सब प्रकारके खाद्य पदार्थ हैं। तुम इन्हें पानेकी इच्छा न करो; क्योंकि तुमने किसी प्रकारका दान नहीं दिया है। जिन्होंने दान, होम, यज्ञ और ब्राह्मणोंका पूजन किया है, उन्हींका अन्न ले आकर सदा यहाँ जमा किया जाता है। नारकी जीवो! यह दूसरोंकी वस्तु हम तुम्हें कैसे दे सकते हैं?'

यमदूतोंकी यह बात सुनकर वे भूख-प्याससे पीड़ित जीव उस अन्नकी अभिलाषा छोड़ देते हैं। तदनन्तर यमदूत उन्हें भयानक अस्त्रोंसे पीड़ा देते हैं। मुद्गर, लोहदण्ड, शक्ति, तोमर, पट्टिश, परिघ, भिन्दिपाल, गदा, फरसा और बाणोंसे उनकी पीठपर प्रहार किया जाता है और सामनेकी ओरसे सिंह तथा बाघ आदि उन्हें काट खाते हैं। इस प्रकारके पापी जीव न तो भीतर प्रवेश कर पाते हैं और न बाहर ही निकल पाते हैं। अत्यन्त दुःखित होकर करुणक्रन्दन किया करते हैं। इस प्रकार वहाँ भलीभाँति पीड़ा देकर यमराजके दूत उन्हें भीतर प्रवेश कराते और उस स्थानपर ले जाते हैं, जहाँ सबका संयमन (नियन्त्रण) करनेवाले धर्मात्मा यमराज रहते हैं। वहाँ पहुँचकर वे दूत यमराजको उन पापियोंके आनेकी सूचना देते हैं और उनकी आज्ञा मिलनेपर उन्हें उनके सामने उपस्थित करते हैं। तब पापाचारी जीव भयानक यमराज और चित्रगुप्तको देखते हैं।

यमराजके द्वारा फटकार, उपालम्भ और दण्ड-विधान

यमराज उन पापियोंको बड़े जोरसे फटकारते हैं और चित्रगुप्त धर्मयुक्त वचनोंसे पापियोंको समझाते हुए कहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं—'पापाचारी जीवो ! तुमने दूसरोंके धनका अपहरण किया है और अपने रूप और वीर्यके घमंडमें आकर परायी स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट किया है। जीव स्वयं जो कर्म करता है, उसका फल भी उसे स्वयं ही भोगना पड़ता है—यह जानते हुए भी तुमने अपना विनाश करनेके लिये यह पापकर्म क्यों किया ? अब क्यों शोक करते हो ? अपने कुकर्मोंसे ही तुम पीड़ित हो रहे हो। तुमने अपने कर्मोंद्वारा जिन दुःखोंका उपार्जन किया है, उन्हें भोगो। इसमें किसीका कुछ दोष नहीं है। ये जो राजा लोग मेरे समीप आये हुए हैं, इन्हें भी अपने बलका बड़ा घमंड था। ये अपने घोर दुष्कर्मोंद्वारा यहाँ लाये गये हैं। इनकी बुद्धि बहुत ही खोटी थी।'

तत्पश्चात् यमराज पूर्वके राजाओंकी ओर दृष्टिपात करके कहते हैं—'अरे ओ दुराचारी नरेशो ! तुमलोग प्रजाका विध्वंस करनेवाले हो। थोड़े दिनोंतक रहनेवाले राज्यके लिये तुमने क्यों भयंकर पाप किया ? राजाओ ! तुमने राज्यके लोभ, मोह, बल तथा अन्यायसे जो प्रजाओंको कठोर दण्ड दिया है, उसका यथोचित फल इस समय भोगो। कहाँ गया वह राज्य ? कहाँ गयीं वे रानियाँ, जिनके लिये तुमने पापकर्म किये हैं ? उन सबको छोड़कर यहाँ तुमलोग एकाकी—असहाय होकर खड़े हो। यहाँ वह सारी सेना नहीं दिखायी देती, जिसके द्वारा तुमने प्रजाका दमन किया है। इस समय यमदूत तुम्हारे अङ्ग-अङ्ग फाड़े डालते हैं। देखो तो, उस पापका अब कैसा फल मिल रहा है।'

इस प्रकार यमराजके उपालम्भयुक्त अनेक वचन सुनकर वे राजा अपने-अपने कर्मोंका विचार करते हुए चुपचाप खड़े रह जाते हैं। तब उनके पापोंकी शुद्धिके लिये धर्मराज अपने सेवकोंको इस प्रकार आज्ञा देते हैं—'ओ चण्ड ! ओ महाचण्ड ! इन राजाओंको पकड़कर ले जाओ और क्रमशः नरककी अग्निमें तपाकर इन्हें पापोंसे मुक्त करो।' धर्मराजकी आज्ञा पाते ही यमदूत राजाओंके दोनों पैर पकड़कर वेगसे घुमाते हुए उन्हें ऊपर फेंक देते हैं और फिर लौटकर उनके पापोंकी मात्राके अनुसार उन्हें बड़ी-बड़ी शिलाओंपर देरतक पटकते रहते हैं, मानो वज्रसे किसी महान् वृक्षपर प्रहार करते हों। इससे पापी जीवका शरीर जर्जर हो जाता है। उसके प्रत्येक छिद्रसे रक्तकी धारा बहने लगती है। उसकी चेतना लुप्त हो जाती है और वह हिलने-डुलनेमें भी असमर्थ हो जाता है। तदनन्तर शीतल वायुका स्पर्श होनेपर धीरे-धीरे पुनः वह सचेत हो उठता है। तब यमराजके दूत उसे पापोंकी शुद्धिके लिये नरकमें डाल देते हैं। एकसे निवृत्त होनेपर वे दूसरे-दूसरे पापियोंके विषयमें यमराजसे निवेदन करते हैं—'देव ! आपकी आज्ञासे हम दूसरे पापीको भी ले आये हैं। यह सदा धर्मसे विमुख और पापपरायण रहा है। यह दुराचारी व्याध है। इसने महापातक और उपपातक—सभी किये हैं। यह अपवित्र मनुष्य सदा दूसरे जीवोंकी हिंसामें संलग्न रहा है। यह जो दुष्टात्मा खड़ा है, अगम्या स्त्रियोंके साथ समागम करनेवाला है। इसने दूसरेके धनका भी अपहरण किया है। यह कन्या बेचनेवाला, झूठी गवाही देनेवाला, कृतघ्न तथा मित्रोंको धोखा देनेवाला है। इस दुरात्माने मदोन्मत्त होकर सदा धर्मकी निन्दा की है। मर्त्यलोकमें केवल पापका ही आचरण किया है। देवेश्वर ! इस समय इसको दण्ड देना है या इसपर अनुग्रह करना है, यह बताइये ? क्योंकि आप ही निग्रहानुग्रह करनेमें समर्थ हैं। हमलोग तो केवल आज्ञापालक हैं।'

यों निवेदन करके वे दूत पापीको यमराजके सामने उपस्थित कर देते हैं और स्वयं दूसरे पापियोंको लानेके लिये चल देते हैं। जब पापीपर लगाये गये दोषकी सिद्धि हो जाती है, तब यमराज अपने भयंकर सेवकोंको उन्हें दण्ड देनेके लिये आदेश देते हैं। वसिष्ठ आदि महर्षियोंने जिसके लिये जो दण्ड नियत किया है, उसीके अनुसार वे यमकिंकर पापीको दण्ड प्रदान करते हैं। अङ्कुश, मुद्गर, डंडे, आरे, शक्ति, तोमर, खड्ग और शूलोंके प्रहारसे पापियोंको विदीर्ण कर डालते हैं।

नरकोंके भयंकर स्वरूपका वर्णन

१—महावीचि नामक नरक रक्तसे भरा रहता है। उसमें वज्रके समान काँटे होते हैं। उसका विस्तार दस हजार योजन है। उसमें डूबा हुआ पापी जीव काँटोंमें विंधकर अत्यन्त कष्ट भोगता है। गौओंका वध करनेवाला मनुष्य उस भयंकर नरकमें एक लाख वर्षोंतक निवास करता है।

२—कुम्भीपाकका विस्तार सौ लाख योजन है। वह अत्यन्त भयंकर नरक है। वहाँकी भूमि तपाये हुए ताँबेके घड़ोंसे भरी रहनेके कारण अत्यन्त प्रज्वलित दिखायी देती है। वहाँ गरम-गरम बालू और अँगारे बिछे होते हैं। ब्राह्मणकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रौरव नरक [पृष्ठ ६५९]

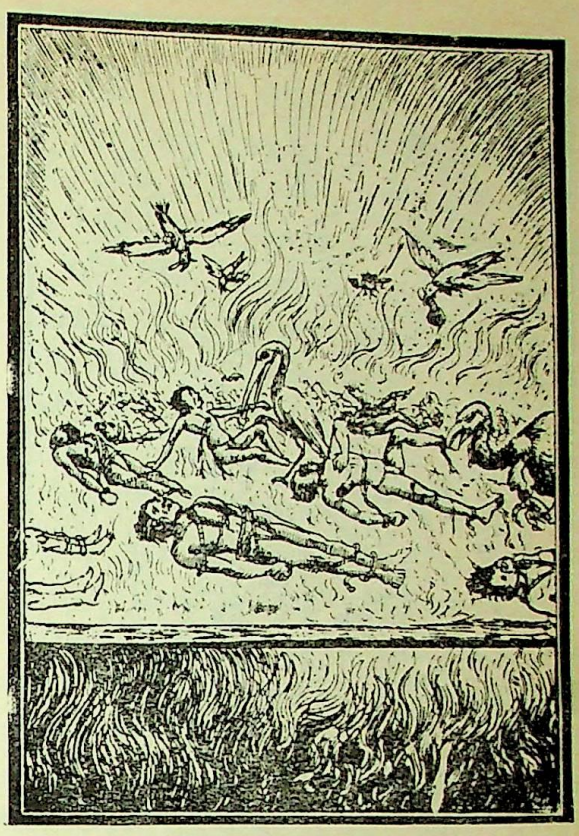

महारौरव नरक [पृष्ठ ६५९]

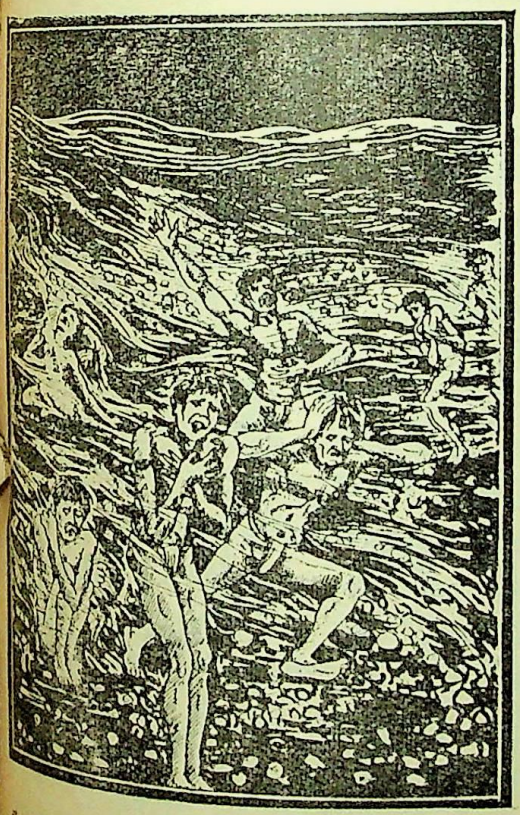

तम नरक [पृष्ठ ६५९]

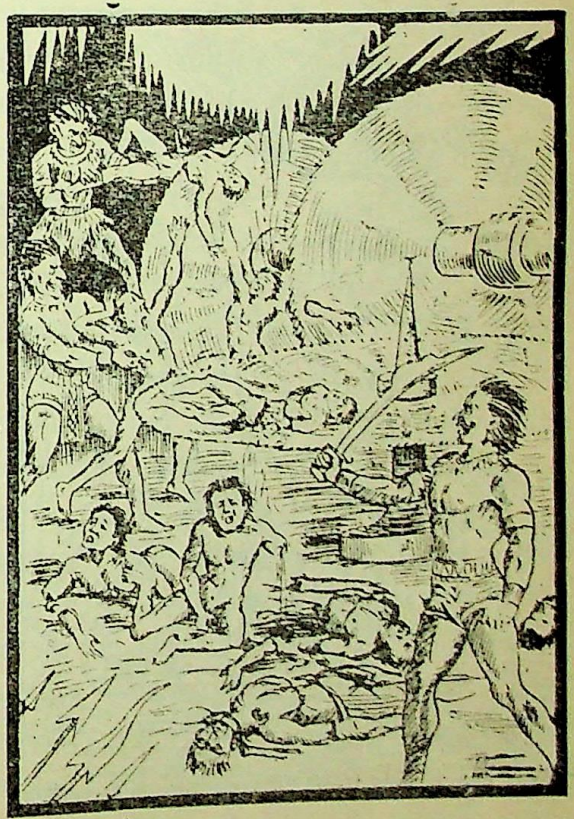

निकृन्तन नरक [पृष्ठ ६६०]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असिपत्रवन नरक [पृष्ठ ६६०]

तप्तकुम्भ नरक [पृष्ठ ६६०]

गौओंको जल पीनेसे रोकनेवालोंकी गति [पृष्ठ ६६०]

पर-धन और पर-स्त्रीपर कुदृष्टि डालनेवालोंकी गति [पृष्ठ ६६१]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हत्या तथा पृथ्वीका अपहरण करनेवाले और धरोहरको हड़प लेनेवाले पापी उस नरकमें डालकर प्रलयकालतक जलाये जाते हैं। तदनन्तर **३-रौरव** नामक नरक है, जो प्रज्वलित वज्रमय बाणोंसे व्याप्त रहता है। उसका विस्तार साठ हजार योजनका है। उस नरकमें गिराये हुए मनुष्य जलते हुए बाणोंसे विंधकर यातना भोगते हैं। झूठी गवाही देनेवाले मनुष्य उसमें ईखकी भाँति पेरे जाते हैं। उसके बाद **४-मञ्जूष** नामक नरक है, जो लोहेसे बना हुआ है। वह सदा प्रज्वलित रहता है। उसमें वे ही डालकर जलाये जाते हैं, जो दूसरोंको निरपराध बंदी बनाते हैं। **५-अप्रतिष्ठ** नामक नरक पीब, मूत्र और विष्ठाका भंडार है। उसमें ब्राह्मणको पीड़ा देनेवाला पापी नीचे मुँह करके गिराया जाता है। **६-विलेपक** नामका घोर नरक लाहकी आगसे जलता रहता है। उसमें मदिरा पीनेवाले द्विज डालकर जलाये जाते हैं। **७-महाप्रभ** नामसे विख्यात नरक बहुत ऊँचा है। उसमें चमकता हुआ शूल गड़ा होता है। जो लोग पति-पत्नीमें भेद डालते हैं, उन्हें वहीं शूलसे छेदा जाता है। उसके बाद **८-जयन्ती** नामक अत्यन्त घोर नरक है, जहाँ लोहेकी बहुत बड़ी चट्टान पड़ी रहती है। परायी स्त्रियोंके साथ सम्भोग करनेवाले मनुष्य उसीके नीचे दबाये जाते हैं। **९-शाल्मलि** नरक जलते हुए सुदृढ़ काँटोंसे व्याप्त है। जो स्त्री अनेक पुरुषोंके साथ सम्भोग करती है, उसे उस शाल्मल नामक वृक्षका आलिङ्गन करना पड़ता है। उस समय वह पीड़ासे व्याकुल हो उठती है। जो लोग सदा झूठ बोलते और दूसरोंके मर्मको चोट पहुँचानेवाली वाणी मुँहसे निकालते हैं, मृत्युके बाद उनकी जिह्वा यमदूतोंद्वारा काट ली जाती है। जो आसक्तिके साथ कटाक्षपूर्वक परायी स्त्रीकी ओर देखते हैं, यमराजके दूत बाण मारकर उनकी आँखें फोड़ देते हैं। जो लोग माता, बहिन, कन्या और पुत्रवधूके साथ समागम तथा स्त्री, बालक और बूढ़ोंकी हत्या करते हैं, उनकी भी यही दशा होती है। वे चौदह इन्द्रोंकी आयुपर्यन्त नरकयातनामें पड़े रहते हैं। **१०-महारौरव** नामक नरक ज्वालाओंसे परिपूर्ण तथा अत्यन्त भयंकर है। उसका विस्तार चौदह हजार योजन है। जो मूढ़ नगर, गाँव, घर अथवा खेतमें आग लगाते हैं, वे एक कल्पतक उस नरकमें पकाये जाते हैं। **११-तामिस्र** नरकका विस्तार एक लाख योजन है। वहाँ सदा खड्ग, पट्टिश और मुद्गरोंकी मार पड़ती रहती है, इससे वह बड़ा भयंकर स्थान पड़ता है। यमराजके दूत चोरोंको उसीमें डालकर शूल, शक्ति, गदा और खड्गसे उन्हें तीन सौ कल्पोंतक पीटते रहते हैं। **१२-महातामिस्र** नामक नरक और भी दुःखदायी है। उसका विस्तार तामिस्रकी अपेक्षा दूना है। उसमें जोंकें भरी हुई हैं और निरन्तर अन्धकार छाया रहता है। जो माता, पिता और मित्रकी हत्या करनेवाले तथा विश्वासघाती हैं, वे जबतक यह पृथ्वी रहती है, तबतक उसमें पड़े रहते हैं और जोंकें निरन्तर उनका रक्त चूसती रहती हैं। **१३-असिपत्रवन** नामक नरक तो बहुत ही कष्ट देनेवाला है। उसका विस्तार दस हजार योजन है। उसमें अग्निके समान प्रज्वलित खड्ग पत्तोंके रूपमें व्याप्त हैं। वहाँ गिराया हुआ पापी खड्गकी धारके समान पत्तोंद्वारा क्षत-विक्षत हो जाता है। उसके शरीरमें सैकड़ों घाव हो जाते हैं। मित्रघाती मनुष्य उसमें एक कल्पतक रखकर काटा जाता है। **१४-करम्भबालुका** नामक नरक दस हजार योजन विस्तीर्ण है। उसका आकार कुएँकी तरह है। उसमें जलती हुई बालू, अँगारे और काँटे भरे हुए हैं। जो भयंकर उपायोंद्वारा किसी मनुष्यको जला देता है, वह उक्त नरकमें एक लाख दस हजार तीन सौ वर्षोंतक जलाया और विदीर्ण किया जाता है।

१५-काकोल नामक नरक कीड़ों और पीबसे भरा रहता है। जो दुष्टात्मा मानव दूसरोंको न देकर अकेला ही मिष्टान्न उड़ाता है, वह उसीमें गिराया जाता है। **१६-कुड्मल** नरक विष्ठा, मूत्र और रक्तसे भरा होता है। जो लोग पञ्चयज्ञोंका अनुष्ठान नहीं करते, वे उसीमें गिराये जाते हैं। **१७-महाभीम** नरक अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त मांस और रक्तसे पूर्ण है। अभक्ष्य-भक्षण करनेवाले नीच मनुष्य उसमें गिरते हैं। **१८-महावट** नरक मुर्दोंसे भरा होता है। वह बहुत-से कीटोंसे व्याप्त रहता है। जो मनुष्य अपनी कन्या बेचता है, वह नीचे मुँह करके उसमें गिराया जाता है। **१९-तिलपाक** नामसे प्रसिद्ध नरक बहुत ही भयंकर बताया गया है। जो लोग दूसरोंको पीड़ा देते हैं, वे उसमें तिलकी भाँति पेरे जाते हैं। **२०-तैलपाक** नरकमें खौलता हुआ तेल भूमिपर बहता रहता है। जो मित्रों तथा शरणागतोंकी हत्या करते हैं, वे उसीमें पकाये जाते हैं। **२१-वज्रकपाट** नरक वज्रमयी शृङ्खलासे व्याप्त रहता है। जिन लोगोंने दूध बेचनेका व्यवसाय किया है, उन्हें वहाँ निर्दयतापूर्वक पीड़ा दी जाती है। **२२-निरुच्छ्वास** नरक अन्धकारसे पूर्ण और वायुसे रहित होता है। जो ब्राह्मणको दिये जानेवाले दानमें रुकावट डालता है, वह निश्चेष्ट करके उसमें डाल दिया जाता है। **२३-अङ्गारोपचय** नामक नरक दहकते हुए अँगारोंसे प्रज्वलित रहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। जो लोग देनेकी प्रतिज्ञा करके भी ब्राह्मणको दान नहीं देते, वे उसीमें जलाये जाते हैं। २४-**महापायी** नरकका विस्तार एक लाख योजन है। जो सदा असत्य बोला करते हैं, उन्हें नीचे मुख करके उसीमें डाल दिया जाता है। २५-**महाज्वाल** नामक नरक सदा आगकी लपटोंसे प्रकाशित एवं भयंकर होता है। जो मनुष्य पापमें मन लगाते हैं, उन्हें दीर्घकालतक उसीमें जलाया जाता है। २६-**क्रकच** नामक नरकमें वज्रकी धारके समान तीखे आरे लगे होते हैं। उसमें अगम्या स्त्रीके साथ समागम करनेवाले मनुष्योंको उन्हीं आरोंसे चीरा जाता है। २७-**गुडपाक** नरक खौलते हुए गुड़के अनेक कुण्डोंसे व्याप्त है। जो मनुष्य वर्णसंकरता फैलाता है, वह उसीमें डालकर जलाया जाता है।

२८-**क्षुरधार** नामक नरक तीखे उस्तुरोंसे भरा रहता है। जो लोग ब्राह्मणोंकी भूमि हड़प लेते हैं, वे एक कल्पतक उसीमें डालकर काटे जाते हैं। २९-**अम्बरीष** नामक नरक प्रलयाग्निके समान प्रज्वलित रहता है। सुवर्णकी चोरी करनेवाला मनुष्य करोड़ कल्पोंतक उसमें दग्ध किया जाता है। ३०-**वज्र-कुठार** नामक नरक वज्रसे व्याप्त है। पेड़ काटनेवाले पापी मनुष्य उसीमें डालकर काटे जाते हैं। ३१-**परिताप** नामक नरक भी प्रलयाग्निसे उद्दीप्त रहता है। विष देने तथा मधुकी चोरी करनेवाला पापी उसीमें यातना भोगता है। ३२-**कालसूत्र** नरक वज्रमय सूतसे निर्मित है। जो लोग दूसरोंकी खेती नष्ट करते हैं, वे उसीमें घुमाये जाते हैं, जिससे उनका अङ्ग छिन्न-भिन्न हो जाता है। ३३-**कश्मल** नरक मुख और नाकके मलसे भरा होता है। मांसकी रुचि रखनेवाला मनुष्य उसमें एक कल्पतक रक्खा जाता है। ३४-**उग्रगन्ध** नामक नरक लार, मूत्र और विष्ठासे भरा होता है। जो पितरोंको पिण्ड नहीं देते, वे उसी नरकमें डाले जाते हैं। ३५-**दुर्धर** नरक जोंकों और बिच्छुओंसे भरा रहता है। सूदखोर मनुष्य उसमें दस हजार वर्षोंतक पड़ा रहता है। ३६-**वज्रमहापीड** नामक नरक वज्रसे ही निर्मित है। जो दूसरोंके धन-धान्य और सुवर्णकी चोरी करते हैं, उन्हें उसीमें डालकर यातना दी जाती है। यमदूत उन चोरोंको छूरोंसे क्षण-क्षणपर काटते रहते हैं। जो मूर्ख किसी प्राणीकी हत्या करके उसे कौए और गृध्रकी भाँति खाते हैं, उन्हें एक कल्पतक अपने ही शरीरका मांस खाना पड़ता है। जो दूसरोंके आसन, शय्या और वस्त्रका अपहरण करते हैं, उन्हें यमदूत शक्ति और तोमरोंसे विदीर्ण करते हैं। जिन खोटी बुद्धिवाले पुरुषोंने लोगोंके फल अथवा पत्ते भी चुराये हैं, उन्हें क्रोधमें भरे हुए यमदूत तिनकोंकी आगमें जला डालते हैं। जो मनुष्य पराये धन और परायी स्त्रीके प्रति सदा दूषित भाव रखता है, यमदूत उसकी छातीमें जलता हुआ शूल गाड़ देते हैं। जो मानव मन, वाणी और क्रियाद्वारा धर्मसे विमुख रहते हैं, उन्हें यमलोकमें बड़ी भयंकर यातना भोगनी पड़ती है। इस प्रकार लाखों, करोड़ों और अरबों नरक हैं, जहाँ पापी मनुष्य अपने कर्मोंका फल भोगते हैं। इस लोकमें थोड़ा-सा भी पापकर्म करनेपर यमलोकमें भयंकर नरकके भीतर घोर यातना सहनी पड़ती है। मूढ़ मनुष्य साधु पुरुषोंद्वारा बताये हुए धर्मयुक्त वचनोंको नहीं सुनते। जब कोई उनसे परलोककी चर्चा करता है, तब वे झट यही उत्तर देते हैं—'किसने स्वर्ग और नरकको प्रत्यक्ष देखा है।' ऐसे मूढ लोग दिन-रात प्रयत्नपूर्वक पाप करते हैं। धर्मका आचरण तो वे भूलकर भी नहीं करते। इस प्रकार जो इसी लोकमें कर्मोंके फलका भोग होना मानते हैं, परलोकके प्रति जिनकी तनिक भी आस्था नहीं है, ऐसे नराधम भयंकर नरकोंमें पड़ते हैं। नरकका निवास अत्यन्त दुःखदायी और स्वर्गवास सुख देनेवाला है। मनुष्य शुभकर्म करनेसे स्वर्ग पाते हैं और अशुभकर्म करके नरकोंमें पड़ते हैं।

धर्मसे यमलोकमें सुखपूर्वक गति तथा भगवद्भक्तिके प्रभावका वर्णन

मुनियोंने कहा—अहो! यमलोकके मार्गमें तो बड़ा भयंकर दुःख होता है। साधुश्रेष्ठ! आपने उन दुःखोंके साथ ही घोर नरकों तथा दक्षिणद्वारका भी वर्णन किया। ब्रह्मन्! उस भयानक मार्गमें कष्टोंसे बचनेका कोई उपाय है या नहीं? यदि है तो बताइये, किस उपायसे मनुष्य यमलोकमें सुखपूर्वक जा सकते हैं?

व्यासजीने कहा—मुनिवरो! जो लोग इस लोकमें धर्मपरायण हो अहिंसाका पालन करते, गुरुजनोंकी सेवामें संलग्न रहते और देवता तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं, वे स्त्री और पुत्रोंसहित जिस प्रकार उस मार्गसे यात्रा करते हैं, वह बतलाता हूँ। उपर्युक्त पुण्यात्मा पुरुष सुवर्णमय ध्वजाओंसे सुशोभित भाँति-भाँतिके दिव्य विमानोंपर आरूढ़ हो धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जो ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक नाना प्रकारकी वस्तुएँ दानमें देते हैं, वे उस महान् पथपर सुखसे यात्रा करते हैं। जो ब्राह्मणोंको, ब्राह्मणोंमें भी विशेषतः श्रोत्रियोंको अत्यन्त भक्तिपूर्वक उत्तम रीतिसे तैयार किया हुआ अन्न देते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, वे सुसज्जित विमानोंद्वारा धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जो सदा सत्य बोलते और बाहर-भीतरसे शुद्ध रहते हैं, वे भी देवताओंके समान कान्तिमान् शरीर धारणकर विमानोंद्वारा यमराजके भवनमें जाते हैं। जो धर्मज्ञ पुरुष जीविकारहित दीन-दुर्बल साधुओंको भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे पवित्र गोदान करते हैं, वे मणिजटित दिव्य विमानोंद्वारा धर्मराजके लोकमें जाते हैं। जो जूता, छाता, शय्या, आसन, वस्त्र और आभूषण दान करते हैं, वे दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत हो हाथी, रथ और घोड़ोंकी सवारीसे वहाँकी यात्रा करते हैं। उनके ऊपर सोने-चाँदीका छत्र लगा रहता है। जो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको विशुद्ध हृदयसे भक्तिपूर्वक गुड़का रस और भात देते हैं, वे सुवर्णमय वाहनोंद्वारा यमलोकमें जाते हैं। जो ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक शुद्ध एवं सुसंस्कृत दूध, दही, घी और गुड़ दान करते हैं, वे चक्रवाक पक्षियोंसे जुड़े हुए सुवर्णमय विमानोंद्वारा यात्रा करते हैं। उस समय गन्धर्वगण वाद्योंद्वारा उनकी सेवा करते हैं। जो सुगन्धित पुष्प दान करते हैं, वे हंसयुक्त विमानोंसे धर्मराजके नगरको जाते हैं। जो श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक तिल, तिलमयी धेनु अथवा घृतमयी धेनु दान करते हैं, वे चन्द्रमण्डलके समान उज्ज्वल विमानोंद्वारा यमराजके भवनमें प्रवेश करते हैं। उस समय गन्धर्वगण उनका सुयश गाते रहते हैं। इस लोकमें जिनके बनवाये हुए कुएँ, बावड़ी, तालाब, सरोवर, दीर्घिका, पुष्करिणी तथा शीतल जलाशय शोभा पाते हैं, वे दिव्य घण्टानादसे मुखरित सुवर्ण और चन्द्रमाके समान कान्तिमान् विमानोंद्वारा यात्रा करते हैं। मार्गमें उन्हें सुख देनेके लिये दिव्य पंखे डुलाये जाते हैं। जो लोग समस्त प्राणियोंके जीवनभूत जलका दान करते हैं, वे पिपासासे रहित हो दिव्य विमानोंपर बैठकर सुखपूर्वक उस महान् पथकी यात्रा करते हैं। जिन्होंने ब्राह्मणोंको लकड़ीकी बनी खड़ाऊँ, सवारी, पीढ़ा और आसन दान किये हैं, वे उस मार्गमें सुखसे जाते हैं। वे विमानोंपर बैठकर सोने और मणियोंके बने हुए उत्तम पीढ़ोंपर पैर रखकर यात्रा करते हैं।

जो मनुष्य दूसरोंके उपकारके लिये फल और पुष्पोंसे सुशोभित विचित्र बगीचे लगाते हैं, वे वृक्षोंकी रमणीय एवं शीतल छायामें सुखपूर्वक यात्रा करते हैं। जो लोग सोना, चाँदी, मूँगा तथा मोती दान करते हैं, वे सुवर्णनिर्मित उज्ज्वल विमानोंपर बैठकर यमलोकमें जाते हैं। भूमिदान करनेवाले पुरुष सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओंसे तृप्त हो उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंपर बैठकर देदीप्यमान शरीरसे धर्मराजके नगरको जाते हैं। जो ब्राह्मणोंके लिये भक्तिपूर्वक उत्तम गन्ध, अगर, कपूर, पुष्प और धूपका दान करते हैं, वे मनोहर गन्ध, सुन्दर वेष, उत्तम कान्ति और श्रेष्ठ आभूषणोंसे विभूषित हो विचित्र विमानोंद्वारा धर्मनगरकी यात्रा करते हैं। दीप-दान करनेवाले मनुष्य अग्निके तुल्य प्रकाशमान होकर सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंद्वारा दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए चलते हैं। जो गृह अथवा रहनेके लिये स्थान देते हैं, वे अरुणोदयकी-सी कान्तिवाले सुवर्णमण्डित गृहोंके साथ धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जलपात्र, कुंडी और कमण्डलु दान करनेवाले मानव अप्सराओंसे पूजित हो महान् गजराजोंपर बैठकर यात्रा करते हैं। जो ब्राह्मणोंको सिर और पैरमें मलनेके लिये तेल तथा नहाने और पीनेके लिये जल देते हैं, वे घोड़ोंपर सवार होकर यमलोकमें जाते हैं। जो रास्तेके थके-माँदे दुर्बल ब्राह्मणोंको अपने यहाँ ठहराते हैं, वे चक्रवोंसे जुड़े हुए दिव्य विमानोंपर बैठकर सुखसे यात्रा करते हैं। जो स्वागतपूर्वक आसन देकर ब्राह्मणकी पूजा करता है, वह अत्यन्त प्रसन्न होकर सुखसे उस मार्गपर जाता है।

जो 'पापहरे!' इत्यादिका उच्चारण करके गौको मस्तक झुकाता है, वह सुखसे यमलोकके मार्गपर आगे बढ़ता है। जो शठता और दम्भका परित्याग करके एक समय भोजन करते हैं, वे हंसयुक्त विमानोंद्वारा सुखपूर्वक यमलोककी यात्रा करते हैं। जो जितेन्द्रिय पुरुष एक दिन उपवास करके दूसरे दिन एक समय भोजन करते हैं, वे मोरोंसे जुड़े हुए विमानोंद्वारा धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जो नियमपूर्वक व्रतका पालन करते हुए तीसरे दिन एक समय भोजन करते हैं, वे हाथियोंसे जुड़े हुए दिव्य रथोंपर आसीन हो यमराजके लोकमें जाते हैं। जो नित्य पवित्र रहकर इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए छठे दिन आहार ग्रहण करते हैं, वे साक्षात् शचीपति इन्द्रके समान ऐरावतकी पीठपर बैठकर यात्रा करते हैं। जो एक पक्षतक उपवास करके अन्न ग्रहण करते हैं, वे बाघोंसे जुड़े हुए विमानोंद्वारा धर्मराजके नगरमें जाते हैं। उस समय देवता और असुर उनकी सेवामें उपस्थित रहते हैं। जो जितेन्द्रिय रहकर एक मासतक उपवास करते हैं, वे सूर्यके समान देदीप्यमान रथोंपर बैठकर यमलोककी यात्रा करते हैं। जो स्त्री अथवा गौकी रक्षाके लिये युद्धमें प्राणत्याग करता है, वह सूर्यके समान कान्तिमान् शरीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारण करके देवकन्याओंद्वारा सेवित हो धर्मनगरकी यात्रा करता है।

जो भगवान् विष्णुमें भक्ति रखते हुए जितेन्द्रियभावसे तीर्थोंकी यात्रा करते हैं, वे सुखदायक विमानोंसे सुशोभित हो उस भयंकर पथकी यात्रा करते हैं। जो श्रेष्ठ द्विज प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन करते हैं, वे तपाये हुए सुवर्णसदृश विमानोंद्वारा सुखपूर्वक यमलोकमें जाते हैं। जो दूसरोंको पीड़ा नहीं देते और भृत्योंका भरण-पोषण करते हैं, वे सुवर्णनिर्मित उज्ज्वल विमानोंपर बैठकर सुखसे यात्रा करते हैं। जो समस्त प्राणियोंके प्रति क्षमाभाव रखते, सबको अभय देते, क्रोध, मोह और मदसे मुक्त रहते तथा इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं, वे महान् तेजसे सम्पन्न हो पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशमान विमानपर बैठकर यमराजकी पुरीमें जाते हैं। उस समय देवता और गन्धर्व उनकी सेवामें खड़े रहते हैं। 'जो सत्य और पवित्रतासे युक्त रहकर कभी भी मांसाहार नहीं करते, वे भी धर्मराजके नगरमें सुखसे ही यात्रा करते हैं। जो एक हजार गौओंका दान करता है और जो कभी मांस-भक्षण नहीं करता, वे दोनों समान हैं—यह बात पूर्वकालमें वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ साक्षात् ब्रह्माजीने कही थी। ब्राह्मणो! सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो पुण्य होता है और समस्त यज्ञोंके अनुष्ठानसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही या उसके समान फल मांस न खानेसे भी प्राप्त होता है।'* इस प्रकार दान और व्रतमें तत्पर रहनेवाले धर्मात्मा पुरुष विमानों-द्वारा सुखपूर्वक यमलोकमें जाते हैं, जहाँ सूर्यनन्दन यम विराजमान रहते हैं। धार्मिक पुरुषोंको देखकर यमराज स्वयं ही स्वागतपूर्वक उन्हें आसन देते और पाद्य, अर्घ्य तथा प्रिय वचनोंद्वारा उनका सम्मान करते हैं। वे कहते हैं—'पुण्यात्मा पुरुषो! आपलोग धन्य हैं। आप अपने आत्माका कल्याण करनेवाले महात्मा हैं; क्योंकि आपने दिव्य सुखके लिये शुभ-कर्मोंका अनुष्ठान किया है। अब इस विमानपर बैठकर उस अनुपम स्वर्गलोकको जाइये, जहाँ समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं। वहाँ महान् भोगोंका उपभोग करके अन्तमें पुण्य क्षीण होनेपर जो थोड़ा अशुभ कर्म शेष रहेगा, उसका फल यहाँ आकर भोगियेगा।'

धर्मात्मा पुरुष अपने पुण्योंके प्रभावसे धर्मराजको कोमल हृदयवाले अपने पिताके तुल्य देखते हैं, इसलिये धर्मका सदा सेवन करना चाहिये। धर्म मोक्षरूप फलका देनेवाला है। धर्मसे ही अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धि बतायी गयी है। धर्म ही माता, पिता और भ्राता है। धर्म ही अपना रक्षक और सुहृद् है। स्वामी, सखा, पालक तथा धारण-पोषण करनेवाला धर्म ही है।

जो मनुष्य नरकासुरका विनाश करनेवाले भगवान् वासुदेवके भक्त हैं, वे स्वप्नमें भी यमराज अथवा नरकोंको नहीं देखते। जो दैत्यों और दानवोंका संहार करनेवाले आदि-अन्तरहित भगवान् नारायणको प्रतिदिन नमस्कार करते हैं, वे भी यमराजको नहीं देखते। जो मन, वाणी और क्रियाके द्वारा भगवान् अच्युतकी शरणमें चले गये हैं, उनपर यमराजका वश नहीं चलता। वे मोक्षरूप फलके भागी होते हैं। ब्राह्मणो! जो मनुष्य प्रतिदिन जगन्नाथ श्रीनारायणको नमस्कार करते हैं, वे वैकुण्ठधामके सिवा अन्यत्र नहीं जाते। श्रीविष्णुको नमस्कार करके मनुष्य यमदूतोंको, यमलोकके मार्गको, यम-पुरीको तथा वहाँके नरकोंको किसी प्रकार नहीं देख पाते। मोहमें पड़कर अनेकों बार पाप कर लेनेपर भी यदि मानव सर्वपापहारी श्रीहरिको नमस्कार करते हैं तो वे नरकमें नहीं पड़ते। जो लोग शठतासे भी सदा भगवान् जनार्दनका स्मरण करते हैं, वे भी देहत्यागके पश्चात् रोग-शोकसे रहित श्रीविष्णु-धामको प्राप्त होते हैं। अत्यन्त क्रोधमें आसक्त होकर भी जो कभी श्रीहरिके नामोंका कीर्तन करता है, वह भी चेदिराज शिशुपालकी भाँति सम्पूर्ण दोषोंका क्षय हो जानेसे मोक्षको प्राप्त करता है।

धर्मकी महिमा तथा अधर्मकी गतिका निरूपण

मुनियोंने कहा—भगवन्! आप सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता तथा सब शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण हैं। कृपया बताइये—पिता, माता, पुत्र, गुरु, जातिवाले, सम्बन्धी और मित्रवर्ग—इनमेंसे कौन मरनेवाले प्राणीका विशेष सहायक होता है? लोग तो मृतकके शरीरको काठ और मिट्टीके ढेलेकी भाँति छोड़कर चल देते हैं। फिर परलोकमें कौन उसके साथ जाता है?

---

* ये च मांसं न खादन्ति सत्यशौचसमन्विताः।
तेऽपि यान्ति सुखेनैव धर्मराजपुरं नराः॥
गोसहस्रं तु यो दद्याद्यच्च मांसं न भक्षयेत्।
समावेतौ पुरा प्राह ब्रह्मा वेदविदां वरः॥
सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम्।
अमांसभक्षणे विप्रास्तच्च तत्समम्॥
(२१६। ६३, ६५-६६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यासजी बोले—विप्रवरो ! प्राणी अकेला ही जन्म लेता, अकेला ही मरता, अकेला ही दुर्गम संकटोंको पार करता और अकेला ही दुर्गतिमें पड़ता है। पिता, माता, भ्राता, पुत्र, गुरु, जातिवाले, सम्बन्धी तथा मित्रवर्ग—इनमेंसे कोई भी मरनेवालेका साथ नहीं देता। घरके लोग मृत व्यक्तिके शरीरको काठ और मिट्टीके ढेलेकी भाँति त्याग देते और दो घड़ी रोकर उससे मुँह मोड़कर चले जाते हैं। वे सब लोग तो त्याग देते हैं, किंतु धर्म उसका त्याग नहीं करता। वह अकेला ही जीवके साथ जाता है; अतः धर्म ही सच्चा सहायक है। इसलिये मनुष्योंको सदा धर्मका सेवन करना चाहिये। धर्मयुक्त प्राणी उत्तम स्वर्गगतिको प्राप्त होता है। इसी प्रकार अधर्मयुक्त मानव नरकमें पड़ता है; अतः विद्वान् पुरुष पापसे प्राप्त होनेवाले धनमें अनुराग न रक्खे। एकमात्र धर्म ही मनुष्योंका सहायक बताया गया है। बहुत-से शास्त्रोंका ज्ञाता मनुष्य भी लोभ, मोह, घृणा अथवा भयसे मोहित होकर दूसरेके लिये न करने योग्य कार्य भी कर डालता है। धर्म, अर्थ और काम—तीनों ही इस जीवनके फल हैं। अधर्म-त्यागपूर्वक इन तीनोंकी प्राप्ति करनी चाहिये।

मुनियोंने कहा—भगवन्! आपका यह धर्मयुक्त वचन, जो परम कल्याणका साधन है, हमने सुना। अब हम यह जानना चाहते हैं कि यह शरीर किन तत्त्वोंका समूह है। मनुष्योंका मरा हुआ शरीर तो स्थूलसे सूक्ष्म—अव्यक्तभावको प्राप्त हो जाता है, वह नेत्रोंका विषय नहीं रह जाता; फिर धर्म कैसे उसके साथ जाता है ?

व्यासजी बोले—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज, मन, बुद्धि और आत्मा—ये सदा साथ रहकर धर्मपर दृष्टि रखते हैं। ये समस्त प्राणियोंके शुभाशुभ कर्मोंके निरन्तर साक्षी रहते हैं। इनके साथ धर्म जीवका अनुसरण करता है। जब शरीरसे प्राण निकल जाता है, तब त्वचा, हड्डी, मांस, वीर्य और रक्त भी उस शरीरको छोड़ देते हैं। उस समय जीव धर्मसे युक्त होनेपर ही इस लोक और परलोकमें सुख एवं अभ्युदयको प्राप्त होता है।

किसको कौन-सी योनि मिलती है

मुनियोंने पूछा—भगवन्! आपने यह भलीभाँति समझा दिया कि धर्म किस प्रकार जीवका अनुसरण करता है। अब हम यह जानना चाहते हैं कि [शरीरके कारणभूत] वीर्यकी उत्पत्ति कैसे होती है !

व्यासजीने कहा—द्विजवरो! शरीरमें स्थित जो पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज और मनके अधिष्ठाता देवता हैं, वे जब अन्न ग्रहण करते हैं और उससे मनसहित पृथ्वी आदि पाँचों भूत तृप्त होते हैं, तब उस अन्नसे शुद्ध वीर्य बनता है। उस वीर्यमें कर्मप्रेरित जीव आकर निवास करता है। फिर स्त्रियोंके रजमें मिलकर वह समयानुसार जन्म ग्रहण करता है। पुण्यात्मा प्राणी इस लोकमें जन्म लेनेपर जन्मकालसे ही पुण्यकर्मका उपभोग करता है। वह धर्मके फलका आश्रय लेता है। मनुष्य यदि जन्मसे ही धर्मका सेवन करता है तो सदा सुखका भागी होता है। यदि बीच-बीचमें कभी धर्म और कभी अधर्मका सेवन करता है तो वह सुखके बाद दुःख भी पाता है। पापयुक्त मनुष्य यमलोकमें जाकर महान् कष्ट उठानेके बाद पुनः तिर्यग्योनिमें जन्म लेता है। मोहयुक्त जीव जिस-जिस कर्मसे जिस-जिस योनिमें जन्म लेता है, उसे बतलाता हूँ; सुनो ! परायी स्त्रीके साथ सम्भोग करनेसे मनुष्य पहले तो भेड़िया होता है; फिर क्रमशः कुत्ता, सियार, गीध, साँप, कौआ और बगुला होता है। जो पापात्मा कामसे मोहित होकर अपनी भौजाईके साथ बलात्कार करता है, वह एक वर्षतक नर-कोकिल होता है। मित्र, गुरु तथा राजाकी पत्नीके साथ समागम करनेसे कामात्मा पुरुष मरनेके बाद सूअर होता है। पाँच वर्षोंतक सूअर रहकर मरनेके बाद दस वर्षोंतक बगुला, तीन महीनोंतक चींटी और एक मासतक कीटकी योनिमें पड़ा रहता है। इन सब योनियोंमें जन्म लेनेके बाद वह पुनः कृमियोनिमें उत्पन्न होता और चौदह महीनोंतक जीवित रहता है। इस प्रकार अपने पूर्वपापोंका क्षय करनेके बाद वह फिर मनुष्ययोनिमें जन्म लेता है। जो पहले एकको कन्या देनेकी प्रतिज्ञा करके फिर दूसरेको देना चाहता है, वह भी मरनेपर कीड़ेकी योनिमें जन्म पाता है। उस योनिमें वह तेरह वर्षोंतक जीवित रहता है। फिर अधर्मका क्षय होनेपर वह मनुष्य होता है। जो देवकार्य अथवा पितृकार्य न करके देवताओं और पितरोंको संतुष्ट किये बिना ही मर जाता है, वह कौआ होता है। सौ वर्षोंतक कौएकी योनिमें रहनेके बाद वह मुर्गा होता है। तत्पश्चात् एक मासतक सर्पकी योनिमें निवास करता है। उसके बाद वह मनुष्य होता है। जो पिताके समान बड़े भाईका अपमान करता है, वह मृत्युके बाद क्रौञ्च-योनिमें जन्म लेता है और दस वर्षोंतक जीवन धारण करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्पश्चात् मरनेपर वह मनुष्य होता है। शूद्रजातीय पुरुष ब्राह्मणीके साथ समागम करनेपर कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है। उससे मृत्यु होनेपर वह सूअर होता है। सूअरकी योनिमें जन्म लेते ही रोगसे उसकी मृत्यु हो जाती है। तदनन्तर वह मूर्ख पूर्वोक्त पापके ही फलस्वरूप कुत्तेकी योनिमें उत्पन्न होता है। उसके बाद उसे मानव-शरीरकी प्राप्ति होती है। मानवयोनिमें संतान उत्पन्न करके वह मर जाता है और चूहेका जन्म पाता है। कृतघ्न मनुष्य मृत्युके बाद जब यमराजके लोकमें जाता है, उस समय क्रूर यमदूत उसे बाँधकर भयंकर दण्ड देते हैं। उस दण्डसे उसको बड़ी वेदना होती है। दण्ड, मुद्गर, शूल, भयंकर अग्निदण्ड, असिपत्रवन, तप्तवालुका तथा कूट-शाल्मलि आदि अन्य बहुत-सी घोर यातनाओंका अनुभव करके वह संसारचक्रमें आता और कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है; पंद्रह वर्षोंतक कीड़ा रहनेके बाद मानव-गर्भमें आकर वहाँ जन्म लेनेके पहले ही मर जाता है। इस प्रकार सैकड़ों बार गर्भमें मृत्युका कष्ट भोगकर अनेक बार संसार-बन्धनमें पड़ता है। तत्पश्चात् वह पशु-पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेता है। उसमें बहुत वर्षोंतक कष्ट उठाकर अन्तमें वह कछुआ होता है।

दहीकी चोरी करनेसे मनुष्य बगुला और मेढक होता है। फल, मूल अथवा पूआ चुरानेसे वह चींटी होता है। जलकी चोरी करनेसे कौआ और काँसा चुरानेसे हारीत (हरियल) पक्षी होता है। चाँदीका बर्तन चुरानेवाला कबूतर होता है और सुवर्णमय पात्रका अपहरण करनेसे कृमियोनिमें जन्म लेना पड़ता है। रेशमका कीड़ा चुरानेसे मनुष्य वानर होता है। वस्त्रकी चोरी करनेसे तोतेकी योनिमें जन्म होता है। साड़ी चुरानेवाला मनुष्य मरनेके बाद हंस होता है। रूईका वस्त्र हड़प लेनेवाला मानव मृत्युके पश्चात् कौञ्च होता है। सनका वस्त्र, ऊनी वस्त्र तथा रेशमी वस्त्र चुरानेवाला मनुष्य खरगोश होता है। चूर्णकी चोरी करनेसे मनुष्य दूसरे जन्ममें मोर होता है। अङ्गराग और सुगन्धकी चोरी करनेवाला लोभी मनुष्य छछूँदर होता है। उस योनिमें पंद्रह वर्षोंतक जीवित रहनेके बाद जब पापका क्षय हो जाता है, तब वह मनुष्य-योनिमें जन्म ग्रहण करता है। जो स्त्री दूधकी चोरी करती है, वह बगुली होती है। जो नीच पुरुष स्वयं सशस्त्र होकर वैरसे अथवा धनके लिये किसी शस्त्रहीन पुरुषकी हत्या करता है, वह मरनेपर गदहा होता है। गदहेकी योनिमें दो वर्षोंतक जीवित रहनेके बाद वह शस्त्रद्वारा मारा जाता है; फिर मृगकी योनिमें जन्म लेकर सदा उद्विग्न बना रहता है। मृगयोनिमें एक वर्ष बीतनेपर वह बाणका निशाना बन जाता है। फिर मछलीकी योनिमें जन्म ले वह जालमें फँसा लिया जाता है। चार महीने बीतनेपर वह शिकारी कुत्तेके रूपमें जन्म लेता है। दस वर्षोंतक कुत्ता रहकर पाँच वर्षोंतक व्याघ्रकी योनिमें रहता है। फिर कालक्रमसे पापोंका क्षय होनेपर मनुष्य-योनिमें जन्म ग्रहण करता है। जो मनुष्य खलीमिश्रित अन्नका अपहरण करता है, वह भयंकर चूहा होता है। उसका रंग नेवले-जैसा भूरा होता है। वह पापात्मा प्रतिदिन मनुष्योंको डँसता रहता है। घीकी चोरी करनेवाला दुर्बुद्धि मानव कौआ और बगुला होता है। नमक चुरानेसे चिरिकाक नामक पक्षी होना पड़ता है। जो मनुष्य विश्वासपूर्वक रक्खी हुई धरोहरको हड़प लेता है, वह मृत्युके बाद मछलीकी योनिमें जन्म लेता है। उसके पश्चात् मृत्यु होनेपर फिर मनुष्य होता है। मानव-योनिमें भी उसकी आयु बहुत ही थोड़ी होती है।

ब्राह्मणो! मनुष्य पाप करके तिर्यग्योनिमें जाता है, जहाँ उसे धर्मका कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। जो मनुष्य पाप करके व्रतोंद्वारा उसका प्रायश्चित्त करते हैं, वे सुख और दुःख दोनोंसे युक्त होते हैं। लोभ-मोहसे युक्त पापाचारी मनुष्य निश्चय ही म्लेच्छयोनिमें जन्म लेते हैं। जो लोग जन्मसे ही पापका परित्याग करते हैं, वे नीरोग, रूपवान् और धनी होते हैं। स्त्रियाँ भी ऊपर बताये अनुसार कर्म करनेसे पापकी भागिनी होती हैं और पापयोनिमें पड़े हुए पूर्वोक्त पापियोंकी ही पत्नी बनती हैं। द्विजवरो! चोरीके प्रायः सभी दोष बता दिये गये। यहाँ जो कुछ कहा गया है, वह बहुत संक्षिप्त है; फिर कभी कथा-वार्ताका अवसर आनेपर तुमलोग इस विषयको विस्तारपूर्वक सुन सकते हो। पूर्वकालमें देवर्षियोंकी सभामें उनके प्रश्नानुसार ब्रह्माजीने जो कुछ कहा था, वह सब मैंने तुमलोगोंको बतलाया है। ये सब बातें सुनकर तुम धर्मके अनुष्ठानमें मन लगाओ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चात्ताप तथा दानका माहात्म्य

व्यासजीने कहा—ब्राह्मणो ! जो मोहवश अधर्मका अनुष्ठान कर लेनेपर उसके लिये पुनः सच्चे हृदयसे पश्चात्ताप करता और मनको एकाग्र रखता है, वह पापका सेवन नहीं करता। ज्यों-ज्यों मनुष्यका मन पाप-कर्मकी निन्दा करता है, त्यों-त्यों उसका शरीर उस अधर्मसे दूर होता जाता है। यदि धर्मवादी ब्राह्मणोंके सामने अपना पाप कह दिया जाय तो वह उस पापजनित अपराधसे शीघ्र मुक्त हो जाता है। मनुष्य जैसे-जैसे अपने अधर्मकी बात बारंबार प्रकट करता है, वैसे-ही-वैसे वह एकाग्रचित्त होकर अधर्मको छोड़ता जाता है। जैसे साँप केंचुल छोड़ता है, उसी प्रकार वह पहलेके अनुभव किये हुए पापोंका त्याग करता है। एकाग्रचित्त होकर ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके दान दे। जो मनको ध्यानमें लगाता है, वह उत्तम गतिको प्राप्त करता है।

ब्राह्मणो ! अब मैं दानका फल बतलाता हूँ। सब दानोंमें अन्नदानको श्रेष्ठ बतलाया गया है। धर्मकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह सरलतापूर्वक सब प्रकारके अन्नोंका दान करे। अन्न ही मनुष्योंका जीवन है। उसीसे जीव-जन्तुओंकी उत्पत्ति होती है। अन्नमें ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं; अतः अन्नको श्रेष्ठ बताया जाता है। देवता, ऋषि, पितर और मनुष्य अन्नकी ही प्रशंसा करते हैं; क्योंकि अन्नदानसे मनुष्य स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। स्वाध्यायशील ब्राह्मणोंके लिये न्यायोपार्जित उत्तम अन्नका प्रसन्नचित्तसे दान करना चाहिये। जिसके प्रसन्नचित्तसे दिये हुए अन्नको दस ब्राह्मण भोजन कर लेते हैं, वह कभी पशु-पक्षी आदिकी योनिमें नहीं पड़ता। सदा पापोंमें संलग्न रहनेवाला मनुष्य भी यदि दस हजार ब्राह्मणोंको भोजन करा दे तो वह अधर्मसे मुक्त हो जाता है। वेदोंका अध्ययन करनेवाला ब्राह्मण भिक्षासे अन्न ले आकर यदि किसी स्वाध्यायशील ब्राह्मणको दान कर दे तो वह संसारमें सुख और समृद्धिका भागी होता है। जो क्षत्रिय ब्राह्मणके धनको हानि न पहुँचाकर न्यायतः प्रजाका पालन करते हुए अन्नका उपार्जन करता है और उसे एकाग्रचित्त होकर श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको दान देता है, वह धर्मात्मा है और उस पुण्यके जलसे अपने पापपङ्कको धो डालता है। अपने द्वारा उपार्जित खेतीके अन्नमेंसे छठा भाग राजाको देनेके बाद जो शेष शुद्ध भाग बच जाता है, वह अन्न यदि वैश्य ब्राह्मणको दान करे तो वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो शूद्र प्राणोंको संशयमें डालकर और नाना प्रकारकी कठिनाइयोंको सहकर भी अपने द्वारा उपार्जित शुद्ध अन्नको ब्राह्मणोंके निमित्त दान करता है, वह भी पापोंसे छुटकारा पा जाता है। जो कोई भी मनुष्य श्रेष्ठ वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको हर्षपूर्वक न्यायोपार्जित अन्नका दान करता है, उसका पाप छूट जाता है। संसारमें अन्न बलकी वृद्धि करनेवाला है। उसका दान करनेसे मनुष्य बलवान् बनता है। सत्पुरुषोंके मार्गपर चलनेसे सब पाप दूर हो जाते हैं। दानवेत्ता पुरुषोंने जो मार्ग बताया है और जिसपर मनीषी पुरुष चलते हैं, वही अन्नदाताओंका भी मार्ग है। उन्हींसे सनातन धर्म है। मनुष्यको सभी अवस्थाओंमें न्यायोपार्जित अन्नका दान करना चाहिये; क्योंकि अन्न सर्वोत्तम गति है। अन्नदानसे मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है। इस लोकमें उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं और मृत्युके बाद भी वह सुखका भागी होता है।

इस प्रकार पुण्यवान् मनुष्य पापोंसे मुक्त होता है। अतः अन्यायरहित अन्नका दान करना चाहिये। जो गृहस्थ सदा प्राणाग्निहोत्रपूर्वक अन्न-भोजन करता है, वह अन्नदानसे प्रत्येक दिनको सफल बनाता है। जो मनुष्य वेद, न्याय, धर्म और इतिहासके ज्ञाता सौ विद्वानोंको प्रतिदिन भोजन कराता है, वह घोर नरकमें नहीं पड़ता और संसार-बन्धनमें भी नहीं बँधता; अपितु सम्पूर्ण कामनाओंसे तृप्त हो मृत्युके बाद सुखका भागी होता है। इस प्रकार पुण्यकर्मसे युक्त मनुष्य निश्चिन्त होकर आनन्दका भागी होता है। उसे रूप, कीर्ति और धनकी प्राप्ति होती है। ब्राह्मणो ! इस प्रकार मैंने तुम्हें अन्नदानका महान् फल बतलाया। यह सभी धर्मों और दानोंका मूल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोक-यातना

(लेखक—परमहंसजी महाराज, श्रीरामकुटिया, रेवदर)

मनुष्यका सबसे बड़ा वैभव है—उसकी मनुष्यता। वही उसके सारे कार्य-कलापकी आत्मा है। आत्माकी रक्षाके लिये परमात्माने उसके सहयोगमें विद्या, धन, स्त्री, पुत्र, तीर्थ, गुरु और गीतादि उपादेय पदार्थोंकी प्ररचना कर रक्खी है। इसीलिये हमारे अनुभवी पूर्वपुरुष कह गये हैं—**'आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि।'**

'समस्त जगत्के वैभवोंकी बाजी लगाकर भी मनुष्यको अपनी मनुष्यता (आत्मा) की रक्षा करनी चाहिये।'

मनुष्य संसारका सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहा जाता है। **'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।** देहधारियोंमेंसे मनुष्य ही मेरी बराबरीको रखनेवाला सनातन अंश है।' ऐसा गीतामें भगवद्वचन है। पर आज ईमानदारीसे हम देखें तो मनुष्य संसारमें 'सर्वाधिक पतित पशु' बन गया है। संयमकी दृष्टिसे पशु हमसे श्रेष्ठ है। वह आज भी प्रकृतिके नियमोंसे बँधा है और सौहार्दकी दृष्टिसे भी हम उससे पीछे हैं।

धर्मोंके नामपर, साम्प्रदायिकताके नामपर, प्रान्तीयताके नामपर, जातियोंके नामपर, रंगोंके नामपर, भाषाके नामपर, स्थानोंकी सीमाके नामपर, सभ्यता और स्वार्थके इस नवयुगमें असभ्य राष्ट्रीयताके नामपर मनुष्यने अपनी मनुष्यताको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला है। वह आज आत्मपदसे गिरकर पशु-पिशाच बना चौरासी लाख योनियोंमें परिभ्रमण कर रहा है। मनुष्यतासे रहित होकर उच्छृङ्खलतापूर्वक कहता है कि 'भगवान् कहाँ है? परलोक कहाँ है? नरक कहाँ है? आदि'। हाँ! यहाँ मनमाना अत्याचार करके तुम झूठी गवाहियोंद्वारा जजोंको धोखेमें डाल सकते हो, रुपये-पैसेका लालच दे न्यायमार्गसे उन्हें विचलित कर सकते हो, अपने इच्छानुसार ठीक न्याय नहीं हुआ है—ऐसा कह-कर उनके न्यायका प्रतिवाद कर सकते हो और आगेकी अदालतोंमें उसके लिये भी अपील कर सकते हो—पर भूल करके भी कभी ऐसा मत सोच बैठना कि उस अन्तर्यामी सर्वव्यापी परमेश्वरसे कुछ भी छिपा है। उसकी अदालतमें भूलके लिये स्थान नहीं है। अन्याय, भ्रष्टाचार, बेईमानी, धोखाबाजी, झूठ और रिश्वत तो उसके घरतक पहुँच ही नहीं पाती। धनी-गरीब, छोटा-बड़ा, ब्राह्मण-चाण्डाल, राजा-रंक—वहाँ एक ही दृष्टिसे देखे जाते हैं। धन, सम्पत्ति, मान, उपाधि, पद और गौरव—यहाँके न्यायमें लेशमात्र भी बाधा नहीं डाल सकते। भला, किसमें ऐसी सामर्थ्य है, जो वहाँ धोखा दे सके? वहाँ शुद्ध, सच्चा और ठीक-ठीक न्याय होता है। उसे तुम्हारी प्रत्येक प्रक्रिया-का पता है—गुप्तसे गुप्त स्थानमें, गहनसे गहन वन-पर्वतकी कन्दरामें, घोर-से-घोर भयावनी काली रातमें, अनेक तालोंके अंदर बंद होकर भी, अनेक वेष-भूषा धारणकर जो कार्य अथवा विचार तुमने किये हैं—उसके पास सबकी नोंध है। शुभाशुभ कर्मोंके फैसलेकी कहीं भी अपील नहीं होती। उसका न्याय सर्वमान्य है। सबको बाध्य होकर उसके न्यायके आगे नतमस्तक हो जाना पड़ता है।

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥
(मानस २। २१८। २)

जैसा किया है, वैसा भोगा जाता है। जैसा पुण्य-पाप किया है, वैसा परिणाम-फल सुख-दुःख प्राप्त होता है। कर्मकी सारे जगत्में प्रधानता मानी गयी है। इस जीवनमें जो नाना प्रकारके दुःख हमलोगोंको उठाने पड़ते हैं, सब हमारे पूर्वकर्मोंके ही फलभोग हैं। परंतु यह देह मुख्यतः कर्मका साधन है और यह जीवलोक मुख्यतः **'कर्मलोक'** कहा जाता है। इस शरीरके रहते जो भोग प्राप्त होता है, वह कितना भी अधिक होनेपर भी उस भोगसे तो कम है, जिस भोगकी पूर्णताके लिये मनुष्यको मृत्युके पश्चात् भोगदेह प्राप्त होता है। यह भोगदेह दो प्रकारका है—एक वह देह जिससे पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप—स्वर्गादि उत्तमलोकोंका भोग भोगा जाता है और दूसरा वह देह जिससे पापकर्मोंके फल-स्वरूप नाना प्रकारकी नारकीय-यातना भोगी जाती है। मृत्युके पश्चात् मनुष्यको नवीन मनुष्य-देह नहीं प्राप्त होता। नया देह प्राप्त होनेके पूर्व मनोमय और प्राणमय देहके सुकृत-दुष्कृतके सुख-दुःखरूप फल उसे भोगने पड़ते हैं। सुकृतोंके स्वर्गादि सुखरूप फल हैं, जो इस संसारमें प्राप्त होनेवाले सुखोंसे अनन्तगुण अधिक हैं। संसारमें मनुष्य अपने क्षणिक सुखके लिये नाना प्रकारके दुष्कर्म कर डालता है। उसे इस बातका पता नहीं कि इन दुष्कर्मोंका फल अन्तमें भोगना पड़ेगा। दुष्कर्मोंके नरकादि दुःखरूप फल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवित्र श्रीमान्‌के घर जन्म

ज्ञानवान् योगियोंके कुलमें जन्म

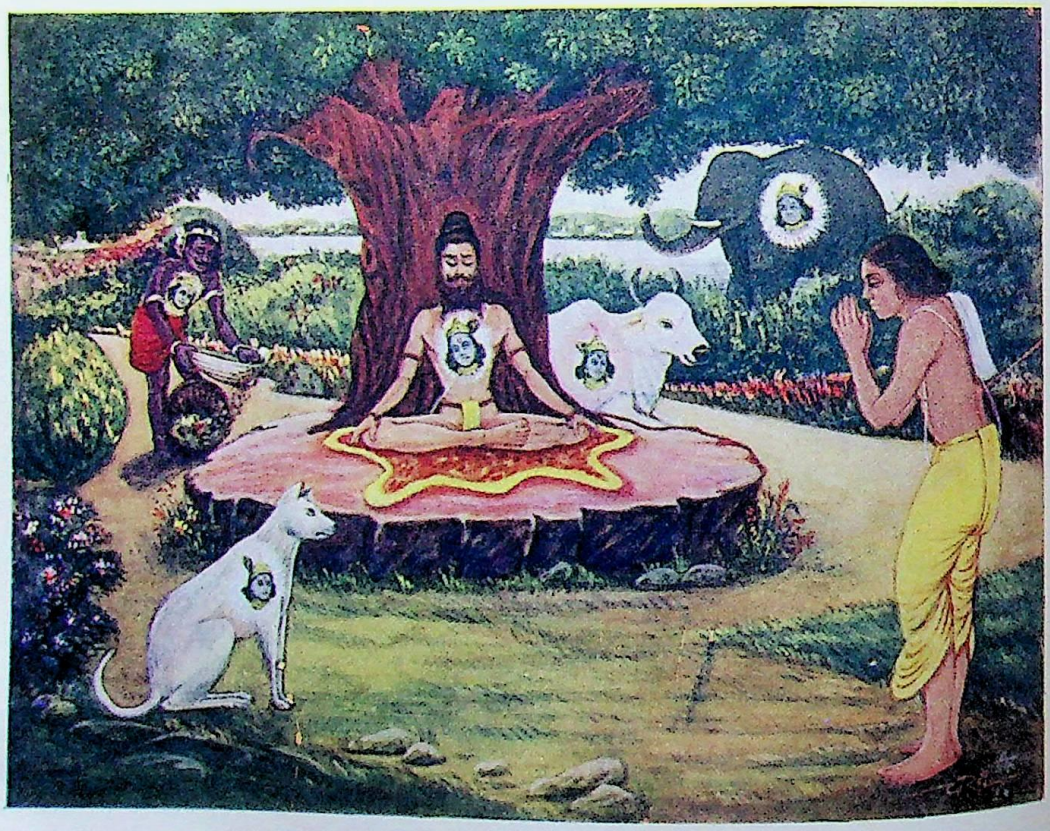

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, जो इस जीवनमें प्राप्त होनेवाले दुःखोंसे अनन्तगुण अधिक है। यदि मनुष्यको इन नरकोंकी खबर हो तो वह अनेक ऐसे दुष्कर्मोंसे बचता है, जिनके प्रति अतिभीषण कल्पना परिणाममें अज्ञानके कारण उसे यहाँ नहीं होती। कुछ लोग तो इन नरकोंकी बात सुन उसे असत्य समझने-में ही अपना कल्याण मानते हैं। कुछ लोग यह भी तर्क करते हैं कि—'मनुष्य जब मर जाता है तब उसका शरीर तो यहाँ छूट जाता है, फिर इन दुःखोंको भोगता ही कौन है?' पर उन्हें यह मालूम होना चाहिये कि सुख-दुःख जितने मन और प्राणको होते हैं, उतने शरीरको नहीं होते! मरनेके बाद मन और प्राण तो रहते ही हैं और पार्थिव शरीर छूटनेपर जीवको आतिवाहिक या यातना-देह प्राप्त होता है। यातना-शरीर इसको इसीलिये कहते हैं कि यह इस प्रकारके उपादानोंसे बना होता है कि वह यातना-भोग ही करता रहता है। जैसे—जलती आगमें दग्ध होनेपर भी नाश नहीं होता, केवल यन्त्रणा-भोग करता रहता है। जलते हुए तेलके कड़ाहमें गिरना, कोड़ोंकी मारका पड़ना, सर्पोंके जहर-उपदंशों और कटीले पेड़-पत्तोंद्वारा क्षत-विक्षत होना, इत्यादि—ये सब कष्ट जिसे प्राप्त होकर भोगना पड़ता है, वह यातना-देह ही है। पार्थिव शरीरको जलने, गिरने, मरने, मारे जाने आदिके जो अनुभव होते हैं, वे सब कष्ट यातना-शरीरको होते हैं। शास्त्रमें हजारों नरकोंकी संख्या है। श्रीमद्भागवतमें जिन मुख्य २८ नरकोंका वर्णन है, उन नरकोंके नाम हैं—

१ तामिस्र, २ अन्धतामिस्र, ३ रौरव, ४महारौरव, ५ कुम्भीपाक, ६ कालसूत्र, ७ असिपत्रवन, ८सूकरमुख, ९ अंधकूप, १० कृमिभोज, ११ संदंश, १२ वज्रकंटकशाल्मली, १३ तप्तसूर्मि, १४ वैतरणी, १५ पूयोद, १६ प्राणरोध, १७ विशसन, १८ लालाभक्ष, १९ सारमेयादन, २० अवीचि, २१ अयःपान, २२ क्षारकर्दम, २३ रक्षोगणभोजन, २४ शूलप्रोत, २५ दन्दशूक, २६ अवटनिरोध, २७ पर्यावर्तन और २८ सूचीमुख। इनमें पापियोंको दीर्घकालतक यातनाशरीरसे भयानक पीड़ाएँ भोगनी पड़ती हैं।

उपर्युक्त अट्ठाईस नरक मुख्य हैं; अन्यथा साधारण नरक तो सहस्रों हैं। जितने प्रकारके दुष्कर्म हैं, उतने ही नरक हो सकते हैं, ऐसा समझा जा सकता है। यह समुचित भी है। कर्म और उसका फल, किसी वृक्षके बीज और फलके समान ही है। उसका परस्पर विच्छेद नहीं हो सकता। यातना-देहसे दुष्कर्मोंके फलभोगके पश्चात् जीव नरकसे छूटकर कर्मानुसार कीट, पक्षी, पशु और वृक्षके रूपमें नया जन्म लेता है। वह भी कर्मफल-भोग है। चौरासीके बाद यदि मनुष्य-जन्म होता है, तो उसमें भी पूर्वकर्मोंके शेष फलको इस नवीन शरीरमें भोगना पड़ता है, ताकि भावी सुधार-साधनका अवसर मिले। कर्मोंके अनुसार प्रकृतिकी व्यवस्था होती है; प्रकृति सत्, रजस् और तमस्—इन तीन भेदोंकी सम्मिश्रण होती है। तदनुसार वर्ण, रूप, जन्म, कर्म, स्वभाव, बुद्धि, श्रद्धा, धारणा, स्थान और जीवन प्राप्त होता है। पुण्यशाली पूर्वजन्मार्जित कर्मफलसे श्रेष्ठ जन्मको प्राप्त होता है। कहा है—

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥

(गीता ६। ४१-४२)

और पापकर्मा जीवोंके लिये भगवद्वचन है—

प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥

(गीता १६। १६)

उन्हें नरकोंमें गिरकर, यन्त्रणा भोगनेके बाद अधम गतिकी प्राप्ति होती है। भगवान् कहते हैं—

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(गीता १६। २०)

'अर्जुन! वे मूढ़जीव मुझको न पाकर जन्म-जन्ममें आसुरी (कूकर-सूकर आदि) योनिको प्राप्त होते हैं। फिर उससे अति नीच गतिको (घोर नरकोंको) प्राप्त होते हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमराजकी दूतोंको चेतावनी

(स्कन्दपुराण, काशीखण्डसे)

मथुरामें शिवशर्मा नामक एक ब्राह्मण थे। उन्होंने विधिवत् अर्थपूर्वक वेदोंका अध्ययन किया था। इसके अतिरिक्त वे धर्मशास्त्र, पुराण, न्याय-मीमांसा, धनुर्वेद-आयुर्वेद, अर्थशास्त्र-मन्त्रशास्त्र आदि विद्याओंमें पारङ्गत थे। नाना प्रकारकी कलाओं और विभिन्न देशोंकी भाषा तथा लिपिको भलीभाँति जानते थे। अपने जीवनमें उन्होंने बहुत धन उपार्जन किया। जब बुढ़ापा आया तो वे अपने लड़कोंको सारा धन बाँटकर निश्चिन्त हो गये। परंतु बुढ़ापा आनेपर उनको एक बड़ी चिन्ता सताने लगी। वे सोचने लगे कि 'अरे! मैंने तो सारा जीवन विद्या पढ़ने तथा धनोपार्जनमें बिता दिया। मैंने कर्मपाशसे मुक्त करनेवाले शंकरजीकी आराधना नहीं की। सारे पापोंको हर लेनेवाले विष्णु-भगवान्‌की पूजासे वञ्चित रहा। मनुष्यकी सारी मनोकामनाको पूर्ण करनेवाले गणेशजीकी अर्चना नहीं की। अन्धकारका नाश करनेवाले सूर्य भगवान्‌की अर्चासे वञ्चित रहा। भव-बन्धनसे छुड़ानेवाली जगद्धात्री महामाया भगवतीकी पूजा मैंने नहीं की। मैंने देवताओंको यज्ञ-हवन आदिके द्वारा संतुष्ट नहीं किया। पापोंको शान्त करनेवाली तुलसीके वनकी सेवा मैंने नहीं की। ब्राह्मणोंको मधुर रससे पूर्ण अन्नके द्वारा तृप्त नहीं किया। इहलोक-परलोकमें सुख प्रदान करनेवाले वृक्षोंको नहीं लगाया। मैंने यमलोकसे बचानेवाला दान-पुण्य नहीं किया। मैंने सुपात्रको सवत्सा गौ दानमें नहीं दी। मातृ-ऋणसे उद्धार पानेके लिये मैंने वापी-तड़ाग नहीं खुदवाया। स्वर्ग प्रदान करनेवाली अतिथि-सेवासे भी मैं वञ्चित रहा। मैंने किसीको कन्याके विवाहमें धनसे साहाय्य नहीं किया। मैंने कोई देवमन्दिर नहीं बनवाया और न ब्राह्मणोंको वस्त्र-दान किया।'

इस प्रकार शास्त्रमें वर्णित नाना प्रकारके शुभकर्मोंका स्मरण उनको होने लगा और अनुष्ठान न करनेके कारण उनका चित्त चिन्तित हो उठा। तब उन्होंने सोचा—

यावत् स्वस्थोऽस्ति मे देहो यावन्नेन्द्रियविक्लवः।
तावत् स्वश्रेयसां हेतुं तीर्थयात्रां करोम्यहम्॥

'जबतक मेरा शरीर स्वस्थ है, जबतक आँख-कान आदि इन्द्रियाँ दुरुस्त हैं, तबतक मैं अपने कल्याणके लिये तीर्थयात्रा करूँगा।' ऐसा सोचकर उन्होंने तीर्थयात्रा शुरू कर दी और क्रमशः अयोध्या, प्रयाग, काशी, अवन्ती, द्वारका, हरिद्वार आदि तीर्थोंमें जाकर वे स्नान-दर्शन, पूजन आदि अनुष्ठानोंमें रत रहे। हरिद्वारमें तीर्थोपवास करके रात्रिमें जागरण करके भगवत्स्मरण-चिन्तनमें बिताया। दूसरे दिन वे अति दारुण ज्वरसे आक्रान्त हुए और वहीं उनका देहान्त हो गया।

तत्काल वैकुण्ठसे एक विमान आकर वहाँ उपस्थित हुआ और पार्थिव शरीरको छोड़कर सूक्ष्मशरीरसे शिवशर्मा चतुर्भुज विष्णुरूपमें उस विमानपर आरूढ़ हो गये। विष्णुरूपमें ही दिव्य-रूपधारी दो विष्णुदूत, जो उस विमानके साथ आये थे, उनको लेकर चले। रास्तेमें पिशाचलोक, गुह्यकलोक, गन्धर्वलोक, विद्याधरलोक आदि होते हुए यमपुरके पाससे होकर विमान आगे बढ़ा। यमराजने आकर विष्णुलोकके यात्री शिवशर्माको धन्यवाद दिया और अपनी पुरीमें लौट गये। शिवशर्माने दूतोंसे पूछा—'यमराज तो बहुत शालीनतापूर्वक बातें कर गये और देखनेमें भी उनकी आकृति अत्यन्त सौम्य थी। मृत्युलोकमें तो लोग उनका बड़ा भयानक रूपमें वर्णन करते हैं, क्या बात है?'

दूतोंने उत्तर दिया—'महाराज! पुण्यकर्म करनेवाले जीवोंसे यमराज बहुत प्रसन्न रहते हैं और स्वर्ग जाते समय उनसे प्रसन्नमुद्रामें बातें करते हैं। परंतु पापकर्म करनेवालोंके प्रति वे अत्यन्त क्रूर होकर उनको नरकमें अतिक्रूर भावसे देखते हैं और उनके पाप-कर्मोंका भयानक पीड़ाजनक फल प्रदान करनेसे नहीं चूकते। यमराजके दूत जो पापियोंका प्राण लेने जाते हैं, वे भी अति भीषण रूपवाले और परम क्रूरतापूर्वक बर्ताव करनेवाले होते हैं। परंतु यमराजने अपने दूतोंको बारंबार चेतावनी देते हुए कहा है कि 'जो मनुष्य अष्टोत्तरशतनामका जप करते हों, उनसे तुमलोग दूर रहना, उनके पास न जाना।' यमराजने मृत्युलोकके जीवोंका कितना उपकार कर रक्खा है। वह यमराजकृत अष्टोत्तर-शतनाम स्तोत्र इस प्रकार है—

गोविन्द माधव मुकुन्द हरे मुरारे!
शम्भो शिवेश शशिशेखर शूलपाणे!
दामोदराच्युत जनार्दन वासुदेव!
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति॥१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गङ्गाधरान्धकरिपो हर नीलकण्ठ !
वैकुण्ठ कैटभरिपो कमठाब्जपाणे !
भूतेश खण्डपरशो मृड चण्डिकेश !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ २ ॥

विष्णो नृसिंह मधुसूदन चक्रपाणे !
गौरीपते गिरिश शंकर चन्द्रचूड !
नारायणासुरनिबर्हण शार्ङ्गपाणे !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ ३ ॥

मृत्युंजयोग्रविषमेक्षण कामशत्रो !
श्रीकान्त पीतवसनाम्बुदनील शौरे !
ईशान कृत्तिवसन त्रिदशैकनाथ !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ ४ ॥

लक्ष्मीपते मधुरिपो पुरुषोत्तमाद्य
श्रीकण्ठ दिग्वसन शान्त पिनाकपाणे !
आनन्दकन्द धरणीधर पद्मनाभ
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ ५ ॥

सर्वेश्वर त्रिपुरसूदन देवदेव !
ब्रह्मण्यदेव गरुडध्वज शङ्खपाणे !
यक्षोरगाभरण बालमृगाङ्कमौले !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ ६ ॥

श्रीराम राघव रमेश्वर रावणारे !
भूतेश मन्मथरिपो प्रमथाधिनाथ !
चाणूरमर्दन हृषीकपते मुरारे !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ ७ ॥

शूलिन् गिरीश रजनीशकलावतंस !
कंसप्रणाशन सनातन केशिनाश !
भर्ग त्रिनेत्र भव भूतपते पुरारे !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ ८ ॥

गोपीपते यदुपते वसुदेवसूनो !
कर्पूरगौर वृषभध्वज भालनेत्र !
गोवर्द्धनोद्धरण धर्मधुरीण गोप !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ ९ ॥

स्थाणो त्रिलोचन पिनाकधर स्मरारे !
कृष्णानिरुद्ध कमलाकर कल्मषारे !
विश्वेश्वर त्रिपथगार्द्रजटाकलाप !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ १० ॥

इस भगवान् हरि-हरके १०८ नामवाले स्तोत्रका प्रतिदिन पाठ करना चाहिये। इससे यम-भय दूर होता है।

यमराजके द्वारा अपने दूतोंको उपदेश तथा चेतावनी

(श्रीमद्भागवत, षष्ठस्कन्ध, अध्याय १ से ३)

अजामिल पहले बहुत संयमी तथा सदाचारी था। पर एक बार उसने क्षणभरके लिये नेत्रोंसे विषयासक्त लोगोंकी विषय-क्रीडा देख ली, इससे उसके अंदर छिपी हुई विषयासक्ति उमड़ उठी और वह महापापी बन गया। उसने पूर्वाभ्यास-वश अपने एक पुत्रका नाम 'नारायण' रक्खा था। मरते समय उसे लेने भयानक आकृतिवाले तीन यमदूत आ गये। उसने डरके मारे व्याकुल होकर पुत्रके लिये ऊँचे स्वरसे—'नारायण' पुकारा। भगवान्‌के पार्षदोंने मरते समय उसे 'नारायण' नामका उच्चारण करते सुनकर, वहाँ प्रकट होकर बड़े शास्त्रार्थके बाद उसे भयानक यमदूतोंसे बलपूर्वक छुड़ा लिया। अजामिल यमदूतोंके फंदेसे छूटकर निर्भय और स्वस्थ हो गया। अपमानित यमदूतोंने आकर यमराजसे सारी घटना बताकर पूछा कि हम तो आपको ही पाप-पुण्यके निर्णयका दण्डदाता तथा सर्वोपरि शासक मानते थे। क्या आपसे भी ऊपर कोई और है ?' इसपर यमराजने चराचरके स्वामी भगवान्‌को सर्वोपरि बताकर कहा कि 'यह उनके नामोच्चारणकी महिमा है।' इसके बाद उन्होंने अपने दूतोंको रहस्य बताकर जो चेतावनी दी, उसीका कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है। यमराजने कहा—

"स्वयं भगवान्‌ने ही धर्मकी मर्यादाका निर्माण किया है। उसे न तो ऋषि जानते हैं और न देवता या सिद्धगण ही। ऐसी स्थितिमें मनुष्य, विद्याधर, चारण और असुर आदि तो जान ही कैसे सकते हैं। भगवान्‌के द्वारा निर्मित 'भागवतधर्म' परम शुद्ध और अत्यन्त गोपनीय है। उसे जानना बहुत ही कठिन है। जो उसे जान लेता है, वह भगवत्स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। दूतो ! भागवतधर्मका रहस्य हम बारह व्यक्ति ही जानते हैं—ब्रह्माजी, देवर्षि नारद, भगवान् शंकर, सनत्कुमार, कपिलदेव, स्वायम्भुव मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्मपितामह, बलि, शुकदेवजी और मैं (धर्मराज)। इस जगत्‌में जीवोंके लिये बस, यही सबसे बड़ा कर्तव्य—परम धर्म है कि वे नाम-कीर्तन आदि उपायोंसे भगवान्‌के चरणोंमें भक्तिभाव प्राप्त कर लें—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः ।
अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥
(श्रीमद्भागवत ६ । ३ । २३)

"प्रिय दूतो ! भगवान्‌के नामोच्चारणकी महिमा तो देखो, अजामिल-जैसा पापी भी एक बार नामोच्चारण करनेमात्र-से मृत्युपाशसे छुटकारा पा गया । भगवान्‌के गुण, लीला और नामोंका भलीभाँति कीर्तन मनुष्योंके पापोंका सर्वथा विनाश कर दे, यह कोई उसका बहुत बड़ा फल नहीं है; क्योंकि अत्यन्त पापी अजामिलने मरनेके समय चञ्चल चित्तसे अपने पुत्रका नाम 'नारायण' उच्चारण किया । इस नामाभास मात्र-से ही उसके सारे पाप तो क्षीण हो ही गये, मुक्तिकी प्राप्ति भी हो गयी । बड़े-बड़े विद्वानोंकी बुद्धि भी भगवान्‌की मायासे मोहित हो जाती है । वे कर्मोंके मीठे-मीठे फलोंका वर्णन करनेवाली अर्थवादरूपिणी वेदवाणीमें ही मोहित हो जाते हैं और यज्ञ-यागादि बड़े-बड़े कर्मोंमें ही संलग्न रहते हैं तथा इस सुगमातिसुगम भगवन्नामकी महिमाको नहीं जानते । यह कितने खेदकी बात है ।

"प्रिय दूतो ! बुद्धिमान् पुरुष ऐसा विचारकर भगवान् अनन्तमें ही सम्पूर्ण अन्तःकरणसे अपना भक्तिभाव स्थापित करते हैं । वे मेरे दण्डके पात्र नहीं हैं । पहली बात तो यह है कि वे पाप करते ही नहीं; परंतु यदि कदाचित् संयोगवश कोई पाप बन भी जाय, तो उसे भगवान्‌का गुणगान तत्काल नष्ट कर देता है । जो समदर्शी साधु भगवान्‌को ही अपना साध्य और साधन—दोनों समझकर उनपर निर्भर हैं, बड़े-बड़े देवता और सिद्ध उनके पवित्र चरित्रोंका प्रेमसे गान करते रहते हैं । मेरे दूतो ! भगवान्‌की गदा उनकी सदा रक्षा करती रहती है । उनके पास तुमलोग कभी भूलकर भी मत फटकना । उन्हें दण्ड देनेकी सामर्थ्य न हममें है और न साक्षात् कालमें ही । बड़े-बड़े परमहंस दिव्य रसके लोभसे सम्पूर्ण जगत् और शरीर आदिसे भी अपनी अहंता-ममता हटाकर, अकिंचन होकर निरन्तर भगवान् मुकुन्दके पादारविन्दका मकरन्द-रस पान करते रहते हैं । जो दुष्ट उस दिव्य रससे विमुख हैं और नरकके दरवाजे घर-गृहस्थीकी तृष्णाका बोझा बाँधकर उसे ढो रहे हैं, उन्हींको मेरे पास बार-बार लाया करो ।

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥
(श्रीमद्भागवत ६ । ३ । २९)

"जिनकी जीभ भगवान्‌के गुणों और नामोंका उच्चारण नहीं करती, जिनका चित्त उनके चरणारविन्दोंका चिन्तन नहीं करता और जिनका सिर एक बार भी भगवान् श्रीकृष्ण-के चरणोंमें नहीं झुकता, उन भगवत्सेवाविमुख पापियोंको ही मेरे पास लाया करो ।"

"आज मेरे दूतोंने भगवान्‌के पार्षदोंका अपराध करके स्वयं भगवान्‌का ही तिरस्कार किया है । यह मेरा ही अपराध है । पुराणपुरुष भगवान् नारायण हमलोगोंका यह अपराध क्षमा करें । हम अज्ञानी होनेपर भी हैं उनके निजजन, और उनकी आज्ञा पानेके लिये अञ्जलि बाँधकर सदा उत्सुक रहते हैं । अतः परम महिमान्वित भगवान्‌के लिये यही योग्य है कि वे क्षमा कर दें । मैं उन सर्वान्तर्यामी एकरस अनन्त प्रभुको नमस्कार करता हूँ ।"

प्रभु-पदकमल-रसका ग्रहण करनेवाला जन्म-मरणको नहीं प्राप्त होता

न वै जनो जातु कथंचनाव्रजेन्मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्ग संसृतिम् ।
स्मरन्मुकुन्दाङ्घ्र्युपगूहनं पुनर्विहातुमच्छेन्न रसग्रहो यतः ॥

मित्र ! मुकुन्दकी सेवा करनेवाला मनुष्य अन्य (संसारी) पुरुषोंकी तरह आवागमन (जन्म-मृत्यु) को प्राप्त नहीं होता; मुकुन्द-चरणारविन्दोंके आभ्यन्तरिक रसको स्मरण करता हुआ वह फिर उन्हें छोड़नेकी इच्छा नहीं करता; क्योंकि यह जीव रस (परमानन्दरस) का ग्रहण करनेवाला है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेत-योनि

(लेखक—श्रीविश्वनाथजी झा, कविराज)

इस संसारमें मनुष्ययोनि, पशुयोनि, तिर्यग्योनि आदि दृश्य योनियोंके अतिरिक्त अदृश्य एक प्रेतयोनि भी है। संसारमें जितने पदार्थ हैं— मनुष्य, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, अन्न-फल-मूल सब-के-सब पाञ्चभौतिक हैं। ये प्रेत भी पाञ्च-भौतिक हैं; पर पार्थक्य इतना ही है कि मनुष्य-पशु-पक्षियोंमें पृथ्वीका अंशविशेष है; अतः ये स्थूल दृश्य हैं; प्रेत वायव्य है अर्थात् वायुप्रधान है। इनमें पृथ्वीका अंश नहींके बराबर है। अतः प्रेत अदृश्य एवं अत्यन्त बलवान् होता है। अदृश्य होनेके कारण यद्यपि उसका प्रत्यक्ष प्रमाण कोई नहीं दे सकता, केवल अनुमानद्वारा जाना जाता है। अथर्ववेदमें इनके निराकरणके लिये तथा मारण-प्रयोगके लिये अनेक यन्त्र-मन्त्र हैं। तन्त्रमें तो यन्त्र-मन्त्रोंकी भरमार है। आयुर्वेदमें भी 'भूतविद्या' नामका एक विभाग ही पृथक् है। पुराणोंमें 'भूतोऽमी देवयोनयः'—ऐसा लिखा है। मृत व्यक्तियों-का जब श्राद्ध होता है तो उनको प्रेत कहकर पिण्ड दिया जाता है—'प्रेतत्वविमुक्तये एष पिण्डस्तुभ्यं स्वधा॥' ऐसा कहा जाता है। इन सभीसे प्रमाणित होता है कि प्रेतयोनि अवश्य है। इसमें अनेक विभाग हैं। आयुर्वेदके अनुसार १८ प्रकारके प्रेत हैं—जैसे प्रसूता स्त्री या नवयुवती (निःसंतान) मरती है तो 'चुड़ैल', कुमारी कन्या मरती है तो 'देवी' होती है। आदि।

इन सभीकी उत्पत्ति अपने जन्मार्जित पापोंसे, अभिचारसे, अकालमृत्युसे, ओझा-डाइनके मारण-प्रयोगसे, अन्त्येष्टि एवं श्राद्ध विधिपूर्वक तथा पवित्र न होनेसे होती है।

सुश्रुत, वाग्भट्टके बालप्रकरणमें भूतादि ग्रहोंके निवारणके लिये प्रयोग अधिक देखा जाता है।

इनको खानेकी इच्छा अधिक रहती है। इच्छा होती है कि समुद्र सोख लें, परंतु कण्ठनलिकाका छिद्र सुईके बराबर रहनेके कारण इच्छानुसार जल नहीं पी सकते तथा खा नहीं सकते, अतः क्रोध अतिशय रहता है। जरा-सा अपराध होनेपर वे बहुत बिगड़ जाते हैं और उपद्रव करने लगते हैं। अच्छी-अच्छी चीजोंपर इनका अधिकार कुछ भी नहीं रहता। यहाँतक कि उन्हें वे स्पर्श भी नहीं कर सकते, उपभोगकी तो कोई बात ही नहीं। अपवित्र वस्तुओंपर पूर्ण अधिकार रहता है। अतएव जब वे बिगड़ते हैं तो अपवित्र वस्तुओंको ही काममें लाते हैं। वे बहुत दुखी रहते हैं। चिड़चिड़ा स्वभाव होता है। जीवितावस्थामें जिस स्वभावके रहते हैं, वही स्वभाव प्रेतावस्थामें भी रहता है। जब ये कभी-कभी शरीर धारण करते हैं, तब जीवितावस्थाके सदृश ही धारण करते हैं। इनका शरीर गलित कुष्ठ-सा रहता है। बलिष्ठ इतने होते हैं कि बड़े-बड़े वृक्षोंको उखाड़ फेंक देते हैं। अपवित्र व्यक्तियोंपर, स्त्री रही तो अपनी सौतिनपर विशेष आक्रमण करते हैं। इनका जो कुछ वक्तव्य रहता है, उसे आक्रान्त व्यक्तियोंके द्वारा प्रायः प्रकट करते हैं। यदि ब्राह्मण रहेगा तो वह अनुनय-विनयसे उपद्रव नहीं करेगा; और अन्त्यज मरकर प्रेत होगा तो वह अत्यन्त क्रूर उपद्रवकारी होगा।

जहाँ पूजा-पाठ, पुराणपाठ, गायत्री-जाप, भागवत-पारायण, देवताओंके मन्दिर होंगे, वहाँ प्रेत प्रायः नहीं जायगा। जो संध्या-वन्दन, गायत्री-जप करेंगे या गायत्रीसे शिखा बाँधेंगे, उनपर भी आक्रमण नहीं करेगा।

इनका प्रतीकार करनेके लिये गाँवमें ओझा लोग रहते हैं। गयामें श्राद्ध करनेसे भी प्रेतत्व छूटता है।

विश्वासके लिये आँखों देखी हुई बातोंको मैं लिखता हूँ—

करीब दस-ग्यारह वर्ष हुए, पं० श्रीयुत जयानन्द-कुमारजी-(उस समय ये पोस्टमास्टर-जेनरल थे) के यहाँ लड़कोंका यज्ञोपवीत था, जिसमें बड़े-बड़े महान् व्यक्ति आये थे। एक महात्माजी भी थे, जिनको प्रेतसिद्ध था। इनमें एक बड़े आदमी थे, जो नित्य बेलका शरबत पीते थे; परंतु नौकर बेल लाना भूल गया, तब महात्माजीसे लोगोंने कहा। महात्माजीने प्रेतको भेजा। पहली बार बेल नहीं मिला। दुबारा आग्रहपूर्वक कहा गया तो गया और बेल लाकर दे दिया।

महात्माजीने जिनको बेल दिया था, अभी वे जीवित हैं। श्रीमद्भागवत सुननेसे अवश्यमेव प्रेतकी मुक्ति होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमद्भागवतसप्ताहसे प्रेतयोनिका कल्याण

(लेखक—डा० श्रीवासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी, एम्०ए०, पी-एच्० डी०, षडाचार्य)

श्रीमद्भागवत वैष्णवोंका कण्ठहार तो सदासे रहा ही है, साथ ही भारतवर्षके प्रत्येक सम्प्रदायका आदर इसे प्राप्त है। ज्ञान-वैराग्यका भण्डार, भक्तिरसका पारावार, ब्रह्ममय, परमात्ममय, भगवान्मय होनेका श्रेय एक साथ इस ग्रन्थरत्नको उपलब्ध हुआ है। संस्कृत-वाङ्मयमें एकसे बढ़कर एक ग्रन्थरत्न हैं, यहाँतक कि वेदको परमात्माका निःश्वास कहा गया है। वह अपौरुषेय है आदि आदि; किंतु श्रीमद्भागवतको तो भगवान्का प्रत्यक्ष विग्रह कहा गया है[1]। इससे स्पष्ट है कि श्रीमद्भागवत अन्य ग्रन्थोंसे नितान्त विलक्षण, अद्भुत और रसरूप है। तत्त्वार्थदीप-निबन्धमें आचार्य श्रीवल्लभने तो उसके स्कन्धोंको पुरुष भगवान्के अङ्ग सिद्ध करते हुए उसकी और भी अधिक महिमाका गान किया है[2]।

श्रीरूप-सनातन तो इसे प्राणोंसे भी अधिक स्नेह करते थे[3]।

ऐसे विलक्षण ग्रन्थसे, जिसके पठन-पाठनसे शतशः सांसारिक क्लेशोंसे सर्वदाके लिये मुक्ति प्राप्त हो, केवल प्रेतमात्रका उद्धार हो जाना कोई आश्चर्यजनक नहीं है। 'प्रेत-योनि' एक विलक्षण योनि है। विश्वके जन-मानसमें इसके प्रति सदासे अस्तित्वकी छाप किसी-न-किसी प्रकार रही है।

संस्कृत-वाङ्मयमें सर्वप्रथम वेदोंमें प्रेतोंकी चर्चा उपलब्ध होती है। अथर्ववेदमें प्रेतापसारणके लिये मन्त्रपाठ किये गये हैं।[4] ऋग्वेदके उपवेद आयुर्वेदमें भी इस योनिके द्वारा मनुष्योंकी व्याधियोंका संकेत है। स्मृति-ग्रन्थोंमें प्रेतपीडाकी निवृत्तिके लिये विभिन्न उपाय लिखे गये हैं। पुराणोंमें तो अधिकांश रूपमें प्रेतपीड़ाकी चर्चा की गयी है। श्रीमद्भागवतपुराणमें जिस प्रेतकी कथा वर्णित है, वह गाँव-गाँव और नगर-नगरमें अपने नाम और कर्मसे प्रसिद्ध है। इसका नाम धुन्धुकारी था, जो आज भी बाल-वृद्ध-स्त्रीजनोंकी जिह्वापर अपनी स्मृति बनाये हुए है। भागवतका माहात्म्य भागवत ही है। इसके चतुर्थाध्यायमें प्रेतपीडा-प्रसङ्गका वर्णन है।

तुङ्गभद्रा नदीके तटपर एक आत्मदेव नामक ब्राह्मण रहते थे। वे श्रौत-स्मार्त कर्मोंमें निष्णात थे और तेजमें मानो द्वितीय भास्कर ही थे। बड़े ही सदाचारी एवं स्वकर्ममें दक्ष एवं परोपकारी थे। आत्मदेवकी स्त्रीका नाम धुन्धुली था। यह स्वभावमें बड़ी क्रूर थी। पतिके आदेशके विपरीत चलती थी। साधु-संतोंकी निन्दाका रस ही उसे प्रिय था। अपनी कही बात पूर्ण करनेमें वह किसी अकार्यसे न झिझकती थी। यहाँतक कि पतिदेव भी उसकी हठधर्मिताके स्वभावसे पीपलके पेड़की भाँति काँपते थे। वे अपना अधिकांश समय भजन-पूजनमें देवालयोंमें ही निकाल देते थे; क्योंकि घरके क्लेशमय जीवनमें भजनादि सम्पन्न न होते थे।

आत्मदेवके कोई संतान नहीं थी। विवाह हुए वर्षों व्यतीत हो गये; अतः वे अत्यन्त चिन्तित रहते थे। एक दिन दुखी होकर वे वनमें गये और वहाँ एक संन्यासीसे भेंट की। संन्यासीको अपना अभिप्राय सुनाया और पुत्रका वरदान माँगा। संन्यासीने संतानवानोंके कष्ट गिनाये और संन्यासका उपदेश दिया; किंतु आत्मदेव तो संतानहीनके घर और कुलको धिक्कार देते थे। संन्यासीने उन्हें एक फल दिया और कहा कि इसे तुम अपनी स्त्रीको खिलाओगे तो पुत्र प्राप्त करोगे। हर्षमें आत्मदेव पत्नीसे विपरीत बोलना भूल गये और सीधे शब्दोंमें उससे फल खानेको कह दिया। धुन्धुली आत्मदेवके विपरीत चलती थी। उसने वह फल नहीं खाया और फल खानेसे होनेवाले गर्भादि भयंकर परिणामोंकी चर्चा आरम्भ कर दी,—गर्भसे भोजन भी तो कम हो जायगा, यह बड़ी चिन्तनीय बात है और कहीं शुकदेवकी भाँति कई वर्ष वह बालक गर्भमें रहा तो मरण ही होगा एवं चोरोंके आक्रमणके समय दौड़ना भी तो न होगा तथा ननद प्रसूतावस्थामेंघरका धन

---

१. 'तेनेयं वाङ्मयीमूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः।'
(श्रीमद्भा० मा० ३। ६२)

२. तत्त्वार्थदीपनिबन्ध—शास्त्रार्थ-प्रकरण।

३. लघुभागवतामृत।

४. अथर्ववेद—शान्तिसूक्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ले गयी तो कौन बचायेगा, आदि कुतर्क अपरिहार्य थे। इसकी बहिनने अपना गर्भ-बालक धुन्धुलीको देनेका प्रस्ताव किया। वह धन चाहती थी। फलको परीक्षणके लिये गौको दे दिया।

गौसे गोकर्ण नामक बालक हुआ और धुन्धुलीकी बहिनके जो बालक हुआ, उसने वह धुन्धुलीको दे दिया। उसका नाम धुन्धुलीने धुन्धुकारी रक्खा। गर्भकालमें वस्त्रादिसे धुन्धुली अपने उदरको बढ़ा लेती थी और यह व्यक्त कर देती मानो वह गर्भवती है।

गोकर्ण महान् पण्डित और धुन्धुकारी महान् खल बना। बाल्यावस्थामें साथके बालकोंका प्राण-हरण करता, अन्धोंको कूपमें ढकेल देता, स्त्रियोंको छेड़ता एवं कुकर्म-चरणमें लीन रहता था। शवके हाथसे पिण्ड लेकर भाग जाना उसका खेल था। जूआ खेलना, शराब पीकर बेहोश पड़े रहना दिनचर्या थी। सत्संगसे बचनेका ही नहीं, उसमें विघ्न डालनेका प्रयास ही उसका परम लक्ष्य था। पिता उसकी दशासे दुखी थे। एक दिन वे घर छोड़कर वनमें चले गये। माताको वह नित्य पीटता था, फलतः घरके कूपमें गिरकर एक दिन उसने भी प्राण त्याग दिये और गोकर्ण तीर्थयात्राके व्याजसे निकल गये। अब धुन्धुकारी पूर्ण स्वतन्त्र हो गया। वह पाँच वेश्याओंको घरमें रखकर नित्य कुकर्ममें रत रहता था। पशुओंकी हत्या ही उसकी आजीविका बन गयी थी। एक दिन वेश्याओंने गला घोटकर, मुखमें अँगारे डालकर नृशंसतापूर्वक उसकी हत्या कर दी और वे भाग गयीं। इस क्रूर-मृत्युसे धुन्धुकारी घोर प्रेत बना। ग्रामीणजनोंके पशुओंको, बालकोंको हवामें उड़ाकर ले जाता और फेंक देता था। गाँववाले भयभीत हो गये। धुन्धुकारीसे न जीवितावस्थामें सुख मिला, न मरकर। वे बड़े दुखी थे। यह उनके बालकोंकी आये दिन हत्या कर देता। कभी अग्नि लगा देता, कभी पत्थर बरसाया करता था। गोकर्ण यद्यपि गयामें उसे पिण्डदान कर आये थे तथापि गाँववालोंने कहा कि वह तो महान् प्रेत बन गया है। रातमें वह गोकर्णके पास भी आता। कभी अग्निके रूपमें, कभी जलके रूपमें, कभी हाथी-ऊँटके रूपमें, कभी भेड़ेके रूपमें उन्हें दर्शन दिये और एक समय तो साक्षात् मानवाकारमें अपने गलेकी ओर हाथ करता दिखायी दिया। गोकर्ण समझ गये कि यह बोलना चाहता है। उन्होंने तीर्थोंका पानी फेंका और धुन्धुकारीने कहा कि 'भाई गोकर्ण! मैं धुन्धुकारी हूँ, बड़े कष्टमें हूँ। मेरा किसी भी प्रकार इस योनिसे उद्धार करो'।

गोकर्णने कहा कि 'इस समय मुझे विश्राम करने दो; प्रातः तुम्हारी मुक्तिका उपाय करूँगा।' गोकर्णने मध्याह्नमें सूर्यनारायणसे अपने भाईकी मुक्तिका उपाय पूछा तो आकाशवाणी हुई कि 'तुम भागवत-सप्ताह सुनाओ। इससे तुम्हारे भाईकी मुक्ति होगी—

श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहं वाचनं कुरु।
इति सूर्यवचः सर्वैर्धर्मरूपं तु विश्रुतम्॥
(भागवतमा० ५। ४१)

गोकर्णने कथारम्भ की। वायुरूपी धुन्धुकारी भी आया। वह अपनी पृथक् स्थिति नहीं रख सकता था, अतः एक पोले बाँसमें घुस गया। सात दिनमें बाँसकी सातों गाँठ टूट गयीं और धुन्धुकारीकी प्रेतयोनि छूट गयी। वह दिव्य वेष धारणकर गोकर्णके चरणोंमें गिर पड़ा और बड़ी विनती की। सब लोग यह घटना बड़े आश्चर्यसे देख रहे थे। एक प्रेतका प्रत्यक्ष उद्धार था। विश्वमें नयी क्रान्ति थी। तबसे यह निश्चय हो गया कि भागवत-सप्ताहसे प्रेतयोनिका उद्धार होता है।

भूत-प्रेत-पिशाच शिवजीकी सेवामें रहते हैं। चतुर्थ स्कन्ध (५। २५)में सती-चरित्रमें वीरभद्रके साथ इनका भी उल्लेख है। भागवत-माहात्म्यमें सप्ताहके द्वारा प्रेतपीडा-नाशकी घोषणा मुक्तकण्ठसे है—

धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीडाविनाशिनी।
सप्ताहोऽपि तथा धन्यः कृष्णलोकफलप्रदः॥
(५। ५३)

५ अहं भ्राता त्वदीयोऽसि धुन्धुकारीति नामतः। स्वकीयेनैव दोषेण ब्रह्मत्वं नाशितं मया॥
(भा० मा० ५। २७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमद्भागवत-सप्ताहसे प्रेतत्व-मुक्ति

(लेखक—श्रीस्वामीजी श्रीजगन्नाथाचारीजी 'प्राणाचार्य')

यह जीव पूर्वजन्मके कुसंस्कारोंके वशीभूत, बुरी संगति-सहवासके कारण, दैवी सम्पत्तिसे विमुख और आसुरी सम्पत्तिसे युक्त होकर, अपने आत्मा, मन और बुद्धिके कलुषित होनेसे तन, मन, धन एवं मनसा, वाचा, कर्मणासे निन्दनीय तथा अधर्ममय जीवन व्यतीत करता है। अर्थात् उचित कर्तव्योंसे बहिर्मुख होकर, मानवोचित कर्तव्योंका परित्याग कर, आसुरी आचरणोंका परिपालन करने लगता है। अतएव अपने कर्मोंके फलस्वरूप अग्नि, विष और आघात आदि आगन्तुक कारणविशेषसे अकालमृत्युको प्राप्त होता है। तब जीव इस दुर्लभ एवं परम पुनीत मानव-जीवनसे च्युत होकर प्रेतयोनिको प्राप्त करता है।

इस योनिमें भी पूर्वकर्मके संस्कारानुसार सद्गुणों तथा सद्वृत्तिके अभाव एवं अमानुषोचित कुवृत्तियोंकी प्राबल्यता-से—आत्मा, मन एवं बुद्धि आदि प्रमुख उत्तमोत्तम तत्त्वोंके अत्यन्त कलुषित तथा अति मलिन होनेसे यह प्रेतयोनि अत्यन्त दीन-हीन-मलिन एवं दुःखप्रद योनि होती है। इस जीवको इस योनिमें किसी प्रकार शान्ति नहीं मिलती। यह प्रेतजीवन सदा अतृप्त, दुखी, भयभीत, अपवित्र, अविचारी, हिंसक, द्रोही, कामी, क्रोधी, लोभी और मोह-ग्रसित रहता है। इसका निवास जनशून्य (निर्जन) प्रदेश, अन्धकारमय प्रदेश, वृक्ष, अपवित्र स्थान-श्मशान आदिमें होता है। यह प्रकाशसे भयभीत, निशाचारी, कामाचारी एवं वायु मूर्तिवाला, अव्यक्त रूपवाला होता है। प्रेत-जीव मनसा-वाचा-कर्मणासे धर्मविमुख, भ्रष्टाचाररत, मूढ़ होनेसे परम अज्ञानी होता है।

इस अवस्थामें इस प्रेतजीवकी मुक्ति अत्यन्त दुःसाध्य है। यह पापमय योनि है। पूर्वजन्मके महान् दुष्कर्म-जनित पापोंके प्रतिफलस्वरूप यह योनि प्राप्त हुई है। जबतक इसके समस्त पापोंका नाश एवं इसके आत्मा, मन और बुद्धि आदि प्रधान तत्त्वोंका संशोधन एवं निर्मली-करण न हो, तबतक इस योनिसे इस जीवका उद्धार होना या मुक्त होना असम्भव है। अतः उसे पापोंसे रहित तथा सर्वतोभावेन निर्मल एवं मुक्तिके योग्य बनाना कैसे सम्भव हो सकता है? क्योंकि वह सर्वथा असहाय और निरुपाय भी है। ऐसे असहाय एवं निरुपाय जीवपर दयामय भगवान्‌की करुणामयी कृपादृष्टि यदि हो जाय तो ऐसे जीवका उद्धार सम्भव हो सकता है। भगवत्कृपा सब कुछ कर सकती है।

परंतु प्रेत 'तमोऽभिभूत' एवं भगवद्विमुख होनेसे भगवत्कृपाका पात्र नहीं हो सकता। उसे कहीं सत्सङ्ग मिले तो वह विवेक प्राप्त करके भगवत्कृपाका पात्र हो परंतु—

बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥

परंतु सत्सङ्गके लिये भी भगवत्कृपाकी नितान्त आवश्यकता है।

सत्सङ्गकी महिमा गाते हुए स्वयं भगवान्‌ने उद्धवसे कहा है—'उद्धव! सारे सङ्गोंका निवारण करनेवाले सत्सङ्ग-के द्वारा मैं जैसा वशमें होता हूँ, वैसा योग, सांख्य, धर्म, स्वाध्याय, तप, त्याग, इष्ट, पूर्त, दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ, यम, नियम किसीसे नहीं होता।'

(श्रीमद्भागवत ११। १२। १-२)

परंतु प्रेत बेचारा इसे कैसे प्राप्त हो, उसके लिये तो कोई सरल उपाय होना चाहिये। अतएव देवर्षि नारदजीसे सनकादि मुनीश्वर कहते हैं—

प्रलयं हि गमिष्यन्ति श्रीमद्भागवतध्वनेः।
कलेर्दोषा इमे सर्वे सिंहशब्दाद् वृका इव॥

(श्रीमद्भा० मा० २। ६२)

अर्थात् 'श्रीमद्भागवतकी ध्वनिमात्र सुननेसे कलियुगके सारे दोष इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे सिंहकी गर्जना सुनकर भेड़िये भाग जाते हैं।'

एक बार ऐसी ही समस्या महात्मा गोकर्णजीके समक्ष उपस्थित हुई थी। गोकर्णजीका भाई धुन्धुकारी अपने पूर्वजन्मके कुत्सित कर्मोंसे प्रेत हो गया था। उस प्रेतके मोक्षके लिये गोकर्णजीने तीर्थयात्रा, जप-तप, गया-पिण्डदान आदि अनेक प्रायश्चित्त किये, परंतु धुन्धुकारी प्रेतयोनिसे मुक्त नहीं हुआ। तब महात्मा गोकर्णजीने भुवनभास्कर, सर्वलोकसाक्षी श्रीभगवान् सूर्यनारायणका ध्यानकर अपने योग-बल एवं मन्त्रबलसे आकर्षित कर, धुन्धुकारीप्रेतके प्रेत-योनिसे मुक्त होनेका उपाय पूछा था। महात्मा गोकर्णकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान् श्रीसूर्यनारायणने उन्हें यह उपदेश दिया कि—

'श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहं वाचनं कुरु।
(श्रीमद्भा० मा० ५। ४१)

सूर्यनारायणने कहा—'श्रीमद्भागवतसे मुक्ति हो सकती है; इसलिये तुम भागवतका सप्ताह-पारायण करो।' इस उपदेशके अनुसार महात्मा गोकर्णने धुन्धुकारीको श्रीमद्भागवतका सप्ताह-पारायण सुनाया। उस सप्ताह-पारायणके सुननेसे धुन्धुकारी प्रेतकी मुक्ति हो गयी। यह कथा श्रीमद्भागवत-माहात्म्य, अ० ४-५ में विस्तारके साथ वर्णित है।

श्रीसूतजी कहते हैं—

'श्रीमद्भागवतकी कथा देवताओंको भी दुर्लभ है। पूर्वकालमें श्रीमद्भागवतके श्रवणसे ही राजा परीक्षित्‌की मुक्ति हो गयी, जिसे देखकर ब्रह्माजीको भी बड़ा आश्चर्य हुआ था। उन्होंने सत्यलोकमें तराजू बाँधकर सब साधनोंको तौला। अन्य सभी साधन तौलमें हल्के पड़ गये, अपने महत्त्वके कारण भागवत ही सबसे भारी रहा। यह देखकर सभी ऋषियोंको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने कलियुगमें इस भगवद्रूप भागवतशास्त्रको ही पढ़ने-सुननेसे तत्काल मोक्ष देनेवाला निश्चय किया। सप्ताह-विधिसे श्रवण करनेपर यह निश्चय भक्ति प्रदान करता है।'
(श्रीमद्भा० मा० १। १७-२१)

'पूर्वकालमें जिस समय वेद-वेदान्तके पारगामी और गीताकी रचना करनेवाले भगवान् व्यासदेव खिन्न होकर अज्ञान-समुद्रमें गोते खा रहे थे, उस समय आपने ही (नारदजीने) उन्हें (व्यासजीको) चार श्लोकोंमें इसका (भागवतका) उपदेश दिया था। उसे सुनते ही व्यासजीकी सारी चिन्ता दूर हो गयी थी।' यथा—

वेदान्तवेद्यसुस्नाते गीताया अपि कर्तरि।
परितापवति व्यासे मुह्यत्यज्ञानसागरे॥
तदा त्वया पुरा प्रोक्तं चतुःश्लोकसमन्वितम्।
तदीयश्रवणात् सद्यो निर्बाधो बादरायणः॥
(श्रीमद्भा० मा० २। ७२-७३)

इस प्रकार देवर्षि नारदजीसे सनकादि मुनीश्वरोंने श्रीमद्भागवतकी विशिष्टता दिखायी है। वे पुनः कहते हैं—'श्रीमद्भागवतके श्रवणमात्रसे मुक्ति हाथ लग जाती है—

'यस्य श्रवणमात्रेण मुक्तिः करतले स्थिता॥'
(श्रीमद्भा० मा० ३। २४)

'श्रीमद्भागवतके श्रवणमात्रसे श्रीहरि हृदयमें आकर विराजमान हो जाते हैं'—

'यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत्।'
(श्रीमद्भा० मा० ३। २५)

इस ग्रन्थमें १८ हजार श्लोक और बारह स्कन्ध हैं तथा श्रीशुकदेव और राजा परीक्षित्‌का संवाद है।

'जिस घरमें नित्यप्रति श्रीमद्भागवतकी कथा होती है, वह तीर्थरूप हो जाता है और जो लोग उसमें रहते हैं, उनके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेययज्ञ इस शुकशास्त्रकी कथाका सोलहवाँ अंश भी नहीं हो सकते। फलकी दृष्टिसे इस शुकशास्त्र-कथाकी समता गङ्गा, गया, काशी, पुष्कर या प्रयाग—कोई तीर्थ भी नहीं कर सकता।' (श्रीमद्भा० मा० ३। २९, ३०, ३२)

'जो फल तप, योग और समाधिसे भी प्राप्त नहीं हो सकता, वह सर्वाङ्गरूपमें सप्ताह-श्रवणसे सहजमें ही मिल जाता है। सप्ताह-श्रवण यज्ञसे बढ़कर है, तपसे कहीं बढ़कर है, तीर्थसेवनसे तो सदा बड़ा है, योगसे बढ़कर है—यहाँतक कि ध्यान और ज्ञानसे भी बढ़कर है। अजी, इसकी विशेषताका कहाँतक वर्णन करें, यह तो सभीसे बढ़-चढ़कर है।' (श्रीमद्भा० मा० ३। ५०-५२)

श्रीमद्भागवतकी इतनी महिमा क्यों कही गयी है? क्या ये रोचक वाक्य हैं? ये रोचक वाक्य नहीं, वरं यथार्थ वाक्य हैं। भागवतके इस अपूर्व और अद्‌भुत माहात्म्यको सुनकर कुछ लोग यह शङ्का कर सकते हैं कि 'अवश्य ही यह भागवतपुराण योगवेत्ता ब्रह्माजीके भी आदिकारण श्रीनारायणका निरूपण करता है; परंतु यह मोक्षकी प्राप्तिमें ज्ञानादि सभी साधनोंका तिरस्कार करके इस युगमें उनसे भी कैसे बढ़ गया?' इसका उत्तर स्वयं श्रीसूतजी इस प्रकार देते हैं—'जब भगवान् श्रीकृष्ण इस धराधामको छोड़कर अपने नित्यधामको जाने लगे, तब उनके मुखारविन्दसे एकादश स्कन्धका ज्ञानोपदेश सुनकर भी उद्धवजीने पूछा—'गोविन्द! अब आप तो अपने भक्तोंका कार्य करके परमधामको पधारना चाहते हैं; किंतु मेरे मनमें एक बड़ी चिन्ता है। इसे सुनकर आप मुझे शान्त कीजिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब घोर कलिकाल आया ही समझिये, इसलिये संसारमें फिर अनेकों दुष्ट प्रकट हो जायँगे; उनके संसर्गसे जब अनेकों सत्पुरुष भी उस प्रकृतिके हो जायँगे, तब उनके भारसे दबकर यह गोरूपिणी पृथ्वी किसकी शरणमें जायगी ? कमलनयन ! मुझे तो आपको छोड़कर इसकी रक्षा करनेवाला कोई दूसरा नहीं दिखायी देता । इसलिये भक्तवत्सल ! आप साधुओंपर कृपा करके यहाँसे मत जाइये । भगवन् ! आपने निराकार और चिन्मय होकर भी भक्तोंके लिये ही तो यह सगुणरूप धारण किया है । फिर भला, आपका वियोग होनेपर ये भक्तजन पृथ्वीपर कैसे रह सकेंगे ? निर्गुणोपासनामें तो बड़ा कष्ट है । इसलिये कुछ और विचार कीजिये ।' (श्रीमद्भा० मा० ३ । ५४—५९)

'प्रभासक्षेत्रमें उद्धवजीके वचन सुनकर भगवान् सोचने लगे कि भक्तोंके अवलम्बके लिये मुझे क्या करना चाहिये ? तब भगवान्ने अपनी सारी शक्ति भागवतमें रख दी; वे अन्तर्धान होकर इस भागवत-समुद्रमें प्रवेश कर गये । इसलिये यह भगवान्की साक्षात् शब्दमयी मूर्ति है । इसके सेवन, श्रवण, पाठ अथवा दर्शनसे ही मनुष्यके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं । इसीसे इसका सप्ताह-श्रवण सबसे बढ़कर माना गया है और कलियुगमें तो अन्य सब साधनोंको छोड़कर यही प्रधान धर्म (साधन) बताया गया है । कलिकालमें यही ऐसा धर्म है, जो दुःख, दरिद्रता, दुर्भाग्य और पापोंकी सफाई कर देता है तथा काम, क्रोधादि शत्रुओंपर विजय दिलाता है । अन्यथा भगवान्की इस मायासे पीछा छुड़ाना देवताओंके लिये भी कठिन है, मनुष्य तो इसे छोड़ ही कैसे सकते हैं । अतः इससे छूटनेके लिये भी सप्ताह-श्रवणका विधान किया गया है ।' (श्रीमद्भा० मा० ३ । ६०—६५)

'अतः इसमें संदेह नहीं कि कलिकालमें चित्तकी शुद्धिके लिये इस भागवतकी कथाके समान मर्त्यलोकमें पापपुञ्जका नाश करनेवाला कोई दूसरा पवित्र साधन नहीं है'—

अतो नृलोके ननु नास्ति किंचि-
च्चित्तस्य शोधाय कलौ पवित्रम् ।
अघौघविध्वंसकरं तथैव
कथासमानं भुवि नास्ति चान्यत् ॥
(श्रीमद्भा० मा० ४ । ९)

इस कथारूप सप्ताह-यज्ञके द्वारा संसारमें कौन-कौन लोग पवित्र हो जाते हैं—

'जो लोग सदा तरह-तरहके पाप किया करते हैं, निरन्तर दुराचारमें ही तत्पर रहते हैं और उल्टे मार्गसे चलते हैं तथा जो क्रोधाग्निसे जलते रहनेवाले, कुटिल और कामपरायण हैं, वे सभी इस कलियुगमें सप्ताह-यज्ञसे पवित्र हो जाते हैं । जो सत्यसे च्युत, माता-पिताकी निन्दा करनेवाले, तृष्णाके मारे व्याकुल, आश्रमधर्मसे रहित, दम्भी, दूसरेकी उन्नति देखकर कुढ़नेवाले और दूसरोंको दुःख देनेवाले हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताह-यज्ञसे पवित्र हो जाते हैं । जो मदिरापान, ब्रह्महत्या, सुवर्णकी चोरी, गुरुस्त्रीगमन और विश्वासघात—ये पाँच महापाप करनेवाले, छल-छद्मपरायण, क्रूर, पिशाचोंके समान निर्दयी, ब्राह्मणके धनसे पुष्ट होनेवाले और व्यभिचारी हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताह-यज्ञसे पवित्र हो जाते हैं । जो दुष्ट आग्रहपूर्वक सर्वदा मन, वाणी या शरीरसे पाप करते रहते हैं, दूसरेके धनसे ही पुष्ट होते हैं तथा मलिनमन एवं दुष्ट हृदयवाले हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताह-यज्ञसे पवित्र हो जाते हैं ।' (श्रीमद्भा० मा० ४ । ११—१४)

इन प्रमाणोंसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि प्रेतयोनिसे मुक्त होनेके लिये श्रीमद्भागवतका सप्ताह-श्रवण सर्वोत्तम उपाय या साधन है । श्रीमद्भागवत भगवान्की साक्षात् शब्दमयी मूर्ति है, इसमें भगवान्का सदा-सर्वदा निवास रहता है । इसके श्रवण एवं दर्शनमात्रसे समस्त पापसमूहोंका समूल नाश हो जाता है और चित्तकी शुद्धि होकर भगवद्भक्तिकी प्राप्ति हो जाती है । भगवद्भक्ति प्राप्त होनेपर उसके हृदयमें भी स्वतः भक्तिके पुत्र—ज्ञान और वैराग्यका उदय हो जाता है, फिर उसके मुक्त होनेमें संदेह ही क्या रह जाता है ? अतः निस्संदेह श्रीमद्भागवतके सप्ताह-यज्ञसे प्रेतकी अवश्य मुक्ति हो जाती है । राजा परीक्षित् एवं गोकर्ण आदि मुक्त हुए जीव इसके परम साक्षी हैं । श्रीमद्भागवत भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको जीवनीशक्ति प्रदान करनेवाला है । भगवान् श्रीसूर्यनारायण, महामुनि श्रीसनकादि परमर्षि, परम ज्ञानी एवं धर्मवक्ता श्रीसूतजी, देवर्षि नारद और भगवान् वेदव्यासजी आदि सत्यवक्ता, ज्ञाननिधि एवं सर्वलोककल्याणकारी तथा स्वयं श्रीब्रह्माजी इस सप्ताह-यज्ञसे मुक्ति होनेके अनुमोदक एवं समर्थक हैं । इसलिये आस्तिक पुरुषोंको श्रीमद्भागवत-सप्ताहसे मुक्त होनेमें कोई ननु-नच किं वा अविश्वास हो ही नहीं सकता है । अस्तु, यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्विवाद सिद्ध है कि श्रीमद्भागवतके सप्ताह-श्रवणसे निश्चय प्रेतकी मुक्ति हो जाती है।

'यह प्रेतपीड़ाको नाश करनेवाली श्रीमद्भागवतकी कथा धन्य है तथा श्रीकृष्णचन्द्रके धामकी प्राप्ति करानेवाला इसका सप्ताह-पारायण भी धन्य है। जब सप्ताह-श्रवणका योग लगता है, तब सब पाप थर्रा उठते हैं कि अब यह—भागवतकी कथा जल्दी ही हमारा अन्त कर देगी। जिस प्रकार आग गीली-सूखी, छोटी-बड़ी—सब तरहकी लकड़ियोंको जला डालती है, उसी प्रकार यह सप्ताह-श्रवण मन, वचन और कर्मद्वारा किये हुए नये-पुराने, छोटे-बड़े—सभी प्रकारके पापोंको भस्म कर देता है'—

धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीडाविनाशिनी।
सप्ताहोऽपि तथा धन्यः कृष्णलोकफलप्रदः॥
कम्पन्ते सर्वपापानि सप्ताहश्रवणे स्थिते।
अस्माकं प्रलयं सद्यः कथा चेयं करिष्यति॥
आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्मनःकर्मभिः कृतम्।
श्रवणं विदहेत् पापं पावकः समिधो यथा॥
(श्रीमद्भा० मा० ५। ५३—५५)

इसलिये 'विद्वानोंने देवताओंकी सभामें कहा है कि जो लोग इस भारतवर्षमें श्रीमद्भागवतकी कथा नहीं सुनते, उनका जन्म वृथा ही है'—

अस्मिन् वै भारते वर्षे सूरिभिर्देवसंसदि।
अकथाश्राविणां पुंसां निष्फलं जन्म कीर्तितम्॥
(श्रीमद्भा० मा० ५। ५६)

किसी भी साधनको जबतक उस साधनके विधि-विधान-पूर्वक न किया जाय, तबतक उस साधनका यथार्थ फल नहीं प्राप्त होता; इसलिये प्रत्येक साधनकी साधनाके पूर्व उसके विधि-विधानका जानना अत्यावश्यक है। श्रीमद्भागवत-माहात्म्य अध्याय ६ में विधिका वर्णन है। उसे अच्छी तरह समझकर सप्ताहश्रवणका आयोजन करना चाहिये।

प्रवचनके लिये ऐसे विद्वान् ब्राह्मणको नियुक्त करना चाहिये जो विवेकी, अत्यन्त निःस्पृह, विरक्त और विष्णुभक्त हों। ऐसे लोगोंको नियुक्त नहीं करना चाहिये जो पण्डित होनेपर भी अनेक धर्मोंके चक्करमें पड़े हुए, स्त्रीलम्पट एवं पाखण्डके प्रचारक हों। वक्ताके पास ही उसकी सहायताके लिये एक वैसा ही विद्वान् और स्थापित करना चाहिये। वह भी सब प्रकारके संशयोंकी निवृत्ति करनेमें समर्थ और लोगोंको समझाने-बुझानेमें कुशल हो।

कथा-आरम्भसे एक दिन पूर्व व्रत ग्रहण करनेके लिये वक्ताको क्षौर करा लेना चाहिये तथा अरुणोदयके समय शौचसे निवृत्त होकर अच्छी तरह स्नान करे। संध्यादि अपने नित्यकर्मोंको संक्षेपसे समाप्तकर विघ्नोंके निवृत्त्यर्थ श्रीगणेशजीका पूजन करे। तदनन्तर पितृगणका तर्पण कर पूर्वपापोंकी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करे और एक मण्डल बनाकर उसमें श्रीहरिको स्थापित करे। फिर भगवान् श्रीकृष्णको लक्ष्य करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक क्रमशः षोडशोपचार विधिसे पूजन करे और उसके पश्चात् प्रदक्षिणा तथा नमस्कारादि कर इस प्रकार स्तुति करे—

संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे।
कर्ममोहगृहीताङ्गं मामुद्धर भवार्णवात्॥
(श्रीमद्भा० मा० ६। २७)

'करुणानिधान! मैं संसारसागरमें डूबा हुआ और बड़ा दीन हूँ। कर्मोंके मोहरूपी ग्राहने मुझे पकड़ रक्खा है। आप इस संसारसागरसे मेरा उद्धार कीजिये।'

इसके पश्चात् धूप-दीप आदि सामग्रियोंसे श्रीमद्भागवतकी भी बड़े उत्साह और प्रीतिपूर्वक विधि-विधानसे पूजा करे। फिर पुस्तकके आगे नारियल रखकर नमस्कार करे और प्रसन्न चित्तसे इस प्रकार स्तुति करे—

'श्रीमद्भागवतके रूपमें आप साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र ही विराजमान हैं। नाथ! मैंने भवसागरसे छुटकारा पानेके लिये आपकी शरण ली है। मेरा यह मनोरथ आप बिना किसी विघ्न-बाधाके साङ्गोपाङ्ग पूरा करें। केशव! मैं आपका दास हूँ।' (श्रीमद्भा० मा० ६। ३०-३१)

इस प्रकार दीन वचन कहकर फिर वक्ताका पूजन करे। उसे सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित करे और फिर पूजाके पश्चात् उसकी इस प्रकार स्तुति करे—

'शुकस्वरूप भगवन्! आप समझानेकी कलामें कुशल और सब शास्त्रोंमें पारङ्गत हैं; कृपया इस कथाको प्रकाशित करके मेरा अज्ञान दूर करें।' (श्रीमद्भा० मा० ६। ३३)

फिर अपने कल्याणके लिये प्रसन्नतापूर्वक उसके सामने नियम ग्रहण करे और सात दिनोंतक यथाशक्ति उसका पालन करे। कथामें विघ्न न हो, इसके लिये पाँच ब्राह्मणोंको और वरण करे; वे द्वादशाक्षर मन्त्रद्वारा भगवान्‌के नामोंका जप करें। फिर ब्राह्मण, अन्य विष्णु-भक्त एवं कीर्तन करनेवालेको नमस्कार करके उनकी पूजा करे और उनकी आज्ञा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाकर स्वयं भी आसनपर बैठ जाय। 'जो पुरुष लोक, सम्पत्ति, धन, घर और पुत्रादिकी चिन्ता छोड़कर शुद्धचित्तसे केवल कथामें ही ध्यान रखता है, उसे इसके श्रवणका उत्तम फल मिलता है।' (श्रीमद्भा० मा० ६। ३७)

बुद्धिमान् वक्ताको चाहिये कि सूर्योदयसे कथा आरम्भ करके साढ़े तीन पहरतक मध्यम स्वरसे अच्छी तरह कथा बाँचे। दोपहरके समय दो घड़ी कथा बंद रक्खे। उस समय कथाके प्रसङ्गके अनुसार वैष्णवोंको भगवान्‌के गुणोंका कीर्तन करना चाहिये—व्यर्थ बातें नहीं करनी चाहिये। कथाके समय मल-मूत्रके वेगको काबूमें रखनेके लिये अल्पाहार सुखकारी होता है, इसलिये श्रोता केवल एक ही समय हविष्यान्न भोजन करे। यदि शक्ति हो तो सातों दिन निराहार रहकर कथा सुने अथवा केवल घी या दूध पीकर सुखपूर्वक श्रवण करे। अथवा फलाहार या एक समय भोजन करे। जिससे जैसा नियम सुविधासे सध सके, उसीको ग्रहण करे। मैं तो उपवासकी अपेक्षा भोजन करना अच्छा समझता हूँ, यदि वह कथाश्रवणमें सहायक हो। यदि उपवाससे श्रवणमें बाधा पहुँचती हो तो वह किसी कामका नहीं।

नियमसे सप्ताह सुननेवाले पुरुषोंके नियम ये हैं—विष्णु-भक्तिकी दीक्षासे रहित पुरुष कथाश्रवणका अधिकारी नहीं है, जो पुरुष नियमसे कथा सुने, उसे ब्रह्मचर्यसे रहना, भूमिपर सोना और नित्यप्रति कथा समाप्त होनेपर पत्तलमें भोजन करना चाहिये। दाल, मधु, तेल, गरिष्ठ अन्न, भावदूषित पदार्थ और बासी अन्न—इनका उसे सर्वदा ही त्याग करना चाहिये। काम, क्रोध, मद, मान, मत्सर, लोभ, दम्भ, मोह और द्वेषको तो अपने पास भी नहीं फटकने देना चाहिये। वह वेद, वैष्णव, ब्राह्मण, गुरु, गोसेवक तथा स्त्री, राजा और महापुरुषोंकी निन्दासे भी बचे। नियमसे कथा सुननेवाले पुरुषको रजस्वला स्त्री, अन्त्यज, म्लेच्छ, पतित, गायत्रीहीन द्विज, ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाले तथा वेदको न माननेवाले पुरुषोंसे बात नहीं करनी चाहिये। सर्वदा सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता, विनय और उदारताका बर्ताव करना चाहिये। धनहीन, क्षयरोगी, किसी अन्य रोगसे पीड़ित, भाग्यहीन, पापी, पुत्रहीन और मुमुक्षु भी यह कथा श्रवण करे। जिस स्त्रीका रजोदर्शन रुक गया हो, जिसके एक ही संतान होकर रह गयी हो, जो बाँझ हो, जिसकी संतान होकर मर जाती हो अथवा जिसका गर्भ गिर जाता हो, वह यत्नपूर्वक इस कथाको सुने। ये सब यदि विधिवत् कथा सुनें तो इन्हें अक्षय फलकी प्राप्ति हो सकती है। यह अत्युत्तम दिव्य कथा करोड़ों यज्ञोंका फल देनेवाली है।

इस प्रकार इस व्रतकी विधियोंका पालन करके फिर उद्यापन करे। जिन्हें इसके विशेष फलकी इच्छा हो, वे जन्माष्टमी-व्रतके समान ही इस कथाव्रतका उद्यापन करें; किंतु जो भगवान्‌के अकिंचन भक्त हैं, उनके लिये उद्यापनका कोई आग्रह नहीं है। वे श्रवणसे ही पवित्र हैं; क्योंकि वे तो निष्काम भगवद्भक्त हैं।

इस तरह जब सप्ताह-यज्ञ समाप्त हो जाय, तब श्रोताओंको अत्यन्त भक्तिपूर्वक पुस्तक और वक्ताकी पूजा करनी चाहिये। फिर वक्ता श्रोताओंको प्रसाद, तुलसी और प्रसादी मालाएँ दे तथा सब लोग मृदङ्ग और झाँझकी मनोहर ध्वनिसे सुन्दर कीर्तन करें। जय-जयकार, नमस्कार और शङ्खध्वनिका घोष करायें तथा ब्राह्मण और याचकोंको धन और अन्न दें। श्रोता विरक्त हो तो कर्मकी शान्तिके लिये दूसरे दिन गीतापाठ करे, गृहस्थ हो तो हवन करे। उस हवनमें दशम स्कन्धका एक-एक श्लोक पढ़कर विधिपूर्वक खीर, मधु, घृत, तिल और अन्नादि सामग्रियोंसे आहुति दें।

अथवा एकाग्रचित्तसे गायत्री-मन्त्रद्वारा हवन करे; क्योंकि तत्त्वतः यह महापुराण गायत्रीस्वरूप ही है। होम करनेकी शक्ति न हो तो उसका फल प्राप्त करनेके लिये ब्राह्मणोंको हवन-सामग्री दान करे तथा नाना प्रकारकी त्रुटियोंको दूर करनेके लिये और विधिमें जो न्यूनाधिक्यता रह गयी हो, उसके दोषोंकी शान्तिके लिये विष्णुसहस्रनामका पाठ करे। उससे सभी कर्म सफल हो जाते हैं; क्योंकि कोई भी कर्म इससे बढ़कर नहीं है।

फिर बारह ब्राह्मणोंको खीर और मधु आदि उत्तम-उत्तम पदार्थ खिलाये तथा व्रतकी पूर्तिके लिये गौ और सुवर्णका दान करे। सामर्थ्य हो तो तीन तोले सुवर्णका एक सिंहासन बनवाये। उसपर सुन्दर अक्षरोंमें लिखी हुई श्रीमद्भागवतकी पोथी, सुन्दर वेष्टनसे आच्छादित कर, उस सोनेके सिंहासनपर स्थापित कर, उसकी आवाहनादि विविध उपचारोंसे पूजा करे और फिर जितेन्द्रिय आचार्यको,—उसका वस्त्र, आभूषण एवं गन्धादिसे पूजन कर दक्षिणाके सहित समर्पण कर दे। यों करनेसे वह बुद्धिमान् दाता जन्म-मरणके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है। यह सप्ताह-पारायणकी विधि सब पापोंकी निवृत्ति करनेवाली है। इसका इस प्रकार ठीक-ठीक पालन करनेसे यह मङ्गल-मय भागवतपुराण अभीष्ट फल प्रदान करता है तथा अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—चारोंकी प्राप्तिका साधन हो जाता है—इसमें संदेह नहीं।'

यदि प्रेतकी प्रेतत्व-मुक्तिके लिये श्रीमद्भागवतका सप्ताह-पारायण करना हो, तो मुख्य श्रोताके रूपमें किसी वैष्णव ब्राह्मणको श्रोता नियुक्तकर, उसीके द्वारा सप्ताह-यज्ञकी सारी साधना प्रेतके प्रतिनिधित्वके रूपमें सम्पन्न करानी चाहिये। संकल्प-पूजा और दान आदिकी सारी योजनाएँ, उसी नियुक्त ब्राह्मणके द्वारा पूर्ण होनी अत्यावश्यक है। यही प्रणाली शास्त्रानुकूल, विधि-विधान एवं व्यवहार-व्यवहृत है। इसी प्रकार महात्मा गोकर्णजीने अपने भाई धुन्धुकारीकी प्रेतत्व-मुक्तिके लिये किया था। इस प्रकारकी योजनासे श्रीमद्भागवत-सप्ताह-श्रवण करनेसे प्रेत प्रेतयोनिसे निस्संदेह मुक्त होकर परमपद प्राप्त करता है। यज्ञान्तमें उस नियुक्त वैष्णव ब्राह्मण श्रोताका दान-दक्षिणाके द्वारा सत्कार करना अत्युत्तम है।

'श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पवृक्षका परिपक्व फल है। श्रीशुकदेवरूप शुकके मुखका संयोग होनेसे अमृतरससे परिपूर्ण है। यह रस-ही-रस है—इसमें न छिलका है न गुठली। यह इसी लोकमें सुलभ है। जबतक शरीरमें चेतना रहे, तबतक इसका बार-बार पान करें। महामुनि व्यासदेवने श्रीमद्भागवतपुराणकी रचना की है। इसमें निष्कपट-निष्काम परमधर्मका निरूपण है। इसमें शुद्धान्तःकरण सत्पुरुषोंके जाननेयोग्य कल्याणकारी वास्तविक वस्तुका वर्णन है, जिससे तीनों पापोंकी शान्ति होती है। इसका आश्रय लेनेपर दूसरे शास्त्र अथवा साधनकी आवश्यकता नहीं रहती। जब कभी पुण्यात्मा पुरुष इसके श्रवणकी इच्छा करते हैं, तभी ईश्वर अविलम्ब उसके हृदयमें अवरुद्ध हो जाता है। यह भागवत पुराणोंका तिलक और वैष्णवोंका (परम) धन है। इसमें परमहंसोंके प्राप्य विशुद्ध ज्ञानका ही वर्णन किया गया है तथा ज्ञान, वैराग्य और भक्तिके सहित निवृत्तिमार्गको प्रकाशित किया गया है। जो पुरुष भक्ति-पूर्वक इसके श्रवण, पठन और मननमें तत्पर रहता है, वह मुक्त हो जाता है।' (श्रीमद्भा० मा० ६।८०-८२) जो लोग दरिद्रताके दुःखज्वरकी ज्वालासे दग्ध हो रहे हैं, जिन्हें माया-पिशाचिनीने रौंद डाला है तथा जो संसार-समुद्रमें डूब रहे हैं, उनका कल्याण करनेके लिये श्रीमद्भागवत सिंहनाद कर रहा है।

'इस असार संसारमें विषयरूप विषकी आसक्तिके कारण व्याकुल बुद्धिवाले पुरुषो! अपने कल्याणके उद्देश्यसे आधे क्षणके लिये भी इस शुककथारूप अनुपम सुधाका पान करो। प्यारे भाइयो! निन्दित कथाओंसे युक्त कुपथमें व्यर्थ ही क्यों भटक रहे हो? इस कथाके कानमें प्रवेश करते ही मुक्ति हो जाती है, इस बातके साक्षी राजा परीक्षित् हैं'—

असारे संसारे विषयविषसङ्गाकुलधियः
क्षणार्धं क्षेमार्थं पिबत शुकगाथातुलसुधाम्।
किमर्थं व्यर्थं भो व्रजत कुपथे कुत्सितकथे
परीक्षित्साक्षी यच्छ्रवणगतमुक्त्युक्तिकथने॥
(श्रीमद्भा० मा० ६। १००)

अतः—

धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीडाविनाशिनी।
सप्ताहोऽपि तथा धन्यः कृष्णलोकफलप्रदः॥
(श्रीमद्भा० मा० ५। ५३)

वैष्णवकी महत्ता

अवैष्णवाद् द्विजाद्विप्र चाण्डालो वैष्णवो वरः। सगणः श्वपचो मुक्तो ब्राह्मणो नरकं व्रजेत्॥
ध्यायन्ते वैष्णवाः शश्वद् गोविन्दपादपङ्कजम्। ध्यायते तांश्च गोविन्दः शश्वत्तेषां च संनिधौ॥
(ब्रह्मवैवर्त० ब्रह्म० ११। ३९, ४४)

'अवैष्णव ब्राह्मणसे वैष्णव चाण्डाल श्रेष्ठ है; क्योंकि वह वैष्णव चाण्डाल अपने बन्धुगणसहित संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है और वह अवैष्णव ब्राह्मण नरकमें पड़ता है।' 'वैष्णवजन सदा गोविन्दके चरणारविन्दोंका ध्यान करते हैं और भगवान् गोविन्द सदा उन वैष्णवोंके समीप रहकर उन्हींका ध्यान किया करते हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातिस्मरता

(लेखक—जातिस्मराणां किंकरः पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

(१)

'जातिस्मरता'—अर्थ, लक्षण, परिभाषा एवं संक्षिप्त परिचय

'जातिस्मर'के सभी प्रयोग दिये जायँ तो लेखका विस्तार बहुत हो जायगा। यहाँ लक्षणकोश आदि तथा विभिन्न पुराणादिके टीकाकारोंके परिश्रमको उपस्थापन करनेका प्रयत्न किया जायगा।

(दिवादि आत्मनेपदः सेट्) जनी—प्रादुर्भावे धातुसे, जायते अनया इति जातिः—स्त्रियां क्तिन् (३ । ३ । ९४ पा०) जनसनखनां सञ्झलोः। (पाणि० ६ । ४ । ४२) इत्यात्वम्; जननमनया इति वा जातिः (पूर्ववत्) तां च पूर्वपूर्वां यः स्मरति स स्यात् तथोक्तः 'जातिस्मरः'। नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः। (पा० ३ । १ । १३४) इस तरह 'जातिस्मर' शब्द बनता है। (विष्णुपुराण ३ । ७ । ९,१३) में 'मया जातिस्मरो मुनिः' 'जातिस्मरेण कथितः' आदि प्रयोग हैं। भागवत ९ । ८ । १६ में भी 'जातिस्मरः पुरा सङ्गात्' प्रयोग है। विजयध्वज, शुकदेव आदि टीकाकारगण 'पूर्वजातिं स्मरतीति जातिस्मरः' 'पूर्वजन्मस्मृतिमानिति जातिस्मरः'—ऐसा लिखते हैं। वेदान्तदर्शन ३ । २ की टीकामें वाचस्पतिमिश्र भी लिखते हैं—'यो हि परवशो देहं परित्याज्यते देहान्तरं च नीतः पूर्वजन्मानुभूतस्य स्मरति स जन्मवान् जातिस्मरश्च। गृहादिव गृहान्तरं स्वेच्छया कायान्तरं संचरमाणो न जातिस्मर आख्यायते।' अर्थात् 'परवश होकर जो अदृष्टादिद्वारा शरीर त्याग करता और नवीन देहमें ले जाया जाता है, ऐसे पूर्वजन्मके अनुभवोंके स्मरणकर्ताको 'जातिस्मर' कहते हैं। स्वच्छन्दतापूर्वक शरीर छोड़नेवाला तो जातिस्मरोंसे विशेष है।'

वेदान्तकल्पतरुमें अमलानन्द सरस्वती भी लिखते हैं—'आधिकारिकपुरुषस्तु जातिस्मराद् भिन्न।—कारकपुरुष जातिस्मरसे ऊँचे होते हैं।'

इन सब बातोंसे जातिस्मरतासे योगादि सिद्धि तथा भगवत्स्मृतिकी विशिष्टता प्रदर्शित है। अतः वास्तवमें जातिस्मरताकी सफलता भगवत्स्मृतिमें ही है। जातिस्मर दीर्घस्मर या दीर्घविचारक होता है। दीर्घदर्शी स्वभावतया विरक्त एवं दार्शनिक होता है। फलतः योग, वेदान्त, भजनादिद्वारा वह मुक्त होनेका प्रयास करता हुआ सिद्धिको प्राप्त करता है। हरिवंशके श्राद्धकल्पके पाँच अध्यायोंमें (१ । २१-२५) में यह बात निरन्तर देखनेको मिलती है।

(२)

जातिस्मरताके अनेकानेक साधन-उपाय

मन्वादि स्मृतियों तथा शिव-स्कन्दादि अनेक पुराणोंमें 'जातिस्मरता'के अनेकानेक साधन निर्दिष्ट हैं। यथा—

(१) वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च।
अद्रोहेण च भूतानां जातिं स्मरति पौर्विकीम्॥
(मनु० ४ । १४८)

'अनवरत क्रियमाण वेदाभ्यास, शरीर और मनकी पवित्रता तथा तपके द्वारा एवं प्राणियोंके प्रति द्रोह न रखनेसे मनुष्य पूर्वजन्मकी स्मृतिसे युक्त होता है।'

'निरन्तरवेदाभ्यासतीर्थस्नानात्मशुद्धितपोऽहिंसादिभिः पूर्वभवस्य जातिं स्मरति।'

(मेधातिथि, कुल्लूक, राघवानन्द, रामानन्दयति, असहाय, गोविन्दराज, धरणिधर, भारुचि आदिकी टीकाओंका सारांश)

(२) अहर्निशं श्रुतेर्जाप्याच्छौचाचारनिषेवणात्।
अद्रोहवत्या मत्या च पूर्वं जन्म स्मरेद् द्विजः॥
(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ३८ । ८९ तथा स्कन्दपुराण, ब्रह्मोत्त० ३ । ६ । ९१)

(प्रायः वही पूर्वोक्त भाव—रामानन्द सरस्वती)

(३) शरीरसंक्षये यस्य मनः सत्त्वस्थमीश्वरम्।
अविप्लुतमतिः सम्यक् स जातिस्मरतामियात्॥
(याज्ञवल्क्यस्मृति ३ । १६१)

---

१. प्रायः इन दोनों ही श्लोकोंमें तथा अन्यत्र भी इसी प्रकारके वचनोंमें एक ही प्रकारकी बात कही गयी है। जिस प्रकार अद्रोह, सद्भाव, सरलता आदिको जातिस्मरता (आध्यात्मिकता, कुण्डलिनी-जागरणादि) में सहायक माना है, उसी प्रकार अहंकार, कौटिल्य-द्वेष-द्रोहादिको आध्यात्मिकतामें बाधक भी मानना चाहिये और कल्याणकामीको उनसे सदा बचते रहनेकी भी चेष्टा करनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मृत्युके समय जिसका मन सत्त्वगुणमें स्थित हुआ ईश्वरचिन्तनमें लीन होता है और बुद्धि विचलित नहीं होती, उसे अगले जन्ममें सभी पूर्वजन्मोंकी स्मृति हो जाती है, जिसके कारण उसे विषयोंमें दृढ़तर वैराग्य होकर मोक्षमें प्रवृत्ति हो जाती है।'

'**यस्य अविपर्यस्तज्ञानस्य योगिनो मनः शरीरत्यागसमय एकाग्रतया ईश्वरे स्थिरं स्यात् स जन्मान्तरे जातिस्मरतामियात्। दृढतरवैराग्यनिमित्तभूतां सकलपूर्वजन्मस्मृतिं प्राप्नुयात्। मोक्षे च प्रवर्तते।**'

(सुबोधिनी, मिताक्षरा, अपरार्क, वीरमित्रोदय, बालभट्टी आदिका सारांश)

और ये निश्चय ही सभी सत्य हैं। इन सभीके द्वारा आत्मशुद्धि ही इष्ट है। सांख्यदर्शन-योगदर्शनादिमें भी त्याग, तप, ज्ञान-विचारादिद्वारा जातिस्मरता प्राप्त होनेकी बात है[1]—

'**संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्।**'
(योगदर्शन ३ । १८)

'संस्कारोंका साक्षात्कार होनेसे पूर्वजन्मकी स्मृति हो जाती है।'

'**अपरिग्रहस्थैर्ये पूर्वजन्मकथन्तासम्बोधः।**'
(योग० २ । ३९)

'अपरिग्रह (संग्रहके अभाव) का भाव स्थिर होनेपर पूर्वजन्मके वृत्तान्तका ज्ञान हो जाता है।'

'**पूर्वापरजातिस्मरणं भवेत् पूर्वापरजन्मज्ञानं भवति।**'

'पहले तथा आगेके भी जन्मोंका ज्ञान हो जाता है।'

(व्यासभाष्य, शंकरविवरण, वाचस्पति, भोज, विज्ञानभिक्षु, भावागणेश, नागेश, मणिप्रभा, चन्द्रिका, भास्वती आदिका सारांश।)

हरिवंश २ । ६३ । ६७ में पारिजात वृक्षके नीचे जानेसे 'जातिस्मरता' होना लिखा है—

'**यम् (पारिजातम्) आसाद्य जनः सर्वो जातिं स्मरति पौर्विकीम्।**'
(हरिवंश २ । ६४ । ६७)

इसी ग्रन्थमें १ । २१ । १७—४४ में श्राद्धद्वारा जातिस्मरता निर्दिष्ट है—

स्मृतिः प्रत्यवमर्शश्च तेषां जात्यन्तरेऽभवत्।
(हरिवंश १ । २१ । १८)

श्रीमद्भागवतमें देवर्षि नारद, राजा नृग, असमञ्जस तथा गजेन्द्रादिको हरिभक्ति एवं योगसाधनादिसे जातिस्मरता बतलायी गयी है। यथा—

प्रजासर्गनिरोधेऽपि स्मृतिश्च मदनुग्रहात्।
(भागवत १ । ६ । २५)

हर्यर्चनानुभावेन यद् गजत्वेऽप्यनुस्मृतिः।
(भागवत ८ । ४ । १२)

असमञ्जस स्वात्मानं दर्शयन्नसमञ्जसम्।
जातिस्मरः पुरा सङ्गाद् योगी योगाद्विचालितः॥
(भागवत ९ । ८ । १६)

ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव!
स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्संदर्शनार्थिनः॥
(भागवत १० । ६४ । २५)

ब्रह्मपुराण (मोर संस्करण) पृ० १५१० में पुराणोंके पाठमात्रसे जातिस्मरता निर्दिष्ट है—

जातिस्मरत्वं विद्यां च पुत्रान् मेधां पशून् धृतिम्।
धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं तु लभते नरः॥
(ब्रह्मपुराण २४५ । ३२)

'(पुराणोंके पाठसे) मनुष्य पूर्वजन्मोंकी स्मृति, विद्या, पुत्रों, मेधा, पशुधन, धर्ममें रुचि, धन, कामोपभोग तथा मोक्षको भी पा लेता है।'

महाभारत, वनपर्व ८५ । १०३-४ में तीर्थोंके श्रद्धापूर्वक माहात्म्य-श्रवण मात्रसे ही जातिस्मरता निर्दिष्ट है—

यश्चेदं शृणुयान्नित्यं तीर्थपुण्यं नरः शुचिः॥
जातीः स स्मरते ब्रह्मन्नाकपृष्ठे च मोदते।
मनसा तानि गच्छेत सर्वतीर्थसमीक्षया॥
(वही, १०५)

---

१. सांख्यदर्शन २ । २ में भी 'विरक्तस्य तद् सिद्धेः।' में यही बात कही गयी है। G. R. Ballantyn ने अनादिवासना (२ । ३) की सर्वाधिक विस्तृत व्याख्यामें लिखा है—'Vāsanā is the resultant impression of all the past experiences. It is which inclines to rebirth.' उन्होंने इसमें विज्ञान, अनिरुद्ध, महादेवादि सबका सार ले लिया है। वैशेषिक एवं पूर्वमीमांसामें भी इसपर सुन्दर समीक्षा है। विस्तारभयसे नहीं लिखा गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ५२ । २१३ में पितृभक्तिसे जातिस्मरता निर्दिष्ट है—पितरोंका विधि एवं श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करनेसे भी जातिस्मरता प्राप्त होती है—

सर्वस्वेन कृतं श्राद्धं येन पुत्रेण धीमता ।
जातिस्मरत्वं प्राप्नोति पितृभक्तिफलं लभेत् ॥

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ५२ । २१३ मोर तथा वेङ्कटेश्वर एवं बंगवासी सं०; पूना संस्करणका ४७ वाँ अध्याय)

इसी खण्डके ६१ । ३२ श्लोकमें देव-कृपा तथा यमराजके वरदानसे एक चोरको जातिस्मरता प्राप्त होती है । इसी प्रकार महाभारत, अनुशासनपर्व ११७ । २७-२८ में एक शूद्रको जो अपने पापसे कीट बनता है तथा पुनः भगवान् व्यासके दर्शन और कृपाद्वारा महर्षि मैत्रेय बन जाता है, केवल एक बार ब्राह्मणपूजनद्वारा जातिस्मरता प्राप्त होनेका उल्लेख प्राप्त होता है—

माता च पूजिता वृद्धा ब्राह्मणश्चार्चितो मया ।
सकृज्जातिगुणोपेतः संगत्या गृहमागतः ॥

अतिथियोंके पूजनसे भी पूर्वजन्म एवं अगले जन्मोंकी स्मृति प्राप्त होनेकी बात पुराणोंमें आयी है—

अतिथिः पूजितो ब्रह्मंस्तेन मां नाजहात् स्मृतिः ।
कर्मणा पुनरेवाहं सुखभागाभिलक्षये ॥

(महा० १३ । ११७ । ३०)

यह कथा स्कन्दपुराण, कुमारिकाखण्ड अध्याय ४२-४३ में भी आयी है ।

उपर्युक्त यह अतिथि सर्वत्र वही ब्राह्मण ही है । भागवत १० । ६४ । २५ में ब्रह्मण्यतासे जातिस्मरता निर्दिष्ट है ।

इस तरह पुराणोंमें और भी बहुत-से धर्मोंद्वारा 'जातिस्मरता'का वर्णन है और ये सब धर्म एक ही धर्मके प्रमुख अङ्ग हैं । अतः विरोध नहीं है । विस्तारभयसे अन्य उदाहरण नहीं दिये गये हैं । गीता शाङ्करभाष्य १७ । २ के अनुसार ये लक्षण प्रायः 'जातिस्मर'में पीछे भी बने रहते हैं ।

(३)

जातिस्मर-व्रत

'वृद्धसूर्यारुणकर्मविपाक'में कई जातिस्मर-व्रतोंका उल्लेख है । मनु भी ४ । १४८ में 'तप'को जातिस्मरताका साधन मानते हैं । पर यह 'तप' भी व्रत ही है—यह बात 'कल्याण' वर्ष २९ अङ्क ८ 'तपस्याके इतिहास' में स्पष्ट है । भविष्यपुराण उत्तरपर्व, अध्याय १३ में 'जातिस्मर' भद्र-व्रतका विस्तारसे उल्लेख है । युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा कि 'प्रभो ! काल विस्मारक है, अतः जातिस्मरता कठिन है; यह किस साधनसे प्राप्य है ? कृपया बतलायें ?'

जातिस्मरत्वं देवेश दुष्प्राप्यमिति मे मतिः ।
तदहं ज्ञातुमिच्छामि प्राप्यते केन कर्मणा ॥

(श्लोक १)

भगवान्‌ने कहा कि 'मार्गशीर्ष, फाल्गुन, ज्येष्ठ एवं भाद्रपद मासमें चार बार भद्र-व्रत करनेसे मनुष्य जातिस्मर होता है । इसके उदाहरणमें संजयके स्वर्णष्ठीवी पुत्रकी कथा प्रसिद्ध है । कहते हैं कि द्वारकामें संजय नामक एक राजा रहता था । उसके नारद तथा पर्वत—ये दोनों ही देवर्षि मित्र थे । नारदजीकी कृपासे राजाको सुवर्णष्ठीवी पुत्र प्राप्त हुआ । उसका मल-मूत्र, खखार—सब सुवर्ण ही होता था—

यस्य मूत्रं पुरीषं वा श्लेष्माणं क्षिपति क्षितौ ।
जातरूपं हि तत्सर्वं सुवर्णं भवति स्थिरम् ॥

(भविष्यपुराण, उत्तरपर्व १३ । १९)

जायते कनकं सर्वं प्रसादान्नारदस्य च ॥

(भविष्यपुराण, उत्तरपर्व १३ । ३३)

उससे राजा यज्ञ-दान करता रहा । बातके फैलनेसे तथा पर्वतके शापके कारण डाकुओंने लोभसे उस पुत्रको मार डाला । पुनः भद्र-व्रतके सहारे नारदजीने उसे छः मासमें जिलाकर पिताका शोक दूर कर दिया ।

संक्षिप्त विधि

पूर्वोक्त चार मासोंमें यह व्रत तीन वर्षतक करना पड़ता है । प्रति मार्गशीर्षादिके २ से ५ तिथियोंतक चन्द्रमा इसके आराध्य हैं । शशि, चन्द्र, शशाङ्क और इन्दु—नामसे उनकी पूजा करनी चाहिये । चन्दन, कर्पूर, दधि, दूर्वा, अक्षत, मोती, अगुरु आदिसे उनको अर्घ्य दे । चन्द्रवृद्धिके अनुसार प्रतिदिन लवण, गुड, घृत और दूधकी वृद्धि भी करे । मन्त्र इस प्रकार है—

गगनाङ्गणसद्दीप दुग्धाब्धिमथनोद्भव ।
भा भासितदिगाभोग रमानुज नमोऽस्तु ते ॥

(वही, ८७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आकाशरूपी प्राङ्गणके देदीप्यमान दीप, क्षीरसागरके मन्थनसे प्रकट हुए तथा अपने प्रकाशसे दिशाओंके विस्तारको प्रकाशित करनेवाले भगवती रमाके छोटे भाई, आपको नमस्कार।'

तत्पश्चात् रात्रिमें मौन भोजन कर, चन्द्रस्मृतिपूर्वक शयन करे। द्वितीयाको लवणरहित हविष्य, तृतीयाको मुन्यन्न (नीवारादि), चतुर्थीको गोरस और पञ्चमीको कृशर (घीयुक्त खिचड़ी) खाये। चावलकी जगह सावाँका चावल ले। दूसरे दिन देवर्षि-पितृ-तर्पण करे। फिर ब्राह्मणोंको दान देकर विसर्जन करे। इससे धन, पुत्र, स्त्री आदि सम्पूर्ण सुखपूर्वक जातिस्मरता मिलती है और उसके द्वारा सदा कल्याणका आचरण होता है—

भद्राण्यवाप्य धनपुत्रकलत्रजानि
जातिस्मरो भवति भारत भद्रकर्ता।
(भविष्यपुराण, उत्तर० ४। १३। १००)

(४)

जातिस्मर-तीर्थ

ध्यान देनेपर जातिस्मरताके साधनोंमें तीर्थस्नान ही सर्वश्रेष्ठ दीखता है। यही बात पुराणों, स्मृतियों तथा वैयाकरणोंको भी इष्ट है—

शौचेन तपसैव च।...जातिः स्मरति पौर्विकीम्।
(मनु० ४। १४८; स्कन्दपुराण, काशी० ३८। ६९; ब्रह्मोत्तर० ३। ६। ९१, याज्ञ० ३ इत्यादि)

शौचेन—तीर्थस्नानादिभिः, जातिः—स्वपूर्वजन्माभिस्मरति—मेधातिथि धरणिधर, विश्वरूप, रामानन्दादि। जातिः सर्यतेऽत्र स्नानादिना—स्मृतिः।
(वाचस्पत्य कोश)

स्कान्द-सेतु-माहात्म्य एवं महाभारत, वनपर्व ८५। १०३—५ में श्रद्धापूर्वक मनसे भी तीर्थोंके गमन तथा तीर्थमाहात्म्य-श्रवणसे भी 'जातिस्मरता' बतलायी गयी है—

यश्चेदं शृणुयान्नित्यं तीर्थपुण्यं नरः शुचिः॥
जातीः स स्मरते वह्नीर्नाकपृष्ठे च मोदते।
गम्यान्यपि च तीर्थानि कीर्तितान्यगमानि च॥
मनसा तानि गच्छेत सर्वतीर्थसमीक्षया।
(महाभारत, वन० ८५। १०३—५[1])

कई तीर्थों तथा सरोवरोंका नाम ही 'जातिस्मर-तीर्थ', 'जातिस्मर-ह्रद' आदि है। महाभारत, वनपर्व ८४। १२९ में आता है कि हरिहर-क्षेत्रके समीपवर्ती जातिस्मर-तीर्थमें स्नान करनेसे निस्संदेह जातिस्मरता प्राप्त हो जाती है—

जातिस्मरमुपस्पृश्य शुचिः प्रयतमानसः॥
जातिस्मरत्वमाप्नोति स्नात्वा तत्र न संशयः।
(महा० वन० ८४। १२८-२९, पद्मपुराण, स्वर्गखं० ३८। ४६)

इसी प्रकार कोकामुख, वाराह-क्षेत्र, सूकरक्षेत्र—सोरोंमें भी संयम तथा ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास तथा स्नानादि करनेसे जातिस्मरता निर्दिष्ट है—

कोकामुखमुपस्पृश्य ब्रह्मचारी यतव्रतः।
जातिस्मरत्वमाप्नोति दृष्टमेतत्पुरातनैः॥
(महाभारत वन० ८४। १५८; पद्म० स्वर्ग० ३८। ६८; पद्म० आदि १५८। ३८ पूना)

कृष्णवेणानदीके देवह्रदमें भी स्नान करनेसे जातिस्मरता बतलायी गयी है[2]। इसका भी दूसरा नाम 'जातिस्मरह्रद' या 'जातिस्मर-सरोवर' है।

ततो देवह्रदेऽरण्ये कृष्णवेणाजलोद्भवे॥
जातिस्मरह्रदे स्नात्वा भवेज्जातिस्मरो नरः।
(महाभा०, वनपर्व ८५। ३७-३८; पद्म०, स्वर्गखण्ड ३९। ३७)

पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें इन्द्रप्रस्थस्थित कालिन्दी-माहात्म्यके १९९ से २२२ तकके २४ अध्यायोंमें (बंगवासी, वेंकटेश्वर तथा मोर संस्करण, पूनामें यह संख्या १९५ से २१९ समझनी चाहिये।) आये हुए सभी तीर्थ जातिस्मर-तीर्थ हैं। १९९ वें अध्यायमें आता है कि शतमखयाजी एक इन्द्र क्षीणपुण्य होकर हस्तिनापुरमें शिवशर्मा तथा गुणवतीके पुत्र विष्णुशर्मा ब्राह्मण हुए। वृद्धावस्थामें अपने पिता शिवशर्माके साथ विष्णुशर्मा भी भगवदाराधनके लिये

कहा भी है—

तीर्थानां दर्शनं धन्यमवगाहं ततोऽधिकम्।
स्मरणं पुण्यकरं प्रोक्तं माहात्म्यं सर्वतोऽधिकम्॥
(वामनपुराण ३३। ४, स्कन्द० काशी०)

यच्छ्रुत्वा वै पतति न जनो मातृगर्भे कदाचित्।
(पद्म० ६। २१६। १०१)

१. सच्ची श्रद्धा ही इसमें हेतु है। श्रद्धापूर्वक माहात्म्यश्रवणमें अतिरिक्त श्रद्धा द्योतित होती है, यह स्पष्ट है।

२. यह कोई कृष्णवेणा नदीके अन्तर्गत कुण्ड है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रप्रस्थ आये। वहाँ निगमबोधतीर्थके[3] प्रभावसे अपने पुराने यज्ञोंके यूपोंको देखकर उन्हें अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया—

अत्रागतः स्वविहितान् पूर्वजन्मनि यूपकान्।
विष्णुशर्मा समालोक्य सस्मार हरिसंगमम्॥

(पद्म० २००। ५७ वेंकटेश्वर और मोर सं०, पूनामें १९६। ५६ वाँ श्लोक)

जब उनके पिताको शङ्का हुई तो उन्होंने अपने पितासे कहा कि 'पिताजी! आप भी यहाँ स्नान करें तो आपको भी पूर्वजन्मकी स्मृति हो जायगी'—

निगमोद्बोधके तीर्थे स्नानमत्र पितः कुरु।
दुर्लभं प्राप्स्यसे ज्ञानं पूर्वजन्मस्मृतिप्रदम्॥
ममापि पूर्वजनुषः प्रवृत्तिं त्वं स्मरिष्यसि।
एतत्तीर्थजलस्पर्शात् तात सत्यं वदामि ते॥

(वही २००। ८४-८५)

वे लोग ऐसी बात कर ही रहे थे कि तबतक एक सिंहके द्वारा पीछा किया जाता, भागता आता महाहिंसक भील दीख पड़ा। वह काला-कलूटा, बिडाल-नेत्र और हाथमें बर्छा लिये देखनेमें बड़ा ही भयानक था। उन्हें देख दोनों पिता-पुत्र डरकर वृक्षपर चढ़कर कृष्णस्मरण करने लगे। इतनेमें वह भील भी वृक्षपर चढ़ने लग गया। तबतक सिंहने उसे पकड़ लिया और उस भीलने भी भालेसे उसका वध कर डाला। इस तरह वे दोनों ही मर गये तथा उन्हें लेने विष्णुदूत आये और उन्हें तत्क्षण जातिस्मरता प्राप्त हो गयी—

स्मृतिर्नो जायते पूर्वकर्मणां वां प्रसादतः।

(वही २००। १०८)

यह सब देखकर शिवशर्माको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने वृक्षसे उतरकर विधिपूर्वक उस निगमोद्बोध या निगमबोधतीर्थमें अवगाहन किया और गङ्गादि सप्त नदियों तथा अयोध्यादि सप्त पुण्य पुरियोंको स्मरण करते हुए भगवान् नारायणका ध्यान किया। पुनः बाहर आकर सूर्यार्घ्य देकर उन्होंने भगवान् विष्णुकी सविधि षोडशोपचारसे पूजा की और विष्णुशर्मासे अपने पूर्वजन्मका हाल बतलाया—

जगाद संस्मरन् पूर्वजन्मकर्माणि कृत्स्नशः।

(वही २०१। १६)

३. यह तीर्थ पुरानी दिल्ली ६ में यमुनातटपर है। यहीं समीपमें 'धर्मसंघ महाविद्यालय' भी है।

ये पूर्वजन्ममें सुमति नामके वैश्य थे। इनके पिता शरभको कोई संतति न थी। देवलके उपदेशसे गौरी-आराधनाद्वारा ये ही उनके पुत्र हुए।[4] दुर्वासाके शापके कारण तीर्थराजमें मरनेपर भी उन्हें पुनर्जन्म लेना पड़ा।[5]

इसी ग्रन्थके २०४वें अध्यायमें शरभके तथा उनके वञ्चक यात्रियोंके खानेवाले 'विकट'नामक राक्षसको भी यहींके जल पीनेसे जातिस्मरता प्राप्त होनेका उल्लेख है—

मुखे चिक्षेप च तदा रजनीचरपुङ्गवः।
क्षिप्तमात्रे जले तस्य पूर्वजन्मभवा स्मृतिः॥

(वही २०४। ७४)

पुरानी दिल्लीके पूर्वमें इन्द्रप्रस्थ नाम होनेका एक प्रमुख कारण यह है कि यह जातिस्मर निगमोद्बोधतीर्थ इन्द्रकृत यागस्थलपर रहा और वहीं यह पुरानी दिल्ली बनी थी।

सुराचार्यस्य तत्रास्ति तीर्थं सर्वार्थसाधकम्।
निगमोद्बोधकं जाता स्मृतिस्ते यज्जलाशनात्॥

(वही २०४। ८५)

उस राक्षसने बतलाया था कि उसे उस दिव्य जलकी प्राप्ति भी अनायास नहीं हुई थी, बल्कि जन्मान्तरमें उसकी स्त्रीद्वारा प्रेरित होकर एक वैष्णवका भोजन कराया जाना ही इस सौभाग्यका हेतु बना—

कृतं पुण्यमिदं वैश्य नोदितेन मया स्त्रिया।
पूर्वजन्मनि येनेदं प्रापितं तीर्थवारि मे॥

(वही २०४। ११०)

उस जलके प्रभावसे वे शरभके शत्रु तथा शिविका-वाहक तो मरकर कुबेरके लोक गये और शरभकी प्रेरणासे विकट राक्षस उन्हें पुनः इन्द्रप्रस्थमें निगमोद्बोधतीर्थमें ले आया। वहाँ वे दोनों मित्रभावसे रहकर स्नान करने लगे। पिता (शरभ) की घोर अस्वस्थताका समाचार पाकर शिवशर्मा (पूर्वजन्मके सुमति) भी उनकी सेवामें आ

४. यहीं दिलीपका चरित्र है। कालिदासने इसके ही आधारपर रघुवंशकी रचना की थी।

५. ऐसे ही कारणोंसे श्रेष्ठ तीर्थोंमें भी मरनेपर प्राणीको कभी-कभी पुनर्जन्म लेना पड़ता है—

मरणं प्राप्तवान् कूले गङ्गाया मुनिसेविते।
मुनेर्दुर्वाससः शापाज्जातोऽहं वैष्णवे कुले॥

(वही २०५। ४४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचे। विकट राक्षस तथा उनके पिता शरभने उन्हें हृदयसे आशीर्वाद देकर अभिनन्दन किया। वहाँ स्नान करनेसे उन्हें भी अपने पूर्वजन्मोंका स्मरण हो आया—

स्नात्वा कुरु क्रियाः स्वीयाः पूर्वजन्म स्मरिष्यसि ॥
प्रविष्टोऽहं स्मरंस्तात पूर्वजन्मशुभाशुभम् ॥
(वही २०४। १३०, १३२)

दस ही दिनोंमें शरभकी मृत्यु हुई और उन्हें विष्णु भगवान् स्वयं ही गरुडारूढ होकर दर्शन देते हुए वैकुण्ठ ले गये—

अथो गरुडमारुह्य वक्षसा धारयन् श्रियम्।
आजगाम स्वयं विष्णुर्नवीनघनविग्रहः ॥
दत्त्वा स्वकीयसारूप्यमारोप्य गरुडं तदा।
पितरं मम ब्रह्माद्यैर्वृतो वैकुण्ठमारुहत् ॥
(वही २०४। १३६, ३९)

यह सब आश्चर्य देखकर शिवशर्मा (पूर्वजन्मके सुमति) भी मोक्षकी इच्छासे उस राक्षसके साथ वहीं निवास करने लग गये। एक बार उस राक्षसने कीचड़में फँसी हुई गायको देखकर उसे निकालनेके लिये ज्यों ही उसमें प्रवेश किया कि उसे एक जलहस्तीने पकड़ लिया और पेटमें पानी भर जानेसे राक्षस मर गया और देवतारूपमें परिणत हो गया; क्योंकि उसकी यही अभिलाषा थी।

इसी प्रकार इसके २०८वें अध्यायके ५७-५८ वें श्लोकोंमें विमल नामक ब्राह्मणके द्वारा इन्द्रप्रस्थ-सीमान्तर्गत यमुनातटवर्ती द्वारकातीर्थके जलके छींटोंसे सिंचन करनेसे पिशाचिनियोंको जन्मान्तरका ज्ञान होता है—

तास्तज्जलाभिमर्शात्तु सर्वेषां जन्मकर्मणाम्।
संस्मृत्य तत्यजुश्चैव राक्षसं देहमुल्बणम् ॥
(वही २०८। ५८)

इसी उत्तरखण्डके २११। ४१ में एक सर्पको सोये हुए मदारीके पिटारेसे बाहर निकलने तथा यहींपर अन्य लोगोंद्वारा मार दिये जानेपर जन्मान्तर-स्मृति होती है। इसी खण्डके २१६। ४५ श्लोकमें एक महिषको भी इसका जल पीनेसे जन्मान्तर-ज्ञान होनेकी सुन्दर कथा है। इसीके २२१वें अध्यायमें हेमाङ्गी नामकी रानीको केवल इसी तीर्थके अन्तर्गत प्रयाग नामक तीर्थके दर्शनमात्रसे जन्मान्तर-ज्ञान होनेका उल्लेख है—

अत्र तीर्थमिदं दृष्ट्वा प्रयागं ब्रह्मनिर्मितम्।
पूर्वजन्मकृतं कर्म सा सस्मार मनस्विनी ॥
(वही २२१। १०)

ये सभी कथाएँ बड़ी ही सुन्दर हैं। विस्तारभयसे इनका पूरा उल्लेख नहीं हो सका है। पाठक वहीं देखनेका कष्ट उठावें। इसीके क्रियायोगसार खण्डके ७वें अध्यायमें सर्वजनि नामक ब्राह्मणको भी जातिस्मरता होती है। इसी क्रियायोगसारके १३। १०४—३१ में प्रजा ब्राह्मणकी कथा है। वह जन्मान्तर-जिज्ञासासे शिवक्षेत्र जाता है और शंकरजीके दर्शन होनेपर अपना पूर्वजन्मवृत्त पूछता है—

कोऽहं तस्थौ पुरा देव किं वा कार्यं कृतं पुरा।
(१३। १२६)

भगवान्‌ने इसे कठिन एवं गूढ़ प्रश्न कहा—'गुह्याद् गुह्यतरं महत्।' (१३५) पुनः उसे जन्मान्तरका 'दण्डपाणि नामक शबर' बतलाया। पूर्वजन्ममें एक वनमें सर्ववेदा नामक ब्राह्मणको भगवत्पूजार्थ पुष्प प्रदान कर वैकुण्ठसे लौटकर वह ब्राह्मण हुआ था। इसी प्रकार यहाँ अन्य भी बहुत-से जातिस्मर तीर्थोंका वर्णन है।

(५)

विश्वकी सर्वप्रथम जातिस्मरा (पूर्वजन्मस्मर्त्री) देवी पार्वती

(पराम्बा भगवती पार्वतीका पूर्वजन्म)

वेदोंसे लेकर साधारण साहित्य तकके पन्ने-पन्ने भगवती पार्वतीके शुद्ध स्नेहके विवरणसे भरे पड़े हैं। वेदोंमें पार्वतीका अनेक रूपोंमें विशद वर्णन है। कालिकापुराण, देवीपुराण, देवीभागवत, महाभागवत आदि तथा मार्कण्डेय-पुराण, देवीमाहात्म्य आदिके वर्ण्य-विषय यही भगवती पार्वती हैं। इसी तरह स्कन्दपुराणका कौमारिकाखण्ड, माहेश्वरखण्ड, केदारखण्ड एवं बृहद्धर्मपुराण तथा पद्मपुराणमें भी पार्वतीके अद्भुत स्नेहका विस्तारसे वर्णन है। शिवपुराण, वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, लिङ्गपुराण एवं ब्रह्मपुराणमें तो यह वर्णन बार-बार आया है। कालिदास भी इसीलिये कालिदास हैं। उन्होंने कुमारसम्भव आदिमें इसका रम्यतम चित्र खींचा है। यों वाल्मीकिरामायण तथा महाभारत-वनपर्वमें भी स्कन्दजन्म विस्तारसे निरूपित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोस्वामी तुलसीदासजीने मानसमें शिवविवाहका वर्णन तो किया ही, एक 'पार्वती-मङ्गल' नामकी स्वतन्त्र पुस्तक भी लिख डाली। तत्तद्ग्रन्थोंके विशिष्ट व्याख्याकारोंने भी कुछ उठा नहीं रक्खा है। इनके चरित्रका एक बड़ा भाग जातिस्मरतासे सम्बद्ध है।

वेदों तथा कालिकापुराण, शिवपुराण, देवीपुराण, देवीभागवत, बृहद्धर्मपुराण, महाभागवतादि सभीके अनुसार भगवती दक्षपुत्री सती ही भगवान् शिवकी प्रथम पत्नी थीं[1]। इन्होंने दक्षके यज्ञमें भगवान् शिवका अपमान देखकर अपना शरीर अग्निमें भस्म कर दिया। तदनन्तर वे हिमवान् पर्वतके घरमें मेनकाके गर्भसे उत्पन्न हुईं। इनका व्रत ही था—

जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी॥
(मानस १।८०।३)

अथावमानेन पितुः प्रयुक्ता
दक्षस्य कन्या भवपूर्वपत्नी।
सती सती योगविसृष्टदेहा
तां जन्मने शैलवधूं प्रपेदे॥
(कुमारसम्भव १।२१)

जन्मने—पुनरुद्भवाय तां शैलवधूं मेनकां प्रपेदे (मल्लिनाथ)

ततः सा चण्डिका योगात् त्यक्तदेहा पुरा पितुः।
ईहया भवितुं भूयः समैच्छद् गिरिदारतः॥
(शिवपुराण, रुद्रसं० पार्वतीखं ६।२, कालिकापुराण ४०।५०)

'पूर्वजन्ममें योगबलसे अपने पिताके दिये हुए देहका त्याग करके उन कोपनी-स्वभावा देवीने पुनः हिमालयपत्नी (मेनका) के गर्भसे उत्पन्न होनेकी कामना की। 'सतीं जो तजी दच्छमख देहा। जनमी जाइ हिमाचल गेहा॥'[2]
(मानस १।८२।१३)

वे स्वयं बतलाती हैं—

अहं हिमाचलसुता साम्प्रतं नाम पार्वती॥
पुरा दक्षसुता जाता सतीनामान्यजन्मनि॥

× × ×

अत्र जन्मनि सम्प्राप्तः शिवोऽपि विधिवैभवात्॥
(शिवपुराण, रुद्रसंहिता, पार्वतीखण्ड २६।१५-१७; कालिकापुराण ४५।६१, ६२; स्कन्दपुराण, माहेश्वरखण्ड २।४१।१६)

'इस जन्ममें मैं हिमाचलकी पुत्री हूँ, मुझे लोग पार्वती कहते हैं। पूर्वजन्ममें मैं दक्षप्रजापतिकी कन्याके रूपमें प्रकट हुई थी। उस समय मेरा नाम सती था। इस जन्ममें भी विधाताके विधानसे मुझे भगवान् शिव (पतिरूपमें) प्राप्त हुए हैं।'

इसे नारदादि सभी ज्ञानी ऋषि-मुनि भी भलीभाँति जानते और कहते थे—

जनमीं प्रथम दच्छ गृह जाई। नामु सती सुंदर तनु पाई॥
तहँहु सती संकरहि बिबाहीं। कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीं॥

× × ×

अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारुन तपु किया।
अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्बदा संकर प्रिया॥
(मानस ९७।३ छं० १)

इनकी प्रेम-परीक्षा भी बहुत हुई। स्वयं भगवान् शंकरने बहुत-से वेष धारण कर कई बार परीक्षा की। सप्तर्षियोंने विष्णुभगवान्की महत्ताका प्रलोभन दिखाया। पर उन्होंने—

---

१. कालिकापुराण, बृहद्धर्मपुराण, त्रिपुरारहस्य आदिमें आता है कि पहले गौरी स्वयं दिव्यरूपमें उत्पन्न हुईं, वे ही दूसरे जन्ममें सती और तीसरे जन्ममें पार्वती बनीं।

अथ गौरी महादेवं मृगयित्वा तु सर्वतः।
वियुक्ता देवदेवेन दुःखेनात्यन्तभूयसा॥
देहं विलोपितवती ··· ··· दक्षप्रजापतिर्देवीं तपसातोषयच्छिवाम्।
तदा गौरी देहहीना गगनैकस्वरूपिणी।
तुष्टा तं छन्दयामास वरेण वरवर्णिनी।
स वव्रे तनया भूत्वा गृहे मे वस शंकरि।
इति दत्त्वा समुत्पन्ना ··· ··· ··· ··· ··· ···॥
दाक्षायणीं शिवाय तां ददौ दक्षः प्रजापतिः॥
(कालिका०, बृहद्धर्म०, त्रिपुरारहस्यमाहात्म्य० २३।७-१२)

२. इसीलिये पीछे 'सती' शब्द पतिव्रतामें रूढ हो गया। अर्थात् जिसका जन्म-जन्मतक प्रेम एवं साथ बना रहे और प्रेमद्वारा पतिका अनुगमन करनेवालीको आज भी 'सती' कहा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा
गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा।
कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखरं ..... ॥
ममात्रभावैकरसं मनःस्थितं
न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते।
(कुमारसं० ५। ७८, ८२)

'मीठ काह कबि कहहिं जाहि जो भावई।'
× × × सिंधु रूख सूप सो घेरई॥
महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम।
जेहि कर मन रम जाहि सन तेहि तेही सन काम॥
(मानस १। ८०)

यह कहकर सबको निरुत्तर कर दिया और अपनेको अर्द्धनारीश्वरके रूपमें परिणत कर डाला, जो अबतक अद्वितीयता एवं कनिष्ठिकाधिष्ठताको ही संकेत करता रहा।

(६)

भगवान् आद्यशंकराचार्य तथा वाचस्पति मिश्रादिकी दृष्टिमें जातिस्मरताका स्वरूप

'जातिस्मरता'की विभिन्न परिभाषाओंपर अलग विचार प्रकट किया गया है। यहाँ इस सम्बन्धमें अद्वैत वेदान्तके अत्यन्त विरक्त आचार्योंकी सूक्ष्म समीक्षा प्रस्तुत है। भगवान् शंकराचार्यने गीताभाष्य (७। १७) तथा ब्रह्मसूत्रादिके भाष्यमें कई जगहोंपर अति उच्चभावयुक्त समीक्षा लिखी है। उन्होंने ब्रह्मसूत्र (३। ३। ३२) पर भी भाष्य करते हुए जो कुछ लिखा है, उसका भाव यह है—

"अपान्तरतमा नामके ऋषि विष्णु भगवान्के नियोगसे कलि एवं द्वापरकी संधिमें कृष्णद्वैपायन वेदव्यास हुए। इसी प्रकार ब्रह्मपुत्र वसिष्ठ राजा निमिके शापसे देह त्यागकर उर्वशीके पुत्ररूपमें घड़ेसे पुनः प्रकट हुए। ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार स्वयं ही शिवको वरदान देकर उनके पुत्र षडानन बने। इसी प्रकार उन-उन स्मृति-पुराणोंमें दक्ष-नारदादिकी अनेक जन्मोंमें देहादि ग्रहणकी कथाएँ मिलती हैं। ये सभी वेद-वेदान्तमें निपुण थे। फिर इनका जन्मान्तर होना ब्रह्मविद्याकी दुर्बलता सिद्ध करता है। इसका उत्तर है कि वास्तवमें ये लोग अधिकारी पुरुष थे। 'जैसे भगवान् सूर्य सृष्टिके अन्तमें उदयास्तसे मुक्त होकर कैवल्यका अनुभव करते' यह (छान्दोग्य ३। ११। १) श्रुतिमें निर्दिष्ट है। इसी प्रकार अपान्तरतमा आदिको भी समझना चाहिये। इनकी पूर्वस्मृति मुषित नहीं होती।

"त एवैत' इत्यादि स्मृति-वचनोंसे ये साधारण जातिस्मरसे विशिष्ट भी हैं; क्योंकि ये स्वेच्छाशक्तिसे सुलभा नामकी योगिनीके समान देहग्रहण-प्रवेशादि करते हैं। शुद्ध जातिस्मरता एवं ज्ञानलब्धिके बाद कभी भी मुक्तिमें संदेह नहीं हो सकता—**'स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः'** (छा० ७। २६। २)। जातिस्मरता ज्ञानका ही एक अंश है और यदि यह शुद्ध है तो आगे बढ़कर ज्ञानाग्नि बनकर सभी कर्मोंका दाह कर देती है—**'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन॥'** (गीता ४। ३७) वामदेवने भी ज्ञान होनेपर अनेक जन्मोंका स्मरण करते हुए मोक्ष पाया था—**'तद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभवं सूर्यश्च।'** (बृहदा० १। ४। १०)।"

जातिस्मरता भी अनेक श्रेष्ठ सत्क्रियाओंका फल है। पर उसका भी परम सदुपयोग या लाभ यही है कि वह जीव अपने सभी अच्छे-बुरे लंबे कालतकके कर्मोंके अनुभव स्मरणस्वरूप—बुरे कार्यसे तो निरन्तर बचे और भले कार्य एवं आध्यात्मिकतामें विशेष तल्लीन रहे और मोक्षकी ओर सर्वात्मना अग्रसर होकर, उसे प्राप्त भी कर ले। इसीलिये पुराणोंके पाठादिसे भी शिवपुराणादिमें जातिस्मरता सुलभ होनेकी बात भी कही गयी है और तद्वत् ज्ञान तो सभीको हो जाता है। यह बात प्रत्येक विचारशीलको स्वीकार करनी पड़ेगी। जातिस्मर व्यक्तियोंमें बाल्यकालसे ही स्वाभाविक गाम्भीर्य एवं दार्शनिकता दृष्ट होती है। पूर्वस्वभाव भी रहता है। यह शंकराचार्य, विज्ञानयोगी आदि (गीता १७। २)में कहते हैं। वे हल्के-फुल्के साहित्य, दृश्य, सिनेमा, गंदी या रोचक तामसी कहानी आदि नहीं पढ़ते। भगवच्चरित्र-दर्शन, शब्दशक्ति, वेदान्तादि एवं वैराग्यपूर्वक ईश्वरभजन एवं सत्सङ्गमें ही प्रवृत्त रहते हैं। बाल्यकालसे ही सरलता, साधुता उनका स्वाभाविक गुण होता है।[2] अन्यथा 'हरिस्मृति'

१. इसका उदाहरण हरिवंश (१। २१-२७) अध्यायोंमें ध्यानसे देखना चाहिये।

२. परम सरलताको ही योगशास्त्रोंमें कुण्डलिनी-जागरण कहा गया है। कुटिलता तद्विपरीत वस्तु है। कूटनीति, सांसारिकता आदि जातिस्मरता आदिके बाधक हैं। भगवान् भी कहते हैं—
'निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥'
(मानस ५। ४३। ३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिके बिना जातिस्मरतासे कोई लाभ नहीं है। अतः 'हरिस्मृति' ही सार है। जातिस्मृति तो एक उसकी साधक-सहायक वस्तुमात्र है। यदि यह नहीं है तो वास्तवमें जातिस्मृति ही व्यर्थ है। अतः जातिस्मृति हो या न हो, सब चिन्ता छोड़कर भगवान्‌का भजन ही करना चाहिये। अन्यथा केवल जातिस्मरताकी प्राप्ति तथा उसके अभिमानमें तो जानेवाला समय व्यर्थ ही नहीं, पातक और हानिकारक भी हो सकता है।

हिंदू-धर्म और पुनर्जन्म-सिद्धान्त

(लेखक—श्रीरामनाथजी सुमन)

पुनर्जन्म हिंदू मस्तिष्कका आश्चर्यजनक आविष्कार है। बिना इसके संसारकी अनेक विषमताओंका कहीं कोई समाधान सम्भव नहीं है। हम देखते हैं कि एक मनुष्य सत्कर्म करते हुए भी कष्ट पा रहा है, दूसरा नीची कर्म-भूमिपर रहकर भी सुखोपभोग कर रहा है; एक ही घरमें एक ही माता-पिताकी समान स्थितिमें उत्पन्न होनेवाली संतानें एक-दूसरेसे बहुत भिन्न होती हैं। कोई धनवान् है, कोई गरीब है, कोई बिना श्रम किये एक धनवान्‌के घर पैदा होनेके कारण सब ऐहिक सुख पा रहा है। यह सब क्यों है? क्या कोई ईश्वर नहीं है? सृष्टि किसी नियमसे शासित नहीं है? या ईश्वर है भी तो वह बिल्कुल स्वेच्छाचारी है? या फिर सब कुछ एक अन्ध-नियतिका खेल है? तब क्या मनुष्य बिल्कुल कठपुतली है और वह अपनेको उच्चस्तरपर नहीं ले जा सकता?

अनात्मवादियों, प्रकृतिवादियों या विकासवादियोंके पास इसका कोई उत्तर नहीं। केवल हिंदू ऋषियों और दार्शनिकोंने कर्म-सिद्धान्तकी खोज करके मानवजीवनमें असीम सम्भावनाओंका उद्‌घाटन किया है। हाइरोक्लीजने इसे स्वीकार करते हुए कहा है—'विदाउट दि डाक्ट्रिन आफ़ मेटेमसाईकोसिस, इट इज नाट पासिबल टु जस्टीफाई दि वेज़ आफ़ गाड।' अर्थात् 'पुनर्जन्म-सिद्धान्त माने बिना ईश्वरके विधानको न्यायोचित मानना सम्भव नहीं है।'

यदि हमारे भाग्यके निर्माणमें हमारा कोई हाथ नहीं है और सब कुछ नियतिपर निर्भर है तो भलाई-बुराईकी सब संहिताएँ निरर्थक हैं; तब आशाका कोई अर्थ नहीं रह जाता और सम्पूर्ण सुखका मूल आशा ही है। हिंदूधर्मने पुनर्जन्म और कर्म-सिद्धान्तकी स्थापना करके न केवल हमारे बीच पायी जानेवाली व्यापक विषमताओंकी एक न्याययुक्त व्याख्या हमारे सामने प्रस्तुत की है, वरं आगे हमारे विकास और उन्नतिका मार्ग भी खुला रक्खा है। आजकी स्थिति पूर्वजन्मोंके कर्मोंका परिणाम है; किंतु भावी स्थितिका निर्माण हमारे अपने कर्मोंपर निर्भर करता है। ज्यों ही हम पुनर्जन्मको स्वीकार कर लेते हैं, हमारे सम्पूर्ण सुख-दुःखका कारण हमें समझमें आ जाता है और हम अपने भविष्यके प्रति आश्वस्त हो सकते हैं।

पुनर्जन्म-सिद्धान्त आस्तिकदर्शनका प्रमुख आधार है। इसका सम्बन्ध ईश्वर-सिद्धि, आत्माकी सत्ता और कर्म-विपाक या कर्म-फलसे है। ये तीनों मिलकर हिंदू-दर्शनका आधार बनते हैं। ये सिद्धान्त-त्रय हिंदूधर्मकी कायामें प्राणवत् व्याप्त हैं। वेद, उपनिषद्, दर्शन, पुराण सर्वत्र इसका विवेचन और इसकी महिमा हम देखते हैं। समस्त आस्तिक दर्शन ईश्वरकी सत्ता स्वीकार करते हैं। नास्तिक दर्शन या तो ईश्वरके विषयमें मौन हैं या स्वयं अपनेको अस्वीकार करके नये-नये प्रश्न खड़ा कर देते हैं। जिनके लिये ईश्वर 'प्रत्यक्ष'का विषय नहीं है, उनके लिये भी वह 'अनुमान-प्रमाण'का विषय तो हो ही सकता है। उदयनाचार्यके अनुसार 'आकाशका ग्रहण किसी इन्द्रियसे न होनेपर भी शब्दके उत्पन्न होनेसे उसकी सत्ता स्वीकार करनी पड़ती है। बिना अवकाशके शब्द उत्पन्न नहीं हो सकता।' इसी तरह ईश्वर प्रत्यक्षका विषय न होकर अनुमान-द्वारा तो सिद्ध है ही—योगिजन तो उसका प्रत्यक्ष दर्शन भी करते हैं। ब्रह्माण्डकी समस्त लीला बिना किसी चेतन कर्त्ताके सम्भव नहीं। प्रकृतिवादियोंके पास भी इसका कोई उत्तर नहीं है कि ब्रह्माण्ड यदि प्रकृतिसे बना तो प्रकृतिके परमाणुओंको एकत्र या संयुक्त करके नया-नया चमत्कार या सृष्टि कौन करता है? इतनी विराट् प्रकृति है; उसमें अनन्त ग्रह-नक्षत्र प्रतिक्षण अपनी-अपनी कक्षामें, नियमितताके साथ गतिमान् हैं, ये टकराते क्यों नहीं? इनमें एक क्षणकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी अनियमितता क्यों नहीं आती ? स्वभावतः इनका नियामक कोई होना ही चाहिये । वही इस महाप्रकृतिका धारक, नियामक महत्तत्त्व है । जर्मन दार्शनिक काण्टने ठीक ही लिखा है—'अनन्त चमत्कारोंसे शोभित तारिका-खचित द्युलोक और मनुष्यके अन्तःकरणमें सदसद्विवेक-शक्तिके भाव मुझे हठात् विश्वास दिलाते हैं कि इस दृश्यमान जगत्से परे भी कोई अपूर्व शक्ति अवश्य है ।'

ईश्वरके बाद आत्माकी सत्ता और नित्यताकी बात आती है । हमारे प्रमुख शास्त्रोंमें इसका बड़ा विस्तृत विवेचन मिलता है । सांख्यदर्शन कहता है—

संघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात् ।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात्कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च ॥
तस्माच्च विपर्यासात् सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य ।
कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वमकर्तृभावश्च ॥
(सांख्यकारिका १८-१९)

जड प्रकृतिमें विकारसे जितने भी पदार्थ होते हैं, सब भोग्य हैं; अतः इनका भोक्ता भी होना ही चाहिये । हमारा शरीर भी प्रकृतिके विकार या संयोगसे उत्पन्न है, इसलिये उसका भी कोई चेतन उपभोक्ता हो । जड तो जडका उपभोग कर नहीं सकता । इसलिये चेतन जीवात्मा ही शरीरका भोक्ता है । प्रत्येक कर्मके लिये कर्त्ता, साधन तथा विषयकी आवश्यकता पड़ती है । साधन हो, किंतु कर्त्ता न हो तो कर्मकी सिद्धि भी नहीं हो सकती । हम यह भी देखते हैं कि मनुष्यका शरीर यन्त्रवत् नहीं चलता; इस मार्गपर चलना चाहिये, इसपर नहीं, यह विवेक भी उसमें है । यह विवेक करनेवाला कौन है ? मनको कौन प्रेरित करता है ? जो चला गया है, उसकी याद आकर सुख-दुःखका अनुभव या भोग कौन करता है ? कभी जिसका सुख लूटा था, वह तो आज है नहीं; फिर भी रसकी, उसके रूपकी अनुभूति होती है । क्यों होती है यह अनुभूति ? बीतेको कौन भोगता है ? वही जो बीते कालमें भी था और आज भी है । वही है—आत्मा । उसके किये कर्म नष्ट नहीं होते; बादमें भी फल देते रहते हैं । सब कर्मोंका फल तुरंत ही नहीं मिल जाता; इस जन्ममें जो कर्म किये हैं, उनका भोग यहीं समाप्त नहीं हो जाता; इसीलिये शेष कर्म-फल-भोगके लिये दूसरा जन्म होता है । न्यायदर्शन भी कहता है—'आत्मनित्यत्वे प्रेत्यभावसिद्धिः ।' (४ । १ । १०) 'आत्मा यदि शरीरके बाद ही रहता है, नित्य है, तो पूर्व-कर्मोंके भोगके लिये पुनर्जन्म मानना ही होगा ।'

जब मनुष्य शरीर-त्याग करता है, तब इस जन्मकी विद्या, कर्म और पूर्वप्रज्ञा या वासना आत्माके साथ जाती है । इसी ज्ञान और कर्मके अनुसार नवीन जन्म होता है । महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ।
सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ।
(योगदर्शन० २ । १२-१३)

यदि कर्म अच्छे हैं तो उत्तम जाति, आयु और भोग प्राप्त होते हैं । समान साधन और परिस्थितिके बीच भी एक लड़का विद्याके क्षेत्रमें उच्च स्थान प्राप्त करता है, जब दूसरा सामान्य ही रह जाता है । यह विषमता क्यों है ? यही है कि सब प्रकारकी विषमताओंका कारण पूर्वकर्म ही है । किसीमें बचपनसे ही वैराग्यकी ओर प्रवृत्ति देखी जाती है; जब दूसरे लोग सिर हिलने तक संसारके भोगोंसे चिपके रहते हैं । इसका कारण भी यही है कि पहले प्रकारके लोग पूर्वजन्ममें वैराग्योन्मुख रहे होंगे, जब दूसरे प्रकारके लोगोंमें भोगकी वासना मृत्युपर्यन्त रही होगी । दोनों अपनी पूर्वोपलब्धियोंके संस्कार इस जन्ममें भी ले आये ।

मीमांसादर्शनमें भी पुनर्जन्मका समर्थन मिलता है । भेद ब्यौरेकी बातोंमें है । वे जीवात्माकी जगह 'आतिवाहिक' अर्थात् एक शरीरसे दूसरे शरीर तक ले जानेवाले देहाभिमानी देवताकी बात कहते हैं । सांख्य आत्माको सर्वव्यापक मानते हुए भी एक दूसरे 'लिङ्ग' शरीरकी सत्ता मानता है । यह 'लिङ्ग' या सूक्ष्म शरीर ही एक देह छोड़ दूसरी ग्रहण करता है । न्याय तथा वैशेषिक भी आत्माको सर्वव्यापी मानते हैं और अणुस्वरूप मनद्वारा एक शरीरसे दूसरा शरीर प्राप्त करनेकी बात कहते हैं । योग आत्मा, इन्द्रियाँ और अहंकार तीनोंको व्यापक मानता है और अहंकारादिसे युक्त वासनाओंके कारण ही फलोपभोगकी बात करता है । तात्पर्य यह है कि शास्त्रकारोंमें विचार-भेद तो है, किंतु पुनर्जन्मको किसी-न-किसी रूपमें सब मानते हैं ।

गीता समस्त भारतीय ज्ञानराशिका आकर है । उसमें हिंदूधर्म-सिद्धान्तकी समस्त विचारधाराओंका आकलन हुआ है । उसमें पुनर्जन्मके विषयमें बार-बार उल्लेख मिलता है । देखिये श्रीकृष्ण कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥
देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥
(२ । १२-१३)

—'न ऐसा है कि मैं किसी कालमें नहीं था या तू नहीं था अथवा ये राजा लोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि हम सब आगे नहीं रहेंगे । जैसे इस देहमें जीवात्माकी कुमार, युवा और वृद्ध अवस्था होती है, वैसे ही उसे देहान्तरके बाद दूसरा शरीर भी प्राप्त होता है । तत्त्वज्ञ पुरुष इससे भ्रमित नहीं होते ।'

'न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।'
(गीता २ । २०)

'शरीरके नाश होनेपर भी आत्माका नाश नहीं होता ।'

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥
(गीता २ । २२)

'जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्र ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको त्यागकर नयी देह धरता है ।' इसी प्रकार गीताके अध्याय ४, ५, ६, ८, ९, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८ आदिमें भी पुनर्जन्म-परलोक आदिके समर्थक बहुतसे श्लोक हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदसे पुराणतक हिंदू-धर्ममें सर्वत्र पुनर्जन्मका ग्रहण एवं विवेचन है । वस्तुतः कर्म-सिद्धान्त, क्रियमाण कर्मोंके विषयमें जीवात्माका स्वातन्त्र्य तथा पुनर्जन्मके मूलाधार हैं; जिनपर हिंदूधर्म खड़ा है ।*

मरणोत्तर जीवनपर पाश्चात्य मनीषी

(लेखक—ब्रह्मचारी श्रीअमिताभजी)

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम् ।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ॥
(महाभारत)

सभी विचारोत्तेजक धर्मशास्त्रोंमें वेद तथा उपनिषद् मरणोत्तर जीवनकी स्थितिका निरूपण करनेमें तर्कसंगत तथा ठोस आधार प्रस्तुत करते हैं । इन्हीं शास्त्रोंके विचारोंका सहारा अन्यान्य देशोंद्वारा लिया गया है । इसमें संदेह नहीं कि अति प्राचीनकालसे विदेशोंके लोग इनपर विचार करते रहे हैं । प्रस्तुत लेखमें हम इस विषयसे सम्बन्धित पाश्चात्य जगत्के दार्शनिकों, लेखकों तथा वैज्ञानिकोंकी सम्मतियोंका अनुशीलन करेंगे ।

दार्शनिक

प्राचीन यूनानके महान् दार्शनिक तथा वैज्ञानिक पाइथागोरस (Pythagoras) का विचार था कि 'साधुताका पालन करनेपर आत्माका जन्म उच्चतर लोकोंमें होता है और दुष्कृत आत्माएँ निम्न पशु आदि योनिमें जाती हैं । यदि मनुष्य अनियन्त्रित इन्द्रियोंकी दासतासे मुक्ति पा सके तो वह बुद्धिमान् बन जाता है और जन्म-मृत्युके चक्रसे छुटकारा पा जाता है ।' सुकरात (Socrates) के अनुसार 'मृत्यु स्वप्नविहीन निद्रा है और पुनर्जन्मका द्वार है ।' प्लेटो (Plato) भी यही मानते थे और उनका विचार था कि 'कामना ही पुनर्जन्मका कारण है । मनुष्य अपने पूर्वजन्मोंका स्मरण कर सकता है तथा यदि उसे इस जीवनके बन्धनको काट डालना हो तो उसे सब प्रकारके भोग-विलासोंको तिलाञ्जलि देनी होगी ।' प्लूटार्क तथा सालोमन (Plutark and Solomon) भी पुनर्जन्मपर आस्था रखते थे । महान् ऋषि प्लाटिनस (Plotinus) के भी इस विषयमें वही विचार थे, जो पाइथागोरसके थे । उनका कथन था 'नैतिक गुणोंसे जीवनका यापन न करनेपर मनुष्य मृत्युके उपरान्त वृक्षतक बन सकता है । जिसने इस जन्ममें अपनी माँकी हत्या की है, वह अगले जीवनमें स्त्री बनेगा और अपने पुत्रद्वारा मारा जायगा ।' दार्शनिक महात्मा आर्फ्यूस

* गीताके बहुतसे उदाहरण इस लेखमें दिये गये थे, परंतु अन्यान्य लेखोंमें वे श्लोक कई जगह आ गये हैं और स्थानाभाव है । इसलिये वे श्लोक इस लेखमें नहीं दिये गये हैं । लेखक महोदय क्षमा करें । —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Orpheus) के मतानुसार 'पापमय जीवन बितानेपर आत्मा घोर नरकमें जाता है और पुनर्जन्मके बाद उसे मनुष्य, पशु तथा कीटके शरीरोंमें रहना पड़ता है। पवित्र जीवन बितानेपर आत्मा जन्म तथा मृत्युके चक्रसे मुक्ति पा जाता है और स्वर्गको जाता है।' कैथारिस्ट (Catharist) दार्शनिक सभी प्रकारके वैवाहिक सम्बन्धों-से घृणा करते थे। इनके अनुसार 'दुष्ट आत्माको पशुओं और यहाँतक कि पत्थर-जैसे जड पदार्थकी योनि धारण करनी पड़ सकती है।' स्पिनोजा, हर्टली तथा प्रीस्टले (Spinoza, Hertly and Priestley) 'आत्माके अमरत्वपर विश्वास करते थे।' रूसो (Rousseau) की नित्य नरकपर आस्था नहीं थी और उसने लिखा कि 'वास्तविक जीवनका प्रारम्भ मृत्युके बाद होता है।' क्रिस्टन वुल्फे (Cristian Walfe) के कथनानुसार 'आत्मा सूक्ष्म होता है और हमारे गुप्त कर्म ही हमारे वर्तमान जीवनके कारण हैं।' लेसिंग (Leceing) के विचार उपनिषदोंमें वर्णित विचारोंसे मिलते-जुलते हैं। उसका कथन है कि 'प्रत्येक आत्मा पूर्णताके लिये सचेष्ट है और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये इस धरतीपर उसे अनेक जन्म लेने पड़ते हैं।' कान्ट (Kant) के विचार भी इसी प्रकारके थे। उनके अनुसार 'प्रत्येक आत्मा मूलतः शाश्वत है।' फिक्टे (Fichte) के मतके अनुसार 'मृत्यु आत्माओंके जीवनप्रवाहमें एक विश्राम-स्थितिके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ईश्वर सनातन है और एक है और वह प्रत्येक आत्मामें निवास करता है।' शेलिंग (Schelling) ने जीवन तथा मृत्युके मार्गपर आत्माकी यात्राकी एक कहानी लिखी है। वे पुनर्जन्ममें विश्वास करते थे और उनका विचार था कि 'उच्च आत्मा उच्च नक्षत्रों (तारों) में जन्म लेते हैं।' नोवालिस (Novalis) की दृष्टिमें 'जीवन है कामना और कर्म हैं उसके परिणाम। जीवन और मृत्यु एक ही वस्तु हैं और इनमेंसे होता हुआ (गुजरता हुआ) आत्मा अमरताको प्राप्त करता है।' स्लायर मेकर (Slier Maker) का भी यही दृष्टिकोण था और उसने कहा कि 'आत्मध्यानकी सहायतासे मनुष्य जन्म तथा मृत्युके चक्रसे छुटकारा पा जाता है और ईश्वरके साथ एकाकार हो जाता है।' हेगल (Hegal) के मतानुसार 'सभी आत्मा पूर्णताकी ओर बढ़ रहे हैं तथा जीवन और मृत्यु इनकी अवस्थाएँ हैं।' महान् दार्शनिक वैज्ञानिक लीपनिज (Leibnitz) ने लिखा—'प्रत्येक जीवित वस्तु अविनाशी है..... उसके ह्रास तथा अन्तरावर्तन (invalutino) का नाम मृत्यु है और उसकी वृद्धि तथा विकासका नाम जीवन है। मरनेवाला प्राणी अपने शरीर-यन्त्रका केवल एक अंश ले लेता है और विकासकी उस तन्द्र-अवस्था अथवा उद्भवस्थितिमें लौट जाता है, जिसमें जन्मके पूर्व था। पशुओं तथा मनुष्योंका उनके वर्तमान जीवनसे पहले कोई अस्तित्व था और इस जीवनके बाद भी कोई अस्तित्व होगा, इस बातको स्वीकार करना ही होगा।' बर्कले, बोसानकेट, डाक्टर मैकटेगार्ट, प्राध्यापक हिस्लप और इंगे (Berkley, Bosanquet, Dr. Mactaggart, Prof. Hyslop and Inge) आत्माकी अमरतापर विश्वास करते थे।

विचारशील लेखक

पाश्चात्य दार्शनिक कवियोंमें एमर्सन, ड्राइडन, वर्ड्सवर्थ, मैथ्यू, आरनोल्ड, शेली तथा ब्राउनिंग (Emerson, Dryden, Wordsworth, Mathew, Arnold, Shelley and Browning) यह नहीं मानते थे कि 'मृत्युका नाम विनाश है।' ड्राइडनने लिखा—

'Death has no power the immortal soul to slay,
That, when its present body turns to slay,
Seeks a fresh home, and with unlessened might,
Inspires another frame with life and light.'

'इस अमर आत्माका वध करनेकी सामर्थ्य मृत्युमें नहीं है। जब मृत्यु आत्माके वर्तमान शरीरका वध करने चलती है तो आत्मा अपनी अक्षुण्ण शक्तिसे नया आवास खोज निकालता है और जो दूसरे शरीरको जीवन तथा प्रकाशसे भर देता है।'

राल्फ वाल्डो एमर्सन (Ralph Waldo Emerson) ने अपनी कवितामें कहा—

'If the red slayer thinks he slays,
Or if the slain thinks he is slain,
They know not well the subtle ways
I keep and pass and turn again.'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यदि मृत्यु यह सोचे कि यह आत्माका विनाश कर रही है और आत्मा यह सोचे कि वह नष्ट किया जा रहा है, तो दोनों ही उस सूक्ष्म तत्त्वज्ञानसे अनभिज्ञ हैं, जिसके अनुसार आत्मा स्थित रहता है और आवागमनके चक्रमें घूमता रहता है।'

वाल्ट विटमैन (Walt Whitman) ने कहा था—'निस्संदेह मैं इसके पहले १० हजार बार मर चुका हूँ।' सर आर्थर कानन डायल (Sir Arthur Conan Doyle) के मतानुसार 'साक्षियोंने बतलाया कि लोग, जिन्हें उन्होंने मूर्त होनेकी क्षमतावाले माध्यम नाम दिया, वे अद्भुत क्षमता रखते हैं।'

वैज्ञानिक

मरणोत्तर जीवनके सम्बन्धमें पाश्चात्त्य वैज्ञानिक अपने ढंगसे सोचते थे। सर विलियम क्रुक्स (Sir William Crookes), गर्ने (Gurney), डाक्टर मायर्ज़ (Dr. Myers), फ्रैंक पोडमोर (Frank Podmore), अलफ्रेड वालेस (Alfred Wallace), प्राध्यापक आक्साकफ (Prof, Aksakof) और रिचर्ड हजसन (Richard Hodgeson) की कृतियाँ बहुत रोचक थीं और वे लोग इस क्षेत्रमें अपनी प्रामाणिकताके लिये प्रसिद्ध थे। इस क्षेत्रमें इंगलैंडके बरमिंघम विश्वविद्यालयके प्राचार्य सर आलीवर लाज (Sir Oliver Lodge) की भी बहुत ख्याति थी। इन लोगोंने सन् १८८५में वैज्ञानिक पद्धतिसे प्लैनचिट (Planchet) की सहायतासे तत्सम्बन्धी सत्यका शोध करनेके लिये इंगलैंडमें एस० पी० आर० नामक मानसिक शोध-संस्थान (Society for the Psychical Research) की स्थापना की। उस संस्थाकी एक शाखा अमेरिकामें भी है। इंगलैंडके प्राध्यापक मायर्ज़ तथा अमेरिकाके डाक्टर हजसनने अपने मित्रोंको मृत्युके उपरान्त पुनः उनके पास आनेका वचन दिया था। मायर्ज़ने अपनी मृत्युके एक महीने बाद और हजसनने अपने मरनेके एक सप्ताह पश्चात् इस वचनको पूरा कर दिखाया। विलियम जेम्स (William James) ने भी यही किया। सन् १९१३ के सितम्बर महीनेमें ब्रिटिश एसोसियेशनके अध्यक्षीय भाषणमें सर लॉजने कहा—'शारीरिक मरणके बाद भी व्यक्तित्व विद्यमान रहता है।' महान् अंग्रेज वैज्ञानिक अलफ्रेड वालेस (Alfred Wallace) का कथन है कि 'प्रेततत्त्वको प्रमाणित करनेके लिये किसी और अधिक साक्षीकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि विज्ञानमें किसी भी मान्य तथ्यके समर्थनमें इससे अधिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।' डाक्टर हजसनने भी कहा 'आज जो कोई भी प्रेततत्त्वको अस्वीकार करता है, वह नास्तिक कहलानेका अधिकारी नहीं, वह अज्ञानी (मूर्ख) है।' फ्लामारियन, स्टेड तथा प्राध्यापक हिस्लप (Flammarion, Stead and Prof. Hyslop) इस बातसे सहमत थे कि 'विगत आत्माएँ हमसे सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं।' बी० बी० श्रेनेक नोटजिंग (B. V. Schrenck Notging) तथा सर क्रुक्स (Sir Crookes) ने छायाचित्र (फोटो) खींचनेके विशेष कैमरेकी सहायतासे मृत आत्माओंके चित्र खींचनेकी चेष्टा की और उसमें सफल भी हुए। श्रेनेकने अपनी पुस्तक 'फेनामीनन आफ मैटिरियलायजिंग' (Phenomenon of Materialising) और स्वामी अभेदानन्दने अपनी पुस्तक 'लाइफ बियोण्ड डेथ (Life beyond Death) में मृत आत्माओंके बहुतसे चित्र भी दिये हैं। स्वामी अभेदानन्दने अमेरिकामें ऐसी कितने ही मृत आत्माओंका आवाहन करनेवाली तिपाइयों (Planchet talles) का परीक्षण किया। वे इस विषयका असंदिग्ध रूपसे समर्थन भी करते थे। पाश्चात्त्य देशों और विशेषतया इंगलैंड, अमेरिका और जर्मनीमें ऐसी कई प्रेत-तत्त्व बैठकें आयोजित की जाती हैं। इन तिपाइयों (Planchet talles) पर जीवित व्यक्तियोंके माध्यमोंकी सहायतासे मृत आत्माओंको बुलाकर इन बैठकोंमें बातचीत की जाती है। ऐसे कई विद्वान् हैं जो नियमित रूपसे इन बैठकोंका संचालन करते हैं तथा घटनाओंको पत्रिकाओंमें प्रकाशित कराते हैं। उनके कथनानुसार 'भोगासक्त आत्मा मरनेके बाद बहुत कष्ट भोगते हैं।' वे यहाँतक अनुभव करनेमें अक्षम रहते हैं कि वे मृत हो चुके हैं। साधारणतया मरणोपरान्त वे निद्राच्छन्न अवस्थाको प्राप्त होते हैं; परंतु वे उसमें शान्तिसे सो नहीं सकते। भौतिक आसक्तियोंके उनके पूर्वसंस्कार उन्हें संसारमें अपने चाहनेवालोंसे मिलनेके लिये—आनेके लिये बाध्य करते हैं। परंतु जब उन्हें कोई भी निमन्त्रित करनेवाला दिखायी नहीं देता तो बहुत दुखी हो जाते हैं। जिस लोकमें उन्हें सामान्यतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहना पड़ता है, वह उनके लिये एक अज्ञात देशके समान होता है। आत्माका आवाहन करनेवाली ऐसी एक गोष्ठीमें डाक्टर मायर मरनेके बाद प्रकट हुए और अपनी स्थितिके विषयमें उन्होंने बताया कि उनके यह जाननेके पूर्व कि वे मर चुके हैं, उन्हें अपना रास्ता टटोलना पड़ा था। उन्हें यह लगा कि वे किसी अपरिचित नगरमें रास्ता भूल गये हैं। और यहाँतक कि जब उन्होंने ऐसे लोगोंको वहाँ देखा, जिनके मर जानेकी उन्हें जानकारी थी तो भी वे यही मानते रहे कि यह केवल उनकी छाया (Visions) मात्र है।

निस्संदेह उच्च आत्माओंको कोई कष्ट नहीं होता और पवित्र जीवन बितानेके कारण प्रकाशकी सहायतासे वे अपना मार्ग खोज सकते हैं। निम्न आत्मा सदैव इस जगत्‌में माध्यमोंकी सहायतासे नीचे आनेके लिये प्रस्तुत रहते हैं और वे स्थूल आकृतिके रूपमें प्रकट हो सकते हैं। कई बार वे अपनी हीन कामनाओंकी पूर्तिके लिये माध्यमोंका दुरुपयोग भी करते हैं। काल-अवधिका उनका ज्ञान हमारे ज्ञानसे भिन्न होता है। हमारे लिये जो ५०० वर्ष हैं, उनके लिये वे ५ सेकेण्ड हो सकते हैं। उनके शरीरोंका आकार सूक्ष्म रहता है और पाश्चात्य विद्वानोंने उसे 'एक्टोप्लाज्म' (Ectoplasm) की संज्ञा दी है। एक शरीरका भार साधारणतया १-२ या ३-४ औंस रहता है और पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने अत्यन्त सूक्ष्म तथा संवेदनशील फोटोग्राफीकी प्लेटोंकी सहायतासे उन शरीरोंके चित्र भी खींचे हैं।

पाश्चात्य देशोंमें मरणोत्तर जीवनके विषयमें अभी भी शोधकार्य चल रहे हैं और उनके इन कार्योंके परिणाम-स्वरूप नये तथ्य प्रकट हो रहे हैं। यह कहा जाता है कि भारतमें अंग्रेजीकालके एक प्रमुख प्रशासक वारेन हेस्टिंग्स (Warren Hastings) का आत्मा अभी भी कलकत्ता-स्थित अपने मकानमें आया करता है। ब्रिटिश संग्रहालयमें रात्रिके समय पहरा देनेवाले चौकीदार अभी भी संग्रहालयके कक्षोंमें कई आत्माओंको घूमते हुए देखते हैं। पेरिसके एक संग्रहालय-कक्षके चौकीदारोंका भी यही अनुभव है और उन्होंने बहुत संदेहजनक वातावरणमें घूमते हुए कई मृत राजाओं तथा रानियोंके आत्माओंको देखा है।

पाश्चात्य विज्ञान और मृत्यु

(लेखक—डॉ० श्रीभीखनलालजी आत्रेय, एम्० ए०, डी० लिट्०, अवकाशप्राप्त प्रोफेसर तथा अध्यक्ष दर्शन, मनोविज्ञान और भारतीय धर्म तथा दर्शन-विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी)

सन् १८८२ में इंगलैंडमें विद्वानोंकी एक समितिका निर्माण हुआ, जिसका नाम पड़ा 'ब्रिटिश सोसाइटी फार साइकिकल रिसर्च' अर्थात् 'ब्रिटेनकी आध्यात्मिक अनुसंधान करनेकी समिति'। इसमें केवल ब्रिटेनके ही विद्वानोंका सहयोग न था, बल्कि यूरोपके सभी प्रगतिशील देशोंके विद्वानों और वैज्ञानिकोंका सहयोग और सम्पर्क था। इस समितिने पिछले ८० वर्षोंमें वैज्ञानिक रीतिसे बहुत अनुसंधान किया और इस अनुसंधानके आधारपर दो विज्ञानोंको जन्म दिया, जिनके नाम हैं—'साइकिकल रिसर्च' (आध्यात्मिक अनुसंधान) और 'पैरासाइकोलौजी' (परा-मनोविद्या)। इन दोनों विद्याओंमें वैज्ञानिक रीतिसे मनुष्य-का स्वरूप, उसकी अद्भुत शक्तियाँ, मृत्युका स्वरूप, मृत्यु-पश्चात् जीवन, परलोक, पुनर्जन्म आदि विषयोंकी गहन गवेषणा की गयी है। आज इन विषयोंपर अंग्रेजी और अन्य पाश्चात्य भाषाओंमें बहुत विशाल साहित्य छप चुका है और मिलता है, जिसमें प्राचीन भारतके बहुत-से सिद्धान्तोंका वैज्ञानिक प्रतिपादन और अनुमोदन होता है। इनमें अंग्रेजीमें प्रकाशित हुए कुछ ग्रन्थोंके नाम ये हैं—

(1) Carrington:—The Story of Psychic Science (आध्यात्मिक विज्ञानकी कहानी); Laboratory Investigation into Psychic Phenomena (प्रयोगशालाओंमें किये गये आध्यात्मिक अनुसंधान); The Psychic World (आध्यात्मिक जगत्)।

(2) Fodor, Naudor:—Encyclopaedia of Psychic Science (आध्यात्मिक विज्ञानका विश्वकोष)।

(3) Crookall:—Astral Projection (सूक्ष्मशरीरका बहिर्निष्कासन); Events on the thrashhold of Death (मृत्युके अवसरपर होने-वाली घटनाएँ); Supreme Adventure (महान् अनुभव—मृत्यु)।

(4) Stevenson:—Twenty cases suggesting Reincarnation (बीस ऐसी जीवन-घटनाएँ, जो पुनर्जन्मकी ओर संकेत करती हैं)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(5) Atreya, B. L.:—Introduction to Parapsychology (परामनोविज्ञान–एक परिचय) ।

(6) Walker:—Reincarnation (पुनर्जन्म)

परामनोविद्या तथा आध्यात्मिक अनुसंधानके मुख्य निष्कर्ष ये हैं—

मनुष्य इस भौतिक शरीरके अतिरिक्त और इसके द्वारा कार्य करनेवाला एक आध्यात्मिक प्राणी है, जिसमें अनेक अद्भुत मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियाँ—जैसे दिव्य दृष्टि, अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष (Entra-sensory Perception), मनःप्रलयज्ञान (Telepathy); दूरक्रिया (Telepinesis), प्रच्छन्न संवेदन (Cryptesthesia), पूर्वबोध (Premonition) आदि हैं । मृत्यु प्राणीको नष्ट नहीं कर पाती । उसका अस्तित्व किसी अन्य सूक्ष्म लोकमें सूक्ष्म रूपसे रहता है, जहाँ रहते हुए वह इस लोकमें रहनेवाले प्राणियोंके सम्पर्कमें आ सकता है । डॉ० क्रूकाल (Dr. Crookall) ने सहस्रों घटनाओंका निरीक्षण करके इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है कि 'प्रत्येक प्राणीके अंदर सूक्ष्मशरीर होता है, जो कुछ अवसरोंपर, विशेषतः मृत्युके अवसरपर इस पाञ्चभौतिक शरीरको छोड़कर बाहर निकल जाता है । परलोकमें प्राणी इस सूक्ष्मशरीरद्वारा ही वहाँके जीवन और भोगोंको भोगता है ।' उन्होंने अपनी पुस्तक 'Supreme Adventure' में जो मृत्यु एवं परलोकका वर्णन किया है, वह हिंदूशास्त्रोंमें वर्णित मृत्यु और परलोकके वर्णनसे बहुत कुछ मिलता है । अमेरिकाके 'वर्जीनिया विश्वविद्यालय' के मैडिकल विज्ञानके प्रोफेसर स्टीवेन्सनने, जो तीन बार भारतवर्ष आ चुके हैं, अपनी पुस्तक 'Twenty cases suggesting Reincarnation' में, जो अभी कुछ दिन पूर्व प्रकाशित हुई थी, यह प्रतिपादन किया है कि 'केवल भारतवर्षमें ही नहीं, बल्कि अन्य पश्चिमी देशोंमें इस प्रकारकी जीवन-घटनाएँ हो चुकी हैं, जिनसे पूर्वजन्मकी सच्ची स्मृतियोंका प्रमाण मिलता है ।' उनका कहना यह है कि 'पुनर्जन्मके सिद्धान्तको माने बिना इस प्रकारकी घटनाओंको समझना कठिन है ।' राल्फ सिर्ली (Ralph Sirley) ने भी अपनी पुस्तक 'The Problem of Rebirth' में कुछ घटनाएँ ऐसी दी हैं, जो पुनर्जन्मका प्रतिपादन करती हैं । लेखकने भी अपनी पुस्तक परामनोविज्ञानमें कुछ ऐसी घटनाओंका वर्णन किया है, जिनसे पुनर्जन्मका सिद्धान्त प्रतिपादित होता है ।

पाश्चात्त्य आध्यात्मिक अनुसंधान, जो आजकल 'परामनोविज्ञान'के नामसे प्रसिद्ध हो चला है, उसके अध्ययनसे यह निश्चित हो जाता है कि हिंदूशास्त्रोंमें वर्णित मृत्यु, परलोक और पुनर्जन्मके सिद्धान्त वैज्ञानिक एवं सर्वथा सत्य हैं ।

परम मधुर श्रीराधेश्याम

मौन ग्रहणकर रटूँ निरन्तर जिह्वासे श्रीराधेश्याम ।
नेत्रोंसे देखूँ न कभी कुछ, रहें दीखते राधेश्याम ॥
कानोंसे सब शब्द त्याग कर सुनूँ सर्वदा राधेश्याम ।
मनसे सभी प्रपञ्च दूर कर रहूँ निरखता राधेश्याम ॥
भोग-मोक्षकी चाह मिटे सब, चाहूँ केवल राधेश्याम ।
एकमात्र बस, लगें परम प्रिय मुझको केवल राधेश्याम ॥
मिले उच्च या नीच जन्म, पर रहें संग नित राधेश्याम ।
अतुल अमल-सौन्दर्य-सुधानिधि परम मधुर श्रीराधेश्याम ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

*Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैष्णवाचार्योंका परलोक और पुनर्जन्म-सिद्धान्त

(लेखक—श्रीरंगरामानुजाचार्य, व्याकरण-न्याय-वेदान्ताचार्य)

करुणावरुणालय अखिलकोटिब्रह्माण्डनायक परात्पर पूर्ण परमब्रह्म परमेश्वर प्रलयके अन्तमें जगत्-निर्माणके लिये संकल्प करते हैं:—**'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय'** (छा० ६ । २ । ३)। तदनन्तर पञ्चमहाभूतादिके निर्माणोत्तरकरण कलेवरशून्य जीवोंके कर्मानुसार विभिन्न योनियोंसे सम्बन्ध कराते हैं। नित्य, अजर, अमर, अविनाशी जीवात्माको अनादि अविद्यासे होनेवाले पुण्य-पाप कर्म-प्रवाहके फलोंको भोगनेके लिये चार प्रकारके शरीरोंमें प्रवेश करना पड़ता है। वे चार प्रकारके शरीर ये हैं—(१) ब्रह्मा आदि देवोंका शरीर, (२) मानव-शरीर, (३) पशु, मृग और पक्षी आदि तिर्यक् शरीर और (४) तृण, वृक्ष, लता, गुल्म आदिका स्थावर शरीर। इन चार प्रकारके शरीरोंमें जीवात्माका कर्मफलस्वरूप प्रवेश होता है। उन-उन देहोंमें प्रविष्ट होते ही जीवात्माको देहाभिमानरूपी अविद्या तथा अस्वकीय वस्तुओंमें स्वकीयत्वाभिमानरूपी अविद्या होने लगती है। उससे कर्म, उससे देह-प्रवेश और उससे अविद्या—इस प्रकारका चक्र अनादिकालसे चला आता है। इस चक्रके कारण ही जीवात्माको विविध सांसारिक ताप भोगने पड़ते हैं। इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजीने विनयपत्रिकामें लिखा है—

विषय-वारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
तातें सहौं बिपति अति दारुन जनमत जोनि अनेक॥

सांसारिक त्रिविध तापसे मुक्त होनेके लिये शास्त्रकारोंने कर्म, ज्ञान, भक्ति, प्रपत्ति आदि साधनोंका प्रतिपादन किया है। पर वे सब साधन भी भगवत्कृपा होनेपर ही प्राप्त होते हैं। अतः भगवत्कृपासे ही जीव इस विषम संसारसे मुक्त होकर परम पद पा सकता है।

अतएव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा है—

मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥

(गीता १८ । ५६)

अर्थात् 'मेरे प्रसादसे शाश्वत और अव्यय पद प्राप्त करता है।' उस अव्यय परमपद परलोकके सम्बन्धमें वैष्णवाचार्योंके निम्नलिखित विचार हैं—

परमब्रह्म परमेश्वरकी दो विभूतियाँ हैं—भोग-विभूति और त्रिपाद-विभूति—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।

(यजुर्वेद ३१ । ३)

अर्थात् 'एक पादमें भोग-विभूति है, जिसे संसार कहते हैं और तीन पादमें त्रिपाद-विभूति है, जिसका वैकुण्ठ, दिव्यलोक, दिव्य धाम, परम पद, परम धाम, गोलोक, साकेत आदि अनेक नामोंसे शास्त्रोंमें वर्णन मिलता है। इन दोनों लोकोंके मध्यमें विरजा नदीकी दिव्य ज्ञानमयी धारा प्रवाहित होती है—

'वैकुण्ठसीम्नि विरजां स्यन्दमानां महानदीम्।'
'विरजानदीं तां मनसात्येति।'

ये दोनों श्रुतिवाक्य विरजानदीको प्रमाणित करते हैं। विरजाके इस पार संसार और उस पार भगवान्का दिव्यलोक परम पद है। उस परम पदका क्षय कभी नहीं होता। वह सूर्य, अग्नि आदि प्राकृत प्रकाश्यमान पदार्थोंसे विलक्षण अत्यन्त देदीप्यमान है, अत्यन्त उज्ज्वल है। महाभारतमें श्रीवैकुण्ठके वर्णनमें कहा गया है—

अत्यर्कानलदीप्तं तत् स्थानं विष्णोर्महात्मनः।
स्वयैव प्रभया राजन् दुष्प्रेक्ष्यं देवदानवैः॥

अर्थात् 'परमात्मा श्रीविष्णुभगवान्का वह स्थान सूर्य और अग्निसे बढ़कर देदीप्यमान है। उसकी प्रभा चारों तरफ अधिकाधिक फैलती रहती है। उस प्रभाकी चकाचौंधके कारण वह परम पद देव और दानवोंको भी दृष्टिगोचर नहीं होता है।' वह परम पद स्वयंप्रकाश है, उसे प्रकाशके लिये दूसरे किसीकी अपेक्षा नहीं है।' जिस प्रकार दीप, सूर्य, मणि, अग्नि आदि स्वयं प्रकासते हैं, वैसे ही परम पद भी स्वयं प्रकासता है। पर उसकी दीप्ति अपार है। अनन्त, गरुड़, विष्वक्सेन आदि नित्य सूरिगण सर्वदा उस परम पदका दर्शन कर आनन्दानुभव करते हैं। वह परम पद शुद्ध-सत्त्वमय है। वहाँ रजोगुण और तमोगुणका नामोनिशान भी नहीं है। स्वामी श्रीरामानुजाचार्यने वेदार्थ-संग्रहमें तथा **'तमेव शरणं गच्छ०'** इस श्लोककी व्याख्या करते हुए गीतामें, श्रीवेदान्ताचार्यने न्यायसिद्धाञ्जनके नित्य-विभूति-परिच्छेदमें परलोक-स्वरूपका वर्णन करते हुए निम्नलिखित श्रुतियोंका उल्लेख किया है:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'क्षयन्तमस्य रजसः पराके'।

(ऋ० १०७। १००। ५)

अर्थात् 'इस रजोगुणमय प्रकृतिके ऊपर श्रीभगवान् निवास करते हैं।'

'यदेकमव्यक्तमनन्तरूपं विश्वं पुराणं तमसः परस्तात्।'

(महानारायण १। ५)

'श्रीभगवान्का एक नित्य नव अनन्तविश्व-व्यापक दिव्यरूप अर्थात् प्रकृतिके ऊपर है। वह चक्षु आदि इन्द्रियोंसे व्यक्त नहीं होता।'

'यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।'

(नारायण उत्तरता० १। ५)

अर्थात् 'परमाकाश परम पदमें विराजमान श्रीभगवान् हृदय-गुहामें अवस्थित हैं, ऐसा जो जानता है, वह परमात्माके साथ सर्वकल्याण-गुणोंका अनुभव करता है।'

'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।'

(ऋ० सं० १। २२। २०)

'उस विष्णुके परमपदको ज्ञानीलोग सदा देखते हैं।'

'यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्।' (ऋग्वेद सं०)

'जो इसका अध्यक्ष है, वह **(त्रिपाद्विभूतिरूप)** परम व्योममें रहता है।'

'अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते।'

(छा० उ० ३। १३। ७)

'इस द्युलोकसे परे जो परम-ज्योति प्रकाशित है।'

'सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्।'

(कठ उ० ३। ९)

'मुक्तात्मा मार्गके पार श्रीविष्णुभगवान्के पदपर पहुँच जाता है।' श्रीरामानुजस्वामीने वेदार्थ-संग्रहमें इतिहास-पुराणादिके द्वारा भी परम पदको प्रमाणित किया है—

तमसः परमो धाता शङ्खचक्रगदाधरः।
श्रीवत्सवक्षा नित्यश्रीरजय्यः शाश्वतो ध्रुवः॥

यहाँपर **'तमसः परमः'** शब्दसे श्रीभगवान्का वह दिव्यस्थान, जो प्रकृतिके ऊपर है, सूचित होता है।

श्रीरामचन्द्रजीकी वैकुण्ठयात्राके प्रसंगमें ये श्लोक मिलते हैं—

शरा नानाविधाश्चापि धनुरायतविग्रहम्।
अन्वगच्छन्त काकुत्स्थं सर्वे पुरुषविग्रहाः॥
विवेश वैष्णवं धाम सशरीरः सहानुगः।

(वाल्मीकिरा० ७। १०९। ७)

अर्थात् 'अनेकविध बाण और लम्बे आकारवाला धनु, जो पुरुषरूप लेकर श्रीरामचन्द्रजीके पीछे-पीछे चलते थे, श्रीरामचन्द्रजीके शरीर एवं अनुयायियोंके साथ वैष्णव धाममें प्रवेश कर गये।'

विष्णुपुराणके निम्नलिखित श्लोकोंमें दिव्य स्थान और दिव्य सूरियोंका वर्णन मिलता है—

एकान्तिनः सदा ब्रह्मध्यायिनो योगिनश्च ये।
तेषां तु परमं स्थानं यत्तत्पश्यन्ति सूरयः॥

(१। ६। ३९)

अर्थात् 'जो योगिजन अनन्य होकर सदा ब्रह्मध्यान करते हैं, वे उस परम स्थानमें पहुँच जाते हैं, जिसका दर्शन नित्य सूरियोंको होता है।'

महाभारतमें नित्यविभूति और उसकी नित्यताके विषयमें वर्णन इस प्रकार मिलता है—

दिव्यं स्थानमजरं चाप्रमेयं दुर्विज्ञेयं चागमैर्गम्यमाद्यम्।
गच्छ प्रभो रक्ष चास्मान् प्रपन्नान् काले काले जायमानः स्वमूर्त्या॥

अर्थात् 'हे प्रभो! जराहीन, अप्रमेय, दुर्ज्ञेय एवं शास्त्रोंसे ही विदित होनेवाले उस आदि दिव्य स्थानमें पहुँचनेके लिये पधारिये। आप प्रतिकल्प अपने रूपसे प्रकट होकर आश्रित हमलोगोंकी रक्षा कीजिये।'

कालं स पचते तत्र न कालस्तत्र वै प्रभुः।

अर्थात् 'श्रीभगवान् नित्य विभूतिमें कालको परिणत कर देते हैं। काल वहाँ कुछ भी नहीं कर सकता।' इन वचनोंसे दिव्य स्थान और उसकी नित्यता सिद्ध होती है।

श्रीस्वामी रामानुजाचार्यजीने गद्यत्रयके वैकुण्ठगद्यमें लिखा है कि—

'चतुर्दशभुवनात्मकमण्डं दशगुणितोत्तरं चावरणसप्तकं समस्तं कार्यकारणजातमतीत्य परमव्योमशब्दाभिधेये ब्रह्मादीनां वाङ्मनसाऽगोचरे श्रीमति वैकुण्ठे दिव्यलोके।'

अर्थात् 'चौदह लोकोंसे बने हुए इस ब्रह्माण्डको, एक-दूसरेसे दसगुणा अधिक सात आवरणोंको भी परस्पर पारकर, कार्य-कारणभावापन्न समस्त पदार्थसमूहको पारकर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहनेवाले, 'परमव्योम' शब्दसे कहे जानेवाले, चतुर्मुख ब्रह्मा आदि बड़े ज्ञानियोंकी भी वाणी एवं मनसातीत, अत्यन्त जाज्वल्यमान श्रीवैकुण्ठ-नामक दिव्यलोकमें श्रीभगवान् नित्य सूरियोंके साथ विराजमान रहते हैं।'

अतएव श्रीवैकुण्ठस्तवमें लिखा है कि—

कदा मायापारे विशदविरजापारसरसि
परे श्रीवैकुण्ठे परमरुचिरे हेमनगरे।
महारम्ये हर्म्ये वरमणिमये मण्डपवरे
समासीनं शेषे तव परिचरेयं पदयुगम्॥

'हे भगवन्! वह समय कब आयेगा, जब प्रकृतिमण्डलके आवरणसे परे, अति विस्तृत विरजा नदीके पार, 'आरंगह्रद' सरोवरसे परे, चित्र-विचित्र मणियोंसे जटित परम मनोहर सुवर्णपुरी श्रीवैकुण्ठ महानगरमें, अत्यन्त रमणीय, सर्वोच्च स्थान, श्रेष्ठ मणियोंसे प्रकाशित रत्नमणि-मण्डपमें सहस्रफण-युक्त शेषशय्यापर नित्य मुक्तोंसे सम्मिलित हो, सुखसे बैठे हुए आपके दोनों चरणकमलोंकी परिचर्या करूँगा।'

विष्वक्सेनसंहितामें लिखा है कि—

वैकुण्ठे तु परे लोके श्रीसहायो जनार्दनः।
उभाभ्यां भूमिनीलाभ्यां सेवितः परमेश्वरः॥
महायोगी जगद्धाता दिव्यसिंहासनोपरि।
दिव्यसंस्मरणोपेते शेषाहिफणमण्डिते॥
पद्मोपनिषदाम्नातदिव्यमङ्गलविग्रहः।
अप्राकृततनुर्देवो नित्याकृतिधरो युवा॥
नित्यातीतो जगद्धाता नित्यैर्मुक्तैश्च सेवितः।

इस प्रकार ऊपर जीवके सम्बन्धमें जो लिखा गया है वह परम वैदिक सिद्धान्तानुयायी समस्त वैष्णवोंका मान्य है। उसीसे वैष्णवाचार्योंका पुनर्जन्म-सिद्धान्त सुस्पष्ट हो जाता है।

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी और पारलौकिक श्रेय

(लेखक—श्रीमाधवजी गोस्वामी)

प्राचीन भारतीय धर्मसाधनाके इतिहासमें जहाँ हमारे बड़े-बड़े तत्त्ववेत्ताओंने, ऋषि-मुनियोंने, युगावतारोंने एवं महान् आचार्यप्रवरोंने परलोक एवं पुनर्जन्मके विषयमें विपुल प्रमाणमें अध्ययन तथा अनुशीलन किया है, वहाँ आजके कुछ विज्ञानवादी अनुसंधानकर्ता सज्जन भी इस निष्कर्षपर पहुँच सके हैं कि विश्वका एवं प्राणिमात्रके जीवनका सुचारु रूपसे सम्यक् संचालन करनेवाली कोई विराट् शक्ति अवश्य है, जो समग्र जगत्का सुनियन्त्रित रूपमें परिचालन करती है।

प्राचीन धर्मशास्त्रोंमें, वेदमें, श्रीमद्भागवत-गीतादि सच्छास्त्रोंमें हमारे पूर्वपुरुषोंने एक सर्वथा मौलिक एवं उपादेय दृष्टिकोणसे परलोक तथा पुनर्जन्मका समीचीन विचार करके, उसे जनसमाजके सम्मुख रक्खा है। यद्यपि आजके भौतिकवादी लोग भले ही ईश्वरकी सत्ता, महत्ता एवं परलोकपर विश्वास न रखकर केवल द्रष्टव्य पदार्थोंको ही सत्य मानें; किंतु आधुनिक वर्तमानपत्रोंमें भी कई बार हम पुनर्जन्मके वृत्तान्त पढ़ते हैं, जिससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मनुष्यका अपने शेष कर्मोंको भोगनेके लिये पुनर्जन्म होना—एक ध्रुव सत्य है और इस सनातन सत्यको जगत्का कोई भी प्राणी मेटनेके लिये सर्वथा शक्तिमान् नहीं है।

भारतके विभिन्न आचार्यों एवं विचारकोंकी भाँति सोलहवीं शतीमें अवतरित भगवान् श्रीवल्लभाचार्यचरणोंने भी अपनी विचारधारामें 'परलोक'पर विचार किया है, आपकी विचारधाराके अनुसार सृष्टिको पुष्टि, प्रवाह तथा मर्यादा—इन तीन विभागोंमें बाँटकर अपने-अपने अधिकारानुसार जीवोंकी विभिन्न गतियोंका भी निर्देश किया गया है। जिन लोगोंकी केवल प्रवाहमार्गमें ही अभिरुचि रहती है, वे बार-बार इस संसारमें जन्म लेकर, संसारके अनेक दुःखोंको भोगते हुए, अहंता-ममताके भँवरमें डूबकर अपनी क्षणिक तथा नाशवान् इच्छाओंको पूर्ण करनेके लिये जन्म-मरणके चक्करमें पड़े रहते हैं। ऐसे जीवोंके लिये न कोई कर्तव्य है, न कोई ध्येय है और न कोई जीवनका अन्तिम या चरम लक्ष्य ही है। और जो मर्यादामार्गीय जीव होते हैं, वे स्वर्गसुखकी लालसासे जीवनमें अनेक धर्मकार्य—दान, पुण्य, व्रत, तीर्थ, यज्ञादि करके, इष्टलोककी प्राप्ति करके सर्वसुखोंका उपभोग करते हैं; किंतु 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।'—इसके अनुसार 'पुण्यक्षय होनेपर पुनः मृत्युलोकको प्राप्त होते हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जो पुष्टि-सृष्टि है, वह भगवान्‌में निरोध प्राप्त करके सेवा, स्मरण-कीर्तनसे 'रसो वै सः'—इस श्रुतिप्रतिपादित स्वरूपमें दृढ़ आसक्तिद्वारा भगवल्लीलामें प्रविष्ट होती है। किंतु इसका यह मतलब नहीं है कि भगवद्भक्ति करनेवालेका पुनर्जन्म नहीं होता। बड़े-बड़े महापुरुषोंको भी जगत्-हितार्थ अपने जीवनके अवशिष्ट कार्योंको पूरा करनेके लिये एवं लोक-कल्याणके लिये पुनर्जन्म ग्रहण करना ही पड़ता है।

जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्यजीके अनन्य भक्त ८४ वैष्णवों-की वार्तामें भी इस बातका उल्लेख उपलब्ध होता है कि आपके सेवक स्थानेश्वरनिवासी रामानन्द पण्डितने कुछ वैष्णवोंका अपराध किया था, जिससे आचार्यचरण उनपर बहुत ही अप्रसन्न हुए और उसी समय आपने उनका त्याग किया। पीछेसे उनकी अवस्था अत्यन्त विकल हो गयी। उन्हें अपनी देह, कर्तव्य, भगवत्सेवा, आचार-विचार—किसी भी बातका अनुसंधान न रहा। एक दिन किसी हलवाईकी दूकानपर गरमागरम जलेबियाँ बनती देख उन्हें इच्छा हुई। थोड़ी जलेबी लेकर भगवान् श्रीनाथजीको उन्होंने भोग लगाया। पर देखिये, भक्तका यह आर्तनाद सुनकर कृपालु श्रीनाथजीने वहाँसे मीलों दूर जतीपुराके मन्दिरमें राजभोगके समय जलेबियाँ आरोगीं। जब महाप्रभुने भगवान्‌के मुखमें जलेबीका टूक देखा तो पूछा—'बाबा! आज हमने तो यह सामग्री सिद्ध नहीं की, तब आपने यह कहाँसे आरोगी?' तब प्रभु बोले—'तुम्हारे अनन्यसेवक रामानन्दने आरोगायी है।' महाप्रभु बोले, 'उसका तो त्याग किया है; इसलिये आपको उसके हाथका नहीं लेना चाहिये।' तब श्रीनाथजी मुस्कुराकर बोले—'तुमने भले ही उसका त्याग किया, किंतु मैंने तो श्रावण शुक्ला एकादशीकी मध्यरात्रिको श्रीमद्गोकुलमें यमुना-तटपर साक्षात् प्रादुर्भूत होकर तुमसे कहा था कि तुम कलिप्रवाहमें बहते हुए जीवोंको शरणमें लोगे, उसे किसी भी कालमें मैं नहीं छोड़ूँगा। अतः मैंने अपना वचन निभाया है।' अहा! भगवान्‌की वाणीसे आचार्यचरण भावविभोर हो उठे और कुछ जन्मोंके अन्तरायके बाद रामानन्द पण्डितका अखण्डलीलामें प्रवेश हुआ।

इस प्रकार श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभुकी दृष्टिसे जीव भक्तिमार्गमें शरणागत होनेके पश्चात् भी जो अपराध करता है, उसे अवश्य ही उस अपराधका फल मिलता है और जब अनेक जन्मोंका अन्तराय दूर होकर उस जीवकी परिशुद्धि होती है, तभी भगवान्‌की परम आनन्दमयी उस अखण्ड लीलासृष्टिमें वह भगवान्‌के निजानन्दका अमन्द आस्वाद लेता हुआ अपने जीवनके सर्वोत्कृष्ट परम-चरम लक्ष्यको प्राप्त करता है।

आज समग्र जगत्‌में जो सामाजिक, धार्मिक, राजनयिक तथा अनेक तरहकी उथल-पुथल एवं अशान्ति मची हुई है, उसका मुख्य कारण यही है कि लोगोंकी ईश्वर, धर्म, संस्कृति, मानवता, सदाचार, ब्राह्मण, आचार्य एवं गौमेंसे श्रद्धा कम होती जा रही है और मानव परलोक तथा पुनर्जन्मसे अपना विश्वास खोने लगा है। अतः देशमें, विश्वमें सच्ची शान्ति तभी होगी, जब लोग ईश्वरकी महत्ताको मानते हुए अपने पारलौकिक उत्थानकी ओर आगे बढ़ेंगे। भगवान् सभी प्राणियोंको ऐसी ही सद्बुद्धि दें एवं सबमें विश्वबन्धुत्वकी भावनाएँ उत्पन्न हों, यही एकमात्र सच्चे हृदयकी कामना है। सर्वे भवन्तु सुखिनः।

सबमें नित्य भगवान्‌को देखूँ

जड-चेतन सबमें देखूँ नित बाहर-भीतर श्रीभगवान।
करूँ प्रणाम नित्य नत-मस्तक-मन, तजकर सारा अभिमान॥
करूँ सभीकी यथायोग्य शुचि सेवा उनमें प्रभु पहचान।
करूँ समर्पण उन्हें उन्हींकी वस्तु विनम्र सहित-सम्मान॥
राग-कामना-ममता सारी प्रभु-चरणोंमें पाकर स्थान—
नित्य कराती रहें मधुरतम प्रेम-सुधा-रसका ही पान॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिख गुरु श्रीगुरु गोविन्दसिंहद्वारा प्रस्तुत दशम ग्रन्थमें पुनर्जन्म-सिद्धान्त

(लेखक—प्रोफेसर श्रीलालमोहर उपाध्याय, एम्० ए०, 'हिंदी' रिसर्चस्कॉलर, पी-एच्० डी०)

सभी भारतीय विचारकोंके सदृश गुरुगोविन्दसिंहजीने दशम-ग्रन्थमें जीवात्माके पुनर्जन्मपर अपना विश्वास प्रकट किया है। स्वयं वे अपना पुनर्जन्म ईश्वरकी प्रेरणासे दुष्टोंके संहारके निमित्त स्वीकार करते हैं। संत गुरुगोविन्दसिंहने इसका वर्णन विचित्र नाटकमें पूर्णरूपसे किया है, जिसपर स्वतन्त्र रूपसे एक बृहद् शोध-निबन्ध-पत्र तैयार किया जा सकता है। जीवात्मा अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये बार-बार जन्म लेता है। पुनर्जन्मके सिद्धान्तका मूल ही यही है। जो जैसे कर्म करते हैं, वैसी योनि भी प्राप्त करते हैं। मानव-योनिको पाकर उत्तम कर्मोंके द्वारा आवागमन-बन्धनोंसे मुक्त होना ही जीवका मुख्य धर्म कहा गया है। जीवके आवा-गमनसे छूटनेका एक ही मार्ग है—सांसारिक विषय-वासनाओंसे विरक्त होकर शुभ कर्मोंको निष्काम सम्पन्न करना। मुक्ति पाकर जीवकी क्या गति होती है, इसपर भारतीय विचारकोंमें अनेक सम्प्रदायगत विचार हैं। संत गुरुगोविन्दसिंहने जीवमात्रका मूल-स्रोत परमात्माको ही माना है। सारी योनियाँ उसीसे उत्पन्न हुई हैं—

केते कच्छ मच्छ केते उन कउ करत भच्छ,
केते अच्छ बच्छ हुइ सपच्छ उड जाहिंगे।
केते नभ बीच अच्छ पच्छ कउ करेंगे भच्छ,
केते प्रतच्छ हुए बचाइ खाइ जाहिंगे।
कालके बनाइ सबै काल ही चबाहिंगे।
तेज जिऊँ अतेजमें अतेज जेसे तेज लीन,
ताही ते उपज सबै ताही में समाहिंगे॥

(विचित्रनाटक पृष्ठ ४१)

उस आवागमनके चक्रसे छुटकारा पानेके लिये मनुष्यको शुभ कर्मोंमें रत होना चाहिये। आवागमनसे छुटकारा पानेके लिये बहुधा लोगोंने वैराग्यको अत्यधिक महत्त्व तथा सांसारिक जीवनको बिल्कुल मिथ्या मानकर उसके प्रति उदासीन होनेका उपदेश दिया है। परंतु मध्यकालके संत भक्तोंने सांसारिक जीवनका भी महत्त्व समझा है। गृहस्थ रहते हुए भी ईश्वरकी आराधना की जा सकती है, इसपर उनका अटल विश्वास था। ये लोग अधिकांशतः गृहस्थ ही थे। संत गुरुगोविन्द-सिंह भी लौकिक जीवनके उत्तरदायित्वोंका निर्वाह आवश्यक मानते हैं। संघर्षमय जीवन व्यतीत करते हुए भी जन्म-जन्मान्तरके हेर-फेरसे मुक्त हुआ जा सकता है, यही उनका दृढ़ विचार था। वे स्वयं कहते हैं—

छत्री के पूत हौं बामन को नहिं के तपु आवत है जु करौं।
अस अउर जंजार जितो गृहको, तुहि त्याग कहा चित तामै धरौं॥
अब रीझ के देहु वहै हमको, जोउ हौं बिनती करजोर करौं।
अब आऊकी असुध निदान बने, अति ही रनमें तब जूझ मरौं॥

(अकालस्तुति छंद-संख्या ८८)

बाह्य आडम्बरों, कृच्छ्राचारों तथा अन्य सभी प्रकारके दिखावोंकी उन्होंने कटु आलोचना की है। शुष्क ज्ञान, तीर्थ, व्रत, तप, उपवास, स्नान-मंजन ईश्वर-प्राप्तिमें कभी सहायक नहीं हो सकते। भगवान्‌की निश्छल भक्ति ही इस जन्म-मरणके भयको हटा सकती है—

तीरथ ध्यान दया दम दान, सुसंजम नेम अनेक बिसेखे।
बेद पुरान कतेब कुरान जमीन जमान सबान के पेखे॥
पउन आहार जतीजत घाट सबै सुविचार हजारक देखे।
श्रीभगवान भजे बिनु भूपति, एक रती बिनु एक न लेखे॥

(कृष्णावतार, चौबीस अवतार, श्रीदशम गुरुग्रन्थ छन्द-संख्या २४।८९)

नीरस शुष्क मन्त्र-पाठमात्र मनुष्यके लिये लाभप्रद नहीं—

लिख जंत्र थाके पढं मंत्र हारे।
करे काल ते अन्त लेके बिचारे॥
कितिओ तंत्र साधे जु जनम बिताओ।
भस्ट फोकटं काज एकै न आयो॥

(अकालस्तुति, छन्द-संख्या २४)

इतना ही नहीं बिना प्रभुकी निश्चल भक्तिके सुख दुर्लभ है—

बिना सरन ताकी न अउरे उपायं।
कहा देव दइतं कहा रंक रायं॥
जितै जीव जन्तं सु दुनीयं उपायं।
सबै अन्त कालं बली काल धायं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना सरन ताकी नहीं और ओटं।
लिखे जन्म केते पढ़ भजे कोटं॥
(विचित्रनाटक, छन्द-संख्या ६२, पृष्ठ १०)

इस तरह हम देखते हैं कि संत गुरुगोविन्दसिंहजीने दशम ग्रन्थमें परलोक एवं पुनर्जन्ममें पूर्णतः विश्वास प्रकट किया है।

रामस्नेही-मतमें जीवात्माकी स्थिति एवं गति

(लेखक—श्रीश्रीपुरुषोत्तमदासजी शास्त्री महाराज, श्रीखेड़ापा रामस्नेही-सम्प्रदायाचार्य)

गुरु कूँ वंदन कीजिये, मुख सूँ कहिये राम।
रामदास सो सिष जन, पावे आदू धाम॥

जीवात्माकी स्थिति एवं उत्पत्ति

इस नश्वर संसारमें आकर प्राणी अपने आद्य-धाम अर्थात् जहाँसे वह उत्पन्न हुआ है, उस स्थानको भुला देता है। इसी कारण वह आध्यात्मिक पथसे विमुख होकर अधिकतर भौतिकवादकी ओर ही अग्रसर होता है। ऐसे समयमें प्राणीको यह ज्ञान करानेके लिये कि 'तू कहाँसे आया है? किधर जा रहा है? और तुझे किस दिशामें जाना चाहिये?—

कौन दिसा सूं आविया, कहो कौन दिस जाय।
रामदास अब भूलग्या, इहाँ पड़े हैं आय॥

इस भूलकी चिन्ता किसे होगी? जो इस जीवात्माका स्वामी (पिता) है, उसे ही तो इसकी चिन्ता होगी—

बालक करम कुसंगत लाग्या, चेत अचेते नाहीं।
माता पिता करे रुखवाली, निजर बालका माहीं॥

पर हम सभी जीवोंको परमात्माका ही बालक कैसे मान लें? इसलिये कि महात्माओंने लिखा है—

सभी जीव का एक पीव है, जुदा जुदा मत जाणो।
आपा उलट आप में देखो, आपा ब्रह्म पिछाणो॥
चारूँ बरण आतमा माँई, एक बाप का जाया।
रामदास एको कर जाण्या, एकण मंझ समाया॥

इसमें स्पष्ट है कि यह जीव परमेश्वरका ही अंश है। अतः इसका आदू (आदि) स्थान भी परमात्माका ही आदिस्थान अर्थात् वैकुण्ठधाम ही है। कुमार्गपर जाते हुए प्राणियोंको देखकर परमपिताने उन्हें सही पथ-प्रदर्शन करानेके लिये अपने ही नित्य-अवतार-स्वरूप संत-महात्माओं-को पृथ्वीपर जन्म लेनेकी आज्ञा दी—

संत रूप हुय साहिब आया, देह धार अरु संत कहाया॥
तुम जावो संसार में, जनम धरो धर जाय।
अनत हंस कूँ संग ले, आण मिलो मो माँय॥

जब भगवान्‌ने आज्ञा दी तो आज्ञाको शिरोधार्य करना सेवकका प्रथम कर्तव्य है ही—

परम धरम यह नाथ हमारा।
सिर धरि आयस करिअ तुम्हारा॥

इस प्रकार राम महाराजकी आज्ञाको अङ्गीकार कर श्री-रामदासजी महाराजने इस पृथ्वीपर अवतार ग्रहण किया तथा सभी प्राणियोंको रामभजनका उपदेश दिया—

राम भजो रे प्राणिया, भूले मति भाई।
सुमिरण बिन छूटो नहिं, जम द्वारे जाई॥

जो प्राणी आपके ऐसे सदुपदेशको हृदयङ्गम कर राम-मन्त्रका जाप करते हैं, वे आगे लिखे जानेवाले सूर्य-मार्गसे गमनकर प्रभुके चरणोंमें निवास करते हैं तथा भगवान् भी भक्तके इच्छानुसार सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य—इन चारों मुक्तियोंमेंसे उसे कोई मुक्ति प्रदान कर देते हैं—

चारों मुक्ति विष्णु के संगा, साधु मिलाप उछव अनभंगा॥
बैठे सिंघासन प्रभु, गोदी में ले दास।
इच्छा सोई लीजिये, स्वयं प्रकाश प्रकाश॥

महात्माओंका गमन-मार्ग

मुक्ति अर्थात् मोक्षका वही अधिकारी है, जो कि गुरु महाराजद्वारा निर्दिष्ट सन्मार्गपर चलता है और उनके निर्देशानुसार राममन्त्रका जाप करता है। महात्माओंने भजन करनेके लिये ऊँच-नीचके भेद-भावको सर्वथा परित्यक्त किया है। उनके विचारानुसार भजनके लिये घरका त्याग करना भी जरूरी नहीं है। जरूरी है तो केवल भगवान्‌के नामका जप है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाति पाँति कारण नहिं कोई। सब ही का हरि एको होई॥
छोटे बड़े नीच कुण ऊँचा। राम कहत सबही नर सूचा॥

पाद्य टोप कारण नहिं, घर वन कारण नाँहि।
रामा सिंवरे राम कूँ, मिले राम पद माँहि॥

इस प्रकार भजन-साधन करनेवाले महात्माओंके देह-त्यागके समय उनके गमन-मार्गका वर्णन श्रीदयालजी महाराजने 'परची' नामक ग्रन्थमें किया है। प्रस्तुत वर्णन पूज्य-पाद प्रातःस्मरणीय श्रीरामदासजी महाराजके परलोक-गमनके समयपर लिखा गया है। यह वर्णन अर्चिरादि ग्रन्थोंके आधारपर लिखा गया है; क्योंकि श्रीदयालजी महाराजका मत है कि भगवान् और उनके सभी भक्तोंके गमनमार्गमें कुछ भी अन्तर नहीं होता—

यह अर्चिरादि ग्रन्थ के माहीं, भगवद्भक्त दूसरा नाहीं॥

गमनमार्ग (सूर्यमार्ग) वर्णनमेंसे उपयुक्त स्थल ही यहाँपर लिखे जा रहे हैं—

महुरत युग चढ़ताँ दिवस, अद्भुत भो आख्यान।
षोडस हिलमिल पारसद, लाये दिव्य विमान॥

राम राम धुनि ररर होई, दशवें द्वार समापति सोई।
ब्रह्म दिग्ध तनु नमो जनेश्वर, यो तनु तजि भज मिल परमेश्वर॥
दिव्य शिरोमणि यान विराजे, तेज पुंज दर्शण दर्साजे।
रविसुत तम धड़ सूर सु पंथा, उत्सव भाव बधावे संता॥
परिकर सहित वरुण पग वंदन, रामदास धिन दर्श निकंदन।
अष्ट हि लोकपाल मिल जेता, साध मिलाप हर्ष मन तेता॥
सुर विमान तें नभ सब छाया, वासव आदि बधावण आया।
शक्र कह्यो दर्शण यहाँ दीजै, अपनो जाणि इच्छा में लीजै॥
एते में शंकर पुनि आइक, ऊमा परिकर संग मिलाइक।
महर्लोक जन तप के सारा, धाय बधाय पंथ सुख पारा॥
सूरज परिकर मंडल आइक, दरस परस मिल भाव बधाइक।
चंद सुधामणि अर्पण करिहै, मंगल शुक्र जीव बुध तरिहै॥
सप्त ऋषीश्वर निज सुख लीन्हा, रामदास धिन कारज कीन्हा।
इम करता ब्रह्मलोक पधारे, ब्रह्मादिक सनकादिक सारे॥
ऐसा हरिजन आवे जब ही, कह्यो विरंची आनन्द तब ही।
एते में ध्रुवलोक पधारे, सनकादिक ता संग मिलारे॥
सत्यलोक परसत पर पारा, आगे जनको पंथ अपारा।
अंड ब्रह्मंड परे पर धामा, अवरण छेद्या जन आरामा॥

इस प्रकार सूर्यमार्गसे गमन करके श्रीरामदासजी महाराज अपने आदू-धाममें परम पिताकी सेवामें उपस्थित हो गये।

अनत हंस कूँ संग ले, आण निवाए शीश।
तुम्हें कह्या सो मैं किया, सुणो पिता जगदीश॥
(बालबोध, रामदासजी म०)

पापी पुरुषोंका गमन-मार्ग

सूर्यमार्ग जितना आनन्दप्रद है, उससे भी विशेष कष्ट-प्रद यह निरय-पथ है। पापीजनोंकी अधोगतिके मार्गका वर्णन श्रीदयालजी महाराजने 'ग्रन्थ चित्रामण'में बहुत विस्तारसे किया है। उनमेंसे उदाहरणके रूपमें कुछ पंक्तियाँ नीचे लिखी जा रही हैं—

द्धम सब पूरा भया आज, कोप्यो तबे जमपुर राज।
लावो दुष्ट पापी बन्ध, ऐसे कह्यो काल निकन्द॥
जीव ने पकड़ मोकम काल, लेकर चाल्या तब तत्काल।
बंधत छेदत मार मचाय, विलरत जीव हा हा त्राय॥
कठन सु पंथ अंत करूर, महा अंधार तहाँ नहिं सूर।
छ्यासी सेंस जोजन वाट, तहाँ नहीं कोइ जिवको घाट॥
जोजन दश सेंस उसंन, चालत जीव दुःख असंन।
जोजन एक बालू पंथ, जोजन अष्ट आग धुवंत॥
पन्रे सेंस जोजन पंथ, महा अंधार जीवन अंत।
जोजन अष्ट आद हजार, तहाँ दुःख गहन बारूँ बार॥
वैतरणी स ता पंथ माँय, तपते जीव पहुँचे जाय।
जोजन सत्त ता परवाण, मारत चले दूत निकांण॥
जमपुर सेंस जोजन फेर, भ्यानक दूत तहाँ जिव घेर।
दिखण द्वार दुष्टी जीव, जाण्यो नहिं सपने पीव॥

इत्यादि

पुनर्जन्म

पुनर्जन्मका अर्थ है—दुबारा जीवन प्राप्त करना। इस शब्दकी रचनासे एवं इसकी व्युत्पत्तिसे ही यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवात्माका पुनः अर्थात् दुबारा या और भी जन्म होता है। जीवात्माके पुनर्जन्म लेनेमें साधारणतया मुख्य-मुख्य निम्न कारण हैं—

(१) भगवान्‌की आज्ञासे, (२) पुण्य क्षय हो जानेपर, (३) पुण्यका फल भोगनेके लिये, (४) पापका फल भोगनेके लिये, (५) बदला लेनेके लिये, (६) बदला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुकाने (प्रत्युपकार करने) के लिये, (७) अकाल मृत्यु हो जानेसे, या (८) अपूर्ण साधनको पूर्ण करनेके लिये ।

इनका विवेचन निम्न प्रकार है—

(१) भगवान्‌की आज्ञासे—ऊपर लिखे हुए सूर्य-मार्गसे गमन करनेवाले महात्माओंको जरूरत पड़नेपर भगवान् उन्हें पृथ्वीपर जन्म लेनेकी आज्ञा फरमाते हैं, तब ही वे महात्मा पृथ्वीपर अवतरित होते हैं ।

तुम जाओ संसार में, जन्म धरो धर जाय ।
अनत हंस कूँ संग ले, आण मिलो मो माँय ॥
(बालबोध, राम०)

इस आज्ञाका पालन कर श्रीरामदासजी महाराजने अवतार ग्रहण किया ।

(२) पुण्य क्षय हो जानेपर—संसारमें पुण्यकर्म करनेवाला व्यक्ति जब अपने कर्मसे स्वर्ग-सुख भोगनेका अधिकारी बन जाता है, तब उसे देवता बनाकर स्वर्गमें भेज दिया जाता है । पर जब उसके वे पुण्य कर्म पूर्ण हो जाते हैं, तब उसे पुनः मृत्युलोक या नरकमें जाना पड़ता है—

धर्मी जीव धरमके मारग, सुरग लोक ले देवे ।
बैठ विवाण देवता होई, सुरग तणा सुख लेवे ॥
सुख भुगताय घेर ले पूठा, पकड़ जन्म ले जावै ।
साहिब बिना परत नहिं छूटे जीव जूण बहु पावै ॥
(ग्रंथ जगजनराम)

(३) पुण्यका फल भोगनेके लिये—किसी समय ऐसा कोई विशेष पुण्य हो जाता है, जिसे भोगनेके लिये मृत्यु-लोकमें ही पुनः जन्म लेना पड़ता है—

खीर खुलाई साध कूँ, देखो पुण्य प्रताप ।
शालभद्र दूजे जनम, भूपत राखी छाप ॥
(मायाविचार, अंग बालबाल)

यह प्रसङ्ग बिना पूरे दृष्टान्तके समझमें नहीं आ सकता; अतः संक्षेपसे यह दृष्टान्त निम्न प्रकार है —

एक गरीब माता-पुत्र थे । बालकने एक दिन कहीं पर खीर देख ली । मातासे खीर खिलानेका पूरा हठ किया । माताने दूध, चावल, शक्कर आदि वस्तुएँ माँगकर खीर बनायी । माता खीर बालकको देकर पानी लाने चली गयी । तत्काल एक भूखे महात्मा भिक्षाके लिये वहाँ आ गये । बालकने आधी खीर देनेके विचारसे अपनी थाली उडेल दी, जिससे सारी खीर एक साथ खप्परमें चली गयी । महात्मा चले गये । माताके द्वारा खीरकी बात पूछे जानेपर बालकने कहा—'खीर बढ़िया थी, मैंने खा ली' । कालान्तरमें माता-पुत्र दोनोंकी मृत्यु हो गयी । इस पुण्यके प्रभावसे यही बालक दूसरे जन्ममें श्यालभद्र नामक नगरसेठ बना । माता भी यहाँ फिर माता बनी । यहाँ इन्हें अपार धन प्राप्त हुआ । एक समय इस नगरमें बहुमूल्य साड़ियोंका एक व्यापारी साड़ियाँ लेकर राजाके पास गया । राजाने कीमत प्रति साड़ी सवा लाख रुपया सुनकर लेनेसे इन्कार कर दिया । निराश होकर लौटते समय उस सेठकी माताद्वारा वह व्यापारी बुलाया गया और उसकी सब साड़ियाँ खरीद ली गयीं । सेठकी स्त्रीका यह नियम था कि जिस वस्त्रको एक बार पहन लिया, उसे दुबारा नहीं पहनती । दूसरे दिन वही साड़ी पहनकर मेहतरानी राजाके यहाँ काम करने गयी । राजाने आश्चर्यचकित हो उस साड़ीके मिलनेका कारण पूछा । ज्ञात हो जानेपर राजाने सेठको बुलाने हेतु सेवक भेजा । माताने सेठसे कहा 'राजाने बुलाया है ।' 'कारण क्या है ?' 'वे हमारे स्वामी हैं ।' 'तब तो मैं जहाँ कोई स्वामी नहीं है, वहाँ रहूँगा' । सेवकसे सभी बातें सुनकर राजा स्वयं सेठके यहाँ पधारे । अँगूठी खो जानेपर सेठने अपने यहाँसे अनेक अमूल्य अँगूठियाँ राजाको दे दीं । राजा लज्जित होकर चला गया । दूसरे दिन श्यालभद्र भी अपने बहनोईके साथ जंगलमें तपस्या करने चला गया । इस तरह पूर्व पुण्यके प्रभावसे अपार धन भी मिला और अन्तमें भजन करनेका अवसर भी ।

(४) पापका फल भोगनेके हेतु—पापकर्मका फल भोगनेके लिये प्राणी नरकमें जाता है और बादमें चौरासी लाख योनियोंके चक्करमें पड़ता है—

नरक कुंड भुगताय कर, पूठा लिया बुलाय ।
चौरासीमें रामदास, बहता दिया चलाय ॥
परथम जल का जीव पठाया, नव लाख के माहि मिलाया ॥
(चेतावणी राम)

इस चक्करमें कौन पड़ता है ?

हरिया राम न सुमरियो, तास पटंतर एह ।
जोनि जोनि फिर अवतरे, सुख दुख भुगते देह ॥

(५) बदला लेनेके लिये—यह प्रसङ्ग श्रीदयालजी महाराजके ग्रन्थ 'मोहमरद राजाकी कथा'में इस प्रकार लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक राजकुमारकी समीपस्थ तपस्वीसे गाढ़ मित्रता हो गयी। महात्मा काशी जानेको रवाना हो गये तो राजकुमार भी हठ करके साथ चला। तब राजाने सवा सेर सोना एक लकड़ीमें भरकर साथ में दे दिया। एक दिन रास्तेमें रात्रिके समय एक सेठके यहाँ विश्राम किया। रात्रिमें उस सेठने लकड़ीमेंसे सोना निकालकर उसके स्थानपर कंकड़ भर दिये। राजकुमारने काशी पहुँचकर भोजन करनेके लिये ब्राह्मणों तथा संतोंको निमन्त्रण दिया, पर लकड़ी देखकर बड़ा चिन्तित हुआ और कहा—

वान्ये गृहे अवतरूँ जाई, बहुत भाँति भुगताऊँ ताई।
छल बल डाबस करण अनेका, दाम दाम भुगताऊँ एका॥

ऐसा सोचकर काशीमें करवत लेकर उस कुमारने उसी सेठके यहाँ पुत्र-रूपमें जन्म लिया, जिसके यहाँ रात्रिमें ठहरे थे। बड़ा हो जानेपर पुत्रका विवाह किया गया। एक अलग सुन्दर महल बनवाकर पति-पत्नी ऊपर चढ़ने लगे। दोनों ही ऊपर चढ़कर एक साथ नीचे गिरकर मृत्युको प्राप्त हुए। सेठ इससे बड़ा दुखी हुआ। तब उन्हीं महात्माने (जो कि कुँवरके साथ थे) कहा—

मेरे साथ कुँवर जो होई। तेरे गृहे अवतर्यो सोई॥
तैं उनको सब धन छिनायो। अपनो बदलो लेवण आयो॥

इस प्रकार राजकुमारने अपना पूरा बदला ले लिया।

(६) बदला चुकानेके लिये—उपर्युक्त ग्रन्थमें निम्नलिखित प्रसङ्ग भी हैं—

दूजो लियो द्विज्ज अवतारा। जनमत धनको कियो बधारा॥
अपनो बदलो श्वान चुकायो। सुख दुख अपनो करतब पायो॥

एक समय दो कुत्ते गङ्गास्नानार्थ साथ-साथ रवाना हुए। एक दिन किसी नगरमें भूखसे व्याकुल होकर दोनों अलग-अलग भोजनकी तलाशमें गये। पहला श्वान एक गरीब ब्राह्मणके घरमें गया और वहाँ रक्खी हुई थालीमेंसे रोटी खाने लगा। ब्राह्मणने देखकर कुछ भी नहीं किया। दूसरा श्वान एक सेठके घरमें घुसा, जहाँपर बिना कुछ नुकसान किये ही लाठीसे उसे अधमरा कर दिया गया। मिलनेपर पहले श्वानने इसका कारण पूछा, तब दूसरे श्वानने कहा—

बिना बिगार मार भुगताई। मैं तो करवत लेसूँ भाई॥
करवत लेह अवतरूँ जाई। वान्ये के जनमूँ दुखदाई॥

यह सुनकर पहलेने भी कहा—

ब्राह्मण सत्त कहा कूँ तोकूँ। दीन्हो नहीं कछू दुःख मोकूँ॥
मैं भी करवत लेसूँ भाई। ब्राह्मण गृहे अवतरूँ जाई॥
पुत्र होय कर सुख भुगताऊँ। फल दायक ऐसे मन चाऊँ॥

ऐसा निश्चय करके दोनोंने काशीमें करवत ली। दूसरा श्वान तो सेठके यहाँ उत्पन्न हुआ और जन्मते ही सदा रोगी बनकर नाना प्रकारसे खर्च कराया। बड़ा होनेपर वह कभी केश खींचता, कभी-कभी पत्थर मारता। अन्तमें उसने एक दिन लाठीसे सेठका मस्तक फोड़ दिया। इस प्रकार उसने अपना बदला लिया। पहला श्वान उसी ब्राह्मणके यहाँ पैदा हुआ। ब्राह्मणको बड़ा लाभ होने लगा। कई लोग जिनपर ऋण था, पर दे नहीं रहे थे; उन्होंने स्वतः ही रुपये ला दिये। कई नये यजमान हुए। पुत्रने भी पिताकी आज्ञाका पालन कर तथा धन लाकर उसे अनेक प्रकारसे सुख दिया। इस तरह इस श्वानने भी अपने प्रति किये हुए उपकारका बदला दूसरा जन्म लेकर चुकाया।

(७) अकालमृत्युसे ही प्रायः प्रेत (भूत) की योनि हुआ करती है। इस योनिमें गये हुए प्राणी प्रायः दूसरे लोगोंको कष्ट दिया करते हैं—

परथम मुवों पुत्र इक ताको। प्रेत योनिमें दुखी सदा को॥
द्याल बाल पे गाथा गाई। मार्यो प्रेत प्रेत सुत थाई॥

प्रेत-उद्धारका उल्लेख भी निम्न प्रकार है—

एक मास तेरह दिवस, रहे देवगढ़ बास।
भूत इग्यारे तारिया, सतगुरु रामादास॥

इनसे प्राप्त होनेवाली बाधाओंको भी राममन्त्रके प्रभावसे दूर किया जा सकता है—

रामपरताप जल जोगिणी चण्डिका, भैरवा भूत छल छिद्र नाहीं।
रामपरताप तें विघ्न ब्यापै नहीं, रामपरताप तिहुँ लोक माँही॥

(८) अपूर्ण साधनको पूर्ण करनेके लिये—पहले जन्ममें द्यालजी महाराज (रामकृष्णजी) का साधन पूर्ण नहीं हुआ था। अतः दूसरे जन्ममें द्याल बालके रूपमें उसे पूर्ण किया। इसका उल्लेख श्रीअर्जुनदासजी महाराजके ग्रन्थ 'पूरब जनम'में किया है।

इस प्रकार रामस्नेही-सम्प्रदायके मतसे जीवात्माका 'पुनर्जन्म' अवश्य होता है। पर इसे मिटानेके लिये साधन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेका उपदेश रामस्नेही-सम्प्रदायद्वारा दिया जाता है। इसके लिये इस मनुष्य-शरीरमें ही प्रयत्न किया जाना चाहिये; क्योंकि अन्य किसी भी योनिमें प्राणी अपना उद्धार नहीं कर सकता। जब पुनर्जन्म मिट जाता है तो जीवको परमानन्दकी प्राप्ति होती है। पुनर्जन्म मिट जानेपर जीवात्मा जिस स्थानमें जाता है, वह कैसा है?—

जनम मरण व्यापै नहीं, दुख सुख संसा नाँहि।
रामदास जहाँ मिल रह्या, राम पुरा के माँहि॥

पुनर्जन्म और परलोक

(लेखक—रामस्नेही-सम्प्रदायाचार्य प्रधानपीठाधीश्वर सिंथल श्रीश्रीभगवद्दासजी शास्त्री महाराज)

पुनर्जन्मका अर्थ है—एक शरीरका त्याग करके दुबारा जन्म लेना। इसके अनेक कारण होनेपर भी, प्रधानतः अपने शुभाशुभ कर्मोंकी वासना ही मुख्य कारण है।

आशीर्वाद, शाप, भगवदाज्ञा आदिसे भी जन्म धारण किये जाते हैं। संतोंके द्वारा प्रदत्त आशीर्वादसे सुन्दरदासजीका जन्म; शापसे पुराणोंमें जय-विजय, गज-ग्राह; भगवदाज्ञासे इतिहासप्रसिद्ध कारक संत—जिनका संत-मतानुसार संतोंकी वाणीमें इस प्रकार वर्णन किया गया है—

अमर लोक सूँ अहदि आया, हंसा कारण आप पठाया।
अमर लोक सूँ आय सिंहस्थल माँहि विराजै॥
तेज पुंज परकास, बजे अनहदके बाजै।
हरि रामा हरिहै अवतारा अंतर कला कबीरूँ।
.....

शुभाशुभ कर्मवासनासे तो सम्पूर्ण चराचर जीव जन्म लेते ही हैं। श्रीदयालजी महाराजने इस प्रकार वर्णन किया है—

दोष पदारथ त्याग मन, कह मन त्यागी होय।
रामा जब लग वासना, जन्म धरत है सोय॥
जप तप संजम जोग जिग, शील धारणा मूंन।
रामा मन की वासना, अंत धरावै जूंन॥
नव तत नासत ना भया, जब लग जन्म अनेक।
रामा सूक्ष्म जन्म का, जाणै संत विवेक॥

यहाँपर 'वासनाओंके कारण' ही संतोंने अपनी वाणीमें पुनर्जन्म होनेका दिग्दर्शन कराया है। संयम, ज्ञान तथा प्राण-अपानकी गति एक होनेपर एवं अपरिग्रह-यमकी सिद्धि होनेपर पूर्वजन्मका ज्ञान होता है।

वेद-पुराण-इतिहास तो परलोक और पुनर्जन्मकी घटनाओंसे भरे हुए हैं। इसी प्रकार संतमतमें भी संतोंके द्वारा अपने एवं दूसरोंके पुनर्जन्म तथा पूर्वजन्मकी प्रत्यक्ष घटनाएँ तथा बातें बतायी गयी हैं।

नागर ब्राह्मण रामकिशनजी जूनागढ़में निवास करते थे। बड़ोदा, अहमदाबादमें भी इनकी दुकानें थीं। ये दण्डी स्वामीके शिष्य थे। एक दिन रामकिशनजीने सत्संगमें सभीको एक पंक्तिमें बैठे हुए देखकर दण्डी स्वामीजीसे निवेदन किया कि 'महाराज! उपदेश अवश्य देवें; किंतु जरा दूर रखावें तो अच्छा।' दण्डी स्वामीने रामकिशनजीके मनकी बातको जानते हुए कहा—'तुमने भक्तिका तत्त्व नहीं पहचाना है। अतः यह त्रुटि हो गयी है; इसलिये तुमको जन्मधारण करना पड़ेगा—भगवान् जाति-अभिमान नहीं रखते, वे गर्वाशनी हैं।' तब तो रामकिशनजी घबराते हुए दण्डी स्वामीके चरणोंमें पड़कर प्रार्थना करने लगे—'महाराज! मेरा जन्म जहाँ-कहीं भी हो, मैं सदा आपके साथ रहूँ। इसलिये आपके अंशसे ही मेरा जन्म हो।'

इस प्रार्थनापर दण्डी स्वामीको भी भक्तका एवं जन-हितका ध्यान करके जन्म धारण करनेकी स्वीकृति देनी पड़ी। समयानुसार दोनोंने ही शरीर त्यागा। क्रमशः जोधपुर राज्यान्तर्गत वीकोकोरमें दण्डी स्वामीने शरीर धारण किया, जिनका नाम श्रीरामदासजी हुआ। इन्हीं श्रीरामदासजीके यहाँ उन्हीं रामकिशनजीने वि० सं० १८१६ मार्गशीर्ष शुक्ला ११ के दिन अवतार लिया। यहाँपर इनका नाम श्रीदयालजी रक्खा गया। बड़े होनेपर जब आप अहमदाबाद पधारे, तब वहाँपर रामकिशनजीके पद सुनाये तो आपने उनकी अगली पंक्ति पहले ही कहनी प्रारम्भ कर दी तथा पूर्वजन्मका संचित धन एवं सबका परिचय साङ्गोपाङ्ग बता दिया। श्रीअर्जुनदासजीने इसका वर्णन 'पूर्वजन्म' में इस प्रकार किया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुते नागर मेंहता जूनागढ माही। तिन्है इष्ट धारे दंडी मत्त ताही॥
नित्त प्रति नेम करे दर्श स्वामी। लही मत्त ऐसी धरे चित्त थामी॥
भई एक बारं बहु भीर भारी। तहाँ संत गेही मिले वर्ण चारी॥
तबै राम कृष्णं मना आनि भिन्नं। महाराज दंडी प्रति कीन्हों प्रसन्नं॥
इन्है दर्श दीजै रखो दूर नाथा। द्विजां शूद्र मेळा बने नाहि बाता॥
सुनी बात-ऐसी तबै बोल स्वामी। नहीं भक्ति चीन्ही पड़ी तोहि खामी।
हरि गर्व-असनी तुम्हें नाहि जानी। धरो जन्म यामें भई एम बानी॥
अहो प्राणप्यारा तज्यां नाहि जीऊँ, तुम्हैं अंश आऊँ कृपामृत्त पीऊँ।
.....

रामकृष्ण तन त्याग कर, मुरधर प्रगटे आण।
माता सुन्दर कूख भलु, द्याळ लियो अवतार।
रामदास पितु पाय धिन, जीवाँ करण उधार॥

पुनर्जन्ममें दण्डी स्वामी ही रामदासजी बने, जिन्होंने प्रसिद्ध सींथल 'रामस्नेही'-सम्प्रदायाचार्य श्रीहरिरामदासजी महाराजसे वि० सं० १८०९ में राममन्त्रकी दीक्षा ग्रहण की। इन्हीं रामदासजी महाराजके दयालदासजी हुए, जो पूर्वजन्ममें रामकृष्णजी नामक नागर ब्राह्मण थे। श्रीरामदासजी महाराजके द्वारा संस्थापित रामस्नेही प्रधानस्थान 'खैडापा' है, जहाँपर अनेक संतोंने राम-भजन करके इहलोकका परित्याग करके परलोक (परमधाम) को प्राप्त किया है। साधना-भेदसे लोकोंके भी कई भेद हैं; जैसे साकेतलोक, गोलोक, पर-लोक, परमधाम, स्वर्गलोक आदि। यह संक्षिप्त पूर्वजन्म और पुनर्जन्मका विवरण दिया है[1]।

विश्वमें पुनर्जन्म-सिद्धान्तकी व्यापकता

(श्रीरामनाथजी 'सुमन' द्वारा संकलित)

१–हिंदूधर्ममें पुनर्जन्म-सिद्धान्तका एक प्रधान स्थान है। वेद-वेदाङ्ग, दर्शन, स्मृति, पुराण सर्वत्र इसे देखा जा सकता है। चार्वाक-दर्शनके अतिरिक्त और सब दर्शन उसे मानते हैं।

२–बौद्ध और जैन-धर्म भी अपने-अपने ढंगसे इसे मर्यादित रूपमें स्वीकार करते हैं।

३–प्राचीन मिस्रमें भी प्रेतात्मा और पुनर्जन्मका सिद्धान्त माना जाता था।

४–प्राचीन यूनानके थेल्स, एम्पिदाक्लीज, फिरिसाइडिस, प्लेटो तथा पैथागोरस इत्यादि दार्शनिक इसे स्वीकार करते हैं।

५–रोमन भी इसे मानते थे, जैसा कि सिसरो, वर्जिल तथा ओविदकी रचनाओंमें प्रकट है।

६–पुराने यूरोपकी अनेक जातियोंमें पुनर्जन्मका विश्वास प्रचलित था।

७–अमेरिकाके आदिनिवासी रेड इण्डियन तथा जापानी, चीनी, तिब्बती और बर्मी लोग भी इसे मानते हैं।

८–मैक्सिकोके प्राचीन निवासियोंमें यह विश्वास प्रचलित था।

९–सीरियन सम्प्रदाय 'बार्डिसिनीज'का एक सूक्ष्म शरीरमें विश्वास था।

१०–संस्कृतके अनेक महाकवियोंके अलावा, अंग्रेजीके टेनीसन, ब्राउनिंग, वर्ड्सवर्थ इत्यादि कवियों तथा इमर्सन-सरीखे चिन्तकोंकी रचनाओंमें भी इसका प्रतिपादन मिलता है।

११–मैक्समूलर कहते हैं कि 'मानवताके सर्वोत्तम चिन्तकोंने पुनर्जन्म-सिद्धान्तको स्वीकार किया है।'

१२–जोसेफुसके अनुसार यहूदी भी इसे मानते थे।

१३–ईसाने इसे स्वीकार करते हुए अपने शिष्योंसे कहा था—'जान बैपटिस्ट वस्तुतः एलिजा है।'

१४–मेटे, फिख्ते, शेलिंग तथा लेसिंग इत्यादि जर्मन दार्शनिक इसे स्वीकार करते हैं।

१५–काण्ट, ह्यूम, मैकटैगार्ट इत्यादि यूरोपीय दार्शनिक भी पुनर्जन्ममें विश्वास करते हैं।

१६–इस प्रकार इस्लामके सिवा प्रायः सभी धर्म, मत, किसी-न-किसी रूपमें पुनर्जन्म मानते हैं।

१. विशेष जानकारीके लिये 'पूर्वजन्म' पढ़ें। पता–'संत साहित्य संगम' बडा रामद्वारा, बीकानेर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस्लामधर्म और परलोक

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

आत्मा क्या है और इसके रहस्यपूर्ण गुण क्या हैं? शरियत (इस्लामधर्मके शास्त्रवाक्य) इसे सामान्य जनोंपर प्रकट करनेकी आज्ञा नहीं देता। इस कारण इस्लामके सबसे बड़े प्रचारकके द्वारा भी आत्मा (रूह) के गुणोंपर सुस्पष्ट प्रकाश नहीं डाला गया है तथापि गुप्तरूपसे कुछ आत्मीय श्रेष्ठ पुरुषोंको इस सम्बन्धमें कुछ बताया गया है। उनमें निम्नलिखित पुरुषोंके नाम प्रख्यात हैं—

१. हदरत अबूबकर सिद्दिक
२. ,, ऊमर फारूख
३. ,, उस्मान गनी
४. ,, अली मुर्तुजा
५. ,, इमाम हसन
६. ,, इमाम हुसेन
७. ,, वास कुरानी
८. ,, अबू हुरेरा

इनमें अली मुर्तुजाके सम्बन्धमें महान् नबीकी घोषणा है—'मैं ज्ञानका सुदृढ़ दुर्गमय नगर हूँ और अली इसका सदर द्वार है।'

वर्तमान समयके आध्यात्मिक गुरुओंने भी अपने महान् नबीका अनुकरण करके अपने विशिष्ट प्रिय शिष्योंको ही आत्माके सम्बन्धमें कुछ बताया है।

आत्माके सम्बन्धमें इस्लामधर्मके ग्रन्थ कुरानशरीफमें अल्लाहकी वाणी है—'लोग तुमसे रूहके सम्बन्धमें पूछेंगे तो उनसे कहना कि रूह मेरे मालिककी आज्ञासे उत्पन्न हुई है।'

कुरानशरीफके एक अंशसे विदित होता है कि जगत् दो प्रकारका है—'आलमे-खलक' और 'आलमे-अमर।'

आलमे-खलकमें मापनीय और विभाजनीय वस्तुएँ होती हैं; किंतु मनुष्यका आत्मा अमापनीय और अविभाजनीय गुणोंसे पूर्ण है। उसे सृष्टि-पदार्थोंसे निर्मित जगत्में सम्मिलित नहीं किया जा सकता।

कुछ दार्शनिक रूहको कदीम (स्वतन्त्र, सनातन और स्वतःस्थितिवाला) बताते हैं; किंतु इस्लाम इसे स्वीकार नहीं करता।

कुछ दूसरे दार्शनिक रूहको गुणवाचक वस्तु मानते हैं; किंतु गुणवाचक वस्तु किसी दूसरे पदार्थपर निर्भर करेगी; पर आत्मा शरीरमें स्वामीकी भाँति रहता है। उसे किसीकी सहायता अपेक्षित नहीं। इस कारण इस्लाम इसे भी स्वीकार नहीं करता।

तीसरे वर्गका कथन है कि आत्मा हृदय और रुधिरसे निर्मित है। अतएव वह शारीरिक पदार्थ है; किंतु पदार्थ मापनीय एवं विभाजनीय होता है, इस कारण इसे भी स्वीकार नहीं किया जा सकता।

आत्मा (रूह) दो प्रकारका होता है—
१—रूहे-हैवानी (जीवात्मा)
२—रूहे-इन्सानी (परमात्मा)

'रूहे-हैवानी' जानवरोंसे लेकर मनुष्योंतकमें होती है; लेकिन रूहे-इन्सानी केवल मनुष्यमें ही होती है। इस रूहके सम्बन्धमें कुरानशरीफमें खुद अल्लाह फरमाते हैं—'उसने अपनेमेंसे निकालकर आत्माको हदरत आदमके शरीरमें प्रविष्ट कराया।'

रूहे-इन्सानीमें ज्ञान प्राप्त करनेकी योग्यता है और वह सृष्टिके स्वामी अल्लाह-अकबरके दर्शनका सुख प्राप्त कर सकता है। ज्ञानहीन पशु, जो ज्ञानी पशु (मनुष्य) से पृथक् है, उसे यह रूह नहीं प्राप्त होती। वह न तो कोई पदार्थ है और न किसी दूसरे पदार्थपर निर्भर रहनेवाला है। वह ईश्वरीय प्रकृतिका एक वायु-सम्बन्धी तत्त्व है। उसके गुण-रहस्य समझने कठिन हैं। वाणीसे उसका वर्णन सम्भव नहीं। शरियतमें उसकी व्याख्या न करनेका आदेश है। उसका विचार एवं व्याख्या ईश्वरीय ज्ञानके प्रेमी और उस पथपर चलनेवाले सत्पुरुष कर सकते हैं।

इस ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये प्रारम्भमें तीन बातोंकी आवश्यकता पड़ती है—

१. इरादत (विश्वास)।
२. बैय्यत (अल्लाह और अपने नबीपर विश्वास करना तथा उनको आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक स्वीकार करना)।
३. रियादत (अमली उद्योग तथा अहंभावके नाशके साथ त्याग और आध्यात्मिक ज्ञान)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन मार्गोंसे जो निरन्तर प्रयत्न करता रहे और सोत्साह अल्लाहकी ओर बढ़ता रहे, उसकी जिज्ञासा और प्रीति बढ़ती जाय तो उसे अल्लाहकी ओरसे मार्ग-दर्शन होता जाता है और अन्ततक वह अल्लाह तक पहुँच जाता है। कुरानशरीफमें अल्लाहकी प्रतिज्ञा है—

'जो मुझे प्राप्त करनेके लिये उद्योग-रत रहते हैं, उन्हें मैं मार्ग दिखाकर अपनेमें मिला लेता हूँ।'

साधक जबतक रियादत (क्रियात्मक उद्योग) पूरा नहीं कर लेता, तबतक उसपर परम आत्माके गुणोंको प्रकट करना बुद्धिमानीकी बात नहीं; क्योंकि प्रारम्भमें यह विषय बड़ा दुरूह प्रतीत होता है और भ्रम भी उत्पन्न हो सकता है। अतएव जीहाद (धर्मयुद्ध) में सफलता प्राप्त करनेसे पूर्व उनका ज्ञान आवश्यक है।

इस जगत्में मनुष्यका अस्तित्व उसके साकार शरीरके साथ उसकी मृत्युके साथ ही समाप्त हो जाता है। जीवकी जिससे मृत्यु होती है, वह महान् अल्लाहकी सृष्टिका उत्पन्न किया हुआ प्राणी है, जिसे 'मलकुल मौत' या 'अजरायल' कहते हैं। इसका नाम तो लोग जानते हैं किंतु इसका ज्ञान दीर्घकालिक आध्यात्मिक साधन (सूफीइज्म) पर निर्भर है।

चिकित्सा-विज्ञान एवं मानसिक दर्शनके मुसल्मान डाक्टरोंके मतानुसार पशु-शरीरके हृदयका मांसखण्ड रूहे-हैवानीका बैटरी है। यह रूह न स्वतन्त्र है और न इसकी कोई स्वतःस्थिति है। वह एक गरमी है, जो पशुकी आन्तरिक रासायनिक क्रियाओंका परिणाम है। इस चिनगारी या रूहे-हैवानीसे पशुके शरीरमें प्रगति होती है। उसके मस्तिष्कमें पहुँचनेपर गरमी कम हो जाती है और पञ्चेन्द्रियाँ अपनी-अपनी शक्ति प्राप्त करती हैं।

रूहे-हैवानी अपनी साधारण स्थितिमें रहनेपर शरीरके भिन्न-भिन्न भागोंपर शासन करती है और सर्वशक्ति-सम्पन्न प्रभुकी कृपासे दैवी-जगत्का प्रकाश प्राप्त करनेमें समर्थ रहती है। किंतु किसी भी कारणसे अपनी साधारण स्थिति खो देनेपर वह उस प्रकाशको प्राप्त करनेकी शक्तिसे वञ्चित हो जाती है।

जैसे स्वच्छ दर्पणके सम्मुख आनेवाली प्रत्येक वस्तुका प्रतिबिम्ब दीखता है, किंतु यदि दर्पणपर मैल जम जाय, वह घिस जाय या उसपर धब्बा पड़ जाय तो किसी वस्तुका प्रतिबिम्ब उसपर नहीं पड़ेगा; इस कारण वस्तुका अभाव नहीं हो जायगा। कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति यही कहेगा कि दर्पणकी सामान्य स्थिति नहीं रही। इसी प्रकार जब जीवकी रूहे-हैवानी सामान्य स्थितिमें नहीं रहती, तब उसमें जीवके अवयवोंकी गतिशीलता लानेकी शक्ति नहीं रह जाती और वह दैवी-जगत्का प्रकाश पानेमें असमर्थ हो जाता है। जीवकी मृत्यु यही है। इस दशामें रूहे-हैवानी मर जाती है और भविष्यमें उसकी कोई स्थिति नहीं रह जाती।

यह तो साधारण जीवकी मृत्युकी बात हुई। किंतु पहले कहा जा चुका है कि मनुष्यमें रूहे-हैवानीके अतिरिक्त एक और रूह होती है, जिसे रूहे-इन्सानी कहा जाता है। रूहे-हैवानी एक प्रकारकी गरमी या चिनगारी है। उसका आकार होता है; किंतु रूहे-इन्सानीका कोई आकार नहीं होता।

वह एकाकी है और उसका विभाजन नहीं होता। उसमें एकाकी और अविभाजनीय परमात्माका ज्ञान प्राप्त करनेकी क्षमता है। विभाजनीय वस्तु अविभाजनीय परमेश्वरका ज्ञान प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं।

आप इसे इस प्रकार समझें कि रूहे-इन्सानी सवार है और रूहे-हैवानीके शरीर तथा अङ्ग उसके वाहन हैं। रूहे-हैवानीकी सामान्य स्थिति नष्ट होते ही मनुष्यका शरीर मृत्युको प्राप्त हो जाता है; किंतु रूहे-इन्सानी उसके बाद भी रहती है। उसका नाश नहीं होता। सिर्फ उसकी सवारी नष्ट हो जाती है। सवारीके नष्ट होनेसे सवारका नाश नहीं होता।

यह शरीररूपी सवारी रूहे-इन्सानीरूपी सवारको अल्लाहो-अकबरका ज्ञान और प्रेम प्राप्त करनेके लिये दी गयी है। परमात्माके सम्बन्धमें यदि हम ज्ञान और प्रेमको आखेट-रूप मानें, तब आखेट समाप्त हो जानेपर सवारी और शस्त्रास्त्र नष्ट हो जायँ तो आखेट करनेवालेकी कोई क्षति नहीं होती; अपितु वह उससे छुटकारा पाकर एक प्रकारसे बोझ और चिन्तासे मुक्त हो जायगा। इस प्रकारकी मृत्युके सम्बन्धमें इस्लाम धर्मके महान् प्रचारकका कथन है—

'विश्वासवादीके लिये मृत्यु एक बहुमूल्य उपहार है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु यदि इसके सर्वथा विपरीत आखेटके पूर्व ही सवारी और शस्त्रास्त्र नष्ट हो जायँ तो आखेटकके लिये बड़े ही दुःख और चिन्ताकी बात होगी।

मान लीजिये, आपके हाथ या पैरमें लकवा मार दिया या वह अङ्ग काट दिया गया या सारा शरीर लकवाग्रस्त होकर निष्क्रिय हो गया। ऐसी स्थितिमें इसे शारीरिक मृत्यु कहेंगे। इससे आपके अपनेपनकी मृत्यु नहीं हो जाती। आपका वह अपनापन तो बना ही रहता है।

आप इसे दूसरी तरह समझिये। आपके सम्मुख साठ वर्षके एक वृद्ध महानुभाव हैं। आप प्रत्यक्ष देखते हैं कि उनकी बाल्यकालकी कोमल और आकर्षक काया तथा यौवनका बलशाली सुगठित शरीर अब नहीं रहा। पर वे अब भी हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आपका अपनापन आपका प्राकृतिक शरीर नहीं, अपितु वह कुछ और दूसरी वस्तु है। वह आपके शरीरके नष्ट होनेपर नष्ट नहीं होता, बल्कि बना ही रहता है। सदा कायम रहता है। आपका यह अपनापन ही गोपनीय रहस्य है। उसका स्पर्श सम्भव नहीं। वह अनश्वर और सत्य वस्तु है। वह ईश्वरीय अंशका वायु-तत्त्व है, जिसे हम रूहे-इन्सानी कहते हैं।

महान सूफी दार्शनिक मौलाना जलालुद्दीन कहते हैं—

ज़ाँकि मर्गम हमचु जाँ खुश आमदस्त।
मर्गमन दर वास चंग अन्दरज़दस्त॥

'मृत्यु मुझे जीवन-सा प्रिय है। मेरी मौतमें बिना अलग हुए पुनर्जीवन सम्मिलित है अर्थात् मृत्युके बाद तत्काल ही मुझे फिर पुनर्जीवन प्राप्त हो जायगा।'

[शाहमुहम्मद वदीउल आलमके अनूदित लेखका सारांश]

भारतीय दर्शनमें आत्माके साधक तर्क

(लेखक—मुनि श्रीनथमलजी)

[प्रेषक—श्रीकमलेशजी चतुर्वेदी]

किसी भी भारतीय व्यक्तिको आमके अस्तित्वमें कोई संदेह नहीं है; क्योंकि वह प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष-सिद्ध वस्तुके विषयमें कोई संदेह नहीं होता। जिन देशोंमें आम नहीं होता, उन देशोंकी जनताके लिये आम परोक्ष है। परोक्ष वस्तुके विषयमें या तो हमारा ज्ञान ही नहीं होता, यदि सुन या पढ़कर ज्ञान होता है तो वह साधक-बाधक तर्कोंकी कसौटीसे कसा हुआ होता है। साधक प्रमाण बलवान् होते हैं तो हम परोक्ष वस्तुके अस्तित्वको स्वीकार कर लेते हैं और बाधक प्रमाण बलवान् होते हैं तो हम उसके अस्तित्वको नकार देते हैं।

भारतमें जैसे आम प्रत्यक्ष है, वैसे ही आत्मा प्रत्यक्ष होता तो भारतीय दर्शनका विकास आठ आना ही हुआ होता। आत्मा प्रत्यक्ष नहीं है। उसका चिन्तन-मन्थन, मनन और दर्शन भारतमें इतना हुआ है कि आत्मवाद भारतीय दर्शनका प्रधान अङ्ग बन गया। यहाँ अनात्मवादी भी रहे हैं; किंतु आत्मवादियोंकी तुलनामें आटेमें नमक जितने ही रहे हैं। अनात्मवादियोंकी संख्या भले कम रही हो, उनके तर्क कम नहीं रहे हैं। उन्होंने समय-समयपर आत्माके बाधक तर्क प्रस्तुत किये हैं। उनके विपक्षमें आत्मवादियोंद्वारा आत्माके साधक तर्क प्रस्तुत किये गये। संक्षेपमें उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

(१) स्वसंवेदन—अपने अनुभवसे आत्माका अस्तित्व सिद्ध होता है। 'मैं हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ'—यह अनुभव शरीरको नहीं होता; किंतु उसे होता है, जो शरीरसे भिन्न है।

शंकराचार्यके शब्दोंमें—**'सर्वोऽप्यात्मास्तित्वं प्रत्येति न नाहमस्मीति।'**—सबको यह विश्वास होता है कि 'मैं हूँ।' यह विश्वास किसीको नहीं होता कि 'मैं नहीं हूँ।'

(२) अत्यन्ताभाव—इस तार्किक नियमके अनुसार चेतन और अचेतनमें त्रैकालिक विरोध है। जैन आचार्योंके शब्दोंमें 'न कभी ऐसा हुआ है, न हो रहा है और न होगा कि जीव अजीव बन जाय और अजीव जीव बन जाय।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) **उपादानकारण**—इस तार्किक नियमके अनुसार जिस वस्तुका जैसा उपादानकारण होता है, वह उसी रूपमें परिणत होती है। अचेतनके उपादान चेतनमें नहीं बदल सकते।

(४) **सत्-प्रतिपक्ष**—जिसके प्रतिपक्षका अस्तित्व नहीं है, उसके अस्तित्वको तार्किक समर्थन नहीं मिल सकता। यदि चेतन नामक सत्ता नहीं होती तो न चेतन=अचेतन—इस अचेतन सत्ताका नामकरण और बोध ही नहीं होता।

(५) **बाधक प्रमाणका अभाव**—अनात्मवादी—आत्मा नहीं है; क्योंकि उसका कोई साधक प्रमाण नहीं मिलता। आत्मवादी—आत्मा है, क्योंकि उसका कोई बाधक प्रमाण नहीं मिलता।

(६) **सत्का निषेध**—जीव यदि न हो तो उसका निषेध नहीं किया जा सकता। असत्का निषेध नहीं होता; जिसका निषेध होता है, वह अवश्य होता है।

निषेधके चार प्रकार हैं—

१. संयोग।

२. समवाय।

३. सामान्य।

४. विशेष।

मोहन घरमें नहीं है—यह संयोग-प्रतिषेध है। इसका अर्थ यह नहीं कि मोहन है ही नहीं, किंतु 'वह घरमें नहीं है' इस 'गृह-संयोग' का प्रतिषेध है।

खरगोशके सींग नहीं होते—यह समवाय-प्रतिषेध है। खरगोश भी होता है और सींग भी; इनका प्रतिषेध नहीं है। यहाँ केवल 'खरगोशके सींग'—इस समवायका प्रतिषेध है।

दूसरा चाँद नहीं है—इसमें चन्द्रके सर्वथा अभावका प्रतिपादन नहीं, किंतु उसके सामान्य-मात्रका निषेध है।

मोती घड़े-जितने बड़े नहीं हैं—इसमें मुक्ताका अभाव नहीं; किंतु 'उस घड़े-जितने बड़े'—यह जो विशेषण है, उसका प्रतिषेध है।

आत्मा नहीं है, इसमें आत्माका निषेध नहीं होता। उसका किसीके साथ होनेवाले संयोगका निषेध है।

(७) **इन्द्रिय-प्रत्यक्षका वैकल्य**—यदि इन्द्रिय-प्रत्यक्ष नहीं होने मात्रसे आत्माका अस्तित्व नकारा जाय तो प्रत्येक सूक्ष्म, व्यवहित और विप्रकृष्ट (दूरस्थ) वस्तुके अस्तित्वका अस्वीकार करना होगा। इन्द्रिय-प्रत्यक्षसे मूर्त्त-तत्त्वका ग्रहण होता है। आत्मा अमूर्त-तत्त्व है, इसलिये इन्द्रियाँ उसे नहीं जान पातीं। इससे इन्द्रिय-प्रत्यक्षका वैकल्प सिद्ध होता है, आत्माका अनस्तित्व सिद्ध नहीं होता।

(८) **गुणद्वारा गुणीका ग्रहण**—चैतन्य गुण है और चेतन गुणी। चैतन्य प्रत्यक्ष है, चेतन प्रत्यक्ष नहीं है। परोक्ष गुणीकी सत्ता प्रत्यक्ष गुणसे प्रमाणित हो जाती है। भौंहारेमें बैठा आदमी प्रकाशको देखकर सूर्योदयका ज्ञान कर लेता है।

(९) **विशेष गुणद्वारा स्वतन्त्र अस्तित्वका बोध**—वस्तुका अस्तित्व उसके विशेष गुणद्वारा सिद्ध होता है। स्वतन्त्र पदार्थ वही होता है, जिसमें ऐसा त्रिकालवर्ती गुण मिले, जो किसी दूसरे पदार्थमें न मिले। आत्मामें चैतन्य नामक विशेष गुण है। वह दूसरे किसी भी पदार्थमें व्याप्त नहीं है, इसीलिये आत्माका दूसरे सभी पदार्थोंसे स्वतन्त्र अस्तित्व है।

(१०) **संशय**—जो यह सोचता है कि 'मैं नहीं हूँ' वही जीव है। अचेतनको अपने अस्तित्वके विषयमें कभी संशय नहीं होता। 'यह है या नहीं' ऐसी ईहा या विकल्प चेतनके ही होता है। सामने जो लम्बा-चौड़ा पदार्थ दीख रहा है, 'वह खंभा है या आदमी'—यह विकल्प सचेतन व्यक्तिके ही मनमें उठता है।

(११) **द्रव्यकी त्रैकालिकता**—जो पहले-पीछे नहीं है, वह मध्यमें नहीं हो सकता। जीव एक स्वतन्त्र द्रव्य है, वह यदि पहले न हो और पीछे भी न हो तो वर्तमानमें भी नहीं हो सकता।

(१२) **संकलनात्मक ज्ञान**—इन्द्रियोंका अपना-अपना निश्चित विषय होता है। एक इन्द्रिय दूसरी इन्द्रियके विषयको नहीं जान सकती। इन्द्रिय ही ज्ञाता हो, उनका प्रवर्तक आत्मा ज्ञाता न हो तो सब इन्द्रियोंके विषयोंका संकलनात्मक ज्ञान नहीं हो सकता। फिर 'मैं स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्दको जानता हूँ'—इस प्रकार संकलनात्मक ज्ञान किसे होगा? ककड़ीको चबाते समय स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द—इन पाँचोंको जान रहा हूँ, ऐसा ज्ञान होता है।

(१३) **स्मृति**—इन्द्रियोंके नष्ट हो जानेपर भी उनके द्वारा जाने हुए विषयोंकी स्मृति रहती है। आँखसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई वस्तु देखी, कानसे कोई बात सुनी, संयोगवश आँख फूट गयी और कानका पर्दा फट गया, फिर भी दृष्ट और श्रुतकी स्मृति रहती है।

संकलनात्मक ज्ञान और स्मृति मनके कार्य हैं। मन आत्माके बिना चालित नहीं होता। आत्माके अभावमें इन्द्रिय और मन—दोनों निष्क्रिय हो जाते हैं। अतः दोनोंके ज्ञानका मूलस्रोत आत्मा है।

(१४) ज्ञेय और ज्ञाताका पृथक्त्व—ज्ञेय, इन्द्रिय और आत्मा—ये तीनों भिन्न हैं। आत्मा ग्राहक है, इन्द्रिय ग्रहणके साधन हैं और पदार्थ ग्राह्य है। लोहार संडासीसे लोहपिण्डको पकड़ता है। लोहपिण्ड ग्राह्य है, संडासी ग्रहणका साधन है और लोहार ग्राहक है। ये तीनों पृथक्-पृथक् हैं। लोहार न हो तो संडासी लोहपिण्डको नहीं पकड़ सकती। आत्माके चले जानेपर इन्द्रिय और मन अपने विषयको ग्रहण नहीं कर पाते।

(१५) पूर्व संस्कारकी स्मृति—नव-शिशुके हर्ष, भय, शोक आदि होते हैं। उनका कारण पूर्वजन्ममें किये हुए आहारके अभ्याससे ही होता है। जिस प्रकार युवकका शरीर बालक-शरीरकी उत्तरवर्ती अवस्था है, वैसे ही बालकका शरीर पूर्वजन्मके बादमें होनेवाली अवस्था है। यह देह-प्राप्तिकी अवस्था है। इसका जो अधिकारी है, वह आत्मा देही है।

वर्तमानके सुख-दुःख अन्य सुख-दुःखपूर्वक होते हैं। सुख-दुःखका अनुभव वही कर सकता है, जो पहले उनका अनुभव कर चुका है। नव-शिशुको जो सुख-दुःखका अनुभव होता है, वह भी पूर्व-अनुभवयुक्त है। जीवनका मोह और मृत्युका भय पूर्वबद्ध संस्कारोंका परिणाम है। यदि पूर्वजन्ममें इनका अनुभव न हुआ होता तो नवोत्पन्न प्राणियोंमें ऐसी वृत्तियाँ नहीं मिलतीं।

इस प्रकार भारतीय आत्मवादियोंने बहुमुखी तर्कोंद्वारा आत्मा और पुनर्जन्मका समर्थन किया है।

जैनधर्मका कर्मवाद

(लेखक—पं० श्रीचैनसुखदासजी न्यायतीर्थ)

'कर्म'को समझनेके लिये 'कर्मवाद'को समझनेकी जरूरत है। 'वाद'का अर्थ सिद्धान्त है। जो वाद कर्मोंकी उत्पत्ति, स्थिति और उनकी रस देने आदि विविध विशेषताओंका वैज्ञानिक विवेचन करता है, वह 'कर्मवाद' है। जैन-शास्त्रोंमें कर्मवादका बड़ा गहन विवेचन है। कर्मोंके सर्वाङ्गीण विवेचनसे जैन-शास्त्रोंका एक बहुत बड़ा भाग सम्बन्धित है। कर्म स्कन्ध-परमाणु समूह होनेपर भी हमें दीखता नहीं। आत्मा, परलोक, मुक्ति आदि अन्य दार्शनिक तत्त्वोंकी तरह वह भी अत्यन्त परोक्ष है। उसकी कोई भी विशेषता इन्द्रिय-गोचर नहीं है। कर्मोंका अस्तित्व प्रधानतया आप्त-प्रणीत आगमके द्वारा ही प्रतिपादित किया जाता है। जैसे आत्मा आदि पदार्थोंका अस्तित्व सिद्ध करनेके लिये आगमके अतिरिक्त अनुमानका सहारा लिया जाता है, वैसे ही कर्मोंकी सिद्धिमें अनुमानका आश्रय भी लिया गया है।

इस कर्मवादको समझनेके लिये सचमुच तीक्ष्ण बुद्धि और अध्यवसायकी जरूरत है। जैन-ग्रन्थकारोंने इसे समझनेके लिये स्थान-स्थानपर गणितका उपयोग किया है। अवश्य ही यह गणित लौकिक गणितसे बहुत भिन्न है। जहाँ लौकिक गणितकी समाप्ति होती है, वहाँ इस अलौकिक गणितका प्रारम्भ होता है। कर्मोंका ऐसा सर्वाङ्गीण वर्णन शायद ही संसारके किसी वाङ्मयमें मिले। जैन-शास्त्रोंको ठीक समझनेके लिये कर्मवादको समझना अनिवार्य है।

कर्मोंके अस्तित्वमें तर्क

संसारका प्रत्येक प्राणी परतन्त्र है। यह पौद्गलिक (भौतिक) शरीर ही उसकी परतन्त्रताका द्योतक है। बहुतसे अभाव और अभियोगोंका वह प्रतिक्षण शिकार बना रहता है। वह अपने आपको सदा पराधीन अनुभव करता है। इस पराधीनताका कारण जैन-शास्त्रोंके अनुसार कर्म है। जगत्में अनेक प्रकारकी विषमताएँ हैं। आर्थिक और सामाजिक विषमताओंके अतिरिक्त जो प्राकृतिक विषमताएँ हैं, उनका कारण मनुष्यकृत नहीं हो सकता। जब सबमें एक-सा आत्मा है, तब मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट और वृक्ष-लताओं आदिके विभिन्न शरीरों और उनके सुख-दुःख आदिका कारण क्या है? कारणके बिना कोई कार्य नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो सकता। जो कोई इन विषमताओंका कारण है, वही 'कर्म' है—कर्मसिद्धान्त यही कहता है।

'सबको जीवनकी सुविधाएँ समानरूपसे प्राप्त हों और सामाजिक दृष्टिसे कोई ऊँच-नीच नहीं माना जाय'—मानव-मात्रमें यह व्यवस्था प्रचलित हो जानेपर भी मनुष्यकी व्यक्तिगत विषमता कभी कम नहीं होगी। यह कभी सम्भव नहीं है कि मनुष्य एक-से बुद्धिमान् हों, एक-सा उनका शरीर हो; उनके शारीरिक अवयवों और सामर्थ्यमें कोई भेद न हों। कोई स्त्री, कोई पुरुष और किसीका नपुंसक होना दुनियाँके किसी क्षेत्रमें बंद नहीं होगा। इन प्राकृतिक विषमताओंको न कोई शासन बदल सकता है और न कोई वाद या समाज। ये सब विविधताएँ तो साम्यवादकी चरम सीमापर पहुँचे हुए देशोंमें भी बनी ही रहेंगी। इन सब विषमताओंका कारण प्रत्येक आत्माके साथ रहनेवाला कोई विजातीय पदार्थ है और वह पदार्थ 'कर्म' है।

कर्म आत्माके साथ कबसे हैं और कैसे उत्पन्न होते हैं ?

आत्मा और कर्मका सम्बन्ध अनादि है। जबसे आत्मा है, तबसे ही उसके साथ कर्म लगे हुए हैं। प्रत्येक समय पुराने कर्म अपना फल देकर आत्मासे अलग होते रहते हैं और आत्माके राग-द्वेषादि भावोंके द्वारा नये कर्म बँधते रहते हैं। यह क्रम तबतक चलता रहता है, जबतक आत्माकी मुक्ति नहीं होती। जैसे अग्निमें बीज जल जानेपर बीजकी परम्परा समाप्त हो जाती है, वैसे ही राग-द्वेषादि विकृत भावोंके नष्ट हो जानेपर कर्मोंकी परम्परा आगे नहीं चलती। कर्म अनादि होनेपर भी सान्त हैं। यह व्याप्ति नहीं है कि जो अनादि हो, उसे अनन्त भी होना चाहिये। नहीं तो, बीज और वृक्षकी परम्परा कभी समाप्त नहीं होगी।

यह पहले कहा है कि प्रतिक्षण आत्मामें नये-नये कर्म आते रहते हैं। कर्मबद्ध आत्मा अपने मन, वचन और कायकी क्रियासे ज्ञानावरणादिक आठ कर्मरूप और औदारिकादि चार शरीररूप होकर योग्य पुद्गल स्कन्धोंका ग्रहण करता रहता है। आत्मामें कषाय हो तो यह पुद्गल स्कन्ध कर्मबद्ध आत्माके चिपट जाते हैं—ठहरे रहते हैं। कषाय (राग-द्वेष) की तीव्रता और मन्दताके अनुसार आत्माके साथ ठहरनेकी काल-मर्यादा कर्मोंका 'स्थितिबन्ध' कहलाता है। कषायके अनुसार ही वे फल देते हैं। यही 'अनुभवबन्ध' या 'अनुमानबन्ध' कहलाता है। योग कर्मोंको लाते हैं और आत्माके साथ उनका सम्बन्ध जोड़ते हैं। कर्मोंमें नाना स्वभावोंको पैदा करना भी योगका ही काम है। कर्म स्कन्धोंमें, जो परमाणुओंकी संख्या होती है, उसका कम-ज्यादा होना भी योगहेतुक है। ये दोनों क्रियाएँ क्रमशः 'प्रकृतिबन्ध' और 'प्रदेशबन्ध' कहलाती हैं।

कर्मोंके भेद और उनके कारण

कर्मके मुख्य आठ भेद हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। जो कर्म ज्ञानको न प्रकट होने दे, वह ज्ञानावरणीय; जो इन्द्रियोंको पदार्थोंसे प्रभावान्वित नहीं होने दे, वह दर्शनावरणीय; जो सुख-दुःखका कारण उपस्थित करे अथवा जिससे सुख-दुःख हो वह वेदनीय; जो आत्माभरण न होने दे, वह मोहनीय; जो आत्माको मनुष्य, तिर्यञ्च, देव और नारकके शरीरमें रोक रक्खे, वह आयु; जो शरीरकी नाना अवस्थाओं आदिका कारण हो, वह नाम; जिससे ऊँच-नीच कहलावे, वह गोत्र और जो आत्माकी शक्ति आदिके प्रकट होनेमें विघ्न डाले, वह अन्तराय कर्म है।

संसारी जीवके कौन-कौन-से कार्य किस-किस कर्मके आस्रवके कारण हैं—यह जैन-शास्त्रोंमें विस्तारके साथ बतलाया गया है। उदाहरणार्थ—ज्ञानके प्रकारमें बाधा देना, ज्ञानके साधनोंको छिन्न-भिन्न करना, प्रशस्त ज्ञानमें दूषण लगाना, आवश्यक होनेपर भी अपने ज्ञानको प्रकट न होने देना आदि अनेकों कार्य ज्ञानावरणीय कर्मके आस्रवके कारण हैं। इसी प्रकार अन्य कर्मोंके आस्रवके कारणोंको भी जानना चाहिये। जो कर्म आस्रवसे बचना चाहते हैं, वह उन कर्मोंसे विरक्त रहे, जो किसी भी कर्मके आस्रवके कारण हैं। तत्त्वार्थसूत्रके छठे अध्यायमें आस्रवके कारणोंका जो विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है, वह हृदयङ्गम करने योग्य है।

कर्म आत्माके गुण नहीं

कुछ दार्शनिक कर्मोंको आत्माका गुण मानते हैं। पर जैन-मान्यता इसे स्वीकार नहीं करती। अगर पुण्य-पाप-रूप कर्म आत्माके गुण हों तो वे कभी उसके बन्धनके कारण नहीं हो सकते। यदि आत्माका गुण स्वयं ही उसे बाँधने लगे तो कभी उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। बन्धन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल वस्तुसे भिन्न होता है; बन्धनका विजातीय होना जरूरी है। यदि कर्मोंको आत्माका गुण माना जाय तो कर्मनाश होनेपर आत्माका नाश भी अवश्यम्भावी है; क्योंकि गुण और गुणी सर्वथा भिन्न-भिन्न नहीं होते। बन्धन आत्माकी स्वतन्त्रताका अपहरण करता है; किंतु अपना ही गुण अपनी ही स्वतन्त्रताका अपहरण नहीं कर सकता। पुण्य और पाप नामक कर्मोंको यदि आत्माका गुण मान लिया जाय तो इनके कारण आत्मा पराधीन नहीं होगा; और यह तर्क एवं प्रतीति सिद्ध है कि ये दोनों आत्माको परतन्त्र बनाये रखते हैं—इसलिये ये आत्माके गुण नहीं; किंतु सर्वथा भिन्न द्रव्य हैं। ये भिन्न द्रव्य पुद्गल हैं। यह रूप, रस, गन्ध और स्पर्शवाला एवं जड है। जब राग-द्वेषादि विकृतियोंके द्वारा आत्माके ज्ञानादि गुणोंको घातनेका सामर्थ्य जड पुद्गलमें उत्पन्न हो जाता है, तब यही 'कर्म' कहलाने लगता है। यह सामर्थ्य दूर होते ही यही पुद्गल दूसरी पर्याय धारण कर लेता है।

कर्म आत्मासे कैसे अलग होते हैं ?

आत्मा और कर्मोंका संयोग सम्बन्ध है। इसे ही जैन-परिभाषामें 'एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध' कहते हैं। संयोग तो अस्थायी होता है। आत्माके साथ कर्म-संयोग भी अस्थायी है। अतः इसका विघटन अवश्यम्भावी है। खानसे निकले हुए स्वर्णपाषाणमें स्वर्णके अतिरिक्त विजातीय वस्तु भी है। वही उसकी अशुद्धताका कारण है। जबतक वह अशुद्धता दूर नहीं होती, उसे सुवर्णत्व प्राप्त नहीं होता। जितने अंशोंमें वह विजातीय संयोग रहता है, उतने अंशोंमें सोना अशुद्ध रहता है। यही हाल आत्माका है। कर्मोंकी अशुद्धताको दूर करनेके लिये आत्माको बलवान् प्रयत्न करने पड़ते हैं। इन्हीं प्रयत्नोंका नाम 'तप' है। तपका प्रारम्भ भीतरसे होता है। बाह्य तपोंको जैन-शास्त्रोंमें कोई महत्त्व नहीं दिया गया है। आभ्यन्तर तपकी वृद्धिके लिये जो बाह्य तप अनिवार्य हैं, वे स्वतः ही हो जाते हैं। तपोंका जो अन्तिम भेद 'ध्यान' है, वही कर्मनाशका कारण है। श्रुतज्ञानकी निश्चल पर्यायें ही 'ध्यान' हैं। यह ध्यान उन्हींको प्राप्त होता है, जिनका आत्मोपयोग शुद्ध है। शुद्धोपयोग ही मुक्तिका साक्षात् कारण अथवा मुक्तिका स्वरूप है। आत्माकी पाप और पुण्यरूप प्रवृत्तियाँ उसे संसारकी ओर खींचती हैं। जब इन प्रवृत्तियोंसे वह उदासीन हो जाता है, तब नये कर्मोंका आना रुक जाता है। इसे जैन-शास्त्रोंकी परिभाषामें 'संवर' कहा गया है। संवर—हो जानेपर जो पूर्वसंचित कर्म हैं, वे अपना रस देकर आत्मासे अलग हो जाते हैं और नये कर्म आते नहीं; तब आत्माकी मुक्ति हो जाती है। एक बार कर्मबन्धनसे आत्मा अलग होकर फिर कभी कर्मोंसे सम्पृक्त नहीं होता। मुक्तिका प्रारम्भ है; पर अन्त नहीं है। वह अनन्त है। मुक्ति ही आत्माका चरम पुरुषार्थ है। इसकी प्राप्ति अभेदरत्नत्रयसे होती है। जैन-शास्त्रोंमें कर्मोंके नाश होनेका अर्थ है—आत्मासे उनका सदाके लिये अलग हो जाना। यह तर्कसिद्ध है कि किसी पदार्थका कभी नाश नहीं होता; उसका केवल रूपान्तर होता है। पदार्थ पूर्व-पर्यायको छोड़कर उत्तर-पर्याय ग्रहण कर लेता है। कर्म-पुद्गल कर्मत्व-पर्यायको छोड़कर दूसरी पर्याय धारण कर लेते हैं। उसके विनाशका यही अर्थ है—

'सतो नात्यन्तसंक्षयः।' (आप्तपरीक्षा)

'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।' (गीता)

'नैवासतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तमः पुद्गल-भावतोऽस्ति।' (स्वयम्भू स्तोत्र)

आदि जैन-अजैन महान् दार्शनिक सत्के विनाशका और असत्के उत्पादका स्पष्ट विरोध करते हैं। जैसे साबुन आदि फेनिल पदार्थोंसे धोनेपर कपड़ेका मैल नष्ट हो जाता है, अर्थात् दूर हो जाता है, वैसे ही आत्मासे कर्म दूर हो जाते हैं। यही कर्मनाश, कर्ममुक्ति अथवा कर्मभेदनका अर्थ है। जैसे आगमें तपानेकी विशिष्ट प्रक्रियासे सोनेका विजातीय पदार्थ उससे पृथक् हो जाता है, वैसे ही तपस्यासे कर्म दूर हो जाता है।

सबको उनका हिस्सा देकर खाओ

जो कुछ है, मिलता है, तुमको उसमें सबका हिस्सा जान।
करते रहो नित्य उसमेंसे यथायोग्य सबको ही दान॥
फिर जो बचा हुआ खाओगे, होगा वह शुचि सुधा समान।
उससे यहाँ-वहाँ पाओगे तुम निश्चित सुख शान्ति महान्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनधर्ममें आत्मा, पुनर्जन्म और कर्मसिद्धान्त

(लेखक—श्रीकैलाशचन्द्रजी शास्त्री)

'आत्मा', 'पुनर्जन्म' और 'कर्मसिद्धान्त'—ये तीनों परस्परमें अनुस्यूत हैं। आत्माका स्वतन्त्र अस्तित्व माननेपर शेष दोनोंको भी मानना ही पड़ता है। जैनधर्ममें आत्माका स्वतन्त्र अस्तित्व है। छः द्रव्योंमें एक 'जीव' या 'आत्मा' नामका भी द्रव्य है।

जैनदर्शन एक 'द्रव्य' नामका पदार्थ ही मानता है और उसे इस रूपमें मानता है कि उसके माननेपर उसे अन्य किसी पदार्थके माननेकी आवश्यकता नहीं रहती। गुण और पर्यायोंके आधारको 'द्रव्य' कहते हैं। वे गुण और पर्याय द्रव्यके ही आत्मस्वरूप हैं; अतः वे किसी भी दशामें द्रव्यसे जुदे हो नहीं सकते। द्रव्यके परिणत होनेकी दशाको पर्याय कहते हैं। 'पर्याय' सदा बदलती रहती है। अन्य दर्शन किसीको नित्य और किसीको अनित्य कहते हैं; किंतु जैनदर्शन कहता है—

आदीपमाव्योमसमस्वभावं
स्याद्वादमुद्रानतिभेदि वस्तु।
तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्यत्
इति त्वदाज्ञाद्विषतां प्रलापाः॥

यह बात नहीं है कि आकाश नित्य हो और दीपक अनित्य हो, दीपकसे लेकर आकाशपर्यन्त सभी एक स्वभाववाले हैं; कोई भी वस्तु उस स्वभावका अतिक्रमण नहीं कर सकती; क्योंकि सभीपर स्याद्वाद अर्थात् अनेकान्त स्वभावकी छाप लगी हुई है। जो जैनशास्त्रोंको नहीं मानते, वे ही किसीको नित्य और किसीको अनित्य कहते हैं।

जैनदर्शन 'स्याद्वादी' या 'अनेकान्तवादी' है। स्याद्वादमें 'स्यात्' शब्द 'अनेकान्त' रूप अर्थका वाचक है। अतएव स्याद्वादका अर्थ अनेकान्तवाद कहा जाता है। अपेक्षा-भेदसे एक ही वस्तुमें परस्पर विरुद्ध प्रतीत होनेवाले अनेक धर्म पाये जाते हैं। जैसे प्रत्येक वस्तु द्रव्यरूपसे नित्य और पर्याय-रूपसे अनित्य प्रतीत होती है। इसीको 'अनेकान्तवाद' कहते हैं।

द्रव्य छः हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, द्रव्य, आकाश और काल। इनमेंसे एक जीव द्रव्य चेतन है, शेष पाँच द्रव्य अचेतन या जड हैं। आचार्य कुन्दकुन्दने जीव या आत्माको अरूप, अगन्ध, अव्यक्त, अशब्द, अरस, चैतन्यस्वरूप और इन्द्रियोंके द्वारा अग्राह्य कहा है। यह आत्मद्रव्यका यथार्थ स्वरूप है। संसारी आत्माका स्वरूप द्रव्यरूपसे तो वही है, जो आत्मद्रव्यका यथार्थ स्वरूप है; किंतु उसके साथ कर्मकी उपाधि लगी है; अतः संसारी आत्मा भी चैतन्यस्वरूप है, कर्ता है, भोक्ता है, अपने शरीरके बराबर परिमाणवाला है और कर्मोंसे संयुक्त होनेके कारण मूर्तिक है।

जैनधर्ममें जीवके दो प्रकार हैं—'संसारी' और 'मुक्त'। प्रारम्भमें सभी जीव संसारी होते हैं और संसारके बन्धनसे छूटनेपर ही मुक्त होते हैं। अनादि नित्यमुक्त जीव जैनदर्शनमें कोई नहीं है। प्रत्येक जीवकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता है और मुक्त होनेपर भी उसकी वह स्वतन्त्र सत्ता बनी रहती है; क्योंकि सत्का कभी नाश नहीं होता और असत्की कभी उत्पत्ति नहीं होती। जैनदर्शनकी मान्यताके अनुसार प्रत्येक संसारी जीव अनादिकालसे कर्मबन्धनसे बद्ध है। यह कर्मबन्धन उसीकी अनादि भूलका परिणाम है; किसी दूसरेने उसे नहीं बाँधा है। आचार्य कुन्दकुन्दने जीवके गुणोंका कथन करते हुए उसके एक 'प्रभुत्व' गुणका भी कथन किया है। जीव बन्ध और मोक्षका स्वामी स्वयं है। उसका बन्ध किसी अन्यके कर्तृत्वका परिणाम नहीं है और न बन्धनसे मुक्ति ही किसी अन्यके कर्तृत्वका परिणाम है; वह स्वयं ही अपनी करनीसे बद्ध होता है और स्वयं ही अपनी करनीसे मुक्त होता है।

कर्मसिद्धान्त

कर्मबन्धनके सम्बन्धमें भी जैनदर्शनकी अपनी एक विशेष मान्यता है। कर्मके दो प्रकार हैं—'भावकर्म' और 'द्रव्यकर्म'। जीवके राग-द्वेषरूप विकार भावोंको भावकर्म कहते हैं। जैनदर्शनकी मान्यताके अनुसार इस लोकमें सर्वत्र पौद्गलिक कर्मवर्गणाएँ भरी हुई हैं, जो अत्यन्त सूक्ष्म हैं। ये कर्मवर्गणाएँ जीवके राग-द्वेषरूप परिणामोंका निमित्त मिलनेपर स्वयं ही उस जीवके प्रति आकृष्ट होती हैं और जीवके साथ बद्ध हो जाती हैं। इनको द्रव्यकर्म कहते हैं। जीवके राग-द्वेषरूप भावोंके अनुसार इन द्रव्यकर्मोंमें अनुभागबन्ध और स्थितिबन्ध होता है। कर्मोंमें फलदानकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तिको अनुभागबन्ध कहते हैं और आत्माके साथ कर्मरूपसे ठहरनेकी शक्तिको स्थितिबन्ध कहते हैं।

बन्धके चार प्रकार हैं—प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध। इनमेंसे आदिके दो बन्ध योगसे और अन्तके दो बन्ध कषायके निमित्तसे होते हैं। मन, वचन और कायसे युक्त जीवकी जो शक्ति कर्मोंको आकृष्ट करनेमें निमित्त होती है, उसे 'योग' कहते हैं और क्रोधादिरूप भावोंको 'कषाय' कहते हैं। योगकी उपमा हवासे और कषायकी उपमा गोंदसे दी जाती है। तथा कर्मकी उपमा धूलसे दी जाती है। जैसे हवाकी तीव्रता और मन्दताके अनुसार धूल उड़ती है, वैसे ही जीवकी मानसिक, वाचनिक और कायिक प्रवृत्तिकी तीव्रता और मन्दताके अनुसार जीवके प्रति कर्मरजका आकर्षण होता है। तथा, जैसे उड़ी हुई धूल दीवारपर लगे हुए पानी या चिपकानेवाली गोंद आदिकी चिपकाहटके अनुसार चिपक जाती है, वैसे ही योगसे आकृष्ट हुए कर्मपरमाणु जीवके कषायरूप भावोंकी तीव्रता या मन्दताके अनुसार जीवके साथ अधिक या कम स्थिति और अनुभागको लिये हुए बँध जाते हैं।

जैसे भोजनका एक ग्रास पाचनयन्त्रमें जाकर रस, रुधिर आदि सप्तधातुरूपमें परिणत हो जाता है, वैसे ही जीवके प्रति आकृष्ट हुए कर्मपरमाणु भी आठ कर्मोंमें विभाजित हो जाते हैं—

१. **ज्ञानावरण कर्म**—जो कर्म जीवके ज्ञानगुणको घातता है।

२. **दर्शनावरण कर्म**—जो कर्म जीवके दर्शन-गुणको घातता है।

३. **मोहनीय कर्म**—जो कर्म जीवको मोहित करके उसके श्रद्धा आदि गुणोंको विकृत करता है।

४. **अन्तराय कर्म**—जो कर्म जीवके वीर्य आदि गुणोंका घातक है।

५. **वेदनीय कर्म**—जो कर्म जीवको सुख-दुःख देता है।

६. **आयुकर्म**—जो कर्म जीवको मनुष्य आदिके शरीरमें अमुक आयुतक रोके रखता है और मृत्यु नहीं होने देता।

७. **नामकर्म**—जो कर्म जीवके शरीरादिका निर्माण करता है।

८. **गोत्रकर्म**—जिस कर्मके उदयसे नीच या उच्च कुलमें जन्म होता है। इन आठ कर्मोंके भी अवान्तर बहुतसे भेद-प्रभेद हैं।

जब किसी बद्ध कर्मकी स्थिति पूरी होती है, तो वह अपना फल देता है और देकर छूट जाता है। इस तरह द्रव्यकर्मके उदयसे भावकर्म होते हैं और भावकर्मसे द्रव्यकर्मका बन्ध होता है। पूर्वबद्ध कर्म ही नवीन कर्मबन्धमें निमित्त होते हैं। इस तरह संसारकी प्रक्रिया तबतक चलती है, जबतक इस बन्धसे छुटकारा नहीं मिल जाता। इस जीव-पुद्गल कर्मचक्रका वर्णन आचार्य कुन्दकुन्दने अपने 'पञ्चास्तिकाय' नामक ग्रन्थमें इस प्रकार किया है—

जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी॥१२८॥
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणी जायंते।
तेहिं दु विषयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा॥१२९॥
जायदि जीवस्सेवं भावो संसार चक्कवालम्मि।
इदि जिणवरेहि भणिदो अणादिणिधणो सणिधणोवा॥

'यहाँ जो संसारी जीव है, उसके अनादि बन्धनरूप उपाधिके वश स्निग्ध (राग-द्वेषरूप) परिणाम होते हैं। परिणामसे पुद्गलपरिणामात्मक नवीन कर्मोंका बन्ध होता है। उस कर्मके उदयसे नरक आदि गतियोंमें जाना पड़ता है। गतिमें जन्म लेनेपर शरीर मिलता है, शरीरमें इन्द्रियाँ होती हैं, इन्द्रियोंसे वह विषयोंको ग्रहण करता है। विषयोंके ग्रहणसे जो विषय रुचते हैं, उनसे राग करता है और जो विषय नहीं रुचते, उनसे द्वेष करता है। राग-द्वेषसे पुनः स्निग्ध परिणाम होते हैं। इस तरह जीव संसारचक्रमें भ्रमण करता रहता है। यह परस्परमें कार्यकारणभावसे अनुस्यूत जीव और पुद्गलका परिणामरूप कर्मजाल किन्हीं जीवोंका तो अनादि अनन्त है और किन्हीं जीवोंका अनादि सान्त है। अर्थात् बहुत-से जीव तो ऐसे हैं, जो कर्मबन्धनको काटकर मुक्त हो जाते हैं और बहुत-से जीव ऐसे हैं जिनका इस बन्धनसे कभी भी छुटकारा नहीं होगा। आचार्य कुन्दकुन्दने अपने 'समय प्राभृत'में एक उदाहरण दिया है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

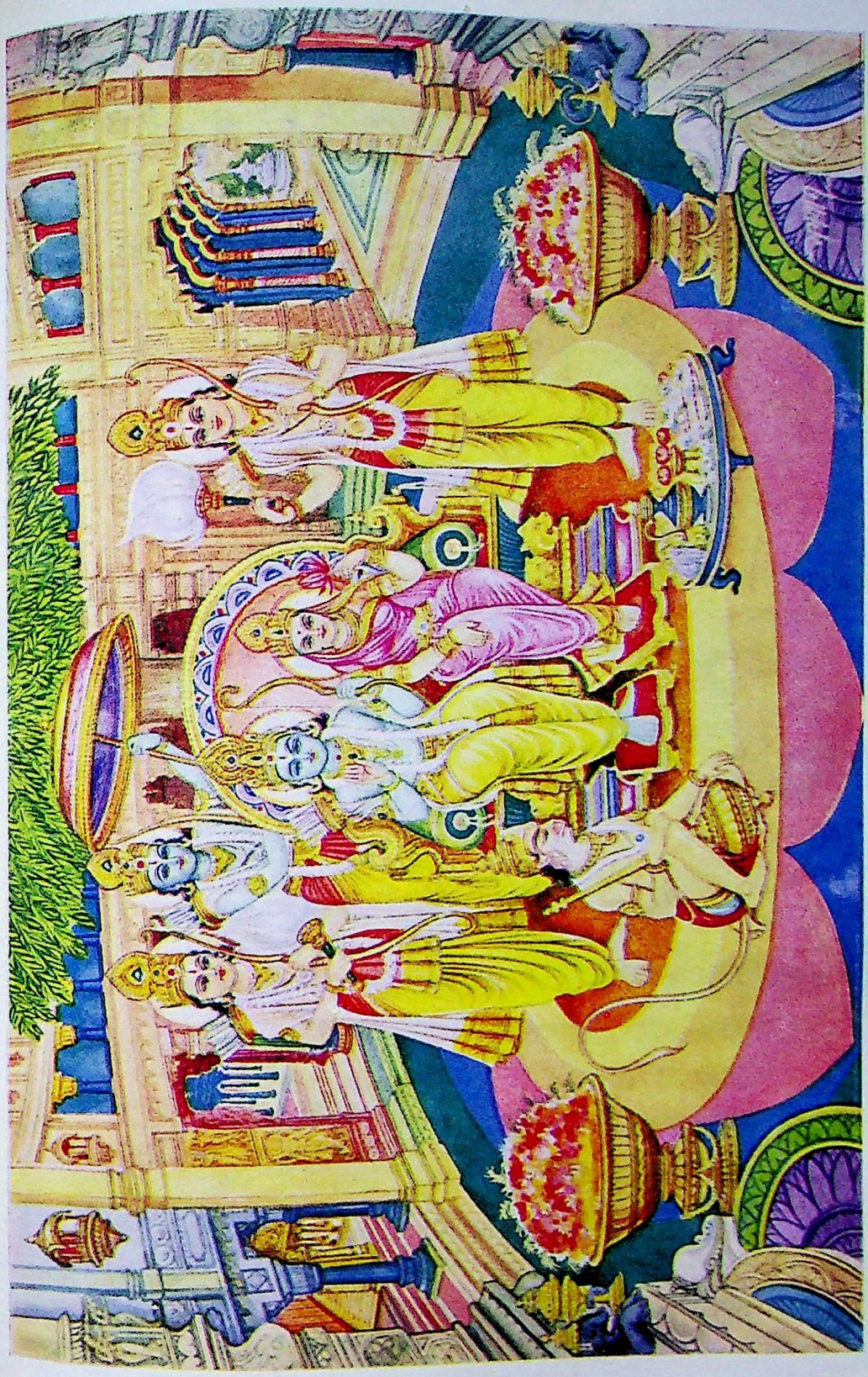

साकेतविहारी भगवान् श्रीराम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक आदमी शरीरमें तेल मर्दन करके धूलभरे स्थानमें व्यायाम करता है और सर्वाङ्गमें धूलसे लिप्त हो जाता है। यदि वह तेल मर्दन किये बिना व्यायाम करता है तो उसका सर्वाङ्ग धूलसे लिप्त नहीं होता। अतः धूलसे लिप्त होनेका कारण न तो उस स्थानका धूल-भरा होना है, न उस पुरुषका व्यायाम करना है; किंतु उसका कारण है उसके शरीरका तेलसे लिप्त होना। इसी तरह मिथ्यादृष्टि जीव कर्मपुद्गलोंसे भरे हुए इस लोकमें मानसिक, वाचनिक और कायिक क्रियाओंको करते हुए राग-द्वेषरूप भावोंको करता है और कर्मरूपी धूलिसे बँध जाता है। इसी बातको टीकाकार अमृतचन्द्राचार्यने इस प्रकार कहा है—

न कर्मबहुलं जगन्न चलनात्मकं कर्म वा
न नैककरणानि वा न चिदचिद्वधो बन्धकृत्।
यद्ऐक्यमुपयोगभूः समुपयाति रागादिभिः
स एव किल केवलं भवति बन्धहेतुर्नृणाम्॥

'कर्मयोग्य पुद्गलोंसे भरा यह लोक कर्मबन्धका कारण नहीं है; हलन-चलनरूप क्रिया भी बन्धका कारण नहीं है; अनेक इन्द्रियाँ आदि भी बन्धका कारण नहीं हैं और न चेतन-अचेतनका घात ही बन्धका कारण है; किंतु आत्मा जब रागादि भावोंके साथ एकताको प्राप्त करता है, केवल वही बन्धका कारण है।'

जैनदर्शनमें पौद्गलिक परमाणुओंके बन्धमें कारण उनके 'स्निग्ध' और 'रूक्ष' गुणको कहा है। किंतु आत्मामें तो स्निग्ध और रूक्ष गुण नहीं है, तब उसका कर्मपरमाणुओंके साथ बन्ध कैसे होता है? इस प्रश्नके समाधानमें राग-द्वेषीको ही स्निग्ध और रूक्षगुणका स्थानापन्न कहा है। इन्हींका निमित्त पाकर आत्मा कर्मपरमाणुओंसे बद्ध होता है।

ये कर्म बँधनेके बाद जब उनका उदयकाल आता है तो स्वयं ही अपना फल देते हैं। जैसे शराब पीनेसे नशा होता है और दूध पीनेसे पुष्टि होती है; शराब या दूध पीनेके बाद उसका फल देनेके लिये किसी दूसरे फलदाताकी आवश्यकता नहीं होती, उसी तरह कर्म भी जीवपर अपना अच्छा या बुरा प्रभाव डालते हैं। कर्म तो जीवकी ही परिणतिका परिणाम है। जीवके परिणामोंके अनुसार ही वे शुभाशुभरूप होकर तदनुसार ही फल देते हैं। उदाहरणके लिये यदि किसीने नरक-गतिका बन्ध किया तो मरते समय उसके परिणाम खराब होंगे और वह मरकर नरक-गतिमें जन्म लेगा; किंतु यदि नरक-गतिका बन्ध करनेके पश्चात् उसके परिणाम सँभलते हैं और वह शुभ कार्योंमें लगता है तो नरक-गतिमें तो उसे अवश्य जाना पड़ेगा किंतु अधिक दुःखवाले नरकोंमें न जाकर कम दुःखवाले नरकमें जायगा। जैन-कर्मसिद्धान्तके अनुसार आगामी भवकी आयुका बन्ध करके ही जीव मरता है और मरते ही दूसरा जन्म धारण कर लेता है।

जो दर्शन आत्माको व्यापक मानते हैं, उनके मतानुसार तो आत्माका गमन सम्भव नहीं है; किंतु जैनदर्शन आत्माको शरीर-परिमाण मानता है। जिस प्राणीके शरीरका जितना आकार होता है, उसके आत्माका भी उतना ही आकार होता है। जैसे दीपकका प्रकाश स्थानके अनुसार संकुचित या विस्तृत होता है, वैसे ही आत्मा भी शरीरके अनुसार संकुचित या विस्तृत होता है।

अतः शरीर-परिमाण होनेसे मृत्युके बाद आत्मा उस शरीरको छोड़कर दूसरा शरीर धारण करनेके लिये गमन करता है और पूर्वबद्ध कर्मके अनुसार नया जन्म धारण करता है। जन्म-मरणकी यह परम्परा तबतक चालू रहती है, जबतक मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती।

मुक्त होनेपर न तो आत्माका अभाव हो जाता है और न उसके स्वाभाविक ज्ञानादि गुणोंमें ही कोई कमी आती है। प्रत्युत जैसे सुवर्ण अग्निमें तपकर शुद्ध और निर्मल हो जाता है तथा उसका पीतता-गुण निखर उठता है, उसी तरह ध्यानरूपी अग्निमें तपकर आत्मा शुद्ध और निर्मल हो जाता है तथा उसके गुण परिपूर्ण होकर चमक उठते हैं और शुद्ध-बुद्ध वह परमात्मा अनन्तकालतक अपने स्वाभाविक सुखमें निमग्न रहता है। न वह किसीका इष्ट करता है और न अनिष्ट करता है। उसे संसारके बुरे-भलेसे कोई प्रयोजन नहीं है। वह एक आदर्श है, उसको सम्मुख रखकर हम उसके द्वारा निर्मित मार्गपर चलकर उसके ही-जैसे शुद्ध-बुद्ध निर्मल निर्विकार शुद्धात्मा बनकर संसारचक्रसे छूट सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन-मतमें पुनर्जन्म तथा कर्म-सिद्धान्त

(लेखक—डा० श्रीराजनारायणजी पाण्डेय, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

जैन-मतमें पुनर्जन्मके प्रति पूर्ण आस्था प्रदर्शित की गयी है। जैन-आगमग्रन्थों तथा महापुराणादि चरित-गाथाओंमें बारंबार पुनर्जन्मके उल्लेख हुए हैं। आगमके छठे अङ्ग तथा ग्यारहवें अङ्गकी कथाओंमें यह कहा गया है कि मनुष्यको पूर्वजन्मोंके पापोंका प्रायश्चित्त अनेक भावी जन्मोंमें करना पड़ता है। जैनाचार्य जिनसेन, हेमचन्द्र, प्राकृत-कवि विमलसूरि एवं अपभ्रंश-के महाकवि स्वयंभू, पुष्पदन्त आदिके ग्रन्थोंमें तीर्थंकरों, चक्रवर्तियों तथा अनेक महापुरुषोंके जन्मोंकी अनेक कथाएँ केलेके पातमें पातकी भाँति गुम्फित हैं।

वस्तुतः जैन-धर्म एक आचारप्रधान धर्म है, जिसमें अहिंसा तथा सदाचारको जैसा महत्त्व दिया गया है, वैसा अन्य धर्मोंमें कठिनतासे ही प्राप्त होगा। जैन अति नगण्य पाप-कर्मको भी महान् अपराधका कारण मानकर तत्सम्बन्धी कर्म-दोषकी निवृत्तिके लिये जीवात्माके अनेक योनियोंमें जन्म लेनेकी बात मानते हैं। पुष्पदन्त-के 'जसहर चरिउ'में महाराज जसहर (यशोधर) की माता चन्द्रमतीद्वारा आटेके कुक्कुटकी बलि देनेके परिणामस्वरूप उत्पन्न भावहिंसाके कारण उन दोनोंके मयूर, नेवला, कुत्ता, मत्स्य, बकरी, भैंसा, कुक्कुट आदि अनेक योनियोंमें जन्म लेकर नाना प्रकारके कष्ट भोगनेका वर्णन प्राप्त होता है।

इस प्रकार जैनमतानुसार कर्म-विपाक ही पुनर्जन्मका एकमात्र कारण है। अनेक भारतीय दर्शन कम-से-कम इस बातमें एकमत प्रतीत होते हैं। न्यायदर्शनके अनुसार 'पूर्वजन्ममें किये गये कर्मोंके फलानुबन्धसे ही शरीरकी उत्पत्ति होती है'—

पूर्वकृतफलानुबन्धात् तदुत्पत्तिः। (३ । २ । ६४)

अन्यत्र भी कहा है कि 'प्रारब्ध कर्मानुसार ही शरीरकी उत्पत्ति और उसके साथ आत्माका संयोग होता है'—

शरीरोत्पत्तिनिमित्तवत् संयोगोत्पत्तिनिमित्तं कर्म।

(३ । २ । ७०)

न्यायदर्शनके उक्त कथन जैन-धर्मकी तत्सम्बन्धी मान्यताओंसे भिन्न नहीं हैं। जैनमतानुसार जीव इस संसारमें कर्मसे प्रेरित होकर भ्रमण करता है। पुष्पदन्तका कथन है कि 'शम्भु तथा ब्रह्मा भी कर्मसे लिप्त रहते हैं। संसारमें कर्म-विपाक अति बलवान् है। जिस प्रकार चुम्बक लौहको अपनी ओर आकर्षित कर लेता है, उसी प्रकार कर्मयुक्त जीव भी अनेक पर्यायोंकी ओर स्वतः खिंचते चले आते हैं'—

संभुवि बंभुवि कम्मायत्तउ कम्मविवाउ लोइ बलवंतउ।
लोहु व कड्ढणए कड्ढिज्जइ जीव सकम्मि चउगइ णिज्जइ।

(जसहर चरिउ ३ । २२ । ११-१२)

अन्यत्र, पुष्पदन्त आद्य तीर्थंकर ऋषभके मुखसे कहलाते हैं कि 'जीव चतुःकषाय—क्रोध, मान, माया तथा लोभमें आसक्त तथा मिथ्या संयमके वशीभूत होकर अनेक जन्म धारण करके इस संसारमें विचरण करता है'—

चउ कसाय रस रसिय ओ मिच्छा संजम वसिय ओ।
णाणा जम्मु वियारए आहिंडइ संसारए।

(महापुराण ७ । ५ । १२)

अतः कर्मको पुनर्जन्म तथा तज्जन्य नाना प्रकारके दुःखोंका मूल कारण मानते हुए जैनमतने सांसारिक विषयादि अशुभ कर्मोंसे पृथक् रहने तथा अपने आत्मस्वरूपको पहचाननेका उपदेश दिया है। आचार्य कुन्दकुन्दका कथन है कि 'जीव जबतक विषयोंमें फँसा रहता है, तबतक आत्माको नहीं जान पाता। विषयोंसे विरक्त होनेपर ही वह आत्माको जान सकता है'—

ताम ण णज्जइ अप्पा, विसएसु णरो पवट्टए जाम।
विसए विरत्तचित्तो, जोई जाणेइ अप्पाणं।

कर्म-सिद्धान्त

जैन-दर्शनने प्रदेशत्व निमित्तसे पाँच द्रव्य माने हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म तथा आकाश। सत्ता रखनेके कारण ये 'अस्तिकाय' भी कहलाते हैं। इनमें केवल जीव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेतन है; शेष अचेतन। रूप या आकारकी दृष्टिसे पुद्गल मूर्त है; अन्य अमूर्त। जीव आत्माका ही पर्याय है। प्रत्येक जीव अपने प्रकृत रूपमें अनन्त ज्ञान, दर्शन, वीर्यादि गुणोंसे परिपूर्ण होता है। पुद्गल अथवा कर्मके परमाणु-पुञ्जसे वेष्टित होकर उसकी प्रकृति विकृत हो जाती है, जिसके फलस्वरूप नाना शरीर धारण करके वह संसारमें भ्रमण करता है।

पुद्गल द्रव्य संसारका भौतिक आधार है। पृथ्वी, जल, वायु आदि उसीके स्थूल रूप हैं। इसका सबसे सूक्ष्म रूप 'परमाणु' कहलाता है। अनेक परमाणु मिलकर 'स्कन्ध' बनाते हैं। इसके अन्तर्गत वह सभी कुछ आ जाता है, जो इन्द्रियग्राह्य है। ताप, आलोक, छाया आदि सूक्ष्म पुद्गलके ही रूप हैं, जिसके अणु सदा परिस्पन्दन करते हैं और क्रमानुसार संयुक्त-वियुक्त होते रहते हैं। परिणामस्वरूप उसके विभिन्न आकार-प्रकार बना करते हैं। संसारमें पुद्गल-परिमाण सदैव स्थिर रहता है। जीव तथा पुद्गलकी स्थिति लोकाकाशमें है। इससे रहित स्थान 'अलोकाकाश' कहलाता है। पुद्गलवाद जैन-दर्शनकी एक विशेषता है। यह न्याय-वैशेषिक-दर्शनके अणु-सिद्धान्तसे भिन्न है।

आरम्भमें हम यह देख चुके हैं कि जैन-दर्शनका कर्मवाद तत्त्वतः इतर दर्शनोंसे साम्य रखता है, परंतु जैन-दर्शन जहाँ जीवको कर्ता और भोक्ता स्वीकार करनेके साथ-साथ उसे ज्ञाता भी मानता है, वहाँ सांख्यका पुरुष केवल ज्ञाता और भोक्ता निरूपित किया गया है; कर्त्ता नहीं। इस दृष्टिसे जैन-मतानुसार जीवका स्वरूप अन्य मतोंसे भिन्न है।

जैन-मत संसारकी सृष्टि, उसका पालन तथा संहार करनेवाले ईश्वर या परमात्मा-जैसी किसी शक्तिकी सत्ता नहीं स्वीकार करता। तब यह प्रश्न स्वाभाविक है कि जीवके लिये उपयुक्त शरीरका निर्माण किस प्रकार होता है तथा संसारमें उसके सुख-दुःखादि बातोंकी व्यवस्था कैसे होती है? इन प्रश्नोंके उत्तरमें जैन-दर्शनका कथन है कि औदारिक आदि शरीर, वचन, द्रव्य, मन तथा श्वासोच्छ्वास—ये सब पुद्गल द्रव्यके उपकार हैं। अर्थात् जीवके लिये शरीरादिकी रचना पुद्गलसे ही होती है। इन्द्रियजन्य सुख-दुःखकी सामग्री, शरीरका स्थिर रहना तथा नाश होना—ये पुद्गलके फल हैं—

शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम्।
सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च।

(तत्त्वार्थ सूत्र ५। १९–२०)

जीव तथा पुद्गल चिरकालसे साथ-साथ वर्तमान हैं। 'जीवके परिणामका निमित्त पाकर पुद्गल ही कर्म-रूप अवस्था धारण करता है तथा कर्मके उदयका निमित्त पाकर जीव भी तद्रूप-अवस्था धारण कर लेता है'—

जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तदेह जीवो वि परिणमई॥

(समयसार, कर्म अधिकार, गाथा ८०)

इस प्रकार पुद्गलद्वारा ही जीवका बंध होता है। मिथ्या दर्शन, कषाय अथवा राग-द्वेषके कारण जीवात्माके सत्-पथसे विचलित होते ही पुद्गलके अनन्त परमाणु उससे संयुक्त हो जाते हैं और उसके चतुर्दिक् एक प्रकारके कार्मिक शरीरका निर्माण कर देते हैं। परम विशुद्ध, निर्मल आत्माका स्वरूप आच्छन्न हो जाता है। 'समयसार बंध अधिकार'में कहा गया है कि 'जैसे स्फटिकमणि स्वयं शुद्ध है; वह अपने आप ललाई आदि रंग-रूप धारण नहीं कर लेती; परंतु अन्य लाल-काले द्रव्योंद्वारा उसमें रंग-रूपका परिणमन हो जाता है; उसी भाँति आत्मा स्वयं शुद्ध है; वह स्वयं रागादिक भावोंसे नहीं परिणमित होता, वरं मोहादिक कर्मके निमित्तसे रागादिक रूपोंमें परिणमित हो जाता है'—

जह फलिहमणी सुद्धो ण सयं परिणमइ रायमाईहिं।
रंगज्जदि अण्णेहिं दु सो रदादीहिं दव्वेहिं॥
एवं णाणी सुद्धो ण सयं परिणमइ रायमाईहिं।
राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रागादीहिं दोसेहिं॥

(गाथा २७८-२७९)

कर्मके भेद

जैनदर्शनमें कर्मके आठ भेद कहे गये हैं—

१–ज्ञानावरण, २–दर्शनावरण, ३–मोहनीय, ४–अन्तराय, ५–वेदनीय, ६–आयु, ७–नाम, ८–गोत्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय तथा अन्तराय कर्म जीवका घात करनेके कारण 'घाती कर्म' कहलाते हैं। वेदनीय, आयु, नाम तथा गोत्रद्वारा कर्म-प्रकृतियोंका नाश सम्भव है; अतः इन्हें 'अघाती कर्म' कहते हैं।

जो कर्म जीवके ज्ञानके विकासमें बाधक होते हैं, उन्हें 'ज्ञानावरण' कहते हैं। मति, श्रुति, अवधि, मनः-पर्याय, केवल—जैसे इसके पाँच प्रकार होते हैं। 'दर्शनावरण कर्म' आत्माके दर्शन गुणका विकास रोकते हैं। इसके नौ भेद हैं—चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला तथा स्त्यान-गृद्धि। जो आत्माके श्रद्धा तथा चारित्र गुणका विकास न होने दे, उस कर्मका नाम 'मोहनीय' है। इसके 'दर्शन' और 'चारित्र'—दो भेद हैं। दर्शनमोहनीयके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व तीन उपभेद हैं। चारित्र-मोहनीयके कषाय और नोकषाय दो उपभेद होते हैं। इनके भी क्रमशः १६ और ९ भेद होते हैं। इस प्रकार मोहनीय कर्मके कुल २८ भेद हैं। आत्माकी वीर्य-शक्तिका घात करनेवाला 'अन्तराय कर्म' है। इसके दान, लाभ, भोग, उपभोग तथा वीर्य—पाँच भेद होते हैं। 'वेदनीय कर्म' बाह्य सामग्रीका संयोग-वियोग करता और यदि मोह हो तो सुख-दुःखका वेदन कराता है। इसके साता, असाता—जैसे दो भेद होते हैं। जो कर्म आत्माको चतुर्गतियोंमें रोक रक्खे, उसे 'आयुकर्म' कहते हैं। इसके चार भेद होते हैं—देवायु, नारकायु, मनुष्यायु तथा तिर्यञ्चायु। जीवको नाना शरीर धारण करानेवाला 'नामकर्म' है। नामकर्मके ४२ भेद हैं—गति, जाति, शरीर, अङ्गोपाङ्ग, निर्माण, बन्धन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आताप, उद्योग, उच्छ्वास, विहायोगति, प्रत्येक, साधारण, त्रस, स्थावर, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, शुभ, अशुभ, सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्त्ति, अयशःकीर्त्ति तथा तीर्थंकर। जिस कर्मके उदयसे जीवका उच्च तथा नीच गोत्रमें जन्म हो, उसे 'गोत्रकर्म' कहते हैं। इसके उच्च-नीच दो भेद हैं।

कर्मकी कुल प्रकृतियाँ १४८ हैं। इनमें पाप-प्रकृति १०० है। शेष ४८ में नामकर्मकी स्पर्शादिक २०, जो किसीको इष्ट, किसीको अनिष्ट होनेके कारण पाप-पुण्य दोनोंमें गिनी जाती हैं, मिलानेसे ६८ पुण्य-प्रकृति कही जाती है।

कर्म-बन्धनसे मुक्ति अथवा मोक्ष

भौतिक अथवा औदारिक शरीर, जो माता-पिता-द्वारा जन्मता और पोषित होता है, मृत्यु होनेपर नष्ट हो जाता है। परंतु कार्मिक शरीर चिरकालतक जीवके जन्म-मृत्युके चक्रके साथ रहता है। जीवके साथ कार्मिक शरीरकी यह स्थिति उसके आध्यात्मिक प्रयत्नों-पर निर्भर करती है। जीव चाहे तो अपने शाश्वत गुणों तथा अनन्त शक्तिके द्वारा आत्म-विकास करके कार्मिक शरीरका क्षय कर सकता है। इसी कारण जीवके भाग्यनिर्माणकी सम्भावना सदैव बनी रहती है। परंतु जबतक वह अपने गुणोंके प्रति जागरूक नहीं होता, वह विजातीय द्रव्योंसे स्वयंको भिन्न समझनेमें असमर्थ रहता है और कार्मिक शरीर निरन्तर बनता रहता है।

कर्म-बन्धन तथा उसके कारणोंका अभाव होकर परिपूर्ण आत्मिक विकास ही 'मोक्ष' है। दूसरे शब्दोंमें ज्ञान और वीतराग भावकी पराकाष्ठा ही मोक्षकी स्थिति है। आचार्य उमास्वामीने मोक्षके सम्बन्धमें कहा है—

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।

(तत्त्वार्थसूत्र १।१)

अर्थात् 'सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र ही मोक्षके साधन हैं।' जिस गुण या शक्तिके विकाससे सत्य अथवा तत्त्वकी प्रतीति हो, उसे 'सम्यग्दर्शन' कहते हैं। नय और प्रमाणसे होनेवाला जीव आदि तत्त्वोंका यथार्थ बोध 'सम्यग्ज्ञान' है एवं सम्यग्ज्ञानपूर्वक काषायिक भाव या राग-द्वेषकी निवृत्तिसे जो स्वरूप प्राप्त होता है, वही 'सम्यक्चारित्र' है। इन्हें 'रत्नत्रयी' भी कहते हैं। ये तीनों साधन जब परिपूर्ण अवस्थामें उपलब्ध होते हैं, तभी सम्पूर्ण मोक्ष समझा जाता है। अस्तु, मोक्ष-साधनाके लिये तत्त्वोंको समझना परमावश्यक है। जीव द्रव्यकी अवस्थाका नाम तत्त्व है। 'तत्त्व' सात हैं—जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निजरा तथा मोक्ष।

जीव द्रव्यका शाश्वत स्वभाव ही 'जीवतत्त्व' है। जीव द्रव्यके साथ जो पौद्गलिक संयोगी अवस्था होती है, उसीका नाम 'अजीव तत्त्व' है। कर्म-पुद्गलके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीव द्रव्यके साथ संयुक्त होनेकी अवस्था 'आश्रव' है। आश्रवसे ही कार्मिक शरीर बनता है। हिंसा, अदत्तदान, असत्य, परिग्रह और मैथुन—ये आश्रवके पाँच द्वार हैं। पुष्पदन्तका कथन है कि 'पञ्चेन्द्रिय-सुखोंके कारण असंख्य कर्मोंका आश्रव होता है'—

पंचिंदिय सुहि मणु चोयंतहु तहु आसवइ कम्मु अतवंतहु।
(महापुराण ७। १३। १३)

आश्रवके कारण जीवका बन्ध होता है। आत्माकी श्रद्धा, चारित्र और क्रिया गुणोंकी विकारी अवस्था ही 'बन्ध' है। जब जीव अपने अनन्त ज्ञानादि जैसे स्वाभाविक गुणोंके स्मरणद्वारा कर्म-बन्धनसे मुक्त होनेकी चेष्टा करता है, तभी कर्मके आगम अथवा आश्रवमें बाधा पड़ती है। आश्रवका निरोध ही 'संवर' है—आश्रवनिरोधः संवरः। संवरद्वारा आश्रवके समस्त द्वार अवरुद्ध हो जाते हैं तथा नवीन कर्मोंका आगम रुक जाता है। मुक्तिकी दिशामें यह प्रथम पग है। गुप्ति, समिति, मुनिधर्म, अनुप्रेक्षा, परिषह तथा व्रत-चारित्र संवरके कारण हैं। अतः संवर आत्माकी वह स्वच्छता है, जिसके द्वारा वह पुद्गलसे अपनी रक्षा करता है। ऋषभदेवने इसे चिर-कालतक धारण किया था।

संवरद्वारा नवीन कर्मोंका आगम रोकनेके साथ ही यह भी आवश्यक है कि संचित कर्म क्षय होकर आत्मा निर्मल बने। कार्मिक शरीरका विघटन तथा संचित कर्मोंका क्षय 'निर्जरा' कहलाता है। निर्जराकी उपलब्धि तपसे होती है। मन, इन्द्रिय-समूह तथा कायके तपन और निग्रहसे 'तप' होता है। जैनधर्मकी प्राचीन व्यवस्था द्वादशाङ्ग ही 'तप' है। बाह्य-अन्तरङ्ग भेदसे १२ तप इस प्रकार हैं—बाह्य तप—अनशन, अवमोदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रस-परित्याग, विविक्तशैयासन तथा कायक्लेश। अन्तरङ्ग तप—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग तथा ध्यान। प्रथमोक्त बाह्य तप आभ्यन्तरिक शुद्धिके कारण होते हैं।

तप-निर्जराद्वारा जीव अनावरित होकर परम शुद्ध एवं निर्मल हो जाता है। वह अपने प्राकृत गुणोंसे दीप्तिमान् हो जाता है। निरन्तर आराधना तथा तल्लीनता-द्वारा वह परमात्मपदको प्राप्तकर मोक्षके चरम बिंदु-पर स्थिर हो जाता है।

अन्नदान न करनेके कारण ब्रह्मलोकमें जानेके बाद भी अपने मुर्देका मांस खाना पड़ा

विदर्भदेशके राजा श्वेत बड़े अच्छे पुरुष थे। राज्यसे वैराग्य होनेपर उन्होंने अरण्यमें जाकर दीर्घ-कालतक तप किया और तपके फलस्वरूप उन्हें ब्रह्मलोककी प्राप्ति हुई; परंतु उन्होंने जीवनमें कभी भी किसीको भोजन-दान नहीं किया था; इससे वे ब्रह्मलोकमें भी भूखसे पीड़ित रहे। ब्रह्माजीने उनसे कहा था—'तुमने किसी भिक्षुकको कभी भिक्षा नहीं दी। विविध भोगोंसे केवल अपने शरीरको ही पाला-पोसा। फिर तप किया। तपके फलसे तुम मेरे लोकमें आ गये। तुम्हारा मृत शरीर धरतीपर पड़ा है, वह पुष्ट तथा अक्षय कर दिया गया है। तुम उसीका मांस खाकर भूख मिटाओ। अगस्त्य ऋषिके मिलनेपर तुम इस घृणित भोजनसे छूट सकोगे।'

उन्हीं श्वेत राजाको ब्रह्मलोकसे आकर अपने शवका मांस खाना पड़ता था। यह अन्नदान न देनेका बुरा फल है। फिर एक दिन उन्हें अगस्त्य ऋषि मिले, तब उसको इस अत्यन्त घृणित कार्यसे छुटकारा मिला।

अतएव यहाँ अपनी सामर्थ्यके अनुसार दान अवश्य करना चाहिये। यहाँका दिया हुआ ही—परलोकमें या पुनर्जन्म होनेपर प्राप्त होता है। यह आवश्यक नहीं है कि कोई इतने परिमाणमें दान करे। जिसके पास जो हो, उसीमेंसे यथाशक्ति कुछ दान किया करे।

राजा श्वेत हुए अति वैभवशाली तपोनिष्ठ मतिमान।
पर न किया था कभी उन्होंने जीवनमें भोजनका दान॥
क्षुधा भयानकसे पीड़ित, वे आते प्रतिदिन चढ़े विमान।
धरतीपर, खाते स्वमांस अपने ही शवका घृणित महान॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैथुनी, अमैथुनी सृष्टि

(लेखक—मुनि श्रीसुमेरमलजी)

चौरासी लाख योनियोंका संक्षेपीकरण करते हुए आचार्योंने सृष्टिकी दो श्रेणियाँ बतलायी हैं—एक 'मैथुनी सृष्टि' और दूसरी 'अमैथुनी सृष्टि'। सब योनियोंका समावेश इन दो श्रेणियोंमें आ जाता है। सृष्टि स्वयं एक विचित्र तथ्य है, विविधताओंका समूह है। व्यक्तिका जन्म भी वैचित्र्य है और अलग-अलग तरीकेसे जन्मना तो और भी आश्चर्यजनक है।

मैथुनी सृष्टि

युगलके सम्बन्धसे पैदा होनेवाली सृष्टिका नाम 'मैथुनी सृष्टि' है। नर और मादाके सम्पर्कसे जो पदार्थ निकलता है, उसका प्रथम (ओज) आहार करनेवाले 'मैथुनी सृष्टिके जीव' कहलाते हैं। जैन आगमोंमें इस सृष्टिका नाम 'गर्भज सृष्टि' मिलता है। जो प्राणी गर्भमें अमुक अवधितक रहकर अपना शारीरिक विकास करता है और पर्याप्त विकासके बाद गर्भसे बाहर आता है, उसे 'गर्भज प्राणी' कहा जाता है। इसमें मनुष्य और समनस्क पशु-पक्षी ही आते हैं। मनुष्य स्त्री और पुरुषके संयोगसे पैदा होता है। उसे नौ महीनोंतक गर्भमें रहना पड़ता है। कुछ बालक सात महीनोंके बाद गर्भसे बाहर आ जाते हैं और कुछ बालक नौ महीनोंसे अधिक भी गर्भमें रह जाते हैं।

गर्भज पशुओंकी गर्भमें रहनेकी अवधि अलग-अलग है। पाँच सप्ताहसे लेकर ढाई वर्षतक गर्भमें रहनेवाले पशु पाये जाते हैं। इस अवधिमें शारीरिक संस्थान पूरा बन जाता है और बाहरके वायुमण्डलको सहन कर सके, ऐसी शारीरिक क्षमता पैदा हो जाती है।

पक्षियोंका गर्भ अंडेके रूपमें होता है। जीव अंडेके खोलमें पैदा होता है और उसमें ही धीरे-धीरे शरीर बन जाता है। अंडा कुछ समयतक तो मादा पक्षीके पेटमें रहता है, फिर बाहर निकल आता है। बाहर निकलनेके बाद नर और मादा पक्षी—दोनों ही उसे अपने शरीरकी गरमी पहुँचाते हैं। पूरे अवयव बन जानेके बाद अंडा स्वयं तड़ककर फूट जाता है, या मादा पक्षी उसे फोड़ देते हैं। पक्षियोंके रोम और पंख हमेशा अंडेसे बाहर आनेके बाद ही आते हैं।

इस प्रकार गर्भसे पैदा होनेवाले पशु-पक्षी तथा मनुष्य मैथुनी सृष्टिके अन्तर्गत आते हैं। ये सभी समनस्क हैं। इनमें मानसिक, वाचिक तथा कायिक—तीनों शक्तियोंका विकास है। विकासकी क्षमतामें एक दूसरेमें तारतम्य जरूर है; किंतु तीनों शक्तियोंकी सत्ता अवश्य विद्यमान है।

अमैथुनी सृष्टि

सृष्टिका दूसरा भाग 'अमैथुनी' है। यह मैथुनी सृष्टिसे बहुत बड़ी है। इसमें विकसित, अविकसित, दोनों योनियोंका समावेश है। अमैथुनी सृष्टिके मुख्य घटक हैं—देव-योनिके जीव, नरकयोनिके जीव, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा अमनस्क पञ्चेन्द्रियके जीव।

देवयोनिके जीव

देवयोनिमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंको माता-पिताके संयोगकी जरूरत नहीं, गर्भकी जरूरत नहीं, अंडेमें रहनेकी जरूरत नहीं। वहाँ वे फूलोंकी शय्यामें पैदा होते हैं और अन्तर मुहूर्त मात्रमें (अड़तालीस मिनटके भीतर-भीतर) परिमित शरीरकी रचना हो जाती है। देवयोनिके जीवोंमें न बचपन है और न बुढ़ापा। वे शक्तिसम्पन्न वैक्रिय शरीरवाले होते हैं, जिसमें हाड़-मांस नहीं होता। विशिष्ट अणुओंका समूह शरीरके रूपमें अवस्थित हो जाता है। इस उत्पत्तिमें किसीके संयोगकी अपेक्षा नहीं, किसीके पालन-पोषणकी अपेक्षा नहीं। फूलोंमें जन्मते हैं, जवानीमें रहते हैं, दीर्घायुषी होते हुए भी बीमारी या शारीरिक शैथिल्य उनमें नहीं आता।

नरक-योनिके जीव

इनके उत्पत्तिस्थान कुम्भी (मुँह छोटा पेट बड़ा) जैसा या पेटी (बक्स) जैसा होता है। अन्तर मुहूर्त (अड़तालीस मिनट) के भीतर-भीतर ये भी पूरा शरीर बना लेते हैं। बचपन और बुढ़ापा—दोनों इनमें भी नहीं हैं; किंतु जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त केवल पीड़ा-ही-पीड़ा है। सर्वथा असुविधा, भयंकर दुर्गन्ध, भयंकर शीत या तपा, पारस्परिक कलह, एक क्षण भी चैन नहीं लेने देता। नरक-योनिके जीव एक-एक श्वासोच्छ्वास भयंकर पीड़ामें बिताते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकेन्द्रिय जीव

पृथ्वीकाय, अप्कायं, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय—इन पाँचों स्थावर कायोंके जीव 'अमैथुनिक' हैं। इनके एक इन्द्रिय होनेके कारण 'एकेन्द्रिय' कहाते हैं। चैतन्यका न्यूनतम विकास यहाँ रहता है। वैसे कुछ वनस्पतियोंमें चैतन्यका विकास काफी विकसित है। उनकी संवेदन-शक्ति आश्चर्य-जनक है; किंतु एक इन्द्रिय होनेके कारण इनमें अभिव्यक्तिकी प्रक्रिया बिल्कुल नहीं है। ये जीव अनुकूल संयोग मिलते ही अपने आप स्वयं पैदा हो जाते हैं। इनमें मानसिक और वाचिक शक्तिका सर्वथा अभाव रहता है।

द्वीन्द्रिय आदि

द्वीन्द्रिय (दो इन्द्रियवाले), त्रीन्द्रिय (तीन इन्द्रियवाले), चतुरिन्द्रिय (चार इन्द्रियवाले), अमनस्क पञ्चेन्द्रिय (पाँच इन्द्रियवाले) जीव भी ऐसी योनियोंमें उत्पन्न होते हैं, जो अमैथुनिक हैं। इनके कई प्रकार हैं। कुछ त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय जीव अंडेसे पैदा जरूर होते हैं; किंतु अंडेमें रहकर शरीर नहीं बनाते और न उसके कोई पालनेवाले माता-पिता होते हैं। कुछ जीवोंके पालनेकी प्रक्रिया हम देखते हैं, वह केवल संज्ञा मात्र है। निश्चित संतानोत्पत्तिका वहाँ कोई क्रम नहीं है। इनमें वाचिक शक्तिकी सत्ता तो विद्यमान है, मानसिक शक्तिका अभाव है। मनके अभावमें वाणीका विकास भी अधिक नहीं हो पाता।

पुद्गलवादका रहस्य

(लेखक—मुनि श्रीबुद्धमल्लजी साहित्य-परामर्शक)

पुद्गलका स्वरूप

जैन-मतानुसार यह लोक षड्द्रव्यात्मक है। लोकके घटक उन छः द्रव्योंके नाम हैं—

१. धर्मास्तिकाय।
२. अधर्मास्तिकाय।
३. आकाशास्तिकाय।
४. काल।
५. पुद्गलास्तिकाय।
६. जीवास्तिकाय।

इनमें पाँच द्रव्य अमूर्त हैं; केवल एक पुद्गलास्तिकाय ही मूर्त है। संक्षिप्तमें इसे केवल 'पुद्गल' भी कहा जाता है। यह एक जैन पारिभाषिक शब्द है। बौद्ध-दर्शनमें भी इस शब्दका प्रयोग हुआ है; परंतु वह इससे सर्वथा पृथक् 'चेतना-संतति' के अर्थमें हुआ है। जैनागमोंमें भी क्वचित् पुद्गल-युक्त आत्माको पुद्गल कहा गया है[1], परंतु मुख्यतया मूर्त द्रव्यके अर्थमें ही इसका प्रयोग हुआ है। व्युत्पत्तिगत अर्थमें पूरण-गलनधर्मा होनेके कारण इसे 'पुद्गल' कहा जाता है[2]। भावात्मक आधारपर इसकी परिभाषा की जाती है। जो स्पर्श, रस, गन्ध और वर्णवान् होता है, वह पुद्गल है[3]। न्याय-वैशेषिक आदिने जिसे भौतिक तत्त्व कहा है और वैज्ञानिक जिसे मैटर (Matter) शब्दसे पहचानते हैं, जैनोंने उसी द्रव्यको 'पुद्गल' नामसे अभिहित किया है।

पुद्गलके प्रकार

जैनागमोंमें पुद्गल द्रव्यके दो प्रकार बताये गये हैं। परमाणु पुद्गल और नोपरमाणु पुद्गल (स्कन्ध)। अन्यत्र इसके चार प्रकार भी बताये गये हैं। स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु। जहाँ दो भेद किये गये हैं, वहाँ स्कन्ध, देश और प्रदेशको नोपरमाणु पुद्गलमें ही समाहित कर लिया गया है। मूलतः परमाणुको ही वास्तविक पुद्गल कहना चाहिये। शेष भेद तो परमाणुकी ही विशिष्ट अवस्थाओंपर आधृत हैं।

निर्विभागी पुद्गलको 'परमाणु' कहा जाता है। वह पुद्गलका सबसे छोटा रूप होता है। निरंश होनेके कारण उसे अच्छेद्य, अभेद्य, अदाह्य और अग्राह्य कहा जाता है।

---

१. भगवती ८। १०। ३६१। जीवेणं भंते ! पोग्गली, पोग्गले ? जीवेपोग्गलीवि, पोग्गलेवि।

२. तत्त्वार्थराजवार्तिक ५—१। पूरणगलनान्वर्थसंज्ञत्वात् पुद्गलाः।

३. जैनसिद्धान्तदीपिका १-११। स्पर्शरसगन्धवर्णवान् पुद्गलः।

४. स्थानांग २।

५. उत्तराध्ययन ३६। १०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक परमाणु-पुद्गलोंके एकीभूत पिण्डको 'स्कन्ध' कहा जाता है। ये पिण्ड दोसे लेकर अनन्त परमाणुओंतकके हो सकते हैं। स्कन्धोंके संघात तथा विघातसे भी नये स्कन्ध बनते हैं।

स्कन्धके कल्पित विभागको 'देश' और स्कन्धके अपृथग्-भूत अविभागी अंशको 'प्रदेश' कहा जाता है। स्कन्ध-प्रदेश और परमाणुमें केवल स्कन्धसे अपृथग्भाव और पृथग्भावका ही अन्तर है।

पुद्गलके गुण

पुद्गलके मूलतः चार गुण होते हैं। स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण। उपभेदोंके आधारपर निम्नोक्त प्रकारसे ये बीस हो जाते हैं—

स्पर्श—शीत, उष्ण, रुक्ष, स्निग्ध, लघु, गुरु, मृदु और कर्कश।

रस—आम्ल, मधुर, कटु, कषाय और तिक्त।

गन्ध—सुगन्ध और दुर्गन्ध।

वर्ण—कृष्ण, नील, रक्त, पीत और श्वेत।

प्रत्येक पुद्गल चाहे वह परमाणुरूप हो और चाहे स्कन्धरूप, उपर्युक्त चारों गुणों और अनन्त पर्यायोंसे युक्त ही होता है। एक परमाणुमें कोई भी एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्श (शीत-उष्ण और स्निग्ध-रुक्ष—इन दोनों युगलोंमेंसे एक-एक) होते हैं। प्रत्येक परमाणुमें वर्णान्तर, गन्धान्तर, रसान्तर और स्पर्शान्तर होता रहता है। स्कन्धके लिये भी यही नियम है। यह परिवर्तन कम-से-कम एक समयके पश्चात् भी हो सकता है, परंतु अधिक-से-अधिक असंख्यकालके पश्चात् तो अवश्यम्भावी होता है।

पुद्गलकी परिणतियाँ

इस संसारमें जो भी कुछ इन्द्रियग्राह्य है, वह सब पुद्गलकी ही विविध परिणतियाँ हैं। इस जगत्के घटक द्रव्योंमें पुद्गलके अतिरिक्त और कोई भी द्रव्य चक्षुग्राह्य नहीं है। मात्र एक पुद्गल द्रव्य ही ऐसा है जो आँखों या यान्त्रिक उपकरणोंसे देखा जा सकता है। परंतु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि सारे पुद्गल दृष्टि-ग्राह्य ही होते हैं। बहुत सारे पुद्गल अनन्त परमाणुओंके पिण्डीभूत स्कन्ध होनेपर भी न दृष्टिग्राह्य होते हैं और न यन्त्रग्राह्य ही। पुद्गलोंकी यह दृश्यता और अदृश्यता वास्तवमें उनके परिणतिभेदसे सम्बद्ध होती है। पुद्गलकी परिणति दो प्रकारकी मानी जाती है—'सूक्ष्म' और 'बादर' (स्थूल)।

सूक्ष्म परिणतिवाले पुद्गल अनन्तानन्त स्कन्धोंके रूपमें एकत्रित होनेपर भी तबतक दिखायी नहीं दे सकते, जबतक कि उनकी स्थूल-परिणति नहीं हो जाती। सूक्ष्म-परिणति-वाले पुद्गलोंमें प्रथम चार स्पर्श मिलते हैं, अतः उन्हें 'चतुःस्पर्शी' कहा जाता है। वे जब सूक्ष्म-परिणतिसे हटकर स्थूल-परिणतिमें आते हैं, तब उसके साथ ही उनमें उत्तरवर्ती चार स्पर्शोंकी भी अभिवृद्धि हो जाती है। वे फिर 'अष्टस्पर्शी स्कन्ध' कहलाते हैं। ये स्पर्श पूर्ववर्ती चार स्पर्शोंके सापेक्ष संयोगसे बनते हैं। जैसे रुक्षस्पर्शी परमाणुओंके बाहुल्यसे 'लघुस्पर्श' स्निग्धस्पर्शी परमाणुओंके बाहुल्यसे 'गुरुस्पर्श' शीत एवं स्निग्धस्पर्शी परमाणुओंके बाहुल्यसे 'मृदुस्पर्श' और उष्ण तथा रुक्षस्पर्शी परमाणुओंके बाहुल्यसे 'कर्कशस्पर्श' बनता है।

इनके अतिरिक्त शब्द, बन्ध, संस्थान, भेद, तम, छाया, आतप और उद्योत आदि सभी पुद्गलोंकी ही विभिन्न परिणतियाँ हैं। संसारमें न कभी एक परमाणु घटता है और न एक भी बढ़ता है; केवल उनकी विभिन्न परिणतियोंके कारण ही दृश्य जगत्की सारी उथल-पुथल होती रहती है।

पुद्गलोंका परिणमन जब किसी प्रकारकी बाह्य प्रेरणाके बिना स्वभावतः होता है, तब वे 'वैस्रसिक' कहलाते हैं। जीव-के प्रयोगसे शरीरादिरूपमें परिणत पुद्गल प्रायोगिक और जीव-मुक्त होनेपर भी, जिनका प्रायोगिक परिणमन जबतक नहीं छूटता, तबतक वे पुद्गल अथवा जीव-प्रयत्न और स्वभाव दोनोंके संयोगसे परिणत पुद्गल 'मिश्र' कहलाते हैं।

जीवके साथ सम्बद्ध पुद्गल

पुद्गलका अन्य पुद्गलके साथ तो मिलन होता ही है, परंतु इसके अतिरिक्त जीवके द्वारा भी उसका ग्रहण किया जाता है। जीव अपनी विभिन्न क्रियाओंके द्वारा पुद्गलोंको आकृष्ट करता है, तब वे, उसके साथ संलग्न होते हैं और उसे अनेक प्रकारसे प्रभावित करते हैं। पुद्गलोंपर जीवोंके और जीवोंपर पुद्गलोंके विभिन्न प्रभावोंके परिणामस्वरूप ही सृष्टिकी सारी विचित्रताएँ घटित होती रहती हैं। जीव-के साथ सम्बद्ध होने योग्य पुद्गलोंको मुख्यतः आठ वर्गणाओं—श्रेणियोंमें विभक्त किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

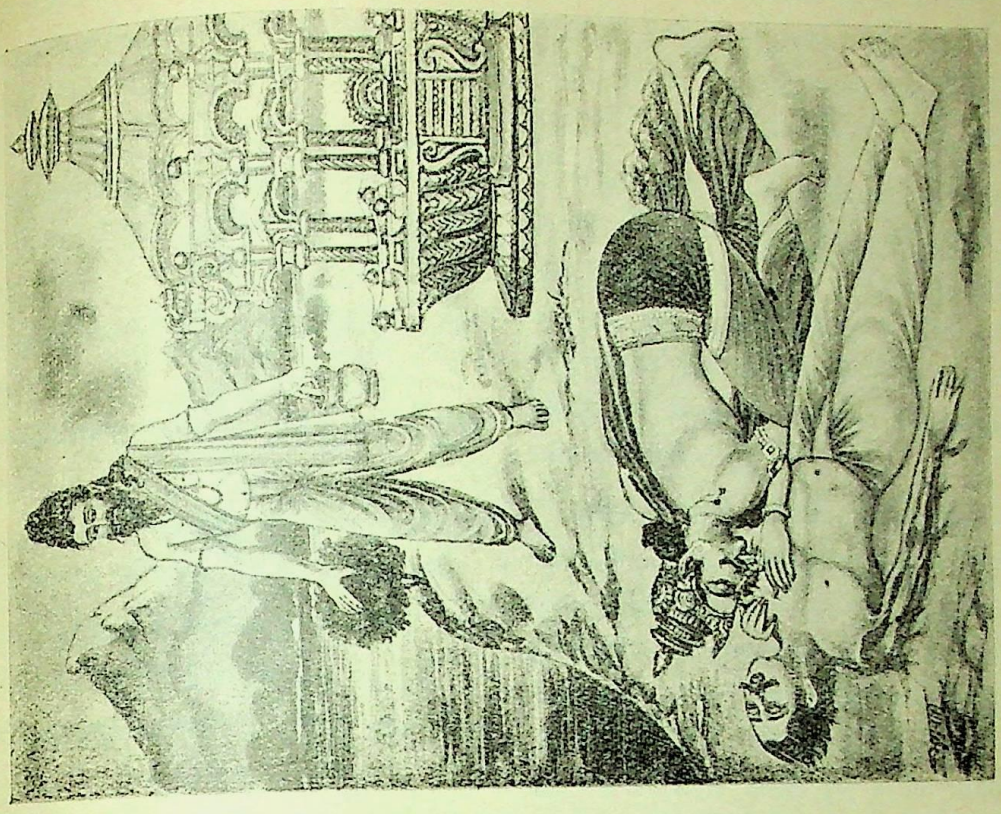

राजा श्वेतका निज शव-भक्षण [पृष्ठ ४६१]

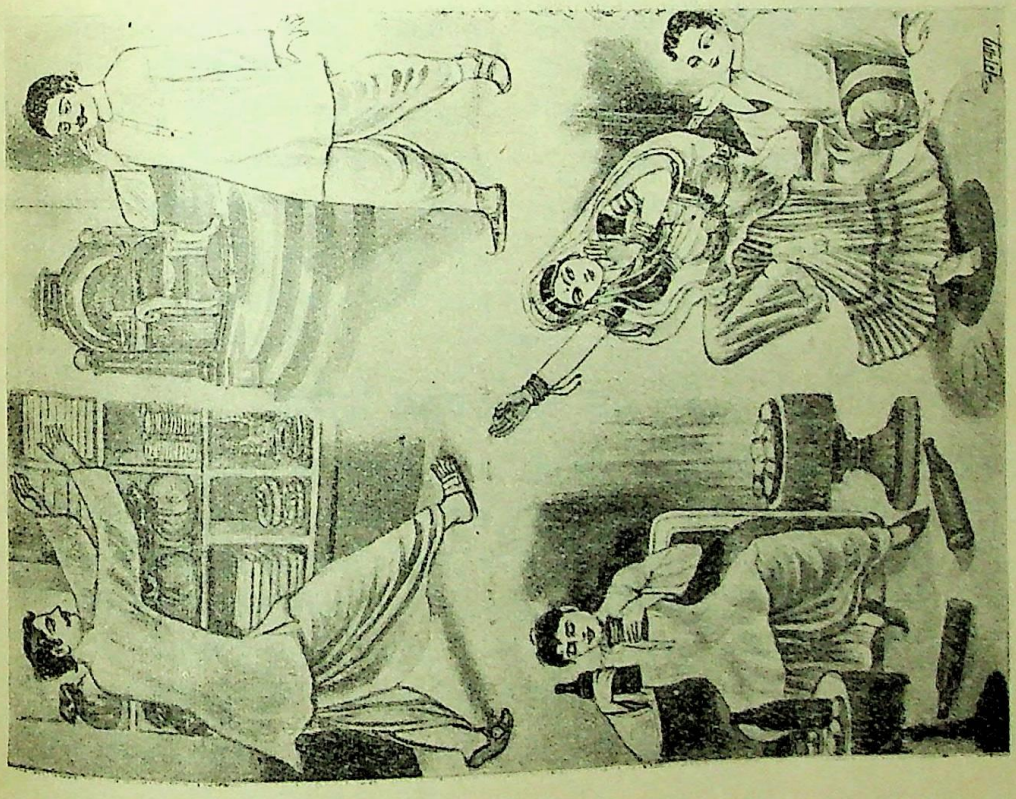

आसुरी सम्पत्ति (गीता अध्याय १६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. **औदारिक-वर्गणा**—पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस जीवोंके स्थूलशरीरके निर्माणमें काम आने योग्य पुद्गल-समूह ।

२. **वैक्रिय-वर्गणा**—दृश्य-अदृश्य, छोटा-बड़ा, हल्का-भारी आदि विभिन्न क्रियाएँ करनेमें समर्थ शरीरके योग्य पुद्गल-समूह ।

३. **आहारक-वर्गणा**—योग-शक्तिजन्य शरीरके योग्य पुद्गल-समूह ।

४. **तैजस-वर्गणा**—ऊष्मा, तेज या वैद्युतिक पुद्गल-समूह ।

५. **कार्मण-वर्गणा**—जीवोंकी सत्-असत् प्रवृत्तियोंसे आकृष्ट होकर कर्मरूपमें परिणत होने योग्य पुद्गल-समूह ।

६. **श्वासोच्छ्वास-वर्गणा**—जीवोंके श्वास और उच्छ्वासमें प्रयुक्त होने योग्य पुद्गल-समूह ।

७. **भाषा-वर्गणा**—वचनरूपमें परिणत होने योग्य पुद्गल-समूह ।

८. **मनोवर्गणा**—चिन्तनमें सहायक बनने योग्य पुद्गल-समूह ।

उपर्युक्त वर्गणाओंके अवयव क्रमशः अधिकाधिक सूक्ष्म और अधिकाधिक प्रचयवाले होते हैं । ये वर्गणाएँ परस्पर सर्वथा भिन्न नहीं हैं; अतः प्रत्येक वर्गणाके पुद्गलोंकी वर्गणान्तर-परिणति सम्भव है । प्रथम चार वर्गणाओंके पुद्गल-स्कन्ध अष्टस्पर्शी अर्थात् शीत, उष्ण, रूक्ष, स्निग्ध, लघु, गुरु, मृदु और कर्कश—इन आठों स्पर्शोंसे युक्त होते हैं। कार्मण, भाषा और मनोवर्गणाके पुद्गल-स्कन्ध चतुःस्पर्शी, अर्थात् शीत, उष्ण, रूक्ष, स्निग्ध—इन चार स्पर्शोंसे युक्त होते हैं । श्वासोच्छ्वास-वर्गणाके पुद्गल-स्कन्ध चतुःस्पर्शी और अष्टस्पर्शी—दोनों ही प्रकारके होते हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुद्गलका जैविक संसारके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। पुद्गल-वर्गणाओंको ग्रहण किये बिना किसी भी जीवका कोई भी कार्य एक क्षणके लिये भी चल नहीं सकता। सुख-दुःखानुभूतिसे लेकर श्वासोच्छ्वासतककी उसकी प्रत्येक क्रिया पुद्गल-प्रभावित है। यहाँतक कि सब क्रियाओंका अधिष्ठान उसका स्थूल या सूक्ष्म शरीर भी पुद्गल-सम्भूत है ।

हमारे शरीरसे प्रतिक्षण प्रतिबिम्बात्मक पुद्गलोंका प्रक्षेप होता रहता है। हमारे प्रत्येक चिन्तनमें जो मनोवर्गणाके पुद्गल ग्रहण होते हैं, वे तदनुकूल आकृतियोंमें परिणत होकर अगले ही क्षण वहाँसे मुक्त होकर आकाश-मण्डलमें फैल जाते हैं । हमारी प्रत्येक ध्वनि या शब्द पहले भाषा-वर्गणाके पुद्गलोंके रूपमें ग्रहण होते हैं, उसके पश्चात् ही यदि वे तीव्र प्रयत्नसे उत्सृष्ट हुए हों तो अतिसूक्ष्म कालमें ही लोकान्ततक ऊर्मियोंके रूपमें फैलते चले जाते हैं । उपर्युक्त सभी प्रकारके पुद्गल-स्कन्ध असंख्य कालतक उसी रूपमें ठहर भी सकते हैं । उपयुक्त साधन उपलब्ध हों तो हजारों वर्ष पूर्वके व्यक्तियोंकी आकृतियाँ, उनका चिन्तन और शब्द आज भी पकड़े जा सकते हैं ।

जैन-चिन्तकोंने ईसाकी अनेक शताब्दियों पूर्व पुद्गल या परमाणुविषयक जो अन्वेषण किया था, वह बहुत मौलिक और महत्त्वपूर्ण है । आजके विज्ञानकी अन्वेषणाओंको उससे बहुत कुछ मार्ग-दर्शन मिल सकता है।

मरनेके समय रोगी क्या करे ?

मृत्युके समय होश रहे तो रोगीको रोगमें 'तप'की तथा मरणमें 'मुक्ति'की दृढ़ भावना करनी चाहिये । वैराग्यपूर्वक घरका, जगत्का चिन्तन छोड़कर भगवन्नामका मन-ही-मन जप-स्मरण करना चाहिये । वृत्ति लग सके तो भगवान्के जिस रूपमें रुचि हो, उसका ध्यान करना चाहिये । संभव हो तो भगवान्का कोई सुन्दर चित्र सामने रखकर उसे देखते रहना चाहिये । सुनानेवाले हों तो श्रीमद्भगवद्गीताका आठवाँ-पंद्रहवाँ अध्याय, रामचरितमानसका जटायुका मरण-प्रसंग अथवा भगवन्नामकी ध्वनि सुननी चाहिये, जिससे मन भगवान्में ही लग जाय ।

घरवाले स्नेहीजनोंसे घरकी बात, उनके सुख-दुःखकी बात, जगत्के किसी भी विषयकी चर्चा बिल्कुल नहीं करनी चाहिये, न सुननी चाहिये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन-दर्शनमें जन्म और मृत्युकी प्रक्रिया

(लेखक—मुनि श्रीरूपचन्दजी)

मेरे सामने एक प्रसिद्ध साप्ताहिक-पत्र पड़ा है। आधुनिक चिकित्सा-विज्ञानके संदर्भमें मृत्युका विश्लेषण करते हुए उसमें लिखा है—"आज स्थिति यह है कि डाक्टर हृदय-गति रुकनेको मृत्यु नहीं, 'कार्डिएक एरेस्ट' कहते हैं और मानते हैं कि मालिश या बिजलीके झटकेसे रुका हृदय फिर चलाया जा सकता है। इसी तरह साँसका न चलना भी उसके लिये मृत्युका द्योतक नहीं रहा, कृत्रिम श्वासयन्त्रसे साँस फिर चलाया जा सकता है। फिलहाल डॉक्टर मस्तिष्ककी विद्युत्तरंगोंके रुक जानेको मृत्युका लक्षण मान रहे हैं, लेकिन साथ ही यह भी कह रहे हैं कि शायद निकट भविष्यमें रुके मस्तिष्कको फिर चला देना सम्भव हो जाय।"

हो सकता है, विज्ञान मस्तिष्ककी रुकी विद्युत्तरंगोंको पुनः चलानेमें भी सफल हो जाय, किंतु प्रश्न यह है कि 'क्या वह आदमीको मृत्युसे बचा सकता है?' धर्म-दर्शनोंके आधारपर मनुष्यको जन्म और मृत्युके चक्रमेंसे नहीं निकाला जा सकता। हाँ, जब वह समस्त प्रकारके कर्मावरणोंसे मुक्त हो जाता है, तब वह जन्म और मरणसे छुटकारा अवश्य पा लेता है; उससे पहले नहीं।

जैन-दर्शन प्राणीकी मृत्युका कारण ओज-आहारका समाप्त होना मानता है। ओज-आहारका अर्थ है—जीवनको धारण करनेवाली पौद्गलिक शक्ति। प्राणी जब गर्भमें आता है, उस पहले क्षणमें वह जिन पुद्गलों—अणुपिण्डोंको ग्रहण करता है, वह 'ओज-आहार' कहलाता है। यह आहार ही समूचे जीवनका आधार होता है। प्राणीके शरीरका निर्माण, आँख, कान आदि इन्द्रियोंका निर्माण, श्वासोच्छ्वास और भाषाकी सामर्थ्य और मनकी शक्तिका उदय—ये सब क्रमशः ओज-आहारके बादकी ही निष्पत्तियाँ हैं। जैन-साहित्यमें इन्हें छः पर्याप्तियाँ कहा गया है—आहार-पर्याप्ति, शरीर-पर्याप्ति, इन्द्रिय-पर्याप्ति, श्वासोछ्वास-पर्याप्ति, भाषा-पर्याप्ति और मनः-पर्याप्ति।

पर्याप्तिका अर्थ है—**'भवारम्भे पौद्गलिकसामर्थ्यनिर्माणं पर्याप्तिः।'**—'जन्मके प्रारम्भमें जीवके द्वारा जो पौद्गलिक-शक्तिका निर्माण होता है, वह पर्याप्ति है।' पहले समयमें आहार-पर्याप्तिका निर्माण होता है, अन्यान्य पर्याप्तियोंके निर्माणमें अन्तर्मुहूर्त समय लग जाता है।

आहार-पर्याप्तिके माध्यमसे प्राणी आहारके योग्य पुद्गलोंका ग्रहण, आहारके रूपमें परिणमन और फिर निस्सारका उत्सर्ग करता है। आहारके तीन प्रकार हैं—ओज-आहार, रोम-आहार और प्रक्षेप या कवल-आहार। इसी प्रकार शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मनके योग्य पुद्गलोंका ग्रहण, परिणमन और उत्सर्ग करनेवाली पौद्गलिक शक्तियोंके निर्माणको क्रमशः शरीर-पर्याप्ति, इन्द्रिय-पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति, भाषा-पर्याप्ति और मनः-पर्याप्ति कहते हैं।

प्राणीके जीवनकी सम्पूर्ण रचना और क्रियाएँ इन्हीं पर्याप्तियोंके आधारपर होती हैं। किंतु फिर भी केवल इन्हींके आधारपर नहीं होतीं। ये तो मात्र पौद्गलिक शक्तियाँ हैं। इनमें संवेदन नहीं होता। इनका संचालन करनेवाला एक दूसरा तत्त्व होता है, जिसे जैन-दर्शनमें 'प्राण' कहा गया है। प्राणका अर्थ है—जीवन-शक्ति। प्राण संवेदनशील होता है और अपनी अभिव्यक्तिके लिये पर्याप्तियोंकी अपेक्षा रखता है। प्राण और पर्याप्तिमें अन्तर यह है कि प्राण आत्मशक्ति है और पर्याप्ति आत्माके द्वारा ग्रहण किये गये पुद्गलोंकी शक्ति। आत्माकी जितनी भी मानसिक, वाचिक तथा कायिक प्रवृत्ति होती है, वह सब बाह्य द्रव्यसापेक्ष है—पुद्गल ग्रहण करनेसे ही होती है। प्रवृत्तियोंका सम्पादन करनेवाली आत्म-शक्तिका नाम 'प्राण' है और जिन पौद्गलिक शक्तियोंकी सहायतासे ये क्रियाएँ सम्पादित होती हैं, वे 'पर्याप्तियाँ' हैं।

पर्याप्ति और प्राणमें कार्य-कारण सम्बन्ध है। पर्याप्ति कारण है और प्राण कार्य। पाँच इन्द्रिय-प्राणोंका कारण है—इन्द्रिय-पर्याप्ति। मनोबल प्राण, वचन-बल प्राण और कायबल प्राणके क्रमशः कारण हैं—मन-पर्याप्ति, भाषा-पर्याप्ति और शरीर-पर्याप्ति। श्वासोच्छ्वास प्राणका कारण है—श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति। आयुष्य-प्राणका कारण है—आहार-पर्याप्ति। आहार-पर्याप्तिके आधारपर ही आयुष्य-प्राण टिकता है।

इस प्रकार जैन मान्यताके अनुसार आहार-पर्याप्तिके निर्माणके समय ग्रहण किया गया ओज-आहार और आयुष्य-प्राण ही प्राणीको जीवित रखता है। इसका समाप्त होना ही मृत्यु है। जबतक ये समाप्त नहीं होते, प्राणीका शरीर चाहे सर्वथा विगलित हो जाय, शरीरके यन्त्र—फेफड़े, हृदय या मस्तिष्क भी अपना काम बंद कर दें, इन्द्रियाँ क्षीण हो जायँ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा मूक हो जाय और श्वासोच्छ्वास भी बंद हो जाय, फिर भी प्राणी जीवित रहेगा। ओज-आहार और आयुष्य-प्राणके अभावमें शरीर, इन्द्रियाँ आदि सब स्वस्थ होते हुए भी प्राणी अपनेको मृत्युके पंजेसे मुक्त नहीं कर सकता। ४८ घंटोंतक श्वास और हृदयकी गति बंद रहनेवाले मनुष्य भी जीवित पाये जाते हैं। इससे हम अच्छी तरह अनुमान लगा सकते हैं कि जीवन धारण करनेवाली शक्ति दूसरी ही है, यह नहीं। इस विश्लेषणके आधारपर हम यह भी कह सकते हैं कि श्वास और हृदय-गतिका पुनः संचालन करनेवाला विज्ञान मस्तिष्ककी रुकी हुई विद्युत्-तरङ्गोंको पुनः प्रवाहित करनेमें सफल हो भी जाय, फिर भी वह प्राणीको मृत्युसे बचा सके, यह सम्भव नहीं लगता।

सामान्यतः प्राणियोंके तीन शरीर होते हैं—'औदारिक' 'तैजस' और 'कार्मण'। स्थूल पुद्गलोंसे निष्पन्न शरीर 'औदारिक' कहलाता है। जो तेजोमय है, वह 'तैजस' शरीर है। जो कर्मजन्य शरीर है, वह 'कार्मण' है। जैन-दर्शनके अनुसार मृत्युका वस्तुतः अर्थ है—आत्माका औदारिक शरीरसे विलग हो जाना। तैजस और कार्मण शरीर सूक्ष्म होते हैं और मृत्युके बाद भी वे आत्माके साथ जाते हैं। मृत्युके बाद आत्मा ऋजु या विग्रह गतिसे अपने गन्तव्य—जहाँ उसे फिर जन्म लेना है, वहाँ पहुँच जाता है। वर्तमान भव और अगले भवके अन्तरालमें वह लम्बे समयतक भटकता नहीं। वहाँतक पहुँचनेमें उसे अधिक-से-अधिक चार समय लगता है, जो कि एक क्षणका शतांश भी नहीं। वहाँ पहुँचते ही सबसे पहले आत्मा इसी कार्मण शरीरके द्वारा ओज-आहारका ग्रहण करता है, जो कि उसके समूचे जीवनका आधार होता है, फिर अन्यान्य इन्द्रियोंका। जैन-दर्शनके अनुसार संक्षेपमें प्राणीके जन्म और मृत्युकी यही प्रक्रिया है।

अन्तराल गति

(लेखिका—साध्वी श्रीमती कनकप्रभाजी)

जीवन एक अथाह सागर है। उसके दो तट हैं—जन्म और मृत्यु। जो व्यक्ति मृत्यु-तटपर पहुँचकर भी पुनः लहरोंद्वारा आकर्षित हो जाता है, वह डूबता-उतराता हुआ एक दिन जन्मके तटपर पहुँच जाता है और वहाँसे फिर मृत्युकी गोदमें सो जाता है। जन्म-मरणकी यह परम्परा अनादिकालसे चली आ रही है और अनन्त कालतक चलती रहेगी। कुछ व्यक्ति इस परम्पराके धागोंको काटकर दोनों तटोंको लाँघ जाते हैं; लहरोंका तीव्र आघात उनको पथच्युत नहीं कर सकता, इसलिये वे जन्म-मरण अर्थात् इस संसारसे अतीत हो जाते हैं। संसार-परिभ्रमणके हेतु कर्म-बन्धनसे मुक्त होनेके कारण वे 'मुक्त' कहलाते हैं। जो व्यक्ति अनवरत कर्म-बन्धनके हेतुओंका संग्रह करनेमें तत्पर रहते हैं, वे इस परम्पराको और अधिक कसते चले जाते हैं।

जो व्यक्ति आत्मवादको स्वीकार करके चलता है, जन्म-मरणकी परम्परामें आस्था रखता है, उसके लिये आत्माका 'पुनर्जन्म' सहज ही स्वीकृत हो जाता है। आत्मा एक शरीरको छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है, इसीका नाम पुनर्जन्म है। 'आत्मा' अमर है, इसलिये उसकी मृत्यु होनेका प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ मृत्युका सम्बन्ध शरीर-परित्याग और जन्मका सम्बन्ध नये शरीरके स्वीकार करनेसे है। अवस्थान्तर-प्राप्तिका यह क्रम जैन-दर्शनके अनुसार पर्याय-परिवर्तन कहलाता है।

स्वकृत कर्मोंका फल भोगनेके लिये आत्मा एक जन्मसे दूसरे जन्ममें जाता है। कर्मोंका फल एक जीवनमें भी भोगा जा सकता है। पर जो कर्म लंबे समयकी स्थितिसे बद्ध हैं, वे अल्प आयुमें भोगे नहीं जा सकते। कृतकर्म अपना फल दिये बिना आत्मासे अलग नहीं होते; अतः कर्मोंकी प्रेरणासे ही व्यक्ति पुनर्जन्मकी परम्परा चलाता है।

जन्म और मृत्युके बीचकी स्थिति स्पष्ट है; क्योंकि इस समय प्राणी सबके सामने है। किंतु मृत्युके बाद जन्मतकका समय अज्ञात रहता है, अतः उसके बारेमें जिज्ञासाका होना सहज ही है। मृत्युके अनन्तर ही आत्मा अपने पूर्वशरीरको छोड़कर दूसरे निर्दिष्ट शरीरको पानेके लिये गति करता है। इस समय वह गतिके अतिरिक्त और कोई भी सलक्ष्य क्रिया नहीं करता। इस गतिका नाम 'अन्तराल-गति' है, जो एक भवसे दूसरे भवमें जानेके समय ही होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अन्तराल'का अर्थ है—बीचका समय। आजकी भाषामें जिसे संक्रान्तिकाल कहा जाता है, वही आगमकी भाषामें अन्तराल-गति है।

अन्तराल-गतिके दो प्रकार हैं—ऋजु और वक्र। ऋजु और वक्र गतिका आधार सम या विषम श्रेणीमें स्थित उत्पत्ति-स्थान है। उत्पत्ति-स्थान मृत्यु-स्थानसे सम श्रेणीमें स्थित होता है तो वहाँ जानेवाला जीव 'ऋजु' गतिसे जाता है और वह स्थान विषम श्रेणीमें स्थित है तो 'वक्र' गतिसे जाता है।

अन्तराल-गति करनेवाले जीव दो प्रकारके हैं—मुच्यमान और बद्ध। 'मुच्यमान जीव' स्थूल और सूक्ष्म—दोनों प्रकारके शरीरोंको छोड़कर चलते हैं। बन्धनके हेतुका अभाव होनेसे वे जन्म-मरणकी परम्पराको काटकर एक समयमें अपने गन्तव्यस्थल मोक्षतक पहुँच जाते हैं। मोक्ष जानेवाले जीव ऋजु गति ही करते हैं।

कर्मावरणसे आवरित जीवोंका अन्तराल-गतिके समय स्थूलशरीर [औदारिक, वैक्रिय और आहारक] से तो सम्बन्ध टूट जाता है, किंतु सूक्ष्मशरीर [तैजस और कार्मण] से उनका गठबन्धन जुड़ा रहता है; अतः कार्मण शरीर-जन्य कम्पनसे वे नये कर्मोंको ग्रहण करते हुए अपने गन्तव्य स्थानकी ओर जाते हैं।

ऋजुगतिसे जानेवाले जीवोंको गमन-क्रियाके लिये अतिरिक्त रूपसे कोई प्रयास करना नहीं पड़ता। वे जीव पूर्व-शरीरजन्य वेगसे एक समयमें ही अपने निर्दिष्ट स्थानपर पहुँच जाते हैं। वक्र गतिमें घुमाव होते हैं। घुमावके स्थानपर पूर्वशरीर-जन्य प्रेरणा कम हो जाती है; अतः आगे जानेके लिये जीवको नया प्रयत्न करना पड़ता है, वह 'कार्मण योग' कहलाता है।

अन्तराल-गतिका काल कम-से-कम एक समय और अधिक-से-अधिक चार समय है। ऋजु गतिमें एक समय लगता है और वक्र गतिमें दो, तीन तथा चार। जिस गतिमें एक मोड़ आता है, वहाँ दो समय लगते हैं। दो मोड़वाली गतिमें तीन समय और तीन मोड़वाली गतिमें चार समय लगते हैं। उत्पत्ति-स्थान कितना ही दूर और विषम श्रेणीमें स्थित हो, चार समयमें तो जीव वहाँ पहुँच ही जाता है।

संक्रान्तिकालमें मनुष्यको बहुत सजग रहना होता है; क्योंकि उस समय नये और पुरानेके बीच जो संघर्ष होता है। उसका प्रभाव सबपर छा जाता है। जब पुराने मूल्य विस्थापित हो जाते हैं और नये मूल्योंकी स्थापना नहीं होती है, तब मनुष्य अपने कर्तव्यका निर्णय भी नहीं कर सकता; किंतु इस संक्रान्तिकालमें कोई भी सावधानी काम नहीं आती; क्योंकि यहाँ सब कुछ पूर्वनियोजित व्यवस्थाके अनुसार होता है।

मृत्युके बाद क्या किया जाय ?

किसीकी मृत्युके बाद शास्त्रोक्त पिण्डदान, नारायण-बलि और तर्पण-श्राद्ध आदि अवश्य-अवश्य किये जायँ। मृतात्माके लिये अपनी शक्तिके अनुसार अन्न, जल तथा वस्त्रका दान अवश्य करें; उसकी जिस भोजनमें रुचि थी, वैसा भोजन किसी सरल सदाचारी ब्राह्मणको करावें। सम्भव हो तो, गोदान अवश्य करें; पर गौ होनी चाहिये स्वस्थ, जवान, नयी ब्यायी हुई, दूध देनेवाली; तथा गोदान लेनेवाला होना चाहिये—गौकी सेवा करनेवाला तथा लोभवश उसको किसी अनुचित व्यक्तिके हाथ न बेच देनेवाला।

मृतात्माके कल्याणके लिये अखण्ड भगवन्नामकीर्तन अवश्य किया जाय। भगवान्‌के नामोंका जप किया जाय। श्रीविष्णुसहस्रनामके तथा श्रीमद्भगवद्गीताके जितने भी हो सके, अधिक-से-अधिक पाठ घरवाले स्वयं करें या दूसरोंके द्वारा करवायें। श्रीमद्भागवतका सप्ताह-पाठ एक या अधिक किया या कराया जाय। गायत्री-मन्त्रके २४ लाख या अधिक, (कम-से-कम चौबीस हजार) जप किये-कराये जायँ। गया-श्राद्ध अवश्य किया जाय। ऐसा करनेसे मृतात्माको, वह किसी भी लोकमें हो, सुख-शान्ति मिलती है तथा दुर्गतिमें हो तो सद्गति प्राप्त होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्जन्म और मोक्ष

(लेखक—मुनि श्रीशुभकरणजी)

जैन-आगम-साहित्य 'जातिस्मृति'की घटनाओंका प्रमाण है, जिसमें अनेक व्यक्तियोंका उल्लेख है, जिन्हें पूर्व-जन्मकी स्मृति हुई थी। कथा-साहित्यमें भी इसके प्रचुर प्रमाण उपलब्ध हैं। 'जातिस्मृति'का अर्थ है—पूर्वजन्मकी स्मृति। वह समनस्क आत्माओंको होती है, मनरहित प्राणियोंको नहीं। यह कोई विशेष ज्ञान नहीं है; किंतु फिर भी पूर्वकालीन स्मृतिके जागरणसे सामान्य मनुष्योंके लिये विशिष्ट ही है, जिसमें व्यक्ति अपनी पूर्व-परिचित सभी घटनाओंका उल्लेख कर देता है। इसकी सम्भाव्यता उसी विषयकी चेष्टा, तर्क और खोजमें है। इससे वर्तमान जन्म पूर्व-जन्मसे असम्बन्धित नहीं रहता। यह शृङ्खला लम्बी है, किंतु इसका आदि पकड़ा नहीं जा सकता। आत्माकी उत्पत्तिको स्वीकार करनेसे ही वह पकड़ा जा सकता है।

जड और चेतन—ये दो पूर्ण स्वतन्त्र पदार्थ हैं। दोनोंका स्वभाव विसदृश है। एकीभूत होनेपर भी वे समान नहीं हो सकते। जड सदा जड रहता है और चेतन सदा चेतन। चेतन अपने स्वभावसे भिन्न स्वभावको ग्रहण नहीं करता और जड भी वैसा ही रहता है। एक दूसरे आपसमें संक्रान्त होनेपर स्वभावका परित्याग नहीं करते। दोनों पहले भी थे, हैं और रहेंगे। आत्माकी अमरता, अजरता और शाश्वततामें आस्तिकवादी परम्परा एकमत है। शाश्वत आत्माका आदि-बीज किसी भी व्यक्तिके द्वारा उपलब्ध नहीं कराया जा सकता। गीतामें श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—'तू, मैं और ये राजादि पहले भी थे, आज भी हैं और भविष्यमें भी रहेंगे। प्राण-वियोजनसे आत्माका विनाश नहीं होता। विद्वान् व्यक्ति नश्वर प्राणोंकी चिन्ता नहीं करते।' फलितार्थकी दृष्टिसे शाश्वत आत्माका केवल बाह्य आकार परिवर्तित होता है। यह आकार-परिवर्तन ही 'पुनर्जन्म' है।

अन्य विचारकोंकी दृष्टिमें भी पुनर्जन्मका स्वीकरण है और हो रहा है। प्राचीन मिस्रका इतिहासवेत्ता होरोटोट्स लिखता है कि 'मिस्री प्रथम जाति है, जिसने इस सिद्धान्तको निकाला है कि आत्मा अजन्मा है।' प्राचीन धर्म टोइज्मका पण्डित कहता है कि 'मत समझो संसारमें कोई पण्डित मरता है।' यूनानी दार्शनिक बाजलके शब्दोंमें—'पहले आत्मा यमलोकमें जाता है, वहाँपर उसका न्याय होता है। उसके पश्चात् वह पुनः लौट आता है।' अफलातूनने कहा है—'पशुसे उन्नति करते-करते मनुष्ययोनि मिलती है।' यहूदी धर्मकी प्रसिद्ध पुस्तक रूहरमें लिखा है—'संसारमें जितने आत्मा हैं, वे जन्म-जन्मान्तरके चक्रमें पड़ते हैं।' सेन्ट अगस्टाईनका विचार है—"मेरे अतिरिक्त और भी ईसाई मानते हैं कि 'क्या माताके गर्भमें आनेके पूर्व मैं विद्यमान नहीं था?' वह स्वयं ही उत्तर देता है कि 'हाँ मैं विद्यमान था।'" यूरोपीय विद्वान् सर वाल्टर स्काटने अपनी १७ फरवरी १८२८ की डायरीमें लिखा है कि 'जब मैं भोजन कर रहा था तो मुझे यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं इस संसारमें पहले भी आ चुका हूँ।'

'पुनर्जन्म'का अर्थ है—नया जीवन। जहाँ जीवन नहीं है, वह निर्वाण, मुक्ति या मोक्ष है। मोक्षमें पुनर्जन्मका कारण नहीं है। कार्यका निर्माण कारणपर आधारित है। पुनर्जन्मका कारण है—कर्म। कर्मको माया, प्रकृति, बन्धन, अविद्या, अज्ञान आदि नामसे अभिहित किया गया है। 'अज्ञानकी गाँठ खुलनेका नाम मोक्ष है। लिङ्ग और शरीरकी वियोजित अवस्था मोक्ष है। नित्य सुख है जहाँ, वहाँ मोक्ष है।' इस प्रकार 'मोक्ष'की व्याख्या विविध प्रकारसे की गयी है। उनसे यह ध्वनित होता है कि 'मुक्तात्माका पुनर्जन्म नहीं होता।' पुराणोंमें तथा गीतामें अनेक स्थानोंपर—'पुनर्जन्म न विद्यते'—यह पढ़नेको मिलता है। मुक्तिके अभावमें पुनर्जन्मका प्रभाव रुकता नहीं है। उसे रोकना है तो कर्म-प्रवाहको रोकना होगा।

कर्म विजातीय तत्त्व है। वह शुद्ध आत्मासे वियुक्त है। इसलिये वहाँ कर्मका आकर्षण नहीं होता। जिस आत्माके साथ इसका सम्पर्क है, वही आत्मा कर्मका आकर्षण करता है। कर्म-ग्रहणके तीन केन्द्र हैं—मन, वाणी और शरीर। इन तीनोंकी जो शुभात्मक अवस्था है, वह शुभ कर्मको ग्रहण करती है और अशुभात्मक प्रवृत्ति है, वह अशुभ कर्मको। कर्म दोनों ही हेय हैं। शुभ और अशुभ दोनोंके द्वारा संसार होता है। आत्माका दोनोंसे वियुक्त होना 'निर्वाण' है। यह आत्माकी पूर्ण शुद्ध दशा है। कर्म-निरोधकी प्रक्रिया है—अशुभका निरोध और सत्में प्रवर्तन; अशुभ-निरोधके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनन्तर शुभ-निरोधका अभ्यास करना। स्वाध्याय और ध्यान शुभकर्मके संवरणके साधन हैं। इन दोनोंकी विद्यमानतामें पुनर्जन्मका निषेध नहीं किया जा सकता है। वह होता है और होता रहेगा। उसके होनेमें संदेह नहीं किया जा सकता। प्रश्न होता है—वह कहाँ होता है? कैसे होता है? क्या मृत्युके अनन्तर ही आत्मा दूसरे शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है या कुछ अवधिके पश्चात्? इन प्रश्नोंका उत्तर टेढ़ा भी है और सरल भी। टेढ़ा इसलिये कि स्मृति, शास्त्र और श्रुति एक नहीं है और सरल इसलिये है कि शरीरके बिना आत्माका कोई आधार नहीं। वह उसके अभावमें कैसे रह सकता है?

पुनर्जन्मका स्थान एक नहीं है। उसके अनेक विभाग हमारे चर्मचक्षुओंके अभिमुख हैं। जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी, पानी, वनस्पति आदि। कुछ स्थान परोक्ष हैं। प्रत्यक्ष ज्ञानके द्वारा उसका दर्शन किया जा सकता है। कुछ आत्मा प्रत्यक्ष प्रस्तुत हो सकते हैं अथवा अपना परिचय भी दे सकते हैं। यह स्थान 'स्वर्ग' है। उन्हें 'स्वर्गीय आत्मा' कहते हैं। एक स्थान 'नरक' है, जहाँ रहनेवाले 'नारकीय जीव' कहलाते हैं। आत्माके पुनर्जन्मकी ये चार प्रधान गति हैं। गति दुःख है, पुनर्जन्म है और गति-निरोध मोक्ष है।

जैन-दर्शनमें आत्माका स्वरूप

(लेखक—श्रीचम्पालालजी सिंघई, एम्० ए०, शोधस्नातक)

भारतीय संस्कृतिमें वैदिक और श्रमण विचारधाराओंका समाहार हुआ है। वैदिक-चिन्तकोंने षड्दर्शनोंको जन्म दिया एवं श्रमण-चिन्तकोंने जैन और बौद्ध दो दर्शनोंको।

भू, जल, अनल, अनिल और आकाशको वैदिक दर्शनोंमें पञ्चभूत कहा गया है। जैन दार्शनिकोंने जीव, अजीव, आसुव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष—सात तत्त्व माने हैं। जीव और अजीवको 'द्रव्य' कहा गया है। अजीवके पाँच भेद हैं—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। इन पाँचोंके साथ जीवको सम्मिलित करके 'षड्द्रव्य' कहा गया है।

जैन-दर्शनमें उक्त पञ्चभूतों (भू, जल आदि) से जीवकी उत्पत्ति नहीं मानी गयी है। जीव द्रव्य अनादि और अनन्त है। जीव, आत्मा और जीवात्मा पर्यायवाची शब्द हैं। आत्माके तीन भेद हैं—(१) बहिरात्मा, (२) अन्तरात्मा, (३) परमात्मा। जीव और देहको एक माननेवाला 'बहिरात्मा' कहलाता है। वह शरीरके सुखी और दुखी होनेसे आत्माको सुखी और दुखी मानता है। जीव और देहकी पृथक्ताका अनुभव करनेवाला 'अन्तरात्मा' कहलाता है। वह मोक्षमार्गका पथिक होता है। 'परमात्मा'के दो भेद हैं—१. शरीरसहित, २. शरीररहित। इन्हें क्रमशः 'अरहंत' और 'सिद्ध' कहते हैं। अनादिकालसे आत्मा कर्मभवसे मलिन है। कार्माण-वर्गणाके आठ भेद किये गये हैं। इनमेंसे चार 'घातिया' कहलाते हैं और चार 'अघातिया'। पहले घातिया कर्मोंका नाश करके आत्मा अरहंत पद प्राप्त करता है। 'अरहंत' शरीरसहित परमात्मा होते हैं। अवशिष्ट चार अघातिया कर्मोंका नाश करके अष्टकर्मका अभाव हो जाता है। अब अरहंत संज्ञा नहीं रहती। शरीर भी नहीं रह जाता। शरीररहित परमात्मा 'सिद्ध' कहलाते हैं। इस प्रकार कर्ममलके अभावसे आत्मामें निर्मल ज्योति प्रकट होती है। अरहंत मध्यलोकमें विचरण करते हुए जीवोंका कल्याण करते हैं। 'सिद्ध परमात्मा' तीनों लोकोंके शिखरपर अनन्त कालतक विराजमान रहते हैं। उनके आत्मप्रदेशोंका आकार अन्तिम देहके आकारका होता है। चौरासी लाख योनियोंमें जीव जन्म-मरण करता रहता है।

जन्म-मरणसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये तप करना पड़ता है। देव सुखोपभोगमें मग्न रहते हैं। नारकी वेदनासे छटपटाते रहते हैं। पशु-योनिमें ज्ञानकी कमी होती है। इस प्रकार साधनाका अवसर केवल मानव-जन्ममें ही मिलता है। अतएव अन्तिम देह मानवकी होनेसे सिद्ध परमात्मा मानवाकार होते हैं।

आचरणके अनुसार मनुष्योंके दो भेद हैं—१. गृहस्थ, २. गृहविरत। गृहस्थ अवस्थामें 'अणुव्रत'मात्र धारण किये जा सकते हैं। साधु या मुनि 'महाव्रत' धारण करते हैं। जिस साधुके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Jain Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अन्तराय—चार कर्मोंकी निर्जरा हो जाती है, उसके अरहंत अवस्था प्रकट होती है। आयुका अन्त होनेतक वेदनीय, नाम, गोत्र और आयुका विनाश हो जाता है। इसीको मुक्ति या मोक्ष कहते हैं।

आत्मा अपने मन, वचन और तनसे पाप और पुण्य करता रहता है। इससे कर्मोंका आसुव और बन्ध होता रहता है। उसका फल भोगने हेतु नाना योनियोंमें जन्म ग्रहण करना पड़ता है। कर्तृत्व और भोक्तृत्व आत्माके गुण हैं। अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य (शक्ति) अरहंत अवस्थामें प्रकट हो जाते हैं। सिद्ध अवस्थामें अनंत गुण प्रकट होते हैं।

इस प्रकार परमात्मा आत्माकी शुद्ध अवस्थाका नाम है। संख्याकी दृष्टिसे अनन्त होनेपर भी परमात्माके गुणोंकी अपेक्षा वे एक ही हैं।

'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।' आदि श्रीमद्भगवद्गीतामें आत्माके सम्बन्धमें जो कुछ कहा गया है वह जैन-दर्शनके अनुसार भी आत्माके स्वरूपका दिग्दर्शक है।

जैन-वाङ्मयमें शरीर-वर्णन

(लेखक—कं० श्रीलालचन्द्रजी नाहटा 'तरुण')

तत्त्वार्थसूत्रकी टीकामें शरीरकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'जीवके क्रिया करनेके साधनको शरीर कहते हैं'। तत्त्वार्थ-वार्तिककार इसकी व्याख्या करते हुए लिखते हैं—

'शीर्यन्त इति शरीराणि।'

अर्थात् जो शीर्ण हो वह शरीर है। जैनागम 'पन्नवणा'के २१वें पदमें शरीर पाँच प्रकारके बताये हैं—

'कतिणं भंते! सरीरया पण्णत्ता? गोयमा! पंच सरीरा पण्णत्ता, तंजहा—ओरालिते वेउव्विए आहारए तेयए कम्मए।'

अर्थात् गौतम स्वामी पूछते हैं—'भगवन्! शरीर कितने होते हैं?'

'गौतम! शरीर पाँच कहे गये हैं—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तेजस और कार्माण।'

पूरे जैन-साहित्यमें जहाँ-जहाँ भी शरीरोंका वर्णन है, वहाँ ये ही पाँचों भेद बताये गये हैं। इनका विस्तृत वर्णन इस प्रकार किया गया है—

(१) **औदारिक**—जो मांस, रुधिर, अस्थि आदिसे बना हुआ हो, जो जलाया या छेदन-भेदन किया जा सके, जो अन्य चारों शरीरोंकी अपेक्षा अवस्थित रूपसे विशाल अर्थात् बड़े परिमाणवाला हो, अथवा उदार (प्रधान) या स्थूल पुद्गलोंसे निर्मित हो—उसे 'औदारिक शरीर' कहा जाता है। देवता तथा नारकी जीवोंके अतिरिक्त सभी संसारी प्राणियोंका शरीर स्थूल पुद्गलोंसे निर्मित औदारिक शरीर ही है। तीर्थंकरों और गणधरोंका शरीर प्रधान पुद्गलोंसे निर्मित औदारिक होता है।

(२) **वैक्रिय**—जो शरीर कभी लघु, कभी स्थूल, कभी छोटा, कभी बड़ा, कभी पतला, कभी मोटा, कभी एक, कभी अनेक और विविध रूपोंको धारण कर सके; दृश्य और अदृश्य हो सके; पृथ्वीपर या आकाशमें चल सके—ऐसे शरीरको 'वैक्रिय शरीर' कहते हैं। औदारिकके अतिरिक्त अन्य किसी भी शरीरमें मांस, रुधिर, अस्थि इत्यादि नहीं होते। वैक्रिय शरीर सभी देवताओं तथा नरकके जीवोंको नियमसे जन्मसे ही प्राप्त होता है। तपादिद्वारा भी यह लब्धि किन्हीं महर्षियोंको प्राप्त हो जाती है।

(३) **आहारक**—भरत और ऐरावत क्षेत्रमें चतुर्दश पूर्वधारी महामुनिराजको जब किसी गहन अथवा सूक्ष्म विषयमें संशय हो और इस क्षेत्रमें सर्वज्ञका सन्निधान न हो, तब वे औदारिक शरीरसे क्षेत्रान्तरमें जाना असम्भव समझकर अपनी विशिष्ट लब्धिका प्रयोग करते हैं और हस्तप्रमाण छोटा-सा शरीर बनाते हैं, जो शुभ पुद्गलजन्य होनेसे अति विशुद्ध स्फटिकके समान सुन्दर होता है, प्रशस्त उद्देश्यसे बनाये जानेके कारण निरवद्य होता है और अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण अव्याघाती अर्थात् किसी-को रोकनेवाला या किसीसे रुकनेवाला नहीं होता। वज्रपटल तकमें यह प्रवेश कर सकता है। ऐसा शरीर क्षेत्रान्तरमें सर्वज्ञके पास पहुँचकर उनसे संशय-निवारण कर अपने स्थानमें वापिस आ जाता है। यह कार्य सिर्फ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्मुहूर्त्तमें हो जाता है। इस हस्तप्रमाण शरीर (पुतलेके शरीर) को 'आहारक शरीर' कहते हैं।

(४) तेजस शरीर—तेजःपुद्गलोंसे बने हुए शरीरको 'तेजस शरीर' कहा जाता है। प्राणिशरीरोंमें विद्यमान उष्णतासे इसका अस्तित्व सिद्ध होता है। यह शरीर आहारका पाचन करता है। मृत और जीवित शरीरमें जो ओज, तेज और दीप्तिका अन्तर होता है, वह इसी शरीरके कारण होता है; क्योंकि मृत्यु होनेपर यह शरीर जीवके साथ चला जाता है। यह शरीर सेन्द्रिय और सावयव (हस्तपादादियुक्त) नहीं है। कोई विशिष्ट तपस्वी तपस्यासे इसकी विशेष लब्धि प्राप्त कर लेते हैं तो वे कभी कुपित होकर अपने कोपभाजनको जला तक सकते हैं। कुछ व्यक्ति ऐसा भी कहते हैं कि वे प्रसन्न होकर इस शरीरद्वारा अपने अनुग्रहपात्रको शान्ति भी पहुँचा सकते हैं।

(५) कार्माण शरीर—पुद्गल स्कन्धकी एक सूक्ष्म जातिविशेष, जो समस्त लोकमें व्याप्त है—को 'कार्माण-वर्गणा' कहा जाता है। जहाँ भी जीवके राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोहादिकके भाव हुए कि वे वर्गणाएँ कर्मरूप बनकर आत्माके प्रदेशोंके साथ मिल जाती हैं। ये मिली हुई वर्गणाएँ 'कार्माण शरीर' कहलाती हैं। यह कार्माण शरीर ही कर्मोंका वह पिण्ड है, जो संसारमें रुळने (भटकने) का कारण है। जैसे पी हुई मदिरा कुछ देर पश्चात् नशा लाती है, उसी प्रकार ये बँधे हुए कर्म जब उदयमें आते हैं तो जीवको सुखी-दुखी आदि करते हैं। यह शरीर भी सेन्द्रिय और सावयव नहीं होता।

ये तेजस और कार्माण-शरीर सभी संसारी प्राणियोंके सदा साथ अनादिकालसे रहते आये हैं। यहाँतक कि भवान्तरमें जानेवाला जीव पूर्वशरीरको छोड़नेके बाद जबतक नया शरीर ग्रहण नहीं करता, तबतक उस अन्तराल-कालमें भी ये दोनों शरीर तो उस जीवके साथ रहते ही हैं। इस अन्तराल-कालमें अन्य तीनोंमेंसे कोई भी शरीर साथ नहीं रहता। जब यह जीव भवान्तरमें जाकर नया शरीर ग्रहण करता है, तब सदा साथ रहनेवाले दो शरीर एक और नया शरीर ग्रहण कर लेते हैं। इस प्रकार जीवके तीन शरीर हो जाते हैं। जिस प्रकार पानीमें शक्कर, नमक इत्यादि घुल जाते हैं, इसी प्रकार आत्मा एक साथ अनेक शरीरोंको धारण कर सकता है। आहारक और वैक्रिय—दोनों लब्धियोंका प्रयोग एक साथ सम्भव नहीं है; अतः एक जीवके एक साथ अधिक-से-अधिक चार शरीर हो सकते हैं।

औदारिक शरीरकी जघन्य (कम-से-कम) अवगाहना लंबाई सबसे कम है। उससे तेजस कार्माणकी विशेषाधिक है, वैक्रिय शरीरकी जघन्य अवगाहना उससे असंख्यात गुणी है, आहारक शरीरकी अवगाहना (जघन्य) उससे असंख्यात गुणी है।

औदारिक शरीरकी कम-से-कम अवगाहना एक अङ्गुलके असंख्यातवें भाग और अधिक-से-अधिक एक हजार योजनसे कुछ अधिक होती है। वैक्रिय शरीरकी कम-से-कम अवगाहना अङ्गुलके असंख्यातवें भाग और अधिक-से-अधिक एक लाख योजनसे कुछ अधिक होती है। आहारक शरीरकी कम-से-कम अवगाहना एक हाथसे कुछ कम और अधिक-से-अधिक एक हाथकी होती है। तेजस और कार्माण शरीरकी कम-से-कम अवगाहना अङ्गुलके असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट (अधिक-से-अधिक) चौदह राजु लोक प्रमाण होती है।

जहाँ-जहाँ औदारिक शरीर होते हैं, वहाँ-वहाँ तेजस कार्माणकी नियमा है (अर्थात् निश्चित रूपसे होते हैं), वैक्रिय आहारककी भजना है (अर्थात् हो भी सकते हैं नहीं भी हो सकते)। वैक्रिय शरीरमें तेजस-कार्माणकी नियमा, औदारिककी भजना और आहारकका अभाव होता है। आहारकमें वैक्रियका अभाव शेष तीनकी नियमा है। तेजस कार्माणकी नियमा है अर्थात् दोनों सदा साथ रहते हैं। शेष तीनकी भजना है।

औदारिक शरीरकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त (४८ मिनट) उत्कृष्ट तीन पतयोपम, वैक्रिय शरीरकी जघन्य स्थिति एक समय (कालका सूक्ष्मतम अविभागी अंश) और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम, आहारक शरीरकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त, तेजस और कार्माणकी स्थिति अनादि अनन्त और अनादि सान्त है।

आहारक शरीरके द्रव्य सबसे कम हैं। वैक्रिय शरीरके द्रव्य उनसे असंख्यात गुणे अधिक हैं। औदारिक शरीरके द्रव्य उससे असंख्यात गुणे अधिक हैं। तेजस और कार्माण शरीरके द्रव्य उनसे अनन्तगुणा अधिक है; किंतु परस्पर दोनों तुल्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जैसी पूजा, वैसा फल

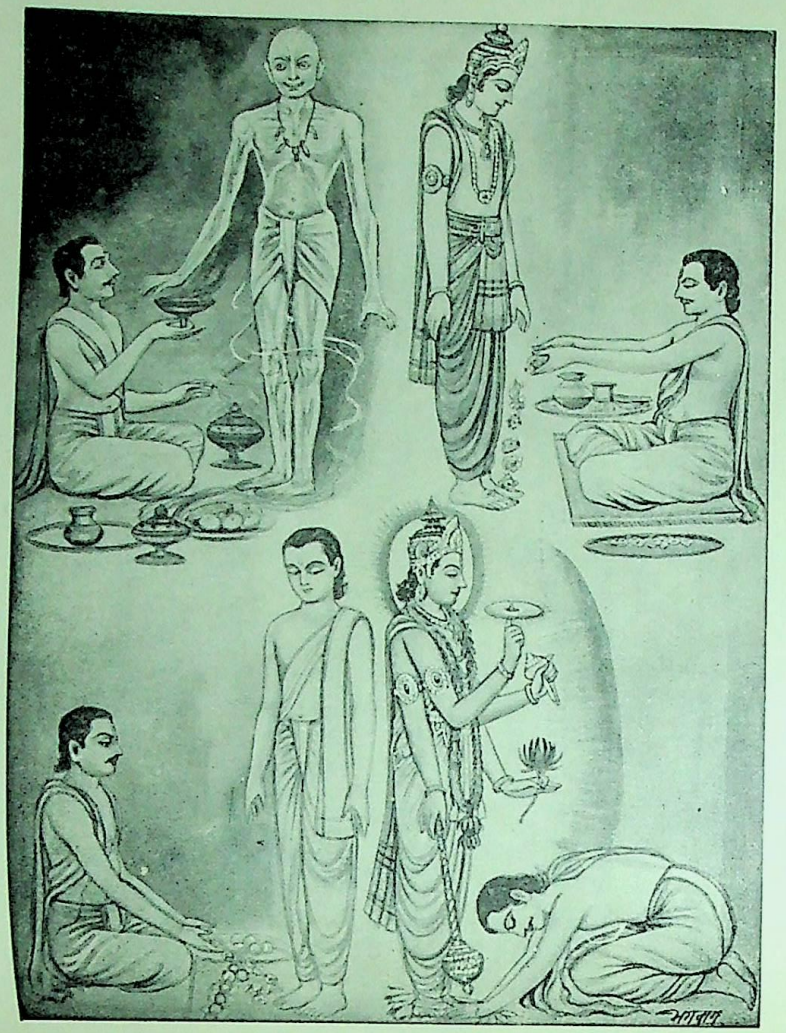

भूत-पूजा, पितर-पूजा, देव-पूजा, भगवत्-पूजा (गीता ९ । २५)

खिलाकर खानेमें पाप-नाश, न देकर खानेसे नरक (गीता ३ । १३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औदारिक-शरीर सबसे स्थूल होता है। आगेके शरीर क्रमशः सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर होते हैं।

मनुष्यों और तिर्यञ्चोंके औदारिक-शरीर होता है। वैक्रिय शरीर नेरयिक और देवोंके होता है तथा तिर्यञ्चों और मनुष्योंके भी हो सकता है। आहारक-शरीर केवल चतुर्दश पूर्वधारी मुनिराजोंके ही हो सकता है। तेजस और कार्माण शरीर चारों गतियों (मानव, तिर्यञ्च, देव, नारकी) के जीवोंके होता है।

औदारिक, तेजस और कार्माण शरीरोंमें सभी छः संस्थान—[(आकार (१) समचतुरस्र, (२) न्यग्रोध-परिमंडल, (३) सादि, (४) कुब्ज, (५) वामन, (६) हुंडक)] पाये जाते हैं। वैक्रियमें समचतुरस्र और हुंडक दो संस्थान पाये जाते हैं। आहारक शरीरमें एक समचतुरस्र संस्थान पाया जाता है।

औदारिक, तेजस और कार्माण शरीरोंमें सभी छः (१) वज्र, ऋषभ, नाराच, संहनन, (२) ऋषभ, नाराच, (३) नाराच, (४) अर्ध-नाराच, (५) कीलिका, (६) सेवार्त्त संहनन (शरीर और अस्थियोंकी मजबूती) पायी जाती है। आहारक-शरीरमें एक वज्र, ऋषभ, नाराच, संहनन पाया जाता है। वैक्रिय-शरीरमें कोई संहनन नहीं होता।

अष्टकर्मोंको क्षयकर मोक्ष प्राप्त करना औदारिक-शरीरका प्रयोजन है। नाना प्रकारके रूप बनाना वैक्रिय-शरीरका प्रयोजन है। संशय-निवारण आहारक-शरीरका प्रयोजन है। संसारमें परिभ्रमण करते रहना तेजस और कार्माण-शरीरका प्रयोजन है।

औदारिक-शरीरका विषय रुचक द्वीपतक है। वैक्रिय-शरीरका विषय असंख्यात द्वीप समुद्रतक है। आहारक-शरीरका विषय ढाई द्वीपपर्यन्त है। तेजस और कार्माणका विषय चौदह राजू परिमाण है।

एक औदारिक-शरीरका यदि अन्तर पड़े तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम। वैक्रिय-शरीरका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल। आहारक-शरीरका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन। तेजस और कार्माण-शरीरका अन्तर कभी नहीं पड़ता।

औदारिक, वैक्रिय, तेजस और कार्माण—ये चारों शरीर लोकमें सदा पाये जाते हैं। आहारक-शरीर उत्कृष्ट षट्मासतक नहीं भी पाया जाता।

कार्माण-शरीरको 'कर्म-शरीर' और शेष शरीरोंको 'नो-कर्म-शरीर' भी कहा जाता है।

तेजस और कार्माण शरीर प्रवाहकी अपेक्षासे जीवके साथ अनादिकालसे हैं। जब कि बाकीके तीनों शरीरोंका सम्बन्ध अस्थायी है।

इस प्रकार जैन-साहित्यमें शरीरोंके विषयमें जो कुछ कहा गया है, उसका सार संक्षेपमें यहाँ प्रस्तुत किया गया है। इस वर्णनसे परलोक और पुनर्जन्मके विषयकी सभी भ्रान्तियाँ दूर हो जानी चाहिये; क्योंकि यह बहुत कुछ विज्ञानसम्मत भी है।

जैसी पूजा, वैसा फल

करता जो भूतोंकी पूजा वह भूतोंको ही पाता।
पितरोंका पूजक निश्चय ही पितृ-लोकमें है जाता॥
विधिपूर्वक देवोंका पूजक देवलोकको ही पाता।
भगवत्पूजक पुण्यवान भगवच्चरणोंमें ही जाता॥

यज्ञशिष्ट भोजनसे पाप-नाश

सुर-ऋषि-पितर-मनुज सब जीवोंको उनका हिस्सा देकर।
बचा हुआ जो खाता वह हो पापमुक्त पाता ईश्वर॥
पर जो निजके लिये कमाता, बिना दिये ही है खाता।
वह अघभोजी निश्चय ही यमदूतोंसे पीड़ा पाता॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनधर्ममें जीवोंका परलोक

(लेखक—श्रीमिलापचंदजी कटारिया, जैनविद्याभूषण)

जिस धर्मका यह सिद्धान्त हो कि—अनेक योनियोंमें जन्म-मरण प्राप्त करके ये जीव अपने किये पुण्य-पापके फलोंको भोगते रहते हैं, वह धर्म 'आस्तिक धर्म' कहलाता है। इस दृष्टिसे जैनधर्म भी एक आस्तिक धर्म माना जाता है; क्योंकि उसके धर्मशास्त्रोंमें भी ये सब बातें लिखी हैं और विस्तारसे लिखी हैं। उसका कहना है कि समस्त संसारी जीवोंका अस्तित्व नारकी, देव, तिर्यञ्च (पशु, पक्षी, कीड़े) और मनुष्य—इन चार भेदोंमें पाया जाता है। इन्हें ही चार गतियाँ कहते हैं अर्थात् संसारी जीवोंका आवागमन सदा इन चार स्थानोंमें होता रहता है। हर एक गतिके जीवोंकी अपनी अलग-अलग आयु होती है। जितनी जिसकी आयु होती है, उतने ही कालतक वह उस गतिमें रहता है। तिर्यञ्च और मनुष्य कारणवश अपनी निर्धारित आयुसे पहले भी मर जाते हैं जिसे 'अकालमरण' कहते हैं। नरक और देवगतिमें अकालमरण नहीं होता है। मरनेके बाद वह जीव अपनी अच्छी-बुरी करनीके फलसे या तो उसी गतिमें, जिसमें कि वह मरा है, फिरसे जन्म लेता है या अन्यान्य गतियोंमें जन्म लेता है; किंतु नरक और देवगतिके जीव लौटकर पुनः अपनी उसी गतिमें जन्म नहीं लेते हैं, अन्य गतियोंमें जानेके बाद जीव नरक और देवगतिको प्राप्त हो सकते हैं। नियमतः देव और नरक दोनों ही गतिके जीव तिर्यञ्च और मनुष्यगतिमें ही जन्म लेते हैं। देवों और नारकियोंकी आयु प्रायः दस हजार वर्ष होती है, किसी भी गतिसे मरे हुए जीवको भवान्तरमें जन्म लेनेमें निमेष (आँखकी टिमकार) मात्र कालसे भी बहुत कम समय लगता है। जिस शरीरमेंसे निकलकर कोई जीव जब भवान्तरमें जाता है, तब रास्तेमें उस जीवका आकार पूर्वशरीर-जैसा रहता है। जब वह भवान्तरमें दूसरा नया शरीर ग्रहण करता है, तब उसका नये शरीरके आकार-जैसा आकार हो जाता है।

जैनधर्मके सिद्धान्तशास्त्रोंमें लिखा है कि देवों और नारकियोंकी वर्तमान भवकी आयुके समाप्त होनेमें जब छः मासका समय शेष रह जाता है, तब उनके किसी अगले भवकी आयुका निर्माण होता है। अर्थात् तब उनके अगले भवकी आयु (कर्म) का बन्ध होता है और उस आयु-कर्मके फलसे जितनी आयु उसने बाँधी है, उतने समयतक उसे अगले भव (योनि) में रहना पड़ता है। इसी तरह मनुष्यों और तिर्यञ्चोंके अपनी वर्तमान भवकी आयुके तीन भागोंमें दो भाग व्यतीत हो जानेके बाद तीसरे भागमें अगले भवकी आयुका बन्ध होता है। किंतु इनको यह पता नहीं लगता कि हमारी आयु कितनी है और अगले भवकी आयुबन्धका कौन समय है? आयुबन्धके समयमें श्रेष्ठ परिणाम होनेसे अगले भवमें अच्छी गति मिलती है। इसलिये मानवोंको सदा ही अपना उत्तम आचार-विचार रखना चाहिये। पता नहीं, कब आयुबन्धका समय आ जाय।

उपर्युक्त चार गतियोंमेंसे मनुष्य और तिर्यञ्च (पशु-पक्षी-कीड़े) गतिके जीवोंका हाल तो प्रत्यक्ष ही है; अतः उनका वर्णन न करके यहाँ हम नरक और देवगतिका वर्णन करते हैं—

कुल नरक सात हैं। जिस पृथ्वीपर हम रहते हैं उसका नाम 'रत्नप्रभा' है। उसके भीतर कोसोंतकके लंबे-चौड़े बिल अनेक हैं। जमीनमें ढोलके गाड़ देनेपर जो पोलाई ढोलमें रहती है, उस तरहके बिल हैं, जिनमें नारकी जीव रहते हैं। इस रत्नप्रभा पृथ्वीके भीतरी बिलोंमें जितने नारकी रहते हैं, वह सब प्रथम नरक कहलाता है। इससे नीचे फासलेपर 'शर्कराप्रभा' नामकी दूसरी पृथ्वी है। उसके भीतर भी उसी तरहके कितने ही बिल हैं, जिनमें नारकी जीव रहते हैं। यह दूसरा नरक कहलाता है। इसी तरह फासलेपर उत्तरोत्तर नीचे-नीचे पाँच पृथ्वियाँ और हैं जिनके बिलोंमें भी नारकी जीव रहते हैं, जिन्हें कि तीसरेसे सातवाँ नरक कहना चाहिये। किसी एक नरकका नारकी अन्य नरकोंमें नहीं जा सकता, बल्कि किसी एक ही नरकके भिन्न-भिन्न बिलोंमें रहनेवाले नारकी अपने ही नरकमें अपने बिलके सिवा अन्य बिलमें भी नहीं जा सकते। इन सबकी आयु ऊपरकी अपेक्षा नीचेके नरकोंमें अधिक है। प्रत्येक बिलमें बहुत-से नारकी रहते हैं और प्रायः वे एक दूसरेको मार-काट कर दुःख देते रहते हैं। यहाँ आनेके बाद अपनी पूरी आयुतक यहाँ रहकर दुःख सहना पड़ता है। चाहे उनके शरीरोंको तिल-तिलमात्र भी काट दिया जाय, तो भी वे अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयु पूर्ण होनेके पहले वहाँसे निकल नहीं सकते हैं। उनके कटे हुए शरीरके टुकड़े पारेकी तरह मिलकर फिर एक शरीररूप बन जाते हैं। नरकोंमें स्त्रियाँ नहीं होती हैं। उनका जन्म बिलोंकी छतके अधोभागमें होता है। उस समय वे चमगादड़ोंकी तरह औंधेमुँह लटकते हुए जन्मते हैं और नीचे जमीनपर गिरते हैं। जन्म लेनेके बाद ही अपना मार-काटका काम शुरू कर देते हैं। सभी नारकियोंका रूप बड़ा भयंकर होता है। नरकोंमें आपसकी मार-काटका ही दुःख नहीं होता, अन्य भी असहनीय दुःख होते हैं। वहाँ कितने ही बिलोंमें ऐसी भयानक गरमी पड़ती है कि जिस गरमीसे लोहेका गोला भी गलकर पानी हो जाय। कितने ही बिलोंमें ऐसी प्रचण्ड ठंढ पड़ती है कि जिससे लोहेके गोलेका खण्ड-खण्ड हो जाय। प्यास उन नारकियोंको इतनी अधिक लगती है कि सब समुद्रोंका पानी पी जायँ, तब भी प्यास बुझे नहीं, परंतु उनको बिंदुमात्र भी जल मिलता नहीं है। भूख उनको इतनी प्रचण्ड लगती है कि सारे संसारका अनाज खा जायँ; परंतु उन्हें कणमात्र भी अनाज मिलता नहीं है। वहाँकी भूमिका स्पर्श ही इतना दुःख-दायी है कि जैसे बिच्छुओंने डंक मारा हो। ये सब दारुण दुःख नारकियोंको उम्रभर भोगने पड़ते हैं। वहाँ क्षणभर भी सुख नहीं है। घोर पापोंका फल भोगनेके लिये प्राणियोंको इन नरकोंमें जाना पड़ता है।

इसके विपरीत जो पुण्यात्मा होते हैं, वे देवलोकमें जाकर सुख भोगते हैं। जिस मनुष्यलोकमें हम रहते हैं, वह 'मध्य-लोक' कहलाता है। उससे नीचे 'अधोलोक' है—उसमें नरक हैं। मध्यलोकसे ऊपर 'ऊर्ध्वलोक'में देवोंका निवासस्थान है। वहाँ देव किसी पृथ्वीपर नहीं रहते हैं। वे सब विमानोंमें रहते हैं। इनसे भी बहुत ऊपर 'स्वर्गलोक' है। वह हमारे नेत्रगोचर नहीं है। वहाँ उत्तम श्रेणीके देवोंका निवास है। उससे भी ऊपर 'अहमिन्द्रलोक' है, जहाँ उनसे भी उत्कृष्ट देव रहते हैं। कुछ निम्नश्रेणीके देव अन्यत्र भी रहते हैं। स्वर्ग १६ माने गये हैं। प्रत्येक स्वर्गके दायरेमें बहुत-से विमान होते हैं, जिन सबका स्वामी उस स्वर्गका एक इन्द्र होता है। उन सब विमानोंके वासी सब देव उस इन्द्रकी आज्ञामें रहते हैं। अलग-अलग स्वर्गोंके प्रायः अलग-अलग इन्द्र होते हैं और हर एक स्वर्गमें बहुत-से विमान होते हैं। हर एक स्वर्ग मानो एक-एक देश है और बहुत-से विमान उस देशमें अलग-अलग प्रदेश या नगर हैं। प्रत्येक विमानमें अनेक वापिकाएँ, महल और उपवन होते हैं। विमानोंकी लंबाई-चौड़ाई काफी विस्तृत होती है। उन देशोंके अलग-अलग राजा अलग-अलग इन्द्र कहलाते हैं। जैसे मनुष्यलोकमें राजा, मन्त्री, पुरोहित, सेना, प्रजा आदि होते हैं, वैसे ही देवलोकमें भी होते हैं। वहाँके राजाको 'इन्द्र' कहते हैं और प्रजाके लोग 'देव' कहलाते हैं। इन इन्द्रादि देवोंका शरीर बहुत सुन्दर होता है। उनके शरीरोंमें हाड़, मांस, रक्त, धातु, मज्जा, मल, मूत्र, पसीना नहीं होते हैं। उनको निद्रा नहीं होती, बुढ़ापा नहीं होता और किसी प्रकारका रोग नहीं होता। उनको प्यास नहीं लगती। वे खाते कुछ नहीं। बहुत वर्षोंमें कभी भूख लगती है तो उसी क्षण उनके कण्ठोंमें अपने-आप अमृत झर पड़ता है। उससे वे तृप्त हो जाते हैं। वहाँ किसी प्रकारका उनको शारीरिक दुःख नहीं होता है। इसी प्रकारकी वहाँ सुन्दर देवियाँ होती हैं, जिनके साथ वे देव नाना प्रकारके भोग-विलास करते हैं। वे देवियाँ वहाँ केवल भोगविलासके लिये ही होती हैं। उनके गर्भ धारण नहीं होता है। देवों और देवियोंकी उत्पत्ति वहाँ किसी स्थानविशेष (जिसे उपपाद-शय्या कहते हैं) से होती है। पैदा होनेके थोड़े ही समय बाद वे जवान हो जाते हैं और फिर उम्रभर जवान ही बने रहते हैं। उन सबकी कोई निश्चित आयु होती है। देवियोंकी आयु देवोंसे कम होती है। आयु समाप्त होनेके बाद इन्द्रादि-को भी अन्य योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है। इसलिये मनुष्यादिकी तरह वे भी संसारी जीव ही हैं। एक प्रसिद्ध पुरातन जैनाचार्य समंतभद्रस्वामीने कहा है—

श्वापि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्बिषात्।
क्वापि नाम भवेदन्या संपद्धर्माच्छरीरिणाम्॥

अर्थात्—'धर्मके प्रतापसे कुत्ता भी देव हो जाता है। देवयोनिमें जन्म लेता है और पापके फलसे देव भी मरकर कुत्तेकी योनिमें जाता है। इसलिये प्राणियोंके लिये धर्मसे अतिरिक्त अन्य कोई क्या सम्पदा हो सकती है?'

इस स्वर्गलोकसे ऊपर एक 'अहमिन्द्रलोक' भी है, जिसमें भी देवोंका निवास है। वे देव भी स्वर्गलोक-जैसे ही हैं। उनकी आयु स्वर्गलोकके देवोंसे अधिक होती है। वहाँ देवियाँ नहीं होती हैं, अतः वे आजीवन ब्रह्मचारी ही रहते हैं। उनकी गणना अति उत्तम देवोंमें की जाती है। उनके भी रहनेके अनेक विमान हैं। उनमें राजा, मन्त्री, प्रजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि भेद नहीं हैं। सभी अपने-आपको इन्द्र मानते हैं। इसीसे वे 'अहमिन्द्र' कहलाते हैं। इनको भी समय पूरा होनेपर अन्य योनियोंमें जाना पड़ता है।

इस अहमिन्द्रलोकसे ऊपर 'शिवलोक' है। वहाँ वे जीव पहुँचते हैं, जिन्होंने मनुष्य-जन्ममें वैराग्य-तप-संयमके द्वारा अपने आत्माको पूर्ण शुद्ध बना लिया हो। ऐसे जीव संसार-चक्रसे निकलकर शिवलोकमें पहुँचते हैं। वहाँ वे अनन्तकाल तक अतीन्द्रिय, आत्मजनित सुखका अनुभव करते रहते हैं। उनका संसारका आवागमन सदाके लिये छूट जाता है। वे अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यके धारी होते हैं।

जैनधर्ममें जीवोंकी तीन दशा मानी है—शुभ दशा, अशुभ दशा और शुद्ध दशा। शुभ दशावाले जीव पुण्यकर्मके फलसे देवलोकको प्राप्त होकर सांसारिक सुख भोगते हैं। अशुभ दशावाले जीव पापकर्मके फलसे नरकोंमें जाकर दुःख सहते हैं। कभी वे जीव पशुयोनिमें भी जाकर दुःख उठाते हैं। जिनकी शुभ और अशुभ—दोनों मिलकर मिश्रदशा होती है, वे जीव पुण्य और पाप—दोनोंके मिश्रित फलसे मनुष्य-योनिमें जन्म लेकर वहाँ सुख-दुःख दोनोंको भोगते हैं। तीसरी शुद्ध दशा वह है, जिसमें आत्माके साथ पुण्यकर्म और पापकर्मका कुछ भी मैल नहीं रहता। आत्मा कर्ममलरहित पूर्ण शुद्ध बन जाता है। ऐसी शुद्ध दशा मनुष्य-योनिमें ही हो सकती है, अन्य योनियोंमें नहीं। शुद्ध दशावाला जीव मानवशरीरको छोड़कर सीधा 'शिव-लोक'में पहुँच जाता है। वहाँ अब वह शरीरधारण नहीं करता है। जहाँ शरीर है, वहीं जन्म-मरण है, आवागमन है और संसारका चक्र है। अतः शिवलोकके निवासी जीव अशरीरी होते हैं—उनका केवल वहाँ अपना शुद्ध आत्मा ही होता है। मोक्षस्थान, मुक्तिस्थान, सिद्धालय इत्यादि नाम शिवलोकके ही पर्याय नाम हैं। वहाँके जीव निरञ्जन, निर्विकार, चिद्रूप, परमात्मा, परब्रह्म, सर्वज्ञ, ईश, सिद्ध इत्यादि नामोंसे पुकारे जाते हैं। ऐसे सिद्ध जीव वहाँ अगणित पहुँच चुके हैं और आगे भी पहुँचते रहेंगे। यह स्थान सृष्टिका ऊपरी आखिरी स्थान है! इससे ऊपर अलोक है, जहाँ एकमात्र आकाशके सिवा अन्य कोई पदार्थ नहीं है।

इस प्रकार हमने यहाँ जीवोंके आवागमनके स्थानोंका जैनमतानुसार संक्षिप्त वर्णन किया है। जैनशास्त्रोंमें इस विषयका बहुत विस्तारसे विवेचन है। जैनकथा-ग्रन्थोंमें ऐसी बहुत-सी कथाएँ लिखी हैं, जिनमें जीवोंके अनेक भवान्तरोंका वर्णन किया गया है।

मृतात्माओंको बुलानेवाले विश्वस्त पुरुष कौन-कौन हैं ? और मृतात्माओंको बुलानेकी विधि क्या है ?

दृढ़ विश्वासपूर्वक नहीं बताया जा सकता कि देशमें कहाँ कौन सज्जन आत्माओंको बुलानेका सफल प्रयोग करते हैं। मैं तो समझता हूँ, कभी किन्हींको बहुत ही आवश्यक हो तो स्वयं ही एक-मतके कुछ विश्वासी लोग, किसी पवित्र स्थानमें, पवित्र होकर, जिस आत्माको बुलाना हो उसका ध्यान करके बार-बार नम्र निवेदन करें और कागज-पेन्सिल रखकर, तिपाईके खटकोंद्वारा अथवा किसी अल्पवयस्क कोमलमति माध्यम (मीडियम) को नियुक्त करके उसके द्वारा बातचीत करनेके लिये विनम्र अनुरोध करें। सम्भव है, ऐसा करनेपर उनका वाञ्छित आत्मा आ जाय और बात करे। पर यह प्रयोग करना चाहिये—अनिवार्य आवश्यकता होनेपर ही; क्योंकि इससे पारमार्थिक साधनमें तो हानि होती ही है, यदि कोई भयानक पापात्मा आ जाता है तो उसके द्वारा कष्ट-प्राप्ति एवं अपना तथा माध्यम (मीडियम) का अनिष्ट भी हो सकता है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्जन्म

(मूल—लामा अनागरिक गोविन्दजी)

[अनुवादक—श्रीश्यामसुन्दरजी त्रिपाठी]

(प्रस्तुत लेख लामा अनागरिक गोविन्दकी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि वे आफ दि व्हाइट क्लाउड्स' पर आधारित है। लामा टोमो गेशे रिम्पोचे लेखकके गुरु थे; वृद्धावस्थाको प्राप्त हो जानेपर उन्होंने समाधिके द्वारा अपने शरीरका त्याग किया और फिर सिक्किमके एक नगर गूँगशेकमें अपनी भविष्य-वाणीके अनुसार पुनर्जन्म धारण किया। प्रस्तुत लेखमें लामा अनागरिक गोविन्दने इस घटनाका वर्णन करते हुए पुनर्जन्मपर अपने विचारोंको अभिव्यक्त किया है। —अनुवादक)

टोमो गेशे रिम्पोचेने मृत्युके समय अपने शिष्योंसे प्रतिज्ञा की थी कि वे एक निश्चित अवधिके भीतर दूसरा शरीर धारण करके अपने मठको लौट आयेंगे। कुछ समय उपरान्त उनकी यह प्रतिज्ञा सत्य सिद्ध हुई। जहाँतक मेरा विचार है, मेरे गुरुदेवका पुनर्जन्म उसी घरमें हुआ, जिसमें एक बार तो अपनी प्रथम तिब्बत-यात्राके समय और दूसरी बार इस महान् संतसे मिलनेके उद्देश्यसे की गयी यात्राके दौरान, एक मेहमानके रूपमें मैं टिक चुका था। यह घर गंगटोकमें था, जिसके स्वामी ऐन्चे काजी थे। मुझे उन्हींके मुँहसे टोमो गेशेके पुनर्जन्म और ल्हासाकी महान् राजकीय भविष्यवाणीके आधारपर उनकी खोजका समाचार ज्ञात हुआ।

यह जानते हुए कि ऐन्चे काजी एक ईमानदार और धार्मिक पुरुष हैं, मैं भी इस घटनाकी सत्यताकी पुष्टि करता हूँ। इस घटनाकी साक्षीके रूपमें ली गौतमी (लेखककी पत्नी) भी उस समय मेरे साथ थीं। यद्यपि ऐन्चे काजी-को दुल्कूके पिता होनेका गर्व प्राप्त था, फिर भी उन्होंने इस घटनाको दुःखित होकर सुनाया; क्योंकि इस बच्चेके जन्मके तुरंत बाद ही उनकी पत्नीका देहान्त हो गया था* और कुछ ही वर्षों बाद जब यह बात प्रकट हुई कि उनके पुत्रके रूपमें दूसरे और किसीने नहीं, बल्कि टोमो गेशेने ही पुनर्जन्म धारण किया है, तब उन्हें अपनी इस इकलौती संतानको भी त्याग देना पड़ा। इस घटनाका सबसे रोमाञ्चक प्रमाण यह है कि जब उस बालकने स्वयं प्रसन्नतापूर्वक अपने पूर्व-जन्मके मठको लौट जानेके लिये उत्सुकता प्रकट की, तब अपने पुत्रकी प्रसन्नताको ध्यानमें रखते हुए विवश होकर पिताने अपने इकलौते पुत्रके त्यागका निश्चय कर लिया और उसे 'डुंगकर गोम्पा' ले जानेकी स्वीकृति देनी पड़ी।

सिक्किमके महाराजाने स्वयं भी बालकके पितासे यह अनुरोध किया कि वे बच्चेकी उच्चतर नियतिके सम्बन्धमें हस्तक्षेप न करें; क्योंकि नी चुंगकी महान् देववाणीके द्वारा यह पहले ही संकेत किया जा चुका था, जिसकी पुष्टि उस बालकके वचनों और व्यवहारसे भी हो गयी थी। वह बालक सदासे ही आग्रह करता था कि वह सिक्किमी न होकर तिब्बती है। जब उसके पिताने उसे 'पू-चुंग' कहकर पुकारा, जिसका अर्थ 'छोटा बेटा' होता है, तो उसने इसका विरोध किया और उसने कहा कि उसका नाम 'जिग्मे' है, जिसका अर्थ 'निर्भीक' होता है। यह वही नाम था, जिसका उल्लेख ल्हासाकी देववाणीने भी किया था कि 'टोमो गेशे' का पुनर्जन्म इसी नामसे होगा।

राजकीय देववाणीके द्वारा इस बातको इतना अधिक महत्त्व दिये जानेसे यह प्रकट होता है कि टोमो गेशेके पुनर्जन्मका कितना अधिक महत्त्व है। वास्तवमें नी-चुंगकी देववाणीने न केवल उस दिशाका ही निर्देश किया, जिस ओर पुनर्जन्म होनेकी सम्भावना थी, बल्कि उस नगर और स्थानका विस्तृत वर्णन भी बता दिया, जहाँ यह जन्म होने-वाला था। इन सभी प्रकारके विस्तृत वर्णनोंसे यह बात स्पष्ट हो गयी थी कि यह नगर सिर्फ गंगटोक ही हो सकता है। यहाँतक कि देववाणीने बच्चेके जन्म लेनेका वर्ष, उसके माता-पिताकी ठीक-ठीक अवस्था, उसके घरका सही विवरण तथा उसके बगीचेके पेड़ोंके सम्बन्धमें भी पूरा वर्णन कर दिया

* तिब्बतमें यह विश्वास प्रचलित है कि दुल्कूके जन्मके बाद ही उसकी माँकी मृत्यु हो जाती है। मुझे भी अन्य कई घटनाओंका स्मरण है, जहाँ ऐसा हुआ, केवल वर्तमान 'दलाई लामा' का जन्म इस सम्बन्धमें अपवादस्वरूप है। शाक्यमुनि बुद्धकी माँ रानी मायाकी भी मृत्यु बुद्धके जन्मके कुछ ही दिनों बाद हो गयी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। मकानके सामने खड़े दो फलोंके पेड़ उस स्थानकी विशेषताके स्पष्ट परिचायक थे।

इस प्रकार मठके अधिकारियोंका एक शिष्टमण्डल गंगटोक भेजा गया। इन लोगोंद्वारा उपर्युक्त सूचनाओंके आधारपर उस मकान और उस बच्चेको शीघ्र ही खोज लिया गया। उसकी उम्र उस समय चार वर्षकी थी। जैसे ही मठवासी गृहके समीप पहुँचे और उन्होंने बगीचेमें प्रवेश किया कि बालक जोरसे चिल्ला उठा—'पिताजी! मेरे लोग मुझे गोम्पाको वापस ले जानेके लिये आ गये हैं।'

पिताके रोके जानेके बावजूद भी वह इन साधुओंसे मिलनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक दौड़ पड़ा। उसका पिता उस समय अपने इकलौते बच्चेका त्याग करनेके लिये तनिक भी तैयार नहीं था; किंतु उस बालकने ही अपने पितासे निवेदन किया कि वे उसको अपने पूर्वस्थानकी ओर वापस जाने दें। जैसे ही साधुओंने उसके सामने मठसम्बन्धी अनेक वस्तुएँ फैला दीं, जो प्रतिदिनके धार्मिक अनुष्ठानमें काममें लायी जाती हैं—जैसे जप करनेकी माला, वज्र, घंटियाँ, चायकी प्यालियाँ, लकड़ीके बने हुए कमण्डलु और डमरू आदि। इन वस्तुओंको देखते ही तुरंत उस बालकने अपनी वे वस्तुएँ उठा लीं, जिनको वह अपने पूर्वजन्ममें भी काममें लाता था। जो वस्तुएँ उससे सम्बन्धित नहीं थीं, उनको उसने छोड़ दिया; यद्यपि कुछ वस्तुएँ तो उसकी वस्तुओं-की तुलनामें कहीं अधिक सुन्दर और आकर्षक लग रही थीं।

पिताने ये सब प्रमाण देख लिये। अपने बच्चेकी असामान्य बुद्धि और अलौकिक व्यवहारसे भी उसे कई बार आश्चर्य होता था। अन्ततः जब उसे पूरी तरह अपने बच्चेके पूर्वजन्मके सम्बन्धमें विश्वास हो गया तो उसने भारी हृदयसे अपने पुत्रको तिब्बतके मठवासियोंके इस शिष्टमण्डलके साथ जानेकी अनुमति दे दी।

डुंगकर गोम्पाकी यात्राके दौरानमें इस दलकी भेंट तिब्बती डाक्टर आमचीसे हुई। टोमो गेशेके अन्तिम दिनोंमें इसी डाक्टरने उसका इलाज किया था। बालकने डाक्टरको देखते ही पहचान लिया और फिर पुकारकर कहा—'ऐ आमची! क्या तुम मुझे नहीं जानते? क्या तुम्हें यह स्मरण नहीं कि मेरे पूर्वजन्मके अन्तिम दिनोंमें तुम्हींने मेरा इलाज किया था?'

डुंगकर गोम्पामें भी उसने कुछ पुराने साधुओंको देखते ही पहचान लिया। सबसे अधिक आश्चर्यकी बात तो यह है कि पिछले जन्मके अन्तिम दिनोंमें जो कुत्ता उसका सर्वाधिक प्रिय रहा था, उस कुत्तेने अपने पूर्वस्वामीको देखते ही पहचान लिया और अपने स्वामीके साथ पुनर्मिलन-से प्रसन्न होकर वह उसीके पीछे-पीछे घूमने लगा।

इस प्रकार टोमो गेशेने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दिखायी और फिरसे लोग चारों ओरसे भारी संख्यामें आ-आकर अपने गुरुको प्रणाम करने तथा उनसे आशीर्वाद लेनेके लिये आने लगे। इस छोटेसे बालकने अपने आत्मविश्वास और दिव्य व्यवहारके द्वारा सभीको प्रभावित कर दिया। जब वह बालक मन्दिरके विशाल कक्षमें स्थित सिंहासनपर बैठकर पूजा करता या विशिष्ट अवसरोंपर धार्मिक अनुष्ठानोंकी अध्यक्षता करता और तीर्थयात्रियोंको आशीर्वाद देता, उस समय इसके विलक्षण और गम्भीर व्यवहारसे सभी चकित रह जाते; किंतु अन्य अवसरोंपर अपने ही उम्रके दूसरे बालकोंके समान इसका व्यवहार सामान्य हो जाता। धार्मिक अनुष्ठानोंके समय उसका चेहरा एक बालकके समान न लगकर एक वयोवृद्ध विद्वान्के समान लगता। शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि इस बालकने अपने पूर्वजन्ममें जो ज्ञान अर्जित किया, उसे अभी वह भूला नहीं है। उसकी शिक्षामात्र उसके पूर्व-अर्जित ज्ञानके पूर्वाभ्यासके रूपमें हुई और उसने अपनी शिक्षामें इतनी शीघ्रतासे प्रगति की कि डुंगकरमें उसको पढ़ानेके निमित्त नियुक्त शिक्षकोंके समक्ष उसको पढ़ानेके लिये कोई भी विषय शेष नहीं रहा। इस प्रकार केवल सात वर्षकी अवस्थामें ही उच्च शिक्षाके लिये तथा दिव्यताके डाक्टरकी अर्थात् 'गेशे' उपाधि प्राप्त करनेके लिये उसे ल्हासाके निकट सेराके महान् मठके विश्वविद्यालयमें भेज दिया गया।

पश्चिमके आलोचक-प्रवृत्तिके लोगोंको यह सारी घटना अविश्वसनीय लग सकती है और मैं भी स्वीकार करता हूँ कि प्रारम्भमें मुझे भी इन सब बातोंमें विश्वास नहीं हुआ, जबतक कि मैंने इसी प्रकारके अन्य उदाहरण नहीं देखे। इस प्रकारकी घटनाओंने यह सिद्ध कर दिया कि पुनर्जन्म-की धारणा केवल एक सिद्धान्त या एक अस्थापित विश्वास ही नहीं है, बल्कि इससे पूर्वोत्तर जन्मोंकी उपलब्धियोंकी स्मृतिकी सम्भावनाओंपर भी प्रकाश पड़ता है। एक वैज्ञानिक, जो केवल भौतिक वंशानुक्रमपर ही विश्वास करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, कभी अपने आपसे यह पूछनेका प्रयास नहीं करता कि वंशानुक्रमके सिद्धान्तका वास्तविक अर्थ होता क्या है ? यह एक अर्जित विशेषताओंकी सुरक्षा और निरन्तरताका सिद्धान्त है, जिसकी अन्तिम परिणति चेतन अनुस्मारक और संगठित ज्ञानकी चेतन-दिशाके अन्तर्गत होती है। अर्थात् समन्वित अनुभवोंके माध्यमसे, दूसरे शब्दोंमें वंशानुक्रम-स्मृतिका ही दूसरा नाम है। यह एक स्थायी सिद्धान्त है और विसर्जन तथा अस्थिरताकी प्रतिशक्ति है। चाहे हम स्मृतिको एक आध्यात्मिक या भौतिक गुण कहें या उसे जीव-विज्ञानका एक सिद्धान्त मानें तो यह अलग बात हुई; क्योंकि भौतिक, आध्यात्मिक या जैविकीय उन भिन्न-भिन्न स्तरोंको प्रकट करती है, जिनमें एक ही शान्ति क्रियान्वित होती है या उनके माध्यमसे यह प्रकट होती है। जो बात महत्त्वकी है, वह यह है कि यह वस्तुओंको सुरक्षित रखनेवाली तथा वस्तुओंका निर्माण करनेवाली एक दोनों प्रकारकी शक्ति है, जो भूत और भविष्यके बीचमें सम्बन्ध जोड़ती है और जो अन्तमें समयातीत वर्तमान और चेतन अस्तित्वकी अनुभूतिके माध्यमसे प्रकट होती है। संरक्षण और निर्माणकी समकालीनता निरन्तर परिवर्तनकी प्रक्रियासे ही उपलब्ध हो सकती है, जिसमें आवश्यक तत्त्व और रूप-विधान एक आदर्श केन्द्रके रूपमें वर्तमान रहता है, जिससे अन्तर्निहित नियमानुसार तथा बाह्य उद्दीपकोंके प्रभावके अन्तर्गत नये-नये रूप विकीरित होते रहते हैं।

बौद्धोंके लिये 'चेतना' ही वह केन्द्रबिन्दु है, जहाँसे अन्य सारी वस्तुएँ विकसित होती हैं और जिसके बिना न तो हम अपने अस्तित्वकी ही कल्पना कर सकते हैं और न अपने चारों ओर फैले हुए जगत्‌की, चाहे हमारे चारों ओरका जगत् हमारी ही चेतनाके द्वारा निर्मित हो या हमारे ही भीतर निहित हो। यह बात गौण है कि जगत् हमें वैसा ही दीखता है, जैसा कि हम उसे अनुभव करते हैं। इससे इस तथ्यको नकारा नहीं जा सकता कि यह हमारी चेतना ही है, जिसके प्रत्यक्ष ज्ञान-बोध और समान्वयनकी विशिष्ट शक्तियोंके द्वारा हमारे जगत्‌के प्रकारका निर्णय होता है, जिसमें हम रहते हैं। एक भिन्न प्रकारकी चेतनासे हमारे चारों ओर एक भिन्न प्रकारके जगत्‌की स्थिति हो सकती है, चाहे ब्रह्माण्डके कच्चे मालके विद्यमान या अविद्यमान रूपमें जो कुछ भी हो। हमारी चेतनामें ही हमारे संसारकी जड़ें निहित हैं और अपनी चेतनाके द्वारा ही हम इस संसारमें क्रियाशील हो सकते हैं। अपनी चेतनाके द्वारा ही हम इस संसारको बदल सकते हैं, दूसरे अन्य किसी साधनसे नहीं। चेतनासे ही हमारा संसार है और चेतनासे ही हम इससे परे हो सकते हैं अर्थात् 'संसृति' और 'विस्मृति', जिन्हें हम संसार और निर्वाण कहते हैं, दोनोंका कार्य और कारण चेतनामें ही है।

चेतना दो कार्योंपर आधारित है—'भिज्ञता' (Awareness) और 'अनुभवसे होनेवाले परिणामोंका संरक्षण', जिसे हम स्मृति कहते हैं। चेतनाकी व्याख्यामें उसे ज्ञानका पर्यायवाची कहनेकी अपेक्षा पूर्वानुभवोंका खजाना कहना अधिक उपयुक्त होगा। ज्ञान जब कि क्षणिक है और एक विशिष्ट वस्तुतक ही सीमित है, चेतना सार्वभौम, समयनिरपेक्ष है और निरन्तर क्रियारत रहनेवाली है; चाहे हम इसके बारेमें जानते हैं या नहीं। इसी कारणसे विज्ञानवादी गहनतम चेतनाको अलय विज्ञान या चेतना-भण्डारके रूपमें व्याख्या करते हैं, जिसमें न केवल हमारे ही जीवनके अनुभव संगृहीत हैं, बल्कि काल और समयनिरपेक्ष हुए हमारे पूर्वजोंके अनुभव भी सुरक्षित हैं और जो इसीलिये विश्वव्यापी चरित्रकी विशेषता रखनेवाली चेतना बन गयी है। यह चेतना व्यक्तिको उन सबसे जोड़ती है, जिनका अस्तित्व है, जिनका कभी अस्तित्व था या भविष्यमें जिनका कभी अस्तित्व होगा।

चेतना एक जीवन्त धाराके समान है, जिसे संकीर्ण अहंकारके पाशमें नहीं बाँधा जा सकता; क्योंकि इसका स्वभाव गतिमान् रहनेका है। चेतना अविरल रूपसे प्रवाहित हो रही है और प्रवाहका अर्थ जहाँ निरन्तरतासे है, वहाँ यह एक साथ दो या दो ध्रुवोंसे भी सम्बन्धित है। इन दो ध्रुवोंको जोड़नेकी विशेषताके होनेके कारण कोई गति नहीं है, कोई जीवन नहीं है, कोई ज्ञान नहीं है और निरन्तरताके बिना कोई अर्थपूर्ण सम्बन्धकी कल्पना नहीं की जा सकती। जितना ही अधिक अन्तर जीवनके दो ध्रुवोंके मध्य होगा, उतनी ही अधिक शक्तिसे जीवनकी धारा प्रवाहमान होगी। उच्चतम चेतना जीवनके अधिकतम अनुभवोंकी परिणति होती है। अर्थात् सार्वजनीनता और वैयक्तिकता—दो ध्रुवोंके मध्यका कोण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितना ही अधिक बड़ा होगा, उतनी ही चेतना उच्चतर स्तरकी होगी।

एक औसत चेतना फिर भी सांसारिक उद्देश्य और इच्छाओंमें ही परिरुद्ध होकर रह जाती है, जिससे चेतनाका वह अनवरत प्रवाह उलझ जाता है; उसकी दिशा बदल जाती है। उसकी शक्ति बिखर जाती है तथा ज्ञानका प्रकाश धूमिल होता चला जाता है। जब वैयक्तिकताका चैतन्य-सम्बन्ध विश्वजनीनताके साथमें समाप्त होने लगता है और वैयक्तिकता ही अपने क्षणिक अस्तित्वके लिये स्वयंमें साध्य होने लग जाती है, तब एक अपरिवर्तनीय पृथक् अहंकारका भ्रम उत्पन्न होने लग जाता है। चेतनाका प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है और एक निष्क्रियता सम्पूर्ण जीवनपर छाने लग जाती है। इसको दूर करनेका उपाय वैयक्तिकताका दमन करना नहीं है; बल्कि यह अनुभव करनेकी आवश्यकता है कि वैयक्तिकता ऊपर वर्णित अहंकारके समान नहीं है, बल्कि यह निरन्तर परिवर्तित होती रहती है, जो कि जीवनका एक सहज और स्वाभाविक लक्षण है। यह परिवर्तनशीलता अर्थहीन या निरंकुश नहीं है, बल्कि यह सृष्टिमें अन्तर्निहित शाश्वत नियमके अनुसार अग्रसर होती है, जो कि गतिके प्रवाह और उसके स्थायित्वको सुनिश्चित करती है।

वैयक्तिकता न केवल सार्वजनीनताकी एक आवश्यक और सम्मानसूचक प्रतिपक्षी है, बल्कि यह इसीमें संकेन्द्रित भी है, जिसके माध्यमसे ही सार्वजनीनताकी अनुभूति की जा सकती है। वैयक्तिकताके दमनसे, उसके दार्शनिक और धार्मिक महत्त्वकी अस्वीकृतिसे केवल उदासीनता और समापनकी स्थिति ही प्राप्त की जा सकती है। इस स्थितिको दुःखसे निवृत्तिकी स्थिति भले ही मान लिया जाय, लेकिन यह विशुद्ध रूपसे नकारात्मक है; क्योंकि यह हमें उस उच्चतम अनुभूतिसे वञ्चित कर देती है, जो व्यक्तित्वकी प्रक्रियाका अन्तिम लक्ष्य है; जो पूर्ण ज्ञान या बुद्धत्वकी प्राप्तिकी अनुभूति है। जिसमें अपने वास्तविक अस्तित्वकी सार्वजनीनताकी अनुभूति की जाती है।

केवल 'समुद्रमें बूँद'के समान उस पूर्णत्वकी अनुभूति किये बिना पूर्णत्वमें समाहित हो जाना विनाशको स्वीकृत करनेका एक काव्यात्मक ढंग है और इसका अर्थ हमारी वैयक्तिकताके आडम्बरके तथ्यकी समस्याको टाल जाना है। जब ब्रह्माण्डकी यह सहज जन्मजात प्रवृत्ति ही नहीं है, तब यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि क्यों इस ब्रह्माण्डमें जीवन और चेतना वैयक्तिक रूपोंमें विकसित होती है? परंतु प्रश्न वही रहता है, चाहे हम इस ब्रह्माण्डको एक वैज्ञानिककी दृष्टिसे भौतिक शक्तियोंके यथार्थ ब्रह्माण्डके रूपमें देखें या एक बौद्धके दृष्टिकोणसे आध्यात्मिक शक्तिके निसृति-पदार्थ या जालके रूपमें देखें, जो कि सर्वत्र अङ्गीकृत ब्रह्माण्ड 'चेतना कोष (आलय-विज्ञान)' के आत्मनिष्ठ रूपमें अनुभव किया गया है। हमारे वैयक्तिक अस्तित्वके ब्रह्माण्डके क्रममें एक अर्थपूर्ण स्थान होना चाहिये, जिसे मात्र एक भ्रम या एक दुःखद घटना मानकर जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। भ्रम—किसका भ्रम?···कोई भी इसे पूछ सकता है।

हमारी बौद्धिक विवेचनासे अधिक महत्त्वपूर्ण वे अवलोकनीय तथ्य हैं, जिनकी व्याख्या बहुत पहले धर्म-दर्शन या मनोविज्ञानके द्वारा किये जानेके पहले ही, जो हमें न केवल इस धारणाकी ओर ले जाती है कि हमारे अस्तित्वके उच्चतर और निम्नतर क्षेत्रोंमें मृत्युके उपरान्त भी एक वैयक्तिक चेतनाका अस्तित्व रहता है, बल्कि यह हमारे मानव-जगत्के पुनर्जन्मकी धारणाको भी पुष्ट करती है।

जैसा बीज—वैसे फल

जैसा बीज, बहुतसे होते फल वैसे ही; उसी प्रकार—
कर्मबीज होता जैसा, फल भी होते उसके अनुसार॥
इह-परलोक चाहते यदि तुम नित्य परम सुख-शान्ति अपार।
सावधान रह, करो सतत शुभ कर्म पुण्य आचार उदार॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्धमतानुसार परलोक, कर्मफल-भोग

(लेखक—पं० श्रीछेदीजी 'साहित्यालंकार')

बौद्धधर्ममें अहिंसा एवं सत्यको सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। कोई भी अनात्म एवं अनीश्वरवादी अहिंसापर बल नहीं लगा सकता है। वह सदैव हिंसक ही रहेगा। परलोक एवं कर्म-फलपर विश्वास रखनेवाले ही अहिंसक हो सकते हैं। इससे भी सिद्ध होता है कि बौद्धधर्ममें परलोक तथा पुनर्जन्म आदिको स्थान ही नहीं, वरं सर्वप्रथम स्थान दिया जाता है।

'धम्मपद' (धर्मपद) नामक ग्रन्थमें तथागत बुद्धने अनेक स्थानोंपर स्वर्ग, नरक, पाप, पुण्य, सद्गति, दुर्गति आदिका स्पष्ट शब्दोंमें उल्लेख किया है। यहाँ मैं कुछ बुद्ध-वचनोंको समासरूपसे उद्धृत कर रहा हूँ। ये सभी वाक्य 'धम्मपद' नामक ग्रन्थसे ही लिये गये हैं—

'हे भिक्षु! ध्यान कर और सावधान रह। अपने चित्तको बुराईकी ओर न ले जा, ताकि तुझे बेपरवाहीके बदले नरकमें लोहेका गोला न निगलना पड़े और जलते समय न चिल्लाना पड़े कि हाय! यह दुःख है।'

(धम्मपद व० ३७१)

'जो मिथ्या भाषण करता है, नरकको जाता है·····।'

(वचन ३०६)

'अच्छा आदमी इस दुनियाँमें भी खुश रहता है और परलोकमें भी खुश रहता है। उसे दोनों लोकोंमें सुख मिलता है।' (वचन १८)

'न आकाशमें, न समुद्रमें, न पहाड़ोंकी गुफाओंमें, न तमाम दुनियोंमें कोई ऐसी जगह है, जहाँ मनुष्य बुरे कर्मोंके फलसे बच सकता है।' (वचन १२७)

'पापी मनुष्य इस लोकमें और परलोकमें दुःख उठाता है। वह दोनों लोकोंमें कष्ट पाता है। जब वह अपने किये हुए बुरे कर्मोंको विचारता है तो उसे दुःख होता है और जब वह पापके रास्तेमें गुजरता है तो और भी अधिक दुःख उठाता है।' (वचन १७)

'कितने ही लोग फिर जन्म लेते हैं। पापी नरकको जाते हैं, पुण्यात्मा स्वर्गको जाते हैं। जो सांसारिक बाधाओंसे मुक्त हैं, वे 'निर्वाण पद' पाते हैं।' (वचन १२६)

'ज्ञान बिना ध्यान नहीं और ध्यान बिना ज्ञान नहीं। जो ज्ञान और ध्यान दोनों रखता है, वह 'निर्वाण'-के समीप है।' (वचन ३७२)

'इस शरीरके बनानेवालेको ढूँढ़नेमें मुझे अनेक जन्म लेने पड़े; क्योंकि उसका पता न पाया। और बार-बार जन्म लेना दुःखदायी है। किंतु हे शरीरकर्त्ता! अब तुझे देख लिया है। तू अब इस शरीरको फिर बना नहीं पायेगा। शरीरकी तमाम हड्डियाँ टूट गयी हैं, शहतीर टूट गयी है; चित्त निर्वाणके समीप पहुँचकर सारी वासनाओंको नष्ट कर चुका है।' (वचन १५३-१५४)

'कृपण लोग देवलोकमें नहीं जाते; केवल मूर्ख लोग ही उदारताकी प्रशंसा नहीं करते। बुद्धिमान् आदमी उदारतामें खुश रहता है और उसीके द्वारा परलोकमें सुख पाता है।' (वचन १७७)

'दुनियाँ अँधेरी है। बहुत कम आदमी इसमें देख पाते हैं। बहुत कम लोग जालसे छूटी हुई चिड़ियोंके समान स्वर्गमें जाते हैं।' (वचन १७४)

भगवान् बुद्धने सम्पूर्ण धम्मपदमें पाप, पुण्य, स्वर्ग, नरक, लोक-परलोक आदिका उल्लेख किया है और स्वर्गको अच्छा एवं नरकके भयसे बचनेका भी आदेश दिया है। मेरी दृष्टिमें इतने ही उदाहरणोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि बौद्धमतानुसार कर्म-फल-भोगका सम्यक् रूपसे प्रतिपादन किया गया है। उपर्युक्त वचनोंमें तीन वचन ऐसे भी हैं, जिनमें निर्वाण अर्थात् मुक्ति पानेका जिक्र किया गया है—

बौद्धधर्मके 'जातक-कथा' नामक ग्रन्थमें भगवान् बुद्धके अनेकों जन्मकी कथाएँ लिखी हैं। उन कथाओंकी घटनाओंसे भी पूर्णतः प्रमाणित हो जाता है कि पुनर्जन्म होता है और कर्मफलभोग भी निश्चित ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृतात्माओंका आवाहन, मेरे प्रयोग और अनुभव

(लेखक—डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभास्कर, दर्शनकेसरी)

हिंदू-धर्ममें जहाँ देवताओं और स्वर्गकी विशद चर्चा है, वहाँ राक्षस, दैत्य, भूत-प्रेत आदिका भी पर्याप्त उल्लेख है। रणभूमिमें मरे हुए सैनिकोंका वर्णन करते हुए योगिनी, वेताल, प्रेत, पिशाच आदिका भी यथेष्ट वर्णन मिलता है। तुलसीदासजीने जहाँ देवताओंकी वन्दना की है, वहाँ निम्न योनियोंमें पड़े रहनेवाले भूत-प्रेतादिको भी वे नहीं भूले हैं—

देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्ब।
बंदउँ किंनर रजनिचर कृपा करहु अब सर्ब॥
(मानस १। ७घ)

इसका कारण यह है कि अधिकांश व्यक्ति मृतात्माओंमें विश्वास करते हैं। हिंदू-धर्मके अतिरिक्त ईसाई और बौद्ध साहित्योंमें भी प्रेतादि योनियोंकी काफी चर्चा मिलती है। अंग्रेजी साहित्यमें शैतानका वर्णन आता है। मिल्टनने अपने 'पैराडाइज लौस्ट' में शैतान और नरकका लंबा वर्णन किया है। सभी धर्म और सम्प्रदाय अदृष्ट मनुष्येतर योनिको मानते आये हैं। निष्कर्ष यह कि आँखोंसे दिखायी देनेवाले इस भौतिक संसारके अतिरिक्त एक सूक्ष्म संसार भी है, जिसमें स्वर्ग और नरकका अस्तित्व है। मनुष्य मरकर किसी ऐसे स्थानपर जाता है, जहाँ उसके अच्छे या बुरे कार्योंके अनुसार नयी योनिका निर्णय होता है; वह अपने दुष्ट पाप कार्योंकी सजा पाता है और पुण्य कार्योंके लिये पुरस्कृत होता है। परमात्माके द्वारा उत्तम योनिमें नया जन्म पाता है। परलोकका विचार परम्परागत है।

पाश्चात्य देशोंमें भी परलोकके सम्बन्धमें पर्याप्त दिलचस्पी और रुचि रही है। प्रेतों और पिशाचोंका सम्बन्ध श्रद्धा और विश्वाससे ही है। विज्ञानकी कसौटीपर न देवी-देवता दिखाये जा सकते हैं और न दैत्य, राक्षस, किंनर, भूत और प्रेत ही। यूरोप और इंगलैंडमें भी प्राचीनकालके लोग परलोकमें पूरा विश्वास करते थे। शेक्सपीयरने अपने 'हैमलेट' नामक नाटकमें अंग्रेज जनताका १६वीं शताब्दीमें भूत-प्रेतोंमें विश्वास व्यक्त किया है। जो विज्ञानके भक्त केवल बुद्धि और तर्कमें ही विश्वास रखते हैं, उन्हें सम्बोधित करते हुए उन्होंने हैमलेटके मुँहसे यह कहलवाया है—

'होरेशियो, इस सृष्टिमें असंख्य बातें ऐसी हैं, जिनको अभी आपके दार्शनिकोंने कल्पनातक नहीं की है।'[1]

सचमुच परलोकका ज्ञान बुद्धिसे परे है। जो आस्तिक श्रद्धापूर्वक भगवान्‌में विश्वास करते हैं, वे ही परलोक और प्रेत-शरीरको मान सकते हैं। पाश्चात्य विज्ञान सतत विकासमान है और वहाँ परलोकके सम्बन्धमें भी नयी खोजें होती रहती हैं; पुरानी रूढ़ियोंका खण्डन और नये तथ्योंका मण्डन होता रहता है।

यूरोपमें परलोक-विषयक तथ्योंकी जानकारीकी जाँच संवत् १९०५ से प्रारम्भ हुई थी। जिन लोगोंके सिरपर प्रेत खेलते थे, उन्हें बैठाकर अथवा किसी कोमल या दुर्बल मनवालेको सुलाकर या अचेत करके, भाँति-भाँतिके प्रश्न करके, उनके मुखसे निकले हुए उत्तरोंकी सहायतासे परलोकसम्बन्धी नयी जानकारी मिलने लगी। लगभग ६० वर्ष पूर्व इंगलैंडमें 'होम' नामक एक प्रसिद्ध जिन्नी हुआ है। जिन्न, भूत, प्रेत, पिशाच इत्यादि सबमें उसकी पहुँच बतायी गयी है। उसी समय लंदनमें प्रो० विलियम क्रुक्स नामक प्रसिद्ध रसायनशास्त्री थे, जिन्होंने थेलियम नामक तत्त्वका पता लगाया था। प्रो० क्रुक्सको होमकी परलोक-विषयक जानकारीमें दिलचस्पी हुई। उन्होंने एक तुलादण्ड बनाया, जिसे उठानेमें ही उत्तरोत्तर भार बढ़ता जाता था। ज्यों-ज्यों दण्ड उठता था, एक सूई घूमकर घड़ीके चेहरेकी तरह अंकित एक चक्रपर उसे उठाये हुए भारका परिमाण सूचित करती थी। इस प्रकार उस यन्त्रमें आठ सौ मनसे अधिक उठानेकी गुंजाइश थी। इस यन्त्रकी ठीक जाँच करके इसे क्रुक्सने एक बिल्कुल खाली कमरेमें लगाया। होमकी कुर्सी द्वारके पास अपनी कुर्सीके साथ रखवायी और उनकी तलाशी लेकर होमको आज्ञा दी—

'अब आप अपने प्रेतसे कहिये कि अमुक चिह्नवाले तुलादण्डको जितना ऊपर उठा सके, उठावे।'

१. "There are more things in heaven and earth, Horatio, than is dreamt of in your philosophy." यह वाक्य हैमलेटने अपने पिताके प्रेत देखनेके शरीरके प्रसङ्गमें कहा है—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होमने प्रेतोंका आवाहन किया और तुलादण्ड धीरे-धीरे उठने लगा। प्रो० क्रुक्सके आश्चर्यकी सीमा न रही। वह तुलादण्ड इतना उठा, जितना होम-सरीखे दस-बीस बलवान् भी मिलकर नहीं उठा सकते थे। इससे प्रमाणित हो गया कि वास्तवमें प्रेत नामकी कोई अदृश्य शक्ति अवश्य है। इस संकेतसे प्रो० क्रुक्सने परलोक-सम्बन्धी ज्ञानका वैज्ञानिक अध्ययन किया और अपनी जाँचको प्रकाशित कराया, जिससे और वैज्ञानिक इस विषयका अनुसंधान करें और परलोकविद्याको विज्ञानोंमें स्थान मिल सके। पहले तो प्रो० क्रुक्सकी हँसी उड़ायी गयी, पर फिर और भी विचारक इस विषयपर गम्भीरतासे सोचने लगे। कई होनहार वैज्ञानिकोंने विज्ञानके नियमोंके अनुसार इस विषयकी छानबीन करनेके लिये एक परिषद् बनायी। यह परिषद् संवत् १९३९ में बनी थी और इसका नाम 'परान्वेषण परिषद्' (Society for Psychical Research) रक्खा गया था। इस परिषद्की देख-भालमें मेस्मरिज्म, भिन्न-भिन्न विधियोंसे प्रेतोंसे सम्बन्धके प्रयोग और हिप्नोटिज्म इत्यादिके अनेक प्रयोग किये जाने लगे। भूत-प्रेतों आदिका ढोंग कर जनताको छलनेवाले लोगोंका पर्दाफाश भी किया गया। पर धीरे-धीरे इन्होंने इतना काम किया कि आज पाश्चात्य जगत्में परलोक-अन्वेषण पर्याप्त मात्रामें हो चुका है। इस विषयपर साहित्य भी उपलब्ध है। बुद्धिवादी लोग भी परलोकको मानते हैं।

इस विषयकी खोजबीनकी दृष्टिसे प्रो० विलियम क्रुक्सने एक देहाती लड़कीका मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया, जो कुछ दिनसे एक विचित्र मूर्च्छा-रोगसे पीड़ित थी। उसे 'प्रेत-बाधा' नामक रोग कहा गया था। इस लड़कीका नाम था—कुमारी कुक। उन्होंने एक महीनेतक उस कन्याको अपनी प्रयोगशालामें रक्खा। इस लड़कीके स्थूलशरीरपर वीवी केटी किंग नामक किसी औरतका प्रेतात्मा आया करता थी। विलियम क्रुक्स साहबने प्रेतात्माका पूरा परिचय प्राप्त किया। उस प्रेतात्माको क्रुक्स साहबका व्यवहार इतना पसंद आया कि वह उस लड़कीके शरीरको मूर्च्छित कर उनसे गप्पें मारा करता था। प्रेतवाली-लड़की अजीब प्रकारसे व्यवहार करने लगती, आचार्यके साथ चाय पीती, उनके घरसे बच्चोंको उठा लाती और विचित्र तमाशे दिखाती। प्रो० क्रुक्सकी पुस्तक 'परलोक-विद्या-सम्बन्धी अनुसंधान' (Researches in Spiritualism) में ऐसे उनतीस प्रयोग दिये हैं। उस प्रेतात्माके मरनेके पहलेकी कथा भी इस पुस्तकमें दी है।* परलोक-सम्बन्धी ज्ञानकी यूरोपमें यह प्रारम्भिक कृति है।

उपर्युक्त संक्षिप्त इतिहाससे यह स्पष्ट है कि पाश्चात्य देशोंके लोग भी परलोक-विद्यामें रुचि रखते हैं। भारतवर्षमें तो परलोक-विषयमें बहुत पुराना विश्वास चला आता है। यों भूत-प्रेतों, चुड़ैल-डाकिनोंके नामपर यहाँ छल-छद्म भी काफी चला है और भोले-भाले लोग पर्याप्त ठगे जाते रहे हैं; किंतु वैज्ञानिक दृष्टिसे अब परलोक-विद्या मनोविज्ञानकी एक शाखा मान ली गयी है। ये लोग इस नतीजेपर पहुँचे हैं कि 'इन्द्रियातीत संसार अत्यन्त विस्तृत है। जितना कुछ हमें पाँच इन्द्रियोंसे गोचर होता है, उसकी अपेक्षा समस्त वस्तुकी सत्ता अनन्त, अपरिमित और असीम है। उसको जाननेके लिये हमें भीतरी इन्द्रियों और सूक्ष्म शरीरोंकी शिक्षा और विकासकी आवश्यकता है।' हमारे यहाँ योगसाधनद्वारा परलोक-विद्याकी प्राप्ति कोई नयी बात नहीं है।

हिंदू-धर्मकी यह मान्यता है कि ब्रह्माण्डमें मुख्य १४ लोक हैं। ऊपरके लोकमें सत्-आत्मा रहते हैं, जिसे 'स्वर्ग' कहते हैं। नीचे एक नरकलोक है, जिसमें दैत्य और भूत-प्रेत इत्यादि दुष्ट आत्मा नरकका दुःख भोगते रहते हैं। मध्यमें मनुष्यलोक है, जिसमें मनुष्य सत्कर्मद्वारा अगले जन्ममें स्वर्ग या नरकमें जानेका अधिकारी होता है। आत्माको परलोकमें रहकर अपने पाप-पुण्योंका फल भोगकर अवशिष्ट कर्मोंसे मनुष्य-लोकमें जाना पड़ता है। भारतीय विचारकोंके अनुसार सूर्य, चन्द्र या तारोंमें भी एक-एक सृष्टि है। ये भिन्न-भिन्न लोक हैं। सभी परलोक हैं। सभीमें जीवके निवासका विधान है। अच्छे या बुरे कर्मोंके अनुसार जीव उनमें पहुँचता है, सुख-दुःखका अधिकारी बनता है। परलोकमें रहनेवाले आत्माओंकी शक्ति साधारण मनुष्यकी अपेक्षा अधिक रहती है। जबतक जीवात्मा इस पृथ्वीलोकमें स्थूलशरीरमें रहता है, तबतक उसकी शक्ति कम रहती है, किंतु जब वह स्थूलशरीरको छोड़कर सूक्ष्म होकर पितृलोकमें जाता है, तो उसकी ताकत बढ़ जाती है। पितरलोकमें निवास करनेवाले आत्मा बड़े शक्तिशाली और अद्भुत शक्तिसम्पन्न सर्वज्ञ होते हैं, सबका पता रखते हैं और बहुत-सी गुप्त बातें अनायास ही प्रकट कर देते हैं। असाध्य रोगोंका हाल,

* श्रीरामदास गौड़के विचारोंपर आधारित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हत्याकाण्डोंके गुप्त रहस्य, षड्यन्त्र और भविष्यमें होनेवाली अनेक अद्भुत बातें उनसे प्रकट हो जाती हैं।

मेरे प्रयोग

पाश्चात्य देशोंमें तथा स्वयं अपने देशमें प्रेतात्माओंके आवाहनकी कई विधियाँ हैं। कई व्यक्ति तिपाया या तख्तीसे उन्हें बुलाकर सांकेतिक भाषामें बातचीत करते हैं। प्रेतके आनेपर तिपायेका एक पाँव उठता जाता है और तिपायेके माध्यमसे बातचीत होती जाती है। 'माध्यम' वह व्यक्ति होता है, जिसके द्वारा प्रेतात्मा आसानीसे अपनी बातें कह पाते हैं। वे सज्जन, सबके हितैषी, साधुवृत्ति, सबका भला चाहनेवाले, सबके सहायक, निष्पक्ष और निःस्वार्थ व्यक्ति होते हैं, जिन्हें प्रेतात्माओंका विश्वास प्राप्त हो जाता है। ऐसे व्यक्तियोंकी खोजमें काफी समय लगता है। योग्य माध्यमवाला व्यक्ति न मिले तो प्रेत आते ही नहीं और न उनसे बातचीत ही हो पाती है। सात्त्विक विचारों और साधु स्वभावके ऐसे माध्यमकी बड़ी खुशामदें करनी पड़ती हैं, तब वे प्रयोगमें सम्मिलित होते हैं। गलत माध्यम ले लेनेसे प्रेतात्मा आते नहीं। प्रेतात्मा माध्यमके सारे शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं। उसका मस्तिष्क और पूर्ण नाड़ी-मण्डल, विशेषतः कर्मकी नाड़ियाँ अपनी बातें कहनेवाले आत्माके वशमें हो जाती हैं। कभी-कभी माध्यम, आधा बेहोश, कुछ बेसुध-सा, खोया-खोया पागल-जैसा प्रयोक्ता और जिज्ञासुओंसे बातचीत करता है और कभी-कभी हाथको भी लिखने आदिके काममें ला सकता है। वह कुछ अचेत-सी अवस्था होती है। हाथोंको प्रेतात्मा उसी तरह चलाता है, जैसे लिखनेवालेकी कलम हो। माध्यमको पहले यह मालूम नहीं रहता कि कौन प्रेत आयेगा? वह क्या कहेगा? किस विषयमें उसकी दिलचस्पी होगी? प्रायः अबोध १२-१४ वर्षके बालक अच्छे माध्यम सिद्ध होते हैं। जो आदमी दुर्बल मन हों, विशेष चालाकी न करना जानते हों, वे भी अच्छे माध्यम सिद्ध हो सकते हैं।

कटोरीका प्रयोग

एक ऐसी चिकनी सतह लीजिये, जिसमें स्टेनलेस स्टीलकी छोटी हल्की कटोरी आसानीसे इधर-उधर सरक सकती हो। कटोरी भारी न हो, हल्की हो। यदि भारी होगी, तो प्रेतात्माको उसे सरकानेमें विशेष श्रम करना होगा और बातचीत कमजोर होगी।

उस सतहपर एक बड़ा गोला खींचिये, जिसका व्यास लगभग दो फुट हो। उस गोलेमें अंग्रेजीके छब्बीस अक्षर परिधिपर लिख दीजिये, जैसे चित्रमें दिखाये गये हैं—

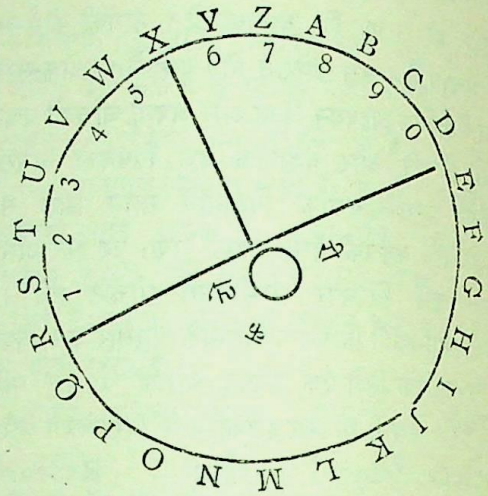

इस गोलेके अंदर कुछ स्थान लेकर एकसे नौ तककी गिनती और एक शून्य (०) बना लीजिये, जिनसे प्रेतात्मा संख्याका बोध करायेगा। रात्रिके समय कम प्रकाशवाले कमरेमें तीन व्यक्ति अपनी एक-एक अँगुली कटोरीपर रखकर बैठ जाइये। जो असली माध्यम हो, वह इस प्रकार करे—

कमरेके किवाड़ चारों ओरसे बंद कर एक दरवाजेका तनिक-सा हिस्सा खोले। कटोरीको उठाये। उसमें एक माचिसकी तीली जलाकर स्वच्छ करे। कटोरीको एक हाथसे पकड़े हुए और दूसरे हाथसे जलती हुई तीलीको लिये-लिये गोलेके मध्यमें धीरेसे रख दे। फिर शेष दोनों व्यक्ति भी अपनी-अपनी एक-एक अँगुली उसी कटोरीपर रख लें। माध्यमसहित कुल तीन अँगुलियाँ अब कटोरीपर रहेंगी। यह प्रयोग रात्रिमें होता है। रोशनी गुल कर दीजिये और धीरेसे अंग्रेजीमें कहिये—'कोई आत्मा इस कटोरीमें प्रवेश करे' (Some spirit should come)। कई बार इसी वाक्यको दुहराइये। फिर थोड़ी देर बाद पूछिये—'क्या आप आ गये हैं?' (Have you come ?) इसे भी कई बार दुहराइये।

आप पायेंगे कि कटोरी स्वयं चलकर पहले Y अक्षर, फिर E अक्षर और अन्तमें S अक्षरपर पहुँचकर 'Yes' कह देगी। अंग्रेजीमें किसी प्रकारकी मात्राके न होनेसे प्रेतात्माको अपनी बात कहनेकी बड़ी सुविधा रहती है। अब आप आगे पूछिये —'आपका नाम क्या है? (What is your name

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Please ? या Please tell me your name ?) कटोरी थोड़ी-थोड़ी देर बाद एक-एक अक्षरपर जायगी, अक्षरपर जाकर हर बार बीचमें जरा देरके लिये रुकेगी, फिर गोलेमें लिखे अक्षरोंतक पहुँच-पहुँचकर अपना नाम सूचित करेगी। फिर आप पूछिये, (Which disease brought your death ?) (आप किस रोगसे मरे थे ?) वह आपको रोगका नाम भी इसी प्रकार एक-एक अक्षरपर जाकर सूचित करेगी। प्रायः ये आत्मा भटकनेवाले, दुखी और अतृप्त होते हैं, जिनका मोक्ष नहीं होता या जिन्हें कुछ दिनके लिये नरककी यन्त्रणाएँ भोगनी पड़ती हैं। इसलिये उत्तर आता है—Murder, heartfailure या Suicide (हत्या, हृदयगति रुकनेसे मृत्यु या आत्महत्या)। इस प्रकार मरनेवाले व्यक्ति भूत-प्रेतकी योनिमें बहुत दिनोंतक दुखी भटकते रहते हैं और अपने दुःखकी करुण कहानी कहना चाहते हैं।

फिर आप उस प्रेतात्मासे उस-सम्बन्धी सारी जानकारी पूछिये। वह जल्दी-जल्दी सब कुछ बतलाता जायगा। कोई ५ मिनिट बाद आप अपने विषयमें भूत, भविष्य या वर्तमान-के बारेमें उससे कोई भी प्रश्न कीजिये। आपको कुछ-न-कुछ उत्तर मिलेगा। अक्सर इनकी बहुत-सी बातें सत्य होती हैं। बीते हुए युगके विषयमें कही गयी बातें, तो प्रायः शत-प्रतिशत ठीक मिली हैं, पर भविष्यको बतानेमें अवश्य थोड़ी-बहुत गलती रह जाती है। यदि आत्मा किसी बड़े महापुरुषका है, तो वह बहुत कुछ ठीक बातें बता देता है। यदि किसी छोटी उम्रके लड़केका है तो भविष्यवाणियाँ कुछ असत्य भी हो जाती हैं।

कई बार ये प्रेतात्मा खोयी हुई चीजोंका पता, परीक्षामें पास या फेल होना, व्यापारकी तेजी या मन्दी, विवाह, या पुत्र-पुत्री होनेकी सम्भावना भी बता देते हैं। एक बार एक व्यक्ति मेरे पास आये, जिनकी पत्नीकी पाँचकी सोनेकी जंजीर कहीं खो गयी थी। बड़े परेशान थे कि कौन चोर घरमें घुसकर चुरा ले गया। प्रेतात्माको बुलाकर पूछनेपर इस प्रकार बातचीत चली—

'क्या सोनेकी जंजीर इस घरसे बाहर है ?'
उत्तर मिला—'नहीं !'
'सोनेकी जंजीर किस कमरेमें है ?'
उत्तर मिला—'पासवाले कमरेमें।'
'उत्तर, दक्षिण, पश्चिम, पूर्व, किस दिशामें ?'
उत्तर मिला—'पूर्वमें !'
'पूर्वमें तो एक बड़ा सन्दूक है। वह जंजीर दिखायी नहीं देती ?'
उत्तर आया—'Behind box' (सन्दूकके पीछे)।
'जंजीर कौन चुराकर ले गया था ?'
उत्तर आया—'Rats' (चूहे)।

सन्दूकके पीछे खोज-बीन की गयी। उसके पीछे कई चूहोंके बिल थे। उन्हीं बिलोंमेंसे एकके पास वह जंजीर पड़ी हुई थी।

प्रेतात्मा प्रायः सर्वज्ञ होते हैं। वायुमें ईथरके माध्यमसे एक क्षणमें वे दुनियाके किसी भी कोनेमें जाकर नयी-नयी जानकारियाँ दे सकते हैं। उनसे सैकड़ों प्रश्न पूछे जा सकते हैं। लेकिन यदि प्रेतात्मा जाना चाहता हो, तो यह कहेगा 'I am going. I am going' 'मैं जा रहा हूँ। मैं जा रहा हूँ'—''ऐसे बताकर खुले द्वारकी तरफ कटोरी भागनेकी कोशिश करेगी। आप अँगुलीको बहुत ही हल्केसे स्पर्श किये रहें, तो यह बखूबी दौड़कर द्वारके बाहर निकल जायगी।

एक बार एक व्यक्तिने अपने पुत्रको एक हजार रुपये देकर बैंकमें जमा कराने भेजा। संयोगसे लड़का न लौटा। पाँच बज गये, पर लड़का वापस न आया। उसे भय हुआ कि कहीं किसी चोरने तो उसे नहीं पकड़ लिया है ? जेब तो नहीं कट गयी ? हत्या तो नहीं हो गयी है ? चारों ओर पूछ-ताछ की, पर लड़का नदारद। बड़ी फिक्र हुई। वह भागा-भागा मेरे पास आया। रात्रिमें प्रेतात्माओंका आवाहन किया गया। उनसे बातचीत इस प्रकार हुई।

'राकेश जीवित है ?'
उत्तर—'हाँ !' (Yes)
'क्या वह इसी शहरमें है ?'
उत्तर—'नहीं' (No)
'राकेश किस शहरमें है ?'
उत्तर आया—'देहली' (Delhi)
'क्या उसके पास रुपया है ?'
उत्तर आया—'हाँ' (Yes)
'उसके पास पूरा रुपया है ?'
उत्तर—'नहीं !' (No)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'उसने कितना रुपया खर्च किया है ?'
उत्तर आया—'लगभग सौ रुपये ।'
'क्या वह अकेला है ?'
उत्तर आया—'नहीं !'
'फिर उसके साथ कितने आदमी और हैं ?'
उत्तर—'दो और मित्र ।' (Two friends)
'वे दिल्लीमें किस स्थानपर हैं ?'
प्रेतात्माने एक होटलका नाम बताया ।
'वे कितने दिन वहाँ ठहरेंगे ?'
उत्तर आया—'सिर्फ आज ।'
'आगे कहाँ जायँगे ।'
उत्तर आया—'उन्होंने अभी तय नहीं किया ।'
'वे कितने दिनोंमें लौटेंगे ?'
'जब रुपया समाप्त हो जायगा ।'

और सचमुच लगभग दस दिन बाद वे भागे हुए अड्डेके कई स्थानोंपर आनन्द मनाकर लौट आये ।

प्रेतात्मा आपके मन्तव्यको पहचानते हैं । यदि उनसे हँसी-ठट्ठा किया जाय, तो वे नाराज हो जाते हैं और बड़ा परेशान करते हैं । एक बार उनसे हँसी करनेके कारण घरका एक पर्दा जल गया, चीजें इधर-उधर गिर गयीं; एक दुष्ट आत्मा घरमें ही रहने लगा । वह तरह-तरहकी ध्वनियाँ करने लगता । हवन-कीर्तन, धूप-दीप आदि जलते रहनेसे वे दूर रहते हैं । उन्हें तभी बुलाना चाहिये, जब कोई निःस्वार्थ काम हाथमें हो और उसके सम्बन्धमें जानकारी बेहद जरूरी हो जाय ।

वे ही प्रेतात्मा इधर-उधर भटकते रहते हैं, जो जीवनमें अतृप्त रहते हैं । उनकी ममता और आसक्ति पृथ्वी-पर रहनेवाले अपने पुत्र-पुत्री तथा सम्बन्धियोंमें लगी रहती है और प्रायः वे उन्हींके इर्द-गिर्द चक्कर लगाते रहते हैं । जिनका जीवन शान्त और संतोषमय रहता है, मरनेसे पूर्व जो सब प्रकारके माया, ममता और मोहसे मुक्त हो जाते हैं, जिनकी मनोवृत्ति परोपकार और ईश्वर-चिन्तनकी ओर विशेषरूपसे रहती है, वे मोक्ष प्राप्त करते हैं—

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत ।
अवाधमानि जीवसे ॥
(ऋग्वेद १ । २५ । २१)

अर्थात् 'पुत्रैषणा, वित्तैषणा तथा लोकैषणाकी सांसारिक भावनासे हम उन्मुक्त हों; क्योंकि इनसे हमारा आत्मा पतित होकर दुःख पाता है ।'

अच्छा व इन्द्रं मतयः स्वर्युवः
सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्त जनयो यथा पतिं
मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥
(सामवेद ३७५)

अर्थात् 'मनुष्यका जितना लौकिक कामनाओं—धन आदि-के लिये तथा स्त्री आदिके प्रति प्रेम होता है, उतना ही यदि वह ईश्वरसे प्रेम करे, तो निस्संदेह संसारसे रक्षा और परमा-नन्दकी प्राप्ति हो सकती है ।'

परलोक-विद्यामें संकट

(लेखक—श्रीमोहनजी वार्ष्णेय)

आये दिन परलोक-विद्याके अधूरे अनुभव पत्रोंमें प्रकाशित होते रहते हैं, जिनसे प्रेरित होकर जनसाधारणकी इस ओर रुचि हो जाती है और वे इसे बिना किसी संरक्षकके करनेसे महान् संकटमें पड़ जाते हैं तथा हानि उठाते हैं ।

वैकुण्ठवासी पूज्य श्रीद्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी इस विद्याके उच्चकोटिके मर्मज्ञ थे । श्रीप्रभु-कृपासे मुझे उनका एकमात्र शिष्य रहनेका सौभाग्य प्राप्त है । जनहितकी दृष्टिसे मैं इस विद्यामें आनेवाले संकटोंकी ओर जनताका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ ताकि अनजाने कोई महानुभाव अपने लिये विपत्ति मोल न ले लें । मैं यह भी स्पष्ट बता देना चाहता हूँ कि ये विद्याएँ श्रीप्रभुकी ओर जानेमें बाधक बन जाती हैं । मनुष्य सिद्धियोंके जालमें फँसकर रह जाता है । इसलिये बड़ी सतर्कता एवं संरक्षणकी आवश्यकता रहती है । सबसे मुख्य आवश्यकता इस विद्यामें मृतात्माओं आदिके आवाहनसे पूर्व अपने चक्रके संरक्षणके प्रबन्धकी है । जिनपर किन्हीं शक्तिशाली देवताकी कृपा विशेष है, वे उनके संरक्षणमें अपना चक्र आसानीसे चला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हैं; अन्यथा किन्हीं उच्चलोकके अपने सम्बन्धित आत्मासे भी सहायता मिल जाती है; परंतु उनकी शक्ति सीमित होती है। सातवें लोकके आत्मा नीचेके छः लोकोंमें जानेको स्वतन्त्र हैं, पर वे ऊपर (दिव्य धाम) नहीं जा सकते। इसी प्रकार अन्य लोकोंके आत्माओंके लिये भी समझें कि वे ऊपर नहीं जा सकते, नीचे जा सकते हैं। यदि आपके चक्रका संरक्षण कोई नीचेके लोकके आत्माके हाथमें है तो वह ऊपरके आत्मापर शासन नहीं कर सकता। इसीसे चक्रपर अधिक बलवान् आत्मा आकर, झूठ बोलकर आपको धोखा दे सकते हैं और हानि पहुँचा सकते हैं। हमारे एक परिचित कर्मकाण्डी ब्राह्मण महानुभावके घरमें इसी प्रकार आकर चालीस आत्माओंने डेरा लगा दिया और उनके घरको तहस-नहस कर दिया।

यदि चक्रकर्त्ता भक्तिभाव एवं शुद्धविचारके महानुभाव हैं, तो ऐसी जगह 'ब्रह्मराक्षस'के आनेकी आशंका बनी रहती है; क्योंकि पवित्र चक्रपर उसको चैन मिलता है। ब्रह्मराक्षस वे मृत ब्राह्मण होते हैं जो किसी सिद्धिमें असफल होकर मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं। इनपर वे ही चक्रकर्त्ता शासन कर सकते हैं, जो इनकी असफल सिद्धिसे अधिक बल रखते हों, अर्थात् शक्तिशाली सिद्ध हों या श्रीप्रभुके विशेष कृपापात्र हों। ये ब्रह्मराक्षस साधारण चक्र-संरक्षकोंसे नहीं रुकते तथा बिना बुलाये आ जाते हैं और मनचाहा करनेमें समर्थ होते हैं। इनमें अच्छे स्वभावके भी होते हैं, बुरेके भी। बुरे स्वभाववालोंसे घोर विपत्तिका सामना करना पड़ जाता है और इनसे बचाना हर-किसीकी सामर्थ्यसे बाहर होता है। इसीसे विनम्र निवेदन है कि प्लैंचेट आदिकी विद्या जितनी आसान है, उतनी ही भयावह भी है। इसलिये सोच-समझकर इस ओर लगना चाहिये। सर्वसाधारणको सचेत करनेकी दृष्टिसे ही यह लेख लिखा है। इस बारेमें किसी प्रकारका पत्रव्यवहार नहीं किया जायगा।

मृतात्माका आवाहन क्या सत्य है ?

एक सज्जन पूछते हैं—'मृतात्माओंका आवाहन किया जाता है। आत्मा आते हैं। बात करते हैं। यह कहाँतक सत्य है ?'

इसका उत्तर है कि मृतात्मा आ सकते हैं, आते हैं। बिना बुलाये भी स्वेच्छासे, किसी भी वासना या ममताको लेकर, उनमेंसे जिनकी शक्ति हो, वे प्रकट दिखायी भी दे सकते हैं। तिपाई, प्लैंचेट तथा माध्यम द्वारा भी बात कर सकते हैं। यह वास्तवमें सत्य है। परंतु मृतात्माओंको बुलाने, बात करने-करानेके जितने प्रसङ्ग कहे-सुने जाते हैं, वे सब सत्य ही हों—ऐसी बात नहीं है। इसमें विभिन्न कारणोंसे बहुत झूठ-फरेब चलता है। पैसे कमाने, ठगने, अन्य स्वार्थ साधन करने, अपनी महत्ता दिखलाने, नाम-यश प्राप्त करने या किसीको डरा-धमकाकर छिपे तौरपर वैर लेने आदिके लिये मिथ्या ढोंग रचे जाते हैं। विदेशोंमें ऐसे बहुत-से जालसाज लोगोंपर मुकदमे चलाये जाकर उन्हें सजा दी गयी है। अब भी ऐसे लोग पकड़े जाते हैं (श्री Simeon Edmunds लिखित 'Spiritulism, a critical survey' नामक पुस्तकका 'Frand' शीर्षक अध्याय देखिये।) मुझे तो अपने देशके ही प्रसिद्ध आत्मा-आह्वानकारी कुछ सज्जनोंकी सत्यतापर सप्रमाण संदेह है। परंतु सभी मिथ्यावादी हैं, ऐसी बात भी नहीं है। कई जगह तो उनके अपने मस्तिष्ककी कमजोरी, प्रबल भावना, माध्यमके चित्तकी दुर्बलता आदिके कारण भी धोखा हो जाता है। समझा जाता है—आत्माका आना, पर वस्तुतः होती है—केवल अपने या दूसरेके मस्तिष्ककी कल्पना ही। तथापि यह सर्वथा अनुभूत सत्य है कि 'आत्मा आते हैं और बात भी करते हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोकगत आत्माओंसे सम्पर्क

(लेखक—श्रीश्यामसनोहरजी व्यास, एम्०एस्-सी०, बी० एड्०)

मरणोपरान्त जीवनपर विश्वके दार्शनिकोंने पर्याप्त विचार-विमर्श किया है; पर अन्तिम परिणाम कुछ नहीं निकला है । आत्मा, पुनर्जन्म, भूत-प्रेत, परलोक आदि मनुष्यके लिये सदैवसे रहस्यके विषय रहे हैं । यद्यपि भारतीय ऋषि-मुनियोंका यह सुनिश्चित तथा अनुभूत सिद्धान्त है कि आत्मा नित्य है और जीवात्माको पुनर्जन्म तथा परलोककी कर्मानुसार प्राप्ति होती है ।

पाश्चात्य जगत्में इसकी खोज चल रही है ।

नार्मन विन्सेन्ट पील नामक विद्वान्ने 'जीवनभर जीवित बने रहिये' (Stay alive all your life) नामक एक पुस्तक लिखी है । उसमें उन्होंने मृत्युके उपरान्त जीवन होनेपर प्रकाश डाला है । इस पुस्तकके अनुसार, प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडीसन मृत्युके बाद जीवनमें विश्वास रखते थे । वे मानते थे कि आत्माका पृथक् अस्तित्व है, जो मृत्युके उपरान्त शरीरको छोड़ जाता है । मृत्युके समय एडीसनके वाक्य थे—'अहा, आगे कैसा सुन्दर लग रहा है ।' पील महाशयके अनुसार कई मरणोन्मुख व्यक्तियोंने उन्हें बताया है कि 'उन्हें आश्चर्यजनक ज्योति दिखायी पड़ रही है और विचित्र संगीत सुनायी दे रहा है ।' कई मरनेवालोंने बताया था—कि 'उन्हें ऐसे चेहरे दीख रहे हैं, जिन्हें वे पहचानते हैं ।' इन मरनेवालोंकी आँखोंसे बहुधा संदिग्ध आश्चर्य टपकता था ।

परलोक-विद्यामें रुचि रखनेवाले जिज्ञासुओंके समक्ष प्रमुख समस्या यह है कि मृत-आत्माओंका आवाहन कैसे किया जाय ? कौन-कौन-से ऐसे साधन हैं, जिनके द्वारा मृत-आत्माओंसे शीघ्र सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है ? कुछ प्रयोग ऐसे हैं, जिनके द्वारा मृत-आत्माओंसे शीघ्र सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है । इन प्रयोगोंके पीछे श्रद्धा, साहस, उत्कण्ठा, विश्वास आदि गुण प्रयोगकर्त्तामें विद्यमान होने चाहिये ।

सबसे सरल विधि 'तिपाईद्वारा आत्माओंका आवाहन'के नामसे प्रसिद्ध है । हल्की तीन पायेकी गोल मेज लीजिये । इनके पाये किनारोंसे लगे हुए नहीं, बल्कि छः इंच अंदरकी तरफ हों । यदि गोल न मिले तो साधारण हलकी मेजसे ही काम लिया जा सकता है । उसके एक पायेके नीचे लकड़ी लगा देनी चाहिये, जिससे थोड़े संकेतसे वह हिल-डुल सके । पायोंके नीचेका सिरा गोल कुण्डीदार रखना चाहिये । मेजके चारों ओर कुर्सियोंपर आत्माओंका आवाहन करनेवाले बैठ जायँ और उस मृत-आत्माका ध्यान करें, जिसका आवाहन करना हो । पंद्रह मिनटतक उस आत्मासे वार्तालाप करनेके लिये मानसिक प्रार्थना करते रहें ।

कुछ समय पश्चात् मेजमें एक कँपकँपी-सी उत्पन्न होगी और एक पाया खटपट करने लगेगा । यह खटपट उस आत्माके आगमनकी सूचना देती है । तदनन्तर आप आत्मासे प्रश्न कीजिये, जैसे—आप किस वर्णके हैं । अगर एक बार पाया खटके तो समझिये मृत-आत्मा ब्राह्मणका है । दो बार खटके तो क्षत्रियका इत्यादि । खटकोंके अनुसार वर्णमाला बनाइये और मृतक आत्माओंसे वार्तालाप करिये ।

दूसरी विधि प्लैन्चेटकी है । यह पानके आकारका एक लकड़ीका टुकड़ा होता है । इसमें पीछेकी ओर सब तरफ घूमनेवाले दो छोटे-छोटे पहिये लगे रहते हैं । नोंककी ओर एक छेद होता है, जिसमें पेन्सिल लगा दी जाती है । मेजपर एक कोरा कागज रखकर उसपर यह यन्त्र रख दिया जाता है । प्रयोगकर्ता अपनी अँगुलियोंको उस यन्त्रपर रखता है और एकाग्रतापूर्वक उस आत्माका ध्यान करता है, जिसको बुलाना है । थोड़ी देरमें हाथोंमें हरकत-सी होती है और प्लैन्चेट आगे चलने लगता है । ऐसा मृत-आत्माके आनेके कारण होता है । तत्पश्चात् मृत-आत्मा प्रयोगकर्ताके प्रश्नोंका उत्तर पेन्सिलद्वारा लिखकर देता है ।

तीसरी विधिको 'स्वयंलेखन' कहा जाता है ।

इसमें प्रयोगकर्त्ता हाथमें पेन्सिल लेकर और मेजपर कागज रखकर बैठता है । तदनन्तर वह किसी प्रेतात्माका ध्यान करके उसे आवाहन करता है । यदि मृतात्मा आ गया तो पेन्सिल हाथके सहारे अपने-आप चलती है और प्रयोगकर्त्ताके प्रश्नोंका उत्तर देती है ।

इसमें प्रयोगकर्ता माध्यम है । प्रयोगकर्त्ताका सरल चित्त, भावुक एवं दृढ़ विश्वासी होना आवश्यक है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौथी विधि भी सरल तथा बहुप्रचलित है।

एक एकान्त कमरा प्रयोगके लिये चुन लिया जाता है। कमरेको जलद्वारा पवित्र कर धो लिया जाता है। इस प्रयोगमें एक बालक या बालिकाको चुना जाता है, जिसकी आयु १०–१२ वर्षके लगभग हो। जिस मृत व्यक्तिकी आत्माका आवाहन करना हो, उसकी तस्वीर कमरेमें रख दी जाती है।

कमरेमें धूप-दीप तथा अगरबत्तियाँ जलाना आवश्यक है। एक स्वच्छ दरीपर लड़का प्रयोगकर्त्ता तथा दर्शक बैठ जाते हैं। बालकके सामने वर्णमालाका पट्ट रख दिया जाता है। तत्पश्चात् सभी व्यक्ति मृत-आत्माका ध्यान करते हैं। जब प्रेतात्मा आता है तो वह बालकके माध्यम-द्वारा प्रयोगकर्त्ताके प्रश्नोंका उत्तर वर्णमालाके पट्टकी सहायतासे देता है। बालक भावावेशमें अपनी अँगुलियोंको पट्टपर रखता जाता है और इन शब्दोंको जोड़कर प्रश्नोंके उत्तर प्राप्त किये जाते हैं।

अन्तिम विधि यह है कि आत्मा किसी माध्यमद्वारा आता है और अपना संदेश देता है। माध्यमके शरीरमें उस आत्माका कुछ समयके लिये प्रवेश होता है और वह जिज्ञासु व्यक्तियोंके प्रश्नोंका उत्तर देता है।

आत्माओंसे साक्षात्कार-सम्बन्धी प्रयोग भारतमें ही नहीं वरं विदेशोंमें भी हो रहे हैं। भूत-प्रेतोंके अस्तित्वमें अंग्रेज लोग भी बहुत विश्वास करते थे। द्वितीय महायुद्धके समय एक ब्रिटिश वैमानिक भूत कतिपय अन्य वैमानिकोंके साथ जर्मनीपर बम-वर्षा करता रहता था। इसकी चर्चा ब्रिटिश वायुसेनाके एयर मार्शल लार्ड डाबडिंगने भी अपने एक लेखमें की थी। परलोकगत आत्माओंके चित्र भी खींचे जा सकते हैं। प्रत्यक्ष दर्शन, उनसे बात-चीत करना, उनका स्पर्श करना आदि भी सम्भव है।

इंगलैंड और अमेरिकाकी कई आध्यात्मिक संस्थाएँ परलोक-विद्यामें रुचि ले रही हैं। प्रेतात्माओंका अस्तित्व तर्कसे कम, पर श्रद्धा-विश्वास धारण करनेसे सहज सिद्ध किया जा सकता है।

सर आर्थर कानन डायल, जी० एम० स्मिथ, सर आलिवर लाज एवं पील आदि परलोक-विद्यामें रुचि रखनेवाले विद्वान् हुए हैं।

साधकको विश्वास तथा धैर्यपूर्वक उपर्युक्त प्रयोगोंको करना चाहिये।

आत्मा जड-जगत्से परे है!

भौतिकवादका अन्धानुकरणकर हम आध्यात्मिक तत्त्वोंकी उपेक्षा नहीं कर सकते।

अच्छी संतानके लिये क्या करे

हो सके तो गर्भाधानके समय सावधान रहकर पति-पत्नी दोनों सत्-संतान—पुत्र या कन्या-(जिसकी इच्छा हो) की प्राप्तिके लिये मनमें दृढ़ संकल्प करे।

जिस प्रकारकी वीर, धीर, भक्त, ज्ञानी, योगी, उदार आदि भावोंकी संतान अपेक्षित हो, उसी प्रकारके पुरुषों या स्त्रियोंके चित्र जिस कमरेमें गर्भिणी स्त्री रहती और सोती हो, उसमें लगावे।

गर्भकालमें स्त्री पुरुष-सहवास कभी न करे। ईश्वरनिन्दा, लड़ाई, कलह, विवाद, दुःख, शोक, विषाद, भय, क्रोध, हिंसा, असत्य, चोरी, छल, निन्दा-चुगली आदिसे सर्वथा बचे।

उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, पुराण, श्रीरामायण आदिकी कथाएँ, भक्तगाथाएँ रोज सुने-पढ़े। सदा प्रसन्न रहे। सेवा-शुश्रूषा, सात्त्विक कर्म, सात्त्विक बात-चीत करे। सात्त्विक सादा भोजन करे। तामसिक वस्तुएँ—मांस, अण्डे, मछली, मद्य, प्याज-लहसुन तथा जूँठन कभी न खाय। शारीरिक श्रम करे, पर ऐसा श्रम न करे जो गर्भविघातक हो।

रोज बड़ोंको प्रणाम करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करे। हो सके तो प्रतिदिन भगवान्की पूजा करे। विष्णुसहस्रनाम आदिका पाठ करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराणोंमें वर्णित पुनर्जन्मकी कुछ कथाएँ

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

(१)

प्रह्लादजीका पूर्वजन्म

पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय १७४ (श्लोक ११ मोर संस्करण तथा वेंकटेश्वर एवं बंगवासी संस्करण भी)के अनुसार ये वसुदेव नामके एक ब्राह्मण थे। इन्होंने विधिपूर्वक नृसिंह-चतुर्दशी-व्रतका पालन किया था; अतः जन्मान्तरमें परम श्रेष्ठ विष्णुभक्त हुए और भगवान् नृसिंहकी कृपाके परम पात्र बने।

पद्मपुराण, भूमिखण्ड, अध्याय ५ के अनुसार ये द्वारकावासी शिवशर्माके पुत्र सोमशर्मा नामके ब्राह्मण थे। उनके पूर्व मृत चारों भाई तथा पिता परम सिद्ध थे। वे भगवान् विष्णुके अत्यन्त भक्त थे। हरिहरक्षेत्रमें रात-दिन शुद्ध भावसे रहकर तपस्या करते हुए भगवान्‌की आराधना कर रहे थे। वे सदा भगवान्‌के ध्यानमें लीन रहते और कभी भी सोते नहीं थे। वे सभी आशा-तृष्णाओंका त्याग कर योगासनपर बैठे रहते थे। संयोगकी बात थी, उनका अन्तिम समय आ पहुँचा। इसी समय दैत्योंकी एक टोली भी उनके तपमें विघ्न डालने आ गयी। दैत्योंके भयानक शब्द कानमें जाते ही उनकी मृत्यु हो गयी; अतः दैत्योंकी आंशिक स्मृतिसे गीता ८। ९ के सिद्धान्तानुसार उनका प्राण दैत्यराज हिरण्यकशिपु-की पत्नी कयाधुमें प्रविष्ट हुआ। पर वहाँ भी साधनानुसार गर्भकालमें ही नारदजीके दिव्य सात्त्विक, आध्यात्मिक उपदेश उन्हें सुननेको मिलने लगे। उन्हें अपने पूर्वजन्मके साधनादि कर्म भी स्मृत हो गये और जन्मके बाद उन्हें भगवान् नृसिंहके साक्षात् दर्शन एवं उनकी पूर्ण कृपाकी प्राप्ति हुई[2]।

संस्मारपूर्वकं सर्वं चरितं शिवशर्मणः॥
प्रागहं सोमशर्माख्यः प्रविष्टो दानवीं तनुम्।
प्रह्लादेति च वै नाम तस्याख्यानं महात्मनः।
बाल्यं भावं गतो विप्राः कृष्णमेव व्यचिन्तयत्॥
(पद्मपुराण भूमि० ५। १९-२०, ३१-३२)

'कयाधुका यह पुत्र जातिस्मर था। उसे अपने पूर्वजन्मका सम्पूर्ण चरित्र स्मरण हो आया। उसने याद किया, वह पहले शिवशर्माका सोमशर्मा नामक पुत्र था और देहत्यागके अनन्तर दानव-शरीरमें प्रविष्ट हुआ। हे ब्राह्मणो! इस दानवशरीरमें इस महानुभावका नाम प्रह्लादके रूपमें विख्यात हुआ और यह (पूर्वजन्मके संस्कारोंके कारण) बालकपनमें ही श्रीकृष्णका विशेषरूपसे स्मरण करने लगा।'

(२)

देवर्षि नारदके पूर्वजन्म

अकेले श्रीमद्भागवत ग्रन्थमें ही नारदजीके कई पूर्व-जन्मोंका वर्णन आया है। भागवतके ७वें स्कन्ध १५वें अध्यायमें वे युधिष्ठिरसे कहते हैं कि 'मैं पूर्व महाकल्पमें एक गन्धर्व था। उस समय मेरा नाम उपबर्हण था और गन्धर्वगण मेरा बड़ा सम्मान करते थे। मैं देखनेमें बहुत ही सुन्दर था तथा मेरे शरीरसे एक प्रकारकी दिव्य सुगन्ध निकलती रहती थी। एक बार देवसत्रमें मुझे भगवद्-गुण-गानके लिये बुलाया गया। पर मैं वहाँ अप्सराओंके साथ संसारी गीतोंको गाते हुए पहुँचा। इससे रुष्ट होकर प्रजा-पतियोंने मुझे शूद्रयोनिमें जन्म लेनेका शाप दे दिया। उन लोगोंके शापके कारण मैं दासीपुत्र हो गया। (भागवत ७। १५। ६९—७३)

'पर भगवत्कृपासे उस जन्ममें बाल्यकालमें कुछ ऐसा संयोग बन गया कि मैं चातुर्मास्यमें एक जगह ठहरे हुए

१. आनन्दाश्रम पूनाके संस्करणमें यह १७०वाँ अध्याय है। द्रष्टव्य श्लोक १०।

२. कहीं-कहीं इन्हें ही संह्लाद होना भी कहा है और पुनः दूसरे जन्ममें प्रह्लाद होना लिखा है, और इनकी माताका नाम 'कमला' बतलाया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्माओंकी सेवामें लग गया। मैं बालोचित चाञ्चल्यसे दूर रहकर उन महात्माओंकी सेवामें लगा रहता। मेरे स्वभावसे वे मुनिजन बहुत प्रसन्न हो गये। इस प्रकार उनकी सेवा, उच्छिष्ट भोजन तथा सम्पर्कके द्वारा उनके समीप बैठकर नित्य श्रेष्ठ ज्ञान-वैराग्ययुक्त उनके मुखसे हरिकथा सुनते-सुनते मेरा हृदय शुद्ध हो गया। चातुर्मास्यके अन्तमें चलनेके समय उन्होंने उस दिव्य ज्ञानका मुझे उपदेश भी कर दिया, जिससे विश्व मायामय एवं तदनन्तर भगवद्रूप दीखने लग जाता है।

'कुछ दिनोंके बाद सर्पदंशसे मेरी माताकी मृत्यु हो गयी। मैं चलते-चलते एक सघन वनमें पहुँचकर पीपल-वृक्षके नीचे बैठकर भगवान्‌का ध्यान करने लगा। मेरा ध्यान जम गया तथा प्रभुके क्षणिक दर्शन हुए। पुनः आकाशवाणी हुई कि 'तुम शीघ्र ही अब ब्रह्माजीके पुत्ररूपसे उत्पन्न होकर मेरा सदा दर्शन कर सकोगे।' शरीर छूटनेपर मैं भगवत्पार्षद-देह धारण कर, कल्पान्तमें मैं ब्रह्माजीके हृदयमें प्रवेश कर गया। पुनः हजार चतुर्युगी (१४ मन्वन्तर जितनी लंबी अवधिकी रात्रि) बीतनेपर सृष्टिके आरम्भमें मरीचि आदि ऋषियोंके साथ ब्रह्माजीकी गोद (उत्संग) से मैं प्रकट हुआ। भगवान्‌के द्वारा यह बीणा भी प्राप्त हुई, जिसके सहारे मैं अनवरत हरिनाम-यशका कीर्तन करता सर्वत्र अव्याहत गतिसे विचरता हुआ चलता हूँ।' (भागवत १। अध्याय ५-६)

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें यह कथा दूसरे रूपमें है। चित्ररथ गन्धर्वोंका राजा पुत्रहीन था। वसिष्ठजीने उसे शिवमन्त्र-की दीक्षा दे दी और शिवोपासनामें दत्तचित्त होकर वह पुष्कर क्षेत्रमें तप करने लगा। पूरे १०० वर्षके बाद उसे भगवान् शंकरके दर्शन हुए। भगवान्‌ने उसे वर माँगनेको कहा। उसने एक वैष्णव पुत्र पानेकी लालसा व्यक्त की। तब उसे एक बालक हुआ (यही नारदजी थे)। यह बालक ही उपबर्हण कहलाया—

उपशब्दोऽधिकार्थश्च पूज्ये च बर्हणः पुमान्।
पूज्यानामधिको बालस्तेनोपबर्हणाभिधः॥
(ब्रह्मवैवर्त्त० प्रकृति० १२। ४५)

"'उप' उपसर्ग अधिकका वाचक है और पुँल्लिङ्ग 'बर्हण' शब्द पूज्यके अर्थमें प्रयुक्त होता है। पूज्योंमें भी अधिक पूज्य होनेके कारण यह बालक तदनुसार 'उपबर्हण' कहलाया।'

आगे चलकर उपबर्हणके मरने-जन्मनेकी कथाका बड़ा ही बिस्तार है।

(३)

जुआरीसे राजा बलि कैसे हुआ?

प्राचीन कालमें देवब्राह्मण नियंक एक प्रसिद्ध जुआरी था। वह महापापी तथा व्यभिचार आदि अन्य दुर्गुणोंसे भी दूषित था। एक दिन कपटपूर्वक जुएमें उसने बहुत धन जीता। फिर अपने हाथोंसे पानका स्वस्तिकाकार बीड़ा बनाकर तथा गन्ध और माला आदि सामग्री लेकर एक वेश्याको भेंट देनेके लिये वह उसके घरकी ओर दौड़ा। रास्तेमें पैर लड़खड़ाये। पृथ्वीपर गिरा और मूर्च्छित हो गया। जब होश आया, तब उसे बड़ा खेद और वैराग्य हुआ। उसने अपनी सारी सामग्री बड़े शुद्ध चित्तसे वहीं पड़े हुए एक शिवलिङ्गको समर्पित कर दी। बस, जीवनमें उसके द्वारा यह एक ही पुण्यकर्म सम्पन्न हुआ।

कालान्तरमें उसकी मृत्यु हुई। यमदूत उसे यमलोक ले गये।

यमराज बोले—'ओ मूर्ख! तू अपने पापके कारण बड़े-बड़े नरकोंमें यातना भोगने योग्य है।' उसने कहा—'महाराज! यदि मेरा कोई पुण्य भी हो तो उसका विचार कर लीजिये।' चित्रगुप्तने कहा—'तुमने मरनेके पूर्व थोड़ा-सा गन्धमात्र भगवान् शंकरको अर्पित किया है। इसके फलस्वरूप तुम्हें तीन घड़ीतक स्वर्गका शासन—इन्द्रका सिंहासन प्राप्त होगा।' जुआरीने कहा—'तब कृपया मुझे पहले पुण्यका ही फल प्राप्त कराया जाय।'

अब यमराजकी आज्ञासे उसे स्वर्ग भेज दिया गया। देवगुरु बृहस्पतिने इन्द्रको समझाया कि 'तुम तीन घड़ीके लिये अपना सिंहासन इस जुआरीके लिये छोड़ दो। पुनः तीन घड़ीके बाद यहाँ आ जाना।' अब इन्द्रके जाते ही जुआरी स्वर्गका राजा बन गया। उसने सोचा कि 'बस, अब भगवान् शंकरके अतिरिक्त कोई शरण नहीं।' इसलिये अनुरक्त होकर उसने अपने अधिकृत पदार्थोंका (शंकरजी-के हेतु) दान करना प्रारम्भ किया। महादेवजीके उस भक्तने ऐरावत हाथी अगस्त्यजीको दे दिया। उच्चैःश्रवा अश्व विश्वामित्रजीको दे डाला। कामधेनु गाय महर्षि वसिष्ठ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को दे डाली। चिन्तामणि रत्न गालवजीको समर्पित किया। कल्पवृक्ष उठाकर कौण्डिन्य मुनिको दे दिया। इस प्रकार जबतक तीन घड़ियाँ समाप्त नहीं हुईं, वह दान करता ही गया और प्रायः वहाँके सारे बहुमूल्य पदार्थोंको उसने दे डाला। इस प्रकार तीन घड़ियाँ बीत जानेपर वह स्वर्गसे चला गया।

जब इन्द्र लौटकर आये, तब अमरावती ऐश्वर्यशून्य पड़ी थी। वे बृहस्पतिजीको लेकर यमराजके पास पहुँचे और बिगड़कर बोले—'धर्मराज! आपने मेरा पद एक जुआरीको देकर बड़ा ही अनुचित कार्य किया है। उसने वहाँ पहुँचकर बड़ा बुरा काम किया। आप सच मानें, उसने मेरे सभी रत्न ऋषियोंको दान कर दिये और अब अमरावती सूनी पड़ी है।'

धर्मराज बोले—'आप इतने बड़े हो गये, किंतु अभी-तक आपकी राज्यविषयक आसक्ति दूर नहीं हुई! अब उस जुआरीका पुण्य आपके सौ यज्ञोंसे कहीं महान् हो गया है। बड़ी भारी सत्ता हस्तगत हो जानेपर जो प्रमादमें न पड़कर सत्कर्ममें तत्पर होते हैं, वे ही धन्य हैं। जाइये, अगस्त्यादि ऋषियोंको धन देकर या चरणोंमें पड़कर अपने रत्न लौटा लीजिये।' 'बहुत अच्छा'—कहकर इन्द्र स्वर्ग लौट आये और इधर वही जुआरी पूर्वाभ्यासवशात् तथा कर्मविपाकानुसार बिना नरक भोगे ही महादानी विरोचन-पुत्र बलि हो गया।

(स्कन्दपुराण, माहेश्वरखण्ड, केदारखण्ड अध्याय १८)

(४)

नल-दमयन्तीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

आबू पर्वतके समीप पहले आहुक नामका एक भील रहता था। उसकी स्त्रीका नाम आहुआ था। वह बड़ी पतिव्रता तथा धर्मशीला थी। दोनों ही स्त्री-पुरुष बड़े शिवभक्त तथा अतिथिसेवक थे। एक बार भगवान् शंकरने उनकी परीक्षा लेनेका विचार किया। उन्होंने एक यतिका रूप धारण किया और संध्याके समय उसके घरपर जाकर कहने लगे—'भील! तुम्हारा कल्याण हो; मैं आज रात-भर यहीं रहना चाहता हूँ। तुम दयाकर एक रात मुझे रहनेके लिये स्थान दे दो।' इसपर भीलने कहा—'स्वामिन्! मेरे पास स्थान बहुत थोड़ा है। उसमें आप कैसे रह सकते हैं?' इसपर यति चलनेको ही थे कि स्त्रीने अपने पतिसे कहा—'स्वामिन्! यतिको लौटाइये नहीं; गृहस्थ-धर्मका विचार कीजिये। इसलिये आप दोनों तो घरके भीतर रहिये, मैं अपनी रक्षाके लिये कुछ बड़े शस्त्रोंको लेकर दरवाजे-पर बैठी रह जाऊँगी।' भीलने सोचा, बात यह ठीक ही कहती है; तथापि इसको बाहर रखकर घरमें मेरा रहना ठीक नहीं है, क्योंकि यह अबला है। अतएव उसने यति तथा अपनी स्त्रीको घरके भीतर रक्खा और स्वयं शस्त्र धारणकर बाहर बैठ रहा। रात बीतनेपर हिंस्र पशुओंने उसपर आक्रमण किया और उसे मार डाला। प्रातःकाल होनेपर यति और उसकी स्त्री बाहर आये तो भीलको मरा देखा। यति इस-पर बहुत दुखी हुए। पर भीलनीने कहा—'महाराज! इसमें शोक तथा चिन्ताकी क्या बात है? ऐसी मृत्यु तो बड़े ही भाग्यसे प्राप्त होती है। अब मैं भी इनके साथ सती होने जा रही हूँ। इसमें तो हम दोनोंका ही परम कल्याण हो गया।'—यों कहकर अपने पतिको चितापर रखकर वह भी उसी अग्निमें प्रविष्ट होनेके लिये तैयार हो गयी।

इसपर भगवान् शंकर डमरू, त्रिशूल आदि आयुधोंके साथ वहीं प्रकट हो गये। उन्होंने बार-बार उस भीलनीसे वर माँगनेको कहा, पर वह कुछ न बोलकर सर्वथा ध्यानमग्न हो गयी। इसपर भगवान्‌ने उसे वरदान दिया कि 'अगले जन्ममें तुम्हारा पति निषध देशके राजा वीरसेनका पुत्र नल होगा और तुम्हारा जन्म विदर्भ देशके राजा भीमसेनकी पुत्री दमयन्तीके रूपमें होगा। यह यति भी हंस होगा और यही तुम दोनोंका संयोग करायेगा। वहाँ तुमलोग अनन्त राजसुखोंका भोग करके अन्तमें दुर्लभ मोक्षपदको प्राप्त करोगे।'

यों कहकर वे प्रभु शंकर वहीं अचलेश्वर लिङ्गके रूपमें स्थित हो गये और कालान्तरमें ये ही दोनों भील-दम्पति नल-दमयन्तीके रूपमें अवतीर्ण हुए।

(शिवपुराण, शतरुद्र संहिता, २८ वाँ अध्याय)

(५)

कुब्जा पूर्वजन्ममें कौन थी?

कुब्जाका पूर्वजन्म

(१)

पुराणोंमें कुब्जाके जन्मान्तरोंके सम्बन्धमें बड़ी रोचक तथा आश्चर्यकर बातें मिलती हैं। गर्गसंहिता, मथुरा खण्ड, अध्याय ११ में राजा बहुलाश्व (एक मिथिलाके राजा जनकका नामान्तर) ने नारदजीसे प्रश्न किया कि 'प्रभो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस सैरन्ध्री कुब्जाने पूर्वजन्ममें कौन-सा ऐसा दुष्कर तप किया था कि जिसके फलस्वरूप परमात्मा श्रीकृष्ण उसपर रीझ गये; क्योंकि उनकी प्रसन्नताका लेश तो देवताओंके लिये भी अति दुर्लभ है ?'

इसपर देवर्षि नारदजीने कहा कि 'बहुत पहलेकी बात है। त्रेतायुगमें शूर्पणखा भगवान् रामको पञ्चवटीमें देखकर हृदयसे आसक्त होकर मूर्च्छित-सी हो गयी थी। पर उधर उसने देखा कि रामका स्नेह तो उसपर तनिक भी नहीं हो रहा है। वे उससे परम विरक्त तथा निर्विण्ण-से हो रहे हैं और उनका एकमात्र स्नेह सीताकी ओर ही है, तो वह सीताजीको खानेके लिये झपट पड़ी। इधर लक्ष्मणजीने भी तत्काल उसके नाक-कान काट डाले। फलतः वह रावणके पास आयी और उसने सीताको चुरानेकी प्रार्थना की। राम-लक्ष्मणको अकेले पाकर पुनः वह वनमें विवाह करनेके लिये प्रार्थना करने आयी[1]। पर उसकी एक भी न चली। अन्तमें जब रावण मार डाला गया और सीताविरहित राम भी बीचमें जब उसपर न रीझे तो वह एक वनमें विराजकर शिवके (मृत्युंजय-त्र्यम्बक) रूपका ध्यान करती हुई तपस्या करने लगी। जब प्रभुने दर्शन देकर उससे वर माँगनेको कहा तो उसने रामकी पतिरूपमें कामना की। इसपर भगवान् शंकरने भविष्यद् द्वापरमें कृष्णरूपसे उन्हें प्राप्त करनेका उसे वर दे दिया। वही शूर्पणखा द्वापरमें चलकर कुब्जा हुई—

सैव शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी।
अभूच्छ्रीमथुरायां तु कुब्जा नाम महामते॥
महादेववरेणापि श्रीकृष्णस्य प्रियाभवत्।
(गर्गसंहिता, मथुराखण्ड ११। १०-११)

'इच्छानुसार रूप बदलनेकी सामर्थ्य रखनेवाली वही शूर्पणखा नामकी राक्षसी, हे महाप्राज्ञ! मथुरामें कुब्जाके रूपमें जन्मी। देवाधिदेव महादेवके वरदानसे ही वह श्रीकृष्णकी प्यारी बनी।'

(२)

पर श्रीलोमशरामायण एवं सत्योपाख्यान[2]के अनुसार रामावतारकी कैकेयी-दासी मन्थरा ही द्वापरकी कृष्णप्रिया (कंस-सैरन्ध्री) कुब्जा हुई। संक्षेपमें वह कथा इस प्रकार है—

रामराज्यमें विघ्न उत्पन्न करनेपर अयोध्यावासियोंने श्रीलोमशजीसे पूछा—'प्रभो! यह मन्थरा ही केवल रामविरोधिनी क्यों है? पशु-पक्षी तथा जड वृक्ष तक भगवान् रामके प्रेमी हैं।'

इसपर लोमशजीने उत्तर दिया—'यह मन्थरा जन्मान्तरमें प्रह्लादकी पौत्री तथा विरोचनकी पुत्री थी। उस समय भी इसका नाम मन्थरा ही था। इसका छोटा भाई बलि जब माताके गर्भमें ही था, तब देवताओंने छलपूर्वक ब्राह्मणका रूप धारण कर विरोचनसे सारी आयु ब्राह्मणोंको दान दे देनेकी प्रार्थना की। अतः विरोचनने अपना शरीर त्याग दिया। दैत्य निराश्रित हो गये। वे मन्थराकी शरणमें गये। मन्थराने उनको रक्षाका आश्वासन दिया। उत्साहित होकर शंबर, मय, बाणादि दैत्य युद्धार्थ निकले, पर वे देवताओंसे हार गये। तब मन्थराने क्रुद्ध होकर पाशके द्वारा समस्त देवताओंको बाँध लिया। नारदजीने देवताओंकी विपत्ति वैकुण्ठस्थित भगवान् नारायणके समक्ष निवेदित की। भगवान्‌की प्रेरणासे इन्द्रने मन्थराको मारकर बेहोश कर दिया[3] और वह कुब्जा-सी हो गयी। दैत्यस्त्रियोंने भी पीछे उसका बड़ा उपहास किया। वही मरकर उसी रूपमें काश्मीरमें उत्पन्न हुई और बदला लेनेके लिये कैकेयीकी दासी बनकर उसने राज्यमें विघ्न डाला। उसे ही भगवान्‌ने अपयश सहनेके कारण कृष्णावतारमें कुब्जा होनेका वरदान दिया।' (सत्योपाख्यान पूर्वार्द्ध अध्याय ७ से १५ तक)

पद्मपुराण तथा महाभारत, वनपर्व अध्याय २७६। ९-१० के अनुसार दुन्दुभी गन्धर्व ही मन्थरा हुई—

तेषां समक्षं गन्धर्वं दुन्दुभिं नाम नामतः।
शशास वरदो देवो गच्छ कार्यार्थसिद्धये॥
पितामहवचः श्रुत्वा गन्धर्वो दुन्दुभी ततः।
मन्थरा मानुषे लोके कुब्जा समभवत् तदा॥
(महा०, वन० २७६। ९-१०)

''उसके सामने ही वरदानी देवता ब्रह्माजीने दुन्दुभी नामक गन्धर्वको आदेश दिया—'तुम साध्यप्रयोजनकी

१. इनके अनुसार वाल्मीकि-रामायणकी 'अयोमुखी' भी यही है।

२. यह पूरा ग्रन्थ मानो 'मन्थराचरित्र' ही है।

३. श्रूयते हि पुरा शक्रो विरोचनसुतां नृप।
पृथिवीं हन्तुमिच्छन्तीं मन्थरामन्यहृदयत्॥
(वाल्मी० रामा० १। २५। २०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धिके लिये (पृथ्वीलोकमें) जाओ ।' ब्रह्माजीका वचन सुनकर गन्धर्वी दुन्दुभीने तब मनुष्यलोकमें जाकर कुब्जाके रूपमें जन्म ग्रहण किया ।''

आनन्दरामायण, विलासखण्ड (८ । ४५—१००) के अनुसार 'पिङ्गला नामकी वेश्या ही कुब्जा हुई ।' कथा इस प्रकार है कि एक बार प्रेमाकृष्ट होकर सीताजीके सोते समय वह रात्रिमें रामजीका पैर दबाने पहुँच गयी । भगवान्‌ने उसका भाव जानकर कृष्णावतारमें कुब्जा होनेका वर दिया और विदा कर दिया—

यदाहं मथुरामग्रे व्रजाच्छ्रीकृष्णरूपधृक् ।
यास्यामि मातुलं कंसं हत्वा स्थास्यामि तत्पुरीम् ॥
तदा भजिष्यसि त्वं मां कुब्जारूपेण पिङ्गले ।

(आनन्द०, विलास० ८ । ५६-५७)

'जब मैं अपने अगले अवतारमें श्रीकृष्णका रूप धारण करके व्रजसे मथुरागमन करूँगा, तब मैं अपने मामा कंसका उद्धार करके उसी नगरीमें रह जाऊँगा । उस समय हे पिङ्गले ! तुम्हारा कुब्जाके रूपमें मेरे साथ समागम होगा ।'

पीछे सीताजीको जगाकर सारी बात बतलायी । पर वे बहुत नाराज होकर कहने लगीं कि उसी समय तुमने क्यों न बतलाया । और पीछे शपथके लिये उस वेश्या तथा वसिष्ठजीको भी बुलाया । अन्तमें उसे उन्होंने कुब्जा होनेका भी शाप दे दिया—

भविष्यसि त्रिवक्रा त्वं मथुरायां हि कुत्सिता ॥
वेश्यया प्रार्थिता प्राह कृष्णस्त्वामुद्धरिष्यति ।

(वही ८ । ९८-९९)

''तुम निश्चय ही मथुरामें तीन जगहसे टेढ़ी कुत्सित नारी होओगी । उस वेश्याके अनुनय-विनय करनेपर जानकीजीने शापानुग्रहरूपमें कहा—'श्रीकृष्ण तुम्हारा उद्धार करेंगे ।''

(६)

कालियनाग एवं काकभुशुण्डिके पूर्वजन्म

विदेहराज बहुलाश्वने देवर्षि नारदसे पूछा कि 'महाराज ! भगवान्‌की चरणरजकी महिमा अपार है । रामादि अवतारोंमें उसके संस्पर्शसे अहल्यादिका तत्काल ही श्रेय हुआ । योगीजन भी उसके लिये तरसते हैं, फिर कालियका क्या पुण्य था जो भगवान् घंटों उसके सिरोंपर नृत्य करते रहे—

तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्र-
पादाम्बुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त ॥

(श्रीमद्भागवत १० । १६ । २६)

'कालियनागके मस्तकपर सुशोभित मणियोंके स्पर्शसे जिनके कमल-सदृश चरणोंके तलवे और भी लाल हो गये हैं, वे सम्पूर्ण कलाओंके आदिप्रवर्तक भगवान् उनपर (कलापूर्ण) नृत्य करने लगे ।'

नारदजीने कहा कि 'पहले स्वायंभुव मन्वन्तरमें वेदशिरा* मुनि विन्ध्याचलके एक भागमें तपस्या कर रहे थे । उन्हींके बगलमें तप करनेकी इच्छासे अश्वशिरा भी आ गये । इसपर साँप-जैसे फुफकारते हुए वेदशिराने कहा कि 'ब्राह्मणदेव ! क्या सारे विश्वमें आपको तपस्याके लिये कहीं स्थान ही नहीं मिल रहा है । यहाँ आप तप करें, यह ठीक नहीं होगा । इससे मेरा एकान्त भङ्ग होगा ।'

इसपर अश्वशिरा भी बिगड़कर कहने लगे—'मुनिश्रेष्ठ ! यह सारी भूमि महाविष्णु भगवान् नारायण माधवकी है और इसीलिये इसका नाम भी 'माधवी' है । यह कोई आपकी या मेरी बपौती नहीं है । पता नहीं, पहले कितने ऋषियोंने यहाँ तप किया है । आप यह सब जानते हुए भी व्यर्थ ही सर्पके समान फुफकार रहे हैं । आपको तो साँप ही होकर रहना चाहिये । जाइये, आप सर्प हो जाइये और भगवद्वाहन गरुड़से आपको पूरा भय होगा ।'

इसपर वेदशिराजीने कहा कि 'तुम तो मानो इसी दुरभिप्रायसे ही घूमते यहाँ आये थे । छोटी-छोटी बातोंपर इतना क्रोध तथा तपोनाशका उद्यम, यह तुम्हारा काम कौवे-जैसा है । अतः तुम इस पृथ्वीपर शब्द करनेमें† कौए-जैसे हो, अतः तुम कौआ ही हो जाओ ।'

* इन वेदशिराका उल्लेख मानस १ । ७३ दोहामें (वेदसिरा मुनि आइ तब सबहि कहा समुझाइ ।) काशीखण्ड २ । ५९; शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता ५; ब्रह्माण्डपुराण २ । ११ । १० आदिमें भी हुआ है ।

† 'कार्यार्थी काक इव कौ त्वं काको भव दुर्मते ।' (गर्गसंहिता २ । १० । ९) 'कौ' शब्दका 'पृथ्वीपर' तथा 'शब्द करनेमें' ये दोनों ही अर्थ है (द्रष्टव्य—Monior Williams, Apte, Kale, काशकृत्स्न, क्षीरतरंगिणी, माधवीया धातुवृत्ति इत्यादि)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन दोनोंकी दुःस्थिति देखकर दयालु भगवान् वहाँ प्रकट हो गये और वेदशिराको अगले जन्ममें कालिय होकर स्वचरणलाभका तथा अश्वशिराको काकभुशुण्डि होनेका आश्वासन दिया—

साक्षात् काकभुशुण्डोऽभूद् योगीन्द्रो नीलपर्वते ॥
रामायणं जगौ यो वै गरुडाय महात्मने ॥
(गर्गसंहिता, वृन्दावनखं० १० । १५-१६)

'अश्वशिरा तब नीलपर्वतपर साक्षात् योगिराज काकभुशुण्डिके रूपमें जन्मे, जिन्होंने महात्मा गरुडको रामायणकी कथा सुनायी थी ।'

काकभुशुण्डिकी अन्य अनेक जन्मान्तरोंकी कथा मानसके उत्तरकाण्डमें है, जो पाठकोंको ज्ञात ही है । योगवासिष्ठके भुशुण्डाख्यानमें काकजन्मवृत्त अन्य प्रकारसे है ।

(७)

पूतना पूर्वजन्ममें कौन थी ?

भागवतमें लिखा है—'पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना ।' (१० । ६ । ३५) 'पूतना संसारके बालकोंकी हत्या करनेवाली एवं उनका रुधिर पान करनेवाली राक्षसी थी ।' 'पूतना बालघातिनी[1] ।' (१० । ६ । २) 'पूतना बाल-हत्यारी थी ।' 'विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहम् ।' (१० । ६ । ८) 'उसे बालकोंको मारनेवाला हौआ समझकर' 'बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून् ।' (१० । ६ । ६) (बच्चोंको खोजती हुई वह बालिकाओंके लिये हौआ रूप बनी हुई पूतना) इत्यादि । अतः यह बालकोंको लगनेवाली एक भूतनी या राक्षसी है[2] । यह प्रायः नित्य है और इस कथाका तात्पर्य 'रक्षोघ्नकृत्य'से है ।

आनन्दरामायण, पूर्णकाण्ड, अध्याय ५ । ३१, ३७ में लिखा है कि जब भगवान् श्रीराम समस्त अयोध्यावासियोंके साथ स्वधाम चलने लगे, तब सीताजीके निन्दक धोबी तथा कैकेयीकी दासी मन्थराकी इच्छा न देखकर, इन्हें कुशके साथ साकेत[3] भेज दिया । ये लोग प्रभुके साथ न गये । अतः कृष्णावतारमें यह रजक ही रजक हुआ और मन्थरा ही पूतना हुई—

तदा रामस्तं रजकं मन्थरां प्रैषयत्पुरीम् ।
कुशेन सहवेगेन सम्प्राहूयाऽथ सादरम् ॥
पूर्ववैरमनुस्मृत्य नाऽभ्रं यातामधर्मिणी ।
कृष्णावतारे तावेव रजको रजकोऽभवत् ॥
मन्थरा पूतना जाता हतौ तौ पूर्ववैरतः ॥
(आनन्दरामायण, पूर्ण० ५ । ३३-३५)

'तब श्रीरामने उस धोबीको (जिसने जानकीजीपर राक्षसके घरमें रहनेका आरोप लगाया था) तथा मन्थराको अपने बड़े पुत्र कुशके साथ शीघ्र अयोध्या लौटा दिया । उसी धोबीने मथुरामें (श्रीकृष्णावतारके समय) पुनः धोबीके रूपमें जन्म लिया और मन्थरा ही पूतना हुई तथा दोनों ही पूर्वजन्मके वैरके कारण श्रीकृष्णके द्वारा मारे गये ।'

आदिपुराणके १८वें अध्यायमें लिखा है कि पूतना पूर्वजन्ममें कालभीरु नामक ऋषिकी कन्या 'चारुमती' थी । वह कक्षीवान् नामक महर्षिकी पत्नी थी । पतिके परदेश जानेपर वह एक शूद्रसे संसक्त हुई तथा पतिके वापस आने एवं सद्व्यवहार करनेपर भी निरन्तर दुष्टता करती रही । अन्तमें कक्षीवान्ने उसे राक्षसी हो जानेका शाप दे दिया—

त्वं वञ्चयित्वा मां नूनं यदभूः कितवे रता ।
प्रयातु राक्षसीं योनिं दुष्टे दुष्टप्रदूषिता ॥
कदाचित्करुणासिन्धुः कृष्णस्संतारयिष्यति ॥
(आदिपुराण १८ । ५५-५६)

'तूने मेरी वञ्चना करके एक धूर्तके साथ प्रेम किया; अतः उस दुष्टके द्वारा दूषित होनेके कारण तू राक्षसयोनिको

---

१. भागवत १० । ६ । ८ की टीकामें तथा भक्तिरसायनमें यह उत्प्रेक्षा है कि भगवान्ने पूतनावधके समय उसके जन्मान्तर जानके लिये ही अपने नेत्र मूँदे थे ।

२. द्रष्टव्य—मालतीमाधव ९ । ४९ की जगद्धर, रुचिपति आदिकी टीका तथा कुमारतन्त्र, कौमारभृत्य, सुश्रुत, चरक आदि ।

३. आनन्दरामायणके अनुसार कुशकी राजधानी कुशावती, कुशनगर, कुशभवनपुर, (सुलतानपुर) आदि न होकर साकेत नामक स्थानमें गयी । यथा—

ततः कुशं समाहूय रामः स्वीपुत्रसंयुतम् ।
प्रेषयामास साकेतं सैन्येन पार्थिवैर्युतम् ॥
(आनन्दरामायण, पूर्ण० ५ । २३)

१. रजकका जन्मवृत्त अन्यत्र पढ़िये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त हो। कालान्तरमें करुणासिन्धु भगवान् श्रीकृष्ण तेरा उद्धार करेंगे—तुझे राक्षसी योनिसे छुड़ायेंगे।'

इसी पुराणमें आगे चलकर नारदजीने भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा है कि 'ऐसी पापिनीका आपने दूध क्यों पीया?' इसके उत्तरमें भगवान्‌ने उन्हें बतलाया कि च्यावन मुनियोंको एक दोषसे शीघ्र मरनेका शाप भगवान् शिवसे मिला था। अतः उन्हें पूतनाद्वारा मरना पड़ा। उनके श्रेय-सम्पादन-पुण्यसे उसे कृष्णधात्रीत्वका सौभाग्य मिला।'

इसी प्रकार ब्रह्मवैवर्तमें कृष्णजन्मखण्डमें नारायणने नारदजीसे तथा गर्गसंहिता, गोलोकखण्डमें राजा बहुलाश्वके प्रश्नपर नारदजीने कहा था कि 'यह पूतना राजा बलिकी कन्या रत्नमाला ही थी। जब वामनावतारमें भगवान् श्रीहरि बलिके यहाँ पधारे तो रत्नमालाको उन्हें देख वात्सल्यभाव हो आया और सोचने लगी कि कदाचित् ऐसा ही मुझे भी कोई लड़का होता, तो मैं उसे दूध पिलाती-पालती'—

बलियज्ञे वामनस्य दृष्ट्वा रूपमतः परम्।
बलिकन्या रत्नमाला पुत्रस्नेहं चकार ह॥*
(गर्गसंहिता, गोलोक० १३। ३०)

'राजा बलिके यज्ञमें भगवान् वामनके श्रेष्ठ रूपको देखकर उसकी कन्या रत्नमालाको उनके प्रति वात्सल्यका भाव उमड़ आया।'

पाययामि स्तनं तेन प्रसन्नं मे मनस्तदा॥
× × ×
साभवद् द्वापरान्ते वै पूतना नामविश्रुता॥
(गर्ग०, गोलोक० १३। ३१, ३३)

वह सोचने लगी—'मैं इस बालकको स्तन्यपान कराऊँ तब मेरा मन प्रसन्न हो। वही द्वापरके अन्तमें जन्म लेकर पूतनाके नामसे प्रसिद्ध हुई।' भगवान् उसके हृदयकी बात जान गये और उसकी इच्छा रखनेके लिये उन्होंने द्वापरमें श्रीकृष्णरूपसे उसका स्तन्यपान किया। इस तरह कल्पभेदसे अनेक कथाएँ हैं।

कलप भेद हरिचरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए॥
बिबिध प्रसंग अनूप बखाने। करहिं न सुनि आचरजु सयाने॥

अथवा एकके बाद दूसरा जन्म तथा अन्तमें कृष्णप्राप्ति समझनी चाहिये। जैसा कि नारदजीने

बदला लेने या देनेवाले सात प्रकारके पुत्र

(१) अपनी पूर्वजन्मकी रक्खी धरोहरको लेनेके लिये, (२) अपने पूर्वजन्मका ऋण चुकानेके लिये, (३) पूर्वजन्मका वैर लेनेके लिये, (४) पूर्वजन्ममें प्राप्त अपकारके बदले अपकार करनेके लिये, (५) पूर्वजन्ममें प्राप्त सेवा-सुखके बदलेमें सेवा-सुख देनेके लिये, (६) पूर्वजन्मका ऋण चुकानेके लिये, (७) पूर्वजन्ममें प्राप्त उपकारके बदलेमें उपकार करनेके लिये और (८) निरपेक्ष। इनमें जो जिस कामके लिये पुत्र बनकर आते हैं, वे कर्मानुसार अपना काम पूरा करके मर जाते हैं या कर्मानुसार दीर्घकालतक जीवित रहकर बदला लेते-देते रहते हैं।

केवल पुत्र ही नहीं—पत्नी, पति, भाई, बहिन, नौकर तथा गौ आदि पशुतक कर्म-ऋण लेने या चुकानेके लिये पूर्वजन्मानुसार सम्बन्ध जोड़कर सीमित या दीर्घकालके लिये प्राप्त होते हैं।

---

* ब्रह्मवैवर्तपुराणके श्लोकोंका अन्तर बहुत ही थोड़ा है। यथा—
नारायण उवाच—

बलियज्ञे वामनस्य दृष्ट्वा रूपं मनोहरम्। बलिकन्या रत्नमाला पुत्रस्नेहं चकार तम्॥
मनसा मानसं चक्रे पुत्रस्य सदृशो मम। भवेद् यदि स्तनं दत्त्वा करोमि तं च वक्षसि॥
हरिस्तन्मानसं ज्ञात्वा पपौ जन्मान्तरे स्तनम्। ददौ मातृगतिं तस्यै कामपूरः कृपानिधिः॥
दत्त्वा विषस्तनं कृष्णं पूतना राक्षसी मुने। भक्त्या मातृगतिं प्राप कं भजन्ति विना हरिम्॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड १०। ४१—४४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

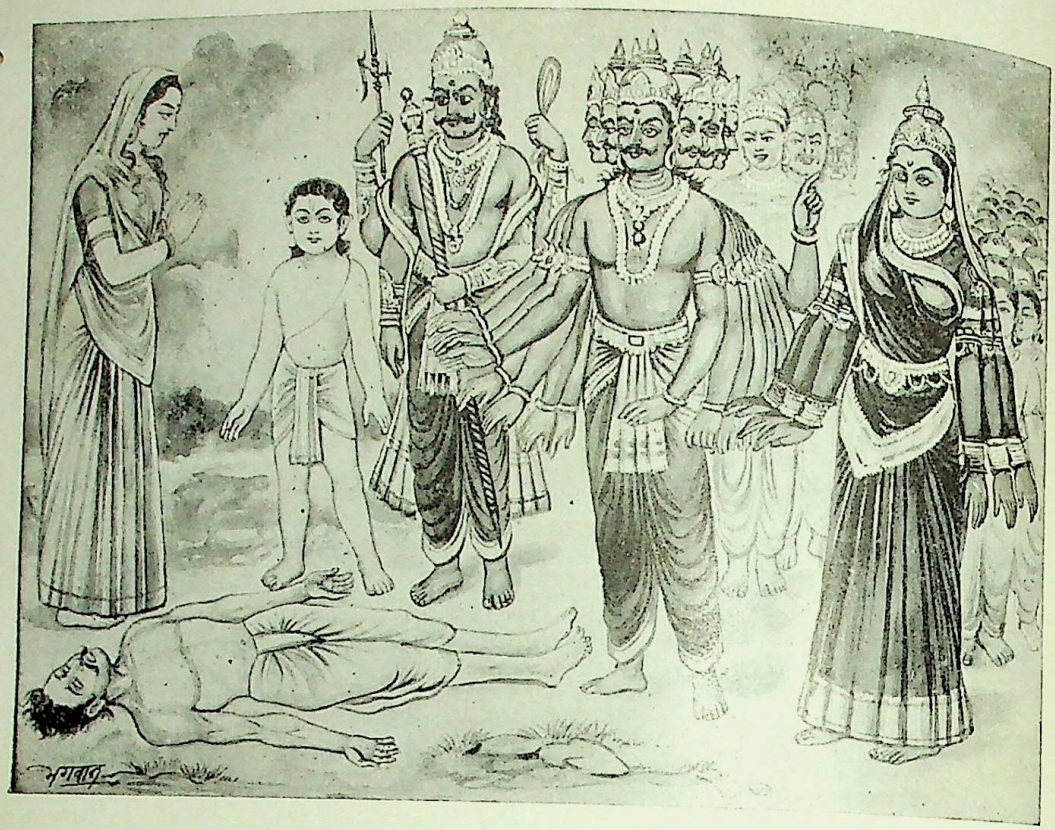

उपवर्हणकी मृत्यु, देवता तथा ब्राह्मण-कुमारके वेशमें भगवान्

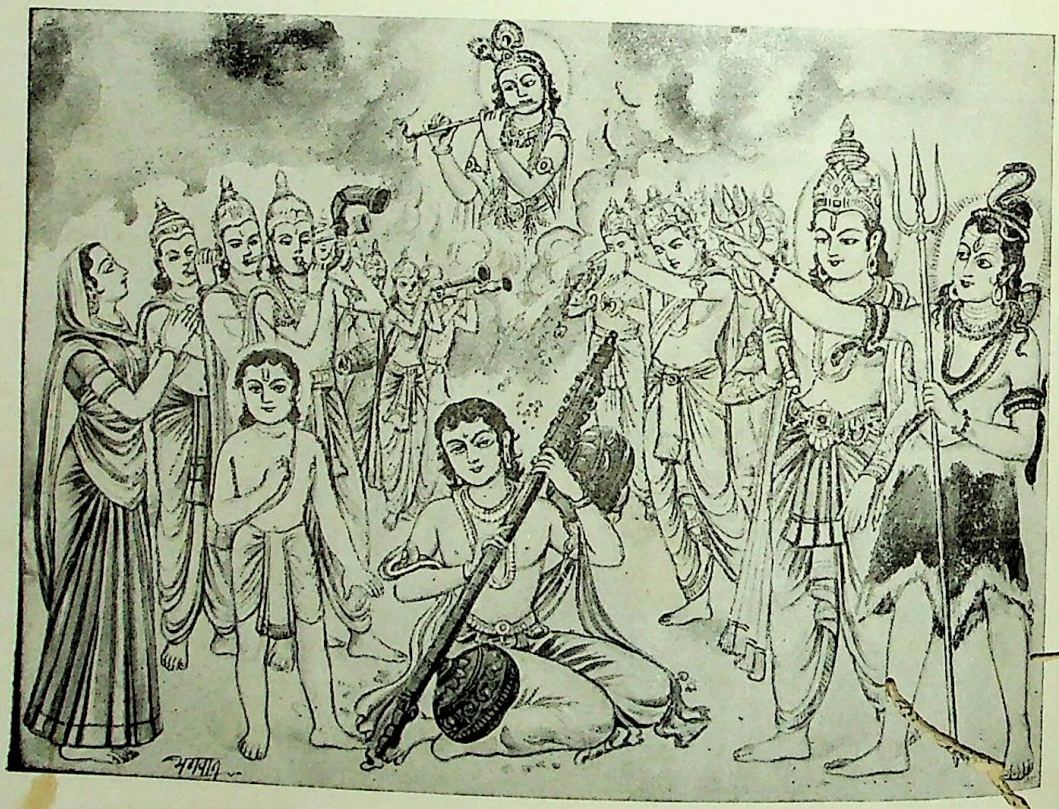

उपवर्हण जीवित हो गये—मालावतीकी श्रीकृष्ण-प्रार्थना

[पृष्ठ ५०७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामराज्यकी पुनर्जन्म-सम्बन्धी एक घटना—कुत्तेका न्याय

(लेखक—आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

भारतीय जनताकी दृष्टिमें रामायणकालीन दो महान् तथ्य उपमारहित हैं। उनकी समझमें 'राम-रावण' के युद्धके समान न तो कोई दूसरा युद्ध हो सकता है और न तो पहले हुआ। उसी प्रकार न तो रामराज्यके समान न्यायप्रिय दूसरा कोई राज्य होगा और न हुआ। किसी राज्यसे रामराज्यकी तुलना करना भी व्यर्थ ही है। अपनी प्रजाको राम-राजाने कितना सुख पहुँचाया, इसे यहाँ प्रकट नहीं किया जा सकता। आदिकविने राम-राजाके प्रजा-रञ्जनसम्बन्धी कार्योंके उल्लेखमें एक अत्यन्त विचित्र घटनाका वर्णन उपस्थित किया है। इस तथ्यसे अवगत होता है कि राजा रामके राज्यमें मानव ही नहीं, किंतु पशुओं और पक्षियोंके प्रति आदर, स्नेह और न्याय करनेकी सहज प्रथा थी। राजा राम पशुओं और पक्षियोंके प्रति अपनी न्यायप्रियता अक्षुण्ण रखते थे।

एक दिन राजा रामने अपने भाई लक्ष्मणसे कहा—'भाई लक्ष्मण! देखो, राजदरबारके बाहर कोई न्याय प्राप्त करनेके लिये आया तो नहीं है?' लक्ष्मण आज्ञा पाते ही तुरंत बाहर गये और चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर देखा, उनको वहाँ कोई दुखिया दीख न पड़ा। लक्ष्मण राजमहलमें वापस आकर रामसे बोले—'प्रभो! बाहर ऐसा कोई भी मानव नहीं है, जो क्षुब्ध हो या दुखी हो और जो कुछ निवेदन करनेके लिये आया हो।' लक्ष्मणजीके वचनसे राजा रामको संतोष नहीं हुआ। राजा रामने लक्ष्मणसे पुनः कहा—'लक्ष्मण! मुझे विश्वास है कि नीति और उचित न्यायपद्धतिसे शासन करनेपर प्रजा सर्वदा सत्पथपर अग्रसर रहती है और उसे किसी प्रकारका कष्ट नहीं मिलता। यह सब होते हुए, तुम प्रजाके हित-चिन्तनमें सर्वदा सक्रिय रहना। एक बार पुनः बाहर जाकर किसी भी कार्यार्थी, अर्थार्थी या न्यायार्थीका पता लगाओ। कोई भी ऐसा प्राणी यहाँसे विमुख न जाय।'

रामकी आज्ञा पाते ही लक्ष्मण पुनः बाहर गये। परंतु उन्हें राजभवनके बाहर कोई भी मानव नहीं दिखायी दिया। फिर लक्ष्मणने देखा कि एक कुत्ता दुखी-मन वहाँ बैठा है। लक्ष्मणको देखते ही वह कुत्ता उठ बैठा और दुखीमन-की भावनाको व्यक्त करते हुए जोर-जोरसे रोने लगा। कहा जाता है कि उन दिनों राजा और राजघरानेके लोग तथा विद्वान् लोग पशु और पक्षियोंकी भाषा जानते थे। पशुओंकी भाषाके ज्ञाता लक्ष्मणने कुत्तेसे रोनेका कारण पूछा—'हे सारमेय! तुम्हारा क्या कार्य है? निडर होकर कहो।' लक्ष्मणका आश्वासन प्राप्त करके कुत्ता बोला—'प्रभो! समस्त जीवोंके रक्षक, प्रशस्त कर्म करनेवाले राजा रामसे मुझे कुछ निवेदन करना है।' कुत्तेकी बात सुनकर लक्ष्मणजी तुरंत राजसभामें पहुँचे और राजा रामसे उन्होंने कुत्तेकी कामना सुना दी। राजा रामने उसी समय कुत्तेको राजसभामें बुलाया और रामकी आज्ञा पाते ही लक्ष्मण बाहर जाकर कुत्तेको बुला लाये। राजसभामें प्रवेश करनेके पूर्व लक्ष्मणने कुत्तेसे कहा था कि 'सारमेय! राजा रामके सम्मुख जो कुछ कहना, सत्य-सत्य कहना।' लक्ष्मणकी बात सुनकर कुत्तेने कहा—'नाथ! देवमन्दिर और राजभवन तथा ब्राह्मण, अग्नि, इन्द्र, वरुण, सूर्य आदिके निवास-स्थानपर मेरे-जैसे जीवोंको नहीं जाना चाहिये। मैं राजा रामके महलमें कैसे जा सकता हूँ? राजा शरीरधारी स्वयं धर्मका अवतार माना जाता है। राजा राम तो सर्वोपरि हैं। प्रजाके रक्षक, नीतिज्ञ और सत्यवादी, समदर्शी हैं। वही चन्द्र, सूर्य, वरुण और अग्नि हैं। हे लक्ष्मण! आप तुरंत राजा रामसे मेरे लिये आज्ञा प्राप्त कीजिये; बिना उनकी आज्ञाके मैं राजसभामें नहीं जा सकता।' लक्ष्मण तुरंत राजभवनमें वापस गये और राजा रामसे बोले—'प्रभो! राजभवनके बाहर एक कुत्ता है। वह आपसे कुछ निवेदन करना चाहता है। प्रतीक्षा कर रहा है। यदि आज्ञा हो तो उसे राजमहलमें बुला लूँ।' लक्ष्मणका कथन सुनकर रामने तुरंत लक्ष्मणसे कहा—'लक्ष्मण! तुरंत उस सारमेयको भीतर ले आओ। उसे मुझसे न्याय प्राप्त करनेका पूरा अधिकार प्राप्त है। राज्यका कोई भी जीव हो, उसको मुझसे निवेदन करने और न्याय प्राप्त करनेका मानवकी ही भाँति अधिकार है।' लक्ष्मणजी कुत्तेको लेकर राजभवनमें पहुँचे। राजा रामके पास पहुँचते ही वह कुत्ता आश्वस्त हो गया।

श्रीरामने कुत्तेसे पूछा—'सारमेय! तुम्हें जो कुछ कहना है, भय त्यागकर कहो।' कुत्तेके सिरपर चोट थी। उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिरपर लगी चोटको देखकर राजा रामका ध्यान उधर आकृष्ट हो गया। राजा रामका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट देखकर कुत्तेने रामसे निवेदन किया—'प्रभो! राजा ही समस्त प्राणियोंका रक्षक और स्वामी होता है। प्रजा जब सोती है, तब राजा जागकर प्रजाकी रक्षा करता है। हे राघव! आप तो समस्त प्राणियोंके प्राण हैं। आप ही हमारे कर्ता, धर्ता और रक्षक हैं। त्राता हैं। विधाता हैं। आप श्रेष्ठ-जनोंद्वारा आचरित कर्म करते हैं। आप धर्मात्मा और सद्गुणोंके सागर हैं। यदि मैंने कोई अनुचित बात कह दी हो तो आप उसे क्षमा कर दें। मैं सिर झुकाकर आपका अभिवादन करता हूँ।' श्वानके ये वचन सुनकर श्रीराम श्वानसे बोले—'हे सारमेय! शीघ्र निडर होकर बोलो—तुम क्या चाहते हो।' कुत्ता बोला—'राजन्! धर्मसे ही राज्यकी प्राप्ति होती है। धर्मसे ही प्रजाका पालन होता है। धर्मसे ही राजा प्रजा-वत्सल और शरणागतवत्सल बनता है। राजा प्रजाके समस्त भयको दूर करता है। यह सब समझकर मेरा जो कार्य है, उसे आप समझ लें। सर्वार्थसिद्ध नामक एक ब्राह्मण है। वह भिक्षावृत्ति करता है। उसने बिना अपराध मेरा सिर फोड़ डाला है।'

कुत्तेकी यह बात सुनकर राजा रामने उस ब्राह्मणको बुलानेके लिये द्वारपालको भेजा। द्वारपाल तुरंत ब्राह्मणको बुला लाया। ब्राह्मण राजा रामकी सभामें उपस्थित हुआ। राजा रामके पास पहुँचकर ब्राह्मण बोला—'राजन्! आपने मुझे क्यों बुलाया है?' राजा रामने ब्राह्मणसे पूछा—'ब्राह्मणदेव! आपने इस कुत्तेको क्यों मारा है? जान पड़ता है कि आपने क्रोधावेशमें ही ऐसा पाप किया है। क्रोध मानवको धर्मरहित बना देता है।' राजा रामकी धर्मपरक बात सुनकर वह ब्राह्मण बोला—'हे राम! यह सत्य है कि मैंने क्रोधावेशमें ही इस कुत्तेको मारा है। भिक्षाके लिये मैं भ्रमण कर रहा था। कुत्ता बीच मार्गमें बैठा था। भिक्षा उस समय नहीं मिली थी, अतः मैं कुछ अन्यमनस्क था। मुझे भूख भी लगी थी। मैंने इसे मार्गमेंसे हट जानेको कहा; किंतु यह मार्गसे नहीं हटा। मैं भूखा तो था ही, क्रोध आ गया और उसी क्रोधमें मैं इसे मार बैठा। मैं अवश्य दोषी हूँ। इस अपराधका जो दण्ड हो सो आप मुझे वह दण्ड दें। आपसे दण्ड पानेके बाद मुझे नरकका भय नहीं रहेगा।'

ब्राह्मणकी बात सुनकर राजा राम अपने सभासदोंसे पूछने लगे—'इस ब्राह्मणको क्या दण्ड दिया जा सकता है?' उस समय राजा रामकी सभामें गुरु वसिष्ठ, भृगु, कुत्स, अङ्गिरा आदि श्रेष्ठ विद्वान् उपस्थित थे। सबने अपना-अपना निर्णय सुनाया। सबका निर्णय यही था—'राजन्! ब्राह्मण अवध्य होता है। किंतु आप यह भी जान लें कि राजा शासक तो होता ही है, सबका शिक्षक भी होता है। आप स्वयं परब्रह्म परमात्माके महान् अंश हैं—अवतार हैं। आप सर्व-ज्ञाता हैं, प्रजापालक हैं, शरणागतवत्सल हैं।' सभासदोंके मनोभावको जानकर वह कुत्ता बीचमें ही बोल उठा—'हे राजन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपा करके आप मेरा मनोरथ सिद्ध करें। आपने पहले ही मुझे आश्वस्त कर दिया है। हे प्रभो! आप इस ब्राह्मणको कालिंजरकी महन्ती दे दें।'

कालिंजरका मठाधीश बनाये जानेका रहस्य वहाँ कोई नहीं जान सका। सभासद् आश्चर्यचकित थे। कुत्तेकी माँग पूरी कर दी गयी। ब्राह्मण भी इस दण्डसे बहुत प्रसन्न हुआ। नित्यकी भिक्षावृत्तिसे उसे छुटकारा मिला। ब्राह्मणको हाथीपर बिठलाकर बिदाई दी गयी; क्योंकि उस परम्परामें यही नियम था। ब्राह्मणकी प्रसन्नता [illegible] सभासद् कुत्तेकी माँगका परिहास उड़ा रहे थे। सभासदोंने मुसकराते हुए राजा रामसे पूछा—'महाराज! ब्राह्मणको दण्डके बदले वरदान मिल गया।' राजा रामने कहा—'आप लोगोंको यह रहस्य समझमें नहीं आया। आप लोग इस ज्ञानी कुत्तेसे ही यह रहस्य जानिये।' रामने स्वयं कुत्तेसे कालिंजरकी महन्तीका रहस्य पूछा। कुत्तेने बताया—'हे राजा राम! पूर्वजन्ममें मैं उसी कालिंजरमें मठाधीश था। मैं उत्तम वंशमें उत्पन्न हुआ था और उसी आधारपर मुझे वहाँ महन्ती मिली थी। मैं मठमें बढ़िया पदार्थ खाता और दूसरोंको भी खिलाता था। मैं देवोंका पूजन भी करता था। अपने अधीनस्थ जनोंका पालन भी करता था। मैं समस्त कार्योंमें धर्म और नीतिको महत्त्व भी देता था। उसके अनुसार आचरण भी करता था। इतना करनेपर भी मुझे कुत्तेकी योनिमें जन्म लेना पड़ा। (हाँ, उन आचरणोंके कारण मेरा पूर्वजन्मका अभ्यास बना रहा।) मुझे ज्ञान बना रहा।

अहं कुलपतिस्तत्र आसं शिष्टान्नभोजनः।
देवद्विजातिपूजायां दासीदासेषु राघवः॥
सोऽहं प्राप्त इमां घोरामवस्थामधमां गतिम्॥

कुत्ता कहता ही गया—'हे महाराज! यह ब्राह्मण तो अत्यन्त क्रोधी है। धर्मशून्य, अहितकर, हिंसक स्वभावका और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्ख है। वहाँका महन्त बनकर यह अपनी माताके तथा पिताके सात कुलोंको नरकमें ले जायगा। हे राजन्! कैसी स्थिति क्यों न आ जाय, ज्ञानी मानव किसी भी स्थानकी महन्ती स्वीकार न करे। हे प्रभो! जिसको बन्धु-बान्धवोंसहित नरकमें भेजना हो, उसे देव, गौ और ब्राह्मणके अधिष्ठानका महन्त बना दे। हे सर्वज्ञ! जो देव, बालक और स्त्री-ब्राह्मणके लिये अर्पित धनको स्वयं भोगता है, वह निश्चय ही नरकमें जाता है।' कुत्तेकी बात सुनकर राजा राम गद्गद हो गये और कुछ विस्मित भी हुए। इस रहस्यका उद्घाटन करनेके बाद वह कुत्ता जहाँसे आया था, वहीं चला गया। उस समय कुत्तेके रहस्योद्घाटनसे सब लोग चकित थे।

यह रामराज्यकी एक साधारण घटना थी।

उपबर्हणका पुनर्जीवन

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

साध्वी मालावती चीत्कार कर उठी। उसके प्राणप्रिय पति उपबर्हणने श्रीकृष्ण-नामका स्मरण करते हुए शरीर त्याग दिया था। यह देखकर उसके श्वशुर (उपबर्हणके पिता) गन्धर्वराजने भी सपत्नीक योगधारणाद्वारा अपने प्राण त्याग दिये। मालावती अधीर हो गयी।

करुण विलाप करती हुई मालावतीने भगवान् विष्णु, शिव, ब्रह्मा, धर्म, दिक्पाल—सबकी स्तुति करके अपने पतिके प्राण वापस कर देनेके लिये प्रार्थना करते हुए उनसे कहा—

'मुझे इन्द्रपद या मोक्षकी कामना नहीं। अमरत्व भी मुझे अभीष्ट नहीं। आप केवल मुझे मेरे पतिको लौटा दें। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पदार्थोंको प्राप्त करानेवाले मेरे श्रेष्ठ देवता मेरे पतिदेव ही हैं। आप मुझपर दया करें। हे करुणामय! आप मेरे पतिका प्राण शीघ्र लौटा दें।'

इसके अनन्तर मालावती अपने पति उपबर्हणके रूप-गुणका बखान करती हुई सहसा क्रुद्ध होकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश और धर्म आदि समस्त देवताओंको शाप देनेके लिये उद्यत हो गयी।

उसी समय सम्पूर्ण देव-समुदाय कौशिकीके तटपर मालावतीके सम्मुख उपस्थित हो गया। चतुर्मुख ब्रह्मासहित समस्त भयभीत सुरोंको क्षीराब्धिशायी विष्णुका मालावतीके शाप-संकटसे बचानेका आश्वासन मिल गया था। देवताओंने अनिन्द्य सुन्दरी साध्वी मालावतीके तेजको देखा। वह अपने पतिका शव वक्षसे लगाये योगासनसे बैठी थी।

उसी समय अचानक दण्ड, छत्र, श्वेत वस्त्र और उज्ज्वल तिलक धारण किये तथा हाथमें एक बड़ी पोथी लिये मन्द-मन्द मुस्कराता हुआ एक तेजस्वी ब्राह्मण-कुमार उन देवताओंके बीच प्रकट हुआ और उनकी अनुमतिसे उनके मध्य बैठता हुआ बोला और मालावतीकी ओर देखते हुए उसने कहा—'तुम्हारे अङ्कमें सूखा हुआ यह शव किसका है? जीवित सुन्दरीके समीप शवका क्या प्रयोजन है?'

फूट-फूटकर रोती हुई मालावतीने देवताओं तथा ब्राह्मण-कुमारसे अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—'मैं चित्ररथकी पुत्री हूँ। यह मेरे प्राणपति उपबर्हणकी निर्जीव देह है। मैंने अपने इन पतिदेवके साथ लक्ष दिव्य वर्षोंतक सुरम्य स्थलोंपर स्वच्छन्द विहार किया है। द्विजेन्द्र! मेरे पतिने अकस्मात् ब्रह्माके शापसे अपने प्राणोंका त्याग किया है। किंतु आप जानते हैं कि साध्वी स्त्रियोंका प्राण उनके प्राणपतिके चरणोंमें ही बसता है। अतः मैं अत्यन्त दुखी होकर, विलाप करती हुई देवताओंसे अपने पतिके प्राणोंकी भीख माँगती हूँ। देव-समुदाय समर्थ है। मुझे मेरा प्राणपति लौटा दें, यह मैं देवताओंसे बार-बार याचना कर रही हूँ; किंतु यदि मेरे पतिके प्राण नहीं लौटाये गये, तो मैं इन्हें स्त्री-वधका ही पाप नहीं, दुर्निवार शाप दे सकती हूँ।'

'निश्चय ही देवता कर्मफल देते हैं।' तेजस्वी ब्राह्मण-कुमारने मालावतीसे कहा—'किंतु उसमें देर होती है। जैसे बीज बोनेपर उसका फल तुरंत नहीं, देरसे मिलता है, उसी प्रकार कर्मफल भी देरसे मिलता है। मनुष्यके कर्मोंका फल निश्चय ही उसे प्राप्त होता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, धर्म एवं दुर्गा आदि देवताओंकी भक्ति एवं उपासनासे अनेक फल प्राप्त होते हैं। श्रीकृष्णकी भक्ति एवं अर्चनासे तो भक्तके पितृकुल एवं मातृकुलकी सैकड़ों पीढ़ियाँ तर जाती हैं। श्रीकृष्णभक्तसे पाप दूर भागते हैं एवं देवगण उसके चरणोंमें भक्तिके सुमन अर्पित करते हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुम्हारे पतिकी मृत्यु किस रोगसे हुई है ?' ब्राह्मण-कुमार-वेषधारी महिमामय श्रीविष्णुने आगे कहा—'मैं चिकित्सक भी हूँ। एक सप्ताहतक मरे हुए प्राणीको जीवन-दान देनेमें मैं समर्थ हूँ। मैं जरा, मृत्यु, यम, काल तथा व्याधियोंको बाँधकर तुम्हारे सम्मुख उपस्थित कर सकता हूँ। योग एवं रोगसे देह-त्याग करनेवालेको जीवित करनेकी सामर्थ्य भी मुझमें है। तुम्हारे पतिने किस प्रकार शरीर-त्याग किया है, बस, इतना मुझे बतला दो।'

'आपने मेरे स्वामीको पुनर्जीवन देनेकी प्रतिज्ञा की है।' अत्यन्त प्रसन्नता एवं आश्चर्यके साथ मालावतीने कहा—'सत्पुरुषोंकी वाणी मिथ्या नहीं होती। अतएव मेरे पतिके पुनः जीवित हो जानेमें मेरे मनमें कोई संदेह नहीं रहा। किंतु इसके पूर्व, मैं आपसे कुछ बातें कर लूँ। द्विजेन्द्र ! आप कृपापूर्वक काल, यम और मृत्युकन्याको मेरे सामने बुला दीजिये। आप समर्थ हैं।'

ब्राह्मणवेषधारी विष्णुके प्रभावसे यम, मृत्युकन्या और काल—सभी उपस्थित हो गये। मालावतीने स्थूल पैर, श्यामवर्ण एवं श्रीकृष्णका मन्त्र-जप करते हुए यमसे कहा—'धर्मनिष्ठ धर्मराज ! असमयमें ही आप मेरे प्राणनाथको कैसे लिये जा रहे हैं ?'

'समय पूरा हुए बिना तथा परमेश्वरकी आज्ञाके बिना किसीकी मृत्यु नहीं होती।' यमने बड़े प्रेमसे उत्तर दिया—'मैं, काल, मृत्युकन्या तथा अत्यन्त दुर्जय व्याधियाँ आयु पूर्ण होनेपर ही ईश्वरकी आज्ञासे जीवको उसके शरीरसे पृथक् कर ले जाती हैं। मृत्युकन्या विचारशीला है। तुम उससे पूछ सकती हो कि वह किस कारण जीवको प्राप्त होती है ?'

'हे सखी !' मालावतीने मृत्युकन्याकी ओर देखा। वह अत्यन्त भयंकर, काली तथा लाल वस्त्र पहने हुए थी। उसके छः भुजाएँ थीं। वह मन्द-मन्द मुस्करा रही थी। वह महासती थी। अपने पति कालके बायें भागमें अपने चौंसठ पुत्रोंके साथ खड़ी मालावतीकी ओर देख रही थी। मालावतीने बड़े ही प्यारसे उससे पूछा—'तुम स्त्री होनेके कारण पति-वियोगकी पीड़ासे परिचित हो। मेरे जीवित रहते मेरे प्राणनाथका प्राण-हरण क्यों कर रही हो ?'

'आदरणीया सती !' मृत्युकन्याने बड़े ही स्नेहसे उत्तर दिया—'बहुत पहले विधाताने इस कर्मके लिये मेरी सृष्टि की। तीव्र इच्छा होनेपर या कठोर तप करके भी मैं इस कार्यको त्याग सकनेमें समर्थ न हो सकी। कालकी प्रेरणासे ही मैं तथा मेरे पुत्र व्याधिगण किसी प्राणीका स्पर्श करते हैं। अतएव मैं तथा मेरे पुत्र निर्दोष हैं। इस सम्बन्धमें तुम धर्मज्ञ कालसे पूछ लो। फिर जैसा उचित हो करना।'

'श्रीनारायणके सनातन अंश, कर्मोंके साक्षी, कर्मस्वरूप, कालदेव !' कालका प्रचण्ड तेज, उग्र-स्वरूप, छः मुख, सोलह भुजाएँ, छः पैर तथा अरुण वस्त्रावृत काले रंगको देखकर मालावती एक बार सहम गयी। उनके हाथमें अक्षमाला थी तथा वे श्रीकृष्णका नाम-जप कर रहे थे। मालावतीने अपने सम्मुख व्याधि-समूहोंको भी देखा, जो अत्यन्त दुर्बल और बूढ़े होनेपर भी माताके दूध पीते दीख रहे थे। मालावतीने पूछा—'आप सर्वज्ञ हैं। मेरे जीते ही मेरे स्वामीको क्यों लिये जा रहे हैं ?'

'साध्वी मालावती !' कालने बड़ी ही शान्तिसे उत्तर दिया—'मुझमें, यम, मृत्युकन्या तथा व्याधियोंमें तनिक भी सामर्थ्य नहीं कि कुछ कर सकें। हम सब सदा ईश्वरके आज्ञा-पालनमें तत्पर रहते हैं। निखिल सृष्टि एवं देव-समुदाय तथा मायाको भी मोहित करनेवाली माया जिनके द्वारा निर्मित है, जिनके भ्रू-संचालनसे देव, दानव, यक्ष, किंनर प्रभृति जीवन धारण करते हैं; सूर्य प्रकाशित हैं, वायु बहते हैं, वसुधा क्षमा-शील है और वेद जिन्हें 'नेति-नेति' कहकर स्तुति करते हैं, वे श्रीकृष्ण ही सर्वेश्वर हैं। वे कालके भी काल तथा परब्रह्म परमेश्वर हैं। सम्पूर्ण लौकिक-पारलौकिक सुखोंके दाता उन श्रीकृष्णका ही तुम चिन्तन करो। तुम्हारा आत्यन्तिक मङ्गल होगा।'

'सती मालावती !' ब्राह्मणकुमारने उपबर्हणकी पत्नीसे कहा—'तुमने काल, यम, मृत्युकन्या तथा व्याधियोंको देख लिया। अब तुम्हारे मनमें और कुछ संदेह हो तो उसका भी निवारण कर लो।'

'दयालु द्विजेन्द्र !' मालावतीने अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—'आप दीनोंपर दया करनेवाले हैं। रोग आदिके कारण तथा अन्यान्य कल्याणकी बातें आप कृपापूर्वक मुझे बताइये।'

'रोगका पापोंके साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है।' ब्राह्मणने उत्तर दिया—'पाप ही रोग, बुढ़ापा, दैन्य, दुःख एवं भयंकर शोकका कारण है। इसलिये पापसे सदा सावधानीपूर्वक बचते रहना चाहिये। किंतु तीर्थ-व्रत, उपवास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं धर्माचरण-सम्पन्न जीवन व्यतीत करते रहनेसे पापकी छाया भी समीप नहीं आती। ऐसे पुरुषके समीप जरा एवं दुर्जय रोगसमूह नहीं जा पाते। साध्वी! तुम्हारे पतिका शरीरान्त किस रोगसे हुआ है। बताओ, मैं इन्हें जीवित करनेका यत्न करूँगा।'

'विपत्ति भी धन्य है।' चित्ररथ-पुत्रीने ब्राह्मणवेषधारी श्रीविष्णुसे निवेदन किया—'जिसके द्वारा आप-जैसे महात्माओंका दुर्लभ संग सुलभ हो जाता है। आपकी सार-गर्भित वाणीसे मेरा बड़ा उपकार हुआ है।'

'विद्वन्!' मालावतीने आगे कहा—'मेरे स्वामीने ब्रह्माके शापसे योगबलसे शरीरका त्याग किया है। आप कृपापूर्वक इन्हें शीघ्र जीवित कर दीजिये। मैं आप समस्त देवताओंके चरणोंमें प्रणामकर पतिके साथ घर चली जाऊँगी।'

'देवताओ!' ब्राह्मण-वेषधारी श्रीविष्णुने अपनी मायासे मोहित देव-समुदायकी ओर दृष्टिपात किया। श्रीविष्णुकी मायासे मोहित देवताओंको स्मरण ही नहीं रहा कि वे मालावतीके शाप-भयसे श्वेतद्वीपमें श्रीविष्णुकी प्रार्थना कर रहे थे और उनके पधारनेका निश्चित आश्वासन पाकर ही वे यहाँ आये थे। ब्राह्मणकुमारके वेषमें कमला-कान्त भगवान् विष्णुने कहा—'उपबर्हणकी पत्नी मालावती शाप देनेके लिये प्रस्तुत थी, पर इस समय मैंने इसका क्रोध शान्त कर दिया है। अब इसके पतिको जीवित करनेके लिये क्या करना चाहिये?'

'श्रीविष्णु क्यों नहीं पधारे?' ब्राह्मणकुमारने आगे कहा—'श्वेतद्वीपमें आपलोगोंने श्रीहरिकी स्तुति की थी। आकाशवाणी हुई थी कि तुमलोग चलो, श्रीविष्णु भी पीछे जायँगे।'

'मेरे पुत्र नारद ही शापके कारण उपबर्हण नामक गन्धर्व हुए थे।' लोकपितामह बोले—'और मेरे ही शापसे उन्होंने योगके द्वारा शरीर-त्याग किया है। इस पृथ्वीपर इनका जीवन एक लाख युगतक नियत था। इसके अनन्तर ये शूद्रयोनिमें जन्म लेंगे और उस शरीर-त्यागके अनन्तर पुनः मेरे पुत्रके रूपमें प्रतिष्ठित हो जायँगे। इस धरतीपर इनकी आयुके एक सहस्र वर्ष अभी शेष हैं। मैं भगवान् श्रीविष्णुकी कृपासे देवताओंको शापसे बचानेके लिये उपबर्हणको जीवन-दान दूँगा।'

'भगवान् विष्णु क्यों नहीं आये?' विधाताने पुनः कहा—'आपका यह प्रश्न ठीक नहीं है! वे सर्वात्मा हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वत्र हैं, सर्वव्यापक हैं और सर्वेश्वर हैं। मैं, संहारकारी शिव, कर्मोंके साक्षी धर्म, काल, यम, सर्वजननी प्रकृति—सभी जिनसे भयभीत एवं आज्ञा-पालनमें तत्पर रहते हैं, वे आद्यन्त-मङ्गलकर भगवान् विष्णु सर्वेश्वर हैं।'

'तुम बालक होकर भी अपने तेजसे देवताओंको तिरस्कृत कर रहे हो।' भगवान् शंकरने ब्राह्मणसे कहा—'किंतु सर्वान्तर्यामी, सर्वेश्वर परमात्मा श्रीविष्णुको नहीं जानते, यह आश्चर्यकी बात है। मैं निरन्तर उनके नाम और गुणमें तन्मय रहकर मृत्युञ्जय हो गया हूँ। निरन्तर भगवन्नामका जप करनेवालेको देखकर मृत्यु भाग जाती है।'

'ब्रह्मन्!' महेश्वरने आगे कहा—'गोलोकधाममें विराजनेवाले श्रीकृष्ण ही वैकुण्ठ और श्वेतद्वीपमें भी हैं। मैं उन महिमामय परब्रह्म परमेश्वर श्रीकृष्णकी एक कलामात्र हूँ। उनकी महिमाका बखान करना सम्भव नहीं।'

'तुम्हारी बातसे मुनियोंको मतिभ्रम हो सकता है।' महेश्वरके चुप होते ही धर्म बोलने लगे—'जो श्रीविष्णु सबके अन्तरात्मासे प्रत्यक्ष हैं, सर्वत्र विद्यमान हैं, उनके लिये तुम्हारे वचन उचित नहीं। जहाँ श्रीभगवान्‌की निन्दा होती है, वह स्थान अपवित्र हो जाता है। श्रीविष्णुके स्मरणमात्रसे पातक मिट जाते हैं और पवित्रता आ जाती है। भगवान् विष्णु त्रैलोक्यमें सबके माता-पिता, गुरु, ज्ञानदाता, पोषक, पालक, भयसे त्राण देनेवाले परम प्रभु हैं, सर्वत्र हैं, सर्वव्यापक हैं।'

'आदरणीय देवताओ!' ब्राह्मण-कुमार मुस्कराते हुए बोले—'मैंने तो यही कहा कि आकाशवाणीके अनुसार श्रीविष्णु यहाँ नहीं पधारे। उनकी निन्दा मुझे अभीष्ट नहीं। आप सब धर्मात्मा एवं सत्यवक्ता हैं। यदि विष्णु सर्वत्र और सर्वव्यापक हैं तो आपलोगोंने उनसे वरकी याचना करने श्वेतद्वीप जानेका कष्ट क्यों किया? यदि अंशी और अंशमें भेद नहीं तो श्रेष्ठ पुरुष अंशीको छोड़कर पूर्णतम अंशकी उपासना क्यों करते हैं? यद्यपि पूर्णतम परमेश्वर श्रीकृष्ण करोड़ों जन्मोंकी उपासनासे भी वशमें नहीं होते, फिर भी लोगोंकी बलवती आशा उन्हींकी सेवा करना चाहती है। छोटे-बड़े सभी परम पदके अभिलाषी हैं।'

'श्रीविष्णु एक देशमें रहते हैं' कुछ रुककर ब्राह्मणकुमारने पुनः कहा—'विधाता, महेश्वर, धर्म तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिक्पालादि सभी एक देशके वासी हैं। ब्रह्माण्ड एवं उनके देवता असंख्य हैं। उन सबके स्वामी, सर्वेश्वर श्रीकृष्ण हैं। उनका गोलोक सत्यलोक या नित्य वैकुण्ठधामसे भी ऊपर है। वह पचास करोड़ योजन विस्तृत है। वहाँ द्विभुज श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी सेवामें बहुत-सी गोपाङ्गनाएँ, गौएँ और गोप-पार्षद रहते हैं। वे सदा स्वेच्छामय रूप ग्रहणकर दिव्य वृन्दावनमें रासमण्डलमें विहार करते हैं। कोटि-कोटि सूर्यके सदृश उनकी अङ्ग-कान्ति है। उनके श्रीअङ्गोंपर दिव्य पीताम्बर शोभा देता है। वे लीलाधाम किशोरावस्थामें रहते हैं। उनका लावण्य अतुलनीय है। उनकी मन्द मुस्कान अत्यन्त चित्ताकर्षक एवं परम सुख देनेवाली है।'

'देवेश्वर सुरेश!' ब्राह्मणवेषधारी श्रीविष्णुने आगे कहा—'उपबर्हणको शीघ्र जीवित कीजिये। यहाँ वाग्युद्धसे कोई लाभ नहीं।'

ब्राह्मणकुमार मुस्कराने लगे।

श्रीविष्णुकी मायासे मोहित ब्रह्मादि देवता मालावतीके निकट पहुँचे। ब्रह्माने अपने कमण्डलुका जल शवपर छिड़का और मनका संचारकर उपबर्हणके शरीरको सुन्दर बना दिया। शिवने ज्ञान, धर्मने धर्म-ज्ञान और ब्राह्मणने जीवन-दान दिया। काम, वायु, सूर्य और वाणी आदि देवताओंने अपनी-अपनी शक्ति और तेज उस शवमें दिये; किंतु शव पूर्ववत् जडकी भाँति सोता रहा। उपबर्हण जीवित नहीं हो सका।

'साध्वी मालावती!' ब्रह्माने मालावतीको बताया—'तुम शीघ्र ही जलमें स्नान करो एवं दो धुले वस्त्र धारणकर परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णकी स्तुति करो।'

'कर्मबीजका नाश करनेवाले सर्वसमर्थ परमात्माके चरणोंमें मैं प्रणाम करती हूँ।' मालावती विधाताके आदेशानुसार स्नानोपरान्त श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगी—'हे प्रभो! आप अलक्ष्य, अनीह, सारभूत तथा मन और वाणीसे परे हैं, तथापि भक्तोंपर अनुग्रहकर दिव्य विग्रह धारण करते और अपनी मङ्गलमयी लीलासे उनका मङ्गल-साधन करते हैं। आप कभी गोप-बालकोंके साथ क्रीड़ा करते तो कभी गोपियोंको सुख देते और कभी गिरिराजको अँगुलीपर धारण करते हैं, जिसे गा-गाकर भक्त सुखी होते एवं संसार-सागरसे तरते जाते हैं। आपकी स्तुति करनेमें वेद और सरस्वती भी समर्थ नहीं, फिर मैं शोकातुर अबला आपके गुणोंका बखान भला किस प्रकार कर सकती हूँ।'

मालावती बार-बार श्रीकृष्ण-चरणोंमें प्रणाम करती हुई फूट-फूटकर रोने लगी!

सहज करुणाकर श्रीकृष्ण द्रवित होकर अपनी शक्तियों-सहित उपबर्हणके शरीरमें प्रविष्ट हुए और उपबर्हण तुरंत अपनी वीणा लिये उठ बैठा।

उसने तुरंत स्नानकर नवीन वस्त्र धारण किये और सुरसमुदायसहित ब्राह्मणकुमार-वेषधारी श्रीविष्णुके चरणोंमें प्रणाम निवेदन किया। देवताओंने दुन्दुभि बजाकर पुष्प-वृष्टि की और उपबर्हण तथा मालावतीको आशीष दिया।

गन्धर्व-दम्पतिने कुछ देरतक देवताओंके सम्मुख नृत्य और गान किया और समस्त देवताओंका अभिवादन कर वे गन्धर्वनगरमें चले गये।

देवताओंका समूह तथा ब्राह्मणवेषधारी श्रीविष्णु भी अपने-अपने धाम पधारे।

मालावतीने महोत्सव रचाया, जिसमें ब्राह्मणोंको भोजन और उन्हें दक्षिणा दी गयी। वेद-पाठ एवं मङ्गल-गान करवाये। उत्सवमें आदिसे अन्ततक श्रीहरिके मङ्गलमय नामका कीर्तन होता रहा।

श्रीकृष्णके हो जानेपर सब बन्धन कट जाते हैं

तावद्रागादयः स्तेनास्तावत्कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न ते जनाः॥

(श्रीमद्भागवत १०। १४। ३६)

'तभीतक रागादि चोर पीछे लगे हैं, तभीतक घर कारागार है और तभीतक मोहने पावोंमें बेड़ी डाल रक्खी है, जबतक हे श्रीकृष्ण! ये मनुष्य आपके नहीं हो जाते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीचित्रगुप्तका प्राकट्य, पद तथा कार्य

(लेखक—श्रीरामसेवकजी सक्सेना, विशारद)

मन्त्री श्रीधर्मराजस्य चित्रगुप्तः शुभंकरः ।
पायान्मां सर्वपापेभ्यः शरणागतवत्सलः ॥

युधिष्ठिरजी भीष्मजीसे बोले—हे पितामहजी ! आपकी प्रसन्नतासे मैंने धर्म-शास्त्र सुने । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंके सब धर्म आपने कहे और तीर्थयात्रा-विधि, मास-नक्षत्र-तिथि-वारोंके व्रत कहे, उनमें यमद्वितीया कही । उसको विस्तारसे कहिये । इस यमद्वितीयाका क्या पुण्य है, क्या फल है, किस समय हो, कैसे हो ? आपसे मैं सुनना चाहता हूँ, कृपा करके विस्तारपूर्वक कहिये ।

भीष्मजी बोले—हे प्यारे ! तुमने अच्छी बात पूछी । मैं इस व्रतको विस्तारपूर्वक कहता हूँ । तुम चित्त देकर श्रवण करो ।

कार्तिक शुक्लपक्ष और चैत्र कृष्णपक्षमें जो द्वितीया होती हैं, वह 'यम' नामकी अर्थात् 'यमद्वितीया' कहलाती हैं ।

धर्मराज युधिष्ठिरजीने पूछा—उस कार्तिकके उजेले पक्षकी द्वितीयामें किसका पूजन करना चाहिये और चैत्रमासमें यह व्रत कैसे हो तथा किसका पूजन किया जाय ?

भीष्मजी बोले—हे युधिष्ठिर ! पुराणसम्बन्धी कथा कहता हूँ, तुम सुनो । निस्संदेह उस कथाको सुनकर प्राणी सब पापोंसे छूट जाता है । पिछले सत्ययुगमें भगवान्‌से, जिनकी नाभिमें कमल है, चार मुँहवाले ब्रह्माजी पैदा हुए, जिनसे वेदवक्ता भगवान्‌ने चारों वेद कहे ।

नारायण बोले— ब्रह्माजी ! तुम संसारको पैदा करनेवाले और योगियोंकी गति हो । मेरी आज्ञासे जगत्‌को शीघ्र रचो ।

ऐसे श्रीहरिजीके वचन सुन हर्षसे प्रफुल्लित ब्रह्माजीने संसारको रचा । देव, गन्धर्व, दानव, राक्षस, सर्प, नाग, जलजीव, स्थलजीव, नदी, पर्वत, वृक्ष आदिको रचकर मनुको उत्पन्न किया । इसके बाद दक्ष प्रजापतिको पैदा किया और उनसे आगे सृष्टि करनेको कहा । दक्ष प्रजापतिसे ६० कन्याएँ हुईं, जिनमेंसे १० धर्मराजको, १३ कश्यपको और २७ चन्द्रमाको दीं । कश्यपजीसे देव, दानव, राक्षस, इनके सिवा और भी गन्धर्व, पिशाच, गौ और पक्षियोंकी जातियाँ उत्पन्न हुईं और अपने-अपने अधिकारोंपर स्थिर हुए धर्मराजजीको धर्मप्रधान जानकर सबके पितामह ब्रह्माजीने सब लोकोंका अधिकार दिया और धर्मराजसे कहा कि 'तुम आलस्य त्यागकर काम करो । जीवोंने जैसे-जैसे शुभ और अशुभ कर्म किये हैं, उसी प्रकार न्यायपूर्वक वेद-शास्त्रमें कही विधिके अनुसार कर्मकर्ताको कर्मका फल दो । सदा मेरी आज्ञाका पालन करो ।'

ब्रह्माजीकी यह आज्ञा सुन बुद्धिमान् धर्मराजजीने नम्र हो, हाथ जोड़कर सबके परम पूज्य ब्रह्माजीसे मधुर शब्दोंमें कहा—'प्रभो ! मैं आपका सेवक निवेदन करता हूँ । सारे जगत्‌को कर्मोंका विभागपूर्वक फल देनेकी आपने मुझे आज्ञा दी है । आपकी आज्ञा शिरोधार्य है । इससे कर्ताओंको फल मिलेगा । परंतु, जीव और उनके देह अनन्त हैं । उनमें कर्ताने कितने कर्म किये, कितने भोगे, कितने शेष हैं और उनका भोग कैसा है तथा एक-एक कर्म भी मुख्य-गौणके भेदसे अनेक हो जाते हैं । साथ ही, कर्ताने उस कर्मको कैसे किया, स्वयं किया या दूसरेकी प्रेरणासे किया—इत्यादि कर्मचक्र बहुत ही गहन है; अतः मैं अकेला किस प्रकार इस भारको उठा सकूँगा । आप विचार लें । मुझे कोई ऐसा सहायक चाहिये, जो धार्मिक, न्यायी, बुद्धिमान्, शीघ्रकारी, लेखकर्ममें विज्ञ, चमत्कारी, तपस्वी, ब्रह्मनिष्ठ और वेद-शास्त्रका ज्ञाता हो ।' धर्मराजके इस प्रकार कथनको सुन विधाताने उसे उचित समझा और वे मनमें प्रसन्न हुए । वे धर्मराजका मनोरथ पूर्ण करनेकी चिन्ता करने लगे कि ऐसे सब गुणोंवाला ज्ञानी लेखक पुरुष होना चाहिये । उसके बिना धर्मराजका मनोरथ पूर्ण नहीं होगा । ब्रह्माजीने कहा—'धर्मराज ! तुम्हारे अधिकारमें मैं सहायता करूँगा ।' इतना कह धर्मराजको छोड़ ब्रह्माजी ध्यान करने लगे ।

एक हजार वर्षतक तपस्या की ।

सर्वव्यापक आत्मा भगवान् विष्णुदेव ब्रह्माजीके मनकी बातको जानकर प्रकट हो गये । तपस्याके बाद जब ब्रह्माजीने आँख खोलकर देखा तो अपने सम्मुख एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्यामवर्ण, कमलनयन, शङ्खकी-सी गर्दन, गूढ़मस्तक, चन्द्र-मुख, लेखनी, दावात और पाटी हाथमें लिये, वेद-शास्त्रमें विलक्षण, महाबुद्धि, धर्माधर्मके विचारमें महान् प्रवीण, लेख-कर्ममें अत्यन्त निपुण पुरुषको देखा। ब्रह्माजीने पूछा—'आप कौन हैं?' तब उस महापुरुषने कहा—'प्रभो! मैं माता-पिताको नहीं जानता; किंतु आपके शरीरसे प्रकट हुआ हूँ। इसलिये आप ही मेरा नामकरण कीजिये। और किसलिये मैं उत्पन्न हुआ हूँ, यह भी कहिये। मैं क्या करूँ? ब्रह्माजी! मैं नहीं जानता कि मैं कौन हूँ। आप ही बताइये।'

ब्रह्माजीने उस महापुरुषके वचन सुन अपने हृदयसे उत्पन्न उस विलक्षण पुरुषसे हँसकर कहा कि 'तुम मेरी कायासे प्रकट हुए हो, इससे मेरी काया (शरीर) में तुम्हारी स्थिति है और तुम कायस्थ चित्रगुप्त नामक क्षत्रिय हो। धर्मराजके पुरमें प्राणियोंके शुभाशुभ कर्म लिखकर धर्मराजके सब कामोंमें सखारूपसे उनकी सहायता करो। इसीलिये तुम्हारी उत्पत्ति हुई है कि तुम प्राणियोंको कर्मका फल दो।'

चित्रगुप्तसे यों कहकर ब्रह्माजीने धर्मराजसे कहा कि 'धर्मराज! यह उत्तम लेखक सखा तुम्हें दे दिया गया है, जो संसारमें समस्त कर्मसूत्रोंकी मर्यादाके पालनके लिये है। ये चित्रगुप्त सदा तुम्हारी आज्ञामें रहेंगे।' इतना कह ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये।

'राजन्! फिर वह पुरुष कोटिनगरको जाकर चण्डी-प्रचण्ड ज्वालामुखीजीके पूजनमें लग गया। दस हजार वर्षतक जप-स्तोत्रसे भजन-पूजन और उपासना की। चित्रगुप्तकी स्तुति-आराधनासे प्रसन्न होकर देवीजीने वरदान दिया कि 'तुम परोपकारमें कुशल, अपने अधिकारमें सदा स्थिर और असीम आयुवाले होओगे।' यह वर देकर दुर्गादेवीजी अन्तर्धान हो गयीं।

इसके पश्चात् चित्रगुप्त धर्मराजके साथ गये और वे आराधना करनेयोग्य अपने अधिकारपर स्थित हुए। उसी समय ऋषियोंमें उत्तम ऋषि सुशर्माने, जिनको संतानकी चाह थी, ब्रह्माजीका आराधन किया। ब्रह्माजीकी प्रसन्नतासे उन्होंने इरावतीको पाया।

श्रीब्रह्माजीके बारह पुत्रोंमें प्रथम पुत्र मरीचि थे। मरीचिके पुत्र कश्यप हुए। कश्यपजीकी द्वितीय पत्नी अदितिके गर्भसे विवस्वान् अथवा सूर्य हुए थे। सूर्यके पाँच पुत्र और एक कन्या थी। धर्मशर्मा (सुशर्मा) के केवल एक ही कन्या इरावती हुई, जो चित्रगुप्तको विवाही गयी। उससे आठ पुत्र हुए। वे कायस्थ हैं।

कश्यपजीके दूसरे पुत्र श्राद्धदेव मनुकी पुत्री, जिसका नाम नन्दिनी या दक्षिणा था, चित्रगुप्तको विवाही गयी। उससे चार पुत्र उत्पन्न हुए, वे कायस्थ हैं। यों चित्रगुप्तके बारह पुत्र विख्यात हुए तथा पृथ्वीतलपर विचरने लगे और भिन्न-भिन्न स्थानोंमें रहनेके कारण भिन्न-भिन्न नामोंसे प्रसिद्ध हुए।

उस समय सौदास नामका एक राजा था, जो सौराष्ट्रनगरमें उत्पन्न हुआ था। वह महापापी, पराया धन चुरानेवाला, लम्पट, महान् अभिमानी, चुगल और पापकर्म करनेवाला था। राजन्! जन्मसे लेकर सारी आयुमें उसने तनिक भी धर्म नहीं किया। किसी समय वह राजा अपनी सेना लेकर उस वनमें, जहाँ बहुत हरिण आदि जीव रहते थे, शिकार खेलने गया। वहाँ उसने निरन्तर व्रत करते हुए एक ब्राह्मणको देखा। वह ब्राह्मण चित्रगुप्त और यमराजजी-का पूजन कर रहा था। यमद्वितीयाका दिन था।

राजाने पूछा—'महाराज! आप क्या कर रहे हैं?' ब्राह्मणने यम-द्वितीयाके व्रतको, जो वह कर रहा था, कह सुनाया। सुनकर राजाने वहीं उसी दिन कार्तिकके महीनेमें शुक्लपक्षकी द्वितीयाके दिन धूप-दीपादि सामग्रीसे चित्रगुप्तके साथ धर्मराजका पूजन किया। व्रत करके वह अपने धन-सम्पत्तियुक्त घरमें लौट आया। कुछ दिनों बाद वह व्रत भूल गया। पर याद आनेपर फिर व्रत किया। पश्चात् कालसंयोगसे वह राजा मर गया। यमदूतोंने दृढ़तासे बाँधकर उसे यमराजके पास पहुँचाया। यमराजने उस घबराये मनवाले राजाको अपने दूतोंसे पिटते देख चित्रगुप्तजीसे पूछा, 'इस राजाने क्या कर्म किया, अच्छा या बुरा जो कुछ उसने किया हो, मेरे सामने कहिये।' उस समय धर्मराजके वचन सुनकर चित्र-गुप्त बोले—'इसने बहुत ही दुष्कर्म किये हैं, परंतु दैवयोग-से पहले एक व्रत किया। कार्तिक शुक्लपक्षमें यमद्वितीया होती है, उस दिन इसने आपका तथा मेरा गन्ध-फूल आदि सामग्रीसे, एक बार भोजनके नियमसे और रात्रिमें जागरणसे पूजन किया। हे देव! हे महाराज! इस विधिसे इस राजाने व्रत किया। इससे यह राजा नरकमें डालने योग्य नहीं है।' चित्रगुप्तजीके कथनानुसार धर्मराजने उसे छोड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीब्रह्माजी, धर्मराज और चित्रगुप्त [पृष्ठ ५१२]

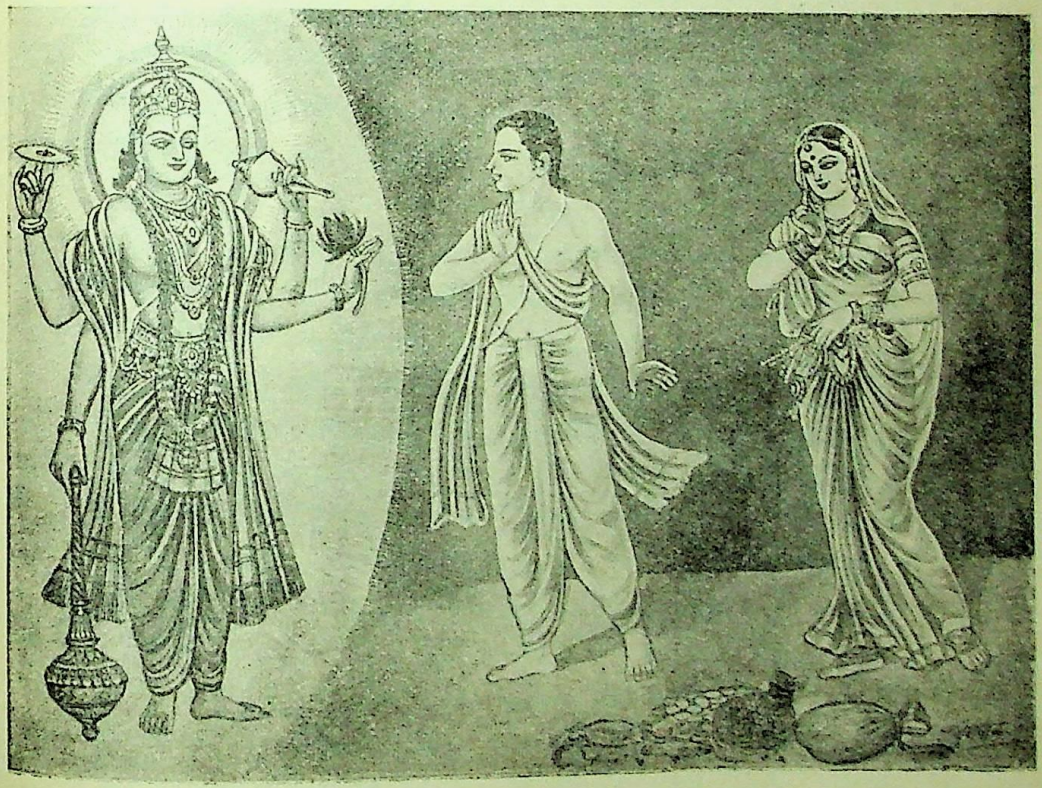

भगवान्‌के शरण होनेपर मायासे छुटकारा (गीता ७ । १४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया और उस यमद्वितीया-व्रतके प्रभावसे वह उत्तम गतिको प्राप्त हुआ।

यों सुनकर राजा युधिष्ठिर भीष्मजीसे बोले—पितामह! इस व्रतमें मनुष्योंको धर्मराज और चित्रगुप्तजीका पूजन कैसे करना चाहिये? यह मुझसे कहिये।

भीष्मजी बोले—राजन्! यमद्वितीयाके विधानको सुनो। एक पानपर धर्मराज और चित्रगुप्तकी मूर्ति चन्दनसे लिखे और उनकी पूजाकी कल्पना करे। वहाँ उन दोनोंकी प्रतिष्ठा कर सोलह प्रकारकी सामग्रीसे श्रद्धा-भक्तियुक्त नाना प्रकारके पकवानों, मिठाइयों, फल-फूल-पान तथा दक्षिणादि सामग्रियोंसे धर्मराज और चित्रगुप्तका पूजन करना चाहिये। फिर बार-बार नमस्कार करे, स्तुति करे। इस प्रकार पूजन करके दावात-कलमकी पूजा करे, कथा श्रवण करे, वक्ताको यथाशक्ति दक्षिणा दे। बहिनके घर भोजन करे और उसके लिये धन आदि पदार्थ दे। इस प्रकार भक्तिके साथ यमद्वितीयाका व्रत करनेवाला पुत्रोंसे युक्त होता और मनोवाञ्छित फल पाता है।

(यमद्वितीया-कथाके आधारपर)

भगवान् श्रीव्यास और कीड़ेका संवाद

(लेखक—श्रीलक्ष्मीकान्तजी त्रिवेदी)

भगवान्‌के इस निखिल प्रपञ्चमें उत्तम, मध्यम और अधम मनुष्य युगानुसार हुआ ही करते हैं, परंतु कलिकालमें अधम मनुष्योंका बाहुल्य हो जाता है। गोस्वामीजीने कहा है—

ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेताँ नाहिं।
द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं॥

भगवान् श्रीरामके अवतारके विषयमें संदेह होनेपर श्रीवृषभध्वजने देवी पार्वतीजीसे ऐसा कहकर अपना रोष प्रकट किया था।

इस पापबहुल कलियुगमें प्रायः ऐसे ही मनुष्य सर्वत्र मिलते हैं, जो न ईश्वरके अवतारपर, न धर्मपर, न पितृगणोंके श्राद्धपर और न इतिहास-पुराणोंके पठन-पाठनपर ही विश्वास करते हैं। यद्यपि इन मनुष्योंके मध्य भी कभी-कभी ऐसी घटनाएँ हो जाती हैं, जो उनको विस्मयमें डालनेवाली होती हैं, जैसा कि पुनर्जन्मकी घटनाएँ जो प्रायः 'कल्याण'के अङ्कोंमें प्रकाशित होती रहती हैं—फिर भी उन मनुष्योंके हृदयमें ज्ञान नहीं अङ्कुरित होता; क्योंकि वे श्रद्धा और संस्कारोंसे रहित होते हैं। पुनर्जन्म तो सभीका होता है; परंतु जातिस्मरता किसीको ही प्राप्त होती है। हमारे धर्मशास्त्रोंमें ऐसी बहुत-सी घटनाएँ हैं, जिनको पढ़ने या सुननेसे मनुष्यको धर्मपर, ईश्वरके अवतारपर, पुनर्जन्मपर, मोक्षप्राप्तिमें, नाना लोकोंकी प्राप्तिमें और सत्कर्म करनेमें विश्वास होता है। यहाँ कुछ कथाओंका उल्लेख किया जा रहा है—

(१)

जातिस्मर कीड़ा

शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजी युधिष्ठिरसे कहते हैं—'हे राजन्! प्राचीन कालका वृत्तान्त है। एक समय भगवान् व्यास कहीं जा रहे थे। मार्गमें उनकी दृष्टि एक कीड़ेपर पड़ी, जो गाड़ीकी लीकमें बड़ी तेजीसे भागा जा रहा था। वे कीटके निकट आकर पूछने लगे—'कीट! तू क्यों इतनी आतुरतासे भागा जा रहा है? आज तुझपर कौन-सा भय आ गया है?' कीटने कहा—'भगवन्! देखिये न, यह बैलगाड़ी कितनी तेजीसे चली आ रही है। मुझे भय है कि कहीं आकर यह मुझे कुचल न डाले।' व्यासजीने कहा—'कीट! तू तो अधम तिर्यक् योनिमें उत्पन्न हुआ है। तेरा तो मर जाना ही अच्छा है। बता तो किस पापके कारण तू इस तिर्यक् योनिमें उत्पन्न हुआ है?' कीटने कहा—'भगवन्! पूर्वजन्ममें मैं एक धनी शूद्र था। सदा ब्राह्मणोंका अपमान करता था। मैं बड़ा कंजूस तथा सूदखोर था। सभी वर्णोंकी प्रिय वस्तुओंका अपहरण किया करता था। मैंने कभी दान और सत्कर्म नहीं किया। सदा अपने कुटुम्ब और स्त्रीका पोषण करता था। मांस और भात खाया करता था। हाँ, मैं अपनी बूढ़ी माँकी सेवा करता था और एक बार अपने घरपर आये हुए अतिथिका सत्कार किया था। इसी पुण्यके बलपर पूर्व स्मृति मेरा साथ नहीं छोड़ रही है।' व्यासजीने कहा—'कीट! आज तुझे मेरा दर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त हो गया; अतः आजसे दस जन्मोंके बाद मैं तुझे अपने तपोबलसे परम पद—मोक्ष प्राप्त करा दूँगा। एक स्थानपर बड़े कर्मनिष्ठ ब्राह्मण रहते हैं। तू उनका पुत्र होकर मेरी कृपासे मोक्ष प्राप्त कर लेगा।'

इतना कहकर व्यासजी चले गये। इतनेमें वह बैलगाड़ी आयी और उससे दबकर कीटने प्राण-त्याग कर दिया। इसके बाद वह गोधा, शाही, शूकर, कूकर, शृगाल और चाण्डाल हुआ। तत्पश्चात् सत् शूद्र और वैश्य हुआ। इसके बाद राजपुत्र हुआ; तब वह व्यासजीके पास गया और अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए उसने दास्यभाव माँगा। फिर धर्मपूर्वक प्रजापालन करके अन्तमें उसने तपस्या करते हुए देह-त्याग किया। इसके बाद वह ब्राह्मणकुमार हुआ। तब व्यासजीने आकर उसे फिर दर्शन दिये। उनकी कृपासे उसे तत्त्वज्ञान हो गया और अन्तमें परमपदकी प्राप्ति हुई। (महाभारत, अनुशासनपर्व)

(२)

जातिस्मर जडभरत

जडभरतकी कथा तो सर्वत्र ही प्रसिद्ध है। भगवान् ऋषभदेवके पुत्र राजाधिराज भरत बहुत काल राज्य भोगनेके पश्चात् अपने पुत्रोंको राज्य देकर, वानप्रस्थका नियम लेकर शालग्राम-क्षेत्रके निवासी हुए। वहाँ महायोगका आश्रय लेकर भी अन्तमें एक मृगछौनेके मोहमें आसक्त हो गये। ममतावश देह-त्यागके समय वे उस मृगशिशुका ही ध्यान करते रहे। इसलिये उनका पुनर्जन्म मृगयोनिमें ही हुआ; पंतु उनकी पूर्वस्मृति नष्ट नहीं हुई थी। अतः उन्होंने अन्य मृगोंका साथ छोड़कर यत्किञ्चित् तृण चरते हुए गण्डकी नदीमें अपना आधा शरीर डुबोकर तप करते हुए, प्राणत्याग किया। पुनः वे एक श्रेष्ठ ब्राह्मणके घरमें पैदा हुए। वहाँ भी उनको पूर्वस्मृति बनी रही, अतः वे जड, अन्धे और बहरेके समान आचरण करते थे। पिताके पढ़ानेपर भी उन्होंने विद्या नहीं पढ़ी। उनके पिताने उनका यज्ञोपवीत-संस्कार कर दिया और खेतोंकी रखवालीमें नियुक्त कर दिया। वहाँ वे परमब्रह्मका चिन्तन करते हुए कालकी प्रतीक्षा करते थे। सौवीर-नरेशको उन्होंने धर्मका गूढ़ रहस्य बताया था। अन्तमें उसी जन्ममें उन्हें मुक्ति प्राप्त हो गयी। (श्रीमद्भागवतपुराण)

(३)

जातिस्मर शूद्र

महाभारतमें एक कथा है। एक शूद्र तपस्वी था। उसने अपने एक मित्र ब्राह्मण तपस्वीसे अपने पितरोंका श्राद्ध सम्पन्न करवाया था, जिसके फलस्वरूप वह तापस शूद्र पुनर्जन्ममें राजा हुआ और जातिस्मरताको प्राप्त हुआ और वह तपस्वी ब्राह्मण उसी राजाका पुरोहित हुआ। राजा प्रायः अपने पुरोहितको देखकर हँसा करता था। एक दिन पुरोहितने एकान्तमें राजासे उसका कारण पूछा। तब राजाने अपनी पूर्वस्मृतिके बलपर पुरोहितको सब ठीक-ठीक कह सुनाया। राजाकी बात सुनकर पुरोहित तपस्या करने चला गया और कठिन तप करके उसने मोक्ष प्राप्त किया।

(महाभारत, अनुशासनपर्व)

(४)

जातिस्मर चार पक्षी

एक समय महर्षि जैमिनि मार्कण्डेय मुनिके पास गये और महाभारत-सम्बन्धी कुछ संदेह उपस्थित किये। तब संध्या-वन्दनका समय होनेके कारण मार्कण्डेय मुनिने उनको विन्ध्य पर्वतकी कन्दरामें रहनेवाले चार पक्षियोंके पास जानेको कहा। महर्षि जैमिनिके पक्षियोंके बारेमें पूछे जानेपर मार्कण्डेयजीने बतलाया कि "वे मुनिवर समीकके द्वारा पालित पक्षी हैं। एक समय दुर्वासाजीके द्वारा शापित वपु नामक अप्सराने गरुड़वंशीय कन्धर नामक पक्षीकी पत्नी मदनिकाके गर्भसे तार्क्षी पक्षिणीके रूपमें अवतार लिया था। वही तार्क्षी द्रोण नामक एक ब्राह्मणको ब्याही गयी थी, जिससे गर्भ धारण करनेपर सादे तीन महीने बाद वह तार्क्षी, जब महाभारत-युद्ध हो रहा था, उड़ती हुई उधरसे निकली और अर्जुनके बाणसे त्वक् छिल जानेपर वह गर्भस्थ अण्डोंको गिराकर मृत्युको प्राप्त हुई। संयोगवश उसी समय भगदत्तके सुप्रवीक नामक गजराजका महान् गलघण्ट भी बाण लगनेसे टूटकर गिरा और उसने उन अण्डोंको आच्छादित कर दिया। युद्ध-समाप्तिके बाद शिष्योंके साथ विचरण करते हुए समीक मुनि उनको उठा लाये। आश्रममें परिपुष्ट होकर एक दिन वे पक्षी मनुष्यकी वाणी बोलते हुए गुरुको प्रणाम करने गये। मुनिवर समीकने विस्मित होकर उनसे पूर्वजन्मका वृत्तान्त पूछा। उन्होंने बतलाया कि 'हम चारों भाई पूर्वजन्ममें सुकृष नामक ब्राह्मणके ज्ञानी पुत्र थे। एक दिन हमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया। इससे उन्होंने हमें तिर्यक् योनिमें जानेका शाप दे दिया। अतः हे गुरो! वे ही हम चारों ब्राह्मण-कुमार हैं, जो अब पक्षी होकर तार्क्षीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। हमारी माता महाभारतके युद्धमें मारी गयी है। गुरो! अब हमें आज्ञा दीजिये। हम विन्ध्य पर्वतकी मनोहर कन्दरामें निवास करेंगे।' मार्कण्डेयजीने कहा—'हे जैमिनि! तुम वहीं जाओ। वे वेदज्ञानसम्पन्न पक्षी तुम्हें उपदेश करेंगे।' तब महर्षि जैमिनि वहीं गये और पूर्वज्ञानकी स्मृतिसे सम्पन्न उन पक्षियोंने उनके सारे संदेह निवारण कर दिये।

(मार्कण्डेयपुराण)

इस प्रकार हमारे धर्मग्रन्थों तथा इतिहास-पुराणादिके स्वाध्यायसे पता लगता है कि पशु-पक्षीतक भी जातिस्मर होते हैं और उन्हें भी पूर्वजन्मका ज्ञान होता है। ऐसे ही लोगोंके सत्य प्रमाणोंसे पुनर्जन्म ठीक-ठीक निश्चय होता है। हमारा भारत तो सदासे ही अध्यात्मज्ञान-सम्पन्न रहा है। दुर्भाग्यका विषय है कि इस कलिकालमें वह ज्ञान क्षीण हो चला है और मानव दानव बनता जा रहा है। भगवान् रक्षा करें।

पुनर्जन्मका सिद्धान्त हिंदुत्वका दीपस्तम्भ

(लेखक—श्रीगुरुजी श्रीमाधव सदाशिव गोलवलकर)

[प्रेषक—श्री'माधव']

हिंदूके लिये जीवन लक्ष्यहीन कदापि नहीं है। पर उसका लक्ष्य कोई ऐसी महानता नहीं है, जो सत्ता, पद, नाम अथवा ख्यातिसे नापी जाय। उसके सामने तो एक ही लक्ष्य है, अर्थात् अपनी वास्तविक प्रकृति—अन्तर्जात देवत्वकी स्फुल्लिंग, उसमें निवास करनेवाले परम सत्यकी अनुभूति, जो मनुष्यको स्थायी परम आनन्दकी अवस्थातक ले जाती है। किंतु मनुष्यका जीवनकाल बहुत छोटा है। इतने अल्पकालमें वह इस सर्वश्रेष्ठ अवस्थातक कैसे पहुँच सकेगा? वह तो इस शरीरके विषयमें भी पूर्णतया नहीं जानता; यद्यपि वह जीवनपर्यन्त इसका उपयोग करता है। ऐसी दशामें वह सर्वव्यापक अविनाशीको कैसे जान सकता है, जो शरीरमें अन्तर्भूत है। कार्य-कारणका नियम हमें बताता है कि हमारी प्रत्येक क्रिया 'कारण'का विशेष परिणाम होती है। यह कार्य-कारणका चक्र वृद्धिंगत होना, विकसित होना और परा अवस्थाको प्राप्त होना है। इसलिये मनुष्यकी यह वर्तमान सत्ता उसके वास्तविक अस्तित्वकी पूरी कहानी नहीं है। मनुष्यमें विशिष्ट एवं सहज प्रेरणा इस बातकी रहती है कि वह विस्तार करे और अपनी दिव्य प्रकृतिको व्यक्त करे। वह तबतक बार-बार जन्म लेता रहेगा, जबतक उसमें अपनी सच्ची दिव्य आत्माके विषयमें अज्ञानका लेश भी रहेगा तथा यदि वह प्रामाणिकतासे प्रयत्न करता रहेगा तो प्रत्येक जन्ममें अधिकाधिक प्रगति करता जायगा।

उस परम सत्यके साथ अपनी एकताकी अनुभूतिके लिये यह पुनर्जन्मका सिद्धान्त मानव आत्माके लिये एक बहुत ही बड़ी आशा है। यह तो हिंदुत्वका ही दीपस्तम्भ है, जो इस अमर आशाके प्रकाशको विकीर्ण करता है कि इस वर्तमान जीवनके साथ ही सब कुछ समाप्त नहीं हो जाता, अपितु हमारे सामने एक जीवनके पश्चात् दूसरा जीवन अर्थात् अनन्त समय पड़ा हुआ है, कार्यमें जुटनेके लिये और अपने गन्तव्यतक पहुँचनेके लिये। इस विशाल मानव-समाजमें यह हिंदू ही है, जो आशा और विश्वासकी दीपिकाको ऊँचा उठाये हुए है। हमारे सभी पवित्र ग्रन्थों तथा प्राचीन अथवा अर्वाचीन सभी सम्प्रदायोंमें यही मूलभूत तत्त्व अन्तर्हित है। ['विचार-नवनीत' से संकलित]

नित्य सुखमय परम धामकी प्राप्ति

जन्म-मरणके चक्र घोरका तबतक कभी न होगा अंत।
जबतक मानव नहीं भजेगा श्रद्धायुत मनसे भगवंत॥
दुःखयोनि भोगोंका मोह छुड़ाकर भजन बनाता संत।
पा जाता फिर इससे मानव सुखमय नित पर-धाम अनंत॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौरासी लाख योनि और पुनर्जन्मसे बचनेका उपाय

(लेखक—श्रीनारायणजी पुरुषोत्तम सांगाणी)

सृष्टिकर्त्ता परमात्मा श्रीहरिने लीला करनेकी इच्छासे नाना प्रकारकी अद्भुत सृष्टिकी रचना की। उस सृष्टिमें त्रिकालदर्शी ऋषि-मुनियोंके कथनानुसार चौरासी लाख जीवयोनि हैं।

जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज नामक चार प्रकारके प्राणियोंमें ९ लाख जलचर, ११ लाख कृमि, १० लाख पक्षी, २० लाख पशु, ३० लाख स्थावर और ४ लाख मनुष्ययोनि—यों कुल चौरासी लाख जीवयोनिका निर्माण हुआ है। इन सब योनियोंमें जन्म लेकर जीवको असंख्य प्रकारके जन्म-मरणके दुःख सहने पड़ते हैं। मनुष्ययोनिके सिवा इतर योनिके पशु-पक्षी, जलचर, स्थावर आदि जीव बुद्धिशक्तिके अभावमें दुःखसे मुक्तिका मार्ग न तो खोज सकते हैं और न तदनुकूल आचरण कर सकते हैं। पुण्यके प्रतापसे स्वर्गके भोगमें निमग्न देवता भी आत्मकल्याणका उपाय नहीं सोच सकते। अफ्रिका, यूरोप और अमेरिका आदि देशोंके यवन-म्लेच्छ आदि जातिके लोग महर्षि वसिष्ठकी कामधेनु नन्दिनी तथा विश्वामित्रके पचास पुत्रोंके शापके कारण वर्णाश्रमधर्मसे बहिर्मुख एवं जडवादमें आसक्त होनेके कारण वेद-शास्त्रको 'गड़ेरियेके गीत' कहते हैं और जगदुद्धारक वर्णाश्रमकी श्रेष्ठ प्रथाको जंगलीपन मानते हैं। इस कारण वे शाश्वत सुख-शान्ति और आनन्दकी झाँकी प्रायः नहीं कर सकते।

वस्तुतः वेद-शास्त्र, गीता-उपनिषद् आदिने, महानुभाव महर्षिगण—सनत्कुमार, नारद, वसिष्ठ, भृगु, अङ्गिरा, अत्रि, स्वायम्भुव मनु, मार्कण्डेय, व्यास, शुकदेव, याज्ञवल्क्य आदिने स्पष्ट विधान किया है कि लोग अज्ञानवश क्षण-भङ्गुर, नाशवान् और दुःखदायी संसारमें, राजस-तामस पदार्थोंमें तथा स्त्री-पुत्र, धन-सम्पत्ति, ऐश्वर्य-अधिकार आदिमें जो सुख-शान्ति और आनन्द मान रहे हैं; यह उनकी भारी भूल है। बुद्धिको विकारयुक्त करनेवाले इन साधनों या पदार्थोंमें आनन्द और सुख-शान्ति नहीं है; बल्कि इनमें दुःख, अशान्ति और क्लेश ही है। यदि सच्ची सुख-शान्ति और आनन्द चाहिये तो इसके भण्डाररूप परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रकी शरणमें जाओ तथा उनके आज्ञा स्वरूप वेद-शास्त्रमें वर्णित वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार आचरण करो; क्योंकि वे सम्पूर्ण ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्यसे सम्पन्न भगवान् हैं। वे 'रसो वै सः'—अर्थात् आनन्दस्वरूप ही हैं, ऐसी वेद घोषणा करते हैं।

भारतभूमि परम पवित्र गङ्गा-यमुना, विन्ध्य-हिमाचल, द्वारका-जगन्नाथ, बद्रीनाथ-रामेश्वर तथा काशी-मथुरा, पुष्कर-प्रयाग आदि दिव्य तीर्थोंसे सम्पन्न धर्मभूमि है, जहाँ परमात्मा श्रीहरि अजन्मा होते हुए भी धर्म, धर्मज्ञ, गौ और सतीकी रक्षा करने और अधर्मी दुष्ट लोगोंको दण्ड देने तथा धर्मकी स्थापना करनेके लिये मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीरामचन्द्र तथा श्रीकृष्णके रूपमें प्रकट हो चुके हैं। भारतके हिंदू, सनातनधर्ममें दृढ़ श्रद्धा रखनेवाले, भगवद्भक्ति, जप-तप, योग-यागका अनुष्ठान तथा होम-हवन, श्राद्ध-तर्पण आदि धर्मकृत्य करके, गोरक्षा तथा माता-पिताकी सेवा करते हुए परमात्मा श्रीहरि तथा उनकी विभूतिरूप इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, यम, अग्नि, वरुण, वायु, कुबेर आदि देवोंको आहुति-अर्पणके द्वारा प्रसन्न करते थे और वे सहज प्रसन्न होकर ऋद्धि-सिद्धि, धन-धान्य, सम्पत्ति-संतति, इच्छानुकूल वृष्टि, सुख-शान्ति, दीर्घायु तथा स्वास्थ्य प्रदान करते थे। परंतु विदेशी विधर्मियोंके द्वारा नास्तिकवाद देशमें घुस गया; उनके द्वारा धर्म और संस्कृतिसे हीन शिक्षाका प्रचार हुआ; उनके भोजन-वसन आदिकी नकल होने लगी; इससे भारतका और हिंदुओंका घोर पतन हो गया।

पतन तो यहाँतक हो गया है कि जो हिंदू गीताकी आज्ञाके अनुसार स्वधर्मका पालन करते हुए यदि मृत्यु भी हो जाय तो हँसते हुए उसे वरण करते थे, परंतु परधर्म कभी स्वीकार नहीं करते थे; वे ही आज जगत्स्रष्टा ईश्वर और उनके आज्ञास्वरूप वेद-शास्त्र, वर्णाश्रमधर्मकी अवहेलना करते हुए स्वच्छन्द बर्तने लगे हैं। अपनेको शिक्षित कहते हैं, फिर भी मद्य-मांस, व्यभिचार, भ्रूणहत्या, वर्णान्तर विवाह, सगोत्रविवाह आदि महापाप करते-कराते हैं यही नहीं, सर्वदेवमयी, जगज्जननी गोमाताकी नित्य तीस हजारकी संख्यामें हत्या भी हो रही है। प्रतिवर्ष एक करोड़से अधिक संख्यामें गोवंशकी हत्या हो रही है। इसी कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता लोग असंतुष्ट होकर अकाल, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, महामारी, युद्ध, हत्या-लूट आदि सङ्कटोंकी वर्षा कर रहे हैं। अन्न, दूध-घी, तेल-गुड़ आदिका भाव बीसों गुणा बढ़कर भी उनका प्राप्त होना कठिन हो गया है। लोग हाहाकार मचाते हुए बुरी हालतमें जीवन-यापन करते हुए अकाल काल-कवलित हो रहे हैं।

ऐसी नारकीय दुःखद स्थितिसे मुक्त होना हो, लोक-परलोकको सुख-शान्तिमय बनाना हो तथा उपर्युक्त चौरासी लाख योनिके अवर्णनीय सङ्कटोंसे सदाके लिये त्राण पाना हो तो मनुष्यमात्रको, खास करके भारतके पचास करोड़ हिंदुओंको अपने प्रतापी प्रातःस्मरणीय पूर्वज—मनु, पृथु, ध्रुव, अम्बरीष, हरिश्चन्द्र, नारद, भृगु, दधीचि, मार्कण्डेय, व्यास, पाण्डव, विक्रमादित्य, प्रताप, शिवाजी आदिका पवित्र पदानुसरण कर 'कार्यं वा साधयामि देहं वा पातयामि' का सुदृढ़ व्रत लेकर निम्नलिखित बातोंको तत्काल दृढ़तापूर्वक आचरणमें लाना आवश्यक है।

(१) जन्म-मरणके दुःखसे बचना हो तो मन और इन्द्रियोंको वशमें करे। विषय-विकार उत्पन्न करनेवाली वस्तुओं तथा व्यसनोंसे चित्तको हटा ले। जगन्नियन्ता श्रीहरिकी शरणागति ग्रहण करे। उनके आज्ञास्वरूप वेद-शास्त्र और वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार आचरण करे। कुतर्की तथा नास्तिक लोगोंसे दूर रहे। प्रभुका दर्शन प्राप्त करनेके लिये ध्रुव-प्रह्लादके आदर्शोंका तन्मय होकर अनुकरण करे।

(२) घास-तृण खाकर विश्वके लोगोंको पोषण प्रदान करनेवाली सर्वदेवमयी, जगज्जननी गोमाता तथा उनके वंशकी सेवा-पूजा तथा पालन-पोषण और रक्षण करता रहे। गाँव-गाँवमें गोशाला खोलें तथा सुविधानुसार घर-घरमें गाय पालें। देशमें सर्वत्र पूर्णरूपसे गोवंशकी हत्या कानूनके द्वारा बंद करानेकी भरपूर चेष्टा करें।

(३) इहलोकमें सब प्रकारसे सुखी, सुरक्षित रहने तथा मृत्युके पश्चात् मोक्ष—प्रभुपदकी प्राप्तिके लिये देशके राज्यतन्त्रको श्रीरामचन्द्रजीके, धर्मराज युधिष्ठिर, पृथु, विक्रमादित्य-जैसे अटल न्यायी और धर्मनिष्ठ पुरुषोंके हाथमें देनेकी भरपूर चेष्टा करे, जिससे धर्मराज्य अथवा रामराज्यका प्रवर्त्तन हो और प्रजा सब प्रकारकी विपत्तियोंसे त्राण पाकर वर्णानुष्ठानमें लगे।

(४) आबादी घटानेके लिये परिवारनियोजन-जैसी धर्मविरुद्ध योजनाओंको बंद करके इन्द्रियसंयमपूर्वक बढ़ती हुई प्रजाकी रक्षाके लिये कुटीर, उद्योग तथा परती जमीनको कृषियोग्य बनाकर अधिक अन्न-उत्पादनकी चेष्टा करनी चाहिये।

(५) घूस-रिश्वत लेनेवालों और चोरबाजारी करनेवालोंको कठोर दण्ड देकर भ्रष्टाचार बंद करना चाहिये।

(६) समयपर वृष्टि हो सके, इसके लिये विधिपूर्वक यज्ञ-याग, हवन-होम आदि शुद्ध गायके घीके द्वारा करवाना चाहिये, जिससे देवगण प्रसन्न होकर समयपर जलवर्षण करें और धन-धान्यकी वृद्धिसे प्रजा सुखी हो सके।

(७) सिनेमा मनोरञ्जन प्रदान करनेके स्थानमें चोरी-लूट, व्यभिचार-अनाचार आदि दुर्गुणों और नाना प्रकारके व्यसनोंको बढ़ावा दे रहा है। इसलिये सिनेमाको सदाके लिये बंद कर देना चाहिये।

(८) आजकल हिंदूजातिके आचार्य, विद्वान् तथा श्रीमन्त लोगोंकी शिथिलताके कारण ईसाई-मुसल्मान आदि विधर्मी बड़े जोर-शोरसे हिंदूधर्मके विरुद्ध मिथ्या आरोप करके हिंदुओंको ईसाई-मुसल्मान बना रहे हैं। इसको रोकनेके लिये हिंदुओंको जागना चाहिये और जिन गरीबोंको फुसलाकर तथा सुविधा देकर धर्मच्युत किया जा रहा है, उनकी सेवा-सुविधा करते हुए धर्मान्ध अन्य धर्मियोंको मुँहतोड़ जवाब देकर हिंदूजातिकी रक्षा करनी चाहिये।

(९) राष्ट्रभाषाके पदसे अंग्रेजीको हटा देना चाहिये और वह स्थान मातृभाषा तथा हिंदीको देना चाहिये। साथ ही विश्वकी सारी भाषाओंकी जननी संस्कृतका सार्वभौम प्रचार होना चाहिये। दुनियाकी सारी भाषाएँ अपूर्ण हैं, केवल संस्कृत ही परिपूर्ण है; क्योंकि यह देव-भाषा है। हिंदूमात्रको शान्ति और ज्ञान प्रदान करनेवाली देवभाषा संस्कृतको अत्यन्त उत्साहसे सीखना-सिखाना चाहिये। संस्कृतकी पाठशालाओं और विश्वविद्यालयोंमें अभ्यासक्रम भारतीय हिंदू-संस्कृतिके अनुरूप बनाना चाहिये, जिससे कोमलचित्त बालकोंको शीघ्र ज्ञानकी प्राप्ति हो तथा उनका जीवन उन्नत बने।

तात्पर्य यह है कि हिंदुओंकी सारी सामाजिक व्यवस्था बिगड़ गयी है। इसका ठीक-ठीक सुधार होनेसे ही चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करनेके दुःखसे, अर्थात् जन्म-मरणके दुःखसे छुटकारा मिलेगा तथा भगवच्चरणारविन्दकी प्राप्तिका शाश्वत सुख मिल सकेगा।

देवर्षि नारदजी कहते हैं कि 'लाखों वर्षोंतक तप करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवदाराधना करके अपने पापोंका नाश जिसने किया है, वही भारत-जैसी पवित्र भूमिमें, हिंदूजातिमें, उत्तम द्विजकुलमें जन्म लेता है और परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रकी भक्तिका उसके शुद्ध अन्तःकरणमें उदय होता है।' मनु महाराज कहते हैं कि 'जगत्में भारतदेश श्रेष्ठ है। यहाँ उच्चकोटिके तत्त्वज्ञानी ब्राह्मण रहते हैं। उनके द्वारा दुनियाभरके लोगोंको आचारकी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।' (२। २०) अतएव हिंदुओंको वैसा उच्च और सफल जीवन बनाना चाहिये कि जो दुनियाके लोगोंके लिये आदर्श बन सके। यही हिंदुओंसे मेरी नम्र विज्ञप्ति है।

पूर्वजन्म, पुनर्जन्म और छुट्टी

(लेखक—पं० श्रीसूरजचंदजी सत्यप्रेमी [डाँगीजी])

इन तीनों बातोंको समझनेके लिये तीन वचनामृत मननीय हैं—

सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना,
होइ बालक सुर भूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं,
ते न परहिं भवकूपा॥

(मानस १। १९१। छं० ४)

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(गीता ४। ९)

'विष्णोः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।'

(१) कौसल्या माताके वचनोंको सुनकर परम ज्ञानस्वरूप प्रभुने रोना स्वीकार किया। देवताओंकी पृथ्वीका संरक्षण करनेवाले भगवान्‌ने अपने चतुर्भुज नारायणस्वरूपका विसर्जन करके बालवैभव धारण किया। यह चरित्र परमार्थ-दृष्टिसे भी कोई पहचान ले तो प्रभु-पदकी उपलब्धि हो जाय और फिर बद्ध होकर भव-कूपमें नहीं पड़ना पड़े।

(२) भगवान् श्रीकृष्णकी घोषणा है—'हे अर्जुन! मेरे दिव्य जन्म-कर्मको कोई तत्त्वतः जान ले तो देह छूटने-पर वह पुनर्जन्मको न प्राप्त हो और मुझे प्राप्त हो जाय। मत्स्वरूप धारण कर ले।'

(३) 'विष्णुभगवान्‌का पादोदक पीनेके बाद पुनर्जन्म कदापि नहीं होता है।' अब इन तीनों वेद-वेदान्त और सिद्धान्तके निर्विवाद प्रवचनोंपर विचार करें।

'करहु बिचारु सुजन मन माहीं।' आप सज्जन हैं—मनमें विचार करें, विचारके द्वारा जान लें, निश्चय कर लें कि—

नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं।

(मानस १। २४। २)

'नाम लेते ही जन्म-मरणका समुद्र सूख जाता है।' उसे पार ही नहीं करना पड़ता। यह तो बात हुई जन्म-मरणसे छुट्टी पानेकी। अब पूर्वजन्म और पुनर्जन्ममें हम कैसे बँधे? यह बन्धन है क्या? कबसे है? बँधे थे कि नहीं? क्यों बँधे?—जब कि आकाश भी बादलोंसे नहीं बँधता। क्यों नहीं बँधे? जब कि बन्धन प्रत्यक्ष नजर आ रहा है। हाँ, प्रभुके जन्म-कर्मको समझकर उनका नाममात्र भी इससे छुट्टी दिला देता है। यह शाश्वत सिद्धान्त है।

जैसे सूर्यमें तापशक्ति भी है और प्रकाशशक्ति भी। उसी प्रकार ब्रह्ममें 'वैभवशक्ति' भी है और 'स्वभाव-शक्ति' भी। 'स्वभाव-शक्ति'से वह निर्लिप्त, निर्गुण, निराकार, निराधार, निर्विशेष, सर्वातीत,, सर्वाकार, सर्वाधार, सर्वगुण-सम्पन्न और परम प्रेमपरिपूर्ण है और 'वैभव-शक्ति'से उसमें अनन्तानन्त कालतक अनन्ता-नन्त स्थानोंमें, अनन्तानन्त लीलाएँ करते रहनेकी अचिन्त्य सामर्थ्य है।

सूर्यकी तापशक्तिसे अनेक बादल बनते हैं और प्रकाश-शक्तिसे दिखायी देते हैं। उसी प्रकार प्रभु अपनी वैभवशक्तिसे अपनी माया और इसकी छाया-कायाके आधारसे अनेक लीलाएँ करते हैं और ज्ञानशक्तिसे द्रष्टा—ज्ञाता बने सब देखते रहते हैं।

हम जन्मके पूर्व माँके गर्भमें थे। यह हमारा पहला पूर्वजन्म सभी जानते हैं। माँके गर्भके पहले पिताके वीर्यमें, उससे पहला पूर्वजन्म। पिताके वीर्यके पहले कामाग्निमें, उससे पहला पूर्वजन्म। कामाग्निके पहले वातावरणमें, उससे पहला पूर्वजन्म। वातावरणके पहले वाग्दान-संस्कारके कारण शब्द—गुण आकाशमें, इसके पहले माता-पिताके मनमें। इसके पहले ब्राह्मणकी बुद्धिमें,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके पहले ब्रह्माके अहंकारमें, इसके पहले विष्णुके चित्तमें, इसके पहले शंकरके हृदयमें, इसके पहले शक्तिके कण्ठमें, इसके पहले श्रीकृष्णके भालमें, इसके पहले श्रीरामके मस्तकमें । रामके मस्तककी किसीको खबर नहीं ।

उमा दारु जोषित की नाईं । सबहिं नचावत राम गोसाईं ॥

इन पूर्वजन्मोंको नहीं समझा और फिर संसारकी वासना रह गयी तो मस्तकसे भालमें, भालसे कण्ठमें, कण्ठसे हृदयमें, हृदयसे चित्तमें और चित्तसे अहंकार-बुद्धिवाले मनमें पड़कर शून्याकाशद्वारा वाग्दान वातावरणमें, कामाग्नि-द्वारा अधःपतित होकर कर्म-मल-चक्रमें जन्म-मरण होता रहता है । 'निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ।'

निर्मम-निरहंकार हो जाय तो बस, छुट्टी !

आठ चिरंजीवी

(लेखक—योगाभ्यासी श्रीमदनमोहनजी वानप्रस्थी)

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः ।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः ॥
सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम् ।
जीवेद्वर्षशतं सोऽपि सर्वव्याधिविवर्जितः ॥
(आचारमयूख)

अर्थात् 'अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम और मार्कण्डेय—इन आठों चिरंजीवोंकी जो मनुष्य प्रातःकाल श्रद्धापूर्वक स्तुति करता है, वह सब रोगोंसे मुक्त होकर सुखपूर्वक सौ वर्षकी आयुको प्राप्त होता है तथा सदा-सर्वदा नीरोग रहता है ।'

इसपर तार्किक कहते हैं कि 'अश्वत्थामाने उत्तराका गर्भपात करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया । द्रौपदीके सोते हुए सात पुत्रोंका वध किया—ऐसे दुष्टात्माको चिरंजीव कहना अनुचित है । बलिने गर्दभकी योनि प्राप्त की; व्यासका जन्म शूद्रासे हुआ; विभीषणने वंशका क्षय किया; परशुरामने क्षत्रियोंका विनाश किया—ऐसे दोषयुक्त पुरुष स्मरण करनेके योग्य नहीं हैं ।' इसपर आस्तिक संत समाधान करते हैं कि "महाभारत, अनुशासनपर्वमें सावित्री-स्तोत्रमें वर्णन है कि ये आठ चिरंजीवी दिव्य मुनि हैं । इस लोकमें इनमेंसे प्रत्येक मुनि सात-सात प्रकारसे शान्ति और कल्याणकारी दिक्पाल कहे गये हैं । ये जिस दिशामें हैं, उस ओरको मुख रखनेवालेकी शरणागतके समान रक्षा की जाती है । ये लोकोंको पवित्र करनेवाले हैं । इनका कीर्तन करनेवाला यदि संतानकी कामना करता है तो उसको संतानकी प्राप्ति होती है । निर्धन धन पाता है और धर्म, अर्थ, काममें सिद्धि प्राप्त करता है । जो प्रभुकी शरणमें चले जाते हैं, वे घोर पातकी होनेपर भी पापसे मुक्त होकर दिव्य स्वरूपको प्राप्त होते हैं ।

विभीषणके लिये 'गोपालसहस्रनाम'में उल्लेख आया है कि 'लङ्काधिपकुलध्वंसी विभीषणवरप्रदः ।—श्रीभगवान् रावणका नाश करते हैं और विभीषणको वरदान देते हैं । भगवान् भक्त-पुण्यात्माको सदैव वरदान दिया करते हैं । अतः विभीषण सब तरहसे दोष-युक्त होकर भी अमरताको प्राप्त हुए । मानसमें भी वर्णन आया है कि जब विभीषण भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें पहुँचकर प्रार्थना करते हैं—

अब कृपाल निज भगति पावनी । देहु सदा सिव मन भावनी ॥
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा । मागा तुरत सिंधु कर नीरा ॥
जदपि सखा तव इच्छा नाहीं । मोर दरस अमोघ जग माहीं ॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा । सुमन बृष्टि नभ भई अपारा ॥
(५ । ४८ । ४-५)

सारांश यह है कि जिस मनुष्यको किसी प्रकार भी श्रीभगवान्‌का संस्पर्श प्राप्त हो जाता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर परम विशुद्ध अमरत्वको प्राप्त करता है । ऐसी ही कृपा भगवान् श्रीकृष्णने अश्वत्थामापर करके उसे उच्चपद प्रदान किया । महाभारत, शान्तिपर्वमें दर्शाया है कि बलिने दान करके इन्द्रासन प्राप्त किया, तब इन्द्रने सब असुरोंसहित राजा बलिपर विजय करके ब्रह्माजीसे हाथ जोड़कर पूछा कि 'हे ब्रह्मन् ! दान करते हुए जिसका धन कभी कम नहीं हुआ, उस बलिको मैं नहीं पा रहा हूँ । उसका पता मुझसे बताइये ।' इसपर ब्रह्माजीने कहा—'वह जीवोत्तम बलि किसी उजड़े-फूटे स्थानमें ऊँट, गधा, बैल अथवा घोड़ा होगा ।' इन्द्र बोले—'हे ब्रह्मन् ! यदि मैं उससे एकान्त स्थानमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलूँ तो उसे मारना उचित है या नहीं। यह आप मुझको उपदेश दीजिये।' ब्रह्माजीने कहा कि 'इन्द्र! बलिको कभी न मारना; वह मारनेके योग्य नहीं है; क्योंकि मैंने उसको चिरंजीव (अमरत्व) का वरदान दे रक्खा है। तुम उससे इच्छाके अनुसार कारण पूछनेके योग्य हो।'

इस प्रकार ब्रह्माजीके समझानेपर इन्द्र ऐरावत हाथीपर सवार होकर पृथ्वीपर घूमने लगे। तब इन्द्रने गधेकी सूरतमें किसी उजड़े हुए मकानमें बैठे राजा बलिको देखा। ब्रह्माजीके कथनानुसार इन्द्रने कहा कि—'दैत्य! तुम इस समय गधेकी योनिमें होकर तृण खानेवाले बने हो, तुम्हारी यह योनि नीच है। इसपर तुम्हें कुछ विचार होता है या नहीं? बड़े कष्टकी बात है कि आज मैं तुमको शत्रुओंके अधीन, तेज, बल, लक्ष्मीसे रहित, इष्ट-मित्रोंसे पृथक् गुप्तरूपमें देख रहा हूँ। किसी समय तुम हजारों सवारियोंके साथ अपने इष्ट-मित्रोंसे घिरे सब लोकोंको तपाते हुए हमलोगोंको तुच्छ समझते चलते थे। तुम्हारे राज्यमें पृथिवी बिना बोये-जोते भी अन्न उत्पन्न करती थी। अब इस भयानक दुःखमें हो। इसकी तुम्हें चिन्ता होती है या नहीं?' इन्द्रके ऐसे हृदय-विदारक वचन सुनकर बलिने इन्द्रको तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया। जिससे इन्द्रने प्रसन्न होकर बलिसे कहा कि 'ब्रह्माजीकी आज्ञासे मैं तुम्हें नहीं मारता हूँ। तुम दक्षिण दिशामें जाकर निवास करो। वहाँ तुम अमरत्वको प्राप्त होओगे।' इस तरह ब्रह्माजी और इन्द्रसे वरदान पाकर गर्दभ-योनिसे मुक्त हो बलि अमरत्वको प्राप्त हुए।' इससे तार्किकको शान्ति प्राप्त हुई।

'जो पुरुष गुरुवारको दक्षिण दिशामें प्रातःकाल खड़ा होकर राजा बलिका ध्यान करता है, वह सुवर्ण प्राप्त करता है।' 'ब्रह्मपुराण'में यह निर्देश है।

'श्रीव्यासजीपर तार्किककी जो शङ्का है, उसका आस्तिक संत यों समाधान करते हैं कि व्यासजीकी माता उच्चकोटिके तपस्वियोंकी सेवा-शुश्रूषा बड़े सद्भावसे किया करती थीं। उनके भुक्त अन्नके सेवन करनेसे व्यासजीके पूर्वजन्मकृत पाप नष्ट हो गये। फिर माहेन्द्र पर्वतपर जाकर वे समाधिस्थ हो गये। ब्रह्माजीने उनको दर्शन दिया। उनकी जिह्वापर 'सरस्वती' बीज लिखकर पुराणोंकी रचनाकी आज्ञा दी और यह वरदान दिया कि 'तुम सदैव अमर बने रहोगे।' प्रतिवर्ष आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमाको संसारभरमें 'व्यासपूजा' की जाती है। इसको 'गुरु-पूर्णिमा' भी कहते हैं। व्रजमें इसीको 'मौनी पूर्णिमा' भी कहते हैं। प्रतिवर्ष गोवर्धन पर्वतपर उत्सव मनाया जाता है। परिक्रमामें लाखों मनुष्य एकत्र होते हैं। परिक्रमा करते समय वृद्ध संतके रूपमें व्यासजीके दर्शन होते हैं, ऐसी मनुष्योंकी भावना चली आ रही है। विद्याध्ययनके आरम्भमें, भगवान्‌की कथाके आरम्भमें श्रीव्यासजीकी पूजा प्रथम करनेका नियम सृष्टिके आरम्भसे चला आ रहा है। जो विद्यार्थी प्रति पूर्णिमाको व्यासजीकी प्रतिमाकी पूजा करता है, वह सदैव प्रथम श्रेणीमें सफलता प्राप्त करता है।

श्रीहनुमान्‌जी वायुपुत्र हैं। वायु सृष्टिके आदि-अन्ततक रहता है। इसीके साथ ये हनुमान्‌जी भी अमर हैं। इनकी शनिवारको उपासना करनेसे मनुष्यके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं। जो मनुष्य शनिवारको श्रीहनुमान्‌जीकी प्रतिमापर मीठे तेलकी धारा देता है, उसको शनिदेवकी पीड़ा नहीं होती है।

श्रीमार्कण्डेय ऋषिकी उपासना करनेसे मनुष्य शतायु होता है। एक तोला गोमूत्रको इनके नामसे शत बार अभिमन्त्रित करके जो पीता है, उसको कभी ज्वर नहीं आता है, उसकी बुद्धि तेज होती है; शरीरमें स्फूर्ति आती है। प्रतिवर्ष जब मनुष्यकी जन्म-तिथि आती है, उस दिन धर्मात्मा और आस्तिक भद्रपुरुष नूतन वर्षकी पूजा करते हैं। उस समय दीर्घायु-प्राप्तिके लिये श्रीमार्कण्डेय ऋषिकी स्तुति करते हैं।

प्रार्थना

ॐ मार्कण्डेय महाभाग सप्तकल्पान्तजीवन।
चिरंजीवी यथा त्वं भो भविष्यसि तथा मुने॥
रूपवान् वित्तवांश्चैव श्रिया युक्तश्च सर्वदा।
आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं प्रसीद भगवन् मुने॥
चिरंजीवि यथा त्वं भो मुनीनां प्रवरो द्विजः।
कुरुष्व मुनिशार्दूल तथा मां चिरजीविनम्॥
नववर्षायुतं प्राप्य महता तपसा पुरा।
सप्तैकस्य कृतं येन ह्यायुर्मे सम्प्रयच्छतु॥

इस प्रकार प्रार्थना करके एक पात्रमें दो पल दूध तथा तिल-गुड़ मिलाकर पीनेसे मनुष्य शतायु होता है।* निद्रा टूटते ही सर्वप्रथम जो उपर्युक्त चिरंजीवोंका स्मरण करते हैं, वे सदैव नीरोग रहते हैं। इति शम्

* ॐ सतिलं गुडसम्मिश्रमञ्जल्यर्धमितं पयः। मार्कण्डेयवरं लब्ध्वा पिबाम्यायुष्यहेतवे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता, गङ्गा, गायत्री, गयाश्राद्ध और गोसेवासे प्रेतत्व-मुक्ति

(लेखक—आचार्य श्रीगदाधर रामानुजम् 'फलाहारी')

भगवत्कृपासे जीवको परम दुर्लभ मनुष्ययोनि प्राप्त हुई है। इसमें सत् साधन करनेपर इहलोकमें सुख-शान्ति और मृत्युके उपरान्त श्रीवैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, कैलास आदि दिव्यलोकोंकी प्राप्ति होती है। नहीं तो, कर्मानुसार पशु-पक्षी, कीट-पतंगादि स्थूलशरीरमय चौरासी लक्ष योनियोंका भ्रमणचक्र निरन्तर चलता रहता है।

जैसे उपर्युक्त दृष्ट योनियाँ जीवको कर्मानुसार प्राप्त होती हैं, वैसे ही प्रेतादि सूक्ष्म अदृष्ट योनियाँ भी हैं, जिनमें आहार-निद्रादि शारीरिक आवश्यकता-पूर्तिकी प्रबल आकाङ्क्षा होती है, किंतु पञ्चतत्त्वमय स्थूलशरीरके अभावमें उक्त वस्तुओंकी प्राप्ति हो नहीं सकती। क्षुधा-पिपासा-वस्त्र आदिके अभावसे दुःखित होकर प्रेत-जीव इधर-उधर भटकते रहते हैं। यही भ्रमित दुर्गतिप्राप्त जीव जब सम्बन्धियों, इष्ट-मित्रों और परिचित जनोंको दिखायी देते हैं या किसी प्रकारका अन्य उपद्रव करते हैं, तब सबको भयकी अनुभूति होती है और तब 'इनका उद्धार कैसे हो ?' यह प्रश्न सम्मुख आता है। एक महात्माके कथनानुसार—'भूत-प्रेतोंकी भी सात्त्विक, राजसिक, तामसिक—तीन श्रेणियाँ होती हैं, जो अपने-अपने गुण-स्वभावानुसार कार्य करते हैं। इनकी भी अन्य प्राणियोंकी तरह कर्मानुसार आयु-मर्यादा निश्चित रहती है। इससे पूर्व यदि शास्त्रलिखित कोई उपाय किया जाय तो इन्हें शीघ्र मुक्ति मिल जाती है, नहीं तो, अवधि-समाप्तिपर ये स्वयं ही योनिमुक्त हो जाते हैं।'

आधुनिक शिक्षित समुदाय विज्ञानकी दुहाई देकर भूत-प्रेतादिको केवल मिथ्या भ्रम मानता है। चिकित्सा-विज्ञान इनकी मानसिक व्याधियोंके रूपमें गणना करता है। धर्मशास्त्र हमारे सनातन प्रमाण-ग्रन्थ हैं। उनमें 'अकाल-मृत्यु, दुष्कर्म, मृत्युके उपरान्त प्रेतकल्याणार्थ किये जानेवाले कर्मकाण्डोंके अभाव या उनके विधिवत् न होने आदि कारणोंसे और प्रारब्धवश जीवको उक्त योनियोंमें भटकना पड़ता है।' जहाँ शास्त्रोंमें ऐसा वर्णन है, वहाँ प्रेतत्वमुक्तिके विविध साधन भी बताये गये हैं। श्रीमद्भागवत-माहात्म्यका धुन्धुकारी-उद्धारका 'उपाख्यान' लोक-प्रसिद्ध है।

गीतापाठ, गङ्गास्नान, गायत्रीजप, गयाश्राद्ध और गो-सेवा—प्रेतत्वमुक्तिके सर्वोत्तम सुगम उपाय हैं। उक्त साधनोंके द्वारा किस प्रकार प्रेतत्वसे मुक्ति मिली, ऐसी कुछ घटनाएँ यहाँ दी जा रही हैं, जो सिद्ध महात्मा वैकुण्ठवासी स्वामी श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी महाराजके जीवनकालकी और आजसे करीब सत्तर वर्ष पूर्वकी हैं। उक्त सत्य घटनाएँ स्वामीजीके उत्तराधिकारी वै० वा० स्वामी श्रीनिवासाचार्यजी एवं अन्य सम्बन्धित सज्जनोंके मुखसे सुनी हुई हैं।

(१)

श्रीमद्भगवद्गीता

भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे निकली हुई दिव्य अमृतवाणी है, जिसके श्रवणमात्रसे परम दुर्लभ मोक्षकी प्राप्ति होती है।·····नगरसे बाहर एक स्थान है, जिसके सम्बन्धमें ऐसा प्रसिद्ध था कि इसमें कुछ दुर्गति-प्राप्त आत्माओंका निवास है। समीपमें ही एक अन्य स्थान था, जिसका मालिक स्वामीजीका अनन्य भक्त था। उसने एक दिन दुःखित होकर सम्मुखके स्थानमें होनेवाली घटनाओंके सम्बन्धमें बताया कि 'किस प्रकार रात्रिमें वहाँ-पर विविध छाया-आकृतियाँ उभरती हैं और विलीन हो जाती हैं। विभिन्न पशु-पक्षियोंकी आवाजें आती हैं और फिर पत्थर गिरने लगते हैं। पहले तो यह सब उस मकान-तक ही सीमित था, किंतु अब तो समीपके सब लोग इससे भयभीत हैं। लोगोंने रात्रिमें इस ओर आना भी छोड़ दिया है। आदि·····।' यह सुनकर आपने उस रात्रिको वहाँ निवास किया तो मध्यरात्रिके बाद आपने स्वयं देखा कि उपर्युक्त सभी घटनाएँ यथार्थमें घटित होती हैं। दूसरे दिन स्थानीय १८ पण्डितोंको बुलाकर १८ दिनोंके लिये गीतापाठका आयोजन उस स्थानके सामने शुरू करा दिया, जिसमें छः विद्वान् एक साथ बैठकर चार घंटा दिन और चार घंटा रात्रि—इस प्रकार गीताजीका पाठ करते थे। पूर्णाहुति-में गीता अध्याय ११ श्लोक ३५ से ४६ तकका हवन, ब्राह्मण-भोजन हुआ और ११ पत्थरोंपर—

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥
(गीता ११ । ३६)

—लिखाकर स्थान-स्थानपर दीवालोंमें लगवा दिया। इसके बाद यह स्थान श्रीगीताजीके पुण्य-प्रभावसे सर्वथा भयमुक्त हो गया और लोग यहाँ निर्भय होकर रहने लगे।

(२)

गङ्गास्नान

पुण्यसलिला भगवती भागीरथी गङ्गाजी प्रत्यक्ष मुक्ति-प्रदात्री हैं। सेठ·····बड़े धर्मपरायण, सात्त्विक-स्वभाव, गौ-ब्राह्मण-साधु-महात्माओंमें भक्ति रखनेवाले और दयालु थे। पूर्णायु प्राप्त कर भरा-पूरा परिवार और सम्पन्न व्यवसाय छोड़कर वे मृत्युको प्राप्त हुए। ·····श्रीस्वामीजीके अनन्य शिष्य थे। जब बद्रीनाथयात्रामें उन्होंने यह समाचार सुना तो लौटते समय सान्त्वना देनेके लिये उनके घरपर पधारे। एक दिन रात्रिमें जब सब सो गये तो ····· का बड़ा पुत्र स्वामीजीके पास आया और रोते हुए उसने अपने पिताकी दुर्गति-प्राप्तिका वर्णन किया। ऐसे परम भागवत शिष्यकी यह गति! स्वामीजी भी सुनकर आश्चर्य करने लगे। तब·····के पुत्रने स्पष्टीकरण करते हुए बताया कि—'महाराज! यह सत्य है और पिताजी मुझे समय-समयपर दिखायी देते हैं और यदा-कदा उनका आवेश भी मेरे शरीरमें होता है। आप शीघ्र उनकी मुक्तिका उपाय कीजिये।'—यों कहकर वह रोने लगा। रात्रिमें कुछ आहट होनेपर जब स्वामीजी उठे तो उन्होंने अपने पावोंके समीप अस्पष्ट पुरुषाकृतिको देखा। आप जब खड़े हो गये तो वह आकृति आपके चरणोंमें गिर पड़ी और अत्यन्त धीमी आवाजमें अपनी इस दुर्गति होनेकी घटना उसने सुनायी। उसका सारांश यह था कि एक महात्माने किसी तीर्थमें धर्मशाला-निर्माणके लिये कुछ अर्थ-संग्रह किया और वह द्रव्य इनके यहाँ जमा करा दिया था। बहुत वर्षोंतक वे महात्मा नहीं आये। बादमें सुना कि हरिद्वार-कुम्भमें उनका परमपद हो गया। उनका वह संग्रहीत द्रव्य सेठजीके पास ही रह गया, जिसके कारण उनको यह दुर्गति प्राप्त हुई।

श्रीस्वामीजीने प्रातःकाल यह घटना सेठजीके पुत्रको बतायी और कहा कि 'तुम उस महात्माका धन और उसका इतने वर्षोंका व्यावसायिक ब्याज एवं अपने पिताके निमित्त कुछ धन—इतने रुपये लेकर हरिद्वार चले जाओ और नित्य साधु-महात्माओंकी अन्न-वस्त्रसे सेवा करो और प्रतिदिन दोनों समय गङ्गा-स्नान करो तथा गङ्गाजलकी अञ्जलि प्रदान करो। जब सब रुपये साधु-सेवामें व्यय हो जायँगे तो तुम्हारे पिता-की सद्गति हो जायगी। उन्होंने ऐसा ही किया। भगवती भागीरथीके पुण्य-प्रभावसे·····मुक्त हो गये।

(३)

गायत्रीजप

ईर्ष्या, द्वेष या पारस्परिक वैमनस्यताके कारण किसी व्यक्तिपर कोई तान्त्रिक प्रयोग करानेसे या अन्य किसी अज्ञात हेतुसे वह बुद्धि भ्रमित होकर पागलोंकी तरहसे आचरण करने लगा। उसके परिवारवालोंने चिकित्सक, सयाने ओझे, साधु-संन्यासी आदिसे बहुत-से उपाय करवाये, लेकिन कुछ लाभ नहीं हुआ। स्थिति दिनोंदिन अधिक बिगड़ने लगी। रोगी मरणासन्न हो गया। ऐसी स्थितिमें स्वामीजीको भी दिखाया गया और इसके ठीक होनेका उपाय पूछा। तब उन्होंने बताया—

'गायत्री-मन्त्र इस लोकमें सिद्धि और परलोकमें मोक्ष-प्राप्तिका महान् उपाय है। प्रतिदिन उपनयनधारी द्विजके द्वारा शुद्ध आसनपर बैठकर गायत्री-मन्त्रसे अभिमन्त्रित जल इसको पान कराओ, उसी जलसे इसके शरीरका प्रोक्षण करो और जिस स्थान (कमरेमें) गायत्री-जप होता हो, वहीं रात्रिमें इसको शयन कराओ, निश्चय ठीक हो जायगा।'

रोगीके बड़े भाईने उपर्युक्त प्रकारसे गायत्री-मन्त्रका अनुष्ठान किया, जिसके प्रभावसे रोगी पूर्ण स्वस्थ हो गया और उन्होंने बताया —'मेरे शरीरमें किसी दुष्ट आत्माका निवास था। जिस दिन गायत्री-मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलका प्रथम प्रोक्षण हुआ, उसी दिन वह निकल गया और मेरा मन, आत्मा, शरीर पूर्ण स्वस्थ होने लगा।'

इसके बाद वह भी प्रतिदिन नियमित गायत्री-मन्त्र जपने लगा।

(४)

गयाश्राद्ध

·····की धर्मपत्नीका युवावस्थामें एक संतान छोड़कर देहान्त हो गया। माता-पिता एवं अन्य सम्बन्धियोंके बहुत कहनेपर·····ने दूसरा विवाह कर लिया। विवाहके कुछ महीनों बाद ही उनकी दूसरी पत्नीके शरीरमें प्रथम पत्नीका आवेश आना प्रारम्भ हो गया। बहुत चिकित्सा करायी गयी, कुछ लाभ नहीं हुआ। किसी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न वायुप्रकोप, उन्माद, मानसिक व्याधि बतायी; उनकी भी चिकित्सा हुई, फायदा नहीं हुआ। जब स्वामीजीसे इसकी मुक्तिका उपाय पूछा गया, तब उन्होंने रोगिणीकी स्थिति देखकर ही उपाय बतानेके लिये कहा। उसके घरवालोंने जिस समय आवेश आया, उस समय स्वामीजीको बुलाया तो रोगिणीने दूरसे ही उनको देखकर प्रथम साष्टाङ्ग प्रणाम किया और फिर एकदम निढाल होकर गिर गयी और अस्पष्ट वाणीमें कुछ बड़बड़ाने लगी। स्वामीजीने उसको 'विष्णु सहस्रनाम'का एक पाठ सुनाया और·····की पूर्वपत्नीका नाम लेकर पूछा कि 'क्या तुम वही हो? तुम तो बड़ी धार्मिक भगवद्भक्त पतिपरायणा स्त्री थी। तुम्हारी यह गति कैसे हुई?' इसके उत्तरमें प्रारब्धको ही उसने कारण बताते हुए कहा कि 'देहान्तके समय मेरा मन सांसारिक वस्तुओं तथा कार्योंमें रह गया था। अब आप महात्मा हैं, मेरी मुक्तिका उपाय कीजिये। आपके इस पाठसे मुझे बड़ी शान्ति मिली है।'

स्वामीजीने उसके श्वसुर, सास, पति—सबको सम्बोधित करते हुए कहा कि 'इसका गयाश्राद्ध करवा दो। गयाश्राद्धसे निश्चय ही इसकी मुक्ति हो जायगी।' परिवारवालोंने विधिवत् गयाश्राद्ध करवाया। अन्तिम पिण्डदानके दिन स्वप्नमें आकर उसने बताया कि 'अब मैं मुक्त होकर भगवद्-धामको जा रही हूँ।'

(५)

गोसेवा

एक व्यक्तिने बहुत ही अल्प मूल्यपर पूर्वबंगालमें एक जूट-प्रेस खरीदा, जिसके सम्बन्धमें ऐसा प्रसिद्ध था कि जो भी व्यक्ति यह प्रेस लेगा, उसको कोई आर्थिक लाभ तो होगा ही नहीं, साथ ही उसको लेते ही कुछ अमङ्गल भी हो जायगा। बात भी सत्य थी। फिर भी, इतनी बड़ी सम्पत्ति अल्प मूल्यमें मिल रही है, जानकर उन्होंने प्रेस खरीद लिया। प्रेस लेनेके बाद कई प्रकारकी शारीरिक, आर्थिक विपत्तियाँ आयीं। जगन्नाथ-रथयात्रासे लौटकर जब स्वामीजी कलकत्ता पधारे और उनके यहाँ ठहरे तो उन्होंने स्वामीजीको उपर्युक्त सब बातें बतायीं और एक दिन स्वामीजीको प्रेस दिखानेके लिये भी उस स्थानपर ले गये। गङ्गा-तटपर सुरम्य स्थानपर विस्तृत जगहमें प्रेस देखकर स्वामीजीने कहा कि 'तुम्हारे ऊपर भगवान्‌की कृपा है, जो ऐसा स्थान अनायास ही प्राप्त हो गया है। अब इसको बेचनेका विचार छोड़कर ऐसा उपाय करो, जिससे इसका अमङ्गल दूर हो जाय। वह उपाय है—'गो-सेवा'। यहाँपर यथाशक्ति अच्छी गायें रक्खो। कुछ गायोंका दूध स्वयं अपने उपयोगमें न लाकर उनके बछड़ोंको ही पीने दो। प्रेमपूर्वक उनके चारा-दाना आदिकी सुव्यवस्था करो और स्थानके मध्यमें भगवान् श्रीगोपालकृष्णका सुन्दर छोटा-सा मन्दिर बनवा दो। इस कारखानेके सभी अमङ्गल स्वयमेव दूर हो जायँगे।'

उन्होंने ऐसा ही किया। भगवत्कृपा और गोसेवासे जो कारखाना 'भूतहा प्रेस'के नामसे प्रसिद्ध था, उसमें सुख-शान्ति और समृद्धिका निवास हो गया। पहले जो लोग उसमें काम करनेको तैयार नहीं थे, कहा करते थे कि उसकी मशीनोंको रात्रिमें भूत चलाते हैं; उसी स्थानपर गो-सेवाके प्रभावसे नयी-नयी मशीनें लगने लगीं और उस कारखानेके स्वामीको पर्याप्त लाभ मिलने लगा।

'गीता, गङ्गा, गायत्री, गयाश्राद्ध एवं गो-सेवासे निश्चय ही प्रेतत्वसे मुक्ति मिलती है।' ऐसा शास्त्र-वचन है और एक सिद्ध महात्माके जीवनमें घटित उपर्युक्त घटनाएँ इस सत्यका ज्वलन्त प्रमाण है। आज भी यदि श्रद्धा, भक्ति और विश्वासके साथ ऐसे कार्योंमें गीतापाठ, गायत्रीजप, गङ्गास्नान, गया-श्राद्ध और गोसेवा की जाय तो निश्चय ही मुक्ति मिलती है। किंतु उपयोगका वास्तविक कार्य होना चाहिये—आधिकारिक, श्रद्धासम्पन्न, शुद्ध सदाचारी व्यक्तियोंके द्वारा निःस्वार्थभावसे!

'गीता' वाणी कृष्णकी मंत्र-मंत्रमें ज्ञान।
'गङ्गा' मुक्ति-प्रदायिनी, पावन स्रोत महान॥
पावन स्रोत महान मंत्र, गायत्री, सुखकर।
'गयाश्राद्ध'की महिमा सब श्राद्धोंसे बढ़कर॥
'गोसेवा' अति पुण्य है, पाँच विभूति प्रधान।
साधन हैं ये मुक्तिके, घटना सत्य प्रमाण॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परकाय-प्रवेश—सिद्धान्त, प्रक्रिया एवं प्रमाण

(लेखक—श्रीश्यामाकान्तजी द्विवेदी 'आनन्द', एम्० ए० [हिंदी, संस्कृत], बी० एड०, व्याकरणाचार्य)

परकाय-प्रवेशकी सिद्धि यौगिक सिद्धियोंमें अन्यतम है। इस सिद्धिकी प्रक्रिया, इसके सिद्धान्त एवं उदाहरण न केवल योग-ग्रन्थोंमें ही प्राप्त होते हैं, प्रत्युत महाभारत, पुराण, रामायण आदि ग्रन्थोंमें भी प्राप्य हैं।

परकाय-प्रवेशके सिद्धान्त—

(१) अन्नमय कोशसे प्राणमय कोशके उद्गमन (Projection) की क्रियाद्वारा ही परकाय-प्रवेशकी सिद्धि होती है।

(२) चित्तवृत्तियोंके निरोधके बिना अन्नमय कोशसे प्राणमय कोशका जाग्रत् उद्गमन सम्भव नहीं है।

(३) चित्तवृत्तियोंका निरोध मनःसंयमन या प्राण-संयमनद्वारा सिद्ध होता है; अतः परकाय-प्रवेशार्थ प्रथमतः चित्तवृत्तियोंका किसी भी प्रक्रियाद्वारा निरोध करना आवश्यक है।

(४) प्राच्यविधिसे परकाय-प्रवेशकी साधना करनेमें तत्त्वसाधन भी आवश्यक है और साथ ही खेचरी मुद्रा भी।

(५) जीवन-तन्तु (Silver Cord या Astral Cord) पर स्वामित्व प्राप्त किये बिना इस प्रक्रियामें सफलता असम्भव है।

(६) 'बन्धनके कारणका शैथिल्य' (पतञ्जलि) परकाय-प्रवेशका प्रथम सिद्धान्त एवं प्रक्रिया है।

(७) 'प्रचार-संवेदन' (पतञ्जलि) परकाय-प्रवेशका द्वितीय सिद्धान्त एवं प्रक्रिया है।

(८) आत्मा एवं चित्त व्यापक हैं; किंतु धर्माधर्मरूप सकाम कर्मके द्वारा दोनों पाट्कौशिक शरीरमें परिबद्ध रहते हैं। पर चित्तवृत्तियोंके निरोधके द्वारा दोनोंके बन्धनका कारण शिथिल हो जाता है और परिणामस्वरूप चित्तको विषयोंमें प्रवाहित करनेवाली 'चित्तवहा' नाड़ीके स्वरूप एवं उसके परिभ्रमण-मार्गका भी ज्ञान हो जाता है। अतः बन्धनोंसे मुक्त होनेके कारण व्यापक चित्त 'चित्तवहा' नाड़ीके परिभ्रमण-मार्गको जानकर किसी भी व्यक्तिके शरीरमें प्रविष्ट हो सकता है।

(९) आधुनिक 'Para-Psychology' एवं 'Abnormal Psychology' ('परा-मनोविज्ञान' एवं 'असामान्य मनोविज्ञान') भी स्थूल मनके अतिरिक्त 'समष्टि व्यापक मन'में विश्वास करने लगा है। यह 'समष्टि व्यापक मन' निरोधसम्पन्न चित्त ही है।

(१०) प्रस्तुत साधना करनेके समय नियमित आहार, सत्त्वसंशुद्धि, नियमितचर्या, ब्रह्मचर्य, सत्त्ववृत्ति, एकान्त-सेवन, अन्तःपावित्र्य, मौन-साधन, मनःसंयम, मनःप्रसाद, लक्ष्यपर एकाग्रता एवं नियमित ध्यान आदिकी अनिवार्यता चित्तके शुद्धिकरणके लिये की जाती है, जिससे कि वह बन्धनोंसे मुक्त हो सके।

परकाय-प्रवेशकी प्रक्रिया—

(१) महर्षि पतञ्जलिके कथनानुसार—

बन्धकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः। (३।३८)

अर्थात् 'धर्माधर्म सकाम कर्मरूपी बन्धनोंके कारणको शिथिल करनेसे एवं इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंमें चित्तको प्रवाहित करनेवाली चित्तवहा नाड़ीके स्वरूप एवं चित्तके परिभ्रमण-मार्गको ज्ञात कर लेनेसे, साधकके चित्त (सूक्ष्म शरीर) का दूसरे जीवित या मृत व्यक्तिके शरीरमें आवेश हो जाता है।

(२) 'भोजवृत्ति'के मतानुसार—

'समाधिद्वारा धर्माधर्मरूप बन्धनके कारणको शिथिल करके एवं चित्तको विषयोंमें प्रवाहित करनेवाली नाडीका स्वरूप जानकर योगी किसी भी प्राणीके शरीरमें अपने चित्तका प्रवेश करा सकता है; क्योंकि उसे अपने चित्तके प्रचारका ज्ञान होते ही अन्य प्राणियोंके चित्त-प्रचारका भी ज्ञान हो जाता है।

'चित्तके साथ ही अन्य सभी इन्द्रियाँ भी दूसरेके शरीरमें प्रविष्ट हो जाती हैं, जैसे सम्राज्ञी मक्षिकाके पीछे-ही-पीछे अन्य मक्षिकाएँ भी अनुसरण किया करती हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) 'व्यासभाष्य'के मतानुसार—

धारणा-ध्यान-समाधिके अभ्याससे सकाम कर्मोंका त्याग करके चित्तके बन्धनका निराकरण किया जाता है। बन्धनोंके कारणको शिथिल करनेपर, नाड़ियोंमें संयम करके चित्तके उनमें आवागमन करनेके मार्गका ज्ञान किया जाता है और इस प्रकार चित्त-बन्धके कारणोंके शिथिल हो जानेपर और नाड़ियोंमें चित्तके परिभ्रमण करनेके मार्गका ज्ञान हो जानेपर योगी अपने शरीरसे इन्द्रियोंसहित चित्तको निकालकर दूसरे प्राणीके शरीरमें प्रविष्ट कर सकता है।

'तत्त्ववैशारदी' एवं 'योगवार्तिक' आदि ग्रन्थोंमें भी परकाय-प्रवेशकी यही प्रक्रिया दी हुई है।

(४) 'योगवासिष्ठ'के मतानुसार—

रेचक प्राणायामके अभ्यासरूप युक्तिसे मुखद्वारा १२-१२ अङ्गुल परिमित देशमें प्राणको चिरकालतक स्थिर रखनेपर योगी अन्य शरीरमें प्रवेश कर सकता है।

(५) शौनकऋषिके कथनानुसार—

सुषुम्णादिसप्तसूक्तानि जपेच्चेद्विष्णुमन्दिरे।
मार्गशीर्षेऽथ तं धीमान् परकायं प्रवेशयेत्॥
निवर्तध्वं जपेत् सूक्तं परकायाच्च निर्गतः।

परकाय-प्रवेश एवं कायोद्गमनकी सिद्धिके लिये सुषुम्णादि सप्तसूक्त एवं 'निवर्तध्वम्'से प्रारम्भ होनेवाले सप्तसूक्तोंका पाठ करना चाहिये। शौनकऋषिके कथनानुसार परकाय-प्रवेशकी साधना मार्गशीर्ष मासमें प्रारम्भ की जानी चाहिये और ग्यारह मासोंके अनन्तर परकाय-प्रवेशकी साधना फलवती होती है।

(६) श्रीशंकराचार्यके कथनानुसार—

श्रीत्र्यम्बक भास्करके कथनानुसार भगवान् शंकराचार्यकी दृष्टिमें 'यथाभिध्यानाद्वा'के अनुसार ध्यान करनेसे भी परकाय-प्रवेशकी सिद्धि होती है।

(७) भगवान् शंकराचार्यके कथनानुसार द्वितीय विधि—

भगवान् शंकराचार्यके कथनानुसार निम्न यन्त्रके साथ 'सौन्दर्यलहरी'का ८७ क्रमाङ्कका श्लोक नित्यप्रति एक सहस्र बार जपनेपर परकायप्रवेशकी सिद्धि प्राप्त होती है। यन्त्र निम्न है—

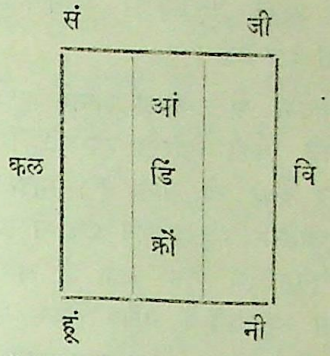

(८) तन्त्रमतानुसार—

तन्त्रशास्त्रवेत्ता परकाय-प्रवेशकी साधना तत्त्वसाधनकी प्रक्रियासे भी मानते हैं। प्रातःवेलामें आकाशतत्त्वके उदय होनेकी स्थितिमें १२ घण्टेतक सततरूपसे आकाशतत्त्वका संयम करना पड़ता है। आकाशतत्त्वमें स्थायित्व आनेपर खेचरीमुद्राकी साधना करनी पड़ती है। खेचरीमुद्राकी सिद्धि होनेपर परकाय-प्रवेशकी सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

(९) पाश्चात्य विधिके अनुसार—त्रिकुटीपर त्राटक करनेकी विधि—

परकाय-प्रवेशकी साधनाके लिये भ्रूमध्यमें त्राटक करते हुए यह भावना करनी पड़ती है कि 'मैं एवं मेरा सूक्ष्मशरीर इस स्थूलशरीरसे बाहर जा रहा है।' अपनी प्रबल इच्छाशक्तिसे नियमित रूपमें प्रतिदिन यह भावना करते हुए ध्यान करनेसे यथासमय सूक्ष्मशरीर स्थूलशरीरसे प्रोद्गमित हो जाता है और सूक्ष्मशरीरके स्थूलशरीरसे बहिर्गमनकी क्रिया सम्पन्न हो जानेपर जिस प्रकार अपना सूक्ष्मशरीर अपने स्थूलशरीरमें प्रविष्ट हो सकता है, उसी प्रकार किसी भी प्राणीके शरीरमें प्रविष्ट किया जा सकता है।

(१०) पाश्चात्य विधिके अनुसार—निद्रावृत्तिका संयमन—

पाश्चात्य परलोकतत्त्ववेत्ताओंके कथनानुसार स्वप्ननियन्त्रणकी साधनाका अभ्यास करनेपर भी सूक्ष्मशरीरका स्थूलशरीरसे प्रोद्गमन होता है।

साधक साधनारम्भमें यह सोचकर सो जाता है कि 'मैं आज अमुक स्वप्न देखूँगा या अमुक व्यक्तिसे मिलूँगा या अमुक स्थानपर जाऊँगा या अमुक कार्य करूँगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनावस्थामें दिनभर मनको एक ही भावनाका 'संकेत' तबतक सततरूपमें दिया जाता है, जबतक कि साधक अपने 'संकेत'को स्वप्नावस्थामें पूर्णतया फलीभूत नहीं देख लेता।

एक भावना या संकेतकी स्वप्नमें पूर्ति हो जानेपर साधक स्वप्नमें किसी सुदूरस्थ व्यक्तिसे मिलनेके लिये मनको संकेत देकर सो जाता है। भावनाकी दृढ़तासे साधकका सूक्ष्मशरीर स्थूलशरीरसे प्रोद्गमन करके लक्ष्यभूत व्यक्तिके स्थूलशरीरके पास जाता है और अभ्यासकी दृढ़ता होनेपर स्थूलशरीरमें प्रविष्ट होकर उससे समस्त संदेश प्राप्त किया करता है एवं वार्ता करता है।

पाश्चात्त्य परलोक-तत्त्वज्ञोंमें मि० मुलडोन, मोशिये डुराबेल, मि० आलिवर कास्क क्रेंचमैन, प्रोफेसर निकोलस-रोरी, कैरिंगटन हैवरहिलमाम, डा० माल्थ एवं जेल्ट, अलकाट, मैडम ब्लावेट्स्की, सर आलिवर लाज आदि प्रख्यात व्यक्ति हैं। पाश्चात्त्य महिला अलेक्जेंड्रा डेविड नील भी लामाओंके साथ तान्त्रिक अभ्यास करती हुई इस प्रक्रियामें पारङ्गत हो गयी थीं।

(११) यूनानी पद्धतिके अनुसार—

परकाय-प्रवेशकी प्रक्रियाका यूनानी पद्धतिमें विशेषतः 'छायापुरुष' या 'हमजाद'की साधनासे सम्बन्ध है। छायापुरुषकी साधनाकी अनेक विधियाँ हैं—

(१) जलमें दिखायी पड़नेवाले अपने प्रतिबिम्बकी त्रिकुटीपर त्राटक।

(२) तेलमें दिखायी पड़नेवाले अपने प्रतिबिम्बकी त्रिकुटीपर त्राटक।

(३) धूपमें दिखायी पड़नेवाले अपने प्रतिबिम्बकी त्रिकुटीपर त्राटक।

(४) दीपकके प्रकाशमें दिखायी पड़नेवाले अपने प्रतिबिम्बकी त्रिकुटीपर त्राटक।

(५) चन्द्रिकाके प्रकाशमें दिखायी पड़नेवाले अपने प्रतिबिम्बकी त्रिकुटीपर त्राटक।

(६) घृतमें प्रतिबिम्बित अपनी प्रतिच्छायाकी त्रिकुटीपर त्राटक।

(७) दर्पणमें प्रतिबिम्बित अपनी प्रतिच्छायाकी त्रिकुटीपर त्राटक।

छाया-पुरुष अपनी ही छायामेंसे निकलता है या अपनी ही छाया सजीव हो उठती है या अपना सूक्ष्मशरीर प्रोद्गमन करता है और साधकसे बातचीत करता है, प्रतिज्ञाएँ कराता है तथा साधककी सभी इच्छाओंकी पूर्ति करता है। छायापुरुष किसी भी व्यक्तिके शरीरमें प्रविष्ट हो सकता है। इस प्रकार छायापुरुषकी सिद्धिके द्वारा साधक परकाय-प्रवेश कर सकता है।

परकाय-प्रवेशकी सिद्धिके प्रमाण—

(१) भगवान् शंकराचार्यने सुधन्वा या अमरुकके मृतशरीरमें प्रवेश करके कामशास्त्रका अध्ययन किया था। —'शंकरदिग्विजय'

(२) राजा शिखिध्वजको समाधिसे जाग्रत् करनेके लिये उनकी पत्नी चूडाला अपने शरीरको वहीं छोड़कर स्वामीके अन्तःकरणमें प्रविष्ट हो गयी। वहाँ पहुँचकर उसने सत्त्वसम्पन्न स्वामीकी चेतनाको स्पन्दित किया और लौटकर पुनः अपने शरीरमें प्रविष्ट हो गयी। —योगवासिष्ठ

(३) राजा पद्मके मृत शरीरमें राजा विदूरथके सूक्ष्मशरीरका प्रवेश हुआ और राजा पद्म जीवित हो उठे। —योगवासिष्ठ

(४) तत्त्वज्ञानका श्रोता शुक शैवास्त्रसे भयभीत होकर व्यासकी पत्नीके उदरमें प्रविष्ट हो गया। शुकके पार्थिव शरीरका किसीके उदरमें प्रविष्ट होकर १२ वर्ष न निकलना शरीरशास्त्रकी दृष्टिसे असङ्गत है; अतः इसका अर्थ यही है कि शुकका जीवात्मा ही व्यासपत्नीके शरीरमें प्रविष्ट हुआ था।

(५) 'गोरक्षविजय'के अनुसार—गौरी मक्षिकाका रूप धारण करके गोरखनाथके उदरमें प्रविष्ट हो गयी थीं। —'गोरक्षविजय'

(६) 'नाथचरित्र'के अनुसार—मत्स्येन्द्रनाथ पर्यटनको निकले थे। उनके एक नगरमें प्रविष्ट होनेपर उन्हें एक मृत राजाका शव मिला, जिसे परिचर जलाने जा रहे थे। मत्स्येन्द्रनाथने अपने शरीरकी रक्षाका भार शिष्योंपर छोड़कर उस मृत राजाके शरीरमें प्रवेश कर लिया एवं वे बहुत दिनोंतक भोग-विलास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते रहे। —'नाथचरित्र'

(७) **'नाथ-पुराण'के अनुसार**—मत्स्येन्द्रनाथ कामरूपमें तप करते समय किसी मृत राजाके शरीरमें प्रविष्ट होकर उसकी रानी मङ्गलाके साथ भोग करने लगे। —नाथपुराण

(८) **स्वामी शिवानन्दके कथनानुसार**—जसवीर नामक मृत बालकके शरीरमें शंकरलाल त्यागीके मृत युवा पुत्रके सूक्ष्मशरीरके प्रवेश होनेसे वह बालक जी उठा, किंतु वह अपनेको त्यागीजीका पुत्र मानता रहा, न कि अपने सगे पिताका।

स्वामी शिवानन्दने इसी प्रकारकी अनेक घटनाओंका वर्णन अपनी पुस्तक "What becomes of the Soul after death ?" नामक ग्रन्थमें दिया है।

राजस्थान विश्वविद्यालयके परामनोविज्ञानने भी ऐसी सैकड़ों घटनाओंका अध्ययन करके इस तथ्यकी प्रामाणिकता सिद्ध कर दी है। इसके अतिरिक्त 'Spirit Possession' एवं 'Double Personality' 'प्रेतावेश' एवं 'द्विविध व्यक्तित्व' के सैकड़ों आधुनिक उदाहरणोंने 'परकाय-प्रवेश'को आधुनिक भौतिक विज्ञानकी दृष्टिसे भी प्रमाणित सिद्ध कर दिया है।

पुनर्जन्म और परकाया-प्रवेश

(१)

(लेखक—श्रीबलरामजी शास्त्री, आचार्य, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

पुनर्जन्म और परकायाप्रवेश दोनों दो तथ्य हैं। इन दोनोंका सम्बन्ध एक ही जीवात्मासे अवश्य हो सकता है। हमारे शरीरके दो रूप माने गये हैं। एक रूप स्थूलशरीरका है, जो प्रत्यक्ष दीखता है। इसका दूसरा रूप भी है जो सूक्ष्म-शरीरके नामसे प्रख्यात है। दूसरा रूप सर्वसाधारणको सर्वदा दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। हमारे शास्त्रोंने यत्र-तत्र उस शरीरका आकार-प्रकार इसी शरीरके आकार-प्रकार-का बताया है; किंतु लम्बाई अङ्गुष्ठमात्र ही मानी गयी है। कुछ विद्वानोंने उसका रूप ऐसा झीना माना है कि उस झीने रूपमें प्रकाश आर-पार हो सकता है। जीवात्मा इस स्थूलशरीरको छोड़नेके पश्चात् उसी शरीरसे यात्रा करके, किसी गर्भमें प्रवेश करके पुनर्जन्म ग्रहण करता है और उसी शरीरके द्वारा सिद्ध योगीजन परकायाप्रवेश भी करते हैं।

योगवासिष्ठमें महर्षि वसिष्ठजीने श्रीरामचन्द्रजीको 'परकाया-प्रवेश' की विधि समझाते हुए बताया था—'राम ! जिस तरह वायु पुष्पमेंसे गन्ध खींचकर उसका घ्राणेन्द्रियसे सम्बन्ध कर देता है, उसी तरह योगी रेचकके अभ्यासरूप योगसे कुण्डलिनीरूप घरसे बाहर निकलकर ज्यों ही दूसरे शरीरमें जीवका सम्बन्ध कराता है, त्यों ही यह शरीर परित्यक्त हो जाता है। जीवरहित यह देह चेष्टाओंसे रहित होकर काठ और मिट्टीके ढेलेके सदृश पड़ा रहता है। जैसे सिंचन करनेवाला जलपूर्ण कुम्भसे जिस वृक्ष और लताको सींचनेकी इच्छा करता है, उसे ही सींचता है, वैसे ही अपनी रुचिके अनुसार देह, जीव, बुद्धि, स्थावर और जङ्गम सबमें उनकी सम्पत्तिका भोग करनेके लिये जीवको प्रविष्ट किया जाता है। उक्त प्रणालीसे परदेहमें सिद्धि-श्रीका उपभोगकर स्थित हुआ योगी यदि अपना पहला शरीर विद्यमान रहा तो उसमें पुनः प्रविष्ट हो जाता है और यदि न रहा तो दूसरे शरीरमें जबतक उसकी रुचि रहती है, तबतक उसमें प्रविष्ट होकर स्थित रहता है। योगरूप ऐश्वर्य-से सम्पन्न चेतन जीवात्मा सदा प्रकट दोषशून्य परमात्म-तत्त्वको जानकर जो भी कुछ जैसा चाहता है, वैसा ही उसे तत्काल प्राप्त कर लेता है। वास्तवमें अनावरणतारूप उत्तमपद ही यथार्थ पद है—यह अनुभवी लोग कहते हैं।' (देखिये, योगवासिष्ठ, गीताप्रेस, पृष्ठ ४४७-४४८)

योगी वसिष्ठजीने उपर्युक्त प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजीको परकायाप्रवेशकी साधनाको समझाया। इस प्रसङ्गसे अवगत होता है कि 'परकायाप्रवेश' योगसाधनाकी महान् सिद्धि है। यह सिद्धि सबको नहीं प्राप्त हो सकती। इसके लिये महान् प्रयत्नकी आवश्यकता पड़ती है। 'रेचक' प्राणायाम-पर पूर्ण नियन्त्रणके बाद 'कुण्डलिनी'से जीवात्माको बाहर निकालकर योगी मनचाहे शरीरमें प्रवेश करा देते हैं। यदि वे अपने पूर्वशरीरको सुरक्षित रखवा दें तो पुनः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें प्रवेश भी पा सकते हैं। भगवान् शंकराचार्यने ऐसा ही किया था।

चूडाला-वृत्तान्त

योगवासिष्ठके चूडाला-प्रसङ्गसे पता चलता है कि चूडाला परकायाप्रवेशकी कला जानती थी। चूडालाके इतिहाससे अवगत होता है कि वह महासती साध्वी नारी थी। वह बड़ी विदुषी भी थी। योगक्रियामें पारङ्गत थी। योगसिद्धिके बलसे उसे भूत, भविष्य और वर्तमानका पूरा ज्ञान था। पृथ्वी, आकाश और पाताल सर्वत्र उसकी गति थी। महाराज शिखिध्वजसे उसका विवाह हुआ था। उसने अपने पतिको भी योगी और त्यागी तथा मानवसे देवतुल्य बना दिया था। एक बार जंगलमें राजा शिखिध्वज समाधिस्थ हो गये। उनकी समाधि ऐसी लगी कि कई दिन व्यतीत हो गये, समाधि टूटी नहीं। चूडाला उन दिनों 'कुम्भ'नामक एक व्यक्तिके शरीरमें प्रवेश करके दिनमें राजाकी देखभाल करती और रात्रिमें मदनिका नामक जीवनसंगिनीके रूपमें अपने पतिकी सेवा करती। पतिकी समाधि चलती रही। अपने पतिको समाधिसे जगानेके लिये चूडालाने बहुत-से प्रयत्न किये, किंतु उनकी समाधि भङ्ग नहीं हुई। अन्तमें चूडालाने अपने पतिकी नाड़ियोंसे उनके जीवनका ठीक पता लगाया और अपने पतिको समाधिसे जगानेका दृढ़ संकल्प करके चूडालाने अपने स्वामीके शरीरमें अपने जीवात्माका प्रवेश करा दिया। चूडाला अपने इन्द्रिय-शरीरको वहीं छोड़कर पतिके शरीरमें प्रवेश कर गयी। वहाँ पहुँचकर उसने सत्त्वसम्पन्न अपने स्वामीकी चेतनाको स्पन्दित कर दिया और फिर निकलकर अपने शरीरमें इस प्रकार प्रवेश कर गयी, जैसे चिड़िया अपने घोंसलेमें घुस जाती है। तदनन्तर कुम्भरूपिणी चूडाला एक पुष्पाच्छादित स्थानमें जा बैठी और सामगान करने लगी। उस सामगानको सुनकर राजाके शरीरमें वर्तमान सत्त्वगुणसम्पन्ना चेतना उद्बुद्ध हो उठी। आँखें खोलनेपर राजाने अपने सामने कुम्भ (चूडाला)को बैठे देखा (देखिये योगवासिष्ठ 'गीताप्रेस' पृष्ठ ४७९)। इस प्रकार चूडालाको अपने पतिकी समाधि तोड़नेके लिये और उनकी सेवा करनेके लिये परकायामें प्रवेश करना पड़ा था।

श्रीशंकराचार्यका परकाया-प्रवेश

भगवान् श्रीशंकराचार्यने भी परकायाप्रवेश किया था। घटना इस प्रकार है—आदिगुरु शंकराचार्यने जब वाराणसीके विरोधी विद्वानोंको शास्त्रार्थमें परास्त कर दिया तो उनका शास्त्रार्थ अद्वैतवादके समर्थनमें भी प्रारम्भ हुआ। अद्वैत-सिद्धान्तके समर्थनमें जब उन्हें काशीमें विजय प्राप्त हो गयी, तब वे मिथिलाकी ओर बढ़े। उन दिनों मिथिलामें श्रीमण्डनमिश्र नामक विद्वान् थे। मिथिला पहुँचनेपर आचार्य शंकरका मण्डनमिश्रसे डटकर शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ कई दिनोंतक चला। अन्तमें आचार्य शंकरसे मण्डनमिश्र हार गये। मण्डनमिश्रकी धर्मपत्नी भारती बहुत विदुषी थीं। अपने पति और आदिगुरु शंकराचार्यके शास्त्रार्थमें भारतीने ही मध्यस्थता की थी। अपने पतिदेवके हारनेपर उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ। अन्तमें भारतीने आचार्य शंकरसे कहा—'संन्यासिन्! पतिका आधा शरीर उसकी पत्नी होती है। आपने मेरे पतिको परास्त किया, अब आप मुझसे भी शास्त्रार्थ करें।' आचार्य शंकरने भारतीसे शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया। भारती और आचार्य शंकरका कई दिनोंतक शास्त्रार्थ चला। अन्तमें भारती भी हारने लगीं। तब भारतीको एक उपाय सूझा। भारतीने मनमें विचार किया कि 'संन्यासीको 'काम-कला'का कुछ भी ज्ञान नहीं होता है। फिर ये तो बालकपनमें संन्यासी हो गये हैं। अतः इन्हें कामकलाका बिल्कुल ज्ञान नहीं है।' और चटसे भारतीने कामकलापर शास्त्रार्थ प्रारम्भ कर दिया। आचार्य वास्तवमें कामकलासे अनभिज्ञ थे। आचार्यने थोड़े समयके लिये अवसर माँगा। भारतीने अवसर दे दिया। आचार्य शंकरने ज्ञानचक्षुसे देखा कि एक नवयुवक राजा अचानक किसी कारणसे मर गया। आचार्यने अपने शिष्योंको अपने पार्थिव शरीरकी रक्षाके लिये समझा दिया और स्वयं योगविधिसे अपने जीवात्माका उस सद्योमृत राजाके शरीरमें प्रवेश करा दिया। राजाका शरीर प्राणवान् हो गया। राजा उठ बैठे। रनिवासमें आनन्दकी लहर छा गयी। रहस्य किसीने नहीं जाना। और आचार्यने राजाके उस मानव-शरीरसे क्रमशः कामकलाका पूरा ज्ञान प्राप्त कर लिया। अपनी विद्याको पूरी करके आचार्य निश्छल भावसे राजाके शरीरका त्याग करके पुनः अपने सुरक्षित शरीरमें प्रवेश कर गये। राजा पुनः मरे समझे जाने लगे। उधर आचार्य अपने कर्तव्यकी ओर अग्रसर हुए। अबकी बार भारती और आचार्यमें जो शास्त्रार्थ हुआ तो उसमें भारतीको हारना ही पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीशंकराचार्यका परकाया-प्रवेशके लिये शरीर-त्याग

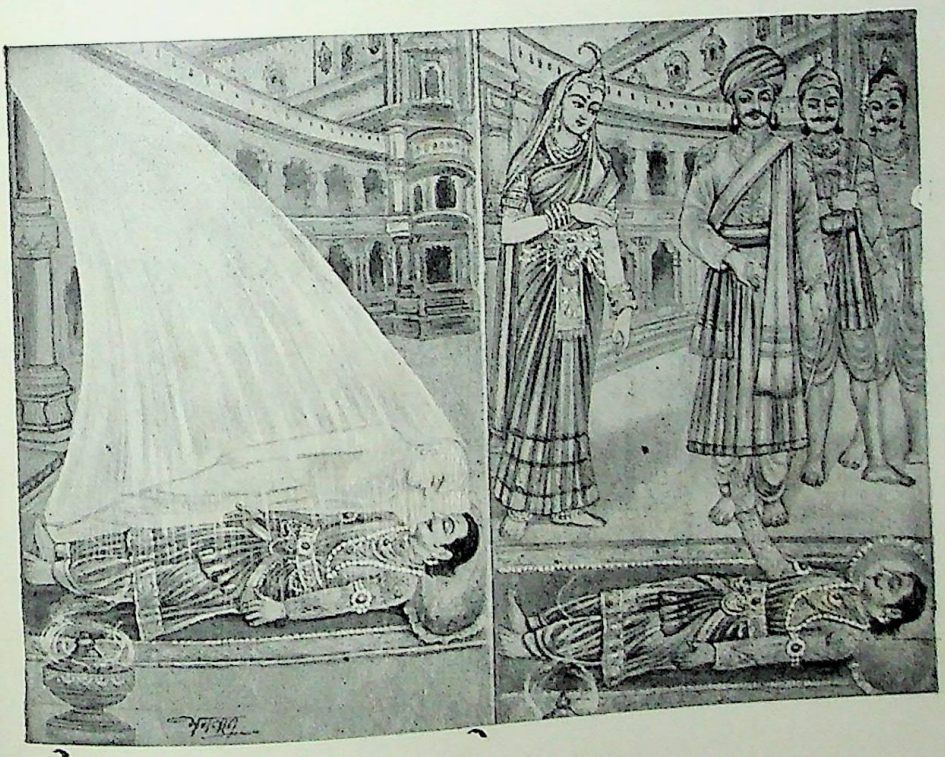

श्रीशंकराचार्यका राजाके शरीरमें प्रवेश

[पृष्ठ ५२८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रार्थ समाप्त होनेपर मण्डनमिश्र और उनकी धर्मपत्नी दोनों आचार्य शंकरके शिष्य हो गये।

लिङ्गशरीर जीवका प्रेमीके पास जाना

(क)

सद्योमृत प्राणीका प्रेतात्मा या लिङ्गशरीर अपने प्रेमी या जिसमें उसका चित्त लगा रहता है उसके पास पहुँच जाता है। यह कथन बिलकुल सत्य है। मुझे भी इसका एक बार अनुभव हो चुका है। मेरे पिताजी जब मरे तो मैं काशीमें 'सन्मार्ग'में कार्य करता था। उस समय मेरा अध्ययन प्रायः समाप्त था। पिताजीका मेरे ऊपर अधिक स्नेह था। अधिक स्नेह होनेके कई कारण थे। सन् १९४६ के फाल्गुन कृष्ण पक्षीको हृदयकी गति रुक जानेके कारण सहसा वे मर गये। उनकी मृत्यु हो जानेपर उस दिन मेरा चित्त सहसा चञ्चल हो गया। मैं छुट्टी लेकर कार्यालयसे अपने निवासस्थानपर चला आया और दिनभर उदास-मन होकर बैठा रहा। सायंकाल सहसा मेरे ज्येष्ठ भाई मेरे पास पहुँचे। उनको देखते ही मेरा मन उद्विग्न हो गया। पिताकी मृत्युका समाचार सुनकर मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। मैं उस विपत्तिका समाचार सुननेको तैयार नहीं था। अन्तमें अपने कर्तव्यको निभाने मैं मणिकर्णिकाघाट पहुँचा। पिताजीका शव वहाँ आ चुका था। मैं उनके अन्तिम समयमें उनका दर्शन न कर सका। उनका चित्त मुझे देखनेके लिये लालायित था। मेरे घरसे रेलवे स्टेशन और तारघर भी बहुत दूर थे। पिताजी प्रातः पाँच बजे मरे थे, अतः घरके लोगोंने शवको काशी ले आना ही उचित समझा था। मणिकर्णिकाघाटपर जब मैं पिताजीके शवमें आग लगानेके लिये प्रदक्षिणा करने लगा तो मुझे प्रतीत हुआ कि पिताजी स्पष्ट कह रहे हैं—'देखो, घबराना नहीं; अपने भाइयों और परिवारको भलीभाँति सँभालना। तुम्हारे भाइयोंको किसी प्रकारका दुःख न हो।' और यह सुनकर मैं उस समय कुछ विशेषरूपसे समझ नहीं सका। पिताजी मरनेके पूर्व पूर्ण स्वस्थ थे। उस दिन श्मशानपर चिताके पास मैंने जो अनुभव किया या सुना, मुझे भूलता ही नहीं।

(ख)

एक सम्भ्रान्त व्यक्तिने जाग्रत् अवस्थामें अपने वृद्ध भाईको, जो एक अफसर था, खाकी वर्दीमें देखा। उसका चेहरा पीला था और वह विदा ले रहा था। पूछनेपर कहा—'मुझे गोली लगी है।' 'कहाँ गोली लगी है?' पूछनेपर उसने बताया—'फेफड़ेमें' और आगे पूछनेपर छाया गायब हो गयी। देखनेवाला स्वप्न नहीं देख रहा था, बल्कि पूरी तरहसे जाग रहा था। उस समय घड़ीमें चार बजकर दस मिनट हुए थे। दो दिन बाद समाचार मिला कि वह अफसर छाया दीखनेकी रातको ग्यारह और बारहके मध्यमें मारा गया था।

ऊपर जो चूडाला और श्रीआदिगुरु शंकराचार्यके परकायाप्रवेशकी चर्चा की गयी है, उसपर अविश्वास करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इस युगमें ही ऐसे लोग हैं, जो परकायाप्रवेश तो नहीं, किंतु परचेतनाको उद्वेलित करके अपने नियन्त्रणमें कुछ देर रखकर दर्शकोंको मन्त्र-मुग्ध कर देते हैं। ऐसे कई लोग भारतमें घूम-फिरकर अपना प्रदर्शन भी करते रहते हैं। भारतके सिद्धयोगी तो प्रदर्शनमें विश्वास नहीं करते; न तो वे आत्मप्रदर्शन ही करना चाहते हैं। पाठकोंकी जानकारीके लिये २४ जुलाई सन् १९६६के 'धर्मयुग'में प्रकाशित 'परामनोवैज्ञानिक' फ्रांसीसी युवक पाल गोल्डीन द्वारा प्रदर्शित कुछ कृत्योंका उल्लेख करना चाहता हूँ। श्रीपाल गोल्डीन फ्रांसीसी नवयुवक हैं और वे भारत-भ्रमण करने आये थे। 'धर्मयुग'में श्रीप्रमोदशंकर भट्टने एक लेखमें उनके प्रदर्शनका विवरण प्रकाशित कराया था। अपने लेखमें उन्होंने लिखा है—(१५ अगस्त, माटुंगा, बम्बईका विशाल षण्मुखानन्द हाल।)

अखबारमें यह पढ़कर कि पाल गोल्डीन अपनी छठी शक्तिका प्रदर्शन करेंगे, असंख्य लोग इसलिये वहाँ आये कि देखें कि यह छठी शक्ति क्या चीज है! ठीक साढ़े बारह बजे दोपहरको हालके दरवाजे बंद कर दिये गये। हाल खचाखच भरा था। मञ्चपर काला सूट पहने, हाथमें एक तारका माइक लिये एक नवयुवकने प्रवेश किया। यही थे—पाल गोल्डीन। आते ही इन्होंने सबका अभिनन्दन किया और बोले 'मैं पाल गोल्डीन हूँ फ्रांसका रहनेवाला। न कोई जादूगर हूँ और न कोई हिप्नोटिस्ट। मैं आत्मामें विश्वास करता हूँ और आज उसी शक्तिका प्रदर्शन आपलोगोंके सामने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी कर रहा हूँ।' इसके बाद उन्होंने दर्शकोंके सम्मुख कई प्रदर्शन किये। पहले उन्होंने सबको अपनी-अपनी अँगुलियोंको फँसाकर और उन्हें उलटकर अपने-अपने सिरपर रखनेके लिये कहा। सबने उनके पराचेतना-शक्तिके प्रभावसे वैसा ही किया। इसके बाद उन्होंने बहुतोंको अपने वशमें करके मञ्चपर अपने पास बुला लिया।

(२)

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

परकाया-प्रवेशसम्बन्धी एक सत्य घटना हमने मेरठके मासिक पत्र 'त्यागी ब्राह्मण' जनवरी सन् १९५८ में पढ़ी और 'नवभारत टाइम्स' आदि पत्रोंमें भी देखी। हम इस सत्य घटनाकी जाँच करनेके लिये स्वयं रसूलपुर जाटान गाँव गये। लड़केके पिता चौ० गिरधारीसिंह जाटसे मिले। गाँवके सैकड़ों आदमियोंसे भी मिले। उस लड़केको अपने पास बैठाकर सब बातें मालूम कीं। घटना इस प्रकार है—

जिला मुजफ्फरनगरके गाँव रसूलपुर जाटानमें चौ० श्रीगिरधारीसिंह जाट, जो श्रीराजारामसिंह जाटके सुपुत्र हैं, उनके एक लड़का हुआ, जिसका शुभ नाम उन्होंने जसवीर रक्खा। जिस समय यह जसवीर लड़का लगभग ३ वर्ष ४ महीनेका हुआ तो वह अकस्मात् बीमार हो गया। उसके चेचक निकली। बहुत इलाज कराया गया, पर लाभ कुछ नहीं हुआ। अन्तमें लड़का चेचककी बीमारीमें मृत्युको प्राप्त हो गया। वह रात्रिमें मरा था। सबने यही निश्चय किया कि रात्रि अधिक हो गयी है, इसलिये प्रातःकाल ही इसे मिट्टी देनेको ले जाना उचित होगा। जसवीरके मृतक शरीरको ढँककर छोड़ दिया गया।

जिला मुजफ्फरनगरके ही एक दूसरे ग्राम बहेड़ीके निकट रोहाना मिलमें चौधरी शंकरलाल त्यागीके एक लड़का शोभाराम त्यागी था, जिसकी आयु थी उस समय लगभग २३-२४ वर्ष। शोभाराम त्यागीका विवाह हो चुका था। उसके दो लड़कियाँ और एक लड़का था। एक बारात मौजे केन्दकीसे ग्राम निर्माण, जिला मुजफ्फरनगरको जा रही थी तो उसमें बहेड़ीके शंकरलाल त्यागीका लड़का यह २४ वर्षीय शोभाराम त्यागी अपना रथ हाँककर ले जा रहा था। अकस्मात् शोभाराम त्यागी उस रथसे गिरा और उस रथका पहिया उसकी गरदनपर उतर गया। अधिक चोट लगनेके कारण उसके नाक-मुँहसे रक्त बहने लगा। सबको बड़ी चिन्ता हो गयी। शोभाराम बिल्कुल बेहोश हो चुका था। उसे बेहोशीकी हालतमें ही रथमें डालकर रोहाना मिलके अस्पतालमें ले जाया गया। उसी रात्रिको लगभग ११ बजे शोभारामका शरीर पूरा हो गया। सबने मिलकर वहींपर उसका दाह-संस्कार कर दिया। शोभारामके मरनेकी घटना ठीक उसी दिनकी है, जिस दिन रसूलपुर जाटान गाँवमें श्रीगिरधारीसिंह जाटका लड़का जसवीर चेचककी बीमारीसे रात्रिको मर गया था।

प्रातःकाल जब सब लोग रोते-चिल्लाते हुए जसवीरके शवको उठाकर जंगलमें दबानेके लिये ले जाने लगे तो सबको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, बड़ी प्रसन्नता हुई कि जसवीरके मृत पड़े शरीरमें अकस्मात् जीवनका संचार हो गया। वह धीरे-धीरे बिल्कुल स्वस्थ हो गया। उस समय तो सबने यही समझा कि जसवीर जिन्दा हो गया है। जसवीरके शरीरसे गया हुआ जीव पुनः लौट आया है, पर वास्तवमें यह बात बिल्कुल नहीं थी। बादमें सबको यह देखकर बड़ा भारी आश्चर्य हुआ कि जसवीरका मृत शरीर तो वास्तवमें जिन्दा हो गया है, पर उसमें जसवीरका आत्मा नहीं है। आत्मा किसी दूसरे व्यक्तिका घुस बैठा है। बात यह थी कि जसवीरका तो यह शरीर था, पर इसमें आत्मा घुस रहा था बहेड़ीके शोभाराम त्यागीका।

बालक जसवीरके मृत-शरीरमें शोभाराम त्यागीका आत्मा घुस जानेपर उसको अपने पिछले जन्मकी सब बातें याद रहीं। उसे जसवीरके एक ही छोटे-से शरीरमें अपने २४ वर्षके पुरुषको इस प्रकार घुसा देखकर और त्यागी ब्राह्मणसे जाटके घरमें आया हुआ देखकर, अपने बहेड़ी गाँवमें छोड़े स्त्री, लड़के, लड़की तथा अन्य घरवाले सबको छूटा देखकर बड़ा दुःख हो रहा था। उसने यह कहा—'मैं तो त्यागी ब्राह्मण हूँ और तुमलोग जाट हो। मैं तुम्हारे घरका खाना नहीं खाऊँगा। तुम्हारे घरमें मिट्टीकी हाँडियोंमें जो साग बनता है, मैं उसे नहीं खाऊँगा; मुझे तो ब्राह्मणोंके घरका भोजन मिलना चाहिये।' अब तो घरवालोंको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने यह सोचकर कि यदि इसने कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं खाया-पीया तो भूखा-प्यासा मर जायगा, इसलिये उसे निराल नामक गाँवके पं० हुकमचन्दकी पत्नी ब्राह्मणी, जो रसूलपुर जाटानमें ही आयी हुई थी, उसके द्वारा खानेका प्रबन्ध कर दिया। वर्षोंतक बराबर यह ब्राह्मणी ही उसे अपने हाथोंसे रोटी बनाकर खिलाती रही। अब न तो जसवीर जाटोंके घरोंकी रोटी खाता था और न मिट्टीकी हाँडीका औटा हुआ दूध पीता था। बड़ी ही पवित्रताका ध्यान रखता था। वह बड़ा ही उदास-सा रहा करता था। यदि मिट्टीकी हाँडीके बदलेमें पीतलके बरतनोंमें दूध औटा-कर दिया जाता था तो उसे वह पी लिया करता था।

एक दिन लगभग चार वर्षके पश्चात् जसवीरकी माँ राजकली जाटनी उसे अपने साथ लेकर अपने मैके जा रही थी। मार्गमें वह स्थान पड़ता था, जहाँ कि शोभारामके रूपमें रथसे गिरकर उसकी मृत्यु हुई थी; वहाँसे दो रास्ते जाते थे। एक तो ग्राम बहेड़ीको और दूसरा रास्ता ग्राम परईको। जसवीर लड़केने अपनी माँसे कहा—'माँ! मैं जब शोभाराम था, तब मैं यहाँपर रथसे गिरा था। हमारे घरका रास्ता तो उधर (बहेड़ी ग्रामकी ओर संकेत करके कहा) को है। माँ बच्चेकी बातको यों ही झूठी समझकर उसका हाथ पकड़कर अपने मैके परईको चल दी।

मार्च सन् १९५८ की बात है कि केन कोआपरेटिव सोसाइटीका कामदार श्रीजगन्नाथप्रसाद, जो बहेड़ी-निवासी था, एक दिन अपने किसी कार्यवश उसी ग्राम रसूलपुर जाटानमें गया। वहींपर यह गिरधारीसिंह जाटका लड़का जसवीर बच्चोंके साथ खेल रहा था। उसने जो अपने सामनेसे आते हुए उस बहेड़ीनिवासी कामदार जगन्नाथको देखा तो उसे तुरंत पहचान लिया। उसने जगन्नाथको जोरसे आवाज देकर पुकारा। जगन्नाथने चौकन्ना होकर देखा कि मुझे यहाँ कौन पुकारता है, पर उसे अपना कोई परिचित व्यक्ति दिखायी नहीं दिया। इसलिये वह वहाँसे आगेको चल दिया।

लड़के जसवीरने पुनः पुकारा—'अरे जगन्नाथ! यहाँ सुन, तुझे मैं पुकारता हूँ।' जगन्नाथ यह सुनकर उसके पास आया तो जसवीरने जगन्नाथसे राम-राम की। जगन्नाथसे कहा—'जगन्नाथ! तू मुझे मेरे गाँव बहेड़ी ले चल।' जगन्नाथने उसे पहले कभी देखा नहीं था और न उसे जानता था, इसलिये जगन्नाथने उससे कहा—'तू कौन है और तू किसका लड़का है?' इसपर जसवीरने जगन्नाथको अपनी प्रारम्भसे लेकर अबतककी सारी घटना सुना दी। जगन्नाथने आश्चर्यचकित होकर पूछा—'तू फिर यहाँपर कैसे आ गया!' तो उत्तरमें जसवीरने कहा—'गिरकर मरनेके बाद मुझे और कोई खाली जगह नहीं मिली। मैं इस शरीरको खाली देखकर इसमें घुस गया।'

जगन्नाथ अपने गाँव बहेड़ी गया तो उसने पूरी-की-पूरी घटना गाँववालोंको सुनायी। गाँवमें जिसने भी सुना, वही आश्चर्यचकित रह गया। लड़केके ताऊ-चाचा आदि सभी घरवाले गाँव रसूलपुर जाटान गये। लड़के जसवीरने तुरंत सबको पहचान लिया। सबको नाम ले-लेकर 'राम-राम' किया। लड़केके सम्बन्धियोंने उससे अनेकों प्रश्न किये। उसने बड़े संतोषजनक उत्तर दिये। बहेड़ीसे आनेवाले उन ग्रामीणोंमेंसे एक व्यक्तिने, जो कि उसी रथमें सवार था, जिस रथमेंसे गिरकर शोभारामकी मृत्यु हुई थी, बालक जसवीरसे पूछा—'मेरा नाम क्या है?'

जसवीरने कहा—'मैं तुम्हारा नाम तो भूल गया हूँ, किंतु मुझे इतना अवश्य याद है कि जिस समय मैं उस रथसे गिर गया था तो तुमने ही मुझे उस समय अपनी गोदमें लिटाये रक्खा था।' यह सुनकर वह आश्चर्यचकित हो गया। उसने सबके सामने यह स्वीकार किया कि वास्तवमें मैंने ही इसे रथमेंसे गिरनेपर रथमें लिटाया और इसे अपनी गोदमें लिटाये रक्खा था।' वे जसवीर लड़केको लेकर बहेड़ी ग्राममें गये तो 'रोहाना मिल्स' स्टेशनपर आकर जसवीरसे आगे-आगे चलनेको कहा गया। लड़का सीधा अपने घरपर आ गया। उसने सबको यथोचित नाम ले-लेकर पुकारा और सबको राम-राम किया। उसने उस समय यह भी हठ किया—'मैं अब अपने घर यहींपर रहूँगा। मैं वापस नहीं जाऊँगा।' उसने सबको पहचाना और सब बातें ठीक-ठीक बतायीं।

अब जसवीर दोनों जगह रहता है। कभी अपने पहले जन्मके घर अपने बाल-बच्चोंमें बहेड़ी चला जाता है, तो कभी रसूलपुर जाटान गाँवमें आ जाता है। हमें रसूलपुर जाटानमें जाकर उससे मिलनेका सुअवसर प्राप्त हुआ था और हमने स्वयं उससे प्रश्नोत्तर करके उपर्युक्त सभी बातोंको उसके मुँहसे सुना था।

भगवान् शंकराचार्य तथा अन्य योगियोंकी परकाय प्रवेशकी घटनाएँ हुई हैं, पर वे तो योगी थे। उपर्युक्त ब्राह्मण युवक तो योगी नहीं था, वह कैसे जसवीरके शरीरमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवेश कर गया ? इसका उत्तर यह है कि जो मनुष्य थोड़ी उम्रमें अचानक मरता है, वह बहुत-सी वासनाओंके कारण अतृप्त हो जाता है। उसको यदि कोई खाली शरीर मिल जाता है तो वह उसमें घुस जा सकता है। यही बात यहाँ हुई है। यद्यपि ऐसी घटनाएँ बहुत ही कम होती हैं, पर हो तो सकती ही हैं।

(३)

(लेखक—श्रीबलभदासजी विद्यानी, 'ब्रजेश', साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

(क)

श्री एल० पी० फैरेल भारतीय कमाण्डके भूतपूर्व प्रधान सेनापति रहे हैं। उनकी इस विद्यामें गहरी रुचि शुरूसे थी। अतः भारत आते ही उन्होंने इसकी गहरी छानबीन एवं अनुसंधान किया। भारतके ऐसे सिद्ध योगियोंकी क्रियाओंसे वे बहुत पहलेसे ही प्रभावित थे। अब उन्हींके शब्दोंमें उनकी आँखोंदेखी एक प्रत्यक्ष घटनाका वर्णन पढ़िये—

अनादिकालसे 'मानव' यह प्रश्न करता रहा है—'मनुष्य या मानव क्या है ? वह कहाँसे आता है और कहाँ जाता है ? उसका प्रारम्भ इस जन्मसे होता है अथवा जन्मसे पहले भी उसका अस्तित्व था ? यदि उसका कोई अस्तित्व था तो किस रूपमें ? क्या मृत्यु ही मानवीय जीवनकी अन्तिम परिणति है ?' सी० फ्लेम्बरियन, ई० डी० वाकर, पैस्कल डब्ल्यू० लुटोस्लावस्क, व्हाइट-जैसे महान् लेखक इस सवालपर बहुतसे ग्रन्थ लिख चुके हैं। हो सकता है कि इन विचारकोंके सिद्धान्त बहुत अधिक व्यावहारिक न मालूम पड़ें। संसारके किसी भी विज्ञानमें अभीतक इस प्रकारके रहस्यपूर्ण प्रश्नोंको सुलझानेके लिये किसी माध्यमका आविष्कार नहीं हो सका है।

मैं अपने विद्यार्थी-जीवनसे ही इस विषयमें गहरी दिलचस्पी लेता रहा हूँ। अतः इस विषयमें मैंने बहुत-से विद्वानोंके ग्रन्थोंका अध्ययन किया, जिन्होंने मेरे मनपर गहरा असर डाला। स्वभावतः मैं स्वीकार करने लगा कि सम्भवतः यह एक सचाई हो, पर मैं इस बारेमें पूरे निश्चयपर नहीं पहुँच सका।

समय बीतता गया। मैं एक विद्यार्थीके जीवनसे फौजी जीवनमें प्रविष्ट हुआ। सैनिक-जीवनमें मैं अनुशासन, शिष्टाचार तथा सत्ता आदिके प्रति आकर्षित होने लगा। इतनेपर भी अन्तश्चेतनापर इस प्रकारकी सामग्री अज्ञात रूपसे एकत्र होती रही, जिसे प्रज्वलित करनेके लिये एक छोटी-सी चिनगारीकी ही जरूरत थी।

१९३७ में मैं भारतमें एक उच्च फौजी पदपर काम करने आया। हिंदुओंका रहस्यमय देश भारत मेरे लिये एक नया प्रदेश था, जिसके बारेमें मैंने बहुत कुछ पढ़ा और सुना था। इसलिये अवकाशके समयमें भारतीय भाषाओं, प्रथा-पद्धतियों, धर्म-सम्प्रदायों और विशेषरूपसे मुक्ति प्राप्त करनेके सिद्धान्तोंका अध्ययन करने लगा; परंतु एक घटनाने भारतीय साधुओंके रहस्यकी ओर अचानक ही मेरे मनको खींच लिया।

युवा शरीरमें आत्माका प्रवेश

मेरा खयाल है कि यह घटना १९३९ के आसपासकी है। आसाम-बर्माकी सरहदपर एक नदीके किनारे मैं कुछ अफसरोंके साथ एक फौजी योजना बनानेमें संलग्न था। नदीके दूसरे किनारेपर घना जंगल था और बीचमें नदीका गहरा नीला जल शान्तिसे बह रहा था। इसी बीच काफी दूरीपर नदीके पानीमें हम सबने कोई चीज बहती देखी। उत्सुकता मिटानेके लिये मैंने एक ताकतवर टेलिस्कोप (दूरवीक्षणयन्त्र) लिया और सामने देखा। वह नवयुवककी लाश थी, जिसे नदीसे बाहर निकालनेके लिये एक सफेद दाढ़ीवाला, अस्थि-कंकाल मात्र बूढ़ा आदमी कोशिश कर रहा था। साथी अफसरोंका ध्यान खींचे जानेपर उन्होंने भी टेलिस्कोपका प्रयोग किया। हम सबने देखा कि उस बूढ़े आदमीने लाशको बाहर निकाला और उसे वह नजदीकके एक पेड़के पीछे ले गया। कुछ समय तक हम बारीकीसे देखते रहे। फिर हमने आश्चर्यसे देखा कि वह लाश, जिसे हम मरा हुआ समझ रहे थे, उसी गीली पोशाकमें एक जीवित आदमीकी तरह चलती जा रही थी। मैं हक्का-बक्का रह गया और मैंने तुरंत सीटी बजायी। इसपर मेरे कुछ आदमी आ गये। उन्हें उस व्यक्तिको पकड़नेका हुक्म दिया गया, जो कुछ मिनट पहले ही एक लाशके रूपमें था।

उस आदमीको दफ्तरमें मेरे सामने पेश किया गया। मैंने उससे पूछा—'तुम कौन हो ? कुछ समय पहले तुम एक मुर्दा आदमीके रूपमें बहे जा रहे थे और अब तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन्दा हो। यह सब क्या रहस्य है ! वह बूढ़ा आदमी कहाँ गया ?' इसके जवाबसे मैं अचम्भेमें रह गया। उसने कहा—'वह स्वयं बूढ़ा आदमी है।' अधिक सवाल-जवाब करनेपर उसने रहस्योद्घाटन किया कि 'वह योग जानता है। कड़ी तपस्या करनेसे वह ऐसा तरीका जान गया है, जिससे वह शरीर बदल सके। वह अपनी इच्छासे आदमियों या प्राणियोंके शरीरमें अपने आत्माको प्रविष्ट करा सकता है, परंतु एक जीवित व्यक्तिके शरीरमें आत्माका प्रवेश पाप है। इसलिये बूढ़ा होनेपर जब वह किसी नवयुवककी लाश देखता है, तब वह उसमें अपने आत्माको प्रविष्ट कर देता है; क्योंकि बूढ़े शरीरसे चलना-फिरना भी कठिन हो जाता है।' मेरे लिये यह एक चमत्कार था। मैं इसपर विश्वास न कर सका। मैंने पूछा—'उस बूढ़े आदमीका शरीर कहाँ है ?' मुझे बतलाया गया कि 'उस पेड़के पीछे वह निर्जीव शरीर पड़ा है।' मेरे हुक्मपर वह लाश लायी गयी और वास्तवमें यह चमत्कार एक निर्णीत तथ्य बन गया। मैंने उस नवयुवकको अपने यहाँ एक मेहमानके रूपमें ठहरनेका आमन्त्रण दिया; परंतु मुझे खेद है कि उसने उसी रातको वह ठिकाना छोड़ दिया और इसके बाद मैं उसका पता लगानेमें असमर्थ रहा।

उक्त घटनाने मुझे आत्माके रहस्यको जाननेके लिये बेचैन बना दिया; परंतु वर्षों प्रयत्न करनेपर भी—पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिणमें निरन्तर खोज करनेपर भी मैं उस आदमीका पता नहीं लगा सका। कई वर्षोंतक मैं बड़े विद्वानों, साधुओं और योगियोंसे मिलता रहा। वे योग, वेद तथा गीताके सिद्धान्तोंपर प्रकाश डालते रहे; परंतु कोई भी व्यावहारिक परीक्षणद्वारा इन्हें दिखानेमें समर्थ नहीं हुए। मैं हिंदुओं तथा मुसल्मानोंके बहुत-से तीर्थस्थानोंपर गया, जहाँ बड़ी इज्जतसे मेरा स्वागत किया गया; परंतु इस सबका कोई परिणाम कुछ नहीं निकला।

(ख)

कई वर्ष पूर्व चम्पानाथ नामक एक योगी गरमीके दिनोंमें जम्मूमें आया करते थे। उनका स्थान तकी नदीके किनारे था। वे मुझसे बहुत प्रेम करते थे। योगी निःस्वार्थ, स्वच्छन्द थे और उन्होंने अनेक समय अपने अद्भुत चमत्कार सहज ही दिखलाये थे। उनकी आयु लगभग ७० वर्षकी थी, परंतु शरीर हृष्ट-पुष्ट था। उस समय दो वर्षके बाद हरद्वारसे जम्मू पधारे थे। अब बहुत दुर्बल मालूम पड़ते थे। इस दुर्बलताका कारण पूछनेपर उन्होंने कहा कि 'मुझे एक ऐसे मित्र मिल गये थे, जिन्होंने मद्य पिला दिया और उसीसे मेरा शरीर दुर्बल हो गया। अब मैं इसको बदलना चाहता हूँ।' यह सुन मैंने समझा कि उन्होंने समाधि लेनेका निश्चय किया होगा। एक दिन जब मैं उनके पास अकेला था, तब उन्होंने मुझसे कहा कि 'यदि तुम मेरी एक बात गुप्त रक्खो तो मैं अपने मनकी बात तुमसे कहूँ।' मेरे आश्वासनपर उन्होंने कहा कि 'एक बोतल शराब*, एक कटोरा मांस और एक कटोरा खीर मुझे ला दो।' उनके आज्ञानुसार मैं वे वस्तुएँ लेकर निर्दिष्ट समयपर उनके पास जा उपस्थित हुआ। मुझे देखते ही वे उठ खड़े हुए और मुझे लेकर मुसल्मानोंके कब्रस्तानकी तरफ चले। मध्य रात्रिका समय था। उसी दिन एक मुसल्मान रँगरेजका एक सुन्दर लड़का मरा था। उसी तरुण लड़केकी कब्रके पास योगी महाराज जा खड़े हुए। इसके बाद मुझे कोई छः हाथकी दूरीपर खड़ाकर उन्होंने मेरे चारों ओर एक वर्तुलाकार रेखा खींची और मुझसे कहा कि 'मैं चाहे कितना ही बुलाऊँ, तुम मेरे पास मत आना। जब मैं ये चीजें माँगूँ तो एक एक कर मुझे दे देना।' फिर उन्होंने कब्रके पासकी जमीन साफ करके और कब्र खोदकर लड़केके शवको साफ की हुई जमीनपर लिटा दिया। कब्रके उत्तरकी ओर थोड़ी जमीन साफ की और वे स्वयं उसपर लेट गये। आध घंटेके बाद वे व्याकुल होने लगे और अब आवाज भी निकलनी कठिन हो गयी। उन्नीस-बीस मिनटके बाद वे चिल्ला उठे और उनके शरीरका हिलना-डुलना सहसा बंद हो गया। इतनेमें उधर लड़केका शव हिलने लगा और थोड़ी ही देरमें उसने नेत्र खोल दिये। उसके नेत्र जलती हुई आगके समान लाल हो गये थे। मैं भयसे हत ज्ञान हुआ। इतनेमें उस तरुणने या यों कहिये कि उस तरुणके शवने करवट ली और मेरी तरफ हाथ बढ़ाने लगा। हाथ इतना लंबा हुआ कि वह मेरे पास पहुँच गया। मैंने योगीके इच्छानुसार डरते-डरते उसको सब चीजें देनी आरम्भ कर दीं। उन वस्तुओंको खा-पीकर वह लड़का अथवा प्रेत उठ खड़ा हुआ और मुझे अपने पास बुलाने लगा। मैंने योगीकी आज्ञाको स्मरणकर उसी जगहसे कहा—'माफ कीजिये। मैं आपके पास नहीं आ सकता।'

* वाममार्गमें एवं कौलाचारकी उपासनाओंमें मांस-मद्यादिका सेवन होता है, दक्षिण मार्गमें नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर वह स्वयं मेरे पास आया और मेरी सहायतासे उस तरुणने, अर्थात् उसके शवमें प्रवेश किये हुए योगीने अपने पुराने शरीरको उसी कब्रमें गाड़ दिया। इसके बाद उसने मुझसे कहा कि 'मैं जाता हूँ। फिर दस-बारह वर्षके बाद तुमसे मिलूँगा और तुमको इस सहायताका पुरस्कार दूँगा।' अनुरोध करनेपर उन्होंने मुझको घर पहुँचा दिया और स्वयं चले गये। इस सबका परिणाम यह हुआ कि दो सप्ताह तक मुझे इतना ज्वर चढ़ा रहा कि कुछ सुध तक न रही। ज्वर उतर जानेपर जब मैं प्रकृतिस्थ हुआ, तब मैंने लोगोंके मुँहसे एक बड़े ही आश्चर्यकी बात सुनी। मृत लड़केके मकानके सामने एक सुनार रहता था। वह अमृतसरमें अपनी ससुराल गया था। वहाँ एकाएक उसे वही रँगरेजका लड़का मिला। सुनारने पहचान लिया और उसका हाथ पकड़कर उससे वहाँ आनेका कारण पूछा। लड़केने, अर्थात् उस लड़केके शरीरमें प्रवेश किये हुए योगीने उत्तर दिया कि 'मुझसे मेरे पितासे अनबन होनेके कारण मैं यहाँ रोजगार करने चला आया हूँ।' सुनार उसको अपने स्थानपर ले गया। लड़का वहाँ खा-पीकर सोया और सवेरा होते ही मैदान जानेके बहाने जो बाहर गया तो फिर न लौटा। सुनार जब लौटकर अपने घर आया तब उसने रँगरेजको सब हाल कह सुनाया। यह सुनकर सब आश्चर्यचकित हो गये। तब किसी एकने यह कल्पना लड़ाई कि चलकर कब्र खोदकर देख लीजिये। सब लोग मिलकर वहाँ गये और देखा तो सचमुच लड़केकी लाश गायब हो गयी थी और उस तरुण लड़केकी जगह एक सत्तर-अस्सी वर्षके वृद्ध पुरुषकी लाश थी। तब सुनारके कथनपर लोगोंका विश्वास हुआ और उस तरुणकी खोजमें आदमी रवाना हुए, परंतु अभीतक उसका कोई पता नहीं मिल सका।

इच्छा-मृत्यु

(१)

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

मृत्यु-विजयिनी भक्तिमती देवी श्रीभिराँवाँ बाईजी

[आयी मृत्युको एक मास आठ दिनके लिये लौटा देने तथा ठीक समयपर पद्मासनसे बैठकर भगवत्-स्मरण करते हुए देह-त्याग करनेकी विलक्षण सत्य घटना]

(गत जुलाई सन् १९६८ में एक बार सुप्रसिद्ध आशुकवि ब्रह्मर्षि स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी महाराजने कृपा कर हमारे यहाँ पिलखुवा पधारकर अपने महत्त्वपूर्ण सदुपदेशोंके द्वारा सबको लाभान्वित किया था। एक दिन सत्सङ्गमें मेरे प्रश्न करनेपर उन्होंने कृपापूर्वक जो कहा, उसीका सारांश संक्षेपमें नीचे दिया जा रहा है। —लेखक)

परम पूजनीया माता श्रीभिराँवाँ बाईका जन्म मुल्तान (वर्तमान पाकिस्तान) में सारस्वत ब्राह्मण पं० श्रीप्रभुदयालजी शर्माकी धर्मपत्नीकी कोखसे हुआ था। समयानुसार आपका शुभ विवाह पण्डित श्रीहरनारायण झींगरनजी महाराजके साथ सम्पन्न हुआ। पं० श्रीहरनारायणजी महाराज अत्यन्त सरल, सौम्य, सदाचारी, सात्त्विक विचारोंसे सम्पन्न सादा जीवन व्यतीत करनेवाले थे। वे सरकारी नौकरी करते थे। श्रीभिराँवाँ बाई अत्यन्त सदाचारिणी, धर्मपरायणा, पतिव्रता, पत्नी थीं। भगवत्कृपासे पति-पत्नी दोनों ही साधन, भजन, व्रत, उपवास, तीर्थयात्रा आदि बड़े प्रेमसे साथ साथ करते थे।

उसी समय पंजाबके प्रसिद्ध योगिराज पूज्यपाद श्रीस्वामी सियारामजी महाराज मुल्तान पधारे। आपके सत्सङ्गमें श्रीभिराँवाँ बाई भी अपने पतिके साथ जाने लगीं। श्रीस्वामीजीके सत्सङ्गसे यह दम्पति बड़ी प्रभावित हुई। इनकी प्रार्थना सुनकर श्रीस्वामीजीने पति-पत्नीको योगकी दीक्षा दी। पति-पत्नी योगसाधनामें लग गये। प्रतिदिन प्रातःकाल पति-पत्नी दोनों ब्राह्ममुहूर्तमें उठते। स्नानादिसे निवृत्त होकर अपने इष्टदेव श्रीकृष्णकी पूजा-आराधना करते। फिर योगकी साधनामें लग जाते और समाधिका आनन्द लूटते।

पूजनीया श्रीमाताजी तो साधनमें शरीरकी तनिक भी चिन्ता नहीं करती थीं। पाँच-पाँच दिन निराहार रह जातीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई चान्द्रायण व्रत किये और व्रतोपवासद्वारा शरीरको सूक्ष्म बनानेका उनका प्रयत्न चलता रहा।

योग-साधनाके समय भी उनके इष्टदेव श्रीकृष्णका श्रीविग्रह सदा उनके साथ रहता। श्रीविग्रहकी पूजा-आरती वे श्रद्धा-भक्तिद्वारा करती रहतीं। श्रीकृष्ण-कीर्तनमें वे प्रायः प्रेम-विभोर हो जाया करतीं। योग-साधन, श्रीकृष्ण-आराधनके साथ वे पति-सेवामें भी चूक नहीं पड़ने देती थीं। पतिकी सेवा-शुश्रूषा वे दत्तचित्त होकर करतीं। श्रीमाताजीका आहार सर्वथा सात्त्विक होता। लहसुन, प्याज, सलजम आदिका वे स्पर्श भी नहीं करती थीं। आचार एवं स्पर्शास्पर्शका वे अत्यधिक ध्यान रखती थीं। अपने हाथ कूप-जल निकालकर लातीं। स्वयं रसोई बनातीं और अपने इष्टदेवको भोग लगाकर पतिको खिलातीं। उसके अनन्तर स्वयं प्रसाद-ग्रहण करतीं। अपने जीवनमें उन्होंने कभी नलका पानी स्पर्श नहीं किया। रेलकी यात्रामें आप निर्जल उपवास कर लेतीं और यात्रा पूरी होनेपर सचैल स्नान करतीं। अंग्रेजी औषधियाँ भी वे नहीं लेती थीं।

आपके पुत्र श्रीकृष्णानन्दजी कथा-कीर्तनद्वारा सनातन धर्मका प्रचार करते थे। श्रीमाताजी आपसे कुछ नहीं लेती थीं। आपके दूसरे पुत्र श्रीचन्द्रमणिजी रेलवेकी नौकरी करते थे। आप नियमितरूपसे गायत्री मन्त्रका जप करते। जप किये बिना वे अन्न-ग्रहण नहीं करते थे। रिश्वतको वे पाप समझते। उनकी शुद्ध ईमान एवं श्रमकी कमाई थी। इस कारण श्रीमाताजी उनसे अपने निर्वाहके लिये केवल पाँच रुपये लेतीं। एक बार श्रीचन्द्रमणिजीने २५) भेजे। पर श्रीमाताजीने वापिस कर दिये। बोलीं—'मुझे पाँच रुपये मासिकमें ही जीवन-निर्वाह करना है।'

श्रीमाताजी अपने यहाँ प्रतिदिन संध्या-समय पास-पड़ोसकी बहनोंके साथ श्रीभगवन्नाम-कीर्तन करतीं एवं सत्सङ्ग कराया करतीं। वे विधवा बहनोंको त्याग एवं तप-पूर्ण पवित्र जीवन व्यतीत करनेके लिये सदुपदेश एवं निरन्तर प्रेरणा देती रहतीं। वे सत्सङ्गमें बहनोंसे कहतीं—'जिन्हें यमदूतों एवं नारकीय यन्त्रणासे बचना है और जिन्हें अपना लोक और परलोक सफल एवं सार्थक करना है, उन्हें श्रीभगवान्‌की भक्ति करनी चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तिमें अद्भुत आनन्द है।' कथा, कीर्तन, सत्सङ्ग एवं मानस-पाठ आदिके द्वारा वे सनातनधर्मके प्रचारमें संलग्न रहती थीं।

आपके पूज्य पतिदेव पं० श्रीहरनारायणजी महाराजने श्रीभगवान्‌की कथा सुननेके पश्चात् बड़ी शान्तिसे शरीर त्याग दिया। श्रीमाताजीको बड़ा दुःख हुआ; किंतु अब उनका मन संसारसे और अधिक विरक्त हो गया। उनके साधन तीव्र हो गये। फलस्वरूप उन्हें अपने मृत्युकालका ज्ञान हो गया और उन्होंने अपने शरीर-त्यागका निश्चित काल सबपर प्रकट कर दिया। श्रीमाताजीके प्रेमियों और भक्तोंको बड़ा क्लेश मालूम हुआ; किंतु विवशतः उन लोगोंने उनके सभी सम्बन्धियों एवं प्रीति-पात्रोंको पत्रादिके द्वारा सूचना दे दी।

उक्त तिथिको बड़ी भीड़ थी। श्रीमाताजीके पुत्रादि सभी सम्बन्धी, सत्सङ्गी तथा सभी परिचित उनके पर-धाम-गमनका दृश्य देखने उपस्थित हो गये थे। गौके पवित्र गोबरसे धरती लीपी गयी। दर्भासन बिछाया गया। सामने श्रीकृष्णका चित्रपट रक्खा गया। बाजे-गाजेके साथ भगवन्नाम-कीर्तन प्रारम्भ हुआ।

दिनके चार बजे माताजीको यह संसार छोड़ देना था। उन्होंने स्नानोपरान्त शुद्ध वस्त्र धारण कर श्रीकृष्णकी सविधि पूजा एवं प्रार्थना की। श्रीगङ्गाजल, तुलसी एवं श्रीभगवान्‌का चरणामृत मुखमें लेकर आसनपर बैठ गयीं। प्राणायामके द्वारा वे शरीर छोड़ने ही जा रही थीं कि उनके भतीजे पं० जुगलकिशोर जैतिलीके पुत्र वैद्यराज पं० श्रीदेवेन्द्र शर्मा षट्शास्त्री भीड़ चीरते हुए श्रीमाताजीके चरणोंमें प्रणामकर उनके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

'परम पूजनीया माँ!'—षट्शास्त्रीजीने निवेदन किया। 'आप प्रेम, भक्ति एवं वैराग्यकी मूर्ति सनातनधर्मकी प्रचारिका हैं। फिर धर्मविरुद्ध आचरण क्यों?'

'धर्मविरुद्ध आचरण कैसा बेटा?'—श्रीमाताजीने शान्ति और प्रेमसे पूछा।

षट्शास्त्रीजी बोले—'आप परमयोगिनी होकर भी दक्षिणायनमें शरीर-त्याग कर रही हैं। यह शास्त्रसम्मत नहीं। आप उत्तरायणमें परमधाम-गमन करें।'

श्रीमाताजीने उत्तर दिया—'तुम्हारी बात तो उचित है बेटा! पर अब मुझे जाने दो। अब मुझे स्वयं अपने हाथसे पानी आदि लानेमें बड़ा कष्ट होगा। शरीर साथ नहीं देता।'

षट्शास्त्रीजी बोले—'उत्तरायणके आनेमें कुल एक मास आठ दिनकी देर है। इतने दिन पानी लाने आदिकी सेवा मैं स्वयं करूँगा। इतने दिन आप कृपापूर्वक इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगोंको अपने पवित्र दर्शन, सत्सङ्ग एवं सेवासे लाभ उठानेका अवसर प्रदान करें।'

'अच्छा जाओ। अब मैं एक मास बाद आऊँगी।' सबको लगा, जैसे श्रीमाताजी मृत्युको इतने दिनके लिये बिदा कर रही हैं। सबने जय-जयकार की।

ममताशून्य चित्त, भगवत्प्रेम, गो-माताकी सेवा एवं तपोबलसे श्रीमाताजीने आयी मृत्युको वापस कर दिया; किंतु उनके कथनानुसार उनका शरीर अधिक दुर्बल और अशक्त हो गया। उनकी सेवामें श्रीदेवेन्द्र शर्मा षट्शास्त्रीजी और पूज्य माताजीकी बड़ी पुत्री कुशाबाई रहने लगी। कुएँसे पानी लानेसे लेकर सारा सेवाकार्य ये लोग करते।

शरीर-त्यागके चार-पाँच दिनों पूर्व समीपके गाँवके एक सज्जन पधारे और श्रीमाताजीके पुत्र श्रीकृष्णानन्दजीको उसी दिन, गोशालाके उत्सवपर भाषण देनेके लिये निवेदन किया, जिस दिन श्रीमाताजी अपने भौतिक शरीरको छोड़नेवाली थीं। श्रीकृष्णानन्दजीने सर्वथा विवशता प्रकट की।

वे सज्जन श्रीमाताजीके पास पहुँचे और बोले—'माँ! उसी दिन, जिस दिन आप सदाके लिये पधारनेवाली हैं, गोशालाका उत्सव है। आपके पुत्र श्रीकृष्णानन्दजीके भाषण न करनेसे हजारों रुपयेकी होनेवाली आय मारी जायगी और गायें भूखों मरेंगी।'

श्रीमाताजीने अपने पुत्रसे कहा—'बेटा! तुझे भाषण देने अवश्य जाना चाहिये। गोमाता भूखों मरेंगी तो बड़ा पाप होगा। तू मेरी चिन्ता न कर; अवश्य जाना।' श्रीमाताजीके आज्ञानुसार श्रीकृष्णानन्दजी उक्त उत्सवको चले गये।

नियत समयपर श्रीमाताजीने स्नान-पूजनसे निवृत्त होकर शुद्ध वस्त्र धारण किया। गङ्गाजल तथा तुलसीदल मुखमें लिया और गोबरसे लिपी भूमिपर बिछे कुशासनपर बैठकर उपस्थित जन-समुदायके द्वारा भगवन्नाम-कीर्तन सुनती एवं भगवन्नाम लेती हुई शरीर त्याग दिया। जन-समुदाय श्रीमाताजीकी जय-जयकार करने लगा।

प्रातःस्मरणीया श्रीमाता भिरावाँ बाईकी अर्थीका जुलूस-सा निकला। भगवन्नाम-कीर्तन हो रहा था। अर्थीपर पुष्प और पुष्प-मालाएँ चढ़ायी जा रही थीं। श्रीमाताजीकी जय बोली जा रही थी।

यह घटना अधिक दिनोंकी नहीं, लगभग सन् १९४५ ई० की देखी-सुनी सर्वथा सत्य है।

बोलो सनातन धर्मकी जय!

(२)

(लेखक—पं० श्रीमुनि देवराजजी विद्यावाचस्पति)

मृत्युको दूर हटानेकी सत्य घटना

कांगड़ी ग्रामके पास मेरे पिताजीका लगता हुआ ग्राम था, जिसका नाम गाजीवाली है। वहाँ थाना नामक एक बनिया रहता था। वह अति वृद्ध था। एक दिन उसने अपने पास बैठे हुए लोगोंसे सहसा कहा—'अब हम जाते हैं। यों तो वह स्वस्थ था, कोई बीमारी उसे नहीं थी। तब उपस्थित मनुष्योंने प्रार्थना की—'अभी मत जाइये; कुछ समय और ठहरिये; क्योंकि आपके दर्शनार्थ अन्य बहुत-से मनुष्योंको बुलाना है।' तब उस वृद्ध बनियेने कहा—'अच्छा, कितने दिन ठहर जाऊँ?' लोगोंने उससे कहा—'दो दिन और ठहर जाइये।'

उसने उत्तर दिया—'अच्छा, दो दिनके बाद नहीं ठहरूँगा।' दो दिनके अंदर सब दर्शनार्थी आ गये। जब दो दिन पूरे हो गये, तब वृद्ध पुरुषने कहा—'अब दो दिन हो गये, अब हम नहीं रुकेंगे।' इतना कहकर उसने शरीरसे प्राण निकाल दिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमदूत-दर्शन

(प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

अभी सन् १९६७ की बात है कि हम हापुड़ 'सनातनधर्म-सम्मेलन'में गये हुए थे। वहाँ हम हापुड़के वयोवृद्ध कांग्रेसी नेता एवं भूतपूर्व यू० पी० विधान परिषद् (लेजिस्लेटिव कौंसिल) के सदस्य माननीय बाबू श्रीलक्ष्मीनारायणजी बी० ए० से भेंट करनेके लिये उनके स्थानपर गये। आपसे जिस समय हमारी बातें होने लगीं तो हमने कुछ शास्त्र-पुराणोंके सम्बन्धकी सत्य घटनाएँ आपके सामने रक्खीं। सहसा बाबू श्रीलक्ष्मी-नारायणजीने कहा—

'भक्त रामशरणदासजी ! मैं विशेष तो आपके शास्त्र-पुराणोंकी बातोंको जानता नहीं हूँ; कारण कि मैंने शास्त्र-पुराणोंको देखा ही नहीं है। मैं तो बहुत कालतक कांग्रेसमें रहा हूँ। जितनी मुझसे बन सकी है, मैंने निःस्वार्थ-भावसे देशकी सेवा की है। मैंने अपने जीवनमें एक-दो ऐसी घटना अवश्य देखी है कि जिन्हें अपनी आँखोंसे देखकर मुझे भी कुछ शास्त्र-पुराणोंमें श्रद्धा हुई।'

'क्या देखी हैं आपने अपने जीवनमें आश्चर्यजनक घटना ?' मैंने उनसे पूछा।

उन्होंने बतलाया—"मैंने जो महान् भयंकर विशालकाय काली शक्लवाले दो व्यक्ति देखे थे, वे भूत थे या वे यमराजके भेजे हुए दूत थे, यह तो मैं नहीं जानता; पर आज भी यदि मुझे उनका भूलसे भी कभी स्मरण हो जाता है तो मैं बड़ा भयभीत हो जाता हूँ।

"यह सन् १९२७-२८ की बात है। मैं उस समय कांग्रेसमें काम करता था। सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता श्रीमहावीर त्यागीजीके बड़े भाई प्रो० धर्मवीर त्यागी उस समय मेरठ कालेजमें गणितके प्रोफेसर थे। प्रोफेसर धर्मवीर त्यागी अकस्मात् बीमार हो गये। उन्हें बराबर हिचकियों-पर-हिचकियाँ आती रहती थीं। मेरठके डाक्टर करौलीका इलाज कराया गया। जब हालत बहुत बिगड़ गयी तो इनकी देख-भाल करनेकी बड़ी आवश्यकता पड़ी। इनके पास आदमियोंकी कमी थी, इसलिये हमलोग हापुड़से इनकी देख-भाल करनेके लिये मेरठ गये। प्रोफेसर साहब उस समय चौधरी श्रीरघुवीरनारायणसिंहजी असौंडेवालोंके मकानपर सिपट बाजारमें, उस मकानकी ऊपरकी दूसरी मंजिलमें थे। हमें इनकी देख-भाल करनेका जो काम सौंपा गया, हम करने लगे। दो-तीन दिनके पश्चात् प्रो० साहबकी हालत पहलेसे और भी ज्यादा बिगड़ गयी। डा० करौली जब प्रोफेसर साहबको देखनेके लिये आये तो उन्होंने हम लोगोंको सावधान करते हुए कहा—'आजकी रात प्रोफेसर साहबके लिये बड़े खतरेकी है। इनकी देख-भाल करनेकी आज बड़ी आवश्यकता है।'

"यह सुनकर अब तो सभीको बड़ी चिन्ता हुई। हमारी सबकी ड्यूटी लगा दी गयी कि आज रातको इनकी बराबर देख-भाल की जाय। हम सबकी ड्यूटी तीन-तीन घंटेकी थी। मेरी ड्यूटी धर्मवीरसिंह त्यागीकी धर्मपत्नीके साथ रात्रिके १ बजेसे ३ बजेतककी लगायी गयी थी।

ड्यूटीके समय मुझे लघुशङ्काकी हाजत हुई। उन दिनों आजकी बिजली तो थी नहीं। रोशनीके लिये मैं अपने हाथमें लालटेन लेकर और बहनजीसे कहकर बाहर आ गया। बाहर आकर लघुशङ्का करनेके लिये ज्यों ही नालीपर बैठा, देखा कि दो भयंकर विशालकाय व्यक्ति खड़े हुए हैं, जो छः फुटसे भी अधिक लंबे हैं। उनका सारा शरीर बड़ा काला है और वे बड़े बलवान् हैं। उनकी लाल-लाल आँखें हैं। उन्हें देखकर मैं डर गया। थर-थर काँपने लगा। जल्दीसे भागकर अंदरके कमरेमें घुस गया। इस समस्त जीवनमें अबसे पहले कभी ऐसे विशालकाय काले भुजङ्ग न तो कभी देखे थे और न उस दिनके बाद कभी फिर आजतक देखे हैं। बादमें वे दोनों वहाँसे उसी समय अदृश्य हो गये।

"सबसे आश्चर्यजनक घटना यह हुई कि ठीक उसी समयसे प्रोफेसर धर्मवीर त्यागीको आराम होना प्रारम्भ हो गया। डा० करौली भी यह देखकर बड़े चकित हुए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोक-पुनर्जन्म और शोधकार्य

भारतकी विभिन्न भाषाओंकी पत्र-पत्रिकाओंमें इधर समय-समयपर 'पुनर्जन्म' सिद्धान्तके पोषक तथा पुनर्जन्म-सम्बन्धी घटनाओंके लेख बहुत छप रहे हैं। इन लेखोंमें जयपुरस्थित राजस्थान विश्वविद्यालयके परामनोवैज्ञानिक (पारा-साइकोलोजी) विभागके संचालक इस विषयके प्रधान तथा प्रसिद्ध अन्वेषक प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जीका मुख्य तथा प्रथम स्थान है। उन्होंने देश-विदेशोंमें घूम-घूमकर स्वयं जाँच की हुई घटनाओंके आधारपर लेख लिखे हैं। इनकी विशद लेखमालाने स्वदेश तथा विदेश—दोनोंमें इस विषयकी ओर पर्याप्त रुचि, जागृति तथा श्रद्धाको जाग्रत् किया है। इसके फलस्वरूप इस विषयकी जिज्ञासा अत्यधिक बढ़ गयी है। श्रीबनर्जी महोदय कहते हैं कि पुनर्जन्मके विषयमें जिज्ञासु पुरुषोंके पत्रोंकी बाढ़ आ गयी है। पत्रोंका इतना विशाल समूह एकत्र हो गया कि प्रो० बनर्जी महोदयके लिये प्रत्येक व्यक्तिको पृथक्-पृथक् उत्तर देना असम्भव हो गया। अतः उन्होंने प्रश्नकर्ताओंके प्रश्नोंमेंसे चुनकर उनके उत्तर नवीन लेखमालाओंके रूपमें देनेका निश्चय किया। तदनुसार उन्होंने विभिन्न शीर्षकोंसे कई लेखमालाएँ लिखीं तथा अब भी वे लिख रहे हैं। हमारे पास भी वे लेखमालाएँ प्रकाशनार्थ आयी हैं। प्रो० श्रीबनर्जी महोदयके शोधकार्यको जनतामें प्रचारित करनेमें हाथ बँटाकर 'कल्याण' अपना कर्तव्य पालन कर रहा है।

यद्यपि परलोक तथा पुनर्जन्मके सिद्धान्तको सिद्ध करना अनावश्यक है; क्योंकि वह निर्भ्रान्त सत्य है और भारतके त्रिकालदर्शी तथा सर्वलोकगमनमें समर्थ ऋषि-मुनियोंके द्वारा अनुभूत तथा प्रत्यक्ष दृष्ट है। तथापि वर्तमान अविश्वासके युगमें परलोक, पुनर्जन्म एवं कर्मफल न माननेके कारण बढ़ते हुए यथेच्छाचार तथा पाप-प्रवाहको रोकनेके लिये उसका सप्रमाण लोगोंके सामने सत्य घटनाओंके रूपमें रक्खा जाना कल्याणकर है। इसलिये इन घटनाओंको प्रकाशित किया जा रहा है। वास्तवमें इस सत्यको विज्ञानके द्वारा समर्थन प्राप्त करनेकी आवश्यकता नहीं है। विज्ञान यदि इस सत्यका अनुभव करनेमें असमर्थ है तो वही अधूरा है। सत्य तो सत्य है ही। अतएव 'कल्याण' इसे परामनोवैज्ञानिक लोगोंकी तरह वैज्ञानिक 'शोध'का विषय नहीं मानता, तथापि इस शोधकार्यसे सत्य सामने आ रहा है, यह बहुत शुभ है। इसीलिये 'कल्याण' इस शोधकार्य तथा शोध करनेमें तत्पर श्रीबनर्जी महोदयके कार्योंकी प्रशंसा करता है और उनके लेखोंको छापनेमें गौरव-बोध करता है। यद्यपि इस अङ्कमें स्थानाभावसे उनके पूरे लेख ज्यों-के-त्यों नहीं छप सके हैं। केवल घटनाओंको ही विभिन्न शीर्षकोंमें छापा गया है। सो भी सब घटनाओंको नहीं। इसके लिये श्रीबनर्जी महोदयसे क्षमा-प्रार्थना है।

उज्ज्वल भगवत्प्रेमकी प्राप्ति

सत्य अहिंसा सेवा संयम सबके साथ साधु-व्यवहार।
सर्वभूतहितमें ही निज हित समझ सदा करता आचार॥
वह पाता न कदापि यातना पुनर्जन्ममें किसी प्रकार।
जाता उच्च देवलोकोंमें पाता दुर्लभ भोग अपार॥
पर जो इन शुभकर्मों द्वारा सदा पूजता श्रीभगवान्।
इह-परलोक-भोग-विषयोंसे मनमें रख विरक्ति मतिमान॥
भगवत्स्मृति, भगवत्सेवा ही होते जिसके लक्ष्य महान्।
भगवत्प्रेम प्राप्त करता वह उज्ज्वल, मिटता तम-अज्ञान॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्जन्मकी विदेशी घटनाएँ

(लेखक—डा० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

ईसा और पुनर्जन्म

आधुनिक ईसाईधर्म पुनर्जन्मके सिद्धान्तको नहीं मानता। फिर भी प्राचीन ईसाइयोंके सम्प्रदाय इसमें आस्था रखते थे। सेंट जानकी बाइबिल (११वाँ अध्याय) में एक ध्यानाकर्षक वचनावली मिलती है, जिसकी पुनर्जन्मको माने बिना संतोषप्रद व्याख्या की ही नहीं जा सकती।

फिर कुछ आधुनिक विद्वानोंने यहाँतक प्रश्न किया है कि 'क्या हजरत ईसा पिछले जन्ममें एलीसियस थे ?' एक विद्वान् लिखते हैं—"मुझे निश्चित रूपसे ज्ञात है कि वह (जीसस) पिछले जन्ममें एलीसियस और जीससके 'गुरु जान दि बैप्टिस्ट एलीजा' थे।" जीससके रूपमें एलीसियसके अवतारकी भविष्यवाणी कई सौ साल पहले की जा चुकी थी; क्योंकि उन्हें परमात्माकी एक दैवी योजनाको पूरा करनेके लिये जन्म लेना था।

यह भविष्यवाणी ईसासे ८ वीं शताब्दी पूर्व एसाइयाहकी पुस्तक (७–१४) में की गयी है—'इसलिये भगवान् स्वयं तुम्हें एक निशानी देंगे। देखो—एक कुमारी गर्भ धारण करेगी और एक बेटेको जन्म देगी और उसका नाम एमैनूएल रखेगी।'

क्राइस्ट (ईसा) के जन्मकी घटनाका उल्लेख करते हुए सेंट मैथ्यूने कहा—'पैगंबरकी भविष्यवाणीमें प्रभुके बारेमें जो कुछ कहा गया था, वह पूरा होनेके लिये अब यह सब कुछ किया गया है। देखो, एक कुमारी गर्भ धारण करेगी और एक बेटेको जन्म देगी और लोग उसे एमैनुएलके नामसे पुकारेंगे, जिसका अर्थ होगा कि 'भगवान् हमारे बीचमें आ गये हैं।' (मैथ्यू १–२२, २३)

क्राइस्टके विवादपूर्ण अवतारके अतिरिक्त भी, हमारे पास ईसाई-परिवारोंके कुछ पुनर्जन्म-सम्बन्धी उदाहरण मौजूद हैं। हालाँकि ईसाई-मतमें इस सिद्धान्तके लिये कोई जगह नहीं है।

नीचे विदेशोंके पुनर्जन्म-सम्बन्धी कुछ प्रसङ्ग दिये जा रहे हैं—

(१)

क्यूबानिवासी महिलाकी घटना

राचाले ग्राण्ड

इस समय न्यूयार्कमें रहनेवाली क्यूबानिवासी २६ वर्षीया राचाले ग्राण्ड (Rachale Grand) को यह अलौकिक अनुभूति हुआ करती थी कि वह अपने पूर्वजन्ममें नर्तकी थी और यूरोपमें रहती थी। उसे अपने पहले जन्मके नामकी स्मृति थी। खोज करनेपर पता चला कि यूरोपमें आज से ६० वर्ष पूर्व स्पेन देशमें उसके विवरणकी एक नर्तकी रहती थी। राचालेकी कहानीका अधिक आश्चर्यजनक अंश वह था, जिसमें उसका कथन है कि 'उसके वर्तमान जन्ममें भी वह जन्मजात नर्तकी ही है और उसने बिना किसीके मार्ग-दर्शन अथवा अभ्यासके हावभावयुक्त नृत्य सीख लिया था।'

(२)

स्विट्जरलैण्डकी घटना

गैब्रियल उराइब

एक आश्चर्यजनक घटना ३२ वर्षके गैब्रियल उराइब (Gabriel Uribe) नामक स्विट्जरलैण्डवासीकी है। वह स्विस (Swiss) रहन-सहनसे बहुत असंतुष्ट और बेचैन था। उसका अधिक लगाव गहरे रंगके लोगोंकी ओर था।

अपने यूरोपके प्रवासमें एक बार वह स्पेन गया। वहाँके अल्पकालीन निवासने उसकी उद्विग्न अन्तरात्माको शान्त कर दिया। उसने अपने-आपको अपने पूर्वजीवनके कोलम्बियानिवासी एक राजनीतिज्ञ यू राफेल (U Raphael) के रूपमें देखा। उसमें अपने पूर्वजन्मकी पत्नी सिक्स्टा तुलिया (Sixta Tulia) तथा बच्चे जुलियन और मारियाकी भी स्मृति उदित हो गयी। १९१४ में कोलम्बियामें एक कुल्हाड़ेसे यू राफेलकी हत्या कर दी गयी थी। हत्यारेने उसके माथेपर एक प्राणघातक प्रहार किया था। अधिक विस्मय तो इस बातका है कि राफेलके सिरपर जहाँ कुल्हाड़ेका प्रहार हुआ था, गैबरियलके माथेका वह भाग पूरी तरहसे उभरा हुआ नहीं दिखायी देता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३)

अमेरिकाकी घटना

रोजनबर्ग

अमरीकी महिला श्रीमती रोजनबर्ग प्रायः एक शब्द 'जैन' बोला करती थी, जिसका अर्थ न तो वह स्वयं जानती थी और न उसके निकट-समीपके लोग ही। साथ ही वह आगसे सदैव बहुत डरा करती थी। उसके जन्मसे ही उसकी अंगुलियोंको देखकर यह प्रतीत होता था कि जैसे वे कभी जल गयी हों। यद्यपि उस जीवनमें जलने आदिकी कोई घटना नहीं हुई थी। एक बार जैनधर्म-सम्बन्धी एक गोष्ठीमें, जहाँ वह उपस्थित थी, एकाएक श्रीमती रोजनबर्गकी पूर्वजन्मकी स्मृति उदित हो उठी, जिसके अनुसार वह भारतके एक जैनमन्दिरमें रहा करती थी और आग लग जानेकी आकस्मिक घटनामें उसकी मृत्यु हो गयी थी।

(४)

इटलीकी घटना

डा० गैस्टोन उगूसियोनी

फ्लोरेन्स (इटली) स्थित मानसिक अस्पतालके अवकाशप्राप्त निर्देशक डाक्टर गैस्टोन उगूसियोनीका (Dr. Gastone Uguccioni), जिन्होंने अब फ्लोरेन्समें एक अस्पताल खोल लिया है—कहना है कि 'इस सम्भावनासे इन्कार नहीं किया जा सकता कि पूर्वजन्ममें वे मद्रासके निकट महाबलीपुरम्में एक मन्दिरके पुजारी थे।' वे कहते हैं कि 'जब वे ७-८ वर्षके बालक थे, उन्हें एक स्वप्न हुआ, जिसमें उन्होंने स्पष्ट देखा कि वे एक मन्दिरके पुजारी हैं।' यह सपना दो या तीन बार देखा। उन्होंने यह भी बतलाया कि 'उन्हें उस समय-तक महाबलीपुरम्के बारेमें कुछ भी नहीं मालूम था, न वहाँके किसी सम्बन्धित व्यक्तिको ही वे जानते थे और न भारतके ही बारेमें उन्हें कुछ परिचय था।'

डाक्टर साहबने बतलाया कि 'धर्म और दर्शनमें उनकी रुचि थी। इस रुचिके कारण उन्होंने भारतीय दर्शनकी पुस्तकोंका अध्ययन किया। उनकी इच्छा भारत-दर्शन करनेकी थी, परंतु कतिपय कारणोंसे वे भारत नहीं जा सके।'

वे कहते हैं—'६ वर्ष पहले मैं भारत आया था और पहली बार मद्रासके निकट महाबलीपुरम्के मन्दिर गया। वस्तुतः वहाँ बहुत मन्दिर थे, जो समुद्रमें बह गये होंगे।'

डाक्टर साहबने लिखा है कि 'मन्दिरको देखते ही उन्होंने उसे पहचान लिया।' उनके कथनानुसार 'सबसे अद्भुत बात तो यह है कि भारतीय दर्शनमें मेरी अत्यधिक सहज स्वाभाविक रुचि है और वह निरन्तर बढ़ती जा रही है।'

वे आगे कहते हैं—'जब मैं मन्दिरमें था, तो मुझे एक गहरे भावकी अनुभूति हुई। यह अनुभूति बहुत तीव्र तथा स्वतः ही उत्पन्न हुई थी।'

यह कोई सपना नहीं था, बल्कि भारतीय दर्शनमें बढ़ती हुई रुचि भी थी, जिसके कारण उन्हें सोचना पड़ा कि क्या वे पिछले जीवनमें महाबलीपुरम् मन्दिरके पुजारी थे। उन्होंने भारतमें अजन्ताकी गुफाएँ तथा अन्य बहुतेरे मन्दिर देखे हैं, लेकिन इस प्रकारकी अनुभूति उनमें उन मन्दिरों आदिको देखते समय नहीं उत्पन्न हुई।

(५)

जापानकी घटना

कटसूगोरो

जापान-जैसे बौद्धधर्मको माननेवाले देशोंमें पुनर्जन्ममें विश्वास किया जाता है। वहाँ पुनर्जन्मकी घटनाएँ सुनायी भी पड़ती हैं।

१० अक्टूबर सन् १८१५ को जापानके नकावो मूरा नामक गाँवके गेन्जो किसानके एक पुत्र हुआ। उसका नाम कटसूगोरो था। जब वह सात सालका हुआ तो उसने बताया कि 'पूर्वजन्ममें उसका नाम टोजो था और उसके पिताका नाम क्यूबी (Kyubei), बहनका नाम फूसा (Fusa) तथा माँका नाम शिड्जू था। जब उसके पिता क्यूबीकी मृत्यु हो गयी, तो उसकी माँने हौशिरो (Haushiro) नामक व्यक्तिसे विवाह कर लिया। उसका पुराना घर होडोकूबोमें था।' वह कहा करता था कि '६ वर्षकी उम्रमें उसकी मृत्यु चेचकसे हो गयी थी।' उसने कई बार कहा कि वह अपने पुराने पिताकी कब्र देखने होडोकूबो जाना चाहता है। उसकी दादी (टूसूया) उसे होडोकूबो ले गयी। जब वह अपनी दादीके साथ होडोकूबो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा रहा था तो वह सबसे आगे-आगे चल रहा था। एक घरकी ओर संकेत करते हुए वह चिल्लाया—'यही मेरा घर है।' पूछताछ करनेपर पता चला कि 'वह घर हौशिरो और उसकी पत्नी शिड्जूका था। इन दोनोंके टोजो नामका एक पुत्र था, जो तेरह वर्ष पूर्व चेचकसे मर गया था।' कटसूगोरोने यह भी बताया कि उस घरके आसपास बहुत परिवर्तन हो गये हैं। उसने बताया कि 'पहले सड़कके उस पार तम्बाकूकी दूकान नहीं थी।' यह बात भी बिल्कुल सच निकली। इससे यह सिद्ध हो गया कि कटसूगोरो ही पिछले जीवनमें टोजो था।

(६)

परिचित मार्गकी पुनर्यात्रा

एक फौजी सिपाही

"……मैं अंग्रेजी फौजका एक सिपाही रहा हूँ। फौजमें भर्ती होनेके बाद ही हमारे रेजीमेंटको आदेश मिला कि वह पूर्वीय देशोंकी ओर कूच करे। मैं कभी विदेश नहीं गया था। हमलोग जब अपने निर्दिष्ट स्थानपर पहुँचे तो हमलोगोंको ऐसे स्थानपर जानेका आदेश मिला, जहाँ अंग्रेज फौजोंने कभी कदम भी नहीं रक्खा था। हमारे अधिकारी भी बहुत परेशानीमें थे; क्योंकि किसी नक्शेके अभावमें वे यह समझ ही नहीं पा रहे थे कि किस रास्तेसे आगे बढ़ें। और भी सब इस देशसे सर्वथा अपरिचित थे। न जाने मेरे हृदयमें कैसी प्रेरणा उठी। मैं सीधा अपने अफसरोंके पास गया, जो परामर्श कर रहे थे और बोला—'क्षमा कीजियेगा, यदि आप आज्ञा दें तो मैं आपको इस अपरिचित प्रदेशके मार्गोंके बारेमें बता सकता हूँ। मैं यहाँकी एक-एक इंच भूमिके बारेमें जानता हूँ।'

"अधिकारीगण मेरी ओर आश्चर्यसे देखने लगे। बोले—'क्या मतलब ?' मैंने उत्तर दिया—'मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसका कारण मैं नहीं जानता। लेकिन इतना निश्चित है कि मैं इस स्थानसे भली प्रकार परिचित हूँ।'

"मुझे स्वयं आश्चर्य है कि क्यों हर वस्तु मुझे जानी-पहचानी हुई लग रही थी। एक पहाड़ीकी ओर संकेत करते हुए अधिकारियोंसे यह भी कहा कि 'यदि वे लोग सीधे वहाँतक चले जायँ तो चोटीपर उन्हें एक चौकोर मकान मिलेगा, जिसकी छत वजनी पत्थरकी है।' मेरी बातकी सत्यता जाननेके लिये वे मेरे बताये रास्तेपर गये और उन्हें निर्दिष्ट स्थानपर वैसा ही मकान मिला। इसका आश्चर्य उन्हें भी था और मुझे भी। फिर उन्होंने मुझे मार्ग-निर्देशक मान लिया। मैंने हमेशा उस प्रदेशके सारे मार्गोंके बारेमें सही-सही बताया। किंतु इस बातसे मैं स्वयं अपनेसे भय खाने लगा।"

यह सिपाही कभी उस जगह नहीं गया था, जहाँके मार्गोंके बारेमें उसने फौजको सही-सही बताया था। उसके साथी और फौजी अधिकारियोंका मत है कि 'यह सिपाही अपने गत-जीवनमें उस प्रदेशमें रहा होगा।'

इस प्रकारकी घटनाओंका अध्ययन करते समय शोधकर्ताको चाहिये कि अधिक-से-अधिक साक्षियोंसे प्रमाण एकत्रित करे। उसे यह भी चाहिये कि वह पुनः जन्म लेनेका दावा करनेवाले व्यक्ति तथा उसके वर्तमान और गत-जन्मके परिवारोंके लोगोंके व्यवहारोंका भी सतर्कतासे अध्ययन करे।

(७)

फ्रांसकी घटना

कुमारी थिरीज गे

तीन महीनेकी बच्ची थिरीज गे (Therese Gay) ने एक दिन अपनी माँ (मदाम हेनरियेट गे) तथा पिताको चौंका दिया। बात यह हुई कि उसने अपने जीवनमें जो पहला शब्द मुँहसे निकाला था, वह था—'अहरू-पाह'। (Ahroo-pah) माता-पिता हँसने लगे; क्योंकि उन्हें इस शब्दका अर्थ समझमें ही नहीं आया। बादमें उन्हें पता चला कि यह संस्कृतका शब्द 'अरूप' है, जिसका अर्थ है—रूपरहित।

तीन सालकी आयुमें इस लड़कीने अंग्रेजी शब्द बोलना शुरू कर दिया, यद्यपि उसकी माँ बार-बार फ्रेंच शब्दोंके प्रयोगपर बल देती थी। कुछ दिनों बाद उसने महात्मा गाँधीके बारेमें बतलाना शुरू किया। वह उन्हें 'बापू' कहती थी। उसने बतलाया कि दक्षिणी अफ्रीकाके बोअर-युद्धके कालका गाँधीजीका जीवन उसे मालूम है और जब वे दक्षिण अफ्रीकामें थे, तब वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके साथ रही थी।' माँ-बाप स्वयं गाँधीजीके बारेमें अधिक नहीं जानते थे, इसलिये वे बहुत परेशान हुए। दूसरी ओर लड़की गाँधीजीके जीवनकी बहुत-सी बातें विस्तारसे बतला रही थी।

(८)

थाईलैंडकी एक लड़कीकी घटना

थाईलैंडमें स्यामकी एक लड़कीको अपने पूर्व-जीवनके चीनी माँ-बापकी याद आती थी। एक दिन उसने माँका नाम बताकर कहा कि 'वह उसके पास जाना चाहती है।' यद्यपि पास-पड़ोसमें चीनी लोग नहीं रहते थे, फिर भी उसे चीनी शब्दोंका ज्ञान था और उसे चीनियोंकी तरह अपनी अंगुलियोंसे खाना पसंद था। वह कभी-कभी कहती थी कि 'उसे अपनी वर्तमान माँकी अपेक्षा चीनी माँसे अधिक प्यार है।' पूर्वजन्मकी उसकी माँने जब यह सुना तो वह उस लड़कीसे मिलनेके लिये उसके गाँवमें आयी। मुख्य सड़कपर वह कुछ हिचकते हुए खड़ी हो गयी; क्योंकि उसे उस लड़कीके मकानकी स्थिति नहीं मालूम थी। उधर लड़की स्कूल जा रही थी। लड़कीने उसे देखते ही पहचान लिया। वह 'माँ-माँ' चिल्लाती हुई दौड़कर उससे लिपट गयी और उसे अपने घर लिवा ले गयी।

बादमें उस लड़कीको उस जगह ले जाया गया, जहाँ वह पिछले जन्ममें रहा करती थी। उस जगहको उसने अपने वर्तमान जीवनमें कभी नहीं देखा था। उसके वर्तमान माता-पिताने भी उस जगहको नहीं देखा था। फिर भी वह अपने 'पुराने' घरका रास्ता पहचानती हुई वहाँ पहुँच गयी। वहाँ उसकी परीक्षा ली गयी। उसका चीनी पिता लगभग ५० आदमियों (जिसमें कुछ आदमी चीनके तथा कुछ स्यामके थे) के साथ एक हालमें खड़ा हो गया। उसकी पीठ दरवाजेकी ओर थी। जैसे ही लड़की हालमें घुसी, उसने अपने पिताको पहचान लिया और उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुई। पहले तो चीनी पिताने उसे संदेहकी दृष्टिसे देखा, बादमें उसे विश्वास हो गया कि वह उसकी मृत लड़की ही है, जिसने दुबारा जन्म लिया है।

पुष्टि

लड़कीको बहुत-सी चीजें दिखायी गयीं। उनमेंसे उसने अपनी चीजें पहचान लीं। उसने अपनी उन चीजोंको भी देखना चाहा, जो वहाँ नहीं थीं। प्रारम्भसे ही वह इस प्रकारका व्यवहार कर रही थी, मानो इस स्थानसे वह परिचित हो। उसने स्वयं ही बिना किसीकी सहायताके अपना घर ढूँढ़ लिया था।

पुनर्जन्म लेनेवाले दूसरे व्यक्तियोंकी तरह इस लड़कीको भी मृत्यु और पुनर्जन्मकी अवस्थाओंके बीचकी स्थितिकी स्मृति थी। 'उसने बताया कि 'मृत्युके बाद ही वह दूसरी चीनी लड़की (जो उसकी मित्र थी) से मिली और कुछ देरतक साथ-साथ घूमती रही। पूछ-ताछ करनेपर पता चला कि 'वह दूसरी लड़की भी उसी दिन मरी थी, जिस दिन यह लड़की मरी थी। दोनोंकी मृत्यु छूतकी एक बीमारीके फैलनेसे हुई थी।' इस बातसे उस लड़कीकी बतायी हुई सारी घटनाओंकी भली प्रकार पुष्टि हो गयी।

(९)

थाईलैंडमें पुनर्जन्मकी घटना

सार्जेन्ट थियन

यह घटना सुरेन्द्र नामक स्थानकी शाही थाई सेनाके एक सार्जेन्टसे सम्बन्धित है। जन्मसे ही सार्जेन्ट थियन (Sgt. Thien) के बायें कानके ऊपरसे उसकी खोपड़ीतक ऊपर उठा हुआ एक बालदार तिरछी रेखा-जैसा चिह्न है। उसका आग्रह है कि उसे अपने पूर्वजन्मकी मृत्युतक तथा उसके बादतककी घटनाओंकी स्मृति है। पशु-चोरी करनेके अपराधमें गाँववालोंने उसके सिरमें उस स्थानपर छुरा भोंका था, जहाँ अब वह चिह्न बना हुआ है। मृत्युके पश्चात् उसे अपने ही शरीरको देखनेकी भी स्मृति है। बचपनमें ही वह उस घटनाकी प्रत्येक बात बता सकता था।

उसके पूर्वजन्ममें उसकी मृत्युके समय उसके दाहिने पैरके अँगूठेमें एक खुला हुआ घाव था तथा उसके हाथों और पैरोंमें गोदनेके चिह्न थे। इस जन्ममें भी उसके पैरके उसी अँगूठेमें जन्मजात विकृति है। उसके जन्मके समय गोदनेके स्थानपर उसीके अनुरूप चिह्न दिखायी देते थे। उसके विवरणकी पुष्टि ग्रामके मुखियाने की है। वह उसे पूर्वजन्ममें जानता था। इसी प्रकार उसके सगे-सम्बन्धियों तथा सेनाके उच्च अधिकारियोंने भी, जो तथ्योंसे भलीभाँति परिचित हैं, उसके कथनकी पुष्टि की है। सेनामें उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जमींदार' (Landlord) नामकरण हो गया है; क्योंकि उसने सेनाके पड़ावके निकटकी कुछ भूमिपर अपना अधिकार जताया है, जो पूर्वजीवनमें उसकी सम्पत्ति थी। यह उन सैकड़ों व्यक्तियोंमेंसे एक व्यक्तिकी घटना है, जो अपने पूर्वजन्मकी स्मृतिका दावा करते हैं।

(१०)

आस्ट्रिया देशका प्रमाण
एलेक्जैण्ड्रिना सैमोना

डा० कारमेलो सैमोना और उनकी पत्नी एडेलाके एक पुत्री थी। उसका नाम था—एलेक्जैण्ड्रिना सैमोना। पाँच वर्षकी उम्रमें १५ मार्च सन् १९१० को पैलेरमो सिटी, सिसिलीमें उसकी मृत्यु हो गयी। मृत्युके तीन दिन बाद माँने एक स्वप्न देखा, कि उसकी मृत पुत्रीका पुनर्जन्म होगा।' माँको इस स्वप्नपर विश्वास नहीं हुआ; क्योंकि एक शल्यक्रियाके परिणामस्वरूप उसे अब यह आशा नहीं रह गयी थी कि वह अब और संतानोंको भी जन्म देगी। परंतु २२ नवम्बर सन् १९१० को माँने जुड़वा बालिकाओंको जन्म दिया। एक बालिकाकी आकृति मृत बालिकाकी आकृतिसे बिल्कुल मिलती-जुलती थी; इसलिये उसका भी नाम एलेक्जैण्ड्रिना रक्खा गया। सुविधाके लिये हम यह कह लें कि मृत पुत्रीका नाम एलेक्जैण्ड्रिना प्रथम तथा नवजात पुत्रीका नाम एलेक्जैण्ड्रिना द्वितीय था। दोनोंमें कुछ समानताएँ बहुत महत्त्वपूर्ण थीं। एक समानता यह थी कि दोनों ही शान्तिप्रिय, स्वच्छ और अकेलेमें रहकर स्वयंसे ही खेलना पसंद करती थीं। एलेक्जैण्ड्रिना द्वितीय और प्रथममें कुछ शारीरिक समानताएँ भी थीं। दोनोंके चेहरे तो मिलते ही थे, दोनोंकी बायीं आँखोंमें अधिरक्तताका लक्षण था और दाहिने कानोंसे स्राव हुआ करता था। दोनों ही बायें हाथसे सारा काम करती थीं और दोनोंको ही छालटीनके कपड़ेको तह करके सँभालकर रखनेमें बहुत आनन्द मिलता था। इसी प्रकार दोनों ही बालिकाओंको पनीरसे चिढ़ थी तथा अपने हाथोंको साफ रखनेका शौक था।

जब एलेक्जैण्ड्रिना द्वितीय दस वर्षकी हुई तो उसे इस बातका ज्ञान हुआ कि वह मानरियल (Monreale) नामक स्थानपर कभी गयी थी। उस स्थानपर एलेक्जैण्ड्रिना द्वितीय पहले कभी नहीं गयी थी। फिर भी, उसने कहा कि 'वह सींगवाली एक महिलाके साथ मानरियल गयी थी और वहाँ उसे लाल कपड़े पहने हुए पुजारी मिले थे।' माँको स्मरण हो आया कि 'एलेक्जैण्ड्रिना प्रथमकी मृत्युके कुछ मास पूर्व वह उसे (एलेक्जैण्ड्रिना प्रथमको) लेकर मानरियल गयी थी। साथमें एक महिला भी थी जिसके माथेपर भद्दे सींग थे। वहाँ उनकी वे भेंट यूनानी पुजारियोंसे हुई थी, जिनके नीले कपड़ोंको लाल रंगकी वस्तुओंसे अलंकृत किया गया था।'

शारीरिक समानता, आदतोंकी अभिन्नता तथा एलेक्जैण्ड्रिना प्रथमके जीवन-कालकी घटनाओंकी स्मृतिके कारणोंसे डा० सैमोना तथा उनके मित्रोंको विश्वास हो गया कि एलेक्जैण्ड्रिना प्रथमने ही द्वितीयके रूपमें पुनः जन्म लिया है।

(११)

ब्राजीलके पौलो लोरेन्ज (Paulo Loreng) का प्रमाण

'माँ, अब तुम मुझे अपने पुत्रके रूपमें स्वीकार करो। मैं अब तुम्हारा पुत्र बनकर जन्म लूँगी।' यह संदेश दिया था श्रीमती इडा लारेन्जको उनकी मृत पुत्री इमिलिया लारेन्जने, जिसकी मृत्यु विष-सेवनके परिणामस्वरूप हो गयी थी। यह विचित्र संदेश माँको प्रेततत्त्वसे सम्बन्ध रखनेवाली एक सभामें मिला था।

"इमिलिया लारेन्जका जन्म ४ फरवरी सन् १९०२ को हुआ था। उसके पिताका नाम था—एफ० वी० लारेन्ज। जबतक वह जीवित रही, वह हमेशा यह कहकर अपनेको कोसती रही कि उसने लड़की होकर क्यों जन्म लिया। उसने अपने भाई-बहनोंसे कई बार यह कहा कि 'यदि वास्तवमें पुनर्जन्म होता है तो वह पुत्र होकर जन्म लेना पसंद करेगी।' उसने विवाह करनेसे इन्कार कर दिया और कहा कि 'वह अविवाहित ही रहकर मरना चाहती है।' अपनी हीन तथा निराशापूर्ण भावनाओंके कारण उसने कई बार आत्महत्या करनेका प्रयत्न किया। अन्तमें १२ अक्टूबर सन् १९२१ को वह विष खाकर मर गयी।

"इमिलियाकी मृत्युके पश्चात् उसकी माँ प्रेततत्त्वसे सम्बन्ध रखनेवाली बहुत-सी सभाओंमें गयी। एक सभामें उसे एक आत्मा (जो अपनेको इमिलियाकी आत्मा कहता था) से एक संदेश मिला कि 'आत्महत्या करनेके कारण उसे बहुत पश्चात्ताप है और अब वह परिवारमें एक पुत्रके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपमें लौटना चाहती है।' माँने जब यह बात अपने पतिसे कही तो उन्होंने इसपर विश्वास नहीं किया। इसका एक कारण यह भी था कि उस समयतक माँ बारह संतानोंको जन्म दे चुकी थी और अब यह आशा थी कि वह और संतानोंको जन्म नहीं देगी। परंतु उनकी यह आशा असत्य सिद्ध हुई। ३ फरवरी सन् १९२३ को माँने एक पुत्रको जन्म दिया, जिसका नाम उन्होंने इमिलिया ही रक्खा, यद्यपि लोग उसे पौलो (Paulo) के नामसे पुकारते थे।

"पौलो और मृत इमिलियाकी रुचियों और गुणोंमें बहुत समानताएँ थीं। पौलो बहुत भली प्रकार कपड़े सी लेता था। चार-पाँच वर्षोंतक पौलोने लड़कोंके कपड़े पहननेके प्रति बहुत अरुचि दिखायी। कभी-कभी वह ऐसी बातें करता था जिनसे पता चलता था कि उसे मृत इमिलियाके जीवनसे परिचय है। जब वह पाँच वर्षका था तो इमिलियाकी पुरानी स्कर्ट (एक प्रकारकी पोशाक) को काट-छाँटकर उसके लिये एक दूसरी प्रकारकी पोशाक बनायी गयी। पौलोको यह बहुत अच्छा लगा और वह उसे पहननेको तैयार हो गया। इसके बाद उसने लड़कोंके कपड़े पहनने शुरू कर दिये। धीरे-धीरे उसकी यौन-सम्बन्धी रुचियाँ पुरुषत्वकी ओर लौटने लगीं; परंतु १३-१४ वर्षकी आयुतक उसमें स्त्रीत्वके कुछ-कुछ लक्षण दृष्टिगोचर हो जाते थे।

(१२)

इंगलैण्डकी एक लड़कीकी घटना

"जब मैं ११ वर्षकी थी, उस समय अपने भाईके साथ हमारे नार्थेण्ट्स (Northants) स्थित घरसे अपने सम्बन्धियोंके साथ बड़े दिनोंकी छुट्टियाँ बितानेके लिये हमें वेमाउथ (Weymouth) ले जाया गया। यिओविल (Yeovil) स्टेशन छोड़नेपर हमारी रेलगाड़ी थोड़ी देरके लिये रुकी और वह इलाका तथा विशेषतया मेरे सामनेकी पहाड़ीसे सटा हुआ खेत चिरपरिचित लगनेके कारण मुझे आश्चर्य होने लगा।

मैंने अपने भाईसे कहा—'जब मैं बहुत छोटी लड़की थी, तब मैं इस स्थानके निकटके एक मकानमें रहती थी। मुझे स्मरण है कि उस खेतकी एक पहाड़ीसे दौड़कर उतरते समय मेरा हाथ पकड़कर दो महिलाओंके साथ भागते समय हम सब गिर पड़े थे और मेरी टाँगमें बुरी तरहसे चोट लगी थी।'

"इसी समय मेरी माँ बीचमें टपक पड़ी और जान-बूझकर झूठ बोलनेके लिये मुझे डाँटने लगी। कहने लगी कि 'मैं पहले कभी भी उस रास्तेसे नहीं गुजरी थी और निश्चय ही वहाँ कभी भी नहीं रही।' मेरा आग्रह था कि मैं वहाँ थी और जब मैं पहाड़ीसे भागी थी, उस समय मैंने मेरे पैरके कड़ोंतक सफेद फिराक पहन रक्खा था, जिसपर छोटे-छोटे हरे पत्ते कढ़े हुए थे। जिन महिलाओंने मेरा हाथ पकड़ा था, उन्होंने नीले तथा सफेद चौकड़ियोंवाले फराक पहन रक्खे थे।

"मैंने कहा 'तब मेरा नाम मार्गारेट (Margaret) था।' यह सब मेरी माँके लिये असह्य था। उसने मुझे वेमाउथ पहुँचनेतक पुनः कुछ भी बोलनेकी मनाही कर दी।

"बादमें मुझे बताया गया कि मेरे उस पहाड़ीसे उतरने-की कोई सम्भावना नहीं थी, परंतु मेरी स्मृति इतनी अधिक स्पष्ट थी, जैसी कि बचपनकी कोई वास्तविक स्मृति हुआ करती है।

"इस घटनाका उत्तर भाग १७ वर्ष बाद घटित हुआ।

"मैं अपने तत्कालीन मालिकके साथ मोटरमें डोरसेट (Dorset) क्षेत्रमेंसे गुजर रही थी। टायरको बदलवाते समय हम दोनों तालाबके निकटकी एक झोंपड़ीमें गये, जहाँ एक युवा महिलाने हमें चाय पिलायी। जब मैं चायकी प्रतीक्षा कर रही थी, उसी समय उस कमरेमें मैंने एक काँचपर एक चित्र देखा और यह देखकर मेरे आश्चर्यकी सीमा न रही कि यह मेरा ही उस समयका चित्र था, जब मैं पहाड़ीसे दौड़कर उतर रही थी, जब मैं साफ तथा गम्भीर चेहरेवाली पाँच वर्षकी बच्ची थी और मैंने हरे पत्तोंसे कढ़ी हुई एक लंबी सफेद पोशाक पहन रक्खी थी।

"मैंने आश्चर्यसे कहा 'ओह, यह तो मैं हूँ।'—यह सुनकर मेरा मालिक तथा वह महिला हँसने लगे। उस महिलाने कहा—'सुनो! इस बच्चीका कई वर्ष पूर्व देहान्त हो चुका है परंतु मेरा अनुमान है कि जब तुम छोटी रही होगी तो हूबहू उसीके समान रही होगी।' मेरा मालिक भी उसकी इस बातसे सहमत था।

"मेरी रुचि देखकर उस बच्चीकी कहानी बतलानेके लिये उस महिलाने अपनी माँको पुकारा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"उसकी माँने कहा कि इस बच्चीका नाम मार्गारेट केम्पथोर्न (Margaret Kempthorn) था, जो एक किसानकी इकलौती बच्ची थी। कहानी कहनेवालीकी माँ उन दिनों उस फार्मपर दूध बेचनेके कामपर नियुक्त एक नौकरानी थी।

"जब मार्गारेट लगभग ५ वर्षकी बच्ची थी, तभी एक बार उस नौकरानी तथा अन्य एक महिलाके साथ पहाड़ीसे भागकर नीचे उतरते समय एक महिलाका पैर एक खरगोशके गड्ढेमें जा पड़ा था। सब गिर पड़नेसे वह लड़की सबके नीचे आ गयी। उसकी टाँग बुरी तरह टूट गयी थी, जो फिर ठीक न हो सकी और वह दो महीनेके बाद मर गयी। उस वृद्धा महिलाने रोगग्रस्त तीक्ष्णताके साथ मुझे बतलाया—'मेरी माँ कहा करती थी कि इतनी दुबली लड़की होकर भी उसने जीवित रहनेके लिये बहुत संघर्ष किया और यह अन्तिम शब्द कहती हुई मरी कि 'मैं मरूँगी नहीं।'

"उसे यह पता नहीं था कि वह फार्म कहाँ था, परंतु मण्डी (Market) के स्थानका नाम येओविल (Yeovil) था। उस घटनाका समय पूछनेपर उसने वह चित्र नीचे उतारा। उसकी पिछली तरफ एक कागजका टुकड़ा चिपका हुआ था, जिसपर लिखा था—मार्गारेट केम्पथोर्न, जन्म २५ जनवरी, १८३०, मृत्यु ११ अक्तूबर, १८३५। और मार्गारेटकी मृत्युके दिन ही मेरे पिताकी माँका जन्म नार्थेण्ट्समें हुआ जो यहाँसे मीलों दूर है। मेरा स्वयंका जन्म दिन है २५ जनवरी।"

(१३)

कनाडाकी एक महिला

अब कनाडाकी एक महिलाकी पुनर्जन्मसम्बन्धी असाधारण घटनाका अवलोकन कीजिये—

"मैं तथा मेरा पति कनाडाके आन्टारियो (Ontario) स्थानसे मोटरमें जा रहे थे। जैसे-जैसे हम 'स्मिथस् फाल्स्' (Smith's Falls) के निकट पहुँचने लगे, मैंने उस नगरका वर्णन करना आरम्भ कर दिया।

"मेरा पति यह जानता था कि इसके पहले मैं कभी कनाडा नहीं गयी थी। इसलिये तब तो वह और भी आश्चर्यचकित हो गया, जब मैंने मुख्य बाजारके एक भागका वर्णन किया—'इसके एक कोनेमें डेसजारडिंग्स (Desjardings) की किरानेकी दूकान है और दूसरे नुक्कड़पर 'रायल बैंक आफ कनाडा'की एक शाखा।' जब हमारी गाड़ी बाजार पहुँची तो हमारे आश्चर्यकी सीमा न रही कि उसके एक कोनेमें बैंक था और दूसरेमें किरानेकी दूकान। मेरे पतिने गाड़ी रोकी और किरानेकी दूकानमें प्रवेश किया। पूछनेपर ज्ञात हुआ कि आजसे तीस वर्ष पहले इस दूकानके आखिरी मालिकका नाम डेसजारडिंग्स था।"

(१४)

इटलीकी एक लड़की

"जब मैं छोटी लड़की थी तो एक बार सर्वप्रथम मैंने इटलीकी यात्रा की। जैसे ही रेलगाड़ी चली, मैं उत्तेजित और बेचैन हो उठी। डिब्बेके भीतर और बाहर घूमने तथा अधिकांश समय गलियारेमें रहनेके कारण मेरे परिवारवाले खीझ गये। मैं चुप हो गयी और खिड़कीके किनारे एक छोटेसे चौड़े स्टूलपर बैठ गयी। मैं यह अनुभव करती थी कि हमारी रेलगाड़ी धीरे-धीरे ऊँचाई-पर चढ़ रही थी। मैं सहसा बोल उठी—'दाहिनी तरफकी अगली नुक्कड़की पहाड़ीपर एक गिरजाघर दिखायी देगा और वहाँ वही एकमात्र भवन है। अकेला होनेसे वह वातावरणपर हावी है। आस-पास कोई गाँव नहीं है।' और शीघ्र ही वह सामने आ गया।

"मैं पुनः कहने लगी—'फिर आगे बायीं ओर एक नाला दिखायी देगा, जिसके किनारे ऊँचे और काले रंगके पेड़ उगे हुए हैं। उसके आगे चाँदी-रंगके पत्तोंवाले पेड़ोंका झुंड पहाड़ीके किनारे दिखायी देगा।' परंतु चाँदी-से पत्तोंवाला क्यों? मैं आश्चर्य करने लगी; क्योंकि वृक्षोंके सम्बन्धमें मेरा ज्ञान बहुत अल्प था। मैंने इसके पूर्व जैतूनके बगीचे नहीं देखे थे। जैसे ही वे दिखायी देने लगे, मुझे बतलाया गया कि वे कैसे थे।

"मुझे पुनः कभी भी ऐसा अनुभव नहीं हुआ जैसा इस समय हुआ था कि मैं एक ऐसे देशमें प्रवास कर रही हूँ, जिसे मैं अच्छी प्रकारसे जानती हूँ, यद्यपि मेरी जानकारीमें मैंने इसके पूर्व इसे कभी नहीं देखा था।

"उसके बाद अपने कुछ फ्रेंच मित्रोंके साथ मैं पेरिस देखने गयी थी। हमलोग एक भवनके किवाड़ खुलनेकी प्रतीक्षामें थे। कुछ कारीगरोंने हमारा स्वागत किया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनमेंसे एक मेरी ओर बढ़कर इटालियन भाषामें बातचीत करने लगा। मैंने फ्रेंच भाषामें उसे उत्तर दिया कि 'मैं इटालियन भाषा नहीं जानती।'

'परंतु तुम तो इटालियन हो, क्या तुम इटालियन नहीं हो? तुम्हें इटालियन ही होना चाहिये और मुझे विश्वास है कि तुम इटालियन ही हो। मैं भी उसी देशका हूँ।' उसने टूटी-फूटी फ्रेंच भाषामें प्रतिवाद करते हुए कहा।

"तभी मैं अपनी उस यात्राका विचार करने लगी और मुझे इटली-सम्बन्धी प्रत्यक्ष जानकारीका भी ध्यान हो आया और अब इस कारीगरका आग्रह है कि मैं इटलीकी रहनेवाली हूँ।

"क्या मैं किसान महिलाके रूपमें उस छोटेसे पहाड़ी गिरजाघरमें गयी-आयी हूँ, अथवा उन देवदारके-से वृक्षों और जैतूनके बगीचेमें भटकनेके लिये छोड़ दी गयी कोई गैर-ईसाई हूँ? मैं समझ नहीं पा रही थी।"

(१५)

आस्ट्रेलियाकी पुनर्जन्मसम्बन्धी घटना

श्रीअर्नेस्ट ब्रिग्ग—

अभी थोड़े दिन पूर्व आस्ट्रेलियासे एक घटना प्राप्त हुई है। इसके अनुसार श्रीअर्नेस्ट ब्रिग्ग (Earnest Brigg) को मिस्रदेशमें अपने पूर्वजन्मकी स्पष्ट स्मृति है।

(१६)

फ्रा राजसुथाजार्न

पुनर्जन्मकी सभी घटनाओंको दूरदर्शन अथवा दूरानुभूति कहकर उनका विवेचन नहीं किया जा सकता। इन विकल्पोंका मूल्याङ्कन करनेके बाद अब मैं आपके सामने थाईलैंडकी एक घटनाका विवरण प्रस्तुत करता हूँ—

एक दुबले-पतले योगी-जैसे दिखायी देनेवाले बौद्ध भिक्षु थाईलैंडके नाखोन सावन गाँवमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक साधारणसे ग्रामीण घरके बरामदेके कोनेकी ओर संकेत करते हुए शान्त तथा सहज स्वाभाविक ढंगसे कहना आरम्भ किया कि 'किस प्रकार ४९ वर्ष पूर्व यहींपर अपनी मृत्यु हो जानेपर उन्होंने शोक मनानेवाले लोगोंको अपनी चटाईके चारों तरफ देखा था। उसपर उनका शव रक्खा हुआ था। उन्होंने स्वयं अपनी दाहक्रियाको देखा था और अपनी छोटी बहनके लड़केके रूपमें उनका पुनर्जन्म हुआ था। उन भिक्षुका नाम फ्रा राजसुथाजार्न (Phra Rajasuthajarn) है और वे थाईलैंडके बौद्ध संघके अत्यन्त सम्मानित सदस्य हैं। वहाँ उनकी पुनर्जन्मकी कथा सबको भलीभाँति ज्ञात है। उनके पूर्वजन्मके सम्बन्धियोंद्वारा इन तथ्योंकी पूरी तरहसे पुष्टि कर दी गयी है। जैसे ही उन्होंने बोलना आरम्भ किया था, तभी उन्होंने अपनी इस समयकी माँको बहन कहकर सम्बोधन किया था और अपने सभी सम्बन्धियोंके नाम बताकर उन्हें पहचान लिया था। उन्होंने गत जीवनकी घटनाओंकी बहुत निकटस्थ जानकारी प्रदर्शित की है, जिसे सम्भवतः वे इस जीवनमें नहीं जान सकते थे।

(१७)

रूबीका मामला

यदि पुनर्जन्मका सिद्धान्त मान लिया जाय तो यह कहना बड़ा अजीब लगता है कि व्यक्तिका अपनापन समाप्त हो जाता है। यदि इसका तर्कसंगत परिणाम निकाला जाय तो मतलब यही होगा कि एक दूसरे आदमीके कामोंकी वजहसे एक नये व्यक्तिको मुसीबत भुगतनी पड़ती है। यह बात युक्तिकी कसौटीपर खरी नहीं उतरती।

सन् १९६३में लंकाके बाटापोला गाँवमें रूबी कुसुमा पैदा हुई। उसका बाप सीमन सिल्वा एक डाकिया है। रूबी जब बोलने लगी तो वह प्रायः अपने गत जीवनकी बातें करती।

वह कहती—'वह एक लड़का थी। उसका पुराना घर वहाँसे चार मील दूर अलूथवाला गाँवमें था। रूबीका दावा था कि उसका पुराना घर इस घरसे बहुत बड़ा था और उसके पास बहुतसे पाजामे थे।

कुछ दूसरी बातें

उसकी वह माँ इस माँसे बहुत गोरी थी। वह जाकट और कपड़े पहनती थी। घरमें खानेको बहुत था। नारियलकी भरमार थी। इस माँ सोमी मोनाके पास तो भोजनमें डालनेके लिये भी अक्सर नारियल नहीं होते।

बच्चीने अपने माँ-बापको यह भी बताया कि वह स्कूलमें पढ़ती थी। एक बार उसकी प्यारी चाची उसे अलूथवाला नंदराम मन्दिर ले गयी, जहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरामदेमें किताबें रखनेका एक बक्सा रक्खा हुआ था। उसे यह भी अच्छी तरह याद है कि उसकी चाचीने उसे वह पेंसिल उठा लेनेको कहा, जो बक्सेमेंसे गिर गयी थी।

कुएँमें गिरना

उसे यह भी याद था कि उसने मन्दिरके अहातेमें बेली फल भी खाया था। मन्दिरके आँगनके बीचोंबीच बेलीका एक पेड़ था, जिससे वह फल गिरा था। अपने पहले बापके बारेमें उसका कहना था कि वह मोटर-बस चलाता था और जब भी घर आता था, टमाटर और शक्कर लाता था।

रूबी अपनी पहली मौतका जिक्र जब भी करती थी तो उसके माता-पिता बड़ी उलझनमें पड़ जाते थे। उसका कहना था कि फसलकी कटाईमें हाथ बँटानेके बाद जब वह घर लौटी तो कुएँपर अपने पैर धोने गयी। अचानक उसका पैर फिसला और वह कुएँमें गिर पड़ी। उसने हाथ ऊपर करके शोर भी मचाया, परंतु किसीने सुना नहीं।

रूबीके पुराने माता-पिता श्री और श्रीमती पुंचीनोनाको ढूँढ़ निकालना मुश्किल नहीं था। उनका बेटा करुणासेना १९५६ में मरा था। उन्होंने उसके कुएँमें डूब जानेकी घटना और दूसरी बातें भी सच बतायीं और कहा कि लड़कीकी सारी बातें बिल्कुल सच हैं।

उसके बाद जाँच-पड़ताल करनेवाले अलूथवाला नंदराम मन्दिर गये। मन्दिरके पुजारीने बताया कि 'लड़कीने मन्दिरके बारेमें जो कुछ कहा है, वह सच है।' उन्होंने किताबें रखनेका बक्सा भी दिखाया और अहातेके बीचों-बीच बेलीका पेड़ भी।

(१८)

लंकाकी एक और घटना—जयसेना

नवम्बर १९६२ में नुगेगोडाके श्री और श्रीमती जयसेनाके घर एक लड़का पैदा हुआ। दो बरसकी उम्रसे ही बच्चेने कहना शुरू किया—'तुम मेरी असली माँ नहीं हो। मेरी असली माँ बेयनगोडामें रहती है।' ऐसी बातोंसे उसकी माँ दुखी तो जरूर हुई, परंतु अप्रैल १९६५ तक उसने इस बातकी गम्भीरताको नहीं समझा।

एक दिन जयसेना-परिवारके लोग अपने मित्रोंसे मिलने मटाले जा रहे थे। २४ मीलके पत्थरके गुजरते ही बच्चा सीटपर खड़ा होकर चीखने लगा—'वहाँ, वहाँ मेरी माँ रहती है।'

माँने बच्चेकी सचाईकी तह तक पहुँचनेकी ठान ली। लौटते समय उन्होंने एक कार ली और वहीं आये। यहाँ आते ही बच्चा गाड़ीसे उतरने लगा—'मेरी माँ यहीं रहती है।'

बच्चा श्रीमती सेनेविरत्नेके घरकी ओर भागा जा रहा था। पड़ोसके लोगोंने उसे पकड़कर कारतक पहुँचाया। उसके माँ-बापको पता चला कि पाँच साल पहले यहाँके आदमीका बच्चा खो गया था।

शाम हो चुकी थी। इसलिये जयसेनाने सेनेविरत्नेको परेशान नहीं करना चाहा। बच्चेसे फिर यहाँ लानेका वादा करके उसे वापस ले आये। बादमें बच्चेके मामा बड्डेगामा सेनेविरत्नेसे मिले। उन्होंने उनसे सब कुछ बताया और बच्चेको पहचाननेके लिये लानेका दिन निश्चित हुआ।

उसे कुछ मिठाईकी गोलियाँ दी गयीं कि वह अपनी असली माँको दे दे। कार धीरे-धीरे जा रही थी और जब एक सड़कसे मुड़ी तो बच्चेने खड़े होकर ड्राइवरसे कहा—'उधर नहीं, वहाँ चार्ली चाचा रहते हैं। मेरा घर दूसरी सड़कपर है।'

फिर बच्चेसे कहा गया कि 'वह आगे-आगे चले।' वह सीधे अपने घर पहुँचा और भीड़को चीरता हुआ श्रीमती विनी सेनेविरत्नेके पैरोंपर उसने मिठाईका पैकेट रख दिया। वह ऐसे मिला, जैसे किसी अपने घरवालोंसे बहुत दिन बाद मिल रहा हो। बच्चेने अपने भाईको भी पहचान लिया और उसे असली नामसे पुकारते हुए अपनी असली माँको याद दिलाया कि 'एक बार उसके भाईने उसे पीटा था।' उसने चाचा चार्लीके बिजलीके कारखानेकी बात भी की और धानके अपने खेतोंकी तरफ इशारा किया।

इन बातोंसे श्रीमती सेनेविरत्ने हक्का-बक्का रह गयीं। उन्होंने माना कि शुरूमें उन्हें बड़ा संदेह था, परंतु अब वह मान गयीं कि १९६०में उनका जो बच्चा खो गया था, वही जयसेनाका बेटा है।

ये दो मामले बौद्ध परिवारोंके हैं। बौद्धोंमें पुनर्जन्मकी सम्भावनाएँ मानी जाती हैं। नरकमें जन्म, पशुकी तरह, भूतकी तरह, आदमीकी तरह और देवताकी तरह जन्म, एक जन्मके बाद दूसरे जन्ममें आदमी इनमेंसे कोई कुछ भी हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे आत्माकी बातें नहीं मानते, परंतु कर्मके अनवरत प्रवाहसे व्यक्तिका अस्तित्व बना रहता है, जिससे संसार चलता रहता है।

(१९)

क्यूबाका एक लड़का

क्यूबाके हवाना नगरमें चार वर्षके एक लड़केने अपनी माँको यह बताया कि 'माँ! इस घरसे भिन्न मेरा एक और घर भी था। मुझे स्मरण है कि मैं रुये कम्पानारियो (Rue Companario) में एक मकानमें रहता था। उस मकानका क्रमांक ६९ था और मुझे उसकी पूरी-पूरी स्मृति है।' उस समय बच्चेके माता-पिता हवानाके रुये सान जोस (Rue San Jose) में स्थित मकान क्रमांक ४४ में रह रहे थे। पिताकी छपाई आदिके व्यापारमें साझेदारी थी। इसी घरमें उक्त बालकका जन्म हुआ था।

माता-पिताद्वारा तथ्य-संग्रह

क्योंकि बच्चा अपने पूर्वजीवनके सम्बन्धमें कही गयी बातोंकी सत्यताका आग्रह करने लगा, इसलिये एक दिन उसके माता-पिताने उसे पूरी बात बतलानेके लिये कहा और निम्नलिखित तथ्य-संग्रह किये।

'जब मैं रुये कम्पानारियोमें ६९ नम्बरके घरमें रहता था, उस समय मेरे पिताका नाम पियरें सेको (Pierre Seco) तथा माँका नाम अम्पारो (Amparo) था। मुझे स्मरण है कि मेरे दो भाई और भी थे, जिनके साथ मैं खेला करता था और जिनके नाम मरसिडीज तथा जीन (Mercedes and Jean) थे। अन्तिम बार मैं रविवारको उस घरसे बाहर निकला था। उस दिन सन् १९०३ की २८ फरवरी तारीख थी। जब मैं घर छोड़ रहा था तो मेरी माँ बहुत चिल्लायी थी। मेरी इस दूसरी माँका रंग बहुत गोरा था और बाल काले थे। वह टोपियाँ बनाया करती थी। मैं उस समय १३ वर्षका था और अमरीकी कैमिस्टकी दूकानसे दवाई खरीदा करता था; क्योंकि अन्य दूकानोंकी अपेक्षा वहाँ दवाइयाँ सस्ती मिलती थीं। जब मैं टहलकर लौटता था तो नीचेके कमरेमें अपनी छोटी-सी साइकल रख दिया करता था। आजके समान मुझे उस समय एडूरोडो (Eduarodo) न कहकर पाँचो (Pancho) कहा जाता था।'

माता-पिताद्वारा जाँच

यह नितान्त स्वाभाविक था कि इस सब विवरणने उसके माता-पितामें इन तथ्योंकी पुष्टि करनेकी जिज्ञासा जाग्रत् कर दी। उन्होंने रुये कम्पानारियोमें ६९ नंबरका वह मकान खोज निकाला, जिससे वे सर्वथा अपरिचित थे। और न तो माता-पिता और न लड़का ही इसके पूर्व कभी वहाँ गये थे। परंतु उसके सामने पहुँचते ही लड़का आश्चर्यसे एकाएक चिल्ला उठा 'यही वह घर है, जहाँ मैं रहा करता था।'

बालकका घरमें प्रवेश

पिताने कहा कि 'यदि तुम इसे पहचानते हो तो तुम्हीं भीतर जाओ।' बिना किसी झिझकके लड़का बड़ी प्रसन्नतासे पहले तल्लेकी ओर जानेवाली सीढ़ियोंपर दौड़कर चढ़ने लगा और किसी परिचित व्यक्तिके समान निःशंक होकर एक कमरेमें प्रविष्ट हो गया। परंतु अपनी कल्पनाके माता-पिताको वहाँ न पाकर तथा उससे अपरिचित कुछ अन्य लोगोंको वहाँ देखकर वह बहुत उद्विग्न हो गया।

तथ्योंकी पुष्टि

उसके माता-पिताने इस परिणामसे चकित होकर इस विषयमें अपनी खोज जारी रक्खी तथा अन्ततोगत्वा उन्हें निम्नलिखित तथ्य प्राप्त हो सके।

(१) १९०३ के फरवरी महीनेके कुछ काल बादतक रुये कम्पानारियोके उस ६९ नंबरके घरमें अन्तोनियो सेको नामके सज्जन रहते थे, जो अब हवाना छोड़कर चले गये हैं।

(२) श्रीसेकोकी पत्नीका नाम अम्पारो था और उसके तीन लड़के थे, जिनके नाम क्रमशः मरसीडीज, जीन और पाँचो थे।

(३) फरवरीके महीनेमें सबसे छोटे लड़के पाँचोकी मृत्यु हो गयी, जिसके बाद श्रीसेकोके परिवारने वह घर छोड़ दिया था।

(४) उस घरके निकट ही अभी भी दवाइयोंकी वह दूकान विद्यमान है, जहाँसे दवाइयाँ खरीदनेकी बात यह बच्चा कहता है।

(२०)

जैनीफर और गेलियन

रेशमी बालों, नीली आँखोंवाली जुड़वा बहनों जेनीफर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

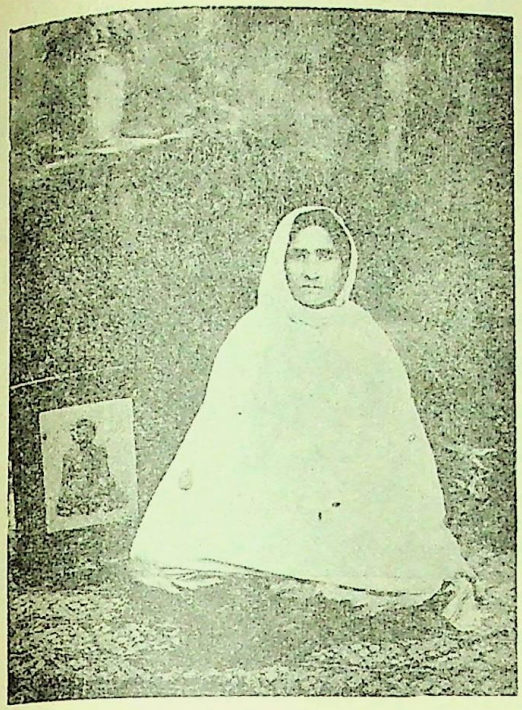

भक्तिमती देवी श्रीभिखाबाँ बाईजी [पृष्ठ ५३४]

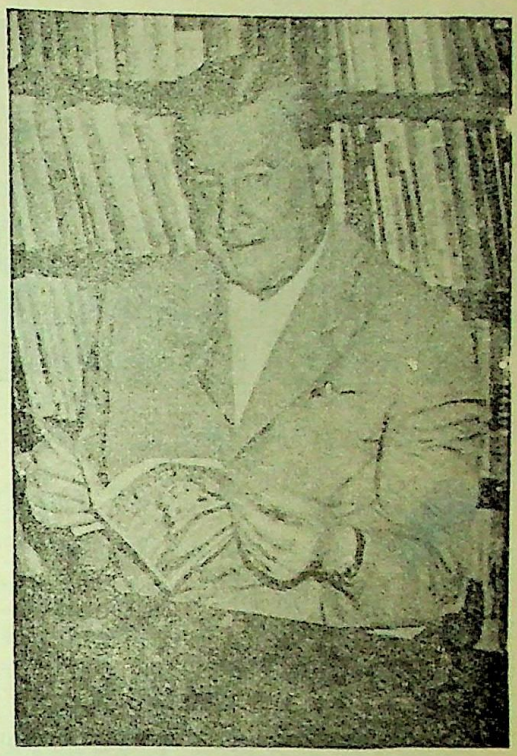

इटलीके डा० ग्रैस्टोन उगूसियेनी [पृष्ठ ५४०]

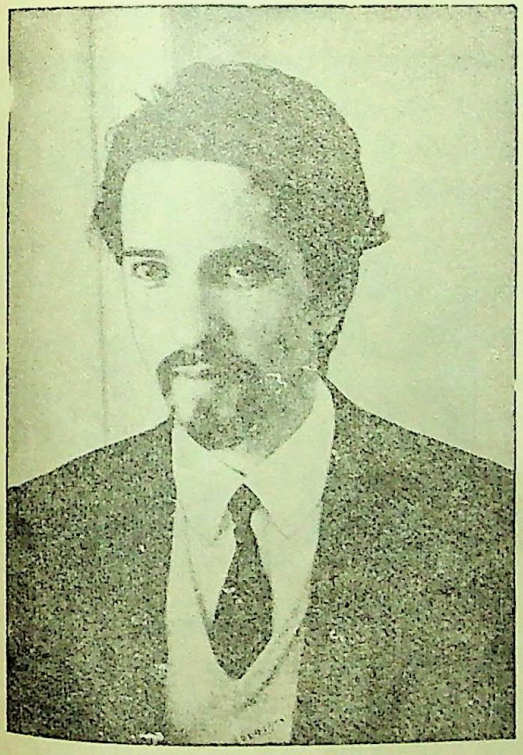

स्विट्जरलैण्डके गैब्रियल उराइब [पृष्ठ ५३९]

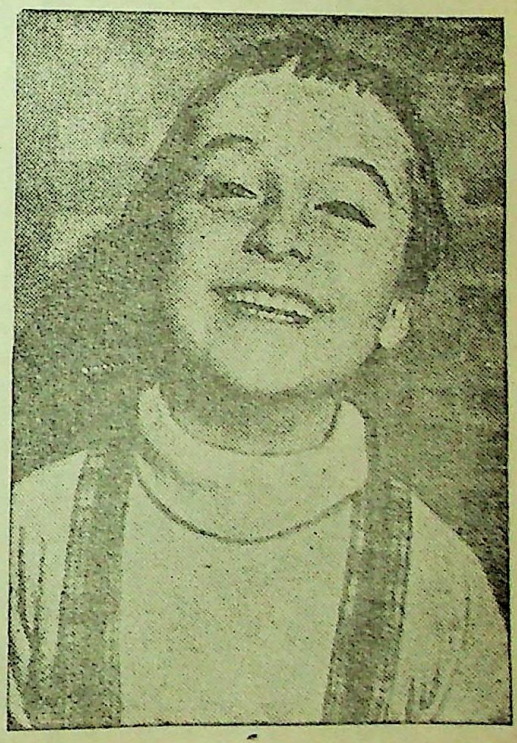

फ्रांसकी थिरीज गे [पृष्ठ ५४१]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आस्ट्रियाकी एलेक्जैण्ड्रिना [पृष्ठ ५४३]

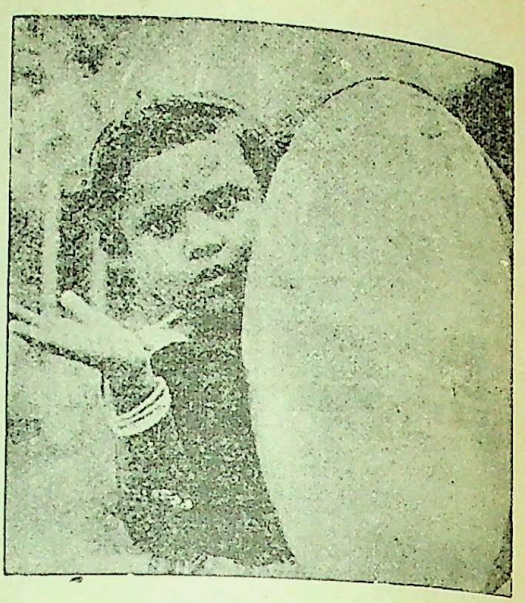

लंकाकी रूबी कुसुमा [पृष्ठ ५४६]

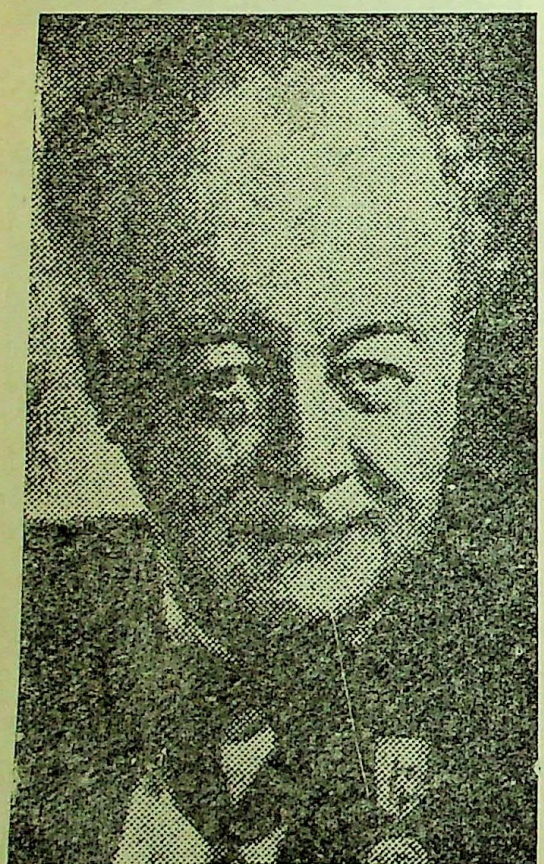

आस्ट्रेलियाके श्रीअर्नेस्ट ब्रिग्ग [पृष्ठ ५४६]

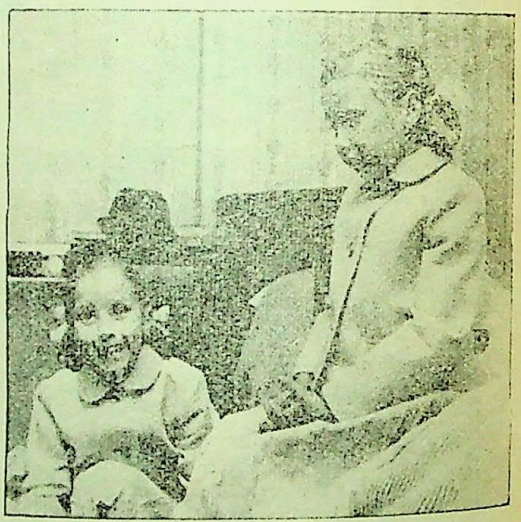

जैनीफर और गेलियन [पृष्ठ ५४८]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और गेलियनको उनके माता-पिता अपनी दिवंगत बेटियोंका पुनर्जन्म मानते हैं। जोआना (११ वर्षकी) और जैकेलीन (६ वर्षकी) नार्थवरलैंडके अपने गाँव हैक्सममें, जहाँ यह परिवार उस समय रहता था, एक दूसरीका हाथ थामे चर्चकी ओर जा रही थीं कि वे एक मोटरकारके नीचे आ गयीं।

जुड़वाँ बच्चोंके बाप श्रीपोलकने कहा—'मैंने रोमन कैथलिक धर्म अङ्गीकार कर लिया है। इसलिये मुझसे कहा जाता है कि मैं पुनर्जन्ममें विश्वास नहीं कर सकता। लेकिन मेरी पत्नी और मैं इतने दिनोंसे जो कुछ देख और सुन रहे हैं, उसके कारण मैं अब यह बात मान नहीं सकता।'

लड़कियोंकी मौतके बाद जब श्रीमती पोलक दुबारा गर्भवती हुई तो श्रीपोलकको विचित्र आभास होने लगा कि उनकी बेटियाँ उनके पास वापस आ रही हैं। वे नहीं चाहते थे कि इसपर विश्वास करें और उनकी पत्नी तो यह सुनना भी नहीं चाहती थी। लेकिन गर्भावस्थाके दिन पूरे होते-होते यह भावना बहुत ही प्रखर हो गयी और उन्होंने अपनी पत्नीकी डाक्टरी परीक्षा करायी।

पुराने निशान

डाक्टरने कहा कि 'इस बातकी बिल्कुल कोई सम्भावना नहीं है कि वह एकसे ज्यादा बच्चेको जन्म दे; क्योंकि उसे एक ही हृदयकी धड़कन और एक ही शिशुके हाथ-पैरका पता चला है।' एक सप्ताह बाद जुड़वाँ शिशुओंका जन्म हुआ।

श्री और श्रीमती पोलकका ध्यान आकर्षित करनेवाली पहली चीज थी कि जैनीफरके माथेपर दायीं आँखकी तरफ ऊपरसे नाकतक एक सवा इंच लंबा असामान्य सफेद निशान था। दोनों लड़कियोंमें छोटी जैकेलीनके भी ऐसा ही निशान था, जो तीन साल पहले गिर पड़नेका परिणाम था। जैनीफरके निशान साधारणतया कठिनाईसे दिखायी पड़ते थे; किंतु सर्दियोंमें वे स्पष्ट दिखायी देने लगते थे। यही बात जैकेलीनके विषयमें भी थी।

जैनीफरके बायें कूल्हेपर लगभग एक शिलिंगके आकारका भूरा जन्मचिह्न भी है। यह स्वरूप, रंग, आकार और स्थितिके विचारसे जैकेलीनके चिह्नसे एकदम मिलता-जुलता है। दूसरी समानताएँ जैनीफरके बढ़नेके साथ-साथ उभरने लगीं। वह लिखनेमें स्वाभाविक रुचि लेने लगी और कलम या पेंसिलको अपने दायें हाथके बीचकी अँगुलियोंमें थामनेकी और पहली अँगुलीसे चलानेकी उसे विचित्र आदत पड़ गयी।

गेलियन, जो जोआनासे मिलती-जुलती है, पर उसकी समानताएँ इतनी स्पष्ट नहीं हैं। वे ऐसी चीजें हैं, जिन्हें माता-पिता ही आसानीसे देख सकते हैं। उदाहरणके लिये छोटे बच्चोंके प्रति उसका वही व्यवहार और उनके लिये वही प्यार, उसी तरह अपनी बहनको हाथ थामकर घुमाना, वैसी ही दुबली-पतली, वही स्वभाव और ढंग।

'डैडी, देखो!'

गेलियनको जैनीफरका चेहरा प्यारसे दोनों हाथोंमें लिये यह बताते देखा गया कि जैकेलीनको गिरनेपर कैसे-कैसे चोट आयी थी। वह जो कुछ बता रही थी, वह सब सही था। एक मौकेपर जब श्रीपोलकने संयोगसे पुराने खिलौनोंके एक पार्सलको, जो उन्होंने जोआना और जैकेलीनकी मौतके बाद अलग रख दिया था, निकाला तो गेलियनने गुड़ियोंके धुले कपड़े निचोड़नेवाला रिंगर छीन लिया और बड़े आवेशमें बोली—'डैडी, देखो, वह मेरा रिंगर है।' असलमें वह जोआनाको दिया गया था।

इसी तरह जब जैनीफरने जैकेलीनकी गुड़िया देखी तो वह भी चिल्ला पड़ी—'वह मेरी है।' जैकेलीन इस गुड़ियाको ठीक 'मेरी' के ही नामसे पुकारती थी, हालाँ कि जेनीफरने यह गुड़िया इससे पहले कभी नहीं देखी थी।

पहचान

एक और अवसरपर श्रीपोलक कुछ रँगाई कर रहे थे और उन्होंने अपने कपड़ोंको बचानेके लिये ऊपरसे अपनी पत्नीका एक पुराना कोट पहन लिया। श्रीमती पोलकने यह कोट उस दिन प्रातःकालके बाद, जिस दिन दोनों लड़कियाँ दुर्घटना-ग्रस्त हुई थीं, फिर कभी नहीं पहना।

श्रीपोलक कहते हैं—'जब जैनीफरने मुझे यह कोट पहनते देखा तो उसने कहा—'तुम ममीका यह कोट क्यों पहन रहे हो, जो वह स्कूल पहनकर जाती थी।'

श्रीपोलक आश्चर्यसे भर गये; क्योंकि यह वही कोट था, जिसे पहनकर श्रीमती पोलक जैकेलीनको स्कूलसे लेने जाती थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्जन्ममें एक शरीरके शारीरिक चिह्नोंका दूसरे शरीरमें चले जाना बल्कि दूसरे शरीरपर उत्पन्न हो जाना कोई असाधारण बात नहीं है।

(२१)

कुरान और पुनर्जन्म

टर्कीकी एक घटना (इस्माइल)

यद्यपि हिंदुओं, बौद्धों तथा जैनियोंका युगोंसे पुनर्जन्ममें विश्वास है, तथापि इस्लाम आदि कुछ धर्म लौकिक दृष्टिसे इस सिद्धान्तमें विश्वास नहीं करते। इस्लाममें पुनर्जन्मके स्वरूपके लिये कोई स्थान न होनेपर भी कुछ विद्वानोंने कुरानसे इस प्रकारके उद्धरण दिये हैं, जिनसे पुनर्जन्मके सिद्धान्तको समर्थन प्राप्त होता है। इस प्रकारके उद्धरणमें कहा है कि 'पृथ्वीमें विचरण करो और देखो कि उस (ईश्वर) ने किस प्रकार जीवोंको जन्म दिया है। इसके पश्चात् (सृष्टिकी दूसरी आवृत्ति होनेपर) वह उन्हें फिरसे जन्म देगा; क्योंकि अल्लाह (ईश्वर) सर्वशक्तिमान् है।'

तुर्कीकी एक घटना

'मैं यहाँ रहते-रहते थक गया हूँ, मैं वापिस अपने घर तथा बच्चोंके पास जाना चाहता हूँ।' यह उद्गार किसी अकेले रहनेवाले बूढ़े आदमीके नहीं थे, जो अपने स्वजनोंका परित्याग करके अकेला रहनेके लिये विवश किया गया हो, अपितु एक बालकके थे।

इस्माइल तुर्किस्तानके जिला अडानामें सन् १९५६ ई० में एक पंसारी मिश्रित कसाई-परिवारमें उत्पन्न हुआ था। जब कि वह केवल १८ मासका शिशु था, तब वह अपने पिछले जीवनकी बात इस प्रकार बड़बड़ाता था। अपने पिताके साथ बिस्तरमें लेटे-लेटे उसने इस बातको स्वीकार किया 'मैं यहाँ रहते-रहते थक गया हूँ। मैं अपने बच्चोंमें अपने घर वापस जाना चाहता हूँ।'

पिछला जीवन और अलबैत सुजुल्मस (Albeit Suzulmus)

इस्माइलने कहा कि 'वह वास्तवमें अलबैत सुजुल्मस है, जिसकी हत्या की जा चुकी है। लड़केके सिरपर रेखाका निशान जन्मसे था, जो उसकी माताके कथनानुसार सन् १९६२ तक स्थित रहा। इस संदर्भमें यह याद रखना समीचीन है कि अलबैत सुजुल्मसकी मृत्यु सिरमें चोट लगनेसे हुई थी।

अलबैत सुजुल्मस बाजारका एक धनाढ्य बागवान (माली) था, जो जिला मिदिकके बहाहेहे भागमें रहता था। चूँकि उसकी प्रथम पत्नी हतीससे कोई संतान नहीं थी। उसने उसको तलाक दे दिया और एक दूसरी स्त्रीसे विवाह कर लिया। उसकी दूसरी पत्नी साहिदासे उसे कई संतानें उत्पन्न हुईं। फिर भी अलबैत हतीसका भी भरण-पोषण अपनी ही जायदादसे करता रहा, जो उसके पड़ोसमें रहा करती थी। वह स्वयं साहिदा तथा बच्चोंके साथ दूसरे मकानमें रहता था।

अलबैत सुजुल्मसने अपने बागमें काम करनेके लिये किसी दूसरे नगरसे कई मजदूर कामपर लगा रक्खे थे। एक दिन किसी अज्ञात कारणवश इन्हीं मजदूरोंने अलबैतको मार डाला। मजदूर उसे घोड़ोंके अस्तबलमें ले गये और सिरपर आघात करके उसका वध कर दिया। उसकी चिल्लानेकी आवाज सुनकर साहिदा और उसके दो बालक घटनास्थलपर दौड़कर पहुँच गये। लेकिन हत्यारोंने उनको भी मार डाला और वे भाग गये। एक सप्ताहके पश्चात् हत्यारे पकड़े गये। उनपर मुकदमा चला और उनकी सजा हुई।

बालककी अपने पुराने घरकी लालसा

इस्माइल यह समझता है कि वह अलबैत सुजुल्मस ही इस्माइल होकर पैदा हुआ है। उसने बार-बार अपने घरके लोगोंसे कहा कि उसे अलबैतके घर जाने दें। पहले तो उन लोगोंने लड़केका आग्रह इसलिये नहीं पूरा किया कि व्यर्थका झंझट होगा। साथ ही वे उसे इस दावेसे प्रावृत भी करना चाहते थे। लेकिन बादमें इरोल अर्कको सम्मति मानकर वे मान गये। इस्माइल, जो उस समय केवल ३ वर्षका था, उन्हें मार्ग बताकर अलबैतके लगभग पौन मील दूर मकानपर ले गया। वहाँ पहुँचनेपर उसने अलबैतके परिवारके सभी सदस्यों-को पहचान लिया और हतीसको गले लगाया। उसने अपने साथमें गये हुए माता-पिताको अचम्भित करते हुए अलबैत-की परिचित सब वस्तुओं तथा लोगोंको पहचाना। बादमें अलबैतकी एक लड़की इस्माइलसे मिलने गयी। उससे इसने घण्टों बातचीत की। इससे उसको पक्का विश्वास हो गया कि वही उसका पिता है, जिसने फिरसे जन्म धारण किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र प्यार

इस्माइल सदैव अपने पुराने कुटुम्ब तथा सगे-सम्बन्धियोंके विषयमें विचार करता रहता है। कभी-कभी यह उसके माता-पिताके लिये समस्या बन जाती है। एक समय जब इस्माइलका पिता, मेहमत अल्तिनक्लिश कुछ तरबूज ले आया। तब इस्माइलने इच्छा प्रकट की कि उनमेंसे सबसे बड़ा तरबूज उसकी लड़की गुलशरीनके लिये भेजा जाय। जब उसके पिताने ऐसा करनेसे इन्कार कर दिया, तब वह बुरी तरहसे रोने लगा। वास्तवमें मेहमत अधिक धनी नहीं है और वह इस्माइलके पहले जन्मके परिवारके लिये उपहार नहीं भेज सकता। कभी-कभी इस्माइल अपने माता-पिताके साथ एक वयस्क व्यक्तिकी तरह व्यवहार करता और उसके माता-पिता उसमें अपने अन्य बालकोंकी अपेक्षा अधिक समझदारी पाते। वह डटकर राकी पीता है और अलबैत भी खूब राकी पीनेके लिये कुख्यात था।

इस्माइलका एक पिछले हिसाबको तय करना

एक मेहमत नामक कुल्फी-मलाई बेचनेवाला एक बार मिदिक जिला गया। इस्माइलने उसे पुकारा और उससे पूछा कि 'क्या वह उसे पहचानता है?' जब कुल्फी-मलाई बेचनेवालेने स्पष्टतः इन्कार कर दिया, तब इस्माइलने कहा कि 'तुम मुझे भूल रहे हो। मैं अलबैत हूँ। पहले तुम कुल्फी-मलाई नहीं बेचते थे, बल्कि तरबूज और साग बेचा करते थे।' उस मनुष्यने इस परिवर्तनको स्वीकार किया और लड़केसे बहुत देर बात करनेके पश्चात् उसने निश्चय किया कि वह अलबैत ही है, जो अब फिरसे पैदा हुआ है। जब इस्माइलने अपने पिताको कुल्फी-मलाईका दाम देते हुए देखा तब वह बीचमें बोल उठा—'कुल्फी-मलाईका दाम मत दीजिये पिताजी! इसे पहले ही मेरे तरबूजके दाम देने हैं।' मेहमतने अलबैतका वह कर्ज स्वीकार किया।

यह एक वास्तविकता है अथवा धोखा?

क्या इस्माइलका उदाहरण एक धोखा है? कौन जाने। किंतु तत्काल ही कुछ विचार मनमें उठते हैं।

प्रथमतः हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि यह घटना एक मुसल्मान परिवारकी है और वे लोग पुनर्जन्ममें विश्वास नहीं रखते। द्वितीय यह कि इस्माइलके परिवारवालोंने इस घटनाको प्रचारित करनेका प्रयत्न नहीं किया। इसके विपरीत वे इसके विरुद्ध प्रयत्नशील रहे। उन्हें इस घटनासे कोई आर्थिक लाभ नहीं हुआ। वास्तवमें मेहमत अल्तिनक्लिशने इनके विषयमें सब पूछताछको, अपने समय तथा धनपर अवाञ्छित हस्तक्षेपके रूपमें देखा है। इसके अतिरिक्त वे तथा उसके परिवारके लोग इस बातसे भी सदैव भयभीत रहते हैं कि बालक किसी समय भी अपने पुराने परिवारमें वापस जा सकता है। क्या यह भी सम्भव है कि मेहमत अल्तिनक्लिशने इस बालकके साथ एक धोखा-धड़ी करनेके लिये साझेदारी कर ली हो; क्योंकि उसने अलबैत सुजुल्मसका काम करते हुए उसके परिवारकी बहुत-सी जानकारी इकट्ठी कर ली थी। इस सम्भावनाको भी अस्वीकार करना होगा; क्योंकि स्वतन्त्र मुखबिरोंकी जानकारीके अनुसार कुछ ऐसे तथ्योंकी जानकारी मेहमतको नहीं थी, जिनका उल्लेख अलबैतके सम्बन्धमें इस्माइलने किया था। न ही इसका विवेचन 'प्रच्छन्न स्मृतिलोप' कहकर किया जा सकता है; क्योंकि यह सम्भावना अलबैतके परिवारके सदस्योंकी पहचानके साथ जुड़े हुए भावनात्मक पक्षका कोई उत्तर नहीं देती।

(२२)

पिछले जन्मके हत्यारेका नाम बतानेवाला बालक नेकाती उनलकास्किरोन

नेकाती उनलकास्किरोन जब उत्पन्न हुआ तब उसके माँ-बापने उसका नाम 'मलिक' रक्खा था; किंतु केवल दो ही दिन बाद उसकी माँ सेलिलेको सपना आया कि नव-जात शिशु अपना नाम 'मलिक'के बदले 'नेसिप' रखनेके लिये हठ कर रहा है। उनके निकट-सम्बन्धियोंमें नेसिप नामक एक बालक पहले ही मौजूद था और इस अन्धविश्वास-के कारणसे कि दो बच्चोंका नाम एक ही रख देना परिवारके लिये अशुभ हो सकता है, उन्होंने 'मलिक'का नाम 'नेकाती' रख दिया।

जब नेकाती बोलने-चालने लगा तो वह अपने पिछले जन्मकी घटनाएँ बतानेकी चेष्टा करने लगा। उसने बताया कि 'उसका नाम नेसिप बुदक था, वह मेरसिनमें रहता था और उसकी हत्या कर दी गयी थी। जब वह और बड़ा हुआ तो उसने और भी कई बातें बतायीं कि 'उसकी शादी हो चुकी थी और बाल-बच्चे थे। वह अपने सबसे चहेते बेटे नेजातको अपने कंधोंपर बिठाकर ले जाया करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था ।' अपनी सुन्दरी पत्नी जेहराकी चर्चा वह बहुत प्यारभरे शब्दोंमें किया करता था ।

बातचीतके दौरानमें उसने अपने हत्यारेका भी नाम बता दिया कि वह अहमद रेंक्की था और उसने किस तरह मेरी हत्या की थी । एक बार नेसिपने रेंक्कीके लिये अपने घरसे चाय लानेसे इन्कार कर दिया था । इसपर रेंक्कीका पारा चढ़ गया । दोनोंमें जो झगड़ा हुआ, उसमें अहमद रेंक्कीने एक करौलीसे नेसिपके सिरके पीछे मुँह और भवोंपर, छाती और पेटपर कई वार करके उसकी हत्या कर दी ।

बच्चेकी इन बातोंके सबूतके तौरपर उसके शरीरपर पिछले जन्मके निशानोंका रंग आसपासकी खालसे एक-दम अलग है और वे ऐसे लगते हैं, मानो हालहीमें भरे हुए घावोंके निशान हों ।

जब नेकातीको नेसिपके घर ले जाया गया तो उसने अपनी बीवी जेहराको फौरन पहचान लिया । उसने एकके अलावा बाकी सभी बच्चोंको भी पहचान लिया और उनके नाम बताये । पता चला कि यह बच्चा उसकी मौतके बाद पैदा हुआ था । जेहराको नेकातीकी यह बात सुनकर अचम्भा हुआ कि 'एक बार नेसिपने गुस्सेमें उसकी टाँगपर चाकूसे वार किया था ।' जेहराकी जाँघपर उसी जगह पुराने घावका एक लम्बा निशान इस कथनके सबूतके तौरपर मौजूद था । नेकातीने यह भी बताया कि 'जिस दिन नेसिपको दफनाया गया था, उस दिन बड़ी तेज वर्षा हो रही थी ।' जेहरा और दूसरे लोगोंने इस बयानकी सचाईकी तस्दीक की ।

इससे पहले कि हम नेसिप बुदकके नेकातीके रूपमें पुनर्जन्मकी सम्भावनापर गौर करें, हमें कुछ ठोस सचाइयों-पर विचार कर लेना चाहिये ।

नेकातीका जन्मस्थान अपना शहर, जहाँ वह रहता है, मेरसिनसे, जहाँ नेसिप बुदक रहता था, लगभग ७४ किलो-मीटर दूर है । इसलिये मुमकिन नहीं कि नेकातीको नेसिपके बारेमें वैसे ही मालूम हो गया हो, जैसे कि लोगोंको अपने पड़ोसियोंके बारेमें हो जाता है ।

दूसरे, नेकातीके दावेसे पहले दोनों परिवार एक दूसरेसे बिल्कुल अपरिचित थे । इसलिये नेकातीको नेसिपके बारेमें इस तरह भी मालूम नहीं हुआ, जिस तरह कि दूर-के रिश्तेदारों या जान-पहचानवालोंके बारेमें पता चल जाता है । इसके अलावा नेकाती पहले कभी मेरसिन आया भी नहीं था ।

तीसरे, उनके अजीब दावे और रवैयेने दोनों परिवारोंके बीच गलतफहमी पैदा कर दी है और उनका रवैया आपसमें दोस्ताना तो किसी भी तरह नहीं कहा जा सकता; क्योंकि वे अपरिचित लोगोंके सवालोंका जवाब देते-देते तंग आ चुके हैं ।

कुछ बुद्धिवादी लोग ऐसे हैं, जो पुनर्जन्मको एक प्रकारकी टेलीपैथी (दूरानुभूति), यानी वह विद्या मानते हैं, जिससे कोई व्यक्ति दूसरेके विचारोंको पढ़ लेता है । क्या हम नेकातीके मामलेको टेलीपैथीका मामला साबित कर सकते हैं ? शायद नहीं; क्योंकि नेकातीने इस विद्याका परिचय नेसिपके अलावा और किसी आदमीके सम्बन्धमें नहीं दिया है । इसके अलावा दूरानुभूतिकी विद्या सिर्फ उन्हीं लोगोंको सही-सही पहचान लेनेकी शक्ति नहीं देती जो नेसिपसे सम्बन्धित थे ।

(२३)

लूना मार्कोनी

जब लूना मार्कोनी अपने माता-पितासे यह कहने लगी कि 'मैं अपने घर फिलिपाइन्स लौट जाना चाहती हूँ' उस समय उसकी उम्र तीन सालकी थी ।

इस समय वह सात वर्षकी है और कोपेनहेगेन, डेनमार्कमें रहती है । उसने यह भी कहा कि 'मेरा नाम 'मारिया-एस्पिना' था । मेरे पिता एक रेस्तराँके मालिक थे ।'

उसने बताया कि "मेरा घर हाई वे ५४ पर गिरजाघरके पास था । मैं फिलीपीनी समारोह 'फीस्ते' में शरीक होती थी । इसमें उपनगरोंके लोग शहर आते थे । मुझे नारियलकी मिठाई 'बोकन' बहुत अच्छी लगती थी । मैं ईशुका 'क्रास' पहनकर हर रविवारको गिरजाघर जाती थी ।" उसने यह भी कहा कि 'मैं मैकोपापल—फिलिपाइन्सके भूतपूर्व प्रेसिडेंटके बारेमें बहुत-सी बातें सुना करती थी ।' उसकी मौत बारह सालकी आयुमें बुखारसे हुई थी ।

यह लेखक इस लड़कीके दावोंकी तस्दीक करनेके लिये फिलीपाइन्स गया । मुझे हैरानी हुई कि जो कुछ बातें उसने बतायी हैं, सब सही हैं । उन्हें पहलेसे जाननेका साधन उसके पास बिल्कुल नहीं था । लड़कीके माँ-बाप उसे पिछले जन्मकी बातें करनेसे सदा रोकते रहे हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२४)

ड्रूज-परिवार

कोरनेयलमें एक ड्रूज-परिवारकी ही मिसाल लीजिये। ड्रूज धर्म ईस्वी १०१७ में शुरू हुआ। फातिमिद, खलीफा-अल-हकीमने जेरू-जेलके गिरजाघरको तबाह करके अपने-आपको पैगंबर घोषित कर दिया था। इस घटनाके बाद वह रहस्यमय ढंगसे गायब हो गये। उनके अनुयायियोंने घोषित किया कि वे मरे नहीं हैं और वे महेदीके रूपमें वापस आयँगे।

ड्रूज धर्ममें यह ऐतिहासिक घटना पुनर्जन्मकी धारणाको आधार प्रदान करती है। लेकिन अल-हकीमके उत्तराधिकारियोंने उनके उन अनुयायियोंके साथ दुर्व्यवहार किया, जो यह विश्वास करते थे कि अल-हकीम निश्चय ही वापस आयँगे। इन अनुयायियोंके दूसरे मुस्लिम गुटोंको, जो ड्रूजको अपने धर्मका अंश नहीं मानते, प्रायः अत्याचार-का शिकार बनना पड़ा। लेकिन ड्रूज-पंथ अपनेको इस्लामका ही एक अंश और मुहम्मदको खुदाका पैगंबर मानता है।

(२५)

अहमद एलावर

अहमद एलावरने पुनर्जन्ममें आस्था रखनेवाले ऐसे ही एक परिवारमें २१ दिसम्बर १९५८ को लेबनानके कोरनेयल गाँवमें जन्म लिया। जब वह केवल दो वर्षका हुआ था, उसने पिछले जन्मकी बातें शुरू कर दीं। उसने अपने माता-पिता और दादी-दादासे कहा कि मैं पासवाले गाँव खिरबी-का रहनेवाला हूँ। वह प्रायः 'महमूद' और 'जमील' का नाम लिया करता था। उसने अपने पिछले जीवनकी कुछ खास-खास घटनाएँ भी बतायीं और उस जीवनकी अपनी सम्पत्तिका विस्तृत विवरण भी दिया।

अहमद एलावरके पिताने लड़केकी बातोंकी तरफ कोई खास ध्यान नहीं दिया, बल्कि उसने ऐसी ऊटपटाँग बातोंके लिये उसे डाँटा ही; पर माता धैर्यसे उसकी बातें सुनती, अतः वह माँसे ही मनकी बातें कहता, परंतु माँ कोई छानबीन नहीं करती।

महत्त्वपूर्ण घटना

दिन गुजरते गये। अहमद पैरों चलने लगा। वह हैरानीसे अपनी माँसे कहता—

'माँ! देखो, अब मैं अपने पैरों चल सकता हूँ।'

बेटेकी ऐसी विचित्र बातें माँको चकरा देतीं। वह एक दुर्घटनाका किस्सा भी सुनाया करता था कि किस तरह एक आदमीके पैरोंपरसे ट्रक गुजर गया था, जिससे उसके पैर बेकार हो गये थे। क्या इन दोनों घटनाओंका आपसमें कोई सम्बन्ध हो सकता है?

आखिरकार कुछ लोगोंके आग्रहपर वे लोग अहमदको लेकर खिरबी गये। माता-पिता भी राजी हो गये। वहाँ पता चला कि अहमदकी बतायी हुई घटनाएँ इब्राहीम बोहमजी नामक एक २३ वर्षीय नौजवानके जीवनसे पूरी तरह मेल खाती हैं।

इब्राहीम बोहमजी रीढ़के क्षयरोगसे मरा था और मौतसे पहले कई वर्षतक वह चलने-फिरनेसे लाचार था। शायद इसीलिये अहमदकी भावना ऐसी थी, मानो उसे एक बहुत लंबे समयके बाद पैर मिले हों। यह भी पता चला कि इब्राहीम बोहमजीको जमील नामकी एक खूबसूरत लड़कीसे बहुत प्यार था; परंतु मृत्युने उनकी शादी नहीं होने दी।

छानबीनसे मालूम हुआ कि ऐसी ट्रक-दुर्घटनाका शिकार, जिसका अहमदने बार-बार जिक्र किया था, शहिद बोहमजी हुआ था। वह इब्राहीमका पड़ोसी और गहरा दोस्त था। उसकी मौतसे इब्राहीमको गहरा सदमा पहुँचा था। शायद इसीलिये वह बार-बार ट्रक-दुर्घटनाका जिक्र किया करता था और ट्रकोंसे डरा करता था।

अहमदको इब्राहीमके घर ले जाया गया। वहाँ उसे कई फोटो दिखाये गये। उसने उनमेंसे कइयोंको पहचान लिया। इब्राहीमकी बहन हुदाने उससे पूछा—'क्या तुम मुझे पहचानते हो?' अहमदने तुरंत जवाब दिया—'तुम मेरी बहन हो' और फिर एक क्षण सोचकर कहा—'तुम, तुम हुदा हो।' यह सुनकर सभी लोग हैरान हो गये।

अहमद अपने बापसे कई बार जंगलमें शिकार खेलने जानेको कहता था। उसने यह भी कहा कि 'मेरे पास एक राइफिल और एक बंदूक थी।'

पता चला कि इब्राहीम शिकारका शौकीन था और उसके पास एक राइफिल और एक बंदूक थी।

यहाँ भी, वही सवाल उठता है कि 'क्या अहमदके रूपमें इब्राहीम बोहमजीका पुनर्जन्म हुआ है?' अलग-अलग धर्मावलम्बी लोगोंने अलग-अलग जवाब दिये हैं, जब कि, असल जवाब तो एक ही होना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्जन्मकी घटनाएँ

(प्रेषक-लेखक—प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

(१)

प्रकाशकी घटना

यह घटना अप्रैल सन् १९५० ई०की है।

कोसीकलाँ-निवासी श्रीभोलानाथ जैनका पुत्र निर्मल चेचक रोगसे ग्रसित होनेके कारण मृत्यु-शय्यापर पड़ा हुआ था। अन्तमें मथुरामार्गपर कोसीकलाँसे ६ मीलकी दूरीपर स्थित छत्ता कस्बेकी दिशाकी ओर उसने संकेत किया और दम तोड़ दिया।

'मैं कोसीकलाँमें रहता हूँ। मेरा नाम निर्मल है। मैं अपने 'पुराने' घर जाना चाहता हूँ'—छत्तानिवासी श्री बी० एल० वार्ष्णेयके सादे चार वर्षीय पुत्र प्रकाशने कहा। उसका जन्म अगस्त सन् १९५१ ई० में हुआ था। वह रातको जग जाया करता था और दौड़ने लगता था। पहले तो यह क्रम लगातार कई रातों तक चलता रहा, फिर ऐसा कभी-कभी होने लगा। परंतु ये लक्षण कई महीनों तक रहे।

एक दिन उसके चाचा उसे यह कहकर ले चले कि वे लोग कोसीकलाँ जायँगे। वे जान-बूझकर उस बसपर चढ़ गये जो कोसीकलाँ नहीं जाती थी। बच्चेने तुरंत ही चाचाको उनकी त्रुटिका भान कराया और कोसीकलाँ जानेके लिये चिल्लाने लगा। आखिरकार चाचाको कोसीकलाँ जाना पड़ा। इस प्रकार सन् १९५६में पाँच-वर्षीय प्रकाशको पहली बार कोसीकलाँ जानेका मौका मिला। इस बार निर्मलके पिता श्रीभोलानाथ जैनसे भेंट नहीं हो पायी। प्रकाशके सामने अपने गत-जीवनकी स्मृतियाँ स्पष्ट थीं। यद्यपि समय बीतनेके साथ-साथ ये स्मृतियाँ धूमिल पड़ती गयीं, परंतु वे बिल्कुल नष्ट नहीं हुईं। प्रकाशके पिता यह नहीं चाहते थे कि वह पुत्रके स्वाभाविक प्रेमसे वञ्चित रहें, इसलिये उन्होंने यह भरसक प्रयत्न किया कि वह अपने गत-जीवनकी बातें न याद किया करे। उन्होंने उसे दण्ड आदि भी दिया। कुछ दिनों बाद ऐसा लगा कि प्रकाश वे सब बातें भूल गया है। अथवा यों कह लें कि उसने कोसीकलाँ जानेकी इच्छाको खुले रूपसे दुहराना बंद कर दिया है। सम्भवतः यह बापके द्वारा पीटे जानेका परिणाम था।

सन् १९६१में श्रीभोलानाथ जैन अपनी पुत्रीके साथ छत्ता गये। जब उन्होंने यह सुना कि प्रकाश नामका कोई लड़का उनके मृत पुत्र निर्मलकी बातें करता है, तब वे वार्ष्णेय-परिवारमें गये। प्रकाशने फौरन उन्हें अपने 'पिता'के रूपमें पहचान लिया। कुछ दिनों बाद देवेन्द्र और तारा (निर्मलके भाई और बहनका नाम) के साथ निर्मलकी माँ प्रकाशसे मिलने छत्ता आयीं। उन्हें देखते ही प्रकाश रो पड़ा और अपने पितासे कोसीकलाँ चलनेके लिये कहने लगा। जैन-परिवारके लोगोंने भी श्रीवार्ष्णेयसे प्रार्थना की कि वह प्रकाशको उनके साथ भेज दें। श्रीवार्ष्णेयने अनिच्छासे स्वीकृति दे दी। प्रकाश आगे-आगे चला। उसने सबको बस-स्टेशनका रास्ता बताया। कोसीकलाँमें श्रीजैनका घर भी उसने पहचान लिया। घरके दरवाजेपर वह थोड़ा ठिठका; क्योंकि निर्मलकी मृत्युके बाद उस दरवाजेमें थोड़ा परिवर्तन कर दिया गया था; लेकिन अंदर घुसनेके बाद उसने घरकी विभिन्न चीजोंको पहचान लिया। उसने परिवारके दूसरे सदस्योंको भी पहचान लिया।

प्रकाश दो बार कोसीकलाँ जा चुका था। इसलिये कोसीकलाँ जानेकी उसकी इच्छा बलवती होने लगी। वह फिरसे घर छोड़कर भागने लगा। उसके पिताने सोचा कि इस प्रकार तो पुत्र हाथसे निकल जायगा। वे चाहते थे कि वह कोसीकलाँके बारेमें भूल जाय। इसके लिये उन्होंने उसे पीटा भी।

इस घटनामें गत और वर्तमान जन्मोंके स्थानोंकी समीपता यद्यपि महत्त्वपूर्ण है, परंतु इसका होना आवश्यक नहीं है। बहुतसे ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जब कि दोनों प्रकारके जन्मस्थान दूर-दूर देशोंमें होते हैं।

(२)

एक विचित्र घटना

मुनेश

सन् १९५५में एक दिन भारतके चाँदगरी गाँवमें मुनेश नामक लड़केको उसकी माँ नहला रही थी। माँने बच्चेके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्व्यवहारसे खीझकर उसे एक चपत लगा दी। बच्चेने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा—'माँ! मुझे मारो मत। मैं अपने गाँव इतरानी वापस चला जाऊँगा। मैं उस गाँवका रहनेवाला भजनसिंह हूँ। मेरी पत्नी है, तीन भाई हैं, माँ है और एक लड़की है। मेरा घर है, कुआँ है, बगीचा है और खेत है।'

अपने चार सालके लड़केकी ऐसी अनर्गल बातें सुनकर भगवती देवी आगबबूला हो गयी। अच्छी खासी पिटाईसे वह लड़का उस समय चुप हो गया।

परंतु जैसे-जैसे वह बड़ा होने लगा, उसने अपने सहपाठियोंको यह बतलाना आरम्भ किया कि उसकी पत्नी तथा परिवार है। इसके कारण वह शीघ्र ही अपने सहपाठियोंमें उपहासका विषय बन गया।

सहसा एक दिन उसने अपने दादा ठाकुर नेत्रपालसिंह-को भी वही कहानी सुनायी। इस कहानीने ठाकुरके मनमें एक कौतूहल जाग्रत् कर दिया। तब उसने इतरानीके एक व्यक्तिसे यह पूछताछ की कि 'क्या वहाँ कोई भजनसिंह नामका व्यक्ति भी था?' उस व्यक्तिके विचारमें वहाँ इस नामके एक सज्जन थे।

शीघ्र ही उसके दादा इतरानी गये और वहाँ उन्हें यह पता चलते देर नहीं लगी कि वहाँ भजनसिंह नामका एक व्यक्ति अवश्य था, जो अपनी पत्नी तथा एक पुत्रीको पीछे छोड़कर सन् १९५१में ही ज्वरसे चल बसा था।

मुनेशका जन्म सन् १९५१में वीरेन्द्रपालसिंहकी पत्नीसे हुआ था। मुनेशके रूपमें भजनसिंहका पुनर्जन्म हुआ है। तत्काल ठाकुर साहबने भजनसिंहके परिवारसे सम्पर्क स्थापित करके मुनेशके दावेके विषयमें बतलाया। भजनसिंह-के परिवारने इस विषयमें रुचि लेना आरम्भ कर दिया। मृत भजनसिंहका भाई तथा बहनोई ठाकुरके साथ चाँदगरी आये, जहाँ मुनेशने उन्हें बहुत आसानीसे पहचान लिया। दोनों व्यक्ति भजनसिंह तथा मुनेशकी आकृति और व्यवहारके आश्चर्यजनक साम्यसे बहुत प्रभावित हुए। उनके इतरानी लौटनेका समय आनेपर मुनेश अपने भाईसे चिपट गया और उसे पीछे छोड़ दिये जानेके लिये वह प्रस्तुत नहीं था। अन्तमें ठाकुर नेत्रपालसिंहके उसे कुछ ही दिनोंमें इतरानी ले जानेका वचन देनेपर ही लड़का शान्त हुआ।

भजनसिंहकी विधवा स्त्रीके पास संवाद पहुँचना

बहुत शीघ्र ही यह समाचार भजनसिंहकी विधवा पत्नी अयोध्यादेवीके पास पहुँच गया, जो बिसारा ग्राममें अपने पिताके घरपर रह रही थी। आश्चर्य तथा जिज्ञासासे भरकर वह अपनी भावजके साथ चाँदगरीके लिये चल पड़ी। वे दोनों ही लंबी तथा दुबली-पतली थीं और दोनों एक-जैसे कपड़े पहने हुए थीं। दोनों ही उसी प्रकार परदेमें थीं, जिस तरह कि जनतामें अपनी पहचानको छिपाये रखनेके लिये भारतीय महिलाएँ घूँघट काढ़ा करती हैं। जब वे चाँदगरी पहुँचीं तो गाँववाले इकट्ठे हो गये और मुनेशको वहाँ बुलवाया गया।

मुनेश इन महिलाओंको वास्तवमें जानता है अथवा नहीं, इस बातकी परीक्षा करनेके लिये उसके ताऊने उससे पूछा कि 'क्या तुम अपनी माँको पहचानते हो?' मुनेशने उत्तर दिया कि 'इनमें उसकी माँ नहीं है और वे दोनों उसकी पत्नी तथा उसकी भावज हैं।' अचानक लड़केने अयोध्यादेवीका हाथ पकड़ लिया। उस विधवाने वञ्चनाके भयसे उस लड़केको एक ओर करते हुए पूछा—'हमारे जीवनके किसी ऐसे विशिष्ट प्रसङ्गका वर्णन करो, जिससे मुझे यह विश्वास हो सके कि तुम मेरे पति हो और इस रूपमें फिरसे तुमने जन्म लिया है।' किसी भी प्रकारकी तनिक-सी भी हिचकिचाहटके बिना मुनेशने कहा—'जब मैं आगरासे अपनी इन्टरमीडियटकी परीक्षा देकर इतरानी वापस लौटा था तो मुझे पता चला कि मेरी माँ और तुम्हारे बीच झगड़ा हुआ है। मैंने तुम्हें मथानीसे पीटा था। मथानी टूट गयी थी और तुम्हारी बाँहमें घाव हो गया था।' उसने अपनी आश्चर्यचकित विधवाको अपने दाम्पत्य-जीवनकी कई ऐसी घनिष्ठ बातें भी बतायीं, जो भारतमें पति तथा पत्नीके बीच गोपनीय भेद समझी जाती हैं, जिन्हें कोई भी अन्य व्यक्ति जान नहीं सकता था। उसकी इन बातोंको सुनकर अयोध्यादेवीको विश्वास हो गया और उसने बच्चेको अपने साथ इतरानी ले जानेकी बात कही।

मुनेशका इतरानी-गमन

इतरानी पहुँचकर मुनेशने भीड़मेंसे अपने घनिष्ठतम मित्र भगवतीप्रसादका नाम लेकर बाहर बुलाया। उसे शीघ्र ही यह विश्वास हो गया कि भजनसिंह ही मुनेशके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपमें फिरसे जन्म लेकर आया है। अन्य लोगोंने भी उस समय इसे मान लिया, जब मुनेश सीधा अपने घरके अंदर चला गया तथा भजनसिंहकी माँकी गोदीमें कूदकर जा चढ़ा। उसकी आँखोंके अश्रुप्रवाहसे उसका मुख भींग गया था। इसके बाद मुनेशने अपने घर तथा खेतका चक्कर लगाया और उसकी मृत्युके पश्चात् हुए परिवर्तनोंपर उसने टिप्पणी की।

इतरानी छोड़नेके पूर्व उसकी वापसीको देखनेवाले सभी व्यक्तियोंको मुनेशकी इस विचित्र कहानीपर विश्वास हो गया था। उसने अपनी सभी वस्तुओं, अपने वसीयत-नामे, अपने बगीचे, उसके चारों बैलों तथा दोनों भैंसोंको पहचान लिया था।

मुनेशका बिसारा-गमन

जब अयोध्यादेवी अपने पिताके घर बिसारा चली गयी तो लड़केको बहुत सूनसान-सा प्रतीत होने लगा। उसे उसकी अनुपस्थिति बहुत खलती थी और बिसारामें लड़कीको देखनेकी उसकी इच्छा थी। उसे वहाँ ले जानेकी सम्मति दे देनेपर उसने अपने दादाके सम्मुख बिसारा जानेके मार्गका ठीक-ठीक वर्णन किया। बिसारा पहुँचकर वह एक घरके सामने रुक गया। उसने कहा कि 'यही उसके ससुरका घर है।' साथ ही इस बातका भी उल्लेख किया कि 'किस प्रकार वहाँ अब एक कमरेका निर्माण हो गया है, जहाँ उसकी मृत्युके समय केवल चबूतरा मात्र था।'

इतरानीके समान यहाँ भी मुनेशने अपने मित्रों तथा सभी सगे-सम्बन्धियोंको पहचान लिया। वह अपनी लड़कीको वहाँ देखकर बहुत प्रसन्न दिखायी दिया, जो भजनसिंहकी मृत्युके समय केवल दो वर्षकी थी। दोनोंका परस्परका प्यार बहुत ही मर्मस्पर्शी था और मुनेश तबतक खाता न था, जबतक वह लड़की उपस्थित न हो।

मुनेशका चाँदगरी लौटना

मुनेश एक बार पुनः चाँदगरी लौट आया; परंतु वह केवल उन अवसरोंको छोड़कर अब अन्य समय दुखी और खिंचा-खिंचा रहने लगा था, जब उसके परिवारका कोई व्यक्ति उससे भेंट करने वहाँ आता था। जब अयोध्यादेवी वहाँ आयी तो मुनेश उसके और उसकी लड़कीके बारेमें हो-हल्ला मचाता रहता था। उनके जाते ही वह फिर उदास रहने लगा। प्रतीत यह होता था कि उसकी स्मृतियाँ उसके वर्तमान जगत्को अवरुद्ध कर देती थीं। ऐसा लगता था कि उसे संतुष्ट करनेका एकमात्र उपाय यही था कि उसे इतरानीमें अयोध्यादेवी तथा उसकी लड़कीके साथ उसी प्रकार रहने दिया जाय, जिस प्रकार वे भजनसिंहकी मृत्युके पूर्व रहा करते थे।

(३)

मंजुकी घटना

कुछ समय पूर्व आगराके पोस्टमास्टर श्री पी० एन० भार्गवकी पाँच वर्षकी एक लड़की मंजुलतासे सम्बन्धित घटना प्रकाशमें आयी है। मंजुने ढाई वर्षकी अवस्थामें यह कहना आरम्भ कर दिया था कि 'उसके दो घर हैं।' उसने उनका वर्णन भी किया और यह बात कही कि 'उन घरोंके कमरे बड़े-बड़े थे और उनमें बिजली भी थी।' पहले तो किसीने उसकी बातोंपर ध्यान नहीं दिया, परंतु वह जब कभी धुलियागंज, आगराके एक विशिष्ट मकानके सामनेसे निकला करती थी तो कहा करती थी कि 'यही मेरा घर है।' घर लौटनेपर वह रोती और इस घरको देखनेका आग्रह करती। प्रतीत यह होता था कि वह अपने गत जीवनमें उस घरमें रह चुकी थी।

मंजुका उस घरमें ले जाया जाना

एक दिन मंजुकी माँ उसे उस घरमें ले गयी, जिसके स्वामी इस समय श्रीप्रतापसिंह चतुर्वेदी नामके एक वकील थे। वहाँ मंजुने अपने गत-जीवनसे सम्बन्धित कई वस्तुओंको पहचान लिया। बादमें भेद खुला कि श्रीचतुर्वेदीकी चाची (फिरोजाबाद-स्थित चौबेका मुहल्ला निवासी श्रीविश्वेश्वरनाथ चतुर्वेदीकी पत्नी) का निधन सन् १९५२ में हो गया था। अनुमान यह लगाया जाता था कि उसीका जन्म श्रीभार्गवकी लड़कीके रूपमें हुआ है।

बादमें मंजुको फिरोजाबाद ले जानेपर उसके पूर्वजीवनसे सम्बन्धित बहुतसे लोगोंको उसने पहचान लिया।

(४)

विचित्र मिलन—राजूल

राजूल नामकी छोटी लड़कीका जन्म सन् १९६० में हुआ था। उसके पिता प्रवीणचन्द्र शाह, जिला राजकोटके केसलाद नामक स्थानमें बैंक-कर्मचारी हैं। वह पूरे तीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सालकी भी नहीं हुई थी कि उसी जिलेके जूनागढ़में अपने पिछले जन्मकी बातें बताने लगी। उसने कहा कि 'मेरा नाम राजूल नहीं, गीता था।'

पहले तो उसके माता-पिताने उसकी बातोंको बच्चेकी खयाली उड़ान समझा और इसलिये जब भी वह पिछले जन्मकी बातें याद करती, वे उसे हतोत्साहित करते।

लेकिन उसके दादाजी वजुभाई शाहने उसके दावोंकी जाँच-पड़ताल करनी चाही। उन्होंने अपने दामाद सुरेन्द्रनगरके प्रेमचंदसे जूनागढ़ जाकर यह पता लगानेको कहा कि 'क्या हालमें गीता नामकी किसी लड़कीकी मृत्यु हुई है?'

जूनागढ़ म्युनिसिपैलिटीसे प्रेमचंदको पता चला कि टैली स्ट्रीट, जूनागढ़के गोकुलदास ठक्करकी बेटी गीताकी मृत्यु अक्तूबर १९५९ में हुई थी। उस समय वह ढाई सालकी थी।

राजूलके दादाजीको जब इतनी बात मालूम हुई तो उन्होंने इसकी और भी जाँच-पड़ताल करनेका फैसला किया। इसलिये वजुभाई सन् १९६५में राजूलको और अपने कुछ रिश्तेदारोंको साथ लेकर जूनागढ़ पहुँचे। उन्होंने यहाँ आनेसे पहले वे सब बातें, जो राजूल कहती थी, लिख ली थीं।

राजूल अपने घरके पासके पेडा (मिठाईकी दूकान) का जिक्र बार-बार किया करती थी।

जूनागढ़में यह दल दिगंबर धर्मशालामें ठहरा। इनमेंसे कुछ लोग गोकुलदास ठक्करका घर ढूँढ़नेके लिये रवाना हुए। म्युनिसिपैलिटीके मृत्युके खातेमें दर्ज पतेके अनुसार वे सबसे पहले टैली स्ट्रीट पहुँचे। गलीके नुक्कड़-पर ही उन्हें 'पेडा' वाली दूकान मिल गयी। दूकानदार उन्हें पास ही एक 'फेयर प्राइस शाप' पर ले गया, जिसके मालिक श्रीगोकुलदास ठक्कर हैं। इन लोगोंने गोकुलदास ठक्कर और उनकी पत्नी कान्ताबेनसे राजूलके दावोंकी चर्चा की।

शामको वे फिर गोकुलदास ठक्करके घर गये। राजूल साथ थी। कान्ताबेन अपने घरके बाहर खड़ी थीं। वजुभाईने राजूलसे पूछा—'क्या तुम कान्ताबेनको पहचानती हो?' एक क्षण सोचनेके बाद लड़कीके मुँहसे निकला 'वह मेरी माँ है।'

फिर वे सब घरके अंदर गये, वहाँ राजूल कान्ताबेनको भाभी कहकर बुलाने लगी। एक अपरिचित लड़कीके मुँहसे यह शब्द सुनकर कान्ताबेनको बड़ा अचम्भा हुआ; क्योंकि उन्हें सिर्फ उन्हींके बच्चे 'भाभी' कहते थे। ऐसा ही आश्चर्य शाह-परिवारको भी हुआ; क्योंकि उनके बच्चे माँको 'बा' कहते थे।

अगली सुबह ये लोग राजूलके साथ टहलने निकले। वे मन्दिरकी ओर जा रहे थे। राजूलसे पूछा गया—'क्या तुम मन्दिरको पहचानती हो?' लेकिन राजूलने मन्दिरके बजाय एक घरकी ओर इशारा किया और कहा कि 'वह माँके साथ पूजा करने उस मन्दिरमें जाया करती थी।' बाहरसे वह स्थान साधारण मकान-जैसा लगता था, लेकिन बादमें मालूम हुआ कि वह सचमुच मन्दिर था और खास मौकोंपर ही खुलता था। इस महत्त्वपूर्ण ब्योरेने सभीको आश्चर्यमें डाल दिया। जब राजूलको गोकुलदासके घर दुबारा ले जाया गया तो उसके व्यवहारसे कान्ताबेनके प्रति गहरे भावनात्मक लगावका परिचय मिला।

कान्ताबेन रसोईघरमें चाय बना रही थी। राजूल फौरन उसके पास दौड़कर गयी और कहने लगी 'मैं तुम्हारे ही साथ चाय पिऊँगी माँ।'

(५)

स्वर्णलता

मध्यप्रदेशके जबलपुर और शाहपुरके बीचकी सड़क-परसे एक ट्रक जा रहा था। एक लड़की अपने पिताकी बगलमें बैठी थी। ट्रक जब इतरानीके पास पहुँचा तो लड़कीने ड्राइवरसे कहा—'ड्राइवर साहब! उधर ले चलो। बस, मुड़ जाइये और वह रहा हमारा घर।'

लड़कीका पिता और ड्राइवर दोनों अचम्भेमें पड़ गये; क्योंकि वे यहाँ किसीको जानतेतक नहीं थे।

अपने बेटोंसे मिली

लड़कीका नाम स्वर्णलता है। वह श्री एम० एल० मिश्रकी बेटी है, जो मध्यप्रदेशमें छत्रपुर जिलेमें 'असिस्टेंट इंसपेक्टर आफ स्कूल' हैं। बचपनसे ही स्वर्णलता बताती रही है कि उसका असली घर कटनीमें है और उसके दो बेटे हैं। उसके घरके बारेमें ठीक उसी तरह बताया, जैसा वह १८ वर्ष पहले था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छानबीनसे पता चला कि उसी घरमें १८ वर्ष पहले एक औरत बिंदियादेवी दिलकी धड़कन बंद हो जानेसे मर गयी थी। बिंदियादेवीके दो लड़के अब भी जीवित हैं।

स्वर्णलताको कटनी ले जाया गया, जहाँ उसने अपने दोनों बेटोंको पहचाना। उसने दूसरे लोगों, जगहों, चीजोंको भी पहचाना। बादमें, घरमें जो हेरफेर किये गये थे, उसके बारेमें भी उसने बताया।

अबतक स्वर्णलता बिंदियादेवीके भाइयों और बेटोंसे मिलने कटनी जाती रही है और बिंदियादेवीके घरके लोग भी उसे अपना मानते हैं।

स्वर्णलताने यह भी बताया कि कटनीके बाद उसका जन्म असममें किसी जगह हुआ था। वह असमीसे मिलती-जुलती जबानमें कुछ गीत भी सुनाती है।

एक और जिंदगी

स्वर्णलताके मामलेसे तीन नतीजे निकाले जा सकते हैं—यह मामला धोखाधड़ीका हो सकता है या याददाश्तकी गड़बड़ीका या पुनर्जन्मका।

छानबीनसे पता चला है कि यह कहानी मनगढ़ंत नहीं है; क्योंकि इसके पीछे न तो कोई निहित स्वार्थ है, न पैसा कमाने या प्रचारकी ललक। लड़की एक सम्मानित घरानेकी है और एक छोटी-सी लड़की कितनी बातें गढ़ सकती है, यह भी तो सोचना पड़ता है।

उनकी यादें उलझी हुई जरूर हैं, मगर तेजसे तेज बच्चेके लिये भी अपने-आप सब कुछ क्रमानुसार याद करना सम्भव नहीं है, जब कि माता-पिताका सहयोग न होकर, उपेक्षा हो।

घटनाओंका क्रम जोड़नेका कोई रास्ता भी नहीं था; क्योंकि कटनी और छत्रपुरके परिवारोंका आपसमें परिचय नहीं था। बातें १८वर्ष पहलेकी हैं और अभी उसकी बहुत-सी बातोंकी जाँच करनी बाकी है। धोखेबाजीकी गुंजाइश इसलिये भी कम है कि यदि ऐसा होता तो सभी बातें बड़े नपे-तुले ढंगसे बतायी जातीं। न तो धोखाधड़ी है, न 'स्मृति-विकार' ही; क्योंकि विकारकी कोई बात दीखती नहीं।

(६)

कृष्णकिशोर

कृष्णकिशोरको अपने जुड़वाँ भाई कृष्णकुमारसे बड़ा प्यार है। कृष्णकिशोर उसे अपनी हर चीज देता है। एक दिन जब उससे पूछा गया कि 'वह कृष्णकुमारको इतना क्यों चाहता है' तो उसने कहा कि 'वह उसका (कृष्णकिशोरका) रसोइया था।'

एक दिन बच्चेने अपनी माँको बताया कि 'उसे उनका खाना अच्छा नहीं लगता; क्योंकि वह 'अपने' घरपर बहुत अच्छा खाता था। उसे अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ मिलती थीं। उसके पास एक बंदूक, दो कारें और एक बड़ा घर था। उसके पाँच बेटे और पाँच बहुएँ थीं।' उसने यह भी बताया कि 'उसके घरका फर्श लाल था।' उसने कहा कि 'उसका नाम 'पुरुषोत्तम' था।'

किसी दिन उसने जब मिठाई माँगी तो उसे प्लेटमें थोड़ी शक्कर रखकर दी गयी। उसने गुस्सेमें यह कहकर प्लेट फेंक दी कि 'उसे पहले ढेरों रसगुल्ले मिलते थे।' और उसने यह भी कहा कि 'अगर उसे उसके घर न ले जाया गया तो वह मर जायगा।'

लड़का घरपर

लड़केके चाचा कौशलकिशोर उर्दूबाजारमें एक सर्राफ स्वर्गीय पुरुषोत्तमदासकी दूकानपर उसे ले गये। लड़केने कहा कि 'यह उसकी दूकान नहीं है।' फिर उसे पुरुषोत्तमदासके घर ले जाया गया। उसने कहा—'यह उसका घर नहीं है।'

फिर उसकी माँ उसे एक दूसरे पुरुषोत्तमदासके घर ले गयी। बहुतसे लोगोंने उसे घेर रक्खा था और प्रश्नोंकी झड़ीसे वह घबरा गया; परंतु घरके भीतर ले जानेपर लड़केने घर पहचानकर कहा कि 'यह उसीका घर है।' पूछनेपर पता चला कि पुरुषोत्तमदासके पास दो कारें थीं। बंदूक थी और वे मिठाइयोंके बड़े शौकीन थे।

(७)

गोपाल

'मैं ब्राह्मण हूँ, मैं शर्माजीका बेटा हूँ, मेरे पिता मथुरामें हैं।'

'क्या तुम्हारा कोई भाई भी है?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जी हाँ, मेरे तीन भाई थे और उनमेंसे एकने मुझे गोलीसे मार डाला।'

यह बातचीत दिल्लीमें एक गुप्ता और उनके बेटे गोपालकी है।

गोपालका जन्म १९५६ में हुआ था। बातचीतके दौरान उसने कहा कि 'वह मथुराका रहनेवाला है और पिछले जन्ममें उसके 'सुख-संचारक कंपनी' नामक एक दवाओंकी दूकान थी।'

गोपालके माता-पिताने इन बातोंको पहले तो कोरी बकवास ही समझा; किंतु बादमें बच्चेकी बार-बारकी रटको देखकर एक दिन पिताने अपने कुछ मित्रोंसे इसकी चर्चा की। उन्होंने कहा—'सम्भव है कि बच्चा जो कुछ कहता है, वह ठीक हो; क्योंकि कुछ साल पहले मथुरामें 'सुख-संचारक कंपनी'के मालिक श्रीशक्तिपाल शर्मा गोलीसे मारे तो गये थे।' इसलिये गोपालके पिता मथुरा गये और वहाँ आसानीसे ही शक्तिपाल-के परिवारसे मिलकर उन्होंने सचाईका पता लगाया।

जब श्रीशक्तिपालके परिवारको यह मालूम हुआ कि दिल्लीमें एक लड़का पिछले जन्ममें शक्तिपाल होनेका दावा करता है, तो शक्तिपालकी पत्नी और भाभी दिल्ली आयीं और गोपालसे मिलीं। गोपालने दोनोंको पहचान लिया। उसने भाभीसे तो बात की, परंतु पत्नीसे एक शब्द भी नहीं कहा।

जाँचसे पता चला कि वह अपनी पत्नीसे बहुत नाराज था। 'मैंने इससे पाँच हजार रुपये माँगे थे, पर इसने देनेसे इन्कार कर दिया और कहा कि कंपनीसे जाकर लो। मैं वहाँ गया और मेरे छोटे भाईने मुझे गोलीसे मार डाला।'

श्रीशक्तिपाल शर्माकी विधवाने इस बयानकी तस्दीक की।

मेरी दूकान—

इसके बाद गोपालको मथुरा ले जाया गया कि देखें वह पिछली चीजोंको पहचानता है या नहीं। द्वारकाधीश मन्दिरके पास उससे कहा गया कि वह स्वयं आगे-आगे चलकर 'अपने घर' का रास्ता बताये। लड़का जैसे ही 'सुख-संचारक कंपनी'के पास पहुँचा, उसने जोरसे पुकारकर कहा—'यह रही मेरी दूकान'।

फिर पेंचदार गलियोंसे होता हुआ वह श्रीशक्तिपालके घरके सामने खड़ा हो गया। उसने कहा—'यह मेरा घर है। मैं ऊपरवाले कमरेमें रहता था।' घरमें उसने शक्तिपालकी बेटीको पहचाना। उसे एक एलबम दिया गया, जिसमें लगे हुए शक्तिपालके सभी फोटोग्राफोंको उसने अपने फोटो बताया।

फिर उससे वह जगह पूछी गयी, जहाँ उसे गोली मारी गयी थी। कहा जाता है कि उसने दुबारा कंपनीमें जाकर ठीक वही जगह बतायी, जहाँ शक्तिपालको गोली मारी गयी थी। उसने पूरी घटनाका वर्णन किया कि वह दूकानमें किस जगह और किस तरह खड़ा था और गोली किस दिशासे आयी थी और उसके कहाँ लगी थी।

शक्तिपालके बेटेने गोपालके बयानोंकी तस्दीक की।

स्वार्थ नहीं—

यह धोखाधड़ीका मामला नहीं लगता; क्योंकि लड़केके माता-पिताने इस घटनाका न कभी प्रचार किया था और न उन्हें इससे कोई आर्थिक लाभ ही हुआ था। धोखाधड़ीके पीछे कोई स्वार्थ होना ही चाहिये।

न इस मामलेको हम स्मृतिकी विकृति या तोड़-मरोड़ ही कह सकते हैं; क्योंकि बच्चेके हर बयानकी तस्दीक हुई। फिर हमारे पास इन बातोंका क्या जवाब है कि उसने बहुत-सी चीजें न सिर्फ सही-सही पहचान लीं, बल्कि अलग-अलग लोगोंके साथ उसका व्यवहार भी ठीक वैसा ही रहा जैसा कि शक्तिपालका था। क्या कोई अति दिव्य निमित्त सम्भव है?

जीवनभर हृदयसे भगवान्‌का स्मरण करो

जैसे कर्म किये जीवनभर जैसे मनमें रखे विचार।
अन्तकालका भाव मनुजका होगा उसके ही अनुसार॥
तदनुसार ही सद्गति, दुर्गति होगी उसे प्राप्त अनिवार।
अतः रखो प्रतिपल ही मधुमय भगवत्स्मृतिमें हृदय उदार॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्जन्म तथा मृत्यु एवं पुनर्जन्मके समयान्तरकी कुछ घटनाएँ

(लेखक—आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्० ए०, [हिंदी- संस्कृत] साहित्यरत्न)

वेदों, उपनिषदों, पुराण-ग्रन्थोंसे पुनर्जन्म तो प्रमाणित ही है, प्रत्यक्ष प्रमाणोंद्वारा भी पुनर्जन्म प्रमाणित है। अनेक बालक और बालिकाओंने अपनी पुनर्जन्मसम्बन्धी आख्याओं-द्वारा इस तथ्यको प्रमाणित कर दिया है। यहाँपर एक छोटा-सा, किंतु गम्भीर प्रश्न उपस्थित किया जा रहा है कि 'पुनर्जन्म और मृत्युके बीच कितना समय लग जाता है? क्या इसकी कोई नियत अवधि है? क्या पुनर्जन्म 'जीवात्मा'के अधीन है? क्या प्रेतयोनि और पुनर्जन्ममें जो समयान्तर होता है, उस अन्तरको कम किया जा सकता है?' इत्यादि प्रश्न बहुत गूढ़ और विचित्र हैं। यहाँपर मैं कुछ उद्धरणोंद्वारा, घटित घटनाओंद्वारा कुछ आँकड़ोंको उपस्थित कर रहा हूँ।

(१)

बालक सुनीलदत्त

उत्तरप्रदेशमें बदायूँ एक जिला है। बदायूँमें एक कालेज है, जिसका नाम 'श्रीकृष्ण इन्टर कालेज' बदायूँ है। उसके संस्थापक थे सेठ श्रीकृष्ण, जिनका २४।४।५१ को देहान्त हो गया। उनका पुनर्जन्म जिला मथुरामें हुआ और इस रहस्यका उद्घाटन पुनर्जन्म प्राप्त करनेके बाद हुआ। इस घटनाका विवरण लखनऊसे प्रकाशित होनेवाले 'नवजीवन'के अतिरिक्त भारतके प्रायः सभी प्रमुख पत्रोंमें प्रकाशित हुआ था। बालकने अपने पुनर्जन्मके वृत्तान्तमें आजकलके एक उच्चाधिकारीका भी उल्लेख किया था, जो अभी जीवित है। उनका नाम है—श्रीजनार्दनदत्त शुक्ल आई० सी० एस०। १९४८ ई०में ये जिला बदायूँमें जिलाधीश थे। बदायूँका 'श्रीकृष्ण इन्टर कालेज' इनकी ही प्रेरणासे सेठ श्रीकृष्णजीने बनवाया था। 'नवजीवन'में इस तथ्यकी भी चर्चा की गयी है। यह समाचार सन् १९६४में जनवरी महीनेमें छपा था। तीन जनवरी १९६४ को उस बालककी आयु लगभग पाँच साल बतायी गयी है। इस प्रकार आठ वर्षके बाद अर्थात् सन् १९५८ के लगभग उस बालकका जन्म हुआ होगा, जो अपने इस जन्ममें अपनेको बदायूँका सेठ श्रीकृष्ण बताता था। बालकने बदायूँ जाकर जितने तथ्योंको पहचाना और हजारों लोगोंसे अपने पहलेके जीवनके प्रमाण दिखाये। उन प्रमाणोंसे सभी लोग प्रभावित हुए। बालकने अपने पहलेके जीवनके चित्र, मकान, कालेज, मिल, सामान आदि तो पहचाने ही थे, उसने अपने कालेजके उन प्रधानाचार्यको पचीसों आदमियोंके बीचमें पहचाना, जो सन् १९६३में प्रधानाचार्य नहीं थे। उनका नाम श्री एस० डी० पाठक है। बालक जिसका नाम सुनीलदत्त बताया जाता है, उसने अपने पहले जन्मकी पत्नी श्रीमती शकुन्तला-देवीको भी पहचान लिया और उनको देखनेपर उसकी आँखोंमें आँसू छलक आये। बालक सुनीलदत्तने कालेजको दिये गये उपहारों और मन्दिरोंमें भेंट किये सामानोंको भी पहचाना था। संक्षिप्तमें यह जान लिया जाय कि उसने अपना पुनर्जन्म सिद्ध कर दिया। इतने प्रमाणोंके बाद यदि किसीमें हठवादिता रहे, तो क्या किया जाय?

अब यह प्रश्न रह जाता है कि सन् १९५१ और ५९में जो अन्तर रह गया, उस समयान्तरमें जीवात्मा (सेठजीका जीवात्मा) कहाँ रहा? इस प्रश्नके उत्तरमें यही कहा जायगा कि वह जीवात्मा प्रेतयोनिमें भ्रमण करता रहा। प्रेतयोनिकी वास्तविकता प्रमाणित है। हमारे शास्त्रोंमें, पुराणग्रन्थोंमें, प्रेतयोनिकी जो स्थिति और प्रेतयोनिमें रहनेकी बात लिखी गयी है, वह कपोलकल्पित नहीं है। हाँ, समयान्तरके सम्बन्धमें आवश्यक विचार करना चाहिये। पुराणोंमें लाखों वर्ष प्रेतयोनिमें रहनेका भी उल्लेख मिलता है। यह तो सबको अनुभव हुआ होगा कि कष्ट प्राप्त होनेपर वह समय बहुत कठिनतासे कटता है और सुख प्राप्त होनेपर समय बीतते देर नहीं लगती। पुनर्जन्मकी एक घटनाके उल्लेखमें मैंने पढ़ा है कि महान् संकटवाली यम-यातनाकी यात्रामें एक मृतात्मा यमदूतोंकी भूलसे पकड़में आ गया और यमराजके दरबारमें गया। जब यमदूतोंकी भूल ज्ञात हुई तो वह वहाँसे वापस हुआ। उसके बयानसे प्रतीत हुआ कि कई वर्ष उसे उस यात्रामें लगे। अपने पहलेके शरीरमें वापस आनेपर उसने घरवालोंको और पास-पड़ोसवालोंको बताया कि मुझे यह अनुभव हुआ कि 'मुझे कई वर्ष लग गये।' घरवाले उसे मृतक समझ, उसके अन्तिम संस्कारके लिये प्रबन्ध कर ही रहे थे कि उसका जीवात्मा वापस आ गया। घरवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत प्रसन्न हुए। अब यह प्रश्न यहाँपर बहुत महत्त्वपूर्ण स्थितिमें आ जाता है कि जीवात्माको पुनः उसी शरीरमें वापस आनेमें केवल घंटोंका समय लगा, किंतु उस जीवको वर्षों प्रतीत हुआ। मुझे यह प्रतीत होता है कि यह समयान्तर केवल अनुभवसे ही अधिक और कम ज्ञात होता है।

(२)

बालक करीम उल्लाह

भारत और पाकिस्तानका बँटवारा १९४७ में हुआ था। बँटवारेके बाद बरेलीमें एक मुस्लिम परिवारमें पुनर्जन्म-सम्बन्धी घटना घटी। बरेलीमें ही एक प्रतिष्ठित मुसल्मान श्रीइकराम अली हैं। उनके दो लड़के बताये गये हैं। एक पाकिस्तानमें हैं और दूसरे भारतमें ही रह गये। भारतमें (बरेलीमें) रहनेवाले लड़केका नाम श्रीमोहम्मद फारूक था। मोहम्मद फारूककी मृत्यु १९५४ ईस्वीमें हुई और उनका जन्म उसी सन्‌में बरेलीमें ही एक मुसल्मान-परिवारमें हुआ। इस घटनाका रहस्य तब मिला, जब मुस्लिम अध्यापक रहमतुल्लाह अन्सारी ईद मिलने अपने पाँचवर्षीय पुत्रके साथ श्रीइकराम अलीके यहाँ पहुँचे। श्रीइकराम अलीके यहाँ अन्सारी साहब बच्चोंको पढ़ाते थे और ईदके दिन वे अपने बच्चेके साथ मिलने गये। उस मकानमें, जिसमें इकराम अली साहब रहते थे, पहुँचकर श्रीअन्सारीके पञ्चवर्षीय बालकने सबको अचम्भेमें डाल दिया और अनेक मौलवियोंको अपने मजहबके विरुद्ध पुनर्जन्म-सिद्धान्तकी ओर आकृष्ट कर दिया। बालकने अपने पूर्वजन्ममें, जब वह मोहम्मद फारूकके नामसे श्रीइकराम अलीका लड़का था, अपने समस्त सामानोंको पहचाना और अपने पूर्वजन्मकी बीबी श्रीमती फातिमा बेगमको भी पहचाना। उनसे बातें भी उसी रूपमें कीं और उसने कई ऐसे रहस्योंको भी उद्घाटित किया, जिन्हें केवल दिवंगत मोहम्मद फारूक और श्रीमान फातिमा बेगम ही जानती थीं। उसने एक बंदूक और अपने भाईके पास पाकिस्तानमें अपने द्वारा भेजे गये पाँच हजार रुपयेका भी रहस्य बताया। उसने यह भी बताया था कि उसका निजी हिसाब बैंकमें तीन हजार मरनेके समय था। जब भावावेशमें आकर उस बालकको फातिमा बेगमने अपनी गोदमें बैठाना चाहा, तो उस बालकने कहा—'तुम मेरी बीबी हो फातिमा! मैं अपनी कुर्सीपर बैठूँगा।' और वह बालक फातिमा बेगमकी गोदीमें नहीं बैठा। यह समाचार कई पत्रोंमें छपा था। वाराणसीके 'संसार'में (३।७।५९) में भी छपा था। इस घटनासे मृत्यु और पुनर्जन्मके ठीक दिनाङ्कका पता तो नहीं चला; किंतु वर्षका पता तो चल ही गया। मोहम्मद फारूक १९५४ में मरे थे और उसी सन्‌में उनका उसी बरेली नगरमें जन्म हो गया था।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णजीने जो घोषणा की है, उसका साधारण अर्थ यदि यही मान लिया जाय कि मरणके बाद जीवात्माको तुरंत दूसरा शरीर धारण करना पड़ता है तो दूसरा शरीर धारण करनेमें समयका कितना व्यवधान पड़ता है? इसका उत्तर **'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय'** की साधारण व्याख्यासे नहीं मिल सकता। आचार्योंने बहुत प्रकारसे इस श्लोककी व्याख्या उपस्थित की है। बृहदारण्यक उपनिषद्‌में पुनर्जन्मकी व्याख्या विशेषरूपसे की गयी है। जैसे भोजन करनेके बाद उसे पचानेमें कुछ समय लगता है और पचनेके बाद पुनः भोजन करनेकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मरनेके बाद जीवको 'कर्मविपाक'के लिये कुछ समयतक रुकना पड़ता है। कर्मविपाक, एक ऐसा पवित्र और सत्य सिद्धान्त है कि उसकी सत्यता और निश्चयतामें किसीको व्यावहारिक-रूपसे संदेह नहीं होना चाहिये। कुछ उपनिषदों और अन्यान्य ग्रन्थोंमें पुनर्जन्मके विषयमें यह लिखा है कि 'मरणोत्तर जीवात्माको कर्मानुसार सूक्ष्मशरीर, स्थूलशरीर, लिङ्गशरीर आदिमें अपने कर्मोंके फल भोगने पड़ते हैं। जीवके लिये जन्म और मरण—दो ही अवस्थाएँ ही नहीं हैं। इन दोनों अवस्थाओंके बीच प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय अवस्थाएँ भी बितानी पड़ती हैं। इस प्रसङ्गमें भारतीय पुराण-ग्रन्थों और उपनिषदोंमें विशेष उल्लेख प्राप्त होते हैं। मैंने यहाँ कुछ प्रसङ्ग उन घटनाओंसे लेनेका प्रयत्न किया है, जिनमें बालकोंद्वारा अपनी स्मृतिके आधारपर पुनर्जन्मके उल्लेख हुए हैं।

(३)

साढ़े तेरह महीने बाद पुनर्जन्म

'ज्योतिर्विज्ञान' नामक एक मासिक पत्रिकामें, श्रीचतुर्भुज शास्त्रीने एक लेख लिखकर पुनर्जन्म ग्रहण करनेवाली एक बालिकाके पुनर्जन्मका उल्लेख किया है। उस उल्लेखसे यही प्रमाणित होता है कि उस बालिकाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्युके बाद लगभग साढ़े तेरह महीनेपर पुनः जन्म ग्रहण किया। उस बालिकाको अपने पुनर्जन्मकी स्मृतिके साथ ही पहले जन्ममें मृत्युके समय यमदूतोंके व्यवहारका भी स्मरण है या रहा है। पत्रिकामें छपे लेखके कुछ अंश निम्न प्रकारसे हैं। "विक्रम संवत् १९५८, पौष शुक्ल दशमी, रविवार, तदनुसार दिनाङ्क १८ जनवरी १९०२ ई० को मथुराके नगला पादसा मुहल्लेमें पं० दुर्गारामजी मुहल्लेदारके पुत्र श्रीचतुर्भुजजी चतुर्वेदीके घर एक कन्याका जन्म हुआ, जिसका नाम लुगदी बाई था। संवत् १९६६ के फाल्गुन मासमें उसका विवाह उसी मुहल्लेमें महादेवजी चतुर्वेदीके पुत्र श्रीकेदारनाथजीके साथ हुआ।.....उसके पातिव्रतके प्रभावसे घरमें सब प्रकारकी सुख और समृद्धि थी। बड़ी शान्ति और आनन्दसे जीवनयात्रा चल रही थी। इस प्रकारके सुखमय जीवन-यापनको कराल काल सहन नहीं कर सका।

संवत् १९८२ कार्तिक कृष्ण २ को प्रातःकाल दस बजे श्रीमती लुगदी बाईकी संसारयात्रा समाप्त हो गयी। अपने जीवनके अन्तिम क्षणोंतक उसके जीवनका लक्ष्य केवल पति-सेवा रहा और पतिके स्वरूपका ध्यान करते हुए ही उसने इस संसारका परित्याग किया। उसका जन्म दिल्लीमें हुआ। बाबू शिवप्रसादजी कायस्थके सुपुत्र बाबू रंगबहादुरजी माथुरके घर उसका मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, दिन शनिवार, संवत् १९८३, दिनाङ्क ११ दिसम्बर १९२७ के दोपहरको १ बजकर २६ मिनटपर जन्म हुआ। बाबू रंगबहादुरजी उस समय दिल्लीके चीराखाना मोहल्लेमें घर नं० ५६५ में निवास करते थे। इस नवीन जन्म लेनेवाली कन्याका नाम 'शान्ति देवी' रक्खा गया।

जन्मकालसे चार वर्षकी अवस्थातक उसमें बातचीत करनेकी शक्ति नहीं थी। चार वर्षके उपरान्त जब वह बातचीत करने लगी, तब अपने परिचयमें कहती थी—'मैं मथुराकी चौबन हूँ।' पतिका नाम पूछा जानेपर वह भारतीय धर्मके अनुसार नाम बतानेके बदलेमें मौन हो जाया करती थी। किंतु जब पढ़ना-लिखना आ गया तो वह अपने पतिका नाम पं० केदारनाथ लिख दिया करती थी। घरमें जब इस बालिकाके पुनर्जन्मकी चर्चा होती तो कुछ लोग विनोद-में इससे भाँति-भाँतिके प्रश्न किया करते थे और उनका उत्तर अत्यन्त समाधानपूर्ण मिलता था। एक दिन एक मसखरेने अत्यन्त विनोदपूर्ण भाषामें उस कन्यासे कहा कि उसके पति पं० केदारनाथजीका स्वर्गवास हो गया तो उसे महान् आन्तरिक क्लेश हुआ और उसने उसी दिनसे भगवान् विष्णुका एक चित्र अपने पास रख लिया और उसीकी नित्य नियमपूर्वक उपासना करने लगी। इस उपासनाके साथ ही वह बड़े दर्दसे रो-रोकर मथुरा जानेके लिये अपने अभिभावकोंको प्रेरित करने लगी। उनसे अनुनय-विनय की। परस्पर पत्र-व्यवहार हुआ और अन्तमें एक दिन उसकी भेट उसके पूर्वजन्मके पति पं० केदारनाथजीसे करायी भी गयी। उस कन्यासे परलोकके सम्बन्धमें भी बातचीत की गयी। वह वहाँ कहती थी कि 'जब मथुरामें मेरी मृत्यु हुई, तो चार व्यक्ति कुछ प्रकाश-सा लिये मुझे लेने आये। उनमेंसे एकके हाथमें कागज भी था। वह व्यक्ति उसपर लेखनीसे कुछ लिखता भी जाता था। मैं उन्हींके पीछे-पीछे अन्धेरेमें जा रही थी। वे लोग प्रकाशमें थे। वे लोग आसमानमें मुझे बहुत ऊँचे स्थानपर ले गये। वह स्थान धुएँ और बादलोंसे आच्छादित था। वहाँ पहुँचनेपर वे लोग अदृश्य हो गये और मैं वहाँ अकेली रह गयी। नीचे गिरते हुए मैंने देखा कि वहाँ चाँदी-जैसी चमकदार सीढ़ियाँ भी लगी हुई थीं। जैसे ही मैं नीचे गिरी मुझे एक अंधेरी तंग कोठरीमें बंद कर दिया गया।' इस घटनाके उल्लेखसे 'कर्मविपाक'के ऊपर भी प्रकाश पड़ता है। लगभग साढ़े तेरह महीनेकी अवधिमें श्रीमती लुगदी बाईकी स्थिति कहाँ रही? उनका प्रेतात्मा या जीवात्मा कहाँ भटकता रहा? इस उल्लेखमें वर्णित चार व्यक्तियों द्वारा उनके जीवात्माको आसमानके ऊपर ले जाने और पुनः छोड़ देनेकी बातको क्या माना जाय? ये सब बातें पौराणिक चर्चाओंसे बिल्कुल ताल-मेल खाती हैं। कर्मविपाकके सिद्धान्तके अनुसार श्रीमती लुगदी बाईका पुनर्जन्म और उनके मरणकालमें जो समयान्तर हुआ वह 'कर्मविपाक' के निमित्त ही हुआ।

(४)

बालक अवधेश

वाराणसीके 'संसार'में ही निम्न प्रकारसे समाचार छपा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। संयोगसे समाचारकी तिथि फट जानेके कारण यहाँ उसका निर्देश नहीं किया जा रहा है। घटनाका विवरण निम्नप्रकारसे है—"शाहजहाँपुरका चारवर्षीय बालक अवधेश, जो स्वयंको पूर्वजन्मका कोटाहारका जागीरदार गजेन्द्रसिंह बताता है, प्राप्त सूचनाके अनुसार कोटाहारस्थित भवनमें स्वर्गीय गजेन्द्रसिंहजीकी विधवाका महमान है। इस बालक अवधेशका जन्म 'सिंपुरा' गाँवके एक ठाकुर परिवारमें हुआ है। बताया जाता है कि उसने अपनी माँको, अपने पिछले जन्मकी कथा सुनाते हुए कहा कि, 'उसे उसके पुराने कोटाहार-स्थित भवनमें रहनेका अवसर दिया जाय।' उल्लेखनीय है कि स्वर्गीय गजेन्द्रसिंह कोटाहारके प्रभावशाली जागीरदार थे। एक मामलेके सिलसिलेमें अदालतमें सुनवाई जारी थी कि उसके निर्णय सुनाये जानेके पूर्व दिल्ली अस्पतालमें उनकी मृत्यु हो गयी। उक्त बालकके इस तथा पूर्वजन्मके वृत्तान्तकी चर्चा स्वर्गीय गजेन्द्रसिंहकी पत्नी तक पहुँची तो उन्होंने बालकको अपने पास बुलाया। वहाँ पहुँचनेपर उस बालकने अपने पूर्वजन्मके सभी प्रत्येक वस्तुको पहचान लिया और अपने परिवारके प्रत्येक सदस्यको, उनके नामोंसे पुकारने लगा। बालककी अनेक बातोंसे उसके कथनकी पुष्टि हो चुकी है। बालकका आचरण स्वर्गीय गजेन्द्रसिंहके समान देखकर रानी साहिबाने ब्राह्मणोंको भोज तथा गरीबोंको दान देकर हर्ष मनाया।

"पूर्वजन्मकी विविध बातोंमें, उक्त बालक अवधेश उस दुःखद परिस्थितिका भी वर्णन करता है, जिसमें स्वर्गीय गजेन्द्रसिंहकी दुःखद मृत्यु हुई थी। दूसरी बात यह भी बताते हैं कि 'एक बार शेरका शिकार करते समय वह अपने एक हाथको खो बैठा था।' कहा जाता है कि उक्त बालकने रानी साहिबाको उनके अपने सम्बन्धकी अन्य कितनी ही बातें बतायीं।" ('संसार' वाराणसी)

(५)

बालक लवकुश

यह समाचार भी अन्य पत्रोंके साथ वाराणसीके 'संसार' (२४-९-६१) में प्रकाशित था। "आगरा, ताजगंजके अन्तर्गत कुँआखेड़ाके लवकुश नामक एक बालक (ढाई वर्षीय बालक) के द्वारा अपने पूर्वजन्मकी बातें बताकर, गाँववालोंको आश्चर्यचकित कर देनेका समाचार मिला है। इस बालकको देखनेके लिये सैकड़ों गाँववाले नित्य आ रहे हैं। समाचारोंके अनुसार उक्त बालकने अपने पूर्वजन्मके घाघूपुराका नाम बताया, जो कुँआखेड़ासे एक मीलकी दूरीपर है। साथ ही उसने अपने परिवार और अपने नामके बारेमें सारी बातें बतायीं, जो सही साबित हुईं।

"लड़केने बताया कि उसका पूर्वजन्मका नाम 'शिवशरण' है तथा उसको एक रातको कुछ व्यक्तियोंने सोते हुए कत्ल कर दिया। स्मरण रहे कि लगभग ढाई साल पूर्व घाघूपुरा गाँवमें शिवशरणसिंहका खून हुआ था, जिसमें लाशके सिरका अभीतक पता नहीं चल पाया है।

"इसके अलावा बालकने बताया है कि मेरे कुछ रुपये घरके एक कोनेमें एक स्थानपर एक गिलासमें गड़े हुए हैं। जिसकी गाँववालोंने जाँच की तो बताये हुए स्थानपर रुपये गिलासमें गड़े हुए मिले।" (संसार २४-६१)

प्रारब्ध नहीं बदल सकता

प्रारब्धका न तो फल भुगताये बिना नाश होता है, न प्रारब्ध बदल सकता है। परंतु मनुष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र होनेके कारण यदि सम्यक् प्रकारसे शास्त्रोक्त देवाराधन, सेवा, भगवदाराधन आदि प्रबल कर्म करे तो तुरंत नवीन प्रारब्धका निर्माण हो सकता है और वह प्रारब्ध फलदानोन्मुख पहले प्रारब्धके बीचमें अपना फल दे देता है। जैसे—फलदानोन्मुख प्रारब्धमें पुत्र-प्राप्तिका योग नहीं है, पर यदि पुत्रेष्टि-यज्ञ विधिपूर्वक सम्पन्न हो जाय तो नवीन प्रारब्धके निर्माणसे पुत्र-प्राप्ति हो सकती है। इसी प्रकार अन्यान्य विषयोंके लिये भी समझना चाहिये। प्रबल शाप-वरदानसे भी तुरंत नया प्रारब्ध बन सकता है। वास्तवमें उत्तम तो यही है कि भौतिक प्राणि-पदार्थ-परिस्थितियोंके लिये प्रारब्ध-निर्माणका प्रयत्न न कर भगवान्‌का निष्काम भजन करना और प्रत्येक अनुकूल-प्रतिकूल भोगको भगवान्‌का मङ्गल विधान मानकर नित्य प्रसन्न रहना चाहिये। संसारकी प्रत्येक स्थितिमें समता और भगवान्‌में अनन्य ममता करनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्जन्मकी कुछ घटनाएँ

(१)

होटलवालेका पुनर्जन्म

(प्रेषक—श्रीअजयकुमार बजाज)

यह घटना लगभग बारह वर्ष पूर्वकी है जो मेरे घनिष्ठ मित्र श्री क···के जीवनमें घटी थी और उन्हींके मुखसे सुनी हुई मैं यहाँ लिख रहा हूँ—

"उन दिनों मैं एक बड़े औद्योगिक शहरमें नौकरी करता था। दफ्तरके पास ही मैंने एक कमरा किरायेपर ले रक्खा था और पासके ही एक साधारण होटलमें खाना खाता था। मैं जिस होटलमें खाना खाता था, वहाँके सारे ग्राहक मिल-मजदूर थे और उनमें अगर कोई सफेदपोश पढ़ा-लिखा बाबू उस होटलमें खाता था तो वह शायद मैं ही था। खास बात यह थी कि उस होटलके मालिकके दो लड़के मिलमें काम करते थे। इसलिये मुझसे उनका बहुत काम पड़ता था। इन्हीं कारणोंसे मैं इस होटलका विशेष ग्राहक बन गया था। जिस मेजपर मैं खाना खाता था, उसकी मेरे खानेसे पहले अच्छी तरह सफाई होती थी और त्योहारोंपर जब कोई पकवान बनाया जाता था तो मेरी राय अन्तिम मानी जाती थी। प्रतिदिन मेरी ही पसंदकी सब्जी बनती। मेरी थालीमें ज्यादा दही परोसा जाता। होटलका मालिक गंगाधर पचपन सालका एक वृद्ध, किंतु हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति था। जवानीमें वह अखाड़ा चलाता था। वह मेरी आदतोंसे खूब परिचित हो गया था। मेरे लिये बगैर कहे कड़क चाय बनती। ४ बजे बिना मँगाये मेरे दफ्तरमें नौकर चाय लाता। खाना खानेके बाद मेरे लिये तुरंत पान मँगा दिया जाता और बिना कहे उसमें मैनपुरी तम्बाकू डाली जाती। मेरा खाना होनेके बाद वह अपने कंधेपर लटकी तौलिया मुझे हाथ पोंछनेके लिये देता। उसका यह क्रम अबाधगतिसे उस समयतक बराबर जारी रहा, जब-तक कि मेरा दूसरे शहरको तबादला नहीं हो गया।

"लगभग २० सालतक फिर मुझे लौटनेका मौका नहीं मिला और धीरे-धीरे मैं उसे भूल गया। एक बार बीचमें पता लगा था, गंगाधर होटलवाला मर गया। यह घटना मेरे होटल छोड़नेके शायद एक साल बादकी थी।

"अचानक २० साल बाद मुझे सरकारी कामसे वापस उसी शहरमें पुराने आफिसमें एक दिनके लिये जाना पड़ा। अब वह बस्ती काफी बदल गयी थी। एकके स्थानपर छः-सात होटल खुल गये थे; पानकी भी कई दूकानें हो गयी थीं और मेरे दफ्तरके आस-पास अच्छा खासा बाजार तैयार हो गया था।

"मैंने गंगाधरके होटलके बारेमें पूछा तो मुझे एक बड़े शानदार होटलमें ले जाया गया। होटलकी रंगत बिल्कुल बदल गयी थी। अब वहाँ नये ढंगका फर्नीचर मौजूद था और कोनेमें रेडियो बज रहा था। बैठते ही मेरे बिना माँगे मेरी टेबलपर आठ-नौ सालका एक लड़का चाय रखकर चला गया। मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि आखिर यह लड़का बिना पूछे मेरे लिये कड़क चाय ही क्यों रख गया। मैं इस होटलमें पहले ऐसी ही चाय पीनेका आदी था। रातको खानेके समय उसी लड़केने बिना माँगे मेरी थालीमें मेरी पसंदकी सब्जी परोस दी। मैंने देखा कि दूसरे ग्राहकोंकी अपेक्षा मेरी थालीमें अधिक दही परोसा गया था और मौजूद होते हुए भी टमाटरका साग मुझे नहीं परोसा गया था। न जाने क्यों मुझे टमाटरका साग बिलकुल पसंद नहीं था और २० साल पहले मैंने गंगाधरसे कह रक्खा था कि 'मुझे टमाटरका साग कभी न परोसा जाय।' किंतु उसे मरे नौ साल बीत गये थे। यहाँ कोई आदमी मुझे पहचानता न था; फिर इस लड़केने मुझे क्यों टमाटरका साग नहीं परोसा; इसलिये मैंने पूछा—'तुमने मुझे टमाटरका साग क्यों नहीं परोसा?' 'आपको अच्छा नहीं लगता, इसीलिये।' 'तुम्हें क्या पता? मुझे तो यहाँ कोई नहीं पहचानता।'

'आप बीस साल पहले यहाँ खाना खाते थे, तब आपको टमाटरका साग पसंद नहीं था।'

'पर तुम तो ८-९ सालके बच्चे हो; २० साल पहलेकी बातें तुम्हें कैसे मालूम?'

'हाँ, ठीक है। किंतु मैं तब भी इसी होटलमें था, तब मैं इतना छोटा नहीं था।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जवाब सुनकर मैं सन्नाटेमें आ गया । सोचा, शायद यह बहक रहा है । इसलिये फिर पूछा—'तुम्हार नाम ?' 'लोग मुझे बालमुकुन्द कहते हैं और समझते हैं कि मैं यहाँ नौकर हूँ। पर मेरा नाम गंगाधर है। मैं इस होटलका मालिक हूँ ।'

"मेरे पैर थर-थर काँप रहे थे । मैंने मुँह-हाथ जल्दी-जल्दी धोया और दफ्तर लौट आया । उस समय रातके ९ बजे थे और मेरे सोनेका प्रबन्ध दफ्तरके ही एक कमरेमें किया गया था । इसी रातको १२ बजे लौटना था। समयपर स्टेशन पहुँचा । साथमें मेरे दफ्तरका चपरासी और मेरे एक क्लर्क मित्र स्टेशन आये । जब हम स्टेशन पहुँचे तो मैं यह देखकर चकित रह गया कि बालमुकुन्द भी वहाँ मौजूद था । मैंने उससे बहुत कम बातें कीं । इतनेमें ट्रेन आ गयी । जब गाड़ी चलने लगी तो उसकी आँखोंमें आँसू आ गये । वह बोला—'अच्छा, जल्दी ही मिलूँगा ।'

"मैंने दोस्तके कानमें कहा—'शायद गंगाधर फिर पैदा हो गया है । तुम इस लड़केपर नजर रखना और मुझे इसके बारेमें खबर भेजते रहना ।' इन २० वर्षोंमें मेरी शादी हो चुकी थी । मेरी पत्नी गर्भवती थी । प्रसूतिगृहमें भर्ती की गयी । इसके सात दिनों बाद मैं लड़केका बाप बना । मुझे रोज अस्पताल जाना पड़ता । दो-तीन दिन बाद जब मैं अस्पतालसे एक शामको घर लौटा तो मैंने अपने नाम दरवाजेपर एक लिफाफा पड़ा पाया । खोलकर पढ़ा तो मुझे ऐसा लगा कि जैसे किसीने मेरे गालपर भरपूर तमाचा मार दिया हो । पत्रमें बालमुकुन्दकी मृत्युका समाचार था । पाँच वर्ष बिना किसी महत्त्वपूर्व घटनाके बीत गये और मैं धीरे-धीरे बालमुकुन्द और गंगाधरको भूलने लगा; पर कभी-कभी बालमुकुन्दका चेहरा अचानक मेरे सामने आ जाता और तब मुझे ऐसा महसूस होता जैसे मेरे सीनेमें किसीने लात मार दी है ।

"मेरा लड़का मोहन जब पाँच सालका था, एक दिन मेरी पत्नीने उससे पूछा—'बेटा ! तू डाक्टर बनेगा ?' 'नहीं ।' 'तो वकील बनेगा ?' 'नहीं ।' 'जज बनेगा ?' 'नहीं ।' 'तो क्या करेगा ?' 'मैं होटल चलाऊँगा माँ !'—वह बोला । उस समय मैं लिख रहा था । उत्तर सुनते ही मेरी कलम छूट गयी । पर मैंने अपनेको संयत कर लिया और देवी-देवताओंको मनाने लगा । एक दिन मैं दफ्तरसे लौटा और खाना खाने बैठा तो मैंने देखा कि पत्नीने टमाटरका साग बनाया है । साग देखकर मोहन चिल्लाया—'बाबूजी टमाटरका साग नहीं खाते । उन्हें अच्छा नहीं लगता ।' मैंने झपटकर उसका मुँह पकड़ लिया और कहा—'मोहन ! ऐसा नहीं कहते ।'

'क्यों, पहले तो तुम टमाटरका साग नहीं खाते थे ।' 'कब ?' 'पहले, बहुत साल पहले ।'

"आगे उससे बात करनेकी मेरी हिम्मत नहीं थी । मैंने फिर एक बड़ी गलती की । मैंने अपनी पत्नीको अलग बुलाकर कहा—'मैं एक होटलमें खाना खाता था । वहाँका मालिक गंगाधर ही हमारे यहाँ पैदा हो गया है ।' और दूसरे दिनसे ही मोहनको बुखार आने लगा । एक सप्ताह बाद मोहन मर गया । उसके अन्तिम समयमें मैंने उससे पूछा था—'मोहन ! तुम मुझे कबतक छलते रहोगे ?'

"वह मुस्कराकर बोला था—'अब नहीं मिलेंगे !' तबसे मोहनके पुनर्जन्मकी कोई सूचना मुझे फिर नहीं मिली ।"

(२)

बालक सत्यनारायण

(प्रेषक—श्रीघनश्यामलालजी गुप्त)

बात इसी वर्षके गत मास फाल्गुनकी है । राजस्थानके जिला बूँदी तहसील केशवरायपाटनके ग्राम तेरथके मीणा भवानीशंकरके बड़े लड़केका विवाह था । बारात उसी तहसीलके ग्राम सेदड़ीमें आयी थी । भवानीशंकरके एक छोटा लड़का और है—जिसका नाम सत्यनारायण है । जब उसके बड़े भाईकी बारात सेदड़ीमें आयी थी, सत्यनारायण ५ वर्षका था । सत्यनारायणने उससे कुछ ही दिनों पहले बोलना आरम्भ किया था । एक दिन वह अपने पिता भवानीशंकरके साथ खेतपर मटर खानेके लिये गया था । वहाँ उसने देखकर अपने पितासे कहा कि—'इस बटले (मटर) से तो हमारा बटला बढ़िया है । उसके बड़ी लंबी फलियाँ आती हैं ।' पिताके पूछनेपर यह नहीं बता सका कि लड़का कहाँके मटरके लिये कहता है । बच्चा होनेसे उसकी बातको पिताने टाल दिया । कुछ दिनोंके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद लड़के सत्यनारायणने अपने गाँवका नाम 'सेदड़ी' होना बताया और इस सम्बन्धमें कई तरहकी बातें वह करने लगा। जब बारात ग्राम सेदड़ीमें गयी तो वहाँ पहुँचने-पर सेदड़ीके मीणा श्रीरामनारायणके मकानको दूरसे ही देखकर कहने लगा कि 'यह हमारा मकान है' और दौड़कर श्रीरामनारायण मीणाके मकानमें चला गया। अंदर जाकर श्रीरामनारायण मीणाकी औरतको 'जीजी' 'जीजी' पुकारता हुआ उसकी गोदमें बैठ गया और उससे अपने पढ़नेकी ९वीं क्लासकी पुस्तकें माँगीं तथा लाल कपड़ेकी थैलीमें रक्खे हुए अपने पैसे ला देनेको कहा। रामनारायणकी स्त्री उन पैसोंको नहीं जानती थी। लड़केने उस स्थानको बताया, जहाँ वास्तवमें वे रक्खे हुए थे। लड़केने अपने बैल आदि पशुओंको पहचाना और उनके नामतक बताये। रामनारायणकी स्त्री आश्चर्यमें पड़ गयी। उसने लड़केसे पूछा कि 'तू कौन है? और इस छोटी-सी उम्रमें हमें और हमारे पशुओंको कैसे जानता है? तथा मुझे अपनी माँ कैसे बताता है?'

लड़के सत्यनारायणने कहा—'मैं तेरा बेटा धन्ना हूँ।' इस बातकी चर्चा उस गाँव एवं बारातवाले सब लोगोंमें फैल गयी। उस मौकेपर लड़के सत्यनारायणने अपने पहलेवाले मामा इत्यादि सारे रिश्तेदारोंको पहचानकर उन सबके नाम बताये, जब कि लड़का सत्यनारायण उस समय केवल ५ ही वर्षका था।

यह घटना इस प्रकार बतायी गयी है कि 'वास्तवमें सेदड़ी नामक ग्राममें रामनारायण नामक मीणाके धन्ना नामक लड़का था। वह गवर्नमेन्ट स्कूलमें कक्षा ९ में शिक्षा पा रहा था। अवस्था उसकी १४ सालकी थी। एक दिन वह अपने गाँवकी तलैयापर मछली मारने गया, जहाँ पानीके अंदर सर्पने उसे काट लिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। जिन दिनों उसकी मृत्यु हुई, उन्हीं दिनों उसके ग्रामके समीप तीन मीलके फासलेपर तेरथ नामी ग्रामके भवानीशंकर मीणाकी स्त्रीके गर्भ स्थापित हुआ और समयपर लड़का पैदा हुआ, जिसका नाम उसके मौजूदा पिता भवानीशंकरने सत्यनारायण रक्खा। इस कुल विषयको और सत्यनारायणकी ५ वर्षकी अवस्थाको देखते हुए प्रतीत होता है कि धन्ना नामी लड़केने समीप-हीके ग्राम और अपनी ही जातिमें जन्म लिया।'

धन्नाकी जब मृत्यु हुई थी, उससे पूर्व उसका ब्याह हो चुका था। फाल्गुनके महीनेमें जब यह समाचार उसकी पत्नीने अपने मायकेमें सुना तो वह देखने आयी, जिसे देखते ही लड़के सत्यनारायणने उसे अपनी स्त्री होना बताया। उस लड़कीने, जिसकी उम्र इस समय १८-१९ साल बतायी गयी है, दूसरे पतिके साथ नाता करनेका जो उसका विचार था, यह कहते हुए स्थगित कर दिया कि 'अब वह सत्यनारायणके जवान होनेतक दूसरे पुरुषसे नाता नहीं करेगी; अपितु सत्यनारायणकी ही आजीवन पत्नी होकर रहेगी।' इसी प्रकार इस लड़केके दोनों समयके पिताओंने आपसमें यह तय किया कि 'लड़का दोनों जगहोंमें-से जहाँ चाहे रह सकता है' और पहलेवाले पिता रामनारायणने अपनी जमीन-जायदाद आधी सत्यनारायणको देना निश्चित कर दिया। इसकी इस उदारतापर रामनारायण-को धन्यवाद है और धन्नाकी पत्नीकी निष्ठापर उसे भी धन्यवाद है।

(३)

कम्पाउण्डरकी लड़की

(प्रेषक—श्रीब्रजराजसिंहजी)

यहाँ एक माधुरी निगम बलरामपुर सरकारी अस्पतालमें कम्पाउण्डर है। उनके यहाँ एक लड़की पैदा हुई जो कि अब करीब लगभग साढ़े पाँच वर्षकी है। वह अपने पहले जन्ममें बलरामपुरसे एक मील पश्चिम छिदुहनी गाँवमें धोखे दर्जीकी औरत थी। उसके एक लड़की थी, जो उस जगहसे एक मीलसे खुइया ग्राममें ब्याही है। एक लड़का अब करीब १८ वर्ष और दूसरा ९ वर्षका है। मृत्युके पहलेके उसके पति धोखेकी उम्र इस समय करीब ४० या ४२ सालकी होगी। उसकी औरत बड़ी पाक-साफ थी। प्रतिदिन कुरान एवं पाँच वक्त नमाज पढ़ती थी। खाँसीके रोगसे करीब एक सालतक बीमार रही। उसके बाद देहान्त हुआ। वह करीब ढाई वर्ष बीतनेपर माधुरी निगमके यहाँ पैदा हुई। जब चलने और बोलने लगी तो पेशाब करने जाती तो पानी लेकर जाती। निगमकी औरतने लड़कीसे पूछा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या पेचिश है या दस्त आता है ?' उसने कहा कि 'मैं हमेशा पानी लेकर पेशाब करने जाती थी, वैसे ही अब भी जाती हूँ।' पूछनेपर उसने बतलाया कि 'मैं दर्जिन हूँ। मेरा घर छिटुहनी मौजेमें है।' तथा घरभरका नाम बतलाया और वहाँ जानेका आग्रह करने लगी। घरवाले निहायत परेशान हुए और मजबूर होकर एक दिन घरवाले उसे लेकर छिटुहनीको चले। बलरामपुर डाकखानेसे उस जन्ममें उसका रास्ता देखा था। वहाँसे वह खुद रास्ता बतलाती हुई चली। रास्तेमें धुसाह गाँव पड़ा। लोगोंने धोखा देना चाहा कि यही छिटुहनी गाँव है। उसने कहा—नहीं, यह छिटुहनी नहीं, बल्कि धुसाह है और रास्ता बतलाती हुई छिटुहनी पहुँची। गाँवके बाहर घरवालोंने छोड़ दिया और कहा कि 'जहाँ घर हो चल।' वह सीधे अपने पूर्वजन्मके घरके दरवाजेपर जाकर खड़ी हो गयी। गाँवमें जो मिला, सबको पहचाना। उस समय उसके पूर्वजन्मका पति धोखे घरपर नहीं था। लड़की ससुरालमें थी। जेठ नूरे पहले ही मर चुका था। उसकी औरत कहीं बाहर गयी हुई थी। उसने सब बातें बतलायीं। अपने देवर, बड़े लड़के और देवरानीको पहचाना। कुरान-शरीफ जहाँ रक्खी थी, बतलाया। चाँदीके रुपये रक्खे हुए थी, उनके तथा उनकी संख्याके बारेमें बतलाया। घरवालोंने कहा—'रुपया खर्च हो गया।' जेवर जो-जो था, उसके बाबत लड़कीने पूछा तो उन लोगोंने बतलाया कि 'जेवर सब मौजूद है।' एक उस औरतको नहीं पहचान सकी, जिसको उसके मरनेके बाद उसका पति लाया है। उसके घरके उत्तर पास ही एक बाग है। पेड़ोंका नाम बतलाया। एक दिन उसकी सासने माथेके ऊपर करछुलसे मारा था, घाव हो गया था, यह बात बतलायी। वहाँ रुकना चाहती थी, लेकिन लोग ले आये। बार-बार निगमके घरवालोंसे कहती कि 'कपड़ा लाओ, जो दोनों लड़के हैं, उनके लिये सीकर दूँगी।' यह दो सालके अंदरकी बात है। उस लड़कीके पास बड़ी भीड़ हर समय जमा रहती। सरकारी अस्पताल, जिस अस्पतालमें निगम कम्पाउण्डर थे, के डाक्टर रणधीरसिंहने रोका कि 'इतनी भीड़ न होने दो। ज्यादा बोलनेसे लड़की पगली न हो जाय।'

लेखक उसे देखनेके लिये नवम्बर सन् १९६६ में निगमके घर गया। घरके बाहर बड़ी भीड़ लगी थी, लेखकमें कोई योग्यता नहीं है; किंतु राजपरिवारका खास व्यक्ति समझकर या जो कुछ लोगोंका खयाल हो, लोग प्रतिष्ठा करते हैं; इसलिये निगमको जब मालूम हुआ तो लड़कीको लेकर बाहर आये। उस समय भीड़ इतनी थी कि उतनी भीड़में कुछ पूछना अनुचित लगा। फिर निगमको कहा गया। वे लड़कीको लेकर मेरे घर आये। लेखक, लेखककी स्त्री और घरवालोंने एक-एक बात पूछी। सब बात सही साबित हुई। उस लड़कीको अब भी पूर्ववत् सब बातें ज्ञात हैं। माधुरी निगमका तबादला बलरामपुरसे चौदह मील दूर मधुरा बाजारमें हो गया है। वह वहींपर है। उस लड़कीके पूर्वजन्मके पति धोखे एवं देवर रमजान छिटुहनीमें मौजूद हैं। दिनमें बलरामपुर बाजारमें दूकानपर अपना काम करते हैं।

नोट—जबसे यह घटना लड़कीके जबानी लोगोंको ज्ञात हुई है, सुना गया है कि उस जन्मके पति धोखे एवं देवर रमजानको मुसल्मान लोग डाँटते हैं कि 'तुम मुसल्मान होकर इस बातको क्यों तसलीम करते हो ?' वे कहते हैं—'जो सच्ची बात है, क्यों न तसलीम करें।'

(४)

श्रीअवधेशप्रसाद मिश्र

(प्रेषक—श्रीकन्हैयालाल मिश्र [ए० आर० के०])

जिला सीतापुरमें तहसील सिधौलीसे उत्तर दो मीलकी दूरीपर ग्राम हरिपुर (हीरपुर) के निवासी श्रीअवधेशप्रसाद मिश्रका जन्म संवत् १९७० वि०में श्रीपुत्तूलालजी मिश्रके परिवारमें हुआ था। उस समय स्व० पुत्तूलाल मिश्र कमलापुर (जो कि लखनऊसे सीतापुर जानेवाली रेलवे मार्गपर एक स्टेशन है) के सरकारी चिकित्सालयमें कम्पाउण्डर थे। श्रीअवधेशप्रसाद मिश्र, जो कि अभी मौजूद हैं और मेरे सगे चाचा हैं, आयु जब दो या तीन वर्षकी हुई और कुछ-कुछ बोलने लगे तो अपने पूर्वजन्मकी बहुत-सी बातें बताने लगे। उनका कहना था कि 'वे पूर्वजन्ममें फैजाबादके मुहल्ला बेंहटी (फुटहा कुआँ) के रहनेवाले एक अध्यापक थे। उनका नाम लाला हन्नेलाल था। उनके परिवारमें उनकी स्त्री तथा दो पुत्र थे। एक लड़का पटवारी था, दूसरा अध्यापक।' वे फैजाबाद जानेके लिये बहुत व्याकुल रहा करते थे और जब भी मौका पाते, रेलवे स्टेशनकी ओर भागा करते थे। कभी-कभी अपनी स्त्री और बच्चोंको याद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके घंटों रोया करते थे। लोगोंने पूछा—'यहाँ कैसे आये ?' तो उन्होंने बताया कि 'जब मेरी मृत्यु हो गयी और मेरी लाश सरयू नदीमें बहा दी गयी, उस समय मेरे ये माता-पिता अयोध्याजी गये हुए थे और सरयूजीमें स्नान कर रहे थे। मैं उन्हींके साथ यहाँ चला आया।'

यह बात उस समयके कसमण्डा नरेश स्व० राजा सूर्यबक्शसिंहजीको मालूम हुई तो उन्होंने अपने खजांची श्रीभगवानदीनको फैजाबाद भेजकर पता लगवाया। सभी बातें सत्य निकलीं। इस घटनाका तथ्य उस समयकी एक मासिक पत्रिका (माधुरी) में भी प्रकाशित हुआ था। स्व० पुत्तूलालजी बच्चेकी पुनर्जन्म-सम्बन्धी स्मृतिके लिये बहुत चिन्तित रहने लगे, वे साधु-महात्माओंसे मिले और उन्होंने तन्त्र-मन्त्रका भी सहारा लिया। तब पिछले जन्मकी याद कुछ कम पड़ी।

अभी दि० ११-११-१९६८ ई०को उनसे मेरी मुलाकात फिर हो गयी। मैंने उनसे पूछा कि 'क्या आपको पूर्व-जन्मकी बातें अभी याद हैं ?' तो उन्होंने बताया कि 'पूर्वजन्म-की बातें मुझे अभी याद हैं' और यह भी कहा कि 'मेरी आयु ५४ या ५५ वर्षकी होते हुए भी फैजाबाद जानेकी लालसा मनमें अब भी बनी हुई है।'

नौ वर्षतक प्रेत रहनेके बाद पुनर्जन्म तथा अन्य घटनाएँ

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

(१)

लड़का वीरसिंह

पिछले दिनों यह बड़ी आश्चर्यजनक घटना सुनी थी कि जिला मुजफ्फरनगरके खेड़ी अलीपुर गाँवमें एक जाटके यहाँ एक ऐसे बालकने जन्म लिया है कि जो अपने पूर्वजन्मकी बातें बताता है और कहता है कि 'मैं ९ वर्षतक बराबर पीपलके वृक्षपर प्रेत बन करके रहा।' यह सुनकर हम इस सत्य घटनाकी जाँच करनेके लिये अपने साथ अपने पुत्र शिवकुमार गोयलको और श्रीस्वामी कल्याणनाथजी महाराजको लेकर मार्च सन् १९६० में खेड़ी अलीपुर गये। मुजफ्फरनगरके 'ब्राह्मणवाणी' मासिक पत्रिकाके सम्पादक श्रद्धेय गोस्वामी श्रीब्रह्मदत्त शर्मा करोड़ीजीसे भी मिले और घटनाकी पूरी-पूरी जाँच की। उसे पूरी-पूरी सत्य पाया। पूज्य गोस्वामी ब्रह्मदत्तजीने यह सत्य घटना इस प्रकार सुनायी। ब्रह्मदत्तजी कहते हैं—

'जिला मुजफ्फरनगरमें यह बात फैली हुई थी कि शिकारपुर जिला मुजफ्फरनगरमें पाँच वर्षका बालक पिछले जन्मकी बातें बताता है। 'सन्मार्ग' काशीमें भी यह समाचार प्रकाशित हुआ था। मुझे इस बातमें न तो विश्वास था और न दिलचस्पी। कहने-सुननेपर मैं २६।५।१९५१ को शिकारपुर ६॥ बजे पहुँच गया। यह लड़का मुझे वहाँपर सोता हुआ मिला। उसे उठवाया गया। लड़का चेष्टावान् ५ वर्षका था और उस समय कुछ तुतला कर बोलता था। पण्डित लक्ष्मीचंदके यहाँ २८।४।५१ से आया हुआ था। पं० श्रीलक्ष्मीचंदजीको अपना पिता और उनकी स्त्रीको अपनी माता कहता था। पं० श्रीलक्ष्मीचंदजीकी तीन कन्याएँ प्रकाशवती, कैलाशवती, सरला देवी हैं। इसी प्रकार दो लड़के विष्णुदत्त और रविदत्त हैं। इन सबमें यह बालक बड़े प्रेमसे रहता है।

गाँव खेड़ी अलीपुरमें यह लड़का कलीराम जाटके यहाँ पैदा हुआ है, जिसका नाम वीरसिंह है। जब यह ३॥ वर्षका हुआ, तबसे यह यही कहता रहा कि 'मैं शिकारपुरका हूँ। मेरा नाम सोमदत्त है। मेरे पिताका नाम पं० लक्ष्मीचंद है। मेरी माता मुझे मेलेमें जानेके लिये बहुत पैसे दिया करती थी।' यह चर्चा बहुत फैली। खबर पाकर २४।४।१९५१ को लक्ष्मीचंद भी खेड़ी, जो शिकारपुरसे पाँच कोसकी दूरीपर है, पहुँच गये। सैकड़ों आदमी जमा हो गये। लड़का लाया गया। जनसमूहमें यह लड़का पं० लक्ष्मीचंदसे लिपट गया और पिता-पिता पुकारने लगा। इसे यहाँसे शिकारपुर ले जाया गया। गाँवके पास पहुँचते ही लड़केने पुकारना शुरू कर दिया कि 'हमारा गाँव शिकारपुर आ गया।' रास्तेमें वह स्वयं ही पं० लक्ष्मीचंदका जंगल, कुआँ देखकर कहने लगा कि 'यह हमारे हैं।' गाँवमें घुसते ही उसे छोड़ दिया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह स्वयं ही गलियोंके रास्ते चौराहेपर पहुँच गया। इसी चौराहेके पास पं० लक्ष्मीचंदका मकान था। इसे दूसरे घरमें ले जाया गया। कहने लगा कि 'यह हमारा घर नहीं है। यह तो पटवारीका घर है।' वास्तवमें ही वह पटवारीका घर था। धीरे-धीरे चलकर उसने पं० लक्ष्मीचंदका मकान जा पकड़ा। स्वयं उसमें घुस गया। वहाँ पचासों स्त्रियाँ, लड़कियाँ—इकट्ठी हो रही थीं। लक्ष्मीचंदकी सब लड़कियोंको बारी-बारीसे पहचानकर बतलाया। लक्ष्मीचंदकी स्त्रीको देखकर कहा—'यह मेरी माँ हैं।' परंतु उनसे दूर ही रहा। पूछा गया लड़केसे—'तुम अपनी माँसे दूर क्यों हो?' लड़का कहने लगा—'मेरी माँने मुझे कुछ दिया तो है ही नहीं।' ज्यों ही उसे पाँच रुपयेका नोट दिखाया गया, वह लक्ष्मीचंदकी स्त्रीकी गोदमें जा बैठा और 'माँ-माँ' कहने लगा। अन्य बातें पूछनेपर बतलाया कि 'मैं ९ वर्षतक बराबर पीपलपर प्रेत बनकर रहा हूँ। (लक्ष्मीचंदके मकानके पास ही यह पीपलका पेड़ है।) मैं उस समय प्रेतावस्थामें कुएँमें घुसकर पानी पी लेता था और घरमें घुस रोटी खा लिया करता था।' एक नौकर, जो लक्ष्मीचंदके यहाँ बहुत पहले रहता था, उसके बारेमें पूछने लगा कि 'अमुक नामका नौकर जो रहा करता था; वह कहाँ है?' उसे भी उसने स्वयं ही भीड़में पहचाना। अपने पूर्वजन्मके भाइयोंको भी पहचाना। अब यह लड़का खेड़ी गाँवमें, जहाँ यह पैदा हुआ है, जाना नहीं चाहता। इसे बलात्कारसे दो बार गाँव खेड़ी ले जाया गया; परंतु वहाँ जानेपर इसने खाना नहीं खाया। लड़का कहता है—'मैं तो ब्राह्मणका लड़का हूँ और यह जाट है। मैं जाटोंके यहाँका कच्चा खाना, कच्चे बर्तन (हाँडी) का दूध नहीं पीऊँगा।' चार-पाँच दिन इसे अलग बर्तनमें दूध पिलाते रहे और अन्तमें जब परेशान हो गये तो तंग आकर इसे शिकारपुर पं० लक्ष्मीचंदके पास भेज दिया गया। अब वह पहले जन्मके माता-पिता लक्ष्मीचंदके पास शिकारपुरमें ही है। इसने स्कूलमें पढ़ने जाना प्रारम्भ कर दिया है। स्कूलमें रहते-रहते मास्टरों तथा कई प्रतिष्ठित गाँवके लोगोंके सामने मैंने लड़केसे बातें कीं। उपर्युक्त बातें बतलानेके अतिरिक्त अन्य और भी बहुत-सी आश्चर्यजनक बातें बतलायीं। पं० लक्ष्मीचंद, उनके लड़के तथा अन्य लोगोंसे पहचाननेवाली बातें सच्ची-सच्ची सिद्ध हुईं।

इस घटनासे जहाँ पुनर्जन्मका सिद्धान्त सत्य प्रतीत होता है, वहाँ ९ वर्षतक पीपलपर प्रेत बनकर रहना एक अपूर्व बात है। सबको पहचानना इस बातका प्रमाण है कि यह अवश्य ही पीपलपर प्रेत बनकर रहा है। किस-किस समय गाँवमें ९ वर्षतक क्या-क्या होता रहा, ऐसी भी सभी बातें यह लड़का बताता है। पं० लक्ष्मीचंदका कहना है कि '१४ वर्ष हुए मेरा लड़का सोमदत्त ३॥ वर्षका मर गया था। उस समय कैलाशवती, प्रकाशवती और विष्णुदत्त थे और सरला, रविदत्त सोमदत्तके मरनेके पश्चात् पैदा हुए थे।' अब कैलाशवती, प्रकाशवती तथा विष्णुदत्तको तो पहचान लिया सो ठीक है, परंतु पश्चात्के पैदा होनेवाले सरला तथा रविदत्तको भी पहचान लिया; क्योंकि यह लड़का (सोमदत्त) मरनेके पश्चात् पीपलपर ९ वर्षतक रहना बतलाता है, ऐसी दशामें सबको पहचानना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। सोमदत्तका आत्मा पीपलपर बैठा सब कुछ देखता रहता था।'

हम स्वयं अलीपुर खेड़ी गाँव पहुँचे तो हमें मालूम हुआ कि घटना अक्षर-अक्षर बिल्कुल सत्य है। लड़का वीरसिंह अपने पूर्वजन्मके माता-पिता पं० लक्ष्मीचंदजीके साथ रहता है। लक्ष्मीचंदजी आजकल नैनीतालमें रहते हैं, तो वह भी उनके साथ ही गया हुआ है। वे उसे अपने पास पुत्र मानकर रखते हैं और कभी-कभी खेड़ीमें भी चला आता है। हमने लड़के वीरसिंहके सगे चाचा श्रीसीतलप्रसाद जाटसे तथा और भी बहुत-से गाँवके मनुष्योंसे बातें कीं, जिससे घटना बिल्कुल सत्य सिद्ध हुई।

× × ×

(२)

दाह-संस्कारमें त्रुटिका दुष्परिणाम

पता नहीं, मेरे इस धर्मप्राण भारतके ऋषि-मुनियोंकी संतान हिंदुओंको आज न जाने क्या हो गया है कि जो उन्हें अपना तो सब कुछ बुरा प्रतीत होने लगा है और दूसरे देशोंका सब कुछ अच्छा लगने लगा है। यहाँ भारतीयोंको शास्त्रानुसार मरना और मरनेपर दाहकर्म-संस्कार कराना भी अच्छा नहीं लगता। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि प्राचीन सनातनधर्मानुसार, शास्त्रानुसार दाहसंस्कारको एकदमसे समाप्त करनेके लिये विदेशोंसे लाखों रुपयोंकी मशीनें मँगा चुके हैं और उन्हींमें मुर्दोंको बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी क्रियाके ऐसे ही बिजलीसे फूँक देनेकी योजना की गयी है। दिल्ली, बम्बई, कलकत्ते आदिमें तथा और भी कई जगह, सुनते हैं, यह कार्य प्रारम्भ भी हो चुका है।

दाह-संस्कारमें तनिक भी कमी रहनेसे मृतक आत्माको अगले जन्ममें कितना दुष्परिणाम भोगना पड़ता है, इसकी ये आजके पाश्चात्त्य सभ्यताके रंगमें रँगे लोग तनिक भी परवा नहीं करते हैं। सनातनधर्मानुसार दाह-संस्कार न करनेसे क्या-क्या भयंकर दुष्परिणाम भोगने होते हैं; शास्त्रोंमें आयी पुनर्जन्मकी बातें अक्षर-अक्षर सत्य कैसे हैं और आशुतोष भगवान् श्रीशंकरकी उपासनासे पुत्र-प्राप्ति और मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति कैसे होती है;—इस सम्बन्धकी एक बिल्कुल सत्य घटना नीचे दी जा रही है।

मार्च सन् १९६० की बात है। हम मुजफ्फरनगर गये हुए थे। एक दिन सहसा काली नदीके किनारे देव-मन्दिरोंके दर्शन करते हुए किसी संतके सत्सङ्गकी तलाशमें घूम रहे थे। अकस्मात् एक जगह एक तख्तपर विराजमान, गीताका पाठ करते हुए संत दृष्टिगोचर हुए। संतजीको सारी गीता कण्ठस्थ थी और उन्होंने उपनिषद् भी खूब देखे थे। आप योगाभ्यासी भी थे। शुभ नाम था—श्रीस्वामी मदनानन्द सरस्वती। प्रसङ्ग चलनेपर महाराजजीने कहना प्रारम्भ किया—

"मेरा जन्म जिला कानपुरके तहसील देरापुरमें संवत् १९४२में हुआ था। मैं जातिका दुबे ब्राह्मण था। हमारी माताजीके चार लड़कियाँ हुईं; पर उनके लड़का कोई नहीं हुआ। वह लड़का न होनेके कारण दिन-रात लड़के होनेकी चिन्तामें निमग्न रहा करती थीं। किसी संतके बतानेके अनुसार उन्होंने पुत्र-प्राप्तिके लिये आशुतोष भगवान् श्रीशंकरकी शरण ली। हमारे गाँवके बाहर एक भगवान् श्रीशंकरजीका मन्दिर था। हमारी माताजीने पुत्र-प्राप्तिके निमित्त उन्हींकी पूजा-आराधना करना प्रारम्भ कर दिया। भगवान् शंकर बड़े ही दयालु हैं। उन्होंने हमारी माताजीकी प्रार्थना सुनी। पर जहाँ शास्त्रानुसार चलकर श्रीशंकर-पूजन करनेसे श्रीशंकर भगवान् प्रसन्न हुए, जहाँ उनकी कृपासे पुत्रप्राप्तिका शुभ अवसर हाथमें आया, वहाँ अकस्मात् एक कार्य शास्त्रविरुद्ध होनेके कारण एक घोर अनर्थ भी हो गया।

"बात यह हुई कि इसी दरम्यान अकस्मात् हमारे पूज्य बाबा श्रीपरमसुख दुबेजीका स्वर्गवास हो गया। आपकी आयु उस समय लगभग ९० वर्षकी थी। शरीर पूरा होनेपर उन्हें मृतक-घाट अर्थात् श्मशान-भूमिमें ले जाया गया। हमारे उधर शास्त्रानुसार प्रथा है कि सूर्यास्त होते समय मुर्दा नहीं फूँका जाता है। सूर्यास्तके समय मुर्दा फूँकना पाप माना जाता है। इसलिये सब कोई सूर्यास्त होनेसे पहले ही मुर्दा फूँक देते हैं। हमारे घरवालोंने अज्ञानतावश यह शास्त्रविरुद्ध कर्म कर डाला। 'सूर्यास्त हो रहा है, इस समय नहीं फूँकना चाहिये' इस बातकी तनिक भी परवा न कर सूर्यास्तके समय ही दाह-संस्कार कर डाला।

"इस दाहकर्म-संस्कार करनेका घोर दुष्परिणाम यह हुआ कि जो अब उन्हीं बाबाको मुझ पोतेके रूपमें आकर आजतक भोगना पड़ रहा है। अर्थात् मेरी एक आँखसे मुझे हाथ धो बैठना पड़ा।

"बात यह हुई कि एक दिन रात्रिमें हमारी माताजीको बाबाजीने स्वप्न-दर्शन देकर कहा—'तुमलोगोंने हमारा दाहकर्म सूर्यास्तके समय कर दिया, इसलिये हमारा क्रियाकर्म भ्रष्ट हो गया। शंकर-पूजनसे तुम्हारे पुत्र होगा। हम ही तुम्हारी कोखसे पुत्र बनकर जन्म लेंगे; किंतु सूर्यास्तके समय हमारा दाहकर्म करनेके कारण हमारा एक नेत्र जाता रहा। अब हम तुम्हारे एक नेत्रवाले पुत्र होंगे।'

"माताजीने यह स्वप्न देखा और उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने बाबाकी यह भविष्यवाणी सबको सुनायी। स्वप्नके कुछ दिनों पश्चात् ही मेरी माताजीके गर्भ रहा। स्वप्नकी भविष्यवाणीके अनुसार मैं एक आँखवाला पुत्र उत्पन्न हुआ।

"माताजीको मेरी एक आँख न होनेका बड़ा कष्ट रहा। जब मैं आगे जाकर कुछ बड़ा हुआ, बोलने लगा तो मैं सबके सामने बाबा होनेका प्रत्यक्ष प्रमाण देने लगा। मैं सबको यह बताने लगा कि 'यह मेरी लाठी है, जिसे मैं पूर्वजन्ममें बूढ़ा होनेके कारण लेकर चला करता था। यह मेरा अंगरखा है, जिसे मैं पहना करता था। अमुक-अमुक हमारे रिश्तेदार हैं।' ये सब बातें बतानेपर भी हमारी माताजीने हमारी बातोंपर कोई ध्यान नहीं दिया। आगे चलकर हम बड़ी-बड़ी विचित्र बातें बताने लगे। पूर्वजन्ममें जब हम बाबा थे, उस समयके गाड़े हुए रुपये बताकर सबके सामने निकाल कर दिखाये। यह देखकर सब आश्चर्यचकित रह गये।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३)

ठाकुरसाहबका लड़का

पिलखुवा, हमारे स्थानपर सुप्रतिष्ठित विद्वान् शास्त्रार्थ-महारथी पं० श्रीविहारीलाल शास्त्री काव्यतीर्थजी पधारे थे। उन्होंने अपने मुखसे प्रसंगवशात् पूर्वजन्मके सम्बन्धकी श्रीरामनाम जपने, श्रीगङ्गास्नान करने और दानपुण्य करनेकी अद्भुत महिमाकी एक अपनी घटना सुनायी थी। वह सत्य घटना संक्षेपमें यह है—

"उझानी जिला बदायूँमें एक जगह है। एक बार कुछ राजपूत लोग, जो उझानीके पासके ही किसी गाँवके रहनेवाले थे, आये थे। वे अपने गाँवसे श्रीभगवती भागीरथीका स्नान करनेकी दृष्टिसे सपरिवार जा रहे थे। उनकी अपने घरकी सवारी थी, उसीमें बैठकर वे लोग आये थे। अपने गाँवसे चलकर जब उझानी आये तो उझानीके चौराहेपर वे विश्राम करनेकी दृष्टिसे कुछ देरके लिये रुक गये। बिल्कुल सड़कके पास उन दिनों कुछ कंजर लोग रहा करते थे। उन कंजरोंकी वहाँपर झोंपड़ियाँ पड़ी हुई थीं। इन ठाकुर लोगोंके साथमें इनका एक छोटा बालक था, जिसकी आयु लगभग ५ वर्षकी थी। वह ठाकुरोंका बालक उन अपने घरवालोंके पाससे चलकर उन सामने-वाले कंजरोंके पास उनकी झोंपड़ियोंमें पहुँच गया। उसने वहाँपर जाकर उन कंजरोंके सामने उनमेंकी एक कंजरीका नाम लेकर पुकारा। कंजरकी उस स्त्रीको उस बालकके इस प्रकार बिना जाने-पहचाने अपना नाम लेकर पुकारनेपर बड़ा आश्चर्य हुआ। कंजरकी स्त्रीने उस बालकसे पूछा—'अरे, तू किसको पुकारता है? तू कौन है?' इसपर उस ठाकुरके लड़केने कहा—'क्या तू मुझे नहीं जानती? क्या तू मुझे भूल गयी?' कंजरीने कहा—'मैं तुझे नहीं जानती कि तू कौन है और कहाँका रहनेवाला है?'

ठाकुरके लड़केने कहा—'मैं तेरा पति हूँ। तू मेरी स्त्री है।' उस कंजरीको एक छोटेसे बच्चेके मुखसे यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि 'यह छोटा-सा ४-५ वर्षका बच्चा है और मैं इतनी बड़ी आयुकी स्त्री हूँ। फिर भी यह मुझे अपनी स्त्री कैसे बताता है?'

कंजरीने कहा—'अरे, तू मेरा पति कैसे बनता है? मैं तो तुझे जानती भी नहीं हूँ कि तू कौन है। मेरा पति तो कभीका मर गया है। अब मेरा पति कहाँसे आया? तू यह क्या कहता है?'

उत्तरमें उस बालक ठाकुरके लड़केने कहा—'तुझे पता नहीं कि तेरे पतिका नाम मोहनसिंह कंजर था?'

कंजरीने कहा—'हाँ, मेरे पतिका नाम मोहनसिंह कंजर था, पर तू कोई मोहनसिंह कंजर थोड़े ही है। वह तो मर गया?'

ठाकुरके लड़केने कहा—'मैं ही तेरा पति मोहनसिंह कंजर हूँ।'

लड़केने बताया कि 'मैं पहले जन्ममें तेरा पति मोहनसिंह कंजर था और अब मैंने इन ठाकुरोंके घरमें आकर जन्म ले लिया है।' लड़केने वहाँपर बैठे हुए सब कंजरोंको भी पहचान लिया। उसने उस समयकी और सब बातें भी बतानी प्रारम्भ कर दीं और बहुत-सी गुप्त बातें भी, जो उससे पूछी गयीं, उसने उन्हें बतायीं। उसकी बतायी हुई सभी बातें सत्य थीं, उन्हें सुनकर सभी कंजरोंने और कंजरियोंने स्वीकार किया। इसलिये उन्होंने झटसे उस बालकको अपनी गोदमें उठा लिया।

इधर जब उन ठाकुरोंने देखा कि हमारा बच्चा यहाँपर खेल रहा था और अब देखते-देखते वह किधर चला गया तो उन्होंने अपने उस बच्चेकी तलाश की। सामने कंजरोंकी झोंपड़ियोंकी ओर जो उनकी दृष्टि गयी तो देखा वह बच्चा कंजरोंके पास है। कंजर उसे अपनी गोदमें उठाकर बड़े प्रेमसे खिला रहे हैं। ठाकुर लोग भागे हुए वहाँपर गये और जाकर उन कंजरोंसे अपने बालककी माँग की। कंजरोंने कहा—'नहीं, यह तो हमारा मोहनसिंह कंजर है। हम इसे अपने पास रक्खेंगे।'

ठाकुरोंने उन कंजरोंको बहुत कुछ समझाने-बुझानेका प्रयत्न किया कि किसी प्रकार यह हमारे बालकको हमें सौंप दें, पर वे लाख समझानेपर भी उस बालकको ठाकुरोंको देनेके लिये तैयार नहीं हुए। अब तो ठाकुरोंमें और उन कंजरोंमें आपसमें बड़ी छीना-झपटी और कहा-सुनी हो गयी।

जब झगड़ा बहुत ज्यादा बढ़ गया और सुलझा नहीं, तो इस बातकी ठाकुरोंने थानेमें जाकर पुलिसको सूचना दी कि 'हमारे बालकको कंजरोंने ले लिया है। नहीं दे रहे हैं। उनसे हमारा बालक हमको दिलवाया जाय।' पुलिस घटनास्थलपर पहुँच गयी। उसने उन कंजरोंसे उस लड़केको उन ठाकुरोंको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देनेके लिये कहा और उन्हें धमकाया भी, समझाया भी, फिर भी वे कंजर लड़केको देनेके लिये तैयार नहीं हुए।

पुलिस उस ठाकुरोंके बालकको कंजरोंसे अपने कब्जेमें लेकर उझानीके सुप्रतिष्ठित रईस रायबहादुर श्रीब्रजलाल भदावरजीके सामने ले गयी। ठाकुर लोग और वह कंजर भी वहाँपर पहुँच गये। ज्यों ही वह ठाकुरोंका ५ वर्षका बालक श्रीभदावरजीके सामने पहुँचा तो उसने जाते ही सबसे पहले भदावरजीको पहचान लिया। उसने उनका शुभ नाम लेकर कहा कि 'भदावरजी! राम राम।'

रायबहादुर श्रीब्रजलाल भदावरजीको उस छोटेसे बालकके मुखसे ये शब्द सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने चकित होकर उस बालकसे पूछा—'भाई तू कौन है? हमें तू पहले कभी आजतक नहीं मिला है; फिर तू हमें कैसे जानता है? तैंने हमें कहाँपर देखा है?' इसपर उस बालकने कहा—'रायबहादुर साहब! मैं पूर्वजन्मका आपका कंजर हूँ। मेरा नाम मोहनसिंह है और मैं जब कंजर था तो उस समय आपके घरपर आकर आपकी कोठीके लिये खसके पर्दे बनाया करता था।'

माननीय रायबहादुर साहबने जब ये बातें सुनीं तो वे दंग रह गये। उस बालककी बतायी सभी बातें अक्षर-अक्षर बिल्कुल सत्य थीं। उन्होंने उस बालककी बातोंकी पुष्टि की कि मोहनसिंह कंजर हमारी कोठीके लिये खसके पर्दे बनाया करता था। रायबहादुर साहबने उन कंजरोंको समझा-बुझाकर, उस बालकको उन कंजरोंसे उन ठाकुरोंको दिलवा दिया।

माननीय रायबहादुर श्रीब्रजलाल भदावरजीने मुझे बताया कि 'इस कंजरका कंजरसे धनाढ्य ठाकुरोंके घरमें जन्म लेनेका कारण यह है कि जब यह पूर्वजन्ममें मोहनसिंह कंजर था तो उस समय यह इतना संयमी था और इतना सात्त्विक था कि कभी भी मांस नहीं खाता था। मांस-मछली, अंडे-मुर्गोंसे बिल्कुल दूर रहता था। यह किसी भी जीवको कभी न तो मारता था और न शिकार खेलता था। यह श्रीगङ्गाजीमें बड़ी श्रद्धा-भक्ति रखता था। कंजर होकर भी यह श्रीगङ्गा-स्नान करनेके लिये जाया करता था। नित्य श्रीरामनामका जाप किया करता था। इसने गरीब होकर भी अपनी खून-पसीनेकी गाढ़ी कमाईका पैसा-पैसा जोड़कर ४०० रुपये इकट्ठे किये थे और ये रुपये मुझे देकर मेरेद्वारा एक कुँआ भी बनवाया था कि जिससे सब लोग उस कुएँका पानी पीकर अपनी प्यास बुझा सकें। इसी श्रीरामनामके जप करनेसे, गङ्गाके स्नान करनेसे, कुआँ बनवाने और जीवोंपर दया करने आदि पुण्योंके प्रतापसे इसे ऐसा जन्म प्राप्त हुआ है।'

कर्म रहते जीवकी मुक्ति नहीं

कर्म तीन प्रकारके हैं—क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध। जो नये कर्म कामना-अहंकारसे किये जाते हैं, वे 'क्रियमाण' हैं; वे संचितमें चले जाते हैं, जैसे खेतसे अनाज आया और अन्नके कोठारमें चला गया। 'संचित' उनका नाम है, जो अनन्त जन्मोंके अच्छे-बुरे कर्म फल बिना भुगताये पड़े हैं और जिनमें नये कर्म जमा हो रहे हैं। उस संचित कर्मराशिमेंसे एक जन्ममें फल भुगतानेके लिये जो कर्म पृथक् हो जाते हैं और जन्मसे पहले ही जिनका फल निर्माण हो जाता है, उन फलदानोन्मुख कर्मोंको 'प्रारब्ध' कहते हैं। जबतक नये कर्म बनते रहते हैं और जबतक संचित कर्मोंका नाश नहीं हो जाता, तबतक जीव बन्धन-मुक्त नहीं हो सकता; उसे कर्मफल-भोगके लिये बार-बार सत्-असत् योनियोंमें जन्म धारण करना और स्वर्ग-नरकादि लोकोंमें जाना-आना पड़ता ही है। अहंकार, कामना न रहनेपर नवीन कर्म संचितमें नहीं जाते और ज्ञानकी अग्नि अथवा भगवान्‌की शरणागतिसे संचितकी कर्मराशि जल जाती है, तब जीव मुक्त हो जाता है, अतएव अहंकार-कामनाका त्याग करके भगवच्छरणागतिपूर्वक सब कुछ भगवान् ही है, ऐसा समझते हुए भजन करना चाहिये। मनुष्य-जीवनका यही चरम और परम ध्येय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृतात्माओंके द्वारा—आवेशद्वारा और प्रकट होकर संवाद देना

(लेखक—श्रीनिरंजनदासजी 'धीर')

(१)

मृत व्यक्तिके और्ध्वदैहिक कर्मोंकी आवश्यकता

(प्रेत-संवाद)

मेरे एक विभागीय कर्मचारीकी धर्मपत्नीकी दिल्लीके एक अस्पतालमें कन्याको जन्म देकर मृत्यु हो गयी और नवजात कन्या भी चल बसी। जैसा प्रायः शिक्षितवर्गमें होता है, दाह-संस्कारसे ही अन्त्येष्टि कर्मकी इतिश्री हो गयी। पतिदेव तथा बच्चे रो-धोकर शान्त हो गये और अपने साधारण दैनिक व्यापारोंमें लिप्त हो गये। एक गढ़वाली सेवक उनके परिवारमें था। पहले वह गृहिणीकी देख-रेखमें भोजन बनाता था। अब हमारे मित्रको उधर ध्यान देना पड़ा और काम चलने लगा।

छुट्टीका दिन था। भोजनोपरान्त विश्राम करके हमारे मित्र कर्मचन्दजी पत्र लिख रहे थे कि गढ़वाली सेवक वमन करके काँपने लगा। उसकी मुखाकृति बदल गयी और वह मृत महिलाकी भाषा तथा रीति-ढंगसे बोलने लगा, जिसको सुनकर श्रीकर्मचन्दजी समीप आये। उस समय सभीने ऐसा अनुभव किया कि उनकी पत्नी गढ़वाली सेवकके माध्यमसे बात कर रही है। उसने कहा कि 'आपने न तो मेरे नामसे और न अपनी कन्याके नामसे वस्त्रका दान किया। हम दोनों वस्त्रहीन हैं। मुझे बड़ा संकोच होता है और मैं एक वटवृक्षके नीचे पड़ी हूँ। जब कोई व्यक्ति इधर आता दृष्टिगोचर होता है तो मैं वृक्षकी ओटमें हो जाती हूँ। अतएव आप मेरे लिये और बच्चीके लिये एक-एक जोड़ा वस्त्र किसी वस्त्रहीनको अथवा निर्धन ब्राह्मणको हमारे नामसे दे दें।' श्रीकर्मचन्दकी स्वीकारोक्तिके पश्चात् आवेश समाप्त हो गया और गढ़वाली साधारण अवस्थामें आ गया। वस्त्र दो-चार दिनोंमें ही दे दिये गये।

कुछ समय पश्चात् गढ़वालीको फिर आवेश हुआ और उसने कहा कि 'वस्त्र तो मिल गये हैं किंतु हम शहरमें नहीं जा सकते; क्योंकि हमारी गति नहीं हुई।' पतिने उत्तर दिया कि 'जैसा पण्डितने कहा था, मैंने क्रिया-कर्म करा दिया था, अब मैं क्या करूँ?' पत्नीने कहा कि 'इस पण्डितको कर्मकाण्डका ज्ञान नहीं था। मेरे लिये हरद्वारमें अमुक नामधारी पण्डितसे, जो भीमगोडाकी बस्तीमें रहते हैं, जैसा वे कहें, कराओ।' इन्होंने कहा,—'अच्छा।' आवेश समाप्त हो गया।

हरद्वारमें एक रायसाहबसे इनका परिचय था। इन्होंने उनको पत्र लिखा कि 'कृपया भीमगोडाकी बस्तीमें अमुक पण्डितजीका पता लेकर सूचना दें तो मैं हरद्वारमें आकर उनसे मिलूँ; क्योंकि उनसे मुझे विशेष काम है।' पत्र मिलने-पर रायसाहबने अपने भृत्यको इस नामके पण्डितजीका पता लगानेके लिये भेजा, जिसने आकर कहा कि 'इस नामके पण्डित भीमगोडा बस्तीमें नहीं हैं।' यही उत्तर श्रीकर्मचन्दजीको मिल गया। दो-तीन दिन पीछे जब गढ़वालीको आवेश हुआ तो उसने रायसाहबका नकारात्मक उत्तर पत्नीको बताया तो वे बोलीं कि 'पण्डितजी वहीं रहते हैं। वे सारा दिन एकान्तमें किवाड़ बंद किये रहते हैं। चार बजेके पीछे मिल सकते हैं। उनके घरका दरवाजा पूर्व-मुखी है और किवाड़ों-पर नीला पालिश हो रहा है।' इस सविस्तार पहचानके मिलनेपर रायसाहबका पत्र आया कि 'पण्डितजी मिल गये हैं। और वे उचित कर्मकाण्ड करानेको सहमत हो गये हैं।' श्रीकर्मचन्द हरद्वार गये और उन पण्डितजीसे कर्म-काण्ड कराकर आ गये तो गढ़वालीके माध्यमसे उनकी पत्नीने कहा कि 'अब उनको प्रेमनगरमें बसनेकी अनुमति मिल गयी है।' पूछनेपर उसने बताया कि 'यह हरद्वारके समीप ही अन्तरिक्षमें है; किंतु साधारण जीवोंके लिये अदृश्य है। अब वह सप्ताहमें एक बार आ जाती, बाल-बच्चों-को देख जाती और पतिसे अनुरोध करती कि 'तुम्हारे पुत्र-कन्या दोनों संतान हैं। अब दूसरा विवाह न करना।'

उन्हीं दिनों श्रीकर्मचन्दजीका एक सम्बन्धी युवक दिल्ली आया और इनके यहाँ ठहरा। इनके घर बहुत-से सुन्दर तथा बढ़िया कम्बलोंको देखकर उसका मन ललचा गया और उसने एक कम्बल चुराकर अपने बक्समें रख लिया और वह घरसे बाहर चला गया। उसे रात्रिकी रेलगाड़ीसे चला जाना था। श्रीकर्मचन्दकी धर्मपत्नीने अपने पुत्रको गढ़वालीके द्वारा इस घटनाका पता दे दिया और यह भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बता दिया कि 'बक्सकी चाबी उस सम्बन्धीकी कमीजकी जेब-में है, जो वहीं टँगी है।' इनके पुत्रने बक्स खोलकर कम्बल निकालकर ताला बंद करके ताली वहीं रख दी।

जब भी वह आती, अपने बच्चोंसे ऐसे ही वात्सल्य तथा प्रेमसे बातें करती और उनको अच्छी शिक्षा देती और यदि कोई उनकी वस्तु खो जाती तो बता देती कि कहाँ और किसके पास है।

इनके पतिदेव दूसरा विवाह करना चाहते थे, जो इनकी मृतपत्नीकी इच्छाके विरुद्ध था। इसलिये ये चाहते थे कि वह न आया करे। अतः इन्होंने गढ़वाली भृत्यको निकाल दिया और दूसरा रसोइया रख लिया।

यह सच्ची घटना है और श्रीकर्मचन्दजीने स्वयं मुझे बतायी थी। इस विवरणसे सिद्ध होता है कि प्रसव आदि अशुद्ध अवस्थामें मृत्युसे मृत व्यक्तिको परलोकमें कष्ट उठाना पड़ता है, जो शास्त्रोक्त कर्मोंके द्वारा दूर किया जा सकता है।

(२)

मृत व्यक्तिका सशरीर प्राकट्य

हम भारतवासियोंके लिये, मृत्युके पश्चात् भी आत्मा-का अस्तित्व रहता है—ऐसा सत्य है कि जिसके लिये किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं समझी जाती; क्योंकि भारतीय विचारधाराका मूल कर्मफल तथा पुनर्जन्ममें दृढ़ विश्वास है।

पश्चिमके विज्ञानवेत्ताओंको इस सिद्धान्तकी सत्यता-को प्रमाणित करनेके लिये वर्षों अपनी वैज्ञानिक विधिसे खोज तथा घटनाओंका अध्ययन करना पड़ रहा है और अभी भी दुर्भाग्यवश सब लोगोंने इसको नहीं माना है। पहले तो यह निर्णय करना ही एक समस्या थी कि मानवका व्यक्तित्व क्या है? क्योंकि उनके समक्ष 'आत्मा' नामकी वस्तुके अस्तित्वका प्रमाण तथा उनके सूक्ष्मशरीरके अस्तित्व तथा गुण और शक्तिका ही कोई ज्ञान नहीं था। वे केवल मनसे परिचित थे और उसी-को सर्वेसर्वा मानते थे। आधुनिक समयमें भी अधिकतर पश्चिमीय वैज्ञानिक चार्वाकके सिद्धान्तके ही अनुयायी हैं कि 'स्थूलदेहके भस्मीभूत होनेपर कुछ नहीं रहता। इसलिये खाना-पीना, मौज उड़ाना ही जीवनका लक्ष्य है।'

पश्चिमीय सभ्यताके पुजारी हमारे देशवासी भी, जो इस सिद्धान्तमें विश्वास रखते हों, उनको इस तथ्यका ज्ञान होना चाहिये कि पश्चिमीय विज्ञानवेत्ताओंने भी सहस्रों अकाट्य प्रमाण एकत्रित किये हैं कि 'मानवका व्यक्तित्व मृत्युके पश्चात् भी वैसा ही विद्यमान रहता है, जैसा जीवनमें था।' किंतु ये प्रमाण अनुमानके रूपमें हैं और पश्चिमीय भाषाओंकी अनगिनत पुस्तकोंमें भरे पड़े हैं। केवल प्रत्यक्ष ही ऐसा प्रमाण है, जिसकी सत्यताको मानना अनिवार्य है। ऐसे सज्जनोंके विचारके लिये कतिपय ऐसी घटनाओंका उल्लेख किया जाता है, जिनमें मृत व्यक्तियोंको साक्षात् सशरीर देखा गया है। द्रष्टाके वचनकी सत्यतापर अविश्वासका कोई कारण नहीं। यह असम्भव घटना कैसे हो सकती है, इसका भी एक सैद्धान्तिक उत्तर है। किंतु यह विषय दूसरा है; समय मिलनेपर इसपर भी प्रकाश डाला जा सकता है। ये विचित्र घटनाएँ इस प्रकार हैं—

(३)

मृत पत्नीका प्रकट होकर बात करना

लुधियानाके निवासी आर्यसमाजी विचारोंके एक सज्जन पूर्वी अफ्रीकाकी राजधानी नैरोबी नगरमें जाकर बस गये और व्यापारद्वारा अपार सम्पत्तिके मालिक हो गये। उनकी प्रिय पत्नी अपने सगे-सम्बन्धियोंसे मिलने पंजाब आयी तो उसको भयानक हृदय-रोगका आक्रमण हो गया। सूचना मिलनेपर उसके पति व्यक्तिगत हवाई जहाज लेकर उसको एक डाक्टरके निरीक्षणमें अपने घर नैरोबी उसी वायुयानद्वारा ले गये, जहाँ अपने परिवारवालोंके अतिरिक्त दो नर्सों-द्वारा उसकी कई मास बड़े प्रेमसे सेवा-शुश्रूषा होती रही। रोग घातक होनेसे उस महिलाकी मृत्यु हो गयी।

यह महिला सनातनधर्मी थी। उसने अपने पतिसे प्रार्थना की थी कि 'मृत्युके पश्चात् उसकी अस्थियाँ श्रीगङ्गा-मैयामें विसर्जित की जायँ और उसकी गति सनातन-धर्म-की विधिके अनुसार करा दी जाय।' उसके पतिने आर्यसमाजी होते हुए भी उसकी इच्छाको पूर्ण करनेका वचन दे दिया था।

पत्नीकी मृत्युके पश्चात् नैरोबीसे वे भारत आये, अस्थि-विसर्जन तथा अन्य उचित कर्मकाण्ड पूरे विधि-विधानसे कराये गये। यहाँतक कि गयामें जाकर पत्नी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सद्गतिके लिये श्राद्ध भी करा दिया और फिर वे अपने देश चले गये।

कुछ समय पश्चात् उनको एक अविज्ञात रोग हो गया और नैरोबीके डाक्टरोंने उनको रोगके निदान तथा उपचारके लिये लन्दन जानेका परामर्श दिया। वे वायुयानद्वारा वहाँ पहुँचे और विशेषज्ञोंद्वारा जाँच करायी तो उन्होंने निर्णय दिया कि जिस घातक रोगका संदेह था, वह नहीं है। यह कष्ट शीघ्र-साध्य है।

रात्रिको वे अपने होटलके कक्षमें, जिसके किवाड़ उन्होंने बंद कर लिये थे, सोने जा रहे थे। प्रकाश बंद करके लेटे ही थे कि उनको ऐसा लगा कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस कक्षमें है। उन्होंने प्रकाश किया तो अपनी मृतपत्नीको सशरीर विद्यमान देखकर वे ठिठक गये और कुछ बोल न पाये। उनकी पत्नी बोली कि 'आजके डाक्टरोंके निदानसे मेरे मनको शान्ति मिली है।' उसने बताया कि 'मेरी इच्छाके अनुसार जो कर्मकाण्ड आपने मेरे लिये कराये थे, मुझे ज्ञात है और जो स्वर्णकी अँगूठी आपने दक्षिणामें दी थी, वह भी मैंने देखी थी। मैं आपके इन कर्मोंसे परम संतुष्ट हूँ और मैं यहाँ आपके साथ ही आयी हूँ। अमेरिकामें पिछले दिनों मोटर-दुर्घटनासे मैंने ही अपने दूसरे पुत्रके जीवनकी रक्षा की थी।' और भी कई रहस्यकी बातें बतलायीं, जो उस पत्नीके अतिरिक्त किसीको ज्ञात न थीं। पतिसे जब वह विदा माँगने लगी तो पतिने उसे गलेसे लगाया। उस समय उसका शरीर वैसा ही था, जैसा जीवनमें था। फिर वह वहीं अन्तर्धान हो गयी। इन सज्जनकी स्वयं लिखित पुस्तक 'रूहों की दुनियाँ' उर्दू भाषामें है। यह वृत्तान्त उसीपर आधारित है।

(४)

ललिताबाई आजगाँवकर

मराठी भाषाके 'पुरुषार्थ' नामक मासिक-पत्रके जून १९५३ के अङ्कमें एक विचित्र घटना प्रकाशित हुई थी, जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

बम्बई-नगरनिवासी डाक्टर श्रीअजगाँवकरकी धर्म-पत्नी ललिताबाई सनातन-धर्मावलम्बी थीं। वे प्रतिमास पूर्णिमाका व्रत रखकर उपवास किया करती थीं। यह क्रम वर्षोंसे चला आ रहा था। कर्मवश उनको कैंसरका रोग हो गया। व्रतका क्रम रोगी-दशामें भी चलता रहा। अन्तमें उनकी मृत्यु भी पूर्णिमाके दिन ही हुई।

ललिताबाईके भ्राता श्रीसामन्तजी भी बम्बईमें रहते थे। इन बहिन-भाईमें बड़ा प्रेम था। मृत्यु तथा दाह-संस्कारके दूसरे दिन, ललिताबाई श्रीसामन्तके समक्ष सशरीर प्रकट हुईं। इस असम्भव घटनाको देखकर भाई ठिठक गया। उसने यह देखनेके लिये कि वह स्वप्न तो नहीं देख रहा, अपने शरीरकी चुटकी काटी। जब उसने अपने-आपको पूर्णरूपसे सजग तथा चेतन पाया तो उसने अपनी प्रिय बहिनका स्वागत किया और हाथ पकड़कर पलंगपर बैठा लिया। उसका हाथ जीवित मनुष्यकी भाँति उष्ण था। ललिताबाईने कहा—'कल मेरा पूर्णिमाका उपवास था। मृत्यु हो जानेके कारण मैं पारण नहीं कर पायी। अब तुम मुझे एक काफीका कप बना दो तो मैं पारण कर लूँ।' उसका भाई घरमें उस समय अकेला ही था। उसको पता नहीं था कि दूध कहाँ रक्खा है। ललिताबाईने बता दिया। काफी तैयार करके जब कप ललिताबाईके हाथमें दिया तो उसने देखकर अपने भाईको लौटा दिया और उससे कहा कि 'इसको तुम पी लो। तुम्हारे पीनेसे ही पारण हो जायगा।' भाईके काफी पीनेके पश्चात् बहिन अन्तर्धान हो गयी। इस सशरीर प्राकट्यके पश्चात् जो कुछ हुआ, वह इससे भी अधिक विचित्र है, जिसके लिखनेके लोभको मैं संवरण नहीं कर सकता।

श्रीसामन्तजीकी पत्नीके कोई संतान नहीं थी, यद्यपि उसकी आयु चालीस वर्षकी हो गयी थी। डाक्टर करनाडेने कई बार परीक्षा करके यह निर्णय किया था कि इस महिलाकी बच्चेदानी इतनी संकुचित है कि उसमें गर्भ रह ही नहीं सकता। मृत्युके पूर्व भी भाईके निःसंतान होनेका ललिता-बाईको दुःख था। मृत्युके पश्चात् उसने स्वप्नमें आकर अपने भाईसे कहा कि 'मैं प्रभुसे भाभीको संतान योग्य बना देनेके लिये प्रार्थना किया करती हूँ।' फिर जब एक मास उसका मासिकधर्म रुक गया तो ललिताने भाईसे अनुरोध किया—'वह भाभीकी एक बार फिर डाक्टरसे परीक्षा करावे।'

इस बार डाक्टर महोदय यह देखकर आश्चर्यमें पड़ गये कि केवल यही नहीं हुआ कि अत्यन्त संकुचित बच्चे-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दानीका परिमाण साधारण हो गया है, अपितु उसमें गर्भ भी स्थापित हो चुका है। यह विज्ञानकी दृष्टिसे चमत्कारी घटना थी। ललिताबाईने फिर अपने भाईको सूचना दी कि 'वे स्वयं ही भाभीके गर्भसे जन्म लेंगी।' उचित समयपर वैसा ही हुआ। डाक्टर भट्ट, जिन्होंने अपनी पुस्तकमें इस विचित्र घटनाका उल्लेख किया है, लिखते हैं कि 'इन सभी बातोंकी सत्यता इस कन्याके माता-पिताने स्वयं प्रमाणित की थी और कन्याको भी, जिसका नाम ललिताबाई ही रक्खा गया, देखा था।

(५)

मृत मित्रसे बातचीत

शैमिल्लो फ्लैमोरिओं (Camillo Flammorion) फ्रांस देशके प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे और राज्यकी ज्योतिष-वेधशालाके अध्यक्ष थे। उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी जिसका नाम था 'यूरानिया' (Urania)। इसमें अपने एक घनिष्ठ मित्रके, जिनको वे स्पैरोके नामसे पुकारते थे, मृत्युके पश्चात् मिलनेका वृत्तान्त लिखा है। वे कहते हैं—मेरा पाँव अभी अन्तिम सीढ़ीपर ही था कि जो दृश्य मैंने देखा, उससे मेरा पैर वहीं जम गया। भयत्रस्त होकर मेरे कण्ठसे एक चीख उठी, किंतु कण्ठमें ही समा गयी। मैं पैरिसमें जैसा उसको जीवित छोड़कर गया था, उसकी मुखाकृति तथा शरीर ठीक वैसे-का-वैसा था और वह छतकी मुँडेरपर बैठा था। मैंने कहा 'स्पैरो!' तो वह मेरी चिर-परिचित अपनी कोमल वाणीमें बोला कि 'क्या तुमको मुझसे भय लगता है?' वह मेरी ओर देखकर मन्द-मन्द मुसकरा रहा था। मैं उसको देखता ही रह गया। फिर मैंने कहा—'क्या तुम सचमुच विद्यमान हो? मैं तुम्हारी भली प्रकार देख-भाल कर लूँ?' मैंने अपने हाथोंसे उसके मुख, शरीर, बालोंको स्पर्श किया तो मुझे यही लगा कि वह जीवित है। मेरे मुखसे आश्चर्यके उद्रेकसे निकला कि 'यह तुम्हीं हो।' फिर मैं उसके समीप ही मुँडेरपर बैठ गया और चिर बिछुड़े मित्रोंमें प्रेमालाप होने लगा। स्पैरोने अपने परलोकके अनुभव सुनाये और वहाँके जीवनपर प्रकाश डाला। उसने बताया कि 'जो आत्माएँ इस लोकमें सचेत हो जाते हैं, वे काल तथा दूरी (Time and Space) के बन्धनसे मुक्त होते हैं। उनके सूक्ष्म होनेके कारण शरीर स्थान नहीं घेरते। मनुष्य अपने प्रारब्धको अपने कर्मोंसे स्वयं बनाता है। आत्माका लक्ष्य प्राकृत संसारकी मोहमायासे निकलना है। तब इसका अध्यात्मजीवनमें प्रवेश होता है। मानव-मात्रका परम पुरुषार्थ मुक्ति तथा परमानन्दकी प्राप्ति है।' यह वार्तालाप पर्याप्त समयतक चलता रहा। फिर स्पैरो वहीं अदृश्य हो गया।

(६)

रोजाली

इंगलैंडके विज्ञानवेत्ताओंकी प्रसिद्ध 'साइकिक रिसर्च सोसाइटी'के विख्यात कार्यकर्ता थे श्रीहैरी प्राइस (Harry Price)। उन्होंने इस सोसाइटीके पचास वर्षके कार्यकी समीक्षापर एक पुस्तक लिखी थी, जिसका नाम था—'फिफ्टी ईयर्स आफ् साइकिक रिसर्च'। इस पुस्तकमें एक छोटी बालिकाके, जिसका नाम रोजाली था, सशरीर प्राकट्य-का बड़ा हृदयग्राही वृत्तान्त है। इस घटनाकी हैरी प्राइस महोदयने स्वयं वैज्ञानिक ढंगसे जाँच की थी।

रोजाली एक धनी-मानी महिलाकी पुत्री थी। उसके पिताकी मृत्यु प्रथम महायुद्धके आरम्भमें ही हो गयी थी। उसकी विधवा माताके लिये स्नेहकी पात्री एक यह बच्ची ही रह गयी थी, जिसका देहान्त अपने पिताकी मृत्युके पाँच वर्ष पश्चात् हो गया। उसकी माताको इससे कल्पनातीत दुःख हुआ। वह सदा अपनी प्यारी पुत्रीको स्मरण करती रहती और उसको देखनेके लिये छटपटाती। वह 'सीऐंस' (मृत आत्माओंसे वार्तालाप करनेके मण्डल) में जाने लगी। उसको इस बातका विश्वास हो गया कि मेरी प्यारी पुत्री परलोकमें सूक्ष्मशरीरसे विद्यमान है। उसको देखे तो कैसे? वर्षोंके स्मरण और ध्यानका फल यह हुआ कि मृत्युके चार वर्ष पीछे उसने एक रात्रिको रोजालीकी प्यारी वाणीमें 'माँ'का शब्द सुना, जिसके श्रवणसे उसको निश्चय हो गया कि 'उसकी पुत्री यद्यपि अदृश्य है, पर है विद्यमान।' वह प्रतिदिन उसकी वाणी सुननेके लिये जाग्रत् रहती। शनैः-शनैः रोजालीका प्राकट्य भी होने लगा। पहले धूएँके रूपमें, फिर स्थूलशरीरकी आकृतिमें और अन्तमें एक रात्रिको उसने प्रकट होकर अपनी माताका हाथ पकड़ लिया। माँ—वियोगिनी माँके सुख-संतोषकी सीमा नहीं थी।

अब रोजाली दिनके समय भी सीऐंसके मण्डलमें बुलानेपर सशरीर प्रकट हो जाती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

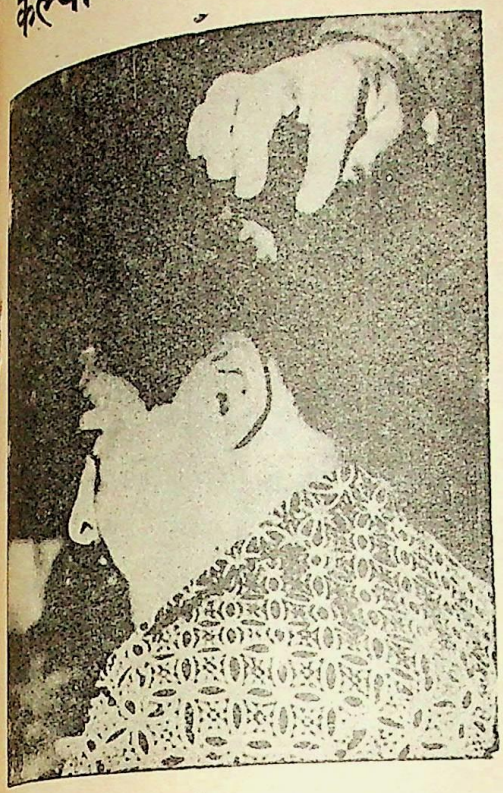

नेकाती उनलकास्किरोन [पृष्ठ ५५१]

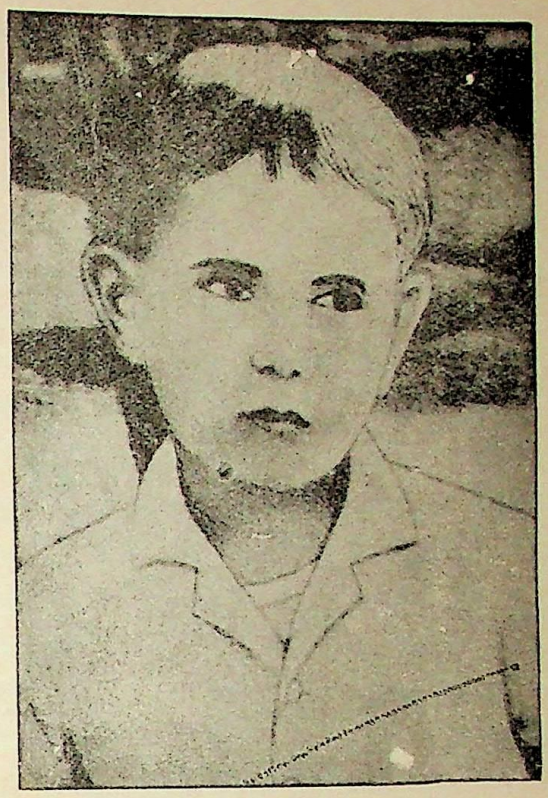

लेबनानका अहमद एलावर [पृष्ठ ५५३]

गुजरातकी राजूल शाह [पृष्ठ ५५६]

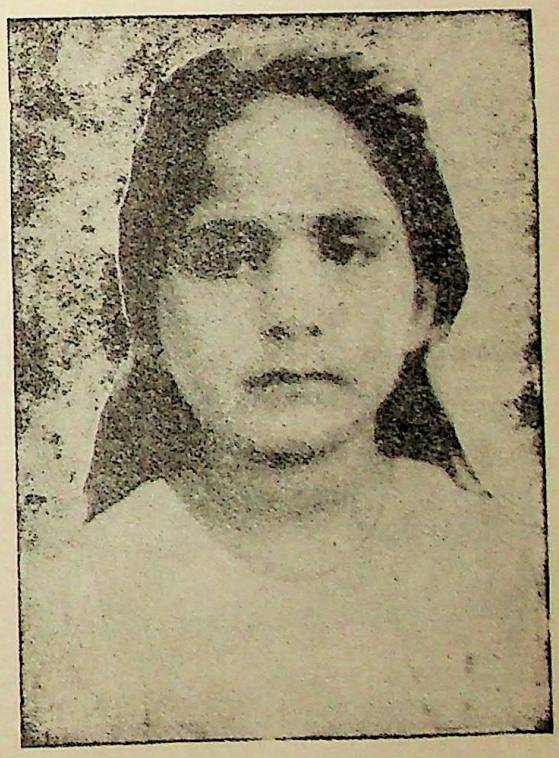

मध्यप्रदेशकी स्वर्णलता [पृष्ठ ५५७]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

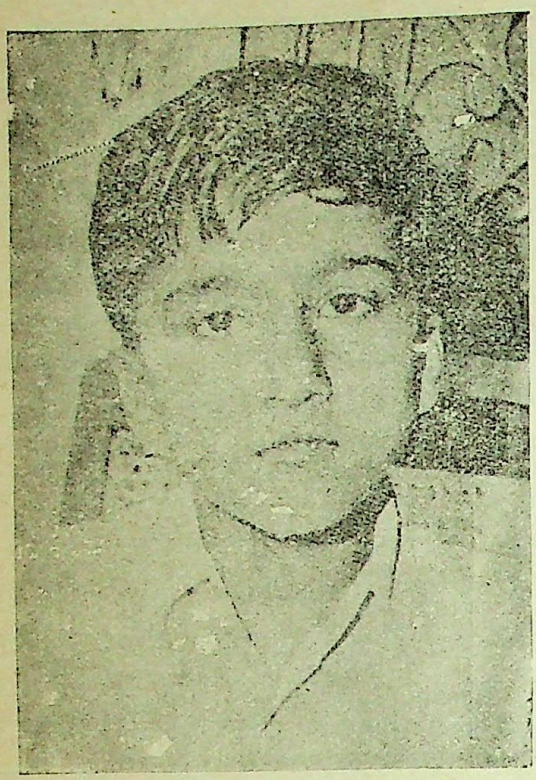

गोपाल [पृष्ठ ५५८]

लेविव कैकिन [पृष्ठ ५७७]

दक्षिण अफ्रिकाकी जोय वर्वे [पृष्ठ ५९५]

जेरूसलमका डेविड मॉरिस [पृष्ठ ६००]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोजालीकी माता श्रीहैरी प्राइससे परिचित थी। जब इनको इस विचित्र घटनाका पता चला तो इन्होंने रोजालीकी मातासे इसकी वैज्ञानिक ढंगसे जाँच करनेके लिये अनुमति तथा सहयोगके लिये प्रार्थना की, जिसके स्वीकार किये जानेपर एक दिन निश्चित हुआ। उस दिन रोजालीकी माताके घरपर 'सीएंस' चक्र आयोजित किया गया। हैरी प्राइसने खिड़कीके किवाड़ बंद करके मोहरें लगा दीं। सीएंसकी प्रणालीके अनुसार प्रकाश मन्द कर दिया गया और रोजालीका आवाहन करते ही वह प्रकट हो गयी। कन्याके शरीरपर कोई वस्त्र नहीं था। हैरी प्राइसने उसकी माताकी अनुमति लेकर उसके शरीरको हाथोंसे स्पर्श किया। उसने कन्याके वक्ष, मुखपर हाथ फेरा तो जीवित व्यक्तिकी भाँति उष्ण पाया। उसका श्वास चल रहा था, जिसके कारण वक्ष गतिमय था। उसने सारे शरीरपर हाथ फेरा। नाड़ीकी परीक्षा की, जो ८० थी। हृदयके स्पन्दनको वक्षसे कान लगाकर सुना तो स्पन्दन स्पष्ट प्रतीत हुआ। अब प्राइस महोदयने कन्याका रूप-रंग देखनेके लिये प्रकाश अधिक तीव्र किया तो उसके चमकते हुए नैन और गोल कपोल, पतली नासिकासे उसकी मुखाकृति बड़ी ही सुन्दर लगी। इन्होंने कन्यासे कुछ प्रश्न किये, जिसका उसने बालसुलभ अपरिचितसे संकोचके कारण उत्तर न दिया। किंतु जब उससे पूछा गया कि 'तुम मातासे प्यार करती हो' तो उसने बड़े प्यारसे कहा—'हाँ'। तब उसकी माताने उसको छातीसे चिपटा लिया और पंद्रह मिनटमें कन्या अदृश्य हो गयी। अब प्रकाश कर दिया गया। खिड़कीके किंवाड़की मोहरें ज्यों-की-त्यों थीं। इससे सिद्ध हुआ कि रोजाली न कहींसे आयी थी और न कहीं गयी। वहीं उसका प्रादुर्भाव हुआ और वहीं लीन हो गयी।

इस प्रमाणित घटनासे यह सिद्ध होता है कि माताके प्रगाढ़ प्रेम तथा नित्य-नियमित ध्यानने परलोकगत कन्याको सशरीर प्रकट करा दिया। यह घटना अभूतपूर्व हो सकती है; किंतु असम्भव नहीं। सर्वशक्तिमान् लोकमहेश्वर श्रीभगवान्‌को भी प्रगाढ़ प्रेम, सतत चिन्तन, ध्यान तथा हृदयकी तड़पसे प्रत्यक्ष दर्शन देकर भक्तोंकी इच्छाकी पूर्ति करनी पड़ती है, तो एक मृत कन्याका प्राकट्य भी, यदि उसमें ऐसा करनेकी शक्ति हो तो, सम्भव है।

(७)

लेबिब कैकिन

(लेखक—प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

प्रेतावेशमें कहकर भी पुनर्जन्मकी घटनाओंकी व्याख्या की जाती है।

पुनर्जन्मका दूसरा विश्लेषण है, किसी व्यक्तिका अस्थायी रूपसे अपने व्यक्तित्वको किसी प्रेतात्माके समक्ष समर्पित कर देना। निम्नलिखित घटनाके संदर्भमें अब हम इस अनुमान-प्रमाणकी प्रक्रियाका अवलोकन करें।

लेबिब कैकिन (Lebbi Kakin) नामक एक युवतीको अपने शयन-कक्षमें हर सायंकालको एक दृश्य (Vision) दिखायी देता था, जिसमें वह एक बहता हुआ झरना देखा करती थी और एक व्यक्ति, जो अपने आपको जामा दादोरा जेकोस (Jama Dadora Jacose) कहा करता था, उसके सामने प्रकट हो जाता था। वह उससे एक अपरिचित भाषामें बोलना प्रारम्भ कर देता था, जिसे वह युवती बिना समझे दोहरा दिया करती थी। यद्यपि वह व्यक्ति सदा अपना मुँह ढके रखता था तो भी उन दोनोंमें एक सम्बन्धकी भावना क्रमशः बढ़ती गयी और वे आपसमें प्रेम करने लगे।

यह क्रम दो-तीन महीनेतक चलता रहा और एक-एक बंद हो गया। कुछ वर्षोंके अन्तरके बाद वह व्यक्ति स्वप्नमें उस महिलाके सामने प्रकट हुआ। उस महिलाने स्वप्न देखा कि 'उसकी उस व्यक्तिसे समुद्रके किनारे भेंट हुई है और उसने एक बार पुनः उसकी भाषा सीखना आरम्भ कर दिया है।' उसने परस्परके वार्तालापको लिपिबद्ध करनेका अभ्यास कर लिया, परंतु जाग्रत् अवस्थामें वह उस भाषाको कभी भी सीख नहीं सकी। उस महिलाका विश्वास था कि यद्यपि उसने वर्तमान जीवनमें वस्तुतः यह भाषा नहीं सीखी और न इस जीवनमें ही उसके सम्पर्कमें आयी है, तो भी उसकी धारणा थी कि वह अपने पूर्व-जन्ममें इससे सम्बन्धित भी थी और यह उसके गत-जीवनकी अवशिष्ट स्मृतियाँ हैं, जो उसके समक्ष इस रूपमें आया करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८)

मानव-जन्मका संस्कार प्रेत-योनिमें भी

(लेखक—श्रीउमाशंकरसिंहजी)

मानव-जीवनका संस्कार अमिट होता है। आत्मा चाहे जिस योनिमें जन्म ले, पूर्व-संस्कारके अनुसार ही उसका स्वभाव बनता है। अतः वर्तमान जन्मका संस्कार ही भावी जीवनका स्वभाव होता है। इसलिये पूर्व-संस्कारके अनुसार ही प्रेतात्माओंका स्वभाव भी मनुष्योंसे मिलता-जुलता होता है। वे भी अपना कल्याण चाहते हैं तथा उनके हृदयमें भी हर्ष-विषादकी लहरें उठती-मिटती हैं।

हमारे समाजमें बहुधा ऐसी घटनाएँ घटती रहती हैं, जिनसे उपर्युक्त बातोंकी पुष्टि होती है। ऐसी ही दो सत्य घटनाएँ यहाँ दी जा रही हैं—

(क)

प्रेतने आत्मकल्याण किया

ब्रह्मपुर (शाहाबाद) क्षेत्रमें 'गरहथा' नामक एक छोटा-सा गाँव है। वहाँसे दो मीलकी दूरीपर 'योगियाँ' है, जिसमें बहुत पहले एक कथावाचक विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। एक दिन वे गरहथामें हरि-कथा सुनाने आये थे। वहीं रात हो गयी। दूसरे दिन अन्यत्र जाना था। अतः रातको दस बजे लोगोंके आग्रहके विरुद्ध भी वे अपने गाँव (योगियाँ) के लिये अकेले ही रवाना हो गये। हाथमें पोथी एवं एक लालटेनके अलावा उनके पास विशेष कोई सामान नहीं था। योगियाँ एवं गरहथाके बीचमें एक 'कृतसागर' नामक प्रसिद्ध तालाब है। पण्डितजी जब उस तालाबके पास आये तो अकस्मात् एक प्रेत सामनेसे उनका मार्ग अवरुद्ध करने लगा। डरकर वे वहीं बैठ गये, तब प्रेत भी उनके पास आकर खड़ा हो गया। पण्डितजीके यह पूछनेपर कि 'भाई! तुम कौन हो और मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जो मुझे तंग कर रहे हो?' प्रेतने रो-रोकर अपनी रामकहानी सुनायी—"पण्डितजी! मैं प्रेत हूँ। मानव-जीवनमें मैं एक ग्वाला था। एक दिन अपने कुटुम्बियोंके यहाँसे लौट रहा था तो अचानक मार्गमें यहाँ बाढ़ आ गयी थी। गाँव जानेके लिये नदी पार करने लगा तो डूब गया। तबसे मैं पानीका प्रेत (बुडवा) बनकर यहीं इस तालाबमें रहता हूँ। मैंने मनुष्य-जीवनसे लेकर आजतक किसीका कुछ भी बिगाड़ा नहीं है। मनुष्य-जन्मकी साधुता ही मुझे चैनसे रहने देती है। परंतु उस जन्मकी एक चूक इस योनिमें भी खलती है। यदि पूर्वका अभ्यास होता तो मैंने डूबते समय 'हरिनाम' लिया होता, जिससे मेरा कल्याण हो जाता। पर ऐसा नहीं हो सका।' यों कहते-कहते वह सिसकियाँ भरने लगा और पुनः बोला—"अब मेरा कल्याण आप ही कर सकते हैं। यदि कृपा हो तो मैं आपके साथ रहकर नित्य 'हरि-कथा' सुनूँ। हरि-कथासे मेरा उद्धार हो जायगा।" उसकी दशा देखकर पण्डितजीको भी दया आ गयी और उसको अपने साथ रहनेकी उन्होंने स्वीकृति दे दी।

वह बहुत दिनोंतक पण्डितजीके साथ रहकर उनकी पोथी ढोते फिरता था। उसे केवल पण्डितजी ही देखा करते। दूसरोंके लिये वह अदृश्य था। अपने परम प्रस्थानके एक दिन पहले वह कथामें उपस्थित हो गया और तरह-तरहसे पण्डितजीको धन्यवाद देते हुए उनके चरणोंमें लिपट गया। फिर यह कहते हुए कि 'हरिनाम-धुन एवं हरिकथाके प्रभावसे मेरी प्रेतयोनि छूट रही है। मेरा आत्म-कल्याण हो गया।' वह अदृश्य हो गया।

(ख)

प्रेतकी पुण्य-याचना

घटना बहुत पुरानी नहीं है और है यह बिल्कुल सत्य। मेरे सम्पर्की श्रीरामसिंहासन साहु बहुत दिनोंसे आसाममें व्यापार करते आ रहे हैं। पहले वे वहाँ घोड़ेकी लदिया करते थे; अब कपड़ा आदिकी दूकान है। एक दिन वे घोड़ा लादनेके लिये (घोड़ेपर सामान लेने) अपने साथियोंके साथ बहुत दूर एक बड़ी बस्तीमें चले। दोपहरके समय सभी लोग रास्तेमें पड़नेवाली एक नदीके किनारे भोजन करने बैठे। इनमें एक 'भोला' नामक आदमी था, जो स्वभावका भी भोला था। वह अपना खाना थालीमें रखकर नदीमें जल लेने गया। लौटनेपर देखा कि 'उसका खाना एक कुत्ता खा रहा है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके साथी देख-देखकर हँस रहे हैं।' मनमें यह सोचकर कि 'खाना तो कुत्तेने जूँठा कर ही दिया, उसे खदेड़नेमारनेसे क्या लाभ ?'—भोलाने कुत्तेको सारा खाना खिला दिया और थाली मलकर रख ली। इस तरह वह उस दिन भूखा रहा। उसके इस भोलेपनका साथियोंने खूब मजाक उड़ाया।

सामान लेकर लौटते समय संध्या हो जानेके कारण एक समीपके गाँवमें वे लोग ठहर गये। संयोगसे ये लोग एक ऐसे आदमीके द्वारपर ठहरे, जिसके घरमें एक आदमी 'ब्रह्मदुखी' था। घरका मालिक उदास एवं चिन्तित बैठा था। उसे देखकर व्यापारियोंने उदासीका कारण पूछा तो उत्तर मिला—'क्या करें भाई! हमारे घरमें एक आदमी ब्रह्मपीड़ित है।' मजाकमें ही व्यापारियोंने ब्रह्मदुख झाड़नेके लिये भोलाको उस आश्रयदाताके घर जानेको कहा। आश्रयदाता भी भोलाको तान्त्रिक व्यक्ति समझकर अपने घर चलनेके लिये आग्रह करने लगा। भोला तो बेचारा भोला था ही, अपने भोलेपनमें ही उसके घर चला गया। आँगनमें बैठे ब्रह्मराक्षससे पीड़ित व्यक्तिने जब भोलाको देखा तो जोरसे हँसकर कहा (उस समय वह प्रेतावेशमें था, अतः प्रेत ही बोल उठा)—'क्या जी, तुम्हीं आये हो? अच्छा, मैं तो इसके घरसे चला जाऊँगा, पर मेरी एक शर्त मानो तब।' भोलाने शर्त पूछी तो उत्तर मिला 'तुम आजकी अपनी कमाई मुझे दे दो तो मैं इसे सदाके लिये छोड़कर इसके घरसे चला जाऊँ।' भोला जब इस बातको नहीं समझ सका तो प्रेतने उसे कुत्तेको खाना खिलानेकी बात याद दिलायी और कहा कि—

'मनुष्यकी सच्ची कमाई यही है। इसका तुम्हें अक्षय पुण्य मिला है। यदि किसी ब्राह्मणद्वारा मेरे नामसे इस पुण्यके अर्पणका संकल्प कर दो तो मैं यहाँसे चला जाऊँ।'

भोलाने उसी समय एक ब्राह्मणको बुलाकर अपना पुण्य प्रेतको दान कर दिया। फिर तो सदाके लिये गृहस्वामीको प्रेतपीड़ासे छुटकारा मिल गया!

यमराजके दर्शन करके लौट आये

[मृत्युके पश्चात् लौटे हुए लोगोंकी घटनाएँ]

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

(१)

भाँगरी मनिहारिन

नवम्बर, सन् १९५७ में कानपुरमें श्रीसर्ववैदिकशाखासम्मेलन हुआ था। उस अवसरपर काशीके विद्वान् पं० श्रीलालबिहारी मिश्रजी, अध्यापक श्रीगोयनका संस्कृत महाविद्यालयसे हमारी कुछ परलोक-सम्बन्धी बातें होने लगीं। आपने अपनी पूरी जाँच की हुई परलोकसम्बन्धी घटना सुनायी। वह इस प्रकार है—

सकलडीहा स्टेशनसे (जिला वाराणसी) तीन कोस उत्तरकी ओर प्रभुपुर नामक एक ग्राम है। उसी ग्राममें भाँगरी नामक एक मुसल्मान स्त्री थी, जो काँचकी चूड़ियाँ बेचनेवाले मुसल्मान मनिहारकी पत्नी थी। एक बार उस मुसल्मान भाँगरीके पड़ोसकी एक स्त्री सांघातिक रोगसे पीड़ित थी। भाँगरी उसकी बीमारीका समाचार सुनकर उस स्त्रीको देखनेके लिये उसके स्थानपर गयी। उस बीमार स्त्रीको देखनेके पश्चात् ज्यों ही लौटकर वह अपने घर वापस आयी तो अचानक ही उसकी मृत्यु हो गयी। अपने घरसे उस बीमार स्त्रीके पास जानेसे पहले वह बिल्कुल ही अच्छी थी। उसे किसी भी प्रकारका कोई रोग नहीं था।

भाँगरी मुसल्मान थी। उसे मुसल्मानी प्रथाके अनुसार दफनानेकी क्रिया करनी प्रारम्भ कर दी गयी। उसे दफनानेके लिये गाँवसे बाहर जंगलके कब्रिस्तानमें एक गड्ढा भी खोद लिया गया और भाँगरीके शवको वस्त्रोंसे लपेटकर सी दिया गया। जब उसे कब्रमें दफनानेके लिये रक्खा जाने लगा तो वह एकाएक जीवित हो गयी। उसके मुखसे एकदम कुछ अव्यक्त शब्द निकले। उसने अपने हाथके संकेतसे अपने मुखपरसे कपड़ा हटानेके लिये कहा। जब उसके मुखपरसे कपड़ा हटाया गया तो उस समय लोगोंने बड़े ही आश्चर्यके साथ देखा कि उसका सिर पहले बिल्कुल ठीकठाक था; पर अब तो उसके सिरमें जलनेके तीन निशान लगे हैं, मानो किसीने उसे त्रिशूल गरमाकर दाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया है, जिससे उसके कुछ केश भी जल गये थे। बादमें जबतक भाँगरी जीवित रही तबतक वे केश बराबर जले रहे। वह त्रिशूलका निशान भी बराबर मरनेतक इसी प्रकार बना रहा। लोगोंने इसका कारण पूछा तो उन्हें भाँगरीने बताया—

"मैं बिल्कुल ठीकठाक थी। मुझे कोई रोग नहीं था। एकाएक मेरे सामने दो व्यक्ति आये। वे मुझे पकड़कर अपने साथ कहीं बहुत दूरपर ले गये। वे मुझे जहाँ ले गये, वहाँ पहुँचकर मैंने देखा कि एक बहुत बड़ी सभा लगी हुई थी। एक ऊँचे आसनपर एक बड़ा ही तेजस्वी व्यक्ति बैठा हुआ था। उस तेजस्वी व्यक्तिने उन दोनों व्यक्तियोंको, जिन्होंने मुझे उसके सामने ले जाकर उपस्थित किया था, बहुत ही फटकारा कि 'तुम इसे यहाँ-पर क्यों ले आये हो? इसकी मृत्यु अभी नहीं थी। इसकी तो आयु अभी चौदह वर्ष और बाकी है। तुम्हें तो हमने इसके पड़ोसकी जो स्त्री बीमार है, उसको लानेके लिये भेजा था। यह स्त्री बड़ी पापात्मा है। जब यह अपनी आँखोंसे अपनी दोनों लड़कियोंके मरनेका दुःख देख लेगी, तब मरेगी। तुमलोगोंने इसे व्यर्थ कष्ट दिया है; इसलिये इसके हितकी दृष्टिसे त्रिशूलसे इसके सिरको दाग दो, ताकि इसे अब जीनेके बाद यहाँपर आनेकी बात याद रहे। यह पापोंसे बचे।' उन्होंने मुझे झटसे त्रिशूलसे दाग दिया। इसी कारण ये मेरे सिरके केश जल गये हैं और मेरे सिरपर उनका लगाया त्रिशूलका निशान लगा हुआ है।"

भाँगरीकी बतायी हुई चारों ही बातें सत्य सिद्ध हुईं। सिरमें यमदूतोंद्वारा लगाया चिह्न जीवनभर रहा। जिस समय भाँगरी जीवित हुई थी, उसी समय उसके पड़ोसकी बीमार स्त्रीका देहावसान हो गया। १४ वर्षके भीतर ही सचमुच भाँगरीके सामने उसकी दोनों लड़कियाँ मरीं। उनके मरनेका घोर दुःख इसे अपनी आँखोंसे देखनेको मिला। १४ वर्ष पूरेकर वह १५वें वर्षमें मर गयी।

(२)

श्रीरक्खामलजी

सन् १९५४ की बात है। पिलखुवा हमारे स्थानपर उदासीन संत स्वामी श्रीरामेशचन्द्रजी महाराज कृपाकर पधारे थे। एक दिन उन्होंने कथाके बीच प्रसङ्गमें अपने घरकी एक परलोक-सम्बन्धी घटना सुनाते हुए कहा—

"सन् १९४६ की बात है। हमारे पिताजी, जिनका शुभनाम श्रीरक्खामलजी था, नानकाना साहबमें रहा करते थे। वहाँपर हमारा अपना घर था। हमारे पिताजी नित्य प्रति प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें ही उठ जाया करते थे; किंतु एक दिन वे ब्राह्ममुहूर्तमें नहीं उठे। इससे चिन्तित होकर घरके हमलोग पिताजीके कमरेमें उन्हें देखनेके लिये गये। वहाँ जाकर देखा कि पिताजी पलंगपर पड़े सो रहे हैं। हमने उन्हें जोरसे आवाज देकर पुकारा। वे बोले नहीं। हमने उन्हें पासमें जाकर समीपसे देखा और उनके शरीरके अपना हाथ लगाया। उस समय उनका शरीर ऐसा था कि जैसा कोई मुर्दा होता है। हम सब बहुत घबराये। तुरंत दौड़े हुए डाक्टरके पास गये और डाक्टरको अपने साथ बुलाकर लाये। डाक्टरने पिताजीको बड़े गौरसे देखा और कहा कि 'इन्हें अत्यधिक कमजोरी है।' उस समय पिताजीका सारा शरीर पसीनेसे लथपथ था। वे बिल्कुल पीले पड़ गये थे।

"कुछ देरके पश्चात् पिताजीको जैसे-तैसे होश हुआ। होशमें आनेपर उन्होंने हमें बताया—'प्रातःकाल लगभग पाँच बजे दो यमके दूत मुझे लेनेके लिये आये थे। उन्होंने मुझसे कहा कि 'तुम हमारे साथ चलो।' मैं उन दोनों यमदूतोंके साथ चला गया। दूर जानेपर मैंने देखा कि एक बहुत बड़ा मैदान है, जहाँपर एक मनुष्य बैठा हुआ है। उसने मुझे देखते ही उन दोनों यमदूतोंसे कहा—'इसे यहाँपर मत लाओ। हमने तुम्हें इसे लानेके लिये कब कहा था? वह तो दूसरा रक्खामल अग्रवाल है, जो इनके बिल्कुल पड़ोसमें ही रहता है? तुम जल्दीसे जाओ और उसी रक्खामल अग्रवालको ले आओ। इन्हें अभी ले जाकर वापस कर आओ।' वे दोनों यमदूत मुझे वहाँसे अपने साथ लाकर यहाँपर छोड़ गये। तबसे मेरे शरीरमें बिल्कुल ही शक्ति नहीं रही।"

हमने यह घटना कहाँतक सत्य है, यह जाननेके लिये तुरंत अपने मोहल्लेके लाला रक्खामल अग्रवालका पता लगाया। मालूम हुआ कि लाला रक्खामल अग्रवाल रात्रिको बिल्कुल स्वस्थ थे। उन्हें किसी प्रकारका कोई रोग भी नहीं था। खा-पी करके सोये थे; किंतु उनका ५। २५ बजे प्रातःकाल शरीर पूरा हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३)

सागवाली अहीरिन

हमारे पिलखुवाके पास एक गाँवकी बुढ़िया थी अहीरिन। वह बेट-कचरिया या साग आदि बेचकर अपना निर्वाह करती थी। हमारी माताजीसे उसका बड़ा स्नेह था। जब भी वह कभी कोई फल बेचने आती थी तो हमारे घर अवश्य आती थी। एक दिन वह अकस्मात् मर गयी। घरवालोंने उसे मरा समझकर, बाँसोंकी अर्थीपर कसकर, श्मशानघाट ले जाकर, लकड़ियोंपर लिटा दिया। ज्यों ही आग लगानेकी तैयारी हुई, वह हिलने लगी और बोल पड़ी। सबको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। जीवित होनेपर उसने परलोक-सम्बन्धी अपना अनुभव बताया। हमने भी उसे अपने स्थानपर बुलाकर माताजीके सामने सुना। उसने बताया—

'मैं बीमार नहीं थी, ठीक थी। मेरे सामने बड़ी-बड़ी डरावनी सूरतवाले दो काले-काले आदमी आकर खड़े हो गये और मुझे पकड़कर अपने साथ ले गये। मैंने वहाँपर देखा कि एक बहुत बड़ा दरबार लगा हुआ है। एक सुन्दर सिंहासनपर एक बहुत बूढ़ा व्यक्ति बैठा हुआ है, जिसके बिल्कुल सफेद चाँदी-जैसे बाल हैं। उसके हाथमें बहुत बड़ी बही है और कागजके ढेर लगे हुए हैं। उसने मुझे अपने सामने खड़ी देखकर उन दूतोंसे कहा—'अरे! तुम इसे क्यों ले आये? इसे अभी नहीं। इसे जल्दीसे नीचे डालो। तुम इसे भूलसे ले आये हो।' उन्होंने जल्दीसे लाकर यहाँ छोड़ दिया। यमदूतोंकी लगी मार आज भी मेरे शरीरमें कष्ट पैदा करती रहती है।'

(४)

श्रीविश्वम्भरनाथजी बजाज

दिल्लीके दैनिक पत्र 'हिन्दुस्तान' में ता० २० दिसम्बर, सन् १९५७ को यह समाचार छपा था—

"मुरैना। इस बातपर विश्वास होना कठिन है; किंतु घटना यह सत्य है कि यहाँके एक व्यवसायी विश्वम्भरनाथ बजाजका, जिनकी आयु ७५ वर्ष है और जो कई दिनोंसे बीमार चले आ रहे थे, अभी १६ तारीखको पहले तो उनका प्राणान्त हो गया; किंतु कुछ देर बाद वे फिर जीवित हो उठे। उसी समय उनके बजाय एक दूसरे व्यक्तिका देहावसान हो गया।

"घटना इस प्रकार बतायी जाती है कि १६ ता० को श्रीविश्वम्भरनाथकी दशा बिगड़ने लगी। धीरे-धीरे जीवनके सभी लक्षण उनके शरीरसे लुप्त हो गये। उनकी नाड़ीकी गति बंद हो गयी। श्वास बंद हो गया। शरीर पूर्णतया ठंडा हो गया। इसपर उनके कुटुम्बियोंने उन्हें मृत समझकर भूमिपर उतार लिया और अन्त्येष्टि-क्रियाकी तैयारियाँ करने लगे। किंतु लगभग आध घंटेके बाद ही वे अचानक उठ बैठे और आश्चर्यमें पूछने लगे कि 'यह सब क्या हो रहा है? उन्होंने लोगोंको यह आश्वासन देते हुए कि 'मैं मरा नहीं हूँ।' आगे बताया कि 'कुछ लोगोंने उन्हें उठाकर आकाशमें एक दिव्य पुरुषके सामने रख दिया, जो एक वृषभपर आरूढ़ था। उस दिव्य पुरुषने वाहकोंको फटकारते हुए कहा कि 'इस आदमीको शीघ्र ही पृथ्वीपर छोड़ आओ। मैंने इसे नहीं, बल्कि दूसरे व्यक्तिको बुलाया था।' इसपर वह वापस उन्हें यहाँ छोड़ गये, उन्होंने यह घटना सुनायी ही थी कि लोगोंको थोड़ी देर बाद यह जानकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि श्रीविश्वम्भरनाथमें चेतना उत्पन्न होनेके ठीक समय नगरके एक दूसरे व्यवसायी श्रीग्यासीराम, जो ४० वर्षकी आयुके थे और जिनका स्वास्थ्य पूर्णतया ठीक था, हृदयगतिके रुक जानेसे अचानक मर गये। इस दैवी घटनाकी चर्चा नगरके कोने-कोनेमें हो रही है।"

(५)

जानकी खटिकिन

'श्रीमारुतिसंजीवन' मासिक अङ्क १० अक्टूबर, सन् १९५६ में यह घटना इस प्रकार छपी है—

"अभी पूरे पचीस वर्ष नहीं हुए, इसी नुनहड बस्तीमें एक महिला जानकी नामकी थी, जो जातिकी खटिक थी, बीमार हुई और महीनों पड़ी रहकर एक दिन मरणासन्न अवस्थामें पृथ्वीपर लिटा दी गयी। हिचकियोंसे उसका प्राणान्त हो गया। इसी ग्रामकी वह लड़की थी और अपने नामकी जायदाद उत्तराधिकारमें पाकर अपने पति सीताराम नामक खटिकके सहित यहीं आकर रहने लगी थी। उन दिनों सीताराम जीवित था। हम गाँववाले अधिकांश जानकीको 'जनुकिया' कहकर ही पुकारते थे।

मृत्युके उपरान्त उसे श्मशान ले जानेके लिये बाँसकी लकड़ियोंपर उसकी अर्थी बनायी जाने लगी। सीताराम बूढ़ा था और दमाका रोगी था। लोगोंको बुलाने आदिमें पर्याप्त समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकल गया। लोग अर्थी बाँध रहे थे कि उधरसे जनुकियाकी बुरी तरहसे जोरसे चीखनेकी आवाज आयी। लोग इस आश्चर्यको देखने दौड़कर पहुँचे। उसे रोते देखकर पूछा तो 'उसने कमरमें बुरी तरह चोट लगने और बड़ी दूर ऊँचेसे पटक देनेकी चर्चा करते हुए बताया कि 'यहाँसे दो काले आदमी मुझे घसीट कर ले गये थे। मैं रोती-चिल्लाती रही; पर उन्होंने तनिक भी दया नहीं दिखायी। वहाँ पहुँचनेपर मैंने देखा—एक बूढ़े बाबा सफेद दाढ़ीवाले बैठे थे—तख्तपर। उनके पास ढेर-के-ढेर बस्ते रक्खे थे। उनके सामने पहुँची तो उन्होंने देखते ही उन ले जानेवाले लोगोंसे कहा—'इसे क्यों लाये हो? दूसरी जमुलिया है, उसे लाओ।' यह सुनकर उन लोगोंने मुझे वहाँसे पटक दिया, इससे मेरी कमर टूट गयी। मैं बच भी गयी तो अधमरी हो गयी।' उसकी ये सब बातें सुनकर सब लोग अपना-अपना तर्क और बुद्धिमानी बघारने लगे, पर दो घंटेके पश्चात् स्थानीय एक दूसरी बुढ़िया जमुनिया नामकी लोध राजपूतनी मर गयी। उस घटनाके पश्चात् जनुकिया खटिकिन दस वर्षसे भी अधिक जीवित रही।"

(६)

श्रीरुद्रदत्त

'नवभारत टाइम्स' दिल्ली (९।१।१९६०) लिखता है। "नैनीताल ८ जनवरी। गढ़वाल जिलेमें रानाघाटके पास छुंडी ग्रामका निवासी रुद्रदत्त मृत घोषित किये जानेके कुछ देर बाद पुनः जीवित हो उठा। उसके सगे-सम्बन्धी रोते हुए विलाप कर रहे थे और उसकी अन्तिम क्रियाकी तैयारी की जा रही थी। इतनेमें मृत व्यक्तिमें पुनः जीवनके चिह्न दिखायी दिये। उसने आँखें खोलीं। अपने सम्बन्धियोंको और ग्रामवासियोंको परलोकयात्राके अनुभव सुनाये। रुद्रदत्तने कहा कि 'मुझे श्रीहनुमान्‌जीका मन्दिर बनानेका दैवी आदेश मिला है।' रुद्रदत्त काफी समयसे बीमार था। अब वह अच्छा हो गया है और उसने परलोकमें मिले दैवी आदेशके अनुसार एक श्रीहनुमान्‌जी महाराजका मन्दिर बनाना शुरू कर दिया है।"

(७)

तुलसी बुआ

'प्रभात' दैनिक, मेरठ ता० ४ मार्च, सन् १९६६ में छपी घटना इस प्रकार है—

"कानपुर। मौतको उन्होंने छला था या मौतने उन्हें—यह तय करना तो कठिन है, लेकिन अन्तमें श्रीतुलसी बुआको मरना ही पड़ा। तुलसी बुआ यहाँसे -चालीस मील दूर स्थित एक ग्रामकी निवासिनी थीं। अपने धर्मप्रेम तथा पूजापाठके लिये विख्यात थीं। विगत १४ फरवरीको रात्रिमें १० बजे उनका देहान्त हो गया और दूसरे दिन प्रातः जब उन्हें चितापर रक्खा गया तो वे उठकर बैठ गयीं और बोलीं कि 'यमदूत मुझे भगवान्‌के सामने ले गये तो वे बोले कि अभी इसका समय नहीं हुआ है। इसपर यमदूत मुझे वापस भेज गये।' उन्होंने यह भी बताया कि 'भगवान्‌के सिंहासनपर इतनी चमक थी कि मुझे उनकी झलकतक नहीं दीख पायी।' तुलसीदेवीको, जो उस क्षेत्रमें बुआजीके नामसे विख्यात हैं, बाजे-गाजेके साथ घर लाया गया। समाचार-पत्रोंमें यह भी खबर छपी थी कि स्वर्गसे लौटी इस देवीके दर्शनोंके लिये हजारोंकी भीड़ उस गाँवमें पहुँचने लगी। तुलसी बुआ एक तख्तपर लेटी रामनाम जपती रहती थीं और कभी कदा दर्शनार्थियोंपर आशीर्वाद भी लुटा देती थीं। ठीक शिवरात्रिके दिन उन्होंने सहसा कहा कि 'अब मेरा अन्तकाल आ गया है।' और तत्काल उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। उनकी अन्त्येष्टिमें हजारों लोग शामिल हुए।"

सर औकलैंड गैड्डीजका अनुभव

(लेखक—श्रीनिरञ्जनदासजी 'धीर')

मृत्यु क्या है? स्थूलशरीरसे सूक्ष्मशरीरका सदाके लिये अलग हो जाना। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार (अन्तःकरण) सूक्ष्मशरीरका वह भाग है, जिसका मानव जीवित अवस्थामें भी हर समय प्रयोग करता है। मानवका व्यक्तित्व सूक्ष्मशरीर, जिसमें अन्तःकरण है, रहता है। जो मृत्युके पश्चात् भी वैसा ही रहता है। सूक्ष्म-शरीर काल तथा आकाश (Time and Space) के बन्धनसे मुक्त होता है। जहाँ ध्यान जाय वहीं वह स्वयं है। इन तथ्योंकी सत्यताकी पुष्टि सर औकलैंड गैड्डीज (Sir Auckland Geddes) के उस निबन्धसे होती है, जो इन्होंने २६ फरवरी १९२७ को 'रायल मेडिकल सोसाइटी'के अधिवेशनमें पढ़ा था, जिसमें मरते हुए एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोगीका अनुभव है। इस रोगीको ठीक मृत्युके द्वारसे चिकित्साद्वारा लौटाया गया था। सर औकलैंडने बताया कि "उस व्यक्तिको एक प्रकारका विषूचिका रोग हो गया था। वह कई घण्टोंसे वमन तथा अतिसारसे आक्रान्त था। रोगकी तीव्र व्यथा तथा उसके विषके प्रभावसे उसकी जीवनी-शक्ति जाती रही और वह निश्चेष्ट होकर पड़ गया। उसने अपनी आर्थिक स्थितिका मूल्याङ्कन किया, जिससे सिद्ध होता था कि उसकी चेतना सजग थी।

"अचानक उसने अनुभव किया कि उसकी एक चेतना (क) उसकी दूसरी चेतना (ख) से पृथक् हो रही है और यह (ख) चेतना भी वही है। उसका अहंकार मैं (क) चेतनाके साथ था और (ख) उसका शरीर था। फिर उसने अनुभव किया कि (क) चेतना (ख) शरीरसे बाहर है, जो (ख) शरीरको देख रही है, जो बिगड़ना आरम्भ हो गया था। शनैः-शनैः उसने यह अनुभव किया कि वह केवल समीपकी वस्तुएँ ही नहीं देख रहा है, वरं लंदनमें अपने घरको भी देख रहा है; यहाँतक कि स्काटलैंड तथा अन्य स्थानमें, जहाँ उसका ध्यान जाता, वही स्थान उसकी दृष्टिके समक्ष होता। उसको बताया गया कि काल तथा स्थान (Time and Space) के बन्धनसे वह मुक्त है। जिसका अर्थ था कि 'अब' (वर्तमान) और 'यहाँ' ही रह गये हैं। अब वह अपने परिचित लोगोंको पहचानने लगा; किंतु उसके चारों ओर रंगदार प्रकाश जमा हुआ प्रतीत होता था। जब डाक्टरने कहा कि 'रोगी तो हो चुका' तब उसने ये शब्द तो सुन लिये, किंतु वह उत्तर नहीं दे सकता था; क्योंकि वह (ख) शरीरसे बाहर था। डाक्टरने तब कैम्फरका इंजैकशन लगा दिया, जिससे हृदयमें शक्तिका संचार हुआ और वह गतिशील हो गया तो (क) को खींचकर (ख)में डाल दिया गया। इस घटनासे उसको महान् दुःख हुआ और उसे क्रोध आया; क्योंकि वह इस कौतुकको तथा वह कहाँ है और क्या देख रहा है, समझने लगा था। रोगीने बताया कि 'यह उसका अनुभव स्वप्नवत् नहीं था, जिसको भुलाया जा सके। यह उसकी सजग चेतनाका प्रत्यक्ष अनुभव था।' सर औकलैंडका कथन है कि 'यह अनुभव कृत्रिम नहीं था। सोलहों आने सत्य है।'

श्रीबालाबख्शजी

[पुत्रप्राप्ति]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

यह सही सत्य घटना मैंने अपनी पूजनीय माता श्रीबालाबाईके श्रीमुखसे सुनी थी, जो मुझे आज भी ज्यों-की-त्यों याद है।

राजपूताना हाडौती प्रान्तमें देहलनपुर नामकी तहसील पहले झालावाड़, कोटा राज्योंमें रही, अब बृहत् राजस्थानमें है।

इसी देहलनपुर तहसीलमें मेरे पितामह पू० बालाबख्शजी कारकूनके पदपर नियुक्त थे। अवस्था अधिक हो जानेपर भी पितामहीके कोई पुत्र—संतान न होनेसे दोनों बहुत उदास रहते थे। उन्होंने पुत्र-प्राप्त्यर्थ दान-पुण्य, अनुष्ठान-व्रतादि किये-कराये; किंतु सफलता नहीं मिली। इससे पू० पितामही रुग्ण रहने लगीं। चिकित्सासे लाभ नहीं हुआ। अन्तमें उनका देहान्त हो गया।

इस व्यथाको सम्बन्धी-जन यों व्यक्त करने लगे—'व्रतादिके फलस्वरूप इसको पुत्र-प्राप्ति हो जाती तो इसे अत्यधिक सुख मिलता। तो क्या ये सब सदुपाय निष्फल जाते हैं?' कोई कहता—'पुत्र-प्राप्तिके हेतु पहले बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया जाता था। अब साधारण उपायोंसे क्या होता है? माना कि कलियुगमें भगवन्नाम-स्मरणसे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं, पर इसमें अटल श्रद्धा भी तो होनी चाहिये।'

इधर यह चर्चा चल रही थी; उधर तैयार अर्थीपर शवको सुलाकर आवश्यक विधियाँ पूर्ण कर ली गयी थीं। अब केवल अर्थी उठाना ही शेष था। 'राम नाम सत्य है' कहते हुए ज्यों ही चार जनोंने अर्थी उठानेको हाथ बढ़ाये, त्यों ही शवमें कुछ चेतनता जान पड़ी। अपने कफनके बन्धनोंको तोड़नेकी मानो वह चेष्टा कर रहा है। यह देख सब लोग, सम्भावित भूत-प्रेत होनेकी शङ्का-कर शवकी ओर आश्चर्यभरी दृष्टिसे देखते हुए आपसमें कानाफूसी करने लगे—'कोई प्रेत समा गया है—इस शवमें।' कोई कहता—'किसी शव-साधकने अभीसे इसपर विद्या चलायी है।' हितैषी चिन्ता करने लगे—'यह शव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूत-प्रेत कुछ भी यदि हो जाय, तो इस धर्मपरायण घरानेमें कलङ्क लग जाय !' कोई कहता—'मरणके उपरान्त जीवित होना असम्भव है। यह किसी अज्ञात कारणसे हलचल हुई जान पड़ती है।'

इतनेमें ही शवके उठनेकी विशेष चेष्टा देखकर साहसी लोगोंने उसको उठानेमें सहारा दिया। अब पितामही उठकर बैठ गयीं; मानो गहरी निद्रासे जागी हों। धीरे-धीरे उन्होंने बोलना शुरू किया—

"मुझे यमदूत ले गये और यमराज चित्रगुप्तजीके सामने खड़ा कर दिया। वह स्थान मुझे स्वर्णपुरी-सा जान पड़ा। रत्नजटित स्वर्णके ऊँचे सिंहासनपर चित्रगुप्तजी विराजमान थे। उनके सम्मुख लंबे पन्नोंका साहूकारी बड़ी बही-जैसा एक बड़ा भारी पोथा रक्खा था। दूसरे ऐसे ही सिंहासनपर यमराजजी विराजमान थे, जिनका श्याम वर्ण, बड़े-बड़े लाल नेत्र और मोटा शरीर था। उनकी आज्ञासे पोथेके पन्ने उलटकर मेरे पाप-पुण्यका हिसाब देखते हुए चित्रगुप्तजी बोले—'इसकी तो अभी बहुत आयु भोगना शेष है। इसने जो भगवदाराधन, व्रत-अनुष्ठानादि किये हैं, उनके फलस्वरूप इसको एक धर्मात्मा पुत्रकी प्राप्ति होगी।'

यह सुन यमराजने दूतोंसे कहा—'तुमने बड़ी भूल की है। अब इसे शीघ्रातिशीघ्र इसके स्थानपर ले जाओ। नहीं तो इसके शवको जला देनेपर इसका आत्मा इधर-उधर भटककर शेष आयु बितायेगा और इसकी जगह उसी मुहल्लेकी इसी नामकी दूसरी महिलाको शीघ्र लाओ।'

मैंने कर जोड़ धर्मराजसे सानुनय निवेदन किया—'दयानिधान ! अब मैं मृत्युलोकमें घर जाकर क्या करूँगी ? मुझ निपूतीका कोई मुँह देखना भी पसंद नहीं करेगा। पुत्र-रत्नरूपी प्रकाशके बिना घरमें अन्धकार दिखायी देगा। मैं अशान्त और पहले-जैसी रुग्ण बनी रहूँगी। मुझे कुछ दिनोंके पश्चात् तो फिर आपके दरबारमें आना ही पड़ेगा। इसलिये जब आ गयी हूँ, तो वापस न भेजा जाय।'

मेरी प्रार्थना सुन धर्मराज बोले—'देखो, तुम्हारी मृत्यु-घड़ी अभी आयी नहीं है। दूत भूलसे तुमको यहाँ ले आये हैं। अभी भवनपर सुखपूर्वक जीवित रहो। भगवान्‌की तीर्थयात्रा करनेसे तुम्हारे धर्मशील, भगवद्भक्त और मातृ-पितृ-भक्त पुत्र उत्पन्न होगा।'

'यह वरदान सुन प्रसन्नतापूर्वक मैंने अपने घर आना स्वीकार कर लिया। किंतु, एक प्रार्थना पुनः यों की—'कृपासागर ! मुझे कोई निशानी दीजिये। इसके बिना वहाँ मेरी बातपर कोई विश्वास नहीं करेगा। लोग मुझे भूत-प्रेतकी संज्ञा देकर मेरे पास नहीं आवेंगे। मेरा जीवन दूभर हो जायगा।'

तब उन्होंने मुझे लोहेके चने निशानीके रूपमें दिये। फिर तत्काल मुझे यहाँ लाया गया। यह देखो, मेरी मुट्ठियोंमें लोहेके चने मौजूद हैं।"

इतना कहते हुए दादीजीने सबको वे लोहेके चने दिखाये, जिन्हें देखकर उपस्थित जनोंको विस्मयके साथ विश्वास हुआ।

यह संवाद थोड़ी देरमें ही सारे नगरमें बिजलीकी भाँति फैल गया, जिसे सुनकर नगर-निवासी एवं दूर-दूरके लोगोंके समूह बड़ी उत्सुकतासे इस अनोखे दृश्यको देखनेके लिये आने लगे। रक्षार्थ भवनके द्वार बंद कर लेने पड़े। तब भी बाहरसे प्रश्नावलीकी झड़ीसे मानो वातावरण गूँज उठा। सही बात बताकर बड़ी कठिनाईके साथ भीड़को वहाँसे हटाया गया।

सत्य समाचार जानकर सबको पूरा विश्वास हो गया कि 'सचमुच ही हमारे पुराणोंमें वर्णित यमलोक है, यमराज हैं, चित्रगुप्त हैं और वहाँ जीवोंके पाप-पुण्यका न्याय होकर कर्मोंके अनुसार दण्ड दिया जाता है।' इस प्रकार आपसमें वार्तालाप करते हुए वे अपने भवनोंको गये।

उसी समय सबने देखा-सुना कि ज्यों ही पितामहीका शव चैतन्य हुआ, तभी पड़ोसकी एक महिलाकी मृत्यु हो गयी और यों धर्मराजकी बात सत्य प्रमाणित हुई। तत्काल इस ताजी घटनाको देख जनताका परलोकके अस्तित्वपर और भी दृढ़ विश्वास जम गया।

पूज्य पितामहीके कथनमें पुराणवर्णित ऐसी किसी नरक-नदीकी चर्चा नहीं आयी, जिसमें पापी जीवोंको रखकर भाँति-भाँतिके कष्ट दिये जाते हैं और पुण्यात्माओंको सुख। जान पड़ता है—पुण्यमयी होनेसे उन्हें सीधे-सरल-मार्गद्वारा यमालयमें ले जाया गया होगा और उनके जीवको नरक दिखाये भी नहीं होंगे। सुनता आया हूँ—हमारी कई पीढ़ियोंमें अभक्ष्य-भोजन तथा कदाचारका तनिक भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलन नहीं रहा। यह भी एक कारण हो सकता है।

इस घटनाके कुछ दिनों पश्चात् श्रीधर्मराजका वरदान सिद्ध हुआ। पू० पितामह-पितामहीने पुत्र-कामनाके हेतु सम्पूर्ण भक्ति-भावनाके साथ श्रीजगन्नाथपुरीकी तीर्थ-यात्रा की। वहाँ सविधि यात्रा पूरी कर भवनपर लौटनेके बाद दयासिन्धु श्रीहरिकी महती कृपासे मेरे पिताजीने जन्म ग्रहण किया।

श्रीधर्मराजके वरदानके अनुसार पिताजी अपने जीवनमें बड़े धर्मशील, भगवत्परायण, मातृपितृ-भक्त, दानी एवं साधु-सेवी रहे, जिसके कारण उनका स्वर्गवास मुक्ति-प्रदायिनी काशीजीमें हुआ।

उनका जन्म-वृत्तान्त सुनकर उन लोगोंके विस्मयकी सीमा नहीं रही, जो व्रत-अनुष्ठानादिके द्वारा अथवा भगवान्-की आराधनासे मनोकामना सिद्ध होनेमें संदेह करते थे, एवं धर्मराजके वरदानकी बात असत्य मानकर हँसी उड़ा रहे थे। अब तो उनके पास पश्चात्तापके सिवा हँसी उड़ानेका कोई उपाय नहीं रहा।

जीव अपने कर्मानुसार विभिन्न योनियोंमें जन्म लेकर कर्मोंका फल भोगता है। यही हमारी आर्य-संस्कृतिका शाश्वत सत्य निश्चित सिद्धान्त है। इसपर पूरा विश्वास करना ही अभीष्ट है।

आजका मानव अविश्वासी बन, भगवान्‌को भूलकर स्वार्थ, व्यभिचार, अत्याचार, हिंसा, चोरी-डकैती, ईर्ष्या, द्रोह, असत्य, बेईमानी आदि अनेक दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त हो, खुशियाँ मना रहा है। अपने दुर्लभ जीवनका इस प्रकार दुरुपयोग कर दिनोंदिन उसका ह्रास करनेमें जरा भी लज्जित नहीं होता है। यह निश्चित ही उसे अधोगतिमें डालनेवाली भयंकर भूल है। इसे शीघ्रातिशीघ्र त्यागना होगा, तभी संसारके मानवका सभी भाँतिसे भला हो सकता है। यह अकाट्य सत्य है।

(४)

अन्नदान करनेवाली बुढ़िया माई

(प्रेषक—श्रीज्योतिनारायणजी तिवारी)

पंद्रह वर्ष पूर्वकी बात है—मेरी माताजी बीमार पड़ीं। तीन दिनोंतक मूर्च्छित मृतकवत् रहीं। चौथे दिन उनको होश आया और वे अच्छी हो गयीं। अब वे, जो भी भूखा उनके द्वारपर आता, उसको खुले हाथों अन्न देने लगीं। उनसे पूछा तो उन्होंने बताया—"तीन दिनकी बेहोशीमें मैं स्वर्ग गयी थी। वहाँ बहुत प्रकारकी खान-पानकी सामग्री थी। मैं माँगती तो मुझे देवदूत कहते—'तुमने अन्नदान किया ही नहीं, तो तुमको कहाँसे मिलेगा।' इसके बाद धर्मराजने कहा कि 'इसकी आयु अभी है।' अतः मुझको छोड़ दिया गया। छोड़ते ही मैं होशमें आ गयी। तबसे अन्नदान कर रही हूँ।"

अन्य धर्मावलम्बी भी सद्गतिके लिये 'गयापिण्ड' चाहते हैं

अंग्रेजी राज्यमें कलकत्तेमें ब्रिटिश तथा पश्चिमीय देशोंके सैकड़ों व्यापारी-संस्थान (फर्म) थे, जो प्रायः आयात-निर्यातका व्यापार करते थे। उनके साथ बाजारके व्यापारियोंसे क्रय-विक्रयका सौदा करानेवाले सैकड़ों बड़े-बड़े प्रतिष्ठित भारतीय फर्म थे, जो कमीशनपर मध्यस्थका काम करते थे। एक अंग्रेज फर्म था—श्रीएण्ड्रयू यूल कम्पनी (Andrew Yule Co.), जो अब भी है। उसके मध्यस्थका काम करनेवाला था—कलकत्तेका प्रसिद्ध 'जटिया' फर्म।

इस जटिया फर्मके बड़ोंके दिवंगत हो जानेपर स्व० श्रीकन्हाईलाल जटिया गयाश्राद्ध कराने गये थे। वहाँ चतुर्दशीकी रात्रिको इन्हें उपर्युक्त ईसाई फर्मके दिवंगत श्रीयूल (Yule) साहेब दिखायी दिये और उन्होंने इनसे अपने लिये पिण्डदान करनेका अनुरोध किया और दूसरे दिन वह पिण्डदान किया गया।

एक मृत पारसी आत्माने एक सज्जनसे कहकर अपने लिये गयामें पिण्डदान करवाकर सद्गति प्राप्त की थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्याण'में भूत-प्रेत-चर्चा क्यों ?—प्रेतयोनि कभी न मिले इसलिये !

एक सज्जन लिखते हैं—'कल्याण' तो परमार्थ-पथपर ले जानेवाला आध्यात्मिक पत्र है । इसमें भूत-प्रेतोंकी चर्चा नहीं होनी चाहिये और न प्रेतावेश या प्रेतोंके उपद्रव आदिकी घटनाएँ ही छपनी चाहिये ।' पत्र-लेखक महोदय 'कल्याण'के प्रेमी हैं और उन्होंने जिस दृष्टिकोणसे पत्र लिखा है, वह सर्वथा आदरणीय है । 'कल्याण' उनका तथा उन्हीं-जैसे प्रेमी बन्धुओंका नित्य कृतज्ञ है । वास्तवमें 'कल्याण'का उद्देश्य भगवान्‌की ओर प्रवृत्त करना ही है । प्रेत-चर्चा करना या प्रेतोंमें आस्था उत्पन्न करना 'कल्याण'का कदापि लक्ष्य नहीं है । न 'कल्याण' प्रेत-पूजाका प्रचार चाहता है । इसीलिये इस विशेषाङ्कमें प्रेतोंके सम्बन्धमें आयी हुई घटनाओंमेंसे बहुत थोड़ी-सी ही दी गयी हैं । सब दी जातीं तो विशेषाङ्क उन्हींसे भर जाता । ये भी इसीलिये दी गयी हैं कि 'प्रेतयोनि सत्य तथ्य है, कल्पना या बहममात्र नहीं है ।' यह सर्वथा सत्य है कि प्रेतावेशके नामपर ढोंग, ठगी, बदमाशी बहुत चलती है और उससे सावधान ही रहना चाहिये । कहीं जान-बूझकर धोखा नहीं भी दिया जाता तो वहाँ मानस-दुर्बलता या हिस्टीरिया आदिकी बीमारीको प्रेतबाधा मान लिया जाता है । तथापि तथ्य तो है ही । और संसारके मनुष्य त्रिगुणमयी सृष्टिके हैं । उनमें तमोगुणी भी हैं ही । ऐसे कर्म भी प्रायः बहुत लोगोंसे हो जाते हैं, जिनके फल-स्वरूप प्रेतयोनि भोगनी पड़ती है । प्रेतयोनि अत्यन्त यातना-मयी है । इसमें मनुष्योंको न जाना पड़े और वे धर्ममार्गपर चलें तथा फलतः अध्यात्म-पथारूढ़ होकर भगवान्‌को प्राप्त करें, इसी उद्देश्यसे प्रेतचर्चा भी आवश्यक समझकर की जाती है । प्रेतयोनिके सम्बन्धमें संक्षेपमें नीचे लिखी बातें जाननेकी हैं—

प्रेतयोनि सत्य है

प्रेतयोनि होती है । वह वायुप्रधान शरीर होता है । प्रेत सभी एक-सी शक्ति, बुद्धिवाले नहीं होते । यहाँकी भाँति विभिन्न जातियोंके प्रेत, कम-ज्यादा शक्ति-सामर्थ्यवाले, अच्छे-बुरे स्वभाववाले, शान्त-अशान्त प्रकृतिवाले, तमोगुणप्रधान होनेपर भी सत्त्व, रज या तमकी न्यूनाधिकतावाले होते हैं और उसीके अनुसार उनके आचरण होते हैं । इस लोकके-जैसी ही उनकी आकृति-प्रकृति होती है । यहाँके अनुसार ही उनमें राग-द्वेष, अपना-पराया, ममता-विषमता आदि होते हैं और वे तदनुसार ही शक्तिभर भला-बुरा करना चाहते हैं । शक्ति होती है तो शक्तिके अनुसार हित-अहित करते भी हैं । सत्-स्वभावके प्रेत भी होते हैं; परंतु अधिकांशमें वे पापात्मा, द्वेष-हिंसा-परायण ही होते हैं । वे प्रायः अनवरत अत्यन्त अशान्त तथा दुखी रहते हैं । प्रेत नीचे लिखे कारणोंसे अधिकतर होते हैं ।

प्रेतयोनि क्यों मिलती है ?

१—संसारमें किसी प्राणी-पदार्थके प्रति प्रबल द्वेष या वैर होनेपर या अत्यन्त आसक्ति या ममता होनेपर प्रेतयोनि प्राप्त होती है । किसीसे द्वेष रखकर मरनेवालेको बड़ी पीड़ा-दायक प्रेतयोनि मिलती है । (अतः किसीसे द्वेष न रक्खे । किसीका अपराध हो गया हो तो मृत्युसे पहले उससे क्षमा माँग ले । अपने मनसे द्वेष निकाल दे ।)

२—जिनका अन्त्येष्टि-संस्कार, शास्त्रोक्त पिण्डदान, तिलाञ्जलि, श्राद्धादि शास्त्रविधिसे नहीं होते, उनको प्रेतत्वकी प्राप्ति होती या उनके प्रेतयोनिमें निवासकी अवधि बढ़ जाती है ।

३—जो यहाँ भूत-प्रेतोंकी पूजा करते हैं, तामसी साधन करते हैं, तामस खान-पान तथा आचार-व्यवहार करते हैं, वे प्रायः प्रेत होते हैं ।

४—शराबखोर, चोरी-डकैती करनेवाले, हत्याकारी, व्यभिचारी, शास्त्रविरुद्ध आचरण करनेवाले तथा अधर्मके प्रचारक प्रेत होते हैं ।

५—जो आत्महत्या करते हैं, वे प्रेत होते हैं ।

६—जिसकी किसीके द्वारा हत्या कर दी गयी हो, वह जीव भी मारनेवालेसे बदला लेनेकी प्रबल भावनासे प्रेत होता है ।

इनके सिवा और भी कई कारण प्रेतत्व-प्राप्तिके होते हैं । इन सभी कारणोंसे बचना चाहिये तथा घरवालोंको बचानेकी चेष्टा करनी चाहिये । प्रेतत्वसे बचा देना या प्रेत-योनिसे छुड़ा देनेका प्रयत्न करना घरवालोंका, मित्र-बन्धुओंका कर्तव्य तो है ही, महान् पुण्यका कार्य भी है ।

प्रेतयोनिसे छूटनेके उपाय

प्रेतत्व-निवारणके लिये तर्पण, श्राद्ध आदि विधि-श्रद्धाके साथ अवश्य करने चाहिये । जो श्राद्धके अधिकारी हैं, वे ही सम्पत्तिके भी उत्तराधिकारी हैं । पुत्र इसलिये उत्तराधिकारी नहीं कि वह पुत्र है, इसलिये है कि वह पिण्डदान, श्राद्ध करके अपने पिता-पितामह आदिका उद्धार करता है ।

प्रेतत्व-निवारणके लिये श्रीमद्भागवत-सप्ताह, विष्णु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहस्रनामके पाठ, गायत्री-पुरश्चरण, भगवन्नाम-कीर्तन, द्वादशाक्षर (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) मन्त्रका जप, गयाश्राद्ध, तीर्थश्राद्ध आदि परमावश्यक हैं। यथायोग्य इनका प्रयोग करना चाहिये।

कौन प्रेत नहीं होते ?

प्रेतत्वसे बचनेके लिये सदाचारी, सत्कर्मपरायण, शास्त्रविधिको जाननेवाले, माता-पिता-गुरुजनोंके पूजक, प्राणिमात्रका हित चाहनेवाले तथा भगवान्‌का भजन करनेवाले बनना चाहिये। निरन्तर भगवान्‌के नाम-जप तथा भगवत्स्मरणका अभ्यास करना चाहिये। भक्त कभी प्रेत नहीं होता।

प्रेतका आवेश कब कहाँ होता है ? और उससे बचनेके उपाय

प्रेतोंका आवेश होता है—यह सत्य है; परंतु वे प्रायः उन्हींमें आविष्ट होते हैं या उन्हींको पीड़ा दे सकते हैं, जो अपवित्र, असदाचारी हों। नियमित संध्या, अग्निहोत्र तथा गायत्री-जप करनेवाले, पवित्र आचरण करने तथा पवित्र खान-पानवालोंको प्रेत पीड़ित नहीं कर सकते। प्रेतयोनिमें जीव अतृप्त वासनाओंसे जलता रहता है। अतएव—

१—अशुद्ध स्थानमें, खुली जगह मिठाई खाते समय, एकान्तके अन्धकारमें, स्त्रियोंके नग्न स्नान करनेकी स्थितिमें, तालाब आदिके किनारे, पीपल, बड़, ताड़-खजूर आदिके नीचे, सुनसान जगहमें, पेड़के नीचे, श्मशान-भूमिमें, समाधि या कब्रके पास, कूएँ-बावड़ीके तटपर और चौराहेपर मलमूत्रका त्याग करनेपर वहाँके निवासी प्रेतोंका आवेश हो सकता है। इनसे बचना चाहिये।

२—जो मकान, पुराने दुर्ग-किले—बहुत दिनोंसे निर्जन पड़े हैं, उनमें रात्रि या दिनको भी सहसा नहीं जाना चाहिये और न उनमें रात्रि-निवास करना चाहिये। उनमें रहना हो तो पहले हवन-पूजन, श्रीमद्भागवत-सप्ताह, रामायण सुन्दरकाण्ड-पाठ कराकर तब रहना चाहिये।

३—जिन स्थानोंमें जानेको मना किया गया है, उन स्थानोंपर जाना ही पड़े तो भगवन्नामका जप करते हुए, गायत्री-मन्त्रका जप करते हुए अथवा जोर-जोरसे भगवन्नामका कीर्तन करते या कोई भगवान्‌की स्तुतिको बोलते हुए जाना चाहिये।

४—कभी कोई अद्भुत आकृति दीख ही जाय या मनुष्यके रूपमें ही कोई दीखे और उसके प्रेत होनेकी सम्भावना हो तो भगवन्नाम या गायत्री-मन्त्रका जप करने लगना चाहिये। उससे स्वयं नहीं बोलना चाहिये। वह बोले तो नम्रतासे उचित उत्तर देना चाहिये। अपने पास कोई वस्तु हो और वह माँगे तो उसे दे देनी चाहिये।

५—किसी भी दशामें डरना नहीं चाहिये। डर लगता ही हो तो उच्चस्वरसे भगवन्नाम लीजिये। उन समस्त-भयहारी सर्वसमर्थ प्रभुको पुकारिये। भय स्वयं भाग जायगा। लेकिन घबराकर भागिये मत।

६—कोई प्रेत, देवता आदि आपसे कुछ अनुचित करनेको कहे, कोई अपवित्र वस्तु दे या माँगे, कोई ऐसा धन या पदार्थ दे जो आपका नहीं है तो नम्रतापूर्वक, किंतु दृढ़तासे अस्वीकार कर दीजिये। उसकी बात स्वीकार करनेमें हानि होनेकी सम्भावना है। वह धमकावे तो भी अस्वीकार करनेमें ही हित है।

७—जो प्रेत-पूजक, तन्त्र-मन्त्र, टोना-टोटका करनेवाले लोग हैं, किसी बाधाके निवारणके लिये इनकी सहायता लेना आवश्यक हो तो लेनी चाहिये। किंतु चमत्कार देखनेके कुतूहलवश अथवा कुछ सीखने, कुछ लाभ उठानेकी आशासे इनसे परिचय मत बढ़ाइये। इनसे अपरिचितोंकी अपेक्षा प्रायः परिचितोंकी हानि अधिक हुआ करती है।

८—अशुद्धावस्थामें, खाकर, दूध पीकर या मिठाई खाकर बिना कुल्ला किये कहीं मत जाइये। अपने शरीर तथा वस्त्रको, अपने रहनेके स्थानको शुद्ध रखिये।

९—प्रेतसिद्ध करके उससे कुछ भी काम लेनेकी कभी भी न इच्छा कीजिये, न वैसी क्रिया ही कीजिये।

१०—जो भगवान्‌की शरण ले लेता है, भगवान्‌का भजन करता है, उसे किसीका भय नहीं है। देवता भी उसका अपकार नहीं कर सकते। अतः भगवान्‌की शरण लेकर, उनका स्मरण, उनका नाम-जप-कीर्तन करनेमें लगे रहना सर्वदा-सर्वत्र-सर्वथा मनुष्यको निर्भय कर देता है।

किसीको प्रेतबाधा हो, प्रेतावेश होता हो तो आवेशके समय पहले उससे नम्रताके साथ पूछिये कि 'वे कौन हैं, क्या चाहते हैं ?' वे बता दें तो उनकी उचित माँग पूरी कर दीजिये। अन्न, वस्त्र, जलदान तो बिना माँगे ही मृतात्माओंके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये करना चाहिये; माँगनेपर तो तुरंत कर देना चाहिये। अनुचित पापकी माँग हो तो न मानिये। प्रेतबाधा-निवारण-के लिये नीचे लिखे उपाय करने चाहिये। इनसे लाभ होता देखा गया है।

जिस कमरे या मकानमें वह व्यक्ति रहता हो, जिसको प्रेतबाधा हो, उस कमरे या मकानमें अखण्ड भगवन्नाम-कीर्तन किया जाय।

गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित जल (मँजे हुए शुद्ध बर्तनमें शुद्ध कूपजल या गङ्गाजल डालकर ११ बार गायत्रीमन्त्र बोलते हुए उसमें दाहिने हाथकी तर्जनी अँगुली फिराकर) उस मकानमें या कमरेमें सर्वत्र छिड़क दें। थोड़ा-थोड़ा, प्रातः-संध्या दोनों समय उस व्यक्तिको पिला दें और उसके बिछौनोंपर छिड़क दें। उसके कानमें गायत्री-मन्त्र सुनावें। गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित गङ्गाजल नहाते समय उसके मस्तकपर थोड़ा-सा डाल दें।

श्रीमद्भगवद्गीताका यह श्लोक उसको बार-बार सुनावें और कई प्लेटोंपर लिखकर दीवालपर टाँग दें—

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः॥
(११।३६)

इसके द्वारा (उपर्युक्त रीतिसे) अभिमन्त्रित जल भी रोगीको पिलाना चाहिये। नीचे लिखा यन्त्र मङ्गलवारके दिन भोजपत्रपर लाल चन्दनसे लिखकर और उसके नीचे उपर्युक्त गीताका श्लोक लिखकर रोगीके (पुरुष हो तो दाहिने हाथमें, स्त्री हो तो बायें हाथमें) ताँबेके ताबीजमें डालकर, धूप देकर बाँध दें और प्रतिदिन गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित जल उसपर छिड़कते और उसे पिलाते रहें।

२४	३१	२	७
६	३	२८	२७
३०	२५	८	१
४	५	२६	२९

ऐसे और भी बहुत-से मन्त्र-यन्त्र भी हैं, जो प्रेतपीड़ा-निवारणके सफल साधन हैं। परंतु इनके जानकार बहुत कम मिलते हैं और आजकल तो अधिकांश स्थानोंपर ठगी चलती है। कुछ वर्ष पहले हमारे एक मित्र प्रेतबाधासे पीड़ित थे। वे इन मन्त्र-तन्त्रवालोंसे बुरी तरह ठगे गये थे। अतएव मन्त्र-यन्त्रका प्रयोग वे ही लोग कर सकते हैं, जो इस विषयमें पूरा ज्ञान रखते हों तथा जो सर्वथा निःस्पृह हों। व्यवसायियों तथा विज्ञापनबाजोंसे सावधान रहना चाहिये।

आयुर्वेदमें भी प्रेतबाधाकी चिकित्सा बतलायी गयी है। उसमें ऐसे विशेष धूपों तथा अर्घ्योंका उल्लेख है, जिनसे प्रेतपीड़ा मिट जाती है। उनका उपयोग हानिकर नहीं है, परंतु उसमें भी जानकारीकी जरूरत तो है ही। ऐसे कई 'देवस्थान' भी माने जाते हैं, जहाँ जानेपर प्रेतबाधा दूर होती है, पर इनमें भी ठगी न चलती हो सो बात नहीं है। अतः कौन-सा स्थान, कितने अंशमें ठीक है, यह कहना बहुत कठिन है।

महामृत्युञ्जयके जाप, श्रीहनुमानचालीसा तथा बजरंगबाणके पाठसे भी प्रेतबाधा दूर होती है।

प्रेतोपासना या प्रेतसेवा कभी न करे। प्रेतोंसे लाभ उठानेका कभी प्रयत्न न करे। यह सब तामसी है। इनका फल परमार्थपथसे च्युति और प्रेतत्वकी या नरकोंकी प्राप्ति ही है!

घोर प्रेत कौन होता है?

भूत-प्रेतकी पूजा करता, करता जो तामस व्यवहार।
अंडे-मांस-शराब उड़ाता, चोरीका करता व्यापार॥
रखता मनमें वैर-द्वेष-मद, करता जो हिंसा, व्यभिचार।
होता घोर प्रेत वह, पाता असहनीय यातना अपार॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्जन्ममें योनिपरिवर्तन

(१)

लड़कासे लड़की

हीराकुँवरिका जन्म सितम्बर सन् १९१९में हुआ था। उसके पिता बाबू श्यामसुन्दरलाल, स्टेशन मास्टर हलद्वानी आर० के० आर० सन् १९२२ ई० के अगस्तमें अपनी पत्नी और कन्या हीराकुँवरिके साथ तीर्थयात्रा करनेके लिये मथुरा गये हुए थे। उन्होंने मथुरासे गोकुल जानेके लिये एक नाव की। गोकुलमें जिस समय वे उस स्थानसे होकर गुजर रहे थे जिसे यात्री लोग प्राचीन 'नन्दमहल' कहते हैं तो वह छोटी-सी बालिका जबरदस्ती नौकरकी गोदीसे उतर पड़ी। इसी ऐतिहासिक गृहके समीप एक छोटा-सा मकान था, जिसके दरवाजेपर एक वृद्धा स्त्री बैठी हुई थी। बालिका मकानके अंदर तेजीके साथ घुसती चली गयी और उसकी माँ भी उसके साथ-साथ चल दी। यहाँपर वह लड़की बातें करने लगी, मानो वह लड़का है। उसका पहला सवाल उस तख्तीके बाबत था, जिसपर वह लिखा करती थी। उसने अपनी कलमके बारेमें भी पूछा, जिसे वह तख्तके नीचे छोड़ गयी थी। दूसरी चीज जिसके बारेमें उसने पूछा, वह चौकी थी, जिसके ऊपर वह लिखनेके लिये बैठा करती थी। इन प्रश्नोंको सुनते ही वह बुढ़िया रोने लगी। तब उस बालिकाने बुढ़ियासे कहा कि 'हमारी माँको पान दो और सुपारी हमारे पीतलके सरौतेसे काट लो।' इसके बाद उसने अपनी माँसे कहा कि 'तुम चली जाओ, क्योंकि मैं अपने घर आ गयी हूँ, किंतु जानेके पहले पान ले लो।' हीराकुँवरिकी माँने नौकरको इशारा किया और उसने झट उस बालिकाको मकानसे खींचकर बाहर निकाल लिया।

इसके बाद सब लोग यमुनाजीकी ओर चले गये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने कछुओंको चने और लाई चुनायी। कछुओंको देखकर हीराकुँवरिने कहा—'तुमने पहले मुझे डुबो दिया था और इस बार फिर वही करनेके लिये आये हो।' यह सुनते ही जो बुढ़िया साथमें आयी थी, वह फिर फूट-फूटकर रोने लगी। आगे और पूछनेपर उस बालिकाने वह स्थान भी बतलाया, जहाँपर वह नहाते समय फिसल पड़ी थी और डूबकर मर गयी थी। बुढ़ियाने बालिकाकी सारी बातोंका समर्थन किया और कहा कि 'करीब चार साल हुए मेरा एक बारह वर्षका लड़का इसी स्थानपर डूब गया था।'

(२-३)

दो अद्भुत घटना

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

१.

मैं पिछले जन्ममें स्कूलमास्टर थी, फिर गौ बनी और अब एक लड़की हूँ।

दिल्लीके दैनिक पत्र 'हिन्दुस्तान' में ८ फरवरी, १९६६ में यह 'पुनर्जन्मसम्बन्धी' घटना इस प्रकार छपी थी—

'रोहतक। गोल परवाँपुरमें चञ्चलकुमारीने अपने पहले जन्मके हालात बताकर अपने माता-पिता तथा जनतामें सनसनी पैदा कर दी है। पिछले दिनों उसकी माताजी किसीके घर कथा सुननेके लिये गयीं। जब वह कथा सुनकर वापस आयीं तो चञ्चलकुमारीने उससे पूछा—'माँ! क्या सुनकर आयी हो?' माताने उत्तर दिया—'मुझे कुछ याद नहीं।' लड़कीने कहा—'माँ तुम्हें तो यह कथा याद नहीं, किंतु मुझे तो अपने पहले जन्मकी कथा याद है।'

चञ्चलकुमारी इस समय ९ वर्षकी है। उसने अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाते हुए कहा कि 'गत जीवनमें मैं पानीपतके एक स्कूलमें टीचर थी। मेरा नाम कृष्णलाल था। मेरे पिताका नाम रामप्यारा नागपाल था। २५ वर्षकी आयुमें मेरी मृत्यु पेटके दर्दके कारण हो गयी। सगाई हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुकी थी, पर विवाह नहीं हुआ था। मुझे अपने भाइयोंके तथा माताका नाम भी याद है।'

चञ्चलकुमारीने बताया कि 'कृष्णलालने मरकर गौका जन्म लिया। यह गौ शाहदरा जिला लाहौरके एक मुस्लिम परिवारके पास रही। गौ दूध कम देती थी। उसके मालिकने एक दिन लाठियोंसे उसे इतना मारा कि गौ निढाल होकर मर गयी। गौने मरनेके बाद गाँव परवाँपुरमें आपके घर जन्म लिया।'

गत सप्ताह चञ्चलकुमारीके जोर देनेपर उसके घरवाले उसे पानीपत ले गये। पानीपतमें उसने स्कूलकी बिल्डिंगको पहचाना एवं अपने पुराने घरको भी देखा। इस मुहल्लेके कुछ परिवारोंने तस्दीक की कि 'कुछ वर्षों पूर्व इस गलीमें एक स्कूलमास्टरकी मृत्यु पेटमें दर्द होनेके कारण हुई थी। चञ्चलके पिछले जन्मके परिवारके लोग पानीपत छोड़ चुके हैं। रोजगार करनेके लिये कहीं बाहर चले गये हैं।'

२.

नाईकी लड़कीने अपने पूर्वजन्मकी बातें बतलायीं

जिला मुजफ्फरनगरमें हमारी बहन सावित्रीदेवी विवाही हैं। मैं अभी पिछले दिनों जब उससे मिलने गया तो मुजफ्फरनगरके सुप्रसिद्ध रायबहादुर कुँवर श्रीजगदीशप्रसाद-जी रईससे भी मेरी भेंट हुई। माननीय कुँवर साहबने मुझे बताया कि हमारे नाईकी लड़की है, जो अपने पूर्वजन्मकी सब बातें बताती है। मैंने उसे देखनेकी इच्छा प्रकट की। कुँवर साहबने तुरंत अपने आदमीको मेरे साथ कर दिया और वह मुझे धूमसिंह नाईके मकानपर ले गया। बालिकाका नाम गीतारानी है। आयु लगभग उस समय ४ वर्षके थी। मैंने उसे अपने पास बिठाकर पूछा—

मैं—बेटी! तुम्हारा क्या नाम है?

गीतारानी—मेरा नाम गीतारानी है।

मैं—तुम्हें अपने पहले जन्मकी याद है? उस समय तुम कहाँ रहती थी?

गीतारानी—मैं श्यामली गाँवमें रहता था।

मैं—वहाँपर तुम क्या करते थे?

गीतारानी—दूकान करता था।

मैं—काहेकी दूकान करते थे?

गीतारानी—मैं वहाँपर फलोंकी दूकान करता था।

मैं—क्या वहाँपर तुम्हारी पत्नी भी थी?

गीतारानी—हाँ, मेरी स्त्री भी थी।

मैं—सुना है तुमने वहाँ श्यामलीमें अपना लड़का भी बताया था?

गीतारानी—मेरा लड़का भी था।

उससे हमारी बहुत-सी बातें हुईं। घरवाले नहीं चाहते थे कि व्यर्थ ही इस बातको तूल दिया जाय और चर्चाका विषय बनाया जाय।

(४-५)

बर्माके प्रमाण—स्त्रीका जन्म पुरुषरूपमें

(लेखक—प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

बर्माके भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्री ऊ नू ने बौद्ध-दर्शनपर अपने विचार प्रकट करते हुए पुनर्जन्मकी कुछ घटनाओंके बारेमें बतलाया था।

१.

एक घटना उस महिलाकी है, जो भूतपूर्व सूचनामन्त्री स्वर्गीय श्री डीडोक ऊ० बा चो (Deedok U. Ba Choe) की सम्बन्धी है। इस महिलाकी मृत्युके बाद ही एक ज्योतिषीने भविष्यवाणी की कि 'वह अपनी किसी (महिला) सम्बन्धीके पुत्रके रूपमें जन्म लेगी। पुत्रका पिता सरकारी अफसर होगा और जन्म किसी बुधवारको होगा।'

इस भविष्यवाणीको बहुत संदेहकी दृष्टिसे देखा गया; क्योंकि परिवारमें कोई भी महिला किसी सरकारी अफसरको नहीं ब्याही थी। लेकिन उस महिलाकी मृत्युके बाद जल्दी ही उसकी पुत्रीका विवाह एक सरकारी अफसरसे हो गया। फिर एक बुधवारको उसने एक पुत्रको जन्म दिया।

जैसे-जैसे पुत्र बड़ा होता गया, उसे अपनी माताके साथ रहना खराब लगने लगा। उसको अपनी मामीसे मिलना बहुत अच्छा लगता था। मामी मृत महिलाकी अभिन्न मित्र थी। बादमें बच्चेको परिवारके लोगों तथा मित्रोंके कुछ आभूषण दिखाये गये। उसने उनमेंसे रुबी (माणिक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात एक अँगूठी उठा ली। यह अँगूठी उसकी दादीको विशेषरूपसे पसंद थी।

२.

श्री ऊ नू ने एक दूसरा उदाहरण एक नर्तकी बल्ब्यान (Balbyan) का भी दिया। उसने कभी बताया था कि पिछले जन्ममें वह औंगबाला (Aungbala) नामका एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ नर्तक था।

उसे औंगबालाके व्यक्तिगत जीवनकी भी जानकारी थी। औंगबाला उसके जन्मसे बहुत पहले मर चुका था। वह यह भी कहती थी कि उसके शरीरका चिह्न औंगबाला-का आपरेशन होनेके कारण ही बन गया है। जब औंगबालाकी शल्यक्रिया हो रही थी, तभी वह मर गया था।

पुराना निशान

भूतपूर्व प्रधानमन्त्रीने एक डा यीन (Daw Yin) नामकी वृद्धाका भी उदाहरण दिया। डा यीनने अपनी बड़ी बहनकी मृत्युके बाद उसके पतिसे विवाह कर लिया था। उसकी बहनकी मृत्यु एक गिल्टीके असफल आपरेशनके कारण हो गयी थी।

बादमें डा यीनने एक पुत्रीको जन्म दिया। उस पुत्रीके गलेमें आपरेशनका निशान था। जब वह पुत्री बड़ी हुई तो वह अपनी मृत मौसीके जीवनकी घटनाओंका सही विवरण बताने लगी। उसे यह भी याद था कि डा यीन अपनी मृत बहनके बच्चोंको दण्ड दिया करती थी।

वह उन बच्चोंसे (जो इस जन्ममें उसकी मौसीकी संतान थे) वैसा ही व्यवहार करने लगी, जैसे माँ अपने बच्चोंके साथ करती है।

आलोचना

पुनर्जन्मकी घटनाओंपर शोधकार्य करनेवाले परामनो-वैज्ञानिकको नीम-हकीम कहकर पुकारा गया है और उनके शोधकार्योंको अव्यवस्थित कहा गया है। इन घटनाओंके प्रकाशित होनेके कारण आलोचना कम होने लगी है और लोगोंकी रुचि इस ओर हुई है। पुनर्जन्मकी अनेकानेक घटनाएँ प्रकाशमें आ रही हैं। परिणामस्वरूप वैज्ञानिक अब यह मानने लगे हैं कि पुनर्जन्म वैज्ञानिक जाँचका एक उपयुक्त विषय है। इस प्रकारकी घटनाओंमेंसे एक हम नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं—

(६)

लङ्काकी घटना

ग्नानाटिल्लेका बैड्डेविथाना (Gnanatilleka Baddewithana) का जन्म मध्य लङ्कामें हेदूनवेवा (Hedunawewa) के निकट १४ फरवरी, सन् १९५६ को हुआ था। जब वह एक वर्षकी बच्ची थी, तभीसे वह दूसरे माता-पिताके बारेमें बताने लगी थी। दो वर्षकी आयुमें उसने अपने गत जीवनके बारेमें स्पष्ट संकेत किया। उसने कहा कि उसके माता-पिता, दो भाई और बहुत-सी बहनें किसी दूसरे स्थानपर हैं। पहले तो उसने अपने पूर्वजन्मके निवासका स्थान ठीक-ठीक नहीं बताया, लेकिन जब कुछ गाँववाले तालावाकेले (Talawakele) नामक स्थानसे होते हुए उसके घर आये, तब उसने कहा कि उसके माँ-बाप तालावाकेलेमें रहते हैं। उसने कहा कि वह अपने पिछले जन्मके माँ-बापको देखना चाहती है। उसने पूर्वजन्मके अपने घरके बारेमें कुछ विस्मयकारक जानकारी दी और परिवारके लोगोंके नाम भी बताये। इस बातकी खबर कैण्डी नामक स्थानके पियादासी थेरा (Piyadassi Thera) और श्री एच० एस० निस्सांका (Mr. H. S. Nissanka) के पास पहुँची। उन दोनोंने इस बच्चीके द्वारा बतायी हुई बातोंके आधारपर एक परिवारको ढूँढ़ निकाला। जाँच करनेपर पता चला कि बच्चीके द्वारा बतायी गयी बातें बिल्कुल सच हैं। ९ नवम्बर, सन् १९५४ को इस परिवारमें तिल्लेकेरत्ने (Tillekeratne) नामके एक लड़केकी मृत्यु १२ वर्षकी अवस्थामें ९ नवम्बर, सन् १९५४ को हो गयी थी।

जल्दी ही (सन् १९६० में) ग्नानाटिल्लेकाके परिवारवाले उसे तालावाकेले ले गये। तालावाकेलेमें बच्चीने कस्बेके बहुत-से भवनोंको ठीकसे पहचान लिया। लेकिन जिस जगह उसने अपने 'पुराने' मकानके बारेमें बताया था, वहाँ पहुँचनेपर पता चला कि मकान गिर चुका था और उसका 'पुराना' परिवार तिल्लेकेरत्ने (जिसे वह अपने पूर्वजन्मका रूप बताती थी) की मृत्युके थोड़े ही दिन बाद दूसरी जगह बस गया था। इस प्रकार जब ग्नाना-टिल्लेका पहली बार तालावाकेले गयी तो उसके 'नये' और 'पुराने' परिवार एक-दूसरेसे नहीं मिल पाये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिल्लेकेरन्ने श्रीपाद कालेजमें पढ़ता था, जो कि तालावाकेलेसे १२ मील दूर स्थित हटनमें है। इस कालेजके तीन अध्यापक जब ग्नानाटिल्लेकासे मिले तो उसने ठीक तरहसे पहचान लिया और इस कालेज-की कुछ घटनाएँ भी सुनायीं। सन् १९६१में ग्नाना-टिल्लेकाको दुबारा तालावाकेले लाया गया। पियादस्सी थेरा, श्रीनिस्सांका, श्री डी० वी० सुमिथपलाकी उपस्थितिमें तिल्लेकेरन्नेके बहुत-से सम्बन्धियों और परिचितोंको बुलाया गया। ग्नानाटिल्लेकासे हर व्यक्तिके बारेमें पूछा गया—'क्या तुम इसे जानती हो?' ग्नानाटिल्लेकाने तिल्लेकेरन्नेके परिवारके सात लोगोंको ठीकसे पहचान लिया। इसके अलावा उसने दूसरे दो लोगोंको भी पहचाना।

दूरदर्शन, दूरानुभूति, भविष्यकथन

(लेखक—प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

दूरदर्शन (Clairvoyance)

पुनर्जन्मकी घटनाओंकी एक व्याख्या 'दूरदर्शनकी शक्ति' कहकर भी की जाती है। इन्द्रियोंकी वृत्तियोंके माध्यमका उपयोग किये बिना देख लेना, अथवा इन्द्रियोंकी सहज सीमासे अतीत वस्तुओंको अनुभव कर लेना 'दूरदर्शन' कहलाता है।

घटनाओंकी दूरवीक्षण-प्रणाली (Television) से दूरदर्शन (Clairvoyance) की तुलना की जा सकती है। इसमें अनुभव करनेवाला व्यक्ति टेलीविजनके पर्देके समान ही दूरवर्ती वस्तुओं तथा घटनाओंकी प्रतिच्छायाको पकड़ लेता है। दूरदर्शन एक स्वप्नके रूपमें भी हो सकता है और जाग्रत् अवस्थामें दृश्य देखनेके रूपमें भी इसकी परिणति हो सकती है।

दूरदर्शन—पूर्वचेतावनी

(१)

(प्रेसीडेंट लिंकन)

प्रेसीडेंट लिंकनने अपनी हत्याके थोड़े ही पहले एक स्पष्ट स्वप्न देखा था, जिसमें उन्होंने अपनी मृत्युको पहलेसे देख लिया था। जिन परिस्थितियोंमें लिंकनने यह स्वप्न बतलाया और जिस ढंगसे यह लिपिबद्ध कर लिया गया, वे इस घटनाको एक असाधारण महत्त्व प्रदान करते हैं।

अब्राहम लिंकनने हिचकते हुए अपने इस अस्वाभाविक अनुभवकी बात जिस समय कही थी, उस समय व्हाइट हाउसमें काफी लोग एकत्रित थे। वहाँपर वे तथा उनकी पत्नी अपने कुछ घनिष्ठ मित्रोंके साथ ली (Lee) के आत्मसमर्पणके समाचारके उपलक्ष्यमें जश्न मना रहे थे। प्रेसीडेंटकी चुप्पी कुछ अस्वाभाविक प्रतीत होती थी और वे म्लान दिखायी देते थे। उनकी पत्नीके चुटकी लेने-पर उन्होंने अपने स्वप्नकी बात कह दी। अमेरिकाके कोलम्बिया जिलेके मार्शल वार्ड हिल लेमन (Ward Hill Lamon) ने लिंकनके ही शब्दोंको इस प्रकार लिपिबद्ध किया है। यह सज्जन उस सभामें उपस्थित थे और उन्होंने घटनाके विवरणको उसी रात्रिको लिपिबद्ध कर लिया था।

'लगभग दस दिन पहलेकी बात है कि मैं बहुत देरसे सोया। मैं किसी आवश्यक पत्र भेजनेकी प्रतीक्षा कर रहा था·····जल्दी ही मैं स्वप्न देखने लगा। मेरे चारों ओर मृत्युका-सा सन्नाटा प्रतीत होता था। तभी मैंने सुबक-सुबककर रोनेकी आवाज सुनी। ऐसा लगता था, जैसे बहुत-से लोग रो रहे हों। मैं सोचने लगा और अपना बिस्तर छोड़कर सीढ़ियोंसे उतरकर नीचे घूमने लगा। दुःखद सुबकियोंने वातावरणके सन्नाटेको भंग कर दिया था; परंतु शोक मनानेवाले दिखायी नहीं दे रहे थे। मैं एक कमरेसे दूसरे—प्रत्येक कक्षमें गया; परंतु कोई भी जीवित व्यक्ति दिखायी नहीं दिया; परंतु उन कमरोंमेंसे गुजरते समय वह शोकपूर्ण दुःखद ध्वनि सतत आती रही। सभी कमरोंमें प्रकाश था। प्रत्येक वस्तु मेरी देखी हुई थी; परंतु वे सब लोग हैं कहाँ, जो इतने दुखी हैं, मानो उनके हृदय विदीर्ण हो रहे हैं।

'मैं विस्मित और सतर्क था। इस सबका क्या अभिप्राय है? इतनी रहस्यपूर्ण तथा दुःखद स्थितिका कारण जाननेका निश्चय करके मैं तबतक घूमता रहा, जबतक मैं पूर्वी पंक्तितक नहीं पहुँच गया। मैं उसमें प्रविष्ट हो गया। वहाँ मैंने दुःखजनक आश्चर्य देखा कि एक मंचपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दफनानेके वस्त्रोंमें लिपटा हुआ एक शव रक्खा है। इसके चारों ओर सुरक्षाके लिये सैनिक नियुक्त थे। अपार भीड़ थी। शवका चेहरा ढक दिया गया था, जिसमें कुछ तो शोक-युक्त मुद्रामें शवको निहार रहे थे और अन्य लोग बुरी तरह रो रहे थे।'

'मैंने एक सैनिकसे पूछा—'व्हाइट हाउसमें किसकी मृत्यु हो गयी है ?' उसने उत्तर दिया—'प्रेसीडेंटकी। उनकी एक हत्यारेने हत्या कर दी।'

इस प्रकार ऊपर पुनर्जन्मके स्पष्टीकरणके लिये अन्यान्य विकल्प प्रस्तुत किये गये हैं।

(२)

एक युवक

इसका अर्थ है कि इन्द्रियोंकी सीमासे परे स्थित वस्तुओंको जाननेकी शक्ति। यहाँ दूरदर्शनका एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

'एक युवक अपने घरसे पाँच मील दूर साप्ताहिक छुट्टियाँ बिता रहा था। अचानक उसने स्वप्न देखा कि उसके घरमें आग लग गयी है। वह अर्धनिद्रित अवस्थामें बड़बड़ाते हुए उठा और अपने घरकी तरफ भागा। उसकी माँने इस स्वप्नको अर्थहीन समझकर उसे रोकनेकी चेष्टा की। परंतु युवक सीधा गाड़ीमें तेजीसे अपने घरकी ओर चल पड़ा और वहाँ जाकर स्वप्नकी घटनाको सत्य पाया। तबतक गैरेज (मोटरखाना) पूरी तरहसे जल चुका था और विनाशकारी लपटें तीव्रतासे घरकी ओर बढ़ रही थीं। पड़ोसियोंकी सहायतासे बहुत कठिनाईसे किसी तरह घरको बचाया जा सका।'

उपर्युक्त घटना दूरदर्शनकी विशिष्टताओंका दिग्दर्शन कराती है, जो टेलिविजन (Television) के समान ही कोई वस्तु है। परामनोविज्ञान ऐसी बातोंका भी अध्ययन करता है।

(३)

कुमारी गीना बोशाँ

जूनके आरम्भमें एक शनिवारकी बात है कि चोशायरकी एक २३ वर्षीया लड़की गीना बोशाँ (Miss Gina Beauchamp) तथा उसकी माँ छुट्टी मनानेवाली भीड़के साथ लंदनके विक्टोरिया कोच स्टेशनपर गपशप कर रही थीं। वे वहाँ केन्ट (Kent) स्थित मेन्स्ट हवाई अड्डेपर जानेके लिये अपनी घोड़ागाड़ीकी प्रतीक्षामें थीं, जहाँसे अपनी छुट्टी बितानेके लिये कोस्टा ब्रावेकी हवाईयात्रापर जानेका उनका विचार था।

अचानक गीना (Gina) ने अपनी माँकी ओर मुड़ते हुए कहा—'मैं नहीं जा सकती। कोई घटना होनेवाली है।'

उसकी माँके समझानेपर भी वह अपने निर्णयपर डटी रही। उसकी निराश माताने अकेली ही यात्रा जारी रक्खी और गीना घर लौट आयी।

कुछ घंटे बाद वह हवाई जहाज फ्रांसके दक्षिणमें परपीयों (Perpignon) स्थानपर दुर्घटनाग्रस्त हो गया और गीनाकी माँ अन्य ८२ सहयात्रियोंके साथ मारी गयी।

क्या यह केवल आकस्मिक संयोग था ? या केवल यों ही उसकी लड़कीने हवाई जहाजसे न जानेका निर्णय कर लिया अथवा उसने भावी संकटको देख लिया था ? निश्चितरूपसे इस लड़की बोशाँ (Miss Beauchamp) की घटनाको अन्य इसी प्रकारकी हजारों घटनाओंसे तुलना करनेपर यह सामान्य इन्द्रियोंके सीमा क्षेत्रसे बाहर और ऊपरकी बात प्रतीत होती है। इसका विवेचन इसके अतिरिक्त अन्य ढंगसे नहीं किया जा सकता कि यह काल और देशके सीमाक्षेत्रसे अतीत मानसिक क्रियाकलापोंका एक निश्चित उदाहरण है।

(४)

एक सिपाही

इसे एक उदाहरणसे स्पष्ट करें—

'द्वितीय विश्वयुद्धके प्रारम्भिक कालमें एक सिपाहीको उसके घरसे लगभग ५० मील दूर एक अस्पतालमें भर्ती कराया गया। वह सिपाही अपनी पत्नीसे प्रतिदिन पत्रव्यवहार करता था। एक दिन उसकी पत्नीको उसका कोई पत्र नहीं मिला; परंतु सायंकाल लगभग ८ बजे अपने आराम-कक्षमें एक समाचारपत्र पढ़ते समय उसके हृदयमें अपने पतिसे टेलीफोनपर बातचीत करनेकी बहुत ही प्रबल प्रेरणा उत्पन्न हुई। उसकी यह इच्छा इतनी अधिक तीव्र होती गयी कि उसने टेलीफोनके पास जाकर उसके रिसीवरको उठा लिया। तभी उसे स्मरण हो आया कि आपात स्थितिके अतिरिक्त अन्य अवसरोंपर अस्पतालको फोन करनेपर प्रतिबन्ध है। इसलिये उसने इस विचारको छोड़ दिया। दूसरे दिन उसे दो पत्र प्राप्त हुए। प्रथम पत्रमें उसके पतिने इसे ८ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८.३० के बीचमें टेलीफोन करनेके लिये लिखा था और दूसरे पत्रमें उसने फोन न किये जानेपर निराशा प्रकट की थी; क्योंकि वह आधे घंटेतक बहुत उत्सुकताके साथ प्रतीक्षा करता रहा था।'

उपर्युक्त घटनाके द्वारा इस दूरानुभूति (Telepathy) का स्पष्टीकरण हो जाता है, जो परामनोविज्ञानकी शोधका एक विषय है।

(५)

मुश्येर द च.

भावी घटनाओंको पहलेसे ही जान लेनेकी योग्यताके सम्बन्धमें प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डाक्टर लाइबोंकी नोट बुकमेंसे उद्धृत निम्न उदाहरण बहुत रोचक है—

"सन् १८८६ की ७ जनवरीको डाक्टर लाइबो (Dr. Liebeault) से मुश्येर द च. (Monsieur de Ch.) नामक एक सज्जन परामर्श करनेके लिये आये। उक्त सज्जनने २६ दिसम्बर, १८७९ को पेरिसमें कौतूहलवश एक माध्यम (medium) से परामर्श लिया था। उस माध्यमके रूपमें एक महिलाने उससे कहा था—'ठीक आजके ही दिन एक वर्ष बाद तुम्हारे पिताकी मृत्यु हो जायगी। तुम जल्दी ही सेनाके सिपाही बन जाओगे, परंतु लंबे समय-तक सेनामें नहीं रहोगे (उस समय उसकी अवस्था १९ वर्षकी थी)। तुम युवावस्थामें ही विवाह कर लोगे। तुम्हारे दो बच्चे होंगे और २६ वर्षकी अवस्थामें तुम्हारी मृत्यु हो जायगी।' २६ दिसम्बर, १८८० को उसके पिताकी मृत्यु हो गयी। वह सेनामें सिपाही बना, परंतु केवल ७ मासके लिये। उसका विवाह भी हो चुका था और उसके दो बच्चे थे। अब उसका छब्बीसवाँ जन्मदिवस निकट आ रहा था और वह बुरी तरहसे डरा हुआ था और यही सोचता था कि अब उसके जीवनके थोड़ेसे दिन शेष बचे हैं।

डाक्टर लाइबोने उसे इस मनोग्रस्ततासे छुटकारा दिलानेका निश्चय कर लिया। उन्होंने उसका एक ऐसे व्यक्तिसे परिचय कराया, जिसने अपने दीर्घकालिक वातरोगसे मुक्त होनेकी भविष्यवाणी की थी और मानसिक सुझावकी प्रक्रियाद्वारा अपनी लड़कीको भी रोगमुक्त कर दिया था। उस व्यक्तिने युवक एम. द च. को उत्साहित करने तथा उसमें विश्वास जाग्रत् करनेकी चेष्टा की। इस व्यक्तिने उसके मामलेकी स्थितिको देखते हुए बहुत प्रभावशाली ढंगसे एम. द च. को बतलाया कि उसकी मृत्यु ४१ वर्षकी अवस्थामें होगी।

इसका परिणाम आश्चर्यजनक हुआ। युवक पुनः उत्साहसे भर गया और जब ४ फरवरीका दिन निकल गया तो वह अपने-आपको सुरक्षित अनुभव करने लगा। इस युवक व्यक्तिको मनोविज्ञानके एक उपचारने अपने श्रमसे मुक्त करके स्वस्थ कर दिया था और अपनी मृत्युसे भयभीत होनेसे बचा लिया था। परंतु एक घटना और घटी। ३० सितम्बर, १८८६ को अचानक उसकी आयुके २७ वर्ष पूरे होनेके पूर्व ही उदरच्छदकोप (Peritonitis) रोगसे उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार डाक्टर लाइबोद्वारा सारी सावधानी बरतनेपर भी उस माध्यमकी भविष्योक्ति पूरी हो गयी।

गया-पिण्ड सभीको दीजिये

किसी भी जाति-वर्णका कोई भी मनुष्य हो, वह मरकर कर्मवश प्रेतयोनिमें जा सकता है और प्रेत-योनिके प्राणियोंके लिये गया-श्राद्धकी बड़ी आवश्यकता होती है। अतएव गयामें या कहीं भी पिण्डदान किया जाय तो अपने कुटुम्बके लिये ही नहीं; बन्धु-बान्धव, मित्र, शत्रु, परिचित-अपरिचित जो कोई भी याद आवे, सबको पिण्डदान करवाना चाहिये। परिचित प्रेत तो आशा-प्रतीक्षा करते रहते हैं और समयपर प्रत्यक्ष होकर माँग भी लेते हैं। लेडी—राजस्थानके स्व०श्रीकस्तूरचन्दजी गाड़ोदिया गया-श्राद्ध कराने गये थे। वहाँ एक दिन रात्रिको एक नौजवान नाई-प्रेतने प्रकट होकर, 'मैं आपके गाँवका अमुक नाई हूँ, मुझे पिण्ड दीजिये।' कहा। गाड़ोदियाजी उसे पहचानते नहीं थे; पर पिण्डदान दे दिया। घर लौटनेपर पता लगाया तो मालूम हुआ कि 'कई वर्ष पूर्व इस नामका एक नौजवान नाई मर गया था।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक जन्मोंकी स्मृति

(लेखक—प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

संसारके विभिन्न भागोंसे ऐसी घटनाओंकी सूचनाएँ मिली हैं, जिनमें पुनर्जन्म लेनेवाला व्यक्ति एकसे अधिक जन्मोंकी स्मृति रखनेका दावा करता है। आइये, अब एक अत्यन्त आकर्षक तथा थोड़े ही काल पूर्वकी घटनाका परीक्षण करें। घटनाका विवरण इस प्रकार है—

१३ वर्षीया बालिका जोयद्वारा ९ पूर्वजन्मोंका दावा

१३ वर्षकी 'जोय वर्वे' (Joey Verwey) को विश्वास है कि उसके दस जन्म हो चुके हैं। वह कहती है कि एक पूर्वजन्ममें उसका अन्त तब हुआ, जब उसका सिर उतार दिया गया।

जोयने विस्तारपूर्वक अपने पूर्व-जन्मोंका विवरण देते हुए बतलाया कि 'उसके पूर्व जीवनोंका सम्बन्ध उन सैकड़ों वर्षोंके काल-खण्डसे है, जो पत्थरके युगसे लेकर बाईबलके मिश्र, प्राचीन रोम, १५ वीं शताब्दीके इटली, १७ वीं शतीके दक्षिण अफ्रीकाके जंगलोंमें रहनेवालों तथा गत १९ वीं शताब्दीमें समाप्त होता है।

दक्षिण अफ्रीकाके प्रिटोरिया नगरकी इस छात्राने अपने गत-जीवनोंके सम्बन्धमें तभीसे बतलाना प्रारम्भ कर दिया था, जब उसने बोलना सीखा ही था और वह पेंसिलका प्रयोग करने लगी थी। कुछ ही मास पूर्व तक उसकी शब्दों-द्वारा कही गयी कथाओं तथा चित्राङ्कित कृतियोंको केवल बच्चोंकी कल्पनाएँ समझा जाता था और इस बातका निर्णय करनेके लिये वैज्ञानिक जाँच-पड़ताल प्रारम्भ नहीं हुई थी कि गत वर्षोंमें उसका पुनर्जन्म हुआ है, अथवा नहीं; परंतु अब उनपर विश्वास किया जाने लगा है।

जोयका कथन है—

(१) एक भीमसरट (Dinosaur—प्राचीन भीमकाय वन-पशु) ने उसका पीछा किया था।

(२) वह एक दासी थी और उसका सिर काट दिया गया था।

(३) वह रोममें एक स्थानपर रहती थी और रेशमी धागेसे कम्बल बुना करती थी।

(४) ईश्वरके पुत्रके आगमनकी बात करनेवाले एक धर्म-उपदेशकको उसने पत्थर दे मारा।

(५) वह भित्तियों तथा छतोंपर बनाये गये बड़े-बड़े चित्रोंवाले देशमें बड़ी हुई थी (उसका संकेत उस समयके इटली देशकी ओर है, जब वहाँ कला और साहित्यका पुनर्जागरण हो रहा था)।

(६) वह उन 'ठिंगने पीले रंग'के लोगोंमेंसे थी जो बचपनमें रेतमें दबे हुए अण्डोंको खोद डालते थे (यह गुड होपके अन्तरीयमें १७वीं शतीके जंगलियोंकी एक आदत थी)।

(७) वह सन् १८८३ से सन् १९०० में ट्रांसवाल गणतन्त्रके तत्कालीन प्रेसीडेंट (President) स्टेफनस जोहन्स पलॉस (ऊम पॉल) (Stephanus Johannes Paulus or Oom Paul) क्रगरके पास आया-जाया करती थी।

जोयके पूर्वजन्मोंके विस्तृत विवरणकी वैज्ञानिकोंद्वारा प्रामाणिकता

प्राध्यापक आर्थर ब्लेक्स्ले (Professor Arthur Bleksley) ने जोयसे भेंट करके पूछताछ की है। यह प्राध्यापक दक्षिणी अफ्रीकाके जोहन्सबर्ग नगरमें विट्वाटर स्ट्रैंड (Wittater Strand) विश्वविद्यालयके तत्त्वावधानमें मानस-अनुभूति (साइकिक) के सम्बन्धमें प्रयोग कर रहे हैं।

जोयके पिता हैं—४४ वर्षीय एडवर्ड माइकल वर्वे, जो कभी पुराने बायलर बनाया करते थे। वे प्रारम्भमें जोयकी बातोंपर हँस दिया करते थे। अब वे उसे गम्भीरतापूर्वक सुनते हैं। एक कार्यालयमें काम करनेवाली उसकी ३९ वर्षीया माता 'कैरोलिन फ्रांसिस एलिजाबेथ' भी अब इन बातों-की ओर ध्यान देने लगी हैं और जोयके हर कथनकी डायरी रखने लगी हैं। उसके पिता वर्वेने बताया कि 'जोय दो या तीन वर्षकी बच्ची ही होगी, जब उसने सर्वथा अविश्वसनीय कथाएँ कहना प्रारम्भ किया था। उसके लिख-पढ़ सकनेके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहलेसे ही उसने पुराने समयके ऐतिहासिक दृश्यों तथा बहुत पुराने समयमें उपयोगमें लायी जानेवाली वस्तुओंके चित्र बनाना आरम्भ कर दिये थे।'

पहाड़की गुफा तक भीमसरट (पुराने कालके भीमकाय हिंसक वन्यपशु) द्वारा पीछा किये जानेवाली घटनाके विषयमें जानकारी देते हुए जोयने कहा कि 'वह पशु मकानसे भी बड़ा था'। उसने बताया—

'हमारी गुफाका केवल एक ही प्रवेशद्वार था। गुफामें बहुतसे आने-जानेके रास्ते होनेसे खतरा यह रहता था कि रातमें आसपास चुपके-चुपके घूमनेवाले बबर-शेर तथा बाघ भीतर आ सकते थे।'

'जब कभी जानवर भीतर आ जाते, दूसरे दिन प्रातःकाल रक्तका एक ढेर दिखायी देता था और उस समय हम यह जान जाते थे कि हममेंसे कोई शेर या बाघके चङ्गुलमें फँस गया।'

'जब वह बहुत छोटी थी, तभी उसने एक दास पोतका चित्र बनाया, जिसके विषयमें उसने कहा कि 'वह उसमें कैद थी।' उसने एक महलका भी चित्र खींचा, जहाँ वह बन्धनमें रक्खी गयी थी।

उसने यह भी बतलाया कि 'हम दासोंको कभी बोलने नहीं दिया जाता था। यदि हम ऐसा करते थे तो हमारी जीभ काट दी जाती थी।'

जोयने बतलाया कि 'दासीके रूपमें हम सब महलमें एक मूर्तिके सामने गोलाकार घूम-घूमकर चिल्लाते और नाचते हुए बालाका नाम ले-लेकर सूर्यदेवकी प्रार्थना किया करते थे।'

उसने यह भी कहा—'बादशाह एक भयानक व्यक्ति था। उसकी सुन्दर तथा लंबे केशोंवाली एक पत्नी थी। एक दिन क्रुद्ध हो जानेपर उसने उसका सिर काटकर थालीमें लानेका आदेश दिया। एक दीर्घकाय दास उसे धोकर और सुगन्धित करके बादशाहके सामने ले आया। ताँबेकी एक थालीमें उसका सिर सुन्दर लंबे बालोंसे सभी तरफसे ढका हुआ था।'

'एक दिन बादशाहने मुझे बुलवा भेजा। मैं भयभीत हो उठी और जाना नहीं चाहती थी।'

'एक दीर्घकाय व्यक्ति, जो जहाजमें डाँड चलानेवालोंके समान प्रतीत होता था, मुझे ले गया और एक प्रकारके बरामदेमें एक भारी लकड़ीके ऊपर जबर्दस्ती पकड़े रक्खा। एक दूसरे व्यक्तिने एक लंबे और चौड़े चाकूसे मेरा सिर धड़से अलग कर दिया।'

गत जीवनोंमें जोय जिन स्थानोंपर रह चुकी थी, ऐसे वहाँके बहुतसे स्थानोंके नाम उसने नहीं बताये। परंतु घटनाओंके रीतिरिवाजों तथा स्थानोंके विवरणसे भौगोलिक और ऐतिहासिक दृष्टिसे उन स्थानोंको ढूँढ़ लिया गया है। ऊँटपर सवारी करनेकी उसकी कहानीसे यह बात स्पष्ट हो जाती है।

उसने कहा—'मैंने जब लोगोंसे बालूके ढेरों तथा ऊँटोंकी चर्चा की तो वे पहचान गये कि मैं मिश्र देशकी चर्चा कर रही थी।'

रोममें उसके गत पुनर्जन्मका विवरण सुनकर ऐसा लगता है कि वह सारी घटनाओंके बारेमें अच्छी तरहसे जानती है। उसने लकड़ीकी खड़ाऊँ तथा युद्धकी पोशाक और ऐसी चमड़ेकी ढालका उल्लेख किया, जिसपर ताँबे और सोनेके बेल-बूटेकी कढ़ाई की हुई रहती थी।

'रोममें मैं जवान लड़की थी। हममेंसे लगभग १५ लड़कियाँ रेशमके धागेसे रंग-बिरंगे कम्बल बुना करती थीं।'

अंडे खोदकर निकालनेवाली कहानीने श्रोताओंको उत्तमा शान्तरीयमें (Cape of good hape) रहनेवाले उन जंगली लोगोंकी याद दिला दी, जो वहाँ १७वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें रहा करते थे। उस समय उन लोगोंने एक रसदपूर्तिका अड्डा यहाँ स्थापित किया था, ईस्ट इन्डीज जानेके लिये।

जोयने बताया कि 'जंगली लोग जहाँ बड़े-बड़े अंडे जमीनमें दबाया करते थे, वहाँ निशानीके तौरपर लकड़ी गाड़ दिया करते थे। हम बच्चोंको इन लकड़ियोंको उखाड़ डालने तथा उनपर लगे हुए पशुओंके रक्तके निशान पोंछकर मिटा देनेमें बड़ा मजा आता था।'

जोयकी इन विचित्र कथाओंका प्रचार तबसे प्रारम्भ हुआ, जब वह गत वर्ष क्रुगर हाउस (Kruger House) देखने गयी थी, जहाँ ऊम पॉल रहा करता था। वह पंद्रहवीं शताब्दीमें गणतन्त्रका प्रधान था।

इक्कीस वर्षीया कैरोल तथा सोलह वर्षीया एडना नामकी अपनी दोनों बहनोंको जोयने बताया कि 'इस स्थानके संग्रहालय बननेसे पूर्व वह वहाँ गयी थी और ऊम पॉलको व्यक्तिगत रूपसे जानती थी। ऊम पॉलकी मृत्यु स्विट्जरलैंड-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में निर्वासित अवस्थामें सन् १९०४में हुई थी। उसने कहा कि 'ऊम पॉलकी प्रथम पत्नी सोलह वर्षीया मेरिया डु प्लेसिज (Maria du plessis) की मृत्यु एक बच्चे-को जन्म देते समय हुई थी और उसकी दूसरी पत्नी (जो पहली पत्नीकी भतीजी थी) से उसके सोलह बच्चे हुए।' बादमें यह बात बिल्कुल सही निकली।

जोयके विद्यालयके प्राचार्य (जो इतिहासके भी शिक्षक हैं) ने जाँच करके यह प्रमाणित किया है कि 'वह ठीक कहती है।' शिक्षकने बताया कि 'वे स्वयं जोयकी बतायी हुई बातोंसे अनभिज्ञ थे। और यदि वे जोयसे इन्हें न जानते तो कक्षामें उनके बारेमें कुछ नहीं बता सकते थे।'

दक्षिणी अफ्रीकाके जोहन्सबर्ग नगरमें विट्वाटर स्ट्रैंड विश्वविद्यालयके मनोविज्ञानके प्राध्यापक ब्लेक्स्ले जोयसे बात करनेपर बहुत प्रभावित हुए। साथ ही वे दुविधामें भी पड़ गये। उन्होंने कहा 'मैंने विस्मित होकर बत्ती काटनेकी कैंची-जैसी वे सारी बातें सुनीं, जिनके बारेमें लोग अधिक नहीं जानते। उसने सब वस्तुओंका इतना सह वर्णन किया कि यह विश्वास करना बहुत कठिन है कि उसने उन्हें कभी देखा ही नहीं था।

डाक्टर ब्लेक्स्लेकी राय है कि हो सकता है कि 'जोयको दूरानुभूति (Telepathy) जैसी साधारणतः अप्राप्य ईश्वरीय देन प्राप्त हो और वह लोगोंके द्वारा प्रश्न करते समय उन (लोगों) के मनोंमें उनके प्रश्नोंके उत्तर पढ़ लेती हो। परंतु इस कथनसे उन सब कहानियोंकी बातें समझमें नहीं आतीं, जिन्हें बिना प्रश्न किये ही जोय बताया करती है।'

इस विचित्र लड़कीका अध्ययन करनेवाले डाक्टर ब्लेक्स्लेने कहा है—'वैज्ञानिक पद्धतिसे किसी व्यक्तिके भौतिक रूपमें पुनर्जन्म लेनेकी बातको प्रमाणित कर सकना दूरानुभूति (जिसका वास्तवमें अस्तित्व है) को प्रभावित करनेकी अपेक्षा अधिक कठिन है।

परंतु इससे यह भी तो सिद्ध नहीं होता कि जोयका पुनर्जन्म नहीं हुआ। पुनर्जन्मकी उपर्युक्त घटना इस लेखके आरम्भमें पूछे गये प्रश्नका उत्तर प्रस्तुत करती है।

बहुत पहलेके पूर्वजन्मोंकी स्मृति तथा दूसरी भाषाका ज्ञान

(लेखक—प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

(१)

कोरियाकी घटना

बालक किन ऊँग योंग

वैज्ञानिकोंकी अपेक्षा जनसाधारणको किसी भी मानसिक घटनापर प्रायः आसानीसे विश्वास करते देखा गया है। बच्चोंकी विलक्षण प्रतिभाकी घटनाओंके समाचारके कारण पुनर्जन्मके प्रति अधिक रुचि दिखायी जाने लगी है; क्योंकि पुनर्जन्मकी परिकल्पनाको दृष्टिगत रक्खे बिना इस अलौकिकताकी व्याख्या कर सकना सहज नहीं है। अब हम कोरियामें सियोल (Seoul) नगरके एक लड़के किन ऊँग योंग (Kin Ung Yong) के उदाहरणपर विचार करें—

इस लड़केमें बिना किसी विधिवत् शिक्षणके एक अद्भुत बौद्धिक विकास परिलक्षित होता है। वह अपनी कोरियन मातृभाषाके अतिरिक्त धाराप्रवाह अंग्रेजी तथा जर्मन भाषा अधिकारपूर्वक बोल लेता है। वह गणितकी विशेष कठिन प्रणाली 'परिमितान्तर कलन' (Differential and Integral Calculus) आदिकी जटिलतम समस्याओंको हल कर देता है। वह कुशलतासे सुन्दर हस्तलिपिमें लिख सकता है और उस सूक्ष्म दार्शनिकताके साथ अपनी कविताएँ लिखता है, जो औसतसे अधिक होती हैं। इस लड़केने प्रवेशके लिये अमरीकी उच्च विद्यालयमें आवेदन किया है। विद्यालयके अधिकारी उसकी बुद्धिकी अपेक्षा उसके कद (ऊँचाई) के सम्बन्धमें अधिक चिन्तित प्रतीत होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(लेखक—श्रीनिरञ्जनदासजी धीर)

(२)

पैशंस वर्थकी साहित्यिक रचनाएँ

श्रीटाइरेलकी पुस्तक 'मनुष्यका व्यक्तित्व' (TYRRELL'S 'Personality of Man') में इस अद्भुत घटनाका उल्लेख है—

"श्रीमती कूर्रन अमेरिकाके पश्चिमके मध्यभागकी निवासी थी और विशेष शिक्षाप्राप्त भी नहीं थी। जब उसकी आयु तीस वर्षकी हुई तो उसमें माध्यम (मीडियम) के गुणोंका विकास हो गया, जिसका अर्थ यह है कि अन्य आत्मा उसके शरीरका प्रयोग करने लगा। एक विलक्षण बात यह थी कि श्रीमती कूर्रनमें जब इस आत्माका आवेश होता था तो वह स्वयं संज्ञाहीन नहीं होती थी। उसको इस बातका पूर्ण भान रहता था कि दूसरा आत्मा, जो अपना नाम पेशंस वर्थ बताता था, उसके हाथसे लिख रहा है। पेशंस वर्थने जो साहित्य सृजन किया, वह अत्यन्त महान् है। इसमें कथा, कहानी, उपन्यास, प्रार्थनाएँ और महात्मा ईसाका जीवनचरित्र भी है। डाक्टर प्रिंस तथा डाक्टर शिलरने इस साहित्यके अध्ययनके पश्चात् यह मत प्रकट किया कि इतना उत्तम लेखन साधारण व्यक्तिकी शक्तिसे बाहर है।

"पेशंस वर्थ अपनेको सतरहवीं शताब्दीकी इंगलैंडके डोरसेटशायर इलाकेकी कन्या बताती थी, जो अपना देश छोड़कर अमेरिकामें जा बसी थी। उसकी हत्या अमेरिकाके एक आदिनिवासी, जिनको 'इंडियन' कहते हैं, के हाथसे हुई थी। इसकी भाषामें सन् १६५० की प्रचलित अंग्रेजी भाषाके पश्चात्का कोई शब्द नहीं मिलता। श्रीमती कूर्रनकी अपनी बोलीसे यह भाषा नितान्त पृथक् है, जिसको यह प्रारम्भमें समझ नहीं पाती थी।"

(३)

निपपुरके पुजारीद्वारा आगेट मणिपर खुदे शब्दोंका स्पष्टीकरण

इंगलैंडकी 'साइकिक रिसर्च सोसाइटी' के वैज्ञानिक संस्थापकोंमें श्रीमेयर प्रधान कार्यकर्ताओंमें थे। इनकी लिखी प्रसिद्ध पुस्तक जिसका नाम है (HUMAN PERSONALITY) (मानवका व्यक्तित्व) में एक विचित्र चकित करनेवाली घटनाका उल्लेख है—

तीन-चार सहस्र वर्ष पूर्व पश्चिमी एशियामें, जहाँ अब टर्की, इराक, जोर्डन आदि देश हैं, वहाँ असीरिया साम्राज्य स्थापित था, जिसकी राजधानी बाबल थी, जिसको Babylonia कहते थे। इस इतिहासके प्रसिद्ध साम्राज्य तथा सभ्यताको लोप हुए सहस्रों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस साम्राज्यका उल्लेख यहूदियों और ईसाइयोंके प्राचीन धार्मिक ग्रन्थोंमें बार-बार आया है। आधुनिक समयके पुरातत्त्ववेत्ताओंने इस प्राचीन सभ्यताके इतिहासका पता लगाया और बाबल नगरके भग्नावशेषोंको खोद निकाला। इस सभ्यताके एक विशेषज्ञ प्रोफेसर 'हिल प्रेचट' थे जो अमेरिकाकी पैन्सिलवानिया युनिवर्सिटीमें असीरियन सभ्यताके प्रोफेसर थे।

इन प्रोफेसर महोदयका वक्तव्य है—

"मैं आगेट (Agate) नामक बहुमूल्य मणिके दो छोटे खण्डोंपर खुदे अक्षरों तथा रेखाओंके स्पष्टीकरणके प्रयत्नमें प्राणपणसे लगा था। ऐसा विश्वास किया जाता था कि बाबल राज्यके किसी अधिपतिकी अँगूठीके ये नग हैं, जिनका समय ईसाके जन्मसे १००० से ११४० वर्ष पूर्व था। एक खण्डको मैंने महाराजा कुरिगालजूसे सम्बन्धित किया और दूसरे खण्डको उन वस्तुओंमें डाल दिया, जिनका पता नहीं चलता था।

अर्धरात्रिको मैंने विचित्र स्वप्न देखा—

उस समयके एक पतले लंबे निपपुरके पुजारीके दर्शन हुए जो मुझे मन्दिरके कोषकक्षमें ले गया और कहा कि "ये दोनों खण्ड पृथक्-पृथक् नहीं हैं, एक ही वस्तुके खण्ड हैं। महाराज कुरिगालजूने एक बार एक बेलनाकार आगेट मणिको बेलदेवताके मन्दिरमें 'अपनी भक्तिकी भेंटके रूपमें' भेजा था, जिसपर यह खुदा हुआ था। पीछे हम पुजारियोंको आज्ञा हुई कि निलिब देवताके लिये आगेट मणिके कुण्डल बनाये जायँ और आगेट मणि सुलभ नहीं थी। तब हमने उसी मणिके तीन खण्ड करके तीन कुण्डल बना लिये, जिनपर पहले ही अक्षर खुदे हुए थे। यदि तुम दोनों खण्डोंको साथ मिलाओगे तो मेरे वचनकी सत्यता प्रकट हो जायगी।" दूसरे दिन प्रातः जब वैसा करके देखा तो रात्रिके स्वप्नकी सारी बातें सत्य प्रमाणित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई। पूर्वकी खुदाईके शब्द स्पष्ट हो गये 'कुरिगालजूने देवपुत्र भगवान् निलिबके लिये अर्पण किया।'

"डाक्टर हिल प्रेचटने इसका बोलकी, जो उस समय टर्की राज्यकी राजधानी थी और वहाँके राजकीय संग्रहालयमें निपुरकी खुदाईमें निकली वस्तुएँ सुरक्षित थीं, यात्रा की और वहाँ संग्रहालयमें तीसरे खण्डको जोड़ा तो स्वप्नकी सारी बातोंकी सत्यता प्रत्यक्ष हो गयी।"

(४)

मिस्रदेशकी प्राचीन भाषाका शुद्ध उच्चारण

महाभारतके समयके बने हुए मिस्रदेशके प्रसिद्ध पिरामिड नामी स्तम्भ यह प्रमाणित करते हैं कि मिस्रदेश भी बहुत प्राचीनकालसे सभ्यताका केन्द्र रहा है। पुरातत्त्ववेत्ताओंने वहाँकी सहस्रों वर्ष पुराने राजाओंके समाधिस्थानों अथवा कब्रोंको खोदकर विविध भाँतिकी बहुमूल्य स्वर्णनिर्मित वस्तुएँ निकाली हैं, जिनमें विशेष भाँतिके चर्मपर लिखित ग्रन्थ भी थे, जिनको 'स्क्रोल' (Scroll) कहते हैं। ये ग्रन्थ एक विचित्र प्रकारकी लिपिमें लिखित थे, जिसको 'हाइरोग्लिफिक' कहते हैं, जिसको हमारे देशकी 'सिन्धुसभ्यता'की मोहरोंकी भाँति कोई पढ़ नहीं सकता था। किंतु विशेषज्ञोंके अनथक प्रयत्नसे इस विचित्र लिपिकी कुञ्जी मिल गयी, जिससे इन ग्रन्थोंका तात्पर्य समझा जाने लगा। जिस भाषामें ये ग्रन्थ लिखे गये हैं, उसके बोलनेवालोंका सहस्रों वर्ष पूर्व लोप हो चुका था।

सन् १९३१ में श्रीहोवर्ड होमको एक 'रोज मेरी' नामक युवतीका पता लगा, जिसमें एक मृतात्माका आवेश होता था, जो अपना नाम 'नोना' बताता था। इस आत्मासे पूछताछ करनेपर ज्ञात हुआ कि ईसासे १३८० वर्ष पूर्व यह 'फाराओह आमेनहोतप तृतीय'की रानी थी। व्यञ्जन अक्षरोंका उच्चारण तो कुछ-कुछ पहले भी ज्ञात हो चुका था, स्वरोंका उच्चारण 'नोना'से ही होवर्ड होमने सीखा। नोना वह भाषा बोलती थी, जो ३३०० वर्ष पूर्व मिस्रमें प्रचलित थी। प्राचीन मिस्रसम्बन्धी विशेषज्ञों तथा पुरातत्त्ववेत्ताओंको नोनाकी कृपासे और भी कई रहस्योंका उद्घाटन हुआ और जेनोग्लोसी (Xenoglossy) नामक पुरातत्त्वविज्ञानकी शाखाका सूत्रपात हुआ। प्राचीन मिस्रकी बोलीके दो सौ उदाहरण नोनाने दिये, जिनका परिच्छेद तथा अनुवाद विशेषज्ञोंने किया। रोज मेरी एक साधारण अंग्रेज बाला थी, जिसको मिस्रका कोई ज्ञान नहीं था। नोनाका कहना था कि 'मैं अपने पार्थिव जीवनमें रोज मेरीसे परिचित थी।'

(५)

स्वयं कनफ्यूसियसद्वारा कूट कविताका उच्चारण

ढाई सहस्र पूर्व चीन देशमें कनफ्यूसियस नामके एक जगद्विख्यात तत्त्ववेत्ता, विज्ञ, विद्वान् तथा धर्मस्थापक महात्मा हो गये हैं। उन्होंने अपने समयमें एक अति प्राचीन ग्रन्थका सम्पादन भी किया था, जिसका नाम 'शेतिकिं' था। इस प्राचीन ग्रन्थकी टीका पीछेके कई चीनी विद्वानोंने की थी, किंतु पश्चिमी चीनी भाषाके विशेषज्ञों-का मत है कि कई कविताओंका वास्तविक अभिप्राय वे नहीं समझ सके। अमेरिकाके पूर्वदेशोंकी भाषाओंके प्रसिद्ध विशेषज्ञ डाक्टर वाइमाण्ट महोदय थे। उनका भी यही मत था। जार्ज वालियान्टिन न्यूयार्कमें एक मीडियम (माध्यम) था, जिसके शरीरद्वारा परलोकवासी आत्मा वार्तालाप करते थे। यह व्यक्ति स्वयं एक अशिक्षित, सरल तथा मन्दबुद्धि था।

डाक्टर वाइमाण्टने एक दिन इस मीडियमके मुखसे चीनदेशकी मुरलीका शब्द सुना और अस्पष्ट-सा 'कुं फूं त्सों' (कनफ्यूसियस) नाम सुना। वह कुछ और भी बोल रहा था जो डाक्टर महोदय समझ नहीं पा रहे थे। मीडियम-के कई बार दुहरानेपर डाक्टरको ज्ञात हुआ कि कनफ्यूसि-यस महाराज अपने समयकी सुन्दर चीनी भाषा बोल रहे हैं, जिसकी गिनती मृतभाषामें हुए बहुत समय हो गया था। इस बातकी परीक्षा करनेके लिये कि क्या वास्तवमें यह श्रीकनफ्यूसियस महाराज ही हैं, जो मीडियमके मुखसे बोल रहे हैं, डाक्टर महोदयने 'शेतिकिं' की एक लंबी कविताकी व्याख्या करनेके लिये प्रार्थना की। उनको स्वयं तीसरे छन्दका एक पाद ही स्मरण था, जो उन्होंने पढ़ दिया।

मीडियमद्वारा बोलनेवाले व्यक्तिने यह सारी कविता अन्ततक सुना दी। इसका उच्चारण ही नितान्त विलक्षण था, जिसकी विलक्षणताको तथा कविताको डाक्टर महोदयने लिपिबद्ध तथा स्वरचिह्नित कर लिया। अब इस कविताने,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसको समझनेके लिये इतना प्रयत्न किया गया था, एक सरल कविताका रूप धारण कर लिया। इस कार्यमें सहयोग देनेके लिये कनफ्यूसियस महाराजको बारह बार आना पड़ा था।

(६)

पुनर्जन्ममें धार्मिक मान्यताओंका स्थान

[डेविड मॉरिश]

(लेखक—प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

पुनर्जन्म होनेकी घटनाओंमें अपनी आस्था या धार्मिक मान्यताओंका भी कुछ भाग होनेकी सम्भावना है, इसलिये भी अधिकतर घटनाएँ उन स्थानोंसे उपलब्ध होती हैं, जहाँके लोग पुनर्जन्मपर आस्था रखते हैं। अनुकूल सामाजिक वातावरण पूर्वजन्मका स्मरण दिलानेके लिये एक उपयोगी मानसिक दृष्टिकोण प्रदान करता है और प्रतिकूल परिस्थिति उस स्मरणका निवारण करती है। जिस प्रकार कलाकारको अपनी कलाके प्रदर्शनके लिये विशेष परिपार्श्वकी आवश्यकता है, उसी प्रकार यह प्रतीत होता है कि स्मृति उपलब्ध कर सकनेकी योग्यताके सम्पादनके लिये भी अनुकूल सामाजिक परिपार्श्वकी आवश्यकता है। परंतु इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि उन स्थानोंसे पुनर्जन्मकी घटनाओंके समाचार प्रकाशमें नहीं आये हैं, जहाँ पुनर्जन्मकी आस्थाकी निन्दा की जाती है। अब हम आपके समक्ष जेरूसलमकी घटनाका उदाहरण रखते हैं, जहाँ पुनर्जन्म-सिद्धान्त मान्य नहीं है।

अनेक जन्मोंकी स्मृति

पवित्र भूमि (Holy Land) की एक घटना

जेरूसलममें दाँतोंके डाक्टर सामे मॉरिस (Samme Morris) का ६ वर्षीय पुत्र डेविड मॉरिस (David Morris) अपने गत जीवनकी स्मृतिका दावा करता है। उसके कथनके अनुसार वह यहूदी शाह डेविड (King David) था, जिसे मरे हुए तीन हजार वर्ष हो चुके हैं। शाह डेविडने जेरूसलममें एक यहूदी देवालय बनवाया था, जिसकी अब केवल पश्चिमी दीवार शेष है और जिसे अब 'क्रन्दन करती हुई दीवाल' (Wailing wall) कहा जाता है।

उस लड़केकी कहानी यों प्रारम्भ हुई—एक दिन डाक्टर मॉरिस अपने जेरूसलमके अस्पतालमें कार्य कर रहे थे कि उनकी पत्नी एडना (Edna) वहाँ पहुँची और उनसे शिशु-मनोविज्ञानके विशेषज्ञसे भेंटका समय निश्चित करनेकी बात कही।

कारण बताते हुए उसने कहा कि 'मैं डेविडके विषयमें चिन्तित हूँ; क्योंकि वह आजकल स्वाभाविक ढंगसे बातचीत नहीं कर रहा है। उसे एक प्रकारकी समाधि-सी लग जाती है और वह मुँहसे लार गिराने लगता है तथा कुछ जल्दी-जल्दी बड़बड़ाता है। वह अन्य बच्चोंसे तथा घर लौटनेपर आपसे तो स्वाभाविक बातचीत करता है, पर मेरी धारणा है कि वह जान-बूझकर मुझे तंग करनेके लिये ऐसा करता है और यदि मैं उसे दण्ड देती हूँ तो उसके लार टपकने लगती है तथा बड़बड़ानेकी क्रिया बढ़कर स्थिति और भी अधिक खराब हो जाती है। उसे किसी विशेषज्ञके पास ले चलना चाहिये, अन्यथा बच्चा मानसिक दृष्टिसे विकृत हो जायगा।'

डाक्टर मॉरिसने अपने सचिवको उस दिनके सारे अन्य कार्य स्थगित करनेकी बात कही और अपनी पत्नीके साथ उसने घरकी ओर प्रस्थान किया। वहाँ उसने देखा कि डेविड उनके निवास-कक्षमें प्लास्टिक तथा लकड़ीके टुकड़ों आदिको मिलाकर एक दुर्ग बना रहा है। श्रीमती मॉरिसने क्रोधमें उसे झिड़कते हुए कहा कि 'मैंने इसे कितनी ही बार केवल अपने ही कमरेमें खेलनेके लिये कहा है। यह कमरेमें बिछे इस समूचे नये गलीचेका सत्यानाश कर डालेगा।'

परंतु उसके पतिका ध्यान अपने बच्चेद्वारा निर्मित उस ढाँचेकी ओर था, जो आश्चर्यजनक ढंगसे उसे परिचित-सा लग रहा था। उसने अपनी स्मरणशक्तिपर बल दिया और सहसा एक चौड़े घनके प्रहारके समान उसके मस्तिष्कमें कौंध गया कि यह तो ध्वस्त असली पवित्र देवालय (Original Holy Temple) का नमूना (Model) है। उसने कुछ सप्ताह पूर्व राष्ट्रीय संग्रहालयका भ्रमण करते समय पुरातत्त्ववेत्ताओंद्वारा खींचा गया एक रेखाचित्र देखा था, पर इस छोटे बच्चे डेविडने तो उसे नहीं देखा, इसलिये वह इसे कैसे ज्ञात हुआ ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर दुबककर अपने मौन बच्चेके पास बैठ गया और धीमी आवाजमें पूछा—'डेविड, बेटा! क्या बना रहे हो? यह कोई दुर्ग है या रेलवे स्टेशन?' बच्चेने एकाग्रतासे जलती हुई आँखोंके साथ उसकी ओर देखा। उसके अधरोंसे शब्दोंका एक निर्झर-सा फूट पड़ा, जो केवल बड़बड़के समान सुनायी देता था। उसमेंसे केवल एक शब्द 'आ' को डाक्टर मॉरिस समझ सके, जिसका यहूदी भाषामें अर्थ है—'देवालय'। बच्चा उसके द्वारा निर्मित भवनकी एक दीवारकी ओर बराबर अङ्गुलिनिर्देश करता रहा।

डाक्टर मॉरिसने शीघ्रतासे कहा—'जल्दी करो, टेप रेकार्डर लाओ।' उसकी पत्नी शीघ्रतासे इसे लानेके लिये दौड़ी, साथ ही यह भी सोचती जाती थी कि बच्चेके अस्वाभाविक व्यवहारका रेकार्ड किया हुआ नमूना मानसिक-चिकित्सकके समक्ष उपस्थित करनेपर दुःख भी नहीं होगा। टेप रेकार्डकी मशीनके चालू होते ही उस नन्हे डेविडके स्पष्ट तथा उच्च स्वरमें उच्चरित वाक्य टेपपर अङ्कित होने लगे। उसमें 'आ' शब्दको वह बार-बार बोल रहा था। अचानक बच्चा उठा, अपने नन्हेसे पाँवकी ठोकर मारी और लकड़ीके उन चौकोर टुकड़ोंको उसने बिखेर दिया। वह विचित्र प्रकारसे हँसा और तेजीसे भागकर अपने कक्षमें प्रविष्ट हो गया।

श्रीमती मॉरिसने शिकायत की कि 'देखिये, वह कितना अधिक उत्तेजित हो जाता है।' 'डेविड, जल्दी यहाँ आओ। शरारती लड़के! जल्दीसे इन टुकड़ोंको बटोरो, नहीं तो ठीकसे पेश न आनेपर आज आइसक्रीम नहीं मिलेगी···।'

डाक्टर मॉरिसने टेपकी रीलको निकाला और सीधे राष्ट्रीय संग्रहालयकी ओर गाड़ी चला दी। उसके पुराने मित्र तथा इस समयके राष्ट्रीय संग्रहालयके प्राचीन पाण्डुलिपि-विभागके प्रमुख डाक्टर ज्वी हरमन (Dr Zvi Hermann) ने अपने कोलाहलभरे कार्यालयमें इनका स्वागत किया। डाक्टर हरमन पवित्र देश इसराइल (Holy Land) के इतिहासके सर्वोच्च अधिकृत जानकार व्यक्ति हैं। साथ ही प्राचीन शिलालेखों और चमड़ेपर लिखी हुई प्राचीन पाण्डुलिपियोंको पढ़ सकनेवाले एक प्रसिद्ध विशेषज्ञ हैं। डाक्टर मॉरिसने डाक्टर हरमनकी टेप मशीनपर उस टेपको लगाकर मशीनको चालू करनेवाले बटनको दबा दिया।

ध्वनि-विस्तारक (Loud Speaker) से डेविडकी ध्वनि निकलते ही उन्होंने आश्चर्यचकित विद्वान्से कहा—'इसे सुनिये।' उन्होंने बार-बार उस टेपको विभिन्न गतियों तथा ऊँची-नीची ध्वनिमें तबतक सुनाया, जबतक डाक्टर हरमनने कुछ सोचते हुए अपने होंठ भींचकर तेजीसे लिखना आरम्भ नहीं कर दिया।

उसने कहा कि 'यह ध्वनि प्राचीन हिब्रू (यहूदियोंकी भाषा) के समान सुनायी देती है। हमारी वर्तमान भाषासे उसके बहुत-से शब्द मिलते-जुलते हैं। इसी कारण हम प्राचीन पाण्डुलिपियोंको आसानीसे पढ़ लेते हैं; परंतु उसका शब्द, रूप, विभक्तियाँ, उच्चारणशैली तथा व्याकरण बहुत ही भिन्न है। फिर भी मेरे विचारसे मैंने इसे पढ़ लिया है और वह इस प्रकार है—'इसमें एक बादशाह अपनी प्रजासे कह रहा है कि मेरे कहे अनुसार चलो। मैं तुम्हें गौरवकी ओर ले चलूँगा।'

डाक्टर हरमनने जिज्ञासा की कि 'इसे आपने कहाँसे रेकार्ड किया। यह किसी नाटकमें अभ्यास करनेवाले पेशेवर कलाकारकी ध्वनि-सी प्रतीत होती है। शाह डेविड और देवालयके निर्माणका विरोध करनेवाले गुटके संघर्षसे इतिहासकार भलीभाँति परिचित हैं। विरोधियोंने इसके निर्माणका कार्य पूरा होनेसे पूर्व ही इस योजनाका त्याग करनेके लिये उसे बाध्य कर दिया था। इस कार्यको उसके उत्तराधिकारी शाह सोलोमनने पूरा किया था। यह नाटकके लिये एक अच्छा विषय है, परंतु मुझे यह पता नहीं था कि हमारे कलाकार पुरानी हिब्रू भाषाके भी जानकार हैं। वास्तवमें मुझे आजतक ऐसा व्यक्ति नहीं मिल पाया जो इतनी सरलता और अधिकारपूर्ण ढंगसे इसे बोल सके, जैसा कि यह कलाकार। परंतु यह है कौन?'

एक गद्देदार कुरसीमें लुढ़कते हुए डाक्टर मॉरिसने उत्तर दिया—'मेरा बेटा।'

डाक्टर हरमन दौड़कर पानी ठंढा करनेकी मशीनकी ओर लपके और पानीका एक भरा हुआ गिलास लेकर लौटे—'ऐसा लगता है कि तुम कुछ अस्वस्थ हो। लो, यह पानी पी लो। लगता है, तुम यह सब गम्भीरतासे नहीं कह रहे हो। क्या सचमुच यही बात है?'

यह सब उस घटनाका विवरण है, जो १९६४ में घटी। उस समय इस शरीरमें डेविडकी अवस्था केवल तीन वर्षकी थी और उसका आत्मा तीन हजार वर्ष पुराना था।

मनोवैज्ञानिक अध्ययन

डाक्टर मॉरिसने बतलाया कि प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राध्यापक एफ्रेम एयूरबैच (Ephraim Auerbach) तथा डाक्टर ज्वी हरमन (Zvi Hermann) को मेरे घर-पर मैंने रोक कर रक्खा, ताकि वे काफी समयतक कई बार लड़केका निरीक्षण कर सकें और उसकी बड़बड़को लेखबद्ध करें तथा उसके व्यवहारकी कारण-मीमांसा कर सकें। इन वैज्ञानिकोंने देखा कि उसके कक्षकी खिड़कियाँ बंद कर देनेपर तो अपनी आयुके अन्य बच्चोंके समान वह व्यवहार करता है और खिड़कियोंको खोल देनेपर वह अन्तर्लीन होने लगता है। उन्होंने यह भी देखा कि उसकी अन्तर्लीनताकी स्थिति उस समय जल्दी-जल्दी आती थी, जब कि वायुकी गतिकी दिशा उत्तर-पूर्वसे दक्षिण-पश्चिमकी ओर रहा करती थी। पवित्र नगरी (जेरूसलम) के एक मानचित्रपर वायुलहरियोंकी दिशाकी खोज की गयी। उनके शोध-प्रयत्नोंसे पता चला कि डाक्टर मॉरिसका रेहाविया क्वार्टर (Rehavia Quarter) जैसे सुन्दर क्षेत्रमें स्थित निवास माउन्ट मोरिया (Mount Moriah) की दक्षिण-पश्चिम दिशामें दो मीलकी दूरीपर है। यह स्थान पुराने जेरूसलममें ईश्वरके प्रथम देवालय तथा शाह डेविडके दुर्गका स्थान था। वैज्ञानिकोंने तथ्योंको लिपिबद्ध कर दिया, परंतु वे कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सके।

माता-पिता भयभीत हैं

बादमें डाक्टर हरमनने टेपको एक बड़े लिफाफेमें बंद करके, उसे चिपकानेके फीतेसे चिपकाते हुए कहा—'देखो, सामे! यदि हम इस सारी सामग्रीका प्रचार करते हैं तो तीव्रतासे एकके पश्चात् एक तीन बातें होंगी—

(१) प्रथमतः तुम्हें और मुझे दोनोंको विकृत मस्तिष्क-का समझकर मानस-चिकित्सककी जाँचके लिये बंद कर दिया जायगा।

(२) बच्चेको असंतुलित मस्तिष्कवाले बच्चोंकी किसी संस्थामें भरती करनेके लिये ले लिया जायगा, और

(३) तुम्हारी पत्नी भयानक रूपसे घबरा जायगी।

एक अन्धे रामायणी बालककी कथा

(प्रेषिका—सुश्री सु० कुमारी)

कोई पचीस-छब्बीस साल पहलेकी बात है। हमारे शहरमें एक व्यक्ति आया, जो जातिका लोदी था और उसके साथ उसका एक ५-६ वर्षका बच्चा था। उसे लेकर वह घर-घर फिरता था। वह बच्चा रामायण बोलता था और लोग सुन-सुनकर कुछ पैसे दे देते थे। इस प्रकार उसने बालकको जीविकाका साधन बना रक्खा था।

हमने जब सुना तो उसको अपने घर बुलाया। उन दिनों माँ पर्दा करती थीं, इसलिये अकेले बालकको गोदमें उठाकर माँके बैठकके कमरेमें ले आये। बालक देखनेमें अन्धा था; उसका रंग गेहुँआ था। वह जन्मान्ध था और उसके पैर पतले और कमजोर थे, जिससे वह चल नहीं पाता था। जैसे ही उसको गोदमेंसे नीचे उतारने लगे और उसके पैर गलीचेसे छुए, वह एकदम चिल्ला उठा—'इसे हटा दो।' जब गलीचा हटा दिया तो नीचे फर्शपर ही बैठ गया और बैठे-बैठे अपने पाँव आगे-पीछे हिलाता रहा। हम सब भी वहीं बैठे थे। हमारे यहाँके राज्यगुरु भी वहीं थे।

सबसे पहले गुरुजीने प्रश्न किया कि 'क्या तुम रामायण बोलते हो?' उसके 'हाँ' करनेपर कहा कि 'बोलो तो।' उसने कहा कि 'पहले रामायण मेरे हाथमें दो।' उसके हाथमें रामायण दी तो उसने पहले बड़ी भक्तिपूर्वक सिर झुकाया। फिर थोड़ी देर कुछ ध्यान किया। फिर उसने रामायण गुरुजीके हाथमें दे दी और कहा कि 'बताओ—कहाँसे बोलें?' गुरुजी रामायण बीचसे खोलकर एक आधी चौपाई बोले, वहींसे उसने बोलना शुरू कर दिया। वह बोलता गया और गुरुजी मिलाते गये; रामायणसे एक-एक शब्द मिलता गया। इसी प्रकार रामायण बंद करके फिर दूसरी जगहसे दूसरे प्रसङ्गकी चौपाई बोले। वहींसे वह बालक ठीक-ठीक बोलता गया; यानी उसको सारी रामायण कण्ठस्थ थी, चाहे कहींसे भी पूछो। इसके बाद उसने 'गीतगोविन्द' तथा रावणकृत 'शिव-ताण्डवस्तोत्र' भी सुनाये, जो कि अक्षरशः ठीक थे।

फिर उससे पूछा कि 'वह कहाँ था? क्या था?' तो उसने इतना ही कहा कि 'मेरा चीमटा रह गया है, उसको मैं गाड़ आया हूँ। वह मुझे मँगा दो।' जब पूछा कि 'कहाँ रक्खा है वह चीमटा?' तो उसने बताया कि 'मार्कण्डेय-आश्रममें है।' फिर पूछा कि 'कहाँपर है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्कण्डेय-आश्रम, तो हम तुम्हींको वहाँ पहुँचा दें ?' फिर उसने ठीकसे जवाब नहीं दिया । बात ही टाल गया कि 'बिल्ली दूध पी गयी और मेरा बाप मुझे घर-घर घुमाता है और तंग करता है ।' पता नहीं, उसने जान-बूझकर नहीं बताया था, या फिर उसे स्मरण ही न रहा हो ।

बादमें सुना कि वह सबेरे चार बजे उठ जाता है और दीवालकी तरफ मुँह करके बैठ जाता है तथा बड़ी देरतक कुछ पाठ किया करता है । उसका यह नित्य नियम है, जबसे उसने बैठना और बोलना सीखा ।

उस समयके बाद फिर उन लोगोंका कोई पता नहीं लगा । ऐसा भी सुना कि वह लड़का ग्यारह सालका होकर मर गया । परंतु ठीक-ठीक कुछ पता नहीं लगा । यह पुनर्जन्मकी आँखों-देखी घटना है, इससे कर्मभोग और पुनर्जन्मपर विश्वास कैसे न करें ?

एक हजार वर्षोंतक प्रेतयोनिमें रहनेवाले मुसल्मान पीर सुलेमान

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुआ)

एक हजार वर्षोंतक प्रेतयोनिमें रहनेवाले मुसल्मान पीर सुलेमानने, जिसे अभी सिखोंके पूज्य संत राड़ेवाले श्रीईश्वर-सिंहजी महाराजकी कृपासे ५ अगस्त सन् १९६८ को एक सिख-परिवारमें मनुष्ययोनि प्राप्त हुई है, छात्र मनमोहनसिंहके शरीरमें प्रवेश करके जो परलोकसम्बन्धी आश्चर्यजनक अपनी स्वयंकी आँखों-देखी घटनाओंका वर्णन किया है, वह जहाँ बड़ा रोमाञ्चकारी है, वहाँ हमारे शास्त्र-पुराणोंकी परलोक-सम्बन्धी सभी बातोंको सर्वथा सत्य प्रमाणित करनेवाला भी है। पूज्य संतजी महाराजकी सेवामें हर समय रहनेवाले मास्टर श्रीराजेन्द्रसिंहजीने हमें बताया कि हमने छात्र मनमोहनसिंहको अपनी एकान्त कोठरीमें बैठाकर मनमोहनसिंहके शरीरमें स्थित एक हजार वर्षके मुसल्मान पीर प्रेतसे परलोकसम्बन्धी प्रश्न किये और उसने हमें जो उत्तर दिये, वह ज्यों-के-त्यों इस प्रकार हैं—

श्रीराजेन्द्रसिंहजी—'तुम्हारा क्या नाम है ?'

प्रेत—'मेरा नाम सुलेमान है ।'

'तुम कहाँके रहनेवाले हो ?'

'मैं ईरानका रहनेवाला मुसल्मान हूँ ।'

'तुम हिंदुस्तान देशमें कैसे आये ?'

'हम मुसल्मान बादशाह नादिरशाह अब्दालीके साथ, जब वह हिंदुस्थानको लूटनेके लिये हिंदुस्थानमें आया था तो उसके साथमें आये थे । वह नादिरशाह तो इस हिंदुस्थानको लूटकर अपने मुल्कको वापस चला गया और मैं यहीं हिंदुस्थानमें रह गया । यहीं मैंने एक औरतसे शादी कर ली और मैं जिला सहारनपुरके मुगलखेड़ा नामक एक गाँवमें रहने लगा । मेरे उस औरतसे दो लड़के और दो लड़कियाँ हुईं । इस प्रकार मेरे चार बच्चे हुए । मेरे नजदीक ही उन दिनों एक हिंदू तपस्वी रहा करता था, जो इस समय मन-मोहनसिंहके रूपमें आपके सामने बैठा है । वह तपस्वी गण्डे-तागे, तावीज आदिका काम करता था और पाखण्ड भी करता था । मेरी एक नौ जवान बड़ी खूबसूरत लड़की थी, जिससे उस तपस्वी साधुने अपने नाजायज ताल्लुकात पैदा कर लिये । उन नाजायज ताल्लुकातका मुझे पता चल गया । मैंने उस समय बहुत कोशिश की कि किसी प्रकार इनके नाजायज ताल्लुकात टूट जायँ । खुद भी मैंने बहुत समझाया-बुझाया और उस वक्तकी हुकूमतके जरिये भी ताल्लुकात तुड़वानेकी बड़ी कोशिश की, लेकिन मुझे कामयाबी नहीं मिली । मेरे दिलपर इस बातका ऐसा गहरा असर हुआ, मैंने उस वक्त अपने उस खुदाबन्दतालासे यह दुआ की कि मैं इससे इसका बदला किसी प्रकार जरूर लूँ । इसी ख्यालमें मैं कुछ दिनोंके बाद मर गया ।'

'सुलेमान ! तुम अपने मरनेके वक्तकी सारी हकीकत बताओ । तुम कैसे मरे और उस समय तुम्हारे साथ कैसे गुजरी ?'

'जब मेरे मरनेका वक्त आया, तब मेरी आँखोंसे आँसू निकलने लगे । मेरी जबान एकदम बंद हो गयी । मुझे उस समय चार यमराजके दूत लेने आये थे । वे आकर मेरे इर्द-गिर्द खड़े हो गये और मुझे बुरी तरहसे मारने-पीटने लगे । वे चारों दूत बड़ी भयंकर डरावनी सूरतके दिखायी दिये । मैं उन्हें देखकर बहुत डर गया । मैं इशारे करता था, लेकिन मुझसे उस समय अपनी जबानसे बोला नहीं जाता था । उन दूतोंके स्थूलशरीर नहीं थे, इसलिये वे किसीको दिखायी नहीं देते थे । बस, वे सिर्फ मुझे ही दिखलायी देते थे । मुझे मरते वक्त बहुत ज्यादा तकलीफ हुई,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे एक झाड़ी, जिसमें कोई पत्ता न हो, उसमें लंबे-लंबे नुकीले काँटे लगे हुए हों, उसके ऊपर बारीक मलमलका कपड़ा डाल दिया जाय और उसे बड़ी बेरहमीसे खींचा जाय तो उस कपड़ेका एक-एक धागा हो जायगा, यही मिसाल उस समयके मेरे आत्माकी है। मुझे मरते वक्त इतना घोर दुःख हुआ कि मैं उसे बता नहीं सकता।'

'यमराजके दूत जब तुम्हें धर्मराजके सामने ले गये तो उस समय रास्तेमें तुम्हारे साथ क्या गुजरी ?'

'जब उन यमराजके दूतोंने शरीरसे मेरे प्राण निकाले तो मेरे आत्माको, मेरी रूहको जिसका सूक्ष्मशरीर होता है और वह आम लोगोंको नजर नहीं आता, उसको वे मारते-पीटते ले गये। करीबन एक वर्षका समय लगा होगा। तब मुझे धर्मराजके सामने ले जाकर पेश किया।'

'अब तुम यह बताओ कि जब तुम्हें धर्मराजके सामने पेश किया गया, उस समय तुम्हारे साथ क्या गुजरी ?'

'धर्मराजके पास पहुँचनेपर चित्रगुप्त नामके फरिश्तेने मेरी जिंदगीके जितने भी पुण्य-पाप थे, सबका सारा हिसाब-किताब धर्मराजको बताया। धर्मराजने सब देख-सुनकर मुझे यह सजा सुनायी कि तुम्हारे पापकर्मोंके फल-स्वरूप तुम्हें अब कुम्भीपाक नरकमें डाला जायगा और उस नरक-भोगके बाद तुमको एक हजार वर्षतकके लिये प्रेतयोनि मिलेगी। तुम्हारा यह प्रेतयोनिका एक हजार वर्षका समय पूरा हो जायगा, उस वक्त तुम्हें जिसने तुम्हारी लड़कीके साथ नाजायज ताल्लुकात पैदा किये थे और जिससे तुमने उस समय बदला लेनेकी इच्छा की थी और जिसके लिये खुदासे प्रार्थना की थी, वही तुम्हें फिरसे मनुष्यके रूपमें मिलेगा। तब तुम उससे अपना बदला ले सकोगे। फिर तुमको और उसको कोई महापुरुष मिलेंगे। वे तुम दोनोंका कल्याण करेंगे।'

'कुम्भीपाक नरकमें तुमने क्या देखा ?'

'कुम्भीपाक नरक तकरीबन एक हजार योजनसे भी ज्यादा बड़ा है। एक योजन करीबन चार कोसका होता है। वह एक हजार योजन लंबा और एक हजार योजन चौड़ा है। उसका मुँह करीब ९ इंच होता है। उस ९ इंच मुँहसे पापी जीवको कुम्भीपाक नरकमें डाल देते हैं और उस पापी जीवकी जबतक सजा पूरी नहीं हो जाती, उसे उसी नरकमें रहना पड़ता है।'

'उस कुम्भीपाक नरकमें क्या-क्या तकलीफें हैं ?'

'उस कुम्भीपाक नरकके अंदर गंदगी, टट्टी, पेशाब, खून, पस, पीक, आग तथा और भी ऐसी-ऐसी बहुत-सी दुःख देनेवाली वस्तुएँ हैं कि जिनके द्वारा उस पापी जीवको बड़ी-बड़ी तकलीफें दी जाती हैं। कभी तो उसे पकड़कर नरककी आगमें जलाया जाता है, कभी गंदगी अर्थात् टट्टीके कूएँमें डुबो दिया जाता है। जो परस्त्रीगामी होते हैं, उन्हें पकड़कर आगमें तपायी हुई स्त्रीसे चिपटा दिया जाता है। बड़ी-बड़ी मार पड़ती है और भी तरह-तरहकी घोर यातनाएँ दी जाती हैं। इस प्रकार उस पापीको अपने किये हुए पापोंका फल भुगताया जाता है। समय पूरा होनेपर फिर उस जीवको कुम्भीपाक नरकसे निकालकर दूसरी योनियोंमें डाल दिया जाता है।'

'तुम्हारा कुम्भीपाक नरकसे निकालनेके बाद क्या किया गया ?'

'मुझे कुम्भीपाककी घोर यातनाएँ भोगनेके बाद निकालकर यह प्रेतयोनि दे दी गयी। प्रेतयोनि मिलनेपर मैं अपने गाँव, मुगलखेड़ामें जहाँ मेरी कब्र बनी हुई है और मेरा मजार है, वहां जाकर रहने लगा। मेरी मजारपर पूजा करनेवाले जो लोग आते थे, मैं उन सबको देखता था, लेकिन मुझे कोई नहीं देख पाता था। मेरे साथ पाँच पीर और भी रहते थे। उनमेंसे एक प्रेतकी उम्र पौने तीन हजार और दूसरेकी तीन हजार, तीसरेकी साढ़े तीन हजार वर्ष है, चौथेकी पाँच हजार वर्षकी है और पाँचवेंकी उम्र चार युगकी है। वह पिछले कलियुगका प्रेत बना हुआ है।'

'जिस प्रेतकी उम्र चार युगोंकी है, उसका कल्याण कैसे होगा ?'

'कोई महापुरुष उसका उद्धार करेगा। नहीं तो, कलियुगके आखीरमें जब कल्किभगवान् अवतार लेंगे, तब वे उसका कल्याण करेंगे।'

'तुम इस मनमोहनसिंहके शरीरमें कैसे आये ?'

'मेरी प्रेतयोनिसे छुटकारा होनेके लिये एक हजार वर्ष पूरे होनेमें कुछ समय बाकी था तो यह लड़का मनमोहनसिंह, जो उस समय तपस्वी था और जिसका मेरी लड़कीसे नाजायज ताल्लुक हो गया था तो एक दिन अचानक आकर इसने मेरे मजारपर पेशाब कर दिया। मैंने इसे बड़े गौरसे देखा तो इसके आत्माको मैंने पहचान लिया कि यह तो वही तपस्वी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि जिसने मेरी लड़कीसे अपने नाजायज ताल्लुकात पैदा किये थे और मैंने यह तै कर लिया कि मैं अब इससे अपना बदला अवश्य लूँगा। मैंने झटसे इसे पकड़ लिया और मैं इसके शरीरके अंदर दाखिल हो गया। मैंने और बहुतोंको पकड़-पकड़कर मार दिया था; पर इसे इसलिये नहीं मारा कि इसके द्वारा मेरा उद्धार होना था। अब सात सालसे मैं इस लड़के मनमोहनसिंहके शरीरके अंदर रहता हूँ और अब वह समय आ गया है कि जो मैंने इसे खूब सताकर इससे अपना बदला भी ले लिया है और अब हमें संतजीका मिलाप हो गया है और अब हम दोनोंका ही कल्याण होनेवाला है।'

'इन्सानका कल्याण कौन-से भजनसे हो सकता है?'

'अपने-अपने गुरुका दिया हुआ भगवान्‌का नाम जपनेसे इन्सानका कल्याण हो जाता है।'

'धर्मराज कैसा था?'

'धर्मराज बहुत ही खूबसूरत था और उसके सफेद लंबी दाढ़ी थी और उसके सिरपर भी केश थे और धर्मराज बड़े रोबवाला और जलालवाला था और उसका सूक्ष्म और बड़ा दिव्य शरीर था और उसमें अपने शरीरको पलटनेकी भी ताकत है।'

'प्रेतोंकी क्या खुराक है और प्रेत क्या-क्या खाते-पीते हैं?'

'प्रेत हड्डियाँ चूसते हैं और खून पीते हैं और गंदगी खाते हैं और टट्टी खाते हैं और लकड़ीके बुझे हुए कोयले खाते हैं। यही उनकी खुराक है।'

'तुम प्रेतलोग कहाँपर रहते हो?'

'हम खण्डहरोंमें रहते हैं और पेड़ोंके ऊपर लटकते हैं। खूब चीखते हैं, चिल्लाते हैं, पुकारते हैं; लेकिन हमारी कोई आवाज नहीं सुनता। हमें भूख-प्यास भी खूब लगती है और हमलोग बहुत ही दुखी रहते हैं।'

'प्रेतयोनि क्यों मिलती है? तुम्हें प्रेत-योनि क्यों मिली?'

'मुझे प्रेतयोनि इसलिये मिली कि मेरे पाप तो थे ही, मैं भी अपनी सारी जिंदगी गंडे-तावीज, झाड़े-फूंकेका काम करता था और भूत-प्रेतोंको निकालता था और झूठ-सच बोलकर लोगोंसे पैसे लूटता था। इसी काले इल्मकी वजहसे मुझे यह प्रेतयोनि मिली। मेरी जिंदगीमें मेरे कर्म सब बड़े गंदे थे और मैंने दूसरोंकी औरतोंसे अपने बड़े नाजायज ताल्लुकात पैदा कर रक्खे थे। और भी मैंने बड़े-बड़े कुकर्म और बड़े-बड़े घोर पाप किये थे, जिसके कारण मुझे कुम्भीपाक नरकमें जाना पड़ा और अपने किये हुए पापोंका फल इस प्रकारसे भोगना पड़ा और फिर मुझे यह एक हजार वर्षके लिये प्रेतयोनि मिली जिसके कष्ट मैं अब इस समय भोग रहा हूँ।'

'क्या तुम प्रेतोंको, भूतोंको कथा-कीर्तनमें, सत्संगमें शान्ति प्राप्त होती है?'

'प्रेत या भूतयोनियोंको सत्संगमें और कथा-कीर्तनमें आनेका हुक्म नहीं है। अगर कथा-कीर्तनमें, सत्संगमें भूत-प्रेत आयेंगे तो उन्हें आग लग जाती है और शरीर जलने लगता है। जहाँपर कथा-कीर्तन होता है और जहाँपर सत्संग होता है, वहाँसे भूत-प्रेत एकदमसे भाग जाते हैं। यदि कोई प्रेत किसी मनुष्यके शरीरके अंदर प्रवेश कर जाय और फिर वह आदमी यदि किसी महापुरुषकी शरणमें चला जाय तो उस महा-पुरुषकी दया-दृष्टिसे और उनकी दयालुतासे उसके लिये यह वचन हो जाय कि तुम सत्संग-कथा-कीर्तन सुनो तो तुम्हें शान्ति प्राप्त होगी तो उसे सत्संग-कथा-कीर्तन सुननेसे अवश्य शान्ति प्राप्त होती है।'

यह सब प्रेतसे किये गये मास्टर श्रीराजेन्द्रसिंहजीके प्रश्नोत्तर ज्यों-के-त्यों दिये गये हैं। यह स्मरण रहे कि छात्र मनमोहनसिंहके शरीरमें रहनेपर वह मुसल्मान प्रेत कुरानकी आयतें बोलता था, जब कि छात्र कुरानका एक अक्षर भी नहीं पढ़ सकता। और भी बहुतसे प्रश्नोत्तर हैं कि जो कभी फिर सामने रक्खे जायँगे।

बोलो सनातन धर्मकी जय!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमधाम

निर्गुण-निराकार स्वरूपके एकत्व तथा उसकी सर्व-व्यापकता समझमें आनेवाली बात है, परंतु विविध विचित्र रूपोंमें प्रकट त्रिगुणातीत सगुण-साकारका एकत्व तथा उसकी सर्वव्यापकताकी बात समझमें नहीं आती। पर यह परम सत्य है कि वह सगुण-साकार तत्त्व नित्य अनेक होते हुए ही नित्य एक है और एक देशमें होते हुए ही सर्वत्र है। वह सबमें और उसमें सब हैं—इस अचिन्त्य, अनिर्वचनीय परमरहस्यका ज्ञान भगवत्कृपासाध्य ही है।

भगवान् श्रीराम सम्पूर्ण अयोध्यानिवासियोंसे एक ही साथ पृथक्-पृथक् मिले। भगवान् श्रीकृष्ण रासमण्डलमें सहस्र-सहस्र कृष्णरूपमें प्रकट थे। क्या यह भगवान्की माया थी ? जादू था ? नहीं, यह वास्तवमें भगवान्की स्वरूप-स्थिति है। वे एक रहते हुए ही अनन्त स्थानोंमें, अनन्त भक्तोंके सामने पृथक्-पृथक् स्थित रहकर उनकी पूजा-अर्चना स्वीकार करते हैं। एक ही समय, एक ही साथ परस्पर-विरोधी गुणधर्मोंका आश्रय उनका स्वरूप है—**'अणोरणीयान् महतो महीयान्।'** वे ही एक भगवान् विभिन्न नित्य दिव्य लीलारूपोंमें लीलायमान हैं। सत्यस्वरूप, सत्यसंकल्प भगवान्का कुछ भी असत्य नहीं है। लीलाके अनुरूप ही उनके अनादि-अनन्त विभिन्न दिव्य नित्यलोक हैं—उनमें सृष्टि-प्रलयका कोई संस्पर्श नहीं है। इन सत्य दिव्यलोकोंकी भाँति ही इनकी विभिन्न-विचित्र रचना, वहाँकी प्रत्येक अणु-महान् वस्तु, प्रत्येक स्थान, प्रत्येक पार्षद-परिकर, प्रत्येक निवासी, वहाँके नद-नदी, वृक्ष-लता, गिरि-कूट, सर-सागर तथा वहाँकी सभी लीलाएँ भी सत्य दिव्य हैं। सभी भगवत्स्वरूप हैं। इसी प्रकार वे एकदेशीय होनेपर भी सर्वदेशीय तथा सर्वदेशीय होनेपर भी एकदेशीय हैं; क्योंकि सब भगवत्स्वरूपकी ही अभिव्यक्ति है।

वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, कैलास, देवीद्वीप या मणि-द्वीप आदि सभी दिव्य परमधाम हैं। पृथक्-पृथक् होते हुए ही वे नित्य एक ही दिव्य परमधामके स्वरूप हैं। परमधाम कोई महाविशाल, अतिविस्तृत प्राकृतिक महाद्वीप, लोक, देश या स्थानविशेष नहीं है। जैसे भगवान् प्रकृतिसे, प्रकृतिजनित तीनों गुणोंसे तथा सभी आवरणोंसे अतीत एवं प्राकृतिक पाञ्चभौतिक आकार—शरीरसे अतीत निजस्वरूपभूत गुण-देह हैं, वैसे ही उनके ये धाम तथा धामगत पदार्थमात्र भी भगवत्स्वरूप ही हैं।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

जहाँ भगवान्की नित्य दिव्य व्यक्त लीला है, वहीं दिव्य 'रस' और 'भाव'का प्रकाश है। 'रस'-स्वरूप भगवान् देव हैं और 'भाव'-स्वरूपा उनकी अभिन्न-तत्त्व ह्लादिनी देवी हैं। भगवान् शक्तिमान् हैं, ह्लादिनी शक्ति हैं। दोनोंका नित्य अविनाभाव-सम्बन्ध है। भगवान् श्रीकृष्ण और प्रेममयी श्रीराधा, भगवान् श्रीविष्णु और भगवती श्रीलक्ष्मीजी, भगवान् श्रीराम और देवीशिरोमणि श्रीसीताजी, भगवान् श्रीशंकर और उनकी प्रिया सतीशिरोमणि श्रीसती देवी शक्तिमान् और शक्तिस्वरूप हैं। श्रीदेवी-स्वरूपमें विपरीत लीला है। वहाँ शक्तिका स्वामित्व है, शक्तिमान्की वश्यता है; पर वहाँ भी है—वही अभिन्न शक्ति-शक्तिमान् तत्त्व ही। ये सभी एक ही नित्य दिव्य लीलाके नित्य स्वरूप हैं, परम सत्य हैं, महात्माओं तथा संतोंके द्वारा अनुभूत, उपलब्ध और सेवित हैं।

जैसे एक ही भगवान्के प्रत्येक स्वरूपमें उस एककी प्रधानता तथा अन्यान्य सभी रूपोंकी गौणरूपसे विद्यमानता है, वैसे ही उनके प्रत्येक दिव्यलोकमें उस एककी प्रधानता तथा अन्यान्य लोकोंकी गौणरूपसे विद्यमानता है। उनमें कोई श्रेष्ठ और कनिष्ठ नहीं है। सभीमें नित्य एकत्व, समत्व तथा श्रेष्ठत्व है। भक्त अपने भावानुसार एकको सर्वोपरि सर्वश्रेष्ठ देखता तथा दूसरोंको उससे कनिष्ठ देखता है—उन दिव्य लोकोंका तथा भक्तहृदयका यह अनुपमेय अनन्य-वैचित्र्य सदा ही आह्लादजनक है, पर वैसे यह नित्य अभेदमें ही भेद-दर्शन है।

जहाँ 'वैकुण्ठ'की प्रधानता है, वहाँ गोलोक, साकेत, कैलास, देवीद्वीप आदि उसमें गौणरूपसे विद्यमान हैं और चतुर्भुज 'भगवान् विष्णु' ही वहाँ सर्वोपरि प्रधान देव हैं। जहाँ 'गोलोक'की प्रधानता है, वहाँ वैकुण्ठ, साकेत, कैलास, देवीलोक गौणरूपसे विद्यमान हैं और 'मुरलीमनोहर द्विभुज भगवान् श्रीकृष्ण' ही सर्वोपरि प्रधान देव हैं। जहाँ 'साकेत' की प्रधानता है, वहाँ वैकुण्ठ, गोलोक, कैलास, देवीद्वीप गौणरूपसे विद्यमान हैं और 'धनुर्धर भगवान् श्रीराम' ही सर्वोपरि प्रधान देव हैं। जहाँ 'कैलास'का प्राधान्य है, वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, देवीद्वीप गौणरूपसे विद्यमान हैं और 'कर्पूरगौर भगवान् श्रीशंकर' ही सर्वोपरि प्रधान देव हैं। इसी प्रकार भगवती श्रीदेवीजी तथा देवीलोककी प्रधानतामें कैलास, वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत आदि गौणरूपसे विद्यमान हैं। दिव्य गणपति तथा दिव्य सूर्यलोकके लिये भी ऐसा ही समझना चाहिये। पर यह केवल समझनेकी ही बात या कोई 'अर्थवाद' नहीं है। वास्तवमें यह नित्य परम सत्य है।

प्रत्येक दिव्यलोक—परमधाम उसके प्रधान भगवत्-स्वरूपकी महत्ताको घोषित करता हुआ उस रूपकी आराधना करनेवालोंकी निष्ठाको पुष्ट तथा संतुष्ट करता है और उन भक्तोंके तत्त्वज्ञानमें तनिक भी त्रुटि न रहनेपर भी उनको नित्य-नित्य लीलानन्द-महासुधार्णवमें निमग्न रखता है।

वास्तवमें भगवान्‌के स्वरूपका रहस्य भगवान् ही जानते हैं। भगवान्‌की दृष्टि भगवान्‌से अभिन्न है और उनकी दृष्टिमें जो कुछ है। वही सत्य है। उनकी दृष्टिमें, ऐसा ही विश्वास होता है कि उनके अपने सिवा कुछ है ही नहीं!

मनुष्य-जीवनका एकमात्र उद्देश्य भगवत्प्राप्ति

(कर्मानुसार गतियोंके भेद)

मनुष्य-जीवनका एकमात्र पवित्र उद्देश्य या परम ध्येय है—जन्म-मृत्युके चक्रसे नित्यमुक्ति। इसीको मोक्ष, आत्मसाक्षात्कार, तत्त्वज्ञान, बोध, भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेम-की प्राप्ति कहते हैं। अनन्य तीव्र इच्छाके साथ उपयुक्त साधन करनेपर मनुष्य इसी जन्ममें अपने इस महान् ध्येयको प्राप्त कर सकता है। इसीलिये उसको मानवजन्म मिला है। पर वह कर्म करनेमें स्वतन्त्र है—साधनानुकूल कर्म भी कर सकता है और इसके सर्वथा प्रतिकूल भी। कर्मानुसार ही फल प्राप्त होता है। मनुष्य साधना करके मुक्त भी हो सकता है; सत्कर्म करके विपुल भोगमय स्वर्गकी प्राप्ति भी कर सकता है; असत्-कर्म करके घोर यन्त्रणामय नरकोंमें भी जा सकता है और पशु, पक्षी, कीट-पतंग तथा जड वृक्ष-लता-पाषाण भी बन सकता है। मानव-जीवनको व्यर्थ-अनर्थके कार्योंमें खोकर अनन्तकालीन दुःखका भविष्य निर्माण कर सकता है। इसीलिये कहा जाता है कि दुर्लभ मनुष्य-जन्मका एक क्षण भी व्यर्थ-अनर्थमें न खोकर केवल भगवत्प्राप्तिके साधनमें ही लगाना चाहिये। स्वर्गके भोग-विपुल मिलेंगे, तो वे भी वस्तुतः विनाशी तथा दुःखप्रद ही होंगे। कहीं कर्मके फलस्वरूप दुर्गति हो गयी, तब तो बहुत ही बुरी बात होगी। लेनेके देने पड़ जायँगे। पर वर्तमानकालमें अधिकांशमें मनुष्य ऐसा भोगासक्त हो गया है कि वह जीवनके असली उद्देश्य भगवत्प्राप्तिको भूलकर अहंता-ममता, राग-द्वेष एवं काम-क्रोध-लोभसे अभिभूत हो ऐसे ही कर्म करता है, जिनसे जीवनभर यहाँ भी अशान्ति, दुःख, भय, विषाद तथा चिन्ता आदिसे ग्रस्त-संत्रस्त रहता है और भोगोंकी प्राप्तिके लिये पापकर्ममें लगा रहनेके कारण मृत्युके बाद आसुरी योनियोंको तथा नरकोंकी घोर यन्त्रणाओंको प्राप्त होता है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(१६। २०)

'(ऐसे लोगोंको) मेरी (भगवान्‌की) प्राप्ति तो होती ही नहीं, वे मूढ पुरुष जन्म-जन्ममें आसुरी योनि (राक्षस, पिशाच, भूत-प्रेत या कुत्ते, सूअर, गधे आदि) को प्राप्त होते हैं; फिर उससे भी अति नीच गतिमें अर्थात् घोर नरकोंमें पड़ते हैं।'

दुर्लभ मनुष्य-जीवनका यह कितना अवाञ्छनीय दुष्परिणाम है!

कर्मानुसार मनुष्य निम्नलिखित गतियोंको प्राप्त होता है—

(१) अहंता-राग-द्वेषसे सर्वथा रहित जीवन्मुक्त पुरुष अथवा इस भावके साधनसे सम्पन्न पुरुष, मरनेपर ब्रह्मस्वरूप हो जाता है, उसके प्राण उत्क्रमण नहीं करते। सूक्ष्म-कारण शरीर नष्ट हो जाते हैं। यह 'सद्योमुक्ति' है।

(२) भगवान्‌की भक्तिमें ही जीवन समर्पण कर देने-वाले भक्तको भगवान्‌के दिव्य पार्षद स्वयं आकर ज्योतिर्मय, स्वप्रकाश सच्चिदानन्दमय भगवत्स्वरूप नित्य परमधाम—वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, कैलास आदिमें दिव्य विमान-द्वारा ले जाते हैं। वह वहाँ उस दिव्य धाममें सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि आदि भगवत्-स्वरूपताको प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके अचिन्त्य-अनिर्वचनीय भगवत्स्थितिमें रहता है। पर, प्रेमी साधक इस स्थितिको भी स्वीकार नहीं करते; वे साक्षात् सेवारूप बनकर नित्य भगवत्-सेवापरायण ही रहते हैं। देनेपर भी उपर्युक्त सालोक्यादिको ग्रहण नहीं करते।* यही पराभक्ति या प्रेमाभक्तिको प्राप्त पुरुषका भगवत्सेवामें नित्य प्रवेश है।

ये दोनों ही परम गति हैं। यही मानव-जीवनकी परम सफलता है। यही अनादिकालसे भटकते हुए जीवका उससे मुक्त होकर, नित्य सत्य परमानन्द-स्वरूपको प्राप्त होना है।

(३) निष्काम भावसे परमार्थ साधन करनेवाले ब्रह्मवेत्ता पुरुष देवयान—उत्तरायण या अर्चिमार्गसे दिव्य देवलोकोंमें देवताओंके द्वारा ले जाये जाकर, वहाँ अभ्यर्थित होते हुए ब्रह्मलोकमें पहुँच जाते हैं और वहाँ ब्रह्माजीके साथ ही मुक्त हो जाते हैं। संसारमें उनका पुनरावर्तन नहीं होता। यह 'क्रममुक्ति' है।

(४) सकाम भावसे शास्त्रोक्त सत्कर्म करनेवाले पुरुष पितृयाण—दक्षिणायन या धूममार्गसे दिव्य चन्द्रलोक-तक जाते हैं, यही भोगमय प्रकाशमय स्वर्गधाम है। इसके सहस्रों रूप हैं। पुण्यात्मा पुरुष इस जरा-व्याधिरहित स्वर्गमें देव-भोग-सुख प्राप्त करते हैं और पुण्य क्षीण होनेपर पुनः मर्त्यलोकमें लौट आते हैं।

(५) ज्ञान-विज्ञानरहित मोहग्रस्त भोगासक्त पाप-परायण मनुष्य मरनेके बाद वायुके सहारे चलनेवाले (वायुप्रधान) दूसरे शरीरको धारण कर लेते हैं, जो रूप, रंग और अवस्था आदिमें ठीक पहले (मृत) शरीरके जैसा ही होता है। यह शरीर माता-पिताके द्वारा उत्पन्न नहीं होता। यह कर्मजनित होता है और यातना-भोगके लिये ही मिलता है। तदनन्तर शीघ्र ही उसे दारुण पाशसे बाँधकर घोर भयंकर-आकृति क्रूरकर्मा यमदूत डंडोंसे पीटते तथा बड़ी बुरी तरह यातना देते हुए दक्षिण दिशामें यमलोककी ओर खींचकर ले जाते हैं।† वहाँ कर्मानुसार उसके लिये नरकादि यन्त्रणा-भोगकी व्यवस्था होती है।

(६) जो न तो मुक्त होते हैं, न देवयान-पितृयाण मार्गसे जाते हैं और न नरकोंमें ही जाते हैं—ऐसे प्राणी कर्मानुसार यहीं मच्छर, मक्खी, जूँ, लिक्षा, घुन आदिकी योनिको प्राप्त करते हैं।

कहीं-कहीं ऐसा भी होता है कि मनुष्य मरते ही तत्काल यहीं दूसरे मनुष्य-शरीरको अथवा पशु-पक्षी-तिर्यक् या वृक्ष-पाषाण आदिके शरीरको प्राप्त हो जाता है, अन्य लोकोंमें नहीं जाता। शाप-वरदानसे या प्रबल वासनायुक्त तत्काल पुनर्जन्मदायक कर्मोंके कारण ऐसा होता है। कई योगभ्रष्ट पुरुष भी मरनेपर तुरंत मनुष्य-शरीर प्राप्त करते हैं। इसके भी नियम हैं।

वैसे साधारणतः मरते ही दूसरा वायुप्रधान देह मिल जाता है, जिसे 'आतिवाहिक देह' कहते हैं; क्योंकि सूक्ष्म-शरीरधारी जीवको किसी आश्रयभूत शरीरकी आवश्यकता होती है। इसीसे कहा गया है कि जैसे जोंक अपना अगला पैर अगले पत्तेपर रख देती है तब पिछलेको छोड़ती है अथवा पुराना वस्त्र त्यागते ही नवीन वस्त्र जैसे पहन लिया जाता है, वैसे ही मरते ही 'आतिवाहिक शरीर' मिल जाता है। तत्पश्चात् समयपर कर्मानुसार सुख-भोगार्थ 'देवादि शरीर' या पीड़ा भोगनेके लिये 'यातना-शरीर'की प्राप्ति होती है।

इन सब बातोंपर विचार करके मनुष्यको अपने जीवनके वास्तविक एकमात्र परम तथा चरम ध्येय भगवत्प्राप्तिके साधनमें ही प्रवृत्त रहना चाहिये और वास्तवमें अहंता-राग-द्वेष-अभिनिवेशरूप अविद्यासे मुक्त होकर ब्रह्मस्वरूपता या भगवान्‌के दिव्य परमधामको प्राप्त कर लेना चाहिये। इसमें जरा भी प्रमाद नहीं करना चाहिये। भगवत्कृपासे प्राप्त मनुष्यशरीर-रूप सुअवसर भविष्यमें भयानक दुःख देनेवाले व्यर्थ-अनर्थके कार्योंमें चला न जाय। शरीर क्षणभङ्गुर है; अतः किसी स्थितिविशेषकी प्रतीक्षा न कर भजनपरायण हो ही जाना चाहिये। नामरूपके अभिमान तथा राग-द्वेषसे छूटनेपर ही मनुष्य परम पद या भगवान्‌को प्राप्तकर सफलजीवन हो सकता है; केवल संत-महात्मा, भक्त-प्रेमी या ज्ञानी कहलानेमात्रसे नहीं। कहलायें चाहे नहीं, पर बनें अवश्य।

---

* सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥
(श्रीमद्भा० ३ । २९ । १३)

† वायव्यमसारी तद् रूपं देहमन्यं प्रपद्यते ।
तत्कर्मजं यातनार्थं न मातृपितृसम्भवम् ।
तत्प्रमाणवयोऽवस्था संस्थाने प्राग्भवं यथा ॥
ततो दूतो यमस्याशु पाशैर्बध्नाति दारुणैः ।
दण्डप्रहारसम्भ्रान्तं कर्षते दक्षिणां दिशम् ॥
(मा० पु० १० । ६४-६५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भले कहें कोई भी ज्ञानी मुक्त भागवत योगी संत।
राग-द्वेष-अहंता रहते कभी न होगा भवका अंत॥
राग-द्वेष-मुक्त हो जाओ, कहलाओ फिर भले असंत।
हो जाओगे सहज स्वयं तुम 'चिन्मय परमानन्द' अनन्त॥

मनुष्य मरनेके बाद पुनः मनुष्य ही होता है—यह मत भ्रान्त है। वह कर्मानुसार मोक्ष या परमधामको प्राप्त हो सकता है, देवता या राक्षसयोनिमें जा सकता है, मनुष्य भी बन सकता है और पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, वृक्ष-पाषाण भी। अतएव मनुष्यको सावधानीके साथ सदा-सर्वदा ऐसे ही भजनरूप कर्म करने चाहिये, जिससे मानव-जीवनके परम ध्येय भगवान्‌की ही प्राप्ति हो। यही मानवका एकमात्र धर्म है—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति॥
(श्रीमद्भा० १।२।६)

प्रार्थनाकी अद्भुत शक्ति

(लेखक—प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

क्या प्रार्थना असम्भवको सम्भव बना सकती है?

जनवरी १९६५में मेरे मस्तिष्कसे कैंसरकी गिल्टी निकालनेके लिये तीन बार गम्भीर शल्यक्रिया की गयी। जिनमेंसे मैं जीवित बच निकली। मेरे इस अनुभवकी कहानी 'दी नाइट आइ डाइड' (The Night I Died) शीर्षकके अन्तर्गत मार्च, १९६६में प्रकाशित हो चुकी है।

थोड़े दिन पूर्व डाक्टरोंको यह विश्वास हो गया था कि मैं पूर्णतः स्वस्थ हो गयी हूँ और अब पुनः खोपड़ीके उस भागको लगानेके लिये शल्यक्रिया की जा सकती है, जिसे उन्होंने पिछली शल्यक्रियाओंको ठीक करनेके लिये अपने स्थानसे हटा दिया था। मैं इस कठिन परीक्षासे बहुत घबराती थी। अस्तु, मेरे पति श्रीहग (Hugh) ने आवश्यक सामर्थ्य जुटानेके लिये प्रार्थना करनेमें मेरी सहायता की। हमने मेरे अस्पताल रहनेकी अवधिमें तीन छोटी बच्चियोंकी देख-भालका प्रबन्ध कर दिया और मैंने अपने-आपको इसके लिये तैयार कर लिया।

डाक्टरोंने चतुर्थ शल्यक्रियाको सफल घोषित कर दिया और हम घावके भरनेकी प्रतीक्षा करने लगे। परंतु किसी कारणसे मेरा शरीर प्लास्टिककी उस प्लेट (Plate) को सहन नहीं कर पा रहा था, जिसे मेरी खोपड़ीमें तारके साथ लगाया गया था। सिरमें उस स्थानपर एक तरल पदार्थ-सा इकट्ठा होने लगा और इस स्थितिके कारण मुझे भयंकर सिरदर्दका सामना करना पड़ा। मेरे सिरकी वेदनाओंका अन्त तभी हुआ, जब डाक्टरोंने एक बहुत बड़ी सुई, जिसे मैं घोड़ेवाली सुई (Horse Needle) कहती थी, उस तरल पदार्थको खींचनेके लिये उसमें घुसा दी। अब घावके टाँकोंके जल्दी ठीक न होनेके कारण एक नयी समस्या उत्पन्न हो गयी। शल्यक्रियाओंके इन विविध प्रयोगोंके कारण मेरी त्वचा बहुत ही मुलायम और जलसिक्त हो गयी थी और ठीक ही नहीं हो पाती थी।

एक शनिवारको मुझे बहुत असह्य पीड़ा होने लगी। यह सब देखकर डाक्टर बहुत चिन्तित हुए। उन्हें आशा थी कि अबतक घाव भरना आरम्भ हो गया होगा। डाक्टरने कहा—'हमें इसे कम-से-कम एक सप्ताह और देना चाहिये और तब सम्भवतः तुम्हें घर जानेकी अनुमति मिल सकेगी।' मैंने पूछा कि 'यदि उस समयतक भी टाँके न भरे और तरल पदार्थ बहता रहा तब?' उसने उत्तर दिया कि 'उस स्थितिमें उस कष्टकारक प्लेटको हटानेके लिये पुनः शल्यक्रिया करना आवश्यक हो जायगा।'

डाक्टरके जाते ही मेरे पति आ गये और मुझे अपनी भुजाओंमें ले लिया। मैं निराश होकर रोने लगी।

मैंने रोते हुए कहा कि 'अब और शल्यक्रिया नहीं कराऊँगी।' पहले ही एक वर्षमें चार बार करा चुकी हूँ, अब उसे सहन नहीं कर पाऊँगी।'

मेरे शान्त एवं सुहृद् पतिने मुझे विश्वास और प्यारभरे शब्दोंमें ढाढस बँधाया। हम दोनोंने मिलकर भगवान्‌से प्रार्थना की कि 'वह हमपर अपनी दया-दृष्टि डालें तथा अपनी करुणासे मेरा सिर ठीक कर दें।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस सायंकाल घर लौटनेपर मेरे पतिने हमारी छोटी बच्चियोंको अपनी बाँहोंमें लेकर उनके साथ मेरे स्वास्थ्यलाभके लिये प्रार्थना की और अपने कई मित्रोंसे फोनपर मेरे लिये प्रार्थना करनेका निवेदन किया। उन लोगोंने अपने-अपने मित्रोंको मेरे लिये प्रार्थना करनेकी प्रेरणा दी। बादमें हमें पता चला कि सैकड़ों व्यक्तियोंने उस रात्रि मेरे स्वास्थ्यके लिये प्रभुसे प्रार्थना की। एक मित्रने हवाई (Hawai) तथा दूसरेने हैफा (Haifa) स्थित मित्रोंको इसमें सम्मिलित होनेके लिये समुद्री तार (Cables) तक भेजे।

दूसरे दिन डाक्टर मेरी प्रगतिका परीक्षण करनेके लिये आया और धीरे-धीरे मेरी पट्टी खोलते समय वह मुझे आगामी आपरेशनके लिये भी तैयार कर रहा था। पट्टी खुलते ही वह आश्चर्यचकित रह गया। 'मैं इसपर विश्वास नहीं कर सकता'—उसके इन शब्दोंसे मुझे सूचना मिली कि 'कुछ तो हुआ है।'

उसने संदेहजनक दृष्टिसे मेरी ओर देखकर कहा—'तरल पदार्थ कहीं दिखायी नहीं देता। त्वचा भी पुष्ट दिखायी देती है और घाव भर चुका है। टाँके भी ठीक हैं। यह रातों-रात कैसे हो सकता है? यदि मैंने इसे अपनी आँखोंसे न देखा होता तो मैं इसपर कभी विश्वास नहीं करता।'

मेरी प्रसन्नताकी कोई सीमा न थी। मैं उसके गलेमें अपनी बाँहें डाल देना चाहती थी। मैंने जी भरकर उसको धन्यवाद दिया। उसने कहा—'मुझे धन्यवाद मत दो। प्रार्थना करनेवाले अपने मित्रोंको धन्यवाद दो। मैंने इसमें कुछ भी नहीं किया है।'

घाव पूरी तरहसे भर चुका था। उसने उसी समय वहीं टाँके काट दिये और मेरे पतिको मुझे घर ले जानेके लिये कह दिया। मेरे पतिने मेरे गलेमें यह कहते हुए अपनी बाँहें डाल दीं कि—'ईश्वर सर्वशक्तिमान् है।'

डाक्टर मुस्कराया और अपना छोटा-सा काला बैग उठाकर चलते-चलते दरवाजेकी ओर दृष्टि डालते हुए उसने कहा—'क्या आप जानते हैं कि मैंने सदा ही श्रद्धाकी शक्तिपर विश्वास किया है; परंतु इस अनुभवने निश्चित ही मेरी आस्थाको दृढ़ किया है और उसे बढ़ाया है।'

अब पुनः मेरा जीवन सामान्य हो गया है। मैं घरका सब काम करती हूँ और भोजन भी बनाती हूँ। कभी-कभी थोड़ी घुमरी (सिरके चक्कर) या सिरकी पीड़ा मुझे अपने उस अनुभवका स्मरण कराती रहती है।

रोज मैं इस जीवनदान देनेवाले तथा प्रातःकालके सूर्यके स्वागतके लिये उठनेका आनन्द देनेवाले प्रभुको धन्यवाद देती हूँ। अनुभवके लिपिबद्ध कर देनेसे किसीकी श्रद्धा बढ़ी तो मेरा यह प्रयास सार्थक होगा।*

स्वर्गोंसे मनुष्ययोनिमें आये हुए प्राणियोंके लक्षण

दया भूतेषु सद्वादः परलोकप्रतिक्रिया। सत्यं भूतहितार्थोक्तिर्वेदप्रामाण्यदर्शनम्॥
गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिपूजनं साधुसङ्गमः। सत्क्रियाभ्यसनं मैत्रीमिति बुध्येत पण्डितः॥
अन्यानि चैव सद्धर्मक्रियाभूतानि यानि च। स्वर्गच्युतानां लिङ्गानि पुरुषाणामपापिनाम्॥

(मार्कण्डेयपुराण १५। ४२-४४)

जीवोंपर दया, अच्छी बातें करना, परलोकके लिये शुभ कर्म करना, सत्य बोलना—सत्यका आचरण करना, सब प्राणियोंका हित हो—ऐसी वाणी बोलना, वेद स्वतः ही प्रमाण है—ऐसी निष्ठा रखना, गुरु-देवता, ऋषि, सिद्धपुरुष-महात्माका सत्कार करना—उनके बताये मार्गपर चलना, साधु पुरुषोंका सङ्ग करना, सत्कर्मोंका अभ्यास करना, सबके साथ मित्रभाव रखना तथा अन्य भी सत्-धर्म-सम्बन्धी कार्योंमें लगे रहना—यह स्वर्गसे लौटे हुए मनुष्योंकी पहचान है।

* लेखिका अपना नाम और पता बताना नहीं चाहती, इसलिये उसे नहीं दिया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्युके समय क्या करे ?

मृत्युके समय सबसे बड़ी सेवा है—किसी भी उपायसे मरणासन्न रोगीका मन संसारसे हटाकर भगवान्‌में लगा देना। इसके लिये—

(१) उसके पास बैठकर घरकी, संसारकी, कारबार-की, किन्हींमें राग या द्वेष हों तो उनकी, ममताके पदार्थोंकी तथा अपने दुःखकी चर्चा बिल्कुल ही न करे।

(२) जबतक चेत रहे, भगवान्‌के स्वरूपकी, लीलाकी तथा उनके तत्त्वकी बात सुनावे। श्रीमद्‌भगवद्गीताका (सातवें, नवें, बारहवें, चौदहवें, पंद्रहवें अध्यायका विशेष रूपसे) अर्थ सुनावे। भागवतके एकादश स्कन्ध, योगवासिष्ठका वैराग्यप्रकरण, उपनिषदोंके चुने हुए स्थलों-का अर्थ सुनावे। इनमेंसे रोगीकी रुचिका ध्यान रखकर उसीको सुनावे। नामकीर्तनमें रुचि हो तो नामकीर्तन करे या संतों-भक्तोंके पद सुनावे। जगत्‌के प्राणि-पदार्थकी, राग-द्वेष उत्पन्न करनेवाली बात, ममता-मोहको जगाने तथा बढ़ानेवाली चर्चा बिल्कुल ही भूलकर भी न करे।

(३) रोगी भगवान्‌के साकार रूपका प्रेमी हो तो उसको अपने इष्ट—भगवान् विष्णु, राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा, गणेश—किसी भी भगवद्‌रूपका मनोहर चित्र सतत दिखाता रहे। निराकार-निर्गुणका उपासक हो तो उसे आत्मा या ब्रह्मके सच्चिदानन्द अद्वैत तत्त्वकी चर्चा सुनावे।

(४) उस स्थानको पवित्र धूप, धूएँ, कर्पूरसे सुगन्धित रक्खे; कर्पूर या घृतके दीपककी शीतल परमोज्ज्वल ज्योति उसे दिखावे।

(५) समर्थ हो और रुचि हो तो उसके द्वारा उसके इष्ट भगवत्स्वरूपकी मूर्तिका पूजन करवावे।

(६) कोई भी अपवित्र वस्तु या दवा उसे न दे। चिकित्सकोंकी राय हो तो भी उसे ब्रांडी (शराब), नशैली तथा जान्तव पदार्थोंसे बनी एलोपैथिक, होमियोपैथिक दवा बिल्कुल न दे। जिन आयुर्वेदिक दवाइयोंमें अपवित्र तथा जान्तव चीजें पड़ी हों, उनको भी न दे। न खानपानमें अपवित्र तामसी तथा जान्तव पदार्थ दे। रोगीकी क्षमताके अनुसार गङ्गाजलका अधिक या कम पान करावे। उसमें तुलसीके पत्ते अलग पीसकर छानकर मिला दे। यों तुलसी-मिश्रित गङ्गाजल पिलाता रहे।

(७) गलेमें रुचिके अनुसार तुलसी या रुद्राक्षकी माला पहना दे। मस्तकपर रुचिके अनुसार त्रिपुण्ड्र या ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक पवित्र चन्दनसे, गोपीचन्दन आदिसे कर दे। अपवित्र केसरका तिलक न करे।

(८) रोगीके निकट रामरक्षा या मृत्युञ्जयस्तोत्रका पाठ करे। एकदम अन्तिम समय पवित्र 'नारायण' नामकी विपुल ध्वनि करे।

(९) रोगीको कष्टका अनुभव न होता दीखे तो गङ्गाजल या शुद्ध जलसे उसे स्नान करा दे। कष्ट होता हो तो न करावे।

(१०) विशेष कष्ट न होता हो तो जमीनको धोकर उसपर गङ्गाजल (हो तो) के छींटे देकर भगवान्‌का नाम लिखकर, गङ्गाकी रज या व्रजरज हो तो डालकर चारपाईसे नीचे सुला दे।

(११) मृत्युके समय तथा मृत्युके बाद भी 'नारायण' नामकी या अपने इष्ट भगवन्नामकी तुमुल ध्वनि करे। जबतक उसकी रथी चली न जाय, तबतक यथाशक्य कोई घरवाले रोवें नहीं।

(१२) उसके शवको दक्षिणकी ओर पैर करके सुला दे। तदनन्तर शुद्ध जलसे स्नान करवाकर, नवीन धुला हुआ वस्त्र पहिनाकर अपनी जातिप्रथाके अनुसार शवयात्रामें ले जाय; पर पिण्डदानादिका कार्य जानकार विद्वान्‌के द्वारा अवश्य कराया जाय। श्मशानमें भी पिण्डदान तथा अग्नि-संस्कारका कार्य शास्त्रविधिके अनुसार किया जाय। रास्तेभर भगवन्नामकी ध्वनि 'रामनाम सत्य है', 'हरि बोल' 'नारायण-नारायण'की ध्वनि होती रहे। श्मशानमें भी भगवच्चर्चा ही हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु, परलोक और और्ध्वदैहिक कृत्य

(लेखक—शास्त्रार्थ-महारथी पं० श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री)

वेदका वेदत्व केवल इस विशेषतापर निर्भर है कि जो रहस्य प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान आदि किसी भी प्रमाणद्वारा वेद्य न हो, उस रहस्यको जो प्रकट करे, तादृश प्रमाणको 'वेद' कहते हैं। इसलिये आस्तिक समाजकी यह गर्वोक्ति शास्त्रसिद्ध है कि **'शास्त्रप्रामाणिका वयम्'** अर्थात् 'हम शब्द (वेद) को प्रमाण माननेवाले—आस्तिक हैं।'

यह बात युक्तिसङ्गत भी है। बहुत-से ऐसे विषय हैं, जिनतक मानवकी पहुँच नहीं हो सकती है। जैसे उदाहरणार्थ 'मृत्युके बाद क्या गति होगी ?'—यह रहस्य मानव-बुद्धिका विषय नहीं। जो मर जाते हैं, वे लौटकर कुछ कहने नहीं आते और जिन्हें मरना है वे उसका स्वयं क्या अनुमान कर सकते हैं ? इसी प्रकार 'परलोक क्या है ? वह है भी या नहीं ? है तो तदर्थ हमारा अपना क्या कर्तव्य है ? परलोकगत प्राणीकी उसके जीवनसम्बन्धी भी कुछ सहायता हम कर सकते हैं क्या ?' इत्यादि अनेक प्रश्न हैं, जिनका उत्तर एकमात्र वेद ही दे सकता है। वस्तुतः वेदका आरम्भ वहाँसे होता है, जहाँ मानव-बुद्धिकी दौड़ समाप्त हो जाती है। इसलिये मृत्यु क्या है, परलोक क्या है, मृत्युके अनन्तर क्या-क्या ऐसे अनुष्ठान हैं, जिनके करनेसे परलोकगत आत्माकी सद्गति हो सकती है—इत्यादि परोक्ष विषयोंपर ही इस लेखमें वेद-शास्त्रके प्रमाणानुसार संक्षिप्त विचार किया जायगा।

मृत्यु क्या है ?

हमारा यह मानव-शरीर पञ्चमहाभूत (पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश), पञ्चकर्मेन्द्रिय (हस्त, चरण, गुदा, लिङ्ग और जिह्वा), पञ्चज्ञानेन्द्रिय (श्रोत्र, चक्षु, रसना, त्वक् और घ्राण), पञ्चप्राण (प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान), अन्तःकरण-चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार) तथा अविद्या, काम और कर्म—इन २७ तत्त्वोंका संघात है, जिसे 'स्थूलशरीर' कहते हैं।

स्थूल पञ्चमहाभूत और स्थूल पञ्चकर्मेन्द्रिय—इन दस तत्त्वोंके अतिरिक्त जो शेष सत्रह तत्त्व बचते हैं, उतने संघातका नाम 'सूक्ष्मशरीर' है। मृत्युका अर्थ है—'स्थूल पञ्चमहाभूत और स्थूल पञ्चकर्मेन्द्रियोंका छूट जाना।' अतः मृत्युमें प्राणीका सर्वनाश नहीं हो जाता; किंतु केवल पूर्वोक्त दस तत्त्वोंकी निवृत्तिमात्र हो जाती है। शेष सत्रह तत्त्वोंका सूक्ष्मशरीर और कारणशरीर मुक्तिपर्यन्त तथैव विद्यमान रहेंगे।

मृत्युके अनन्तर क्या गति होती है ?

यह गति सबके लिये समान नहीं है। अपने-अपने कर्मानुसार प्राप्त होती है। ज्ञानाग्निमें जिनके शुभाशुभ कर्म दग्ध हो जाते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं—**'न स पुनरावर्तते।'** वे फिर जन्म-मृत्युके चक्रमें नहीं पड़ते। जिनके उग्र सकाम शुभ कर्म हैं, वे स्वर्ग आदि लोकोंमें अपने शुभ कर्मोंका फल उपभोग करते हैं। जिनके उग्र पापकर्म हैं, वे नरकमें सड़ते हैं। परंतु जब भोगते-भोगते शुभ किंवा अशुभ कर्म ऐसे स्तरके अवशिष्ट रह जाते हैं, जो मृत्युलोकमें ही भोगे जा सकते हैं, तब स्वर्गीय प्राणी शुचि-श्रीमानोंके या योगियोंके कुलमें उत्पन्न होकर पुण्य-फल प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार नारकीय प्राणी सूकर, कूकर, कुष्ठी, निर्धनके रूपमें जन्म लेकर अपने शेष पापकर्मोंका उपभोग करते हैं।

चन्द्र-कक्षाके उपरिभागमें पितृलोक है। सूर्य-कक्षामें द्युः-स्वर्गलोक है और शनिकी अन्धकारमय कक्षामें अठाईस नरक-लोकोंकी अवस्थिति है।

मृत्युके अनन्तर सूक्ष्मशरीरधारी जीवको स्वर्गोपभोगके लिये 'दिव्य शरीर'की प्राप्ति होती है, नरकोपभोगके लिये 'यातना-शरीर' प्राप्त होता है, सर्वाधम पापियोंको एक ही दिनमें जन्म और मरणका कष्ट भोगनेवाली कीट-पतङ्गादिकी **'जायस्व म्रियस्व'**-गति मिलती है। जिनके न अपने शुभ कर्म हैं, न अशुभ उग्र कर्म हैं और न उनके सम्बन्धी ही और्ध्वदैहिक अनुष्ठानोंद्वारा उनकी कुछ सहायता करते हैं, वे लोकान्तरमें न जाकर **'वायुभूतो दिगम्बरः।'** रूपमें मृत्युलोकमें ही भूत-प्रेत आदि योनियोंमें परिभ्रमण करते हैं। इस प्रकार अपने-अपने कर्मोंके तारतम्यसे विभिन्न गतियाँ होती हैं।

और्ध्वदैहिक कृत्य

वेदका तीन चतुर्थांश भाग केवल 'परलोकविषयक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और्ध्वदैहिक' कृत्योंकी इतिकर्तव्यतासे ही भरा पड़ा है। वस्तुतः वेदोंका मुख्य विषय आपाततः परलोक ही है; क्योंकि यह विषय परोक्ष होनेके कारण मानव-बुद्धिगम्य नहीं है। उक्त सब और्ध्वदैहिक कृत्योंका संग्राहक पारिभाषिक नाम 'श्राद्ध' है। मृत पितरोंके उद्देश्यसे अपनी प्रिय भोग्य वस्तुओंको वैदिक विधिके अनुसार श्रद्धापूर्वक जो प्रदान किया जाता है, उन अनुष्ठानोंको 'श्राद्ध' कहा जाता है। यही श्राद्धका लक्षण है। यही श्राद्धकी मुख्य चार क्रियाएँ हैं—पिण्डदान, तर्पण, हवन और ब्राह्मण-भोजन।

क्या श्राद्धद्वारा मृत प्राणियोंकी तृप्ति होती है ?

नास्तिकलोग प्रायः कहा करते हैं कि मृत प्राणी स्वकर्मानुसार न जाने किस लोकमें और किस योनिमें गया है। ऐसी दशामें हमारे द्वारा किये श्राद्धकी वस्तु उसे कैसे प्राप्त हो सकती है ? यदि वह मरकर हाथी बन गया तो हमारा दिया सेरभर अन्न उसको कैसे तृप्त कर सकेगा ? और यदि वह कीट-पतङ्ग आदि लघु शरीरधारी बन गया होगा तो सेरभर अन्नका पिण्ड उसपर भारभूत होकर उसकी मृत्युका कारण हो जायगा। साथ ही हमारी दी गयी शय्या-वस्त्र आदि वस्तुओंका भी पशु-पक्षी आदि योनियोंमें पुनर्जन्म धारण करनेवालेके लिये क्या उपयोग हो सकता है ? इत्यादि-इत्यादि।

इन सब शङ्काओं और संदेहोंका एकमात्र यही कारण है कि नास्तिक अपनी प्रदत्त वस्तुओंको ज्यों-की-त्यों परलोकमें मिलनेकी कल्पना किये बैठा है; अन्यथा वेदादि शास्त्रोंके अनुसार तो पूर्वोक्त चारों श्राद्ध-कृत्योंके अनुष्ठानके उपलक्ष्यमें मृत प्राणीको सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी ईश्वरके न्यायसे 'तृप्ति' प्राप्त होती है अर्थात् वह जिस भी योनिमें पहुँचा होगा, उस योनिमें उसको तृप्त करनेवाली जो-जो स्वाभाविक वस्तुएँ होंगी, श्राद्धका फल उसी रूपमें परिवर्तित होकर मृत प्राणीकी तृप्तिका कारण होगा। 'तृप्ति' का अर्थ है—भोग्य पदार्थोंकी लालसाकी निवृत्ति। जबतक किसी भी जीवमें यह लालसा बनी रहती है, तबतक वह मोक्षका अधिकारी नहीं हो सकता। अतः जीवनकालमें अपनी साधनासे जिन प्राणियोंने लालसाकी निवृत्ति प्राप्त नहीं की है, वे मृत्युके अनन्तर भी लालसाके भ्रमावर्तमें पड़े भटकते रहते हैं। इसलिये मृत प्राणीके पुत्रादि सम्बन्धियोंका यह कर्तव्य है कि वे श्राद्धक्रियाद्वारा मृत व्यक्तिकी लालसाको निवृत्त करनेका प्रयत्न करें।

श्राद्धका भार पुत्रादिपर क्यों ?

शास्त्र कहता है कि 'यदि मनुष्य अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करे तो उसके द्वारा उसकी प्राणशक्ति इतनी प्रबल हो जायगी कि मृत्युके समय बिना प्रयास उसके प्राण कपाल फोड़कर शरीरसे बाहर निकलेंगे और सूर्यमण्डलका भेदन कर ब्रह्माण्डकी परिधिको पार कर जायँगे। वह मुक्त हो जायगा।' परंतु संतान उत्पन्न करनेवाले गृहस्थोंकी वह शक्ति क्षीण हो जाती है। उनके प्राण अन्य किसी द्वारसे निकलते हैं। इसीलिये दाहसंस्कारके समय पुत्र पिताकी कपालक्रिया करता हुआ, मानो यह प्रतिज्ञा करता है कि 'मृत पिताजी ! यदि आप मुझ-सरीखे पुत्रको उत्पन्न न करके अपने अखण्ड ब्रह्मचर्यको धारण करते तो आज उस ब्रह्मचर्यके ही कारण आपकी मृत्यु कपाल फूटकर होती और आप मुक्त हो जाते; परंतु आपने मेरे उत्पन्न करनेमें अपनी मुक्तिका लोभ छोड़ा है। अतः अब मेरा यह कर्तव्य है कि मैं श्राद्ध-कृत्यद्वारा आपकी उस कमीकी पूर्ति करके आपकी मुक्तिमें सहायक बनूँ।'

क्या हमें कभी मिला है ?

क्या हमें पूर्वजन्मके सम्बन्धियोंद्वारा किये श्राद्धका फल इस जन्ममें मिल रहा है ? आखिर हम भी तो आस्तिक पुत्रोंके पिता हो सकते हैं ? हमारे लिये पूर्वजन्मके सम्बन्धी भी श्राद्ध करते ही होंगे—परंतु क्या हमें कभी यह अनुभव हुआ है कि अमुक वस्तु हमें श्राद्धके उपलक्ष्यमें प्राप्त हुई है ?

इत्यादि शङ्काओंकी निवृत्तिके लिये कहा जा सकता है कि संसारमें हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि सभी जीव दो प्रकारके हैं—एक तृप्त और दूसरे अतृप्त। जैसे एक कुत्ता आँगनके एक कोनेमें शान्त बैठा रहता है। गृहस्वामी जो ग्रास उसको प्रदान करता है, वह उसे खाकर ही संतोष कर लेता है; परंतु दूसरा कुत्ता इसके सर्वथा विपरीत इस ताकमें रहता है कि घरवालोंकी जरा-सी आँख चूके तो वह चौकेमें घुसकर रोटी उठाकर रफूचक्कर हो जाय। इसी प्रकार अधिकांश गाय, भैंस आदि—मालिक जो चारा उनके आगे डालता है, उसे खाकर ही संतोष करती हैं; परंतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ ऐसी भी होती हैं, जिनको हरे खेत खानेकी बुरी आदत होती है। गोपाल उनके गलेमें घंटी बाँधता है, मोटा लक्कड़ बाँधता है; परंतु फिर भी वे काँटोंकी ऊँची बाड़ें लाँघकर हरा खेत खाये बिना नहीं मानती हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी दो प्रकारके स्वभावके हैं—एक तृप्त, दूसरे अतृप्त। तृप्त वह है, जो अपने घरका चनाचूरी—जो भी भोजन मिलता है—उसे खाकर ही संतुष्ट रहता है। उसे अपने पड़ोसमें रहते धनीके उन छत्तीस पदार्थोंकी कभी लालसा नहीं होती। परंतु ऐसे भी जंगी जीव हैं, जो धनी-मानी हैं, दिनभर नानाविध पदार्थ चरते रहते हैं; परंतु उनकी भोगोंसे कभी तृप्ति नहीं होती। रातको सोते-सोते भी उनको खाने-पीनेके ही स्वप्न आते हैं। बस, समझ लीजिये कि जो प्राणी तृप्तकोटिके हैं, वे ये हैं, जिनके कि पूर्वजन्मके सम्बन्धी श्राद्धकृत्य करते हैं, जिसके फलस्वरूप उनको यह तृप्ति प्राप्त है। दूसरी कोटिके अतृप्त व्यक्ति वे हैं, जिनके पूर्वजन्मके नास्तिक पुत्र श्राद्धादि नहीं करते। वे लालसाके गर्तमें पड़े भटकते हैं।

पितरोंको दिखा दो तो हम मानें ?

यह नास्तिकोंका अन्तिम ब्रह्मास्त्र है। परंतु इन सज्जनोंको यह विदित नहीं कि स्थूलशरीर ही नेत्रका विषय है। सूक्ष्म आत्मा चर्मचक्षुओंका विषय नहीं। मरते हुए प्राणीका जीव सबके देखते-देखते निकल जाता है, परंतु वह किसीको भी दीख नहीं पड़ता। अतः जो जीव शरीरसे निकल गया है, वही श्राद्धमें आवाहन करनेपर आता है। जब वह जाता हुआ नहीं दीख पड़ा, तब वह आता हुआ कैसे दीखेगा? जातेको नास्तिक दिखा दें तो हम आतेको दिखा देंगे। योगी और दिव्य चक्षुवालोंको ही पितृदर्शन होते हैं। भगवान् रामके वनमें श्राद्ध करते समय सीता माताने निमन्त्रित ब्राह्मणोंमें दशरथजीके दर्शन किये थे। भीष्मजीने श्राद्धकालमें अपने पिता शान्तनुके हाथके दर्शन किये थे। यह इतिहास-पुराण ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध है। वस्तुतः मृत व्यक्तिके आत्माको शान्ति पहुँचानेकी इच्छा एक स्वाभाविक मानव-भावना है। मुसलमान कब्रोंपर दीपक जलाते हैं, फातिहा पढ़ते हैं, ताजिया निकालते हैं। रोमन कैथलिक ईसाई कब्रोंपर पुष्पवाटिका लगाते हैं, दूधकी बोतलें रखते हैं, क्रॉसका चिह्न खड़ा करते हैं। आर्यसमाजी अजमेरमें स्वामी दयानन्दजीके चितास्थानपर अखण्ड अग्नि जला रहे हैं। अन्यान्य सभ्य लोग भी सभा जुटाकर एक मिनट सब मौन खड़े होकर खास प्रार्थना करते हैं; श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हैं। ये सब विभिन्न क्रियाएँ श्राद्धकी प्रतिनिधिभूत क्रियाएँ ही हैं। यह विषय इतना विस्तृत और परिश्रमगम्य है कि जिसे एक लेख क्या किसी एक ग्रन्थमें भी पूरा-का-पूरा नहीं लिखा जा सकता।*

नरकोंसे मनुष्ययोनिमें आये हुए प्राणियोंके लक्षण

परनिन्दा कृतघ्नत्वं परमर्मावघट्टनम्। नैष्ठुर्यं निर्घृणत्वं च परदारोपसेवनम्॥
परस्वापहरणाशौचं देवतानां च कुत्सना। निवृत्या वञ्चनं नृणां कार्पण्यं च नृणां वधः॥
यानि च प्रतिषिद्धानि तत्प्रवृत्तिश्च संतता। उपलक्ष्याणि जानीयान्मुक्तानां नरकादनु॥

(मार्कण्डेयपुराण १५। ३९–४१)

परनिन्दा करना, कृतघ्नता (उपकार करनेवालेका उपकार न मानना), दूसरेके गुप्त भेदको खोलना, निष्ठुरता, निर्दयता, परस्त्री या परपुरुषसेवन, दूसरेके हकका हरण करना, अपवित्र रहना, देवताओंकी निन्दा करना, छल-कपटसे मनुष्योंको ठगना, कंजूसी करना, मनुष्योंकी हत्या करना इत्यादि निषिद्ध कर्मोंमें निरन्तर लगे रहना—नरक भोगकर लौटे हुए मनुष्योंकी पहचान है।

* जिज्ञासुओंको अधिक जाननेकी इच्छा हो तो वे लेखक महोदयके 'क्यों' नामक सहस्रपृष्ठात्मक ग्रन्थके उत्तरार्धमें देख सकते हैं। यह ग्रन्थ १०३ ए., कमलानगर, दिल्लीमें मिल सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामृत्युञ्जयका चमत्कार

(लेखक—श्रीवेंकटलालजी ओझा)

मेरे जीवनमें एक समय ऐसा आया, जब मेरे सभी कार्य उलटे हो रहे थे। चारों ओर परेशानियाँ-ही-परेशानियाँ दिखायी दे रही थीं। अच्छे कार्यका भी परिणाम बुरा ही निकल रहा था। पूज्य पिताजीके आदेशसे मैं जन्मपत्रिका लेकर दैवज्ञके पास गया। उन्होंने पत्रिका देखकर कौनसी दशा चल रही है, यह कुछ नहीं कहा। कहा बस इतना ही, कि 'यदि अपना कल्याण चाहते हो तो स्वयं 'महामृत्युञ्जय'का जप करो। तुम ब्राह्मण हो। दूसरेसे जप करानेसे तुम्हें फल नहीं मिलेगा। यदि इसके लिये तैयार हो तो मैं जप बतलाता हूँ।' अतः मैं इसके लिये तैयार हो गया। पण्डितजीके आदेशसे मैंने सं० १९९७ श्रावण शुक्ल पूर्णिमाके शुभ मुहूर्तसे महामृत्युञ्जयका जप आरम्भ किया। तत्काल फल मिलने लगा। कई उलझे हुए कार्य अनायास ही सुलझ गये। बिगड़े काम बन गये। जप बराबर चलता रहा। सं० २००१ माघ शुक्ल ११ को अचानक जब मैं एक यन्त्रको खोलकर, वापस यथास्थान बैठाकर उसका परीक्षण कर रहा था। दस अश्वबलसे चलनेवाला यन्त्र एकाएक रुक गया जब कि बिजली चालू ही थी। यन्त्र रुक जानेपर पता चला कि मेरा हाथ उसमें आ गया है। दूसरे आदमीने बिजली बंद की। यन्त्रको हाथोंसे उलटा घुमाकर हाथ निकाला गया। हथेली और अँगुलियाँ तो बच गयीं, पर अंगूठा मूलीकी तरह कटकर पतली चमड़ीके साथ लटक रहा था। मुझे किसी प्रकारका कष्ट नहीं हुआ, न दर्द ही। पर एक व्यक्ति इसे देखकर मूर्च्छित हो गया। अस्पताल गया। पट्टी बँधाकर घर आ गया, तब कहीं दर्द चालू हुआ।

जैसे ही पण्डितजीको समाचार मिला, उन्होंने यही कहा 'अच्छा हुआ'। तब कहीं उन्होंने आकर पूज्य पिताजीको बतलाया कि 'प्राणघातक मार्केश था, जो अब टल गया है। शूलीकी पीड़ा सुईमें बदल गयी।' चार-पाँच मास मैं बहुत बीमार रहा। दुआ और दवा दोनों चलते रहे। जो कोई मिलने आता, यही कहता—'सीधे हाथका अंगूठा कटा है। अब लिखना कैसे होगा?' मैं कोई उत्तर न देकर मौन रह जाता; क्योंकि अस्पताल जानेके पहले मैंने अपने सीधे हाथसे हस्ताक्षर करके देख लिये थे। अतः हितैषियोंके निराशावादी कथनका मुझपर कोई प्रभाव नहीं हुआ। मेरा आत्मबल अक्षुण्ण रहा। शारीरिक दृष्टिसे मैं बीमार था, पर मेरा मानसिक बल अक्षुण्ण बना रहा।

डाक्टरद्वारा गलत ढंगसे पट्टी बँधनेसे मेरी अँगुलियाँ पहले तो सूजीं और बादमें पतली पड़ गयीं। पर सद्भाग्यसे जर्मनीसे लौटे डा० चम्पत बसु मिल गये। उनकी चिकित्सासे हाथ बच गया। अन्यथा रक्तसंचार न होनेसे हाथ सूख जाता।

भगवान् महामृत्युञ्जयकी जप-विधि बड़ी सरल है। जो इस प्रकार है—१. संकल्प, २. श्रीगायत्रीकी एक माला, ३. महामृत्युञ्जयकी पाँच माला और ४. श्रीगायत्रीकी एक माला।

महामृत्युञ्जय जप—

अथ पदन्यासः—

ॐ त्र्यम्बकं शिरसि। यजामहे भ्रुवोः। सुगन्धिम् दृशोः। पुष्टिवर्द्धनं मुखे। उर्वारुकं कण्ठे। इव हृदये। बन्धनात् उदरे। मृत्योः गुह्ये। मुक्षीय ऊर्वोः। मां जान्वोः। अमृतात् पादयोः। इति पदन्यासः।

अथ मृत्युञ्जयध्यानम्—

ॐ हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम्।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटाभातं त्रिनेत्रं भजे॥
मृत्युञ्जय महादेव त्राहि मां शरणागतम्।
जन्ममृत्युजरारोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः॥

अथ बृहन्मन्त्रकी पाँच माला जप—

ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं
यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्।
भूर्भुवः स्वरों जूं सः हौं ॐ।

मैं तो उपर्युक्त मन्त्रका जप आज भी कर रहा हूँ। पर कुछ विज्ञजन निम्नलिखित छोटे मन्त्रके लिये भी कहते हैं—

ॐ जूं सः सः जूं ॐ।

इस प्रकार महामृत्युञ्जयके दैविक चमत्कारसे उस दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यन्त्र स्वयं ही रुक गया और मेरा हाथ बच गया। अन्यथा, सीधा हाथ कट जानेसे मैं बेबस हो जाता। मेरा पढ़ना-लिखना ही नहीं छूट जाता, मेरा जीवन भी दूभर हो जाता, जो मृत्युसे भी अधिक भयंकर और कष्टदायक था। हाथके साथ ही कोई नाड़ी कट जाती तो मृत्यु तो निश्चित ही थी। मेरा तो पुनर्जन्म ही भगवान् मृत्युञ्जयकी कृपासे हुआ।

अध्यात्म-लोकका विज्ञानात्मक आलोक

(लेखक—श्रीयुगलसिंहजी खीची, एम्० ए०, बार-एट-ला, विद्यावारिधि)

सन् १९४३में जब द्वितीय महायुद्धकी ज्वाला समस्त संसारको त्रस्त कर रही थी, मुझे जयपुरके एक होटलमें अमेरिकनोंके साथ ठहरनेका सुयोग प्राप्त हुआ। वह दल जापानके विरुद्ध इस ज्वालामें कूदने जा रहा था। उसका नेता अमेरिकाके किसी विश्वविद्यालयमें भौतिक शास्त्रका प्राध्यापक था। हम दोनोंके कमरे निकट होनेके कारण परस्पर सम्पर्क स्थापित हो गया और विविध विषयोंपर वार्तालापकी नौबत शामकी चायपर आ गयी। आत्माके बारेमें चर्चा छिड़नेपर वे कहने लगे कि 'जिसे आत्मा माना जाता है, वह हमारे शरीरके परमाणुओंके संघर्षसे उत्पन्न हुई चेतना, भौतिक विज्ञानके अनुसार मानी जाती है और देहका नाश होनेपर वह नष्ट हो जाती है।' मुझसे प्रश्न करनेपर मैंने कहा कि 'भारतीय संस्कृतिके मूलमें चार मुख्य सिद्धान्त हैं—(१) आत्मा, (२) कर्मफल, (३) परलोक और (४) पुनर्जन्म।' सार यह है कि जीवात्मा अपने कर्मके अनुसार परलोकमें जाता है या भूतलपर फिर जन्म लेता है।

पाश्चात्त्य देशोंमें अधिकांश विज्ञानवेत्ताओंके कोशमें आत्माके लिये कोई स्थान नहीं है। हमारे यहाँ भी इस प्रकारके अनेक विद्वान् हैं, जो आत्मा, परमात्मा, परलोक और पुनर्जन्मको अन्धविश्वासकी बकवास बतलाते हैं। ता० २२। १०। १९६८ के 'इण्डियन ऐक्सप्रेस' नामक दैनिक पत्रमें 'पुनर्जन्म और उसकी स्मृति'के सम्बन्धमें कतिपय भारतीय विज्ञान-विशेषज्ञोंके तत्सम्बन्धी विचार लिखे गये हैं। एक प्रोफेसरने फरमाया कि 'हमारे यहाँके नितान्त अनपढ़ ग्रामीणोंमें पुनर्जन्मके वृत्तान्त मिले हैं और अंधविश्वासके अतिरिक्त उनका कोई आधार नहीं है।' दूसरे एक महोदयका मत था कि 'बच्चोंमें पुनर्जन्मकी स्मृति हिस्टीरिया रोगकी सूचक है।'

हमारे धर्मका मूलतत्त्व यह है कि नश्वर देहमें चेतन अमर आत्मा विद्यमान है और प्रकृतिके सारे पदार्थ अचेतन हैं। आध्यात्मिक प्रश्नोंका विचार वेदान्त करता है और विज्ञानका क्षेत्र भौतिक तत्त्व है। मनीषी बेकनके शब्दोंमें 'हम प्रकृतिके समक्ष प्रश्न प्रस्तुत करते हैं और उससे उपयुक्त उत्तर प्राप्त करते हैं।' वैज्ञानिक परिपाटीका मूल सिद्धान्त यह है कि किसी घटनाकी खोज पूर्वाग्रहरहित होकर निरीक्षण या परीक्षणद्वारा की जाय। निरीक्षणमें किसी घटनाका अवलोकन इन्द्रियोंद्वारा किया जाता है। उदाहरणके लिये सूर्य या चन्द्रके ग्रहणको हम केवल देख सकते हैं। चन्द्रमा और पृथ्वीकी गतिका ज्ञान प्राप्त होनेके कारण हम गणितशास्त्रद्वारा अगले ग्रहणका निश्चित करना बतला सकते हैं। परीक्षण प्रयोगात्मक है और घटनाएँ हमारे नियन्त्रणमें घटित की जाती हैं। उदाहरणके लिये हम प्रयोगद्वारा यह जान सकते हैं कि वस्तुका आयतन गरम करनेपर बढ़ता है और ठंड पाकर सिकुड़ जाता है। किसी धातुका गोला जो लोहेके छलनेमेंसे होकर निकल जाता है, पर वह गरम किये जानेपर उसी छलनेमेंसे नहीं गुजर सकता। जब ठंडा पानी डालनेपर वह शीतल हो जाता है, तब छलनेमेंसे होकर निकल जाता है। अब विचारणीय यह है कि आध्यात्मिक समस्याओंके सुलझानेमें वैज्ञानिक प्रणाली कहाँतक सहायक हो सकती है? यह निस्संदेह है कि प्राकृतिक और आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रोंमें अवलोकनका प्रयोग होता है। जैसे कर्मोंका फल और पूर्वजन्मकी स्मृति अवलोकन और अनुभवके अन्तर्गत है।

आध्यात्मिक रहस्योंको जाननेके लिये पदे-पदे बाधाओं और समस्याओंका सामना करना पड़ता है। ऐसे रहस्योंके बारेमें कहा गया है—**'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।'** (तैत्तिरीय उप० २। ४); क्योंकि वे अचिन्त्य हैं। महाभारतके भीष्मपर्वमें अचिन्त्यकी व्याख्या इस प्रकार है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यत्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम्॥
(५।१२)

अर्थात् 'जो पदार्थ इन्द्रियातीत होनेके कारण चिन्तन नहीं किये जा सकते, उनका निश्चय केवल तर्कसे नहीं हो सकता। जो मूल प्रकृतिसे परे हैं वे पदार्थ अचिन्त्य कहलाते हैं।' इस भावको शेक्सपीयरने निज नाटक 'हेमलेट'में इस प्रकार व्यक्त किया है—

"There are more things in heaven and earth, Horatio, than are dreamt of in your philosophy."

अर्थात् 'स्वर्गमें और पृथ्वीपर ऐसे अनेक 'पदार्थ हैं, जिनके सम्बन्धमें दर्शन-शास्त्र कल्पना तक नहीं करता।' ऐसी हालतमें प्रश्न उठता है कि 'जो पदार्थ निरीक्षण, परीक्षण या चिन्तनकी गतिसे परे हैं, उनकी जानकारी कैसे की जाय?' प्रश्नका उत्तर यह है कि वे स्वयंवेद्य या अनुभवगम्य हैं। भर्तृहरिके शब्दोंमें **स्वानुभूत्येकमानाय**—अर्थात् उनके अस्तित्वका एक मात्र प्रमाण निज अनुभव है।' अनुभव पुरुषोंके अन्तःकरणमें होता है। अतएव पवित्र अन्तःकरणवाले महात्माओंका अनुमान ही प्रमाण माना गया है। आप्तपुरुषका वचन प्रमाणोंके अन्तर्गत है। प्लेटोने अपने ग्रन्थ 'रिपब्लिक' (Republic) में ऐसे पुरुषको 'आप्त' (prudent) कहा है और उसीके निर्णयको अन्तिम माना है। वही महाजन कहलाने योग्य है और उसका आचरण दूसरोंके लिये पथ-प्रदर्शक है। जैसा कि कहा गया है—**'महाजनो येन गतः स पन्थाः।'** सच्चा मार्ग वही है, जिसपर महाजन चलता है। मनीषी ए. हक्स्लेने अपनी पुस्तक (Perennial Philosophy) 'शाश्वत दर्शनशास्त्र'में संतों और महात्माओंके विचारोंको ज्ञानका मूलाधार बतलाया है।

सृष्टि दो प्रकारकी है—जड या अचेतन और चेतन। हमारे सृष्टि-विज्ञानके अनुसार चेतन सृष्टिके चार विभाग इस तरह हैं—(१) जरायुज (वह जीव, जो आवरणमें लिपटा उत्पन्न हो), (२) अण्डज (अंडेसे पैदा होनेवाले जीव), (३) स्वेदज (पसीनेसे उत्पन्न होनेवाले जीव), (४) उद्भिज्ज (जो भूमि फोड़कर निकलते हैं, जैसे पेड़-पौधे)। श्री. जे. सी. बोसने अपने वैज्ञानिक यन्त्रोंसे यह सिद्ध कर दिखाया कि वनस्पतिमें चेतना है। जड-जगत् पञ्चभूतात्मक है और आकाशादि किसी भौतिक तत्त्वमें चेतना नहीं है। आधिभौतिक विज्ञानने उन्नति करते-करते ऐसे यन्त्रोंका आविष्कार कर दिया है, जो गणना, अनुवाद, संदेश इत्यादि कठिन कार्य सफलतापूर्वक कर रहे हैं। वैज्ञानिक अणु-बमसे लाखों प्राणियोंकी हत्या कर सकता है, पर एक अणुमें भी चेतनता उत्पन्न नहीं कर सकता। अमेरिकाके विश्व-विख्यात वैज्ञानिक श्री जे. बी. राइन अपने ग्रन्थ (The Reach of the Mind) के प्रारम्भमें लिखते हैं-

"Science cannot explain what the human mind really is and how it works with the brain. No one even pretends to know how consciousness is produced."

'विज्ञान यह नहीं बतला सकता कि मानव-मन वास्तवमें क्या है और वह मस्तिष्कके साथ कैसे काम करता है। कोई वैज्ञानिक यह जाननेका दावा तक नहीं कर सकता कि चेतना कैसे पैदा होती है।'

कहा जाता है कि शरीरका चेतन होना प्रत्यक्ष प्रतीत होता है। शंकरने ब्रह्मसूत्रोंपर निज शारीरक-भाष्यमें देहात्मवादका पूरी तरह खण्डन किया है। वे चेतनाका कारण आत्मा मानते हैं। धर्मी और उसका धर्म अभिन्न है। अग्नि धर्मी और जलाना या तपाना उसका धर्म है। जहाँ आग है, वहाँ यह गुण देखा जायगा। यदि शरीरका धर्म चेतना होती तो वह सदा शरीरके साथ रहती। पर मरनेपर शरीर पड़ा रहता है और उसमें चेतनाका अभाव हो जाता है। योगवासिष्ठमें देहके चेतनवत् प्रतीत होनेका कारण इस प्रकार बतलाया गया है—

अग्निसंगाद् यथा लोहमग्नित्वमुपगच्छति।
आत्मसङ्गात्तथा गच्छत्यात्मतामिन्द्रियादिकम्॥

'जैसे लोहा अग्निके सङ्गसे तपकर अग्निमय यानी प्रकाशवान् प्रतीत होता है, वैसे ही देह और इन्द्रियाँ इत्यादि आत्माके संसर्गसे आत्माके ही समान चेतन दीख पड़ती हैं।' परम योगी शंकरने प्रयोगात्मक पद्धतिसे यह प्रमाणित कर दिया कि 'जब उनके आत्माने परकायाप्रवेश किया तो उनका शरीर शवमात्र रह गया और जब वे फिर अपने देहमें आ गये तो वह चेतन हो गया।' साप्ताहिक हिंदुस्तानके १७-५-१९५९के अङ्कमें भारतीय सेनासे अवसरप्राप्त अंग्रेज अफसर श्री एल० पी० फैरलका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परकायाप्रवेश और पुनर्जन्मके बारेमें रोचक लेख प्रकाशित हुआ था। वे अध्यात्मवादमें विश्वास रखते थे और किसी योगीसे आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहते थे। सन् १९३९में दैवयोगसे उन्हें एक विचित्र घटना देखनेका मौका मिला। उन्होंने देखा कि नदीमें किसी युवकका शव बहता हुआ जा रहा है और थोड़ी देरके बाद उन्होंने उसीको किनारेपर चलते-फिरते देखा। अपने अर्दलीको उसे लिवा लानेके लिये दौड़ाया। वह उसे लिवा लाया और विस्मय-विस्फारित नेत्रोंसे निवेदन किया कि नदीके तटपर एक वृद्ध साधुकी लाश पड़ी हुई है। फैरलके प्रश्नोत्तरमें उस युवकने कहा कि 'वह शव मेरा ही है और योगबलसे मैंने ही इस शरीरमें प्रवेश किया है।' कुमायूँके पहाड़ोंमें भ्रमण करते हुए फैरलको पुनर्जन्मके सम्बन्धमें एक योगीकी कृपासे प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त हुआ।

अब पुनर्जन्मकी समस्याका विवेचन किया जाता है। मनुष्य इस जन्ममें भले या बुरे जैसे कर्म करता है, तदनुसार उसे देहत्याग करनेपर अगला जन्म या लोक मिलता है। अतएव इस विश्वासका प्रभूत प्रभाव प्रत्येक पुरुषपर पड़ना स्वाभाविक है। इस विश्वासका अभाव अधोगतिका कारण होता है। समस्या यह है कि ऐसे प्रमाण प्रस्तुत किये जायँ कि इस युगके मानवोंपर प्रभाव पड़ सके। पूर्वजन्म और पुनर्जन्म अन्योन्याश्रय हैं और जीवात्माकी अमरतापर निर्भर हैं। आध्यात्मिक क्षेत्रमें सहस्रों अनुसंधानोंने पुनर्जन्मके दो प्रबल प्रमाण प्राप्त किये हैं—(१) पूर्वजन्मकी स्मृति और (२) जन्मजात विलक्षण प्रतिभा। सर्वप्रथम स्मृतिके सम्बन्धमें मनोविज्ञानके नियमोंके अनुसार विचार करना है। इन्द्रियोंद्वारा जो अनुभव होते हैं, वे हमारे मनोमयकोशमें जमा रहते हैं और वे इस प्रकार अन्तःकरणके संस्कार बन जाते हैं। इस जमा रहनेको धारणा (Retentiveness) कहते हैं। यही सिद्धान्त योगदर्शनके सूत्र **'अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः।'** (१-११) अर्थात् अनुभूत विषयका न चोरा या खोया जाना 'स्मृति' है। तात्पर्य यह है कि धारणा उसी बातकी बनी रहती है, जो अनुभवमें आ गयी है। मनोविज्ञान सिद्ध करता है कि 'वास्तवमें किसी अनुभवकी स्मृतिका लोप नहीं होता।' चित्तके ऐसे संस्कार किसी निमित्तको पाकर स्फुरित हो जाते हैं और इस प्रक्रियाका स्मरण या याद आ जाना (Recall) कहलाता है। तीसरी प्रक्रिया स्मृतिके स्थान, पुरुष इत्यादि किसी विषयकी पहचान है और उसे पहचान (Recognition) कहा जाता है। अनेक पत्रोंमें प्रकाशित घटनाओंकी सहायतासे पूर्वजन्मके सम्बन्धमें ये तीनों सिद्धान्त स्पष्ट किये जाते हैं।* अतएव स्मृतिका मनोविज्ञान पूर्वजन्मको सिद्ध करता है।

पुनर्जन्मके सम्बन्धमें प्रतिभाके पहलूसे विचार करना जरूरी है। ता० १०-११-१९६८ के साप्ताहिक 'सण्डे टैण्डर्ड' (Sunday Standard) के दिल्ली संस्करणमें यह समाचार छपा है कि 'अहमदाबादका एक बालक तीन वर्षकी अवस्थासे ही गुजराती कहानियाँ कहने लगा और वह अब चार वर्षका है। उसका कहानी-संग्रह (The Black, Black Rain) बम्बईसे हालमें ही प्रकाशित हुआ है। लिखना-पढ़ना तो वह अब किन्डरगार्टन स्कूलमें सीख रहा है।' संसारका इतिहास प्रतिभाशाली बालकोंके विचित्र वृत्तान्तोंसे भरा हुआ है। पाश्चात्य जगत्में जे० एस० मिलने छः सालकी अवस्थामें यूनानी भाषाकी महान् कृतियोंको पढ़ डाला और मोजार्टने छठे सालमें ही संगीतकी रचना कर प्रख्याति प्राप्त की। हमारे देशमें अगणित प्रतिभाशाली बालकोंने अपनी गुण-गरिमासे प्रसिद्धि प्राप्त की है। उनमें शंकराचार्यका नाम अग्रगण्य है। वे आठ वर्षकी अवस्थामें चारों वेदोंमें और बारह वर्षके होनेतक सब शास्त्रोंमें पारंगत हो गये और सोलह साल पूरे करनेपर उपनिषद्, वेदान्तदर्शन और गीतापर भाष्य लिख डाले। सारे भारतमें वैदिक धर्म और अद्वैतवादका प्रचार करते हुए पुरी, शृंगेरी, द्वारका और बदरीनाथमें मठोंकी स्थापना की। इन मठोंके अध्यक्ष परम विद्वान् होते हैं और 'शंकराचार्य' कहलाते हैं। आदि-शंकराचार्यकी-सी प्रतिभाको 'जन्मजा सिद्धि'की संज्ञा दी जाती है। महर्षि पतञ्जलिने योगदर्शनके कैवल्यपादके प्रथम सूत्रमें जो पाँच प्रकारकी सिद्धियाँ गिनायी हैं, उनमें इस सिद्धिको प्रथम स्थान दिया गया है। पूर्वजन्ममें जीवात्मा जो ज्ञान प्राप्त करता है, वह उसके सूक्ष्म-शरीरमें बना रहता है और उसका पुनर्जन्म होनेपर प्रतिभाके रूपमें प्रकट होता है। गीताके अध्याय १५ श्लोक ७-८ में बतलाया गया है कि 'जैसे वायु गन्धको साथ ले जाती है, उसी प्रकार जीवात्मा स्थूलशरीरको छोड़ते हुए सूक्ष्मशरीरको

* इसी अङ्कमें ऐसी बहुत-सी घटनाएँ छपी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ लेता हुआ नयी देहमें जाता है।' यही बात छठे अध्यायमें कही गयी है कि **'तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।'** (६ । ४३) अर्थात् जब पुरुष मतिमान् योगियोंके कुलमें जन्म लेता है तो पहले देहमें प्राप्त किये हुए बुद्धिके संस्कारोंका उसे अनायास ही लाभ मिलता है। इस प्रकार सिद्धि प्राप्त करनेमें उसका प्रयास सरल और सहज हो जाता है।

शास्त्रोंमें पूर्वजन्मकी स्मृतिको 'जाति-स्मर' या 'जाति-ज्ञान' कहा गया है। ऐतरेयोपनिषद् (२ । ५) में और बृहदारण्यक (१ । ४ । १०) में वामदेवऋषिको पूर्व-जन्मोंकी स्मृतिका उल्लेख है। योगदर्शनके सूत्र (३ । १८) **'संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्।'** पर व्यास-भाष्यमें योगीश्वर जैगीषव्यको अनेक जन्मान्तरोंकी स्मृति होनी बतलायी गयी है। बुद्ध भगवान्‌की जातक कथाओंमें उनके पूर्वजन्मोंकी स्मृतिका विशद वर्णन है। भारतमें परामनोविज्ञानसम्बन्धी संस्थाओंने ऐसी अनेक घटनाओंकी खोज की है, जिनमें पूर्वजन्मोंकी स्मृति सच्ची साबित हुई है। इन घटनाओंसे यह प्रमाणित होता है कि अनेक पूर्वजन्मोंकी स्मृति धारण करनेवाला वही जीवात्मा सतत विद्यमान रहता है। इसी सिद्धान्तका वेदान्तदर्शनके सूत्र **'ज्ञोऽत एव।'** (२ । ३ । १८) में अर्थात् 'जीवात्मा जन्म-मरणसे रहित है, इसलिये वह पूर्वजन्मोंको जानता है'—प्रतिपादन किया गया है। यह अनुभवसिद्ध है कि बालकपन, जवानी और बुढ़ापेमें हमारे शरीरकी अवस्थाएँ बदलनेपर भी प्रत्येक पुरुषको लड़कपनकी कई बातें याद रहती हैं; क्योंकि वह (जीवात्मा) नहीं बदलता। शरीर शब्दकी (शृ+ईरन्) व्युत्पत्ति बतलाती है कि वह क्षय होता जाता है और शरीर-विज्ञानके अनुसार जब धातुओंका नवीनीकरण क्षतिकी गतिसे पिछड़ने लगता है, तब बुढ़ापा और निर्बलताका आरम्भ होने लगता है। जिस प्रकार किसी कार्यालयमें पुराने कर्मचारियोंके अवसरप्राप्त होनेपर नये नौकर उनकी जगहोंपर आते रहते हैं, उसी प्रकार हमारी देहमें भी उपर्युक्त क्रम चलता रहता है।

हमारे सामने अब यह प्रश्न आता है कि पूर्वजन्मकी स्मृतिका आश्रय कौन है? कठोपनिषद्‌के श्लोक **'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।** (१ । ३ । ४) अर्थात्। 'तत्त्वज्ञानी जीवात्माको आत्मा और सूक्ष्मशरीरसे युक्त मानते हैं।' आत्मा निर्विकार होनेके कारण संस्कारोंके विकारोंसे रहित है जैसा कि गीतामें कहा है—**'सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते।'** (१३ । ३२) अर्थात् 'जिस प्रकार आकाश लिपायमान नहीं होता है, उसी प्रकार देहमें सर्वत्र स्थित आत्मा विकारोंसे निर्लिप्त रहता है।' जैसे कागजके दो पृष्ठ होते हैं—अगला और पिछला, वैसे ही जीवात्माका अग्रिम आत्मा है और पीछे सूक्ष्मशरीर है। गीताके अध्याय ७ श्लोक ४-५ के अनुसार सूक्ष्मशरीर परमात्माकी अपरा प्रकृति और जीवरूप परा प्रकृति है। अध्याय १५ श्लोक ७ में जीवात्माको परमात्माका ही अंश बतलाया गया है, अतएव वह भी दो प्रकृतिवाला है। वेदान्तदर्शनके सूत्र **'तस्य च नित्यत्वात्।'** में जीवात्माको नित्य माना गया है। गीताके अध्याय १३ में पुरुष और प्रकृति दोनोंको 'अनादि' कहा है। इसी अपरा प्रकृतिके दो भाग हैं—स्थूलशरीर और सूक्ष्म-शरीर। स्थूलशरीरके मरनेपर—परित्याग करनेपर जीवात्मा-का सम्बन्ध सूक्ष्मशरीरसे बना रहता है और उसीमें पूर्व-जन्मोंकी स्मृतिका निवास है। सूक्ष्मदेह प्रकृतिजन्य है, अतएव प्रकृतिके स्वरूपका आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक पहलुओंसे विवेचन करना है।

सांख्यदर्शनके अनुसार मुख्य तत्त्व दो हैं—चित् या पुरुष और अचित् या प्रकृति। इन दोनोंके सम्पर्कसे सृष्टिकी उत्पत्ति होती है। सत्त्व, रज और तम—ये तीन प्रकृतिके गुण माने गये हैं। अतः वह त्रिगुणात्मिका कहलाती है। यह मूलप्रकृति अव्यक्त है और सूक्ष्मशरीरके बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ इत्यादि प्रकृतिसे ही उत्पन्न होते हैं। अन्तः-करण और भौतिक पदार्थ सजातीय होनेके कारण एक दूसरेको प्रभावित करते हैं। कहा भी है—**'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः।'** आहार शुद्ध हो तो अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। इसीलिये गीतामें **'आहाराः सात्त्विकप्रियाः।'** (१७ । ८) का उल्लेख है। तामसप्रिय भोजनके कारण हमारा देश अधोगतिको प्राप्त हो रहा है। सूक्ष्मशरीरका प्रत्येक तत्त्व अगोचर होता है और अनुमान ही उसका प्रमाण है। उदाहरणके लिये प्रेम, दया इत्यादि अन्तःकरणके धर्म या गुण हैं। बाहरी व्यवहारसे उनके अस्तित्वका अनुमान होता है। इस प्रकारकी सात्त्विक चेष्टाएँ लक्षणोंसे जानी जाती हैं। बुद्धिको **'परेङ्गितज्ञानफला'** कहा है। अर्थात् 'दूसरेकी चित्त-वृत्तिका ज्ञान उसकी चेष्टाओंसे बुद्धि कर लेती है।' सूक्ष्म-देहके आकारके बारेमें श्वेताश्वतरोपनिषद्‌में कहा गया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।' (५-९) अर्थात् 'वह बालके नोकके दस हजार भाग करनेपर एक भाग-जितना सूक्ष्म है।' स्थूलशरीरसे वियोग होनेपर जीवात्मा इसी लिङ्गदेहसे युक्त रहता है और वह योगबलसे परकायामें प्रवेश कर सकता है। वह आत्मबलसे पूर्व स्थूलशरीरमें प्रकट हो जाता है। वाल्मीकिरामायणके युद्धकाण्ड, अध्याय ११९ में यह वर्णन है कि 'सीताजीकी अग्निपरीक्षाके पश्चात् इन्द्रलोकसे दशरथजी विमानद्वारा आये और उन्होंने रामको गोदमें लिया।' महाभारतमें भी उल्लेख है कि 'दिवंगत परीक्षित् अपने प्रिय पुत्र जनमेजयसे मिलने पूर्वदेह धारणकर आये थे।' जीवात्मा प्रेतयोनिको प्राप्त करनेपर सूक्ष्मशरीर धारण करता है, पर वह स्थूलदेहमें भी प्रकट हो सकता है।

इस जन्म और पूर्वजन्मोंकी स्मृतियोंका सम्भार जिस प्रकृतिसे उत्पन्न सूक्ष्मशरीरमें समाया हुआ है, उसके सम्बन्धमें आधिभौतिक विज्ञानकी दृष्टिसे विचार करना है। आधुनिक अनुसंधानोंके अनुसार इस भूतलपर जो प्राकृतिक तत्त्व पाये जाते हैं, उनकी संख्या १०३ है और उनके दो भाग हैं। यथा (१) धातु—लोहा, सोना, चाँदी इत्यादि और (२) अधातु—ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, कार्बन इत्यादि। 'तत्त्व' वह पदार्थ है जिसकी स्वतन्त्र इकाई (unit) है। प्रत्येक तत्त्व कणोंका समूह है। प्रातः-कालमें सूर्यकी किरणें आपके कमरेमें प्रवेश करनेपर अनेक कण ऊपरको उठते हुए दिखायी देंगे। यदि हम सोनेके छोटे-से टुकड़ेको तोड़ते चले जायँ तो ऐसी सीमा आ जायगी जब हम अन्तिम कणको और अधिक छोटे कणोंमें नहीं तोड़ सकते। वास्तवमें भौतिक रीतियोंद्वारा इस अन्तिम सीमातक नहीं पहुँचा जा सकता; केवल ऐसा अनुमान किया जाता है। अनुमानको ही प्रमाण माननेका एकमात्र कारण यह है कि वह अन्तिम कण इतना सूक्ष्म होगा कि उसे न तो छू सकते हैं, न तोड़ सकते हैं और न किसी यन्त्रद्वारा देख सकते हैं। तत्त्वके ऐसे सूक्ष्म कणको 'परमाणु' (Atom) कहते हैं। परमाणु अकेले नहीं रहते। वे उसी तत्त्वके दूसरे परमाणुसे मिलकर उसका अणु (MOLECULE) बना लेते हैं। जब वे अन्य तत्त्वके परमाणुओंसे मिल जाते हैं तब यौगिक (Compound) अणु बनते हैं। अनुमान लगाया गया है कि यदि एक अरब परमाणुओंकी लाइन लगायी जाय तो उसकी लंबाई एक इंच होगी। इस अनुमानकी तुलना श्रुतिके इस वचनसे की जाय कि जीवात्माका लिङ्ग या सूक्ष्मदेह "अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्य-रूपः।" (श्वे० ५-८) है।

भौतिक विज्ञानकी आधुनिक प्रगतिने यह सिद्ध कर दिया है कि परमाणुको इलेक्ट्रॉन (Electron), प्रोटॉन (Proton) और न्यूट्रॉन (Neutron) में विभाजित किया जा सकता है। इस प्रकार परमाणुके इन तीन सूक्ष्म कणोंसे समस्त सृष्टिकी रचना है। सहस्रों वर्ष पहले कपिल मुनिने प्रकृतिको त्रिगुणात्मिका बतलाया और सांख्यदर्शनके सत्त्व, रज और तम गुणोंकी परमाणुके कणोंसे समानता है। कणाद मुनिने संसारमें सबसे प्रथम परमाणुको द्रव्यका अन्तिम रूप वैशेषिकदर्शनमें कहा है और उसे नित्य माना है। परमाणुकी रचनाके आधारपर ऐटम-बमकी विनाशकारी शक्तिका आविर्भाव हुआ। सूक्ष्मशरीरमें निहित स्मृतिके सम्बन्धमें कनाडाके प्रसिद्ध स्नायु-सर्जन डा० पेनफील्डके प्रयोगोंका विचित्र वर्णन अंग्रेजी मासिकपत्र 'रीडर्स डाइजेस्ट' सन् १९५८ के सितम्बर अङ्कमें प्रकाशित हुआ है। 'भौतिक विज्ञानके अनुसार मानव-मस्तिष्कमें कोशों-(Cells) की संख्या दस अरब आँकी गयी है। सूक्ष्मशरीर, जिसमें स्मृति-संचय है, मस्तिष्कके अन्तर्गत है। प्रत्येक कोशमें परमाणुकी रचनाके अनुसार विद्युत्-कण विद्यमान हैं। ज्ञानवाहिनी और गतिवाहिनी नाड़ियाँ इन कोशोंसे संलग्न हैं और प्रत्येक इन्द्रियके अनुभवोंकी स्मृतियोंके अलग-अलग विभाग हैं। पेनफील्डने बाल-सरीखी महीन सुईको एक महिलाके दिमागके भरे गूदेमें लगाया तो वह वर्षों पुराने जच्चाखानेके अनुभवोंको इस प्रकार बतलाने लगी, मानो वे उसी समय उसके सामने हो रहे हों। इसी प्रकार एक युवतीको अपने परिवारसहित रहनेकी पंद्रह साल पहलेकी याद ताजा हो गयी और वह अपने मकानके ग्रामोफोनका गान सुनने लगी। इससे प्रमाणित होता है कि स्थूलशरीरमें अवयव विनाशशील हैं, पर सूक्ष्मशरीर नित्य बना रहता है।'

सारांश यह है कि जिस पुरुषको भूतकालकी घटनाओंकी स्मृति वर्तमानमें बनी रहती है, उसका अस्तित्व दोनों कालोंमें होना स्वयंसिद्ध है और यही सिद्धान्त पूर्वजन्मकी स्मृतिके आधारपर पुनर्जन्मको सिद्ध करता है। अन्तमें स्वामी विवेकानन्दके जीवनकी एक रोचक घटनाका वर्णन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जाता है । सन् १८९३ में शिकागोके धर्म-सम्मेलनमें भाग लेनेके बाद जब वे अमेरिकाके अनेक नगरोंमें भाषण करते हुए भ्रमण कर रहे थे, तब उनकी मुलाकात उस देशके प्रसिद्ध वक्ता और विद्वान् इन्जरसोलसे हुई । वार्तालापके दौरानमें वे कहने लगे कि 'मैं अपने इस जीवन-कालमें संसारका पूरा आनन्द लेना चाहता हूँ; क्योंकि यह जीवन ही निश्चित और सब कुछ है ।' स्वामीजी बोले कि 'मैं आत्माकी अमरतामें विश्वास करता हूँ और पुनर्जन्मको मानता हूँ । इसलिये मेरे लिये जल्दबाजी करनेका कोई कारण नहीं है । सब वस्तुओं और प्राणियोंमें परमात्माकी व्यापकतामें विश्वास होनेके कारण मेरा आनन्द असीम और अनन्त है ।' निज अनुभवके आधारपर श्रीशंकराचार्यने अपरोक्षानुभूतिमें कहा है—'**दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद् ब्रह्ममयं जगत् ।**' (११६) अर्थात् 'जब जीवात्माकी दृष्टि ज्ञानमय हो जाती है, तब वह सारे संसारमें परमात्माको देखने लगता है ।' वह एक सूफी भक्तके शब्दोंमें कह उठता है—'जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है ।' पुनर्जन्मका नियामक परमेश्वर है और जिसे यह दृढ़ धारणा हो जाती है, वह इस जन्ममें शुभ कर्मोंकी ओर प्रवृत्त होता है और गीताके अनुसार—'**यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ।**' (६ । २२) अर्थात् 'इस अवस्थामें स्थित हुआ पुरुष दारुण दुःखसे भी विचलित नहीं होता ।'

गया-श्राद्धसे पुत्र

(लेखक—श्रीवेंकटलालजी ओझा)

गया-श्राद्ध पितरोंकी तृप्तिके लिये परमावश्यक बताया गया है । पर आजके आधुनिक वातावरण और शिक्षा-दीक्षामें पालित-पोषित लोग इसे ढोंगमात्र कहकर हँसी उड़ाते हैं । मैं एक ऐसे सज्जनको जानता हूँ, जिनको इसमें नाममात्रके लिये भी विश्वास नहीं था । घरमें श्राद्ध आदि होते थे, पर उनके लिये कोई महत्त्व नहीं था । परम्पराका निर्वाहमात्र था ।

उनके कई पुत्र हुए । पर होते ही मर जाते थे । कई ज्योतिषियोंने भाग्यमें पुत्र नहीं है, कह दिया । पर सौभाग्यसे एक पण्डितजीने गया-श्राद्धका सुझाव दिया । वंशकी रक्षाके लिये विवश हो वे तैयार हुए । सबसे पहले श्मशानमें जा पितरोंको गया-श्राद्धके लिये आमन्त्रित किया और वहाँसे घर न आकर सीधे स्टेशन चले गये । पहले प्रयागमें त्रिवेणीस्नान और बादमें काशीमें गङ्गास्नान किया । पटना होते हुए पुनपुन गये । पहला पिण्डदान वहीं किया ।

गयाजीमें सौभाग्यसे उन्हें उत्तम कर्मकाण्डी पण्डितजी मिल गये । उन्होंने 'कल्याण'के तीर्थाङ्कमें बतायी विधिके अनुसार गयाजीमें सभी स्थानोंपर पिण्डदान शास्त्रोक्त रीतिसे सम्पन्न करवाया ।

इसके दो वर्ष बाद पितरोंकी कृपासे उनके एक पुत्र हुआ और दो वर्ष बाद और एक पुत्र हुआ । इस प्रकार आज उनके एक नहीं, दो-दो पुत्र हैं । यह सब 'गया-श्राद्ध' का ही पुण्य-प्रताप वे मानते हैं । अब तो श्रद्धा और भक्तिपूर्वक श्राद्ध करते हैं । उनका विश्वास दृढ़ हो गया है । वे अपने अनेक मित्रोंको गया-श्राद्धके लिये प्रेरितकर भेज चुके हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोक-सुधारके साधन

[एक वीतराग ब्रह्मनिष्ठ सिद्ध संतके महत्त्वपूर्ण सदुपदेश]

[नाम प्रकाशित करनेकी आज्ञा नहीं]

(प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

यदि तुम अपना परलोक बनाना चाहते हो और यमदूतोंकी मार और नरकके द्वारसे बचना चाहते हो तो निम्नलिखित बातोंपर अवश्य ही ध्यान दो, तभी तुम्हारा परलोक बन सकता है। अन्यथा लाख प्रयत्न करो, नहीं बन सकता।

१—भूलकर भी पूज्य गौ-ब्राह्मणोंका कभी अपमान और निरादर मत करो। इन्हें कष्ट मत पहुँचाओ और जितनी बने, इनकी सेवा करो।

२—भूलकर भी कभी अपनी बेटी, जिस घरमें विवाही हो, उस घरका भोजन मत करो, पानी मत पीओ। यहाँतक कि भतीजी, भानजी जहाँ विवाही हो, उसके घरका भी खाना-पीना पाप समझो। बेटीके घरका खाने-पीनेसे तेज नष्ट हो जाता है और परलोक बिगड़ता है।

३—भूलकर भी यथेच्छाचारी नेताओंके चक्रमें फँस जाति-पाँत तोड़कर विवाह-शादी मत करो। अपनी ही जातिमें सगोत्रादि बचाकर सनातन-धर्मानुसार शास्त्रानुसार विवाह करो। यदि तुमने जाति-पाँत तोड़कर विवाह किया तो उनसे उत्पन्न होनेवाली संतान वर्णसंकर होंगी और उनका दिया पिण्डदान, श्राद्ध-तर्पण आदि पितरोंको नहीं पहुँचेगा। परलोक बिगड़ जायगा। वर्णाश्रमधर्मके अनुसार चलो। इसीमें परम कल्याण है।

४—भूलकर भी देवमन्दिर, श्रीतुलसी-पीपल-गौ-साधु—, इनका अनादर-अपमान मत करो और इन्हें अपने दाहिने हाथ करके चलो और इनका मान-सम्मान करते रहो।

५—भूलकर भी पतितपावनी कलिमलहारिणी भगवती भागीरथी श्रीगङ्गा, श्रीयमुना, श्रीसरयू, श्रीत्रिवेणी आदिके समीप जाकर कोई पाप मत करो और इनमें थूको मत, साबुन-तेल मलकर इनमें स्नान मत करो, मल-मूत्रका त्याग मत करो और इन्हें बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे नमन करो।

६—भूलकर भी पर-स्त्रीको बुरी दृष्टिसे मत देखो। परस्त्रीसे अपना कोई सम्बन्ध मत रक्खो। साधु हो तो परस्त्रीका चित्र भी मत देखो और भगवान्‌के भक्त हो तो परस्त्रीसे बातें करना भी पाप समझो।

७—भूलकर भी कभी मांस, मछली, अंडे, शराब मत खाओ-पीओ। प्याज-लहसुन, सलजम, बिस्कुट, बरफ, चाय, कोकोकोला, बीड़ी-सिगरेट आदिका भी त्याग करो। नहीं तो परलोक बिगड़ना अवश्यम्भावी है।

८—भूलकर भी कभी सिनेमा मत देखो। जवान लड़कियोंके डान्स मत देखो। विषयासक्ति बढ़ानेवाले नाटक, ड्रामा, स्वांग मत देखो। नहीं तो, मन दूषित हो जायगा और परलोक बिगड़ जायगा।

९—भूलकर भी कभी गंदे उपन्यास, अश्लील साहित्य और नास्तिकोंकी किताबें मत पढ़ो। नहीं तो बुद्धि भ्रष्ट हो जायगी और परलोक बिगड़ते देर न लगेगी।

१०—भूलकर भी कभी होटलोंका बना खाना मत खाओ। गोभक्षक तथा वर्जित जातिके हाथका बना भोजन मत करो। व्यभिचारिणी स्त्री, रजस्वला स्त्रीके हाथका बना मत खाओ। खान-पानमें पूरी-पूरी सावधानी बरतो। अपने घरका शुद्ध पवित्र चौकेका बना अन्न श्रीठाकुरजीको भोग लगा भोजन करो। हाथ-पैर धोकर, जमीनपर आसनपर बैठकर भोजन करो। अपवित्र वस्तु, जूँठी चीज मत खाओ। भोजन करके कुल्ले करो, हाथ-मुँह धोओ। खान-पानमें तनिक भी असावधानी हुई कि परलोक बिगड़ते देर न लगेगी।

११—भूलकर भी चीनीमिट्टीके पात्रोंमें, काँचके गिलासमें कोई भी चीज मत खाओ-पीओ। नहीं तो बुद्धि भ्रष्ट होते और परलोक बिगड़ते देर न लगेगी।

१२—भूलकर भी दानका एक पैसा भी मत खाओ। धर्मादेका एक पैसा भी मत हड़पो। धर्मशाला, गोशाला, मन्दिरका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हथ्या मत खाओ। नहीं तो परलोक बिगड़ जायगा और तुम्हें परलोकमें गिद्ध नोच-नोचकर खायँगे। संत कबीरकी यह बात याद रक्खो—

संसारीका टूकड़ा नौ-नौ आँगल दाँत।
भजन करे तो ऊबरे नातर फाड़े आँत॥

किसीका टुकड़ा खाना भी जब पाप बताया गया है तो जो धर्मके नामपर रुपया इकट्ठा करके डकार जाते हैं, उनकी क्या घोर दुर्दशा होगी, इसे कौन कह सकता है।

१३—भूलकर भी धर्मद्रोहियोंसे, गो-ब्राह्मण-द्रोहियोंसे, नास्तिकोंसे और पाखंडियोंसे, व्यभिचारियोंसे, नशेबाजोंसे अपना सम्बन्ध मत रक्खो। नहीं तो परलोक बिगड़नेमें देर मत समझो।

१४—भूलकर भी म्लेच्छ-आचरण मत करो; खड़े-खड़े मत मूतो और पाश्चात्त्य सभ्यता-संस्कृतिके गुलाम मत बनो। फैशनपरस्ती मत करो। परस्त्रीका स्पर्श मत करो। चर्बीसे बने साबुन, क्रीम-पाउडरका प्रयोग मत करो और होटल-पंथी, बोतलपंथी मत बनो। विदेशी वेशभूषा मत पहनो। भारतीय पोशाक पहनो। अपनी प्राचीन भारतीय सभ्यता-संस्कृतिको अपनाओ और ऐसा कोई भी काम मत करो, जो परलोक बननेमें बाधक हो।

१५—भूलकर भी अपने शिखा-सूत्रका परित्याग मत करो और सनातनधर्मकी शरणमें रहो तथा धर्मपर दृढ़ रहो। वर्णाश्रम-धर्मानुसार चलो और यदि अनधिकार हो तो वेदमन्त्रोंका उच्चारण मत करो। श्रीरामनाम, श्रीकृष्णनामामृतका निरन्तर प्रेमसे पान करो। अधिकार न हो तो देवमन्दिरके शिखरका दर्शनकर महान् पुण्यके भागी बनो। भूलकर भी देवमन्दिरोंमें बलात् जानेका प्रयत्न मत करो और मर्यादानुसार जीवन बनाओ।

१६—भूलकर भी किसी भी जीवको किसी प्रकारका भी कष्ट मत पहुँचाओ। किसीको भी मत सताओ, मत रुलाओ। किसीको भी कभी अपशब्द मत कहो और सभीमें अपने प्रभुको देखो और इसे याद रक्खो—

जो जग सो जगदीश ईश नहिं जग से न्यारा।
करिये सब सों प्रेम, प्रेम भगवत को प्यारा॥

सबको सुख पहुँचाने तथा सबका हित करनेका प्रयत्न करो।

१७—भूलकर भी पूज्य माता-पिताका, गुरुजनोंका, बाबा-दादीका, वृद्धोंका, साधु-संतोंका, प्राज्ञ-विद्वानोंका अपमान मत करो और इनका अनादर मत करो। जहाँतक बन सके, भूदेव ब्राह्मणोंका शुभाशीर्वाद प्राप्त करनेसे न चूको और इसे याद रक्खो—

पुन्य एक जग महँ नहिं दूजा।
मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥
मंगल मूल बिप्र परितोषू।
दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू॥

१८—भूलकर भी शास्त्रोंकी अवज्ञा मत करो और शास्त्रोक्त उपवास, व्रत, श्राद्ध, तर्पण, तीर्थयात्रा, श्रीगङ्गा-यमुनास्नान, कथा-कीर्तन, सत्सङ्ग आदिमें खूब भाग लो।

बोलो सनातन धर्मकी जय!

लोक-परलोक-सुधारके अनिवार्य उपाय

तन-इन्द्रियको वशमें रखना, करना नित्य सभी शुभ काम।
अनाचारसे बचना, करना संयम, नित सेवा निष्काम॥
मधुर-सत्य-हित वचन बोलना, त्याग झूठ-कटु-अहित तमाम।
जपना प्रभुका नाम निरन्तर जिह्वासे मनसे अभिराम॥
मनमें दया सौम्यता रखना, रखना उसपर निज अधिकार।
राग-द्वेष-भरे कर पाये नहीं, कभी वह अशुभ विचार॥
नित्य देखना प्रभुको मनमें, बाहर भी सबमें साकार।
लोक तथा परलोक सुधरनेके हैं ये उपाय अनिवार॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम अपना भला-बुरा स्वयं ही करते हैं

[श्रमण नारद*]

पाठकगणके सामने उस समयकी एक आख्यायिका उपस्थित की जाती है, जिस समय भारतमाता उन्नतिके शिखरपर पहुँचकर स्वर्गीय सुखका अनुभव कर रही थी। उनकी संतान हर तरहसे शान्त, सुखी, सदाचारी और स्वतन्त्र थी। धनी, मानी, उद्योगी और ज्ञानी थी। क्षमा, दया, परोपकार आदि सद्गुण अन्य देशोंको इन्होंसे सीखने थे। उस समय यहाँके व्यापारी सुदूर देशोंमें व्यापारके लिये जाया करते थे और विदेशी व्यापारी यहाँ आते रहते थे।

उस समय यहाँ बहुत-से बम्बई और कलकत्ता-जैसे समृद्धिशाली नगर थे और व्यापारका क्षेत्र विशाल होनेके कारण लोगोंका आना-जाना भी बहुत था।

छोटे शहरों, कस्बों और गाँवोंकी स्थिति अच्छी थी। प्रजा-जीवन सुख-शान्तिसे व्यतीत होता था।

बौद्धधर्मका यह मध्याह्नकाल था। जहाँ-तहाँ बुद्धदेवकी शिक्षाका पवित्र, शान्त और दयामय संगीत सुनायी देता था। बड़े-बड़े राजा-महाराजा और धनिक बौद्धधर्मका प्रचार करते थे। हजारों बौद्ध-श्रमण जहाँ-तहाँ विहार करते दृष्टिगोचर होते थे।

× × × ×

(१)

वाराणसीकी ओर जानेवाली सड़कपर एक घोड़ागाड़ी दौड़ी जा रही थी। घोड़े बड़ी तेजीसे बढ़े जा रहे थे। गाड़ीमें केवल दो ही व्यक्ति थे। एक मालिक और दूसरा उनका नौकर। मालिकने अपने वैभव और प्रतिष्ठाके अनुरूप मूल्यवान् वस्त्रालंकार धारण कर रक्खे थे। उनकी मुख-मुद्रासे ऐसा जान पड़ता था कि वे अपने निश्चित स्थानपर जल्दी पहुँचना चाहते हैं।

हालहीमें बरसात होनेके कारण ठंढी हवा चल रही थी। लगातारकी वृष्टिके पश्चात् बादल बिखर गये थे। सूर्यनारायणके प्रकाशसे धरती उजली हो रही थी। दिन सुहावना लगता था। वर्षाके जलसे धुलकर स्वच्छ हुए हरे-हरे पत्ते पवनकी लहरोंसे आनन्द-नृत्य कर रहे थे। प्रकृतिदेवीने अपूर्व शोभा धारण कर रक्खी थी।

आगे थोड़ा-सा चढ़ाव था, अतः घोड़ोंकी चाल कुछ धीमी पड़ी। सेठने जब बाहरकी ओर दृष्टि की, तब उन्होंने एक बौद्ध-श्रमणको नीची नजर किये, सड़कके किनारेसे गुजरते हुए देखा। उनकी मुखमुद्रापर शान्ति, पवित्रता और गम्भीरता छायी थी। उनके दर्शन करते ही सेठके हृदयमें उनके प्रति पूज्यभावका उद्भव हुआ और उनके मनमें यह विचार आया—'ये कोई महात्मा लगते हैं; पवित्रमूर्ति और धर्मावतार दिखायी देते हैं। विद्वान् लोगोंने सज्जन-समागमको पारसमणिकी उपमा दी है। जैसे पारसके संयोगसे लोहा सुवर्ण बन जाता है, ठीक उसी तरह सज्जनके संगमसे भाग्यहीन भी भाग्यशाली बन जाते हैं। यदि महात्माको वाराणसी जाना हो तो मैं इन्हें अपनी गाड़ीमें बैठनेके लिये प्रार्थना करूँ। यदि इन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली तो बहुत ही उत्तम है। इनके समागमसे मुझे अवश्य लाभ होगा।' इस तरहका विचार मनमें आते ही सेठजीने गाड़ी रोक ली और महात्मा पुरुषको प्रणाम करके उनसे गाड़ीमें बैठनेके लिये प्रार्थना की। महात्माजीको काशी ही जाना था, इसलिये वे गाड़ीमें बैठ गये और कहा—

'सेठजी! आपका मुझपर बड़ा उपकार है। बहुत समयसे चलते-चलते मैं थक गया था और आपने मुझे गाड़ीमें साथ बैठा लिया, इससे मैं आपका ऋणी हो गया। मुझ-जैसे साधुके पास आपको देने योग्य ऐसी कोई उपयुक्त वस्तु नहीं है, जिससे मैं आपका ऋण चुका सकूँ। फिर भी परम गुरु महात्मा बुद्धदेवके उपदेश-रूपी अक्षय भण्डारमेंसे जो कुछ भी मैं संग्रह कर सका हूँ, उसमेंसे आपके इच्छानुसार थोड़ा कुछ देकर मैं आपके इस ऋणभारको तनिक हलका करना चाहता हूँ।'

सेठजीको इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। आनन्दमें समय बीतने लगा। उन्होंने श्रमणके सुबोधरूपी रत्नोंको बड़े प्रेमसे अपने हृदयमें धारण करना शुरू किया। गाड़ी आगे बढ़ रही थी। लगभग एक घंटेके बाद गाड़ी एक सँकड़े

* 'श्रीरामकृष्ण सेवा समिति' अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित 'श्रमण नारद' गुजराती पुस्तिकाका हिन्दीभाषान्तर, समितिके आदेशानुसार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नालेके पास पहुँची। आगे एक बड़ी बैलगाड़ी थी; इससे सेठकी गाड़ी वहाँसे आगे नहीं बढ़ सकी। वहीं रुक गयी।

वह बैलगाड़ी देवल नामक एक किसानकी थी। उसमें चावलके बोरे भरे थे और वह वाराणसी जा रही थी। संध्यासे पहले ही देवलको वाराणसी पहुँचना था, पर इस नालेपर आते ही गाड़ीके जुएकी कील निकल गयी और एक पहिया अलग हो गया। अब क्या हो ? देवल बेचारा अकेला था। उसने बहुत माथा-पच्ची की; परंतु गाड़ी चल नहीं पायी।

सेठजीने देखा—वह बैलगाड़ी रास्ता रोके खड़ी है। उन्हें देर हो रही थी। सेठजीको गुस्सा आ गया और उन्होंने नौकरको आदेश दिया—'चल, जल्दी कर; उतर नीचे। हमलोग कबतक खड़े रहेंगे ? चावलोंके बोरोंको नीचे फेंककर गाड़ीको एक किनारे हटाकर अपनी गाड़ी चला।'

आदेश सुनते ही किसानने गिड़गिड़ाकर कहा—'सेठजी! मैं एक गरीब किसान हूँ। दया करो। कुछ देर रुक जाओ। चावलके बोरे नीचे गिरा दिये जायँगे तो मुझे बड़ा नुकसान होगा। आप देख रहे हैं, बरसातके कारण कितना भारी कीचड़ हो रहा है। सब चावल सड़ जायँगे। कृपा करो। मैं अभी पहिया चढ़ाकर, गाड़ी आगे बढ़ाकर किनारे किये देता हूँ। फिर आप अपनी गाड़ीको खुशीसे आगे ले जाइयेगा।'

परंतु सेठने किसानकी प्रार्थनापर बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया। बल्कि और भी रोषमें भरकर नौकरको डाँटा। नौकरने तुरंत सेठजीकी आज्ञाका पालन किया। चावलके बोरे नीचे फेंक दिये और गाड़ीको हटाकर अपनी गाड़ीको आगे निकाल लिया।

'अरे, इस संसारमें गरीबका सहायक कोई नहीं है।' अपने नगण्य लाभके लिये दूसरेका सर्वनाश करनेवाले धन-मदमत्तोंकी उस समय भी कमी न थी। गरीबोंके रक्षक बननेके बजाय उनके भक्षक बननेवाले अमीरोंसे यह जगत् न तो कभी खाली था और न होगा ही। हाँ, उस समय बौद्ध-धर्मके साधुओंका दयामय हाथ गरीबोंकी सहायताके लिये सदा तत्पर रहता था। वे लोग धार्मिक विवादोंमें व्यर्थ न पड़कर मनुष्यमात्रके साधारण हितकी चिन्तामें निरन्तर लगे रहते थे। वे लोग अपने मन, वचन और तनका उपयोग मुख्यतः परोपकारके कार्यमें ही किया करते थे।

सेठजीकी गाड़ी ज्यों ही आगे बढ़ने लगी कि उसी समय श्रमण नारद गाड़ीमेंसे कूद पड़े और सेठजीसे बोले—'सेठजी! क्षमा कीजियेगा। अब मैं आपके साथ गाड़ीमें नहीं चल सकूँगा। आपने विवेकपूर्वक मुझे एक घण्टे अपने साथ गाड़ीमें बैठाया, इससे अब मेरी थकावट दूर हो चुकी है। फिर भी मैं आपके साथ चलता, किंतु अब मेरे मनमें आपके उपकारका बदला चुकानेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी है और बदला उतारनेका अच्छा अवसर भी मिल गया है।'

सेठजीने कहा—'आप गाड़ीसे उतर जायँगे तो इससे उपकारका बदला किस तरह और किसके प्रति चुकायेंगे ?'

'सेठजी'—श्रमणने कहा। 'जिस किसानकी बैलगाड़ीको उलटाकर हम आगे बढ़े हैं, वह किसान आपका बहुत निकटका सम्बन्धी है। मैं उसे आपके किसी पूर्वजका अवतार मानता हूँ। इसलिये आपके उपकारका बदला उसकी सहायता करके चुकानेके लिये उस ओर जा रहा हूँ। उसे जो लाभ होगा, वह लाभ आपको ही हुआ समझिये। इस किसानके भाग्यके साथ आपकी भलाईका बहुत गहरा सम्बन्ध है। आपने उसे जो कष्ट दिया है, मुझे लगता है कि इससे आपका बहुत नुकसान हुआ है। इसलिये मेरा यह कर्तव्य है कि आपकी भलाई करनेके उद्देश्यसे तथा इस नुकसानसे आपको बचानेके लिये मैं यथाशक्ति उसकी सहायता करूँ।'

सेठने श्रमणकी इस मार्मिक उक्तिपर कोई ध्यान नहीं दिया। उन्हें वे व्यवहारमें अकुशल बुद्धिवाले, बहुत भले आदमी जान पड़े। आखिर श्रमणको छोड़कर सेठजीने गाड़ी आगे बढ़वा दी।

× × × ×

(२)

श्रमण नारद पहुँचे किसानके पास। उसे नमस्कार किया और गाड़ीको ठीक करनेमें उसकी पूरी सहायता की। भींगे और सूखे चावलोंको अलग करना शुरू किया। दोनोंकी मेहनतसे काम जल्दी होने लगा। किसानने सोचा—'भाग्य प्रबल होनेके कारण कोई अदृश्य देव ही श्रमणका रूप लेकर मेरी सहायता करने आ पहुँचे हों तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। ऐसी अनपेक्षित सहायता मिलनेसे काम कितनी जल्दी होने लगा है, यह देखकर मुझे भी आश्चर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है ।' डरते-डरते किसानने पूछा—'महाराज ! जहाँ-तक मुझे याद है, मैंने इन सेठजीका कुछ भी नहीं बिगाड़ा था। फिर भी, बिना कारण उन्होंने मेरा इतना नुकसान क्यों किया ? क्या कारण है इसका ?'

श्रमण—भाई ! आज जो कुछ भी तुम भोग रहे हो, वह तुम्हारे पूर्वकर्मका ही फल है ।

किसान—कर्म क्या है महाराज ?

श्रमण—मनुष्यके द्वारा स्वयं किये हुए कार्य ही उसका 'कर्म' है । अनेक जन्मोंके कर्मोंकी एक माला है। इस मालामें विविध कर्मरूपी मनके हैं । वर्तमान कार्यों एवं विचारोंसे इसमें परिवर्तन भी होते हैं । हमलोगोंने जो कुछ कर्म पूर्वमें किये हैं, उन्हींका फल इस जीवनमें भोग रहे हैं और इस जन्ममें इस समय जो कर्म कर रहे हैं, उनका फल अगले जन्ममें भोगेंगे ।

किसान—ऐसा होगा; किंतु ऐसे घमंडी और दुष्ट मनुष्योंके लिये, जो हमारे-जैसे निरपराधियोंको हैरान करते हैं, क्या किया जाय ?

श्रमण—भाई ! मेरी समझसे तो तुम्हारे विचार भी लगभग उस सेठके विचारोंके समान ही हैं । जिन कर्मोंके फलस्वरूप वह जौहरी और तुम किसान बने हो, ऊपरी दृष्टिसे देखा जाय तो उनमें बड़ा भेद दिखायी देता है, किंतु यदि हम गहराईसे विचार करेंगे तो बहुत अन्तर नहीं दिखायी देगा । मानव-स्वभावके अभ्यासके कारण मैं कहता हूँ कि यदि तुम उस जौहरीकी जगह होते, तुम्हारे पास भी उसके नौकर-जैसा बलवान् नौकर होता और तुम्हारी गाड़ी रास्तेमें उसकी गाड़ीसे रुकती तो तुमने भी वैसा बर्ताव किया होता, जैसा कि सेठने तुम्हारे साथ किया है । उसके चावलोंका सत्यानाश हो जायगा—ऐसा विचार तुम्हारे मनमें भी उत्पन्न न होता और किसीका बुरा करनेपर हमारा बुरा होगा, उस समय इस विचारको तुम भी भूल जाते ।

किसान—महाराज ! आपका कहना सत्य है । उस परिस्थितिमें मैं भी वैसा ही व्यवहार करता; किंतु अब तो मुझे आपका समागम प्राप्त हो गया है । आपने बिना किसी स्वार्थके मेरी सहायता की है । आपकी सहायतासे ही मैं अपने मालकी रक्षा कर सका हूँ और गाड़ी चला सका हूँ । अब मैं आपका उदाहरण सदा सामने रखकर अपने मानव-बन्धुओंका कल्याण करूँगा ।

किसानकी बैलगाड़ी दुरुस्त हो गयी । कुछ दूर चलते ही दोनों बैल चौंककर रुक गये । किसानने पुकारा—'अरे महाराज ! सामने यह साँप-जैसा क्या पड़ा है ?' श्रमणने ध्यानसे देखा तो कोई थैली-जैसी चीज दिखायी दी । समीप जाकर देखा तो सोनेकी मोहरोंसे भरी हुई थैली ही थी । उनको लगा कि 'अन्य किसीकी न होकर यह थैली उन सेठकी ही है ।' उन्होंने वह थैली उठाकर किसान देवलको देते हुए कहा—'वाराणसी जाकर उन सेठका पता लगाना और उन्हें यह थैली ज्यों-की-त्यों दे देना । उनका नाम पाण्डु जौहरी है और उनके नौकरका नाम महादत्त है । तुम्हारे ऐसा करनेपर उन्हें अपने किये हुए अन्यायके लिये पश्चात्ताप होगा । थैली देकर उनसे कहना कि 'आपने मेरे साथ जो कुछ बर्ताव किया था, उसको लेकर मेरे मनमें अब कुछ भी नहीं है। मैं आपको क्षमा करता हूँ और चाहता हूँ कि आपको अपने व्यापारमें सच्ची सफलता मिले ।'

'तुम्हारा भाग्य उनके भाग्यसे जुड़ा हुआ है । ज्यों-ज्यों उनकी उन्नति होगी, त्यों-ही-त्यों तुम्हारा भाग्य भी खुलेगा ।'

इतना कहकर 'परोपकारकी प्रतिमा' दीर्घदृष्टि वे श्रमण महाशय वहाँ एक पलक भी न ठहरकर अपने रास्ते चल दिये । रास्तेमें विचार करने लगे—'यदि वे जौहरी फिर कभी मुझे मिलेंगे तो मैं यथाशक्ति उनका भला करनेका प्रयत्न करूँगा । उपदेश देकर उन्हें सच्चा मानव बनाऊँगा ।'

(३)

वाराणसीमें मल्लिक नामके एक व्यापारी थे । वे पाण्डु जौहरीके आढ़तिया थे । पाण्डु वाराणसी आकर उनसे मिले । जौहरीके मिलते ही मल्लिक रो पड़े और पाण्डुके पूछनेपर उन्होंने अपनी कठिनाई बतायी—

मल्लिक—मित्र ! मैं एक महान् संकटमें आ पड़ा हूँ । मुझे डर है कि कहीं मेरा आपसे व्यापारी नाता टूट न जाय । मैंने राजाको उनके अपने उपयोगके लिये बढ़िया चावल देनेका वचन दे रक्खा है । कल उसकी मुद्दत पूरी होती है । वचनके अनुसार कल प्रातःकाल मुझे उनको चावल देना ही चाहिये । मैं क्या करूँ ? इस समय मेरे पास चावलका एक दाना भी नहीं है । दूसरे कहींसे मिलनेकी भी आशा नहीं है; क्योंकि यहाँ मेरा प्रतिस्पर्धी एक बड़ा जबरदस्त व्यापारी है । उसे न जाने कैसे इस बातका पता चल गया कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज-कोठारीसे मैंने चावलके बायदेका व्यापार किया है। यह बात जानते ही उसने मुँहमाँगे दाम देकर, जितने अच्छे चावल बस्तीमें थे, सब खरीद लिये हैं और ऐसा जान पड़ता है कि उसने कुछ रिश्वत देकर कोठारीको भी अपने वशमें कर लिया हो। कल मेरी क्या हालत होगी—इसकी मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है। मेरी इज्जत बचनी कठिन है। मैं तो मरा जा रहा हूँ। भाई! यदि विधाता मेरी सहायता करें और कहींसे बढ़िया चावलकी एकाध गाड़ी मिल जाय तो मैं बच सकता हूँ। अन्यथा, मेरी तो मौत ही हुई समझो।

मल्लिककी बातें सुनते-सुनते पाण्डु एकाएक चौंक उठे। उन्हें फौरन ही गाड़ीमें अन्य चीजोंके साथ रक्खी हुई अपनी थैलीका स्मरण हो आया और वे तुरंत ही दौड़े हुए घर गये। सारी चीजें, कपड़े-लत्ते छान मारे। गाड़ीकी पूरी जाँच की; किंतु कहीं भी थैली नहीं मिली। उन्हें अपने नौकर महादत्तपर संदेह हुआ। पुलिसको फौरन ही खबर दी गयी और पुलिसने आकर गरीब निर्दोष सेवक बेचारे महादत्तको गिरफ्तार कर लिया। फिर क्या था? निरपराधीको अपराधी साबित करनेवाली यमदूत-सी पुलिसने चोरीका अपराध स्वीकार कर लेनेके लिये महादत्तको खूब पीटा। महादत्त जोर-जोरसे रोने लगा। गिड़गिड़ाकर बोला—'अरे! मैं बिल्कुल निरपराध हूँ। मैं सच कहता हूँ कि मैंने थैली नहीं चुरायी। मुझपर दया करो। सेठके कहनेसे मैंने उस बेचारे गरीब किसानको रास्तेमें बहुत सताया था, मुझे उसी पापका यह फल मिल रहा है। हे भाई किसान! तू तो जगत्का पिता (किसान) है। मैंने तुझे बिना कारण सताया है। सचमुच मुझे यह दण्ड मिलना ही चाहिये।'

इस तरह महादत्त पश्चात्ताप करने लगा; किंतु पुलिसको उसकी बातोंपर ध्यान देनेकी फुरसत ही कहाँ थी। उसका यह काम नहीं, उसका काम तो था—उसे बुरी तरहसे पीटना ही।

इधर पुलिस महादत्तको बुरी तरह मार रही थी। इसी बीच देवल किसान वहाँ आ पहुँचा और आते ही उसने पाण्डु जौहरीके सामने मोहरोंकी थैली रख दी। सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये। पाण्डु तो गद्गद हो गये। उन्होंने जिस आदमीको विपत्तिमें डाला था, उसी आदमीने आकर आज उनको एक महान् विपत्तिसे बचा लिया। यह देखकर उन्हें बहुत ही लज्जित होना पड़ा। उन्होंने बड़ा पश्चात्ताप किया और देवलसे क्षमा माँगी। महानुभाव श्रमणके सङ्गसे सदाके सरल-हृदय किसानका हृदय उदार हो गया था। उसने अपने सच्चे हृदयसे उन्हें क्षमा दे दी और उनके अभ्युदयकी इच्छा की।

महादत्त छोड़ दिया गया। उसे अपने सेठपर बड़ा गुस्सा आ रहा था। देखते-ही-देखते वह कहीं दूर चला गया, एक पलके लिये भी वहाँ नहीं रुका।

मल्लिकको जब इस बातका पता चला कि देवलके पास बढ़िया—अच्छे किस्मके एक गाड़ी चावल हैं, तब उसने मुँहमाँगे पैसे देकर सबके सब चावल खरीद लिये। इस तरह उसके वचन तथा मानकी रक्षा हो गयी। राजाके कोठारमें समयपर चावल पहुँच गये। इधर, देवलने कभी स्वप्नमें भी, उसे चावलकी इतनी बड़ी कीमत मिलेगी, यह आशा नहीं की थी। वह तो बेहद खुश हो गया और तुरंत ही उसने अपने गाँवका रास्ता पकड़ा।

अब पाण्डु "यह विचार करने लगे कि "यदि वह देवल यहाँपर न आया होता तो मेरी और मल्लिककी क्या स्थिति होती? वह कितना ईमानदार है? यह श्रमण महाशयके समागमका ही परिणाम है। लोहेको सुवर्ण बनानेकी शक्ति 'पारस'के सिवा और किसके पास हो सकती है?" पाण्डुका हृदय रो उठा। महात्माजीके दर्शनकी प्रबल उत्कण्ठा जाग उठी उनके मनमें और वे फौरन ही उनकी खोजमें निकल पड़े तथा विहारोंमें पूछ-ताछ करते-करते वे अन्तमें उनके पास जा पहुँचे।

कृतज्ञतापूर्ण अन्तःकरणसे उन्होंने श्रमणको साष्टाङ्ग-दण्डवत् प्रणाम किया। व्यापारीका दक्ष और कठोर हृदय भी कुसुम-कोमल महात्माजीके दर्शनसे कोमल बन गया। वे कुछ भी बोल न सके। उनका हृदय भर आया। महात्माजी उन्हें आश्वासन देते हुए समझाने लगे।

श्रमण—सेठजी! देखा न, कर्मकी रचना कितनी गहन है?

पाण्डु—महानुभाव! मेरी तो समझमें कुछ नहीं आता।

श्रमण—अभी आप यह बात नहीं समझ सकेंगे। साधारण लोग इसका मर्म नहीं समझ सकते। इसे समझनेके लिये जब आपके मनमें रुचि उत्पन्न होगी और उत्कण्ठा बढ़ेगी, तब यह बात अपने-आप ही समझमें आ जायगी। किंतु इतना अवश्य याद रखियेगा कि जब कभी दूसरोंको दुःख पहुँचाने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मन हो, तब पहले अपने-आपसे यह पूछना चाहिये कि 'ऐसा ही दुःख कोई मुझको दे तो मेरे मनपर उसका क्या असर होगा ? क्या मैं उसको सहन कर सकूँगा ?' यदि तुम सहन करनेमें असमर्थ हो तो फिर दूसरेको दुःख पहुँचानेकी वृत्ति क्यों हो ? ऐसी वृत्ति हो तो उसे तुरंत दबा देना चाहिये। इसी तरह दूसरा यदि कोई हमारी सेवा करता है तो वह हमें कितनी अच्छी लगती है। ठीक उसी तरह, हमारी सेवा भी अन्यको अच्छी लगती है—यह दृढ़ निश्चय रक्खें। दूसरेकी सेवा करनेका एक भी अवसर हाथसे नहीं खोना चाहिये। आज हम जिस सुकृतके बीज बोयेंगे तो उसका अच्छा फल हमें कालान्तरमें अवश्य मिलेगा, यह विश्वास रखना।

पाण्डु—महाराज ! आपकी अमृतवाणी सुनते-सुनते मेरे मनको तृप्ति नहीं मिलती। मेरा चरित्र उत्कृष्ट बने और मन दृढ़ रहे। इसके लिये कुछ और सुनाइये। मैं कर्मकी गहन गतिको समझना चाहता हूँ।

श्रमण—अच्छा, तो सुनो ! मैं आपको कर्मभेदकी कुंजी बता रहा हूँ। मेरे और आपके बीच एक पर्दा पड़ा है। इस पर्देको 'माया' कहते हैं। इस मायारूपी पर्देके कारण आप मुझको और मैं आपको पृथक्-पृथक् समझ रहे हैं। इस पर्देके कारण ही तो मनुष्य सत्यको नहीं देख पाता और पापके कुएँमें जा गिरता है। चूँकि आपकी आँखोंके आगे यह मायाका पर्दा पड़ा हुआ है, इसीसे आप अन्य अपने मानव-बन्धुओंके साथ आपका कितना निकट सम्बन्ध है, उसे जान नहीं सकते। सच पूछा जाय तो एक शरीरके भिन्न-भिन्न अवयवोंका एक दूसरेके साथ जैसा प्रगाढ़ सम्बन्ध है, वैसा ही, वरं उससे भी अधिक प्रगाढ़ सम्बन्ध मानव-मानवके बीच है। इस स्थितिको बहुत कम लोग समझ पाते हैं। इस सत्यको समझकर इसके अनुसार बर्ताव करना—यही तो मानव-जीवनका कर्तव्य है। इस सत्यकी प्राप्तिके लिये मैं आपको तीन मन्त्र दे रहा हूँ। इन्हें आप अपने हृदयमें लिख रखिये—

(१) दूसरोंको दुःख पहुँचानेवाला स्वयं ही अपनेको दुःख देनेवाले दुःखके बीज बोता है।

(२) दूसरोंको सुख पहुँचानेवाला अपने लिये सुखका बीज बोता है।

(३) समग्र मानव-जाति एक ही है। इसमें भिन्नताका विचार भ्रममात्र है।

—इन तीन बातोंपर गहराईसे विचार करते रहिये—उनकी उपासना करते रहिये—आपको सत्यके दर्शन अवश्य होंगे।

पाण्डु—महाराज ! आपके शब्दोंका मेरे हृदयपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। आपके वचन तो आपके जीवनका प्रतिबिम्ब है। मैंने वाराणसी आते समय एक घंटेके लिये आपको अपनी गाड़ीमें बैठा लिया था। इसमें मेरे एक पाईका भी खर्च नहीं हुआ। फिर भी कितना महान् बदला। प्रभो ! मुझपर आपका महान् उपकार है। आपने ही तो देवलको मोहरें देनेके लिये मेरे पास भेजा था। यदि वे मोहरें मुझे प्राप्त न हुई होतीं तो मैं यहाँका सौदा न कर पाता। आपकी दीर्घदृष्टि है। मैं किस मुखसे तारीफ करूँ ? देवलको सहायता देकर उसे आपने शीघ्र ही वाराणसी भेज दिया, जिससे मेरे मित्र मल्लिकका भी काम हो गया; उसकी इज्जत बच गयी। मेरे सेवक महादत्तकी भी रक्षा हुई, नहीं तो, पता नहीं, उस बेचारेकी क्या दुर्दशा होती।

महाराज ! जिस तरह आप सत्यके दर्शन करते हैं, ठीक उसी तरह मानवमात्र करने लगे तो सारा जगत् कितना सुखी हो जाय। असंख्य पाप रुक जायँ और सर्वत्र पुण्य-प्रणाली प्रचलित हो जाय। महाराज ! संतोंकी सेवा करनेकी इच्छा मेरे मनमें जाग्रत् हुई है। कौशाम्बीमें एक विहार बनवा दूँ, जहाँपर आप-जैसे श्रमण रहें और जनताको सन्मार्गपर चलावें।

(४)

कौशाम्बीमें पाण्डु जौहरीका विहार तैयार हो चुका है। इसमें सैकड़ों विद्वान् और दयामूर्ति श्रमण निवास करते हैं। अल्प समयमें ही इस विहारकी ख्याति दूर-दूरतक फैल गयी। दूर रहनेवाले धर्मपिपासु लोग भी यहाँ जाकर उपदेशामृतका पान करके अपनी तृष्णाको शान्त करने लगे।

पाण्डु जौहरी भी एक सुप्रसिद्ध जौहरी बन गये और उनकी यशोगाथा दूर-दूरतक सुनायी देने लगी।

× × ×

कौशाम्बीके समीप ही एक राजाकी राजधानी थी। एक दिन राजाने अपने कोषाध्यक्षको पास बुलाकर आदेश दिया कि मुझे 'एक ऐसा सोनेका मुकुट बनवाना है, जैसा इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसारमें कहीं भी न देखा गया हो। इस मुकुटमें बहुमूल्य रत्न जड़े हों। ऐसी मेरी इच्छा है। पाण्डु जौहरीके सिवा इतना बड़ा काम कोई भी दूसरा नहीं कर सकता। इसलिये शीघ्र ही पाण्डु जौहरीको ऐसा मुकुट बनवा देनेके लिये कहलवा दो।' राजाके आदेशानुसार कोषाध्यक्षने पाण्डु जौहरीको सूचित कर दिया।

निश्चित समयपर मुकुट तैयार हो गया। इसके अतिरिक्त भी, पाण्डु जौहरीने अपनी सारी पूँजी लगाकर हीरे-माणिक और सोने-चाँदीके बहुत-से आभूषण तथा अन्यान्य चीजोंके बढ़िया नमूने बनवाये। ये सभी चीजें अपने साथ लेकर वे राजधानीकी ओर निकल पड़े। पंद्रह-बीस बलवान् रक्षक अपने साथ ले लिये और खुशी तथा सावधानीके साथ आगे बढ़ने लगे। उन्हें विश्वास था कि उनकी सारी चीजें राजाके यहाँ खप जायँगी और अच्छी कमाई एवं कीर्ति बढ़ेगी। किंतु जब वे एक घने जंगलमेंसे गुजर रहे थे, तब उन्हें डाकुओंका एक दल मिला। इस दलमें पचास-साठ डाकू थे। उन डाकुओंने जौहरीको लूट लिया। जौहरीके साथ आये हुए रक्षकोंने बहादुरीके साथ सामना किया, पर आखिर डाकुओंकी ही जीत हुई और वे जौहरीकी तमाम चीजें लेकर चम्पत हो गये!

सब समाप्त! एक क्षण पहलेके लक्षाधिपति जौहरी बिल्कुल कंगाल स्थितिमें आ गये। उनकी सारी आशाएँ धूलमें मिल गयीं। वे कहींके भी न रहे। अब उन्हें अपने अतीतके पापोंके लिये बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था। जवानीमें किसका कितना बुरा किया था, सब सामने आ गया। जो बोया था, वही फल गया। उनकी आँखोंके आगेका पर्दा दूर हो गया। कर्मकी गतिका अभिप्राय जैसा, जितना इस समय समझमें आ रहा था, वैसा, उतना पहले कभी नहीं आया था। अब उनका अन्तःकरण निर्मल हो गया। उनके हृदयमें दयाका स्रोत उमड़ने लगा। पश्चात्तापकी अग्निसे मानस पवित्र हो गया।

पाण्डुको आज अपनी निर्धन परिस्थितिका कोई दुःख नहीं हो रहा है। दुःख है तो केवल इतना ही है कि धनके द्वारा जो दूसरोंकी भलाई कर सकते थे और श्रमणोंकी सेवा करके उनके द्वारा धर्म-प्रचारका जो कार्य हो रहा था, उसमें रुकावट आ गयी!

(५)

कौशाम्बी नगरीके पास एक जंगल है। इसी जंगलमें राक्षसी डाकुओंने बेचारे पाण्डुको लूट लिया था। उसी रास्तेसे आज एक बौद्ध साधु जा रहे थे। वे तो अपने ही विचारोंमें मस्त थे। हाथोंमें एक कमण्डलु और एक छोटी-सी गठरी थी, जिसमें कुछ हस्तलिखित पुस्तकें थीं। गठरीके ऊपर एक बहुमूल्य वस्त्र बँधा था। किसी श्रद्धालुने ग्रन्थमहिमासे आकर्षित होकर पूज्यभावसे गठरी बाँधनेके लिये उन्हें यह कपड़ा दिया हो, ऐसा लगता था। यही बहुमूल्य वस्त्र साधुके लिये विपत्तिका कारण बन गया। डाकुओंने दूरसे ही इस गठरीको देखा और 'बहुमूल्य वस्त्रमें अवश्य कोई कीमती चीजें छिपी होंगी'—यों समझकर वे उस साधुपर टूट पड़े। जब उन्होंने गठरी खोलकर देखी और उसमें केवल कुछ कागज ही निकले, तब तो उनके क्रोधका पारा और भी चढ़ गया। उन्होंने मिलकर साधुको घूँसोंसे मार-मारकर गिरा दिया और यों अपनी नीचताका प्रदर्शन करके चले गये।

साधु अत्यन्त पीड़ासे कातर था। उस रातको वहाँसे आगे नहीं बढ़ सका। सुबह होनेपर बड़ी कठिनतासे आगे बढ़नेका प्रयत्न किया। कुछ ही आगे बढ़ा होगा कि उसे समीपकी झाड़ीमें शोरगुल और हथियारोंकी खड़खड़ाहट सुनायी दी। साधु धीरे-धीरे वहाँ जा पहुँचा। पहुँचते ही देखा कि पिछली रातके जिस डाकुओंके दलने उसे लूटा-मारा था, उसी दलके लोग आपसमें लड़ रहे थे। इनमेंसे एक डाकू बड़ा बलवान् था। जैसे शिकारी कुत्तोंसे घिरा हुआ सिंह गुस्सेमें आकर उनपर टूट पड़ता है, वैसे ही वह बलवान् डाकू उन सब डाकुओंको मार रहा था। किंतु वह अकेला था, जब कि विरोधियोंकी संख्या बहुत अधिक थी। दस-बारह आदमियोंको उसने जमीनपर गिरा दिया; किंतु आखिर वह भी घायल होकर जमीनपर गिर पड़ा। उसके शरीरपर बहुत चोटें थीं। उसे वहींपर छोड़कर जीवित डाकू भाग गये।

श्रमणने समीप आकर देखा तो दस-पंद्रह लाशें पड़ी थीं। इनमेंसे केवल एक वही बहादुर डाकू जीवित था, जो अपने जीवनकी आखिरी साँस ले रहा था। साधुका हृदय भर आया। इस निरर्थक हत्याकाण्डसे उसे बड़ा दुःख हुआ। करीब ही एक निर्मल पानीका झरना बह रहा था, उसमेंसे अपने कमण्डलुमें ताजा जल भरकर साधु ले आया और उस डाकूकी आँखोंपर थोड़ा-थोड़ा छिड़कना शुरू किया। डाकूकी आँखें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुलीं और वह बड़बड़ाने लगा—'साले बेईमान कुत्ते कहाँ भाग गये ? सैकड़ों बार मैंने अपनी जान जोखिममें डालकर उन लोगोंको बचाया है और मैं न होता तो कभीका शिकारियोंने उन कमजोर कुत्तोंको मौतके घाट उतार दिया होता। इसका उन्हें कहाँ भान है ? क्या वे सब कुछ भूल गये ?'

श्रमण—भाई ! अब तुम अपने उस पापमय जीवनके साथियोंकी याद न करो। अब तुम केवल आत्माका ही विचार करो और अपने जीवनके अन्तको सुधार लो। थोड़ा-सा पानी पी लो और मुझे देखने दो—तुम्हें कहाँ-कहाँ चोट लगी है। हो सकेगा तो मैं कुछ उपाय करूँगा और बचना होगा तो तुम बच जाओगे।

डाकू शान्त हो गया। श्रमणने उसके घाव पानीसे धो डाले और बादमें जंगलसे वनस्पति लाकर, उसमेंसे रस निकालकर घावोंपर लगा दिया। इससे डाकूको बड़ा आराम मिला। उसे नींद-सी आ गयी।

जब वह जगा तो उसे बहुत आराम मालूम हो रहा था। उसने श्रमणको अपने पास देखा। उसके हृदयका परिवर्तन होने लगा।

'दयामय ! अबतक मैंने सब बुरे-ही-बुरे काम किये हैं। कभी किसीका कुछ भी भला किया ही नहीं। अपनी बुरी वासनाओंके जालमें मैं स्वयं ही फँस रहा हूँ। इसमेंसे निकल सकूँ, ऐसा नहीं लगता। मैं तो नरकका ही अधिकारी हूँ। मोक्ष पाने योग्य रहा ही नहीं।'

श्रमण—हाँ भाई ! तुम्हारा कहना सत्य है। तुम्हारे अपने किये हुए कर्मोंका फल तुम्हें ही भोगना पड़ेगा। जो गड्ढा खोदता है, वही गिरता है। इसका कोई इलाज नहीं है। फिर भी निराश मत होओ। अब ऐसे सुकर्मरूपी बीज बोओ, जिससे आगे बुरे फल न भोगने पड़ें; पश्चात्ताप करनेका समय ही न आये। ज्यों-ज्यों दुष्टताकी मात्रा तुम्हारे हृदयसे कम होती जायगी, त्यों-ही-त्यों शरीरसम्बन्धी ममत्वबुद्धि भी कम होती जायगी और परिणामस्वरूप विषय-लालसा भी नष्ट हो जायगी। इस सम्बन्धका एक आख्यान है, वह मैं तुम्हें सुना रहा हूँ। उसे सुननेपर तुम्हें पता चलेगा कि दूसरोंकी भलाई करनेमें ही अपनी भलाई है। दूसरे शब्दोंमें कहें तो मनुष्यके अपने ही कर्म अपने तथा दूसरोंके सुखके मूल हैं।

'कदन्त नामका एक जबरदस्त डाकू था। वह अपने पापोंका प्रायश्चित्त किये बिना ही मर गया, जिसके कारण नरकमें उसे नारकी-योनि प्राप्त हुई। बहुत कल्पोंतक उसे अपने कर्मोंका फल वहाँ भोगना पड़ा; फिर भी, उनका कोई अन्त नहीं दिखायी दिया। इसी बीच भगवान् बुद्धने इस पृथ्वीपर अवतार लिया। बुद्धभगवान्के पुण्यकी एक किरण नरकमें भी जा पहुँची, जिसके फलस्वरूप नारकी लोगोंको भी अपने शीघ्र उद्धारकी आशा हो गयी। इस प्रकाशको देखकर कदन्त जोरसे चिल्ला उठा—'हे भगवान् ! मुझपर दया करो, कृपा करो ! मैं यहाँ अवर्णनीय दुःखोंसे पीड़ित हूँ। मुझे इस संकटसे छुड़ाओ। प्रभो ! अब मैं सदा सत्यके मार्गपर ही चलूँगा। मुझे मुक्त करो, प्रभो ! मुझे मुक्त करो।'

यह तो प्रकृतिका नियम है कि बुरे कर्म प्रायः मनुष्यको विनाशकी ओर ही ले जाते हैं। बुरे कर्म सृष्टि-नियमके विरुद्ध हैं, अस्वाभाविक हैं; इस कारण उनकी आयु कम होती है। सत्कर्म दीर्घजीवी हैं; क्योंकि वे स्वाभाविक हैं। वे आशाके प्रति आगे बढ़ते हैं। पापकर्मोंका अन्त है, पुण्य-कर्मोंका अन्त नहीं है।

जिस तरह बाजरेके एक दाने (बीज) से एक पौधेमें हजारों दाने लग जाते हैं और जैसे अनेक पौधे मिलकर खेतको लहलहा देते हैं, ठीक वैसे ही थोड़ेसे भी सत्कर्मसे हजारोंकी संख्यामें सत्-फल प्राप्त होते हैं और उनकी परम्परासे सृष्टि छा जाती है। दूसरे शब्दोंमें कहा जाय तो मानव भला कार्य करते-करते जन्म-जन्ममें इतनी दृढ़ता प्राप्त करता जाता है कि अन्तमें वह 'अनन्तवीर्य' बुद्ध बनकर निर्वाण-पदका भागी बनता है।

कदन्तका आक्रन्दन सुनकर दयासागर बुद्धभगवान् बोले—'तुमने कभी किसी भी प्राणीपर थोड़ी-सी भी दया की है ? यदि की होगी तो यह दया तुरंत दौड़ती हुई आयेगी और तुम्हें उन दुःखोंसे छुड़ा देगी। किंतु जबतक तुम्हारे मनसे देहका ममत्व, क्रोध, मान, कपट, ईर्ष्या और लोभका नाश न होगा, तबतक उन दुःखोंसे तुम्हें मुक्ति नहीं मिल सकती।' कदन्तका मूल स्वभाव बड़ा क्रूर था। उसे अपने उद्धारका मार्ग कहीं भी दिखायी न पड़ा। पर करुणानिधि बुद्धभगवान् तो सर्वज्ञ थे। उन्होंने उसके पूर्वजन्मके तमाम कर्मोंको एकके बाद एक देखना आरम्भ किया। देखा, तो एक बार उसने थोड़ी-सी दयाका भाव दिखाया था। कदन्त अपने पूर्वजन्ममें एक दिन एक जंगलसे गुजर रहा था। उसके आगे एक मकड़ा चला जा रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके मनमें आयी कि उस मकड़ेको पैरोंतले कुचलकर आगे निकल जाऊँ। किंतु तुरंत ही यह विचार आया कि नहीं, नहीं, यह बेचारा निरपराधी है। मुझे ऐसा नहीं करना चाहिये और इस विचारके फलस्वरूप वह कदन्त पाप करनेसे बच गया और मकड़ेके प्राणोंकी रक्षा हो गयी। बस, भगवान् बुद्धने उसके इस छोटे-से सत्कार्यको ध्यानमें लेकर कदन्तका उद्धार करनेका विचार किया। उन्होंने मकड़ेको जालके एक तन्तुके साथ नरकमें भेजा। उसने कदन्तसे जाकर कहा कि 'लो, इस तन्तुको पकड़ लो और इसकी मददसे तुम ऊपर चढ़ जाओ।' इतना कहकर मकड़ा तो अदृश्य हो गया। उसके बाद, कदन्त बेचारा बड़ी कठिनतासे तन्तुको पकड़कर ऊपर चढ़ने लगा। आरम्भमें तो तन्तु मजबूत मालूम दिया, किंतु बादमें धीरे-धीरे वह टूटनेकी तैयारी करने लगा; क्योंकि नरकके अन्य दुखी जीव भी उसी तन्तुको पकड़कर ऊपर चढ़ने लगे थे। कदन्त बहुत घबरा गया। उसे ऐसा लगा, जैसे कि वह तन्तु लंबा होता जा रहा है और वजनके कारण पतला बनता जाता है। 'मेरा वजन तो वह झेल ही सकता है। फिर ऐसा क्यों हो रहा है?' इस तरह विचार करके कदन्तने जो नीचेकी ओर देखा तो असंख्य नारकी जीव उस तन्तुको पकड़कर ऊपर चढ़ते हुए दिखायी दिये। अब उसे लगा कि 'इतने सारे जीवोंके वजनसे तो यह तन्तु अवश्य टूट जायगा।' वह घबरा गया और एकाएक बोल उठा—'यह तार तो मेरा है, तुमलोग इसे छोड़ दो।'—ये शब्द उसके मुँहसे निकलते ही कदन्त पुनः नरकमें जा गिरा।

कदन्तके देहका ममत्व और अहंभाव अभी छूटा नहीं था। वह केवल अपनेको ही अपना समझता था। सत्यका वास्तविक ज्ञान उसे नहीं था। सिद्धि प्राप्त करानेवाली अन्तःकरणकी सूक्ष्म शक्तिसे वह अज्ञात था। वह शक्ति देखनेमें तो जालके तन्तु-सी पतली-पतली होती है, किंतु वह इतनी मजबूत होती है कि हजारों मनुष्योंका भार उठा सकती है। इतना ही नहीं, बल्कि जो इसकी सहायता करनेके उद्देश्यसे आगे बढ़ता है, उसे कम परिश्रम करना पड़ता है। किंतु जब उस शक्तिका संग्राहक यह सोचने लगता है कि 'वह शक्ति तो मेरी ही है, सत्य-मार्गपर चलनेका फल केवल मुझे ही मिलना चाहिये, उसमें अन्य किसीका हक—हिस्सा न होना चाहिये।' तब उसके अक्षय सुखका तन्तु टूट जाता है और तुरंत ही वह स्वार्थके गहरे कूएँमें जा गिरता है। स्वार्थीपन नरक है और निःस्वार्थीपन स्वर्ग है। हमारे जीवनमें जो अहंता और ममत्वके भाव पाये जाते हैं, वे ही सच्चे नरक हैं।

श्रमणकी कथा सुनकर मृत्युके मुखमें पड़ा हुआ डाकू बोल उठा—'महाराज! मैं उस मकड़ेके जालके तन्तुको पकड़ूँगा और नरककी अगाध गहराईमेंसे अपनी शक्तिका प्रयोग करके बाहर निकल जाऊँगा।'

(६)

इतना कहकर डाकू कुछ देरके लिये शान्त हो गया और फिर विचार स्थिर करके बोला—"पूज्य महाराज! सुनिये। मैं पहले कोशाम्बीके सुप्रसिद्ध जौहरी पाण्डुके यहाँ नौकर था। मेरा नाम है—महादत्त। एक दिन उन्होंने मेरे साथ ऐसा क्रूर व्यवहार किया कि मैंने नौकरी छोड़ दी और मैं डाकुओंके दलमें शामिल हो गया। फिर, धीरे-धीरे मैं उस डाकू-दलका सरदार बन गया। कुछ दिन बाद मैंने सुना कि 'वही पाण्डु जौहरी अपने साथ बहुत-सा धन लेकर इस जंगल-मार्गसे एक राजाके यहाँ जानेवाले हैं।' तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने दलको साथ लेकर उन्हें लूट लिया। अब आप कृपा करके उनके पास जाइये और मेरे इस कुकृत्यके लिये मुझे क्षमा कर देनेके लिये उन्हें समझाइये। मैं भी उन्हें माफ किये देता हूँ। जब मैं उनके यहाँ नौकरी कर रहा था, तब वे धन-मदसे मत्त हो गये थे। उनका कलेजा पत्थर-सा कठोर बन गया था। उस समय तो वे यही समझ रहे थे कि इस संसारमें बस, स्वार्थकी ही विजय है। किंतु अब मैंने सुना है कि उनका हृदय पलट गया है। वे अब परोपकारी बन गये हैं और लोग उन्हें न्यायी तथा भला आदमी मान रहे हैं। अब उन्होंने यह ऐसा अपूर्व धन प्राप्त किया है, जिसे कोई भी चुरा नहीं सकता और जिसका कभी विनाश होनेवाला नहीं।

"अबतक मैं दुष्कर्ममें ही मस्त हो रहा था; किंतु अब मुझे इस अन्धकारमें रहना नहीं सुहाता। मेरे विचारोंमें अब महान् परिवर्तन आ गया है। मैंने अब बुरी वासनाओंको अन्तःकरणसे धो दिया है। अब मेरी मृत्युमें विलम्ब नहीं है। जो थोड़ेसे पल बाकी हैं, मैं उनमें अधिक-से-अधिक शुभेच्छा करूँगा, ताकि मृत्युके बाद भी मेरी यह शुभेच्छा जारी रहे। इस बीच हे दयालु महात्मा! आप शीघ्र-से-शीघ्र पाण्डुके पास पहुँचकर उनसे कहिये कि 'राज्यका मुकुट और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा सारा द्रव्य, जो मैंने लूटा था, वह सब यहीं करीबकी गुफामें गड़ा हुआ है। वे यहाँ आकर ले जायँ। मेरे जिन दो साथियोंको उस गड़े हुए धनका पता था, वे अब मर चुके हैं। इसलिये अब वह धन सुरक्षित है।' मैं चाहता हूँ कि मरते-मरते भी मैं कुछ ऐसा काम करता जाऊँ, जिससे मेरे पापोंका बोझ कुछ हल्का हो जाय। मेरी मानसिक मलिनता भी इस तरह धुलकर स्वच्छ हो जायगी और मोक्षके मार्गकी ओर जानेका कोई वास्तविक अवलम्बन भी मुझे मिल ही जायगा।'' यों कहकर गुफाकी जगहका सही पता बताते हुए श्रमणकी गोदमें ही महादत्तने अपनी जीवनयात्रा समाप्त कर दी।

(७)

श्रमण महात्माने कौशाम्बीमें जाकर पाण्डु जौहरीको सारी बातें बता दीं। पाण्डु तुरंत ही कुछ सिपाहियोंको साथ लेकर गुफापर पहुँचे। गुफामें जाकर वहाँ अपने गड़े हुए सारे धनको बाहर निकाला। फिर उन्होंने महादत्त और दूसरे डाकुओंकी लाशोंका सम्मानपूर्वक अग्निसंस्कार करवाया। उस समय महादत्तकी चिताके आगे खड़े होकर पान्थक श्रमणने निम्नलिखित उपदेश दिया—

'हम स्वयं ही बुरे काम करते हैं और स्वयं ही उन बुरे कामोंका फल भोगते हैं। इसलिये हमें स्वयं ही इस बुराईको दूर करके स्वयं ही शुद्ध होना चाहिये। पवित्रता और अपवित्रता दोनों अपने ही हाथमें हैं। दूसरा कोई भी हमें पवित्र नहीं बना सकता। हमें स्वयं ही पवित्रता पानेके लिये प्रयत्न करना होगा। बुद्धभगवान्‌का भी यही उपदेश है।

'हमारे कर्म किसी दूसरे देवताके बनाये नहीं हैं, उनके रचयिता हम स्वयं ही हैं। माताके गर्भकी भाँति हम अपने ही कर्मरूपी गर्भस्थानमें जन्म लेते हैं और वे ही कर्म हमें चारों ओरसे लपेट लेते हैं। इनमें हमारे जो बुरे कर्म होते हैं, वे हमारे लिये अभिशापरूप सिद्ध होते हैं और अच्छे कर्म आशीर्वादरूप बनते हैं। इस तरह हमारे कर्मोंके भीतर ही मोक्ष-प्राप्तिका बीज छिपा हुआ है।'

पाण्डु तमाम धनको कौशाम्बी ले आये। वहाँ पहुँचकर वे बड़ी सावधानीके साथ धनका सदुपयोग करने लगे। पैसेकी छूट होनेसे व्यापार भी खूब बढ़ गया। उस व्यापारकी कमाईको भी वे उदारतापूर्वक सत्कार्यमें ही व्यय करने लगे।

जब उनकी वृद्धावस्था आयी और आयुके दिन पूरे होते दिखायी दिये, तब उन्होंने अपनी सभी संतानोंको बुलाकर कहा—''मेरे प्यारे बच्चो! निराश होकर कभी भी किसी भी अच्छे कामको छोड़ मत देना। यदि किसी कार्यमें तुम्हें सफलता न मिले तो उसके लिये किसी दूसरेपर दोष न मँढ़ना। हमें अपनी निष्फलता या दुःखके कारणको अपने ही कामोंमें ढूँढ निकालना चाहिये; क्योंकि वह कारण इन्हींमें छिपा है। उस कारणको दूर करना चाहिये। यदि तुम अभिमान या अहंकारके पर्देको हटा दोगे तो तुम्हें अपने जीवनमें ही स्थित अपनी निष्फलता और कठिनाइयोंके कारणोंका पता अपने-आप ही लग जायगा और साथ-ही-साथ उनसे छूटनेका मार्ग भी दीखने लगेगा। दुःख-नाशका उपाय भी हमारे हाथमें है। तुम्हारी आँखोंके सामने मायाका पर्दा न पड़ जाय, इसका खयाल सदा रखना और मेरे जीवनमें जो वाक्य अक्षरशः सिद्ध हुआ है, उसका सदा स्मरण करना। वह वाक्य यह है—

'जो दूसरोंको दुःख देता है, वह अपने-आपको दुःख पहुँचाता है और जो दूसरोंका भला करता है, वह अपना ही भला करता है।' ऐसा मानना।

'देहकी ममताका पर्दा दूर होते ही स्वाभाविक सत्यका मार्ग मिल जाता है।'

''यदि तुम मेरे इन वचनोंको याद रखकर इसके अनुसार जीवन बनाओगे तो मृत्युके समय भी तुम अच्छे कर्मोंकी छायामें रहोगे और तुम्हारा जीवात्मा तुम्हारे शुभ कर्मोंसे अमर बन जायगा।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

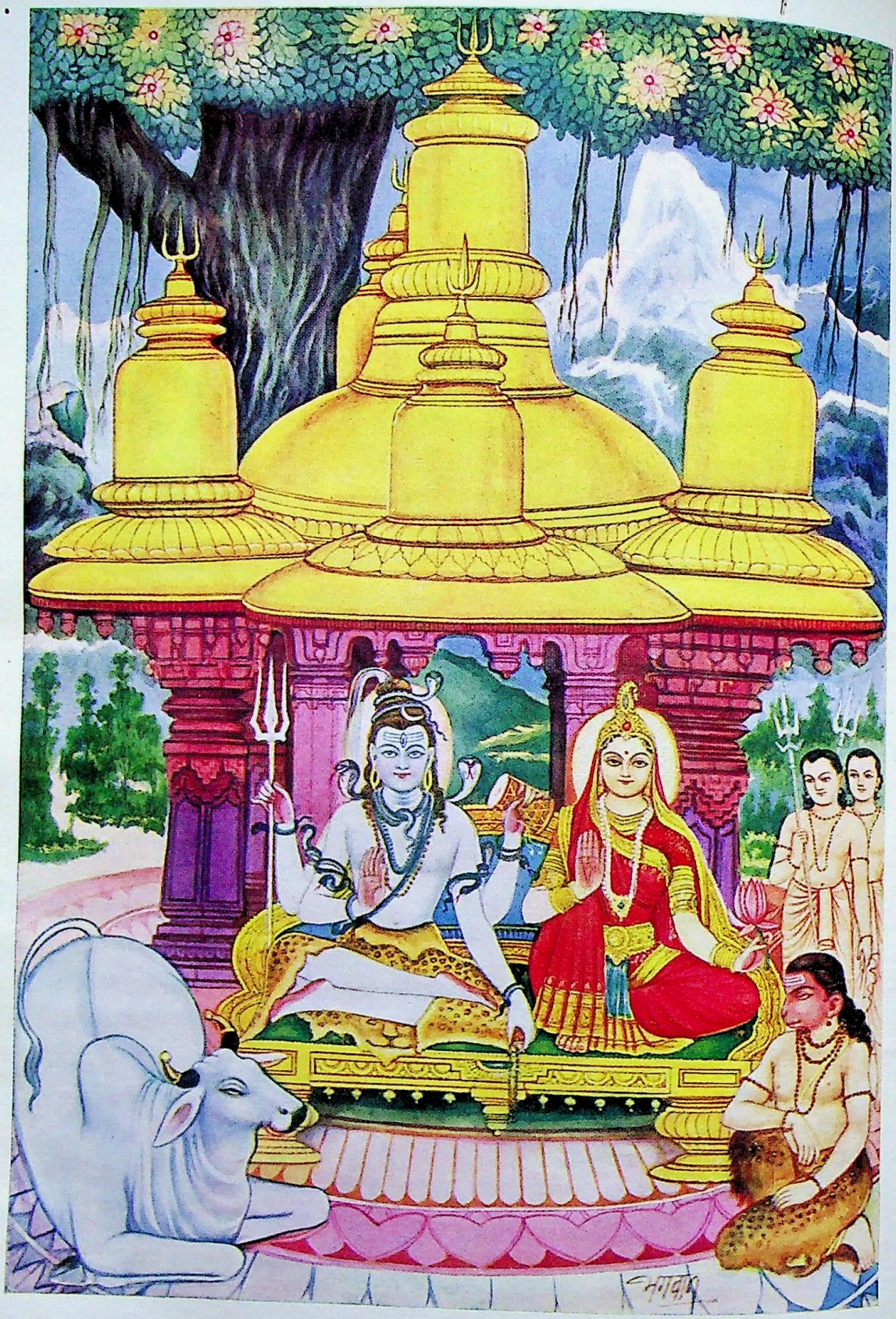

दिव्य कैलासमें भगवान् महादेव-महादेवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर परलोककी बात

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

कौन जानता है कि मरनेपर क्या होगा ?
मृत्युके पर्देके उस पार न जाने क्या है ? कैसा है ?
उस रहस्यमय अवगुण्ठनको किसने खोल पाया है ?

अनिश्चितताके उस महासागरमें डुबकी लगानेपर कहाँ ठिकाना लगेगा—इसे कौन जानता है ?

इत ते सब ही जावहीं भार लदाय लदाय।
उत ते कोउ न आवई.....॥

पर हताश होनेकी बात नहीं।
कुछ प्रमाण 'उत ते' आनेवालोंके भी मिले हैं।

रहस्यका भेद जाननेके लिये मानवकी जिज्ञासा अनादिकालसे सचेष्ट रही है। जीवनके साथ लगी हुई अनिवार्य मृत्युकी ओर मानव कबतक आँख मूँदे बैठा रहता ?

हमारे वेद, उपनिषद्, योगशास्त्र, पुराण आदिमें तो स्थान-स्थानपर जीवन और मृत्युके रहस्यका विशद विवेचन मिलता ही है, विश्वके भिन्न-भिन्न धर्मोंमें भी इसपर कुछ-न-कुछ चर्चा मिलती है। पर आजके संशयशील मानवने भी इस दिशामें कदम उठाया है। मृत्युके उपरान्त जीवनकी शोधके लिये विश्वके विभिन्न अञ्चलोंमें जो कार्य हुआ है, हो रहा है, उसे उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देखा जा सकता। इस विषयमें हुई अनेक शोधें प्रकाशमें भी आ चुकी हैं। मरणोत्तर जीवन, परलोक और पुनर्जन्मपर पर्याप्त साहित्य भी उपलब्ध है।

इस सम्बन्धमें प्रामाणिक विवरण प्राप्त करनेके लिये मानसशास्त्री, परामनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक अनेक वर्षोंसे प्रयत्नशील हैं। निम्नलिखित कुछ पुस्तकोंसे इन बातोंकी अच्छी जानकारी प्राप्त की जा सकती है—

लेखकोंके नाम	पुस्तकोंके नाम
१. Dr. D. D. S. Clark	Psychiatry Today
डा० डी० डी० एस० क्लार्क	साइकियेट्री टुडे
२. Harry Price	Fifty Years of Psychical Research
हैरी प्राइस	फिफ्टी ईयर्स ऑव साइकिकल रिसर्च
३. Dr. Richet	Thirty Years of Psychical Research
डा० रिचेट	थर्टी ईयर्स ऑव साइकिकल रिसर्च
४. Dr. J. B. Ryne	Extra-sensory Perception
डा० जे० बी० राइन	एक्स्ट्रा-सेंसरी परसेप्शन
	New Frontiers of Mind
	न्यू फ्रन्टियर्स ऑव माइंड
	The Reach of Mind
	दि रीच ऑव माइंड
	The World of Mind
	दि वर्ल्ड ऑव माइंड
५. William James	Varieties of Religious Experience
विलियम जेम्स	वेराइटीज़ ऑव रेलीजस एक्सपीरियन्स
६. Professor Pratt	Religious Consciousness
प्रो० प्रेट	रेलीजस कांशसनेस
७. F. W. Wyres	Human Personality and its Survival
एफ० डब्लू० वायर्स	ह्यूमन पर्सनैलिटी ऐण्ड इट्स सर्वाइवल
८. Dr. Hudson	Law of Psychical Phenomena
डा० हड्सन	लॉ ऑव साइकिकल फेनोमेना
९. Kanga	Lives of Alien Incarnation,
कांगा	लाइव्ज ऑव एलियन इन्कार्नेशन
	Fact or Fallacy where Theosophy and Science Meet
	फैक्ट ऑर फैलेसी व्हेयर थियॉसॉफी ऐण्ड साइन्स मीट
१०. Theosophical Publication	The other side of Death
थियासाफिकल प्रकाशन	दि अदर साइड ऑव डेथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११. Bishop Leadbeater	Chakras; Clairvoyance; Invisible Helpers and Man; Whence, How & Whither
बिशप लेडबीटर	चक्रज़, क्लेयरवायन्स; इन्विज़-बल हेल्पर्स ऐण्ड मैन; ह्वेन्स, हाउ ऐण्ड ह्विदर
१२. Butler	Exploring the Psychic World
बटलर	एक्सप्लोरिंग दि साइकिक वर्ल्ड
१३. Oliver Lodge	Survival of Man
ऑलिवर लॉज	सर्वाइवल ऑव मैन
१४. J. C. Bose	Response in the Living and Non-living
जे० सी० बोस	रिस्पॉन्स इन दि लिविंग ऐंड नॉनलिविंग
१५. Dr. rafford	Reality of Psychic Phenomena
डा० क्रैफर्ड	रिऐलिटी ऑव साइकिक फेनोमेना
१६. S. Desmond	You can speak with the Dead
एस० डेसमाण्ड	यू कैन स्पीक विथ दि डेड
	The Incarnation for Every man
	दि इन्कार्नेशन फॉर एवरी मैन
	We do not die
	वी डू नॉट डाइ
	World Birth
	वर्ल्ड बर्थ
	How you live when you die
	हाउ यू लिव ह्वेन यू डाइ ?
१७. Randell	The Dead have never Died
रैण्डेल	दि डेड हैव नेवर डाइड
१८. Sir Arthur Edington	Science and The Unseen World
सर आर्थर एडिङ्गेटन	साइन्स ऐण्ड दि अनसीन वर्ल्ड
१९. Aurobindo Ghosh	The Problem of Rebirth
अरविन्द घोष	दि प्राब्लेम ऑव रीबर्थ
२०. Vishnu Mahadev Bhatt	Yogic Powers and God-Realization
विष्णु महादेव भट्ट	योगिक पावर्स ऐण्ड गॉड-रिअला-इजेशन
२१. Arthur Findlay	On the Edge of the Etheric
आर्थर फिण्डले	ऑन दि एज ऑव दि एथेरिक
२२. William Cooks	Researches in Spiritualism
विलियम कुक्स	रिसर्चेज़ इन स्पिरिचुअलिज्म
२३. Simeon Edmunds	Spiritualism: a Critical Survey
साइमन एडमंड्स	स्पिरिच्युएलिज्म: ए क्रिटिकल सर्वे
	Miracles of the Mind
	मिरैकल्स ऑव दि माइंड
	Spirit Photography
	स्पिरिट फोटोग्राफी
२४. F. W. H. Myers	Human Personality and its Survival of Bodily Death
एफ० डबलू० एच० मायर्स	ह्यूमन पर्सनैलिटी ऐण्ड इट्स सर्वाइवल ऑव बोडिली डेथ
२५. Frank Podmore	Modern Spiritualism
फ्रैंक पॉडमोर	माडर्न स्पिरिच्युएलिज्म
२६. Sir William Crookes	Researches in the Phenomena of Spiritualism
सर विलियम क्रुकस	रिसर्चेज़ इन दि फेनोमेना ऑव स्पिरिच्युएलिज्म
२७. J. Arthur Hill	Spiritualism: its History, Phenomena and Doctrine
जे० अर्थर हिल	स्पिरिच्युएलिज्म: इट्स हिस्टरी, फेनोमेना ऐण्ड डॉक्ट्रिन
२८. Antony Flew	A New Approach to Psychical Research
एंटनी फ्लू	ए न्यू ऐप्रोच टु साइकिकल रिसर्च
२९. Sir William Fletcher Barrett	Psychical Research
सर बिलियम फ्लेचर बैरेंट	साइकिकल रिसर्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३०. Hereward-Carrington हियरवार्ड कैरिंग्टन	The Psychical Phenomena of Spiritualism दि साइकिकल फेनोमेना ऑव स्पिरिच्युएलिज्म
३१. Joseph MacCabe जोसेफ मैक्केब	Spiritualism: a Popular History from 1847 स्पिरिच्युएलिज्म: ए पोपुलर हिस्ट्री फ्रॉम १८४७
३२. Charles Richet चार्लस रिचेट	Traite de Metapsychique ट्रेटे द मेटासाइकिक
३३. S. G. Soal एस० जी० सोल	My Thirty Years of Psychical Research माइ थर्टी ईयर्स ऑव साइकिकल रिसर्च
३४. Dion Fortune डियों फोरच्यून	Psychic Self-Defence साइकिक सेल्फ-डिफेंस
३५. B. Abdy Collins, C. I. E. बी० एब्डी कॉलिन्स, सी० आई० ई०	The Death is not the End दि डेथ इज़ नॉट दि एण्ड
३६. T. R. Ganapathiramier टी० आर० गणपथिरामियर	The Life After Death दि लाइफ आफ्टर डेथ
	Conquest of Death, its Fears कान्क्वेस्ट ऑव डेथ, इट्स फीयर्स
३७. Chamanlal चमनलाल	Mysteries of Life and Death मिस्टेरीज ऑव लाइफ ऐंड डेथ
३८. Sir Colin Garbett K. C. I. E., C. S. I., C. M. G. सर कॉलिन गारबेट, के० सी० आई० ई०, सी० एस० आई०, सी० एम० जी०	The Ringing Radiance दि रिंगिंग रैडियेन्स
३९. Kenneth Richmond केनेथ रिचमंड	Evidence of Identity एविडेंस ऑव आइडेंटिटी
४०. W. H. Salter डब्लू० एच० सॉल्टर	Ghosts And Apparitions गोस्ट्स ऐंड एप्पैरिशन्स
४१. H. F. Saltmarsh एच० एफ० साल्टमार्श	Foreknowledge फोरनॉलेज
	Evidence of Personal Survival from Cross Correspondences एविडेंस ऑव पर्सनल सर्वाइवल फ्रॉम क्रॉस कॉरेसपाण्डेन्सेज
४२. Zoe Richmond जू, रिचमण्ड	Evidence of Purpose एविडेंस ऑव परपस
४३. C. K. Shaw सी० के० शा	Yes, We do Survive येस, वी डू सर्वाइव
४४. Robert Crookall राबर्ट क्रूकल	More Astral Projections मोर ऐस्ट्रल प्रोजेक्शन्स

× × ×

मृत्युके उपरान्त जो जीवन है, उसकी शोध बहुत ही मनोरञ्जक है। 'इन्टरनेशनल इन्स्टीट्यूट फॉर साइकिकल रिसर्च'के संस्थापक और 'साइकिकल लीग' के अध्यक्ष श्रीशा डेसमण्डने 'हाउ यू लिव व्हेन यू डाइ' (मृत्युके उपरान्त आप कैसे रहते हैं ?) पुस्तकमें उसका अत्यन्त ही आकर्षक वर्णन किया है। आइये, हम उसकी हलकी-सी झाँकी करें।

× × ×

श्रीशा डेसमण्डके एक मित्र थे—नाटककार। 'जान ब्लेक' मान लीजिये उनका नाम। उनकी बीबी नहीं चाहती उनका नाम प्रकट करना। हाँ, तो ब्लेक साहब 'परलोक' आदिमें कोई विश्वास नहीं करते थे। डेसमण्डसे बात होती तो वे हँसीमें उड़ा देते। कहते, 'क्या बेकारकी बातें करते हो ? कहाँ है, क्या है परलोक·····!'

ब्लेकके एक प्रसिद्ध नाटकका फिल्म बना।

एक दिन ब्लेक लन्दनके किसी क्लबमें हाथ धो रहे थे कि उनपर गृध्र-सी (लम्बेगो-Lumbago) का हमला हो गया। बादमें सुना कि ब्लेक साहबका देहान्त हो गया।

× × ×

ब्लेक साहबका शरीर बिस्तरपर पड़ा है।

उनकी सुन्दरी पत्नी बगलमें खड़ी रो रही है। विलाप कर रही है। ब्लेकको आश्चर्य हो रहा है—यह सब क्या तमाशा है। पत्नीसे कहता है—'डोडो, डार्लिंग ! क्या बात है ? क्यों रो रही हो ? मैं तो बिल्कुल ठीक हूँ।·····'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर पत्नी तो मानो ब्लेककी बात ही नहीं सुनती। ब्लेक कुछ जोरसे बोलता है। अपनी बात दोहराता है। पत्नी फिर भी नहीं सुनती। ब्लेक हैरान। सोचता है—'मैं अपनी आवाज साफ सुन रहा हूँ, पर मेरी बीबी क्यों नहीं सुन पा रही है?'

अचानक ब्लेकको लगता है कि वह चल-फिर सकता है। बिस्तरसे हटकर वह अपनी पत्नीके पास पहुँचता है और उसे छूनेको अपना हाथ बढ़ाता है।

अरे, यह क्या! उसका हाथ पत्नीके आर-पार हो जाता है, पर पत्नीको उसके स्पर्शकी रत्ती भर भी अनुभूति नहीं होती। वह न तो उसे देख पाती है, न उसकी बात ही सुन पाती है।

ब्लेक समझ ही नहीं पाता कि यह सब क्या रहस्य है। तभी उसे खयाल आता है कि वह 'मर' तो नहीं गया! सचमुच, वह 'मर गया' है।

वह सोचने लगता है—"शा डेसमण्ड ठीक तो कहता था। ऐसी ही बातें तो वह सुनाया करता था। मैं उसकी सारी बातोंको हँसीमें उड़ा देता था। वह कहता था कि "आत्मा तो कभी मरता नहीं। इस लोकके परे एक दूसरा लोक है—'परलोक'। वह इन आँखोंसे दीखता भले न हो, पर है वह वास्तविक।"

ब्लेक अपनी चारपाईके अगल-बगल चक्कर काटता है। लोहेके पलंगपर उसका शरीर पड़ा है। वह पलंगके लोहेसे टकराता है, पर उसे कोई चोट नहीं लगती। वह आसानीसे इस पारसे उस पार हो जाता है।

अब ब्लेकको लगता है कि वह दरसल 'मर गया'।

× × ×

ब्लेक देखता है कि 'उसके शवके आस-पास सगे-सम्बन्धियोंकी भीड़ लगी है। सब रो रहे हैं। विलाप कर रहे हैं। सभी ब्लेकके लिये रो रहे हैं।'

पर ब्लेक उनसे कह रहा है—'तुम लोग व्यर्थ रो रहे हो। मैं तो जीवित हूँ। मैं मर थोड़े ही गया हूँ। मेरी प्रतिमा ज्यों-की-त्यों सतेज है। मैं अभी ऐसे कितने ही नाटक लिखूँगा कि संसार चकित हो उठेगा।.....'

पर ब्लेककी इन बातोंको कोई सुनता ही नहीं।

× × ×

ब्लेकको लगता है कि वह एक 'नयी दुनिया'में आ गया। वह बंद दरवाजेके पास पहुँचता है। उसे छूता है तो अपने आप अपनेको दरवाजेके उस पार पाता है। दरवाजा बंद है, फिर भी वह दरवाजेके बाहर! बिना किसी दिक्कतके वह दीवालके आरपार हो जाता है।

अब वह उत्तर-पश्चिमी लंदनके अपने सुन्दर मकानके आस-पास चक्कर काटता है। उसे लगता है कि मैं जहाँ चाहे, वहाँ जा सकता हूँ। लार्डके क्रिकेट मैदानमें वह प्रायः जाया करता था। उसकी बात सोचते ही वह अपनेको उस मैदानमें पाता है।

ब्लेक थोड़ी देर मैदानमें इधर-उधर चक्कर काटता रहता है। कुछ देरमें उसका जी ऊब उठता है। 'अरे, मेरा घर! मेरी प्यारी बीबी! मेरे प्यारे बच्चे! मेरे मित्र!—ये सब कहाँ हैं?' ऐसा सोचते ही ब्लेक फिर अपने घरमें पहुँच जाता है।

दरवाजा बंद-का-बंद और ब्लेक भीतर दाखिल। बिस्तरपर एक शरीर पड़ा है। यह शरीर 'मेरा' ही है? अब ब्लेकको कुछ झपकी-सी मालूम होती है। कहाँ लेटूँ? इस शरीरके पास—मेरा ही शरीर है यह—इसीके बगलमें लेटूँ। यह तो अच्छा नहीं। चलूँ, बैठक-खानेमें लेटूँ। अचानक ब्लेक अपने आपको अपने बैठक-खानेमें पाता है। तभी उसे अपने सामने एक महिला दीखती है। बुजुर्ग-सी महिलाकी छाया। 'कौन? अरे,.....'

'बेटा जान, तू आ गया? मैं कबसे तेरी प्रतीक्षा कर रही हूँ।'

वह जान ब्लेककी माँ है। बेटेको वह अपनी बाँहोंमें ले लेती है। ब्लेक गहरी नींदमें ढुलक जाता है।

× × ×

"एक विमान-दुर्घटनामें एक अंग्रेज लड़की 'मेरी' मर गयी।"

नवम्बर १९३४ में लंदनकी एक बैठकमें शा डेसमण्ड-सहित १३-१४ व्यक्ति बैठे इस बातका प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे थे कि वह लड़की अपने एक मित्रको सुना रही थी कि मरनेके तुरंत बाद उसे कैसी, क्या अनुभूति हुई।

दुर्घटना घटते ही उसने विमानके स्विचपर हाथ लगाया। पर वह देखती है कि सामने उसीका लुंजपुंज और ध्वस्त शरीर पड़ा हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह उस समय भी विमानमें थी। हवा बह रही थी और ऊपर था खुला आकाश। वह सोचती है—'पर यह शरीर तो मेरा ही है—मेरीका। तो क्या मैं मर गयी? पर, मैं तो जीवित हूँ। मुझे अपने मित्र आर्थरसे मिलना चाहिये। कितनी बातें कहनी हैं उससे।' और इतना सोचते ही वह आ पहुँची आर्थरके पास।

वह आर्थरको देख रही थी, उसकी बातें सुन रही थी। इतना ही नहीं, आर्थरने भी स्पष्ट रूपसे मेरीकी बातें सुनीं।

'फिर मिलेंगे'—कहकर मेरी वहाँसे विदा हुई।

× × ×

शा डेसमण्डने अपने 'मृत' पुत्र—जॉनके साथ हुई अपनी मुलाकातका भी वर्णन किया है। उन्होंने कई बार उससे भेंट की। २९ दिसम्बर १९३३ को कितने ही लोगोंके समक्ष जॉनने आकर डेसमण्डका हाथ और घुटना छूकर बड़े प्रेमसे कहा—'फादर, आई लव यू!' (पिताजी, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ!)

× × ×

शा डेसमण्डका ही नहीं, परलोकविद्यासे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक लोगोंका कहना है कि 'मरकर भी मनुष्य मरता नहीं। शरीर छूट जाता है, पर आत्मा अमर है। मृत्युके उपरान्त जीव परलोकमें मस्तीसे भ्रमण करता है।' और कैसा सुन्दर है—परलोक? शरीरकी आधि-व्याधिका वहाँ कोई पता नहीं। न कोई रोग है, न कोई बीमारी। न कोई चिन्ता, न कोई परेशानी। पैसेकी वहाँ कोई जरूरत नहीं। न कोई लेन-देन, न कोई खरीद-बिक्री, न कोई सौदेबाजी। न कोई दूकान, न कोई व्यापारी। इच्छाएँ मनमें आते ही पूरी हो जाती हैं वहाँ। ऐसा लगता है, मानो कल्पवृक्षके नीचे ही बैठे हैं सब लोग।

जो इच्छा की, वह तत्काल पूरी हो जाती है।

जिससे मिलना है, इच्छा करते ही उसके पास मौजूद।

आगसे, पानीसे, पत्थरसे, लोहेसे, पहाड़से बिना किसी अड़चनके आत्मा पार चला जाता है। उसके मार्गमें कहीं कोई बाधा ही नहीं आती। परलोकमें न कोई राजनीति है, न कोई दलबंदी। न युद्ध है, न अशान्ति। पुरुष और स्त्री—सब वहाँ समान हैं।

सर्वत्र प्रेम और आनन्दका साम्राज्य है। मस्ती और मौजसे भरा जीवन है। आनन्द-कानन है। रंग-बिरंगे पुष्प हैं, संगीत है और क्या नहीं है?

हाँ, जो लोग जगत्‌के मायाजालसे बहुत बँधे रहते हैं, रुपये-पैसेसे बहुत बँधे रहते हैं, राग-द्वेषके चक्करमें अपनेको डुबाये रखते हैं—वे जब परलोक पहुँचते हैं तो कुछ दिनोंतक परेशान रहते हैं, रोते-झींकते और कुढ़ते रहते हैं—परंतु कुछ उदार और दयालु आत्मा उनके पास आकर उन्हें ढाढस देते हैं, उन्हें समझाते हैं, उन्हें रास्ता दिखाते हैं। तब धीरे-धीरे उनके जीकी जलन दूर होती है और वे भी तब स्वस्थ और प्रसन्न जीवन बिताने लगते हैं।

परलोकका शरीर ईथर (ether) का बना होता है। स्वाद, स्पर्श और गन्धसे उसका कोई वास्ता नहीं रहता। बेतारके तारकी भाँति सारे समाचार उसे मिलते रहते हैं। जिससे जब चाहिये मिलिये, भेंट कीजिये। जब चाहिये पृथ्वीके लोगोंसे मिलिये, जब चाहे परलोकवासियोंसे। जिन्हें इस जगत्‌से बहुत मोह होता है, ऐसे जीव पुनर्जन्म लेकर फिर इस पृथ्वीतलपर चले आते हैं।

× × ×

मतलब?

परलोक कोई हौआ नहीं।

परलोकमें कोई कष्ट और यन्त्रणाका आगार नहीं। परलोक कोई भयोत्पादक स्थान नहीं। परलोकमें दुनियाकी कोई झंझट नहीं। वही हाल है—

'यानी रात बहुत थे जागे,
सुबह हुई आराम किया!'

हमारे सभी मृत सगे-सम्बन्धी परलोकमें हमसे मिल जाते हैं। हमारी सारी इच्छाएँ वहाँ आनन-फानन पूरी हो जाती हैं। सर्वत्र प्रेम, आनन्द और संगीतकी मधुरिमा लहराती दीख पड़ती है। आत्माकी अमरताका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। अपने सत्-चित्-आनन्द-स्वरूपका प्रत्यक्ष भास होता है। फिर परलोकके नामसे डरने और भयभीत होनेका प्रश्न ही कहाँ उठता है?

सचमुच, कैसा सुन्दर है इहलोक,
कैसा सुन्दर है परलोक!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना सुख देकर दूसरोंका दुःख मिटानेमें महान् सुख और अपार पुण्य

[विदेहराजका अनुपम त्याग]

विदेह देशके प्रसिद्ध राजा विपश्चित बड़े ही धर्मात्मा, सदाचारी, संयमी, यज्ञावशेषभोजी, प्रजापालक, उदार और देवर्षि-पितृपूजक पुण्यपुरुष थे। उन्होंने जीवनमें एक बार अपनी एक धर्मपत्नीका तिरस्कार कर दिया था, इसलिये मृत्यु होनेपर उन्हें नरकोंको देखते हुए नरकोंके समीपके मार्गसे जाना पड़ा।

नरकोंको देखते हुए उनके समीप पहुँचते ही विभिन्न प्रकारकी घोर यातनाओंको भोगते हुए यातनाशरीरधारी नारकी प्राणियोंकी नरक-पीड़ा शान्त हो गयी। यमदूतने राजाके पूछनेपर किस पापसे, किस नरकमें पड़कर जीव कैसी, क्या भयानक पीड़ा भोगता है—यह बताया। तदनन्तर यमदूतके कथनानुसार राजा ज्यों-ही आगे बढ़े कि नरकयन्त्रणासे पीड़ित प्राणियोंकी करुण पुकार उन्हें सुनायी पड़ी—'महाराज! हमपर कृपा कीजिये, कुछ देर और ठहर जाइये। आपके शरीरको छूकर बहनेवाली शीतल वायुका स्पर्श पाते ही हमारे सारे संताप, वेदना, यन्त्रणा दूर हो गये हैं। अतः कृपा कीजिये।'

राजा रुक गये। उन्होंने यमदूतसे पूछा कि 'मुझसे स्पर्श करके जानेवाली वायुसे इन नरकके प्राणियोंको क्यों आनन्द मिलता है? मैंने ऐसा कौन-सा पुण्य किया है?'

यमदूतने कहा—राजन्! आपने कभी केवल अपने लिये नहीं कमाया-खाया है। आपका यह शरीर देवता, पितर, अतिथि, नौकर-चाकर सबको खिलाकर बचे हुए अन्नके सेवनसे पुष्ट हुआ है तथा आपका मन भी सदा इन्हीं सबकी सेवामें लगा रहा है। आपने बड़े-बड़े यज्ञ किये हैं। अतः आपके दर्शनसे तथा आपसे छूकर बहनेवाली वायुके प्रभावसे नरककी यातना बंद हो गयी है। यमलोकके यन्त्र, शस्त्र, अग्नि, कौवे, गीध आदि पक्षी, जो पीड़ा देने, काटने, जलाने, नोचने आदिके द्वारा महान् दुःख देते थे—सब शक्तिहीन हो गये हैं। उनका क्रूर स्वभाव ही बदल गया है।

यह सुनकर राजाने कहा—मेरे विचारसे तो पीड़ित प्राणियोंको दुःखसे छुड़ाकर शान्ति प्रदान करनेमें जो सुख मिलता है, वह सुख न स्वर्गमें मिलता है, न ब्रह्मलोकमें ही। यदि मेरे समीप रहनेसे इनको नरकयातना नहीं सताती है तो हे भद्रपुरुष! मैं सूखे काठकी तरह अचल होकर यहीं रहूँगा—

यदि मत्संनिधावेतान् यातना न प्रबाधते।
ततो भद्रमुखान्नाहं स्थास्ये स्थाणुरिवाचलः॥
(मार्कण्डेयपुराण १५। ५७)

यमदूतने फिर कहा—'यह स्थान आपके लिये नहीं है। आप पुण्य-प्राप्त दिव्यलोकमें चलकर वहाँके भोगोंका उपभोग कीजिये।' इसके उत्तरमें राजाने जो कुछ कहा, वह प्रत्येक कल्याणकामी पुरुषको अपने हृदयपर अङ्कित करके तदनुसार आचरण करना चाहिये। राजा बोले—

'मेरे समीप रहनेसे इन नरकवासियोंको सुख मिलता है और मेरे न रहनेपर ये सब प्राणी दुखी हो जायँगे, जब ऐसी बात है तो मैं यहाँसे नहीं जाऊँगा। शरणमें आनेकी इच्छा रखनेवाले आतुर एवं पीड़ित मनुष्यपर, चाहे वह शत्रुपक्षका ही क्यों न हो, जो कृपा नहीं करता, उसके जीवनको धिक्कार है। जिनका मन संकटमें पड़े हुए प्राणियोंकी रक्षा करनेमें नहीं लगता, उनके यज्ञ, दान और तप इहलोक तथा परलोकमें भी कल्याणके साधक नहीं होते। जिसका हृदय बालक, वृद्ध और कष्टसे आतुर प्राणियोंके प्रति कठोरता रखता है, उसे मैं मनुष्य नहीं मानता, वह तो निरा राक्षस है—

'.....न तं मन्ये मानुषं राक्षसो हि सः।'
(मार्कण्डेयपुराण १५। ६२)

'यद्यपि मुझे (यहाँ रहनेमें स्वर्गके भोग-सुख नहीं मिलेंगे, वरं) नरकोंकी अग्निका ताप सहना पड़ेगा, नरककी भयानक उग्र दुर्गन्ध प्राप्त होगी, भूख-प्यासका महान् दुःख, जो मूर्च्छित कर देनेवाला है, भोगना पड़ेगा, तथापि इन दुखियोंकी रक्षा करनेमें जो सुख है, उसे मैं स्वर्ग-सुखसे बढ़कर मानता हूँ! यदि अकेले मेरे दुखी होनेसे बहुत-से आर्त प्राणियोंको सुख प्राप्त होता है तो मुझे कौन-सा सुख नहीं मिल गया? अतः दूत! तुम तुरंत लौट जाओ। मैं तो यहीं रहूँगा।'—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतेषां संनिकर्षात् तु यद्यग्निपरितापजम्।
तथोग्रगन्धजं वापि दुःखं नरकसम्भवम्॥
क्षुत्पिपासाभवं दुःखं यच्च मूर्च्छाप्रदं महत्।
एतेषां त्राणदानं तु मन्ये स्वर्गसुखात् परम्॥
प्राप्स्यन्त्यार्त्ता यदि सुखं बहवो दुःखिते मयि।
किं तु प्राप्तं मया न स्यात् तस्मात् त्वं व्रज माचिरम्॥
(मार्कण्डेयपुराण १५। ६३-६५)

राजा आग्रहपूर्वक रुक गये, तब उन्हें लेनेके लिये स्वयं धर्मराज और इन्द्र वहाँ पहुँचे। धर्मराजने विमानपर सवार होकर उन्हें स्वर्ग चलनेके लिये कहा। पर राजाने कह दिया कि 'ये दुखी जीव मुझे लक्ष्य करके त्राहि-त्राहि पुकार रहे हैं। अतः मैं नहीं जाऊँगा। आपलोग जानते हों तो देवराज इन्द्र और धर्मराज! बताइये मेरे कितने पुण्य हैं। (जिनसे इनको सुख मिल सके)।'

धर्मने कहा—जैसे समुद्रके जलबिन्दु, आकाशके तारे, वर्षाकी धाराएँ, गङ्गाजीके बालुका-कण या गङ्गाजलकी बूँदें असंख्य हैं, वैसे ही तुम्हारे पुण्य भी असंख्य हैं और आज तो इन नारकी जीवोंपर कृपा करनेसे तुम्हारे पुण्य लाखों गुने और बढ़ गये हैं।

राजाने कहा—मेरे समीप आनेसे इन दुखी जीवोंको यदि उच्च पद नहीं मिला तो फिर क्या हुआ? मेरे जो कुछ भी पुण्य हैं, उनके द्वारा ये यातनामें पड़े हुए पापी जीव नरकसे छुटकारा पा जायँ।

अब तो नारकी जीव मुक्त होने लगे। इन्द्रने कहा—'राजन्! इस तुम्हारी उदारताने तो तुमको और भी ऊँचे स्थानपर पहुँचा दिया है। देखो, ये सब पापी प्राणी नरकसे मुक्त हो गये।'

उधर पापी नरकमुक्त हुए, इधर राजापर पुष्पवर्षा होने लगी। स्वयं भगवान् विष्णु प्रकट हो गये और उन्हें विमानमें बैठाकर दिव्य धाममें ले गये।*

ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिस्तस्योपरि महीपतेः।
विमानं चाधिरोप्यैनं स्वलोकमनयद्धरिः॥
(मार्कण्डेयपुराण १५। ७८)

श्राद्धकी अनिवार्य आवश्यकता

मृतात्माके लिये तर्पण, श्राद्ध आदि अवश्य करने चाहिये। प्रतिदिन ही तर्पण तथा बलिवैश्वदेवके अङ्ग-स्वरूप श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। वैसे आश्विन कृष्ण पक्षमें मृतककी निधन-तिथिको तथा जिस मासमें जिस तिथिको मृत्यु हुई थी, उसी मासकी उस तिथिके दिन प्रतिवर्ष अपनी शक्तिके अनुसार श्रद्धापूर्वक श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। यदि मृतात्मा यमलोकके प्रेतविभाग या पितृविभागमें है, तब तो उसकी भयानक भूखमें इससे बड़ी तृप्ति मिलेगी। देवलोकमें चला गया है या किसी स्थूलशरीरको प्राप्त हो गया है तो वहाँ भी उस देहके अनुरूप तृप्तिकारक वस्तुके रूपमें परिणत होकर वह उसे मिल जायगा। जीव जहाँ भी होता है, वहीं उसको उसके अनुरूप होकर वह वस्तु मिल जाती है, वैसे ही जैसे सुदूर देशमें भारतसे प्रेषित रुपये, प्रेषणविभागद्वारा वहाँ भेज दिये जाते हैं और वहाँके प्रचलित सिक्केके रूपमें (जैसे भारतका रुपया अमेरिकामें डालरके रूपमें मिल जाता है, वैसे ही) जिसके नाम भेजे गये हैं, उसको मिल जाते हैं।

श्राद्धके अतिरिक्त समय-समयपर मृतकके लिये अन्नदान, जलदान और वस्त्रदान तो यथाशक्ति करते ही रहना चाहिये।

ऐसा कहा जाता है कि गयाश्राद्ध करनेपर या अमुक तीर्थमें पिण्ड देनेपर उसके लिये श्राद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं रहती; क्योंकि वह प्राणी मुक्त हो जाता है। यह सत्य भी हो सकता है। परंतु यदि कदाचित् किसी कारणवश वह मुक्त न हुआ हो तो श्राद्ध न करनेसे वह आत्मा अतृप्त, दुखी रह जाता है तथा हम कर्तव्यसे च्युत होते हैं। अतएव गयाश्राद्ध या तीर्थमें विशेष पिण्डदान देनेके बाद भी श्राद्ध तो करते ही रहना चाहिये।

जिसके लिये श्राद्ध किया जाता है, कदाचित् वह मुक्त हो गया तो यहाँ किया हुआ श्राद्धकर्मरूपी पुण्य, वैसे ही कर्त्ताके पास लौट आता है, जैसे किसीके नाम मनीआर्डर या बीमा भेजे जानेपर उसके मृत हो जाने या न मिलनेपर भेजनेवालेके पास वापस लौट आता है। अतएव हर हालतमें श्राद्धकर्म करना ही चाहिये।

मृतकके लिये श्राद्ध अनिवार्य आवश्यकता है।

* यह कथा पद्मपुराणमें भी आयी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमपद अथवा परमधाम-विज्ञान

(लेखक—श्रीमहावीरप्रसादजी श्रीवास्तव 'अनुराग')

नमो नमो वाङ्मनसातिभूमये
नमो नमो वाङ्मनसैकभूमये ।
नमो नमोऽनन्तमहाविभूतये
नमो नमोऽनन्तदयैकसिन्धवे ॥

परब्रह्म परमात्मा सर्वव्यापक होनेसे संसारके कण-कणमें व्याप्त हैं, यह बात लोकमें प्रसिद्ध है । साथ ही उन्हीं सर्वव्यापी भगवान्‌के प्रकृतिपार निज धामका उल्लेख भी आर्ष-ग्रन्थोंमें बराबर पाया जाता है, जहाँ जीव कर्म-बन्धन तथा आवागमनके चक्रसे मुक्त हो कैवल्य मोक्ष अथवा भगवान्‌के साथ दिव्य अप्राकृत लीला-विहारको प्राप्त होते हैं । भगवान्‌ने स्वयं श्रीमद्भगवद्गीतामें अपने उस परमधामका संकेत किया है—

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥
(१५ । ६)

अर्थात् भगवान् (अर्जुनके प्रति) कहते हैं—'जहाँ न सूर्य प्रकाश करता है, न चन्द्रमा, न अग्नि (तात्पर्य यह कि जो स्वयं प्रकाशमान है) और जहाँ जाकर फिर नहीं लौटते; अर्थात् आवागमनके चक्रसे मुक्त हो जाते हैं; वह मेरा परमधाम है ।'

इतना ही नहीं; किंतु भगवान्‌के विविध सगुण-साकार रूपोंके उपासक-सम्प्रदाय, उसी परमधामके अन्तर्गत अपने-अपने इष्ट-धामोंकी ओर भी लक्ष्य करते हैं और उनके लिये आर्ष-ग्रन्थोंमें प्रमाण भी बराबर उपलब्ध होते हैं; जैसे—भगवान् श्रीरामका परमधाम 'साकेत', भगवान् श्रीकृष्णका परमधाम 'गोलोक' और शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज परविष्णुका परमधाम 'पर वैकुण्ठ' इत्यादि ।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि सर्वव्यापी परमात्माका भी अलग एक परमधाम मानना कैसे युक्तिसंगत होगा ? कारण कि दोनों बातें एक साथ माननेमें दोनोंमें विरोध स्पष्ट है । तात्पर्य यह कि वे परब्रह्म परमात्मा, यदि सर्वत्र समानरूपसे व्याप्त हैं; तो फिर उनका अलग एक निजधाम होना कैसे सम्भव है ? और यदि इस प्रकार उनका निजधाम माना जाय; तो फिर उन्हें सर्वत्र समान रूपसे व्यापक कैसे कह सकेंगे ? अतएव इस विरोधका समन्वय ही प्रस्तुत निबन्धका मुख्य विषय है ।

इस समन्वयके लिये सबसे प्रथम परमात्माकी सर्व-व्यापकतासे सम्बन्धित एक विशेष समस्याकी ओर हमें दृष्टिपात करना अपेक्षित होगा । वह समस्या यह कि परमात्माको लोग सर्वव्यापक मानते और कहते अवश्य हैं; पर साथ ही यह भी सत्य है कि उनकी यह मान्यता अधिकतम शास्त्रप्रमाण अथवा अनुभवी संत-महात्माओं और महापुरुषोंके वचनोंपर ही आधारित रहती है । प्रत्यक्ष रूपसे तो उन सर्वव्यापी परमात्माका दर्शन अथवा अनुभव विशेष साधनाके द्वारा किन्हीं विशेष भाग्यशाली साधकों और भक्तोंको ही हो पाता है । अतएव प्रश्न यह है कि जब वह परमात्मा जगत्‌के कण-कणमें सर्वत्र व्याप्त और उपस्थित है ही; तो फिर उसका दर्शन अथवा अनुभव सर्वसाधारणको भी क्यों न होना चाहिये ?

कुछ लोग इस प्रश्नके उत्तरमें कह सकते हैं कि 'परमात्मा सर्वव्यापक अवश्य है; पर वह साकार न होकर निराकाररूपसे सबमें व्याप्त है । इसलिये विशेष योगी महापुरुष ही योग-दृष्टिसे उसका अनुभव कर पाते हैं। सर्वसाधारणके लिये यह सम्भव नहीं है ।' पर समस्याके समाधानके लिये यह उत्तर पर्याप्त और संतोषजनक इसलिये नहीं है कि निराकार पदार्थ तो और भी हैं; जैसे वायु और आकाश भी निराकार हैं, पर वायुका अनुभव सभीको होता है । आकाशको भी सभी देखते हैं । इसी प्रकार उस निराकार परमात्माका भी अनुभव किसी सीमातक सर्वसाधारणको भी होना चाहिये ।

कुछ लोग कह सकते हैं कि 'निराकार परमात्मा सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी वह स्थूलदृष्टिका विषय न होकर सूक्ष्म दिव्यदृष्टिद्वारा ही उसका अनुभव तथा साक्षात्कार सम्भव होता है; इस कारण सर्वसाधारणको उसका दर्शन अथवा अनुभव नहीं होता ।' पर यह उत्तर भी पर्याप्त और संतोषजनक तब हो सकता है, जब कि उस परमात्माको स्थूलतामें व्याप्त न मानकर केवल सूक्ष्म और दिव्य जगत्‌तक ही उसे सीमित मान लिया जाय । पर ऐसा न होकर उसे सूक्ष्म और स्थूल—सभी पदार्थोंमें समानरूपसे व्याप्त माना जाता है । तो फिर स्थूलमें भी सर्वसाधारणको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

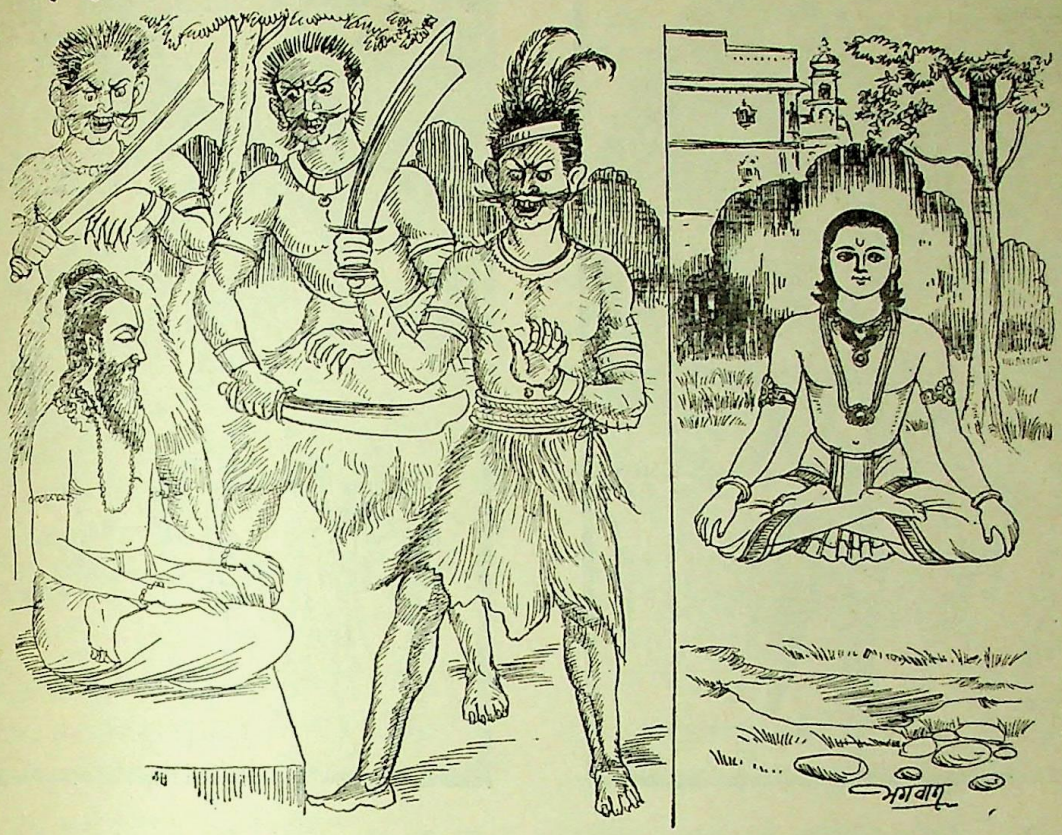

प्रह्लादका पूर्वजन्म [पृष्ठ ४९८

देवर्षि नारदके पूर्वजन्म [पृष्ठ ४९८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

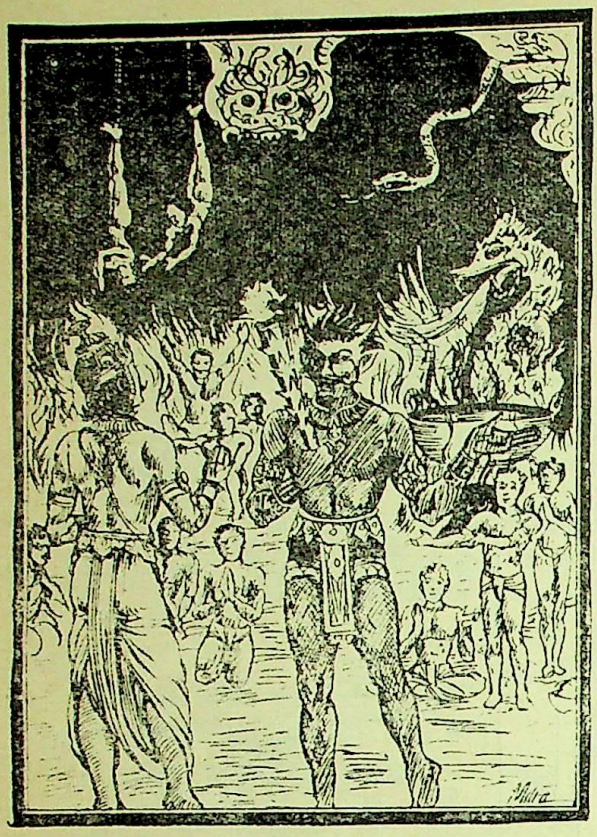

विपश्चित्‌से नारकी प्राणियोंकी पुकार [पृष्ठ ६३८

विपश्चित्‌से धर्मराज और इन्द्रकी बातचीत [पृष्ठ ६३९

विपश्चित्‌का नरकके समीप रहनेका निश्चय [पृष्ठ ६३९

विपश्चित भगवान् विष्णुके साथ विमानमें [पृष्ठ ६३९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाभाविकरूपसे ही उसका दर्शन अथवा अनुभव क्यों नहीं होना चाहिये ?

अब हम इस सम्बन्धमें यथार्थ कारणकी खोजके लिये लोकव्यवहारके स्वाभाविक नियमोंकी ओर दृष्टि ले जाना उचित समझते हैं।

संसारमें देखा जाता है कि कोई वस्तु सामने उपस्थित होते हुए भी जब हम उसे देख नहीं पाते, तो अवश्य ही उस वस्तुके और हमारे बीच कोई आवरण होता है। उसीके कारण सामने उपस्थित रहते हुए भी हम उस वस्तुको देख नहीं पाते। अतएव ऐसी ही कोई बात हमारे और सर्वव्यापी परमात्माके बीच भी सम्भव हो सकती है, जिसके कारण उस परमात्माके जगत्‌के कण-कणमें व्याप्त होते हुए भी सर्वसाधारणको उसका दर्शन अथवा अनुभव नहीं हो पाता।

अब यह आवरण भी संसारमें कितने प्रकारके हो सकते हैं, इस बातकी ओर ध्यान ले जाना भी आवश्यक होगा; क्योंकि इसीके सहारे हम अपने और सर्वव्यापी परमात्माके बीच आवरणको खोज कर सकेंगे।

साधारणरूपसे एक आवरण होता है—दीवार-जैसा। इसमें दीवारके बीचमें होनेके कारण, उस पारकी वस्तु सामने उपस्थित होते हुए भी हमें दिखायी नहीं देती। पर हमारे और सर्वव्यापी परमात्माके बीच इस तरहका कोई पर्दा नहीं है; क्योंकि यदि ऐसा कोई पर्दा हो, तो वह सर्वव्यापी प्रभु उस पर्देमें भी तो व्याप्त है; अतएव उस पर्देपर ही उसका दर्शन अथवा अनुभव बिना किसी प्रयत्नविशेषके स्वाभाविकरूपमें ही सम्भव होना चाहिये।

दूसरा एक प्रकारका पर्दा अभ्यास अथवा निर्माण-कलाके द्वारा सामने उपस्थित होनेवाले चमत्कारों अथवा आविष्कारोंके सम्बन्धमें देखा जाता है। जैसे शीतोष्णका असाधारणरूपसे सहन कर लेना, पहाड़की चोटियोंपर सुगमताके साथ चढ़ जाना, नेत्र बंद करनेपर अनेक प्रकारके दृश्य सामने उपस्थित होना, कान बंद करनेपर अनेक प्रकारके शब्द सुनायी देना, शब्दभेदी बाण चलाना, इत्यादि; ऐसे ही कई वस्तुओंके युक्तिपूर्वक संयोग और संयमके द्वारा रेलके इंजन, तार, मोटर, वायुयान, सिनेमा, रेडियो आदि आविष्कारोंका सामने आ जाना। इन चमत्कारों, अथवा आविष्कारोंकी सम्भावना निश्चित होनेपर भी, उनकी प्रत्यक्षतामें अभ्यासके अभाव अथवा निर्माण-कलाके अज्ञानका ही पर्दा रहता है, जिसके कारण सामान्य-रूपसे उनकी प्रत्यक्षता सम्भव नहीं हो पाती। पर हमारे और सर्वव्यापी परमात्माके बीच इस प्रकारका कोई आवरण भी सम्भव नहीं है; क्योंकि परमात्मा किसी प्रकारके अभ्यास अथवा निर्माणका परिणाम न होकर नित्य सच्चिदानन्दघन, सबका प्रभु, जैसा वह है वैसा ही नित्य एकरस रहनेवाला, भगवान् है और सभी प्रकारके अभ्यासों और निर्माण-कौशलोंके पीछे मौलिकरूपसे उसका ही नियन्त्रण छिपा हुआ है। भौतिक विज्ञानके आविष्कारोंमें भी वैज्ञानिक विशेषज्ञ प्रकृतिके नियमोंका निर्माण नहीं करते; किंतु ज्ञात अथवा अज्ञातरूपसे प्रकृतिके अन्तर्गत उस सर्वव्यापी परमात्माद्वारा नियन्त्रित नियमोंको ही खोजते और किसी सीमातक उनकी सूक्ष्मतातक पहुँच पाते हैं।

एक और विचित्र प्रकारका पर्दा होता है—बाजीगर नटके इन्द्रजालका। बाजीगर नट एक जन-समूहके बीच उपस्थित होकर जादूके द्वारा अनेक प्रकारके आश्चर्यजनक दृश्य दिखाता है, जो वास्तवमें उस रूपमें सत्य न होकर केवल जादूके प्रभावसे उस रूपमें दर्शकोंको दिखायी पड़ते हैं। इसे प्रायः नजरबंदीका खेल कहा जाता है। इस जादू अथवा नजरबंदीके पर्देमें विचित्रता यह होती है कि वास्तवमें उस स्थलपर हर एक वस्तु अपनी जगहपर जैसी-की-तैसी बनी रहते हुए भी दर्शकोंको दिखायी दूसरे रूपमें पड़ती है और जादूका प्रभाव हटा लेनेपर फिर पूर्ववत् जैसी-की-तैसी दिखायी पड़ने लगती है। उदाहरणके लिये जैसी बाजीगर नट जादूके द्वारा रुपयेके ढेर दिखा देता है। पर वास्तवमें वहाँ रुपये न होकर केवल जादूके प्रभावसे रुपयेके ढेर दिखायी पड़ते हैं। उन जादूके रुपयोंसे कोई व्यापार नहीं हो सकता। यदि ऐसा होता, तो बाजीगर नट इस प्रकार रुपयोंके ढेर पैदाकर स्वयं बहुत बड़ा धनी बन जाता और पैसेकी लालचमें सड़कोंपर अथवा द्वार-द्वार जादूका खेल दिखाते फिरनेकी उसे आवश्यकता न होती। इसी प्रकार बाजीगर नट शरीरको टुकड़े-टुकड़े कटा हुआ दिखाकर पुनः जादूका प्रभाव हटाकर, शरीरको फिर पूर्ववत् जैसा-का-तैसा दिखा देता है। वास्तवमें शरीर कटा नहीं; किंतु केवल जादूके प्रभावसे कटा हुआ दिखा दिया गया था। तुलसीकृत रामचरितमानसमें, अंगद-रावण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवादके अन्तर्गत प्रसंगवश ऐसे जादूकी चर्चा आयी है। यथा—

इंद्रजालि कहुँ कहिअ न बीरा। काटइ निज कर सकल सरीरा॥
(६। २८। ५)

अवश्य ही तीसरे प्रकारके इस जादूके विचित्र आवरणको दृष्टान्तरूपमें सामने रखकर हम अपने और सर्वव्यापी परमात्माके बीच आवरणकी रूपरेखाको समझनेमें किसी सीमातक सफल होनेकी आशा कर सकते हैं; कारण कि सृष्टिव्यापारके सम्बन्धसे परमात्माको भी एक जादूगर नटके रूपमें व्यक्त किया गया है; जैसा कि तुलसीकृत रामचरितमानसमें ही—

नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहिं न ब्यापइ माया॥
(उत्तरकाण्ड १०३। ४)

सो नर इंद्रजाल नहिं भूला। जा पर होइ सो नट अनुकूला॥
(अरण्यकाण्ड ३८। २)

उस अद्भुत नटनागर परमात्माने अपनी मायारूपी जादूके द्वारा इस जगत्-प्रपञ्चकी रचना की है, जैसा श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामके वचनोंसे ही स्पष्ट है—

मम माया संभव संसारा। जीव चराचर बिबिध प्रकारा॥
(उत्तरकाण्ड ८५। २)

अतएव हमारे और सर्वव्यापी परमात्माके बीच नट-द्वारा उपस्थित किये हुए जादूके दृश्योंके समान, परमात्माकी मायाद्वारा उत्पन्न यह जगत्-प्रपञ्चकी रचना ही विचित्र ढंगका आवरण है; जिसके कारण ही, परमात्माके जगत्के कण-कणमें सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी सर्वसाधारणको उनका दर्शन अथवा अनुभव नहीं हो पाता। इस आवरणकी विचित्रता यह है कि यद्यपि परमात्माने अपनेसे पृथक् किसी अन्य सामग्रीसे इस जगत्की रचना न करके, अपनी मायाके द्वारा वह स्वयं ही इस जगत्-प्रपञ्चके रूपमें परिणत हुआ है; जैसा कि प्रमाणरूपमें श्रुतिका वाक्य 'एकोऽहं बहु स्याम।' प्रसिद्ध है; जिसका अर्थ यह है कि सृष्टिके पूर्व परमात्माने संकल्प किया कि 'मैं एक हूँ, बहुत हो जाऊँ।' पर ऐसा होते हुए भी, नटके द्वारा उपस्थित किये हुए जादूके दृश्योंके समान ही, इस जगत्में जीवको सामान्यरूपसे उस परब्रह्म परमात्माका दर्शन अथवा अनुभव न होकर यह मायिक जगत्-प्रपञ्च ही दिखायी पड़ता है और यही सत्य प्रतीत होता है; जैसा कि तुलसीकृत रामचरितमानसमें ही स्पष्ट है—

जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥
(बालकाण्ड ११६। ४)

इस स्थलपर एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि उपर्युक्त श्रुतिके अनुसार यदि अपने संकल्पसे स्वयं परमात्मा ही जगत्-प्रपञ्चके रूपमें परिणत हुआ है तो फिर यह जगत् भी तो ब्रह्म अथवा परमात्मा ही हुआ। तो फिर इस संसार-प्रपञ्चसे पृथक् ब्रह्म अथवा परमात्माके दर्शन अथवा अनुभवके प्रयत्नकी आवश्यकता ही क्या है?

अवश्य ही उक्त श्रुतिकी सामान्य ध्वनिको देखते हुए इस प्रकारका प्रश्न असंगत नहीं कहा जा सकता। इतना ही नहीं, एक दूसरी श्रुति स्पष्टरूपमें ही जगत्को ब्रह्मका रूप कह रही है; यथा—**'सर्वं खल्विदं ब्रह्म।'**

पर इस स्थलपर विशेषरूपसे ध्यान देनेकी बात यह है कि वह परमात्मा प्रत्यक्ष रूपमें नहीं; किंतु नटके जादूकी तरह अपनी मोहिनी मायाके द्वारा इस जगत्के रूपमें उपस्थित हुआ है; अतः जगत्के ब्रह्म अथवा परमात्माका ही रूप होते हुए भी, ब्रह्म अथवा परमात्माके जो गुण और लक्षण शास्त्र तथा अनुभवी महापुरुषोंके द्वारा सुने जाते हैं और जिनके कारण ही मुमुक्षु अथवा भक्त साधक उस परम प्रभुके साक्षात्कारके लिये उत्सुक और लालायित होते हैं; वह बात इस मायिक जगत्में नहीं पायी जाती। अतएव जगद्रूपी ब्रह्मके सामने उपस्थित होते हुए भी प्रत्यक्ष रूपसे उस ब्रह्म अथवा परमात्माके दर्शन और साक्षात्कारकी अपेक्षा अनिवार्य-रूपसे बनी ही रहती है।

फिर एक बात और समझ लेनेकी है। वह यह कि उक्त श्रुतिका यह भी अर्थ नहीं कि नित्य एकरस रहनेवाला, शुद्ध सच्चिदानन्द परब्रह्म ही समग्ररूपसे इस मायिक जगत्के रूपमें परिणत हो गया। इस विषयको तत्त्वतः समझनेके लिये सृष्टि-परम्पराके एक पक्षविशेष-की ओर ध्यान ले जाना अपेक्षित होगा। वह यह कि सृष्टि हर बार बिल्कुल नयी ही न होकर पूर्वसृष्टिसे मिलती-जुलती ही हुआ करती है, यह बात आर्ष-ग्रन्थोंमें स्पष्ट है। प्रमाणके लिये श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ३ अध्याय ९। ४३ देखिये—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्ववेदमयेनेदमात्मनाऽऽत्माऽऽत्मयोनिना ।
प्रजाः सृज यथापूर्वं याश्च मय्यनुशेरते ॥

भगवान् ब्रह्माको अपनेसे उत्पन्न करके उन्हें आदेश देते हैं कि 'हे ब्रह्माजी ! तुम स्वयम्भू, सर्ववेदमय, अपने-आपसे ही मुझमें लीन हुई सम्पूर्ण प्रजाकी पूर्वके समान रचना करो ।' और भी—

कदाचिद्ध्यायतः स्रष्टुर्वेदा आसंश्चतुर्मुखात् ।
कथं स्रक्ष्याम्यहं लोकान् समवेतान् यथा पुरा ॥
(श्रीमद्भा० ३ । १२ । ३४)

'ब्रह्माने विचार किया कि मैं पहलेके ही समान सब लोकोंकी रचना किस प्रकार करूँ । उस समय उनके चार मुखोंसे चार वेद प्रकट हुए ।' और भी भगवान्‌का साक्षात्कार कर लेनेके पश्चात् ब्रह्माद्वारा विश्व-सृजनके सम्बन्धमें निम्नलिखित श्लोक आया है—

अन्तर्हितेन्द्रियार्थाय हरये विहिताञ्जलिः ।
सर्वभूतमयो विश्वं ससर्जेदं स पूर्ववत् ॥
(श्रीमद्भा० २ । ९ । ३८)

'ब्रह्माने अन्तर्धान हुए हरिको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और पूर्ववत् इस विश्वको रचा ।'

उपर्युक्त श्लोकोंमें आये रेखाङ्कित यथापूर्वं, यथा पुरा और पूर्ववत् शब्द इस सम्बन्धमें विशेष रूपसे ध्यान देने योग्य हैं ।

इस प्रकार महाप्रलयमें जब सारी सृष्टि परमात्मामें लय हो जाती है, उस समय वह परमात्मा अपनेमें लय हुई सृष्टिके सहित एक रहते हैं; यही 'एकोऽहं बहु स्याम ।'में 'एकोऽहं' का तात्पर्य है । फिर उस एकसे बहुत हो जानेका संकल्प होनेपर उस अपनेमें लीन सृष्टिको ही पूर्वकी भाँति पुनः प्रकट कर देते हैं, यही 'बहु स्याम' का अभिप्राय है । अब इस सृष्टि अथवा जगत्-प्रपञ्चकी परमात्मासे पृथक् कोई स्वतन्त्र सत्ता न होकर, उनके अङ्गविशेषके रूपमें नित्य स्थित रहते हुए, उन परमात्माके ही संकल्पसे रचनाकालमें, उनसे ही इसका केवल आविर्भाव और प्रलयकालमें उनमें ही तिरोभावमात्र होता रहता है । यह संसार जड-चेतनात्मक होनेसे इसे 'चिदचित् प्रकृति' भी कहा जाता है । यह चिदचित् प्रकृति अथवा जगत् यद्यपि उपर्युक्त दृष्टिसे परमात्मासे पृथक् न होकर उनका अङ्ग ही है; फिर भी इसकी अपनी एक विचित्र विशेषता है । वह विशेषता यह कि इस चिदचित् प्रकृतिमें परिवर्तन अथवा विकृति भी सम्भव है, पर इसके परिवर्तन अथवा विकृतिसे, परमात्माके स्वरूप और उनकी नित्य एकरसता और निर्विकारतामें कोई अन्तर नहीं आता । मनुष्यके शरीरमें बालोंके दृष्टान्तसे इस बातको सुगमताके साथ समझा जा सकता है । वह इस प्रकार कि जैसे शरीरमें सिरके अथवा अन्य स्थलके बाल भी हैं तो शरीरका ही भाग; पर जैसे शरीरके किसी भागपर त्वचामें किसी प्रकारकी चोट अथवा आघातसे शरीरमें जख्म अथवा पीडा उत्पन्न होकर वह भाग विकृत हो जाता है; उस प्रकार बालोंमें किसी प्रकारकी चोट अथवा दबाव पड़नेपर भी उनमें कोई विकृति नहीं आती; सिरके बालोंको अनेक प्रकारसे ऐंठिये, गुहिये, गाँठ लगाइये, कंघीसे उन्हें छेड़कर इधर-उधर कीजिये; पर उससे शरीरमें कोई आघात अथवा विकृति नहीं आती; किंतु इस प्रकार बालोंको छेड़कर उनमें अनेक प्रकारके गठन अथवा रूप-परिवर्तनसे शरीरके सौन्दर्य और शृङ्गारमें ही एक विशेषता उत्पन्न होती है । इसी प्रकार उपर्युक्त कथनके अनुसार परमात्मामें ही उसके अङ्गरूपमें स्थित चिदचित् प्रकृति अथवा संसारके परिणामी और परिवर्तनशील होनेसे भी, उस नित्य एकरस परमात्माके स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं आता; प्रत्युत वेदान्तदर्शनके 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् ।' (२ । १ । ३३) सूत्रके अनुसार उस प्रभुमें बिना किसी विकारके केवल लीलाके रूपमें, उसके द्वारा इस सृष्टि-व्यापारका अवकाश प्राप्त होता है । इस दृष्टिसे ब्रह्मको चिदचिद्विशिष्ट भी कहा जाता है । पर इस चिदचित् प्रकृतिकी ब्रह्मसे पृथक् कोई स्वतन्त्र सत्ता न होकर, शरीरमें रोम और नखके समान यह उस परमात्मामें ही स्थित है; इसलिये इससे ब्रह्मके अद्वैत होनेमें भी कोई बाधा नहीं उपस्थित होती ।

अब जैसे नटके द्वारा उपस्थित किये हुए जादूके दृश्योंको देखनेवाले अज्ञ बालक तो उन दृश्योंको सत्य ही मानकर भ्रमित रहते हैं; पर जिन प्रौढ़ लोगोंको जादूका ज्ञान हो जाता है, वे उन जादूके दृश्योंसे भ्रमित, चकित और मोहित न होकर, उन्हें जादूका खेल समझकर सचेत और सावधान रहते हैं; यद्यपि दृश्य तो उनके सामने भी वही रहते हैं । इसी प्रकार शास्त्र और सत्संगद्वारा जिनको इतना पता हो जाता है कि यह संसार मायाद्वारा उत्पन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान्‌का खेल है, वे इसमें मोहित और भ्रमित न होकर, इसे भगवान्‌के ऐश्वर्यके रूपमें ही देखते हैं।

अब जैसे पर्दा मोटा और घना होनेपर उस पारकी वस्तु बिल्कुल नहीं दिखायी देती; पर किन्हीं उपायोंद्वारा पर्देके हल्का और झीना हो जानेपर कुछ दिखायी देने लगती है; और इस प्रकार विशेष उपायोंद्वारा पर्दा जितना-जितना हल्का और झीना होता जाता है, उतना ही पारकी वस्तु अधिक स्पष्टरूपमें दिखायी देने लगती है। इसी प्रकार भक्ति, योग और ज्ञानकी गम्भीर साधनाद्वारा, मायाका आवरण भी हल्का पड़ता जाता है और इस प्रकार उपासनाके द्वारा जितना यह मायाका आवरण हल्का पड़ता जाता है, उतना-ही-उतना इस मायिक जगत्‌के पीछे सर्व-व्यापी ब्रह्मकी संज्ञा भी झलकने लगती है। इस प्रकार अनेक भक्ति और अध्यात्म-पथके साधकों तथा महापुरुषोंको शरीर रहते इस मानव-जीवनमें ही परमात्माका साक्षात्कार अथवा अनुभव होने लगता है। पर इस जगत्-प्रपञ्चकी उत्पत्ति ही मायाद्वारा हुई है; अतः इस जगत्‌में वह साक्षात्कार अथवा अनुभव कितना भी स्पष्ट क्यों न हो, पर उसमें कुछ-न-कुछ प्रकृति अथवा मायाका आवरण रहता ही है। अब इस स्थलपर स्वाभाविकरूपमें ही एक प्रश्न उठता है कि शास्त्र तथा अनुभवी संत-महात्माओंके वाक्योंमें भगवान्‌को जीवके सच्चे स्वामी, पिता, माता, सखा, प्रियतम—कहकर अतिशय निकटका सम्बन्ध सूचित किया गया है। तब इस प्रकारकी आत्मीयता और इतना घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुए भी वे प्रभु साधक जीवात्माके लिये भी सदा पर्देमें ही रहें; प्रत्यक्ष निरावरण और स्थायीरूपमें उनका संयोग कभी सम्भव ही न हो; यह भी कहाँतक युक्तिसंगत कहा जा सकता है। साथ ही दूसरी समस्या यह भी है कि यह प्राकृत शरीर तो कर्मोंसे उत्पन्न होता है और प्रारब्ध-भोगतक ही रहता है। इस संसारमें आवागमन और शरीरोंकी प्राप्ति कर्मोंके द्वारा होती है; पर ज्ञान और भक्तिकी साधनाके द्वारा कर्म-बन्धन समाप्त हो जानेपर, इस संसारमें शरीर-धारण करनेका अवकाश ही नहीं रहता; अतः उस स्थितिमें वह मुक्त जीवात्मा कहाँ रहेगा?

यद्यपि सामान्यरूपसे लोगोंका ज्ञान प्रायः परमात्माके सर्वव्यापकत्वके गौरवतक ही सीमित रहकर, वे इतनेसे ही उसे सर्वदेशी मानते हैं; पर वास्तवमें उस परब्रह्म परमात्माकी महिमा इतने तक ही सीमित न होकर, वह इस सर्वव्यापकत्वसे भी बहुत महान् है। इस बातका संकेत श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌ने स्वयं अर्जुनके प्रति किया है। यथा—

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥
(१०।४२)

भगवान् कहते हैं—'अर्जुन! इस बहुत जाननेसे तुम्हारा क्या प्रयोजन? (सारांश रूपमें यह कि) मैं इस सम्पूर्ण जगत्‌को अपने एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूँ।'

अब भगवान्‌के इस कथनके अनुसार उपर्युक्त समस्याओंके समाधानके सम्बन्धमें श्रुति-वाक्योंकी ओर ध्यान दीजिये।

परमात्माकी इस महिमाकी स्पष्ट घोषणा वेदोंमें भी की गयी है। वहाँ परमात्माको चतुष्पाद् कहकर, उनके एक पादमें उत्पत्ति, पालन और संहारके व्यापारवाला यह सारा विश्व जगत् और इससे परे तीन पाद अमृत, शुद्ध ब्रह्म, प्रकृतिपर दिव्य विभूतिमें कहा गया है। यथा—

'सोऽयमात्मा चतुष्पात्। पादोऽस्य सर्वभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।' और भी पुरुषसूक्तमें—

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥
(ऋग्वेद १०।९०।३)

पुरुषसूक्तकी उपर्युक्त श्रुतिमें परमात्माकी उक्त महिमाका संकेत करते हुए उसी स्थलपर आगेकी निम्नलिखित श्रुतिमें 'त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः' उस परम पुरुष परमात्माको त्रिपादसे भी ऊर्ध्व अर्थात् एकपाद और त्रिपाद दोनों विभूतियोंका स्वामी, अधिष्ठातृदेव अर्थात् उभय विभूतिनायक सूचित किया गया है। यथा—

त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि॥
(ऋग्वेद १०।९०।४)

तुलसीकृत रामचरितमानसमें भी बालकाण्डके अन्तर्गत, मानस-प्रतिपाद्य भगवान् श्रीरामको शंकरजीके वाक्योंमें 'परावरनाथ' (पर अर्थात् त्रिपाद्विभूति, अवर अर्थात् अपर, एकपाद्-विभूति) इस प्रकार दोनों विभूतियोंके नाथ कहा गया है। यथा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ॥
(बालकाण्ड ११६)

उपर्युक्त त्रिपाद्विभूति अथवा पर-विभूतिको उपनिषदोंमें दिव्य ब्रह्मपुर, परव्योम, विष्णुपरमपद इत्यादि अनेक नामोंसे व्यक्त किया गया है, जिसमें उस परम पुरुष परमात्माका निवास सूचित किया गया है। यथा—

मुण्डकोपनिषद्, मु० २। खं० २। ७ में—

यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः॥

'यः सर्वज्ञः=जो सर्वज्ञ; सर्वविद्=सब ओरसे सब कुछ जाननेवाला है; यस्य=जिसकी; भुवि=जगत्में; एषः=यह; महिमा=महिमा है; एषः हि आत्मा=यह ही सबका आत्मा (परमात्मा); दिव्ये व्योम्नि ब्रह्मपुरे=दिव्य आकाश, ब्रह्मपुरमें प्रतिष्ठित है।'

और भी—मुण्डकोपनिषद्, मु० २, खं० २। ९ में—

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः॥

तत्=वह; विरजम्=निर्मल; निष्कलम्=अवयवरहित; ब्रह्म=ब्रह्म; हिरण्मये परे कोशे=प्रकाशमय परमकोश (परव्योम) में प्रतिष्ठित है; तत्=वह; शुभ्रम्=विशुद्ध; ज्योतिषां ज्योतिः=ज्योतियोंकी भी ज्योति है; यत्=जिसको; आत्मविदः=आत्मज्ञानी; विदुः=जानते हैं।'

उस परमपद अथवा परमधाममें न सूर्य प्रकाश करता है, न चन्द्रमा, न अग्नि; तात्पर्य यह कि वह स्वयं प्रकाशमान है। इस सम्बन्धमें प्रमाणके लिये श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय १५, श्लोक ६, प्रस्तुत निबन्धके आरम्भमें ही दिया जा चुका है। इसके अतिरिक्त उपनिषद्में भी यही बात स्पष्ट है। यथा—मुण्डकोपनिषद् में—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥
(२। २। १०)

'तत्र=वहाँ; न सूर्यः भाति=न सूर्य प्रकाश करता है; न चन्द्रतारकम्=न चन्द्रमा और नक्षत्र ही प्रकाश करते हैं; न इमाः विद्युतः भान्ति=न ये बिजलियाँ ही वहाँ प्रकाश करती हैं; अयं अग्निः कुतः=फिर इस (लौकिक) अग्निकी तो बात ही क्या है? तात्पर्य यह कि तो फिर यह लौकिक अग्नि वहाँ क्या प्रकाश करेगी? (कारण कि); तम् भान्तम् एव=उसके प्रकाश करते हुए ही (उसके प्रकाशसे); सर्वम्=ऊपर कहे हुए सूर्य, चन्द्रमा आदि सब प्रकाशित होते हैं। तस्य भासा=उसीके प्रकाशसे; इदं सर्वम्=यह सम्पूर्ण विश्व—जगत्; विभाति=प्रकाशित होता है।

यह त्रिपाद्-विभूति, दिव्य परव्योम अथवा परमधाम उन परब्रह्म परमात्मासे भिन्न कोई अन्य तत्त्व न होकर, उन्हींका प्रकाश, उन्हींका रूप, शुद्ध ब्रह्म ही है। केवल संसारी कर्मबन्धन और आवागमनके चक्रसे मुक्त आत्माओंके उसमें प्रवेश और निवासके सम्बन्धसे उसे परमधाम, ब्रह्मपुर आदि (स्थानसूचक) शब्दोंसे व्यक्त किया गया है। दृष्टान्तके लिये, जैसे सूर्य अपनी किरणोंके प्रकाशके बीच रहता है; वह किरणोंका प्रकाश, सूर्यसे भिन्न कोई पदार्थ न होकर सूर्यका ही रूप है; ऐसे ही परमधामके सम्बन्धमें भी समझना चाहिये।

कर्मोंके भोगपर्यन्त जीव इस एकपाद्-विभूति संसारमें अनेक शरीर धारण करते हुए, आवागमनके चक्रमें जन्म-मरणको प्राप्त होते रहते हैं। पर ज्ञान और भक्तिकी साधनाद्वारा कर्मबन्धनसे मुक्त होनेपर फिर वे इस संसारमें जन्म नहीं धारण करते। अब ऐसी स्थितिमें वे मुक्तात्मा कहीं तो रहेंगे? वही है यह 'परमपद' अथवा 'भगवान्का परमधाम', जहाँ कर्मबन्धनसे मुक्त जीव, अपने सहज आत्मस्वरूपको प्राप्त होकर स्वयं ब्रह्ममें निवास करते हैं।

इस प्रकार परमात्माका सर्वव्यापकत्व तो इस एकपाद्-विभूति, विश्व-जगत् तक ही सीमित है; कारण कि व्यापक शब्द कहते ही, व्यापक और व्याप्य दोकी कल्पना सामने आ जाती है और इस प्रकारका द्वैत इस मायिक जगत्में ही सम्भव है। यहाँ जगत् व्याप्य और परमात्मा व्यापक है। यह व्याप्य और व्यापकका द्वैत, परमपद अथवा परमधाममें नहीं होता। वहाँ तो एक अद्वितीय शुद्ध ब्रह्म ही है; वही धाम भी है और वही धामी भी है। द्वैतरूप मायाका आवरण वहाँ नहीं है।

पर उस दिव्य परमधाममें त्रिगुणात्मिका मायाका व्यापार न होते हुए भी एक अलौकिक विचित्रता यह है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उपासनाके विभिन्न दृष्टिकोणोंके अनुसार, वहाँ मुक्तात्माओंको उस ब्रह्म अथवा परमात्माकी प्राप्ति विभिन्न रूपोंमें होती है। कुछ आत्मा ज्ञानमार्गकी साधना-द्वारा, ब्रह्मरूपी आनन्दसागरमें नमकके ढेलेके समान अपने शुद्ध अहंको विलीन करके 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'की चरितार्थताको प्राप्त करते हैं; इसे 'कैवल्य मोक्ष' कहा जाता है; जैसा कि श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्डमें ज्ञानमार्गकी साधनाकी सिद्धिका संकेत करते हुए कहा गया है—

जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥

पर जिन आत्माओंमें भगवान्‌के प्रति स्वामी, सखा, प्रियतम आदि सम्बन्धोंमें रागात्मिका भक्तिके संस्कार तीव्र और प्रबल होते हैं, उन भगवत्प्रेमभक्तिपरायण मुक्त आत्माओंको तो उस परमधाममें भी उन सच्चिदानन्दघन रसरूप परब्रह्म परमात्माके साथ प्रेममय दिव्य अप्राकृत नित्यलीला और नित्यविहारमें ही प्रवेश प्राप्त होता है। यही उनकी उपासनाका चरम लक्ष्य होता है।

कैवल्यमोक्षके अतिरिक्त, ज्ञानद्वारा कर्मबन्धसे मुक्त हो अपने सहज आत्मस्वरूपको प्राप्त कर लेनेपर भी, भक्तिपरायण आत्माओंके सम्बन्धमें सगुण साकार उपासनाके समान ही एक अद्वितीय निर्गुण निराकार शुद्ध ब्रह्ममें भी लीला और विहारकी सम्भावनापर एक विशिष्ट प्रकारके अद्वैतवादी वेदान्तियोंमें भी भावना देखी जाती है और उनके विचारसे उस अद्वितीय शुद्ध ब्रह्ममें यह बात एक असम्भव कल्पना है। पर तथ्यको समझनेके लिये, इस सम्बन्धमें बहुत जल्दी निर्णय न लेकर कुछ गहराईमें जाना अपेक्षित है। एक अद्वितीय शुद्ध ब्रह्मका यह अर्थ नहीं कि वह निर्गुण निराकार ब्रह्म केवल आकाश-जैसा कोई शून्य मात्र है; किंतु वह सच्चिदानन्दघन सब ओरसे परिपूर्ण है। इस तथ्यके स्पष्टीकरणके लिये अब हम कुछ मार्मिक बातें पाठकोंके समक्ष उपस्थित करते हैं। इस सम्बन्धमें श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ११में भगवान्‌ने स्वयं अर्जुनके प्रति स्पष्टरूपमें संकेत किया है; पर प्रवाहमें उस सूक्ष्मताकी ओर प्रायः गीताके विद्वानोंकी दृष्टि नहीं जाती। अतः पहले उस प्रसंगपर ही कुछ गहराईके साथ दृष्टिपात कीजिये।

उस प्रसंगमें भगवान्‌के प्रति उनका ऐश्वर्य-रूप देखनेकी इच्छा प्रकट करते हुए अर्जुनने निम्नलिखित वाक्य कहे—

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम॥
मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्॥
(गीता ११। ३-४)

'हे परमेश्वर! आप अपनेको जैसा कहते हैं, यह इस प्रकार ठीक ही है। पर हे पुरुषोत्तम! आपके उस ऐश्वर्य-रूपको मैं देखना चाहता हूँ। प्रभो! वह आपका रूप मेरेद्वारा देखा जा सकता है, ऐसा यदि आप मानते हैं तो हे योगेश्वर! आप अपने उस अविनाशी ऐश्वर्य-रूपका मुझे दर्शन कराइये।'

उपर्युक्त श्लोकोंमें अर्जुनकी ओरसे उस ऐश्वर्य-रूपके लिये रेखाङ्कित 'रूपं' और 'तद्' एक वचनका ही प्रयोग हुआ है। इससे स्पष्ट है कि अर्जुनने भगवान्‌का ऐश्वर्य-रूप कोई एक ही समझ रक्खा था। पर उसके उत्तरमें, आगेके श्लोकमें भगवान्‌ने एक ही ऐश्वर्य-रूप दिखाना न कहकर सैकड़ों-हजारों ऐश्वर्य-रूप देखनेके लिये उन्हें आमन्त्रित और सावधान किया। यथा—

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च॥
(गीता ११। ५)

'हे पार्थ! मेरे सैकड़ों, सहस्रों, नाना प्रकार, नाना वर्ण और आकृतिवाले दिव्य रूपोंको देखो।'

इस श्लोकमें भगवान्‌की ओरसे 'रूपाणि' बहुवचन शब्द साथ ही 'शतशः' और 'सहस्रशः' शब्दोंका प्रयोग स्पष्ट है, साथ ही उन रूपोंके विशेषणोंमें भी 'नाना-विधानि', 'दिव्यानि' आदि बहुवचन शब्द ही प्रयुक्त हुए हैं। इससे भगवान्‌के श्रीमुखवचनसे उनका कोई एक ही ऐश्वर्य-रूप न होकर, उनके ऐश्वर्य-रूप भी असंख्य और नाना प्रकारके हैं, यह स्पष्ट है।

पर अपने सैकड़ों-सहस्रों ऐश्वर्य-रूप देखनेके लिये अर्जुनको आमन्त्रित और सावधान करते हुए भी भगवान्‌ने पहले वह एक रूप दिखाया, जिस एक रूपको ही देखकर अर्जुन भयसे काँप गये, फिर आगे दूसरे ऐश्वर्य-रूपको देखनेके लिये उनकी प्रवृत्ति ही नहीं हुई; प्रत्युत उन्होंने शीघ्र ही भगवान्‌के प्रति पूर्ववत् शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज सौम्य मानुषरूपमें ही दर्शन देनेकी प्रार्थना की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतएव फिर भगवान्‌की ओरसे दूसरे ऐश्वर्य-रूपोंको प्रकट करनेका अवकाश ही नहीं रहा। अब अपने असंख्य ऐश्वर्य-रूपोंमें भगवान्‌ने पहले ही अर्जुनको अपना कौन-सा ऐश्वर्य-रूप दिखाया ? इस बातको भी अर्जुनके पूछनेपर उसी प्रसंगमें स्पष्ट कर दिया है। यथा—

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्॥
(गीता ११। ३१)

अर्जुन भगवान्‌के प्रति कहते हैं—'मेरे प्रति कहिये कि उग्ररूपवाले आप कौन हैं ? देवोंमें श्रेष्ठ ! आपको नमस्कार है; आप प्रसन्न होइये। आदिस्वरूप आपको जानना चाहता हूँ; क्योंकि आपकी प्रवृत्तिको मैं नहीं जानता।' इसके उत्तरमें अगले श्लोकमें भगवान् अपने उस उग्र ऐश्वर्य-रूपका परिचय देते हैं। यथा—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धो
लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः॥
(गीता ११। ३२)

'लोकोंका नाश करनेवाला, वृद्धिको प्राप्त हुआ मैं काल हूँ। इस समय इन लोकों (लोगों) का संहार करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। जो प्रतिपक्षियोंकी सेनामें स्थित हुए योद्धालोग हैं, वे सब तुम्हारे बिना भी नहीं रहेंगे; अर्थात् तुम्हारे युद्ध न करनेपर भी इन सबका संहार होगा।'

अब अपने सैकड़ों-हजारों असंख्य ऐश्वर्य-रूपोंमें भगवान्‌ने अर्जुनको पहले यही उग्र रूप क्यों दिखाया ? इसका कारण भी अर्जुनको युद्धके लिये शीघ्र तैयार हो जानेको प्रेरित करना ही था। यह भी उसी स्थलपर आगेके श्लोकसे स्पष्ट हो जाता है। यथा—

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्॥
(गीता ११। ३३)

भगवान् अर्जुनके प्रति कहते हैं—'इसलिये तुम उठो, यशको प्राप्त करो और शत्रुओंको जीतकर धन-धान्यसे सम्पन्न राज्यका भोग करो। ये सब योद्धा पहलेसे ही मेरे द्वारा मारे जा चुके हैं। हे सव्यसाचिन् ! तुम तो केवल निमित्तमात्र हो जाओ।' अब भगवान्‌के द्वारा इतनी स्पष्टोक्तिपर भी, यदि उनके सैकड़ों-हजारों, असंख्य ऐश्वर्य-रूप न मान करके, अर्जुनको दिखाये हुए उस एक उग्र रूपको ही भगवान्‌का समग्र विश्वविराट् रूप माना जाय तो उसमें विश्वमें उपस्थित होनेवाले सभी समयके दृश्य एक साथ उपस्थित होने चाहिये। उदाहरणके लिये जैसे महाभारतके योद्धाओंके संहारका जो दृश्य उस विश्वरूपमें अर्जुनको दिखाया गया, वह तो अभी बाहर कुरुक्षेत्रकी युद्धभूमिपर घटित नहीं हुआ था। अभी तो वे सभी योद्धा युद्धके लिये तत्पर बिल्कुल जीवितरूपमें उस युद्धभूमिपर विद्यमान ही थे; अतएव उन सबके रणक्षेत्रमें उपस्थित होनेका दृश्य भी भगवान्‌के इस विश्वरूपके अन्तर्गत दिखायी पड़ना चाहिये। ऐसे ही, आजन्म ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा करते हुए भीष्मपितामहका रूप, अर्जुन आदि शिष्यवर्गको धनुर्विद्याकी शिक्षा देते हुए द्रोणाचार्यका दृश्य, युद्धके पूर्व उपस्थित होनेवाले अन्य अनेक दृश्य भी तो उस विश्वरूपमें उपस्थित होने चाहिये; पर ऐसा नहीं है। अतएव सामान्य बुद्धिद्वारा विचार करनेपर भी यही स्पष्ट होता है कि भगवान्‌के ऐश्वर्य-रूप केवल एक ही न होकर असंख्य हैं; उनमेंसे महाभारतके विनाशके क्षणोंका वह एक ही ऐश्वर्य-रूप था, जिसमें निकट भविष्यके घमासान युद्धमें अनेक योद्धाओंके संहारका दृश्य ही मुख्यरूपसे अर्जुनके द्वारा देखा गया।

अब इस एक ऐश्वर्य-रूपके अतिरिक्त भगवान्‌के और कौनसे सैकड़ों-हजारों असंख्य ऐश्वर्य-रूप हो सकते हैं ? इस सम्बन्धमें कुछ स्पष्टीकरण करनेके पूर्व प्रस्तुत विषयको समझनेके लिये एक विशेष मर्मकी ओर ध्यान ले जाना आवश्यक है। वह यह कि भगवान्‌के उस उग्र ऐश्वर्य-रूपमें अर्जुनने विनाशके अनेक भयावने और बीभत्स दृश्य देखे। पर वे सारे दृश्य कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें घटित होनेसे पूर्व ही उन्होंने भगवान्‌में देखे। इससे यह संकेत मिलता है कि इस विश्व-जगत्‌में वर्तमानमें उपस्थित, भूतकालमें हुए, ऐसे ही भविष्यमें होनेवाले सारे ही दृश्य भगवान्‌में एक साथ ही अव्यक्तरूपमें उपस्थित रहते हैं; और उनमेंसे कोई भी दृश्य, वे अपने भक्तोंको जब चाहें, अपनेमें ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखा सकते हैं। इस सम्भावनाको भी हम पूर्वोक्त नटके जादूके दृश्योंके दृष्टान्तद्वारा ही समझ सकते हैं। वह इस प्रकार कि बाजीगर नट अपने जादूके द्वारा जितने भी दृश्य बाहर समाजके समक्ष उपस्थित करता है, वे सारे दृश्य उसके अन्तःकरणमें अव्यक्तरूपसे एक साथ ही उपस्थित रहते हैं; तभी बाहर समाजमें दिखानेका संकल्प होनेपर उनमेंसे किसी दृश्यको वह जादूके द्वारा बाहर उपस्थित कर देता है। इसी स्थलपर एक बात और समझ लेनी चाहिये। वह यह कि जादूके द्वारा बाहर उपस्थित किये हुए दृश्य तो सचमुच मिथ्या ही होते हैं; पर वही सारे दृश्य नटके अन्तःकरणमें मिथ्या नहीं होते; वहाँ तो वे सारे दृश्य अव्यक्तरूपमें यथार्थमें ही उपस्थित रहते हैं; केवल उन्हें यथासमय बाहर प्रकट कर देनेकी बात शेष रहती है। इसी प्रकार इस त्रिगुणात्मक जगत्में भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालके सारे दृश्य इस सृष्टिके रूपमें अवश्य ही मिथ्या, नश्वर और परिवर्तनशील होते हैं; पर भगवान्में वे सारे दृश्य अव्यक्तरूपमें एक साथ ही उपस्थित रहते हैं; वहाँ उन्हें मिथ्या नहीं कहा जा सकता; हाँ, उन्हें सृष्टिके रूपमें बाहर प्रकट कर देनेकी ही बात शेष रहती है।

अब इसी स्थलपर एक और बात समझ लेनेकी है कि शिष्य और सेवकके रूपमें बाजीगर नटके साथ रहकर उसे संतुष्ट और प्रसन्न कर लेनेपर उन जादूके दृश्योंके बाहर उपस्थित होनेके पूर्व भी, उस नटकी कृपासे कलात्मक ज्ञान और अनुभवके द्वारा वे सारे दृश्य देखे और समझे जा सकते हैं; जैसे कि नटके सेवक झमूराके सम्बन्धमें समझा जा सकता है; उसी प्रकार इस त्रिगुणात्मक जगत्में उपस्थित होनेवाले किन्हीं दृश्योंको बाहर घटित होनेके पूर्व भी भगवान् अपनी कृपासे भक्तोंको अपनेमें ही दिखा सकते हैं। इसी प्रकार महाभारतकी विनाशकी उपर्युक्त घटनाओंके बाहर कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें घटित होनेसे पूर्व ही भगवान्ने उन दृश्योंको अर्जुनको अपनेमें ही दिखा दिया।

अब इसी रहस्यको भगवान्की महिमारूप इस विश्व-जगत्की विशालता और अनन्तताके व्यापक दृष्टिकोणके अनुसार देखिये। यह विश्व-जगत् परमात्मासे ही उत्पन्न हुआ है। साथ ही वह परमात्मा अथवा ब्रह्म इस जगत्के कण-कणमें व्याप्त है। इस कारण जैसे जीवात्माके शरीरमें उपस्थित रहनेसे शरीरको जीवात्माके माध्यम अथवा रूपके स्थानमें लक्ष्य करके ही सारा लोक-व्यवहार चलता है, उसी प्रकार इस जगत्में परमात्माके व्याप्त होनेसे इसे उन भगवान्का विराट्रूप कहा जाता है। साथ ही यह विश्व-जगत् परिवर्तनशील है; और क्षण-क्षण परिवर्तनको प्राप्त होता रहता है। अतएव क्षण-क्षणके इस परिवर्तनके कारण इस विश्व-जगत् अथवा विराट्के क्षण-क्षणके विभिन्न रूप भी असंख्य हो जाते हैं। उपर्युक्त कथनके अनुसार बाजीगर नटके अन्तःकरणमें जादूके दृश्योंके समान इस विश्वके सारे ही दृश्य अव्यक्तरूपमें भगवान्में उपस्थित रहनेसे, क्षण-क्षणमें परिवर्तनको प्राप्त होनेवाले इस जगत्के वे असंख्य विराट्रूप भी उनमें उपस्थित रहते हैं। हाँ, एक बात अवश्य है कि इस त्रिगुणात्मक मायिक जगत्में विश्वके वे क्षण-क्षणके असंख्य रूप एक ही साथ नहीं उपस्थित होते; किंतु एकके पश्चात् दूसरा रूप, इस प्रकार बदलते जाते हैं। परब्रह्म, परमात्मा अथवा भगवान्में, विराट् जगत्के क्षण-क्षणके वे सारे ही रूप अव्यक्तरूपमें एक साथ ही उपस्थित रहते हैं और विश्वके उन असंख्य रूपोंमें भगवान् जब चाहें, कोई भी रूप अपने भक्तोंको अपनेमें दिखा सकते हैं। यह विश्व-जगत् भगवान्की महिमा अथवा ऐश्वर्य होनेके कारण, अपने जिन रूपोंमें भगवान् इस विश्व-जगत्के उन रूपोंका प्रदर्शन करते हुए भक्तके सामने उपस्थित होते हैं, उन रूपोंको ही भगवान्का 'ऐश्वर्य-रूप' कहा जाता है। यही भगवान्के सैकड़ों-हजारों असंख्य ऐश्वर्य-रूप हैं; जिनका संकेत भगवान्के द्वारा अर्जुनके प्रति पाया जाता है।

अब भगवान्के द्वारा अर्जुनको दिखाये गये उग्र ऐश्वर्य-रूपके सहारे ही उनके उपर्युक्त ऐश्वर्य-रूपोंके सम्बन्धमें एक और मर्मकी बात समझ लेनेकी है। वह यह कि अर्जुनने भगवान्के उस ऐश्वर्य-रूपमें बहुत-से बीभत्स और भयावने, रोमाञ्चकारी दृश्य भी देखे; जैसे, भीष्म, द्रोण, कर्ण और अपने पक्षके योद्धाओंको भी भगवान्के उस उग्र-रूपके विकराल दाढ़ोंवाले भयानक मुखोंमें प्रवेश करते और कई एकको चूर्ण हुए सिरोंसहित दाँतोंके बीचमें लगे हुए देखा। सम्पूर्ण मनुष्य-वीरोंको प्रज्वलित मुखोंद्वारा भक्षण करते और सब ओरसे चाटते हुए देखा; इत्यादि। परंतु इस स्थलपर ध्यानपूर्वक देखिये तो कुरुक्षेत्रकी रण-भूमिमें घमासान युद्ध आरम्भ हो जानेपर, जब सैकड़ों योद्धा घायल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा मृत होकर धराशायी हुए होंगे, उस समय उस युद्ध-भूमिकी क्या दशा हुई होगी ? कितने रक्तपात, कितने मृतक शरीरोंके जमाव, कितने बीभत्स, भयावने और घृणास्पद दृश्योंसे वह भूमि कितनी विकृत, घृणास्पद और अपवित्र हो गयी होगी; और युद्धकी समाप्तिपर भी उसकी शुद्धताके उपायोंमें कितना समय लगा होगा; पर भगवान्‌के द्वारा अर्जुनको दिखाये हुए उस उग्र ऐश्वर्य-रूपमें उपर्युक्त घोर बीभत्स, भयावने और घृणास्पद दृश्य उपस्थित होते हुए भी, उस रूपको अन्तर्धान कर लेनेपर कुरुक्षेत्रकी रणभूमिकी तरह क्या वहाँपर भी कोई बीभत्स और घृणास्पद वातावरण उपस्थित रहा ? कदापि नहीं ।

अतः यह स्पष्ट है कि भगवान्‌के उस ऐश्वर्य-रूपमें भी बीभत्स, भयावने और घृणास्पद दृश्य, संसारके समान ही दीखते हुए भी, उनका वह रूप स्वरूपतः दिव्य, अप्राकृत और त्रिगुणके विकारोंसे रहित था । यही बात उनके पूर्वोक्त असंख्य ऐश्वर्य-रूपोंके सम्बन्धमें भी समझनी चाहिये । इस प्रकार मायाद्वारा रचित त्रिगुणात्मक जगत्‌के क्षण-क्षणमें बदलते हुए, असंख्य विराटोंको अपनेमें लक्ष्य करानेवाले भगवान्‌के ऐश्वर्य-रूपको 'विराट्‌मय ऐश्वर्य-रूप' कहा जाता है, जिसका संकेत तुलसीकृत रामचरितमानसमें बालकाण्डके अन्तर्गत धनुषयज्ञके प्रसंगमें आया है । यथा—

बिदुषन्ह प्रभु बिराट मय दीसा । बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥

भगवान्‌ने जिस प्रकार अर्जुनको अपने एक ऐश्वर्य-रूपका दर्शन कराया, वैसे ही ऐश्वर्य-रूप दिखानेके अन्य अनेक प्रसंग भी आर्ष-ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं; जैसे तुलसीकृत रामचरितमानस, बालकाण्डमें भगवान् श्रीरामकी शिशु-लीलाके अन्तर्गत कौसल्याको और उत्तरकाण्डमें काकभुशुण्डिको तथा श्रीमद्भागवतमें यशोदाको । पर उन ऐश्वर्य-रूपोंमें, गीतामें अर्जुनको दिखाये गये ऐश्वर्य-रूपसे तथा परस्पर भी बहुत कुछ वैभिन्न्य पाया जाता है; इससे भी भगवान्‌के ऐश्वर्य-रूपोंका बहुसंख्यक अनेक प्रकारके होना स्पष्ट है ।

इस प्रकार ये सारे ही ऐश्वर्य-रूप अव्यक्तरूपसे उन सच्चिदानन्द ब्रह्ममें ही स्थित हैं । उन्हें प्रकृति अथवा माया नहीं कहा जा सकता; न उनपर प्रकृति अथवा मायाका आवरण ही होता है । इस प्रकार प्रकृतिपार, त्रिपाद्-विभूति, परमपद अथवा परमधाममें भी वह निर्गुण, निराकार, गुणातीत, अद्वितीय ब्रह्म केवल आकाशवत् शून्य न होकर 'परिपूर्ण', अर्थात् अनन्त दिव्य, अप्राकृत गुणों एवं लीलाओंका केन्द्र है ।

यहाँतक तो हुई भगवान्‌के ऐश्वर्य-रूपोंकी बात; अब प्रेमाभक्तिपरक माधुर्य-उपासनाके दृष्टिकोणसे भी इसी रहस्यका अवलोकन कीजिये ।

वैसे उपर्युक्त विवेचनके अनुसार वह सच्चिदानन्द अद्वितीय ब्रह्म ही इस अखिल विश्व-जगत्‌का निवासस्थान है और इसकी उत्पत्ति भी उस ब्रह्मसे ही होती है; जैसा कि ब्रह्मसूत्रमें ही 'जन्माद्यस्य यतः ।' प्रसिद्ध है; फिर भी प्रेमभक्तिपरक माधुर्य-उपासकोंके लिये तो वे परब्रह्म परमात्मा माता, पिता, स्वामी, सखा, प्रियतम आदि प्रेम-सम्बन्धोंमें अनन्य आसक्ति और अनुरक्तिका ही केन्द्र बन जाते हैं; अर्थात् जैसे संसारी विषयासक्त जीव विविध लौकिक सम्बन्धों और इन्द्रिय-विषयोंमें आसक्त रहते हैं, उसी प्रकार माधुर्य-उपासकोंका अन्तःकरण सब प्रकारसे उन सच्चिदानन्दरसरूप भगवान्‌के दिव्य गुणोंमें ही आसक्त रहता है; और इस प्रकार उन परम प्रियतमका निरन्तर संयोग ही उनकी साधनाका चरम लक्ष्य रहता है । विचार करनेकी बात यह है कि उनका कर्मबन्धन तो भगवान्‌को आत्मसमर्पण कर देनेके साथ ही समाप्त हो जाता है; तब फिर सामान्यतः कर्मसे उत्पन्न होनेवाले इस प्राकृत शरीरके धारण करनेका उनके लिये अवकाश ही कहाँ रह जाता है ? और फिर ऐसी स्थितिमें भगवान्‌के परमधामके अतिरिक्त उनका निवास और कहाँ हो सकता है ? साथ ही भगवान्‌के प्रति प्रेमभक्तिके रसास्वादनके बिना उनके लिये केवल कैवल्यमोक्ष भी संतोषप्रद नहीं होता । अतः प्रेमभक्तिके ऐसे नैष्ठिक उपासकोंके लिये ही उस परब्रह्मके अलौकिक सामर्थ्य और उनकी अलौकिक विशेषताके सम्बन्धमें उपनिषद्‌ने निम्नलिखित घोषणा की है । यथा—

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३ । १७)

'सर्व-इन्द्रियोंसे रहित होते हुए भी वह परब्रह्म सर्व-इन्द्रियगुणोंके आभाससे युक्त है । वह सबका प्रभु, ईश्वर और सबका महान् आश्रय (शरण देनेवाला) है ।'

श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय १३ श्लोक १४में स्वयं भगवान्‌ने भी अर्जुनके प्रति यही घोषणा और भी स्पष्ट शब्दोंमें की है । यथा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च॥

'वह परब्रह्म सर्व-इन्द्रियगुणोंके आभाससे युक्त है; यद्यपि वह सर्व-इन्द्रियोंसे रहित है। वह स्वयं अनासक्त है। तात्पर्य यह है कि उसमें जो इन्द्रियगुणोंका आभास है, उसमें वह स्वयं अपने सुखके लिये आसक्त नहीं है। पर वह सबका भरण करनेवाला अर्थात् अपने प्रति संयोग और लीलाके आनन्दकी तीव्र उत्कण्ठावाले, सभी प्रेमभक्ति-परायण उपासकोंके उस चरम लक्ष्यको पूर्ण करनेवाला है। इस प्रकार वह सच्चिदानन्द, रसरूप, परब्रह्म परमात्मा अपने लिये अनासक्त और निर्गुण होते हुए भी, प्रेमभक्ति-परायण आत्माओंको अपने दिव्य संयोग और लीला-विहारका आनन्द देनेके लिये गुणोंका भोक्ता भी है। यह उसकी अलौकिक सामर्थ्य और सर्वशक्तिमत्ता है।'

सर्व-इन्द्रियोंसे रहित होते हुए भी उस परब्रह्ममें सर्व-इन्द्रियगुणोंके व्यापारकी अपार अलौकिक दिव्य शक्ति और सामर्थ्यको अन्य श्रुतियोंमें भी व्यक्त किया गया है। यथा—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥
(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३। १९)

'वह परमात्मा हाथ-पैरोंसे रहित होते हुए भी समस्त वस्तुओंको ग्रहण करनेवाला तथा वेगपूर्वक सर्वत्र गमन करनेवाला है। नेत्रोंके बिना भी वह सब कुछ देखता है, कानोंके बिना भी वह सब कुछ सुनता है। वह समस्त जाननेवाली वस्तुओंको जानता है; पर उसको कोई नहीं जानता। अर्थात् उसका कोई पार नहीं पाता। उस परमात्माको महान् आदिपुरुष कहा जाता है।'

तुलसीकृत रामचरितमानसमें भी बालकाण्डके अन्तर्गत यही बात स्पष्ट है। यथा—बालकाण्ड ११७। ३-४ में—

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु कर्म करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
अस सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

इस प्रकार इस एकपाद्-विभूति जगत्के कण-कणमें व्याप्त होते हुए भी प्रकृतिपार त्रिपाद्-विभूति उस परब्रह्म परमात्माका निज धाम है। वहाँ व्यापक-व्याप्यका द्वैत न होकर इस परमधाममें वह अद्वितीय परब्रह्म मुक्तात्माओंमें बिना किसी व्यवधान (आवरण) के सतत प्रत्यक्ष रहता है। कैवल्यमोक्षके नैष्ठिक वहाँ अपने अहंको विलीन करके, सहज आत्मस्वरूपको प्राप्तकर 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' की चरितार्थताको प्राप्तकर ब्रह्मरूप हो जाते हैं। पर प्रेमभक्ति-के नैष्ठिक माधुर्य-उपासक उस परमधाममें उसी सहज-स्वरूपमें स्थित हो, देही-देहविभागरहित दिव्य मङ्गल विग्रहको प्राप्तकर, उस सत्-चित्-आनन्दघन, रसरूप, प्रेमस्वरूप, आनन्दस्वरूप, प्रकाशस्वरूप परमात्माके साथ स्वामी, सखा, प्रियतम आदि नित्य सम्बन्धोंमें उनके समस्त ऐश्वर्य, माधुर्य, सौन्दर्य, प्रकाश, प्रेम, आनन्द आदि दिव्य गुणोंका रसास्वादन करते हुए, अपने चरम-लक्ष्य भगवान्के साथ नित्य लीला-विहारको प्राप्त होते हैं। उपासनाके दृष्टिकोणसे उस नित्य लीला-विहारके अन्तर्गत भाविक उपासकगण साकेत, गोलोक, वैकुण्ठ आदि अपने इष्ट धामोंका भी लक्ष्य रखते हैं; वह भी उस अखिल विश्व विराट्मय परब्रह्ममें कोई असम्भव बात न होकर उनकी उपस्थिति भी उस अनन्त दिव्य लीलामय परमधाममें स्वाभाविकरूपसे है ही।

एक बात और समझ लेनेकी है। वह यह कि उस त्रिपाद्-विभूति, परमधामके सम्बन्धमें धाम और ब्रह्मपुर-जैसे स्थान-सूचक शब्दोंके प्रयोगसे कहीं यह भ्रम न हो जाय कि वह परमधाम इस प्रकृति-मण्डलके किसी विशाल देश अथवा महाद्वीप-जैसा कोई विस्तृत और विशाल स्थानविशेष ही होगा। किंतु वह कहीं बाहर न होकर प्रकृतिके स्थूल-सूक्ष्म-कारण तीनों आवरणोंके पार एवं जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंसे विलक्षण तुरीयरूप, देश और कालकी सीमासे परे, शून्यके पार शुद्ध अध्यात्म है और ध्यानकी गम्भीर एकाग्रतासे उत्पन्न समाधिकी स्थितिमें उपलब्ध अध्यात्मज्ञानके द्वारा ही अनुभवगम्य है। इसीका संकेत तुलसीकृत विनयपत्रिकाके अन्तर्गत भक्तिकी अलौकिक महिमासे सम्बन्धित एक पदके अन्तिम भागमें किया गया है। यथा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रघुपति-भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि बनि आई॥

× × ×

सकल दृस्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसय द्वैत बियोगी॥
लोक मोह भय हरष दिवस-निसि देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास यहि दसाहीन संसय निरमूल न जाहीं॥
(पद १६७)

इस प्रकार उपर्युक्त विस्तृत विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि परम पुरुष, परमात्माके इस एकपाद् विश्व-जगत्के कण-कणमें सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी, प्रकृतिपार उनके परमधामकी मान्यता श्रुति, पुराण एवं अन्य सद्ग्रन्थोंके प्रमाणके साथ-ही-साथ सात्त्विक तर्ककी दृष्टिसे भी सर्वथा युक्तिसङ्गत है।

अब अन्तमें प्रस्तुत विषयसे ही सम्बन्धित उपनिषद्के एक प्रसिद्ध मन्त्रको स्पष्टीकरणके सहित उपस्थित कर निबन्धको समाप्त किया जाता है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

परमधामके संदर्भमें, इस मन्त्रमें 'अदः' शब्दसे त्रिपाद्-विभूति परमधाम और 'इदम्' शब्दसे एकपाद्-विभूति विश्व-जगत्का लक्ष्य मानकर अर्थ करनेसे मन्त्रका तात्पर्यार्थ बहुत स्वाभाविकरूपमें सामने आ जाता है।

यथा—

ॐ; पूर्णमदः, अर्थात् वह त्रिपाद्ब्रह्म, परमपद अथवा परमधाम, शून्य न होकर सच्चिदानन्दघन परमात्माके ऐश्वर्य, माधुर्य, आकाश, सौन्दर्य, प्रेम, आनन्द आदि दिव्य गुणोंके वैभवसे 'पूर्ण' अर्थात् भरा हुआ है।

पूर्णमिदं, अर्थात् यह एकपाद्, विश्व-जगत् भी, अनेक प्रकारकी विचित्र त्रिगुणात्मिका सृष्टि और उसके कण-कणमें परमात्माकी व्याप्तिसे पूर्ण अर्थात् भरपूर है।

पूर्णात्पूर्णमुदच्यते, अर्थात् पूर्वोक्त पूर्णत्रिपाद् शुद्ध ब्रह्म, अथवा परमधामसे ही यह द्वितीय पूर्ण एकपाद् विश्व-जगत् भी पूर्ण अर्थात् भरपूर है; ऐसा कहा जाता है।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते। अर्थात् पूर्वोक्त पूर्ण, त्रिपाद् ब्रह्म अथवा परमधामके अर्थात् उससे उत्पन्न पूर्ण, विश्व-जगत्को निकाल लेने, तात्पर्य यह कि सृष्टिके रूपमें पृथक्रूपमें प्रकट कर देनेपर भी, वह त्रिपाद्ब्रह्म अथवा परमधाम, पूर्ण ही अर्थात् कुछ कम न होकर पूर्ववत् सम्पन्न और भरपूर ही बचा रहता है।

भगवत्तत्त्व एक है

निर्गुण निराकार हैं वे ही निर्विशेष वे ही पर-तत्त्व।
वही सगुण हैं निराकार सविशेष सृष्टि-संचालक तत्त्व॥
वही सगुण साकार दिव्य लीलामय शुद्धसत्त्व भगवान।
अगुण सगुण साकार सभी हैं एक अभिन्न रूप सुमहान्॥

कैवल्य मोक्ष और परमधामके अधिकारी

निर्गुण निराकारके साधक पाते हैं 'कैवल्य' महान्।
होते लीन ब्रह्ममें तत्क्षण क्षारोदधिमें लवण-समान॥
पर 'कैवल्य' नहीं दे पाता जिन प्रेमी भक्तोंको तोष।
मुक्त भक्त वे 'परमधाम'में जाकर पाते हैं परितोष॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोकको सुधारनेके उपाय

(लेखिका—श्रीमती प्रेमवती देवीजी शर्मा)

परलोकको सुधारनेके लिये मनुष्यको गीतोक्त दैवी सम्पत्तिका आश्रय लेना चाहिये। दैवी-सम्पत्तिके आश्रयसे मनुष्यका स्वभाव देवताके सदृश बन जाता है, जिससे वह सर्वदा-सभीमें 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की दृष्टि रखता है। ऐसा व्यक्ति सर्वदा, सभीके लिये हित-चिन्तनमें तत्पर रहता है और स्वप्नमें भी किसीके अनिष्टका चिन्तन नहीं करता। वह सर्वत्र ईश्वरकी व्यापकता और सभीमें ईश्वरका अस्तित्व समझता है। वह ईश्वरमें विश्वास और धर्ममें श्रद्धा-विश्वास रखता है। वह सभीमें समभाव और सुहृद्भाव रखता है, सभीके सुख-दुःखको अपना सुख-दुःख समझता है। वह सर्वदा परोपकारमें तत्पर रहता हुआ परमात्म-चिन्तनमें संलग्न रहता है। वह अपने पिता, माता एवं गुरुजनोंमें श्रद्धा-भक्ति रखता हुआ उनकी सेवा-शुश्रूषा करता है। वह इहलोककी तरह परलोकमें पूर्ण विश्वास रखता है। इस प्रकार जो लोग दैवी-गुणोंसे सम्पन्न रहते हैं, वे ही अपना इहलोक और परलोक दोनों सुधार लेते हैं। परलोकको सुधारनेके लिये बहुत-से उपाय हैं, जिनमेंसे कुछ उपाय लिखे जाते हैं। इनके पालन करनेसे अवश्य ही परलोकमें सुधार हो सकता है।

१—इहलोककी तरह परलोकको भी मानना चाहिये।

२—अच्छे और बुरे कर्मका फल अवश्य भोगना पड़ता है, विश्वास रखना चाहिये।

३—अपने पितरोंका श्राद्ध और तर्पण सदा करना चाहिये।

४—वेद और वेदोक्त कर्मोंमें श्रद्धा-विश्वास करना चाहिये।

५—पर-निन्दा और पर-हानिसे सर्वदा बचना चाहिये।

६—परद्रव्य और पराये हकसे सदा बचना चाहिये।

७—गीता, रामायण और श्रीमद्भागवतका अध्ययन—इनकी कथा सुननी चाहिये।

८—महापुरुषोंके चरित्र प्रतिदिन सुनने चाहिये और तदनुसार अपने चरित्रको बनाना चाहिये।

९—अपने-अपने बालकोंको ऐतिहासिक, पौराणिक और धार्मिक कथाएँ सुनानी चाहिये, जिनसे उनका चरित्र उज्ज्वल हो।

१०—अपना रहन-सहन, खान-पान सादगीसे परिपूर्ण और सात्त्विक होना चाहिये।

११—जो मनुष्य जिस आश्रममें रहे, वह उसके अनुरूप रहे और उसको उस आश्रमकी मर्यादाका पालन पूर्णतया करना चाहिये।

१२—प्रत्येक जातिको अपनी जातिके अनुसार धर्मका पालन करना चाहिये।

१३—अपने किये हुए धर्मकी और अपने किये हुए दानकी प्रशंसा न तो स्वयं करनी चाहिये और न दूसरेसे सुननी चाहिये।

१४—आत्मस्तुति या आत्मप्रशंसा न तो स्वयं करनी चाहिये और न दूसरेसे सुननी चाहिये।

१५—अपने आत्माको सब प्रकार उन्नतिशील बनानेका प्रयत्न करना चाहिये।

१६—पुरुषको परस्त्री और स्त्रीको परपुरुषसे सर्वदा बचना चाहिये।

१७—वेदादि सच्छास्त्रोंकी निन्दा, गुरुजनोंकी निन्दा, ब्राह्मणोंकी निन्दा, साधु-महात्माओंकी निन्दा, धार्मिकोंकी निन्दा और देवी-देवताओंकी निन्दा न तो स्वयं करनी चाहिये और न दूसरोंसे सुननी चाहिये।

१८—मनसा-वाचा-कर्मणा—किसीके आत्माको कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिये।

१९—धर्म करनेसे उत्तम लोककी प्राप्ति और अधर्म करनेसे अधम लोककी प्राप्ति होती है, इसमें विश्वास रखना चाहिये।

२०—धर्माचरणसे समस्त दुःखोंकी निवृत्ति होकर सुखकी प्राप्ति होती है, यह निश्चित समझना चाहिये।

२१—परमात्माकी सर्वव्यापकतापर पूर्ण विश्वास करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२–परमात्मा सबके शुभाशुभ कर्मोंको देखते हैं और तदनुसार वे सबको उचितानुचित दण्ड देते हैं, ऐसा विश्वास करना चाहिये।

२३–परमात्माकी कृपाके बिना कोई भी मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता, ऐसा दृढ़ विश्वास रखना चाहिये।

२४–परमात्माकी कृपासे ही प्रत्येक मनुष्यको संतति, धन, विद्या, बल, आरोग्य आदि सुखोंकी प्राप्ति होती है, यह विश्वास होना चाहिये।

२५–परमात्मा ही सर्वविध पूर्णतासे परिपूर्ण कहे गये हैं। अतः परमात्माकी कृपासे ही मनुष्य पूर्णताको प्राप्त कर सकता है, यह दृढ़ निश्चय रखना चाहिये।

२६–परमात्माकी भक्तिसे ही मनुष्य सर्वगुणसम्पन्न हो सकता है, इस बातको कभी भी नहीं भूलना चाहिये।

२७–परमात्माको ही समस्त संसारका कर्ता, धर्ता और संहर्ता समझना चाहिये।

२८–परमात्माको ही सबका रक्षक और पालक समझना चाहिये।

२९–परमात्माको सर्वदा स्मरण रखना चाहिये।

३०–सत्य ही परमात्माका असली स्वरूप है। अतः सत्यस्वरूप परमात्माका अथवा परमात्मस्वरूप सत्यका कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिये।

३१–पुरुषको अपने माता, पिता और गुरुको ईश्वरका स्वरूप समझना चाहिये और स्त्रीको अपने पतिको ईश्वरका स्वरूप समझना चाहिये।

३२–अपने गुणोंकी प्रशंसा और आत्माभिमान नहीं करना चाहिये।

३३–किसी भी जीवकी हिंसा कभी नहीं करनी चाहिये। जीव-हिंसाको महापाप समझना चाहिये।

३४–परमात्माकी भक्तिसे कभी भी विमुख नहीं होना चाहिये।

३५–प्राणिमात्रसे अपने परिवारकी तरह प्रेम करना चाहिये।

३६–ज्ञानका सम्पादन करना चाहिये। ज्ञानसे ही मुक्तिकी प्राप्ति होती है। ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होती, यह विश्वास रखना चाहिये।

३७–ज्ञानसे ही भगवान्‌के वास्तविक स्वरूपका परिचय मिलता है। अतः ज्ञान-सम्पादनार्थ सर्वदा प्रयत्नशील होना चाहिये।

३८–अपनी मातासे भी बढ़कर सबका कल्याण करनेवाली गोमाता है। अतः गोमाताकी सेवा और रक्षा सर्वदा करनी चाहिये।

३९–साधु, संत, महात्मा और विद्वान्‌का सर्वदा आदर करना चाहिये।

४०–सन्ध्योपासन, पञ्चमहायज्ञ, तीर्थयात्रा और अतिथि-सेवा सदा करनी चाहिये।

४१–भगवत्सेवार्थ धनिकोंको द्रव्यदान, श्रमिकोंको श्रमदान, विद्वानोंको विद्यादान और बलवानोंको बलदान करना चाहिये।

४२–अपनेसे सभीको श्रेष्ठ समझना चाहिये।

४३–दूसरे किसीका भी, भूलकर भी अपमान नहीं करना चाहिये।

४४–दूसरोंका दोष न देखकर अपना दोष देखना चाहिये।

४५–सबको सर्वदा सद्भाव और परोपकार-सम्पन्न होना चाहिये।

४६–अपने अमूल्य समयको सर्वदा प्रभु-भक्ति और सत्सङ्गमें लगाना चाहिये।

४७–सर्वदा मिथ्या-अभिमान और मिथ्या-प्रपञ्चोंसे बचना चाहिये।

४८–बड़ी-से-बड़ी आपत्ति आनेपर भी धैर्यका त्याग नहीं करना चाहिये।

४९–मानव-जीवन बार-बार नहीं मिलता। अतः इस अमूल्य जीवनका सर्वदा सदुपयोग करना चाहिये।

५०–प्रभुको सदा स्मरण रखना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मफलकी ईश्वरीय वैज्ञानिक विधिव्यवस्था

(लेखक—डा० श्रीचमनलालजी गौतम, सम्पादक 'युग-संस्कृति')

कर्मका अभिप्राय और नियम

कर्मका अर्थ है, जो किया जाय—क्रिया, उसकी परम्परा, नियम, जिसमें कार्य अपने कारणके पीछे चलता है। देवी-भागवत (१।५।७४) में भी कहा है—'बिना कारणके कार्यका होना कैसे सम्भव हो सकता है?' कार्य और कारणका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनुष्यके पुराने विचार जब साकाररूप धारण कर लेते हैं तो वे कर्म कहलाने लगते हैं। इसके साथ वर्तमान, भूत और भविष्य जुड़ा रहता है। प्रत्येक कर्मकी ये तीनों अवस्थाएँ होती हैं।

सृष्टिकी रचनाके गम्भीर अध्ययनसे ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका संचालन निश्चित नियमोंपर आधारित है, जिन्हें बदला नहीं जा सकता, अल्पज्ञताके कारण उन नियमोंको हम नहीं जानते और हानि उठाते हैं, उनके ज्ञान और पालनसे हम शक्ति प्राप्त करते हैं।

प्राकृतिक नियमोंका पालन करना ही प्रकृतिकी शक्तियों-को अपने वशमें करना है। नियमोंका पालन करनेवाला प्रकृतिको अपने अनुकूल बना लेता है और प्रतिकूल परिस्थितियोंको टाल सकता है। इसलिये चतुर व्यक्ति गतियोंका अध्ययन करता है। अनुकूल नियमोंका पालन करके वह शक्तियोंका सृजन करता है, विरोधी धाराको वह दबा देता है। जिस तरह दो रसायनोंको मिलानेसे एक दूसरा निश्चित रसायन बन जाता है, इसी तरह प्रकृतिके व्यवस्थित नियमोंकी अनुकूल धाराके अनुसार चलनेसे निश्चित परिणाम ही निकलते हैं, जिनका हमें पूर्वज्ञान होता है। इसलिये प्रतिकूल फलके उपस्थित होनेपर दैवयोगसे कहना या भाग्यपर दोषारोपण करना अज्ञानताके चिह्न हैं। जिस तरह दो और दो चार होते हैं, उसी तरह कर्मोंके निश्चित फल हमारे सामने आते हैं—भले ही उनके साकाररूप लेनेमें कुछ देर लग जाय। लोकमें हम दो विरोधी धाराएँ चलती देखते हैं—एक शक्तिकी और दूसरी अशक्तिकी। एक पंक्तिमें धनवान् खड़े हैं, दूसरीमें धनहीन; कुछके विशाल भवन खड़े हैं, कुछको झोंपड़ी भी प्राप्त नहीं है। जगत्के ऐश्वर्य पाकर भी उन्हें निरन्तर मानसिक अशान्ति रहती है और बहुत-से लोग उनसे विहीन होकर भी संतुष्ट रहते हैं। रोगोंसे कराहने और भाग्यको कोसनेवालोंको भी देखा जा सकता है। समाजका अभिशाप सहनकर हड्डियोंका ढाँचा बननेवालोंकी भी कमी नहीं है। परिस्थितियोंका रोना रोने-वाले और दुःखों तथा चिन्ताओंकी दावानलमें जलनेवालोंका भी अभाव नहीं है!

जो ज्ञानी हैं, वे जानते हैं कि जो भी दुःख या सुखके दृश्य हमारे सामने आ रहे हैं, उस प्रत्येक चित्रके पीछे उसका कारण निहित है। बिना कारणके कार्य सम्भव नहीं है। प्रकृति किसीका पक्षपात नहीं करती और न किसीका विरोध ही करती है; वह तो समताकी देवी है। उसके राज्यमें जो जैसा कार्य करता है, उसे वह वैसा ही फल देती है। जो नियम-व्यवस्था जानकर उसके अनुसार चलता है, उसे वह सुख देती है और नियम-भङ्ग करनेवालेको दुःख। फिर दुःख आनेपर रोना कैसा? दुःख आनेपर यह जानना चाहिये कि अवश्य हमने किसी प्राकृतिक नियमका उल्लङ्घन किया है। उसकी खोज करके उसका पालन करना आरम्भ कर देना चाहिये। वह दुःख सुखमें परिणत हो जायगा। प्रकृति उस व्यक्तिके लिये आज्ञाकारी सेवकका कार्य करती है, जो नियमोंका पालन करता है। वही शक्ति और सिद्धिके साम्राज्यका स्वामी बन पाता है, धन और वैभव-ऐश्वर्य भी उसे ही प्राप्त होते हैं, परिस्थितियाँ उसके आज्ञा-पालनकी प्रतीक्षा करती हैं, सफलता उसके स्वागतके लिये सदैव आरतीका थाल लिये खड़ी रहती है। अतः विकासका उत्तम सूत्र है—प्रकृतिके नियमोंका पालन करना। इसीसे सुख-शान्ति और शक्तिकी प्राप्ति सम्भव है। देवीभागवतमें कहा है—'ब्रह्मादि सभी इस नियमके वशमें हैं।' (४।२।८)। इसीसे संसारका सुव्यवस्थित संचालन हो रहा है।

कर्मफल और उसका नियन्त्रण

मनुष्य जैसे कार्य करता है, वैसे ही वह फल पाता है। बृहदारण्यकोपनिषद् (४।४।५) का मत है कि 'मनुष्यकी जैसी इच्छा होती है, वैसे ही उसके विचार बनते हैं। विचारोंके अनुसार ही उसके कर्म होते हैं। कर्मोंके अनुसार ही वह फल पाता है।' महाभारत, शान्तिपर्व (२०१।२३)-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Siddhanta eGangotri Foundation Chennai and eGangotri

में इसी तथ्यका समर्थन किया है—'कर्मफलमें आसक्त व्यक्ति जैसे कर्म करता है, वैसे ही शुभ और अशुभ फलों-को वह भोगता है।' इसलिये महाभारत, शान्तिपर्व (२९१। १२) में प्रेरणा दी है कि 'बीजके बिना किसी वस्तुकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है। सत्कर्मके बिना सुखकी उपलब्धि नहीं हो सकती। मनुष्य अच्छे कार्य करके ही परलोकमें सुख प्राप्त करता है।' परंतु गीता (५। १२) के अनुसार 'जब वह कर्मफलमें आसक्त हो जाता है तो बन्धनमें पड़ जाता है।'

कर्मोंकी जड़ विचारोंमें है और विचारोंका मूल मनमें है। कर्मोंकी रचना मनसे ही होती है। वही इनकी रचना करनेवाला है और वही इनका नियामक है। जैसे ब्रह्मा सृष्टिकी रचना करता है, वैसे ही मन विचारोंको बनाता है। मनुष्य जैसे विचार करता है, वह उसी धारामें बहता है, वैसा ही बन जाता है। छान्दोग्योपनिषद् (३। १४। १) में कहा है—'मनुष्यका निर्माण उसके अपने विचारोंके अनुसार ही होता है।' क्षुद्र या महान्, पापी या सत्कर्मी, संत या डाकू बनना उन्हींके अधिकारमें है। इनमें अपार शक्ति है। यह व्यक्तिको निम्न परिस्थितियों-से विकासकी उच्चतम अवस्थामें पहुँचानेमें समर्थ है। देवी-भागवत (९। २७। १८–२०) में कहा है—'जीव अपने शुभकर्मोंकी सहायतासे इन्द्रपद प्राप्त कर सकता है, वह हरिका सेवक हो सकता है, आवागमनके चक्रसे मुक्त हो सकता है, समस्त सिद्धियाँ प्राप्त करता हुआ अमरत्वपदतक पहुँच जाता है, सालोक्य मुक्तिका अधिकारी बन सकता है और वह देवता, राजा, शिव, गणेश और जो कुछ भी चाहे, वही बन सकता है। मनको अपूर्व शक्तियोंसे विभूषित किया गया है; परंतु उन शक्तियोंका लाभ मनुष्य तभी उठा सकता है, जब उसे प्रकृतिके नियमों-के अनुकूल चलाया जाय। यदि वह स्वच्छन्द होकर अपनी मनमानी करने लगे तो मनुष्यको नाना प्रकारके दुःखोंकी अग्निमें जलना पड़ता है, चारों ओरसे निराशाके बादल उमड़ने लगते हैं और वह अज्ञानान्धकारमें ठोकरें खाता है। जिस तरह भूत-प्रेतको वशमें करके उनसे इच्छानुसार कार्य कराये जाते हैं, उसी तरह मनको भी प्रकृतिके व्यवस्थित नियमोंके अनुसार चलाकर ही उसकी अपार सामर्थ्यका अनुकूल लाभ उठाया जा सकता है। इस तरहसे अपने भविष्यका निर्माण स्वयं किया जा सकता है और कर्मफलका नियमन भी किया जा सकता है।

दुःखको गले लगानेसे सुखका द्वार खुलता है—

दुःख आनेपर रोना-पीटना हमारी अज्ञानताका परिचायक है। इसका स्पष्ट अभिप्राय है—प्रकृतिके नियमोंकी जानकारीका अभाव। कोई भी दुःख बिना कारणके नहीं आ सकता, जैसे कोई भी पेड़ बिना बीजके नहीं उग सकता। कारणकी खोज किये बिना दैवको कोसना, भाग्यको फूहड़ बताना और नास्तिकताकी भावनाओंको उद्दीप्त करना अज्ञानताके प्रदर्शनके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जो भी बुरा कार्य किया गया है, प्रकृति उसका बुरा फल अवश्य देगी। यह उसका नियम है। उसके चरणोंमें गिड़गिड़ानेवाले-पर वह क्षमा नहीं करती। उसका स्पष्ट निर्देश है कि पिछले कर्मोंके फलोंको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करो और आगामी जीवनको नियमबद्ध करो। यही सुखका राजमार्ग है। जो आदेशका पालन नहीं करते हैं, वे अपने दुःखोंको और बढ़ाते हैं। प्रकृति हमारी शत्रु नहीं है। हमें दुःख देनेमें उसे प्रसन्नता नहीं होती। सभी प्राणी उसके लिये समान हैं। जो मार्गसे भटक गये हैं, उनके सुधारका कार्य ही उसे सौंपा गया है। बुरे कार्यका परिणाम सामने आनेसे उसके कारणकी जड़ कट जाती है। प्रकृति हमारे स्थायी सुखकी उत्तम व्यवस्थापिका है। वह हमारे दुःखोंके कारणोंको ही नष्ट करनेका प्रयत्न करती है; परंतु हम अज्ञानतावश उसे नहीं समझते और कृतज्ञताकी भावना व्यक्त करनेके स्थानपर उसे दुःख देनेके लिये कोसते हैं और उसे अपनी विरोधी और शत्रु घोषित कर देते हैं। क्या विडम्बना है! अपने हितैषीको हम अपना शत्रु समझने लगते हैं और कृतघ्नताकी पापमयी भावनाएँ उपज पड़ती हैं, जिनका दुष्परिणाम फिर हमें और भुगतना पड़ता है। नियम तो यही है कि जिसने हमारे प्रति उपकार किया है, हम उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करें और वैसा ही उपकारी कार्य उसके प्रति करनेका प्रयत्न करें, तभी संतुलनसे हमें शान्ति मिल सकती है। हम एक व्यक्तिसे लेते-ही-लेते रहें और दें नहीं, तो ऋण बढ़ता ही रहेगा। उसको देते रहनेसे ही दोनों पलड़े बराबर रहेंगे। हम इसके विपरीत कार्य करते हैं, इससे दुःखोंका बढ़ना स्वाभाविक ही है।

प्रकृति हमारे सुधारका निरन्तर प्रयत्न करती है और कार्य-कारणके संतुलनको बनाये रखना चाहती है; परंतु हम उस संतुलनको निरन्तर बिगाड़ते रहते हैं। दुःख उस संतुलनको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाये रखनेके लिये ही आते हैं। जब उन्हें स्वीकार नहीं किया जाता है और असंतोष, क्लेश, चिन्ताकी अग्नि जला दी जाती है तो इसका परिणाम यह होता है कि पहले कर्मके परिणामका निपटारा तो हुआ नहीं, दूसरा और उपज पड़ा। पहले ऋणको उतारा नहीं गया, दूसरा और आ गया। यह दुःख कम होनेके नहीं, बढ़नेके लक्षण हैं। दुःखोंको कम करनेकी कला यही है कि उन्हें प्रसन्नतापूर्वक भोगा जाय। यह तो निश्चित है कि उन्हें टाला नहीं जा सकता। वे आयेंगे ही। उन्हें धीर-वीर पुरुषकी तरह सहन करना चाहिये। उनसे डरना नहीं चाहिये, वरं वीरतासे उनका प्रेमालिङ्गन करना चाहिये। दुःख तो अपनी संतान हैं। अपनी संतान यदि प्रतिकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दें तो क्या उनको शत्रु समझ लिया जाता है? उनके दुष्कर्मोंको सहन ही किया जाता है। दुःखोंको भी हमने स्वयं उपजाया है और स्वयं ही अपने पास बुलाया है। निमन्त्रित व्यक्तिके साथ बुरा व्यवहार नहीं किया जाता। वह बुरा हो तो भी उसका सम्मान किया जाता है। वस्तुतः दुःखोंका ऊपरी रूप अवश्य भयावना होता है, परंतु उनका परिणाम सदैव सुखदायी सिद्ध होता है।

एक तो वे भोगोंका निपटारा करने आते हैं और हमें सुख-शान्तिके मार्गपर लाकर खड़ा कर देते हैं और दूसरे वे हमें संघर्षके लिये प्रेरित करते हैं, जिससे हमारी शक्तियोंका विकास होता है, प्रगतिके लिये बंद द्वार हमारे स्वागतके लिये खुल जाते हैं। दुःखके अभावमें व्यक्ति सुखमें लिप्त होकर विलासी, आलसी और निकम्मा हो जाता है। उसकी शक्तियाँ कुण्ठित हो जाती हैं, जिससे सफलताके खुले द्वार बंद हो जाते हैं। शक्तिके अभावमें चारों ओरसे विरोधी धाराओंके आक्रमण होने लगते हैं और जीवन एक दुःखालय बन जाता है। यह सब प्रकृतिके नियमोंके अनुसार न चलनेका ही परिणाम है। यदि दुःखोंको अभिशाप नहीं, वरदान माना जाय, यदि उन्हें ईश्वरीय कोपके बजाय ईश्वरीय कृपा समझा जाय तो मनका यह परिवर्तित दृष्टिकोण दुःखको दुःख अनुभव नहीं होने देगा। वह सदैव उनके स्वागतके लिये तैयार रहेगा तो पहाड़-जैसे दिखायी देनेवाले दुःख राईके समान हो जायँगे। दुःखोंसे डरना कायरता है। उन्हें झेलते हुए प्रसन्न रहना वीरता है। डरनेसे दुःख बढ़ते हैं, झेलनेसे वे कम होते हैं और उनके कारणका नाश होता है। अतः सुलझा हुआ दृष्टिकोण अपनानेमें ही बुद्धिमानी है और यही स्वस्थ-जीवन जीनेकी कला है। जो व्यक्ति इस कलाको जान जाते हैं, वे दुःखोंको अपना मित्र और साथी समझते हैं। डरनेवालोंको वे भूत लगते हैं। उन्हें मित्र बनानेमें ही हमें लाभ है। शत्रु तो सदैव विनाशकी ही सोचता है। अतः दुःखको अपना सहयोगी समझना ही जीवनकी उत्तम नीति है।

कर्मफल प्राकृतिक नियमोंपर आधारित है

कर्म-व्यवस्थामें प्रकृतिका गहरा हाथ है। वही इस पेचीदी व्यवस्थाको निष्पक्ष रीतिसे सम्पन्न करती है। शक्तिके लिये सिद्धान्तसे इस प्रक्रियाका जो सुसंचालन होता है, वह इस प्रकार है। विश्वमें प्रत्येक कार्यकी प्रतिक्रिया होती है। दीवालपर एक गेंदको हम जितनी शक्तिसे फेंकते हैं, उतनी ही शक्तिसे वह लौटकर आती है। गेंदका फेंकना क्रिया है और लौटकर आना उसकी प्रतिक्रिया है। पहाड़के नीचे या गुम्बदमें खड़े होकर हम आवाज देते हैं तो वह आवाज लौटकर आती है। आवाज देना क्रिया और उसका लौटकर आना प्रतिक्रिया है। पृथ्वीपर हम पैर रखते हैं, इससे दबाव पड़ता है, यह क्रिया है। पृथ्वी अपनी शक्तिसे पैरको ऊपर उठानेका प्रयत्न करती है, यह प्रतिक्रिया है। चूँकि ये दोनों शक्तियाँ समान होती हैं, इसलिये दोनों ओरके स्पष्ट दबावका पता नहीं चलता। यदि उनमें थोड़ी भी असमानता हो तो यह प्रतीत होने लगे। पैरका दबाव अधिक हो तो वह पृथ्वीमें उसी अनुपातसे धँस जायगा। जो भूमि पैरके दबावको उसी अनुपातसे वापस नहीं करती है, वहाँ पैरको भूमि नीचे जानेकी आज्ञा देती है। प्रकृतिका कार्य शक्तिका संतुलन बनाये रखना है।

एक व्यक्तिने दूसरेको गोली मार दी, एकने दूसरेका धन अपहरण कर लिया, एकने दूसरेके मकानमें आग लगा दी आदि। इन क्रियाओंसे विश्वकी शक्तियोंमें असमानता उत्पन्न हो गयी। प्राकृतिक कर्तव्य समानता लाना है। ईश्वरकी ओरसे सौंपा हुआ यह प्रमुख कार्य है। वह हर क्रियाकी प्रतिक्रियाको लाकर समताको स्थिर रखती है। जिस व्यक्तिने गोली मारी, गाली दी, धन अपहरण किया या आग लगायी, इन क्रियाओंकी प्रतिक्रियाओंको साकार-रूपमें लाकर ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वकी शक्तियोंमें समता स्थापित हो सकती है। प्रतिक्रियाके समय और आकारमें अन्तर हो सकता है; परंतु प्रकृतिके साम्राज्यमें यह नहीं हो सकता कि किसी क्रिया-की प्रतिक्रिया न हो। कर्म एक क्रिया है, फल उसकी प्रतिक्रिया है। यदि प्रकृतिके नियम निश्चित और अटल हैं तो कर्म और कर्मफलकी व्यवस्था भी स्वाभाविक और प्राकृतिक नियमोंके आधारपर अवस्थित है। इन नियमोंको बदलना किसी व्यक्ति-विशेषकी सामर्थ्यके बाहर है। इसीलिये कहा जाता है कि कर्मकी गति टाली नहीं जा सकती। जो भले या बुरे कर्म हमने किये हैं, उनका अच्छा या बुरा परिणाम हमें भुगतना ही पड़ेगा। इसमें कुछ भी संदेह नहीं।

अन्तर्मनद्वारा कर्मोंका सूक्ष्म चित्रण

हिंदू-धर्मशास्त्रोंमें प्राणियोंकी ८४ लाख योनियोंका वर्णन आता है। प्रत्येक प्राणी प्रतिदिन अनेक कर्म करता है। कुछ कर्म स्पष्ट और व्यक्त होते हैं, कुछ गुप्तरूपसे एकान्त स्थानपर किये होते हैं। कुछ मानसिकरूपसे होते हैं। इन सभी कर्मोंकी प्रतिक्रियाओंकी व्यवस्था प्रकृति कैसे करती होगी, यह भी एक उलझनभरी समस्या है। इसको बड़ी चतुराईसे सुलझाया गया है।

हमारे शरीरके संचालनके लिये विभिन्न प्रकारके यन्त्र लगाये गये हैं। कुछ स्थूल हैं और कुछ सूक्ष्म। फेफड़े, हृदय, यकृत्, आँतें आदि स्थूल हैं। मन सूक्ष्म है। मनके दो प्रकार होते हैं—एक बाहरी मन और दूसरा अन्तर्मन। आधुनिक मनो-वैज्ञानिकोंका कहना है कि 'जो कार्य भी हम करते हैं, उसका सूक्ष्म चित्रण हमारे अन्तर्मनमें हो जाता है।' इस चित्रणको आध्यात्मिक भाषामें रेखाएँ कहा जाता है। इस सिद्धान्तके प्रबल समर्थक हैं—विश्वप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डॉ० फ्रायड। अन्तर्मनपर हुए चित्रणको ही भाग्य-रेखाएँ कहा जाता है। वैज्ञानिकोंने इन रेखाओंका गहन अध्ययन किया है। डा० योवन्स इसमें अग्रणी रहे हैं। उन्होंने अपने अनुसंधान-के फलस्वरूप यह निष्कर्ष निकाला कि 'जब मस्तिष्कके भूरे चर्बीदार पदार्थको सूक्ष्मदर्शक यन्त्रोंसे देखा गया तो उसके एक-एक परमाणुपर असंख्य रेखाएँ अङ्कित हुई मिलीं। ये रेखाएँ क्रियाशील प्राणियोंमें अधिक और क्रियाशून्य प्राणियोंमें कम देखी गयीं।' विशेषज्ञोंका कहना है कि यही रेखाएँ उपयुक्त समयपर कर्मोंका साकार रूप धारण करती रहती हैं। इसे ही कर्मफल कहते हैं।

रेखाएँ कर्मोंका साकार रूप कैसे धारण कर सकती हैं, इस समस्याको आधुनिक विज्ञानने अनेक आविष्कारोंद्वारा सिद्ध कर दिया है। ग्रामोफोनके अध्ययनसे यह स्पष्ट हो जायगा। गाने-बजानेको विशेष यन्त्रोंकी सहायतासे रिकार्डमें भर लिया जाता है। यह ध्वनि रेखाओंके रूपमें ही होती है। इन ध्वनियोंका रेखाओंके रूपमें चित्रण सुरक्षित रहता है। जब भी चाहे, एक विशेष विधिसे सुईके आघातसे उसी ध्वनिको साकार रूप दे दिया जाता है। इसी तरहसे प्रत्येक शारीरिक एवं मानसिक कार्यका सूक्ष्म चित्रण अन्तर्मनके परमाणुओंपर होता रहता है और उपयुक्त अवसर पाकर आघात लगनेसे वह प्रकट हो जाता है। यह प्रकट होना उस क्रियाकी प्रतिक्रियाका स्थूलरूप है।

चित्रगुप्तकी निष्पक्ष कर्तव्यभावना

कर्मोंका सूक्ष्म रेखाङ्कन स्वचालित यन्त्रद्वारा ही अपने-आप होता रहता है। इस प्रतिक्रियाको समझानेके लिये चित्रगुप्तरूपी देवताका नाम रक्खा गया है कि वे प्राणियोंके सभी कर्मोंको निरन्तर बहीमें लिखते रहते हैं और मृत्युके पश्चात् जब प्राणीको यमराजके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो चित्रगुप्त ही उसके भले-बुरे कार्योंका लेखा-जोखा बताते हैं; उसीके अनुसार उसे फल मिलता है। यह चित्रगुप्त वास्तवमें हमारा अन्तर्मन—गुप्त मन ही है, जो निरन्तर हमारे कार्योंके चित्र लेता रहता है और उन्हें सुरक्षित रखता है। उपयुक्त समय आनेपर उन्हें प्रकट कर देता है।

इस गुप्त मनको 'ईश्वरीय शक्ति'की संज्ञा दी गयी है। यह सत्यनिष्ठ जजके समान है। यह किसीका पक्षपात नहीं करता। निष्पक्षरूपसे हर कार्यके चित्र लेते रहकर सुरक्षित रखते रहना ही इसका कार्य है। इन चित्रोंमें कोई परिवर्तन करनेकी सामर्थ्य किसीमें भी नहीं है। वहाँतक पहुँचका अधिकार किसीको भी नहीं दिया गया है। बाहरी मन तो तर्क-वितर्क करता है, झूठको सत्य और सत्यको झूठ सिद्ध करता रहता है। यदि उसे यह व्यवस्था दी जाती तो निश्चयरूपसे कार्यमें शिथिलता आ जाती। बाहरी मन पुण्योंको तो बढ़ा-चढ़ाकर दिखाता; परंतु पापोंको बिल्कुल दर्ज न करता। इससे ईश्वरीय न्याय खण्डित हो जाता और प्रकृतिका संतुलन बिगड़ जाता। परंतु ऐसा हुआ नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत्‌में तो पुलिस जिस मुकदमेको जैसे प्रस्तुत करे, जज उसे वैसे ही ग्रहण करता है। परंतु प्रकृतिका जज दोनों कार्योंको स्वयं करता है। इसलिये कर्मोंका विकृत रूप उपस्थित होनेका प्रश्न ही नहीं उठता। उनका विशुद्ध रूप ही सामने आता है। यह अन्तश्चेतनाका निष्पक्षभावसे सभी कर्मोंके समाचार अपनी लिपिमें लिखते रहनेका कार्य ही प्रकृतिकी प्रतिक्रियाओंको वास्तविक रूपमें व्यक्त करनेमें सहायक होता है।

असंख्य क्रियाओंको कैसे लिपिबद्ध किया जाता है, इसकी भी व्यवस्था कर दी गयी है। यह प्राकृतिक नियम है कि स्थूल वस्तुओंके लिये स्थानकी अपेक्षा रहती है। सूक्ष्म इस सीमाके बाहर है। लाखों विचार और भावनाएँ हमारे मनमें रहती हैं, समय पाकर वे उभर भी आती हैं। यदि उन्हें निवासके लिये स्थानकी आवश्यकता रहती तो मनमें उनका समा सकना सम्भव न था; परंतु यदि लाखों विचार और आ जायँ तो भी वहाँ समानेकी गुंजायश रहती है। चित्रगुप्तके खींचे हुए चित्र सूक्ष्म होते हैं। इसलिये सूक्ष्म-चित्रणके लिये स्थानकी कमीका कोई प्रश्न नहीं उठता।

सूक्ष्म भावनाओंका मूल्याङ्कन

चित्रगुप्तके दरबारमें स्थूल क्रियाओंका महत्त्व नहीं है। वहाँ तो सूक्ष्म भावनाओंकी जाँच होती है। गुप्त मन एक ऐसा यन्त्र है, जो भावनाओंकी माप-तोल करके ही अपना फैसला लिखता है। दान यश, कीर्ति और किसी अन्य स्वार्थके लिये भी दिया जा सकता है और विशुद्ध परमार्थ-भावनासे भी। सेवा दिखावेके लिये भी की जाती है और पवित्र भावनासे भी। धर्मप्रचारकमें स्वार्थ और परमार्थ दोनों छिपे रहते हैं। किसीको सहयोग देनेमें दोनों भावनाएँ कार्य करती हैं। संसार तो बाह्य रूपरेखाका मूल्याङ्कन करता है। एक लाख रुपया दान देनेवाले सेठकी कीर्ति चारों ओर फैल जायगी, बड़े-बड़े धर्मध्वजियोंको जनता भरपूर सम्मान देती है; परंतु उनके अन्तर्मनमें झाँककर देखनेकी क्षमता किसीमें नहीं है, ताकि उनकी भावनाओंकी जाँच कर सके। यह कार्य केवल गुप्त मन ही कर सकता है। उसके सामने स्थूल क्रियाका महत्त्व नहीं है। वह उच्च भावनाओंको श्रेष्ठ समझता है; भले ही स्थूलरूपसे उस क्रियाका कोई विशेष महत्त्व न हो। जैसे किसी बुढ़ियाने अपनी समस्त सम्पत्ति दस रुपये दानमें दे दिये हों। दस रुपयेके दानका कोई विशेष महत्त्व नहीं है; परंतु जिस त्याग-भावनासे उसने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है, ईश्वरके दरबारमें इसीका मूल्य अधिक लगाया जाता है और इसकी जिम्मेदारी गुप्त मनको सौंपी गयी है, जो निष्पक्षभावसे दिन-रात इस कार्यको करता रहता है। इसमें भूल-चूककी कुछ भी सम्भावना नहीं है। इन बाह्य-क्रियाओंसे स्थूल-नेत्रोंको तो धोखा दिया जा सकता है; परंतु दिव्यदृष्टिकी महान् शक्तियोंसे सम्पन्न मनकी आँखोंमें धूल नहीं डाली जा सकती। वहाँ स्थूल, सूक्ष्म, गुप्त या मानसिक जैसे भी हम कार्य करते हैं, उनको उसी रूपमें, उसी तरह लिख लिये जानेकी व्यवस्था है। अतः इस सुव्यवस्थाके अनुसार प्राणीकी समस्त क्रियाओंका सूक्ष्म रेखाङ्कन होता रहता है और प्रकृतिके संतुलनको बनाये रखनेके लिये प्रतिक्रियारूपमें आघात लगनेपर उपयुक्त अवसर पाकर वह साकाररूपमें प्रकट होती रहती है। कर्मफलकी ये समस्त प्रक्रियाएँ वैज्ञानिक रीतिसे स्वयमेव संचालित होती रहती हैं।

मानवको उद्बोधन

अरे अज्ञानी मानव! अमर आत्माका निषेध करनेवाले ग्रन्थोंका आधार लेकर तुम पथ-भ्रष्ट हो गये हो। अब इस मोह-निद्रासे जग जाओ। अपने नेत्र खोलो। तुमने तो अपने लिये नरकमें स्थान सुरक्षित कर लिया है और उस अन्धतम प्रदेशमें जानेके लिये सीधा पारपत्र प्राप्त कर लिया है। स्वर्गद्वार बंद करनेवाले निकृष्ट ग्रन्थोंके पढ़नेसे ऐसा हुआ है। इन्हें अग्निको भेंट कर दो तथा गीता एवं उपनिषदोंको पढ़ो। नियमित जप, कीर्तन तथा ध्यान करो और इस भाँति अपने बुरे संस्कारोंको आमूल नष्ट कर डालो। तभी तुम विनाशसे सुरक्षित रह सकोगे।

—स्वामी शिवानन्द सरस्वती*

* 'डिवाइन लाइफ सोसायटी' ऋषिकेशके 'मरणोत्तर जीवन और पुनर्जन्म'नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थके ब्रह्मलीन लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पापोंके अनुसार नारकीय गति

जीवको माताके गर्भमें अनेक जन्मोंकी बातें याद आती हैं, जिससे व्यथित होकर वह इधर-उधर फिरता और निर्वेद (खेद) को प्राप्त होता है। अपने मनमें सोचता है—'अब इस उदरसे छुटकारा पानेपर मैं फिर ऐसा कार्य नहीं करूँगा, बल्कि इस बातके लिये चेष्टा करूँगा कि मुझे फिर गर्भके भीतर न आना पड़े।' सैकड़ों जन्मोंके दुःखोंका स्मरण करके वह इसी प्रकार चिन्ता करता है। तत्पश्चात् कालक्रमसे वह अधोमुख जीव जब नवें या दसवें महीनेका होता है, तब उसका जन्म हो जाता है। गर्भसे निकलते समय वह प्राजापत्य वायुसे पीड़ित होता है और मन-ही-मन दुःखसे व्यथित हो रोते हुए गर्भसे बाहर आता है। तदनन्तर वह जीव पहले तो बाल्यावस्थाको प्राप्त होता है, फिर क्रमशः कौमारावस्था, यौवनावस्था और वृद्धावस्थामें प्रवेश करता है। इसके बाद मृत्युको प्राप्त होता और मृत्युके बाद फिर जन्म लेता है। इस प्रकार इस संसारचक्रमें वह घटीयन्त्र (रहट) की भाँति घूमता रहता है। कभी स्वर्गमें जाता है, कभी नरकमें। कभी इस संसारमें पुनः जन्म लेकर अपने कर्मोंको भोगता है, कभी कर्मोंका भोग समाप्त होनेपर थोड़े ही समयमें मरकर परलोकमें चला जाता है। कभी स्वर्ग और नरकको प्रायः भोग चुकनेके बाद थोड़ेसे शुभाशुभ कर्म शेष रहनेपर फिर इस संसारमें जन्म लेता है—

नारकी जीव घोर दुःखदायी नरकोंमें गिराये जाते हैं। पुण्यवान् स्वर्गमें जाते हैं। स्वर्गमें पहुँचनेके बादसे ही मनमें इस बातकी चिन्ता बनी रहती है कि पुण्यक्षय होनेपर हमें यहाँसे नीचे गिरना पड़ेगा। साथ ही नरकमें पड़े हुए जीवोंको देखकर महान् दुःख होता है कि कभी हमें भी ऐसी ही दुर्गति भोगनी पड़ेगी।

यमराजके आदेशानुसार पापी जीव यातना-शरीर प्राप्त करके विविध नरकोंमें गिराये जाते हैं। फिर, विभिन्न दुःखद योनियोंमें भेजे जाते हैं। उनका कुछ विवरण यह है—

एक भयानक नरकका नाम है—'रौरव'। इस रौरव नरककी लंबाई-चौड़ाई दो हजार योजनकी है। यह एक गड्ढेके रूपमें है। यह नरक अत्यन्त दुस्तर है। इसमें भूमिके बराबरतक अङ्गारोंके ढेर बिछे हैं। इसके भीतरकी भूमि दहकते हुए अङ्गारोंसे बहुत तपी होती है। सारा नरक तीव्र वेगसे प्रज्वलित होता रहता है। यमराजके दूत पापी प्राणीको इसीके भीतर डाल देते हैं। वह धधकती आगसे जब जलने लगता है, तब इधर-उधर दौड़ता है; किंतु पग-पगपर उसके पैर जल-भुनकर राख होते रहते हैं। वह दिन-रातमें कभी एक बार पैर उठाने और रखनेमें समर्थ होता है। इस प्रकार सहस्रों योजन पार करनेपर वह इस नरकसे छुटकारा पाता है।

(यातना-देह उस देहको कहते हैं, जो नरककी पीड़ा भुगतानेको दिया जाता है। इसमें जलने-कटने आदिकी भयानक पीड़ा होती है, पर यह जल या कटकर नष्ट नहीं होता। पीड़ा भोगनेके लिये ज्यों-का-त्यों बना रहता है।)

अब 'महारौरव'का वर्णन सुनिये—इसका विस्तार सब ओरसे बारह हजार योजन है। वहाँकी भूमि ताँबेकी है, जिसके नीचे आग धधकती रहती है। उसकी आँचसे तपकर वह सारी ताम्रमयी भूमि चमकती हुई बिजलीके समान ज्योतिर्मयी दिखायी देती है। उसकी ओर देखना और स्पर्श आदि करना अत्यन्त भयंकर है। यमराजके दूत हाथ और पैर बाँधकर पापी जीवको उसके भीतर डाल देते हैं और वह लोटता हुआ आगे बढ़ता है। मार्गमें कौवे, बगुले, बिच्छू, मच्छर और गिद्ध उसे जल्दी-जल्दी नोच खाते हैं। उसमें जलते समय वह व्याकुल हो-होकर छटपटाता है और बारंबार 'अरे बाप! अरे मैया! हाय मैया! हा तात!' आदिकी रट लगाता हुआ करुण क्रन्दन करता है, किंतु उसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती। इस प्रकार उसमें पड़े हुए जीव, जिन्होंने दूषित बुद्धिके कारण पाप किये हैं, दस करोड़ वर्ष बीतनेपर उससे छुटकारा पाते हैं।

इसके सिवा 'तम' नामक एक दूसरा नरक है, जहाँ स्वभावसे ही कड़ाकेकी सर्दी पड़ती है। उसका विस्तार भी महारौरवके ही बराबर है; किंतु वह घोर अन्धकारसे आच्छादित रहता है। वहाँ पापी मनुष्य सर्दीसे कष्ट पाकर भयानक अन्धकारमें दौड़ते हैं और एक-दूसरेसे भिड़कर लिपटे रहते हैं। जाड़ेके कष्टसे काँपकर कटकटाते हुए उनके दाँत टूट जाते हैं। भूख-प्यास भी वहाँ बड़े जोरकी लगती है। इसी प्रकार अन्यान्य उपद्रव भी होते रहते हैं। ओलोंके साथ बहनेवाली भयंकर वायु शरीरमें लगकर हड्डियोंको चूर्ण किये देती है और उनसे जो मज्जा तथा रक्त गिरता है, उसीको वे क्षुधातुर प्राणी खाते हैं। एक-दूसरेके शरीरसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सटकर वे परस्पर रक्त चाटा करते हैं। इस प्रकार जबतक पापोंका भोग समाप्त नहीं हो जाता, तबतक वहाँ भी मनुष्योंको अन्धकारमें महान् कष्ट भोगना पड़ता है।

इससे भिन्न एक 'निकृन्तन' नामक नरक है। उसमें कुम्हारकी चाकके समान बहुतसे चक्र निरन्तर घूमते रहते हैं। यमराजके दूत पापी जीवोंको उन चक्रोंपर चढ़ा देते और अपनी अंगुलियोंमें कालसूत्र लेकर, उसीके द्वारा उनके पैरसे लेकर मस्तकतक प्रत्येक अङ्ग काटा करते हैं। फिर भी उन पापियोंके प्राण नहीं निकलते। उनके शरीरके सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं, किंतु फिर वे जुड़कर एक हो जाते हैं। इस प्रकार पापी जीव हजारों वर्षोंतक वहाँ काटे जाते हैं। यह यातना उन्हें तबतक दी जाती है, जबतक कि उनके सारे पापोंका नाश नहीं हो जाता।

अब 'अप्रतिष्ठ' नामक नरकका वर्णन सुनिये, जिसमें पड़े हुए जीवोंको असह्य दुःखका अनुभव करना पड़ता है। वहाँ भी वे ही कुलालचक्र होते हैं। साथ ही दूसरी ओर घटीयन्त्र भी बने होते हैं, जो पापी मनुष्योंको दुःख पहुँचानेके लिये बनाये गये हैं। वहाँ कुछ मनुष्य उन चक्रोंपर चढ़ाकर घुमाये जाते हैं। हजारों वर्षोंतक उन्हें बीचमें विश्राम नहीं मिलता। इसी प्रकार दूसरे पापी घटीयन्त्रोंमें बाँध दिये जाते हैं; ठीक उसी तरह, जैसे रहटमें छोटे-छोटे घड़े बँधे होते हैं। वहाँ बँधे हुए मनुष्य उन यन्त्रोंके साथमें जब घूमने लगते हैं तो बारंबार रक्त वमन करते हैं। उनके मुखसे लार गिरती है और नेत्रोंसे अश्रु झरते रहते हैं। उस समय उन्हें इतना दुःख होता है, जो जीवमात्रके लिये असह्य है।

अब 'असिपत्रवन' नामक अन्य नरकका वर्णन सुनिये। वहाँ एक हजार योजनतककी भूमि प्रज्वलित अग्निसे आच्छादित रहती है तथा ऊपरसे सूर्यकी अत्यन्त भयंकर एवं प्रचण्ड किरणें ताप देती हैं, जिनसे उस नरकमें निवास करनेवाले जीव सदा संतप्त होते रहते हैं। उसके बीचमें एक बहुत ही सुन्दर वन है, जिसके पत्ते चिकने जान पड़ते हैं; किंतु वे सभी पत्ते तलवारकी तीखी धारके समान हैं। उस वनमें बड़े बलवान् कुत्ते भूँकते रहते हैं, जो दस हजारकी संख्यामें सुशोभित होते हैं। उनके मुख और दाढ़ें बड़ी-बड़ी होती हैं। वे व्याघ्रोंके समान भयानक प्रतीत होते हैं। वहाँकी भूमिपर जो आग बिछी होती है, उससे जब दोनों पैर जलने लगते हैं, तब वहाँ गये हुए पापी जीव 'हाय माता! हाय पिता!' आदि कहते हुए अत्यन्त दुःखित होकर कराहने लगते हैं। उस समय तीव्र पिपासाके कारण उन्हें बड़ी पीड़ा होती है, फिर अपने सामने शीतल छायासे युक्त असिपत्रवनको देखकर वे प्राणी विश्रामकी इच्छासे वहाँ जाते हैं। उनके वहाँ पहुँचनेपर बड़े जोरकी हवा चलती है, जिससे उनके ऊपर तलवारके समान तीखे पत्ते गिरने लगते हैं। उनसे आहत होकर वे पृथ्वीपर जलते हुए अङ्गारोंके ढेरमें गिर पड़ते हैं। वह आग अपनी लपटोंमें सर्वत्र व्याप्त हो सम्पूर्ण भूतलको चाटती हुई-सी जान पड़ती है। इसी समय अत्यन्त भयानक कुत्ते वहाँ तुरंत ही दौड़ते हुए आते हैं और रोते हुए पापियोंके सब अङ्गोंको टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं।

अब इससे भी अत्यन्त भयंकर 'तप्तकुम्भ' नामक नरक है। वहाँ चारों ओर आगकी लपटोंसे घिरे हुए बहुत-से लोहेके घड़े मौजूद हैं, जो खूब तपे होते हैं। उनमेंसे किन्हींमें तो प्रज्वलित अग्निकी आँचसे खौलता हुआ तेल भरा रहता है और किन्हींमें तपाये हुए लोहेका चूर्ण होता है। यमराजके दूत पापी मनुष्योंको उनका मुँह नीचे करके उन्हीं घड़ोंमें डाल देते हैं। वहाँ पड़ते ही उनके शरीर टूट-फूट जाते हैं। शरीरकी मज्जाका भाग गलकर पानी हो जाता है। कपाल और नेत्रोंकी हड्डियाँ चटककर फूटने लगती हैं। भयानक गृध्र उनके अङ्गोंको नोच-नोचकर टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं और फिर उन टुकड़ोंको उन्हीं घड़ोंमें डाल देते हैं। वहाँ वे सभी टुकड़े सीझकर तेलमें मिल जाते हैं। मस्तक, शरीर, स्नायु, मांस, त्वचा और हड्डियाँ—सभी गल जाती हैं। तदनन्तर यमराजके दूत करछुलसे उलट-पुलटकर खौलते हुए तेलमें उन पापियोंको अच्छी तरह मथते हैं।

पौंसलेपर पानी पीनेको जाती हुई गौओंको जो वहाँ जानेसे रोक देता है और वे प्यासी रह जाती हैं, इससे उसको भयंकर नरकमें जाना पड़ता है, जो आगकी लपटें निकलती रहनेके कारण घोर दुःखदायी होता है। उसमें लोहेकी-सी चोंचवाले पक्षी रहते हैं, जो पापियोंको चोंचसे नोचा करते हैं। वहाँ पापियोंके शरीरको कोल्हूमें पेरनेके लिये उनके मुखसे रक्तकी धारा बहने लगती है, जिससे रक्त-कीचड़ जमा रहता है। तप्तबालुका और तप्तकुम्भ नरकोंमें उसे संतप्त किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो नीच मनुष्य काम और लोभके वशीभूत हो, दूषित दृष्टि एवं कलुषित चित्तसे परायी स्त्री और पराये धनपर आँखें गड़ाते हैं, उनकी दोनों आँखोंको ये वज्रतुल्य चोंचवाले पक्षी निकाल लेते हैं और पुनः-पुनः इनके नये नेत्र उत्पन्न हो जाते हैं। इन पापी मनुष्योंने जितने निमेषतक पापपूर्ण दृष्टिपात किया है, उतने ही हजार वर्षोंतक ये नेत्रकी पीड़ा भोगते हैं। जिन लोगोंने असत्-शास्त्रका उपदेश किया है तथा किसीको बुरी सलाह दी है, जिन्होंने शास्त्रका उलटा अर्थ लगाया है, मुँहसे झूठी बातें निकाली हैं तथा वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरुकी निन्दा की है, उन्हींकी जिह्वाको ये वज्रतुल्य चोंचवाले भयंकर पक्षी उखाड़ते हैं और वह जिह्वा नयी-नयी उत्पन्न होती रहती है। जितने निमेषतक उनके द्वारा जिह्वाजनित पाप हुआ होता है, उतने वर्षोंतक उन्हें यह कष्ट भोगना पड़ता है। जो नराधम दो मित्रोंमें फूट डालते हैं; पिता-पुत्रमें, स्वजनोंमें, यजमान और पुरोहितमें, माता और पुत्रमें, सङ्गी-साथियोंमें तथा पति और पत्नीमें वैर करवा देते हैं, वे ही ये आरेसे चीरे जा रहे हैं। आप इनकी दुर्गति देखिये। जो दूसरोंको ताप देते, उनकी प्रसन्नतामें बाधा पहुँचाते, पंखे, हवादार स्थान, चन्दन और खसकी टट्टी आदिका अपहरण करते हैं तथा निर्दोष व्यक्तियोंको भी प्राणान्तक कष्ट पहुँचाते हैं, वे ही ये अधम पापी हैं, जो तपायी हुई बालूमें पड़कर कष्ट भोगते हैं। जो अपनी अनुचित बातोंसे साधु पुरुषोंके मर्मपर आघात पहुँचाता है, उसको ये पक्षी अत्यन्त पीड़ा देते हैं। इन्हें ऐसा करनेसे कोई रोक नहीं सकता। जो झूठी बातें कहकर और विपरीत धारणा बनाकर किसीकी चुगली खाते हैं, उनकी जिह्वाके इस प्रकार तेज किये हुए छूरोंसे दो टुकड़े कर दिये जाते हैं।

जिन्होंने उद्दण्डतावश माता, पिता तथा गुरुजनोंका अनादर किया है, वे ही यहाँ पीब, विष्ठा और मूत्रसे भरे हुए गड्ढोंमें नीचे मुख करके डुबाये जा रहे हैं। जो लोग देवता, अतिथि, अन्यान्य प्राणी, भृत्यवर्ग, अभ्यागत, पितर, अग्नि तथा पक्षियोंको अन्नका भाग दिये बिना ही स्वयं भोजन कर लेते हैं, वे ही दुष्ट यहाँ पीब और गोंद चाटकर रहते हैं। उनका शरीर तो पहाड़के समान विशाल होता है, किंतु मुख सूईकी नोकके बराबर रहता है। जो लोग पङ्क्तिमें बिठाकर भोजनमें भेद करते हैं, उन्हें यहाँ विष्ठा खाकर रहना पड़ता है। जो लोग एक समुदायमें साथ-साथ आये हुए अर्थार्थी मनुष्यको निर्धन जानकर छोड़ देते और अकेले अपना अन्न भोजन करते हैं, वे ही यहाँ थूक और खखार भोजन करते हैं। जिन्होंने स्वेच्छा-पूर्वक जूठे मुँह होकर भी सूर्य-चन्द्रमा और तारोंपर दृष्टिपात किया है, उनकी आँखोंमें आग रखकर यमराजके दूत उसे धौंकते हैं। गौ, अग्नि, माता, ब्राह्मण, ज्येष्ठ भ्राता, पिता, बहिन, कुटुम्बकी स्त्री, गुरु तथा बड़े-बूढ़ोंका जो जान-बूझकर पैरोंसे स्पर्श करते हैं, उनके दोनों पैर यहाँ आगमें तपायी हुई लोहेकी बेड़ियोंसे जकड़ दिये जाते हैं और उन्हें अङ्गारोंके ढेरमें खड़ा कर दिया जाता है। उसमें उनके पैरसे लेकर घुटनेतकका भाग जलता रहता है। जो नराधम अपने कानोंसे गुरु, देवता, द्विज और वेदोंकी निन्दा सुनते हैं और उसे सुनकर प्रसन्न होते हैं, उन पापियोंके कानोंमें ये यमराजके दूत आगमें तपायी हुई लोहेकी कीलें ठोंक देते हैं। जो लोग क्रोध और लोभके वशमें होकर पोंसले, देवमन्दिर, ब्राह्मणके घर तथा देवालयके सभाभवन तुड़वाकर नष्ट करा देते हैं, उनके यहाँ आनेपर ये अत्यन्त कठोर स्वभाववाले यमदूत इन तीखे शस्त्रोंसे शरीरकी खाल उधेड़ लेते हैं। उनके चीखने-चिल्लानेपर भी ये दया नहीं करते। जो मनुष्य गौ, ब्राह्मण तथा सूर्यकी ओर मुँह करके मल-मूत्रका त्याग करते हैं, उनकी आँतोंको कौए गुदामार्गसे खींचते हैं। जो किसी एकको कन्या देकर फिर दूसरेके साथ उसका विवाह कर देता है, उसके शरीरमें बहुत-से घाव करके उसे खारे पानीकी नदीमें बहा दिया जाता है। जो मनुष्य दुर्भिक्ष अथवा संकटकालमें अपने पुत्र, भृत्य, पत्नी आदि तथा बन्धुवर्गको अकिंचन जानकर भी त्याग देता और केवल अपना पेट पालनेमें लग जाता है, वह भी जब इस लोकमें आता है तो यमराजके दूत भूख लगनेपर उसके मुखमें उसके ही शरीरका मांस नोचकर डाल देते हैं और वही उसे खाना पड़ता है। जो अपनी शरणमें आये हुए तथा अपनी ही दी हुई वृत्तिसे जीविका चलानेवाले मनुष्योंको लोभवश त्याग देता है, वह भी यमदूतोंद्वारा इसी प्रकार कोल्हूमें पेरे जानेके कारण यन्त्रणा भोगता है। जो मनुष्य अपने जीवनभरके किये हुए पुण्यको धनके लोभसे बेच डालते हैं, वे इन्हीं पापियोंकी तरह चक्कियोंमें पीसे जाते हैं। किसीकी धरोहर हड़प लेनेवाले लोगोंके सब अङ्ग रस्सियोंसे बाँध दिये जाते हैं और उन्हें दिन-रात कीड़े, बिच्छू तथा सर्प काटते-खाते रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें लोहेके बड़े-बड़े काँटोंसे भरा हुआ सेमरका विशाल वृक्ष है। इसपर चढ़ाये हुए पापियोंके सब अङ्ग विदीर्ण हो जाते हैं और अधिक मात्रामें गिरते हुए खूनसे ये लथ-पथ रहते हैं। नरश्रेष्ठ! परायी स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट करनेवाले लोग यमराजके दूतोंद्वारा धरियामें रखकर गलाये जाते हैं। जो उद्दण्ड मनुष्य गुरुको नीचे बिठाकर और स्वयं ऊँचे आसनपर बैठकर अध्ययन करता अथवा शिल्पकलाकी शिक्षा ग्रहण करता है, वह इसी प्रकार अपने मस्तकपर शिलाका भारी भार ढोता हुआ क्लेश पाता है। यमलोकके मार्गमें वह अत्यन्त पीड़ित एवं भूखसे दुर्बल रहता है और उसका मस्तक दिन-रात बोझ ढोनेकी पीड़ासे व्यथित होता रहता है। जिन्होंने जलमें मूत्र, थूक और विष्ठाका त्याग किया है, वे ही लोग इस समय थूक, विष्ठा और मूत्रसे भरे हुए दुर्गन्धयुक्त नरकमें पड़े हैं। ये लोग जो भूखसे व्याकुल होनेपर एक-दूसरेका मांस खा रहे हैं, इन्होंने पूर्वकालमें अतिथियोंको भोजन दिये बिना ही भोजन किया है। जिन लोगोंने अग्निहोत्री होकर भी वेदों और वैदिक अग्नियोंका परित्याग किया है, वे ही ये पर्वतोंकी चोटीसे बारंबार नीचे गिराये जाते हैं। पतितोंका दिया हुआ दान लेने, उनका यज्ञ कराने तथा प्रतिदिन उनकी सेवामें रहनेसे मनुष्य पत्थरके भीतर कीड़ा होकर सदा निवास करता है। जो कुटुम्बके लोगों, मित्रों तथा अतिथिके देखते-देखते अकेले ही मिठाई उड़ाता है, उसे यहाँ जलते हुए अङ्गारे चबाने पड़ते हैं। पीठ-पीछे बुराई करनेवाले पापी लोगोंकी पीठका मांस भयंकर भेड़िये प्रतिदिन खाया करते हैं।

उपकार करनेवाले लोगोंके साथ कृतघ्नता करनेवाले भूखसे व्याकुल तथा अन्धे, बहरे और गूँगे होकर भटकते हैं। मित्रोंकी बुराई करनेवाले तप्तकुम्भ नरकमें गिराये जाते हैं। इसके बाद चक्कियोंमें पीसे जाते, फिर तपायी हुई बालूमें भूने जाते हैं। उसके बाद कोल्हूमें पेरे जाते हैं। तत्पश्चात् असिपत्रवनमें यातना दी जाती है। फिर आरेसे यह चीरा जाता है। तदनन्तर कालसूत्रसे काटा जाता है। इसके बाद और भी बहुत-सी यातनाएँ इसे भोगनी पड़ती हैं। सुवर्णकी चोरी करनेवाले, ब्रह्महत्यारे, शराबी तथा गुरुपत्नीगामी— ये चारों प्रकारके महापापी नीचे और ऊपर धधकती हुई आगके बीचमें झोंककर सब ओरसे जलाये जाते हैं। इस अवस्थामें उन्हें कई हजार वर्षोंतक रहना पड़ता है। तदनन्तर वे मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होते तथा कोढ़ एवं यक्ष्मा आदि रोगोंसे युक्त रहते हैं। वे मरनेके बाद फिर नरकमें जाते हैं और पुनः उसी प्रकार नरकसे लौटनेपर रोगयुक्त जन्म धारण करते हैं। इस प्रकार कल्पके अन्ततक उनके आवागमनका यह चक्र चलता रहता है। गौकी हत्या करनेवाला मनुष्य तीन जन्मोंतक नीच-से-नीच नरकोंमें पड़ता है। अन्य सभी उपपातकोंका फल भी ऐसा ही निश्चय किया गया है। नरकसे निकले हुए पापी जिन-जिन पातकके कारण जिन-जिन योनियोंमें जन्म लेते हैं, उनका कुछ विवरण इस प्रकार है—

पतितसे दान लेनेपर ब्राह्मण गदहेकी योनिमें जाता है। पतितका यज्ञ करानेवाला द्विज नरकसे लौटनेपर कीड़ा होता है। अपने गुरुके साथ छल करनेपर उसे कुत्तेकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है तथा गुरुकी पत्नी और उनके धनको मन-ही-मन लेनेकी इच्छा होनेपर भी उसे निस्सन्देह यही दण्ड मिलता है। माता-पिताका अपमान करनेवाला मनुष्य उनके प्रति कटुवचन कहनेसे मैनाकी योनिमें जन्म लेता है। भाईकी स्त्रीका अपमान करनेवाला कबूतर होता है और उसे पीड़ा देनेवाला मनुष्य कछुएकी योनिमें जन्म लेता है। जो मालिकका अन्न तो खाता है, किंतु उसका अभीष्ट साधन नहीं करता, वह मोहाच्छन्न मनुष्य मरनेके बाद वानर होता है। धरोहर हड़पनेवाला मनुष्य नरकसे लौटनेपर कीड़ा होता है और दूसरोंका दोष देखनेवाला पुरुष नरकसे निकलकर राक्षस होता है। विश्वासघाती मनुष्यको मछलीकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। जो मनुष्य धान, जौ, तिल, उड़द, कुलथी, सरसों, चना, मटर, कलमी धान, मूँग, गेहूँ, तीसी तथा दूसरे-दूसरे अनाजोंकी चोरी करता है, वह नेवलेके समान बड़े मुँहका चूहा होता है। परायी स्त्रीके साथ सम्भोग करनेसे मनुष्य भयंकर भेड़िया होता है। उसके बाद क्रमशः कुत्ता, सियार, बगुला, गिद्ध, साँप, सूअर तथा कौएकी योनिमें जन्म लेता है।

यज्ञ, दान और विवाहमें विघ्न डालनेवाला तथा कन्याका दुबारा दान करनेवाला पुरुष कीड़ा होता है। जो देवता, पितर और ब्राह्मणोंको दिये बिना ही अन्न-भोजन करता है, वह नरकसे निकलनेपर कौआ होता है। जो पिताके समान पूजनीय बड़े भाईका अपमान करता है, वह नरकसे निकलनेपर क्रौंच पक्षीकी योनिमें जन्म लेता है। ब्राह्मणकी स्त्रीके साथ सहवास करनेवाला शूद्र भी कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है। यदि उसने ब्राह्मणीके गर्भसे संतान उत्पन्न कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी हो तो वह काठके भीतर रहनेवाला कीड़ा होता है। उसके बाद क्रमशः सूअर, कृमि, विष्ठाका कीड़ा और चाण्डाल होता है। जो नीच मनुष्य अकृतज्ञ एवं कृतघ्न होता है, वह नरकसे निकलनेपर कृमि, कीट, पतंग, बिच्छू, मछली, कौआ, कछुआ और चाण्डाल होता है। शस्त्रहीन पुरुषकी हत्या करनेवाला मनुष्य गदहा होता है। स्त्री और बालकोंकी हत्या करनेवालेका कीड़ेकी योनिमें जन्म होता है। भोजनकी चोरी करनेसे मक्खीकी योनिमें जाना पड़ता है। साधारण अन्न चुरानेवाला मनुष्य नरकसे छूटनेपर बिल्लीकी योनिमें जन्म लेता है। तिलचूर्णमिश्रित अन्नका अपहरण करनेसे मनुष्यको चूहेकी योनिमें जाना पड़ता है। घी चुरानेवाला नेवला होता है। नमककी चोरी करनेपर जलकागकी और दही चुरानेपर कीड़ेकी योनिमें जन्म होता है। दूधकी चोरी करनेसे बगुलेकी योनि मिलती है। जो तेल चुराता है, वह तेल पीनेवाला कीड़ा होता है। मधु चुरानेवाला मनुष्य डाँस और पूआ चुरानेवाला चींटी होता है। हविष्यान्नकी चोरी करनेवाला बिसतुइया होता है।

लोहा चुरानेवाला पापात्मा कौआ होता है। काँसेका अपहरण करनेसे हारीत (हरियल) पक्षीकी योनि मिलती है और चाँदीका बर्तन चुरानेसे कबूतर होना पड़ता है। सुवर्णका पात्र चुरानेवाला मनुष्य कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है। रेशमी वस्त्रकी चोरी करनेपर चकवेकी योनि मिलती है तथा रेशमका कीड़ा भी होना पड़ता है। हरिणके रोएँसे बना हुआ वस्त्र, महीन वस्त्र, भेड़ और बकरीके रोएँसे बना हुआ वस्त्र तथा पाटम्बर चुरानेपर तोतेकी योनि मिलती है। रूईका बना हुआ वस्त्र चुरानेसे क्रौंच और अग्निके अपहरणसे बगुला अथवा गदहा होना पड़ता है। अङ्गराग और पत्तियोंका साग चुरानेवाला मोर होता है। लाल वस्त्रकी चोरी करनेवालेको चकवेकी योनि मिलती है। उत्तम सुगन्धयुक्त पदार्थोंकी चोरी करनेपर छछूंदर और वस्त्रका अपहरण करनेपर खरगोशकी योनिमें जाना पड़ता है। फल चुरानेवाला नपुंसक और काष्ठकी चोरी करनेवाला घुन होता है। फूल चुरानेवाला दरिद्र और वाहनका अपहरण करनेवाला पङ्गु होता है। साग चुरानेवाला हारीत और पानीकी चोरी करनेवाला पपीहा होता है। जो भूमिका अपहरण करता है, वह अत्यन्त भयंकर रौरव आदि नरकोंमें जाकर वहाँसे लौटनेके बाद क्रमशः तृण, झाड़ी, लता, बेल और बाँसका वृक्ष होता है। फिर थोड़ा-सा पाप शेष रहनेपर वह मनुष्यकी योनिमें आता है। जो बैलके अण्डकोषका छेदन करता है, वह नपुंसक होता है और इसी रूपमें इक्कीस जन्म बितानेके पश्चात् वह क्रमशः कृमि, कीट, पतङ्ग, पक्षी, जलचर जीव तथा मृग होता है। इसके बाद बैलका शरीर धारण करनेके बाद चाण्डाल और डोम आदि घृणित योनियोंमें जन्म लेता है। मनुष्य-योनिमें वह पङ्गु, अन्धा, बहरा, कोढ़ी, राजयक्ष्मासे पीड़ित तथा मुख, नेत्र एवं गुदाके रोगोंसे ग्रस्त रहता है। इतना ही नहीं, उसे मिरगीका भी रोग होता है तथा वह शूद्रकी योनिमें भी जन्म लेता है। गाय और सोनेकी चोरी करनेवालोंकी दुर्गतिका भी यही क्रम है। गुरुको दक्षिणा न देकर उनकी विद्याका अपहरण करनेवाले छात्र भी इसी गतिको प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य किसी दूसरेकी स्त्रीको लाकर दूसरेको देता है, वह मूर्ख नरककी यातनाओंसे छूटनेपर नपुंसक होता है। जो मनुष्य अग्निको प्रज्वलित किये बिना ही उसमें हवन करता है, वह अजीर्णताके रोगसे पीड़ित एवं मन्दाग्निकी बीमारीसे युक्त होता है। (मार्कण्डेयपुराणके आधारपर)

रूमीकी आकाङ्क्षा

"मैं (पाषाणादि) स्थावरदेहमें मरकर उद्भिज्ज (पेड़-पौधा) बना; उद्भिज्ज देहमें मरकर पशुके रूपमें प्रकट हुआ; पशुदेहमें मरकर मनुष्य बना। तब फिर मैं किससे डरूँगा ? मरकर मैंने कब नीची गति प्राप्त की ? इसके बाद मैं मरकर देव-देह प्राप्त करूँगा। वहाँसे भी आगे बढ़नेकी आशा करूँगा। तदनन्तर 'उसकी मुख-शोभा'के अतिरिक्त अन्य सब चीजें नष्ट हो जायँगी। मैं देवताओंसे भी आगे बढ़ जाऊँगा। वाणी उस स्थितिका वर्णन नहीं कर सकती। मन उसका चिन्तन नहीं कर सकता।

(जलालुद्दीन रूमी—'मशनवी')

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् कालस्वरूप

(लेखक—श्रीपरशुरामजी पाण्डेय बी० ए०)

भगवान् समस्त प्राणियोंके नियामक हैं। उनकी लीला एवं उनके संकल्पोंका रहस्य जीव किसी साधनसे नहीं जान सकता। भगवत्कृपासे ही जीव उनके सम्बन्धमें यत्किंचित् जान पाता है। भगवान् अप्रमेय हैं। कालोंके भी काल हैं। उनकी प्रत्येक लीला अलौकिक होती है। भगवान् मन-वाणीके विषय नहीं हैं। फिर भी यथाशक्ति कवियों, भक्तों एवं प्रेमियोंने उनका गुणानुवाद किया है। वेदोंने 'नेति-नेति' कहकर भगवान्के गुणों एवं लीलाओंका वर्णन किया है। भगवान् ब्रह्मारूपसे संसारकी सृष्टि करते हैं, विष्णुरूपसे पालन करते हैं एवं रुद्ररूपसे संहार करते हैं। यहाँपर उनके इसी संहारकारी रूपका—कालस्वरूपका किंचित् दिग्दर्शन कराया जाता है।

भगवान्में सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य आदि अनेकानेक गुण हैं।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥

(विष्णुपुराण ६। ५। ७४)

सभी गुणोंके निवास-स्थान भगवान् ही हैं। भगवान्ने अपनी लीला-हेतु ही सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि की है। उनके लिये सृष्टि, पालन एवं संहार—तीनों ही प्रकारकी लीलाएँ समान हैं। जिस प्रकार बालक मिट्टीका घरौंदा बनाते हैं, उससे खेलते हैं और अन्तमें उसे नष्ट कर देते हैं; उन्हें तीनों ही क्रियाओंमें बराबर आनन्द आता है। उसी प्रकार ये भगवान्की तीनों लीलाएँ हैं। भगवान् मङ्गलमय हैं। उनकी हरएक लीला मङ्गलमयी है। अतएव उनकी संहारकारी लीलामें भी मङ्गल गुप्तरूपसे भरा हुआ है। (वास्तवमें वे लीलामय ही लीला भी बनते हैं।)

श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण भगवान्ने अपने प्रिय, सखा अर्जुनको अपने विराट्स्वरूपका दर्शन कराया था, उसमें भगवान्ने अपने कालस्वरूपका दिग्दर्शन कराया—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः॥

(गीता ११। ३२)

श्रीभगवान् बोले—'मैं लोकोंको नाश करनेवाला बढ़ा हुआ महाकाल हूँ। इस समय इन लोकोंको नष्ट करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। इसलिये जो प्रतिपक्षियोंकी सेनामें स्थित योद्धा लोग हैं, वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे अर्थात् तेरे युद्ध न करनेपर भी इन सबका नाश हो जायगा।'

दसवें अध्यायमें भगवान्ने अपनी विभूतियोंका वर्णन करते हुए बतलाया कि 'गणना करनेवालोंमें मैं काल हूँ, अक्षरोंमें अकार, समासोंमें द्वन्द्व तथा अक्षयकाल अर्थात् कालका भी महाकाल मैं ही हूँ—**'अहमेवाक्षयः कालो···।'**

भगवान् पृथ्वीका भार कालस्वरूप होकर ही उतारा करते हैं। भगवान् सत्य-संकल्प हैं। जीवके संकल्पकी सफलता भगवदिच्छापर है। भगवान् लोकमें अपनी इच्छाके विपरीत भी कार्य करते देखे जाते हैं; परंतु उन्हें उसमें सफलता नहीं मिलती। उदाहरणार्थ—भगवान् श्रीकृष्ण लोकसंग्रहके निमित्त पाण्डवोंके दूत बनकर हस्तिनापुर गये। दुर्योधनादि कौरवोंको समझानेका प्रयास किया, परंतु दुर्योधन संधि करनेको तैयार नहीं हुआ। त्रिभुवनमें कौन ऐसा कार्य है, जिसे भगवान् करना चाहें और उसमें सफलता न मिले। परंतु भगवान्की इच्छा इसके विपरीत थी। भगवान् युद्धद्वारा भू-भार उतारना चाहते थे। हुआ भी ऐसा ही। १८ अक्षौहिणी सेनामें पाण्डव पक्षमें—भगवान् श्यामसुन्दर, पाँचों पाण्डव एवं सात्यकि तथा कौरव पक्षमें—कृपाचार्य, कृतवर्मा एवं अश्वत्थामाके अतिरिक्त सभी काल भगवान्के मुखमें चले गये। भगवान्के कालस्वरूपका दर्शन कर अर्जुनके सदृश भगवद्भक्त भी भयभीत होकर धैर्य एवं शान्तिको खो देते हैं तो फिर दुष्टोंके लिये तो कहना ही क्या है।

महाभारत-युद्धके पश्चात् पृथ्वीका भार हल्का हो गया था और सभी लोग यही सोचते भी थे; परंतु भगवान्ने सोचा कि 'यद्यपि लोगोंकी दृष्टिमें भू-भार उतर गया है; लेकिन मेरे विचारसे अभी पूर्णतया पृथ्वीका भार हल्का नहीं हुआ है; क्योंकि अभी ये यदुवंशी बचे हुए हैं। ये मेरे आश्रित हैं, अतः इनको कोई पराजित भी नहीं कर सकता। अब मुझे ही किसी प्रकारसे इन्हें नष्ट करना है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

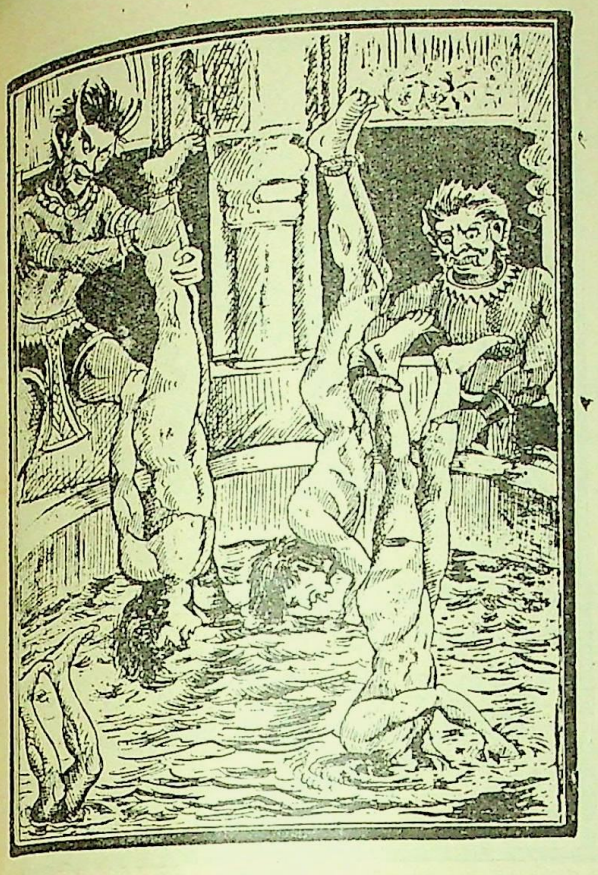

माता, पिता, गुरुजनोंका अपमान करनेवालोंकी गति
[पृष्ठ ६६१]

गुरु, देवता और वेदोंकी निन्दासे प्रसन्न होनेवालोंकी गति [पृष्ठ ६६१]

आताथ आदका न देकर अकेले खानेवालोंकी गति
[पृष्ठ ६६२]

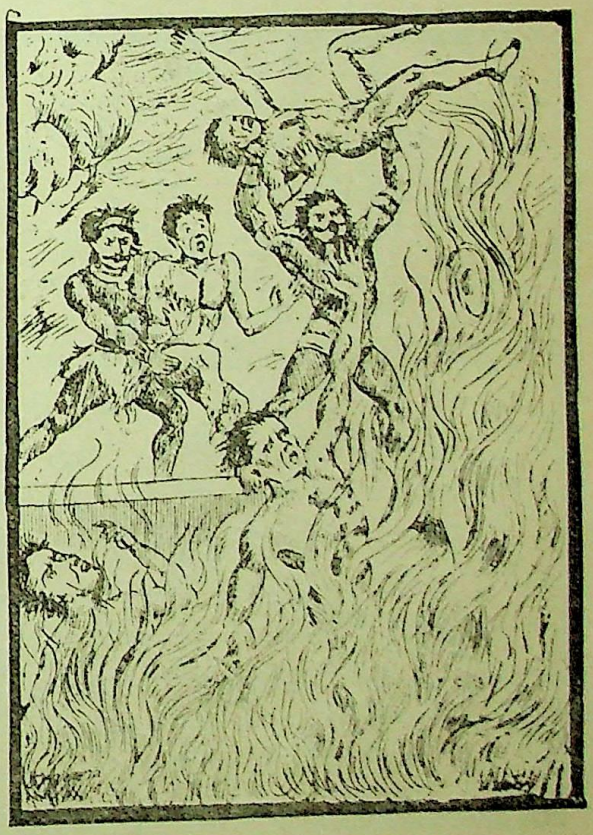

सर्पचोर, शराबी, ब्रह्महत्यारे आदिकी गति
[पृष्ठ ६६२]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामीका अन्न खाकर उसका काम न करनेवालोंकी गति [पृष्ठ ६६२]

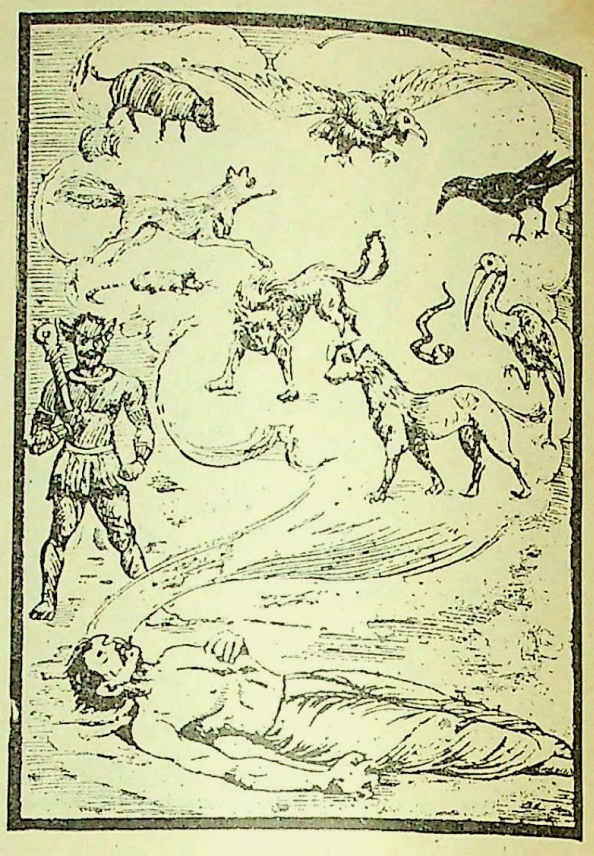

पर-स्त्रीगामियोंकी गति [पृष्ठ ६६२]

कृतघ्न आदिकी गति [पृष्ठ ६६३]

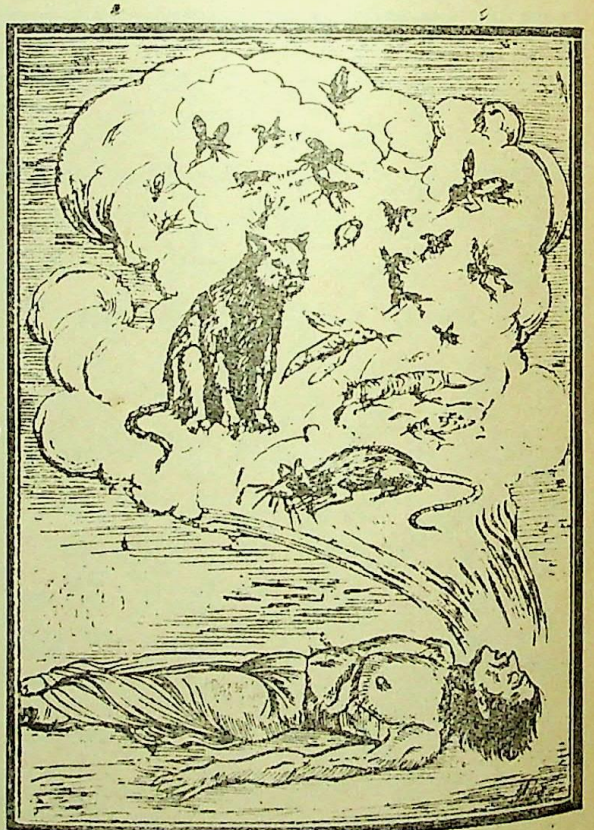

गोमांसादिको खाने वालोंकी गति [पृष्ठ ६६३]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा विचारकर भगवान्‌ने ब्राह्मणोंके शापके बहाने यदुवंशियोंमें ही फूट डालकर उन्हें कालके हवाले कर दिया। भगवान्‌ने श्रीमद्भागवतमें कहा है—

अहं गतिर्गतिमतां कालः कलयतामहम्।
गुणानां चाप्यहं साम्यं गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः॥
(११। १६। १०)

'गतिशील पदार्थोंमें मैं गति हूँ। अपने अधीन करनेवालोंमें मैं काल हूँ। गुणोंमें मैं उनकी मूलस्वरूपा साम्यावस्था हूँ और जितने भी गुणवान् पदार्थ हैं, उनमें उनका स्वाभाविक गुण हूँ।'

भगवान् कालके भी आधार हैं—महाकाल। भगवान्‌के समान तो कोई है ही नहीं, फिर उनसे बढ़कर कौन हो सकता है? भगवान् स्वयं ही प्रकृति, पुरुष और दोनोंके संयोग-वियोगके हेतु काल हैं। रामचरितमानसमें माल्यवन्त राक्षसराज रावणको सचेत करते हुए भगवान्‌के काल-स्वरूपका बोध कराता है—

कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध।
सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कवन बिरोध॥
(लंकाकाण्ड ४८ ख)

इसी प्रकार भगवान्‌के अन्य स्वरूपोंके साथ-साथ भगवान्‌के कालस्वरूपका वर्णन सभी शास्त्रों, पुराणों, महाभारत एवं रामचरितमानसके अनेकानेक स्थलोंपर आता है। यदि मनुष्य भगवान्‌के कालस्वरूपका स्मरण करता रहे तो वह बहुत-सी बुराइयोंसे बच सकता है तथा उसका निश्चित ही कल्याण हो सकता है। कंसने भगवान्‌के इसी स्वरूपका स्मरण करते हुए भगवत्प्राप्ति की। वह चौबीस घंटे—उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते, काम करते, विचार करते समय उन्हीं भगवान्‌का चिन्तन करता था। उसने भगवान्‌का स्मरण प्रेमसे नहीं, वैरसे ही किया, परंतु उसका कल्याण हो गया। नारायणभक्तने कहा है—

दो बातन कौं भूल मत, जो चाहै कल्यान।
'नारायन' एक मौत को, दूजे श्रीभगवान॥

सुकरात और परलोक

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

'मुझे राज्यके विशेष सम्मानित व्यक्तियों और कतिपय हितचिन्तकोंकी तरह जन-कोषसे खर्च देकर नगर-भवनमें भोजन करनेका अधिकार प्राप्त होना चाहिये।'

प्राण-दण्ड सुन लेनेके बाद उसके स्थानपर दूसरे दण्डका प्रस्ताव रखनेकी आज्ञा मिलनेपर सुकरातने इतनी तिक्त बात कह दी। इसका कारण यही था कि उन्हें अपने शरीरका तनिक भी मोह नहीं था। वे अच्छी प्रकार समझते थे और उनका दृढ़ विश्वास था कि आत्मा अनश्वर एवं अमर है। भौतिक देहके नष्ट हो जानेपर उसकी स्थितिमें कोई अन्तर नहीं होता। वे प्रायः कहा करते कि 'तुम्हें इस बातसे लज्जा नहीं आती कि तुम केवल धन, यश और सम्मानका अर्जन करनेमें ही व्यस्त हो तथा ज्ञान, सत्य और आत्माकी पूर्णताके लिये प्रयत्नशील होनेकी तुम्हें तनिक भी चिन्ता नहीं है?'

न्यायालयमें अपने भाषणके अन्तमें सुकरातने अत्यन्त स्पष्ट शब्दोंमें जन-समाजसे प्रार्थना की कि 'जब मेरे पुत्र सयाने हो जायँ तो उन्हें भी दण्ड देना तथा उन्हें भी इसी प्रकार हैरान करना जैसा कि मैं दूसरोंको करता रहा हूँ, जब कि आप उन्हें सम्पत्ति-संग्रहमें संलग्न पायें तथा विशुद्ध आचरणसे बढ़कर अन्य किसी प्रकारकी चेष्टा करते देखें। इतना ही नहीं, यदि वे यह समझ बैठें कि वे अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं, जब वास्तवमें वे इस योग्य न हों तो अवश्य ही आप लोग उन्हें प्रताड़ित करें जैसा कि मैं आप लोगोंको करता आया हूँ। आप उन्हें बेशक इस बातका उलाहना दें कि उन्हें कर्तव्यको पहचानना चाहिये और अपनेको बड़ा नहीं समझना चाहिये, वास्तवमें वे निरे अयोग्य ही हों।'

सुकरात दृढ़तासे कहते कि "हर व्यक्तिकी विशेषताके पीछे छिपे 'अविशेष' को देखनेका प्रयत्न किया जाय तो मानव-जीवनके शाश्वत सत्यको ढूँढ़ा जा सकता है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिसे राग-द्वेष, वेष-भूषा, आचार-विचारमें कितना ही भिन्न हो, सब व्यक्तियोंमें एक ही समान तत्त्व विद्यमान है, जो कि उनके विशेषणोंके आडम्बरोंसे आवृत रहता है, किंतु उसे ढूँढ़ा जा सकता है। यह 'समानता तत्त्व' मानवका आत्मा है। इसे जानना ही मानव-जीवनके शाश्वत सत्यको जान लेना है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुकरात प्रायः अपने मिलनेवालों और नगर-निवासियोंसे बार-बार आग्रह करते कि उन्हें आत्मज्ञानके लिये सम्पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। उन्होंने स्वयं कहा है—'मैं तुमसे हर एकके पास जाकर यही अनुरोध करता हूँ कि पहले अपने आत्माको उन्नत और पवित्र करो; फिर संसारी बातों, धन आदिपर ध्यान दो।'

वे आगे और बल देकर कहते कि 'तुम्हें अपने बारेमें तबतक चिन्ता नहीं करनी चाहिये, जबतक कि तुम अपने आत्माकी चिन्तासे निवृत्त न हो जाओ और जबतक कि अपनेको तुम भरसक बुद्धिमान् और परिपूर्ण न बना लो।'

ज्ञान-प्राप्त करनेके लिये मृत्युसे नहीं डरना चाहिये। सुकरात कहा करते—'जो व्यक्ति मरनेसे डरता है, वह ज्ञानका प्रेमी नहीं है, किंतु अपने शरीरका प्रेमी है। वह कदाचित् धन या नामका या दोनोंका ही प्रेमी है।'

× × ×

'मैं समझता हूँ कि शरीरके साथ अत्यन्ताधिक रहनेसे और उसके लिये अधिक चिन्ता करनेसे उसका स्वभाव शारीरिक हो जाता है। वह उसमें बिंध जाता है।'

मृत्यु डरनेकी वस्तु नहीं, वह तो थके यात्रीको विश्राम देनेके लिये आती है। वह शान्ति एवं सुख देनेवाली है। सुकरात कहते हैं—'जब हम मृत्युका भय करते हैं, तब हम अपनेको उससे डरनेके लिये बुद्धिमान् समझते हैं; किंतु वास्तवमें हम मृत्युके बारेमें कुछ नहीं जानते; क्योंकि मनुष्यके लिये सबसे भलाई मृत्यु ही है। किंतु वे उससे डरते हैं और यह समझते हैं कि मानो मृत्यु ही सबसे बड़ी विपत्ति है और यह समझना कि मृत्यु भयंकर विपत्ति है, क्या लज्जाजनक मूर्खतासे कम है?'

सुकरातकी तर्कबुद्धि अत्यन्त विलक्षण थी। संसारमें जन्म लेनेवाले प्राणीकी मृत्यु निश्चित है और मृत्युके अनन्तर कालान्तरमें पुनर्जीवन प्राप्त होता है। इस विषयको कारागारमें उन्होंने अपने प्रिय शिष्य सीविसको प्रमाणोंद्वारा बताया था। उन्हींके शब्दोंमें—

सुकरात—आत्मा मृत्युके बाद दूसरे लोकमें रहता है या नहीं, इस प्रश्नपर हमें इस भाँति विचार करना चाहिये। यह एक पुराना विश्वास है कि मृत्युके बाद आत्मा दूसरे लोकमें रहता है और लौटकर मरे हुए शरीरसे वह फिर उत्पन्न होगा। किंतु यदि यह सत्य हो कि मरे हुएसे जीवित पैदा होते हैं तो हमारा आत्मा मरनेके बाद अवश्य दूसरे लोकमें रहता है, नहीं तो वह फिर उत्पन्न न होता। यदि हम यह प्रमाणित कर सकें कि मरे हुएसे जीवित उत्पन्न होता है तो हमारा कथन प्रमाणित हो जायगा; किंतु यदि हम ऐसा न कर सकेंगे तो हम किसी दूसरे तर्कका आश्रय ग्रहण करेंगे।

सीविस—यह ठीक है।

सुकरात—इस बातको हल करनेकी सबसे सरल रीति यह है कि हम इस बातको देखें कि केवल मनुष्य ही नहीं, किंतु सारे जीव और वृक्षके ऊपर जो कि उत्पन्न होनेवाली वस्तु हैं, यह सिद्धान्त लागू है या नहीं? क्या वह वस्तु, जिसकी विपरीत (विरुद्ध) भी कोई वस्तु है, अपनी विपरीत वस्तुसे उत्पन्न होती है या नहीं? विरुद्ध या विपरीत कहनेसे मेरा मतलब ऐसी चीजोंसे है—जैसे माननीय और नीच, न्यायी और अन्यायी आदि। अब हमें यह देखना चाहिये कि क्या यह आवश्यक है कि ऐसी वस्तु अपनी वस्तुहीसे उत्पन्न हो? उदाहरणके लिये जो वस्तु बड़ी हो जाती है, वह पहले अवश्य ही छोटी रहती है और पीछे बड़ी होती है।

सीविस—हाँ।

सुकरात—और यदि कोई वस्तु छोटी हो जाती है तो पहले वह बड़ी रहती है और तब छोटी होती है।

सीविस—हाँ, यह ठीक है।

सुकरात—और फिर जो अधिक कमजोर होता है, वह पहले अधिक शक्तिशाली होता है और जो अधिक तेज हो जाता है, वह अवश्य ही पहले धीमा होगा।

सीविस—निस्संदेह।

सुकरात—फिर बुराई भलाईसे उत्पन्न होती है और अधिक न्याय अधिक अन्यायसे उत्पन्न होता है।

सीविस—ठीक है।

सुकरात—तो यह स्पष्ट है कि सब वस्तु अपने विरुद्धसे उत्पन्न होती है।

सीविस—बहुत ठीक।

सुकरात—और प्रत्येक विरुद्ध वस्तु, जब एक दशासे दूसरी दशामें पहुँचती है और फिर उस दशासे अपनी पहली दशामें पहुँचती है, तब क्या उसे दो अवस्थाओंमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर जाना नहीं पड़ता ? बड़ेसे छोटे और छोटेसे बड़े होनेमें वस्तुको घटना और बढ़ना पड़ता है और हम कहते हैं कि वह घटती या बढ़ती है। क्या हम यह नहीं कहते ?

सीविस–हाँ, यह ठीक है।

सुकरात–और इसी तरह फिर विभाग और जोड़ है, सर्दी और गरमी है। असलमें हम इस नियमको इतने लंबे-चौड़े शब्दोंमें नहीं कहते, तथापि क्या यह नियम विश्वव्यापी नहीं है कि विरुद्ध विरुद्धहीसे उत्पन्न होते हैं और एक दशासे दूसरी दशामें जाते समय उसे उत्पन्न होनेकी अवस्थामें होकर जाना होता है ?

सीविस–हाँ, ऐसा ही होता है।

सुकरात–अच्छा, तो जिस तरह जाग्रत्-अवस्थाकी उलटी अवस्था निद्रावस्था है, क्या वैसे ही जीवनकी भी कोई उलटी अवस्था है ?

सीविस–अवश्य है।

सुकरात–वह क्या है ?

सीविस–मृत्यु।

सुकरात–तब यदि जीवन और मृत्यु दोनों एक दूसरेके उलटे हैं, तो वे एक दूसरेसे उत्पन्न होते हैं। ये अवस्था दो (भिन्न अवस्था) हैं और इन दोनों अवस्थाओंके बीचमें दो उत्पन्न होनेकी अवस्थाएँ हैं। ऐसा है कि नहीं ?

सीविस–निस्संदेह।

सुकरात–अब मैं अभी कहे हुए दो विरुद्ध जोड़ोंमेंसे एक विरुद्ध जोड़ और उसके उत्पन्न होनेकी अवस्थाका वर्णन करूँगा और तुम मुझे दूसरे जोड़को समझाना। नींदका उलटा है जागना। नींदसे ही जाग्रत्-अवस्था उत्पन्न होती है। उसके उत्पन्न होनेकी रीति इस प्रकार है कि पहले सोना, फिर जागना। अब समझ गये ?

सीविस–अच्छी तरहसे।

सुकरात–अब तुम हमसे जीवन और मृत्युके विषयमें कहो। जीवन मृत्युका उलटा है कि नहीं ?

सीविस–हाँ ! है।

सुकरात–तो एक-दूसरेसे उत्पन्न होते हैं ?

सीविस–हाँ।

सुकरात–तो जीवितसे क्या उत्पन्न होता है ?

सीविस–मरा हुआ।

सुकरात–और मरे हुएसे क्या उत्पन्न होता है ?

सीविस–हमको अवश्य यह कहना होगा कि मरे हुएसे जीवित उत्पन्न होता है।

सुकरात–तो सीविस ! जीवित वस्तु और जीवित मनुष्य मरी हुई वस्तु और मरे हुए मनुष्योंसे उत्पन्न होते हैं ?

सीविस–यह साफ जाहिर है।

सुकरात–तो हमारा आत्मा दूसरे लोकमें (मृत्युके बाद) वर्तमान रहता है ?

सीविस–मालूम तो ऐसा ही पड़ता है।

सुकरात–अच्छा, तो इन उत्पन्न होनेवाली अवस्थाओंमेंसे मैं समझता हूँ कि एक अर्थात् मृत्यु अवश्यम्भावी है।

सीविस–अवश्य।

सुकरात–तो अब हमें किस पथका अनुसरण करना चाहिये ? क्या हम (इस अवश्यम्भावी अवस्था) मृत्युके विरुद्ध नियमानुसार कोई उलटी अवस्था नियत नहीं कर सकते ? अथवा प्रकृति इस स्थानपर अपूर्ण है ? क्या मरनेका कुछ उलटा नहीं है ?

सीविस–अवश्य कुछ होना चाहिये !

सुकरात–और वह क्या होना चाहिये ?

सीविस–पुनर्जीवन।

सुकरात–और यदि पुनर्जीवन कोई वस्तु है तो यह मृत्युसे जीवनका उत्पन्न होना है ?

सीविस–अवश्य।

इसी प्रकार अनेक प्रमाणों एवं अकाट्य तर्कोंसे वे सिद्ध कर देते हैं कि 'आत्मा अमर और अविनाशी है और अवश्य ही हमारे आत्मा परलोकमें विद्यमान रहेंगे।'

इस प्रकार महान् दार्शनिक सुकरात स्वीकार करते हैं और जगत्को बताते हैं कि 'मरे हुए फिरसे जीवित होते हैं और मरे हुओंके आत्माका अस्तित्व नष्ट नहीं हो जाता। पुण्यात्मा (सज्जन) मनुष्यका आत्मा इस स्थितिकालमें सुखसे रहता है और पापीका आत्मा दुःख भोगता है।'

सुकरात कहते हैं कि 'परलोकमें सुखसे, शान्तिपूर्वक रहनेके लिये सच्चा दार्शनिक सदा संयमसे रहता है और शारीरिक सुखोंसे दूर भागता है और कभी भी अपनेको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखोंमें मग्न नहीं होने देता। वह अपनी सम्पत्तिकी बर्बादी या अपनी दरिद्रतासे नहीं डरता, जैसा कि जन-समुदाय डरा करता है और न वह शक्ति या मान-प्रतिष्ठाके भूखे लोगोंकी तरह दुष्टोंके अनादर या अपमानसे ही डरता है।'

सुकरात मनुष्यके आत्यन्तिक मङ्गलके लिये, उसमें शुद्ध सत्त्वगुणोंको भरनेके लिये प्राणपणसे प्रयत्न करते थे। वे चाहते थे कि मनुष्यके जीवनमें दम्भका लेश भी न हो। वे अन्तर्बाह्य सदा स्वच्छ और पावन रहे—जीवनान्त ज्ञानकी गवेषणामें संलग्न रहे। वे कहते हैं—

'यदि हम शरीरकी आवश्यकताएँ मात्र पूरी कर दिया करें और उसकी आदतोंसे अपनेको अपवित्र न होने दें, तो जीवनमें हम ज्ञानके बहुत पास पहुँच जायँगे। हमें उससे (शरीरसे) बचकर जहाँतक हो सके, वहाँतक पवित्र रहना चाहिये, जबतक कि ईश्वर हमें इससे (शरीररूपी बन्धनसे) न छुड़ा दे। और जब इस तरहसे हम पवित्र हो जायँगे और शरीरकी मूर्खताओंसे सम्बन्ध न रक्खेंगे, तो हम (परलोकमें) पवित्रात्माओंके साथ निवास करेंगे और हम स्वयं पवित्र बातोंको जान जायँगे; और सम्भव है कि वे पवित्र बातें ही 'सत्य' (ज्ञान) हों; क्योंकि मुझे विश्वास है कि अपवित्र वस्तु पवित्र वस्तुको नहीं पा सकती।'

परलोक एवं पुनर्जन्मविषयक विचारधारा

(लेखक—पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा, शास्त्री, सारस्वत)

[पृष्ठ-संख्या १६७ से आगे]

(ज) क्या परलोकमें जानेसे पुनर्जन्ममें अनुपपत्ति आती है?

कई व्यक्तियोंका यह विचार होता है कि "पुनर्जन्म-सिद्धान्तके आधारपर स्वर्ग-नरक आदि लोकविशेषोंकी आवश्यकता ही नहीं रहती। पुण्य-पापकर्मोंके फलस्वरूप स्वर्ग-नरककी प्राप्ति बतायी जाती है, वह आत्माके जन्म-जन्मान्तरोंमें शरीरके धारण करनेसे भाँति-भाँतिकी योनियोंमें यहीं प्राप्त हो जाती हैं; उनकी परलोकमें स्थिति नहीं होती। 'स्वर्ग'का अर्थ 'सुख' है और 'नरक'का अर्थ 'दुःख' है। 'लोक'का अर्थ 'शरीर' है। ये लोक हमारे शरीर ही हैं, जो आत्माको अपने कर्मानुसार प्राप्त होते हैं। यदि स्वर्ग-नरक आदि लोक-विशेषोंमें जीवका गमन माना जाय; तब यह पुनर्जन्म किसका होता है? पुनर्जन्म और स्वर्गादि-लोककी प्राप्ति—ये दो सिद्धान्त इकट्ठे नहीं रह सकते। जो मुसल्मान आदि सम्प्रदाय पुनर्जन्म (आवागमन) में विश्वास नहीं रखते, उनके मतमें तो स्वर्ग (बिहिश्त), नरक (दोज़ख) अपनी सत्ता रखते हैं; परंतु आवागमनरूप पुनर्जन्म माननेवाले हिंदुओंके लिये स्वर्ग-नरकादि परलोकमें जानेकी बात ही हास्यास्पद है। इसलिये परलोकगत जीवोंके लिये पिण्डदान-श्राद्ध-तर्पण आदि कर्म भी व्यर्थ हैं।

"जब कि जीव मरणके बाद तत्काल ही पुनर्जन्मको ग्रहण कर लेता है, जैसे कि बृहदारण्यकोपनिषद् (४।४) में 'तृणजलौका' न्यायसे स्पष्ट कर दिया गया है। जैसे जोंक जलमें तृणके अन्तमें पहुँचकर दूसरे तृणपर जाती हुई, पहले तिनकेको तब छोड़ती है, जब वह दूसरे तिनकेपर पाँव जमा लेती है, इस प्रकार जीवात्मा भी एक शरीरको छोड़कर तत्काल ही दूसरे शरीरको धारण कर लेता है।

(ख) इसलिये महाभारतमें भी कहा है—

आयुषोऽन्ते प्रहायेदं क्षीणप्रायं कलेवरम्।
सम्भवत्येव युगपद् योनौ नास्त्यन्तरा भवः॥
(वनपर्व १८३।७७)

'मरनेपर जीव तत्क्षण ही अन्य योनिमें चला जाता है; क्षणके लिये भी जीव असंसारी (बिना शरीरके) नहीं रहता।'

(ग) भगवद्गीतामें भी यही कहा है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
(२।२२)

यहाँपर पुराने वस्त्रके त्याग तथा नये वस्त्रके पहननेके दृष्टान्तसे जीवात्मा इस शरीरको छोड़नेके बाद ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब पुनर्जन्म ग्रहण कर लेता है, तब उसके लिये मृतक श्राद्धादि व्यर्थ हैं।

"जीवके इस शरीरको छोड़नेपर उसका सारा सांसारिक सम्बन्ध समाप्त हो जाता है। पुनर्जन्म होनेपर पितरोंके नामसे दी हुई सामग्री हमारे पास नहीं आती। हम भी किसीके पितर होंगे ही। इस प्रकार स्वर्ग-नरक आदिकी भाँति मृतक श्राद्ध-तर्पण आदिका भी पुनर्जन्म-सिद्धान्तके साथ कुछ भी सामञ्जस्य नहीं बैठता।"

यह एक विचारणीय आवश्यक विषय है। इसपर भी हम विचार करना चाहते हैं। इसमें यह ध्यान देना चाहिये कि—परलोकादि विषय प्रत्यक्ष नहीं हैं, किंतु परोक्ष हैं; तब परोक्षविषयमें युक्तियोंकी भला गति कैसे हो सकती है? उसमें तो, वेदादि शास्त्रोंका ही प्रामाण्य होगा। देखे हुए चन्द्रमाको माननेवाले चार्वाक हुआ करते हैं। उनकी वाणियाँ आपात-मनोहर हुआ करती हैं; वस्तुतः तो निरर्थक ही होती हैं।

यह हमारा पृथ्वीलोक 'इहलोक' वा 'अयं लोकः' कहा जाता है; परंतु स्वर्गादि लोक तो 'परलोक' वा 'असौ लोकः' इत्यादि शब्दोंसे कहा जाता है। पहले कहा जा चुका है कि—'अदस्' शब्दका प्रयोग 'दूरस्थित' के लिये आता है और 'इदम्' शब्द निकटके लिये आता है। अतएव 'पृथिवीलोक' के लिये हम 'अयं लोकः' कहते हैं; और स्वर्गादिको 'असौ लोकः' कहते हैं। वे इस लोकसे भिन्न एवं दूर सिद्ध होते हैं; इस विषयमें 'ब' भागके 'उ' आदि विभागमें हम प्रमाण दे चुके हैं।

'तस्माद् लोकात् पुनरेति अस्मै लोकाय कर्मणे।'

(शतपथ १४। ७। २। ८)

यही वचन बृहदारण्यक उपनिषद् (४। ४। ६)में भी आता है। यहाँ 'तद्' शब्दसे 'परलोक' स्वर्गादि इष्ट है। उससे वापस इस लोकमें फिर कर्म करनेके लिये आना या पुनर्जन्म लेना कहा है।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि परलोक भोगस्थान है। उसमें प्राप्त हुए 'भोगयोनि' होते हैं; वहाँ कर्म करना फलजनक नहीं होता। इस लोकको 'कर्मस्थान' कहा गया है। तब जो व्यक्ति परलोक जानेपर फिर उसके इस लोकमें आवागमनमें अनुपपत्ति मानते हैं, वे भ्रान्त सिद्ध होते हैं। अधिकतया भोग तो स्वर्गादि लोकमें हो जाता है। शेष बचे हुए-से हम यहाँ आते हैं, उनका फल भी प्राप्त करते हैं और नवीन कर्म भी करते हैं। हाँ, जब जीव मुक्तिलोकमें जाता है; उस समय कोई भी कर्म शेष न रह जानेसे उसका फिर इस लोकमें भी कर्मबद्ध आगमन नहीं होता।

ईसाई और मुसल्मान मरे हुओंकी कब्रमें स्थिति मानते हैं; उनका पुनर्जन्म नहीं मानते। पर वे भी 'कयामत' के समय पुनः परमात्माके द्वारा मरे हुओंका जीवन मानकर पुनर्जन्म-सा मानते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि—परलोक इस लोकसे भिन्न है। हमें रातको जो तारामण्डल दीखता है, यही स्वर्गलोक-का परलोक हुआ करता है। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें कहा है—**'देवाह्वा वै नक्षत्राणि'** (१। ५। २। ६) यहाँ तारा-मण्डलको देवताओंका स्थान कहा है। वहीं कहा गया है—**'यो वा इह यजेत। अमुं स लोकं नक्षते, तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वम्'** (१। ५। २। ५) यहाँ पृथिवीलोकमें यज्ञ करनेवालोंका परलोकमें तारामण्डलमें जाना कहा है। कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीयसंहितामें कहा है—**'सुकृतां वा एतानि ज्योतींष्यि यन्नक्षत्राणि।'** (५। ४। १। ३) यहाँ तारा-मण्डलको यज्ञ करके परलोकमें गये हुओंकी ज्योति बताया गया है।

न्यायदर्शनके वात्स्यायनभाष्यमें भी कहा है—**'नित्यः खलु अयमात्मा। यस्माद् एकस्मिन् शरीरे धर्मं चरित्वा कायभेदाद् (मरणे सति) स्वर्गे देवेषु उपपद्यते। अधर्मं चरित्वा देहभेदाद् (मृत्यौ) नरकेषु उपपद्यते।'** (३। २। ४१) यहाँ भी स्वर्गादि लोक तथा उसमें देवता माने गये हैं। **'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।'** (भगवद्गीता ९। २१) यहाँपर देवताओंका स्वर्गलोक भोगकर फिर मनुष्यलोकमें आना कहा है।

वेदान्तदर्शनके शाङ्करभाष्यमें कहा है—**'लोक' शब्दश्च प्राणिनां भोगायतनेषु भाष्यते—'मनुष्यलोकः, पितृलोकः, देवलोकः।'** (४। ३। ४) अर्थात् लोकका अर्थ है कि—प्राणियोंको जिस लोकमें सुख-दुःखका फल मिले। **'पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः।'** (अथर्ववेद सं० १२। २। ४५) यहाँपर मृतकोंका 'पितृलोक'में जाना कहा है।

आर्यसमाजके प्रवर्तक श्रीस्वामी दयानन्दजी भी ग्रह-नक्षत्रमण्डलमें पुरुषोंकी स्थिति मानते हैं। देखिये, उनका उद्धरण—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न—सूर्य, चन्द्र और तारे क्या वस्तु हैं; और उनमें मनुष्यादि सृष्टि है वा नहीं ?

(उत्तर—) ये सब भूगोललोक और इनमें मनुष्यादि प्रजा भी रहती है·····जब पृथ्वीके समान सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं, पश्चात् उनमें इसी प्रकार प्रजाके होनेमें क्या संदेह ?·····(प्रश्न—जैसे इस देशमें मनुष्यादि सृष्टिकी आकृति अवयव है, वैसे ही अन्य लोकोंमें भी होंगी, वा विपरीत ? (उत्तर—) कुछ-कुछ आकृतिमें भेद होना भी सम्भव है·····(सत्यार्थप्रकाश, अष्टम समुल्लासके अन्तमें) ।

वेदान्तदर्शन शाङ्करभाष्यमें कहा है—**'सम्पतन्ति अनेन अस्माद् लोकाद् अमुं लोकं फलोपभोगाय ।'** (३ । १ । ८) यहाँपर आर्यसमाजके श्रीतुलसीरामजीके भाष्यका सारांश यह है कि—'इष्टापूर्त आदि उत्तम कर्मके करनेवाले चन्द्रलोक आदि उत्तम लोकोंमें फल भोगकर कुछ अपना अवशिष्ट कर्म अपने साथ लाकर इस लोकमें उत्तमयोनिमें जन्म लेते हैं ।' वहीं ३ । १ । १२ शाङ्करभाष्यमें भी कहा है—**'ये वै केचिद् अधिकृता अस्माल्लोकात् प्रयन्ति, चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति ।'** यहाँ भी वही बात कही है। मृतकोंका चन्द्रलोकमें जाना कहा है ।

'विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्ति' (सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय, त्रिप्रश्नवासना १३ श्लोक) यहाँ पितरोंका चन्द्रलोकपर रहना कहा है। जब ऐसा है, तब मृत पितर लोग विशेष शक्तिशाली होनेसे हमसे दिये हुए श्राद्ध-पिण्ड-दानादिको अपनी आकर्षण-शक्तिसे खींच लेते हैं ।*

तृणजलौका-न्याय

अब इस न्यायपर भी विचार करना चाहिये । बृहदारण्यक उपनिषद्में यह वचन है—**'तद् यथा तृणजलायुका तृणस्य अन्तं गत्वा अन्यमाक्रममाक्रम्य आत्मानम् उपसंहरति, एवमेव अयमात्मा इदं शरीरं निहत्य अविद्यां गमयित्वा अन्यमाक्रममाक्रम्य आत्मानं उपसंहरति ।** (४ । ४ । ३)

उक्त वचनमें मृत्युके बाद जो देह तैयार होता है, वह पारलौकिक सूक्ष्मदेह ही होता है, चाहे वह देवलोकका देह हो, चाहे पितृलोक या गन्धर्वलोकका । इसलिये पहले स्थान 'शरीर' लिखा है, दूसरे स्थान 'शरीर' न लिखकर 'अक्रम' ही लिखा है । वह भी 'पुनर्जन्म'रूप है । मृत्युके बाद जीवका इस लोकमें पुनर्जन्म तत्क्षण नहीं होता । स्वा० दयानन्दजी भी **'सविता प्रथमेऽहन्·····'** (यजुर्वेदभाष्य ३९ । ६) इस मन्त्रसे कम-से-कम बारह दिनके बाद जीवका पुनर्जन्म मानते हैं । तब जीव इतने दिनोंतक जहाँपर सूक्ष्मशरीरसे रहता है, वही 'परलोक' कहा जाता है। स्वामी दयानन्दजीने उसका नाम संस्कारविधि (अन्त्येष्टिके आरम्भमें) 'यमालय' माना है । यमालय वे अन्तरिक्ष (आकाश) में मानते हैं । तब वह जीव उपनिषदोंके अनुसार बादलोंमें, फिर वृष्टिके साथ सब्जियोंमें, फिर सब्जियोंके साथ पुरुषके शुक्रमें और शुक्रके साथ स्त्रीके गर्भाशयमें प्रवेश करके उसीसे दसवें महीने उत्पन्न होता है । तब वहाँ 'तृणजलायुका' न्यायका संघटन नहीं हो सकता । मरनेके बाद पारलौकिक सूक्ष्मदेह तो तत्काल ही मिल जाता है, जो परलोकमें स्थिति करानेवाला होता है । वह 'पितृदेह' भी हो सकता है, 'प्रेतदेह' भी हो सकता है और 'देवदेह' भी हो सकता है । अतः उक्त बृहदारण्यकका उपक्षिप्त वचन उसीमें समन्वित होता है । वह वचन मनुष्य या पशुके देहसे विलक्षण सूक्ष्मदेहोंके लिये है । उसीकी स्पष्टता करनेवाला बृहदारण्यकका वचन उक्त वचनके आगे मिलता है, जिससे हमारा कथन स्पष्ट हो जाता है । वह है—

'तद् यथा पेशस्कारी पेशसो मात्रामुपादाय अन्यद् नवतरं कल्याणतरं रूपं तनुते एवमेव अयमात्मा इदं शरीरं निहत्य अविद्यां गमयित्वा अन्यद् नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते—पित्र्यं वा, गान्धर्वं वा, दैवं वा प्राजापत्यं वा, ब्राह्मं वा अन्येषां वा भूतानाम् ।' (४ । ४ । ४)

'जैसे सुनार सोना लेकर उसे ठोंक-पीटकर उसका अन्य नया सुन्दर रूप कर दिया करता है, इसी प्रकार आत्मा इस शरीरको समाप्त करके नया कल्याणतर रूप बना लिया करता है । वह पितरोंका, या गन्धर्वोंका, या देवोंका, या प्रजापतिका, या ब्रह्माका, या अन्य भूत-प्रेत आदिका होता

* इस विषयमें आर्यसमाजके विद्वान् श्रीरघुनन्दनशर्माजीकी 'वैदिक सम्पत्ति' (प्र० स०) के पृ० ३७१ । ३७२ पृष्ठमें तथा हमारे 'श्रीसनातनधर्मालोक' पञ्चम पुष्पके ६८१ । ६८४ पृष्ठमें देखा जा सकता है । इसलिये श्राद्धादि कर्म भी व्यर्थ नहीं हैं । इस विषयमें 'श्रीसनातनधर्मालोक' चतुर्थ पुष्पमें पृ० ३३०–३४४ तथा वहीं 'परलोकविद्या' विषयमें ३४५–३५६ पृष्ठमें देखना चाहिये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।' ये सब शरीर सूक्ष्म होते हैं। अतः पृथ्वीलोकमें नहीं रह सकते; किंतु परलोकमें रहते हैं। वहाँसे पतन होनेपर फिर मनुष्यलोकमें स्थूलशरीर धारण करते हैं। पहला 'सूक्ष्म पुनर्जन्म' था और यह 'स्थूल पुनर्जन्म' हो जाता है।

इससे मृतकोंकी जब पितृलोकमें प्राप्ति भी सूचित हो गयी, तब पिण्ड-शरीरवश उनके लिये मृतक पितृ-श्राद्ध भी प्रयोजनीय सिद्ध हो गया। पितृलोकका वर्णन यजुर्वेद-शतपथ ब्राह्मण (१४।४।३। २४; ३।७।१। २५) में स्पष्ट है। पितृ, गन्धर्व, देवता, प्रजापति—ये मनुष्ययोनिसे उन्नत योनियाँ होती हैं, जिनका वर्णन और पृथक्-पृथक् आनन्दकी मात्रा बृहदारण्यक उपनिषद् (४।३।३३) में तथा तैत्तिरीयोपनिषद् (ब्रह्मानन्दवल्ली अष्टम अनुवाक) में स्पष्ट है। इनके लिये भी पिण्डदान आदिका शास्त्रोंमें विधान है।

इससे स्पष्ट हो गया कि जीव मृत्युके बाद साधारण रूपसे पारलौकिक विविध लोकोंमें स्थित होकर, वहाँका आनन्द अनुभूत करके, तब अवशिष्ट कर्मोंसे फिर इस मर्त्यलोकमें पुनर्जन्म प्राप्त करनेके लिये गर्भमें आता है। इससे पुनर्जन्मके सिद्धान्तमें कुछ भी बाधा नहीं पड़ती। यह बात वेद एवं उपनिषद्की शिक्षाके अनुकूल है। इसमें स्वर्ग-नरक आदि वादकी भी अनुकूलता हो जाती है। पितृलोक-प्राप्तिमें पितृयज्ञरूप पितृश्राद्ध उसमें सहायक होनेसे उपयोगी ही होता है। अथवा यदि जीव तत्काल ही मनुष्य-शरीर भी ग्रहण कर ले, तब उस समय भी श्राद्धादि कर्मकी व्यर्थता नहीं होती। उस समय नित्य पितर, वसु, रुद्र और आदित्य उसका फल उस जीवको मनीआर्डरकी भाँति मनुष्यलोकमें भिजवा दिया करते हैं; अथवा यदि जीव मुक्तिलोकमें गया हुआ हो, तब श्राद्ध वहाँ नहीं पहुँचता; वह श्राद्धकर्ताको ही पुनः प्राप्त हो जाता है।* हमें जो भोजन प्राप्त हो गया है, इसे हम नहीं जान पाते कि यह हमारे कर्मोंका हमें प्राप्त हो रहा है, या हमारे पुत्रादिद्वारा दिये गये श्राद्धके फलरूपमें हमें प्राप्त हो रहा है। अथवा हम अकालके मुखमें आ पड़ें तो यह भी सम्भव हो सकता है कि—हमारे लिये हमारे गतजन्मके पुत्रादि श्राद्धकर्म नहीं करते रहे हों।

(ख) महाभारतका जो वचन पहले दिया गया है, उसके साथवाले पद्योंको मिलाकर अर्थ करनेसे तत्त्व स्पष्टता होती है। वह यह है—

एषा तावदबुद्धीनां गतिरुक्ता युधिष्ठिर।
अतः परं ज्ञानवतां निबोध गतिमुत्तमाम्॥
(महाभारत, वन० १८३।८०)

अर्थात् साधारण गति तो मूर्खोंकी होती है; पर ज्ञानियोंकी गति यह होती है—

'कर्मभूमिमिमां प्राप्य पुनर्यान्ति सुरालयम्।'
(महाभारत, ३।१८३।८५)

यहाँ कर्मभूमि इस मनुष्यलोकमें स्थित ज्ञानियोंकी देवलोक स्वर्गलोकमें प्राप्ति भी कही गयी है। आगे वहाँ 'तेषामयं चैव परश्च लोकः।' (९१) 'स्वर्गं परं पुण्यकृतो निवासं क्रमेण सम्प्राप्स्यथ कर्मभिः स्वैः।' (९६) यहाँ मनुष्यलोक तथा स्वर्गलोकका प्राप्त करना कहा है।

(ग) 'वासांसि जीर्णानि' इस गीताके पद्यमें भी कहा है—

'तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।'
(२।२२)

यहाँ नये शरीरोंमें बहुवचन होनेसे पितर आदि शरीरोंकी प्राप्ति सूचित की गयी है। वे भी लोकान्तरके शरीर ही कहे जाते हैं। जैसे कि न्यायदर्शनमें कहा गया है—

'तत्र मानुषं शरीरं पार्थिवम्।...आप्य तैजसवायव्यानि लोकान्तरे शरीराणि' (३।१।२८)। हाँ, उनमें पार्थिव तत्त्वकी अल्पता तथा जल, तेज, वायु तत्त्वोंकी मुख्यता होनेसे वे शरीर मनुष्य-शरीरकी अपेक्षा सूक्ष्म हुआ करते हैं। तभी तो भगवद्गीतामें भी कहा है—

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥
(९।२५)

यहाँपर जीवको देव, पितर, प्रेत आदि लोकोंकी प्राप्ति कही है।

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥
(१७।४)

* इस विषयमें 'श्रीसनातनधर्मालोक' के चतुर्थ तथा पञ्चम पुष्प देखने चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ भी पूर्ववचनकी स्पष्टता है। वेदमें भी इस विषयमें स्पष्टता है—

'पितॄणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः।'
(अथर्व० १२। २। ४५)

'अधा मृताः पितृषु सम्भवन्तु।'
(अथर्व० १८। ४। ४८)

इन मन्त्रोंमें मृतकोंकी पितृलोकमें प्राप्ति सूचित की गयी है। मृतकोंका श्राद्ध भी वेदमें सूचित किया गया है। जैसे कि—

'जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।'
(ऋग्वेदसं० १। १६४। ३०)

यहाँपर श्रीसायणाचार्यने व्याख्या की है—

'मृतस्य शरीरस्य सम्बन्धी जीवः; मर्त्येन—मरणधर्मकेन शरीरेण सयोनिः पूर्वं समानोत्पत्तिस्थानः। यद्यपि जीवस्य न जन्मास्ति, तथापि वपुषस्तत्सद्भावात् तत्सम्बन्धेन उपचर्यते। तदेवाह अमर्त्यः—अमरणस्वभावः। 'जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते, न जीवो म्रियते।' (छान्दोग्योपनिषद् ६। ११। ३) इति श्रुतेः। उक्तस्वभावो जीवः स्वधाभिः चरति—पुत्रकृतैः स्वधाकारपूर्वकदत्तैः अन्नैः चरति—वर्तते इत्यर्थः।'

'मृतकका जीव जिसका पहले शरीरसम्बन्धसे जन्म उपचारभावसे कहा जाता है; वस्तुतः अमरणस्वभाववाला जीव पुत्रसे दिये हुए स्वधान्न (श्राद्ध) से तृप्त हो जाता है।'

फलतः जीवके परलोक प्राप्त होनेपर भी पुनर्जन्मवादमें कोई भी अनुपपत्ति नहीं आती। परलोकमें फल अनुभव करके जीव अवशिष्ट कर्मवश फिर मनुष्यलोकमें वापिस आता है।

(ञ) क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति

कर्मवश जीव स्वर्गादि परलोकमें जाता है और वहाँ सुख-दुःखका अनुभव करके तब मनुष्यलोकमें पुनर्जन्म लेता है। उसमें कारण यह है कि स्वर्गादि स्थान भोगस्थान हैं। उनमें इस लोकमें किये हुए कर्मोंके भोगार्थ जीव जाता है। वहाँ वह कर्म करनेमें समर्थ नहीं होता। इसलिये स्वर्गमें गये हुए जीव 'देवयोनि' बने हुए 'भोगयोनि' ही माने जाते हैं। तब कर्मफलकी समाप्तिमें थोड़े शेष कर्मोंको लिये जीव पुनः कर्म करनेके लिये इस लोकमें आता है और मनुष्य बनता है। मनुष्य 'कर्मयोनि' माना जाता है।

कर्मफल भोगकर स्वर्गसे गिरकर इस लोकमें आना भगवद्गीतामें भी कहा है—'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।' (९। २१) इससे पूर्व वहीं कहा है—

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान्॥
(९। २०)

यह आशय है कि 'जीव यज्ञादि-कर्मोंसे स्वर्गलोकको प्राप्त करते हैं। वहाँ देवता बनकर दिव्य भोगोंको भोगते हैं। फिर पुण्यके समाप्त हो जानेपर स्वर्गसे गिरकर इस मनुष्यलोकको प्राप्त होते हैं।' यही बात उपनिषदोंमें भी कही है—

'तद् यथा इह कर्मजितो लोकः क्षीयते, एवमेव अमुत्र [परलोके] पुण्यजितो लोकः [स्वर्गः] क्षीयते।' (छान्दोग्य० ८। १। ६)। यहाँ स्वर्गकी क्षीणताका तात्पर्य स्वर्गसे गिरकर फिर मनुष्यलोकमें पुनर्जन्म लेनेमें है।

इसी प्रकारका वचन मुण्डकोपनिषद्में भी मिलता है—

'इष्टापूर्तं (यज्ञादिकं) मन्यमाना वरिष्ठं·····यज्ञादिभिः (प्राप्तस्य) नाकस्य [स्वर्गलोकस्य] पृष्ठे ते [जीवाः] सुकृते [पुण्यलभ्ये] अनुभूत्वा इमं [मानुषम्] लोकं हीनतरं वा विशन्ति।' (१। २। १०)

यहाँ भी कर्मयोनि मनुष्योंके फलभोगके लिये स्वर्गगमन कहा है; तब वे भोगयोनि देव होकर, कर्म समाप्तप्राय हो जानेपर स्वर्गलोकसे गिरकर फिर इस मनुष्यलोकमें आ जाते हैं और कर्मयोनि होकर कर्ममें प्रवृत्त हो जाते हैं। यही बृहदारण्यक उपनिषद्में भी कहा है—

'प्राप्य अन्तं कर्मणः [स्वर्गलोकमें कर्मफल प्राप्त करके] तस्य यत् किंच [कर्म] इह [इस मनुष्यलोकमें] करोति अयम् [कर्मयोनिर्मनुष्यः]; तस्मात् [स्वर्गात्] लोकात् पुनरेति अस्मै लोकाय [अस्मिन् मनुष्यलोके] कर्मणे [कर्म कृतम्]' (४। ४। ६)

यहाँ भी पूर्व-जैसा भाव है। स्वर्गलोकमें देवता बनता है—

'दिवि देवाः' (अथर्ववेदसं० ११। ७। २३)। 'देवा वै नाकसहः' (शतपथ ब्रा० ८। ६। १। १। 'द्यौर्वै सर्वेषां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवानामायतनम्' (शत० १४ । ३ । २ । ८)। स्वर्ग जब परलोक है, इस लोकसे भिन्न है, तब स्वर्ग'सुख'का पर्यायवाचक नहीं—**'एतत् स्वर्गसुखं विप्र लोका नानाविधास्तथा।'** (महा०, वन० २६१ । २७) यहाँ स्वर्गका सुख कहा है। यदि स्वर्ग 'सुख'का पर्यायवाचक होता, तो **'स्वर्ग-सुखम्'** में पुनरुक्ति या व्यर्थता होती। **'न स्वर्गेण सुखेन वा'** (महा०, वन० २६१ । ४२) यहाँ भी स्वर्ग और सुख दोनोंको भिन्न-भिन्न बताया गया है; अतः स्वर्गलोक इस लोकसे भिन्न ही सिद्ध हुआ। इसलिये अथर्ववेद-संहितामें—

'पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहम्, अन्तरिक्षाद् दिवमारुहम्। दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम्।' (४ । १४ । ३)

यहाँ द्युलोक, जिसके पृष्ठपर स्वर्गलोक है, पृथिवीलोकसे भिन्न माना गया है। उसीमें देवता रहते हैं। इससे सिद्ध होता है—मनुष्य 'कर्मयोनि' है और देवता केवल 'भोगयोनि'। यदि देवता भी कर्मयोनि होते तो उन्हें कर्म करनेके लिये फिर इस लोकमें आना न पड़ता।

कर्मोंका फल जो स्वर्ग कहा है, उसमें 'कर्म' यज्ञादि समझना चाहिये। इसी कारण वेदमें कहा है—**'यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम्'** (अथर्ववेद-सं० १८ । ४ । २) (ईजानाः—यज्ञ करते हुए)। **'स्वर्गकामो यजेत'**—यह वचन भी दर्शनोंमें सुप्रसिद्ध है। तब यज्ञके कर्म होनेसे और कर्मोंके सीमित होनेसे उससे प्राप्त स्वर्गके भी सीमिततावश क्षयी होनेसे **'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।'**—यह पूर्वोक्त गीता-वचन संगत हो जाता है। **'गतागतं कामकामा लभन्ते।'** (गीता ९ । २१)—इस वचनमें 'गमनागमन' कहनेसे 'पुनर्जन्म' भी सिद्ध हो गया।

इससे यह भी सिद्ध हो गया कि 'काम' ही कर्म है; काम न होनेपर कर्म भी 'अकर्म' होता है। कामना न होनेपर कर्म न रह जानेसे 'मुक्ति' कही गयी है। कामना होनेपर कर्म रह जानेसे उन कर्मोंके क्षयी तथा सीमित होनेसे स्वर्ग भी क्षयी होता है। कामनाके अभावमें अभावके नित्य होनेसे कर्माभावसे होनेवाली मुक्ति भी नित्य हुआ करती है।

तब मुक्ति हो जानेपर तो पुनर्जन्ममें अवश्य अन्तराय हुआ करता है, परंतु स्वर्गादि परलोक प्राप्त होनेपर पुनर्जन्म स्वतः सिद्ध है; उसमें कोई बाधा नहीं पड़ती; क्योंकि उसमें मुक्तिकी भाँति सदाके लिये निवास नहीं रहता; अतः इस विषयमें जो कि कई व्यक्तियोंको संदेह हुआ करता है, उसका कारण यह है कि उन्होंने स्वर्ग-नरकमें भी जीवका मुक्तिकी भाँति सदा निवास मान रक्खा है; पर वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। मुक्तिको छोड़कर अन्य लोक-लोकान्तरोंमें जानेसे तो पुनर्जन्मकी सिद्धि हुआ करती है। पर मुक्ति परम कठिन है, प्रत्येकको प्राप्त नहीं हो सकती; अतः पुनर्जन्म सर्वसाधारण है। पुनर्जन्मवाद एवं स्वर्ग-नरकादि माननेसे ही पुरुषोंको पुण्यके लिये प्रोत्साहन तथा पापसे घृणा-भीति उत्पन्न होगी; पर नास्तिकतावाद माननेसे तो पापकी भारी वृद्धि होगी; उसीसे संसारमें अव्यवस्था फैलेगी। इसीलिये लोगोंका कल्याण मानकर 'कल्याण'ने 'पुनर्जन्म'में वास्तविकता बताकर जगत्में व्यवस्था लानेका अनुकरणीय प्रयास किया है। पुनर्जन्मकी घटनाएँ आये दिन समाचारपत्रोंमें निकला करती हैं। उनमें अनुसंधानसे सत्यता सिद्ध हुई है; अतः पुनर्जन्मवाद जहाँ शास्त्रीय है। वहाँ प्रत्यक्ष सिद्ध भी है।

(ञ) परलोकविद्या

हिंदुओंद्वारा मृतकोंका श्राद्ध-तर्पण देखकर वैदेशिक वैज्ञानिकोंका इधर ध्यान गया। उन्होंने उसका परीक्षण प्रारम्भ कर दिया। उससे उन्हें प्रतीत हुआ कि मरा हुआ व्यक्ति अभावको प्राप्त नहीं हो जाता, किंतु मरनेके बाद उसकी स्थिति परलोकमें हो जाती है। उत्तम माध्यमद्वारा हम उससे सम्बन्ध करके उससे लाभ ले सकते हैं। हमारे भारतीय पुरुषोंका भी इधर ध्यान गया और इसमें उन्होंने भी पर्याप्त सफलता प्राप्त कर ली। वैदेशिक लोग सब परीक्षणोंमें अपना ही दृष्टिकोण रखते हैं। उन्हें ऐसा आभास हुआ कि मृतकका जीव सदा परलोकमें ही रहता है; उसका इस लोकमें पुनर्जन्म नहीं होता। पर पुनः-पुनः अवगाहनसे कई वैदेशिक भी अब परलोकगतका इस लोकमें 'पुनर्जन्म' भी मानने लग गये हैं।

सबकी शैलियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। वैदेशिकोंने मृतकोंके आकर्षणार्थ अपने ढंगके उपाय जारी किये। हमारे पूर्वजोंने कुश, मधु, तिल, गङ्गाजल, तुलसीपत्र, चावलोंके पिण्ड आदिका मृतकोंके जीवके आकर्षणार्थ उपयोग कर रक्खा है। अब इनका भी यन्त्र बनाकर निरीक्षण-परीक्षण करना चाहिये। हमारे पूर्वजोंकी प्रायः सभी बातें परीक्षण-निरीक्षण करनेपर सत्य सिद्ध हुई हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब इस परलोकविद्याका अपलाप नहीं किया जा सकता। अभिज्ञजन इसमें उद्यत हो रहे हैं। इस विद्यासे कई लाभ होनेकी सम्भावना है। वह यह कि हम स्थूल-शरीरी होनेसे सीमित शक्तिवाले हैं; पर मृतक पुरुष स्थूल-शरीर छूट जानेसे पारलौकिक दिव्य सूक्ष्मशरीर मिलनेसे अलौकिक शक्तिशाली होते हैं। उनसे सम्बन्ध स्थापित करके हम उस लोकोत्तर शक्तिका लाभ उठा सकते हैं। घड़ेमें ढके दीपककी प्रकाशन-शक्ति सीमित होती है। घड़ेसे बाहर ठहरे दीपककी प्रकाशन-शक्ति अधिक रहा करती है। हम भी स्थूल शरीराच्छन्न होनेसे उस घड़ेमें रक्खे दीपककी तरह हैं और परलोकप्राप्त पुरुष उसके अपवाद हैं। आत्माके न्यायादि शास्त्रसम्मत विभुत्वका वही उपयोग ले सकते हैं।

मान लीजिये कि एक व्यक्ति बहुत बीमार है। हम उसका उपचार करके भी उसे स्वस्थ नहीं कर सके। उस समय यदि हम परलोकस्थ आत्मासे सम्बन्ध करके उससे उसकी दवाइयाँ पूछें, तो अधिक ज्ञानशाली होनेसे उनसे बतायी गयी दवाइयाँ सम्भवतः उस बीमारके लिये हितकारक सिद्ध होंगी। इस प्रकारकी परलोकस्थ आत्माओंसे बतायी गयी दवाइयाँ प्रायः सफल सिद्ध भी हो चुकी हैं।

जब परलोकप्राप्तके हस्ताक्षर मिल जाते हुए देखे गये हैं; उनकी बतायी गुप्तधन गड़नेकी बातें मिल गयी हैं; उनके छाया-चित्र गृहीत हो जाते हैं; तो इस विद्यामें उन्नति करके हम कई लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इस विषयमें श्रद्धा करनेसे 'श्रद्धया सत्यमाप्यते।' (यजुर्वेद १९। ३०) 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।' (गीता ४। ३९) हमें सत्य एवं ज्ञानकी प्राप्ति होगी। हमारे प्राचीन लोग भी मृतक व्यक्तिका परलोकमें निवास और उसका आह्वान भी मानते थे। लङ्का-विजयके बाद अग्नि-शुद्धिके समय परलोकसे आये हुए राजा दशरथने भी सीताकी शुद्धिमें साक्षी दी थी।

इस विषयमें यह एक बड़ा लाभ मिलेगा कि फिर 'मृत्युभय' छूट जायगा। अन्य लाभ यह होगा कि हमारा मृतक-सम्बन्धी, जिसे हम सदाके लिये बिछुड़ गया समझते हैं, फिर हम उसे अपने निकट पायेंगे। फिर मृतकका श्राद्ध-तर्पण भी प्रत्यक्षानुगृहीत हो जायगा। इस परलोकविद्याकी उन्नति हो जानेपर हम स्वर्गीय देवताओंसे भी बातचीत कर सकेंगे।

कई धार्मिक प्राचीन बातें वर्तमानमें प्रचलित न होनेसे बुद्ध्यग्राह्य मालूम पड़ती हैं, पर हमारे ऋषि-मुनि बहुज्ञ थे। उनकी बातें अब विज्ञान-सिद्ध सिद्ध हो रही हैं।

हमारी अपेक्षा पितरोंमें अधिक शक्ति रहती है। उनकी अपेक्षा देवताओंमें अधिक शक्ति होती है। देवता-विषय बहुत जटिल है, यह ठीक है। आरम्भमें पितृ-विषय भी बहुत जटिल था। पितरोंका आह्वान तथा आकर्षण एवं उनका यहाँ आगमन और संवाद तथा उनसे हमारा संरक्षण होता है—यह बात बहुत लोग नहीं मानते थे। इतिहास-पुराणमें मृतक दशरथ आदिका इस लोकमें आनेका वर्णन आता है। योगदर्शनके व्यासभाष्यमें भी 'पितॄन् अतीतान् अकस्मात् पश्यति।' (३। २२) में भी यह संकेत आया है। अनुसंधाता लोगोंकी गवेषणाओंसे यह विषय समूल सिद्ध हो रहा है। बहुत कुछ सफलता भी इस विषयमें प्राप्त हो चुकी है; तब आगे अनुसंधाताओंका देवतावादकी ओर भी ध्यान बढ़ेगा।

शास्त्रानुसार पितृगण चन्द्रलोकके पृष्ठपर रहते हैं। चन्द्रग्रहकी कक्षा सब ग्रहोंसे नीचे और भूमण्डलके निकट है। तभी भूमण्डलके निवासी उसके साथके ठहरे चन्द्रलोकके पृष्ठपर रहनेवाले पितरोंका यथाशक्ति आह्वान या आकर्षण करनेमें शीघ्र सफल हो गये हैं।

वेदमें भी 'आ यन्तु नः पितरः' (यजु० १९। ५८) इत्यादि मन्त्रोंसे पितरोंका आह्वान तथा 'अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तः।' से तृप्ति 'अधि ब्रुवन्तु' से पितरोंका हमें उपदेश वा संवाद, 'ते अवन्तु अस्मान्' से हमारी पितरोंद्वारा 'पान्ति रक्षन्ति इति पितरः' इस व्युत्पत्तिसे हमारे किसी बीमार आदिके स्वास्थ्यकी, (उत्तम ओषधि बताकर) रक्षा करना प्रसिद्ध है।

पितरोंके आकर्षणपर आर्यसमाजी विद्वान् श्रीरघुनन्दन शर्माने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'वैदिक-सम्पत्ति' (प्र० सं०) के ३७१ पृष्ठपर प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं—

'प्रश्न यह है कि चन्द्रलोकसे जीवोंको किस प्रकार खींचा जाय। जीवोंके खींचनेका वही तरीका है, जो सूर्यकान्तमणिके द्वारा सूर्यताप खींचनेमें और चन्द्रकान्तमणिके द्वारा चान्द्र-जलके खींचनेमें प्रयुक्त किया जाता है। जिस प्रकार चन्द्र-कान्तके प्रयोगसे चान्द्रजलकी प्राप्ति होती है, उसी प्रकार चान्द्र-पदार्थोंको एकत्रित करनेसे चान्द्रवीर्य भी आकर्षित होता है। चान्द्रवीर्यमें ही जीव रहते हैं; इसलिये उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थोंमें खिंच आते हैं, जो चन्द्राकर्षणके लिये विधिसे एकत्रित किये जाते हैं। वे पदार्थ—दूध, घृत, चावल, मधु, तिल, रजतपात्र, कुश [तुलसीदल] और जल हैं। यह प्रक्रिया शरत्पूर्णिमाके दिन लोग करते हैं; परंतु विधि-पूर्वक क्रिया तो पितृश्राद्धके समय ही होती है। पितृश्राद्ध अपराह्णके समय होता है। उसमें दूध, घृत, मधु, कुश आदि सभी पदार्थ रक्खे जाते हैं। पितरोंका प्रतिनिधि पुत्र अथवा पौत्र भी उन पदार्थोंको छूता हुआ वहींपर बैठता है। इसलिये यह सब हवि आदि सामग्री उसी प्रकारका यन्त्र बन जाती है, जिस प्रकार चन्द्रमणि। इसीमें पितर खिंचकर आते हैं—

'परा यात पितरः सोम्यासः।'

(अथर्ववेद १८। ४। ६३)

भूमण्डलके निकट होनेसे ही वैज्ञानिक लोग भी राकेट आदिसे चन्द्रलोककी यात्रा करनेकी चेष्टा करते हैं, पर देवता द्युलोकके अन्य विभागोंमें रहा करते हैं। वे पितरोंकी अपेक्षा हमसे बहुत दूर हैं। हमारा एक मास पितरोंका दिन-रात होता है। हमारा एक वर्ष देवताओंका दिन-रात होता है। परंतु यदि हमारा विज्ञान बढ़ता गया तो हम पितरोंकी भाँति देवताओंके भी निकट हो जायँगे। कुन्तीको दुर्वासा मुनिसे दिये हुए मन्त्रोंसे सूर्य, यम, वायु, इन्द्र, अश्विनी-कुमार—ये देवता आये थे, यह प्रसिद्ध ही है।

पुराण-इतिहासमें भी जो देवताओंका भूलोकमें आना बताया गया है, वह इसी बातको सिद्ध करता है कि हमारे पूर्वजोंको देवताओंको बुलानेकी विद्या भी ज्ञात थी। हमारे राजा दशरथ आदि रथोंद्वारा देवलोकमें भी जाया करते थे। अब यदि प्रयत्नसे पितृवाद कुछ सुलझ गया है; तब समयपर देवतावाद भी सुलझ जायगा।

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः। अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु। तेऽवन्तु अस्मान्। (यजुर्वेद-सं० १९। ५८)

—इस मन्त्रसे मालूम होता है कि पितरोंको स्वधासे तृप्त करनेका विचार करनेसे ही वे हमारे आह्वानपर हमारे यहाँ आते हैं और वे हमसे संवाद करते हैं और हमें उत्तम उपाय बताकर 'पितृ' नामको (पाति रक्षति इति) सार्थक करते हुए हमारी रक्षा भी करते हैं। इस अवसरपर माध्यम भी उत्तम होना चाहिये। श्राद्ध भी पूर्व समयमें उन्हीं माध्यमोंके प्रयोगकर्ता वैज्ञानिक ब्राह्मणोंको खिलाया जाता था। श्राद्धविधिके अनुसार सुचरित्र, वेदादि शास्त्रोंका विद्वान्, बहुभाषाप्रवीण, पितृकर्मनिष्णात ब्राह्मण माध्यम रक्खा जाय। इस कर्ममें मृतकके पुत्र, पौत्र वा प्रपौत्रका सम्पर्क अवश्य होना चाहिये। उन्हें श्रद्धालु भी होना चाहिये।

पितरोंके आह्वानके समय अमावास्या आदि तिथिका नियम, अपराह्णकाल, यज्ञोपवीतके दक्षिण स्कन्धमें करनेका नियम, तिल, घृत, मधु, तुलसीदल, गङ्गाजलयुक्त ओदनका तथा रजतपात्रका उपयोग भी शास्त्रानुकूल अनुसृत किया जाना चाहिये। हाँ, आश्विनके दिनोंमें मृतककी मृत-तिथिके अनुसार भी पितरोंका आह्वान हो सकता है, अथवा क्षयाहवाले दिन भी मृतकका आह्वान हो सकता है। उसका कारण यह है कि पितृलोक चन्द्रलोकपर है। आश्विनके दिनोंमें चन्द्रमा अन्य मासोंकी अपेक्षा पृथिवीके अधिक निकट होता है, इसलिये उसकी आकर्षण-शक्तिका प्रभाव पृथिवी तथा उसमें स्थित देहधारियोंपर विशेष रूपसे पड़ता है। तब चन्द्रलोकस्थित पितरोंका भी हमसे सम्बन्ध होकर परस्पर आदान-प्रदान होता है। क्षयाहकी तिथिमें वे पितर सीधे उसी मार्गमें होते हैं; क्योंकि तिथि चन्द्रगतिके अनुसार हुआ करती है और उस स्थितिमें वे पितर उसी मार्गमें हुआ करते हैं, जिस तिथिमें वे मृत्यु प्राप्त करके उस स्थानमें प्राप्त हुए थे।

कृष्णपक्षमें पितरोंके आह्वानका कारण यह होता है कि उस समय सूर्य उनके निकट होनेसे वह उनका दिन होता है, अमावास्या उनका मध्याह्न होती है। जब पितरोंका निद्रा-समय हो, (शुक्लपक्षकी दशमीसे कृष्णपक्षकी सप्तमीतक) उस समय पितरोंका आह्वान नहीं करना चाहिये; क्योंकि उस समय वे बिना आश्विनमासके अन्य मासमें संवाद नहीं करना चाहते, उस समय कई अन्य भूत-प्रेतादि ही हमसे संवाद कर रहे हों, यह सम्भव होता है। तीन पीढ़ीसे अधिकके पितरोंको भी संवादके लिये नहीं बुलाना चाहिये; क्योंकि वे उस समय चन्द्रलोकसे ऊपरके लोकमें चले जाते हैं। पितृकोटिमें न रहकर देवकोटिमें चले जाते हैं। उन्हें बुलानेके लिये शास्त्रीय अन्य उपाय करने पड़ेंगे। कई मृतक तो आरम्भमें ही पितृकोटिमें न जाकर परलोकके निम्नस्तर नरकादि लोकोंमें अथवा भूत-प्रेतादि योनिमें चले जाते हैं, जहाँ उन्हें बहुत अशान्ति रहती है।

हमारे पूर्वज जिस बातको आध्यात्मिक प्रकारसे तथा मन्त्रशक्तिसे करते थे, पाश्चात्य वैज्ञानिक उसी बातको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधिभौतिक प्रकारसे तथा यन्त्रशक्तिसे करते हैं। पहले प्रकारका अवलम्बन करनेपर शास्त्रोंपर दृढ़ निष्ठा बनी रहती है, श्रद्धा-विश्वास बना रहता है, आस्तिकता बनी रहती है। अतः हमें इधर प्रवृत्ति करनी चाहिये।

फलतः परलोकविद्या अवश्य है, पुनर्जन्म भी अवश्य है। यह सब सुकर्म-दुष्कर्मके फल हैं। जो इन वादोंपर हृदयसे आस्था रखते हैं; वे असत्य, कपट, चोरी, ठगी, बेईमानी आदि दुष्कृत्य नहीं करते; पर परलोकसे डरनेवाले लोग, पुनर्जन्म और परलोक एवं कर्मफलमें विश्वास रखनेवाले, धर्मपरायण, निर्लोभ, प्रायः निःस्वार्थ, परोपकार-परायण, पुण्यनिरत रहा करते हैं। आजकल कई लोग आडम्बरसे तो 'पुनर्जन्म' मानते हैं; पर वेद-शास्त्रादिमें छल, अर्थका अनर्थ आदि करके, स्वविरुद्ध शास्त्रीय सिद्धान्तोंमें प्रक्षेप बताकर ऋषि-मुनियोंके अनभीष्ट अर्थ करके परमेश्वर या परलोकसे डर नहीं रखते, उन्हींके लाभार्थ 'कल्याण' ने इस विशेषाङ्कसे जनताकी सेवा की है। आशा है जनता भी इसका प्रचार करके हिंदू-धर्मको गौरवमय पद प्रदान करनेमें कुछ भी उठा नहीं रखेगी। यह विषय हमारी 'श्रीसनातनधर्मालोक ग्रन्थमाला' के विभिन्न पुष्पोंमें देखना चाहिये।*

(जन्माष्टमी सं० २०२५)

पुनर्जन्मः एक दार्शनिक विवेचन

(लेखक—पण्डित श्रीजनार्दनजी मिश्र, पङ्कज, शास्त्री)

[पृष्ठ २०० से आगे]

कई नास्तिकोंका कहना है कि 'जबतक शरीर है, तभीतक इसमें चेतन आत्माकी प्रतीति होती है, शरीरके जला या दफना दिये जानेपर आत्मा प्रत्यक्ष नहीं है; अतः शरीरसे भिन्न आत्मा नहीं है। अतएव मरणके पश्चात् परलोककी यात्रा अथवा ब्रह्मलोकादिमें पहुँचकर मुक्त हो जानेकी बातें असंगत हैं।' (चार्वाक दर्शन) उनके कथनका वेदान्तने युक्तियुक्त खण्डन किया है। शरीर ही आत्मा है और पुनर्जन्म नहीं होता—यह कथन ठीक नहीं, गुमराह करनेवाला है। किंतु शरीरसे भिन्न, शरीर आदि पञ्चभूतों तथा उनके कार्योंको जाननेवाला, द्रष्टा या साक्षी आत्मा अवश्य है। सांख्योक्त सूत्र—'देहादिव्यतिरिक्तोऽसौ।' से यह सिद्ध होता है; क्योंकि मृत्युकालमें शरीर हमारे-आपके सामने निश्चेष्ट पड़ा रहता है, तो भी उसमें सब पदार्थोंको जाननेवाला चेतन आत्मा नहीं रहता। अतः जिस प्रकार यह प्रत्यक्ष है कि शरीरके रहते हुए भी उसमें जीवात्मा नहीं रहता, इसी प्रकार यह भी मान लेना होगा कि शरीरके न रहनेपर भी आत्मा रहता है। वह इस स्थूलशरीरमें नहीं तो अन्य (सूक्ष्म व लिङ्ग) शरीरमें रहता है। अतः दर्शन-शास्त्रका यह कथन कि लिङ्गनाश होनेपर ही मुक्ति होती है—कितना सारगर्भित एवं रहस्यमय है, यह विद्वानोंके चिन्तनका ही विषय है। अथच मृत्युके बाद भी आत्माका अभाव नहीं होता। असत्का भाव नहीं और सत्का अभाव नहीं—इस न्यायसे यह कथन सर्वथा युक्तिविरुद्ध है कि 'स्थूलशरीरसे भिन्न आत्मा नहीं है।' यदि इस शरीरसे पृथक् चेतन आत्मा नहीं होता तो वह अपने तथा दूसरोंके शरीरोंको नहीं जान सकता; क्योंकि घटादि जड पदार्थोंमें एक-दूसरेको या अपने-आपको जाननेकी शक्ति नहीं है। अतएव जिस प्रकार सबका ज्ञाता होनेके कारण ज्ञातारूपमें आत्माकी उपलब्धि प्रत्यक्ष है, उसी प्रकार शरीरका ज्ञाता होनेके कारण इस ज्ञेय शरीरसे उसका भिन्न-पृथक् होना भी प्रत्यक्ष है।

कहना नहीं होगा कि गौतमादि तार्किकोंने अपुनर्जन्मवाद नास्तिक दर्शनों तथा बाइबिल और कुरानादिकी ईंटका जवाब पत्थरसे दिया है। इनकी युक्तियाँ बड़ी प्रबल और अकाट्य हैं। न्यायदर्शनमें स्पष्ट लिखा है—

'पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धाज्जातस्य हर्षभयशोकसम्प्रतिपत्तेः।'

(न्या० सू० ३ । १ । १९)

* 'श्रीसनातनधर्मालोक' ग्रन्थमालाके दस पुष्प प्रकाशित हो चुके हैं; तृतीय पुष्प अब नहीं मिलता। हमारे नामसे 'श्रीसनातनधर्मालोक' ग्रन्थमाला कार्यालय, १ बी० १९ लाजपतनगर फर्स्ट (नई दिल्ली १४)। इस पतेसे मँगाना चाहिये। इससे धर्मसम्बन्धी सब शङ्काओंका समाधान हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ एक प्रश्न उठाकर उत्तर देनेकी चेष्टा की गयी है कि नवजात शिशुओंके मुखपर जो आनन्द, भय और शोकके चिह्न देखनेमें आते हैं, उनका क्या कारण है? ऊपरके सूत्रकी व्याख्या करते समय दिग्गज तार्किक वाचस्पति मिश्रजी कहते हैं—

'अभिप्रेतविषयकप्रार्थनाप्राप्तौ सुखानुभवो हर्षः। अनिष्टविषयसाधनोपनिपाते तज्जिहासोर्हानाशक्यता भयम्। इष्टवियोगे सति तत्प्राप्त्यशक्यप्रार्थना शोकः। तदनुभवः सम्प्रतिपत्तिः। प्रत्यक्षबुद्धिनिरोधे तदनुसंधानविषयः स्मृतिः। अनुबन्धो भावनास्मृतिहेतुः संस्कारः।'

(न्यायवार्तिक तात्पर्यटीका)

भावार्थ—''अभीष्ट विषयकी पूर्ति होनेपर 'हर्ष' होता है। अनिष्ट विषयकी उपस्थिति हो जानेपर उसे दूर करनेकी इच्छा होनेपर भी दूर नहीं कर सकनेपर 'भय' होता है। इष्टके वियोगसे 'शोक' होता है। इन्हींका प्रत्यक्ष अनुभव 'सम्प्रतिपत्ति' कहलाता है। अतीत अनुभवके अनुसंधानको 'स्मृति' कहते हैं और स्मृतिका कारणस्वरूप संस्कार ही 'अनुबन्ध' कहलाता है।''

अब स्पष्ट समझ लीजिये कि हर्ष, भय, शोककी उत्पत्तिका कोई-न-कोई कारण तो होगा ही। अथच सद्योजात शिशुकी मुखाकृतिपर प्रकट और लुप्त होनेवाले हर्ष, भय, शोकादि विकारोंका एकमात्र कारण पूर्वजन्मका अभ्यास ही है। यह पूर्वस्मृति एवं तज्जन्य संस्कार ही है, जिससे बालखिल्यों (छोटे-छोटे बच्चों) के मुखपर हर्ष, भय और शोकके लक्षण उदित होते रहते हैं।

बहुत सम्भव है, अपुनर्जन्मवादी यहाँ एक शङ्का खड़ी कर दें और अपनी दलीलमें कह दें कि 'बच्चोंका यह हँसना, रोना, किलकारियाँ भरना आदि प्राकृतिक हैं। जिस प्रकार कमल तालाबमें मुसकरा उठते हैं और संध्या समय सम्पुटित हो जाते हैं, अथच इसे क्यों न 'आकस्मिकवाद' मान लिया जाय?' उपर्युक्त आक्षेपके उत्तरमें न्याय-सूत्रकारने अपना दूसरा सूत्र सामने रख दिया है—

'नोष्णशीतवर्षाकालनिमित्तत्वात् पञ्चात्मकविकाराणाम्।'

(न्या० सू० ३ । १ । २१)

कहनेका अभिप्राय इतना ही है कि कमलके विकास तथा संकोचवाले इस उदाहरणसे भी 'आकस्मिकवाद' की सिद्धि नहीं होती। इसलिये कि पञ्चभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश) से बनी वस्तुओंमें जो विकार भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं, उनके कारण ग्रीष्म, वर्षा तथा शीत हैं। विशेष कारणके बिना उनकी उत्पत्ति सम्भव नहीं। अथच शिशुके मुखपर जो भिन्न-भिन्न विकार या लक्षण परिलक्षित होते हैं, उनके लिये कुछ-न-कुछ कारण तो मानना ही पड़ेगा। यही विशेष कारण 'पूर्वजन्माभ्यास' है। यही कारण है कि जन्म लेते ही शिशुकी जननीके स्तन्यपानकी ओर प्राकृतिक प्रवृत्ति जग जाती है। लिखा भी है—

'प्रेत्याऽऽहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात्।'

(न्या० सू० ३ । १ । २२)

अर्थात् 'सद्योजात शिशुको माताका स्तन चूसना बतलानेवाला गुरु उसका पूर्वजन्मका अभ्यास ही है।' ऊपरके सूत्रका भाष्य करते हुए वात्स्यायनने लिखा है—

'जातमात्रस्य वत्सस्य प्रवृत्तिलिङ्गः स्तन्याभिलाषो गृह्यते। स च नान्तरेणाहाराभ्यासम्।...तेनानुमीयते भूतपूर्वं शरीरं यत्रायेनाहाराऽभ्यस्त इति। स खल्वयमात्मा पूर्वशरीरात् प्रेत्य शरीरान्तरमापन्नः क्षुत्पीडितः पूर्वमाहारमभ्यस्तमनुस्मरन् स्तन्यमभिलषति।' (वा० भा०)

भावार्थ—'जन्म लेते ही बच्चेमें माताके स्तनोंको चूस-चूसकर दूध पीनेकी प्रवृत्ति देखी जाती है। दुग्धपान (भोजन) की ऐसी अभिलाषा पूर्वाभ्यासके बिना कदापि सम्भव नहीं। इसीसे अनुमान होता है कि वही आत्मा एक शरीरसे दूसरे शरीरमें आकर पूर्वाभ्याससे प्रेरित भूख लगनेपर दूध पीनेमें प्रवृत्त होता है।'

नास्तिकवादने आगे चलकर फिर दूसरा आक्षेप किया है। उसका कहना सम्भवतः यदि ऐसा हो—

'अयसोऽयस्कान्ताभिगमनवत्तदुपसर्पणम्।'

(न्यायसूत्र ३ । १ । २३)

अर्थात् 'जिस प्रकार लोहा स्वभावतः (बिना किसी अभ्यासके) चुम्बककी ओर खिंच जाता है, उसी प्रकार शिशु भी स्वभावतः (न कि पूर्वाभ्यासवशतः) दुग्धपानकी ओर प्रवृत्त होता है।'

इस युक्तिका उत्तर नैयायिक गौतमने जिस प्रबल युक्तिसे दिया है, वह विचारणीय है।

'नान्यत्र प्रवृत्त्यभावात्।' (न्या० सू० ३ । १ । २४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—वस्तुतः ऐसा आक्षेप निःसार है—तथ्यहीन है। इसलिये कि लोहा चुम्बकसे आकृष्ट होता है, अन्य वस्तुओंसे नहीं। इससे तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि कारण-कार्यका सम्बन्ध नियमित है—विनिश्चित है और उसमें अन्यथा भी नहीं हो सकता। माताके स्तनोंको चूसनेवाले बालकका स्तन्यपान सकारण है—आकस्मिक नहीं। न्यायसूत्रमें महर्षि गौतमने प्रमेयोंके अन्तर्गत बारह पदार्थोंके नाम दिये हैं। जैसे—आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव (पुनर्जन्म), फल, दुःख और अपवर्ग। प्रेत्यभावका अर्थ है—

'प्रेत्य मृत्वा भावो जननम् इति प्रेत्यभावः।'

"मृत्युके पश्चात् पुनः जन्म लेना ही 'प्रेत्यभाव' है।" अर्थात् प्रेत्यभाव पुनर्जन्मका ही पर्याय है। 'तर्कदीपिका'में लिखा है—

'मरणोत्तरं जन्म प्रेत्यभावः।' अर्थात् मृत्युके अनन्तर जन्म लेना ही 'प्रेत्यभाव' है। न्यायसूत्र (१।१।१९) में सूत्रकारने कहा है—**'पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः।'**—अर्थात् मरणके उपरान्त पुनः उत्पन्न होना ही 'प्रेत्यभाव' है। वात्स्यायनके भाष्यानुसार—**'उत्पन्नस्य सम्बद्धस्य सम्बन्धस्तु देहेन्द्रियमनोबुद्धिवेदनाभिः, पुनरुत्पत्तिः पुनर्देहादिभिः सम्बन्धः।'**

शरीरान्तरके साथ-ही-साथ इन्द्रिय, मन, बुद्धि और संस्कारोंसे युक्त होना ही 'प्रेत्यभाव' है।

श्रीमद्भगवद्गीताके १५वें अध्यायमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका वचन है—

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥

अर्थात् 'जब यह जीवात्मा शरीर धारण करता है और जब इसे छोड़ देता है, वह इन्हें इस प्रकार ले जाता है जैसे वायु अपने साथ गन्ध लिये जाती है।' कहना नहीं होगा कि वायुका एक दूसरा नाम 'गन्धवह' भी है। उसी प्रकार एक शरीरको छोड़कर शरीरान्तर धारण करनेवाला यह जीव भी कान, आँख, स्पर्श, रसना (जीभ), घ्राण (नाक) तथा छठे मनकी सूक्ष्मशक्तिको साथ लेकर चलता है और उनके द्वारा विषयोंका उपसेवन करता है।

न्याय तथा अपर दार्शनिक ग्रन्थोंके मतानुसार मृत्युसे स्थूलशरीरका अवसान तो हो जाता है; आत्माका विनाश नहीं होता। हाँ, प्राचीन शरीरके साथ अलबत्ता उसका सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। तदनन्तर नवीन देह धारण करना ही 'प्रेत्यभाव' अथवा 'पुनर्जन्म' है। पुनर्जन्मकी पुष्टिके लिये न्यायसूत्रकारने एक-से-एक बढ़कर युक्तियोंका सहारा लिया है। उनका एक सूत्र है—

'वीतरागजन्माऽदर्शनात्।' (न्या० सू० ३।१।२५)

इसका अभिप्राय यह है कि 'वीतरागपुरुषका जन्म नहीं होता।' इससे सिद्ध हो जाता है कि रागी या रागयुक्त पुरुषका ही पुनर्जन्म होता है। राग क्या है? पूर्वानुभूत विषयोंका चिन्तन। और यही चिन्तन रागका कारण है। पूर्वजन्ममें अनुभूत भोग-विषयोंको याद करके ही जीव पुनः-पुनरपि विषयोंमें आसक्त होता है और पूर्ववत् आचरण करने लगता है। बस, जन्मना कर्म तथा कर्मणा जन्मका ताँता लग जाता है।

ऐसी अवस्थामें 'योगभ्रष्ट—अपरिपक्वकषाय पुरुषोंको भी 'पुनर्जन्म' लेना पड़ जाता है। गीतामें अर्जुनका प्रश्न है कि 'योगसे विचलित तथा अप्राप्त योग-संसिद्धि पुरुषोंकी क्या गति होती है?' धनञ्जयकी इस शङ्काके उत्तरमें (गीता ६।४०-४१) भगवान् हृषीकेशने कहा है कि 'ये योग-विचलित पुण्यात्माओंके लिये सुरक्षित लोकोंमें अनेक वर्षोंतक वास करके पुनः पवित्र ब्राह्मण अथवा राजकुलमें जन्म लेते हैं।'

गीतामें एक बात बड़े मार्केकी है। भगवान्ने अर्जुनसे कहा है कि 'हे अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत-से—न जाने कितने जन्म इससे पूर्व भी हो चुके हैं। मुझे तो वे सभी जन्म याद हैं, लेकिन तुझे एक भी याद नहीं।' (गीता ४।५) यहाँ यह शङ्का स्वाभाविक है कि अपने विगत जन्मोंका स्मरण सभीको क्यों नहीं रहता? इस शङ्काके निराकरणके लिये दिग्गज तार्किक वाचस्पति मिश्रने अपनी 'न्यायवार्तिक तात्पर्यटीका'में लिखा है कि 'पूर्वाभ्याससे ही जीवनका स्मृति-संस्कार बनता है—यह एक अनुभव-सिद्ध बात है।' किसी भी शिशुमें पूर्वसंस्कारजनित प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है, उसीसे उसके पूर्वजन्मका अनुमान होता है। फिर क्या कारण है कि उसे पूर्वजन्मकी बातोंकी याद नहीं रह जाती? इसका उत्तर यही है कि 'अदृष्टका परिपाक जितना संस्कार उद्बोधित करता (जगाता) है, उतनी ही स्मृति उद्बुद्ध हो सकती है।' ऐसा कोई नियम नहीं है कि एक बात यदि स्मृति-पटलपर अङ्कित हो जाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो सारी बातें भी अङ्कित ही हो जायँगी। शरीरान्तर-प्राप्ति होनेपर केवल प्रबलतम संस्कार ही सूक्ष्मरूपसे पुनरुत्पन्न होता है।

इस विषयमें पातञ्जलयोगदर्शनमें एक सूत्र आया है—

'संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्।'

(योगदर्शन, विभू० पाद, सू० १८)

भावार्थ—'संस्कारके साक्षात् करनेसे पूर्वजन्मका ज्ञान होता है।' संस्कार दो प्रकारके होते हैं—(१) एक स्मृतिके बीजरूपसे रहते हैं, जो स्मृति और क्लेशोंके कारण हैं। (२) विपाकके कारण वासनारूपसे रहते हैं, जो जन्म, आयु, भोग और उनमें सुख-दुःखके कारण होते हैं। वे धर्म और अधर्मरूप हैं। ये सभी संस्कार इस जन्म तथा पिछले जन्ममें किये हुए कर्मोंसे बनते हैं तथा ग्रामोफोनकी प्लेटके रेकार्डके समान चित्तमें चित्रित रहते हैं। वे परिणाम, चेष्टा, निरोध, शक्ति, जीवन और धर्मकी भाँति अपरिदृष्ट चित्तके धर्म हैं। उनमें संयम करनेसे योगीको उनका साक्षात् हो जाता है। इससे उसको जिस देश, काल और जिन-जिन निमित्तोंसे वे संस्कार बने हैं, सब स्मरण हो जाते हैं। यही 'पूर्वजन्म-ज्ञान' है। (योगियोंके अतिरिक्त भी बहुत-से शुद्ध संस्कारवाले बालक भी अपने पूर्वजन्मका हाल बतला देते हैं।) जिस प्रकार संस्कारोंके साक्षात् करनेसे अपने पूर्वजन्मका ज्ञान होता है, उसी प्रकार दूसरेके संस्कारोंके साक्षात् करनेसे दूसरेके पूर्वजन्मका ज्ञान होता है। विज्ञानभिक्षुके अनुसार 'पर' अर्थात् भावी जन्मोंका भी इसी भाँति संस्कारके साक्षात् करनेसे ज्ञान हो जाता है। इस क्रममें योगसूत्र-भाष्यकारोंने आवट्य नामक योगीश्वरका योगिराज जैगीषव्यके साथ एक संवाद उपन्यस्त किया है।

'साधनपाद'के ३५वें सूत्र—'अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः।' के अनुसार 'अपरिग्रहकी स्थिरतामें भूत तथा भविष्य जन्मका ज्ञान हो जाता है कि इससे पूर्वजन्म क्या था, कैसा था और कहाँ था? और आगे कैसा होगा।'

'आत्मनित्यत्वे प्रेत्यभावसिद्धिः।'—अक्षपादके ऊपरके सूत्रसे इतना सिद्ध हो जाता है कि 'मृत्युके बाद प्रेत्यभाव (पुनर्जन्म) होता है तथा आत्मा नित्य होनेके कारण एकरस रहता है।'

न्यायदर्शनके भाष्यकार वात्स्यायनके मतानुसार प्रेत्यभाव अर्थात् पुनर्जन्मकी अस्वीकृतिसे दो प्रबल दोष उपस्थित होते हैं—

(१) कृतहान—किये हुए कर्मोंके फलोंका अभोग।

(२) अकृताभ्यागम—अकृत अर्थात् नहीं भी किये हुए कर्मोंका भोग। आस्तिक दर्शनोंका सिद्धान्त है—

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।'—तदनुसार हमारे जीवनके सुख-दुःख हमारे कर्मोंके ही फल हैं। शुभ कर्मोंके फल शुभावह तथा अशुभके भयावह होते हैं। किंतु यह भी देखनेमें आता है कि इस जीवनमें किये गये बहुत-से कर्मोंके फल हमें इसी जीवनमें नहीं मिलते। अब प्रश्न उठता है कि यदि जन्मान्तर नहीं माना जाय तो इन कृत कर्मोंके फल ही लुप्त हो जाते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि तब तो ऐसा प्रतीत होने लगेगा कि जीवनमें बिना पुण्य या तप किये ही कोई सुख भोग रहा है और बिना पाप किये ही कोई दुःख उठा रहा है। अथच यदि पूर्वजन्मका पचड़ा हटा दिया जाय तो फिर बिना कर्मोंके ही फलभोग मानना पड़ जायगा।

'न्यायवार्तिक तात्पर्यटीका'में वाचस्पति मिश्रजीका कहना है कि 'यदि पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंका अस्तित्व ही नहीं माना जाय और अणु-परमाणुओंके संयोगसे ही शरीरोत्पत्ति मान ली जाय, तब तो इसे मान ही लेना पड़ेगा कि सुख-दुःखका भोग यों ही होता है। तब तो फिर कार्य होता है, परंतु कारणका अभाव है और फल कर्मपर बिल्कुल निर्भर नहीं करता। ऐसी अवस्थामें कर्मफल कोई वस्तु ही नहीं रह जाता। साथ ही शास्त्रीय विधि-निषेध भी महत्त्वहीन और निरर्थक हो जाते हैं। जब मनुष्य बिना शुभ कर्म किये ही सुख भोगता है, तब वह आपातमनोहर वर्जित कर्मको छोड़कर कष्टसाध्य शास्त्रविहित कर्मोंकी ओर क्यों अग्रसर होगा? और तब उस द्राविड़ प्राणायामका मूल्य ही क्या रह जाता है? यदि कर्मको निष्फल और जीवनको आकस्मिक मान लिया जाय तो सभी शास्त्र बगल झाँकने लग जायँगे—व्यर्थ प्रतीत होने लगेंगे। शास्त्रानुष्ठानके लिये तो गीतामें स्वयं भगवान्‌ने श्रीमुखसे आदेश दिया है—(१६। २३-२४) के अनुसार अर्थात् 'कर्तव्याकर्तव्य-विवेचन'के लिये शास्त्र ही प्रमाण हैं। अतएव कृतहान और अकृताभ्यागम दोषके परिहारार्थ कर्मानुसार पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्मको स्वीकार करना ही पड़ेगा।

अब प्रश्न हो सकता है कि 'जन्म ही क्यों होता है?' इसका समीचीन एवं तर्कसंगत उत्तर न्यायदर्शनने दिया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पूर्वकृतफलानुबन्धात् तदुत्पत्तिः ।'

(न्या० सू० ३ । २ । ६४)

अर्थात् 'पूर्वजन्ममें किये गये कर्मोंके फलानुबन्धसे ही देहकी उत्पत्ति होती है ।' यह शरीर-धारण स्वतन्त्र भूतोंसे नहीं, बल्कि धर्माधर्मरूप अदृष्टकी शक्तिसे प्रेरित पञ्चभूतोंसे होता है । यहाँ भी नास्तिक अडंगा लगाते हैं और अपनी लचर दलील पेश करते हैं कि 'जब पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश—पञ्चतत्त्वोंसे ही देह बन जाता है तो फिर उसके निमित्त पूर्वजन्मके कर्मोंको मान लेनेकी आवश्यकता ही क्या ? घट (घड़े) की भाँति भौतिक अणु-परमाणुओंके संयोगसे बन जानेवाले शरीरके लिये निमित्त कारण क्यों ?' इस आक्षेपका उत्तर गौतमने निम्नस्थ सूत्रमें दिया है—

'भूतेभ्यो मूर्त्युपादानवत्तदुपादनम् ।'

(न्या० सू० ३ । २ । ६५)

महर्षि वात्स्यायनके भाष्यानुसार भावार्थ यह है—'सिकता (बालू) से कंकड़-पत्थर आदिकी उत्पत्ति कर्मसापेक्ष नहीं । इसलिये कि ये कंकड़-पत्थर अपने-आप भौतिक परमाणुओंके संयोगसे बन जाते हैं । लेकिन गर्भस्थ शरीर केवल शुक्र-शोणितके संयोगसे ही नहीं बन जाता । यहाँ तो पूर्वकर्मको हेतु मानना ही पड़ेगा । इसलिये कि कंकड़-पत्थर वीर्यके बिना ही उत्पन्न हो जाते हैं, किंतु शरीरोत्पत्ति वीर्यसे होती है ।'

ऊपरके आक्षेपका खण्डन न्यायसूत्र-भाष्यकार वात्स्यायनने बड़े ही जोरदार शब्दोंमें किया है । वे लिखते हैं—

'विषमश्चायमुपन्यासः । कस्मात् ? निर्बीजा इमा मूर्त्तयः उत्पद्यन्ते, बीजपूर्विका तु शरीरोत्पत्तिः । सत्त्वस्य गर्भवासानुभवनीयं कर्म पित्रोश्च पुत्रफलानुभवनीये कर्मणी मातुर्गर्भाशये शरीरोत्पत्तिभूतेभ्यः प्रयोजयन्ति ।'

(३ । २ । ६७ की टीका)

अर्थात् 'यह कैसी उलटी गङ्गा बहाते हो ? सबीज शरीरका दृष्टान्त निर्बीज मिट्टी-कंकड़-पत्थरसे नहीं दिया जा सकता । देहोत्पत्तिके लिये जीवका माताके गर्भमें वास आवश्यक है । अपने माता-पिताके कर्मानुरूप जीवकी सृष्टि गर्भमें होती है । कर्म ही पञ्चभूतोंसे जीवके शरीरकी रचना करवाते हैं ।'

शरीरकी रचनाके विषयमें महर्षि गौतमने अपने न्याय-दर्शनमें कहा है कि 'खाया-पीया आहार भी देहकी उत्पत्तिमें कारण है । वात्स्यायनके भाष्यानुसार वही आहार पच जानेपर माताके शरीरमें रस होकर बढ़ता है । उसीके अनुसार गर्भस्थ बीज बढ़कर मांस, ग्रन्थि आदि अनेक रूप धारण करता है । गर्भकी नाड़ीसे उतरकर रस-द्रव्यकी जो वृद्धि होती है, उसीसे गर्भस्थ शरीर पुष्ट होकर प्रसव-योग्य बन जाता है । लेकिन थालीमें सजे-सजाये भोजन-द्रव्यमें ऐसी शक्ति नहीं होती । इससे प्रमाणित होता है कि आमाशयस्थ भोजन ही गर्भ-शरीरकी उत्पत्तिका एकमात्र करण नहीं है। इसलिये कि कर्मकी सहायता लेनी पड़ती है ।' (३ । २ । ६८)

अपुनर्जन्मवादी यह आक्षेप कर सकते हैं कि जब स्त्री-पुरुषके रजोवीर्यका संयोग ही गर्भाधानका कारण है, तब फिर पुनर्जन्मका अस्तित्व क्यों माना जाय ? तो इसका खण्डन गौतमके नीचे लिखे सूत्रमें किया गया है—

'प्राक्तौ चानियमात् ।' (न्या० सू० ३ । २ । ६९)

इसपर महर्षि वात्स्यायनका भाष्य कहता है—

'न सर्वदम्पत्योः संयोगो गर्भाधानहेतुर्दृश्यते, तत्रासति कर्मणि न भवति सति च भवति, इति अनुपपन्नो नियमाभाव इति ।'

—अर्थात् 'पति-पत्नीके सभी संयोग गर्भ स्थापित नहीं कर सकते । इससे प्रकट होता है कि शुक्र-शोणितसंयोग ही गर्भाधानका एकमात्र निरपेक्ष कारण नहीं है ।' उसके लिये किसी और वस्तुकी अपेक्षा बनी रहती है और वह है 'प्रारब्ध'। प्रारब्धकर्मके अतिरिक्त रजोवीर्यका संयोग गर्भधारण करनेमें किसी प्रकार भी समर्थ नहीं । अथच पञ्च महाभूतोंको देहोत्पत्तिका निरपेक्ष कारण नहीं माना जा सकता । कर्म-सापेक्ष मानना ही युक्तियुक्त होगा । प्रारब्धकर्मानुसार ही देहकी उत्पत्ति और उसमें आत्माका संयोग होता है । गौतमने लिखा है—

'शरीरोत्पत्तिनिमित्तवत् संयोगोत्पत्तिनिमित्तं कर्म ।'

(न्या० सू० ३ । २ । ७०)

ऊपरके सूत्रसे स्पष्ट हो जाता है कि यह कर्म ही कारण है कि कोई ब्राह्मण अथवा राजाके कुलमें जन्म लेता है और कोई शूद्रादि नीच कुलमें । कोई शरीरके सर्वावयवोंसे पूर्ण होता है और कोई अपूर्ण या विकलाङ्ग । कोई रोगी तथा कोई नीरोग । इसी प्रकार कोई मेधावी और कोई मन्द । शरीरगत यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्नता भिन्न-भिन्न प्रारब्ध कर्मोंके फलस्वरूप ही हुआ करती है। अब यदि प्रारब्ध कर्मका अस्तित्व न माना जाय, तब तो सभी आत्माओंको तुल्य (एक समान) मानना होगा। साथ ही पृथ्वी, जल, पावक, पवन और गगन—पञ्चभूतोंका कोई नियामक ही नहीं रह जाता और नियामक न हो तो सभी शरीर एक-से बनेंगे, किंतु यह कथन तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। भिन्न-भिन्न आकार-प्रकारके शारीरिक संस्कार लेकर ही जीव जन्म ग्रहण करते हैं। अथच इस कर्मको ही निमित्त मानना पड़ेगा। यदि प्रारब्धकर्म नहीं माना जाय, तब तो जन्म-विषयक अनियम या अव्यवस्था बनी ही रहेगी। अतः गौतमके निम्नलिखित सूत्रसे—

'एतेनानियमः प्रत्युक्तः।' (न्या० सू० ३। २। ७१)

'प्रारब्ध कर्मको निमित्त कारण मान लेनेसे जन्मसम्बन्धी अव्यवस्था अथवा अनियम खण्डित हो जाता है।'

यह सत्य है कि कृतकर्मोंका फल समय पाकर कर्ताके पास स्वयमेव पहुँच जाता है। जिस प्रकार हजारों गौओंको मैदानमें खड़ी कर दीजिये और किसी एकका बछड़ा खोल दीजिये और देखिये कि वह बछड़ा सभी गौओंके बीच ओटमें छिपी-खड़ी अपनी माताके पास पहुँच जाता है कि नहीं।

एक बात और ध्यान देनेकी है। वह यह है कि यदि देहोत्पत्तिमें कर्मको निमित्त नहीं माना जाय और केवल भौतिक तत्त्वों (रजोवीर्य) का संयोग ही एकमात्र कारण मान लिया जाय तो फिर संयोगके नाश अर्थात् मृत्युका क्या कारण हो सकता है? विशेष कारणके बिना तो शरीरकी नित्यता और मृत्युकी अनुपपत्ति (असिद्धि) का एक जबर्दस्त प्रश्न उठ खड़ा होता है। इसी आक्षेपके निराकरणके लिये महर्षि गौतमने निम्नस्थ सूत्र लिखा है—

'नित्यत्वप्रसंगश्च प्रायणानुपपत्तेः।' (न्या० सू० ३। २। ७६)

इसके भाष्यमें वात्स्यायनका कहना है कि 'भोगद्वारा कर्माशयका क्षय हो जानेपर एक देहका अन्त हो जाता है। साथ ही दूसरे कर्माशयका फल भोगनेके लिये शरीरान्तर धारण करना पड़ता है। यदि केवल पञ्चभूत ही मृत्युके कारण होते तो फिर मृत्यु क्योंकर होती? इसलिये कि पञ्चभूत नित्य हैं। अथच किसका क्षय होनेपर शरीरान्त होता है?' इससे सिद्ध हुआ कि शरीरकी उत्पत्ति और विनाश कर्माशयपर अवलम्बित हैं। प्रारब्धकर्मके अनुसार ही फल भोगनेके लिये जन्म होता है और कर्माशयका क्षय हो जानेपर शरीरसे आत्मा निकल जाया करता है। अथच जन्म-मरण कर्मसापेक्ष हैं—सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र नहीं।

इस प्रसङ्गमें नैयायिकोंका 'तृणजलौका' न्याय प्रसिद्ध है। इस न्यायका प्रयोग नैयायिक आत्माके एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीरमें प्रवेश करते समय दृष्टान्तरूपसे किया करते हैं। श्रीमद्भागवतमहापुराणमें इसका आशय सुस्पष्ट किया गया है कि 'जिस प्रकार घासपर रेंगनेवाली जोंक दूसरी घासपर जाते समय अपना अगला पाँव घासकी किसी पँखुड़ीको आधार बनाकर रख लेती है, तब पिछला पाँव पहली घासपरसे उठाती है, उसी प्रकार जीव शरीरान्तरका आधार लेकर ही पूर्वतन शरीरका त्याग कर देता है।'

सच तो यह है कि मृत्यु पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्मके बीचका प्रवेशद्वार है। यहीं पहुँचकर नैयायिकोंका 'देहली-दीपकन्याय' चरितार्थ होता है।

मनने कभी शान्ति नहीं पायी

कबहूँ मन बिश्राम न मान्यो।
निसिदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, जहँ तहँ इंद्रिन तान्यो॥
जदपि बिषय-सँग सह्यो दुसह दुख, बिषम जाल अरुझान्यो।
तदपि न तजत मूढ़ ममताबस, जानतहूँ नहिं जान्यो॥
जनम अनेक किये नाना बिधि करम-कीच चित सान्यो।
होइ न बिमल बिबेक-नीर बिनु, बेद पुरान बखान्यो॥
निज हित नाथ पिता गुरु-हरिसों हरषि हृदै नहिं आन्यो।
तुलसिदास कब तृषा जाय सर खनतहिं जनम सिरान्यो॥

—तुलसीदासजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म-मृत्यु, अमरत्व, परलोक और पुनर्जन्मका स्वरूप तथा रहस्य

(लेखक—श्रीश्रीराम माधव चिंगले, एम्० ए०)

[पृष्ठ २०६ से आगे]

५—जन्म-मृत्युका यथार्थ तात्त्विक स्वरूप

'देह आत्मा नहीं' यह भारतीय धर्म तथा दर्शनका मुख्य सिद्धान्त या कहिये कि प्राण ही है। इसीलिये इस सिद्धान्तको एक चार्वाक या लोकायत दर्शनके नगण्यसे अपवादको छोड़कर शेष सभी दार्शनिक प्रयत्नपूर्वक सिद्ध करते हैं। देह तो प्रत्यक्षरूपसे जन्म-मृत्यु इत्यादि षड्भाव-विकारोंसे ग्रस्त है। किंतु देहके संदर्भमें भी जन्म और मृत्यु या नाशका अर्थ समझ लेना चाहिये। सत्कार्यवादके सिद्धान्तके अनुसार, जिसे आधुनिक विज्ञानका समर्थन प्राप्त है, किसी भी वस्तुका आत्यन्तिक विनाश नहीं होता—('Nothing is lost'); होता है—रूपान्तरमात्र। **'णश अदर्शने'** इस व्युत्पत्तिके अनुसार नाश शब्दका अर्थ है—'दिखायी न देना।' अर्थात् व्यक्त रूपसे अव्यक्तरूप प्राप्त कर लेना। वस्तुका कार्यरूप छोड़कर कारणावस्थामें चला जाना ही उसका नाश है। यही बात 'जन्म' शब्दकी भी है। **'जनी प्रादुर्भावे।'**—इस व्युत्पत्तिके अनुसार जन्म लेनेका अर्थ है—वस्तुका अव्यक्तावस्थाको छोड़कर व्यक्तावस्था प्राप्त कर लेना, कारणावस्थाको छोड़कर कार्यावस्थामें अभिव्यक्त हो जाना।

पुनश्च, स्थूलशरीरकी लौकिक दृष्टिसे मृत्यु भी ऐसी बात नहीं कि एक बार मरनेपर हमें फिर दूसरा शरीर ही न मिले। **'नाभुक्तं क्षीयते कर्म।'**—इस कर्मसिद्धान्तके अनुसार एक शरीरके छूटनेपर प्रारब्ध-कर्मानुसार दूसरा शरीर मिलना अवश्यम्भावी है। शरीर तो अज्ञान दशामें मनुष्यको स्वेच्छा या अनिच्छापूर्वक मिलता ही रहता है। यह क्रम तबतक चलता रहता है, जबतक मनुष्य अपना आध्यात्मिक विकास पूर्ण न कर ले, अर्थात् जबतक कि वह तत्त्वज्ञानके द्वारा अपने नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त सच्चिदानन्द-स्वरूपका साक्षात्कार न कर ले। अतएव हमें जो प्रयत्न करना है—वह शरीरकी प्राप्तिके लिये नहीं करना है, किंतु 'भव'—'जन्म-मरणके चक्र'से छूटनेके लिये करना है।

श्रीवसिष्ठ महामुनिने योगवासिष्ठमें मृत्यु-विषयक विवेक बहुत ही उत्तमताके साथ किया है। आपके द्वारा की हुई मृत्युकी निम्न व्याख्या विचारणीय है—**'देहान्तरार्थं देहस्य संत्यागो मरणं स्मृतम्।'** अर्थात् 'दूसरे देहकी प्राप्तिके लिये जो पहले देहका त्याग किया जाता है—वही मरण है।' इस-लिये मृत्युसे डरनेका कोई कारण नहीं। मरणभय सर्वथा अविचारितसिद्ध है। इसके अनन्तर श्रीवसिष्ठ महामुनि 'अभ्युपगम न्याय'से मृत्युविषयक एक और विचार उपस्थित करते हैं। यदि मरण आत्यन्तिक नाश हो, तब भी मृत्युसे घबरानेकी कोई बात नहीं; क्योंकि तब तो संसाररूपी रोग ही जड़से कट जाय,—**'मृतिरत्यन्तनाशश्चेद्भवाभयसंक्षयः।'** किंतु यदि मृत्युके कारण नये देहकी प्राप्ति होती हो तो फिर यह शोकका विषय न होकर हर्षका ही विषय होना चाहिये; क्योंकि नयी वस्तुको तो सभी खुशीसे चाहते हैं—**'मृतस्य देहलाभश्चेन्नव एव तदुत्सवः।'** अन्तमें श्रीमहामुनि सिद्धान्त बतलाते हैं कि 'मृत्युका स्वरूप सर्वनाशात्मक नहीं हो सकता। वर्तमान देहविषयक संकल्पका बंद होना और देहान्तर-विषयक संकल्पका स्थिर होना ही मृत्यु है। प्रत्येक जीव देश तथा कालके भेदसे अपनी वासना तथा संस्कारोंके अनुसार किसी-न-किसी देहकी कल्पना करके फिर-फिर उत्पन्न होता रहता है।' ध्यान रहे योगवासिष्ठ दृष्टि-सृष्टिवादका ग्रन्थ है, जो मुख्यतः वेदान्तके मुख्याधिकारीके लिये है। इसी दृष्टिसे यह प्रक्रिया उपस्थित की गयी है।

विचारवान् पुरुष मृत्युके वास्तविक स्वरूपसे परिचित होनेके कारण देहादिके वियोगकी सम्भावनासे यत्किंचित् भी विचलित या उद्विग्न नहीं होते। पञ्चमहाभूतोंसे निर्मित देहको वे पञ्चमहाभूतोंकी वस्तु समझकर मृत्युका सहर्ष स्वागत करते हैं। अज्ञानी मनुष्योंकी स्थिति इससे विपरीत होती है। वे मृत्युके वास्तविक स्वरूप और रहस्यसे अपरिचित होनेके कारण उससे भय खाकर उससे बचनेके हेतु नाना प्रकारके उपायोंका अवलम्ब करते रहते हैं। अज्ञानका प्रभाव कितना प्रबल होता है, इसका प्रत्यक्ष ज्वलन्त उदाहरण हमें मर्त्यदेहको अमर बनानेके हेतु या इस देहकी यौवनरूप क्षणभङ्गुर अवस्था-विशेषको चिरस्थायी रूप देनेके हेतु किये गये अनेकानेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उचित-अनुचित प्रयत्नोंके रूपमें देखनेको मिलता है। किंतु श्रीमद्भागवतमें इस विषयमें स्पष्ट निर्णय दिया गया है कि शरीर स्वरूपतः ही विनश्वर होनेसे उसे अमर बनानेके सारे प्रयत्नोंका निष्फल होना अवश्यम्भावी है—

नहि तत् कुशलादृत्यं तदायासो ह्यपार्थकः।
अन्तवत्त्वाच्छरीरस्य फलस्येव वनस्पतेः॥
(११।२८।४२)

शरीरका मरणधर्मसे ग्रस्त होना यह कोई गूढ़ रहस्य नहीं है,—'यत्कृतकं तदनित्यम्।' अर्थात् 'जो उत्पन्न होता है वह अनित्य होता है।' इस न्यायसे हम देख सकते हैं कि जब स्वयं यह पृथ्वी, जिसके आधारपर हमारा भौतिक जीवन रहता है और सम्पूर्ण सूर्यादि सृष्टि ही दीर्घकाल अवस्थायी होनेपर भी अन्ततोगत्वा विनश्वर ही है, तब भला इनके आधारपर रहनेवाले क्षुद्र शरीरके विनश्वर होनेमें संदेह ही क्या हो सकता है!

६—मृत्यु मनुष्यकी मित्र है, शत्रु नहीं

यदि हम प्रकृतिमें मृत्युके उद्देश्यको भलीभाँति समझ लें तो हमें यह देखते देर न लगे कि मृत्युका भय अविचारमूलक है; क्योंकि मृत्यु मनुष्यकी हित-शत्रु न होकर उसकी सच्ची हितैषिणी है। इस सम्बन्धमें पहले हमें इस महत्त्वपूर्ण बातको ध्यानमें रखना चाहिये कि मानव-जीवनका मुख्य ध्येय आध्यात्मिक विकास है। आनन्दमय प्रभुके विश्वरचना-रूप लीलाविष्करणका मुख्य ध्येय यही है। प्रकृति माता चराचर सृष्टिको इसी एकमेव ध्येयकी ओर अनवरत रूपसे लिये चली जा रही है। नरसे नारायण बननेमें ही इस विकासकी परिसमाप्ति है। अब चूँकि विकासकी लंबी दौड़में एक शरीर, एक जन्म पर्याप्त नहीं, इसलिये प्रकृतिमाता प्रारब्धकर्मकी समाप्तिके साथ ही एक जन्म, एक शरीरके विकासके योग्य न रहनेकी स्थितिमें दूसरा जन्म और दूसरा शरीर दे देती है। मृत्यु मनुष्यके आध्यात्मिक विकासकी लंबी दौड़में एक आवश्यक विश्रान्ति-स्थल है। इस मृत्युके कारण ही हमारे वर्तमान जीवनका भार हल्का होकर और विकासके अयोग्य पुराने शरीरादि जाकर नया ताजा शरीर मिलता है और नये उत्साह तथा नयी उमंगके साथ विकासकी नयी दौड़ प्रारम्भ होती है। मृत्यु ही जीवको एक योनिसे, एक शरीरसे छुड़ाकर दूसरी योनिमें, दूसरे शरीरमें ले जाती है। मृत्युके अभावमें जीव एक ही योनिमें एक ही शरीरमें बँधा रहे। चौरासी लाख योनियोंमेंसे घूमकर मानवदेहकी प्राप्ति आखिर मृत्युके कारण ही तो हुई है। मृत्युकालमें मरनेवाले मनुष्यकी आँखोंके सामने अँधेरा छाने लगता है। इस अँधेरेके द्वारा मानो प्रकृतिमाता विश्व-रंग-मंचपर चलनेवाले जीवनरूपी महानाटकके एक अङ्कके अन्तमें पर्दा डालना चाहती है। यह पर्दा डालनेकी क्रिया नाटकका दूसरा अङ्क प्रारम्भ होनेसे पहलेकी आवश्यक मध्यवर्ती अवस्था है। फिर पिण्ड-प्राणका वियोग हो जाता है, अर्थात् मृत्यु हो जाती है। तदनन्तर योग्यकालमें प्रारब्ध कर्मानुसार नये पिण्डके साथ प्राणका योग होकर, नये जीवनका और उसके साथ ही विकासकी अगली मंजिलका प्रारम्भ होता है। मनुष्य नया जन्म पाकर नये उत्साह और उमंगके साथ विकासकी ओर चल पड़ता है। मृत्यु होनेपर मनुष्यकी भौतिक सम्पत्ति, पुत्र-परिवारादि जहाँके तहाँ धरे रह जाते हैं। मनुष्यके साथ जाता है—केवल उसका विकास। अपनी विकास-भूमिके अनुसार ही मनुष्य नया शरीर, नया जन्म ग्रहण करता है और अपने विकासके अनुकूल वातावरणमें ही वह जन्म लेता है।

७—ज्ञानी और अज्ञानी पुरुषकी मृत्युमें महान् अन्तर है

आध्यात्मिक विकासकी दृष्टिसे मृत्युके उपर्युक्त आवश्यक संक्रमणकालको विवेकी पुरुष मृत्युके वास्तविक रहस्यसे परिचित होनेके कारण हँसते-खेलते पार कर जाते हैं। वे मृत्युका सहर्ष स्वागत करते हैं। उससे किंचित् भी भयभीत नहीं होते। इसके विपरीत प्राकृत अज्ञजनोंके लिये मृत्यु एक भयावह वस्तु बन जाती है। मृत्युकी कल्पनासे ही इनके मनपर आतङ्क छा जाता है। ऐसे लोगोंको मृत्युके समय अतीव कष्ट होता है; क्योंकि वे प्रकृतिमाताका उद्देश्य न समझनेके कारण उसके साथ सहकार करनेके स्थानपर संघर्ष ठान बैठते हैं। मृत्युकालमें बाह्य जगत् तथा उसके पदार्थोंकी आसक्तिके कारण उनमें और प्रकृतिमें एक तरहकी रस्साकसी शुरू हो जाती है। प्रकृति तो उन्हें उन्हींके विकासके हितमें बाह्य जगत् तथा विकासके अयोग्य शरीरसे छुड़ाना चाहती है और वे उसीके साथ चिपके रहना चाहते हैं। देह-गेहादि पदार्थोंकी आसक्ति जितनी अधिक होती है, उतना ही अधिक कष्ट मनुष्यको मृत्युकालमें होता है। अभयादि शक्तिसे सम्पन्न प्रकृतिके साथ इस संघर्षमें मर्यादित, अल्पशक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव आखिर कबतक टिक सकता है ? प्रकृति उसकी चेतनाशक्तिको हरण करके उसके जीवनपर पर्दा डाल ही देती है। प्रकृतिके साथ इस खींचातानीके फलस्वरूप ही मृत्युका दुःख महाभयंकर हो उठता है। इस प्रकारके संघर्षसे विहीन विवेक और वैराग्यशील मनुष्यकी मृत्यु शान्तिपूर्ण होती है।

८—प्रकृतिमें पूर्वजन्मकी विस्मृति सहेतुक है

पूर्वजन्ममें संदेह करनेवाले प्रायः यह शङ्का उपस्थित किया करते हैं कि यदि हमारा पूर्वजन्म होता तो हमें उसकी स्मृति होनी चाहिये। मृत्युको 'दीर्घ' निद्रा कहा गया है, हम देखते हैं कि प्रतिदिन सोकर उठनेपर हमारी पूर्वकालीन स्मृति बनी रहती है। किंतु हमें पूर्वजन्मकी इस प्रकारकी कोई स्मृति नहीं होती। पूर्वजन्म माननेवालोंकी ओरसे इस शङ्काका समाधान करना आवश्यक है।

उक्त शङ्काका एक समाधान तो यह है कि विशिष्ट परिस्थितिमें व्यक्तिविशेषमें पूर्वजन्मकी स्मृतियाँ जगती हैं, इसके अनेक उदाहरण हैं। महाकवि कालिदासने पूर्वजन्मकी स्मृतिका निम्न श्लोकमें नितान्त सुन्दर काव्यमय वर्णन किया है—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्व-
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥
(अभिज्ञानशाकुन्तलम् ५।२)

'परामनोविज्ञान'ने इस प्रकारके आश्चर्यजनक उदाहरणोंका सशास्त्र संकलन और छानबीन की है। यह विज्ञान उत्तरोत्तर प्रगतिपथपर है।

उक्त शङ्काका दूसरा समाधान यह है कि दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिकमें आत्यन्तिक साम्य होना आवश्यक नहीं है। आंशिक साम्य अवश्य है। हम देखते हैं कि दीर्घकालतक गहरी नींदसे उठनेपर हम कुछ देरतक निश्चेष्ट स्थितिमें रहते हैं। उस समय पूर्वकालीन कोई स्मृति नहीं जगती। धीरे-धीरे एक-एक स्मृति उद्बोधक निमित्तको पाकर जगती है। मृत्यु तो अत्यन्त दीर्घनिद्रा है, अतएव उसके टूटनेपर यदि पूर्वस्मृतियाँ उद्बोधक निमित्तके अभावमें न जगें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

यह साधारण समाधान है। किंतु इस विषयका मुख्य रहस्य यह है कि प्रकृतिमें पूर्वजन्मकी विस्मृति हेतु-पुरस्सर होती है। ध्यान रहे, प्रकृतिमें पुनर्जन्मका मुख्य हेतु है—मनुष्यका आध्यात्मिक विकास। इसके लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य नव शरीरको प्राप्त करके नये उत्साह और उमंगोंके साथ अपने नये जन्मकी विकासयात्राका प्रारम्भ करे। इसके लिये यह भी आवश्यक है कि उसकी पुरानी, अप्रिय तथा अनावश्यक सब प्रकारकी स्मृतियोंका भार हल्का हो जाय। इस विकासके हेतु जितनी आवश्यक बातें हैं, वे तो पूर्वसंस्कारोंके कारण उद्बुद्ध हो ही जाती हैं, यथा नवजात शिशुमें स्तन्य-पानादिकी सहज प्रवृत्ति, विशिष्ट बातोंमें अभिरुचि तथा प्रवृत्ति, विशिष्ट बातोंसे द्वेष तथा निवृत्ति इत्यादि। यदि मनुष्यकी अतीत अनन्त स्मृतियोंका भार हल्का न हो तो नवीन जन्ममें भी मनुष्य अपने अनन्त जन्मोंकी अनन्त प्रिय, अप्रिय सब तरहकी स्मृतियोंके भारसे दबा रहे और यह भार असह्य होकर उसके विकासमें एक बड़ी बाधा, एक बड़ा रोड़ा बन जाय। हम देखते हैं कि हमारे वर्तमान जन्ममें ही ऐसी अनेक अप्रिय स्मृतियाँ होती हैं जिनके कारण हमें बहुत बेचैनी होती है, हम इन्हें भूल जाना चाहते हैं किंतु भूलते नहीं। किंतु प्रकृति माता मृत्युके अनन्तर इनपर विस्मृतिका परदा डाल देती है। इसका यह अर्थ नहीं कि ये स्मृतियाँ पूरी तरहसे नामशेष हो जाती हैं और कभी जग ही नहीं सकती, योगबलसे, तपःसिद्धिसे, भगवद्भक्तिके प्रभावसे या तत्त्वज्ञानके प्रभावसे भी केवल अपने ही नहीं, दूसरोंके भी पूर्वापर जन्मका ज्ञान सम्भव है। ऐसे लोगोंको 'जातिस्मर' कहा गया है। महात्मा जडभरत इसके सुप्रसिद्ध उदाहरण हैं। पातञ्जलयोगदर्शनके दो सूत्र इसी बातको सिद्ध करते हैं—(१) 'अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः' (२।३९) 'अपरिग्रहके दृढ़ होनेपर पूर्वजन्मोंका भलीभाँति ज्ञान हो जाता है।' (२) 'संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्' (३।१८) 'संयमद्वारा पूर्वसंस्कारोंको साक्षात् कर लेनेपर पूर्वजन्मोंका ज्ञान हो जाता है।' ध्यान रहे अज्ञान-दशामें साधारण मनुष्यको इनका ज्ञान ही नहीं होता। इनका ज्ञान तो तब होता है, जब ज्ञान या योगके प्रभावसे मनपर इनका कोई प्रभाव नहीं होता। प्रकृति माताकी इस बुद्धिमानीपूर्ण योजनाका हमें स्वागत ही करना चाहिये। यदि अज्ञानी मनुष्यको इनका ज्ञान हो जाय तो उसका साधारणरूपसे जीवन-यापन करना ही कठिन हो जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे यह सिद्ध होता है कि प्रकृतिमें पूर्वजन्मकी विस्मृति सहेतुक है।

९—अमरत्वका स्वरूप

अमरत्वका विचार करते समय एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि सच्चे अमरत्वमें और किसी भी प्रकारके दीर्घकाल-अवस्थायित्वमें महदन्तर है। यदि अमरत्वसे अभिप्राय केवल दीर्घकालतक बने रहनेसे हो तो ऐसे अमरत्वका न तो व्यावहारिक दृष्टिसे कोई मूल्य हो सकता है और न तात्त्विक दृष्टिसे ही, व्यावहारिक दृष्टिसे किसी भी प्रकारका उपाधिसे ग्रस्त अस्तित्व एक निश्चित अवधिके अनन्तर बजाय सुखके दुःखके लिये ही कारण बन जाय। ऐसा जीवन असह्य भाररूप ही हो जाय। स्वर्गस्थ देवादिको 'अमर' कहा गया है। 'अमर' शब्द 'देव' शब्दका पर्यायवाची है। किंतु देवादिका अमरत्व भी केवल दीर्घकाल-अवस्थायित्वका द्योतक है, न कि तत्त्वज्ञानद्वारा प्राप्य सच्चे अमरत्वका, तात्त्विक दृष्टिसे सच्चा अमरत्व दिक्कालाद्यनवच्छिन्न आत्म-तत्त्ववेत्ताओंको ही प्राप्त हो सकता है।

देवादि भोग-योनि है। पुण्यकर्मोंके संचयद्वारा और स्वर्गस्थ भोगोंकी इच्छाके कारण वह प्राप्त होती है और पुण्यकर्मोंके भोगद्वारा समाप्तिके साथ ही उसकी भी समाप्ति हो जाती है और उन्हें फिर वापिस मृत्युलोकमें ही आना पड़ता है। 'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।' (गीता ९। २१) हमारे शास्त्रकारोंने किसी भी प्रकारकी जन्म-मरण-परम्पराको 'भव' या 'संसार' कहा है। इस घटीयन्त्र-वत् परम्परासे छूटनेमें ही मनुष्यका सच्चा परम पुरुषार्थ है और मनुष्य-जीवनकी सार्थकता है। सच्चा अमरत्व किसी भी प्रकार कालसे घटित न होकर वह सर्वथा कालसे अस्पृष्ट रहता है। आत्माका काल-परिच्छेद नहीं। वेदान्तदर्शनके अनुसार कालका अर्थ है—ब्रह्म तथा मायाका अनादिकालसे चला आया हुआ सम्बन्ध।' यह सम्बन्ध आध्यासिक होनेसे काल भी आध्यासिक अतएव मिथ्या है। वह अनादि सान्त है। वह 'ज्ञाननिवर्त्य' है। तत्त्वतः आत्मा कालमें नहीं है, काल स्वयं आत्मामें है और वह उसपर अध्यस्त है। इसलिये सच्चा अमरत्व कालसे अघटित, कालसे सर्वथा अस्पृष्ट ही हो सकता है। नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त सच्चिदानन्द आत्मस्वरूप ही सच्चे अर्थमें अमर है और यही 'अमरत्व'का अर्थ है। उसे छोड़कर अन्य सब काल-सर्पसे ग्रस्त है—'ग्रस्तं कालाहिना जगत्।' अमर आत्मा ही जीवमात्रका सच्चा स्वरूप है। वह नित्य प्राप्त है। अमरत्व कहीं बाहरसे लाना नहीं है; उसके अनुभवमें प्रतिबन्ध करनेवाली अज्ञानमूलक कल्पनाओंको यथार्थ ज्ञानके द्वारा दूर कर देना है। सारा प्रयत्न, शास्त्रोक्त कर्म, उपासना तथा योगादि साधना इत्यादि सब एकमात्र आत्मज्ञानको सम्पादन करनेमें ही चरितार्थ होते हैं। यही सबका अन्तिम प्राप्तव्य है। इसलिये सच्चा अमरत्व मरणोत्तर दशामें प्राप्त होनेवाला न होकर इसी जन्ममें, यथार्थ ज्ञानोदयके साथ ही प्राप्त हो सकता है—

'ज्ञानसमकालमुक्तः कैवल्यं याति हतशोकः।'
'अत्र ब्रह्म समश्नुते॥'

इसीलिये मोक्ष दृष्टफल है, जिसे यथार्थ ज्ञानके द्वारा इसी जीवनमें सभी अधिकारी पुरुष प्राप्त कर सकते हैं और जीवन्मुक्त दशाका अनुभव कर सकते हैं। पाश्चात्त्य तत्त्वचिन्तक भी इस तथ्यसे सहमत हैं। श्रीप्रिंगल पेटिसन कहते हैं—

'अनन्तत्वका अर्थ अनन्त कालावस्थायित्व न होकर कालातीत वस्तुका अनुभव है।' इसीलिये धर्मशास्त्रज्ञ तथा दार्शनिक यह साग्रह प्रतिपादन करते हैं कि 'अनन्त और अमर जीवनका अनुभव मरणोत्तर न होकर यहीं और इसी समय प्राप्त होने योग्य है।' (अमरत्वका विचार पृ० १३४-१३५)

१०—जीवकी मरणोत्तर स्थिति गति

प्रारब्धकर्मकी समाप्तिके साथ ही रोगादि निमित्तको लेकर जीवका सूक्ष्मदेह या लिङ्गशरीर स्थूलशरीरसे पृथक् हो जाता है। इसीको 'पिंड' प्राणका वियोग या 'मृत्यु' कहते हैं। यहींसे जीवकी परलोकयात्रा प्रारम्भ हो जाती है। जैसे जीवकी इहलौकिक अच्छी या बुरी स्थिति उसके कर्मोंपर ही अवलम्बित रहती है, वैसे ही उसकी मरणोत्तर स्थिति भी उसके कर्मोंपर ही अवलम्बित होती है।

'यथाकारी यथाचारी तथा भवति। साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति। पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन।.....काममय एवायं पुरुष इति स

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत् कर्म कुरुते यत् कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते।' (बृ. उपनिषद् ४।४।५)

'वह (मनुष्य) जैसा करनेवाला और जैसे आचरणवाला होता है, वैसा ही हो जाता है। शुभ कर्म करनेवाला शुभ होता है और पापकर्मा पापी होता है। पुरुष पुण्य कर्मसे पुण्यात्मा होता है और पापकर्मसे पापी होता है। यह पुरुष काममय ही है। वह जैसी कामनावाला होता है, वैसा ही संकल्प करता है; जैसे संकल्पवाला होता है, वैसे ही कर्म करता है और जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल प्राप्त करता है।'

मनुष्यकी शुभाशुभ वासनाओंके अनुसार ही उसके संकल्प बनते हैं और ये ही विशिष्ट प्रकारकी शुभाशुभ योनिमें जन्म ग्रहण करनेके कारण होते हैं। इस विषयमें कठश्रुति भी यही कहती है—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥
(२।२।७)

'अपने कर्म और ज्ञानके अनुसार कोई देहधारी शरीरधारणार्थ विशिष्ट योनिको प्राप्त होते हैं और अन्य कोई देहधारी स्थावरभावको प्राप्त होते हैं।'

मनुष्यके यथार्थ या अयथार्थ एवं दूषित ज्ञानके अनुसार अन्तःकरणमें उत्पन्न होनेवाली वासनाएँ, उनकी पूर्तिके लिये किये जानेवाले संकल्प और कर्म इत्यादि होते हैं। यह अनुभवसिद्ध है। इनमेंसे विशिष्ट प्रबल वासनाएँ, जो जीवनकालमें सुप्त या प्रकट रहती हैं, मरनेके समय पूर्वाभ्यासवश जग जाती हैं और ये ही मनुष्यके जन्मान्तरकी नियामक बन जाती हैं—

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥
(श्रीमद्भगवद्गीता ८।६)

'अन्ते मतिः सा गतिः' का यही अभिप्राय है। 'यथाप्रज्ञं हि सम्भवाः' अर्थात् 'बुद्धिके अनुसार ही जन्म हुआ करते हैं।' इस श्रुतिमें जन्मान्तरका रहस्य सूत्ररूपसे निर्दिष्ट किया गया है। कृतकर्मोंके भोग, वासनाओंका प्राबल्य, विशिष्ट हेतुकी पूर्तिकी प्रबल इच्छा, विशिष्ट प्रकारकी आसक्ति—इत्यादि सब बातें उपलक्षण तथा यहाँ अभिप्रेत हैं और ये ही जन्मान्तरकी नियामक हैं।

मृत्युके साथ ही जीवको देवयान अथवा पितृयाण-मार्गसे विभिन्न देवता ले जाते हैं। इसका वर्णन श्रीमद्भगवद्गीताके आठवें अध्यायमें अच्छी तरह किया गया है। इनमेंसे प्रथम मार्गसे जानेवाले उपासक क्रममुक्तिको प्राप्त कर लेते हैं। अतएव वे इस मृत्युलोकमें वापस लौटकर नहीं आते। दूसरे मार्गसे जानेवाले पुण्यवान् लोग स्वर्गादि पुण्यलोकोंमें जाकर वहाँके भोग भोगकर वापस इसी लोकमें लौट आते हैं। निषिद्ध पापकर्म करनेवाले नरकमें दुःख भोगकर फिर यहाँ आकर जन्म लेते हैं। जिनके साधारणसे पाप-पुण्य होते हैं, वे इसी लोकमें जन्म लेते हैं। घोर पापी तथा उत्कट वासनादिसे युक्त जीव भूत-पिशाचादि योनिमें जाते हैं। स्थूलशरीरसे रहित होनेके कारण ये सब तरहके मानवोचित भोगोंसे वञ्चित रहते हैं। यह भोग-योनि है। इस प्रकार जीवकी मरणोत्तर स्थिति-गतिके विभिन्न प्रकार हैं। हमने इनका संक्षेपमें निर्देश किया है।

११—परलोक है और अवश्य है

परलोक है या नहीं?—यह विवाद्य प्रश्न है; क्योंकि इस विषयमें प्रत्यक्ष प्रमाणकी सम्भावना बहुत ही कम है। वैज्ञानिक अभी अन्य ग्रहोंके साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करनेमें प्रयत्नशील हैं; किंतु अभीतक वे इस दिशामें सफलता प्राप्त नहीं कर पाये हैं। अतएव शब्द प्रमाण ही इस विषयमें एकमेव महत्त्वपूर्ण प्रमाण है। जो लोग परलोक नहीं मानते, उन्हें हमारे शास्त्रकार उन्हींके हितमें कहते हैं—

संदिग्धे परलोकेऽपि त्याज्यमेवाशुभं जनैः।
नास्ति चेन्नास्ति नो हानिरस्ति चेन्नास्तिको हतः॥

'परलोक है या नहीं—यह संदेहका विषय होनेपर भी अशुभ कर्मोंका त्याग ही करना चाहिये; क्योंकि यदि परलोक न हो तो शुभ कर्म करनेवाले आस्तिक पुरुषको किसी हानिकी कोई सम्भावना नहीं। किंतु यदि परलोक हो, तो इस सम्भावनाकी ओर ध्यान न देनेवाले नास्तिककी दुर्गति हुए बिना न रहेगी।'

हमारे शास्त्र-ग्रन्थोंमें परलोककी सत्यता प्रतिपादन करनेवाले अनेकानेक उल्लेख हैं। अनुमानसे भी हम 'परलोक है'—इसी निर्णयपर पहुँच सकते हैं। अनन्त प्रकृति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के राज्यमें इतनी कृपणता नहीं कि उसमें यह छोटा-सा पृथ्वीमण्डल ही एकमात्र लोक हो। हमारे यहाँ परमात्माको 'अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक' कहा गया है। परमात्मा स्वयं अनन्त हैं। उनकी 'अघटितघटनापटीयसी' मायाशक्तिद्वारा निर्मित सृष्टि भी अनन्त और अगणित होनी चाहिये। सारी सृष्टि कर्ममय है। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जीवोंके कर्मोंके अनुसार ही विभिन्न सृष्टियोंकी रचना करते हैं। इसीलिये विभिन्न लोकोंमें तारतम्य होना चाहिये। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। इसलिये जीवोंके कर्म भी त्रिगुणोंके न्यूनाधिक्यसे अनेक प्रकारके हो जाते हैं। ये प्रकार अनन्त हैं। कोई 'शुद्ध सत्त्व-प्रधान' पुण्यलोक हैं, कोई 'दिव्य भोगप्रचुर सुखमय लोक' हैं, तो कोई 'दुःखबहुल लोक' हैं। इसी सृष्टिमें, इसी अवनीतलपर हम स्थावरादिसे लेकर ज्ञानी या भगवद्भक्त अथवा जीवन्मुक्त तत्त्वदर्शी महात्मातक कर्ममूलक अनेक योनियाँ पाते हैं; तो फिर, लोकान्तरमें इस प्रकारके विभेद होनेमें बाधा ही क्या हो सकती है? इन्हें ही हमारे यहाँ ब्रह्मलोक, विष्णुलोक या वैकुण्ठ, शिवलोक, स्वर्गलोक, नरकलोक इत्यादि संज्ञाएँ दी गयी हैं। हमारे यहाँके त्रिकालदर्शी शास्त्रकारोंने तो स्वर्गलोक या नरकलोकसे इस मर्त्यलोकमें आनेवाले मनुष्योंके लक्षण भी बतला रक्खे हैं। स्वर्गसे लौटे हुए पुरुषोंके लक्षण निम्न श्लोकमें दिये गये हैं—

स्वर्गच्युतानामिह जीवलोके
चत्वारि चिह्नानि वसन्ति देहे।
दानप्रसंगो मधुरा हि वाणी
देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणं च॥

'स्वर्गलोकसे इस मनुष्य-लोकमें आये हुए पुरुषोंमें चार लक्षण रहते हैं—(१) दानादिमें प्रवृत्ति, (२) मीठे वचन, (३) ईश्वरोपासना, (४) ब्राह्मणोंका भोजनादिद्वारा सत्कार।'

इसके विपरीत नरकादिसे लौटे हुए पामरजनोंके लक्षण निम्न श्लोकमें दिये हुए हैं—

कार्पण्यवृत्तिः स्वजनस्य निन्दा
दुःशीलता नीचजनेषु संगः।
अतीव रोषः कटुता च वाचि
नरस्य चिह्नं नरकागतस्य॥

'कृपणता, आत्मीय जनोंकी निन्दा, दुराचारमें अभिरुचि, नीचजनोंकी संगति, अत्यन्त क्रोध, कड़ुवे वचन—ये हैं नरकलोकसे आये हुओंके लक्षण।

उपर्युक्त लक्षणोंके द्वारा हम अपने स्वयंकी परीक्षा भलीभाँति कर सकते हैं कि हम किस कोटिके जीव हैं। ध्यान रहे, शास्त्र एक प्रकारका दर्पण है, जिसमें हम अपने जीवनका रूप देख सकते हैं और उसमें इष्ट दिशामें परिवर्तन करनेका मार्गदर्शन भी प्राप्त कर सकते हैं। यह है—संक्षेपमें परलोक-विषयक विचार।

१२—उपसंहार—भारतीय ब्रह्मविद्याका सार-सर्वस्व

नरदेह अत्यन्त दुर्लभ है। यह तीन प्रकारकी गतियोंका द्वार है। एक तो 'देवादि पुण्ययोनि', दूसरी 'स्थावरादि अधम योनि' तथा तीसरी शास्त्रविहित कर्माचरण, भगवदुपासना तथा तत्त्वज्ञानद्वारा 'मोक्षप्राप्ति'। प्रथम द्वार पुनरावर्ती होनेके कारण बुधजनके द्वारा अनादरणीय है। दूसरा घोर पतनका द्योतक होनेके कारण सर्वथा त्याज्य ही है। तीसरा ही मनुष्यमात्रका लक्ष्य होना चाहिये। जो इस दुर्लभ नरदेहको प्राप्त करके आत्मोद्धारके लिये प्रयत्न नहीं करते, उन्हें श्रीमद्भागवतमें 'आत्महा'—'आत्मघाती' कहा गया है। सनत्सुजातीयमें इसे सबसे बड़ा पाप और इसे करनेवालेको 'चोर' और 'आत्मापहारी' कहा गया है—

योऽन्यथा संतमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते।
किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा॥

ईशोपनिषद्में इन्हें 'आत्महनो जनाः' कहा गया है, इसीलिये भगवान् श्रीमद्भगवद्गीतामें अर्जुनको निमित्त बनाकर मनुष्यमात्रको आदेश देते हैं कि 'वह आत्मोद्धारके लिये प्रयत्न करे और अपने-आपको सब तरहकी अधोगतिसे बचावे।'—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
(गीता ६।५)

भगवान्‌ने स्वयं ही यह आश्वासन दे रक्खा है कि शुभ कर्म करनेवाला कभी अधोगतिको प्राप्त नहीं होता। 'हे पार्थ! आत्मोद्धारके लिये अर्थात् भगवत्प्राप्तिके लिये कर्म करनेवाला कोई भी मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता। प्रिय अर्जुन! उस पुरुषका न तो इस लोकमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाश होता है और न परलोकमें ही (६ । ४०)।' इसके विपरीत अशुभ या पाप-कर्म करनेवाला अपने कर्मोंके दुष्परिणामोंसे बच नहीं सकता। जैसे हजार गौओंमें भी बछड़ा ठीक अपनी माँको ढूँढ़ लेता है वैसे ही कृतकर्म अपने कर्ताको ढूँढ़ लेता है और उपयुक्त समयपर उसका फल देता है। मनुष्य पापकर्म हँसते हुए करता है; किंतु रोते हुए उसका फल भोगना पड़ता है—

हसद्भिः क्रियते कर्म रुदद्भिः परिपच्यते ।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥

इसलिये मनुष्यको अधर्म और पापके भावी दुष्परिणामों-को ध्यानमें रखकर शास्त्रविहित धर्माचरण ही करना चाहिये। योगवासिष्ठकार कहते हैं—

पापस्य हि भयाल्लोको राम धर्मे प्रवर्तते ॥

अपना सच्चा कल्याण चाहनेवालेके लिये उचित है कि वह भौतिक पदार्थोंकी क्षणभङ्गुरता, परलोक, पुनर्जन्म तथा आत्मज्ञानद्वारा मोक्षप्राप्तिकी ओर ध्यान देकर ही सारे कर्म करे। ध्यान रहे, प्रकृतिमाता सबको गिरते-पड़ते विकासकी ओर लिये चली जा रही है। वह मनुष्यको तबतक चैन न लेने देगी, जबतक कि वह अपने आत्मसाक्षात्काररूपी मंजिल—मुकामतक न पहुँच जाय। नदी अन्ततोगत्वा समुद्रमें मिलकर ही विश्रान्ति पा सकती है। विकासकी रेखा सीधी न होकर टेढ़ी-मेढ़ी होती है; किंतु एक-न-एक दिन सबका उद्धार अवश्यम्भावी है। विषयजन्य सुख-दुःख पर्यवसायी होता है। दुःखके कारण मनुष्यमें विचार-जागृति होती है; विचार-जागृतिके कारण विषयोंमें दोषदर्शन होने लगता है। विषय-दोष-दर्शनसे वैराग्य उत्पन्न होता है। वैराग्यसे मनुष्य परमार्थ-पथपर अग्रसर होता है। किसी भी निमित्तसे परमार्थ-पथपर अग्रसर होनेपर एक-न-एक दिन ब्रह्मज्ञानद्वारा परम पुरुषार्थरूप मोक्षकी प्राप्ति अवश्यम्भावी है। ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म ही हो जाता है; क्योंकि यही उसका वास्तविक स्वरूप है। अज्ञानकालीन मरणधर्मा मनुष्य ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञान-के प्रभावसे नरका नारायण हो जाता है और स्वयं जीवन्मुक्त होकर औरोंको भी अपनी कृपाद्वारा नरसे नारायण बनाता है। प्रारब्धकर्मोंकी समाप्तिके साथ ही यह जीवन्मुक्त महाभाग विदेहमुक्त हो जाता है। उसके प्राणोंका उत्क्रमण नहीं होता। वे अपने मूलकारण परब्रह्म सत्तामें एकीभावसे लीन हो जाते हैं। उसके नरदेहका पाना सार्थक हो जाता है। यही भारतकी ब्रह्मविद्याका सार-सर्वस्व है।

श्रुतिका सदुपदेश

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। × × × × सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकꣳसुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि। × × × × × × श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्।

(तैत्तिरीय उपनिषद्)

'तुम सत्य बोलो, धर्मका आचरण करो, स्वाध्यायसे कभी न चूको; × × × × तुमको सत्यसे कभी नहीं डिगना चाहिये; धर्मसे नहीं डिगना चाहिये; शुभ कर्मोंसे कभी नहीं चूकना चाहिये; उन्नतिके साधनोंसे कभी नहीं चूकना चाहिये; वेदोंके पढ़ने और पढ़ानेमें कभी भूल नहीं करनी चाहिये; देवकार्यसे और पितृकार्यसे कभी नहीं चूकना चाहिये।

'तुम मातामें देव (ईश्वर) बुद्धि करनेवाले बनो; पिताको देवरूप समझनेवाले होओ; आचार्यको देवरूप समझनेवाले बनो; अतिथिको देवतुल्य समझनेवाले होओ; जो-जो निर्दोष कर्म हैं, उन्हींका तुम्हें सेवन करना चाहिये। दूसरे (दोषयुक्त) कर्मोंका कभी आचरण नहीं करना चाहिये। हमारे आचरणोंमेंसे भी जो-जो अच्छे आचरण हैं, उनका ही तुमको सेवन करना चाहिये, दूसरोंका कभी नहीं। श्रद्धापूर्वक देना चाहिये; अश्रद्धासे नहीं देना चाहिये; आर्थिक स्थितिके अनुसार देना चाहिये; लज्जासे देना चाहिये; भयसे भी देना चाहिये; विवेकपूर्वक देना चाहिये।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन कर्मबन्धनसे मुक्त होते तथा स्वर्गको जाते हैं

जो मनुष्य सब प्रकारके बाहरी बनावों—चिह्नोंसे रहित, सत्य-धर्मके परायण तथा शान्त हैं; जिनके सभी संशय नष्ट हो गये हैं, वे अधर्म या धर्मसे नहीं बँधते। जो प्रलय और उत्पत्तिके तत्त्वज्ञ, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और वीतराग हैं, वे पुरुष कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा किसीकी हिंसा नहीं करते तथा किसीके प्रति आसक्त नहीं होते, वे कर्म-बन्धनमें नहीं पड़ते। जो प्राणि-संहारसे दूर रहनेवाले, सुशील, दयालु, प्रिय और अप्रियको समान समझनेवाले तथा जितेन्द्रिय हैं, वे भी कर्मोंसे नहीं बँधते। जो सब प्राणियोंपर दया रखते, सब जीवोंके लिये विश्वासपात्र बने रहते और हिंसापूर्ण बर्तावका त्याग कर देते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जानेवाले हैं। जो पराये धनके प्रति कभी ममता नहीं रखते और परायी स्त्रियोंसे सदा दूर रहते हैं तथा जो धर्मतः प्राप्त अर्थका ही उपभोग करनेवाले हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो परस्त्रियोंके प्रति सदा माता, बहिन और पुत्रीका-सा बर्ताव करते हैं, वे मानव स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो केवल अपनी ही स्त्रीके प्रति अनुराग रखते, ऋतुकाल आनेपर ही पत्नीके साथ समागम करते तथा विषयसुखोंके उपभोगमें आसक्त नहीं होते, वे ही मनुष्य स्वर्गलोकके यात्री होते हैं। जो अपने सदाचारके कारण परायी स्त्रियोंकी ओरसे सदा आँखें बंद किये रहते हैं, इन्द्रियोंको अपने अधीन रखते और शीलकी सदा रक्षा करते हैं, वे मानव स्वर्गगामी होते हैं। यह देवमार्ग है। मनुष्योंको सदा इसका सेवन करना चाहिये। विद्वान् पुरुषोंको सदा उसी मार्गका सेवन करना चाहिये, जो वासनाद्वारा निर्मित न हो, जिसमें किसीका भी अपकार न होता हो और जहाँ दान, सत्कर्म, तपस्या, शील, शौच और दयाभावका दर्शन होता हो। स्वर्गमार्गकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको इसके विपरीत मार्गका आश्रय नहीं लेना चाहिये।

जो अपने अथवा दूसरेके लिये अधर्मयुक्त बात नहीं कहते और कभी झूठ नहीं बोलते, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो जीविका अथवा धर्मके लिये या स्वेच्छासे ही कभी असत्यभाषण नहीं करते, अपितु स्पष्ट, कोमल, मधुर, पापरहित एवं स्वागतपूर्ण वचन बोलते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जानेके अधिकारी हैं। जो कठोर, कड़वी तथा निष्ठुर बात मुँहसे नहीं निकालते, चुगली नहीं खाते, साधुतासे रहते हैं, कठोर भाषण और परद्रोह त्याग देते हैं तथा सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंके प्रति सम एवं जितेन्द्रिय होते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो शठोंसे बात नहीं करते, विरुद्ध कर्मोंको त्याग देते, कोमल वचन बोलते, क्रोध न करके मनोहर विनम्र वाणी मुँहसे निकालते और कुपित होनेपर भी शान्ति धारण करते हैं, वे मानव स्वर्गगामी होते हैं। यह वाणीद्वारा पाला जानेवाला धर्म है। शुभ तथा सत्य गुणोंवाले विद्वान् मनुष्योंको सदा इसका सेवन करना चाहिये।

निर्जन वनमें रक्खे हुए पराये धनपर जब दृष्टि पड़े, उस समय जो मनसे भी उसे लेना नहीं चाहते, वे स्वर्गगामी होते हैं। इसी प्रकार जो परायी स्त्रियोंको एकान्तमें पाकर मनके द्वारा भी कामवश उन्हें नहीं ग्रहण करते; जो शत्रु और मित्रको सदा एकचित्तसे अपनाते, शास्त्रोंका अध्ययन करते, पवित्र एवं सत्यप्रतिज्ञ होते और अपने ही धनसे संतुष्ट रहते हैं; जिनसे दूसरे जीवोंको कभी कष्ट नहीं पहुँचता और जिनके चित्तमें सदा मैत्रीका भाव बना रहता है, जो सब प्राणियोंपर निरन्तर दयाभाव बनाये रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जानेके अधिकारी हैं। जो ज्ञानवान्, क्रियावान्, क्षमावान्, सुहृद्, प्रेमी, धर्माधर्मके ज्ञाता और शुभाशुभ कर्मोंके फलसंग्रहके प्रति उदासीन रहते हैं, जो पापियोंको त्याग देते, देवताओं और द्विजोंकी एवं गौओंकी सेवामें संलग्न रहते और गुरुजनोंके आनेपर खड़े होकर उनका स्वागत-सम्मान करते हैं, वे मानव स्वर्गलोकमें जाते हैं।

जो शुभ कर्म करते हुए जीवन व्यतीत करता है, प्राणियोंकी हिंसासे सदा दूर रहता है; जो शस्त्र और दण्डका त्याग करके कभी किसीकी हिंसा नहीं करता, न मरवाता है, न मारता है और न मारनेवालेका अनुमोदन ही करता है; जिसका सभी प्राणियोंके प्रति स्नेह है तथा जो अपने और परायेमें समान भाव रखता है, ऐसा पुरुष सदा देवपदको प्राप्त होता है। वह अपने शुभ कर्मोंसे प्राप्त देवोचित सुख-भोगोंका प्रसन्नतापूर्वक उपभोग करता है। वह यदि कभी मनुष्य-लोकमें आता है तो उसकी बड़ी आयु होती है। यह बड़ी आयुवाले सदाचारी एवं पुण्यात्मा मनुष्योंका मार्ग है। जीवोंकी हिंसाका त्याग करनेसे इसकी प्राप्ति होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो ब्राह्मणका सत्कार करनेवाला तथा दीन-दुखी और आतुर आदिको भक्ष्य, भोज्य, अन्न, पान एवं वस्त्र देनेवाला है; जो यज्ञमण्डप, धर्मशाला, पौंसला तथा पुष्करिणी बनवाता है; मन और इन्द्रियोंको वशमें करके शुद्धभावसे नित्य-नैमित्तिक आदि कर्म करता है; आसन, शय्या, सवारी, घर, रत्न, धन, खेतीकी उपज तथा खेत आदि वस्तुओंका सदा ही शान्तचित्तसे दान करता है; ऐसा मनुष्य देवलोकमें जन्म लेता है। वहाँ दीर्घकालतक उत्तम भोगोंका उपभोग करते हुए नन्दन आदि वनोंमें प्रसन्नता-पूर्वक विहार करता है। वहाँसे च्युत होनेपर वह मनुष्योंके सौभाग्यशाली कुलमें, जो धन-धान्यसे सम्पन्न होता है, जन्म लेता है। वह मानव समस्त मनोवाञ्छित गुणोंसे युक्त, प्रसन्न, प्रचुर भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न एवं धनवान् होता है। जो दानशील महाभाग प्राणी हैं, ब्रह्माजीने उन्हें सर्वप्रिय बतलाया है।

जो न दम्भी है न मानी है; जो देवता और अतिथियोंका पूजक, लोकहितैषी, सबको नमस्कार करनेवाला, मधुरभाषी, सब प्रकारकी चेष्टाओंसे दूसरोंका प्रिय करनेवाला, समस्त प्राणियोंको सदा प्रिय माननेवाला, द्वेषरहित, प्रसन्नमुख, कोमलस्वभाव, सबसे स्वागतपूर्वक स्नेहमय वचन बोलनेवाला, प्राणियोंकी हिंसा न करनेवाला, श्रेष्ठ पुरुषोंका विधिवत् सत्कारपूर्वक पूजन करनेवाला, मार्ग देने योग्य पुरुषोंको मार्ग देनेवाला, गुरुपूजक और अतिथिको अन्नका अग्रभाग अर्पित करनेवाला है, ऐसा पुरुष स्वर्गमें जाता है।

जो सब प्राणियोंको दयापूर्ण दृष्टिसे देखता है; सबके प्रति मैत्रीभाव रखता है; पिताके समान निर्वैर होता है; दयालु होनेके कारण प्राणियोंको न डराता है और न मारता ही है; जिसके हाथ-पैर वशमें होते हैं; जो सम्पूर्ण जीवोंका विश्वासपात्र है; रस्सी, डंडा, ढेला अथवा अस्त्र-शस्त्रोंसे किसी भी जीवको उद्वेग नहीं पहुँचाता; शुभ कर्म करता और सबपर दया रखता है—ऐसे शील और आचरणवाला मनुष्य स्वर्गमें जाता है। वहाँ देवताओंकी भाँति वह दिव्य भवनमें सानन्द निवास करता है। वह यदि पुण्यक्षयके पश्चात् मर्त्यलोकमें आता है तो मनुष्योंमें क्लेशरहित एवं निर्भय होता है। वह सुखसे जन्म लेता और अभ्युदयशील होता है। वह सुखका भागी तथा उद्वेगशून्य होता है।

जो लोग वेदवेत्ता, सिद्ध तथा धर्मज्ञ ब्राह्मणोंसे प्रतिदिन शुभाशुभ कर्म पूछते हैं और अशुभका त्याग करके शुभ कर्मका सेवन करते हैं, वे इस लोकमें सुखसे रहते और अन्तमें स्वर्गगामी होते हैं। ऐसे लोग जब फिर कभी मनुष्य-योनिमें आते हैं, तब सुखी तथा बुद्धिमान् होते हैं।

(ब्रह्मपुराणके आधारपर)

प्रेमसुधाका भंडार खोल दो

प्रकृति जगत्‌के भोग सभी हैं अशुचि, अपूर्ण, अनित्य, असार।
दुःखयोनि—सब भाँति शान्ति-सुखहर, अघ-आकर, दोषागार॥
इनमें सुखकी आस्था-आकाङ्क्षा-आशा करना बेकार।
किंतु इन्हींके मोहजालमें फँसा कराह रहा संसार॥
जबतक नहीं हटेगा पूरा मोहजालका विष-विस्तार।
बढ़ती नित्य रहेगी ज्वाला, मचा रहेगा हाहाकार॥
प्रभुकी प्रेम-सुधा ही कर सकती, इस ज्वालासे उद्धार।
प्रेम-भास्करके उगते ही हो जाता तमका संहार॥
अतः खोल दो तुरत प्रेमकी सरस सुधाका उर-भण्डार।
पल-पल उसे बढ़ाओ—होगा दिव्य भागवत-सुख साकार॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मान्य काका कालेलकरजीका स्नेहपूर्ण पत्र

प्रिय सम्पादकजी 'कल्याण'!

परलोक और पुनर्जन्मांक निकालनेका आपने सोचा, जिसके लिये आपका अभिनन्दन करना चाहिये। लेकिन दो-सौ-ढाई सौ विषयोंकी सूची देखकर मैं तो घबड़ा गया।

मैं स्वयं पूर्वजन्म और पुनर्जन्म याने जन्मपरम्परा मानता हूँ। कर्म और कर्मफलके सिद्धान्तपर मेरी असीम श्रद्धा है। 'कर्मके सिद्धान्तको बनाकर भगवान् सो गये हैं' सो भी नहीं। इसलिये तमाम व्यक्तियाँ पूर्वकर्मानुसार कर्म तो करती ही हैं। उपरान्त अपने नव-संकल्पसे प्रेरित होकर भी कर्म करते हैं।

यह तो मानना ही पड़ेगा कि जिस तरह स्वयं भगवान्का आदि और अन्त हो नहीं सकता, उसी तरह इस विशाल, सनातन सृष्टिका न सर्वप्रथम आदि हो सकता है, न उसका कभी आत्यन्तिक अभाव हो सकता है।

जन्मान्तरका ज्ञान सर्वज्ञ भगवान्को होना ही चाहिये; क्योंकि 'सर्वज्ञ'की व्याख्या ही ऐसी है। लेकिन एक भगवान्को छोड़कर दूसरा कोई भी ऋषि, मुनि, संत, महात्मा, योगी, नबी, पयगंबर या अवतारी पुरुष इस तरहके सर्वज्ञ अथवा त्रिकालज्ञ है, ऐसा मानना मेरे लिये कठिन है। हम सब और वे सब, गीताके अर्जुनके ही प्रतिनिधि हैं। ऐतिहासिक कृष्ण भी उसीमें आ गये।

आपने जो विषय-सूची दी है इसमेंसे बहुतसे विषयोंके बारेमें बचपनसे कमीबेश पढ़ता आया हूँ। बहुत-सी बातें उपयोगी कल्पनाएँ हैं। लेकिन आखरी हैं तो कल्पनाएँ ही। और पुराणोंमें इहलोक-परलोक, विष्णुलोक, गोलोक आदि जो अनेक प्रकारके लोक बताये हैं और उनके इतिहास, भूगोल दिये हैं, इनमेंसे अधिकतर तो केवल ढकोसले ही हैं।

सनातनी लोग जितने ग्रन्थोंको 'धर्मग्रन्थ' मानते हैं वे सब-के-सब अनुभवकी सच बातें लिखते हैं, ऐसा कोई मान नहीं सकता। बहुत-सी बातें गाँववालोंकी लोककथाओंसे अधिक विश्वसनीय तो हैं नहीं, किंतु आदरणीय भी नहीं हैं। अमुक स्थानपर मरनेसे अथवा अमुक जलाशयमें स्नान करनेसे अथवा फलानी मूर्तिका दर्शन करनेसे मोक्ष मिलता है, पुनर्जन्म नहीं होता। इत्यादि वर्णन कभी-कभी इतने सस्ते हैं कि पढ़कर चिढ़ आती है।

भोले सनातनी लोग ऐसी बातोंपर अविश्वास भी नहीं कर सकते, और विश्वास करके चलते भी नहीं। लोगोंके आचरणसे ही सिद्ध होता है कि उनके 'विश्वास' पर उनका सचमुच और दृढ़ विश्वास नहीं होता।

आप जो जानकारी इकट्ठा करेंगे और असंख्य मान्यताओंका समर्थन भी इकट्ठा करेंगे, इससे संशोधकोंकी सहूलियत होगी सही। किंतु मुझे डर है कि ज्यादातर कचरेसे भरे हुए समुद्रमेंसे आप करीब-करीब इतना ही बड़ा कचरेवाला समुद्र तैयार करेंगे, जिसमें संशोधनके लिये डुबकी लगाना भी आसान नहीं होगा।

मैं देखता हूँ कि ऐसा किये बिना आपके लिये चारा ही नहीं था, इसीलिये आपका अभिनन्दन करता हूँ। जो कुछ भी मसाला आप इकट्ठा करेंगे, उसमेंसे विश्वासपात्र बातें कौन-सी, संशयास्पद कौन-सी और विश्वासपात्र बिल्कुल नहीं, ऐसी कौन-सी इसका वर्गीकरण अगर आप करवा सकें तो धर्मकी और जनताकी सेवा होगी।

सनातन हिंदूधर्मका विरोध करके अपने-अपने धर्मका प्रचार करनेवाले मतलबी लोगोंके लिये भी आपका संग्रह बहुत मदद कर सकेगा। वह कह सकेंगे कि इतनी-इतनी बे-बुनियाद, बेवकूफीभरी और धर्म-विरोधी बातें भारतके करोड़ों सनातनियोंकी विश्वासपात्र बन बैठी हैं। जो हो आपका अभिनन्दन जरूर करता हूँ।

मेरा यह पत्र आपके विशेषांकमें आप प्रकाशित करें तो मुझे एतराज नहीं है। मैं तो आपको धन्यवाद ही दूँगा। चंद पाठक शायद गालियाँ देंगे तो हर्जा नहीं। किसी भी कारण उन्होंने यह पत्र पढ़ा तो उसकी बातें और उसकी दृष्टि लोगोंके मनमें उगेगी सही।

आपने भी जन्मपरम्पराके सिद्धान्तको लेकर समाजमें कितनी ठगी चली है, इसका व्यौरा भी तो माँगा ही है।

आपका—**काका कालेलकर**

उत्तरमें नम्र निवेदन

परम सम्मान्य आचार्य काका कालेलकर महोदयका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त पत्र उनके इच्छानुसार यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। काकाजी गाँधीवादी विचारधाराके प्रमुख चिन्तक, दुराग्रहशून्य, विलक्षण प्रतिभाशाली, भारतके एक प्रबुद्ध मनीषी हैं। 'कल्याण' पर उनका स्नेह सदासे है।

इन पंक्तियोंके लेखकपर तो काकाजीकी बहुत पुरातन प्रीति है। पूज्य बापू जब साबरमती आश्रममें थे, तभीसे इसको काकाजीका स्नेह मिलता रहा है। अतः उनका यह 'अभिनन्दन' उनके स्नेहपूर्ण वात्सल्यका ही प्रतीक है।

मैं जानता हूँ, पूज्य काकाजीका जन्मपरम्परामें विश्वास है और कर्म तथा कर्मफलके सिद्धान्तपर तथा सर्वज्ञ भगवान्‌पर उनकी असीम श्रद्धा है। अतएव मुझे कुछ कहना तो नहीं चाहिये, पर मनकी दो-चार बातें नम्रतापूर्वक काकाजीकी सेवामें निवेदन करनेकी धृष्टता की जा रही है। वे इससे प्रसन्न ही होंगे।

जो भाव इन्द्रियगम्य नहीं है, वहाँ तर्क कभी सफल नहीं होता। मनुष्यकी बुद्धिकी भी एक सीमा होती है। उस सीमासे परे कुछ है ही नहीं; जितना उसकी बुद्धि स्वीकार करती है, उतना ही निर्भ्रान्त सत्य है; ऐसा कहना बड़े साहसका काम है। ऐसी बहुत-सी बातें होती हैं, जहाँ बुद्धि काम नहीं करती, पर जो सत्य होती हैं। वातावरण, महात्मा या दुरात्माओंके रहने, सत्कर्म और कुकर्म बननेके स्थान आदिका प्रभाव तो बुद्धिगम्य तथा विज्ञानसम्मत भी है; पर इससे भी परे तर्कातीत तत्त्व हैं, जिनपर आस्था रखनी पड़ती है। आस्थाके साथ तर्कका सामञ्जस्य नहीं है; अतएव सभी वर्णनोंको ढकोसले अथवा कल्पना ही नहीं कहा जा सकता। अतीन्द्रिय-तथ्यका वर्णन लाक्षणिक हो सकता है, इतना ही कहा जा सकता है। लाक्षणिक वर्णन अनेक रूपोंमें हो सकता है और ऐसे एक वर्णनके अर्थ भी बहुत-से किये जा सकते हैं। किंतु वर्णनमात्रको काल्पनिक मानना कहाँतक उचित है—यह विचारणीय है। पूज्य बापूजीकी रामनाममें अलौकिक श्रद्धा थी, पर वे कहते थे कि यह श्रद्धाका—आस्थाका विषय है, बुद्धिवादसे परे है।

जहाँतक हमलोगोंकी बात है, भले ही किन्हींकी दृष्टिमें यह हमारा अज्ञान ही हो—हम 'ऐतिहासिक श्रीकृष्ण' और 'परमात्मा श्रीकृष्ण'को अभिन्न मानते हैं। परमधामस्वरूप वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, शिवलोक आदि सब तथ्य हैं—ऐसी हमारी आस्था है। सनातनधर्मके मान्य धर्मग्रन्थोंकी कोई बात हमारी समझमें नहीं आती, तो हम उसे अपने अन्तःकरणकी अशुद्धि तथा बुद्धिकी दुर्बलता मानते हैं; उसे अविश्वसनीय या असत्य नहीं मानते। यों शास्त्रोंमें प्रक्षेप भी हुआ है, यह सत्य है; पर वह दूसरी बात है। इसका सत्य तथ्यसे सम्बन्ध नहीं। शास्त्रकी भाषा बहुत स्थलोंपर 'समाधि-भाषा' है, अतः सर्वत्र लोकभाषा न होनेसे वह दुर्बोध है। पूज्य काकाजी लिखते हैं कि 'ज्यादातर कचरेसे भरे हुए समुद्रमेंसे आप करीब-करीब इतना ही बड़ा कचरेवाला समुद्र तैयार करेंगे, जिसमें संशोधनके लिये डुबकी लगाना भी आसान नहीं होगा।' मैं तो इसे काकाजीका विनोद ही समझता हूँ। पर यह भी सम्भव है कि शायद कुछ लोग इसे बहुमूल्य रत्नोंके अपार अम्बारमेंसे चुनकर बनाया हुआ—हमारी अल्पज्ञताके कारण अल्पमूल्य—रत्नोंका हार भी देख पायेंगे और यह भी सम्भव है, उन्हें इसमें उनके परम लाभके उपयुक्त कोई रत्न मिल भी जाय।

यों सिद्धान्तके नामपर प्रायः सर्वत्र ही ठगी भी चलती है। ढकोसले, कल्पना तथा अतिरंजित वर्णन भी होते हैं और उनसे यथासाध्य सबको बचना-बचाना भी चाहिये। इस दिशामें लोगोंको सचेत करनेके लिये काकाजीका यह पत्र निश्चय ही उपयोगी होगा। काकाजीने बड़े सद्भावसे पत्र लिखा है, इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

इस पत्रमें सम्मान्य काकाजीने एक बात बहुत महत्त्वकी कही है और वह हम सबके लिये धारण करने योग्य है—

'भोले सनातनी लोग ऐसी बातोंपर अविश्वास भी नहीं करते और विश्वास करके चलते भी नहीं।'

देशका, समाजका और मनुष्यका यही दुर्भाग्य है। पूज्य बापूके द्वारा निर्दिष्ट सत्य, अहिंसा, सदाचार, प्रार्थना, रामधुन आदिपर कोई भला अविश्वास भी कैसे कर सकता है? और उसपर विश्वास करके उनके अनुयायी (कहलानेवाले, जो राष्ट्रके कर्णधार हैं) भी चलते तो आज देशमें भ्रष्टाचार, अनाचार और घर-घर कलह-कलुषका क्या नाम भी सुनायी पड़ता?

'अपने 'विश्वास'पर सचमुच हमारा दृढ़ विश्वास नहीं है।' यही हमारी—समाजके अधिकांश लोगोंकी दुर्बलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११०३२७

है। अपनी इस दुर्बलताको त्यागकर हम अपने 'विश्वास'पर सचमुच दृढ़ बनें—सर्वसमर्थ दयामय भगवान्‌से यही प्रार्थना है। अस्तु !

इस अङ्कका सनातन हिन्दूधर्मके विरोधी, आलोचना-आक्षेपके व्यसनी मतलबी लोग दुरुपयोग कर सकते हैं। यह सर्वथा सत्य है। पर ऐसा तो प्रत्येक प्रयत्न और पदार्थका ही दुरुपयोग करनेवाले स्वभाववश करते ही हैं, इस भयसे सत्प्रयत्नका त्याग नहीं किया जा सकता।

फिर, सभी आरम्भ कुछ-न-कुछ दोषयुक्त भी होते ही हैं—सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः। (गीता) इसपर हमारा यह प्रयत्न भी हमारी अल्पज्ञता, अल्पबुद्धि-के कारण निश्चय ही त्रुटिपूर्ण है ही। इसमें कहीं कोई अच्छापन है तो उसका सारा श्रेय अनुभवी पुरुषों तथा विचारशील विद्वानोंको है, जिन्होंने अपने विचार प्रकट करनेकी कृपा की है। शेष दोष-त्रुटियाँ तो सारी हमारी हैं।

आचार्यजीसे सविनय निवेदन है कि वे मेरे इन धृष्टतापूर्ण शब्दोंको स्नेहसे निरीक्षण करें, वात्सल्यपूर्ण हृदयसे सदा शुभ चेतावनी देते रहें और शुभाशीर्वाद दें, जिससे जीवनके शेष श्वास भगवच्चिन्तनमें ही बीतें।

विनीत—हनुमानप्रसाद पोद्दार

नरकसे बचना हो तो—

कभी न करो किसी भी प्राणीकी हिंसा तन मनसे भूल !
बोलो कभी न व्यर्थ-झूठ-चुगली-छल-परुष-वचन उर-शूल ॥
तन-मन-वाणीसे न चुराओ कभी किसीकी धन-सम्पत्ति।
नीच स्वार्थ-साधन-हित, डालो नहीं किसीपर दुःख-विपत्ति ॥
पर-नारी पर-पुरुष त्यागकर सेवन करो शुद्ध गृह-धर्म।
निज-पर धर्मनाशके साधक, करो कभी भी नहीं कुकर्म ॥
अंडे-मांस-मद्यका खाना-पीना कर दो बिलकुल त्याग।
तामस वस्तु नशैली जूँठनसे रक्खो परहेज-विराग ॥
माता-पिता-देवता-गुरुका गुरुजनका न करो अपमान।
सुख पहुँचाओ सबको संतत, मनमें रख श्रद्धा-सम्मान ॥
बुरे संगका, बुरे व्यसनका कभी न रक्खो मनमें मोह।
क्रोध-लोभको छोड़, करो सब जीवोंपर स्वाभाविक छोह ॥
भोग-वासना त्याग करो श्रीप्रभुचरणोंमें दृढ़ अनुराग।
बचे रहोगे नरकोंसे तुम, भक्त बनोगे शुचि बड़भाग ॥

दिव्यलोक-स्वर्गमें पहुँचना हो तो—

दया करो तुम जीव मात्रपर, सबको करो स्नेहका दान।
बोलो—सत्य-मधुर-हितकर-मित, जपो नाम हरिका निर्मान ॥
प्रभुकी सब सम्पत्ति मानकर, करो नित्य पर-हित उपयोग।
दुःख हरो दुखियोंके, दे निज सुख, रख प्रभुमें मन-संयोग ॥
पालन करो धर्म-वर्णाश्रम, रखकर मनमें शुचि उत्साह।
धर्म बचाओ, शान्ति दानकर सबका हरण करो उर-दाह ॥
सात्विक भोजन करो अहिंसक, छोड़ो सभी जीभके स्वाद।
लो भगवत्प्रसाद प्रतिदिन तुम, मिट जायें सब शोक-विषाद ॥
श्रद्धायुक्त सरस सेवासे सुख पहुँचाओ, दो सम्मान।
गुरुजन-मात-पिता-गुरु-सुरको अपने मनमें ईश्वर जान ॥
नित स्वाध्याय, नित्य हरि-पूजन, करो नित्य सात्विक सत्संग।
क्षमा, त्याग, गो-आतुर-सेवा—सहज बना लो अपने अंग ॥
प्रभु-चरणोंमें रखो निरन्तर तुम अनन्य ममता-अनुराग।
पहुँचोगे तुम दिव्य स्वर्गमें बनकर हरि-सेवक बड़भाग ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकका नम्र निवेदन

भगवान्, धर्म, परलोक, पुनर्जन्म, कर्मफलभोग आदिपर उत्तरोत्तर विश्वास कम होता रहनेके कारण आज मानव-जीवनमें उच्छृङ्खलता, यथेच्छाचारिता, भोगपरायणता, सत्कर्मोंमें उपेक्षा, दुष्कर्मोंमें प्रीति आदि महान् दोष आ गये हैं और क्रमशः उनकी वृद्धि हो रही है। यही कारण है—जगत्में इतनी वैज्ञानिक उन्नति होनेपर भी दुःख-क्लेश, मानस-अशान्ति उत्तरोत्तर बढ़ते जा रहे हैं। इस पतनके प्रवाहको वस्तुतः रोकना तो भगवान्के ही हाथ है। उन्हींकी कृपासे जब मनुष्यकी बुद्धिका ठीक निर्णय होगा और जब वह असत्-भोगोंके भविष्य-भीषण किंतु आपातरमणीय क्षेत्रसे हटकर भगवान्की सेवाके पथपर आरूढ़ होगा, तभी वह धर्मक्षेत्रको अपना नित्य निवास-स्थान बना सकेगा। तथापि भगवान्के तथा शास्त्रोंके आदेशानुसार प्रयत्न करना आवश्यक है और धर्म तथा कर्तव्य भी है। इसी दृष्टिसे 'कल्याण'का यह 'परलोक और पुनर्जन्माङ्क' प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें आये हुए विषयोंका ठीक-ठीक अध्ययन किया जानेपर, परलोक तथा पुनर्जन्ममें एवं कर्मफलभोगके सिद्धान्तमें विश्वास बढ़ना अनिवार्य है और उस विश्वाससे पतनके प्रवाहमें किसी अंशमें कुछ रुकावट आना भी सम्भव है। यद्यपि पतनके प्रवाहका वेग इतना प्रबल और भयानक है कि छोटी-मोटी बाधासे उसका रुकना सम्भव नहीं है, तथापि यदि कुछ लोग भी इससे बचेंगे तो उनको तो लाभ होगा ही, फिर, उनके संसर्गसे दूसरोंको भी परम्परागत लाभ होना सम्भव है।

इस अङ्कमें ऐसे कई प्रसंग आये हैं, जिनपर आस्थारहित बुद्धिवादी पुरुषोंको संदेह हो सकता है। यह भी सम्भव है, हमारे प्रमादसे उनमें कुछ बातें कल्पनाकी आ गयी भी हों। परंतु सभी बातें सबकी समझमें आ जायँ, यह सम्भव नहीं है; क्योंकि सभी विषयोंसे सब लोग समान परिचित नहीं होते। फिर, बहुतसे ऐसे अतीन्द्रिय विषय हैं, जिनके अनुभवी जानकार इस समय नहीं हैं; पर वे सत्य हैं। सत्य किसीकी स्वीकृतिकी अपेक्षा नहीं करता; क्योंकि वह 'है'।

रामायणमें 'पुष्पकविमान'का वर्णन आता है, जो स्वयंचालित था, सर्वत्र जा सकता था और जिसमें सहस्रों लोग बैठ सकते थे। श्रीमद्भागवतमें कर्दमऋषिके स्वयंचालित विशाल विमानके लिये कहा गया है कि 'वह इच्छानुसार सब लोकोंमें जा सकता है; सब प्रकारके भोग-सुख-सामग्रियोंसे सम्पन्न, महान् रत्नोंसे विभूषित, हीरे-पन्ने-नीलम-माणिक्य-मणि आदिसे निर्मित, बहुतसे कमरों तथा प्रत्येक कमरेमें पलंग, शय्या, पंखे और आसनादिसे तथा सुविधानुसार खेलनेके स्थान, शयनगृह, आँगन और चौक आदिसे युक्त अत्यन्त सुन्दर तथा समृद्धियुक्त है। उसमें सभी ऋतुओंमें रहनेकी सुविधा है इत्यादि।' तथा इसी प्रकार पुराणों आदि ग्रन्थोंमें आये हुए सर्वत्रगामी विमानोंके अन्यान्य वर्णन मिलते हैं, साथ ही विविध प्रकारके विमानोंके तथा विमान-निर्माणकी प्रविधियोंके उल्लेख भी पाये जाते हैं, जिनको पहले लोग काल्पनिक बताते थे, पर अब जब कि विमान—राकेट चलने लगे, तब वह बात नहीं रही।

यही नहीं, प्राचीन ग्रन्थोंमें पृथ्वीके मनुष्योंके सदेह विभिन्न लोकोंमें जाने-आनेके तथा दशरथ, दुष्यन्त, अर्जुन आदिके स्वर्ग जाकर देवताओंकी सहायता करनेके प्रसङ्ग भी मिलते हैं, जिनको बुद्धिवादी कहलानेवाले लोग निरी कपोलकल्पना मानते थे, यद्यपि अब उनकी मान्यतामें कुछ परिवर्तन हो रहा है।

मान लीजिये, कभी कोई ऐसा समय आ जाय, जिसमें वर्तमान विज्ञान तथा विज्ञानवेत्ता सर्वथा न रहें, केवल ग्रन्थोंमें बेतारके तार, रेडियो, टेलीविजन आदिके साथ यह वर्णन रहे कि 'पृथ्वीसे लाखों मील दूर आकाशमें स्वचालित विमान उड़ते थे और वहाँसे वे चित्र तथा संवाद आदि प्रेषित करते थे और ऐसे बहुत लंबे-चौड़े-ऊँचे, सैकड़ों मन वजनदार, सब सुविधाओंसे युक्त विमानोंपर इस पृथ्वीके जीवित मनुष्य, प्रति घंटे बीस-पचीस हजार मीलकी रफ्तारसे उड़ते हुए पाँच-सात दिनोंमें ही पूर्वनिश्चित क्रमानुसार पृथ्वी तथा चन्द्रमाकी दसों-बीसों परिक्रमा करके, लाखों मीलोंकी यात्रा पूर्णकर निश्चित समयपर सकुशल पृथ्वीपर लौट आते थे; लाखों मील दूरसे चित्र तथा संवाद भेजते थे और उन लोकोंकी जानकारी प्राप्त करके वहाँ उतरते थे।' तो उस समयके इस विज्ञानसे सर्वथा अपरिचित लोग यही कहेंगे कि 'यह सब कल्पनामात्र है, ढकोसला है। भला ऐसा भी कभी हो सकता है?' पर जैसे उनके इन विचारों तथा उद्गारोंसे सत्य नहीं मिटता, इसी प्रकार परलोक, प्रेत-पितृलोक, स्वर्ग-नरकादि विविध योनियोंमें तथा लोकोंमें कर्मफलभोग, भगवत्प्राप्ति, परमधाम—वैकुण्ठ-गोलोक-साकेतादिकी बातें प्रत्यक्ष न होनेसे तथा उनका प्रत्यक्ष अनुभव न होनेसे उनके सम्बन्धमें स्वाभाविक ही ऐसा कहा जा सकता है कि 'यह सब मिथ्या कल्पनामात्र है।' पर वास्तवमें सत्य तो सत्य ही रहेगा। अतएव इस अङ्कमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आये हुए ऐसे प्रसंग किन्हीं तार्किक पुरुषोंकी दृष्टिमें कल्पनाप्रसूत और किन्हीं आस्थावान् सज्जनोंकी दृष्टिमें सर्वथा सत्य प्रतीत होंगे। इस विषयमें सबको एक-सी श्रद्धा और अनुभूति करानेमें हम असमर्थ हैं और अपनी इस असमर्थताके लिये हम क्षमा-प्रार्थना करते हैं।

पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस अङ्कके विभिन्न प्रसङ्गोंमें विभिन्न प्रकारसे सत्य, अहिंसा, दया, प्रेम, सरलता, सेवा, संयम, नियम, ब्रह्मचर्य, त्याग, अस्तेय, अपरिग्रह, सदाचार, सात्त्विक दैन्य, विनय, निःस्वार्थभाव, निष्कामभाव, विवेक, वैराग्य, ज्ञान, भक्ति आदि विश्व-मानवके चरित्रको उन्नत करनेवाले दैवी-सम्पदाके गुणोंके ग्रहण तथा सेवन करनेके लिये; तथा इसके विपरीत असत्य, हिंसा, क्रूरता, भोग, छल-कपट, मिथ्या-स्वामित्व, असंयम, यथेच्छाचार, ब्रह्मचर्यके खण्डन, विषयासक्ति, चोरी, परिग्रह, दुराचार, अभिमान-मद, स्वार्थ, सकामभाव, अविवेक, आसक्ति, अज्ञान, भक्तिशून्यता आदि विश्वमानव-चरित्रका पतन करानेवाले आसुरी-सम्पदाके दोषोंके सर्वथा त्यागकी बात ही कही गयी है और मानवमात्रको परम विशुद्ध उज्ज्वल-चरित्र होकर मनुष्य-जीवनके चरम तथा परम एकमात्र लक्ष्य 'भगवत्प्राप्ति'के साधनमें लगनेके लिये ही येन-केन प्रकारेण प्रोत्साहन दिया गया है, जो सभी प्रकारसे परम शान्ति तथा परम सुखका मूल है। अतएव सम्मान्य पाठक-पाठिकाओंसे हमारा यही विनम्र निवेदन है कि वे इसी दृष्टिसे इस अङ्कका अध्ययन करें और हमारी भूल-त्रुटि-प्रमाद तथा अपराधोंको क्षमा करते हुए पतनकारी पापकर्मोंसे बचे रहकर, मानव-चरित्रको उच्च बनानेवाली जो वस्तु समझमें आवे, उसे ग्रहणकर अपने जीवनमें उतारें और जीवनके परम लक्ष्य परमात्माकी ओर अग्रसर हों।

इस अङ्कमें 'परलोक तथा पुनर्जन्म' सम्बन्धी बहुत-से आवश्यक विषयोंपर प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया गया है। कितनी क्या सफलता हुई है, यह तो इसके पाठकगण ही निश्चय कर सकेंगे। कई आवश्यक विषय हमारे अज्ञान अथवा अन्यान्य कारणोंसे छूट भी गये हैं। इस अङ्कके निर्माणमें हमें श्रद्धेय पद्मविभूषण महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज एम्० ए०, डी० लिट्० से बड़ी सहायता मिली है। उनके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। उनके अतिरिक्त, हमारे कई पुराने तथा प्रायः सभी नये साथी-सहयोगी सज्जनोंसे बहुत सहायता मिली है। हमारे ये पुराने-नये साथी सदा ही यथासाध्य सहयोग-सहायता देते रहे हैं और ये सभी इतने अपने हैं कि इनके नाम प्रकाशितकर प्रशंसा करना अपनी ही प्रशंसा करना है और इन्हें संकोचमें डालना है। अतएव किसीका नाम नहीं दिया जा रहा है।

सबसे बड़ी सहायता की है—लेखक महानुभावोंने, जिनके सक्रिय सहयोगसे ही इस अङ्कका निर्माण हो सका है। हम उन सभी लेखकोंके प्रति हृदयसे कृतज्ञ हैं। पर साथ ही हम लेखक महानुभावोंके सामने बड़े दोषी तथा अपराधीके रूपमें भी उपस्थित हैं। पता नहीं, लेखकोंकी कितनी कृपा तथा प्रीति है—'कल्याण'के प्रति, जो बिना ही माँगे महान् परिश्रम करके महानुभावगण लेख लिखकर भेजते हैं। हम हृदयसे उन सभीका सम्मान करते हैं। पर सब लेखोंको प्रकाशित करना हमारे लिये सर्वथा असम्भव है। अपनी जानमें हमने प्रयत्न किया है, पर सैकड़ों लेख बिना छपे रह गये हैं। उनमें ऐसे लेख भी हैं जो बड़े उपयोगी हैं और जिनके लेखकोंके प्रति हमारी हार्दिक श्रद्धा है। बहुतसे ऐसे लेख भी हैं, जो केवल लिखनेके लिये ही लिखे गये हैं। कई ऐसे भी हैं, जिनका लेखके शीर्षकों तथा विषयोंसे कोई सम्बन्ध ही नहीं है; इधर हिंदी-संसारमें लिखनेके उत्साही सज्जन बहुत बढ़ गये हैं। इसीका यह परिणाम है तथापि प्रायः प्रत्येक लेखक ही अपने लेखको प्रकाशित देखना चाहते हैं और प्रकाशित न होनेपर उन्हें दुःख तथा रोष भी स्वाभाविक ही होता है। यह भी सम्भव है कि उनमेंसे कई उत्तम लेखोंकी अपेक्षा निम्न कोटिके लेख छप गये हों और उनके उच्चकोटिके रह गये हों। पर हम इस विषयमें इतने असहाय हैं कि हाथ जोड़कर क्षमा माँगनेके अतिरिक्त और कुछ भी करनेमें असमर्थ हैं। विषय प्रायः एक-से ही हैं। पुनरावृत्ति स्वाभाविक ही बहुत हुई है, होती है। जो लेख छपे हैं, उनमें भी पुनरावृत्ति बहुत है। यद्यपि सम्पादन करनेमें ऐसे बहुतसे वाक्य लेखोंसे निकाल दिये गये हैं और इस अपराधके लिये भी हम लेखकोंसे करबद्ध क्षमायाचना करते हैं। जो लेख बचे हैं, उनमें भी प्रायः वही बातें हैं, जो छपे लेखोंमें आ चुकी हैं। अतएव उन सबका परिशिष्टाङ्कमें या अगले अङ्कोंमें प्रकाशित करना भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
110327

सम्भव नहीं है। इस स्थितिमें हम पुनः-पुनः लेखक महानुभावोंके चरणोंमें प्रणाम करते हुए उनसे विनीत क्षमा-प्रार्थना करते हैं। हमारी परिस्थितिको समझकर वे महानुभाव क्षमा करें। हमसे सम्पादनके कार्यमें, लेखोंमें यदि कहीं प्रमादवश अनुचित काट-छाँट हुई हो तो उसके लिये भी क्षमा करें।

'कल्याण'में जीवित व्यक्तियोंके चित्र प्रकाशित करनेका नियम नहीं है। पर इस बार इस अङ्कमें विशेष प्रयोजनकी दृष्टिसे कुछ छायाचित्र, जिनमें अधिकांश छोटी उम्रके बच्चोंके हैं, प्रकाशित किये गये हैं, जिनका पूर्वजन्मकी घटनाओंके बतानेसे सम्बन्ध है। यह नियमभङ्ग नहीं है, विशेष कारणवश अपवादके रूपमें यह किया गया है। नियम वही है; अतएव कोई सज्जन जीवित व्यक्तियोंके चित्र प्रकाशित करनेके लिये कृपया आग्रह न करें।

इस अङ्कमें जितने और जैसे बहुरंगे तथा सादे चित्र देनेका विचार था, उतने और वैसे चित्र नहीं दिये जा सके, यद्यपि जो दिये गये हैं; वे भी कम नहीं हैं। और कई तो बहुत सुन्दर भी हैं; परंतु हमारे चित्रकार श्रीभगवानदासके बीमार हो जानेके कारण योजनाके अनुरूप चित्र नहीं बन पाये। इसका हमें खेद है।

अङ्कके प्रकाशनमें भी अनिवार्य कारणवश देर हो गयी है, इसके लिये ग्राहक महोदय क्षमा करें।

इस अङ्कमें जो कुछ सामग्री दी गयी है, उसपर ध्यान देकर पढ़नेके लिये तथा अपने लाभकी सार चीजोंका ग्रहण करनेके लिये पाठकोंसे विनीत अनुरोध है। यह अङ्क विशेष प्रयोजनसे ही निकाला गया है। इसके सम्पादनकालमें जो भगवान्‌की स्मृति तथा उनकी कृपाके बार-बार दर्शन होते रहे हैं, यह हमारा परम सौभाग्य है। आशा है, पाठकगण इस अङ्कके अध्ययनसे पर्याप्त लाभ उठायेंगे।

निवेदक

हनुमानप्रसाद पोद्दार
चिम्मनलाल गोस्वामी } सम्पादक

प्रभु ! अपनी वस्तु जानकर स्वीकार कर लो

मनमें चाह जगी थी प्रियतम! हो प्रभुका महिमा-विस्तार।
सबके दुःख-दाह मिट जायें पा प्रभुके पदकमल उदार ॥१॥
पता नहीं, क्यों जगी चाह यह? क्यों बदला जीवनका ढंग?
क्यों तुमने नित नये दिखाये, फिर निज विविध रूप-रस-रंग?॥२॥
चमकी परम दिव्य बिजली-सी, बही सरस शुचि साधन-धार।
उमड़ी, बढ़ी, चली हो ठेढ़ी, रंग बदलती बारंबार ॥३॥
क्यों तुमने छीना सब, क्यों फिर दिया अनोखा प्यार-दुलार?।
क्यों विरोधिनी दी तुमने प्रख्याति निम्नगामिनि निस्सार? ॥४॥
यह तो निश्चित है तुम जो करते उससे होता कल्याण।
पर क्यों बारबार करते परिवर्तन? लीलामय! भगवान्! ॥५॥
बचे-खुचे जीवनको कर लो, अब, बस, अपनेमें ही लीन।
निर्मल शान्त बना लो, रक्खो कभी न रंचक हीन-मलीन ॥६॥

पुनर्जन्म-परलोक तुम्हीं सब तुम्हीं एक सबके आधार।
अपनी वस्तु जान कर लो, इस क्षुद्र अङ्कको प्रभु! स्वीकार ॥ ७ ॥

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कल्याण'के नियम

उद्देश्य—भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

नियम

(१) भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वर-परक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। **लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।**

(२) इसका डाकव्यय और विशेषाङ्कसहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ९ रुपये और भारतवर्षसे बाहरके लिये रु० १३.३५ (१५ शिलिंग) नियत है। सजिल्द विशेषाङ्कका भारतमें रु० १०.५० तथा विदेशके लिये सजिल्दका १७ शिलिंग (१५.१३ पैसे) है। 'कल्याण'के आजीवन ग्राहकका चंदा अजिल्द विशेषाङ्कका रु० १२५.०० तथा सजिल्दका १५०.०० है।

(३) 'कल्याण'का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरमें समाप्त होता है, अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं। वर्षके किसी भी महीनेमें ग्राहक बनाये जा सकते हैं; किंतु जनवरीके अङ्कके बाद निकले हुए तबतकके सब अङ्क उन्हें लेने होंगे। 'कल्याण'के बीचके किसी अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते; छः या तीन महीनेके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें प्रकाशित नहीं किये जाते।

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो-तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका अङ्क समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह हमें भेज देना चाहिये। डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें अड़चन हो सकती है।

(६) पता बदलनेकी **सूचना** कम-से-कम १५ दिन पहले लियमें पहुँच जानी चाहिये। **लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम, पता साफ-साफ लिखना चाहिये।** महीने-दो-महीनोंके लिये पता बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये। पता-बदलीकी **सूचना** न मिलनेपर अङ्क पुराने पतेसे चले जानेकी अवस्थामें दूसरी प्रति बिना मूल्य न भेजी जा सकेगी।

(७) जनवरीसे बननेवाले ग्राहकोंको रंग-बिरंगे चित्रोंवाला जनवरीका अङ्क (चालू वर्षका विशेषाङ्क) दिया जायगा। विशेषाङ्क ही जनवरीका तथा वर्षका पहला अङ्क होगा। फिर दिसम्बरतक महीने-महीने ११ अङ्क मिला करेंगे। सबका मूल्य रु० ९.०० है। किसी अनिवार्य कारणवश 'कल्याण' बंद हो जाय तो जितने अङ्क मिले हों, उतनेमें ही वर्षका चंदा समाप्त समझना चाहिये; क्योंकि केवल विशेषाङ्कका ही मूल्य ९ रुपये है।

(८) ५० पैसे एक संख्याका मूल्य मिलनेपर नमूना भेजा जाता है। ग्राहक बननेपर वह अङ्क न लें तो ५० पैसे बाद दिये जा सकते हैं।

आवश्यक सूचनाएँ

(९) 'कल्याण'में किसी प्रकारका कमीशन या 'कल्याण' की किसीको एजेन्सी देनेका नियम नहीं है।

(१०) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखनेके साथ-साथ ग्राहक-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये। पत्रमें आवश्यकताका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये।

(११) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है। एक बातके लिये दुबारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रकी तिथि तथा विषय भी देना चाहिये।

(१२) ग्राहकोंको चंदा मनीआर्डरद्वारा भेजना चाहिये। वी० पी० से अङ्क बहुत देरसे जा पाते हैं।

(१३) प्रेस-विभाग तथा कल्याण-विभागको अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्रव्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये। 'कल्याण'के साथ पुस्तकें और चित्र नहीं भेजे जा सकते। प्रेससे १) रु० से कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती।

(१४) चालू वर्षके विशेषाङ्कके बदले पिछले वर्षोंके विशेषाङ्क नहीं दिये जाते।

(१५) मनीआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी संख्या, रुपये भेजनेका उद्देश्य, ग्राहक-नम्बर (नये ग्राहक हों तो 'नया' लिखें), पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।

(१६) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनीआर्डर आदि **व्यवस्थापक-"कल्याण", पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)** के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **सम्पादक-"कल्याण", पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)** के नामसे भेजने चाहिये।

(१७) स्वयं आकर ले जाने या एक साथ एकसे अधिक अङ्क रजिस्ट्रीसे या रेलसे मँगानेवालोंसे चंदा कम नहीं लिया जाता।

व्यवस्थापक—**'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हित-साधन-द्वादशी

नरकसे बचने, स्वर्ग प्राप्त करने तथा मोक्ष या परमपद पानेके साधन

१—पर-धन, पर-स्त्री या पर-पुरुष, पर-निन्दा, पर-अहितको सदा भयानक दुःखपरिणामी समझकर इनसे सर्वथा बचे रहो।

२—कभी कड़वे, रूखे, उद्वेग पैदा करनेवाले, मिथ्या, पर-सुख तथा पर-हितका नाश करनेवाले शब्दोंका उच्चारण मत करो, ऐसे काम मत करो और मनमें कभी ऐसे विचार भी मत आने दो।

३—काम, क्रोध और लोभको नरकके द्वार तथा आसुरी योनि-प्राप्तिके कारण समझकर इनसे सदा सावधानीसे बचे रहो।

४—माता, पिता, देवता, गुरुजनों आदिका कभी अपमान, अवहेलना न करके सदा विनम्र भावसे श्रद्धापूर्वक सत्कार-मान-पूजन करते रहो।

५—मनमें अभिमान, मद, दम्भ, द्वेष, विषाद आदि दूषित भाव न रखकर सदा विशुद्ध भाव रक्खो, जीभसे सदा भगवान्‌का नाम लेते रहो, शरीरसे होनेवाले सब कामोंमें भगवत्सेवाका भाव रक्खो।

६—नित्य-निरन्तर श्रद्धा-प्रेमपूर्वक अपनी निष्ठाके अनुसार भगवान्‌के स्वरूप, तत्त्व, लीला, गुण तथा नामका स्मरण-चिन्तन करते रहो।

७—अपने पास जो कुछ हो, उसे भगवान्‌की वस्तु समझकर, भगवत्स्वरूप प्राणियोंकी सेवामें यथायोग्य निरभिमान-निष्काम होकर समादरपूर्वक लगाते रहो। सबके हितमें ही अपना हित समझो।

८—सत्य, सदाचार, संयम, सेवा, समता, संतोष, सर्वभूतहित, सद्व्यवहार तथा सात्त्विक त्यागका सदा सेवन करो।

९—प्राणीमात्रमें भगवान् समझकर कभी किसीका अनादर न करो, किसीको दुःख मत दो तथा अहित न करो।

१०—सबको सदा सुख पहुँचाओ, सबका सदा हित करो।

११—जीवनको क्षणभंगुर समझो और किसी भी प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिमें आसक्ति-ममता मत रक्खो। केवल भगवान्‌में ही आसक्ति, ममता रक्खो।

१२—अपने प्रत्येक पवित्र कर्मके द्वारा सदा भगवान्‌की पूजा करते रहो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri